हिन्दी

विश्वकोष

बंगला विश्वकोषके सम्पादक

श्री ... ज्ञान मन्दिर, ...

श्रीनगेन्द्रनाथ वसु प्राच्यविद्यामहार्णव,

सिद्धान्त वारिधि, शब्दरत्नाकर, तत्त्वचिन्तामणि एम, आर, ए, एस

तथा हिन्दीके विद्वानों द्वारा सङ्कलित।

ऊनविंश भाग

[र—रैवत]

THE

ENCYCLOPÆDIA INDICA

VOL. XIX

COMPILED WITH THE HELP OF HINDI EXPERTS

BY

NAGENDRANATH VASU Prāchyavidyāmahārnava,

Siddhānta vāridhi Śabda ratnākara Tattva-chintāmani M. R. A. S.

Compiler of the Bengali Encyclopædia; the late Editor of Bangiya Sāhitya Parishad
and Kāyastha Patrikā; author of Castes & Sects of Bengal, Mayura-
bhanja Archæological Survey Reports and Modern Buddhism;
Hony Archæological Secretary Indian Research Society,
Associate Member of the Asiatic
Society of Bengal &c. &c. &c.

Printed by A. Sen. at the Visvakosha Press.
Published by
Nagendranath Vasu and Visvanath Vasu
9 Visvakosha Lane Bagbazar Calcutta

1920

हिन्दी विश्वकोष

ऊनविंश भाग।

र

र—हिन्दी वर्णमालाका सत्ताईसवां व्यञ्जनवर्ण। इसका उच्चारण जीभके अगले भागको मूर्द्धाके साथ कुछ स्पर्श करनेसे होता है। यह स्पर्श वर्ण और ऊष्म वर्णोंके मध्यका वर्ण है। इसका उच्चारणस्थान स्वर और व्यञ्जनका मध्यवर्ती है, इसीसे इसको अन्तस्थ वर्ण कहते हैं। इसके उच्चारणमें संवार, नाद और घोष नामक प्रयत्न होते हैं।

एक सीधी रेखा खींच कर पीछे दूसरी रेखा दाहिनी ओरसे कुण्डली भावमें खींच लानेसे यह आकार बनता है। इन रेखाओंमें भवानी, शङ्करी और वह्नि सर्वदा रहता है। इस वर्णको महारूपिणी वर्णमाता महाशक्ति कहा है। यह वर्ण बनानेका दूसरा प्रकार—

ऊर्द्ध्वाधः क्रमसे एक एक रेखा खींच कर उसे त्रिकोण बनाना होगा। पीछे ऊपरकी एक मात्रा और मध्यमें एक रेखा खींचनेसे यह वर्ण बनेगा। त्रिकोणकी तीन रेखाओंमें ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर रहते हैं। ऊपर वाली मात्राको शक्ति तथा मध्यकी रेखाको अग्निरूपिणी जानना होगा। इस वर्णका ध्यान—

"रक्तजिह्वा महारौद्री रक्ताक्षी रक्तलोचना।
रक्ताम्बरपरीधाना रक्तपुष्पोपशोभिता॥
रक्तमाल्याम्बरधरा रक्तालङ्कारभूषिता।
महामोक्षप्रदा नित्यामष्टसिद्धिप्रदायिका॥
एवं ध्यात्वा ब्रह्मरूपां तन्मन्त्रं दशधा जपेत्॥"

इस प्रकार इस वर्णका ध्यान करके दश बार इसे जप प्रणाम करना होता है। प्रणाममन्त्र—

"त्रिशक्ति सहितं देवि। आत्मादि-तत्त्वसंयुतं।
सर्वतेजोमयं वर्णं ततं प्रणमाम्यहं॥"

(वर्णोद्धारतन्त्र)

इस वर्णका स्वरूप रकार दो कुण्डलीसे युक्त, विद्युल्लताकार, पञ्चरेखात्मक, पञ्चप्राणमय और त्रिविन्दुके साथ है।

इसके वाचक शब्द वा पर्याय—रक्त, क्रोधिनी, रेफ,

पावक, ओजस्, प्रकाश, अदर्शन, दीप, रत, कृष्ण, अपर, वली, भुजङ्गेश, मति, सूर्य, धातुरक्त, प्रकाशक, व्यापक, रेवती, दास, कुक्षांश, वह्निमण्डल, उग्ररेखा, स्थूलदण्ड, वेदकण्ठपला, प्रकृति, सुगल, ब्रह्मशब्द, गायक, धन, श्रीकण्ठ, उष्मा, हृदय, मुण्डी, त्रिपुरसुन्दरी, सबिन्दु, योनिज, ज्वाला, श्रीशैल और विश्वतोमुखी।

(वर्णाभिधानतन्त्र)

मातृकान्यासमें इस वर्णका दक्षिण स्कन्ध पर न्यास करना होता है। काव्यके आदिमें इस शब्दका प्रयोग न करे। 'रस्तु दाह', यदि कोई करे तो दाह होता है।

(वृत्तरत्नाकर)

२ छन्दःशास्त्रोक्त गणविशेष। "रलमध्य" छन्दःशास्त्रमें 'र' कहनेसे मध्यवर्णको लघु, प्रथम और शेष वर्णको गुरु तथा मध्यवर्णको लघु समझना होगा। ३ धात्वनुबन्धविशेष। (कविकल्पलता)

रंगई (हिं० पु०) धोबियोंके अन्तर्गत एक जाति जो केवल छपे हुए कपडे का काम करती है।

रंगत (हिं० स्त्री०) १ रंगका भाव। २ मजा, आनन्द। ३ हालत, दशा।

रंगतरा (हिं० पु०) एक प्रकारकी बडी और मीठी नारंगी, संगतरा।

रंगन (हिं० पु०) एक प्रकारका मझोला वृक्ष। इसके हीरकी लकडी कडी, चिकनी और मजबूत होती है और इमारतके काममें आती है। बंगाल, मध्यप्रदेश और मद्रासमें यह पेड बहुतायतसे होता है। इसे 'कांटागन्धक' भी कहते हैं।

रंगना (हिं० क्रि०) १ किसी वस्तुपर रंग चढ़ाना, रंगमें डुबा कर अथवा रंग चढ़ा कर किसी चीजको रंगीन करना। २ अपने कार्यसाधनके अनुकूल करनेके लिये बातचीतका प्रभाव डालना, अपना-सा बनाना। ३ किसीको अपने प्रेममें फसाना। ४ किसीके प्रेममें लिप्त होना।

रंगबदल (हिं० पु०) हल्दी।

रंगबिरंग (हिं० वि०) १ कई रंगोंका। २ तरह तरहके, अनेक प्रकारके।

रंगबिरंगा (हिं० वि०) १ अनेक रंगोंका, कई रंगोंका। २ तरह तरहका, अनेक प्रकारका।

रंगभरिया (हिं० वि०) छत, किवाड, दीवार इत्यादि पर रंगोंसे चित्रकारी करनेवाला, रंगसाज।

रंगमार (हिं० पु०) ताशका एक खेल। यह दो, तीन अथवा चार आदमियोंसे खेला जाता है। इसमें एक एक करके सब खेलनेवालोंको बराबर बराबर पत्ते बांट दिये जाते हैं और तब खेल होता है। इसमें जिस रंगका जो पत्ता चला जाता है उसी रंगके उससे बड़े पत्ते से वह जीता जाता है। यह ताशका सबसे सीधा खेल है।

रंगरली (हिं० स्त्री०) आमोद-प्रमोद, आनन्द, मौज।

रंगरस (हिं० पु०) आमोद प्रमोद, आनन्द-मंगल।

रंगरसिया (हिं० पु०) भोग-विलास करनेवाला व्यक्ति, विलासी पुरुष।

रंगरूट (हिं० पु०) १ सेना या पुलिस आदिमें नया भर्ती होनेवाला सिपाही। २ किसी काममें पहले पहल हाथ डालनेवाला आदमी, वह आदमी जो कोई काम सीखने लगा हो।

रंगरेज (फा० पु०) रङ्गरेज देखो।

रंगवाई (हिं० स्त्री०) रंगाई देखो।

रंगवाना (हिं० क्रि०) रंगनेका काम दूसरेसे कराना, दूसरेको रंगनेमें प्रवृत्त करना।

रंगसाज (फा० पु०) १ मेज, कुर्सी, किवाड, दीवार इत्यादि पर रंग चढ़ानेवाला, वह जो चीजों पर रंग चढ़ाता हो। २ उपकरणोंसे रंग तैयार करनेवाला, रंग बनानेवाला।

रंगसाजी (फा० स्त्री०) रंगसाजका काम, रंगनेका काम।

रंगाई (हिं० स्त्री०) १ रंगनेका काम, रंगनेकी क्रिया। २ रंगनेकी मजदूरी। ३ रंगनेका भाव।

रंगाना (हिं० क्रि०) रंगनेका काम दूसरेसे कराना, दूसरेको रंगनेमें प्रवृत्त करना।

रंगावट (हिं०स्त्री०) रंगनेका भाव, रंगाई।

रंगिया (हिं० पु०) १ कपडे रंगनेवाला, रंगरेज। २ रंगसाज।

रंगी (हिं० वि०) आनंदी, मौजी।

रंगीन (फा० वि०) १ जिस पर कोई रंग चढ़ा हो, रंगा हुआ। २ जिसमें कुछ अनोखापन हो, मजेदार। ३ विलास-प्रिय, आमोदप्रिय।

रंगीनी (फा॰ स्त्री॰) १ रंगीन होनेका भाव। २ सजावट, बनाव सिंगार। ३ बाँकापन। ४ रसिकता, रंगीलापन।

रंगीरैटा (हि॰ पु॰) एक जंगली वृक्ष। यह भारतवर्षमें अधिकतासे होता है। इसकी लकड़ी बहुत मजबूत होती है और इमारत बनानेके काममें आती है। इससे मेज, कुर्सी आदि भी बनाए जाते हैं।

रंगीला (हि॰ वि॰) १ आनन्दी, मौजी। २ सुन्दर खूब सूरत। ३ प्रेमी अनुरागी।

रंगीली टोड़ी (हि॰ स्त्री॰) सम्पूर्ण जातिकी एक रागिणी। इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। यह टोड़ी रागिणीका एक भेद है।

रंगैया (हि॰ पु॰) रंगनेवाला।

रंच (हि॰ वि॰) थोड़ा, अल्प।

रंज (फा॰ पु॰) १ दुःख, खेद। २ शोक।

रंजक (हि॰ स्त्री॰) १ वह थोड़ी सी बारूद जो बत्ती लगानेके वास्ते बंदूककी प्यालो पर रखी जाती है। २ गाँजे, तमाकू या सुलफेका दम। ३ वह बात जो किसी को भड़काने या उत्तेजित करनेके लिये कही जाय। ४ कोर तोड़का या चरपरा चूर्ण।

रंजना (हि॰ क्रि॰) १ प्रसन्न करना, आनन्दित करना। २ भजना, स्मरण करना। ३ रंगना।

रंजा (हि॰ स्त्री॰) एक प्रकारकी मछली। इसे अन्जी भी कहते हैं।

रंजिश (फा॰ स्त्री॰) १ रंज होनेका भाव। २ वैमनस्य, शत्रुता। ३ मनमुटाव, अनबन।

रंजीदगी (फा॰ स्त्री॰) १ रंजीदा होनेका भाव। २ रंजिश।

रंजीदा (फा॰ वि॰) १ जिसे रंज हो, दुःखित। २ नाराज, अप्रसन्न।

रंडापा (हि॰ पु॰) विधवाकी दशा, बैधापन।

रंडी (हि॰ स्त्री॰) नाचने-गाने और धन ले कर सम्भोग करनेवाली स्त्री वेश्या।

रंडीबाज (फा॰ पु॰) वह जो रंडियोंसे सम्भोग करता हो, वेश्यागामी।

रंडीबाजी (फा॰ स्त्री॰) रंडीके साथ गमन करना वेश्या गमन।

रंडुआ (हि॰ पु॰) वह पुरुष जिसकी स्त्री मर गई हो।

रंडुवा (हि॰ पु॰) रंडुआ देखो।

रंद (हि॰ पु॰) १ बड़ी इमारतोंकी दीवारोंके वे छेद जो रोशनी और हवा आनेके लिये रखे जाते हैं, रोशनदान। २ किलेकी दीवारोंका वह मोखा जिसमेंसे बाहरकी ओर बंदूक या तोप चलाई जाती है मार।

रंदना (हि॰ क्रि॰) रंदेसे छील कर लकड़ीकी सतह चिकनी करना, रंदा फेरना या चलाना।

रंदा (हि॰ पु॰) बढ़ईका एक औजार जिससे वह लकड़ी की सतह छील कर बराबर और चिकनी करता है। इसमें एक चौपहल लम्बी और चिकनी सतहवाली लकड़ीके बीचमें एक छोटा लम्बा छेद होता है, जिसमें एक तेज धारवाला फल जड़ा रहता है। इसे हाथमें ले कर किसी लकड़ी पर बार बार रगड़ने या चलानेसे उसके ऊपरसे उभरी हुई सतह उतरने लगती है और थोड़ी देरमें लकड़ीकी सतह चिकनी हो जाती है।

रंभा (हि॰ पु॰) १ लम्बा डंडा। २ जुलाहोंका छोटेका एक औजार जो लगभग एक गज लम्बा होता है। यह जमीनमें गाड़ दिया जाता है और इसमें तानेकी रस्सी बाँधी जाती है।

रंभाना (हि॰ क्रि॰) १ गायका बोलना, गायका शब्द करना। २ गौने रंभन कराना, गौको शब्द करनेमें प्रवृत्त करना।

रंहचटा (हि॰ पु॰) मनोरथ सिद्धिकी लालसा, लालच।

रंहस् (सं॰ क्ली॰) रम्यते वेग इति रम (रमेरच। उण् ४।२१३) इति असुन् हुगागमश्च। १ वेग, गति। (पु॰) २ महादेव। ३ विष्णु।

र (सं॰ पु॰) राति ऊर्द्ध्वं गच्छतीति रा ड। १ पावक, अग्नि। २ कामाग्नि। ३ जलना, झुलसना। ४ आँच, ताप। ५ सितारका एक बोल। (त्रि॰) ६ तीक्ष्ण, प्रखर।

रअय्यत (अ॰ स्त्री॰) १ प्रजा, रिआया। २ काश्तकार।

रअयत (अ॰ स्त्री॰) रअय्यत देखो।

रई (हि॰ स्त्री॰) १ दही मथनेकी लकड़ी, मथानी। २ गेहूँका मोटा आटा, दरदरा आटा। ३ सूजी। ४ चूर्णमात्र। (वि॰ स्त्री॰) ५ डूबी हुई, पगी हुई। ६ युक्त। ७ अनुरक्त। ८ मिली हुई।

रईस (अ० पु०) १ वह जिसके पास रियासत या इलाका हो, भूस्वामी । २ प्रतिष्ठित और धनवान् पुरुष, अमीर ।

रयैयत् (अ० स्त्री०) प्रजा, रिआया ।

रकछ (हिं० पु०) पत्तोंकी पकौड़ी, पतौड़ ।

रकत (हिं० पु०) १ लहू, खून । (वि०) लाल, सुर्ख ।

रकतकन्द (सं० पु०) रक्तकन्द देखो ।

रकतांक (हिं० पु०) रक्ताङ्क देखो ।

रकतांक (हिं० पु०) १ कुंकुम, केसर । २ रक्तचन्दन, लालचंदन ।

रक़बा (अ० पु०) वह गुणनफल जो किसी क्षेत्रकी लंबाई और चौड़ाईको गुणा करनेसे प्राप्त हो, क्षेत्रफल ।

रकबाहा (हिं० पु०) घोड़ोंका एक भेद ।

रकमंजनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका पौधा ।

रक़म (अ० स्त्री०) १ लिखनेकी क्रिया या भाव । २ छाप, मोहर । ३ नियत संख्याका धन, सम्पत्ति । ४ चलता पुरज़ा, चालाक । ५ प्रकार, तरह । ६ लगानकी दर । ७ धनवान्, मालदार । ८ नवयौवना और सुन्दरी स्त्री । ९ गहना, जेवर । १० रुपया या बीघा-बिसवा आदि लिखनेके फारसीके विशिष्ट अंक जो साधारण संख्यासूचक अंकोंसे भिन्न होते हैं ।

रक़मी (अ० पु०) वह किसान जिसके साथ कोई खास रिआयत की जाय ।

रकाब (फा० स्त्री०) १ घोड़ोंकी काठीका पावदान जिस पर पैर रख कर सवार होते हैं और बैठनेमें जिससे सहारा लेते हैं, घोड़ेकी जीनका पावदान । यह लोहेका एक घेरा होता है जो जीनमें दोनों ओर रस्सी या तस्मेसे लटका रहता है । २ रकाबी, तश्तरी ।

रकाबदार (फा० पु०) १ मुरब्बा, मिठाई आदि बनानेवाला, हलवाई । २ बादशाहोंके साथ खाना ले कर चलनेवाला सेवक, खासाबरदार । ३ रकाब पकड़ कर घोड़े पर सवार करानेवाला नौकर, साईस । ४ रकाबियोंमें खाना चुनने और लगानेवाला, खानसामा ।

रकाबा (फा० पु०) बड़ी थाली, परात ।

रकाबी (फा० स्त्री०) एक प्रकारकी छिछली छोटी थाली जिसकी दीवार बहुत कम ऊंची अथवा बाहरकी ओर मुड़ी हुई होती है, तश्तरी ।

रकार (सं० पु०) र वर्णका बोधक अक्षर, र ।

रफ़ीक़ (अ० वि०) १ पानीकी तरह पतला, तरल । २ कोमल, मुलायम ।

रक़ीब (अ० पु०) वह प्रतियोगी जो किसी प्रेमिकाके प्रेममें सम्बन्धमें प्रतियोग करता हो, प्रेमिकाका दूसरा प्रेमी ।

रखवना (हिं० क्रि०) रखना देखो ।

रक्त (सं० क्ली०) रज्यते अनुमननेति रन्ज-क्त । १ कुकुंम, केसर । २ ताम्र, तांबा । ३ प्राचीनामलक, प्राचीन और पका हुआ आंवला । ४ पद्मक, लाल कमल । ५ सिन्दूर । ६ हिंगुल, शिंगरफ । ७ शरीरस्थ सप्त धातुके अन्तर्गत धातुविशेष, शरीरके मध्य सात धातुओंमेंसे एक धातु, लहू, खून । पर्याय—रुधिर, असृज, लोहित, अस्र, क्षतज, शोणित, पलङ्कार, रोहित, रक्तक, कीलाल, असृज, रोधिर, स्वज, त्वगृज, शोण, लोह, चर्मज ।

हम लोग जो सब वस्तु खाते हैं, वह पहले रस रूपमें परिणत होती है । पीछे वह रस यकृत्में जा कर रञ्जक पित्त द्वारा पाक हो रक्तवर्णका हो जाता है । इसीसे उसको रक्त कहते हैं । यह रक्त सभीके शरीरमें रहता है तथा यह जीवनका श्रेष्ठ आधार स्वरूप है । यह स्निग्ध, गुरु, चलनशील और मधुर होता है । किन्तु दूषित होने पर यह विदग्ध पित्तकी तरह अर्थात् खट्टा हो जाता है । समस्त शरीर ही जीवका वासस्थान है, किन्तु वीर्य, रक्त और मल ये तीनों विशेष आधार कहे गये हैं । क्योंकि, इन तीनोंका क्षय होनेसे थोड़े ही समयके अन्दर जीवका क्षय हो जाता है । (भावप्र०)

रक्तका प्रधान आश्रयस्थान यकृत् और प्लीहा है । यह इन्हीं दो स्थानोंमें रह कर दूसरे स्थानके रक्तको पोषण करता है ।

खाया हुआ रस पहले हृदयमें जाता है । पीछे वह समान वायु द्वारा परिचालित हो कर पित्तमें पाचित और रञ्जित हो लाल हो जाता है । यह सारे शरीरमें रहता है और जीवका उत्तम आधार है ।

(शार्ङ्गधरप० ६ अ०)

सुश्रुतमें लिखा है, कि रसधातुसे रक्त होता है ।

रस धातुका क्षय है गमन करता, वृद्धि रात दिन होता रहता है, इसीसे इसको रस कहते हैं। यह रस खाये हुए पदार्थसे एक ही दिनमें उत्पन्न हो ३०१५ कला अर्थात् पांच दिनसे कुछ अधिक समयमें एक एक धातुमें क्षय त्याग कर अन्य धातुमें परिणत हो जाता है, अतएव इस समय यह रस रक्तके रूपमें पलट जाता है।

रस, रक्त, मांस, मेद अस्थि, मज्जा और शुक्र यह सात धातु शरीरको धारण किये हुए हैं, इसीसे इन्हें धातु कहते हैं। इन सब धातुओंका क्षय और वृद्धि रक्तके ऊपर निर्भर करती है। रक्तक्षय होनेसे सभी धातु क्षीण और वृद्धि होनेसे सभी धातु बलवान् हो जाते हैं।

विशुद्ध रक्तका लक्षण—जिस रक्तका वर्ण इन्द्रगोप कीटकी तरह उज्ज्वल, असंहत अर्थात् न अधिक गाढ़ा और न तरल तथा अलसीके रंगके जैसा और लाल होता है, वही विशुद्ध रक्त है। वायुसे दूषित रक्त फेनिल, कुछ लाल काला, रूखा, पतला, शीघ्र फैलने वाला और अस्कन्दी अर्थात् गाढ़त्वविहीन होता है।

पित्तदूषित-लक्षण—रक्त पित्त द्वारा दूषित होने पर नीला, पीला, हरा और तरल होता है। ऐसा रक्त चिउँटी और मक्खीको बहुत प्रिय है।

श्लेष्मदूषित रक्तका लक्षण—कफ द्वारा रक्त दूषित होने पर उसका वर्ण गैरिमिट्टीके जलकी तरह पाण्डु, लोहित, स्निग्ध, शीतल, घना, पिच्छिल, चिरस्रावी और मांसपेशीकी तरह हो जाता है।

त्रिदोषदूषित रक्तलक्षण—त्रिदोष अर्थात् सन्निपात द्वारा रक्त दूषित होने पर वह पूर्वोक्त वातादिके लक्षण युक्त, कांजीके समान वर्णविशिष्ट और दुर्गन्धयुक्त होता है।

वातपैत्तिकादि मिश्रित त्रिदोष द्वारा रक्त दूषित होने पर उसमें पूर्वोक्त मिश्रित त्रिदोषके सभी लक्षण दिखाई देते हैं। दूषित रक्त द्वारा रक्त दुष्ट होने पर रक्त बहुत काला हो जाता है।

रक्तका स्थान—पहले ही कहा जा चुका है, कि यकृत् और प्लीहा ही रक्तका प्रधान स्थान है। रक्त इन दोनों हो स्थानसे देहकी सभी शोणितक्रियाका आनु-

कूल्य करता है। रक्त उष्ण नहीं, शीतल भी नहीं, स्निग्ध, रक्तवर्ण गुरु, मांसगन्धयुक्त और पित्तकी तरह विदाहगुणविशिष्ट होता है।

रक्तप्रकोपका कारण—पित्तका प्रकोप होनेसे ही रक्त बिगड़ जाता है। फिर द्रव, स्निग्ध और गुरुपाक वस्तु खाने, दिनको सोने, अत्यन्त क्रोध करने, आग और धूप सेवन श्रम, अभिघात, अजीर्णअध्यशन या विरुद्ध वस्तु खानेसे भी रक्त कुपित हो जाता है। वायु, पित्त और कफ इन तीन दोषोंमेंसे किसी एक दोषके कुपित हुए बिना रक्त कुपित नहीं होता। अतएव यह अनुपक्ती दोष जिस जिस समय कुपित होता है रक्तका भी उसी उसी समय प्रकोप हुआ करता है। किसी दोषके कुपित होनेसे कोष्ठदेशमें वेदना और देहमें दूषित रक्तका सञ्चार, अम्लरसयुक्त पानीय द्रव्य सेवनकी इच्छा और अन्नमें अरुचि होती तथा हृदयमें श्लेष्मा आश्रय लेती है। रक्त क्षीण होनेसे खट्टा, अनार, अमरूद और स्नेहयुक्त लवण, रक्तसिक्त मांस खानेकी इच्छा होती है। (भावप्रकाश)

रक्त सञ्चालन—सभी जीवोंकी छातीमें दो यन्त्र हैं, एकका नाम फुसफुस और दूसरेका नाम हृत्पिण्ड है। रक्त ही जीवका मूलाधार है। जीवगण जो कुछ खाते हैं वह परिपाक हो कर रक्तमें परिणत हो जाता है। रक्त शरीरकी नस नसमें फैला हुआ है। रक्त सञ्चालनके लिये शरीरके सभी अङ्गोंमें पथ रहा करते हैं। ये नलियां धमनी शिरा आदि नामोंसे प्रसिद्ध हैं। वृक्षादि स्थावरगण जिस प्रकार पृथिवीसे रस चूस कर जीवित रहते हैं जङ्गम जीवगण भी उसी प्रकार पाकस्थलीके अन्नसे रक्त संग्रह करके जीवन धारण करते हैं। खेतके नाले जिस प्रकार खेतमें जल पहुंचा कर अनाजको बचाये रखते हैं शरीरकी धमनियां और शिराएं भी उसी प्रकार देहके सभी स्थानोंमें रक्त ले जा कर शरीरको सजीव रखती हैं। इन सब नलियोंका रक्त शरीरके सभी अङ्गोंमें जालवत् फैला हुआ है।

साधारण तौरसे यदि माना जाय, तो जीवका हृत्पिण्ड ही रक्तका आधार है। हृत्पिण्डसे यह धमनीमें और धमनीसे शिरामण्डलमें प्रवाहित होता है। शिरा

परिमाण अधिक है, इससे रक्तका आपेक्षिक गुरुत्व भी अधिक है। गर्भिणियोंके शोणितमें लाल कणाका परिमाण थोड़ा रहता इस कारण अवस्थाकी अपेक्षा उनके रक्तका आपेक्षिक गुरुत्व भी थोड़ा है। क्रोधी मनुष्यके रक्तमें कठिन द्रव्यका विशेषतः लाल कणिकाका परिमाण अपेक्षाकृत अधिक है। आमिषभोजीकी अपेक्षा शाकभोजी-के रक्तमें कठिन द्रव्य कम है। रक्तमोक्षणसे रक्तकी लाल कणिकाका परिमाण ह्रास होता है।

रक्तके वर्णकी विभिन्नता—शरीरके सभी स्थानोंमें रक्तका वर्ण एक प्रकारका नहीं है। धमनियोंमें जो रक्त है, वह शिराओंके रक्त-सा नहीं है। फिर शिराओंमें भी सभी जगह एक तरहका रक्त दिखाई नहीं देता। धमनी के रक्तका वर्ण उज्ज्वल लाल होता है, क्योंकि इसमें अपेक्षाकृत अधिक अक्सिजन रहता है। शिराका रक्त बैंगनी रंगका है क्योंकि इसमें अक्सिजनका परिमाण थोड़ा है। इसके सिवा धमनीका रक्त जितनी जल्दीमें जमता है शिराका रक्त उतनी जल्दीमें नहीं जमता। फिर फुसफुस, यकृत् और प्लीहाकी शिराओंका रक्त अन्यान्य शिराओंके रक्तसे भिन्न प्रकारका है।

रक्तका परिमाण—जीवके शरीरमें कितना रक्त है इस का ठीक ठीक तौरसे पता लगाना कठिन है। पर हाँ, परीक्षा द्वारा पाश्चात्य पण्डितोंने स्थिर किया है, कि शरीरके समग्र भागका प्रायः १/१२ से १/१४ भाग रक्त जीव शरीरमें रहता है, परन्तु अवस्थाभेदसे इसमें कुछ तार तम्य देखा जाता है। खानेके कुछ समय बाद शरीरमें रक्तका जो परिमाण रहता है, भूखेमें उससे कुछ कम हो जाता है।

रक्तका उपादान—रक्तके चार प्रधान उपादान हैं, रस, कस, कणिका और तन्तु। रक्तके जिस तरल अंशमें कणिका बहती है उसे इसका रस कहते हैं। रक्तसे रक्तको तन्तुपर अन्तरित होनेसे मैला तरल पदार्थ अवशिष्ट रह जाता है, यही इसका कस है। कणिका दो प्रकारकी है, श्वेत या वर्णहीन और लाल। सुस्थ शरीरके रक्तमें श्वेत कणिकाकी अपेक्षा लाल कणिकाका परिमाण बहुत अधिक है। क्योंकि, ये सब कणिका ही रक्तकी सार वस्तु हैं तथा इनकी सत्ताके कारण ही शोणितका वर्ण लाल हो जाता है।

रक्तका उद्भव—लाल कणिका रक्तकी प्रधान सार वस्तु है। कोई कोई कहते हैं, कि हाथकी पशुका अर्थात् पञ्जरास्थियोंके भीतर जो रक्तवर्णकी मज्जा रहती है उससे रक्तकी लाल कणा उत्पन्न और परिपुष्ट होती है। फिर किसी किसीके मतसे प्लीहाके उपादानके मध्य लाल और वर्णहीन दोनों प्रकारकी कणिका उत्पन्न होती हैं।

रक्तकी क्रिया—रक्त प्राणोंके धारणका प्रधान साधन है। यह जीव शरीरके बाह्य और आभ्यन्तर सभी यन्त्रोंका जीवनस्वरूप है। क्योंकि, इससे सबोंकी क्रिया कुशलता साधित होती है। जो स्नेहपदार्थ मस्तिष्कका प्रधान उपादान है वह शोणितसे उत्पन्न होता है। एकमात्र शोणित द्वारा ही शारीरिक सभी अङ्गप्रत्यङ्ग परिपुष्ट होता है।

रक्तसञ्चालन—रक्त पहले हृत्पिण्डसे निकल कर धमनी पथसे शरीरके सभी स्थानोंमें भ्रमण करता है तथा शिरापथसे पुनः हृत्पिण्डमें लौटता है। इसका नाम रक्तसञ्चालन है। रक्त सारे शरीरमें भ्रमण कर दूषित हो जाता है तथा उस दूषित अवस्थामें ही वह बड़ी शिरा द्वारा हृत्पिण्डके दक्षिण कोष्ठमें आ पहुंचता है। वहांसे वह दक्षिण हृदुदरमें तथा हृदुदरसे फुसफुस की धमनी द्वारा फुसफुसमें प्रवेश करता है। जहां अक्सिजनवाष्प ग्रहण कर शोधित होता है। फुसफुससे यह विशुद्ध रक्त फुसफुसकी शिरा द्वारा हृत्पिण्डके वाम कोष्ठमें आता है। वहांसे वाम उदरमें और पीछे आदि कण्डरा (aorta) द्वारा सारे शरीरमें फिरसे सञ्चालित होता है। अनन्तर वह रक्त बड़ी धमनीसे छोटी धमनी में, पीछे धमनियोंसे छोटी छोटी कैशिक नाड़ियोंमें कैशिक नाड़ियोंसे शिराओंमें तथा शिराओंसे दूषित अवस्थामें वह रक्त पुनः हृत्पिण्डमें लौटता है। जन्मसे मृत्यु पर्यन्त हृत्पिण्डके सङ्कोचन और विस्फोरणसे रक्त इसी प्रकार बहता रहता है।

हृत्कोष्ठमें रक्तका परिमाण पाश्चात्य पण्डितोंने परीक्षा द्वारा स्थिर किया है, कि प्रत्येक हृदयमें प्रायः

४से ६ औंस रक्त रह सकता है। हृत्पिण्डके प्रत्येक सङ्कोचनसे उतना रक्त शरीरमें सञ्चालित हुआ करता है तथा हृत्पिण्डके विस्फोरणमें फिर उतना ही रक्त इसके कक्षमें घुस जाता है। इस प्रकार हृत्पिण्ड हमेशा सङ्कोचित और विस्फारित होता रहता है। इस अविरत विस्फारण और सङ्कोचनके लिये शरीरकी कण्डरा, धमनी और शिरा आदि शोणित नालिया सर्वदा रक्तसे परिपूर्ण रहती हैं।

शरीरका रक्त दूषित होनेसे उसे मोक्षण कर फेंक देना चाहिये। किन्तु क्षीण व्यक्तिके अम्लभोजनके कारण शोथ होनेकी अवस्थामें तथा पाण्डुरोगी, अर्शरोगी, उदर-रोगी, शोषरोगी और गर्भिणी स्त्री, इनकी शोथावस्थामें रक्तमोक्षण नहीं करना चाहिये। अस्त्र द्वारा रक्तस्राव क्रिया दो प्रकारसे सम्पादन होती है, उनमेंसे एकको प्रच्छान और दूसरेको शिराव्यधन कहते हैं।

असमयमें अस्त्रप्रयोग करने, चिकित्सकके दोषसे अस्त्र अच्छी तरह प्रयुक्त नहीं होने, अत्यन्त शीताधिक्य और वाताधिक्यके समय भोजनके पहले वा खाते ही अस्त्र प्रयोग करनेसे अथवा शोणितके अत्यन्त गाढ़ा रहनेसे रक्तस्रुत नहीं होता, यदि होता भी है, तो बहुत थोड़ा। जो मद्य वा विषपानमें मत्त, मूर्च्छागत, परिश्रान्त, निद्राभिभूत और भीत हैं तथा जिनके वात, मल और मूत्ररुद्ध है, प्राय उन्हींका रक्त स्रावित नहीं होता।

रक्तस्राव नहीं होनेसे दोष—उल्लिखित कारणोंसे यदि दूषित रक्त न निकले, तो वह शरीरमें रह कर कण्डु, शोथ, रक्तवर्णता, दाह, पाक और वेदना उत्पन्न करती है।

अतिरिक्त रक्तस्रावका कारण—अनभिज्ञ चिकित्सक द्वारा अत्यन्त उष्ण कालमें घर्मार्क्त व्यक्ति वा जिसे अत्यन्त स्वेद दिया गया है, रक्तमोक्षणके लिये उसके प्रति अस्त्रप्रयुक्त होनेसे अथवा रोगीका शरीर रक्त-स्रावार्थ अतिरिक्त विद्ध होनेसे अपरिमितरूपमें रक्त निकलता है। अतिरिक्त मात्रामें रक्तस्राव होनेसे शिरः-शूल, अन्धता, चक्षूरोग, धातुक्षय आदि नाना प्रकारके रोग उत्पन्न होते हैं। यहा तक कि अन्तमें मृत्यु तक भी हो जाया करती है।

रक्तस्रावके नियम और लक्षण—अनतिशीतोष्ण काल-में जिस व्यक्तिको अधिक स्वेद नहीं दिया गया है तथा जो व्यक्ति सूर्यतापादि द्वारा सन्तापित नहीं है, वैसे व्यक्तिको पहले तिलका यवागू पिला कर पीछे उसका रक्तमोक्षण करना होता है। रक्तस्राव होनेके समय जब रक्तवर्ण विशुद्ध शोणित निकलने लगे अथवा आपे आप रक्तस्राव बंद हो जाय, वा देहको लघुता, वेदनाका उपशम, रोगके बलका ह्रास और चित्तकी प्रफुल्लता ये सब चिह्न जब दिखाई दे, तब समझना चाहिये रक्तस्राव अच्छी तरह हुआ है।

अच्छी तरह रक्तस्राव नहीं होनेसे इलायची, कपूर, कुट, तगरपादुका, अकवन, देवदारु, विडङ्ग, चीता, सोंठ, पीपल, मिर्च, धूल, हरिद्रा, अकवनकी कली और डहरकरञ्जका फल इन सब द्रव्योंमेंसे जो सब मिल सके, उन्हे एक साथ अच्छी तरह चूर्ण कर तिलतैल और सैन्धव लवणके साथ मिला क्षतस्थान पर घिसनेसे अच्छी तरह रक्तस्राव होता है।

अतिरिक्त रक्तस्रावकी चिकित्सा—अधिक मात्रामें रक्त स्राव होनेसे लोध, मुलेठी, प्रियगु, रक्तचन्दन, गेरुमिट्टी, धूना, रसाञ्जन, शाल्मलीपुष्प, शङ्ख, सीप, उडद, जौ और गेहू इन सब द्रव्योंको चूर्ण कर उंगलीसे क्षत स्थान पर धीरे धीरे लगाना होता है। शाल वा अर्जुनवृक्ष, अरिमेद, कर्कटशृङ्गी और धमनी इन सब वृक्षोंकी छाल-की चूर्ण वा पट्टवस्त्रको दग्ध कर उसकी भस्म, समुद्रफेन वा लाक्षाचूर्ण क्षत स्थानमें लगा देनेसे रक्तस्राव दूर होता है। रोगीको काकोल्यादिके काढ़ेमें ईख, चीनी और मधु डाल उसे पान कराना उचित है।

अपरिमित मात्रामें शोणितस्राव होनेसे धातुक्षयके कारण अग्नि मन्द तथा वायु अत्यन्त प्रकुपित हो जाती है। अतएव उस अवस्थामें रोगीको अल्प शीतल, लघु-पाक, स्निग्ध, रक्तवर्द्धक और कुछ अम्ल वा अम्लरस-विहीन द्रव्य खानेको देना चाहिये।

रक्तस्रावनिवारक उपाय—रक्तस्राव चार उपायसे निवारण किया जा सकता है, जैसे, सन्धान, स्कन्दन, दाहन और पाचन। कषाय द्रव्य द्वारा व्रणका संधान अर्थात सङ्कोचन, शीतक्रिया द्वारा रक्तका गाढ़ापन

होना, तीक्ष्ण क्रिया द्वारा पाचन और दाह द्वारा शिरासङ्कोचन करे। शैत्यक्रिया द्वारा रक्त गाढ़ा नहीं होनेसे तब संधानक्रिया, सन्धानकार्यमें फल नहीं पानेसे पाचन क्रिया करे। इन तीन प्रकारमें किसी प्रकारका फल दिखाई नहीं देनेसे दाहनक्रिया करना उचित है। इस पर रक्तका दोष दूर हो कर जब रक्तस्राव बंद होता है, तब व्याधि फिरसे उत्पन्न वा वर्द्धित होने नहीं पाती। दोष रहते रक्तस्राव बंद हो जानेसे फिर रक्तमोक्षण न करके संशमनादि औषध द्वारा दोषका संशोधन कर ले। क्योंकि रक्त ही शरीर का मूल और देहधारणका प्रधान उपादान है, अतः देहरक्षक शोणितकी अच्छी तरह रक्षा करनी चाहिये।

जिस व्यक्तिका रक्तस्राव किया गया है उसको वायु वृद्धि होनेसे शीतल प्रलेपादि द्वारा उक्त प्रकुपित वायु की शमता करे। फिर वेदनाके साथ यदि शोथ उत्पन्न हो, तो कुछ गरम घी द्वारा परिषेक करनेसे बहुत उप कार होता है।

साधारण शोणितके सम्बन्धमें वैज्ञानिक मत।

आहारके तारतम्यानुसार जीवदेहमें अलग अलग एक प्रकारके रसका सञ्चार होता है। यह शिराधमन्यादिमें प्रवाहित रह कर देहको सजीव और सतेज रखता है। प्राकृतिक विपर्ययसे किसी जीवदेहमें यह रस रक्ता कारमें परिणत हो जाता है। उस समय तरल रक्त (Liquor Sanguinis)-में कणिकाएं (Corpuscles) बहती हुई दिखाई देती हैं। रक्तके तरल अंशमें प्रधानतः जलका भाग ही अधिक है। उस जलमें फाइब्रिन अल बुमेन, क्लोराइड्स् आव सोडियम और पोटासियम् तथा फोस्फेटस आव सोडा, लाइम और मैगनेशिया मिश्रित भावमें विद्यमान रहते हैं। अलावा इसके उसमें कुछ चरबी भी है जिसे रासायनिक लोग "एक्सट्रैक्टिभ मैटर" कहते हैं।

रक्त-कणिकाएं साधारणतः श्वेत और लाल वर्ण की होती हैं। श्वेत कणिका अपेक्षाकृत विरल और बड़ी तथा लाल कणिका छोटी होने पर भी संख्यामें अधिक होती हैं। उक्त दोनों प्रकारकी कणिका अणु विशिष्ट (Molecules) हैं। श्वेत वा वर्णहीन कणिकासे लाल कणिकाओंकी उत्पत्ति होने पर भी कशेरुकास्थियुक्त जीवसमूहकी (Vertibrate Animals) देहमें उसका वर्णवैशिष्ट्य सम्पादित होता है। पक्षी, सरीसृप और मत्स्यादिके शरीरकी रक्तकणिकाएं प्रायः डिम्बाकृतिकी और बैंगनके समान चिपटी तथा मनुष्य और स्तन्य पायी जन्तुसाधारणकी देहमें वह गोलाकार दिखाई देती है। वे सब कुब्जपृष्ठकी होनेके कारण उसके बीचसे चारों बगल अपेक्षाकृत स्थूल होती हैं। यही कारण है, कि अणुवीक्षणयन्त्रकी सहायतासे इयमकारोंकी दृष्टि में मध्यभाग उसका बीजस्वरूप (Nucleus) मालूम होता है।

मनुष्यके शरीरमें जो सब रक्तकणिका देखी जाती हैं वह प्रधानतः $\frac{१}{४०००}$ से $\frac{१}{२८००}$ इञ्च मोटी हैं। किन्तु सरीसृपादिके शरीरमें वह अपेक्षाकृत बड़ी होती हैं। उक्त भेकी (Proteus) के जीवशरीरकी कणिकाएं $\frac{१}{६२०}$ इञ्च व्यासकी होती हैं तथा अणुवीक्षणादि कायपत्रकी सहायताके बिना देखनेसे उसकी लम्बाई सहजमें मालूम हो जाती हैं। रासायनिक परीक्षा द्वारा देखा गया है, कि इन सब रक्तकणिकाओंमें १०००० अंशमेंसे ३१२ भाग कठिन द्रव्य (Solid matters) चरबी और एक्सट्राक्टिभ तथा कुछ धातव पदार्थ (Mineral matters) मिश्रित हैं। ग्लोब्युलिन (Globuline) और हिमाटिन (Hoematine) नामक पदार्थविशेषके संमिश्रणसे उस के वर्णमें भी पृथक्ता हो गई है।

ग्लोब्युलिन जब देहसे विच्छिन्न होता तब विभिन्न आकारके दानेमें पड़ जाते हैं। मनुष्य तथा मांस खानेवाले पशुमात्रके शरीरका रक्त पलाकार (Prismatic form) में दाना बांधता है। चूहे और छछून्दरका रक्त तिकोना (tetrahedral) और कठगिलायका छःकोना (hexagonal) होता है। हिमाटिन नामक पदार्थमें ४४ भाग अङ्गार, २२ भाग उद्जन, ३ भाग यवक्षारजन, ६ भाग अक्सिजन और १ भाग लोहा मिला रहता है।

देहको चिर कर रक्त बाहर निकालनेसे अथवा रक्ते स्रोत (Blood vessels)-से रक्त भिन्न पथमें आ कर किसी स्थानमें सञ्चित होनेसे रक्तका रंग बदल जाता

है। इस समय फेब्रिण नामक तन्तु स्त्यानीभूत हो कर कठिन हो जाते हैं तथा रक्तकणिकायें परस्पर सम्बद्ध हो जम जाती हैं। इसको 'क्लोट' (Clot=crassamentum) कहते हैं।

रक्तके इस प्रकार जम जाने पर भी उसके जलीय अंशमें शुक्राण और लावणिक पदार्थ (Saline matters) विद्यमान रहते हैं। उस समय रक्तका जो 'फलतानी' वा जलीय अंश वाहर निकलता है, इसे मस्तु (Serum) कहते हैं। रक्तमें विभिन्न पदार्थके रहनेसे रसरक्त (Serum) और स्त्यानीभूत रक्त (Clot) का पार्थक्य परिमाण मालूम किया जा सकता है। इसके सिवा उसीसे जमावट रक्तकी दृढ़ता तथा उसके परिवर्त्तनके लिये समयकी न्यूनाधिकता मालूम होती है। यदि फाइब्रिन तन्तुकी अधिकता रहे, तो जमनेमें देर लगती है। परिमित ताप तथा वायु लगनेसे रक्त सहजमें जम जाता है। किन्तु ठंढ लगने अथवा वायुरहित स्थानमें रख देनेसे वह विलम्बसे जमता है। एतद्भिन्न वज्राघात आदि किसी प्रकारके आकस्मिक कारणसे मृत्यु होने पर उसके शरीरका रक्त देरीसे जमता है। साधारणतः मृत्युके वाद भी देहका रक्त शिराओंमें तरल रहता है, किन्तु जीवितावस्थामें यदि शिरासे विच्युत हो रक्त किसी स्थानमें आ कर जम जाय, तो वह देहसे वहिर्गत रक्तकी तरह थोड़े ही समयमें शरीरके भीतर जम जाता है।

अनेक समय साघातिक वा दोषस्थ ज्वरमें अथवा नासादूषिका (Glanders) और दोषस्थ सपूयव्रण (Malignant pustule) आदि रोगोंके रक्तमें विषमिश्रित होनेसे अथवा शीताद (Scurvy) आदि रोगोंकी तरह रक्तकी अल्पता (Poorness of blood) तथा श्वासरोधके कारण मृत्यु होनेसे रक्त सहजमें नहीं जमता।

पहले ही लिखा जा चुका है, कि रक्तमें फाइब्रिन-तन्तुकी अधिकताके अनुसार ही स्त्यानीभूत रक्तकी आकृति और दार्ढ्य संघटित होता है। साधारणतः सुस्थ और वलिष्ठ जीवदेहमें १००० अंशमेंसे केवल २ अंश तन्तु विद्यमान रहता है। शरीरमें किसी कारण वशतः प्रदाह उपस्थित होनेसे इसकी संख्या बढ़ती है तथा उसके साथ साथ रक्त धीरे धीरे कोमल रक्तपिण्ड (tough clot) में परिणत होता है। उस समय इस जमे हुए पिण्डके ऊपर रक्तवर्णकी कणिका विलकुल देखी नहीं जाती। जो कुछ देखी भी जाती है, वह उस रक्तपिण्डके आवरणके नीचेकी ओर चली जाती है। ऊपरवाला यह वर्णहीन आवरकत्वक् "Buffy coat" कहलाता है। प्राचीन कालके चिकित्सक रक्तपिण्डके आवरकत्वक्के ऐसे वर्ण वैपरीत्यको प्रदाहका विशेष लक्षण समझते थे तथा वे लोग उसके अपनोदनके लिये रक्तमोक्षण कराते थे। किन्तु वर्त्तमान वैज्ञानिकोंका कहना है, कि मृत्पाण्डु (Chlorosis or green sickness) अथवा अन्य किसी अवस्थामें रक्तमें लाल रक्तकणिकाकी अपेक्षा फाइब्रिन-तन्तुकी अधिकता रहनेसे इसी प्रकार अवस्थान्तर हुआ करता है। रक्ताल्पदेहीके स्त्यानीभूत रक्तपिण्ड (Clots of the impoverished blood) स्वभावतः छोटे और शिथिल (small and loose) हुआ करते हैं तथा वह प्रचुर परिमाणमें रक्तरस (serum)-के मध्य वहते देखे जाते हैं।

हृत्पिण्डसे रक्त जिस प्रकार विभिन्न शिरापथ हो कर प्रवाहित होता है, उसी प्रकार उसके वर्णमें भी विभिन्नता देखी जाती है। फ्लरिड स्कार्लेट नामक धामनिक रक्तस्रोत कौशिका नाडीके मध्य प्रवाहित होनेके वाद अक्सिजन परित्याग कर कार्वनिक एसिडसे भर जाता है। इस समय उसका वर्ण गाढ़ा लाल दिखाई देता है। अनन्तर वह दोनों फुसफुसके मध्य प्रेरित होनेसे पुनः कमला नीबूके जैसे लाल रंगमें पलट आता है। क्योंकि फुसफुसमें आनेके वाद कार्वनिक एसिडका परित्याग कर रक्त फिरसे नया अक्सिजन ग्रहण करता है। इस प्रकार प्रत्येक शिरा और प्रशिरामें जव रक्तसञ्चालित होता है उस समय विभिन्न धातव पदार्थके संयोजन और वियोजनके कारण रक्त पुनः पुनः दूषित और परिष्कृत हो दूसरे वर्णका हो जाता है। ऊपर कह आये हैं, कि भोजनसे जीवशरीरमें रक्तकी उत्पत्ति होती है। वह रस शिराके मध्य प्रवाहित हो यकृत्में आनेसे पित्तके मिश्रणके कारण लाल हो जाता है। पीछे

रक्ताशय या हृत्पिण्डमें परिचालित हो यहांसे शिरा प्रशिरा हो कर सारे शरीरमें फैल जाता है। इसी कारण शारीरतत्त्वविद्गण हृत्पिण्ड तथा शिराओंको ही रक्त प्रवहणका मुख्य उपाय जान कर उन सब शब्दोंमें रक्त प्रवहणक्रिया (Circulation of blood)का ठीक ठीक विवरण लिपिबद्ध कर गये हैं। हृदय और शिरा देखो।

वैज्ञानिकोंका कहना है, कि रक्तकणिकाओंमें अधिक जल मिश्रित होनेसे शायद उसी कारण रक्तके वर्णमें विभिन्नता देखी जाती है। अक्सिजनकी सहायतासे कणिका एक साथ मिल जाती हैं तथा उसीमें रक्तके बहिरावरक (Refleting surface) का ऐसा परिवर्त्तन हुआ करता है। फिर कार्बनिक एसिडके मिलनेसे शोणित पतला और अपेक्षाकृत शिथिल (More flac cid) होता है।

रक्तवर्णके इस रूपान्तरको परीक्षा यदि करनी हो, तो बाहर निकले हुए जीवरक्तके ऊपर उपरोक्त वाष्प (Gases) संयोग करनेसे सहजमें इसका पता लगा सकते हैं।

अन्यान्य जीवदेहका शोणित छोड़ कर मनुष्य शरीरके रक्तका पर्यवेक्षण करनेसे जाना जाता है, कि एक मात्र लोहित रक्तकणिका ही मनुष्यदेहपरिपोषणमें उपयोगी है। इसमें स्वभावतः ही अक्सिजन हरण (absorbing oxygen) की शक्ति है। हृदयके वाम भागसे निकल कर वह बड़ी तेजीसे शरीरके विभिन्न स्थानोंका सूक्ष्मसे सूक्ष्म शिराओंमें प्रविष्ट होता है तथा जीवदेहको एक जीवनी शक्ति (Lifegiving stimulus) प्रदान करता है। वह रक्त जब कार्बनिक एसिड ग्रहण करता है तब रक्त एकदम विषाक्त हो जाता है और यदि वह अधिक देर शरीरमें अवस्थान करे, तो जीवदेहका नाश हो सकता है। इस कारण जगदीश्वरकी अपार महिमासे वह दूषित रक्त फुसफुसमें जमा होनेके बाद सम्पूर्णरूपसे दोषमुक्त हो पुनः अक्सिजन धारण ग्रहण कर शुद्ध होता और शरीरको पुष्ट बनाये रखता है। इसके बाद वह फिरसे अपनी कार्यकारिता शक्तिको फैला कर जीवन पर्यन्त इसी एक ऐसी नियमसे शरीरमें सर्वत्र तथा सभी शिराप्रशिरादिमें परिभ्रमण करता है। आखिर यह तेजहीन हो जीवके मरण कालमें अपकृष्टता को प्राप्त होता है तथा आप भी विलुप्त हो जाता है। जीवितावस्थामें भी रक्तका क्षय हुआ करता है। अधिक चिन्ता कठिन परिश्रम और सांघातिक पीड़ाओंमें भी अनेक समय शरीरसे रक्तका नाश होते देखा जाता है।

सुस्थ और बलिष्ठ व्यक्तिके शरीरमें नवोद्भूत रक्त हमेशा परिचालित हो क्रमशः मांस, मेद, अस्थि, मज्जा और पीछे शुक्रमें रूपान्तरित हुआ करता है। इस रक्तज शुक्रका क्षय है। ऊर्ध्वरेता संन्यासियोंको भी असाधारण क्षीण वेदान्तिक चिन्ताके कारण इस ओजःशक्तिका क्षय होता है। ऐसे नियमसे यह क्षयविधान नहीं रहनेसे निःसन्देह यह जीवदेह फट कर नष्ट हो जाती। वैज्ञानिकोंका कहना है, कि "It goes on its useful circuit through the body till following the law which governs the cells and bodies composed of them it wears out degenerates and dies

रक्तप्रवाह ही श्वासप्रश्वासका (Respiration) एक मुख्य कारण और प्रधान उपादान है। जगदीश्वरने रक्त बहनेके लिये जिस प्रकार शिरा और स्नायु आदि को इस कार्यके उपयोगी और सहायकरूपमें संगठन किया है, उसी प्रकार सभी शिराएं भी रक्त धारण कर श्वासप्रश्वासादिके द्वारा परिशुद्ध हो शरीरमें ताकत देती हैं। रक्तकी उपयोगिता और उपकारिताकी ओर लक्ष्य करके उन्होंने श्वासप्रश्वासका तारतम्य किया है। मनुष्य शरीरको रक्तरक्षाके लिये जितनी वायुकी आवश्यकता है, वे ठीक उसी परिमाणमें श्वास लेनेकी व्यवस्था कर देते हैं। अतएव कहना पड़ेगा, कि जिस प्रकार रक्तव्यापनाशके लिये श्वासकी व्यवस्था है, उसी प्रकार रक्तकी विभिन्नताके अनुसार उन्होंने श्वासका भी तारतम्य निर्देश कर दिया है। मनुष्यशोणितकी विभिन्नताके अनुसार हम लोग जिस प्रकार श्वासप्रश्वासकार्यका तारतम्य मालूम करते हैं, उसी प्रकार विभिन्न श्रेणीके पक्षी और पश्वादिमें विभिन्न प्रकारका धातुज रस रहनेसे श्वासकार्यमें विशेष वैपरीत्य

होता है। सिंह, बाघ, बकरे, मृगे आदि पशु तथा अष्ट्रीच से ले कर छोटेसे छोटे चटक पक्षी तकके शरीरमें जिस परिमाणमें जैसा रक्त बहता है, उनके श्वास-प्रश्वासादिकी प्रणाली भी तदनुसार निर्वाहित होती है। इसका प्रमाण प्रत्यक्ष है अर्थात् उन सब जीवादिको एक वार देखनेमें ही मालूम कर सकते हैं। इसका और भी एक प्रमाण है, वह यह कि दुर्गन्धसे मनुष्यादिके श्वासकार्यमें व्याघात पहुंचता है और उस दुर्गन्धमें अन्य जीव खुशीसे वास करता है। मूषिककी दुर्गन्धकवत् गन्ध जैसी असह-नीय है, दूसरे किसी भी जीवकी वैसी देखी नहीं जाती।

विशेष विवरण श्वास-प्रश्वास शब्दमें देखो।

रक्तपान करनेसे शारीरिक स्वास्थ्यमें कोई धक्का नहीं पहुचता, वरन् उनके स्वास्थ्यमें उन्नति देखी जाती है। रक्तसेवनसे रक्ताल्पता व्याधिग्रस्त रोगी सुविन-लाभ करता है। किन्तु यदि रुग्न अथवा दूषित रोगी-का रक्तपान किया जाय, तो शरीरमें अनेक प्रकारके क्लेश हो सकते हैं। इसी कारण सुविज्ञ चिकित्सक रक्ताल्पता (anaemia) आदिमें रोगीका बलिष्ट करने-के लिये meat-juice नामक रक्तमिश्रित पथ्यका प्रयोग करते हैं।

प्राचीनकालमें जिघांसा वशवर्त्ती हो कर मनुष्य शत्रुका रक्त पान करते थे। महाभारत पढनेसे मालूम होता है, कि शत्रुका दर्प चूर्ण करनेके लिये भीमने दुःशा-सनका रक्तपान किया था। बाइबिल ग्रन्थसे भी जाना जाता है, कि पूर्वकालमें हत्याकारीको दण्ड देनेके लिये सामाजिक कोई नियम विधिबद्ध नहीं था। अथवा राज दण्डसे भी वे दण्डित नहीं होते थे। हतव्यक्तिका कोई निकट आत्मीय बदला लेनेके लिये उसके पीछे पडता था तथा जहां उसे पाता, वहीं मार कर बदला चुकाता था। हिब्रु जातिके मध्य ऐसा जिघांसापरायण व्यक्ति रक्त हिंसक (Goel वा Avenger of Blood) कहलाता है। मूसाने इस प्रकार जीव-हिंसा नहीं करनेकी व्यवस्था दी थी (Numb xxxv)। उन्होंने हत्याकारीको निरापद रखनेके लिये बाइबिल निर्दिष्ट छः आश्रयनगरीमें (Cities of Refuse) भेजनेका हुक्म दिया। किन्तु उस समय हत्याकारीकी संख्या दिनोंदिन बढती देख उन्होंने रुपये देकर जीवनरक्षा करनेकी व्यवस्था उठा दी। कुरानमें भी रक्तहिंसक (Avenger of blood)-को आश्रय दिया गया है, किन्तु वहां भी हत्याकारीसे उपयुक्त द्रव्य ले कर उसकी प्राणरक्षाकी व्यवस्था है। आज भी अरब-वासियोंमें यह प्राचीन प्रथा बलवती देखी जाती है। एतद्भिन्न बर्बर और अर्द्धसभ्य विभिन्न देशवासी जाति-के मध्य वंशगत, पारिवारिक अथवा जातिगत विवाद-सूत्रसे ऐसी रक्तहिंसाका प्रचार है। बोर्नियो, सिलेबिस, जावा आदि द्वीपोंमें असभ्य जातिके मध्य आज भी रणमें बन्दीकृत शत्रुके रक्तमांस भोजनकी बात सुनी जाती है। प्राचीन बौद्ध और जैन धर्मशास्त्रमें तथा बाइबिलके प्राचीन विभागमें (Old Testament) यज्ञमें निहत रक्ताक्त पशु (animals in sacrifice) मांस भक्षण (Eating of blood) अथवा बलपूर्वक पशुहिंसाको निषिद्ध बताया है।

(पु०) ८ लोहितवर्ण, लाल रंग। ९ कुसुम्भ। १० हिज्जल नदीतट पर होनेवाला एक प्रकारका बेंत। (भावप्र०) ११ बन्धूक, गुलदुपहरिया।

कविकल्पलतामें रक्तवर्ण वस्तुका उल्लेख इस प्रकार है—शोण, भौम, तीक्ष्णांशु, ताम्र, कुंकुम, तक्षक, गुञ्जा, इन्द्रगोप, खद्योत, विद्युत्, कुञ्जरविन्दु, दूतान्तर, अधर, जिह्वा, असृज्, मास, सिन्दूर, धातु, हिंगुल, कुक्कुट-शिखा, तेज, मारसमरतक, माणिक्य, हंसका चञ्चु, अंघ्रि, शुक और मर्कटका मुख, चकोर, कोकिल और पारावतका नख, अग्नि, कुसुम्भ, किंशुक, अशोक, जवा, बन्धूक, पाटल, कमल, दाडिमीपुष्प, बिम्ब और किस्पाक-पल्लव, ताम्बूलराग, मञ्जिष्ठा, अलक्तक, रक्तचन्दन, नख-क्षतस्थान, धर्म और रौद्ररसादि ये सब रक्तवर्णके कहे गये हैं। (कविकल्पलता २।२ कुसुम)

१२ रक्तशिग्रु, लाल सहिंजन। १३ रक्तरोहितक, लाल रोहितकका पेड। १४ मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी लाल मछली। १५ सविष मण्डूकभेद, एक प्रकारका जहरीला मेढक। १६ महाविष वृश्चिकभेद, एक प्रकारका जहरीला बिच्छू। १७ मन्दविष वृश्चिकभेद, एक प्रकारका कम जहरीला बिच्छू। १८ पतङ्गकी लकडी।

(त्रि०) १९ अनुरक्त, चाह या प्रेममें अनुरक्त।

२० रञ्जित, रंगा हुआ। २१ लाल, सुर्ख। २२ विहार मग्न, पेयाश। २३ शोधित साफ किया हुआ।

रक्तमामातिसार (सं० पु०) एक प्रकारका रोग जिसमें लहूके दस्त आते हैं।

रक्तक (सं० पु०) रक्तं रक्तवर्णं कायति प्राप्नोतीति कै-क। १ अम्लान वृक्ष। २ बन्धूक वृक्ष गुलदुपहरिया का पौधा। ३ रक्तवस्त्र लाल कपड़ा। ४ रक्तशिग्रु, लाल सहिजनका वृक्ष। ५ रक्तैरण्ड लाल अंडीका वृक्ष। (राजनि०) ६ अश्वविशेष, लाल रंगका घोड़ा। ७ केसर, कुङ्कुम। रक्त एव स्वार्थे कन्। (त्रि०) ८ लोहित वर्ण लाल रंगका। ९ रक्त देखो। १० अनुरागी प्रेम करनेवाला। ११ विनोदी, मसखरा।

रक्तक (सं० स्त्री०) स्वनामप्रसिद्ध पुष्पवृक्षविशेष, गुल दुपहरियाका फूल या पौधा। पर्याय—बन्धूक, बन्धुजीव, अर्कवल्लभ, पुष्परक्त। भारतके उष्णप्रधान स्थानों में पञ्जाबसे ब्रह्मदेश तकमें तथा बम्बई विभागमें यह गुल्म अधिक उत्पन्न होते देखा जाता है। धानके खेत और गीली भूमिमें यह बहुत उपजता है। स्थानविशेषमें यह भिन्न भिन्न नामसे परिचित है, यथा—हिन्दी दुपहरिया, बङ्गला—काठवार, बांधुली; नेपाली—बड़ पाता; पञ्जाबी—गुलदुपहरिया मराठी—ताम्रीदुपारी; तामिल—नागपुर।

इसका फूल बड़ा और गाढ़े लाल रंगका होता है। दोपहरको यह फूल अच्छी तरह खिलता है और दूसरे दिन सवेरे झड़ जाता है। फूलके वृक्ष और पुष्पकोषसे भी दूधके जैसा निर्यास निकलता है यह औषधगुणविशिष्ट और धारकत्वशक्तिसम्पन्न होता है।

इस श्रेणीमें Ixora coccinea और Gomphrena Globosa नामक और भी दो प्रकारके छोटे पेड़ देखे जाते हैं। पहली श्रेणीके पेड़को संस्कृतमें बन्धूक, रक्तक और बन्धुजीवक कहते हैं। डा० रक्सवर्गके मतमें चीन और मलक्कासे यह वृक्ष ब्रह्मदेश और भारतवर्षमें लाया गया है। भारतके उष्णप्रधान देशके उद्यानोंमें यह वृक्ष रोपनेकी व्यवस्था देखी जाती है।

इसके फूलको दो तोला घीमें अच्छी तरह भुन कर उसमें ४ गुञ्जापरिमित जीरा और नागकेशरको अच्छी तरह पीस कर डाल दे। पीछे उसमें मक्खन और मिसरी मिला कर गोली बनावे। आमरक्त रोगमें दिनमें दो बार करके सेवन करानेसे बहुत लाभ पहुंचता है। थोड़े जलके साथ शिलाखण्ड पर इसकी जड़ (सूखी अथवा कच्ची १५से २० रत्ती)-को पीस कर ३ ४ घंटेके बाद सेवन करानेसे रक्तातिसार जाता रहता है। १ पाइण्ट एक्सिरिट्में ४ औंस सूखी जड़ डाल कर इसका टिंचर बनावे। इस टिंचरका आमरक्तरोगमें प्रयोग करनेसे बहुत उपकार होता है।

यह फूल शिव और विष्णुको चढ़ाया जाता है। द्वितीय श्रेणीके वृक्षमें लाल सफेद फूल लगते हैं। उद्यान की शोभा बढ़ानेके लिये बहुतेरे इस पेड़को लगाते हैं। पश्चिम भारतमें यह गुलमखमल और लालगुल नामसे परिचित है। अङ्गरेजीमें इसे Everlasting flower कहते हैं।

रक्तकङ्गु (सं० पु०) सालका वृक्ष जिससे राल निकलती है।

रक्तकपदा (सं० स्त्री०) पिण्डीतक वृक्ष।

रक्तकण्ठ (सं० त्रि०) १ मिष्टस्वरविशिष्ट, मीठी स्वर वाला। २ जिसका कण्ठ लाल हो। (पु०) ३ कोकिल, कोयल। ४ भंटा, भांटा।

रक्तकण्ठिन् (सं० त्रि०) रक्तकण्ठ देखो।

रक्तकदम्ब (सं० पु०) एक प्रकारका कदम्ब वृक्ष जिसके फूल बहुत लाल रंगके होते हैं।

रक्तकदली (सं० स्त्री०) कदलीभेद, चम्पा केला। (वैद्यनि०)

रक्तकन्द (सं० पु०) रक्तः रक्तवर्णः कन्दोऽस्य। १ विद्रुम, मूंगा। २ पलाण्डु, प्याज। ३ रक्तालु, रतालू। (राजनि०)

रक्तकन्दल (सं० पु०) रक्तं रक्तवर्णं कन्दलं नवाङ्कुरो यस्य। विद्रुम, मूंगा।

रक्तकमल (सं० क्ली०) रक्तं रक्तवर्णं कमलं। रक्तोत्पल, लाल रंगका कमल। पर्याय—कोकनद, रक्ताम्भोज, अरुणकमल, शोणपद्म, अरविन्द रविप्रिय, रक्तवारिज। वैद्यकमें यह कटु, तिक्त, मधुर, शीतल, रक्तदोषनाशक, बलकारक और पित्त, कफ तथा वातको शमन करनेवाला माना गया है।

रक्तकम्बल (सं० क्ली०) कम्बलं जलमाश्रयत्वेनारत्यस्येति अर्श आद्यच्, रक्तं रक्तवर्णं कम्बलमुत्पलमिति। रक्तोत्पल, लाल कमल, कूंई।

यह स्वनाम प्रसिद्ध जलज पुष्प (Nymphœa lotus) रक्तनाल नामसे प्रचलित है। गडहे, पुष्करिणी आदि पुराने जलाशयोंमें पद्मकी तरह यह लता उगती है। स्थानविशेषमें यह भिन्न भिन्न नामसे परिचित है, जैसे—पश्चिम भारतमें कम्बल, छोटा कम्बल, बङ्गालमें शालूक, नाल, रक्तकम्बल, छोटी सूंदी, उडीसामें धवलकै, सिन्धु--कुनि, पुनि, दाक्षिणात्यमें— अलिलफूल, गुजराती—कम्बल, नीलोपल, तामिल—अल्ली तमरै, अम्बल, तेलगू—अल्लितमर, नेललकलव, कोतेक, परकलुव, कलहारम्, कनाडी—नदलेहवु, मलयालम्—अल्पल, ब्रह्मदेशमें—थयह-फुल्यकिया, सिंहल—ओलु, संस्कृत पर्याय—कमल, कुमुद, कल्हार, हल्लक, सन्ध्यक, अरब और पारस्य—नीलुफर।

भारतवासी इसके मूल, कन्द, नाल और बीज खाते हैं। कभी कभी इसके-कन्दको सिद्ध कर तरकारीके रूपमें खाते हैं। पुष्पकोटकके मध्य जो बीज रहता है उसे बालूमें भून कर लावा बनाते हैं जिसे लोग भेंटका लावा कहते हैं।

उदरामय, विसूचिका, ज्वर और यकृत्की पीडामें इसका फूल शुष्क और सङ्कोचक औषधरूपमें व्यवहृत होता है। कभी कभी हृत्पिण्डको बलकारक औषध (Cardiac tonic) रूपमें इसका व्यवहार किया जाता है। अतिसार, आमरक्त और अर्शरोगमें इसकी जडके चूर्णको स्निग्धकारक औषधरूपमें सेवन कराया जाता है। कुष्ठ तथा अन्यान्य चर्मरोगमें बीज बहुत उपकारी है। पाकाशय और आंतसे रक्त वमन होने पर फूल और डंठलका चूर्ण सेवन करनेसे बहुत लाभ पहुंचाता है। यह विषको दूर करता है।

रक्तकम्बल—स्वनामप्रसिद्ध वृक्षविशेष। यह प्रायः ३० फुट तक ऊंचा होता है। फल लाल होते हैं। पेडमें बकपुष्पकी तरह बड़े बड़े फल होनेसे उनमें लाल गोल गोल बीज लगते हैं। वह बीज दोनों ओर उठा होता है। गुञ्जा फलकी तरह यह भी तौलनेमें व्यवहृत होता है। स्त्रियां जपकी संख्या ठीक करनेके लिये एक एक रक्त कम्बलको ग्रहण करती हैं। यह पवित्र और त्रिपापघ्न समझा जाता है।

रक्तकरवीर (सं० पु०) रक्तं रक्तवर्णं करवीरः। लोहित वर्ण करवीर पुष्पवृक्ष, लाल रंगका कनेर। संस्कृत पर्याय—रक्तप्रसव, गणेशकुसुम, चण्डीकुसुम, क्रूर, भूतद्रावी, रविप्रिय। गुण—कटु, तीक्ष्ण, विशोधन, त्वक्दोष, व्रण, कण्डु, कुष्ठ और विषनाशक। (राजनि०)

रक्तका (सं० स्त्री०) पानीयामलक, पानी आंवला। (वैद्यकनि०)

रक्तकाञ्चन (सं० पु०) रक्तः रक्तवर्णः काञ्चनः। स्वनामख्यात पुष्पवृक्षविशेष, कचनारका पेड। (Bauhinia variegata) संस्कृत पर्याय--विदल, चमरिक, काञ्चनाल ताम्रपुष्प, कुदार। (जटाधर)

स्थानीय नाम, हिन्दी—कचनार, कोनियार, कुराल, पटरिया, गैराल, गुरियाल, गवियार, चरियाल, कलियार, कान्दन, बैरवाल, बङ्गला—रक्तकाञ्चन, मेची—कुर्माङ्ग, कोल—सिङ्गिया, भूमिज—कुलोल, संथाल—जिङ्गिया; नेपाल—तकि, लेपचा—रा, मध्यप्रदेशमें—कचनार, मराठी—काञ्चन, रक्तकाञ्चन, कोङ्कणी—काञ्चन; बम्बई—कोविदार, तामिल—सेगपुमन्धरी; कनाडी—काञ्चीवलदो, उडिया—बोरध; ब्रह्म—वेचिन।

हिमालयके पहाडी वनविभागमें ४००० फुट ऊंचे स्थान पर यह वृक्ष उत्पन्न होता है। भारतीय जंगलमें और गण्डशैलमाला पर यह बहुतायतसे उत्पन्न होते देखे जाते हैं। इसके गाढ़े, लाल और सफेद फूलसे उद्यानकी शोभा बढती है, इसीसे समतल क्षेत्रवासी बहुतेरे लोग इसका आदर करते हैं।

वृक्षनिर्यास 'सिमलागोंद' कहलाता है। जलमें डालनेसे वह बहुत कुछ गल जाता है और उससे एक प्रकारकी गन्ध निकलती है। पेडकी छालसे चमडा रंगाया और परिष्कार किया जाता है। बीजसे एक प्रकारका तेल बनता है।

इसके मूलका काढ़ा अजीर्ण, उदरामय और उदराध्मान-रोगमें बहुत उपकारी है। पुष्पमें चीनी मिला कर

सेवन करानेसे रेवनग्रन्थीकी पोषकता होती है। छाल, पुष्प या मूलको चावलके धोए जलमें पीस कर स्फोटक के ऊपर पुलटिसकी तरह प्रलेप देनेसे फोड़ा पक जाता है तथा पीप पतली निकलती है। छालका गुण—धातु परिष्कारक, बलवर्द्धक और मलरोधक है। गलगण्ड, चर्मरोग और क्षतादिमें यह विशेष फलप्रद है। शरीरके रक्त और रसकी अधिकता रहनेके कारण कुष्ठादि रोगमें भी इसका प्रयोग किया जाता है। सूखी कली ग्रैष्म गुणविशिष्ट और धारक तथा उदरामय रोगमें विशेष उपकारी है। इससे पेटके कीड़े दूर होते हैं।

ग्रीष्मके प्रारम्भमें अर्थात् फाल्गुनके महीनेसे ही यह पेड़ फूल और फलके बोझसे लद जाता है। दो महीनेके भीतर बीज पकते हैं। कोई कोई पशुओंके साथ इसको कम्बा दाम कर जाता है।

इसकी लकड़ीका रंग धूसर और मध्यभाग काला होता है। यह मजबूत तो होती है, पर छोटे छोटे खंडोंमें विभक्त हो जानेसे किसी काममें नहीं आती। कोविदारके भीजारोंकी मूठ साधारणतः इसीसे बनता है। बौद्ध युगके भास्करकार्योंमें जो पत्र देखा जाता है, उससे इसकी पवित्रताका अनुमान किया जाता है।

इस श्रेणीके वृक्ष B purpurea श्रेणीसे बहुत कुछ मिलते जुलते हैं। बहुत थोड़ा अन्तर रहने पर भी उसे लोग रक्तकाञ्चन कहते हैं। स्थानीय नाम—पञ्जाबी—करार, कराड़ कचेहा; हिन्दी—कोलियर, कोलियर, कन्दल, गैरवाल, भोना; नेपाल—गैराली; लेपचा—कचिक; बङ्गला—देवकाञ्चन, रक्तकाञ्चन कैराम; कोल—बुरुजू; लोहरडंगा—कैनार; सन्थाल—सिञ्जि पाड़ मलयालम्—कुन्नरम; गौड़—केश्वरी; मराठी—रक्तचन्दन, अमलि, रक्तकाञ्चन, देवकाञ्चन; तामिल—पेया आरेमन्दरे; तेलगू—काञ्चन, पेद्दू आरे, पीड़म्म चेट्टू; कनाड़ी—सुराल काञ्चीवाल; ब्रह्म—महलयकापि, महलेगणि।

उपरोक्त वृक्षकी तरह इसके गोंद और छिलकेका गुण और प्रयोग प्रायः एक सा है। छिलका धारक, अङ्ग वायुनाशक भार बल्यवर्द्धक तथा फूल विरेचक होता है। छिलकेके काढ़ेसे घाव धोया जाता है। इसके फूल को बहुतेरे रींध कर खाते हैं।

B tomentosa नामक उस जातिके वृक्षको लोग काञ्चन या काञ्चनी कहते हैं। इसके छिलकेके रेशेसे रस्सी बनाई जाती है। यह उदरामय और कृमिनाशक है। यकृत्के प्रदाहमें इसके मूलके छिलकेका काढ़ा विशेष फलप्रद है।

रक्तकान्ता (स० स्त्री०) रक्ता रक्तवर्णा कान्ता दृष्टौऽस्याः रक्तपुनर्नवा, लाल गदहपूरना।

रक्तकास—रोगविशेष। एलोपैथिकके मतसे इसे Haemoptysis कहते हैं। कण्ठनाली (Larynx), श्वास नाली और फुस्फुससे यदि सफेद रक्त निकले, तो उसे रक्तकास रोग हुआ जानना चाहिये।

पर्वतके ऊपर चढ़नेके समय बहुत काँपनेसे या खाँसी रहनेसे तथा अति उच्च स्वरमें गान करनेसे अथवा वंशी बजानेसे रक्तवमन हो सकता है। शीताद धूम्र रोग (purpura) और शोणितको तरल करनेवाला पीड़ा में अथवा रक्तरोध होने पर मुखसे खून निकलनेकी सम्भावना है। कण्ठनाली, श्वासनाली या वायुनली में रक्ताधिक्य प्रदाह या कर्कटरोगमें तथा फुसफुसमें गुटली (tubercle) सञ्चित हो कर उससे प्रदाह, क्षत, स्फोटक, आघातबोध और विगलन होनेसे अथवा हाइडेटिड (hydatid) कृमि और कर्कटरोग रहनेसे रक्तो त्काश हो सकता है।

दोनों वक्षःपरदके मध्यस्थित स्थान (mediastinum) के भीतर श्वासनालीमें संयुक्त होनेसे हृत् पिण्डके रोगोंमें विशेषतः दक्षिण कोटरका विवर्द्धन अथवा वामकोटरका प्रसारण रहनेसे फुस्फुसीय धमनी और शिराकी पाड़ाओंमें किसी वायुनलीके मध्य पोटासिक एनिउरिज्म दिखाई देनेसे कभी कभी मुखसे रक्त निकल कर वायुनली या श्वासनलीमें जाता है। पीछे यह पुन स्त्रोर्ण हो कर हिमप्टिसिस उत्पन्न करता है। खाँसी और अधिक परिश्रम द्वारा रोगकी वृद्धि होती है।

इस व्याधिमें अकसर फुसफुसकी कैविटीसे तथा किम्वा किसी जगह फुसफुसीय धमनीकी छोटी छोटी शाखाओंके फटनेसे रक्त निकलता है। यक्ष्मारोगमें उक्त धमनाकी शाखा प्रशाखामें छोटे छोटे एनिउरिज्म उत्पन्न होता है। उनके फट जानेसे अनेक समय अधिक परिमाणमें रक्त निकलता है।

यह रोग अकस्मात् आरम्भ होता है। श्वासकृच्छ्र, वक्षके मध्य भार बोध और ज्वाला तथा गलेमें खोखार लावणिक आस्वाद आदि ही रक्त निकलनेका पूर्व लक्षण है। खांसीसे अथवा हठात् रक्त उछलता और उठता है, कभी कभी इतना रक्त निकलता है, कि मुंह और नाक भर जाता है। [illegible] भी [illegible] रहता है। श्लेष्माके साथ बिन्दु बिन्दु रक्त निकलता है अथवा एक ही समयमें अधिक रक्त निकल कर रोगीका प्राण ले लेता है। बहिर्गत रक्त फेनिल और उज्ज्वल लालवर्ण होता है। फुसफुसीय धमनीसे अथवा स्वतः प्रचुर परिमाणमें रक्तोद्गम होनेसे यह काला दिखाई देता है। अधिक रक्तस्रावके बाद शोणित श्लेष्माके साथ अथवा स्वतन्त्रभावसे बाहर निकलता है। [illegible] उसका रक्त देखनेसे लाल मालूम होता है। [illegible] रोगमें रक्तोद्गम होनेसे आणुवीक्षणिक परीक्षा द्वारा उस रक्तमें दृष्टुवायक वैसिलस पाया जाता है। यह रोग कठिन होनेसे रोगीका मुंह फीका और म्लान, हाथ पैर का स्पन्दन, श्वासकृच्छ्र और रक्तस्रावके अन्यान्य लक्षण दिखाई देते हैं। कभी कभी थोड़ा ज्वर भी चढ़ आता है। नाड़ी पूर्ण और द्रुत, किन्तु कोमल रहती है।

यह रोग कब तक रहता है, इसका कोई ठीक नहीं है। थोड़ा बार बार होनेसे दुर्गा जाती है। कभी कभी सामयिक रूपसे उपस्थित होती है। किन्तु गुरुतर लक्षणोंकी शान्तिके बाद कुछ दिन तक श्लेष्माके साथ थोड़ा थोड़ा रक्त निकलता रहता है।

इस समय रोगीकी छाती पर चोट देनेसे शब्दमें कोई परिवर्त्तन दिखाई नहीं देता। किन्तु ष्टेथसकोप यन्त्र लगा कर सुननेसे बुजबुडोंकी तरह श्वासशब्द मालूम होता है। मुंह, नाक अथवा पाकाशयसे रक्त स्राव होनेसे रोगके जैसा इसका भ्रम हो सकता है। नाक, मुंहकी अच्छी तरह परीक्षा करनेसे उसका निवारण किया जा सकता है। फुस्फुसीय धमनीसे कभी कभी काला रक्त निकलता है। उस समय रक्तपित्त रोग के साथ इसका भ्रम होता है। अतएव ऐसी हालतमें सुविज्ञ चिकित्सकको चाहिये, कि वे अच्छी तरह देखभाल कर रोगका निर्णय और औषधादिकी व्यवस्था करें। रक्तपित्त देखो।

इस रोगसे प्रायः मृत्यु होनेका डर नहीं रहता। पर हां, फुसफुससे यदि रक्त अधिक निकले या श्वासरोध अथवा रक्तस्रावके साथ [illegible] उपस्थित हो तो मृत्यु हो जाती है। कभी कभी निःसृत रक्त द्वारा फुस-फुसमें जख्म होता है और उसीसे अधिक यक्ष्मा आ पहुंचता है।

[illegible] रोगीको [illegible] सुलाने दे। सिरको तकिये पर ऊंचा करके रखना उचित है। छाती पर [illegible] और [illegible] सिर पर [illegible] पड़ता है। [illegible] रक्तोद्गम होनेसे हाथ पैर [illegible] अथवा साधारण [illegible] बांधना उचित है। कभी कभी छाती पर [illegible] भी लाभ पहुंचता है।

गैलिक एसिड, [illegible] एसिड, [illegible] एसिड डिल, अर्गट, तार्पिनका तेल, [illegible] आदि संकोचक और [illegible] औषधोंका आभ्यन्तरिक प्रयोग करे। एसिड गैलिक और [illegible] एसिडका अफीमके साथ सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है। [illegible] बिना प्रवेश करानेसे [illegible] का व्यवहार करना उचित है। [illegible] (Serum Haemoptysis?) होनेसे इञ्जेक्शन लगाना होता है। [illegible] अथवा [illegible] (Sil [illegible]) [illegible] बहुत फायदा देखा जाता है। रोगी यदि बलिष्ठ हो, तो लावणिक [illegible] प्रयोग करे। लक्षण खराब दिखाई देनेसे दूसरे आदमीके शरीरका रक्त रोगीके शरीरमें प्रवेश (Transfusion of blood) कराना उचित है।

रक्तकाष्ठ (सं० क्ली०) रक्तं काष्ठं यस्य। १ पतङ्ग, पतंगकी लकड़ी। २ लोहितवर्ण काठ, लाल रंगकी लकड़ी।

रक्तकुमुद (सं० क्ली०) रक्तं लोहितवर्णं कुमुदं। रक्तकैरव, लाल कुमुद।

रक्तकुरुण्टक (सं० पु०) रक्तवर्णः कुरुण्टकः। रक्तझिण्टी, लालकटसरैया। वैद्यकमें यह तिक्त, उष्ण, कटु वर्ण-

वर्द्धक शोथ और ज्वरनाशक मामरोग, कफ, रक्तरोग, पित्त, आम्लाम शूल श्वास और कासनाशक माना गया है।

रक्तकुष्ठ (सं० पु०) विसर्प नामक रोग। इसमें सारे शरीरमें बहुत जलन होती है, कभी कभी सारा शरीर लाल रंगका हो जाता और कुष्ठकी भांति गलने भी लगता है।

रक्तकुसुम (सं० पु०) रक्तानि रक्तवर्णानि कुसुमानि यस्य। १ पारिभद्र वृक्ष, फरहदका पेड़। २ गन्धन वृक्ष, धामिनका पेड़। ३ कचनार। ४ मदार, आक।

रक्तकुसुमा (सं० स्त्री०) अनारका पेड़।

रक्तकृमिजा (सं० स्त्री०) लाक्षा, लाह।

रक्तकेशर (सं० पु०) रक्ताः केशराः किञ्जल्काः अस्य। पारिभद्रक वृक्ष, फरहदका पेड़।

रक्तकेशिन् (सं० त्रि०) जिसके बाल लाल रंगके हों, तामड़े रंगके बालोंवाला।

रक्तकैरव (सं० क्ली०) रक्तं रक्तवर्णं कैरवं। रक्त कुमुद, लाल कुमुद।

रक्तकोकनद (सं० क्ली०) रक्तं रक्तवर्णं कोकनदं। रक्तोत्पल लाल कमल।

रक्तकोप (सं० पु०) शोणितप्रकोप, रक्तविकार।

रक्तक्षय (सं० पु०) रक्तस्राव लहू बहना।

रक्तक्षयशोषि (सं० स्त्री०) वह यक्ष्मा रोग जो किसी कारणवश शरीरका रक्त कम हो जानेसे उत्पन्न हो।

रक्तखदिर (सं० पु०) रक्तः रक्तवर्णः खदिरः। रक्तवर्ण पुष्पविशिष्ट खदिरवृक्ष एक प्रकारका खैरका पेड़ जिसके फूल लाल रंगके होते हैं। पर्याय—रक्तसार, ह्रसार, ताम्रसारक, बहुशल्य, याज्ञिक, कुष्ठनोदन, यूपद्रुम, भक्ष्यखदिर, मकल्। इसका गुण—कटु, उष्ण, कषाय, गुरु तिक्त, आमवात, अस्रपात, व्रण और भूतज्वरनाशक। (राजनि०) भावप्रकाशके मतसे पर्याय—गायत्री, दन्तधावन, कण्टकी, बालपत्र, बहुशल्य, यज्ञिय। गुण—शीतल दन्तरोगमें उपकारी, कण्डू कास अरुचिनाशक, तिक्त, कषाय, मेदोघ्न, कृमि, मेह, ज्वर, व्रण, श्वित्र, शोथ, आम पित्त, अस्रपाण्डु और कफनाशक। (भावप्र०)

रक्तखाड़व (सं० पु०) कश्मीर वृक्षभेद, एक प्रकारका खजूरका वृक्ष।

रक्तखाण्डव (सं० पु०) रक्तखाड़व देखो।

रक्तगतज्वर (सं० पु०) वह ज्वर जो रोगीके रक्तमें समा गया हो। इसमें रोगी खून थूकता है, मुंह बंद रखता है, छटपटाता है और उसे बहुत अधिक दाह तथा तृष्णा होती है। (माधवनि०) ज्वर शब्द देखो।

रक्तगन्धक (सं० क्ली०) रक्त रक्तवर्णं गन्धकं। बोल गन्धद्रव्य।

रक्तगन्धा (सं० स्त्री०) अश्वगन्धा, असगंध। (वैद्यकनि०)

रक्तगर्भा (सं० स्त्री०) नखरञ्जनीवृक्ष, मेंहदीका पेड़।

रक्तगुल्म (सं० पु०) रक्तजो गुल्मः मध्यपदलोपि कर्मधा०। स्त्रियोंका एक रोग जिसमें उनके गर्भाशयमें रक्तकी एक गांठ बन जाती है।

इसके लक्षण—अपक्व गर्भाशय होनेसे अथवा यथा समय प्रसव होनेके बाद अथवा ऋतुकालमें अहितकर आहार विहारादिका आचरण करनेसे वायु कुपित हो कर रजरक्तको दूषित कर डालती है। इसमें अत्यन्त दाह और वेदना होती तथा पैत्तिक गुल्मके सभी लक्षण दिखाई देते हैं। इसमें स्तनद्वय मुख पीतवर्ण, स्तनका अग्र भाग काला स्तनसे दुग्ध निर्गम, विविध द्रव्य खानेकी इच्छा, मुखसे जलस्राव और आलस्य आदि सभी गर्भके लक्षण दिखाई देने लगते हैं। परन्तु गर्भलक्षणके साथ इसका प्रभेद इतना हो है, कि गर्भोत्पन्न कालमें किसी प्रकारकी वेदना नहीं रहती तथा गर्भस्थ भ्रूणका सभी अङ्ग एक समय स्पन्दित न हो कर हस्त पदादि एक एक अङ्ग करके स्पन्दित होता है। किन्तु रक्तगुल्ममें समस्त पिण्ड वेदना उत्पन्न कर बहुत समय के बाद स्पन्दित होता है। (सुश्रुत गुल्मरोगाधि०)

भैषज्यरत्नावलीमें लिखा है कि रक्तगुल्ममें प्रसव काल अर्थात् दशवाँ महीना बीतने पर रोगिणीको स्नेह और स्वेद प्रदान करके स्निग्ध और विरेचक है।

सोयाँ नाटाकरञ्जकी छाल देवदारु, करंगी और पीपलको एक साथ पीस कर तिल क्वाथके साथ सेवन करनेसे रक्तगुल्म जाता रहता है। पुराने गुड़, त्रिकटु, हींग, करंजी इनके साथ तिलका काढ़ा, यवक्षार और त्रिकटुके साथ मद्य अथवा पलासके छिलकेको भस्म कर जलमें सिद्ध कर पान करनेसे रक्तगुल्म आरोग्य होता है।

पतद्भिन्न दन्तीगुड़ादिको उष्ण विरेचकसे भेद करा कर रक्त-प्रदर-विहित व्यवस्था करना कर्त्तव्य है। यदि उससे विरेचन न हो, तो क्षार वा थूहरके दूधके साथ तिल-पिष्टककी व्यवस्था करे। अधिक रक्तस्राव होनेसे रक्त-पित्तनाशक क्रिया करना आवश्यक है। भिलावेके चूर्ण और कषाय द्वारा यथाविधि घृतपाक करके चीनीके साथ सेवन करनेसे रक्तगुल्ममें तथा मधुके साथ पान करनेसे कफगुल्ममें बहुत लाभ पहुंचता है।

पारा, तूतिया, गंधक, जयपाल, पीपल, अमलतास फलकी मज्जा, इन्हें थूहरके दूधमें भावना दे कर गोली बनावे। इसका अनुपान आँवले वा इमलीके पत्तेका रस तथा पथ्य दधि और अन्न है। सूखा मांस, मूली, मछली, सूखा साग, दाल, आलू और मीठा फल गुल्मरोगमें अपथ्य है। (भैषज्यर० गुल्माधिकार)

विशेष विवरण गुल्मरोगमें देखो।

रक्तगैरिक (सं० क्ली०) स्वर्ण गैरिक, गेरू।

रक्तग्रन्थि (सं० पु०) १ रक्तलज्जावती, लाल लज्जावती। २ वह रोग जिससे शरीरमें लहूकी गाँठें बँध जाय।

(सुश्रुतनि० ११ अ०)

रक्तग्रीव (सं० पु०) १ कपोत, कबूतर। २ राक्षस।

रक्तघ्न (सं० पु०) रक्त हन्तीति हन् (अमनुष्य कर्त्तृके च। पा ३।२।५३) इति टक्। १ रोहितक वृक्ष। (लि०) २ रक्तनाशक, जिससे रक्तका नाश हो।

रक्तघ्नी (सं० स्त्री०) गण्डदूर्वा, एक प्रकारकी दूब।

रक्तचञ्चु (सं० पु०) शुक, तोता।

रक्तचन्दन—स्वनामप्रसिद्ध गन्धकाष्ठ और वृक्षविशेष (*Pterocarpus Santalinus*)। दक्षिण भारतमें विशेषतः कड़ापा उत्तर अरकट और कर्नूल जिलेमें यह वृक्ष बहुतायतसे उत्पन्न होता है। मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके विभिन्न जिलोंमें तथा बम्बई और बङ्गालके स्थान स्थानमें इस वृक्षकी खेती होती है। कुछ गरम और शुष्क जलवायुमें तथा पहाड़ी भूमिमें यह काफी तौरसे पैदा होता है। यह पेड़ बहुत नहीं बढ़ता। गंधयुक्त और लाल वर्णके इस काष्ठका लोग बहुत आदर करते हैं।

संस्कृत पर्याय—तिलपर्णी, पत्राङ्ग, रञ्जन, कुचन्दन, ताम्रसार, ताम्रवृक्ष, चन्दन, लोहित, शोणितचन्दन, रक्तसार, ताम्रसारक, क्षुद्रचन्दन, अर्कचन्दन, रक्ताङ्ग, प्रवालफल, पत्तङ्ग, रक्तबीज। इसका गुण—अति शीतल, तिक्त, चक्षुगत रक्तदोष, भूतदोष, पित्त, कफ, कास, ज्वर, भ्रान्ति, वमथु, और तृष्णानाशक। (राजनि०)

विभिन्न देशमें यह विभिन्न नामसे परिचित है। हिन्दी—रक्तचन्दन, उन्दम, लालचन्दन, रक्तचन्दन; बङ्गला—कुचन्दन, तिलपर्णी, रञ्जन, रक्तचन्दन, लालचन्दन, उड़िया—रक्तचन्दन· पञ्जाव—चन्दनलाल, बम्बई—रनाञ्जली, रक्तचन्दन, लालचन्दन, मराठी—रक्तचन्दन, ताम्बाटचन्दन, ताम्बाट गंध, हात्ताञ्जीका, गुर्जर—रताञ्जलि, दाक्षिणात्य—लालचन्दन, उन्दम, तेलगू—कुचन्दनन्, पर-गन्धपुचेक, रक्तचन्दन, लालचन्दन, सेयपुचन्दनम्, चन्दम्, एड़चन्दनम्, रक्तगन्धम्, गेडचन्दन, कणाड़ी—केमपुगन्धचेके, होन्ने, रक्तचन्दन, अगुरु, मलयालम्—ऊरुत्तचन्दनम्, रक्तचन्दनम्, ब्रह्म—सन्दकू, नस-नि, सिङ्गापुर—रक्तहन्दन, रतहन्दन, संस्कृत—रक्तचन्दन, अगुरु-गन्धकाष्ठ, रजन, कुचन्दन, तिलपरि; अरब—सन्दलियामर, उन्दम, पारस्य—बक्म्, सन्दलेसुर्ख, सुन, उन्दम्, दलसुर्ख, अङ्गरेजी—Sanders Red वा Red sandal wood, फारसी—Santale Rouge, जर्मन—Rothes Sandelholz, इटली—Sandalo rose दिनेमार—Sandel-Hout

पहले लिखा जा चुका है, कि दाक्षिणात्यवासी व्यवसायके लिये इस वृक्षकी खेती करते हैं। वे लोग मई और जून मासमें बीज संग्रह कर एक टुकड़ा जमीन तैयार करते हैं। साधारणतः ८ फुट चौकोन नरम मिट्टीवाली जमीनमें प्रायः ७ वा ८सौ बीज १ इञ्च गहरी जमीन खोद कर बोते हैं। पीछे उसमें एक रातके बाद प्रति तीसरे दिन शामको जल देते हैं। बोनेके पहले यदि बीजको अच्छी तरह भिगो लिया जावे, तो अंकुर निकलनेमें सिर्फ २० दिन, नहीं तो ३०से ३५ दिन तक लग जाता है।

अंकुर उत्पन्न होनेके बाद छः मास तक बड़ी सावधानीसे थोड़ा थोड़ा जल सींचना होता है। छः महीनेमें जब पौधा थोड़ा बढ़ जाय, तब उसे जड़से उखाड़ कर अलग अलग टोकरीमें रखे और छायामें छोड़ दे। प्रति

दूसरे या तीसरे दिन इसमें जल देना होगा। जब यह मूल टोकरीमें अच्छी तरह जड़ पकड़ ले तब उपयुक्त खेतमें गड्ढा बना कर एक एक टोकरी स्वतन्त्र स्थानमें गाड़ दें। सारे पौधे उसके सारवान् होनेसे गृहस्थ उन्हें काट डालते और बाजारमें बेचते हैं। बम्बई प्रदेशके थर्मी जिलेमें इसी तरह रक्तचन्दनकी खेती होती है। यह वृक्ष कमसे कम तीन वर्ष रहता है। पीछे उसे काट कर धूपमें सुखा लेते हैं। पतली पतली जड़ सुखा कर रंगके लिये बाजारमें भेजी जाती है।

वैज्ञानिकोंकी भाषामें रक्तचन्दनके लालवर्ण पदार्थको "santalin" कहते हैं। किसी एक पत्थर पर चन्दन काष्ठ घिसनेसे लालवर्णका जो गाढ़ा पदार्थ निकलता है उसका लोग देवमूर्तिपूजा और तिलकादि धारणके लिये व्यवहार करते हैं। इसके काढ़ेमें सूती कपड़ा रंगाया जाता है। देशी तरह औषधादिको रंगानेके लिये यूरोपीय औषधागारमें इसकी काफी रफ्तनी होती है। इङ्गलैण्ड उस देशमें चमड़े और काष्ठादिको रंगानेके लिये रक्तचन्दनका बहुत प्रचार देखा जाता है। किसी व्यञ्जनादिका वर्ण और गंध बढ़ानेके लिये इसका व्यवहार किया जाता है।

प्राचीन आयुर्वेदशास्त्रमें श्रीखण्ड या श्वेतचन्दन, पीतचन्दन और रक्तचन्दनके गुणका हाल लिखा है। प्रथमोक्त दो चन्दनवृक्षका वैज्ञानिक नाम Santalum album है। चन्दन देखो।

रक्तचन्दन शैत्यगुणविशिष्ट होनेके कारण लोग श्वेतचन्दनकी तरह स्नानके बाद घिसा रक्तचन्दन भी शरीरमें लेपते हैं। सिर दर्द करनेसे रक्तचन्दन जलमें घिस कर कपाल पर लगाये, दर्द फौरन दूर हो जायगा। यह धारक और बलकारक है। आयुर्वेदीय चिकित्सकगण औषधादिमें इसका प्रयोग करते हैं। मुसलमान हकीमके मतसे पित्तस्रावमें श्वेतचन्दन और रक्तस्रावमें रक्तचन्दन व्यवहार्य है। मलमें पित्त और रक्त बहनेसे दोनों प्रकारके चन्दनके काढ़ेका सेवन कराया जा सकता है। तिलतैल (Gingelly-oil)के साथ रक्तचन्दन मिला कर बहुतेरे स्नानके बाद शरीरमें लगाते हैं। उससे चर्मरोग नष्ट होता है। ज्वर और स्फोटक प्रदाहमें यह ज्वालाको नाश करता है। यह आंखकी ज्योतिको बढ़ाता और पसीना लाता है। बिच्छूका कटा हुआ चमड़ा धोनेमें चन्दनका घिसा जल बहुत उपकारी और ठंढा है। पुराने रक्तामाशयमें इसके बाकलेका काढ़ा धारक और बलकारक औषधरूपमें व्यवहार किया जाता है।

रासायनिक परीक्षासे देखा गया है, कि इसमें सन्तालिक एसिड (Santalic acid) है। ईथर, एल्कोहल और क्षारमिश्रित जलमें अथवा घने एसेटिक एसिडमें उक्त राल-निर्यास (Resinoid Substance=santalin) निक्षेप करनेसे वह गल जाता है। स्फटिकित पदार्थ दानेदार तथा गंध और स्वादहीन होता है। विडेल (Weidel) साहबने चन्दनके इस वर्णहीन दानेका $C_4 H_{10} O_3$ इस प्रकार रासायनिक विश्लेषण किया है। रक्तचन्दन काष्ठमें इसका संयोग करनेसे हरिताभ एक प्रकारका चूर पाया जाता है। इसे पटाशके साथ गलानेसे Resorcin नामक पदार्थ उत्पन्न होता है।

रक्तचन्दनकी तरह एक और श्रेणीका वृक्ष (Adenanthera pavonina) देखा जाता है। यह बङ्गालमें रक्ताञ्जन रक्तकम्बल, रञ्जन और कभी कभी रक्तचन्दन नामसे बाजारमें बिकता है। आसाममें यह चन्दन नामसे ही परिचित है। बाजारमें दुकानदार लोगोंको ठगनेके लिये असली रक्तचन्दनके बदले इसी काष्ठको बेचते हैं। प्रभेद इतना ही है, कि इसके काष्ठमें उतनी खुशबू नहीं है। बहुतेरे व्यापारी चन्दनकाष्ठके साथ इसे एक साथ मिला कर इसीलिये रख छोड़ते हैं जिससे इसमें चन्दन सी गंध आ जाय।

स्थानविशेषमें यह भी स्वतन्त्र नामसे परिचित है, जैसे—संथाली—मीर भुन्ना; तामिल—मलैगुण्डुमणि, तेलगू—बन्दि गुरुवेन्दा, पेद्द गुरिविन्दा; मलय—मञ्चाडि, मराठी—थाल, थोर्लीगञ्ज; दाक्षिणात्य—बड़ी गुमची, बड़ीगुमची; कनाड़ी—मञ्जाड़ी; सिंहली—मदटिय, मग—गुञ्ज; अन्दमन—रैठेड़ा; ब्रह्म—यवेंगी।

बङ्गाल, दक्षिणभारत और ब्रह्मदेशमें प्रायः सभी जगह यह बड़ा पेड़ उत्पन्न होता है। इसका निर्यास 'मदुतिया' कहलाता है। यह काष्ठ साधारणतः रक्तचन्दन काष्ठके बदले व्यवहृत होता है। कभी कभी इसे रंगके काममें लाते हैं।

इसके बीजसे तेल निकलता है। बीजचूर्णको विस्फोटकके ऊपर लगानेसे जलन रहने नहीं पाती तथा फोड़े पक जाते हैं। एक टुकड़े पत्थर पर जलसे बीज-को घिस कर कपालमें लगानेसे सिरका दर्द जाता रहता तथा शरीरमें जलन देनेके आरम्भमें लगानेसे जलन रुक जाती और शरीर ठंढा हो जाता है। वातरोगमें बीजका क्वाथ बहुत उपकारी है। इस बीजचूर्णको जलमें घोल कर शरीर पर लगानेसे फुंसी, फोड़े आदि गात्रस्फोट दूर हो जाते हैं। हकीम लोग गनोरिया रोगमें इसका चूर व्यवहार करते हैं।

पत्तेका काढ़ा गाठ-वात और चोरङ्गीवातमें बहुत उप-कारी है। अधिक काल मैथुन करनेमें पुरुषत्वकी हानि होती है। रक्तमूत्र (Haematuria) और रक्तस्रावमें (Haemorrhage from the bowels) यह काढ़ा बहुत फलप्रद है। उदरामय और आमरक्तमें रोगोके दुर्बल होनेसे यह काढ़ा धारक और बलकारक औषध-रूपमें व्यवहृत होता है। कोषप्रदाह (Orchitis)में इसके काष्ठ अथवा चूर्णको जलमें घिस कर प्रलेप देनेमें बहुत लाभ पहुंचता है। यह चूर्ण ३० रत्ती मात्रामें कुछ गरम जलके साथ सेवन करनेसे तुरन्त उल्टी आ जाती है। इसका बीज उज्ज्वल, लालवर्णका तथा यह तौलमें २ रत्ती भारी होता है। कुछ लोग तौलनेमें इसका व्यवहार करते हैं। कोई कोई बीजके वर्ण और औज्ज्वल्य पर मुग्ध हो इसका माला बना कर पहनते हैं। इसके चूर-को सोहागेके साथ पीसनेसे अच्छी रोटी बनती है। चन्दनके भ्रमसे बहुतेरे इस काष्ठको घिस कर तिलक लगाते हैं।

इसका काष्ठ लाल, मजबूत और लचीला होता है। इसी कारण दक्षिण भारतवासी इससे घरके असबाव और दरवाजा झरोखे आदि बनाते हैं।

शक्तिपूजामें रक्तचन्दन बड़े कामका है। रक्तचंदन-से काली और तारा आदिका यन्त्र अङ्कित कर पूजा करनेका विधान है। शक्तिदेवतामात्रकी ही चन्दन द्वारा पूजा करनी होती है।

रक्तचित्रक (सं० पु०) रक्तो रक्तवर्णश्चित्रकः। लाल रंगका चित्रक या चीता वृक्ष। महाराष्ट्र—रक्तचित्रक, कलिङ्ग—कंपिनचित्रकमूल, तैलङ्ग—एर्रचित्र, तामिल—शिवप्पुचितिर। संस्कृत पर्याय—काल, व्याल, काल मूल, अतिदीप्य, मार्जार, अग्नि, दाहक, पाचक, चित्राङ्ग, महाङ्ग। इसका गुण—स्थौल्यकर, रुचिकारक, कुष्ठघ्न, रक्तनियामक, लोहवेधक और रसायन माना गया है। (राजनि०)

रक्तचिल्लिका (सं० स्त्री०) मधुर वास्तुक, मीठी गदह-पूरना।

रक्तचूर्ण (सं० क्ली०) रक्तं रक्तवर्ण चूर्णं। १ सिन्दुर, सेंदुर। २ रक्तवर्ण चूर्णमात्र, लाल रंगका चूर्ण। (पु०) ३ कम्पिल्लक, कमीला।

रक्तच्छर्दि (सं० स्त्री०) रक्तवमन, खूनकी कै होना।

रक्तज (सं० त्रि०) रक्ताज्जायते जन-ड। १ जो रक्तसे उत्पन्न हो, लहूसे उत्पन्न होनेवाला। २ रक्तके विकार-के कारण उत्पन्न होनेवाला।

रक्तजक्रमि (सं० पु०) वह कृमिरोग जो रक्त विकारके कारण उत्पन्न होता है।

रक्तजन्तुक (सं० पु०) रक्तः रक्तवर्णो जन्तुः स्वार्थे कन् वा रक्ता आसक्ता जन्तवोऽस्मिन्। १ भूनाग, सीसा। २ रक्तवर्ण जन्तुमात्र, लाल रंगके प्राणी।

रक्तजवा (सं० पु०) स्वनामख्यात पुष्पवृक्षविशेष, अड़हुल (Hibiscus rosasinensis)। एकमात्र चीनदेशमें ही इस वृक्षके फूलमें बीज उत्पन्न होते हैं। भारतवर्षके नाना स्थानोंमें जवाका पेड़ है सही, पर उसमें फूल होने पर भी बीज नहीं होते। भारतवर्षके समतल क्षेत्रस्थ उद्यानोंमें विभिन्न श्रेणीके जवाके पेड़ फूलके बोझसे सुशोभित देखे जाते हैं। साधारणतः पञ्चदल, पञ्चमुखी आदि आकृतिका जवा देखनेमें आता है। श्वेत, पीत, रक्त, बैंगनी और नील रंगके जवा भी इस देशमें होते हैं। चीनदेश जवाका उत्पत्तिस्थान होनेके कारण इस देशके लोग इसके प्रकार-विशेषको आज भी चीनका जवा कहते हैं।

भिन्न भिन्न स्थानमें यह भिन्न भिन्न नामसे प्रसिद्ध है। बङ्गाल—जवा, जपा, जिवा, थरु, दाक्षिणात्य—गुड़ेल, कुधल, जासुत, जासुम; बम्बई—जासवन्द, मराठी—जासवंद, दमिन्दव फूल, गुजराती—जसुव,

तामिल—सेम्परत्-तप्पु ; तेलगु—मन्दारपुष्पमु, जपापुष्पमु दासान ; कनाड़ी—दासवल ; मलयालम्—चेम्परत्तिपुव, चेम्पस्परत्ति ; ब्रह्म—कौङ्गयान ; संस्कृत—जवा, जपापुष्पम्, जपा ; अरब और पारस्य—अङ्गारे ; हिन्दी अङ्गरेजी—shoe flower, china rose ; फरासी—ketmi de cochin chine ।

यह फूल नरम जिससे रंगीन एक प्रकारका गाढ़ा लाल रंग पाया जाता है। छोटे छोटे बच्चे कागजको लाल करनेके लिये जवा फूल घिसते हैं। उसमें थोड़ा मसि या अञ्जन मिलानेसे थोड़े ही समयमें वह मसाला लिये सफेद हो जाता है। पुष्पके रससे जूताका रंग काला होता है, इस कारण अङ्गरेजोंमें इसका शु-फ्लावर नाम रखा है। चीनदेशमें भी इस फूलसे बाल काले किये जाते हैं। इसकी छालके रेशेसे रस्सा बनाया जा सकता है।

पुष्प स्निग्धकर और प्रदाहनाशक होता है। मूत्रकृच्छ्र, पेशाबमें जलन आदि रोगोंमें पुष्पकलिकाका स्निग्ध या इनफिउजन दिया जाता है। यह स्निग्धकारक और ज्वरमें शैत्यकारक है। जपापुष्पका रस और मीठा तेल समान भाग ले कर मिला रखे, जब जलका भाग बिलकुल जल जाय तब उतार ले। यह तेल केश बढ़ानेमें बहुत उपयोगी है। इसके पत्तोंका रस शैत्य गुणविशिष्ट, वेदनानिवारक, स्निग्धकर और मृदुविरेचक है। ऋतुग्रह रोग (menorrhagia) में जवा पुष्पको घीमें भुन कर सेवन करानेसे विशेष फल पाया जाता है। इसके बीजका चूर्ण अलग रख यदि प्रमेह (gonorrhœa) रोगग्रस्त व्यक्तिको सेवन कराया जाय तो बहुत उपकार होता है। जवा देखो।

रक्तजिह्व (सं० पु०) रक्ता रक्तवर्णा शोणितपानार्थी आसक्ता वा जिह्वा यस्य। १ सिंह शेर। (त्रि०) २ रक्तवर्ण जिह्वायुक्त जिसकी जीभ लाल रंगकी हो।

रक्तमुण (सं० पु०) जनाद, शुगरी।

रक्तझाउ—समासमपात नाम झाउका गाछ (Tamarix dioica) आसाम और पञ्जाबकी २,००० फुट ऊंची भूमिमें यह वृक्ष उत्पन्न होता है।

रक्तझिण्टी (सं० स्त्री०) रक्ता रक्तवर्णा झिण्टी। रक्तवर्ण झिण्टी पुष्पवृक्ष। पर्याय—कुरबक।

रक्तगैर (सं० क्ली०) स्वर्णगैरिक, गेरू।

रक्तता (सं० स्त्री०) रक्तस्य भावः तल्-टाप्। रक्तका भाव या धर्म, लालिमा, ललाई।

"रञ्जितं पार्थिवस्तेन रिपोर्मार्गाश्च रक्तताम्।"

(शार्ङ्गधर०)

रक्ततुण्ड (सं० पु०) रक्तो तुण्डो यस्य। १ शुकपक्षी, तोता। (त्रि०) २ लोहितमुखयुक्त जिसका मुंह लाल रंगका हो।

रक्ततुण्डक (सं० पु०) रक्ततुण्ड कन्। १ सूगा, सामा। २ रक्ततुण्ड देखो।

रक्ततृण (सं० क्ली०) एक प्रकारका लाल रंगका तृण।

रक्ततेजस् (सं० क्ली०) मांस।

रक्तत्रिवृत् (सं० स्त्री०) रक्ता त्रिवृत्। रक्तवर्ण त्रिवृत्, लाल निसोथ। पर्याय—कालिन्दी, त्रिपुटा, ताम्रपुष्पिका, कुलयपर्णी, मसूरी, मसूरा, कालमासिका। इसका गुण—तिक्त, कटु, उष्ण, रेचन, प्रदमी मल और विष्टम्भ हारक तथा हितकारी। (राजनि०)

रक्तदन्तिका (सं० स्त्री०) रक्ता दन्ताः यस्याः, रक्तदन्ता स्वार्थे कन्, टापि अत इत्वं। चण्डिका। शुम्भ और निशुम्भसे युद्ध करनेके समय देवी चण्डिकाके सभी दांत असुरोंके मांससे लाल हो गये थे, इसीसे वे रक्तदन्तिका नामसे प्रसिद्ध हुई।

(मार्कण्डेयपु० देवीमा० ६१।४१)

रक्तदन्ती (सं० स्त्री०) रक्तदन्तिका देखो।

रक्तदला (सं० स्त्री०) रक्तानि दलान्यस्याः। १ नलिका नामक गन्धद्रव्य। २ [illegible]।

रक्तदुष्ट (सं० त्रि०) दूषित रक्त विशिष्ट रक्तयुक्त।

रक्तदूषक (सं० त्रि०) रक्तदोषकारक, खून खराब करनेवाला।

रक्तदृश् (सं० पु० स्त्री०) रक्ता दृक् दृष्टिर्यस्य। १ कपोत, कबूतर। (त्रि०) २ रक्तवर्ण चक्षुविशिष्ट, लाल आंखवाला।

रक्तद्रुम (सं० पु०) रक्तबीजासन वृक्ष लाल पीतासन का पेड़।

रक्तधरा (सं० स्त्री०) वैद्यकके अनुसार मांसके भीतरकी दूसरी कला या झिल्ली जो रक्तको धारण किये रहती है।

रक्तधातु (सं० पु०) रक्तो रक्तवर्णो धातुः। १ गैरिक, गेरू।

२ ताम्र, तांबा। ३ रक्तवर्णधातुमात्र, लाल रंगका धातु। ४ शरीरमेंका लाल धातु।

रक्तनदी—रक्तमय नदी। इस देशमें प्रचलित है कि जो स्वप्नमें रक्तनदी देखता है वह बड़ा भाग्यवान है।

रक्तनयन (सं० त्रि०) १ आरक्तनेत्र, लाल आंखोंवाला। (पु०) २ कबूतर। ३ चकोर।

रक्तनाड़ी (सं० स्त्री०) दन्तमूलगत रक्तज नाड़ीरोगविशेष, दांतोंकी जड़में होनेवाला एक प्रकारका रोग।

रक्तनाल (सं० पु०) रक्तो नालोऽस्य। जीवशाक, सुसना।

रक्तनासिक (सं० पु०) रक्ता नासिकास्य। १ पेचक, उल्लू। (त्रि०) २ रक्तनासिकायुक्त, लाल नाकवाला।

रक्तनिर्यास (सं० पु०) रक्तबीजासनवृक्ष, लाल रंगका बीजासन पेड़।

रक्तनील (सं० पु०) महाविष वृश्चिकविशेष, एक प्रकारका बहुत जहरीला बिच्छू। (सुश्रुत कल्पस्था० ८ अ०)

रक्तनेत्र (सं० पु०) रक्तं नेत्रं यस्य। १ सारस पक्षी। २ कपोत, कबूतर। ३ चकोर। (क्ली०) ४ रक्तवर्ण चक्षु, लाल रंगकी आंखें। (त्रि०) ५ रक्तवर्णनेत्रयुक्त, जिसकी आंखें लाल हों।

रक्तप (सं० पु०) रक्तं पिबतीति पा क। १ राक्षस। (त्रि०) २ रक्तपानकर्त्ता, लहू पीनेवाला।

रक्तपक्ष (सं० पु०) रक्तौ पक्षावस्य। गरुड़।

रक्तपट (सं० त्रि०) १ रक्तवस्त्रधारी, लाल रंगके कपड़े पहननेवाला। २ श्रमण।

रक्तपत्र (सं० पु०) १ पिण्डालु। २ रक्तवर्ण पत्रविशिष्ट।

रक्तपत्रा (सं० स्त्री०) १ जिसके पत्ते लाल हों, गदहपूरना। २ नाकुली।

रक्तपत्रिका (सं० स्त्री०) रक्तानि पत्राणि अस्याः स्वार्थे कन्, टापि अत इत्वं। १ नाकुली। २ रक्त पुनर्नवा, लाल गदहपूरना। ३ लोहित पत्र, लालपत्ता।

रक्तपदी (सं० स्त्री०) लजालु, लज्जावती।

रक्तपद्म (सं० पु० क्ली०) रक्तो रक्तवर्णो पद्मः। रक्तवर्ण पद्म, लाल कमल। पद्म देखो।

रक्तपर्ण (सं० पु०) १ रक्तपुनर्नवा, लाल गदहपूरना। (त्रि०) २ रक्तवर्ण पर्णविशिष्ट, जिसके पत्ते लाल हो।

रक्तपल्लव (सं० पु०) १ अशोकका वृक्ष। २ लोहितपर्ण, लाल पत्ता।

रक्तपा (सं० स्त्री०) रक्तं पिबतीति पा क, स्त्रियां टाप्। १ जलौका, जोंक। २ डाकिनी। (त्रि०) ३ शोणितपायी, लहू पीनेवाला।

रक्तपाकी (सं० स्त्री०) पच्यते इति पच घञ्, रक्त रक्तवर्ण पाके यस्याः। बृहती नामकी लता।

रक्तपात (सं० पु०) १ लहूका गिरना या बहना, रक्त स्राव। २ ऐसा प्रहार जिससे किसीका रक्त बहे। ३ ऐसी लड़ाई-झगड़ा जिसमें लोग जख्मी हों, खून-खराबी।

रक्तपाता (सं० स्त्री०) रक्तं पातयतीति पत-णिच्-अच्, स्त्रियां टाप्। जलौका, जोंक।

रक्तपाद (सं० पु०) रक्तौ पादावस्य। १ शुकपक्षी, तोता। २ बगला। (त्रि०) ३ लोहितचरणयुक्त, जिसके पैर लाल हों।

रक्तपायिन् (सं० त्रि०) रक्तं पातुं शीलमस्य, पा णिनि। १ रक्तपानशील, खून पीनेवाला। (पु०) २ मत्कुण, खटमल।

रक्तपायिनी (सं० स्त्री०) जलौका, जोंक।

रक्तपारद (सं० क्ली०) रक्तं रक्तवर्णं पारदं। हिंगुल, सिंगरफ।

रक्तपाषाण (सं० पु० क्ली०) १ गिरिमृत्तिका, गेरू। २ लाल पत्थर।

रक्तपिटिका (सं० स्त्री०) रक्तवर्ण विस्फोटक, लाल फोड़ा।

रक्तपिण्ड (सं० क्ली०) रक्तं रक्तवर्णं पिण्डमिव। जवापुष्प, अड़हुलका फूल।

रक्तपिण्डक (सं० पु०) रक्तं पिण्डमिवेति रक्तपिण्ड इव कन्। १ रक्तालु, रतालू। २ जपाद्रुम, अड़हुलका पेड़।

रक्तपिण्डालु (सं० पु०) रक्तवर्ण पिण्डालु, रतालु। महाराष्ट्रमें बानालु और कलिङ्गमें केंपि नहेंटल कहते हैं। वृक्षका रस गुण—शीतल, मधुर, अम्ल, श्रमघ्न, दाह और पित्तनाशक, बलकर, गुरु और पुष्टिकर। (राजनि०)

रक्तपित्त (सं० क्ली०) रक्तदूषणं पित्तमिति मध्यपदलोपि कर्मधारय०, रक्तञ्च पित्तञ्च रक्तपित्तमिति द्वन्द्व इति सुश्रुतः रक्तञ्च तत्पित्तञ्चेति रक्तपित्तं रागप्राप्तपित्तमिति कर्मधारयः इति चरकः। रोगविशेष, रक्तपित्त रोग।

इस रोगका निदान—अग्नि और सूर्यादिका आतप सेवन व्यायाम, शोक पथपर्यटन, मैथुन तथा मरिचादि तीक्ष्ण द्रव्य भक्षण, क्षीय द्रव्य क्षार, लवण और कटुरसयुक्त द्रव्य अतिरिक्तरूपमें भोजन करनेसे पित्त बिगड़ कर इस रोगको उत्पन्न करता है। स्त्रियोंके रजोरोध होने पर भी यह रोग हो सकता है। इस रोगमें मुख, नासिका, चक्षु और कर्ण इन सब ऊर्ध्व मार्ग तथा गुह्य, योनि और लिङ्ग अधोमार्ग द्वारा रक्तस्राव होता है। यह पीड़ा यदि बहुत बढ़ जाय, तो समस्त रोमकूप द्वारा भी रक्त स्राव हो सकता है।

इस रोगका पूर्वलक्षण—रक्तपित्तरोग उत्पन्न होनेके पहले अवसन्नता, शीतल द्रव्य खानेकी इच्छा, कण्ठसे धूआं निकल रहा है ऐसा अनुभव, वमन और निःश्वास में रक्त वा लोहेकी गंध सी गंधका अनुभव होता है।

दोषभेदमें लक्षण—रोग उत्पन्न होनेके बाद वात आदि दोषकी अधिकताके अनुसार पृथक् पृथक् लक्षण दिखाई देते हैं। रक्तपित्तमें वायुकी अधिकता रहनेसे श्याम वा अरुणवर्णका फेनयुक्त पतला और रूखा रक्त बाहर हो जाता है। इसमें गुह्य, योनि या लिङ्ग इन सब अधोमार्ग द्वारा रक्त निकलता है। पित्तकी अधिकता रहनेसे वटादि छालका काढ़े जैसा काला गोमूत्रके जैसा चिकना और सौवीराञ्जनके जैसा रक्त निकलता है। श्लेष्माकी अधिकता रहनेसे घना, कुछ पाण्डुयुक्त, अल्प स्निग्ध और पिच्छिल रक्त निकलता है। इसमें मुंह, नाक, आंख और कान हो कर रक्तस्राव होता है। दो या तीन दोषकी अधिकता रहनेसे उन दो या तीन दोषके मिश्रित लक्षण दिखाई देते हैं। त्रिदोषजन्य तथा वातश्लेष्मजनित रक्तपित्तमें ऊपर और दोनों मार्ग द्वारा रक्त निकलता है।

इस रोगमें साध्यासाध्य—जो रक्तपित्त ऊर्ध्वमार्गगत है अर्थात् मुखनासिकादि द्वारा रक्त निकलता है जो अल्पवेगयुक्त और उपद्रवशून्य है तथा हेमन्त वा शीत कालमें दिखाई देता है यह सुखसाध्य होता है। जो रक्तपित्त अधोमार्गगत है अर्थात् गुह्य, योनि और लिङ्ग हो कर रक्त निकलता है तथा जो द्विदोषजात है यह याप्य है। जिस रक्तपित्तरोगमें ऊर्ध्व और अधः इन दोनों मार्ग द्वारा रक्तस्राव होता है तथा जो त्रिदोषज है उसे असाध्य जानना चाहिये। रोगीके वृद्ध, मन्दाग्नियुक्त, आहारशक्तिहीन वा अन्यान्य व्याधियुक्त होने पर भी रक्तपित्त रोग असाध्य है।

इस रोगका उपसर्ग—दुर्बलता श्वास, कास ज्वर, वमि, मत्तता, पाण्डुता, दाह, मूर्च्छा, भुक्तद्रव्यका अम्लपाक, सर्वदा अधैर्य, हृदयमें वेदना, तृष्णा, मलभेद, मस्तक पर संताप, सारे शरीरमें सड़ी सी गंध, आहारमें विद्वेष और अरोचक आदि लक्षण दिखाई देते हैं। रक्तमें सड़ी गंध निकलती और उसका वर्ण मांसके धोए हुए जलके समान कर्दम मेद, पीप, यकृत्खण्ड अथवा जामुनके जैसा तथा इन्द्रधनुषकी तरह विभिन्न रंगका होता है।

मृत्युलक्षण—जिस रक्तपित्तमें रोगीके नेत्र लाल हो जाते, डकारमें लाल रंग दिखाई देता अथवा सभी पदार्थ लालसे मालूम होते अथवा अधिक परिमाणमें रक्तवमन होता उसकी मृत्यु निकट समझनी चाहिये।

अवस्थाभेदमें चिकित्सा—इस रोगमें रोगी बलवान् रहनेसे रक्तस्रावको हठात् बंद कर देना उचित नहीं। क्योंकि, उस दूषित रक्तके देहमें रुद्ध हो कर रहनेसे पाण्डुरोग, हृद्रोग, ग्रहणी, प्लीहा, गुल्म और ज्वर आदि नाना प्रकारकी पीड़ा होनेकी सम्भावना है। किन्तु जो दुर्बल रोगी है वा अतिरिक्त रक्तस्रावके कारण जिसका शरीर अवसन्न हो गया है उनका वह रक्त रुद्ध करना उचित है। दूबका रस, अनारका रस, गोबर या घोड़ेकी विष्ठाका रस, इन्हें चीनीके साथ सेवन करनेसे रक्तस्राव अति शीघ्र दूर हो जाता है। अड़ूसके पत्तोंका रस, पके गूलरके फलका रस, लाह भिगोया हुआ जल और आयापानके पत्तोंका रस सेवन करनेसे रक्तस्राव बंद होता है। आनी भर फिटकरीके चूर्णको दूधके साथ सेवन करनेसे भी रक्तस्राव निवारित होता है। रक्तातिसार और रक्तार्शरोगके रक्तरोधक अन्यान्य रोगोंका भी इस रोगमें सोच विचार कर प्रयोग करनेसे उपकार होता है। नाकसे रक्तस्राव होने पर आंवलेको घीमें भून कांजीके साथ पीस कर मस्तक पर प्रलेप देवे, चीनी मिश्रित दूध वा जलकी तथा दूबका रस, अनारके

फूलका रस, अलतेका रस, प्याजका रस, गोबर वा घोड़ेकी विष्ठाका रस, केवाँचका रस वा हर्रेका जल इन सब द्रव्योंकी नास लेनेसे लाभ पहुंचता है। कानसे रक्तस्राव होने पर भी इसी प्रकार सुंघनी लेनी चाहिये। मूत्रद्वार हो कर रक्तस्राव होनेसे काश, शर, काली ईख और इक्षुखडका मूल कुल मिला कर २ तोला, बकरीका दूध १६ तोला इन्हे एक सेर जलमें पाक कर दुग्धभागके रहते उतार ले। ठंढा होने पर इसका सेवन करनेसे रक्तस्राव बंद हो जाता है। शतमूली और गोखरूके मूलके साथ दूधको पका कर पान करनेसे बहुत उपकार होता है। रक्तचन्दन, बेलसोंठ, अतीस कुटजकी छाल और बावलाका आटा, कुल २ तोला, बकरीका दूध १६ तोला, जल १ सेर इन्हें सिद्ध कर दूधका भाग रहते उतार ले। इसका पान करनेसे गुह्य, योनि और लिङ्गद्वार हो कर रक्तका निकलना बंद हो जाता है। किसमिस, रक्तचन्दन, लोध्र, प्रियंगु इन सब द्रव्योंके चूर्णको अडूसके पत्तोंके रस और मधुके साथ सेवन करनेसे मुंह और नाकसे रक्त का निकलना रुक जाता है। ग्रथित अर्थात् गठीला रक्तस्राव होनेसे कबूतरकी विष्ठाको अति अल्प मात्रामें मधुके साथ मिला कर सेवन करनेसे भी लाभ पहुंचता है। इसके सिवा हिम, धान्यकादि, ह्रीबेरादि और अटरूषकादि क्वाथ एलादिगुडिका, कुष्माण्डखण्ड, वासाकुष्माण्डखण्ड, खण्डकाद्यलौह, रक्तपित्तान्तकलौह, वासाघृत और ह्रीबेराद्यतैल आदि औषधोंका अच्छी तरह प्रयोग करनेसे यह रोग प्रशमित होता है। रक्तपित्तके साथ ज्वर रहनेसे लाल निसोथ, श्यामवर्णका निसोथ, आमलकी, हरीतकी, बहेड़ा, पीपलचूर्ण प्रत्येकका सम भाग, कुल मिला कर जितना हो उससे दूनी चीनी और मधुके साथ मोदक बनाना होगा। इस मोदकका सेवन करनेसे रक्तपित्त और ज्वर इन दोनों रोगोंकी शान्ति होती है। इसके सिवाय रक्तपित्तनाशक और ज्वरनाशक दोनोंके औषधको मिला कर इस अवस्थामें प्रयोग करना होता है। श्वास, कास, स्वरभङ्ग आदि उपद्रव उपस्थित होनेसे राजयक्ष्मरोगकी तरह चिकित्सा करनी चाहिये। अडूसके पत्तोंके रसके साथ तालीशपत्र चूर्ण और मधु मिला कर पान करनेसे श्वास, कास और स्वरभङ्गमें उपकारक होता है।

(सुश्रुत रक्तपित्तरोगाधि०)

भावप्रकाशके मतसे रक्तपित्त रोगीको पहले रक्तरोधक औषध नहीं देना चाहिये। क्योंकि, उससे वह दूषित रक्त रुक कर हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी, प्लीहा, गुल्म और ज्वरादि रोगोंको उत्पन्न करता है।

धान, साठी, कोदों, श्यामा और कंगनी धान रक्तपित्तरोगीको खानेके लिये देना उचित है। मसूर, मूंग, चना, वनमूंग और अरहर दालका जूस दिया जा सकता है। अनार, आंवला, परवलका पत्ता, नीम, वेताग्र, प्लक्ष, वेतका पत्ता और मारसा साग, सफेद वा पाण्डुवर्णका कबूतर, शशक, कपिञ्जल और हरिण इनके मांसका जूस रक्तपित्तरोगमें हितकर है। धनिया, आमलकी, अडूस, किसमिस, पित्तपापड़ इनका शीतल कषाय प्रस्तुत करके सेवन करनेसे रक्तपित्त, ज्वर, दाह, पिपासा और शोषरोग नाश होता है। अतिवला, नीलोत्पल, धनिया, रक्तचन्दन, मुलेठी, गुलञ्च, खसखसकी जड और निसोथ इनका काढ़ा मधु और चीनीके साथ पीनेसे रक्तपित्तरोग आरोग्य होता है।

रक्तपित्त, क्षय और कासरोगोंमें किसी प्रकारका अरिष्टलक्षण नहीं होनेसे यदि अडूसका प्रयोग किया जाय, तो कोई भय नहीं रहता। अडूस, किसमिस और हरितकी इनका क्वाथ चीनी और मधुके साथ पान करनेसे सभी प्रकारके कास, श्वास और रक्तपित्त नष्ट होते हैं।

इस रोगमें अतिशय रक्तस्राव जारी रहनेसे मधुसंयुक्त रक्तपान करे। नाकसे रक्त निकलने पर आंवलेको घीमें भुन कर कांजी द्वारा अच्छी तरह पीस करके मस्तक पर प्रलेप देनेसे रक्तवेग निवारित होता है। दूर्वाद्यघृत, खण्डकुष्माण्डवलेह, वृहत्कुष्माण्डवलेह, खण्डकुष्माण्डक, खण्डखाद्यलौह, शतावरीपाक प्रभृति औषधोंका अवस्थानुसार प्रयोग करे।

(भावप्र० रक्तपित्त०)

भैषज्यरत्नावलीमें रक्तपित्त-रोगाधिकारमें निम्नोक्त औषध बतलाये गये हैं, जैसे—उशीरादिचूर्ण, एलादि-

गुड़िका, कुष्माण्डखण्ड, वासाकुष्माण्डखण्ड वासाघृत, दूर्वाद्यघृत, समशर्करलौह, शतमूल्यादि लौह, खण्डकाद्य लौह, रक्तपित्तान्तकलौह, सुधानिधिरस, हायेरायनीन और टर्पीनामय।

रसेन्द्रसारसंग्रहमें सर्वेश्वर, सुधानिधिरस, श्याम मधर्यादि लौह, शतमूल्यादि लौह, पपनीरस, रक्तपित्ता-न्तकरस, रसामृतरस, कुष्माण्डखण्ड शर्करादि लौह, समशर्करलौह और वपद करसका प्रयोग देखा जाता है।

विज्ञ चिकित्सकको चाहिये कि वे रोगके बल और अवस्थाको अच्छी तरह देखभाल कर औषधका प्रयोग करें।

इस रोगकी प्रबल अवस्थामें पथ्यापथ्य—ऊर्ध्वग रक्तपित्तमें रोगीका बल मांस और अग्निबल क्षीण नहीं होनेसे पहले उपवास कराना उचित है; किन्तु बलादि क्षीण होनेसे तृप्तिकर आहार कराना है। घी मधु और लावाके चूर्णका तैयार किया हुआ भोजन उपकारक है। पिण्डखजूर, किसमिस, मुलेठी और फालसा इनके काढ़ेको ठंडा करके चीनीके साथ पान करनेसे विशेष लाभ पहुंचता है। अधोग रक्तपित्त रोगीको तृप्तिकर पेयादि पानका है। शालपर्णी, पृश्नपर्णी, वृहती, कण्टकारी और गोखरू इन पञ्चमूलके काढ़ेका पेया तैयार करके सेवन करनेसे विशेष उपकार होता है।

इस रोगमें साधारण पथ्यापथ्य—अतिरिक्त रक्त-स्रावके बाद यह बंद हो जानेसे तथा अग्न्यादि परिपाकके स्थायक अग्निबल रहनेसे दिनमें पुराने चावलका भात; मूंग, मसूर और चनेकी दालका जूस; बड़ी मछली या छोटी मछलीका शोरबा, परवल, गूलर, पक्वकुष्माण्ड, कच्चा केला, करेले आदिकी तरकारी; खरगोश, बकरे, हरिन, तीतर और कबूतर आदिका मांसरस; बकरीका दूध, खजूर, अनार, आमड़ा, किसमिस, आमलकी, मिसरी नारियल तिलतैल और घृतपक्व लघुद्रव्यादि इस रोगमें खानेको दिया जा सकता है। रातको गेहूं या जौकी रोटी अर्द्ध तर पका कर देनी चाहिए। गरम जल ठंडा करके पान देना उचित है।

इस रोगमें निषिद्ध कर्म—गुरुपाक, दाहजनक और रूक्ष दधि, मछली, अधिक मादक द्रव्य, सरसोंका तेल लाल मिर्च, अधिक लवण, सेम, आलू, साग, खट्टी वस्तु उड़दकी दाल और पान आदि द्रव्यभोजन, मल मूत्रादिका वेगधारण, दन्तकाष्ठ द्वारा दन्तमार्जन, व्यायाम, पथपर्यटन, धूम्रपान, धूप और आतप सेवन, ठंढ लगना, रात्रिजागरण, स्नान, सङ्गीत वा उच्चस्वरसे उच्चारण, मैथुन और घोड़ेकी सवारी पर भ्रमण आदि इस रोगमें विशेष अनिष्टकर है। स्नान नहीं करनेसे यदि रोगी बहुत तक-लीफ मालूम करे, तो गरम जलको ठंडा करके किसी किसी दिन स्नान कर सकता है।

यह रोग अत्यन्त दुःसाध्य है। रोगी सुपथ्याचारी हो कर यदि विज्ञ चिकित्सकसे इलाज करे, तो आरोग्य भी हो सकता है।

डाक्टरी मत।

रक्तपित्तरोगमें पाकाशयसे रक्त निकलता है। पाश्चात्य वैद्यकके मतसे इस रोगका वैज्ञानिक नाम Haematemesis है। वयस्कपुरुष और अल्पवयस्का स्त्रियोंके अक्सर यह रोग हुआ करता है।

उदरके ऊपर किसी प्रकारके आघात, पीतज्वर (Yellow fever) आदि कारण रक्तका परिवर्तन; पाकाशयमें रक्ताधिक्य; प्रदाह क्षत, कर्कटरोग अथवा पाकाशयमें उग्र परिमाण अथवा क्षतोत्पादक द्रव्यभक्षण; यकृत्, प्लीहा और अन्यान्य निकटवर्ती यन्त्रकी पीड़ा, विशेषतः सिरोसिस आव लीवर या पोर्टल शिरामें थ्रम्बोसिस अथवा एम्बोलिज्म होनेसे पाकाशयमें अत्यन्त रक्ताधिक्य हो कर रक्तस्राव होता है। यदि आर्टिक एनिउरिज्म पाकाशयमें फट जाय अथवा मुखसे रक्तस्राव हो कर वही पेटमें चला जाय तो यह फिरसे ऊपर उठता है। स्त्रियोंके ऋतु परिवर्तन अर्थात् भिकेरियस मेनष्ट्रुयेशनमें भी इस प्रकारका रक्तस्राव होते देखा जाता है।

लक्षण—अनेक समय रक्त उगलनेके पहले रोगीको पेटके ऊपर कुछ मालूम होता है तथा वह बेचैन हो जाता है। कभी कभी कोई लक्षण दिखाई देनेके पहले ही अकस्मात् रक्तवमन होता है। रक्तोद्गमनकालमें सामान्य अथवा अत्यन्त वमनका उद्वेग रहता है तथा रक्त अल्प या अधिक परिमाणमें निकलता है। कभी कभी इतना अधिक रक्तवमन होता है, कि उससे थोड़े ही समय

मृत्यु हो जाती है। उद्वान्त रक्त काला दिखाई देता है। पाकाशयमें अम्लरसके साथ शोणितमिश्रित होनेसे ही उक्त वर्णमें परिणत हुआ करता है। किन्तु निःसृत होनेके कुछ समय बाद ही यदि रक्तोद्गम हो, तो उसका वर्ण लाल हो जाता है। कभी कभी वहिर्गत रक्तके साथ खाद्य द्रव्य मिला रहता है। निःसृत रक्तका कुछ अंश कभी कभी आंतमें जा कर मलके साथ बाहर निकलता है। यह देखनेमें ठीक अलकतरेके जैसा होता है। अधिक रक्तस्राव होनेसे रोगीका शिर घूमता, हाथ पैर कंपने लगता, आंखकी ज्योति कम हो जाती तथा वह बहुत कमजोरी मालूम करता है। कभी कभी उसे मूर्च्छा आ जाती है, नाड़ी क्षीण और धीमी चलने लगती है। अणुवीक्षण द्वारा परीक्षा करनेसे लोहित सभी रक्तकणिका परिवर्त्तित तथा भिन्न भिन्न वर्णकी कणा मिली हुई दिखाई देती हैं।

रक्तकाशके साथ इस रोगका कभी कभी भ्रम हो जाया करता है। रोगनिर्णयकालमें चिकित्सक निम्नलिखित लक्षण देख कर रोगको पहचान लें तथा उसीके अनुसार रोगविशेषकी चिकित्सा भी करें।

रक्तपित्त	रक्तकाश
१ अधिक वयस्क व्यक्ति और कभी कभी युवती स्त्रीको	१ युवकगण।
२ रक्तवमनके पहले पेटके ऊपर वेदना और विवमिषा।	२ रक्तोत्काशके पहले छाती भारी, अस्वच्छन्दता और गलेके भीतर सुरसुरी मालूम होना।
३ वान्त रक्त काला और उसकी प्रतिक्रिया अम्ल।	३ रक्त उज्ज्वल लालवर्ण और फेनिल तथा प्रतिक्रिया क्षार।
४ श्वासकृच्छ्र नहीं रहता।	४ श्वासकृच्छ्र रहता है और छातीके भीतर बुदबुद शब्द सुनाई देता है।
५ अधिक परिमाणमें रक्तवमन होनेके बाद कुछ समय रक्तोद्गम नहीं होता।	५ रक्तकाशके बाद बहुत थोड़ा कफ और रक्त निकलता है।
६ मलके साथ रक्त दिखाई देता है।	६ मलमें रक्त नहीं रहता।

कभी कभी मुंह और नाकसे निकला हुआ रक्त पेटमें जा कर रक्तपित्तरोग उत्पन्न करता है। यह रोग प्रायः आरोग्य हो जाता है।

रोगीको स्थिरभावमें रख कर हमेशा बरफ चूसने देना उचित है। पेटके ऊपर मष्टर्ड प्लष्टर अथवा बरफकी थैली रखनेसे बहुत लाभ पहुंचता है। आभ्यन्तरिक प्रयोगमें अफीमके साथ गैलिक एसिड वा प्लम्बाई एसिटेटीस, आयल आव टार्पेण्टाइन, टिंचिल, आर्गट, हैमोलिस और बाहरसे आर्गटिन वा एक्लेरोटिक एसिड का इञ्जेक्सन दे। यदि अत्यन्त वमन होता हो, तो हाइड्रोसियेनिक एसिड डिल तथा पीड़ित स्थानमें माफया इञ्जेक्ट कर सकते हैं। पाकाशयको स्थिरभावमें रखनेके लिये ३ वा ४ घंटेके अंतर पर तरल खाद्यद्रव्य तथा बरफ जलके साथ थोड़ा दूध या शूप दे। रोगीके दुर्बल होनेसे एनिमा द्वारा उत्तेजक औषधका प्रयोग करे।

रक्तपित्तहा (सं० स्त्री०) रक्तपित्तं हन्तीति हन्-ड, स्त्रियां टाप्। रक्तघ्नी, रतघ्नी नामकी दूब।

रक्तपित्तान्तकलौह (सं० स्त्री०) रक्तनाशक औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—आंवला, पीपल, चीनी और लोहा, प्रत्येक एक एक तोला, इन्हें एकत्र करके कूट कर यह औषध प्रस्तुत करे। पीछे दोषके बलाबल अनुसार अनुपान और मात्रा स्थिर करनी होती है। इसके सेवनसे रक्तपित्त और अम्लपित्तरोग नष्ट होता है।

रक्तपित्तान्तकरस (सं० पु०) रक्तपित्तरोगका औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—अबरक, लोहा, सोनामक्खी, पारा, हरिताल और गंधक बराबर बराबर भाग ले कर ब्रह्मयष्टि, द्राक्ष और गुरूचके काढ़ेमें एक दिन खल करके माशा भरकी गोली बनावे। इसका अनुपान मधु और चीनी है। इसका सेवन करनेसे रक्तपित्त, ज्वर, दाह, क्षत, क्षीण, तृष्णा, शोष आदि रोग आरोग्य होते हैं। (रसेन्द्रसारस० रक्तपित्तरोगाधि०)

रक्तपित्तिन् (सं० त्रि०) रक्तपित्तं अस्यास्तीति इनि। रक्तपित्तरोगी, जिसे रक्तपित्त रोग हुआ हो।

रक्तपीठिकादर्शन (सं० क्ली०) रक्तज विकार। (निदान)

रक्तपीतफला (सं० स्त्री०) मधुरविम्बिका। (वैद्यकनि०)

रक्तपुष्पक (सं० त्रि०) १ रक्त-वर्ण पुष्पविशिष्ट, लाल फूलवाला। (स्त्री०) २ सरीसृपभेद, एक प्रकारका रेंगनेवाला कीड़ा।

रक्तपुनर्नवा (सं० स्त्री०) रक्ता रक्तवर्णा पुनर्नवा। रक्तवर्ण पुनर्नवा शाक, लाल रंगकी गेन्हपूर्ना। महाराष्ट्रमें—रक्तघेटुली; कलिङ्गमें—कैपिन वैलुड़ा कसु। संस्कृत पर्याय—क्रूरा मण्डलपत्रिका रक्तकान्ता, लोहिता, रक्तपत्रिका, वैशाखी, रक्तवर्षाभू, शोफघ्नी, पुष्पिका, विकस्वरा, विषघ्नी, प्रावृषेण्या, सारिणी, वर्षाभव शोथघ्न, भीम, पुनर्भव, नव, नव्य। यह तिक्त, सारक, शोफ, रक्त प्रदर, पाण्डु और पित्तनाशक मानी गई है।

रक्तपुष्प (सं० पु०) रक्तं पुष्पमस्य। १ करवीर कनेर। २ रोहितक नामका पेड़। ३ रक्तकाञ्चनवृक्ष। ४ दाडिम वृक्ष, अनारका पेड़। ५ बकवृक्ष। ६ बन्धूका पेड़ गुलदुप हरिया। ७ पुन्नागका पेड़। (राजनि०) (त्रि०) ८ रक्तवर्ण पुष्पविशिष्ट, जिसमें लाल फूल हों। (क्ली०) ९ रक्तवर्ण पुष्प, लाल फूल। लाल फूल शक्तिकी पूजामें बड़ा प्रशस्त माना जाता है।

रक्तपुष्पक (सं० पु०) रक्तं पुष्पमस्य कन्। १ पलाश वृक्ष। २ रोहितक नामका पेड़। ३ शाल्मलिवृक्ष, सेमर का पेड़। (राजनि०)

रक्तपुष्पा (सं० स्त्री०) रक्तं पुष्पं यस्याः। १ शाल्मलि वृक्ष, सेमरका पेड़। २ पुनर्नवा। ३ सिन्दूर। (मानम०) ४ कनककदली, चंपाकेला। ५ नागदमनी, नागदौना। (राजनि०)

रक्तपुष्पिका (सं० स्त्री०) रक्तपुष्प कन् टापि अत इत्वं। १ लज्जालु, लजवन्ती। २ लाल पुनर्णवा।

रक्तपुष्पी (सं० स्त्री०) रक्तं पुष्पमस्याः ङीप्। १ पाटली वृक्ष, पाँड़रका पेड़। २ जवा, अड़हुल। ३ आवर्तकी नामकी लता। ४ नागदमनी नागदौना। ५ करुणीवृक्ष, करनाका पेड़। ६ उल्कान्ता। (राजनि०) ७ धातकी, धौ। (वैद्यकर०)

रक्तपूतिका (सं० स्त्री०) लाल रंगकी पूतिका, लाल पोई। वैद्यकमें यह स्निग्ध और मूत्रवर्द्धक मानी गई है। बच्चों के कई रोगोंमें और सूजाकमें इसका साग गुणकारी माना गया है। शास्त्रमें इसका साग खानेका निषेध है। पूतिका देखो।

रक्तपूय (सं० क्ली०) १ पुराणानुसार एक नरकका नाम। २ खून और पीप।

रक्तपूरक (सं० क्ली०) रक्तं पूरयतीति पूर-ण्वुल्। वृक्षाम्ल इमली।

रक्तपैत्त (सं० क्ली०) रक्त पित्त सम्बन्धी।

रक्तपैत्तिक (सं० त्रि०) रक्तपित्तरोग सम्बन्धी।

रक्तपोस्त (सं० पु०) रक्तवर्ण वृक्ष, लाल पोस्ता (*Papaver Rhoeas Red poppy*)।

काश्मीर, पञ्जाब, पटना और बिहारके कई स्थानों में तथा भारतवर्षके समतल क्षेत्रादिमें यह वीज उत्पन्न होते देखा जाता है। स्थान विशेषमें इसका बीज भिन्न भिन्न नामसे परिचित है, जैसे, हिन्दी—लाल पोस्त, लाल पोस्ता, लाला; बङ्गाल—लाल पोस्त, लाल पोस्तका गाछ; बम्बई—जङ्गली मुद्रिका, मराठी—रान्यात् पसखसा या झाड़, गुजरात—लाला लाल खसखस नु झाड़ दाक्षिणात्य— लाल खसखसका झाड़, तामिल—शिवप्पु गसगसा चेडी, शिगप्पू पोस्तकी चेडी; तेलगू—एरन गस गसला चेटी, एरर पोस्त काय चेटी; कनाड़ी—केम्पु खसखसी गीडा; मलयालम्—कोरयकस कसकसचेटी; अरब—भिश्खिन् अमी; संस्कृत—रक्तपोस्त वृक्ष, अरब—नवतुल खसखासुलअह्मर; पारस्य—कोकनार सुर्ख अङ्गरेजी—*Cornrose* या *Red poppy*।

अफगानिस्तान और पारस्यराज्यमें इस श्रेणीका एक और प्रकारका पेड़ (*P dubium*) बहुतायतसे उत्पन्न होते देखा जाता है। पश्चिम हिमालय प्रदेश, गढ़वाल, कुमाउन, हजारा बेलुचिस्तान और यूरोपमें भी इस पेड़का अभाव नहीं है। पत्तोंकी विभिन्नता देखनेसे दोनों श्रेणीकी पृथकता समझमें आती जाती है। धान और गेहूं के खेतमें यह पौधा काफी तौरसे उपजता है। चीजोंको लाल रंग करनेके लिये इसके पत्ते काममें लाये जाते हैं। बीजकोषका दूध मादक गुणविशिष्ट (*Narcotic*) और कुछ अवसादक है।

रासायनिक परीक्षा द्वारा स्थिर हुआ है कि बीजकोष का दूधके जैसा निर्यास सामान्यरूपमें ही अफीमका काम करता है, क्योंकि उसमें *Morphine* नामक पदार्थ रहता

है। Dr. O Hesse ने इसमें *Rhoeadine* नामक उपक्षार (Alkaloids) देखा है। यह आस्वादविहीन और पलाकृति श्वेत दानायुक्त होता है तथा २३२° २' उत्तापमें जल जाता है। जल, एलकोहल, इथर, क्लोरोफार्म, बेनजोल, एमोनिया, कार्बनेट आव सोडा, ग्रावरू, चूनका जल अथवा अम्लजलमें (dilute acids) बड़ी आसानी-से गल जाता है। इसका वैज्ञानिक नाम है— $C_{21}H_{21}NO_6$ हाइड्रोक्लोरिक एसिड अथवा सलफ्युरिक एसिडमें मिलानेसे भी इसका रंग नहीं बदलता है।

रक्तप्रतिश्याय (सं० पु०) प्रतिश्याय या जुकामका एक भेद, बिगड़ा हुआ जुकाम। इसमें नाकसे खून जाता है, आंखें लाल हो जाती हैं, छातीमें पीड़ा होती है और मुंह तथा सांससे बहुत दुर्गन्ध आती है।

प्रतिश्याय शब्द देखो।

रक्तप्रदर (सं० पु०) प्रदररोगका वह भेद जिसमें स्त्रियोंकी योनिसे रक्त बहता है। प्रदर देखो।

रक्तप्रमेह (सं० पु०) पुरुषोंका एक रोग। जिसमें दुर्गन्धि-युक्त गरम, खारा और खूनके रंगका पेशाब होता है।

रक्तप्रवृत्ति (सं० स्त्री०) पित्तज रोग, वह रोग जो पित्तके प्रकोपसे उत्पन्न हो।

रक्तप्रसव (सं० पु०) रक्त० रक्तवर्णः प्रसवः पुष्पमस्य। १ रक्त करवीर, लाल कनेर। २ रक्तम्लान, लाल आटी। ३ मुचकुन्दवृक्ष।

रक्तफल (सं० पु०) रक्तं लोहितवर्णं फलमस्य। १ वट-वृक्ष, बड़का पेड़। २ शाल्मलिवृक्ष, सेमलका पेड़।

रक्तफला (सं० स्त्री०) १ कुन्दरू, तुण्डी। २ स्वर्णवल्ली।

रक्तफूल (हिं० पु०) १ जवापुष्प, अड़हुलका फूल। २ पलाशका वृक्ष।

रक्तफेनज (सं० पु०) रक्तफेनाज्जायते इति जन-ड। फुस्फुस, फेफड़ा।

रक्तबिन्दु (सं० पु०) रक्तानां बिन्दुः। १ रक्तकी कणा। २ रक्त अपामार्ग। ३ हीरा आदि मणिके भीतरका लाल दाग।

रक्तबीज (सं० पु०) रक्तं रक्तवर्णं बीजमस्य। १ दाड़िम, अनार। २ अरिष्टक फल। रक्तं शोणितं बीजं कारण-मस्य। ३ शुम्भ और निशुम्भका सेनापति एक असुर। इस असुरके शरीरसे रक्तकी जितनी बूंदें गिरती थी उतने ही असुर पैदा होते थे। भगवती चण्डिकाने इस असुरसे युद्ध किया और इसका सब लहू पी कर प्राण हर लिया था। देवीभागवतमें लिखा है, कि महिषासुरके पिता दानव रम्भने दूसरे जन्ममें रक्तबीजरूपमें जन्मग्रहण किया था।

रक्तबीजका (सं० स्त्री०) रक्तो रक्तवर्णो बीजोऽस्याः कन्-टाप्। तन्ही नामका एक कटीला पेड़।

रक्तबीजा (सं० पु०) सिन्दुरपुष्पी, सिन्दूरिया।

रक्तभव (सं० क्ली०) मांस, गोश्त।

रक्तभस्म (सं० क्ली०) रससिन्दुरादिकरण।

रक्तभाव (सं० त्रि०) प्रणयासक्त।

रक्तमञ्जर (सं० पु०) रक्ता रक्तवर्णा मञ्जरी-सा विद्यतेऽस्येति (अर्श आदिभ्योऽच्। पा ५।२।१२७) इत्यच्। १ निचुल वृक्ष, बेंतकी लता। २ निम्ब वृक्ष, नीमका पेड़।

रक्तमञ्जरी (सं० क्ली०) रक्तकरवीर, लाल कनेर।

रक्तमण्डल (सं० पु०) १ मण्डलिसर्पविशेष, एक प्रकार-का सांप। (सुश्रुत कल्पस्था० ४ अ०) २ रक्त पद्म, लाल कमल। ३ विषाक्त पशुविशेष, एक प्रकारका जहरीला पशु। (त्रि०) ४ रक्तवर्ण मण्डलविशिष्ट। कहते हैं, कि चन्द्रमाके ऐसा लाल मण्डल है। ५ अनुगतप्रजा या भृत्यसमन्वित।

रक्तमण्डलता (सं० स्त्री०) रक्तदुष्टिके लिये शरीरमें मण्डलाकार लाल चिह्न।

रक्तमण्डलिका (सं० स्त्री०) रक्तलज्जालुका, लाल लज्जावती लता।

रक्तमत्त (सं० त्रि०) रक्तपान द्वारा परितृप्त, वह जो रक्त पी कर तृप्त हो। जैसे जोंक आदि।

रक्तमत्स्य (सं० पु०) रक्तो रक्तवर्णो मत्स्यः। रक्त-वर्णमत्स्यविशेष, एक प्रकारकी लाल रंगकी मछली। यह बहुत बड़ी नहीं होती है। वैद्यकमें इसका मांस शीतल, रुचिकारक, पुष्टिकारक, अग्निदीपक और त्रिदोषनाशक माना गया है।

रक्तमरिच (सं० क्ली०) मरिचभेद, लाल मिर्च।

रक्तमस्तक (सं० पु०) लाल रंगके सिरवाला सारस पक्षी।

रक्तमातृका (सं० स्त्री०) १ वैद्यकके अनुसार वह रस नामक धातु जिसकी उत्पत्ति पदमें पचे हुए भोजनसे होती है और जिससे रक्त बनता है। २ बालक-रोगभेद। (सुश्रुतकातन्त्र २ अ०)

रक्तमाद्री (सं० स्त्री०) स्त्रीरोगविशेष बाधक।

रक्तमिमातक (सं० पु०) रक्ताभ्यास पुष्प वृक्ष।

रक्तमुख (सं० पु०) रक्तं मुखं यस्य। १ रोहितमत्स्य, रोहू मछली। २ वरिष्ठ धान्य साठी धान। (त्रि०) ३ रक्तमुखविशिष्ट लाल मुंहवाला।

रक्तमूत्रता (सं० स्त्री०) रक्तप्रमायरोग एक तरहका रोग जिसमें पेशाबके साथ लहू निकलता है।

रक्तमूर्द्धन् (सं० पु०) सारस पक्षी।

रक्तमूलक (सं० पु०) रक्तं रक्तवर्ण मूलं यस्य कन्। देवसर्षप नामको सरसोंका पेड़।

रक्तमूला (सं० स्त्री०) रक्तं मूलमस्याः टाप्। लज्जालु, लज्जावंती।

रक्तमेह (सं० पु०) मेहन मेहः, रक्तस्य मेहः। प्रमेहरोग विशेष, पुरुषोंका एक रोग जिसमें दुर्गन्धियुक्त गरम धारा और मूत्रके रंगका पेशाब होता है।

प्रमेह शब्द देखो।

रक्तमोक्षण (सं० क्ली०) रक्तस्य मोक्षणं। शोणितस्राव। वैद्यकशास्त्रमें लिखा है, कि शरीरका खून खराब हो जाने पर उसे बाहर निकाल देना होता है, इसीको रक्तमोक्षण कहते हैं। शिराविरेचन अलाबूप्रयोग, शृङ्ग और जोंक इन चार उपाय द्वारा रक्तमोक्षण किया जाता है।

(सुश्रुत शारीरस्था० ५ अ०)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि रोगके अवस्थानुसार विवेचना करके रोगीके शरीरसे एक प्रस्थ, आध प्रस्थ या चौथाई प्रस्थ रक्तमोक्षण करे। शरत्कालमें स्वाभाविक शरीरमें भी रक्तमोक्षण किया जा सकता है, क्योंकि उस समय रक्तमोक्षण करनेसे त्वग्दोष या ग्रन्थिरोगादि उत्पन्न नहीं होता। वर्षा शीत, ग्रीष्म और शरत् कालमें जब आकाश साफ रहता है तथा शीतकालमें दोपहरको रक्तमोक्षण करना उचित है।

शोथ, दाह, अङ्गपाक, अङ्गकी रक्तवर्णता रक्तस्राव, वातरक्त, कुष्ठ, अत्यन्त पीड़ादायक वायुका प्रकोप, पाण्डुरोग, श्लीपद, विषदुष्ट रक्त, ग्रन्थि-अर्बुद, अपची, क्षुद्ररोग, अभिमन्थ, विदारी, स्तन्यरोग शरीरकी अवसन्नता और गुरुत्व रक्ताभिष्यन्दी, तन्द्रा पूतिनासा, मुखदाह, यकृत्, प्लीहा विसर्प, विद्रधि पाडका, कर्णपाक, नासापाक मुखपाक, दाह शिरोरोग, उपदंश और रक्तपित्त इन सब रोगोंमें रक्तमोक्षण प्रशस्त है। अतएव इसमें शृङ्ग, जलौका, अलाबू या शिरावेध द्वारा रक्तमोक्षण करना चाहिये।

कृश, अत्यन्त व्यवायी क्लीव, भयशील, गर्भिणी, नवप्रसूता नारी, पाण्डुरोगी, वमनविरेचनादि पञ्चकर्म द्वारा शोणित स्नेहपात, अर्शरोगग्रस्त, सार्वाङ्गिक शोथयुक्त तथा उदर, श्वास, कास, वमि, अतीसार और कुष्ठरोगाक्रान्त व्यक्तियोंका तथा अत्यन्त स्निग्ध १६ वर्षसे कम उमरवाले बालक और ७० वर्षके बूढ़ेका एवं अभुक्त, मूर्च्छारोगग्रस्त स्निग्ध, भीत, प्रमत्त श्रान्ति तथा मलमूत्रका वेगाभिभूत व्यक्तियोंका रक्तमोक्षण नहीं करना चाहिये। अत्यन्त शीत या अत्यन्त उष्ण कालमें अथवा अत्यन्त स्निग्ध और सन्तर्पित व्यक्तिका भी रक्तमोक्षण करना उचित नहीं। यदि रक्तमोक्षण क्रिया द्वारा रक्तपरिवर्त्तन न हो तो कुष्ट, विकटु और सैन्धवको मिला कर उस स्थानमें लगानेसे रक्त निकलता है। सुविज्ञ चिकित्सकको चाहिये कि वे यवागूपान करा कर उसका रक्तमोक्षण करे।

स्निग्धदुष्ट शरीरमें यदि रक्तमोक्षण करना हो, तो पहले शिरावेध करना होगा। वायु पित्त और कफ द्वारा रक्त दूषित होने पर यथाक्रम शृङ्ग जलौका और अलाबू द्वारा रक्तमोक्षण करना होता है। द्विदोष या त्रिदोष कर्तृक रक्त दूषित होने पर शिरावेध या पद्म द्वारा रक्तमोक्षण करे।

शृङ्ग द्वारा दश अंगुल स्थानका जलौका द्वारा एक हाथका, अलाबू द्वारा बारह अंगुल और शिरावेध द्वारा रक्तमोक्षण करनेसे सारे शरीरका रक्त शोधित होता है।

अतिस्निग्ध व्यक्तिका या अन्यकालमें शिरावेध करनेसे यदि अत्यन्त रक्त प्रवर्त्तित हो, तो उसका प्रतिविधान

बहुलच्छद, सुगन्ध, केशरी, सिंह, मृगारि। इसका गुण—महावीर्य, मधुर, रसायन, शोफ, आध्मान, वायु और पित्तश्लेष्मनाशक। (राजनि०)

रक्तशिम्बी (सं० स्त्री०) शिम्बीभेद, लाल सेम।

रक्तशीर्षक (सं० पु०) रक्तं रक्तवर्णं शीर्षं अग्रमस्य कन्। १ गधाविरोजा। २ सारस।

रक्तशुक्लता (सं० स्त्री०) शुक्लका रक्ताक्त भाव।

रक्तशृङ्ग (सं० पु०) हिमालयकी एक चोटीका नाम।

रक्तशृङ्गिक (सं० क्ली०) विष, जहर।

रक्तशेखर (सं० पु०) पुन्नाग।

रक्तश्याम (सं० त्रि०) कृष्णाभ, गाढ़ा लाल।

रक्तश्वेत (सं० पु०) १ सुश्रुतके अनुसार एक प्रकारका बहुत जहरीला बिच्छू। २ रक्त और श्वेतवर्ण।

रक्तष्ठीवनता (सं० स्त्री०) रक्तमय थुत्कारक्षेपणता, खून-के साथ थूकना।

रक्तष्ठीवि (सं० पु०) एक प्रकारका बहुत ही घातक सन्निपात जिसमें मुंहसे लहू बहता है, सांस और पेट फूलता है, जीभमें चकत्ते पड़ जाते हैं और उनमेंसे लहू निकलता है। यह रोग असाध्य माना जाता है।

सन्निपात शब्द देखो।

रक्तष्ठीवी (सं० स्त्री०) रक्तपित्त और यक्ष्मारोगके कारण रक्तका गिरना।

रक्तसङ्कोच (सं० क्ली०) कुसुमका फूल।

रक्तसङ्कोचक (सं० क्ली०) रक्तपद्म, लाल कमल।

रक्तसंज्ञक (सं० क्ली०) रक्तमिति संज्ञाऽस्य। कुंकुम, केसर।

रक्तसन्दंसिका (सं० स्त्री०) रक्ताय रक्तपानाय सम्यक् दशतीति दनश ण्वुल् टापि-अत इत्वं। जलौका, जोंक।

रक्तसम्वरण (सं० स्त्री०) कृष्णाञ्जन, सुरमा।

रक्तसन्ध्यक (सं० क्ली०) रक्त सन्ध्येवेति रक्तान् सन्धीन् अकति गच्छति प्राप्नोतीति क। रक्त कह्लार, लाल कमल।

रक्तसरोरुह (सं० क्ली०) रक्तं सरोरुहं। रक्तपद्म, लाल कमल।

रक्तसर्षप (सं० पु०) रक्तवर्णः सर्षपः। रक्तवर्ण सर्षप, लाल सरसों। (Brassica nigra)

सरसों प्रधानतः श्वेती और राईके भेदसे दो प्रकार की हैं। फिर राई-सरसोंके भी अनेक भेद हैं। भिन्न भिन्न स्थानमें यह भिन्न भिन्न नामसे परिचित हैं। हिन्दी राई-सरसों, सरसों-लाहि, गोहा सरसों, बड़ी राई, बड़ी लाई, बादशाही राई, शाहजादा राई, खासराई; बङ्गला—राई सरसों, काश्मीर—असुर गुजरात, कच्छ—राई, बम्बई—राई, मसें, राजिका; मराठी—मोहरी, रायन, संस्कृत—राजिका; सिन्धापुरमें—अव्व। इससे कुछ बड़ी राई (B nigra)-के भी स्वतन्त्र नाम हैं। हिन्दी—राई, काली राई, तीरा, तारामीरा, बोणारस्ती राई, जगराई, अमल राई, बोड़ा राई, मकड़ा राई इत्यादि, बङ्गला—राईसरिसा, गुजरात—राई, काली राई; बम्बई—राई; तामिल—कदघो; तेलगू—अवलो अवली, कनाड़ी—बिले सशिवे, कडो-सशिवे; संस्कृत—सर्षप, पारस्य—सर्षफ, अरब—खोर्दल या खर्दाल, सिन्धापुर—सनोरा, चीन—किदित्साई, अंग-रेजी—Black वा True Mustard, फरासी—Montarde Noire, जर्मनी—Mustert Scufsamen, इटली—Senapa, महाराष्ट्र—कालमहुरी, सारसा, कलिङ्ग—मासो राई।

सारे भारतवर्ष, पश्चिम मिस्र और मध्य अफ्रिका तथा पूर्वमें चीनसाम्राज्यके प्रायः सभी स्थानोंमें यह पौधा उत्पन्न होता है। रूसियाके दक्षिण और कास्पीय ह्रदतीरवर्त्ती खारी जमीनमें यह बहुतायतसे उगता है। यूरोपमें सभी जगह यह जंगली तौर पर उपजता है। उत्तरमें यह पौधा बिलकुल नहीं देखा जाता। थियफ्रष्टस, दियस्कोराइडिस और प्लिनो आदिने सरसों बीजका उल्लेख किया है। १३वीं सदीमें यूरोपमें खाद्यद्रव्यरूपमें इसकी खेती होती थी। यहां १६६० ई०में इसके बीज तैलमें क्या गुण हैं, सो लोगोंको मालूम हो गया था। सफेद सरसोंकी अपेक्षा बङ्गालमें राईसरसोंकी खेती ही अधिक होती है। आसिन कातिकके महीने सूखी जमीन के ऊपर बीज बोया जाता तथा माघ फागुनमें काटा जाता है। कभी कभी मटर, मसूर, गेहूं, जौ आदिके साथ ही इसे बोते हैं। कटक जिलेका खारी जमीनमें इसकी खेती होती है। चैत और बैशाखमें पकने पर इसे काट

कर बीज झाड़ लेते हैं। पके बीजसे जो तेल तैयार होता है उससे तरकारी आदि रींधी जाती है। कच्चे पत्तेको लोग सागकी तरह रींध कर खाते हैं। कथा डेज़र पोमाम आदिके बन्नेमें मधजीको सिलाया जाता है।

प्रत्येक बीजकोषमें १५से २० छोटे छोटे काले दाने रहते हैं। इन दानेको पीस कर या यों ही तेल या घीमें डाल तरकारी आदि बनाते हैं। सरसोंके तेलमें साग और मछली आदि भून कर खानेसे स्वादिष्ट लगती है। मांस भक्षणकालमें राइ बहुत सुखमय है।

शरीरके भीतर रक्त संहत होनेसे अथवा आक्षेपिक (Spasmodic) स्नायवीय (Neuralgic) और वातज (Rheumatic) पीड़ा या वेदनामें इसका प्रलेप देनेसे विशेष लाभ पहुंचता है। मस्तिष्क सम्बन्धीय (Cerebro spinal) पीड़ामें शरीरका विशेष अवसाद (depressing influence) नहीं होनेसे इसका सामान्य वमनकारक औषधरूपमें प्रयोग किया जा सकता है। मोहि इनकी छाल अथवा लहसुनके साथ पकाकर पीस कर चमड़े पर लगानेसे सरसोंकी कार्यकारिता शक्ति बढ़ती है।

सामान्य परिमाणमें राइ अथवा राइका चूर खानेसे अग्निकी शक्ति बढ़ती है। अजीर्ण रोगमें दुग्ध मलपेट तक आने पर जब पेट खराब हो जाता है, तब विरेचक रूपमें कभी कभी राइके चूर्ण अथवा अलग्ध सरसोंका सेवन कराया जाता है।

इस बीजसे सैकड़े पीछे २३ भाग शुद्ध तेल निकलता है। उसमें ग्लिसिराइडस ऑफ ओलिइक, इरमिक और मासिक एसिड मिश्रित है। मासिक और आदि रक प्रायः एक ही साथ रहता है। यह गन्धहीन है, सूखती नहीं तथा 0 फा-की गरमीसे जम जाती है। इसमें तेलको सिद्ध करनेसे परिष्कृत व्यवहारोपयोगी तेल बनता है। विस्तृत विवरण तर्पण शब्दमें देखो।

परिष्कृत तेल वेदनाके स्थानमें लगानेसे वेदनाका ह्रास होता है तथा इससे कभी कभी फिलपरसी उत्पन्न गाल बाद आता रहता है। चर्मरोगनाशक होनेके कारण लोग स्नानके पहले इसे शरीरमें लगाते हैं। आयुर्वेदशास्त्रमें लिखा है, कि घी खानेकी अपेक्षा तेल लगानेसे शरीरमें आठ गुना बल होता है। कपूरके साथ सरसों तेल लगानेसे चोटकी बात अनुशूलादि वेदनाका उपशम होता है। बालकोंको छातीमें सर्दी बैठ जानेसे कपूरके साथ तेलकी मालिश करनी चाहिये, इससे विशेष लाभ पहुंचता है। उत्कृष्ट श्लेष्मामें लवणके साथ उत्तप्त सरसोंका तेल तलवेमें कण्ठमें, छातीमें, दोनों आंखमें और नाकको रींढ़ पर लगानेसे एक ही रातके भीतर उत्कृष्ट श्लेष्मा या सर्दी जाती रहती है। श्लेष्माधिक्यके कारण वाम्कोंकी वायुनलीके प्रदाहमें उत्तप्त तेल लगानेसे बहुत फायदा पहुंचता है। इनफ्लुएंजा ज्वरमें गरम जलसे पैर धुला कर तलवेमें गरम तेल लगानेसे फल तुरत दिखाई देता है। नाकमें तेल डालनेसे सर्दी दूर होती है। सरसोंका प्लिस्टर दे कर यदि वहांका चमड़ा लाल हो जाय, तो उसे फौरन फेंक देना चाहिये, नहा तो फुसियां निकल कर फोड़े हो सकते हैं। आंखमें तेल लगानेसे श्लेष्माका नाश होता तथा आंखकी ज्योति बढ़ती है। खानेके बाद प्रति दिन कुछ सरसों खानेसे भूख बढ़ती है। यह पित्तनिःसारक और मूत्रकारक है।

वैद्यक मतसे इसका गुण—कटु, तिक्त उष्ण, वातघ्न, प्लीहा और शूलनाशक, दाह और पित्तवर्द्धक, कफ, गुल्म कृमि और मलनाशक है। (राजनि॰)

रक्तसहा (स॰ स्त्री॰) रक्त सहते इति सह-अच्-टाप्। रक्तम्लान पुष्पवृक्ष।

रक्तसार (स॰ क्ली॰) रक्तवर्णः सारोऽस्य। १ रक्तचन्दन, लाल चन्दन। २ पतङ्ग। ३ अम्लवेतस, अमलबेतस। ४ रक्तखदिर, लाल खैर। ५ रक्तबीजासन वृक्ष। ६ रक्तशिंशपा। ७ वाराहीकन्द। (त्रि॰) रक्त सारो यस्येति। ८ शोणितसारयुक्त।

रक्तसू (स॰ स्त्री॰) रक्त सूते सू-क्विप्। शरीरस्थित रसधातु।

रक्तसौगन्धिक (स॰ क्ली॰) रक्तवर्ण सौगन्धिकं। रक्तकह्लार, लाल कमल।

रक्तस्तम्भन (स॰ पु॰) बहते हुए रक्तको रोकनेकी क्रिया।

रक्तस्थज्वर (सं० पु०) रक्तगत ज्वरविशेष। इस रोगमें रक्तनिष्ठीवन, दाह, मोह, छर्दन तथा विभ्रम, प्रलाप, पिडका और तृष्णा ये सब लक्षण होते हैं।

रक्तस्राव (सं० पु०) रक्त स्रावतीति स्रु णिच् अच्। १ वेतसाम्ल। रक्तस्य स्रावः। २ घोडोंका एक रोग जिसमें उनकी आंखोंसे रक्त या पानी बहता है। ३ रक्त पतन, शरीरसे खून बहना या निकलना।

नाना व्याधि और आघातादि कारणोंसे मनुष्यके शरीरकी धमनी, शिरा अथवा कैशिकासे भी रक्त निकलता है। इस रक्तस्रावको पाश्चात्य चिकित्सा विज्ञानमें Haemorrhage कहते हैं। शारीरिकविधान वा यन्त्र विशेषमें रक्तस्राव होनेसे उस स्थानके नामानुसार ही चिकित्सकगण उस रक्तस्रावका नाम अलग अलग बतलाते हैं। जैसे—मस्तिष्क अथवा फुसफुसमें रक्तस्राव होनेसे Cerebral apoplexy, और Pulmonary apoplexy उदर वा वस्तिकोटरके मध्य होनेसे Extravasation, चमडेके नीचे होनेसे कालशिरा (Ecchymosis), सूक्ष्म रक्तचिह्न (Petechia), ष्टिगमा वा मिमिसिस।

किसी नलाकृति स्थानमें रक्तस्राव हो कर विधान छिन्न नहीं होने पर उसे इनफार्कट (infarct), नाकसे रक्तस्राव होने पर एपिष्टाक्सिस (Epistaxis), फुसफुससे होने पर Haemoptysis, पाकाशयसे होने पर Haematemesis, अन्त्रसे होने पर कृष्णरेचन (melaena), जरायुसे अधिक रज निकलने पर Menorrhagia और मूत्रयन्त्रसे होने पर उसे Haematuria कहते हैं। कारण भेदसे भी उनके भिन्न भिन्न नाम दिये जाते हैं। आघातसे रक्तस्राव होने पर उसे Traumatic तथा अकस्मात् होने पर Spontenous, धमनी, शिरा वा कैशिकासे रक्तस्राव होने पर उसे Arterial, Venous और Capillary Haemorrhage कहते हैं।

एक स्थानका नियमित रक्तस्राव अन्य स्थान हो कर निकलनेसे उस स्रावको Vicarious कहते हैं। स्त्रियोंके आर्त्तव रक्त पाकाशय या फुसफुससे निकलने पर वह 'भाइकेरियस मेनष्ट्रुयेशन' कहलाता है। किसी एक सांघातिक पीडाके मध्य रक्तस्राव होनेका नाम Critical Haemorrhage तथा समय समय पर रक्तस्राव होनेका नाम सामयिक या Periodical Haemorrhage है।

रक्तस्राव होनेका कारण—अस्त्र या आघात द्वारा किसी भी रक्तनालीके कटने तथा मूत्राधारमें मूत्रपत्थर अथवा आंतमें कठिन मल रहनेसे भी घिसनेसे रक्तस्राव हो सकता है। क्षत, विगलन वा कर्कटरोग द्वारा रक्तनाली विदीर्ण होनेसे तथा रक्ताधिक्यके कारण कभी कभी कैशिकासे रक्त निकलते देखा जाता है। अतिशय रक्ताधिक्यके कारण यकृत्‌की सिरोसिस पीडामें पाकाशयकी कैशिकासे रक्तस्राव होता है। भाइकेरियस और क्रिटिकल रक्तस्राव ये दोनों प्रकारके हुआ करते हैं। धमनीके विधानमें वसा या कङ्कवत् अपकृष्टता, हृत्पिण्ड प्राचीरसे एनिउरिज्म, शिराकी वक्रता वा स्फीतता (Varicosity) तथा कैशिकाकी अपकृष्टता रहनेसे प्रायः रक्तस्राव होता है। मस्तिष्ककी कोमलतासे रक्तनालियोंके अच्छी तरह रक्षित नहीं होनेसे रक्तस्राव हुआ करता है। क्षतस्थानमें नवजात रक्तनालीसे सर्वदा रक्त निकलते देखा जाता है। रक्तनालीकी शिथिलताके कारण पलिपस (Polypus) नामक अर्बुदसे रक्तस्राव होता है। रक्तकी तरलताके कारण एनिमिया, विकारयुक्त ज्वर, धूम्ररोग अथवा शीताद पीडाओंमें रक्तस्राव होता है। कभी कभी अवस्थानुसार भी रक्तपात होते देखा जाता है, जैसे—यौवनावस्थामें नासिकासे, मध्यमावस्थामें फुसफुससे तथा अत्यन्त वृद्धावस्थामें रक्तनालीकी अपकृष्टताके कारण मस्तिष्कसे रक्त निकलता है। अवस्थानुसार अत्यन्त सामान्य कारणसे भी रक्तपात होते देखा जाता है। इस रोगको Haemophilia वा Haemorrhagic diathesis कहते हैं।

स्रावित रक्तके परिमाणानुसार शरीरमें अनेक परिवर्त्तन हुआ करता है। शरीरमें जहां स्रावके लिये रक्त संहत (Coagulated) होता है उसका वर्ण काला अथवा तांबडे रंगका दिखाई देता है। कुछ दिन बाद वह रक्तपाटलवर्ण और पीछे पीतवर्ण धारण करता है। अन्तमें वही शुभ्रवर्णमें पलट जाता है। निःसृत रक्त शोषित होनेके बाद चमड़े पर काला दाग पड़ता

है। कभी कभी उससे यकृत्-आवरणस्थ विधानमें प्रदाह होती है अथवा उत्तेजनाके कारण निकटवर्ती चारों ओर थैली (Cyst) उत्पन्न होती है

रक्तस्रावके पहले नाड़ीकी गति पूर्ण और द्रुत रहती है। किसी स्थानमें रक्तस्राव होनेसे वह स्थान उष्ण और भारयुक्त मालूम होता है। उस समय हाथ पैर ठण्डे हो जाते हैं। हृत्पिण्ड और वायुनालीमें रक्तस्राव होनेसे हठात् मृत्यु हो सकती है। मस्तिष्कविशेषमें रक्तस्राव होनेसे उसके नियममें व्यतिक्रम देखा जाता है। किसी विधानके छिन्न हो कर रक्तस्राव होनेसे वमन तथा फुस फुसमें होनेसे खांसी उपस्थित होती है। त्वक् या श्लैष्मिक झिल्लीके नीचे होनेसे रक्तचिह्न स्पष्ट दिखाई देता है। साधारण लक्षणके मध्य सुषमलक्षण फोका नाड़ी दुर्बल और हाथ पांव शिथिल मालूम होते हैं। अतिरिक्त स्राव होनेसे हाथ पांव कांपने लगने, आंख कुछ और प्रकारकी हो जाने, कानमें नाना शब्द सुनाई देने, अस्थिरता मालूम होती और बीच बीचमें मूर्च्छा भी आ जाती है। ऐसी अवस्थामें कभी कभी रोगीका मृत्यु भी देखा गया है।

त्वक्के नीचे रक्तस्राव होनेसे वह सहजमें मालूम हो जाता है। मस्तिष्क या फुसफुसके मध्य होनेसे विशेष लक्षण द्वारा निर्णय करना आवश्यक है। कोटरके मध्य रक्तस्राव होनेसे उसके ऊपर आघात देने पर ढप ढप शब्द सुनाई देता है।

फुसफुससे रक्त निकलने पर उसका वर्ण उज्ज्वल लाल दिखाई देता है। पाकाशय अथवा आंतसे रक्त स्राव होने पर अम्लरससंश्लिष्ट होनेके कारण वह काला हो जाता है। नाक, मुंह गुह्यद्वार और मूत्रद्वारसे रक्त स्रावित होने पर श्लेष्मा वा मूत्र-मिश्रित रहता है। बड़ी सावधानीसे रोगका निर्णय करके चिकित्सक उसे दूर करनेकी चेष्टा करे। त्वक्में रक्तस्राव होने पर उसमें डर नहीं पर मस्तिष्क वा फुसफुससे यदि रक्तस्राव हो, तो उसे खतरनाक जानना चाहिये। अधिक परिमाणमें अथवा किसी विशेष यन्त्र द्वारा रक्तस्राव होनेसे भी डर है। प्लीहारोगाक्रान्त रोगीका रक्तस्राव दूर करना कठिन है।

ऐसी अवस्थामें रोगीको स्थिर भाव रख कर चिकित्सा करना उचित है। जिसमें शिराके रक्तसञ्चालनकी वृद्धि हो इस ओर चिकित्सकका ध्यान रहना एकान्त कर्त्तव्य है। हृत्पिण्डकी क्रिया शिथिल करनेके लिये एकोनाइट, डिजीटेलीस आदि दिया जा सकता है। कभी कभी रक्तमोक्षण भी कर सकते हैं। सङ्कोचक औषधके मध्य एसिटेट आव लेड, गैलिक एसिड, टैनिक एसिड सलफ्युरिक एसिड डिल, आयल आव टार्पेन्टाइन, आर्गट, टिं मैटिको, टिं एिड, टिं हमोमेलिस, हजिलीन इत्यादि व्यवहार्य है। उन औषधोंमेंसे किसी किसीका अफीमके साथ व्यवहार करनेसे भी लाभ पहुंचता है। जिस अङ्गसे रक्तस्राव होता है, उसे उच्च भावमें रखे तथा शीतल जल या बरफका प्रयोग करे। अन्यान्य उपायके मध्य स्क्लीरोटिनिक एसिड और आर्गटिन इञ्जेक्ट किया जा सकता है। पीड़ित स्थान से रक्त हटानेके लिये मदर्द पुलटस, शुष्क वा आर्द्र कोपिं, जोंक अथवा जोंकादि व्यवहार करना उचित है। गुरुतर होनेसे विमुक्तस्य औषध दें अथवा रक्तप्रवेश (Tran fusion of blood) करे। फुसफुस अथवा पाकाशयसे रक्तस्राव होने पर रोगीको बरफ चूसनेके लिये दे। फुसफुससे रक्त निकलते समय यदि खांसी होती हो, तो उसकी उत्तेजना दूर करनेके लिये आक्षेप निवारक औषधका सेवन करावे। पाकाशयसे होने तथा वमनका उद्रेक रहने पर वमन निवारक औषध दे सकते हैं।

कभी कभी नाक अथवा अर्शमें रक्तस्राव होने पर बहुत उपकार होता है। अधिक निकलने पर उसे रोकने की चेष्टा करनी चाहिये। निरवृत रक्तरोधनके लिये आभ्यन्तरिक पोटास आयोडाइड सेव्य है। पीड़ित स्थानमें टिं आइयोडाइनका लेप दिया जा सकता है। आघात लगनेसे प्रदाह होने पर प्रदाह-निवारक औषध काममें लावे। दुर्बलता जनित रक्तपातमें बलकारक आहार और टिंचिल देना चाहिये।

यदि कोई मनुष्य इतना कमजोर रहता है, कि उसे सामान्य कारणसे ही अधिक रक्तस्राव होता है। शरीर की ऐसी अवस्थाको हिमोफिलिया या हेमोरेजिक डायेथेसिस कहते हैं।

Epistaxis या नाकसे रक्तस्राव रोग किसी किसीको वंशपरम्परासे चला आता है। इस कारण इसे कौलिक भी कहते हैं। डा० हाथिनसनका कहना है, कि पितामाताके गेठिया वात रहनेसे उसके सन्तान को सामान्य कारणसे ही रक्तपात होता है। रक्तमें फाइब्रिन या लोहितवर्ण रक्तकणिका कम रहनेसे उक्त प्रकारका रक्तस्राव होते देखा जाता है। परीक्षा द्वारा शोणितके मध्य कोई परिवर्त्तन दिखाई नहीं देता।

ऐसे रोगीके शरीरमें किसी प्रकारका परिवर्त्तन लक्षित नहीं होता, किन्तु बचपनसे नाक हो कर अथवा सामान्य चोट लगने पर अङ्गप्रत्यङ्गसे रक्तपात होता है। कभी कभी जोंकके काटने अथवा दांत उखाड़नेसे रक्त इतना निकलता है, कि उससे प्राणनाश भी हो सकता है। यदि प्राण नाश न हुआ, तो बहुत दिन तक एनिमिया-रोगसे आक्रान्त रहता है। कभी कभी उसकी बड़ी बड़ी गांठोंमें जलन होती है। कभी कभी सामान्य चोट लगनेसे गांठमेंसे रक्त निकलता है तथा उसकी उत्ते-जनासे जलन होती और ज्वरके सभी लक्षण दिखाई देते हैं।

दूध, मांस आदि पुष्टिकर आहार तथा औषधके मध्य काडलीभर आयल और टिंचर ष्टिल विशेष उपकारी है। अतिशय रक्तस्राव होनेसे Transfusion of blood कर्त्तव्य है। किसी किसी गांठमें यदि जलन होती हो, तो उसे स्थिर भावमें रखे तथा बैण्डेज बांध दे। रक्तप्रदर और रक्तमूत्रका विशेष विवरण प्रदर और मूत्रविज्ञान शब्दमें लिखा जा चुका है।

रक्तकाश, रक्तपित्त आदि शब्द देखो।

रक्तस्रुति (सं० स्त्री०) रक्तस्य स्रुतिः। रक्तस्राव, खून जाना या गिरना।

रक्तहंसा (सं० स्त्री०) रक्ता वर्णीभूताः हंसा अत्र। रागिणीविशेष, एक प्रकारकी रागिणी।

रक्तहर (सं० पु०) हरतीति हरः, रक्तस्य हरः। १ भल्ला-तक, भिलावां। (त्रि०) २ रक्तहर द्रव्यमात्र।

रक्ता (सं० स्त्री०) रक्त टाप्। १ गुञ्जा, घुंघची। २ लाक्षा, लाख। ३ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ४ उष्ट्रकाण्डी, ऊंट कटारा। ५ शिम्बीभेद, एक प्रकारकी सेम। ६ लक्ष्मणाकन्द। ७ वचा, बच। ८ रक्तवर्ण शतपदी, एक प्रकारकी मकड़ी। ९ क्षुद्र साध्य लूताविशेष। १० कर्णशिरा भेद, कानके पासकी एक शिरा या नसका नाम। ११ जैनोंके अनुसार ऐरावतखण्डकी एक नदीका नाम।

रक्ताकार (सं० पु०) रक्तवर्ण आकारोऽस्य। प्रवाल, मूंगा।

रक्ताक्त (सं० क्ली०) रक्तेन रक्तवर्णेनाक्तं म्रक्षितं। १ रक्तचन्दन, लाल चन्दन। (त्रि०) २ शोणितमिश्रित, रक्त लगा हुआ। ३ लाल रंगा हुआ।

रक्ताक्ष (सं० पु०) रक्ते लोहिते अक्षिणी यस्य, (बहुव्रीहौ सक्थ्यक्ष्णोः स्वाङ्गात्। पा ५।४।११३) इति षच्। १ महिष, भैंस। २ पारावत, कबूतर। ३ चकोर। ४ क्रूर। ५ सारस। ६ साठ संवत्सरोंमेंसे अट्ठावनवें संवत्सरका नाम। (त्रि०) ७ रक्तवर्ण चक्षुविशिष्ट, लाल रंगकी आंखोंवाला। ज्योतिःशास्त्रमें लिखा है, कि यदि मानवके नेत्र स्वाभा-विक रक्तवर्ण हों, तो लक्ष्मी उसे कभी नहीं त्याग करेगी। (ज्योतिःसागर)

रक्ताक्षि (सं० पु०) रक्ते अक्षिणी यस्य, समासान्तविधेर-नित्यत्वात् षच् समासान्ताभावः। रक्ताक्ष।

रक्ताङ्क (सं० पु०) प्रवाल, मूंगा।

रक्ताङ्ग (सं० पु०) रक्तवर्णमङ्गमस्य। १ मंगलग्रह। २ कम्पिल्ल, कमीला। ३ प्रवाल, मूंगा। ४ मत्कुण, खटमल। ५ मण्डल। ६ नागविशेष। (भारत १।५७।१७) ७ चिद्रुम। ८ कुंकुम, केसर। ९ रक्तचन्दन, लाल चन्दन।

रक्ताङ्गी (सं० स्त्री०) रक्ताङ्ग ङीप्। १ जीवन्ती २ कटुका, कुटकी। ३ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ४ नकुला।

रक्ताञ्जना (सं० स्त्री०) रक्ताञ्जनिका, रक्त आजनिया। (चक्रदत्त)

रक्ताढकी (सं० स्त्री०) लाल पुष्पाढकी, लाल अरहर। गुण—रुचि और बलकर, पित्त और तापादि नाशक। (राजनि०)

रक्ताण्ड (सं० पु०) घोड़ोंके अण्डकोषमें होनेवाला एक प्रकारका रोग।

रक्तातिसार (सं० पु०) रक्तं अत्यन्तं सरत्यस्मात् सृ घञ्। रोगविशेष।

पित्तातिसारमें यदि अत्यन्त पित्तवर्द्धक द्रव्य खाया

जाय, तो वह पित्त विशेष दूषित हो कर यह कष्टदायक रोग उत्पन्न करता है। इसमें पित्तातीसारके सभी लक्षण दिखाई देते हैं। इस रोगमें पीले, रक्त या हरे रंगका दुर्गन्ध मल हठात् निकल पड़ता है। रोगी प्यास मूर्च्छा, दाह और गुह्यदेश पकनेके जैसा मालूम करता है।

(माधवनि०)

चिकित्सा—इस रोगमें कुटजका छिलका और अनारके कच्चे फलका छिलका दोनों मिला कर १ पल इसे ८ पल जलमें सिद्ध कर अष्टमांश रहते उतार ले। पीछे उसमें मधु डाल कर पान करनेसे रक्तका निकलना बहुत जल्द बंद हो जाता है। कुटजादि क्वाथ, गुडूच्यादि कुटज क्षीर, शतावरीकल्क चन्दनकल्क और नवनीतका अवलेह आदि औषध सेवनसे रक्तातीसार रोग दूर होता है।

(भावप्र०) अतीसार देखो।

रक्तातीसार (सं० पु०) रक्तातिसाररोग।

रक्ताधरा (सं० स्त्री०) किन्नरी।

रक्ताधार (सं० पु०) रक्तस्याधारः। चर्म, चमड़ा।

रक्ताधिमन्थ (सं० पु०) एक प्रकारका अधिमन्थरोग जो रक्तके विकारसे होता है।

रक्तापराजिता (सं० स्त्री०) रक्तपुष्प अपराजिता, लाल अपराजिता।

रक्तापह (सं० क्ली०) रक्तमपाहन्तीति हन-ड। बोल नामक गन्धद्रव्य।

रक्तापामार्ग (सं० पु०) रक्तवर्णः अपामार्गः। रक्तवर्ण अपामार्ग वृक्ष। महाराष्ट्रमें रक्त अघाड़ा, कलिङ्गमें बड़ा अपाङ्गा, तैलङ्गमें केम्पिउत्तरणि। संस्कृत पर्याय—क्षुद्रापामार्ग, वाशहृद्, दुर्गभिनिका, रक्तबिन्दु, अल्पपत्रिका। इसका गुण शीतल कटु, कफ, वात, व्रण कण्डू और विषनाशक, मलग्राहक और वमनकारक माना गया है।

(राजनि०)

रक्ताब्ज (सं० क्ली०) रक्तं अब्जम्। रक्तकमल, लाल पद्म।

रक्ताभ (सं० त्रि०) रक्तस्य आभा इव आभा यस्य। १ रक्तकी तरह आभाविशिष्ट। (पु०) २ इन्द्रगोपकीट, बीरबहूटी।

रक्ताभा (सं० स्त्री०) लाल जवा।

रक्ताभिष्यन्द (सं० पु०) नेत्ररोगविशेष। इस रोगमें आंखें बहुत अधिक लाल हो जाती हैं और उनमेंसे लाल रंगका पानी निकलता है और आंखोंके आगे लाल रेखाएं दिखाई देती हैं। इसमें पैत्तिक अभिष्यन्दके सभी लक्षण दिखाई पड़ते हैं।

विशेष विवरण नेत्ररोग शब्दमें देखो।

रक्ताम्र (सं० क्ली०) रक्तं अभ्रं। रक्तवर्ण अभ्रक, लाल अभ्र।

रक्ताम्बर (सं० क्ली०) रक्तं रञ्जितमम्बरं। १ कषायवस्त्र, लाल रंगका कपड़ा। (त्रि०) २ रक्तवर्ण वस्त्रविशिष्ट। (पु०) ३ सन्यासी जो गेरुआ वस्त्र पहनता है।

रक्ताम्बुपुर—१ रक्त नदी। २ रक्तस्रोतःप्लावित।

रक्ताम्बुरुह (सं० क्ली०) रक्तपद्म, लाल कमल।

रक्ताम्र (सं० पु०) रक्तवर्णः आम्रः। कोषाम्र, कोसम नामक वृक्ष।

रक्ताम्लानक (सं० पु०) रक्तझिण्टी पुष्प।

रक्ताम्लान (सं० पु०) रक्तेन रक्त-वर्णेन न सम्यक् म्लायते इति म्लै-क, ततः अधिकरक्तवर्णत्वात् तथात्वं। एक प्रकारका पौधा जिसमें लाल रंगके फूल लगते हैं। पर्याय—रक्तसहा, अपरिम्लान, रक्तम्लानक, रागप्रसव, रक्तप्रसव कुरवक, रामालिङ्गनकाम, बहुलम्लानप्रसव, सुभग भ्रमरानन्द। वैद्यकमें इसे कटु, उष्ण वात, शोफ, ज्वर, आध्मान, शूल कास और श्वासनाशक माना है।

रक्तारि (सं० पु०) महाराष्ट्री नामक क्षुप।

रक्तार्ण्य (सं० पु०) रक्तकी तरह लाल रंग।

रक्तार्क (सं० पु०) अरुणार्कवृक्ष, लाल मदार।

रक्तार्त्ति (सं० स्त्री०) शोणितामय, रक्तपीड़ा।

रक्तार्बुद (सं० पु० क्ली०) रक्तात्जातमर्बुदम्। रोगविशेष, रक्तजन्य अर्बुद रोग। कर्मविपाकमें लिखा है, कि यह रोग अपघातकज है। (शातातपीयकर्मवि०)

इसका लक्षण—शरीरके किसी स्थानमें कुपित वर्द्धित दोष मांसको दूषित कर डालता है जिससे मांसकी वृद्धि हो कर पुष्ट, दृढ़ और वेदनायुक्त शोथ उत्पन्न होता है। इसी शोथको अर्बुद कहते हैं। यह वात, पित्त और रक्तके भेदसे नाना प्रकारका है।

सभी दोष रक्तको दूषित तथा शिराओंको पीड़ित और संकुचित कर पाक उत्पन्न करते हैं। इससे छोटा मांस

पिण्ड बहुत जल्द बढ़ जाता है और छोटे मांसांकुरकी तरह वह दिखाई देता है तथा उससे बहुत दूषित रक्त स्राव होता है। इसी कारण इसको रक्तार्बुद कहते हैं। यह रोग असाध्य है। इसमें अत्यन्त रक्तक्षयके कारण रोगीका रंग पीला पड़ जाता है।

(सुश्रुत निदानस्था० ११ अ०) अर्बुद शब्द देखो।

२ शूकरोगभेद, शिश्नदेशमें काला स्फोटक वा लाल पीड़का और अत्यन्त वेदना उत्पन्न होनेसे उसे रक्तार्बुद कहते हैं।

रक्तार्म्मन् (सं० क्ली०) रक्तं ऋच्छतीति ऋ मन। नेत्ररोगविशेष। इस रोगमें आंखकी कौड़ी पर मांस इकट्ठा हो कर लाल कमलके रंगका कोमल मंडल बन जाता है।

रक्तार्शस् (सं० क्ली०) रक्तजनितं अर्शः। अर्शरोगविशेष। यह रोग अतिपातकसे होता है।

इस रोगका प्रायश्चित्त ३० कार्षापण है। यह रोग होने पर पहले उसका यथाविधान प्रायश्चित्त कर पीछे चिकित्सा करे। रक्तजन्य अर्शरोगमें पित्तार्शके सभी लक्षण दिखाई देते हैं। इसमें वलि वटवृक्षके अंकुर, गुञ्जाफल वा प्रवाल सदृश हो जाती हैं। मल कठिन होने पर उन सब वलियोंसे दूषित अथच उष्ण रक्त अधिक परिमाणमें हठात् निकलता रहता है और रोगीका शरीर बेंगके सदृश पीला हो जाता है। रक्तक्षयके कारण अनेक उपद्रव उत्पन्न होते हैं। इसमें बल, वर्ण, उत्साह और शक्तिका क्षय होता, इन्द्रियां आकुलित हो जातीं, मल श्यामवर्ण कठिन और रूखा निकलता तथा अधोवायु (वातकर्म) प्रवर्त्तन नहीं होती है।

रक्तज अर्शरोग यदि रूखी वस्तु खानेसे उत्पन्न हो तथा पतला, लाल और फेन सहित रक्त निकले, कमर, जांघ और गुह्यद्वारमें दर्द मालूम दे तथा रोगी अत्यन्त दुबला हो जाय, तो उस अर्शको वातोल्वण जानना चाहिये।

कफोल्वणजनित रक्तज अर्श गुरु और स्निग्ध वस्तु खानेसे होता है तथा मल शिथिल, श्वेत वा पीला, स्निग्ध और शीतल, रक्त गाढ़ा पाण्डुवर्णका, पिच्छिल और सूतेके समान तथा मलद्वार स्तिमित (आर्द्रचर्मावृतकी तरह) और पिच्छिल हुआ करता है।

पित्तोल्वणजनित रक्तज अर्श होनेसे वलि कीलकी तरह, उसका अग्रभाग नीला, मध्यमें थोड़ी, आमगंधि और पतला रक्तस्रावी, कोमल और लंबी होती है। उसकी आकृति मुर्गेकी जीभ, यकृत्खण्ड वा जोंकके मुखकी तरह अथवा जोंके सदृश बीचमें स्थूल होती है। रोगीको शरीरमें जलन देती, ज्वर आता, पसीना छूटना और मूर्च्छा आती है। उसका चमड़ा, आंख, मुंह और मलमूत्रादि साधारणतः पीला दिखाई देता है। (भावप्र० अर्शरोगाधि) अर्शस् शब्द देखो।

भैषज्यरत्नावलीमें लिखा है, कि चिकित्सक रक्तार्शकी चिकित्सा करते समय पहले रक्तस्राव रोकनेकी चेष्टा करे। क्योंकि दूषित रक्तका निकलना बंद हो जानेसे मलद्वारमें वेदना, कोष्ठबद्ध और दुष्ट रक्तजनित वातरक्तादि पीड़ा उपस्थित हो सकती है।

इस रोगमें २ तोला इन्द्रजौको आध सेर जलमें सिद्ध कर आध पाव रहते उतार ले। पीछे उसमें २ माशा भर सोंठका चूर्ण मिला कर अथवा बेलसोंठके काढ़ेमें इसी प्रकार सोंठ डाल कर सेवन करे। रक्तार्शमें घोषलताका मूल पीस कर प्रलेप देना चाहिये।

भूसीरहित ४ तोला तिल मक्खनके साथ, ४ माशा नागकेशरका चूर्ण मक्खन और शक्करके साथ तथा प्रति दिन मट्ठा सेवन करनेसे यह रोग दूर होता है। अवस्थाविशेषमें वराहाक्रान्ता, रक्तोत्पलका मूल, मोचरस, लोध्र, कृष्णतिल और रक्तचन्दन समान भाग मिला कर २ तोला, बकरीका दूध १६ तोला और जल ६४ तोला इसे आंच पर चढ़ा कर १६ तोला रहते नीचे उतार ले। इसका सेवन करनेसे रक्तार्श दूर होता है।

हरे पद्मपत्रको या कृष्णतिलको पीस कर कुछ चीनी और बकरीके दूधके साथ सेवन करनेसे रक्तस्राव अतिशीघ्र बंद हो जाता है। कुटजकी छालको मट्ठेके साथ पीस कर सेवन करनेसे भी बहुत उपकार होता है। अरवा चावलके जलके साथ १ माशा अपामार्ग मूलकी छाल वा बकरीके दूधके साथ शतमूली पीस कर अथवा अनारका रस चीनीके साथ पान करनेसे रक्तस्राव तुरत बंद हो जाता है।

कूष्माण्डकी छाल १०० पलको १४ सेर जलमें सिद्ध कर ८ सेर रहते उतार ले। इसी छाल सेनेके बाद ३० पल पुरानी गुड़ और ८ पल घीके साथ पाक करे। जब यह अच्छ गाढ़ा हो जाय तब उसमें पिप्पली त्रिकटु, त्रिफला रसाञ्जन, पीतामूल हरताली, वच, मतोस और धेयसोंठ डाल कर उतार ले। फिर ठंढा होने पर उसमें ८ पल मधु मिलावे। मात्रा आधा तोलासे २ तोला और अनुपान बकरीका दूध (अभावमें ठंढा जल) बताया गया है। इसका सेवन करनेसे रक्तार्श रक्तपित्त काम और हलीमकरोग आरोग्य होता है।

रक्तालता (सं० स्त्री०) मञ्जिष्ठा, मजीठ।

रक्तालु (सं० पु०) रक्तः रक्तवर्णः आलुः। रक्तवर्ण आलुविशेष, रतालु नामक कन्द। संस्कृत पर्याय—रक्त पित्तालु, रक्तपिण्ड लोहित, रक्तकन्द लोहितालु। इसका गुण—शीतल, मधुराम्ल, श्रम पित्त और दाह नाशक, वृष्य बलपुष्टिकारक और गुरु। (राजनि०)

रक्तावरोधक (सं० त्रि०) बहते हुए खूनको रोकने वाला।

रक्तावसेचन (सं० क्ली०) रक्तस्य अवसेचनं। रक्त मोक्षण, शरीरका खून निकलना। (चरक चिकि० ३ अ०)

रक्ताशय (सं० क्ली०) रक्तस्य आशयः। शरीरके सात आशयोंमेंसे चौथा जिसमें रक्तका रहना माना जाता है, वे कोठे जिनमें रक्त रहता है। जैसे—फेफड़ा हृदय यकृत् आदि। (सुश्रुत शारीरस्था० ५ अ०)

रक्ताशोक (सं० पु०) लाल अशोकका वृक्ष।

रक्ताश्वमारपुष्प (सं० क्ली०) रक्तकरवीरपुष्प, लाल कनेरका फूल।

रक्ताश्मारि (सं० पु०) रक्तकरवीर पुष्प, लाल कनेरका फूल। (वयपारतशास्त्र०)

रक्तास्राव (सं० पु०) रक्तस्य आस्रावः। १ मलद्वार कुछ गाढ़ा और कुछ पतला खूनका निकलना। (सुश्रुत उत्तरत० २ अ०) २ रक्तमोक्षण, शरीरका खून निकल जाना।

रक्ति (सं० स्त्री०) रञ्ज-क्तिन्। १ अनुराग, प्रेम। २ एक परिमाण जो आठ सरसोंके बराबर होता है, रत्ती।

रक्तिका (सं० स्त्री०) रक्तो रक्तवर्णो उस्त्यस्या रक्त (मत इनिठनौ। पा ५।२।११५) इति ठन्। १ गुञ्जा, घुंघची। २ राजिका सर्षप, राइ। रक्तिका परिमाण, एक परिमाण जो आठ सरसोंके बराबर होता है।

रक्तिम (सं० त्रि०) ललाई लिये सुर्खी मायल।

रक्तिमन् (सं० पु०) रक्त-इमनिच्। अतिशय रक्तवर्ण, गाढ़ा लाल।

रक्तिमा (सं० स्त्री०) ललाई, सुर्खी।

रक्तेक्षु (सं० पु०) रक्तो रक्तवर्णो इक्षुः। रक्तवर्ण इक्षु, लालरंगका ऊख। पर्याय—सूक्ष्मपत्र शोण, लोहित, तलक मधुर, इक्षुमूल रोहितेक्षु। इसका गुण— मधुर, पाकमें शीतल, मृदु, पित्त और दाहनाशक, बलकर, मेह और बलवर्द्धक। (राजनि०)

रक्तैरण्ड (सं० पु०) रक्तवर्ण एरण्डः। वृक्षविशेष, लाल अरंडी। पर्याय—व्याघ्र हस्तिकर्ण, रुबु, उरुबूक नागकर्ण, चञ्चु, उत्तानपत्रक, करपण, पाचन, स्निग्ध, व्याघ्र दल रक्तक, चित्रबीज, हस्त्यैरण्ड। इसका गुण—अपथु वायु, श्रम, रक्तपीड़ा, पाण्डु, भ्रम, श्वास ज्वर और अरोचकनाशक। (राजनि०)

रक्तैर्वारु (सं० पु० रक्तः रक्तवर्ण एर्वारु। इन्द्र वारुणी लता।

रक्तोज्झटा (सं० स्त्री०) श्वेत गुञ्जा, सफेद घुंघची।

रक्तोत्पल (सं० क्ली०) १ लाल कमल। (पु०) शाल्मलि सेमल।

रक्तोत्पलाभ (सं० पु०) रक्तोत्पलस्य आभेव आभास्य १ शोणवर्ण, लालरंग। (त्रि०) लालवर्णयुक्त।

रक्तोदर (सं० पु०) १ रोहित मत्स्य, रोहू मछली। २ महाविष वृश्चिक विशेष। सुश्रुतके अनुसार एक प्रकार का बहुत जहरीला बिच्छू।

रक्तोपदंश (सं० पु०) लहूके विकारसे उत्पन्न गरमी या आतशकका रोग।

रक्तोपल (सं० क्ली०) १ गिरिमृत्तिका, गेरू नामक लाल मिट्टी।

रक्तौदन (सं० क्ली०) १ रक्तशालि आदि भक्त, लाल धानका भात। २ अलक्तक रञ्जित भक्त, अलतेसे रंगा हुआ भात।

रक्ष (सं० त्रि०) रक्षतीति रक्ष अच्। १ रक्षक रक्षा करनेवाला। (पु०) २ रक्षा, हिफाजत। ३ लाख, लाह।

४ छप्पयके सातवें भेदका नाम जिसमें ११ गुरु और १३० लघु मात्राएं अथवा ११ गुरु और १२६ लघु मात्राएं होती हैं।

रक्षईश (सं० पु०) रक्षसां ईशः। रावण।

रक्षक (सं० त्रि०) रक्षतीति रक्ष-ण्वुल्। १ रक्षाकर्त्ता, बचानेवाला। २ पहरेदार, पहरा देनेवाला। ३ पालन करनेवाला।

रक्षकाम्बा (सं० स्त्री०) वेदान्तभाष्यकार रामानुजकी स्त्री।

रक्षण (सं० क्ली०) रक्ष भावे ल्युट्। १ रक्षा करना, हिफाजत करना। २ पालन पोषण, पालनेकी क्रिया। (त्रि०) ३ रक्षक, रखवाला।

रक्षणकर्त्ता (सं० पु०) रक्षक, रक्षा करनेवाला।

रक्षणारक (सं० पु०) मूत्रकृच्छ्र रोग।

रक्षणि (सं० स्त्री०) त्रायमाणा लता।

रक्षणीय (सं० त्रि०) रक्ष-अनीयर्। रक्षणार्ह, रक्षा करनेके योग्य।

रक्षपाल (सं० पु०) रक्षाकर्त्ता, वह जो रक्षा करता हो।

रक्षभगवती (सं० स्त्री०) प्रज्ञा-पारमिता।

रक्षमाण (सं० त्रि०) रक्ष्यमान देखो।

रक्षस् (सं० क्ली०) रक्षन्त्यस्मादिति रक्ष (सर्वधातुभ्योऽसुन्। उण् ४।१८८) इति असुन्। राक्षस।

"दृष्ट्वा तु विकृतान् व्यञ्जननाथान् रोगिणस्तथा।
दया न जायते यस्य स रक्ष इति मे मतिः॥"
(अग्निपुराण)

रक्षस्त्व (सं० क्ली०) राक्षसका भाव या धर्म।

रक्षस्य (सं० त्रि०) रक्षसम्बन्धीय, राक्षसके उपयोगी।

रक्षस्विन् (सं० त्रि०) १ राक्षस सम्पृक्त। २ मन्दस्वभाव। ३ दोषयुक्त। ४ बलवान्, बलिष्ठ।

रक्षःसभ (सं० क्ली०) रक्षसां राक्षसानां सभा, क्लीवत्वमभिधानात्। रक्षःसमूह।

रक्षा (सं० स्त्री०) रक्षणमिति रक्ष (गुरोश्च हलः। पा ३.३।१०३) इति अ, स्त्रियां टाप्। १ रक्षण, आपत्ति या कष्ट या नाश आदिसे बचाना। २ जतु, गोंद। ३ भस्म, राख। जिससे कोई अनिष्ट न हो, ऐसी क्रियाविशेषको रक्षा कहते हैं। यशोदाने श्रीकृष्णको गोमूत्रसे स्नान करा कर गोपुच्छभ्रमणादि द्वारा उनकी रक्षा की थी।
(भाग० १०।६ अ०)

पौर्णमासीको रक्षाबन्धन करना होता है। इसे बोलचालमें राखीबंधन कहते हैं।

"पौर्णमास्यां तु रक्षाबन्धनं विधिपूर्वकं।
मजराजकुमारत्वात् कैचिदिच्छन्ति साधवः॥"
(हरिभक्तिवि० ५१ वि०)

पूर्णिमातिथिमें विधिपूर्वक विष्णुका रक्षाबन्धन करना होता है। श्रीकृष्णके यह रक्षाबन्धन हुआ था, इस कारण पण्डित लोग इसका अनुष्ठान करते हैं। यह श्रावणी और फाल्गुनी पूर्णिमामें नहीं करना चाहिये।

सामवेदीगण भाद्रमासके हस्ता नक्षत्रमें, ऋग्वेदीगण श्रावणमासके श्रावण नक्षत्रमें और यजुर्वेदीयगण श्रावणी पूर्णिमामें यह रक्षाबन्धन करें। इस समय यदि न किया जाय, तो भाद्रमासमें अवश्य करे। श्रावण मासकी शुक्लापञ्चमी इसके अनुकल्पका काल है। यह कार्य चतुर्दशीयुक्त पूर्णिमामें नहीं करना होता है।
(हरिभक्तिवि० ५१ अ०)

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णोंको यथाविधान राखीबन्धन करना चाहिये। जो विधिपूर्वक इसका अनुष्ठान करते हैं, वे सर्वपापरहित हो सुखसे वास करते हैं। (हरिभक्तिवि० ५१ वि०)

सुश्रुतमें लिखा है, कि वैद्य रोगीको शस्त्र प्रयोग कर पीछे उसकी रक्षाके लिये रक्षामन्त्रका पाठ करते हुए चारों ओर जलको छींटा दे। कृत्या देवता और राक्षसोंके भयसे बचानेके लिये यह रक्षाकर्म करना होता है। इस प्रकार मन्त्रपाठ कर रक्षाविधान करनेसे राक्षस, भूत, प्रेत आदिका डर बिलकुल नहीं रहता।

आज भी युक्तप्रदेशमें खास कर राजपूतानेमें राखीबंधनका बहुत आदर देखा जाता है। वहांके लोगोंका विश्वास है, कि श्रावणी पौर्णमासी या संक्रान्ति तिथिमें राखीबंधन करनेसे कुग्रहका प्रभाव क्षीण हो जाता है। महर्षि दुर्वासाने श्रावणकी अधिष्ठात्री देवीको ग्रहदृष्टि निवारणार्थ राखीबंधनकी व्यवस्था दी। तभीसे इस प्रथाको हिन्दू-समाजने बड़े आदरसे अपनाया है।

राजपूतकुलललना, कुलपुरोहित और केवल ब्राह्मण

लोग ही राजपूतानेमें राखीबंधनके अधिकारी हैं। राज महिषियाँ इस दिन अपनी अपनी सहचरी अथवा कुल पुरोहितके हाथ अपने अपने भाई अथवा दूसरोंके निकट जिन्हें वे भाई कह कर पुकारती हैं, राखी भेज देती हैं। इसी राखीके भेजनेसे महाराणा राजसिंह रूपनगरकी राज कुमारीका उद्धार करनेके लिये सम्राट् औरङ्गजेबके विरुद्ध रणक्षेत्रमें कूद पड़े थे। यहाँ तक कि यदि कोई राजपूत-कामिनी जिस किसी राजपूतके निकट जिन्हें वह भाई कहा करती हैं, राखी भेजे, तो वह राजपूत उस बहिनके धन, प्राण और मानरक्षाके लिये आत्मजीवन तक भी विसर्जन कर देते हैं। यह प्रथा हिन्दूकी एकता रक्षाके सम्बन्धमें अत्यन्त शुभकर थी, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

राजपूत-ललनायें इस दिन अपने अपने भाईके निकट नया वस्त्र और राखी भेजती हैं और भाई उसके बदलेमें स्वर्णमुद्रा देते हैं। कर्नल टाडने राज स्थानमें रहते समय राजपूतराज-कुलरमणियोंके साथ भाई बहनका नाता जोड़ कर राजपूत प्रथाके अनुसार उन बहनों द्वारा भेजी गई राखी प्रसन्न चित्तसे स्वीकार की और उसके बदले प्रत्येक बहनको तौलसे पाँच मुहर करके उपहारमें दी थी।

देवालयके पुरोहित और राजभवनके ब्राह्मण इस दिन राखी दे कर प्रचुर धन उपार्जन करते हैं। राज पूतानेमें आज भी यह पर्व बड़ी धूमधामसे सम्पादित होते देखा जाता है।

रक्षागृह (सं० क्ली०) सूतिकागृह, वह स्थान जहाँ प्रसूती प्रसव करे।

रक्षातिक्रम (सं० पु०) नियम भङ्ग, कायदा-कानून तोड़ना।

रक्षाधिकृत (सं० पु०) प्राचीनकालका किसी नगरका वह अधिकारी जिसका काम उस नगरकी रक्षा तथा शासन करना होता था।

रक्षापति (सं० पु०) रक्षाकर्त्ता, प्राचीनकालका वह कर्मचारी जिसका काम नगर-निवासियोंकी रक्षा करना होता था।

रक्षापत्र (सं० पु०) रक्षार्थं पत्रमस्य। १ भूर्जपत्र, भोजपत्र। भोजपत्र पर मन्त्र आदि लिख रक्षाका विधान किया जाता है इसलिये इसे रक्षापत्र कहते हैं। २ श्वेत सर्षप, सफेद सरसों।

रक्षापुरुष (सं० पु०) १ प्रहरी पहरेदार। २ रक्षाकर्त्ता, वह जो रखवाली करता हो।

रक्षापेक्षक (सं० पु०) १ प्रहरी, पहरेदार। २ अन्तःपुरमें पहरा देनेवाला सन्तरी। ३ अभिनेता, नट।

रक्षाप्रदीप (सं० पु०) तन्त्रके अनुसार वह दीपक जो भूत प्रेत आदिकी बाधासे रक्षा करनेके लिये जलाया जाता है।

रक्षाबन्धन (सं० पु०) हिन्दुओंका एक त्योहार। यह श्रावण शुक्ला पूर्णिमाको होता है। इस दिन बहनें अपने भाइयोंके और ब्राह्मण अपने यजमानोंके दाहिने हाथकी कलाई पर अनेक प्रकारके गंडे वाली राखी बाँधते हैं।

रक्षाभूषण (सं० क्ली०) कवचादियुक्त अलङ्कार या धारणी, वह भूषण या जंतर जिसमें किसी प्रकारका कवच आदि हो और जो भूत प्रेत या रोग आदिसे रक्षित रहनेके लिये पहना जाय।

रक्षाभ्यधिकृत (सं० त्रि०) रक्षाधिकृत देखो।

रक्षामङ्गल (सं० क्ली०) अपदेवताकी प्रकोपनिवारक माङ्गलिक क्रियाविशेष, वह अनुष्ठान या धार्मिक क्रिया आदि जो भूत-प्रेत आदिकी बाधासे रक्षित रहनेके लिये की जाय।

रक्षामणि (सं० पु०) वह मणि या रत्न आदि जो किसी ग्रहके प्रकोपसे रक्षित रहनेके लिये पहना जाय।

रक्षामल्ल (सं० पु०) राजभेद, एक राजाका नाम।

रक्षामहौषधि (सं० स्त्री०) औषधविशेष।

रक्षारत्न (सं० क्ली०) रक्षामणि देखो।

रक्षारत्नप्रदीप (सं० पु०) रत्नरचित रक्षा-प्रदीप। रक्षाप्रदीप देखो।

रक्षावत् (सं० त्रि०) रक्षा विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य-व। रक्षाविशिष्ट, रक्षायुक्त।

रक्षासर्षप (सं० पु०) सरसों पढ़ना।

रक्षि (सं० त्रि०) रक्षाकारी, बचानेवाला।

रक्षिक (सं० पु०) १ प्रहरी, पहरेदार। २ रक्षक, वह जो रक्षा करता हो। ३ परिरक्षक।

रक्षिका (सं० स्त्री०) रक्षेव रक्षा स्वार्थे कन्, टाप् अत इत्वं। रक्षा, हिफाजत।

रक्षित (सं० त्रि०) रक्ष-क्त। १ जिसकी रक्षा की गई हो,

रक्षा किया हुआ। पर्याय—त्रात, त्राण, अवित, गोपायित, गुप्त। (अमर) २ प्रतिपालित, पाला पोसा। ३ रक्षा हुआ। (क्ली०) भावे-क्त। ४ रक्षा, हिफाजत, स्त्रियां टाप्। ५ महाभारतके अनुसार एक अप्सराका नाम। (भारत १।६५।५०) ६ वैयाकरणभेद। ७ भेषजतत्त्वाभिज्ञ एक आचार्य।

रक्षितक (सं० त्रि०) रक्षाकारी, बचानेवाला।

रक्षितव्य (सं० त्रि०) रक्ष तव्य। रक्षणीय, रक्षा करनेके योग्य।

रक्षितृ (सं० पु० रक्षतीति रक्ष-तृच्। १ रक्षाकर्त्ता, रक्षा करनेवाला। (पु०) २ रक्षा, हिफाजत। ३ एक अप्सराका नाम।

रक्षिन (सं० त्रि०) १ अभिभावक, रक्षा करनेवाला। (पु०) २ पहरेदार, चौकीदार।

रक्षिवर्ग (सं० पु०) रक्षिणां वर्गः समूहः। पहरेदारोंका समूह।

रक्षोगण (सं० पु०) रक्षसां राक्षसानां गणः समूहः। राक्षसोंका समूह। (भागवत ५।२६।२७)

रक्षोघ्न (सं० क्ली०) रक्षो रक्षसं हन्तीति हन-टक्। १ काञ्जिक, रख कर खट्टा किया हुआ चावलका पानी या मांड। २ हिङ्गु, हींग। ३ भल्लातकवृक्ष, भिलावेंका पेड़। ४ श्वेतसर्षप, सफेद सरसों। (त्रि०) ५ रक्षोविनाश, राक्षस-नाशक-मात्र।

रक्षोघ्नी (सं० स्त्री०) रक्षोघ्न ङीप्, वचा, वच।

रक्षोजननी (सं० स्त्री०) रक्षसां जननीव। १ रात्रि, रात। २ राक्षसकी माता।

रक्षोऽधिदेवता (सं० स्त्री०) रक्षःकुलदेवता।

रक्षोमुख (सं० पु०) १ गोत्रभेद। २ राक्षसोंके मुख।

रक्षोयुज् (सं० त्रि०) राक्षसका सहचर।

रक्षोवाह (सं० पु०) जातिविशेष।

रक्षोविक्षोभिनी (सं० स्त्री०) राक्षसोंकी एक देवी मूर्त्तिका नाम।

रक्षोहन (सं० पु०) रक्षो हन्तीति हन-क्विप्। १ गुग्गुलु, गुग्गुल। २ ऋषिविशेष। ये ऋग्वेदके दशवें मण्डलके ३६२ सूक्तके ऋषि थे। (त्रि०) ३ राक्षसहन्ता, राक्षसको मारनेवाला।

रक्ष्न (सं० पु०) रक्ष (यजयाचयतविच्छप्रच्छरक्षो नङ्। पा ३।३।९०) इति नङ्। त्राण, रक्षा।

रक्ष्य (सं० त्रि०) रक्ष यत्। रक्षणीय, रक्षा करनेके योग्य।

"सदा स्वेभ्यः परेभ्यश्च रक्ष्या राजाभिरग्निभिः।"

(कामन्दकी नीति० ७।२६)

रक्ष्यमाण (सं० त्रि०) १ जिसकी रक्षा की जा सके। २ जिसकी रक्षा की जा रही हो।

रखसेताऊस (फा० पु०) १ एक प्रकारका नाच जिसमें घुटनोंके बल हो कर इतनी तेजीसे घूमते हैं, कि काछनी या पेशवाजका घेरा फैल कर चक्कर खाने लगता है। २ एक प्रकारका नाच। इसमें पेशवाजके दो कोने दोनों हाथोंसे पकड़ कर कमर तक उठा लिये जाते हैं जिससे नाचनेवालोंकी आकृति मोरकी-सी बन जाती है।

रख (हिं० स्त्री०) पशुओंके चरनेके लिये बचाई हुई भूमि, चरी।

रखटी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी ईख जिसके रससे गुड़ बनाया जाता है, लखड़ा।

रखड़ा (हिं० पु०) रखटी देखो।

रखना (हिं० क्रि०) १ किसी वस्तु पर या किसी वस्तुके अन्दर दूसरी वस्तु स्थित करना, ठहराना। २ निर्वाह या पालन करना, बिगड़ने न देना। ३ रक्षा करना, हिफाजत करना। ४ सपुर्द करना, सौंपना। ५ रेहन करना, बंधकमें देना। ६ एकत्र करना, संग्रह करना। ७ अपने अधिकारमें लेना, अपने हाथमें करना। ८ नियुक्त करना, तैनात करना। ९ सकुशल जाने न देना, पकड़ या रोक लेना। १० पालन-पोषण, मनोविनोद या व्यवहार आदिके लिये अपने अधिकारमें करना, अपनी अधीनतामें लेना। ११ आघात करना, चोट पहुंचाना। १२ किसी पर आरोप करना, जिम्मे लगाना। १३ व्यवहार करना, धारण करना। १४ स्थगित करना, मुलतवी करना। १५ उपस्थित न करना, सामने न लाना। १६ ऋणी होना, कर्जदार होना। १७ मनमें अनुभव या धारण करना। १८ स्त्री या पुरुषसे सम्बन्ध करना, उपपत्नी या उपपति बनाना। १९ सम्भोग करना, प्रसंग करना। २० निवास कराना, डेरा कराना

२१ गर्भ धारण करना। २२ अपने पास पड़ा रहने देना, बचाना। २३ पक्षियों आदिका अंडे देना।

रखनी (हि० स्त्री०) वह स्त्री जिससे विवाह-सम्बन्ध न हुआ हो और जो यों ही घरमें रख ली गई हो रखेली।

रखया (हि० वि० स्त्री०) रक्षा करनेवाली।

रखला (हि० पु०) रखना देना।

रखवाई (हि० स्त्री०) १ खेतोंकी रखवाली चौकीदारी। २ रखवाली करनेका क्रिया या भाव। ३ रखनेकी क्रिया या ढंग। ४ रखवालोंकी मजदूरी चौकीदारीकी मजदूरी। ५ चौकीदारका टिकस। ६ रखनेकी मजदूरी।

रखवाना (हि० क्रि०) १ रखनेकी क्रिया दूसरेसे कराना, दूसरेको रखनेमें प्रवृत्त करना। २ रखाना देना।

रखवार (हि० पु०) १ रक्षा करनेवाला, रखवाला। २ चौकीदार, पहरेदार।

रखवारी (हि० स्त्री०) रखवाली देखो।

रखवाला (हि० पु०) १ रक्षा करनेवाला, रक्षक। २ चौकीदार, पहरेदार।

रखवाली (हि० स्त्री०) १ रक्षा करनेकी क्रिया हिफाजत। २ रक्षा करनेका भाव।

रखा (हि० स्त्री०) रख देखो।

रखाई (हि० स्त्री०) १ रक्षा करनेकी क्रिया हिफाजत। २ वह धन जो रक्षा करनेके बदलेमें दिया जाय। ३ रक्षा करनेका भाव।

रखाव (हि० स्त्री०) चराईका भूमि चरी।

रखाना (हि० क्रि०) १ रखनेकी क्रिया दूसरेसे कराना, दूसरेको रखनेमें प्रवृत्त करना। २ रखवाली करना, नष्ट होनेसे बचाना।

रखार (हि० पु०) एक प्रकारका पाटा जिसका व्यवहार बम्बईप्रान्तमें जुता हुआ खेत बराबर करनेके लिये होता है।

रखिया (हि० पु०) १ रक्षक। २ रखनेवाला। ३ गांवके समीपका वह पेड़ जो पूजनार्थ रक्षित रहता है।

रखियाना (हि० क्रि०) १ राखसे बरतनों आदिको मांजना। २ पकाये हुए मेवेको कपड़ेमें लपेट कर राखके अन्दर इस अभिप्रायसे रखना कि उसका पानी सूख जाय और खराब निकल जाय।

रखी (हि० पु०) ऋषि, मुनि।

रखीराज (हि० पु०) नारद ऋषि।

रखेली (हि० स्त्री०) बिना विवाह किये ही घरमें रखी हुई स्त्री, रखनी।

रखौंत (हि० पु०) पशुओंके चरनेके लिये छोड़ी हुई जमीन, चरी।

रगंड (हि० पु०) हाथीका कपोल।

रग (फा० स्त्री०) १ शरीरमेंकी नस या नाड़ी। २ पत्तोंमें दिखाई पड़नेवाली नसें।

रगड़ (हि० स्त्री०) १ रगड़नेकी क्रिया या भाव घर्षण। २ वह हलका चिह्न जो साधारण घर्षणसे उत्पन्न हो जाय। ३ हुज्जत, झगड़ा। ४ कहारोंकी परिभाषामें धक्का। ५ भारी श्रम, गहरी मेहनत।

रगड़ना (हि० क्रि०) १ किसी पदार्थको दूसरे पदार्थ पर रख कर दबाते हुए बार बार इधर उधर चलाना, घर्षण करना। २ पीसना। ३ किसी काममें जल्दी जल्दी और बहुत परिश्रमपूर्वक करना। ४ अभ्यास आदिके लिये बार बार कोई काम करना। ५ तंग करना, दिक् करना। ६ स्त्रीके साथ सम्भोग करना प्रसंग करना।

रगड़वाना (हि० क्रि०) रगड़नेका काम दूसरेसे कराना, दूसरेको रगड़नेमें प्रवृत्त करना।

रगड़ा (हि० पु०) १ रगड़नेकी क्रिया या भाव, घर्षण। २ वह झगड़ा जो बराबर होता रहे और जिसका जल्दी अन्त न हो। ३ निरन्तर अथवा अत्यन्त परिश्रम।

रगड़ान (हि० स्त्री०) रगड़नेकी क्रिया या भाव, रगड़ा।

रगण (स० पु०) छन्दशास्त्रमें एक गण या तीन वर्णोंका समूह इसका पहला वर्ण गुरु, दूसरा लघु और तीसरा फिर गुरु होता है। यह साधारणतः ऽ।ऽ से सूचित किया जाता है। इसके देवता अग्नि माने गये हैं।

रगदना (हि० क्रि०) रौंदना देना।

रगपट्ठा (हि० पु०) १ शरीरके भीतरी भिन्न भिन्न अंग। २ किसी विषयकी भीतरी और सूक्ष्म बातें।

रगबत (अ० स्त्री०) १ चाह, इच्छा। २ प्रवृत्ति, रुचि।

रगर (हि० स्त्री०) रगड़ देखो।

रगरा (हि० पु०) रगड़ा देखो।

रगरेशा (फा० पु०) १ पत्तियोंकी नसें। २ शरीरके अन्दरका प्रत्येक अंग। ३ किसी विषयकी भीतरी और सूक्ष्म बातें।

रगा (हिं० पु०) मोर।

रगी (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका मोटा अन्न जो महिसूरमें होता है। २ रगी देखो। ३ रगीला देखो।

रगीला (हिं० पु०) १ हठी, जिद्दी। २ पाजी, दुष्ट।

रगेद (हिं० स्त्री०) १ दौड़ाने या भगानेकी क्रिया। २ पक्षियों आदिकी सम्भोगकी प्रवृत्ति या अवसर, जोड़ा खानेका मौका।

रगेदना (हिं० क्रि०) भगाना, खदेड़ना।

रगौली—युक्तप्रदेशके बान्दा जिलान्तर्गत एक गण्डशैल और उसके नीचे एक गण्डग्राम। यह अक्षा० २५ १' ३० तथा देशा० ८०' २२' पू०के मध्य अजयगढ़से पांच कोस उत्तरमें अवस्थित है। १८०९ ई०में अजयगढ़के राजा लक्ष्मणसिंहसे अंगरेजी सेनाकी लड़ाई हुई जिसमें यहाका दुर्ग अंगरेजोंके हाथ चला गया। राजाके चचा प्रसादसिंहने चहारदीवार और प्राचीर आदिसे यह गिरिदुर्ग मजबूत बना रखा था। अंगरेजी सेनाने बहुत कष्टसे इस दुर्गकी चहारदीवार तोड़ फोड़ कर इस पर चढ़ाई कर दी और हिन्दू सेना गुप्तीसे दुर्ग छोड़ भाग गई। पीछे अंगरेजी सेनाने यह दुर्ग दखल किया। तबसे वह टूटे फूटे खंडहरोंमें पड़ा है। यह समुद्रपीठसे १३०० फुट ऊंचा है।

रग्गा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका मोटा अन्न जो दक्षिणके पहाड़ोंमें होता है, रगी। (स्त्री०) २ अधिक वर्षाके उपरान्त होनेवाली धूप जो खेतोंके लिये लाभदायक होती है।

रघु (सं० पु०) लङ्घति ज्ञानसीमां प्राप्नोतीति लङ्घि (लङ्घिवंह्योनलोपश्च। उण् १।३०) इति कु नलोपश्च। (वासमूलकत्वसुरालमगुलीनां वा लो रत्वमापद्यते इति वक्तव्य। पा ८।२।१८) इति काशिकोक्त्या लस्य रत्वं। सूर्यवंशीय दिलीपराजपुत्र, श्रीरामचन्द्रके प्रपितामह। रघुवंशमें 'रघु' इस नामनिरुक्तिका विषय इस प्रकार लिखा है। रघुके जन्म लेनेके बाद दिलीपने कहा, कि यह बालक समस्त शास्त्रोंमें पारदर्शी होगा और युद्धकालमें शत्रुओंको फाड़ता हुआ जायगा। इसी कारण उन्होंने गमनार्थक 'रघ' धातु द्वारा निष्पन्न 'रघु' यह नाम रखा था।

रघुवंशमें लिखा है, कि रघुके पिताका नाम महाराज दिलीप और पुत्रका नाम अज था। अजके पुत्र दशरथ और दशरथके पुत्र रामचन्द्र थे। अयोध्यामें इनकी राजधानी थी। इन्हींके नामानुसार इनका वंश रघुवंश नामसे प्रसिद्ध है। महाराज दिलीपने अपने कुलगुरु वशिष्ठकी आज्ञासे कामधेनुकी पुत्री नन्दिनीको प्रसन्न करके यह पुत्र पाया था। महाराज दिलीपने एक यज्ञ किया था, उस यज्ञकी अश्वरक्षाका भार रघुको दिया गया था। देवराज इन्द्र उस अश्वको चुरा कर ले गये। रघु और इन्द्रसे युद्ध होने लगा। रघुने इन्द्रको परास्त करके यज्ञीय अश्व छुड़ा लिया। राज्य मिलने पर महाराज रघु अपने राज्यमें सर्वत्र शान्ति स्थापित करके दिग्विजयके लिये बाहर निकले। चारों दिशाओंको जीत कर रघु जो प्रचुर धन ले आये थे उससे विश्वजित् नामक एक यज्ञ किया और सब धन ब्राह्मणोंको दक्षिणामें दे डाला। पीछे वरतन्तुशिष्य कौत्स्य उनके निकट आये और गुरुदक्षिणामें स्वर्णमुद्रा मांगने लगे। खजानेमें स्वर्णकी बात तो दूर रहे, एक कौड़ी भी न थी, सो रघुने कुबेरको जीत कर उनकी मांग पूरी की थी।

२ रघुवंशीय मात्र। (त्रि०) ३ शीघ्रगामी, तेज चलनेवाला। (ऋक् ५।३०।१४)

रघुकार (सं० पु०) रघुं तदाख्यं काव्यं करोतीति कृ (दर्म्मण्यण्। पा ३।२।१) इति अण्। रघुवंशके प्रणेता कालिदास।

रघुकुल (सं० पु०) राजा रघुका वंश।

रघुगढ़ (राघवगढ़)—ग्वालियरके अधीनस्थ एक सामन्त राज्य। यह मध्यभारतकी गुणा सब एजेन्सीकी देखरेखमें परिचालित होता है। यहांके सरदारवंशीय चौहान राजपूतोंकी कोत्र शाखामें श्रेष्ठ और पूज्य हैं। एक समय इन सामन्तोंने गुणाके चारों ओर प्रायः १२० मील स्थान पर अधिकार कर राज्यशासन किया था। उस समय रघुगढ़के सरदार ग्वालियरपतिके मित्रराज समझे जाते थे।

१७८० ई०में महाराष्ट्र सरदार माधोजी सिन्धेने राजा

बलवन्तसिंह और उनके लड़के अयसिंहको युद्धमें परास्त कर कैद कर लिया था। इस समयसे ले कर १८१८ ई० तक दोनों पक्षमें घोर युद्ध चलता रहा। आखिर अंगरेज गवर्मेण्टने दोनोंमें पड़ कर झगड़ा मिटा दिया। सिन्देराजने यहांके सामन्तराजको राघवगढ़ नगर, दुर्ग और तत्पार्श्ववर्ती साथ रुपये आमदनीकी भूसम्पत्ति छोड़ दी। १८४३ ई०को उक्त राजसरकारमें गृहविवाद खड़ा हो गया, जिससे अङ्गरेजराजने एक नया बंदोबस्त किया। तदनुसार उक्त जागीर उस वंशके विक्रमसिंह, छत्रसाल और अजितसिंह नामक तीन पट्टीदारोंके बीच बँट गई। अजितसिंहके उत्तराधिकारी राजा जयमङ्गलसिंहके हिस्सेमें १२० ग्राम पड़े जिनकी वार्षिक आय २५०००) रु० की है। रघुगढ़के सामन्त राजके हिस्सेमें ८८ ग्राम हैं।

२ उक्त सामन्तराज्यका प्रधान नगर। यह पार्वती नदीकी एक शाखाके ऊपर अक्षा० २४ २६´ ३० तथा देशा० ७७ १५´ पू०के मध्य अवस्थित है। यहांका दुर्ग यद्यपि भग्नावस्थामें पड़ा है, तो भी १७वीं सदीके आरम्भमें इसने दौलतराव सिन्दे द्वारा परिचालित मराठा-सेनासे नगरकी अच्छी तरह रक्षा की थी। मुगल बादशाह शाहजहांके जमानेमें केचिवाराके चौहान राजपूतवंशीय लालसिंह नामक एक व्यक्तिने इसे बसाया था। तभीसे यहांके सरदार वंश केचिवाड़ाके दलपति या गोष्ठीपति रूपमें गिने जा रहे हैं।

रघुज (सं० त्रि०) रघु जन ड। १ तेज जानेवाली घोड़ोंका बछड़ा। (भृक् ३।८६।११) २ रघुवंशका जातमात्र, जिसका जन्म रघुके वंशमें हुआ हो।

रघुजी भोंसले (१म)—एक महाराष्ट्र सेनापति। १७३४ ई०में इनको महाराष्ट्र-दलके सेना साहब सूबा पद पर तरक्की हुई। इनको कार्य-दक्षता साहस और वीरता पर प्रसन्न हो कर पेशवाने इन्हें बेरार और नागपुर प्रदेश प्रदान किया। इसी सेनाके बल १७५० ई०में ये बेरार और नागपुरके प्रथम राजा हुए थे।

पेशवा बाजीराव और बलसी रघुजी भोंसलेके अभ्युदयकालमें महाराष्ट्र राज्यमें शासनविशृङ्खला और राष्ट्रविप्लव उपस्थित हुआ। कमजोर दिलके और राज्यशासन करनेमें असमर्थ सताराधिपति रामराज इस समय महाराष्ट्र सिंहासन पर बैठे थे सही, पर यथार्थमें पेशवा और रघुजी यही दोनों राज्यके परिचालक और नेता थे। सचिवप्रधान बाजीराव और सेनापति प्रधान रघुजीने उन्हें सिंहासन परसे उतार सब कुछ हड़प कर लेनेका षड़यन्त्र किया। अपना मतलब निकालनेके लिये दोनोंने अपने मालिकको ठग कर उनका राज्य आपसमें बांट लिया। तदनुसार पेशवा प्राचीन राजधानी पूनामें रह कर मराठोंके अधिकृत समस्त पश्चिम-प्रदेशका तथा रघुजी नागपुरमें रह कर पूर्वांशका शासन करने लगे। दुर्भाग्यवशतः रामराज सताराके दुर्गमें कैद किये गये।

पेशवा बाजीरावको अपने नामसे महाराष्ट्रीय शासनदण्ड परिचालित करते देख प्रतिद्वन्द्वी रघुनाथ जलने लगे। उन्होंने पेशवाकी अधीनता स्वीकार नहीं की। इस कारण दोनोंमें मतभेद हो गए।

रघुजीके पितामह पार्श्वजी सतारा-प्रान्तवर्ती एक सामान्य अश्वारोही सेना-नायक थे। महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीके पौत्र शाहजी उनके रणपाण्डित्य पर मोहित हो उन्हें बख्शीके पद पर नियुक्त किया। उनके पिता विम्बजी महाराष्ट्र-कर उगाहनेके लिये अयोध्या गये और वहीं मारे गये। अतएव पितामहके बाद शाहजीकी कृपासे ये ही पैतृक सम्पत्तिके अधिकारी हुए थे। ऐतिहासिक लोग इनके उत्तराधिकारित्वके सम्बन्धमें अपना भिन्न भिन्न मत देते हैं। कोई कोई कहते हैं, कि पार्श्वजीके पुत्रके जीवित रहते ही शाहजीकी कृपासे पार्श्वजीके भाई रघुजीने बरारकी सम्पत्ति पाई। रघुजी राजा शाहजीके भाई थे।

बुर्हानपुर, नागपुर, बरार आदि शब्दोंमें रघुजीका वीरत्व-कहानी लिखी जा चुकी है, इस कारण यहां पर और कुछ विशेष नहीं लिखा गया। १७५४ या १७५५ ई०में उनकी मृत्युके समय वे पुत्र जानोजीको अपना उत्तराधिकारी बना गये। १७७२ ई०में जानोजीने अपने कनिष्ठ मधुजीके पुत्र रघुजी भोंसले २यको जब अपना उत्तराधिकारी बनाया, तब सारी सम्पत्तिका शासनभार मधुजी पर सौंपा गया। इस समय मधुजीके

बड़े भाई साबोजीने सिंहासन पर दावा किया। यह ले कर दोनों भाइयोंमें विरोध खड़ा हो गया। युद्धमें मधुजीके हाथ १७७५ ई०को साबोजी मारे गये। तभीसे ले कर ३य रघुजी तक नागपुर और बरारका अधिकार मधुजीके वंशधरोंके हाथ रहा।

रघुजी भोंसले (२य)—अभिभावक और पिता मधुजीके राज्यशासनके बाद १७८८ ई०में ये अपने बड़े भाईके दिये हुए नागपुर सिंहासन पर बैठे। १८१६ ई०की २२वीं मार्चको इनकी मृत्यु हुई।

रघुजी भोंसले (३य) बरार-राज्यके अन्तिम महाराष्ट्र-राज। १८५३ ई०में अपुत्रक अवस्थामें इनकी मृत्यु होने तथा राजसिंहासनके कोई प्रकृत उत्तराधिकारी न रहनेसे उस समयके गवर्नर जनरलने वह विस्तीर्ण राज्य कंपनीके राज्यमें मिला लिया।

रघुदेव—१ दिनसंग्रह नामक एक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। २ मिथिलावासी एक पण्डित विश्वेश्वर मिश्रके पुत्र तथा अच्युत ठाकुरके दौहित्र। इन्होंने विरुदावली नामक एक ग्रन्थकी रचना की।

रघुदेव न्यायालङ्कार भट्टाचार्य—नवद्वीपवासी एक विख्यात पण्डित। ये सम्भवतः नवद्वीपके सुप्रसिद्ध पण्डित भवानन्द सिद्धान्तवागीशको तीन या चार पीढ़ीके बादके थे। शिरोमणिकृत नञ्वादकी "नञ्वादविवेचन" नामक टीकाकी रचना करते समय रघुदेवने ग्रन्थ-प्रारम्भमें अपना परिचय दिया है। शायद रघुदेव पहले हरिरामसे और पीछे जगदीशसे न्यायशास्त्र पढ़ते थे। ये जगदीशके छात्रोंके समसामयिक थे, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। इन्होंने 'पदार्थखण्डनविवरण' नामक रघुनाथ-शिरोमणिकृत पदार्थतत्त्वकी व्याख्या १६४१ शकमें अर्थात् १७१६ ई०में लिखी थी।

इसके अलावा रघुदेव गङ्गेशोपाध्यायकृत तत्त्वचिन्तामणिकी गूढ़ार्थतत्त्वदीपिका नाम्नी एक व्याख्यापुस्तिका, महर्षि कणादके वैशेषिकसूत्रका कणादसूत्रव्याख्यान नामक टीका और द्रव्यसारसंग्रह नामक कई ग्रन्थ रचना कर गये हैं। तत्त्वचिन्तामणिव्याख्या ग्रन्थके अंशरूपमें उन्होंने अनुमिति, परामर्शविचार, अवयवग्रन्थ, आकाङ्क्षावाद, आख्यातवादटिप्पनी, (रघुनाथकृत आख्यातवादकी टीका), ईश्वरवाद, उपसर्गद्योतकत्व विचार, कारणवादार्थ, कार्यकारणभावविचार, चित्ररूपवाद, ज्ञानद्वयवाद, ज्ञानलक्षणविचार, तर्कविचार, दण्डकारणताविचार, धर्मितावच्छेदकप्रत्यासत्तिनिरूपण, नञर्थवादटिप्पनी या नञ्वादटिप्पनी नवीन निर्माण, नानार्थवाद, निरुक्तिप्रकाश, निश्चयत्वनिरुक्ति, निश्चयवाद, पक्षता, प्रतियोगिज्ञानकारणताविचार, प्रतियोगिज्ञानस्य हेतुत्वखण्डनम्, मनोवाद, लक्षणावाद, लौकिकविषयतावाद, विशिष्टवैशिष्ट्यबोधविचार, विशिष्टवैशिष्ट्यवाद, विशिष्टवैशिष्ट्यावगाहिशब्दार्थ, विषयतावाद सामग्रीवाद, स्मृतिसंस्कारविचार आदि बहुत सी टीका प्रणयन कर विशेष प्रसिद्धिलाभ किया है। ये टीकाएं नैयायिकजगत्में 'रघुदेवी' नामसे परिचित हैं।

रघुदैवज्ञ—चिन्तामणि पीयूषधारा नाम्नी मुहूर्त्तचिन्तामणिकी टीकाके प्रणेता।

रघुद्रु (सं० त्रि०) शीघ्रगमनकारी, तेजीसे जानेवाला।

रघुनन्द (सं० पु०) श्रीरामचन्द्र।

रघुनन्दन—श्रीचैतन्यके एक अनुचर भक्त। ये हुसेनशाह बादशाहके प्रधान चिकित्सक श्रीखण्डवासी वैद्यवंशीय मुकुन्दके एकमात्र पुत्र थे। वैष्णवसमाजमें रघुनन्दनका स्थान ऊंचा था। क्योंकि, श्रीगौराङ्गने एक दिन इन्हें अपनी गोदमें बिठा कर पुत्र कह कर सम्बोधन किया था और बड़े आदरसे इनके गलेमें पुष्पमाला पहनाई थी। यथा—श्रीरूपकृत पद्यमें लिखा है—

"लीलाद्रोहिमहाप्रभुर्यमपि भो क्रोडे निधायात्मनो,
भक्तायूथमिम ममेति निगदन जानिष्यमेवात्मजम्।
कण्ठेप्राग्ररघुनन्दनं स्रजमदात् स्रीयां स्वय कीर्त्तने,
भाले यस्य च चन्दन प्रतिनभक्त रूपं नमाम्यह॥"

इसी कारण रघुनन्दनका प्रणाम-श्लोक निम्नलिखित रूपमें लिखा गया है, यथा—

"मुकुन्दजनये नित्य ब्रजकन्दर्परूपिणे।
गौरप्रेमप्रदायैव गौरपुत्राय ते नमः॥"

रघुनन्दनके प्रति महाप्रभुकी इतनी कृपा क्यों? इसका कारण यह है, कि रघुनन्दन जैसे भक्त बहुत थोड़े थे। रघुनन्दनकी कृष्ण भक्ति पर महाप्रभु उनके प्रति

बहुत प्रसन्न रहते थे। कहते हैं कि पांच वर्षकी उमर में ही रघुनन्दनके चित्तमें कृष्ण प्रेमका उदय हो गया था। तभीसे वे भक्त कहलाने लगे। गुणाकरविरचित यह मर्म लिखा है।

"कृष्णावेहरसानुगामधुरो च पञ्चवत्सरान्।
कृत्वा तस्य तुनिप्रदं परिवरेत् श्रीगोपीनाथायिनं॥
यस्य विशुकोयमा मुमधुरं श्रीरं स भावोर्मुदा।
साक्षं श्रीरघुनन्दना रिवको श्रीवपट्भुवक॥"

भक्तिसे रघुनन्दनने अपने गृहदेवता गोपीनाथको बचपनमें लड्डू खिलाया था। यह प्रसङ्ग पदकल्पतरुके उद्धवदासके पदमें सविस्तार लिखा है।

रघुनन्दन बड़े ही सज्जन थे। उनके शरीरका रंग सांवला था। वे अकसर पीतवस्त्र ही पहना करते थे। लम्बे लम्बे बालोंका जूड़ा बांधते थे तथा देवताको प्रसादी पुष्पमाला गलेमें पहनना बहुत पसन्द करते थे। ऐसे वेशमें सुसज्जित रघुनन्दनको देख सभी विमुग्ध होते थे।

रघुनन्दनका रचित "गौरनामामृतस्तोत्र" बहुत सुन्दर और सरल संस्कृतमें लिखा है, पढ़नेसे ही हृदय पिघल जाता है। रघुनन्दनने विवाह भी किया था। ठाकुर कन्हाई पुत्रका नाम था।

श्रीनिवासाचार्य और ठाकुर नरोत्तमके समय रघुनन्दन प्रौढ़ वयस्क थे। सभी उनका आदर करते थे। प्रतिप्रधान महोत्सवादिमें इनका बड़ा सम्मान होता था।

रघुनन्दन (सं० पु०) रघुन् रघुवंश-सम्भूतान् नन्दय तीति नन्दि-ल्यु। श्रीरामचन्द्र।

रघुनन्दन—वर्द्धमान प्रदेशके अन्तर्गत माड़ग्रामके निवासी एक पण्डित। ये नित्यानन्दवंशीय थे। इनके पिताका नाम था किशोरीमोहन गोस्वामी। इन्होंने भागवत सिद्धान्त मञ्जरमापरिणय, छन्दोमञ्जरीटीका आदि बहुतसे संस्कृत ग्रन्थ लिखे।

रघुनन्दन—१ कृष्णपूजापद्धतिके प्रणेता। २ छान्दोग्या पनिषद्भाष्यके रचयिता। ३ प्रायश्चित्ततत्त्व प्रमाणतत्त्व और रसयात्रापद्धति नामक दो ग्रन्थके प्रणेता। इन दो ग्रन्थोंकी भाषा और भाव पर्यवेक्षण करनेसे पता चलता है, कि ये दोनों ग्रन्थ स्मृतितत्त्वकार रघुनन्दनने लिखे हैं। ४ गृहस्थधर्ममाला नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। ५ विशुद्धिदर्पणके प्रणेता। ६ सङ्कल्पचन्द्रिकाके रचयिता। इनकी उपाधि भट्टाचार्य था।

रघुनन्दन आचार्यशिरोमणि—कलापतत्त्वार्णव नामक व्याकरणके प्रणेता।

रघुनन्दनगिरि—१ आसामप्रदेशके प्रोद्दह तिरातरगीन एक शैलमाला। त्रिपुराके पार्वत्यप्रदेशसे क्रमशः उत्तर की ओर फैल गए हैं। २ महूरके अन्तर्गत एक गिरि श्रेणी।

रघुनन्दन गोस्वामी—रामरसायन और श्रीराधामाधवो दय नामक दो बंगला काव्यके रचयिता। सौ वर्षसे कुछ अधिक पहले इन्होंने वर्द्धमान जिलेके माड़ग्राममें जन्म ग्रहण किया था। उनके पिता किशोरीमोहन एक प्रसिद्ध भागवत थे। उनकी माताका नाम रूपा और विमाता का नाम मधुमती था। नित्यानन्द प्रभुके वंशमें रघुनन्दनका जन्म हुआ था। उनकी वंशतालिका इस प्रकार है,—१ नित्यानन्द २ वीरभद्र, ३ वल्लभ, ४ रामगोविन्द, ५ विश्वम्भर, ६ बलदेव ७ किशोरीमोहन। रघुनन्दन पिताके सबसे छोटे लड़के थे। उनसे बड़े तीन भाइयोंके भी नाम मिलते हैं।

रामरसायनमें इन्होंने महाकवि वाल्मीकि और तुलसीदासका अनुसरण किया है। कविने उत्तरकांडमें करुणरसाश्रित सीतावर्जन, लक्ष्मणवर्जन सीताका पातालप्रवेश आदि शामिल नहीं किया है। यह ग्रन्थ इन्होंने अपने गृहप्रतिष्ठित श्रीराधामाधवविग्रहके नाम पर उत्सर्ग किया। इन राधामाधवको स्मरण कर इन्होंने कृष्ण और राधा लीलाविषयक बड़ा ग्रन्थ बनाया था। रघुनन्दनका दूसरा नाम भागवत था।

रघुनन्दन भट्टाचार्य—नवद्वीपवासी एक विख्यात स्मृति शास्त्रवित्। स्मार्त भट्टाचार्य या स्मार्त रघुनन्दन नाम से बङ्गाल भरमें इनकी प्रसिद्धि थी। इनके पिता हरिहर बन्दो भट्टाचार्य नवद्वीपवासी एक स्मार्त पण्डित थे। उनका बनाया हुआ समय-प्रदीप नामक स्मृतिग्रन्थ प्रसिद्ध है। हरिहर नवद्वीपमें स्मृतिकी टोल खोल कर लड़कोंको पढ़ाते थे। उनके बड़े लड़के रघुनन्दन और

छोटे यदुनन्दनने अपने पितासे ही लिखना पढ़ना सीखा था। यदुनन्दन कच्ची उमरमें ही पञ्चत्वको प्राप्त हुए।

रघुनन्दनका जन्म कब हुआ था, ठीक ठीक मालूम नहीं। कहा जाता है, कि १६वीं सदीके प्रथम भागमें नवद्वीपमें इनका जन्म हुआ। तत्सङ्कलित ज्योतिस्तत्त्व ग्रन्थमें रविसंक्रान्तिगणनामें लिखा है—

"नवाष्टशकहीनेन शकाब्दाङ्केन पूरिता" इससे १४८९ शकमें ज्योतिस्तत्त्वसङ्कलनका काल समझा जाता है। जनसाधारणके अनुमानके ऊपर निर्भर करके ज्योतिस्तत्त्वको यदि उनकी अन्तिम अवस्थाका ग्रन्थ माना जाय, तो उनका जन्म १४२५से १४३० शकके किसी समय साबित होता है। अतएव श्रीचैतन्य महाप्रभुके आविर्भावके प्रायः २०।२५ वर्ष बाद ही वे नवद्वीपमें अवतीर्ण हुए थे।

इनके बनाये हुए एकादशीतत्त्वमें, विष्णुपूजापद्धतिमें और आह्निकतत्त्वमें हरिभक्तिविलासग्रन्थका उल्लेख है। परन्तु रघुनन्दनका संग्रह ग्रन्थ हरिभक्तिविलासके बाद सङ्कलित हुआ था, इसमें सन्देह नहीं।

सनातन गोस्वामिकृत वृहद्वैष्णवतोषिणी नामक भागवतके दशम स्कन्धकी टीकामें ग्रन्थसमाप्तिके समय इस प्रकार लिखा हो गई है,—"शाके षट्सप्ततिमनौ पूर्णेयं टिप्पनी शुभा।" फिर उसी ग्रन्थके प्रथम अध्यायके ४थ श्लोकका टीकामें उन्होंने लिखा है,—"अन्यद्गवद्भक्तिविलासटीकायां कथामाहात्म्ये विस्तारितमेवास्ति।" अतः हरिभक्तिविलासटीका वृहद्वैष्णवतोषिणीके पहले अर्थात् १४७४ शकके पहले रची गई थी, ऐसा अनुमान किया जाता है। इससे मालूम होता है, कि उन सब ग्रन्थोंका अंश उक्त समयके आगे पीछे सङ्कलित हुआ था। इसके सिवा उसके ग्रन्थमें रायमुकुट (१४३१ ई०) का उल्लेख और निर्णयसिन्धु (१६१२ ई०) में उनके स्मृतितत्त्वका उल्लेख देख कर उन्हें दोनोंके मध्यवर्ती समयका आदमी कह सकते हैं।

रघुनन्दन बहुत शान्त स्वभाव और धीर प्रकृतिके आदमी थे। कहते हैं, कि हरिहरको अपने पुत्र (रघुनन्दन) की शिकायत नहीं सुननी पड़ी थी। रघुनन्दन जैसे शान्त थे, बचपनमें ही लिखने पढ़नेमें उनका वैसा ही ध्यान था। पाठशालाका पढ़ना समाप्त कर इन्होंने थोड़े ही समयके अन्दर व्याकरण, अभिधान और काव्यादि सीख लिये। इतने ही समयमें संस्कृतभाषामें इनका अच्छा अधिकार हो गया। वे इसी कच्ची उमरमें नई नई भावपूर्ण कविताएं लिख कर सहपाठी और अध्यापकके प्रेमभाजन हो गये। इसी समयसे लोगोंने इन्हें होनहार युवक समझ लिया था।

हरिहर भङ्गकुलीन सन्तान थे। भङ्गकुलीनोंमें उस समय बाल्यविवाह और बहुविवाह चलता था। इस कुप्रथाके विरोधी हरिहरने जब काव्यादिका पाठ शेष नहीं हुआ, तब तक अपने पुत्रका विवाह नहीं किया। विवाहके बादसे ही रघुनन्दन पितासे स्मृति सीखने लगे। स्मृतिशास्त्रमें व्युत्पत्ति लाभ कर उन्होंने नवद्वीपके तात्कालिक सुविख्यात स्मृतिवित् और मीमांसक श्रीनाथ आचार्यचूड़ामणिके निकट पढ़ना आरम्भ कर दिया। कहते हैं, कि इन्होंने वासुदेवसे भी शास्त्र पढ़ा था।

रघुनन्दनका समकाल ही यथार्थमें बङ्गालकी अभिनव समृद्धिका समय है। इस समय महात्मा श्रीचैतन्यदेव सनातन वैष्णवधर्मका मर्मोद्भेद कर सभी वर्णोंके लोगोंको धर्मपथके पथिक बना रहे थे। इस समय तर्क-केशरी रघुनाथ शिरोमणिने अपने अलोकसामान्य प्रतिभाबलसे तथा असाधारण तर्कशक्तिके प्रभावसे मिथिलाका गर्व चूर कर नवद्वीपमें न्यायकी प्रधानता स्थापनके साथ बङ्गालको विद्यागौरवमें श्रेष्ठस्थान दिया था। इस समय रघुनन्दन धर्मशास्त्रके लुप्तप्राय तत्त्वोंकी मीमांसा द्वारा उद्धार कर बङ्गीय हिन्दू-समाजमें अवश्य पालनीय बतलाते हुए उन्हें प्रचलित करनेके लिये तैयार हो गये। इससे बङ्गालमें एकादिक्रमसे विद्याधर्मका गौरव खूब बढ़ गया था।

इस समय बङ्गालके सिंहासन पर सुलतान सैयद हुसेन शाह बैठे थे। हुसेन शाहके दोर्दण्ड प्रतापसे और प्रायः ४ सौ वर्ष मुसलमानी संसर्गमें पड़ कर उस समय बङ्गवासियोंका आचार-व्यवहार, रीति नीति बहुत

कुछ बढ़ गई थी तथा हिन्दूधर्मकी विमल ज्योति दिन पर दिन घटती जा रही थी। मुसलमानी संसर्गसे समाज बन्धन ढीला पड़ गया था। ब्राह्मण और शूद्रमें कोई भेद न था, खान पानमें भी बहुत कुछ हेरफेर हो गया था। कितने हिन्दू प्रकाश्यभावमें इस्लाम धर्म ग्रहण कर रहे थे। इस प्रकार सामाजिक विप्लव देख कर सूक्ष्म दर्शी रघुनन्दनको समाज-संस्कारकी आवश्यकता सूझ पड़ी।

धर्मशास्त्रोंकी आलोचना करते समय रघुनन्दनको अच्छी तरह मालूम हो गया था, कि प्राचीन शास्त्रकारों का "नाना मुनिका नाना मत" है तथा नव्य स्मृति संग्राहकगण भी इन मतोंका ठीक ठीक सामञ्जस्य न कर सके हैं। इस प्राचीन और नव्य स्मृतिकारोंका समयोचित मत-सामञ्जस्य न कर सकनेसे धर्मानुष्ठान करना कठिन काम है तथा इसीलिये धर्माचरणके सम्बन्धमें समाजमें घोर विशृङ्खला उपस्थित हुई है। हिन्दू समाज जब तक धर्मशासनसे शासित नहीं होगा तब तक धर्मरक्षाका उपाय नहीं, समझ कर स्मार्तप्रवर रघुनन्दनने समाजबन्धनको दृढ़ करनेके लिये धर्मशास्त्र की नई टीका बनानेका सङ्कल्प किया।

स्मृतिसंग्रह करनेमें प्रवृत्त होने ही वे पहले मलमासतत्त्व संग्रह करने लग गये। इस ग्रन्थके प्रारम्भमें इन्होंने स्वरचित तत्त्वग्रन्थोंकी जो एक तालिका दी है वह इस प्रकार है,—

"मलिम्लुचे दायभागे संस्कारे शुद्धिनिर्णये।
प्रायश्चित्ते विवाहे च तिथौ जन्माष्टमीव्रते॥
दुर्गोत्सवे व्यवहारेकादश्यादिनिर्णये।
तडागभवनोत्सर्गे वृषोत्सर्गेऽपि मठे॥
प्रतिष्ठायां परीक्षायां ज्योतिषे वास्तुयागके।
दीक्षायामाह्निके कृत्ये क्षेत्रे श्रीपुरुषोत्तमे॥
सामगश्राद्धे यजुःश्राद्धे शूद्रकृत्यविचारणे।
इत्यष्टाविंशतिस्थाने तत्त्वं वक्ष्यामि यत्नतः॥ *

रघुनन्दनने स्वरचित स्मृतितत्त्वको इस प्रकार २८ अङ्गोंमें विभक्त कर २८ वर्ष घोर परिश्रमके बाद उसे समाप्त किया। इस दीर्घकालमें उन्होंने केवल शास्त्र ग्रन्थ पढ़ कर ही अपने मतको स्थापन किया था, सो नहीं। मिथिला, काशी आदि नाना स्थानोंमें घूम कर तथा उन देशोंके लोगोंका आचार-व्यवहार देख सुन कर वे अपना मत स्थापन कर गये हैं। किन्तु बङ्गालको छोड़ कर भारतमें और कहीं भी रघुनन्दनका मत प्रच लित नहीं देखा जाता है।

इन अट्ठाइस स्मृतितत्त्वोंमें हिन्दूके जन्मसे मृत्यु पर्यन्त समस्त कर्त्तव्य लिपिबद्ध हैं। उक्त ग्रन्थके सङ्कलन के समय परस्पर विरुद्ध मतोंको एकवाक्यता निरूपण करनेके लिये उन्होंने श्रुति, स्मृति, पुराण तन्त्रादि अन्य यन कर उन विषयोंका प्रमाण उद्धृत किया है। उन्होंने अपना असामान्य बुद्धिमत्ता मीमांसकता, सारग्राहिता और दूरदर्शिताके बलसे किसी किसी प्राचीन ग्रन्थका मत खण्डन करके अपने मतकी प्रतिष्ठा की है तथा ग्रन्थ विशेषकी सहायतासे श्रुति और स्मृतिकी और प्रकारसे व्याख्या करके विरोधभञ्जन-पूर्वक प्राचीन धर्मशास्त्रकी विधियोंको अदाण्डनीय और बलवत् रखनेका प्रयत्न किया है। पर हां, उन्होंने समयोपयोगी बनानेके लिये अपने ग्रन्थमें स्वकपोलकल्पित युक्तियोंको स्थान नहीं दिया है, ऐसा भी नहीं कह सकते।

पाश्चिमद्वीप श्रीमूतवाहनने दायभागके सम्बन्धमें जैसा भूयोदर्शन और व्युत्पत्तिका परिचय दिया है, रघुनन्दनने भी आचार सम्बन्धमें उससे बढ़ कर क्षमता दिखलाई है। वर्तमान समयमें बङ्गालके लोग रघुनन्दनके ग्रन्थके अधिकारी न होनेसे कोई भी स्मार्त नामसे अभिहित नहीं कर सकते हैं। किस प्रकार साक्षी की परीक्षा करना होती है, किस प्रकार उसका विचार

* १ मलमास, २ दायभाग, ३ संस्कार, ४ शुद्धि ५ प्रायश्चित्त, ६ विवाह, ७ तिथि, ८ जन्माष्टमी, ९ दुर्गोत्सव १० व्यवहार, ११ एकादशी, १२ जलाशयोत्सर्ग, १३ ऋग्वेदीय वृषोत्सर्ग, १४ यजुर्वेदीय वृषोत्सर्ग, १५ सामवेदीय वृषोत्सर्ग, १६ मठ, १७ देवप्रतिष्ठा, १८ दिव्य १९ ज्योतिष, २० वास्तुयाग २१ दीक्षा २२ आह्निक, २३ कृत्य, २४ मठप्रतिष्ठा, २५ पुरुषोत्तमक्षेत्र २६ छन्दोग श्राद्ध २७ यजुर्वेदीय श्राद्ध, २८ शूद्रकृत्यविचार।

करना होता है तथा अन्यान्य कर्मचारीके प्रति कैसा व्यवहार करना उचित है, व्यवहारतत्त्वमें वे इसकी अच्छी तरह आलोचना कर गये हैं।

रघुनन्दनके ग्रन्थमें उस समयके प्रचलित आचार-व्यवहारमें बहुत परिवर्तन देख नवद्वीप और अन्यान्य स्थानोंके अध्यापक उनके मतका प्रतिवाद करने लगे। किन्तु इन्होंने ऐसी दृढ़ता और सुयुक्तिके साथ आत्म-पक्षका समर्थन किया था, कि उसके विरोधियोंको आखिर अपनी हार कबूल कर रघुनन्दनका मत स्वीकार करना पड़ा था।

इस शास्त्रीय विचारमें जयलाभ करनेके बाद रघु-नन्दनका यश चारों ओर फैल गया तथा दिनों दिन नाना स्थानोंसे छात्रगण उनके टोलमें पढ़नेके लिये आने लगे। रघुनन्दनकी सुशिक्षासे छात्रवृन्दकी भी गुरु-भक्ति अचल हो गई थी। वे छात्र भी जब आगे चल कर स्वयं अध्यापक होते, तब अध्यापकके प्रति अचला भक्तिवशतः गुरुके ग्रन्थसे अपनी अपनी छात्रमण्डलीको शिक्षा देते थे। इस प्रकार थोड़े ही समयमें उनका स्मृतिग्रन्थ बङ्गालमें चारों ओर फैल गया। जिन सब प्राचीन स्मृतिकारोंके ग्रन्थसे उन्होंने ग्रन्थसङ्कलन किया था, उनके ग्रन्थका अध्ययन वा अध्यापना बिलकुल विलुप्त हो गई।

पहले ही लिख आये हैं, कि रघुनन्दनका स्मृतिग्रन्थ प्रचलित होनेके बाद प्राचीन रीति-नीतिमें बहुत परिवर्त्तन हो गया। हिन्दूशास्त्रके मतसे ब्राह्मणोंके लिये सिद्ध चावल, मछली और मसूरकी दाल खाना निषिद्ध था। मुसलमानी अमलमें कितने ही ब्राह्मण सिद्ध चावल, मसूर-की दाल आदि छिपके खाने लगे थे। रघुनन्दनने साम-यिक व्यवहार देख कर निषिद्ध द्रव्य भक्षणकी व्यवस्था कर दी थी। तिथितत्त्वमें इन्होंने आर्य ऋषियोंकी प्रणो-दित तिथिविशेषमें निषिद्ध आहार्य वस्तुकी सम्यक् आलोचना की। फलतः इन्हींका नियम समाजमें विशेष रूपसे प्रचलित होने लगा। प्राचीन मतानुसार एकादशी-तिथि परिमित काल उपवासी रहनेसे एकादशीका फल होता था। किन्तु इन्होंने एकादशीके सम्बन्धमें एक दिन उपवासका नियम निकाला। असुस्थ, रुग्न अथवा शैशवावस्थाके कारण विधवा यदि एकादशीमें उपवास न कर सकती, तो वे अन्यान्य शास्त्रानुसार अनुकल्प कर सकती थीं, परन्तु रघुनन्दनने शास्त्रीय प्रमाण दिखलाते हुए इसे निषेध कर दिया है।

ब्राह्मण कुलीनोंके मध्य मेल प्रचलित होनेके सौ वर्ष-के भीतर वंशज-चूड़ामणि स्मार्त्त रघुनन्दन आविर्भूत हुए थे। वे राढ़ीय समाजकी अवस्था देख कर बड़े दुःखित हुए तथा उच्च-सम्मानप्राप्त कुलीन ब्राह्मण समाजमें शास्त्रवहिर्भूत आचार व्यवहार, विधर्मीका अनुकरण, सनातन धर्ममें अविश्वास, परश्रीकातरता, परस्पर विद्वेषिता, मूर्खकी प्रधानता, पण्डितके प्रति असम्मान आदि व्यभिचार देख इन्होंने इसके प्रतिविधानके लिये ही प्रधानतः 'स्मृतितत्त्व' प्रचार करनेका संकल्प किया।

मेलबन्धनके कारण पात्राभावप्रयुक्त कुलीन कन्याओं-का विवाह कहीं बंद न हो जाय इस भयसे जब श्रीनाथा-चार्य आदि कुलीन व्यक्तियोंने शास्त्रीय वचनको उद्धृत कर वयस्था कन्याका विवाह और बहु-विवाहका समर्थन किया, तब अनाचार-विरोधित वंशज समाजके मुखपात्र रघुनन्दनने अपने 'उद्वाहतत्त्व'में उनलोगोंके मतको अशा-स्त्रीय बतलाते हुए खण्डन किया था।

प्रवाद है, कि रघुनन्दन स्मृतितत्त्व निकालनेके बाद ही पितृपुरुषोंका श्राद्ध करनेके लिये गया धाम गये। पिण्डदानको इच्छासे जब वे मन्दिर घुसने लगे तब पंडा लोगोंने उनसे असम्भव मूल्य मांगा। इस पर वे गुस्सा कर चले आये और एक कोस तक गयाक्षेत्र का परिमाण निर्देश करके एक मैदानमें पिण्डदान करने तैयार हो गये। पीछे पंडा लोगों को जब मालूम हुआ, कि ये नवद्वीप-के स्मार्त्त भट्टाचार्य्य हैं, तब वे उन्हें बड़ी विनतीसे श्रीमन्दिर ले गये और श्राद्धादि कराये। गयालियोंको रघुनन्दनकी क्षमताका हाल मालूम था। बाहरमें पिण्ड-दान करनेसे सभी वङ्गवासी उनका पदानुसरण करेंगे, जिससे उनके स्वार्थमें धक्का पहुंचेगा, यह जान कर वे लोग उन्हें प्रसन्न करने लगे।

उनके स्मृतिसंग्रहकी सभी व्यवस्था प्रायः वङ्गदेशमें प्रचलित हुई है, केवल संस्कारतत्त्वकी उपनयन-विधि प्रचलित नहीं है। आज भी वङ्गवासी ब्राह्मणोंके प्राचीन मतानुसार ही उपनयन हुआ करता है।

अष्टाविंश स्मृतितत्त्वके अलावा ये रासयात्रापद्धति, सङ्कल्पचन्द्रिका, त्रिपुष्करशान्ति, प्रमाणतत्त्व, जीमूतवाहन कृत दायभागकी टीका और द्वादशयात्रा नामक और भी कितने ग्रन्थ लिख गये हैं। उन सब ग्रन्थोंमें इन्होंने असाधारण पाण्डित्य, विचारशक्ति, प्रगाढ़युक्ति और सूक्ष्मदर्शिताका अच्छा परिचय दिया है। इस प्रकार विद्याबुद्धिसम्पन्न होते हुए भी अहङ्कार उनमें लेशमात्र भी न था। उनके लिखे मलमासतत्त्वके अन्तिम श्लोकसे उसका यथेष्ट आभास पाया जाता है—

"किञ्च गुरुजनमन्य यद्व भाषित मया।
तत्क्षन्तव्य सुधीभि स्मृतितत्त्व बुभुत्सया॥"

इस प्रकार रघुनन्दन भारतीय शास्त्रसागरमें व्याप्त रह कर प्रायः सत्तर वर्षकी उमरमें पञ्चत्वको प्राप्त हुए।* कुछ दिन हुआ उनका वंश लोप हो गया है। राढ़ीय कुलपञ्जिकामें रघुनन्दनके पुत्र रमापति सिद्धान्त, रमापतिके पुत्र रामनाथ भट्टाचार्य और रामनाथके पुत्र गोपीनाथ चक्रवर्तीके नाम पाये जाते हैं। रघुनन्दनके अष्टाविंश तत्त्वोंकी दो टीका हैं, उनमें एक काशीराम वाचस्पतिकी और दूसरी नाल्तिपुरनिवासी भट्टोत्तरवंशीय राधामोहन गोस्वामीकी बनाई हुई है।

रघुनाथ (सं० पु०) रघूणां नाथः कृष्णादित्वात् णत्वाभावः। श्रीरामचन्द्र।

रघुनाथ—बंगालका एक नामी डकैतोंका सरदार। इसकी भीमवीर्यकी कथा बंगालियोंके हृदयमें अङ्कित है। बालक दुर्दान्त होनेसे जनता इसे राघो डकैत कहा करती थी। कलकत्ताके उत्तर काशीपुरमें जो बारह शिवमन्दिर हैं उसे राघोने बनाया था, ऐसा प्रवाद है।

रघुनाथ—१ आश्रयबोधिप्रयोगके रचयिता। २ आचारपद्धति, दशाभावपद्धति और आद्यपद्धतिके प्रणेता। ३ अशौचनिर्णयके रचयिता। ४ केशवार्ककृत जातकपद्धतिकी टीकाके प्रणेता। ५ कवलनचूडामणि नामक वेदान्तग्रन्थके रचयिता। ६ काव्यप्रकाशसारटीकाके प्रणेता। यह नारायणके भतीजा थे। ७ खेटतरङ्गिणी नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। ८ गयाकृत्य वा गयानुष्ठानपद्धति नामक ग्रन्थके प्रणेता। ९ जातिविवेकके प्रणेता। १० ज्योतिर्निर्णयके रचयिता। ११ तत्त्वदीपके टीकाकार। १२ द्रव्यशुद्धिके प्रणेता। १३ धर्मसेतुके प्रणेता। १४ पुरुषोत्तमभट्टकृतनाम नामक ग्रन्थकी नामचन्द्रिकाके टीकाकार। १५ पूर्णमालाके रचयिता। १६ प्रायश्चित्तकुतूहलके प्रणेता। १७ प्रहबोध और प्रतापबोध नामक दो ग्रन्थके रचयिता। १८ भक्तिमीमांसासूत्र और भक्तिर्मन्यासनिर्णय विवरणके प्रणेता। १९ भरतशास्त्र नामक सङ्गीतग्रन्थके रचयिता। २० भास्करसमुच्चय नामक ज्योतिर्ग्रन्थके सङ्कलयिता। २१ यतिधर्मसमुच्चय और यत्यन्तकर्मपद्धति नामक दो ग्रन्थके प्रणेता। २२ वैद्यविलासके रचयिता। २३ शाङ्कायनमूलसूत्रार्थदर्पणके रचयिता। २४ शीघ्रसिद्धिका नामक ज्योतिर्विषयक ग्रन्थके प्रणेता। २५ सरस्वतीसूत्रलघुभाष्य नामक व्याकरणके प्रणेता। २६ सुगमबोध और सुबोधमञ्जरी नाम्नी ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। २७ हितसमटीकाके प्रणेता। २८ धर्मामृतमहोदधि नामक ग्रन्थके रचयिता तथा अनन्तदेवके पुत्र। २९ एक कवि तथा जयरामके पुत्र। इन्होंने १६५४ ई०में रसिकरमणकाव्य बनाया। ३० प्रयोगरत्नके प्रणेता। इनके पिताका नाम था भानुजी। ३१ जातककल्लोल या कल्लोल जातक नामक ग्रन्थके प्रणेता और लक्ष्मणके पुत्र। रामपूतानामें ये रघुनन्दन नामसे भी परिचित थे। ३२ शाङ्खायनीय वैवाहव्यप्रयोगके रचयिता। ये १५११ ई०में जीवित थे। इनके पिताका नाम कल्मेश्वर तथा पितामहका नाम गोवर्द्धन था। ३३ विट्ठल दीक्षितके पुत्र। ये पद्य नामक एक ग्रन्थ बना गये हैं। ३४ मुहूर्त्तमालाके रचयिता। इनके पिताका नाम था सरस। चित्तपावन ब्राह्मणवंशमें इनका जन्म हुआ था। ३५ पद्यावलीधृत एक कवि।

रघुनाथ आचार्य—१ सत्यनिधितीर्थ (मृत्यु १६६१ ई० में) तथा सत्यनाथ तीर्थ (मृत्यु १६७४ ई०में)-के सन्न्यासाश्रमग्रहणका पूर्व नाम। २ भोरायणीय काव्य और सुभद्रापरिणय नाटकके प्रणेता। ३ मुहूर्त्तसर्वस्वके रचयिता। ४ यादवराघवीयके प्रणेता।

रघुनाथ उपाध्याय—कवीन्द्र-चन्द्रोदयधृत एक कवि।

* बङ्गेर जातीय इतिहास ब्राह्मणकाण्ड १म भागके २६५ पृष्ठमें विस्तृत देखो।

रघुनाथ कवि—१ भागवतचम्पूके प्रणेता। २ संस्कृतमञ्जरी नामक व्याकरणके रचयिता।

रघुनाथ कवि—काशीके रहनेवाले एक वन्दीजन और भाषाके कवि। इनका जन्म १८०२ सम्वत्में हुआ था। ये वरिवंडा नरेशके दरवारी कवि थे। इनकी गणना भाषा साहित्यके आचार्योंमें होती है। इनके वनाये ग्रन्थ वड़े मनोहर हैं, वे ये हैं—रसिकमोहन, जगमोहन, काव्य कलाधर, इश्कमहोत्सव।

रघुनाथ कवि—रघुनाथ इनका छाप नाम था। इनका नाम पंडित शिवदीन था। ये रसूलाबादके रहनेवाले ब्राह्मण थे। इनके वनाये भाषामहिम्न आदि कई छोटे छोटे ग्रन्थ हैं।

रघुनाथ कवि—कवीश्वर राजा अमरसिंह जोधपुरके दरवारी। इनका जन्म सम्वत् १६२५ में हुआ था। इनका पूरा नाम था रघुनाथ राय।

रघुनाथ कवि—अयोध्यामें रहनेवाले एक भक्त कवि। इनका पूरा नाम था महन्त रघुनाथ दास। ये ब्राह्मण थे और पैतेपुर जिला सीतापुरके निवासी थे। तदनन्तर संसारसे चित्त उपराम होनेके कारण अयोध्याओंमें रहने लगे। इन्होंने रामचंद्रकी स्तुतिमें अनेक कवित्त दोहे वनाये हैं।

रघुनाथगञ्ज—मुर्शिदावाद जिलान्तर्गत एक नगर और प्रधान वाणिज्य स्थान।

रघुनाथ चक्रवर्त्ती—वङ्गालके एक अद्वितीय शाब्दिक और अमरकोषके टीकाकार। वङ्गालके पाश्चात्यवैदिककुलमें आखोड़ाके शाण्डिल्यवंशमें इनका जन्म हुआ था। महादेवशाण्डिल्यके सम्बन्धतत्त्वार्णव और लक्ष्मीकान्त वाचस्पतिकी सद्वैदिक कुलपञ्जिकासे मालूम होता है, कि रघुनाथके वृद्ध पितामह रामानन्द हाजोंके भयसे आखोड़ा समाजका परित्याग कर सामन्तसारमें आ कर वस गये। उनके पुत्र गङ्गानन्द और गङ्गानन्दके पुत्र रतिनाथ थे। रतिनाथने सामन्तसारके शौनक-समाजदारवंशमें विवाह किया था। रतिनाथके पुत्र गौरीकान्त थे। गौरालीय वशिष्ट प्रसिद्ध पण्डित श्रीकृष्ण-वेदभूषणकी कन्याके साथ गौरीकान्तका विवाह हुआ। उन्हींके गर्भसे रामनाथ और प्रसिद्ध शाब्दिक रघुनाथ उत्पन्न हुए। सामन्तसारमें ही रघुनाथका जन्म हुआ था, इस कारण उन्होंने अपनी टीकामें "सामन्तसारनिलयः" कह कर अपना परिचय दिया है। पिताकी आज्ञासे इन्होंने जप्साके कृष्णात्रेय गोत्रीय गोपालकी कन्यासे व्याह किया था। उस स्त्रीके गर्भसे इनके रामकृष्ण और रामचन्द्र नामक दो पुत्र तथा एक कन्या उत्पन्न हुई। रघुनाथका दूसरा विवाह कोटालीपाड़के सुविख्यात शुनकवंशमें हुआ था।

इदिलपुरके कायस्थ जमींदार श्रीवल्लभराय चौधरीके उत्साहसे रघुनाथने 'त्रिकाण्डचिन्तामणि' नामक अमरकोषकी टीका लिखी। इसके सिवा उनका प्रतिष्ठित गोपालविग्रह है। उनके वंशधर आज भी उनकी सेवा करते आ रहे हैं। रघुनाथके सामन्तसारकी वासभूमि जलमग्न हो जानेसे उनके पुत्र रामचन्द्र इदिलपुरमें चले आये। इदिलपुरके अन्तर्गत आमतली और तुलासारमें आज भी उनके वंशधर रहते हैं। रघुनाथने धानुकाके कृष्णात्रेय वलराम वाचस्पतिसे दीक्षा ली थी। धानुकाग्रामस्थ देव-मन्दिरमें उत्कीर्ण शिलालिपिसे जाना जाता है, कि १६७५ शकाब्दमें वलराम वाचस्पतिने पिताकी मुक्तिकामनासे पार्वती सहित काशीश्वरमूर्त्ति स्थापित की। अतएव वलरामके मन्त्रशिष्य रघुनाथका उस समय जीवित रहना सम्भव है।

रघुनाथ चक्रवर्त्ती—श्रीधरकृत वेदस्तुति टीकाके टिप्पनीकार।

रघुनाथ तर्कवागीश—एक असाधारण तान्त्रिक, आगमतत्त्वविलास नामक तन्त्रग्रन्थके रचयिता।

रघुनाथ तर्कवागीश भट्टाचार्य—साख्यतत्त्वविलासके रचयिता। ये शिवराम चक्रवर्त्तीके पुत्र और चन्द्रचन्द्रके पौत्र।

रघुनाथ तिरुमल सेतुपति—दाक्षिणात्यके एक हिन्दू नरपति।

रघुनाथतीर्थ—एक विख्यात पण्डित और संन्यासी। इनका पूर्व नाम कृष्णशास्त्री था। विद्यानिधितीर्थकी मृत्युके वाद इन्हें राजगद्दी मिली थी। १४४३ ई०में इनकी जीवनलीला शेष हुई।

रघुनाथदत्त—एक शीतलामङ्गलपालाके रचयिता।

रघुनाथदास—काशीमाहात्म्यकौमुदीके प्रणेता। रूप गोस्वामीकृत दानकेलिकौमुदीकी एक टीका और साध्य रसतत्त्वसंग्रह नामक दूसरे एक ग्रन्थके प्रणेता।

रघुनाथदास गोस्वामी देखो।

रघुनाथदास—ये महाशय रामानुज सम्प्रदायके महन्त थे। इस सम्प्रदायके महन्त गोविन्ददास अग्रदासके द्वारमें हुए। इन्होंने संवत् १९११ अब्दमें विश्राम सागर नामक एक वृहत् ग्रन्थ बनाया। इनके शिष्य सन्तराम, कृपाराम रामचरण रामप्रपन्न, कान्हर और हरिदास थे। रघुनाथदासके गुरु देवदासजी इन्हीं महात्मा हरिदासजीके शिष्य थे। इन्होंने फकीर होनेके अतिरिक्त अपने कुल गोत्र आदिका कुछ ब्योरा नहीं लिखा है। ये सब महात्मा अयोध्यामें बड़े महन्त थे। अयोध्यामें रामघाटके रास्ते पर रामनिवास नामक एक स्थान है। उसी पर ये लोग रहते थे और उसी स्थान पर इस महात्माने यह ग्रन्थ बनाना आरम्भ किया। रघुनाथदासने स्थानस्थानमें गोस्वामी तुलसीदासका अनुकरण किया है। यहां तक, कि कई जगह गोस्वामीजीके भाव भी विश्रामसागरमें आ गये हैं। इस ग्रन्थके पढ़नेसे ज्ञात पड़ता है, कि रघुनाथदासजी पूरे भक्त थे और उन्होंने भक्तोंके विनोदार्थ यह ग्रन्थ बनाया था। इसकी रचना ब्रजविलास और रामाश्वमेधके समान है। इन महात्माने संस्कृत ग्रन्थोंकी बहुत-सी कथाएं लिखी हैं और कुछ श्लोक भी बनाये हैं। इससे विदित होता है, कि ये संस्कृतके जाननेवाले थे। इनकी भाषा गोस्वामी तुलसीदासकी भाषासे मिलती जुलती है और उत्तमतामें ब्रजविलासके समान है। इनके वर्णन सादा एवं उत्तमताके हैं।

रघुनाथदास गोस्वामी—एक प्रसिद्ध भक्त वैष्णव। हुगली जिलेके अन्तर्गत सप्तग्रामके निकट हरिपुर नामक एक स्थान है। प्रायः चार सौ वर्ष पहले यह हरिपुर एक समृद्धिशाली ग्राममें गिना जाता था। हिरण्य और गोवर्द्धन नामक दो भाई यहां रहते थे। बीस लाख रुपयेके अधिकारी हिरण्य और गोवर्द्धनका प्रसिद्ध सप्तग्राममें अच्छा सम्मान था। जातिके ये कायस्थ थे। मजुमदार इनकी उपाधि थी।

इन दोनों भाइयोंमें छोटे गोवर्द्धनके ही पुत्रका नाम रघुनाथदास था। रघुनाथकी प्रकृति बहुत विचित्र थी। बचपनसे ही वे संसारविरागीकी तरह रहा करते थे। जब हरिदास ठाकुर कुछ दिनके लिये हरिपुरके समीप चांदपुर आते थे, तब रघुनाथ उनकी सेवा-टहल किया करते थे। इस समय रघुनाथने पुरोहित बलराम आचार्यके घर रह कर लिखना पढ़ना आरम्भ कर दिया। इसी समय महाप्रभु चैतन्यका नाम उनके कर्णगोचर हुआ। रघुने गौराङ्गका नाम सुनते ही उनके चरणोंमें आत्म समर्पण कर दिया। उस समय उनका धैर्य अन्तर्हित हो गया, वे आत्मालोचना, सांसारिक सुख यहां तक, कि आहारनिद्राका परित्याग कर गौराङ्गप्रभुके दर्शनलाभका उपाय ढूंढने लगे। उन्होंने भटके भाग कर गौराङ्गके समीप जानेकी चेष्टा की। रघुनाथके पिताको पुत्रके ऐसे आचरण पर बहुत डर हो गया और कहीं वे भाग न जांय, इस अभिप्रायसे उन्होंने पांच पहरेदार और स्नान करानेके लिये दो ब्राह्मण नियुक्त कर दिया। केवल यही नहीं संसारमें आबद्ध करनेके लिये उसी थोड़ी उमर (१७ वर्ष) में एक अनुपम-यौवना सुन्दरी बालिकाके साथ इनका विवाह कर दिया। किन्तु इससे कुछ भी फल न निकला। जिस प्रेमके प्रबल आकर्षणसे व्रज-गोपियां पति-पुत्रका परित्याग कर पागलकी तरह कृष्णके पीछे रेतीली भूमिमें घूमती थी रघुनाथ उस प्रेमके आकर्षणको छिन्न न कर सके। एक दिन रातको उनके गुरु यदुनन्दनाचार्यने जब इन्हें किसी काममें बाहर भेजा, तब वे गुरुकी आज्ञा पालन कर ऊर्द्ध्वश्वास लेते हुए नीलाचलकी ओर चल दिये। आहारनिद्राका परित्याग कर बारह दिनमें वे नीलाचल पर प्रभुसे जा मिले।

रघुनाथके साथ महाप्रभुने सदय व्यवहार किया। उन्होंने रघुनाथको अपने "द्वितीय स्वरूप" स्वरूप दामोदरके हाथ समर्पण किया। चैतन्यचरितामृतमें लिखा है, कि रघुनाथका वैराग्य अतुलनीय था।

रघुनाथ सोलह वर्ष तक नीलाचल पर महाप्रभुकी सेवा करते रहे। महाप्रभुके अन्तर्धानके बाद वे वृन्दावन गये। चरितामृतमें लिखा है, कि वृन्दावनमें रहते समय वे कभी

भी अन्न नहीं खाते, दिनमें केवल दो तीन पल मट्ठा पी कर रहते थे। रात दिन वे राधाकृष्णकी चिन्तामें विभोर रहते थे।

महाप्रभुने प्रसन्न हो कर रघुनाथको एक गुञ्जा-माला और एक गोवर्द्धन-शिला दी थी। रघुनाथ उसीकी सेवा किया करते थे।

रघुनाथ पहले गोवर्द्धनके समीप और पीछे राधा कुण्डके निकट रहते थे। इस राधाकुण्ड और श्याम कुण्डका उद्धार ही रघुनाथकी एक कीर्त्ति है। उक्त विलुप्त दोनों तीर्थोंका यदि उद्धार न होता तो वैष्णवोंके विषादकी सीमा न रहती।

यहां रहते समय रघुनाथने अपने अपूर्व संस्कृत-स्तवमाला ग्रन्थ (स्तवावलीग्रंथ), संस्कृत दानचरित और मुक्ताचरित ग्रन्थोंकी रचना की। यहीं पर रहते हुए वे वङ्गभाषामें कुछ पद्य लिख कर वङ्गभाषाका गौरव बढ़ा गये हैं।

वृन्दावनमें श्रीरूपादिके अन्तर्द्धान पर रघुनाथ बड़े व्यथित हुए। उस समय उन्हें चारों ओर सूना दिखाई देता था। उन्होंने लिखा भी है—

"शून्यायते महागोष्ठ गिरीन्द्रोऽजगरायते।
व्याघ्रतुण्डायते कुण्डं जीवातुरहितस्य मे॥" इत्यादि

रघुनाथ शैशवावस्थामें नीलाचल पर आये थे। उनका नीलाचल जीवन तैलहीन प्रदीपके जैसा था—मनमें जरा भी प्रसन्नता न थी। वहां आश्विनी शुक्लाद्वादशी-तिथिको इनका प्राणान्त हुआ।

रघुनाथदास गोस्वामी—गुणलेशसुखद, मनःशिक्षा और सुरावली नामक ग्रन्थके प्रणेता।

रघुनाथ दीक्षित—१ आश्वलायनगृह्यकारिकाके रचयिता। २ कवीन्द्रचन्द्रोदयोद्धृत एक कवि।

रघुनाथ पण्डित—कृष्णप्रेमतरंगिणी नामक भागवतके अनुवादक। इनकी उपाधि भागवताचार्य थी। ये गदाधर पण्डितके शिष्य थे। १६वीं सदीके पहले इन्होंने भागवतका वङ्गानुवाद प्रचार किया। १५७६ ई०में विरचित कविकर्णपूरकी गौरगणोद्देशदीपिकामें इस पुस्तकका उल्लेख है। अनुवाद प्रायः २० हजार श्लोकोंसे पूर्ण है।

रघुनाथ पण्डित—राजकोषनिघण्टु या राजव्यवहारकोष नामक अभिधानके प्रणेता। इनके पिताका नाम था नारायण। ये महाराष्ट्र केशरी शिवाजीके (१६६४-८० ई०) एक प्रधान मन्त्री थे।

रघुनाथपुर—मानभूम जिलान्तर्गत एक महकमा। गौराङ्ग-डाहीसे ८ मील पश्चिम रघुनाथपुरके जंगलोंसे समावृत गण्डशैलमाला दिखाई पड़ती है। यह समुद्रपृष्ठसे एक हजार फुट ऊंची है। उसकी तीन चोटी ऐसी सीधी खड़ी हैं, कि इस पर सहजमें चढ़ना कठिन है।

रघुनाथपुर—बंगालके वीरभूम परगनेके अन्तर्गत एक बड़ा गांव।

रघुनाथपुरम्—मद्रासप्रदेशके गंजाम जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १६ ४३´ ४०´´ उ० तथा देशा० ८४´ ५६´ पू० तक विस्तृत है।

रघुनाथ प्रसाद—ये चरखारीके रहनेवाले थे। इनका जन्म सम्वत् १९०४में हुआ था। इन्होंने निम्नलिखित ग्रन्थ बनाये,—शृङ्गारचन्द्रिका, षट्ऋतुदर्पण, काव्यसुधाकर, रसिकयशोकर, संगीतसुधानिधि, मोदमहोदधि, दुर्गाभक्तिप्रकाश, मनमोजप्रकाश, शान्तिपचासा, राधिकानखशिख, रसिकमनोहर, राधाकृष्णपचासा। इनकी मृत्यु संवत् १९५८में हुई।

रघुनाथ प्रसाद—साधारण श्रेणीके एक ग्रन्थ-रचयिता। ये जौनपुरके रहनेवाले थे। इनका जन्म १९०१ सम्वत्में हुआ था। इन्होंने निर्णयमंजरी नामक ग्रन्थ लिखा।

रघुनाथ भट्ट—१ स्मृतिरत्न नामक ग्रन्थके प्रणेता। २ याज्ञवल्क्यस्मृतिटीकाके रचयिता। ३ मणिप्रदीप नामक ज्योतिर्ग्रन्थके सङ्कलयिता। ४ गोविन्दलीलामृत नामक ग्रंथका बनानेवाला। ५ गोत्रप्रवरनिर्णयके रचयिता।

रघुनाथभट्ट गुर्जर—एक कवि। कवीन्द्रचन्द्रोदयसे इनका पता चलता है।

रघुनाथभट्ट गोस्वामी—श्रीगौराङ्ग प्रवर्त्तित छः गोस्वामीमेंसे एक। वैष्णवसमाजमें ये सभी 'साधारण गुरु' कहलाते थे। इन्होंने वैष्णवधर्मका प्रचार करनेके लिये बहुतसे वैष्णव-ग्रंथ प्रकाशित किये। इन छः गोस्वामीके यत्नसे ही वृन्दावन धामका नाम तमाम फैला तथा चौरासी वनोंका निर्णय हुआ था।

पद्मानदीके तीरवर्त्ती रामपुर ग्राममें तपनमिश्र नामक एक साधु रहते थे। श्रीगौराङ्ग महाप्रभु अपना पूर्ववङ्गकी यात्रामें तपनमिश्रके साथ मिले। उन्होंने तपनमिश्रको साध्यसाधनतत्त्वकी शिक्षा दी थी। तपनके प्रभुके साथ नवद्वीप जानेकी इच्छा प्रकट करने पर प्रभुने उन्हें वाराणसी जानेका हुक्म दिया और कहा कि वहीं पर मेरे साथ मुलाकात होगी। तदनुसार तपन सलोक साथ वाराणसी गये। लगभग १४२७ शकमें तपनमिश्रके एक पुत्र उत्पन्न हुआ उन्हींका नाम रघुनाथ था। पीछे उन्होंने भट्ट गोस्वामी उपाधिसे वैष्णवसमाजमें प्रतिष्ठा लाभ की थी।

श्रीमहाप्रभुने संन्यास ग्रहणके बाद जब वृन्दावनकी यात्रा की, तब वे वाराणसीधाममें तपनमिश्रके घर ठहरे और भोजनादि किये थे। तपनके पुत्र रघुनाथ उस समय यथासाध्य महाप्रभुकी सेवा-शुश्रूषा करते थे।

श्रीमहाप्रभुके नीलाचल लौटने पर रघुनाथ भट्ट वहीं आ कर उनसे मिले। नीलाचल पर आठ मास रह कर इन्होंने प्रभुकी सब लीला देखी अर्थात् वैष्णवधर्ममें विशेष अभिज्ञता प्राप्त की।

रघुनाथ पाक कार्यमें सुदक्ष थे; नीलाचलमें ये स्वयं पाक कर श्रीमहाप्रभुको खिलाते थे। रघुनाथके पाक करनेका तरीका वैष्णवग्रन्थादिमें भी लिखा है।

नीलाचलसे रघुनाथने जब काशी जानेकी आज्ञा माँगी, तब प्रभुने उनके प्रति कृपा बरसाते हुए उन्हें इस प्रकार उपदेश दिया था, "विवाह न करना, पिता माता की आज्ञा पालन करना, सदा भागवतका पाठ करना और पुनः एक बार नीलाचलमें मिलना।" इतना कह कर उन्हें माला पहनाई, चौदह हाथ जगन्नाथकी माला दी और पीछे आलिङ्गन कर विदा किया।

रघुनाथने काशी लौट कर प्रभुके आदेशानुसार विवाह नहीं किया। कौमार्य व्रतका अवलम्बन कर ये काशीक्षेत्रमें विविध शास्त्रका अध्ययन करने लगे। धीरे धीरे ये एक सुपण्डित हो गये थे। पिता माताके स्वर्गवासी होने पर रघुनाथ वृन्दावन आये। श्रीरूप और सनातनके साथ इनका परिचय हो गया।

रूपगोस्वामी और सनातन देखो।

ये श्रीरूपकी सभामें भागवत पाठ करते थे। उस समय इनके जैसा पाठक और कोई भी न था। भक्तिरत्नाकरमें इसका पूरा विवरण दिया है।

भट्ट रघुनाथका बनाया हुआ कोई भी ग्रन्थ देखनेमें नहीं आता। किसी किसीने पूर्ववङ्गमें महाप्रभुकी लीलाके संबंधमें उनके बनाये हुए एक ग्रन्थका उल्लेख किया है। भट्टगोस्वामी वृन्दावनधाममें १५०१ शकको आश्विनी शुक्लद्वादशीको स्वर्गधाम सिधारे।

रघुनाथ भूपाल—अश्वमेधपर्व-संग्रह नामक ग्रन्थके सङ्कलयिता।

रघुनाथ मस्करी—दुर्गामाहात्म्यकी टीकाके प्रणेता

रघुनाथ मिश्र—सारसंग्रह नामक वैद्यकग्रन्थके रचयिता।

रघुनाथ मिश्र—होरप्रकाशके प्रणेता।

रघुनाथ यति—१ भगवन्नामकौमुदीके प्रणेता तथा लक्ष्मीधराचार्यके गुरु। २ पूजाविधिके प्रणेता।

रघुनाथ यतीन्द्र—तत्त्वसार नामक वेदान्तग्रन्थके प्रणयनकर्त्ता।

रघुनाथ याज्ञिक—अच्छावाकप्रयोग और ग्रावस्तोत्रमैत्रावरुणप्रयोगके प्रणेता। इनके पिताका नाम था अयाचित रुद्रभट्ट।

रघुनाथ राय (दीवान)—एक सङ्गीतविशारद, वर्द्धमानके चूपीग्राम निवासी व्रजकिशोर राय दीवानके पुत्र। ये अच्छी अच्छी कविता बनाते थे। वर्द्धमानाधिपति राजा तेजश्चन्द्र बहादुरके आदेशसे इन्होंने दिल्लीके प्रसिद्ध सङ्गीतज्ञोंसे खेयाल और ध्रुपद सीखा था। इनके रचित श्यामाविषयक गीत कमलाकान्त भट्टाचार्य और रामदुलार राय प्रणीत गानोंके जैसे हैं।

रघुनाथ राय (राजा)—आरड़ा ब्राह्मणभूमिके एक राज्योपाधिधारी जमींदार। इनके पिताका नाम बाँकुड़ा राय था। चण्डीकाव्यके प्रणेता विख्यात मुकुन्दराम चक्रवर्त्तीने इनका आश्रय लाभ किया था। पहले ये राजपरिवारके छोटे छोटे लड़कोंके शिक्षकरूपमें नियुक्त हुए। यहींके सभाजनसे पुष्ट कर इन्होंने चण्डीकाव्य प्रणयन किया था। कविकङ्कण देखो।

रघुनाथ राव—एक मराठा सरदार। लोग इन्हें राघोबा या राघव कहा करते थे। इनके पिताका नाम पेशवा

१म वाजीराव और पुत्रका नाम अन्तिम पेशवा २य वाजीराव था। पेशवा २य मधुराव इनके भतीजे थे।

पेशवा बालाजी रावकी मृत्युके बाद माधवराव और नारायण राव नामक इनके दो पुत्रोंमें सिंहासन ले कर झगड़ा हो गया। दोनों ही नावालिग थे, इस कारण उनके भाई रघुनाथ राव दोनों पेशवा पुत्रोंके अभिभावक हुए।

१७७२ ई० तक राज्यशासनकी बागडोर माधवरावके हाथ रही। पीछे उनके मरने पर नारायण राव पेशवा-पद पर अधिष्ठित हुए। चचा रघुनाथने बालक नारायण को सिंहासन परसे उतार कर स्वयं पेशवा बनना चाहा। उनके षड्यन्त्रसे गुप्तघातकके हाथ नारायण राव मारे गये। पेशवा देखो।

नारायण रावकी मृत्युके बाद रघुनाथ पेशवा हुए सही, पर वे अधिक दिन स्थायी न हो सके। उसी समय मालूम हुआ कि नारायण रावकी विधवा पत्नी गर्भवती हैं। मन्त्रियोंने इस बातका ढिंढोरा पिटवा दिया। कोई उपाय न देख रघुनाथ मन्त्रियोंके विरुद्ध बलसंग्रह करने लगे। दोनों पक्षमें लड़ाई छिड़ गई। युद्धमें हार खा कर रघुनाथ सूरत भाग गये। इस घटनासे उनके जीवनकी उन्नतिकी आशा सदाके लिये विलुप्त हो गई। पापिष्ठ रघुनाथ राव अंग्रेजोंके साथ षड्यन्त्रमें मिल कर मराठोंके, विशेषतः हिन्दू-साम्राज्यके स्वाधीनता-मार्गमें काटा रोप गया है।

रघुनाथवर्मन् विन्दुरायकुलोत्तंस—लौकिक न्यायरत्नाकर और लौकिक न्यायसंग्रह नामक ग्रन्थके प्रणेता। ये गुलावराय वर्माके पुत्र तथा रामदयालुके छात्र थे।

रघुनाथ शर्मा—प्राकृतानन्दके प्रणेता।

रघुनाथ शास्त्री पार्वतीकर—राघवाचार्यके छात्र। इनका बनाया न्यायरत्न और शङ्करपादभूषण बड़ा आदृत है। अलावा इसके कूटघटितलक्षण, चक्रवर्त्तिलक्षण, द्वितीय-स्वलक्षण, पञ्चवादटीका, प्रगल्भलक्षण, प्रथमस्वलक्षण, मिश्रलक्षण, व्याप्तिपञ्चक, सामान्यनिरुक्ति द्वितीयलक्षण और सामान्यनिरुक्तिप्रथम लक्षण आदि बहुत-से उनके बनाये खण्ड न्यायग्रंथ भी देखनेमें आते हैं। ये कुछ समयके लिये पूनाके विश्वविद्यालयमें अध्यापक थे।

रघुनाथ शाह—मण्डला जिलेके गोण्डवंशीय एक सामन्त राजा। १८५७ ई०के गदरमें मदद करने पर अंग्रेज-सरकारने उन्हें मार डाला और उनकी सारी सम्पत्ति जब्त कर ली। उक्त घटनाके पन्द्रह वर्ष बाद अंग्रेज सरकार उनकी विधवा-स्त्रीको वार्षिक १२०) रुपये खुराक के लिये देने लगा।

रघुनाथ शिरोमणि—नवद्वीपवासी एक प्रसिद्ध नैयायिक। १५वीं सदीके शेष भागमें ये नवद्वीपमें प्रादुर्भूत हुए। एक आंखके काने थे, इस कारण लोग इन्हें 'काणभट्ट शिरोमणि' कहा करते थे। अपनी असाधारण प्रतिभाके कारण विद्वत्समाजमें 'तार्किकचूड़ामणिभट्टाचार्य' वा शिरोमणि नामसे इनकी प्रसिद्धि थी। दुःखका विषय है, कि मिथिला और नवद्वीपमें प्रचलित कुछ किंवदन्तियों-को छोड़ कर इन असामान्य धीशक्तिसम्पन्न पण्डितोंकी जीवनीसंग्रह करनेका कोई उपाय नहीं।

रघुनाथके जन्मके सम्बन्धमें नवद्वीपवासियोंकी धारणा है, कि नवद्वीपमें ही उनका जन्म हुआ था। किन्तु वैदिक सवादिनी नामक कुलग्रंथमें इनका जन्म-स्थान श्रीहट्ट बताया है। उक्त ग्रंथमें लिखा है, कि कात्यायन गोत्रीय गोविन्द चक्रवर्त्तीके पुत्र रघुपति-के साथ राजा सुविदनारायणकी कन्या रत्नावतीका विवाह हुआ। रघुपतिके छोटे भाई ही सुप्रसिद्ध रघु-नाथ शिरोमणि थे। सीतादेवी उनकी माताका नाम था। प्रायः ४५० वर्ष पहले श्रीहट्टके अन्तर्गत पञ्चखण्ड-में उन्होंने जन्मग्रहण किया। इस पञ्चखण्डमें उनके पूर्वपुरुष श्रीधराचार्य मिथिलासे ५२ त्रिपुराब्द (६४२ ई०) में आ कर बस गये थे। इस वंशमें अनेक पण्डितोंने जन्म लिया था। रघुनाथके पिता भी एक सुपण्डित थे। उन्होंने शुद्धिदीपिकाकी 'दीपिका प्रभा' नाम्नी टीका लिखी है।

रघुनाथके पिताकी सांसारिक अवस्था उतनी अच्छी न थी। उनके मृत्युकालमें रघुनाथ केवल तीन चार वर्षके थे, इस कारण तभीसे पुत्रके भरणपोषणका भार दुःखिनी माताके ही ऊपर रहा। दीनताके कारण उन्हें पेट भर भोजन भी नहीं मिलता था। अतः सहाय और सम्पत्तिहीन सीतादेवी भिक्षावृत्ति द्वारा अपनी जीविका-निर्वाह करने लगी।

कहते हैं, कि प्रायः १३६६ शकाब्दमें जब इनकी उमर सिर्फ पांच वर्षकी थी तभी माताके आदेशसे ये मिश्र प्रामन्य शिवराम तर्कसिद्धान्तके टोलमें पढ़नेके लिए जाने लगे। अक्षर पहचानते समय इन्होंने अपने अध्यापकसे दो 'ज', दो 'न', दो 'ब' और तीन 'श' का कारण पूछा था। यहां थोड़े ही समयमें ये व्याकरण आदि शास्त्रमें अच्छे पण्डित हो गये। ग्यारह वर्षकी उमरमें राजा सुविद्नारायणको कौशलसे ज्येष्ठ रघुपति के साथ राजकन्या रत्नावतीका विवाह हुआ। इस विवाहसे उनके ज्ञातिवर्ग बड़े नाराज हुए और सभी उनकी निन्दा करने लगे। ज्ञातिके अपमानजनक वाक्य से उत्तेजित हो बालक रघुनाथ देशका परित्याग कर नवद्वीप चले आये।

इस समय नवद्वीपका नाम चारों ओर फैला हुआ था। श्रीहट्टके कितने पण्डित नवद्वीप आ कर वास करते थे। सीतादेवीकी इच्छा थी, कि पुत्र नवद्वीप आ कर विद्याध्ययन करे। ये पहले पुत्रके साथ गङ्गास्नानकी कामनासे महमूदाबाद गए। यहां कठिन रोगने उन पर आक्रमण कर दिया। साथमें जो सब गये थे, सभी उसी अवस्थामें उन्हें छोड़ चले आये। आरोग्यलाभके बाद रघुनाथ अपनेको असहाय देख कर एक उदार वणिक्के साथ नवद्वीप आये। यहां आ कर उन्होंने प्रसिद्ध नैया यिक वासुदेव सार्वभौमका आश्रय लिया।

नवद्वीपमें प्रवाद है, कि रघुनाथके पुत्रवियोगके बाद दरिद्रमाता भिक्षावृत्ति द्वारा पुत्रका लालन पालन करती थी। इस समय वासुदेव सार्वभौमके टोलमें बहुत दूर देशसे छात्रवृन्द न्यायशास्त्र पढ़ने आया करते थे। रघुनाथकी माता कुछ छात्रोंकी सेवा टहल करके बड़े कष्टसे अपनी और पुत्रकी जीवनरक्षा करने बाध्य करती थी।

रघुनाथकी प्रतिभा पांच ही वर्षकी उमरमें दिखाई देने लगी थी। जिस कारण ये भविष्यमें एक महापुरुष हो गये थे, उसका पूर्वाभास उनके बाल्यजीवनकी कई घटनाओंमें दिखाई देता है।

एक दिन रघुनाथ माताके आदेशसे वासुदेव सार्व भौमके टोलमें आग लाने गये। आग ला देनेके लिये टोलमें के एक छात्रको बार बार तंग करने पर उसने आग ला कर रघुनाथके सामने रख दी। बालक रघुनाथ आग लानेका कोई बरतन नहीं ले गये थे। अब कोई उपाय न देख उन्होंने हथेली पर बालू रख लिया और उसी पर आगको रखना चाहा। इस समय वासु देव सार्वभौम चतुष्पाठीमें उपस्थित थे। ये पांच वर्षके लड़केकी ऐसी प्रत्युत्पन्नमति देख कर चमत्कृत हो गये। उसी दिन उन्होंने रघुनाथकी माताको बुला कर कहा, "तुम्हारा लड़का बड़ा ही बुद्धिमान है, आगे चल कर यह एक रत्न होगा। आजसे मैंने इसके पढ़ाने लिखानेका भार लिया।" वासुदेवसे इस प्रकार सुन कर माता अपनेको सराहने लगी और उनके हाथ पुत्रका शिक्षाभार सौंप आप निश्चिन्त हो गई।'

अनन्तर वासुदेवने शुभ दिनमें शुभलग्नमें उसी बालकके हाथ खड़ी दी। क ख पढ़ते पढ़ते उन्हें ऐसा ख्याल हो आया, कि पहले 'क' न पढ़ कर यदि 'ख' पढ़ा जाय, तो क्या दोष होगा? इस प्रश्नको जब वे स्वयं हल न कर सके, तब उन्होंने वासुदेवसे पूछा। इस अद्भुत प्रश्न पर वासुदेव भारी मुश्किलमें पड़ गये। उन्होंने रघुनाथ से कहा, कि यह क्रमबद्ध वर्णमाला स्वरसम्भूत है अर्थात् कण्ठ, तालु, मूर्द्धा, दन्त और ओष्ठकी सहायतासे उच्चा रित होती है तथा यह वैज्ञानिक प्रणालीमें सजाई है। इस बार तो किसी प्रकार अध्यापक महाशयने छुटकारा पाया, पर रघुनाथ कब छोड़नेवाले थे। उन्होंने फिर पूछा, कि व्यञ्जनवर्णमें दो 'ज', दो 'न', दो 'ब' और तीन 'स' रहनेका कारण क्या? अब वासुदेवको कुछ सूझ न पड़ा। उन्होंने समझा, कि यह सामान्य बालक नहीं है। प्रश्नके उत्तरमें उन्होंने बालकको उच्चारणविधि, णत्व और सत्वविधि आदि व्याकरण पढ़ा कर 'ज' आदि वर्णों का प्रयोजनीयता अच्छी तरह समझा दी। अतएव एक वर्णमाला पढ़ानेमें वासुदेवको व्याकरणका बहुत कुछ अंश सिखाना पड़ा था। इस प्रकार थोड़े ही समयमें रघुनाथने व्याकरण, काव्य और अभिधान पढ़ लिया। पीछे वे स्मृतिशास्त्र पढ़ कर वासुदेवसे न्यायशास्त्र पढ़ने लगे।

वासुदेव जैसे यत्नपूर्वक रघुनाथको पढ़ाते थे, रघु

नाथ भी वैसे ही अध्यवसायके साथ पढ़ने लगे। वासुदेव दिनमें जो पढ़ा देते, रघुनाथ उसे लिख कर रात्रिमें पढ़ते थे। जब कभी उनके मनसे अध्यापकका मत नहीं मिलता, तब वे जरा भी सकुचाते नहीं, तुरत अध्यापकसे पूछ कर अपना सन्देह दूर कर लेते थे। धीरे धीरे वे अपनी प्रतिभाके बल तर्कशास्त्रमें अच्छे पारदर्शी हो गये। तर्ककी उत्कर्षतामें उन्होंने अपने अध्यापकको जीत लिया था।

वासुदेव 'सार्वभौमनिरुक्ति' नामक जो टीका लिखी थी, तीक्ष्ण बुद्धि रघुनाथ तर्कयुक्ति द्वारा उसमें अनेक दोष निकालने लगे। यहां तक कि, नैयायिकराज गंगेशोपाध्याय भी उसके हाथसे बच न सके थे। उनके बनाये चिन्तामणि ग्रंथमें भी कितनी भूल निकाल कर रघुनाथने छात्रावस्थामें ही अपने मतका समर्थन किया और उस विषयमें अनेक प्रबंध लिख कर वे अपने मतका प्रचार करने लगे। रघुनाथके ये सब अलौकिक काण्ड देख कर नवद्वीपके पण्डित-समाजमें खलबली मच गई।

इसी समय नवद्वीपमें श्रीचैतन्य महाप्रभुका आविर्भाव हुआ। रघुनाथ और श्रीचैतन्यदेव सहपाठी थे, इस कारण दोनोंमें बड़ी दोस्ती थी। रघुनाथ बालक निमाईको पहले उतना ग्राह्य नहीं करते थे, पर पीछे उनकी प्रतिभाका परिचय पानेसे उनका वह भ्रम जाता रहा। रघुनाथको जब कभी किसी विषयमें संदेह होता था, तब चैतन्यप्रभुसे ही उसे दूर कर लेते थे। एक दिन सार्वभौमने रघुनाथसे किसी प्रश्नका उत्तर देने कहा, प्रश्न कठिन था, उन्हें कुछ भी समझमें न आया। इसलिये उसे हल करनेके लिये वे नवद्वीपके निकटवर्ती एक मैदानमें डूमरवृक्षके नीचे चुपचाप बैठ गये। चिन्ताशीलता ही रघुनाथमें विशेष गुण थी। दिन रात उसी जगह बैठ कर वे ऐसा प्रगाढ़ चिन्तामें मग्न हो रहे थे, कि पक्षियोंके उनके शरीर पर मलत्याग करने पर भी उन्हें जरा भी होश न था।

दूसरे दिन सवेरे प्रातः कृत्यादि करके चैतन्य रघुनाथकी तलाशमें उसी राह हो कर जा रहे थे। संयोगवश रघुनाथ पर उनकी दृष्टि पड़ी और उस अवस्थामें उन्हें बैठे देख वे विस्मित हो गये। हंसीके बहाने उन्होंने थोड़ा जल उनके शरीर पर छिड़का और कहा, "वनमें रह कर क्या झूठ मूठ सोच रहे हो?।" ठंढे जलका छींटा लगनेसे रघुनाथ चमक उठे और चैतन्यको देख मुसकुराने लगे। चैतन्यके उत्तरमें उन्होंने कहा, 'मैं जो सोचता हूं, उसे तुम क्या समझोगे।' चैतन्यदेव इस प्रकार चिन्तामग्न होनेका कारण जाननेके लिये जिद्द करने लगे। रघुनाथके मुखसे सार्वभौमका प्रश्न सुन कर उन्होंने उसी समय उसका उत्तर दे कर कहा, 'इसी छोटी बातके लिये तुम्हें ऐसी चिन्ता।' रघुनाथ चैतन्यकी मीमांसा और सदुत्तरसे आह्लादित हो बोले, "भाई! तुम साधारण मनुष्य नहीं, महापुरुष हो।" तभीसे रघुनाथ अपने मनके साथ चैतन्यके मतका मिलान देख कर स्वतःसिद्ध ज्ञानसे उसे लिपिबद्ध कर रखते थे। निम्नोक्त एक दूसरी घटनासे रघुनाथको चैतन्यदेवका प्रभाव मालूम हुआ था।

रघुनाथने छात्रावस्थामें एक न्यायकी टिप्पनी लिखना शुरू किया। उन्हें विश्वास था, कि उन्हींका ग्रंथ अद्वितीय होगा और वे इसीसे ख्याति लाभ करेंगे। इस समय उन्हें किसी तरह मालूम हुआ, कि चैतन्य भी न्यायकी टीका लिख रहे हैं। अतः उन्होंने वह ग्रन्थ देखनेके लिये चैतन्यसे विशेष अनुरोध किया। चैतन्य दिखानेको राजी हो गये। एक दिन जाह्नवीके किनारे उन्होंने अपना ग्रन्थ ला कर रघुनाथको पढ़ सुनाया। चैतन्यके ग्रन्थमें अद्भुत विचारपद्धति और सिद्धान्त सुन कर उनकी चिरपोषित उच्चाकाङ्क्षा दूर हो गई। यहां तक, कि अभिमानसे उनकी दोनों आंखें डबडबा उठीं। यह देख कर चैतन्य बड़े दुःखित हुए और उनसे पूछा, 'भाई! तुम रोते क्यों हो?" रघुनाथने उत्तर दिया, 'मैंने सोचा था, कि इस ग्रन्थसे मेरी ख्याति होगी। किंतु अभी देखता हूं, कि मैं जिसे दो पृष्ठोंमें समझा न सका हूं, उसे तुमने एक सतरमें समझा दिया है। अतएव तुम्हारा ग्रन्थ रहते मेरे ग्रन्थको कोई भी नहीं पूछेगा।' चैतन्यने रघुनाथकी उक्ति पर हंसीको रोक कर कहा,

'इसके लिये चिन्ता क्यों ? यह भक्तिशास्त्र फिर अच्छा बुरा क्या ?" इतना कह कर चैतन्यने स्वरचित टीकाको गङ्गाजीमें विसर्जन किया। तभीसे चैतन्यने न्यायशास्त्र पढ़ना छोड़ दिया। रघुनाथका वही ग्रन्थ दीधिति है।

रघुनाथ और चैतन्य न्यायशास्त्र अध्ययनकालमें एक पथके पथिक थे। न्यायपक्षमें दोनों एक मतका अवलम्बन करते हुए भी चैतन्यदेवकी तरह रघुनाथकी धर्म रसपिपासा बलवती न थी। इस कारण आखिर दोनों ही भिन्न पथके पथिक हो गये।

रघुनाथकी प्रतिभा पर विस्मित होते हुए भी वासुदेव कभी भी सरलचित्तसे उनका मत ग्रहण नहीं करते थे। दोनोंके मतमें मेल नहीं खाता था, इस कारण रघुनाथ हमेशा उदास रहा करते थे। वासुदेवके उनसे मनस्ताप का कारण पूछने पर उन्होंने कहा 'गुरुदेव ! मैं आपकी युक्ति और मतको ग्रहण नहीं करता इसीसे मुझे सारा दुःख है। मन करता है, कि मिथिला जा कर एक बार पक्षधर मिश्रके निकट अपना मत प्रकट कर आऊं।"

वासुदेवने उन्हें मिथिला जानेका हुक्म दे दिया। किन्तु उनके मिथिला जानेका दूसरा भी कारण था। उस समय नवद्वीपमें उपाधि देनेका किसीको अधिकार न था। उपाधि मिलने पर भी पण्डित लोग उसे स्वीकार नहीं करते थे। रघुनाथकी इच्छा थी, कि वे पक्षधरको न्यायशास्त्रमें पराजित कर नवद्वीपमें अपनी प्रधानता स्थापित करें और यशस्वी बनें। इसी उद्देशसे वे मिथिला गये थे।

मिथिलाकी चतुष्पाठीमें पहुंच कर रघुनाथने देखा, कि नैयायिक कुलपति पक्षधरमिश्र न्यायशास्त्र पढ़ा रहे हैं। पक्षधरका नियम था, कि कोई आगन्तुक छात्र यदि पहले उनकी चतुष्पाठीके छात्रोंको तर्कमें परास्त कर सके, तभी वह उनसे बातचीत कर सकता है, अन्यथा नहीं। रघुनाथ छात्रोंको न्यायशास्त्रके जटिल प्रश्नोंमें पराजित करके मिश्रजीके समीप गये। पक्षधर आगन्तुक छात्रकी पिपासु बुद्धि जाने बिना कभी भी उसकी ओर मुंह घुमा कर बातचीत न करते थे। रघुनाथके तर्क पर विमोहित हो कर उन्होंने भी रघुनाथसे तीन दिन तीन प्रश्न किये। उत्तर न दे सकनेके कारण रघुनाथ अपनी डेरे पर लौट आये। चौथे दिन जब वे फिर मिश्रजीके यहां गये, तब उन्होंने देखा, कि मिश्रजी घरमें नहीं हैं और उनके आसनके सामने एक ग्रन्थ खुला पड़ा है। बड़े ध्यानसे वे उस ग्रन्थको देखने लगे। उस ग्रन्थके खुले पृष्ठमें एक जगह एक शब्दप्रयोग का व्यतिक्रम देख कर उन्हें मिश्रका सन्देहस्थल मालूम हुआ, सो उन्होंने उस पर एक टीका लिख कर पुस्तक के ऊपर रख दी। उसी समय मिश्रजी घर आये और पुस्तकके ऊपर वह अभिनव टीकाखण्ड देख कर बड़े सन्तुष्ट हुए। उन्होंने प्रतिपादित सूत्रार्थको प्राप्त कर रघुनाथसे पूछा 'यह टीका क्या तुमने लिखी है ?" 'हां' उत्तर पा कर वे रघुनाथकी बुद्धिकी सराहने लगे और उसी दिनसे उन्हें शिष्य बना कर न्यायशास्त्र सिखाने लगे।

पक्षधरमिश्र एक ही जगह बैठ कर छात्रोंको पढ़ाते थे और जरूरत पड़ने पर उन्हें आवश्यकीय विषयकी शिक्षा देते थे। उनकी छात्रमण्डली उनके पीछे बैठ कर अपना अपना पाठ पढ़ती थी। रघुनाथने नवद्वीपमें ही चिन्तामणिका अध्ययन किया था। उस विषयमें तर्क और प्रतिवाद द्वारा उन्होंने पक्षधरके तर्कशक्तिसम्पन्न छात्रोंको भी परास्त कर अध्यापक मिश्रके पास ही अपना आसन जमाया। एक दिन वे गुरुसे तर्कमें ग्रहण करने लगे। उनका उद्देश्य था, कि ऐसा करनेसे गुरु संतुष्ट होंगे और उनके मनकी भ्रम दूर हो जायगी। तर्कसे संतुष्ट हो पक्षधर मिश्रने उनके प्रति कटाक्ष करके परिचय पूछनेके बहाने कहा—

'आखण्डलः सहस्राक्षो विरूपाक्ष त्रिलोचनः।
अन्ये द्विलोचनाः सर्वे को भवानेकलोचनः॥"

रघुनाथने अध्यापककी इस व्यङ्गोक्तिसे चिढ़ कर बड़े अभिमानसे उत्तर दिया था,—

"नवद्वीपकुलद्वीपनवद्वीपनिवासिनः।
तर्कसिद्धान्तसिद्धान्तशिरोमणिमनीषिणः॥"

इस उत्तरसे मालूम होता है कि नवद्वीपवासी तर्कसिद्धान्त और कुलद्वीपवासी सिद्धान्त उपाधिधारी ये दोनों भी उनसे न्यायशास्त्र पढ़नेके लिये मिथिला गये थे। ये दोनों कौन थे, कह नहीं सकते। फिर दूसरी

जगह लिखा है, कि ये दोनों जब मिश्रजीके घर पर गये, तब रघुनाथको एक चक्षुहीन देख कर छात्रोंने उनकी हँसी उडाई और उक्त श्लोक पढ कर उनका परिचय पूछा। मिश्रकी चतुष्पाठीमें नाना देशके छात्रगण काने पण्डितकी अद्भुत प्रतिभा देख कर मुग्ध हो गये थे।

इस समय पक्षधरमिश्र 'सामान्यलक्षण' नामक एक न्यायग्रंथ लिख रहे थे। रघुनाथके साथ मिश्रजीका पुस्तकके सम्बन्धमें वादानुवाद हुआ। उन्होंने सामान्य-लक्षण अस्वीकार कर गुरुके ग्रंथमें अनेक दोष निकाले। इस पर पक्षधरने क्रोधान्ध हो बालक रघुनाथको श्लेष्मा-त्मक रूखे वचनोंमें कहा था :—

"वक्षोजयानकृत् काणा न्याये जागति स्फुटम्।
सामान्यलक्षणा कस्मादकस्मादवलुप्यते ॥"

रघुनाथके एक नेत्र न रहनेसे जो उन्हें काना कहा गया, इस पर उन्हें बहुत दुःख हुआ। इसलिये उन्होंने आक्षेप कर कहा था।

"योऽन्य करोत्यक्षिमन्त यश्च बाल प्रबोधयेत्।
तमेवाध्यापक मन्येतदन्ये नामधारिणः ॥"

बातचीत करते करते दोनोंमें घोर तर्क आरम्भ हो गया। रघुनाथने चिन्तामणि ग्रंथमेंसे कई जटिल प्रश्न किये। पक्षधर बालककी असाधारण तर्कशक्ति और स्थिरबुद्धि देख कर दांतो उंगली काटने लगे। सभी प्रश्नोंका जब वे ठीक ठीक प्रत्युत्तर न दे सके, तब रघु-नाथ सतुष्ट न हो कर उन्हें बार बार तंग करने लगे। इस पर पक्षधरने नैयायिकका चिरपरिचित वाक्यजाल फैला कर रघुनाथको परास्त करनेकी चेष्टा की, किन्तु रघुनाथ कब छोड़नेवाले थे। युक्तितर्कमें अध्यापकको परास्त कर उन्हें अपना मत समीचीन स्वीकार कराया। इस प्रकार थोड़े ही दिनोंमें रघुनाथका नाम मिथिला भरमें फैल गया।

पक्षधर यद्यपि उनके साथ कभी कभी परास्त, अप्र-तिभ और क्रोधान्ध हो जाते, तो भी उपयुक्त छात्रके प्रति उनका अनुराग सराहनीय था। रघुनाथको निर्जन गृहमें पा कर उन्होंने बड़े प्रेमसे उनका आलिङ्गन किया। दूसरे दिन उन्होंने रघुनाथका मत समर्थन करनेके लिये एक सभा बुलाई और सबके सामने अपनी हार स्वीकार की। इस दिनसे नवद्वीपके शिरोमणि यथार्थमें भारतवर्षके शिरोमणि हुए।

इसके बाद एक दिन चतुष्पाठीमें कुछ अध्यापक और अनेक छात्र उपस्थित थे। इसी समय पक्षधरने व्याकरण और काव्यसम्बन्धीय शिक्षाका परिचय जानने के लिये उनसे पूछा, 'न्यायशास्त्रको छोड कर दूसरे किस शास्त्रमें तुम्हारा अधिकार है?' उत्तरमें रघुनाथने कहा—

"काव्येऽपि कोमलधियो वयमेव नान्ये
तर्केऽपि कर्कशधियो वयमेव नान्ये।
तन्त्रेऽपि यन्त्रितधियो वयमेव नान्ये
कृष्णेऽपि संयतधियो वयमेव नान्ये ॥"

यह श्लोक सुन कर पक्षधरने कहा, 'तुम तो नैया-यिक हो, कविता बनाना किस प्रकार सीखा?' रघु-नाथने उत्तर दिया :—

"कवित्व कियदोन्नत्य चिन्तामणिमनीषिणः।
निपीतकामकूटस्य हरस्येवाऽद्य भूषणम् ॥"

इस प्रकार उपस्थित अनेक कविता-रचनामें उन्होंने पक्षधरको मुग्ध किया था।

पक्षधरको विश्वास था, कि जो परम नैयायिक वा वैयाकरण होते, वे कभी भी सुकवि नहीं हो सकते हैं। आज उनका वह विश्वास रघुनाथकी कवितासे दूर हो गया। दुर्गम न्यायशास्त्रमें, जटिल व्याकरणशास्त्रमें, कोमल काव्यशास्त्रमें रघुनाथका समान अधिकार देख कर वे विस्मित हो गये। रघुनाथ जब चाहते, तभी महाकाव्यकी रचना कर सकते थे।

मिथिलामें रह कर रघुनाथ न्यायशास्त्रमें अद्वितीय हो गये। आर्यावर्त्त और दाक्षिणात्य-निवासी छात्र-गण उनके प्रति विद्वेषाचरण करने लगे। मिथिलासे लौट कर उन्हें नवद्वीपमें चतुष्पाठी खोलने और छात्रों-को न्यायशास्त्रमें उपाधि देनेकी इच्छा हुई। इसके लिये वे मिथिलासे न्यायशास्त्रके ग्रंथ संग्रह करने लगे। पक्षधर एक भी ग्रंथ अथवा उसकी नकल किसीको अपने देश ले जाने नहीं देते थे। अध्ययन शेष होने पर रघुनाथने नवद्वीप लौटनेके लिये पक्षधरसे आज्ञा मांगी और साथ साथ कुछ न्यायशास्त्रके

मथ भी साथ जानेकी इच्छा प्रकट की। वे चतुष्पाठी खोलेंगे सुन कर पक्षधरके शिर पर मानो वज्राघात हो गया। ग्रन्थ या उसकी नकल ले जानेसे वे बिलकुल इनकार चले गये। इस पर रघुनाथने क्रोधान्ध हो संकल्प किया, कि आज ही रातको गुरुका काम तमाम कर डालूंगा। दोपहर रातको जब छात्र वृन्द गहरी निद्रामें सो रहे थे तथा पक्षधर अपनी पत्नी के साथ शयन मन्दिरमें गप शप कर रहे थे उसी समय रघुनाथ गुरुकी हत्या करनेकी कामनासे नंगी तलवार हाथमें लिये दरवाजे पर खड़े हो गये। उन्होंने अपने कानोंसे सुना, पक्षधरकी स्त्री कह रही है, स्वामि! इस संसारमें कौन वस्तु आपको निर्मल जंचती है? मैं या मेरी सन्तान या इस शारदीय आकाशका पूर्ण चन्द्र?" पक्षधरने कहा 'तुम, तुम्हारी सन्तान या आकाशका पूर्णचन्द्र, इनमेंसे कोई भी मेरे लिये निर्मल नहीं। नवद्वीपके रघुनाथ नामक शिष्य एक नवीन युवकने आ कर मुझसे समस्त न्यायशास्त्र सीख लिया है, उसकी बुद्धि जैसी निर्मल वस्तु मैं इस संसारमें और किसीको नहीं देखता।" रघुनाथ गुरुदेवकी बात सुन कर रोने लगे, उनके मनमें गुरुभक्ति उमड़ पड़ी और वे अपनी बुद्धिको धिक्कारने लगे। उन्हें उस समय ऐसा मालूम हुआ कि, "मेरी जिस बुद्धिने उन्हें वध करनेके लिये मुझे उभाड़ा है, उनकी निगाहमें मेरी वह बुद्धि जगत्‌में सबसे निर्मल वस्तु जंची।' इस प्रकार चिन्ता करते करते उनका हृदय अनुताप-अनलसे दग्ध होने लगा। उनके रोने और दम भरनेका शब्द सुन कर पक्षधर दरवाजा खोल कर बाहर आये। उन्होंने देखा, कि रघुनाथ ज़मीन पर नंगी तेज तलवार रखा कर फूट फूट कर रो रहा है। पक्षधरके इसका कारण पूछने पर रघुनाथने कहा, 'आपने मुझे ग्रन्थ नहीं दिया और न इसकी नकल ही लेने दिया। इस कारण मैं क्रोधान्ध हो कर आपका वध करनेके लिये यहां आया था। पीछे मेरे प्रति आपके अकृत्रिम अनुरागकी बात सुन कर मैं मर्माहत हो रो रहा हूं। अभी मुझे तुषानल या और किसी प्रकारका प्रायश्चित्त दीजिये।" पक्षधर और उनकी पत्नी यह सुन कर अवाक् हो रही तथा उनकी

अकपट आत्मग्लानि ही उचित प्रायश्चित्त हुई,—यह उन्हें समझा दिया। सवेरा होने पर रघुनाथने कहा, "गुरुदेव! अभी नवद्वीप जाना मैंने स्थगित रखा। मेरा न्याय शास्त्राध्ययन अब तक भी शेष नहीं हुआ है। कुछ दिन और आपके यहां ठहरूंगा।" पक्षधर बोले "जब तक तुम्हारी इच्छा हो, मेरे यहां रह कर न्याय शास्त्र सीख सकते हो।"

रघुनाथका ध्यान एकमात्र ग्रन्थ-संग्रहकी ही ओर लगा था। वे अनन्यमना और अनन्यकर्मा हो कर दिन रात पक्षधरके एक एक कर सभी ग्रन्थ कण्ठस्थ करने लगे। सभी ग्रन्थोंको कण्ठस्थ कर दो एक वर्षके बाद ही रघुनाथ दिग्विजयी नैयायिक हो १६वीं सदीके आरम्भ में ही नवद्वीप लौटे।

नवद्वीपमें चतुष्पाठी खोलनेके लिये रघुनाथने संकल्प किया किन्तु पासमें पैसा नहीं, खोलते किससे। प्रवाद है कि इस समय नवद्वीपमें हरिघोष नामक एक धनी ग्वाला रहता था। उसने गाय रखनेके लिये बड़ी गोशाला बनवाई। यह गोशाला आज भी 'हरिघोषका गुहाल' नामसे प्रसिद्ध है। हरिघोष होने अपने खर्चसे उस गोशालामें रघुनाथकी चतुष्पाठी खोल दी। रघुनाथके शिष्योपाध्यायनके बल और शिक्षादानके फलसे थोड़े ही दिनोंमें नवद्वीप एक महान सारस्वत-मन्दिर हो उठा।

रघुनाथ अनेक ग्रन्थ लिख गये हैं, जैसे—तत्त्व चिन्तामणि-दीधिति, पदार्थखण्डन, पदार्थतत्त्व-निरूपण, पदार्थरत्नमाला, आत्मतत्त्वविवेक टीका प्रामाण्यवाद, नञर्थ वाद, क्षणभ गुर-वाद आख्यातवाद व्युत्पत्तिवाद, लीलावती टीका खण्डन खण्डखाद्य-टीका, गुणकरणा वलीप्रकाश-दीधिति, न्यायकुसुमाञ्जलि-टीका न्याय लीलावतीप्रकाशदीधिति, न्यायलीलावती विभूति, ब्रह्म सूत्रवृत्ति और मलिम्लुच विवेक।

एतद्भिन्न उनके रचित अद्वैतेश्वरवाद अपूर्ववाद रहस्य, अवयवग्रन्थ, आकांक्षावाद, केवलव्यतिरेकि, गुणनिरूपण, धर्मितावच्छेदक प्रत्यासत्ति, निषेधवाद यार्थ निरूपण, निरोधलक्षण, पक्षता पक्षलक्षणोद्धार, योग्यतारहस्य वाक्यवाद व्याप्तिवाद, शब्दवादार्थ,

सामान्यनिरुक्ति, सामान्यलक्षण और रघुनाथीय नामक कई न्यायचम्पू-ग्रंथ मिलते हैं।

मथुरानाथ और रामभद्र ही रघुनाथके सर्वप्रधान छात्र थे। कोई कोई कहते हैं, कि रघुनाथ आजीवन विवाह नहीं किया था। जब कभी कोई उनसे विवाह करने कहते तब वे कहते थे, 'पुत्र कन्याके लिये आदमी विवाह करता है। 'व्युत्पत्तिवाद' मेरा पुत्र और 'लीलावती' मेरी कन्या है।' रघुनाथ आजीवन शास्त्रचर्चामें निरत रह कर १६वीं सदीके मध्य भागमें परलोकको सिधारे।

रघुनाथ सम्राट्स्थपति—आह्निकप्रयोग, कालतत्त्वविवेचन, पर्वनिर्णय, रविसंक्रान्तिनिर्णय, गयाकल्पपद्धति, त्रिंशच्छ्लोकीभाष्य और दशश्लोकटीका आदि ग्रन्थके प्रणेता। इनके पिताका नाम था माधव और माताका ललिता। रामेश्वरभट्टके पौत्र थे। इनके बड़े भाई विश्वनाथ और प्रभाकर थे। १५८३ ई०में प्रभाकरने रासप्रदीपकी रचना की। उनका बनाया कालतत्त्वविवेचन १६२० ई०में समाप्त हुआ।

रघुनाथसरस्वती—एक अद्वितीय पण्डित। ये वाल्मीकिकी भावप्रकाशिकाके प्रणेता, रामचन्द्र सरस्वतीके गुरु और गोविन्दानन्द सरस्वतीके शिष्य थे।

रघुनाथ सार्वभौम भट्टाचार्य—एक विख्यात स्मृति और ज्योतिःशास्त्रविद्। इन्होंने १६६२ ई०में राजा राघवकी आज्ञासे स्मार्त्तव्यवस्थार्णव और राजा कामदेवकी अनुमतिसे पदकृत्यमुक्तावली नामक ज्योतिर्ग्रन्थ प्रणयन किये। अलावा इसके उनका बनाया दायभाग सम्बन्धीय स्वत्वव्यवस्थार्णवसेतुबन्ध और सिद्धान्तार्णव नामक वेदान्त ग्रन्थ भी मिलता है।

रघुनाथसिंह—विष्णुपुरके सर्वप्रथम हिंदू राजा। इन्होंने स्थानीय आदिम अधिवासी दुर्द्धर्ष बाग्दियोंको युद्धविद्या सिखा कर ऐसा रणकुशल बना दिया था, कि एक दिन सारा विष्णुपुर राज्य मल्लभूमि कहलाने लगा। अभी वह विस्तृत राज्य वर्द्धमान, वीरभूम और बांकुड़ा के अन्तर्भुक्त हो गया है।

रघुनाथकी दया, दाक्षिण्य और रणनैपुण्य देख कर बागदी लोग उन्हें प्रकृत रघुनाथ (अयोध्यापति रामचन्द्र) समझते थे। उनके राज्याधिकारके समय प्रजा उन्हें 'आदिमल्ल' कहने लगी थी। १२२ बङ्गाब्द (७१५ ई०)-में उनका जन्म हुआ। उनके सिंहासनारोहण-कालसे विष्णुपुराब्द गिना जाता है। ३४ वर्ष तक इन्होंने राज्यशासन किया। पश्चिम भारतवासी सूर्यवंशीय राजा इन्द्रसिंहकी कन्या चन्द्रकुमारीसे इनका विवाह हुआ। लाऊग्राममें इनकी राजधानी थी। पुण्ड्रेश्वरी देवीमूर्त्तिकी स्थापना कर इन्होंने एक मन्दिर बनवा दिया था।

यह राजवंश कुसुम ऋषिके गोत्रसम्भूत है। एकलिङ्ग और पुराको ये लोग अपना कुलदेवता मानते हैं। इनकी मंत्र-दीक्षा ब्राह्मण-वैष्णवसे होती है। रघुनाथसिंहसे ही विष्णुपुर-राजवंशकी ख्याति और सौभाग्य वृद्धि हुई है। विष्णुपुर देखो

रघुनाथ सूरि—भोजनकुतूहल नामक पाकशास्त्रके रचयिता।

रघुनाथेन्द्र यति—काममाहात्म्य और भगवन्नाम-माहात्म्य ग्रन्थसंग्रहके रचयिता।

रघुनायक (सं० पु०) रघुकुलस्वामी, श्रीरामचन्द्र।

रघुपति (सं० पु०) रघूनां पतिः। रघुवंशके स्वामी, श्रीरामचन्द्र।

"यदुपतेः क्वगता मथुरापुरी रघुपतेः क्वगतोत्तरकोशला।
इति विचिन्त्य कुरुष्व मनः स्थिरं न सदिदं जगदित्यवधारय॥" (रूपगोस्वामी)

रघुपति—१ कुमारसम्भव व्याख्यासुधाके रचयिता। २ शब्दलोकरहस्य और तत्त्वचिन्तामण्या लोकसार नामक पक्षधर मिश्रकृत तत्त्वचिन्तामण्यालोककी टीकाके प्रणेता।

रघुपति उपाध्याय—पद्यावलीधृत एक कवि।

रघुपति महोपाध्याय—पुरुषार्थकौमुदी और लोकसंग्रह नामक दो ग्रंथके रचयिता।

रघुपति सहाय—एक भाषा-कवि। इनका जन्म-संवत् १९३०में हुआ था। ये गाजीपुर जिलेके गौंसपुर गांवमें रहते थे। इन्होंने तुलसीदासका जीवनचरित्र लिखा।

रघुपतजंहस् (सं० त्रि०) लघुपतनसमर्थपाद।

रघुपत्वन (सं० त्रि०) शीघ्रगामी, तेज जानेवाला।

(ऋक् १।८५।६)

रघुमणि—आगमसार नामक तन्त्रके प्रणेता। इनके पिता का नाम रामचन्द्र था।

रघुमन्यु (सं० त्रि०) मधुक्रोधी, अक्रोधी।

रघुया (सं० अव्य०) शीघ्रगामी, तेजीसे जानेवाला।

रघुयामन् (सं० त्रि०) लघु गमन, थोड़ा जानेवाला।

रघुराई (हि० पु०) श्रीरामचन्द्र।

रघुराज (सं० पु०) रघुकुलके राजा, श्रीरामचन्द्र।

रघुराजसिंह—जगदीश शतक नामक संस्कृत-ग्रन्थके रचयिता।

रघुराजसिंह महाराज—रीवाँ-नरेश। रीवाँ-नरेशोंमें महाराजा जयसिंह, उनके पुत्र महाराज विश्वनाथसिंह और विश्वनाथके पुत्र महाराज रघुराजसिंह तीनों बहुत अच्छे कवि थे। ये महाराजगण बघेल ठाकुर थे।

महाराज वीरध्वज सोलङ्कीके पुत्र महाराज व्याघ्रदेवने गुजरातसे आ कर भोरों गोड़ों, छोपियों आदिसे बघेलखण्ड जीत कर वहां शासन जमाया। कहते हैं कि इस कुटुम्बके पूर्वपुरुष ब्रह्मचौलक अश्वमेध यज्ञ एवं सूर्यांशसे उत्पन्न हुए थे और इसीलिये सूर्यवंशी कहलाये। ब्रह्मचौलकसे ले कर करणशाह तक ५०३ पुश्तें चौलुक्य ही कहलाती रहीं। करणशाहका पुत्र सुलंकदेव हुआ। तबसे वीरध्वज पर्यन्त १८९ पीढ़ियां सोलङ्की कहलाई। वीरध्वजके पुत्र व्याघ्रदेवसे वर्तमान महाराधिराज श्रीस्वर्गस्वरूप रामानुजप्रसाद सिंह जू देव बहादुर तक ३२ पुश्तें हुई हैं। ये लोग बघेल कहलाते हैं।

महाराज रघुराजसिंहका जन्म संवत् १८८०में हुआ था। अपने पिताके स्वर्गवास पर ये सं० १९११में गद्दी पर बैठे। आप पूर्ण पण्डित, हिन्दी और संस्कृतके अच्छे कवि और मृगया-व्यसनी थे। आपने बहुतसे छोटे बड़े ग्रन्थ बनाये हैं और ३१ शेर, १ हाथी १६ घोड़े और हजारों अन्य मृग भी आपने मारे। आप बड़े दानी और भारी भक्त भी थे २००० विष्णुनाम प्रतिदिन जपते थे। उपर्युक्त कार्योंमें समय अधिक लगानेके कारण आप राज्यप्रबन्ध कम कर सकते थे। मरण कालके ५ वर्ष पूर्व आपने राज्यप्रबन्ध बिलकुल छोड़ दिया और अंगरेजी सरकारकी ओरसे प्रबंध होने लगा। सिपाही विद्रोहमें आपने सरकारका साथ दिया था।

आप बड़े ही कविता-रसिक और कवियोंके कल्पवृक्ष हो गये हैं। इन्होंने कविता प्रचुर बनाई है। इनके रचे हुए ग्रन्थोंके नाम ये हैं—सुन्दरशतक, विनयपत्रिका, रुक्मिणीपरिणय, आनन्दाम्बुनिधि, भक्तिविलास, रहस्य पद्माध्यायी, भक्तमाल रामस्वयम्वर, यदुराजविलास, विनयमाला, रामरसिकावली, गद्यशतक, चित्रकूट माहात्म्य, मृगया शतक, पदावली, रघुराजविलास, विनय प्रकाश श्रीमद्भागवत माहात्म्य, रामअष्टयाम, भागवत भाषा रघुपतिशतक गङ्गाशतक, धर्मविलास, शम्भुशतक, राजरञ्जन, हनुमच्चरित्र भ्रमरगीत, परमप्रबोध और जगन्नाथशतक। इनमेंसे सब ग्रन्थ इन्हीं महाराजके बनाये हैं किंतु दो एकके कुछ भाग इन्होंने स्वयं रचे और कुछ उनके आश्रित कवीश्वरोंने बनाये।

इनकी कविता बहुत विशद और मनमोहिनी होती थी। इन्होंने विविध छन्दोंमें कविता की है।

रघुराम—ये अहमदाबादमें रहते थे। इन्होंने सभासार और माधवविलास ग्रन्थ रचे।

रघुराममट्ट—कालनिर्णयसिद्धान्त और उसकी टीका तथा सिद्धान्तनिर्णय नामक ग्रन्थके प्रणेता। गिरिधरराज महाशयसिंहके प्रार्थनानुसार इन्होंने मुखनगरमें रह कर १६४३-५४ ई०में उक्त ग्रन्थकी रचना की। इनके पिताका नाम जयराम और पितामहका वैकुण्ठ था।

रघुलालदास—रामसिद्धान्त-संग्रह नामक ग्रन्थके टीकाकार।

रघुवंश (सं० पु० क्ली०) रघोर्वंशः सन्ततिर्वर्णनीयो यस्मिन्, यद्वा रघूणां वंशमधिकृत्य कृतमिति अण् लुक् च। १ महाकवि कालिदासका रचा हुआ एक प्रसिद्ध महाकाव्य।

"रघूणामन्वयं वक्ष्ये तनुवाग्विभवोऽपि सन्।
तद्गुणैः कर्णमागत्य चापलाय प्रचोदितः॥" (रघु० १।९)

कालिदासकृत महाकाव्योंमेंसे रघुवंश सबसे प्रधान है। यह रघुवंश १९ सर्गोंमें समाप्त है। इसमें दिलीपसे ले कर अग्निवर्ण तकका विवरण आया है।

कालिदास देखो।

(पु०) २ महाराज रघुका वंश या खानदान जिसमें रामचन्द्रजी उत्पन्न हुए थे।

तमर, नागश्रीसम नागज पिच्चट, बङ्ग, कस्तीर, सिहर, आलीङ्ग और म्लेच्छ। भावप्रकाशके मतमें रङ्ग दो प्रकारका होता है खुरक और मिश्रक। खुरक श्रेष्ठ और मिश्रक मलिन जनक होता है।

उत्तम रङ्गका लक्षण—जो रांगा बहुत सफेद, मुलायम, हलका, निर्मल चिकना अत्यन्त ठंढा होता है जिससे तार और पत्तर बनाये जा सकते हैं और जिसके गलानेसे तुरत ध्वनि होती है वही रांगा अच्छा है।

शोधित रङ्गका गुण—शोधित रांगा कुछ तीता, रूखा, शरीरको गरम रखनेवाला, कृमि, मेह, कफ, पाण्डु और श्वासको नाश करनेवाला, चक्षुका अहितकर, कुछ पित्त वर्द्धक, लघु और सारक होता है। सिंह जिस प्रकार सहजमें हाथियोंको मार डालता है, रांगा भी उसी प्रकार सब प्रकारके प्रमेहको नाश कर मनुष्यको मजबूत बनाता है। यह प्रबल इन्द्रियका उत्तेजक और सुख दायक है।

बिना शोधा हुआ रांगा विषके समान है। इसका सेवन करनेसे शरीरमें आक्षेप कम्प, गुल्म, कुष्ठ, शूल, वात शोथ, पाण्डु, प्रमेह भगन्दर, रक्तविकारज रोग, क्षय कफज्वर, मूर्च्छा, मूत्ररोग और पथरी आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

शोधनविधि—रांगेको गला कर तेल, मट्ठा, कांजी गोमूत्र, कुलथी, उड़दका काढ़ा और अकवनका दूध हर एक वस्तुमें तीन तीन बार करके डालने अथवा चूनेके जलमें आध पहर तक डुबाये रखनेसे रांगा शोधित होता है।

मारणविधि—एक मिट्टीके बरतनमें रांगा गला कर उसमें रांगेका चतुर्थांश इमली और पीपलकी छालका चूर डाले। पीछे दोपहर तक एक लोहेके हत्थेसे घोंटने पर रांगा भस्म हो जायगा। अनन्तर उस भस्मके बराबर हरिताल चूर्ण मिला कर निम्बुरसमें मर्दन करे। फिर उसका दशमांश हरिताल मिला कर एक पहर तक पुट पाकमें पकावे। इस प्रकार दश बार पुटपाकसे रांगा मारित होगा। अथवा, रांगेको हरितालचूर्णके साथ मिला कर और अकवनके दूधमें मल कर सूखे पीपलके छिलकेकी आगमें सात बार पुटपाकमें पकानेसे रांगा मारित होगा। अथवा, एक मिट्टीके बरतनमें विशुद्ध रांगेको गला कर उसमें उतना ही अपामार्गचूर्ण मिलावे। पीछे एक लोहेके हत्थेसे जिसका अगला भाग मोटा हो, जब तक रांगा भस्माकारमें परिणत न हो जाय तब तक धीरे धीरे घोंटते रहे। अनन्तर उस मिश्रित चूर्णको आग परसे उतार कर एक ढकनेमें रखे और ऊपरसे एक दूसरा ढकना ढंक दे। दोनोंका मुंह बंद करके तेज आंचमें पकानेसे रांगा मारित होगा। अथवा रांगेको एक घड़ेमें गला कर उसमें पहले हल्दीका चूर, पीछे अजवायनका चूर, उसके बाद जीरेका चूर और तब इमलीकी छालका चूर तथा सबसे पीछे पीपलकी छालका चूर मिलानेसे रङ्ग मारित होता है। अथवा पहले रांगेका पतला पत्तर बना कर उसमें रांगेका चतुर्थांश पारेका लेप दे। पीछे इमलीकी छाल और चावलको एकत्र पीस कर एक पिण्डाकार बनावे और उसीमें रांगेका बरतन रख कर गजपुटमें पाक करे। अनन्तर उस रांगेमें फिरसे पहलेके जैसा पारा लेप कर शिरीषकी छाल और हल्दीका चूर्ण घृत कुमारीके रसमें पीस पिण्ड बनावे। उसी पिण्डमें रांगा भर कर गजपुटमें पाक करनेसे रांगा मारित होगा। अथवा, बहेड़ा और सिवारके छिलकेको जलमें पीस कर उससे रांगेका बरतन लेप दे। पीछे उसे ठिकरी नलीमें भर कर चालीस बार गजपुटमें पाक करनेसे रांगा मारित होगा।

मुक्तादिमहाञ्जन, मदनमञ्जरीवटी, रतिवल्लभ, रस राजेन्द्र, वृहत्कस्तूरीभैरव महाराजवटी, विषमज्वरा न्तकलौह, वृहच्चिन्तामणिरस, महाज्वराङ्कुश, चूड़ामणि रस भानुचूड़ामणि, महाराजनृपतिवल्लभ, वृहन्नलपाक- वटी कृमिधूलिजलप्लवरस, कृमिकालानलरस, अर्केश्वर रस, वृहत्कामजनासरस क्षयकेशरी कामविलासरस, महौषधिरस कुमुदेश्वररस, कामावमणी, महाश्लेष्म कालानलरस महाकामविलासरस, आमवातगजसिंह मोदक सर्वाङ्गसुन्दररस, त्रिनेत्राख्यरस, इन्द्रवटी महा वमेह, वृहद्विद्याङ्कुशरस, आनन्दभैरवरस, चन्द्रप्रभा वटी वङ्गेश्वररस, वृहद्वङ्गेश्वररस, मेहकेशरी, योगेश्वर रस, तारकेश्वररस, नागमादिलौह, वृहत्सोमनाथरस, धात्रिशोषणरस, नित्यानन्दरस प्रदरान्तकलौह, मदन

न्तकरस, गर्भचिन्तामणिरस, वृहद्रसशार्दूल, श्रीमन्मथ-रस, पूर्णचन्द्ररस, मकरध्वज, वसन्ततिलकरस, वसन्त-कुसुमाकररस, नित्यारोगेश्वररस, मेहकुलान्तकरस, महाकामेश्वरमोदक, वृहत्कामेश्वरमोदक, वृहत्पूर्णचन्द्र-रस और हेमाद्रिरस प्रभृति औषधोंमें रांगाका व्यवहार होता है।

इस रङ्गधातुको अङ्गरेजीमें Tin कहते हैं। रासाय-निक मिश्रणसे इसमें स्वभावतः दो प्रकारके गुण आ जाते हैं। इसका Protoxide, sesquioxide और Peroxide तथा उनका Chlorides अवस्थानुसार मिलनेसे यह विशेष गुणयुक्त हो जाता है। उक्त Proto-salts रेशममें, Persalts रुईमें और Sesqui salts कभी कभी दोनों के रंगानेमें व्यवहृत होता है। इस प्रकार मिश्रणसे Stannites और Stannates नामक जो अम्लरस उत्पन्न होता है, उससे सूती कपड़े रगाये जाते हैं। यूरोपीय वैज्ञानिक लोग इसके व्यवहारसे अच्छी तरह अवगत हैं। विशेष विवरण त्रपु शब्दमें देखो।

(पु०) १ रञ्ज घञ्। २ राग, रंगानेवाली वस्तु (भारत ५।३६।१०) ३ नृत्य, नाच। (विष्णुपु० २।७।२०) रजंति आसज्जति मल्लोऽत्र रञ्ज अधिकरणे घञ्। ४ रणभूमि, युद्धक्षेत्र। (मेदिनी) ५ नाट्यस्थान, नाटक खेलनेका घर। ६ टङ्कण, सुहागा। ७ खदिरसार। ८ किसी दृश्य पदार्थका वह गुण जो उसके आकारसे भिन्न होता है और जिसका अनुभव केवल आंखोंसे ही होता है, वर्ण।

जब पहले पहल किसी वस्तु पर हमारी निगाह पड़ती है, तब हमें अकसर दो ही बातोंका ज्ञान हुआ करता है। एक तो उसके आकारका और दूसरा उसके रंगका। वैज्ञानिकोंने सिद्ध किया है, कि रङ्ग यथार्थमें प्रकाशकी किरणोंमें ही होता है और वस्तुओंके भिन्न भिन्न रासायनिक गुणोंके कारण ही हमारी आंखोंको उनका अनुभव वस्तुओंमें होता है।

विशेष विवरण वर्ण शब्दमें देखो।

९ किसी विशिष्ट रासायनिक क्रियाओंसे बनाया हुआ पदार्थका व्यवहार किसी चीजको रंगने या रंगीन बनाने के लिये होता है। १० दूसरेके हृदय पर पड़नेवाला शक्ति, गुण या महत्त्वका प्रभाव, धाक, रोब। ११ शरीरका ऊपरी वर्ण, बदन और चेहरेकी रंगत। १२ युवावस्था, जवानी। १३ सौन्दर्य, शोभा। १४ प्रभाव, असर। १५ क्रीड़ा, कौतुक। १६ युद्ध, लड़ाई। १७ दशा, हालत। १८ आनन्द, मजा। १९ मनकी उमंग या तरंग। २० अद्भुत व्यापार, काण्ड। २१ प्रेम, अनुराग। २२ ढंग, चाल। २३ भांति, प्रकार। २४ चौपड़की गोटियोंके खेलके कामके लिये किये हुए दो कृत्रिम विभागोंमेंसे एक। चौपड़की कुल गोटियां १६ होती हैं जो चार रंगोंमें विभक्त होती हैं। इनमेंसे विशिष्ट दो रंगकी आठ गोटियां 'रंग' और शेष दो रंगोंकी आठ गोटियां 'बदरंग' कहलाती हैं।

रङ्गकार (सं० पु०) चित्रकार, रंग बनानेवाला।

रङ्गकारक (सं० पु०) रङ्गकार देखो।

रङ्गकाष्ठ (सं० क्ली०) रङ्गं रञ्जितं काष्ठमस्य। पतङ्ग नामकी लकड़ी, बक्कम।

रङ्गक्षेत्र (सं० क्ली०) १ रङ्गस्थल, अभिनय करनेका स्थान। २ किसी उत्सव आदिके लिये सजाया हुआ स्थान।

रङ्गगृह (सं० क्ली०) १ रङ्गालय, रङ्गभूमि। २ जयन्ती-के अन्तर्गत एक स्थान।

रङ्गचर (सं० पु०) १ अभिनेता, नाटकमें अभिनय करने-वाला। २ मल्लयुद्धकारी, पहलवान् या नट।

रङ्गचा—पश्चिमवङ्गवासी एक पहाड़ी जाति।

रङ्गचार्लू—इनका पूरा नाम चेटिपनियम वीरवल्लि रङ्गचार्लू सी० आई० ई० था। इनका जन्म मद्रास प्रदेशके चिङ्गलेपट जिलेमें सन् १८३१ ई०को हुआ था। इनके पिताका नाम चेटिपनियम राघव चेटियार था। ये चिंगलेपटकी कलक्टरीमें एक क्लर्क थे। बाल्यकालमें इनकी बुद्धि बड़ी तीव्र थी, परन्तु लिखने पढ़नेमें इनका मन बहुत कम लगता था। इसी कारण मद्रासमें हाई स्कूलकी पढ़ाई समाप्त करके ये नौकरी करने लगे। वहां बहुत दिनों तक काम करके ये रेलवे विभागमें गये। तदनन्तर सन् १८६४ ई०में कालिकटके डिपुटी कल-क्टरीका पद इन्हें मिला। इसी समय महिसुर राज्यकी दशा अत्यन्त शोचनीय थी। पदच्युत राजा कृष्णराय

दत्तियारमें एक योग्य पुत्र ग्रहण किया था। भारत गवर्नमेंटने इसी योग्यपुत्रको राजगद्दी पर बैठाया और उसी समय यह निश्चित हुआ, कि १८ वर्षकी अवस्थामें इन्हें राज्यका भार दिया जायगा। गवर्नमेंटकी ओरसे रङ्गचार्लु यहांके कम्प्ट्रोलर (प्रबन्धकर्त्ता) बनाये गये। इस पद पर रह कर इन्होंने अनेक राजकीय बातोंमें सुधार किया। राज्यके नाशकर्त्ता व्यापियोंको इन्होंने निकाल बाहर कर दिया। सन १८७४ ई०में इन्होंने महिसुरमें 'मन्द्रेज शासन' नामक एक छोटी पुस्तक अङ्गरेजीमें लिखी और उसे इङ्गलैण्डमें प्रकाशित कराया। इससे रङ्गचार्लुको बड़ी प्रसिद्धि हुई। राज्यके प्रबन्धमें अनेक सुधार करनेके कारण सरकारने इन्हें सी० आइ० ई० की उपाधि मिली। सन् १८८१ ई०में ये महिसुरके दीवान नियुक्त हुए। १८८२ ई०में कठिन रोगके कारण इनकी मृत्यु हुई।

रङ्गज (सं० क्ली०) रङ्गात्जायते इति जन ड। सिन्दूर।

रङ्गजननी (सं० स्त्री०) लाक्षा, लाख।

रङ्गजीवक (सं० पु०) रङ्ग न रञ्जन कार्येण जीवतीति जीव ण्वुल्। १ चित्रकार, चितेरा। २ नाट्यकारक वह जो अभिनय करता हो।

रङ्गज्योतिर्विद्—विचारसुधाकर नामक वैद्यकग्रन्थके प्रणेता।

रङ्गद (सं० क्ली०) मूल्य, भाव।

रङ्गद (सं० पु०) रङ्ग इति ददातीति दा क। १ टङ्कण, सोहागा। २ खदिरसार।

रङ्गदलिका (सं० स्त्री०) नागवल्लीलता, नागबेल।

रङ्गदक्षिया—एक पहाड़ी जाति।

रङ्गदा (सं० स्त्री०) रङ्गद-टाप्। स्फटी, फिटकरी।

रङ्गदायक (सं० क्ली०) रङ्गस्य दायकं। कङ्कुष्ठ नामकी पहाड़ी मिट्टी।

रङ्गदृढा (सं० स्त्री०) रङ्गेन दृढा। स्फटी, फिटकिरी।

रङ्गदेवता (सं० स्त्री०) रङ्गाधिष्ठात्री देवी यह कल्पित देवता जो रंगभूमिके अधिष्ठाता माने जाते हैं।

[illegible] (सं० क्ली०) रङ्गालयका प्रवेशद्वार।

[illegible]री—एक नगरका नाम। रङ्गपुर देखो।

[illegible]—१ मद्वैतचिन्तामणिके प्रणेता। २ आयुर्वाग नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। ३ कर्पूरस्तवप्रदीपिका नामक ग्रन्थकर्त्ता। ४ गुणमन्दारमञ्जरीके प्रणेता। ५ जायन्मुक्तिविवेकके रचयिता। ६ सिद्धान्तमनोरमा नामकी ब्रह्मसूत्रवृत्तिकार तथा आनन्दाश्रमके शिष्य। ७ रामानुजसिद्धान्तपद्धतिके प्रणेता। ८ वृत्तरत्नाकरटीकाके रचयिता। ९ मितभाषिणी नामकी लीलावतीकी टीकाके प्रणयनकर्त्ता। इनके पिताका नाम था नृसिंह। इन्होंने चन्द्रमानयन, मङ्गोयिमङ्गलकरण और स्फुटगोलकरण नामक दूसरे तीन लघुत ज्योतिःशास्त्रविषयक ग्रन्थ संकलन किये।

रङ्गनाथ—सूर्यसिद्धान्तगूढार्थप्रकाशक नामक सूर्यसिद्धांतकी टीकाके प्रणेता। १६०४ ई०में इन्होंने उक्त ग्रन्थ समाप्त किया था। इनके पिताका नाम बल्लालगणक और पुत्रका विश्वरूप था। जनसाधारणकी धारणा है, कि नारायणोपपत्ति, दिवाकरकृत जातकपद्धतिकी टीका, मितभाषिणी नामकी लीलावतीटीका, केशवार्ककृत जातकपद्धतिकी मीढ़मनोरमा नामकी टीका तथा सिद्धान्तचूड़ामणि आदि ग्रन्थ इनके रचे हैं।

रङ्गनाथ—विक्रमोर्वशी-प्रकाशिका नामकी टीकाके प्रणेता। १६५६ ई०में इन्होंने उक्त ग्रन्थकी रचना की। इनके पिताका नाम बालकृष्ण, पितामहका रङ्गनाथ तथा प्रपितामहका नामभट्ट था।

रङ्गनाथ आचार्य—विष्णुसहस्रनाम भाष्यके प्रणेता।

रङ्गनाथ दीक्षित—सोमप्रयोगके रचयिता।

रङ्गनाथपुर—दाक्षिणात्यके महिसुरप्रदेशके अन्तर्गत एक नगर।

रङ्गनाथ भट्ट—१ दिनकरटीकाके प्रणेता। २ एक विख्यात पण्डित। ये उत्तररामचरितटीकाके प्रणेता नारायणके पिता थे।

रङ्गनाथ यज्वन—हरिदत्तकृत पद्ममञ्जरीके पद्ममञ्जरीमकरन्द नामक टीकाकार। ये नारायणके पुत्र तथा नल्ला दीक्षितके पौत्र थे। चोलदेश इनका जन्मस्थान था।

रङ्गनाथ सूरि—एक जैन सूरि। ये शब्दिकवादविवरणके प्रणेता कृष्णभट्टके पिता थे।

रङ्गपताका (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद।

(रङ्कुमारच० ११८।५)

उदयारमें एक पोष्य पुत्र ग्रहण किया था। भारत गवर्न मेंटने इसी पोष्यपुत्रको राजगद्दी पर बैठाया और उसी समय यह निश्चित हुआ, कि १८ वर्षको अवस्थामें इन्हें राज्यका भार दिया जायगा। गवर्नमेंटकी ओरसे रङ्गाचार्लु वहांके कम्प्ट्रोलर (प्रबन्धकर्त्ता) बनाये गये। इस पद पर रह कर इन्होंने अनेक राजकीय बातोंमें सुधार किया। राज्यके नाशकर्त्ता व्यापियोंको इन्होंने निकाल बाहर कर दिया। सन् १८७४ ई०में इन्होंने महिसुरमें 'अङ्गरेज शासन' नामक एक छोटी पुस्तक अङ्गरेजीमें लिखी और उसे इङ्गलैण्डमें प्रकाशित कराया। इससे रङ्गाचार्लुकी बड़ी प्रसिद्धि हुई। राज्यके प्रबन्धमें अनेक सुधार करनेके कारण सरकारने इन्हें सी० आई० ई० की उपाधि मिली। सन् १८८१ ई०में ये महिसुरके दीवान नियुक्त हुए। १८८२ ई०में कठिन रोगके कारण इनकी मृत्यु हुई।

रङ्गज (सं० क्ली०) रङ्गात्जायते इति जन ड। सिन्दूर।

रङ्गजननी (सं० स्त्री०) लाक्षा, लाख।

रङ्गजीवक (सं० पु०) रङ्गेण रञ्जन कार्येण जीवति जीव ण्वुल्। १ चित्रकार, चितेरा। २ नाट्यकारक, वह जो अभिनय करता हो।

रङ्गज्योतिर्विद्—विचारसुधाकर नामक वैद्यकग्रन्थके प्रणेता।

रङ्गद (सं० क्ली०) मूल्य, दाम।

रङ्गद (सं० पु०) रङ्ग इति छिनत्तीति दा क। १ रङ्गण, सोहागा। २ खदिरसार।

रङ्गदलिका (सं० स्त्री०) नागवल्लीलता, नागबेल।

रङ्गदलिया—एक पहाड़ी जाति।

रङ्गदा (सं० स्त्री०) रङ्गद टाप्। स्फटी फिटकरी।

रङ्गदायक (सं० क्ली०) रङ्गस्य दायकं। कङ्गुष्ठ नामकी पहाड़ी मिट्टी।

रङ्गदृढा (सं० स्त्री०) रङ्गेषु दृढा। स्फटी, फिटकिरी।

रङ्गदेवता (सं० स्त्री०) रङ्गाभिमानी देवी, वह कल्पित देवता जो रंगभूमिके अधिष्ठाता माने जाते हैं।

रङ्गद्वार (सं० क्ली०) रङ्गस्थलका प्रवेशद्वार।

रङ्गनगरी—एक नगरका नाम। रङ्गपुर देखो।

रङ्गनाथ—१ मङ्गलचिन्तामणिके प्रणेता। २ भाग्युदीप नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता। ३ कर्पूरस्तवदीपिका नामक ग्रन्थकर्त्ता। ४ गुणमन्दारमञ्जरीके प्रणेता। ५ जीवन्मुक्तिविवेकके रचयिता। ६ सिद्धान्तमनोरमा नाम्नी ब्रह्मसूत्रवृत्तिकार तथा वामनाश्रमके शिष्य। ७ रामानुजसिद्धान्तपद्धतिके प्रणेता। ८ वृत्तरत्नाकरटीकाके रचयिता। ९ मितभाषिणी नाम्नी लीलावतीकी टीकाके प्रणयनकर्त्ता। इनके पिताका नाम था नृसिंह। इन्होंने चलभाभञ्जन, भङ्गीविभङ्गीकरण और लोहगोलखण्डन नामक दूसरे तीन खण्ड ज्योतिःशास्त्रविषयक ग्रन्थ संकलन किये।

रङ्गनाथ—सूर्यसिद्धान्तगूढार्थप्रकाशक नामक सूर्यसिद्धांतकी टीकाके प्रणेता। १६०४ ई०में इन्होंने उक्त ग्रन्थ समाप्त किया था। इनके पिताका नाम बल्लालगणक और पुत्रका विश्वरूप था। जनसाधारणकी धारणा है, कि नारायणीयबोध, दिवाकरकृत जातकपद्धतिकी टीका, निसृष्टार्थदूती नामकी लीलावतीटीका, केशवार्ककृत जातकपद्धतिकी मीढ़मनोरमा नामकी टीका तथा सिद्धान्तचूडामणि आदि ग्रन्थ इनके रचे हैं।

रङ्गनाथ—विक्रमोर्वशी प्रकाशिका नामकी टीकाके प्रणेता। १६५६ ई०में इन्होंने उक्त ग्रन्थकी रचना की। इनके पिताका नाम बालकृष्ण पितामहका रङ्गनाथ तथा प्रपितामहका नागभट्ट था।

रङ्गनाथ आचार्य—विष्णुसहस्रनाम भाष्यके प्रणेता।

रङ्गनाथ शास्त्रि—सोमप्रयोगके रचयिता।

रङ्गनाथपुर—दाक्षिणात्यके महिसुरप्रदेशके अन्तर्गत एक नगर।

रङ्गनाथ भट्ट—१ दिनकरटीकाके प्रणेता। २ एक विख्यात पण्डित। ये उत्तररामचरितटीकाके प्रणेता नारायणके पिता थे।

रङ्गनाथ यज्वन्—हरिदत्तकृत पद्ममञ्जरीके पद्ममञ्जरीमकरन्द नामक टीकाकार। ये नारायणके पुत्र तथा महाकालिकके पौत्र थे। चोलदेश इनका जन्मस्थान था।

रङ्गनाथ सूरि—एक जैन सूरि। ये शक्तिवादविवरणके प्रणेता कृष्णभट्टके पिता थे।

रङ्गपताका (सं० स्त्री०) रागकल्पभेद।

(रङ्गमातर० ११८५)

रङ्गपत्री (सं० स्त्री०) रङ्गं रक्षार्थं पत्रमस्याः, ङीप्। नीलीवृक्ष।

रङ्गपीठ (सं० क्ली०) रंगगृह, रंगालय।

रङ्गपुर—बंगालके राजशाही विभागान्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २५° ३´ से २६° १९´ उ० तथा देशा० ८८° ४४´ से ८९° ५३´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३४९३ वर्गमील है। इसके उत्तरमें जलपाईगुड़ी जिला और कोचविहार, पूर्वमें ब्रह्मपुत्र नद, दक्षिणमें वगुड़ा जिला और पश्चिममें दिनाजपुर और जलपाईगुड़ी है। रंगपुर नगर इसका विचार सदर है।

समस्त रंगपुर जिला एक शस्यश्यामल विस्तीर्ण समतल भूमि है। यहां बड़े बड़े पहाड़के न रहनेसे जमीन तमाम चौरस है। केवल नदीतीरवर्त्ती स्थान ऊँचा नीचा दिखाई देता है। यहांकी जमीन उपजाऊ है। उपजमें धान, पटसन, तेलहन, तमाखू, आलू, ईख और अदरक प्रधान है। इसके सिवा जंगलोंमें छोटे छोटे बेंत और सरकंडे भी उत्पन्न होते हैं।

ब्रह्मपुत्र और उसकी शाखा प्रशाखा ले कर यहांकी नदीमाला बनी है। शाखा नदियोंमें तिस्ता, धर्ला, सङ्कोश, करतोया, गङ्गाधर और दुधकुमार प्रधान है। इसके अतिरिक्त आत्राई, गोघाट, मनास और गुजरिया नामक और भी कितनी नदियां बहती हैं।

इस जिलेका प्राचीन इतिहास जाननेका कोई उपाय नहीं। एक समय यह रङ्गपुर प्रदेश हिन्दूशासित कामरूप राज्यकी पश्चिमी सीमामें गिना जाता था। यद्यपि उस समयके कामरूप राज्यकी राजधानी आसाम उपत्यकामें थी, तो भी वे सब प्राचीन राजगण यहीं आ कर रहते थे। भारतयुद्धमें व्यापृत महाराज भगदत्तने रङ्गपुर नगरमें अपना 'सुखावास' स्थापन किया था।

महाभारतीय भगवदत्तका उपाख्यान छोड़ देने पर भी स्थानीय अन्यान्य प्रवादसे जाना जाता है, कि १५वीं सदीके पहले यहां तीन स्वतन्त्र राजवंश राज्य कर गये हैं। उन तीनोंमें पृथु राजाका वंश ही सबसे प्राचीन है। वर्त्तमान जलपाईगुड़ी जिलेमें उनकी राजधानीकी विस्तृत ध्वस्तकीर्त्ति दिखाई देती है। पीछे पालराजवंशका अभ्युदय हुआ। इस वंशके प्रतिष्ठाता धर्मपालके दुर्गादिसे सुरक्षित नगरका खंडहर आज भी जलपाईगुड़ीमें पाया जाता है। पालवंशके तृतीय राजा भवचन्द्र और उनके मंत्रीकी अलौकिक विचारशक्ति तथा तीक्ष्ण बुद्धिका परिचय नीचे दिया जाता है,—

"भारी तूफानसे एक बनियेकी नाव डूब गई जिससे उसे बहुत नुकसान हुआ। राजाके पास उसने अपना दुखड़ा जा कर रोआ। राजाने मंत्रीसे सलाह करके कहा, 'कुम्हारकी भट्टीसे धुआं निकल कर शायद मेघकी उत्पत्ति हुई है और वही तूफानका कारण है। अतएव कुम्हारको ही बनियेका कुल हरजाना देना पड़ेगा। एक दूसरे दिन स्थानीय कुछ अधिवासी एक जंगली सूअरका बच्चा ले कर राजाके समीप आये। राजा और राजमंत्रीने सोच विचार कर कहा, 'चाहे एक चूहा मोटा ताजा हो कर, चाहे हाथीका बच्चा क्षयरोगसे दुर्बल हो कर ऐसा हो गया है। तीसरा उपाख्यान 'पोखरकी चोरी' की घटना है,—एक दिन दो पथिक कहीं जा रहे थे। राहमें उन्हें शाम हो गई। इसलिये दोनों एक पोखरके किनारे रसोई बनानेके लिये चूल्हे बनाने लगे। यह देख कर राजाने समझा, कि अंधेरी रातमें ये दोनों पोखर चुरानेके लिये ही जमीन खोदता है। राजाके आदेशसे वे दोनों पकड़े गये और उन्हें शूलीकी सजा हुई। दोनोंके लिये दो शूली बनाई गई। शूली समान न थी, छोटी बड़ी हो गई थी। आसन्न मृत्यु देख कर दोनों पथिक छल पूर्वक बड़ी शूली पर ही चढ़नेके लिये आपसमें झगड़ने लगे। राजाके झगड़नेका कारण पूछने पर उन्होंने कहा, हम लोग ऐन्द्रजाल विद्या अच्छी तरह जानते हैं। जो व्यक्ति इस बड़ी शूली परसे मारा जायगा वह ससागर पृथ्वीका अधीश्वर और जो छोटी शूली परसे मरेगा वह राजाका मंत्री होगा। राजा भवचन्द्रने ऐसी निम्नश्रेणीके लोगोंका परजन्ममें राजपद पाना अच्छा न समझा। इसलिये स्वयं उन्होंने ही बड़ी शूली पर चढ़ कर प्राणत्याग किया। मन्त्री भी छोटी पर चढ़ कर यमपुरको सिधारा।" भवचन्द्र राजाके जयचन्द्र मन्त्रीका प्रवाद हम लोगोंके देशमें फैला हुआ है। शायद ये सब विचार हिंदूविद्वेषी बौद्धराजाओंके पक्षपात विचारको रूपान्तर कल्पना भी हो सकते हैं।

इस पालराजवंशमें राजा गोपीचन्द्रका नाम पाया जाता है। इनका गीत आज भी रङ्गपुर जिलेमें प्रचलित है। रङ्गपुरके योगी लोग ही यह गीत गाया करते हैं। राजा माणिकचांदका गीत भी किसीसे छिपा नहीं है।

तृतीय राजवंशमें नीलध्वज, चक्रध्वज और नीलाम्बर नामका तीन राजाओंके नाम पाये जाते हैं। इनमेंसे सबप्रथम राजाने कामतापुर नगर बसाया। कोचबिहार सीमा पर इस नगरका खंडहर आज भी देखनेमें आता है। इसकी परिधि प्रायः १९ मील है। इस राजवंशका विभिन्न राजधानी, राजप्रासाद और गढ़ सभी एक ही नियमसे बने हुए थे। राजा नीलाम्बरके साथ गौड़के अफगान राजाका युद्ध हुआ था। उस युद्धमें नीलाम्बर बन्दी हो लोहपिञ्जरमें गौड़ नगर लाये गये थे। प्रत्नतत्त्वविद्गण इस अफगान-राजको सुलतान हुसेन शाह मानते हैं। हुसेन शाह १४९९से १५२० ई० तक बङ्गालकी मसनद पर बैठे थे।

मुसलमानोंके अधिकारमें यह स्थान आने पर भी वे लोग यहां अपना शासन प्रभाव फैला न सके थे। पीछे यहां अराजकताका स्रोत बहने लगा। आसामकी पहाड़ी जातिने बार बार आ कर रंगपुरको लूटा तथा कोच लोगोंने सीमान्त पर कोचबिहार राज्य स्थापन किया। इस राजवंशके प्रथम राजा विशुने अपने भुज बलसे पूर्वमें आसाम उपत्यका तक अपना अधिकार फैला लिया था। उनकी मृत्युके बाद राज्य दो भागोंमें बंट गया। मुगलोंके बङ्गालमें पांव जमानेके बाद मुगल प्रतिनिधियोंने ब्रह्मपुत्र पार कर बङ्गालके उत्तर पूर्व सीमान्त देशकी रक्षाके लिये ग्वालपाड़ाके अन्तर्गत रांगामाटी पर आक्रमण कर दिया। क्योंकि, इस समय आसाम लोग बङ्गालमें आ कर लूट पाट द्वारा प्रजाको बहुत सताते थे। उसका रङ्गपुर विभाग १६८७ ई०में औरङ्गजेबके सेनापतिने मुगल साम्राज्यमें मिला लिया। उस समय भी कोचबिहार-राज्य स्वाधीनताकी रक्षा करनेमें समर्थ हुआ था। (कोचबिहार देखो।)

१७११ ई०में कोचबिहार-राजके साथ मुगलराजका एक बन्दोबस्त हुआ। उस शर्तके अनुसार बोदा पाटग्राम और पूर्वभाग परगनाके इजारेदारके रूपमें वे खजाना दाखिल करने बाध्य हुए तथा अवशिष्ट कोच बिहार राज्यका स्वाधीन भावमें शासन करने लगे। १७६५ ई०में ईष्ट इण्डिया कम्पनीके बङ्गालकी दीवानी पाने तक इसी प्रकार यहांका शासन और राजस्व कार्य चलता रहा था। अङ्गरेजोंने भी उस समय मुसलमानोंकी प्रथाके अनुसार कर उगाहनेका भार एक ही व्यक्तिके ऊपर सौंप दिया। किन्तु १७८३ ई०में राजस्व उगाहनेमें नियुक्त राजा देवीसिंह नामक एक राजपुरुषके अत्याचारसे प्रजा तंग तंग आ गये और सबके सब बागी हो उठे। इस विद्रोहमें डकैतोंके लूटपाट और अत्याचारसे रङ्गपुर तथा उसके आस पासके स्थान उत्सन्नप्राय हो गये थे।

अनन्तर अंगरेज गवर्मेण्टको बाध्य हो कर दूसरा बन्दोबस्त करना पड़ा। अब उन्होंने खास एक व्यक्तिके ऊपर कर उगाहनेका भार न दिया, जमींदारोंको बुलाया और उन्हींके साथ कर उगाहनेका बन्दोबस्त किया। १७७२ ई०में देशी सेनाविभागके कर्मच्युत सिपाही-दलसे परिपुष्ट डकैत दल तथा १७७० ई०के दुर्भिक्षका मारा उजड़ा प्रजावृन्द कुल ५० हजार आदमी मिल कर इस जिलेके नाना स्थानोंमें लूटपाट मचाने लगे। उस समय रङ्गपुर जिला नेपाल, भूटान कोच बिहार और आसामके सीमान्तरूपमें गिना जाता था। ऐसे बड़े भार विस्तृत प्रदेशका शासनकार्य सिर्फ एक कलक्टर द्वारा परिचालित होना बिलकुल कठिन हो गया था। यही कारण था, कि डकैत लोग रङ्गपुरसे दूर स्थानोंमें बे-रोकटोकके लूटपाट किया करते थे। उन डकैतोंका दमन करनेके लिये वृटिश सरकार बीच बीचमें हथियारबन्द सिपाही भी भेजा करती थी। इस प्रकार कभी कभी डकैत दल और छद्मवेशी संन्यासि दलके साथ अङ्गरेजी-सेनादलकी मुठभेड़ हो जाया करती थी। पहले एक अङ्गरेज सेनापति इन लोगोंसे हार खा कर लौटा। १७७३ ई०में कप्तान टामस द्वारा परिचालित अङ्गरेजी सेना डकैतोंके विरुद्ध भेजी गई। डकैतोंके हाथ कप्तान टामस दलबलके साथ मारे गए। यहां तक कि चार दल सेना भेज कर भी वृटिश गवर्मेण्ट उनका कुछ भी अनिष्ट न कर सकी। १७९६ ई०में देशके

शान्तिहारक डकैतोंका दमन करनेके लिये स्वयं कलक्टर बहादुर उनके विरुद्ध चले। अंगरेजी सेनादलको सामने देख डकैतोंने पहले वैकुण्ठपुरके घने जंगलमें आश्रय लिया। कलक्टर बहादुर दो सौ बरकन्दाज ले कर उस वनमें गोला बरसाने लगे। आखिर वे लोग आत्मसमर्पण करने बाध्य हुए। इनके बाद एक वर्षके भीतर प्रायः ५४६ डकैत पकड़े गये थे। इन डकैतोंमेंसे भवानी पाठक ही हमलोगोंका परिचित है।

भवानी पाठक देखो।

शासन-विभागकी सुविधाके लिये रंगपुर जिलेमें बहुत थोड़े परिवर्त्तनके सिवा कोई ऐतिहासिक घटना घटी। ब्रह्मपुत्र नदीका पूर्वी भाग ग्वालपाड़ा नामक स्वतन्त्र जिलेमें संगठित हो कर आसाम प्रदेशके अन्तर्भुक्त हो गया। उत्तरके तीन परगने ले कर जलपाईगुड़ी जिला और दक्षिणका कुछ अंश ले कर बगुड़ा जिला बना है। जलपाईगुड़ी और बगुड़ा देखो।

इस जिलेमें ६ शहर और ५२१२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या २० लाखसे ऊपर है। शहरोंमें रङ्गपुर और सैरपुर हैं। अधिवासियोंमें मुसलमानकी संख्या ही ज्यादा है। ये लोग पहले स्थानीय आदिमवासी थे। मुसलमानी अमलके समय हिन्दू-समाजमें स्थान न पा कर मुसलमान हो गये। अलावा इसके यहां भ्रमणशील कितने तेलेङ्गोंका भी वास है। कोच, पलिया और राजवंशी नामक अर्द्धसभ्य जातिकी भी संख्या थोड़ी नहीं है।

महीगञ्ज, धाप और नवाबगञ्ज नामक उपकण्ठ ले कर रङ्गपुर सदर म्युनिस्पलिटीका अधिकार है। इसके अतिरिक्त यहां बरखाता, भोगड़ाबाड़ी, डिमला, घोड़ग्राम, छातनाई, वामोनी, कपासी, शालमारी, खानबारितपा, बागडोगरा, नीलवितपा, बरागड़ी, मागुरा, भूमागाछ, छपारी, भागबाछागड़ी आदि नगर हैं। महीगञ्ज, लालबाग, घोड़ामारा, काकिना, कानिया, निसवेटगञ्ज, कालीगञ्ज लालमणीका हाट, कालीदह, याबापुर आदि स्थानोंमें यहाका वाणिज्य-केन्द्र है। १८७६ ई०में नदर्न बेङ्गल ष्टेट रेलवे और उसकी शाखा रङ्गपुर जिलेके मध्य विस्तृत होनेसे स्थानीय वाणिज्यमें बड़ी सुविधा हो गई है।

उक्त जिलेके चार उपविभाग हैं, महीगञ्ज, निसबेटगञ्ज, कुमारगञ्ज, मीठापुकुर और पीरगञ्ज तथा सदर उपविभागके अन्तर्गत हैं। नीलफामारी उपविभागमें डिमला, जलधाका और दरवानी नामक थाना, कुड़िग्राम उपविभागमें नागेश्वरी, बडवाड़ और उलिपुर तथा गाइबाधा उपविभागमें गोविन्दगञ्ज, नवाबगञ्ज, सादुल्लापुर और सुन्दरगञ्ज थाना है। सैयदपुरमें रेलकम्पनीका कारखाना स्थापित होनेसे यह स्थान विशेष समृद्धिशाली हो गया है। विद्याशिक्षामें यह जिला बहुत पिछड़ा हुआ है। अभी लोगोंका ध्यान इस ओर कुछ कुछ आकृष्ट हुआ है। फिलहाल कुल मिला कर १२०७ स्कूल हैं जिनमेंसे ६४ सिकेण्डरी और ११३१ प्राइमरी स्कूल हैं। विद्याशिक्षामें कुल २ लाख रुपया खर्च होता है। स्कूलके अलावा यहां २५ दातव्य चिकित्सालय हैं।

२ रङ्गपुर जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २५° १८´ से २६° १६´ उ० तथा देशा ८८° ५६´ से ८६° ३२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ११४१ वर्गमील है और जनसंख्या ७ लाखके करीब है। इसमें रङ्गपुर नामक एक शहर और १८८७ ग्राम लगते हैं। यह उपविभाग बहुत अस्वास्थ्यकर है।

३ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २५° ४५´ उ० तथा देशा० ८६° १५´ पू०के मध्य विस्तृत है। महाभारतोक्त राजा भगदत्त यहांके शासक थे। अफगान राज अलाउद्दीनने इस पर १४६३ ई०में अधिकार जमाया और १५१६ ई० तक राज्य किया। शहरकी आवहवा अच्छी नहीं है। डिस्ट्रिक्ट-जेल इसी शहरमें है। यहां एक हाई स्कूल और १८८६ ई०में स्थापित टेक्निकल स्कूल है।

रङ्गपुर—आसामप्रदेशके शिवसागर नगरके दक्षिण एक ध्वस्त नगर। १७वीं सदीके आहम-राजाओंके प्रासादादिका खण्डहर आज भी गत कीर्त्तिकी घोषणा करता है। प्रवाद है, कि वह प्रासाद और जयसागर देवमन्दिर प्रायः १६६८ ई०में राजा रुद्रसिंहने बनवाया था। प्रासादके आस पासका स्थान जंगलसे ढंका होने पर भी प्राचीन दीवार आज भी अभग्न अवस्थामें विद्यमान है। प्रासादगृहकी छत जहां तहां टूटफूट गई है। देवमन्दिरके सामने

जो जयसागर तालाब है वह सम्भवतः भारतवर्षमें शिव सागर इसके बराबर है। मन्दिरका शिखरमें पुण्य स्वर्णमें धमरत्व होना पड़ता है। मन्दिर ज्योंका त्यों खड़ा है, किन्तु देवमूर्त्ति न रहनेसे कोई उसमें पूजा करने नहीं जाता। नगरके समीप गड़गाँव नामक स्थानमें भी आहम-राजाओंकी राजधानी थी। १७८४ ई०में राजा गौरीनाथ रङ्गपुरसे जोरहाटमें राजधानी उठा लाये।

रङ्गपुरी (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी नाव जिसके दोनों ओरकी गलही एक-सा होता है।

रङ्गपुष्पी (सं० पु०) रङ्ग रञ्जितं पुष्पमस्याः। नामपुष्प।

रङ्गप्रवेश (सं० पु०) अभिनय करनेके लिये किसी पात्रका रङ्गभूमिमें आना।

रङ्गभट्ट—भाष्यप्रदीपप्रयोगवृत्तिके प्रणेता।

रङ्गभवन (सं० पु०) आमोद प्रमोद या भोगविलास करने का स्थान, रङ्गमहल।

रङ्गभूति (सं० स्त्री०) रङ्गस्य रागस्य भूतिः शोभाऽत्र। कोजागर पूर्णिमा आश्विनकी पूर्णिमा। कहते हैं कि जो लोग इस रातको जागते रहते हैं उन्हें लक्ष्मी धन जन देती हैं।

रङ्गभूमि (सं० स्त्री०) रंगस्य भूमिः। १ मल्लभूमि वह स्थान जहां कुश्ती होती हो अखाड़ा।

शर्करा शुष्कभूमिश्च पाषाणाद्यैर्वियुता।
नृत्यकारसमायुक्ता रङ्गभूमिन्तु कल्पयेत्॥
समाश्च विपुलाश्चैव स्निग्धाश्चैव समन्विता।
एकान्ते निर्जने रम्ये रङ्गभूमिन्तु कारयेत्॥"

(मल्लपु० ७।११।१२)

मल्लभूमिका स्थान समतल विस्तृत और कुछ वायुयुक्त तथा निर्जन और रमणीय होना चाहिये। मल्लभूमि के लिये वह स्थान बिलकुल अनुपयुक्त है जहांकी मिट्टी कड़ी, पथरीली और घासयुक्त हो। २ रणक्षेत्र, युद्ध क्षेत्र। ३ नाट्यभूमि, नाटक खेलनेका स्थान। रङ्गमञ्च देखो। ४ वह स्थान जहां कोई जलसा हो, उत्सव मनानेका स्थान। ५ खेल, कूद या तमाशे आदिका स्थान, क्रीड़ास्थल।

रङ्गमाटि—आसाम प्रदेशके गारो पर्वतमय जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह सिमसाङ्ग पर्वतका-दक्षिण किनारे पर अवस्थित है। यहां १८७१ ई०में जब गारो लोगोंने पैमा इशमें नियुक्त हो गवर्मेण्टके कुलियोंको निहत किया, तब अंगरेज राजने उनके विरुद्ध सेना भेजा। १८७२ ई०में गारो लोग पराजित हो कर अंगरेजोंको वश्यता स्वीकार करनेको बाध्य हुए। तुराले [illegible] कर रायक थाने तक जो रास्ता है वह इस गांवके आसपास हो कर चला गया है।

रङ्गमङ्गल (सं० क्ली०) रंगमञ्च पर मिल कर उत्सव करना।

रङ्गमण्डप (सं० क्ली०) रंगभूमि, रंगस्थल।

रङ्गमता—षड्गांवका एक वन।

रङ्गमध्य (सं० पु०) रंगमंच रंगस्थल।

रङ्गमही (सं० स्त्री०) रङ्गाय रागाय मही। यापा, बोल।

रङ्गमहल—दिल्लीका एक विस्तृत प्रासाद। मुगल बादशाह यहां आमोद प्रमोद करते थे।

रङ्गमहल (सं० पु०) भोग विलास करनेका स्थान, आमोद प्रमोद करनेका भवन।

रङ्गमाणिक्य (सं० क्ली०) माणिक्यरत्न।

रङ्गमातृ (सं० स्त्री०) रङ्गस्य माता जनिका। १ कुटनी। २ लाक्षा लाह।

रङ्गमातृका (सं० स्त्री०) रङ्गमातृ स्वार्थे कन्-टाप्। लाक्षा लाह।

रङ्गराज (सं० पु०) सङ्गीत दामोदरके अनुसार तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक भेद।

रङ्गराज—एक हिन्दू राजा (१५३२-८५ ई०म)। ये प्रायश्चित्तपद्धतिके प्रणेता माधवके प्रतिपालक थे।

रङ्गराज—१ शिशुपाल-वधके एक टीकाकार। मल्लिनाथने इनका नामोल्लेख किया है। २ अद्वैत मुकुरके रचयिता। ३ रूपक-परिभाषा नामक अलङ्कारग्रन्थके प्रणेता। ४ मीमांसान्यायदीपिकाके प्रणेता वरदराजके पिता और रघुराजके पुत्र, ये भी एक सुपण्डित थे।

रङ्गराता (सं० त्रि०) १ भोग विलासमें लगा हुआ, ऐश आराममें मस्त। २ प्रेम मुग्ध, अनुरागपूर्ण।

रङ्गरामानुज—उपनिषद्भाष्यविवरण (तैत्तिरीयोपनिषद् और बृहदारण्यकोपनिषद् समभ्याय) उपनिषद् प्रका

शिका, उपनिषद्भाष्य और द्राविड़ोपनिषत्साररत्नावली-व्याख्या नामक ग्रन्थके प्रणेता। अलावा इसके शङ्कराचार्यकृत ईशावास्योपनिषद्भाष्यकी टीका, कठवल्ल्युपनिषद्प्रकाशिका, कौषितक्युपनिषत् प्रकाशिका छान्दोग्योपनिषद्भाष्य, तैत्तिरीयोपनिषद्भाष्य, प्रश्नोपनिषत्प्रकाशिका, वृहदारण्यकभाष्य, माण्डूक्योपनिद्भाष्य, मुण्डकोपनिषद्भाष्य, श्वेताश्वतरोपनिषद्भाष्य तथा गुरुभाव-प्रकाशिका, भावप्रकाशिका, मूलभावप्रकाशिका रंगरामानुजभाष्य (वेदान्त), विषयवाक्यदीपिका, श्रुतभावप्रकाशिका और रंगरामानुजीय नामक वेदान्त ग्रन्थ इनके बनाये हैं।

रङ्गरेज (फा० पु०) १ वह जो वस्त्रादि रंगाता हो। २ उक्त व्यवसायावलम्बी निम्न श्रेणीकी मुसलमान जातिविशेष। ३ धोंगी जातिकी एक शाखा। उत्तर-पश्चिम प्रदेशमें हिन्दू और मुसलमान रंगरेज देखनेमें आते हैं। मुसलमान शाखाके मध्य फिर ८१ स्वतन्त्र थोक हैं। उनका कहना है, कि खाजाअली नामक एक साधुसे उन लोगोंके मध्य एक प्रवाद इस प्रकार प्रचलित है,—'खाजा अली रंगरेज, रंगे खुदाकी सेज' अर्थात् खाजा अली परम पिता परमेश्वरको शय्या रंगाते हैं।

दूसरी जातिके लोग यदि इनमें मिलना चाहें, तो ये लोग उन्हें अपने समाजमें ले लेते हैं सही, पर उनके साथ विवाहादि नहीं करते। इससे बारह वर्षके भीतर ही बालकबालिकाका विवाह होते देखा जाता है। यह विवाह वरहौवा, डोला और सगाईके भेदसे तीन प्रकारका है। वरहौवा प्रथामें वर बारात ले कर कन्याके घर जाता और विवाह करता है। जो गरीब हैं उनमें डोला-प्रथा का विवाह ही अधिक होता है। इसमें कन्या छिपके वरके घर लाई और व्याही जाती है। विधवा विवाहको सगाई कहते हैं। सुरा पाठके सिवा विवाह-बन्धनका और कोई विशेष मन्त्र नहीं है। विधवा अपने देवर अथवा जिस किसीसे इच्छा हो, विवाह कर सकती है। स्त्री या पुरुषमें जब कोई दोष दिखाई देता और वह दोष दो-मेंसे कोई पंचायतमें पेश करता है, तब विवाह बन्धन टूट जाता है।

मुसलमान रंगरेजोंमें अधिकांश सुन्नीमतावलम्बी हैं। सुन्नी सिया लोगोंके साथ आदान प्रदान नहीं करते। गाजीमीयां और पांचपीर इनके प्रधान उपास्य देवता हैं। ज्येष्ठ मासके प्रथम रविवारको ये लोग उक्त देवताकी पूजा करते हैं। विवाहके बाद गाजीमीयांको कन्दूरी चढ़ानेकी प्रथा है। ईद, सब इ-दरात और बकर-ईद उत्सवोंमें ये लोग पितृपुरुषोंके उद्देशसे उन्हें खाद्यादि चढ़ाते हैं।

रङ्गलता (सं० स्त्री०) आवर्त्तकी लता, मरोडफली।

रङ्गलाल वन्द्योपाध्याय—बंगलाके एक प्रसिद्ध कवि। १८२६ ई०में वर्द्धमान जिलेके कालनाके निकटवर्त्ती वाकुलिया ग्राममें इनका जन्म हुआ। इनके पिताका नाम रामनारायण था।

हुगली कालेजमें रंगलालकी शिक्षा शेष हुई। शारीरिक अस्वस्थताके कारण वे अधिक दिन कालेजमें न पढ सके। वाध्य होकर उन्हें विद्यालय तो छोडना पडा, पर उनकी पाठस्पृहा दूर न हुई थी। अंग्रेजी काव्य शास्त्रमें इनका अच्छा अधिकार हो गया था। वे बचपन से ही कविता-रचनाके अनुरागी थे।

१८५५ ई०में एडुकेशन गजटके प्रकाशित होने पर मि० वायन स्मिथ साहब सम्पादक रंगलाल और उनके सहकारी नियुक्त हुए। बहुत दिन तक इन्होंने यह काय किया था। उस समयके एडुकेशन गजटमें इनकी गद्य पद्य दोनों ही रचना प्रकाशित होती थीं। कुछ वर्ष बाद ये इनकमटैक्सके एसेसर हुए थे। इसमें योग्यता देख कर गवर्मेण्टने इन्हें डिपटी मजिष्ट्रेटका पद दिया।

उनके हृदयमें जातीय स्वाधीनताकी उद्दाम-आकांक्षा घुस गई थी। इनके बनाये पद्मिनी-उपाख्यान, कर्मदेवी और शूर सुन्दरी काव्यमें उसका उच्छ्वास देखा जाता है। उन्होंने संस्कृत कुमारसम्भवका पद्यानुवाद भी किया था। इसके सिवाय आप बंगला कविता विषयक प्रबंध और शरीरसाधनीविद्याके गुणकीर्त्तनके संबंधमें और भी दो ग्रंथ लिख गये हैं। १८८७ ई०की १३वीं मईको रंगलालका देहान्त हुआ।

रङ्गलासिनी सं० स्त्री० रंगेण रागेण लसितुं शीलमस्याः इति लस-णिनि। शेफालिका।

रङ्गवती (सं० स्त्री०) वासवदत्ता-वर्णित एक नायिका। इन्होंने अपने स्वामी रन्तिदेवको मार डाला था।

रङ्गवल्लिका (सं० स्त्री०) रंगवल्ली, भागवल्ली।
रङ्गवस्तु (सं० क्ली०) रंग।
रङ्गवाट (सं० क्ली०) वह स्थान जो रंग दिखानेके लिये घिरा हो।
रङ्गवाराङ्गना (सं० स्त्री०) नाचनेवाली वेश्या, वह वेश्या जो नाच गान करती हो।
रङ्गविद्याधर (सं० पु०) १ तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक भेद। इसमें दो काली और दो प्लुत मात्राएं होती हैं। २ वह जो अभिनय करता हो, नट। ३ वह जो नाचनेमें कुशल हो।
रङ्गबीज (सं० क्ली०) रङ्ग बीजं उत्पत्तिकारणमस्य। रूप्य, चांदी।
रङ्गमाला (सं० स्त्री०) रङ्गस्य शाला। नाट्यगृह, नाटकके खेलनेका स्थान।
रङ्गस्वामी—मद्रासप्रदेश नीलगिरि पर्वतमालाका एक शृङ्ग। यह अक्षा० ११ २४´२०´´ उ० तथा देशा० ७७ २० पू०के मध्य मलमल्लाथी संकरके समीप अवस्थित है। समुद्र पृष्ठसे इसकी चोटी ५९३०फुट ऊंची है।
रङ्गहड्ड—मालवके अन्तर्गत एक प्राचीन ग्राम।
रङ्गाङ्गण (सं० पु०) रङ्गस्थल, नाट्यशाला।
रङ्गाङ्गा (सं० स्त्री०) रङ्ग रङ्गाङ्ग मङ्गमस्याः। स्फटा, फिटकरी।
रङ्गाचार्य—एक प्रसिद्ध पण्डित। ये सन्न्यासाश्रमग्रहण करनेके बाद योगीशतीर्थ नामसे परिचित हुए तथा कमान्तरतीर्थके तिरोधानके बाद यह आसन पाया। १३४४ ई०में ये करालकालके मुखमें पतित हुए।
रङ्गाचार्य—अन्ताक्षरव्याख्या तुकसी मल्लिनाथ, रघुवीर विंशति और रंगराट्‌ पद्धति नाम कई संस्कृत ग्रन्थके रचयिता। २ भावप्रकाशिका नामक वेदान्तग्रन्थके प्रणेता। ३ उत्तर पक्ष और गौतम मतत नामक न्याय ग्रन्थके रचयिता। ४ शुकसन्देशकाव्यके रचयिता।
रङ्गाजीव (सं० पु०) रङ्गो हरितालादिस्तमाजीवतीति जीव अण्, यद्वा रङ्ग माजीव बाहुल्य। चित्रकार यह जिसकी जीविका रंगाईसे चलती हो।
रङ्गाभरण (सं० पु०) तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक भेद।
रङ्गार—१ राजपूतोंकी एक जाति। इस जातिके लोग मथुरा और मालवामें रहते हैं। २ वैश्योंकी एक जातिका नाम। ३ महाराष्ट्र और मध्यभारतवासी ब्राह्मणों की एक श्रेणी। गोआलवल, रोहिलखण्ड, उत्तर अन्तर्वेद और मद्रप्रदेशमें इस श्रेणीके बहुत ब्राह्मण वास करते हैं। पश्चिमके भूमिहार ब्राह्मणों की तरह ये भी खेतीबारी करते हैं। अभी बहुतेरे सिपाहीमें भर्ती हो गये हैं। ये उद्धत और दुर्दान्त हैं। आज कल इन्होंने इस्लाम धर्म अवलम्बन किया है।
रङ्गारि (सं० पु०) रङ्गस्य तत्राख्यधातोररिरिव। करवीर, कनेर।
रङ्गालय (सं० पु०) मल्लक्रीड़ा और नृत्यगीतादिका अभिनय प्रदर्शनार्थ गृह। इसे अंगरेजीमें Theatre कहते हैं। जहां मल्लक्रीड़ा, व्यायाम, अस्त्रचालन आदि दिखाया जाता है उसका साधारण नाम Amphitheatre है तथा जिस मञ्चके ऊपर केवल नाट्यरङ्गमें लिप्त अभिनेता और अभिनेत्रीगण चरित्रका हावभाव दिखलाती और वक्तृता के साथ प्रकृतवत् अभिनय करती हैं वही नाट्याभिनय कहलाता है। आज कल प्रचलित पाश्चात्य थियेटरमें विशेष घटनामिश्रित किसी चरित्रके उल्लेखके साथ तदानुरूप लोकचरित अभिनीत होता है।

प्राचीन भारतवर्षमें नाट्याभिनयका विशेष आदर था। दृश्यलोक चित्तविनोदनार्थ उस समय अनेक प्रकारके नाटक, प्रहसन आदि रचे गये। भारतीय नाट्यशास्त्रकी आलोचना करनेसे इन सब विषयोंके विभिन्न विभागीय ग्रन्थों का यथेष्ट परिचय पाया जाता है।

नाटकादि शब्द देखो।

भारतीय हिन्दू-राजाओंके नित्यमात्रिविद्यामें अथवा किसी उत्सवमें उनके चित्तरञ्जनार्थ राजकवियों द्वारा अनेक प्रकारके गीतिनाट्य प्रदर्शित हुए। उन सब नाटकों का अभिनय दिखानेके समय प्राचीन नाट्याचार्यगण किस रङ्गमञ्च और रङ्गालय बनाते थे, उसका विवरण जानेका कोई उपाय नहीं। क्यों कि, भारतीय रङ्गभूमिका एक भी स्वतन्त्र निदर्शन आज तक आविष्कृत नहीं हुआ है। सम्भवतः राजप्रासादके ही किसी स्थानमें यह रङ्गगृह प्रतिष्ठित था अथवा देवमन्दिरादिके सम्मुखस्थ उपयाकुचमें या नाट्यमन्दिरमें आवश्यकीय परदों को

यथास्थानमें लटका कर यह सब खेल खेला जाता था। यही कारण है, कि राजकीय वा देवपूजा-सम्पर्कीय किसी उत्सवके समय राजगृहमें ही नाटकाभिनयकी बात सुनी जाती है। राजाश्रयमें प्रतिपालित नाटककार कालिदास, भवभूति आदि कविगण भी इस बातको स्वीकार कर गये हैं।

प्राचीन नाट्यशास्त्रादिमें रङ्गमञ्चकी निर्माण प्रणालीका उल्लेख रहने पर भी उसकी लम्बाई, चौड़ाई और ऊंचाई कितनी होनी चाहिये, उसका कोई निर्दिष्ट परिमाण लिपिबद्ध नहीं है। जब जैसा नाटक खेला जाता था, तब उसीके अनुसार रङ्गभूमि बनाई जाती थी। किसी किसी नाट्यवित् पण्डितने उसकी लम्बाई और चौड़ाई प्रत्येक २० हाथ तथा ऊंचाई उसीके अनुसार बतलाई है। ऊपरी भाग काष्ठादि मजबूत पदार्थोंसे बना कर कलस, पताका, पुष्पमाल्य और तोरणादिके द्वारा उसे परिशोभित करें तथा उसमें झरोखे, पुतली आदि भी रखे। उसका निचला भाग चिकना और सफेद होना उचित है, परन्तु फर्श उतनी चिकनी न रहे। क्योंकि, इससे अभिनेताओंके फिसल जानेका डर है। रङ्गभूमिके पश्चिम प्रान्तमें नेपथ्य बनाना आवश्यक है। कारण, इससे पात्रप्रवेशकी विशेष सुविधा होती है।

अभिनयके आरम्भसे पहले या प्रति अङ्कके अन्तमें जो विचित्र पट द्वारा रङ्गभूमिका सम्मुख भाग आच्छादित किया जाता है, उसका नाम यवनिका या परदा है। बिना छेदके, किन्तु बारीक वस्त्र द्वारा ही यवनिका या परदा तय्यार किया जाता है। प्रति अङ्क या प्रति गर्भाङ्कमें जैसे रङ्गभूमिके बीचके पटोंका परिवर्त्तन हुआ करता है, उसी तरह रसविशेषमें यवनिकाका परिवर्त्तन करना उचित है। आदीके रसमें शुभ्र या सादा, वीररसमें पीला, करुणरसमें धुंधला या बुटादार, अद्भुतरसमें हरा, हास्यरसमें विचित्र, भयानकरसमें नील तथा वीभत्सरसमें धूसर और रौद्ररसमें लाल रंगकी यवनिका या परदा डालना चाहिये। किसी किसी प्राचीन नाट्याचार्योंके मतसे शुद्ध लाल रंगकी ही यवनिका सब रसोंमें व्यवहृत हो सकती है। आधुनिक नाटककार प्राय: इसी मतके अनुसरण करनेवाले देखे जाते हैं। प्राचीनकालमें यवनिका दो भागोंमें विभक्त थी। पात्रोंके प्रवेशके समय दो सुन्दर स्त्रियों द्वारा दोनों ओरसे यवनिका खींच ली जाती थी। इस समयकी तरह घिरनियों और डोरियोंके साहाय्यसे ऊपर उठाई नहीं जाती थी।

उस समय दर्शकमण्डलीके बैठनेके लिये आसन विभिन्न स्थानोंमें रखे जाते थे। नाट्यशालाके पूर्वी भागमें राजा या सङ्गीतविशारद, न्यूनाधिक विवेचक, मार्गदर्शी, विभागवित्, सानन्दचित्त, रसालङ्काराभिज्ञ, कलानाट्यनिपुण, अभिनयवेत्ता सब तरहके गुणों और दोषोंके निरूपणज्ञ, दूसरेके अभिप्रायके समझनेवाले और क्षमाशील सभापतिका आसन रहता था। दक्षिणमें ब्राह्मणोंके लिये, उत्तरमें अमात्य और बालकोंके लिये, भित्तिपार्श्वमें स्त्रियोंके लिये, सभाप्रान्तमें नन्दी, स्तावक, राजा या सभापतिके शरीर-रक्षक शस्त्रधारियोंके लिये और अन्यान्य दर्शनेच्छु व्यक्तियोंके लिये स्थान निर्दिष्ट होता था। अपरिचित, शस्त्रपाणि, अनाचारी, पीड़ित, अनभिज्ञ और पाषण्डियोंको सभामें आने नहीं दिया जाता था। मध्यस्थता, सावधानता, अचञ्चलता, न्यायवादिता, निरहङ्कारिता, रसभावाभिज्ञता, सानन्दचित्तता आदि गुणों द्वारा भूषित व्यक्तिमात्र ही नाट्यसभाके सभ्य पद पाने योग्य होते थे। सिवा इसके अन्यान्य दर्शक या श्रोता रसभंगके कारण होते थे।

(भरतकृत नाट्यशास्त्र)

प्राचीन-भारतकी तरह पाश्चात्य जगत्‌में अर्थात् प्राचीन यूरोपके सुसभ्य रोमन और यूनानियोंमें और एशियामाइनरवासी यूनानी प्रभावापन्न यवनोंमें बहुत प्राचीनकालसे अभिनय करनेके लिये रंगालय तैयार हुए थे। इतिहासके पढनेसे मालूम होता है, कि एथेन्सवालोंने नाटक अभिनय करनेके लिये (dramatic representation) सबसे पहले रंगालय स्थापित किया। दिओनिसस् देवके प्रति उत्सव (Dionysiac festivals)-के समय वे अस्थायी लकड़ीके पटरोंसे रंगमञ्च निर्माण कर अभिनय-कार्य सम्पन्न करते थे। ईसाके ५०० वर्ष पहले किसी दुर्घटनामें अस्थायी मञ्चके नष्ट हो जानेसे एथेन्सवाले एक स्थायी रंगमञ्च तय्यार करने-

ही तय्यार हुए। इससे ३४० वर्ष पहले एक सर्वप्रथम स्थायी रंगमञ्च तय्यार हुआ। इसी समय यूनान और एशिया माइनरके नाना स्थानोंमें प्राचीन रंगालयोंके अनुरूप अनेक नाट्यशालायें तैयार हुईं। स्पार्टामें केवल व्यक्तिवर्गकी सभा और नृत्यामोदके लिये कई रंगमञ्च प्रतिष्ठित हुए थे सही, किन्तु उनमें आज तक नाट्य-अभिनय नहीं हो सका।

डिओनिसस् पवित्र लेनियम् (Lenneum) नामक स्थानकी चहारदीवारीके भीतर एथेन्सके सुप्रसिद्ध डियोनिसियक रंगालय प्रतिष्ठित था। एक्रोपलिस पर्वतके दक्षिण-पूर्व कोनेकी जगहको खोद कर इस रंगालयमें दर्शकवृन्दके बैठनेकी जगह (auditorium) बनी थी। यूनानियोंने जिस जिस जगह रंगभूमिकी रचना की थी उनमें इस तरहसे पर्वतके पादमूलमें खोद कर दर्शकोंके बैठनेके लिये सिढ़ियां या गैलेरियां बनी थीं। ईसाके १ शताब्दी पहले रोमनोंमें समतल भूमि पर रंगमञ्च बनानेका कोई चिह्न पाया नहीं जाता।

इस समयके ढंगके बने रंगालयों पर छत न था। एशिया माइनर लिसियाके दक्षिण-पूर्वमें मैरा (Myra) नगरमें रंगालयके जो नमूने मिले हैं, वे अत्यन्त प्राचीन न होने पर भी प्राचीनतम यूनानी रंगालयोंके ढंग पर बने हुए थे। इनमें दर्शकोंके बैठनेके लिये जो आसन बने थे, वे एक केन्द्रीभूत थे और अर्द्ध वृत्ताकारमें गैलेरियां बनी थीं। श्रेणीबद्ध सोपानावली या गैलेरियां परस्पर सटी हुई थीं। ये गैलेरियां पर्वतके ढालवें देशमें काट कर समवृत्ताकारमें (gallery) बनाई गई थीं। इस दर्शकमण्डपका नाम Covea था। पांच या छः पंक्तियोंके बाद दर्शकोंके आने जानेकी सुविधाके लिये एक पथ बनाया जाता था। उसके बाद ऐसी ही गैलेरियां बनाई जाती थीं। सबसे पीछे केवल स्त्रियोंकी अलग गैलेरियां रहती थीं। यहां खम्भों पर छत रहती थी। इसके नीचे एक रास्ता या बरामदा रहता था। इस छत पर भी बैठनेका स्थान रहता था। रोमनों की तरह यूनानियों के थियेटरमें भी स्त्रियोंके बैठनेके लिए अलग ही पीछे स्थान रहता था। यह आसन बहुत ऊंचे होते थे। (Athcneus xii, 534)।

मध्य युगमें प्राचीन यूनानियोंमें प्रधान प्रधान पुरोहितों-की स्त्रियों (Chief priestesses) के लिये गैलेरियोंके सामने मर्मर पत्थरके बने सिंहासन बनानेकी रीति प्रच-लित हुई थी। थियेटर या रंगालय पर छत न रहनेसे दर्शकों को बड़ी असुविधा होती थी। तूफान और वृष्टिके समय लोगों को गैलेरियोंके बीच या रास्तेमें या बरामदेमें छिपना पड़ता था।

वृष्टि पातके सिवा छतविहीन रंगमञ्च पर दर्शक-मण्डलीके कष्टका एक और कारण था। वह यह, कि पात्र और पात्रियोंके मुखसे निकले हुए शब्द सुनाई नहीं देते थे। क्योंकि, छत न रहनेसे आकाशमार्गसे शब्द उड़ जाते थे। उनकी प्रतिध्वनिका कोई उपाय न था। इस लिये रंगालयके सबसे पीछेवाली दीवार और रंगालयकी सीमावाली चहारदीवारीमें कितनी ही कुलुङ्गियां बना देते थे। इन कुलुङ्गियोंमें प्रायः धातुके बने बड़े बड़े कलसे लगा दिये जाते थे। स्टेज या रंगमञ्चसे निकले बारंबार शब्द इन कलसों में समा जाते थे और क्रमशः घनीभूत हो कर दूर जानेके लिये ही नाट्याचार्योंने इस तरहके कलसस्थापनका विधान किया था।

विट्रुवियसने लिखा है, कि यह कुलुङ्गी भीतरके व्यासके मुताबिक ही बनाई जाती थी और कलसा भी सुरसमन्वय (tuned in a caromatic scale) अनुसार ही संस्थापित किया जाता था। उनका कहना है, कि यूनानी साधारणतः इसी उद्देश्यसे घड़े रखते थे। रोमनोंके रंगालयोंमें इस तरहके कलसे स्थापित किये जाते थे, कि नहीं यह बात वे जानते न थे। सिसली द्वीपके टोरेमिनियम रंगालयकी कुलुङ्गियां आज भी रक्षित हैं। यह निःसन्देह कहना कठिन है, कि यथार्थमें क्यों उन लोगोंने इस तरहकी कुलुङ्गी तथा कलसोंके स्थापित करनेकी व्यवस्था की थी।

ग्रीक-रंगमञ्चका गैलेरियोंके सामने और स्टेजके मध्यस्थानमें जो ऊंचा मण्डप स्थापित होता था, वह अर्केष्ट्रा (Orchestra) कहलाता था। यहां गायक, वादक और नर्तकियां बैठती थीं। इसके बीचमें गैले-रियोंके समान ऊंचा डिओनिसस्की पवित्र वेदी रहती थी। वेदीके पास ही एक ध्वज या फलका चबूतरा

(Proscenium) रहता था। अर्द्धवृत्तकी अपेक्षा उसे ५ फुट तक ऊंचा होता था। इस पर चढ़नेके लिये कई सीढ़ियां बनाई जाती थीं। अर्द्धवृत्तमें बैठे हुए पात्र-पात्रियां आवश्यकतानुसार ऊपर स्टेज पर चढ़ कर अपना पार्ट करती हैं। स्टेजके बीचमें जहां प्रधान-प्रधान अभिनेतृवर्ग आ कर खड़े होते हैं वह Pulpitum स्टेजके नीचे एक कोठरी रहती था।

स्टेजके सबसे पीछे ऊंची एक दीवार रहती थी। यह दर्शकोंके निर्दिष्ट अन्तिम सोपानके पीछेकी ओर स्तम्भश्रेणीके समान समोच्च बनती थी, इसका नाम Scena है। इसके नीचे भीतर जानेके लिये तीन दरवाजे बनाये जाते थे। बगलके दोनों दरवाजोंसे साधारण अभिनेता या पात्र और बीचके दरवाजेसे केवल साजसे सज्जित हो कर बाहर होते थे। इसके पीछे पात्र-पात्रियोंके लिये 'साज घर' होता था। ये ऊंची दीवार तीन स्तम्भों द्वारा इस ढंगसे बनाई जाती थी, जिसे दूरके देखनेवाले समझते थे, कि किसी राजमहलका अगला भाग है। लोगोंको यह मालूम होता था, कि किसी उत्सवके उपलक्षमें किसी राजमहलके सामने अभिनय हो रहा है।

सिवा इसके इस रंगालयकी शोभा बढ़ानेके लिये चिरस्थायी प्रासाद या दीवारके बदले और भी कितने ही काष्ठनिर्मित चित्रपटोंकी अवतारणा की जाती थी। ये दृश्यपट इच्छानुसार हटाये जा सकते थे। कभी कभी शलमासितारेके बने चित्रोंसे सुसज्जित परदा पात्रोंके पीछे लगा दिया जाता था। इस तरहके परदे या दृश्यपटका नाम aulaea या Siparium है। पिछले समयमें नाना तरहके चित्र खींच कर रंगालयमें परदा व्यवहार किया जाने लगा। अरिष्टटलके मतसे नाना रंगोंसे रञ्जित इस तरहके अङ्कित दृश्यपटने सोफोक्लिसके बाद रंगालयोंकी शोभा बढ़ाई थी।

दृश्यपटके सिवा आवश्यकतानुसार अनेक कल कारखानोंका उन्नति हुई है। स्वर्गीय देवताओंके अवतरणकी लीला या अभिनय करनेके लिये अभिनेताको झुला देना होता था। इसके लिये एक यन्त्र निकाला गया था। वज्रपातका शब्द करनेके लिये एक बड़े धातुमय पात्रमें पत्थर भर कर रखा जाता था। ऐसा पात्र सम्भवतः स्टेजके नीचेवाले कमरे (Ghost chamber)-में रख यथासमय उनसे काम लिया जाता था।

एथेन्स महानगरीके दियोनिसियाक् रंगमञ्चका (जिसके अनुरूप इस समयके रंगालय बनाये जा रहे हैं) ध्वंसावशेष सन् १८६२ ई०में प्रत्नतत्त्वविभागके यत्नसे प्रोथितावस्थासे ही साधारणको दिखलाया गया था। उस समय भी उसका प्रोसिनियम्, अर्द्धवृत्त और नीचेके बैठनेके 'सीट' सुरक्षित थे। इनका आकार-प्रकार देख कर अनुमान किया जाता है, कि इस रंगभूमिमें एक बार तीस हजार मनुष्य बैठ सकते होंगे। इस रंगालयमें साधारण लोगोंके बैठनेकी जगहके समान एथेन्सके प्रधान प्रधान धर्मयाजकोंके बैठनेके उपयुक्त मर्मरपत्थरके बने ६७ आसन थे। सिंहासनों पर उस समयके धर्मयाजकोंका नाम खुदा हुआ है। खुदे हुए सन्से मालूम होता है, कि ये सभी आसन एक समयके बने नहीं हैं। अगष्टस्के राजत्वकालके पहलेसे हेड्रियानके राजत्वकालके बीच समय-समय पर ये सिंहासन बने थे। रंगालयका दर्शनमण्डप दर्शकोंकी मर्यादाके अनुसार नियत होता था। इस रंगालयमें इस तरहके १३ भाग होते थे। प्रत्येक भागके आसन एक छोटी चहारदीवारीसे घिरे होते थे। अर्द्धवृत्तसे समूचा अडिटोरियम भी इसी तरह चहारदीवारी द्वारा सम्पूर्णरूपसे पृथक् था।

एथेन्सके सिवा यूनानके अन्यान्य नगरोंमें भी रंगालय थे, उनमें मेगालोपोलिस, सिडस, साइराकिउस, आर्गोस् और एपिदौरसका रंगमञ्च उल्लेखनीय है। यह निश्चय है, कि ईसाके ४ शताब्द पहले यूनानके प्रधान प्रधान प्रायः सभी नगरोंमें ऐसा ही एक अभिनयागार प्रतिष्ठित हुआ था। रोमनोंके राजत्वकालमें प्रायः सभी नाट्य मन्दिरोंकी मरम्मत हुई थी और स्थान-विशेषमें नये रंगभवन बना कर देशी नागरिकोंके भोग सुख और विलासपरताकी पूर्ण पराकाष्ठा प्रकट की गई थी। इन सबोंके निदर्शनस्वरूप पम्फिलियाके अन्तर्गत आस्पेन्दस नगरका रंगालय उस अतीत कीर्त्तिका परिचय दे रहा है। ये भवन २री शताब्दीमें बना था, फिर भी, यह अभी नष्ट भ्रष्ट नहीं हुआ है। यह रंगभवन प्राचीन

रंगमञ्चके अनुरूप ही बना था। इस आस्पेण्डस रंगालयके प्रेञ्चके पीछेकी दीवार Scena में तीन दर्जे स्तम्भ लगाये गये हैं।

रोमनगरीके सुप्रसिद्ध कोलोसियम्-रङ्गवाटिकाकी तरह इस रङ्गालयमें भी लकड़ीका मचान बांध कर दर्शकमण्डप पर त्रिपाल चढ़ा कर आच्छादन करनेकी व्यवस्था हुई थी। Scena-प्राचीरके बराबर और थेगीपर काष्ठस्तम्भ खड़े कर उस पर मचान बांधी गई थी। इस मचानके स्तम्भों पर पुल (Corbels) बैठाया जाता था। प्रेञ्चका ऊपरी भाग ढाप देनेके लिये ढालवां छत (Pent-roof) तय्यार की जाती थी। इस छतका निम्न भाग घरकी समतल छतकी तरह दिखलानेके लिये वे लकड़ीके पटरेसे आवृत कर देते थे। यहां प्रेञ्च गृहका उर्द्धतलावरक (Ceiling) था। इस सिलिङ्ग छतमें लकड़ीके पुल लगा कर प्रेञ्चकी शोभावृद्धि की जाती थी।

आसपेण्डस रङ्गालयके पहलेके जितने रंगमंचोंका उल्लेख पाया जाता है उन सबोंमें छत नहीं रहती थी। अतः उन सब रंगगृहोंमें बैठे दर्शकोंको विशेष कष्ट भोगना पड़ता था। वे सम्पूर्ण रूपसे सूर्य्यके उत्तापसे तंग होते थे। इसके बाद सिसलीद्वीपके टौरोमिनियम् थियेटर और लाइसियमके अन्तर्गत मेरेका रंगमञ्च विशेष रूपसे उल्लेखनीय है। इन दोनों रंगालयोंके कुछ अंश ध्वंस होने पर भी यह आज भी भग्नावशेषमें परिणत नहीं हुए हैं। ये आज भी सुरक्षित रह कर प्राचीन जगत्की अतीत-कीर्त्तिका परिचय दे रहे हैं।

रोमी प्रधानतः यूनानी रंगमञ्चकी तरह अपने रंगालय बनाते थे, उनमें विशेषता यही थी, कि यूनानी मञ्चेंपृष्ठ अर्द्धगोलाकृतिसे कुछ अधिक रहती थी। किन्तु रोमनों की मञ्चपृष्ठ अर्द्धगोलाकृति ही होती थी। रोमन जहां तहां इच्छानुसार पत्थरके स्थायी रंगालय बनाते थे। गणतन्त्रके अभ्युदयकालमें रोमन विलासिताके प्रवर्त्तनमें स्थायी रंगालयों को तोड़ कर फेंक देना उचित समझा। और तो क्या ईसासे १५४ वर्ष पहले सीपियो नासिकाने (Scipio-nasica) रोमन समाजमें पत्थरसे बने रंगालयों का ध्वंस करनेका अनुरोध किया था। काष्ठसमष्टी मासमें उसकी पूर्ति की थी। और तो क्या,

ईसासे ५५ वर्ष पूर्व पम्पीने (Pompey) जब पत्थरों का रंगमंच बनाया तब उसकी रक्षाके लिये बाध्य हो कर रंगमञ्चके ऊपर भीनास वैयत्रा (Venus victrix)-का मन्दिर बनाना पड़ा था। मालूम होता था, कि ये रंगालय मन्दिरका अनुचर हो हैं। प्लिनि लिखित लिपिसे मालूम होता है, कि इस चबूतरे पर चालीस हजार आदमी बैठ सकते थे। फिर यहां रंगालय रोमन-वीरों को रुधिर क्रीड़ाके स्थानका काम देता था। इस रंगमञ्चकी प्रतिष्ठाके बाद ही खेलवाड़ियों (Gladiator)-के हाथसे पांच सौ सिंह और २० हाथी मारे गये थे। इस बड़े रंगमञ्चकी बगलमें ही और भी दो थियेटर बने हुए थे। उनमें एक जुलियस सीजरने आरम्भ किया था और ईसासे १३ वर्ष पहले अगस्टसने अपने भतीजे के नाम पर उसकी समाप्ति की थी। यह थियेटर आज भी प्राचीन रोमन-कारीगरोंका साक्ष्य प्रदान कर रहा है।

प्लिनीके यथार्थ इतिहासमें एक अस्थायी रंगमञ्चका उल्लेख है। ईसासे ५८ वर्ष पहले M A Emilius Scaurus ने एक पूर्वविभागीय राजकर्मचारीके कर्त्तसे बने इस रंगालयमें कुछ दिनों तक महासमारोहसे अभिनय कार्य्य सम्पादित हुआ था। इसी घरमें प्राय ८० हजार आदमियों के बैठनेका स्थान था। इसके आठ वर्ष बाद अर्थात् ईसासे ५० वर्ष पहले C Curio द्वारा दो काष्ठनिर्मित रंगमञ्च एक पिंगी स्क्रूपर (Pivot) इस तरह स्थापित हुआ था कि प्रातःकालमें उक्त दोनों रङ्गालयों में अलग भावसे अभिनय किया जाता था और सन्ध्या समय उनको इस तरह घुमा कर एक कर दिया जाता था, जिससे वे एक रंगभूमि (Amphitheatre) बन जाते थे। बहुतेरे ऐतिहासिक इस अद्भुत रंगालयके अस्तित्वको स्वीकार नहीं करना चाहते। पूर्वोक्त रंगालयकी दर्शकसंख्याकी गणना करनेसे और व्ययबाहुल्यकी आलोचना करनेसे एक राजकर्मचारीके लिये यह काम असम्भव प्रतीत होता है।

प्राचीन रोमन कभी कभी समीप ही दो रंगालय बनाते थे। एकमें केवल यूनानी और दूसरेमें लेटिन भाषामें लिखे नाटकों का अभिनय होता था। सम्राट्

हाड्रियानके टिभोली उद्यानके और पम्पिया नगरीका रंगालय इसका दृष्टान्तस्थल है।

एक बार रोम राज्यमें नाट्याभिनयका ऐसा समादर बढ़ा था, कि प्रायः प्रत्येक समृद्धिशाली नगरीमें एक न एक रंगालय प्रतिष्ठित होता हा था। ये सब रोमन-प्रथाके अनुसार अर्द्धचन्द्राकृति अर्चेष्ट्रायुक्त बनता था। रोमके शासनाधीन यूनान नगर आदिमें जो रङ्गमञ्च स्थापित हुए थे वे सभी प्रायः यूनानी सांचेसे बने थे। क्योंकि, ये सभी रङ्गालयोंके बनानेमें यूनानी कारीगर ही लगाये गये थे। टौरोमिनियम् आस्पेण्डस् और मैरेका रङ्गालय ही इसके निदर्शनस्थल हैं। एथेन्स नगरीके समीपवर्त्ती एक्रोपोलिस् शैलके दक्षिण-पश्चिममें हिरोदेस एटिकासका, जो रङ्गालय दिखाई देता है उसमें अर्द्धगोलाकृति अर्चेष्ट्रा रहने पर भी वह उपरोक्त किसी तरहके रंगालयका निर्माण पद्धतिके अनुकरणसे नहीं बना है। सम्राट् हाड्रियानके राजत्वकालमें हेरोदेस एटिकास नामक किसी धनवान् यूनानी द्वारा बहु अर्थ खर्च कर यह रङ्गालय बना था। उनकी अपनी पत्नी Regilla-के नाम पर ही इस रङ्गालयका नाम Regillum रखा गया। रंगालय निर्म्माणके सिवा उन्होंने एथेन्स महानगरीकी शोभा बढ़ानेके लिये बहुत खर्च किया था।

रिगिलम् रंगमञ्चका दर्शनमण्डप पर्वतका सानुदेश काट कर बनाया गया था। इस पर प्रायः ६ हजार आसनयुक्त सोपान श्रेणियां रखी गई थीं। सुपरिचित दियोनिसस् देवके नाम पर उत्सर्ग किये हुए रंगालयमें आने जानेके लिये एक बड़ा छतवाला रास्ता था। पार्गामासवासी द्वितीय युमिनस्ने इस भग्नप्राय पथकी मरम्मत कराई थी।

प्राचीन यूनानियोंकी तरह रोमन रंगालयका अर्चेष्ट्रा भाग केवल बजाने और गानेवालोंके बैठनेका स्थान ही नहीं था। सभ्य (सिनेटर) और अन्यान्य बड़े बड़े आदमी यहां बैठते थे। रोमनोंने प्राचीन यूनान जातिका अनुकरण करके भी रंगालयके ष्टेज और दृश्यपटके सम्बन्धमें अनेक सुधार किये थे। विट्रुवियस तीन प्रकारके ठेला दृश्यपट (Moveable Scenery)-का उल्लेख कर गये हैं—१ वियोगान्त नाटकका उपयोगी दृश्य और स्तम्भादि परिशोभित राजकीय प्रासादादि; २ हास्यरसपूर्ण प्रहसनादिके उपयोगी दृश्य खिड़कियोंसे सुशोभित छोटे मकान; ३ व्यंगकाव्य (Satyric drama) उपयुक्त दृश्यादि—कृषकजीवन-सुलभ पथ, घाट, मैदान, खेत, पर्वत, गुहा और वृक्षादि।

रंगालयके मध्ययुगके इतिहासकी वर्णना करनेसे सबसे पहले इंगलैण्डके सुप्रसिद्ध नाटककार और महाकवि सेक्सपियर और समसामयिक घटनावलीको लिपिबद्ध करना आवश्यक है। पहले पवित्र दृश्यपटादिसे ही अलौकिक क्रियाओंको दिखानेवाले नाटक अभिनीत होते थे। इसके लिये कोई खास घरकी जरूरत नहीं होती थी। किसी जगह एक माच बांध कर तथा गिर्जाघरोंमें ही यह अभिनय होता था। सन् १८वीं सदीमें ऐसे पवित्र नाटकोंके आस्वादसे तृप्त हो कर इंगलैण्डवालोंने दूसरी तरहके मनचले नाटकोंका अवतारणा की। इंगलैण्डकी महारानी एलिजाबेथके राजत्वकालमें यह इस ढंगसे प्रचारित हो गया, कि उसने इंगलैण्डके साहित्य-इतिहासमें एक नई रोशनी पैदा कर दी। नाटकके समादरके साथ साथ नाटकीय भाषा नाना स्थानोंमें विकीर्ण हो कर ऐसी व्यक्तिगत आदरकी वस्तु हो उठी, कि जो चाहे सो अपने अपने घरोंमें तम्बू, शामियाने या पथ या घाटमें सराय आदि बड़े बड़े मकानोंमें या बड़े बड़े आंगनोंमें उक्त भाषामें लिखे नाटक अभिनीत करने लगे। इस तरह कुछ समय बीतने पर उक्त शताब्दीके अन्तिम भागमें इंगलैण्डमें स्थायी रंगालय स्थापित होनेका उद्योग हुआ। इस समय नाटकाभिनय दिखलानेके लिये राजाकी आज्ञा ले कर सुप्रसिद्ध नाट्याचार्य सेक्सपियरने तथा बर्बेजने एक स्थायी रंगमञ्चकी प्रतिष्ठा की।

सन् १५७६-७७ ई०में लण्डन नगरमें नाट्याभिनय सम्पादनार्थ कारीगर जेम्स बर्बेज नामके एक अभिनेता द्वारा पहला रंगालय बना। यह रंगालय लकड़ीका बना था। सन् १६९८ ई० तक शोरेडिचर हेलियेल लेनमें विद्यमान था, पीछे यह तोड़ दिया गया। यह रंगालय अपने गुणसे "The Theatre" नामसे परिचित था। इसके बाद यहां 'कार्टेन' नामक थियेटर स्थापित हुआ। सन्

१६४२ ई०में पार्लियामेंटरू महासभाकी आज्ञासे नाट्याभिनय स्थगित होने तक भी यह थियेटर चलता रहा था।

बर्बेजने सन् १५९८ ई०में The Theatre का माल मसाला ले कर ग्लोब थियेटरकी स्थापना की। बैंकसाइड नामक स्थानके टेमार मार्गके निकट यह रङ्गालय स्थापित हुआ। कविवर शेक्सपियरके अभ्युदयके प्रतापसे इस थियेटरका यशःसौरभ दिग्दिगन्तमें फैल गया। यह अठकोना लकड़ीका बना था। सन् १६१३ ई०में इसमें आग लगी और इसका कुछ अंश जल कर भस्म हो गया। इसके बाद इसको मरम्मत कर दी गई। फिर सन् १६४४ ई०में इसको तोड़ कर नया बन वाया गया। इसीके समीप हेन्सलू द्वारा सन् १५९२ ई०में The Rose और सन् १५९८ ई०में The Swan नामक नाट्यागार स्थापित हुए थे। यह सब तरहसे ग्लोब थियेटरके अनुरूप ही बने थे।

सन् १५९६ ई०में प्राचीन डोमिनिकन मठाधीशके समीप बर्बेज The Blackfriars Theatre नामक और एक रङ्गालय स्थापित कर लाभवान् हुए। इसी समय प्रतियोगी एडवर्ड एलिनने कोई २० हजार रुपया खर्च कर सन् १५९९ १६०० ई०में The Fortune Theatre की स्थापना की। हारट्रम ग्रीन और गाल्डिंग लेनके पास यह नाट्यमन्दिर सन् १८१४ ई० तक विद्यमान था। इसी एलिजबेथके राजत्वकालमें The Red Bull Theatre स्थापित हुआ था। इसके समकालीन Hope, Paris Garden, Whitefriars, Salisbury Court और Newington थियेटरोंका उद्भव हुआ था। सन् १६१६ ई०में विस्चर रचित लन्दन चित्रमें ग्लोब, होप और स्वान थियेटरोंके चित्र दिखलाये गये।

इंगलैंडके रंगालय प्राचीन यूनानी या रोमियोंके दिखलाये पथका अनुसरण कर नहीं तैयार हुए। ये प्राचीन इंगलैंडके प्रथानुसार ही बने हुए थे। पहले किसी सराय या बड़ी अट्टालिकाके आंगनके बीचमें स्थायी काष्ठमण्डप या स्टेज तैयार कर अभिनय दिखाया जाता था। प्रधान प्रधान दर्शकोंके लिये बरामदेमें सीढ़ियां बना था और अपेक्षाकृत हीनावस्थापन्न दरिद्र दर्शक आंगनके किनारे किनारे खड़े हो कर तमाशा देखा करते थे। इसी प्रथाके अनुसार पुराने ग्लोब फर्चुन स्वान आदि और एलाभित नाटकाभिनयोपयोगी रंगालय बने थे। इन सबों और पहलेके अन्यान्य रंगालयोंके बीचमें जो मञ्च बनता था वही स्टेज कहलाता था। इस स्टेजकी चारों तरफ आसन लगा दिये जाते थे। केवल पिछली तरफ साजघर या Green-room रहता था उधर खाली रहता था। ऊपर चारों तरफ गैलरी और बक्स रहते थे। इसलिये उस समयके नाट्याचार्य अठकोने रंगमंचकी उपयोगिता उपलब्ध की था। फर्चुन थियेटर चौकोन था। प्राचीनतम इंगलैंडके थियेटर और हमारे देशकी रासलीला या यात्रा प्रथाकी आलोचना करनेसे दोनोंकी एक समानता ही दिखाई देती है। केवल प्रभेद इतना ही है, कि यात्रामें स्टेज नहीं रहता।

इंगलैंडके सुप्रसिद्ध नाटककार शेक्सपियरकी जीवनीके लेखक हल्लीवेल फिलिप्सने लिखा है, कि फर्चुन रंगालय सब तरहसे ग्लोब थियेटरकी प्रथाओंके अनुरूप हो बना था। केवल प्रभेद इतना था, कि इसका स्टेज चौकोन और लकड़ीके पट्टे जड़े हुए थे। चारों ओरका दीवार आधा पक्का, आधा लकड़ीका बना थी, छतमें खपड़ा लगा थी, दोनों ओर किनारे पर मूर्तिका मारियां बनी थी। ओक लकड़ीका स्टेज था, किन्तु ऊपरसे एक स्वतन्त्र आच्छादन रहता था जिसे अंग्रेजीमें Shadow कहते हैं। खास्तीदार जंगलोंसे परिशोभित साजघर (tireyinge-house) और बैठनेके लिये दो तरहके बक्स आसन (Gentlemens roomes and two pennie roomes) सज्जित थे। सन् १६३२ ई०में कार्ला नाम द्वारा सम्पादित नाट्याभिनय सम्बन्धमें और विल्किन्सन-कृत Londiana mustrata (1819), कोलियर-कृत History of Dramatic Poetry (1879) हल्लीवेल फिलिप्सकृत Life of Shakespeare (1866) मालान-कृत History of the Stage (1790), और The Antiquary नामक पत्रिकामें मोरिस कृत ल्यरन नगरके प्राचीन रंगालयोंके ऐतिहासिक लेखोंमें इन सबों तथा उस समयके अन्यान्य रंगालयोंके यथायथ विवरण दिये गये हैं।

१६वीं और १७वीं शताब्दीमें लोग जिस ढंगके अभिनयका आदर करते थे उसका नाम masque' है। इसकी अभिनय पद्धति विश्रृङ्खल थी। इसमें नाटकके रसोंका विशेष रूपसे अवलम्बन कर उन रसोंके आश्रित नियम प्रतिपालित नहीं होते थे। केवल कुछ अभिनेता और अभिनेत्रीको हंसानेवाला नकाव तथा रंग विरंगे वस्त्रोंसे सुसज्जित कर रंगमञ्च पर लाया जाता था। इस समय दृश्यपटके विशेष आडम्बर और यन्त्रके साहाय्यसे अलौकिक कौशल दिखानेका विशेष आग्रह किया जाता था। इंगलैण्डके राजा १म जेम्स और १म चार्लसके राजत्वकालमें वेन जोन्सन और प्रसिद्ध कारीगर इनिगोजोन्स दोनो 'मास्क' अभिनयकी पराकाष्ठा दिखा गये हैं।

जोन्सन 'मास्क'-के लिये गीतनाट्यके गाने भरते तथा पात्रोंके पार्ट तय्यार करते थे। इधर इनिगो जोन्स उसके मुताबिक दृश्यपटादिकी कल्पना कर अङ्कित किया करते थे। देवाविभावके उपलक्ष्यमें जोन्स द्वारा रंग विरंगोंसे सुचित्रित पर्वतमाला, मेघमण्डल, प्राकृतिक शोभा और वडी वडी अट्टालिकायें ऐसी परिपाटी तथा निपुणताके साथ सम्पादित हुई थीं, कि जोन्सनकी अपेक्षा नाट्यजगत्में उनका नाम विशेषरूपसे प्रसिद्ध हो गया था। अपने प्रतियोगी जोन्सकी सुख्याति और श्रीवृद्धिसे ईर्षान्वित और हिंसापरायण हो कर जोन्सन ने उनके विरुद्ध कई विद्रूपात्मक प्रहसनों (Satire)-की रचना की था।

१६वीं शताब्दीमें इटलीमें नाटकाभिनयका पूर्ण प्रभाव दिखाई दिया। इस समय वहां विट्रवियसके प्राचीन रंगालयका अनुकरण कर बहुतेरे नाट्यमन्दिरों की प्रतिष्ठा हुई थी। इन सवोंमें भिकेनजा नगरका ओलिम्पिक थियेटर आज तक विद्यमान है। पल्लदियों-ने भी इसका गठन नैपुण्य चित्रित किया था, उनकी मृत्युके वाद सन् १५८४ ई०में इसमें अभिनय कार्य्य आरम्भ हुआ। इसका शिल्पनैपुण्य Scena, प्राचीन रंगालयके अनुकरणसे तीनों प्रवेशद्वार, नाना स्तम्भश्रेणियों और कुलुंगियोंकी पुतलियोंको देख कर आश्चर्य्यान्वित होना पड़ता है। सिवा इनके इसमें वर्णवैचित्र्यका भी अभाव न रहता था। पल्लादियोंके शिष्य स्कामोझीने ओलिम्पि थियेटरकी स्थापना कर सन् १५८८ ई०में साविओनेटा नगरमें ड्युक भेस्पेसियानो गोञ्जागाके लिये एक नये ढंगका (Pseudo classical theatre) रंगालय बनाया। दुःखका विषय है, कि यह अब नष्ट हो गया है।

फ्रान्स देशमें अलौकिक घटनाभिनय (Miracle Paly)-से धर्ममूलक नाटकका (Secular drama) प्रचलने इंगलैण्डके बहुत पहलेसे ही प्रचलित था। राजा ११वीं लुईके राजत्वकालमें 'Brothers of the Passion' नामक एक दलने अनुमानसे सन् १४६७ ई०में एक नाट्य-मन्दिर तय्यार किया था। इस दलके कितने ही धर्म-मूलक नाटक अभिनीत हुए थे १६वीं शताब्दीमें कायेरिन डी मेडिसी रंगालयमें परिच्छेद और दृश्य-पट आदिके परिवर्त्तनके लिये बहुत दान खर्च किया गया था। वहां १७वीं शताब्दीके मध्य भागमें यथार्थ अपेराका अभिनय होने लगा।

१८वीं शताब्दीके अन्तमें नेपलसके 'San Carlo' मिलान नगरमें La Scala और भिनिसके La Fenice नामक रंगालियोंने सारे यूरोप महादेशमें कलाविद्याका शीर्षस्थान अधिकार कर लिया था। इस तरहका सर्वाङ्गसुन्दर अभिनय उस समय यूरोपके अन्य स्थानोंमें कहीं दिखाई नहीं देता। इन रंगालियोंकी ११वीं सदीमें मरम्मत हुई थी सही, किन्तु पेरि, सेण्टपिटर्सवर्ग और अन्यान्य समृद्धिशाली राज-धानियोंमें स्थापित रंगालियोंके शिल्पनैपुण्य तथा आकृतिकी वरावरीमें ये कई अंशोंमें हीन समझे जाते हैं।

इस समयके रंगालियोंके दर्शनमण्डप कई अंशों-में परिवर्त्तित हो गये हैं। वक्स, ष्टल, वालकनि, और गैलरी आदि ऊंच तथा कम दामके आसन जिस तरह सजाये जाते हैं, उसका उल्लेख करनेकी आवश्यकता नहीं। पिट नामक आसन ष्टलके अन्तर्भुक्त हो गया है।

ष्टेजके जिस अंशमें अभिनेता और अभिनेत्री खड़े

हो कर अभिनय करते हैं, उसे स्टेजको मेज़ (Stage floor) कहा जाता है। यह स्वभावतः दर्शकोंके स्थान से सामान्य उंचा, फिर भी ढालुयां बनाया जाता है। इस टेढ़ेपनके कारण सामनेके चित्रपट या दृश्यावली दूर पर अवस्थित ज्ञात पड़ती है। दर्शकमण्डलीके नेत्रोंके सामने समुदित चित्रपटसमन्वित इस रङ्गस्थानके सिवा प्रोसिनियूमके पश्चाद्भागमें अभिनयोपयोगी दृश्य पटादि परिचालनार्थं कइ कल कब्जोंके स्थापन करने योग्य और भी कइ स्थान हैं। ये सामनेके दर्शनमंडप से किसी अंशमें हीन नहीं। जिन सब प्रधान और विस्तृत स्थानमें नाट्यरङ्गके उपादान प्रतिष्ठित रहते हैं उनका ही विवरण संक्षेपमें यहां दिया जाता है—

(१) दोनों बगलमें सुरूपट रखनेका स्थान। इसे Wings या Coulisses कहते हैं। इसके दोनों ओर सर्वार्द्धरूपसे गृह, वन, मेघपुञ्ज छत आदि चित्र लकड़ीके चौखट (Frame) पर कपड़ा सा कर अङ्कित किया जाता है। ये चित्र प्रोसिनियूमके दो गुने ऊंचे तक (stories high) रखे रहते हैं।

(२) स्टेजका मेजका निचला स्थान Dock या dea-sons नामसे प्रसिद्ध है। यह भी तीन चार मञ्जलोंमें विभक्त है और प्रोसिनियूमकी तरह गहरा है। इसके भीतरमें दृश्यपटोंको उठाने और गिरानेके लिये चाकचक्र (Windlasses या Grd)-से दर्शकमण्डलीके सामनेसे यो च जमा या दर्शकमण्डलीके सामने एकाएक ला देना बहुतेरे उठानेके लिफ्टकी व्यवस्था है। इसमें इङ्गलैण्ड के रङ्गालयका स्टार ट्राप (star trap) रङ्गमञ्चविशेष कौशल और युक्तिके साथ सम्पादित हुआ है। इसमें एकाएक अन्तर्धान होनेके लिये किसी अभिनेताको मेज से कूदते हुए गड्डेमें कूदना नहीं होता। अभिनेताके यहां आ कर खड़े होते ही उसके शारीरिक भारोंसे छिद्रपथ का आवरण फट जाता है और अभिनेता लुप्त हो जाता है। इस पतले बोर्डका गुप्तद्वार (trap-door of thin board) प्रत्येक लोहेके बन्धनसे ऐसा बंधा रहता है कि अन्तर्धानके बाद ही उसकी पहली अवस्था प्राप्त हो जाती है। दर्शकमण्डली इस कौशलको जरा भी नहीं समझ सकते। 'सीताका पातालप्रवेश'-का अभिनय इस तरहसे सम्पादित होने पर ऐसा सुन्दर दिखाइ देता है, कि मानो यह काम किसी भौतिकक्रीड़ाके साहाय्यसे किया जाता हो।

इस तरह 'भाम्पायर ट्राप' नामक पथमें अभिनेता (मानो किसी दैवशक्तिके प्रभावसे सुदृढ़ दुर्गभित्तिमें) सहज ही घुस गया है, ऐसा ही अनुमान होता है। इङ्गलैण्डके प्रधान प्रधान रङ्गालयोंमें नाट्यरङ्गोंके आवश्यकीय उपादान ऐसे ही वैज्ञानिक भित्ति तथा सुकौशलसे प्रतिष्ठित हुए हैं कि उन्होंने वर्त्तमान यूरोपके प्रत्येक नाट्यमन्दिरमें सादर स्थान पाया है।

(३) प्रोसिनियूमके ऊपरसे समूचे स्टेजके उपरि भागमें जो विस्तृत स्थान है, उसका नाम Flies या Cintre है। ये कभी कभी प्रोसिनियूमका दूगना ऊंचा रहता है। यह स्थान भी कइ मञ्जिलोंमें विभक्त हुआ है। यहां दृश्यपटों को लटका रखनेके लिये स्वतन्त्र चाक कल रखी गइ है। इससे पटोंको न मोड़ कर या न तोड़ कर एकदम दृष्टिसे बाहर उठा लिया जाता है। इन सब कामों के लिये इन दोनों स्थानोंमें इस तरहसे रस्सी, तार और अन्यान्य आवश्यकीय कल रखी गइ हैं जिसे देख आश्चर्यान्वित होना पड़ता है।

पहलेकी प्रथाके अनुसार दोनों बगलसे दो खण्ड-पट खींच कर बीचमें ला कर मिलानेसे दर्शकोंके सामने एक पूर्ण चित्र दिखाया जाता था। इन (Wings) चित्रों को ठेल कर ले आनेके लिये ऊपर लकड़ीका चौखट (Frame) और नीचे स्टेजके मेज़ पर एक छिद्र किया रहता था। इस समय किसी रङ्गालयमें भी यह प्रथा प्रचलित नहीं है। ऊपरसे पट या परदा गिरा अथवा चुन (खिंचा) गिरना और तो क्या—सुविस्तृत राजपथमें चित्रसाहाय्यसे प्रस्तुत कर दर्शकोंके सामने लाना ही वर्त्तमान नाट्याचार्य्योंका अभिप्राय होता है। कितने ही खण्डचित्र अङ्कित कर उनके दो दो खण्डों की परस्पर संयोजना कर स्टेजके सामने ये सब दृश्य सम्पादन करना विशेष चित्तोपहारक नहीं होता। किन्तु ऊपर कहे हुए उपाय से प्रथित दृश्यसे सहज ही दर्शकोंको एक यथार्थ Perspective चित्रकी छाया अङ्कित की जा सकती है।

इस समय विलायतके सभी रंगालयोंमें यन्त्र-कौशल स्थापनका प्रयास दिखाई देता है। स्टेजके मेजमें मोटे काठ या लकड़ीके वदले इस समय अपेक्षाकृत पतले लोहेके पत्तसे तैयार होनेसे और पाक कलादि लौह निर्मित होनेसे स्थानकी कमीके लिये विशेष सुविधा हुई है। फिर थोड़े ही समयमें कार्यकी पूर्त्ति भी हो जाती है। जगत्‌में सर्व-प्रधान और वहुव्ययसे बने पेरिस नगरीका सुप्रसिद्ध "ग्राण्ड अपेरा हाउस" कला कौशलमें शीर्षस्थान अधिकार करने पर भी कलकब्जे (Mechanical appliances)के अभावके कारण अन्यान्य रंगालयों की सहयोगितामें पीछे पड़ गया है।

गर्भाङ्कके एक दृश्यके वाद दूसरे दृश्यका लाना समयसापेक्ष देख कर न्यूयार्क नगर मेडिसन स्क्वायर थियेटरमें हालमें एक अभिनय उन्नति संसाधित हुई है। वहांके नाट्याचार्य्य एक अभिनयके वाद फिरसे स्टेज सजाते थे। इससे विलम्ब होता था। इस असुविधाको दूर करनेके लिये उन लोगोंने एक दूसरा स्टेज वना लिया है। जव ऊपरकी मञ्जिलके स्टेज पर अभिनेत्री आ कर अपने अपने पार्ट करती हैं, तव उसीके ठीक नीचे मञ्जिलेमें स्टेजके दृश्यपटादिकी संयोजना कर यथायथ रूपसे सजा सजाया रखा जाता है। प्रथम अङ्कके अभिनय हो जाने पर दृश्यपटके गिरते न गिरते वह ऊपरको उठ जाता है और दूसरा निचली मञ्जिलका स्टेज वहां आ जाता है। इन दोनों स्टेजोंकी मेज ऐसी तुल्यमानसे रखी गई (accurately balanced by heavy counterpoise of weights) हैं, जिससे सहज ही सम्भान्य-शक्ति द्वारा ऐसे वड़े खण्डकी परिचालना की जा सके।

लण्डनके 'पाण्टोमाइम' अभिनयमें जैसी यान्त्रिक कुशलता दिखाई देती है, जगत्‌के और किसी सुसभ्य देशमें दिखाई नहीं देती। दृश्यपटके परिवर्त्तनकी परिपाटी और सुचतुर कारीगरकी शिल्पकारीगरी देख कर यथार्थतः मनमें विस्मय उपस्थित होता है। दर्शकोंके चित्त आकृष्ट करनेके लिये वे कभी कभी जिन कौशलोंका आश्रय लेते हैं, उनमें परीका अंश अभिनयकारी अभिनेत्रियोंके और सांप कीड़े आदि सजानेके लिये दुधमुंहे वालकोंको कभी कभी वहुत दुःख भोगना पड़ता है। क्योंकि रमणियोंको 'परी' सजानेके लिये अदृश्यभावसे ऊपरसे नीचे लटकाते समय कभी कभी दुर्भाग्य वश रस्सी या तार टूट जानेसे गिर पड़ना देखा गया है। सर्प आदि निकालनेके लिये सुकुमार वालकोंको मोटे कागजके खोखलेमें भर कर रखते हैं, क्योंकि भीतरसे वालकके हिलनेसे सर्प वाहर निकल आता है। ऐसी दशामें श्वास वंद होनेके कारण वालकोंकी जान जानेकी सम्भावना होती है। लण्डनकी ड्रुरी लेनका रंगालय इसके सम्वन्धमें एक आदर्श स्थल कहा जाता है।

उपरोक्त कलकब्जाके उपयोगी स्थान होनेके सिवा रंगालयके अभिनेता-अभिनेत्रीकी सुविधाके लिये पोशाकघर (dressing room) और पंक्तिवद्ध साजघर (Green room) रहता है। इसके सिवा साज सामान रखनेके लिये स्वतन्त्र भाण्डार और दृश्यपट अङ्कित करने और रखनेके लिये चित्रस्थान (atelier) है। रंगालयके भीतरके सिवा अन्यत्र रखनेकी भी व्यवस्था देखी जाती है।

यूरोपमें प्रधान और प्रसिद्ध चित्रकारोंसे ही चित्र पट अङ्कित कराया जाता है। रोमनगरमें राफेल, फ्रांसमें वातु, वुका और साकोन्दोनी और इङ्गलैण्डमें ष्टानफिल्ड द्वारा ही दृश्यपटादि अङ्कित हुए हैं। फ्रान्स और इङ्गलैण्डकी तरह जर्मनीमें भी नैपुण्यपूर्ण चित्रपटका अभाव नहीं है। प्राकृतिक सौन्दर्य्यव्यञ्जक उत्तमोत्तम चित्र भी रंगालयमें देखे जाते हैं। कभी कभी झील और उसके जलमें प्रतिफलित तीरवर्त्ती वृक्ष पर्वतादि स्पष्टरूपसे दिखानेके लिये नाट्याचार्य्य रंगालयमें एक ऐनापटके नीचे जरा झुका कर रख देते हैं। इससे पीछेके अङ्कितचित्र यथार्थतः प्रतिफलित हो शोभाको दुगना वढ़ा देता है। वेगनरने Magical scene दिखाने के लिये एक कौशल निकाला था। उसने स्टेजकी पीठ छेद कर एक छिद्रयुक्त वाष्पनलिका (Steam-pipe) स्थापित की थी। इस जलसे उठती हुई धूमराशि दूरसे अर्द्धस्वच्छ धुपंके परदाकी तरह दिखलाई देती है।

रङ्गालयोंमें Light रोशनी देनेकी व्यवस्था विशेष उल्लेखनीय है। इससे कभी कभी अत्याश्चर्य्य फल भी

दिखाया जा सकता है। प्राचीन अर्थात् पहलेकी फुट लाइटकी प्रथा अब नहीं है। सन १८२० ई० तक चिराग जलाया जाता था, तदनन्तर मोमबत्ती जलाई जाने लगी, इसके बाद M Argand द्वारा किरासन तेलके लम्प जलाये जाने लगे। पुनः सन् १८२२ ई०में पारी नगरके रङ्गालयोंमें गैसकी रोशनी हुई। इसके बाद Oxyhydrogen lime light और वर्त्तमान समयमें इलेक्टरी लाइटका व्यवहार होनेसे सब तरहके अभाव दूर हो गये हैं।

पहले विद्युत्प्रकाश दिखलानेके लिये लाइको पोडियाम (Lycopodium) अथवा करायल (धूना) को धूलि अग्निमें झोंकी जाती थी। आज भी प्रकृत अग्नि प्रज्वलित दिखानेके लिये इसी प्रथाका अवलम्ब लेना पड़ता है। किन्तु आज कल मेघमाला समाच्छादित दृश्यपट अङ्कित कर उसमें टेढ़े-मेढ़े छेद कर कांचका लम्प देकर प्रकृत वैद्युतिक प्रकाश किया जाता है। कभी-कभी वैद्युतिक तारका भी व्यवहार देखा जाता है। छोटेकी चादर मोड़ कर दर्शनमण्डपके ऊर्ध्वांशकमें तोपका गोला रख अथवा रस्सीके दो टुकड़ोंकी सहायतासे कई लकड़ीके पटरे सजा कर इस तरह कौशलसे कटका कर न रक्खा रखते हैं, कि उसमें जरा भी टक्कर लगनेसे मेघमाला जैसा शब्द होता है। वायवीय शब्दका अनुकरण करनेके लिये एक मोटे वस्त्र खींच-खींच कर बांध देते हैं और उस पर दांत युक्त एक गोल चक्र घुमानेसे आपसमें थोड़ी-थोड़ी वृष्टिकी तरह सांय सांय शब्द होता है और चालक बक्समें मटरका दाना डाल कर हिला देनेसे वृष्टि होनेकी तरह शब्द होता है।

इस समय पहलेकी तरह अर्थपूर्ण प्रचित नहीं होती। चाहकों को दर्शकके नयनपथसे बाहर रखनेके लिये यह स्थान प्रोसिनियमके नीचे या ऊपर निर्दिष्ट हुआ है। अभिनेताका पार्ट निर्देश करनेके लिये उस समय रङ्गमञ्चमें प्रम्पटर नियोजित करना पड़ता है। दर्शकके सामने एक छोटे कमरेमें बैठ कर यह प्रत्येक अभिनेता और अभिनेत्रीको उनके पाठ बतला दिया जाता था। यह प्रथा अभिनेताओंके लिये तथा दर्शकोंके लिये विशेष असुविधाजनक थी और अतएव देख wings के निकट रह कर प्रम्पटिङ्ग Prompting करनेकी रीति इस समय प्रचलित हुई है।

१९वीं शताब्दीके मध्य भाग तक रङ्गालयके साथ स्थानीय उपादान और पोशाक आदि संग्रह करनेके लिये सामान्य द्रव्य खर्च होता था। मूल बात है, कि उस समय वेशभूषाकी उतनी समावट होती न थी और कोई उस विषयमें आग्रह प्रकाश भी नहीं करता था। पतले कपड़ेका बना हुआ पहननेका वस्त्र रहता था। वही अभिनयके समय एक एक करके पहनते थे। मोटे कागज पर पालिशदार चिकना कागज सार कर तलवार आदि बनाते थे। इस समय उन सब बातों का बहुत परिवर्त्तन हो गया है। किसी प्राचीन घटनाके आधार पर नाटककी सृष्टि होती थी। इस समय तत्समयोप योगी अट्टालिकादि स्थापत्यका निदर्शन चित्रमें दिखाया जाता है। इसलिये वे अर्थ व्यय तथा परिश्रम करनेमें जरा भी नहीं हिचकते। वेशभूषाके लिये भी यथेष्ट धन खर्च किया जाता है। सुना जाता है, कि किसी-किसी समय एक एक नाटकको तैयार करनेमें तीन तीन लाख रुपया व्यय किया जाता था।

इस तरहकी बनावटके साथ यथार्थ घटनाको प्रति फलित करने नाटक नाट्यशाला यथार्थ अभिनय चित्रको दिखलानेमें भूल जाते हैं। उत्तम और प्रकृत विषयोंका अभिनय आज भी दर्शकोंके अभिप्रेत नहीं। यह देख व कई बार केवल दृश्यपटकी सुन्दरताको तृप्तिमें ही मन लगाने पर बाध्य होते हैं। आइसिवामें 'रोमियो जुलियट' नामक सेक्सपियरकृत नाटकके अभिनय करते समय प्रथम अङ्कके Ball चित्र दिखलाके समय दृश्यकी परिपाटी और साधारण चहल पहलके गोलमाल से प्रधान प्रधान अभिनेताका पार्ट (acting) एक दम ही नष्ट हो गया था। कभी कभी पिछले गर्भाङ्कके दृश्य पटों को सजा कर यथायथ रखनेकी विलम्बतामें डाप सीनके सामने खड़े अभिनेताओंके मुखसे निकले शब्द दब कर भी अभिनयको विकृत कर देता था।

वर्त्तमान समयमें किसी चरित्रके अभिनयके समय अभिनेताको वक्तृताका acting गाम्भीर्य ह्रास होनेका

और भी एक गूढ़ कारण देखा जाता है। एक नाटकको लगातार सैकड़ों वार करते रहनेसे पात्रपात्रियोंके सभी पार्ट कण्ठस्थ हो जाते हैं और उसे वे कलकी पुतलीकी तरह वक जाते हैं। उनका उस समय चरित्रके भाव-पर जरा भी ध्यान नहीं रहता, इसलिये उनके पार्ट खराव होते जाते हैं। इस समय रंगालयके बहुमूल्य वेशभूषा और सजावटकी अधिकता साधारणके मन-मुग्धकर होनेके कारण अभिनयके विषय-परिवर्त्तनकी ओर लोगोंका ध्यान नहीं जाता। फ्रान्सके Theatre Francais नामकी सभाके उपरोक्त नियमोंके समर्थन करने पर भी वहां उच्च अङ्कसे ही वक्तृताभिनय सम्पादित होता है।

लण्डनके रंगालयोंके आकार वड़ा होनेके कारण नाना श्रेणीके दर्शकोंका समावेश होता है। नित्य अभ्यस्त दर्शकोंके आगमनने रंगालयकी मङ्गलकी संभावना है। क्योंकि वारंवार अभिनयका देख कर एकृरोंके पार्टकी अच्छाई और बुराई पर विचार करनेमें समर्थ हो सकेंगे। अभिनेता भी प्रशंसा अर्जन करनेके लिये अच्छा पार्ट करेंगे। यदि वे अपने पार्ट स्थानविशेषमें व्यर्थ चीत्कार या अयथारूपसे अभिनय (Clap trap या Ranting) करें तो दर्शक उनकी निन्दा कर सकेंगे। किन्तु इस समय दिनोंदिन नये नये और अभिनय-अनभिज्ञ दर्शकोंके उपस्थित होनेसे रंगालयके संस्कार-विषयमें विशेषरूपसे व्याघात उपस्थित हो रहा है। इस श्रेणीके दर्शकोंके लिये ऊपर कहे हुए व्यतिक्रान्त अभिनयकी प्रशंसा करते देखा गया है। वे यथार्थ और सुरुचिसम्पन्न वक्तृताभिनय उपलब्ध करनेमें समर्थ न हो कर उस विषयमें विशेष आग्रह नहीं करते। इन सव कारणोंसे व्यवसायी-नाट्य सम्प्रदायके उनके उपयुक्त नाटक आदिकी रचना कर अभिनयकार्य्य-सम्पादनमें वाधा उपस्थित होनेसे नाटकोंको (Dramatic Standard) अवस्थामें अन्तर पड़ गया है और अभिनेताओंके भी चरित्र परिस्फुरण-शक्तिकी कमी होनेके कारण धीरे धीरे वे नीतिमार्गसे भ्रष्ट हो रहे हैं।

अभिनयका इतिहास।

जातीय जीवनकी सामाजिक रीति नीति और सांसारिक चित्तको प्रकट करना ही अभिनयका प्रधान उद्देश्य है। जातिगत न्यूनाधिकके अनुसार इस अभिनय-कार्य्यमें वैपरीत्य दिखाई देता है। सभ्यता ही इसका अन्यतम कारण है। सुसभ्य रोमन और असभ्य ववर प्राचीन आर्य्य हिन्दू और असभ्य भीलोंमें भी यह विभिन्नता थी। इस समय सुसभ्य जातिमात्रमें अभिनयके लिये रंगालय प्रतिष्ठित हो रहे हैं। किन्तु कोल, भील आदि भारतीय आदिम अधिवासियोंमें आमोद-प्रमोदके लिये इस तरहका सभ्यरुचि प्रणोदित रंगमञ्च नहीं वना है। उनके वर्व्वरोचित नृत्यगीताभिनय स्वतन्त्ररूपसे किसी गांवमें निर्दिष्ट रंगभूमिमें हुआ करता है।

यह वर्व्वरोचित जगली स्वभाव और उसके उपयोगी जगली गीतको ले कर मानवसमाज जितने ही सभ्यताकी सीढियों पर चढने लगा, उतने ही वे ग्रामादि प्रतिष्ठित कर कृषिकार्य्यमें मन लगाने लगे। झोपड़ेमें रहनेवाले किसान प्राणान्त परिश्रम करनेके वाद जव अपने झोपड़ेमें आते और अपनी थकावट मिटानेके लिये अपने वालवच्चोंसे घिरे हुए वैठते, तव वहां एक एक दल आ कर अपने नृत्यगीतसे तथा अपने हावभावको दिखा कर थके हुए उन कृषकोंको शान्ति देनेकी चेष्टा करता था। इसके वदलेमें वह दल कुछ धान पाता था इसी धानसे वह दल अपना गुजर करता था। यह सम्प्रदाय Minstrels नामसे पुकारा जाता था। यूनानी कवि होरेशने (ईसासे ६५ वर्ष पूर्व) लिखा है, कि उस समय प्राचीनकालमें किसी प्रकारका रंगालय नहीं था। गीतनृत्य करनेवालोंके सरदार वैलगाड़ियों पर अपने दलके लोगोंको चढ़ा कर जहां जरूरत होती थी वहां ले जाते थे या गांव भरमें घुमा फिरा कर लाते थे। स्पेपस नामक एक यूनानीसे इसी तरह गाड़ी पर चढ़ वाजा वजा कर युद्धके गानेको प्रचलित किया उस समय कई तरहके हाव भाव भी दिखाये जाते थे।

मानव जव अपेक्षाकृत सभ्य हुए; नगर तथा उपनगरोंकी शोभा वढाने लगी, रहने लायक सुन्दर सुन्दर अट्टालिकाओंका निर्म्माण हुआ, तव आमोदके लिये स्थायी नाट्यशाला या रंगालयकी स्थापना हुई। पाश्चात्य-जगत्‌के प्राचीनतम सभ्य यूनानी तथा उसके

पीछेकी रोमन जातिमें सोफ़ोक्लीज़ और स्केकिल प्रतिष्ठित हुए। उस समय अभिनेता और अभिनेत्री शरीरमें कपड़ा लगा कर देहका पुष्टता दिखाती थी। मुखमें नकाब और पैरमें ऊंची एड़ीवाला जूता पहन कर अङ्क (act) या अपने पार्ट क्रिया करती थी। अभिनयके आरम्भसे पूर्व गानेवालोंका एक दल आ कर एक दो गान्य गाता था और अभिनयका मोटामोटी विषय दर्शकों को समझा देता था। नाट्यशास्त्रविद् पण्डितों की रायमें गान गानेकी प्रथासे ही पहले नाट्यनाट्यकी उत्पत्ति हुई थी। नाटक-कारगण उस समय स्वतन्त्रभावसे ग्रन्थका रचना नहीं कर सकते थे। उनको कई नियमों का पालन करना होता था। किसी घटनामें बारह वर्षके ऊपरको कोई घटना जोड़ नहीं सकते थे। ऐसी शक्ति उन लोगों की नहीं थी, कि वे दृश्य होनेसे ही अपने रचना कौशल द्वारा दर्शकों को ४०० कोस दूर पर नहीं ले जा सकते। करुण-रसात्मक या वियोगान्त नाटकमें भी वे स्थान विशेषमें हास्यरसका समावेश कर नहीं सकते थे। मालूम होता है, कि ऐसे ही किसी कारणसे यूनानी रङ्गालयमें वियोगान्त (Tragedy) नाटकके सिवा, मिलनान्त नाटकके अभिनय कालमें यूनानी रमणियों को रङ्गालयों में प्रवेश करनेका अधिकार न था।

यूनानका गौरव सूर्य्य अस्त होने पर रोमका अभ्युदय हुआ। किन्तु दुःखका विषय है, कि रोमके प्रभुत्वकालमें नाट्यशालाओं को विशेष उन्नति न हो सकी। युद्धप्रिय निष्ठुर प्रकृति रोमन नाटकाभिनयमें विशेष परितृप्ति लाभ नहीं कर सके। वे पशुओंकी लड़ाई तथा पहलवानोंका प्राणघातक युद्ध देख कर ही आमोद प्रमोद करते थे। सम्भ्रान्त व्यक्तियोंकी रुचि जिधर होती है, साधारण प्रजाका भी उत्साह उसी ओर होता है। इसीलिये स्वाधीन भावसे नाटककी रचना और उसका अभिनय विषयमें किसीका आग्रह न था।

* संस्कृत नाटकोंके आरम्भमें नट-नटी श्रोताओंका अपने अभिनयका विषय बता देती थी। कालिदास आदि बहुत पुराने नाटककारोंने भी बहुत पहलेसे उसी प्रथाका अनुसरण किया था।

जिन दो एक पुस्तकोंका अभिनय हुआ था, वे भी यूनानी रचना पद्धतिकी छाया ले कर ही गठित हुए थे।

नाटकों का अभिनय सर्वसाधारणके मन मुताबिक नहीं हो रहा है, यह देख कर नाटकके अध्यक्ष क्रमशः रङ्गमञ्च पर मल्लयुद्ध, सिंह, बाघ आदि हिंस्र जन्तुओं से मनुष्योंकी लड़ाई आदि सुरुचिविरुद्ध और वीभत्स रसकी अवतारणा कर रोमन रङ्गालयको कलंकित किया करते थे। प्रायः ही ऐसे घृणित आनन्द उपभोगके लिये एक न एक आदमीको कालके गालमें जाना पड़ता था। यह वीभत्स आमोद छोड़ कर रोमन पवित्र काव्यरसका आस्वादन नहीं लेना चाहते थे। इस तरह पशु-सदृश और लोमहर्षण दृश्य देख देख रोमनोंकी मानसिक सुकोमल वृत्तियां क्रमशः ही कलुषित होने लगी था। फलतः रोमनोंकी नैतिक अवस्था शोचनीय हो रही थी।

जब रोमन रङ्गमञ्चों पर इन सब कुत्सित कार्योंका अनिवार्य-स्रोत प्रवाहित हो रहा था, तब ईसामसीहने दूसरे ईसाई-धर्मका प्रचार किया। नाट्यशालायें इस नव-प्रचारित ईसाई धर्मके विषमय नज़रों पर चढ़ गई। इस नये धर्मके अधिक प्रचारके साथ साथ नाट्यागारों की कमी होने लगी। ईसाई-धर्मयाजकोंने नाट्यमञ्चको 'पापका यन्त्र' तथा उससे सम्बन्ध रखनेवाले व्यक्तिमात्र को मूर्तिमान् कदाचार कह कर घोषणा की। उनके अध्यवसाय और व्याख्यानोंसे लोग नाटकके प्रति वीतराग हो गये। अभिनेता और अभिनेत्रियोंकी तथा नाट्य कार्योंक अध्यक्षको लोग घृणाकी दृष्टिसे देखते थे। और तो क्या—विगत शताब्दीके अन्त तक रोमन कैथलिक पुरोहितमण्डली विद्वेषवश मृत अभिनेता और अभिनेत्रियोंकी शवदेहको साधारण कब्रगाहमें गाड़ने नहीं देती थी। आज भी इस बीसवीं शताब्दीमें भी कितने ही धर्मप्राण हिन्दू तथा कितने ही ईसाई धर्मनाशके भयसे वेश्या-संश्लिष्ट रङ्गालयोंमें जाते कुण्ठित होते हैं।

कालचक्रके परिवर्तनसे रोम-साम्राज्य विध्वस्त और विपर्यस्त हो गया। घोर अराजकता तथा सदा युद्धमें फंसे रहनेके कारण रोमके अधिवासी नाट्याभिनय देखने

नहीं जा सकते थे। इस विशृङ्खलताके समय नाटककी उन्नतिकी बात तो दूर रहे, रङ्गालय तक लय प्राप्त होनेकी सम्भावना हो उठी थी। जो हो, बलवान् समयके उलट फेरसे जो धर्मवाचक रंगालयको नरकका प्रतिरूप समझ कर उससे घृणा करते थे, वे ही आज रंगालयकी आवश्यकता उपलब्ध करते हैं। वे अब समझ गये हैं, कि दृश्यपट आदिके साहाय्यसे किसी घटनाका अभिनय करनेसे क्षीण या हीनबुद्धि मनुष्यके मर्मस्थलको स्पर्श किया जा सकता है और सुचारुरूपसे रंगालयका कार्य्य सञ्चालन करनेसे सम्भवतः इससे सामाजिक-पारत्रिक और धर्मसम्बन्धीय उन्नति हो सकेगी। इसी आशासे प्रणोदित हो कर निरक्षर अज्ञ या मूर्ख मनुष्योंको उपासना कार्य्यमें व्रती करानेके यन्त्रस्वरूप समझ धूर्त्त धर्मयाजकोंने थियेटरको अपना एक अस्त्र बनाया। उन्होंने समयको व्यर्थ न खो कर बाइबिल धर्मग्रन्थकी किसी घटना पर नाटक रच कर उपासनाके समय अभिनय करनेकी प्रथा चलाई। इस तरहके समुदाय अभिनयको Mysteries, Miracle या Moral plays कहते थे।

उस समय ईसाई-संन्यासी जरुसलेम नगरीका परिभ्रमण कर स्वदेश लौट राजपथ पर दल बाध कर अपने भ्रमणके अनुभवोंको कवितामें गाते फिरते थे। उनके हाथमें दण्ड, आपादमस्तक चोला, पुष्पमालासे परिशोभित शिर और कई रंगोंसे रंगे पायजामेको देख स्वभावतः ही लोगोंके मनमें उनके प्रति भक्ति हो जाती थी। इनकी अभ्यर्थनाके लिये कभी कभी वहाके लोग खेतोंमें मांच गाड़ देते थे। इसी पर संन्यासी बड़े हाव भावसे अपनी कविताओंको सुना कर दर्शकमण्डलीकी तृप्ति किया करते थे। क्रमशः अभिनयकी उन्नतिके साथ साथ रंगालयोंकी भी उन्नति होने लगी। धर्मयाजक अभिनेतृ-समाजमें परिणत हुए। उन्होने एकत्र हो कर "Contreres de la passion" नामके एक सम्प्रदायकी सृष्टि की। उनके अभिनीत नाटक अङ्कानुसार विभक्त न थे।

नाटकोंका ऐसा ही विभाग किया गया था, कि कौन नाटक किस दिन खेला जायगा। उस समय रोमी-पोप भी ऐसे अभिनयोंको प्रश्रय देते थे। वे दलभुक्त अभिनेताओंको "सहस्रदिवसावधि" क्षमा प्रदान करते थे। नगरके विभिन्न व्यवसायके लोग विभिन्न अंशका अभिनय करते थे। धर्मपुस्तकसे 'सृष्टि' (Creation) "जलप्लावन" (Deluge) पवित्रीकरण या शुद्धि (Purification) आदि अंश हमेशा अभिनीत होते थे। रंगवाले प्लावनका अंश, बढ़ई, लुहार, शुद्धिअंश और वस्त्रविक्रेता सृष्टिके अंशका अभिनय करते थे। इन सबोंके अभिनय करते समय वे ईश्वर अंशका अभिनय करनेमें अधर्म नहीं समझते थे। उसीके साथ शैतान (Satan) और पिशाचों (devil) की अवतारणा भी होती थी।

फ्रान्सीसी रङ्गालियोंके इतिहासमें कहा गया है :— सन् १४३७ ई०में मेज नगरके धर्म्माचार्य्य फनएड रैयरने 'रिपुगण' (The passions) नामक रूपक नाटक (Mystry) कराया था। नगरके निकट मेक्सिमेल प्रान्तरमें इसके लिये रंगमञ्च बना था। इस नगरके वृद्ध-धर्मयाजक चौरेनवासी निकोलस तुसाटेलने (Curute of Saint Victory of Metz) जगदीश्वर (God)-का अंश अभिनय किया। इस अभिनयके समय वह यथार्थमें क्रुश पर चढ़ाया गया। यह कार्य्य ऐसे सुचारुरूपसे सम्पादित हुआ था, कि यदि वह यथासमय साहाय्य नहीं पाता, तो वास्तवमें ही ईसामसीहकी ही दशा यानी मर गया होता। वह इतना निर्बल हो गया था, कि दूसरे दिन एक दूसरे आदमीको क्रुश पर चढ़ा कर उसने इस अभिनयको सम्पन्न किया था। इसके बाद निकोलसने 'पुनरुत्थान' (Resurrection) अंशका अभिनय किया। इस अभिनयमें उसकी सुख्याति हुई थी।*

इंगलैण्डमें भी "सेण्ट कथारिन" नामक जेफ्री (Geoffrey) रचित इसी तरहका अभिनय हुआ था। अंग्रेजी साहित्यके इतिहास लेखक टमास वी० साने लिखा है, कि यूरोपके प्रायः सभी केथलिक प्रधान देशोंमें उस

* History of the French Theatre, Vol II p, 285

पुराने समयमें इसी तरहके 'मिष्ट्रि' 'मोरालटी' और 'मिराकल' अभिनय होते थे। इस तरहके धर्मरोचित नाटकाभिनयका प्राधान्य स्पेन, जर्मनी, फ्रान्स और इटलीमें अत्यधिक था।

साम्युयेल नामक एक मनुष्यने इंगलैण्डके राजा तथा राजपुरुषोंके चित्तविनोदार्थ विद्यालयके छात्रोंसे एक मिलनान्त नाटकका अभिनय कराया था। सन् १५५१ ई०में निकोलस उडाल द्वारा रचित Ralph Royster Doyster नामक मिलनान्त नाटकका अभिनय हुआ था। इसी समयसे सारे यूरोपमें प्रकृत नाटकों के अभिनयका सूत्रपात हुआ। इसके बाद इंगलैण्डमें सेक्सपियर, इटलीमें टासो, फ्रान्समें कर्नेली, स्पेनमें सार्वेन्टिस आदि नाटककार आविर्भूत हो कर इंगलैण्ड के नाटकीय युगको अभिनयभित्ति स्थापित कर गये।

भारतका अभिनय।

भारतवासी हिन्दुओं की सामाजिक और मानसिक वृत्तियों की सम्यक् उन्नति निरपेक्षभावसे साधित हुई थी। वैदेशिक सम्बन्ध तथा वैदेशिक प्रभावके फैलानेसे बहुत पहले ही भारतमें नाट्य अभिनयकी अत्यधिक पुष्टि हो चुकी थी। प्रायः दो सहस्र वर्ष पहले कालिदासने शकुन्तला नाटककी रचना की। इसी ग्रन्थ के नाट्य-साहित्यकी परिपुष्टिको देख कर पश्चिमीय पण्डित अनुमान करते हैं, कि यह ग्रन्थ भारतवासियों के स्वदेशीभावसे पूर्ण होने पर भी इसमें विजातीयका काल्पनिक नाटकका (Romantic Drama) चित्र प्रतिफलित हुआ है। और तो क्या, साक्षुप देख कर उन लोगों को सन्देह होता है, कि प्रसिद्ध कवि सेक्सपियरने इस नाटकका आभास लिया था।

नाटक और उसका अभिनय यहांके राजाओं के लिये बड़ी प्रिय वस्तु तथा बड़े आदरकी चीज थी। इसी कारणसे नाटकों में विशुद्ध समाजका आदर्शचित्र अङ्कित हुआ है। भारतीय हिन्दूराजाओं का जब प्राधान्य था तब 'उज्जयिनी' और कान्यकुब्जका वर्तमान कन्नौज' नगर ही नाटकाभिनयके प्रधान स्थान थे। पुराने नाटकों में इनका उल्लेख पाया जाता है। *

अध्यापक लासेन, वेबर, श्लीगल, गोल्डष्टुकर आदि जर्मन पण्डित और कनिंघम, डिवाट, प्रोम्स, विल्सन आदि भारत प्रवासी यूरोपीय पण्डितोंने एक वाक्यसे संस्कृत नाट्य-साहित्यका उत्कर्ष स्वीकार किया है। बहुत गवेषणाके बाद अध्यापक विल्सनने स्थिर किया, कि हिन्दू नाटकोंमें कितने ही गुण या दोष क्यों न हो, इसमें सन्देह नहीं, कि यह भारतवासियोंके निजस्व हैं। हिन्दू अपने नाट्य साहित्यके लिये किसी वैदेशिकके ऋणी नहीं हैं। १४वीं या १५वीं शताब्दीसे पहले यूरोप की किसी जातिमें कोई भी यथार्थ नाटक न था। किन्तु इतना जरूर है, कि उस समय हिन्दू नाटकोंकी सम्पूर्ण अवनति थी।† ऐतिहासिक हण्टरका कहना है, कि यूनान और रोमकी तरह प्राचीन भारतमें सम्भवतः वैदिकयुगमें भी यज्ञ आदिके साहाय्यसे धर्मानुरूप कौतुकाभिनयकी व्यवस्था थी। किन्तु समुन्नत साहित्ययुगमें (Classical age) परिस्फुट चरित्र विन्याससम्बलित जो संस्कृत नाटक रचे गये और जिनमें अब हम इस समय देख रहे हैं, वे सम्भवतः पहली शताब्दीसे ८वीं शताब्दी तक सङ्कलित किये गये हैं।‡

मुसलमानोंके अभ्युदयके समय विजातीय भाषाके संसर्गसे प्राचीन समृद्ध संस्कृत भाषाका अधःपतन हुआ। इसीके साथ साथ रंगालयकी अवनति हुई। मुसलमानोंमें फारसी भाषाके रचित कुछ शेरों या काव्योंके सिवा नाट्य काव्योंका वे निदर्शन नहीं मिलता। संगीत आमोद उपभोग मुसलमानधर्मशास्त्रमें निषिद्ध होनेसे रंग मञ्चीय अभिनय मुसलमान राजाओंको उन्नतिके समय प्रश्रय लाभ नहीं कर सका। मोगल-सम्राट् अकबर शाह भारतवासियोंके मनोहर संगीतसे मुग्ध हो कर संगीत विद्याके बड़े पक्षपाती हो गये थे। किन्तु लालस्यपूर्ण रंगाभिनयमें उनको कुछ भी श्रद्धा दिखाई नहीं देती थी। सम्राट् औरंगजेब संगीत और बाजे की प्रथाके समूल विरोधी थे। सुदूर चीन राज्यमें

* Schegels Dramatic Literature Lecture II p. 33–34

† Wilson s Hindu Theatre, Preface p. *XI*

‡ Indian Empire by W W Hunter chap IV p 321

भी सम्यक् नई प्रथाके आधार पर प्रतिष्ठित रंगालय था। किसी किसी विषयमें सुसभ्य और शिक्षित यूरोपीय नाट्यरंगके विषयमें उनके पीछे थे।

पुराणादि हिन्दू-शास्त्रोंकी आलोचना करनेसे देखा जाता है, कि स्वर्गकी देवसभामें देवताके मनोरञ्जन करनेके लिये भरतमुनिने नाट्यशास्त्रोंका प्रणयन किया। उन सब नाटकोंका अभिनय पहले देव-सभामें किया गया था। उर्वशी आदि विद्याधरी या अप्सरायें नृत्य-गीतादि द्वारा उस समय देवताओंका चित्तविनोद किया करती थीं। उस समयका अभिनय तीन भागोंमें विभक्त था। (१) नाट्य अर्थात् हाव भाव दिखा कर वाक्यका प्रयोग करना। (२) नृत्य या भावहीन अंगोंका परिचालन करना और ३ नृत्त अर्थात् केवल नाच। उत्तरकालमें इन तीनोंके साथ ताण्डव-नृत्य अर्थात् शिव नृत्य तथा लास्य आ कर मिल गये। भगवती पार्वतीने स्वयं जिस नृत्यका प्रवर्त्तन किया, वह लास्यके नामसे पुकारा गया। इस नृत्यको देवीने बाणकी पुत्री ऊषादेवीको तथा उनकी सखियोंको सिखाया था। ऊषासे गोप-गोपियोंने सीखा। पीछे उन सबोंसे सभी जगह फैल गया।

भरतमुनि ही नाटकोंके आदि सृष्टिकर्त्ता हैं। सभी एक वाक्यसे स्वीकार करते हैं, कि उनके समयसे ही संस्कृत नाटकका प्रथम विकाश हुआ। उस समय गन्धर्व और अप्सरायें इसे अभिनीत करती थीं। जहा दर्शक देवता हैं, अभिनेता और अभिनेत्री गन्धर्व और अप्सरायें हैं तथा रंगमञ्च सदा सर्वदा ऋतुराज वसन्त-विराजित स्वर्गधाम है, वहाका अभिनय कैसा सर्वाङ्ग सुन्दर होता होगा, पौराणिक उपाख्यानोंके सिवा उसका विशेष विवरण जाननेका कोई उपाय नहीं।

महाभारतके विराट् पर्वमें (२२।१६) लिखा है, कि मत्स्यराज या विराटराजने अपनी कन्या उत्तराको गान बाजा सिखानेके लिये बृहन्नला (अर्जुन)को नौकर रखा था। इसके लिये उन्होंने स्वतन्त्र एक नृत्यागार तय्यार करवाया था। दिनमें वहां जा कर बालिकायें नृत्यगान सीखा करती थीं। इसका विवरण जाननेका कोई उपाय नहीं, कि यह नृत्यागार किस प्रथाके अनुसार तय्यार हुआ था। पाणिनिने शिलालि-रचित नटसूत्रका उल्लेख किया है।

भारतीय रङ्गमञ्चकी लुप्त वैभव-स्वरूप संस्कृत भाषामें रचित प्राचीन नाटक आदि आज भी स्पर्द्धाके साथ हिन्दू जातिका अतीत गौरव बतला रहे हैं। उज्जयिनी-पति विक्रमादित्यके राजत्वकालमें जिस नाट्य साहित्यने शीर्षस्थान अधिकार किया था, दुःख है, कि भारतमें भाग्याकाशमें और कभी वैसा कला विज्ञानका पूर्ण विकाश नहीं हुआ। तुलना करने पर विक्रमादित्यके राजत्वकालको Augustion Period कह सकते हैं। रोम सम्राट् अगस्टसकी तरह महाराज विक्रमादित्य भी प्रबल पराक्रान्त सम्राट् थे। रोम-सम्राटकी सभामें जैसे Horace, Vergil, Livy आदि रसज्ञ कवि मौजूद थे वैसे ही उज्जयिनी-राजसभा भी कालिदास आदि रसज्ञ पण्डितमण्डलीके विमलज्ञानालोकसे आलोकित हो रही थी।

कालिदास आदि कवियोंके आविर्भावके समय हिन्दू उन्नतिकी चरमसीमा पर पहुंच चुके थे। उन्हीं कवियोंमें कालिदास, भवभूति आदिने अपने अपने नाटकोंमें हिन्दुओंके जातीय जीवनका जैसा अनुपम और स्वाभाविक चित्र खींचा है, वैसी जातीय चरित्र गठन की शक्ति अति विरल दिखाई देती है। एक शकुन्तला नाटकके सौन्दर्यने समूचे सभ्य जगत्को मोहित किया है। शकुन्तलाकी अपूर्व माधुरीसे मुग्ध हो कर जर्मन कवि गेटे (Goethe)ने गाया था—"I name thee, o Sakuntala, all at once is said"

दशरूपक, सरस्वती-कण्ठाभरण, साहित्य-दर्पण, संगीतरत्नाकार, काव्यादर्श, अलङ्कारसर्वस्व, रसगंगाधर, अलङ्कारकौस्तुभ, शृङ्गारतिलक, रसतरंगिणी, रसमञ्जरी, भोजप्रबन्ध, शार्ङ्गधरपद्धति, काव्यप्रकाश, काव्यालङ्कारवृत्ति, चन्द्रालोक, कुवलयानन्द आदि अलङ्कारशास्त्र पढ़नेसे हिन्दू जातिके नाटक और अभिनयके सम्बन्धमें कुछ आभास मिल सकता है। इन सब ग्रन्थोंमें जिन नाटकोंका उल्लेख है, वे सब उस समय विशेष प्रसिद्ध और दृष्टान्तोपयोगी थे, ऐसा अनुमान होता है। अतः संस्कृत साहित्यके उस समृद्धिके समय

नाटकोंकी संख्या निःसन्देह इससे भी अधिक थी। नीचे कई प्रसिद्ध संस्कृत नाटकोंके नाम दिये जाते हैं—

मृच्छकटिक, शकुन्तला, विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्र, उत्तर रामचरित, मालतीमाधव, महावीरचरित, वेणीसंहार, मुद्राराक्षस, उदात्तराघव, अनर्घराघव, प्रसन्नराघव रत्नावली, हनुमान्नाटक, कर्पूरमञ्जरी, कपूरमञ्जरी, समुद्रमन्थन, त्रिपुरदाह, धनञ्जयविजय सारदातिलक, ययातिचरित, ययातिविजय, मृगाङ्कलेखा, प्रबुद्ध, बालरामायण, विदग्धमाधव, विद्धशालभञ्जिका, अभिरामणि, मधुरविजय, श्रीराम चरित, मधुराविरुद्ध, पूर्णजर्तिक, धूर्तसमागम, कंसवध, कौतुकसर्वस्व, चित्रयज्ञ, नागानन्द, चण्डकौशिक, जगन्नाथवल्लभ रामकेलि-कौमुदी, हास्यार्णव, कृष्णभक्तिसंकल्प सूर्योदय, प्रबोधचन्द्रोदय, प्रसन्नराघव, पाण्डव-चरित, चैतन्यचन्द्रोदय, वसन्ततिलक, प्रियदर्शिका, ललितमाधव, श्रीराम जन्म, रामाभ्युदय, सौगन्धिकाहरण, कुसुमशेखर-विजय, शर्मिष्ठा, यादवोदय शृङ्गारतिलक, जानकीका परिणय, रैवत मदनिका, सुदर्शनविजय ययातिशर्मिष्ठा, कुन्दमाला, कोङ्गरसातक, मायाकापालिक, विलासवती तथा महादेव, बालोदय कणकावती माधव, बिन्दुमती, केली-रैवतक कामदत्त आदि।

हिन्दूनाटकोंमें मिलनान्त या वियोगान्तका कोई प्रभेद नहीं था। आर्य लोग शोक, ताप और दुःखसे भरा नाटक कभी पसन्द नहीं करते थे। इसीसे उस समय वियोगान्तनाटक बिलकुल ही न था। संस्कृत नाटक साधारणतः लम्बा होता था और उसके अभिनय करनेमें अधिक समय भी लगता था। इसीलिये किसी निर्दिष्ट समयमें एक या दो नाटक शीघ्र अभिनय करनेके लिये श्रेणी विभाग कर छोटे छोटे नाटक रखे गये थे। किस समयमें और किसके बाद कौन अभिनय के लिये रंगमञ्च पर उपस्थित किया जाता था, उसका निर्णय करना कठिन है।

अभिनयोपयोगी नाट्यसाहित्य नाटक, रूपक और उपरूपक प्रभृति तीन प्रकारका है। शकुन्तला, मुद्राराक्षस आदि नाटक उच्चकोटिके नाट्यसाहित्य हैं। प्रकरण, शुद्ध और सङ्कीर्ण भेदसे तीन हैं। मृच्छकटिक, मालती माधव आदि इसी श्रेणीके अन्तर्गत हैं। उपरूपक १८ प्रकारके होते हैं। सिवा इनके नाटिका श्रेणीमें रत्नावली और त्रोटक विषयमें विक्रमोर्वशी ही उल्लेखनीय है। परिचयके लिये कितनी ही श्रेणियोंका विभाग नीचे दिया गया है—

प्रकरण समवकार, ईहामृग, डिम, व्यायोग, अङ्क, प्रहसन, भाण, वीथी, अवस्यन्दित, असत्प्रलाप, प्रपञ्च नालिका, वाक्केलि अधिबल, छल, व्याहार, मृदव, त्रिगत, गण्ड, नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान उल्लाप्य, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीश और भणिका। इन सब नाटक ग्रन्थोंकी रचना पद्धति और अभिनेता तथा अभिनेत्रियोंके प्रदर्शनीय क्रम परिचालना आदि वैशिष्ट्य यथास्थान दिया गया है। इससे यहां इसकी आवश्यकता नहीं।

नाटक, रूपक उपरूपक और अन्यान्य शब्द देखो।

यूनानियोंकी तरह प्राचीन हिन्दुओंका अभिनय सदा नहीं होता था। पूर्णिमाकी रातको राजाके अभिषेकके दिन, मेलेमें धर्मसम्बन्धीय उत्सवमें, लोगोंके समागम होने पर, विवाहमें, मित्रके आने पर, किसी नगर या देशकी विजय पर और सन्तानोत्पत्ति पर हिन्दुओंमें अभिनय करानेकी रीति थी। इन सब उत्सवके दिनोंके सिवा देशी किसी सम्भ्रान्त व्यक्ति अथवा राजाओंकी प्रासाद ही अभिनय हुआ करता था। यह कहा जा नहीं सकता, कि नाटकाभिनयके समय साधारण प्रजा प्रवेश करने पाती थी या नहीं। क्योंकि अभिनय देखनेके बाद लोगोंके मन पर उसका जो स्थायी प्रभाव (Dramatic effect) पड़ता है, मालूम होता है, वह लोगों पर नहीं पड़ा। ऐसा होनेसे सम्भवतः इतना शीघ्र नाट्यसाहित्यका विलोप नहीं होता। विशुद्ध संस्कृत भाषाके साथ शौरसेनी, मागधी, अर्द्धमागधी, प्राची, अवन्तिका, द्राविड़ी, मालिक, दाक्षिणात्य और पैशाची भाषाओंकी मिलावट होनेकी वजह ये सब ग्रन्थ साधारणके लिये दुर्बोध हो गये थे। अनुमान होता है, कि इस कारणसे भी नाटकाभिनय साधारणकी सहानुभूति अर्जन नहीं कर सका।

अपेरा हाउसमें राजाके ऊपर पाश्चात्य लिये स्वतन्त्र सीढ़ी बनी है।

बंगालमें, विशेषतः कलकत्तेमें जितने रङ्गालय हैं, उनमें यूरोपियोंके परिचालित रायल थियेटर, कोरिन्थियन थियेटर, अपेरा हाउस और देशी पारसियोंके थियेटरोंको छोड़ कर बङ्गालियोंके परिचालित रङ्गमञ्चों की आलोचना करने पर केवल स्टार थियेटर ही ऐसा दिखाई देता है, जो यूरोपीय ढंगका बना हुआ है। अन्यान्य सभी कसल अनुरूप छाया ले कर गठित हुए हैं।

बङ्गालमें किस तरह और किस घटना स्रोतमें रङ्गालयका अभिनय और प्रथम प्रतिष्ठा हुई और किस तरह इस कलाविधाने अपनी परिपुष्टि की थी, उसका संक्षिप्त इतिहास नीचे लिखा जाता है।

बङ्गालके रङ्गालय।

बङ्गालियोंके रङ्गालयोंका प्रतिष्ठाता मूल अङ्गरेज हैं। किन्तु अङ्गरेजोंने कलम हाथमें पकड़ा कर उन्हें नहीं सिखाया है। अङ्गरेज जातिने अपने आमोद-प्रमोदके लिये वारेन हेस्टिंग्सके जमानेमें इस देशमें थियेटरका सूत्रपात किया। उस समयके राजपुरुष ही इसके अनुष्ठाता तथा अभिनेता थे। यह ठीक ठीक कहना कठिन है, कि कब इसका प्रतिष्ठा हुई। फिर, हिकीज बङ्गाल गजटमें दिखाई देता है, कि सन् १७८० ई०में 'कलकत्ता थियेटर' नामक थियेटरमें इसके सात आठ बार नाटक प्रहसन हो चुके थे। उसी समयके "कलकत्ता'गजट एडवर्टाइजर" में इन अभिनयोंके विज्ञापन छपे हैं।*

Vol II No I 1782 Hickie's gazette से जाना जाता है, ५वीं जनवरी सन् १८०८ तक यह थियेटर यहाँ मौजूद था।

इसके बाद पेशेवरोंके थियेटर आरम्भ हुए और कलकत्तेमें जो ये थियेटर स्थापित हुए और हुए भी तो अङ्गरेजोंकी सहायतासे।

इसके बाद बङ्गालियोंने ठीक कब थियेटर कायम किया, यह कहना जरा कठिन है। कलकत्तेके (Calcutta Review Vol XIII 850) "कलकत्ता रिव्यु" नामक पत्रके तेरहवें अङ्कके १६०वें पृष्ठसे जाना जाता है, कि सन् १८२१ ई०में "कलिराजार यात्रा" नामक एक नाटक हुआ था। इसी सालका बङ्गाली संवाद पत्रिका "संवादकौमुदी" की ८वीं संख्यामें इस अभिनयका विवरण प्रकाशित हुआ था। उस समय होनेवाली बहुतसी यात्रा या रासलीलाओंसे निश्चय ही इस अभिनयमें कुछ विशेषता था, नहीं तो इसका विज्ञापन समाचार-पत्रोंमें कैसे छापा जाता। इस समय कई नाटक लिखे गये। उक्त "कलकत्ता रिव्यु" में संवादकौमुदीकी जो आलोचना हुई है, उसमें लिखा गया है, कि इसकी पांचवीं संख्यामें "नवप्रकाशित नाटकोंके प्रति कुरुचि" (The evil tendency of the dramas lately invented) शीर्षक एक लेख प्रकाशित हुआ था या नहीं। "कलिराजार यात्रा" नाटकका अभिनय हुआ था इस विवरणके सिवा बङ्गालियोंके किसी और नाटकाभिनयका परिचय अब तक नहीं मिला है। यह भी १२२७ साल फसलीकी घटना है।

इसके बाद सन् १२३९ फसलीके सम्भवतः लक्ष्मी पूर्णिमाके दिन बङ्गालियोंके एक नाटकाभिनयका विशेष विवरण मिलता है। हिन्दू 'पायनियर' नामक एक प्राचीन पत्रमें (सन् १८३१ ई०के अक्टूबर महीनेकी एक संख्या में) इसका विवरण प्रकाशित हुआ था। इस विवरणके आरम्भमें ही लिखा है—"This private theatre got up about two years ago is still supporte by Babu Nobinchandar Bo-e" "अर्थात् यह शौकीन थियेटर कोई दो वर्ष पहलेसे तय्यार हुआ है, जिसे बाबू नवीन चन्द्रबोस अब तक प्रतिपालित करते आते हैं।"

* ११वीं जनवरी शनिवार Comedy of the Beaux Stratagem और एक फार्स; १६ मार्च Comedy of Foundling और Like master like man नामक फार्स और एक मास बाद ११वीं मईको School for Acandal अभिनीत हुआ। विस्तृत विवरण Calcutta Ceural Advertiser N 1 29th January and No 10, 3rd April, 1780 संख्यामें दिया गया है। फिर इसके उस वर्षके ११वीं, १६वीं और २१वीं अगस्त Tragedy of Mahomet और Citizen नामक एक और फार्स अभिनय हुआ था।

ही अधिकता थी। सुना जाता है, कि पहला अभिनय दो दिनमें समाप्त हुआ था। सन् १८३१ ई० अभिनयके विवरणसे देशीय यन्त्रके एकतान वाद्यका परिचय मिलता है। सितार, सारंगी, पखावज, बेहला आदि बाजे बजाये गये थे। बजानेवालोंमें अधिकांश ब्राह्मण थे। ब्रजनाथ गोस्वामीने बेहलामें खूब नाम कमाया था। एक परमेशस्तुतिसे ही मंगलाचरण हुआ था और हुआ था विविध रागरंग पर ही। इस अभिनयमें भाग लेनेवाले पात्र और पात्रियोंमें निम्नलिखित नामोंका पता लगता है:—

सुन्दर—श्यामाचरण बन्द्योपाध्याय (बराहनगर-निवासी), विद्या—राधामणि (मणि नामसे परिचिता), रानी—जयदुर्गा मालिनी—जयदुर्गा, सखी—राजकुमारी (राजूनामसे परिचिता)

'हिन्दू पाइनियर'*का कहना है, कि स्त्रियोंका अभिनय राधा वीरसिंहके अभिनयसे भी अधिक मनोहर हुआ था। सुन्दरका पार्ट इस सम्वादकको अच्छा नहीं लगा था। मनोभाव परिवर्त्तनका कौशल, वाक्भङ्गी और हावभाव मक्तविम नहीं हुआ।

सुना जाता है, कि इस अभिनयमें नवीनबाबूका दो लाख रुपया खर्च हुआ था। इसलिये उनको अंग्रेजी टोलेका एक मकान बिक्री कर देना पड़ा। इस समय जिस बिल्डिङ्गमें Military Accounts है, वहां उनका मकान बाताबाड़ी नामसे मशहूर था। जो हो, पहले रंगमञ्चके अभावमें जगह जगह दृश्यपट सजा कर नवीन बाबूने जो अभिनय किया था, उसमें उनके कवित्वका विशेष परिचय मिलता है। इसके बाद अभिनयके साथ रंगमञ्चका संयोग मालूम होता है, कि प्रसन्नकुमार ठाकुरके उत्तर रामचरितके रंगमञ्चको देख कर ही किया गया था।

एक आश्चर्यकी बात यह है, कि नाट्याभिनयकी इस पहली चेष्टामें ही विद्यासुन्दरकी भाँति अश्लील विषयका अभिनय किया गया था। लड़कों द्वारा स्त्री नाटकके अभिनयमें विरक्ति और वेश्याका पार्ट करना इत्यादि विषयों पर घोर आन्दोलन समाचार पत्रोंमें उठ खड़ा हुआ।

जो हो, यह नाट्य-सम्प्रदाय बीच बीचमें अभिनय करते हुए चार वर्ष तक जीता रहा। इसका प्रमाण मिलता है।

इसके बाद यद्यपि बंग भाषामें अभिनय नहीं हुआ था तथापि बंगालियों द्वारा हुआ था, इसीमें यहां श्रीप्रसन्नकुमार ठाकुरके अनुष्ठित उत्तर-रामचरितके अभिनयका नाम लिया गया है। Hindu Reformer नामक समाचार-पत्रके सन् १८३२ ई०के जनवरी महीनेकी एक संख्यामें इस नाट्य-सम्प्रदायके पहले पहल अभिनयका विवरण प्रकाशित हुआ था। शुंडोके उद्यानमें यह अभिनय हुआ था। संस्कृत कालेजके उस समयके अध्यक्ष डाक्टर होरेस हेमेन विल्सन साहबने उत्तररामचरितका अंगरेजीमें अनुवाद किया उसी अनुवादका अभिनय हुआ था। किसी अंग्रेजने इसके लिये दल संगठन करने और इसे सुशिक्षित बनानेके लिए बड़ा परिश्रम किया था।

किसी बुधवारको यह अभिनय हुआ। अभिनयसे पहले नाट्य सम्प्रदायकी ओरसे नाटकोंके अभिनयका उद्देश बतलाते हुए किसी एक मनुष्यने व्याख्यान दिया था। यह नहीं होता, कि इस अभिनयमें किसने किस विषयका पार्ट किया। उत्तर-रामचरितका अभिनय खतम हो जाने पर इस सम्प्रदायने जुलियस-सीजरके पांचवें अङ्कका अभिनय किया। फिर इसी दलने मार्च महीनेमें गानमाटकके दृश्यकाव्यका अभिनय किया। इस पर प्रसन्न हो कर एक अंग्रेजने 'इण्डिया गजट' में एक पत्र प्रकाशित किया था। इस पत्रमें उसने उस अभिनयकी भूरि भूरि प्रशंसा की था। जाफर शुक्लनेदारका विषय इस काव्यमें वर्णन किया गया था। उस नाटकके नामका पता नहीं लगता। यह भी स्थिर नहीं किया जा सकता, कि श्रीप्रसन्नकुमार ठाकुरका यह नाट्य सम्प्रदाय कितने दिनों तक जीवित था।

इसके बाद सन् १८३७ ई०के माघ महीनेमें हिन्दू कालेजके छात्रों द्वारा सरकारी 'हाउस' में नाना पुस्तकोंका पाठ्यांशोंके अभिनीत हुए थे। गवर्नर जेनरल लार्ड आकलेण्ड लार्ड बिशप, माननीय इडेन आदि

---

* सन् १८१५ ई के दिसम्बर मासमें यह पत्र प्रकाशित होने लगा।

सज्जन इसके उत्साहदाता थे। ये सब नाटक ठीक तौरसे अभिनीत नहीं हुए थे। इस दलके कई अभिनयों-का विवरण नीचे दिया जाता है :—

पुस्तक	पात्र	अभिनेता।
1. The King and the Miller	King	गोविन्दचंद्र दत्त
	Miller	नरोत्तम दास
2 Soldier's dream	Soldier	शशिचंद्र दत्त (इनको पीछे रायवहादुरका खिताब मिला था)
3 Topsy Tosspot		गोपालनाथ मुखोपाध्याय
4 Shakespear's Seven ages		अवतारचंद्र गंगोपाध्याय
5 Lodgings for Single Agent		प्रतापचद्र वसु
6 Merchant of Venice	Salarino	गोपालचन्द्र मुखोपाध्याय
	Duke	राजेन्द्रनाथ सेन
	Shylock	उमाचरण मित्र
	Portia	अभयचन्द्र वसु
	Bassanio	राजेन्द्रनारायण वसु
	Nerissa	राजेन्द्रनारायण मित्र
	Cratiaus	राजेन्द्रनारायण दत्त
	Nellygray	गोविन्दचन्द्र दत्त
7 The Dramatic Aspirant	Antonio	कालीकृष्ण दत्त
	Patent	गोपालकृष्ण दत्त
	Dowles	गिरिशचन्द्र घोष

हिन्दूकालेजके छात्रोंको यह अङ्गरेजी अभिनय चेष्टा दूसरी जगह कालक्रमसे सक्रामित हो उठी थी। सन् १८४० ई०में लार्ड आकलैण्डने "ओरियण्टल सेमिनेरी" का अभिनय करानेकी तय्यारी की। इस समय इस अभिनयके दारमन जेफ्रे नामक एक फ्रान्सीसी प्रधान शिक्षक थे। रिशी नामक एक और फ्रान्सीसी भी इस समय कलकत्तेमें मौजूद थे, यह इनके मित्र थे। जेफ्रे और रिशीने मिल कर ओरियण्टलके छात्रों द्वारा "जुलियस सीजर"-का अभिनय करनेका संकल्प किया। रिशीने स्थिर किया, कि इस कार्य्यमें डेढ़ हजार रु० खर्च होगा। अर्थाभावसे यह कार्यमे परिणत नहीं हुआ। केवल कई दिन शिक्षा या रिहर्सलका काम हुआ था। यह सन् १२४७ फसलीकी बात है।

इसके वाद १२ वर्षों तक अंग्रेजी या वंगला कुछ भी नाटक नहीं हुआ। सन् १२५६ फसलीमें अर्थात् सन् १८५२ ई०में वड़तलेमें "सेण्ट्रल पलिटन एकेडमी" नामक स्कूलभवनमें "जुलियस सीजर" नाटकका अभिनय हुआ। आज भी वांधा वड़तलेकी वगलमें जो वड़ा मकान है, उसी मकानमें इस अभिनयका आयोजन हुआ था। पहले इसी मकानमें "ओरियण्टल सेमिनरी" थी। इसके वाद हाटखोलेके दत्तवंशीय गुरुचरण दत्त महाशयने इस भवनमें मेट्रपलिटन एकेडमी नामसे और एक स्कूल-की प्रतिष्ठा की। इस वड़े मकानमें इस अभिनयके स्थान पानेसे माल्लूम होता है, कि स्कूलके प्रतिष्ठाता गुरुचरण वावू भी इस नाट्याभिनयके एक पृष्ठपोषक थे। सुना जाता है, कि ओरियण्टल सेमिनरोके भूतपूर्व छात्र इस अभिनयके अभिनेता थे। अनुमान होता है, कि पहले रिशी और जेफ्रेने जुलियस सीजरके अभिनय करनेकी चेष्टा थी और उन्हें उसमें सफलता नहीं मिली, उसीको सफल करनेके लिये वहुतोंने इस अभिनय-में साथ दिया था। इसका कुछ भी पता नहीं लगता, कि इस अभिनयका कौन अधिष्ठाता थे, किसके खर्चसे यह कार्य सम्पन्न हुआ था, किस किसने अभिनय किया था। किन्तु सासूची नामक थियेटर (अंग्रेजी)-के एक अभिनेता क्लिङ्गाने वड़े यत्नसे इस नाट्य सम्प्रदायको पार्ट याद कराया था। इस अभिनयमें एक विशेष घटना हुई थी। दर्शकोंके लिये टिकट लगा था। यह माल्लूम नहीं होता, टिकटका मूल्य कितना था और कितने रुपयेका विका था। टिकट लगा कर सबसे पहले यही अभिनय वंगालमें हुआ।

वड़तलेके "जुलियस सीजर" अभिनयके वाद दूसरे वर्षमें वाराणसीघोष ष्ट्रीटके प्यारीमोहन वसुके मकानमें "जुलियस-सीजर"-का अभिनय हुआ। यह प्यारीमोहन वावू उयुक्त नवीन वावूके भतीजे थे। इन्होंने शान्तिराम सिंहके वंशकी किसी कन्यासोंसे विवाह किया था। प्यारीमोहनके पुत्रोंकी चेष्टासे इस

अभिनयका सूत्रपात हुआ। कलकत्तेके अभिनेताओंमें बहुतोंने इस अभिनयमें भाग लिया था। इस अभिनयमें भी टिकट लगाया गया। एक दो रात इस सम्प्रदायका अभिनय हुआ। यहांका खर्च भी प्यारी बाबूके पुत्रोंने दिया था। अभिनेताओंमेंसे केवल प्रमथनाथ बाबूका नाम हमें मालूम है। इनके सुविख्यात अभिनेता महेन्द्रलाल बसु महाशय थे।

माइकेल मधुसूदन दत्तके जीवन चरितके पढ़नेसे मालूम होता है, कि जब प्यारीबाबूके घर जुलियससीजर के अभिनयका उद्योग हो रहा था, तब ओरियण्टल सेमिनरीमें भी उस समयके शिक्षकोंके उद्योगसे ओथेलो के अभिनयका उद्योग चल रहा था। ओरियण्टलके भूत पूर्व छात्रोंने ही यह उद्योग किया था। कालीनाथ घोष, प्रियनाथ दत्त, राधाप्रसाद बसाक, सीताराम दे, ब्रज नाथ बसु और कैलाशचन्द्र गङ्गोपाध्याय आदि व्यक्ति इसके अधिष्ठाता और अभिनेता थे। कलकत्तेके जुलि यस सीजरके शिक्षक मिस्टर क्लिंगर, मिस्टर रावर्टस और मिस्टर पारकरने इस सम्प्रदायको सिखाया था। मिस्टर क्लिङ्गरकी तरह मिस्टर रावर्टस भी सूचा थियेटरमें और मिस्टर पारकर चौरङ्गी थियेटरमें थे। ओथेलो मर्चेण्ट आफ वेनिस, हनरी दी फोर्थ और एमडि मोर्स नामक चार पुस्तकोंका अभिनय हुआ था। यह सम्प्रदाय ओरियण्टल थियेटर नामसे पुकारा जाता था। नीचे इसका विवरण दिया जाता है।

पुस्तक	तारीख	अभिनेता
ओथेलो	(१ला) १२६०।११ आश्विन	ओथेलो—कालीनाथ घोष
	१८५३।२९ सितम्बर	आयागो—प्रियनाथदत्त
	(२रा) १२६१।१० क्वार	ब्राबान्शियो—जगेन्द्रनाथ मल्लिक
	१८५४।५ अक्टूबर	डेसडिमोना—राजराजेन्द्र मित्र।
		एमिलिया—राधाप्रसाद बसाक
मार्चेण्ट आफ वेनिस	(१ला) १२६१।२० फागुन	शाइलक—प्रियनाथदत्त
	१८५४।२८ मार्च	पोर्शिया—राधाप्रसाद बसाक
	(२रा) १२६१।५ चैत	
	१८५४।१७ मार्च	
हनरी दी फोर्थ	१२६१।४था फाल्गुन	हेनरी—कैलाशचन्द्र गङ्गोपाध्याय।
	१८५५।१५ फरवरी	फलस्टाफ—प्रियनाथ दत्त
		हट्स्पर—नित्यलाल दे
एमेडि मोर्स	१२६१।४था फाल्गुन १८५५।१५ फरवरी	मेजर प्रस—कैलाशचन्द्र गङ्गोपाध्याय

ओथेलोके दूसरे अभिनयमें लार्ड डलहौसीने इस थियेटरकी पृष्ठपोषकता की थी।

इस सम्प्रदायके बहुतेरे अभिनेता पिछले समय बङ्गालमें नाट्याभिनयके प्रधान उद्योगी तथा अभिनेता हुए थे। जेफ्रे और रिचर्ड नाट्यामोदका बीज जिनके हृदयक्षेत्रमें वपन कर चुके थे, समय आने पर वह अङ्कुरित हो कर खूब ही फला फूला है।

इसके बाद ही बङ्गालमें अभिनयका सूत्रपात हुआ। 'कलिराजाकी यात्रा' नाटक तथा विद्यासुन्दरकी बात छोड़ देने पर यथार्थमें सन् १२६१ फसली सालसे ही बङ्गालमें अभिनयका आरम्भ कहा जा सकता है। क्योंकि इसके बाद ही बङ्गालकी कई जगहोंमें नाटकोंके अभिनयकी प्रवृत्ति जाग उठी। पथरियाघाटाके निकट गरानहट्टा के जयराम बसाकके मकानमें (सन् १८५७ ई०में) बंगला अभिनयका आरम्भ हुआ। इस समय पण्डित रामनारायण तर्करत्नके लिखे 'कुलीनकुलसर्वस्व' (सन् १८५४ ई०) नामक नाटकका पहले पहल प्रचार हुआ। इस अभिनयमें ओरियण्टल थियेटरके अभिनेता राधाप्रसाद बसाकने साथ दिया था। यहां भी यह मालूम नहीं होता, कि किसने कौन पार्ट लिया था। किन्तु अभिनेताओंमें कई आदमियोंके नामका पता लगा है—राधाप्रसाद बसाक, जयराम बसाक, जगदुर्लभ बसाक, नारायणचन्द्र बसाक, राजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय, महेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय और बिहारीलालचट्टोपाध्याय (इन्होंने

स्त्रियोंका पार्ट किया था)। निम्नोक्त व्यक्ति ही पीछे-के सुविख्यात पेकूर (अध्यक्ष) विहारी बाबू हैं। इन लोगोंमें पीछे बहुतेरे अच्छे अभिनेता हो गये हैं। उक्त कुलीनकुलसर्वस्वके दो बार अभिनय हुए।

इसी समयसे कलकत्ते तथा वहाके देहातोंमें नाटकों-के अभिनयका उद्योग होने लगा। उपर्युक्त राधाप्रसाद बाबू और जयराम बाबूने बड़ा उद्योग किया। दूसरे अभिनेता प्रियनाथदत्त अपने ननिहालमें भी (गङ्गाधर सेठके मकानमें) इस 'कुलीनकुलसर्वस्व' का अभिनय किया था। सन् १८५७ ई०में इस दलका पहला अभिनय हुआ। गदाधर सेठके पुत्र गोपालचन्द्र सेठ (प्रियनाथ-के मामा) इसके पृष्ठपोषक थे। इस दलमें प्रियनाथदत्त, गोपालचन्द्र सेन, नकुलचन्द्र सेठ, नारायणचन्द्र बसाक आदि अभिनेता सम्मिलित थे। नारायण बाबूने इस दलमें जाहनवी और रसिका हजामिनकी भूमिका अभि-नय किया।

इस समय अर्थात् जयराम बसाकके मकानमें होने-वाले अभिनयके समयमें ही सिमलेमें छातू बाबूके मकान-में बंगलेमें शकुन्तला नाटकके अभिनयका अनुष्ठान हुआ। इस अभिनयमें प्रियमाधव वसुमल्लिक, शरच्चन्द्र घोष, मणिमोहन सरकार आदि व्यक्ति अभिनेता थे। शकुन्तलाका यही प्रथम बंगानुवाद हुआ। जिस दिन जयराम बाबूके मकानमें अभिनय हुआ, उसके दूसरे दिन ही छातू बाबूके मकानमें शकुन्तलाका अभि-नय हुआ था। इस अभिनयमें सभी अभिनेता यथोप-युक्त मूल्यवान् पोशाक पहने हुए थे।

इसी समय चुचड़ेमें भी कुलीनकुलसर्वस्वका अभिनय हुआ।

बंगला नाटकाभिनयका यह एक युग था। उस समय जहा जितनी चेष्टायें हुई सब जगह ही कुलीन सर्वस्व और शकुन्तलाके सिवा दूसरे नाटकका अभिनय नहीं हुआ।

इस समय केशवचन्द्र सेनके घरमें (गौरिफा ग्राममें) अंगरेजीमें हेमलेटका अभिनय हुआ। इस अभिनयमें केशवचन्द्रने हेमलेटका, प्रतापचन्द्र मजुमदारने होरेशियोंका, महेन्द्रनाथ सेन राजाका, भोलानाथ चक्रवर्तीने पलोनियसका, योगेन्द्रनाथसेन ग्रार्नार्डोका, नन्दलाल दामने रानीका, श्रीनरेन्द्रनाथसेनने (मिररके सम्पादक) अफिलियाका पार्ट लिया था। इसके बाद बंगालियोंका अंगरेजी नाटकके प्रति उत्साह धीमा पड़ गया।

इसी समय (सन् १८५७ ई०के मार्च महीनेमें) कालीप्रसन्न सिंहके यत्नसे उन्हींके मकानमें वेणी-संहार नाटकका बङ्गानुवाद अभिनय हुआ। काली प्रसन्न सिंह, उमेशचन्द्र बन्दोपाध्याय (मिष्टर डब्लिउ, सी० बनरजी) विहारीलाल चट्टोपाध्याय, आदि इस दलके अभिनेता थे। विहारी बाबूने स्त्रीका पार्ट किया था। इसके आठ महीने बाद सन् १८५७ ई०के नवम्बरमें 'विक्रमोर्वशी' बङ्गानुवादका अभिनय हुआ। इसका अनुवाद कालीप्रसन्न बाबूने एक पण्डितका साहाय्य ले कर स्वयं किया था। इस अभिनयकी बात सन् १८७२ ई०के कलकत्ता-रिव्युमें प्रकाशित हुई थी। इस समय नड़ाइल-हाटवाड़ियाके बाबू गुरुदासराय महा-शयके मकानमें भी उनके बड़े दालानमें रङ्गमञ्च तैयार कर अभिनय करनेका आयोजन चला रहा था। गुरुदास बाबूके पुत्र श्री गोविन्दचन्द्र राय महाशय उसके प्रधान उद्योगी थे।

छातूबाबूके घर जब शकुन्तलाका अभिनय हुआ था, उसके बाद ही कप्तान पामार ओरियण्टल सेमिनरीके प्रधान शिक्षक मिष्टर डी० एल० रिचार्डसन, रसिकलाल सरकार आदि कई गण्यमान्य व्यक्तियोंने ओरियण्टल सेमिनरीमें फिर सेक्सपियरके नाटकोंका अभिनय आरम्भ किया।

ओरियण्टल थियेटरके पहले अभिनयको देख कर ही कालीप्रसन्न सिंह और राजा प्रतापचन्द्र आदिके मनमें थियेटर करनेका भाव जागरित हो उठा। कादम्बरीके अभिनयके समय छातू बाबूका देहान्त हो गया था। महाश्वेता नामसे कादम्बरीका अभिनय हुआ।

राजा उमेशचन्द्रके लिखे एक पत्रसे मालूम होता है, कि ओरियण्टल थियेटरके अध्यक्षोंके साथ केशव-चन्द्र गङ्गोपाध्याय, प्रियनाथदत्त आदिके मनोमालिन्य

उपस्थित होने पर राजा ईश्वरचन्द्र और राजा प्रताप चन्द्रने बंगला नाटकोंके अभिनयका प्रस्ताव किया। उन्होंने ही आग्रह कर केशवचन्द्र गङ्गोपाध्यायको स्थान-निर्वाचनके लिये कहा। किसी बड़े आदमीका मकान मांग लेने या किराये पर ले कर कार्य्य आरम्भ करनेकी भी बात चल रही थी। इसके दो या ढाई वर्ष तक इसकी कोई चर्चा न चली। अन्तमें जब इन युवकोंने किसी नाटकका कहीं रिहर्सल करते सुना तो (सम्भवतः जयराम बसाकके मकानका 'कुलीनकुलसर्वस्व' इन लोगोंको भी कोई नाटक खेलनेकी इच्छा बलवती हो उठी। इन्होंने आपसमें सलाह कर चट पट संस्कृत रत्नावलीके अनुवादकी व्यवस्था कर दी। स्थिर हुआ, कि इसका अनुवाद रामनारायण तर्करत्न ही करें। इन्होंने अनुवाद करना स्वीकार भी कर लिया। इस तरह इन्होंने अनुवाद कार्यमें चार महीने बिताये, फिर इसका संशोधन हुआ। *संशोधनमें भी कम समय नहीं लगा।* पूरा एक महीना। ऐसा क्यों हुआ? इसका उत्तर यह है, *कि इसमें अन्यथा शब्दोंको निकाल यथायथ शब्दोंको* रखनेसे ही इतना देर हो गई। फिर इसके छपाने *में तीन मास बीते। और पात्रके लिये स्त्रियोंके* निर्वाचन तथा रिहर्सलमें भी कुछ समय बीता। जो हो सन् १८५८ ई०के जुलाई महीनेमें बेलगछियाके द्वारकानाथ ठाकुरके बागमें पहले पहल रत्नावलीका अभिनय हुआ। इसमें ओरियण्टलके कई अभिनेताओंने हाथ बटाया था। शिक्षा देनेका काम तो केशवचन्द्र गङ्गोपाध्यायके ऊपर ही सौंपा गया था।

रत्नावलीके छः बार अभिनय हुए। अन्तिम अभिनय ११वीं अक्तूबरको ही हुआ। इस अभिनयमें ऐकतान बाजेका प्रदर्शन हुआ था। महाराज यतीन्द्रमोहनठाकुरके यत्नसे सङ्गीताध्यापक क्षेत्रमोहन गोस्वामी द्वारा यन्त्रादि ले कर यह वाद्यदल संगठित हुआ था। राजाओंके व्ययसे सजावट और रङ्गमञ्च उत्तम रूपसे तय्यार हुआ था। धनीका साहाय्य पा कर तथा अनवरत अनुशीलन द्वारा रुचि परिमार्जित होनेसे इस नाट्य-सम्प्रदायने साधारणका विशेष गुण किया था। बेलगछियाका यह नाट्यगृह और रङ्गमञ्च बहुत दिन तक जीवित था। रत्नावलीका अभिनय देखनेके लिये सस्त्रीक छोटे लाट हालिडे, ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, हरिश्चन्द्र मुखोपाध्याय, रमाप्रसाद राय आदि बहुतेरे गण्यमान्य सज्जन उपस्थित थे। माइकेल मधुसूदन दत्त भी इस अभिनयको देखने आये थे। साहबोंके लिये रत्नावलीके अंगरेजी अनुवादकी आवश्यकता हुई। इसी लिये माइकेल मधुसूदनने इसे अङ्गरेजीमें अनुवाद किया। अन्तमें माइकेल मधुसूदनने अंगरेजी प्रथाके अनुसार शर्मिष्ठाकी रचना की और केशव बाबूको दिखलाया तथा रत्नावलीकी गुण-हीनताका परिचय कराया। पीछे राजा ईश्वरचन्द्र इसके अभिनय करने पर उद्यत हुआ।

ऊपर कह चुके हैं कि शर्मिष्ठाका अंग्रेजीमें अनुवाद माइकेल मधुसूदन दत्तने ही किया था। इसका रिहर्सल सन् १२६५ सालके अगहन महीनेमें आरम्भ हुआ और १२६६ सालके माघकी १२वीं तारीखको इसका पहला अभिनय हुआ। इसके सात आठ बार अभिनय हुए थे। शर्मिष्ठामें ढोला बजा कर गान गानेकी व्यवस्था बड़े कौशलसे सम्पन्न हुआ था। *शर्मिष्ठा*का अभिनेता सितार हाथमें ले कर परदे पर केवल हाथ फेरते मुखसे गाते जाते थे और नेपथ्यसे एक गुणवान वादक सितार बजाते रहते थे। कलम राजमहलकी स्त्रियोंको दिखानेके लिये एक दिन *शर्मिष्ठा*का अभिनय हुआ। जब पाइकपाड़ेके राजाके उद्योगसे बेलगछियामें रत्नावलीका अभिनय हुआ, उस समय जोड़ासाँकोमें शकुन्तलाका रिहर्सल चल रहा था। सन् १२६६ फाल्गुनके पहले (१८५९ ई०के मध्य समयमें) पहले ननाथक मुखोपाध्यायोंके उद्योगसे उन्हींके जोड़ासाँकोवाले मकानमें इसका अभिनय हुआ। जयराम बसाक इसके अध्यक्ष थे और अम्बिकाचरण गुप्त रिहर्सल करा रहे थे। इस अभिनयके लिये जोड़ासाँकोमें चन्द्रमुखोपाध्यायके वर्तमान बाजारके समीप ही स्टेज तय्यार हुआ।

इस अभिनयको देखनेके लिये कालीप्रसन्न सिंह, नरचन्द्रघोष, ईश्वरचन्द्र गुप्त, द्वारकानाथ विद्याभूषण, गौरीशङ्कर भट्टाचार्य और हुगली तथा श्रीरामपुरके मजिष्ट्रेट आदि साहब भी उपस्थित थे। "प्रभाकर"

और 'भास्कर' नामक समाचार पत्रोंमें इसका विवरण प्रकाशित हुआ था।

इसके बाद १२६६ फसलीमें या सन् १८५६ ई०के अन्तमें बेलगछियामें होनेवाले प्रथम रत्नावलीके अभिनयके बाद और शर्मिष्ठाके अभिनयसे पहले मालविकाग्निमित्रका अभिनय हुआ था। इस अभिनयमें राजा सर शौरीन्द्रमोहन ठाकुरने कंचुकीका पार्ट किया था। बेलगछियाके इस नाट्यमञ्चने उस समय एक युगान्तर उपस्थित कर दिया था।

जिस समय शर्मिष्ठाका अभिनय चल रहा था, उस समय केशवचन्द्र सेनके यत्न और चेष्टासे सिन्दुरियापट्टीमें विधवा-विवाह नाटकके अभिनय करनेका अनुष्ठान हुआ था और रिहर्सल भी चल रहा था सिन्दुरियापट्टीके गोपाल मल्लिकके मकानमें ही इसका स्थान नियत हुआ। केशव बाबू ही यहांके शिक्षक थे। सन् १२६७ फसलीके वैशाख महीनेमें इसका प्रथम अभिनय हुआ।

इस अभिनयमें तीन प्रसिद्ध गवैयोंने गीत गाया था। उमेशचन्द्र भट्ट, राधिकाप्रसाद दत्त, क्षेत्रमोहन वसु, पञ्चानन मित्र, गदाधर मित्र, रसिकचन्द्र मुखोपाध्याय और बेणीमाधव सोम प्रभृति प्रसिद्ध व्यक्ति अन्यान्य बाजोंके बजानेवाले थे। बेलगछियाके अभिनयका तरह यह अभिनय भी अति उत्तम हुआ था। पाइकपाड़ेकी उत्तेजनासे यह अभिनय किया गया। पहले "एडेलफी थियेटर" किरायेपर ले कर यह अभिनय होनेवाला था। किन्तु थियेटरवालोंने १००) रु० महीना किरायेका मांगा। इससे यह सङ्कल्प त्याग कर हलविन साहबके रङ्गमञ्चको और दृश्यपटादिसे सजानेकी तय्यारी होने लगी। इसमें चार हजार रुपया खर्च हुआ। मुरलीधर सेनने ही अधिक रुपया दिया, बाकी रुपया जनसाधारणके चन्देसे आया। उस समयके 'हरकारा' पत्रमें इस अभिनयके विषयमें वाद विवाद हुआ था।

इसके बाद शोभाबाजार राजबाड़ीमें नाट्याभिनयकी चेष्टा हुई। कुमार उपेन्द्रकृष्ण देव, कुमार अमरेन्द्रकृष्ण देव, कुमार व्रजेन्द्रकृष्ण देव, कुमार उदयकृष्ण देव, गोपालचन्द्र रक्षित, चन्द्रकाली घोष और कालीकृष्ण वसु आदि इसके उद्योगकर्त्ता थे। सन् १२७१ फसलीमें चमत्कारकृष्ण घोषके दालानमें इसका रिहर्सल हुआ। इस समय प्रियमाधव वसु मल्लिक, प्यारीमोहन दास, मणिमोहन सरकार आदि व्यक्तियोंने साथ दिया था। माइकेलके रचे "एकेइ कि बले सभ्यता" नाटकका अभिनय हुआ।

शोभाबाजारकी "थियेट्रिकल सोसाइटी" साधारणकी सम्पत्ति नहीं थी, किन्तु कार्य इसका खूब शृङ्खलाके साथ चल रहा था। इसके लिये सभापति, सम्पादक प्रभृति कर्मचारी भी नियुक्त हुए थे। चन्द्रकाली घोष इसके सभापति तथा डाक्टर उमेशचन्द्र मित्र इसके सम्पादक थे। राजा देवीकृष्णके मकानमें इसका अभिनय होता था। इसके तीन प्रकाश्य अभिनय हुए थे। कविवर महेशचन्द्र वन्द्योपाध्याय इसका अभिनय देखनेके लिये उपस्थित हुए थे। उस समयके प्रधान संवाद-पत्र हिन्दू पेट्रियटमें इन अभिनयोंका विवरण प्रकाशित हुआ था।

शोभाबाजार-राजबाड़ीके इस दलसे 'कृष्णकुमारी' का अभिनय होना निश्चय हुआ। इसके लिये रिहर्सल आरम्भ हुआ। इस समय बागबाजार मदनमोहनतलानिवासी नीलमणि चक्रवर्त्ती महाशयके पुत्र गोपालचन्द्र चक्रवर्त्ती महाशय मित्रतावश आते जाते थे। सन् १२६४ फसलीके अन्तमें जब 'कृष्णकुमारी'-के खेलनेका उद्योग हुआ, तब कालिदास सान्यालके साथ राजाओंके मनोमालिन्य उपस्थित होने पर वह तथा गोपाल बाबू वहांसे चले आये। इन दोनोंके उद्योगसे गोपाल बाबूके मकानमें एक नाट्य सम्प्रदायकी प्रतिष्ठा हुई। कालिदास बाबूने स्वयं 'नलदमयन्ती' नाटककी रचना की और उसही रिहर्सल आरम्भ हुआ। गोपाल बाबूकी नाटकीय चेष्टा यही पहले स्फुरित नहीं हुई, वरं इससे एक वर्ष पहले सिमलानिवासी जयगोपाल मित्र और नवगोपाल मित्र महाशयोंने जो श्रीवत्सचिन्ता यात्राका दल संगठन किया था, उस यात्राका गाना भी एक बार गोपाल बाबूके मकानमें हुआ था। इसी गानेको सुन कर गोपाल बाबूके मनमें अभिनयकी स्पृहा बढ़ी। इसके बाद ही शोभाबाजारकी राजबाड़ीमें जा कर कृष्णकुमारीके अभिनयमें

सम्मिलित हुए। इसके बाद वे प्रथम मकानमें थियेटर कायम कर महा उत्साहसे नाटककी शिक्षा देने लगे। धनकर्मा कालिदास सान्याल महाशय ही यहां शिक्षा देते थे। गोपाल बाबू स्वयं भी कुछ शिक्षा देते थे। सन् १८७१ ई० के मध्य समयमें नलदमयन्तीका अभिनय हुआ।

यह दल चार वर्ष तक नियमितरूपसे काम करता रहा। दो वर्ष तक नलदमयन्तीका अभिनय हुआ था। चौदह या पन्द्रह बार केवल इसके अभिनय हुए। इसके बीच बड़े मान-धातवाड़ामें मारवाड़ के महाचार्योंके मकानमें, और शिवपुरके चौधरियोंके मकानमें जो सब अभिनय हुए, वे अत्यन्त उत्तम थे। मारवाड़ का अभिनय सबापेक्षा उत्कृष्ट हुआ। इसके सिवा पथुरियाघाटके बीरनृसिंह मल्लिकके मकानमें, बड़ोनारायण मुखोपाध्यायके मकानमें और बहुबाड़ेके गिरिशचन्द्र बन्धोपाध्यायके मकानमें इसका अभिनय हुआ। सिवा इसके गोकुल मित्रके मकानमें और गोपाल बाबूके मकानमें कई बार अभिनय हुए थे। पथुरियाघाटके जयराम बसाकके मकानमें इसका जो अभिनय हुआ, वह इसका दूसरी सब था। इस अभिनयकी इतनी प्रशंसा हुई, कि लोग शकुन्तला अभिनयकी तरह इसका भी आदर करने लगे थे। महाराज महताबचन्द्र बहादुर इसका अभिनय देख कर इतना मुग्ध हुए कि उस समयसे उसके रचयिता और अभिनेता कालिदास बाबू पर उनकी कृपादृष्टि रहने लगा। कालिदास बाबू बर्द्धमानराजके यहां नौकरी करते थे। दो वर्षके बाद इस दलसे "इन्द्रप्रभा" नामक एक नाटकका अभिनय हुआ। बड़ानगरके निवासी गिरिशचन्द्र बन्धोपाध्याय इसके रचयिता थे। "इन्द्रप्रभा" भी पांच सात बार अभिनीत हो चुकी था। किन्तु यह गोकुल मित्र तथा गोपाल बाबूके मकानके सिवा कहीं दूसरे जगह अभिनीत नहीं हुई।

यहां तक किसी राजा या बाबूके घर ही नाटक हुआ करता था, उस समय अन्यत्र नाटक खेलनेकी प्रथा नहीं था। बागबाजारके नलदमयन्तीके दलने पहले पहल थियेटरमें आ कर इस प्रथाको परिवर्त्तन किया। इन्दुप्रभा म पद विश्विलबाबूका पार्ट गोपाल बाबूने लिया था।

इस दलकी विवरणोंके साथ साथ और एक दलकी बात लिखनी पड़ती है। पिछले समयमें इस निम्नोक्त दलसे बङ्गालके रंगालयसे विशेष सम्बन्ध हो गया था। इस दलके अन्यतम अभिनेता गिरिशचन्द्र मित्र तथा आनन्दचन्द्रमित्र और गोकुलमित्रके भाई हैं। यह गिरिश बाबू एक उत्तम संगीतज्ञ व्यक्ति थे। नल दमयन्तीके साथ जो एकतान बाजा बजा था उसका बजानेवाला उसके अभिनेताओंमें ही था, कोई दूसरा नहीं। अन्तमें गिरिश बाबूने एक स्वतन्त्ररूपसे नाटक दल संगठित किया था। इस दलमें बागबाजार और श्यामबाजार निवासी कितने ही युवकोंने साथ दिया था। इनमें बहुबाड़ेके रहनेवाले गिरिशचन्द्र बन्द्योपाध्यायके द्वितीयपुत्र नगेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय, डाक्टर दुर्गादास करके द्वितीय पुत्र राधामाधवकरका नामोल्लेख करना पड़ता है। यही दो व्यक्ति हो भविष्य के बंगालका साधारण रंगालयोंके प्रतिष्ठाताओंमें प्रधान व्यक्ति हैं। इस नाटकदलमें एक मुसलमान युवकने भी साथ दिया था। इसका नाम था हिंगुल खां उर्फ हेम बाबू। ये अच्छे सङ्गीतज्ञ तथा हास्यरसमें पटु अभिनेता था। पिछले समयमें नेशनल थियेटरमें यह अभिनय भी करता था और सङ्गीतका शिक्षा भी देता था।

जिस समय गिरिश बाबूने यह नाटक-दल गठित किया था, उस समय भवानीपुरमें अवैतनिक 'नाट्य मन्दिर' नामक एक थियेटर-दलका संगठन हुआ। यहां हेमचन्द्रमित्रके रचे "सीतार बनवास" नाटकका अभिनय हुआ। सन १८६६ ई०के मार्च महीनेमें नीलमणि मित्रके मकानमें (सर रमेशचन्द्रमित्रके पुराने मकान में) इसका पहला खेला हुआ। इसी अभिनयमें भवानीपुरके उस समयके प्रसिद्ध वादक सर रमेशचन्द्रमित्रके भाई केशवचन्द्र मित्रने एकतानवादक-सम्प्रदायने ही बाजा बजाया था।

इस समय बागबाजारके गिरिशचन्द्र मित्रके बाजा वालोंका खूब सुनाम हो गया था। भवानीपुरमें जगदानन्द मुखोपाध्यायके मकानमें बागबाजारका दल एक दिन बजाने गया। उसमें वह यहां केशव बाबूका

श्री खरतरगच्छीय ज्ञान मन्दिर, जयपुर

अपेक्षा अधिक यश अर्जन कर आया। इस सुख्यातिके बाद नगेन्द्र बाबूने गिरिश बाबूका दल छोड कर वसुपाडेके अपने मकानमें एक बाजा दलकी प्रतिष्ठा की। राधामाधव बाबू और हिंगुल खाँ नगेन्द्र बाबूके दलमें मिल गये। क्रमशः गिरिश बाबूका दल टूट कर नगेन्द्र बाबूका दल मजबूत हुआ।

इस बागबाजारके एकतान वादनदलके दो एक वर्ष पहले श्यामपोखर-निवासी व्रजनाथदेवने 'श्याम पोखर एकतानवादन-सम्प्रदाय" नामक एक बाजा दल कायम किया। इन्हींके दलमें पहले 'क्लेरिओनेट' वंशी बजाना आरम्भ हुआ। उस समय तक कर्नेट नहीं बजाया जाता था। तात और तारके सारे यन्त्र, पिकलो-फल्यानेट, वंशी, जलतरङ्ग भी इसी दलमें एकत्र बजाया जाता था। सिवा इसके शङ्ख बजा कर सुर देना होता था। डिसुरमें कनसार्ट बजाया जाता था। छानबीन कर डिसुरके शांख लाया गया था। जब तक बाजा बजता था, शहनाईके पोंधराके हिमावसे इस शाखमें उस तरहका सुर दिया जाता था। इस दलसे राधा-माधव बाबूने क्लेरिओनेट वंशी खरीदी थी बागबाजारके दलमें यह वंशी बजती थी। व्रजबाबूके बाजादलने पहले चैत्रके मेलेमें अपने बाजे बजाये थे। नाटककार कवि गिरिशचन्द्र घोष इन व्रजबाबूके बहनोई कहे जाते है।

इस समय नाटकीय चेष्टा जाग उठती थी। पहले जैसे कुलीनकुलसर्वस्व तथा शकुन्तलाका एक युग आया था, वैसे ही इस समय "पद्मावती' का आदर बढा था। सन् १२७० फसलीमें पथरियाघाटके यतीन्द्रमोहन ठाकुर (उस समय राजा नहीं हुए थे) के मकानमें एक नाट्य-सम्प्रदाय स्थापित हुआ। यतीन्द्र-मोहनके पैतृक मकानमें (नं० ६५ पथरियाघाटा) इसका रङ्गमञ्च नहीं बना था। पथरियाघाटाके ठाकुरगोष्ठी आदि मकानोंमें (गोपीमोहन ठाकुरके मकान नं० ६६ पथ-रियाघाटा) अर्थात् उस समयके ईशानचन्द्र मुखो-पाध्यायके मकानके मध्य कमरेमें रङ्गमञ्च स्थापित हुआ। इस स्थानोंमें सन् १२७१ फसलीमें या सन् १८६५ ई०में मालविकाग्निमित्र अभिनीत हुआ। पाईकपाडेके राजाओं के यत्नसे सन् १२६६ फसलीमें इसके अभिनयमें जिन अभिनेताओंने अभिनय किया था, उनमें कुछने इस अभि-नयमें साथ दिया था। पाईकपाडेके अभिनय-शिक्षक केशवचन्द्र गंगोपाध्याय यहां शिक्षक नियुक्त हुए। यह मालूम नहीं होता, कि ठीक किस तारीखको" मालविकाग्निमित्र पहले पहल अभिनीत हुआ और किस किसने कौन कौन-सा पार्ट लिया था इसके बाद यतीन्द्रमोहनने रामनारायण तर्करत्नके नये नाटक "कंसवध" अभिनय करानेका उद्योग किया था। किन्तु नाना असुविधाओंके कारण यह उद्योग परित्याग कर देना पडा। इस समय पुस्तकाभावसे यतीन्द्रमोहनने स्वयं विद्यासुन्दरकी रचना कर रिहर्सल कराया। नौ दश बार इसके अभिनय हुए, उनकी कई तारीखें दी गईं

१ला सन् १२७२।२३वीं पौष, शनिवार (सन १८६६ ६जनवरी)
२रा „ „ २७वीं पौष, बुधवार (१८६६।१०वीं जनवरी)
३रा „ „ २६वीं माघ, शनिवार („ १०वीं फरवरी)
४था „ „ ७वीं फागुन, „ („ १७वीं „)
५वा „ „ १२वीं „ „ („ २४वीं „)

इस अभिनयके समय रीवांके महाराज कलकत्ते आ कर महाराज यतीन्द्रमोहनके मरकतकुञ्ज नामक उद्यानमें मेहमान हुए। विद्यासुन्दरका रिहर्सल प्रायः समाप्त हो चुका था और इसके खेलनेका उद्योग हो रहा था। सन् १८६५ ई०की ३०वीं दिसम्बरको यतीन्द्रमोहनने उनको अपने राजमहलमें आमन्त्रित किया। इनको आप्यायित करनेके लिये इस दिन ही 'विद्यासुन्दर' के ड्रेसिङ्ग रिह-र्सलकी व्यवस्था की गई। इस रिहर्सलमें राजपरिवार तथा रीवा-राज दलके लोगोंके सिवा और कोई जाने न पाया। इसके तीसरे अभिनयमें विजयनगरके महाराज दर्शक थे। इस समय यूरोपसे नये आये हुए घेरेश पुशार्ड नामक एक आदमी टाउनहालमें अपने वाद्यकौशल-से लोगोंको मुग्ध कर रहे थे। सङ्गीतज्ञ यतीन्द्र और शौरीन्द्रमोहनके साथ उनका परिचय हुआ। विद्या-सुन्दरके तीसरे अभिनयमें पुशार्डने निमन्त्रित हो कर बेहला बजाया था। उस समयके वाद्ययन्त्र विक्रेता या बाजा बेचनेवाला "वार्किंप् ड्रंस" कम्पनीके अध्यक्ष रिजूलेने इस चतुर्थ अभिनयमें पुशार्डके बाजेके साथ पियानो बजाया था।

इन अभिनयोंमें प्रहसन भी होते थे। पहले अभिनयमें 'येमन कर्म्म तेमनि फल' नामक प्रहसन हुआ। १३वीं जनवरीके बङ्गालीमें उस समयके सम्पादक गिरिशचन्द्र घोषने इस अभिनयकी बड़ी प्रशंसा की थी।

इस 'विद्यासुन्दर'-के अभिनयके साथ बङ्गालके साधारण नाट्यशालाके अन्यतम प्रतिष्ठाता अर्द्धेन्दुशेखर मुस्तफी महाशयका कुछ सम्बन्ध था। इस अभिनयके समय अर्द्धेन्दु बाबू आत्मीयता सूत्रसे यतीन्द्र बाबूके घर रहा करते थे। यही उनका प्रथम अभिनय देखना था। उन्होंने यहीं रह कर ही अभिनयके सम्बन्धकी सारी बातोंकी जानकारी प्राप्त की। वे उस समय स्कूलमें पढ़ते थे। उस समय तक उनका नाटकसे कोई सम्बन्ध नहीं था।

यतीन्द्रमोहनके इस नाट्य सम्प्रदायके क्रमशः १ 'मालविकाग्नि मित्र', २ "विद्यासुन्दर", ३ "येमन कर्म्म तेमनि फल", ४ "बुझले कि ना" ५ मालती-माधव", ६ "उभय संकट" ७ चक्षुदान", ८ रुक्मिणी हरणो", ९ "रसाविष्कार पुस्तक" अभिनीत हुए थे और यह दल बहुत दिनों तक जीवित था। 'रुक्मिणी-हरण" के अभिनय तक यतीन्द्रमोहनका नाट्य सम्प्रदाय लगातार चला आया। इसके बाद एकाएक बंद हो गया। फिर सन् १८८१ ई०में रसाविष्कार पुस्तक नामक क्षुद्र रूपकाव्य-रचित और अभिनीत हुआ। इन सब अभिनयोंके साथ क्षेत्रमोहन गोस्वामीके प्रतिष्ठित एकतान वादन-सम्प्रदायने बाजा बजाया था। इस सम्प्रदायसे केवल देशी बाजे बजाते थे। बेहलाके सिवा अन्य कोई विदेशी बाजा न था। फु[illegible] कोई बाजा न था। यह "शौरीन्द्रमोहनका कनसार्ट" नामसे विख्यात था। "विद्यासुन्दर" नाटकके साथ प्रहसन खेलनेकी प्रथा प्रचलित हुई।

पथुरियाघाटेके यतीन्द्रमोहन ठाकुरके मकानमें चतुर्थ पुस्तक मालतीमाधव-नाटक सन् १८६९ ई०की १०वीं सितम्बर बृहस्पतिवारको अभिनीत हुआ। यह नाटक दस बार अभिनीत हुआ था। एक रातको केवल साहबोंको निमन्त्रण दे कर अभिनय दिखाया गया। उस दिन लार्ड लारेन्स उपस्थित थे। मालतीमाधवके गाने बनवारीलाल राय नामक एक व्यक्तिने सुर दिया था।

इस समय शोभाबाजारकी थियेट्रिकल सोसाइटी ने "कृष्णकुमारी" नाटकका रिहर्सल चला रहा था। सन् १८६८ ई०की २४वीं जुलाई सोमवारको इसका प्रथम अभिनय हुआ। यह अभिनय केवल अपने बन्धु-बान्धवोंको दिखानेके लिये ही किया गया था। सन् १८६७ ई० को १२वीं फरवरी शनिवारको इसका प्रकाश्यरूपसे अभिनय हुआ।* उस अभिनयके समय इस नाट्य-समितिकी व्यवस्था अति सुन्दर थी। नीचे उसका पूरा विवरण दिया गया है। इसकी एक कार्यनिर्वाहिका समिति थी—

कालीप्रसन्न सिंह	(सभापति)
राजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय	उपसभापति।
कुमार सुरेन्द्रकृष्ण देव बहादुर	सदस्य।
कुमार उपेन्द्रकृष्ण देव बहादुर	"
चन्द्रकाली घोष	"
रूपलाल मित्र	"
वरदाकान्त मित्र	"
मणिमोहन सरकार	"
कुमार महेन्द्र कृष्ण देव बहादुर	कोषाध्यक्ष
" आनन्द " " "	सम्पादक
प्यारीमोहन दास (वैष्णव)	सहकारी सम्पादक।

सिवा इसके कितने ही कर्मचारी थे :—

कुमार उपेन्द्रकृष्ण देव बहादुर	रङ्गमञ्चके अध्यक्ष।
राजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय	"
कुमार उपेन्द्रकृष्ण देव बहादुर	शिक्षक।
राजेन्द्रनाथ बन्द्योपाध्याय	
प्यारीमोहन दास	
रूपलाल मित्र	छापखानेके सर्वप्रकारके कामकाजी।
कुमार अमरेन्द्रकृष्ण देव बहादुर	
वरदाकान्त मित्र	
प्यारीमोहन दास	

* इस प्रकाश्य नाटकके अभिनयमें ढोर बाजेके वादक दलने बाजा बजाया।

राजेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय	एकतान बाजेके दलके नेता।
कुमार सुरेन्द्रकृष्ण देव बहादुर	
वरदाकान्त मित्र	
कुमार सुरेन्द्रकृष्ण देव बहादुर	कमरेके तत्त्वावधायक।
„ उपेन्द्रकृष्ण „ „	
„ ब्रजेन्द्रकृष्ण „ „	
वरदाकान्त मित्र	साजघरके तत्त्वावधायक।
राजेन्द्रनाथ वन्द्योपाध्याय	
अतुलकृष्ण देव	
चन्द्रकाली घोष	अभ्यर्थना-कारक
रूपलाल मित्र	
वरदाकान्त मित्र	कर्मचारी-प्रधान।
कालीकमल लस्कर	
जीवनकृष्ण देव	
अतुलकृष्ण देव	
मणिमोहन सरकार	

प्रति मङ्गल, शुक्र और शनिवारको इनका रिहर्सल चलता था। सन् १८६७ ई०की ११ फरवरीको हिन्दू-पेट्रियटमें इस अभिनयका विस्तृत विवरण प्रकाशित हुआ। इस अभिनयमें प्रसिद्ध नाटककार गिरिश चन्द्र घोष उपस्थित थे, किन्तु नाट्य-सम्प्रदायभुक्त न थे।

पथरियाघाटेकी राजवाड़ीमें होनेवाले 'विद्यासुन्दर' अभिनयके बाद पटलडङ्गेके अरपुलिमे "अरपुली-नाट्य-समाज" स्थापित हुआ। यहां पहले "महाश्वेता" पीछे "शकुन्तला" और 'बूड़ो शालिकेर घाड़े रों" अभिनीत हुए। कुछ लोगोंका कहना है, कि ये दोनों नाटक छातूबाबूके मकानमें अभिनीत नाटकद्वयसे विभिन्न हैं और इस सम्प्रदायके किसी व्यक्ति द्वारा रचित हैं। सन् १२७३ ई०के वैशाख महीनेमें (सन् १८६६ ई०के अप्रिल महीनेमें) इस सम्प्रदायका पहला अभिनय हुआ। इसके बाद इस दलने निमाईचरण शीलकी "चन्द्रावली" नाटक और 'एराई आवार बड़ लोक" नामक प्रहसन खेले। प्राणीवृत्तान्तके रचयिता सातकौड़ी दत्त इस दलके सम्पादक थे।

जिस समय बागबाजारमें नगेन्द्र बाबूका यात्रा-दल खूब जोरोंसे चल रहा था, उस समय सिमला-शुंडा पाड़ेके शुंडियोंके मकानमें 'पद्मावतीका'-का अभिनय हुआ। बागबाजारके यात्रा-दलके नगेन्द्र बाबू आ कर यहां शिक्षा देते तथा स्वयं कञ्चुकीका साज सज कर अभिनय करते थे। पिछले समय नेशनल थियेटरके अन्यतम प्रतिष्ठाता नगेन्द्रनाथ बाबूका प्रथम यही अभिनय है। सन १८६६ ई०में इस दलका प्रथमाभिनय हुआ।

इस समय कलकत्तेमें नाट्याभिनयका एक प्रबल प्रवाह बह रहा था। प्रायः हरेक ग्राममें ही नाट्याभिनयकी चेष्टा हो रही थी। उनमें सब सम्प्रदायोंका विवरण संग्रह नहीं कर सके। इसी समय कलकत्तेके भवानीपुर और हवड़ेके शिवपुरमें भी नाट्याभिनयकी चेष्टा हो रही थी।

पथरियाघाटेके अभिनय होनेके समय जोड़ासाकूके द्वारकानाथ ठाकुरके मध्यम पुत्र गिरीन्द्रनाथ ठाकुरके मकानमें एक नाट्यसमाज स्थापित हुआ था। इसका नाम था—"जोड़ासांको नाट्य-समाज"। गिरीन्द्रनाथके दोनों पुत्र गणेन्द्रनाथ और गुणेन्द्रनाथ ठाकुर इसके पृष्ठपोषक थे। केशवचन्द्रके छोटे भाई कृष्णविहारी सेन और प्यारीचन्द मित्रके पुत्र हीरालाल मित्र और गुणेन्द्र बाबूके प्रस्ताव करने पर माइकलके लिखे "कृष्णकुमारी" नाटकके अभिनयका प्रस्ताव हुआ। रङ्गमञ्च और रिहर्सल जारी हुआ। पीछे गणेन्द्र बाबूके प्रस्ताव पर किसी समाज हितकर नाटकाभिनयकी कल्पना हुई। कुलीनकुलसर्वस्व, विधवा विवाह आदि नाटककी तरह नये किसी नाटकके लिये इन्होंने चेष्टा की। अन्तमें ईश्वरचन्द्र विद्यासागर महाशयके परामर्शसे २००) रुपया पुरस्कार देनेकी घोषणा कर बहु-विवाहके सम्बन्धमें नाटक लिखना स्थिर हुआ। उस समयके प्रधान नाटककार रामनारायण तर्करत्न महाशयने "नव नाटक" लिख कर इन लोगोंके सामने उपस्थित किया। सन् १२७३ फसलीके २३वीं वैशाखको एक प्रकाश्य सभामें उनको उक्त पुरस्कार दिया गया। प्यारीचन्द मित्र सभापति थे। इसके

बाद भातृद्वय गणेन्द्र और गुणेन्द्रने इसके अभिनय करनेका प्रस्ताव कमिटीमें उपस्थित किया। कमिटीमें गणेन्द्रनाथ ठाकुर, गुणेन्द्रनाथ ठाकुर, महर्षि देवेन्द्र नाथ ठाकुरके ज्येष्ठ पुत्र प्रसिद्ध साहित्यरथी द्विजेन्द्र नाथ ठाकुर, भ्रातानाथ ठाकुर, (द्वारकानाथ ठाकुरके ज्येष्ठ भ्राता राधानाथ ठाकुरके पौत्र) यदुनाथ प्रकाश गङ्गोपाध्याय और बालकमल मुखोपाध्याय सभासद थे। सन् १८६७ ई०की ५वीं जनवरीको इसका प्रथम अभिनय हुआ और १८६७ ई०की २३वीं फरवरीको इसका नवां अभिनय या अन्तिम अभिनय हुआ। अब तक होनेवाले सब अभिनयों की अपेक्षा यह अभिनय बहुत अच्छा हुआ। अर्द्धेन्दुशेखर मुस्तफी का कहना है कि इसी अभिनयको देख कर उनके अभिनय-सम्बन्धी सभी अभावों की पूर्ति हो गई। इस अभिनयकी सुख्याति कलकत्ते में सभी जगह प्रतिध्वनित हो उठी।

इसके बाद बड़तल्लेके जयनारायण मित्रके पुत्र पांच कौड़ी मित्रके उद्योगसे ३११ चितपुररोडके मकानमें "पद्मावती" अभिनयका अनुष्ठान हुआ। सन् १८६७ ई०की १४वीं सितम्बर शनिवारको इस मकानमें इसका प्रथम अभिनय हुआ।

बिहारी बाबू अभिनयकी शिक्षा देते थे। गवैया श्यामाप्रसाद और वादक नितांई चक्रवर्त्ती (रामाद् पैरमव) सङ्गीत शिक्षक थे। इनके ही एक अभिनयोंमें मालिक उपस्थित थे। बागबाजार निवासी प्रियचन्द्र बन्दोपाध्याय (ग्रा० मेशनल थियेटरमें "नीलदर्पण" नाट्याभिनयमें वादक बने थे) इस दलमें थे। किन्तु इन्होंने कोई पार्ट नहीं लिया था। पद्मावतीके अभिनेता प्रिय बाबू स्वतन्त्र व्यक्ति थे।

इसी समय जोड़ासाँकोमें "जोड़ासाँको अवैतनिक थियेटर" स्थापित हुआ था। कन्हाईलाल बन्दोपाध्याय नामक एक व्यक्ति इस थियेटरके प्रधान उद्योगी थे। इसमें "कृष्ण" नाटक अभिनीत हुआ। इस अभिनयमें पथ रिया घाटके ठाकुरवंशकी एक शाखा (श्यामलाल ठाकुर के दौहित्र) हेमेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय (महर्षि देवेन्द्र नाथके जिनाप जामाता) और "आपनार मुख आपनि देख"-के प्रणेता भोलानाथ मुखोपाध्याय उपस्थित थे। जोड़ासाँकोके कृष्णमोहन बन्दोपाध्यायके मकानमें (कन्हाई बाबुओंके मकानमें) इस समितिका अभिनय होता था। यह अभिनय देख कर भोलानाथ बाबूने हेमेन्द्र बाबूसे प्रस्ताव किया, कि यदि अभिनय करना ही है, तब इन सब 'यात्रा'के उपयोगी विषयोंका अभिनय करनेसे फल ही क्या? जिसमें देशाचारका सुधार हो, ऐसे सामाजिक विषयोंका इस पर परामर्श हुआ, कि हेमेन्द्र बाबू अभिनयका उद्योग करेंगे; भोला बाबू एक उपयुक्त नाटक लिखेंगे। इसी समयमें भोलानाथ बाबूने 'बुझले कि ना' एक प्रहसन लिखा। इसी समय पथुरियाघाटके ठाकुरवंशकी एक शाखा उपेन्द्रमोहन ठाकुरके पुत्र मनोमोहन ठाकुरने अपने मकानमें (१० पथु रियाघाट ष्ट्रीट) एक यात्राका दल संगठन किया। एक दिन मनोमोहन बाबूके बैठकमें भोलानाथ बाबू "किछु किछु बुझि" नामक एक प्रहसन लिख कर ले आये। इसका अभिनय करना स्थिर हुआ। कोयला हाटा या इस समयके रतनसरकार-गार्डेन ष्ट्रीटके वैद्य नाथ मल्लिकके किरायेदार मकानमें अभिनय करनेकी बात उठी। हमेन्द्र बाबू तथा अर्द्धेन्दु मुस्तफी पर दल-गठनका भार सौंपा गया। जोड़ासाँकोके कन्हाई बाबू सभेरता हुए। इनके मित्र बैठकखानियावासी मधु सूदन मुखोपाध्याय नामक "आयल पेण्टर" ने नाट्यशालाका चित्रणका भार ग्रहण किया। मनोमोहन बाबू हेमेन्द्र बाबू के सिवा रमानाथ ठाकुरके पौत्र शरदिन्द्रनाथ ठाकुर इसके पृष्ठपोषक थे। क्रमशः इस दलका आयोजन होने लगा। मुस्तफी महाशयके सरसङ्ग और अनुकरण पटुता ही उनकी शिक्षकताका अनुकूल हुए। सन् १८६७ ई०की ८वीं नवम्बर शनिवारको इसका प्रथमाभिनय हुआ। मुस्तफी महाशयके साथ उनके संगातिया यार सुप्रसिद्ध रङ्गमञ्चाध्यक्ष धर्मदास सुर इस दलमें सम्मिलित हुए। उन्होंने रङ्गमञ्च निर्माणका भार ग्रहण किया। उन्होंने इसमें स्त्री चरित्रका पार्ट किया था।

इसके पहिले तक अर्थात् अब तक जितने प्रहसन हुए थे। उन सबोंकी अपेक्षा यह अभिनय बहुत मनोरम

हुआ था। इस अभिनयमें अर्द्धेन्दु बाबूने तीन अन्यान्य विषयोंका पार्ट कर अच्छी कुशलता दिखलाई। विभिन्न स्वरोंमें विभिन्न हाव-भावसे अच्छी तरह अभिनय करनेमे उनकी निपुणता इसी समय पूर्ण विकशित तथा प्रदर्शित हुई थी। माइकेल मधुसूदन दत्त इसके एक अभिनयमें उपस्थित थे। मुस्तफी महाशय और धर्मदाससुरका यह प्रथम अभिनय था, किन्तु इसी अभिनयसे उनके जीवनकी गति फिर गई।

यहा बंगालके साधारण नाट्य समाजके प्रधान अभिनेता और प्रतिष्ठाताओंकी सूची इस जगह दी जाती है। इससे स्पष्ट विदित हो जायेगा, कि किसने कब पहले कौन-सा अभिनय किया—

नाम	समय	पुस्तक	भूमिका	स्थान
बिहारीलाल	१२६३	कुलीनकुल	स्त्रीचरित्र	चडकडांगेकी जयराम
चट्टोपाध्याय	फाल्गुन	सर्वस्व	,,	वसाककी गली
शरच्चन्द्र घोष	,,	शकुन्तला	,,	छातू बाबूका मकान
गिरिशचन्द्र	१२७१	नलदमयन्ती	ऋषि	बागबाजारके मदन-
घोष (मोटे)				मोहनका मकान
नगेन्द्रनाथ	१२७३	पद्मावती	कञ्चुकी	शुडीपाडा
बन्दोपाध्याय				
जीवनकृष्णसेन	१७७४ भादो	,,	कलि	बडतल्ला
अर्द्धेन्दुशेखर	१७ कार्तिक	किछु	दन्तवक्र	कयलाहट्टा
मुस्तफी	१२७४	किछु बुझि	मुरादआली	,,
,,		,,	चन्दनविलास	,,
धर्मदास सूर	,,	,,	चन्दनविलासी	,,

गिरिशचन्द्रघोष (प्रसिद्ध नाटककार), अमृतलाल वसु, राधामाधवकर, मोतीलालसुर, महेन्द्रलाल वसु आदि ख्यातनामा अभिनेताओंमें कोई इससे पहले किसी अभिनयमें सम्मिलित नहीं हुए हैं।

इस समय जयराम वसाकके मकानमें "मेलारे मोर बाप" नामक प्रहसन अभिनीत हुआ।

इस समय बहुबाजारमे भी एक नाट्यसमाज स्थापित हुआ था। इस दलने प्रसिद्ध नाटककार मनोमोहन वसुका "सतीनाटक" और "रामाभिषेक" नाटकका अभिनय किया।

बंगला नाटकका यह तीसरा एक युग है। इसके प्रथम युगमें "कुलीनसर्वस्व" और "शकुन्तला", दूसरे युगमें "पद्मावती" और तीसरे युगमें "रामाभिषेक" नाटकके अभिनयका प्रादुर्भाव हुआ था। उस समय रामाभिषेक नाटकके अभिनय कलकत्तेके दक्षिण विभागमें कई जगहोंमें हुए थे। और तो क्या, दक्षिणांशमें यही नाट्यामोदका एकमात्र अवलम्बन हो गया था। किसी रसज्ञ व्यक्ति इसीलिये इसका नाम वर्णपरिचय नाटक रख दिया था।

जो हो, बागबाजारकी 'रत्नावली'का दल टूट जाने पर नगेन्द्रनाथ बन्धोपाध्यायने अपने एक थियेटरका दल कायम करनेका संकल्प किया। अन्तमें गिरिश बाबूके परामर्शसे दीनबन्धु मित्रके नवप्रकाशित "सधवार एकादशी"का अभिनय करना स्थिर हुआ। नगेन्द्र बाबू भी बड़े विचित्र आदमी थे। उन्होंने पहले तो शिक्षाका भार अपने ऊपर लिया। किन्तु कार्य्यके समय यह भार गिरिश बाबूके ही कन्धे पर गया। दीनबन्धु बाबूके लिखे नाटकमें नर नटियोंका प्रवेश तथा उसकी प्रस्तावना भी नही थी। उस समयकी प्रथाके अवलम्बन पर ही गिरिश बाबूने इस अभावकी पूर्ति कर दी। फिर शिक्षा दी जाने लगी। इसके बाद शिक्षा प्रदानके कार्य्यमें अर्द्धेन्दु बाबू भी सम्मिलित हो गये। फिर इन दोनों महारथियोंने शिक्षा देनी आरम्भ की। सन् १२७५ फसलीके क्वार महीने या सन् १८६८ ई०के अक्तूबर महीनेमें पूजाके समय सप्तमी पूजाके दिन रातको मुखर्यीपाडेकी गोपालनियोगी गलीमें प्राणकृष्ण हालदारके मकानमें इस दलके पहले अभिनयका निमन्त्रण दिया गया। उस समय इस दलका नाम The Bagh-bazar Amateur Theatre रखा गया था। इसके बाद एक पूर्णिमाकी रातको गिरिश बाबूकी ससुरालमें इस अभिनयका आयोजन हुआ। इस अभिनयमें अर्द्धेन्दु बाबू, गिरिश बाबू, नगेन्द्र बाबू और माधवबाबूने विशेष सुख्याति लाभ की थी। अभिनयके बाद जगन्नाथदत्तके मकानमें इसका तीसरा अभिनय हुआ। गिरिश बाबू आ कर 'निमचांद'के अभिनयके लिये तैयार हुए। यथासमय अभिनय हो गया। सन् १८६६ ई०के फरवरी महीनेमें इस सम्प्रदायका चौथा अभिनय

सापबाजेके श्यामा राय रामप्रसाद मिश्र बहादुरके मकानमें हुआ। यह अभिनय विशेषरूपसे उल्लेखनीय हुआ था। इस दिन इसके रङ्गमञ्चका मुखपटके ऊपर लिखा गया था—"He holds the mirror up to nature" इस दिन दर्शकोंमें ग्रन्थकार दीनबन्धु बाबू उपस्थित थे। ये अभिनय देखा कर बहुत सन्तुष्ट हुए। उन्होंने कहा था—गिरिश! "लीलावती" नाटक मानो तुम्हारे लिये ही लिखा गया था।

गिरिशबाबूने एक कवितामें ही इसकी प्रस्तावना लिख दी थी। यह कविता रङ्गमञ्च पर पढ़ी गई थी। इसके बाद इस दलके और भी पाँच अभिनय हुए। छठा अन्तिम अभिनय हुआ—खिदिरपुरके नन्दलाल घोषके मकानमें दुर्गापूजाके समय। यह सन १८७१ ई०के अक्तूबर महीनेकी बात है।

अब इस शकुन्तलाका दल बागबाजारमें कार्य कर रहा था तब चड़कडांगेमें अयराम बसाकके मकानमें फिर एक थियेटर दल प्रतिष्ठित हुआ। यहां भोलानाथ के "मेजारे मोर बाप"का रिहर्सल चल रहा था। फिर यह दल उठ कर आहीरीटोलेमें चला आया। अतुलचन्द्र मुखोपाध्याय और पूर्णचन्द्र मुखोपाध्याय इस दलके पृष्ठपोषक थे। सन १८७० ई०के फरवरी महीनेमें मुखोपाध्यायोंके मकानमें इसका अभिनय हुआ। नगेन्द्र बाबू और राधामाधव बाबू इस अभिनयको देखने गये थे। यह देख कर उन्होंने इसका उत्तर देनेके लिये एक छोटा नाट्य समाजका संगठन किया। रमापतीका रिहर्सल चलने लगा। प्रियमाधव वसु मल्लिकने "मेजारे मोर बाप" का उत्तर-स्वरूप एक छोटा सा प्रहसन लिख दिया। इस रमापतीका अभिनय बागबाजारके राजवल्लभपाड़ेमें हुआ। राजा शौरीन्द्रमोहन ठाकुर (इस समय तक ये राजा नहीं हुए थे) दर्शकोंमें उपस्थित थे। प्रिय बाबूके प्रहसनमें भोलानाथ बाबूके प्रति श्लेषात्मक गाना था। भोलानाथ बाबू इसके उत्तरमें 'प्रभाकर' में भी उसका उत्तर देते। प्रिय बाबूकी कविता बड़ा सरस होता था।

सन् १२७७ फसलीके माघ पूर्णिमाके दिन बागबाजारके धर्मदासोंके कान्तिचन्द्र गङ्गोपाध्यायके मकानमें एकत्रित होके एक नाट्य-समाजमें लीलावतीका अभिनय किया था। "लीलावती" शेक्सपियरके "मर्चेन्ट आफ वेनिस"-के आधार पर लिखा गई थी। इस अभिनय के साथ साथ अर्द्धेन्दुबाबूके इस सम्प्रदायमें बाजा बजाया था। इस समय हाटखोलेके प्रसिद्ध महाजन मजेन्द्र कुमार साहा उर्फ बिशुसाहाका गद्दीके कर्मचारी गोविन्दनाथ गङ्गोपाध्याय नामक एक व्यक्तिके साथ नाट्य सम्प्रदायका परिचय हुआ। उन्होंने रिहर्सलका खर्च चलाना स्वीकार कर लिया। इससे अर्द्धेन्दुबाबू फिर एक थियेटरदलके संगठन करनेमें प्रवृत्त हुए।

पहले हरलाल मित्र स्ट्रीटमें भुवनचन्द्र हालदारके मकानमें बागबाजारके "अवैतनिक नाट्य सम्प्रदाय"-की ओरसे सधवार एकादशीका रिहर्सल चल रहा था। इस दलके प्रतिष्ठाता नगेन्द्र बाबू अर्द्धेन्दु बाबू और धर्मदास बाबू थे। इस बार जो दल बैठा, वह सुपरिचित नेशनेल थियेटरका मूल था। सन १२७७ फसलीके पौष महीने में या सन् १८७१ ई०के आरम्भमें यह दल बैठा। अर्द्धेन्दु बाबू शिक्षक हुए। लीलावतीका रिहर्सल चल रहा था।

गोविन्द बाबूकी सहायतासे केवल रिहर्सलका खर्च चलता था। उस रङ्गमञ्च या पोशाक परिच्छद आदि होनेकी आशा न थी। अतएव अर्द्धेन्दु बाबूने प्रस्ताव किया, कि टिकट बिक्रय कर टिकट लगा कर इस बार यह नाटक खेला जाये। टिकटसे जो रकम हाथ आयेगा उससे एक स्थायी रङ्गमञ्चकी प्रतिष्ठाका आयोजन किया जायेगा। यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ। अन्तमें सन् १८७१ ई०के अप्रिल महीनेमें नगेन्द्र बाबूके मकानमें एक दिन परीक्षाके लिए Dress rehearsal हुआ। इस अभिनयमें धर्मदास बाबूने "ललित"का पार्ट लिया था। अभिनयका सुख्याति होने पर गिरिश बाबू भी आ कर सम्मिलित हुए। किन्तु टिकट बेच कर नाटक खेलनेके प्रस्ताव पर वह किसी तरह राजी नहीं हुए। अन्तमें उन्होंने कहा, कि माइकेलके प्रस्तावके अनुसार पहले पाँच हजार रुपये एकत्र करनेका उपाय करो। "किछु किछु बुझि" के अभिनयके समय माइकेल अर्द्धेन्दु बाबूसे कहा था, इस तरह व्यक्तिविशेषके अर्थानुकूल्य पर निर्भर कर कोई थियेटर चल नहीं सकता।

जो हो, इसके बाद चन्दाका रजिष्टर तय्यार हुआ। इस समय धर्मदास बाबू और कार्त्तिकचंद्र पाल अनवरत परिश्रम करने लगे। राजेन्द्र बाबूके मकानमें आश्रय लेना और टिकट बेचनेकी आशा इन्हें त्याग करनी पड़ी। नगेन्द्र बाबूके मकानमें रिहर्सल होने लगा। यह सुन कर कि टिकट बेंचा नहीं जायेगा, गिरिश बाबू फिर आ कर मिल गये। सन् १२७८ फसलीके वर्षाकालमें राजेन्द्रनाथ पालके मकानमें नये मञ्च पर "लीलावती"का प्रथम अभिनय हुआ। इसी समय हिन्दू-मेलेके नवगोपाल मित्र इनके साथ मिल गये। इन्हींके प्रस्तावसे इस दलका नाम The Calcutta National Theatre हुआ। अंतमें मोती बाबूके प्रस्तावसे Calcutta बाद दे कर केवल The National Theatre नाम रखा गया। प्रथम दिनसे ही इस नाम पर थियेटर होने लगा।

राजेंद्र बाबूके मकानमें प्रति शनिवारको ४५ अभिनय हुए। इसके बाद बंदूक-विक्रेता मथुरामोहन विश्वासके (इस समयकी प्रसिद्ध D Biswas & Co) घर पूजाके समय अभिनय हुआ। राजेंद्र बाबूके मकानमें होनेवाला अभिनयमें दीनबंधु बाबू और डाक्टर महेन्द्रलाल सरकार आदि दर्शक उपस्थित होते थे।

उक्त विश्वास महाशयके मकानमें होनेवाला अभिनय ही अंतिम अवैतनिक अभिनय हुआ। इस समय भी फिर अर्थसंकट उपस्थित हुआ। राजेंद्र बाबूके आगनमें वर्षासे ष्टेज भींग कर खराब होने लगा। अर्द्धेन्दु बाबूने फिर टिकट बेंचनेका प्रस्ताव उठाया। गिरिश बाबूने इस प्रस्ताव पर फिर मुंह फेर लिया। उन्होंने इस बार कहा, यदि छातूबाबूके मैदानमें प्याभिलियन (नाट्यशाला) कायम किया जाये, तो मैं राजी हूं। उस समयके लिये असम्भव प्रस्ताव सुन कर सभी दंग हो गये।

चन्दा वसूलीके समय रसिकमोहन नियोगीके मध्यम पौत्र भुवनमोहन नियोगीने इस दलको कुछ चन्दा दिया। फिर, इस दलकी दुर्दशा देख वे इसका साहाय्य करने पर स्वतः प्रवृत्त हुए। भुवन बाबू उस समय किशोर अवस्थाके थे। फिर भी, उनके ही भरोसे पर अर्द्धेन्दु बाबू फिर दल तय्यार करने लगे। इसके स्थानके लिये भुवन बाबूने अन्नपूर्णाघाटके अपने बारहदरीवाले बैठकको दे दिया। सन् १८७२ ई०के आरम्भमें इस मकानमें यह संगठित हुआ।

इस तरह आमोद-प्रमोदके उत्साहमें नेशनल थियेटर अन्नपूर्णाघाट पर भुवन बाबूके मकानमें बड़े परिश्रम और अध्यवसायसे "नीलदर्पण"-का रिहर्सल देने लगा। सन् १८७२ ई०के नवम्बर महीनेमें जगद्धात्री-पूजाके दिन नगेन्द्र बाबूके मकानमें इसका ड्रेस रिहर्सल हुआ। इस रिहर्सलके कुछ पहले सुप्रसिद्ध नाटककार अमृतलाल वसु इस दलमें सम्मिलित हुए। वे उससे पहले श्रीकाशीधाममें होमियोपैथिक डाक्टरी करते थे। इस बार कलकत्ते आने पर अर्द्धेन्दु बाबूके आग्रहसे वह इस दलमें आ मिले। अमृत बाबूके पहले यदुनाथ भट्टाचार्यने सैरिन्ध्रीका पार्ट लिया था। अमृत बाबूने भी वही पार्ट लिया। नवीनमाधवकी मृत्युशय्याके दृश्यमें सैरन्ध्रीको जो रोना धोना पड़ता था, अमृत बाबू उसे सहज ही आयत्त कर न सके। अन्तमें अमृत बाबू अपने मकानके निकटके एक खण्डहर मकानमें प्रत्येक दिन दोपहरको 'रोना' सीखनेके लिये अभ्यास करने जाया करते थे, अर्द्धेन्दु बाबू वहां जा कर 'रोना' सिखाते थे। दोनों अपने गले मिला मिला कर रोनेका अभ्यास करते थे। आठ दश दिन इसी तरह कठोर साधनासे अमृत बाबूने 'रोना-धोना' आयत्त करा लिया था। उनके इस अभ्यासकी बात टोल-पड़ोसकी स्त्रियां जानती न थीं। इससे यह अफवाह फैल गई, कि इस खण्डहरमें रोज दोपहरको भूत रोता है। इससे सहज ही समझमें आता है, कि उन्होंने इस अभिनयको सफल करनेके लिये कितना परिश्रम किया था। सन् १३०७ फसलीकी २२वीं अगहनको अर्द्धेन्दु बाबूने बंगला थियेटरके इतिहासके सम्बंधमें जो भाषण दिया था, उसमें उन्होंने इस तरहकी कई घटनाओंका उल्लेख किया था। फलतः जब तक अभिनेताके प्रत्येक शब्दका उच्चारण और भावभङ्गी ठीक नहीं हो जाये, तब तक वे नहीं छोड़ते थे।

नगेन्द्र बाबूके घर पर रिहर्सल हो जानेके बाद अभिनयकी बड़ी प्रशंसा हुई। इसी उत्साहसे शीघ्रता-पूर्वक टिकट बेच कर अभिनय करनेका उद्योग होने लगा। अन्तमें पथरियाघाटेकी मोड़ पर मधुसूदन सान्यालका मकान ठीक हुआ। यह मकान जोड़ासाँकू के एक घड़ीवालेका मकान कहा जाता था। सान्यालों की गिरी अवस्था थी। इन लोगोंने तीस रुपये मासिक किराये पर उसे ले लिया था। इस मकानमें स्टेज बनने लगा। सन् १८७२ ई०की ७वीं दिसम्बर शनिवारको टिकट बेच कर यहां थियेटर होना स्थिर हुआ। नीलदर्पणका यह पहला अभिनय नहीं था। इसका पहला अभिनय सन् १८६१ ई०में अनेक प्रकारके उत्साहसे ढाकेमें हो चुका था। जो हो, पहली रातको ४००) रुपयेका टिकट बिक्री होनेसे नेशनल थियेटरका उत्साह बढ़ गया। इसके बाद इंगलिशमैनके छापखाने (जोन्स कम्पनीके छापखानेसे) तदनुसार अंगरेजी प्लेकार्ड छपाया गया था। १०वीं अगहन शनिवारको नीलदर्पणका अभिनय हुआ। बिक्री बढ़ गई। दूसरे सप्ताह अर्थात् ७वीं पौष शनिवारको इस दलने "जमाई बारीक" का अभिनय किया। दो रातके उत्साहसे इन लोगोंको नया अभिनय करनेका साहस हो गया। अर्द्धेन्दु बाबूके प्रस्तावानुसार "जामाई बारीक" ही लिया गया। नीलदर्पणके अभिनयमें दर्शक-मण्डली रो उठती थी। 'जमाई बारीक'-के तमाशेमें दर्शक आनन्दमें विभोर हो कर हँसने लगते थे फिर करुणा रससे आर्द्र भी हो जाते थे। बुधवारके रातसे शनिवारके प्रातःकाल तक हर रोज तीन बार रिहर्सल कर 'जामाई बारीक' खेला गया था। किन्तु "नीलदर्पण"-का रिहर्सल एक वर्ष तक हुआ था। ५वीं रातको "नवीन तपस्विनी" नाटक खेला गया। यह भी चार दिनके रिहर्सलके बाद खेला गया था। बुधवारको इस पुस्तककी १२ प्रतियां मंगाई गई और अभिनेताओंमें बांट दी गई। फल यह हुआ, कि अभिनेताओंने अपने अपने पार्ट याद कर लिये और शनिवारको यह नाटक खेला गया। इस तरह नेशनल थियेटरके इस मञ्च पर एक एक करके दीनबन्धु बाबूका "नीलदर्पण", "जामाई बारीक", "नवीन-तपस्विनी", "बिये-पागला बुड़ो" आदि नाटक अभिनीत हुए थे। इसके बाद माइकेलका 'कृष्णकुमारी' नाटक अभिनीत हुआ। इसी समय गिरिश बाबूने फिर साथ दिया था। उन्होंने भीमसिंहका पार्ट किया था। नाटोरके राजा चन्द्रनाथ इस समय कलकत्तेमें ही थे। वे प्रति दिन नाटक देखने आया करते थे। वे कई पोशाक और कई तलवारें तथा एक मशहरी दिया था। अर्द्धेन्दु बाबू, गिरिश बाबू, महेन्द्र बाबू, अमृत बाबू आदि प्रधान प्रधान अभिनेताओंने किसी किसी विषय पर अपना अपना वक्तव्य स्थिर कर लेते थे। इसी तरह "चैरिटेबुल डिस्पेन्सरी" 'मार्डेल स्कूल", कमल साहबके "सबडिपुटी एक्जामिनेशन" "पबलिक सबस्क्रप्शन लिस्ट", 'मीन कम आफ ए मारचेट थियेटर", "बिलायती बाबू", "मुस्तफी साहबका पक्का तमाशा", "भारते यवन", "परीस्थान" इत्यादि विषयोंका अभिनय हुआ था। इन सबोंमें अर्द्धेन्दु बाबू और अमृत बाबूको सर्वापेक्षा अधिक परिश्रम करना पड़ता है। इस समय राजा चन्द्रनाथकी तरह और W W Hunter नामक साहब इसके हितैषी बन गये थे। वे प्रति रातको अनेक दर्शक बटोर लाते थे। एक मंगलवारको उस समयके बड़े लाट भी तमाशा देखनेके लिये आये थे। उन्होंने पहले कोई सूचना न दे कर थियेटरके दरवाजे पर एकाएक आ कर उपस्थित हो गये। जब फाटक पर उनकी गाड़ी आ कर लगी, तब लोगोंको मालूम हुआ। इस समय तत्कालीन सम्पादक मण्डलने भी विशेष रूपसे हितैषिता दिखाई थी। वे आत्मीयता दिखाते थे सही, किन्तु त्रुटियोंके दिखानेमें जरा भी कोई कसर नहीं रखते थे। वे निरपेक्ष हो कर अभिनयकी समालोचना करते थे। इस समय अमृत बाबूको सबके अनुरोधसे मैनेजर या अध्यक्षका काम करना पड़ा था। सन् १८७३ ई०में यथोक्त कारण नेशनल थियेटरने काम बन्द कर दिया। बन्द होनेसे कुछ दिन पहले गिरिश बाबू आ कर सम्मिलित हुए थे। जिस दिन थियेटरका अन्तिम अभिनय हुआ था, उस दिन गिरिश बाबूके रचित गानोंको गा कर इस थियेटरने अवसर ग्रहण किया।

सान्यालोंके घरमें नेशनल थियेटरका अभिनय देख

कर आशुतोष देवके (छातू बाबूके) दौहित्र शरत्चन्द्र घोष महाशय साधारण थियेटर करने पर प्रलुब्ध हुए। छातू बाबूके मकानमें ही इसका रिहर्सल होने लगा। अनेक मान्य और सम्भ्रान्त व्यक्ति इसके हितैषी और परामर्शदाता थे—'माइकेल मधुसूदन दत्त, उमेशचन्द्र दत्त (O C Dutta Esqr) पण्डित सत्यव्रत सामाश्रमी आदि।" अभिनेताओंमें शरत् चन्द्र घोष, बिहारीलाल चट्टोपाध्याय, गिरिशचन्द्र घोष (मोटे), देवेन्द्रनाथ मित्र, वरकृष्ण वन्द्योपाध्याय, क्षेत्रमोहन घोष, अक्षयचन्द्र मजुमदार, महेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय, अखिलचंद्र मुखोपाध्याय आदि थे। बिहारीलाल चट्टोपाध्याय और शरच्चन्द्र घोष ही इसके प्रधान उद्योगकर्त्ता थे। हाटखोलेके महाजनोंमें कई इसके पृष्ठपोषक बन गये थे। छातू बाबूके मकानके सामने मैदानमें ४०) किराये पर जमीन ले कर ग्रपट्रैल-के मकानमें इसके लिये नाट्यशाला स्थापित की गई। इसका नाम हुआ "बङ्गाल-थियेटर"। सन १८७३ ई०-के अगस्त महीनेमें बङ्गाल थियेटरका पहला अभिनय हुआ। शर्मिष्ठा ही इस अभिनयका नाटक था। प्यारी-मोहन राय इसके व्यवस्थापक थे। शर्मिष्ठाके अभिनयमें इस दलको सफलता न मिली। अन्तमें माइकेलके "मायाकानन" और "विष कि धनुर्गुण" नामक दो पुस्तकोंका सत्व-खरीद लिया गया। शर्मिष्ठाके अभि-नयके समय माइकेल जीवित न थे। नये नाटकोंके सत्व इसके पहले ही खरीदा गया था। नया थियेटर होने पर भी बङ्गाल थियेटरमें माइकलकी मृत्युके बाद एक दिन उनके नामसे "साहाय्य रजनीकी" व्यवस्था की गई थी। उमेश बाबू, पण्डित सत्यव्रत और माइकेल-के परामर्शसे बङ्गाल थियेटरमें स्त्रियोंके चरित्रका वेश्या ही पार्ट किया करती थी। छातू बाबूके मकानमें दीवान रामचन्द्र मुखोपाध्यायके यात्रादलमें स्त्री अभि-नेत्री देख कर शरत् बाबू इस विषयमें बड़े साहसी हुए थे। पहले केवल चार स्त्रियां ही लाई गई थीं। इन चारोंके सिवा यदि आवश्यकता होती थी, तब पुरुष भी स्त्री-चरित्रका पार्ट कर लिया करते थे। शर्मिष्ठाकी तरह "मायाकाननमें" भी बङ्गाल थियेटर सफलता प्राप्त नहीं कर सका। अखिल बाबू मायाकाननके प्रकाशक हुए थे। इस समय पलीकेशी-महन्त विभ्राटके कारण देशमें बड़ी क्रान्ति मची थी। बङ्गाल थियेटरने इस क्रान्तिमें ही "मोहान्तेर एई कि काज" नामक एक नाटकका अभिनय किया। इस अभिनयमें ही इस-की यथेष्ट प्रतिपत्ति हुई। इसके बाद बिहारीलाल चट्टोपाध्यायने बङ्किमचन्द्रकी दुर्गेशनन्दिनीको प्टेज पर खेलने योग्य बना दिया। दुर्गेशनन्दिनीके अभिनयमें बङ्गाल थियेटरका यश-सौरभ विस्तृत हो गया।

इसके बाद सन् १८७८ ई०के फरवरी महीनेमें बङ्गाल थियेटरमें "रत्नावली" और "ए राई आवार बङ्गाली साहब" प्रहसन अभिनीत हुआ। इस दिन बहुबाजार-के एकतान वादन-सम्प्रदायने बाजा बजाया था। इसके बाद १४वीं मार्चको "विद्यासुन्दर" और "येमन कर्म्म तेमनि फल" अभिनीत हुए थे। महाराज यतीन्द्रमोहन ठाकुर, पन्नालाल शील, छक्कनलाल राय, आदि इस दिन उपस्थित थे। इस दिन उक्त महाराजके मकानके अभिनेतृ सम्प्रदायके दो एक अभिनेता अवैतनिकरूपसे इस अभिनयमें सम्मिलित हुए थे।

नेशनल थियेटर टूट जानेके बाद इसके दो दल हो गये। एक दलमें धर्मदास बाबू आदि और दूसरे दलमें अर्द्धेन्दु बाबू आदि थे।

धर्मदास बाबूने २६वीं मार्चको टाउनहालमें ष्टेज कायम कर नेशनल थियेटरके नामसे "देशी अस्पताल साहाय्य रजनी' कह "नीलदर्पण' नाटकके अभिनय करनेका विज्ञापन प्रकाशित कराया। इसी समयसे गिरिश बाबूने भी रीत्यनुसार साधारण नाट्यशालामें आ मिले। धर्मदास बाबूके दलमें गिरिश बाबूने उड साहबका पार्ट लिया था। विज्ञापनमें लिखा गया था—"The National Theatre will re-open for the benefit of the native Hospital at the Town Hall" ४, २, १, तीन तरहके मूल्यके टिकट बिके थे। इस अभि-नयके उपलक्षमें इन्होंने ५००) रुपया उक्त अस्पतालको दान किया। ५वीं अप्रिलको इन्होंने दूसरा अभिनय किया। इस दिनके विज्ञापनमें लिखा था—For the benefit of the charitable section of the In-

dian Reform Association इस दिन सपरिवार पधारे थे और "भारतमाता" का अभिनय हुआ था।

टाउनहालमें धर्मदास बाबूके दलको थियेटर करते देख अर्द्धेन्दु बाबूके दलने भी लिण्डसेस्ट्रीटके अपेरा हाउस किराये पर ले कर 'हिन्दू नेशनल थियेटर' के नामसे अभिनय किया था। ५वीं अप्रिलको इसका अभिनय आरम्भ हुआ। माइकेलके "शर्मिष्ठा" नाटकका अभिनय हुआ। साथ-साथ "माडर्न स्कूल" "पिकाचता बाबू" "उपाधि वितरण" और मुस्तफी साहबका पक्का तमाशा अभिनीत तथा व्यायामवीर मल्लिक बाबूकी क्रीड़ा भी दिखलाई गई थी।

अर्द्धेन्दुबाबूके दलने अपेरा हाउसमें दो बार अभिनय कर ढाकाके लिए प्रस्थान किया। धर्मदास बाबूका दल भी १ली मईको शोभाबाजार नाट्यमन्दिरमें कपाल कुण्डलाका अभिनय कर ढाका चला गया। ढाकेमें भी इस समय पूर्वबङ्ग-रङ्गभूमि नामसे एक नाट्यशाला स्थापित थी। अर्द्धेन्दु बाबूके दलने इसी नाट्यशालामें अभिनय करना आरम्भ किया।

कुछ दिनोंके बाद दोनों दल कलकत्ते लौट आये, किन्तु इन दोनोंका मिलन नहीं हुआ। इसके बाद दीघा, पतियाके कुमार (बादमें राजा) प्रमथनाथ रायके अन्नप्राशनके उपलक्ष्यमें दीघापति या आमिके अवसर पर दोनों दल एकत्र हुए। दोनों दलने वहां चार रात तक अभिनय किया, पीछे ये बहरामपुर चले गये।

इस समय बङ्गाल थियेटरमें "महम्मद एड कि काश" अभिनीत हो रहा था। एक दिन धर्मदास बाबू और भुवनबाबू दोनों यह तमाशा देखने गये। वहांमें इन दोनों को नगेन्द्र बाबू भी मिले। उस दिन इस रङ्गालयमें इतनी भीड़ हो गई थी, कि तिल धरनेको जगह न थी। ४) टिकटके बाद रुपये देने पर भी इन लोगोंको टिकट नहीं मिला। इस विभ्रेको देख कर भुवन बाबू उत्तेजित हो उठे। बङ्गाल थियेटरके सामने ही खड़े हो कर तीनों ने परामर्श किया, कि एक नाट्यशाला हम लोगोंको भी थामना होगा। भुवन बाबूने नाटाभिनय होने पर भी रुपया देना स्वीकार कर लिया। इसके बाद धर्मदासने एक ठौर उससे गुरुमें को छापनोंमें न्याशनल थियेटरके

नामसे "महम्मद एड कि काश" नाटक अभिनय किया।

सन् १८७३ ई०को २९वीं सितम्बर सोमवारको ग्रेट नेशनल थियेटरकी भित्ति स्थापित हुई। धर्मदास बाबूने उस समयके लुइस थियेटरके (इस समय रायल थियेटरके) भूखण्ड पर एक नाट्यशाला तय्यार कराई। नाट्य खुलनेके दिन यहां एक सभाका आयोजन हुआ था। कई गण्यमान्य सज्जन वहां उपस्थित थे।

इसके बाद सन् १८७३ ई०की ३१वीं दिसम्बर शनिवारको ग्रेट नेशनल थियेटर खोला गया। इसके कुछ दिन पहले ७वीं दिसम्बरको नेशनल थियेटरका प्रथम वार्षिक अधिवेशन हुआ। राजा कालीकृष्ण देव बहादुर इसके सभापति हुए थे। नवगोपाल मित्र, मनोमोहन वसु और अर्द्धेन्दु बाबूने व्याख्यान दिया था। उस समय भी दोनों दल जुदा जुदा थे। वार्षिकोत्सव एकत्र हुआ सही, किन्तु कार्यवलीमें स्वतंत्ररूपसे दोनोंका नामोल्लेख किया गया था। ग्रेट नेशनल थियेटरकी ओरसे संस्कृत श्लोकमें माङ्गलाचरण पाठ तथा नेशनल थियेटरकी ओरसे सङ्गीत द्वारा कार्यारम्भ हुआ था।

इसके बाद सन् १८७४ ई०में बङ्गाल थियेटरका अनुकरण कर स्त्री अभिनेत्री लेनेका प्रस्ताव लोहित हुआ। इससे असहाय हो कर अर्द्धेन्दु बाबू स्वतन्त्र दल कायम कर ढाका, बगुड़ा, कृष्णनगर आदि स्थानोंमें चले गये। किन्तु पीछे भुवन बाबूके अनुरोध करने पर दोनों दल मिल गये। उस समय वेश्या थियेटरमें अभिनेत्रीके काममें आने लगी थी। सन् १८७५ ई०को २१वीं सितम्बरको "सती कि कलङ्किनी"का खेल हुआ। उस समय मैनेजर धर्मदास बाबू, सेक्रेटरी नगेन्द्र बाबू तथा शिक्षक अर्द्धेन्दु बाबू थे।

कुछ दिनोंके बाद भुवन बाबूकी होनापरवाके कारण ग्रेट नेशनल थियेटर टूट गया। नाट्यशाला किराये पर दे दिया। पहले गिरिश बाबूने, पीछे उनके साथ द्वारकानाथ देवने, इसके बाद केदारनाथ चौधुरीने, इसके बाद महेन्द्रलाल वसुने, उसके बाद कृष्णधन बन्द्योपाध्यायने किराया वसूल किया था। इसके बाद यह बिका हो गया। प्रताप चांद जहुरीने इस

खरीद लिया। अब गिरिश बाबू मनेजर हुए। प्रताप चांदके जमानेमें गिरिश बाबूने नाटक लिखना आरम्भ किया। उनका पहला नाटक "रावणवध" है। इसके बाद नगेन्द्र बाबूके भाई किरणचन्द्र वन्द्योपाध्यायके द्वारा प्रलोभित हो कर गुरुमुख राय नामक एक व्यक्ति थियेटर करने पर प्रस्तुत हुआ। इसके बाद गिरिश बाबू, अमृत बाबू आदि कई व्यक्तियोंने सन् १८८३ ई०में 'ष्टार थियेटर' (६८ नं०, विडन् ष्ट्रीटमें) स्थापित किया। सन् १८८३ ई०की २३वीं जुलाईको ष्टार थियेटरका उद्घाटन-कार्य्य सम्पन्न हुआ। गिरिश बाबूके लिखे "दक्षयज्ञ" नाटकका पहला अभिनय यहां हुआ। गुरुमुख रायकी मृत्युके बाद ष्टार थियेटरके प्रधान अभिनेता अमृतलाल बसु और अमृतलाल मित्र कर्म्माध्यक्ष, हरिप्रसाद बसु और धर्मदास बाबूके भगिनेय दासूचरण नियोगी इन चार आदमियोंने ष्टार थियेटरकी नाट्यशाला खरीद ली। इसके बाद जब बाबू गोपाललाल शीलने एमारल्ड थियेटरकी प्रतिष्ठा की, तब उन लोगोंने ष्टार थियेटरके विडन् ष्ट्रीटकी नाट्यशाला बेच कर कर्नवालिस ष्ट्रीटमें वर्त्तमान नाट्यशालाकी प्रतिष्ठा की। ष्टारके वर्त्तमान नाट्यशालाकी जमीन और मकान दोनों थियेटरकी सम्पत्ति हैं। इस नये मकानसे ही अमृत बाबू इसकी अध्यक्षता कर रहे थे। 'नसीराम'-का यहां पहला अभिनय हुआ। ष्टारके कर्तृत्वसे कोई परिवर्त्तन नहीं हुआ। किन्तु गिरिश बाबूके पिछले समयमें नाना जगहोंमें आने-जानेके कारण ष्टार थियेटरके सुश्रृङ्खल कार्य्यमें बाधा पहुंची। ष्टार सदासे समान आदर पाता हुआ प्रतिपत्तिके लगातार कार्य्य करता हुआ अब तक विद्यमान है।

ष्टार थियेटर जब विडन् ष्ट्रीटमें था, तब नेशनल थियेटरकी नाट्यशालामें भुवन बाबूने और एक बार ग्रेट नेशनल थियेटरके नामसे अभिनय करनेकी व्यवस्था की थी। कुमारसम्भव और आनन्दमठका अभिनय कर यह चेष्टा फिर सदाके लिये स्थगित कर देनी पड़ी। ष्टार थियेटर-वलने पीछे खरीद कर इसे तोड़ डाला। नेशनल थियेटरका चिह्न इस तरह शून्य हो गया।

ग्रेट नशनल थियेटरके स्थापन करनेके समयसे बङ्गाल थियेटरमें कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं हुआ। किंतु ग्रेट नेशनलके नाना परिवर्त्तनोंके घात-प्रतिघातके फलसे बंगाल थियेटरको भी कुछ न कुछ परिवर्त्तन हुआ ही था। अन्तमें प्रताप जहुरीके हाथ नेशनल थियेटर कुछ दिनोंके लिये स्थिर होनेसे बंगाल थियेटरका भी काम सुचारुरूपसे चलता रहा। इस थियेटरोंके युगपरिवर्त्तनका समय था। अच्छे अच्छे नाटकोंके अभाव होनेके कारण नाटकोंके अध्यक्षोंने नया नया नाटक लिखवाना आरम्भ किया। नेशनलमें गिरिश बाबूको और बंगालमें बिहारी बाबूको कलम पकड़नी पड़ी थी। दोनोंका ही पहला नाटक 'रावणवध' है। इस समयसे अभिनेताओंमें साहित्यने प्रवेश किया। बंगाल थियेटरमें चाहे जितने परिवर्त्तन हुए हों, किन्तु बिहारी बाबूके कर्तृत्वके कारण बंगालमें विशेष कोई विश्रृङ्खला न होने पाई। अंतमें सन् १३०८ फसलीमें बिहारी बाबूकी मृत्यु हो गई। साथ ही बंगाल थियेटर भी लुप्त हो गया। बीचमें युवराज अलवर्ट जब कलकत्ते आये थे, तब उनकी अभ्यर्थनाके लिये होनेवाले उत्सवमें बंगाल थियेटरने अभिनय किया था। उस समयसे बंगाल थियेटर "रायल" यह विशेषणविशिष्ट होनेका अधिकार पाया। अंत तक बंगाल थियेटरका यही नाम था।

जुबिलीके वर्षमें बाबू गोपाललाल शीलके नाट्यशाला स्थापित करनेकी इच्छा प्रकट करने पर अतुलचन्द्र मित्र और अर्द्धेन्दुशेखर मुस्तफीके यत्नसे एक दल गठित हुआ। अतुल बाबूके लिखे "भीष्मकी शरशय्या" नाटकका रिहर्सल जारी हुआ। अन्तमें विडनष्ट्रीटके ष्टार थियेटरका मकान और जमीन खरीद लेने पर केदारनाथ चौधुरी इसके अध्यक्ष हुए और उनका रचा "पाण्डवनिर्वासन" अभिनीत हुआ। थियेटरका यह भी एक युग था। केवल गिरिश बाबू और अमृत बाबूको छोड़ कर अन्यान्य सभी पुराने अभिनेताओंको अर्द्धेन्दु बाबूने अपने दलमें मिला लिया था। इस थियेटरका खर्च जैसा हुआ था, वैसा ही अभिनय भी हुआ। किन्तु गोपाल बाबूकी बुद्धिके दोषसे सारा नष्ट हो गया। समयके चक्रमें पड़ कर गोपाल बाबू छः सप्ताहके बाद ही केदार बाबूको

त्याग कर गिरिश बाबूके हाथ अध्यक्षता समर्पण कर दी। गिरिश बाबूने आते ही केदार बाबूकी पुस्तकको बन्द करा कर अपनी लिखी "पूर्णचन्द्र" पुस्तकका अभिनय कराया था। पीछे धीरे धीरे कई विश्रृङ्खलताओंके होते रहनेसे एमरेल्ड थियेटर ध्वंस हो गया। अन्तमें ग्रेट नेशनलकी तरह यह भी किराये पर दे दिया गया। पहले हरिभूषण भट्टाचार्य, मोतीलाल सुर, ब्रजनाथ दास और महेन्द्रलाल वसुने किराया वसूल किया। इसके बाद महेन्द्रलाल वसु और अतुलकृष्ण मित्रने, इसके बाद महेन्द्रलाल वसुने अकेले ही, इसके बाद अर्द्धेन्दु बाबू, अतुलकृष्ण मित्र, मोतीलाल सुर और निमाइचरण वसुने, फिर बनारसी दासने किराया वसूल किया था। पीछे अमरेन्द्रनाथ दत्तने इस नाट्यशालाको किराये पर ले कर क्लासिक थियेटर नामसे एक सम्प्रदाय गठन कर योग्यताके साथ अभिनय किया।

एमारेल्ड थियेटरके टूट जाने पर गिरिश बाबूके प्रयत्नसे प्रसन्नकुमार ठाकुरके दौहित्र नागेन्द्रभूषण मुखोपाध्यायने नेशनल थियेटरकी जमीनमें सन् १८९० ई०में मिनार्भा थियेटर नामक नयी नाट्यशाला स्थापित की। गिरिश बाबूकी "मैकबेथ" तथा "मुकुलमुञ्जरा" नामकी पुस्तकका यहाँ प्रथम अभिनय हुआ। अर्द्धेन्दु बाबू यहाँके नाट्य-शिक्षक और देवकण्ठ बागची संगीताध्यापक थे। मिनार्भा थियेटर तीन वर्षमें गायब हो गया। इस तीन वर्षकी अवधिको गिरिश बाबूने कभी मिनार्भा, कभी स्टारमें रह कर दिन बिताया। मनोमोहन पाण्डेने मिनार्भाको चलाया था। पीछे निलामके हाथमें मिनार्भा आ गया। इसके बाद अग्निकाण्डसे मिनार्भा भस्मसात् हो गया। फिर अब नया मिनार्भा बना है।

जब एमरेल्ड ध्वंस हो गया, तब राजकृष्ण रायने मछुआबाजार स्ट्रीटमें "बीणारङ्गभूमि" नामक नाट्यशाला स्थापन कर बालक अभिनेता द्वारा स्त्रियोंका पार्ट करा व्यवसाय करना आरम्भ किया। किन्तु वे सफल मनोरथ नहीं हुए। अन्तमें चार पैसेका टिकट बेच कर भी वे गण्यमान्य नहीं हो सके। किसी तरह भी थियेटर टिक न सका। राजकृष्ण बाबू कर्जदार हो गये। अब उनको बाध्य हो कर अपना प्यारा बीणाको बेच देना पड़ा।

वहाँ नीलमाधव चक्रवर्तीने (नेशनल थियेटरके अभिनेता) "सिटि थियेटर" स्थापन किया। यह भी अधिक दिनों तक चल न सका। अन्तमें यहाँ एक पारसीने पहले उर्दू नाटक खेले, पीछे हिन्दी उर्दू दोनों नाटक बड़ी सफलतासे खेल रहे हैं।

कलकत्तेमें हिन्दी और उर्दू नाटकोंकी उत्पत्ति यहींसे शुरू होती है। कलकत्ते १८७५ धर्मतल्लेमें जे० एफ० मदन महाशयने कोरिन्थियन थियेटरको खोल कर बहुतेरे सुन्दर नाटकोंको प्रकाश कर कलकत्तेकी हिन्दी और उर्दू भाषा-भाषी जनताका मनोरञ्जन किया। कलकत्तेमें नाटकोंका इतना आदर देख बम्बईकी पारसी एल्फिंस्टन कम्पनीने हरिसनरोडमें "अल्फ्रेड" रङ्गमञ्च खोला। 'बटाऊ' साहब इसके मालिक थे। पञ्जाबी पण्डित नारायणप्रसाद बेताब महाशयने "रामायण", "महाभारत" तथा "बिल्वमङ्गल" आदि कई नाटकोंकी रचना की। समयके अनुसार इनके लिखे नाटकोंमें भी उर्दूके विशेष शब्द रहते थे। कुछ ही दिनोंमें इस कम्पनीने बड़ा नाम कमा लिया। धन भी प्राप्त हुआ। किन्तु मालिक मिस्टर बटाऊके परलोक-गमन करने पर इस कम्पनीमें गृह विवाद आरम्भ हुआ। फल यह हुआ, कि इस कम्पनीकी अवस्था शोचनीय हो गयी। अन्तमें इस कम्पनीने मदन साहबके हाथ इसे बेच दिया। उधर कोरिन्थियनमें आगा हश्र साहबकी जोशीली लेखनी द्वारा लिखे नाटकोंके अभिनय हो रहे थे। सुशिक्षित बाल-बालिकोंसे रङ्गमञ्च खिल उठता था। दर्शकोंकी भी भरमार रहती थी। किन्तु इन नाटकोंमें उर्दू मिश्रित शब्द रहनेसे मुसलमान दर्शक ही अधिक उपस्थित होते थे। इसके बाद पण्डित तुलसीदत्त शैदा कोरिन्थियनमें पधारे। इन्होंने भी कई नाटक लिखे। किन्तु आगा हश्रकी तरह उनके नाटकोंमें भी उर्दूके शब्दोंकी कमी न थी। इस समय हिन्दी भाषा भाषी जनता विशुद्ध हिन्दीके नाटक रङ्गमञ्च पर देखना चाहती थी। नाट्यशालाके अध्यक्ष प्रवीण जे० एफ० मदन साहबने इस अभावका अनुभव किया। इसकी चेष्टामें थे, कि कोई विशुद्ध हिन्दी नाटककार मिल जाय तो रख लूँ। उन्होंने "साहित्यसम्राट" श्रीयुक्त बाबू

हरेकृष्णजी जौहर हिन्दी वङ्गवासीके सम्पादकको अपने यहां रख लिया। यद्यपि जौहरजीने पहले कोई नाटक लिखा न था, किन्तु उनका झुकाव नाटककी ओर था, उन्होंने पहले परीक्षाके तौर पर सावित्री सत्यवान् नाटक लिखा। हिन्दीजगत्‌ने इसे अपनाया और जौहरजीका इससे साहस बढ़ा। उनके लिखे इस पहले नाटकने ही रात दिन उर्दू नाटकोंके खेलनेवाली इस कम्पनीके रङ्गमञ्चको हिन्दी शब्दोंके प्रवाहसे प्रवाहित कर दिया। अच्छे-अच्छे हिंदी भाषा-भाषी सज्जन उपस्थित होने लगे। इनका दूसरा नाटक "पतिभक्ति" है। इस नाटकमें जौहरजीने बड़ी मिहनत की थी। फल भी वैसा ही हुआ। इस नाटकको रच कर उन्होंने हिन्दी नाट्य जगत्‌में युगान्तर उपस्थित कर दिया। इस नाटकके अभिनयमें पात्रपात्रियोंके निकले छोटे छोटे और मधुर सरस वाक्यों पर जनताकी हर्षध्वनि होने लगती थी। क्लेप्स पर क्लेप्स होते थे। दुहरानेवाली तालियोंसे भी रङ्गमञ्च गूंज उठता था। इस तरह इस नाटकने जनताको मन्त्र मुग्ध कर दिया। इसको सफलीभूत बनानेमें कम्पनीने भी नये सीन सिनरियोंके तैयार करनेमें कोर कसर उठा नहीं रखी थी। जनताने इस नाटकको बहुत पसन्द किया, किंतु अधिकारियोंकी इस पर दृष्टि पड़ी और इसके कुछ अंशोंका परिवर्त्तन करा दिया गया। इसके हर तमाशेमें रङ्गालय भर जाता था, तिल धरनेको जगह नहीं रहती थी। कम्पनीके घर इस तमाशेसे एक लाखसे अधिक रुपये आये। उक्त कम्पनी-मालिक जे० एफ० मदन साहबने उक्त जौहरजीको धन तथा बहुमूल्य वस्तुयें पुरस्कारमें दी थीं। इसके बाद उनके लिखे कई नाटक निकले। थोड़े बहुत सभी नाटकोंमें सफलता मिली। इसी समयसे पारसी कम्पनियोंके रङ्गमञ्च पर विशुद्ध हिन्दीको स्थान मिला। इधर कलकत्तेके बड़े बाजारको हिन्दी भाषा-भाषी जनतामें भी नाटकका शौक बढ़ा है। हिंदी नाट्य परिषद्, बजरङ्ग परिषद् आदि संस्थाओंने भी कई नाटक खेले। इनके पास कोई बंधा स्टेज नहीं, किराये पर ले कर यह अभिनय किया करती है। उक्त कम्पनियों द्वारा जितने भी नाटक खेले गये, उनमें स्त्रीके पार्टको वेश्यायें तथा पुरुषके पार्टको वेतनभोगी पुरुष किया करते थे। आधुनिक अभिनेताओंमें मास्टर मोहन जनताको मन्त्रमुग्ध बना देनेमें बड़े पटु हैं। इन्हें जनता बहुत चाहती है। इस समय बङ्गला नाटकोंके साथ साथ हिंदी नाटकोंकी भरमार है। इस तरह बङ्गाल भरमें नाट्यका आदर बढ़ गया है।

बङ्गालके रङ्गालयोंका संक्षिप्त इतिहास यहां तक ही है। इन सब बङ्गाली नाट्यशालाओंसे बंगाला नाट्य-साहित्य परिपुष्ट हुआ है सही, किंतु आज भी नाट्यकलाकी उन्नति नहीं हुई है। समय और विषयोचित वेश भूषा परिपाट्य नहीं हुआ है। अंग्रेजी जिसको Make up कहते हैं, उसका कुछ नहीं हुआ। दृश्यपट आदि वस्तुओंकी उन्नति हुई है सही, किंतु अभी भी उनमें खूबी नहीं आई है। प्राकृतिक परिवर्त्तन दिखानेमें, दृश्ययोजनामें, कुशलता सम्पादन करनेमें, दृष्टिविभ्रम और विस्मय उत्पादन करनेके लिये नाना तरहके यन्त्रोंके माहात्म्य और वैज्ञानिक घटनाओंका अनुष्ठान हो रहा है सही, किंतु इङ्गलैण्डकी नाट्यशालाओंके मुकाबिले एतद्देशीय नाट्यशालायें बहुत ही पीछे हैं। सबसे अधिक त्रुटि तो अभिनयकलामें ही दिखाई देती है। यहांके नाट्यशालाओंमें दो रीतियोंसे अभिनय होते हैं। एक गिरिश बाबूका स्कूल अर्थात् रीति और दूसरी मुस्तफीके (अर्द्धेन्दु बाबूका) स्कूल या रीति कहते हैं। गिरिश बाबूकी रीतिसे पद्य अभिनय या गद्य-अभिनयमें अभिनेता मानो एक कविताका सुर पकड़ कर श्रोत सुखकर उपायसे अभिनय करते रहते हैं। इससे स्वरके उन्नयन और अवनयन शीघ्रतासे होता है। मुस्तफी रीतिसे गद्य या पद्य कथनोपकथन सुरसे अभिनीत होता है। कोई किसी तरहके नकली सुरका अवलम्बन कर इसकी आवृत्ति नहीं कर सकता। इससे आवृत्ति गुणसे श्रोत्रसुखकर बनानेकी ओर दृष्टि रखनेकी अपेक्षा वक्तव्य विषयके भावके प्रति अधिक लक्ष्य रखा जा सकता है। गिरिश बाबूकी रीति आज कल बहुत फैली हुई है। गिरिश बाबू बहुतेरे नाटकोंकी रचना कर प्रधान नाटककार और बङ्गीय गेरिक कहे जाते हैं। इधर अमृत बाबूने अभिनयोपयोगी रङ्गमञ्चोंकी सृष्टि कर प्रसिद्ध दीन-

कन्धुका स्थान ले लिया है। सिविल वार्‌की भांति सहज ही अभ्यस्त हो जाती हैं। इससे बहुत थोड़े लिखे पढ़े अभिनेताओंकी संख्या इस समय अधिक दिखाई देती है। पुरुष अभिनेताकी अपेक्षा अभिनय करनेवाली स्त्रियां अधिक उन्नति प्रकाशिनी दिखाई देती हैं।

मुसलमानोंके अशान्तिमय शासनमें नाट्य रंगका कुछ पता नहीं चलता। पता लगे कहांसे, लोग सदा सतर्क हो आत्मरक्षाकी ही धुनमें लगे रहते थे। मुसलमानोंके अवसानकालमें भारतीय जनताको जब कुछ फुरसत मिली तब लोगोंका ध्यान कुछ कुछ इधर आकृष्ट हुआ। फल यह हुआ, कि कितने ही नाटककार दिखाई देने लगे। मथुराके प्रसिद्ध सेठ लक्ष्मीचान्द दासके मुनीम श्रीनिवासदासजीने "तप्ता संवरण", "परीक्षागुरु", "रणधीरप्रेममोहिनी" आदि कई नाटक लिखे। किन्तु यह मालूम नहीं होता, कि इन नाटकोंमें स्टेज पर कोई आया था या नहीं। यह भी पता नहीं लगता, कि कब कहां अभिनीत हुआ था। आमेरके राजा पृथ्वीसिंहने भी शकुन्तला नाटक लिखा था। किन्तु स्टेज पर खेलनेका पता नहीं। प्रयागके पं॰ बालकृष्णजी भट्ट महाशय (सम्पादक हिन्दीप्रदीप)-ने भी "ग्रामदुर्दशा" नाटक लिखा था।

हां, अब काशीमें आते हैं, तब यहां एक स्टेज दिखाई देता है। बांस-फाटक पर स्व॰ वैजनाथ दास महाशयने एक रंगमञ्च बनवाया था जो आज भी मौजूद है। इसका नाम 'विश्वेश्वर थियेटरहाल' है। इसमें कौनसा पहले नाटक खेला गया इसका पता नहीं लगता। यहीं भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रने भी कई नाटक खेले हैं। सिवा इस विश्वेश्वर थियेटरके कोई स्थायी रंगालय यहां नहीं है। बाहरकी कम्पनियां आ आ कर अपना खेल तमाशा दिखला जाया करती हैं।

रङ्गावतरण (सं॰ क्ली॰) रङ्गस्य अवतरणं। १ रंगका अवतरण, रंग चढ़ाना। २ अभिनय करनेवाला, नट।

रङ्गावतारक (सं॰ पु॰) रङ्गे सङ्गनामयन अवतरतीति ण्वुल्, यद्वा रंग मुखादिरूपमवतारयतीति अव-तॄ-णिच् ण्वुल्। १ अभिनय करनेवाला, नट। पर्याय—शैलूष, भरत, सर्वधर्मी, भरतपुत्रक, धात्रीपुत्र, रङ्गजीव, जायाजीव नट, कृशाश्वी, शैलाली। (हेम) २ रंगावतरणजीवी, रंगरेज। मनुने लिखा है, कि इसका अन्न नहीं खाना चाहिये। अज्ञानवशतः या लोभसे कृच्छ्र-चान्द्रायणव्रत करना होता है।

"कर्मारस्य निषादस्य रङ्गावतारकस्य च।
सुवर्णकर्तुर्वेणस्य शस्त्रविक्रयिणस्तथा॥
भुक्त्वातोऽन्यतमस्यान्नममत्या क्षपणं त्र्यहम्।
मत्या भुक्त्वाचरेत् कृच्छ्रं रेतोविण्मूत्रमेव च॥"

(मनु ४ अ॰)

रङ्गावतारिन् (सं॰ पु॰) रङ्गमवतरतीति अव-तॄ-णिनि। अभिनय करनेवाला, नट।

"कौमुदवार्त्तिकसमवान्मदाभिमुखाः।
रङ्गावतारिपार्श्वचकूद्भरिकलेन्द्रियाः॥"

(माघवनरपं॰ २२)

रङ्गिन् (सं॰ त्रि॰) रङ्गोऽस्त्यस्य इति रङ्ग-इनि। १ रंगविशिष्ट, रंगा हुआ। (स्त्री॰) २ रंगिणी। ३ शतमूली। ४ कैवर्त्तिका नामकी लता।

रङ्गून—निम्नब्रह्मके पेगू विभागान्तर्गत एक जिला जो अंग्रेजोंके अधिकारमें है। विशेष विवरण रेङ्गुन शब्दमें देखो।

रङ्गेश—गुणरत्नकोषके प्रणेता पराशरभट्टके प्रतिपालक एक हिन्दू राजा।

रङ्गेश्वरी (सं॰ स्त्री॰) राजा रङ्गेशकी महिषी।

रङ्गालुक (सं॰ क्ली॰) स्वनामख्यात आलुविशेष।

रङ्गाजी भट्ट—अद्वैतचिन्तामणि और अद्वैतशास्त्रसारोद्धार नामक दो ग्रन्थके प्रणेता।

रङ्गोपजीविन् (सं॰ त्रि॰) रङ्गेण उपजीवति इति णिनि। जो रंगशालामें अभिनय करके अपनी जीविका निर्वाह करता हो, नट।

रङ्गोपजीव्य (सं॰ पु॰) रङ्गोपजीवी, नट।

"इन्द्रान् मर्मगतारिनर्थीमर्थिभयप्रस्थानलिप्साम्बरणान्।
नरयन माः शरनालेनेन्सपान पलापेन पर्यदितुम्॥"

(हरसंहिता ६।४१)

रङ्गर—इस्लाम धर्मदीक्षित राजपूत जातिविशेष। रंगपर अर्थात् मायाका रंग, इसी अर्थसे यह नामकरण हुआ है। उत्तर-पश्चिम भारतमें जब कोई चौहान राजपूत मुसलमान होता है, तब उसके चौहानवंशकी ख्याति नष्ट नहीं होती, वरन वह समाजित गुणानुसार रङ्गर नामसे पुकारा जाता है।

बुलन्दशहरवासी जैसवार या भट्टिराजपूत अपनेको बिठुरवासी यशोवन्त रावके पुत्र राजा दलीपके वंशधर बतलाते हैं। प्रवाद है, कि उस दलीपके भट्टि और रणधर नामक दो पुत्र थे। रणधरके वंशधर सुलतान कुतब उद्दीन और अलाउद्दीनके शासनकालमें इसलाम-धर्ममें दीक्षित हुए। तभीसे यह मुसलमान शाखा पूर्व-पुरुषके नामसे परिचित होती आ रही है। वर्त्तमान कालमें इन लोगोंके मध्य कानकौड़िया और नैगानिया अहीर, जाट, सखोला और रघु आदि हिन्दू जातिकी शाखा तथा पार्वती पुण्डीरादि जातिका सम्बन्ध हो गया है।

ये लोग चोरी और डकैती करके जीविका निर्वाह करते हैं। नाना जातिके समाजसे निकाले हुए दुर्वृत्त मनुष्य इस श्रेणीमें मिल गये हैं जिससे रङ्घरगण विशेष अत्याचारी हो गये हैं। इस सम्बन्धमें युक्त-प्रदेशमें एक किंवदन्ती इस प्रकार प्रचलित है—

"गूजर रङ्घर दो, कुत्ता बिल्ली दो।
ये चार न हो, तो खुले किवाड़ी सो।'

रङ्घस् (सं० क्ली०) रङ्घ्यते गम्यते इति रंघि (अधिरघि-भ्यानवुन्। उण् ४।२१३) इति असुन्। रंह, वेग।

रचक (सं० पु०) रचना करनेवाला, रचयिता।

रचन (सं० क्ली०) रचि-भावे ल्युट्। निर्माण, रचना।

रचना (सं० स्त्री०) रच्यते इति रच णिच् (ण्यासश्रन्थो युच्। पा ३।३।१०७) इति युच्, टाप्। १ कुसुमप्रकारादि और पत्रावल्यादिका रचन, फूलोंसे माला या गुच्छे आदि बनाना।

"भूषाणामर्द्धरचना वृथा विश्वगवेक्षणम्।
रहस्याख्यानमीयच विक्षेपो दयितान्तिके॥"

(साहित्यद० ३।१४९)

२ यथाक्रमसे स्थापन करना, बनानेका ढंग या कौशल। ३ निर्म्मिति, रखने या बनानेकी क्रिया या भाव, बनावट। ४ स्थान, स्थापित करना। ५ भूषण। ६ केश-विन्यास, बाल गूंथना। ७ गद्य या पद्यमय-वाक्य-विन्यास वह गद्य या पद्य जिसमें कोई विशेष चमत्कार हो।

"असाधारणचमत्कारकारिणी रचना हि निर्मितिः।"

(अलङ्कारकौ० १ किरण)

पर्याय—सन्दर्भ, गुम्फ, श्रन्थन, ग्रन्थन। (हेम) ८ उद्यम, कार्य। ९ विश्वकर्माकी स्त्रीका नाम।

रचना (हिं० क्रि०) १ हाथोंसे बना कर तैयार करना, बनाना। २ ग्रन्थ आदि लिखना। ३ विधान करना, निश्चित करना। ४ अनुष्ठान करना, ठानना। ५ आडम्बर खड़ा करना, युक्ति या तदबीर लगाना। ६ तरकीब या क्रमसे रखना। ७ उत्पन्न करना, पैदा करना। ८ काल्पनिक सृष्टि करना, कल्पना करना। ९ शृंगारकरना, सजाना। १० अनुरक्त होना। ११ रंग चढ़ना, रंगा जाना।

रचनीय (सं० त्रि०) रचि अनीयर्। रचना करनेके योग्य।

रचयितृ (सं० त्रि०) रचि तृच्। निर्माता, रचनेवाला।

रचवाना (हिं० क्रि०) १ रचनाके काममें दूसरेको प्रवृत्त करना, रचना करना। २ मेहंदी या महावर लगवाना।

रचाना (हिं० क्रि०) १ मेहंदी, महावर आदिसे पैर रंगाना।

रचित (सं० त्रि०) रचि-क्त। १ कृत, रचा हुआ। २ ग्रथित, गूंथा हुआ। ३ विन्यस्त, अर्पण किया हुआ। ३ शोभित, परिष्कार किया हुआ।

"शिरःपद्मश्रेणीरचितचरणाम्भोरुहबलेः।
स्थिरायास्त्वद्भक्तेस्त्रिपुरहरविस्फूर्जितमिदम्॥"

(पुष्पदन्तस्तुति)

रचितत्व (सं० क्ली०) रचितस्य भावः त्व। रचनेका भाव या धर्म, रचना।

रचितव्य (सं० त्रि०) रचि तव्य। रचनीय, रचना करनेके योग्य।

रज (सं० क्ली०) रञ्जयतीति रन्ज-अच् निपातनान्नलोपः। १ स्त्रीकुसुम, आर्त्तव। (पु०) २ पराग। ३ गुणभेद, रजो-गुण। ४ पुराणानुसार एक ऋषिका नाम जो वशिष्ठके पुत्र माने जाते हैं। ५ स्कन्दकी एक सेनाका नाम। (भारत ९।४५।७३) ६ विरजपुत्र। (विष्णुपु० २।१।४०) ७ पर्पटक, खेतपापड़ा।

रज (हिं० पु०) चांदी। रजस् देखो।

रजउद्वास (सं० त्रि०) मलोद्वास।

रजःपाल—एक हिन्दू राजा।

रजःपुत्र (सं० त्रि०) रजपूत देखो।

रजःप्रवर्त्तिनी वर्त्ति (सं० स्त्री०) स्त्रीरोगाधिकारोक्त औषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—तितलौकीका बीज, दन्तीमूल, पीपल, गुड़ मदनफल, मूलीका बीज और सुरेकी, इन्हें तक्रमें पीस कर थूहरके दूधमें मिलावे। इसकी यथा विधि बत्ती बना कर योनिमें रखनेसे स्त्रियोंकी रजःप्रवृत्ति होती है।

रजःशय (सं० पु०) रजसि शेते शी (अधिकरणे शेतेः पा ३।२।१५) इति अच्। १ कुक्कुर, कुत्ता। (त्रि०) २ धूलिशायी। ३ रजतमयी।

रजःसार (सं० क्ली०) कर्पूर, कपूर।

रजःसारथि (सं० पु०) रजसां सारथिरिव। वायु, हवा।

रजक (सं० पु०) रजति निर्णेजनेन श्वेतिमानमापादयति वस्त्रादीनामिति रञ्ज (नृतिखनिरञ्जिभ्यः परिगणनं कर्त्तव्यं। पा ३।१।१४५) इति ष्वुन्। वर्णसङ्कर जातिविशेष, धोबी। स्कन्दपुराणीय वचनानुसार धीवर और तीवर कन्याके संभोगसे इस जातिकी उत्पत्ति हुई है। ब्रह्म वैवर्त्तपुराणमें भी ऐसा ही लिखा है—

"तीवर्य्यां धीवरात् पुत्रो बभूव रजकः स्मृतः।" (ब्रह्मवैवर्त्त०)

पर्याय—निर्णेजक, धौतिक, वस्त्रधावक, धावक। (हेम)

अत्रि प्रभृति स्मृतिके मतसे रजक जाति अस्पृश्य है।

"रजकश्चर्मकारश्च नटो बरुड एव च।
कैवर्त्तमेदभिल्लाश्च सप्तैते चान्त्यजाः स्मृताः॥"
(अत्रि०)

यात्राकालमें यदि सामने रजक दिखाई दे, तो उस यात्रामें विघ्न होता है। यदि ब्राह्मण भूल कर भी रजकका अन्न भोजन करे, तो उसे प्रायश्चित्त करना होता है।

"रजके चैव शैलूषे वेणुचर्मोपजीविनि।
एतेषां यस्तु भुञ्जीत द्विजश्चान्द्रायणञ्चरेत्॥"
(प्रायश्चित्तवि०)

रजकोंमें किंवदन्तीमूलक जो सब आख्यायिका प्रचलित हैं उनसे मालूम होता है, कि ब्रह्माके वस्त्र धोने वाली नेतमणि या नेतु धोबिनके वंशधरोंने जाति चला कर उसी वृत्तिका अवलम्बन किया और वे सबके सब धोबी कहलाये। फिर दूसरे उपाख्यानसे मालूम होता है, कि धोबा मुनिका पुत्र नेता प्रति दिन अपना कौपीन नदीमें धोया करता था। एक दिन कौपीन धोनेके बाद उसे ऐसा आलस हुआ, कि दैनिक पूजाके लिये वह फूल तक भी न तोड़ सका। उसके साथी संन्यासियोंने देव कार्यमें इस प्रकार अवहेला देख उसे शाप दिया कि, 'तुम्हारा वंशधर एकमात्र मैला कपड़ा धो कर ही जीवन व्यतीत करेगा।' तभीसे उसके वंशधर गृहस्थोंका मैला कुचैला कपड़ा धोते आ रहे हैं।

बङ्गालके धोबियोंमें प्रायः १८ स्वतन्त्र विभाग हैं। पूर्व-बङ्गमें रामका धोबी और सीताका धोबी नामक दो दल देखे जाते हैं। ये लोग अपनेको राम और सीताके वस्त्र धोनेवालोंके वंशधर बतलाते हैं। वे लोग आपस में खान-पान तो करते हैं, पर विवाह शादी नहीं करते। मशहूर है, कि रामका धोबी केवल पुरुषका और सीताका धोबी केवल स्त्रीका वस्त्र धो सकता था। सीताका धोबी सीताका 'रजोवास' धोता था, इस कारण उसे सोनेकी गौ कौड़ी इनाममें मिलती थी। इस लोभमें पड़ कर रामका धोबी भी चुरा कर सीताका रजोवास धोने लगा। तभीसे दोनों ही स्त्री और पुरुषका कपड़ा धोने लगा है। उड़ीसाके धोबियोंमें श्रेणी-विभाग नहीं है। बंगालके धोबियोंमें आलम्यैन, काश्यप और शाण्डिल्य गोत्र तथा उड़ीसाके धोबियोंमें नागस गोत्र प्रचलित है। सगोत्रमें विवाह नहीं चलता। इन लोगोंके मध्य अकसर बाल्य-विवाह ही होता है। बहु विवाह प्रचलित है। स्त्रीके चरित्रमें दोष दिखाई देनेसे स्वामी पंचायतको सूचित कर उसे छोड़ सकता है। किन्तु पञ्चायतके नियमानुसार स्वामीको प्रायश्चित्त करना होता है। उस परित्यक्ता स्त्रीके साथ फिर कोई भी विवाह नहीं करता। बङ्गालके धोबियोंमें विधवा-विवाह निषिद्ध है, पर उड़ीसाकी विधवा सगाई प्रथासे विवाह कर सकती है।

बङ्गाल और उड़ीसाके रजकसे बिहारके रजक बिलकुल स्वतन्त्र हैं। ये लोग अपनेको गाढ़ो मुड़ बाबके वंश पर बतलाते हैं। इन लोगोंमें कनौजिया, मघैया, बेलवार, अवधिया, माथुर्, गोरखार, गधैया और बांगला नामक थे जो विभाग देखा जाता है। वहांका मुसलमान धोबी तुर्किया कहलाता है।

विहारने धोवियोंमें बाल विवाह ही अकसर हुआ करता है। बहु-विवाह और सगाई प्रथासे विधवा विवाह भी प्रचलित है। कन्याके विवाहमें अगुआ (घटक) वरके पिताके पास जाता और तिलक दे कर विवाह सम्बन्ध ठीक कर आता है। विधवा-विवाहमें स्वामी स्त्रीको लाहकी चूड़ी पहनाता है और मांगमें सिन्दुर देता है। मृत स्वामीके भाई रहते विधवा पहले उसीसे व्याह करती है। पञ्चायतके आदेशानुसार कुलटा स्त्रीको छोड देनेका नियम है। वह परित्यक्ता स्त्री सगाईकी तरह फिरसे विवाह कर सकती है। किन्तु जो उसे ग्रहण करेगा, समाजमें उसे एक भोज देना होगा।

ये लोग अपने समाजसे निकाले हुए हिन्दूमात्रको अपने समाजमें लेते है। किन्तु डोम, भंगी आदि निकृष्ट जातिको नहीं लेते। दूसरे हिंदूको समाजमें लेते समय उसका मस्तक मुंडा देते हैं और पीछे आस पासकी किसी पुण्यसलिला नदीमें नहलवा आते है। वह व्यक्ति बादमें सत्यनारायणकी पूजा करके समाजके ब्राह्मणोंको भोजन और दक्षिणा देता है।

ये लोग शिव, विष्णु, कार्त्तिकेय और सभी प्रकारकी शक्ति मूर्त्तिकी उपासना करते हैं। मैथिल और शाकद्वीपी जो सब ब्राह्मण रुपयेके लोभसे इनकी पुरोहिताई करते हैं वे धोविया ब्राह्मण कहलाते और समाजमें हेय समझे जाते हैं। जो सब धोवी वैष्णव-धर्म ग्रहण कर वैरागी होते हैं उनके स्वतन्त्र मन्त्रगुरु हैं।

हिन्दूके उपास्य देवताको छोड कर ये लोग गाडीभुईंयां आदि उपदेवताकी भी पूजा करते हैं। श्रावणपञ्चमीमें भी बडी धूमधामसे उक्त दोनों देवताकी पूजा होती है। इसके सिवा जानकी, गोसाई, रामठाकुर और आषाढ़संक्रान्तिमें बोसी पचांईकी पूजा करते हैं। ये लोग कपड़े ढोनेके लिये गदहा रखते हैं। इस कारण 'धोवीका गदहा' कह कर एक प्रवाद भी प्रचलित है।

वस्त्रादि धोनेमें ढाकाका धोवी सबसे बढ़ा चढ़ा है। आज भी दूर दूर देशसे धोवीके लड़के वहां धोवीका काम सीखने आते हैं। ये लोग पहले बकरेकी विष्ठा और चूने मिले हुए जलमें मैला कपड़ा भिगो लेते हैं। पीछे सज्जी या साबनके जलमें सिद्ध कर पाट पर फींचते है। अनन्तर भट्टी चढा कर फिरसे ठंढे जलमें उन्हें धो डालते हैं। कभी कभी सूती कपड़ेका पीलापन दूर करनेके लिये नील देते हैं। इससे कपड़ा बहुत साफ होता है। ये लोग जलको परिष्कार करनेके लिये उसमें निर्मली (Strychnos potatorum), पुई (Basella) नागफणि (Cactus Indicus) और फिटकरी डालते हैं। ये लोग सूतिका, रजः और अशौचकालीन वस्त्रादि धोते, इस कारण लोग इन्हें अपवित्र समझते हैं। फिर भातके मांड़ वा अरारोटसे कपड़ा फींचनेके कारण ब्राह्मणादि उच्च श्रेणीके हिन्दू धोये हुए कपडेको फिरसे साफ जलमें खींच कर पहनते हैं।

२ अंशुक। ३ रजकपत्नी, धोबिन। (त्रि०) ४ रंगकारक, रंगनेवाला।

रजक सरस्वती—एक प्राचीन स्त्री कवि।

रजगीर (हिं० पु०) फकरा, कूट्ट। कूट्ट देखो।

रजतंत (हिं स्त्री०) शूरता, वीरता।

रजत (सं० क्ली०) रजति प्रियं भवति रज्यत इति वा रनज (पृषिरञ्जिभ्यां कित। उण् ३।१११) इति अतच्, कित्कार्यञ्च। १ रूप्य, चांदी। २ हस्तिदन्त, हाथीदांत। ३ धवल। ४ शोणित, लहू। ५ हार। ६ ह्रद, तालाब। ७ पुराणानुसार शाकद्वीपके अस्ताचल पर्वतका नाम। ८ स्वर्ण, सोना। (त्रि०) ९ लाल, सुर्ख। १० शुक्लवर्णविशिष्ट, सफेद रंगका।

पितृकार्यमें चांदीका वरतन बड़ा प्रशस्त है। सोने, चांदी, तांवेका वरतन भी दिया जा सकता है। सर्वापेक्षा चांदीका वरतन ही पितरोंको अक्षय स्वर्ग देनेवाला है। पितृकार्यकी दक्षिणामें भी रजत (चांदी) देनेकी व्यवस्था है।

"सौवर्णं राजतं पात्रं पितृणां पात्रमुच्यते।
रजतस्य कथा वापि दर्शनं दानमेव च॥
राजतैर्भाजनैरेषामथवा रजतान्वितैः।
वार्य्यपि श्रद्धया दत्तमक्षयायोपकल्पते॥"

(मत्स्यपु० १७ अ०) रौप्य देखो।

रजतकुम्भ (सं० पु०) सोने या चांदीकी कलसी।

रजतकूट (सं० पु०) १ रजतगिरि। २ मलय पर्वतकी एक चोटीका नाम।

रजतगिरि (सं० पु०) रजताचल, कैलास-पर्वत।

रजतदंष्ट्र (सं० पु०) विद्याधरों के राजा वज्रदंष्ट्रका पुत्र।

रजतद्युति (सं० पु०) रजतस्येव द्युतिरस्य। हनुमान्।

रजतनाभ (सं० पु०) यक्षभेद, पुराणानुसार एक यक्षका नाम।

रजतनाभि (सं० त्रि०) १ श्वेतनाभियुक्त, जिसकी नाभि सफेद हो। (पु०) २ कुबेरके एक वंशधरका नाम।

रजतपर्वत (सं० पु०) रजतगिरि, कैलास-पर्वत।

रजतपात्र (सं० क्ली०) रजतनिर्मित पात्र मध्यपदलोपि कर्मधा०। चांदीका बरतन।

रजतप्रतिमा (सं० स्त्री०) स्वर्णरौप्यादि धातु द्वारा निर्मित देवमूर्त्ति, वह मूर्त्ति जो सोने और चांदीकी बनी हो। वराहपुराणमें ऐसी ही प्रतिमा बनानेको कहा है।

रजतप्रस्थ (सं० पु०) रजतस्तन्मयः तद्वत् शुभ्रो वा प्रस्थः सानुरस्य। कैलासपर्वत।

रजतभाजन (सं० क्ली०) रजतनिर्मितं भाजनं। रजतपात्र, चांदीका बरतन।

रजतमय (सं० त्रि०) रजतात् आगते मयट्। रजतस्वरूप, चांदी जैसा।

रजतवाह (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम।

रजताइ (हिं० स्त्री०) सफेदी।

रजताकर (सं० क्ली०) रजतस्य आकरं। १ चांदीकी खान। २ एक नगरका नाम।

रजताचल (सं० पु०) रजत प्रधानोऽचल इव, शाकपार्थिवादिवत् समासः। १ रौप्य-पर्वत, चांदीका पहाड़। २ महादानके अन्तर्गत दानविशेष। कृत्रिम चांदीका पर्वत बना कर यथाविधान दान करना होता है। हेमाद्रिके दानखण्डमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है। यह रजताचलदान सप्त महादान है। जो विधिपूर्वक यह दान करते हैं उन्हें चन्द्रलोककी प्राप्ति होती है।

यह रजताचल दान उत्तम, मध्यम और अधमके भेदसे तीन प्रकारका है। वित्तानुसार जो जैसा दान करने में समर्थ हैं उन्हें वैसा ही दान करना चाहिये। दश हजार पल रजतका बनाया हुआ पर्वत उत्तम, पांच हजार का मध्यम और ढाइ हजार पलका बनाया हुआ पर्वत रौप्य-पर्वत होता है। यदि कोइ व्यक्ति इसमें अशक्त हो, तो वे विभवानुसार बीस पलसे अधिक रजतका पर्वत बना कर दान कर सकता है।

"रजतो नवमस्तद्वदधमः शर्करान्वयः।
वक्ष्ये विधानमेतेषां यथावदनुपूर्वशः॥
अतःपरं प्रवक्ष्यामि रौप्याचलमनुत्तमम्।
यत्प्रदानान्नरो याति सोमलोकं द्विजोत्तम॥
दशभिः पलसाहस्रैरुत्तमो रजताचलः।
पञ्चभिर्मध्यमः प्रोक्तस्तदर्द्धेनावरः स्मृतः॥
अशक्तो विंशतेरूर्द्ध्वं कारयेत् शक्तितः सदा।
विष्कम्भ पर्वतांस्तद्वत् तुरीयांशेन कल्पयेत्।
पूर्ववद्राजतान् कुर्य्यान्मन्दरादीन् विधानतः॥"
(मत्स्यपु० ७ अ०)

रजताचल बना कर उसके चतुर्थांशसे विष्कम्भ पर्वत बनाना होगा। यह दान पर्व या पुण्यके दिन करना होता है। दान-कालका मंत्र इस प्रकार है—

"पितृणां वल्लभं यस्मात् विष्णोर्वा शङ्करस्य च।
रजतं पाहि तस्मान्नः शोकसंसारसागरात्॥"
(मत्स्यपु० ७ अ०)

इस दानके फलसे दाता गन्धर्व, किन्नर और अप्सराओंसे परिशोभित हो कर प्रलयकाल तक चन्द्रलोकमें वास करते हैं। ३ कैलास पर्वत।

रजताद्रि (सं० पु०) रजतमयस्तद्वत् शुभ्रो वा अद्रिः शाकपार्थिवादित् समासः। कैलास पर्वत।

रजतोपम (सं० क्ली०) १ रौप्यमाक्षिक, रूपामाखी। (त्रि०) २ रजतसदृश, चांदीके समान।

रजन् (सं० क्ली०) रज्यत इति रजन् (रञ्जेः क्युन। उण् २।७९) इति क्युन् (रजकरजनरजः सूपसंख्यानं। पा ६।४।२४) इति वार्त्तिकोक्तेर्नलोपश्च। १ राग। (पु०) २ ऋषिविशेष। (तैत्तिरीयसं० ५।५।८१)

रजन (अ० स्त्री०) एक प्रकारका गोंद, राल।

विशेष विवरण राल शब्दमें देखो।

रजनक (सं० पु०) १ कम्पिल्लक, कमीला। २ रजन देखो।

रजनि (सं० स्त्री०) रजन्ति लोका, अत्र रञ्ज बाहुलकादनि (उण् २।१०१) १ रात्रि, रात। २ वास्तुक, बथुवा नामका साग। ३ हरिद्रा, हल्दी।

रजनी (सं० स्त्री०) रजनि कृदिकारादिति ङीप्। १ रात्रि, रात। २ हरिद्रा, हल्दी। ३ जतुका लता, पहाडी। ४ नीलिनी, नीली। ५ शाल्मली द्वीपकी एक नदीका नाम। (भागवत ५।२०।१०) ६ दारुहरिद्रा, दारु हल्दी। ७ वास्तुक, वथुआ नामका साग। (वैद्यकनि०)

रजनी—रैवतकी पुत्री और वैवस्वतकी स्त्री।

रजनीकर (सं० पु०) रजनीं करोतीति कृ-ट। चंद्रमा।

रजनीगन्धा (सं० स्त्री०) रजन्या गन्धोऽस्याः रात्रौ विकाशात् तथात्वं। स्वनामख्यात श्वेतवर्ण पुष्पविशेष। (Polianthes tuberosa) इसे हिन्दीमें गुलफभु, गुलचेरी, गुलसब्बा, वङ्गालमें रजनी, रजनीगंधा, तेलगुमें नेल सम्पेङ्गा, वेरुसम्पेङ्गा और ब्रह्ममें हनेयेन कहते हैं। यह पुष्प रातको खिलता है और खुशबू महकता है। दक्षिण-अमेरिका, मेक्सिको, भारत, सिंहल, जावा आदि द्वीपोंमें यह पुष्पवृक्ष उत्पन्न होता है। इसके निर्याससे बढ़िया इतर, गन्धद्रव्य (Essence) और पोमेटम तेल बनता है। यह उष्णवीर्या, शुष्क, मूत्रकारक और वमनकारक है। सूखी कलीका चूर्ण गनोरिया रोगमें बहुत लाभदायक है। छोटे छोटे लड़कोंके मुंहमें और शरीर पर यह चूर्ण मक्खन और हल्दीके साथ लगानेसे चर्मरोगमें बहुत लाभ पहुंचता है।

रजनीचर (सं० पु०) रजन्यां चरतीति चर (चरेष्टः। पा ३।२।१६) इति ट। १ राक्षस। २ चौर, चोर। ३ चन्द्रमा। (त्रि०) ४ रात्रिविहारक, जो रातके समय चलता या घूमता-फिरता हो।

रजनीजल (सं० क्ली०) रजन्यां जलं। नीहार, कुहरा।

रजनीद्वय (सं० क्ली०) हल्दी और दारुहल्दी।

रजनीपति (सं० पु०) रजन्याः पतिः। चंद्रमा।

रजनीपुष्प (सं० क्ली०) रजन्या हरिद्रायाः पुष्पमिव पुष्पमस्य। १ पूतिकरञ्ज, दुर्गन्धि करज। २ रजनीगंधा-फूल।

रजनीमुख (सं० क्ली०) रजन्या मुखं। संध्या, शामका वक्त।

रजनीय (सं० त्रि०) १ मोहकर, मोहनेवाला। २ भोग्य। ३ सुखदायक, सुख देनेवाला।

रजनीरमण (सं० पु०) रजन्या रमणः। चंद्रमा।

रजनीश (सं० पु०) चन्द्रमा।

रजनीहासा (सं० स्त्री०) रजन्या हासो विकाशो यस्याः। शेफालिका पुष्प।

रजपूत (हिं० पु०) राजपूत देखो।

रजपूती (हिं० स्त्री०) १ क्षत्रिय होनेका भाव, क्षत्रियत्व। २ वीरता, शूरता।

रजवली (सं० पु०) राजा।

रजवाही (हिं० पु०) किसी बड़ी नदी या नहरसे निकला हुआ बड़ा नल जिसमें और भी अनेक छोटे छोटे नल निकलते हैं।

रजयित्री (सं० स्त्री०) चित्रकारिणी।

रजलवाह (हिं० पु०) मेघ, बादल।

रजवती (हिं० वि०) वह स्त्री जिसका रजस्राव हो रहा हो, रजस्वला।

रजवती (हिं० वि०) रजवती देखो।

रजवट (हिं० स्त्री०) १ क्षत्रियत्व। २ वीरता, शूरता।

रजवाड़ा (हिं० पु०) १ राज्य, देशी रियासत। २ राजा।

रजवार (हिं० पु०) राजाका दरबार, राजद्वार।

रजवार—बङ्गालकी आदिम-जातिविशेष। छोटानागपुर, विहार और पश्चिम बङ्गमें इनका वास अधिक है। महिसुरवासी रचेवार वा राजवारोंके साथ इनकी सदृशता देख कर डा० बुकाननने इन्हें द्राविडीय अनुमान किया है। ये लोग प्रधानतः कृषिजीवी हैं।

सरगुजा और उसके आस पासके सामन्त राज्यवासी रजवार अपनेको पतित क्षत्रिय बतलाते हैं। स्वजाति भ्रष्ट होनेके बाद कृषिवृत्तिका अवलम्बन कर ये लोग असभ्य जंगली जातिके नृत्य-गीतादि जातीय आमोद-प्रमोदमें शामिल हो गये हैं। विहारवासी रजवार अपनेको भुइंयाकी एक शाखा कहते हैं। उनके मुखसे सुना जाता है, कि रजवार और मुसहर एक ऋषिके दो सन्तान थे। रजवार लोग सैनिक वृत्तिका अवलम्बन करनेके कारण इस सम्मानजनक उपाधिसे भूषित हुए और मुसहर लोग चूहे खानेके कारण समाजमें निन्दनीय हो गये हैं। बङ्गालके रजवार, कोल और कुर्मी जातिके संस्रवसे अपनी उत्पत्ति बतलाते हैं। मानभूमवासी रजवारोंका कहना है, कि नागपुरमें एक राजा-

के दो पुत्र और दो कन्या थी। बड़े पुत्रके साथ बड़ी कन्याका यथाशास्त्र विवाह हुआ, किन्तु छोटा भाई और बहन दोनों दूसरी जगह भाग गये। राजाके मरने पर दोनों भाई सिंहासनको ले कर झगड़ने लगे। आखिर यह स्थिर हुआ, कि किसी निर्दिष्ट दिनमें दोनोंमेंसे जो सब से पहले राजसभामें पहुंचेगा, वही सिंहासन पायेगा। तदनुसार उस दिन छोटा भाई घोड़े पर चढ़ कर अपने घरसे चला। नागपुरके रास्तेमें सोनेके रंगका एक खरहा दिखाई दिया। उसे पकड़नेके लिये उसने घोड़ेको एक पेड़में बांध दिया और आप उसकी ओर दौड़ा। कुछ दूर जानेके बाद बोलका चिक्कार उसे अपने भागते हुए घोड़ेके शब्दके जैसा मालूम हुआ सो वह वहांसे लौटा। इस प्रकार विलम्ब हो जानेसे वह ठीक समय पर राजसभामें न पहुंच सका। निराश हो कर वह घर लौट आया। पीछे उसके वंशधर रजवार कहलाने लगे।

इनके मध्य मड़कार, छापवार, सिकारिया, सुकुल काड़ा, बड़गड़ी, मघाल तुरिया और बेड़ा रजवार नामक कई थाक तथा भोगता, डापा, छिरा, कुरीहर-योगी, कर हार, काश्यप, कटवार, जरकवार, कथीर, कोहरथ भी, मभिया, मारिक, मतवाल, नाग ऋषि, शम्बुक और सिंह नामक स्वतन्त्र वंश वा गोत्र हैं।

इनमें बाल्य और यौवन विवाह प्रचलित है। बहु विवाह भी चलता है। विधवा सगाई प्रथासे देवरके साथ विवाह कर सकती हैं। गया और शाहाबाद जिला वासी रजवारोंमें केवल पुत्रहीन विधवाओंका ही विवाह होता है। कहीं कहीं इस नियमका व्यतिक्रम भी देखा जाता है। चरित्र-दोषसे छोड़ी गई स्त्रियां फिरसे विवाह कर सकती हैं। कन्यागणको विवाह प्रथा कुर्मियों सी है। सिन्दूर-दान ही विवाहका प्रधान बन्धन है।

मैथिल और ज्योतिष वर्णब्राह्मण इनके पुरोहित होते हैं। बिहारके रजवार गोरैया, दिहवार, भगवती और नाना उपदेवताकी पूजा करते हैं। ये लोग शवदेहको जलाते और ग्यारहवें दिन श्राद्ध करते हैं।

ये लोग हिन्दु समाजमें हेय समझे जाते हैं। ब्राह्मण इनके हाथका जलग्रहण नहीं करते, केवल पुरोहित ही इनके हाथका मिठाई आदि खाते हैं। वैष्णव ब्रह्मचारी इन- के मन्त्र-गुरु होते हैं।

रजस् (सं० क्ली०) रज्यते रज रञ्जति रञ्ज (भूरञ्जिभ्यां कित्। उण् ४।२१६) इत्यसुन्। १ वह रक्त जो स्त्रियों और स्तन्यपायी जातिके मादा प्राणियोंके योनिमार्गसे प्रति मास निकलता है। पर्याय—पुष्प, आर्त्तव ऋतु, कुसुम, रज। (शब्दरत्ना०)

प्राणियोंका देहस्थित अन्यापन्न रस (जिस रसकी कुछ भी विकृति नहीं हुई है) क्रमशः तेज द्वारा रञ्जित हो कर रक्त कहलाने लगता है। इस रससे स्त्रियोंके शरीरमें रज नामक रक्त उत्पन्न होता है। यह रज बारह वर्षसे निकलने लगता है और पचास वर्षमें क्षय को प्राप्त होता है। स्त्रियोंके शरीरमें रजका सञ्चार होने से स्तन, गर्भाशय और योनि धीरे धीरे बढ़ने लगती है।

स्त्रियोंके बाल्यापगमसे जब दोनों स्तन पीनोन्नत और योनि बढ़ जाती है, तब जरायु-कोषसे जो पतला और सफेद रक्त निकलता है उसे रज कहते हैं। बोल चालमें इसका नाम स्त्री धर्म या ऋतुका आना है। प्रति मासमें एक बार करके यह रक्त-स्राव होता है। वह यदि शशकके रक्त या लाहके जलके जैसा हो तथा कपड़ेमें उस का दाग लगनेसे धोनेके बाद यदि कुछ भी चिह्न न रहता हो, तो उस रजको निर्दोष समझना चाहिये। दोषहीन वर्णित परिपुष्टाङ्गी स्त्रियोंके प्रायः बारह वर्षसे ही रजकी प्रवृत्ति होती है और पचास वर्षके बाद वह निवृत्त होता है। शरीर तन्दुरुस्त नहीं रहनेसे पचास वर्षके भीतर ही रजोनिवृत्ति हो सकती है। रजःप्रवृत्तिके प्रथम दिन से ले कर १६ दिन तक ऋतुकाल है। यही समय गर्भ ग्रहणका उपयुक्त समय है। १६ दिनके बाद उसे गर्भ ग्रहणकी शक्ति नहीं रहती। स्त्रियोंके प्रकृति भेदसे ऋतुकालमें भी परिवर्तन होता है।

स्त्री धर्मकालमें जरायुसे तीन दिन तक रजो-रक्त निकलता रहता है। किसी किसी स्त्रीके ५-७ दिन तक बराबर जारी रहता है। इन तीन दिनोंमें कमसे कम आध पाव किसीके मतसे पाव या डेढ़ पाव रक्त निकलता है। जो सब स्त्री स्वभावतः अत्यन्त तेजस्विनी और कामातुरा हैं तथा आमोद प्रमोदमें दिन बिताती हैं, उनका ऋतुकाल अपेक्षाकृत दीर्घ होता और

इस प्रकार लिखा है,—स्त्रियोंकी रजःप्रवृत्तिके प्रथम दिन गमन करनेसे पुरुषका आयुक्षय होता है और उस समय यदि गर्भ रह जाय, तो वह गर्भ प्रसवकालमें स्राव हो जाता है। दूसरे दिन गमन करनेसे भी उसी प्रकार स्राव होता वा सूतिकागृहमें सन्तान नष्ट हो जाती है। तीसरे दिन गमन करनेसे उक्त फल वा सन्तान असम्पूर्णाङ्ग अथवा अल्पायु होती है। चौथे दिन करनेसे सन्तान सम्पूर्णाङ्ग और दीर्घायु होती है। जिस प्रकार नदी-स्रोतके प्रतिकूल कोई वस्तु फेंकनेसे वह उस ओर न जा कर लौट आती है, बीज भी उसी प्रकार प्रवेश न करके लौट आता है। अतएव ऋतुकालमें तीन दिन गमन न करे। (सुश्रुत शारीरस्था० १ अ०)

धर्मशास्त्र और पुराणमें भी रजस्वला स्त्री-गमनको अत्यन्त पापजनक कहा है। रजस्वला अवस्थाके प्रथम दिन गमन करनेसे ब्रह्महत्याका चौथाई भाग पाप होता है तथा वे निन्दनीय, देव और पैत्रकार्यमें अनधिकारी होते हैं। द्वितीय और तृतीय दिन कामतः गमन करनेसे ब्रह्महत्याका पाप होता तथा यावज्जीवन देव और पैत्र कार्यसे अधिकार जाता रहता है।

(ब्रह्मवैवर्त्त पु० श्रीकृष्णजन्मखं० ५८ अ०)

रजस्वला स्त्री-गमन करनेमें बल, कान्ति और सौभाग्यका नाश होता है। महाभारत मौसलपर्वके ८वें अध्यायमें लिखा है,—अर्जुन द्वारकासे लौटते समय जब वेदव्यासके आश्रममें पहुंचे तब व्यासदेवने उनसे पूछा था, 'हे अर्जुन! तुम ऐसा कान्तिहीन क्यों दिखाई देते हो, क्या रजस्वला स्त्रीके साथ तो गमन नहीं किया है? रजस्वला स्त्रीके साथ गमन करनेसे प्रायश्चित्त करना होता है।'

प्रायश्चित्त शब्द देखो।

ज्योतिषमें लिखा है, कि रविवारको प्रथम रजस्वला होनेसे विधवा, सोमवारको पतिव्रता, मङ्गलवारको वेश्या, बुधको सौभाग्य, वृहस्पतिको पतिकी श्रीवृद्धि, शुक्रको बहु अपत्य और शनिवारको वन्ध्या होती है।

"आदित्ये विधवा नारी सोमे चैव पतिव्रता।
मङ्गले च भवेद् वेश्या बुधे सौभाग्यमेव च॥
वृहस्पतौ पतिः श्रीमान् शुक्रे चापत्यमेव च।
शनौ वन्ध्या विजानीयात् प्रथमा स्त्रीरजस्वला॥"

(ज्योतिस्तत्त्व)

रजस्विन् (सं० त्रि०) रजोपूर्ण, धूलिमय।

रज़ा (अ० स्त्री०) १ मरजी, इच्छा। २ स्वीकृति। ३ रुखसत, छुट्टी। ४ अनुमति, आज्ञा।

रजाई (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका जाड़ेका ओढ़ना जिसका कपड़ा दोहरा होता है और जिसमें रुई भरी होती है, लिहाफ। २ राजा होनेका भाव, राजापन।

रजाना (हिं० क्रि०) १ राज्यसुखका भोग कराना। २ बहुत अधिक सुख देना, बहुत अच्छी तरहसे रखना।

रजामंद (फा० वि०) जो किसी बात पर राजी हो गया हो, सहमत।

रजामंदी (फा० स्त्री०) राजी या सहमत होनेका भाव, सहमति।

रजि (सं० पु०) १ एक प्राचीन राजा। विष्णुपुराणमें लिखा है, कि एक समय देवासुर-संग्राम उपस्थित हुआ। देवोंने ब्रह्माके पास जा कर पूछा, कि इस देवासुर-संग्राममें कौन पक्ष विजयी होगा। ब्रह्माने उत्तरमें कहा, जिस पक्षका नेता राजा रजि होगा। दैत्यगण राजा रजिके पास सहायताके लिये उपस्थित हुए। रजिने कहा,—मैं सहायता देनेको प्रस्तुत हूं; परन्तु देवताओंके परास्त होने पर यदि हमको इन्द्रका पद देना तुम लोग स्वीकार करो। दैत्योंने कहा, कि हम लोग सदा सत्य बोलते हैं। हमारे इन्द्र प्रह्लाद हैं, उन्हींके लिये हम लोग उद्योग करते हैं। अतएव आपकी बातोंको हम स्वीकार नहीं कर सकते। यह कह कर दैत्य चले गये। देवताओंने आ कर उनसे सहायता मांगी। रजिने उन लोगोंसे भी यही कहा। युद्धमें जा कर रजिने दैत्योंका विनाश किया। तदनन्तर इन्द्र आये और उनके पैरों पड़ कर उन्हें प्रसन्न किया। रजि उनकी बातोंसे प्रसन्न हो गये और इन्द्र होको इन्द्रपद पर रहने दिया। रजिके अतिशय बलशाली पांच सौ पुत्र हुए। (विष्णुपुराण ४।८ अ०) २ राज्य। (स्त्री०) ३ कन्याविशेष। "त्व रजि पिठीनसे दशस्यन" (ऋक् ६।२६।६) 'रजि एतदाख्यां कन्या राज्यं वा' (सायण) ४ रज्जु, डोरी।

रजिया (हिं० स्त्री०) १ अनाज नापनेका एक मान जो प्रायः डेढ़ सेरका होता है। २ काठका वह बरतन जो इस मानका होता है।

रजिया बेगम—दिल्लीकी पठान साम्राज्ञी। रज़िया सुलताना देखो।

रजिष्ट्रार (अं० पु०) १ वह अफसर जिसका काम लोगोंके लिखित प्रतिज्ञापत्रों या दस्तावेजोंको कानूनके मुताबिक रजिष्ट्री करना अर्थात् उन्हें सरकारी रजिस्टरमें दर्ज करना हो। २ वह उच्च कर्मचारी या अफसर जो किसी विश्व-विद्यालयमें मंत्रीका काम करता हो।

रजिस्टर (अं० पु०) अङ्गरेजी ढंगकी बही या किताब आदि जिसमें किसी मदका आय व्यय अथवा किसी विषयका विस्तृत विवरण सिलसिलेवार या खानेवार लिखा जाता हो।

रजिस्ट्री (अं० स्त्री०) १ किसी लिखित प्रतिज्ञापत्रको कानूनके अनुसार सरकारी रजिष्टरोंमें दर्ज करानेका काम। प्रायः सभी देशोंमें यह नियम है, कि बैनामे, दस्तावेज तथा इसी प्रकारके और सब कागज-पत्र लिखे जाने के उपरान्त सरकारी रजिस्टरोंमें दर्ज करा लिये जाते हैं। इससे लाभ यह होता है, कि उस कागजमें लिखी हुई सब बातें बिलकुल पक्की हो जाती हैं और यदि कोई पक्ष उन बातोंके विपरीत कोई काम करता है, तो वह न्यायालयसे दंडका भागी होता है। यदि मूल कागज किसी प्रकार खो जाय, तो उसके बदलेमें आवश्यकता पड़ने पर रजिष्टरीवाली नकलसे भी काम चल जाता है। २ चिट्ठी, पारसल आदि डाकसे भेजनेके समय डाकखानेके रजिस्टरमें उसे दर्ज करानेका काम जिसके लिये कुछ अलग फीस या दाम देना पड़ता है। इस प्रकारकी रजिष्टरीसे यह लाभ होता है, कि रजिष्टरी कराई हुई चीज खोने नहीं पाती और यदि खो जाय, तो डाकखाना उसके लिये जिम्मेदार होता है। यदि पानेवाला किसी समय उस चिट्ठी या पारसल आदिके पानेसे इनकार करे, तो उसके विरुद्ध डाकखानेसे रजिष्टरीका प्रमाण भी दिया जा सकता है।

रजीडंट (अं० पु०) रेजिडेंट देखो।

रजील (अ० वि०) छोटी जातिका, नीच।

रजु (सं० स्त्री०) रज्जु देखो।

रजोषित (सं० त्रि०) उष्ट्र या गर्दभ द्वारा आनीत, ऊँट या गदहेसे लाया हुआ।

रजोगुण (सं० क्ली०) रज एव गुणः। प्रकृतिका वह स्वभाव जिससे जीवधारियोंमें भोग विलास तथा दिखावेकी रुचि उत्पन्न होती है, राजस। यह सांख्यके अनुसार प्रकृतिके तीन गुणोंमेंसे एक है, जो चंचल और भोगविलास आदिमें प्रवृत्त करनेवाला कहा गया है।
प्रकृति और रजस् शब्द देखो।

रजोपोत (सं० पु०) पुराणानुसार वशिष्ठके एक पुत्र।

रजोग्रहि (सं० त्रि०) रजोग्रहणकारी।

रजोदर्शन (सं० क्ली०) रजसो दर्शनं। स्त्रियोंका मासिक धर्म, रजस्वला होना।

रजोधर्म (सं० पु०) स्त्रियोंका मासिक धर्म।

रजोबल (सं० क्ली०) रज एव बलति संवृणोतीति, बलच्। अन्धकार।

रजोमक (सं० पु०) बुरी बातसे रोकनेवाला, निषिद्ध कर्म करने पर सावधान करनेवाला।

रजोमेघ (सं० पु०) धूलिका मेघ।

रजोरस (सं० क्ली०) अन्धकार, अंधेरा।

रजोरोध (सं० क्ली०) रजोनिवर्त्तन निवारण। कांजीके साथ जवा-फूल पीस कर और जवाफरकोके पत्तेको भून कर अथवा तवरखके साथ दूधका पीठा बनानेसे रज रुक जाता है। इसे रजोनिवर्त्तक योग कहते हैं। रसांजन, हरीतकी और आंवलेको चूर्ण कर ठंढे पानीके साथ खानेसे रजोलोप होता है तथा गर्भोत्पत्तिकी आशंका नहीं रह जाती।

रजोहर (सं० पु०) रजो हरतीति हृ (हरतेरनुद्यमनेऽच्। पा ३।२।९) रजक, धोबी।

रज्जव्य (सं० क्ली०) वह वस्तु जिससे रस्सी तैयार की जाय।

रज्जिल—एक प्रतिहार-सामन्तराज।

रज्जु (सं० स्त्री०) सृज्यते रज्यते इति सृज (सृजेरसुम् च। उण् १।१६) इति उ, असुमागमश्च, धातुसकारलोपश्च आगम सकारस्य श्चुत्वं शकार, तस्यापि जुत्वं जकारं अथापि जातिस्वार उज्ज्वादीनामिति कथनात् न कुत्।

१ तन्धनसाधन वस्तु, रस्सी, जेवरी। पर्याय—शुल्ब, वराटक, वटी। गुण—शुल्बा, शुल्ब, श्रुल्व, प्रुल्वा, शुल्वी, सुष्म, वराट, पटाकर, वटीगुण। (अमर और भरत)

रज्जु चुरानेवाला तीन दिन थोडा दूध पीवे, तो उसके उस पापका प्रायश्चित्त होता है। (मनु ११।१६९) २ केशवेणी, स्त्रियोंके सिरकी चोटी। ३ घोडेकी लगाम की डोरी, बागडोर।

रज्जुकण्ठ (सं० पु०) १ पाणिनिका शौनकादि गणोक्त एक शब्द। २ एक प्राचीन आचार्यका नाम।

रज्जुदाल (सं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष।

(शतपथब्रा० १३।४।४।६)

रज्जुदालक (सं० पु०) एक प्रकारका जलचर पक्षी। इस पक्षीका मांस खाना शास्त्रमें निषिद्ध कहा है। यदि कोई कामतः खा ले तो उसे तीन दिन तक उपवास कर पापका प्रायश्चित्त करना होता है।

"कलविङ्कं प्लवं हंसं चक्राह्वं ग्रामकुक्कुटम्। ... रज्जुदालकं।
मत्स्यांश्च कामतो जग्ध्वा सोपवासस्त्र्यहं वसेत्॥"

(याज्ञवल्क्यस० १।१७४)

रज्जुवाल (सं० पु०) मनुके अनुसार एक प्रकारका पक्षी।

रज्जुभार (सं० पु०) १ पाणिनिका शौनकादि गणोक्त शब्दविशेष। २ जेवरीका बोझ।

रज्जुशारद (सं० त्रि०) उदक, जल।

रज्जुसर्ज (सं० पु०) रज्जुस्रष्टा, वह जो रस्सी बाटता हो।

रञ्जक (सं० क्ली०) रञ्जयतीति रन्ज-णिच्-ण्वुल्। १ हिंगुल, ईंगुर। (पु०) २ कम्पिलक, कमीला। ३ प्रीतिजनक। ४ वस्त्रादि रागकर्त्ता, रंगरेज। ५ सुश्रुतके अनुसार पेटकी एक अग्नि जो पित्तके अन्तर्गत मानी जाती है। कहते हैं, कि यह यकृत् और प्लीहाके बीचमें रहती है और भोजनसे जो रस उत्पन्न होता है उसे रञ्जित करती है। ६ भल्लातक वृक्ष, भिलावाँ। ७ नखरञ्जनी, मेंहदी।

रञ्जन (सं० क्ली०) रज्यतेऽनेनेति रन्ज करणे ल्युट्। १ रक्तचन्दन, लाल चंदन। २ हिंगुल, ईंगुर। रञ्ज-णिच् भावे ल्युट्। ३ प्रीतिजनन चित्तको प्रसन्न करनेकी क्रिया। (पु०) ४ मुञ्जतृण, मूंज। ५ स्वर्ण, सोना। ६ जातीफल, जायफल। ७ पारदरञ्जन द्रव्य, वे पदार्थ जिनसे रंग बनते हैं।

"करोति निर्म्मलं ताम्रं वापितं रञ्जनेन तु।
कुरुते त्रिगुणं जीर्णं लाक्षारसनिभं रसम्॥"

(रस० चि० ३ भ०)

८ कम्पिलकवृक्ष, कमीलेका पेड। ९ रंगनेकी क्रिया। १० पित्त, सफरा। ११ छप्पय छन्दके पचासवें भेदका नाम।

रञ्जनक (सं० पु०) रञ्जन कन्। कटफल, कटहल।

रञ्जनकेशी (सं० स्त्री०) नीली वृक्ष।

रञ्जनगण (सं० पु०) रञ्जनद्रव्यगण, वे पदार्थ जिनसे रंग बनते हैं। जैसे,—हल्दी, नील, लाल चन्दन, पतंग, कुसुम, मजीठ, लाह, मेंहदी इत्यादि।

रञ्जनद्रु (सं० पु०) रञ्जयतीति रन्ज-णिच्-ल्यु, रञ्जनश्चासौ द्रुश्चेति। १ अम्लुकवृक्ष। २ धूम्रवृक्ष।

रञ्जनी (सं० स्त्री०) रञ्जन ङीप्। १ ऋषभ-स्वरकी तीन श्रुतियोंमेंसे दूसरी श्रुति। २ नीलीवृक्ष। ३ मञ्जिष्ठा, मजीठ। ४ शेफालिका, निर्गुंडी। ५ हरिद्रा, हल्दी। ६ पर्पटी। ७ नागवल्ली लता। ८ जन्तुका या पहाडी नामकी लता।

रञ्जनीपुष्प (सं० पु०) एक प्रकारका करञ्ज या कंजा, घीपूतिकरञ्ज।

रञ्जनीय (सं० त्रि०) १ जो रंगनेके योग्य हो। २ आनन्ददायक, जो चित्त प्रसन्न करे।

रञ्जित (सं० त्रि०) रञ्ज-क्त। १ जिस पर रंग चढ़ा या लगा हो, रंगा हुआ। २ आनन्दित, प्रसन्न। ३ प्रेममें पडा हुआ, अनुरक्त।

रञ्जित (बडी)—वङ्गालमें प्रवाहित एक नदी। यह सिकिम राज्यसे निकल कर दार्जिलिङ्ग जिलेके उत्तर और पश्चिम प्रान्त होती हुई (अक्षा० २७° ६´ उ० तथा देशा० ८८° २६´ पू०) तिस्ता नदीमें गिरी है। रङ्गनू और छोटी रञ्जित नामक शाखानदी इसके कलेवरको बढ़ाती हैं। इसका दोनों किनारा जंगलसे ढका है, कहीं कहीं धानका खेत भी दिखाई देता है।

रञ्जित (छोटी)—वङ्गालमें प्रवाहित एक नदी। यह नेपाल और सिकिम राज्यके मध्यवर्त्ती सिङ्गालीला गिरि-

धेमासे निकल कर बड़ा रंजितमें मिली है। काहेन असपतान, भोरा, रिर्लिं और सेवाजू नामक कुछ पहाड़ी स्रोत इसमें आ कर मिल गए हैं। शीत और ग्रीष्म ऋतु में इस नदीमें भी अधिक जल नहीं रहता। सभी जगह पैदल पार करना होता है।

रञ्जितराय—एक बंगाली कायस्थ कवि। ये प्रसिद्ध वारेन्द्र कायस्थ दयाराम घोष पर्याप्त थे। नवाब मुर्शिदकुलीके राजस्वकालमें तथा अन्यान्य नवाबोंके समय तक ये जीवित थे। बचपनसे ही लिखने पढ़नेमें इनका विशेष प्रेम था। धीरे धीरे अरबी फारसी आदि राजकीय भाषा तथा संस्कृत, हिन्दी और बङ्गला भाषामें इन्होंने विशेष पाण्डित्य लाभ किया। पुर्त्तगाल फरासी और अंगरेज आदि वैदेशिक वणिक् जातिकी भाषा भी इन्होंने बहुत कुछ सीख ली थी।

नवाब मुर्शिदकुली खाँ राजस्व उगाहनेके लिए प्रत्येक जमींदारके घर अपना कर्मचारी और सेना भेजते थे। इसी कार्यमें रञ्जितराय नियुक्त हुए। इस पद पर काम करनेवालेका नाम अमीन था। नवाबके आज्ञानुरोधसे इन्हें कभी कभी दिनाजपुर, रङ्गपुर, राजशाही आदि जिलों के जमींदारके यहां भी जाना पड़ता था।

कविता रचनामें ये बड़े सुदक्ष थे। जब जहां जाते थे, वहां अधिवासियोंके सम्बन्धमें एक एक कविता रच कर रखते थे। इस प्रकार नाना भाषामें कविता लिख कर इन्होंने एक काव्यग्रन्थ प्रणयन किया। उस ग्रन्थका नाम 'सिवतान बताय' रखा गया। उनकी कविता कल्पना स्थान और व्यक्तिविशेषमें आबद्ध थी सो नहीं। पर सार्थ विषयमें भी उनके बनाये अनेक श्लोक पाये जाते हैं।

रञ्जिना (सं॰ स्त्री॰) रञ्जन देखो।

रतुपुत्र—रघुवंशीय एक महाप्रतापी तथा राजा सुदासके पिता। ये ईसा सन् १०० वर्ष पहले विद्यमान थे।

रघुवंश देखो।

रट (सं॰ स्त्री॰) किसी शब्दका बार बार उच्चारण करनेकी क्रिया।

रटन (सं॰ क्ली॰) रट-ल्युट्। कथन, कहना।

रटन (हिं॰ स्त्री॰) रटनेकी क्रिया या भाव, रट।

रटना (हिं॰ क्रि॰) १ किसी शब्दको बार बार कहना। २ अथवा याद करनेके लिये बार बार उच्चारण करना। ३ बार बार जप करना, जपना।

रटन्त (हिं॰ स्त्री॰) रटनेकी क्रिया या भाव, रटाई।

रटन्ती (सं॰ स्त्री॰) रट्यते पुण्य ज्ञानमनेन कल्पतरादि रट बाहुलकात् झच् ङीप्। माघमासीय कृष्ण चतुर्दशी। माघ मासकी कृष्ण चतुर्दशीका नाम रटन्ती-तिथि है। पुराणके मतसे यह दिन बहुत पवित्र है। इस तिथिमें सूर्योदयके समय स्नान करके यम तर्पण करनेसे सभी पाप दूर होते हैं तथा कभी यमपुरका दर्शन नहीं होता अर्थात् उसे स्वर्गलाभ होता है। इस तिथिमें अरुणोदय कालमें स्नान करनेसे जन्मजन्मकृत पाप उसी समय नष्ट होते हैं। यह तिथितत्त्व अवश्य द्रष्टव्य है (तिथितत्त्व)

इस रटन्ती तिथिमें रातको श्यामापूजा करनी होती है। इसमें सभी विघ्न जाते रहते हैं। इस रटन्ती तिथिमें कालीपूजा होती है, इस कारण इसको रटन्ती काली भी कहते हैं।

"माघ मासस्यिते पक्षे रटन्त्याख्या चतुर्दशी।
तस्यां कालिका-पूजा च विप्रावसान्तरे॥"

(कालिकापु॰)

इस वचनानुसार यही स्थिर हुआ, कि केवल रातमें कालीपूजा करनी होगी। किन्तु रातमें किस समय पूजा होगी, यह ठीक ठीक मालूम नहीं हुआ। कोई कोई निम्नोक्त वचनानुसार कहते हैं कि यह प्रदोष समयमें होगी। काली-पूजाका काल मध्यरात्रिमें निश्चित होने पर भी रटन्ती कालीपूजा प्रदोष समयमें होगी।

"माघ मासस्यित पक्षे रटन्त्याख्या चतुर्दशी।
तस्यां प्रदोषसमये पूजयन्तुवसमर्च्चयीम्॥"

(भावार्थ चूडामणि-धृत ब्रह्मवैवर्त्त पुराण वचन)

रघुनन्दन इस मतका आदर नहीं करते थे। कहते हैं, कि मध्यरात्रि कालमें ही यह काली पूजा होगी। प्रायः सभी विद्वान् इसी मतके अनुयायी हैं। इन्होंने निम्नोक्त वचन द्वारा उसका स्थिर किया है, कि मध्य रात्रि में रटन्ती पूजाका विहित काल है।

"माघ मास्यसिते पक्षे रटन्त्याख्या चतुर्दशी।
तस्यां निशार्द्धसमये पूजयेन्मुक्तया भवान्॥"

(भाव ३-५ २७ प॰)

"मकरस्थे रवौ कृष्णाचतुर्दश्यां निशार्द्धके ।
पूजयत् दक्षिणा कालीं धर्मकामार्थसिद्धये ॥"
(उत्तरकामाख्यातन्त्र)

रटित (सं० त्रि०) रट-क्त । १ कथित, कहा हुआ । (क्ली०) २ कथनमात्र, कहना ।

रण (सं० पु० क्ली०) रणन्ति शब्दायन्तेऽत्रेति रण् (ग्रहेति । पा ३।३।५८) इत्यत्र 'वशिरण्योरुपसंख्यानं' इति काशिकोक्त्या अप् । १ युद्ध, लड़ाई । "न कूटैरायुधैर्हन्याद् युध्यमानेरणे रिपून् ।" (मनु ७।९०) २ रमण । 'पूजनार्थं रणाय ते सुतः" (ऋक् ८।१७।१२) 'रणाय रमणाय' (सायण) (त्रि०) ३ रमणीय । "रणाय वशमश्विनासनये सहस्रा" (ऋक् १।११६।२१) 'रणाय रमणीयाय ।' (सायण) (पु०) ४ शब्द । ५ गति । ६ दुम्बा नामक भेड़ा जिसकी दुम मोटी और भारी होती है ।

रणक (सं० पु०) १ युद्ध, लड़ाई । २ शब्द ।

रणकुशल (सं० त्रि०) रणमें पण्डित, भारी योद्धा ।

रणकारिन् (सं० त्रि०) रणं करोति कृ-णिनि । १ युद्धकारी, योद्धा । २ शब्दकारी, शब्द करनेवाला ।

रणकृत् (सं० त्रि०) रणं करोति कृ क्विप् तुक च । रणकर्त्ता, लड़ाई करनेवाला ।

रणक्षिति (सं० स्त्री०) रणस्य क्षितिः । युद्धभूमि, रणक्षेत्र ।

रणक्षेत्र (सं० क्ली०) रणस्य क्षेत्रं । रणस्थल, लड़ाईका मैदान ।

रणक्षौणि (सं० स्त्री०) युद्धभूमि, रणस्थल ।

रणघण्टासमाकृति (सं० स्त्री०) महाशन ।

रणछोड़ (हिं० पु०) श्रीकृष्णका एक नाम । जरासंधकी चढ़ाईके समय श्रीकृष्ण रणभूमि त्याग कर द्वारकाकी ओर चले गये थे इसीसे उनका यह नाम पड़ा है ।

रणजय (सं० पु०) रणे जय । युद्धमें जय, लड़ाईमें जीत ।

रणजित् सिंह (महाराज)—पञ्जावके 'सुकरचकिया' मिशल (रियासत)-के प्रभावशाली एक अधिपति । वीरवर महासिंहके पुत्र । इनकी माताका नाम माई मलवाई था । सन् १७८० ई०की २रो नवम्बरको पञ्जाव-केशरी रणजित् सिंहने जन्म लिया था । इस समय इनके पिताने रणजित्के जन्मोत्सवके उपलक्षमें सभी सरदारोंको आमन्त्रित किया था और इन सबकी बड़ी खातिरदारी की । नहीं भूपोंको अन्न धनसे सन्तुष्ट किया गया । शैशवकालमें रणजित् माताकी निकसारी (Smallpox) से बहुत पीड़ित हुए थे । इस बीमारीमें इनके जीनेकी कोई आशा न थी । पिताने पुत्रकी आरोग्यके लिये देवीदेवताओंकी कितनी ही मनौती की थी । कई आदमी देवी देवताकी पूजाके लिये ज्वालामुखी आदि दूर देशोंमें भेजे गये, सैकड़ों ब्राह्मणों तथा दीन-दुखियोंको भोजन कराया गया तथा दिल खोल कर धन दौलत लुटाई गई । बहुतोंका विश्वास है, कि देव, ब्राह्मण और दरिद्रोंके आशीर्वादसे ही सिक्ख सूर्य असमयमें अस्त नहीं हो सके । फिर भी, इस कठिन रोगमें उनकी एक आंख नष्ट हो गई । उनका मुंह भी चेचकके दागसे छा गया । पिताने अपनी जीवितावस्थामें ही सन् १७८५ ई०में कन्हियाकुल राजलक्ष्मी गुरुवक्स सिंहकी पत्नी सदाकुमारीकी प्रार्थना करने पर पञ्चवर्षीय रणजित्का विवाह राजकुमारी "महतावकुमारी"-के साथ कर दिया । इसी सूत्रमें दो रियासतें परस्पर मित्रतासूत्रमें आवद्ध हुईं । फलतः सुकरचकियाके सरदार रणजित् सिंहकी भावी उन्नतिका पथ उन्मुक्त हुआ । सन् १७९२ ई०में महासिंह गुजरातवाले दुर्गमें परलोक सिधारे । महासिंह देखो ।

उस समय रणजित् सिंहकी उम्र बारह वर्षकी थी । उन्होंने नाममात्रकी राजगद्दी हासिल की । उनकी माता, राजमन्त्री और दीवान लखपत रायकी अभिभावकतामें नाबालिगका राजकार्य चलने लगा । रणजित्की माता मलवाईके साथ लखपत रायकी प्रेमासक्तिकी बात जान इन दोनोंके संग साथसे अपने दामादका अनिष्ट सोच कर (रणजित्की सास) गुरुवक्सकी पत्नी स्वयं राजकार्यमें हस्तक्षेप करने पर बाध्य हुईं । यथार्थमें इन्हींकी कूटनीति, बुद्धिकौशल और उद्यमसे रणजित् सिक्खशक्तिके शीर्षस्थान पर चढ़नेमें समर्थ हुए थे ।

पिताकी मृत्यु तथा माताकी प्रेमासक्तिके कारण बालक रणजित्की विद्याशिक्षाका कोई यथोचित प्रबन्ध न हो सका । उन्होंने भी शिकार खेलने और इन्द्रियासक्तिमें रत रह कर यौवन चरितार्थ करनी आरम्भ की । केवल पुस्तक पढ़ना और पत्र लिखना वे जानते थे ।

इस मावाक्रगोंमें ही नकाइके सरदार रामसिंहकी कन्या राजकुमारीके साथ रणजित्‌ने दूसरा विवाह किया।

लखपत राय, माता मलवाइ और सास सदाकुमारी के शासनमें रह कर रणजित्‌ने सत्रहवें वर्षमें पदार्पण किया। अब उन्होंने अपने राज्यको शासन बागडोर अपने हाथमें ले कर प्रथम पिताके मामा दलसिंहको अपना प्रधान मन्त्री बनाया। महासिंहने मृत्युके समय रणजित्‌के शिर पर सरदारी सिरोपा धर कर इन वृद्ध दलसिंहके हाथ ही रणजित्‌को समर्पित किया था।

दलसिंहके परामर्शानुसार उन्होंने राजकुलके कलङ्क लखपतरायको कैलास-पुरमें मार डाला। इसके बाद एक दिन माताको लालक मिश्र नामक एक व्यक्तिके साथ अन्तःपुरमें प्रेमालाप करते देख रणजित् दोनोंको मार डालनेकी कामनासे नङ्गी तलवार ले कर चले। पद शब्द सुन कर लालक महलसे भाग निकला। किन्तु नङ्गी तलवार हाथमें ले कर रणजित् जब माताके कमरेमें गया, तब माताको आलुलायित कुन्तला स्वरूपानस्था देख बड़ा ही क्रोधित हुआ। उन्होंने क्रोधोन्मत्त हो लालकके भागनेका कारण तथा वह कहां छिपा है, माता से पूछा। पुत्रमुखसे चरित्रहीनता-व्यञ्जक वाक्यवाण से रणजित्‌की माता जर्जरित हो कर पहले पुत्रका यथोचित भर्त्सना करती हुई अपने सतीत्व-रक्षार्थ नाना कौशल तथा वाक्यजाल फैलाने लगी। माता पुत्रके बीच कुछ देर तक वाद विवाद होनेके बाद माताके दुर्वचना से क्रोधित हो रणजित्‌ने अपनी चमकती हुई तलवारसे माताका सर धड़से अलग किया। इतने दिनोंके बाद दुश्चरित्राके पापका अवसान हुआ। पापका साथी लालक मिश्र अमृतसरमें भाग गया और वहां वह अपने बचनेका उपाय सोचने लगा। अन्तमें जब कोई उपाय न सूझा, तो वह रणजित्‌की सास सदाकुमारीके शरणापन्न हुआ। सदाकुमारीने पापीको दण्ड दिलानेमें "शरण" शब्दका कुछ भी ख्याल न कर शरणापन्न 'मिश्र' को रणजित्‌के हाथ सौंप दिया। रणजित्‌ने उस को माताके पथका पथिक बनाया।

इस समय अहमद शाह अब्दालीके पौत्र दुर्रानी सरदार जमान शाह भारतमें साम्राज्य स्थापित करनेके लिये बारम्बार पञ्जाब पर आक्रमण करनेका उद्योग कर रहा था। जमान शाहके उपर्युपरि आक्रमण और अहमद शाहके अत्याचारको स्मरण कर सिक्ख जातिका घोर हृदय भी कम्पित हो उठता था। पहले जब अफगान पञ्जाब पर आक्रमण करते थे, तब सिक्ख जङ्गल और पहाड़ों पर छिप जाते थे। फिर उनके चले जाने पर फिर वहांसे वे लौटते और लूट-मार करनेमें प्रवृत्त होते थे।

जब शाहजमान सिन्धु नदको पार कर लाहोरके राजकार्यका परिवर्तन करनेके लिये आगे बढ़ा, तो अन्यान्य सिक्ख सरदारोंके साथ रणजित् भी पहाड़में भागे। वहां जाने पर उनको सब रियासतोंके सरदारोंसे परिचय हुआ। उन्होंने सलाह मशवरा कर मौका देख कर अपने साथियोंको ले सिन्धु नदको पार किया। शाहको लाहोरमें फंसा देख और उसका आना असम्भव समझ रणजित् उसके अधिकृत देशोंके अधिवासियोंसे बल पूर्वक कर वसूल करने लगे। शाहके अपने देश लौट जाने पर पञ्जाब पर रणजित्‌का प्रभुत्व और प्रभाव फैल गया।

रणजित्‌की सौभाग्यलक्ष्मीको दिन दिन उदीयमान देख ईर्षापरायण सहयोगी सरदार उसके वध करनेमें प्रवृत्त हुए। चट्ठा जातिके सरदार हस्मत खां रणजित्‌का वध करनेके लिए आगे बढ़ा। एक दिन रणजित् शिकार खेल कर घर लौट रहे थे, उनके साथी कुछ पीछे पड़ गये थे ऐसे समय हस्मतने अकेला देख उनसे निकल उन पर आक्रमण किया। सौभाग्यक्रमसे हस्मत को तलवारका वार रणजित्‌को न लग उनके घोड़ेकी लोहजञ्जीरसे कसी गर्दन पर लगा। तलवारकी झनकारसे रणजित् चमक उठे। उन्होंने शत्रुको सामने देख अपनी तलवार खींच कर उस पर आक्रमण किया। मुहूर्त भरमें रणजित्‌की चोटसे हस्मतका मुण्ड धड़से अलग हो गया। सरदारके मरने पर उसके साथी रणजित्‌के वशमें आ गये। रणजित्‌ने उसके अधिकृत चन्द्रभागा नदीके किनारेकी भूमि पर अधिकार कर लिया।

इधर रामगढ़िया सरदार पराजित होने सदाकुमारीके

राज्य पर आक्रमण किया। सदाकुमारीने अपने दामाद-को खबर भेज कर सहायताकी प्रार्थना की। कुछ घुड़सवारोंको साथ ले रणजित् सहायताके लिये बताला की ओर चले। यशसिंहकी राजधानी मियानी नगरको घेर कर छः महीने तक पाण्डयुद्ध करते रहे। अन्तमें जब वर्षासे किलेकी चारों ओर पानी जमा हो गया, तब वे अपने घर लौट आये।

इससे पहले जब दुर्रानी सरदार शाहजमान पञ्जाबसे भागने लगा, तब उसकी कई तोपें झेलम नदी में गिर पड़ीं। रणजित्ने स्वयं अपना दल-बल ले कर उन सब तोपोंको नदीगर्भसे निकलवाया और उन सब को अपने आदमीको मारफत काबूल भेजवा दिया। शाहने प्रसन्न हो कर इनाममें लाहोर नगर रणजित्को प्रदान किया। लाहोरका अधिकार पाने पर रणजित्का चित्त विचलित हो उठा, किन्तु वे प्राचीन शत्रुके भयसे पहले कुछ करनेमें साहसी न हुए। उस समय प्राचीन शत्रु और प्रबल प्रतिद्वन्द्वी रामगढ़ाधिपति यशसिंहको वृद्ध और दीन देख तथा घोड़े पर न चढ़ सकनेवाले मन्त्री सरदार गुलाबसिंहके युद्ध विग्रहमें असमर्थ जान वे प्रसन्न हो उठे। अन्यान्य शक्तिहीन सरदारोंके विषयमें रणजित् जानते थे, कि वे उनके विरुद्ध अस्त्र न उठायेंगे।

आशामें उन्मत्त हो कर रणजित् लाहोर पर अधिकार करनेकी कल्पना कर रहे थे। ऐसे समय हकीम हाकम राय, भाई गुरुबख्शसिंह, मिया आशिक अहमद, मोर सादी मियां, मोहकमदिन, महम्मद बकर, महम्मद ताहिर आदि प्रधान प्रधान और सम्भ्रान्त लाहोर नगर-निवासियोंका एक आवेदनपत्र पहुंचा। इस पत्रको पढ़ कर रणजित् आनन्दित हो उठे। यह गृहविच्छेद ही उनकी अभीष्ट-सिद्धिका मूल था। इस समय लहना सिंह, गुजरसिंह और शोभासिंह नामक तीन सरदारोंके द्वारा लाहोर नगर शासित हो रहा था। लहनाके बाद चेतसिंहके अधिकारके समय नगरवासी प्रधान मुसलमान धनी मियाँ, आशिक महम्मदके दामाद मियां बदुरुद्दीन-के साथ नगरवासी क्षत्रियोंका विरोध उपस्थित हुआ। क्षत्रियोंने प्रतिहिंसापरायण हो कर चेतसिंहको लिख भेजा, कि "बदुरुद्दीन काबूलके अमीर शाहजमानके साथ लुक छिप कर पत्र व्यवहार किया करता है, अतएव यह राजद्रोही है।" चेतसिंहने कुछ भी विचार न कर बदरुद्दीनको कैद कर दिया। मुसलमानोंने बदरकी निर्दोषिताका प्रमाण पेश किया था, किन्तु निष्फल हो गया। इसीसे एक ही मर्मके दो आवेदन-पत्र लिख कर एक रणजित् सिंहके पास तथा दूसरा सदाकुमारीके पास उन लोगोंने भेज दिया।

सास सदाकुमारीकी प्ररोचनासे रणजित्ने आशा-स्रोतमें डुबकी लगाई। युद्धकी तय्यारी होने लगी। चेतसिंहके प्रधान कर्मचारी मिया आशिक महम्मद और मिया मोहकमदीनने रणजितके पास लिख भेजा था, कि आपके आने पर दरवाजा खोल दिया जायगा। आपको नगरमें प्रवेश करने पर बाधा देनेवाला कोई न रहेगा।

ऐसा पत्र पा कर रणजित् अपनी सास सदाकुमारी-के घर जा कर युद्धके विषयमें उससे परामर्श करने लगे। सदाकुमारी अपनी अकाली और माजवी नामकी बहादुर फौजोंको ले कर अपने दामादके साथ लाहोर विजय-के लिये चली; उन्होंने अमृतसर दर्शनका बहाना कर लाहोरके लिये प्रस्थान किया। लाहोर आ कर वे अनारकलीमें पड़ाव डाल कर नवाब वजीर खांके बारह-द्वारीमें रहने लगे।

रणजित्के आनेकी बात सुन लाहोरके सरदार नगर की रक्षा करनेके लिये तत्पर हुए। वे दिल्ली-दरवाजे, लाहोरी-दरवाजे तथा रोशनाई दरवाजेको छोड़ कर अन्य दरवाजोंको चहारदीवारसे घेर दिया। साजिश-कारी सरदारोंके परामर्शसे रणजित्ने सन् १७९९ ई०में लाहोरी दरवाजेसे अपनी फौजोंके साथ प्रवेश किया। इधर उन्हींके परामर्शानुसार चेतसिंह दिल्लीदरवाजे पर अपनी पूर्ण-शक्तिसे डटा रहा। रणजित् सिंहके नगरमें घुस आनेकी बात तथा फौजोंका कोलाहल सुन कर चेत सिंह उधर ही-की ओर लौटा। किन्तु फौजोंके घुस आने पर चेतसिंह सामने न आ कर किलेमें जा छिपा। दुर्गमें ही चेतसिंह रणजित् पर गोलावृष्टि करने लगा। किन्तु २४ घण्टे युद्ध करनेके बाद चेतसिंहको साजिशका पता लगा। तब दूसरा कोई उपाय न देख उसने रणजित्के हाथ आत्मसमर्पण किया। रणजित्ने उसको और उसके

परिवारको भरण-पोषणोपयोगी सामान तथा वृत्ति और जागीर दे कर उसे विदा किया। लाहोर नगर अधिकार कर लेनेके बाद रणजित्ने नगरवासियोंके साथ बहुत अच्छा व्यवहार किया था।

रणजित् सिंह लाहोर पर अधिकार जमा कर अपनी राज्यस्थिति दृढ़ करनेमें प्रवृत्त हुए और साथ ही उन्होंने अपना शक्ति अक्षुण्ण रखनेके लिये उचित प्रबन्ध कर दिया। उन्होंने अपने भुजबलसे नाना स्थानोंको जीत कर एक बड़े भूभाग पर राज्य विस्तार किया था।

इसके बाद जब वे पञ्जाबकी राजधानी लाहोर पर अधिकार कर राज्येश्वर हो गए, तब भी उनके सहयोगी सरदार ईर्षालु हो कर उनसे विद्रोहाचरण करनेमें पराङ्मुख न हुए। रामगढ़िया सरदार यशसिंह अमृतसरके भङ्गी सरदार गुलाब सिंह, गुजरातके भङ्गी-सरदार साहब सिंह, अकालगढ़के योधसिंह और कसुरके निजाम उद्दीन-खां ये कई आदमी मिल कर बड़ा सैन्य दल ले कर लाहोर पर अधिकार करने पर उद्यत हुए। इधर रणजित् भी अपनी खालसे आवश्यकतानुसार सैन्यसाहाय्य ले कर शत्रुपक्षका गति रोकनेके लिये अग्रसर हुए। यह सन् १८०० ई०का घटना है। खास सदाकुमारीकी फौजें लाहोरसे १० कोस दूर पर अवस्थित भसिन गांवमें खेमा खड़ा कर दो मास तक रहीं। सामान्य छोटे युद्धोंके सिवा विशेष कुछ नहीं हुआ। सरदारोंके तम्बुओंमें 'पानासक्ति' कुछ बढ़ गई। और तो क्या, भङ्गीसरदार गुलाबसिंह पानदोषसे मृत्युमुखमें पतित हुए। उससे मन्त्रियोंमें विजातीय घृणा और भयत्रासका उदय हुआ। सरदार विरक्त हो कर रणक्षेत्र परित्याग कर चले गये।

वजीराबादके निकट रामगढ़िया-सरदार यशसिंहके पुत्र योधसिंहके साथ रणजीत सदाकुमारीका युद्ध हुआ। इस युद्धमें रणजित्ने खासकी ओरसे रामगढ़िया सरदारका ध्वंस किया था। विजय प्राप्त कर रणजित् सिंहने महासमारोहसे लाहोर नगरमें प्रवेश किया। लाहोरके सम्भ्रान्त अधिवासियोंने विजेताको समुचित नजर भेंट कर आदर सत्कार किया। बदलेमें सभी सरदारोंको यथोपयुक्त खिलअत दे कर रणजित्ने उन्हें सन्तुष्ट किया।

इसी वर्ष अर्थात् सन् १८०० ई०में रणजित्ने जम्बू जीतनेके लिये यात्रा की। नारोवाल, नरोवाल और जफरवाल उनके हाथ लगे। जब रणजित् जम्बूशहरके निकट दो कोस पर पहुंचे, तब वहांके राजाने बीस हजार रुपया नकद और हाथी उपहार ले कर उनसे भेंट की। रणजित्ने जम्बूराजको खिलअत दे कर सन्तुष्ट किया और आप वहांसे लौट आये। इसके बाद स्यालकोट और दिलावरगढ़ पर उन्होंने कब्जा कर लिया। दिलावरगढ़के सरदार बाबा केहरसिंह लोधीको उनके भरण पोषणके लिये शाहदरा जागीर मिली। इसी तरह रणजित् नाना स्थानोंको जीत लाहोर आये। इसी समय वृटिश-सरकारके नायब यूसुफ अली खां हजारों रुपये उपढौकन और मित्रतासूचक पत्र ले कर रणजित् सिंहके दरबारमें आये। उन्होंने अत्यन्त आदरके साथ वृटिश दूतको स्वीकार किया और बदलेमें स्वदेशोत्पन्न बहुमूल्य वस्तुओंकी भेंट वृटिश सरकारके पास भेजी।

सन् १८०१ ई०में रणजित सिंहने बड़े समारोहके साथ एक दरबार कर 'महाराज'की उपाधि धारण की। इस दरबारमें सभी सामन्तराजे, सरदार, चौधरी, जमींदार और गण्यमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। इस अभिषेकोत्सवमें रणजित सिंहके कुलपुरोहितने धर्मशास्त्रके अनुसार सब अनुष्ठानोंको सम्पन्न कर कपालमें तिलक लगाया और उपस्थित लोगोंने उनके सम्मान तथा मङ्गलके लिये स्तुति-पाठ किया था। इसी दिन लाहोरमें टकसाल स्थापित हुआ। इसी दिनसे उनके नामसे (महाराज लिखा हुआ) सिक्का निकलने लगा। इस सिक्केका दूसरी पीठ पर नानक द्वारा गुरुगोविन्दका आविष्कृत कटार, तलवार, स्वस्ति और जयसूचक चिह्न खुदा हुआ था। अभिषेकके दिन जितने सिक्के तय्यार हुए, वे सब दानपुरस्कारोंमें बांट दिये गये। मुसलमान राजाओंकी तरह महाराज रणजित् सिंहने भी शासन करनेके लिये काजी और मुफ्ती नियोजित किया। सिवा इसके नगरकी रक्षाके लिये शहर कोतवाल और दया दाक्षिण्यके कार्यके लिये प्रधान दरोगा नियुक्त हुआ। इस समय लाहोरमें महल्लादारी भी प्रचलित हुई। इस प्रथाके अनुसार हरेक महल्लेमें एक प्रधान व्यक्ति मुकर्रर किया

गया। महल्ले भरका भार उसी व्यक्ति पर रहता था। इसी समय लाहोर नगरकी रक्षाके लिये चारों ओरसे चहारदीवारीसे घेर कर उसके नीचे बाहरी ओर खाई खुदवानेका भार मोतीराम पर रखा गया। प्रायः इसी समय गुजरातका भङ्गी-सरदार साहब सिंहने गुजरात-वाले पर आक्रमण कर दिया। सदाकुमारीके साथ रणजित् सिंहने भी उसके विरुद्ध यात्रा कर दी। किंतु गुरु नानकवंशीय साहबसिंह बेदीने बीचमें पड कर मिटमिटाव करा दिया। फलतः रणजित् लाहोर चले आये। इसी समय बुगदादी हकीम "सफनकुर" नामक एक तरहका मञ्जन तैयार कर बीस हजार आयकी जागीर प्राप्त कर ली।

इधर भङ्गी-सरदार साहब सिंह और कसुरके पठान सरदार निज़ामुद्दीन्ने मिल कर बलवा कर दिया। रण-जित् सिंह गुजरातमें ससैन्य उपस्थित हुए। कुछ समय युद्ध करनेके बाद भङ्गी-सरदारने बहुत नजराना दे कर रणजित्की 'वश्यता स्वीकार कर ली। कुछ ही दिनके बाद पठान-सरदारने भी अपने साथीका पदानुसरण किया। पठान सरदारने अपने भाईको रणजित्के पास भेज वश्यता कबूल की थी।

कुछ ही दिन बाद लाहोरमें खबर पहुंची, कि उनके पिताके मित्र सरदार दलसिंह भङ्गी सरदार साहब सिंहके साथ मिल कर लाहोर पर आक्रमण करनेके लिय जोर-शोरसे सैन्य-संग्रह कर रहे हैं। बुद्धिमान् रणजित् सिंहने यहा बुद्धि-कौशलसे काम लिया। उन्होंने अपने पिताके मित्रको पत्र लिखा :—

"मित्र हो कर शत्रुका काम करनेसे लोग हंसेंगे। आप जैसे मेरे पिताको सहायता दिया करते थे, वैसे ही मुझे भी सहायता कीजिये। मित्र बने रहनेसे हम दोनोंका मंगल है।" वृद्ध दलसिंह रणजित् सिंहके वाक्य-जालमें फंस गये। और तो क्या—साहब सिंहको त्याग कर रणजित् सिंहके निमन्त्रण देने पर वे लाहोर चले आये। रणजित् सिंहने अपने पिता-के मित्रके प्रति बडा सम्मान तथा आदर दिखाया। उनके ठहरनेके लिये किलेमें महाराजने एक महल ही छोड़ दिया। भीतर नौकर चाकरका सब इन्तजाम कर बाहरसे सशस्त्र पहरा बैठा दिया। इस तरह यह वृद्ध महापुरुष रणजित्के किलेमें आप ही आप कैद हो गये। इसके बाद ही रणजित् सिंहने अपने वीर सैनिकोंको ले कर सरदार दलसिंहके राज्यको हस्तगत करनेके लिये अकालगढ पर धावा बोल दिया। रणजित्ने सोचा था, कि वृद्ध सरदार दलसिंह-को कैद कर लेनेके बाद अकालगढ़ शीघ्र ही दखल हो जायेगा। किन्तु उनका वह विचार विचारके रूपमें ही रह गया, कार्यतः ऐसा नहीं हुआ। वृद्ध दलसिंहकी वीरपत्नी रानी तेजोबाई (तेजू) रणरङ्गिनी मूर्त्ति धारण कर रणप्राङ्गणमें कूद पडी। उसके वीर सैनिकोंके दर्पसे रणस्थल कम्पित हुआ। इधर इस चतुरा महिलाने साहाय्यके लिये वजीराबादके योधसिंह तथा साहब-सिंहको संवाद भेजा।

इस रमणीके वीरत्व और साहसको देख कर रण-जित् सिंहको विचलित होना पड़ा। कई खण्डयुद्ध हो गये, किन्तु रानीके व्यूहको वे भेद कर न सके। इधर उनको मालूम हुआ, कि सरदार योधसिंह तथा साहब-सिंह सहायताके लिये आनेवाले हैं। ऐसी हालतमें रण-जित् वहां अपना ठहरना असंगत समझ वहांसे ससैन्य गुजरातके लिये रवाने हुए। इस तरह उन्होंने अकाल गढ़को छोड कर गुजरात पर आक्रमण किया। उनको भय था, कि योधसिंह साहबसिंहको मदद दे सकता है। इसलिये वजीराबादके सरदार योधसिंहको उन्होंने अपने पिताकी मित्रताका स्मरण करा तथा उनको यथेष्ट सहायता देनेकी आशा दे कर अपनी तरफ मिला लिया।

साहबसिंहने गुजरातसे एक कोस आगे आ कर शत्रु-सैन्यके साथ मोरचा लिया। रातको भीषण युद्ध आरम्भ हुआ। दूसरे दिन संध्या तक युद्ध चलता रहा। इस तरह तीन दिनो तक अनवरत युद्ध होने पर दोनों ओर बहुतसे सिपाही मारे गये तथा आहत हुए। चौथे दिन साहबसिंहने आत्मरक्षाके लिये अपने दुर्गकी शरण ली। किन्तु वह रणजित्की गोला-वृष्टिके सामने दुर्गकी रक्षा कर न सका। फिर गुरु साहबसिंह बन्दीने बीचमें पड़ कर मिट-माट करा दिया। भङ्गी-सरदारने बहुत नज़राना

दे युद्धकी क्षति-पूर्ति करनेका वचन दे कर रणजित् सिंहसे सन्धि कर ली। इस सन्धिपत्रमें वृद्ध सरदार दल सिंहके छोड़ देनेकी बात भी थी। रणजित् सिंहने लाहौर आते ही वृद्ध दलसिंहको छोड़ दिया। किन्तु दलसिंह रास्तेमें ही परलोक पधार गये; घर पहुंचनेकी नौबत ही न आई। राज्यलोलुप रणजित् सिंहने उनकी मृत्युका समाचार पा कर उनके राज्यको हस्तगत कर लेनेके उद्देश्यसे अकालगढ़ पर धावा बोल दिया। किन्तु रणजित् सिंह यह बात अच्छी तरह जानते थे, कि उस वीर रमणीके सम्मुख-समरमें पार पाना कठिन है। इससे उन्होंने फिर एक बार बुद्धिसे काम लिया। अकालगढ़के निकट पहुंच कर उन्होंने रानीके पास यह समाचार भेजा कि "अपने पिताके मित्र वृद्ध सरदारकी मृत्युका समाचार पा कर पतिके वियोगसे दुःखी आपके दुःखमें समवेदना प्रकट करनेके लिये मैं यहां आया हूं।" उन्होंने ऐसा वाग्जाल फैला कर पतिकी तरह रानीको भी फंसा लिया। रानीका हृदय सहज ही कोमल था। पहले तो रणजित्के आनेसे रानी विचलित हो उठी थी। किन्तु उनके समवेदनायुक्त पत्र पा कर रानीका हृदय विगलित हो उठा। उन्होंने खबर भेजा कि जब गुरुजी पदी ठाकुर इस लोगोंके बीचमें उपस्थित हैं, तब सुकरचकियाके सरदारके साथ कोई झगड़ा नहीं है। रणजित् यह समाचार पा कर निःशङ्कभावसे राजमहलमें चले आये। आते ही उन्होंने रानी तथा उनके पुत्रों को कैद कर लिया। इस विश्वासघातकता पर सभी सैनिक-सरदार मुंह ताकते ही रह गये। रणजित्ने अकालगढ़के धन धान्यसे परिपूर्ण खजानेको लूट लिया फिर शेखपुरे पर कब्जा कर लिया। अन्तमें रानीके भरण पोषणके लिये दो गांव दे कर रणजित् लाहौर चले आये।

इधर जब वे लाहौर पहुंचे, तब उनको मालूम हुआ, कि कांगड़ाके राजा संसारचन्दने रानी सदाकुमारीके राज्य पर आक्रमण कर दिया है, यह सुन कर वे ससैन्य सदाकुमारीकी सहायताके लिये चले। रणजित्के आने की बात सुन संसारचन्द्र वहांसे भाग गया। इधर रणजित्ने संसारचन्दसे बदला चुकानेके लिये उसके अधिकृत नौशेरा पर कब्जा कर उसे सदाकुमारीको दे दिया। इसके बाद संसारचन्द्रको पकड़नेके लिये वे नूरपुर गये। राजा संसारचन्द्रने दुर्गम पर्वतोंमें छिप कर अपनी जान बचाई। लौटते समय रणजित्ने पठानकोटके निकट सुजानपुरके दुर्भेद्य-दुर्गको धूलमें मिला दिया। इसके बाद उन्होंने धरमकोट, सुखालगढ़ और बहरमपुर आदि कई पठानोंके अधिकृत दुर्गों पर हमला किया।

इसके उपरान्त उन्होंने पिरजी, नारियाल, पोथोवार और धना पर दखल जमा लिया। धनी दुर्ग पर अधिकार करनेमें रणजित् सिंहको दो महीनेका समय लग गया।

यहांसे वे लाहौर पहुंचे। फिर उन्होंने सुना, कि सिलपुर दुर्गके राजा जस्सा सिंह मझिथिया विद्रोही हो गये हैं। किन्तु कुछ ही दिनोंमें विद्रोही राजा या सरदारको बहुत धन दे कर वश्यता स्वीकार करनी पड़ी।

सन् १८०२ ई०में नकाइ सरदार खजान सिंहकी कन्या राजकुमारीके गर्भसे महाराजको एक लड़का पैदा हुआ। इसके उपलक्षमें कई दिनों तक बड़ी धूमधामसे समय बीता। पुरस्कारमें सरदारोंको खिलअत दी गई। प्रत्येक सिपाहीको एक एक सोनेका हार दिया गया। दीन दुःखियोंको भी खूब धन लुटाया गया। नवकुमारका नाम हुआ खड़गसिंह या खरकसिंह।

पुत्र जन्मोत्सव खतम होनेके बाद रणजित् सिंहने दस्का, चिनिओत और तीसरी बार कसूरको जीता। चारों ओर उनकी जयध्वनि हो रही थी। इसी वर्ष उन्होंने जामन्पुर दोआब पर अधिकार करनेके लिये यात्रा की। इस यात्रामें जाते समय जितने नगर मिले, उन सभी पर रणजित् अधिकार करते गये। इसी यात्रामें उन्होंने क्षत्रियराज भूपसिंहको पिघला रानाके राज्य पर आक्रमण कर उसकी प्रभूत धनसम्पत्ति और फगवार राज्य पर अधिकार किया और उस नगर प्रियपात्र सरदार फतहसिंह आहलुवालियाको उपहारमें दे दिया।

राजा संसारचन्द्रने हिमालयसे नीचे उतर कर फिर बाटम्पर पर आक्रमण किया। किन्तु रणजित्के आनेकी बात सुन उन्होंने फिर पीठ दिखा दी। इस बार रणजित् जिस राहसे गये, उस राहमें आये सभी दुर्गोंको

सरदारोंसे उन्होंने कर तथा नज़र वसूल की। इस समयसे जिन सरदारोंकी मृत्यु होने लगी, उनकी रियासतोंको रणजित् दखल करने लगे या दखल कर सदाकुमारीको देने लगे। इससे प्रायः सभी सिक्ख सरदार रणजित् सिंहसे नाराज़ हो उठे। रणजित् सिंहके विरुद्ध तलवार उठानेकी हिम्मत किसीमें न हुई।

जब रणजित् लाहोर वापस आये, तब पूर्ववत् यथेष्ट आमोद-प्रमोदसे उत्सव हुआ। इस समय रणजित् मोरान नाम्नी एक मुसलमानकन्या पर मोहित हो गये। उसकी रूपपिपासामें अधीर रणजित् अपने राजकार्यको भुला कर बहुत दिनों तक उस रमणीके प्रेममें उन्मत्त बने रहे। अन्तमें मुसलमानपद्धतिसे दोनों आपसमें परिणयसूत्रमें आबद्ध हुए।

उस मुसलमान युवतीने सिक्ख शेर पर अपना बहुत प्रभुत्व जमा लिया। इसका प्रभुत्व यहां तक बढ़ा, कि सिक्के पर रणजित् नामके साथ मोरानका नाम खुदा जाने लगा।

जो हो, रणजितके हृदयसे वह भावण अनुराग शीघ्र अन्तर्ध्यान हुआ। फिर उन्होंने राजकार्यमें दिल लगाया। मोरनको ले कर हरिद्वार तीर्थयात्राके लिये रणजित् आये। यहां उन्होंने दीन दरिद्रोंको लआधिक रुपया दान किया।

वहांसे लौट रणजितने सुना, कि गृहविवादमें ही कसूरका सरदार निजामुद्दीन ख़ाँ मारा गया है और उसका भाई कुतुबुद्दीनने राज्य पर अधिकार कर लिया। रणजित् शीघ्र हो अपने प्रिय मित्र आहलुवालिया सरदारको साथ ले आगे बढ़े। कुतुब पहलेसे ही तय्यार था। कुतुबके वीर पठान सिपाहियोंने भीमपराक्रमसे रणजितकी गतिको रोक दिया। कई मास बीत गये, रणजित् किसी तरहसे पठानोंको हटा नहीं सके। उन्होंने छलबल कलसे उठा नहीं रखा, किन्तु इस बार उनकी कुशलता और चतुरता काम न आई। अन्तमें रणजितने पठानोंकी रसद बन्द कर दी। किलेमें कहत दिखाई पड़ा। पठान सरदार सिपाहियोंकी प्राणरक्षाके लिये लड़ाईके व्ययस्वरूप कुछ रुपया दे कर सन्धि करने पर बाध्य हुआ।

रणजितके सिपाहियोंकी अभी थकावट भी नहीं मिटी, तभी उन्होंने मुलतानको विजय करनेके लिये यात्रा की। उस समय मुलतान बड़ा समृद्धशाली था। रणजितके मनकी बात जान कर मुलतानके नवाब मुज़फ्फर खाँने नगरसे १५ कोस आगे बढ़ बहुत रुपया नज़राना ले कर रणजितसे भेंट की। रणजित् वश्यता स्वीकार करा कर स्वरूप उनसे बहुत धन ले वहांसे लाहोर लौटे। उस समय तक भी अमृतसरमें भङ्गी सरदार प्रबल थे। उनके प्रभावको नष्ट करनेके लिये सिक्ख शेर रणजितने बड़ा उद्योग किया। आहलुवालिया सरदार और रणजितकी सास सदाकुमारीने अपने सैन्य सामन्तोंको ले कर रणजित् सिंहके साथ अमृतसर पर चढ़ाई कर दी।

उस समय अमृतसरके सरदार गुलाबसिंह मर चुके थे। उनकी विधवा रानी नगरका द्वार बन्द कर दुर्गकी चहारदीवारीसे शत्रुसैन्य पर गोला वृष्टि करने लगी। किन्तु चारों ओरसे शत्रुओंके प्रबल आक्रमणसे तंग आ कर सिपाही निरुत्साह हो गये। अन्तमें रानीने अपने पुत्रको ले कर रामगढ़िया सरदार योधसिंहके शरणापन्न हुई। रणजित् सिंहने अमृतसर पर अधिकार कर लिया। एक साथ ही सभी भङ्गी सरदार पराभूत हुए। अब किसीकी हिम्मत न रही, कि वह रणजितके विरुद्ध बगावत करे। रणजितने अमृतसरके मन्दिरमें प्रवेश कर ग्रन्थ साहबकी पूजा की। यहां रणजित् सिंहने गरीब दुःखियोंको बहुत धन प्रदान किया।

इस समय अफगानके तैमूर शाहके चार पुत्रोंमें परस्पर-विवाद चल रहा था। इस अवसर पर सन् १८०३ ई०में रणजितने वहां पहुंच झङ्ग, उच, सहीवालगढ़ पर अधिकार कर लिया। लाहोरमें शाहजहानके "शालामार" नामसे जो प्रमोदोद्यान था, सिक्ख जातिने उसका नाम बदल कर "शालाबाग़" रखा था। इसके बाद महाराज रणजित्सिंह अमृतसर पधारे। वहां हरमन्दिरका दर्शन कर उन्होंने सैन्य सामन्तोंको यथोचित मनसब दे कर सम्मानित किया। सिवा इसके उन्होंने वहांके सम्भ्रान्त सरदारोंको अवैतनिक सेना-नायकका पद प्रदान कर सम्मानित किया।

सन् १८०५ ई०में रणजित् सिंहने विपाशा और चन्द्रभागाके मुसलमान सरदारोंके साथ सन्धि कर ली। इतने दिनों तक पञ्जाबके मुसलमानको दृष्टिमें काबुलको ममा ही सर्वप्रधान धर्माधिकरण गिना जाती थी; किन्तु इस समयसे महाराज रणजित् सिंहको पञ्जाबके सरदारोंने अपना सम्राट् मान लिया। इसी समयसे रणजित् सिंह पञ्जाबकेश्वर कहलाने लगे। इस वर्ष उन्होंने होलीके दिन पर विलास विभ्राट्की चरम सीमा पार कर दी किन्तु इसके बाद ही हिन्दुओंकी तरह पापक्षय करनेके लिये हरिद्वारमें आ स्नान दान कर उन्हों ने पाप प्रक्षालन किया।

यहांसे लौट कर उन्होंने राजस्वविभागका उचित प्रबन्ध करनेमें चित्त लगाया। उन्होंने राजस्वको नीलाम किया। जिन्होंने अधिक कर वसूल करनेका दावा किया उन्हीं के नामसे राजस्वका ठेका लिख दिया गया। इस के बाद भङ्गके राजस्वको बढ़ा कर एक लाख बीस हजार कर दिया गया। यह कह कर बढ़ा कर उन्होंने मुल तान पर चढ़ाई कर दी। इस बार भी मुलतान पर नवाबने ७१०००) रुपया नजर दे कर महाराजको विदा किया।

इस समय अङ्गरेज-सेनापति लार्ड लेकसे पराजित हो कर यशवन्तराव होलकर अपने प्रधान सरदार अमार खांके साथ १५ हजार सैन्योंको ले कर महाराज रण जित् सिंहसे साहाय्य प्राप्त करनेके लिये अमृतसरमें पहुंचे। इधर लार्ड लेकने भी बहुतेरी फौजोंको ले कर भजन नदीके किनारे आ कर पड़ाव डाल दिया। सुचतुर महाराज रणजित् सिंहने अङ्गरेजोंसे लड़ना उचित न जान अपना एक दूत अङ्गरेजोंके पास होलकरके बारेमें मध्यस्थता करनेके लिये भेजा। होलकरने विशेष सुविधा न देख अन्तमें उत्तर भारतका सारा अधिकार दे दिया। रणजित्के साथ अङ्गरेजोंकी मित्रता स्थापित हुई। विदेशी फौज अपने अपने पड़ाव पर गई।

सन् १८०६ ई०में वैशाखके महीनेमें महाराज रण जित् सिंह सिन्धुके किनारे कटास तीर्थमें स्नान करने गये। लौटते समय वे बहुत कठिन रोगसे आक्रान्त हुए। इस समय वे झेलमके किनारे मियानी नामक स्थानमें रहने लगे। किन्तु शीघ्र ही आरोग्य प्राप्त कर वे लाहोर पधारे। यहां आ कर उन्होंने शालामारका उद्यान तथा अलीमर्दन नहरको मरम्मत कराई। इस समय क्षत्रिय जातिके मोहकमचन्द्र सारे सिक्ख-सैन्यके अधिनायक पद पर प्रतिष्ठित हुए। इस पर सिक्ख-सरदार रणजित् सिंह पर असन्तुष्ट हुए थे। किन्तु उपयुक्त पात्र निर्वाचन ही रणजित्‌को सफलताका कारण था। इसी वर्ष उन्होंने शतद्रु पार कर जिरा, मुक्तसर, कोटकपुरा, धरमकोट, मरी और फरीदकोटको जीता। इस समय पटियालाके राजा और उनकी पत्नी रानी आउसकुमारीमें कुछ विरोध उपस्थित हुआ था। रानीका कहना था, कि महाराज हमें तथा हमारे लड़केके लिये एक स्वतन्त्र राज्य प्रदान करें, किन्तु पटियाला नरेश साहब सिंह इस पर राजी नहीं होते थे। रानी साजिश करनेमें हुशियार थी। उसने मराठा-सरदार यशवन्त रावसे साहाय्य पानेका वचन भी पाया था, किन्तु लार्ड लेकके आ जानेसे यशवन्त राव उधर ही फंस गये। इससे राजा-रानीके झगड़ेका फैसला न हो सका था। किन्तु इस गृह-कलहके समय नाभा देश नामाके महाराजने पटियाला पर आक्रमण कर दिया। ऐसे समय कई सरदार दोनों ओरसे सहायता देने लगे। क्रमशः यह झगड़ा बढ़ता ही गया। अन्तमें दोनों पक्षसे महाराज रणजित् सिंह झगड़ा फैसला करनेके लिये बुलाये गये। रणजित् सिंह ऐसे स्वर्णसुयोगको कब छोड़नेवाले थे। २६वीं जुलाईको वे २० हजार घुड़ सवारोंके साथ पटियाले पहुंचे। नाभा और झिन्दके राजा महाराज रणजित्‌के साथ आ मिले। किन्तु इस समय पटियालाके पास अकरतसे काफी सैनिक थे। इससे महाराज रणजित् सिंह उसका कुछ कर न सके। पटियालेके प्रधान सेनापतिकी मन्त्रणा गोलावृष्टि देख रणजित् सिंह बहुत प्रसन्न हुए थे। जो हो, पटियाला नरेशने सन्धिका पैगाम ले कर अपना एक दूत रणजित् के पास भेजा। महाराज रणजित् सिंहने सन्धि कर ली और अपनी जीता हुआ दोमाधि नामक भूमि पटियालाको लौटा दी और इधर नाभा-नरेशसे ५०००० हजार रुपये नजरानेमें लिये। इसी वर्ष रणजित्‌ने लुधियाना पर चढ़ाई कर दी और उसके अधिपति मुसलमान राजपूत

वंशीय इलियस खाँकी बेवा बेगम नूरुन्निसा तथा लछमी-बाईको वहाँसे भगा कर लुधियाने पर कब्जा कर लिया। पीछे उन्होंने लुधियाना झिन्दके राजाको दे दिया। इसी तरह इन्होंने मिया गाउसकी बेवा बेगमसे आरा परगना निकाल कर अपने प्रिय सेनापति मयचन्दको जागीर दे डाली। इसी तरह राय इलियसके अधिकृत मन्दाला, रायकोट, बगराउन, बद्दोवल, तलवन्डी, ढाका, बासिया आदि नगरों पर भी रणजित्ने कब्जा कर लिया। पटियालाके साथ सन्धि हुई सही, किन्तु उनकी पत्नीके मनोमालिन्यका कारण दूर नहीं हुआ।

इसी वर्ष गोर्खा सेनापति अमरसिंह थापाने कांगड़ा पर आक्रमण किया। इसी समय रणजित् सिंह ज्वाला-मुखीका दर्शन करने गये। राजा संसारचन्दके छोटे भाई फतेचन्दने आ कर महाराजसे सहायता मांगी और नज-रानेके तौर पर बहुत-सा रुपया देना स्वीकार किया।

इधर रणजित् जब कांगड़ेकी सीमा पर पहुंचे, तब अमरसिंहके विश्वासी नौकर जोरावर सिंहने उससे अधिक रुपया नजराना दे कर उन्हें अपनी ओर मिला लेना चाहा। किन्तु रणजित्ने पहले आये हुए सहायतार्थीको विमुख करना असङ्गत समझ इस जोरावर सिंहके प्रस्तावको अस्वीकृत कर दिया। कुछ ही समयके बाद यानी सन् १८०६ ई०में गोर्खोंने अपनी छावनी वहाँसे हटा ली। इसके बाद रणजित्ने स्वीकृत नजराना ले कर कांगड़ा परित्याग किया। आते समय नदाउनमें अपने एक हजार सैन्य रख उन्होंने सरदार फतेसिंहका विजावरमें हाजिर रहनेका आदेश दिया था। यह आदेश इसलिये दिया था, कि उनके चले जानेके बाद मौका पा कर कहीं गोर्खे सीमान्त पर आक्रमण कर न बैठे। उनकी गतिविधिके परिवेक्षण करनेके लिये ही सीमान्त पर अपनी सेना रख उन्होंने सरदार फतेसिंहको विजावरमें रहनेकी आज्ञा दी थी।

सन् १८०७ ई०के प्रारम्भमें ही सिक्ख-सरदारके अधिकृत पठानकोट तथा चामार-राज्य पर उन्होंने अपना अधिकार जमा लिया। इसके बाद कसुरके पठान सर-दार कुतुबुद्दीनके अत्याचारी होनेकी बात सुन उन्होंने उसे दण्ड देनेके लिये इसी वर्षके फरवरी महीनेमें यात्रा की। यशसिंह रामगढ़ियाके पुत्र योधसिंहने भी उनका साथ दिया। इन लोगोंने जा कर नगरको घेर लिया और एक महीने तक वे वहीं पड़े रहे। नगरके लोग भूखों मरने लगे। इन लोगोंने अधिक विलम्ब न कर आत्मसमर्पण कर दिया। सिक्खोंने नगरमें प्रवेश कर वहांके लोगों पर अत्याचारकी पराकाष्ठा दिखाई थी। कसुर राज्य लाहौरमें मिला लिया गया और वहांका शासक सरदार निहालसिंह अटारीवाला मुकर्रर हुए। कुतुबुद्दीनको शतद्रुके उस पार मामलात नगर मिला। वह वहां जा कर रहने लगा।

लाहौर लौट कर रणजित्सिंहने जयघोषणा करनेके लिए एक दरबार किया और कुतुबुद्दीनसे मिला हुआ धनका कुछ हिस्सा अमृतसरके सिक्ख दरबार-मन्दिरको उपढौकन भेजा। इसके बाद ही उन्होंने दिपालपुर दुर्ग पर अधिकार कर मुलतान नगरको घेर लिया। किन्तु अधिक दिनों तक वहां कष्ट न सह मुलतानसे ७००००) रुपये नजरानेका ले कर सम्मानपूर्वक वे लौट आये। इसी समय वे बहावलपुर पर अधिकार कर लेने पर तुल गये। नवाबने उपाय न देख सन्धि कर ली। इसके बाद उन्होंने अटोन नगर तथा कांगड़ा शैल प्रान्तके रहनेवाले सरदारोंसे बलपूर्वक नजर वसूल की।

रणजित् सिंहके पटियालासे लौटनेके बाद वहां फिर अशान्ति मची। इस बार फिर वे बुलाये गये। उन्होंने हरिकापत्तन नामक स्थानके पास शतद्रुको पार किया। उनके साथ मोखमचन्द, फतेसिंह आदि प्रधान प्रधान सेनापति गये थे। कोटकपूरा, भादौर और नाभा पार कर वे पटियाला पहुंचे। वहां उनको रानीने एक हीरेका हार और "कड़ा खाँ" नामक एक तोप नजर की। पटियालेकी अशान्ति दूर कर वे अम्बालाकी ओर पधारे। यहां सरदार गुरुबख्ससिंहकी विधवा पत्नी रानी दयाकुमारीसे नजराना ले कर उन्होंने कैथलके भाई लालसिंह, शाहाबादके गुरुदत्तसिंह, बुढ़ियाके भगवान् सिंह, कलसियाके योधसिंह आदि नरपुङ्गवोंसे कर वसूल कर उन्हें खिलअत प्रदान की थी।

इसके बाद उन्होंने कुमारकिशन सिंहके अधिकृत

अधिकृत नारायणगढ़ क़िले पर आक्रमण कर घेरा डाल दिया। इसी युद्धमें महाराज रणजित्‌के प्रधान सेनापति फतेसिंह कलियानवाला, मोहनसिंह और देवसिंह मारे गये। युद्ध जीत लेने पर ४० हजार रुपया नज़राना ले कर सिक्ख-केशरी रणजित् सिंहने सरदार फतेसिंह अहलुवालियाको नारायणगढ़का राजा बनाया था। इसी समय उनके सहयोगी दोहन-दुर्गाधीश्वर वज़ीरावाला सरदार तारासिंहकी मृत्यु हो जाने पर उनकी पत्नियां सती होनेके लिये चलीं। यह समाचार पाते ही महाराज रणजित् सिंहने उस मृत पुरुषको धन सम्पत्ति तथा राज्य पर आक्रमण करनेके लिये उस दुर्गकी ओर अपनी फौजोंको भेजा। सिक्ख सेनाओंके इस नृशंस आचरणसे क्रुद्ध हो कर एक अशीतिवर्षीया वज़ीरावाला विधवा पत्नी हाथमें तलवार ले कर रणक्षेत्रमें अवतीर्ण हुई थीं। दुःखका विषय है, कि शीघ्र ही प्राचीन दुर्गकी चहारदीवारी शत्रुओं द्वारा टूट गई। इससे यह क़िला शत्रुके हाथ लगा। इसके बाद उन्होंने नौशेरा, गोविन्द, बहलोलपुर, मच्छगढ़ और चकोरी आदि स्थानों पर अधिकार जमा लिया। इसी समय रामपुर, धनग्राम, सरहिन्द, जीरा, कोटकपुरा धरमपुर आदि स्थानों पर अधिकार करते समय सरदार फतहसिंह, राजा भागसिंह, यशवन्तसिंह, गर्भसिंह, कर्मसिंह और दीवान मोहकमसिंह आदिको जिन्होंने उनके साथ युद्धमें यश अर्जन किया था, जागीरें दी गई। इस ग्रामयुद्धके अन्तमें महाराज रणजित्‌सिंहने अमौलाके अमीरोन्मादसे २० हजार, मणिमजराके गोपालसिंहसे ३० हजार, रोपारके सरदार हरिसिंहसे १५ हजार और दोआबके भूम्यधिकारियोंसे ६८० हजार रुपये नक़द कर वसूल किया था।

इसी वर्षके दिसम्बर महीनेमें रणजित् सिंह लाहोर लौट आये। रानी महताबकुमारीने उनको शेरसिंह और तारासिंह नामके दो पुत्ररत्न (यमज सन्तान) दिखाये। ये दोनों पुत्र महताबकुमारीसे उत्पन्न नहीं हुए थे पर उन्होंने कौशलपूर्वक भूमिष्ठ होते ही दोनों बालकोंको ख़रीद कर अपने प्रसव करनेकी घोषणा की थी। केवल रणजित्‌को प्रसन्न कर अपने हाथमें कर लेनेके उद्देश्यसे ही रानीने ऐसा किया था।

सन् १८०८ ई०के आरम्भमें ही रणजित्‌सिंहने पर्वत-प्रान्तके पठानकोट दुर्ग पर अधिकार किया। इसके बाद जसरोटा, चम्बा, बसोली आदि राज्योंको भी उन्होंने करद राज्य बनाया। महाराज अब उत्तर-पहाड़ी राज्योंको वशीभूत करनेमें लगे थे, तब दीवान मोहकमचन्द शतद्रुके पूर्वके सरदारोंको वशमें लानेकी चेष्टा कर रहे थे। उन सबोंने ही महाराज रणजित्‌को अपना राजा तथा उनको युद्धके समय घुड़सवार सैनिकोंका साहाय्य देना स्वीकार किया।

पर्वतसे उतर कर रणजित्‌सिंहने समतलक्षेत्रमें आ कर अपना पड़ाव डाला और पराजित या करद राजाओंको बुला कर एक सभाका आयोजन किया। पञ्जाबके सभी सरदार उस सभामें सम्मिलित हुए थे। उन सबोंने महाराज रणजित् सिंहको अपना राजा कबूल किया। किन्तु स्यालकोटके सरदार जीवनसिंह और गुज्जरातके साहब सिंहने उनकी वश्यता स्वीकार न की। उनकी उद्धतताका यथोचित उत्तर देनेके लिये रणजित्‌ने ससैन्य यात्रा की। सात दिन तक स्यालकोट पर घेरा डालनेके बाद क़िला रणजित्‌के हाथ आ गया। जीवन सिंह क़ैद कर लिये गये। जीवनकी दुर्दशाकी बात सुन कर सरदार गर्भसिंहने अपना दूत भेज कर सन्धि कर ली। रणजित्‌को वहां जाना भी न पड़ा और उन्होंने वश्यता स्वीकार कर ली। यहांसे रणजित्‌ने अखनूरकी ओर यात्रा की। वहांके सरदार आलम खांने उनको उपयुक्त नज़राना दे कर वश्यता स्वीकार की।

इसी समय हारन मिनार (शेखपुरा)-के सरदार अमरसिंह तथा अमीरसिंह सिक्खोंके राज्योंमें लूट पाट मचा कर अधिवासियोंको पीड़ित कर रहे थे। इन दोनों दुर्दान्त सरदारोंको दण्ड देनेके लिये रणजित्‌ने अपने ४ हजार घुड़सवार सिपाहियोंके साथ घुड़सवार सेनापति घौस खांको भेजा। महाराजकुमार खड्ग सिंह नाममात्रके लिये नायक बने। लाहोरकी फौजोंने शेखपुराके दुर्ग पर अधिकार कर लिया। दोनों सरदार क़ैद कर लिये गये। युद्ध ख़तम हो जानेके बाद युवराज खड्ग सिंहको शेखपुराका क़िला और राज्य जागीर-स्वरूप मिला। युवराजकी माता रानी

नकाई मृत्युकाल तक यहीं रहीं, उनको लाहौर जानेका फिर सौभाग्य प्राप्त न हुआ।

इसके कुछ ही समयके बाद अंग्रेजोंका एक वकील महाराजके लिये उपहार ले कर दरवारमें उपस्थित हुआ। पञ्जावपतिके साथ सद्भाव स्थापन ही उसके आनेका कारण था। लौटते समय वकीलकी मार्फत महाराजने पांच हजार रुपयेकी एक खिलअत और कितने ही देशोत्पन्न मूल्यवान् वस्तुओंको उपहारस्वरूप अंग्रेजोंको भेजवाया।

इसी वर्षमें महाराजने अमृतसरी गुजरसिंह भङ्गीके टूटे हुए किलेकी मरम्मत करा कर उसका नाम गोविन्दगढ़ रखा। इसी दुर्गमें उनकी मूल्यवान् वस्तु तथा धनसम्पत्ति रखी गई। धनरत्न और किलेकी रखवाली करनेके लिये यहां दो हजार सेना रखी गई। किलेकी चहारदीवारी पर चारों ओर २० तोपें लगाई गईं। इस समय मुलतानके नवावके पहलेका स्वीकृत कर न देने पर महाराजने ५ हजार घुडसवार सैनिकोंके साथ वावू राजसिंह, यशसिंह भङ्गी और कुतुबुद्दीन खाँ कसुरवाला आदि सरदारोंको भेजा। इन्होंने वलपूर्वक जा कर उनसे कर वसूल किया। इस काममें उन्हें तीन मास लग गया था और दीवान मोखमसिंह आनन्दपुरमखोवलके दक्षिणके समूचे भूभाग पर अधिकार कर अन्तर्वेदीसे ६ लाख रुपया नजराना ले लौट आये।

इस समय अहमदशाह जमानके प्रिय मन्त्री ठाकुरदासके पुत्र और शाह सुजाके राजस्व-सचिव भवानीदास राजदरवारके प्रति विरक्त हो कर लाहोरमें आ उपस्थित हुए। महाराजने सादर उनको बुला कर राजस्वविभागके कर्तृपद पर नियोजित किया और कर्मचन्दको राजमोहरका (Lord of the Privy seal) पद दिया।

महाराज रणजित् सिंहकी साम्राज्य लोलुपता तथा परराज्यापहरण-प्रवृत्ति उत्तरोत्तर वढ़ती हुई देख कर मालवा और सरहिन्दके सिक्ख भयभीत हुए। उन्होंने रणजित्‌की सर्वंग्रासिनी शक्तिके अङ्गभूत होनेकी आशङ्कासे वचनेके लिये उपाय खोजनेके लिये एक सभाका आयोजन किया। पटियाला, झिन्द और नामाके सिक्ख-सरदारोंने समाना नामक स्थानमें एकट्ठा हो कर परामर्श किया, कि रणजित्‌की वश्यता स्वीकार करनेकी अपेक्षा दूसरेका साहाय्य ग्रहण कर अपनी रक्षा करना उत्तम है। इसके अनुसार इसी वर्षके मार्च महीनेमें झिन्दकी ओरसे राजा भागसिंहने, कैथलके सरदार भाई लालसिंहने पटियालाके दीवान सरदार चैनसिंह और नामाराजके प्रतिनिधि मीर गुलाम हुसेनने दिल्लीमें आ कर अंगरेजोंके प्रतिनिधिसे भेंट की। अङ्गरेज प्रतिनिधिने कहा, कि मैं प्रकाश्यरूपसे महाराज रणजित्‌सिंहका शत्रु नहीं वन सकता, किन्तु मौका पाने पर छिप छिप कर आप लोगोंकी सहायता करूंगा। लाहोरमें बैठे रणजित् सिंहको इनकी खबर लगी। उन्होंने बुद्धिमानीके साथ उन सिक्ख प्रतिनिधियोंको अपने पास बुलाया जो अंगरेजोंसे साहाय्य प्रार्थना करने गये थे। उन्होंने सोचा, कि अंगरेजोंके साहाय्य पाने पर इन सवोंको देशमें विद्रोह खड़ा करनेका एक अच्छा मौका मिल जायेगा और यह मजबूत सिक्ख-शक्ति नष्ट हो जायेगी। यह सोच कर उन्होंने उनके मलोमालिन्यको दूर करनेके लिये अमृतसरमें एक सभा की। इस सभामें उन्होंने उनके मनोमालिन्यको दूर करनेकी चेष्टा की थी।

इस समय यूरोपमें फ्रान्सीसी सम्राट् नेपोलियन वोनापार्टकी सारे यूरोपमें विजय-दुन्दुभि वज रही थी। फ्रान्सीसी फौजोंके वल-विक्रमको देख कर पश्चिमीय राजे दङ्ग हो गये थे। रूस सम्राट्के साथ नेपोलियनकी होनेवाली सन्धिको देख कर अंगरेजोंके मनमें एक काल्पनिक आशङ्का जाग्रत हुई थी। उनको यह भय हुआ, कि तुर्कों और फारसवालोंके साहाय्य ले नेपोलियन कहीं भारत पर चढ़ाई न कर दे। भारत-प्रतिनिधि लार्ड मिण्टोने नेपोलियनको इस सङ्कल्प-संसिद्धिमें वाधा देनेके लिये भारतके सीमान्तमें रहनेवाले राजाओंसे सद्भाव कर वृटिश वलवृद्धिका उपाय किया। इसके अनुसार उन्होंने मिष्टर एलफिष्टनको कावुल राजदरवारमें, सर जान मालकमको तिहरानमें और सन् १८०८ ई०के अगस्त महीनेमें चार्लस मेटकाफ (पीछे लार्ड हुए) को लाहोरके दरवारमें भेजा।

महाराज रणजित्‌का इस समय पञ्जाव भरमें प्रभाव

फैल गया था। सभी सरदार उनके भयसे कांपते थे। सभाने उनको अपना राजा मान लिया। स्वजातिके साहाय्यसे अपनेको बलवान् समझ कर उन्होंने एक दिन शतद्रु के किनारेसे यमुनातट तक साम्राज्य स्थापित करनेका दृढ़ संकल्प किया था। मेटकाफ साहबने कसुरमें उनसे भेंट कर उनका वैभव और शक्तिको देखा। महाराजने पूर्वोक्त सन्धि प्रस्ताव पर कुछ सम्मति प्रकट नहीं की। क्योंकि उनके मनमें उस समय शतद्रु की विजय-वासना जागरित हो उठी थी। उन्होंने फकिर अजीजुद्दीनको अंग्रेज दूतके साथ छोड़ जानेका आदेश दे कर फिरोजपुरकी यात्रा की। वहां उन्होंने नजराना ले कर फरीदकोट और मलारकोटलाको जीता। अन्तिम इन दो स्थानोंसे बहुत धन रत्न तथा कर वसूल हुआ था। यहांसे वे अम्बालाकी ओर पधारे। आनेके समय रास्तेमें भारतके देवोंका लूटते पाटन आये। अम्बालेमें मस्तानसिंहके हाथ सैनापत्य प्रदान कर उन्होंने शनिवाल, चांदपुर, बब्बर, धारी और बहरमपुर पर अधिकार कर उन्हें दीवान मोहकमचन्दके हाथ सौंप दिया। रहिमाबाद, मच्छिवाड़ा, कथा अंकोट, चलधाली और बनाबाद आदि स्थान करम सिंह, फतह सिंह आदि सरदारोंके हिस्सेमें आये। इसके बाद शाहाबादके सरदार करमसिंहके पुत्रोंसे और थानेश्वराधिपतिसे उन्होंने बलपूर्वक कर वसूल किया था।

शाहाबादमें रह कर रणजित्ने पटियाला-नरेशके साथ भेंट करनेकी इच्छा प्रकट की। तदनन्तर नगरके बाबा नानकके वंशधर गुरु साहबसिंह वेदीके मध्यमें दोनोंका भेंट हुई। सन्धिसे वे दोनों मित्रतासूत्रमें आबद्ध हुए। यहांसे रणजित् अमृतसरमें आ कर अंग्रेज दूतके साथ मिले। रणजित्के पीछे पीछे भूमका कब्जा समझ कर मेटकाफ शतद्रु नदीके किनारे फतहाबादमें टिके थे। गवर्नर जनरलने उनको लिख भेजा था, कि लार्ड लेककी सन्धिके अनुसार शतद्रु नदी ही आपके राज्यकी सीमा है। शतद्रु और यमुनाके बीचकी भूमिमें बसनेवाले सिक्ख सरदार अंग्रेज सरकारके आश्रयाधीन हैं। इससे आपको उचित है, कि आप उन लोगोंसे सम्बन्ध न रखें। इतना ही नहीं आप उन लोगोंसे भविष्यमें बलपूर्वक कर न वसूल न करें। यह पत्र पा कर जो जो स्थान उन्होंने जीत लिये थे, उनको छोड़ने पर वे राजी नहीं हुए। रणजित्ने समझ लिया, कि अब हमें अंग्रेजोंके साथ लड़ना पड़ेगा। इससे वे युद्धकी तैयारी में लग गए। इधर लार्ड मिण्टोने मौका देख कर सर डेविड अक्टरलोनीको अंग्रेजी फौजोंके साथ शतद्रु के किनारे भेज दिया। उन्होंने मालव और सरहिन्दके सरदारोंको उनके स्थानों पर प्रतिष्ठित कर साधारणको अंग्रेजोंके आश्रयका प्रभाव दिखला दिया था। रानी दयाकुमारी अम्बालामें और पूर्वकथित पठान-सरदार मालेरकोटलामें पुनः प्रतिष्ठित होनेसे अंग्रेजी फौजोंके प्रति जन साधारणकी श्रद्धा बढ़ गई थी। वे लुधियानेमें पड़ाव डाल कर अपनी शक्तिको सुदृढ़ करनेकी चेष्टा कर रहे थे।

इसी समय अमृतसरमें ताजियेके पर अकाली सिक्खों तथा मुसलमानों में झगड़ा हो गया। मेटकाफ-दूतके सह गामी सनाने पर्वमें साथ दिया था याना कुछ सिपाही ताजियेमें शामिल हुए थे। दोनों दलोंमें अकाली हारे। यह देख कर रणजित्ने अकालियोंके वृथा अत्याचार करनेके लिये अंग्रेज दूतसे क्षमा मांगी। फलतः रणजित्को अंग्रेजोंके मायनानुसार शतद्रु के किनारेसे उन्हें अपनी फौजोंको हटा लेना पड़ा। सन् १८०९ ई०को २५ अप्रिलकी सन्धिके अनुसार यह स्थिर हुआ, कि रणजित् सिंह दक्षिण शतद्रु के भूभाग पर कभी भी अपना प्रभुत्व स्थापन न कर सकेंगे। इसके बाद आश्रित सरदारोंकी रक्षाके लिये अक्टरलोनी लुधियानेमें एक छावनी मुकर्रर की। पीछे अमरलाल सिंह नामक रणजित्को ओरसे अंग्रेजी छावनीमें दूतके रूपमें रहने लगा। अंग्रेजोंने खुशवक्त राय नामक एक कायस्थको लाहोर दरबारमें भेजा।

सन् १८०९ ई०में महाराज रणजित् सिंहकी सन्धि हुई सही, किन्तु दोनों पक्षमें किसीने किसीका विश्वास नहीं किया। सर चार्लस् मेटकाफके वहांसे सरकते ही उन्होंने लुधियानेके दूसरे पारमें अर्थात् शतद्रु के उत्तर ओर फिल्लौर दुर्गको मजबूत कर दीवान मोहकमचंदको वहांका किलेदार नियुक्त किया। इसी मौके पर

अमृतसरके गोविन्दगढका किला मजबूत कर दिया गया। किलोंसे राज्यके दक्षिण भागकी रक्षा बंदोबस्त कर रणजित् स्वय उत्तरको ओरके पहाडी राज्योंको जीतनेके लिये निकले।

इस ओर गोर्खा सरदार अमरसिंह ठापाके फिर काङ्गडा किले पर घेरा डालने पर राजा संसारचन्दके आग्रह करनेसे रणजित्को सबसे पहले काङ्गडाका उद्धार करने जाना पडा। वे पठानकोट, ज्वालामुखी, यशरोता, नूरपुर आदि स्थानोंको पार कर काङ्गडा-दुर्गके समीप पहुंचे। लेकिन राजा संसारचन्द अमरसिंहके साथ मित्रताकी सन्धि होना सुन कर उन्होंने उन दोनोंको हाथमें रखनेकी चेष्टा की। उनके अधीनस्थ पहाडी सिक्ख सरदारोंने सम्पूर्णरूपसे गोर्खोंकी रसद बन्द कर दी थी। यह देख कर रणजित् वहां उपस्थित हो काङ्गडा किलेमें प्रवेश करनेका अधिकार चाहा, किन्तु संसारचन्दने उन्हें ऐसा करने न दिया। युद्ध शुरू हुआ। अमरसिंह ठापाने संसारचन्दकी ओरसे युद्ध किया, किन्तु रणजित्से वे पराजित हुए। अन्तमें काङ्गडा-दुर्ग रणजित्के हाथ आया। देशसिंह मजिठिया काङ्गडा-दुर्गके किलेदार और काङ्गड़ा, चम्बा, नूरपुर, कोटला, शाहपुर, यशरोता, वसोली, मालकोट, मशवान, शिवा, गोलेर, कोलहर, मण्डी, सुकेत, कुलु और दातारपुर आदि पहाड़ी राज्योंके शासक नियुक्त हुए। पहाडसिंह उनके सेनापति हुए।

यहा रणजित् ज्वालामुखीमें आये। सिक्खपति रणजित्ने पूजा करनेके बाद जालन्धर दोआबमें आ कर वघेलसिंहकी विधवा पत्नीसे हरियाना राज्य और भूपसिंह फैजुलपुरियाके अधिकृत प्रदेशोंको निकाल लिया।

इसी वर्षके अन्तमें वजीराबादके सरदार योधसिंह-के परलोक-गमन करने पर रणजित्ने तुरत ही मृत राजाकी सम्पत्तिको ले लेनेके लिये वहां पहुंचे। किन्तु उनका पुत्र गेण्डासिंह २ लाख रुपया नजरानेका दे कर रणजितको सन्तुष्ट किया। इसके बाद गुजरातके साहब सिंह भङ्गी और उनके पुत्रमें झगड़ा होना सुन कर वे चन्द्रभागा पार कर उसी ओरको दौड़े और धीरे धीरे उन्होंने उनके अधिकृत इसलामपुर, महवार, जलालपुर आदि नगरों पर अधिकार कर लिया। उनके प्रधान मन्त्री फकीर अजिजुद्दीनने गुजरात पर अधिकार कर लिया। महाराजने उसके वीरत्व पर प्रसन्न हो कर उन्हें खिलअत प्रदान की और उनके छोटे भाई नुरुद्दीनको वहांका शासक नियुक्त किया। इसी समय दीवान भवानीदासने उनकी ओरसे जम्बू पर दखल कर लिया और वहांके दोगरा सरदारको वहासे भगा दिया। इसके बाद वे झेलम नदीके पश्चिम पारके सरदारोंको हरा उन्हें कैद कर अपने देशमें ले आये।

सन् १८१० ई०के फरवरी महीनेमें रणजित्ने सुना, कि कावुलके राजा शाह शुजा उलमुल्क युवराज शाह महमूद द्वारा पराजित हो कर अटक नदी पार कर चले आये हैं। यह सुन कर रणजित्ने खुशाव नगरमें जा कर शाह शुजाकी आगत स्वागत किया। किन्तु रणजित्के ऐसा करनेका कोई फल नहीं हुआ। शाह शुजाने पेशा-वरवालोंके लिये युद्ध किया सही, किन्तु महमूद द्वारा पराजित हुए। फिर शाह शुजा शतद्रु पार कर इधर चले आये।

इसके बाद रणजित्ने खुशाब और शाहवाल पर कब्जा किया। शाहवाल-सरदार फतेह खां सकुटुम्ब कैद कर लाहोर लाये गये। वहांसे रणजित् ४थी बार मुलतान विजय करनेके लिये पधारे। दो मास तक घेरा डाल कर भीषण गोला-वृष्टि करनेके बाद भी जब सिक्ख किसी तरह मुलतान पर कब्जा कर न सके, तब पहली स्वीकृति ले कर ही रणजित् लाहोर लौट आये।

वे इसके बाद घुडसवार सैनिकोंके सुधारमें लगे। फिर उन्होंने वजीराबादको सिकस्त करनेके लिये सेना भेजी। अमरिक और गेण्डासिंहको जागीर दान कर उन्होंने प्रवञ्चनापूर्वक यह स्थान और वघेलसिंहकी पत्नी रानी राजकुमारीको जागीर बहादुरगढ़ पर अधि-कार कर लिया।

दशहराका उत्सव सम्पन्न कर महाराज रणजित् सिंहने अक्तूबर महीनेमें मरफा सरदार निधनसिंह पर आक्रमण किया। जातीय प्रथाके अनुसार बाबा

मुजफ्फराज और अमीरखांसिंह पेशा नामक सिक्ख-पुरो हितोंके लिये और महाराजसे जागीर प्राप्त करनेके उद्देशसे वृद्ध निधानसिंहने अपने दलका दुर्गसे निकल रणजित्के खेमेमें आ कर आत्मसमर्पण किया। इसी घासिया-सरदार धानसिंह इस समय महाराजके अप्रिय-भाजन होनेका वजह पुत्रके साथ कैद कर लिये गये और उनकी सम्पत्ति जप्त कर ली गई। दीवान मोहकमचन्दने इस अवसरमें भीमबार, राजापुरी और गोगगिरि किलों पर अधिकार कर लिया। इधर महाराजने पिण्डदादन खांके निकट तीन किलों पर अधिकार जमाया।

सन् १८११ ई०में महमूदशाहने १४ हजार अफगानी सैन्य ले कर सिन्धु नदको पार किया। रणजित्ने युद्धकी आज्ञा कर रावलपिण्डीके लिये यात्रा की। शाहके साथ भेंट होने पर दोनोंकी मित्रता हो गई थी। इसके बाद उन्होंने अपनी फौजोंकी सहायतासे मुलतान और माफेका बीचकी भूमि, कोटला-दुर्ग, फैजुल्लपुरिया वालोंके अधिकृत प्रदेश जालन्धर, फिल्लौर, पट्टी, हैदर पुर आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया।

सन् १८१२ ई०के प्रारम्भमें कुमार खड्गसिंहका चांद कुमारीके साथ विवाह हुआ। इसके उपलक्षमें लाहोर में विशेष धूमधाम हुई थी। अंग्रेजसेनापति अक्टर लोनी निमन्त्रित किये गये थे। महाराजने उनकी अच्छी खातिरदारी की। इस समय दोनों दलमें खूब सद्भाव उपस्थित हुआ था। महाराजने होली-पर्व पर भी इन्हें आमन्त्रित किया और इसी तरहसे उनकी खातिर दारी की गई।

कुमारके विवाहके बाद उन्होंने फिर भीमबार पर आक्रमण कर दिया। भीमबारके राजा सुलतान खांने आत्मसमर्पण किया। किन्तु महाराजने उसके प्रति सद्भाव न कर उसे ७ वर्ष तक कैद कर रखा। भीम बार पर अधिकार हो जाने पर उन्होंने फिर राजापुरी, जम्मू, अखनूर, सुजानपुर, कोटकमालिया आदि स्थानों को जीत कर और मुलतान मिठाटाना आदि स्थानोंके सरदारोंसे कर वसूल किया।

इस समय काबुलके राजा शाह महमूदके वजीर फतेह खांने काश्मीर पर आक्रमण किया। काबुलके राजमन्त्रीने महाराज रणजित्सिंहको मदद देनेका अनु रोध किया। इसके अनुसार दीवान मोहकमसिंहके साथ १२ हजार सैनिकोंको भेजा गया। वहांका शासनकर्त्ता आता महम्मद भाग जाने पर फतेह खांने महमूदकी ओरसे काबुल उपत्यका पर दखल जमा लिया। सिक्ख सैनिकोंके युद्धमें पूरी सहायता न करनेका बहाना कर युद्धसे प्राप्त तथा लूटी हुई वस्तुओंमें सिक्खोंको हिस्सा न दिया गया। इस पर रणजित् क्रोधसे अधीर हो उठे और अफगानियोंका नाश करने के लिये युद्धकी तैयारी करने लगे। सन् १८१३ ई०में अटक-दुर्ग पर कब्जा कर वे युद्ध करनेके लिये आगे बढ़े। हैदर नामक स्थानमें दीवान मोहकमचन्दके साथ अफगान सेनापति महम्मद खांका घोर युद्ध हुआ। इस युद्धमें सिक्खोंकी विजय हुई और सिक्खोंने अफ गानियोंको बैराबादसे भगा दिया। इसके बाद रणजित् काश्मीर पर फिर चढ़ाई करनेको उद्यत हुए, किन्तु पथ दुष्पाराक्रम्य था, इससे उनको लौट आना पड़ा।

इस समय महाराज रणजित् सिंहने मक्खद प्रदेशके अफगान अधिपतिको अत्याचार-कहानी सुनी। उनको दण्ड देनेके लिये सिक्ख फौजें भेजी गईं। मक्खदके सरदार खालोखांके अटकके किलेसे भाग जाने पर यह स्थान सिक्खोंके हाथ आया। इसी समय दीवान भवानी दासने हरिपुरके पहाड़ी राज्यों पर अधिकार कर लिया।

सन् १८१३ ई०के मार्च महीनेमें दिल्लीसे प्रसिद्ध राज नीतिविद् गङ्गारामको अपने राज्यमें ले कर रणजित्ने सेनाविभागके अध्यक्ष "बख्शी" पद पर नियुक्त किया। इस समय वे काश्मीर युवक शाहशुजासे कौशलसे 'कोहिनूर' हीराको लेनेकी चेष्टा करने लगे। किंतु जागीर आदि देनेका प्रलोभन देने पर भी उसने इस हीरेको देना न चाहा। अब उन्होंने उसके साथ अमानुषिक अत्याचार करना आरम्भ किया। फलतः अत्याचार प्रपीड़ित शाहशुजाने रणजित्को यह हीरा 'कोहिनूर' प्रदान किया। इससे भी रणजित् प्रसन्न या सन्तुष्ट न हुए। उन्होंने गुप्त मणि माणिक्यादिके संग्रह करने के लिये फिर अत्याचार करने लगे। भाइ रामसिंहके

अधीन कई स्त्रियोंको जनानखानेमें भेज कर उन्होंने तलाशी ली। इस तलाशीसे जितने मणि माणिक्य मिले, उन सबोंको रणजित्ने हाथमें किया। इस तरहके अत्याचारसे प्रपीड़ित हो कर जनानखानेकी स्त्रियां एक दिन साधारण स्त्रियोंके वेशमें पक्का या टांगों पर सवार हो कर नगरके बाहर जा अङ्गरेजोंकी शरणमें लुधियाना चली गईं। इस समाचारसे क्रुद्ध हो कर रणजित् और भी शाहशुजाको कष्ट देने लगे। जहां जो शाहका मणि-माणिक्य मिला वह भी रणजित्ने ले लिया। अन्तमें सन् १८१५ ई०के अप्रिल महीनेमें आधी रातको एक गुप्तरूपसे नगरद्वारसे बाहर जा इरावती नदी तैर कर शाह गुजरानवाला होते हुए नौ पर चढ़ कर जम्बू चला गया। वहां आ कर उसने फिर काश्मीर लौटानेकी कोशिश की, किन्तु व्यर्थमनोरथ हुआ।

सन् १८१४ ई०के अप्रिल महीनेमें होली-उत्सवको समाप्त कर महाराजने कांगड़ाके समीपके पहाड़ी सामन्तोंसे कर संग्रह करनेके लिये ससैन्य यात्रा की। इसके बाद जुलाई महीनेमें काश्मीर जीतनेके लिये वे स्वयं चले। राजापूरी और राजा आगर खाँके कूट परामर्शसे उन्होंने अपनी फौजोंको दो पथोंसे भेजा। वैरामगला, पीरपञ्जाल, हीरापुर, सुपीन और तोपू मैदान-में सिक्खोंके साथ पक्षाधिपति वजीर रूहेल खांकी अफगानी सेनाओंसे युद्ध हुआ। युद्धमें सिक्ख सेना हार खा कर लाहोरको लौट गई। लौटते समय रणजित्ने चण्डी और पद्मनगरमें आग लगा दी। नगर छार खार हो गये।

दुःखी मनसे महाराज रणजित् जब लाहोर पहुंचे तब उन्होंने मोहमचन्दके रोगग्रस्त होनेका समाचार सुन कर वे और भी दुःखित हुए। इसके कुछ समय बाद ही फिल्लौर दुर्गके विश्वस्त राजनीति और समर कुशल सेनापति दीवान मोहनचन्दकी मृत्युकी खबर पा कर वे नितान्त दुःखी हुए। सिक्खसम्प्रदायने इस उन्नत-मना राजभक्त वीरकी मृत्यु पर अत्यन्त शोक प्रकट किया था। महाराजने दीवानके पुत्र मोतीरामको फिल्लौर किले और जालन्धर दोआबका शासनकर्त्ता और दीवान तथा काश्मीर-युद्धमें वीरत्व देख दीवानके पौत्र रामदयालको सिक्ख-सैन्यका प्रधान सेनापति बनाया।

सन् १८१५ से १८१६ ई०में उन्होंने राजापूरी, भीमवार, रामगढ़, नूरपुर, यशवाल, बहावलपुर, भक्कर, मानकेरा, उच्छ, पाकपत्तन और मुलतान आदि नाना स्थानोंके सरदारोंको हरा कर धनसम्पत्ति लूटी तथा नजराना वसूल किया था। इसी वर्ष कुमार खड्गसिंह युवराज पद पर अभिषिक्त हुए।

सन् १८१७ ई०में उन्होंने मानकेरा, हाजरा और मुल-तानकी ओर यात्रा की। दो बार मुलतान दखल करनेमें असफल होने पर भी वे निरुत्साह नहीं हुए। अन्तमें सन् १८१८ ई०के जून महीनेमें मुलतानका किला उनके हाथ आया। दुर्गके मालिक नवाब मुजाफर खाँ पुत्रके साथ मारे गये थे। जीतनेके बाद सिक्खोंने नगर और किलेको लूट लिया। इसके बाद इस सिक्ख विजय-वाहिनियोंने सुजाबाद पर भी अधिकार कर लिया था।

युद्धमें विजय पाने पर जीते हुए देशोंमें रणजित्ने शासन व्यवस्था ठीक कर दी। दालसिंह, योधसिंह, धन्यसिंह आदि सरदारों पर नगर और दुर्गोंकी मरम्मत करानेका भार सौंपा गया। इस समय जमादार खुशाल-सिंह महाराजके अप्रिय हो गये। इससे (Chamberlain) दरबार-सचिवका पद उनसे छीन कर मियां ध्यानसिंहको दिया गया।

मुलतान-अधिकारके बाद राज्यमें शान्ति होने पर महाराज रणजित् सिंहने कुछ दिनों तक शान्तिमय जीवन बिताया। इसके बाद ही उन्होंने सुना, कि काबुलमें बलवा हो गया है। उन्होंने यह उपयुक्त अवसर सोच कर वहांकी यात्रा कर दी और पहुंचते ही खैराबाद, जहांगीरा, पेशावर आदि स्थानों पर अधिकार कर लिया। किन्तु उनके लौटते न लौटते ही दोस्त महम्मद-खाँने फिर पेशावर पर कब्जा कर वहांसे सिक्ख शासक जहान खाँको निकाल बाहर किया। सन् १८१६ ई०में उन्होंने कल्हार-राजधानी बिलासपुर पर आक्रमण किया। किन्तु वहांके सरदारको अंग्रेजोंके सहायता देने पर अपना घेरा उठा लेने पर वे बाध्य हुए। इसके बाद उन्हीं सेनाओंको ले कर वे तीसरी बार काश्मीर-विजयके लिये

चले। दीवानचन्द, फूलसिंह और स्वयं महाराजने इस युद्धमें सेनाका परिचालन किया था। सुपीन युद्धमें अफगाना सेना पराजित हुई। काश्मीर सिक्खोंके हाथ आया। दीवान मोतीराम वहांके प्रथम शासक नियुक्त हुए।

इसके बाद लाहोरमें आ कर दशहरा पर्वको सम्पन्न कर वे फिर मुलतान, बहावलपुर और भक्कर तक सिन्धुदेशोंको लूटनेमें प्रवृत्त हुए।

काश्मीर और मुलतानके युद्धके समय रानी महताब कुमारीकी तरह रानी दयाकुमारीने भी दो बच्चोंको संग्रह कर अपने गर्भसे उत्पन्न होनेकी घोषणा की। महाराजने इन दोनों पुत्रोंका नाम काश्मीरासिंह और पेशोरासिंह रखा। रानी रतनकुमारीके गर्भसे उत्पन्न लड़केका नाम मुलतानसिंह रखा गया। सन् १८२० ई०में मुलतानके दिवानगीरी-पद पर सावन मल्लकी नियुक्ति, जमादार खुशालसिंह द्वारा डेरागाजी खाँ पर अधिकार, मानकेरा-सरदार हाफिज अहमद खाँसे "सफेद परी" नामक घोड़ेकी प्राप्ति, हजाराकी यात्रा और उसके मसहूमें बाद दीवान रामदयालकी मृत्यु, सरदार हरिसिंहको काश्मीर शासक पद पर नियोग, मोतीरामका काशी जाना और फिर बुलाये जाने पर उनको अपने ही पद पर नियुक्त होना, विद्रोही डोगरा सरदार देसूको युद्धमें पराजित करनेके लिये गुलाबसिंहको जागीरप्राप्ति, भ्रमणकारी विलियम मूरक्राफटका लाहोर परिदर्शन, महाराष्ट्र सरदार आप्पा साहबका संन्यासीके वेशमें अमृतसरमें आना और रणजित्‌से साहाय्यकी प्रार्थना करना, सास सदाकुमारीसे रणजित्‌का विरोध और उनका राज्याधिकार, बालकपिरकी विजय तथा पौत्र नवनिहालसिंहका जन्म होना। छण्णाद, मानकोट, दक्षिण-मुलतान, भक्कर, डेराइस्माइल खाँ, पानगढ़, लय्या, मक्खगढ़ और मानकेरा आदि स्थान और दुर्गका अधिकार आदि उल्लेख योग्य घटना है।

सन् १८२१ ई०में मानकेराके नवाबके आत्मसमर्पण करने पर सरदार अमीरसिंह सिन्धियावालाको वहांका शासक नियुक्त कर रणजित्‌ने राजकुमार खड्गको भक्कर और लय्याका शासक नियुक्त किया। इसके बाद सन् १८२२ ई०में लाहोर लौट आ कर उन्होंने फिर नारा और सराय किले पर आक्रमण और अधिकार किया था।

विख्यात फ्रान्सीसी वीर नेपोलियन बोनापार्टकी विश्वविजयिनी शक्तिके वाटरलूके रणक्षेत्रमें क्षीण होने पर फ्रान्सीसी-सेनापतिकी सामरिक विषयमें उन्नतिलाभ तथा सम्प्रतिष्ठ होनेकी आशा निर्मूल हो गई। उस समय कई उच्चाकांक्षी युवक युद्धविभागमें नौकरी पानेकी आशासे पारस्यके शाहके यहां आये। वहां भी उन्होंने उपयुक्त पद नहीं पाया। फिर रणजित्‌सिंहके रणोत्साहको सुन कर उनके यहां नौकरी पानेकी गरजसे वे उनके दरबारमें आने पर उद्यत हुए। किन्तु कहीं राहमें कोई विपद् न उपस्थित हो जाय, इसलिये उन्होंने मुसलमानी वेशमें काबुल कन्दहार होते हुए भारतमें प्रवेश किया। सन् १८२२ ई०के मार्च महीनेमें वे लाहोर दरबारमें पहुंचे और उन्होंने उनके यहां नौकरीके लिये प्रार्थना की। रणजित्‌ने पहले तो वैदेशिक होनेकी वजह उन पर विश्वास नहीं किया। किन्तु पीछे उनको उन्होंने यूरोपीय ढंग पर सिक्ख सैनिकोंको शिक्षा दिलानेके लिये उन सबोंको अपने यहां नौकर रख लिया। आपने नौकर रखनेसे पहले इनको कह दिया था, कि तुम लोग गोमांस भक्षण तथा श्मश्रुमुण्डन (मूछ मुड़वाना) नहीं कर सकोगे। पहले काबुलकी राहसे जो दो युवक आये, उनका नाम—भेञ्चुरा और आलार्ड था। ये लाहोर नगरसे बाहर एक मकान बना कर रहने लगे। अपने यूरोपीय ढंगकी शिक्षासे सिक्ख-सैनिकोंको इन्होंने इतना सुशिक्षित किया, कि महाराज देख कर उन पर बहुत प्रसन्न हुए थे। इसके तीन चार वर्ष बाद स्पेन विजयी फ्रान्सीसी सेनापति मान्शिय वयरिसके पराक्रमसे फौजी कोर्ट और आविताबिलमें पहुंच कर उनसे आ मिले।

सन् १८२३ ई०में पेशावरके शासक यार महम्मद खाँसे बलपूर्वक नजराना वसूल करने पर महम्मद अजीम खाँ रणजित्‌के प्रति क्रुद्ध हुए। अजीम खाँ मारके भाय रणसज्ज हो कर स्वयं पेशावर पहुंचे। रणजित्‌ने भी युद्ध होना अनिवार्य समझ कर फौज भेजी। एक बारके युद्ध होनेके बाद सिक्ख फौजने जहांगीरा किले पर अधिकार कर लिया। इसके अनन्तर और मागवूला

हो उठे। दोनों ओरसे फिर युद्ध आरम्भ हुआ। नौशेर रणक्षेत्र बना। शिक्षित सिक्ख फौजोंने अफगानियोंको बुरी तरहसे हराया। दोस्त महम्मद और यार महम्मद खाँ पर पेशावरका शासन-भार सौंप कर महाराज रणजित् लाहोर लौट आये।

सन् १८२५ ई०में लुधियाना निवासी एक यूरोपीय महिलासे महाराजके प्रिय सेनापति जनरल भेञ्चुराका विवाह हुआ। इस विवाहमें महाराजने बहुत साहाय्य किया था।

सन् १८२७ ई०में सैयद अहमद नामक युसुफजै पहाडी एक मुसलमानने अपनेको धर्मसंस्कारक होनेकी घोषणा की। पेशावर तथा अटकके बीचके रहनेवाले अपने चेलोंको महाराजके विरुद्ध उभाड कर वह युद्ध करनेके लिये आगे बढा। अकोरेमें सैयदके चेले हार गये और पहाडकी गुफामें जा कर उन्होंने अपनी जान बचाई।

इसी वर्षमें महाराजने अपने प्रधान कर्मचारी दीवान मोतीराम और फकीर अजीजुद्दीनको भारत-प्रतिनिधि लार्ड अमहर्ष्टके साथ भेंट करनेके लिये शिमला भेजा। इसके बाद रणजित्के प्रति सौजन्य प्रकाशित करनेके लिये अङ्गरेजोंकी ओरसे लार्डने महाराजके लिये उपढौकनके साथ अमृतसरमें एक मिशन भेजा। सन् १८२३ ई०में महाराजने अमृतसरको चहारदीवारीसे घेर दिया था।

इस समय रणजित्देवके वंशधर मियां ध्यानसिंह, गुलाब सिंह और सुचेतसिंहकी प्रतिपत्ति लाहोर दरबारमें बढ़ गई थी। महाराजकी कृपा प्राप्त कर ध्यान सिंहने शीघ्र वजीर-पद और "राजा-ये-राजगान राजा हिन्दपत् राजा बहादुर"-की पदवी प्राप्त की। ध्यान सिंहका पुत्र हीरासिंह रणजित्का अतिप्रिय था। महाराज उसको एक दण्ड भी आखसे दूर नहीं करते थे। यह बारह वर्षका बालक महाराजके समीप एक आसन पर बैठकर हमेशा महाराजसे बातचीत किया करता था। अन्यान्य सभी बडे बड़े कर्मचारियोंको उसके नीचे आसन पर बैठना पड़ता था।

राजा ससारचन्दकी कन्याके साथ हीरासिंहके विवाह करनेका प्रस्ताव ध्यानसिंहने महाराजसे किया। किन्तु संसारचन्द्रकी रानीने ऐसे नीच कुलके बालकके साथ विवाह करना नामञ्जूर कर दिया और डरके मारे शतद्रुके किनारे अंगरेजोंके राज्यमें जा कर रहने लगी। यहा संसारचंदकी पत्नी और पुत्र अनिरुद्धचंदको मृत्यु होने पर महाराजने जा कर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया और संसारचन्द्रकी दूसरी रानीसे उत्पन्न दो कन्याओंसे विवाह कर उसका बदला चुकाया था। इसके बाद उन्होंने बडे समारोहसे हीरासिंहका किसी उच्च वंशमें विवाह कर दिया। यह सन् १८२६ ई०की बात है।

इस समय सैन्य संग्रह कर पूर्वोक्त सैयद अहमदने सिन्धुनद पार कर पेशावर पर अधिकार कर लिया। जनरल भेञ्चुरा, आलार्ड, हरिसिंह आदिके प्रतिबन्धकता करने पर भी इस धर्मोन्मत्त मुसलमान-दलके हाथसे पेशावरके बरकजै शासक सुलतान महम्मद खाँकी रक्षा न की जा सकी। शीघ्र ही उसका सुखस्वप्न टूट गया। सन १८३० ई०में सिक्खोंके हाथसे वे पराजित हुए। इसी समय उसके प्रचारित अभिनव विवाहपद्धतिसे युसुफजै चेलो ने रंज हो कर उसका साथ छोड़ दिया। सहायसम्पत्तिहीन सैयद काश्मीर भागा। यहा सन् १८३१ ई०में बालाकोट नामक स्थानमें युवराज शेरसिंहने इस राजद्रोहीका मस्तक काट कर महाराजको उपहार भेजा था।

इस समय रणजित्की राज्यसीमा बहुत दूर तक फैल गई थी और उनकी ख्याति और वीरताका प्रभाव चारों ओर फैल गया। इतने दिनोंमें वह यथार्थमें स्वाधीन राजेश्वर हुए। स्वयं अंग्रेजराजने उनसे मित्रता स्वीकार की थी। सन् १८२८ ई०में महाराजके भेजे शाल उपढौकनको लार्ड अमहर्ष्ट इङ्गलैण्डके राजा विलियमको देनेके लिये ले गये। बदलेमें इङ्गलैण्डके राजाने भी लार्ड एलेनके हाथ महाराज तो उपहार भेज दिया था। सन् १८३० ई०की २०वी जूनको अलेकजेण्डर बर्निस नामक एक अंग्रेज सेनापति यह सब उपढौकन ले सिन्धुनद पार कर सिक्ख राजदरबारमे आ पहुंचा। महाराजकी आज्ञासे उसकी बड़ी खातिरदारी की गई।

सन् १८३१ ई०के अप्रिल महीनेमें महाराजने गवर्नर जनरल लार्ड विलियम बेण्टिङ्कके यहां शिमलेमें अपना एक दूत भेजा। लार्ड बेण्टिङ्कने आपसमें राज्य मैत्रि सुदृढ़ रखनेके लिये महाराजसे भेंट करनेकी इच्छा प्रकट की। इसके अनुसार रोपर नगरमें १८वीं अक्टूबरको दोनोंकी भेंटके लिये एक "दशहरा-दरबार" किया गया था। २६वीं तारीखको वे सदलबल लार्डके तम्बूमें गये और दूसरे दिन सौजन्य प्रकाश करनेके लिये बड़े लाट रणजित् सिंहके खेमेमें आये। इस अवसर पर महाराजने अपने अस्त्रशिक्षाका कौशल समागत यूरोपीय अतिथियों को दिखाया था। ३१वीं तारीखको परस्पर विदा सम्मिलन हुआ। इस अवसर पर आगे की मित्रताको दृढ़ करनेके लिये एक सन्धिपत्र पर दोनों के हस्ताक्षर हुए। इस सन्धिके अनुसार अंग्रेजों को सिन्धुनदसे वाणिज्य करनेका अधिकार मिला।

दरबार टूट जाने पर १५वीं नवम्बरको महाराज लाहोर राजधानीमें लौट आये। इसी समय बहावलपुरके शासक नवाब सादिक महम्मद खांके यहां डेरा गाजी खांके दो वर्षका कर बाकी पड़ जाने पर जनरल वेञ्चुराको उसकी सम्पत्ति लूट लेनेके लिये भेजा गया। वेञ्चुराने बलपूर्वक नवाबकी छः लाखकी सम्पत्ति लूट ली।

इस समय महाराजके हृदयमें सिन्धुप्रदेशके अधिकारकी वासना जागरित हो उठी। उन्होंने अंग्रेजों से सहायता मांगी। बड़े लार्डने अंग्रेजोंके व्यवसाय वाणिज्य नुकसान होनेके भयसे इस विषयमें ध्यान न दिया। दोनों भारतके शासनकर्त्ताओंके बाद सिन्धुनदके वाणिज्य कार्यके परिदर्शनरूपसे मिथुनकोटमें एक अंग्रेज कर्मचारी नियुक्त किया गया। इसके चार मास बाद सन् १८३२ ई०के अप्रिल महीनेमें वाणिज्य व्यवसाय चलानेके लिये सिन्धुके अमीरोंके साथ अंग्रेज सरकारकी सन्धि हुई थी।

इसी वर्षमें प्रिंसेप साहब फिर लाहोर दरबारमें आये। सरदार देसासिंहकी मृत्यु और उसके पुत्र लहनासिंहको इलाकों और अमृतसरके मध्यवर्ती पहाड़ी राज्यके शासन भार प्राप्ति, मुजफ्फर और एक हजाराकी विजय, शत्रुरूपति नवाब आसद खांके पुत्र जुलफिकार खांका अवरोध, सदाकुमारीकी मृत्यु और उसकी सम्पत्ति पर अधिकार तथा उस समयके काबुलके विप्लव पर योगदान, अमृतसरमें विख्यात धर्मा शिवदयाल क्षत्रियका धनाधिकार, गुलबहार नामकी वेश्यासे विवाह, मुसलमान शैलराज्य-विजय, काश्मीर शासन-संस्कार, जनरल वेञ्चुराको डेरागाजी खांका शासनभार प्रदान और ससारखम्बके पोतों को जागीर दान आदि इस वर्षकी अन्यान्य घटनायें हैं।

सन् १८३३ ई०में महाराजके स्वास्थ्य खराब हो जानेसे वे पीड़ित हुए। पण्डित मधुसूदन आदिने ग्रह शान्ति के लिये शास्त्रीय प्रायश्चित्तकी व्यवस्था की और पाप निवृत्तिके लिये कैदियोंको छोड़ दिया गया। इसी समय लुधियानेसे डाक्टर मूर महाराजकी चिकित्सा करनेके लिये लाहोर आये। महाराज शीघ्र ही रोगमुक्त हुए।

सन् १८३४ ई०में प्रधान राजस्व सचिव दीवान भवानी दासकी मृत्यु हो गई और पण्डित दीननाथको यह पद दिया गया। इस समय बन्नू सीमान्त पर अफगान विद्रोही हो उठे। महाराजने सम्वाद पा कर राजा सुचेतसिंहको विद्रोह दमन करनेके लिये भेजा। सीमान्तका विद्रोह शान्त हो जानेके बाद महाराज रणजित्‌ने पेशावरको अपने राज्यमें मिला लेनेकी चेष्टा की। उनके पौत्र नवनिहाल सिंह सिक्ख-सैनिकों का सेनापति बन कर वहां चले। इस वर्षकी छठीं मईको पेशावर पर सिक्खों का अधिकार हो गया। स्वयं सिपहसालार पेशावरमें आ कर छावनी कायम कर दी। यह देख काबुलके अमीर दोस्त महम्मद भी विचलित हुए। अपने राज्यके अपहरण करनेवाले रणजित्‌के विरुद्ध साहाय्य प्राप्तिकी आशासे उन्होंने अंग्रेज प्रतिनिधिसे प्रार्थना की। इसका कोई फल नहीं हुआ। यह देख कर उन्होंने पारस्यके राजाके पास प्रार्थनापत्र भेजा। अन्तमें वे सिपाहियों के साथ युद्ध करनेके लिये तैयार हुए। रणक्षेत्रमें आने पर उनका गाजी फौजने आपसहीमें गड़बड़ी मचा दी। अपनी सेना पर शासन न कर सकनेके कारण वे अभागा बाद लौट आये। सिक्खोंने उनका पीछा कर गाजा

वृष्टि की। इसके बाद सेनाओंके तितर बितर हो जानेके कारण सन् १८३५ ई०में वे काबुल लौट आये। दोस्त महम्मद स्वराज्यमें जब पहुंच गये तब पेशावरमें महाराजने एक मजबूत किला बनवाया। इसके बाद उन्होंने उत्तर-पश्चिम सीमान्तको सुरक्षित किया।

इधर सन् १८३४ ई०में इंग्लैण्डेश्वरके लिये पत्र और उपढौकनके साथ सरदार गुजनसिंह और भाई गोविन्ददासको कलकत्तेके बड़े लाटके पास भेजा। बड़े समारोहके साथ लाहोरमें दशहरा-दरबार कर महाराज बताला, स्यालकोट और झेलम प्रदेश देखनेके लिये गये। रोहतासमें आ कर उन्होंने स्वयं मित्र झिन्दके राजा सङ्गतसिंहके मृत्यु समाचारसे दुःखित हो कर लाहोर लौट आये। इस समय सरदार श्याम सिंह अनारीकी कन्याके साथ राजकुमार नवनिहाल सिंहका विवाह होना निश्चित हुआ। उक्त वर्षमें जम्बु-राज गुलाबसिंहके सेनापतिने लादक पर अधिकार कर लिया।

सिन्धुप्रदेशके अमीरोंको निर्बल देख सन् १८३६ ई०में रणजित्‌के मनमें उनके प्रदेशों पर अधिकार करने की इच्छा हुई। सिन्धु-सीमाके रोजहनवासी उनके आश्रित गुलाम शाह कल्हारके प्रति सिंधुवासी मजारियोंके अत्याचार करनेसे उन्होंने उनके विरुद्ध युद्ध कर उनको दण्ड दिया। इसके बाद उन्होंने पेशावरमें जा कर सुलतान महम्मद खाँको कोहाट नगर और दोआबकी जागीर दी थी। इसके थोड़े दिन बाद ही महाराज लकवाकी बीमारीसे आक्रान्त हुए। इसी समय डाक्टर मेकग्रेगर, हर्लन, हनिग वर्जर, वेण्टुन आदि अमेरिका और यूरोपवासी मनीषियोंने लाहोर देखनेके लिये आगमन किया।

सन् १८३६ ई०में पञ्जतरवासी युसुफजे और खैबर-वासी अफरीदी जाति पर सिक्खोंने विजय पायी और सिन्धुसीमान्तस्थित रोजहन और कान दुर्ग सिक्खोंके हाथ लगे। इसी सम्बन्धमें उनका अंग्रेजोंसे विरोध उपस्थित हुआ। अङ्गरेज कप्तान वार्डके कहने सुननेसे वे शान्त हुए। किन्तु सिन्धु-प्रदेशका एकाधिपत्य उनके मनमें जागरित रहा।

सन् १८३६ ई०में नवनिहाल सिंहके विवाहके व्ययके लिये महाराजने स्वतन्त्र 'पेशकास' वसूल किया। सन् १८३७ ई०में यह विवाह सम्पन्न हुआ। इस विवाहमें अङ्गरेजराजके प्रधान सेनापति सर हेनरी फेन उपस्थित थे। उन्होंने वरको ११ हजार और राजा ध्यानसिंहको १ लाख २५ हजार रुपया उपहार दिया था। विवाहके बाद कई दिनों तक आमोद-प्रमोदके साथ बिता कर महाराजने यथोपयुक्त उपढौकन आदि दे कर अंग्रेजराजके सेनापतिको विदा किया।

सन् १८३७ ई०के शीतकालमें सिख-सेनापति हरि-सिंह खैबर पथसे आ कर जमरूद-दुर्ग पर अधिकार कर लिया। अमीर दोस्त महम्मदने इस समाचारसे सिक्खोंके विरुद्ध सैन्य भेजी। हरिसिंहकी अनुपस्थितिका अनुभव कर मिर्जा शामीखाँ और अमीरके पुत्रोंने ३० एप्रिल-को जमरूद पर आक्रमण किया। वे दुर्गमें घुस रहे थे, ऐसे समय हरिसिंहने आ कर पीछेसे गोलावर्षण किया। इस पर अफगान सैनिक तितर बितर हो कर भाग गये। इस अवसर पर अमीरपुत्र महम्मद अफजल खाँ और अफगान सेनापति शमशुद्दीन खांके अधीनमें साहाय्यकारी सेनादल आ कर सम्मिलित होनेसे फिर दोनों दलोंमें युद्ध आरम्भ हुआ। युद्धमें हरिसिंह मारे गये। सिक्खोंने जमरूद दुर्गमें आश्रय लिया। महाराज अपने लगोटिया यार प्रवीण सेनापतिकी मृत्यु और सिक्ख-सैन्यकी हारसे विचलित हो कर स्वय रोहतसकी ओर चले और ध्यानसिंहको जमरूद विजयके लिये भेज दिया। ध्यानसिंहके आ जाने पर अफगानी सफेदकोट नामक पहाड़ोंमें छिप गये। इधर हस्तनगर पर आक्रमण करनेवाले अफगान सरदार हाजी खाँ आदि सिक्ख सैन्योंके सामने न डट सकने पर पीछे हटे।

इसी वर्षके अक्तूबर महीनेमें सरदार फतेह सिंह अहलुवालियाकी मृत्यु हुई। महाराजके आज्ञानुसार सरदारका ज्येष्ठ बेटा निहालसिंह पिताकी सम्पत्तिका उत्तराधिकारी बना। इसी समय मण्डीराजके मन्त्री धानीने आ कर खबर दी, कि वृद्ध राजा राजकार्य संभालनेमें अक्षम हैं। इस पर महाराजने राजाके भतीजे बालावीर सिंहको ही गद्दीनशीन किया और उसे वहांका

राज्य चलानेकी आज्ञा दी। राजपौत्र नवनिहाल सिंह के अधीनस्थ सेनानायक आनूं मसिंह नाम और शेर सिंहने टङ्कके बलवेको शान्त किया।

इस समय हिरातपति कामरानके साथ पारस्यके राजाका मनोमालिन्य हो गया। रूस-दूत काउण्ट साईमोनीकके उपदेशानुसार शाहने हिरात पर घेरा डाला और नादिर शाहके राज्यान्तर्गत गजनी और कन्दहार पर दावा किया। मध्य एशियामें रूसका प्रादुर्भाव देख बड़े लाट आकलेण्डने उत्तर पश्चिम सीमान्तको मजबूत बनानेके लिये कप्तानसे अलेकजण्डर बर्नसको काबुलके साथ मित्रता स्थापनके दूतरूपसे भेजा। काबुल पहुंच उन्होंने मित्रता स्थापित करनेकी चेष्टा की, किन्तु अमीरने कहा, कि लाहोरके महाराज रणजित्‌को पराजित करनेमें हमारी मदद करो, तो हमारी तुम्हारी मित्रताकी सन्धि हो सकेगी। किंतु उन्होंने महाराजके विरुद्धाचारी बनना स्वीकार न किया, किंतु इन दोनों दलोंमें सद्भाव स्थापित करा देनेकी चेष्टामें व रहने लगे।

बर्नस अभी काबुलमें ही थे, कि अमीर काबुलसे भेंट करनेके लिये रूस-दूत विटुकेविच आये। काबुलके अमीर पारस्यके पक्षमें पड़ गये थे। बर्नसको बड़े लाटने लौट आनेकी आज्ञा दी। सन् १८३८ ई०की यह घटना है। बर्नस जब लौट कर लाहोर आये, तो महाराजने उनका बड़ा आदर सत्कार किया। बर्नस जब शिमला पहुंचे, तब उन्होंने बड़े लाटसे काबुलकी समस्या कही। बड़े लाटने दोस्त महम्मद और महाराजका मिलना असम्भव समझ शाहसुजाको काबुलकी गद्दी पर बैठाना स्थिर किया। इसके लिये बड़े लाटने राजनीतिक समस्याकी समालोचना करनेके लिये दोनों पक्षका हित समझाके मिस्टर मक्‌नॉटनको लाहोर दरबारमें भेज दिया। महाराज इस समय अदीन नगरमें रहते थे। शेर सिंहके पुत्र महाराजके पौत्र प्रताप सिंह ने अङ्गरेज-दूतका आगत-स्वागत किया। २६वीं और ३१वीं मईको महाराजके साथ अङ्गरेज-दूतसे भेंट हुई। महाराज अङ्गरेजोंके प्रस्ताव पर अपनी सम्मति दी और कहा, कि विजय होने पर मैं जलालाबाद ले लूंगा।

सन् १८३८ ई०के नवम्बर महीनेमें अङ्गरेजी फौज फिरोजपुरमें सिक्खोंके साथ आ मिली। बड़े लाट आकलैण्डने ३०वीं नवम्बरको प्रकाश्य दरबारमें महाराजसे भेंट की। अङ्गरेज और सिक्ख फौजोंने शाह सुजाके अधीन रह कर दूसरे वर्ष २४वीं अप्रिलको कन्दहार पर विजय पाई। ८वीं मईको शाहसुजा कन्दहारकी गद्दी पर विराजमान हुआ।

इस युद्धमें सिक्ख-सैन्यकी वीरता देख कर बड़े लाटने महाराज रणजित्‌के यथार्थ महत्त्वको हृदयङ्गम किया। लार्ड आकलैण्ड आदि अतिथियोंकी अभ्यर्थनाके समय महाराज रणजित्‌सिंहने कुछ अधिक मद्यपान कर लिया था। फलतः वे लकवाकी बीमारीसे पीड़ित हुए। इस बीमारीसे उनकी बोल-चाल बन्द हो गई। उस समयसे वे इशारेसे आज्ञा देने लगे। इस समय डाक्टर मूर प्रोस, मेक्‌ग्रेगर और हनिगबार्जरके यत्नसे वे रोगमुक्त हुए। इसके बाद ही वे फिर रोगाक्रान्त हुए। इस तरह हकीम, राजवैद्योंने आ कर औषध-परिवर्तनकी व्यवस्था की। गुरु शान्तिस्वस्त्ययनादि द्वारा रोगशान्तिका उपाय करने लगे। अन्तमें राजाकी मानसिक दुर्बलताको दूर करनेके लिये हकीम फकीर अजीजुद्दीनने अपने हाथसे एक महजून या मोदक प्रस्तुत कर महाराजको खिलाया। किन्तु वे क्रमशः दुर्बल ही होते गए। अन्तमें लाहोर दुर्गमें उन्होंने २७वीं जून सन् १८३९ ई०में अपना नश्वर कलेवर त्याग इस धराधामसे कूच किया।

उन्होंने मृत्युके पहले ही प्रधान प्रधान सरदारोंके सामने अपने ज्येष्ठ पुत्र खड़गसिंहको अपना उत्तराधिकारी बनाया। राजा ध्यानसिंहको सम्मानसूचक उपाधि प्रदान की गई और इन्हें मन्त्रिपद पर नियुक्त किया गया। राजकार्यके कर्त्तव्यके अनुसार यह समाचार तुरत ही मुलतान, पेशावर, काश्मीर आदि अधीनस्थ राज्योंके शासनकर्त्ताओंके पास भेज दिया गया।

महाराजकी अन्त्येष्टिक्रियाके दिन हजारों रुपया गरीबोंको लुटाया गया। मृत्युके पूर्व ध्यानसिंहने १० लाख रुपए खर्च कर एक उच्च वेदी तय्यार कर उस पर शाल बिछवा महाराजको सुला दिया था। यह शाल दस हजार रुपयेका था। महाराजकी अन्त्येष्टिके दिन भी जगन्नाथदेवको प्रसिद्ध कोहिनूर हीरा दान कर देनेकी

बात हुई। किन्तु तोपखानेके अध्यक्ष मिश्र बेणीराम ने उसको राजसम्पत्ति कह कर इस कामके लिये नहीं दिया।

जब रणजित्की देह चिता पर जलानेके लिये जाने लगी थी, तब उनकी निःसन्तान चार रानियां और सात बांदियां स्वर्गारोहणकी कामनासे सती होनेके लिये खुले पैरसे शवदेहके पीछे पीछे चलीं। रानियोंमें संसारचन्दकी कन्या राजदेवी भी थी। डाकूर हनिगबार्गर यह वीभत्स घटनाको देख कर चमक उठे। उन्होंने लिखा है, कि स्वर्गमें स्वामीके साथ सुखसे दिन बितानेकी आशासे ही उन रानियों और बांदियोंने महाराजके चितामें अपने शरीरको जला कर सतीका नाम पाया था। ध्यानसिंहको भी महाराजकी मृत्युका बड़ा शोक हुआ था। उन्होंने भी अपने परिवारके सभी व्यक्तियोंके साथ महाराजकी शवदेहके साथ जल जाना स्थिर कर लिया था। किन्तु वे रोके गये। दो दिन तक चिता जलती रही। इस चिताके साथ कोई चौदह प्राणियोंका संहार हुआ। पीछे चिताभस्म ले कर उनके परिवारका आदमी हरिद्वारकी गङ्गाजीमें डालनेके लिये ले आया। इस समय भी बहुत धन वस्त्र लुटाया गया। कहनेका प्रयोजन नहीं, कि तेरह दिनके बाद प्रेतकार्य करनेके दिन ब्राह्मण पण्डित तथा फकीरोंको यथेष्ट धन दान किया गया था।

महाराज रणजित् सिंह कुछ पढ़े लिखे व्यक्ति न थे; किन्तु सदा वे विद्वान् पण्डितोंका आदर सत्कार किया करते थे। उनके राजकार्य चलानेके लिये उच्च पदस्थ कर्मचारी उनके साथ साथ घूमते थे और जो काम या कानून उनकी आज्ञा पर निर्भर करता था, वे उन सबोंके सम्बन्धमें कर्मचारियोंसे फारसी, हिन्दी अथवा गुरुमुखी भाषामें पढ़वा कर अपनी राय दिया करते थे। उनके आज्ञानुसार कार्य हुआ या नहीं इसकी जांच करनेके लिये फिर वे उन्हें पढ़वाते थे। यूरोपीय दर्शकोंसे वे हिन्दी तथा स्वदेशी आदमियोंके साथ गुरुमुखी भाषामें बातचीत करते थे। वे छोटे कदके थे। बचपनमें ही शीतला रोगसे उनका बायां नेत्र नष्ट हो गया था। मुख पर भी शीतलाका दाग था। मुखका सौन्दर्य तो उनको छू तक न गया था, किंतु उनके गाम्भीर्यकी ओर दृष्टिपात करने पर उनकी सरलता, वाक्यालापमें मनोहारिता, ज्वलन्त और दृढ़ प्रतिभा और निर्भीकता स्वतः ही मनमें दौड़ आती थी। उनकी जो एक आंख बच गई थी, वह आयत, चञ्चल, सूक्ष्मदर्शी और उनके मानसक्षेत्रकी गूढ़ भावव्यञ्जक थी। उनका दीर्घश्वेतश्मश्रु (मूंछ), उनकी स्थिर प्रकृतिका परिचायक था। जब वे सिंहासन पर बैठ कर विचार करते बैठते थे, तब उनका एक हाथ जङ्घे पर और एक हाथ मुंह पर ही रहता था। इससे ही उनके वैषयिक गवेषणाका पता चलता था।

उनका हृदय स्नेह और काठिन्यसे परिपूर्ण था। अतिथिके आदर सत्कारकी चरमसीमा वे दिखा गये हैं। यूरोपीय और वैदेशिकोंके प्रति उन्होंने जो सरल और सहृदयता दिखाई थी, वह ज्वलन्त अक्षरोंमें इतिहासमें लिखा हुआ है। लार्ड-विलियम वेण्टिक और लार्ड अकलैण्ड उनकी सदाशयता और अमायिकतासे बहुत ही परितृप्त हुए थे। फारसी परिदर्शक मूसों विक्टर जैकमोण्टने लाहोरमें आ कर महाराजसे वार्त्तालाप कर लिखा है, कि उनके जैसा अनुसन्धित्सापरायण व्यक्ति अति विरल है। वे सब विषयोंमें पूर्ण रूपसे समाचार संग्रह करनेमें विशेष आग्रह प्रकाश करते थे। एक बातमें उनको "छोटा बोनापार्ट और एक असामान्य मनुष्य कहा जा सकता है।" लेफ्टनेण्ट बर्निस कुछ शब्दोंमें महाराजकी उदारता और महत्त्वका जो परिचय दिया है, उस पर विचार करनेसे मनमें स्फुर्त्ति दौड़ती है। उन्होंने अपने भ्रमण-वृतान्तमें लिखा है :—

'I never quitted the presence of a native of Asia with such impression as I left this man, Without education and without a guide he conducts all the affairs of his kingdom with surpassing energy and vigour and yet he wields his power with a moderation quite unprecedented in an eastern Prince."

यौवनके समय वे कर्मठ, वीर्य्यशाली और उद्यमशील थे। शिकार खेलनेमें उनकी विशेष प्रवृत्ति थी,

घोड़ोंकी सवारीमें पटु थे। इसी कारण उन्होंने प्रसिद्ध लेखी सफदरता आदि घोड़ोंके संग्रह करनेमें आग्रह प्रकाश किया था। उनको चमन-चमन पसन्द थी। उन्होंने राजकर्मचारियोंको बहुत वेतन और वृत्तियां दिया करते थे, जिससे वे बहुमूल्य वस्त्रादि पहन कर दरबारकी शोभा बढ़ाया करें। वे युद्धोंके दमन करनेवाले थे, पास-पड़ोसके राजाओंको दण्ड दे कर, उन्होंने उनके राज्यको लूटा था। पिछले समयमें इस लूटनेकी प्रवृत्तिमें भी कमी आ गई थी। वे नजराना और करसंग्रह करनेमें वे जरा भी विचलित न थे। वे कट्टर धार्मिक न थे। फिर भी, वे ग्रन्थ साहबका पाठ तथा प्रयागनीय नित्य कर्म करते रहते थे। धार्मिक पूजा आदि कर्मोंमें उनकी विशेष भक्ति न थी, गुरु, भाई, बाबा साधु और भिक्षुकोंको अर्थ दान कर उन्होंने दानशीलताका विशेष परिचय दिया था।

रणजय (सं० पु०) रणं जयति जि-अच्। १ रणजेता युद्धमें जय करनेवाला। (भाग० ९।१५।११) २ राजभेद एक राजाका नाम।

रणतूर्य (सं० क्ली) रणस्य तूर्यं। युद्धवाद्य, लड़ाईका डंका। पर्याय—संग्रामपटह, समरडिण्डिम।

रणत्कार (सं० पु०) झन झन शब्द करना।

रणथम्भर—राजपूतानेके जयपुर सामन्तराज्यके अन्तर्गत एक गिरिदुर्ग। यह अक्षा० २६° २' उ० तथा देशा० ७६° ३०' पू०के मध्य अवस्थित है। समतलभूमिसे एक ऊंचे पर्वतके ऊपर प्राचीर आदि और बुर्जों द्वारा परिशोभित यह ऊंचा दुर्ग प्राचीन गौरवस्मृतिकी घोषणा करता है। दुर्गके भीतर वहांके राजपूत शासनकर्त्ताका प्राचीन प्रासाद मसजिद और सेनावास सफेद पत्थरसे निर्मित है। दुर्गके पूर्व नगर बसा हुआ है। दुर्गवासी पर्वत पर चौड़ी हुई सीढ़ी हो कर नगर जाते हैं।

यह दुर्ग बहुत दिनों तक चौहानवंशके अधिकारमें था। १२९१ ई०में दिल्लीके खिलजीवंशीय मुसलमान राजा जलालउद्दीनने इस दुर्गमें घेरा डाला था। किन्तु कृतकार्य न हो सका। १२९९ ई०में इमादाबादके पठानने इस दुर्ग पर आक्रमण किया। अन्तमें अलाउद्दीनने रणथम्भरको जीत कर वहांके राजाको सपरिवार मार डाला था। इसके बाद राजपूतोंने शिशोदियोंसे यह दुर्ग पुनः छीन लिया। १५१६ ई०में मालवराज इस दुर्गके अधीश्वर थे। १५५३ ई०में मुगलसम्राट् हुमायूंने जब महम्मद शाहको दिल्लीसे मार भगाया, उसके बाद ही यह दुर्ग राजाके हाथ आया। उन्होंने पीछे इसे अकबरशाहको सौंप दिया। १७वीं सदीके मध्यभागमें मुगलसाम्राज्यके अधःपतन होने पर जयपुरराजने इसे दखल किया। दुर्गके भीतर प्राचीन कीर्त्तिके अनेक निदर्शन पड़े हैं।

रणदुन्दुभि (सं० पु०) रणस्य दुन्दुभिः। रणभेरी, युद्धका नगाड़ा।

रणदुर्गाधारणयन्त्र (सं० क्ली०) रणदुर्गाया धारणयन्त्र। रणदुर्गादेवीका धारणयन्त्र। दुर्गादेवीका यह यन्त्र भोजपत्रपर लिख कर पहनना होता है।

रणधवल—मेवाड़के राजा।

रणधीर सिंह—कपूरथलाके एक हिन्दू राजा, महाराज रणजित्के सेनापति सर्दार फतेसिंहके पौत्र। ये १८५२ ई०के सितम्बर महीनेमें पिता निहालसिंहके मरने पर २२ वर्षकी अवस्थामें पितृसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। उच्च शिक्षागुणसे इनका स्वभाव बहुत ऊंचा था। अंगरेजी भाषामें भी इनकी अच्छी व्युत्पत्ति थी। १८५७ ई०के गदरमें इन्होंने अपना सेनादल ले कर अंगरेजोंकी ओरसे जालन्धर और हुसियारपुर दुर्गकी रक्षा की थी। इसके सिवा इनके तथा इनके भाई कुमार विक्रमसिंह द्वारा जालन्धर दोआब और दक्षिण अवध् प्रदेशका विद्रोह शान्त किये जाने पर अंगरेज राजने प्रसन्न हो १ लाख ३१ हजार रुपया जो राजाके यहां बाकी था छोड़ दिया और वार्षिक राजकरमेंसे भी २५ हजार रुपया माफ किया। इसके अलावा इनको १५ हजार और इनके भाईको ५ हजार रुपयेकी खिल्अत दी तथा 'फरजन्द दिलबन्द रसिखुल इतिकाद' उपाधिके साथ साथ राजाके सम्मानार्थ तोपकी संख्या भी बढ़ा दी थी। १८५८ ई०में अयोध्याप्रदेशका विद्रोह जब दमन किया जा रहा था, तब इन्होंने वहां पदार्पण कर शत्रुओंसे ६ कमान छीन ली थी। इस महान कार्यमें इन्होंने रणक्षेत्रमें जो अविश्रान्त परिश्रम किया उससे भारत-सरकारने खुश हो इन्हें अयोध्याके अन्तर्गत सात ८२५ मापका भूखण्ड और

विरौली राज्य-प्रदान किया। केवल यही नहीं, इनके पिता-के मृत्युकालमें पैतृक वडि-ट्रेआव सम्पत्ति जो सरकारने छीने ली थी उसे भी वापस कर दिया। कुमार विक्रमसिंह वहादुरको वहराइच जिलान्तर्गत वार्षिक ४५ हजार आय-की एक सम्पत्ति पारितोषिकमें मिली। इसके वाद लार्ड कैनिङ्गने दत्तक ग्रहणका अधिकार देते हुए एक सनद और 'राजा-इ राजगन्'-की उपाधि प्रदान की।

१८६४ ई०के अक्तूवर मासमें रणधीरने लाहोर-दर-वारमें काश्मीर और पतियालाके महाराज, झिन्द और फरिदकोटके राजा तथा अन्यान्य स्वाधीन सिख-सरदारों-के सामनेमें 'स्टार आव इण्डिया'की पदवी पाई।

१८७० ई०में इन्होंने इङ्गलैण्डकी यात्रा कर दी। आदेननगरमें पोडित हो २री अप्रिलको इनकी मृत्यु हुई। अनन्तर इनके लडके खड्गसिंहने पिताकी मृत देह नासिक नगरमें ला कर अन्त्येष्टि क्रिया की।

रणधीरसिंह—जादराज रणजित् सिंहके पुत्र। पिताके मरने पर ये भरतपुर-मसनद पर वैठे थे।

रणन (सं० क्ली०) शब्द करना, वजना।

रणपण्डित (सं० पु०) योद्धा।

रणपुर—वम्वईके अहमदावाद जिलेके धन्धुका विभागका एक नगर। यह अक्षा० २२° २१´ उ० तथा देशा० ७१° ४३´ पू०के मध्य भद्रनदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या साढे छः हजारसे ऊपर है। वर्त्तमान भाऊ-नगर-राजवंशके पूर्वपुरुष रणाजी गोहेल नामक एक राज-पूत-सरदारने १४वीं सदीके प्रारम्भमें इस नगरको वसाया। रणजीके पिता शेजाजी पहले पहल यहां आये थे। उनके नामानुसार पहले इस स्थानका सेजाकपुर नाम पडा। पीछे उनके लडके रणाजीने नगरको दुर्गसे सुरक्षित करके अपने नाम पर इसका रणपुर नाम रखा। १५वीं सदीमें इस वंशका कोई सरदार इस्लाम-धर्ममें दीक्षित हुआ। तभीसे वह वंश रणपुर मोलेसलम कह-लाता है। १६४० ई०में सरदार आजम खाँने शाहापुरका दुर्गप्रासाद वनाया। १८वीं सदीमें यह नगर गायक-वाड़ द्वारा अधिकृत हुआ। पीछे १८०२ ई०में यह अंग-रेजोंके हाथ लगा। यहां भाऊनगर-गोण्डाल रेल-पथका एक स्टेशन और डाकवंगला है। १८८६ ई०में म्युनिस-पलिटी स्थापित हुई है। शहरमें एक मिडिल स्कूल, दो वर्नाक्युलर स्कूल और एक अस्पताल हैं।

रणपुर—उडिसा-विभागके अन्तर्गत एक देशी सामन्त-राज्य। यह अक्षा० १९°५४´ से २०° १२´ उ० तथा देशा० ८५° ८´ से ८५° २८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरि-माण २०३ वर्गमील है। इसके उत्तर, पूर्व और दक्षिणमें पुरी जिला तथा पश्चिममें नयागढ राज्य है। इस राज्य-का दक्षिण-पश्चिमांश पहाड और जंगलसे आच्छादित है। इस अंशमें मनुष्योंका वास नहीं है, केवल नयागढ राज्यमें जानेका गिरिपथके समीप एक छोटा गाँव है। यहां राजाका प्रासाद है। प्रति सप्ताहमें दो वार करके हाट लगती है। खण्डपाडा, चिल्काहृद आदि दूर देशोंसे भी इस हाटमें द्रव्यादि विकनेको आते हैं।

वृटिश सरकारको राजा वार्षिक १४०० रु० कर देते हैं। राजमालामें लिखा है, कि ३६०० वर्ष पहले वासर वासुक नामक एक व्याधने इस राज्यको वसाया। रणशूर-के नामानुसार इस स्थानका नाम रणपुर हुआ। यहां-की जनसंख्या ४५ हजारसे ऊपर है जिसमेंसे तृतीयांश हिन्दू हैं। राज्यमें १ मिडिल स्कूल, ३ अपर प्राइमरी और ३८ लोअर प्राइमरी स्कूल तथा १ अस्पताल है।

रणपुरस्वामिन् (सं० पु०) सूर्यमूर्त्तिभेद। (राजतर० ३।४६२)

रणप्रिय (सं० क्ली०) रणे प्रियं। १ उशीर, खस। (पु०) रणः प्रियोऽस्य। २ श्येनपक्षी, वाज पक्षी। ३ विष्णु। (भारत १३।१४९।८७) ४ युद्धप्रियमात्र।

रणवहादुर शाह—नेपालके एक राजा। इनकी महिषी ललितत्रिपुरासुन्दरी देवीका १८७५ सम्वत्में उत्कीर्ण शिलाफलक मिलता है। नेपाल देखो।

रणभञ्ज देव—१ उडीसाके भञ्जवंशीय एक राजा, दिग्भञ्ज-के पुत्र तथा कोट्टभञ्जके पौत्र। २ उक्त वंशीय एक दूसरे राजा। इनके पिताका नाम था शत्रुभञ्ज देव।

रणभीत—कलिंगके एक सामन्त राजा।

रणभू (सं० स्त्री०) रणस्य भूः। रणभूमि, लड़ाईका मैदान।

रणभूमि (सं० स्त्री०) वह स्थान जहां युद्ध हो, लडाईका मैदान।

रणभूषण—सह्याद्रिवर्णित एक राजा। (सह्या० ३३।५१)
रणमण्डल—सह्याद्रिवर्णित एक राजा। (सह्या० ३०।१८)
रणमण्डा (हिं० स्त्री०) पृथ्वी।
रणमत्त (सं० पु०) रणे रणे प्राप्य वा मत्तः। १ हस्ती हाथी। २ युद्धमें मत्त।
रणमालो—सह्याद्रिवर्णित एक राजा। (सह्या० ३३।३०)
रणमल्ल—मरुस्थली (मारवाड़) प्रदेशका एक राजपूत राजा।
रणमुख (सं० क्लो०) युद्धार्थी सेनादलके परस्परका सम्मुखभाग।
रणमुष्टि (सं० पु०) विष्मुष्टि क्षुप कुचिला।
रणमूर्च्छा (स ० स्त्री०) कर्णारिरङ्गी।
रणमूर्धन् (सं० पु०) युद्धका सम्मुख देश।
रणरङ्ग (सं० पु०) हाथीके बाहरी दोनों दाँतोंके बीचका भाग।
रणरङ्ग (स ० पु०) १ युद्धक्रीड़ा, लड़ाईका उत्साह २ युद्ध, लड़ाई। ३ रणस्थल, युद्धक्षेत्र।
रणरङ्गमल्ल—धारा (मालव) देशाधिपति। इन्होंने राज मार्त्तिक नामक योगसूत्रका एक वार्त्तिक प्रणयन किया। भोजराज देखो।
रणरण (स ० क्लो०) १ उत्कण्ठा, व्यग्रता, घबराहट। (पु०) रणरण इति शब्दोऽस्त्यस्येति अर्श आदित्वादच्। २ मसक, मच्छड़। ३ पछतावा रंज। (त्रि०) रणे रणः शब्दो यस्य। ४ रणरणक्रशील।
रणरणक (स ० पु० क्ली०) १ कामदेव। २ उत्कण्ठा प्रबल कामना। ३ व्यग्रता, घबराहट।
रणलक्ष्मी (स ० स्त्री०) विजयलक्ष्मी युद्धकी देवी जो विजय करनेवाली मानी जाती है।
रणवन्य (स ० पु०) राजभेद।
रणविक्रम—एक हिन्दू-राजा।
रणविग्रह—एक हिन्दू-नरपति।
रणवीर सिंह—काश्मीरके एक महाराज. महाराज गुलाब सिंहके पुत्र। ये १८५७ ई०में राजसिंहासन पर बैठे। १८८५ ई०को १२वीं सितम्बरको इनकी मृत्यु हुई। अंगरेज सरकारने इन पर सदय हो कर थोड़े मूल्यमें इन्हें काश्मीर राज्यका छोड़ दी। इनके पुत्र प्रतापसिंह पिताके मरने पर राजा हुए।

रणवृत्ति (स ० पु०) सैनिक योद्धा।
रणशिक्षा (स ० स्त्री०) रणस्य शिक्षा। युद्धाभ्यास।
रणशूर (स ० पु०) रणे शूरः। युद्धस्थलमें वीर, जो युद्धमें वीरता दिखाते हैं। २ दक्षिणराढ़के आदिशूर वंशीय एक स्वाधीन राजा। ११वीं सदीमें राजेन्द्र चोलके हाथसे ये पराजित हुए थे।
रणसङ्कुल (स ० क्लो०) रणस्य स कुलं। तुमुल, युद्ध।
रणसज्जा (स ० स्त्री०) सैन्य समावेशरूप व्यापार भेद।
रणसत्र (स ० क्लो०) रणयज्ञ।
रणसिंघा (हि ० पु०) तुरही, नरसिंघा।
रणसिंह—एक मेहरराज।
रणसिंह—मेवाड़के एक राणा। ये वाप्पावंशीय विक्रम सिंहके बाद राजगद्दी पर बैठे।
रणसिंहा (हि ० पु०) रणसिंघा देखो।
रणस्तम्भ—राजपुतानेके अन्तर्गत एक नगर। सम्भवतः यह स्थान वर्त्तमान रणस्तम्भ या रणस्तम्भगढ़ है। (देवलकी ३७।२)
रणस्तम्भ (स ० पु०) वह स्तम्भ जो किसी रणमें विजय-प्राप्त करनेके स्मारकमें बनवाया जाता है, विजयका स्मारक।
रणस्थल (स ० पु०) लड़ाईका मैदान, रणभूमि।
रणस्थान (स ० क्लो०) रणस्य स्थानं। युद्धस्थान, लड़ाईका मैदान।
रणस्वामिन् (स ० पु०) १ शिव, महादेव। रणस्य स्वामी। २ युद्धका प्रधान सञ्चालक या सेनापति।
रणहंस (स ० पु०) एक वर्णवृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें सगण, जगण, भगण और रगण होते हैं। इसको 'मनहंस' 'मानहंस' और 'मानसहंस' भी कहते हैं।
रणहस्तिन्—राजविजय नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता।
रणाग्नि (स ० पु०) रणसंघाग्नि। रणरूप अग्नि।
रणाग्र (स ० क्लो०) १ युद्धका आरम्भ। २ युद्धका सम्मुख देश।
रणाङ्ग (स ० क्लो०) युद्धास्त्र आदि।
रणाङ्गण (स ० क्लो०) युद्ध-स्थल लड़ाईका मैदान
रणाजि (स ० पु०) साम्यभेद।

रणाजिर (सं० क्ली०) रणस्थल, युद्धक्षेत्र।

रणातोद्य (सं० क्ली०) वह ढाक जो युद्धक्षेत्रमें वजाया जाता है।

रणादित्य—१ काश्मीरके एक राजा। ये राजा युधिष्ठिरके पुत्र और नरेन्द्रादित्यके अनुज थे। राजा नरेन्द्रादित्यके परलोकवास होने पर रणादित्यका काश्मीरके सिंहासन पर अभिषेक हुआ। राजा रणादित्य तुञ्जीन नामसे भी प्रसिद्ध थे। इनकी स्त्री रणारम्भा स्वयं वैष्णवी शक्ति ले कर भूतलमें अवतीर्ण हुई थी। राजा रणादित्यके पूर्व-जन्मकी कथा राजतरङ्गिणीमें लिखी हुई है।

राजा रणादित्य पूर्वजन्मके जुआड़ी थे। वे किसी समय जुएमें अपना सर्वस्व हार कर विशेष दुःखी हुए। अनन्तर वह धनप्राप्तिकी आशासे शरीर त्याग करने पर उद्यत हुए। धूर्त मृत्युके समय भी स्वार्थ साधन करनेसे नहीं हिचकते। विन्ध्याचलकी देवी भ्रमरवासिनीके दर्शन करनेसे इष्टसिद्धि होती है। इस कारण वे उनका दर्शन करनेके लिये तैयार हुए। परन्तु भ्रमरवासिनी देवीका दर्शन करना बड़ा कठिन है, क्योंकि वहांका मार्ग बड़ा कठिन है। भवरें और मधुमक्खियोंके कारण पांच योजन मार्ग काटना बड़ा ही कठिन है। अतएव उसने लोहेका कवच, उस पर भैसेका चमड़ा और उस पर गोबर मिट्टीका लेप लगा कर अभेद्य कवच बनाया। वे उसी कवचको पहन कर बड़े वेगसे चले। इस कवचसे यद्यपि उनकी पूर्णतः रक्षा नहीं हुई तथापि इससे उन्हें सहायता अधिक मिली, इसमें सन्देह नहीं। वह भगवतीके पास पहुंचे। उनके साहससे प्रसन्न हो कर भगवतीने उन्हें दर्शन दिये। वह भगवतीके रूप पर मोहित हुए और उन्होंने भगवतीके साथ सङ्गमकी प्रार्थना की। भगवतीने उसे बहुत समझाया। परन्तु समझे कौन? कामियोंमें समझनेकी वुद्धि नहीं होती। अन्तमें उसका दृढ़ निश्चय देख कर भगवतीने कहा, कि दूसरे जन्ममें तुम्हारी यह अभिलाष पूर्ण होगी। वह द्यूतकार वहांसे चला आया। और प्रयागके अक्षयवटकी शाखासे वही भावना करते हुए गिर कर मर गया। वैष्णवीदेवी रणारम्भारूपसे उत्पन्न और द्यूतकार रणादित्यके रूपमें उत्पन्न हुआ। २ एक प्राचीन कवि।

रणान्तकृत् (सं० त्रि०) १ रणान्तकारी, लड़ाई शेष करनेवाला। (पु०) २ विष्णु।

रणायेत (सं० त्रि०) युद्धस्थलसे भाग जानेवाला।

रणाभियोग (सं० पु०) १ युद्ध करना, लड़ाई करना। २ वीरकी तरह चढ़ाई करना।

रणारम्भा—काश्मीर-पति रणादित्यकी महिषी। रणारम्भास्वामी नामक एक देवमूर्त्ति इनकी स्थापित है।

(राजतर० ३।४६०)

रणालङ्करण (सं० पु०) रणस्य अलङ्करणः। कङ्क पक्षी।

रणावनि (सं० स्त्री०) रणस्य अवनिः। रणभूमि, युद्धस्थल।

रणाश्व (सं० पु०) राजपुत्रभेद।

रणित् (सं० त्रि०) रमणशील, विचरनेवाला।

रणेचर (सं० त्रि०) रणे चरतीति 'चरेष्ट' इति ट, अलुक्समासः। १ रणविचारी। (पु०) २ विष्णु।

रणेश (सं० पु०) १ विष्णु। २ शिव, महादेव।

रणेश्वर (सं० पु०) १ शिवलिङ्गभेद। २ विष्णु।

रणेस्वच्छ (सं० पु०) कुक्कट, मुर्गा।

रणेषिन् (सं० त्रि०) रणेच्छु।

रणोत्कट (सं० त्रि०) १ रणोन्मत्त, जो रणमें सम्मिलित होने या रण ठाननेके लिये उन्मत्त हो रहा हो।

रणोजी सिन्दे—ग्वालियरके सिन्दे-राजवंशके प्रतिष्ठाता। पूनाके निकटवर्त्ती पतोली ग्राममें इनका जन्म हुआ था। पहले ये १म पेशवा वाजीरावके शरीर रक्षि-सैनादलकेनायकके अधीन काम करते थे। सामान्य सैनिक वृत्तिसे निज अध्यवसायके बल धीरे धीरे इनकी तरक्की होती गई। राजा शाहजीके राज्यकालके अंतिम समयमें ये पेशवाके साथ मालव जीतनेको गये थे। युद्धमें मालवराज्य महाराष्ट्रीय सेनापतिके हाथ लगा। युद्धजयके बाद वाजीराव, सताराराज और होलकर पतिने उस राज्यको आपसमें बांट लिया। रणोजीकी वीरता पर प्रसन्न हो वाजीरावने अपना तथा सतारा-राजका कुछ अंश उन्हें पुरस्कारमें दिया (१७२४ ई०)। वही अंश पीछे उनके वंशधरको जागीरस्वरूप दे दिया

गया था। १८५० ई०में पांच पुत्रको छोड़ ये परलोक सिधारे। पीछे उनके बड़े लड़के प्रयाणा राज सिंहासन पर बैठे।

रणोद—मध्य-भारतके ग्वालियर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह नरोद नामसे भी प्रसिद्ध है। यह नगर पेराघटी या अहिरपाल नालाके पश्चिमी किनारे बसा हुआ है। यहां प्राचीन हिन्दू और मुसलमान मकानोंके बहुतसे खंडहर नजर आते हैं। यहां जो सब शिलालिपि पाई गई हैं, उनमें राजा सोमेश्वर आदिके नाम अङ्कित देखे जाते हैं। सम्भवतः पार्श्ववर्त्ती नरवार राज्यके कच्छप घात वंशीय राजगण यहां राज्य करते थे। यहांका मुसलमानों कीर्त्तिमें अङ्किरो मसजिद उल्लेखनीय है।

रणोद्दीपसिंह—१ नेपालके प्रधान मन्त्री। ये १८८५ ई०में नेपालके राजविद्रोहमें षाटशामशेर द्वारा मारे गए थे। २ मोक्षसिद्धिके प्रणेता कृष्णगिरिका प्रतिपालक।

रण्ड (सं० त्रि०) रम् (अमन्तात् ड। उण् १।११३) इति ड। १ अङ्गधर्माबच्छिन्नावयव। २ धूर्त्त वाचाल। ३ विकल, वधीन।

रण्डक (सं० पु०) रण्ड इवेति रण्ड कन्। १ अफल वृक्ष, वह पेड़ जिसमें फल न आते हों। २ रण्ड देखा।

रण्डा (सं० स्त्री०) रमन्तेऽनेति रम् ड-टाप्। १ मूषिकपर्णी। २ विधवा, रांड।

रण्डानन्द—एक प्राचीन कवि।

रण्डाश्रमिन् (सं० पु०) रण्डो विकल आश्रमो सोऽस्त्यस्य रण्डाश्रम-इनि। वह जो ४८ वर्षका अवस्थाके उपरान्त रड़ुआ हुआ हो, ४८ वर्षकी उम्रके बाद जिसकी स्त्री मरे।

रण्य (सं० त्रि०) रमणीय।

रण्यजित् (सं० त्रि०) रण्यं जयति जि क्विप्। रमणीय धनजयकारी।

रण्यवाच् (सं० त्रि०) रण्या वाक् यस्य। रमणीय वाक्य युक्त।

रण्व (सं० त्रि०) रमणीय।

रण्वन् (सं० त्रि०) रमणीय।

रण्वित (सं० त्रि०) १ नन्दित, नन्द किया हुआ। २ स्तुत, स्तुति किया हुआ। (ऋक् ७।३।९)

रत (सं० क्ली०) रमणमिति रम् भावे क्त। १ मैथुन, प्रसङ्ग।

कामशास्त्रमें बाह्य और आभ्यन्तरभेदसे रत दो प्रकार का कहा है, चुम्बनादि बाह्य तथा मैथुन आभ्यन्तर रत। २ योनि। ३ लिङ्ग। ४ प्रेम, प्रीति। (त्रि०) ५ अनुरक्त, प्रेममें पड़ा हुआ। ६ नियुक्त, कार्य आदिमें लगा हुआ, लिप्त।

रतताल (सं० पु०) रत मैथुन कालमित परस्परं सपश्यतीति कील-क। १ कुक्कुर, कुत्ता। (हेम) रतस्य कीला। २ सुरत-बन्धक।

रतकूजित (सं० क्ली०) रतस्य कूजित। मैथुनकालीन वाक्, मणित।

रतगुरु (सं० पु०) रतस्य रते वा गुरुः। पति, खसम।

रतजगा (हिं० पु०) १ किसी उत्सव या विहार आदिके लिये सारी रात जाग कर बिता देना। २ एक त्योहार जो पूर्वी संयुक्त-प्रान्त तथा विहार आदिमें भाद्रपद कृष्ण २की रातको होता है। इसमें प्रायः स्त्रियां रात भर कजली आदि गाया करती हैं। ३ वह आमन्दोत्सव जो रात भर होता रहे।

रतज्वर (सं० पु०) रतेन ज्वरोऽस्य। काक, कौआ।

रतताम्रिन् (सं० पु०) रत तवति प्रतिशं क्रमत इति तम णिनि। पिङ्ग, अवारा लपट।

रतताली (सं० स्त्री०) रते तालः प्रतिष्ठाऽस्याः ङीप्। कुट्टनी, कुटना।

रतन (स० पु०) रत्न देखा।

रतन कवि—श्रीनगर बुन्देलखण्डके निवासी एक भाषा कवि। सन् १७१८ ई०में इनका जन्म हुआ था। ये कवि राजा फतहशाह बुन्देला श्रीनगरके दरबारमें थे। इन्होंने अपने आश्रयदाता राजाके नाम पर फतहशाह भूषण और फतप्रकाश नामक दो ग्रन्थ लिखे हैं।

रतनगढ़—राजपूतानके बीकानेर राज्यान्तर्गत एक नगर। यहां १६ देवमन्दिर मौजूद हैं।

रतनजोत (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी मणि। २ एक प्रकारका बहुत छोटा क्षुप। यह काश्मीर और कुमाऊं में अधिकतासे होता है। इसमें ७ इञ्च प्रायः एक फाल्गुन तक लम्बे होते हैं जिनमें कांड़के पत्तोंकर प्रायः चार

अंगुल तक लम्बे और कुछ अनीदार पत्ते और छोटे छोटे फूलों तथा फलोंके गुच्छे लगते हैं। इसकी जड़ लाल रंगकी होती है जिससे लाल रंग निकाला जाता है और तेल आदि रंगे जाते हैं। वैद्यकमें यह गरम, रुक्ष, पित्तज, त्रिदोषनाशक तथा जीर्णज्वर, प्लीहा, गोथ आदिको दूर करनेवाली और मस्तिष्कको हानि पहुंचानेवाली कही गई है। इसके कई भेद होते हैं जिनमेंसे एकके डंठल और पत्ते अपेक्षा कृत बड़े होते हैं और एक छत्तेके आकारकी होती है जिसकी पत्तियां बहुत छोटी होती हैं। वैद्यकके अनुसार इन सबके गुण भी भिन्न भिन्न होते हैं और इनका व्यवहार औषधरूपमें होता है। २ वृहद्दन्ती, बड़ी दंती।

रतननाथ—एक प्रसिद्ध योगी।

रतनपुर—बम्बईप्रदेशके रेवाकान्ता एजेन्सीके अन्तर्गत राजपिप्पली सामन्तराज्यका एक नगर। यह अक्षा० २१° २४′ उ० तथा देशा० ७३° २६′ पू०के मध्य अवस्थित है। भरोंच नगरसे यह ७ कोस उत्तर-पूर्व पड़ता है। १७०५ ई०में मरहठोंने यहां सफदर खां बाबी और नगर अली खां द्वारा परिचालित मुगल सेनादलको परास्त किया था। पर्वतकी चोटी पर बाबा घोरका मकबरा मौजूद है। उस साधुके उद्देशसे यहां प्रति वर्ष मेला लगता है।

रतनपुर—मध्यप्रदेशके बिलासपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २२° १७′ उ० तथा देशा० ८२° ११′ पू०के मध्य बिलासपुर शहरसे १६ मील उत्तर पड़ता है। जनसंख्या प्रायः ५४७६ है। इस नगरमें पहले छत्तीस गढ़के हैहयवंशीय राजाओंकी राजधानी थी। १७८७ ई०में राजा बिम्भाजी भोंसलेकी मृत्युके बादसे यह नगर तहस नहस हो गया। आज भी प्राचीन दुर्गके गुम्बज, प्राचीन प्रासादकी टूटी फूटी दीवार और सूखी झीलायें अतीत स्मृतिकी घोषणा करती है। पूर्वाच्छिन्न यहां हिन्दू गौरववर्द्धक असंख्य सती-स्तम्भ विद्यमान हैं। इनमेंसे राजा लक्ष्मण-शाहकी २० रानियोंके सती स्तम्भ उल्लेखनीय हैं। प्रायः २६० वर्ष पहले वे सब बनाये गये थे। नगरांश प्रायः १५ वर्गमील विस्तृत है। शहरमें एक वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल है।

रतनपुर धमका—बम्बईप्रदेशके काठियावाड़ विभागके गोहेलवाड प्रान्तान्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य। राजा बड़ोदाके गायकवाड और जूनागढ़के नवाबको कर देते हैं।

रतनमाला—मध्यभारतके भोपावर एजेन्सीके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। यहांके सरदार धीरपसिंह अंगरेज-राजको किसी तरहका कर नहीं देते। उनका छोटा राज्य जंगलोंसे भरा है, इसलिये अंगरेज-सरकारने राजस्व छोड़ दिया।

रतन राव—बूंदीके राव राजा। ये राव राजा भोजके प्रथम पुत्र थे। राव रतनके राज्यकालमें अकबरकी मृत्यु हो गई थी। उस समय जहांगीरके सिर पर मुगल-राजछत्र शोभित हो रहा था। जहांगीरने अपने पुत्र परवेजको दक्षिणके शासनकर्त्ताका पद दिया इससे उनके दूसरे पुत्र खुर्रमने द्वेषके वशवर्ती हो कर अपने सौतेले भाई परवेजको मार डाला। तदनन्तर उसने अपने पिताको भी मारनेके लिये आयोजन किया। खुर्रम राजपूत-नन्दिनीके गर्भसे उत्पन्न हुआ था। अतएव उसे राजपूत राजाओंसे सहायता मिली थी। इस अवस्थामें बादशाह जहांगीरको गद्दीसे उतारनेके लिये यह कुचक्रियोंका दल उद्योग कर रहा था। परन्तु इस दुःखके समय भी राव रतनने बादशाह जहांगीरका पक्ष ग्रहण किया था।

राव रतनसिंहने अपने दोनों पुत्रोंके साथ जहांगीरके उस महादुःखके समय बुरहानपुरमें जा कर पितृद्रोही खुर्रम और उसके साथी राजाओंको युद्धमें एक बार ही परास्त किया। यह युद्ध सन् १५७६ ई०में हुआ था। इसी विजयके उपलक्षमें जहांगीरने राव रतनको बुरहानपुरका शासन-भार दे दिया। राव रतनने बुरहानपुरके शासन करनेके समय वहां 'रतनपुर' नामक एक गांव भी स्थापित किया था। बुरहानपुरके दूसरे युद्धमें ये मारे गये थे।

रतनाकर (हिं० पु०) १ रत्नाकर देखो। २ रतनजोत देखो।

रतनागर (हिं० पु०) समुद्र।

रतनागरभ (हिं० स्त्री०) पृथ्वी, भूमि।

रतनार (हिं० वि०) रतनारा देखो।

रतनारा (हिं० वि०) कुछ लाल, सुर्खी लिये हुए। इस शब्दका प्रयोग अधिकतर आंखोंके लिये ही होता है।

रत्नाराघ (सं० पु०) इन्द्रियसेवक। रत्नारीण देखो।

रत्नारा (हिं० पु०) १ एक प्रकारका धान। (स्त्री०) २ लाली, लालिमा। (वि०) ३ रतनारा देखो।

रत्नारीय (सं० पु०) रते मार्या विनोदीति विं उ। १ कामदेव। २ कुक्कुर, कुत्ता। ३ भवारा, लंपट। ४ वर वत्सल।

रत्नावला (हिं० स्त्री०) रत्नमाली रत्ना।

रत्निधि (सं० पु०) रत्नेन निधियस गोप्य वस्तु। खञ्जन पक्षी, ममोला।

रत्नबन्ध (सं० पु०) रत्नस्य बन्धः। रतिबन्ध। रतिबन्ध देखो।

रत्नहिक (सं० क्ली०) रत्नस्य प्रक्षिप्त, शैवादिमापेति कम्। १ दिवस, दिन। २ सुरतस्नान। ३ मदमंगल।

रतलाम—१ मध्यभारतके पश्चिम मालव एजेन्सीके अन्त र्गत एक सामन्त राज्य। यह अक्षा० २३ ३´ से २३ ३३´ उ० तथा देशा० ७४ ३१´ से ७५ १६´ पू०के मध्य अव स्थित है। भूपरिमाण ७२१ वर्गमील है। राजपूताना मालवके रेलपथ इस राज्यकी राजधानी हो कर चला गया है। इसके उत्तरमें जौरा और प्रतापगढ़ राज्य, पूर्वमें ग्वालियर दक्षिणमें धार और कुशलगढ़ तथा पश्चिममें कुशलगढ़ और बांसवारा है। कहते हैं, कि इसके प्रतिष्ठाता रत्नसिंहसे राज्यका नामकरण हुआ है, पर यह ठीक नहीं जंचता। क्योंकि, आइन इ अकबरीमें अबुलफजलने लिखा है, कि रत्नसिंहके पहले यह राज्य विद्यमान था और मालवा-सूबाके उज्जैन-सरकारके एक महालमें गिना जाता था।

यहांका राजवंश जोधपुर-राजवंशकी छोटी शाखा है। पश्चिम-भारतके राजपूत-सरदारोंमें इन्हीं का दरजा सबसे ऊंचा है। रत्नसिंह नामक इस वंशके किसी आदिपुरुषने युद्धमें बड़ी वीरता दिखा कर शाहजहांसे मालवमें अन्यतम एक जागीर पाई थी। आगे चल कर ये लोग सिन्दे राजके करद हो कर ग्वालियर राजसर कारमें वार्षिक ८४ हजार सलीमशाही मुद्रा (६६००० पौण्ड) भेजने लगे थे। १८१९ ई०के बन्दोबस्तके अनु सार उस राजके सहायता उनके राज्यशासन सम्पर्क में ग्वालियर-पतिका कोई अधिकार न रहा। वे सेना भेज कर रतलामके सरदार पर हुकूमत नहीं कर सकते थे। १८४४ ई०में अंगरेजोंके साथ सिन्देराजकी जो सन्धि हुई उसके अनुसार ग्वालियर-सैनादलका कुछ खर्च-वर्च देनेके लिये यह राजस्व अंगरेजोंके हाथ लगा दिया गया था। तभीसे यह वृटिश-सरकारके हाथ से ही दिया जाता है। १८५७ ई०के गदरमें बलवन्त सिंह राजसिंहासन पर आरूढ़ थे। उन्होंने गदरमें सरकारको काफी मदद पहुंचाई थी, इस कारण सर कारने उन्हें तथा उनके वंशधरको खिलअत दी थी। पीछे १८६४ ई०में रणजितसिंह सिंहासन पर बैठे। उनकी नाबालगी अर्थात् १८८० ई०तक राजकार्य दूसरोंके अधीन रहा। राज्यको १० लाख रुपयेका देन था, सो दूसरोंके सुशासनसे कुल चुका दिया गया। रणजितसिंह ने नमक आदि पर जो महसूल लगता था, उसे १८८१ ई०में उठा दिया केवल अफीम पर रहने दिया। १८८१ ई०में रणजितसिंहको K C I E की उपाधि मिली। १८९३ ई०में उनका देहान्त हुआ। पीछे उनके लड़के राजा सज्जनसिंह सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। ये ही वर्त्तमान राजा हैं। इन्हें हिज हाइनेस और राजाकी उपाधि है तथा ११ सलामी तोपें मिलती हैं।

राज्यमें रतलाम नामक शहर और २०६ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ८३७७३ है जिसमेंसे हिन्दूकी संख्या सैकड़े पीछे ६५, भीलकी १३, मुसलमानकी १२ तथा शेषमें अन्यान्य जातियां हैं। यहांकी प्रधान उपज गेहूं, जुआर, उड़द और चना है। राज्यकी आय ५ लाख रुपयेसे ऊपर है। यहां १८६४ ई०में राज्यकी ओरसे बालकका स्कूल, १८८० ई०में बालिकाका स्कूल और १८७२ ई०में रतलाम सेण्ट्रल कालेज स्थापित हुआ। स्कूलके अलावा एक अस्पताल और चिकि त्सालय भी है।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २३ २१´ उ० तथा देशा० ७५ २´ पू० बम्बईसे ४११ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। समुद्रकी तहसे इसकी ऊंचाई १५७७ फुट है। जनसंख्या ३१ हजारसे ऊपर है। यहां अफीम तथा दूसरे दूसरे अनाजोंका जोरों कारबार चलता है। नगर हो कर रेल पथके गुजरने स्थानीय वाणिज्यकी

बड़ी सुविधा हो गई है। सेण्ट्रल कालेजके सिवा शहरमें और भी सरकारी तथा राज्यके ५० स्कूल हैं। यहां सरकारी डाकघर, तारघर, डाकबंगला तथा राजपान्थनिवास है।

रतवत् (सं० त्रि०) रमणयुक्त।

रतव्रण (सं० पु०) रतेण व्रणोऽस्य रतं व्रण इव कष्टदायकं अस्येति वा। कुक्कुर, कुत्ता।

रतशायिन् (सं० पु०) रते नश्यति तनूरस्येत्यान्मानमिति शो-णिनि। कुक्कुर, कुत्ता।

रतहिण्डक (सं० पु०) रते रतार्थं वा हिण्डते हिण्ड ण्वुल्। १ स्त्रीचोर, वह जो स्त्रीको चुराता हो। २ लम्पट, अवारा। पर्याय—षिड्ग, व्यलोक, पल्लव, द्रावक, भुजङ्ग, चुम्बक, लट्ट, भृङ्ग, नारीतरङ्गक, स्वतिक, रतनारोय, बन्धक, रतताली, कटार, कामी, सेटी, नागर, दासीप्रिय, कुण्डकीट।

रताञ्जली (सं० पु०) रक्तचन्दन, लाल चंदन।

रताम्दुक (सं० पु०) रतार्थमन्दुक-इव। कुक्कुर, कुत्ता।

रतान्ध्री (सं० स्त्री०) रते रन्ध्रीव। कुञ्झटिका।

रतामर्द (सं० पु०) रते रतकाले आमर्दोऽस्य। कुक्कुर, कुत्ता।

रताम्बुक (सं० क्ली०) ऊरुसन्धिके ऊपरका दो गह्वर।

रतायनी (सं० स्त्री०) रतमेवायन जीवनगतिर्यस्याः। वेश्या, रंडी।

रतार्थिन् (सं० त्रि०) रतमर्थयते अर्थ णिनि। सुरतक्रीडाभिलाषी।

रतार्थिनी (सं० स्त्री०) मैथुनाभिलाषिणी, वह स्त्री जिसे मैथुन बहुत प्रिय हो।

रतालू (हिं० पु०) १ पिण्डालू नामक कन्द जिसका व्यवहार तरकारी बनानेमें होता है। २ वाराहीकन्द, गेंठी।

रति (सं० स्त्री०) रम्यतेऽनया इति रम्-क्तिन्। १ कामदेवकी पत्नी। यह दक्ष प्रजापतिकी कन्या मानी जाती है। कहते हैं, कि दक्षने अपने शरीरके पसीनेसे इसे उत्पन्न करके कामदेवको अर्पित किया था। यह संसारकी सबसे अधिक रूपवती और सौन्दर्यकी साक्षात् मूर्त्ति मानी जाती है। इसे देख कर सभी देवताओंके मनमें अनुराग उत्पन्न हुआ था, इसलिये इसका नाम रति पड़ा। जिस समय शिवजीने कामदेवको अपने तीसरे नेत्रसे भस्म कर दिया उस समय इसने बहुत अधिक विलाप करके शिवजीसे यह वरदान प्राप्त किया था कि अबसे कामदेव बिना शरीरके या अनंग हो कर सदा बना रहेगा। यह भी माना जाता है, कि यह सदा कामदेवके साथ रहती है। (कालिकापु० ३ अ०) २ अनुराग, प्रेम। ३ कामक्रीडा, सम्भोग। ४ शोभा, छवि। ५ सौभाग्य, खुशकिस्मती। ६ साहित्यमें शृंगार रसका स्थायी भाव, नायक-नायिकाके मनमें एक दूसरेके प्रति आकर्षण। ७ वह कर्म जिसका उदय होनेसे किसी रमणीय वस्तुसे मन प्रसन्न होता है। (जैन) ८ गुप्तभेद, रहस्य। ९ एक अप्सरा। (भारत १३।१९।४५) १० रत्ती देखो।

रति (हिं० स्त्री०) राति, रात, रैन।

रतिकर (सं० त्रि०) १ आनन्ददायक, जिससे आनन्दकी वृद्धि हो। २ प्रणयवर्द्धक, जिससे प्रेमकी वृद्धि हो। ३ कामी। (पु०) ४ एक प्रकारकी समाधि।

रतिकर्मन् (सं० क्ली०) स्त्री-सहवासरूप काम।

रतिकलह (सं० पु०) मैथुन, सम्भोग।

रतिका (सं० स्त्री०) ऋषभ स्वरकी तीन श्रुतियोंमेंसे अन्तिम श्रुति।

रतिकान्त (सं० पु०) कामदेव।

रतिकान्त तर्कवागीश—मुग्धबोध व्याकरणके एक टीकाकार।

रतिकुहर (सं० क्ली०) रत्याः कुहरः। योनि, भग।

रतिकेलि (सं० स्त्री०) भोगविलास, सम्भोग।

रतिक्रिया (सं० स्त्री०) रत्याः क्रियाः। मैथुन, सम्भोग। पर्याय—संवेशन।

रतिगुण (सं० पु०) देव-गन्धर्वभेद।

रतिगृह (सं० क्ली०) रत्याः गृहं। १ योनि, भग। २ रमणमन्दिर।

रतिघोष—एक प्राचीन नगर।

रतिचरणसमन्तस्वर (सं० पु०) गन्धर्वराजभेद।

रतिजनक (सं० त्रि०) रत्याः जनकः। १ अनुरागजनक, प्रीति उत्पन्न करनेवाला। २ राजभेद।

रतिजह (सं० पु०) समाधिभेद।

रतिज्ञ (सं० त्रि०) १ रतिकुशल, जो रतिक्रियामें चतुर हो। २ चतुर प्रेमिक, जो किसी स्त्रीके मनमें अपने प्रति प्रेम उत्पन्न करनेमें निपुण हो।

रतितस्कर (सं० पु०) सतीत्वनाशकारी, वह जो स्त्रियों को अपने साथ व्यभिचार करनेमें प्रवृत्त करता हो।

रतिताल (सं० पु०) तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक भेद।

रतिदान (सं० पु०) मैथुन, सम्भोग।

रतिदेव (सं० पु०) १ विष्णु। २ एक चन्द्रवंशीय राजाका नाम जो सांकृतिके पुत्र थे। ३ कुक्कुर, कुत्ता।

रतिधन (सं० पु०) वह भक्त जिससे दूसरे भक्तोंका नाश होता हो।

रतिनाग (सं० पु०) सोलह प्रकारके रतिबन्धोंमेंसे एक प्रकारका रतिबंध। इसके लक्षण—

"मोहयेदुरुयुग्मेन कामुकं कामिनी यदि।
रतिनागः समाख्यातः कामिनीनां मनोरमः॥"

(रतिमञ्जरी)

यदि कामिनी कामुकको दोनों जंघेसे पीड़ा दे, तो यह बंध होता है।

रतिनाथ (सं० पु०) कामदेव।

रतिनायक (सं० पु०) कामदेव।

रतिपति (सं० पु०) रत्याः पतिः। कामदेव। साहित्य दर्पणमें रतिपतिका आविर्भाव-स्थान इस प्रकार वर्णित है—

"माथि भीमाधुरीणां कनककमलदलश्यामिनीनां कपोले
दन्ते गौडाङ्गनानां सुरतिविलसने चोलकर्णे पलानां।
वैदर्भाणां नितम्बे उरजफलयुगे करणी कर्णपात्रे
कार्णाटानां करौ च स्फुरति रतिपतिर्गुर्जरीणां तनुषु॥"

(साहित्यदर्पण)

माथुरी रमणियोंके वाक्यमें, मिथिला जनपद वासि नियोंके कपालमें, गौड़नारीके दन्तमें, उत्कल रमणियोंके जघनमें, वैदर्भियोंके नितम्बमें, कर्णाटियोंके कटाक्षपातमें, कार्णाटियोंकी कटिमें तथा गुर्जरी रमणीके स्तनमें रतिपति आविर्भूत होते हैं अर्थात् यह सब स्थान उनके बड़े रमणीय हैं।

रतिपद (सं० पु०) एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरण में दो नगण और एक सगण होता है।

रतिपाश (सं० पु०) रतेः पाश इव। रतिबन्धविशेष। इसके लक्षण—

"पीडयेदुरुयुग्मेन कामुकं यदि सुन्दरी।
रतिपाशस्तथा स्यातः कामिनीनां सुखावहः॥"

(स्मरदीपिका)

रतिमञ्जरीमें इस बंधका उल्लेख नहीं है, किन्तु "रतिनागबंध" उल्लिखित हुआ है, उसका भी लक्षण इसी प्रकार है। सुतरां रतिनागबंध और रतिपाशबंध एक है।

रतिपूर्ण (सं० पु०) कामभेद।

रतिप्रिय (सं० पु०) रतौ प्रियः। १ कामदेव। २ सुरतप्रिय, वह जिसे मैथुन बहुत प्रिय हो। (देवीभाग० ७।१०।१८)

रतिप्रिया (सं० वि० स्त्री०) १ वह स्त्री जिसे मैथुन बहुत प्रिय हो। (स्त्री०) २ शक्तिमूर्त्तिविशेष, तान्त्रिकोंके अनुसार शक्तिकी एक मूर्त्तिका नाम। ३ दाक्षायिणीका एक नाम।

रतिप्रीतर (सं० स्त्री०) वह नायिका जिसका रतिमें प्रेम हो, मैथुनसे प्रसन्न होनेवाली स्त्री।

रतिबन्ध (सं० पु०) रतौ बन्धः ६-तत्। मैथुन या सम्भोग करनेका प्रकार। इन्हें आसन भी कहते हैं। यह सोलह प्रकारका होता है। यथा—पद्मासन नागपाश, लता वेष्ट, अर्द्धसंपुट, कुलिश, सुन्दर, केशर, हिल्लोल नर सिंह विराट, क्षुब्ध धेनुक, उत्कण्ठ, सिंहासन, रतिनाग, विद्याधर। इन सब बन्धोंके लक्षण उन्हीं शब्दोंमें देखो।

रतिभवन (सं० क्ली०) रत्याः भवनं। १ रतिगृह, योनि, भग। २ रमणमन्दिर, वह स्थान जहां प्रेमी और प्रेमिका मिल कर रतिक्रीड़ा करते हों।

रतिभाव (सं० पु०) १ नायक-नायिकाका परस्पर आकर्षण, दाम्पत्य भाव। २ प्रीति मुहब्बत।

रतिमत (सं० त्रि०) रतिः विद्यतेऽस्य मतुप्। अनुराग विशिष्ट, रतियुक्त।

रतिमता—विष्णुभक्तोंमें श्रेष्ठ एक ब्राह्मण रमणी। इन्होंने अपनी भक्तिके प्रभावसे भगवान् वैकुण्ठपतिको प्राप्त किया था।

रतिमदा (सं० स्त्री०) रतेर्मदोऽस्याः। अप्सरा।

रतिमन्दिर (सं० क्ली०) रतेर्मन्दिर मिव। १ योनि, भग। २ मैथुनगृह, रतिभवन।

रतिमित्र (सं० पु०) रतौ मित्र, [illegible]। कामशास्त्रके अनुसार एक प्रकारका रतिबंध या आसन।

"[illegible]
[illegible]॥"

([illegible])

यदि कामुकी स्त्री कामुक का [illegible] रमण करे, तो वह बंध [illegible] है। यह बंध कामिनियोंके अति सुखजनक है।

रतिया—पञ्जाबप्रदेशके हिसार जिलान्तर्गत एक नगर। पहले यह स्थान तुर्क राजपूतोंके अधिकारमें था। पीछे पठानोंने इसे ध्वंस किया। १७८३-८४ ई०के महाभारी दुर्भिक्षसे यह स्थान जनशून्य हो गया। अनन्तर अंग्रेजी अधिकारमें आनेके बाद जाट लोग यहां आ कर बस गये हैं। नगर म्युनिसपलिटीकी देखरेखमें रहनेके कारण साफ सुथरा है।

रतिरमण (सं० पु०) रत्या रमणः। १ कामदेव। २ मैथुन, सम्भोग।

रतिरस (सं० त्रि०) सहवास सुख।

रतिराज (सं० पु०) कामदेव।

रतिलक्ष (सं० क्ली०) रतिं लक्षयतीति लक्षि-अच्। निधुवन, मैथुन।

रतिलम्पट (सं० त्रि०) रमणेच्छु, सम्भोग-प्रिय।

रतिलील (सं० पु०) तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक।

रतिलोल (सं० पु०) एक राक्षसका नाम।

रतिवन्त (हिं० वि०) सुन्दर, खबसूरत।

रतिवर (सं० पु०) १ कामदेव। २ वह भेंट जो किसी स्त्रीको उससे रति करनेके अभिप्रायसे दी जाय।

रतिवर्द्धन (सं० त्रि०) १ कामवर्द्धक, जिससे कामशक्ति बढ़ती हो। २ प्रणयोन्मेषक।

रतिवर्द्धनमोदक (सं० पु०) मोदक औषधविशेष। बनाने का तरीका—गोक्षुरबीज, कोकिलाक्षबीज, अश्वगन्धा, शतमूली, तालमूली, शूकशिम्बीबीज, मुलेठी, गोपवल्ली और विजबन्द, इनके चूर्णको गायके घीमें भून कर दूधमें सिद्ध करे। पीछे चीनीके साथ मोदक बनावे। इनमें चूर्णसे आठ गुना दूध, चूर्णके बराबर घी और कुल द्रव्यके बराबर चीनी डालनी होती है। अग्निके बलानुसार इस मोदकका सेवन करनेसे शीघ्र वाजीकरण होता है।

(भैषज्यरत्ना० वाजीकरणाधि०)

रतिवल्लभमोदक (सं० पु०) वाजीकरणाधिकारका औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—[illegible] पल, घी ५ पल, चीनी ३० सेर, [illegible] रस ३२ सेर, [illegible] रस ४ सेर, गायका दूध ८ सेर, [illegible] सेर, प्रक्षेपके लिये जायफल, [illegible], दारचीनी, इलायची, तेजपत्र, नागेश्वर, [illegible], गोपवल्ली, [illegible], धनिया, [illegible], कूठ, मुलेठी, [illegible], अजवायन, [illegible] अजवायन, [illegible] प्रत्येक दो दो तोला, पीछे यथाविधान इस मोदकको पाक करके नीचे उतार ले। अनन्तर ठंढा होने पर २ पल मधु डाल कर मृगनाभि और कपूर द्वारा उसे सुवासित करना होगा। यह औषध अत्यन्त बलवर्द्धक, वातव्याधिनाशक, वातपित्तहर, दृष्टिसन्दीपन और रक्तपित्तादि रोगनाशक है। यह अति उत्कृष्ट वाजीकरण है। (भैषज्यरत्ना० वाजीकरणाधि०)

रतिवल्लभाख्यपूगपाक (सं० पु०) वाजीकरणाधिकारोक्त औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—शुक्तिका सुपारीको टुकड़े टुकड़े कर जलमें सिद्ध करे। जब वह नरम हो जाय, तब धूपमें सुखने दे। अनन्तर उसे चूर्ण कर कपड़ेमें अच्छी तरह छान ऽ१। सेर निकाल ले। पाछे ८ गुने दूध और आध सेर घीमें पका कर उसमें ऽ६। सेर चीनी मिलावे। अच्छी तरह पाक हो जाय तब उसमें निम्नलिखित चूर्ण डालना होगा। चूर्ण यथा—इलायची, गोपवल्ली, विजबंद, पिप्पली, जातीफल, कपित्थ, जातीपत्र, अर्कपत्र, तेजपत्र, दारचीनी, सोंठ, वीरणमूल, अतिबला, मोथा, त्रिफला, वंशलोचन, शतमूली, शूकशिम्बी, द्राक्ष, कोकिलाक्षबीज, गोक्षरबीज, रहती, पिण्डखजूर, क्षीरी, धनिया, केशर, मुलेठी, सिंघाड़ा, जीरा, मगरेला, अजवायन, बीजकोष, जटामांसी, सौंफ, मेथी, भूमिकुष्माण्ड, तालमूली, असगन्ध, कपूर, नागकेसर, मिर्च, पियालकबीज, गजपीपल,

पद्मबीज, श्वेतचन्दन, रक्तचन्दन और लवङ्ग प्रत्येकका चूर्ण आध पाव। फिर पारेकी भस्म, राँगा, सीसा, लोहा, अभरक, कस्तूरी और कर्पूर-चूर्ण ये सब वस्तु जहां तक हो सके, वही काफी है। अग्निके बलानुसार इस औषध का सेवन करना उचित है। इसके सेवनकालमें किसी प्रकारका अम्लद्रव्य व्यवहार न करे। इसका सेवन करने से जठराग्नि, बलवीर्य और कामको वृद्धि होती, वार्द्धक्य नष्ट होता तथा शरीर पुष्ट हो कर घोड़े के समान मैथुन कारी हो जाता है। यह रतिवल्लभपूगपाक ले कर कामे श्वरमोदक बनाया जाता है। इसमें और दूसरी दूसरी वस्तु मिलानेसे कामेश्वरमोदक बनता है।

(भावप्र० वाजीकरणाधि)

रतिवल्ली (सं० स्त्री०) प्रेम, प्रीति।

रतिवाही (सं० पु०) एक प्रकारका राग। इसके गानेका समय रातको १६ दण्डसे २० दण्ड तक है। यह सम्पूर्ण जातिका राग है और इसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं।

रतिशक्ति (सं० स्त्री०) रमण करनेकी क्षमता।

रतिशास्त्र (सं० पु०) कोकशास्त्र, वह शास्त्र जिसमें रतिकी क्रियाओंका विवेचन हो।

रतिशूर (सं० पु०) पुत्रोत्पादनक्षम व्यक्ति, वह मनुष्य जो पुत्र उत्पन्न कर सके।

रतिसंयोग (सं० पु०) मैथुनक्रिया, सङ्गम।

रतिसंहति (सं० स्त्री०) रमण करनेकी क्षमता।

रतिसत्वरा (सं० स्त्री०) रती सत्वरा। स्पृक्का, असवरग।

रतिसमर (सं० पु०) सम्भोग, मैथुन।

रतिसाधन (सं० क्ली०) रत्याः साधनं। शिश्न, पुरुषकी मूत्रेन्द्रिय।

रतिसुन्दर (सं० पु०) कामशास्त्रके अनुसार एक प्रकार का रतिबन्ध।

"नारीपादद्वयं कामी धारयेदुदरं यदि।
चूचकपदो रमेत् कामो बन्धः स्याद्रतिसुन्दरः॥"

(रतिमञ्जरी)

कामुक यदि नारीके दोनों पैरोंको बाँधे पर रखे और उसका गला पकड़ कर रमण करे, तो वह रतिसुन्दर बन्ध होता है।

रतिसेन (सं० पु०) चोलराजाका एक नाम।

रती (सं० स्त्री०) रक्तगुञ्जा, लाल घुंघची।

रती (हिं० स्त्री०) १ आठ जौ या आठ चावलका मान। रत्ती देखो। (वि०) २ थोड़ा, कम। (क्रि० वि०) ३ जरा-सा, रत्ती भर।

रतुआ (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास जो बरसातके दिनों या ठण्डी जगहोंमें अधिकतासे होता है।

रतू (सं० स्त्री०) ऋतीयते इति (कृतरम च। उण् १।६४) इति कू अमृत। १ देवनदी। २ सत्यवाक्, सत्यवाक्।

रतून (हिं० पु०) पेड़ोंकी ड़क या गन्ना। यह एक बार काट लेने पर फिर उसी जड़से निकलता है।

रतेश—पञ्जाब-प्रदेशके केउन्थलके शासनमुक्त एक छोटा सामन्त राज्य। यहांके सरदारोंका उपाधि ठाकुर है।

रत्नोवह (सं० पु०) रतं प्रहति प्रापयतीति रत् वह-अच्। कोकिल, कोयल।

रत्तीरक (हिं० पु०) १ लाल सुरमा। २ लाल कड़िया। ३ गेरु।

रतौंधी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका रोग। इसमें रोगी को सन्ध्या होनेके उपरान्त अर्थात् रातके समय बिलकुल दिखाई नहीं देता।

रत्तक (हिं० पु०) ग्वालियरमें होनेवाला एक प्रकारका पत्थर जो कुछ लाल रंगका होता है।

रत्ती (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारका बहुत छोटा मान। इसका व्यवहार सोने या औषधियों आदिके तौलनेमें होता है। यह आठ चावल या चार जौके बराबर होता है और प्रायः घुंघचीके दानेसे तौला जाता है। यह एक मासेका आठवाँ भाग होता है। २ वह बाट जो तौलमें इतने मानका हो। ३ घुंघचीका दाना, गुंजा। (वि०) बहुत थोड़ा, किंचित्।

रत्था (हिं० स्त्री०) लकड़ी या बाँसका वह ढाँचा या संदूक आदि जिसमें शवको रख कर अन्तिम संस्कार के लिये ले जाते हैं, टिकठी, विमान।

रत्न (सं० क्ली०) रमयति हर्षयतीति रम् णिच् (रमन्त च। उण् ३।१४) इति न तकारादन्यास्त्रश्च। १ कुछ विशिष्ट छोटे चमकीले बहुमूल्य पदार्थ, विशेषतः खनिज पदार्थ का पत्थर जिनका व्यवहार आभूषणों आदिमें जड़नेके

लिये होता है, मणि, जवाहिर, नगीना। २ स्वजाति-श्रेष्ठ, जो अपने वर्ग या जातिमें सबसे श्रेष्ठ हो।

"जातौ जातौ यदुत्कृष्ट तद्रत्नमिति काश्यते।

जातिमें जो उत्तम है, वही रत्न कहलाता है। जैसे—स्त्री-रत्न, मनुष्य रत्न इत्यादि। ३ माणिक्य, लाल।

रत्नोत्पत्तिका कारण गरुडपुराणमें इस प्रकार लिखा है। वल नामक एक बहुत बलिष्ठ असुर था। इसने देवताओंको परास्त किया था। देवताओंने यज्ञ करके इस असुरसे प्रार्थना की थी कि, 'तुम हम लोगोंके इस यज्ञमें पशु बनो।' पुण्यात्मा बलने देवताओंको प्रार्थना स्वीकार कर ली और उस यज्ञमें पशु बन कर अपना शरीर त्याग कर दिया। उसके इस विशुद्ध कर्म द्वारा देहके सभी अवयव रत्नबीजरूपमें परिणत हुए। उसके अङ्ग, समुद्र, पर्वत, नदी आदि जिस जिस स्थान पर गिरे वहां रत्नकी खान बन गई थी। (गरुडपु० ८ अ०)

रत्न नौ प्रकारका है,—१ रत्न (हीरा), २ गारुत्मत (पन्ना), ३ पुष्पराग, ४ माणिक्य, ५ इन्द्रनील, ६ गोमेद, ७ वैदूर्य, ८ मौक्तिक, ९ विद्रुम।

रत्नकी नामनिरुक्ति—

"धनार्थिना जना' सर्वं रमन्तेऽस्मिन्नतीव यत्।
ततो रत्नमिति प्रोक्त शब्दशास्त्रविशारदैः॥" (भावप्र०)

धनाभिलाषी मनुष्य रत्न पा कर बहुत आनन्दित होते और उसमें अत्यन्त रत रहते हैं, इसीसे पण्डितोंने इसका 'रत्न' नाम रखा है।

रत्नका दूसरा नाम मणि है। यह रत्न पत्थरके भेदसे मुक्ता आदि नामोंसे पुकारा जाता है। रत्न ९ हैं, इस नवरत्नको महारत्न भी कहते हैं।

"मुक्ताफल हीरकञ्च वैदूर्य पद्मरागकम्।
पुष्परागञ्च गोमेदं नील गारुत्मत तथा।
प्रवालयुक्तान्येतानि महारत्नानि वै नव॥"
(विष्णुधर्मोत्तर धृत भावप्र०)

मुक्ता, हीरा, वैदूर्य, पद्मराग, पुष्पराग, गोमेद, नीलकान्त, पन्ना ओर प्रवाल ये ९ महारत्न हैं। अग्निपुराणके रत्नपरीक्षा-प्रकरणमें अनेक प्रकारके रत्नोंका उल्लेख देखनेमें आता है। रत्न ये सब है—वज्र, मरकत, पद्मराग, मुक्ता, महानील, इन्द्रनील, वैदूर्य, गन्धशस्य, चन्द्रकान्त, सूर्यकान्त, स्फटिक, पुलक, कर्कतन, पुष्पराग, ज्योतीरस, राजपट्ट, राजमय, सौगन्धिक, गञ्ज, शङ्ख, गोमेद, रुधिराख्य, भल्लातक, धूली, तुत्थक, सीस, पीलु, प्रवाल, गिरिवज्र, भुजङ्ग, मणि, वज्रमणि, टिट्टिभ, पिण्ड, भ्रामर, उत्पल। (अग्निपु० २४५ अ०)

इन सबकी रत्नोंमें गिनती होने पर केवल ९ ही रत्न प्रधान हैं। तन्त्रसारमें नवरत्नका इस प्रकार उल्लेख है।

"मुक्ता माणिक्यवैदूर्य गोमेदान् वज्रविद्रुमौ।
पुष्पराजं मरकतं नीलञ्चेति यथाक्रमात्॥" (तन्त्रसार)

मुक्ता, माणिक्य, वैदूर्य, गोमेद, हीरा, विद्रुम, पुष्पराग, मरकत और नील ये ९ नवरत्न या महारत्न हैं।

शास्त्रमें रत्नधारणको महापुण्यजनक बताया है। ज्योतिषशास्त्रमें लिखा है, कि ग्रहवैगुण्य होनेसे रत्नधारण और रत्नदान अरिष्टनाशक है। इसका यह मतलब नहीं, कि सभी रत्नधारण कर सकते हैं। मूल, धातु और रत्न इन तीन प्रकारके वस्तुदान और धारणकी व्यवस्था है। इनसे जो सम्पन्न हैं, वही रत्नधारण कर सकते हैं। इसीसे उपकार होगा। जो रत्नधारणके अनुपयोगी हैं, वे यदि रत्नधारण करें, तो उनका अनिष्ट होता है।

जैनोंके मतसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र यही तीन रत्न हैं। त्रिरत्न देखो।

रत्नकन्दल (सं० पु०) रत्नानां कन्दल इव। प्रवाल, मूंगा।

रत्नकर (सं० पु०) कुवेर।

रत्नकण्ठ—१ पञ्चाङ्गकौतुक नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। २ सारसमुच्चय नामक काव्यप्रकाशकी एक टीकाके रचयिता। ३ एक विख्यात पण्डित तथा धौम्यवंशीय शङ्करकण्ठके पुत्र। इन्होंने १६७२ ई०में शिष्यहिता नामकी युधिष्ठिरविजयटीका और १६८१ ई०में स्तुतिकुसुमाञ्जलिटीका प्रणयन किये।

रत्नकर्णिका (सं० स्त्री०) प्राचीनकालका कानमें पहननेका एक प्रकारका जडाऊ गहना।

रत्नकलस (सं० क्ली०) रत्नकी बनी कलसी।

रत्नकला (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद।

रत्नकीर्त्ति (सं० पु०) एक बुद्धका नाम।

रत्नकुमारी—प्रसिद्ध सितारे हिन्द राजा शिवप्रसादकी दादी। ये बड़ी विदुषी थीं। संस्कृत तथा फारसी साहित्यमें इनका ज्ञान बहुत चढ़ा बढ़ा था। संगीत शास्त्र तथा चिकित्साशास्त्रमें भी इनका पूर्ण ज्ञान था। राजा शिवप्रसाद कहा करते थे—"हमारे पास जो कुछ ज्ञान है वह सब मेरी पूज्य दादीका दिया हुआ है।" इनकी कविता बहुत सुन्दर और भक्तिपूर्ण हुआ करती थी। इन्होंने 'प्रेमरत्न' नामकी एक पुस्तक बनाई। इनके बनाये कुछ दोहे यहाँ उद्धृत किये जाते हैं—

"परम रम्य व बन सघन, कुञ्ज पुञ्ज छविधाम।
जहँ नृप तरु हरित अरु, लता सुशोभित श्याम॥
जहँ बहती नदन अरु, कृष्ण कालिन्दी नीर।
न मराल कूजत करत, न मधुपाक तीर॥
न रास भूमि आनन्द विविध, बहत त्रिविध सुसमीर।
प्रफुल्लित व चैरव कमल, न तरल वे नीर॥
जहँ विलित बसन्त नित, जहँ गानीचन्द।
न रजनी रव रास कर, ब्रज नवल नन्दनन्द॥"

रत्नकूट (सं० पु०) रत्नमयः कूटो शृङ्गमस्य। १ एक पर्वतका नाम। २ एक बोधिसत्त्वका नाम। ३ एक द्वीप। (कथासरित्सा० २६।३)

रत्नकूलेश्वर—हिमालयस्थ शिवलिङ्गभेद। (हिमव० ८।१०८)

रत्नकेतु (सं० पु०) १ बुद्धका नाम। २ एक बोधिसत्त्वका नाम। बौद्धमतसे भविष्यमें दो सहस्र बुद्ध इस नामसे परिचित होंगे।

रत्नकोटि (सं० पु०) १ समाधिभेद। २ असंख्य रत्न।

रत्नकोटिगिरि—एक पर्वतका नाम।

रत्नक्षेत्रकूटसन्दर्शन (सं० पु०) एक बोधिसत्त्वका नाम।

रत्नखचित (सं० त्रि०) रत्नमण्डित।

रत्नखनि (सं० स्त्री०) १ रत्नकी खान। २ समुद्र।

रत्नखेट दीक्षित—शैलोपरिणय नाटकके प्रणेता। सुभाषित रत्नभाण्डागार ग्रन्थमें इनका उल्लेख है।

रत्नगर्भ (सं० पु०) रत्नानि गर्भे मध्ये यस्य वा अधिकारेऽस्य। १ कुबेर। २ समुद्र। ३ एक बुद्धका नाम। (त्रि०) ४ रत्नागर्भविशिष्ट।

रत्नगर्भ—महाभारतटीकाके रचयिता तथा हिरण्यगर्भके पुत्र और माधवके पौत्र। उन्होंने वैष्णवाकूतचन्द्रिका नामक विष्णुपुराणकी एक टीका लिखी है जिसमें उन्होंने सूर्यकरमिश्रकी टीकाका उल्लेख किया है।

रत्नगर्भपोटलीरस (सं० पु०) यक्ष्मारोगाधिकारमें रसौषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—रससिन्दूर, हीरा, सोना चाँदी, सीसा लोहा ताँबा मिर्च, भस्म, मुक्ता, सोनामक्खी मूंगा और शङ्खकी भस्म बराबर बराबर भाग ले कर तीन दिन अदरकके रसमें भिगो कर चूर्ण करे। पीछे उसे कौड़ीमें भर कर सुहागा और मक्खनके द्वारा कौड़ीका मुँह बंद कर दे। अनन्तर उस कौड़ीको मट्टीके बरतनमें अच्छी तरह रख कर गजपुटमें पाक करना होगा। बादमें औषध जब ठंढा हो जाय, तब उसे अच्छी तरह चूर्ण कर सम्हालूके रसमें ७ बार, अदरकके रसमें ७ बार और चितामूलके रसमें २१ बार भावना दे कर सुखा ले। इस औषधकी मात्रा ४ रत्ती तथा अनुपान मधु और पीपलका चूर्ण या घी और मरिच है। यथाविधान इस औषधका सेवन करनेसे कष्टसाध्य यक्ष्मा, वात व्याधि, अश्मरी, कुष्ठ, मेह, उदररोग, भगन्दर, अर्श और ग्रहणीरोग दूर होते हैं। यक्ष्मारोगकी यह उत्तम दवा है।

रत्नगर्भ सार्वभौम—क्रमचन्द्रिकातन्त्र और श्यामार्चनचन्द्रिका नामक दो ग्रन्थके रचयिता।

रत्नगर्भा (सं० स्त्री०) पृथ्वी भूमि।

रत्नगिरि—बम्बई प्रदेशके कोङ्कण विभागान्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० १५ ४० से १८ ५ उ० तथा देशा० ७३ २ से ७३ ५२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ३९९८ वर्गमील है। इसके उत्तरमें कुलावा जिला और जंजिरा सामन्तराज्य, पूर्वमें सतारा और कोल्हापुर, दक्षिणमें सावन्तवाड़ी और पोर्तुगीजाधिकृत गोआराज्य तथा पश्चिममें अरब उपसागर है।

इस जिलेका प्रायः सभी स्थान पर्वतमय है। उपकूल प्रदेश भी अब अधित्यकासे परिपूर्ण है। इस अधित्यकामें जगह जगह समुद्रकी खाड़ी और पर्वतगात्रवाही नदीमाला विद्यमान है। इन सब नदियोंके दोनों किनारेकी जमीन उर्वरा है तथा अनेक किनारे बड़े बड़े नगर

और बन्दर अवस्थित हैं। समुद्रोपकूलसे करीब १० मील पूर्व सह्याद्रि-पर्वतमाला देखी जाती है।

वाणकोट या विक्टोरिया दुर्गसे ले कर रेड्डी दुर्गसे दो मील दक्षिण तक समुद्रतट १६० मील विस्तृत है। सुवर्णदुर्ग और मलवान नामक स्थान समुद्रगर्भमें प्रसारित हो दो एक स्थान द्वीपके आकारमें परिणत हो गया है। वे सब भी उपकूलवर्त्ती पहाड़ी अंशसे उत्पन्न हुए हैं। इन दोनों स्थानोंमें महाराष्ट्र-दुर्गका भग्नावशेष आज भी विद्यमान है।

इस जिलेमें बहुतसे गरम सोते हैं। दापोली उप-विभागमें दो और राजापुर उपविभागमें एक है। ये तीनों सोते अनल नामक नगरके समीप अवस्थित हैं। इसके सिवाय खेड़ और सोमेश्वर नगर, अरवली और तुराल नामक ग्राममें और भी चार गरम सोते देखे जाते हैं।

यहांके प्राचीन इतिहासादिमें कोई धारावाहिक घटना लिपिबद्ध न रहने पर भी टिपल्लून और कोल्हगिरिगुहाका पर्यवेक्षण करनेसे स्पष्ट अनुमान होता है, कि ईसाजन्मसे २०० वर्ष पहलेसे ले कर ५० ई० तक उत्तर-रत्नगिरिका एक विशेष समृद्ध बौद्ध-उपनिवेश स्थापित हुआ था। इसके बाद कई प्रबल-पराक्रान्त हिन्दू-राजवंशने यहां अधिकार जमाया। इन सब राजवंशधरोंमेंसे चालुक्योंने अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

१३१२ ई०में मुसलमानोंने रत्नगिरि लूटा और दाभोलको जीत कर वहां राजपाट बसाया। किन्तु सच पूछिये, तो १४७० ई० तक वे लोग रत्नगिरिमें अच्छी तरह गोटी न जमा सके थे। इस समय वाहमनी राजोंने विशालगढ़ और गोआराज्य जीत कर उस प्रदेशमें मुसलमान राजवंशका पूर्ण प्रभाव फैलाया। १५०० ई०के लगभग सावित्री नदीतट तक सारा दक्षिण कोङ्कण-राज्य विजापुर राज्यके अन्तर्भुक्त हुआ। इस समय पुर्त्तगीजों-के साथ जो युद्ध हुआ था उसमें दाभोल तथा अन्यान्य समुद्रतीरवर्त्ती नगरको धक्का पहुंचा था।

महाराष्ट्र-शक्तिके अभ्युदयसे पुर्त्तगीजका गौरव-रवि बिलकुल डूब गया। महाराष्ट्र-केशरी शिवाजीके प्रभावसे महाराष्ट्रगण मुगल, सिद्दी और पुर्त्तगीज सेनाओंको बार बार परास्त कर यहां हिन्दू सत्ता फिरसे स्थापित करनेमें समर्थ हुए थे। इसके कुछ समय बाद सिद्दियोंने इस जिलेका अधिकांश दखल कर लिया था।

जलदस्यु कान्होजी आंग्रियाका समुद्रके किनारे एकाधिपत्य देख कर मराठोंने उसे मराठा-नौसेनादलका अध्यक्ष बनाया। इसी सूत्रसे कुछ समय बाद कान्होजी-को रत्नगिरिका कुछ अंश सामन्तराज्यरूपमें मिला। १७४५ ई०में कान्होजीके अवैध पुत्र तुलाजी आंग्रियाने वाणकोटसे ले कर सावन्तवाड़ीके मध्यवर्त्ती सभी स्थानों पर अधिकार जमाया। उन्होंने पेशवाका आधिपत्य अग्राह्य कर समुद्रोपकूलस्थित बहुतसे जहाज लूटे थे। १७५५ ई०में अंग्रेजोंने पेशवाके साथ मिल कर सुवर्ण-दुर्गका दस्यु-दुर्ग तहस नहस कर डाला। दूसरे वर्ष उन्होंने आंग्रियाके अधिकृत नौवाहिनीको समूल नष्ट कर विजयदुर्ग पर कब्जा किया था। इन सब कार्योंके लिये अंगरेजोंके प्रति प्रसन्न हो पेशवाने वाणकोटके साथ नौ ग्राम वृटिश-सरकारको पुरस्कारमें दिये। १७६५ ई०में मालवाम और रेड्डी दुर्ग जीता गया। अनन्तर मालवान, कोल्हापुर और रेड्डी सामन्तवाड़ीके सरदारके अधीन रखा गया था। इसके बाद कोल्हापुर सामन्तवाड़ीके सरदारोंके मध्य २३ वर्ष तक युद्ध चलता रहा जिससे शासनमें घोर विशृङ्खला उपस्थित हुई। आखिर अंग-रेजराजने बीचमें पड़ कर मेल करा दिया। इसमें अंग-रेजोंको मालवान और वेनगुर्ला मिला तथा रत्नगिरि पेशवाके हाथसे निकल गया। परन्तु १८१७ ई०में गृह-विवादसे पुनः मराठा-सरदारोंके मध्य आग धधक उठी। अंगरेजी सेनाने अच्छा मौका देख कर उस पर दखल किया और साथ साथ दुर्गादि भी छीन लिये। अंगरेजी अधिकारमें आनेके बाद यहींसे उन्होंने देशी सिपाही संग्रह करनेकी व्यवस्था की है। सिपाहियोंमें मराठोंकी संख्या ही अधिक रहती है।

इस जिलेमें ७ शहर और १३०१ ग्राम लगते हैं। जन-संख्या ११ लाखसे ऊपर है। हरिक, रागी और वरी यहां-की प्रधान उपज है। जिलेमें नारियलके पेड़ बहुत पाये जाते हैं।

बम्बईप्रदेशके चौबीस जिलोंके मध्य यह जिला विद्याशिक्षामें दशवां पड़ता है। अभी कुल मिला कर

२१६ स्कूल हैं जिनमेंसे २ हाइ-स्कूल, १३ मिडिल स्कूल, २७८ प्राइमरी स्कूल, ३ स्पेशल स्कूल, २ ट्रेनिङ्ग स्कूल और १ शिल्प स्कूल है। स्कूलके अतिरिक्त एक अस्पताल और चार चिकित्सालय हैं। जिलेमें एक पागलखाना भी है।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० १५ ४४´ से १७ १०´ उ० तथा देशा० ७३ १२´ से ७३ ३१´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४१५ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है।

३ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० १६ ५९´ उ० तथा देशा० ७३ १८´ पू० बम्बई नगरसे १३६ मील दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है। जनसंख्या प्रायः १६०४४ है। समुद्रोपकूल पर अवस्थित होनेके कारण यहांका वाणिज्य जोरों चलता है। यहां मछलीका कारबार ही अधिक होता है। दो खाड़ीके मध्यवर्ती एक पर्वतके ऊपर यहांका दुर्ग अवस्थित है। शहरमें एक हाइ-स्कूल, एक मिडिल स्कूल, चार प्राइमरी स्कूल और १८७८ ई०में स्थापित एक शिल्प-स्कूल है। स्कूलके अतिरिक्त यहां सब जजकी अदालत, पागलखाना, सिविल अस्पताल और एक कुष्ठाश्रम भी है।

रत्नगिरि—१ राजगृहके अन्तर्गत पांच पर्वतोंमेंसे एक। २ बङ्गालके कटक जिलान्तर्गत याजपुर उपविभागका एक पर्वत। यह अक्षा० २० ३१´ उ० तथा देशा० ८६ २०´ पू०के मध्य कलियो नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। इसके शिखर पर महाकालका एक मन्दिर है। फाटकके पास १से ३॥० फुट ऊंची पत्थरकी बहुत-सी मूर्तियां पड़ी हैं। उसके पूरब भी कारुकार्ययुक्त अनेक मूर्तियां टूटी हुई देखी जाती हैं। इसके सिवा बुद्धदेवके दो बड़े बड़े मस्तक पत्थर पर खोदित हैं। कहते हैं, कि राजा विष्णुध्वजकेसरी ये सब कीर्त्ति छोड़ गये हैं।

रत्नगिरिरस (सं० पु०) ज्वराधिकारमें रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—रस, गन्धक, सोना, तांबा, अभ्रक, प्रत्येक बराबर बराबर भाग और इनका आधा रांगा और वैक्रान्त इन्हें भृङ्गराजके रसमें भिगो कर पर्पटीकी तरह पाक करे। पीछे उसे चूर्ण कर शाहिञ्जनके रसमें भावना दे लघुपुटमें पाक करना होगा।

भैषज्यरत्नावलीके मतसे भृङ्गराजके रसमें मर्द्दन कर उस पर्पटीको तरह पाक करे। पीछे उसे चूर्ण कर यथाक्रम सोहिञ्जन, अड़ूस, सम्हालु, वच, भृङ्गराज भूकदम्ब, कण्टकारी, गुरुच, जयन्ती, वकपुष्प, ब्राह्मी तिलराज और घृतकुमारी प्रत्येकके रसमें ३ बार भावना दे कर मूषामें बंद कर रखे और बालुकायन्त्रमें लघुपुटसे पकावे। मात्रा २ रत्ती और अनुपान पीपल तथा धनियेका काढ़ा है। इस औषधका सेवन करनेसे सभी प्रकारके ज्वर जाते रहते हैं। (रसचिन्ता)

रत्नमोचतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम।

रत्नचन्द्र (सं० पु०) १ एक देवता जो रत्नोंके अधिष्ठाता माने जाते हैं। २ एक बोधिसत्त्वका नाम। ३ बिम्बिसार राजाके एक पुत्रका नाम।

रत्नचूड़ (सं० पु०) १ एक बोधिसत्त्वका नाम। २ पुराणानुसार एक राजाका नाम।

रत्नच्छत्र (सं० क्ली०) रत्न आदिसे खचित छत्र।

रत्नच्छत्रकूटसन्दर्शन (सं० पु०) एक बोधिसत्त्वका नाम।

रत्नच्छत्राभ्युद्गतावभास (सं० पु०) एक बुद्धका नाम।

रत्नजी—चित्तोरके महाराणा। महाराणा संग्राम सिंहके ये दूसरे पुत्र थे। महाराणा संग्राम सिंहके मरने पर १५८६ संवत्में ये मेवाड़के सिंहासन पर बैठे। ये पिताकी तरह योद्धा तथा वीरत्व, साहस, धैर्य, तेजस्विता आदि राजपूतोचित सद्गुणोंसे भूषित थे। यदि ये थोड़े दिन भी युवावस्थाके वेगको रोक सकते तो इसमें संदेह नहीं, कि इनसे राजपूतानेका बड़ा उपकार होता। परन्तु युवावस्थाके वेगको न रोक सकनेके कारण इनकी अकालमृत्यु हुई और राजपूतान इनसे जो आशा की थी वह सदाके लिये विलीन हो गई।

इन्होंने आमेरके राजा पृथ्वीराजकी कन्यासे गुप्त विवाह कर लिया था, इस बातकी कानों कान भी किसीको खबर न थी। अतएव कन्याके विवाह योग्य अवस्था प्राप्त करने पर महाराज पृथ्वीराजने उसका विवाह बूंदी नरेश सूरजमलसे पक्का किया। यह कन्या भी मारे लाजके पहली बात नहीं कह सकी। विवाह होने पर इसकी खबर महाराणा रत्नसिंहको लगी। इस संवादको पाते

ही वे बदला लेनेके लिये अधीर हो गये। अहेरियाका समय उपस्थित हुआ। महाराणाने अपने वैरका बदला लेनेका उचित अवसर पाया। सूरजमल और रत्नजी दोनों अहेर खेलनेके लिये आगे निकल गये। वहां इन दोनोंके अतिरिक्त तीसरा कोई नहीं था। मौका देख कर महाराणा रत्नजीने सूरजमल पर वार किया, सूरजमल घोड़े से गिर गया। परन्तु थोड़ी हो देरमें सम्हल कर उठने पर सूरजमलने देखा, कि रत्नजी भागा जा रहा है। सूरजमलने कहा—"भाग जा, भाग जा, रे कायर! तेरी इस कापुरुषताने मेवाड़के श्वेत यशमें सदाके लिये कलङ्क लगा दिया।" रत्नजी जानता था, कि सूरजमल मर गया इसलिये वह भागा जाता था। परन्तु जब उसे मालूम हुआ कि वह जीता है, तब वह लौटा। आ कर वह सूरजमल पर वार करना चाहता ही था, कि इतनेमें सूरजमलने रत्नजीको छाती पर चढ़ कर उसका काम तमाम कर डाला। राणा रत्नसिंहने पांच वर्ष तक राज्य किया था। उनके शासनकालमें बाबर शाह भारतमें मुगल साम्राज्य स्थापन करने पर भी मेवाड़ तक न बढ़ सके थे। शत्रुञ्जयके पुण्डरीक-मन्दिरमें उत्कीर्ण १५८७ सवत्‌के शिलाफलकसे पता चलता है, कि राणा रत्नजीने उसका सातवा जीर्णसंस्कार किया है।

रत्नदत्त (सं० पु०) वणिक्‌भेद।

रत्नतेजोऽभ्युद्गतराज (सं० पु०) एक बुद्धका नाम।

रत्नत्रय (सं० क्ली०) जैनोंके अनुसार सम्यग्‌दर्शन, सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चरित्र इन तीनोंका समूह जो मनुष्यको उत्कृष्ट बनानेका साधन समझा जाता है।

रत्नदर्पण (सं० पु०) रत्नादिमण्डित दर्पणभेद।

रत्नदाम (सं० स्त्री०) १ रत्नोंकी माला। २ गर्गसंहिताके अनुसार सीताकी माता और राजा जनककी स्त्रीका नाम।

रत्नदीप (सं० पु०) १ एक कल्पित रत्नका नाम। कहते हैं, कि पातालमें इसीके प्रकाशसे उजाला रहता है। २ रत्नका दीपक।

रत्नदेव—कलिङ्गके हैहयवंशीय तीन राजे। रत्नपुरमें उन लोगोंकी राजधानी थी।

रत्नद्रुम (सं० पु०) प्रवाल, मूंगा।

रत्नद्रुममय (सं० त्रि०) प्रवाल मण्डित मूंगोंसे भरा हुआ।

रत्नद्वीप (सं० क्ली०) रत्ननिर्मित द्वीपं, शाकपार्थिववत् समासः। १ रत्ननिर्मित स्थान। २ पुराणानुसार एक द्वीपका नाम।

रत्नधर—१ काशीमाहात्म्यके प्रणेता। २ स्मृतिमञ्जरीके रचयिता। इनकी उपाधि मिश्र थी।

रत्नधर (सं० पु०) १ धनवान्, अमीर। २ एक प्रसिद्ध पण्डित।

रत्नधा (सं० त्रि०) धनशाली, अमीर।

रत्नधार (सं० पु०) पुराणानुसार एक पर्वतका नाम। (लिङ्गपु० ५।६३)

रत्नधारा (सं० स्त्री०) पुराणानुसार एक नदीका नाम। (हिमवत् ४८।७६)

रत्नधेनु (सं० स्त्री०) रत्ननिर्मिता धेनुः। महादानविशेष। रत्नकी धेनु बना कर उसे दान करना होता है। मत्स्यपुराण (२८२ अ०) में इस दानका विधान लिखा है। तुला पुरुषकी तरह यह दान करना होता है। जो यह दान करते हैं उन्हें गोलोककी प्राप्ति होती है।

निम्न प्रकारसे रत्नधेनुको कल्पित करना होता है। इक्यासी पद्मरागसे मुख, सौ पुष्परागसे नासिका, ललाट पर सुवर्णतिलक, सौ मुक्ताफल द्वारा चक्षु, सौ विद्रुमसे दोनों भ्रू, दो मुक्तासे दोनों कान, सुवर्णसे शृङ्ग, सौ वज्रसे शिर, सौ इन्द्रनीलसे पीठ, स्फटिकसे उदर, सुवर्णसे खुर, मुक्तावलिसे पुच्छ, सूर्यकान्त और चन्द्रकान्तसे घ्राण, कपूर, चन्दन और कुंकुमसे रोम, चांदीसे नाभि, सौ गारुत्मत मणिसे अस्थि तथा विविध रत्नसे सन्धिस्थल और शर्करासे जिह्वाकी रचना करनी होगी। गुड़से गोमय, घृतसे गोमूत्र तथा इसमें दधि और दुग्ध देना होगा। पुच्छाग्रसे चामर, ताम्र दोहनपात्र तथा सुवर्ण कुण्डल और शक्तिके अनुसार भूषण देना होता है। इसके चतुर्थांशसे बछड़ेकी कल्पना करनेका विधान है।

कृष्णाजिनके ऊपर इस प्रकार धेनुकी कल्पना कर विशुद्ध दिनमें यथाविधिवाक्य द्वारा दान करना होता है। दानकालमें यह मन्त्र पढ़ना उचित है,—

"य इत्थं विधिगणमाम यतः पठन्ति
सर्वेऽनुविन्दुप्रभवाससनामयाः ।
तस्मात् समस्तभुवनपदमुत्तम
सा याति हरि मनवतारपीठस्थमानम् ॥"

जो इस प्रकार धेनुदान करते हैं वे सभी पापोंसे विमुक्त हो कर बन्धुबान्धव और पुत्र पौत्रादिके साथ मरुतको तरह रूपविशिष्ट हो शिवलोक जाते हैं।

(मत्स्यपुराण रत्नधेनुदान नामक २८२ अ०)

हेमाद्रिके दानखण्डमें भी इस दानका विधान लिखा है।

रत्नधेय (सं० स्त्री०) धनदान।

रत्नध्वज (स० पु०) एक बोधिसत्त्वका नाम।

रत्ननदी (स० स्त्री०) एक नदीका नाम।

रत्ननिचय (सं० पु०) मणिका समूह।

रत्ननाथ—न्यायबोधिनी नामक तर्कसंग्रहटीकाकर्त्ता।

रत्ननाभ (स० पु०) विष्णु।

रत्ननिधि (स० पु०) १ खञ्जन पक्षी, ममोला। २ समुद्र। ३ मेरु पर्वत। ४ विष्णु।

रत्नन्यास (सं० स्त्री०) रत्नसंस्थापन।

(हयशीर्ष ७८।१।१)

रत्नपरीक्षक (स० पु०) वह जो रत्नोंकी परख जानता हो, जौहरी।

रत्नपरीक्षा (स० स्त्री०) प्रकृत रत्ननिरूपण।

रत्नपाठ (सं० पु०) एक दीपका नाम।

(भागिनीविन्त १४।१)

रत्नपर्वत (स० पु०) सुमेरु पर्वतका एक नाम।

(हरिवंश)

रत्नपाणि (स० पु०) एक बोधिसत्त्वका नाम।

रत्नपाणि—षट्कारकनिरूपणक नामक व्याकरणके प्रणेता।

रत्नपाणिशर्म्मन्—एक विख्यात पण्डित तथा गंगोला संजीवेश्वरके पुत्र। ये मिथिलाधिपति छत्रसिंहके सभासद थे। इनके बनाये आचारसंग्रह, ज्योतिषसारदीपिका, छन्दःप्रन्नचन्द्रिका, धर्ममासादिनिर्णय, माड़ीपरीक्षादि चिकित्साग्रन्थ, धर्म्मचन्द्रिका, प्रायश्चित्तपारिजात, महाराजनरेन्द्रपरीक्षा, मिथिलेश्वरचरित, मिथिलेन्द्रादिक आदि ग्रन्थ मिलते हैं। बाद इसके इन्होंने छत्रसिंहके पौत्र और रुद्रसिंहके पुत्र वीरमुकुटराज महेश्वरसिंहके सभासदको रचना की थी। राजा रुद्रसिंहके आज्ञानुसार इन्होंने सुबोधिनी नामक एक टिप्पनी लिखी।

रत्नपारखी (हि० पु०) रत्नोंको पहचाननेवाला, जौहरी।

रत्नपारायण (स० क्ली०) पारायणभेद जिसमें रत्नसूत्र पारायण। सर्वरत्नस्थान।

रत्नपाल (स० पु०) १ राजभेद। २ कन्नौजराज वीरवर्मा-के सभा-कवि।

रत्नपालभगादेव—प्राग्ज्योतिषपुराधिपति।

रत्नपीठ (स० पु०) तान्त्रिकोंके अनुसार एक तीर्थका नाम।

रत्नपुर (स० क्ली०) एक प्राचीन नगरका नाम। यहां कलचूरी और हैहयवंशीय राजे राज्य करते थे।

रत्नपुरभट्टारक—न्यायसारटीकाके प्रणेता।

रत्नप्रदीप (सं० पु०) ऐसा रत्न जो दीपकके समान प्रकाशमान हो।

रत्नप्रभ (स० पु०) १ एक देवताका नाम। २ एक राजाका नाम।

रत्नप्रभा (स० स्त्री०) रत्नोंकी प्रभा चमक। १ पृथ्वी। २ जैनोंके अनुसार एक नरकका नाम। ३ नागभेद। ४ एक जैनसूरिका नाम। इनका बनाया एक ग्रन्थ मिलता है।

रत्नबाहु (स० पु०) विष्णु।

रत्नभोज्ञ (स० स्त्री०) धनसम्पदा।

रत्नभूति—एक प्राचीन कवि।

रत्नमञ्जरी (स० स्त्री०) विद्याधरीभेद।

रत्नमति—एक वैयाकरण। रायमुकुटने इनका मत उद्धृत किया है।

रत्नमद—दाक्षिणात्यका एक राजा।

रत्नमल्ल—नेपालका एक राजा।

रत्नमय (सं० त्रि०) रत्नस्वरूपे मयट्। रत्नखचित, रत्नमण्डित।

रत्नमाला (सं० स्त्री०) १ रत्ननिर्मित माला, मणियोंकी माला या हार। २ राजा बलिकी कन्या। वामन

भगवान्‌को देख कर इसके मनमें यह कामना हुई थी, कि ऐसे बालकको मैं दूध पिलाऊं। इसीलिये यह कृष्णावतारमें पूतना हुई थी।

रत्नमालावत् (सं० त्रि०) रत्नमालासदृश।

रत्नमालिका (सं० स्त्री०) रत्नोंकी छोटी माला या हार।

रत्नमालिन् (सं० त्रि०) १ रत्न मालाधारी, रत्नोंकी माला पहननेवाला। (रामा० उप० २६४) (स्त्री०) २ एक प्रकारका देवता। (सह्याद्रि० ३१६।४)

रत्नमाली (सं० पु०) राजभेद (सह्याद्रि० ३३।५)

रत्नमित्र—एक प्राचीन कवि।

रत्नमुकुट (सं० पु०) एक बोधिसत्वका नाम।

रत्नमुख्य (सं० क्ली०) रत्नेषु मुख्यं। हीरक, हीरा।

रत्नमुद्रा (सं० स्त्री०) समाधिभेद।

रत्नमुद्राहस्त (सं० पु०) एक बोधिसत्त्वका नाम।

रत्नयष्टि (सं० पु०) एक बुद्धका नाम।

रत्नयुगमतीर्थ (सं० क्ली०) तीर्थविशेष।

रत्नरश्मि (सं० पु०) एक बौद्धपति। इन्होंने तिब्बतीय भाषामें कारण्डव्यूह अनुवाद किया था।

रत्नराज् (सं० पु०) रत्नेषु राजते राज्-क्विप्। १ माणिक्य, मुक्ता। २ रत्नश्रेष्ठ।

रत्नराजि (सं० स्त्री०) रत्नानां राजिः। रत्नसमूह, रत्नोंका ढेर।

रत्नराशि (सं० पु०) १ रत्नस्तूप, रत्नसङ्घ। २ समुद्र।

रत्नरेखा (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद।

रत्नलिंगेश्वर (सं० पु०) १ शिवलिङ्गभेद। २ बौद्धमतसे स्वयम्भूकी प्रतिमूर्त्ति।

रत्नवत् (सं० त्रि०) रत्न विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। १ रत्नयुक्त, रत्नविशिष्ट। २ फलप्रद, फलदायक।

रत्नवती (सं० स्त्री०) १ पृथ्वी, भूमि। २ राजा वीरकेतुकी कन्याका नाम। (कथासरित्स० ८८।६) (पु०) ३ पुराणानुसार एक पहाड़का नाम। (मार्क०पु० ५५।७)

रत्नवर्द्धन (सं० पु०) काश्मीरवासी एक व्यक्ति। इन्होंने अपने नाम पर रत्नवर्द्धनेश नामक शिवलिङ्गकी स्थापना की। (राजतर० ५।४०)

रत्नवर्म्मन् (सं० पु०) एक प्रसिद्ध वणिक्। (कथासरित्सा० ५७।५५)

रत्नवर्ण (सं० पु०) यक्षराजभेद।

रत्नवपुंक (सं० क्ली०) रत्नानि वर्णितं शीलमस्य (गुरु लघपनपदस्येति। पा ३।२।१५४) इति उकञ्। १ पुष्पकरथ। (त्रि०) २ रत्नवर्णणशील।

रत्नवृक्ष (सं० पु०) प्रवाल, मूंगा।

रत्नविशुद्ध (सं० पु०) जगद्भेद।

रत्नशलाका (सं० स्त्री०) हीरे आदि मूल्यवान् पत्थरोंसे बनी हुई एक प्रकारकी शलाका।

रत्नशाला (सं० स्त्री०) १ रत्नोंके रखनेका स्थान। २ जड़ाऊ महल, जिसकी दीवारोंमें रत्न जड़े हों।

रत्नशिखर (सं० क्ली०) एक बोधिसत्त्वका नाम।

रत्नशिखिन् (सं० पु०) एक बुद्धका नाम।

रत्नशिला (सं० स्त्री०) वह शिला या पत्थर जिस पर अनेक प्रकारके रत्न जड़े हों।

रत्नशेखर—गुणस्थानप्रकरणके रचयिता।

रत्नशेखर—प्रवन्धकोष और प्राकृतछन्दःकोष नामक अभिधान ग्रन्थके प्रणेता। १४२८ ई०में इन्होंने यह ग्रन्थ समाप्त किया। ये जैन धर्मावलम्बी थे। इनकी उपाधि सूरि थी।

रत्नषष्ठी (सं० स्त्री०) षष्ठीतिथिभेद।

रत्नसंग्रह (सं० पु०) रत्नसञ्चय, रत्न इकट्ठा करना।

रत्नसंघात (सं० पु०) हीरकादि मणिका स्तूप।

रत्नसमुद्गल (सं० पु०) समाधिभेद।

रत्नसम्भव (सं० पु०) १ एक ध्यानी बुद्धका नाम। २ एक बोधिसत्वका नाम। ३ वह स्थान जहां बुद्ध शशिकेतु आविर्भूत होंगे।

रत्नसागर (सं० पु०) समुद्रका वह भाग जहांसे प्रायः रत्न निकलते हों।

रत्नसानु (सं० पु०) रत्नानि सानौ प्रस्थे यस्य। सुमेरु पर्वतका नाम।

रत्नसिंह—चित्रकूटके गुहिलवंशीय एक राजा तथा संग्रामसिंहके पुत्र।

रत्नसिंह—एक राजा। इनके पुत्र उदयसिंहको क्षेमेन्द्रने औचित्यविचारचर्चा नामक ग्रन्थ उत्सर्ग किया था।

रत्नसिंह वास्तव्यकायस्थ-वंशीय एक राज-कवि। ये रत्नपुरराज २य जाजल्लदेवकी सभामें विद्यमान थे।

रत्नसिंह—बीकानेरके एक महाराज। ये महाराज सूरत सिंहके पुत्र थे और उनका परलोकवास होने पर ये बीकानेरके सिंहासन पर आरूढ़ हुए। महाराज रत्न सिंहके अधिकारारूढ़ होते ही सामन्त और प्रजाओंके मनका भाव सहसा बदल गया। उनके हृदयमें नयी नयी आकांक्षाएं उत्पन्न होने लगीं। उस समय बीकानेरका राजनैतिक आकाश अनेक प्रकारके बादलोंसे घिर गया। सिंहासन पर बैठनेके थोड़े ही दिनोंके बाद रत्न सिंह एक बड़े भारी युद्धमें फंसना पड़ा। जयसलमेरकी प्रजा और डकैतियोंने अचानक बीकानेरकी सीमामें लूट-खसोट करना प्रारम्भ कर दिया। इससे रत्नसिंह ने अत्यन्त कुपित हो कर जयसलमेरके राजाको युद्धके लिये निमन्त्रण-पत्र भेजा और जयपुर तथा मेवाड़के महाराजोंसे सहायता मांगी। जयसलमेरके राजा युद्धके लिये द्विगुण उत्साहसे तैयार हो गये। जयसलमेरकी सीमा पर दोनोंकी सेना एकत्र हुई। इसी समय अंग्रेजी गवर्नमेण्टने रत्नसिंहके पास एक पत्र भेजा तथा इस युद्धको अपनी सन्धिका भङ्ग करना बताया। इस पत्रसे महाराज रत्नसिंह युद्धसे निवृत्त हो गए। गवर्नमेंटकी सम्मतिके अनुसार मेवाड़के महाराणाने इन दोनों राज्योंके बीच पड़ कर झगड़ा तय करा दिया।

इस विवादके शान्त होने पर महाराज रत्नसिंह १८३० ई०में राज्यके भीतरी झगड़ोंमें फंसे। राज्यके सामन्त विद्रोही हो गये। महाराज रत्नसिंह इससे बड़े भग्न हुए और उन्होंने गवर्नमेण्टसे सेनाकी सहायता मांगी। ब्रिटिश सहायता देनेके लिये प्रस्तुत भी हो गये थे, परन्तु बड़े लाटके रोकनेसे वे रुक गये।

गवर्नमेण्टकी सहायतासे निराश हो कर रत्नसिंह अपने ही बलसे इस विद्रोहको दमन करने लगे। परन्तु इसी समय जयसलमेरवाला झगड़ा पुनः खड़ा हो गया। इस झगड़ेको शान्त करनेके लिए गवर्नमेण्टने एक अंग्रेज भेजा और दोनोंका झगड़ा तय हो गया।

इसी बीच महाराज रत्नसिंहने अपने राज्यकी सीमा बढ़ानेका प्रयत्न किया था, परन्तु पृथ्वीसिंहके निषेध करनेसे रुक गये। महाराज रत्नसिंहने २५ वर्ष तक राज्य किया था। सन् १८५१ ई०में इनका देहान्त हुआ।

रत्नसिंहसूरि—जैन सूरिभेद।

रत्नसुन्दरसूरि—जैन सूरिभेद।

रत्नसू (सं० स्त्री०) रत्नानि सूते इति सू प्रसवे क्विप्। १ पृथ्वी। (पु० ११६८) (त्रि०) २ रत्नप्रसवकारी, रत्न उत्पन्न करनेवाला।

रत्नसूति (सं० स्त्री०) पृथ्वी।

रत्नसेन (सं० पु०) एक गड़ारोङ्गाधिपति।

रत्नस्वामिन् (सं० पुं०) रत्नप्रतिष्ठित शिवलिङ्ग और मन्दिर।

रत्नहविस् (सं० क्ली०) वह आहुति जो राजसूय-यज्ञमें राजाके घरमें धनका उल्लेख कर दी जाती है। (कात्या० श्रौ० १५।३।१)

रत्ना (सं० स्त्री०) पुराणानुसार एक नदीका नाम। यह [illegible] जा मिली है।

रत्नाकर (सं० पु०) रत्नानामाकरः उत्पत्तिस्थानं। १ समुद्र। २ रत्नोत्पत्तिस्थान, मणियोंके निकलनेका स्थान। ३ रत्नोंका समूह। ४ वाल्मीकि मुनिका पहलेका नाम। ५ स्वनामख्यात कविविशेष। ६ बुद्धदेव। ७ एक बोधिसत्त्वका नाम। ८ रसौषध मन्त्रभेद। ९ एक नगरका नाम।

रत्नाकर—द्रव्यगुणविचारके रचयिता।

रत्नाकर ठक्कुर—दानपद्धतिके प्रणेता।

रत्नाकर पौण्डरीक याजिन्—जयपुरवासी एक पण्डित। ये जयपुराधिपति महाराज जयसिंहके गुरु थे। उनके आदेशसे इन्होंने १७१४ ई०में जयसिंहकल्पद्रुम या सत्कल्पद्रुम और उसकी टीका लिखी।

रत्नाकर मिश्र—ज्योतिषसारसंग्रहके रचयिता।

रत्नाकर विद्यापति—काश्मीर-पति अवन्तिवर्माके राज्यकालवर्त्ती एक प्रसिद्ध पण्डित। ये पण्डित प्रवर दुर्गदत्तके पौत्र और अमृतभानुके पुत्र थे। इन्होंने ध्वनिगाथापञ्चिका, वक्रोक्तिपञ्चाशिका और हरविजय काव्य प्रणयन किए। क्षेमेन्द्रकृत सुवृत्ततिलकमें इनका नाम आया है।

रत्नाङ्ग (सं० पु०) रत्नानामङ्गमिव यस्मिन्। १ विष्णुका रथ। (अमरटीकाकार) रत्नानामङ्गः। २ रत्नचिह्न।

रत्नागिरि (सं० पु०) रत्नगिरि देखो।

रत्नाङ्गुरीय (सं० क्ली०) रत्ननिर्मितं अंगुरीयकं। रत्ननिर्मित अंगुरीयक।

रत्नाचल (सं० पु०) रत्ननिर्मितः अचलः शाकपार्थिववत् समासः। पुराणानुसार रत्नोंका वह ढेर जो पहाडके रूपमें लगा कर दान किया जाता है। यह भी एक महादान है। हेमाद्रिके दानखण्ड और मत्स्यपुराणमें इस दानका विधान इस प्रकार है,—इस पर्वतको इस तरह कल्पना की जाती है। यह पर्वत उत्तम, मध्यम और अधम भेदसे तीन प्रकारका है। सहस्र मुक्ता द्वारा जिस पर्वतकी कल्पना की जाती है वह उत्तम, पांच सौसे मध्यम और तीन सौसे अधम होता है। इसके चतुर्थांशसे विष्कम्भ पर्वत दान करना होता है। पूर्वकी ओर वज्र और गोमेद तथा दक्षिणकी ओर इन्द्रनील और पुष्पराग रत्न-विन्यास करना पडेगा। यह पर्वत इस तरह प्रस्तुत कर धान्याचलकी भांति और सब काम करने होंगे। जो विधिपूर्वक यह दान करते हैं वे पापसे छुटकारा पा विष्णुलोक जाते हैं। (मत्स्यपु० ९० अ०)

रत्नाढ्य (सं० त्रि०) रत्नमय, रत्नसे भरा हुआ।

रत्नादेवी (सं० स्त्री०) राजकन्याभेद।

(राजतर० ८।२४।३३)

रत्नादित्य (सं० पु०) एक राजाका नाम।

रत्नाद्रि (सं० पु०) एक पर्वतका नाम।

रत्नाधिपति (सं० पु०) १ राजभेद। २ कुबेर।

रत्नानुनद—वर्द्धमान सेलिमाबाद परगनेमें प्रवाहित एक छोटी नदी। बंगालके प्रसिद्ध कवि मुकुन्दराम चक्रवर्त्ती इस नदीतीरवर्त्ती दामुन्या गाँवमें रहते थे।

रत्नापुर (सं० क्ली०) मध्य-प्रदेशके अन्तर्गत एक प्राचीन नगरका नाम।

रत्नाभरण (सं० क्ली०) रत्नालङ्कार, रत्नका गहना।

रत्नाभूषण (सं० क्ली०) वह आभूषण या गहना जिसमें रत्न जड़े हों, जड़ाऊ गहना।

रत्नार्चिस् (सं० पु०) १ एक बुद्धका नाम। २ रत्नमयूख।

रत्नालोक (सं० पु०) रत्नकी ज्योति।

रत्नालङ्कार (सं० क्ली०) रत्ननिर्मितमाभरणं अलङ्कारम्। मणिमय अलङ्कार, रत्नका गहना।

रत्नावती (सं० स्त्री०) एक नगरका नाम।

रत्नावभास (सं० पु०) एक कल्पका नाम।

रत्नावली (सं० स्त्री०) १ मुक्तामाला, मणियोंकी श्रेणीका माला। २ एक अर्थालङ्कार जिसमें प्रस्तुत अर्थ निकलनेके अतिरिक्त ठीक क्रमसे कुछ और वस्तु-समूहके नाम भी निकलते हैं। ३ एक रागिणी जो शास्त्रोंमें दीपक रागको पुत्रवधू कही गई है।

रत्नासन (सं० क्ली०) रत्ननिर्मितम् आसनं। रत्नका आसन।

रत्नि (सं० पु०) ऋच्छति प्राप्नोत्यनेनेति ऋ- (ऋतन्यञ्जीति। उण् ४।२) इति कत्निच्। बद्धमुष्टिहस्त, मुट्ठी भर।

रत्निन् (सं० त्रि०) १ रमणीय धनवत्, रमणीय फलवत्। २ जिसके घरमें राजप्रदत्त रत्नद्रविः समाहित होती है।

रत्निपृष्ठक (सं० क्ली०) कनुई, केहुनी।

रत्नेन्द्र (सं० पु०) श्रेष्ठ रत्न। जैसे हीरा, मणि मुक्ता आदि।

रत्नेशक—लक्ष्मणसंग्रह नामक न्यायशास्त्रके प्रणेता।

रत्नेश्वर—१ रत्नदर्पण नामक सरस्वतीकंठाभरणके टीकाकार। ये रामसिंहदेव नामसे भी परिचित थे। २ प्रश्नप्रकाश नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता।

रत्नेश्वर मिश्र—आचारचन्द्रिकाके प्रणेता।

रत्नेश्वर (सं० पु०) १ काशीके एक शिवका नाम। २ मथुराके एक शिवका नाम।

रत्नोत्तमा (सं० स्त्री०) तान्त्रिकोंकी एक देवीका नाम।

रत्नोद्भव (सं० पु०) एक बौद्ध-यति।

रत्नोल्का (सं० स्त्री०) तान्त्रिकोंके अनुसार एक देवीका नाम।

रत्यङ्ग (सं० क्ली०) रतेरङ्ग। योनि, भग।

रथ (सं० पु०) रम्यतेऽनेनात्र वा रम्-(हनिकुषिनीरमिकाशिभ्यः क्थन्। उण् २।२) १ काय, शरीर।

"आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव च।" (गीता)

आत्मा देहरूपमें अवस्थान करती है इसलिये आत्माको रथी कहते हैं। २ चरण, पैर। ३ वेतसवृक्ष, बेंत। ४ तिनिसका पेड। ५ प्राचीनकालकी एक प्रकारकी सवारी जिसमें चार या दो पहिये हुआ करते थे और

जिसका व्यवहार युद्ध, यात्रा विहार आदिके लिये हुआ करता था। पर्याय—शताङ्ग, स्यन्दन, स्यन्दनमान। रथ भ्रमण गुण—वायुप्रकोपक, अङ्गका स्थिरीकरण, बलकर और अग्निवर्द्धक। रथयात्रा देखो। ६ क्रीडास्थल, विहार करनेका स्थान। ७ शतरंजका वह मोहरा जिसे आज कल ऊ ट कहते हैं। जब चतुरङ्गका पुराना खेल भारतसे फारस और अरब गया तब वहाँ रथके स्थान पर ऊ ट हो गया।

रथक (सं० पु०) रथ इव प्रतिकृतिः रथ कन्। मञ्जिरा वयवविशेष।

रथकट्या (सं० स्त्री०) रथानां समूहः (इनित्कट्यचश्च। पा ४।२।५१) इति कट्यच्, टाप्। रथसमूह रथव्रज।

रथकर (सं० पु०) रथं करोतीति कृ-अच्, रथानां कर्त्ता। रथकार, रथ बनानेवाला, बढ़ई।

रथकल्पक (सं० पु०) १ प्राचीनकालका वह अधिकारी जिसकी अधीनतामें राजाओंके रथ आदि रहते थे। २ प्राचीनकालके धनवानोंका वह प्रधान अधिकारी जो उनके घर आदि सजाता और उनके पहननेके वस्त्र आदि रखता था।

रथकाय (सं० पु०) रथारोही सनायक।

रथकार (सं० पु०) रथं करोतीति रथ-कृ-अण्। १ रथ निर्माणकर्त्ता, रथ बनानेवाला बढ़ई। पर्याय—तक्षन्, वर्द्धकि, त्वष्ट्ट, काष्ठतट्, सूत्रधार रथकर, काष्ठतक्षक वर्द्धका। (शब्दरत्नाकर) मलोम्लीत देखो। २ एक जाति जिसकी उत्पत्ति माहिष्य (क्षत्रियसे वैश्यामें उत्पन्न) पिता और करिणी (वैश्यसे शूद्रामें उत्पन्न) माताले मानी गई है। इसमें अग्न्याधेय आदि संस्कार होते हैं। "भेधावे रथकारं धैर्याय तक्षाणम्" (शुक्लयजु ३०।६) 'रथकारं माहिष्येण करण्यां जातं'। (महीधर)

रथकारक (सं० पु०) रथस्य कारकः। सूत्रधार, बढ़ई।

रथकारत्व (सं० क्ली०) रथकारस्य भावः रथकार त्व। रथकारका भाव या धर्म, बढ़ईका काम।

रथकुटुम्बिक (सं० पु०) वह जो रथ चलाता है, सारथी।

रथकुटुम्बिन् (सं० पु०) रथं कुटुम्बयितु धारयितु शील मस्य, णिनि, यद्वा रथ एव कुटुम्ब सहस्यास्तीति इनि। सारथी।

रथकूबर (सं० पु०) रथका अङ्गभेद।

रथकृत् (सं० पु०) रथं करोति कृ क्विप् तुक् च। १ रथकार, बढ़ई। २ यक्षभेद।

रथकेतु (सं० पु०) रथका निशान, रथध्वज।

रथक्रान्त (सं० पु०) रथवत् क्रान्तं क्रमणमस्य। संगीतमें एक प्रकारका ताल।

"अश्वक्रान्तो रथक्रान्ता विष्णुक्रान्तस्ततः परं।
सर्वक्रान्तो विधुक्रान्तो ब्रह्मनियामपद्धकः॥"
(सङ्गीतरत्नाकर)

रथक्रान्ता (सं० पु०) एक प्राचीन जनपदका नाम। (बरा० ई०)

रथक्रीत (सं० त्रि०) जो रथके दाममें खरीदा गया हो।

रथक्षय (सं० त्रि०) रथनिवास।

रथक्षोभ (सं० पु०) रथका हिलना।

रथगणक (सं० पु०) रथसंख्याकारी राजकर्मचारि भेद।

रथगर्भक (सं० पु०) रथो गर्भ इस्य। रथगर्भयानयान, रथके आकारकी वह सवारी जिसे मनुष्य कंधे पर उठा के चलते हों। जैसे, पालकी, नालकी आदि।

रथगुप्ति (सं० स्त्री०) परम्परप्रभिघातरक्षाय रथस्य सम्बाहपदाचरणकादि द्रव्यं। रथके किनारे लगा हुआ लकड़ी या लोहेका वह ढाँचा जो शत्रु आदि से रक्षाके लिये होता था। पर्याय—वरुथ।

रथगृत्स (सं० पु०) रथकर्ममें कुशल, सुनिपुण रथ चालक

रथगोपन (सं० क्ली०) रथस्य गोपनं शस्त्रादिभ्यो रक्षार्थं मावरणं। रथगुप्ति।

रथग्रन्थि (सं० पु०) रथसम्बन्धी।

रथघोष (सं० पु०) रथके पहियेका घरघर शब्द।

रथचक्र (सं० क्ली०) रथस्य चक्र। रथका पहिया।

रथचक्रचित् (सं० क्ली०) रथके पहियेकी तरह सजा हुआ।

रथचरण (सं० पु०) रथचरण चक्र तदस्य नामास्य। १ चक्रवाक पक्षी, चकवा। (पु० क्ली०) २ रथचक्र, रथका पहिया।

रथचर्या (सं० स्त्री०) रथचालना।

रथचर्यासञ्चार (सं० पु०) रथोंके चलनेकी पक्की सड़क। यह खजूरकी लकड़ी या पत्थरकी बनाई जाती थी। चन्द्रगुप्तके समयमें इसका विशेष रूपसे प्रचार था।

रथचर्पण (सं० पु०) रथका उपस्थ मध्यदेश।

रथचित्रा (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नदीका नाम।

रथजङ्घा (सं० स्त्री०) रथका पिछला भाग।

रथजित् (सं० त्रि०) रथं जयति जि-क्विप् तुक् च। रथजेता, रथ जीतनेवाला।

रथजूति (सं० त्रि०) रथ पर चढ़ कर चढ़ाई करना।

रथज्ञान (सं० क्ली०) रथचलानेमें निपुण।

रथज्ञानिन् (सं० त्रि०) सारथी, रथ चलानेवाला।

रथतुर (सं० त्रि०) रथप्रेरयिता, रथ भेजनेवाला।

रथदारु (सं० क्ली०) वह लकड़ी जो रथ बनानेकी योग्य हो।

रथद्रु (सं० पु०) रथनामा द्रुः। यद्वा रथस्य रथस्य द्रुः द्रुमः, तत्रोपयोगित्वात्। १ तिनिशका पेड़। २ वेंत।

रथद्रुम (सं० पु०) वृक्षभेद।

रथधूर (सं० स्त्री०) रथस्य नाभिः। रथचक्र, रथका पहिया। "यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः" (शुक्ल यजु० ३४।५) 'रथनाभौ आरा इव, आराः रथचक्रनाभौ मध्ये प्रतिष्ठितताः' (वेददीप)

रथन्तर (सं० त्रि०) रथेन तरति यः। १ कल्पविशेष। (मत्स्यपु० ५३।३३) (क्ली०) रथेन तरतीति तृ (संज्ञायां भृ-तृ-वृजधारिसहितपिदमः। पा ३।२।४६) इति खच्, मुम च। २ एक प्रकारकी अग्नि। ३ सामभेद।

रथन्तरी (सं० स्त्री०) १ पुरुवंशीय ईलिन राजाकी पत्नी। (भारत० १।९४।१७) २ तंसुरकी एक स्त्रीका नाम।

रथपति (सं० पु०) रथका नायक, रथी।

रथपथ (सं० पु०) वह पथ या रास्ता जिस पर गाड़ी चल सके।

रथपर्याय (सं० पु०) रथः पर्यायो यस्य। १ तिनिश-वृक्ष। २ बेत।

रथपाद (सं० पु०) रथस्य पादः। चक्र, पहिया।

रथप्रा (सं० स्त्री०) आत्मियों या स्तोतृयोंका रथ धन द्वारा पूरा करनेवाली।

रथप्रेति (सं० त्रि०) रथस्थितप्रेतिवत् स्थिर सेनानी।

रथासा (सं० स्त्री०) एक प्राचीन नदीका नाम।

रथबन्ध (सं० पु०) रथ बांधनेकी रस्सी।

रथमण्डल (सं० पु० क्ली०) रथका समूह।

रथमहोत्सव (सं० पु०) रथजनितः महोत्सव वा रथस्य महोत्सवः। रथयात्रा नामक उत्सव।

विशेष विवरण रथयात्रा शब्दमें देखो।

रथमुख (सं० क्ली०) रथका बिचला भाग।

रथया (सं० स्त्री०) रथ आदिके लिये इच्छा।

रथयात्रा (सं० स्त्री०) रथेन यात्रा। देवदेवीको रथ पर बिठा कर रथ खींचनेका उत्सव।

यह आर्यजातिका अनुष्ठित एक प्राचीन धर्मोत्सव है। अभी रथयात्रा कहनेसे साधारणतः जगन्नाथदेवकी रथयात्रा ही समझी जाती है। किन्तु एक समय इस भारतवर्षमें क्या सौर, क्या शाक्त, क्या शैव, क्या वैष्णव, क्या जैन, क्या बौद्ध, विभिन्न धर्मसम्प्रदायके मध्य अपने अपने उपास्यदेवके उत्सवविशेषमें रथयात्रा होती थी। राजासे ले कर दीन भिखारी तक सभी इस उत्सवमें शामिल होते थे। कबसे यह रथयात्रा प्रचलित है, इसका आज तक पता नहीं चला है। किसी किसी पाश्चात्य पुरावित् तथा प्रत्नतत्त्वविद् डा० राजेन्द्रलाल मित्रके मतसे बुद्धदेवके जन्मोत्सव-उपलक्षमें बौद्ध लोग जो रथयात्रा उत्सव मनाते थे, उसीसे भारतीय रथयात्राकी उत्पत्ति हुई है।

५वीं सदीमें चीन परिव्राजक फाहियानने लि-खुल वा खोतनराज्यमें रहने समय बुद्धकी रथयात्राका वर्णन इस प्रकार किया है—

चतुर्थ मासके १म दिनमें नगरके सभी रास्ते साफ सुथरे किये गये। राजपथ ध्वजा पताकासे सजाया गया नगरके फाटकके ऊपर चन्द्रातप फहराया गया। फाटकके ऊपर राजा, रानी और राजपुरमहिलाओंके बैठनेका काफी स्थान था। राजा महायानका ही अधिक सम्मान करते थे, इस कारण महायानमतावलम्बी गोमती बौद्धाचार्योंकी प्रतिमायें सबसे पहले निकलीं। नगरसे प्रायः ३।४ लीग दूर उनके विग्रहके लिये रथ तैयार होता था। रथमें चार चक्के थे, सबोंकी ऊँचाई ३० फुट थी, वह सप्त-

महारत्नसे सुशोभित था। देखनेमें एक सजल राज प्रासाद-सा मालूम होता था। उसके ऊपर चारों ओर रेशमका चन्द्रातप और रेशमका परदा लटका हुआ था। मध्यस्थलमें बुद्धविग्रह थे। उनके दोनों पार्श्वमें सहचरके रूपमें दो बोधिसत्त्व तथा उनके भी अनुचररूपमें नाना देवमूर्त्ति था। सोने और चांदीके बने और चमकीले अलङ्कार हवामें हिलते थे। रथ जब फाटकके समीप पहुंचा, तब राजाने अपना राजमुकुट फेंक कर नया कपड़ा पहना और हाथमें फूलकी माला तथा धूना लिये वे अनुचरोंसे परिवृत्त हो नंगे पैर रथके सामने उप स्थित हुए। अनन्तर मस्तकसे देवके चरणोंमें पुष्पाञ्जलि दी और धूप धूना जला कर उनकी पूजा की। नगर घुसते समय फाटक परसे रानी और राज महिलागण पुष्प बरसाने लगी।

'इस प्रकार प्रत्येक सङ्घारामसे विभिन्न प्रकारके रथ निकले। चतुर्थमासकी प्रतिपद्से सबोंकी यात्रा आरम्भ और चतुर्दशीके बाद शेष हुई। उत्सव शेष होने पर राजा और रानी सभी अपने महलमें लौट आये।' Po Kwo-ki Ch. II.

फाहियानने पाटलिपुत्र दर्शनकालमें भी इसी प्रकार वर्णन किया है—

'प्रति वर्ष दूसरे महीनेके ८वें दिनमें यात्रोत्सव होता है। इस समय वहांके अधिवासी रथ पर बुद्धप्रतिमा बिठा कर बाहर निकालते हैं। रथमें चार पहिये होते हैं। बीचमें त्रिशूलाकार ५२ फुट ऊंचा ध्वजदण्ड खड़ा रहता है। रथ ठीक मन्दिरके जैसा दिखाई देता है। इसमें सफेद झिल्ली तथा रंग बिरंगके कपड़े शोभा देते हैं। फिर सोने, चांदी और स्फटिकका अलङ्कारयुक्त नाना देव मूर्त्ति है, रथके चारों ओर चैत्य हैं। उनमेंसे चार ध्यानी बुद्धमूर्त्ति है। प्रत्येकके सामने बोधिसत्त्वमूर्त्ति भी खड़ी है। इस प्रकार २० बड़े बड़े रथ सुसज्जित हो बाहर निकलते हैं। इस रथोत्सवमें क्या यति, क्या श्रमण, क्या ब्राह्मण, क्या जनसाधारण सभी शामिल होते हैं। नाना प्रकारका बाजा भी बजता है। रात भर जग कर सभी दीपालोकसे प्रतिमाका आवाहन, उनके उद्देश्यसे गीतवाद्य और आमोद प्रमोद करते हैं। दूर दूर देशसे अनेक लोग आ कर इस उत्सवमें शामिल होते हैं।'

फाहियानने पाटलिपुत्रमें जिस दिन रथोत्सव देखा था, वही दिन बुद्धका जन्म दिन है, ऐसा बहुतोंका विश्वास है। फाहियानका उक्त वर्णन पढ़ कर बहुतेरे जगन्नाथदेवकी रथयात्राको बुद्धदेवकी रथयात्राका ही निदर्शन समझते हैं। अतएव बौद्ध लोगोंसे ही भारत वर्षमें रथयात्राका प्रचार हुआ है, यही बहुतोंकी धारणा है। किन्तु इस सम्बन्धमें सन्देह करनेका यथेष्ट कारण भी दिखाई देता है। पहले बुद्धके जन्मोत्सव उपलक्षमें ही रथयात्राकी सृष्टि हुई, इसे भी हम विश्वास नहीं कर सकते। क्योंकि, प्राचीन बौद्धोंके मध्य एक ही समय इस उत्सवका प्रचार नहीं था। फाहियानके विवरणसे ही मालूम होता है, कि कहीं तो २य मासके १म दिनमें, और कहीं ४र्थ मासके ८म दिनमें बुद्धदेवकी रथयात्रा होती थी। वर्त्तमान कालमें जगन्नाथ देवकी रथयात्रा भारतवर्षमें सभी जगह आषाढ़ मासकी शुक्लाद्वितीया को होती है। अतः यहांके जगन्नाथदेवकी रथयात्रा और बुद्धदेवकी रथयात्राको किस प्रकार बुद्धका जन्मोत्सव कह सकते? केवल जगन्नाथदेवकी रथयात्रा ही नहीं, कूर्म और भविष्यपुराणसे माघ मासमें सूर्यकी रथयात्रा देवीपुराणसे कार्त्तिक मासमें देवीकी रथयात्रा, पद्म, वराह और भविष्योत्तर पुराणसे (रासयात्राके पहले) कार्त्तिक मासमें श्रीकृष्णकी रथयात्रा, मत्स्य और एकाम्र पुराणसे चैत्र मासमें शिवकी रथयात्रा, स्वयम्भूपुराणसे उसी समय स्वयम्भूनाथ बुद्धकी रथयात्रा तथा जैनपुराण अथवा जैनधर्मग्रन्थसे मार्गशीर्ष चातुर्मास्यके बाद पार्श्व नाथ और महावीरकी रथयात्राका विस्तृत विवरण पाया जाता है। यहां तक कि, एक समय यूरोपमें भी जो रथ-यात्रा प्रचलित थी, उसके भी प्रमाण मिलते हैं। क्या इन सभीको बौद्धप्रभावका निदर्शन कह सकते हैं? कदापि नहीं।

विशेषतः जैन-सम्प्रदाय कभी भी धर्मनीतिको बौद्धोंसे ग्रहण या सीखनेके लिये तय्यार नहीं। वे सब जो उत्सवादि और पूजा करते आ रहे हैं वह अधिकांश उनका निजस्व है। इन लोगोंमें भी पार्श्वनाथ और महावीरस्वामीकी रथयात्रा प्रचलित है।

हम लोगोंका विश्वास है, कि भारतवर्षमें प्रतिमा-पूजाके प्रचलनके साथ रथयात्राका उत्सव आरम्भ हुआ है। पुराविदोंने स्थिर किया है, कि बुद्धनिर्वाणके बहुत पीछे यहां तक कि सम्राट् अशोकके समय तक बौद्धोंके मध्य बोधिसत्त्व और देवदेवीकी मूर्त्तिपूजाका प्रचार नहीं हुआ। महायानोंके अभ्युदयसे बौद्धसमाजमें प्रतिमा-पूजा प्रचलित हुई थी। सम्राट् कनिष्कके समय महायान मतका सूत्रपात हुआ। नागार्जुनके प्रभावसे यह मत फैला। उक्त कनिष्क राजा शक जातिके थे। शक वा शाक लोग सभी मित्र वा सूर्योपासक थे। और तो क्या, कनिष्ककी कितनी मुद्राओंमें भी मित्रपूजाका प्रकृष्ट निदर्शन देखा जाता है। जब माकिदनवीर अलेकसन्दर भारतवर्ष आये, उस समय उन्होंने यहां बुद्धप्रतिमा अथवा उनकी पूजाका कोई निदर्शन नहीं पाया। उस समय उन्होंने पञ्चनद प्रदेशमें मित्र और शिव-पूजाका प्रभाव देखा था*। यहां तक कि माकिदनवीरके परवर्त्ती और शकराजाओंके पूर्ववर्त्ती भारतीय मुसलमान राजाओंकी मुद्रा पर मित्रपूजाका चिह्न दिखाई देता है। परन्तु मुसलमानराजे जो मित्र वा सूर्योपासक थे उसका कोई विशेष प्रमाण नहीं मिलता। उन लोगोंके आनेके बहुत पहलेसे यहांके लोगोंके बीच मित्रपूजाका बहुल प्रचार था, प्रजावृन्दके मनोरञ्जनके लिये मुसलमानराजोंने अपनी अपनी मुद्रा पर मित्रमूर्त्ति अङ्कित की होगी यही युक्तिसङ्गत प्रतीत होता है। बौद्धसम्राट् अशोकके समय बोधगयामें वज्रासन बनाया गया। वहां सात घोड़ोंके रथ पर हम लोग सूर्यकी मूर्त्ति देखते हैं। कूर्मपुराण और भविष्यपुराणके प्राचीन अंशमें सूर्यदेवकी रथयात्राका विस्तृत विवरण लिखा है। मित्र-पूजा प्रवर्तन, शाक जातिका धर्ममत और विश्वास ले कर भविष्यपुराणका प्राचीनांश रचा गया है। देवताकी मूर्त्ति गढ़ कर उसकी पूजा सुप्राचीन भारतीय आर्य जातिके मध्य प्रचलित नहीं थी। भारतमें शाकद्वीपीय ब्राह्मणसंस्रवके साथ साथ प्रतिमा गढ़नेका आरम्भ हुआ। उन्हींके यत्नसे केवल भारतवर्ष ही नहीं, मध्य-एशियामें ले कर सुदूर यूरोपखण्ड तक सूर्यकी मूर्त्ति पूजा प्रचलित हुई थी। भविष्यपुराणमें माघ मासमें सूर्यदेवकी रथ-यात्राका प्रसङ्ग है, यह पहले ही लिख आये हैं। आज भी माघमासके आरम्भमें यूरोपके अन्तर्गत सिसली द्वीपमें रथयात्राका अनुष्ठान होता है। सूर्यदेवके रथ पर जिस प्रकार ज्योतिश्चक्र और नवग्रहकी मूर्त्ति अङ्कित होती थी, सिसलीद्वीपके उसी प्रकार बड़े रथ पर भी सूर्यचन्द्रकी नवग्रह और ज्योतिश्चक्र अङ्कित होता है। इस सिसलीके रथ-सम्बन्धमें श्रीमती करासीओला Madame Henrietta Caraciolo ने इस प्रकार वर्णन किया है।

"A colossal car is dragged by a long team of buffaloes through the irregular and ill paved streets. Upon this are erected a great variety of objects, such as sun, moon and principal planets, set in rotatory motion, and diminishing proportionately in size as they approach the summit of the structure. This erection is in itself really imposing, sumptuously decorated, and put in movement in honour of her who gave birth to the God of Charity. But its functions recall to mind the famed car of Jaggernauth, or the nefarious hecatombs of the druids" †

उक्त विलायती रथयात्रा मेरीके उद्देशसे अनुष्ठित तो होती है, पर वह देश, काल और अवस्थानुयायी सुप्राचीन सूर्य रथयात्राका रूपान्तरमात्र है, इसमें सन्देह नहीं। सूर्यरथ ही जो सभी रथोंमें प्रथम है वह भी पुराणमें लिखा है।

"पूर्वमेव सहस्रांशोर्यानिहतोर्महात्मन. ।
स वत्सरस्यावयवैः कल्पितोऽस्य रथो मया ॥
सर्वेषान्तु रथानां वै स रथः प्रथमः स्मृतः ॥"

(भविष्यपु० ५५।५२)

अभी जिस प्रकार जगन्नाथदेवकी रथयात्रा होती है,

* वङ्गेर जातीय इतिहास, ब्राह्मणकाण्ड २य भाग ४र्थ अंश ५१ पृष्ठ देखो।

† Memoirs of Henrietta Caraciolo, p 21

पहले उसी प्रकार भारतीय वैष्णव-सम्प्रदायके मध्य कार्त्तिक मासमें श्रीकृष्णकी रथयात्राका अनुष्ठान होता था। बौद्ध प्रभावकालमें यह उत्सव एकदम विलुप्त हो जाने पर था। महायान सम्प्रदायकी प्रधानताके समय उत्कलमें बड़ी धूमधामसे जो बुद्धकी रथयात्रा होती थी, हिन्दूधर्मके पुनरभ्युदयकालमें उत्कलवासीके धर्म रक्षणके लिये उसी समय जगन्नाथदेवकी रथयात्रा जब धीरे धीरे तमाम फैल गई, तब भारतवर्षकी रथयात्राका विषय प्रायः सभी भूल गये। जहां कहीं यह प्राचीन विष्णुरथयात्रा होती था है वहाँ जगन्नाथकी रथयात्राका नियम ही पालन करते देखा जाता है। उत्कलमें चैत्र मासमें आज भी बड़ी धूमधामसे शिवकी रथयात्रा होती है। परन्तु देवीकी रथयात्रा एक तरह लुप्त-सी हो गई। हिमालयके भी एक स्थानमें देवीकी रथयात्राकी बात सुनी जाती है।

नीचे विभिन्न रथयात्राका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है—

सूर्यकी रथयात्रा।

भगवान् सूर्यदेवकी रथयात्राका विधान भविष्य पुराणमें इस प्रकार लिखा है—

माघमासकी शुक्ला सप्तमी तिथिको भगवान् सूर्यदेव की रथयात्रा करनी होती है। पहले चतुर्थी तिथिमें यथाविहितरूपसे मत्स्य करके शुक्ला पञ्चमीके दिन संयत हो कर रहे। पीछे षष्ठीको रातको भोजन करे तथा सप्तमी तिथिमें उपवास रह कर भगवान् सूर्यदेवको रथ पर आरोहण करावे।

भगवान् सूर्यदेवको रथारोहण करानेके पहले रथके सामने जागरण करना होता है। रात्रिकालमें सूर्य देवको रथ पर चढ़ा कर रात भर आमोद प्रमोदमें जाग कर बितावे। पीछे अष्टमी तिथिमें सबेरे नाना प्रकार के वाद्यादि उत्सव करके रथभ्रमण करना उचित है। सूर्यदेवके रथका संवत्सरके अवयव द्वारा कल्पना करनी होती है। रथचक्रका नाम नाभि होगा। ये तीनों नाभि त्रिकालस्थानीय रहेंगी। इसके पांच और पञ्च-ऋतु भाग छः ऋतुएँ, रथकेरा उत्तरायण और दक्षिणा यन, पक्ष मुहूर्त, अमावास, कला कालस्थानीय, इसके क्षण दण्डक, कर्मकेन्द्र निमेष, ताराएँ छत्र, पताका प्रवेश राशि ऊर्ध्व प्रतिष्ठित ध्वज धनस्वरूप, युग और अक्षकोटि श्री मनु इत्यादि रूपसे संवत्सरकी कल्पना कर रथ प्रस्तुत करना होता है। इसमें ज्योतिश्चक्रोक्त सभी नक्षत्रादिका समावेश करना उचित है।

(भविष्यपु० ५५ अ०)

यह रथ सोने, चांदी या दृढ़ शालकाष्ठका होना चाहिये। इसका अक्ष युग और चक्र अत्यन्त दृढ़ होवे।

(भविष्यपु० ५५ अ०)

इस रथ पर ब्रह्मा, विष्णु और शिवादि देवताको यथाविधान स्थापन करके रथ चलाना होता है। प्रजाओंके मङ्गलके लिये प्रतिवर्ष यह रथयात्रा करनी उचित है। रथ पर सूर्य और देवताओंकी प्रतिमा रख कर दक्षिण सुलक्षण-सम्पन्न घोड़े नियोजित करने होते हैं।

(भविष्यपु० ५५।६१)

रथमें घोड़े या उसके अभावमें बलीवर्द भी नियोजित किया जा सकता है। रथके दोनों बगलमें सूर्यकी दो पत्नियाँ स्थापित करनी होंगी, दाहिनी बगलमें निक्षुभा पत्नी और बाईं बगल राज्ञी रहेगी। बीच ही बगलमें रुद्रदेवको भी स्थान देना होगा। पश्चात् सोम, ऊपरमें कुबेर और पीछे पर गरुड़ रहेगा। श्वेत भाग पर भार सुवर्णदण्ड भी रखना होगा। (भविष्यपु० ५८ अ०) सूर्यके पार्श्व दिण्डी नामक लेखक और द्वारपाल भी रहेंगे।

इस रथका ध्वजा सुवर्णबिन्दु और मणिमुक्तादि द्वारा चित्रित करना होगा। इसमें इन्द्रधनुषके समान नाना वर्ण दिखाई जायेंगे। ध्वजाके ऊपर अरुण देवको अधिष्ठित करना होता है। सूर्यका यह रथ ब्राह्मणके सिवा दूसरा कोई भी वहन नहीं कर सकता।

(भविष्यपु० ५८ अ०)

जो सब देवमन्दिर तथा कुटीरात्मक हैं, उनमें रथ यात्राका बिलकुल अधिकार नहीं है। यह रथ कौशेय उपवास करना होता है। पहले पूर्वद्वार हो कर यह रथ ले जाय। निर्दिष्ट स्थानमें रथके पहुंचने पर वहाँ एक दिन ठहरना होता है। उस दिन नाना प्रकारका नृत्यगीत, वेदपाठ, ब्राह्मण भोजन और धूप-

पूजादि द्वारा विताना चाहिये । सूर्य, ग्रह, नक्षत्र आदि देवताओंकी पूजा भी अवश्य कर्त्तव्य है । सूर्यदेवका रथ धीरे धीरे भ्रमण कराना होता है। भविष्यपुराणमें ५५ अध्यायसे ले कर ६२ अध्याय तक सूर्यरथयात्राका सविस्तार विवरण आया है। स्थानाभावसे यहां पर संक्षेपमें दिया गया।

विष्णुकी रथयात्रा।

पद्म, स्कन्द और भविष्योत्तरपुराणके मतसे चातुर्मास्य-के अन्तमें भगवान्‌के उत्थानके बाद कार्त्तिककी शुक्ला द्वादशीकी रात विष्णुको रथ पर स्थापन कर यह उत्सव मनाया जाता है। भविष्योत्तरके मतसे प्राचीनकालमें प्रह्लादने पहले पहल महाविष्णुका रथ खींचा था। पीछे दैवसिद्ध गन्धर्वोंने इस रथयात्राका अनुष्ठान किया था। भगवान्‌को रथ पर चढ़ा कर नाच, गान, बाजे-गाजेके साथ उस रथको नगरमें घुमाना होता है। रथयात्राके पथमें सुन्दर सुन्दर ध्वजा फहरायगी, बड़े बड़े सुसज्जित फाटक रहेंगे तथा केलेके थम्भ भी जहां तहां गाड़े जायेंगे। समूचे नगरका प्रदक्षिण करा कर विष्णुको फिर उनके मन्दिरमें लाना होता है। भविष्योत्तरमें लिखा है, कि उस रथका एक एक पद खींचनेसे एक यज्ञ-का फल होता है। रथस्थ केशव-मूर्त्तिके दर्शन करनेसे चण्डालादि भी देवताके पार्षद हो सकते हैं, स्त्रियां भी पिता, माता और स्वामी-कुलके साथ वैकुण्ठ जाती हैं। फिर जो प्रसन्न चित्तसे उस रथकी शोभा बढ़ाते हैं, भगवान् उनके मनोरथ पूर्ण करते हैं। पीछे वैष्णवोंको सारी रात उस विष्णुमन्दिरमें जग कर प्रबोध वासर करना चाहिये। इस प्रकार रात्रि जागरणमें भी अशेष पुण्य बतलाया है। हरिभक्तिविलासमें विस्तृत विवरण दिया गया है।

शिवकी रथयात्रा।

एकाम्रपुराण (६७ अ०)-में महादेवकी रथयात्राका विषय इस प्रकार लिखा है।

'शिवकी रथयात्राका नाम अशोकाख्या महायात्रा है। यह रथयात्रा शिवके अत्यन्त सन्तोष देनेवाली है। शिवकी रथयात्रा करनेमें पहले रथ बनाना होगा। रथ निर्माणके लिये धनिकाष्ठ उत्तम है। काष्ठ बाजे गाजेके साथ लाना होता है। इस काष्ठसे सफेद रथ बनाना होगा। रथमें चार सुन्दर चक्र रहेंगे। रथकी लम्बाई २१ हाथ होगी और घेरा १६ हाथ। इसमें चार द्वार और हर एक द्वारके ऊपर एक एक सोनेका कलस रहेगा। रथ पर त्रिशूलके ऊपर सौरभेय ध्वजा तथा इसके चार आर होंगे। ब्रह्मा इस रथके सारथि होंगे। इसमें दिव्य सिंहासन रहेगा। इस प्रकार हर हालतसे सुन्दर उत्तम रथ बना कर उस पर महादेवको बिठा इस रथयात्राका अनुष्ठान करना होता है।

रथके उत्तर प्रतिष्ठामण्डप बनाना होता है। इस प्रतिष्ठामण्डपमें वेदीके ऊपर शुभ कुम्भ स्थापन कर यथा-विधान भूतशुद्धि और शैवन्यासादि करना आवश्यक है। शिवादि पञ्चदेवताओंकी पूजा और होम भी करना होता है। कुम्भके दक्षिण भागमें वरुणपूजा तथा रुद्राध्यायका जप करना उचित है। रथके दक्षिण नन्दी, उत्तर महाकाल, रथके पृष्ठभाग पर विनायक, आगे वाहनसहित कार्त्तिक और अनन्तदेवकी पूजा करके महादेवीकी पूजा करनी होती है। इस प्रकार यथा-विधान पूजादि करके रथ प्रदक्षिण करना होगा। पीछे महादेवको रथ पर बिठा कर धीरे धीरे रथयात्रा करे।

'यह रथयात्रा चैत्रमासकी शुक्लाष्टमीके शुभ लग्नमें करनी होती है। जो रथस्थ शिव-दर्शन करते हैं, उन्हें फिर जन्म लेना नहीं पड़ता। जो इस रथयात्राका अनुष्ठान करते हैं, वे सभी पापोंसे मुक्त हो शिवलोक जाते हैं।' (एकाम्रपु० ६६।६७)

त्रिपुरदहनकालमें देवताओंने महादेवको जिस प्रकार रथ पर स्थापन कर खींचा था, उसका विवरण मत्स्य-पुराणमें दिया गया है।

जगन्नाथदेवकी रथयात्रा।

भगवान् जगन्नाथदेवकी रथयात्रा इस प्रकार कही गई है,—आषाढ मासकी पुष्यानक्षत्रयुक्ता शुक्ला द्वितीया तिथिको जगन्नाथदेवकी रथयात्रा करनी होगी। सुभद्रा और बलरामके साथ जगन्नाथदेवको रथ पर आरोहण करा कर यह उत्सव करना होता है। यदि इस तिथिमें पुष्यानक्षत्रका योग न हो, तो भी केवल तिथिमें इसका अनुष्ठान करना होगा। यहां पर केवल तिथिको

ही प्रधानता है, पञ्चम नक्षत्रका योग होनेसे विशिष्ट गुण होगा। इस दिन नाना प्रकारका उत्सव और ब्राह्मण भोजन कराना होता है। सुभद्रा सहित बलरामके साथ जगन्नाथदेवको रथ पर चढ़ा कर यह यात्रा करनी होगी। पीछे सात दिन उस रथको नदीके किनारे रख दे। आठवें दिन नाना प्रकारके भूषणादि द्वारा रथको सजा कर नवें दिन पुनर्यात्रा करे। विष्णुकी दक्षिणाभिमुखी यात्रा अति दुर्लभा और मुक्तिप्रदायिका है।

द्वितीयाको यात्रा करके नवें दिन पूर्णयात्रा करनेसे एकादशीके दिन पुनर्यात्रा होगा।

अर्थात् आषाढ़की शुक्ला द्वितीयाको रथयात्रा करके शुक्ला एकादशीके दिन पुनर्यात्रा करनी होगी। इस दिन जपहोमादि महोत्सव करना उचित है। जो रथ पर या जाते समय विष्णुके दर्शन करते हैं, उनकी विष्णुलोककी गति होती है।

जगन्नाथ, बलराम और सुभद्राका रथ कैसा होना चाहिये उसका विषय पुरुषोत्तममाहात्म्यमें इस प्रकार लिखा है —

'रथनिर्माणकार्यका आरम्भ करनेमें पहले विप्रगणके द्वारा उसे महोत्सव करना उचित है। कोदेसे रथके १६ आर और १६ चक्र पताके होते हैं। सुन्दर सुन्दर काठकी पुतली लटका देनी होगी। रथके मध्यदेशमें समान वेदी तथा उस पर सुन्दर मण्डप बना रहेगा। इसमें चार तोरण और चार द्वार नाना प्रकारके चित्राङ्कित तथा हेम पट्टसे भूषित होंगे। बाईस हाथकी पताका उस पर फहरावेगी। रक्तचन्दन द्वारा गरुड़ध्वज बनाना होता है। यह गरुड़ बड़ी नाकवाला, दृढ़पुष्ट, कुण्डलविभूषित तथा आकाशमें दोनों डैने फैला कर मानो उड़ रहा है, इसी भावमें अङ्कित करना होगा। दैत्यदानवोंका वन ध्वंसात्मक उसका यह चक्र सुवर्ण मण्डित कर देना होगा।'

इस प्रकार विष्णुका रथ बना कर उस पर सुपरिष्कृत आसन बनावे। चौदह रथसे बलदेवका रथ और बारह चक्रसे सुभद्राका रथ बनाना होगा। बलभद्रका रथ तालध्वजमय और लाङ्गल ध्वज तथा देवी सुभद्राका रथ पद्मकाष्ठ विनिर्मित और पद्मध्वज करना होता है।

इस प्रकार रथ बना कर यथाविधान उसकी प्रतिष्ठा करनी होती है। नीलाद्रिमहोदयके ५वें अध्यायमें रथनिर्माण प्रणाली सविस्तार लिखी है।

रथयात्रापद्धति।

निम्नोक्त प्रकारसे भगवान् जगन्नाथदेवकी रथयात्रा करनी होती है। पहले स्वस्तिवाचनपूर्वक 'ओं सूर्यः सोमो' इत्यादि मन्त्र पढ़ कर सङ्कल्प करे। सङ्कल्प मन्त्र इस प्रकार है—"विष्णुरोम् तत्सदद्य आषाढ़े मासि शुक्ले पक्षे द्वितीयायां तिथौ अमुक गोत्रः श्रीअमुकदेवशर्मा विष्णुलोकगमनकामः पापक्षयादि नाना देवतापूजापूर्वक श्रीकृष्णरथोत्सवयात्रामहं करिष्ये।" पीछे सङ्कल्पसूक्तका पाठ कर आसनशुद्धि तथा भूतशुद्धि करके गणेशादि देवताओंकी यथाविधान पूजा करनी होगी। अनन्तर भगवान् जगन्नाथदेवका ध्यान करके मानसोपचारसे पूजा करनेके बाद फिरसे ध्यान करे।

अनन्तर जगन्नाथ, बलराम और सुभद्राका स्तव करके उन्हें प्रणाम करे। पीछे रथोत्सर्ग और रथको सात बार प्रदक्षिण कर जयध्वनि और कीर्त्तनादि उत्सव करना उचित है। इसके बाद ७ या ३ बार रथ चला कर जगन्नाथदेवका अपने घर ले जाय तथा पूर्ववत् अभिषेक और पूजादि करे। पुनर्यात्रामें भी इसी प्रकार करना होता है। पुनर्यात्रा दशमीमें किसी किसीके मतसे नवमीमें करना होता है।

विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है, कि एक ही रथ पर जगन्नाथ, बलराम और सुभद्रा इन तीनों मूर्त्तिको स्थापन करे। फिर भी पुरुषोत्तममाहात्म्य और नीलाद्रि महोदयके पद्धतिके अनुसार पुरीधाममें आज भी तीनोंके लिये तीन बड़े रथ बनाये जाते हैं। ये तीनों रथ किस प्रकार बनाने चाहिये, यह पहले ही लिखा जा चुका है।

जगन्नाथकी रथयात्राके उपलक्षमें आज भी पुरीमें यात्रियोंकी भीड़ रहती है। "रथे च वामनं दृष्ट्वा पुनर्जन्म न विद्यते" इस विश्वास पर भक्त हिन्दू नर नारी सभी जगन्नाथके रथदर्शनको आते हैं। इस समयकी बड़ी भीड़में दो एक आदमी मर भी जाते हैं, इस कारण किसी किसी वैदेशिक मिसनरीने रथयात्राको एक पैशाचिक या असभ्य उत्सव बतलाया है। किन्तु अनुसन्धान करनेसे

मालूम हुआ है, कि इस प्रकार लाखोंकी भीड़ होने पर भी भक्त हिन्दू रथचक्रमें प्राणविसर्जन कर देनेके लिये व्यग्रता नहीं दिखलाते। असाध्य व्याधिसे आक्रान्त जिनके जीवनकी कोई आशा नहीं, वैसे ही दो एक मनुष्य स्वर्ग-कामना करके रथचक्रमें प्राण देते हैं। पर यह भी असम्भव नहीं, कि इस बड़ी भीड़में लोगोंके कुचले जाने तथा घूमते हुए रथमें पड़ कर दो एक आदमी न मरता हो। किंतु सुसभ्य यूरोपके अन्तर्गत सिसली द्वीपमें रथयात्राके समय जैसा बीभत्स और निष्ठुर काम होता है, कि उसे सुननेसे ही शरीर सिहर उठता है। श्रीमती कारासिओलाने इस रथयात्राके विषयमें इस प्रकार लिखा है,—

'The heart sickens at sight of it, and it is difficult to refrain from crying shame upon the horrible barbarity, for, bound to the rays of sun and moon, to the circle sforming the spheres of the various planets, are infants yet unweaned whose mothers, for the gain of a few ducat, thus expose their offspring, to represent the cherub escort which is supposed to occompany the Virgin to heaven.

When this huge machine has made its jolting sound these helpless creatures, guiltless of every reproach, but that of being the offspring of brutal mothers, having been wheeled round and round for a period of seven hours, are taken down from this fatal machin, already dead or dying There ensues a scene impossible to describe—the mothers struggling with each other, screaming and trampling each other down It not being possible, on account of the number, for each mother to recognise her own child among the survivors, one disputes with the other the identity of her infant, amid a storm of imprecations and the lamentations of the more afflicted, joined to the deafening derision of the spectators and the hooting of the mob Numbers are thus changed in the confusion The less fortunate mothers, as they receive the dead bodies of their infants, often already cold, the air with their fictitious lamentation, but consoled with the certainty that Maria, enamoured of her child, has taken it with her paradise"*

अर्थात् वह रथयात्रा देखनेसे कलेजा फट जाता है। उस विभीषिकामयी असभ्यताको धिक्कार दिये बिना नहीं रह सकती। थोड़े रुपयेके लोभमें पड़ कर देवदूत-स्वरूप (रहस्य) कुमारीके साथ स्वर्गलोक जानेके ख्यालसे माता अपने दुधमुंहे लड़केको सूर्य और चन्द्रमाकी किरणमें विभिन्न ग्रहके मण्डल-निर्देशक चक्रके साथ बांध देती हैं। जब यह बड़ा यन्त्र चलने लगता है, तब यह निःसहाय दोषरहित नृशंस माताका दुधमुंहा बच्चा सात घंटे तक उस घूमते हुए चक्रमें पीसे जा कर मृत् वा मृतकल्प अवस्थामें लाया जाता है। उसके बाद जो निदारुण दृश्य होता है उसका वर्णन मैं नहीं कर सकती। उस समय वे सब मातायें एक दूसरेका पददलित करके क्या ही भीषण आर्त्तनाद करती हैं। उनकी संख्या इतनी अधिक होती है, कि अपना अपना जीवित सन्तान चुन लेना उनके लिये कठिन सा हो जाता है। अपने अपने बच्चेको चुन लेनेके लिये एक दूसरीको गाली देती, शाप देती और शोक प्रकट करती है। इस समय उनके आर्त्तनादसे तथा जनताके कल्लोल कोलाहलसे आकाश गूंज उठता है। उस गोलमालमें कितने तो बेहोश हो जमीन पर गिर पड़ते हैं। अल्प भाग्यवती माता अपने बच्चेकी मृतदेहको जो पहले ही हिमाङ्ग हो गई है, पानेके लिये कृत्रिम रोदनध्वनिसे आकाशको फाड़ देती हैं। किन्तु मेरी उनके बच्चोंको स्वर्ग ले गई है, इस स्थिर विश्वाससे वे शान्त होती हैं। यही विलायती रथयात्रा है। आजकल यह नृशंस व्यापार बहुत कुछ उठ गया है।

देवीकी रथयात्रा।

देवीपुराणमें महादेवीका रथोत्सव वर्णित है।

* Memoirs, pp 22

(कार्त्तिकमासमें) तृतीया, पञ्चमी सप्तमी, एकादशी या पूर्णिमाके दिन सातभौम रथ पर देवीको स्थापन करना होता है। रथमंडप किङ्किणी, शङ्ख चामर, पताका, ध्वज दर्पण और विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंसे सजाना होता है। सब तरहके भक्ष्यपानादिका नैवेद्य और बलि भी देनी होती है। रथस्थ देवताओंके उद्देशसे भी बलि देनी चाहिये। वेदमङ्गल जय शङ्ख वेणु, वाद्य और नृत्यगीतादिका शब्द करते करते देवीका रथ खींचना होता है। जिस पथसे रथ जायगा उसे तमाम गोबरसे लीप दे। पथ और पथपार्श्वस्थ सभा घरको सजा रखना होगा। तमाम राजपथसे घुमा कर देवीको फिर मन्दिरमें लावे। यह रथोत्सव करनेसे स्वर्गलाभ होता है। (३९ अ०)

नेपालमें विविध रथयात्रा।

भारतवर्षमें जैसा सर्वजनप्रसिद्ध जगन्नाथदेवकी रथयात्रा और चातुर्मास्यक अन्तमें अनुष्ठेय जैनोंके पार्श्वनाथ और महावीर स्वामीकी रथयात्राको छोड़ कर और सभी देवदेवोंकी रथयात्रा एक प्रकार उठ सी गई है। फिर भी नेपालमें क्या बौद्ध, क्या शैव सभी सम्प्रदायके मध्य भिन्न भिन्न समयमें भिन्न भिन्न प्रकार की रथयात्रा प्रचलित है। ऐसा रथोत्सव और कहीं भी नहीं होता। वर्ष भरके भीतर ये सब यात्रा होती हैं,—

१मी—भैरवयात्रा और लिङ्गयात्रा। १ली या २री वैशाखको दो रथ पर भैरव और भैरवीको स्थापन कर उन्हें तमाम घुमाते हैं। इसीका नाम भैरवयात्रा है। जब दोनों रथ दरबारके निकट पहुंचते हैं उस समय स्वतन्त्र रथ पर लिङ्गमूर्त्तिको स्थापन कर तीन रथ एक साथ चला जाते हैं। इसका नाम लिङ्गयात्रा है।

२रा—मत्स्येन्द्रकी यात्रा या देवीयात्रा। भैरवयात्राके बाद शुक्लाचतुर्दशीको देवीकी यात्रा बड़ी धूमधामसे होती है।

३री—कुमारी-रथयात्रा। केवल 'रथयात्रा' नामसे ही नेपालमें सर्वत्र प्रसिद्ध है। इष्टदेवीकी प्रतिमा ले कर यह रथोत्सव नहीं मनाया जाता। इसमें जय मातृका एक कुमारी तथा गणेश और कुमारस्वरूप एक बालिका और दो बालकको रथ पर पूजा होती है। नेपालमें प्रवाद है, कि राजा जयप्रकाश मल्लने कुमारीका अपमान करके उनकी सम्पत्ति छीन ली थी। उसी रातको उनकी रानी मूर्च्छित हो गिर पड़ी तथा कुमारी उनके शरीरमें घुसी हुई हैं, ऐसा उन्हें मालूम हुआ। राजा डर गये और बड़े समारोहसे उन्होंने कुमारीकी पूजा की। आज भी नेपालके बांडाओंमेंसे एक सात वर्षकी कुमारी और दो बालकको चुन लिया जाता है। जैसी तैसी कुमारीसे काम नहीं चलेगा। जिसे कुमारी बनाया जायगा, उस कन्या और बालक को स्नेहसे लीप पोते बड़े बड़े भैंसेके सौ गौंसे सज्जित कर एक भयानक घरमें ला छोड़ दिया जाता है। यदि वह उस भीषण दृश्यको देख कर जरा भी विचलित न हो, तो कन्याको जय देवीकी अवतार कुमारी और दो पुत्रको कार्त्तिक गणेश समझ कर सभी उनकी भक्ति करते हैं। स्वयं नेपालपति आ कर कन्याको पूजा देते हैं तथा उसके खर्चके लिये तीन हजार रुपयेकी तथा दो बालकको डेढ़ हजार रुपयेकी जागीर [redacted] है। ये तीनों जिस घरमें रहते हैं, वह 'देवताका मकान' समझा जाता है। उस कुमारीको देवी समझ कर कोई भी उसके साथ विवाह नहीं कर सकता। किन्तु दोनों बालकके गलेमें माला पहनानेके लिये सभी नेवार कुमारियां उत्सुक रहती हैं। तीन चार वर्ष तक इन तीनोंकी पूजा होती है। पीछे फिरसे नये नये बालक और बालिका चुनी जाती हैं। इन तीनोंको सुसज्जित मन्दिराकार रथ पर बिठा कर जब रथयात्रा होती है, तब नेपालाधिपति सरदारोंसे परिवृत हो स्वयं बाहर आ कर उनकी पूजा और सम्मान करते हैं। यह रथोत्सव देख कर एक अंगरेज-लेखकने लिखा है—

The Buddhist festival is evidently adopted from the Hindu festival of Jagannath, in honour of Jagannath and his brother Balaram and the Kumari represents their sister Subhadra. *

अर्थात् जगन्नाथकी रथयात्राके अनुकरण पर नेपालके

* Oldfield's Sketches from Nipal vol p. 316

बौद्धोंकी एक प्रधान उत्सव कुमारी रथयात्रा प्रचलित हुई है।

४थी—मत्स्येन्द्रयात्रा। मत्स्येन्द्रनाथकी रथयात्रा प्रधानतः बौद्धोत्सव कह कर गिनो जाने पर भी नेपालवासी हिन्दू बौद्ध सभी उत्सवमें शामिल होते हैं। नेपालका यही सर्वप्रधान रथोत्सव है। चैत्रमासमें यह उत्सव मनाया जाता है। रामनवमी तिथिमें भगवद्वतार रामचन्द्रका जन्म हुआ था। बुद्धदेव भी विष्णुके अवतार माने जाते हैं। इसलिये रामनवमी तिथिमें बुद्धका जन्म ले कर मत्स्येन्द्रयात्रा होतो है। यथार्थमें चैत्रकी शुक्लाष्टमी, नवमी, दशमी और एकादशी ये चार दिन मत्स्येन्द्रके उत्सवके दिन हैं।

उपरोक्त भैरवयात्राको छोड कर और सभी यात्राओंमें नेपालके महाराजसे ले कर हिन्दु बौद्ध सबके सब शामिल होते हैं।

रथयाण (सं० क्ली०) रथरूपं यानं। रथ।

रथयावन् (सं० त्रि०) रथ द्वारा गमनकारी, रथ पर चढ कर जानेवाला।

रथयु (सं० त्रि०) रथेच्छुक, रथाभिलाषी।

रथयुग् (सं० त्रि०) रथं युनक्ति युज्-क्विप्। १ रथयोजयिता, रथ हाँकनेवाला। २ सारथी।

रथयुद्ध (सं० क्ली०) रथेन युद्धं। रथसे युद्ध करना।

रथयूथ (सं० पु०) रथसमूह, रथोंका ढेर।

रथयोजक (सं० पु०) रथ हाकनेवाला, सारथी।

रथराज (सं० पु०) शाक्यमुनिका पूर्वपुरुष।

रथर्वी (सं० स्त्री०) सर्पभेद, एक प्रकारका सांप।

रथवंश (सं० पु०) रथसमूह।

रथवत् (सं० त्रि०) १ यजमान। २ रथविशिष्ट, रथयुक्त।

रथवर (सं० पु०) उत्कृष्ट रथ।

रथवर्त्मन् (सं० क्ली०) रथस्य वर्त्म। रथमार्ग, रथ चलानेका रास्ता।

रथवान् (सं० पु०) रथ हाकनेवाला, सारथी।

रथवाह (सं० त्रि०) रथं वहति वह-णिनि। १ रथ-वहनकारी, सारथी। (पु०) २ घोडा।

रथवाहक (सं० पु०) वह जो रथ हाकता हो, सारथी।

रथवाहन (सं० क्ली०) चक्रयुक्त काष्ठमण्डप, रथमेंका वह चौकोर ऊपरी ढांचा जो पहियोंके ऊपर जडा होता है।

रथविद्या (सं० स्त्री०) रथविज्ञान, रथ चलानेकी बुद्धि।

रथविमोचन (सं० क्ली०) रथकी रज्जु उन्मोचन।

रथवीथी (सं० स्त्री०) वह रास्ता जो रथ चलानेके लायक हो।

रथवीति (सं० स्त्री०) १ राजा। (त्रि०) २ तपस्याकारी, तपस्या करनेवाला।

रथवेग (सं० पु०) रथकी गमनशक्ति।

रथव्रज (सं० पु०) रथसमूह।

रथव्रात (सं० पु०) रथवश, रथका वास।

रथशक्ति (सं० स्त्री०) युद्धोपयोगी रथका पताकादण्ड, या झंडा।

रथशाला (सं० स्त्री०) रथरक्षागृह, अस्तबल।

रथशिक्षा (सं० स्त्री०) रथ चलानेका कौशल।

रथशिरस् (सं० क्ली०) रथकी चूडा, रथका मुख।

रथशीर्ष (सं० क्ली०) रथमुख।

रथश्रेणि (सं० स्त्री०) बहुत रथ।

रथसङ्ग (सं० पु०) रथका हितकर।

रथसप्तमी (सं० स्त्री०) माघमासकी शुक्ला सप्तमी। कहते हैं, कि सूर्य इसी दिन रथ पर सवार होते हैं, इसीलिये इसका यह नाम पडा है। इस तिथिमें अरुणोदयके समय गङ्गास्नान महापातकनाशक है।

रथसूत्र (सं० क्ली०) रथ बनानेके नियम या प्रणाली।

रथस्थ (सं० त्रि०) रथे तिष्ठति स्था क। रथस्थित, रथ पर बैठा हुआ।

रथस्पति (सं० पु०) सबोंका पालक।

रथस्पृश् (सं० त्रि०) रथमें नियुक्त।

रथस्वन (सं० पु०) १ रथका एक प्रकारका शब्द। २ यक्षभेद।

रथाक्ष (सं० पु०) १ रथका पहिया या धुरा। २ प्राचीन कालका एक परिमाण जो एक सौ चार अंगुलका होता था। ३ कार्त्तिकेयके एक अनुचरका नाम।

रथाग्र (सं० पु०) श्रेष्ठ योद्धा।

रथाङ्का (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम।

(बृहत्स० १६।१६)

रथाङ्ग (सं० क्ली०) रथस्याङ्गं । १ चक्र, रथका पहिया। २ सुदर्शनचक्र। (माघ० ५।२१) (पु०) ३ चक्रवाक पक्षी चकवा।

रथाङ्गतुल्याह्वयन (सं० पु०) चक्रवाक पक्षी, चकवा।

रथाङ्गधर (सं० पु०) १ श्रीकृष्ण। २ विष्णु।

रथाङ्गनामक (सं० पु०) चक्रवाक, चकवा।

रथाङ्गनामन् (सं० पु०) रथाङ्गं नाम यस्य। चक्रवाक, चकवा। (कुमार ३।३७)

रथाङ्गनेमि (सं० स्त्री०) रथचक्रकी नेमि, रथके पहियेका घेरा या चक्कर।

रथाङ्गपाणि (सं० पु०) विष्णु।

रथाङ्गवर्त्ती (सं० पु०) चक्रवर्त्ती, सम्राट्।

रथाङ्गश्रोणिबिम्बा (सं० स्त्री०) अर्द्धगोलाकृति नितम्बविशिष्टा।

रथाङ्गसंज्ञ (सं० पु०) चक्रवाकपक्षी, चकवा।

रथाङ्गसाह्व (सं० पु०) चक्रवाक पक्षी, चकवा।

रथाङ्गाह्वय (सं० पु०) चक्रवाक पक्षी, चकवा।

रथाङ्गी (सं० स्त्री०) रथस्याङ्गमिवाकृतिर्यस्याः, रथाङ्ग-ङीष्। ऋद्धि नामक ओषधि। (राजनि०)

रथानीक (सं० क्ली०) श्रेणीबद्ध रथिसैन्य।

रथान्तर (सं० पु०) १ पुराणानुसार एक कल्पका नाम। इसको रथन्तर भी कहते हैं। (अग्निपु०) २ एक आचार्यका नाम।

रथाभ्र (सं० पु०) वेतस, बेंत।

रथाभ्रपुष्प (सं० पु०) रथाभ्रस्य पुष्पमिव पुष्पमस्य। वेतस, बेंत।

रथारथि (सं० अव्य०) रथैश्च रथैश्च प्रहृत्य युद्धमिदं प्रवृत्तं। परस्पर रथ द्वारा युद्ध करना।

रथारूढ़ (सं० त्रि०) रथ पर बैठा हुआ।

रथारोह (सं० त्रि०) १ रथ पर बैठ कर युद्ध करनेवाला। (पु०) २ रथ पर चढ़ना, रथमें प्रवेश करना।

रथारोहिन् (सं० त्रि०) रथे रोहतीति रुह-णिनि। रथ पर बैठ कर युद्ध करनेवाला।

रथावरोहिन् (सं० पु०) रथ अवरोहतीति अव-रुह-णिनि रथस्य युद्धकर्त्ता, वह जो रथ पर बैठ कर लड़ाई करता हो।

रथार्भक (सं० पु०) छोटा रथ।

रथावयव (सं० पु०) रथका पहिया आदि अंग।

रथावर्त्त (सं० पु०) एक तीर्थका नाम।

रथाश्व (सं० पु०) १ रथमें जोतने योग्य घोड़ा। २ रथ और घोड़ा।

रथासह (सं० त्रि०) वह घोड़ा जो रथको वहन कर सके।

रथाह्न (सं० त्रि०) रथ पर चढ़ कर जानेका दिन या समय, रथाह।

रथाह्वा (सं० स्त्री०) एक नदीका नाम। इसका दूसरा नाम रथाह्वा और रथाह्वा भी है। (भारत० १३।११)

रथिक (सं० पु०) रथोऽस्त्यस्येति रथ ठन्। १ रथी, वह जो रथ पर सवार हो। २ तिनिशका पेड़। (राजनि०) रथेन चरतीति रथ (पर्पादिभ्यः ष्ठन्। पा ४।४।१०) इति ष्ठन्। (त्रि०) ३ रथचारी, रथस्वामी, रथारूढ़ योद्धा।

रथिन् (सं० पु०) रथस्य हता प्रभुः अतइन्यादित्वादकार लोपः। रथी।

रथिर (सं० पु०) रथोऽस्त्यस्येति रथ (मेघारथाभ्या मिरन्निरचौवक्तव्यौ। पा ५।२।१०९) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या इरच्। रथी।

रथी (सं० त्रि०) १ रथ पर चढ़ कर चलनेवाला। २ रथ पर चढ़ कर लड़नेवाला रथवाला योद्धा। ३ एक हजार योद्धाओंसे अकेला युद्ध करनेवाला। ४ रथ पर सवार, रथ पर चढ़ा हुआ।

रथी (हिं० स्त्री०) वह ढांचा जिस पर मुर्दोंको रख कर अन्त्येष्टिक्रियाके लिये ले जाते हैं, रथी।

रथीतर (सं० पु०) १ अतिशय रथयुक्त, बहुरथस्वामी। २ एक आचार्यका नाम। ३ उनके वंशधर।

रथीनर—अङ्गिराके कुलके एक ऋषिका नाम।

रथेष्ठित (सं० त्रि०) रथाधिष्ठित, रथ पर चढ़ा हुआ।

रथेश (सं० पु०) १ रथका अधिकारी। २ रथ पर चढ़ा हुआ योद्धा। ३ रथी।

रथेषा (सं० स्त्री०) रथका पहिया या धुरा।

रथेषु (सं० पु०) बाणभेद।

रथेष्ठा (सं० त्रि०) रथमें वर्त्तमान, रथ पर बैठा हुआ।

रथोढ़ (सं० त्रि०) रथ द्वारा अभ्युह्यमान वाहित।

रथोत्तम (सं० पु०) उत्कृष्ट रथ।

रथोत्सव (सं० पु०) रथस्य उत्सवः रथयात्रा नामक उत्सव।

रथोद्धत (सं० त्रि०) रथ पर चढ़नेसे उद्धत, जिसे रथ पर चढ़नेका गर्व हो।

रथोद्धता (सं० स्त्री०) ग्यारह अक्षरोंका एक वर्णवृत्त। इसका पहला, तीसरा, सातवां, नवां और ग्यारहवां वर्ण गुरु और बाकी वर्ण लघु होते हैं। अर्थात् इसके प्रत्येक चरणमें र, न, र, ल, ग होता है।

रथोद्वह (सं० पु०) १ रथ चलानेवालेके बैठनेका आसन। २ योद्धाके बैठनेका स्थान।

रथोपस्थ (सं० पु०) १ रथका ऊद्र्ध्वभाग। (ऐतरेयब्रा० ८।१०) २ रथके बीचका स्थान।

रथोरग (सं० पु०) एक प्राचीन जातिका नाम जिसका उल्लेख महाभारतमें है। (भारत-भीष्म)

रथोष्मा (सं० स्त्री०) पुराणानुसार एक नदीका नाम। (हरिवंश)

रथौघ (सं० पु०) रथस्य ओघः वेग। रथका वेग।

रथौजस् (सं० त्रि०) जो रथयुद्धमें कुशल हो।

रथ्य (सं० पु०) रथं वहतीति रथ (तद्वहति रथयुगप्रासङ्ग। पा ४।४।७६) इति यत्। १ रथवाही घोटक, वह घोडा जो रथमें जोता जाता हो। २ वह जो रथ चलाता हो। ३ रथांश। (क्ली०) ४ चक्र, पहिया। ५ युग। (त्रि०) ६ रथसम्बन्धी, रथका।

रथ्या (सं० स्त्री०) रथानां समूहः रथ (पाशादिभ्यो यः। पा ४।२।५०) इति यत्। १ रथोंका समूह। पर्याय—रथकट्या, रथकड्या, रथव्रज। २ रथका मार्ग या लकीर। पर्याय—प्रतोली, विशिखा। ३ नाली, नाबदान। ४ रास्ता, सड़क। ५ चौक, आंगन।

रद (सं० पु०) रदतीति रद विलेखने पचादित्वात् अच्। दन्त, दांत। दांत विवर्ण होनेसे धनहीन तथा स्निग्ध और घना होनेसे शुभ होता है। (गरुडपु० ६६ अ०)

रद (अ० वि०) १ नष्ट, खराब। २ तुच्छ या निरर्थक।

रदच्छद (सं० पु०) रदानां छद आच्छादकः। ओष्ठ, ओंठ।

रदच्छद (हिं० पु०) रति आदिके समय दांतोंके लगनेका चिह्न।

रददान (सं० पु०) रतिके समय दांतोंसे ऐसा दबाना, कि चिह्न पड़ जाय। यह सात प्रकारकी बाह्य रतियोंमेंसे एक है।

रदन (सं० पु०) रद्यतेऽनेनेति रद-करणे ल्युट्। १ दन्त, दांत। (क्ली०) रद् भावे ल्युट्। २ उत्खलन।

रदनच्छद (सं० पु०) रदनानां छद आच्छादकः। ओष्ठ, ओठ। ओंठ विम्ब सदृश होनेसे शुभ तथा रूक्ष, खण्डित और विवर्ण होनेसे अशुभ होता है। (गरुड़पु० ६६ अ०)

रदनिका (सं० स्त्री०) नायिकाभेद। (मृच्छकटिक ६।१५)

रदनिन् (सं० पु०) रदनो प्रशस्त दन्तावस्त्यस्येति रदन-इनि। १ हस्ती, हाथी। (त्रि०) २ दांतवाला।

रदपट (सं० पु०) ओष्ठ, ओंठ।

रदबदल (फा० क्रि० वि०) परिवर्त्तन, उलट पलट, हेर-फेर।

रदावसु (सं० त्रि०) धनदाता, धन देनेवाला। (ऋक् ७।३२।१८)

रदिन् (सं० पु०) रदो प्रशस्तदन्तावस्य स्त इति रद-इनि। हस्ती, हाथी।

रदीफ (अ० स्त्री०) १ वह व्यक्ति जो घोड़े पर सवारके पीछे बैठता है। २ वह शब्द जो गजलों आदिमें प्रत्येक काफिए या अन्त्यानुप्रासके बाद बार बार आता है। ३ पीछेकी ओर होनेवाली सेना।

रदीफवार (फा० क्रि० वि०) वर्णमालाके क्रमसे, अक्षर क्रमसे।

रद्द (अ० स्त्री०) १ जो काट या छांट दिया गया हो। २ जो तोड़ या बदल दिया गया हो। ३ जो खराब या निकम्मा हो गया हो। (स्त्री०) ४ वमन, कै।

रद्दा (हिं० पु०) १ दीवारकी पूरी लम्बाईमें एक बार रखी हुई एक ईंटकी जोड़ाई, ईंटोंकी बेड़े बलकी एक पंक्ति जो दीवार पर चुनी जाती है। २ मिट्टीकी दीवार उठानेमें उतना अंश जितना चारों ओर एक बारमें उठाया जाता है और कुछ समय तक सूखनेके लिये छोड़ दिया जाता है। इसकी ऊंचाई प्रायः एक हाथ हुआ करती है। ३ चमड़ेकी वह मोहरी जो भालुओंके मुंह पर बांधी जाती है। ४ थालीमें मिठाइयोंका चुनाव जो स्तरोंके रूपमें

नीचे ऊपर होता है। ५ नीचे ऊपर रखी हुई वस्तुओंकी एक तह या खंड। ६ कुश्तीमें अपने प्रतिपक्षको नीचे ला,कर उसकी गरदन पर कुहनो और कलाइके बीचको हड्डीसे रगड़ते हुए आघात करना।

रद्दी (हिं० वि०) १ काममें न आने योग्य, जो बिलकुल खराब हो गया हो। (स्त्री०) २ वे कागज आदि जो काममें न होनेके कारण फेंक दिये गये हों।

रद्दीखाना (फा० पु०) वह स्थान जहां खराब और निकम्मी चोजें रखी जाएँकी जांय।

रधार (हिं० स्त्री०) ओढ़नेका दोहरा वस्त्र, दोहर।

रधेठा जाल (हिं० पु०) मछली फंसानेके लिये छोटे छेदोंका जाल।

रन (हिं० पु०) १ जंगल, वन। २ झील, ताल। ३ समुद्र का छोटा खंड।

रनकना (हिं० क्रि०) घुंघरू आदिका मंद मंद शब्द होना।

रनछोर (हिं० पु०) रणछोड़ देखो।

रनना (हिं० क्रि०) बजना, झनकार होना।

रनबरिया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारको भेड़ जो नेपालके जंगलोंमें पाई जाती है।

रनबांकुरा (हिं० पु०) शूरवीर, योद्धा।

रनबंधिका (हिं० स्त्री०) गौ, गाय।

रनवाद्दी (हिं० पु०) शूर, लड़ाका।

रनवास (हिं० पु०) १ रानियोंके रहनेका महल, अन्तःपुर। २ जनानखाना।

रनवासन (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी फली।

रनित (हिं० वि०) बजता हुआ, झनकार करता हुआ।

रनिवास (हिं० पु०) रनवास देखो।

रनैत (हिं० पु०) भाला।

रन्तव्य (सं० त्रि०) रम-तव्य। रमणार्ह, रमण करनेके योग्य।

रन्ति (सं० स्त्री०) १ केलि, क्रीड़ा। २ विराम।

रन्तिदेव (सं० पु०) रमते इति रम-संज्ञायां 'तिक् रन्ति इमासौ देवश्चेति'। १ विष्णु। २ चन्द्रवंशीय एक राजाका नाम।

महाभारतमें लिखा है, कि पहले राजा रन्तिदेवको पाकशालामें प्रतिदिन दो हजार गो तथा दूसरे दूसरे पशु मारे जाते थे। समांस अन्नदान करके राजाने अतुलनीय कीर्त्ति लाभ किया था।

महाभारतके शान्ति-पर्व (२९ अ०) में लिखा है, कि संकृतिनन्दन रन्तिदेवने कठोर तपस्या करके इन्द्रको सन्तुष्ट किया। जब इन्द्रने वर मांगने कहा तब रन्तिदेव ने प्रार्थना की, देवराज! आप यही वर दीजिये जिससे मेरे घर प्रचुर अन्न और अतिथिका समागम हो तथा मुझे कभी किसीसे कोई चीज मांगनी न पड़े। इन्द्रने प्रसन्न हो कर यही वर दिया। महात्मा रन्तिदेव जब कोई कर्मानुष्ठान करते थे, तब ग्राम्य और आरण्यक सभी पशु वहां आते और "मुझे दैव और पितृकार्य्यमें नियोग कीजिये" इस प्रकार राजासे प्रार्थना करते थे। यज्ञमें मारे गये पशुओंके चमड़े से क्लेद निकल कर एक नदी बन गई है। वह नदी चर्मण्वती नामसे प्रसिद्ध है। राजा प्रतिदिन ब्राह्मणोंको प्रचुर सुवर्णदान करते थे। इनके घरमें थाल, घड़े, कड़ाह, थाली आदि सभी वस्तु सोनेकी थी। अतिथिके आने पर बीस हजार सौ गो मारी जाती थीं, तिस पर भी अतिथियोंको तृप्ति भर मांस नहीं मिलता था। राजा रन्तिदेव पुण्यकर्मोंमें अग्रणी थे।

२ कुक्कुर, कुत्ता।

रन्तिनदी (सं० स्त्री०) चम्बल नदी।

रन्तिभार (सं० पु०) राजपुत्रभेद। (भागवत ९।२०।६)

रन्तु (सं० स्त्री०) रमतेऽस्मिन् रम-तुन्। १ वर्त्म, सड़क। २ नदी।

रन्त्य (सं० त्रि०) रमयिता।

रन्देका (सं० स्त्री०) सूर्यको पत्नी संज्ञाका एक नाम।

रन्धक (सं० पु०) १ पाचक, रसोई बनानेवाला। २ नाशक, नष्ट करनेवाला।

रन्धन (सं० क्ली०) रध-ल्युट्। १ पाक करना, रसोई बनानेको क्रिया। २ नष्ट करना।

रन्धि (सं० स्त्री०) १ वशीकरण। (ऋक् ७।१८।१८) २ रन्धन, पाक। (भागवत ५।१०।२२)

रन्धित (सं० क्ली०)-रध्-क्त। १ दग्धरन्धन द्रव्य, रांधा हुआ। रन्धन कर द्रव्य दूसरे बरतनमें रखना होता है।

रखाविया (हिं० पु०) वह जो रवाब बजाता हो, रवाब बजानेवाला।

रबी (हिं० स्त्री०) १ वसन्त ऋतु। २ वह फसल जो वसंत ऋतुमें काटी जाती है।

रबोल (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका पक्षी जो पन्द्रह सोलह अंगुल लम्बा होता है। इसके डैने भूरे, सिर और छाती सफेद, चोंच काली और पैर खाकी रंगके होते हैं। यह हिमालयके किनारे गढ़वालसे आसाम तक पाया जाता है। यह झाड़ियोंमें घोंसला बनाता और अप्रैलसे जून तक दोसे पांच तक अंडे देता है।

रब्त (अ० पु०) १ अभ्यास, मश्क। २ सम्बन्ध, मेल।

रब्ध (सं० त्रि०) १ ग्रहण किया हुआ। २ आरम्भ किया हुआ, शुरू किया हुआ।

रब्ब (अ० पु०) रब देखो।

रब्बा (अ० पु०) १ वह गाड़ी जिस पर तोप लादी जाती है, तोपखानेकी गाड़ी। २ वह गाड़ी या रथ जिसे बैल खींचते हैं।

रब्बाब (अ० पु०) रवाब देखो।

रभस् (सं० क्ली०) १ यज्ञादिका आरम्भ। (ऋक् १।१४५।३) २ आहुति। ३ वेग। ४ आशक्ति। ५ बलकर भोज्य।

रभस (सं० पु०) रभणमिति रभ (अत्यविचमितमिनमिर भिक्षमीति। उण्. ३।११७) इति असच्। १ वेग। २ हर्ष। ३ प्रेमोत्साह। ४ रंज, पछतावा। ५ पूर्वापर या कारण-कार्यका विचार। ६ औत्सुक्य, उत्सुकता। ७ महान, बड़ा। ८ वाल्मीकि रामायणके अनुसार अस्त्रोंका एक संहार अर्थात् शत्रुके चलाये हुए अस्त्रको निष्फल करनेकी विधि जो विश्वामित्रने रामचन्द्रजीको सिखलाई थी। ९ रामायणके अनुसार एक राक्षसका नाम।

रभसनन्दिन्—सम्बन्धोद्योत नामक वेदान्तग्रन्थके प्रणेता। ये बौद्धधर्मावलम्बी थे।

रभसपाल (सं० पु०) एक आभिधानिक। अमरकोषटीकामें क्षीरस्वामीने इसका उल्लेख किया है।

रभसान (सं० त्रि०) वेगकारी।

रभसवत् (सं० त्रि०) रभ-असुन् ततः मतुप्। उद्योगयुक्त।

रभि (सं० स्त्री०) आभरणीया।

रभिणेय (सं० पु०) उस नामके ऋषि गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रभिष्ठ (सं० त्रि०) प्रकृष्टवेगविशिष्ट, अतिशय वेगयुक्त। 'उपमासो रभिष्ठाः' (ऋक् ५।५८।५) 'रभिष्ठाः प्रकृष्टवेगाः' (सायण)।

रभीयस् (सं० त्रि०) अत्यन्त वेगविशिष्ट, अतिशय वेगवाला।

रभेणक (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक राक्षसका नाम। कहते हैं, कि यह सांपके रूपमें रहता था। (भारत आदिप०)

रभ्यस् (सं० त्रि०) अतिशय वेगयुक्त, अत्यन्त वेगवाला। "युवं च रभ्यसो नः" (ऋक् १।१२०।४) 'रभ्यसः अतिशयेन रभस्विनः प्रोढ़ोयमान्'। (सायण)

रभोदा (सं० त्रि०) बलदाता, शक्ति देनेवाला।

रम (सं० पु०) रमते इरम् पचाद्यच्। १ कान्त, प्रेमी। २ कामदेव। ३ रक्ताशोक, लाल अशोक। ४ रमण। ५ पति। (त्रि०) ६ प्रिय। ७ सुन्दर। ८ आनन्ददायक, हर्षोत्पादक। ९ जिससे मन प्रसन्न हो।

रम (अ० पु०) एक प्रकारकी शराब जो जौसे बनाई जाती है।

रमक (सं० पु०) रमते इति रम् (रमेरश्चो वा। उण्. ३।३३) इत कुन्। १ कान्त, प्रेमी। २ उपपति, जार।

रमक (हिं० स्त्री०) १ झूलेकी पेंग। २ तरंग, झकोरा।

रमक (अ० स्त्री०) १ थोड़ा-सा सांस जो मरते समय निकलनेको शेष रह गया हो, अन्तिम श्वास। २ नशेका थोड़ा असर। ३ स्वल्प भाग, बहुत थोड़ा अंश। हलका प्रभाव। (वि०) ५ जरा सा, बहुत थोड़ा।

रम-कजरा (हिं० पु०) एक प्रकारका धान जो भादोंमें पकता है। यह पकने पर काले रंगका होता है और मोटा धान माना जाता है। नेपालकी तराईमें यह अधिकतासे होता है। बगरो या बकोसे इसके चावल कुछ लम्बे होते हैं और कूटने पर सफेद रंगके निकलते हैं।

रमकना (हिं० क्रि०) १ हिंडोले पर झूलना, हिंडोले पर पेंग मारना। २ झूमते हुए चलना, इतराते हुए चलना।

रमचकरा (हिं० पु०) बेसनकी मोटी रोटी।

रमजान (अ० पु०) एक अरबी महीनेका नाम। इस महीनेमें मुसलमान रोजा रखते हैं।

रमझोल (हि० पु०) रमझोला देखो।

रमझोला (हिं० पु०) पैरमें पहननेका घुघरू, नूपुर।

रमठ (स० क्लो०) रम मठन्। १ हिङ्गु, हींग। (पु०) २ एक प्राचीन देशका नाम। ३ इस देशका निवासी।

रमठध्वनि (सं० पु०) रमठ इति शब्देन ध्वन्यते कथ्यते इति ध्वन-अच्। हिंगु, हींग।

रमण (सं० क्लो०) रमयतीति रम् णिच् ल्यु। १ पटोलका मूल। २ जघन। रम् भावे ल्युट्। ३ क्रमण। पर्याय— भावप्रवर्धक, ग्राम्यधर्म सुरत, रत, संप्रयोग निधुवन, मैथुन, रति, उपसृष्ट, चरित, क्रीड़ारत्न, महासुख, शिभद्र, व्यायामिथुन, अभिमानित। ४ क्रीड़ा आनन्दोत्पादक क्रिया, विलास। ५ रसुत्पादन। ६ एक वनका नाम।

(पु०) रमयत रमयतीति वा रम् णिच् वा ल्यु। ७ पति।

"सकलीयमिदं व्यवसितं रमण। त्वामनुयामि यदपि।"

(कुमारस० ४।२१)

रमयति स्त्रीपुरुषावामन्तःकरणमिति। ८ कामदेव। ९ गर्दभ, गधा। १० वृषण, अण्डकोष। ११ सूर्यका अरुण नामक सारथी। १२ एकवर्णिक छन्दका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें तीन अक्षर होते हैं जिनमें दो लघु और एक गुरु होता है। (वि०) १३ मनोहर, सुन्दर। १४ रमणवाला। १५ जिसके मिलनसे आनन्द उत्पन्न हो प्रिय।

रमणक (सं० क्ली०) रमन्ते क्रीडन्त अत्र रम ल्युट्, संज्ञायां कन्। १ जम्बूद्वीपके अन्तर्गत एक वर्ष या खंडका नाम। इसे रमणक भी कहते हैं। (ब्रह्म० मत्स्य० १२८ अ०) २ यातिहोत्रके एक पुत्रका नाम। (भागवत ५।२०।११)

रमणगमना (स० स्त्री०) साहित्यमें एक प्रकारकी नायिका जो यह समझ कर दुःखी होती है, कि संकेत स्थान पर नायक आया होगा और मैं वहां उपस्थित न थी।

रमणपनि—रमणवंशोद्भव और मरस्वती विलास नामक ग्रन्थके प्रणेता।

रमणा (सं० स्त्री०) १ रमणी। २ एक शक्तिका नाम जो रामतोषमें है।

रमणी (स० स्त्री०) रमतेऽस्यामिति रम् ल्युट् ङीप्। १ नारी, स्त्री। २ सुन्दर स्त्री। ३ वाला या सुगन्धवाला नामक गन्धद्रव्य।

रमणीक (सं० वि०) सुन्दर, मनोहर।

रमणीय (सं० वि०) रम मनीयर्। सुन्दर, मनोहर।

रमणीयता (सं० स्त्री०) रमणीयस्य भावः तल्-टाप्। १ रमणीयत्व, सुन्दरता। २ साहित्यदर्पणके अनुसार वह माधुर्य जो सब अवस्थाओंमें बना रहे या क्षण क्षणमें नवीन रूप धारण किया करे।

रमण्य (सं० वि०) रम् (रम्याथ। उण् ३।१०१) इति अन्य-प्रत्ययः। रमणीय।

रमता (हिं० वि०) एक जगह जम कर न रहनेवाला, घूमता फिरता।

रमति (सं० पु०) रमतेऽस्मिन इति रम् (रमन्तिन्। उण् ४।६१) इति अतिप्रत्ययः किच्च। १ नायक। २ स्वर्ग। ३ काक, कौआ। ४ काल। ५ कामदेव।

रमतूला (हि० पु०) एक प्रकारका अङ्कुर जो मगहनके महीनेमें पकता है। इसका चावल सालों तक रह सकता है।

रमनक (सं० पु०) रमणक देखो।

रमनसारा (हिं० पु०) एक प्रकारकी मछली जिसे कड़वा सोरा भी कहते हैं।

रमना (हिं० पु०) १ भोगविलास या सुखप्राप्तिके लिये कहीं रहना या ठहरना। २ आनन्द करना, चैन करना। ३ अनुरक्त होना लग जाना। ४ भोग विलास या रति क्रीड़ा करना। ५ चारों ओर भरपूर हो कर रहना, व्याप्त होना। ६ चलता होना, गायब हो जाना। ७ किसीके आस-पास फिरना, घूमना। ८ आनन्दपूर्वक इधर उधर फिरना, विहार करना। ९ वह हरा भरा स्थान जहां पशु चरनेके लिये छोड़ दिये जाते हैं, चरागाह। १० और सुन्दर और रमणीय स्थान। ११ घेरा, हाता। १२ वह सुरक्षित स्थान या घेरा जहां पशु शिकारके लिये या पालनेके लिये छोड़ दिये जाते हैं और जहां वे स्वच्छन्दता पूर्वक रहते हैं।

रमल—मुसलमानी फलित ज्योतिषभेद। बहुत पहले यह शास्त्र फारस आदि देशोंमें प्रचलित था। पहले

मुसलमानी प्रभावसे भारतवर्ष तथा सुदूर यूरोपखण्डमें लाया गया। भारतवर्षमें बहुत दिनोंसे यह ज्योतिष 'रमलपाशिण' नामसे प्रसिद्ध चला आ रहा है। रमलामृतमें लिखा है—

"पुरा यवनपुङ्गवैः कलयितुं त्रिकालज्ञतां।
यदादमहवाभिरादनवशात् समासादित ।
अलब्धममरैरपि स्वगुरुवत् कृपासागरा-
त्तदद्य रमलामृतं स्वमतिबुद्धमुद्धार्यते ॥"

पुराकालमें यवनपुङ्गवोंने भूत, भविष्यत् और वर्त्तमानका हाल जाननेके लिये बड़े यत्नसे जिस शास्त्रका संग्रह किया है, देवगण भी जिस शास्त्रको न पा सके हैं आज अपने गुरुकी कृपासे अपनी बुद्धिके अनुसार उस रमलामृतका उद्धार करता हूं।

श्रीपतिभट्टने अपने रमलसारमें भी ऐसा ही भाव दिखाया है। अतएव मुसलमानोंसे ही भारतवासीने यह शास्त्र पाया है, इसमें सन्देह नहीं।

विलायतमें भी बहुत दिन हुए, इस रमलशास्त्रका प्रचार हुआ है। १६५३ ई०में रिचार्ड सैण्डर्सने जो सामुद्रिक ग्रन्थ प्रकाश किया है, उसमें इस रमलशास्त्रका उल्लेख और फलाफल-गणनाकी प्रणाली देखी जाती है। इस शास्त्र द्वारा क्या किया जा सकता है, रमलामृतमें इस प्रकार लिखा है—

"गणयितुमुदकबिन्दु नीरदेऽप्युत्सहेद्यो
वियति रचयितु वा चित्रमुद् युक्तचेताः।
ग्रहगणमखिलं यो मुष्टिनाकर्टुमिष्टे
रमलममलरत्न स स्वयं स्वीकरोतु ॥"

जो यह शास्त्र जानते हैं, वे मेघराशिस्थित जलबिन्दुको गिन सकते, आकाशमण्डलमें चित्र बना सकते और आकाशमेंके ग्रहोंको अपनी मुट्ठीके अन्दर खींच कर ला सकते हैं।

यह रमलशास्त्र दो प्रकारका है। केवल शून्यपात द्वारा चेहरेको तैयार कर जो फलाफल गिना जाता है उसका नाम सहज रमल है। फिर आठ धातुओंके बने पासेको फेंक उससे चेहरा बना कर और उन सबके ग्रह, राशि, नक्षत्र और उनके दृष्टि बलाबलादि विचारसे जो फलाफल कहा जाता है, उसे यौगिक रमल कहते हैं।

इस शास्त्रमें पाशक और प्रस्तारज्ञान, तत्त्वज्ञान, अब्जदहवद्ज्यक्रमान, मीज़ाजक्रम, हर्फानुक्रम, अब्जदक्रम, शाकुनक्रम, दशक्रम, साक्षिज्ञान, वर्णज्ञान, षोडशभवफल, शून्यचालन, काबिले सलासज्ञान, असली उम्महातज्ञान, हलक प्रकार, दिनज्ञान, प्रश्नज्ञान, भूमिज्ञान, धनमानपरीक्षा और नाना प्रकारका आकृतिज्ञान वर्णित है।

रमलामृत, रमलसार आदि ग्रन्थ संस्कृत भाषामें लिखे होने पर भी उनमें पारसी पारिभाषिक शब्द भरे हुए हैं। पारसी भाषामें पूरा ज्ञान नहीं होनेसे यह शास्त्र अच्छी तरह समझमें नहीं आ सकता।

रमा (सं० स्त्री०) रमयतीति रम् णिच् अच् टाप् च। १ लक्ष्मी।

"रमा यत्र न वाक् तत्र यत्र वाक् तत्र नो रमा।
ते यत्र विनयो नास्ति सा च सा च स च त्वयि ॥" (उद्भट)

२ शशिध्वजराजकन्या, कल्किदेवके साथ इसका विवाह होगा। (कल्किपु० २५ अ०)

रमाकान्त (सं० पु०) रमायाः कान्तः। रमापति, विष्णु।

रमाधव (सं० पु०) रमायाः लक्ष्म्याः धवः पतिरिति। विष्णु।

रमाधिप (सं० पु०) रमायाः अधिपः। रमापति, विष्णु।

रमानरेश (सं० पु०) विष्णु।

रमाना (हिं० क्रि०) १ अनुरंजित करना, मोहित करना। २ संयुक्त करना, जोड़ना। ३ अपने अनुकूल बनाना। ४ ठहराना, रोक रखना।

रमानाथ (सं० पु०) रमायः नाथः। विष्णु।

रमानाथ—१ अभिरामकाव्यके प्रणेता। २ जागदीशीटिप्पणके रचयिता। इसके अलावा आकाङ्क्षावादटिप्पण, आकाशवादटिप्पण, आख्यातवादटिप्पण और नञ्वादटिप्पण नामक उनकी रची कई न्यायशास्त्रीय टीकाएं मिलती हैं। ३ नारदस्मृतिटीकाके रचयिता। ४ प्रयोगदर्पणके प्रणेता।

रमानाथ राय—एक प्रसिद्ध वैयाकरण तथा चेङ्गर्भके पुत्र। इन्होंने मनोरमा नाम्नी कातन्त्रकी गणधातुवृत्ति और शब्दसाध्यप्रयोग नामक दो व्याकरण १५३७ ई०में लिखे।

रमानाथ वैद्य—एक आयुर्वेदविद्। इन्होंने अजीर्णमञ्जरी टीका, धर्मप्रकाशटीका, अष्टाङ्गहृदयटीका, माधवनिदान टीका, रसमञ्जरीटीका और रसेन्द्रचिन्तामणिकी टीका लिखी।

रमानिवास (सं० पु०) लक्ष्मीपति, विष्णु।

रमापति (सं० पु०) रमायाः पतिः। १ विष्णु। २ रामचन्द्र। ३ श्रीकृष्ण। (भागवत ८।१७।७)

रमापति—१ देवालय प्रतिष्ठाविधिके प्रणेता। २ प्रायश्चित्तचन्द्रिकाके रचयिता।

रमापतिमिश्र—आचारचन्द्रिका, आचारवारिधि और विवादवारिधि नामक तीन ग्रन्थके रचयिता।

रमाप्रिय (सं० पु०) रमायाः प्रियं। १ पद्म, कमल। रमाप्रिया यस्य वा रमायाः प्रियाः। २ विष्णु।

रमारमण (सं० पु०) रमापति, लक्ष्मीपति।

रमाली (हिं० पु०) एक प्रकारका बारीक और सफेद चावल जो करनालमें होता है।

रमाबीज (सं० पु०) एक तान्त्रिक मन्त्र जिसे लक्ष्मी बीज भी कहते हैं।

रमावेष्ट (सं० पु०) रमया वेष्ट्यतेऽसौ वेष्ट-घञ्। श्रीवास चन्दन। इससे ताड़पीन नामक तेल निकलता है। (राजनि०)

रमाशङ्कर—योगतरङ्गके रचयिता।

रमाश्रय (सं० पु०) रमायाः आश्रयः। विष्णु श्रीकृष्ण। (भाग० ३।१९।२१)

रमास (हिं० पु०) रसौत दवा।

रमित (हिं० वि०) मुग्ध, लुभाया हुआ।

रमिता (सं० स्त्री०) रम णिच्-क्त, टाप्। रतिमापिता।

रमितङ्गम (सं० पु०) पाणिनिके अनुसार एक व्यक्ति। (पा ३।२।४७)

रमी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी घास जो सुमात्रा आदि द्वीपोंमें होती है। यह रोहाके समान कागज और रस्सी आदि बनानेके काममें आती है। सुमात्रावाले इसे कलुइ कहते हैं। पहले इसे कुछ लोग भ्रमवश रोहा ही समझते थे।

रमूज (अ० स्त्री०) १ कटाक्ष। २ सैन, इशारा। ३ गुप्त बात, भेद। ४ पहेली, गूढ़ार्थ वाक्य। ५ व्यंग।

रमेश (सं० पु०) रमाया ईशः। विष्णु।

रमेशचन्द्र मित्र (Sir Kt)—महामान्य कलकत्ता हाइ-कोर्टके एक विचारपति। आप सिर्फ दो महीनेके लिये प्रधान विचारपति (Chief Justice)-के पद पर रह कर अपनी असाधारण बुद्धिबलसे धर्माधिकरणको अलंकृत तथा समग्र बङ्गालकी जातिके मुखको उज्ज्वल कर गये हैं।

२४ परगनेके अन्तर्गत राजार हाट विष्णुपुर ग्राम (दमदमाके समीप)-के सुप्रसिद्ध मित्रवंशीय कायस्थ कुलमें १८४० ई०को इनका जन्म हुआ था। इनके प्रपितामह कालीप्रसाद मित्र नदियाके कलक्टरके अधीन काम करके बहुत रुपये कमा गये हैं। कालीप्रसाद बड़े दानी थे। उनके लड़के रामधनने पिताके यत्नसे उच्च शिक्षा पा कर बांकुड़ा जिलेके विष्णुपुरमें मुनसफका पद पाया था। इनका पक्षपातशून्य न्यायविचार देख कर वृटिश सरकार तथा प्रजामण्डली उन पर बहुत प्रसन्न रहती थी। उनके लड़के रामचन्द्र मित्र उपयुक्त शिक्षा पा कर सदर दीवानी अदालतके सिरिश्तेदार हुए थे। रामचन्द्रके छः पुत्र थे। प्रसन्नचन्द्र, उमेशचन्द्र, केशवचन्द्र, काशीचन्द्र, प्रबोधचन्द्र और कनिष्ठ माननीय रमेशचन्द्र। अंगरेजी भाषामें सबोंकी अच्छी व्युत्पत्ति थी। बचपनमें ग्राम्य विद्यालयमें पढ़ते समय रमेशचन्द्रकी तीक्ष्ण बुद्धिका यथेष्ट परिचय पाया जाता है। इसी समयसे लिखने पढ़नेमें इनकी उग्र प्रवृत्ति देख कर लोग इन्हें होनहार बालक समझने लगे थे। पन्द्रह वर्षकी उमरमें वे कठिनसे कठिन अंगरेजी-लेखकोंके ग्रन्थ बिना शिक्षककी सहायताके पढ़ लेते थे। केवल पढ़ ही नहीं सब उनका भाव भी समझ जाते थे।

कलकत्ता प्रेसिडेन्सी कालेजमें प्रविष्ट हो कर इन्होंने अपने अध्यवसायसे B. A. परीक्षा पास की। उसके तीन वर्ष बाद आप B. L. परीक्षा पास कर कलकत्ताकी सदर दीवानी अदालतमें वकालत करने लगे। १८५६ ई०में ईष्ट इण्डिया कम्पनीकी नई सनदके अनुसार प्रधान सुप्रीमकोर्ट और प्रेसिडेन्सी विभागकी अदालत बदल कर हाइकोर्ट कहलाने लगी। रमेशचन्द्र पहले डेढ़ वर्ष सदर दीवानीमें और पीछे महामान्य हाइकोर्ट (Appellate side)में बारह वर्ष बड़ी दक्षतासे

वकालत करके एक सुयोग्य प्रधान वकील गिने जाने लगे। १८७१ ई०में माननीय विचारपति अनुकूलचन्द्र मुखोपाध्यायकी मृत्युके बाद वृटिश सरकार इन्हीं को उक्त पद प्रदान किया।

२० वर्ष तक इस पद पर रह कर ये अपनी योग्यता और विचारदक्षताका अच्छा परिचय दे गये हैं। १८८२ ई०में प्रधान विचारपति सर रिचार्ड गार्थने जब स्वदेश जानेके लिये छुट्टी ली, तब लार्ड रीपन बहादुरने रमेश चन्द्रको ही प्रधान विचारपति बनाया। बंगालीको उच्च पद पर नियुक्त होते देख कर अङ्गरेज-राजकर्मचारी जल उठे। गार्थके बंधुवर्गने उन्हें छुट्टी नहीं लेनेके लिये अनुरोध किया। तदनुसार उन्होंने भारत-राजप्रति निधिके पास आवेदनपत्र भेजा। पत्र पहुंचनेके पहले वे रमेश बाबूको नियुक्त कर चुके थे, इस कारण गार्थ-का आवेदनपत्र स्वीकार न किया गया। अतः गार्थ साहबको स्वदेश जाना ही पड़ा। रमेशचन्द्र उनके पद पर बैठ कर राजकार्यकी परिचालना करने लगे। १८९० ई०में स्वास्थ्य खराब हो जानेके कारण वे हाईकोर्टके विचारपतिका पद छोड़ देनेको बाध्य हुए। सद्गुण-सम्पन्न देशवासियोंको राजकार्यके उच्च पद पर नियुक्त करनेके लिये राजप्रतिनिधि लार्ड डफरिन बहादुरने १८८७ ई०में रमेश बाबूको Public Service Commission का सदस्य बनाया। इस पद पर रह कर इन्होंने देशका बहुत उपकार किया था।

इस समय वे कलकत्ता युनिवर्सीटीके फेलो और कलकत्ता तथा २४ परगनेके अन्तर्गत नाना शिक्षा-समितिके सभ्य हुए। उन सब सभाओंका कार्य सुचारुरूपसे करके इन्होंने स्वदेशका मुख उज्ज्वल कर दिया था। १८९० ई०में पदत्याग करनेके बाद भारतराज-प्रतिनिधि लार्ड लैन्सडाउनने इन्हें अपनी व्यवस्थापक सभाका सभ्य बनाया तथा 'नाइट' उपाधि दी। बड़े लाट लैन्सडाउन जब 'सम्मतिसङ्कट' आईन (Consent Bill Act) पास करने तैयार हुए, तब रमेशबाबूने ओज-स्वनी वक्तृता दे कर उन्हें इस कामसे रोका था। आईनका मर्म समझाते हुए इन्होंने स्पष्ट कहा था, कि "यह कानून पास होनेसे बङ्गालियोंके धर्म पर भारी ... पहुंचेगा, अतः प्रजाका यदि कल्याण चाहते हों तो ऐसा कानून पास होने न दिया जाय।' रमेशबाबूकी निर्भीक और गवेषणापूर्ण वक्तृता सुन कर व्यवस्थापक सभाके सदस्य चमत्कृत हो गये थे। दो दिन घोर वादानुवादके बाद जब रमेशचन्द्रने देखा, कि बड़े लाट इस कानूनको उठा देनेके लिये तैयार नहीं तथा उनकी बात पर बिलकुल कान नहीं दिया जाता, तब बड़े अभि-मानसे इन्होंने उस माननीय सभ्य पद पर लात मार कर सभासे अपना हाथ एकदम खींच लिया, जरा भी सरो-कार न रखा।

इन्होंने संस्कृत शास्त्रकी अध्यापनाके लिये कलकत्ते-के भवानीपुरमें एक चतुष्पाठी खोली थी। इसके सिवा स्वदेश और स्वसमाजकी उन्नतिके लिये कितनी सभा समितियां खोल गये हैं। इस प्रकारपरदुःख कातरता और सहृदयताका अच्छा परिचय दे कर ये १८९९ ई०में इस लोकसे चल बसे।

रमेश्वर (सं० पु०) रमाया ईश्वरः। विष्णु।

रमैती (हिं० स्त्री०) १ किसानोंकी एक रीति जिसमें एक कृषक आवश्यकता पड़ने पर दूसरेके खेतमें काम करता है और उसके बदलेमें वह भी उसके खेतमें काम कर देता है। इसमें मजदूरी बच जाती है और कामके बदले-में दूसरोंके खेतोंमें काम कर देना होता है। इसे पूर्वमें पैंठ और अवधके उत्तरीय भागोंमें हूंड कहते हैं। २ वह नफरी या कामका दिन जो इस प्रकार कार्य्य करनेमें लगे।

रमैनी (हिं० स्त्री०) कबीरदासके बीजकका एक भाग जिसमें दोहे और चौपाइयां हैं।

रम्भ (सं० पु०) रम्भते राग मूर्च्छनादिकमनेनेति रभि-कर्मणि घञ्। १ वेणु, बांस। रम्भते उद्यमशीलो भवति निरन्तरमुदरभरणायेति भाव. रभि-अच्। २ एक प्रकारका बाण। ३ भारी शब्द, कलकल। ४ पुराणा-नुसार महिषासुरके पिताका नाम। (कालिकापु० ५९ अ०) इसने महादेवसे वर पा कर महिषासुरको पुत्ररूपमें प्राप्त किया था। महिषासुर देखो।

इसी रम्भने दूसरे जन्ममें रक्तबीज रूपमें जन्म ग्रहण किया। देवीपुराणमें लिखा है, कि प्राचीनकालमें दनु-

पुत्र रम्भ और करम्भ नामक दो प्रधान दानव थे। उसके कोई पुत्र न था। पुत्रकी कामनासे उन्होंने पञ्च नदमें बैठ कर घोर तपस्या की। इन्द्र इनके तपसे डर गये और कुम्भीरका रूप धारण कर करम्भको मार डाला। रम्भ भाईको मृत्यु पर बहुत दुःखित हो कर अपना मस्तक काट डालनेके लिये तैयार हो गया। इसी समय अग्नि उसके समीप आए और बोले, 'मूर्ख दानव! आत्महत्या महापाप है। ऐसा न करो और अभिलषित वर मांगो।' रम्भ अग्निको इस बात पर प्रसन्न हो कर बोला—"आप यदि प्रसन्न हैं, तो यही वर दीजिये कि जिससे त्रैलोक्यविजयी शत्रुबलविनाशक मेरे स्त्रियके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हो जो सब तरहसे देव, दानव और मानवका अजेय, महावीर्यवान् तथा काम रूपी हो।' 'तथास्तु' कह कर अग्नि अन्तर्धान हो गए। इस वरसे रम्भके महिषासुर नामक पुत्र उत्पन्न हुआ।

(देवीभु० ५।१० अ०)

रम्भा (सं० स्त्री०) रति भव-टाप्। १ कदली, केला। २ पुराणानुसार एक प्रसिद्ध अप्सरा। पुराण आदि शास्त्रोंमें इसका सौन्दर्य और सङ्गीतपारदर्शिताका विस्तृत विवरण आया है। रामायण पढ़नेसे मालूम होता है, कि एक समय रम्भाको रावणने नलकुबेरके पास जा रही थी। कबुरािधपति रावणने उसे बलपूर्वक हरण कर शृंगार किया। नलकुबेरके शापसे बल पर जानेके कारण रामके हाथसे रावण मारा गया।

(उत्तरकाण्ड ११ सर्ग)

३ गौरी। (अमरटीका०) ४ गोध्वनि, गौका रंभाना या चिल्लाना। ५ वेश्या। ६ शिरसभेद। ७ उत्तर दिक्, उत्तर दिशा।

रम्भा (हिं० पु०) लोहेका वह मोटा भारी डंग जिसकी सहायतासे पेड़ादि आदि आधारोंमें छेद करते या इसी प्रकारके और काम करते हैं।

रम्भातृतीया (सं० स्त्री०) रम्भाख्या तृतीया। व्रत विशेष, रम्भा नामका व्रत। यह व्रत चतुर्थीयुक्त तृतीया को करना होता है। भविष्यपुराणमें लिखा है, कि ज्येष्ठ मासकी शुक्ला तृतीयाको यह व्रत करना चाहिये। रम्भा नामकी अप्सराने पहले पहल यह व्रत किया था। इसीसे इस व्रतका रम्भाव्रत नाम हुआ है। (तिथितत्त्व)

व्रतविधान—पहले आचमन और स्वस्तिवाचन करके उत्तरमुख बैठे और सङ्कल्प करे।

सङ्कल्प—"विष्णुरोम्तत्स ज्येष्ठे मासि शुक्ले पक्षे तृतीयायान्तिथावारभ्य अमुकगोत्रा श्रीअमुक देवी सौभाग्यसम्पत्तिप्राप्तिकामा संवत्सरं यावत् प्रतिमासीय शुक्लतृतीयायां गणपत्यादिनाना-देवतापूजा पूर्वकं तत्तत् द्वारेणातन्त्रदेवता पूजारूपरम्भाव्रतोपवासकर्माहं करिष्ये।" इस प्रकार संकल्प करके सूक्तपाठ, पीछे सामान्यार्घ स्थापन और विधानपूर्वक आसन तथा भूतशुद्ध्यादि करके गणेश आदि देवताकी पूजा करनी होगी। इस पूजाके बाद यथाशक्ति उपचार द्वारा गौरीपूजा करनेका विधान है। गौरीध्यान—"ॐ कात्यायनीं दशभुजां महिषासुरमर्दिनीं।"

इस व्रतके प्रथम मासमें बिल्वपत्रसे गौरीपूजाकी, द्वितीय मासमें कुरबक द्वारा गिरिसुताकी तृतीय मासमें कह्लार द्वारा सुभद्राको, चतुर्थ मासमें कुन्दपुष्पसे गोमती-को, पञ्चम मासमें दमनक पुष्पसे विशालाक्षीको, षष्ठ मासमें कर्णिकार पुष्पसे श्रीमुखीको, सप्तम मासमें पद्म पुष्पसे नारायणीकी, अष्टम मासमें बिल्वपत्रसे माधवी की, ६म मासमें तगरपुष्पसे श्रीको, १०म मासमें पद्म पुष्पसे उमाको, ११श मासमें जवापुष्पसे राज पुत्रीका और द्वादश मासमें जातिपुष्पसे पद्मजाको पूजा करनी होती है। एक वर्ष यह व्रत करके यथाविधान इसकी प्रतिष्ठा करनी होगी। यह व्रत करनेसे सौभाग्य-सम्पत्ति और धनधान्यादिकी प्राप्ति होती है। (भविष्य०)

रम्भाना (हिं० क्रि०) गायका बोलना, गायका शब्द करना।

रम्भापति (सं० पु०) इन्द्र।

रम्भाफल (सं० पु०) कदलीफल, केला।

रम्भाव्रत (सं० स्त्री०) व्रतविशेष, रम्भातृतीयाव्रत।

रम्भातृतीया देखो।

रम्भाभिसार (सं० पु०) रम्भापथ्य।

रम्भित (सं० त्रि०) १ शब्द किया हुआ, पुकारा हुआ। २ बजाया हुआ।

रम्भिन् (सं० पु०) १ वेत्रधारी या दण्डधारी जो हाथमें

बेंत या दंड लिये हो। (ऋक् २।१५।६) २ वृद्ध मनुष्य, बूढ़ा आदमी। ३ द्वारपाल, दरवान। ४ अलङ्कार या आयुधविशेष।

रम्भिनी (सं० स्त्री०) एक रागिणी जो भैरव रागकी पुत्र-वधू मानी जाती है।

रम्भोरु (सं० स्त्री०) रम्भे स्व ऊरू यस्याः। १ वह स्त्री जिसकी जांघ केलेके थम सी हो। २ सुन्दर, खूब-सूरत।

रम्माल (अ० पु०) रमल फेंकनेवाला, पासा फेंक कर फलित कहनेवाला।

रम्य (सं० क्ली०) रम-(गाहुपधात् यत्। पा ३।१।९८) इति यत्। १ परवलकी जड़। २ प्रधान धातु, वीर्य। (पु०) रम्यतेऽनेनेति रम-यत्। ३ चम्पकवृक्ष, चंपेका पेड़। ४ वकका पेड़, अगस्त। ५ अग्निध्रके एक पुत्रका नाम। ६ वायुके सात भेदोंमेंसे एक जो घंटेमें चारसे सात कोस तक चलती है। (त्रि०) ७ मनोहर, सुन्दर। ८ मनोरम, रमणीय। ९ बलकर, ताकतवर।

रम्यक (सं० क्ली०) रम्यते जानोऽत्रेति ततः क्वप्, संज्ञायां कन् वा। १ वर्षविशेष, जम्बूद्वीपके नौ खंडों या वर्षोंमेंसे एक। यह मेरुके दक्षिण और श्वेत पर्वतके उत्तर वायव्य कोणमें माना गया है। इस वर्षके मनुष्य अतिशय बुद्धि-मान् तथा जरा और दुःखरहित होते हैं। इस वर्षमें न्यग्रोध अर्थात् वटकी जातिका एक वृक्ष है जिसका फल खा कर यहांके लोग कई दिन तक रह सकते हैं।

"दक्षिणेन तु मेरोस्तु श्वेतस्य चोत्तरेण च।
वायव्यं रम्यकं नाम जायन्ते तत्र मानवाः॥
मतिप्रधाना विमला जरादुःखविवर्जिताः।
तत्रापि सुमहान् वृक्षो न्यग्रोधो रोहितः स्मृतः॥
तत्फलप्राशनादेव जीवन्ति बहुवासरम्॥"

(वराहपु० रुद्रगीता)

देवीभागवतमें लिखा है, कि रम्यकवर्षमें भगवान् विष्णुकी मत्स्यमूर्त्ति विराजित हैं। भगवान् मनुने इस मूर्त्तिका स्तव किया है।

"रम्यके नाम वर्षे च मूर्त्तिं भगवतः पराम्।
मत्स्याख्यां देवासुरैर्वन्द्यां मनुः स्तौति निरन्तरम्॥"

(देवीभागवत ८।८।१८)

विष्णुपुराण २।२।१३ तथा ब्रह्माण्डपुराणमें भी इस वर्षका विवरण आया है। २ महानिम्ब, बकायन।
(वैद्यकनि०)

रम्यकक्षीर (सं० पु०) महानिम्ब, बकायन।

रम्यग्राम (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक गांवका नाम। (भारत सभापर्व)

रम्यता (सं० स्त्री०) रम्यस्य भावः तल् टाप्। रम्यत्व, सौन्दर्य।

रम्यपुष्प (सं० पु०) रम्यं रमणीयं दर्शनीयं पुष्पमस्य। १ शाल्मलिवृक्ष, सेमलका पेड़। (क्ली०) २ सुन्दर फूल।

रम्यफल (सं० पु०) रम्यं फलमस्य। कारस्करवृक्ष, कुचिलाका पेड़।

रम्यश्री (सं० पु०) विष्णु।

रम्यसानु (सं० क्ली०) पर्वतके शिखरकी रमणीय समतल भूमि।

रम्या (सं० स्त्री०) रम यत् टाप्। १ रात्रि, रात। २ स्थल पद्मिनी। ३ गंगा नदी। ४ महेन्द्रवारुणी लता, इन्द्रायण। ५ लक्ष्मणाकन्द। ७ मेरुकी कन्याका नाम जो रम्यसे ब्याही गई थी। ८ एक रागिणीका नाम। ८ धैवत स्वरकी तीन श्रुतियोंमेंसे अन्तिम श्रुतिका नाम।

रम्याक्षि (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

रम्यामलकी (सं० स्त्री०) भू-धात्री, भुइं आँवला।

रम्हाना (हिं० क्रि०) गायका बोलना, रंभाना।

रय (सं० पु०) रयतेऽनेनेति रय (पुंसि संज्ञायां घः प्रायेण। पा ३।३।११८) इति घ, गणात्यनेनेति वा री घ। १ वेग, तेजी। २ प्रवाह। ३ पुरुरवाके छः पुत्रोंमेंसे चौथेका नाम। (भाग० ९।७।१)

रयणपत (हिं० पु०) चन्द्रमा।

रयना (हिं० क्रि०) उच्चारित करना, बोलना।

रयासत (अ० स्त्री०) रियासत देखो।

रयि (सं० पु०) १ धन, गोरूपधन। "यज्ञियासते संसृ-जन्तुनः" (ऋक् १०।१९।७) 'रम्या गोलक्षणेन धनेन'। (सायण) २ पूर्वालङ्कार।

रयिद (सं० त्रि०) रयिं धनं ददातीति दा-क। धनद, धन देनेवाला।

रयिन्तम (सं० पु०) अतिशय धनवान्, बड़ा धनशाली।

रवाज (फा० स्त्री०) वह बात या कार्य जो किसी वंश, समाज या नगर आदिमें बहुत दिनोंसे बराबर होता चला आया हो, परिपाटी, प्रथा।

रवादक (स० पु०) वह मनुष्य जिसने गिरवी रखे हुए धनको हजम कर लिया हो।

रवादार (फा० वि०) १ सम्बन्ध रखनेवाला, लगाव रखनेवाला। २ शुभचिन्तक, हितैषी। ३ जिसमें कण या दाने हों, दानेदार।

रवानगी (फा० स्त्री०) रवाना होनेकी क्रिया या भाव, प्रस्थान।

रवाना (फा० वि०) १ जिसने कहींसे प्रस्थान किया हो, जो कहींसे चल पड़ा हो। २ भेजा हुआ।

रवानी (फा० स्त्री०) १ रवाँ होनेका भाव, बहाव। २ विदाई, रुखसती।

रवाब (अ० पु०) रबाब देखो।

रवाबिया (हिं० पु०) लाल वलुआ पत्थर। रबाबिया देखो।

रवायत (अ० स्त्री०) १ कहानी, किस्सा। २ कहावत।

रवा रवी (फा० स्त्री०) १ जल्दी, शीघ्रता। २ भागाभाग, दौड़ादौड़।

रवासन (हिं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष जिसके बीज और पत्ते औषधके रूपमें काम आते हैं।

रवि (सं० पु०) रूयते सूयते इति रु-(अचइः। उण् ४।१३८) इति इ। १ सूर्य। २ अर्कवृक्ष, मदारका पेड़। ३ नायक, सरदार। ४ रक्ताशोकवृक्ष, लाल अशोकका वृक्ष। ५ पुराणानुसार एक आदित्यका नाम। ६ महाभारतके अनुसार धृतराष्ट्रके एक पुत्रका नाम। ७ सौवीरकभेद। ८ सूर्यका भोग दिन, रविवार। रविवारको उड़द, मछली, मांस, मसूर, निम्बपत्र, अदरक, मधु, बेल और कांजी ये सब द्रव्य नहीं खाने चाहिये। जो खाते हैं, वे दरिद्र, पुत्रहीन और कुष्ठरोगादि द्वारा आक्रान्त होते हैं। (कर्मलोचन)

रविका स्वरूप इस प्रकार है—रक्तश्याममिश्रित वर्ण, पूर्व दिगधिपति, पुंग्रह, क्षत्रिय-जाति, सत्त्वगुणान्वित, कटुरस, सिंहराशि, हस्ता नक्षत्र, सप्तमी-तिथि, ताम्र-धातु, कलिङ्गदेशका अधिपति, काश्यपगोत्र, द्वादशांगुल परिमित शरीर, पद्महस्तद्वय, पूर्वानन, सप्ताश्ववाहन, शिवाधिदैवत और वह्निप्रत्यधिदैवत। (ग्रहयागतत्त्व)

मनुष्योंकी रक्षा करते हैं, इस कारण इनका रवि नाम हुआ है।

"अवतीमाल्लयान् लोकास्तस्मात् सूर्यः परिभ्रमात्।
अचिरात् प्रकाशेत भवनात् स रविः स्मृतः॥"

(मत्स्यपु० १०१ अ०)

रवि सभी ग्रहोंमें श्रेष्ठ ग्रह है। यह ग्रह एक महीनेमें बारह राशिका भोग करता है। रविके एक राशिसे दूसरी राशिमें संक्रमणकालको संक्रान्ति कहते हैं। रविका संक्रमन होता है, इससे इसका एक नाम रविसंक्रान्ति भी है। एक एक राशि ३० अंशोंमें विभक्त है। रवि एक दिनमें करीब करीब एक अंशका भोग करता है, इसी कारण ३० दिनका मास हुआ है। रविके दीप्तांशके जो सब ग्रह रहते हैं, वे सब डूब जाते हैं। इन डूबे हुए ग्रहोंमें फिर कोई शक्ति नहीं रहती। ग्रहोंकी बाल्य, वृद्ध, अस्त तथा अतिचार, महातिचार और वक्र आदि गति रविके कारण हुआ करती है। गुरु और शुक्रके बाल्य, वृद्ध और अस्तसे जो अकाल होता है उसका कारण भी यही रवि है। बृहस्पति वा शुक्र जब रविके पास रहता है, तब उसमें बल रहने नहीं पाता। इसी कारण बाल्य, वृद्ध और अस्तकाल हुआ करता है।

ग्रहोंका स्फुट, भाव, बल और सन्धि आदि स्थिर कर जात बालकका शुभाशुभ निर्णय करना होता है।

रविग्रहके शयनादि बारह भावोंका फल ज्योतिषमें इस प्रकार लिखा है—

शयनभावमें रविके रहनेसे मन्दाग्नियुक्त, पित्तशूल रोगाक्रान्त, श्लीपदी (फीलपाव) तथा गुह्यदेशमें रोग होता है। उपवेशनकालमें रहनेसे शिल्पकर्मकारी, श्याम वर्णदेह, उत्तम विद्यारहित, दुःखयुक्त और परसेवामें तत्पर रहता है। नेत्रपाणि भावमें रह कर यदि लग्नके पञ्चम, नवम, दशम और सप्तम स्थानगत हो, तो सभी प्रकारका सुखलाभ होता है। केवल इसी भावमें रहनेसे क्रूर प्रकृतिका तथा जलदोष रोगयुक्त होता है। प्रकाशभावमें रहनेसे चक्षुरोगी, अतिशय क्रोधी, परद्वेषी, धर्मात्मा और धनवान होता है। गमनेच्छ भावमें रहनेसे निद्रालु, क्रोधी, नराधम, क्रूर प्रकृतिका, मूर्ख, दाम्भिक कृपण

और परस्परस्थ समसप्तममें रहनेसे प्रथम स्त्री बाद प्रथम पुरुषका नाश, प्रतापी और पापदृष्टिवाला; स्वभावपर्ति भावमें रहनेसे भाग्यवान् मानी धनाढ्य गुणयुक्त, पिता और मित्रयुक्त। भाग्यपत्यावर्ते रहनेसे मूढ, सदा दुःखार्त, विघ्नदायी, दुर्मित पिपासुक, निठुर और परनिन्दक; भावप्रदायमें रहनेसे दुर्बिनय, मांसभोजी मत्स्याहारी, नागवेत्ता और नराधम। सुखविद्या भावमें रहनेसे क्लेशभोगी, नाना विघ्नसे त्रस्त और पण्डित। चौतुक भावमें रहनेसे उपकारी, धनी, माता कौतुकी, दाता, आस्थ और निम्नबुद्धिवाला तथा निद्रावाद में रहनेसे निद्रालु, व्याधियुक्त, प्रवासी, रक्तवस्त्रयुक्त, कामी और परनिन्दक होता है। इसी प्रकार रविके भावादि द्वादशभावका फल जाना जाता है।

रविका स्फुटसाधन।

रविका स्फुटसाधन निम्नोक्त प्रकारसे करना होता है। पहले रविका मुख और मध्य स्थिर करना होगा। पीछे मुख और मध्यको [illegible] अलग रख कर उसमें तात्कालिक रविमन्दोच्च राश्यादि घटावें। यदि मध्य राश्यादिसे मन्दोच्च राश्यादि न घटे, तो मध्यराशिमें बारह जोड़ कर घटावें। यदि इस प्रकार घटा कर राशि कम रहे, तो उसको ३० से गुणा करके अंशके साथ जोड़ दें। दोर्फल जो होगा उसे मन्द अंक जानना चाहिये। उस मन्द अंकसे जितना संख्या रहता उसके ही अनुसार रविका मान्दफलमें जो अंक रहता है उस अंकको ज्योतिषशास्त्र उस संख्या कहते हैं। उस उसके पहलेवाले अंकका नाम भुक्त्यंश है। उस भुक्त्यंशका मन्दफल भाग कर घटावें जो अंक बचता, वह भाग कहलाता है। उस भागफल द्वारा बाद उस राश्यादि गुणित करके जो गुणफल निकलता उसे ६० से भाग दें। तत्पश्चात् यदि गतपदभोग्यका मन्दफल भुक्त्यंश अनुसार घटता हो, तो उस गतफलका भाग यदि भुक्त्यंशके अनुसार अधिक हो, तो उस पदका फल होता है। अब मन्द भोग्यमें उस पदांश को घटा कर जोड़ दें। फलको मन्दफलगुण कहलाता है। इस मन्द फलसे उसको गुणा करके इस समय तक जोड़ कर उससे ११४ बना [illegible] घटावें। यदि घटावसान १० से ज्यादा रहे तो उसे ६० से भाग दें और शेषांशको उतना जोड़ कर उसे भाग फलमें मिलावें। इस प्रकार जो अंक होगा वही रविका स्फुटसाधन है। (ग्र '७०)

इसी प्रकार रविका स्फुट साधन करना होता है। रविके स्फुटसे उस समय रवि किस राशिके किस अंशमें अवस्थित है यह जाना जाता है।

रविका गोचरफल।

रविके किस राशिके भावमें कैसा फल होता है उसका विषय इस प्रकार लिखा है—

> स्थानं नश्यति मानदर्पविभवाः कुर्वन्ति दीनं भवम्।
> दुर्भिक्षं विषमज्वरं च विपुलं मानं च वर्द्धयेत्॥
> [illegible] कष्टं विपुलं धनं तथा।
> [illegible] सर्वं [illegible] अर्थगमः॥
> [illegible]
> [illegible] (गोचर०)

यह गोचरफल जन्मराशि द्वारा स्थिर करना होता है। रविके जन्मराशिमें आनेसे स्थानभ्रष्ट, दूसरेमें भय, तीसरेमें सम्पत्ति, चौथेमें मानहानि, पांचवेंमें दीनता, छठेमें शत्रुनाश, सातवेंमें पथयात्रा, आठवेंमें व्याधिभय, नवेंमें मानहानि, दसवेंमें कार्यसिद्धि, ग्यारहवेंमें धनवृद्धि और बारहवेंमें दुःखभोग फलमें प्राप्तियुक्त होता है। रविगोचरके विषयमें यही फल होते हैं।

रविका गोचरदोषशमन।

> [illegible]
> [illegible]
> (ई [illegible])

जन्मराशिसे ५, ६, ७ बाद ग्यारहवें स्थानमें रविके घट कर भाग यह होता यदि स्थिर न हो अर्थात् रवि को दोष कर भाग हो यदि न रहे, तो जन्मराशिसे पश्चात् [illegible] शुभ स्थित रवि शुभ है। स्थिर रविके शुभके सम्बन्धसे ही शुभ फल होता है। क्योंकि यह उसके द्वारा स्थिर होनेसे यही शुभकारी फल प्राप्त होता है।

रविभुक्तिनिर्णय ।

'लग्नदण्डपलं द्विघ्नं तत् संख्यं क्रमतः पलं ।

विपलञ्च रवेर्भोग्यमेव कल्पनमस्तमे ॥" (वि०शि०)

रवि जिस मासमें जिस राशिमें रहते हैं, वे उसी उसी लग्नोदयके साथ साथ उदय होते हैं। उस उदित लग्नराशिके लग्नमानकी दण्डसंख्याको दूना करनेसे जो फल होगा उसे पल माने तथा पलकी संख्याको दूना करनेसे जो निकलेगा वही उस राशिके एक दिनकी रवि भुक्ति है। लग्नमानके दण्डपलको ३०से भाग देने पर एक दिनकी रविभुक्ति कितनी होती है उपरोक्त नियमसे स्थिर किया जाता है।

उपरोक्त नियमानुसार उदय और अस्त लग्नकी दैनिक भुक्तिका निरूपण केवल ३० दिनका महीना होनेसे ही होगा। किन्तु जहां २६, ३१ वा ३२ दिनका महीना होता है वहां महीनेकी दिन संख्यासे भाग करके दिनभुक्ति स्थिर करनी होगी। रविके राशिसंक्रमदिनसे ही भुक्तिका आरम्भकाल गिना जाता है।

रविकी विशेषशुद्धि।

जन्मराशिसे तीसरे, छठे, दशवें, ग्यारहवें स्थानके तथा महीनेका १३ दिन बीतने पर दूसरे, पांचवें और नौवें स्थानके रवि शुभफल देते हैं। जहां रविशुद्धि देखनी होती है वहां इसी नियमके अनुसार देखना उचित है।

सूर्य शब्द देखो।

रवि—१ होराप्रकाशके रचयिता। २ मधुमती नाम्नी काव्यप्रकाशटीकाके प्रणेता। ये मिथिलापति शिवसिंहके मन्त्री अच्युतके पौत्र और रत्नपाणिके पुत्र थे।

रविकर (सं० पु०) रवेः सूर्यस्य करः किरणः। सूर्यकी किरण।

रविकर—पिङ्गलसारविकाशिनी और वृत्तरत्नावलीके प्रणेता। ये भीमेश्वरके पौत्र और हरिहरके पुत्र थे।

रविकान्त (सं० पु०) रविणा रविकरसंयोगेन कान्तः कमनीयः। सूर्यकान्त नामक मणि। (राजनि०)

रविकीर्ण (सं० पु०) अर्कवृक्ष, आकका पेड।

रविकीर्त्ति—एक प्राचीन कवि। ये ६३४-३५ ई०में विद्यमान थे।

रविकुल (सं० पु०) सूर्यवंश। इस शब्दके अन्तमें रवि, मणि आदि शब्द लगनेसे उसका अर्थ 'रामचन्द्र' होता है। जैसे—रविकुलरवि, रविकुल-मणि।

रविगुप्त—चन्द्रप्रभा-विजयकाव्य और लोकसंव्यवहार नामकाद्व नामक अलङ्कारग्रन्थके रचयिता।

रविचञ्चल (सं० पु०) लोलार्क नामक तीर्थस्थल जो काशीमें है।

रविचक्र (सं० क्ली०) रवेश्चक्रं। नराकार सूर्यचक्रविशेष। मनुष्यकी आकृति बना उसमें जगह जगह सभी नक्षत्रोंको बैठा कर यह चक्र बनाना होता है। इससे जातबालकका शुभाशुभ स्थिर किया जाता है। निम्नोक्त प्रकारसे यह चक्र अङ्कित करना होता है। पहले एक मनुष्यकी आकृति बना कर पीछे सूर्य जिस नक्षत्रमें रहते हों उस नक्षत्रसे तीन नक्षत्र नरदेहके मस्तक पर रखना होगा। पीछे तीन नक्षत्र मुख पर, एक एक नक्षत्र स्तन पर, एक एक नक्षत्र दोनों बाहु और हाथ पर, पांच छाती पर, एक नाभि पर, एक एक गुह्य और जानु पर, बाकी जो नक्षत्र रह जाते हैं उन्हें पाददेशमें लिखना होगा।

इन सब नक्षत्रोंमेंसे चरणस्थित नक्षत्र यदि जन्मनक्षत्र हो, तो जातबालक अल्पायु, जानुसे विदेशवासी, गुह्यसे परदाररत, नाभिसे थोड़ेमें सतुष्ट, हृदयसे धार्मिक, पाणिसे चोर, भुजासे स्थानभ्रष्ट, स्कन्धसे धनपति, मुखसे मिष्टान्नभोजी और मस्तक पर अवस्थित नक्षत्रसे बन्धनमुक्त होता है। (गरुडपु० ६० अ०)

रविचन्द्र—अमरुशतकटीकाके रचयिता।

रविज (सं० पु०) रवेर्जातः इति जन ड। शनैश्चर, जिसकी उत्पत्ति रवि या सूर्यसे मानी जाती है।

रविजकेतु (सं० पु०) एक प्रकारके केतु या पुच्छल तारे जिनकी उत्पत्ति सूर्यसे मानी गई है। कहते हैं, कि इनका आकार प्रायः हारके समान और वर्ण सोनेके समान होता है और ये पूर्व या पश्चिम दिखाई देते हैं।

रविजप्रिय (सं० पु०) नीलकान्त नामक मणि।

रविजल (सं० क्ली०) आककी जड़का रस।

रविजा (सं० स्त्री०) यमुना, कालिन्दी।

रविजात (सं० पु०) सूर्यकी किरण।

रविजेन्द्र (सं० पु०) जैनोंके एक आचार्यका नाम।

रवितनय (सं० पु०) रवेस्तनयः। १ सावर्णि मनु। २ वैवस्वत मनु। ३ यमराज। ४ शनैश्चर। (बृहत्संहिता १४।१२) ५ सुग्रीव। ६ कर्ण। ७ अश्विनीकुमार।
रवितनया (सं० स्त्री०) सूर्यकी कन्या, यमुना।
रवितनुजा (सं० स्त्री०) यमुना।
रवितीर्थ (सं० क्ली०) पुराणानुसार एक प्राचीन तीर्थका नाम। (विष्णुपुराण)
रवित् (सं० त्रि०) रवकारी, चिल्लानेवाला।
रवितेजस् (सं० क्ली०) सूर्यकी किरण।
रविदत्त (सं० पु०) १ राजपुरोहितभेद। २ एक कवि।
रविदास कवि—मिथ्याज्ञानखण्डन नामक प्रहसनके प्रणेता।
रविदिन (सं० क्ली०) रविवार, एतवार।
रविदीप्त (सं० त्रि०) सूर्यकिरणोद्भासित।
रविदुग्ध (सं० क्ली०) अर्कक्षीर, आकका दूध।
रविदेव (सं० पु०) काव्यराक्षसके प्रणेता एक कवि। ये मलयवासी नारायणके पुत्र थे। बहुतेरे इन्हें नलोदयके रचयिता अनुमान करते हैं। प्रबोधबोधिनी नामक इनकी लिखी एक नलोदयटीका मिलती है।
रविद्रुम (सं० पु०) सदापुष्पवृक्ष, आकका पेड़।
रविनन्द (सं० पु०) रविनन्दन देखो।
रविनन्दन (सं० पु०) रवेर्नन्दनः, यद्वा रविं नन्दयतीति नन्दि-ल्यु। १ सुग्रीव। २ सावर्णि मनु। ३ वैवस्वत मनु। ४ शनि। ५ यम। ६ कर्ण। ७ अश्विनीकुमार।
रविनन्दिनी (सं० स्त्री०) यमुना।
रविनाथ (सं० क्ली०) रविरेव नाथोऽस्य। १ पद्म, कमल। २ बन्धूकवृक्ष, दुपहरिया फूलका पौधा।
रविनामक (सं० क्ली०) ताम्र, तांबा।
रविपद्म (सं० क्ली०) अरविन्द, पद्म।
रविपत्र (सं० पु०) रविवत् द्योतिमत् पत्रं यस्य। आदित्यपत्रवृक्ष, मदारका पौधा।
रविपुत्र (सं० पु०) रवेः पुत्रः। रविनन्दन देखो।
रविपुत्री (सं० स्त्री०) छन्दोभेद।
रविप्रिय (सं० क्ली०) रवेरेव प्रियमस्य। १ रक्त कमल, लाल कमल। २ ताम्र, तांबा। (पु०) ३ आदित्यपत्र, मदार। ४ रक्त करवीर, लाल कनेर। ५ लकुच या लकुट नामक फल या उसका वृक्ष। ६ सोमभृङ्गराज।
रविप्रिया (सं० स्त्री०) १ पुराणानुसार देवीकी एक मूर्त्ति। २ सूर्यावर्त्तक्षुप।
रविबिम्ब (सं० क्ली०) रवेः रक्तं ततः कन्। १ माणिक्य, मानिक। २ सूर्यका मंडल।
रविभक्ता (सं० स्त्री०) सूर्यावर्त्तक्षुप।
रविमण्डल (सं० क्ली०) वह लाल मंडल या गोला जो सूर्यके चारों ओर दिखाई देता है, रविबिम्ब।
रविमणि (सं० पु०) सूर्यकान्त नामक मणि।
रविमूल (सं० क्ली०) अर्कमूल, आकको जड़।
रविरत्न (सं० क्ली०) सूर्यकान्त नामक मणि।
रविरत्नक (सं० क्ली०) रवे रत्न, ततः कन्। माणिक्य मानिक।
रविलोचन (सं० पु०) रविर्लोचनमस्य। विष्णु।
रविलोह (सं० क्ली०) रविप्रियं लोह। ताम्र, तांबा।
रविवंश (सं० पु०) सूर्यकुल।
रविवंशी (सं० पु०) सूर्यकुलमें उत्पन्न, सूर्यवंशी।
रविवर्मन्—हलायुधकृत कविरहस्यके एक टीकाकार।
रविवल्लभ (सं० पु०) मुकुन्दवृक्ष।
रविवल्ली (सं० स्त्री०) रविभक्ताक्षुप।
रविवाण (सं० पु०) वह वाण जिसके चलानेसे सूर्यका-सा प्रकाश उत्पन्न हो।
रविवार (सं० पु०) रवेः सूर्यस्य वारः। सप्ताहके सात दिनों या वारोंमेंसे एक जो सूर्यका वार माना जाता है और जो शनिवारके बाद तथा सोमवारके पहले पड़ता है, आदित्यवार।
रविवासर (सं० पु०) रविवार, एतवार।
रविश (फा० स्त्री०) १ गति, चाल। २ क्यारियोंके बीचमें चलनेके लिये बना हुआ छोटा मार्ग। ३ तौर, ढंग, तरीका।
रविषेण—उत्तर-पश्चिम भारतवासी एक राजा। इनकी उपाधि महासामन्त-महाराज थी। इनके पिताका नाम राजा लक्ष्मणसेन और माताका नाम शिखरस्वामिनी था।
रविसंक्रान्ति (सं० स्त्री०) रवेः संक्रान्तिः। सूर्यका एक राशिमेंसे दूसरी राशिमें जाना, सूर्य संक्रमण।
रविसंज्ञक (सं० क्ली०) रविः संज्ञा यस्य इति कन्। ताम्र, तांबा।

रविसारथि (सं० पु०) अरुण।

रविसाम्ब—दाक्षिणात्यके वकाटक वंशीय राजाओंके अधीनस्थ एक सामन्त राजा। अजण्टाके शिलाफलकमें इनका नामोल्लेख है।

रविसुअन (हिं० पु०) १ सूर्यके पुत्र, अश्विनीकुमार। २ रविनन्दन देखो।

रविसुत (सं० पु०) रविनन्दन देखो।

रविसुन्दररस (सं० पु०) वैद्यकमें एक प्रकारका रस जो भगंदरके लिये बहुत उपकारी माना जाता है।

रविसूनु (सं० पु०) रवेः सूनुः। १ सूर्यके पुत्र। २ रविनन्दन देखो।

रविस्पर्शा (सं० स्त्री०) ह्रस्वमेषशृङ्गी, क्षुद्र मेढ़ाशृंगी।

रवीन्द (सं० क्ली०) रविणा सूर्यकरस्पर्शेन इन्दति प्रकाशते इति इन्द अच्। पद्म, कमल।

रवीन्द्र—दुर्गमाहात्म्यटीकाके प्रणेता तथा पुरन्दरके पुत्र।

रवीषु (सं० पु०) कामदेव।

रशनसम्मित (सं० पु०) यूपकाष्ठस्थित रज्जुसदृश या तद्वत् विलम्बित। (तैत्तिरीयस० ६।६।४।१)

रशना (सं० स्त्री०) अश्नुते व्याप्नोतीति अशू व्याप्तौ (अशे रश च। उण् २।७५) इति युच्, धातोरशादेश्च। १ काञ्चि, करधनी। २ जिह्वा, जीभ। ३ रज्जु, रस्सी। ४ अंगुली।

रशनाकलाप (सं० पु०) धागे आदिकी बनी हुई एक प्रकारकी करधनी जो प्राचीन कालमें स्त्रियां कमरमें पहनती थीं।

रशनाकृत (सं० त्रि०) रज्जु द्वारा चालित। (कौशितकी० १२७)

रशनागुण (सं० पु०) रशनाकलाप देखो।

रशनोपमा (सं० स्त्री०) रसनोपमा नामक अलंकार। विशेष विवरण रसनोपमा शब्दमें देखो।

रश्क (फा० पु०) १ किसी दूसरेको अच्छी दशामें देख कर होनेवाली जलन या कुढ़न, डाह। २ लज्जा, शरम।

रश्मन् (सं० पु०) रश्मि, किरण।

रश्मि (सं० पु०) अश्नुते व्याप्नोतीति अशू-व्याप्तौ (अश्नोतेरश्च। उण् ४।४६) इति मि, धातो रशादेश्च। १ किरण। इसका वैदिक पर्याय—खेद्य किरण, गो, अभीषु, दीधिति, गभस्ति, वन, उस्र, वसु, मरीचि, मयूख, सप्तऋषि, साध्य और सुपर्ण। २ पक्ष्म, पलक के रोएं। ३ अश्वरज्जु, घोड़ेकी लगाम।

रश्मिकलाप (सं० पु०) मौक्तिक कण्ठहारभेद, मोतियोंका वह हार जिसमें ५४ या ५४ लड़ियां हों।

रश्मिकेतु (सं० पु०) १ एक राक्षसका नाम। (रामा० ५।८०।१२) २ धूमकेतुग्रहभेद, वह केतु या पुच्छल तारा जो कृत्तिका नक्षत्रमें स्थित हो कर उदित हो। कहते हैं, कि इसकी चोटीमें धूआं रहता है और इसका फल सातवें केतुके समान होता है। (वृहत्सं० ११।४०)

रश्मिक्रोड़ (सं० पु०) रामायणके अनुसार एक राक्षसका नाम। (रामायण ५।१२।२११)

रश्मिन् (सं० पु०) रश्मि, किरण। (भागवत १।६।३८)

रश्मिपति (सं० पु०) रश्मिः पतिः पोषको यस्य। १ आदित्यपत्र क्षुप, मदारका पौधा। २ रविपत्र।

रश्मिपवित्र (सं० त्रि०) सूर्यकिरण द्वारा पूत या पवित्र किया हुआ।

रश्मिप्रभास (सं० पु०) एक बुद्धका नाम।

रश्मिमण्डल (सं० पु०) किरणमाला। (अथर्वप्राति०)

रश्मिमत् (सं० पु०) १ सूर्य। (त्रि०) २ किरणयुक्त।

रश्मिमय (सं० त्रि०) १ दीप्तिमय। २ किरणोद्भासित।

रश्मिमालिन् (सं० त्रि०) रश्मिमालाधारी।

रश्मिमुच् (सं० पु०) सूर्य।

रश्मिराज (सं० पु०) एक बुद्धका नाम।

रश्मिवत् (सं० त्रि०) किरणके समान।

रश्मिशतसहस्रपरिपूर्णध्वज (सं० पु०) एक बुद्धका नाम।

रश्मिस (सं० पु०) एक दानवका नाम।

रस (सं० पु०) रसतीति रस-पचाद्यच् यद्वा रस्यते इति रस आस्वादने (पुंसि संज्ञायां घ. प्रायेन। पा ३।३।११८) इति घ। १ वह अनुभव जो मुंहसे डाले हुए पदार्थोंका जीभके द्वारा होता है, खानेकी चीजका स्वाद। वैद्यकमें मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय ये छः रस माने गये हैं। इसकी उत्पत्ति भूमि, आकाश, वायु और अग्नि आदिके संयोगसे जलमें होती है। पृथ्वी और

जलके गुणकी अधिकतासे मधुर रस, पृथ्वी और अग्निके गुणकी अधिकतासे अम्ल रस, जल और अग्निके गुणकी अधिकतासे लवणरस, वायु और आकाशके गुणकी अधिकतासे तिक्त रस और पृथ्वी तथा वायुकी अधिकतासे कषाय रस उत्पन्न होता है। इन छः रसोंके मिश्रणसे और भी छत्तीस प्रकारके रस उत्पन्न होते हैं। इस रसका विषय वैद्यकमें इस प्रकार लिखा है।

आकाश, वायु, अग्नि, जल और भूमि ये पांच महाभूत हैं। शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध ये पांच यथाक्रम इनके गुण हैं। आकाश और वायु आदि भूतोंसे शब्द और स्पर्श आदि गुण धीरे धीरे एक एक कर बढ़ता जाता है। जैसे—आकाशका गुण शब्द, वायुका गुण शब्द स्पर्श और रूप; जलका गुण शब्द, स्पर्श, रूप और रस तथा पृथ्वीका गुण स्पर्श, रूप, रस और गन्ध है। अतएव रस जलीय गुणसे उत्पन्न होता है। संसर्ग अनुकूल्य और मिश्रणके कारण सभी भूतोंका अंश सभीमें मिला है। किन्तु उत्कर्षता और अपकर्षताके अनुसार वह विभिन्न रूपमें निर्दिष्ट होता है।

जलीय गुणसे उत्पन्न यह रस जब सभी भूतोंके साथ मिल कर विदग्ध होता तब छः प्रकारमें बंट जाता है। वे छः रस हैं, मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय। पार्थिव और जलीय गुणकी अधिकतासे मधुर रस; पार्थिव और आग्नेय गुणकी अधिकतासे अम्लरस; जलीय और आग्नेय गुणकी अधिकतासे लवणरस; वायव्य और आग्नेय गुणकी अधिकतासे कटुरस, वायव्य और आकाश गुणकी अधिकतासे तिक्तरस तथा पार्थिव और वायव्य गुणकी अधिकतासे कषाय रस उत्पन्न होता है।

मधुर, अम्ल और लवणरस वातको, मधुर, तिक्त और कषाय रस पित्तको तथा कटु, तिक्त और कषाय रस कफको नाश करता है। किसी किसी पण्डितका मत है, कि जगत्‌में अग्नि और सोमगुण रहनेके कारण रस दो प्रकारका है,—आग्नेय और सौम्य। मधुर, तिक्त और कषाय सौम्य रस, तथा कटु, अम्ल और लवण रस आग्नेय रस हैं। मधुर, अम्ल और लवण रस स्निग्ध और गुरु, कटु, तिक्त और कषाय रस रूक्ष और लघु होता है। सौम्यसे शीतल और आग्नेयसे उष्ण समझना चाहिये।

शीतलता, रूक्षता, लघुता, वैशद्य और विष्टम्भता वायुगुणका लक्षण है। कषाय रस इसकी समानयोनि है। इसी कारण कषाय रसको शीतलतासे वायुकी शीतलता रूक्षतासे रूक्षता लघुता वैशद्य और स्तम्भता से वायुकी विशदता तथा स्तम्भता बढ़ती है। उष्णता, तीक्ष्णता, रूक्षता, लघुता और विशदता पित्तगुणके लक्षण हैं। कटुरस इसकी समानयोनि है। इसी कारण कटुरससे ये सब गुण बढ़ते हैं। माधुर्य, स्नेह, गौरव, शैत्य और पिच्छिलता श्लेष्मगुणके लक्षण हैं। मधुर-रस इसका समानयोनि है, इसीसे मधुररससे इन सब गुणों की वृद्धि होती है।

श्लेष्माकी अपर अर्थात् असमानयोनि कटुरस है। कटुरसके कटुत्व द्वारा श्लेष्माकी मधुरता, रूक्षतासे स्निग्धता, लघुतासे गुरुता, उष्णतासे शीतलता और विशदतासे पिच्छिलता नष्ट होती है।

जिस रससे परितोष, आह्लाद और तृप्ति उत्पन्न होती है और जिस रससे जीवनकी रक्षा, मुखका अवलेप (मुंह का चटचट करना) तथा श्लेष्माकी वृद्धि होती है उसको मधुर रस कहते हैं। जिस रस द्वारा दन्तहर्ष, मुखस्राव और रुचि उत्पन्न होती है उसे अम्लरस जिस रससे जिह्वाके अग्र भागमें जलन होती है, उद्वेग पैदा होता है, सिर दर्द करता है और नाकसे पानी गिरता है उसे कटु रस जिससे मुखका वैशद्य, अन्नमें रुचि तथा हर्ष उत्पन्न होता है उसे तिक्तरस, जिस रससे वक्षदेश परिशुष्क, जिह्वा स्तम्भित, कण्ठ बद्ध तथा हृदयदेश तक आकृष्ट और एक तरह पीड़ित सा मालूम होता है उसे कषाय रस कहते हैं।

मधुररस—इस रसका सेवन करनेसे रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा अस्थि, ओजः, शुक्र और स्तन्यकी वृद्धि होती है। यह दृष्टि और केशवर्द्धक, वर्ण और बलवर्द्धक, व्रणसन्धायक (फटे घावको जुड़ा देता है) तथा रस और रक्तको साफ रखता है। यह रस बालक, वृद्ध, युवा क्षयरोगग्रस्त और दुर्बलके लिये हितकर है। लोगों मधुमक्षिका और पिपीलिकाको बड़ा ही पसन्द करता

है। इससे तृष्णा, मूर्च्छा और दाह प्रशमित होता तथा छः इन्द्रियोंको प्रसन्नता रहता है। किन्तु यह कृमि और कफवर्द्धक है। मधुररसमें इस प्रकार अधिक गुण रहने पर भी यदि कोई अधिक मात्रामें इसका सेवन करे, तो वह श्वास, कास, आलस्य और वमनेच्छामें कष्ट पाता है, तथा उसके स्वरभङ्ग, कृमि, गलगण्ड, अर्बुद, श्लीपद, वस्तिदेश और मलद्वारका उपलेप तथा चक्षुमें वेदना होती है।

अम्लरस—जारक और पाचक है। इससे वायु शान्त होती, अनुलोम होता तथा कोष्ठमें जलन देता है। यह क्लेदजनक, मुखप्रिय और बहिः शैत्यसाधक है, किन्तु अधिक मात्रामें सेवन करनेसे दन्तहर्ष, लोमहर्ष तथा नयनसम्मीलन होता है। इसके द्वारा गाढ़ा कफ तरल होता तथा शरीरमें शिथिलता आ जाती है। शरीरका कोई स्थान दग्ध, दुष्ट, भग्न, पिष्ट, छिन्न, विद्ध, अथवा शोकग्रस्त वा विसर्परोगसे आक्रान्त होने पर यदि अधिक अम्लका सेवन किया जाय, तो वह स्थान पक जाता है। इसमें आग्नेय गुण रहनेके कारण कण्ठ, वक्ष और हृदयमें जलन देती है।

लवणरस—पाचक और संशोधक है। इससे रसोंका विश्लेषण होता तथा शरीरमें शिथिलता आती है। यह रस मार्ग-विशोधक सभी शरीरांशका कोमलतासाधक तथा सभी रसके विरोधी उष्ण गुणयुक्त है। अधिक मात्रामें इसका सेवन करनेसे गात्रकण्डु, मण्डलाकार व्रण, शोफ, विवर्णता, मुख और नेत्रमें व्रण, रक्तपित्त, वातरक्त और पुरुषत्वहानि होती तथा खट्टी डकार आती है।

कटुरस—पाचक, रोचक, अग्निका दीप्तिकर और संशोधक है। यह शरीरका स्थूलकारक तथा सामान्य कफ, कृमि, विष, कुष्ठ और कण्डुनाशक माना गया है। इससे सन्धिविश्लेषण और शरीरका अवसाद होता है। यह स्तन्य, शुक्र और मेदनाशक है। यह रस अधिक मात्रामें पान करनेसे भ्रम और मत्तता उत्पन्न होती, गला, तालु और ओंठ सूखते हैं, बलकी हानि होती तथा कम्प, वेदना और भेद आदि रोग उत्पन्न होने हैं। हाथ, पांव, बगल और पीठमें वेदना होती है।

तिक्तरस—रुचिकर और दीप्तिवर्द्धक है। इससे कण्डु, कुष्ठ, मूर्च्छा और ज्वरकी शान्ति होती, स्तन्यका संशोधन होता तथा विष्ठा, मूत्र, क्लेद, मेद, वसा और पीप सूख जाती है। यह रस अधिक मात्रामें सेवन करनेसे शरीर स्पन्दहीन हो जाता तथा मन्यास्तम्भ, हस्त-पदादिका आक्षेप, शिरःशूल, भ्रम, तोद, भेद और विदारणवत् यातना तथा मुखवैरस्य आदि रोग उत्पन्न होते हैं।

कषायरस—संग्राहक अर्थात् मल, मूत्र और श्लेष्मा आदिका रोकता है। यह घावको भरता तथा क्लेदको सोखता है। यह रस अधिक मात्रामें सेवन करनेसे हृद्रोग, मुखशोष, उदराध्मान, वाक्यरोध, मन्यास्तम्भ, अङ्गस्फुरण, कानमें चुन चुन शब्द तथा आकुञ्चन और आक्षेप आदि होता है।

ये सब रस आपसमें मिल कर छत्तीस प्रकारमें विभक्त हैं। जैसे, दो रसके परस्पर योगसे पन्द्रह प्रकार, तीन रसके योगसे बीस प्रकार, चार रसके योगसे पन्द्रह प्रकार, पांच रसके योगसे छः प्रकार तथा प्रत्येक छः छः प्रकारका है।

दोषोंके विदग्ध और अविदग्धकी विवेचना कर यही छत्तीस प्रकारके रस होंगे।

द्विकभावमें मिलनेसे मधुररस पांच प्रकारका, अम्ल चार प्रकारका, लवणरस तीन प्रकारका, कटुरस दो प्रकारका, तिक्तकषाय मिल कर एक प्रकारका होता है। मधुराम्ल, मधुरलवण, मधुरतिक्त, मधुरकटु, मधुरकषाय—मधुररसके पांच भेद, अम्ललवण, अम्लकटु, अम्लतिक्त और अम्लकषाय—अम्लरसके चार भेद; लवणकटु, लवण-तिक्त, लवणकषाय—लवणरसके तीन भेद; कटुतिक्त तथा कटुरसके दो भेद तथा तिक्तकषाय—तिक्तरसका यही एक भेद है।

मधुराम्लवण, मधुराम्लकटु, मधुराम्लतिक्त, मधुराम्ल-कषाय, मधुरलवणकटु, मधुरलवणतिक्त, मधुरलवण-कषाय, मधुरकटुतिक्त, मधुरकटुकषाय, मधुरतिक्तकषाय, मधुररसमूलक त्रिकसंयोगसे यही दश प्रकारके रस होते हैं। अम्ललवणकटु, अम्ललवणतिक्त, अम्ललवणकषाय, अम्लकटुतिक्त, अम्लतिक्तकषाय ये छः रस अम्लरसमूलक

है। लवणकटुतिक्त लवणकटुकषाय, लवणतिक्तकषाय तथा कटुतिक्तकषाय ये तीन तीन रस मिलनेसे यही बीस प्रकारके भेद होते हैं।

चार चार मिल कर मधुररस दश प्रकारका अम्लरस चार प्रकारका तथा लवणरस एक प्रकारका होता है। जैसे—मधुराम्लकटुतिक्त, मधुराम्लकटुकषाय, मधुरलवणतिक्तकटु, मधुराम्लतिक्तकषाय, मधुरलवणकटुतिक्त, मधुरलवणकटुकषाय, मधुरलवणतिक्तकषाय, यही दश प्रकारके भेद मधुररसमूलक हैं। अम्ललवणकटुतिक्त अम्ललवणकटुकषाय, अम्ललवणतिक्तकषाय, अम्लकटुतिक्तकषाय, लवणकटुतिक्तकषाय, चार चार करके यही पन्द्रह प्रकारके रसभेद हुआ करते हैं।

मधुराम्ललवणकटुतिक्त, मधुराम्ललवणकटुकषाय, मधुराम्ललवणतिक्तकषाय, मधुराम्लकटुतिक्तकषाय, अम्ललवणकटुतिक्तकषाय पांच पांच मिल कर यही छः प्रकारके रसभेद हुए।

छः रस मिल कर एक प्रकारका होता है, जैसे—मधुराम्ललवणकटुतिक्तकषाय। ये छः रस पृथक् भावमें छः होते हैं। अतः कुल मिला कर छत्तीस प्रकारके रस भेद हुए।

कोई कोई पण्डित द्रव्य, रस, गुण वा वीर्यको प्रधान बतलाते हैं। उनके मतको यहां पर संक्षिप्त आलोचना करना उचित है। उनके मतसे द्रव्य प्रधान कारण है। पहला द्रव्य व्यवस्थित तथा रस आदि अव्यवस्थित है, जैसे—अपक्व फलमें जिस प्रकार रसगुण मालूम होता है, उस प्रकार पक्व फलमें नहीं होता। दूसरा—द्रव्यनित्य और रसगुण आदि अनित्य है। क्योंकि, कल्कादिकी जगह द्रव्यरस और गंधविशिष्ट अथवा रस और गन्ध हीन होता है। तीसरा—द्रव्यजातीयगुण नित्य भाव लम्बन करता है। जैसे, पार्थिव द्रव्य कभी भी अन्य भावको प्राप्त नहीं होता। चौथा—पञ्चेन्द्रिय द्वारा द्रव्य ही लिया जाता है, रसादि नहीं। पांचवां—द्रव्य आश्रय तथा रस उसका आश्रित है। छठा—औषधके गुणवर्णनको जगह द्रव्यका ही नाम उल्लेख किया जाता है रसका नहीं। सातवां—औषधके योगवर्णनको जगह शास्त्रमें द्रव्यको ही प्रधान बताया है। आठवां—रस आदिका गुण अवस्थासापेक्ष है। जैसे, तरुणद्रव्यका तरुणरस, पक्वद्रव्यका पक्वरस आदि। नवां—द्रव्यके एकांशसे भी व्याधिकी शान्ति होती है। इन सब कारणों से द्रव्य ही प्रधान है, न कि रस।

कोई कोई आचार्य इसे स्वीकार नहीं करते। वे रसको ही प्रधान मानते हैं। उनका कहना है, कि पहले शास्त्र प्रमाण ही ग्रहणीय है। शास्त्रमें रसका विषय इस प्रकार लिखा है। १ला—प्राणियोंका जो आहार है वह रससे परिपूर्ण है और उसीसे वे जीवनधारण करते हैं। २रा—गुरूपदेशकी जगह रस ही उपदेशका विषय होता है। ३रा—अनुमानकी जगह रसद्रव्य अनुमित होता है। ४था—ऋषिवचनमें भी कहा है, कि यज्ञके लिये कुछ मधुरद्रव्य संग्रह करना चाहिये। अतएव रस ही प्रधान है। रस द्वारा ही द्रव्यकी गुणसंज्ञा है।

कोई कोई इसे भी नहीं मानते। वे वीर्यको प्रधान बतलाते हैं। क्योंकि वीर्यके गुणसे औषधका काम चलता है। वीर्य अपने बल और गुणसे रसको अतिक्रम कर कार्य कर सकता है। जिन सब रसोंसे वायुकी शान्ति होती है, उन सब रसोंमें यदि रूक्षता, लघुता और शीतलता गुण रहे, तो वे वायुको शान्त नहीं कर सकते। जिन सब रसोंसे पित्तनाश होता है, यदि उन सब रसोंमें तीक्ष्णता उष्णता और लघुता गुण रहे तो उनसे पित्तका नाश नहीं हो सकता। फिर जिन सब रसोंसे प्रायः श्लेष्मा दमन होती है, वे यदि स्नेह, गौरव और शैत्यगुणयुक्त हों, तो उन सब रसोंसे श्लेष्मावृद्धि होती है। अतएव वीर्य ही प्रधान है।

कोई कोई इस भी स्वीकार नहीं करते। वे परिपाकको ही प्रधान मानते हैं। क्योंकि खाया हुआ पदार्थ जब अच्छी तरह पच जाता, तब तो गुण या नहीं तो अवगुण होता है। कोई कोई कहते हैं, कि प्रत्येक रससे परिपाक होता है। फिर कोई मधुर अम्ल और कटु इन्हीं तीन रसोंसे परिपाक होता है, ऐसा कहते हैं, किन्तु यह युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि, द्रव्य, गुण और शास्त्रको पर्यालोचना कर देखनेसे यही प्रतीत होता है, कि अम्लके विपाक नहीं है। अग्निमान्द्य होनेसे पित्त ही विदग्ध हो कर अम्लरसमें परिणत होता है। यदि अम्लका

विपाक स्वीकार किया जाय, तो लवणरसका तथा अन्य प्रकारका पाक होना सम्भव है। किन्तु ऐसा होता नहीं, श्लेष्मा विदग्ध हो कर ही लवणताको प्राप्त होती है। कोई कोई कहते हैं, मधुररस परिपाक होनेसे मधुर तथा अम्लरस अम्ल ही रहता है। इस प्रकार सभी रस अविकृत रहते हैं। किसी किसीका कहना है, कि मृदुरस वलवान् रसका अनुगामी होता है।

किन्तु पण्डित लोग कार्यविशेषमें इन सबोंकी प्रधानता स्वीकार करते हैं। परन्तु पहले द्रव्यको प्रधान कहना होगा। क्योंकि वीर्यके विना पाक, रसके विना वीर्य तथा द्रव्यके विना रस नहीं हो सकता। देह और देहीकी स्थिति जिस प्रकार परस्पर सापेक्ष है, उसी प्रकार द्रव्यके विना रस तथा रसके विना भी द्रव्य उत्पन्न नहीं होता। वीर्य कहनेसे शीत, उष्ण आदि आठ प्रकारके गुण समझे जाते हैं। ये आठ प्रकारके द्रव्यको ही आश्रय किये हुए हैं। ये सब गुण निर्गुण रसमें कभी भी नहीं रह सकते। द्रव्यसे ही द्रव्य परिपाक होता है, छः रसोंमें इस प्रकार नहीं होता। अतएव द्रव्य ही प्रधान है। रस, वीर्य और विपाक उसको आश्रय किये हुए हैं। जिस द्रव्यका जैसा रस है उसका गुण भी वैसा ही होता है।

(सुश्रुत सूत्रस्था० ४० अ० उत्तरत० ६० अ०)

चरक, चक्रदत्त, वाभट आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें इस रसकी अच्छी तरह आलोचना की गई है। विस्तार हो जानेके भयसे यहा पर कुछ नहीं लिखा गया।

न्यायके मतसे रसनाग्राह्य वस्तु ही रस है। यह मधुरादि भेदसे अनेक प्रकारका है। इस रसके दो भेद हैं नित्य और अनित्य। (भाषापरि०)

भोजनकालमें कौन रस पहले खाया जाता है उसका विषय भावप्रकाशमें इस प्रकार लिखा है। भोजनके समय तनमनसे पहले मधुररस, पीछे अम्ल और लवणरस और उसके वाद कटु, तिक्त और कषायरस खाना उचित है।

२ शरीरस्थ धातुविशेष। रसधातु। पर्याय—रसिका, स्वेदमाता, वपुःस्रव, चर्माम्भः चर्मसार, रक्तसार, अस्रमातृका, आहार-सम्भव, तेजसम्भव, अग्निसम्भव, षड्रसासव, आर्त्तेय, असृक्कर, धातुघन, मूलमहापर। (हेम)

जीव जो मधुरादि रस खाता है वह परिपाक हो कर रसमें परिणत होता है। भावप्रकाशमें इसका विषय इस प्रकार लिखा। रसकी निरुक्ति और स्वरूप—

'गत्यर्थं रसधात्वर्थं स्ततोऽभवदयं रसः।
सदैव सकलं देहं रसतीति रसः स्मृतिः॥
सम्यक् पक्वस्य भुक्तस्य सारो निगदितो रसः।
स तु द्रवः सितः शीत. स्वादुः स्निग्धश्चलोभवेत ॥"

(भावप्र०)

गत्यर्थवोधक रस धातुसे रस शब्द बना है। यह रस शरीरमें हमेशा विचरण करता है, इसीसे इसको रस कहते हैं। खाया हुआ पदार्थ अच्छी तरह परिपक्व हो कर जो सार भाग उत्पन्न होता है उसका नाम रस है। यह रस द्रवपदार्थ, श्वेतवर्ण, शीतल, मधुररस, स्निग्ध और गमनशील होता है।

रसका अवस्थितिस्थान—रसके सारे शरीरमें सञ्चालन करने पर भी हृदय ही इसका विशेष स्थान है। क्योंकि यह रस समान वायु द्वारा पहले हृदयमें ही लाया जाता है।

रसका कार्य—यह रस हृदयगत होनेसे वहांकी रस वाहिनी धमनीमें जा कर सभी धातुको पोषण करता है। पीछे वह अपने गुण द्वारा सारे शरीरमें फैल जाता है। जठराग्निके मन्द होनेसे यदि खाया हुआ पदार्थ न पचे और उससे कटु वा अम्लरस उत्पन्न हो, तो वह रस विषके समान काम करता है जिससे अनेक रोग उत्पन्न होते हैं।

परिपक्व आदरके सार अंशका रस और अवशिष्ट ग्रहणी नाड़ीस्थ द्रवरूपी मलभागका जलीय अंश जब मूत्रवाहिनी शिरा द्वारा वस्त्याशयमें लाया जाता तब उसे मूत्र तथा अवशिष्ट जो मलभाग रह जाता है उसे विष्ठा कहते हैं। यह विष्ठा समान वायु द्वारा चालित हो कर मलाशयमें जा कर ठहरती है।

खाया हुआ रस समान वायु द्वारा चालित हो कर रसवाहिनी धमनीसे स्थायिरसके अवस्थितिस्थान हृदयमें जाता है और वहां स्थायिरसके साथ मिल जाता है।

रस तीन प्रकारमें विभक्त है, स्थूलभाग, सूक्ष्मभाग और मलभाग। इनमेंसे स्थूलभाग अपने भावको अवलम्बन करता है, सूक्ष्मभाग परधातुका पोषण करता है और मलभाग उसका मलस्व धारण करता है। अर्थात् रसके परिपाक होनेसे इसका स्थूलभाग रस हो रहता है, सूक्ष्म भाग परधातुके रक्तका पोषण करता है और मलभाग कफरूपमें परिणत होता है।

यह रस तीन हजार पन्द्रह कला करके एक एक धातु में रहता है। चौस कलाका एक मुहूर्त अर्थात् दो दण्ड होता है। इस पर भोजका मत है, कि खाया हुआ रस पांच रात और डेढ़ दण्डमें रसादि मज्जा पर्यन्त धातुमेंसे एक एकमें परिणत होता है।

यह रस फिर स्थूल और सूक्ष्म इन दो भागोंमें विभक्त है। इनमेंसे स्थूलभाग शरीरात्मक स्थायिरसके साथ मिल कर वैसा हो हो जाता है। पीछे वह सर्व-शरीर व्यापी व्यान वायु द्वारा चालित हो कर धमनीपथसे जाता और पोषण स्नेहन तथा जठराग्निकी उष्मायुक्त संतापनिवारण आदि गुण द्वारा सारे शरीरका पोषण करता है। सूक्ष्मभाग प्राणवायु द्वारा प्रेरित हो कर धमनीपथसे शरीरात्मक रक्तके स्थान यकृत् प्लीहामें जाता और वहां स्थायी रक्तमें मिलता है। इसके बाद वह स्थायीरक्तके तेज द्वारा फिरसे परिपाक हो कर पांच दिन पांच रात और डेढ़ दण्डमें रक्त धातुमें परिणत होता है।

आहार जातरस एक मास में पुरुषका शुक्र और आर्त्तवरूपमें परिणत होता है। पहले 'रसाद्रक्तं शोणितं जात' रससे रक्तकी उत्पत्तिके बाद रससे ही मांसकी, मांस उत्पत्तिके बाद रससे मेदकी, मेदउत्पत्तिके बाद रससे हो अस्थिकी, अस्थिके बाद रससे मज्जा तथा मज्जाके बाद उस रससे शुक्रकी उत्पत्ति होती है।

रस शरीरमें शब्दसन्तानवत्, अर्चिसन्तानवत् (अग्निशिखा प्रवाहकी तरह) और जलसन्तानवत् इन तीन प्रकारसे शरीरमें सञ्चरण करता है।

इसका अभिप्राय यह है, कि प्राणी तीक्ष्णाग्नि, मध्याग्नि और मन्दाग्निविशिष्ट होते हैं। अतएव यह तीक्ष्णाग्निविशिष्ट व्यक्तियोंके शरीरमें शब्द-सन्तानवत् तीव्र गतिसे मध्यमाग्निविशिष्ट व्यक्तियोंके शरीर में अग्निशिखा-प्रवाहकी तरह मध्य वेगसे था। मन्दाग्निविशिष्ट व्यक्तिके शरीरमें जलप्रवाहकी तरह मृदुवेगसे सञ्चरण करता है। अतएव रससे एक महीनेमें जो शुक्र बनता है उसे मध्यवेगके स्थानमें जानना होगा। अभी यही स्थिर हुआ, कि तीक्ष्णाग्निविशिष्ट व्यक्तिके एक महीनेसे कुछ कममें तथा मन्दाग्निविशिष्ट व्यक्तिके एक महीनेसे कुछ अधिक समयमें शुक्र उत्पन्न होता है।

(भावप्रकाश)

सुश्रुतमें इसका विषय यों लिखा है—शीतोष्ण भेदसे दो प्रकारका वा शीतोष्ण स्निग्धादि भेदसे आठ प्रकारका वीर्ययुक्त मधुरादि छः प्रकारके रससमन्वित तथा पेयादि भेदसे चार प्रकारका पाञ्चभौतिक आहारद्रव्य जब अच्छी तरह परिपाक होता तब उससे तेजोभूत बहुत सूक्ष्म जो सार पदार्थ उत्पन्न होता है, उसीका नाम रस है।

रसका आधार और क्रिया—उक्त आहारजात रसका अवस्थितिस्थान हृदय है। यह ऊर्ध्वगामी १०, अधोगामी १० और तिर्यग्गामी ४ इन २४ धमनियोंमें प्रवेश कर अदृष्ट भावमें अनिर्वचनीय कर्म द्वारा रात दिन सारे शरीरको तर्पण, वर्द्धन, धारण, यापन और जीवन क्रिया सम्पादन करता है। यह रस जो सभी स्थानोंमें गमनागमन करता है, क्षयवृद्धिरूप विकृति द्वारा ही उस का अनुभव किया जाता है। द्रव्यानुयायी रस जब शरीर को स्नेहन, जीवन, तर्पण और धारणादि क्रिया सम्पादन करता है, तब यह स्निग्धकारिता गुणविशिष्ट है, इस लिये वह सौम्य है।

उक्त प्रभावविशिष्ट आहारीय रस यकृत्प्लीहामें जा कर लाल हो जाता है अर्थात् रसधातु शरीरस्थ विशुद्ध तेज (रञ्जक नामक पित्त) द्वारा रञ्जित हो कर रक्त कहलाने लगता है। रक्त शब्द देखो।

रस धातुका अर्थ जाना है। यह रात दिन चलता रहता है इसीसे इसको रस कहते हैं। यह रस खाये हुए पदार्थसे एक हा दिनमें उत्पन्न हो कर ३०१५ कला अर्थात् पांच दिनसे कुछ अधिक समयमें एक एक धातुमें

रहता है और २५ दिन ७५ कलाके बाद एक पुरुषके शुक्र और स्त्रीके आर्त्तवरूपमें परिणत होता है।

उक्त रस शब्द, अर्चि और जलकी गतिकी तरह अत्यन्त सूक्ष्मरूपमें सारे शरीरमें सञ्चरण करता है अर्थात् शब्दकी तरह तिर्यक् भावमें, अर्चिकी तरह ऊपर और जलकी तरह नीचेकी ओर जाता है।

रसधातु जब एक महीनेमें शुक्ररूपमें परिणत होता है, तब वाजीकरणादि औषधका सेवन करनेसे वह जल्दी क्यों नहीं गिरता? इसका उत्तर यही है, कि जिन सब औषधोंसे वाजीकरणादि कार्य होता है, उन सब औषधोंका यदि उपयुक्त नियमसे प्रयोग किया जाय, तो वे अपने बल और गुणकी उत्कर्षताके कारण विरेचक औषधकी तरह काम करके शुक्रको बहुत जल्द गिरा देते हैं।

रसधातु जब एक महीनेमें शुक्र बनता है, तब बाल्यावस्थामें जो उसका कोई लक्षण नहीं दिखाई देता, सो क्यों? इसका उत्तर यह है, कि जिस प्रकार पुष्पकी कलीमें गंध रहती है वा नहीं इसका अनुभव नहीं होता, पर जब वही कली खिल कर पुष्पके आकारमें परिणत होती है, तब वह गंध चारों ओर फैलने लगती है, उसी प्रकार बाल्यावस्थामें शुक्र प्रच्छन्नभावमें रहता है। सूक्ष्मताके कारण उसका कोई चिह्न दिखाई नहीं देता। पीछे वयोवृद्धिके साथ साथ उसका लक्षण दिखाई देने लगता है।

रसधातु सभी प्रकारके धातुओंका पोषक होने पर भी वह वृद्ध मनुष्यके शरीरमें उतना हितसाधक नहीं होता अर्थात् वह रसधातु उनके रक्तादि अन्यान्य धातुओंका पोषण कार्य न करके केवल जीवनधारणमें सहायता करता है।

देहमें रसधातुकी अधिकता होनेसे हृदयोत्क्लेद, वमनेच्छा और प्रसेक (लालस्राव) होता है। शरीरका रसधातु क्षय होनेसे हृदयवेदना, हृत्कम्प, हृदयकी शून्यता और तृष्णा उत्पन्न होती है।

रसधातुके दूषित होनेसे भोजनमें अनिच्छा, अरुचि, अपाक, अङ्गमर्द, ज्वर, हृल्लास (वमनेच्छा), परितृप्त, भोजनकी तरह तृप्तिबोध, अङ्गकी गुरुता, हृद्रोग, पाण्डु रोगके सभी स्रोतोंका अवरोध, कृशता, मुखवैरस्य, अवसन्नता और अकालमें पलितपलित तथा दृष्टिहीनता आदि लक्षण दिखाई देते हैं। (सुश्रुत)

३ परब्रह्म। वह परब्रह्मकी एकमात्र रसशब्दवाच्य है। ४ विष, जहर। ५ वीर्य। ६ गुण। ७ राग। ८ कोई तरल पदार्थ। ९ गन्धरस। १० जल, पानी। ११ पारद, पारा। पारेको श्रेष्ठ रस कहा है। पारद देखो। १२ शिलारस। १३ हिंगुल, शिंगरफ। १४ शृङ्गारादि दश प्रकारका स्थायिभाव। शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स और अद्भुत ये आठ रस हैं। शान्तको कोई कोई रस नहीं कहते। इन आठ रसोंमें यथाक्रम रति, उत्साह, शोक, भय, विस्मय, हास्य, जुगुप्सा और क्रोध ये सब स्थायिभाव उपस्थित होते हैं।

साहित्यदर्पणमें शृङ्गार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त ये नौ प्रकारके रस कहे गये हैं। (साहित्यद० ३।२०८)

रत्नकोषमें उक्त नौ प्रकारके रसोंको ही नाट्यरस कहा है। (रत्नकोष)

अमरटीकामें दश प्रकारके रसोंका उल्लेख देखनेमें आता है, जैसे—शृङ्गार, [illegible] करुण, अद्भुत, हास्य, भयानक, वीभत्स, रौद्र, वात्सल्य और [illegible]

शृङ्गारादि आठ प्रकारका रस सर्ववादिसम्मत है। किन्तु शान्त और वात्सल्यरसमें सबोंकी एक राय नहीं है। एक एक रसमें एक एक स्थायिभाव उपस्थित होता है। इसके सिवा उन सब रसोंके आलम्बन, विभाव और उद्दीपन विभाव आदि हुआ करते हैं।

(साहित्यद० ३।२६)

विभाव, अनुभाव और सञ्चारिभाव द्वारा प्रकाशित रत्यादि जो स्थायी भाव है उसे रस कहते हैं। इन सब भावों द्वारा रस उत्पन्न होता है। जिस प्रकार दूधमें दूसरी वस्तु मिलानेसे वह दही हो जाता है उसी प्रकार विभावादि द्वारा रत्यादि स्थायिभाव रसरूपमें परिणत होता है।

सत्त्वगुणके उद्रेकके कारण अखण्ड स्वरूपानन्द द्वारा चिन्मयस्वरूप तथा रसास्वादनकालमें अन्य

ज्ञानके असन्नावके कारण ब्रह्मास्वाद सहोदर अर्थात् ब्रह्मज्ञानकालमें जिस प्रकार अन्यज्ञान रहित हो ब्रह्मानन्दमें विभोर होता है उसी प्रकार रसज्ञानमें भी अन्य विषयक ज्ञानशून्य हो केवल रसज्ञानमें निमग्न होता है।

चमत्कारित्वको ही रसका सार कहा है। करुणादि रसमें जो अत्यन्त सुख मालूम होता है, मनस्वियोंका अनुभव ही उसका प्रमाण है।

रसोंमें शृङ्गाररस प्रथम है। शृङ्गाररसका लक्षण साहित्यदर्पणमें इस प्रकार कहे हैं,—मन्मथोद्भेद अर्थात् कामोद्रेकसे इस रसकी उत्पत्ति होती है। इस रसका नायक उत्तम प्रकृतिवाला तथा वेश्या, परोढ़ा और अनुरागिणी स्त्री भिन्न नायिका होगी। इसमें आलम्बन अर्थात् तदाख्य विभाग होगा। दक्षिणादि नायक (दक्षिण, अनुकूल, धृष्ट और शठ) चन्द्र, चन्दन, भ्रमरस्व और कोकिल कूजनादि उद्दीपन भाव तथा भ्रूविक्षेप और कटाक्षादि अनुभव होगा। इस रसमें उग्रता, मरण, आलस्य और जुगुप्साको छोड़ कर अन्य भाव व्यभिचारीभाव होंगे। इस रसका स्थायिभाव रति है। इसका रंग सांवला है तथा अधिष्ठात्रीदेवता विष्णु हैं।

यह दो प्रकारका है—विप्रलम्भाख्य और सम्भोगाख्य। जहां नायक और नायिकाका अनुराग आपसमें खूब बढ़ जाता, फिर भी अभिलाष पूरा नहीं देखा है अर्थात् नायक या नायिकाकी इच्छा पूरी नहीं होती वहां विप्रलम्भाख्य शृङ्गार होगा। (साहित्यद० ३।२११ १२)

इस विप्रलम्भाख्य शृङ्गारमें पहले नायकका पूर्वराग हुआ करता है। छिपके नायक या नायिकाके परस्पर दर्शन वा गुणश्रवणसे उनके पहले अनुराग उत्पन्न होता है। पीछे उनकी अप्राप्ति अर्थात् नायक या नायिका का सम्मिलन नहीं होनेसे जो अवस्था होती है उसे पूर्वराग कहते हैं। दूत, बन्दी वा सखीके मुखसे श्रवण तथा इन्द्रजाल, चित्र, स्वप्न वा साक्षात् रूपमें दर्शन होता है।

यह पूर्वराग फिर मान, प्रवास, करुण और करुणा रमकके भेदसे चार प्रकारका है। (साहित्यदर्पण ३।२१३-१४)

नायक और नायिकाके पूर्वरागके बाद अभिलाष, चिन्ता, स्मृति, गुणकथन, उद्वेग, सम्प्रलाप, उन्माद, व्याधि, जड़ता और मरण ये दश प्रकारकी कामदशा उपस्थित है।

परस्पर सम्मिलनकी इच्छाका नाम अभिलाष, परस्पर समागमके उपाय-ढूंढनेका नाम चिन्ता, एक दूसरेके गुणादि स्मरण और कथन सजीव वा निर्जीवके प्रतिज्ञान नहीं रहनेका नाम उन्माद, चित्तके भ्रमवशतः असम्बद्ध में वाक्यप्रयोगका नाम प्रलाप, सर्वदा दीर्घनिश्वास, पाण्डुता और कृशताका नाम व्याधि, अङ्ग और मनकी हीन चेष्टाका नाम जड़ता है। ये ही नौ प्रकारकी कामदशा वर्णनीय हैं। शेष दशामें रसका विच्छेद होता है अर्थात् मृत्यु होती है, इस कारण उसका वर्णन करना उचित नहीं। नायक और नायिकाका अभिलाष यदि शीघ्र ही पूर्ण होने पर हो, तो मृतप्राय कह कर वर्णन किया जा सकता है, किन्तु मृत्यु वर्णन कभी भी न करें, नहीं तो रसभङ्ग होगा। (साहित्यदर्पण ३ परि०)

यह पूर्वराग फिर नीली, कुसुम्भ और मञ्जिष्ठाके भेदसे तीन प्रकारका है। जहां मनोगत प्रेम अत्यन्त बढ़ कर भी नाशको प्राप्त नहीं होता उसे नीली राग, जहां प्रेम अपगत हो कर शोभा पाता है उसे कुसुम्भ राग और जहां प्रेम अपगत न हो कर बहुत शोभा पाता है वहां उसे मञ्जिष्ठा राग कहते हैं।

(साहित्यद० ३।२१७)

जहां नायक और नायिका, दोनोंसे एकका देहान्त हो जाय तथा फिरसे इसके आपसमें मिलने पर यदि नायक या नायिकामेंसे कोई विमनायमान हो, तो करुणविप्रलम्भाख्य शृङ्गाररस होता है। (साहित्यद० ३।२२४)

नायक और नायिकामें अत्यन्त प्रेम हो कर दर्शन और स्पर्शनादि अर्थात् चुम्बन परिरम्भणादि प्राप्त होनेसे उसको सम्भोग शृङ्गार कहते हैं।

विप्रलम्भाख्य शृङ्गारके बिना सम्भोगकी पुष्टि नहीं होती। जिस प्रकार वस्त्रादि रंगनेके बाद उसे यदि पुनः रंगमें डुबो दिया जाय, तो उसका रंग जिस प्रकार बढ़ता हो जाता है उसी प्रकार विप्रलम्भाख्य शृङ्गारके बाद सम्भोगशृङ्गार बढ़ता है। (साहित्यद० ३ परि०)

विकृत आकार, विकृत वाक्य, विकृतवेश और विकृत चेष्टादि द्वारा हास्यरसकी उत्पत्ति होती है। इस रसका स्थायिभाव हास्य, देवता प्रमथ और वर्ण श्वेत है। लोगोंक इसका विकृत आकार, विकृत चेष्टा और विकृत वाक्यादि देख कर हंसी उडानेसे वह इसका आलम्बन विभाग तथा उसमें चेष्टा अर्थात् विकृत आकार, विकृत रूप और विकृत वेशादि जो चेष्टा होगी वह उद्दीपन विभाग तथा अक्षिसङ्कोच और वदनस्मेरतादि अनुभाव, निद्रा, आलस्य और अवहित्थादि इसका व्यभिचारिभाव होगा। इसी प्रकार रौद्रमें क्रोध, वीरमें उत्साह, भयानकमें भय, वीभत्समें जुगुप्सा, अद्भुतमें विस्मय, शान्तरसमें निर्वेद और शम स्थायिभाव हुआ करता है।

१५ किसी पदार्थका सार, तत्त्व। १६ नौकी संख्या। १७ सुखका अनुभव, आनन्द। १८ प्रेम, मुहब्बत। १९ विहार, काम-क्रीडा। २० उमङ्ग, जोश। २१ गुण, सिफत। २२ किसी विषयका आनन्द। २३ वनस्पतियों या फलों आदिमें-का वह जलीय अंश जो उन्हें कूटने, दवाने या निचोडने आदिसे निकलता है। २४ शोरवा, जूस। २५ वह पानी जिसमें मीठा या चीनी घुली हुई हो, शरवत। २६ वृक्षका निर्यास। २७ लासा, लुआव। २८ घोड़ों और हाथियोंका एक रोग। इसमें उनके पैरोंमेंसे जहरीला पानी वहता है। २९ वैद्यकमें धातुओंको फूंक कर तैयार किया हुआ भस्म। इसका व्यवहार औषधके रूपमें होता है। ३० केशवके अनुसार रगण और सगण। ३१ वोल नामक गन्धद्रव्य। ३२ एक प्रकारकी भेड। यह गिलगितसे उत्तर और पामीरमें मिलती है। ३३ भांति, तरह। ३४ मनकी तरंग, मौज।

रसक (सं० पु०) रस-संज्ञायां कन्। १ निष्क्वाथमास, मासका रसा। (क्ली०) २ स्फटिकारी, फिटकरी। ३ खर्परीतुत्थक, खपरिया।

रसककारवेल्लक (सं० पु०) पतला खपरिया, संगवसरी।

रसकदर्दुर (सं० पु०) दलदार मोटा खपरिया या संगवसरी।

रसकर्पूर (सं० क्ली०) सफेद रंगकी एक प्रकारकी प्रसिद्ध उपधातु जिसका व्यवहार औषधमें होता है, रसकपूर। यह प्रायः इंगुरके समान होता है इसीलिये इसको कुछ लोग शिंगरफ भी कहते हैं। एक और प्रकारका रसकपूर होता है जो वास्तवमें पारेकी सफेद भस्म होती है और इसका व्यवहार प्रायः युनानी चिकित्सामें होता है। वैद्यकमें इसका विषय जो वर्णित है वह इस प्रकार है,—

पांशुलवण और सैन्धवलवणके साथ निर्मल पारेको थूहरके दूधमें घोंट कर लोहेके वरतनमें रखे और खडिसे मुंह बंद कर दे। पीछे उसे लवण पूर्णभाण्डमें रख कर एक दिन तेज आंच देनेसे कुन्द वा इन्दुके सदृश भस्म सफेद हो जाता है। रसमञ्जरीकारने इसे रसकपूर तथा चन्द्रिकाकारने श्वेतभस्म कहा है। यह रसकपूर लवङ्गके साथ ४ रत्ती भर सेवन करनेसे ऊद्दुर्ध्वाविरेचन होता है। इसका सेवन कर वार वार जलपान करना उचित है। (रसेन्द्रसारसं०)

भावप्रकाशके मतसे इसकी शोधन प्रणाली—पारेको सक्षिप्त शोधन कर गेरूमट्टी, ईंट, खड़ि, फिटकरी, सैन्धवलवण, क्षारलवण और वरतन रंगानेकी मिट्टी प्रत्येक वस्तु पारेके वरावर ले कर अच्छी तरह चूर्ण करे। पीछे उसे कपड़ेमें छान कर पारेके साथ एक पहर तक घोंटे। अनन्तर एक थालीमें रख कर दूसरी थाली ऊपरसे ढंक दे। फिर कपडे और मिट्टीसे दोनों थालीका मुंह वंद कर सुखा ले और फिर उसी प्रकार लेप चढ़ावे। इसके वाद उसमें लगातार चार दिन तक आंच देते रहे। पीछे ठंढा होने पर थालीका मुंह धीरे धीरे खोल कर देखे, कि कपूरकी तरह निर्मल रस हुआ है या नहीं। अगर हो गया हो, तो उसीको शुद्धरस कपूर जानना चाहिये। यह कपूर वहुत गुणदायक है। देवकुसुम, चन्दन, कस्तूरी और कुंकुमके साथ जो व्यक्ति इस रसका सेवन करता है, उसका फिरंगरोग वहुत जल्द दूर हो जाता है। इससे अग्निदीप्ति, शरीरकी पुष्टि और वलवीर्यकी वृद्धि होती तथा वह सौ स्त्रीगमनमें समर्थ होता है। (भावप्र०)

रसकर्म्मन् (सं० क्ली०) पारेकी सहायतासे रस आदि तैयार करनेकी क्रिया।

रसकल्पना (सं० स्त्री०) दवाई बनानेके समय पारेको रचित रूपमें लाना ।

रसकल्पलता (सं० स्त्री०) वैद्यक रसग्रन्थभेद ।

रसकल्याणीव्रत (सं० क्ली०) व्रतकर्मविशेष । भविष्योत्तर पुराणके २२वें अध्यायमें तथा मत्स्यपुराणके ६२वें अध्यायमें इसका विवरण लिखा है ।

रसका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका क्षुद्र क्षुपयोग ।

रसकुल्या (सं० स्त्री०) पुराणानुसार कुशद्वीपकी एक नदी का नाम ।

रसकेतु (सं० पु०) राजपुत्रभेद ।

रसकेलि (सं० स्त्री०) १ विहार, क्रीड़ा । २ हँसी ठट्ठा, दिल्लगी ।

रसकेसर (सं० क्ली०) कर्पूर, कपूर ।

रसकेसरी (सं० पु०) औषधविशेष । प्रस्तुत प्रणाली—पारा १ तोला गंधक १ तोला, लौंग ५ तोला और विष ४ मासा एकत्र कर दंतीके चूर्णमें मर्दन करे और उड़द भरकी गोली बनावे । सोंठ या गुड़के साथ इस औषध का सेवन करनेसे सब प्रकारकी अरुचि, आमवात, विसूचिका, अग्निमान्द्य और अजीर्ण रोग जाता रहता है ।

रसकोमल (सं० क्ली०) खनिज पदार्थविशेष ।

रसक्रिया (सं० स्त्री०) व्रणका घनीभूत सारकरण, शरीर पर रसौषध मर्दन या स्वेदपान ।

रसखोरा (हिं० पु०) रसगुल्ला नामकी मिठाई ।

रसखर्पर (सं० पु०) खपरिया, खर्परी ।

रसखान—पिहानीके रहनेवाले एक कवि । इनका नाम सैयद इब्राहीम था । १६३० ई०में इनका जन्म हुआ था । ये थे तो मुसलमान पर भगवान्में इनकी अनुपम भक्ति थी । ये वृन्दावनमें रह कर भगवद्गुणगान किया करते थे । भक्तमालमें इनकी कथा लिखी हुई है ।

रसखीर (हिं० स्त्री०) ईखके रसमें अथवा ऊखके रसमें पकाये हुए चावल, मीठा भात ।

रसगतज्वर (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार शरीरकी रस धातु में समाया हुआ ज्वर । कहते हैं, कि ज्वर अधिक दिनोंका हो जानेसे शरीरके रस तक पहुंच जाता है और उससे ग्लानि, वमन और अरुचि आदि होती है ।

रसगन्ध (सं० क्ली०) १ बोल नामक गन्धद्रव्य । (पु०) २ गन्धरस, रसांजन ।

रसगन्धक (सं० पु०) रसगन्ध स्वार्थे-कन् । १ गन्धरस, रसौत । २ गंधक । ३ हिंगुल शिंगरफ ।

रसगन्धकसम्भूत (सं० क्ली०) हिंगुल, शिंगरफ ।

रसगर्भ (सं० क्ली०) १ रसांजन, रसौत । २ हिंगुल, शिंगरफ ।

रसगुग्गुल (सं० क्ली०) औषधभेद । प्रस्तुत प्रणाली—शोधित पारा १०० रत्ती गंधक ३० रत्ती, शोधित मरिच पाक गुग्गुल ४०० रत्ती, घी १०० रत्ती, इन्हें पाताल यन्त्रसे अच्छी तरह मर्दन कर २० गोली बनावे । इसके सेवनका नियम पूर्वोक्त भैरवरसकी तरह है अर्थात् प्रथम तीन दिन तीन तीन करके और चौथे दिनसे एक एक करके सेवन करे । १४ दिनमें कुल औषध शेष हो जायगा । खानेका नियम इस प्रकार है—पहले दिन पारांश, दूसरे दिन आधा और उसके बाद तिहाई परिमाणसे खाना उचित है । गुड़ मिला हुआ व्यञ्जन और मसूरकी दालका जूस बहुत लाभदायक है । तरकारीमें पुनर्नवा, परवलका पत्ता, तिकपत्ती, गोखरू और पुटपत्तीको घीमें भून कर खाने कहा है । लवण खाना निषिद्ध है । उसके बदले सोनी काममें लावे । अन्यान्य मसालेके बदले लवङ्ग, संगरेले, हींग और जीरेका व्यवहार करना होगा । इसमें भैरव रसोक्त सभी नियम प्रतिपाद्य हैं । रसगुग्गुलका सेवन करनेसे कुष्ठ और स्पर्श आदि नाना प्रकारके रोग दूर हो कर देहका लावण्य और आयुकी वृद्धि होती है ।

इसका धूम—शुद्ध रस धनीका भस्म, हर्रेका भस्म, कोमल केले, फूलका भस्म सुपारीका भस्म प्रत्येक १ तोला, हिंगुल हरिताल, गन्धक, तूतिया, एलवालु, सरल काष्ठ, श्वेत चन्दन, रक्तचन्दन, देवदारु, नागेश्वर काष्ठ प्रत्येक १ मासा संग्रह करे । इन्हें एकत्र चूर्ण कर लोहेके बरतनमें छोड़के हल्दीसे अमलतास रस, तुलसी पत्तेका रस, पुराने गुड़ और घीके साथ घोटे और बादमें छः गोली बनावे । इसका धूआं ऐसा होता है । उसका नियम यह है, कि रोगीके मुंह, नाक और कानको छोड़ कर और सब अङ्ग सफेद कपड़ेसे ढंक दे । किसी बर तनमें निर्धूम आग रख उसमें एक गोली दे । आगका

बरतन ऐसे स्थानमें रखे जिससे धूआं सारे शरीरमें लग सके। अधिक पीड़ा दिखाई देनेसे २ अथवा ४ गोली तकका धूआं लेना उचित है। इससे पसीना निकल कर रोगकी शान्ति होती है। धूआं ले चुकनेके बाद पसीनेको सफेद कपड़ेसे पोंछ डाले। तीन दिन इस प्रकार करते रहनेसे रोग आरोग्य होता है। किन्तु एक मास सुपथ्य सेवन करके बड़ी सावधानीसे रहना होगा। इसमें साग, खट्टा, दही, गुड़, अन्न और खीर आदि खाना मना है। तीन दिनके बाद गरम जलमें स्नान करना कर्त्तव्य है। इस क्रियासे कुष्ठ और उपदंश आदि रोग शान्त होते हैं। (भैषज्यर० उपदंशाधि०)

इसका प्रलेप—मोरचा लगे हुए लोहेके बरतनमें लौह-दण्ड द्वारा विषतिन्दुकको अच्छी तरह घोंटे। पीछे यथा-क्रम थूहरका मूल, स्वर्णमाक्षिक, तूतिया और पारा इन्हें एकत्र घिस कर लिङ्गमें प्रलेप दे। यह प्रलेप सूखने पर फिर उसके ऊपर प्रलेप दे। प्रलेपको कभी भी उखाड़ कर न फेंके। इस प्रकार बराबर औषधका सेवन करनेसे रोग बहुत जल्द आरोग्य होता है।

रसगुडिका (सं० स्त्री०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—रसकपूर एक भाग, विडङ्ग, मिर्च और अबरक प्रत्येक तीन तीन होगा। वनपालङ्कके रसमें घोंट कर प्रतिदिन रत्ती भर सेवन करनेसे गुह्यार्श आरोग्य होता तथा अग्निकी वृद्धि होती है। (भैषज्यरत्ना० अर्श०)

रसगुल्ला (हिं० पु०) एक प्रकारकी छेनेकी मिठाई। यह गुलाब जामुनके समान गोल होती और शीरेमें पड़ी हुई होती है।

रसग्रह (सं० त्रि०) १ मर्मग्रह। (स्त्री०) २ जिह्वा, जीभ।

रसग्राम—बंगालके अन्तर्गत एक प्राचीन गांव। (ब्र० ख० ७।३६)

रसग्राहक (सं० त्रि०) रसास्वादग्रहण शक्तिसम्पन्न।

रसघन (सं० त्रि०) १ पर्याप्त रसविशिष्ट, जो बहुत अधिक स्वादिष्ट हो। (पु०) २ आनन्दघन, श्रीकृष्णचन्द्र।

रसघ्न (सं० पु०) रस रसस्य दोषावहशक्ति हन्तीति हन-टक्। टङ्कण, सुहागा।

रसचन्द्रिकावटी (सं० स्त्री०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—सागका बीया, धतूरेका बीया, कंटकारी, हिजल और वृद्धदारुका बीया, पारा और गंधक एकत्र कर अद-रकके रसमें मर्दन करना होगा। पीछे उसकी उड़द भरकी गोली बनानी होगी। इसका अनुपान जल है। सवेरे इस औषधका सेवन करना होता है। इसका सेवन करनेसे शिरोरोग, आमवात, मन्यास्तम्भ और गलग्रहरोग अति शीघ्र प्रशमित होता है।

रसछन्ना (हिं० पु०) ऊखका रस छाननेकी चलनी।

रसज (सं० पु०) रसाज्जात' जन-ड। १ गुड़। २ सुरा-बीज, शराबकी तलछट। ३ रक्त। (सुश्रुत सूत्रस्था० १४ अ०)। (त्रि०) ४ रसजात, रससे उत्पन्न।

रसजात (सं० क्ली०) रसांजन, रसौत।

रसज्ञ (सं० त्रि०) रसं जानाति ज्ञा-क। १ रसवेत्ता, रस जाननेवाला। २ रसायनी। ३ काव्य-मर्मज्ञ। ४ निपुण, कुशल।

रसज्ञता (सं० स्त्री०) रसज्ञस्य भावः तल-टाप्। रसज्ञका भाव या धर्म।

रसज्ञा (सं० स्त्री०) १ गंगा। २ जिह्वा, जीभ।

रसज्ञान (सं० क्ली०) रसस्य ज्ञानं। रसबोध।

रसज्येष्ठ (सं० पु०) रसेषु ज्येष्ठः। १ मधुर या मीठा रस। २ शृङ्गाररस।

रसडली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका गन्ना जिसका रंग नीलापन लिये हरा होता है और जो प्रायः बीजापुर और उसके आस-पास बहुत होता है। इसे रसवली भी कहते हैं।

रसड़ा—१ युक्तप्रदेशके बलिया जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २५° ४६' से २६° ११' उ० तथा देशा० ८३° ३८' से ८४° ३' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४३३ वर्गमील और जनसंख्या तीन लाखके करीब है। इसमें दो शहर और ६६७ ग्राम लगते हैं। यह तहसील उत्तर गोगरासे ले कर दक्षिण छोटी सरयू तक फैली हुई है। यहां ईख और धान जिले भरसे अच्छा उपजता है।

२ उक्त तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २५° ५१' उ० तथा देशा० ८३° ५२' पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या दश हजारके लगभग है। यहां वाणिज्य जोरों चलता है। शहरमें झाड़ियोंसे घिरा मात्र बाबा नामक एक तालाब है। तालाबके किनारे बहुतसे मट्टीके टीले हैं जिन्हें

लोग सतीका कीर्तिस्तम्भ बतलाते हैं। शहरमें १८५९ ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। यहांसे रुई, चमड़े और कार्बनेट आव सोडेकी रफ्तनी तथा रुई, कपड़े, लोहे और मसालेकी आमदनी होती है। शहरमें एक अस्पताल और एक स्कूल है।

रसतन्मात्रा (सं० स्त्री०) पाँच तन्मात्राओं या महत्त्वोंमेंसे चौथे तत्त्व जलकी तन्मात्रा।

रसतम (सं० पु०) उत्कृष्ट रस, सार रस।

रसता (सं० स्त्री०) रसस्य भावः तल टाप्। रसका भाव या धर्म।

रसतालेश्वर (सं० पु०) वैद्यकमें एक प्रकारका रस जिस का व्यवहार कुष्ठ रोगमें होता है। इसके बनानेका तरीका—शंख, करंज, इसकी मिलावे कोकुआर, गरुड़ पूरना, गंधक, पारे, अस्थि और त्रिकटु इन सब द्रव्योंको एकत्र कर गोमूत्रमें पाक करे। रोगके बलाबलके अनुसार इसकी मात्रा स्थिर करनी होती है। यह औषध मधुके साथ सेवन करनेसे कण्डू विचर्चिका और कुष्ठ अति शीघ्र विदूरित होता है। (रसेन्द्रसारसं० कुष्ठरोगाधि०)

रसतेजस (सं० क्ली०) रसात् रसजन्यं वा तेजो यस्य। रक्त, लहू।

रसत्याग (सं० पु०) दूध, दही, घी, तेल मीठा पकवान आदि स्वादिष्ट पदार्थों का त्याग करना जो एक प्रकारका नियम या आचार माना जाता है।

रसत्व (सं० क्ली०) रसका भाव या धर्म, रसता।

रसद (सं० त्रि०) १ आनन्ददायक, सुखद। २ स्वादिष्ट, मजेदार। (पु०) ३ चिकित्सा करनेवाला, इलाज करने-वाला व्यक्ति।

रसद (फा० स्त्री०) १ वह जो बँटने पर हिस्सेके अनुसार मिले, बांट। २ खाद्य सामग्री जो पकाया न गया हो, भोजन बनानेके लिये अन्न आदि। ३ सेनाका वह खाद्य पदार्थ जो उसके साथ रहता है।

रसदा (सं० स्त्री०) श्वेतनिर्गुण्डी, संभालू।

रसदार (हिं० वि०) १ जिसमें किसी प्रकारका रस हो, रसपगा। २ स्वादिष्ट, मजेदार।

रसद्राविका (सं० स्त्री०) रसं द्रावयति इति द्रु णिच् ण्वुल टाप् अत इत्वं। पुण्ड्रकेक्षु, पौंड़ा गन्ना। (राजनि०)

रसद्राविन् (सं० पु०) रसं द्रावयतीति द्रु णिच् णिनि। मधुर जम्बीर, मीठा जंबीरी नीबू।

रसधातु (सं० पु०) रसात्मको धातुः। १ पारद, पारा। २ शरीरकी सात धातुओंमेंसे रस नामक धातु।

विशेष विवरण 'रस' शब्दमें देखो।

रसधेनु (सं० स्त्री०) रसकल्पिता धेनुः। पुराणानुसार गुड़ आदिकी बनाई हुई वह गौ जो दान की जाती है। इस गौकी कल्पना कर दान करना होता है।

"रसधेनु महाराज! कथयामि समासतः।

अनुलिप्ते महीपृष्ठे कृष्णाजिनकुशान्तरे॥"

(वराहपु० श्वेतोपाख्यानमें रसधेनुमा०)

वराहपुराण और हेमाद्रिके दानखण्डमें इस दानका विवरण और विधान वर्णित है। जो विधिपूर्वक यह दान करते हैं। उनको विष्णुलोकमें गति होती है।

रसन (सं० क्ली०) रस भावे ल्युट्। १ स्वाद लेना, चखना। २ ध्वनि। रस्यते रसयत्यनेन वा रस-करणे ल्युट्। ३ जिह्वा, जीभ। ४ कफका एक नाम। (त्रि०) ५ पसीना लानेवाला।

रसन (हिं० पु०) रस्सा।

रसना (सं० स्त्री०) रस युच्-टाप् च। १ जिह्वा, जीभ। २ न्यायके अनुसार रस या स्वाद जिसका अनुभव रसना या जीभसे किया जाता है।

"रसस्तु रसनाग्राह्यो मधुरादिरनेकधा।

सहकारी रसज्ञाया नित्यतादि च पूर्ववत्॥

घ्राणस्य गोचरो गन्धो गन्धत्वादिरपि स्मृतः।

तथा रसो रसज्ञायास्तथा शब्दोऽपि च श्रुतेः॥"

(भाषापरि०)

३ रास्ना या नागदौना नामकी ओषधि। ४ गन्ध भद्रा नामकी लता। ५ कांची, चन्द्रहार। ६ रज्जु, रस्सी। ७ करधनी, मेखला। ८ लगाम।

रसना (हिं० क्रि०) १ धीरे धीरे बहना या टपकना। २ गीला हो कर या परतोंसे भर कर धीरे धीरे जल या और कोई द्रव पदार्थ छोड़ना या टपकाना। ३ रसमें मग्न होना, रससे पूर्ण होना। ४ रसपान करना, स्वाद लेना। ५ प्रेममें अनुरक्त होना मुहब्बतमें पड़ना। ६ तन्मय होना, परिपूर्ण होना।

रसनाथ (सं० पु०) रसाना नाथः। पारद, पारा।

रसनापद (सं० क्ली०) रसनायाः पदं स्थान। नितम्ब देश, चूतड़।

रसनाभ (स० क्ली०) रसाञ्जन, रसौत।

रसनायक (सं० पु०) रसाना नायकः नेता रसायन विद्याविष्कारकत्वादस्य तथात्वं। १ शिव, महादेव। २ पारद, पारा।

रसनारव (सं० पु०) वह पक्षी जिन्हें बोलनेके लिये केवल जीभ ही होती है दांत नहीं होते।

रसनालिह (सं० पु०) रसनया लेढीति लिह्-क्विप्। १ कुक्कुर, कुत्ता। (त्रि०) २ रसना द्वारा लेहनकारी, जीभसे चाटनेवाला।

रसनिगड (सं० पु०) रसनियामक शृङ्खलरूप औषध। आकंद, सीजके दूध, पलासवीज, गुग्गुल तथा दुगने सेंधा नमकके साथ पारा मर्दन करनेसे यह औषध बनता है। (रसेन्द्रसारस०)

रसनिधान—एक कवि। इनका बनाया एक भैरव उदाहरणार्थ नीचे देते हैं,—

"देवमणि दिनमणि मान दिन कहांसे तिमिर हरत
रैनि तपनि त्रिगुण द्वादश आतम नेत्र मार्त्तण्ड।
हस्नरश्मपुषा जगतारण जनचक्षु
जगवन्दन प्राणहरण प्रचण्ड॥
सूरज सुर महल ग्रह तू वेजानपति
अगति तू अगति सतदीप नवखण्ड।
रसनिधान सेवकको दीजे सन्तुष्ट कीजे
दीजिये सुर ताप अखण्ड॥"

रसनिर्यास (सं० पु०) शालवृक्ष, शालका पेड़।

रसनिवृत्ति (सं० स्त्री०) आस्वादनशक्तिकी हीनता।

रसनीय (स० त्रि०) १ आस्वादनके योग्य, चखने लायक। २ स्वादिष्ट, मजेदार।

रसनेत्रिका (सं० स्त्री०) रसो नेत्रमिव तदस्त्यस्या इति रसनेत्र ठन्। मनःशिला, मैनसिल।

रसनेन्द्रिय (सं० स्त्री०) रसना जिससे स्वाद या रस लिया जाता है, जीभ।

रसनेष्ट (सं० पु०) रसनायाः इष्टः। इक्षु, ऊख।

रसनोपमा (स० स्त्री०) एक प्रकारकी उपमा जिसमें उपमाओंकी एक शृंखला बंधी होती है और पहले कहा हुआ उपमेय आगे चल कर उपमान होता जाता है। यह "उपमा" और "एकावली" को मिला कर बनाया गया है। इसे गमनोपमा भी कहते हैं।

रसपति (सं० पु०) १ चन्द्रमा। २ पारद, पारा। ३ पृथ्वीपति, राजा। ४ रसराज, शृंगाररस।

रसपरित्याग (स० पु०) जैनोंके अनुसार दूध, दही, चीनी, नमक या इसी प्रकारका और कोई पदार्थ बिलकुल छोड़ देना और कभी ग्रहण न करना।

रसपर्पटी (स० स्त्री०) ग्रहणी अधिकारोक्त औषध विशेष। इस औषधका सेवन कर जिसका रोग दूर नहीं होता उसकी व्याधिको असाध्य जानना चाहिये। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—

इस पर्पटी क्रियाके पहले पारेका मलदोष दूर करना उचित है। निम्नोक्त-आश्रयसे यह दोष दूर करना होता है। पहले ८ तोला पारा ले कर घृतकुमारीके रसमें घोंटना होगा। इससे पारेका मलदोष, त्रिफलाचूर्णके साथ घोंटनेसे वह्निदोष तथा चितापत्तेक रसमें घोंटनेसे विषदोष नष्ट होता है। पीछे यथाक्रम जयन्ती, रेंड़ी, अदरक और काममकवीके पत्तोंके रसमें डाल कर घोंटे। जब तक रस बिलकुल सूख न जाय, तब तक घोंटना बंद न करे। इसी प्रकार पारा ले कर गंधकके साथ मिला लेना होगा। जो गंधक मुर्गेकी पूंछकी तरह कान्तिविशिष्ट, मक्खनकी तरह ज्योतिशाली, चिकना कठिन और स्निग्ध होती है वही श्रेष्ठ है। इस प्रकार ८ तोला गंधक छोटे छोटे तडुलाकारमें बना कर भृङ्गराजके रसमें ७ बार भावना दे और धूपमें सुखा कर धूलके समान चूर्ण कर ले। पीछे उस गंधकको लोहेके बरतनमें रख कर निधूम बेरकी लकड़ीकी आंचमें गलावे और तब उसे भृङ्गराजके रसमें डाल दे। डालते ही गन्धक कठिन हो जायगी। अनन्तर गंधकको धूपमें सुखा कर तथा अच्छी तरह चूर्ण कर केतकीपुष्पकी धूलके समान बनाना होगा।

इस प्रकार शोधित पारा और शोधित गंधक समान भाग ले कर अच्छी तरह मर्दन करना होगा। जब तक निश्चन्द्र अर्थात् पारा अदृश्य न हो जाय तब तक मर्दन करते रहे। चूर्ण कज्जलके समान होने पर उसे लोहेके

बरतनमें रख निधूम बेरको लकड़ीकी आंचमें गला कर तैलवत् करना होगा। पीछे गोबरके ऊपर एक कलाके केलेका पत्ता बिछा कर उस पर द्रवीभूत कज्जली ढाल दे और ऊपरसे गोबर भरा हुआ एक दूसरा पत्ता बिछा दे। द्रवीभूत कज्जलीका जो अंश कठिन हो कर लोहेके बरतनमें लग जायगा उसे न उठावे। यह पर्पटी यदि मयूरपुच्छको चन्द्रिकाके सदृश हो जाय, तो जानना चाहिये कि यह बिलकुल तैय्यार हो गई। उत्तम दिन देख कर इसका सेवन करना होता है।

वातोदररोगमें १ रत्ती जीरा और १ रत्ती हींगके साथ इसका सेवन करना चाहिये। पर्पटी खानेके बाद तुरत जल पीना उचित नहीं है। प्रथम दिन दो रत्ती और बाद एक एक रत्ती रोज बढ़ा कर १० रत्ती तक सेवन करे, १० रत्तीसे अधिक मात्रा न बढ़ानी चाहिये। २१ दिन यह औषध सेवन करनेका नियम है।

इस औषधके व्यवहारकालमें वायु और रौद्रसेवन, क्रोध, अधिक चिन्ता, यथेष्ट समय व्यतिक्रम, व्यायाम, परिश्रम, स्नान और बहुत बोलना वर्जनीय है। घी, सैन्धव, जीरा और धनियासे तैयार किया हुआ व्यञ्जनादि, शालितण्डुलका भात, वास्तूकशाक, कायादि द्वारा भग्न छिन्न मूंग, परवल, सुपारी अदरक, काकमाचीका साग, लावादि पक्षीका मांस, मौंगरी रोहू और काली मछली, जलके साथ सिद्ध दूध, ये सब सुपथ्य बतलाये गये हैं। रसोनक निम्बादि तिक्त द्रव्य, उष्णाक बराहादि और जलचर आदि पक्षीका मांस अम्लद्रव्य दधि, शाक आदि निषिद्ध है। स्त्रियोंके साथ सम्भाषण तक भी न करे। गुड़, चीनी और इक्ष आदि द्रव्य अग्रहणीय है। भूख लगने पर कुछ अदरक खा लेना चाहिये। आधी रातको यदि भूख लगे, तो भी कुछ अदरक खा ले। यदि कुपथ्यके कारण वमन हो जाय तो नारियलका पानी और दूध पीना उचित है। जब तक अच्छी तरह भूख न लगे, तब तक कुछ भी भोजन न करे। अन्नद्वेष होने पर दुग्ध पान हितकर है। जो उक्त नियमका पालन किये बिना औषधका सेवन करता है, यह आरोग्य तो क्या होगा, विविध रोग उसे सताता है। नियमपूर्वक इसका सेवन करनेसे ग्रहणी, अर्श, उदर, पाण्डु, कामला, गुल्म, प्लीहो ज्वर और अग्निमान्द्यादि नाना प्रकारके रोग शान्त होते हैं। (भैषज्यरत्ना० ग्रहणीरोगाधि०)

रसपाकज (सं० पु०) रसपाकात् जायते इति जन ड। १ गुड़। २ शर्करा चीनी।

रसपाचक (सं० पु०) भोजन बनानेवाला, रसोइया।

रसपुष्प (सं० क्ली०) वैद्यकमें एक प्रकारका दवा जो गंधक, पारे और नमकसे बनाई जाती है।

रसपूतिका (सं० स्त्री०) १ मालकंगनी। २ शतावर।

रसप्रयोग (सं० क्ली०) रसौषध सेवन करनेकी व्यवस्था।

रसप्रबन्ध (स० पु०) १ नाटक। २ वह कविता जिसमें एक ही विषय बहुतसे परस्पर सम्बद्ध पद्योंमें कहा गया हो।

रसफल (सं० पु०) रसो अर्क फले यस्य, रसयुक्त फल मस्येति वा शाकपार्थिववत् मध्यपदलोपिसमासः। १ नारियलका पेड़। २ आमलकीवृक्ष, आंवलेका पेड़।

रसबन्धकर (सं० पु०) सोमलता।

रसबन्धन (सं० क्ली०) शरीरके अन्तर्गत नाड़ीके एक अंश-का नाम।

रसबत्ती (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका पलीता जिसका व्यव हार पुराने ढ गकी तोपें और बन्दूक चलानेमें होता था।

रसबरी (हिं० स्त्री०) रसभरी देखो।

रसभरी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका स्वादिष्ट फल। पकने पर इसका रंग पीलापन लिये लाल हो जाता है। यह जाड़े के अन्तमें प्रायः बाजारोंमें मिलता है।

रसभव (सं० क्ली०) रसात् रसे वा भवतीति भू अच्। रक्त, लहू।

रसभस्म (सं० क्ली०) रसस्य भस्म। पारेका भस्म, भस्म किया हुआ पारा।

रसभाव (स० पु०) रसस्य भावः। रसधर्म, स्निग्धता आदि।

रसभीना (हिं० वि०) १ आनन्दमें मग्न। २ आर्द्र तर गीला।

रसभेद (सं० पु०) १ वैद्यकमें एक प्रकारका औषध जो पारेसे तैयार किया जाता है। २ संगीत और नाटक आदिमें वर्णित रससमूहोंका महत्त मर्म मालूम करना। ३ रसाघात, रसका बदलना।

र (सं० त्रि०) वह पका हुआ फल जो रस
ी अधिकतासे फट जाय और जिसमेंसे रस वहने

न (सं० पु०) १ तरल द्रव्य पीना। २ एक
जिसमें ब्राह्मणोंको सिर्फ आम ही खिलाया
है।

र (सं० क्ली०) वैद्यकमें एक प्रकारका रसौषध।
प्रस्तुत प्रणाली—हरीतकीका चूर्ण ४ पल, शुद्ध
ा चूर्ण २ पल, विशुद्ध मण्डूरका चूर्ण २ पल,
ीका रस ४ सेर, केशुरियाका रस ४ सेर, इन सब
ो एकत्र कर लोहेके खलमें मर्दन करना होगा।
से धूपमें सुखा लेनेसे चूर्ण तैयार करना होगा।
मात्रा ४ रत्तीसे ले कर ३ मासे तक बढ़ानी होगी।
षध घी और मधुके साथ मिला कर सेवन करना
। इसका व्यवहार शूल और अम्लपित्तादि रोगमें
। (भैषज्यरत्ना० शूलरोगाधि०)

(सं० त्रि०) रस स्वरूपे मयट्। रसस्वरूप, रसके
।

दास—एक वैष्णव पद-कर्त्ता। नीलाचलके गोपी-
रमें गोपवंशमें रसमयने जन्म ग्रहण किया था।
श्यामानन्दसे वैष्णव-मन्त्रमें दीक्षित हुए। रसमय
ामें कई एक पद बना कर स्मरणीय हो गये हैं।
ांच पुत्रोंमेंसे सबसे बड़े पुत्र गोपीजनवल्लभ एक
। रसिकमङ्गल ग्रन्थ (दो वर्ष परिश्रमके बाद)
ही बनाया हुआ है। यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रामाण्य
कि समसामयिक अनुसङ्गी शिष्यने लिखा है।

दास—गीतगोविन्दके बंगला पद्योंके अनुवादक।
ारी गोस्वामीके शिष्य थे।

दासी—एक प्रवीणा स्त्री कवि। पदकल्पतरुमें
एक पद है। दूसरे दूसरे ग्रन्थों भी इसके पद
हैं।

न (सं० क्ली०) रसस्य पारदधातोमर्द्दनं। पारद-
वैद्यकमें पारेको भस्म करने या मारनेकी क्रिया।
(सं० क्ली०) शरीरसे निकलनेवाला किसी प्रकार-
ा।

ा (हिं० वि०) १ रंगमें मस्त, आनन्दमग्न।
ीनेसे भरा, श्रान्त। ३ तर, गीला।

रसमाणिक्य (सं० क्ली०) कुष्टरोगका औषधविशेष।
प्रस्तुत प्रणाली—वंशपत्र और हरतालको कोंहड़ेके जल
तथा खट्टे दहीमें यथाक्रम तीन बार या सात बार भावना
दे कर सुखा ले। पीछे तण्डुलाकृतिका बना कर शरावक
यन्त्रमें रखे और वेरकी पत्तियोंके फाड़ेसे लेप दे। नीचे
एक बरतन रखना होगा। यह बरतन जब तक लाल न
हो जाय, तब तक कड़ी आंच देनी होगी। ठंढा होने
पर उसमेंसे औषधको बाहर निकाल लेना होगा। इससे
हरिताल माणिक्यके समान चमकने लगता है। घी और
मधु मिला कर प्रति दिन दो रत्ती भर सेवन करनेसे
कुष्ठादि नाना प्रकारके रोग नष्ट होते हैं।

(भैषज्यरत्ना० कुष्ठरोगाधिकार)

रसमातृका (सं० स्त्री०) जिह्वा, जीभ।

रसमारकद्रव्य (सं० क्ली०) पारदमारक द्रव्य, वह वस्तु
जिससे पारा मारा जाता है। रसमारकद्रव्य ये सब
हैं,—मोथा, वच, चिता, गोखरू, तितलौकी, दन्ती,
जातीपुष्प, रास्ना, शरपुङ्ख, घृतकुमारी, चण्डालिनी, ओल,
हारमुच, लज्जालु, घोषा, लाक्षा, दन्तोत्पल, अतिवला,
पीपल, सम्हालू, बड़ी इलायची, विषलांगुली, शाल, आकन्द,
सोमराज, रविभक्ता, काकमाची, श्वेत आकन्द, अपराजिता,
वायसतुण्डी, थूहर, विजवंद, सोंठ, वराहक्रान्ता, बलां-
टिमका, कदली, कच्ची इमली, हल्दी, दारुहल्दी, पुनर्णवा,
श्वेतपुनर्णवा, धतूरा, काकजंघा, शतमूली, शिरिशा, पर-
गाछा, तिल, भेकपर्णी, दूर्वा, मूर्वा, हरीतकी, तुलसी,
मूसाकानी। (रसेन्द्रसारसं)

रसमारण (सं० क्ली०) रसस्य पारदस्य मारणं। वैद्यक-
में वह क्रिया जिससे पारा मारा या शुद्ध किया जाता है।
पारद देखो।

रसमात्र (सं० क्ली०) १ रसतन्मात्र। २ रसस्वरूप, रस-
के समान।

रसमाला (सं० स्त्री०) शिलारस नामक सुगन्धित द्रव्य।

रसमुंडी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी बंगला मिठाई।

रसमुयाडी—वेलुचिस्तान और सिन्धुप्रदेशके मध्यवर्त्ती
हाव नदीके मुहाने पर अवस्थित एक अन्तरीप। यह
केपमंज नामसे मशहूर है और अक्षा० २४° ५०′ उ० तथा
देशा० ६६° ४५′ पू०के बीच पड़ता है। यह स्थान जेवेल

पाव पर्वतका एक अंश और समुद्रपृष्ठसे प्रायः तेरह सौ फीट ऊंचा है। समुद्रकी गहराई कम होनेके कारण यह बन्दरके उपयोगी नहीं है।

रसमूर्च्छन (सं० क्ली०) रसस्य पारदस्य मूर्च्छनं। पारे का मूर्च्छाकरण। पारद देखो।

रसमूषा (सं० पु०) ग्राहक उल्कोभेद।

रसमैत्री (सं० स्त्री०) दो ऐसे रसोंका मिलना जिनके मिलनेसे स्वादमें वृद्धि हो, दो रसोंका उपयुक्त मेल। जैसे—कड़ुआ और तीता, तीता और नमकीन, नम कीन और खट्टा आदि।

रसयति (सं० स्त्री०) आस्वादन चखना।

रसयितव्य (सं० त्रि०) आस्वादन योग्य सुमिष्ट।

रसयितृ (सं० त्रि०) आस्वादग्रहणकारी, चखनेवाला।

रसयोग (सं० पु०) आयुर्वेदोक्त वैज्ञानिक उपायसे मिश्रित एक प्रकारकी औषध।

रसरङ्ग—लखनऊके रहनेवाले एक कवि। ये १८०० सम्वत्में विद्यमान थे। इनकी कविता सरस और मनोहर होती थी। इनकी रचनायें साधारण कवियोंमें है। इन्होंने ब्रजभाषामें कविता की है और वह सराह नीय है—

"सुखमाके सिन्धुको सिंगारके समुन्दर के
मथि के सकल सुधा सुखसों निकासे हैं।
करि उपचारे वाको स्वच्छता उकरि तामें
सौरभ बादाम भी वो छाव रच रासे हैं।
कवि रसरंग ताको सब ओ निकासे
ताको परिणाम वदन सब सिमिले मंडल हैं।
वदन संवारि विधि भामा शाय उन्मा रंग
ताको भयो चन्द, कर माल मल धरे हैं॥"

रसरञ्जन (सं० क्ली०) रसस्य रञ्जनं। पारेका रञ्जना उत्पादन।

रसरहस्य (सं० क्ली०) पारद मारण आदि रासायनिक कौशल।

रसराज—एक कवि। इनकी कविता अच्छी होती थी। इनका बनाया काफी नाम भी है—

"ये राउ रसब हो हो हरी।
नन्दनन्दन वृषभानुनन्दिनी बसार गुलाल सिंच
कर जावे॥
वृन्दावनकी कुञ्जगलिनमें बालक हो हो डोरे।
परस्पर रंगमें बोरी॥
कर कंचन कंचन पिचकारी केसर रंग से बोरे।
छिरकत रंग गुलाल हिये हरषे निरख हृदय सुखमोरी
करे चितवन चित चोरी॥
धन वृन्दावन धन गोकुल यह जहां यह रास रच्योरी।
श्रीरसराज प्रभु ऊपर डारो वारू बैकुण्ठ करोरी
मुक्त बिन काको चोरी॥"

रसराज (सं० क्ली०) औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—गंधक द्वारा जारित ताम्र १ तोला गंधक १ तोला और पारा ४ माशा इन्हें ओलके रसमें एक साथ मर्दन कर गजपुटमें पाक करे। ठंढा होने पर उसे नीचे उतार कर २ रत्तीकी गोली बनावे। मधुके साथ इसका सेवन करने से प्लीहा यकृत् और गुल्मरोग प्रशमित होता है।

रसराज (सं० पु०) रसानां धातूनां राजा (राजाहःसखिभ्य ष्टच्। पा ५।४।९१) इति टच्। १ पारद पारा। २ रसा ञ्जन, रसौत। ३ रसोंका राजा, शृङ्गाररस।

रसराजरस (सं० पु०) वातव्याधिरोगका औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—रससिन्दूर ८ तोला, अभ्रक २ तोला, सोना १ तोला, इन्हें घृतकुमारीके रसमें भिगो रखे। पीछे रांगा, असगंध, लवङ्ग जैत्री, क्षीरकाकोली प्रत्येक आध तोला उसमें मिला कर ५ रत्तीकी एक एक गोली बनावे। इसका अनुपान दूध और चीनीका जल है। इसका सेवन करनेसे पक्षाघात, अर्दित, हनुस्तम्भ, अप तन्त्र और धनुष्टङ्कार आदि रोग अच्छे हो जाते हैं।

रसराजेन्द्र (सं० पु०) सन्निपात ज्वराधिकारमें औषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली—रस १ पल, तांबा १ पल, अभ्रक १ पल, सोना १ पल, रांगा १ पल गंधक १ पल, इन्हें काकमाचीके रसमें एक साथ मर्दन करे। पीछे रोहितमत्स्य शूकर मयूर, और बकरेके पित्तके साथ एक एक कर मर्दन करके त्रिकटुके काढ़ेमें अच्छी तरह घोंटे। इसके बाद उसमें आठ गुना जल डाल कर त्रिकटुके काढ़ेमें सिद्ध करना होगा। सिद्ध करते करते जब आठवां भाग जल रह जाय, तब उसे नीचे उतार ले। पीछे फिरसे त्रिकटुके काढ़ेमें मर्दन करे और एक सौ बार मरदनके रसमें भिगा कर रत्ती भरकी गोली बनावे।

इसका अनुपान तुलसीपत्रका रस है। यह औषध सेवन करनेके बाद सिर पर लगातार जल छोड़ना होगा और यदि दाह उपस्थित हो, तो जल, दधि और अन्न खिलाना होगा। इस औषधके सेवनसे सभी प्रकारके सन्निपातिक ज्वर निवृत्त होते हैं।

(भैषज्यरत्ना० ज्वररोगाधि०)

रसल (सं० त्रि०) जिसमें रस हो, रसवाला।

रसलीन—एक मुसलमान कवि। इन्होंने १८वीं सदीमें कविता की थी। हरदोई जिलान्तर्गत बिलगराम नामक एक कसबा है जो मल्लायँसे पांच कोसकी दूरी पर स्थित है। बिलगराममें बहुत दिनोंसे बड़े बड़े विद्वान् मुसलमान होते रहे हैं और अब भी वर्त्तमान हैं। यह स्थान विद्या और गुणोंके लिये इतना विख्यात है, कि लोग बिलगरामी होना एक महत्त्व-सूचक उपाधि समझते हैं। यह उपाधि रसलीनके समयमें भी श्रद्धाभाजन समझी जाती थी, कारण उन्होंने अपनेको बिलगरामी करके लिखा है। आपने अपनेको बाकर पुत्र कहा है।

शिवसिंहसरोजमें इनका उल्लेख इस तरह है,—ये अरबी, फारसीके आलिम फाजिल और भाषाके बड़े निपुण कवि थे। रसप्रबोध नामक ग्रन्थसे इनकी कविताका पूरा परिचय मिलता है। इनके कुतुबखानेमें पांच सौ जिल्द भाषा काव्यकी थीं।

सम्भवतः इनका जन्म संवत् १७४६ ई०में हुआ था। इन्होंने अपना पूरा नाम 'श्री हुसैनी वासती बिलगरामी सैयद, बाकर सुत सैयद, गुलाम नबी रसलीन' लिखा है। इनका बनाया दो ग्रन्थ 'अंगदर्पण' और 'रसप्रबोध' मिलता है। प्रथम ग्रन्थ 'अंगदर्पण' १७९४ ई०में रचा गया था। इसमें १७७ दोहे हैं जिनमें नायिकाके नखशिखका वर्णन है। यह वर्णन बड़ा ही भड़कीला है। इसमें उपमायें, रूपक और उत्प्रेक्षायें चमत्कारूपसे हैं। द्वितीय ग्रन्थ 'रसप्रबोध' एक बड़ा ग्रन्थ है। इसमें ११५५ दोहों द्वारा रसोंका विषय विशदरूपसे और प्रशंसनीय रीतिसे सांगोपांग वर्णित है। इसमें अलङ्कारोंका विषय बिल्कुल नहीं कहा गया है। रसोंका वर्णन भावोंके बिना अच्छा नहीं कहा जा सकता इस कारण रसलीन महाशयने भावभेद भी बहुत विस्तारपूर्वक कहा है। रसलीनने कहा है, कि यदि कोई यह ग्रन्थ ध्यानपूर्वक पढ़े, तो उसे रसोंका विषय जाननेके लिये किसी दूसरे ग्रन्थके पढ़नेकी आवश्यकता न रहेगी। उक्त ग्रन्थ १७९६ सवत्में समाप्त हुआ।

रसलीनने मुसलमान होने पर भी व्रजभाषा बहुत शुद्ध लिखी है। उसमें फारसीके भी शब्द आये हैं। इनकी तथा किसी ब्राह्मण कविकी भाषाओंमें कुछ भी अन्तर नहीं है। यह इन्हींका काम था, कि फारसीके पारगामी हो कर भी ये ऐसी ठेठ व्रजभाषामें कविता करनेमें समर्थ हुए। इनकी कविता सराहनीय होती थी। इनकी गणना तोष कविमें है। इनकी एक व्रजभाषाकी कविता उदाहरणार्थ नीचे देते हैं,—

"मुकुत भये घर खोय के कानन बैठे जाय।
घर खोवत हैं औरको कीजै कौन उपाय॥
रूप दिखाय कामिनि दई दामिनिको यह बांह।
थरथराति सी तन फिरै फरफराति घन मांह॥
कहुं लागति विकसित कुसुम कहूं डोलावति बाय।
कहूं बिछावति चांदनी मधु ऋतु दासी जाय॥
कुमति चन्द प्रति द्यौस बढ़ि मास मास कढ़ि आय।
तुव मुख मधुराई लखै फीको परि घटि जाय॥
वृद्ध कामिनी काम ते सून याम में पाय।
नेवर झमकावति फिरै देवरके ढिग जाय॥
निय सैसव जोबन मिले भेद न जान्यो जात।
प्रात समै निसि दौसके दुवौ भाव दरसात॥"

रसलेह (स० पु०) रसान् अपरान् धातून् लेढ़ीति, लिह-पचाद्यच्। पारद, पारा।

रसवंत (हिं० पु०) रसिक, प्रेमी।

रसवंती (हिं० स्त्री०) रसांजन, रसौत।

रसवट (हिं० पु०) वह मसाला जो नावके छेदोंमें इसलिये भरा जाता है, कि उनमेंसे पानी अंदर न आवे।

रसवत् (सं० त्रि०) रसो विद्यतेऽस्य (रसादिभ्यश्च। पा ५।२।९५) इति मतुप् मस्य व। १ रसविशिष्ट, जिसमें रस हो। (पु०) २ वह काव्यालङ्कार जिसमें एक रस किसी दूसरे रस अथवा भावका अंग हो कर आवे।

रसवत (सं० स्त्री०) १ रसौत देखो। २ दारुहरिद्रा देखो।

रसवता (सं० स्त्री०) १ सम्पूर्ण जातिकी एक रागिणी जिसमें सब शुद्ध स्वर लगते हैं। २ रसोई-घर। (त्रि०) ३ रसाली, रसपूर्ण।

रसवत्ता (सं० स्त्री०) रसवतो भावः तल-टाप्। १ रस युक्त होनेका भाव या धर्म, रसीलापन। २ रस। ३ सौन्दर्य, सुन्दरता। ४ माधुर्य्य मिठास।

रसवन्त (सं० त्रि०) जिसमें रस हो, रस भरा।

रसवर्ज्ज (सं० पु०) आस्वादनमात्रत्याग, स्वाद लेनेकी इच्छा नहीं।

रसवर्द्धक (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार अनारका फूल, ढाकका फूल, कुसुमका फूल, लाख, हलदी, मजीठ आदि कुछ विशिष्ट द्रव्य जिनसे रंग निकलता है।

रसवली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका गन्ना जिसे रस डला भी कहते हैं।

रसवह (सं० त्रि०) रसवाहिस्रोत।

रसवहस्रोतस् (सं० स्त्री०) जो सब धमनी रस वहन कर ले जाता है। (चरक वि० ५ अ०)

रसवार (हिं० स्त्री०) पहले पहल ऊख पेरनेके समय होनेवाली कुछ विशिष्ट रीतियां या व्यवहार।

रसवाद (सं० पु०) १ रसकी बात प्रेम या आनन्दकी बातचीत। २ मनोरञ्जनके लिये कहा सुनी, छेड़छाड़। ३ बकवाद।

रसवान् (सं० पु०) वह पदार्थ जिसमें ऐसा गुण या शक्ति हो, कि जब उस पदार्थके कण रसनासे संयुक्त हों उस समय किसी प्रतिबन्धक हेतुके न रहनेसे विशेष प्रकारका अनुभव हो।

रसवास (सं० पु०) हरायके पहले भेदकी संज्ञा।

रसवास—भूपाल राज्यका एक नगर।

रसवाहिनी (सं० स्त्री०) वैद्यकके अनुसार खाये हुए भोजनसे बने सार पदार्थको फैलानेवाली नाड़ी।

रसविक्रय (सं० पु०) मद्यविक्रय, शराब बेचना।

रसविक्रयिन् (सं० पु०) मद्यविक्रयकारी, शराब बेचनेवाला।

रसविद् (सं० त्रि०) रसज्ञ।

रसविशेष (सं० पु०) उत्कृष्ट रस।

रसविरोध (सं० पु०) रसस्य विरोधः। १ वैद्यकके अनुसार कुछ रसोंका ठीक मेल न होना। जैसे, तीते और मीठेमें, नमकीन और मीठेमें कड़ुए और खट्टेमें रसविरोध है। २ साहित्यमें एक ही पद्यमें दो प्रतिकूल रसोंकी स्थिति।

रसवीर्यकृत् (सं० पु०) सोमलता।

रसशोधक (सं० स्त्री०) लवण, सोना।

रसशेखर—पञ्जाबके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध स्थान।

रसशार्दूल (सं० पु०) सूतिकारोगका औषधविशेष। यह रसशार्दूल, महारसशार्दूल और वृहत्‌रसशार्दूलके भेदसे तीन प्रकारका है। प्रस्तुत प्रणाली—अभ्रक, तांबा, लोहा, मैनसिल पारा, गंधक, सोहागा यवक्षार, हरीतकी आमलकी, बहेड़ा प्रत्येक एक तोला, मरीचका चूर्ण ४ तोला, गोमा अडूस और पान प्रत्येकके रसमें सात बार भावना दे कर छः रत्तीकी गोली बनावे। इस औषधका सेवन करनेसे सूतिका, ज्वर, कास, शोथ आदि स्त्रीरोग दूर होते हैं। महारसशार्दूल बनानेकी प्रस्तुत विधि—अभ्रक, तांबा, सोना, गन्धक, पारा, मैनसिल, सोहागा, यवक्षार, हरीतकी आमलकी और बहेड़ा ८ तोला, हरचीनी इलायची, तेजपत्र जैनी, लवङ्ग जटामांसी तालिशपत्र, स्वर्णमाक्षिक और रसाञ्जन प्रत्येक ४ तोला, पान और गोमाके रसमें सात बार भावना दे कर इसमें मरिचचूर्ण मिलावे। परिमाण और अनुपान रोगके बलाबलके अनुसार स्थिर करना होगा। इस औषधका सेवन करनेसे विविध सूतिकारोग, ज्वर, दाह, वमि, भ्रम अतिसार, अग्निमान्द्य, अरुचि आदि गर्भिणीरोग दूर होते हैं।

वृहत् रसशार्दूल—पारा एक भाग और गंधक दो भाग ले कर कज्जल बनावे। पीछे उसमें अभ्रधातु एक एक भाग ले कर मिलावे। ब्राह्मी, जयन्ती, सम्हालू, मुरेठा, पुनर्नवा वासुका, सर्राफ़िता, श्योनाक, कृष्ण धतूरा पुराण्डा अडूस, काकमाची प्रत्येक द्रव्यके रस में सात सात बार भावना दे कर तीन चार रत्तीकी गोली बनावे। इसका अनुपान गरम जल है। इस औषधका सेवन करनेसे सूतिका सम्बन्धीय सभी रोग विनष्ट होते हैं। (रसेन्द्रसार० सूतिकारोगाधि०)

रसशास्त्र (सं० स्त्री०) रसायनशास्त्र।

रसशेखर (सं० पु०) रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा २ रत्ती, अफीम १२ रत्ती, इन दोनोंको लोहेके वरतनमें नीमके हत्थेसे तुलसीके रसमें घोंट कर २ रत्ती हिंगुल मिलावे। पीछे फिरसे तुलसीके रसमें घोंटे। वादमें जैत्री, जायफल, खोरासानी अजवायन और आकरकरा प्रत्येक ३२ रत्ती, कुल मिला कर जितना हो उससे दूना खैर मिलावे। इसके वाद तुलसीके रसमें फिरसे घोंट कर चनेके वरावर गाली वनावे। प्रतिदिन शामको दो गोली करके सेवन करनेमें उपदंश आदि रोग शान्त होते हैं।

रसशेष (सं० पु०) खाया हुआ वह द्रव्य जो जीर्ण होनेसे रस-रूपमें परिणत होता है।

रसशेषाजीर्ण (सं० क्ली०) रसशेषके लिये अजीर्णरोग-भेद।

रसशोणितसम्भव (सं० क्ली०) मांस धातु। (वैद्यकनि०)

रसशोधन (सं० क्ली०) रसः शोध्यतेऽनेनेति शुध-णिच् ल्युट् वा रसं पारदं शोधयत्यनेनेति वा। १ टङ्कण, सोहागा। २ पारदशुद्धि, पारेको शुद्ध करनेकी क्रिया। पारद शब्द देखो।

रससंरक्षण (सं० क्ली०) रसस्य संरक्षणं। पारेको शुद्ध करना, मूर्च्छित करना, वाधना और भस्म करना ये चारों क्रियाएं।

रससंस्कार (सं० पु०) पारेके मूर्च्छन, बंधन, मारण आदि अठारह प्रकारके संस्कार। (वैद्यक)

रससम्भव (सं० क्ली०) सम्भवत्यस्मात्, रसस्य सम्भवः। रक्त, लहू।

रससागर (सं० पु०) पुराणानुसार सात समुद्रोंमेंसे एक। कहते हैं, कि यह प्लक्ष द्वीपमें है और ऊखके रससे भरा है।

रससाम्य (सं० क्ली०) शारीरिक रसका न्यूनाधिक्य-निर्णय। चिकित्सकको चाहिये, कि वे रोगनाशक औषध और पथ्यादि देनेके पहले रोगीको अवस्था और रोगका वलावल तथा शरीरमें रससञ्चारका तारतम्य देख कर औषधका प्रयोग करे। कुछ परीक्षा द्वारा चिकित्सक आसानीसे प्रकृतरोगका निर्णय कर सकते हैं।

मुखसे राल निकलना, हल्लास, वक्षदेशकी अशुद्धि, अरुचि, तन्द्रा, आलस्य, खाये हुए पदार्थका अपरिपाक, मुखवैरस्य, गात्रभार, क्षुधानाश, अधिक परिमाणमें मूत्र-निःसरण, स्तब्धता और प्रवल ज्वर दिखाई देनेसे उसे आमज्वर समझ कर औषधादिका प्रयोग न करे। क्योंकि आमावस्थामें औषधका सेवन करानेसे ज्वर और भी वढ़ जाता है।

ज्वर घटने पर शरीर कुछ हलका होता जाता है तथा वायु आदिके अपने अपने पथसे सञ्चालित होने और मलमूत्रादि प्रकृतरूप निकलनेसे रसका परिपाक हुआ जान कर औषधादिकी व्यवस्था करनी उचित है।

सात दिनके वाद यदि रसका परिपाक न हो तथा मलमूत्रादि ठीक तौरसे होता हो, तो रसके साम्यजन्य पाचनकी व्यवस्था करे। फिर यदि मलमूत्रादिके प्रवर्त्तक रसका परिपाक होता हो, तो दोषोपशमनक औषधका व्यवहार करना होगा। मलमूत्रादि निःसरण और रसका परिपाक नहीं होनेसे कभी भी ज्वरघ्न औषधकी व्यवस्था न करे।

जल पीनेके वाद, उपवासके दूसरे दिन, क्षीणावस्थामें अजीर्ण होते, भोजन करके तथा प्यासके समय संशोधक अथवा अन्यप्रकारका औषध सेवन कराना उचित नहीं। अन्नहीन औषधसे वीर्य वढ़ता है। इससे रोगके शीघ्र ही दूर होनेकी सम्भावना है; किन्तु वालक, वृद्ध, युवती और मृदु प्रकृतिके मनुष्यके लिये यह व्यवस्था उत्तम नहीं है। क्योंकि इससे उन्हें ग्लानि होती है और उसीसे वलक्षय होता है।

औषधजीर्ण होनेसे वायु अनुलोम होती है तथा स्वास्थ्य, क्षुधा, तृष्णा, प्रसन्न चित्तता, देहकी लघुता, इन्द्रियोंकी निर्मलता और उद्गारकी शुद्धि होती है। औषधके अच्छी तरह जीर्ण होनेसे ही भोजन करने अथवा खाये हुए पदार्थके अच्छी तरह पचनेके पहले औषध सेवन करनेसे पीड़ाकी शान्ति नहीं होती, वरन अन्यान्य रोग उत्पन्न होते हैं। यदि औषधका अच्छी तरह परिपाक न हुआ हो, तो क्लान्ति, दाह, शरीरकी अवसन्नता, वमनेच्छा, शिरमें दर्द, वेचैनी और वलक्षय आदिके लक्षण दिखाई देते हैं। खानेके कुछ पहले

औषध सेवन करनेसे यह शरीरमें बहुत फायदा पहुंचाता है। क्योंकि यह पेटमें जाने हुए मलाशयसे रुक जाता जिससे मुंह हो कर नहीं निकलने पाता है। वृद्ध, शिशु, मोध और सुकुमारी रमणियोंके लिये यही व्यवस्था लाभजनक है। दोष, अग्नि, बल, अवस्था, व्याधि, द्रव्य और कोष्ठशुद्धिको विवेचना कर औषध देनेके बहुत लाभ पहुंचता है।

सभी प्रकारके ज्वरोंमें कफपित्त वायु और आमदोष के नाशके लिये धनिये और परवलके पत्तोंका काढ़ा दिया जाता है। वातिक ज्वरमें, पित्तज्वरमें कफज्वरमें वातपैत्तिक ज्वरमें पित्तश्लेष्मज्वरमें और वातश्लेष्मज्वर में रसका प्रकोप दूर करनेके लिये कषायादि पानकी व्यवस्था है। (भैषज्यर० ज्वरा०)

रससार (सं० पु०) १ मधु, शहद। २ अहर।

रससिन्दूर (सं० क्ली०) रसजातं सिन्दूरं। एक प्रकारका रस। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—पारा ८ तोला, गंधक ८ तोला, इसको नियमपूर्वक कज्जली बना कर वटांकुरके काढ़ेमें तीन दिन भावना दे। पीछे उसे बोतलमें भर कपड़े और मट्टीका लेप चढ़ाये और बालुसे पूर्ण हांड़ीमें रख कर चार पहर तक आंच देता रहे। इससे तरुण रूपसन्निभ रससिन्दूर उत्पन्न होता है। अनुपानके साथ इसका सेवन करनेसे विविध रोगोंको शान्ति होती है।

दूसरा तरीका—पारा, गन्धक, निसादर फूल और स्फटिक बराबर बराबर भाग ले कर कागजी नीबूके रसमें एक पहर तक मर्दन करे। पीछे उसे बोतलमें भर कर मुंह बंद कर दे। अनन्तर कपड़ेमें लिपटा हुई मिट्टीका लेप चढ़ा कर उसे एक ऐसे पड़वार मिट्टीके बरतनमें रख छोड़े, जो गला तक बालूसे भरा हुआ हो। इसके बाद धीमी आंचमें उसे पाक करे। ठंढा होने पर बोतलके भीतर जमा हुआ रससिन्दूरका प्रयोग करना होता। यह त्रिदोषनाशक माना गया है। (रसेन्द्रसार०)

रसस् (सं० पु०) रसधातु, रस।

रसःपरस्पर (सं० पु०) रसधातुगत ज्वर। ज्वर देखो।

रसस्थान (सं० क्ली०) रसो स्थानमाधार उत्पत्तिस्थानं यस्य, रसस्य पारदस्य स्थानमित्येके। १ हिंगुल, शिंगरफ। २ शरीरका रसस्थल। ३ रसका आधार।

रसस्राव (सं० क्ली०) मधुक्षेत, समक्षपत्र।

रसा (सं० स्त्री०) माधुर्यादिरूपो विद्यतेऽस्यामिति (अर्श आदिभ्योऽच्। पा ५।२।१२७) इति अच्, रसति शब्दायते इति वा रस अच् टाप्। १ पृथ्वी, जमीन। २ रसका जीभ। ३ पाठा, पाढ़। ४ शल्लकी, सलई। ५ द्राक्षा, दाख। ६ काकोली। ७ रसातल। ८ नदी। ९ रास्ना। १० कंगनी नामका मोटा अन्न। ११ मेदा। १२ शिलारस, लोहबान। १३ आम।

रसा (हिं० पु०) तरकारी आदिका झोल शोरवा।

रसाइन (हिं० पु०) रसायन देखो।

रसाइनो (हिं० पु०) १ रसायनविद्या जाननेवाला। २ रसायन बनानेवाला, कीमियागर।

रसाई (फा० स्त्री०) पहुंचनेको क्रिया या भाव, पहुंच।

रसाकन (सं० पु० रसमधीति कन पिवरे अच्, रसाया भूमः पतः। कुक्कुट, मुर्गा।

रसाग्रज (सं० क्ली०) रसानामग्रज एमव्य भवे जायते इति वा जन ड। रसाञ्जन, रसौत।

रसाग्र्य (सं० क्ली०) १ रसाञ्जन, रसौत। २ पारद, पारा।

रसाङ्क (सं० पु०) श्रीवेष्ट नामक सुगन्ध द्रव्य, धूप सालका रस।

रसाघात (सं० क्ली०) आस्वादभेद, भोजन करने पर भी उसके रसका अनुभव न करना।

रसाञ्जन (सं० क्ली०) रसजातमञ्जनं इति मध्यपदलोपि कर्मधारयः। रसजात अञ्जनविशेष, रसौत। यह चार प्रकारके अञ्जनोंमेंसे एक है। कोई कोई इसके संपर्क दो भेद बतलाते हैं, स्रोतोऽञ्जन और रसाञ्जन। पर्याय—रसगर्भ, तार्क्ष्यशैल, रसोद्भूत, रसाग्र्य कृतक, पाक नेपथ्य, दार्वीक्वाथोद्भव, रसराज, वर्णाञ्जन, रसनाभ और अग्निसार। यह हिम, तिक्त, कटुका दिवदद, मधुर और कटु, रक्तपित्त, विष, छर्दि, हिक्का और अपस्मार रोग नाशक माना गया है। (राजनि०)

रसाञ्जनका शोधन कर व्यवहार करना होता है। इसका

शोधन किये विना व्यवहार करनेसे वह विषके समान अनिष्टकारी है।

शोधनप्रणाली—रसाञ्जनचूर्णको जंबीरी नीबूके रसमें भिगो कर एक दिन धूपमें सुखा लेनेसे यह विशुद्ध होता है। (रसेन्द्रसारसं०)

रसाञ्जनादिचूर्ण (सं० क्ली०) ज्वरातिसारमें औषध विशेष। प्रस्तुत प्रणाली शुद्ध रसाञ्जन, अतीस, इन्द्रजौ, कूटजमूलकी छाल, धवका फूल, सोंठ, सबोंका बराबर बराबर भाग चूर्ण ले। अनुपानदोषके बलाबलके अनुसार स्थिर करना होगा। इस औषधका सेवन करनेसे ज्वरातिसार रोग दूर होता है। (रसर०) रक्तातिसारमें चावलका पानी और मधुका अनुपान ही उत्तम है। (भैषज्यर० अतिसा०)

रसाढ्य (सं० पु०) रसनाढ्यः युक्तः। आम्रातक, अमड़ा।

रसाढ्या (सं० स्त्री०) रास्ना।

रसातल (सं० क्ली०) रसायाः तल। निम्नभागस्थ लोकविशेष। पुराणानुसार पृथ्वीके नीचेके सात लोकोंमें से छठा लोक।

"अतलं वितलञ्चैव नितलञ्च तलातलम्।
महातलञ्च सुतलं सप्तमञ्च रसातलम्॥
पातालभेदाः सप्तैव नामतः कीर्त्तिता अमी।
तत्र पातालमेकैकं दशसाहस्रयोजनम्॥" (शब्दमाला)

भगवान् हरि अखिल वेदशास्त्र ग्रहण कर रसातलमें गये थे। (महाभारत १२।३४७।५६) देवीभागवतमें लिखा है, कि इसकी भूमि पथरीली है और इसमें दैत्य, दानव तथा पणि नामके असुर इन्द्रके डरसे निवास करते थे। (देवीभाग० ८।२० अ०)

रसात्मक (सं० त्रि०) रस आत्मा स्वरूपो यस्य कन्। रसस्वरूप।

रसादान (सं० क्ली०) रसानामदानं ग्रहणं। १ रसशोषण। रसाया दानं। २ भूमिदान।

रसादार (हिं० वि०) जिसमें झोल या शोरवा हो, शोरवेदार।

रसाधार (सं० पु०) रसाना जलानां आधारः रसा पृथिवीं धरति आकर्षणेनेति वा धृ अण्। १ सूर्य। २ रसका आधार।

रसाधिक (सं० पु०) रसाय स्वर्णादीनां द्रवीकरणाय अधिकः प्रबलः। १ टङ्कण, सोहागा। २ अधिक रस।

रसाधिका (सं० स्त्री०) रसेन अधिका। किशमिश।

रसाधिपत्य (सं० क्ली०) रसातलका शासन।

रसाध्यक्ष (सं० पु०) प्राचीनकालका एक राजकर्मचारी जो मादक द्रव्योंकी जांच, पड़ताल और उनकी बिक्री आदिकी व्यवस्था करता था।

रसानुग (सं० त्रि०) १ रसदूषक, रसको खराब करनेवाला। २ रसानुसारी।

रसानुप्रदान (सं० क्ली०) जलीय कणाविकीरण। यास्कने इन्द्रको ही इस कार्यका नेता कहा है।

रसान्तर (सं० क्ली०) १ भिन्न रस। २ संगीतादिमें एक रससे दूसरे रसको अवतारणा।

रसापति (सं० पु०) पृथ्वीपति, राजा।

रसापायिन् (सं० पु०) १ जिह्वा द्वारा पानकारी, वह जो जीभसे पीता हो। २ कुक्कुर, कुत्ता।

रसाभास (सं० पु०) रस इव आभासते इति भास-अच्। अनौचित्यरसविशिष्ट रस। साहित्यमें किसी रसकी ऐसे स्थानमें अवतारणा करना जो उचित या उपयुक्त न हो।

"अनौचित्यप्रवृत्तत्वे आभासो रसभावयोः।" (साहित्यद०)

रस शब्द देखो।

रसाभव (सं० क्ली०) बोल नामक गन्धद्रव्य।

रसाभ्रगुग्गुल (सं० क्ली०) रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा ४ तोला, लोहा ४ तोला, गंधक ८ तोला, अबरक ८ तोला, गुग्गुल १ सेर, गुलञ्च २ सेर और पाकार्थ जल १६ सेर, शेष ४ सेर। इन दोनों काढ़ेको एक साथ मिला कर उसमें पारदादि द्रव्य पाक करे। पीछे गाढ़ा होने पर उसमें त्रिकटु, त्रिफला, दन्तिमूल, गुलञ्च, गोपालककंटीका मूल, विडङ्ग, नागेश्वर, निसोधका मूल प्रत्येक दो तोला मिलावे। मात्रा एक तोला और अनुपान गुलञ्चका काढ़ा बताया गया है। इसका सेवन करनेसे गलित, स्फुटित, कठिन वातरक्त, कुष्ठ और अन्यान्य नाना रोग आरोग्य होते हैं।

रसाभ्रगुड़िका (सं० स्त्री०) ग्रहणीरोगाधिकारमें औषध विशेष। प्रस्तुतप्रणाली—पारा ८ तोला और गन्धक

८ तोला इसका कज्जली बना कर उतना ही अभ्रक मिलावे। पीछे केशर, भृङ्गराज, सम्हालू, चिता, आमा, अपस्ती, भंग, श्वेत अपराजिता और पान इन सब रस मिला कर ८ तोला तथा मरिचका चूर्ण ४ तोला और सुहागा मन्दाग्नि ४ कर उड़दके बराबर गोली बनावे। इसका सेवन करनेसे कास, श्वास, क्षय वात, अतिसार और ग्रहणी आदि रोग अति शीघ्र दूर होते हैं।

(रसेन्द्रसारसं० ग्रहणीरोगाधि०)

रसाभ्रमण्डूर (सं० पु०) रसौषधविशेष। बनानेका तरीका—पारा, गंधक, अभ्रक प्रत्येक ४ तोला, शोधित मण्डूरचूर्ण २ पल, हरीतकीचूर्ण २ पल शिलाजित २ तोला, कान्तलौह १ तोला एकत्र पीस कर भीमराजका रस २ सेर, कसुरियाका रस २ सेर तथा मात्रोंकर आपयोगी सम्हालू मानमूल और अदरक, इन सबोंके रसमें भावना दे पीछे धूपमें सुखा कर कुछ गीला रहते त्रिकटु, त्रिफला, चई और मोथा प्रत्येकका चूर्ण २ तोला मिलाये। बादमें अच्छी तरह पीस कर आध तोला की गोली बनावे। अनुपान घी और मधु है। सेवन करनेके बाद त्रिफला काढ़ेमें यवक्षार डाल कर पान करे। इससे शोथादि नाना प्रकारके रोग नष्ट हो कर अग्नि और बलकी वृद्धि होती है।

रसाभ्रवटी (सं० स्त्री०) रसायनाधिकारमें औषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा और गंधक ८ तोला ले कर कज्जली बनावे। पीछे उसमें केशर, भृङ्गराज सम्हालू, चिता, आमा, अपस्ती भंग, श्वेत अपराजिता और पान का रस ८ तोला मिलाकर चूर्ण ४ तोला और थोड़ा सोहागा, इन्हें एक साथ मिला कर उड़दके बराबर गोली बनावे। यह सब प्रकारके ज्वर और ग्रहणीका नाश करता है। (रसेन्द्रसारसं०)

रसामृतचूर्ण (सं० क्ली०) रसौषधविशेष।

(चिकित्सासार १८१)

रसामृतरस (सं० पु०) रक्तपित्ताधिकारमें रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—पारा एक भाग, गंधक, माक्षिक, शिला-जित, चन्दन, गुरुच, छाग, मौलसिरी, धनिया, इलायची, कुशकी घास, नीमका पत्ता, धवका फूल, मुलेठी और खसी प्रत्येक दो भागको एक साथ पीस कर २ मासेकी गोली बनावे। कुछ गरम दूधके साथ इस औषधका सेवन करना होता है।

रसाम्ल (सं० क्ली०) रसोऽम्लोऽस्मिन्नस्य। १ वृक्षाम्ल, विषांबिल। (राजनि०) २ चूक। (भावप्र०) (पु०) ३ अम्लवेतस, अम्लवेत।

रसाम्लक (सं० पु०) तृणविशेष एक प्रकारकी घास।

रसाम्ला (सं० स्त्री०) पलाशी नामकी लता।

रसायक (सं० पु०) रस रसत्वं अयति प्राप्नोति इति अय-ण्वुल्। तृणविशेष, एक प्रकारकी घास।

रसायन (सं० क्ली०) रसः तुर्यं अयनं ,मूलं यस्येति। १ तक्र, मट्ठा। २ गरुड़, अमर। रसा रसस्तेनाप्य ईयते प्राप्यतेऽस्मिति इमधुर। ३ जराव्याधिनाशक औषध। इसका लक्षण—

"यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम् तथा।

पाथुस्य तु दर्ध गुग्गुलमाल्यं तद्रसायनम्॥

रसायनका तेज—

दीर्घमायुः स्मृतिमेधामारोग्यं तरुणं वयः।

देहेन्द्रियबलं कान्तिं नरो विन्दति रसायनात्॥

नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो रसायनो विधिः।

न भाति वाससि क्लिष्टे रङ्गयोग इवार्पितः॥" (भावप्र०)

जिसका सेवन करनेसे बुढ़ापा और रोग नष्ट हो कर जवानी और मजबूत होता, शुक्रकी वृद्धि होती और आंखकी ज्योति बढ़ती है उसे रसायन कहते हैं। रसायनका सेवन करनेसे परमायु स्मरणशक्ति, मेधा, आरोग्य, बल और इन्द्रियकी पटुता तथा शरीरकी कान्ति बढ़ती है और जवानीका सा उमङ्ग आता है। वमन विरेचनादि द्वारा शरीर शोधन किये बिना रसायनका सेवन नहीं करना चाहिये। मैले कपड़ेमें रंग चढ़ानेसे जिस प्रकार वह सुन्दर दिखाई नहीं देता, उसी प्रकार अशोधित शरीरमें रसायनका प्रयोग करनेसे कोई फल नहीं होता। (भावप्र०)

भैषज्यरत्नावलीमें लिखा है, कि जिस औषध द्वारा जरा और व्याधि नष्ट होती है उसे रसायन कहते हैं। यह प्रथमावस्थामें युवावस्था या आदिमें सेवन किया जाता है। रसायन सेवनके पहले विरेचनादि द्वारा कोष्ठशुद्धि कर लेना उचित है। क्योंकि कोष्ठका मल निकाले बिना

रसायनका सेवन करनेसे उपकारके बदले अपकार होता है।

सुश्रुतमें लिखा है, कि देवगण जिस प्रकार संताप शून्य हो स्वर्गमें विचरण करते हैं, रसायन सेवन करने वाले भी पृथिवी पर देवताओंकी तरह नीरोग और बलवान् हो कर विचरण कर सकते हैं। इसका सेवन करने से आयु, स्मृतिशक्ति, मेधा, कान्ति, बल, स्वर आदिकी वृद्धि होती है तथा उस पर कोई रोग आक्रमण नहीं कर सकता।

निम्नोक्त व्यक्ति रसायनका सेवन नहीं कर सकते, यदि करें, तो कोई लाभ नहीं होगा :—अनात्मवान्, दरिद्र, प्रमादी, क्रीडासक्त, पापकारी और भेषजापमानी। इनके रसायन नहीं सेवन करनेका कारण है अज्ञानता, अनारम्भ, अस्थिरचित्तता, दरिद्रता, अनायत्तता, अधार्मिकता और औषधकी अप्राप्ति।

रसायनका प्रकारभेद—सवेरे जलकी नास लेनेसे रसायन होता है। इससे पीनस, स्वरविकृति और काशरोगका उपशम होना तथा दृष्टिशक्ति बढ़ती है। सूर्य उगनेके पहले भरपेट जल पी लेनेसे वातज और पित्तज रोग नष्ट हो कर मनुष्य दीर्घायु होता है। नाक द्वारा जल पान करनेसे तो और भी उपकार होता है। इसे ऊषापान रसायन कहते हैं। अजीर्णरोगमें ऊषापान बहुत उपकारी है।

असगंधका चूर्ण चवन्नी भर ले कर पित्तप्रधान धातुमें दूधके साथ, वायुप्रकृतिमें तेलके साथ, वातपैत्तिक प्रकृतिमें घीके साथ तथा वातश्लेष्मिक प्रकृतिमें उष्ण जलके साथ १५ दिन सेवन करनेसे रसायन होता है तथा शारीरिक कृशता नष्ट होती है। विडङ्गकी जड़को चूर्ण कर शतमूलीके रसमें ७ दिन भावित करके आध तोला मात्रामें घीके साथ एक महीना सेवन करनेसे बुद्धि, मेधा और स्मरणशक्ति बढ़ती है तथा वलिपलितादि निवारित होते हैं। वर्षाकालमें सैन्धवके साथ, शरत्कालमें चीनीके साथ, हेमन्तमें सोंठके साथ, शीतमें पीपलके साथ, वसन्तमें मधुके साथ और ग्रीष्ममें ईखके गुड़के साथ हरीतकी (हर्रे) सेवन करनेसे विविध रोगोंकी शान्ति हो कर उत्तम रसायन बनता है। इसका नाम हरीतकी-रसायन वा ऋतुहरीतकी है। पहले हरीतकी चूर्ण चवन्नी भर सेवन करे, यदि सह्य हो तो २ तोला तक क्रमशः बढ़ा सकते हैं। सैंधव, सोंठ और पीपल अल्प परिमाणमें हरीतकीके साथ सेवन करना उचित है। अन्यान्य अनुपान हरीतकीके बराबर लेना होगा।

क्रमागत एक वर्ष तक घीके साथ ५, ६ वा १० पीपल सेवन करनेसे रसायन होता है। कुछ पीपलमें पलाशकी राखकी जलमें भावना दे कर पीछे उसे घीमें भून ले। प्रतिदिन खानेके पहले घी और मधुके साथ तीन तीन करके सेवन करनेसे श्वास, काश, क्षय, शोष, हिक्का, अर्श, ग्रहणी, पाण्डु, शोथ, विषमज्वर, स्वरभङ्ग, पीनस और गुल्म आदि पीडा दूर हो कर आयु बढ़ती है। पहले दिनका खाया हुआ पदार्थ अच्छी तरह पच जाने पर सवेरे एक हरीतकी, भोजनके पहले दो बहेड़ा और भोजनके बाद ४ आमलकी मधु और घीके साथ एक वर्ष तक प्रतिदिन सेवन करनेसे शरीर नीरोग होता है और आयु बढ़ती है। नये लोहेके बरतनमें त्रिफलाका चूर्ण लेप कर एक दिन और एक रात छोड़ दे। पीछे वह चूर्ण मधु और जलके साथ सेवन करे, तो उत्तम रसायन बनता है। आमलकी, कृष्णतिल और भृङ्गराज समान भाग ले कर एक साथ पीसे और नियमितरूपसे बहुत दिन तक सेवन करे, तो बाल काले होते, इन्द्रियां सबल होतीं, शरीर नीरोग होता और आयु बढ़ती है। प्रतिदिन सवेरे घी और मधुके साथ हस्तिकर्ण और पलाशकी छालका चूर्ण सेवन करनेसे बल, इन्द्रियशक्ति और आयुकी वृद्धि होती है।

सर्वोपघातशमनीय रसायन—स्निग्ध और विशुद्ध देहवाले व्यक्तिके लिये युवा वा मध्यमावस्थामें रसायनका व्यवहार करना उचित है। अविशुद्ध देह अर्थात् रुग्न व्यक्तिके लिये उचित नहीं है। दोषज वा मानसिक कोई भी उपघात उपस्थित हो, तो उसका प्रतिकार तुरत करना चाहिये। पीछे रसायनका प्रयोग हितकर है। शीतल जल, दूध और घी इनमेंसे एक, दो, तीन वा सभी पूर्व-वयसमें (५० वर्षके पहले) पान करके वयःस्थापन करना होता है।

विडङ्गरसायन—विडङ्ग तण्डुलका चूर्ण और मुलेठी

ठंढे जलके साथ यथासाध्य सेवन करके ठंढे जलका अनुपान करना होता है। इस प्रकार एक मास तक प्रति दिन सेवन करे। अथवा उक्त चूर्णको मधुमें मिला कर मिलावेके काढ़े या मधु और शालके काढ़े अथवा आमलकीके रस या गुरुचके काढ़ेके साथ सेवन करे। विडङ्गतण्डुलचूर्णका इन्हीं पांच प्रकारसे प्रयोग किया जाता है। औषध जीर्ण होने पर मूंग और आंवलेका जूस बिना नमकके तैयार करके उसके साथ घृतयुक्त भोजन करे। इससे सभी प्रकारके मद्यके काढ़े विफल हो कर धारणाशक्ति बढ़ती है। इस प्रकार प्रति मास सेवन करना उचित है।

विडङ्गकल्प—एक द्रोण परिमित विडङ्ग तण्डुलको पिष्टक पाककी तरह सिद्ध करे। पाक सिद्ध होने पर क्वाथको अलग कर दे, केवल सिद्ध तण्डुलको पीस। पीछे लोहेके एक मजबूत बरतनमें उस मधु और जलके साथ मिला कर वर्षाके चार मास तक भस्मराशिके मध्य रखना होगा। वर्षा बीतने पर उस बरतनको बाहर निकाल ले। पहले शरीरको शोधित कर प्रतिदिन सवेरे उपयुक्त मात्रामें सेवन करना होगा। इस प्रकार एक मास तक सेवन करनेसे शरीरके सभी अपरोक्ष कीड़े बाहर निकल जावेंगे। दूसरे मासमें पिपीलिका मासरेमें अलग निकलें, चौथेमें दन्त नख और रोम जीर्ण हो जाय, पांचवेंमें ये सब फिरसे प्रशस्त गुण और लक्षणविशिष्ट हो कर उत्पन्न होते हैं। उस समय शरीर धर्मानुरूपके लक्षणयुक्त तथा सूर्यके समान चमकने लगता है, दूरश्रवण और दूरदर्शनकी शक्ति उत्पन्न होती है। मनका रजस्तमोगुण तिरोहित हो कर सत्त्वगुण प्रबल होता है। श्रुतिधर अपूर्वोत्पादक, हाथीके समान बलवान्, घोड़ेके समान वेगवान्, अप्रतिहत यौवन और सौ वर्षसे अधिक परमायु होता है। इस अवस्थामें अभ्यङ्गके लिये अणुतैल, पित्तशमनके लिये अञ्जनक्वाथ, स्नानके लिये साकार या दूर्वाके और अनुलेपनके लिये चन्दन काममें लाना चाहिये। भल्लातकके विधानानुसार आहार का परित्याग करना उचित है। विडङ्गचूर्णसे भल्लातकके फलका रूप भी इसी तरह है, परन्तु इसमें नियम और भोजनका नियम पृथक् नहीं है। एक दूधके साथ भोजन करना होता है, इसका फल भी पहलेके जैसा जानना होगा।

बलाकल्प—आभ्यन्तरके मध्य रह कर आध पल या एक पल अतिबलाका मूल दूधमें आलोड़ित करके पान करे। जीर्ण होने पर दूधके साथ घृतान्न भोजन करना होता है। इस प्रकार बारह दिन सेवन करनेसे बारह वर्ष और सौ दिन सेवन करनेसे सौ वर्षकी परमायु होती है।

इसी प्रकार अतिबला, नागबला और जतावरीका चूर्ण भी सेवन करे। विशेषतः अतिबलाके काढ़ेके साथ शतमूलीका चूर्ण पूर्वोक्त नियमानुसार सेवन करनेसे भी पहलेके जैसा फल होता है। ये सब रसायन बलकारी, शोणितवमनकारी या शोणितविरेचनशील व्यक्तिके लिये लाभजनक है।

वराहकल्प—वराहक्रान्ता मूलका एक तोला चूर्ण संग्रह करे। उस चूर्णका प्रतिदिन यथासाध्य परिमाणमें मधुके साथ दूधमें मिला कर पान करे। जीर्ण होने पर दूध और घीके साथ भोजन करना उचित है। इसमें भी पहलेकी तरह आहार और आचारका नियम पालन करना होता है। इससे परमायु सौ वर्षकी होती है। इस चूर्णको दूधके साथ पाक कर ठंढा होने पर अच्छी तरह घोंटे और घृत मधुके साथ भोजन करे। जीर्ण होने पर दूध और घीके साथ भोजन करना उचित है। इस प्रकार एक मास सेवन करनेसे सौ वर्षकी परमायु होती है।

बुद्धिकामी और दीर्घायुरभिलाषी व्यक्ति मातुलुङ्गरसानुसार और अग्निमन्थके मूलका एकत्र काढ़ा बना कर इसमें एक प्रस्थ उड़द पाक करे। पाक सिद्ध होने पर चित्रक मूलका एक अक्ष परिमित कल्क उसमें डाल दे। पीछे चतुर्थ भाग औषधके इसमें पाक करके नीचे उतार ले। परिपाक होने पर अपथ्यका परित्याग कर मूंग और आंवलेके जूसके साथ घृतयुक्त अन्न अथवा दूधके साथ अन्न भोजन करे। तीन मास इस नियमका अवलम्बन करनेसे सुवर्णकी तरह बुद्धि होती है। स्नायुकमसे भी शरीर कमजोर नहीं होता तथा सौ वर्षकी परमायु होती है। यवक्षारको दूधमें सिद्ध कर दूधके साथ खानेसे शरीर जीर्ण नहीं होता है।

मेधा और आयुष्कामीय रसायन।

सफेद सोमराजके फलको धूपमें सुखा कर अच्छी तरह चूर्ण करे। पीछे यह चूर्ण गुड़के साथ आलोडित कर स्नेहकुम्भमें भर दे और सात रात तक धानकी ढेरमें रख छोड़े। बादमें उससे निकाल कर प्रतिदिन सूर्योदय-कालमें गोलाकार पिण्ड बना उष्णोदक अनुपानके साथ सेवन करना उचित है। औषधके परिपाक होने पर भल्लातकके विधानानुसार अपराह्णकालमें शीतल जलसे शरीर सिक्त कर शालि वा साठी धानके भात, दूध, शक्कर और मधुके साथ खाना होता है। छः मास तक इस नियमका अवलम्बन करनेसे उसके सभी पाप दूर हो जाते तथा वह बलिष्ठ, श्रुतिधर, नीरोग और सौ वर्षको आयुवाला होता है। कुष्ठरोगी, पाण्डुरोगी वा उदररोगीको चाहिये, कि वह सवेरे सूर्यकी लालिमा दूर होने पर इसके आध पलका पिण्ड बना काली गायके दूधके साथ पान करे। जीर्ण होने पर अपराह्णकालमें लवणवर्जित आमलक जूसके साथ घृतयुक्त अन्न खाना होगा। एक मास तक इस नियमका अवलम्बन करनेसे मेधावी और नीरोग होता है तथा परमायु सौ वर्षकी होती है। चित्रक-मूलका सेवन करनेमें भी यही नियम है, फर्क सिर्फ इतना ही है, कि इसमें हल्दी और चित्रकमूलका दो पल पिण्ड सेवन करना होता है। दूसरे दूसरे नियम पहलेके जैसे हैं।

पहले अन्नका परित्याग कर मण्डूकपर्णी रस जहां तक परिपाक कर सके उतना ही ले कर दूधके साथ पान करे। जीर्ण होने पर दूध वा तिलके साथ जौ भक्षण करे। इस समय भी दूध ही अनुपान होगा। जीर्ण होनेके बाद घृतयुक्त अन्न खाना होता है। तीन मास इस नियमका पालन करनेसे ब्रह्मतेजोविशिष्ट और श्रुतिनिगादी तथा सौ वर्षकी आयु होती है।

पहले अन्नका परित्याग कर ब्राह्मी रस जहां तक पी सके, पीवे। जीर्ण होने पर लवणवर्जित जौका मांड पीना होता है। जिसे दूध पीनेकी आदत हो वह दूधके साथ उक्त यवागू पीवे। इस नियमका सात रात पालन करनेसे ब्रह्मतेजोविशिष्ट और मेधावी होता है। फिर दूसरे सात रात इस नियमका पालन करनेसे अभिलषित ग्रन्थमें व्युत्पत्ति होती है और खोई हुई स्मृति फिर आ जाती है। तीसरी सात रात इस नियमका पालन करनेसे दो बारके कहनेसे एक सौ बात तक स्मरण रखनेकी शक्ति आ जाती है। इस प्रकार इक्कीस रात नियमका पालन करनेसे अलक्ष्मी दूर होती है, वाग्देवी मूर्त्तिमती हो कर उसके शरीरमें प्रवेश करती है तथा उसे सभी पूर्वस्मृति उपस्थित होती है। वे श्रुतिधर होते तथा पांच सौ वर्ष तक उसकी परमायु होती है। ब्राह्मीरस दो प्रस्थ, घृत एक प्रस्थ, विडङ्ग तण्डुल एक कुड़व, वच २ पल, त्रिवृत् दो पल, हरीतकी, आंवला और विभीतकी प्रत्येक १२ पल, इन सब चूर्णको तथा उक्त रस और घीको एकत्र पाक कर कलसेमें भर कर मुंह बंद कर दे। पीछे पूर्वोक्त विधानानुसार यथासाध्य परिमाणमें सेवन करे। जीर्ण होने पर दूधके साथ घृतयुक्त अन्न भोजन करे। इसके द्वारा शरीरके ऊर्द्ध्व, अधः और तिर्यक् भागसे कीड़े निकलते हैं तथा इससे अलक्ष्मी नाश, स्थिरयौवन, श्रुतिधर और तीन सौ वर्ष परमायु होती है। कुष्ठरोग, विषमज्वर, अपस्मार, उन्माद, विष, भूतग्रह और महाव्याधि आदि रोगोंमें यह रसायन प्रयोज्य है।

हैमवती वचका आंवलेके बराबर पिण्ड बना कर दूधके साथ पान करे, जीर्ण होने पर दूधके साथ घृतयुक्त अन्न खाना होगा। बारह रात सेवन करनेसे स्मृति-शक्ति बढ़ती है, कोई विषय दो बार अभ्यास करनेसे ही हृदयङ्गम हो जाता है। ४८ दिन सेवन करनेसे वह सभी पापोंसे मुक्त होता, गरुड़-सी उसकी दृष्टि और सौ वर्ष परमायु होती है। हैमवती वचको छोड़ अन्य प्रकारका वच होनेसे उसका दो पल ले कर काढ़ा बनाना होगा। यह काढ़ा दूधके साथ पीना चाहिये। भोज-नादिका नियम और फल पहलेके जैसा जानना होगा।

द्रोणपरिमित घृतको वचके साथ एक सौ बार पाक करके सेवन करनेसे परमायु पांच सौ वर्षकी होती है। यह रसायन गलगण्ड, अपची, श्लीपद और स्वरभङ्ग आदि रोगोंमें बहुत उपकारी है।

बिल्वपुष्पसे हजार बार हवन करके स्वर्णसहित घी मधुके साथ प्रतिदिन मन्त्रपूत करके चाटे। यौवनकाल-

में एक वर्ष तक रसायनका नियम पालन करना होता है। प्रातःकाल स्नान करके बेलकी जड़का छिलका और काढ़ा दूधके साथ सेवन करे। विल्वसेवन करके इस नियमका अवलम्बन करनेसे हजार वर्षकी आयु होती है। सुवर्ण, वचयोग, मधु, मांस और प्रियंगु एकत्र करके गायके दूधके साथ पान करनेसे अलक्ष्मी दूर होती है। नीलोत्पलरसका क्वाथ सुवर्ण और तिलपत्र गायके दूधके साथ पान करनेसे अलक्ष्मी दूर होती है। गायका दूध, सुवर्ण, मधूच्छिष्ट और माक्षिक सौ हजार बार हवन करके इन्हें एक साथ पान करे। वच, घृत और विल्वचूर्णका एकत्र कर सेवन करनेसे मेधा, आयु आरोग्य, पुष्टि और सौभाग्यकी वृद्धि होती है। तुल्य परिमित मडूकपर्णी मूलका काढ़ा बना कर तेलमें पाक करना होगा। हजार बार हवन करके यह तेल सेवन करनेसे मेधा और आयुकी वृद्धि होती है। वच और नीलोत्पलके काढ़ेमें मुलेठीके चूर्णके साथ घृत पाक करके सुवर्ण सहित सेवन तथा इन सब द्रव्योंके साथ दुग्ध पाक करके पान करे। इन सब रसायनसे श्री और सौभाग्य बढ़ता है। हाथीके समान बल और मनुष्य देवतुल्य होता है। सर्वदा अध्ययन, उस विषयका शास्त्रानुवाद और अन्यान्य शास्त्रोंकी आलोचना, आचार्यसेवा इनसे भी बुद्धि और मेधा बढ़ती है। जीर्ण होने पर भोजन, मलमूत्रका वेगधारण नहीं करना, ब्रह्मचर्य, अहिंसा और दुःसाहसिक कार्यका परित्याग इन सबसे भी आयुकी वृद्धि होती है।

सामयिक व्याधिप्रतिषेधीय रसायन।

पूर्वकालमें ब्रह्मादि देवताओंने जरामृत्युनाशके लिये सोम नामक रसायनकी सृष्टि की थी। इसके सेवनका विषय शास्त्रमें इस प्रकार लिखा है,—

यह सोम स्थान, नाम, आकृति और वीर्यके भेदसे २४ प्रकारका है, जैसे—अंशुमान, मुञ्जवान, चन्द्रमा, रजतप्रभ दूर्वा, सोम कनीयान, श्वेताक्ष, कनकप्रभ, प्रतानवान, तालवृन्त, करवीर अंशवान, स्वयम्प्रभ, महासोम, गरुडाहृत, गायत्र्य त्रैष्टुभ, पाङ्क्त, जागत, शाङ्कर, अग्निष्टोम, रैवत, गायत्री और उडुपति। ये सब सोम वेदोक्त नाम कहलाते हैं।

उनमेंसे किसी एक प्रकारका सोम सेवन करनेमें एक आश्रयगृह बनाना होता है। पहले शरीरको संशोधन [illegible] अंशुमान ले कर आश्रमगृहमें [illegible] में अभिषेचन और हवन [illegible] होता है [illegible] रक्तमूल हो उस सोमकन्दको [illegible] सोमके वल्तनमें अञ्जलि परिमित [illegible]। यह दूध आधा ग्रहण करके एक ही साथ पी जाना होता है। आचमन के बाद बचा हुआ दूध उसमें फेंक देना होता है। अनन्तर यम नियम द्वारा मन और वाक्को संयत कर आश्रमके भीतर अपने दोस्त मित्रके साथ विहार करे। रसायन पीनेके बाद वायुशून्यस्थानमें पवित्र हृदयसे विचरण करे, पर भूलसे भी न सोये।

यह सोम रसायन यदि सायंकालमें सेवन किया जाय तो कुशास्तरणके ऊपर कृष्णाजिन बिछा कर उसी पर सो रहे, उस समय उसके मित्रोंका भी वहाँ रहना आवश्यक है। प्यास लगने पर थोड़ा पानी पी सकते हैं। पीछे प्रातःकाल बिछावन परसे उठ शान्तिवाक्य श्रवण करके गोस्पर्श करना होगा।

सोमरसायन जीर्ण होने पर वमन होने लगता है। शोणितके कृमिमिश्रित वमन होनेसे शामको पाक किया हुआ ठंढा दूध पीना होता है। तीसरे दिन कृमिमिश्रित विरेचन होता है। इससे शरीर सभी दोषोंसे मुक्त हो विशोधित होता है। पीछे शामको स्नान करके पहलेकी तरह दुग्ध पान तथा शय्या पर रेशमी वस्त्र बिछा कर शयन करना होता है। अनन्तर पाँचवें दिन शरीर सूज जाता है उस समय सर्वाङ्गसे कीड़े निकलते हैं। उस दिन पांशु निकीर्ण शय्या पर सोना उचित है। फिर शामको पहलेकी तरह दुग्धपान करना होता है। पाँचवें छठे दिन भी इसी नियमका पालन करना चाहिये। परन्तु भेद इतना ही है कि इसमें पहलेकी तरह दोनों शाम दूध पीना होता है। सातवें दिन वह मांसहीन, त्वक और अस्थिमात्र होता है। उस दिन कुछ गरम दूधसे देह परिषेचन, तिल मुलेठी और चन्दनका अनुलेपन तथा दुग्धपान करना होता है। आठवें दिन सबेरे देहमें दुग्धपरिषेचन, चन्दनानुलेपन और दुग्ध पान

करके पांशुशय्याका परित्याग करे और विस्तृत शय्या पर सोवे। इसके बाद मांसवृद्धि होने लगती है, दन्त, नख और रोम गिर पड़ते हैं। नवें दिनमें अभ्यङ्गमें अणुतैल और परिषेचनमें सोमवल्क (सफेद खैर) का व्यवहार करे। बारह दिन तक इस नियमका पालन करना होता है। इससे त्वक्‌की स्थिरता होती है। तेरहवें दिनसे ले कर सोलहवें दिन तक इस नियमका पालन करना होता है। इससे त्वक्‌की स्थिरता होती है। तेरहवें दिनसे ले कर सोलहवें दिन तक केवल सोमवल्कका कषाय परिषेचनके काममें लाना होगा। अनन्तर सत्तरहवें दिन या अट्ठारहवें दिन मणिमुक्ताके सदृश मजबूत दांत निकल आते हैं। पच्चीसवें दिन तक चावल सहित दूधमें यवागू पाक करके सेवन करे। पच्चीसवें दिनके बाद दूधके साथ भात खाना होगा। इससे लाल नाखून और चिकने तथा काले बाल निकलते हैं। चमड़ा कमलके जैसा चमकने लगता है। एक मासके बाद केशको मुड़ा कर खसखसकी जड़, चन्दन और कृष्णतिल शरीरमें लगाना तथा दूधसे स्नान करना होता है। पीछे सात रातके बाद भौंरेके समान चिकने, काले, घुंघराले बाल निकलते हैं। उसके तीन रातके बाद आश्रमके प्रथम आवरणसे निकल कर क्षण भर वहां ठहर फिरसे प्रवेश करना होगा। इसके बाद बला तैल अभ्यङ्गमें, पिष्ट यव उद्वर्त्तनमें, कुछ गरम दूध परिषेचनमें, शालवृक्षका कषाय उत्पादनमें, सौवीर या कूपोदक स्नानमें, चन्दन अनुलेपनमें, आमलक रसमिश्रित यूष या सूप तथा यष्टिमधुके साथ कृष्णतिल सिद्ध आवचारणमें प्रयोज्य है। इस नियमसे एक मास तक चलना होता है। इस समय दर्पणमें मुंह देखना मना है। पीछे और भी दश दिन क्रोधादिका परित्याग कर सभी प्रकारके भोजन कर सकते हैं।

वल्लीप्रतान और क्षुप या लता, इन सब आकारका सोमभक्षण उत्तम है। इस सोमरसायन सेवनका परिमाण साढे तीन मुष्टि बताया गया है। अंशुमान् सोम स्वर्णपात्रमें तथा चन्द्रमा रजतपात्रमें अभिषेचनपूर्वक सेवन करना होता है। इससे अष्टैश्वर्य और ईशानत्वलाभ होता है। बाकी सभी प्रकारका सोमरसायन ताम्र वा मृण्मय पात्रमें भक्षण करना उचित है। शूद्रको छोड़ कर बाकी तीनों वर्ण सोमपान कर सकते हैं। यह रसायन पान कर चौथे महीनेमें पौर्णमासी तिथिको पवित्रस्थानमें ब्राह्मणोंकी अर्चना कर आश्रमगृहसे निकलना होगा।

ओषधोंके राजा सोमरसायनका सेवन करनेसे दश हजार वर्षकी परमायु होती है। अग्नि, जल, विष, शस्त्र वा और किसीसे भी उनका आयुक्षय नहीं होता। हजारों हाथीका बल उनमें आ जाता है। वह अप्रतिहत, कन्दर्पके समान और चन्द्रमाके समान रूप कान्तिविशिष्ट होता है। उसका दर्शन करनेसे मनुष्योंका मन प्रसन्न रहता है। साङ्गोपाङ्गविशिष्ट निखिल वेद उसके आयत्त होते हैं तथा वह व्यक्ति देवताके समान अमोघसङ्कल्प हो कर अखिल जगत्‌में विचरण करता है।

सभी प्रकारके सोममें पन्द्रह पत्ते होते हैं। वे सब पत्ते शुक्लपक्षमें उत्पन्न होते और कृष्णपक्षमें झड़ जाते हैं। शुक्लपक्षमें प्रति दिन एक एक पत्ता करके उत्पन्न हो कर पौर्णमासीके दिन पन्द्रह पत्ते पूरे होते ह तथा कृष्णपक्षकी प्रतिपद्‌से प्रति दिन एक एक पत्ता करके झड़ कर कृष्णपक्षके शेषमें केवल लता रह जाती है।

अंशुमान् सोम घृतगन्धविशिष्ट और रजतप्रभ कन्दविशिष्ट है। इस कन्दका आकार कदलीके जैसा होता है। यह मुञ्जमान् लहसुनके जैसा पत्रविशिष्ट, चन्द्रमा कनकके समान आभायुक्त और सर्वदा जलमें उत्पन्न होता है। गरुड़ाहृत और श्वेताक्ष देखनेमें दोनों ही सांपके केंचुल जैसे मालूम होते हैं तथा वृक्षके आगे लम्बे हो जाते हैं। अन्य सभी प्रकारके सोम विचित्र वर्णके मण्डलसे चित्रित होते हैं। सभी प्रकारके सोमोंमें पन्द्रह पत्ते रहते हैं।

हिमालय, सह्य, महेन्द्र, मलय, श्रीपर्वत, देवगिरि, देवसह, पारिपात्र और विन्ध्य इन सब पर्वतों पर तथा देवसुन्द नामक ह्रदमें, वितस्ता नदीके उत्तर जो पर्वत है उस पर ये सब सोम पाये जाते हैं। चन्द्रमा नामक सोम सिन्धु नामक महानदमें बहता है। यहां मुञ्जवान् और अंशुमान भी पाये जा सकते हैं। काश्मीरमें क्षुद्र मानस नामक जो दिव्य सरोवर है उसमें गायत्री,

सैन्धुक, पांक, आमल और नाकर तथा मध्यान्ध सोम भी पाये जाते हैं। अधार्मिक कृतघ्न, वैद्यद्वेषी या द्वेष ब्राह्मणद्वेषी ये सब मनुष्य सोम नहीं देख पाते।

नित्यक्लान्तशील रसायन।

देवगण जिस प्रकार सन्तापशून्य हो स्वर्गमें विचरण करते हैं निम्नोक्त औषध रसायन सेवनसे मनुष्य भी उसी प्रकार पृथिवी पर विचरण कर सकते हैं।

रासायनिक औषध ये सब हैं—श्वेतकापोती, कृष्ण कापोती, गोनसी, वाराही, कन्या, छत्रा, अतिच्छत्रा, करेणु, अजा चक्रका आदित्यपर्णिनी ब्रह्मसुवर्चला, श्रावणी, महाश्रावणी गोलोमी अजलोमा महावेगवती, ये अठारह सोमतुल्य वीर्य-विशिष्ट महौषध कहलाते हैं। आश्रममें प्रविष्ट हो कर दुग्ध युक्त औषध एक साथ पान करना होगा। जो सब औषध क्षीरहीन मूलविशिष्ट हैं उनके प्रदेशिनी प्रमाणके तीन काण्ड खाने होंगे। श्वेत कापोतीका मूल और पत्ता समस्त खाना होता है। गोनसी, अजगरी और कृष्णकापोती इन्हें भी खण्ड खण्ड करके समस्त मुष्टिप्रमाणमें ग्रहण कर दूधमें सिद्ध करना होगा। पीछे दूधको छानित कर एकही समय पान करना उचित है। चक्रकार दुग्ध सिर्फ एक बार पीना होता है। ब्रह्मसुवर्चला सात रात सेवन किया जाता है।

ये सब रसायन सेवन करनेसे शरीर युवाके सदृश, सिंहविक्रान्त तथा मनोहर होता तथा परमायु दश भी वर्षका होती है।

ये सब रसायन औषध निम्नोक्त लक्षण द्वारा स्थिर किये जाते हैं। कपिलवर्णक विचित्र मण्डलविशिष्ट पञ्चपत्र सर्पाकार तथा पञ्च अरत्निप्रमाण तक लंबे होते हैं। इसका नाम अजगरी है। जो निष्पत्र, कनककी तरह आभाविशिष्ट, दो अङ्गुल परिमित मूल सर्पक जैसा आकार और अग्रभाग लोहितवर्ण होता उसे श्वेतकापोती कहते हैं। द्विपत्री, मूलजाता, अरुणवर्ण, कृष्णवर्ण मण्डलविशिष्ट, दो अरत्नि प्रमाण दीर्घ और गोनस सा आकृति होनेसे उसे गोनसी, सक्षीरा, रोम युक्ता, मृदु और इक्षुरसको तरह रसविशिष्ट होनेसे उसे कृष्णकापोती, एकपत्रा, महावीर्या, भिन्नाञ्जनप्रभा, कन्द आना और श्वेतकापोतीमें संस्थिता होनेसे उसे छत्रा और अतिच्छत्रा कहते हैं। इन दोनोंके लक्षण एक-से होते हैं। इनके द्वारा जरा और मृत्यु आने नहीं पाती। मयूरको पूंछकी तरह सुन्दर बारह पत्र विशिष्ट, कन्द जात और स्वर्णवर्ण क्षीरविशिष्ट होनेसे उसे कन्या, द्विपत्री, हस्तिकर्ण, पलाशके जैसे पत्रयुक्त, मधुर क्षीर विशिष्ट और गजाकृति कन्द होनेसे उसे करेणु, अजाके स्तनके सदृश कन्द, सक्षीरा, कन्द या शङ्ख जैसा सफेद और छोटे वृक्षकी आकृतिविशिष्ट होनेसे उस अजा, श्वेतवर्ण, विचित्र पुष्पविशिष्ट तथा काकादनीकी तरह छोटा गुल्म होनेसे उसे चक्रका कहते हैं। आदित्य पर्णिनी—मूलविशिष्ट कामक, रक्तवर्ण पञ्चपत्रविशिष्ट और सर्वदा सूर्यको अनुवर्त्तिनी अर्थात् जिस ओर सूर्य रहते हैं उसी ओर झुकने वाला सो आभाविशिष्ट, सक्षीर और हैमवेन पद्मिनीकी तरह तथा जो वर्षाके बाद उत्पन्न होती और चारों ओर फैल जाती है उसे ब्रह्मसुवर्चला कहते हैं। अरत्निप्रमाण क्षुप, दो अङ्गुल परिमित पत्र, नीलोत्पल सदृश पुष्प और अञ्जनसन्निभ फल जिसका रहता है उसे श्रावणी; ये सब लक्षणयुक्त, कनकवर्ण विशिष्ट और पाण्डुवर्ण होनेसे उसे महाश्रावणी कहते हैं। गोलोमी और अजलोमी रोमविशिष्ट और कन्द सम्भूता होती है। ये अपनी बढ़ती हंसपदी लताकी तरह इसमें पत्ते होते देखनेमें यह सांपके केंचुलका होती और वर्षाके अन्तमें उगता है।

ये सब रसायन औषध पवित्र हो कर निम्नलिखित मन्त्रसे उखाड़ने होते हैं। मन्त्र इस प्रकार है—

"महेन्द्ररामकृष्णानां ब्राह्मणानां गवामपि।
तपसा तेजसा वापि प्रशाम्यध्वं शिवाय वै॥"

(सुश्रुत चिकित्सा २९ अ०)

अजितेन्द्रिय, आलसी, कृतघ्न और पापी व्यक्ति ये सब औषध देखने नहीं पाते।

देवसुन्द नामक ह्रदमें, सिन्धु नामक महाह्रदमें और पर्वतके अन्तमें यह औषध पाया जाता है। उसके पासमें ब्रह्मसुवर्चला रहता है। उक्त स्थानों मध्य नाम ह्रदमें आदित्यपर्णिना और पलाश प्रायः नामका मिलता है। कश्मीरदेशमें क्षुद्रमानस नामक दिव्य सरोवरमें करेणु,

छवा, अतिछवा, गोलोमी, अजलोमी और महाश्रावणी पाई जाती है। वहा वसन्तकालमें कृष्णवर्ण नामक गोनसी भी देखनेमें आती है। कौशिकी नदीके दूसरे किनारे पूरवकी ओर तीन योजन भूमि तक वल्मीक फैला हुआ है। वल्मीकके ऊपर श्वेतकापोती उत्पन्न होती है। मलय और नलसेतु नामक पर्वत पर वेगवती नामक औषध देखनेमें आता है। कार्त्तिक पौर्णमासी तिथिमें उपवास करके इस रसायनका सेवन करना उचित है।

(सुश्रुत कल्पस्था० २९-३१ अ०)

भावप्रकाशमें इसका विषय यों लिखा है—मधुके साथ वंशलोचन वा सैन्धवके साथ पीपल अथवा चीनी-के साथ त्रिफला सेवन करनेसे रसायन होता है। आध पाव रक्त पुनर्णवा पीस कर दूधके साथ १५ दिन पान करनेसे बूढ़ा भी जवान होता है। भृङ्गराजका रस मोथेके साथ एक मास पान कर पीछे दुग्धपान करनेसे बल-वीर्यसम्पन्न हो एक सौ वर्ष जीवित रहता है। शतमूली, मुण्डीरी, गुलञ्च, हस्तिकर्णपलाश और तालमूली इन्हें पीस कर घी और मधुके साथ चाटनेसे मरणापन्न मनुष्य भी बलवीर्यसम्पन्न होता है। पित्ताधिक्य व्यक्ति असगंध का चूर्ण दूधके साथ, वातपित्ताधिक्य व्यक्ति घृतके साथ, वाताधिक्य तेलके साथ और वातकफाधिक्य उष्ण जलके साथ पन्द्रह दिन सेवन करे, तो उसके बल और वीर्यकी वृद्धि होती है। जलसिञ्चन द्वारा जिस प्रकार शस्यवृद्धि होती है उसी प्रकार उसका शरीर परिपुष्ट होता है। लोहा आध पाव, गुग्गुल डेढ़ पाव, त्रिफला १ सेर इन सब चूर्णको एक साथ मिला कर प्रतिदिन २ तोला करके चाटनेसे दीर्घायुलाभ होता है। (भावप्र०)

जो विविध रसायनका सेवन करते, वे केवल दीर्घायु ही लाभ नहीं करते वरन् देवर्षिनिषेवित अक्षर ब्रह्मपदको भी पाते हैं।

भैषज्यरत्नावलीमें रसायनका विषय इस प्रकार लिखा है, अन्नादि परिपाकके बाद एक हरीतकी, भोजनके पहले २ बहेड़ा और भोजनके अन्तमें ४ आमलकी घी और मधुके साथ खानेसे रसायनक्रिया साधित होती है जो यह त्रिफला रसायन एक वर्ष तक सेवन करता, वह जरा और व्याधिसे मुक्त हो कर सौ वर्ष तक बचता है। एक मास यथायोग्य मात्रामें भृङ्गराज रस और दूध पान करनेसे बल, वर्ण और आयुकी वृद्धि होती है। दूधके साथ मुलेठीका चूर्ण, मूल और पुष्पके साथ गुलञ्चका रस तथा चोरकंकोलीका कल्क, यह रसायन आयुप्रद है। यह रोगनाशक तथा बल, अग्नि, वर्ण और स्मरणशक्तिवर्द्धक है। पन्द्रह दिन तक दूध, घी, तेल वा गरम जलके साथ असगंधका काढ़ा पीनेसे देहकी पुष्टि होती है। आमलकी और तिलको भृङ्गराजके रसमें पीस कर सेवन करनेसे बाल काले हो जाते, इन्द्रियां निर्मल होती, सभी प्रकारके रोग नष्ट होते तथा आयु बढ़ती है। विडङ्गके मूलचूर्णको शतमूलीके रसमें ७ बार भावना दे कर २ तोला मात्रामें घीके साथ सेवन करनेसे बुद्धि और मेधाकी वृद्धि होती तथा वलिपलितादि नष्ट होते हैं। हस्तिकर्ण पलाशकी छालका चूर्ण घी और मधुके साथ प्रति-दिन सवेरे खानेसे बल, वीर्य, इन्द्रियशक्ति और आयुकी वृद्धि होती है। आमलकीचूर्ण ८ सेर, घी ८ सेर, मधु ८ सेर, पीपल १ सेर, चीनी २ सेर इन्हें एकत्र मिला कर राखमें रखना होता है। पीछे उसमेंसे निकाल कर शरत्कालमें सेवन किया जाता है। उपयुक्त मात्रामें सेवन करनेसे वलिपलितादि नष्ट होता तथा बलवीर्यादि-की वृद्धि होती है। गुलञ्च, अपाङ्गमूल, विडङ्ग, चोरकं-कोली, वच, हरीतकी, सोंठ और शतमूली प्रत्येकका समान चूर्ण ले कर घीके साथ सेवन करनेसे स्मरण शक्ति बढ़ती है। इसके सिवा ऋतुहरीतकी, निर्गुण्डी-कल्क, भृङ्गराजादि चूर्ण, श्रीमृत्युञ्जयतन्त्रोक्त अमृत-वर्त्तिका, श्रीसिद्धमोदक, वसन्तकुसुमाकर, अष्टावक्ररस, त्रैलोक्यचिन्तामणि, पूर्णचन्द्ररस, श्रीमहालक्ष्मीरस, आदि औषध रसायनमें बहुत उत्तम है।

(भैषज्यरत्ना० रसायनाधि०)

रसेन्द्रसारसंग्रहमें लिखा है,—

"सुस्थस्योजस्करं किञ्चित् किञ्चिदार्त्तस्य रोगनुत्।
यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनं॥"

(रसेन्द्रसारस०)

नीरोग व्यक्तिके ओजस्कर और रोगीके रोग निवा-रक तथा जराव्याधिनाशक औषधोंको रसायन कहते

हैं। उन औषधोंके नाम ये हैं—आनन्दभैरवरस, महेश्वर रस, पूर्णचन्द्ररस, कार्श्यहरलोह अहमातिविलासरस, श्रीकामदेवरस, मनङ्गसुन्दररस, हेमसुन्दररस, अमृतार्णवरस, चन्द्रोदयरस मकरध्वज, वसन्ततिलक वसन्तकुसुमाकररस, नीलकण्ठरस। ये सब औषध रसायनमें बहुत प्रशस्त और आशुफलप्रद हैं।

(रसेन्द्रसार० रसायनाधि०)

चरकसंहितामें रसायनका विषय विस्तृत भावमें आलोचित हुआ है, पर यहां संक्षेपमें दिया जाता है। नीरोगीके ओजस्कर और रोगीके रोगनिवारक भेदसे औषध दो प्रकारका है। इन दोनों प्रकारके औषधोंमें जो औषध मुख्य व्यक्तिके ओजस्कर है उसके भी दो भेद हैं, वृष्य और रसायन। दोनों ही ओजस्कर औषध रोगनिवारक है। किन्तु रसायन औषध जैसा सभी रोगोंको नाश करते हैं वैसा यह नहीं करता। वृष्यमें रोग नाशककी बहुत थोड़ी शक्ति है।

मनुष्य रसायन सेवन द्वारा दीर्घायु, स्मृति, मेधा, आरोग्य, तरुणावस्था, प्रभा, वर्ण-स्वरकी पुष्टि, देह और इन्द्रियका बल वाक्‌सिद्धि, नम्रता और कान्ति ये सब लाभ करते हैं। प्रशस्त रसादि धातुओंका अयन अर्थात् लाभोपाय है, इसीसे इसका रसायन नाम हुआ है। अमरोंका जिस प्रकार अमृत था, नागगणकी जिस प्रकार सुधा था, महर्षियोंका उसी प्रकार रसायन था। रसायन सेवन करनेवाले ऋषि लोग हजार वर्ष जीते थे। उनके समय उन्हें किसी प्रकारका रोग नहीं सताता था। रसायन सेवन करनेसे केवल दीर्घायु ही लाभ होता है, सो नहीं, विधिपूर्वक जो रसायनका सेवन करते, वे देवर्षि निषेवित शुभगतिको प्राप्त होते हैं तथा निर्वाण मुक्ति लाभ करते हैं।

रसायन सेवनके साधारणतः दो भेद कहे गये हैं,—कुटीप्रावेशिक प्रयोग और वातातपिक प्रयोग। वातातप सेवन करना वातातपिक प्रयोग कहलाता है।

कुटीप्रावेशिक विधि जहां किसी प्रकार भयकी आशङ्का न रहे, वहां वैद्यादि रहनेके लिये एक सुन्दर घर बनाना होगा। जहां रसायनोपयोगी सभी उपकरण मिल सकते हों, वहां पूर्व और उत्तर दिशामें अच्छी जमीन देख कर एक कुटी बनानी होगी। यह कुटीगृह लम्बा और ऊंचा तथा जिसमें रहे। (प्रत्येक भीतरका घर, उसके भी भीतरका घर फिर उसके भी भीतरका घर जिसमें कहलाता है) घरके ऊपरी भागमें छोटे छोटे झरोखे रहने चाहिये। भीतें मजबूत रहें तथा घर वैसे स्थानमें बना रहे जहां मानो सभी ऋतुओंमें सुखप्रद, परिष्कार परिच्छन्न और मनोहर हों। मधुमक्खी मच्छरादि माना उसमें घुसने न पावे। यहां स्त्रियोंका आना वर्जित कर दे। अभिमन्त्रित उपकरण सामग्री तथा वैद्य औषध और ब्राह्मण सर्वदा विद्यमान रहे।

इस प्रकार सर्वाङ्ग सुन्दर घर बना कर उत्तरायणमें, शुक्लपक्षमें, प्रशस्त तिथि, नक्षत्र और करणयोगमें, क्षौर कर्म करके, मनका विकार दूर कर और सभी प्राणियोंमें एक सा भाव रख कर पहले गणेशादि देवपूजा और पीछे ब्राह्मणोंकी पूजा करे। अनन्तर प्रदक्षिण करके इस कुटीगृहमें प्रवेश करना होगा। कुटीगृहमें प्रवेश करनेके पहले वमनविरेचनादि द्वारा विशुद्ध हो फिरसे ताकत लानेके लिये रसायनका सेवन करना उचित है।

जो समर्थ नीरोग, धीमान्, संयतात्मा, क्षमावान् और धन धनादिसे सम्पन्न है उन्हींके लिये कुटीप्रावेशिक रसायनविधि हितकर है। दूसरेके लिये वातातपिक रसायनविधि उपकारक है।

रसायनविधिका पालन न कर सकनेसे यदि कोई रोग उत्पन्न हो, तो रसायनका त्याग कर उसी रोगकी चिकित्सा करना उचित है।

सत्यवादी, अक्रोध, मद्यमैथुनविरत अहिंसक, श्रम रहित प्रशान्त, प्रियवादी, जप और शौचपरायण, धीर, दानशील, तपस्या देवता, गोब्राह्मण आचार्यादिकी सेवामें निरत सर्वदा आनृशंस्यपरायण, कारुण्यपरता, जातिजागरण और जातिनिद्राधीन, दुग्धघृतभोजी, देश कालप्रमाणज्ञ, युक्तिज्ञ, अनह इन इत्यादि गुणोंसे युक्त व्यक्ति ही रसायनसेवनके अधिकारी हैं। उक्त सभी गुणोंसे युक्त हो जो रसायनका सेवन करते हैं वे रसायनके सभी फल पाते हैं। शारीरिक और मानसिक

दोष दूर किये विना जो रसायन सेवन करते हैं, वे कभी भी रसायनके यथोक्त गुण पा सकते।

स्नेह और स्वेद द्वारा स्निग्ध और खिन्न हो हरीतकी, सैन्धव, आमलकी, गुड़, वच, विडङ्ग, हरिद्रा, पीपल और सोंठ इनका चूर्ण गरम जलके साथ पीना होगा। इसके द्वारा शरीर सशुद्ध होनेसे पेयादि क्रमसे पथ्य देना होता है, पीछे भूख लगने पर तीन दिन, पाँच दिन वा सप्ताह तक अर्थात् जब तक कोष्ठ साफ न हो तब तक पुराना यवागू घीके साथ पान करना होगा। इसके बाद कोष्ठ साफ हो गया है, ऐसा मालूम हो जाय, तो अवस्था, प्रकृति और सात्म्य (बल)-के अनुसार जिसके लिये जो रसायन उपयोगी हो उसे वही रसायन देना होगा।

ब्राह्मरसायन-शालपर्णी, वृहती, पिठवन, कंटकारी और गोखरू, बेलकी छाल, गनियारीकी छाल, गंभारीकी छाल, पडहारकी छाल, पुनर्नवा, मूंग, उडद, विजबंद और रेंडीका मूल, जीवक, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, शतमूली, शरमूल, ईखका मूल, कुशमूल, काशमूल और शालिमूल, प्रत्येक मूल १० पल करके कुल ५० पल लेना होगा। हर्रीतकी १ हजार, नया आवला ३ हजार इन्हें दश गुने जलमें सिद्ध कर दशमांश रहते उतार ले। हर्रे और आवलेकी गुठलीको फेंक कर उसे अच्छी तरह पीसे और काढ़ेमें घोल दे। पीछे उसमें ३२ सेर तिलतैल और ४८ सेर गायका घी मिला कर तावेके बरतनमें धीमी आंचमें पकावे। आसन्न पाकमें दन्तिमूल, पीपल, शखपुष्पी, कैवर्तमोथा, विडङ्ग, रक्तचन्दन, अगुरु, मुलेठी, हल्दी, वच, नागेश्वर और छोटी इलायची प्रत्येकका चूर्ण चार पल और मिसरीका चूर्ण ११ सौ पल डालना होगा। गाढ़ा होने पर उतारना होता है। पीछे ठंढा होने पर उसमें ४० सेर मधु मिला कर घीके घड़ेमें रखना होगा।

यह रसायन अच्छी तरह तैयार कर ऐसी मात्रामें सेवन करना होगा जिससे इसका सेवन करनेसे आहारमें किसी प्रकारका व्याघात न पहुंचे। पीछे औषध परिपाक होने पर दूधके साथ साठी धानका भात खाना होगा। वैखानस, वालखिल्य और अन्यान्य तपस्वियोंने इस रसायनका सेवन करके अपरिमित आयु उत्तम तरुणावस्था प्राप्त की थी। आयुष्काम व्यक्ति इस ब्राह्मरसायनका सेवन कर दीर्घायु, शीतातपसहिष्णु, यौवन और अभिलषित कामना लाभ करते हैं।

पूर्वोक्त गुणान्वित एक हजार आवलेको दूधकी भापमें सुसिद्ध करना होगा अर्थात् एक बडी हांडीमें दूध रख कर उस हांडीका मुह कपडे से बंद कर दें और कपडे के ऊपर आवला रख कर हांडीके नीचे आंच दे। आंच देते देते दूधकी भापसे आवला सिद्ध हो जायगा। पीछे उस आंवलेकी गुठली फेंक कर छायामें सुखा कर चूर्ण कर ले। अनन्तर दूसरे आंवलेके रसमें उस चूर्णको ७ बार भावना दे। बादमें शालपर्णी, पुनर्नवा, जीवन्ती, गोखरू, आलकुशी, मण्डूकपर्णी, शतमूली, शंखपुष्पी, पीपल, वच, विड्ङ्ग, गुलञ्च, रक्तचन्दन, अगुरु, मुलेठी, मौलसरीका फूल, नीलोत्पल, पद्म, मालती, प्रियंगु और जूही, इन सबका चूर्ण आवलेके चूर्णका आठवां भाग ले कर उसमें मिला दे। कुल चूर्णको गोखरूके रसमें भावना दे कर छायामें सुखा लेना होगा। इसके बाद उसमें दूना घी और मधु मिला कर वेरकी गुठलीके बराबर गोली बनानी होगी। ये सब गोली घीके घड़ेमें रख कर जमीनके अंदर गाढ़ दे और ऊपरसे राख ढक दे। एक पक्षके बाद उस बरतनको निकालना होगा। अनन्तर उस औषधमें अष्टमांश विशुद्ध स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, प्रवाल और लौहचूर्ण मिला कर अग्निके बलानुसार पहले दिनके औषधका परिमाण स्थिर कर प्रतिदिन एक तोला वा उससे कम बढ़ावे। प्रातःकालमें यथाविधान सेवन करना होगा। औषध परिपाक होने पर दूध और घीके साथ साठी-धानका भात खाना होगा। इस रसायनका सेवन करनेसे पूर्वोक्त सभी गुण पाये जाते हैं।

हरीतकी-रसायन—हरीतकी, आमलकी, विभीतकी, पांच प्रकारके मूलका क्वाथ, पीपल, मुलेठी, मौलफल, कंकोली, क्षीरकंकोली, अलकुशीका बीज, जीवक, ऋषभक, क्षीरविदारी इन सब द्रव्योंका कल्क, आठ गुने दूध, ६४ सेर भूमिकुष्माण्डका रस। यथाविधान इस घीका पाक करना होगा। अग्निके बलानुसार इस घीका सेवन करे। पीछे घी परिपाक होने पर घी और दूधके साथ

साठी धानका भात खाना होगा। अनुपान गरम जल बताया गया है। यह रसायन सेवन करनेसे जरा, व्याधि, पाप अभिचार और भय दूर होते, शरीर बलिष्ठ होता और बुद्धि तथा इन्द्रियकी शक्ति बढ़ती है।

घी ४ सेर, हरीतकी, आमलकी, बिभीतकी हरिद्रा, शालपर्णी, विडङ्ग, गुलञ्च, सोंठ, मुलेठी, पीपल और सफेद खैर, इन सब द्रव्योंका क्वाथ १६ सेर और चूर्ण १ सेर, इनका यथाविधान पाक करना होगा। घृतपक्व होने पर उसमें मधु और चीनी एक सेर मिलावे। आमलकीचूर्ण सौ पल, इसीके रसमें भावित कर उसका चूर्ण और उसका चतुर्थांश जारित लौहचूर्ण भी उसमें मिलावे। यह रसायन प्रतिदिन सवेरे दो तोला करके सेवन करे। शामको मूंगके जूस या दूधके साथ घृतसंयुक्त साठी धानका भात खावे। यह रसायन तीन वर्ष सेवन करनेसे सौ वर्ष तक बुढ़ापा नहीं आवेगा और जो एक बार सुना जायगा वह हमेशा याद रहेगा तथा रोग दूर होंगे और शरीर पत्थरके समान मजबूत होगा।

एक हजार आंवला और एक हजार पीपलको जलमें भिगो कर छायामें सुखा ले। गुठली उसमेंसे फेंक देनी होगी। पीछे उस आंवले और पीपलको चूर्ण कर उसमें चौथाई भाग चीनी मिलावे। अनन्तर घृतभावित पात्रमें उसे रख कर ६ मास तक जमीनके अन्दर गाड़ रखे। बादमें इस रसायनको निकाल कर सवेरे अग्निके बलानुसार सेवन करे। औषध जीर्ण होने पर मध्याह्नकालमें सात्म्य भोजन करना होगा। अपराह्नकालमें भोजन निषेध है। इस रसायन सेवनका फल पहलेके जैसा है अर्थात् सौ वर्ष तक बुढ़ापा आने नहीं पाता।

नागबला-रसायन—शुचि और संयत हो कर स्वस्ति वाचन और देवार्चनापूर्वक माघ और फाल्गुन मासके शुभ मुहूर्तमें अच्छी भूमिसे उत्पन्न गुणयुक्त नागबलाका मूल उखाड़े। पीछे उस मूलको जलमें धो कर एक पल या दो तोला उसका छिलका ले कर अच्छी तरह पीसे। अनन्तर गायके दूधके साथ प्रतिदिन सवेरे यथाविधान सेवन करे। औषध जीर्ण होने पर दूध और घीके साथ भात खाना होता है। एक वर्ष तक सेवन करनेसे सदा जवान सी ताकत बनी रहती है।

नागबला निम्नोक्त गुण सम्पन्न भूमिसे उखाड़ना होता है। जो स्थान आनूप और कुशव्याप्त हो, जहां की मिट्टी चिकना, मधुररसवाली, काली अथवा सुवर्ण वर्णी हो, जो विषदोष, वायुदोष, जलदोष, अग्निदोष और श्वापदके उपद्रवसे वर्जित हो तथा जो स्थान कर्षण, वल्मीक, श्मशान, चैत्य और क्षारजलरहित हो, जहां वायु और धूप अच्छी तरह आता जाता हो वहीं से नागबला उखाड़ना होता है।

करप्रचितीय रसायन—माघ फाल्गुन मासमें अपने हाथसे तुले परिपुष्ट आमलकको तोड़ कर उसकी गुठली फेंक दे। पीछे उसे सुखा और चूर्ण कर आंवलेके रसमें २१ बार भावना दे। बाद उसे फिरसे सुखा कर चूर्ण कर ले। ऐसा चूर्ण ८ सेर, जीवनीय, बृंहणीय, स्तन्यजनन, शुक्रवर्द्धन और वयःस्थापनगणोक्त द्रव्य समूह संग्रह करना होगा। इसके अलावा रक्तचन्दन, अगुरु, धव, खैर, शीशम और असन, इनका सार, हरीतकी, बहेड़ा, पीपल, वच, चिता और विडङ्ग इन्हें अलग अलग कूटना होगा। पीछे यह जीवनादि द्रव्य समूह, रक्तचन्दनादि द्रव्यसमूह और हरीतक्यादि द्रव्य समूह, कुल मिला कर ८ सेर ले कर १६० सेर जलमें पाक करना होगा। १६ सेर जल रहते उसे उतार कर छान लेना होगा। इस काढ़ेमें पूर्वोक्त आमलकीका चूर्ण ८ सेर मिला कर गोइंठेकी आंचसे पकाना होगा। पाकके समय इस बात पर विशेष ध्यान रखे, कि चूर्ण जल न जाय अर्थात् कुछ कड़ा रहते ही उसे उतार लेना होगा। बादमें उस चूर्णको लोहेके बरतनमें फैला कर सुखा ले। अच्छी तरह सूख जाने पर कृष्णसार मृगचर्मके ऊपर एक शिला रख कर उसी पर अच्छी तरह चूर्ण करे। इसके बाद लोहेके बरतनमें उसे ढक कर रखना होगा। अग्निका बलाबल सोच विचार कर उपयुक्त मात्रामें यह चूर्ण तथा उसका आठवां भाग लौहचूर्ण मिला कर घी और मधुके साथ खावे। प्राचीन कालमें वशिष्ठ, कश्यप, अङ्गिरा, जमदग्नि, भरद्वाज, भृगु आदि ऋषियोंने इस रसायनका सेवन किया था। इसके प्रभावसे वे लोग बलिष्ठ हो कठिन तपस्या करनेमें समर्थ

हुए थे। इस रसायनका सेवन करनेसे जराव्याधिरहित हो दीर्घजीवन लाभ करता है।

लौहरसायन, हेमरसायन और रजतरसायन—चार अंगुल लंबा और तिलके समान बारीक कान्तलौहका एक पत्तर बना कर अग्निमें तपावे। जब वह एकदम लाल हो जाये, तब त्रिफलाके काढे, गोमूत्र, यवक्षारके जल, लवणके जल, इंगुदीक्षारके जल और किंशुकक्षारके जलसे बुझावे। अञ्जनवर्णका हो जानेसे उस पत्तरको चूर्ण करे। मधु और आमलकीके रसमें मिला कर उसे लेहवत् करे। पीछे घृतभावित कुम्भमें उस चूर्ण-को रख कर जौके ढेरमें एक वर्ष रख छोडे। वह लेह-वत् लौहचूर्ण महीने महीने एक एक बार आलोडन कर-के उसमें थोडा मधु और आमलकीका रस मिलाना होगा। इस प्रकार एक वर्ष बीत जाने पर उसे अग्निके बलाबलानुसार उपयुक्त मात्रामें प्रतिदिन मधु और घीके साथ सेवन करे। औषध जीर्ण होने पर सात्म्य भोजन करना होता है। इसी प्रणालीसे सोने और चांदीका रसायन बनाना होता है। यह रसायन आयुका प्रकर्षकारक और सर्वरोगनाशक है। इसका सेवन करनेसे अभिघात, रोग, जरा वा मृत्यु द्वारा अभिभूत नहीं होना पड़ता। एक वर्ष तक इस रसायनका सेवन करनेसे हाथीके समान बलिष्ठ, अतिबलेन्द्रिय, धीमान्, यशस्वी, वाक्सिद्ध और श्रुतिधर होता है।

आमलकरसायन—एक वर्ष तक ब्रह्मचारी (मैथुन रहित) जितेन्द्रिय और केवल दूध पी कर दिनरात वेदोक्त ब्रह्मगायत्री जप कर गोगणके मध्य वास करे। वर्षके अन्तमें तीन दिन उपवासी रह कर पौष, माघी वा फाल्गुनी पूर्णिमा तिथिमें आंवलेके वनमें प्रवेश करे और फलसे परिपूर्ण एक बडे आंवलेके पेड पर चढ कर कुछ आंवला तोडे। जब तक उसे तोड़े हुए फलमें अमृत न आ जाय, तब तक ब्रह्मप्रणव जप करना होगा। ब्रह्म निष्ठ पुरुषके ब्रह्मप्रणव जप द्वारा थोडे ही समयमें उसमें अमृत आ जायगा। जब देखे, कि वे सब फल मृदु, स्नेह और शर्करा मधुतुल्य स्वादिष्ट हो गया है, तब जानना चाहिये, कि उनमें अमृत आ गया। भर पेट वह आंवला फल खानेसे मनुष्य अमरके समान कान्ति लाभ करता है तथा स्थिरयौवन हो कर हजार वर्ष जीवित रहता है। लक्ष्मी स्वयं आ कर उसका आश्रय लेती हैं, वेद उनके कंठस्थ हो जाते हैं और सरस्वती मूर्त्तिमती हो कर उनके समीप उपस्थित होती हैं।

इसके सिवा च्यवन-प्राशरसायन, हरीतकी रसायन, आमलकघृतरसायन, आमलकावलेहरसायन, आमलकी-चूर्णरसायन, विडङ्गावलेहरसायन, आमलकावलेह, भल्लातकक्षीर, भल्लातकक्षौद्र, भल्लातक तैल, ऐन्द्ररसा-यन, मेधाकररसायन, पिप्पलीरसायन, वर्द्धमान पिप्पली-रसायन, त्रिफलारसायन, शिलाजतुरसायन, इन्द्रोक्त रसायन, द्रोणीप्रावेशिकरसायन और आचाररसायन ये सब रसायन सेवन करनेसे पूर्वोक्त फल होते हैं। इन सब रसायनका विषय और प्रणाली चरकमें वर्णित है।

समस्त शरीर दोष ग्राम्य आहारसे उत्पन्न होते हैं। अम्ल लवण, कटु, क्षार, शुष्कशाक, उडद, तिलकल्क, पिष्टान्न, अंकुरित और नूतन शूकशमी धान्यकृत अन्न, विशुद्ध, असा त्म्य, रुक्ष, क्षार, अभिष्यन्दी द्रव्य, क्लिन्न, गुरु, तथा पूति, पर्युषित, अन्न, विषमाशन, अध्यशन, नित्य दिवानिद्रा, स्त्रीसङ्गम और मद्यपान, विषम वा अत्यन्त व्यायाम द्वारा शरीरमें तरह तरहके दोष उत्पन्न होते हैं। इन सब ग्राम्य विषयका सेवन करनसे वात, पित्त और कफ बिगड़ता, शरीरका मांस शिथिल हो जाता, सन्धियां विश्लिष्ट होतीं, रक्त विदग्ध होता, मज्जा अस्थिमें संहित होती और शुक्र प्रवृत्त नहीं होता तथा ओजक्षयको प्राप्त होता है। इन सब कारणोंसे ग्राम्य व्यक्ति ग्लानियुक्त, अवसन्न, निद्रा, तन्द्रा और आलस्ययुक्त और निरुत्साह होता तथा थोड़े ही परिश्रममें वे हांफने लगते हैं। वह शारीरिक और मानसिक कोई भी कार्य नहीं कर सकते, उनकी स्मरणशक्ति घटती और कान्ति विनष्ट होती है। वे लोग रोगोंके आश्रय-स्थान हैं तथा परिमितायु भोग करनेमें समर्थ नहीं होते। इन सब दोषोंसे बचनेके लिये अहितकर आहार-विहार छोड दे तथा जितेन्द्रिय शुद्धाचारी हो कर पूर्वोक्त रसायनका सेवन करे। इससे सभी प्रकारका सुखसौभाग्य प्राप्त होता है। रसायन सेवनके सिवा शारीरिक दोष नष्ट करनेका और कोई

उपाय नहीं है। अतः जो व्यक्ति बुद्धिमान् और दीर्घायु होना चाहे उन्हें रसायनका अवश्य सेवन करना चाहिये। (चरक, चिकित्सास्था०-रसायनाधि०)

चरक, वाग्भट आदि वैद्यक ग्रन्थोंमें रसायनाधिकारमें रसायनयोग वर्णित हैं, विस्तार हो जानेके भयसे यहां कुछ नहीं लिखा गया।

रसः पारदः स्वर्णघना तज्जातीया हरितालादिकश्च अयन आश्रय उपायेः यस्य तत्। ३ स्वर्णादि करण। पारेको जो स्वर्णादि धातुमें परिणत किया जाता है उसे रसायन कहते हैं। रुद्रयामलतन्त्रके १३वें पटलमें इसका विस्तृत विवरण लिखा है,—

एक काला सांप पकड़ कर उसके मुंहमें शिव वीर्य (पारा) भर दे। पीछे उसका मुंह बन्द करके मट्टीके एक नये बरतनमें रख मट्टीसे लेपन करना होगा। अनन्तर उस निर्जन स्थानमें सवेरेसे शाम तक उसमें आंच देना होगी। इसके बरतनका मुंह खोल कर उसमेंसे केवल पारा निकाल ले। सर्पका भस्म न निकाले। पीछे एक तोला तांबा गला कर उसमें रत्ती भर पारा छोड़ देनेसे ही वह सोनेमें परिणत हो जायगा। यह तैयार करनेमें पहले शिवको पूजा करनी होती है। (रुद्रयामलतन्त्रान्तर्गत नाम ११ अ०)

इस प्रकार सोने और चांदी आदि धातु बनानेकी अनेक प्रकारकी विधि बनाई गई हैं। रसायनगुणके प्रभावसे एक धातु दूसरी धातुमें परिणत होती है।

(पु०) ४ गरुड़। ५ वायविड़ङ्ग, विड़ङ्ग। ६ विष, जहर। ७ पंचपल हरिताल। ८ पदार्थोंके तत्त्वोंका ज्ञान। ९ धातुविद्या जिसमें धातुओंको भस्म करने या एक धातुका दूसरी धातुमें बदल देने आदिकी क्रियाका वर्णन रहता है।

रसायनज्ञ (सं० त्रि०) रसायन क्रियाका जाननेवाला, जो रसायनविद्या जानता हो।

रसायनतन्त्र (सं० क्ली०) रसायनाधिकार।

रसायनफला (सं० स्त्री०) रसायनेन फलति या फल अच्, टाप्। हरीतकी, हर्रे।

रसायनवर (सं० पु०) लशुन, लहसुन।

रसायनवरा (सं० स्त्री०) १ कंगु, कंगनी। २ मालकंगनी।

रसायनविज्ञान (सं० पु०) वैज्ञानिक उपायसे तत्त्वोंका ज्ञान। इसका अंगरेजी नाम Chemistry है। प्राचीन आर्य हिन्दुओंके 'रसायन' शब्दके व्युत्पत्तिगत अर्थके साथ पाश्चात्य सभ्यजगत्के Chemistry शास्त्रका वस्तुगत अनेक सादृश्य रहने पर भी दोनोंमें प्रभेद देख कर वैज्ञानिकोंने वर्तमान अंगरेजी रसायनशास्त्रको उसी शब्दके अनुकरण पर किमिया विद्यारूपमें प्रकाशित किया है।

पाश्चात्य किमियाविद्या सचेतन (Organic) और जड़ पदार्थ (Inorganic bodies)-के मेलसे बनी है। सोने आदि जड़ धातुमें इत्यादि चेतन पदार्थका थोड़ा भी संयोग होनेसे वह स्वभावतः ही रूपान्तरको प्राप्त होती है तथा उसके साथ साथ गुणमें भी परिवर्तन देखा जाता है। इस वैज्ञानिक समावेशका नाम रसायन है। जिस शास्त्र द्वारा मिश्रित द्रव्यका गुणागुण और रूपान्तर जाना जाता है, वही रसायनशास्त्र है।

प्राचीन आर्यगण औषध और धातुकी वस्तुगशक्तिको परीक्षा करके उसकी उपकारिता मालूम करते थे। फिर दो या उससे अधिक विभिन्न धातु या भेषजादि मिला कर उसके गुणका भी पता लगा लेते थे। कुछ निर्दिष्ट नियमके अनुवर्ती हो वे सब मिश्रित औषध यन्त्रादिकी सहायतासे बनाये जाते थे। इस प्रकार वैज्ञानिक प्रक्रियासे प्रस्तुत औषध रसरक्तादिका पुष्टिसाधक और व्याधिनाशक होता है इस कारण आयुर्वेदमें उसका रसायन नाम रखा है।

आर्यऋषियोंने रसायनशास्त्रकी उन्नति करनेके लिए जिन सब यन्त्रादिका आविष्कार किया था, उसका विशेष विवरण जाननेका कोई उपाय नहीं है। आर्य-सभ्यताके विस्तारके साथ साथ प्राचीन ऋषिगण जो मनुष्यके उपयोगी रसायनादि बनाने लग गये थे उसका आभास हम लोग ऋग्वेदमें कई जगह देखते हैं। दोनों अश्विनीकुमारके देववैद्यरूपमें आविर्भाव होनेका प्रसङ्ग ऋग्वेदके आरम्भमें ही देखनेमें आता है। सोमरस उस समय पुष्टिकर रसायन समझा जाता था। ऋक् १।३।२३ मन्त्रमें लिखा है "हे रुद्रवर्तन् अश्विद्वय! मिश्रित सोमरस अभिषुत हुआ है, तुम दोनों आयो। यह मिश्रित

सोमरस Chemical Combination वा liquid mixture के सिवा और क्या हो सकता? सोमरस रोग व्यक्तिका औषधस्वरूप है, इसीसे वेदमें उसको रोगारोग्यकारी देवता कहा है। एतद्भिन्न उक्त महाग्रन्थके १०।६७।६-७ मन्त्रमें लिखा है, कि जिस देशमें ओषधियोंका संगमन होता है उस देशके ब्राह्मण भिषक् कहलाते हैं। वे यदि अश्वावती, ऊर्ज्जयन्ती, सोमावती और उदोजस् आदि प्रधान ओषधियोंका संग्रह कर सकें, तो वे रोगीका रोग दूर कर उसे आरोग्य कर सकते हैं। उक्त सूक्तके १८वें मन्त्रमें सोमको ओषधिका राजा बताया है। फिर २०वें मन्त्रमें रोगियोंके लिये ओषधि खनन और उससे द्विपद् अर्थात् पुत्र भृत्यादि, चतुष्पद अर्थात् गो-महिषादि जीवसङ्घके आरोग्य होनेकी बात लिखी है।

इसके सिवा ऋक् संहिताके ५म मण्डलके १९, २७, ३०, ३३, ५२, ५३, ५४, ५५, ५७वें सूक्त तथा ६ष्ठ मंडलके २, २७, ४६, ४७, ४८वें सूक्तकी आलोचना करनेसे *स्पष्ट मालूम होता है, कि उस समय आर्यऋषियोंने* धातु गला कर, मुद्रा चला कर, लोहेका कलस बना कर, छुरा तैयार कर तथा अञ्जि, स्रक्, रुक्म, खादि और हिरणमय शिप्र आदि स्वर्णालङ्कार गढ़ कर तथा ऋष्टि, वंशी, धनुष, इषु, निषङ्ग, हिरण्मय कवच, वर्म और लोहेके अस्त्रादि बना कर यथेष्ट उत्कर्षता प्राप्त की थी। उसी सुप्राचीन समयसे भारतवर्षमें रसायन-विज्ञान (alchemy) का सूत्रपात हुआ था। वे लोग रासायनिक सङ्कीर्णन और विकर्षण जाने बिना कभी भी इसकी उन्नतिमें हाथ नहीं लगाते थे।

आथर्व्वणीय युगमें ऋषिगण भेषजादिके गुण और रोगनाशक शक्तिके विषयसे अच्छी तरह जानकार थे। उन सब ओषध्यादिके उत्तोलनकालमें अथवा उसकी शक्ति बढ़ानेके उद्देशसे उन्होंने मन्त्र-पाठादि द्वारा भौतिक क्रियाका आरम्भ कर दिया था। इन्हीं सब कारणोंसे हम लोग अथर्ववेदमें रोग और उसकी रसायन-समष्टिकी परिस्फुट तालिका देख पाते हैं। अथर्ववेदके ४।१७।१ मन्त्रमें अपामार्गको (Achyranthes aspera) रोगशान्तिकी मुख्यकर्त्री तथा अन्यान्य ओषधिकी ईश्वरी बता कर आवाहन किया गया है। एक दूसरे स्तोत्रमें सोमरसको अमृत (Ambrosia) और बलकर बताया है। वे लोग सौ वर्ष आयु बढ़ानेवाला रसायन (औषध) बनाना जानते थे, उसका आभास उन मन्त्रमें पाया जाता है। उक्त ग्रन्थके १।२३।१ मन्त्रमें कुष्ठरोग और बुढ़ापेके कारण बालोंका पकना दूर करनेके लिये एक प्रकारकी काले ओषधका परिचय है। ६।१३६।१-२ मन्त्र पढ़नेसे मालूम होता है, कि बालोंकी जड़ मजबूत करने तथा उसे पकनेसे रोकनेके लिये काकमाची आदि औषधियोंकी प्रशंसा की गई है। वे लोग पलितकेशकी रक्षाके लिये रासायनिक औषध बनाते थे। उसके प्रमाणस्वरूप निम्नोक्त मन्त्र उद्धृत किया गया है—

"यस्ते केशोवपद्यते समूलो यश्च वृश्चते।
इदं तं विश्वभेषज्याभिषिञ्चामि हि वीरुधी॥"

(६।१३६।३)

अथर्ववेदमें भूत वा प्रेतयोनिके समावेशसे उत्पन्न रोग और साधारण पीड़ाको अच्छा करनेके लिये जिन सब मन्त्रों और औषधोंकी व्यवस्था है वह अंश 'भैषज्यानि' कहलाता है। फिर जहां ऋषियोंका दीर्घजीवन स्वास्थ्यकी कामनासे बलकर रसायन बनानेकी ओर ध्यान गया है वह 'आयुष्यानि' नामसे परिचित है। वैदिक आयुष्यानि और संस्कृत रसायन तथा अङ्गरेजी किमियाविद्या (*Alchemy*) तीनों एक हैं। उक्त ग्रन्थमें एक जगह मुक्ता, सीप और सोनेके आवाहनका प्रसङ्ग देखनेमें आता है। इन तीनों द्रव्यका नाम रसायन है *।

वैदिकयुगके बाद आयुर्व्वेदीययुगमें चिकित्साशास्त्रकी उन्नतिके साथ साथ विभिन्न प्रक्रिया द्वारा औषधादि बनानेकी व्यवस्था हुई। महर्षि सुश्रुत और चरकने रसायन प्रस्तुत करनेकी विशद प्रथा दिखलाई है। अग्निवेश, भेल, जातुकर्ण, पराशर, हारित, क्षीरपाणि आदि आयुर्वेदशास्त्रकी विशेष उन्नति कर गये हैं। पीछे दृढ़बल, वाग्भट, चक्रपाणि-आदिने उसकी पुष्टि की।

---

* Bloomfield's Hymns of the Atharvaveda, Intro p XLVI

चरकसंहिताका सूत्र स्थान २६वां अध्याय पढ़नेसे ज्ञात होता है, कि एक समय हिमालयपर्वत चैत्ररथवनमें महिपुत्र पुनर्वसु, भद्र काप्य, शाकुन्तेय ब्राह्मण, मौद्गल्य, पूर्णाक्ष, कौशिक हिरण्याक्ष, कुमारशिरा भरद्वाज, राजर्षि वार्योविद, विदेहराज निमि, धामार्गव बडिश और बाह्लिक देशीय भिषग्वर काङ्कायन आदि ऋषियोंने एकत्र हो कर पञ्चभूतात्मक रस और आहार्य पदार्थको प्रकृत अवस्था और प्रयोजनीयताका निरूपण किया।

रसायनशास्त्रके आदिमें पार्थिव पदार्थका मङ्गल और गुण तथा उसका आणविक विश्लेषण आलोचित हुआ है। महर्षि कणादने वैशेषिक सूत्रसे, कपिलने सांख्यसूत्रसे गौतमने न्यायसूत्रसे तथा जिमिनिगण आदि प्राक् दार्शनिकोंने एक स्वरसे पञ्चतन्मात्रसे उत्पन्न पाञ्चभौतिक पदार्थका आणविक विश्लेषण स्वीकार कर लिया है। यह आणविक संयोग वा वियोग स्वीकार नहीं करनेसे रासायनिक-प्रक्रियामात्र किसी भी वस्तुका गुण परिवर्तन वा रूपान्तर नहीं किया जा सकता।

आयुर्वेदीय पौराणिक युग और अपेक्षाकृत आधुनिक वैद्यकयुगको छोड़ यदि बौद्धयुगके इतिहासकी आलोचना की जाय, तो भी औषधि और रसायनका उल्लेख देखनेमें आता है। धम्मपद, खोतान्नन, रसायन आदि ग्रन्थोंकी उपकारिता और रोगादिकी चिकित्सा तथा औषधका विषय महावग्ग, विनयपिटक, जीवक-कौमारभृत्य आदि बौद्धग्रन्थोंमें विस्तृतभावमें लिखा है। बौद्धशास्त्रविद् रिस डेविड्स और ओल्डनबर्गके मतसे विनयपिटक ३५०-४०० ई०सन्के पहले सङ्कलित हुआ था। अतएव पाश्चात्य जगत्में हिपोक्रेटिसके जन्म लेनेसे बहुत पहले हिन्दू लोग शरीररसविज्ञान (Humoral Pathology) नामक आयुर्वेदशास्त्रसे अच्छी तरह अवगत थे।

बौद्धयुगके परवर्ती आधुनिक वैद्यकयुगमें अर्थात् ग्रीसमें हम लोग देखते हैं, कि धीमरासायनिक रससिद्ध भारतमें आ कर वैद्यकशास्त्र पढ़ते थे। हर्षचरित वृत्तान्त अथवा हर्षचरित-वर्णित राजकीय रसायनके प्रसङ्गमें हम लोग केवल आयुर्वेद और भेषजादिका उल्लेख देखते हैं; किन्तु उस समय रसायन (Metallic salts) का विशेष प्रचार था या नहीं कह नहीं सकते।

वाग्भटके समयसे रासायनिक धातव औषधोंका प्रचार हुआ। इसके बाद वृन्द और चक्रपाणिने उसकी परिपुष्टि की। इस समय भारतमें तान्त्रिक प्रभाव फैला हुआ था, इससे वज्रयान प्रभृति तान्त्रिक रसाचार्योंने अधिकारसे औषधादिको अभिमन्त्रण करनेके लिये मन्त्रप्रयोगकी व्यवस्था की थी। चक्रपाणिने वृन्दका पदानुसरण किया। इन्होंने माधवकरके निदानको मूलभित्ति बना कर अपने ग्रन्थकी रचना की। उक्त निदानग्रन्थका गुरुकाधिप खलीफाके आदेशसे अरबी भाषामें अनुवाद हुआ था।

अरबदेशी विख्यात पण्डित अलबेरूनी जब भारत वर्ष आये, तब उन्होंने हिन्दुओंके गूढ़ रसायनशास्त्रका पूर्ण प्रभाव देखा था। उन्होंने लिखा है, कि ये लोग इसे गोपनीय भावमें रखते थे किसीको भी इस गुप्त रहस्यका मर्म मालूम नहीं होने देते थे। इस कारण वाह्लीक आयुर्वेदवित्गण भी यह विद्या सीख न सके। उन्होंने हिन्दुओंके अग्नियोगसे ऊर्ध्वपात (Sublimation) जारण, मारण या भस्म (Calcination) पृथक्करण वा सार ग्रहण (Analysis) तथा क्षालन (Washing of salt) प्रभृतिविधिका अनुधावन करके स्वयं अनुमान किया था, कि ये लोग प्रधानतः धातुसम्बन्धीय रसायनकी आलोचनामें लगे रहते थे।

पहले ही कहा जा चुका है कि तान्त्रिकयुगमें उपासना पद्धतिके साथ साथ शरीरकी रक्षाके लिये आयुर्वेदोक्त रसायनका आदर बढ़ा था। ११००-१३०० ई०में तान्त्रिक प्रभाव जब भारतवर्षमें तमाम फैला हुआ था उस समय शैव और वैष्णवगण बुद्ध तथा शिवको एक दृष्टि-से देखते थे। यही कारण है, कि हम लोग बौद्धके मध्य महाकालतन्त्र और रसरत्नाकर तथा शैवोंके मध्य रसा र्णव, रसहृदय, रससिद्धान्त आदि तन्त्रशास्त्रका प्रचार देखते हैं। उन सब ग्रन्थोंमें देह और स्वास्थ्यरक्षाके लिये जो सब रासायनिक प्रयोग लिपिबद्ध हुआ है, वह बहुत मूल्यवान् सामग्री है। रसहृदयमें पारेका महादेव का बीज और अभ्रकको पार्वतीका बीज बताया है। गोविन्द भगवान्, सर्वज्ञरामेश्वर भादिने विस्तृतरूपसे पारे का गुणागुण वर्णन किया है। पारद विज्ञान जो अपने

रसायनशास्त्रका आलोच्य विषय और धातुवादार्थ नियोजित है, सो नहीं, देहवेध द्वारा इससे परम प्रयोज नीय मुक्तिकोभी साधना की जा सकती है। रसार्णवमें लिखा है—

'लोहवेधस्तथा देव यद्वत् परमेशितः।
तद्वद्देहमाचरन् येन स्यात् खेचरी गतिः॥
यथा लोहे तथा देहे कर्त्तव्यः सूतकः सदा।
समानं कुरुते देवि प्रत्ययं देहलोहयोः।
पूर्वं लोहे परीक्षेत पश्चाद् देहे प्रयोजयेत्॥" इति

इस पारदविज्ञानकी परिपुष्टिके साथ साथ भारतीय आयुर्वेद जगत्में एक युगान्तर उपस्थित हुआ। भिषकोंने भैषज्यतत्त्वकी आलोचनाके साथ साथ तन्त्रोक्त पारद, लौह, ताम्र आदि धातुजात रसायनका यथार्थ तत्त्व जाननेके लिये कोई कसर उठा न रखी। इस समयको आयुर्वेदीय रसयुग (Iatro-chemical period) कहा जा सकता है। तन्त्रकार वा योगीगण अवरक, पारे, लौहे, हरिताल आदि रासायनिक प्रक्रिया द्वारा प्रस्तुत औषधादिसे यद्यपि मृत व्यक्तिको जिला न सकते थे, तो भी वह आयुर्वेदोक्त रोगारोग्यका उपयोगी औषध समझा जाता था। इस युगके चिकित्सकोंने चरक और सुश्रुतोक्त औषधादिके साथ साथ पहले रसप्रयोग की व्यवस्था की।

रसार्णव और रसरत्नसमुच्चयकार तान्त्रिकगण अनन्त जीवन और मोक्षकी कामनासे जब रसधातुसे उत्कर्षसाधक रसायनके आविष्कारमें लगे हुए थे, प्रायः उसी समय रोजर बेकन (१२६४ ई०) एलवार्टस मेगनस, रेमण्ड लाली, अर्णाण्डल्ल भिलानोभेनस आदि विद्योत्साहियोंका ध्यान किमियाविद्याकी उन्नतिकी ओर दौड़ा। रोजर बेकनने निःसङ्कोच चित्तसे कहा था, कि पारस-पत्थर (Philosophers Stone) अपरापर धातुओंको सोना बना सकता है तथा पूर्वोक्त रससिद्धों (Alchemists)-ने इसे सर्व्वरोगहर भैषज बतलाते हुए एक स्वरसे कहा है, जिसके पास यह सर्व्वरोगनाशक (*Panacea*) पदार्थ रहेगा वह ४ सौ वर्ष तक या उससे भी अधिक जीवित रह सकता है।

१२वीं या १३ वीं सदीके पहले भारतमें फलित-रसायन (*Practical Chemistry*) का पूर्ण प्रचार था। उस समय यूरोपवासी रसायनविद्यासे बिलकुल अनभिज्ञ थे। वे लोग तूतिया (Blue vitriol) माक्षिक (*Pyrites*) आदिसे ताम्रकी संयोग प्रणाली जानते थे सही, पर धातुशोधनका तरीका उन्हें अच्छी तरह मालूम न था। पारासेलसस (१४९३-१५४१ ई०) ने पारेका भेषज गुण जानकर उसके आभ्यान्तरिक प्रयोगकी व्यवस्था की थी। लिबाभियस (१६१६ ई०में) पारासेलससके दोषगुण पर विचार कर रसायनशास्त्रके उत्कर्षसाधनमें अग्रसर हुआ। प्रसिद्ध बसिल वलेण्टाइनके समय (१६०० ई०में) यूरोपमें अरिष्टटल और अरबदेशीय रसविद् (Alchemists) गणके मतानुसरणके सिवा और किसी नवीन मतका आविष्कार नहीं हुआ। १६ वीं सदीके यूरोपीय, रसायनकी उन्नतिके सम्बन्धमें अध्यापक स्कोर्लेमर (*Prof*- Schorlemmer) ने लिखा है, कि १६ वीं सदी तक यूरोपीय रसायनविदोंकी सारी चेष्टा "फिलजाफर्स ष्टोन" की खोजमें रही। किन्तु अभी रसायनशास्त्र दो नये और सम्पूर्ण विभिन्न पथके अवलम्बन पर उन्नति कर रहा है। एग्रिकोलाने धातुविज्ञान (Matellurgy) और पारासेलसस आयुर्वेदीय रसयोग (Iatro-Chemical) के सम्बन्धमें गहरी आलोचना कर धातव रसायनविज्ञानकी उन्नतिका पथ परिष्कार कर दिया है। यूरोपीय समाजमें ये लोग रसायनके प्रतिष्ठाता समझे जाते हैं। गालेन और अभिसेन्नाके मतविरुद्ध पारासेलसस और उनके छात्रवर्ग बड़े अध्यवसायसे रासायनिक प्रक्रिया द्वारा धातव औषधादि बनानेमें लगे हुए थे। इसके बहुत पहले भारतवासी नागार्जुन और पतञ्जलिको पारदादि धातुका व्यवहार मालूम था। हम लोग कमसे कम १० सदीके पूर्ववर्त्ती समयमें 'पर्पटिनाम्रम्' और 'रसामृतचूर्णम्' (Black Sulphide of mercury) नामक रसौषधमें पारेके आभ्यन्तरिक प्रयोगकी व्यवस्था देखते हैं।

१५६६ ई०को पेरिस नगरकी आयुर्वेदीय महासभा (The Parliament and the Faculty of Medicine) की विवरणमें पारासेलसस द्वारा आविष्कृत विपज्जनक औषधोंका व्यवहार निषिद्ध हुआ था। यूरोपमें उस

समय रासायनिक प्रक्रिया द्वारा बनाये गये ऐसे पारदादि धातव औषधोंका यदि प्रचार रहता तो कभी भी यह जनसाधारणके निकट उपेक्षित नहीं होता। इन सब आनुषङ्गिक प्रमाण द्वारा यह स्पष्ट मालूम होता है, कि पारासेलससने पूर्वदेशसे अपनी रासायनिक प्रथासे प्रस्तुत औषधादिका यह नया मत संग्रह कर यूरोपमें इसे प्रचार करनेकी चेष्टा की थी।

तालिफ शरिफ नामक हकीमीग्रन्थमें लिखा है कि भारतीय वैद्य संखिये या सिमुलखार (white oxide of arsenic), पारद-लोह, आदि औषधोंमें व्यवहार कर विशेष उपकारिता लाभ करते हैं, किन्तु यूनानी हकीम कभी भी इन सब औषधोंका आभ्यन्तरिक प्रयोग नहीं करते। ग्रन्थकारने स्वयं एक जगह उसके बाह्य प्रयोगकी व्यवस्था भी दी थी पर उससे कोई विशेष फल न निकला।

उपरोक्त प्रमाण द्वारा यह स्थिर हुआ है, कि भारतवासी आर्यहिन्दुओंने ही सबसे पहले पारेको सर्वरोग हरण शक्तिका पता लगाया था। चीनका प्राचीन इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि अरबवासी द्वारा रासायनविद्या यूरोपमें आनेके अनेक पहले चीनवासी 'तान सा' (हिंगुल या रससिन्दूर—Red bisulphuret of mercury) नामक रसौषधके व्यवहारसे अवगत थे।* चरक, सुश्रुत और वाग्भटादिके योगसूत्रमें रस विभागकी विस्तृत आलोचना देख कर हिन्दूको रसायनशास्त्रके उद्भावक कह सकते हैं। स्वयं अलबिरुनाने बोधिसत्त्व नागार्जुनको एक प्रसिद्ध रससिद्ध कहा है।†

मध्ययुगमें जब सारा यूरोपखण्ड अज्ञानरूपी अन्धकारसे आच्छन्न था तथा ग्रीकजातिका प्राचीन विद्यागौरव धीरे धीरे लोप होता जा रहा था, जब कुछ ग्रीक साधु पर्वतकी गुहामें बैठ कर ज्ञानका ध्यान कर रहे थे उस दुरवस्थाके दिन अर्थात् उस ग्रीकसमृद्धिके अवनतिकालमें अरबीने पूर्व दिशासे गणितादि विज्ञानशास्त्रका ज्ञानभाण्डार ले कर पाश्चात्य जगत्में स्थापित किया था वही विमल ज्ञानज्योति परिव्याप्त हो कर आज सारे यूरोपको उजाला कर रही है।

अरबवासी पण्डित विज्ञानविषयकी उन्नतिमें भारतवासी हिन्दुओंके जो ऋणी थे, उसके कितने प्रमाण उनके ग्रन्थोंमें ही मिलते हैं। १०वीं सदीके मध्यभागमें अबुल फतीह महम्मद बिन इसाक द्वारा विरचित किताब उल फिहिरिस्त ग्रन्थमें तथा हाजी खलीफा और इबन् आबु उसैबिया (१३वीं सदीके प्रारम्भमें) के विवरणसे जाना जाता है, कि खलीफा हारुण अल रसीद और अलमनसुरके आदेशसे हिन्दूके आयुर्वेदीय भैषज्यतत्त्व निदान आदि ग्रन्थोंका अनुवाद हुआ था।* फ्लुगेलने लिखा है, कि मनु नामक एक भारतीय वैद्यने हारुण अल रसीदको कठिन रोगसे बचाया था इस कारण राजाने उन्हें राजकीय आतुरालयका प्रधान चिकित्सक बनाया। उक्त चिकित्सकने खलीफाके आदेशसे सुश्रुत और चरकादि शास्त्रका अरबी भाषामें अनुवाद किया था। हाजी खलीफाने लिखा है, कि उक्त बादशाहने हिन्दूके ज्योतिषशास्त्र, बीजगणित और आयुर्वेदका प्रचार करनेके लिये हिन्दू पण्डितोंको राजदरबारमें शिक्षकरूपमें नियुक्त किया था। अरबीय प्रत्नतत्त्वविद् हायद इस सम्बन्धमें हिन्दूकी प्रधानता और प्राचीनताको अस्वीकार करते हुए मुसलमान द्वारा अनेक आयुर्वेदीय ग्रन्थोंके अनुवादकी बात लिख गये हैं। अध्यापक मूलरने उनके मतको खण्डन करते हुए दिखला दिया है, कि चरक और सुश्रुत भिन्न उन्होंने निदानका और भारतवासी सानाक (चाणक) कृत असाङ्कर (अष्टाङ्ग) नामक विष विज्ञानविषयक ग्रन्थका भी अरबी भाषामें अनुवाद किया था। डिट्ज (Dietz) ने अपने 'एनालेक्टा मेडिका' ग्रन्थमें लिखा है कि ग्रीक लोग हिन्दूका आयुर्वेदशास्त्र जानते थे इससे स्पष्ट मालूम होता है कि एक समय हिन्दूका आयुर्वेद और रसायनशास्त्र

* Beal's Buddhist Records II 30

† Buddhist Records, II 212 210 & India, I 189

* Jour Roy As. Soc. (old series) VI p. 103-117

मुसलमानों द्वारा यूरोपमें भी लाया गया था।

सनकके (Sanaf the Indian) ग्रन्थमें खाद्यद्रव्य-मिश्रित विषयकी जो परीक्षा है उसके साथ चरक (चिकित्सा० २३ अ० २९ ३० श्लोक) और सुश्रुतका वहुत कुछ मेल देखा जाता है। रासेज (Rases) ने सनस्रद्के मतका उद्धार कर ज़ोंकका जो वर्णन किया है उसके साथ सुश्रुतके विवरणका वहुत सामञ्जस्य है। यह 'सनस्रद' सुश्रुतके अपभ्रंश जैसे प्रतीत होते हैं। क्योंकि अरवी अनुवादकके हाथ यदि चरक अपभ्रंशसे सरक, सुश्रुतसे सुस्रुद, निदानसे वदन और अष्टाङ्गसे असाङ्कर हो सकता है तो रासेज कथित सनस्रदको सुश्रुत माननेमें कोई अत्युक्ति न होगी।

इस्लाम-धर्मके अभ्युत्थानके पहले भी पश्चिम जनपदवासी आयुर्वेदीय विज्ञानचर्चाके लिये भारतवर्ष आया करते थे। साशनीयराज नशिरवानके समय (५३१-५७२ ई०में) वर्जोयेह नामक एक व्यक्तिने भारतवर्ष आ कर विज्ञानशास्त्रका अध्ययन किया था। M Berthelot आदि पाश्चात्य पण्डितोंने गेवार, रासेज, आभिसेन्न, युवाकर आदिके गवेषणापूर्ण विवरणकी आलोचना कर ग्रीकोंको यूरोपीय रसायन और आयुर्व्वेदशास्त्रके उद्भावयिता तथा अरवोंको मध्य यूरोपखण्डमें उसका प्रवर्त्तक और परिपोषक वताया है। किन्तु पूर्वोक्त प्रमाणपरम्पराकी आलोचना करनेसे यह स्पष्ट जाना जाता है, कि वे लोग भारतवासियोंके ही ऋणी थे। क्योंकि, ७५० से ८५० ई०के मध्य ही अरवी साहित्यने नाना विषयोंसे परिपुष्ट और अलंकृत हो अच्छी उन्नति की थी। अलविरुनीके अनुवादक साचुने लिखा है, कि उस समय भारतवासी विज्ञानभाण्डारमें जो कुछ दान करते थे वही संस्कृतसे पाली या प्राकृतमें और पीछे इराणमें पारसी-भाषामें अनुवादित हो कर खलीफाके अधिकारमें आता और अरवी भाषामें प्रचारित होता था। इस प्रकार नाना स्थानोंमें नाना भाषामें उलट फेर होनेके कारण उसका नाम भी वदलता गया था। इसी कारण खलीफा मनसूरके शासनकालमें जव एक राजदूत सिन्धुदेशसे वगदाद आया, तव वह अपने साथ कुछ पण्डित भी लाया था। उन पण्डितोंके साथ व्रह्मगुप्तकृत ब्रह्मसिद्धान्त और खण्डखाद्यक नामक दो ग्रन्थ थे। वे दोनों ग्रन्थ यथाक्रम सिन्दहिन्द और अरखन्द नामसे अरवी-भाषामें प्रचारित हुए।

जिस अरवके निकट यूरोपवासी ऋणी थे और जो अरव भारतका ऋणी था, उस भारतके निकट यूरोपीयगण सर्वतोभावसे ऋणी थे, इसमें सन्देह करनेका कोई कारण नहीं रह जाता। अध्यापक मैकडोनल्डने इसे मुक्तकण्ठसे स्वीकार करते हुए लिखा है,— 'in science too the debt of Europe to India has been e onsiderable ** During the 8th & 9th centuries the Indians became the teachers in arithmetic and algebra of the Arabs and through them of the nations of the west Thus though we call the latter science by an Arabic name, it is a gift we owe to India "*

भारतीय आर्योंने रसायनशास्त्रको किस प्रकार पृथक् भागमें संगठित किया था, उसका असल विवरण लिपिवद्ध करना कठिन है। आधुनिक यूरोपीय रासायनिकोंने जिस प्रकार उन्नत रसायनशास्त्रका संगठन कर लिया है ठीक उसी प्रकार आर्यरसशास्त्र आलोचित होता था वा नहीं इसका पता नहीं चलता। परन्तु पौर्वापर्य अवलम्वन कर यदि आलोचना की जाय, तो यही मालूम होगा, कि भारतीय आर्यजगत्में वैज्ञानिक उन्नतिके साथ साथ रसायनशास्त्रका भी एक स्तर उद्घाटित हुआ था।

महर्षि कणादके पञ्चतन्मात्रसे पञ्चमहाभूत, सूक्ष्म और स्थूलदेह, क्षितिकी आणविक समष्टि तथा अणु, द्व्यणुक, त्रसरेणु और स्थूलाणु (Single binary, tertiary and quarternary atoms) आदिके संयोग; द्रव्यके रूप, रस और गंध, आपेक्षिक गुरुत्व, लघुत्व, तारल्य, घनत्व और शव्दादि गुणका विषय विचारनेसे रसायनशास्त्रकी प्राथमिक भित्तिकी कल्पना की जाती है। अतएव ईसाजन्मसे ६ सदी पहले दर्शनशास्त्रकी उत्पत्तिके साथ साथ भारतवर्षमें रसायनशास्त्रके आणविक विश्लेषणका आभास प्रस्फुट हुआ था।

* History of Sanskrit Literature, p 424.

चरकादि वैद्यकके मतसे पार्थिव पदार्थ प्रधानतः ३ प्रकारका है—औषध, उद्भिज्ज और क्षितिज। फिर ये भी मधुर, अम्ल, लवण, कटु, तिक्त और कषाय रस युक्त हैं। मधु, गोवसमस्तरस, मलमूत्र, पोप, शरीर रस, पित्त, वसा, मस्थिमज्जा, रक्त, मांस, चर्म, वीर्य, अस्थि, शृङ्ग, नख, खुर, गोरोचना, मृगनाभि आदि पदार्थ औषध। स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, सीसा, रांगा और लोहा (अथवा उनका रासायनिक भस्म) बालुकाचूर्ण, मैनसिल, गेरूमट्टी, सौवीराञ्जन, मणिरत्न लवण आदि औषध क्षितिज हैं।

उक्त ग्रन्थमें औपचंल, सैन्धव, विड, औद्भिद और सामुद्र नामक पांच प्रकारके लवणका उल्लेख देखनेमें आता है। ये पांच लवण पांच विभिन्न गुणोंसे युक्त हैं। क्योंकि उनका रासायनिक संयोग भी विभिन्न है। बकरे, भेड़े, माय, भैंस, हाथी, ऊंट, घोड़े और गदहे आदिका मूत्रक्षार स्पतन्त्र है।

क्षार प्रस्तुत करनेमें पहले मोटे पलाशवृक्षको टुकड़ टुकड़े करके सुखा लेना होता है। पीछे उसे जला कर राखको छः गुन जलमें घुला कर सूती कपड़ेमें २१ बार छान लेनेसे क्षारजल (lixivium) पाया जाता है। फिर उस ग्रन्थमें लौहभस्म, अञ्जन मुक्ताचूर्ण, लोह, स्वर्ण और रौप्य द्वारा प्रस्तुत बनाकर औषधादि बनानेको प्रथा भी लिखी है।

सुश्रुतके सूत्रस्थान ११वें अध्यायमें क्षारपाक और उसके प्रयोगकी विधि लिखी है। छेदन, भेदने और लिखनेका काम करनेवाले सभी शस्त्रों की अपेक्षा क्षार बहुत कुछ काम करनेवाला है। क्योंकि इससे रक्तपीप निकल आता, फोड़े फुट जाते और वातादि त्रिदोष शान्त होते हैं। सफेद होनेके कारण यह सौम्य नाम से प्रसिद्ध है। पाश्चात्य रसायनमें भी Silver nitrate को Lunar caustic कहते हैं। सौम्य होने पर भी इसमें दहन, पचन और विदारण शक्ति है। उष्णवीर्यको औषधियां इसमें अधिक परिमाणमें संयुक्त रहनेके कारण यह कटु, उष्ण और तीक्ष्णगुणविशिष्ट हो गया है। इसके द्वारा पाचन, विलयन, शोधन, रोपण, शोषण, स्तम्भन और लेखनक्रिया सम्पन्न होती है तथा इसका सेवन करनेसे कृमि, कुष्ठ, कफ, विष और मेदका क्षय होता है। अधिक परिमाणमें सेवन करनेसे पुरुषत्व नष्ट होता है।

प्रतिसारणीय (लेपनयोग्य) और पानीय भेदसे क्षार दो प्रकारका है। कुष्ठ, किटिभ, दद्रु, किलास, मण्डल, भगन्दर, अर्बुद, दुष्टव्रण, नाड़ीव्रण, चर्मकील, तिलकालक, न्यच्छ, व्यङ्ग, मशक, बाह्यव्रण, कृमि, विष और अर्श तथा उपजिह्वा, अधिजिह्व, उपकुश, दन्तवैदर्भ और तीन प्रकारके रोहिणीरोगमें प्रतिसारणीय क्षार विधेय है। इन सब मुखरोगमें क्षार शस्त्रके समान काम करता है। गरल, गुल्म, उदररोग, अग्निमान्द्य, अजीर्ण, अरुचि, आनाह, शर्कराश्मरी, अन्तर्व्रण, कृमि, विषदोष और अर्शरोगमें पानीय क्षारका प्रयोग करना उचित है। बालक, वृद्ध, दुर्बल और पित्तप्रकृतिविशिष्ट तथा रक्तपित्त, ज्वर, भ्रम, मत्तता, मूर्च्छा और तिमिर रोगमें क्षारका आभ्यन्तरिक प्रयोग हितकर नहीं है।

इस क्षारको अन्यान्य क्षारकी तरह खाविन कर लेना होगा। मृदु, मध्यम और तीक्ष्णके भेदसे क्षार तीन प्रकारका है। इसके बनानेके नियम—शरत्काल-के उत्तम दिनमें यथारीति उपवास करके पवित्र चित्तसे पर्वतके नीचे अच्छी जमीनमें उत्पन्न मझोले आकार और अकलङ्क मोखा नामक पेड़का पहले अधिवास करे। दूसरे दिन मन्त्र पढ़ कर उसे उखाड़े। अनन्तर रक्तपुष्प और श्वेतपुष्प द्वारा होम करके उस वृक्षको काट काट कर वायुशून्य स्थानमें सजा रखे। पीछे उसके ऊपर सुधाशर्करा रख कर तिलवृक्षके काष्ठ द्वारा दग्ध करे। आग बुझ जाने पर वृक्ष और शर्करा-भस्मको अलग अलग रखे। इसी प्रकार कुटज, पलाश, अश्वकर्ण, पलाश, पारिभद्र, बहेड़ा, अमलतास, लोध, आकन्द, थूहरका बाग, अपामार्ग, पाकार, अहरकरञ्ज, वासक, कदली, चित्ता, मारीकरञ्ज, अर्जुनवृक्ष, काष्ठमल्लिका, करवीर, गणिकारिका, कुन्द और चार प्रकारकी घोषा, इनमेंसे किसी एक वृक्षका क्षार प्रस्तुत करनेमें उसके फल, मूल, पत्र और शाखा एक साथ कर पूर्वोक्त विधानसे दग्ध करे।

द्रोण परिमाण (३२ सेर) भस्मका छः गुन जल अथवा गोमूत्रमें आलोड़न कर कपड़ेसे २१ बार छान ले। पीछे बड़े कड़ाहमें डाल कर आंच दे। यह जल

जब निर्मल, लाल, तीक्ष्ण और पिच्छिल हो जाय, तब असार भागको छान कर फेंक दे और परिष्कृत जल फिरसे आग पर चढ़ावे। पीछे नाटावीज, पूर्वोक्त शर्करा भस्म, सीप और शङ्खनाभि प्रत्येक ८ पल ले कर लोहेके वरतनमे रखे और तपा कर आगके समान लाल वना ले। इसके वाद उसमें थोडा क्षारजल मिला कर अच्छी तरह पीसे और ६४ सेर क्षारजलमे उसे डाल दे। अनन्तर स्थिर चित्तसे उस क्षारजलको हाथसे सञ्चालन करके पाक करना होगा। जब वह गाढ़ा हो जाय तब उतार कर लोहेके वरतनमें मुंह वद कर रखे। यही क्षार कहाता है। सीप आदि डाले विना जो पाक अच्छी तरह सञ्चालित कर लिया जाता है उसे मृदुक्षार कहते हैं।

मृदुक्षारजलमें दन्तीवृक्ष, चित्रक, लाङ्गलिका, नाटा-करञ्ज, प्रवाल, मुरामासी, विट्लवण, सज्जी मट्टी, स्वर्ण क्षीरी लता, हिंगु, वच और शृङ्गिविप प्रत्येकका २ तोला चूर्ण डाल कर पाक करनेसे वह फोडे आदिको जल्दी पका देता है। यही तीक्ष्णक्षार है। कमजोर व्यक्तिको मृदुक्षारोदक सेवन करानेसे वलकी वृद्धि होती है।

क्षारका गुण विचार वहुत तीक्ष्ण वा बहुत मृदु न होना, श्वेतवर्ण, निर्मल, पिच्छिल, द्रवकारी, वलकर और शरीरके मध्य शीघ्र घुस जाना ये आठ प्रकारके गुण हैं, तथा अत्यन्त मृदु, अत्यन्त शीतल, अति प्रवेशकारी, वहुत घना, अपक्व और द्रव्यहीनता क्षारके दोष हैं।

पीडित स्थानमें क्षार लगानेसे काला दाग पड जाता है। घृतमधु संयुक्त अम्लवर्गका प्रलेप देनेसे दग्धजनित ज्वाला निवृत्त होती है। यदि निवृत्त न हो, तो अम्ल-वर्ग, कांञ्जिक, जीवन्तीवीज, तिल और मुलेठोको एकत्र पीस कर प्रलेप दे। मुलेठी और घृतसयुक्त पीसे हुए तिलको उष्णवीर्य और तीक्ष्ण अम्ल रसके साथ मिला कर प्रलेप देनेसे क्षत स्थान भर आता है।

अम्लको छोड कर सभी रसोंमें क्षार है। कटुरसमें यह सबसे अधिक और लवण रसमें उससे कम है। यह लवणरस अम्लरसके साथ मिलनेसे मधुर होता है।

चरक और सुश्रुतादि आयुर्वेदशास्त्रोंमें रांगे, तांवे, लोहे और सोनेकी मारण विधि, क्षार प्रयोगविधि, सैन्धव, सामुद्र, विट, सौवर्चल, वोमक और उद्भिद लवणादिका प्रयोग ; पथरीरोगमें यवक्षार, सर्जिका और सुहागेका आभ्यन्तरिक प्रयोग तथा उपदंशादि वहिःक्षत-रोगमें तूतिया, हीराकसीस, मैनसिल, हरताल, फिट-करी, गेरूमिट्टी, रसाञ्जन, रोध्र, गोपीचन्दन आदि धातव औषधोंका व्यवहार, मिट्टीके तेल और क्षारतेलका प्रयोग, कासरोगमें हरिणके सींगका धूमसेवन ; सफेद वाल काला करनेके लिये तूतिये, लोहे और हरीतकी तैलका संयोग तथा पारदादि योगमें रसायनाधिकारोक्त रसायन और रसौषधकी प्रस्तुत प्रणालीकी आलोचना करनेसे भारतीय रसायनशास्त्रका एक वडा इतिहास वन सकता है। उन सवका संक्षिप्त विवरण रसायन शब्दमें लिखा जा चुका है, इस कारण यहां पर नहीं लिखा गया है। रसायन शब्द देखो।

चक्रपाणिने पारदशोधनकी व्यवस्था करके उससे कज्जली (Black sulphide of mercury) वा रसपर्पटी आदि रसौषध वनानेके नियम निकाले हैं। अपनी ताम्रयोग (*Powder of copper compound*) नामक औषध वनानेकी प्रणालीमें उन्होंने एक आवश्यकीय रासायनिक यन्त्रका भी आभास दिया है। पहले थाली जैसे चिपटे मिट्टीके वरतनमें नेपालजाता ताम्रपत्रको गन्धकके चूर्णमें रखे। पीछे उसी आकारके एक दूसरे वरतनसे उसका मुंह ढक दे इसके वाद उसे वालुका-यन्त्रमें रख कर ३ घंटे तक अग्निमें दग्ध करे। पीछे उस ताम्रको चूर्ण कर औषधादिके साथ रोगविशेषमें इसका प्रयोग किया जाता है।

लौहपारदादि धातुकी मारण, जारण और शोधन प्रणालीका विवरण ऊपरमें दिया जा चुका है।

आयुर्वेदिक युगमें रासायनिक प्रक्रियाके परिपोषक नाना यन्त्रादिका निदर्शन नहीं रहने पर भी हम लोग तत्परवर्त्ती तान्त्रिक युगमें (११८० १३०० ई०) धातव औषधादि वनानेके कितने रसायन-साध्य यन्त्रोंका उल्लेख देखते हैं। रसार्णव और रसरत्नसमुच्चय नामक तन्त्रोंमें धात्वादिके रसायनिक संयोगार्थ जिन सव उस समय प्रचलित यन्त्रोंका उल्लेख है यहां पर उनका संक्षिप्त विवरण दिया जाता है।

रसार्णवमें प्रतिपाद्य कहता है, कि निम्नोक्त द्रव्य समूह करके रसायन कार्य आरम्भ करना चाहिये।

"खल्वरवादानि यन्त्र कर्माणि विरम्।
धमनीलोहशस्त्राणि अश्मपाषाणमर्दकम्॥
कौष्टिका वंशनालश्च गोमयं सारमिन्धनम्।
मृन्मयानि च यन्त्राणि मूषलोलूखलानि च॥
सन्दंशीसार्धकरं मृत्पात्राश्मलौहजम्।
प्रतिमानानि च तुल्या तुलनानि कषोपलम्॥
वंशनालं लौहनालं मृत्पात्राणि सपीठकम्।
स्नेहाम्ललवणक्षारविषाण्युपविषाणि च।
एवं सम्भारं सम्भार कर्म कर्म समारभेत्॥"

(रसार्णव ४र्थ परि०)

उपरोक्त श्लोकोंकी भाषा प्राञ्जल जान कर यहां पर उसका अनुवाद नहीं दिया गया। श्लोकवर्णित शब्दों के अंगरेजी प्रतिवाक्यको आलोचना करनेसे प्राच्य और प्रतीच्य रसायन सम्बन्धीय वस्तुगत व्यवहारका बहुत कुछ सामञ्जस्य सहजमें मालूम हो सकता है।

कसीस (green vitriol), सैन्धव (rock-salt) माक्षीक (pyrites) सौवीर (stibnite), त्र्योष (गोलमिर्च, पीपल और सोंठ) गन्धक (sulphur), सौवर्चल (saltpetre) इनसे निम्नमूलके रसमें सिद्ध करनेसे विड़ होता है। दूसरेके मतानुसार गंधक, हरिताल (orpiment), सिन्धूत्थ (sea-salt, salt), चूलिका (sal ammoniac) और टङ्कण (borax)को क्षार और मूत्रमें सड़ानेसे ज्वालामुख नामक विड़ तैयार होता है। धमनी (a pair of bellows), लौहयन्त्रादि (iron implements), अश्मपाषाणमर्दक (stone pestle and morter), कोष्ठिका १६ अंगुल चौड़ा और २ हाथ लम्बा यन्त्र है। इसके द्वारा धातुका मूल पदार्थ जैसे अविशुद्ध दस्ता (calamine)से विशुद्ध दस्ता (Zinc) निकाल लिया जाता है। धमनाल (mouth blow pipe), गोमय (गोबर), सारइन्धन, मृण्मय यन्त्र (earthen apparatus—प्याला डकनी आदि) मूसल और ओखली, सड़सी, (a pair of tongs), मृत्पात्र और आयः कटोरक (earthen and iron vessels) प्रतिमानादि (weights) तराजू (balance), वंशनाल और लोहनाल Bamboo and iron pipes) तथा स्नेह (lute), अम्ल (acid) लवण (salts), क्षार (alkalies) और विष (poisons) तथा अभ्रक, वैक्रान्त माक्षीक, विमल अद्रिज या शिलाजीत, सस्यक या मयूर-तुत्थ, चपल, रसक, ये आठ प्रकारके रस ; गंधक, गैरिक कसीस, तालक, मैनसिल अंजन और कङ्कुष्ठादि आठ उपरस कम्पिल्ल गौरीपाषाण, नव सार कपर्द अग्निजार गिरिसिन्दूर हिंगुल और मृद्दारशृङ्ग नामक साधारण रस हैं। लौहादि धातु, वज्र और रत्न आदि द्रव्य एकत्र कर रससिद्ध व्यक्ति कार्यमें प्रवृत्त होवे। इन सब संगृहीत द्रव्योंको एक साथ ले उनसे एक छोटी कर्मशाला या रसशाला (laboratory) बनती है। (रसरत्नसमुच्चय)

इसके बाद उस रसशालामें कौन कौन यन्त्र किस किस कार्यमें प्रधानतः व्यवहृत होता था उसका विवरण नीचे दिया जाता है।

१ दोलायन्त्र—एक बरतनमें आधा तरल पदार्थ भर कर एक आड़ा दण्ड सीधा खड़ा करे और उसमें रस पोटली (कपड़ेमें बंधे औषधादि) लटका दे। पीछे उस पर एक दूसरा मट्टीका बरतन उलटा कर ढक दे। थोड़ी देर बाद देखेंगे, कि यह पोटली भापसे तराबोर है।

(रसरत्नसमुच्चय ९।१-४)

भावप्रकाशमें दोलायन्त्रका विवरण इस प्रकार है,—पारदसंयुक्त औषधको एक त्रिगुण वस्त्रपत्रसे लपेट कर पुटली बनावे। पीछे सूतसे उस पोटलीको एक लकड़ीमें मजबूतीसे बांध दे। बादमें काञ्जिकादिसे पूर्ण एक दूसरे बरतनके ऊपर वह लकड़ी इस प्रकार रखे कि उसमें बंधी हुई पोटली बरतनमें लटकती रहे। इसके बाद उसे आंच पर चढ़ा कर यथाविधि पाक करे। कोई कोई इसे स्वेदनीयन्त्र भी कहते हैं।

"निधायौषधं वस्त्रे सूत्रे बध्वा त्रिगुणाम्बरे।
रसपोट्टलिकां कार्यं दृढं बद्ध्वा गुणेन हि॥
कन्यामपूर्य कुम्भान्तः काञ्जिकेनार्धपूरितम्।
अधस्तादग्निमायोज्य पचेत् यन्त्रमिदं हि।
दोलायन्त्रमिदं प्रोक्तं स्वेदनाख्यं तदेव हि॥"

(भावप्र० पूर्वख०)

२ स्वेदनीयन्त्र—एक जलपूर्ण मृत्पात्रका मुंह कपड़े से बांध कर उसके ऊपर पाच्य द्रव्य रखे। पीछे उसी आकारका दूसरा पात्र उस पर उल्टा रख कर लेपसे मुंह बंद कर दे। इसके बाद आँच पर चढ़ानेसे नीचेके बरतनसे जो भाप उठेगी उससे कपड़े पर रखी हुई वस्तु भींग जायगी।

"साम्बुस्थालीमुखाबद्धे वस्त्रे पाक्यं निवेशयेत्।
पिधाय पच्यते यत्र स्वेदनीयन्त्र मुच्यते॥"

(रसरत्नस॰ ९ अ॰)

जारणयन्त्र—बारह उंगली लंबे लोहेके दो चोंगे बनावे। एकके पेंदेमें कुछ छेद रहेगा। छेदवाले चोंगेमें गंधक और दूसरेमें रस भर कर मूषामें डाल दे। पारेके नीचे एक दूसरे बरतनमें जल रखे। पहले वह रस और गंधक वस्त्रगालित रसोनक रस-में बड़ी सावधानीसे मिला कर उससे बरतन भर दे। इसके बाद उस यन्त्रको एक मृत्पात्रके मध्य रख कर ऊपरसे दूसरा पात्र ढक दे। दोनों पात्रके संयोग स्थल को कपड़े और मिट्टीसे इस प्रकार बंद कर दे, कि कहीं-भी छेद रहने न पावे। अनन्तर उसे गोंइठेकी आगमें तीन दिन जलानेके बाद गरम जलमें मर्द्दन करे।

"लौहनूपाद्वयं कृत्वा द्वादशाङ्गुलमानतः।
ईषच्छिद्रां छिद्रमितामेकां गन्धकसंयुताम्॥
मूषायां रसयुक्तायामन्यस्यां तां प्रवेशयेत्।
ताभ्यां स्यात् सवस्त्रावं ऊर्द्ध्वाधो वह्निदीपनम्॥
रसोनकरसं मर्द्दे यत्नतो वस्त्रगालितम्।
दापयेत् प्रचुरं यत्नादाप्लाव्य रसगन्धकौ॥
स्थालिकायां निधायोर्द्ध्वं स्थालीमन्यां दृढां कुरु।
सन्धिं विलेपयेद्यत्नान्मृदा वस्त्रेण चैव हि॥
स्थाल्यन्तरे कपोताख्यं पुटं कुर्य्यादग्निना सदा।
यन्त्रस्याधः करीषाग्निं दद्यात् तीव्राग्निमेव च॥
एवं तु त्रिदिनं कुर्य्यात् उततोयं विमर्द्दयेत्।
न तत्क्षीयते सुतो न च गच्छति कुत्रचित्॥
ऊर्द्ध्वं वह्निरधश्चापो मध्ये तु रस-संग्रहः।
नूपायन्त्रमिदं देवि जारयेद्गगनादिकम्॥" (रसार्णव)

गर्भयन्त्र—४ उंगली लंबा, ३ उंगली चौड़ा और १ उंगली गहरा एक मूषा बनावे। पीछे लवण २० भाग और गुग्गुल १ भागको अच्छी तरह चूर्ण कर उसे जलसे मले। इसके बाद उसमें तिलपिष्ट डालना होगा, बादमें भूसीकी आगमें दग्ध करनेसे तीन रातमें पारा (पिष्टिक) भस्म हो जायगा। इस यन्त्रसे बिना भेषजादिके पारद, जारण और रञ्जन किया जा सकता है।

"गर्भयन्त्रं प्रवक्ष्यामि पिष्टिका भस्मकारकम्।
चतुरङ्गुलदीर्घाञ्च मूषिका मृण्मयीं दृढाम्॥
अङ्गुलमध्यविस्तारं वर्त्तुलं कारयेन्मुखम्।
लोणस्य विंशतिर्भागा एकभागस्तु गुग्गुलोः॥
सुश्लक्ष्णं पेषयित्वा तु तोयं दद्यात् पुनः पुनः।
मूषालेपं ततः कुर्य्यात् तिलपिष्टं च निक्षिपेत्॥
कुर्यात् तुषाग्निं भूमौ च मृदुस्वेदं तु कारयेत्।
अहोरात्रं त्रिरात्रं वा रसेन्द्रो भस्मतां नयेत्॥
जारणे सारणे चैव रसराजस्य रञ्जने।
यन्त्रमेव परं कर्म यन्त्रविद्यामहाबला॥
औषधिरहितश्चायं हठात् यन्त्रेण बध्यते।
तस्माद् यन्त्रमृते चैक न सिद्धद्र्व्य विनानता॥"

(रसार्णव)

हंसपाकयन्त्र—सिकताकार एक खपरैल बना कर उसे बालूसे भर दे। पीछे उसके ऊपर एक दूसरी खपरैल रख कर पञ्चक्षार, मूत्र, लवण और विडङ्गके साथ औषधादि पाक करे।

"खर्परं सिकताकारं कृत्वा तस्योपरि न्यसेत्।
अपरं खर्परं तत्र शनैर्मृद्वग्निना पचेत्॥
पञ्चक्षारैस्तथा मूत्रैर्लवणेभ्च विडैस्ततः।
हंसपाकः सविज्ञातो यन्त्रतत्त्वार्थकोविदैः॥" (रसार्णव)

मूषा—मूषा, भाण्ड, स्थाली आदि रासायनिकके आवश्यकीय मृदुयन्त्र बनानेके लिये काली, लाल, पीली और सफेद मिट्टी कही गई है। इनमेंसे काली मिट्टी ही उत्तम है। चुलाईके वक्त नल आदि बनाने-में कुछ कड़ी मिट्टीकी जरूरत होती है। इसीलिये तुषदग्ध, वल्मीकी मिट्टी, अज और घोड़ेका मलदग्ध, लोहमण्डूर और वृक्षविशेष दग्ध अङ्गार उसमें मिलाया जाता है।

अन्धमूषायन्त्र—भूसीकी राख २ भाग, मण्डूर १ भाग, सफेद पत्थरका चूर्ण १ भाग, बकरीका दूध २

भाग तथा मनुष्यके बाल इन्हें एक साथ पीस कर गो स्तनके आकारका एक पात्र बनाना होता है। इसीका नाम मूषा है। मूषा सूखने पर उसमें पारदादि पदार्थ रख ऊपरसे दूसरा बरतन ढक दे। दोनोंके मुंह पर मूषा बनानेवाले उपादानसे लेप चढ़ावे। इसको अन्धमूषा यन्त्र कहते हैं। किसी किसीके मतसे यह वज्रमूषा भी कहलाता है।

"कृष्णा रक्ता च पीता च शुक्लवर्णा च मूषिका।
भाण्डा भ श्र कनिष्ठा च मध्यमा मध्यमा मता॥
दग्धवान्तुषपेषेता मृत्तिका काष्ठकारिका।
वज्रमृत्त्स्ने वापि दत्का मुक्तकुन्दरि॥
गौरा दग्धा तुषा दग्धा दग्धा-वल्मीकमृत्तिका।
भस्मासाना सर्व दग्धं दग्धम् तु कृष्णता गता॥
वाउकस्य च पत्रापि वल्मीकस्य मृदा तथा।
पक्वेऽग्नितोयेन मनेन वज्रा गता॥
मर्दयेत् तेन वल्मीकान्तु यमनाले च कोष्ठकम्।
गौरा दग्धा तुषा दग्धा दग्धा वल्मीकमूषिका॥
चिरमल्लारका किहु वज्रेणापि न भिद्यते।
दग्धाङ्गारस्य षड्भागा मार्गेण कृष्णमृत्तिका॥
चिरमल्लारकः किट्टं वज्रमूषा प्रकीर्तिता॥
तुषदग्धवल्का दग्धमृत्तिका चतुरिका।
वस्त्रमर्दनपाषाणसंयुक्ता वज्रमूषा प्रकीर्तिता॥
प्रकाशान्धमूषा च प्रकृतिर्द्विविधा स्मृता।
प्रकाशमूषा वेदेषि शरावाकारसंयुता॥
अन्धनिर्दिश्यते सा च वैदिकैः मुखबन्धने॥
अन्धमूषा तु कर्तव्या गोस्तनाकारसन्निभा।
पिधानकसमायुक्ता शिखिमुखानमस्तका॥
पवक्षेप तथा रक्षे ब्रह्मणे सापके तथा।
सैव छिद्रान्विता मन्द्रा अन्धीरा समयाधिका॥
मोक्षकारस्य भागी द्वौ इष्टकासमन्वितौ।
मृत्प्रमाणस्तरपुरस्सर्वमुखसमा वरवर्णिनि॥" (रसार्णव)

विद्याधरयन्त्र—एक बरतनमें पारा रख कर उसके ऊपर एक दूसरा जलपूर्ण बरतन बैठावे तथा दोनोंके संयोग स्थलको मिट्टीसे लेप दे। बादमें चूल्हे पर रख कर पांच पहर तक आंच दे। ऊपरके बरतनका जल जब गरम हो जाय, तब उसे फेंक कर फिर उसमें शीतल जल डाले। ऐसा करनेसे नीचेकी हाँड़ीका पारा धीरे धीरे ऊपरवाली हाँड़ीके पेंदेमें जम जायगा। पाक शेष होने पर उसमेंसे पारा निकाल ले। पारदके ऊर्ध्व पातन क्रियामें इस यन्त्रका व्यवहार होता है।

"अध स्थाल्या रसं क्षिप्त्वा निदध्यात्तन्मुखोपरि।
स्थालीमूर्ध्वमुखी सम्यक् निरुध्य मृदुमृत्स्नया॥
ऊर्ध्वस्थाल्या जलं क्षिप्त्वा चुल्ल्यामारोप्य यत्नतः।
अधस्तात्ज्वालयेदग्निं यावत् प्रहरपञ्चकम्॥
स्वाङ्गशीतं ततो यन्त्रादूर्ध्वस्थालीगतं रसम्।
विद्याधराभिधं यन्त्रमेतत्तज्ज्ञैरुदाहृतम्॥"

(भावप्र० पूर्वख०)

रसरत्नसमुच्चयमें इसीको हिंगुलाकृष्टिविद्याधरयन्त्र कहा है।

भूधरयन्त्र—एक जलपूर्ण कलसको जमीनके नीचे गाड़ कर एक दूसरा कलस जिसके भीतर औषध लिप्त रहे उसके ऊपर रख दे। संयोगस्थलको मिट्टीके लेपसे अच्छी तरह बंद कर दे। पीछे ऊपरके कलसमें ऊपरसे आंच देनेसे उसका औषध नीचेके जलपूर्ण कलसमें गिर पड़ेगा। यह पारेकी अधःपातनक्रिया करनेमें विशेष आवश्यक है।

भावप्रकाशमें दूसरे प्रकारके भूधरयन्त्रका उल्लेख है—मूषाके मध्य पारा रख कर वह मूषा बालूसे ढक दे। पीछे उसके चारों ओर गोइठा सजा कर आग जलावे।

"बालुकाभिः समस्ताङ्गं गर्ते मूषा रसान्विता।
दीप्तोपलैः संवृणुयाद्यन्त्रं भूधरनामकम्॥" (भावप्र०)

बालुकायन्त्र—एक हाँड़ीमें काचकीयन्त्र अर्थात् औषधपूर्ण और मृत्तिकालिप्त एक बोतल बैठा कर उसके गले तक बालू भर दे। पीछे उस हाँड़ीमें आंच दे कर औषध को पकावे। यह यन्त्र रससिन्दूर, मकरध्वज आदि औषध बनानेमें व्यवहृत होता है।

रसरत्नसमुच्चयमें लिखा है—एक काचके बोतलमें जिसका गला लम्बा हो मट्टी और कपड़े द्वारा ऊपरसे लेप चढ़ा कर उसमें पारदादि औषध रखे। पीछे वितस्ति भर गहरे एक भाण्डमें वह बोतल रख कर इस का तिहाई भाग बालूसे भर दे। अनन्तर उसके ऊपर एक दूसरा भाण्ड उलट कर मुखसन्धिको मट्टीसे लेप

तेन पत्राणि कृत्स्नानि द्रवान्युक्तविधानतः ॥

*   *   *   *

गन्धालकशिलानां हि कज्जल्या वा मृताहिना ॥
धूपन स्वर्णपत्राणां प्रथम परिकीर्त्तितम् ।
तारार्थं तारपत्राणि मृतवन्धेन धूपयेत् ॥"

(रसरत्न ६।७०-७६)

इन सब यन्त्रोंकी सहायतासे द्रावक (acids) तथा आसव और मद्यादि (medicated wines) चुआया जाता है। जारण, मारण और पुटपाक द्वारा धातु और रसादि विशुद्ध तथा अधिक गुणयुक्त होता है। *
विशेष विवरण उन्हीं सब शब्दोंमें देखो।

यूरोपीय रसायन।

क्षिति आदिका पाञ्चभौतिक पदार्थका संयोजन (synthesis) और विश्लेषण (analysis) धर्मका कारण निर्णय करनेके लिये सम्प्रदाय विशेषकी चेष्टासे किमियाविद्याकी उत्पत्ति हुई है। ११वीं सदीमें स्वीडस (Suidas)के अभिधानमें प्रथमतः Chemistry शब्दका प्रयोग देखा जाता है। उन्होंने स्वर्ण और रौप्यकी प्रस्तुत प्रणाली' के अर्थमें इस शब्दका व्यवहार किया है। उसी ग्रन्थमें दूसरी जगह लिखा है, कि इजिप्तवासी इस विद्याके प्रभावसे आगे कहीं शत्रुता न ठान दें, इस भयसे डायक्लिसियनने स्वजातीय रसायन विषयक सभी ग्रन्थोंको आगमें जला दिया। वह विद्या प्राचीन आर्गोनटिकके अभियानकालसे प्रचलित थी। ५वींसे ले कर १५वीं सदी तक ग्रीक लोग सोने और चांदी बनानेकी विद्याके पक्षपाती थे। इटली, फ्रान्स, जर्मनी और इङ्गलैण्डवासी दार्शनिक ११वींसे १५वीं सदी तक गहरी खोजसे रसायनशास्त्रका अनुशीलन करते रहे थे।

Isaacus Hollandus, Roger Bacon, Raymond-Lully, Basil Valentin, John Price, George Rippel, Geber आदि मनीषियोंने गन्धक, स्वर्ण, रौप्य, ताम्र, पारद, वङ्ग, रङ्ग, पित्तल आदि धातुओं तथा उपधातुओंका भेषजगुण और मनुष्यके शरीरमें उसकी उपयोगिता उपलब्ध की थी।

* Dr P C. Raya's Hindu Chemistry देखो।

१६वीं सदीमें एक दल नवीन रसायनविद् (Spagyrist)-का उद्भव हुआ। उन लोगोंने पूर्वकथित रससिद्ध लोगोंकी तरह पारस पत्थरकी तलाश न करके रासायनिक प्रक्रिया द्वारा प्रस्तुत औषधादिके उद्भावनमें अपनी सारी शक्ति लगा दी थी। *Paracelsus* (१४९३-१५४१ ई०)-ने लिखा है,—"The true use of chemistry is not to make gold, but to prepare medicines." वे Galden-के मतकी उपेक्षा कर अपना मत स्थापन करनेमें बद्धपरिकर हुए। इस समय Thurneysser (१५३१-१५९६). Bodenstein Taxites, Dorn, Sennert, Duchesne आदि उनके पृष्ठपोषक हो उस कार्यमें लग गये। इसके बाद १७वीं सदीमें विख्यात अंगरेज-चिकित्सक Dr Willis (१६२१ १६५७ ई०) तथा Lefebvre और Lemery नामक दो पारसी पण्डित उक्त मतकी अच्छी तरह पुष्टि कर गये हैं।

पारासेलससके समय जर्मनदेशमें एग्रिकोला (१४९४-१५५५ ई०) नामक एक धातुविद् बिलकुल स्वतन्त्रभावमें धातुविज्ञानकी आलोचना करते थे। उनके बनाये हुए 'De Re Metallica' नामक ग्रन्थमें फलित रसायनसम्बन्धीय अनेक आवश्यकीय विषयोंका सिद्धान्त है। लिबाभियस (१६१६ ई०से कुछ पहले) पारासेलसस और अरिष्टटलके मतका अनुसरण कर रसायनशास्त्रकी बहुत उन्नति कर गये हैं।

इस समयके कुछ बाद J B. Van Helmont (१५७७-१६४४ ई०), Francis de la Boe Sylvius (१६१४-१६७२ ई०) तथा Glauber (१६०४-१६६८ ई०) आदि विद्वान् रसायनविज्ञानकी उन्नतिमें लग गये। ग्लौबर sulphate of sodium नामक यौगिक पदार्थके आविष्कर्त्ता थे, इस कारण वह पदार्थ आज भी Glauber's salt नामसे रसायनशास्त्रमें प्रसिद्ध है। इस प्रकार जब एक पक्षने रसायनकी उपकारिता दिखलाते हुए उस विज्ञानकी उन्नतिके लिये अपना सर्वस्व अर्पण कर दिया था, तब Robert Boyle (१६२७-९१ ई०) corning (१६०६-१६८१ ई०), Sydenham (१६२४ ८९), *Pitcairne* (१६५२ १७१३ ई०) और उनके शिष्य Boerhaave (१६६८-१७३८) आदि मनीषिलोग आयुर्वेदीय

रसायन (Iatro-chemistry)-की असारता साबित करनेमें लग गये । किन्तु De Blegny Borrichius, Viridet, Vieussens और F Hoffmann आदि रासायनिकोंने जब बड़े जोरसे आत्मपक्षका समर्थन किया, तब रसायन विद्‌ विद्गण उनके उन्नतिपथमें जरा भी बाधा न पहुंचा सके ।

Kunckel (१६३०-१७०२) अपने अध्यवसायसे रसायनभाण्डारमें प्रचुर रत्नसञ्चय कर गये हैं । यौगिक पदार्थके रासायनिक प्रभाव और संयुक्त दोनों वस्तुओंकी क्रियाविधिका विषय Becher (१६३५-१६८२ ई०)ने सबसे पहले रसायनशास्त्रमें लिपिबद्ध किया । तापके संयोगसे कुछ वस्तु तो थोड़े ही समयमें जल जाती और कुछ अधिक ताप लगने पर भी नहीं जलती देख कर रसायनविद्‌ Stahl (१६६०-१७३४) ने इसका कारण दिखलाते हुए एक दीपक पदार्थ (Phlogiston)-की कल्पना की । इस दीपकीय तत्त्वका अनुसरण कर पूर्वकथित Hoffmann, Homberg (१६५२-१७१५ ई०), E F Geoffroy (१६७२-१७३१ ई०), Neumann (१६८३-१७३७ ई०), J H. Pott (१६९२-१७७७ ई०) Marggraf (१७०९-८२ ई०), Macquer (१७१८-८४ ई०), Beaumur (१६८३-१७५७ ई०), Hellot (१६८५-१७६६ ई०) Duhamel du Monceau (१७००-८२ ई०) आदि रसायनविदोंने बहुत खोज करके रसायनशास्त्रका विशेषरूप आविष्कार किया । (Macquer) आर्सेनिक पकिस्तक उद्भावक रूप कर जनसाधारणमें परिचित थे । कहना फजूल है, कि इस Phlogistic युगमें Robert Hooke (१६३५), Mayow (१६४५-१६७९), Dr Stephen Hales (१६७७-१७६१ ई०) Dr Black Dr J Priestley (१७३३-१८०४), Henry Cavendish) १७३१-१८१० ई०) आदि Phlogiston तत्त्वानुसन्धित्सु रसायनविदोंने इस विज्ञानशास्त्रका सम्यक्‌ श्रीवृद्धि की थी ।

जो यूरोपीय वैज्ञानिक एक समय जल, स्थल, अग्नि और वायुको मूल पदार्थ मानते थे तथा एक सदी पहले कुछ द्रावक (Acids) और क्षार (Alkalies) भिन्न यौगिक पदार्थके सम्बन्धमें जिनका अधिक ज्ञान न था, उन लोगोंने दाहकत्वरक्षक अवस्थामें व्याप्त हो जानेवाले को तरह दीपकका भी (Phlogiston) एक मौलिक पदार्थ माना था । वे कहते थे, कि यह शक्ति या पदार्थ वस्तुके अगोचर होने पर भी कार्य द्वारा हम लोग उसका अस्तित्व अनुभव कर सकते हैं । पदार्थमात्रको अस्थिमज्जामें यह कुछ न कुछ रहता ही है । किसी उपाय द्वारा मूल पदार्थसे उसको अलग कर सकनेसे ही तापक आलोकका उत्पत्ति हो सकता है ।

१७७६ ई०में कावेण्डिशने उद्‌जनवाष्पका आविष्कार किया । इस वायवीय पदार्थको तापके संयोगसे जलते देख वैज्ञानिकोंने दीपकका कार्यकारित्व ही उसका प्रधान कारण स्थिर किया था । उनके मतसे दूसरे दूसरे पदार्थमें दीपक जिस प्रकार निबिड़भावमें मिश्रित रहता है, उद्‌जनमें दीपक उस प्रकार दृढ़ संश्लिष्ट न हो कर बहुत कुछ मुक्तावस्थामें रहता है । यही मुक्तदीपक उद्‌जनके जलानेमें समर्थ है ।

१८वीं सदीके आरम्भमें फरासी-राष्ट्रविप्लवकी प्रबल बाढ़से जब सारा यूरोपखण्ड क्षोभग्रस्त हो नये भावमें संगठित हो रहा था, उस समय वैज्ञानिक विप्लवकी प्रचण्ड तरङ्गसे जड़ विज्ञानका कितनी ज्ञाता प्रगाढ़ताकी का नींव भी बैठ गई थी । पीछे नए प्रयाससे उसे फिर खड़ा करनेका आयोजन हुआ । जल, स्थल, अग्नि, वायु और दाहकको मौलिक पदार्थ मान कर प्राचीन वैज्ञानिकोंने रसायनशास्त्रकी प्रतिष्ठा की थी । नवीन वैज्ञानिकप्रवर्त्तक आविष्कार फलसे प्राचीन रसायनशास्त्रकी वह पाञ्चभौतिक भित्ति उखड़ गई । नव्य लोगोंने परीक्षा द्वारा स्थिर किया कि मट्टी, जल और वायु मौलिक पदार्थ नहीं हैं उन्हें सहजमें विश्लिष्ट किया जा सकता है । रासायनिक विश्लेषणसे यह सब प्रत्यक्ष रूप कर लोगोंका दाहक सम्बन्धमें सन्देह होने लगा । इसी समय बहुत "ज्ञानक आमसघाटि विएसने अपिसजन वाष्पका आविष्कार किया । इससे सन्देहको मात्रा और भी दूना बढ़ गई । विएसन दाहकका ही अपिसजनको दाहिकाशक्तिका कारण बताया था । किन्तु उस नूतन वायवीय पदार्थ द्वारा दाहकका अस्तित्व साबित करनेमें विशेष सुविधा होगी पहले विएसका ध्यान इस ओर न दौड़ा ।

जब नव आविष्कृत अपिसजनकी दाहिकाशक्तिका

कारण निर्णय ले कर वैज्ञानिकोंमें तुमुल आन्दोलन चल रहा था, उस समय फरासी पण्डित A L Lavoisier (१७४३-१७६४) अपनी रसशालामें बैठ अक्सिजन सम्बन्धीय गवेषणामें रत थे। वे पूर्ववैज्ञानिकोंको तरह दीपक पदार्थको सभी रासायनिक कार्यका साधक नहीं मानते थे। परीक्षा द्वारा जब उन्होंने देखा, कि अग्निशिखाके स्पर्शसे अक्सिजन जल जाता या रूपान्तरित होता है, तब उन्होंने यह साबित किया, कि एकमात्र इस अक्सिजन द्वारा ही वे सब रासायनिक कार्य हो सकते हैं। इस मीमांसाको प्रत्यक्ष करके निरपेक्ष व्यक्तिगण काल्पनिक दीपक पदार्थकी उपयोगिता अग्राह्य करने लगे। इस प्रकार नव्य वैज्ञानिक सम्प्रदायके प्रधान लाभोसियरने अक्सिजनकी सहायतासे अपने छोटे परीक्षा घरमें यूरोपीय रसायनशास्त्रकी प्रकृत भित्ति स्थापन की थी।

धीरे धीरे लाभोसियरके शिष्योंसे यह नवीन तत्त्व फरासी राज्यके चारों ओर फैल गया। जगद्विख्यात तापतत्त्वविद् मि० ब्लाक, जलके गठनोपादाननिर्णायक अध्यापक रदरफोर्ड आदिने भी उनके मतको समर्थन किया था, केवल अक्सिजनके आविष्कर्त्ता प्रिष्टले स्वयं नूतन सिद्धान्तके जन्मदाता होने हुए भी पुराने दीपक सिद्धान्तसे विच्युत न हो सके थे। उनकी मृत्युके साथ साथ प्राचीन रसायनशास्त्रका दीपक-सिद्धान्त भी विलुप्त हो गया।

वैज्ञानिक लाभोसियर अक्सिजनके गुण-धर्म-प्रकाश द्वारा रसायनकी पुरानी नीवं उखाड दी सही, पर नई प्रथाके रसायन-शास्त्रका संगठन भार १९वीं सदीके नवीन वैज्ञानिकोंके ही ऊपर रहा। Fourcroy (१७५५ १८०६ ई०), Monge (१७४६ १८१८ ई०), Guyton de Morveau (१७३७-१८१६ ई०) और Bertholet (१७१८ ४८२२ ई०) आदिने उनके मतकी पोषकता कर एक नया मार्ग निकाला। इस समय जान डालटन (१७६६ १८४४ ई०) नामक एक प्रसिद्ध वैज्ञानिकने मेघ, वृष्टि और जलीय वाष्पके सम्बन्धमें आलोचना करते समय १८०३ ई०को यह प्रचार किया कि सूक्ष्म जलकणाको विश्लेषण करनेसे उसमें अक्सिजन और उद्जनके अनेक सूक्ष्म कण देखे जाते हैं तथा दो कण उद्जन और एक कण अक्सिजनको तापके साथ मिलनेसे एक जलकणकी उत्पत्ति होती है। किन्तु उक्त दो पदार्थ विभिन्न परिमाणमें मिलनेसे जलकणकी उत्पत्ति न हो कर दूसरे पदार्थकी सृष्टि होती है। इस आलोचनाके फलसे उन्होंने यह निर्णय किया, कि जल, स्थल, वायु और अग्नि मूल पदार्थ नहीं हैं। उद्जन और अक्सिजन ही प्रकृत मौलिक पदार्थ है। इनके परमाणु विभिन्न परिमाणमें सयत हो कर विचित्र पदार्थ उत्पन्न करते हैं सही, पर उस अवस्थामें उनका निजत्व लोप नहीं होता। वैज्ञानिक प्रथासे यदि वह यौगिक पदार्थ विश्लिष्ट किया जाय तो उसके गठन उपादनका वह मूल पदार्थ आपसमें विच्छिन्न हो निजत्व प्रकाश करेगा। इसके अतिरिक्त परीक्षाकालमें उन्होंने उद्जन और अक्सिजनके वजनके अनुपात द्वारा तथा परिमाणु संख्याके अनुपातकी सहायतासे गणना करके प्रत्येक अक्सिजन परमाणुका गुरुत्व स्थिर किया। उनके मतसे हाइड्रोजन परमाणुके गुरुत्वकी अपेक्षा अक्सिजन परमाणुका वजन ५॥० गुण अधिक हैं। फिर उन्होंने और भी २५ पदार्थोका पारमाणविक गुरुत्व स्थिर कर १८०४ ई०में उसके आविष्कारकर्त्ता Mr. Thomson को सूचित किया और एक वैज्ञानिक सभामें वह प्रबंध पढा। एकत्रित पण्डितमण्डली उनकी परीक्षाका परिचय और पारमाणविक सिद्धान्त (Atomic composition of bodies) पा कर विस्मित हो गई। सच पूछिये तो उसी दिनसे नूतन रसायन शास्त्रकी प्रतिष्ठा हुई थी।

इस आविष्कारके बाद Dr Wollaston, Gay Lussac Avogadro, Berzelius A, Von Humboldt, Williamson, Nicholson and Carlisle, Faraday, Bunsen और प्रसिद्ध वैज्ञानिकोंने वर्त्तमान रसायनशास्त्रकी नाना शाखा प्रशाखाओंकी उन्नति की है।

पदार्थविज्ञान।

इन्द्रियग्राह्य सभी वस्तु पदार्थ हैं। यौगिक पदार्थको आणविक संयोजन और विश्लेषण द्वारा मूल पदार्थकी अवस्थाका निर्णय करना ही रसायनका उद्देश्य और

प्रतिपाद्य है। साधारणतः यह पदार्थ दो भागोंमें विभक्त है—रूढ़ या मौलिक (Element) और यौगिक (Compound)। जिस पदार्थको किसी दूसरे पदार्थमें परिणत नहीं किया जा सकता, उसे मौलिक कहते हैं, जैसे—सोना चांदी आदि। जब ये सब रूढ़पदार्थ एकसे अधिक संख्यामें रासायनिक संयोग द्वारा नूतन धर्म विशिष्ट पदार्थ उत्पादन करते हैं, तब उन्हें यौगिक पदार्थ कहा जाता है, जैसे गन्धक और लोहेके संयोगसे उत्पन्न 'फेरस सलफेट' नामक पदार्थ।

वैज्ञानिक गवेषणा द्वारा कमसे कम ७२ रूढ़ पदार्थ स्थिर हुए हैं। ये सब पदार्थ तीन प्रकारकी अवस्थामें रहते हैं, जैसे—लोहादि कठिन, जल और पारा तरल तथा मूवायु वाष्प। यह रूढ़ पदार्थ फिर धातु (Metals) और अधातु (Non-metals या Metalloids)के भेदसे दो प्रकारका है। जो सब पदार्थ चमकीले तथा उत्ताप और विद्युदादि शक्ति वहन करनेमें समर्थ होते उन्हें धातु तथा इसके विपरीत धर्मविशिष्ट पदार्थोंको अधातु कहते हैं। कभी कभी इन रूढ़ पदार्थोंको Electro-positive और Electro-negative कहा जाता है।

इन सब पदार्थोंमें कुछ साधारण धर्म हैं जैसे—गुरुत्व, स्थानव्यापकत्व, अविनश्वरत्व, विस्तारशीलत्व विभाज्यत्व इत्यादि। पारा जल तैल और कार्बनेट आव पोटाशको मिला कर कांचकी एक चुंगी (test tube) में रखनेसे कुछ समय बाद सबसे नीचे पारा उसके ऊपर यथाक्रम कार्बनेट आव पटाश, जल और तैल दिखाई पड़ेगा। इसमें द्रव्यविशेषका गुरुत्व स्पष्ट मालूम होता है। कांचकी बोतलमें थोड़ी लकड़ी जलानेके बाद मागनेसियमका पतला तार जला कर जलमिश्रित सल फ्युरिक एसिड डालनेसे कोयलेकी कणा ऊपरमें भासने लगेगी। इससे अच्छी तरह मालूम होता है, कि पदार्थ परिवर्तनशील होने पर भी द्रव्यविशेषके संयोगसे कभी भी नाशको प्राप्त नहीं होता। गर्मी लगनेसे प्रत्येक पदार्थका आकार बढ़ जाता है। इसी कारण Retort-से वाष्पका उद्गीरण होता है। Permanganate of Potash को हजार ग्रेन जलमें गलानेसे उसके एक ग्रेनमें ·००१ ग्रेन यह लवण दिखाई देता है। उसके १ ग्रेनको फिरसे यदि १० हजार ग्रेन जलमें मिलाया जाय, तो परमांगनेट आव पोटाश भी १० हजार भागमें विभक्त होगा।

इस प्रकार किसी द्रव्यका परमाणु कहनेसे अविभाज्य शेषांश समझा जायगा। किन्तु एक अणुरूप कहनेसे कमसे कम दो परमाणुरूप समझना उचित है। यौगिक पदार्थके सम्बन्धमें परमाणु शब्दका प्रयोग नहीं किया जाता। क्योंकि उसका अविभाज्य शेषांश भी विविध परमाणुके मेलसे बना है। इस कारण यौगिक पदार्थके अविभाज्य शेषांशको अणु तथा रूढ़ पदार्थका ही परमाणु जानना चाहिये।

पदार्थोंके समूह गुरुत्व हैं। हिसाब करके यह गुरुत्व निर्दिष्ट अणुके गुरुत्वके जैसा मालूम होता है। क्योंकि, उसीके योगसे पदार्थका आकार है। प्रत्येक पदार्थके परमाणुका गुरुत्व एक-सा नहीं है। यद्यपि यह दिखाई नहीं देता और न मन ही मन हम लोग उसका अवयव ही स्थिर कर सकते, तथापि वैज्ञानिक शिक्षाकी सुविधा के लिये हाइड्रोजन वाष्पको निर्दिष्ट मापतममें तौल कर एक परमाणु मानि तथा उस अवस्थामें और उस माप-तनके अन्यान्य रूढ़पदार्थोंका गुरुत्वनिरूपण करके जो फल पाया जाता है उसीको रसायनशास्त्रमें रूढ़पदार्थका पारमाणविक गुरुत्व कहा है। निम्नलिखित तालिका में पदार्थोंका विभाग, सांकेतिक चिह्न और परमाणविक गुरुत्व दिया गया है—

धातुके नाम	चिह्न	गुरुत्व
आलुमिनियम (Aluminium)	Al	२७.३
एन्टिमनि (Antimony)	Sb	१२२
आर्सेनिक (Arsenic)	As	७४.९
बेरियम (Barium)	Ba.	१३६.८
बिसमथ (Bismuth)	Bi	२०७.५
काडमियम (Cadmium)	cd.	१११.६
कालसियम (Calcium)	ca	३९.९
क्रोमियम (Chromium)	cr	५२.४
कोबाल्ट (Cobalt)	co	५८.६
कपार (Copper)	cu	६३.३
डाइडिमियम (Didymium)	Di	१४७

धातुके नाम	चिह्न	गुरुत्व
गोल्ड (Gold)	Au	१९६·७
आयर्न (Iron)	Fe	५५·९
लेड (Lead)	Pb	२०६·४
लिथियम (Lithium)	Li	७·०१
मागनेस्मियम (Magnesium)	Mg	२३·९४
मङ्गानिज (Manganese)	Mn,	५४·८
मर्करि (Mercury)	Hg,	१९९·८
मोलिब्डिनम् (Molybdenum)	Mo	९५·८
निकेल (Nickel)	Ni	५८·६
पालाडियम (Palladium)	Pd	१०६·२
प्लाटिनम् (platinum)	Pt	१९६·७
पोटासियम (Potassium)	K	३९·०४
सिलभर (Silver)	Ag	१०७·६६
सोडियम (Sodium)	Na	२३
ष्ट्रन्सियम (Strontium)	Sr	८७·३
टिन (Tin)	Sn	११७·८
टिटानियम (Titanium)	Ti	४८
टाङ्गस्टेन (Tangsten)	W	१८४
ऊरेनियम (Uranium)	U	१८०
जिङ्क (Zinc)	Zn.	६४·९
अधातु—		
बोरण (Boron)	B	११
ब्रोमिन (Bromine)	Br	७९·७५
कार्बन (Carbon)	C	११·९७
टेलिउरियम (Tellurium)	Te,	१२८
क्लोरिण (Chlorine)	Cl	३५·३६
फ्लुरिन (Fluorine)	F	१९·१
उदजन (Hydrogen)	H	१
आइयोडन (Iodine)	I	१२६·५३
नाइट्रोजन (Nitrogen)	N	१४·०१
अक्सिजन (Oxygen)	O	१५·९६
फस्फरस (Phosphorus)	P,	३०·९६
सिलेनियम (Selenium)	Se	७९
सिलिकन (Silicon)	Si.	२८
सल्फर (Sulphur)	S	३१·९८

उपरोक्त पदार्थों को छोड़ कर गत १९वीं सदीमें और भी कितने पदार्थ आविष्कृत हुए हैं। रसायनकार्यमें उनका विशेषरूपसे प्रचार न रहनेसे तथा उसका गुण अच्छी तरह मालूम न होनेके कारण वे सब वर्त्तमान रसायनविज्ञान आलोचित नहीं हुए। नीचे उनके नाम और गुरुत्वादि लिखे गये हैं।

केसियम (Cæsium)	Cs	१३२·४
सिरियम (Cerium)	Ce	१४१
एरबियम (Erbium)	Er.	१७०·५
ग्लुसिनम (Glucinum)	G.	९·३
डेभियम (Davyum)	Da	१५४
बेरिलिउम (Beryllium)	Be	९·२
गेलियम (Gallium)	Ga	६९·८
स्कैण्डियम (Scandium)	Sc	४४
इण्डियम (Indium)	In.	११३·४
जर्मेनियम (Germanium)	Ge,	७२·७५
इरिडियम् (Iridium)	Ir,	१९६·७
लन्थानम् (Lanthanum)	La,	१३९
न्युबियम (Niobium)	Nb	९४
ओसमियम (Osmium)	Os,	१९८·६
रोडियम (Rhodium)	Rh,	१०४·१
रुबिडियम (Rubidium)	Ra,	८५·२
रुदेनियम (Ruthenium)	Ru,	१०३·५
टण्टालम (Tantalum)	Ta,	१८२
थालियम (Thallium)	Th.	२०३·६४
थोरियम (Thorium)	Th	१९८·५
भानाडियम (Vanadium)	V.	५१·२
इटरियम (Yttrium)	Y.	८९·५
जिर्कोनियम (Zirconium)	Z	९०

इसके अतिरिक्त वैज्ञानिक-सम्प्रदायने सामेरियम (Samarium), इट्टरबियम (Ytterbium), गडोलिनियम (Gadolinium), प्रसिओडिमयम (Praseodymium), न्युडिमियम (Neodymium), भिक्टोरियम (Victorium), आर्गोन (Argon), हेलियम (Helium), नियों (Neon), क्रुप्टन (Krypton), जेनन (Xenon) आदिने और भी कई पदार्थों का अस्तित्व

स्वीकार किया है। रसायनमें उनका विशेष व्यवहार न रहनेसे यहां अनावश्यकीय जान कर उनका उल्लेख नहीं किया गया।

पहले लिखा जा चुका है, कि पदार्थमात्र ही परमाणु के मेलसे बना है। परमाणुओंका इस संयोग या वियोग शक्ति (Atomicity)-के कारण पदार्थविशेषमें स्वतन्त्रता दिखाई देती है, इस कारण ही अणु, द्व्यणुक, त्रसरेणु आदिका जिस प्रकार नामकरण हुआ है। पाश्चात्य रसायनशास्त्रोंमें भी उसी प्रकार Monad Diad Triad Tetrad आदि परमाणु-संयोगनिर्णायक पद हैं। परमाणुकी यह संयोगशक्ति स्थिर कर वैज्ञानिकोंने उसी अनुसार कई पदार्थोंका एक विभाग इस प्रकार निर्णय किया है—

१ मनाडस्—उद्जन, फ्लुरिन, क्लोरिन, ब्रोमिन आइओडिन, कोसियम, रुबिडियम, पोटासियम सोडियम, लिथियम और सिलभर। २ डायाडस—अक्सिजन, बेरियम, स्ट्रन्सियम, कालसियम, मगनेसियम, जिङ्क बेरिलियम, काडमियम, मर्करी और कपार। ३ ट्रायडस—बोरन, गोल्ड, थालियम, इण्डियम लान्थनम यट्रियम, सरवियम, डिडिमियम, सामारियम और स्काण्डियम। ४ टेट्राडस—कार्बन, सिलिकन, टिटानियम जिरकोनियम, थियोरियम, गालियम, एलुमिनियम सिरियम, प्लाटिनम, इरिडियम पालेडियम, रोडियम और लेड। ५ पेण्टाडस्—नाइट्रोजन, फसफोरस वनडियम या भानाडियम आर्सेनिक आण्टिमनी, एरिटोनियम, टाण्टेलम बिसमथ और डिडिमियम। ६ हेक्साडस्—सलफर, सिलिनियम टेलिउरियम, उरेनियम, टङ्गष्टेन, मलिबडिनम्, क्रोमियम, मङ्गानिज, आयरण, कोबाल्ट और निकल।

उपरोक्त धातु अक्सिजनके साथ अथवा पृथक् या और किसी प्रकारका सांयोगिक अवस्थामें रहता है। धातुका इस प्रकार यौगिक अवस्थामें होना उस विचार कर काम करनेसे अक्सिजनादि संयुक्त पदार्थका वियोग हो धातुमुक्त होगा। जैसे सीसका अक्साइड (PbO), इसको मनग करने या अक्सिजन निकालने में कभी कभी केवल उत्तापका ही जरूरत होता है। कभी तो उत्ताप कोई काम ही नहीं करता। उस समय कोयले की जरूरत होती है। मार्क्युरियस अक्साइडमें उत्ताप लगानेसे पारा धातुमुक्त होता है। फिर यदि सीसेका अक्सिजनयुक्त यौगिक कोयलेके ऊपर रख कर नलो से स्पिरिट लैम्प या गैस शिखाका उत्ताप लगाया जाय तो कोयलेके साथ सिम्मूरका अक्सिजन कार्बनिक अनहाइड्राइडरूपमें परिवर्तित हो सीसको धातुमें परिणत होना है। रासायनिक प्रक्रिया द्वारा धातुके यौगिक पदार्थोंको जिस प्रकार विश्लिष्ट करके मूल पदार्थ ग्रहण किया जाता है उसी प्रकार फिर मूल या विशुद्ध धातुमें अक्साइड, क्लोराइड ब्रोमाइड आइयोडाइड सलफाइड, नाइट्रेट, कार्बोनेट, सैनाइड फेरिसैनाइड हाइड्रो एसिड, एमिड सलफेट, एसेटिक एसिड फसफेट आदि द्रव्यमिश्रित करके नाना प्रकारके औषधादि बनाये जाते हैं। द्रव्यविशेषके मिलनेसे यह विभिन्न गुणयुक्त हो जाता है।

अधिक जल मिश्रित नाइट्रिक एसिडमें पारेको मिलानेसे मार्क्युरस् नाइट्रेट बनता है। किन्तु पारेका अधिक परिमाणमें व्यवहार करनेसे Basic Nitrate उत्पन्न होता है। बेसिक नाइट्रेट और स्वाभाविक नाइट्रेटका पहचाननेके लिये उसमें नमक मिलाना होगा। स्वाभाविक नाइट्रेटमें कालोमेल तथा बेसिकमें कालोमेल और काला मर्क्युरस अक्साइड पाया जायगा। विस्तार हो जानेके भयसे धातुओंका यौगिक प्रकरण विस्तृत भावसे आलोचित नहीं किया गया, दूसरी जगह उसका संक्षिप्त विवरण दिया गया है।

क्षार, धातु तथा तैल आदि शब्द देखो।

यौगिक पदार्थ जब किसी द्रावकके साथ मिलाया जाता है, तब वह उस द्रावकका गुण या धर्म बिलकुल नष्ट कर डालता है और एक नये पदार्थकी सृष्टि करता है। इसको बेस (Base) कहते हैं। धातुका अक्साइड अकसर बेस कहलाता है। क्षार इसी श्रेणीके अन्तर्भुक्त है।

पाश्चात्य विज्ञानमें भी नाना प्रकारके क्षारका उल्लेख देखते हैं। पोटासियम, सोडियम, एमोनियम कालसियम तथा बेरियम अक्सिजनके साथ मिल कर

क्षतकारी क्षार (Caustic alkalies) उत्पादन करता है। वह क्षार शरीरके किसी स्थानमें अधिक देर तक रखनेसे वहां फोड़े निकल आते हैं। यह क्षार जलमें विघल जाता है। पोटासियम, एमोनियम और सोडियम नामक तीनों धातु क्षारधातु (alkali metal) कहलाती है। वेरियम, ष्ट्रनसियम, कालसियम और मागनेसियम नामक चार धातुको मृदुक्षार (metals of alkaline earths) कहते हैं। जिङ्क, मगनेसियम, एलुमिनियम और लोहेसे उत्पन्न क्षार पूर्वोक्त क्षारोंकी तरह क्षतकारी नहीं हैं। ये जलमें नहीं विघलते। इन्हें अंगरेजी रसायनशास्त्रमें वेस कहा है।

द्रावकसे जो उत्पन्न होता वह क्षारमें और जो क्षारसे उत्पन्न होता वह द्रावकमें नष्ट हो जाता है। अतएव द्रावक और क्षार दोनों ठीक विपरीत गुणावलम्बी हैं। किसी द्रावकके साथ किसी क्षारका द्रावण (Solution) मिलानेसे एक नया गुण-विशिष्ट पदार्थ उत्पन्न होता है। उसमें क्षार वा द्रावक किसीकी भी प्रतिक्रिया नहीं देखी जाती अर्थात् नीला लिटमस कागज डुबानेसे वह लाल अथवा लाल लिटमस नील वर्णमें परिणत नहीं होती।

खनिज (mineral) और जैव (organic) के भेदसे द्रावक दो प्रकारका है। लवणद्रावक (Hydrochloric acid) यवक्षारद्रावक (Nitric acid) और गंधक-द्रावक (Sulphuric acid) आदि खनिज तथा टार्टारिक एसिड (Tartaric acid) और साइट्रिक एसिड (Citric acid) आदि जैव पदार्थसे उत्पन्न हुए हैं। इस द्रावककी सहायतासे प्रायः सभी पदार्थ गलाये जाते हैं और सभी द्रावक भी जलमें गलने लगते हैं। परीक्षाके समय द्रावकके साथ जल मिलाना उचित है।

द्रावकका गुण—स्वादमें खट्टा मालूम होता, Blue litmus paper नामक कागज डुबोनेसे वह लाल हो जाता; कार्बनेट मिलानेसे फोड़े निकलते, फिनल थालिन (Phenol pthalin) द्रावणमें क्षार मिलानेसे जो बैंगनी रंग होता है द्रावक मिलनेसे वह विलुप्त हो जाता तथा मिथिल आरेंज (Methyl orange) द्रावणके संयोगसे गुलाबी रंग धारण करता है।

जो क्षार भी नहीं, द्रावक भी नहीं, ऐसे नये गुण विशिष्ट पदार्थको रसायन-विज्ञानमें लवण वा लावणिक द्रव्य (Salt) कहा है। यह लवण हम लोगोंके खाद्योपयोगी लवण नहीं है। क्षार और द्रावकके आपसमें मिलनेसे जो यौगिक पदार्थ उत्पन्न होता है उसीको रसायनमें लवण कहा है। चूना और कार्बलिक एसिड मिलनेसे चा-खड़िकी उत्पत्ति होती है। अतएव चा खड़ि लावणिक पदार्थ है। इसके सिवा सुहागा, फिटकरी, तूतिया, हीरा कसीस, यवक्षार आदि भी एक एक लवण हैं। स्वाद ले कर लवण नाम रखा गया है, सो नहीं, उनकी उत्पादनक्रिया देख कर ही ऐसा नामकरण हुआ है। ये लवण तीन प्रकारके होते हैं, जैसे—१ प्रकृत लवण (normal salt), २ उदजनयुक्त लवण (acid salt), ३ अकसाइड मिश्रित लवण (Basic salt)।

उदजन प्रायः सभी पदार्थोंका एक उपादान है। द्रावकके हाइड्रोजनका स्थान सम्पूर्णरूपसे धातु द्वारा अधिकृत हो कर जो लवण उत्पन्न होता है उसीका नाम असल लवण है। किसी धातुका लवण प्रस्तुत होनेके समय द्रावकस्थ उदजनका स्थान उक्त धातु द्वारा अधिकृत हो जाता है, जैसे $Zn_2 + H_2 SO_4 = ZnSO_4 + H_2$, यहां सलफ्युरिक एसिड स्थित हाइड्रोजनका स्थान जिङ्क धातु द्वारा अधिकृत होनेसे जिङ्क सलफेट नामक एक प्रकृत लवण बनता है।

द्रावकमें उदजनका स्थान आंशिकरूपमें अधिकृत हो जो लवण उत्पन्न होता है उसको हाइड्रोजनयुक्त लवण वा acid salt कहते हैं। Bicarbonati of soda इसी श्रेणीका एक लवण है। इसका साङ्केतिक चिह्न है $NaHCO_3$, यहां पर सोडियम धातु (Na)-ने कार्बनिक एसिड (H_2CO_3) से हाइड्रोजनको आंशिकरूपमें अलग कर दिया है। हाइड्रोजनको बिलकुल हटा देनेसे कार्बनेट आव सोडा (Na_2CO_3) नामक प्रकृत लवण बनता है।

किसी धातुके लवणके साथ उक्त धातुका अकसाइड मिश्रित रहनेसे उस लवणको Basic salt कहते हैं। सब नाइट्रेट आव लेड उसका एक उदाहरण है। इसमें नाइट्रेट आव लेड नामक सीसक धातुके लवणके साथ

उस धातुका अक्साइड मिला रहता है। इन सब उपायोंसे विश्लिष्ट करके Base और Acids निर्णय करना ही कठिन रसायनका कार्य है।

चिकित्साविज्ञानमें औषधादिक प्रस्तुतकरणमें धातु आदिका शोधन, मारण अथवा उसका परिमाण जानने के लिये तथा मूत्र, पीब आदिकी परीक्षा द्वारा रोगका निर्णय करनेके लिये हम लोग जिस रसायनविज्ञानकी सहायता लेते हैं उसे वैश्लेषिक रसायन (analytical chemistry) कहते हैं। वैश्लेषिक रसायनने पृथिवीके सभी पदार्थोंको अपने अधिकारमें कर लिया है। इसी कारण हम लोगोंके खाद्य, वसन, विलाससामग्री, शिल्प औषध आदि प्रत्येक द्रव्यमें इस रसायनकी सहायतासे प्रतिदिन कितनी उन्नति होती है उसे कह नहीं सकते। इस शास्त्रमें तुरत पारदर्शी होना बहुत कठिन है। इसके एक एक अंश या शाखाभागको (जैसे Food Analysis, Pharmaceutical Chemistry) आलोचनामें सारा जीवन लगा देनेसे भी शिक्षा पूरी नहीं होती।

यह प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त है। १ला गुण निर्णायक (qualitative) अर्थात् जिसके द्वारा पदार्थ का गुण जाना जाता है और २रा परिमाणनिरूपक (quantitative) अर्थात् जिससे उपादानोंका परिमाण निर्दिष्ट हो सकता है। कठिन रसायन पहलेसे वैश्लेषिक रसायनका प्रथम अंश ही समझा जाता है। रासायनिक विश्लेषण कार्यमें जितने यन्त्र प्रधानतः व्यवहृत होते हैं उनकी संक्षिप्त तालिका नीचे दी गई है —

१ Test tube—एक मुंह बंद कांचका नल। इसमें तरल पदार्थ डाल कर परीक्षा करनी होती है।

२ Test tube stand—उक्त कांचके नल बैठानेके लिये सछिद्र काष्ठनिर्मित आधार।

३ Test tube holder—काठका हत्था लगा हुआ पीतलका चिमटा। किसी पदार्थको गरम ताप कर आंच देते समय इससे कांचका नल पकड़ा जाता है।

४ Test glass—कांचका बना हुआ एक बरतन। परीक्षाधीन तरल या ठोस पदार्थ इसमें रखा जाता है।

५ Funnel—ब्लाटिंग कागज या फिल्टर पेपरकी छननी इसके ऊपर रख कर द्रावणादि रासायनिक द्रव पदार्थ छाना जाता है।

६ Pipette—दोनों मुंह खुला हुआ कांचका पतला नल। किसी बरतनसे थोड़ा थोड़ा करके तरल पदार्थ उठानेमें यह काम आता है।

७ Glass rod—पेन्सिलकी तरह गोलाकार पतला कांचका टुकड़ा।

८ Glass plate—कांचका छोटा टुकड़ा।

९ Porcelain dish—सफेद चीनका प्याला।

१० Spirit lamp—स्पिरिट द्वारा जलती हुई बत्ती।

११ प्लाटिनम धातुका पत्तर। जब कोई वस्तु आगमें जलानी होती है, तब इसी पर रख कर जलाई जाती है। एक अदद Mica plate अर्थात् अबरकके टुकड़े से यह कार्य सम्पादित हो सकता है।

१२ Flask—कांचका एक बरतन जिसका आकार बोतल-सा होता है।

१३ Platinum loop—एक कांच दण्डके अग्रभाग को तपा कर यह तार जड़ दिया जाता है। सुहागेका पचूंक बनानेमें इस तारकी जरूरत होती है।

१४ Charcoal—एक बबूल काठका कोयला।

१५ Mouth Blow pipe—भोंपी।

१६ Brass tongs—पीतलका चिमटा।

१७ Wash bottle—एक चौड़े मुंहवाली कांचकी बोतलमें दो छेद करके दो टेढ़े कांचके नल घुसा दे। बोतलमें जल भर कर छोटे नलसे हवा देनेसे उसके भीतरका जल दूसरे नलके मुंहसे निकल पड़ता है।

इसके सिवाय युडिओमिटर बैटरी रिटर्ट, वायुपान यन्त्र, तापमानयन्त्र आदि यन्त्र भी वाष्पादिक विश्लेषणके समय व्यवहृत होते हैं।

विश्लेषण प्रक्रिया।

पदार्थमात्रकी हम दो तरहसे परीक्षा कर सकते हैं, एक द्रवपरीक्षा (Wet reaction) और दूसरा अग्नि परीक्षा (Dry reaction)। द्रव्यविशेषकी परीक्षा सुचारुरूपसे करनेके लिये तथा उसका फल सुसिद्ध

हुआ है वा नहीं इसे जाननेके लिये रसायनशास्त्रमें कुछ परिचायक (Re-agent) और निर्देशक (Indicator) पदार्थोंका उल्लेख है। जो सब मूल वा यौगिक पदार्थ परीक्षाधीन पदार्थके साथ मिल कर उसका उपादान निरूपण करते हैं उन्हें रि-एजेण्ट कहते हैं। हाइड्रोक्लोरिक एसीड परीक्षाधीन पदार्थमें मिलानेसे यदि सफेद चांदी, सीसा वा चूर्ण पेंदीमें जम जाय, तो वह पदार्थ पारेका अंश है, ऐसा जानना होगा। जो परिचायक एक प्रक्रिया द्वारा सभी पदार्थोंको भिन्न भिन्न श्रेणीमें विभक्त करते हैं उन्हें साधारण परिचायक तथा जो परिचायक किसी एक द्रव्यका विशेष विशेष गुण उद्घाटन करते हैं उन्हें विशेष परिचायक कहते हैं।

इस परिचायकके साथ पदार्थके रासायनिक परिवर्त्तन वा परस्पर संयोगके समय वह परिवर्त्तन वा संयोजन कब हुआ। जो सब पदार्थ वर्ण उत्पादन द्वारा कार्य्य फल निर्देश करते उन्हें निर्देशक (Indicator) कहते हैं। कार्य्यके समय निर्देशक पदार्थोंका प्रकृतिगत कोई परिवर्त्तन नहीं होता। अथवा उनकी अवस्थितिके कारण रासायनिक प्रतिक्रियामें भी किसी प्रकारकी विलक्षणता वा प्रतिबन्धकता नहीं देखी जाती। प्रधानतः द्रावक और क्षारपदार्थके मध्य विभिन्नता दिखानेके लिये ही निर्देशकका व्यवहार होता है।

लिटमस, फिनलथालिन, मिथिल आरेञ्ज, टार्टरिक आदि निर्देशक पदार्थ हैं। इनमेंसे २रा वा ३रा सुरासार वा जलके साथ द्रावणरूपमें तथा १ला और ४था सुरासारमें पिघल कर उसमें ब्लाटिं कागज निषिक्त और पीछे सुखा कर निर्देशकरूपमें व्यवहृत होता है। इसके सिवाय Lead paper strach paper वा श्वेत सार मण्ड आदि कुछ धातव यौगिक भी निर्देशकरूपमें व्यवहृत होते हैं।

जल वा द्रावकमें परीक्षाधीन पदार्थको तरल कर उस द्रावणमें भिन्न भिन्न पदार्थ मिलानेसे जो रासायनिक प्रतिक्रिया संघटित होती है उससे उक्त पदार्थका उपादान समझा जाता है, इसे द्रवपरीक्षा कहते हैं। फिर उत्ताप लगनेसे परीक्षाधीन पदार्थका परिवर्त्तन देख कर उससे उसके गठनोपादान निर्णय करनेका नाम अग्निपरीक्षा है।

पदार्थ विश्लेषणकार्य्यमें यह अग्निपरीक्षा ही उत्तम। प्लाटिनम वा अबरकके पात्रके ऊपर परीक्षाधीन पदार्थ रख कर गैस वा स्पिरिट लैम्पकी गरमी देनेसे यदि वह पदार्थ काला हो कर जल जाय, तो उसे अङ्गार द्रव्य कहना चाहिये।

एक टुकड़े काठके कोयलेके ऊपर थोड़ा गड्ढा बना कर उसमें परीक्षाधीन पदार्थका चूर्ण रख नलसे फूंक कर जलानेसे सीसा, चांदी, एण्टिमनि, विसमथ आदि धातु लवणवियुक्त हो मूलधातुमें परिणत होती हैं। चार भाग कार्बनेट आव सोडा और एक भाग सायनाइड आव पोटाशियम, इन्हें एक साथ मिला कर उसका चौथाई भाग परीक्षाधीन पदार्थमें मिश्रित कर पूर्वोक्त प्रणालीसे यदि ताप दिया जाय, तो मूल धातु अति शीघ्र पृथक् हो जाती है। वसन्तकालमें जब किसी धातुमें इस प्रकारका उत्ताप लगता, तब वह लवणसे पृथक् नहीं होती, केवल कोयलेके ऊपर भिन्न भिन्न वर्णका छाप (incrustation) उत्पादन करती है। उत्तप्त अवस्थामें सीसेसे हल्दी रंगका, एण्टिमनिसे नीलापन लिये सफेद रंगका, विसमथसे पाटल वर्णका, काडमियमसे लाल वर्णका और दस्तेसे कुछ हरिद्रावर्णका प्रकाश निकलते देखा जाता है। प्लाटिनम तारके अग्रभागमें सुहागा रख कर स्पिरिट लैम्पकी शिखासे उत्ताप करने पर लावा बनता है। पीछे नलसे फूंक कर जलानेसे वह काचके जैसा सफेद गोलाकारमें परिणत हो जाता है तथा उसी भावमें सलग्न रहता है। इसके बाद परीक्षाधीन लवणके द्रावणमें वह गोल सुहागा डुबो कर फिर नलसे गरमी देने पर विभिन्न वर्ण हो जाता है। जैसे कोवाल्ट गाढ़ा नीला, निकेल कुछ लाल, तावा कुछ नीला, क्रोमियम पीला लोहा पीलापन लिये हरा और मैङ्गानिज बैंगनी रंग लिये लाल होता है, इत्यादि।

रसायनशास्त्रोक्त धातव पदार्थकी वैज्ञानिक प्रक्रियासे यथासम्भव इतिहास लिपिबद्ध कर अभी अधातव पदार्थोंका पौर्वापर्य निर्णय करके हम लोग वर्त्तमान रसायनशास्त्रकी ऐतिहासिक भित्तिको मजबूत कर सकते

है। किस प्रकार कब और किसके द्वारा ये सब अथवा अन्य मौलिक पदार्थ विश्लेषणप्रक्रिया द्वारा आविष्कृत हो रसायन-जगत्में प्रसिद्ध हो गये हैं, नीचे उसकी एक संक्षिप्त तालिका दी गई।—

१७८१ ई०में कावेण्डिस् साहबने उदजन (Hydrogen) नामक रूढ़ पदार्थका आविष्कार किया। १७७४ ई०की १ली अगस्तको महामति प्रिष्टले द्वारा अक्सिजन नामक रूढ़ पदार्थ आविष्कृत हुआ। यद्यपि प्रिष्टले साहबने सबसे पहले रूढ़ावस्थामें अक्सिजन पाया था, तथापि उसके दूसरे वर्ष सील साहबने इसीको आविष्कार किया। प्रिष्टले और सील द्वारा अक्सिजन आविष्कृत होने पर भी १७७८ ई०में लावोसियर अक्सिजनको तृतीय बार आविष्कार करके जनसमाजमें उसे निर्विवाद प्रचार कर गये।

१८१८ ई०में थेनार्ड साहबने हाइड्रोक्सिजनका आविष्कार किया। पीछे १८५० ई०में ब्रोडी और सेनबेन विशदरूपसे उसके धर्मादि समझा गये।

१७७२ ई०में रदरफोर्ड साहब द्वारा नाइट्रोजन आविष्कृत हुआ। इसके पांच वर्ष बाद अर्थात् १७७७ ई०में सील और लावोसियरने उसे साबित कर दिखा दिया। १७७७ ई०में लावोसियरने निर्दिष्ट परिमाणकी वायुमें निर्दिष्ट तौलका पारा उत्तप्त कर लाल रंगका यौगिकविशेष प्राप्त किया तथा जो भाप बच गई उसे पांच भागका चार भाग ठहराया। इसके बाद पारेके यौगिकको फिरसे उत्तप्त करनेसे जो भाप पाई गई उसका परिमाण एकपञ्चमांश हुआ था। प्रथमोक्त वाष्प नाइट्रोजन और शेषोक्त अक्सिजनका है। भूवायुस्थ नाइट्रोजन और अक्सिजनका परिमाण स्थिर करनेमें युडियोमीटर नामक यन्त्रका व्यवहार करना उचित है।

१७६० ई०में पृष्टलेने अमोनिया वाष्प आविष्कार किया। अमोनिया (Sal-ammoniac) नाम अरबोंका रखा हुआ है। उन्होंने ही सबसे पहले जुपिटर आमन देवमन्दिरके आसपासके स्थानोंसे पशु और ऊंट आदि जन्तुओंकी विष्ठादि जुगा कर इस पदार्थको तैयार किया था।

१७७७ ई०में पृष्टले साहबने समझा था, कि वायुके भीतर हो कर तड़ित्के आने जानेसे नाइट्रिक एसिड उत्पन्न होता है। अनन्तर १७८५ ई०में कावेण्डिस्ने अनुमान किया, कि वायुमें उदजन जलानेसे जो अम्लधर्मविशिष्ट यौगिक पदार्थ पाया जाता है वही नाइट्रिक एसिड है, किन्तु पीछे रमसन, गे लुसाक आदि रासायनिक नाइट्रिक-एसिडके प्रकृत तत्त्वका बोध करके उसका याथार्थ्य निर्णय कर गये हैं।

१७७२ ई०में पृष्टलेने नाइट्रस् अक्साइडका आविष्कार किया तथा १८०१ ई०में डेभी साहब गहरी आलोचना द्वारा इस तत्त्वकी निष्पत्ति कर गये। वाष्पावस्थामें इसे सूंघनेसे अंगके स्नायुओंकी तरह हंसी आती है, इसीसे इसका नाम Laughing gas रखा गया।

१७७२ ई०में हेल्स साहबने नाइट्रिक अक्साइडका आविष्कार किया था। यह आक्सीडिक नाइट्रोसिक या नाइट्रोजन बाइ अक्साइड नामसे प्रसिद्ध था। डेभी साहब पहले नाइट्रिक परअक्साइड और १८४८ ई०में डेभिल साहब शुष्क नाइट्रेट आव सिलभर और क्लोरिन द्वारा नाइट्रिक आनहाइड्राइड प्रस्तुत कर गये।

१७७४ ई०में सील साहबको सबसे पहले क्लोरिनका अस्तित्व मालूम हुआ था सही, पर १८१० ई०में डेभी द्वारा वस्तुतः इसका स्वरूप निरूपित हुआ। हाइड्रोजनके साथ क्लोरिनका एक यौगिक सम्बन्ध है जिसका नाम हाइड्रोक्लोरिक एसिड है। अति प्राचीन कालसे इसका प्रचार रहने पर भी १७७२ ई०में पृष्टलेने इसका आविष्कार किया था। हाइपोक्लोरस अनहाइड्राइड नामक यौगिक पदार्थका नाम बालार्ड साहब द्वारा रखा गया है। हाइपोक्लोरस अनहाइड्राइडको जलके साथ मिलानेसे हाइपोक्लोरस् एसिड बनता है। इस एसिडसे जो सब लवण तैयार होते हैं, उन्हें हाइपोक्लोराइट्स कहते हैं। कालसियम हाइपोक्लोराइड कपड़ेको सफेद करनेके लिये बहुत उपयोगी है। यह बाजारमें Bleaching powder नामसे बिकता है।

१८४२ ई०में मिलन साहबने क्लोरस अनहाइड्राइड, १८१५ ई०में डेभीने क्लोरिक परअक्साइड और १८०२ ई०में सेनेभीने क्लोरिक एसिडका आविष्कार किया।

१८१४ ई०में गे लूसक क्लोरिक एसिडका धर्मादि बता गये हैं।

१८२६ ई०के अगस्त मासमें बालर्ड साहबने ब्रोमिन नामक रूढ़-पदार्थ आविष्कार किया। यह कभी भी मुक्तावस्थामें नहीं रहता। समुद्रजलस्थित सोडियम क्लोराइड वा सलफेट तथा मैगनेसियमके सलफेटादि लावणिक पदार्थके साथ यह मिला हुआ पाया जाता है। हाइड्रोब्रोमिक एसिडमें हाइड्रोक्लोरिक एसिडके जैसा गुण है, किन्तु यह हाइड्रोजनके साथ सम्मिलित नहीं होता। एक \\ आकृतिके काचके नलकी दाहिनी ओर वक्रस्थानमें ४० ग्रेन फोस्फरसके साथ कांचका चूर्ण और जल मिला कर बांई ओर वक्रस्थानमें २४० ग्रेन ब्रोमिन रखे और एक छिप्पीसे बांई ओरका मुंह बंद कर दे। पीछे ब्रोमिनसंयुक्त कोणमें गरमी देनेसे वह वाष्पाकारमें ऊपर उठ कर फोस्फरसके साथ मिलता जिससे आवश्यकीय रासायनिकका परिवर्त्तन होता है। इससे मेटा हाइड्रोब्रोमिक एसिड भी बनता है। औषधादिमें इसका बहुत व्यवहार होता है।

१८१२ ई०में फ्रान्सकी राजधानी पेरिसके रहनेवाले कुर्त्तो नामक एक साबुन बेचनेवालेने समुद्रसे उत्पन्न उद्भिज्जभस्म (Kelp)-के परित्यक्त अंशसे एक प्रकारका विशेष गुण देखा था। वह उसका मर्म न समझ सका और क्लिमेण्ट नामक रासायनिकके पास ले गया। क्लिमेण्टने परीक्षा द्वारा उसमेंसे एक नया पदार्थ बाहर किया, किन्तु सच पूछिये, तो डेभी और गेरुसाकने ही इसका आइयोडिन् नाम रखा था।

सीसा-निर्मित रिटर्ट कालसियम फ्लुराइड चूर्ण तीव्र सलफ्युरिक एसिडके साथ उत्तप्त करनेसे हाइड्रोफ्लुरिक एसिड पाया जाता है। सील साहब इस यौगिक पदार्थके उद्भावक हैं। १८१२ ई०में डेभीने उसे तडित् द्वारा विकृत करके फ्लुरिन पाया था। किन्तु एक स्वतन्त्र पात्रमें रख कर वे उसके धर्मादिकी परीक्षा न कर सके थे। उनके बाद नक्स, मे, फिपसन आदि कितने रासायनिकोंने इसकी परीक्षा की है। यह कालसियममें मिलानेसे कालसियम फ्लुराइड तथा सोडियम और अलुमिनियम मिलानेसे क्राइयोलाइट कहलाता है।

अङ्गार (Carbon) नामक रूढ़पदार्थका व्यवहार बहुत प्राचीनकालसे लोगोंको मालूम है। इस अङ्गारमें अम्लजन-घटित कुछ यौगिक पदार्थ हैं। पृष्ठले साहबने बन्दूककी नलीमें चा-खड़िको उत्तप्त कर कार्बनिक अक्साइड नामक यौगिक पदार्थ पाया था। किन्तु दुर्भाग्यवशतः उसकी दाहनशीलता देख कर उसे हाइड्रोजन समझ लिया था। १८०३ ई०में क्राकसैङ्क और फ्लेमेण्ट आदि रासायनिकोंने इसका प्रकृत तत्त्वनिरूपण किया। १७७५ ई०में लाभोसियेने हीरेको जला कर कार्बनिक अनहाइड्राइडका पता लगाया। इसे लोग कार्बनिक एसिड भी कहते हैं। Methane, Light Carburetted hydrogen और Fire damp आदि नामोंसे प्रचलित अङ्गार-मिश्रित उदजन-वाष्प (Marsh gas) १७७८ ई०में भल्टा साहब द्वारा सबसे पहले पराक्षित हुआ था। विस्तृत विवरण अङ्गार शब्दमें देखो।

१७९५ ई०में ओलन्दाजने देशीय रासायनिक सुरा और सलफ्युरिक एसिड द्वारा प्रस्तुत ओलिफायेण्ट गैसका आविष्कार किया। अङ्गार और उदजन तडित् द्वारा उत्तप्त होनेसे दोनों मिल कर आसिटिलिन नामक यौगिक पदार्थ उत्पादन करते हैं। पथरिया कोयलेको लौह रिटर्टमें उत्तप्त करनेसे कोलगैस निकलता है। इस वाष्पकी उत्पत्ति कई पदार्थोंके मिलनेसे होती है।

मेयर साहबने सबसे पहले सलफ्युरेटेड हाइड्रोजन निकाला। किन्तु १७७७ ई०में सील साहबने उसके धर्मादिका अनुशीलन किया। हाइड्रिक पारसलफाइड, सलफ्यूरस अनहाइड्राइड, सलफर ट्राइ, अक्साइड, सलफ्युरिक एसिड (बेसिल भालेण्टाइनने हीराकसीसको परिस्रुत करके इसे बनाया), हाइपोसलफ्युरस वा थाइयो-सलफ्युरिक एसिड, बाइसलफाइड आव कार्बन आदि यौगिकपदार्थ गंधकके योगसे उत्पन्न होते हैं।

गंधक देखो।

सिलिनियम और टेलिउरियम नामक रूढ़ पदार्थोंका कोई व्यवहार नहीं होता तथा ये बहुत दुर्लभ पदार्थ हैं। ये गंधकके समान धर्मविशिष्ट तथा उसीकी तरह यौगादिकी भी सृष्टि करते हैं।

१६६९ ई०में ब्राण्ड नामक एक रासायनिकने मूत्रसे

फोस्फरसको आविष्कार किया। १७६८ ई०में अस्थिसे यह रूढ़ पदार्थ तैयार हुआ तथा १७७५ ई०में सील साहबने अस्थिमें फोस्फरस प्रस्तुत प्रणालीकी उन्नति की। मुक्तावस्थामें फोस्फरस बिलकुल नहीं मिलता। यह यौगिकरूपमें पार्थिव, प्राणिज और उद्भिज्ज विभागमें रहता है।

१७८३ ई०में गानजेम्बर साहबने हाइड्रोजन फोस्फाइड वा फोस्फाइन नामक यौगिक पदार्थका आविष्कार किया। वाष्प तरल और कठिन भेदसे फोस्फुरेटेड हाइड्रोजन तीन प्रकारका है। फस्फरस देखो।

१८०८ ई०में गी-लूसक द्वारा बोरन नामक रूढ़पदार्थ आविष्कृत हुआ। सोहागा कहनेसे जो समझा जाता है वह बोरासिक एसिडका लवण है। बोरासिक एसिड बोरन नामक रूढ़पदार्थके अक्सिजन-घटित यौगिक है। अक्सिजन मिलानेसे बोरन बोरिक अन हाइड्राइड नामक एक यौगिक पदार्थ उत्पन्न होता है। एक अणु बोरिक अनहाइड्राइड तीन अणु जलमें मिलनेसे बोरासिक एसिड कहलाता है। बोरासिक एसिडके लवणको बोरेट कहते हैं। सोहागा देखो।

१८०७ ई०में डेभी साहबने सिलिकनका आविष्कार किया। यह मुक्तावस्थामें कभी भी नहीं पाया जाता। अक्सिजन मिलानेसे सिलिकारूपमें यह पार्थिव राज्यमें नाना तरहकी अवस्थामें विद्यमान रहता है। सिलिकन का अक्सिजन घटित यौगिक सिलिका कहलाता है।

सिलिका देखो।

इन सबकी आलोचना करनेसे स्पष्ट मालूम होता है, कि रसायनविदोंकी चेष्टासे १८वीं सदीके शेष भागसे १९वीं सदीके मध्य भाग तक रसायनविज्ञानकी यथेष्ट उन्नति हुई थी तथा नवीन रसायनशास्त्रकी जड़ मजबूत हो गई।

आङ्गारिक रसायन।

अङ्गार, उद्जन आदि कुछ रूढ़ पदार्थोंके संयोगसे अनेक प्रकारके यौगिक बनते हैं। इससे रसायनविदोंने इस यौगिक विभागकी स्वतन्त्ररूपसे आलोचना करनेकी व्यवस्था की है। अङ्गरेजीमें इसे Organic Chemistry कहते हैं। पहले रासायनिकोंका विश्वास था, कि पार्थिव या अनाङ्गारिक (inorganic) पदार्थ अन्य शक्ति तथा आङ्गारिक अर्थात् उद्भिज्ज और प्राणिज पदार्थ चैतन्यशक्ति (Vital force) द्वारा उत्पन्न, वर्द्धित और चालित होते हैं। इसी कारण उन्होंने उद्भिज्ज वा प्राणिज श्रेणीगत चैतन्यशक्तिसे उत्पन्न रसायन यौगिकको आङ्गारिक रसायनमें शामिल किया है। उस मतके अनेक विद्वानोंका कहना है, कि आङ्गारिक पदार्थ प्रत्यक्ष (Direct) और परोक्ष (Indirect) नामक दो श्रेणियोंमें विभक्त है। उद्भिज्ज और प्राणिज देहजात शर्करा नामक द्रव्य प्रत्यक्ष आङ्गारिक तथा यह शर्कराजात सुरा या यह सुराजात एसेटिक एसिड परोक्ष आङ्गारिक पदार्थ है। १८२८ ई०में भूलर साहबने उक्त मतका खण्डन कर परीक्षा द्वारा यह साबित किया है, कि बिना चैतन्य शक्तिके विशुद्ध अनाङ्गारिक पदार्थोंसे रासायनिक सम्मिलन और उनके परमाणुओंका अवस्थान्तर संघटन करा कर आङ्गारिक यौगिक प्रस्तुत किया जा सकता है। युरिया (Urea) नामक आङ्गारिक पदार्थ मूत्रका एक उपादान है। यह जीवदेहस्थ और चैतन्यशक्तिसे उत्पादित होनेके कारण आङ्गारिक पदार्थ श्रेणीमें गिना गया है। युरियामें (CH_4N_2O) अङ्गार, उद्जन, नाइट्रोजन और अक्सिजन है। ये सभी अनाङ्गारिक पदार्थ हैं तथा इन सब पदार्थोंसे रासायनिक परिवर्त्तन द्वारा कृत्रिम युरिया प्रस्तुत हो सकता है। कार्बनेट आव पोटास और अङ्गारको जमा कर लाल गरम करके नाइट्रोजनमें मिलानेसे सायनाइड आव पोटासियम और कार्बनिक अक्साइड उत्पन्न होता है। इस सायनाइड आव पोटासियमके साथ लेड अक्साइड गलानेसे यह सायनाइड सायनेट होता है तथा सीसेका आकार धारण करता है। अनाङ्गारिक पदार्थसे भी जब आङ्गारिक वस्तु उत्पन्न होती है, तब चैतन्यशक्ति प्रसूत होनेके कारण आङ्गारिक और अनाङ्गारिक पदार्थके मध्य पृथक् या पृथकता दिखलाना उचित नहीं है।

लोरें (Laurent) साहबके निर्दिष्ट सूत्रानुसार आङ्गारिक रसायनमें अङ्गार और उसका यौगिकपुञ्ज सम्यक्योग समझा जाता है। क्योंकि आङ्गारिक पदार्थ की गठनादिकी आलोचना करनेसे सभी जगह अङ्गारको

प्रधानता ही दिखाई देती है। लीबेग साहबका कहना है, कि वह आङ्गारिक राडिकेलोंके रसायनको ही निर्देश करता है। Radicals शब्दसे एकसे अधिक रूढ़ पदार्थका आणविक संयोग समझा जाता है। यह अनेक परमाणुके सम्मिलनसे उत्पन्न होने पर भी एक पदार्थकी तरह धर्मविशिष्ट होता है तथा उसी अवस्थामें यौगिकविशेषमें रहता है। यौगिकके विकृत होने पर भी राडिकेल विकृत नहीं होता। आङ्गारिक यौगिक राडिकेल द्वारा सगठित होने पर भी अनाङ्गारिक यौगिकमें भी राडिकेलका सम्बन्ध है। जैसे हाइड्रोक्सिल राडिकेल और नाइट्रक्सिल राडिकेलके सम्मिलनसे नाइट्रिक एसिड उत्पन्न होता है इसी कारण बहुतेरे राडिकेलको आङ्गारिक रसायनका कारणस्वरूप नहीं मानते।

फ्रान्कलैण्ड साहबने इसकी मीमांसामें कहा है, कि एकसे अधिक आणविक मिलानेसे एक वा अधिक परमाणु अङ्गार तथा उनके एक वा अधिक वाहु मुक्त रहते हैं। अङ्गार टेट्राड पदार्थ है। उसके एक परमाणुमें चार परमाणु उद्‌जन मिलनेसे सम्पूर्ण यौगिक संगठित होता है। जैसे Marsh gas $=CH_4$। यदि CH_4 की जगह CH_3 वा CH_2 अथवा CH हो, तो अङ्गारके एक दो वा तीन बाहु मुक्त हैं, ऐसा जानना होगा। ये मुक्त बाहुके संख्यानुसार नये नये यौगिक उत्पन्न करनेमें समर्थ हैं। क्योंकि CH_3 एक Radical तथा Monovalent अर्थात् उद्‌जनकी तरह एकसंख्यक पदार्थ है। यह मनाड श्रेणीका एक दूसरा रूढ़ पदार्थ है। कारण, एक परमाणु उद्‌जन वा क्लोरिनके साथ मिलनेसे वह सम्पूर्ण हो जाता है। CH_2 = Bivalent तथा CH = Trivalent अर्थात् इनके दो वा तीन मुक्तबाहु हैं तथा उनमें उतने ही परमाणु क्लोरिन मिलानेसे एक दूसरे पदार्थका संगठन किया जा सकता है।

सभी राडिकेल राडिकेलके साथ सयुक्त होते हैं। CH_3 राडिकेल Methyle नामसे प्रसिद्ध है। इस प्रकार एक मिथिलके साथ एक दूसरा मिथिल संयुक्त होनेसे जो यौगिक उत्पन्न होता है उसे इथेन (Ethane) वा डाइमिथिल (Di-methyle) कहते हैं। इथेनका एक परमाणु उद्‌जन विच्युत करनेसे C_2H_5 अवशिष्ट रहता है। यह इथिल (Ethyl) राडिकेल है। इथिल मनोभालेण्ट है।

रासायनिक प्रक्रियासे मिथिलके साथ इथिलका संयोग हो सकता है। यह इथिल-मिथिल वा प्रोपन कहलाता है। इसी प्रकार राडिकेलके साथ राडिकेल संयुक्त हो नाना प्रकारके नये नये पदार्थोंकी सृष्टि करके आङ्गारिक रसायनकी पुष्टि करता है। यद्यपि राडिकेल द्वारा आङ्गारिक विभाग अनाङ्गारिकसे पृथक् किया जाता है, तथापि इनका यौगिकवृन्द ले कर विचार करनेसे देखा जाय, कि इन दोनों श्रेणीके यौगिकादि एक ही नियमके अधीन हैं। सभी धातु जिस प्रकार उद्‌जनके साथ हाइड्राइड, अक्सिजनके साथ अक्साइड और एसिड राडिकलके साथ लवणादि प्रस्तुत होता है, आङ्गारिक राडिकेल भी उसी प्रकार सम्मिलित हो इथिल हाइड्राइड, इथर नाइट्रिक, इथर-हाइड्रोसलफ्युरिक, इथिल हाइड्रेट वा अलकोहल आदि उत्पादन करते हैं।

रासायनिक लोग आङ्गारिक पदार्थोंका एक श्रेणीविभाग इस प्रकार करते हैं।

१म—अङ्गार और उद्‌जनके विविध प्रकारके यौगिक। इन्हें Hydrocarbon कहते हैं।

२य—अलकोहल (Alcohol), इस यौगिकमें अक्सिजन हाइड्रक्सोल-रूपमें रहता है। अलकोहलमें राडिकेल विशेषके साथ हाइड्रक्सिल मिला हुआ है।

३य—एक परमाणु आक्सिजनसे अलकोहलके दो परमाणु उद्‌जन बाहर हो जानेसे जो यौगिक पदार्थ रह जाता है, उसे अलडिहाइड (Aldehyde) कहते हैं।

४र्थ—अलडिहाइड अक्सिजनग्रस्त होनेसे जिस रूपमें परिणत होता है, उसे एसिड कहते हैं।

५म—जब आङ्गारिक एसिडसे हाइड्रक्सिल हाइड्राङ्गारिक राडिकेल द्वारा स्थानच्युत होता है, तब उसे किटोन (Ketone) कहते हैं।

६ष्ठ—अलकोहलका हाइड्रक्सिल स्थित उद्‌जन आङ्गारिक राडिकेल द्वारा स्थानच्युत होनेसे इथर (Ether) उत्पन्न होता है।

७म—हालोजेन घटित यौगिकमें हाइड्रक्सीलके स्थानमें हालोजेन (Halogens) प्रविष्ट होता है।

८म—एसिडका उद्‌जन आङ्गारिक राडिकल द्वारा स्थानच्युत होनेसे जो लवण बनता है, उसे इथिरियल साल्ट या इथर (Ester) कहते हैं।

९म—एमोनियाके तीनों उद्‌जन आङ्गारिक राडिकेल द्वारा स्थानच्युत होनेसे जो यौगिक उत्पन्न होता है उसका नाम एमोनिया डेरिभेटिभ (Ammonia derivatives) या अमाइन (Amines) है। जैसे इथिल नाम कोहलका राडिकेल एमोनियाका एक उद्‌जन स्थानच्युत करनेसे इथिलामाइन (Ethylamine), दो परमाणु उद्‌जनको जगह दो इथिल प्रविष्ट होनेसे Diethylamine तथा तीन परमाणु उद्‌जनका जगह इथिल अधिकार का अधिकार होनेसे Triethylamine उत्पन्न होता है।

१०म—सायानोजन अर्थात् अङ्गार और नाइट्रोजनका यौगिकसमूह । जैसे—हाइड्रोसियानिक एसिड (HCN)।

११श—फिनल (Phenol), अलकोहलमें जैसे OH का रहना विशेष लक्षण है, फिनलमें भी वैसे ही OH रहता है।

१२श—आङ्गारिक पदार्थका दो परमाणु स्थान दो परमाणु अक्सिजन द्वारा अधिकृत होने पर Quinon श्रेणीके यौगिककी उत्पत्ति होती है । जैसे —बेञ्जिनके (Benzene) C_6H_6 दो परमाणुके बदले O_2 प्रयोग करनेसे इस $C_6H_4O_2$=Quinon कहते हैं।

१३श—आङ्गारिक पार्थिव (Organo-mineral) यौगिक। अनाङ्गारिक यौगिकमें एसिडका भाग आङ्गारिक राडिकेल द्वारा स्थानच्युत होनेसे इस श्रेणीका यौगिक उत्पन्न होता है। जैसे—जिङ्क क्लोराइडका क्लोरिनकी जगह इथिल प्रविष्ट होनेसे जिङ्कइथाइड ($Zn(C_2H_5)_2$) कहते हैं।

१४श—छः परमाणु या उसके गुणकमिक अङ्गारके साथ उसका गुणकमिक सम्बन्ध रहनेसे carbo-hydrate कहलाता है।

१५श—जो सब पदार्थ विकृत होनेसे द्राक्षाशर्करा (Grape Sugar) उत्पादन करते हैं, उनका नाम Glucoside है। जैसे सालिसिन (Salicin)

१६म—अलवुमिनइड (Albuminoid) और जिलेटिनइड (Gelatinoid) अर्थात् जिन सब आङ्गारिक यौगिकमें अङ्गार, उद्‌जन, नाइट्रोजन, अक्सिजन, स्वल्प परिमाणमें गंधक और फोस्फरस रहता है।

पूर्वकथित Hydrocarbon श्रेणी पञ्चह उपश्रेणियों में विभक्त है। प्रत्येक उपश्रेणीमें फिर अनेक प्रकार के स्वतन्त्र यौगिक कहे गये हैं। जैसे—Paraffin Olefines Acetylene Turpenes Benzenes Cinnamene आदि।

पिट्रोलियम कूपसे मिथेन, इथेन आदि वाष्प निकलते हैं। इस तैलमें कुछ इथेन मिला रहता है। उत्तापको कमो-बेशीके अनुसार उस तैलसे यथाक्रम इथेन, प्रोपेन और ब्युटेन वाष्प परिस्रुत होता है। उसको गाढ़ा करने से Cymogene नामक तरल पदार्थ पाया जाता है। ७१ सेण्टि० उत्तापके नीचे पेण्टेन और हेक्सेन परिस्रुत होता है। यही Petroleum Spirit या Ether कहलाता है। इण्डिया-रबरको गलानेमें इसका व्यवहार होता है। ८६ से० के उत्तापसे इप्टेन परिस्रुत होता है, उसीको Kerosene कहते हैं। १५० से २८० से० तकके उत्तापसे नोनेन और डाकिन परिस्रुत होता है, यही सुप्रसिद्ध Lubricating oil है। इसके ऊर्द्ध्व उत्तापसे हेक्सोडिकन तथा अन्यान्य अङ्गाराधिक्ययुक्त हाइड्राङ्गारिक पदार्थ पाये जाते हैं। ये सब कोमल पदार्थ हैं। Vaselin या मोमको तरह कठिन पदार्थको पाराफिन कहते हैं। पाराफिनसे बत्ती बनता है। पाराफिनकी तालिका दी गई—

Methane—CH_4, मिथेनको मिथिल राडिकलका हाइड्राइड कहते हैं। दो अणु मिथिलके योगसे इथेन उत्पन्न होता है।

उपरोक्त तालिकामें मिथेनके १ परमाणु अङ्गार और ४ परमाणु उद्‌जनसे निम्नलिखित प्रत्येक पदार्थमें क्रमशः एक परमाणु अङ्गारके साथ दो परमाणु उद्‌जनकी वृद्धि हुई है। इस प्रकार एक श्रेणीगत पदार्थोंको Homologous कहते हैं। उक्त तालिकास्थित श्रेणीगत पदार्थको रसायनशास्त्रमें Primary paraffin कहा है। उसके प्रथम तीनको छोड़ कर ब्युटेनसे उसके निम्नस्थ पदार्थोंकी आणविक

गठन का दूसरी अवस्थामें ला कर स्वतन्त्र धर्मयुक्त नाना पदार्थों की सृष्टि हुई है। ऐसे पदार्थको Isomers कहते हैं। Isomerism शब्दसे पदार्थविशेषके परमाणुओंमें कोई परिवर्त्तन नहीं समझा जाता, वे परिमाण और संयोग सम्बन्धमें समान भावमें हो रहते हैं। किन्तु धर्म एक सा नहीं रहता। आइसोमेरिजम Polymers और Metamers के भेदसे दो प्रकारका है।

पदार्थकी सभी संख्या समान रहती है, किन्तु आणविक गठन असमान होनेसे उसे 'पलिमार' कहते हैं। cyanogen और Paracyanogen नामक दो पदार्थ उसके दृष्टान्त हैं। सायनोजनमें १ परमाणु अङ्गार और १ परमाणु उद्जन है, किन्तु पारासायनोजनमें उनकी संख्या अधिक है। इसमें सैकड़े पीछे अङ्गार ४५·१५ और नाइट्रोजन ५३·८२ है। क्लोराइड आव सायनोजनमें सैकड़े पीछे अङ्गार १९·५१, नाइट्रोजन २२·७७ और क्लोरिन ५७·७२ भाग है।

सभी संख्यासमान और आणविक गठन समान है ऐसे पदार्थको मेटामर कहते हैं। जैसे युरिया (2 (NH_2)CO) और एमोनियम सायनेट (CN (NH_4 O)—इन दो यौगिकमें असमान परमाणु नहीं है। इनमें सैकड़े पीछे अङ्गार २०·००, उद्जन ६·७६, नाइट्रोजन ४६·६१ और अक्सिजन २६·६७ है।

पहले कहा जा चुका है, कि मियेन CH_4 एक सम्पूर्ण यौगिक है। यह मिथिल राडिकेलका हाइड्राइड CH_3 H है। दो अणुमिथिलके संयोगसे इथेनकी उत्पत्ति होती है। इथनसे एक परमाणु उद्जन निकाल लेनेसे (C_2 H_5) इथिल पाया जाता है। इस राडिकेलके साथ और एक अणुमिथिल मिलानेसे Propane बनता है। प्रोपेनका एक परमाणु उद्जन छोड़ देनेसे C_3 H_7 बचता है। इसे Propyle कहते हैं। प्रोपिलके साथ एक और अणुमिथिल मिलानेसे Butane उत्पन्न होता है। ब्युटेनमें अङ्गारका परमाणु ऊर्द्ध्वांसंख्याके दो अङ्गार परमाणुके साथ संयुक्त रह सकता है। किन्तु आइसोमेरिकके मतसे एक अङ्गार परमाण दो तीन अङ्गारका ऐसा परिवर्त्तन दो स्थानमें होना सम्भव है। अन्तिम वा मध्यके अङ्गारके साथ मिथिल संयुक्त होनेको आइसोमर कहते हैं।

अङ्गारको संख्या जितनी बढ़ेगी, आइसोमेरिक पदार्थकी संख्या भी उतनी ही बढ़ती जायगी। आइसोमेरिक परिवर्त्तनसम्भूत यौगिक प्राण चार श्रेणियोंमें विभक्त है, जैसे—

१, प्रत्येक अङ्गार परमाणुका दूसरे दो अङ्गार परमाणुके साथ सम्बन्ध रहनेसे उसको प्राइमरी या नरमैल पाराफिन कहते हैं। २, एक अङ्गार परमाणु तीन अङ्गार परमाणुके साथ यदि सम्बद्ध रहे, तो वह आइसो कहलाता है। ३, एक अङ्गार परमाणुके तीन अङ्गार एक पदार्थमें दुनो मात्रामें रहनेसे उससे Meso-parafin कहते हैं। ४, एक अङ्गार परमाणु चार अङ्गार साथ संयुक्त हो परमाणुके परमाणुके साथ सम्बद्ध होनेसे वह पदार्थ Meso-paraffin कहलाता है।

हालोजिन द्वारा मियेन वा इथेनका उद्जन स्थानच्युत होनेसे एक श्रेणीका यौगिक उत्पन्न होता है। मियेनका चार परमाणु उद्जन चार परमाणु क्लोरिन, ब्रोमिन, अथवा आइयोडिन द्वारा स्थानच्युत हो हालयेड यौगिक वृन्दकी सृष्टि करता है। जैसे $CHCl_3$ = ट्राइ-क्लोरमियेन वा क्लोरोफार्म (Chloroform) इत्यादि। १८३१ ई०में लेविग और सोवेरन साहब द्वारा क्लोराफार्म आविष्कृत हुआ तथा १८३५ ई०में डूमर द्वारा इसकी बनावट स्थिर की गई।

क्लोरिन द्वारा मियेनका तीन परमाणु उद्जन स्थानच्युत होनेसे जैसे क्लोरोफार्म उत्पन्न होता है वैसे ही आइयोडिन द्वारा तीन परमाणु उद्जन स्थानच्युत होनेसे आइयोडोफार्म (Iodoform) बनता है। आइयोडोफार्ममें (CHI_3) एक भाग आइयोडिन, एक भाग अलकोहल, दो भाग कार्बनेट आव सोडा और दश भाग जल रहता है। ये सब कुल मिला कर ७० हैं। ८०° से० उत्तापसे पीछे रखने पर आइयोडोफार्म पृथक् हो जाता है। कार्बनेट आव सोडाके बदलेमें कष्टिक सोडाका व्यवहार भी किया जाता है।

ओलिफिन (Olefines) श्रेणीके भी इथिलिन या इथिन, प्रोपिलिन आदि यौगिक हैं। पाराफिन श्रेणीके अलकोहलका उग्र गन्धकाम्लिक एसिड द्वारा निकाल देनेसे इथिन पाया जाता है। इसे ओलिफायण्ट गैस भी कहते हैं। ब्रोमीनके साथ मिथिलिन उत्तप्त करनेसे प्रापिलिन तैयार होता है। ओलिफिन श्रेणीके यौगिकमें पाराफिन श्रेणीके यौगिककी अपेक्षा दो परमाणु उदजन कम देखे जाते हैं। इथिन डाइब्रोमाइडको अलकोहलिक कास्टिक पोटाशके साथ उत्तप्त करनेसे इथाइन (Ethine) बनता है। आसिटिलिन, क्रोटोनिलिन आदि इसीके अन्तर्भुक्त हैं। यह पाराफिन, ओलिफिन और आसिटिलिन श्रेणीके यौगिक CH_2 द्वारा बढ़ता है। इसी कारण इनको होमोलोगस् कहते हैं। प्रत्येक श्रेणीमें बराबर अङ्गार रहने तथा दो परमाणु उदजन द्वारा परस्पर प्रभेद होनेसे वे Isologous भी कहलाते हैं।

टार्पिन (Turpenes) श्रेणीमें नाना प्रकारके तेल, कपूर, धूना, धूनायुक्त गोंद (Gum-resins), तैलाक्त धूना (Oleo-resins) बलसम, इण्डिया-रबर, गाटापर्चा आदि पदार्थ अन्तर्भुक्त हैं। देवदारु (Pine) जातिके वृक्षके निर्यासको टार्पिन कहते हैं। इसे चुआनेसे सैकड़े ३२ से ८० भाग तक धूना तथा २५ से १० भाग तक तेल पाया जाता है। चुआये हुए टार्पिनको Spirit of Terpentine कहते हैं।

रबड़ १२० ° से० उत्तापमें पिघल जाता है। अधिक उत्ताप लगनेसे यह विश्लिष्ट हो Isoprene और Caoutchine उत्पन्न करता है। इन दोनों पदार्थोंसे इण्डिया-रबड़ निकलता है। इसमें सैकड़े पीछे दो तीन भाग गंधक मिलानेसे Volcanised India Rubber बनता है। [illegible] दुग्धवत् निर्यासका शुष्कावस्था गाटापर्चा (Guttapercha) पाया जाता है।

आरोमाटिक श्रेणीमें उत्तापविशेषसे अलकतरा चुआ कर Benzene $= C_6H_6$, Napthaline $= C_{10}H_8$, Anthracene $= C_{14}H_{10}$ आदि प्रस्तुत किये जाते हैं।

हाइड्रोकार्बनिक पदार्थोंका एक या एकसे अधिक उदजन परमाणु अर्थात् हाइड्रोक्सिल द्वारा स्थानच्युत होनेसे उनको अलकोहल कहते हैं। यदि अर्थात् हाइड्रोक्सिल द्वारा एक परमाणु उदजन स्थानच्युत हो, तो वह मनोहाइड्रिक कहलाता है। दो परमाणुकी जगह डाइहाइड्रिक और तीन परमाणुकी जगह ट्राइहाइड्रिक अलकोहल उत्पन्न होता है।

मनोहाइड्रिक अलकोहलके मध्य Ethylic श्रेणी ही विशेष उल्लेखनीय है। इथिलिक श्रेणीके अलकोहलका नाम मिथिल है। मिथिल अलकोहलका दूसरा नाम Carbinol भी है। कार्बिनलका १, २ या ३ संख्यक उदजन परमाणु C_nH_{2n+1} सम्बन्धक उपादान संयुक्त हाइड्रोकार्बनिक राडिकल द्वारा स्थानच्युत होनेसे प्राइमरी, सेकण्डरी या टार्शियारी अलकोहल उत्पन्न होता है।

शराबकी चीनी, ईखका रस, चावल और आलू आदिके पदार्थविशेष (Starch) से ही साधारणतः मद्य बनता है। साधारण चीनी या चावलको केवल मिला देने हो उससे मद्य नहीं बनता। खमीर (Yeast) के साथ उत्सेचन (Fermentation) क्रिया द्वारा पहले शराबकी चीनी बनती है और पीछे वही विश्लिष्ट हो कर सुरा उत्पन्न करती है। अलकोहलके साथ जल मिला रहने से उसका आयतन-संकोच होता है अर्थात् १०० आयतन जलमिश्रित अलकोहल बनानेमें ५३.९ आयतन अलकोहल और ४९.८ आयतन जलकी जरूरत होती है। इस लिये ३.७ आयतन संकुचित हो जाता है। ऐसे जलमिश्रित अलकोहलको Proof spirit कहते हैं।

चीनी गुड़ या चावलादिके उत्सेचन द्वारा परिवर्तित होनेके बाद उसे चुआनेसे मद्य होता है। उस समय यह जलके साथ मिला रहता है। चूना या कार्बनेट आफ पोटाश आदि जलशोषक पदार्थ उसमें मिला कर चुआनेसे Rectified spirit पाया जाता है। इसमें सैकड़े पीछे ८४ भाग अलकोहल रहता है। इसको उत्ताप लगा चूने आदि द्वारा बार बार परिस्रुत करनेसे जल बिलकुल उड़ जाता है। यह जलविहीन सुरा ही असल अलकोहल है। [illegible]

स्पिरिटमें प्रायः १६० प्रूफ स्पिरिट रहता है। अतएव १६० प्रूफ कहनेसे १०० रेक्टि-स्पि+६० जल समझा जाता है। ykc's कृत हाइड्रोमीटर नामक यन्त्रकी सहायतासे सुरादिका परिमाण निरूपित होता है। सैकड़े पीछे ४९ भाग अलकोहल रहनेसे उसको प्रूफ कहते हैं। उससे अधिक रहनेसे over proof और कम रहनेसे under proof कहलाता है। ८०° Under proof कहनेसे सैकड़े पीछे २०° *Proof* Spirit समझा जायगा।

Amidobenzene वा Aniline तथा Nitrous acid-के योगसे Phenylic Alcohal वा carbolic acid बनता है। बेञ्जिन और सलफ्युरिक एसिडको उत्तप्त करनेसे Benzene Sulphaonic acid उत्पन्न होता है। उसको caustis potash मिला कर विकृत करनेसे phenol वा phenylic alcohal पाया जाता है। तेल और चर्वीमें अनेक प्रकारका एसिड है। नारियलके तेलमें Caproic, Caprylic, Rutic, Lauric, Myristic Palmitic और oleic, ओलिभ तेलमें stearic palmitic और oleic, रेंडीके तेलमें Recinoleic तथा भेंडी और गायकी चर्वीमें Stearim और Margarin आदि एसिड रहते हैं।

मनुष्य जीवनकी उन्नतिके लिये अर्थात् आयुर्वृद्धि और रोगनाशके लिये इस रसायनशास्त्रकी उत्पत्ति हुई है। पाश्चात्य वैज्ञानिक-सम्प्रदायने इस उद्देश्यकी सिद्धिके लिये अनाङ्गारिक और आङ्गारिक रसायनकी जो उन्नति की है उसके लिये आधुनिक शिक्षितसमाज ऋणी हैं। भारतीय आर्य ऋषियोंकी रसायनपद्धतिमें औषध बनानेकी जो सब प्रक्रियायें लिखी गई हैं, वे पाश्चात्य रासायनिकोंकी रसायनप्रणालीसे नहीं मिलने पर भी किसी अंशमें उससे कम नहीं है। पाश्चात्य शिक्षापटु वर्त्तमान वङ्गाली वैज्ञानिक डा० प्रफुलचन्द्र राय, Dr Sc ने आयुर्वेदोक्तआर्य-रसायन-शास्त्रकी आलोचना करके पारदघटित कुछ रसौषध (Mercurial compounds) को फल और बलका पता लगाया। सम्यक् पाश्चात्य वैज्ञानिक प्रथासे उसका विश्लेषण करके वे उस शास्त्रको स्वतःसिद्ध सिद्धान्त पर पहुंच गये थे। भारतीय प्राचीन-भित्तिका द्वारोद्घाटन करके उन्होंने सम्प्रति उस पारद-सम्बन्धीय कुछ अभिनवतत्त्वका मौलिक परिचय पाश्चात्य वैज्ञानिक-समाजमें प्रदान किया है।

पारेके ऊपर यवक्षारसे उत्पन्न द्रावकके क्रियासम्बन्धमें Lefort, Gerhardt और Marignac आदि यशस्वी रसायनवित् पण्डितोंने गवेषणा की थी। इन दो पदार्थोंके सम्मिलनसे उन्होंने कितने यौगिक-पदार्थका आविष्कार किया था सही, पर उनमेंसे कोई भी इसका प्रकृत तथ्य निकाल न सके। १८९५ ई०में प्रफुल्लचन्द्र राय नामक एक प्रसिद्ध बंगाली अध्यापकने पीतवर्ण दानायुक्त 'मार्किउरस नाइट्रोइट' नामक पदार्थका आविष्कार और स्वरूपनिर्णय कर इस विषयमें जो कुछ ज्ञातव्य था उसे साफ साफ बतला दिया। जिस विषयमें इतने मनस्वी यूरोपीय रसायनवित् कृतकार्य न हो सके, उसी विषयमें अध्यापक राय महोदय जो पारग हो गये हैं, वह हम लोगोंके लिये कम गौरवकी बात नहीं है।

पारदसे उत्पन्न इस नूतन यौगिक पदार्थको मूलस्वरूपमें अवलम्बन करके अध्यापक रायने अनन्यमनाः हो कर जो सभी मिश्र (Complex) पदार्थोंका आविष्कार किया है वह बड़ा ही आश्चर्यका विषय है।

आजसे करीब १२५ वर्ष हुए वे उत्तापके संयोगसे नाइट्राइटोंके विश्लेषणविषयमें गवेषणा करते थे। इसी बीच क्षार पदार्थके, क्षार-मृत्तिकाके और पारेके नाइट्राइटोंके विश्लेषणविषयमें कुछ प्रबंध इङ्गलैण्डकी रसायन-सभाकी पत्रिकामें प्रकाशित हुए। १८९५ ई०से अध्यापक रायने इङ्गलैण्ड और जर्मनदेशीय रासायनिक पत्रिकामें प्रायः १५।१६ मौलिक गवेषणा सम्वलित प्रबंध प्रकाशित किये।

रसायनशास्त्रकी आलोचनामें अध्यापक राय जैसे धन्य हो गये हैं, वैसे ही पदार्थविद्यावित् वङ्गसन्तान अध्यापक जगदीशचन्द्र वसुने तड़ित (Electricity)के नाना तत्त्वोंका उद्भावन करके सारे वैज्ञानिक जगत्‌में अद्भुत कीर्त्ति स्थापन कर भारतकी गौरवरक्षा की है।

रसायनभेद (सं० पु०) रसायनेषु भेदः । पारद, पारा ।

रसायनामृतलौह (सं० क्ली०) गुल्माधिकारोक्त औषध विशेष । इसकी प्रस्तुत प्रणाली—चीनी १६ पल, पकाई मिला हुआ त्रिफला २ सेर, जल १६ सेर, शेष ४ सेर, बिजौरा नीबूका रस १६ पल, इनका यथाविधान पाक करना होगा । पीछे गाढ़ा होने पर त्रिकटु, मोथा, विडङ्ग, जीरा, मंगरैला, अजवायन, वन अजवायन, चिरायता, त्रिसोथ, दन्तिमूल, नीमकी छाल, सैन्धव और अवरक प्रत्येक २ तोला, लोहा २ पल, घी ४ पल, इनका प्रक्षेप अच्छी तरह आलोड़न कर लेना होगा । इस औषधका सेवन करनेसे पांच प्रकारके गुल्म रोग, यकृत, प्लीहा, पाण्डु और कमला आदि रोग नाश होते हैं ।

(भैषज्यरत्ना०)

रसायनिक (सं० त्रि०) रासायनिक देखो ।

रसायनी (सं० स्त्री०) रसाय तैजादीन् अयते प्राप्नोति अय-ल्यु ङीप् । १ वह औषध जो बुढ़ापेको रोकती या दूर करती हो । २ गुड़ूची गुड़च । ३ काकमाची, मकोय । ४ महाकरञ्ज । ५ गोरक्षदुग्ध, अमृतसंजीवनी, गोरखदुधा । ६ मांसरोहिणी । ७ मञ्जिष्ठा, मजीठ । ८ कर्णस्फोटा, कनफोड़ा नामकी लता । ९ गुडूचिका, गोंठ । १० शुद्ध त्रिवृता, सफेद निसोथ । ११ शंख पुष्पी, शंखाहुली । १२ माड़ा । १३ कन्द गुड़ूची, कन्द गिलोय ।

रसाढ्य (सं० त्रि०) १ रसयुक्त, रससे भरा हुआ । २ सुमिष्ट, सुस्वादु ।

रसार्णव (सं० त्रि०) रसस्य अर्णव इव । रसका समुद्र, रसका सागर ।

रसाल (सं० क्ली०) रसम् आलाति आदत्ते इति आ-ला-क । १ सिह्लक, शिलारस । २ बोल नामक गन्धद्रव्य । (पु०) ३ इक्षु, ऊख । ४ आम्र, आम । ५ पनस कटहल । ६ कुन्दुर तृण । ७ गोधूम, गेहूं । ८ अम्लवेतस अमल बेत । (वैद्यकनि०) (त्रि०) ९ मधुर, मीठा । १० रसीला । ११ सुन्दर, मनोहर । १२ लालित्य । १३ मार्जित, शुद्ध ।

रसास (सं० पु०) राजस्व, खिराज ।

रसालगढ़—बम्बई प्रदेशके रत्नागिरि जिलेके खेड़ उपविभागान्तर्गत एक गिरिदुर्ग । इसकी पर्वतचूड़ाके सिवाय यहां प्रवेशका दूसरा कोई सहज उपाय नहीं है । दुर्गके प्रथम प्राकारके द्वारपथके सामने बुरुज तथा प्राचीर गात्रमें गोला आदि फेंकनेका रन्ध्र है । इसके प्रायः ८० गज पीछे द्वितीय प्राकार और दुर्गद्वार है । यहां वास्तुशाला, देवमन्दिर, पुष्करिणी आदि स्थापित हैं । सभावास प्रासाद आदि अन्यान्य अट्टालिकाएं दुर्गके भीतर बनाई हुई हैं ।

रसालगिरि—एक कवि । ये मैनपुरीके रहनेवाले आदि गिरिके शिष्य थे । इन्होंने वैद्यप्रकाश और स्वरोदय ग्रन्थ लिखा । ये संन्यासी हो कर मथुरा चले गये ।

रसालय (सं० पु०) १ रसका निर्दिष्ट स्थान, वह स्थान जहां अनेक प्रकारके रस आदि बनते हों । २ वह स्थान जहां आमोद-प्रमोद किया जाय । ३ आमका पेड़ । ४ जातिविशेष ।

रसालशर्करा (सं० स्त्री०) गन्ने या ऊखके रससे बनाई हुई चीनी ।

रसालस (सं० पु०) कौतुक ।

रसालसा (सं० स्त्री०) रसम् अलसा । १ नाड़ी । २ पौंड़ा, गन्ना । ३ गोधूम, गेहूं । ४ कुन्दुर नामकी घास ।

रसाला (सं० स्त्री०) रसान् आलाति आदत्ते इति आ-ला-क, टाप् । १ रसना, जीभ । २ दूर्वा, दूब । ३ विदारी । ४ द्राक्षा दाख । ५ शिखरिणी । पर्याय—मार्जिता । ६ कामोद्दीपक पानीय विशेष । प्रस्तुत प्रणाली—कुछ खट्टा माठा दही ८ सेर, चीनी २ सेर, मधु १ पल, घी ५ पल, सोंठ ४ माशा, इलायची ४ माशा, मिर्च २ तोला, लवङ्ग २ तोला, इन्हें एकत्र मिला कर सफेद कपड़ेमें छान ले । पीछे मृगनाभि चन्दनरस और अगुरु द्वारा सुवासित उस रस को कपूर द्वारा सुगन्धित कर ले । यह रसाला पान करनेसे ध्वजभङ्ग-रोगीको उत्तेजना बढ़ती है ।

दूसरा तरीका—खट्टा दही ८ सेर, चीनी २ सेर, घी ५ पल, मधु १ पल, मिर्चचूर्ण ४ तोला, सोंठका चूर्ण १ तोला दालचीनी तेजपत्र, इलायची और नागकेसर प्रत्येक १ तोला । किसी सुन्दरी रमणीके कोमल हाथोंसे इसे

प्रमर्द्दित और कर्पूरादि द्वारा सुवासित करके एक मट्टी-के वरतनमें रखे। यह रसाला वलकर, पुष्टिकर, स्निग्ध और रुचिकर होती है। (भैषज्यर० अरोचकाधि०)

भावप्रकाशके मतसे इसकी प्रस्तुत प्रणाली—पहले जलविहीन और अम्लरसयुक्त भैंसका दही १६ सेर, परिष्कृत चीनी ८ सेर, एक साथ मिला कर साफ सुथरे कपड़ेमें धीरे धीरे डाल दे। पीछे उसमें ३२ सेर दूध मिला कर नीचे रखे हुए वरतनमें उसका रस चुआवे। अनन्तर उस रसके परिमाणानुसार इलायची, लवङ्ग, कर्पूर और मिर्च डाल दे। भोजनप्रिय भीमसेनने यह तरकीव निकाली थी। यह रसाला श्रीकृष्णको बहुत रोचक थी। वसन्त ऋतु छोड़ कर अन्यान्य ऋतुओं-में जो प्रतिदिन इसका सेवन करते उनकी वीर्यवृद्धि और इन्द्रियां सवल होती है। जो ग्रीष्म और शरत्-कालके आतपसे उत्तप्त वा प्रमत्ता स्त्रीसम्भोगसे खिन्न अथवा पथश्रमसे थक गया हो, वे यदि इस रसाला-का सेवन करें, तो उनका शरीर शीघ्र पुष्ट होता है। रसाला शुक्रवर्द्धक, वलकारक, रुचिजनक, वायु और पित्तनाशक, अग्निदीपक, शरीरका उपचयकारक, स्निग्ध, मधुर रस, शीतल, सारक तथा रक्तपित्त, पिपासा, दाह और प्रतिश्यायविनाशक है। (भावप्र०)

रसालाम्र (सं० पु०) महाराजाम्र, वढ़िया कलमी आम।

रसालिका (स० स्त्री०) १ सतला, सातला। २ अंविया, छोटा आम। (त्रि० स्त्री०) ३ मधुर, मृदु, सरस।

रसालिन् (सं० पु०) १ कृष्णचणकक्षुप, चनेका पौधा। २ पौंढ़ा, गन्ना।

रसालिहा (सं० स्त्री०) पृश्निपर्णी, पिठवन।

रसाली (सं० स्त्री०) रसान् आलाति या आ ला क, ङीप्। पौंढ़ा, गन्ना।

रसालु—सियालकोटके एक राजा, शालिवाहन शकारि-विक्रमादित्यके पुत्र। इन्होंने अपने भुजवलसे सियालकोट राजधानी पुनरुद्धार कर राज्यशासन किया। इसके शासनकालका ऐतिहासिक विवरण मालूम न होने पर भी वहांके लोगोंसे जैसा सुना जाता है उससे मालूम होता है, कि ये वड़े वीर योद्धा थे। परन्तु अपने अंतिम जीवनमें इन्होंने गक्कर-राज हुडीसे परास्त हो कर अपनी कन्या उन्हें व्याह दी। इसके एक भी सन्तान थी, इस कारण मरनेके वाद उनके दौहित्र राजसिंहासन पर बैठे। फिर किसीका कहना है, कि रसालुके मरने पर उनके संन्यासी-भाई पूरणने इस राज्यके प्रति अभिसम्पात प्रदान किया। तभीसे दुर्भिक्ष और डकैतोंके उपद्रवसे यह समृद्ध सियालकोट राज्य छार खार हो गया।

रसालेक्षु (सं० पु०) पौंढ़ा, गन्ना।

रसाव (हिं० पु०) १ खेतको जोत कर और पाटेसे वरावर करके कई दिनों तक यों ही छोड़ देना। २ रसनेकी क्रिया या भाव।

रसावर (हिं० पु०) रसौर देखो।

रसावल हिं० पु०) रसौर देखो।

रसावा (हिं० पु०) ऊखका कच्चा रस रखनेका मिट्टीका वरतन।

रसावेष्ट (सं० पु०) श्रीवेष्ट नामक सुगन्धिद्रव्य, गंधा विरोजा।

रसाश (सं० पु०) मद्यपान, शराव पीना।

रसाशिन् (सं० त्रि०) मद्यपायी, शराव पीनेवाला।

रसाशिर् (सं० त्रि०) दुग्धमिश्रित, दूध मिला हुआ।

रसाश्वासा (सं० स्त्री०) पलाशी नामकी लता।

रसाष्टक (सं० क्ली०) पारा, ईंगुर, कांतिसार लोहा, सोनामक्खी, रूपामक्खी, वैक्रान्त मणि और शंख इन आठ महारसोंका समूह। (वैद्यकनि०)

रसास्वाद (सं० पु०) रसस्य आस्वादः। रसका आस्वाद, रस चखना। अखण्ड वस्तुका अनवलम्बन द्वारा चित्त-वृत्तिकी सविकल्प समाधिमें आनन्द आस्वादनका नाम रसास्वाद है। (वेदान्तसार)

रसास्वादिन् (सं० पु०) रसम् आस्वादयितुं शीलमस्य आ-स्वाद णिनि। १ भ्रमर, भौंरा। (त्रि०) २ स्वाद लेनेवाला, रस चखनेवाला। ३ आनन्द या मजा करने-वाला।

रसाह्व (सं० पु०) रस आह्वा आख्या यस्य। गन्धा विरोजा।

रसाह्वा (सं० स्त्री०) १ शतावर। २ रासना।

रसिआउर (हिं० पु०) १ ऊखके रस या गुड़के शर्वतमें पका हुआ चावल। २ एक प्रकारका गीत जो विवाहकी

एक रीतिमें गाया जाता है। जब नई बहू ब्याह कर आती है, तब वह उसके रस या गुड़के शर्बतमें चावल पका कर अपने पति तथा ससुरालके लोगोंको परोस कर खिलाती है। उस समय स्त्रियां जो गीत गाती हैं, उसे भी 'रसियाउर' कहते हैं।

रसियावर (हि॰ पु॰) रसियाउर देखो।

रसियावल (हि॰ पु॰) रसियाउर देखो।

रसिक (सं॰ पु॰) रसोऽस्त्यस्येति वा रस-ठन्। १ सारस पक्षी। २ तुरङ्ग घोड़ा। ३ हस्ती, हाथी। ४ एक प्रकारका छन्द। (हि॰) ५ जो रस या स्वाद लेता हो, रस लेनेवाला। ६ जिसे रस सम्बन्धी बातोंमें विशेष आनन्द आता हो, काव्यमर्मज्ञ, सहृदय। ७ क्रीड़ा आदिका प्रेमी, आनन्दी रसिया। ८ जो किसी विषयका अच्छा ज्ञाता हो मर्मज्ञ। ९ प्रेमी, भक्त, भावुक।

रसिक—एक कवि। इनका बनाया दो गीत नीचे उद्धृत करता हूं—

(१)

"बामा कमल बदन छत्र देखे
नयन मोहनी बैन ज्योरी गुलामबीबी राग नट मेये।
भावक भव भव निति जागे मेरे बिनाद अपार मिहेये॥
भूषण बज्रभूषित हारवली हालिम नयन अम्बर छुमिरये।
रसिक गुलाब बिलोकत बर मुख
पाचावर मुख सार मिहेये।"

(२)

"भावत कुञ्जनमें सिय प्यारी।
भति रस भरे डगरि नाना रमयति सुकुमारी॥
भूषण बसन भ ग भ ग रसमत छवि अनमाल अपारी।
रसिक गुलाब भाव रस मनमें पाये कुञ्जबिहारी॥

रसिक अली—एक साधारण श्रेणीके कवि। इनकी कविता प्रशंसनीय है। ये मिथिलाविहार, अद्य-धाम होरी आदि बना गये हैं। मिथिला विहारमें रामचन्द्रजीका जनकपुरमें आगमन और उनका शोभाका वर्णन विविध छन्दोंमें है। इनकी कविताका परिचय निम्नलिखित छन्दोंसे मिलता है।

"भाई घन गरजन अगर सुहाई।
मन प्रमोद मोरनकी सोर चहुं दिशि बन हरियाई।
"रिमि झिमि बरसत चमकत दामिनी घन अंधियारी छाई॥
झिल्ली रव भावक रव कामिनि छिनछिन कुहक मचाई।
श्याम बसुक रवाय करंघन शोभा रहि अधिकाई।
कारे सीस प्यारी सूके चन्द्रिका आदिव नग
जगमग भाति मानु भाति उजियारी है।
रतन किरीट धारें राजन सुजान सीस
उदित मिहिर भाति तरुन तमारी है॥
दामिनी उमन घन मिरन बिराजें दोऊ
नील पीत बसननि चाहिय किनारी है।
रसिक अली ज् न्यारे राजत सिंगार रूप
सुखमा अमित छवि छवि मोदकारी है।

रसिककृष्ण—एक कवि। इनकी कविता उत्तम श्रेणीकी होती थी। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं—

'खाह री तोहे लाज न आव री बारबार तू आव।
घरी घोरे भरकी माती नयन न बैन नचावे
बिना ही कहे तुम भावत गावत नाना रंग उपजावे।
रसिककृष्णको रस बस कर बीरो बाँसुरिया नित्य बजावे॥"

रसिक गोविन्द—एक भाषा कवि। इनका बनाया युगल रसमाधुरी नामक ग्रन्थ मिलता है जो बड़ा विशद है। इसमें २०१ छन्दों द्वारा वृन्दावन तथा राधा कृष्णका वर्णन है। इनकी कविता परम मनोहर और गम्भीर होती थी। इन्होंने नैसर्गिक सुघराइयोंका भी अच्छा वर्णन किया है। इसके अतिरिक्त इन्होंने अष्टदेश भाषा, गोविन्दानन्दघन, कलियुगरासो, पिंगलग्रन्थ, समय-प्रबन्ध, श्रीरामायणसूचनिकाकी रचना की। इनकी कविताका नमूना—

"सोहित निरमल नीर निकट जमुना चलि आई।
मनहु नीलमनि माल बिपिन पहिरे सुखदाई॥
मरन नील सित पीत कमल कुल फूले छबनि।
मनु बन पहिरे रंग रंगके सुरंग दुकूलनि।
इन्दीबर कल्हार कोकनद कुमुदनि सोभा।
मनु जमुना दृग करि अनेक निरखत बन सोभा।
तिन मधि मकरंद पराग प्रभा छबि रोकि न रारति॥
निज भरकी निधि रीझि रमा मनु बन पर वारति॥
तरल सुगन्ध पराग सने मधु मधुप गुंजारत।
मनु सुखमा लखि रीझि परस्पर सुजस उचारत॥
पुलिन पवित्र विचित्र चित्र निर्मित बर भवनी।

रचित कनक मनि खचित लसति अति कोमल कमनी ॥"

रसिकता (सं० स्त्री०) रसिकस्य भावः तल् टाप् । १ रसिक होनेका भाव या धर्म । २ परिहास, हंसी ठट्ठा ।

रसिकदास—एक भाषा-कवि । ये निम्न लिखितग्रन्थ बना गये हैं,—बानी, प्रसादलता, भक्तिसिद्धान्त, पूजाविलास, एकादशी माहात्म्य, रसकन्द, रसमणि ।

रसिकरङ्ग—एक कवि । इनकी कविता नीचे उद्धृत होती है,—

"कैसेके समझाऊ अपने सावल कु ज्यों ज्यों
बोलावू त्यों रुसो रुसा जाय ।
रसिकरङ्ग पिया मनके भवन बाबुल
विन जिय तरसाय ॥"

रसिकविहारी (सं० पु०) श्रीकृष्णका एक नाम ।

रसिकविहारी (बनी ठनीजी)—एक स्त्री कवि । ये महाशया महाराज नागरीदासजीकी उपपत्नी थीं और उनके साथ श्रीवृन्दावनमें वास करती थीं । इनकी कविता सरस और भक्तिभावसे पूर्ण है । वह व्रजभाषा और राजपूतानी मिश्रित भाषामें है। इनकी गणना साधारण श्रेणीमें की जाती है। इनके पद नागर समुच्चयके अन्तमें संग्रहीत हैं । किसी किसीने रसिकविहारी नाम होनेसे इन्हें भ्रमवश पुरुष माना है। इनका कविता काल सवत् १७८७ समझना चाहिए, क्योंकि ये नागरीदासजीके साथ थीं । उदाहरणके लिये इनकी एक कविता नीचे देते हैं,—

"फागुणियारो घुमडि रह्यो खेल्याल ।
कु ज भूमि'लों लाल हुई हुआ लाल तमाल ॥
उडि गुलालकी लाल धुंधरि में झलके बैया भाल ।
सखी लाल अरु लाल [illegible] रसिकविहारी लाल ॥
ललनके सिर सेहरा फाग रगम गे वेस ।
भींव रही मे चलत दोउ लेगनि सुलस सुदेस ॥
भींजे केसरि रंग सों रंगे अरुन पर पीत ।
डोलें चाचर चौक में गहि बहिया दोउ मीत ॥"

रसिक सनेही—एक कवि । इनका बनाया धनाश्री धमार नीचे देते हैं,—

"भाई री कैसे बसिये याहु नगरमे हांरी खेलत नगरमे ।
चार मुते कोतवाल इसे डर नाहीं नगरमें ॥
एक ही रंगमें रङ्ग है पुरजन नेक न शङ्का सगरमे ।
रसिक सनेही मानत नाहीं बडी ढिठाई लगरमें ॥"

रसिकसुमति—एक साधारण श्रेणीके कवि । ये ईश्वरदासके पुत्र संवत् १७८५ में हो गये हैं। इन्होंने दोहोंमें अलंकारचन्द्रोदय नामक ग्रन्थ कुवलयानन्दके आधार पर बनाया। इनकी कविता साधारण है। इनके बनाये कुछ दोहे नीचे देते हैं ।

"सोहत जुगुल किसोरके मधुर सुधासे नैन ।
बदन चन्द सम करत है निरखत सीतल नैन ॥
प्रत्यनीक अरि सों न बस अरि हितूहि दुख देय ।
रवि सों चले न कजकी दीपति ससि हरिलेय ॥"

रसिका (सं० स्त्री०) रसिक-टाप् । १ सिखरन, दहीका शरवत । २ इक्षुरस, ईखका रस। ३ रसना, जीभ । ४ मैना पक्षी । ५ शरीरमेंकी धातु, रस ।

रसिकाई (हिं० स्त्री०) रसिकता देखो ।

रसिकेन्द्र—नीलाचलके सामन्त अच्युतानन्दके पुत्र और वैष्णवश्रेष्ठ श्यामानन्दके शिष्य । उड़ीसा मलभूमके अन्तर्गत सुवर्णरेखा तटवर्ती रुहिणी ग्राममें इनका जन्म हुआ था । कवि गोपीवल्लभदास कृत 'रसिकमङ्गल' ग्रन्थ इन्हीं'की जीवनीके अवलम्बन पर रचा गया है ।

अच्युतकी छोटी पत्नीका नाम भवानी था। इसी भवानीसे रसिकानन्द उत्पन्न हुए, रसिकका जन्माब्द १५१२ शक (१५९० ई०) कार्त्तिक रविवार प्रतिपद् तिथि है ।

जैसे इनका नाम रसिक था, वैसे ही ये रसिक भी थे। ग्रामके छोटे बड़े सभी इनके स्नेहपात्र थे। पांच वर्षकी उम्रमें इन्होंने पढ़ना लिखना आरम्भ कर दिया। इनकी प्रतिभा और स्मरणशक्ति अलौकिक थी। एक वार पढ लेनेसे ही वह मुखस्थ हो जाता था। कहते हैं, कि गुरु महाशय एक दिन किसीको मीमांसा शास्त्र पढ़ा रहे थे, रसिकका कान उसी ओर था। घर आने पर पाठशालामें जो कुछ सुना था सभी सूत्र वे अपने पितासे धडाधड सुनाने लगे। पुत्रकी विलक्षण बुद्धि देख कर पिताने कहा था, कि यह कुमार मनुष्य नहीं किसी देव-अंशमें उत्पन्न हुआ है।

इसके बाद वे बलभद्र सेनके निकट व्याकरण पढ़ने

लगे। पीछे इन्होंने कुछ दिन मनुकूल चक्रवर्ती और कविचन्द्रसे और कुछ दिन यदुनन्दनसे व्याकरण पढ़ा था।

हिजलीके अधिकारी बलभद्रके इच्छादेवी नामक एक परम सुन्दरी कन्या थी। रसिकका विवाह उसीसे हुआ। विवाहके कुछ दिन बाद ही विविध प्रकारसे वे भक्तिका अनुष्ठान करने लगे; कभी वैष्णवोंको खिलाते, कभी संकीर्तन करते और कभी भागवत पाठ किया करते थे। इसी समय श्यामानन्द प्रभु नीलाचल पधारे। आग जिस प्रकार हवाकी सहायतासे धधक उठती है, श्यामानन्दके साथ रसिकने भी उसी प्रकार भक्तिप्रवाहमें हविर्निवेश लगा दिया।

श्यामानन्द रसिकानन्दको दीक्षा दे कर वृन्दावन गये। जब रसिकेन्द्र कब बैठनेवाले थे उन्होंने गुरुका पीछा किया। कुछ दिन बाद वहांसे लौट कर उन्होंने नीलाचलके राजा प्रजा सभोंको कृष्णप्रेम प्रदान किया। उनके शिष्योंमेंसे मयूरभञ्जके प्राचीन राजा वैद्यनाथ एक थे। रसिककी भक्तिमें ऐसी आकर्षणी शक्ति थी कि करण कुलोद्भव होने पर भी सैकड़ों उच्च कुलोद्भव ब्राह्मणोंने उनका शिष्यत्व स्वीकार कर लिया था। रसिकके मुसलमान शिष्य भी अनेक थे। उनमेंसे अहमद बेग एक था। अहमद बेग बहुत अत्याचारी था। यहां तक, कि उड़ीसामें जितने राजे थे सबोंका मकान इसने तोड़फोड़ डाला था तथा सभी हिन्दू राजे इसके डरसे थरथर कांपते थे।

एक समय अहमदके वासस्थान बालपुरमें एक पगला हाथी बहुत ऊधम मचाता था। जब रसिक किसी एक मुसलमानके साथ बातचीत कर रहे थे उसी समय संयोगवश वह हाथी वहां आ पहुंचा। अहमदने रसिकसे कहा, "यदि आप इस मतवाले हाथीको दमन कर सकें, तो मैं आपके काममें जरा भी छेड़छाड़ न करूंगा, आप बेरोकटोक सब काम कर सकते हैं।" रसिक आगे बढ़े। इधर हाथीने उन्हें देख कर जोरसे चिंघाड़ मारा और सूंड़ समेट कर उनकी ओर दौड़ा। किन्तु भक्तकी शक्ति अजेय है हरिनामकी क्या ही अद्भुत महिमा है। वह पगला हाथी रसिकके समीप आ कर मंत्रमुग्धकी तरह खड़ा हो गया और उनके मुखसे निकले हुए हरिनामको सुनने लगा।

यह अद्भुत घटना देख कर वहां हजारोंकी भीड़ लग गई और सभी रसिककी महिमा गाने लगे। इस समय ब्राह्मण, शूद्र, म्लेच्छ, मुसलमान सभीने उनकी शरण ली। धीरे धीरे रसिकके सैकड़ों मुसलमान शिष्य हो गये।

इतिहासप्रसिद्ध शाहसुजा यह वृत्तान्त सुन कर रसिकका प्रभाव देखनेके लिए उत्साहान्वित हुए थे। इस प्रकार रसिक नीलाचलमें धीरे धीरे सबोंके पूजनीय हो गये। कहते हैं कि रसिकानन्दमें ऐसी कृष्णभक्ति थी, कि इसके प्रभावसे जङ्गली बाघ भी उनके निकट हिंसा भूल जाता था, अग्नि बुझ जाती थी और डूबी हुई नाव बाहर निकल आती थी।

केवल मयूरभञ्जके राजा ही नहीं रसिकके प्रभावसे आकृष्ट हो योगदेशाधिपति भी उनके शरणापन्न हुए थे।

रसिकके तीन पुत्र थे राधानन्द, कृष्णगति और राधाकृष्ण। रसिकने १९ वर्षकी उमरमें श्यामानन्दसे दीक्षा ली और २० वर्ष तक उनकी सेवा की थी। २८ वर्ष तक वे उत्कलमें घर घर वैष्णव धर्मका प्रचार करते रहे।

रसिकका जन्म १५१२ शकमें शुक्ला प्रतिपद्को और देहान्त ६२ वर्षकी उमरमें १५७४ शककी फाल्गुन शुक्ला प्रतिपद्को हुआ। मृत्युके पहले उन्होंने रेमुणाके गोपाल मन्दिरके समीप अपनी लाठ गाड़ने कहा था। वहां रसिककी समाधि आज भी मौजूद है।

रसिकेन्द्रदेव—भागवताष्टकके प्रणेता। इनका दूसरा नाम रसिकानन्द गोस्वामी।

रसिकेश—इनका जन्म संवत् १९०१ में हुआ था। आप कुछ समय वैरागी हो कर अयोध्यामें कनकभवनके महन्त हो गये और अपना नाम जानकीप्रसाद रखा। वैरागी होनेके पहले आप पन्नाके दीवान थे। आपने रामरसायन काव्य, सुधाकर, इश्क अजायब, अनुराग विरहदिवाकर, रसकौमुदी, सुमतिपचीसी सुयशकदम्ब कानून मजमुआ, रागषट्कायली, सप्रश्नविचारावली, मनरंजन, संगृहीत समष्टी, गुणपचीसी आदि २६ ग्रन्थ रचे हैं। रामरसायनमें रामायणकी कथा है और काव्यसुधाकरमें

छन्द, रस, भाव, अलंकार आदि काव्यांगोंका अच्छा वर्णन है। थोड़े ही दिन हुए हैं, ये सुरधाम पधारे हैं। आपका काव्य चामत्कारिक है। इन्होंने उर्दू मिश्रित भाषामें भी रचना की है। इनकी रामायण भी अच्छी है।

उदाहरणः—

"झूमें हैं चहूं या गजराजसे रसाल झूमे।
घूमें है समीर तेज तरल तुरंग ज्यों।
किंसुक गुलाब कचनार और अनारनके
प्यारे भांति भांति लसैं सहित उमंग त्यों।
छाई नव वल्ली छटा छहरि रही हैं घनी
तेई रथ राजैं भौर भ्रमत अभग क्यों।
रसिक विहारी साज साजि ऋतुराजआयो
छायो वन बाग सेना लीन्हे चतुरग यों॥"

रसिकेश्वर (सं० पु०) रसिकानां रसज्ञानामीश्वरः। श्रीकृष्ण।

रसिकोत्तंश—प्रेमपत्तनिकाके रचयिता।

रसित (सं० त्रि०) १ ध्वनि करता हुआ, बोलता हुआ। २ रसयुक्त। ३ बहता हुआ, थोड़ा थोड़ा टपकता हुआ। ४ जिसके ऊपर मुलम्मा चढ़ा हो। (पु०) ५ ध्वनि, शब्द। ६ द्राक्षासव, अंगूरकी शराब।

रसितृ (सं० त्रि०) रसयिता, स्वाद लेनेवाला।

रसिया (हिं० पु०) १ रस लेनेवाला, रसिक। २ एक प्रकारका गाना जो फागुनके मौसिममें व्रज और बुन्देलखण्ड आदिमें गाया जाता है।

रसियाव (हिं० पु०) गन्नेके रसमें पका हुआ चावल।

रसो (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी सब्जी जो विहार और संयुक्त प्रान्तमें बनती है। (पु०) २ रसिक देखो।

रसीद (फा० स्त्री०) १ किसी चीजके पहुंचने या प्राप्त होनेकी क्रिया, प्राप्ति। २ वह पत्र जिस पर व्योरेवार यह लिखा हो, कि अमुक वस्तु या द्रव्य अमुक व्यक्तिसे अमुक कार्यके लिये अमुक समय पर पाया, किसी चीजके पहुंचने या मिलनेके प्रमाणरूपमें लिखा हुआ पत्र। प्रायः जब किसीको कोई चीज या धन ऋणके रूपमें ऋण चुकानेके लिये अथवा और किसी मामलेके सम्बन्धमें दिया जाता है, तब पानेवाला एक प्रमाणपत्र लिख कर देनेवालेको देता है, जिसमें यदि पानेवाल कभी उस चीज या धनकी प्राप्तिसे इन्कार करे, तो उसके विरुद्ध प्रमाणके रूपमें यही रसीद उपस्थित की जाय। ३ पता, खबर।

रसील (हिं० वि०) रसीला देखो।

रसीला (हिं० वि०) १ रसमें भरा हुआ, रसयुक्त। २ स्वादिष्ट, मजेदार। ३ भोग विलासका प्रेमी, व्यसनी। ४ रस लेनेवाला, आनन्द लेनेवाला। ५ बाँका, छबीला।

रसीलापन (हिं० पु०) रसीला होनेका भाव या धर्म।

रसुन (सं० पु०) रस-उनन्। लशुन, लहसुन।

रसूम (अ० पु०) १ रस्मका बहुवचन। २ वह धन जो राज्यको कोई काम करनेके बदलेमें राजकीय नियमोंके अनुसार दिया जाता है। ३ वह धन जो किसीको किसी प्रचलित प्रथाके अनुसार दिया जाता है, नेग, लाग। ४ नियम, कानून। ५ वह धन जो जमींदारको किसानोंकी ओरसे नज़राने या भेंट आदिके रूपमें दिया जाता है।

रसूम अदालत (अ० पु०) वह धन जो अदालतमें कोई मुकदमा आदि दायर करनेके समय कानूनके अनुसार सरकारी व्ययके रूपमें दिया जाता है। इसे अंगरेजीमें court fees कहते हैं। भिन्न भिन्न कामों या मुकदमोंकी मालियतके लिये धनकी संख्या कानूनके द्वारा निर्धारित होती है और मुकदमा दायर करनेवालेको उतने धनका सरकारी कागज या स्टांप खरीदना पड़ता है तथा उसी कागज पर अपना दावा दायर करना होता है। वैनामा या दानपत्र आदि लिखनेके लिये भी इसी प्रकार रसूम अदालत लगता है।

रसूल (अ० पु०) वह जो अपने आपको ईश्वरका दूत कहता हो और सर्वसाधारणमें माना जाता हो, पैगम्बर।

रसूलपुर—मेदिनीपुर जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह हलदीसे मिल कर गेंओखालीके निकट भागीरथीमें आ गिरी है।

रसूलपुर—अयोध्याप्रदेशके फैजाबाद जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह घाघरा नदीके तट पर अवस्थित है।

रसूलाबाद—युक्तप्रदेशके कानपुर जिलान्तर्गत एक तहसील। भू-परिमाण २२६ मील है। यहाकी भूमि बहुत उर्वरी है। रिन्द, छोया, सियारी और पाण्डु नामकी

शाखाओं तथा घास और प्रशस्तभूमि आदिके रहनेसे यहांके लोगोंका अन्नाभाव दूर होता है।

२ उक्त जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा गांव और तहसीलका विचार-सदर। यहांके महाराष्ट्रीय शासनकर्त्ता गोविन्दराय पण्डित १७५५ से १७६२ के बीच रसूलाबाद नगरमें दुर्ग बना गये हैं। इस दुर्गमें अभी तहसीलकी कचहरी है।

रसूलाबाद—अयोध्या प्रदेशके उन्नाव जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६ ५०´ उ० तथा देशा० ८० ३० पू०के बीच पड़ता है। स्वर्ण और जड़ाऊके कामके लिये यह स्थान बहुत कुछ प्रसिद्ध है।

रसूलाबाद—मध्यप्रदेशके वर्धा जिलेकी आर्वी तहसीलके अन्तर्गत एक बड़ा गांव।

रसूली (अ० स्त्री०) १ एक प्रकारका गेहूं। २ एक काली मिट्टी। ३ एक प्रकारका जौ। (वि०) ४ रसूल सम्बन्धी, रसूलका।

रसेन्द्र (सं० पु०) रसानां धातुरसानां इन्द्रः श्रेष्ठः। १ पारद, पारा। २ राजमाष, लोबिया। ३ एक प्रकारकी रसौषध जो जीरा, धनियां, पीपल, शहद, त्रिकटु और रससिन्दूरके योगसे बनती है।

(भैषज्यरत्ना० ज्वरचि०)

रसेन्द्रगुटिका (सं० स्त्री०) यक्ष्मारोगाधिकारोक्त औषधविशेष। यह दो प्रकारका है—रसेन्द्रगुटिका और बृहद्रसेन्द्रगुटिका। रसेन्द्रगुटिकाकी प्रस्तुत प्रणाली—ईंटके चूर्ण आदिसे सहित २ तोला रसको जयन्ती और अदरकके रसमें मर्दन कर पिण्डवत् बनावे। पीछे उसे भकवर्णा और काकमाचीके रसमें अलग अलग भावना दे। पश्चात् भृङ्गराजरसमें भावित नवनीताख्य गंधक चूर्ण १ पलको उस पारेके साथ मिला कर कज्जली बनावे। अनन्तर २४ पल बकरीके दूधको उस कज्जलीके साथ मर्दन कर सिद्ध उड़दके समान गोली बनावे। अनुपान बकरीका दूध या मधु और अडूसेके पत्तोंका रस है। खाया हुआ अन्न जब अच्छी तरह पच जाय, तब यह औषध खाना चाहिये। पथ्य दूध और मांसका शोरवा बताया है। औषध सेवन करनेसे क्षय, श्वास, रक्त, पित्त, अरुचि और अम्लपित्त रोग नष्ट होते हैं।

बृहद्रसेन्द्रगुटिकाकी प्रस्तुत प्रणाली—४ तोला पारा ले कर घृतकुमारीका रस सरसोंका चूर्ण, हरिद्रा, ईंटका चूर्ण और अदरकका रस, इन सब द्रव्योंसे पृथक् पृथक् मर्दन कर मोटे कपड़ेमें छान ले। पीछे जयन्ती, और काकमाची प्रत्येकके रसमें भावना दे कर धूपमें सुखावे। अनन्तर भृङ्गराज रसमें शोधित गंधक १ पल, मिर्च, सोहागा, सोनामक्खी, तूतिया, हरिताल अभ्रक प्रत्येक ४ तोला इन्हें अदरकके रसमें पीस कर २ रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान अदरकका रस है। यह औषध सेवन करनेके बाद दूध और मांसका शोरवा पीना उचित है। इससे क्षय, कास, श्वास और पाण्डु आदि रोग अति शीघ्र नष्ट होते हैं।

रसेन्द्रवेधज (सं० क्ली०) स्वर्ण, सोना।

रसेश्वर (सं० क्ली०) रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—रस ८ तोला, गंधक १८ तोला, तांबा २ तोला, हरिताल २ तोला, सोना २ तोला, इन सब द्रव्योंको मिलाके रसमें तीन दिन भावना दे कर और मर्दन कर उसमें सोलहवां भाग विष मिलावे। पीछे फिरसे बकरे आदिके पित्तमें भावना दे कर २ रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान अदरकका रस, चित्ताका रस और त्रिकटुका चूर्ण है। इसमें भी पहलेके जैसा दधि और अन्न आदि पथ्य दे यथा रोगीको ठंढे जलसे स्नान करावे।

रसेशु (सं० पु०) पौंड़ा, गन्ना।

रसेस (हिं० पु०) १ रसिकशिरोमणि, श्रीकृष्ण। २ पारा।

रसेश्वरदर्शन—दर्शनशास्त्रभेद। यह दर्शनशास्त्र छः प्रकार दर्शनके अन्तर्गत नहीं है। माधवाचार्यने सर्वदर्शनसंग्रहमें इस दर्शनका स्थूल मर्मार्थ लिखा है। तदनुसार अति संक्षिप्त भावमें उसका विषय यहां पर लिखा जाता है। इस दर्शनका प्रत्यभिज्ञादर्शनके साथ एक मत देखनेमें आता है। प्रत्यभिज्ञादर्शन देखो।

प्रत्यभिज्ञादर्शनमें पारेका कोई उल्लेख नहीं है, किन्तु इस दर्शनमें यह विषय अच्छी तरह लिखा है। दोनोंमें पृथक्ता है, तो बस इतनी ही और किसी विषयमें नहीं। प्रत्यभिज्ञादर्शनमें महेश्वर परमेश्वर तथा जीवात्मा और परमात्माको एक बताया है। इस दर्शनमें भी यही मत समर्थित हुआ है अर्थात् महेश्वर वा परमेश्वर तथा

जीवात्मा परमात्मा है, यह स्वीकार किया है। किन्तु इस दर्शनके अवलंबी प्रत्यभिज्ञादर्शनोक्त एकमात्र प्रत्यभिज्ञा ही परमपद मुक्तिकी साधना है, इसे विश्वास न करके परममुक्तिके प्रापक किसी दूसरे पथका अवलम्बन करते हैं। इस दर्शनमें दिखाया है, कि पहले मुमुक्षु व्यक्तिको अपना शरीर स्थिर रखना चाहिये। पीछे योगाभ्यास करते करते जब ज्ञानोदय हो जाय, तब उसी समय मुक्ति होती है। अन्यान्य दर्शनशास्त्रोंमें जिस प्रकार जीवकी मुक्ति ही एकमात्र प्रधान लक्ष्य है, इस दर्शनका मत भी वही है। अन्यान्य दर्शनमें यद्यपि मुक्ति साधनाका एक एक पथ दिखलाया गया है तथा उन सब पथोंके अवलम्बनसे भी मुक्ति पानेकी सम्भावना है, तो भी उन सब पथके अवलम्बनमें विशिष्ट मनुष्योंकी प्रवृत्ति उत्पन्न नहीं हो सकती। क्योंकि अन्यान्य दर्शनोक्त पथका अवलंबन करनेसे भी देहनाशके बाद मुक्ति होती है। अतएव वे दर्शनोक्त मुक्ति पिशाचकी तरह अदृष्टचर है। अदृष्ट-विषयमें कभी भी किसी व्यक्तिको विश्वास नहीं होता। जिसका जिस विषयमें विश्वास नहीं होता, वह कभी भी उसके लिये कोशिश नहीं करता।

यदि सर्वकल्याणकर सहजसुहृद-स्वरूप देहत्याग नहीं करनेसे मुक्ति न हो, तो ऐसी मुक्तिके लिये कष्ट-दायक योगादि करनेकी जरूरत ही क्या? किन्तु यदि पारदरस द्वारा देहका स्थैर्य्य सम्पादन करके क्रमशः योगाभ्यासमें आसक्त हो सके, तो परम कारुणिक परमेश्वर परितुष्ट हो कर पारितोषिकस्वरूप सर्वप्रधान मुक्तिपद देते हैं। इसीलिये मुमुक्षु व्यक्तिको जो पहले देहस्थैर्य्य सम्पादन करना होता है, इसे और कहनेकी आवश्यकता ही क्या।

देहको स्थिर रखनेमें पारेके सिवा और कोई भी पदार्थ नहीं है। इस पारेके रससे किस प्रकार देहका स्थैर्य्य सम्पादन करना होता है। अन्यान्य दर्शनमें उसका उल्लेखमात्र भी नहीं है। किन्तु जब इस दर्शनमें उसका सविस्तार उल्लेख है, तब इसे मुमुक्षुके लिये विशेष आवश्यकीय और श्रेयस्कर कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी।

पारदरस द्वारा देहका स्थैर्य्य सम्पादन करनेसे मुक्ति होती है इस कारण यह जीवन्मुक्तिपदवाच्य है। इस पर कोई कोई आपत्ति करते हैं, कि यदि पारदरस द्वारा देहस्थैर्य्य तथा जीवदवस्थामें ही जीवको जीवन्मुक्ति होती, तो अवश्य ही किसी न किसी समय कमसे कम एक भी आदमी स्थिरदेह सम्पादन करके जीवन्मुक्त हो सकता था। किन्तु जब ऐसा होते देखते तथा किसी शास्त्रमें भी उसका उल्लेख नहीं पाते, तब पारदरस द्वारा स्थिरदेह तथा जीवदवस्थामें मुक्ति होती है, इसे किस प्रकार विश्वास कर सकते? इस आपत्तिके उत्तरमें यह शास्त्र कहता है, कि जो इस प्रकारकी आपत्ति करते, मालूम होता है, उन्होंने रसेश्वरसिद्धान्त आदि प्राचीन ग्रन्थ नहीं देखे हैं। यदि देखे होते, तो कभी भी ऐसी आपत्ति न कर सकते थे, क्योंकि उन सब ग्रन्थोंमें लिखा है, कि महेश्वर आदि देवगण, काव्य आदि दैत्यगण, वालखिल्य आदि ऋषिगण सोमेश्वर आदि राजगण और गोविन्द भगवत् पादाचार्य्य, गोविन्द नायक चर्वटि, कपिल, व्यालि, कापालि, कन्दलायन आदि सिद्धगण, पारदरस द्वारा दिव्यदेह धारण कर जीवन्मुक्त हो यथेच्छ विचरण करते थे। इस प्रकार प्रकार जब देखते हैं, कि देहका स्थैर्य्य सम्पादन करनेसे जीवन्मुक्ति होती तब यह मुमुक्षुके लिये बहुत श्रेयस्कर है, इसमें सन्देह नहीं।

इस दर्शनमें किस प्रकार देहका स्थैर्य्य सम्पादन करना होता है उसीका विषय विशेष रूपसे आलोचित हुआ है। जीवन्मुक्ति ही इस दर्शनका प्रधान उद्देश्य है, यही स्पष्ट-रूपसे दिखाया गया है। इस पर कोई कोई आपत्ति करते हैं, कि सच्चिदानन्दस्वरूप परमतत्त्वकी स्फूर्त्ति होनेसे ही तो मुक्ति हो सकती है। इसलिये मुक्तिके लिये इस शास्त्रके अवलम्बन करनेकी आवश्यकता ही क्या? किन्तु उनकी यह आपत्ति युक्तिसंगत नहीं है। क्योंकि परम-तत्त्वकी स्फूर्त्ति होनेसे ही मुक्ति तो होती है, पर वह परमतत्त्वकी स्फूर्त्ति बिना समाधिके सम्पन्न नहीं होती; समाधि भी बहुकाल साध्य है। वह इस देहसे निष्पन्न होना कठिन है, पहला कारण यह कि देह श्वासकासादि नाना रोगोंका आश्रय, विनश्वर तथा समाधिका क्लेश सहनेमें असक्त है। दूसरा बाल्यावस्थामें धीशक्ति उत्पन्न

नहीं होती, यौवनावस्थामें विषय रसास्वादमें मग्न हो कर कालके लिये धनकाम भी चिन्ता नहीं करते तथा वृद्धावस्थामें विवेकशक्ति नहीं रहती। इसके बाद देहपात होता है। अतएव इस देहसे समाधि निष्पन्न नहीं हो सकती। इसीलिये पहले पारदरस द्वारा दिव्यदेहको सम्पादन करना होता है। इससे धीरे धीरे योगाभ्यासादि द्वारा परमतत्त्वकी स्फूर्ति हो सकती है। नहीं तो इस अस्थिर देहमें कभी भी परमतत्त्वकी स्फूर्ति होनेकी सम्भावना नहीं। इस लिये ही इस दर्शनमें देहस्थैर्यका साधनपथ दिखाया गया है।

इस पारदरसको सामान्य धातुकी तरह समझना उचित नहीं। क्योंकि स्वयं भगवान् महादेवने भगवतीसे कहा था कि, 'पारदरस मेरा स्वरूप है। यह मेरे प्रत्येक अङ्गसे उत्पन्न हुआ है और यह मेरे ही शरीरका रस है इसीसे इसको रस कहते हैं। यह पारद संसाररूप समुद्रको पलभरमें पार कर देता है इसीसे इसका पारद नाम पड़ा है। पारद मेरा और अभ्रक तुम्हारा (भगवतीका) बीज है। इन दोनों बीजोंका मिलन करा सकनेसे मृत्यु और दारिद्र्यभयका एक ही समय दूर होती है।"

यह पारा फिर कई प्रकारका है। प्रत्येक पारेमें एक एक असाधारण गुण है। मूर्च्छित पारेसे व्याधि नष्ट होती है, मृत पारा जीवित रहनेकी तथा बद्धपारा शून्य मार्गमें गतिशक्ति प्रदान करता है। जो पारा भिन्न भिन्न रंगका दिखाई देता तथा जिसमें घनता और चञ्चलतादि धर्म नहीं रहता, उसको मूर्च्छित; जिस पारेमें आद्रत्व, घनत्व, तेजस्विता, गुरुता और चपलतादि गुण हैं उसे मृत तथा जो पारा अखण्ड, निर्मल, तेजस्वी और गुरु होता तथा बहुत अल्प पिघल जाता है उसे बद्धपारा कहते हैं। अधिक क्या, एकमात्र पारा ही अर्थ धर्म काम और मोक्ष को देनेवाला है तथा सभी विद्या और सुखसम्पन्नताका आधारस्वरूप इस शरीरको अजर अमरके जैसा बनाये रखता है। इसे छोड़ कर देह को नित्यता सम्पादन करनेवाला और कोई पदार्थ हो नहीं है। इसका दर्शन, स्पर्शन, भक्षण, स्मरण, पूजन और दानसे अभीष्टकी सिद्धि होती है।

पृथ्वी पर केदारादि जो सब शिवलिङ्ग हैं उनका दर्शन करनेसे जो पुण्य होता है, वह एकमात्र पारददर्शन से ही मिलता है। काशी आदि तीर्थोंमें जो सब लिङ्ग हैं उन सबको पूजा करनेकी अपेक्षा एक पारदनिर्मित शिवलिङ्गपूजा श्रेयस्कर है। क्योंकि उससे सभी विषयोंका भोगसाधन आरोग्य तथा अमृतपद प्राप्त होता है। जिस किसी प्रकारसे पारदकी निन्दा सुननेसे भी पाप होता है। इस कारण जो पारदरसकी निन्दा करते हैं उनका संसर्ग नहीं करना चाहिये।

पारेमें ये सब गुण विद्यमान हैं, इस कारण पारद रस अन्यान्य रसोंसे उत्तम है। इसीसे इसको रसेन्द्र या रसेश्वर तथा रसेश्वरका गुण निर्दिष्ट होनेके कारण दर्शनको रसेश्वरदर्शन कहते हैं। (माधवाचार्य)

रसोइया (हिं० पु०) रसोई बनानेवाला भोजन बनाने वाला।

रसोई (हिं० पु०) रसाई देखो।

रसोई (हिं० पु०) १ पका हुआ खाद्यपदार्थ, बना हुआ भोजन। २ वह स्थान जहां भोजन बनता हो, पाकशाला।

रसोईखाना (हिं० पु०) रसोईघर देखो।

रसोईघर (हिं० पु०) वह स्थान जहां भोजन पकाया जाता हो, खाना बनानेकी जगह।

रसोईदार (हिं० पु०) वह जो रसोई बनानेके काम पर नियुक्त हो, रसोइया।

रसोईदारी (हिं० स्त्री०) १ रसोई करनेका काम, भोजन बनानेका काम। २ रसोईदारका पद।

रसोईबरदार (फा० पु०) भोजन ले जानेवाला, भोजन वाहक।

रसौत (हिं० स्त्री०) रसौत देखो।

रसोत्तम (सं० पु०) रसेषु उत्तमः यद्वा रस उत्तमोऽस्य। १ मुद्ग मूंग। २ श्रेष्ठ रस। ३ पारद पारा। (स्त्री०) ४ रसाञ्जन, रसौत। ५ घृत घी।

रसोत्पत्ति (सं० पु०) १ शारीरिक रसकी परिणति। २ कामोद्रेक, कामकी अधिकता। ३ द्रव्यविशेषके योगमें माठे रसका उद्भव।

रसोद्भव (सं० क्ली०) हिंगुल, शिंगरफ।

रसोद्भव (सं० क्ली०) रसात् पारदधातोरुद्भवतीति उद्

भू अच् । १ हिङ्गुल, शिंगरफ। २ रसाञ्जन, रसौत। ३ मुक्ता। (त्रि०) ४ रसजात, रससे उत्पन्न।

रसोद्भूत (सं० क्ली०) रसाञ्जन, रसौत।

रसोन (सं० पु०) रसेनैकेनोनः। (Allium sativum) स्वनामख्यात कन्दशाक, लहसुन। इसे महाराष्ट्रमें पाण्डराणसुनु, कलिङ्गमें विलियवेल्लुलि, तैलगमें तेल्लबुलि और तामिलमें वल्लई पाण्डु कहते हैं। इसकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—जब पक्षीन्द्र गरुड देवराज इन्द्रसे अमृत चुराये आता था, तब उसमेंसे एक बुंद जमीन पर गिर पडी थी, उसीसे लहसुनकी उत्पत्ति मानी जाती है। विशेष विवरण लहसुन शब्दमें देखो।

रसोनक (सं० पु०) रसोन-स्वार्थे कन्। लसुन, लहसुन।

रसोनपिण्ड (सं० पु०) आमवाताधिकारमें औषधविशेष। यह रसोनपिण्ड और महारसोनपिण्डके भेदसे दो प्रकारका है। रसोनपिण्डकी प्रस्तुत प्रणाली—लहसुन १२॥० सेर, निस्तुषतिल ॥० सेर, हींग, त्रिकटु, यवक्षार, साचिक्षार, पञ्चलवण, सोयां, कुट, पीपलमूल, चितामूल, वनयमानी, यमानी और धनिया प्रत्येकका चूर्ण १ पल, इनके चूर्णको किसी घीके वरतनमें रखे। पीछे उसमें तिलतैल १ सेर और कांजी १ सेर डाल कर १६ दिन धानका ढेरमें रख छोडे। इसकी मात्रा आध तोला और अनुपान जल वा मद्य है। इस औषधका सेवन करनेसे आमवात, अपस्मार, खांसी और वातव्याधि आदि रोग दूर होते हैं।

महारसोनपिण्डकी प्रस्तुत-प्रणाली—लहसुन १०० पल, तुषरहित तिल ५० पल, मट्ठा १६ सेर, त्रिकटु, धनिया, चई, चितामूल, गजपीपल, वनयमानी, दारचीनी, इलायची, पीपलमूल, प्रत्येक एक एक पल, चीनी ८ पल, मिर्च १ पल, कुट ४ पल, मंगरेला ४ पल, मधु ४ पल, अदरक ४ पल, घी ८ पल, तिलतैल ८ पल, कांजी २० पल, सफेद सरसों ४ पल, लाल सरसों ४ पल, हीग २ तोला, पञ्चलवण प्रत्येक २ तोला, इन्हें एकत्र कर कड़ी धूपमें सुखा ले। पीछे घीके वरतनमें रख कर धानकी ढेरमें १२ दिन रख छोडे। सवेरे यथायोग्य मात्रामें सेवन करना होता है। अनुपान सुरा, सौवीरक और दूध है। इस औषधके सेवनकालमें दधि और पिष्टक छोड़ कर और सभी वस्तु खा सकते हैं। एक मास तक इस औषधका सेवन करनेसे नाना प्रकारके वायुज, पित्तज और कफज रोग नाश होते हैं। यह आमवात रोगकी एक अक्सीर दवा है। आमवात, अर्श, वातव्याधि आदि रोगोंमें यह बहुत लाभ पहुंचाता है।

(भैषज्यरत्ना० आमवात०)

रसोनादिकषाय (सं० पु०) कषाय औषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—लहसुन, सोंठ और सम्हालू तीनोंका समान ले कर काढ़ा पान करनेसे आमवात नष्ट होता है। आमवातनाशक इस प्रकारका औषध अति दुर्लभ है।

(भावप्र० आमवात०)

रसोनाष्टक (सं० क्ली०) वातव्याधि रोगाधिकारमें औषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली—कुछ लहसुनका छिलका और भीतरका अंकुर फेंक दे। पीछे उसकी कड़ी गंध दूर करनेके लिये दहीमें रात भर छोड दे। पीछे उसे अच्छी तरह धो डाले और सुखा कर चूर्ण करे, सौवर्चल, यमानी, भूनी हींग, सैन्धव, त्रिकटु और जीरा इनका लहसुनके चूर्णका पांचवा भाग तथा तिलतैल उसका चौथाई भाग, सभीको एक साथ मिला कर पीसना होगा। यह औषध २ तोला अथवा रोगके दोष वा बलाबलानुसार स्थिर करके सवेरे सेवन करना होता है। यह औषध सेवन करनेसे सर्वाङ्गगत और एकाङ्गगत वात, अर्दित, अपतन्त्रक, अपस्मार, उन्माद, ऊरुस्तम्भ आदि रोग अति शीघ्र आरोग्य होते हैं। यह औषध सेवन करके प्रति दिन शराब, मांस, अम्ल, (अनार और आंवला) खाना उचित है। औषध सेवनकालमें परिश्रम, रौद्रसेवन, क्रोध, अत्यन्त जलपान, गुडाहार और स्त्रीसंसर्ग विशेष निषिद्ध है। औषध सेवनके बाद भेरेण्डके मूलका क्वाथ अनुपान करना होता है।

अतीसार, प्रमेह, पाण्डु, अरुचि, मूर्च्छा, अर्श, रक्तपित्त, शोष, यक्ष्मा, वमि इन सब रोगग्रस्त तथा गर्भिणी स्त्रीको इसका सेवन नहीं कराना चाहिये। पैत्तिकरोगमें पथ्य भोजनके साथ सेवन कर पीछे विरेचक द्रव्य खावे, नहीं तो उसे कुष्ठ और पाण्डुरोग हो सकता है। बालककी यदि अरुचि देखे, तो उसे स्तनदुग्धके साथ पान कराना चाहिये। (भावप्रकाश वातव्याधिरोगाधि०)

रसोपल (स० क्लो०) रसवत् पारद इव उपलं । मौक्तिक, मोती ।

रसोल्लास (स० पु०) १ शारीरिक रसका उल्लोपम । २ आठ सिद्धियोंमेंसे एक सिद्धि । ३ रासमाका विकाश । ४ कामोद्दीपन काम उपजना । ५ आकांक्षाकी वृद्धि ।

रसौंन (हि० स्त्री०) रसौत देखो ।

रसौकस् (स० क्लो०) रसभाग, अभ्रकपङ्क ।

रसौत (हि० स्त्री०) एक प्रकारकी प्रसिद्ध औषधि । यह दारुहल्दीकी जड़ और लकड़ीको पानीमें औटा कर और उसमेंसे निकले हुए रसको गाढ़ा करके तैयार की जाती है । इसके लिये पहले दारुहल्दीका काढ़ा तैयार करते हैं और तब उसमें उसके बराबर ही घी या बकरीका दूध डाल कर दोनोंका पका कर बहुत गाढ़ा अवलेह तैयार करते हैं । यही अवलेह उस कर बाजारोंमें रसौतके नामसे बिकता है । रसौत कालापन लिये भूरे रंगकी होती है और पानीमें सहजमें घुल जाता है। इसका स्वाद कड़ुवा होता है और इसमें एक विलक्षण गंध निकलती है, जो अफोमकी गन्धसे कुछ मिलती जुलती होती है । इसका व्यवहार प्रायः आंखों पर लगाने और घावोंका विकार दूर करनेमें होता है । वैद्यकमें यह चरपरा, गरम, रसायन कड़वी, शीतल तीक्ष्ण, शुक्रजनक, नेत्रोंके लिये अत्यन्त हितकारी तथा कफ, विष, रक्त-पित्त वमन, हिचकी, श्वास और मुख रोगको दूर करनेवाली मानी गई है । इसका संस्कृत पर्याय—रसगर्भ, तार्क्ष्यशैल, रसोद्भूत, रसाग्रज, कृतक बालभैषज्य, रसराज, अग्निसार, रसनाभि ।

रसौता (हि० पु०) रसौली देखो ।

रसौती (हि० स्त्री०) भागकी वह बोआई जिसमें खेत जोत कर वर्षा होनेसे पहले ही बीज डाल दिया जाता है ।

रसौदन (स० पु०) मांसके रसमें पके हुए चावल । यह अभाविज्वरमें हितकर माना गया है ।

रसौर (हि० पु०) ऊखके रसमें पके हुए चावल ।

रसौल (हि० स्त्री०) एक प्रकारकी बड़ी कंटीली लता । यह कोरी और बहराइचके जंगलोंमें बहुत अधिकतासे होती है और दक्षिण भारत, बंगाल तथा बरमामें भी पाई जाती है । यह गरमीके दिनोंमें फूलती और जाड़े में फलती है । इसकी पत्तियां और छालियां औषधि रूपमें भी काम आती हैं और उनसे चमड़ा भी सिझाया जाता है । इसकी पत्तियां कड़ी होती हैं इसलिये इनकी चटनी भी बनाई जाती है । इसे पेला भी कहते हैं ।

रसौली (हि० स्त्री०) एक प्रकारका रोग जिसमें आंखके ऊपर भौंहोंके पास बड़ी गिल्टी निकल आती है ।

रसौली—अयोध्याप्रदेशके बाराबंकी जिलान्तर्गत एक नगर । यह नवाबगञ्जसे चार मील पूर्वमें अवस्थित है । यहां प्राचीन मुसलमान कोर्तियां बहुतसी निद्यमान हैं ।

रस्ता (हि० पु०) रास्ता देखो ।

रस्तावगी—उत्तर पश्चिम-प्रदेशमें रहनेवाली बनिया जातिकी एक शाखा । इनमें अमेठी रस्तूपति और मौहारिया नामक तीन थोक हैं । इनका कहना है कि अमेठीमें इनका आदिवास था । कार्यवशतः वहांसे चल कर इन्होंने नाना स्थानोंमें वास किया है । सिपाही विद्रोहके बाद दिल्लीसे एक थोक मिर्जापुर आया । इस थोककी स्त्रियां स्वामीकी बनाई हुई रसोई नहीं खातीं । इनमें लाल, महावीर या पांच पीरके उपासक लोग परस्परमें आदान प्रदान नहीं करते हैं । बहुतेरे रामानन्दी सम्प्रदायभुक्त हैं । गौड़ीय ब्राह्मण लोग इनका याजकता करते हैं । इनमें बहुविवाह प्रचलित है, किन्तु विधवा विवाह निषिद्ध है । ये न तो मांस खाते और न शराब ही पीते हैं ।

रस्तोगी (हि० पु०) वैश्योंकी एक जाति ।

रस्न (सं० क्लो०) रस (सुस्निशुसिरविभ्य। क्नि । उण् ३।१२) इति न प्रत्ययः । द्रव्य, चीज ।

रस्म (अ० स्त्री०) १ मेलजोल, बरताव । २ रिवाज, परिपाटी ।

रस्य (सं० क्लो०) रसात् भुक्ताआदिपरिपाकात् आगतमिति रस-यत् । १ रक्त, लहू । २ शरीरमेंका मांस । (त्रि०) ३ रसयुक्त ।

रस्या (सं० स्त्री०) रसाय हिता रस यत् टाप् । १ रास्ना । २ पाठा, पाढ़ी ।

रस्सा (हि० पु०) १ बहुत मोटी रस्सी जो कई मोटे तागों

को एकमें बट कर बनाई जाती है। आजकल प्रायः जहाजों आदिके लिये तथा और बड़े कामोंके लिये लोहेके तारोंके भी रस्से बनने लगे हैं। २ जमीनका एक नाप जो ७५ हाथ लम्बा और ७५ हाथ चौड़ा होता है। इसीको बीघा कहते हैं। ३ घोड़ोंके पैरकी एक बीमारी।

रस्सी (हिं० स्त्री०) १ रुई, सन या इसी प्रकारके और रेशोंके सूतों या डोरोंको एकमें बट कर बनाया हुआ लंबा खंड जिसका व्यवहार चीजोंको बांधने, कूएंसे पानी खींचने आदिमें होता है, डोरी, गुण। २ एक प्रकारकी सञ्जा।

रस्सीबाट (हिं० पु०) रस्सी बटनेवाला, डोरा बनानेवाला।

रहँकला (हिं० पु०) १ एक प्रकारकी हलकी गाड़ी। २ तोप लादनेकी गाड़ी। ३ रहँकले पर लदी हुई छोटी तोप।

रहँचटा (हिं० पु०) प्रीतिकी चाह, मनोरथ सिद्धिकी अभिलाषा।

रहँट (हिं० पु०) कूएंसे पानी निकालनेका एक प्रकारका यन्त्र। इसमें कूएंके ऊपर एक ढांचा रहता है जिसमें बीचोंबीच पहियेके आकारका एक गोल चरखा लगा होता है जो कूएंके ठीक बीचमें रहता है। इस चरखे पर घड़ों आदिकी एक बहुत लम्बी माला, जिसे 'माल' कहते हैं, टंगी रहती है। यह माला नीचे कूएंके पानी तक लटकती है और इसमें बहुत सी हांड़ियां या बाल्टियां बंधी रहती हैं। जब बैलोंके चलानेसे चरखा घूमता है तब जलसे भरी हुई हांड़ियां या बाल्टियां ऊपर आ कर उलटती हैं जिससे उनका पानी एक नालीके द्वारा खेतोंमें चला जाता है और खाली हांड़ियां या बाल्टियां नीचे कूएंके पानीमें चली जाती और फिर भर कर ऊपर आती हैं। इस प्रकार थोड़े परिश्रमसे अधिक पानी निकलता है। पश्चिममें इसकी बहुत चाल है।

रहँटा (हिं० स्त्री०) सूत कातनेका चर्खा।

रहँटी (हिं० स्त्री०) १ कपास ओटनेकी चरखी। २ रुपया उधार देनेका एक ढंग जिसमें प्रतिमास कुछ रुपया वसूल किया जाता है। इसे संयुक्त प्रान्तमें हुंडी कहते हैं।

रहचटा (हिं० पु०) दे० रहँचटा।

रहचह (हिं० स्त्री०) चिड़ियोंका बोलना, चहचहाहट।

रहठा (हिं० पु०) अरहरके पौधेके सूखे डंठल, खड़िका।

रहण (सं० क्ली०) १ निकालके फेंकना। २ परित्याग, साथ छोड़ना। ३ सम्यक् निर्वाचन, मिली हुई वस्तुओंको अलग करना।

रहन (हिं० स्त्री०) १ रहनेकी क्रिया या भाव। २ रहनेका ढंग, व्यवहार।

रहनसहन (हिं० स्त्री०) जीवन निर्वाहका ढंग, गुजर-बसर, चालढाल।

रहना (हिं० क्रि०) १ स्थित होना, अवस्थान करना, ठहरना। २ स्थान न छोड़ना, प्रस्थान न करना, रुकना। ३ बिना किसी परिवर्तन या गतिके एक ही स्थितिमें अवस्थान करना। ४ निवास करना, बसना। ५ किसी कामसे ठहरना, कोई काम न करना पड़ जाना। ६ विद्यमान होना, उपस्थित होना। ७ कुछ दिनोंके लिये ठहरना या टिकना, अस्थायीरूपसे निवास करना। ८ चलना बंद करना, रुकना। ९ चुपचाप समय बिताना, कुछ न करना। १० नौकरी करना, काम काज करना। ११ समागम करना, मैथुन करना। १२ बचना, छूट जाना। १३ स्थिर होना, स्थापित होना। १४ जीवित रहना, जीना।

अवस्थान सूचक इस क्रियाका प्रयोग बहुत व्यापक है। प्रधान क्रियाके अतिरिक्त यह और क्रियाओंके साथ संयुक्त हो कर भी आती है। जैसे—आ रहा है; जा रहे हैं।

(पु०) १५ शेर, बाघ आदिके रहनेका स्थान; जंगलका वह विभाग जहां शेर, चीते आदिके रहनेकी मांदें हों। इसे 'रमना' भी कहते हैं।

रहनि (हिं० स्त्री०) १ आचरण, चाल ढाल। २ प्रेम, प्रीति।

रहनी (हिं० स्त्री०) रहनि देखो।

रहम (अ० पु०) १ करुणा, दया। २ अनुकम्पा, अनुग्रह। ३ गर्भाशय।

रहमतुल्ला—मुसलमान साधु मालिक मोमरको औथनाके

डेपक। महाराष्ट्र नगरमें उक्त साधुका समाधिमन्दिर मौजूद है।

रहमतगड़—दाक्षिणात्यके महिसुरराज्यके कोला जिलान्तर्गत एक बड़ा शैल। यह अक्षा० १३ २१´ तथा देशा० ७८ ४´ पू०के बीच पड़ता है। समुद्रपीठसे यह ४२२७ फुट ऊंचा है। स्थानीय किंवदन्ती है कि पाण्डवगण उसे एक रस पर्वतके नीचे स्थापित हैं। अ परेकराजके नन्दिदुर्ग दखल करनेके बाद टीपू सुलतानने इस शैलमें दुर्ग बनानेका संकल्प किया था, किन्तु उनकी आशा कायम परिणत न हुई।

रहमत (अ० स्त्री०) दया, मेहरबानी।

रहमान (अ० वि०) १ बड़ा दयालु। (पु०) २ परमात्माका एक नाम।

रहल (हिं० स्त्री०) छोटी देहाती गाड़ी जिसमें किसान लोग घास या खाद ढोते हैं।

रहलुभाव (सं० पु०) १ संसारके झगड़ोंको छोड़ कर एकान्त स्थानमें निवास करना। २ वह जो इस प्रकार संसारको छोड़ कर एकान्तमें निवास करता हो।

रहेठा (हिं० पु०) अरहरके सूखे डण्ठल, कड़िया।

रहल (अ० स्त्री०) एक विशेष प्रकारकी छोटी चौकी जिस पर पढ़नेके समय पुस्तक रखी जाती है। इसमें दो छोटी छोटी पटरियां बीचमें एक दूसरीको काटती हुई लगी रहती हैं और इच्छानुसार खोली या बंद की जा सकती हैं। इसका आकार × हो जाता है।

रहवाल (फा० स्त्री०) घोड़े की एक चाल।

रहस् (सं० क्ली०) रम तऽस्मिन् रह (रमेस्त रह। उण् ४।२१४) इति असुन् हकारश्चान्तादेशः। १ निर्जन, एकान्त स्थान। पर्याय—विविक्त, विजन, छन्न, निःशलाक, उपांशु। २ गुप्त भेद छिपी बात। ३ आनन्द, सुख। ४ योग, तन्त्र या और किसी सम्प्रदायकी गुप्त बात, गूढ़ तत्त्व।

रहस (सं० पु०) १ समुद्र। २ स्वर्ग।

रहसमन्दिन् (सं० पु०) एक प्रसिद्ध वैयाकरण।

रहसना (हिं० क्रि०) आनन्दित होना, प्रसन्न होना।

रहसबधावा (हिं० पु०) विवाहकी एक रीति जिसमें नवविवाहिता वधूको घर अपने साथ जनवासेमें लाता है। यहां सब गुरुजन उस समय वधूका मुख देखते हैं और उसे वस्त्र, भूषणादि उपहार देते हैं।

रहसू (सं० स्त्री०) व्यभिचारिणी स्त्री बदचलन औरत। "मार्ये मत्स्कर्त्तरहसूरिवागः" (ऋक् २।२९।१) 'रहसूरिव रहस्यन्यैरज्ञानी प्रसूते सूयत इति रहसूर्व्यभिचारिणी, सा यथा गर्भ धारयित्वा दूरदेशे, परित्यजति' (सायण)

रहस्कार (सं० त्रि०) रहस्य कार्यकारक, ऐसी ठट्ठा करनेवाला।

रहस्य (सं० त्रि०) रहसि भवं रहस् दिगादित्वात् यत्। १ गोपनीय, सबको न बतानेयोग्य। २ निर्जनमय, जो एकान्तमें हुआ हो। (क्ली०) ३ गूढ़तत्त्व वह जिसका तत्त्व सहजमें या सबकी समझमें न आ सके। रहस्य तीन प्रकारका है। यथा—धर्मरहस्य, अर्थरहस्य और कामरहस्य। ४ गुप्तभेद, वह बात जो सबको बतलाई न जा सकती हो। ५ मर्म या भेदकी बात, भीतरकी छिपी हुई बात। ६ परिहासकौतुक, हंसी ठट्ठा, मजाक।

रहस्या (सं० स्त्री०) रहस्य टाप्। १ महाभारतके अनुसार एक प्राचीन नदीका नाम। २ रास्ता। ३ पाठा, पाढ़ी।

रहस्यु (सं० पु०) पञ्चविंशब्राह्मणोक्त एक व्यक्ति।

(पञ्चवि० १४।४।७)

रहःस्थ (सं० त्रि०) १ निर्जनमें अवस्थित। २ एकक, बिना साथीका।

रहाइ (हिं० स्त्री०) १ रहनेकी क्रिया या भाव। २ ढङ्ग, ढंग।

रहाऊ (हिं० स्त्री०) गानेमेंका पहला पद, टेक। यह शब्द अधिकतर पञ्जाबमें बोला जाता है।

रहार (सं० पु०) १ वह जो किसी प्रकारका सलाह देता हो। २ परामर्शदाता या मन्त्री। ३ प्रेतात्मा। ४ प्रताप, भरना।

रहा सहा (हिं० वि०) बचा हुआ, बचा बचाया।

रहित (सं० त्रि०) रह क्त। वर्जित बिना बगैर।

रहिया (हिं० पु०) चना।

रहोभूत (सं० त्रि०) १ निर्जनमें अवस्थित। २ कार्यादिसे बचा हुआ समय।

रहीम (अ० वि०) १ रहम करनेवाला, कृपालु । (पु०) २ ईश्वरका एक नाम ।

रहीम—इस नामके भाषाके दो कवि। ये दोनों बड़े निपुण कवि थे। २ रहीमके दोहे प्रसिद्ध हैं। परन्तु इसका पता लगाना अत्यन्त कठिन है, कि कौन कविता किस रहीमकी बनाई हुई है।

रहीम उद्दीन बख्त (मीर्जा)—दिल्लीश्वर शाह आलमके पौत्र। ये भारतेश्वरी विक्टोरियाके मध्यम पुत्र ड्यूक आव आडिनबराकी सम्बर्द्धना करनेके लिये १८७० ई०में बनारससे आगरा गये थे।

रहीमतपुर—बम्बईप्रदेशके सतारा जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० १७° ३५′ ३५″ उ० तथा देशा० ७४° १४′ ४४″ पू० तक विस्तृत है। यहां म्युनिसिपलिटी है। इसलिये नगरकी पूर्वसमृद्धिका ह्रास नहीं हुआ है, प्राचीन कोर्त्तियोंमेंसे बीजापुर सेनापति रनदुल्ला खाँकी मसजिद आदि ही देखनेके योग्य है। रनदुल्ला खाँ बीजापुरके सप्तम राजा महमूदके राज्यकालमें (१६२६-१६५६ ई०में) बड़े प्रसिद्ध हो उठे थे। मसजिदके दक्षिण पूर्वमें हाथीकी मूर्त्तिका फुहारा, ५० फुट ऊँचा एक गुम्बज तथा फुहारेके जलको दबा देनेके लिये पश्चिममें कुछ ढालू मैदानका निर्माण-कौशल आदि पर लक्ष्य करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। यहां आज भी वाणिज्यका पूरा प्रभाव है।

रहीमनगर—अयोध्याप्रदेशके लखनऊ जिलान्तर्गत एक नगर। यह नदीके दाहिने किनारे पर अवस्थित है। यहाँ पांडे ब्राह्मण ही अधिक वास करते हैं। बलूचगढ़ नामक गावके रहनेवाले पठान लोग कहते हैं, कि यह स्थान दिल्लीश्वरने उनके पूर्वपुरुषोंको जागीरस्वरूपमें दिया था। पीछे नवाब सैयद अलीने उनसे बलपूर्वक यह सम्पत्ति छीन ली और ब्राह्मणोंको दान कर दी।

रहीम वेग—वखर्जा सुयारा नामक काव्यके प्रणेता।

रहीया—इसलामधर्मके पृष्ठपोषक एक मुसलमान अध्यापक। बदर युद्धमें स्वयं उपस्थित न रहने पर भी ये एक धर्मप्रतिष्ठा कह कर गण्य थे। स्वयं महम्मद इन्हें स्वर्गीय दूत जब्रिल नामसे सम्बोधन करते थे।

(सं० पु०) १ ऋग्वेदके अनुसार आङ्गिरस गोत्रीय एक वंश या गण। रहूगण ऋषि ऋग्वेदके ६वें मण्डलके ३७ और ३८ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा थे, गौतम ऋषिने इसी वंशमें जन्मग्रहण किया था। २ इस वंशका मनुष्य। भागवतमें लिखा है, कि सिन्धुसौवीरके देशाधिपति राजा रहूगण तत्त्वजिज्ञासु हो कर इक्षुमती नदीके किनारे कपिलाश्रममें गये थे। (भाग० ५।१०।१)

रहूडी—बम्बईप्रदेशके अह्मदाबाद जिलान्तर्गत एक उपविभाग। भू-परिमाण ४६७ वर्गमील है। मूला और प्रवरा नामक गोदावरीकी दो शाखा तथा ओझाकी खाल और लाख खाल यहां बहती हैं इससे यहांकी खेतीवारीमें बड़ी सुविधा हुई है। इसकी दक्षिणी सीमा पर बड़ी शैलमाला है जिसका सबसे ऊंचा शृंग गोरक्षनाथ समुद्रपीठसे २६८२ फुट ऊंचा है। धोन्द और मानगढ रेलपथ इस उपविभागके बीच हो कर चला गया है जिससे यहांके वाणिज्यकी बड़ी सुविधा हुई है।

२ उक्त जिलेका एक नगर और उपविभागका विचारसदर। यह अक्षा० १६° ३०′ उ० तथा देशा० ७४° ४२′ पू०के मध्य मूला नदीके उत्तरी किनारे पर अवस्थित है। यह नगर बड़ा ही समृद्धिशाली है।

रहोगत (सं० त्रि०) निर्जनमें स्थित, रहःस्थित।

राकड (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी भूमि जिसमें बहुत कम अन्न पैदा होता है। ऐसी भूमि बहुधा कंकरीली और ऊंची नीची हुआ करती है।

राग (हिं० पु०) रांगा देखो।

रागड़ी (हिं० पु०) एक प्रकारका चावल जो पंजाबमें पैदा होता है

रागा हिं० पु०) एक प्रसिद्ध धातु जो बहुत नरम और रंगमें सफेद होती है। विशेष विवरण रङ्ग शब्दमें देखो।

राची—विहार और उड़ीसाके छोटानागपुर विभागके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० २२° २०′ से २३° ४३′ तथा देशा० ८४° ०′ से ८५° ५४′ पू०के मध्य अवस्थित है। इसके उत्तरमें पलामू और हजारीबाग, पूर्वमें मानभूम, दक्षिणमें सिंहभूम और गाङ्गपुर राज्य तथा पश्चिममें यशपुर और सुरगुजा राज्य है। भूपरिमाण ७१२८ वर्गमील है। इसके उत्तर-पश्चिममें बहुत-से छोटे छोटे पहाड़ हैं। इनमेंसे बड़े पहाड़का नाम सारु

है। यह समुद्रपृष्ठसे ३६१४ फुट ऊंचा है। जिलेकी प्रधान नदी सुवर्णरेखा है जो रांची शहरसे १२ मील पश्चिम हो कर बह गई है। यहां मार्च मासमें ८६, अप्रिलमें ८५ और मईमें ८८ डिगरी गरमी पड़ती है।

छोटानागपुरका इतिहास चार प्रसिद्ध युगोंमें विभक्त है। पहला युग मुण्डा लोगोंका है। उस समय इसका नाम 'झारखण्ड' था। दूसरा युग नागवंशी युग कहा जाता है। इस वंशके प्रथम राजाका नाम था फणि मुकुट राय। इनकी उत्पत्ति ब्राह्मणकन्या पार्वती और सर्प राज पुण्डरीकसे हुई थी। इस वंशने १५८५ ई० तक राज्य किया था। तीसरा युग मुसलमानी युग है। सम्राट् अकबरने एक दल सेना भेज कर कोकराके राजाको परास्त किया। उसी समय वे लोग शत्रुवासे मधुर मणि मुक्ता तक दे गये थे। पीछे जहांगीरने बिहारके शासक इब्राहिम खाँके अधीन सेना भेजी। इन्होंने नागवंशके ४५वें राजा दुर्जनशालको कैद कर दिल्ली और पीछे ग्वालियर भेज दिया। वहां वे १२ वर्ष तक कैदमें रखे गये थे। इसके बाद मराठोंने यहां लूटपाट मचाया और राजाओंसे कर वसूल किया था। अनन्तर इष्ट इण्डिया कम्पनीको जब बङ्गालकी दीवानी मिली, तब यह स्थान १७६५ ई०में उन्हींके अधिकारभुक्त हुआ। वृटिश गवर्मेण्टके शासनकालमें यह जिला दिन पर दिन उन्नति कर रहा है।

इस जिलेमें रांची, लोहरडगा, गुमला और पालकोट नामक ४ शहर और ११०७३ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ११ लाखसे ऊपर है। हिन्दूकी संख्या सैकड़े पीछे ४०, जंगलीकी ४६, मुसलमानकी ३॥ और ईसाईकी संख्या सैकड़े पीछे १०॥ है। धान यहांकी प्रधान उपज है। धानके अलावा मडुआ, उड़द, और गुआर भी उपजता है। लाहका यहां जारी कारबार होता है। इसके लिये जिलेमें १२ कारखाने हैं। प्रधान कारखाना रांची शहरमें है। लाहके कीड़े पलाश वृक्ष और कुसुम पर पाले जाते हैं। लोहरडगामें ताम्र और पीतलका कारखाना है। सूती कपड़ा जिसे अच्छी तैयार होता है। यहांसे दूसरे दूसरे देशोंमें धान, 'लम-हन, चमड़े लाह और चावलकी रफ्तनी तथा दूसरे देशोंसे गेहूं, तमाकू, गुड़, चीनी, लवण और मिट्टी तेल की आमदनी होती है।

शासनकार्यकी सुविधाके लिये १९०२ ई०में यह जिला दो उपविभागोंमें बांटा गया, रांची और गुमला। १९०५ ई०में खुन्टी नामक तीसरा उपविभाग संगठित हुआ। रांचीमें डिपटी कमिश्नर, उनके अधीन एक ज्वाइण्ट और पांच डिपटीमजिष्ट्रेट कलक्टर रहते हैं। गुमला उपविभाग एक ज्वाइण्ट और खुन्टी एक डिपटीमजिष्ट्रेट कलक्टरकी देखरेखमें है। यहां फौजदारी और दीवानी दोनों अदालत हैं। डिपटी कमिश्नरको कुल मुकदमा फैसला करनेका अधिकार है। वे केवल मृत्यु दण्ड नहीं दे सकते।

विद्याशिक्षामें यह जिला बहुत पीछे पड़ा हुआ है। १९०१ ई०में तो सिर्फ २७ मनुष्य पढ़े लिखे मिलते थे, पर अभी कुछ उन्नति देखी जाती है। फिलहाल मार्ट मरी, सेकण्डरी और स्पेशल स्कूल लगा कर हजारसे ऊपर होंगे, कम नहीं। इनमेंसे शिक्षा स्कूल, जर्मन इभु गेलिकिल लुथेरन मिशन ((erman Ev ingelistic I u therna Mission) हाई स्कूल, तथा अंग्रेजीका ट्रेनिङ्ग स्कूल और गवर्मेण्ट शिल्प स्कूल है। रांची शहरमें अन्धों के लिये भी एक खास स्कूल है। स्कूलके अलावा १० अस्पताल भी हैं।

रांची शहरसे ४० मील दक्षिण पश्चिम डोइसा नामक एक नगर है। यहां १८वीं सदीमें महाराज राय महादेव और उनके भाई और नारायणनाथ सहोदरने बहुतसे सुन्दर महल बनवाये थे जिनका खण्डहर आज भी देखनेमें आता है। इसके सिवा यहां महादेव और गणेशके दो मंदिर भी हैं। रांची शहरसे पूरब जगन्नाथ नामका मंदिर देखने लायक है।

२ उक्त जिलेका एक बड़ा उपविभाग। यह अक्षा० २२ ११´ से २३ ४३´ ३० तथा देशा० ८४ ०´ से ८५ ८४ पू०के मध्य अवस्थित है। पहले भूपरिमाण ३१०१ वर्गमील और जनसंख्या ८ लाखके करीब थी। १९०५ ई०में खुन्टी उपविभागके हो जानेसे इसका रकबा ४५४६ वर्गमील कर दिया गया जिससे जनसंख्या भी घट कर ५ लाखके करीब हो गई। इस उपविभागमें रांची

और लोहरडंगा नामक दो शहर और १४१७ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त जिलेका प्रधान नगर तथा विहार और उडीसाकी राजधानी। यह अक्षा० २३° २३' उ० तथा देशा० ८५° २०' पू०के मध्य अवस्थित है। समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊँचाई २१०० फीट है। जनसंख्या २६ हजारके लगभग है। यहां फौज भी रहती है। शहरमें डिष्ट्रिक्ट जेल है जिसमें २१७ कैदी रखे जाते हैं। इसके अलावा जिला स्कूल, मिशन स्कूल, हिन्दी शिक्षकका ट्रेनिङ्ग स्कूल, शिल्प स्कूल और एक अन्ध-स्कूल भी है।

राटा (हिं० स्त्री०) चोरोंका सांकेतिक भाषा।

राड (हिं० वि० स्त्री०) १ जिसका पति मर गया हो और पुनर्विवाह न हुआ हो, विधवा। २ रंडी, वेश्या।

रांढ़ (हिं० पु०) एक प्रकारका चावल जो बंगालमें अधिकतासे होता है।

रांता—रांगेका बना हुआ पत्र (leaf-tin)। त्रपु और रङ्ग शब्दमें मूलधातुका संक्षिप्त विवरण दिया गया है। टीन कहनेसे अकसर रांगेसे आवृत लोहेकी चादरका ही बोध होता है। वस्तुतः तांबेके बरतनमें कलाई करनेके लिये इसका अधिक व्यवहार होता है। देवप्रतिमाके अलङ्कारादि बनानेमें रांतेका ही विशेष प्रचार है।

Tin-Stone और Stream tin नामक दो प्रकारका यौगिक रांग जमीनके अन्दर पाया जाता है। पहले खनिज टीनके यौगिकको चूर्ण कर जलके द्वारा सिलेफट बाहर करते हैं। इस अवशिष्ट टीनको वायुमें दग्ध करनेसे वह आर्सेनिक और गंधकविहीन हो जाता है। इस अवस्थामें लोहा अक्साइड और सलफाइड सलफेटरूपमें परिणत होता है। यदि सभी सलफाइड सालफेट आव कपारमें परिवर्त्तित न हो, तो उक्त दग्धावशिष्ट पदार्थके साथ जल मिला कर कुछ दिन वायुमें रखना होगा। सालफेट आव कपारको जलमें गला कर फेरिक अक्साइड जलके द्वारा धो डाले। इस प्रकार अन्यान्य बाह्य पदार्थ पृथक् होनेसे अक्साइड आव टीन अवशिष्ट रहेगा। इसके साथ कुछ कोयलेका चूर्ण मिला कर आंच देनेसे टीन धातु मुक्तावस्थामें पाई जाती है।

रांग देखनेमें सफेद होता है। पीट कर उसे इच्छानुसार घटा बढ़ा सकते हैं। १००° सें० उत्तापसे इसका तार प्रस्तुत हो सकता है। २००° सें० उत्ताप लगनेसे मड मड शब्द करता है।

वायु लगनेसे इसमें कोई परिवर्त्तन नहीं होता। जलमिश्रित नाइट्रिक एसिड द्वारा मेटाष्टनिक एसिड और एमोनिया उत्पन्न होती है। नाइट्रिक एसिडके साथ अधिक जल मिला कर रांगा डालनेसे Stannous और Stannic nitrate उत्पन्न होता है। हाइड्रोक्लोरिक एसिडके साथ Stannous chloride बनता है तथा उद्जनवाष्प निकलती है।

रासायनिक प्रयोगसे रांगेसे Stannous hydrate, S oxide, S. Iodide, S Sulphide और S Sulphate तथा Stannic hydrate, Stannic oxide, metastannic acid, Stannic acid, Stannic Chloride, Stannic Iodide, Stannic sulphide वा Mosaic gold और Stannic sulphate आदि गुणप्रधान औषध बनते हैं।

औषधादिके सिवा रांगेसे तांबेके बरतनमें कलाई होती तथा बनावटी जेवर, दुर्गादि देवप्रतिमाके साज तथा चांदीकी तरह सफेद खिलौने बनाये जाते हैं। इसे पीट कर पतला पत्तर बनाया जाता है। रांगेका पत्तर चांदीका काम करता है। Sal ammoniac के साथ रांगेका चूर्ण उत्तप्त पात्रके ऊपर रख कर सूती कपड़े वा रुईसे घिसने पर दाग पड़ जाता है। पीछे बालू अथवा राखसे घिस कर पालिश की जाती है। इसीको कलाई करना कहते हैं।

सुनहली और रूपहली दो प्रकारके रांगेका पत्तर बाजारमें बिकता है। पत्तर कई कामोंमें आता है।

रांध (हिं० पु०) १ निकट, पास। २ पड़ोस, पार्श्व।

रांधना (हिं० क्रि०) भोजन आदि पकाना, पाक करना।

रांपी (हिं० स्त्री०) पतली खुरपीके आकारका मोचियोंका एक औजार जिससे वे चमड़ा तराशते, काटते और साफ करते हैं।

रांभना (हिं० क्रि०) गायका बोलना या चिल्लाना।

रा (सं० स्त्री०) रा सम्पदादित्वात् क्विप्। १ विभ्रम।

२ दान । ३ काञ्चन । ४ भी । (पु०) रा दाने (रातेर्डैः। उण् २।६१) इति डै । ५ धन । ६ शब्द ।

राइ (हि० पु०) छोटा राजा, राय ।

राइता (हि० पु०) रायता देखो ।

राइफल (अ० स्त्री०) चोड़ेदार बंदूक, बड़ी बन्दूक ।

राई (हि० स्त्री०) १ एक प्रकारकी बहुत छोटी सरसों । २ बहुत थोड़ी मात्रा या परिमाण ।

राउण्ड टेबुल कान्फरेंस (अ० स्त्री०) वह सभा या सम्मेलन जिसमें एक गोल मेजके चारों ओर राजपक्ष तथा देशके भिन्न भिन्न मतों और दलोंके लोग बिना किसी भेदभावके बैठ कर किसी महत्त्वके विषय पर विचार करें ।

राकस (हि० पु०) राक्षस ।

राकसगद्दी (हि० पु०) कर्कश नामकी बेल और उसकी जड़ । यह पञ्जाब, सिन्ध, गुजरात और सिंहलमें पाई जाती है । इसकी जड़ ओषधिके काममें आती है। इसके खानेसे दस्त और कै होती है । मर्मोंके रोगीको इसका रस पिलाया जाता है और गठियाके रोगीको गांठ पर इस का लेप चढ़ाया जाता है ।

राकसताल (हि० पु०) तिब्बतमें कैलासके उत्तर ओरकी एक झीलका नाम । इसे रावणका ह्रद और मान तलाई भी कहते हैं ।

राकसपत्ता (हि० पु०) जंगली कुवार जिसे कायफल और बकूर भी कहते हैं ।

राकसिनी (हि० स्त्री०) राक्षसी, निशाचरी ।

राका (सं० स्त्री०) रा-दाने (कृदाधाराचिकलिभ्यः कः। उण् ३।४०) इति क, बहुलवचनादेव न हृस्वः । १ नदी विशेष । यह शाल्मलीद्वीपके अन्तर्गत है । (मात्स्य ५।२०।१०) २ खुजलीका रोग । ३ नवजातरजा स्त्री, वह स्त्री जिसको पहल पहल रजोदर्शन हुआ हो । रावले वीयत देवस्यो हविरन्सा । ४ सम्पूर्णेन्दु तिथि, पूर्णिमा । ५ पूर्णिमाकी रात । ६ चन्द्रमा । ७ महाभारतके अनुसार एक राक्षसीका नाम । यह खर और शूर्पणखाकी माता था । (भार० ३।२७५।१८ अ०) ८ अङ्गिरा और स्मृतिकी कन्या । ९ अङ्गिरा और श्रद्धाकी कन्या । १० धातुकी पत्नी और प्रातरकी माता । ११ सुमालीकी एक कन्याका नाम ।

राकाचन्द्र (सं० पु०) राकायाश्चन्द्रः । पूर्णिमाका चन्द्रमा ।

राकानिशा (सं० स्त्री०) पूर्णिमाकी रात ।

राकापति (सं० पु०) चन्द्रमा ।

राकारमण (सं० पु०) पूर्ण चन्द्रमा ।

राकाविभावरी (सं० स्त्री०) राकारजनी, पूर्णिमाकी रात ।

राकाशशाङ्क (सं० पु०) पूर्णिमाका चन्द्रमा, राकाशशी ।

राकिणी (सं० स्त्री०) देवीकी शक्तिविशेष, योगिनीभेद । राकिणी, डाकिनी, लाकिनी आदि तथा भगवतीकी शक्तियां हैं । ये चौंसठ योगिनीके अन्तर्गत हैं । दुर्गा पूजाके समय 'रां राकिण्यै नमः' इस मन्त्रसे राकिणियोंकी पूजा करनी होती है ।

राकेशेखर बन्धु (सं० पु०) पूर्ण चन्द्रमा ।

राकेश (सं० पु०) राकायाः ईशः । १ पूर्ण चन्द्रमा । (माघ० १०।२४।२१) २ शिवमूर्तिभेद ।

राक्य (सं० त्रि०) राका अभिमताऽस्य (शाण्डिकादिभ्यो ञ्यः । पा ४।३।९२) इति ञ्य । राका प्रिय पूर्णिमा जिस को इच्छा हो ।

राक्षस (सं० पु०) रक्षस्यस्मात् रक्षः रक्ष एव राक्षसः । निशाचर, दैत्य, असुर । पर्याय—कौणप, क्रव्याद, क्रव्यात्, अस्रप, आशर, रात्रिञ्चर, रात्रिचर, कर्बुर, निकषात्मज, यातुधान, पुण्यजन, नैर्ऋत, यातु, राक्षस, सन्ध्याबल, क्षपाट, रजनीचर, कीलालप, पृथुकस, नक्तचर, पला शिन, पलाद, भूत, नीलाम्बर, कल्माष, कव्यम्, अमित्र, कीनाशपस्, नराधिपम । (शब्दर)

राक्षसोंकी उत्पत्तिके विषयमें रामायणमें इस प्रकार लिखा है,—प्राचीनकालमें पद्मयोनिने समुद्र प्राणियोंकी रक्षाके लिये कुछ जीवोंकी सृष्टि की । वे सब भूख प्यास से व्याकुल हो प्रजापतिके पास गये और उनसे बोले, 'प्रभो ! हम लोगोंका कर्तव्य क्या होगा, स्थिर कर दीजिये ।' तदनुसार प्रजापतिने उन्हें मनुष्योंकी रक्षा करने का हुकुम दिया । उनमेंसे कुछने बुभुक्षितसत्त्व 'रक्षाम' तथा कुछने अबुभुक्षितसत्त्व 'यक्षाम' ऐसा कहा था, इस

लिये प्रजापतिने उससे कहा, कि 'रक्षाम' कहनेवाले राक्षस और 'यक्षाम' कहनेवाले यक्ष होंगे।

इस राक्षसकुलमें हेति और प्रहेति नामक दो भाई उत्पन्न हुए। हेतिने कालके पास जा कर उसकी बहनसे विवाह किया। उस स्त्रीसे हेतिके विद्युत्केश नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पीछे हेतिने सध्यानाम्नी राक्षसीके सालकटङ्कटा नामक कन्याके साथ अपने पुत्रका विवाह किया। यथासमय सालकटङ्कटाके गर्भ रहा, पर वह गर्भ गिरा कर स्वामीके साथ फिरसे विहार करने लगी।

इधर हरपार्वतीने आकाशमें परिभ्रमण करते समय पृथ्वी पर जातबालकके रोनेकी आवाज सुनी। रुद्रने पार्वतीके अनुरोधसे उस राक्षस संतानको अमरत्व प्रदान किया तथा उसकी उमर माताके बराबर बना दी। उसपुत्रका नाम सुकेश रखा गया। पार्वतीने भी गरुड़-के वरदानकालमें कहा था, कि 'मेरे वरसे निशाचरीगण सद्योगर्भ त्याग करेंगी, सद्य ही पुत्र प्रसव करेंगी और सद्य ही उस संतानकी उमर माताके समान होगी।'

ग्रामणी नामक एक गन्धर्वने सुकेशको वर पाया देख कर उसके साथ अपनी कन्या देववतीको व्याह दिया। उनसे माल्यवान्, सुमाली और माली नामक तीन परा-क्रमी पुत्र उत्पन्न हुए। ये तीनों भाई कठोर तपस्या द्वारा ब्रह्माके वरसे अजेय हो गये थे। उनकी प्रार्थनासे विश्वकर्माने दक्षिण समुद्रके किनारे त्रिकूट और सुवेल गिरिके मध्य रमणीय लङ्कापुरी बना दी थी। तीनों भाई एक साथ उस स्वर्ण लङ्कापुरीमें रहने लगे।

उसी समय नर्मदा नामकी एक गन्धर्वीने अपनी सुन्दरी, केतुमती और वसुदाका विवाह ज्येष्ठादिक्रमसे माल्यवान्, सुमाली और मालीके साथ कर दिया। सुन्दरीके गर्भसे वज्रमुष्टि, विरूपाक्ष, दुर्मुख, सुप्तघ्न, यज्ञ-कोप, मत्त और उन्मत्त नामक अग्निसदृक् सात पुत्र तथा अनला नामक एक कन्या; सुमालीकी पत्नी केतुमतीके गर्भसे प्रहस्त, कालिकामुख, दण्ड, अकम्पन, धूम्राक्ष, विकट, सुपार्श्व, प्रघस, भासकर्ण और संह्लाद नामक दश राक्षस तथा राका, कुम्भीनसी, पुष्पोत्कटा और कैकसी नामक चार कन्या एवं मालीके अनल, अनिल, हर और सम्पाति नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। मालीके चारों पुत्र विभीषणके अमात्य थे।

इस प्रकार बड़े परिवारसे परिवृत हो माल्यवानादि सुकेशवंशधरगण सुरपुर जा कर अजेय सुरगणको विध्वस्त और स्वर्गच्युत करने लगे। इस पर देवताओं और तपस्वियोंने महादेवकी शरण ली। महादेवने विष्णु-के ऊपर सुकेशका वंशध्वंस करनेका भार सौंपा। राक्षसोंको यह संवाद मालूम होने पर वे बड़े उत्तेजित हो समरक्षेत्रमें कूद पड़े। विष्णुके युद्धमें माली मारा गया, माल्यवान् और सुमालीने दलबलके साथ भाग कर लङ्कामें आश्रय लिया पीछे वे सब डरके मारे लंकाका परित्याग कर पत्नीपुत्रके साथ सालकटङ्कटावंशीय सुमालीके यहां रहने लगे।

जब विष्णुके भयसे प्रपीड़ित राक्षसश्रेष्ठ सुमाली पुत्रपौत्रके साथ रसातलमें रहता था उस समय धनेश्वर-को लङ्कामें राज्य करनेका हुकुम मिला। भगवान् राम-चन्द्रने पुलस्त्य-वंशीय जिन सब राक्षसोंको मारा था उनमेंसे माल्यवानादि सबसे बलवान् थे। ये पुलस्त्य-वंशीय किस प्रकार राक्षस हुए थे उसका विवरण नीचे दिया जाता है :—

प्रजापतिके पुत्र ब्रह्मर्षि पुलस्त्य मेरुगिरिके समीप राजर्षि तृणविन्दुके आश्रममें तपस्या करते थे। उसी समय राजर्षिकन्या, ऋषिकन्या, नागकन्या और अप्स-रायें उस रमणीय काननमें आ कर नाच गान करने लगीं। महातेजस्वी पुलस्त्यने तपमें बाधा डालनेवाली रमणियोंको शाप दिया, कि "जो मेरी दृष्टि पर पड़ेगी उसे उसी समय गर्भ रह जायगा।" राजर्षि तृणविन्दुके कन्याको इसकी कुछ भी खबर न थी, सो वह एक दिन वेदपाठ सुननेकी इच्छासे पुलस्त्यके आश्रममें गई। वेद-पाठके बाद मुनिवरकी दृष्टि उस ओर पड़ते ही राज-नन्दिनी गर्भवती हो गई। राजर्षिको ध्यानयोगसे कन्याके गर्भ रहनेका कारण मालूम हुआ। उन्होंने उसे ऋषिको समर्पण किया। राजनन्दिनीकी परिचर्यासे सन्तुष्ट हो पुलस्त्यने उसे वर दिया, "देवि! आज तुम्हें आत्मसम्भव पुत्र प्रदान करूंगा। वह पुत्र पौलस्त्य नामसे विख्यात हो पिता और माताका वंश फैलायेगा।

तुमसे वेदविधुत होनेके कारण उसका एक नाम विश्रवा भी होगा। इस विश्रवाके गुण पर मुग्ध हो भरद्वाज मुनि अपनी देववर्णिनी नामको कन्या उसे ब्याहेंगे। उनसे उत्पन्न पुत्रका नाम वैश्रवण रखा जायगा।"

वैश्रवणने तपस्या द्वारा लोकपितामह ब्रह्माको प्रसन्न कर निधीशत्व प्राप्त किया। ब्रह्माके वरसे वे चतुर्थ लोकपाल हुए तथा व्यवहारके कारण उन्हें पुष्पकविमान मिला। वर पानेके बाद धनेशने पितासे जा कहा कि मेरे रहनेके लिये एक स्वतन्त्र मकान चाहिये। तदनुसार उन्हें राक्षस परित्यक्त लङ्कापुरीमें ही रहनेको कहा गया। धनाधीश पुष्पकविमान पर चढ़ कर लङ्कापुरी गये।

जिस समय वैश्रवण लङ्कामें रहते थे, उस समय एक दिन सुमाली राक्षस रसातलसे अपनी कन्या कैकसीको साथ ले मर्त्यलोक आया। वह धनेश्वरको पुष्पकरथ पर आरूढ़ देख अवाक रहा तथा किस प्रकार राक्षसगण फिर समृद्धसम्पन्न हो सकें उसके लिये कोई उपाय ढूंढने लगा। उसने कैकसीसे कहा, 'पुत्रि! तुम पुलस्त्यनन्दन मुनिवर विश्रवाके निकट जा कर उनकी स्त्री होनेकी कोशिश करो, क्योंकि उससे धनेश्वरके समान तुम्हारे एक तेजस्वी पुत्र उत्पन्न होगा।' पिताकी बात मान कर कैकसी सन्ध्याकालमें विश्रवाके यहां गई। अग्निहोत्र समाप्त करनेके बाद मुनिवरने राक्षसकन्याको अपने सामने उपस्थित देखा और ध्यानयोगसे उसका मनोभिप्राय जान कर उससे कहा, 'भद्रे! तुम दारुण समयमें आई हो इस कारण तुमसे क्रूरकर्मा राक्षसपुत्र उत्पन्न होगा।' अनन्तर वह राक्षसकन्या मुनिवरके चरणों पर लोट गई और उत्तम पुत्रके लिये प्रार्थना करने लगी। मुनिने कहा 'तुम्हारा छोटा लड़का मेरे वंशानुरूप धर्मात्मा होगा।' इसके कुछ समय बाद कैकसीने यथाक्रम दशानन, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा और विभीषणको प्रसव किया।

इस समय एक दिन धनेश्वर वैश्रवणको पुष्पकरथसे पिताके समीप आते देख राक्षसी कैकसीने दशाननको बुला कर कहा "अपने भाई वैश्रवणको देखो। वह किस अभिमानसे रथ पर आ रहा है। तुम उससे कहीं वरिष्ठ हो। इसलिये कोशिश करो जिससे तुम भी उसीके समान ऐश्वर्यशाली हो सको।" यह सुन कर रावणको बहुत दुःख हुआ और उसने घोर तपस्या ठान दी। उसी तपस्याके फलसे उसने लङ्कापुरी प्राप्त की, सीताको हर लाया तथा और भी कितने कुकर्म किये। रामायणके उत्तरकाण्डमें इसका विवरण विस्तृतरूपसे दिया गया है।

रावण, विभीषण, कुम्भकर्ण आदि शब्द देखो।

ये राक्षसगण मायावी, बहुरूपधारी, कामगामी और योद्धा थे। रामायणीय युगमें राक्षस जातिके विशेष प्रभुत्वका परिचय पाया जाता है। महाभारतीय युगमें हम लोग भीमकर्तृक बक, किर्मीर और हिडिम्ब राक्षस का निधन तथा हिडिम्बाका पाणिग्रहण देख पाते हैं। महाबलिष्ठ भीमसेनके औरससे हिडिम्बाके एक वीर पुत्र उत्पन्न हुआ जिसका नाम घटोत्कच था। (वनपर्व)

ऐतरेय ब्राह्मण २।७ खण्ड पढ़नेसे मालूम होता है कि उस समय राक्षसोंको यज्ञभाग (वध्यपशुका रक्त इत्यादि) देनेकी विधि थी। इनका वाक्य कर्कश और उच्चध्वनियुक्त होनेके कारण भीतिजनक था। उक्त खण्ड का 'रक्षांसि न कीर्तयेत्' पद देख कर भाष्यकारने लिखा है—"जातिविशेषानपेक्ष्य बहुवचननिर्देशः। राक्षसानामवान्तरजातीयानां मध्ये राक्षसम्, असुरं पिशाचं वा न किञ्चिदपि कीर्तयेत्। जातिविशेषाः श्रुत्यन्तरे दैव्यब्राह्मणे श्रूयन्ते— देवा मनुष्याः पितरस्तेऽन्यत आसन्नसुरा रक्षांसि पिशाचास्तेऽन्यतः।"

वह्निपुराणमें इस राक्षस जातिको रजोमात्रात्मक, विरूप और क्षुधार्त्त कहा है—

"रजोमात्रात्मिकां ब्रह्मा ससर्जान्यां तनुं ततः ।
ततः क्षुद्व्याप्तया जाता यत्र कोपाभयास्ततः ॥
क्षुत्क्षामानन्धकारेऽथ सोऽसृजद्भगवांस्ततः ।
विरूपाः श्मश्रुला जातास्तेऽभ्यधावन्त तं प्रभुम् ॥
नैवं भो रक्ष्यतामेष तेषूक्ता राक्षसास्तु ते ॥" (वह्निपु०)

मत्स्यपुराणके आदिसर्गके कश्यपान्वय नामक ६३ अध्यायमें इनकी उत्पत्तिका विवरण और प्रकारसे दिया गया है।

"रक्षोगणं क्रोधवशान् स्वनामानममीतमम् ॥
दंष्ट्रिणां नियुतं तेषां भीमसेनाद्गतं नयम् ॥"

पद्मपुराण-सृष्टिखण्डके १५वें अध्यायमें सूर्यलोकसे नीचेकी ओर इनके विचरणका स्थान बताया है,—

"अत ऊर्द्ध्वं हि विप्रेन्द्र राक्षसा ये कृतैनसः।
तेतु सुर्यादधः सर्वे विहरन्त्युदर्द्ध्ववर्जिताः॥"

वामनपुराणके ३६वें अध्यायमें क्षुद्रकीटादि उत्पन्न, उच्छिष्टाश्रित, केशावपन्न, अभूत, मारुतश्वासवत् इत्यादि घृणित अन्न राक्षसका खाद्य पदार्थ है। इसलिये विद्वानोंको ये सब पदार्थ नहीं खाने चाहिये। केवल यज्ञाङ्गभूत मांसभक्षण विधिसिद्ध है, दूसरे दूसरे मांसको राक्षसीय भोजन कहते हैं। मनुके मतसे राक्षसीय भोजन नहीं करना चाहिये। (मनु ५।३१) मन्वादिमें रात्रिकालके श्राद्धादिको राक्षसी श्राद्ध कहा है। (मनु ३।२८०)

२ आठ प्रकारके विवाहके अन्तर्गत विवाहविशेष। युद्धमें कन्याको हरण कर जो विवाह किया जाता है उसे राक्षस-विवाह कहते हैं।

"आसुरो द्रविणादानाद्गान्धर्व्वः समयान्मिथः।
राक्षसो युद्धहरणात् पैशाचः कन्यकाच्छलात्॥"

(उद्वाहतत्त्व)

मनुमें इसका लक्षण यों लिखा है,—

"हत्वा छित्वा च भित्वा च क्रोशन्तीं रुदतीं गृहात्।
प्रसह्य कन्याहरणं राक्षसो विधिरुच्यते॥"

(मनु ३।३३)

कन्यापक्षीय लोगोंका हनन, छेदन और उनका घर भेद कर 'हा मुझे मारा' इस प्रकार रोती हुई कन्याको बलपूर्वक हरण कर जो विवाह किया जाता है, उसे राक्षसो विवाह कहते हैं। यह विवाह क्षत्रियके लिये उत्तम है। गान्धर्व और राक्षस-विवाह पृथग्भावमें अथवा मिश्रणभावमें जिस किसी तरहसे क्यों न हो क्षत्रियके लिये दोनों ही धर्मजनक हैं।

यह विवाह क्षत्रियके लिये धर्मजनक होने पर भी इससे जो सन्तान उत्पन्न होते वे क्रूरकर्मा, मिथ्यावादी और वेदविद्वेषी होते हैं। इसी कारण इस विवाहको निन्दनीय बताया है।

"इतरेषु च शिष्टेषु नृशंसानृतवादिनः।
जायन्ते दुर्विवाहेषु ब्रह्मधर्मद्विषः सुताः॥
अनिन्दितैः स्त्रीविवाहैरनिन्द्या भवति प्रजा।
निन्दितैर्निन्दिता नृणां तस्मान्निन्द्यान् विवर्जयेत्॥"

(मनु ३।४१:४२) विवाह शब्द देखो।

(पु० क्ली०) ३ साठ संवत्सरोंमेंसे उनचासवां संवत्। ४ कुवेरके धनकोशके रक्षक। ५ कोई दुष्ट प्राणी। ६ वैद्यकमें एक रस जो पारे और गन्धकके योगसे बनता है। यह रस पेटकी बादी दूर करता और भूख बढ़ाता है। ७ जैनमतानुसार आठ प्रकारके व्यन्तरोंमेंसे एक। ८ एक कवि। लोग इन्हें राक्षस पण्डित कहा करते थे। ९ तीस मुहूर्त्त।

राक्षसग्रह (सं० पु०) उन्माद रोगभेद।

राक्षसता (स० स्त्री०) राक्षसस्य भाव तल् टाप्। राक्षसत्व, राक्षसका भाव या धर्म।

राक्षसी (सं० स्त्री०) राक्षस ङीप्। १ कौणपी। २ दंष्ट्रा। ३ चण्डा, चोर मामक गन्धद्रव्य। ४ सायाह्न वेला, सन्ध्याकाल। इस राक्षसी समयमें सभी काम निन्दनीय हैं।

"प्रातःकालो मुहूर्त्तां स्त्रीन् सङ्गमस्तावदेव तु।
मध्याह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्यादपराह्णस्ततः परम्॥
सायाह्नस्त्रिमुहूर्त्तः स्यात् श्राद्धं तत्र न कारयेत्।
राक्षसी नाम सा वेला गर्हिता सर्वकर्मसु॥" (तिथितत्त्व)

राक्षसेन्द्र (सं० पु०) राक्षसानामिन्द्रः। १ रावण। २ राक्षसपति मात्र।

राक्षा (सं० स्त्री०) लाक्षा रलयो रेकयात् रत्वं। लाक्षा, लाख।

राक्षोघ्न (सं० त्रि०) १ रक्षोघ्न सम्बन्धीय। अगस्त्य और अग्निने राक्षसकी हत्या की थी इसलिये उनके सम्पर्कीय मन्त्रादि 'अगस्त्यस्य राक्षोघ्नम्' 'अग्ने राक्षोघ्नम्' नामसे प्रसिद्ध है। २ दो साम।

राक्षोऽसुर (स० पु०) राक्षस और असुर।

राख (हिं० स्त्री०) किसी बिलकुल जले हुए पदार्थका अवशेष, भस्म, खाक।

राखना (हिं० क्रि०) १ रक्षा करना, बचाना। २ पेड़ या फसलको जानवरों या चिड़ियोंके खाने या लोगोंके लेनेसे बचाना, रखवाली करना। ३ आरोप करना,

बताना। ४ छिपाना, कपट करना। ५ रोक रखना, जाने न देना। ६ रखना देखो।

राखी (हिं० स्त्री०) १ वह मंगल सूत्र जो कुछ विशिष्ट अवसरों पर विशेषतः श्रावणी पूर्णिमाके दिन ब्राह्मण या और लोग अपने यजमानों अथवा आत्मीयोंके दाहिने हाथकी कलाई पर बांधते हैं, रक्षाबंधनका डोरा। २ रक्षा देखो।

राखीपूर्णिमा—प्रसिद्ध श्रावणी पूर्णिमा। इस दिन उत्तर पश्चिमाञ्चलके मनुष्य आपसमें सौहार्द वृद्धिके लिये राखी बांधते हैं। रक्षा देखो।

राग (सं० पु०) रञ्जनमिति रज्यतेऽनेनेति वा रञ्ज-भावे करणे वा घञ्। (घञि च भावकरणयोः। पा ६।४।२७) इति न लोपः। १ मात्सर्य। २ लोहितादि। ३ अलक्तादि। ४ अनुराग। ५ मोह। ६ गान्धारादि। ७ नृत्य। (मेदिनी) ८ चन्द्र। ९ सूर्य। (शब्दरत्ना०) १० क्लेशादि। ११ रक्तिमत्त्व। १२ रञ्जन। १३ प्रीति, प्रेम।

१४ अभिमत विषयाभिलाष। यह पातञ्जलोक्त पांच प्रकारके क्लेशोंके अन्तर्गत एक क्लेश है। इसका लक्षण है—"सुखानुशयी रागः" (पात० सू०) 'सुखमनुशेते इति सुखानुशयी सुखज्ञस्य सुखानुस्मृतिपूर्वकसुखसाधनेषु तृष्णारूपो गर्द्धः रागसंज्ञकः क्लेशः'। (भाष्य)

सुखानुशय तृष्णाको कहते हैं। सुखभोगी व्यक्तिके सुखका अनुसरण होने पर सुखसाधन कार्यमें चित्तकी आसक्ति होती है। यह आसक्ति ही 'राग' के नामसे कही जाती है। अविद्याके आक्रमणसे आक्रान्त हो कर मनुष्य कृत्रिम सुखलालसाके क्लेशमें पड़ते हैं। सुख और दुःख इन दोनों प्रकारके साधन-विषयमें अभिलाष होना राग है।

१५ सङ्गीतशास्त्रका राग। १६ अलक्तक। १७ सिन्दूर।

राग (संगीतशास्त्र)—शुद्ध और विकृतके भेदसे षड्ज आदि उन्नीस स्वर और बत्तीस अलंकृत जो ध्वनिविशेष मानवोंके चित्त रञ्जित करती है, उसे राग कहते हैं।

भरतादि मुनियोंका कहना है कि त्रिजगत्‌वासी जनोंका चित्त जिसके द्वारा रञ्जित होता है उसीको राग कहा जा सकता है। अथवा जिसे सुनते ही जनसाधारणके चित्तमें अनुरागका सञ्चार होता है, वही राग है। क्योंकि सब लोगोंका रञ्जन करता है, इसीसे उसका नाम राग पड़ा है।*

"गोपीभिर्गीतिमारब्धमेकैकं कृष्णसन्निधौ।
तेन जातानि रागाणां सहस्राणि तु षोड़श ॥
रागेषु तेषु षट्त्रिंशत् रागा जगति विश्रुताः।
कालक्रमेण तत्रापि ह्रास एव च दृश्यते ॥
मेरोरुत्तरतः पूर्वे पश्चिमे दक्षिणे तथा।
समुद्रकाञ्च ये देशास्तत्रामीषां प्रचारता ॥"

(सङ्गीतदामोदर)

श्रीकृष्णके समक्ष गोपियोंने एक एक करके गीत गाना आरम्भ किया तो षोड़श सहस्र रागोंकी उत्पत्ति हो गई। इन सब रागोंमें इस जगत्‌में छत्तीस राग प्रसिद्ध हैं बादमें कालक्रमसे फिर उसमें भी संख्या घट गई है। सुमेरुके उत्तर, पूर्व, पश्चिम और दक्षिण तथा समुद्रके उपकण्ठमें जितने भी देश हैं, वहां ये सब राग विद्यमान हैं।

वर्ण।

स्वर-समूहको यथाविधि गानेका नाम वर्ण है। वर्ण चार हैं—स्थायी, आरोही अवरोही और सञ्चारी।

स्थायी—षड्जादि स्वरोंमें जो कोई स्वर रह रह कर अर्थात् देर देरसे रागादिमें उपस्थित होता है, उसे अथवा जिस स्वरमें राग कुछ देर तक ठहरता है, उसे स्थायी कहते हैं।

आरोही—स्वरोंकी क्रमोर्द्ध्व गतिको अर्थात् षड्ज, ऋषभ, गान्धार, मध्यम, पञ्चम, धैवत और निषाद इस प्रकारसे स्वरोंके क्रमोच्चारणको आरोही कहा जाता है।

अवरोही—स्वरोंके क्रमशः अधोगतिको अर्थात्

---

* "योऽयं ध्वनिविशेषस्तु स्वरवर्णविभूषितः।
रञ्जको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः ॥
देवत्रु भवांसि रज्यन्ते त्रिजगत्यनिवासिनाम्।
ते रागा इति कथ्यन्ते मुनिभिर्भरतादिभिः ॥
अथवा। यस्य श्रवणमात्रेण रज्यन्ते सकलाः प्रजाः।
सर्वानुरञ्जनाद्धेतोस्तेन राग इति स्मृतिः ॥"

(सङ्गीतदर्पण ८५)

निषाद, धैवत, पञ्चम, मध्यम, गान्धार, ऋषभ और षड्ज इस नियमसे क्रमशः ऊँचेसे नीचे लानेको अवरोही कहते हैं।

सञ्चारी—स्थायी, आरोही और अवरोही इन तीनों-के संमिश्रणसे स्वर-सञ्चार करनेको सञ्चारी कहते हैं।

रागादिमें प्रयुक्त स्वरोंके प्रकारभेदसे स्थायी आदिकी तरह ग्रह, न्यास और अंश ये तीन नामान्तर निर्दिष्ट किये गये हैं।

ग्रह—जो स्वर गीतादिके प्रारम्भमें ही स्थापित होता है, उसे ग्रहस्वर कहते हैं।

न्यास—जिस स्वरमें गीतादिकी समाप्ति होती है, उसे न्यास कहते हैं।

अंश—जो स्वर रागादिमें बहुतायतसे प्रयुक्त होता है अर्थात् जिस स्वरके विना रागकी मूर्त्ति स्पष्टरूपसे प्रकट नहीं होती, उसका नाम अंश है। इसे 'जाम' भी कहते हैं। (सगीतदर्पण १६०-१६३)

अंग।

रागोंके चार अङ्ग हैं—रागाङ्ग, भाषाङ्ग, क्रियाङ्ग और उपाङ्ग।

रागाङ्ग—रागका छायामात्रके अनुकरण करनेको रागाङ्ग कहते हैं।

भाषाङ्ग—भाषाकी छायामात्रका आश्रय लेना ही भाषाङ्ग है।

क्रियाङ्ग—रागादि गानेमें उत्साहको क्रियाङ्ग कहा जा सकता है।

उपाङ्ग—रागाङ्ग, भाषाङ्ग और क्रियाङ्ग इन तीनोंका अति सामान्यमात्र अनुकरण करना उपाङ्ग कहलाता है।

(संगीतदर्पण, रागाध्याय २६३)

रागके भेद।

रागादि गाते समय काण्डारलाकी विशेष आवश्यकता है। अति उच्च स्वरोच्चारण से शीघ्रता और कौशल पूर्वक विविध गमक अर्थात् स्वरकम्पन द्वारा रागादिका विभूषित करनेका नाम काण्डारला है।

मतङ्गके मतसे राग—शुद्ध, छायालग और सङ्कीर्ण इस तरह तीन प्रकारके होते हैं।

शुद्ध—रागोंका शास्त्रोक्त नियमानुसार विशुद्धभावमें अर्थात् अन्य किसी रागके आश्रयके विना एक एक-को पृथक् पृथक् गाना चाहिए। इस प्रकार गाये हुए राग शुद्ध राग कहलाते हैं।

छायालग—निरागोंमें अन्य किसी रागकी छाया पाई जाय, वे छायालग कहलाती हैं।

सङ्कीर्ण—जिन रागोंमें बहुतसे रागोंका समिश्रण रहता है, उन्हें सङ्कीर्ण कहते हैं।

ये तीन प्रकारके राग औडव, षाड़व और सम्पूर्ण इन तीन भागोंमें विभक्त हैं।

औडव—जिन रागोंमें षड्जादि सप्तस्वरोंमेंसे केवल पांच स्वर व्यवहृत होते हैं, उनका नाम औड़व है।

षाडव—छहों स्वरोंमें गाये जानेवाले राग षाड़व कहलाते हैं।

सम्पूर्ण—जो राग षडजादि सातों स्वरोंमें प्रयुक्त होते हैं, उनकी गिनती सम्पूर्ण रागोंमें है।

रागोत्पत्ति।

सभी सङ्गीतशास्त्रोंके मतसे महादेव और पार्वती इन दोनों देवदेवीके संयोगसे रागकी उत्पत्ति हुई है। महादेवके पाँच मुखोंसे पाँच और भगवतीके मुखसे एक, इस तरह छह राग ही पहले उत्पन्न हुए थे। देवदेव महादेवके सद्योजात मुखसे श्री, वामदेव मुखसे वसन्त, अघोर मुखस भैरव, तत्पुरुष मुखसे पञ्चम और ईशान-मुखसे मेघ तथा गिरिजाके मुखसे नट्टनारायण इस प्रकार छह रागोंकी उत्पत्ति हुई।

किसी समय जगदम्बाने महादेवसे कहा,—"हे देव! यदि मुझ पर आप प्रसन्न हुए हैं, तो अनुग्रहपूर्वक बतलाइये कि कौनसे तो राग हैं और कौन सी रागिणी? और उन रागरागिणियोंमेंसे कौन कौन सी किन किन ऋतुओं और किन किन दिनोंमें गाना विधेय है तथा स्वरविन्यास और मूर्त्ति किस प्रकार है?" महादेवने भगवतीके प्रश्नके उत्तरमें कहा था—"श्री, वसन्त, भैरव, पञ्चम, मेघ और नट्टनारायण ये छह राग हैं और ये पुरुष कहलाते हैं। इन छहोंकी प्रत्येककी छह छह स्त्रिया कल्पित हुई हैं और वे रागिणी कहलाती हैं। मालश्री, त्रिवणी, गौरी, केदारी, मधुमाधुरी और पहाड़िका ये छह श्रीकी स्त्रिया हैं। इसी तरह देशी, देवकिरी, वराटी,

तोड़िका, ललिता और हिन्दोली ये छः वसन्तकी; भैरवी गुर्जरी, रामकिरी, गुणकिरी, बङ्गाली और सैन्धवी ये छः भैरवकी; विभाषा, भूपाली कर्णाटी, बड़हंसिका मालश्री और पटमञ्जरी ये छः पञ्चमकी; मल्लारी सोरठी, सावेरी, कौशिकी, गान्धारी और हरशृङ्गारा ये छः मेघकी तथा कामोदी, कल्याणी, आभीरी, सारङ्गी और नट्टहम्मीरा ये छः नट्टनारायण रागकी स्त्रियां हैं।

(सङ्गीतदर्पण)

श्रीराग।

श्रीराग ग्रहांशन्यास षड्जसे विभूषित है, सम्पूर्ण जातीय, नाना गुणयुक्त और प्रथमा (उत्तरमन्द्रा) मूर्च्छनाविशिष्ट होता है। कोई कोई ग्रहांशन्यास षड्जके बदले ऋषभका नाम उल्लेख कर गये हैं।

स रि ग म प ध नि स रि ग म प ध नि स रि।

मूर्त्ति—दिव्य मूर्त्तिधारी विलासवेशी श्रीराग स्त्रियों के साथ प्रमोद काननमें विहारके लिए प्रसन्नमन भ्रमण कर रहा है।

मालश्री—श्रीरागकी पत्नी मालश्री श्रीरागकी तरह षड्ज ग्रहांशन्यासा रागाङ्गसे परिपूर्ण उत्तरमन्द्रा, मूर्च्छनायुक्त और शृङ्गाररससमन्विता अर्थात् शृङ्गार रसमें गाने योग्य कही गई है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—गौराङ्गी, मालश्री, आम्रवृक्षके नीचे बैठ कर एक रक्तकमल हाथमें लिये उसे घुमाती हुई मन्द मन्द हंस रही है।

त्रिवणी—त्रिवणी ऋषभ और पञ्चमहीन औड़व जातीया है, इसका ग्रहांशन्यास स्वर धैवत है।

ध नि स ग म ध।

मूर्त्ति—अति पीतवर्णा, कृशाङ्गी और हारसे सुशोभित त्रिवणी अपने कान्तके साथ रसालतरुके नीचे बैठी हुई हैं।

गौरी—ऋषभ और पञ्चम हीन औड़वजातीय गौरी का ग्रहांश और न्यास षड्ज है; इसमें उत्तर मन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

स ग म ध नि स।

मूर्त्ति—पूर्णेन्दुवदना और अति सौभाग्यवती गौरी गजमुक्ताके हार और प्रफुल्ल कुसुममालासे सुशोभित और मयूरपुच्छसे बने हुए अलंकारोंसे अलंकृत तथा नाना प्रकारके अनुलेपन द्रव्य द्वारा विलिप्त हो कर अति मनोहर वस्त्र धारण किये हुए है।

केदारी—केदारीको शास्त्रोंमें ऋषभ और धैवत रहित औड़वजातीय निषाद ग्रहांशन्यासयुक्त काकली स्वर विभूषित और मार्गीमूर्च्छनाविशिष्ट कहा गया है।

स ग म प नि स।

मूर्त्ति—केदारीके मस्तक पर जटाभार, माथेके बीच चन्द्रखण्ड और गलेमें सर्पकी उत्तरीय शोभा पा रही है। ये योगीपीठ पर बैठ कर सर्वदा देवदेव महादेवके ध्यान में मग्न रहती हैं।

मधुमाधवी—मधुमाधवीका ग्रह, अंश और न्यास षड्ज है; इसमें उत्तर मन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग हुआ करता है; मधुमाधवी, गान्धार और धैवत हीन औड़व जातीया है।

स रि म प नि स।

मूर्त्ति—मधुमाधवीके नेत्रयुगल प्रफुल्ल नीलोत्पलके समान हैं, अंग कृश और नीलवस्त्र पहने हुए हैं। ये अत्यन्त पतिव्रता हैं, सर्वदा तमालवृक्षके नीचे वेदी पर मन्त्रध्यान करती हैं।

पहाड़ी—यह ऋषभ और पञ्चमहीन औड़वजातीय है। पहाड़ीका ग्रहांश न्यास स्वर षड्ज है, यह रागिणी सुननेमें कुछ कुछ वैकुण्ठदेशीय रागके सदृश है।

रि ग म ध नि स रि।

मूर्त्ति—अति गौराङ्गी। देखनेमें अति मनोहर शुकपक्षीकी पूंछसे बने हुए वस्त्र पहने हुए हैं। सर्वदा रसपूर्ण चित्ता रहती हैं तथा देशी सुरतोत्सुका हो कर निद्रित कान्तको नाना कलोंसे प्रबोधित कर रही हैं।

देवगिरी—देवगिरीमें वर्द्धमान सारङ्गीके समान स्वरविन्यासादि विद्यमान हैं।

स रि म प नि स।

मूर्त्ति—मदमत्त देवगिरी कादम्बिनीके समान श्यामाङ्गी, नितम्ब उत्तम गोलाकार, स्तन पीनोन्नत, नयनयुगल मत्त चकोर तुल्य अत्यन्त मनोहर और ओष्ठद्वय पके बिम्ब

फलके समान लोहित, गलदेश अत्यन्त सुन्दर हार-लतासे सुशोभित है, देखनेमें अत्यन्त मनोज्ञ मालूम होती हैं।

वराटी—वराटी सम्पुर्णजातीया है, इसका ग्रह, अंश और न्यास स्वर षडज है, इसमें उत्तर मन्द्र मूर्च्छना-का प्रयोग देखनेमें आता है। यह रागिणी गायककी कीर्त्ति बढाती है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—वराटी सुकेशी, अति वराङ्गना, हाथमें कङ्कण और कानोंमें पारिजातकुसुम लिए चामर ढाल कर पतिको प्रमोदित कर रही है।

तोडी वा तोडिका—यह सम्पूर्णजातीया, इसका ग्रह, अंश और न्यास स्वर मध्यम है। इसमें सौवीरी मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। कोई कोई षड्ज स्वरको तोडीका ग्रह, अंश और न्यास कहते हैं।

म प ध नि स रि ग म अथवा स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—तुषार वा कुन्दकुसुमके समान उज्ज्वल श्वेतवर्णा हैं, काश्मीर देशके कर्पूररसे विलिप्त हो कर वनमें वीणा बजाती हुई हरिणोंको विनोदित कर रही है।

ललिता—ऋषभ पञ्चमहीना औडवजातीय है। इस ग्रह, अंश और न्यास षडज स्वर है इसमें शुद्ध मध्य मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। कोई कोई इसे सम्पूर्ण-जातीया भी कहते हैं।

स ग म ध नि स अथवा स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—स्तन भारसे नताङ्गी ललिता प्रफुल्ल सुवर्ण-वर्ण पङ्कज और सप्तपर्ण पुष्पकी मालासे सुशोभित हो कर आलस्यसे आँखें मींच कर प्रातःकाल घरसे निकल रही है।

हिन्दोली—ऋषभ और धैवत हीन औडवजातीय हिन्दोलीका ग्रह, अंश और न्यास स्वरकाकली षड्ज है, इसमें शुद्ध मध्या मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

स ग म प नि स।

मूर्त्ति—हिन्दोली अत्यन्त कृशाङ्गी, देखनेमें अति रमणीया, विशुद्ध भावोंसे परिपूर्णा और मत्तस्वभावा हैं। इनका वर्ण कपोतके समान और कण्ठ स्वर अति मधुर है। ये स्वामीके मुखके ओर दृष्टि किये हुए बैठी हैं।

भैरव—यह ऋषभ पञ्चमहीन औडवजातीय है और इसका ग्रह, अंश और न्यास स्वर धैवत है। इस राग-में विकृत धैवतादि मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

ध नि स ग म ध ।

मूर्त्ति—जिनके मस्तक पर गङ्गादेवी सर्वदा कुलु कुलध्वनि कर रही हैं, ललाट पर चन्द्रखण्ड तिलकके समान शोभा पा रहा है, तीन आँखें हैं, सर्पके भूषणसे विभूषित हैं, शुक्लवर्ण गजचर्म पहने हुए हैं तथा एक हाथमें जाज्वल्यमान त्रिशूल और दूसरे हाथमें नरमुण्ड है, वे ही रागराज भैरव हैं।

भैरवी—वे सम्पूर्णजातीया हैं और इनका ग्रह, अंश और न्यास स्वर मध्यम है। भैरवीमें सौवीर, मूर्च्छना और मध्यम ग्रामका स्वर ही व्यवहृत होता है। किन्हीं किन्हीं पण्डितोंके मतसे भैरव रागके स्वर ही भैरवीके अंग हैं।

स रि ग म प ध नि स। अथवा ध नि स ग म ध।

मूर्त्ति—पीतवर्णा विशाललोचना भैरवपत्नी भैरवी अत्यन्त रमणीया हैं और कैलासपर्वत पर स्फटिक-मणिके पीठ पर बैठी हुई बीच बीचमें घटा बजाती हुई प्रफुल्ल कुसुमों द्वारा महादेवकी पूजा कर रही हैं।

बङ्गाली—ऋषभ धैवतहीन औडवजातीय बंगालीका ग्रह, अंश और न्यास षड्ज है। किन्तु कल्लिनाथके मतसे ये मध्यमयुक्त और सम्पूर्णजातीया हैं। इस रागमें उत्तर मन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

स ग म प नि स। अथवा म प ध नि स रि ग म।

मूर्त्ति—ये काञ्चीदाम-विभूषिता पुष्पपात्रहस्ता और दीर्घनयना हैं, इनके बायें हाथमें उज्ज्वल त्रिशूल है। ये तरुणा वरुणवर्णा, जटामण्डित तथा सर्वाङ्गमें भस्म लेपन करके भी अपने रूपसे दशों दिशाओंको उज्ज्वल कर रही है।

सैन्धवी—सैन्धवी सम्पूर्णजातीय हैं। किन्हीके मतसे ऋषभहीन षाड़वा हैं और इसमें उत्तर मन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। सैन्धवीका ग्रह अंश और न्यास स्वर षड्ज है, यह रागिणी अकसर वीररसमें प्रयुक्त होती है।

स रि ग म प ध नि स। अथवा स ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—शिरमलिकावती सौन्दर्यमयी रक्तवस्त्र पहने हुए, एक हाथमें त्रिशूल और दूसरे हाथमें एक बन्धुजीव पुष्प लिए शोभित हैं। यह रागिणी अत्यन्त कोपनस्वभावा है और अधिकतर वीर रसमें प्रयुक्त होती है।

रामकिरी—उत्तरमन्द्रा मूर्च्छनासे शोभित सम्पूर्ण-जातिया रामकिरीका ग्रह, अंश और न्यास स्वर षड्ज है। यह करुणरसाश्रयिका है। किसीके मतसे यह रागिणी ऋषभपञ्चमहीन औडुवजातीय है। किसीके मतसे पञ्चमहीना षाड़व जातीया है। इस प्रकार रामकिरी रागिणी औडुव, षाड़व और सम्पूर्ण तीनों ही प्रकारकी होती है।

स रि ग म प ध नि स अथवा स ग म प नि स।

मूर्त्ति—यह स्वर्णकी प्रभायुक्ता भूषणोंसे विभूषिता नीलाम्बरधारिणी, मधुरभाषिणी और मानमोय है। समीपवर्त्ती पतिकी ओर दृष्टि किए हुए है।

गुर्जरी—गुर्जरी सम्पूर्णजातिया है और इसका ग्रह, अंश और न्यास स्वर ऋषभ है। इसकी मूर्च्छना पौरवी है और इसमें कुछ कुछ देशाखाका आभास पाया जाता है।

रि ग म प ध नि स रि।

मूर्त्ति—श्यामवर्णा, मन्मथमानयुक्ता, प्रेमाभिलाषिणी गुर्जरी विविध विचित्र पुष्पाङ्कित मृदु पल्लवों पर बैठी हुई है।

गुणकिरी—रजनी मूर्च्छनायुक्त ऋषभधैवतहीन औड़वजातीय भैरवपत्नी गुणकिरीका ग्रह, अंश और न्यास स्वर निषाद है। कोई कोई इसे षड्ज ग्रहांशक न्यास भी कहा करते हैं।

नि स ग म प नि अथवा स ग म प नि स।

मूर्त्ति—गुणकिरी पतिके विरहसे अत्यन्त शोकाभिभूता हो कर अनवरत रोनेके कारण आंखें लाल हो गई हैं, भूमि पर लोटनेसे शरीर पर धूल छा गई है और कपोलरक्षणका खोल कर करुणापूर्ण नत दृष्टिसे देख रही हैं।

पञ्चम राग।

पञ्चमराग—पञ्चमराग, षाड़वजातीय और शृङ्गार रसपूर्ण है। इसका ग्रह, अंश और न्यास स्वर षड्ज है। इस रागमें उत्तरमन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। किसी किसीने इसे सम्पूर्ण जातीय माना है।

स रि ग म ध नि स अथवा स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—ये अति मनस्वी कोकिलके समान मधुरभाषी स्त्री विलासी, शृङ्गारप्रिय और विशाल अरुण नेत्रयुक्त हैं तथा सर्वदा रक्तवस्त्र पहने रहना पसन्द करते हैं।

विभाषा—विभाषाके ग्रह, अंश, न्यास और मूर्च्छना आदि ललिताके समान होते हैं।

स प म ध नि स।

मूर्त्ति—ये विलासवेशसे विभूषित, रसभाव युक्त स्त्री-पुरुषमें अनुरक्त हैं, और समस्त रात्रि सुरतसुखसे बिता कर निद्राके आलस्यसे कातर हो कर प्रातःकाल शय्या त्याग रही हैं।

भूपाली—सम्पूर्ण जातीया भूपालीका ग्रह, अंश और न्यास स्वर षड्ज है और उत्तरमन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। कोई कोई कहते हैं, कि यह पञ्चमहीना औड़वजातीयमें गिनी गई है। इस रागिणीका अधिकतर शान्तिरसमें भी प्रयोग होता है।

स रि ग म प ध नि स अथवा स ग म ध नि स।

मूर्त्ति—गौराङ्गी, पीनोन्नतपयोधरा, चन्द्रमुखी, कुङ्कुम लेपे हुए मनोहारिणी शान्तिरसयुक्ता भूपाली पतिके विरहसे कातर होकर उनकी चिन्तामें मग्न हैं।

कर्णाटी—कर्णाटीका ग्रह अंश और न्यासस्वर विकृत निषाद है, इसमें मार्गी मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। कर्णाटी श्रोताको अत्यन्त सुख पहुंचाती है।

नि स रि ग म प ध नि।

मूर्त्ति—ये मयूरके कण्ठके समान अति चिक्कणाङ्गी, मस्तक पर रत्नमुकुट धारण किये हुए, अति परिष्कृत शुभ्र वस्त्र पहने हस्तिदन्त निर्मित कर्णभूषणसे भूषित हो कर मधुरस्वरसे सुरगणोंका मन हरण कर रही हैं।

बड्हंसिका—इसके स्वरग्राम आदि कर्णाटके सदृश हैं।

नि स रि ग म प ध नि।

मूर्ति—मृदु मन्द हास्यमुखी, मनोहर चञ्चलदृष्टि, पतिके सङ्गोत्सवमें हृष्टचित्ता, विलासमें रोमाञ्चिताङ्गी वड़हंसिका सर्वत्र प्रसिद्ध हैं।

मालवी—ऋषभ पञ्चमहीना औडवजातीया मालवीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर निषाद है। मालवीमें रजनी, मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

नि स ग म ध नि

मूर्त्ति—निर्मल-गौराङ्गी, अति कामातुरा मालवीने विरह वेदनासे कातर और पाण्डुवर्ण हो कर पतिके ध्यानमें चित्त समर्पण करके निद्रा त्याग दी है।

पटमञ्जरी—पञ्चमांशग्रह-न्यास-युक्ता पटमञ्जरी सम्पूर्ण जातीया हैं और रसिकोंकी अत्यन्त प्रिय है। इसमें हृष्यका मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

प ध नि स रि ग म।

मूर्त्ति—पटमञ्जरी विरह-यन्त्रणासे म्लानमुख और नयनजलसे सर्वाङ्गप्लावित करके अति दीन भावसे बहुत देरसे पतिकी चिन्तामें निमग्न रह कर बारबार दीर्घ निश्वास ले रही है।

मेघराग।

शृङ्गाररसोद्दीपक सम्पूर्ण जातीय मेघरागका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। इसमें उत्तरायता मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—विहारशील, प्रगाढ़-नीलदेह, गम्भीरनिनादी, पिङ्गलनेत्र और कामातुर मेघराग कामनियोंका अत्यन्त प्रिय है।

मन्दारी—ये षड्ज पञ्चम-हीना औडवजातीया हैं। इसका ग्रह, अंश और न्यास स्वर धैवत है। इसमें पौरवी मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। यह रागिणी वर्षा ऋतुमें अत्यन्त सुखप्रदा होती है।

ध नि रि ग म ध।

मूर्त्ति—गौराङ्गी, अतिकृशा, कोकिलके समान मनोहर कण्ठस्वरयुक्ता, यौवनकृत मदनके सन्तापसे सन्तप्तचित्ता, अति मलिन-वेशिनी मन्दारी गीतके छलसे अपने पतिका स्मरण करके वीणा बजाती हुई रो रही है।

सौरटी—ऋषभहीना षाड़वजातीया सोरटीका ग्रह अंश और न्यासस्वर पञ्चम है। किसी किसीने पञ्चमके स्थानमें षड्जको ही ग्रहांश न्यास-स्वर माना है।

प ध नि स ग म प अथवा स ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—कन्दर्पके समान सुचारु गौरवर्णा, सोरटी पीनोन्नतपयोधरोंसे शोभिता, हारवल्लीसे विभूषिता और कर्णोत्पलसे लगे हुए भ्रमरकी ध्वनिसे विलग्नचित्ता हो कर स्वामीके पास जा रही हैं और उसके आवेशमें बाहुलताएं अत्यन्त शिथिल हो गई हैं।

सावेरी—पञ्चमहीना, षाड़वजातीया, धैवतबहुला और करुणारसप्रधाना सावेरीका ग्रह, नक्षत्र और न्यासस्वर षड्ज है। इसमें मन्द्रमध्यमका प्रयोग होता है।

स रि ग म ध नि स।

मूर्त्ति—विचित्रवसना, अतिकोमलाङ्गी, गौरवर्णा, नाना अलङ्कारोंसे विभूषिता, मेघाङ्गना सावेरी गलेमें गजमुक्ताका हार पहने और हाथमें एक मयूरपुच्छ धारण किये हुए अत्यन्त प्रसन्नतासे हास्य कर रही हैं।

कौशिकी-बंगालीसे ही कौशिकीका जन्म है; षड्ज इसका ग्रह, अंश और न्यासस्वर है। इसमें गमकके साथ मन्द्रगान्धारका प्रयोग होता है। इस रागिणीका हास्य और करुणरसमें ही अधिक प्रयोग होता है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—श्यामाङ्गी, सुवेशधारिणी, कोमलाङ्गी, रक्तनयना, स्वेदबिन्दुसे शोभित मुखचन्द्रमायुक्त, स्वामीके विच्छेदसे भीता कौशिकी सर्वदा पतिके साथ घूमती रहती है।

गान्धारी—पौरवीमूर्च्छनायुक्ता गान्धारीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर षडज है। यह रागिणी रात्रिदिवसमें यामार्द्धके समय गाई जाती है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—जटा-विभूषिता, पवित्रभावसे मुद्रितलोचना नीलाम्बरधारिणी, मेघपत्नी गांधारी गलेमें योगपट्ट धारण किये हुए शान्त और सन्नतभावसे आसन पर बैठी हुई हैं।

हरशृङ्गारा—सम्पूर्णजातीया हरशृङ्गाराका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। इसमें उत्तरमन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—गौराङ्गी, कामोद्दीपिका, अति प्रियवादिनी, मेघस्वरा हस्तमुद्राद्वारा नाना जातीय गीत और नृत्यादि चौंसठ कलाओंमें निपुण है।

नट्टनारायण वा नट।

सम्पूर्णजातीय नट्टनारायणका ग्रह, अंश और न्यास स्वर षड्ज है। इसमें बहुविध गमकान्वित प्रथमा अर्थात् उत्तरमन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—स्वर्णके समान गौरवर्ण, योद्धृवेशधारी, अति प्रतापी, नरराग शत्रुके शोणितसे रक्तवर्ण धारण किये हुए अश्व पर चढ़ कर रणभूमिमें विचरण कर रहा है।

कामोदी—षड्ज ग्रहांशन्यासा कामोदीका न्यासस्वर मन्द्र षड्ज है। यह रागिनी प्रायः करुण और हास्य रसमें प्रयुक्त होती है तथा यामार्द्धकालमें गाई जाती है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—हेमवर्णा, कामार्त्ता पतिके साथ जलक्रीडा करते समय पङ्कजकी सुगन्धसे प्रमोदित हो कर प्रफुल्ल पद्मोंको तोड़ रही है।

कल्याणी—सम्पूर्ण जातीय कल्याणीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर पञ्चम है। इसमें सौवीरी मूर्च्छना और ग्राम मध्यमाका प्रयोग होता है।

प ध नि स रि ग म प।

मूर्त्ति—गौरवर्णा, कोमलाङ्गी, विलासप्रिया, कान्तातुरा, अतिमृदुभाषयुक्ता, भयाकुला कल्याणी अनवरत चारों ओर पिपासित नयनोंसे देख रही है।

आभीरीके ग्रहांश आदि समस्त विषय कल्याणीके समान कहे गए हैं।

प ध नि स रि ग म प।

मूर्त्ति—प्रस्फुटित चम्पक कुसुमके समान मनोहर गौरवर्णा, हस्तसञ्चालनसे भ्राम्यमाण कङ्कणोंसे विभूषिता, आभीरी चन्द्रमाके समान शुभ्रवर्ण गजमुक्ताकी माला पहने आकण्ठ पर्वतके शिखर पर बैठी है।

नाटिका—बहुविध गमकान्वित सम्पूर्णजातीया नाटिकाका ग्रह अंश और न्यासस्वर षड्ज है। इसमें उत्तरमन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—विविध रत्नाभरणोंसे भूषित, अति उत्कट मनोहर वस्त्र पहने हुए, कृशाङ्गी नाटिका गीत और तालमें भोर मन दिये रङ्गालयमें नृत्य कर रही है।

सारङ्गी—गान्धार और धैवतहीना औडुवजातीया सारङ्गीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर पञ्चम है। इसमें सौवीरी मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

स रि म प नि स।

मूर्त्ति—रतिप्रिया, सारङ्गी दृढ़तासे कञ्चुकीबन्धन और हाथमें वीणा लिये एक सखीके साथ कल्पतरुके नीचे बैठी है।

हाम्बीरी—सम्पूर्णजातीय हाम्बीरीका ग्रह, अंश और न्यास स्वर धैवत है। इसमें पौरवी मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—श्यामाङ्गी पद्मासिनी हाम्बीरी पुष्प तोड़नेको तैयार हो कर एक सखीका हाथ पकड़ कर इस प्रकारसे विचरण कर रही है कि सहसा देखनेसे मालूम होता है मानो नृत्य कर रही है। (सङ्गीतरत्नाकर)

नारदसंहिताके मतसे राग रागिणी।

मालव, मल्लार, श्री, वसन्त, हिन्दोल और कर्णाट ये छः राग हैं।

धानसी, मालसी, रामकिरि, सिन्धुड़ा, आशावरी और भैरवी ये छह मालवरागकी स्त्रियां हैं। वेलावली, पूरवी, कानड़ा, माधवी, कोड़ा और केदारिका ये छह मल्लारकी पत्नियां हैं; गान्धारी, सुभगा, गौरी, कौमारी, वेलारी और वैरागी ये छह श्रीरागकी भार्या हैं; तुड़ी, पंचमी, ललिता, पटमञ्जरी, गुर्जरी और विभाषा ये छह वसन्तकी गृहिणियां हैं, मायूरी, दीपिका, देशकारी, पाहिड़ा, वराड़ी और मराहट्टा, ये छह हिन्दोलकी सहधर्मिणी हैं तथा नाटिका, भूपाली, रामकली, गड़ा, कामोदी और कल्याणी ये छह कर्णाटकी जाया कही गई हैं।

मालव मूर्त्ति—सुन्दरी रमणियों द्वारा चुम्बितपद्म, शुकपक्षके समान श्यामवर्ण, कुण्डलधारी, पुष्पहारोंसे

शोभित और अति प्रमत्त मालवराग प्रदोषकालमें सङ्गीत शालामें प्रवेश कर रहा है।

धानसी –श्यामाङ्गी, सुकेशी, क्षीणकटी, अम्बुजवत् रमणीयवक्ता और नीलोत्पलके समान नयन-विशिष्टा धानसी ईषत् हास्यके साथ कानोंमें नीलोत्पल धारण कर रही है।

मालसी—विचित्राङ्गी मालसी गलेमें सुन्दर मुक्ता-हार पहने दोनों हाथोंमें दो पद्म लिये हुए मनोहर दृष्टिसे देख रही है।

रामकिरी - चन्द्रानना, तपे सोनेके समान वर्णयुक्ता, कमलकर्णावतंसा रामकिरी एक हाथमें पुष्पधनु और दूसरे हाथमें अनेक पुष्पशर धारण किये हुए हैं।

सिन्धडा—इन्द्रनीलमणिके समान सुन्दरवर्णा, अम्बुजाक्षी, विचित्र रत्नाभूषणोंसे भूषिता, सुकेशी सिन्धुड़ा प्रियतमके समीप बैठी हुई कपिलाश नामक यन्त्र बजा रही है।

आशावरी—जवाकुसुम सदृश रक्तवस्त्र पहन कर नाट्यशालामें आई हुई अतिरसिका आशावरी दोनों हाथोंमें नीलोत्पल धारण किये हुए शोभित है।

भैरवी—पूर्णचन्द्रमाके समान मनोहर प्रभा विशिष्ट मृगीके समान सुचारुनयना ,कोकिलके समान मधुर स्वरसे लोगोंका मन हरण कर रही है।

मन्दार—विहारशील, सुन्दर, योषित्प्रिय, अति धार्मिक, सुस्थभावयुक्त, अत्यन्त कामातुर, पिंगल नेत्र, सुवेशप्रिय मन्दारराग सबके लिये प्रिय।

वेलावली—विचित्र आभूषणोंसे विभूषित, बाला वेला-वली कवरीमें चम्पक-प्रसून माला धारण किये हुए प्रिय-तमके समागमकी आशासे सङ्केतित प्रफुल्ल-कुसुम सौरभसे आमोदित लता-कुञ्जमें अवस्थान कर रही है।

पुरवी—दूर्वादलके समान श्यामवर्णा, सकामा पुरवी एकान्तमें बैठी हुई कुचकुम्भ युगल पर अति कमनीय पत्रावली रच रही है।

कानडा—तन्वी, विभूषिताङ्गी कानड़ापतिके विरहसे कातर हो कर मस्तक पर जटायुक्त वेणी धारण किये बाष्पाकुल नेत्रोंसे अशोकवृक्षके नीचे मानो हेमलता-सी पड़ी हुई है।

माधवी—विजलीके समान प्रभायुक्त, चञ्चल नयना, अति सुन्दरी पति-सुहागिनी माधवी माधवीलताकुञ्जमें मत्तमातंगीकी तरह कान्तका मुख चूम रही है।

कोडा—अति सुन्दरी, स्त्रीनृत्यकलामें निपुण, अति पवित्रदेहा, कुटिलनेत्रा, विहारमें अति दक्षा कोडा पतिके बाईं ओर बैठी हुई है।

केदारिका—नीलवर्णा, सुवृत्तपयोधरा केदारिका स्नान करके आर्द्र वस्त्र धारण किये हुए है और केशोंसे मनोहर जलविन्दु पड रहे हैं।

श्रीराग—मूर्त्ति पूर्ववत्।

गान्धारिका—अति विचित्रांगी, सुगन्धप्रिया, नृत्य गीतमें अनुरक्ता गान्धारिका प्रदोषके समय एक हाथसे गलेसे लिपट कर दूसरे हाथसे वीणा धारण किये हुए है।

सुभगा—कविताके रसको समझनेवाली सुभगा अनेक प्रकारके रसमय पदार्थों द्वारा कौतुक कर रही है।

गोरी—श्यामा, दिव्यरूपा रमवती, प्रसन्नचित्ता, शिवकी सीमन्तिनी गौरी कोकिलकी भांति काकली-स्वरसे विविध प्रकारके गान गा रही हैं।

कौमारिका—विचित्रांगी राज-विलास-वेशधारिणी कौमारिका निर्मल कौमुदीके आलोकसे अत्यन्त हृष्ट-चित्ता हो कर भगवतीकी पादसेवा कर रही है।

वल्लारी—वेणी बांधे हुए उत्तम अंगवाली, पीले रंग-के वस्त्र और चोली पहने हुए, तपे सोनेकी कांची और हार पहने हुए वल्लारी स्निग्ध लावण्यसे लोगोंका चित्त-विनोद कर रही है।

वैरागी—मनस्विनी वैरागी मनस्तापसे सन्तप्त हो कर एक दृष्टिसे देखती हुई वारवार दीर्घनिश्वास लेती हुई वैराग्यके लक्षण प्रकट कर रही है। सूक्ष्मबुद्धि पण्डितोंने वैरागीकी मूर्त्ति इसी प्रकार बतलाई है।

वसन्तराग।

इसकी मूर्त्ति—रत्नाकर-वर्णित मूर्त्तिके समान है।

तुडी—जवाकुसुमके समान रक्तवर्णा, अति सुशीला तुडी गलेमें मुक्ताहार और दोनों हाथोंमें दो चुतांकुर धारण करके मनोहर नृत्य कर रही है।

पञ्चमी—पर्णच्छाया, पञ्चम वेषमें अर्थात् गान्धर्व वेषमें अभिज्ञ पञ्चमी पैरोंमें नुपुर पहने नृत्य करनेको इच्छासे स गीत-सभामें गायकोंके साथ गम्भीरतापूर्वक बैठा है।

ललिता—चन्द्रानना, लोहितपद्मनेत्रा, वरांगना, क्रीड़ा और रतिके समय अति घोरमाया ललिता प्रातःकाल उठ कर वक्ष सम्हाल रही है।

पटमञ्जरी—श्यामा सुकेशो पीनस्तनी सुरूपा पट मञ्जरी पतिके विरहसे अत्यन्त दुःखित हो कर भूमि पर शयन करनेके कारण सखियोंके समक्ष परिहासास्पद हो रही है।

गुर्जरी—नृत्यचक्षामें अभिज्ञ गुर्जरी प्रदोषके समय स्वामिके पास जानेको उत्सुक हो कर कर्णोत्पलसे लगे हुए मधुमत्तका मनोहर मधुर गुञ्जन श्रवण कर रही है।

विभाषा—अति मनोहारिणी स्वर्णहारोंसे भूषिता और समस्त भाषाओंमें कुशलविभाषा अत्यन्त विवे चनाके साथ अपने शिष्योंको सङ्गीतशास्त्रकी शिक्षा दे रही है।

हिन्दोल—क्रीड़ा विलाससे भूमि पर पड़ा हुआ और उसी समय सखियों द्वारा उठाया हुआ हिन्दोल राग गीत-रससे विदग्ध रतिको का मन मोहित कर रहा है।

मयूरी—मयूरी रागिणी मयूरका कोलाहल सुननेके लिए उत्सुक और मयूर देख कर अति आनन्दिता हो कर मयूरोंके साथ सवदा नृत्य करना पसन्द करती है।

दीपिका—रक्तपुष्पको मालासे सुशोभिता और अरुण वस्त्र पहने हुए दीपिका सीमन्तमें सिन्दूर लगा कर सन्ध्याके समय प्रदीप हाथमें लिए घरमें प्रवेश कर रही है।

देशकारी—देशकारी सखियोंके साथ एकान्तमें बैठी हुई दर्पणमें अपने स्तनों पर लगे हुए नाखूनका दाग देख रही है।

पहिड़ा—पाहिड़ा पतिके विदेश-गमनकी बात सुन कर प्रेमानुरागसे अत्यन्त कातर हो कर पतिके चरण युगल पकड़ कर उनसे विदेश जानेको मना कर रही है।

बराड़ी—पतिके विरहसे अति कृशांगी, अश्रुपूर्ण लोचना, दुःखित बराड़ी नील वस्त्र पहन कर जमीन पर लोट गई है और पतिके अनुराग-भरे वचनोंका स्मरण कर रही है।

मारहटी—मारहटी क्रीड़ाके समय पतिके सहसा किए हुए प्रथम अपराध पर मानिनी बननेकी इच्छा होने पर भी अत्यन्त सरलतासे अभिमान न कर के केवल रोदन कर रही है।

कर्णाट राग।

मोरमुकुटधारी, मयूरकण्ठके समान सुन्दर शरीर कान्तिविशिष्ट कर्णाट राग घोड़े पर सवार हो कर तेज तलवार हाथमें लिये शिकारके लिये जा रहा है।

रामकलीकी मूर्त्ति—अति लावण्यवती, करुणार्द्रचित्ता, अनेक सुगन्धित पुष्पों द्वारा इष्टदेवका पूजामें निरत राम कली सर्वदा 'श्री राम राम' इस महामन्त्रका रही है।

गड़ाकी मूर्त्ति—क्षीणकटी, गुरुनितम्बा, पीनस्तनी, नृत्यगीतादि कलाओंमें विपुला गड़ा नृत्यगीतादि द्वारा सबके मनको विमोहित कर रही है।

कामोदोकी मूर्त्ति—इसका वर्णन पहले किया जा चुका है, इसलिए यहां फिरसे लिखना व्यर्थ है।

कल्याणीकी मूर्त्ति—शरीरके लावण्य और लीलासे अत्यन्त सुशोभिता कल्याणी अपने घरमें नृत्य कर रही है और उससे अङ्गमें पहने हुए केयूर नूपुर और घुंघरूओं का अत्यन्त मनोहर ध्वनि निकल रही है।

हनूमन्मतानुसार राग रागिणियोंका वर्णन किया जाता है। अन्यान्य सङ्गीतज्ञ विद्वानोंने छह राग और उनकी छह-छह रागिणियां इस तरह कुल राग-रागिनियों की संख्या ४२ बताई है। परन्तु हनूमन्मतानुसार छह राग और प्रत्येककी पांच पांच रागिणियां कल्पित हुई हैं। इस लिए उनके मतसे राग-रागिणियोंकी संख्या ३६ होती है। उनके नाम इस प्रकार हैं—भैरव मालव कौशिक, हिन्दोल, दीपक, श्री और मेघ ये छह मुख्य राग; तथा मध्यमादी, भैरवी, बङ्गाली, बरारिका और सैन्धवी ये पांच भैरवकी, तोड़ी, खम्बावती, गौरी, गुणकरी और ककुभा ये पांच कौशिककी बिलावली, रामकिरी, देशाक्षा, पटमञ्जरी और ललिता ये पाँच हिन्दोलकी; बराटी, कामदा, देशी,

कामोदी और नाटिका ये पाच दीपककी, वासन्ती, मालवी, मालती, धनाश्रिका और आशावरी ये पाँच श्रीकी तथा मन्दारी, देशकारी, भूपाली, गुर्जरी और टक्का ये पाँच मेघ रागकी स्त्रियां हैं।

भैरव।

भैरव—भैरवके स्वरग्राम आदि पूर्ववत् हैं।

मध्यमादी—सम्पूर्णजातीया मध्यमादीका ग्रह, अंश और न्यास स्वर मध्यम है। इसमें मध्यमादी मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। ऋषभ-धैवतहीन औडव जातिमें इसकी गिनती हो सकती है।

म प ध नि स रि ग म अथवा म प नि स ग म।

मूर्त्ति—स्वर्णवर्णा, कमलायताक्षी, कुंकुमलिप्तदेहा मध्यमादीका स्वामी उसे प्रसन्नताके साथ गाढरूपसे आलिङ्गन करके चुम्बन कर रहा है।

भैरवी, बंगाली, वराटी और सैन्धवीके स्वरग्रामादि पूर्ववत् हैं।

मालव-कौशिक।

सम्पूर्णजातीय मालव-कौशिकका ग्रह, अंश, न्यास-स्वर षड्ज है। इसमें उत्तर मन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—अतिवीर, वीरसमाजमें वीर्यप्रकाशक, वीर-पुरुषोंसे परिवेष्टित, लोहितवर्ण मालव कौशिक रागके हाथमें एक लाल रंगकी यष्टि और गलेमें शत्रुओंके मुण्डोंकी माला शोभित है।

तोड़ी—तोडीके स्वरग्राम आदि और मूर्त्ति पूर्ववत् है।

खम्बावती—पञ्चमहीन षाड़वजातीय खम्बावतीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। इस रागिणीमें पौरवी मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

ध नि स रि ग म ध

मूर्त्ति—सौन्दर्य और लावण्यसे परिपूर्णा, कोकिल-के समान मिष्टभाषिनी, प्रियवादिनी, गानप्रिया अति रसवती मालव-कौशिकको पत्नी खम्बावती श्रोताओंको अत्यन्त आनन्द पहुंचाती है।

गौरी—स्वरग्रामादि पूर्ववत्।

मूर्त्ति—श्यामा, अति मधुर-मृदुभाषिणी गौरी अति रमणीय आम्र-मुकुल द्वारा कर्णभूषण बना रही है।

गुणक्रिरी—स्वरग्रामादि और कौतुहलपूर्णा श्रेष्ठ मूर्त्ति पूर्ववत्।

ककुभा—ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। यह रागिणी शृङ्गाररसमें ही गाई जाती है और इसमें उत्तरा-यता मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—पञ्चकदाम पहने हुए, देखनेमें अत्यन्त सुन्दरी मनोहारिणी, चन्द्रानना, अतिदानशीला, रतिचिह्न-मण्डिता और अति परिष्कृतदेहा ककुभा इतस्ततः चञ्चल कटाक्ष पात कर रही है।

हिन्दोल।

हिन्दोलके स्वरग्रामादि पूर्वोक्त हिन्दोलिकाके समान हैं।

मूर्त्ति—खर्व्वाकार, कपोतद्युति, कामुक हिन्दोल सुन्दरी रमणियों द्वारा आन्दोलित झूलनेमें बैठ कर क्रीड़ा सुखका अनुभव कर रहा है।

वेलावली—वीररस-प्रधान सम्पूर्णजातीया वेला-वलीका ग्रह अंश और न्यासस्वर धैवत है। इसमें सौवीरी मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—नीलसरोजके समान वर्णयुक्ता, विशाल-नितम्बा वेलावली सम्पूर्ण आभूषणोंसे भूषित हो कर पतिको सङ्केत करके विलास गृहमें बिठा कर इष्टदेवताके समान कन्दर्पका वारम्वार स्मरण कर रही है।

रामकिरी—इसके स्वरग्राम आदि तथा मूर्त्ति पूर्व-वत् है।

देशाख्या—ऋषभ-वर्जिता षाडवजातीया देशाख्याका ग्रह, अंश और न्यासस्वर गान्धार है। इसमें हारिणाश्वा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। कोई-कोई इसे सम्पूर्ण-जातिमें शामिल करते हैं।

ग म प ध नि स ग अथवा ग म प ध नि स रि ग।

मूर्त्ति—अतिदीर्घाकारा अत्यन्त कोपनस्वभावा वीररससे रोमाञ्चित चन्द्रानना देशाख्या मस्तक पर हाथ रक्खे हुए खड़ी है।

पटमञ्जरी—पटमञ्जरीके स्वरग्रामादि पूर्ववत् हैं।

मूर्त्ति—पतिके विरहसे विधुरा, अविकृशा, माल्य धारिणी, धूलिधूसराङ्गी पद्मसुन्दरीको प्रियसखियोंगण नाना प्रकारसे आश्वासन दे रही हैं।

ललिता—ऋषभ पञ्चमहीन औडुवजातीया ललिता का ग्रह, अंश और न्यासस्वर षड्ज है। इसमें शुद्ध मध्य मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। कोई-कोई इस सम्पूर्णजातिमें शामिल करते हैं। सम्पूर्णजातिवादियों के मतसे इसके ग्रहादि षड्ज हो कर धैवत है।

स ग म ध नि स अथवा ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—प्रफुल्ल सप्तच्छद माल्यशोभिता, अत्यन्त गौर वर्णा, सुकोमला, विलासवेशधारिणी, युवती ललिता प्रभातके समय सहसा शय्या त्याग कर दीर्घनिश्वास छोड़ रही है।

दीपक।

सम्पूर्णजातीय दीपकका ग्रह, अंश और न्यासस्वर षड्ज है। गायकगण इसे शुद्धमध्या मूर्च्छनासे न्यास करते हैं।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—बालिका रमणीसे रमणेच्छुक दीपकके अन्धा पथ बिना बुझा देने पर आ रमण करते समय बालाका मस्तक बोझ देखते उसके शिरोभूषणको मणिके आलोकसे अन्धकार दूर हो जानेसे वह अत्यन्त लज्जित हो रहा है।

कन्दारिकाके स्वरग्रामादि और मूर्त्ति पूर्ववत् है।

कानड़ा—सम्पूर्णजातीया कानड़ाका ग्रह, अंश और न्यासस्वर विकृत निषाद है। इसमें मार्गी मूर्च्छना का प्रयोग होता है। कानड़ा रागिणी सुननेमें अति मधुर होता है।

नि स रि ग म प ध नि।

मूर्त्ति—अतिसुन्दरी कानड़ा एक हाथमें कृपाण और दूसरेमें गजदन्त लिये हुए रङ्गमें अवस्थित सुर वन्दियों द्वारा स्तूयमान हो रही है।

देशी—देशाके स्वरग्रामादि और मूर्त्ति पूर्वोक्त वत् है।

कामोदी—पौरवी मूर्च्छनायुक्त सम्पूर्णजातीया कामोदीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। यह रागिणी प्रायः मल्लारके पास ही पास गाई जाती है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—अतिसुन्दरी, कान्तानुसारिणी पीतवस्त्र पहने हुए कामोदी वनमें आ कर पतिको न देख और कोकिल की ध्वनि सुन अत्यन्त दुःखित और भयभीत मनसे दशों दिशाओंका निरीक्षण कर रही है।

नाटिका—नाटिकाके स्वरग्रामादि पूर्वोक्तवत् हैं।

मूर्त्ति—सुवेशा नाटिका पतिके विरहसे अति विह्वल हो कर समीपस्थ एक काकसे बड़े स्नेहके साथ प्रिये शस्य प्रियतमकी कुशलवार्त्ता पूछ रही है।

श्रीराग।

श्रीरागके स्वरग्रामादि पूर्वोक्तवत् हैं।

मूर्त्ति—अठारह वर्षकी अवस्था, कन्दर्पके समान मनोहर मूर्त्ति, अति धीराकृति, रक्तवस्त्र पहने हुए, राजा के समान अङ्ग सौष्ठवयुक्त श्रीराग कानोंमें नव पल्लवोंके बने हुए भूषण धारण कर रहे हैं।

वासन्ती—उत्तरमन्द्रा मूर्च्छना विशिष्ट सम्पूर्ण जातीया वासन्तीका ग्रह अंश और न्यास स्वर पञ्चम है।

स रि प म ध नि स।

मूर्त्ति—इन्दीवरश्यामवर्णा, अति सुन्दरी वासन्ती आम्रमुकुलोंसे कानोंको सुशोभित किये बैठी हैं और इसलिए कानों पर भ्रमर गूंज रहे हैं।

मालवी—शुकके समान द्युतियुक्त, कुण्डल और कुसुममालाओंसे सुशोभित, प्रमत्तभावा मालवी प्रदोष के समय पति द्वारा चुम्बित हो कर सङ्केतस्थानमें प्रवेश कर रहा है।

मालव श्री—मालवश्रीके स्वरग्रामादि और मूर्त्ति पूर्वोक्तवत् हैं।

धानश्री—ऋषभहीना, षाड़वजातीया धानश्रीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर षड्ज है। इसमें उत्तरमन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। यह रागिणी प्रायः धार रसमें प्रयुक्त होता है।

स ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—नवदूर्वादलके समान मनोहर श्यामतनु धानश्री पतिके विरहसे कातर हो कर अर्द्धशायित भव

स्थामें बैठी हुए नेत्रजलसे वक्षःस्थलको प्लावित करके पतिका चित्रपट अंकित कर रही है।

आशावरी—करुणरस निर्भरा, ऋषभ गान्धार-हीना औडवजातीया आशावरीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। किसीके मतसे पञ्चम-हीन षाडवजातीया आशावरीका ग्रह अंश और स्वर मध्यम है, किंतु न्यास धैवत है।

ध नि स म प ध अथवा
म ध नि स रि ग म।

मूर्त्ति—शिखिपुच्छ निर्मित अति सुशोभन वस्त्र पहने हुए, गजमुक्ताके हारसे शोभित, आशावरी श्रीपण्डशैल-के शिखर पर बैठ कर चन्दनवृक्षसे सर्प खींच कर हाथमें वलयके समान धारण किये हुए हैं।

मेघ।

मेघके स्वरग्रामादि पूर्वोक्तवत् हैं।

मूर्त्ति—नीलोत्पल श्यामल कान्ति, चन्द्रसदृश मुख-श्री, पीताम्बर पहने, पीयूषवत् मन्द मन्द हास्यवक्त्र, वीररसप्रधान, युवा मेघराग तृषित चातक द्वारा जलकी याचना होने पर घनघटाके मध्य विराज रहा है।

मल्लारी—मल्लारीके स्वरग्रामादि पूर्वोक्तवत् हैं।

देशकारी - सम्पूर्णजातीया देशकारीका ग्रह, अंश और न्यास स्वर षड्ज है। इसमें उत्तरमन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है। यह रागिणी प्रायः वैराटीके साथ मिश्रित रहती है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—यौवनके प्रभावसे सर्वाङ्गपरिपूर्णा, पीनस्तनी, चन्द्रमुखी, कमलायताक्षी, सुकेशी और सुवर्णवर्णा देश-कारी पतिके साथ नाना केलिकलारसमें मग्न हैं।

भूपाली—भूपालीके स्वरग्रामादि और मूर्त्ति पूर्व-वत् है।

गुर्जरी—स्वरग्रामादि पूर्वोक्तवत्।

मूर्त्ति—श्यामा सुकेशी गुर्जरी चंदनपल्लव-रचित अति कोमल शय्या पर बैठ कर वीणा द्वारा श्रुति और स्वरका विभाग कर रही है।

टक्का—सम्पूर्णजातीया टक्काका ग्रह, अंश और न्यास-स्वर षड्ज है। इसमें उत्तरमन्द्रा मूर्च्छनाका प्रयोग होता है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—तप्ते काञ्चनके समान पीतवर्णा, वियोगिनी टक्का नलिनी दल निर्मित शय्या पर लेटी हुई अत्यन्त विषण्णभावसे पतिकी आराधना कर रही है।

रागार्णवके मतसे रागके राग और रागिणी इस प्रकार पुं-स्त्री भेद नहीं है, सब राग ही कहलाते हैं। उसके मतानुसार रागोंके नाम दिये जाते हैं। यथा :—भैरव, पञ्चम, नाट, मल्लार, गौड़मालव और देशाख्य ये छह प्रधान राग हैं। बङ्गाली गुणकिरी, मध्यमादी, वसन्त, और धानश्री ये पांच राग भैरवके आश्रित हैं, ललिता, गुर्जरी, देशी, वराडी और रामकिरी ये पाँच पञ्चमके आश्रित हैं, नट्टनारायण, गान्धार, सालग, केदार और कर्णाट ये पाँच नाटाश्रित हैं; मेघ, मल्लारिका, माल-कोशिक, पटमञ्जरी और आशावरी, ये पाँच मल्लारके आश्रित हैं; हिन्दोल, त्रिवण, गान्धारी, गौरी और पट-हंसिका ये पांच गौडमालवके आश्रित हैं; भूपाली, कुडारी, नाटिका और वेलावली ये पांच देशाख्यके आश्रित हैं।

अब सङ्गीतनारायण धृत सङ्गीतसारके मतानुसार रागकी व्याख्या की जाती है। यथा—श्री, नट्ट, कर्णाट, वेदगुप्त, वसन्त, शुद्ध भैरव, बङ्गाल, सोम, आम्रपञ्चम, कामोद, मेघ, द्राविडगौड़, वराटी, गुर्ज्जरी, तोडी, मालवश्री, सैन्धवी, देवकी, रामकी, प्रथम-मञ्जरी, नट्टा, वेलावली और गौडी, इत्यादि राग संपूर्ण जातीय हैं। आदि पदमें नाटादि और भी कुछ राग शामिल किये जाते हैं।

श्री—श्रीरागका ग्रह, अंश, न्यासस्वर षडजग्रामका षडज है। यह वीर और शृङ्काररसमें गाया जाता है और इसमें मध्यमका भाग थोड़ा व्यवहृत होता है।

स रि ग म प ध नि स।

श्रीरागकी मूर्त्ति पूर्वोक्तवत् है।

नट—नटके ग्रहांशादि श्रीरागके समान है, किन्तु इसमें श्रीरागके समान स्वल्पमध्यम नहीं लगता तथा

मन्द्र निषाद, तार स रि और अल्प गमकका प्रयोग होता है।

नटकी मूर्त्ति पूर्वोक्तवत् नट्नारायणके समान है।

कणाट—कर्णाटका ग्रह अंश, न्यासस्वर निषाद है, किन्तु अन्यान्य विषयोंमें कुछ कुछ नाटरागके समान है।

कर्णाटकी मूर्त्ति पूर्वोक्तवत् है।

देवगुप्त —देवगुप्तमें षड्ज ऋषभ और मध्यम ये तीन स्वर अन्यान्य स्वरोंकी अपेक्षा अधिकतासे प्रयुक्त होते हैं जिसमें ऋषभ ग्रह और अंश तथा मध्यम न्यास हुआ करता है। यह वीररस-प्रधान रागोंमें गिना जाता है।

रि ग म प ध नि स म।

मूर्त्ति—अति गौरकान्ति, देवगुप्त रतिखिन्ना और रतिश्रमसे दीर्घनिश्वास छोड़ती हुई अपनी नायिकाको अपनी गोदमें सुला कर वस्त्राञ्चल द्वारा बयार कर रहा है।

वसन्त—वसन्तके न्यासग्रहादि और मूर्त्ति पूर्वोक्त वत् है।

गुर्ज्जरीभैरव—गुर्ज्जरीभैरवका ग्रह अंश, न्यास स्वर धैवत है। इसमें गमकके साथ मन्द्र गान्धारका प्रयोग होता है। इस रागका मध्याह्नके पहले गाना विधेय है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—नीलकण्ठ, शशिशेखर त्रिलोचन, अति प्रचण्डमूर्त्ति, गुर्ज्जरीभैरव अनेक पशुपतियोंसे घिरित हो कर हाथमें शूल और तलवार धारण किये हुए हैं।

बङ्गाल—कौशिकस उत्पन्न बङ्गालका ग्रह अंश न्यासस्वर षड्ज है। इस गमक सहित मन्द्र गान्धारके साथ करुण और हास्यरसमें गाना चाहिए।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति अति प्रचण्डस्वभाव जटाधारक, यौवनमें अत्यन्त सुन्दर, हाथमें त्रिशूल कटिमें मनोहर चंद्रहार और गलेमें पुष्पमाला पहने हुए नाचित है।

साम—सामरागका ग्रह, अंश न्यासस्वर षड्ज है। इस रागमें नाद, निषाद और ऋषभ है, पञ्चम बहुलाग्नसे प्रयुक्त होता है। सामराग वर्षाके प्रारम्भमें शान्तरसमें गाया जाता है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—अर्जुनके समान पाण्डुवर्ण, अति कामुक सोमराग सुरतके श्रमसे कम्पितहस्त आलस्यपूर्णलोचन हो कर माला पहन कर अपनी कान्ताको अपनी छातीसे पर सुला कर सुरतके काममें रत है।

आन्ध्रपञ्चम—मध्यम ग्रामगोचर आन्ध्रपञ्चमका ग्रह, अंश, न्यासस्वर गान्धार है।

ग म प ध नि स रि ग।

मूर्त्ति—कार्त्तिकेयके समान सुन्दर, सर्वाङ्गमें चन्दन लेपन किये हुए आन्ध्रपञ्चम वीणाके साथ गान करके देव राज इन्द्रको परितुष्ट कर रहा है।

कामोद—बहु गमकान्वित कामोदका ग्रह, अंश, न्यासस्वर षड्ज है। यह राग यामार्द्धके समय करुण और हास्यरसमें गाया जाता है।

स रि ग म प ध नि।

मूर्त्ति—मृगचर्म पहने हुए कामोद गङ्गाके किनारे बैठ कर हाथमें रुद्राक्षमाला लिये हुए इष्टमंत्र जप रहा है।

मघ—धैवत ग्रहांशन्यासयुक्त मघराग वर्षाके आद्य समय गाया जाता है। इसमें मन्द्रस्वरका प्रयोग होता है।

ध न स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—पीताम्बर पहने हुए, घने मेघके समान नील वर्ण नाना आभूषणोंसे विभूषित मघराग अपना प्रम विनोदके साथ पर्यङ्क पर बैठा हुआ प्रेमालाप कर रहा है।

द्राविड़ गौड़—द्राविड़गौड़का ग्रह, अंश, न्यासस्वर निषाद है। परंतु इसमें षड्ज और पञ्चमका बहुलावन स प्रयोग होता है। यह राग अधिकतर रात्रिको वीर शृ गाररसमें भी गाया जाता है।

नि स रि ग म प ध नि।

मूर्त्ति—विद्रुमाङ्गद युक्त द्राविड़गौड़का वर्ण चन्द्रमा के समान मनोहर है, कुञ्चितकेश गलेमें तक लम्बित है, गलेमें पुष्पहार है हाथमें एक मनोहर अरविन्द नाचा रहा है।

वराटी—वराटीका ग्रह अंश न्यासस्वर षड्ज है।

एक प्रहरके मध्य इसकी गानविधि है। मूर्त्ति पूर्वोक्तवत् है।

गुर्जरी—गुर्जरीके स्वरग्रामादि और मूर्त्ति पूर्वोक्तवत् है। विशेषतः यह रातको शृङ्गाररसमें गाई जाती है।

तोडिका—तोडिकाका ग्रह, अंश, न्यासस्वर मध्यम है। यह मध्याह्नके समय शृङ्गार और वीररसमें गाई जाती है।

म प ध नि स रि ग म।

मूर्त्ति—प्रफुल्ल पङ्केरुहके सदृश लोचनयुक्ता तोडिका गलेमें नीलकमलकी माला पहन कर मृगनाभि हाथमें लिये हुए वनके निकटवर्ती प्रदेशमें भ्रमण कर रही है।

मालवश्री—मालवकौशिकसे उत्पन्न मालवश्रीका अंश, ग्रह, न्यासस्वर षड्ज है। यह भगवतीकी प्रीतिवर्द्धन किया करती है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—श्यामा, कृशाङ्गी, मृदुस्वभावा, मालवश्री बिल्ववृक्षके नीचे बैठकर कुछ नीलपद्मोंके दल हाथमें लिये क्रीड़ा कर रही है।

सैन्धवी वा सिन्धुड़ासैन्धवी पञ्चमसे उत्पन्न हुई है। इसका ग्रह, अंश और न्यासस्वर पञ्चम है। यह रागिणी मध्याह्नकालके बाद करुण और श्रृंगाररसमें गाई जाती है।

प ध नि स रि ग म प।

मूर्त्ति—इन्दीवरश्यामा, आकर्णनयना, सुकेशी और नाना अलङ्कारोंसे विभूषिता सैन्धवी प्रियतमके पास बैठी हुई कलास नामक एक यन्त्र बजा रही है।

देवकी वा देवकृति—देवकृतिका ग्रह, अंश, न्यासस्वर षड्ज है। यह सर्व ऋतुओंमें सब समय गाया जाता है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—श्यामा देवकृति उद्यानमें एक सखीका हाथ थामे हुए पुष्प चयन कर रही है।

रामकी—रामकीके स्वरग्राम आदि तथा मूर्त्ति पूर्वोक्त रामकिरीके समान है।

प्रथममञ्जरी—इसके स्वरग्रामादि तथा मूर्त्ति पूर्वोक्ति पटमञ्जरीके समान है।

नट्टा—इसके स्वरग्रामादि तथा मूर्त्ति पूर्वोक्तवत् है।

वेलावली—स्वरग्रामादि और मूर्त्ति पूर्वोक्तवत्।

गौड़ी—गौड़ीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर षड्ज है। इसके समस्त स्वर प्रायः गमकयुक्त होते हैं और यह वीर एवं शृङ्गाररसमें प्रयुक्त होता है।

स रि ग म प ध नि स।

गौरवर्णा गौड़ी रतिके साथ कामदेवकी हरिचन्दनादि विविध उपचारोंसे पूजा कर रही है।

नाट—नाटके स्वरग्रामादि तथा मूर्त्ति पूर्वोक्त नटके सदृश है।

घण्टारव—इसका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। यह राग सब समय गाया जा सकता है।

ध नि स रि ग म प ध।

तप्त काञ्चनके समान वर्णयुक्त घण्टारव तुरङ्गमस्कन्ध पर सवार हो कर सुवर्ण निर्मित शरासनको उलाध कर अति भीषण घण्टारवसे शत्रुकी सेनाको दलित करके रङ्गभूमि पर विचरण कर रहा है।

नट्टनारायण—इसका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। यह राग दिनके समय गाया जाता है।

ध नि स रि ग म प ध।

नवीन युवापुरुष नट्टनारायण स्त्रीके वेशमें सङ्गीतशास्त्रमें भ्रान्तमतका निरास करके विशुद्ध ताल और लयसे मनोहर गान कर रहा है।

भूपति—भूपतिका ग्रह, अंश और न्यासस्वर मध्यम है। यह राग दिनमें करुणरसमें गाया जाता है।

म प ध नि स रि ग म।

श्यामाङ्ग भूपति मन्त्रियोंसे परिवेष्टित हो कर सिंहासन पर बैठा हुआ है, दोनों ओर दो किङ्कर खड़े खड़े श्वेतचामर डुला रहे हैं, पीछे एक किङ्कर छत्र धारण किये हुए हैं।

शङ्कराभरण—शङ्कराभरणका ग्रह, अंश और न्यास स्वर निषाद है। यह राग रात्रिके समय वीररसमें गाया जाता है।

नि स रि ग म प ध नि।

शङ्कराभरण व्याघ्रचर्म पहने हुए, शरीर पर सर्पके आभूषण धारण किये हुए और सर्वांगमें भस्म लगाये शोभित हो रहा है।

षाड़वजाति—गौड़, कर्णाटगौड़, देशी, पल्लासिका, कोलाहल, वल्लारी देशाख्या शावेरी, सुरूयावती, हर्षपुरी, मायवादि, हरिजका इत्यादि राग षाड़वजातिमें शामिल हैं। इत्यादिमें भोकपल, मौमो, तारा, मालव गौड़, गुर्जरीरी मधुकरी छाया और नीलोत्पल इन रागों को ग्रहण करना चाहिए। षाड़वराग गानसे संग्राममें विजय, लावण्यकी वृद्धि और सयश गुणकीर्तन होता है।

गौड़—पञ्चमहीन षाड़वजातीय गौड़का ग्रह, अंश और न्यासस्वर निषाद है। इसमें ऋषभ अत्यन्त अल्प मात्रामें प्रयुक्त होता है। यह राग दिनके अन्तिम भाग में वीर और शृङ्गाररसमें गाया जाता है।

नि स रि ग म प ध नि।

त्रिभङ्गकोज्ज्वल गौड़ शुभ्र वस्त्र पहने हुए विशुद्ध आसन पर बैठ कर गङ्गाजल और नीलोत्पल द्वारा देव-देव महादेवको पूजा कर रहा है।

कर्णाटगौड़—पञ्चमहीन कर्णाटगौड़का ग्रह, अंश और न्यास स्वर निषाद है तथा अन्यान्य विषयोंमें यह कर्णाटके समान है।

नि स रि ग म ध नि।

स्वर्णप्रभ, विशालनयन, कलाकौशलमें ममित, विद्वान् मति धमात्मा कर्णाटगौड़ रुद्राक्षमालाका इष्टमन्त्रका जप कर रहा है।

देशी—धैवगुतोज्ज्वल धैवतवर्जित देशीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर ऋषभ है। यह रागिणी एक प्रहरके मध्य शान्ति और करुणरसमें गाई जाती है।

रि ग म प नि स रि।

मत्तेभ्रगमना, हरिणनयना, नीलोत्पलवर्णा, अतिपुष्ट नितम्बा भुजङ्गदङ्गवेणीवद्धा, अतिकृशाङ्गी और पीत कुसुमराग देशी अत्यन्त मधुरभावसे हास्य कर रही है।

पल्लासिका—शुद्ध कौशिकजाता, ऋषभवर्जिता पल्लासिकाका ग्रह और अंशस्वर षड़ज है तथा न्यास स्वर मध्यम। यह रागिणी सब समय वीर और शृङ्गार रसमें गाई जा सकती है।

स ग म प ध नि स।

मनोहर श्यामतनु, बालिका, पतिनिपुणा पल्ला सिका एक चित्रफलक पर अपने प्रियतमकी मूर्ति अङ्कित कर रही है, किन्तु अश्रु जलसे वक्षःस्थलको प्लावित कर रही है।

कोलाहल—पञ्चमहीन कोलाहलका ग्रह, अंश और न्यासस्वर षड़ज है। इसमें मन्द्र मध्यम और धैवतका प्रयोग होता है, जिसमें गमकान्वित मध्यमका प्रयोग अधिक पाया जाता है, यह रागिणी कलहके समय ही गाई जाती है।

स रि ग म प ध नि स।

मूर्ति—उन्मुक्त पुंस्कोकिलके समान सुकण्ठयुक्त, कृष्णाङ्ग, वंशीध्वनि सुननेके लिए उत्सुक, तरुण कोला हल नादस्वरसे कृष्णगुण गा रहा है।

वल्लारी—वराटीको उपाङ्गस्वरूपा, ऋषभहीना, मन्द्र धैवत-भूषिता वल्लारीका ग्रह अंश और न्यासस्वर षड़ज है। यह रागिणी शृङ्गाररसमें अधिकतासे प्रयुक्त होती है।

स ग म प ध नि स।

मूर्ति—श्यामा, युवक पतिसे क्रुद्धा वल्लारी सखियों द्वारा प्रबोधित हो कर भी कान्तकी तरफ पीठ किये हुए बैठी है।

देशाख्य—ऋषभ वर्जित, तार गान्धार भूषित देशाख्य का ग्रह अंश और न्यासस्वर षड़ज है।

स ग म प ध नि स।

मूर्ति—बाहुयुद्धप्रिय, विशालबाहु, मत्तपुरुषदेह सर्व-पर्व अवितबल्ली देशाख्य राग वाहवाही पानेके कारण रोमाञ्चित हो उठा है।

शावेरी—पञ्चमहीन शावेरीका ग्रह और अंशस्वर मध्यम है, न्यासस्वर धैवत है। यह रागिणी मन्द्रमध्यमा और स्वल्पपञ्चम है। यह करुणरसमें गाई जाती है।

म ध नि स रि ग म।

मूर्ति—उज्ज्वलवर्णा गजमुक्ताका हार पहने हुए शावेरी श्रीखण्ड पर्वतके शिखर पर बैठ कर चन्दनवृक्षसे भुजंग खींच कर हाथोंमें वलयकी तरह पहन रही है।

सुरूयावती—गमकयुक्त गान्धार मध्यमान्वित पञ्चम-हीना सुरूयावतीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। यह रागिणी रात्रिके समय शृङ्गाररसमें गाई जाती है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—कुन्दकुसुम-सदृशा, सुन्दरदशना सुम्धावती शरत्कालीन मेघके समान शुभ्र वस्त्र पहने हुए ब्राह्मणोंकी सेवामें निमग्न है।

हर्षपुरी—मालव-कौशिकसे उत्पन्न पञ्चमवर्जित हर्षपुरीका ग्रह और अंश षड्ज है तथा न्यास धैवत। यह रागिणी विजयके समय गाई जाती है।

स रि ग म ध नि ध।

मूर्त्ति—विलेपनद्रव्यसे दृढ़ अनुराग रखनेवाली, मुग्धस्वभावा, मनोहरमूर्त्ति, प्रौढ़ा हर्षपुरी रात्रिके अन्तमें रमण करनेके बाद पतिके मुंहकी तरफ टकटकी लगाये देख रही है।

माधवादि—धैवतहीन माधवादिका ग्रह, अंश और न्यासस्वर पञ्चम है। इसमें मन्द्रमध्यमका प्रयोग होता है और यह मेघाच्छन्न दिनमें गाया जाता है। कोई कोई इसे मल्लारी कहते हैं।

प नि स रि ग म प।

मूर्त्ति—कमनीय मूर्त्ति-विशिष्ट गौरवर्ण। वृद्ध माधवादि राग कृष्णाजिन आसन पर बैठ कर नारद और तुम्बुरु गन्धर्वके साथ सङ्गीतालाप कर रहा है।

हुज्जिका—पञ्चमवर्जित हुज्जिकाका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। इसमें गमकयुक्त षड्ज और मध्यमका प्रयोग देखा जाता है। यह रागिणी तृतीय प्रहरके बाद शृङ्गाररसमें गाई जाती है।

ध नि स रि ग म ध।

मूर्त्ति—नवदूर्वादल-श्यामल हुज्जिकाका पति बल दिखा कर हुज्जिकाको विवस्त्रा करके अपनी जङ्घा पर बैठा कर दाहिना हाथ गलेमें डाल बायें हाथमें कुच मर्दन कर रहा है।

श्रीकण्ठिका—गान्धारहीन श्रीकण्ठिकाका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है। यह रागिणी वीररसमें गाई जाती है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—श्याम, रुष्ट श्रीकण्ठिका पतिके माँजे हुए केश अपने हाथसे हिला कर सुखा रही है और उससे हाथके सुवर्णवलय सुमधुर ध्वनि कर रहे हैं।

भौली—पञ्चमहीन भौलीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर गान्धार है। यह रागिणी प्रातःकालके समय देवस्तुतिमें गाई जाती है।

ग म ध नि स रि ग।

मूर्त्ति—मनोहारिणी भौली रात्रिके समय अपने पुत्रको पतिकी गोदमें बार बार देती हुई नाना प्रकारके मधुरालापसे आमोद कर रही है।

तारा—मध्यमवर्जित ताराका ग्रह अंश और न्यासस्वर निषाद है। यह रागिणी युद्धके समय दिन रात गाई जा सकती है।

नि स रि ग प ध नि।

मूर्त्ति—तड़ित्सम अरुणवर्ण वस्त्र पहने हुए तारा नाट्यमन्दिरमें संतानोंको नृत्यके विषयमें नाना प्रकारके हाव भावादिकी शिक्षा दे रही है।

मालवगौड़—पञ्चमहीन मालवगौड़का ग्रह, अंश और न्यासस्वर मध्यम है। यह राग वीररसमें प्रयुक्त होता है।

म ध नि स रि ग म।

मूर्त्ति—विप्रकुलोद्भव, श्यामवर्ण, युवा मालव गौड़ वीणा हाथमें लिये हुए नारदसंहिताकी नाना कथाओंकी आलोचना कर रहा है।

आभीरी—ऋषभहीन आभीरीका ग्रह, अंश, न्यास और स्वर धैवत है। यह रागिणी शोकके समय गाई जाती है।

ध नि स ग म प ध।

मूर्त्ति—गोपवल्लभा आभीरी दधिमन्थन कर रही है, जिससे उसकी मेखला और कङ्कण अस्फुटध्वनि कर रहे हैं तथा उसके मुखारविन्दसे स्वेदाम्बु झर रहा है।

मधुकिरी—गांधारहीन मधुकिरीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर धैवत है।

ध नि स रि ग म प ध।

मूर्त्ति—मधुकिरीका सर्वाङ्ग पुष्पोंसे आच्छादित, चक्षु अर्द्धमुद्रित, वर्ण चम्पक सदृश, करतल अति रमणीय और मुखकमल पर मधुके लोभसे भ्रमरनिचय मत्त हो कर मधुरध्वनि कर रहे हैं।

छाया—मध्यमरहित छायाका ग्रह, अंश और न्यास स्वर षड्ज है। यह रागिणी शृंगार और वीररसमें गाई जाती है।

म रि ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—नालास्पन्न दूर्वश्यामा, मुक्तकण्ठा, प्रियम्वदा सूर्यप्रिया छाया गलेमें सूर्यकान्तमणि धारण किये हुए अति शान्त आकार धारण किये हुए है।

मध्यमादि मल्लार, वंगालो, मालव हिन्दोल, भैरव, नागध्वनि, गौण्डकिरी, ललिता, छाया वेलावली, प्रताप भैरवी इत्यादि राग रागिणियाँ औडव जातिमें शामिल है। आदि पदस तुरुष्कगौड़, गान्धार पुलिन्दी और मधुरंजिका ग्रहण को गई है। व्याधिनाश, शत्रुनाश धन मान, ग्रहशान्ति और धन उपार्जनके लिये औडव राग गाना चाहिए। इसमेंसे प्रायः सभीके स्वरग्रामादि पहले लिखे जा चुके हैं। हां, जो नहीं लिखे गए उनका विवरण नीचे दिया जाता है।

नागध्वनि—रुद्रावेणस उत्पन्न ऋषभ पञ्चमहीन नागध्वनिका ग्रह अंश और न्यासस्वर षड्ज है। यह हिमकी गाया जाता है।

स ग म प ध नि स।

मूर्त्ति—हिंगुलके समान लोहितवर्ण, शुक्ल वस्त्र पहने हुए, शत्रुविजेता युवा, गजकुम्भाक्रान्त मतमातंगके समान गम्भीरनादी नागध्वनि सुननेमें अति सुखदायक होता है।

गौण्डकिरी—ऋषभ-धैवतहीन गौण्डकिरीका ग्रह अंश और न्यासस्वर षड्ज है। यह प्रातःकालमें शृंगार रसमें गाया जाता है।

स ग म प नि स।

मूर्त्ति—श्यामाङ्गी गौण्डकिरी रमणोत्सुका हो कर अति कोमल पुष्पशय्या पर बैठी हुई कान्तके आगमनकी प्रतीक्षामें इतस्ततः दृष्टि डाल रही है।

तुरुष्कगौड़—ऋषभ पञ्चमहीन तुरुष्कगौड़का ग्रह, अंश और न्यासस्वर निषाद है। यह राग वीर और शृंगाररसमें गाया जाता है।

नि स ग म ध नि।

मूर्त्ति—अरुणवर्ण तुरुष्कगौड़ सर्वाङ्ग भूषण पहने हुए तथा मस्तक पर उष्णीष धारण किये हुए घोड़े पर सवार हो कर शङ्खध्वनि कर रहा है।

गान्धार—षड्ज-पञ्चमहीन गान्धारका ग्रह, अंश और न्यासस्वर मध्यम है। यह राग करुणरसमें ही प्रयुक्त होता है।

म ध नि रि ग म।

मूर्त्ति—अति क्षीणशरीर गान्धार मस्तक पर जटा धारण किये हुए, गैरिकवसन पहने हुए, गलेमें योगपट्ट डाल कर तपस्वीके वनमें आँखें मूंद कर ध्यानमें मग्न है।

पुलिन्दिका—गान्धारऋषभहीना पुलिन्दिकाका ग्रह अंश और न्यासस्वर षड्ज है। यह रागिणी समस्त रसोंमें गाई जाती है।

म रि म प नि ध।

मूर्त्ति—इन्दीवरद्युति पुलिन्दिका मुक्ताओंसे विभूषित और पुष्पस्तवकोंसे आच्छादित हो कर कलहालापोंसे बजा रही है।

मधुरञ्जी—पञ्चमधैवतवर्जिता मधुरञ्जीका ग्रह, अंश और न्यासस्वर षड्ज है। यह रागिणी हिमको वीररसमें गाई जाती है।

स रि ग म नि स।

मूर्त्ति—मधुरञ्जी उपवनमें जा कर नूतन कर्णिकार पुष्पोंके कर्णभूषण और बकुलपुष्पोंकी माला धारण करके कोमल पल्लवका एक शारिकाको अपने हाथमें लिये हुए उसे राम नाम सिखा रही है।

इस सब राग रागिणियोंके संयोगसे अनेक मिश्र राग-रागिणियाँ उत्पन्न हुई है, जिनमें कुछ मिश्र राग-रागिणियोंका यहाँ उल्लेख किया जाता है।

मिश्रराग और रागिणी।

देशाख्या और मल्लारोके संयोगसे सोरठी, नट और मल्लारके सहयोगसे नट्टमल्लिका गुर्जरी और देशीकी मिश्रणसे रामकली, तोड़ी और धनाश्रिकाके संयोगसे मालश्री, देशाख्या और आशावरीके योगसे पटमंजरी, भा और नटके सहयोगसे गौरा, नट और कर्णाटके मिलनसे कल्याणी, कर्णाट और जयके योगसे कर्णाटक मल्लारी, सैन्धवी और तोड़ीके सहयोगसे आशावरी तथा भैरव

और तोडीके संयोगसे सुलावती इत्यादि मिश्रराग और रागिणियोंकी उत्पत्ति हुई है।

रागोंके गानेका समय।

सङ्गीतदर्पणके मतसे दिनमें जिस समय जो राग गानेका विधान है, उसका वर्णन किया जाता है। मधु-माधवी, देशाख्या, भूपाली, भैरवी, वेलावली, मल्लारी, वल्लारी, सोमगुर्जरी, धानश्री, मालश्री, मेघ, पञ्चम, देश-कारी, भैरव, ललिता, वसन्त ये राग रागिणियां प्रातः कालसे ले कर दिनके एक प्रहर तक गाई जाती हैं। गुर्जरी, कौशिक, शावेरी, पटमञ्जरी, रेवा, गुणकिरी, भैरवी, रामकिरी, सौरटी ये रागिणियां दिनके एक प्रहरके वाद दूसरे प्रहरके मध्य गानी चाहिए। वैराटी, तोडी, कामोदी, कुडारिका, गान्धारी, देशी, शङ्करागरण ये राग रागिणियां दिनके दूसरे प्रहरके वाद तीसरे प्रहर-के मध्य गाई जाती है। स्त्री, मालव, गौरी, त्रिवणा, नटकल्याण, सारङ्गनट, नाट, केदारी, कर्णाटी, आभीरी, वड़हंसी, पहाडी ये राग रागिणियां दिनके तीसरे प्रहर-के वाद आधी रात तक गाई जा सकती है। परन्तु राजाकी अनुमतिसे सभी रागरागिणियां सब समय गानेमें कोई दोष नहीं।

पञ्चमसारसंहिताके मतसे विभाषा, ललिता, कामोदी, पटमञ्जरी, रामकेलि, रामकिरी, वराडी, गुर्जरी, देशकारी, शुभगा, आभीरी, पञ्चमी, गडा, भैरवी, कौमारी ये पन्द्रह रागिणियां पूर्वाह्नमें, वराटी, मालवी, केन्द्रा, रेवती, धानश्री, वेलावली, मरहट्टा ये सात रागिणियां मध्याह्न-के समय, गान्धारी, दीपिका, कल्याणी, प्रवारी, वरी, आशावरी, कान्दुला, गौरी, केदारी, पाहिडा ये रागिणियां सायाह्नमें गाई जाती हैं। परन्तु रात्रि दश दण्डके वाद सभी राग गाये जा सकते हैं। उसमें कोई दोष नहीं।

दाक्षिणात्योंके मतसे देशाख्या, भैरवी, देवरक्तहंशी, मालुसा, नक्तरञ्जिका इन रागिणियोंको प्रातःकालमें जो व्यक्ति गाता है, वह अत्यन्त सुखी होता है। सायंकालमें इनका गाना अति निषिद्ध है और शुद्धनट्टा, सारङ्गी नट्ट, वराटिका, छाया, गौडी, ललिता, मल्लारिका, गौरी, तोड़िका, गोड़, मालवगौड़, रामकिरी, कर्णाट, वंगाली ये रागिणियां चन्द्रसे उत्पन्न हैं, प्रातःकालमें इनका गान करना अति निन्दित है, सायंकालमें गान करनेसे महती लक्ष्मी प्राप्त होती है।

कौमुदीके मतसे श्रीपञ्चमीसे ले कर दुर्गापूजा तक वसन्तराग दिनमें किसी भी समय गाया जा सकता है, कोई दोष नहीं। प्रभातमें भैरवादि, मध्याह्नमें वराटि आदि और सायंकालमें कर्णाट आदि गाना उचित है।

इस प्रकार सङ्गीतशास्त्रके आचार्योंने गानकालका वहुविध समय निर्णीत किया है। जिस देशमें जिस प्रकार विधि वतलाई गई है, विज्ञ व्यक्तियोंको चाहिए कि उसी प्रकार कार्य करे।

अकालगानका दोष।

जिस रागरागिणीका जो समय निर्दिष्ट किया गया है, उसका उल्लंघन करना सर्वनाशका मूल है। हां, श्रेणी-वद्ध हो कर राजाकी आज्ञा या रङ्गभूमिमें समयोल्लघन करनेमें दोष नहीं।

दोषका परिहार।

यदि कोई लोभ वा मोहवश समयका उल्लंघन करे, तो अन्तमें गुर्जरी रागिणी गानेसे समस्त दोषोंका खण्डन हो जाता है। किसीका मत है, कि अकालमें कोई राग गाने वा सुननेसे जो दोष लगता है, वह महादेवकी पूजा करनेसे दूर हो जाता है।

ऋतु-विभाग।

सभार्य श्रीराग शिशिर ऋतुमें, सस्त्रीक वसन्त वसन्त ऋतुमें, सपत्नीक भैरव ग्रीष्म ऋतुमें, सदार पञ्चम शरत्ऋतुमें, ससहधर्मिणी मेघ वर्षा ऋतुमें तथा सपत्नीक नट्टनारायण हेमन्त ऋतुमें गानेका विधान है। सर्वदा इसी नियमके वशीभूत हो कर चलना होगा, ऐसा कोई वन्धन नहीं है। सभी राग सब ऋतुओंमें इच्छानुसार गाये जा सकते हैं। हां, इतनी वात जरूर है, कि उक्त नियमानुसार गानेसे श्रोता ओंको अधिकतर आनन्द मिलता है। (सङ्गीतशा०)

रागखाडव (सं० पु०) खाद्यद्रव्यविशेष, खानेकी चीज। रागषाडव देखो।

रागखाण्डविक (सं० पु०) रागषाडवादि प्रस्तुतकारी मोदक।

रागचूर्ण (सं० पु०) १ कामदेव। २ खदिरवृक्ष, खैरका

पेड़। ३ कत्थाचूर्ण, कायफलका चूर्ण। ४ लाक्षारस, लाखका रस।

रागच्छन्न (सं० पु०) रागेण छन्नः। १ कामदेव। २ रामचन्द्र। (त्रि०) रागेण छन्नः। ३ राग द्वारा आच्छन्न।

रागद (सं० पु०) रागं ददाति दा-क। १ सैरन्ध्रीक्षुप। २ रागदाता, राग देनेवाला। ३ क्रोधोद्दीपक, गुस्सा उपजानेवाला।

रागधाक्ति (सं० पु०) रागस्य रागमय आकिः परिः क। मसूर।

रागचूर्ण (सं० पु०) माणिक्य।

रागद्रव्य (सं० क्ली०) रञ्जनद्रव्य, रंग।

रागपट्ट (सं० क्ली०) मूल्यवान् प्रस्तरभेद, एक प्रकारका बहुमूल्य पत्थर।

रागपुष्प (सं० पु०) रागविशिष्ट रक्तवर्णपुष्पं यस्य। १ बन्धूक, गुलदुपहरिया। २ रक्ताम्लान।

रागपुष्पी (सं० स्त्री०) रागयुक्तं पुष्पं यस्याः ङीप्। जवा।

रागप्रसव (सं० पु०) रागयुक्तः रक्तवर्णः प्रसवः पुष्पं यस्य। १ बन्धूक, गुलदुपहरिया। २ रक्ताम्लान।

रागबन्ध (सं० पु०) १ अनुरागका चिह्न। २ संगीतके अनुसार योगका समन्वय।

रागभञ्जन (सं० पु०) १ एक विद्याधरका नाम। २ क्रोधका अपनोदन, क्रोधको हटाना या दूर करना।

रागमञ्जरी (सं० स्त्री०) एक नायिकाका नाम।

रागमय (सं० त्रि०) १ लोहितवर्णयुक्त लाल रंगका। २ प्रिय, प्यारा।

रागमाला (सं० स्त्री०) रागोंका समूह।

रागमुक्त (सं० पु०) रागेण मुच्यते इति मुच-क्विप्। माणिक्य।

रागरज्जु (सं० पु०) रागो रज्जुरिव यस्य, नायकयोः पर स्परानुरागवद्धत्वात्तथात्वं। कामदेव।

रागलता (सं० स्त्री०) रागस्य वनिता स्त्रीव। कामदेव-की स्त्री रति।

रागलेखा (सं० स्त्री०) चन्दन आदिका चिह्न या रेखा।

रागवत् (सं० त्रि०) रागो विद्यतेऽस्य राग मतुप् मस्य व। रागयुक्त, रागविशिष्ट।

रागविरोध (सं० पु०) रागका ज्ञान।

रागविवाद (सं० पु०) गानेको पसीज।

रागवृन्त (सं० पु०) रागस्य वृन्त इव। कामदेव।

रागषाडव (सं० पु०) खाद्य द्रव्यविशेष, एक प्रकारका खाद्य पदार्थ। यह अनार और दाखसे बनता है। इसका गुण रुचिकारक, लघुपाक वात, पित्त और कफनाशक माना गया है। (राजव०)

सुश्रुतके मतसे—लघु, वृष्य, मधुर, हृद्य, रोचन और दीपन तथा तृष्णा मूर्च्छा, श्रम, छर्दि और श्रमनाशक।

(सुश्रुत १४६ अ०)

२ एक प्रकारका खाद्यद्रव्य, आमका मुरब्बा। इसके बनानेका तरीका—कच्चे आमको घीमें थोड़ा भुन कर गुड़में उस पाक करे। पाक सिद्ध होने पर उतार ले और उसमें मिर्च और इलायची डाल दे। इसका गुण पुष्टि कारक, बलप्रद पित्त, वात, श्रम और अरुचिनाशक, स्निग्ध, गुरु और तर्पण। इसको रागखाण्डव या राग-खाडव भी कहते हैं।

रागसाण (सं० स्त्री०) मनःशिला, मैनसिल।

रागसूत्र (सं० क्ली०) रागयुक्त रक्तवर्ण सूत्र। १ तुलासूत्र, तराजूका सूता। २ पट्टसूत्र, रेशमका सूता।

रागाङ्गी (सं० स्त्री०) रागविशिष्टं अङ्गं यस्याः ङीप्। मञ्जिष्ठा, मजीठ।

रागाढ्या (सं० स्त्री०) रागेण आढ्या, मञ्जिष्ठा, मजीठा।

रागानुग (सं० त्रि०) रागका अनुगामी।

रागान्ध (सं० त्रि०) क्रोधान्ध, मारे क्रोधके।

रागान्वित (सं० त्रि०) १ क्रुद्ध जिसे क्रोध हो। २ जिसे राग या प्रेम हो।

रागारु (सं० त्रि०) जो किसीको कुछ देनेकी आशा पैदा कर भी न दे उसे रागारु कहते हैं।

"आशां वधवतीं कृत्वा यो हन्ति विमुखो जनः।

स ज्ञेयोऽपि रागारुर्यो वाग्वत् दर्शयेत्॥"

(शब्दमाला)

रागालाप (सं० पु०) संगीतशास्त्रके अनुसार राग समूहों का आलाप।

रागाशनि (सं० पु०) रागेषु विषयवासनासु अशनिरिव। बुद्धदेव।

रागिन् (सं० त्रि०) रन्ज (संपृचानुरुधेति। पा ३।२।१४२) इति तच्छीलादिषु घिणुन्, यद्वा रागोऽस्यास्तीति राग-इनि। १ अनुरक्त, विषयवासनामें फंसा हुआ।

इस संसारमें जीव दो श्रेणियोंमें विभक्त हैं, रागी और विरागी। फिर इन दो मानवोंके चित्त भी दो प्रकारके हैं। उक्त रागी मूर्ख और चतुर इन दो भागोंमें तथा विरागीज्ञात, अज्ञात और मध्यम इन तीन भागोंमें विभक्त हैं।

संसारमें जिनका अनुराग है वही रागी कहलाते हैं। उक्त रागियोंके बार बार विविध सुख और दुःख हुआ करते हैं। स्त्री, पुत्र, धन, पान और अभ्युदय आदि जो कुछ पानेसे ही रागियोंके सुख और उन्हें न पानेसे ही क्षण क्षणमें भारी दुःख होता रहता है। जिस उपायसे ऐहिक सुख प्राप्त हो, उसी सुखसाधन उपायसे रागियोंको काम करना उचित है। सुतरां जो व्यक्ति सुखविघ्नकारी है, उसीको शत्रु और जो सुख देनेवाला हो उसीको मित्र समझना चाहिये। उनमेंसे चतुर रागी किसी हालतसे भी मुग्ध नहीं होते। मूर्ख रागी ही सर्वत्र विमुग्ध होते हैं। (देवीभाग० १।३३ अ०) २ रक्तवर्णविशिष्ट, लाल रंगका। ३ लाल, सुर्ख। ४ रञ्जनकारी, रंगनेवाला। (पु०) ५ तृणधान्यविशेष मड़ुवा या मकरा नामक कदन्न। पर्याय—लाङ्गल, बहुतरकणिश, गुच्छकणिश। इसका गुण तिक्त, मधुर, कषाय, शीतल, पित्तास्रनाशक और बलकर माना गया है। (राजनि०) ६ छः मात्रावाले छन्दोंका नाम। ७ अशोकवृक्ष।

रागिणी (सं० स्त्री०) रागोऽस्त्यस्या इति राग इनि ङीप्। १ विदग्धा स्त्री। २ पुराणानुसार मेनाकी बड़ी कन्याका नाम। ३ जयश्री नामकी लक्ष्मी। ४ संगीतमें किसी रागकी पत्नी या स्त्री। विशेष विवरण राग शब्दमें देखो।

रागी (सं० पु०) रागिन् देखो।

राघव (सं० पु०) रघोरपत्यमिति रघु अण्। १ रघुके वंशमें उत्पन्न व्यक्ति। २ श्रीरामचन्द्र। ३ अज। ४ दशरथ। ५ समुद्रजात महामत्स्यविशेष, समुद्रमें रहनेवाली एक प्रकारकी बहुत बड़ी मछली।

"अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजनविस्तृतः।
तिमिङ्गिलगिलोऽप्यस्ति तद्गिलोऽप्यस्ति राघवः॥"
(कलापव्याकरण कृद्वृत्ति १ पा० दुर्गसिंह)

राघव—१ गणेशस्तुतिके रचयिता। २ विरहिणीमनोविनोदटीकाके प्रणेता। ३ वैद्यविलासके रचयिता।

राघव आचार्य—१ इन्दिराभ्युदयकाव्य और उत्तरचम्पूरामायणके प्रणेता। २ तर्करत्नार्णवके रचयिता। ३ शुद्धिदीपिका-प्रकाश नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। ४ एक विख्यात नैयायिक तथा न्यायरत्नके प्रणेता रघुनाथ पर्वतीकरके गुरु।

राघव चक्रवर्त्ती—कार्त्तिकीपटल, जातकसारसंग्रह और सूर्यसिद्धान्तरहस्यके प्रणेता। सम्भवतः १५९२ ई०में उन्होंने शेषोक्त ग्रंथ समाप्त किया।

राघवचैतन्य—कविकल्पलता और महागणपति-स्तोत्रके प्रणेता।

राघवचैतन्य (सं० पु०) एक प्रसिद्ध संस्कृत कवि।

राघवदेव—पद्धतिकार शार्ङ्गधरके पितामह और गोपालके पिता। ये राजा हम्मीरकी सभामें विद्यमान थे। इनके बनाये कुछ श्लोक मिलते हैं।

राघवदेव—गणेशशिष्य लघुचिंतन नामक मीमांसाग्रंथके प्रणेता।

राघवनन्दन—पञ्चपर्णी टीका नामक ज्योतिर्ग्रन्थके रचयिता।

राघवपञ्चानन भट्टाचार्य—आत्मतत्त्वप्रबोध नामक न्यायग्रंथके प्रणेता।

राघवभट्ट—१ कालीतत्त्वरहस्य, दुर्गातत्त्व और पदार्थादर्श नामक शारदातिलकटीकाके रचयिता। तन्त्रसारमें इनका उल्लेख है।

२ शार्ङ्गके पुत्र और महादेव सर्वज्ञ वादीन्द्रके शिष्य। इन्होंने १२५२ ई०में न्यायसारविचार प्रणयन किया।

३ अर्थोद्द्योतनिका नाम्नी अभिज्ञान शकुन्तलकी टीका, उत्तररामचरितटीका और मालतीमाधवटीका नामक तीन ग्रंथके रचयिता। ४ विख्यात वैष्णव पण्डित। श्रीनिवासाचार्यकी सहायतासे इन्होंने व्रजधामका उद्धार किया।

राघवराय—हस्तरत्नावलीके रचयिता।

राघवराय—नवद्वीपके एक राजा तथा स्मार्तव्यवस्थार्णवके प्रणेता रघुनाथके प्रतिपालक। नवद्वीप देखो।

राघवानन्द—१ एक राजमन्त्री। उनके बनाये नाटकका दो श्लोक साहित्यदर्पण (७।४६)में उद्धृत हुआ है। २ सिद्धान्तकौमुदी नामकी सिद्धान्तसंग्रहटीकाके रचयिता।

राघवानन्दमुनि—परमार्थसारटीका और विद्यार्णवमञ्जरीके प्रणेता।

राघव नन्दपति—पातञ्जलरहस्यके रचयिता।

राघवानन्द शर्म्मन्—विद्वत्तोषिणी नामकी श्राद्धपद्धतिके टीकाकार।

राघवानन्द सरस्वती—अद्वैतवाक्यवृत्तिप्रकाशिकाके प्रणेता रामानन्द सरस्वतीके गुरु। ये रामभद्रके भी गुरु थे।

राघवानन्द सरस्वती—अद्वयानन्दके शिष्य। इन्होंने तर्कार्णव या तत्त्वामृतप्रकाशिनी नामकी सांख्यतत्त्वकौमुदीकी टीका, मन्वर्थचन्द्रिका, मीमांसास्तवक, विद्यामृतवर्षिणी तथा मीमांसासूत्रदीधिति या न्यायावलीदीधिति नामके कई ग्रन्थोंकी रचना की।

राघवेन्द्र—जयतीर्थकृत कर्मनिर्णयकी टीकाटिप्पण, जयतीर्थकृत तत्त्वोद्योतविवरणकी टीका, जयतीर्थकृत तत्त्वप्रकाशिका नामकी आनन्दतीर्थके ब्रह्मसूत्रभाष्यकी तन्त्रदीपिका नामकी टिप्पणी, व्यासतीर्थकृत तात्पर्यचन्द्रिकाकी टिप्पणी, जयतीर्थकृत न्यायसुधाकी परिमल नामकी टीका, आनन्दतीर्थकृत विष्णुतत्त्वनिर्णयकी भावदीप नामकी टीका, तर्कताण्डवटीकाका न्यायदीप नामक टिप्पण तथा आनन्दतीर्थकृत ब्रह्मसूत्रभाष्यकी जयतीर्थकृत टीकाके भावदीप नामक टिप्पण आदिके रचयिता।

राघवेन्द्र—१ अमरकोषभाष्यके प्रणेता। इनके पिताका नाम था कृष्णभट्ट। २ मन्त्रार्थदीप और रामप्रकाश नामक दो ग्रन्थके रचयिता तथा काशीनाथके पुत्र और भवानन्द सिद्धान्तवागीशके छात्र। ये शतावधान नामसे सर्वत्र ख्यात थे।

राघवेन्द्र आचार्य—विषमपदा नामकी परिभाषेन्दुशेखरकी टीका, प्रभा नामकी शब्दकौस्तुभकी टीका, विषमा नामकी शब्देन्दुशेखरकी टीका और राघवेन्द्रीय नामक एक व्याकरणके प्रणेता। १८५१ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

राघवेन्द्रमुनि—वैष्णवसिद्धान्तवैजयन्ती और उसकी टीकाके रचयिता।

राघवेन्द्रयति—१ सुधीन्द्रयतिके शिष्य एक प्रसिद्ध संस्कृत दार्शनिक। ये तन्त्रदीपिका नामक ब्रह्मसूत्रभाष्य, भगवद्गीतार्थ विवरण तथा ईश, केन, काठक छान्दोग्य तैत्तिरीय, बृहदारण्यक, माण्डूक्य आदि उपनिषदोंकी भाष्यकी रचना कर गये हैं। इसके अलावा जयतीर्थकृत कर्मनिर्णयकी टीका, जयतीर्थका तत्त्वोद्योतविवरण, आनन्दतीर्थरचित ब्रह्मसूत्रभाष्यके ऊपर जयतीर्थने जिस तत्त्वप्रकाशिका नामकी टीका लिखी उस टीकाकी टीका, न्यायदीप नामक तर्कताण्डवकी टीका, व्यासतीर्थकृत तात्पर्यचन्द्रिकाकी टीका, परिमल नामक जयतीर्थकी न्यायसुधाकी टीका आदि ग्रन्थ भी राघवेन्द्रके बनाये हैं। फिर किसीके मतसे शेषोक्त ग्रन्थके रचयिता राघवेन्द्र राघवेन्द्रयतिसे भिन्न हैं।

राघवेन्द्र शतावधान—बङ्गालके एक अद्वितीय श्रुतिधर पण्डित। इनके पिताका नाम काशीनाथ और माताका नाम राजेन्द्र और महेश था। विद्वन्मोदतरङ्गिणीके रचयिता रामदेवचिरञ्जीव इनके पुत्र थे। इनके गुरुका नाम था भवानन्द सिद्धान्तवागीश। इन्होंने मन्त्रार्थदीप और रामप्रकाशकी रचना की।

राघवेन्द्र सरस्वती—सिद्धान्तशिरोमणि नामक वैदान्तिक ग्रन्थके रचयिता।

राघवाभ्युदय (सं० पु०) एक प्रसिद्ध संस्कृत नाटक।

राघवायन (सं० क्ली०) राघवस्य रामस्य चरिताभिधायक शास्त्र। रामायण।

"इतिहासपुराणानि राघवायनभारतं।
समासिधीयतान्यत्र सर्वेष्व तानि श्रुयानि वै॥" (अग्निपु०)

राघवीय (सं० क्ली०) राघवका रचा हुआ ग्रन्थ।

राघवेश्वर (सं० क्ली०) शिवलिङ्गभेद।

राङ्कव (सं० पु०) एकफरक पाठका कोश।

राङ्कव (सं० क्ली०) रङ्कोः मृग रङ्कु (रङ्कोरमनुष्येऽण्च। पा ४।२।१००) इति अण्। १ मृगलोमजात पटादि, मृगोंके रोएँसे बना हुआ कपड़ा आदि। २ पशम, नरम

ऊन। (पु०) ३ गाभि, गाय। (त्रि०) ४ राङ्कवाकृति, गायके जैसा मुखवाला।

राङ्कवक (सं० पु०) मनुष्य।

राङ्कवायण (सं० त्रि०) रङ्कुसे जात या आगत।

राङ्गण (सं० क्ली०) पुष्पविशेष, एक प्रकारका फूल।

राचना (हिं० क्रि०) १ रचना, बनाना। २ रचा जाना, बनना। ३ रंगा जाना, रंग पकड़ना। ४ लीन होना, मग्न होना। ५ शोभा देना, भला जान पड़ना। ६ प्रसन्न होना। ७ प्रभावान्वित होना, सोचमें या चिन्तामें पड़ना। ८ अनुरक्त होना, प्रेम करना।

राछ (हिं० पु०) १ कारीगरोंका औजार। २ जुलाहोंके करघेमें एक औजार जिससे तानेका तागा नीचे उठता और गिरता है। यह दो नरसलोंका होता है जिसके बीचमें ऊपर नीचे तागे बंधे होते हैं और जिनके बीचसे तानेके तागे एक एक करके निकाले जाते हैं। ३ बरात, जलूस। ४ लकड़ीके अंदरका पका अंश, हीर। ५ लोहारका बड़ा हथौड़ा। ६ चक्कीके बीचका खूंटा जिसके चारों ओर ऊपरका पाट फिरता है।

राछबंधिया (हिं० पु०) वह जुलाहा या आदमी जो राछ बांधनेका काम करता हो।

राज (हिं० पु०) १ देशका अधिकार या प्रबंध, प्रजा-पालनकी व्यवस्था, हुकूमत, शासन। २ पूरा अधिकार, खूब चलती। ३ उतना भूमिमान जितना एक राजा द्वारा शासित होता है, एक राजा द्वारा शासित देश। ४ देश, जनपद। ५ अधिकारकाल, समय। ६ राजा। ७ वह कारीगर जो ईंटोंसे दीवार आदि चुनता और मकान बनाता है, राजगीर, थवई।

राज़ (फा० पु०) रहस्य, भेद।

राजक (सं० क्ली०) राज्ञां समूहः राजन् (गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजेति। पा ४।२।३९) इति वुञ्। १ राजाओंका समूह। २ कृष्णागुरु, काला अगर। राजन् स्वार्थे कन्। (पु०) ३ राजा। (त्रि०) ४ दीप्तिकारक, चमकनेवाला।

राजकथा (सं० स्त्री०) राजाख्यायिका, इतिहास।

राजकदम्ब (सं० पु०) कदम्बानां राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः। कदम्बविशेष, एक प्रकारका कदंब जिसके फूल बड़े और स्वादिष्ट होते हैं।

राजकन्यका (सं० स्त्री०) राज्ञः कन्यका। राजकन्या, राजाकी पुत्री।

राजकन्या (सं० स्त्री०) राज्ञः कन्येव। १ केविकापुष्प, केवड़ेका फूल। २ नृपसुता, राजाकी पुत्री।

राजकर (सं० पु०) राजग्राह्यकरः। वह कर जो प्रजासे राजा लेता है, राजाको मिलनेवाला महसूल।

राजकरण (सं० पु०) १ न्यायालय, अदालत। २ राजनीति।

राजकर्कटी (सं० स्त्री०) चीनाककंटी, एक प्रकारकी ककड़ी।

राजकर्ण (सं० पु०) हस्तीका शुण्ड, हाथीका सूंड़।

राजकर्त्ता (सं० पु०) राजकर्तृ देखो।

राजकर्तृ (सं० पु०) १ वह व्यक्ति जो राजगद्दी पर बैठते समय राजाकी सहायता करता है। २ जो पुरुष दूसरेको राजसिंहासन पर बैठाता है, किसीको राजगद्दी पर यथेच्छ बैठाने और उतारनेकी शक्ति रखनेवाला पुरुष।

राजकर्मन् (सं० क्ली०) राज्ञः कर्म। राजाका कार्य, वह काम जो राजाके कर्त्तव्य हो।

राजकलश (सं० पु०) काश्मीरके एक राजा।

काश्मीर देखो।

राजकला (सं० स्त्री०) चंद्रमाकी सोलह कलाओंमेंसे एक कलाका नाम।

राजकशेरु (सं० पु०) कशेरूणा राजा, राजदन्तादित्वात् पर निपातः। भद्रमुस्ता, नागरमोथा।

राजकार्य (सं० क्ली०) राज्ञः कार्यं। राजाका काम।

राजकार्श (सं० क्ली०) शालवृक्ष, सखुआका पेड़।

राजकाष्ठ (सं० क्ली०) पतङ्गचंदन, बक्कम नामक लकड़ी।

राजकिनेय (सं० पु०) रजकीका पुं अपत्य।

राजकीय (सं० त्रि०) राज्ञ इदं राजन् (राज्ञःकच। पा ४।२) इति छः, ककारश्चान्ता देशः। राज सम्बन्धीय, राजा या राज्यसे सम्बन्ध रखनेवाला।

राजकुंअर (हिं० पु०) राजकुमार।

राजकुमार (सं० पु०) राज्ञः कुमारः। राजपुत्र, राजाका लड़का। कविकल्पलतामें लिखा है, कि राजपुत्रमें निम्नोक्त गुण रहने चाहिये। यथा—शस्त्र, शास्त्र, श्रो-

समूह, बल, गुणसमूह, धाराओं, सुरुचि, राजभक्ति और शुभगति आदि।

"कुमार स्वस्त्राभीक्ष्ण गुणोत्त्रयः।
वाग्मी सुरुची राजभक्तिः शुभगत्यादयः॥"
(कल्पलता)

राजकुमारिका (सं० स्त्री०) राजकन्या, राजाकी पुत्री।

राजकुल (सं० क्ली०) राजा कुल। राजवंश, राजाओंका खानदान।

राजकुलक (सं० पु०) पटोलसता परवलकी लता।

राजकुलभट्ट (सं० पु०) १ राजसभापण्डित। २ राजभाट, यह भी राजाकी कुलप्रशस्ति वर्णना करता है।

राजकुष्माण्ड (सं० पु०) वार्त्ताकी, बैंगन।

राजकृत् (सं० पु०) राजकर्त्ता, राजा।

राजकृत (सं० त्रि०) राजाकी कृत। राजा द्वारा अनुष्ठित जो राजा द्वारा किया गया हो।

राजकृत्य (सं० क्ली०) राजा कृत्यः। राजका काम।

राजकृत्वन् (सं० पु०) राजकर्त्ता।

राजकोट—बम्बईप्रदेशके काठियावाड़के हालार विभागके अन्तर्गत एक देशी सामन्तराज्य। यह अक्षा० २१ ३´ से २२ २७´ उ० तथा देशा० ७० ४९´ से ७१ ,१ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २८३ वर्गमील और जनसंख्या ५० हजारसे ऊपर है। यहांकी जमीन ऊँची नीची है। यों तो इस राज्यमें कितनी नदी बहती है, पर जल केवल भादों और अगहनमें ही बारहों महीना रहता है। धान, गेहूं ईख और कपास यहांकी प्रधान उपज है। जलवायु स्वास्थ्यकर है। इसमें राजकोट नामक एक शहर और ६० गांव लगते हैं।

काठियावाड़का राजकोट २य श्रेणीका सामन्तराज्य समझा जाता है। यहांके अधिपति नवानगर राजवंश की शाखा और ज्याड़ेजा राजपूतवंशीय हैं। राम राजकुल परपोत्र नवोजाजी छोटे ठाकुर कुंवर विभोजी राज्यके स्थापयिता माने जाते हैं। वर्त्तमान राजाका नाम है एच, एच, ठाकुर साहब सर लाखाजी राज साहब के, सी, आइ ई। इन्हें गोद लेनेका अधिकार है तथा ६ सलामी तोपें मिलती हैं। राज्यकी आय करीब तीन लाखकी है जिसमेंसे वृटिश गवर्मेण्ट और जूनागढ़को नवाब दोनोंको मिला कर २१३२१) रु० करमें दत्त होते हैं। सेनासंख्या ११६ है। राज्यमें ३ म्युनिसपलिटी, ९५ स्कूल और ३ अस्पताल हैं।

२ राजकोट सामन्तराज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २२ १८ उ० तथा देशा० ७० ५०´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या करीब चालीस हजार है। हिन्दूकी संख्या सबसे ज्यादा है।

यहां दुर्ग और काठियावाड़ पोलिटिकल एजेन्सीकी प्रधान कचहरी है। देशीय सामन्त-राजकुमारोंकी शिक्षा के लिये यहां एक विश्वविद्यालय है। इसके सिवा शिल्प-विद्यालय उच्च अंगरेजी विद्यालय डाकघर, तारघर, गिरजा जेल, डाकबंगला, धर्मशाला और भावनगर गण्डाल रेलवेका स्टेशन है। शहरमें म्युनिसिपलिटी भी है।

राजकोल (सं० पु०) राजबदर, बड़ा बेर।

राजकोलाहल (सं० पु०) संगीतमें तालके साठ मुख्य भेदोंमेंसे एक।

राजकोशातक (सं० पु०) झिंगा फल, एक प्रकारका नेनुआ जो बहुत बड़ा होता घीया तरोई।

राजकोशातकी (सं० स्त्री०) राजप्रिया कोशातकी। पीत-घोषा, घीया तरोई। संस्कृत पर्याय—हस्तिपर्णिका, धामार्ग, कर्कशफला, महाजाली, सपीतक। इसका गुण—शीतल ज्वरनाशक, कफवातवर्द्धक। (मदनविनोद)

राजक्रय (सं० पु०) सोमक्रय सोम खरीदना।

राजक्रयणी (सं० स्त्री०) सोमक्रय-कारिणी, सोम खरीदनेवाली स्त्री।

राजक्रिया (सं० स्त्री०) राजकार्य, राजाका काम।

राजक्षवक (सं० पु०) राजसर्षप, बड़ा राई।

राजखर्जूरी (सं० स्त्री०) राजप्रिया खर्जूरी। श्रेष्ठ खर्जूरी, पिण्डखजूर।

राजगढ़—मध्यभारतके अन्तर्गत भूपाल पोलिटिकल एजेन्सीके अधीन मालवका एक सामन्तराज्य। यह अक्षा० २३ २०´ से २४ ११´ उ० तथा देशा० ७६ २६´ से ७७ १८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ९६२ वर्गमील है। इसके उत्तरमें ग्वालियर और कोटा राज्य दक्षिणमें ग्वालियर और देवासराज्य, पूरबमें भूपालराज्य और

पश्चिममें किलचीपुर राज्य है। मुगलप्रभावके अधःपतन पर ओमत राजपूतोंने इसका कुछ स्थान दखल कर लिया। तभीसे उस अधिकृत जिलेका ओमतवार नाम हुआ है। १४४८ ई०में ओमतवारके सरदारने 'रावत' की उपाधि पाई। राजगढ़के सामन्त आज भी उसी उपाधिका व्यवहार करते हैं। इस वंशके लोग भोजराज और विक्रमादित्यसे अपना कुलपरिचय देते हैं। १६८१ ई०में उस समयके राजपुत्र पिताके दीवान या मन्त्री थे। उन्हींकी चेष्टासे राजगढ़पति अपना राज्य बांट देनेको बाध्य हुए। दीवानके अंशमें जो भूभाग पड़ा, उसका नाम 'नरसिंहगढ़' और रावतके दखलमें जो भूभाग रहा, उसका नाम 'राजगढ़' रखा गया। महाराष्ट्र अभ्युदयकालमें नरसिंहगढ़ होलकरका और राजगढ़ सिन्धियाका करद हुआ।

१८११ ई०में राजगढ़पति रावत् मतिसिंहने मुसलमानीधर्ममें दीक्षित हो अपना नाम 'महम्मद अबदुल रसीद खाँ' रखा। १८७२ ई०में वृटिश गवर्मेण्टसे उन्हें 'नवाब'-की उपाधि तथा ११ सलामी तोपें मिलीं। १८८० ई०में उनकी मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के बख्तावरसिंह गद्दी पर बैठे। १८०८ ई०में बख्तावरके मरने पर उनके लड़के बलबहादुरसिंह 'रावत्' हुए। उस समय ये बहुत बच्चे थे। पितामहकी तरह इस्लाम धर्ममें दीक्षित नहीं हुए। सिंहासन पर बैठते ही उनके आत्मीय सरदारोंने फिरसे उन्हें ओमत्‌राजपूत कह कर ग्रहण किया। पीछे बन्नेसिंह १८०२ ई०में राजसिंहासन पर अधिरूढ़ हुए। इनकी वंशपरम्परा उपाधि थी 'हिज हाइनेस' और 'राजा'। १९०८ ई०में उन्हें के, सी, आई, ई, की उपाधि मिली। वर्त्तमान सामन्तका पूरा नाम है एच, एच, राजा रावत् सर वीरेन्द्रसिंह साहब बहादुर के. सी. आई. ई। इन्हें भी ११ तोपों की सलामी मिलती है।

इस राज्यमें राजगढ़ और ब्योरा नामक दो शहर और ६१२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है। हिन्दूकी संख्या ज्यादा है। वार्षिक राजस्व करीब ५ लाख रुपया है जिसमेंसे नल्खियान जिलेके लिये सिन्धियाको ८५६७२ रु० और कालीपीत परगनेके लिये अलवारपतिको १०००) रु० करमें देने होते हैं। अफीम और धान यहांकी प्रधान उपज है। ज्वार, मुन्दरी, चना और गेहूं भी कम नहीं उपजता। राजगढ़ शहरमें सेन्ट्रलजेल, तीन एंट स्कूल और आठ प्राइमेरे स्कूलके सिवा दो अस्पताल भी हैं।

२ उक्त राजगढ़ राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २४° ७´ उ० तथा देशा० ७६° ४४´ पू० नेवाज नदीके बांये किनारे अवस्थित है। जनसंख्या पांच हजारसे ऊपर है। १६४० ई०में रावत् मोहनसिंहने इसे बनाया था। शहरमें सामन्त राजभवनके अतिरिक्त एक सराय, एक स्कूल और अस्पताल तथा पोष्ट और टेलिग्राफ आफिस है।

राजगढ़—मध्यप्रदेशके डिपटी भील एजेन्सीके अधीन एक छोटा सामन्तराज्य। डकैती और बदमाशीके लिये पहले यह स्थान बहुत मशहूर था। यहांके भील आदि जंगली जाति निकटवर्त्ती राज्यमें जा कर बहुत ऊधम मचाती थी। इसलिये अपने अपने सीमान्तप्रदेशकी रक्षा करनेके लिये होलकर और धारराजने यहांके सरदार वा भूमिया (भुंइया)-को यह स्थान छोड़ दिया तथा शान्तिरक्षाके लिये कुछ रुपये भी दिये। १८७१ ई०की १८वीं मार्चको वृटिश गवर्मेण्टने यहांके भूमियाको राजगढ़ और धाल इन दो ग्रामोंकी सनद दी।

राजगढ़—पञ्जाबके सर्मूरराज्यके अन्तर्गत एक दुर्ग। यह अक्षा० ३०° ५२´ उ० तथा देशा० ७७° २३´ पू०के मध्य अवस्थित है। दुर्ग चौकोन है। चारों कोनमें चार बुर्ज हैं। बुर्जकी ऊंचाई ४० फुट और घेरा २० वर्गफीट। १८१४ ई०में गुरखा लोगोंने दुर्गमें आग लगा कर उसे नष्ट कर डाला था। अभी उसका पुनः संस्कार हुआ है। समुद्रतहसे यह ७११५ फुट ऊंचा है।

राजगढ़—मध्यप्रदेशमें चान्दा जिलेके अन्तर्गत मूल तहसीलका एक परगना। भूपरिमाण ४२७ वर्गमील है। इसमें सौली और मूल नामक दो शहर और १४० ग्राम लगते हैं। पहले यह स्थान वैरागढ़के गोंडराजवंशके अधिकारमें था।

राजगढ़—राजपूतानेके अलवार राज्यके अन्तर्गत राजगढ़ तहसीलका एक सहर। यह अक्षा० २७° १४´ उ० तथा

देशा० ७५° २८' पू०के मध्य मलयार शहरसे २२ मील दक्षिण मवस्थित है। अक्षांश ११ हजारसे ऊपर है। मलयार-राज्यके स्थापयिता प्रतापसिंहने १७६७ ई०में इस बसाया। शहरकी दीवार और बाद महाराज राजा बख्तावर सिंहने बनवाया था। शहरमें एक डाकघर, एक वर्नाक्युलर स्कूल और एक अस्पताल भी है।

राजगढ़—राजपूतानेके बीकानेर राज्यका एक शहर। यह अक्षा० २८° ३८' उ० तथा देशा० ७५° २८' पू०के मध्य बीकानेर शहरसे १३५ मील पूरब और उत्तर पूरबमें अवस्थित है। जनसंख्या ४१३६ है। महाराज गजसिंहने १७६६ ई०में इसे बसाया था। उन्हींके नाम पर इसका नामकरण हुआ है। यहां एक ऐङ्गलो-वर्नाक्युलर स्कूल एक डाकघर और एक अस्पताल है।

राजगद्दी (हिं० स्त्री०) १ राजसिंहासन, राजाके बैठनेका आसन। २ राज्याधिकार। ३ राज्याभिषेक राज्यारोहण।

राजगवी (सं० स्त्री०) गायकी जातिका एक पशु।

राजगामिन् (सं० त्रि०) राजानं गच्छतीति गम् णिनि। राजसङ्गामी, राजाका।

"अनृतञ्च समुत्कर्षे राजगामि च पैशुनम्।
गुरोश्चालीकनिर्बन्धः समानि ब्रह्महत्यया॥"

(मनु ११ अ०)

जिसका कोई उत्तराधिकारी न रहे, उसका धन राजगामी अर्थात् राजाके अधिकारमें चला जाता है।

राजगिरि (सं० पु०) १ मगधदेशके एक पर्वतका नाम। २ शाकभेद, बथुआ साग। यह साग स्थूल और सूक्ष्म भेदसे दो प्रकारका है। पर्याय—राजाद्रि, राजशाकिनी, राजशाकनिका, इसका गुण रुचिकर, पित्तनाशक और शीतल तथा स्थूलका गुण अति शीतल और अतिशय रुचिप्रद माना गया है। (राजनि०) ३ राजपद स्त्री।

राजगीर (हिं० पु०) मकान बनानेवाला कारीगर राज।

राजगीरी (हिं० स्त्री०) राजगीरका कार्य या पद।

राजगुरु (सं० पु०) राजाका गुरु राजाका उपदेष्टा।

राजगृह (सं० पु०) राजप्रासाद, राजभवन।

राजगृह—पूर्व भारतकी सुप्राचीन राजधानी। इस स्थानको हिन्दू, जैन, बौद्ध सभी पवित्र समझते हैं। महाभारतमें इस स्थानको गिरिव्रज कहा है। कुशाग्रके बसुने गङ्गा और शोणनदीके सङ्गमस्थान पर पहले पहल इस नगरको बसाया। वसुके पौत्र जरासन्धके समय यहां मगधकी राजधानी थी। वासुदेव जब स्नातक ब्राह्मण वेशमें जरासन्धका वध करनेके लिये भीम अर्जुनके साथ गिरिव्रजमें आ रहे थे, तब उन्होंने इस स्थानका यों वर्णन किया है—

'हे पार्थ! देखो मगधराज्यका महानगर कैसा शोभता है। उत्तम उत्तम अट्टालिकाओंसे सुशोभित यह महानगरी सुन्दर निरुपद्रव और गवादिसे पूर्ण है। वैहार, वराह, वृषभ, ऋषिगिरि तथा चैत्यक ये पांचों शैल मानो सम्मिलित हो कर गिरिव्रज नगरकी रक्षा कर रहे हैं। पुष्पित शाखाग्र सुगन्धपूर्ण मनोहर लोध्रवनराजिने उन शैलोंको मानो घेर रखा है।' (सभा० २१ अ०)

महाभारतमें जिस प्रकार पञ्चशैलवेष्टित गिरिव्रजका उल्लेख है, वायुपुराणीय राजगृहमाहात्म्यमें भी इसी प्रकार वैभार, विपुल रत्नकूट, गिरिव्रज और रत्नाचल इन पांच शैलोंसे वेष्टित राजगृहका उल्लेख देखनेमें आता है। (राजगृहमा० ११२।१४) महाभारतमें गिरिव्रजको राजधानी, परंतु राजगृहमाहात्म्यमें उसे एक शैल बताया है। इसके सिवा उक्त पञ्चशैलका भी नामान्तर देखनेमें आता है। उनमेंसे महाभारतमें जो गिरि वैहार नामसे उल्लिखित है, राजगृह माहात्म्यमें वह वैभार तथा वर्त्तमान कालके पालिग्रन्थमें वही 'वेभारो' नामसे वर्णित हुआ है। इस वैभार शैलकी सप्तपर्णी गुहामें ५४० ई०सन्के पहले बौद्धसङ्घ हुआ था। इसको चीनपरिव्राजक फाहियान 'पिप्पल गुहा' (Fig. 1888 p. 110) कह कर वर्णन कर गये हैं। इसी गुहामें बुद्ध भोजन करनेके बाद ध्यानस्थ हुए थे। पालिग्रन्थमें इसका पाण्डवशैल और महाभारतमें ऋषिगिरि कहा है। वर्त्तमान विपुल पालिग्रन्थमें वह 'वेपुल्ल' और महाभारतमें चैत्यक नामसे प्रसिद्ध है। राजगृहमाहात्म्यमें जो गिरिव्रज है, महाभारतमें वही वराह तथा वर्त्तमान कालमें उसीका कुछ अंश गिरियक कहलाता है। आज भी कितने हिन्दू, जैन और बौद्ध तीर्थवासी तीर्थदर्शनमें उक्त पञ्चशैल दर्शन करते हैं।

-धर्मी हिन्दूके निकट यह राजगृह तीर्थस्थान समझा जाता है, परंतु प्राचीनकालमें भारतीय आर्योंके निकट इस प्रकार समझा जाता था या नहीं सन्देह है। पुराण और महाभारतमें इस स्थानको पूर्वभारतकी सुदृढ़ और सुरम्य राजधानी बतलाया है सही, पर ब्रह्मावर्त्तवासी आर्यगण बुरी दृष्टिसे ही यह स्थान देखते थे। पञ्चशैलके मध्य गिरिव्रज वा गिरिव्रजमें ही संभवतः जरासंधका प्रमोदभवन अवस्थित था। आज भी वह स्थान 'जरासन्धकी बैठक' कहलाता है। गिरियक शैलके पार्श्ववर्त्ती गिरियक ग्रामके निकटस्थ शैल पर भी सुप्राचीन राजभवनादिका ध्वंसावशेष देखा जाता है। इसके सिवा रत्नगिरिके दक्षिण और उदयगिरिके पार्श्वमें तीर्थयात्री जरासन्धका राजभवन देखने जाते हैं। वर्त्तमान वैभारगिरि, विपुलगिरि, रत्नगिरि, उदयगिरि और सोनागिरि इस पञ्चशैलके मध्यवर्त्ती सभी स्थानोंमें उक्त प्राचीन राजधानी विस्तृत थी। इसीके मध्य उत्तर हंसपुरद्वारसे ले कर पश्चिम रङ्गभूमि तक, दक्षिण रङ्गभूमिसे पूरब नेकपाइवाध तक दीवार खड़ी थी। दीवारके मध्यवर्त्ती यही भूखण्ड प्राचीन राजगृह कहलाता है।* बार्हद्रथवंशीय राजे यहां रहते थे। इस भूखंडके उत्तर मनियारकूप और उसके पास ही बहुत लंबा चौड़ा ईंटोंका टीला पड़ा है। महाभारतमें इसी स्थानको मणिनागका आलय कहा है।† महाभारतमें लिखा है, कि चैत्यकगिरिशृङ्गको भेद कर श्रीकृष्ण भीमार्जुनके साथ राजगृह गये थे।¶ जिस स्थानसे श्रीकृष्णने जरासन्धपुरमें प्रवेश किया था, बहुपरवर्त्तीकालमें वहां विष्णुपद अङ्कित था। हिन्दू लोग उसीको पवित्र पुण्यक्षेत्र समझते थे।

प्राकारविशिष्ट राजगृहके पश्चिम रणभूमि और पञ्चपाण्डु नामक स्थान है। कहते हैं, कि उक्त रणभूमिमें ही भीमके साथ जरासन्धका द्वन्द्वयुद्ध हुआ था। यहांका शैल लाल पत्थरोंसे आच्छादित है। लोगोंका विश्वास है, कि जरासंधके रक्तसे इस स्थानका पत्थर लाल हो गया है। इसके पास ही चित्रलिपिकी तरह पहाड़ पर खोदित बड़ी बड़ी शिलालिपि देखी जाती है। भारतमें जितने प्रकारकी लिपियोंका आविष्कार हुआ है उनमें यही लिपि सर्व प्राचीन समझी जाती है। उस लिपि परसे जो मवेशी आ जाते हैं उससे कितने अक्षर मिट गये हैं। दुःखका विषय है, कि आज तक कोई भी उस लिपिका पाठोद्धार न कर सके हैं।

वसुसे ले कर श्रेणिक बिम्बिसार तक सभी पराक्रान्त क्षत्रिय राजे उक्त प्राचीन राजगृहमें रह कर ही पूर्वभारतका शासन करते थे। पीछे राजा बिम्बिसार, वैभार और विपुलगिरिके उत्तर सरस्वतीनदीके पूरब तथा उष्ण प्रस्रवणसे कुछ दूर नये राजगृहनगरमें जा कर बस गये।

प्रत्नतत्त्ववित् कनिहमने चीनपरिव्राजक फाहियन और युएनचुवंगके विवरणानुसार प्राचीन राजगृहका पर्यवेक्षण कर लिखा है, कि इस प्राचीन राजधानीका परिमाण ८ मीलसे कुछ कम है। इसके चारों ओर जो दीवार खड़ी थी आज भी उसका कुछ अंश देखनेमें आता है। वह दीवार १३ फुट मोटी थी। युएनचुवंगके हिसाबसे गिरियक तक राजगृहकी सीमा पड़ती है, किन्तु कनिंहम इसे स्वीकार नहीं करते। हम लोग जब गिरियकमें राजा 'जरासन्धकी बैठक' तथा प्राचीन राजगृहके पृष्ठसे गिरियक तक पहलेकी तरह दीवारका भग्नावशेष देखते हैं, तब गिरियक (गिरिव्रज) तक एक समय राजगृहकी सीमा रही होगी, इसमें सन्देह नहीं। महाभारतमें भी इसीलिये गिरिव्रजको राजगृहके सीमान्त पञ्चशैलका अन्यतम बताया है।

फाहियनके मतानुसार बिम्बिसारके पुत्र अजातशत्रुने नया राजगृह बसाया। किन्तु हिन्दू और जैनके प्राचीन ग्रन्थानुसार श्रेणिक बिम्बिसारके समय यह नया राजगृह स्थापित हुआ। ७वीं सदीके मध्यभागमें चीनपरि-

---

* महाभारतमें भी इस राजगृहका उल्लेख है—

"यज्ञागारे स्थापयित्वा राजा राजगृहं गत.।" (सभाप०)

† "अर्बुद. शक्रवापी च पन्नगौ शत्रुतापनौ।
स्वस्तिकस्यालयश्चात्र मणिनागस्य चोत्तमः॥
अपरिहार्या मेघा नां मागधा मनुना कृताः।
कौशिको मणिमांश्चैव चक्राते चाप्यनुग्रहम्॥"
(महाभारत० सभाप० २१।८-१)

¶ "चैत्यकस्य गिरे. शृङ्गं भित्वा किमिह छद्मना।
सद्वारेण प्रविष्टाःस्थ निर्भया राजकिल्विषात्॥" (२४।४५)

नामक युएनचुअंग जब राजगृह देखने आये उसी समय बाहरवाली दीवार टूटी फूटी हालतमें पड़ी थी, किन्तु भीतरकी दीवार कुछ अच्छी थी, उस समय इसका घेरा प्रायः ३॥ मील था। अभी जो चिह्न रह गया है वह भी ३ मीलसे कम नहीं होगा। दक्षिणोत्तरमें पहाड़की तरफ मठ था। उसका प्राचीर आज भी ज्योंका त्यों खड़ा है। श्रेणिक-अधिष्ठित नवराजगृह अभी 'राजगिरि' नामसे ही प्रसिद्ध है। राजगृहके उत्तर 'राजगिर' नामक एक नया ग्राम है।

जैनप्रभाव।

श्रेणिक बिम्बिसारके समयसे ही राजगृहमें जैनप्रभाव विस्तृत हुआ। अन्तिम तीर्थंकर महावीर स्वामीने यहांके विपुलाचल पर कुछ समय रह कर मगधपति श्रेणिकको जिनतत्त्वका उपदेश दिया था। प्राचीन जैनपुराण और ग्रन्थसे जाना जाता है, कि श्रेणिकराज महावीर स्वामीके एक कट्टर भक्त थे। उन्होंके समय सैकड़ों व्यक्तिने यहां निर्ग्रन्थ वा जिनधर्म ग्रहण किया। महावीर स्वामीके रहनेके कारण राजगृह जैनोंके निकट एक महापुण्यक्षेत्र समझा जाने लगा। उसके समय बुद्धदेवका अभ्युदय तथा परवर्त्तीकालमें राजगृह और पञ्चशैलमें समस्त बौद्धप्रभाव विस्तृत होने पर भी यहांके शैलशिखरसे जैनसाधुसंस्रव दूर नहीं हुआ। महावीरकी अधिष्ठान भूमि विपुलगिरिके अलावा स्वर्णाचल (सोनागिरि), रत्नाचल, वैभार और उदयगिरिमें भी सुप्राचीन जैन कीर्त्तियोंके अनेक निदर्शन पड़े हुए हैं। विपुलगिरि शिखर पर पार्श्वनाथ मूर्त्तिके बाद देखनेमें जो खोदित शिलालिपि है उससे मालूम होता है, कि ८वीं वा ९वीं सदी तक यहां जैनसमागम था। पीछे यहां ब्राह्मणोंके अभ्युदय और अन्तमें मुसलमानोंके अत्याचारसे यहांसे जैनसंस्रव बिलकुल जाता रहा। यहां तक कि १०वीं सदीके बादसे ले कर १७वीं सदी के शेष तक हम लोग जैनसंस्रवका एक भी प्रमाण नहीं पाते। १८वीं सदीमें मुसलमानप्रभाव जब विलुप्त हुआ, तब राजगृहके पञ्चशैलके ऊपर फिर जैन-तीर्थयात्रियोंका समागम होने लगा। जैनधनकुबेरोंके यत्नसे पुनः पञ्चशैलके तुङ्गशिखर पर नाना जिनालय प्रतिष्ठित तथा प्राचीन जैन कीर्त्तियोंका जीर्णोद्धार होने लगा। इस प्रकार चौबीसवां तीर्थङ्करमूर्त्ति और तीर्थङ्करोंकी पादुका प्रतिष्ठित हुई। १८वीं और १९वीं सदीकी जैन कीर्त्ति ही अभी दर्शकोंको दृष्टि पर पड़ी हुई है।

बौद्धप्रभाव।

जैनप्रभावके साथ साथ बौद्धप्रभाव भी देखा जाता था। महावीरके कुछ समय बाद ही बुद्ध शाक्यसिंह वैभारशैल पर आये। उनका धर्मोपदेश सुननेके लिये मगधपति बिम्बिसारसे ले कर राजगृहवासी सभी मनुष्य वहां उपस्थित हुए थे। बुद्ध शैलशिखर पर रहते थे। उनके दर्शनकी जिनको इच्छा होती थी, वे बड़े कष्टसे दुरारोहपथ पार कर उनके निकट पहुंचते थे। पीछे बिम्बिसारने जिससे दर्शनाभिलाषीयोंको किसी प्रकारका कष्ट न हो, पहाड़ काट कर पत्थरकी सीढ़ी बनवा दी थी। चीनपरिव्राजक युएनचुअंग जब राजगृह देखने आये तब उन्होंने लिखा है, कि जहां बिम्बिसार बुद्धके दर्शनार्थ पर्वतप्रान्त पर अवतरण करते थे वह स्थान 'रथावतरण' नामसे प्रसिद्ध था। मगधपतिने बुद्धदेवके स्मरणार्थ कुछ स्तूप भी बनवा दिये थे।

राजगृहके पञ्चशैलके ऊपर किस प्रकार बौद्धप्रभाव फैला था, चीनपरिव्राजक फाहियन और युएनचुअंगके भ्रमणवृत्तान्तसे हम लोग उसका बहुत कुछ परिचय पाते हैं। फाहियनने ५वीं सदीमें आ कर नवराजगृहमें ये सब देखे थे,—दो सङ्घाराम, नगरके पश्चिम दरवाजेसे कुछ दूर राजा अजातशत्रु निर्मित एक ऊंचा स्तूप (यहां बुद्धका देहावशेष रखा हुआ है), नगरके पश्चिम फाटकसे प्रायः आध कोस दूर पञ्चशैलवेष्टित उपत्यकाके मध्य जनमानवशून्य विध्वस्त प्राचीन राजगृह, बुद्धदेवका विनाश करनेके लिये निर्ग्रन्थने जो अग्निकुण्ड बनाया था वह अग्निकुण्ड नगरसे उत्तर पूर्व आम्रकाननके उद्यानके मध्य जीवक वैद्यनिर्मित विहारका भग्नावशेष (यहां बुद्धदेव १२५० शिष्योंके साथ निमन्त्रित हुए थे) उपत्यकासे गिरिमाला लांघ कर प्रायः २॥ कोस दूर गृध्रकूटशैल उससे भी आध कोसकी दूरी पर दक्षिणमुखी गुहा (यहां बुद्धदेव ध्यानस्थ रहते थे), उसके पास

ही एक शैलकुटी। (यहां आनन्द ध्यान करते थे*), उसी जगह अर्हत्‌की ध्यानगुफा, इस प्रकारकी और भी सैकड़ों गुफा, शैलके उत्तर भग्नावशिष्ट दरदालान (यहां बुद्धदेव धर्मोपदेश देते थे), प्राचीन नगरके उत्तर बौद्धाचार्य सेवित करण्डवेणुवनविहार, वहांसे थोड़ी ही दूर उत्तर महाश्मशान, दक्षिणशैल लांघ कर कुछ पश्चिम जानेसे बुद्धका मध्याह्न आहारके बाद ध्यानस्थान 'पिप्पल गुहा', वहांसे करीब डेढ़ पाव दूर पहाड़के उत्तर चेति नामक गुहा (बुद्ध निर्वाणके बाद यहां ५०० अर्हत् धर्मपुस्तक संग्रहार्थ सम्मिलित हुए थे), तथा पुराने नगरसे उत्तरपूर्वमें देवदत्तकी शिलामयी कुटी।

फाहियानके दो सौ वर्ष बाद यूएनचुवङ्गने आ कर यहां बौद्धकीर्त्तिका इस प्रकार दर्शन किया था,—

तुङ्गशृङ्गशोभित शैलशिखरके ऊपर बुद्धवनमें शिला गृह†, बुद्धवनसे प्रायः दो कोस पूरब यष्टिलतासे आकीर्ण यष्टिवन, तथा उसके मध्य अशोकराज-निर्मित स्तूप, यष्टिवनसे प्रायः तीन पाव दक्षिण महाशैलको बगलमें सर्वरोगहर दो उष्ण प्रस्रवण और उसके समीप बुद्धाधिष्ठानस्मारक स्तूप, यष्टिवनसे दक्षिण-पूर्व प्रायः आध कोस दूर महाशैलके पथमें एक स्तूप; (वर्षाकालमें बुद्धदेव देवमानवको यहां धर्मतत्त्वकी शिक्षा देते थे), उक्त महाशैलसे कुछ उत्तर व्यासाश्रमका टूटा फूटा पत्थरका घर, उसके उत्तर पूर्व डेढ़ पावका रास्ता तय करने पर एक छोटा पहाड़, उस पर हजार लोगोंके बैठनेके लिये लिये एक पत्थरका बड़ा घर (यहां बुद्धदेवने तीन मास तक धर्मप्रचार किया था), इस बड़े घरके ऊपर प्रसिद्ध सुगन्धमय पत्थर (यहां देवराज शक्र और ब्रह्माने गोशीर्ष-चन्दनसे बुद्धदेवको चर्चित किया था), बड़े पत्थरके घरके दक्षिण पश्चिम कोणमें एक उच्च गुहा यहां पहले असुरका राजभवन था), उस बड़े घरकी बगलमें बिम्बिसार राजनिर्मित १० पाद चौड़ा और प्रायः डेढ़ पाव लम्बा काठका पुल और नदीके किनारे पत्थरका बांध। वहांसे पूरबकी ओर प्रायः साढ़े चार कोस आने पर मगधराज्यका केन्द्र और पूर्वतन राजधानी कुशागारपुर*, (इसका घेरा प्रायः १० कोस और मध्यवर्त्ती पुरकी अवशिष्ट प्राचीरभित्तिका घेरा प्रायः २ कोस) राजगृहके उत्तर द्वारके बाहरमें एक स्तूप, उसके बाहरमें उत्तरपूर्वमें और भी एक स्तूप (यहां शारिपुत्रने अर्हत्त्व लाभ किया था), उस स्थानसे उत्तर कुछ दूर जानेसे एक गहरा दुर्ग-खाई, उसीकी बगलमें श्रीगुप्तका स्तूप, दुर्ग खाईसे उत्तर पूर्व नगरके बाहर जीवकवैद्य निर्मित बुद्धदेवका वक्तृतागृह और जीवकगृहका ध्वंसावशेष, उसके पास ही एक पुराना स्तूप, राजगृहसे एक कोस ऊपर उत्तरपूर्व जानेसे गृध्रकूटशैल (इस पर्वत पर बुद्धदेव अधिक काल ठहरे थे), उस पर चढ़नेके लिये बिम्बिसार-निर्मित पत्थरकी सीढ़ी, बीच रास्तेमें 'रथावतरण' और 'जनविमुख' नामक स्तूप, शैलके ऊपर पश्चिममें पूर्वद्वारी बुद्धका प्रमाणमूर्त्तिशोभित एक विहार, विहारके पूरब बुद्धके पदरजसे पवित्र एक बड़ा पत्थरका खण्ड, उसके समीप ही बुद्धका वध करनेके उद्देशसे देवदत्तका प्रस्तरनिक्षेपस्थान, उसके दक्षिण एक स्तूप। यहां बुद्धने 'सद्धर्मपुण्डरीकसूत्र' प्रकाश किया, विहारके दक्षिण बुद्धका समाधिस्थान एक बड़ा पत्थर-घर, उसके उत्तरपश्चिम और सम्मुखभागमें गृध्ररूप चिह्नित एक अपूर्व प्रस्तरखण्ड, विहारकी बगलमें शारिपुत्र और बहुतसे अर्हतोंके समाधिस्थान कुछ पत्थरके घर, शारिपुत्रके घरके सामने एक सूखा कूप, विहारके उत्तर पूर्व पहाड़ी सोतोंके मध्य बुद्धका वस्त्र सुखनेका समतल

---

* मारने गृध्ररूप धारण कर यहां आनन्दको भय दिखाया था। बुद्धके प्रभावसे उसकी माया व्यर्थ गई। तभीसे इस गिरिका नाम 'गृध्रकूट' पड़ा। यहां पर फाहियानके गृध्रपक्षीका चिह्न देखा था।

† प्रवाद है, कि यहां इन्द्र और ब्रह्माने गोशीर्ष चन्दनसे बुद्धदेवको चर्चित किया था। यहां की शिला पर आज भी वह गंध पाई जाती है। (यूएनचुवङ्ग)

* प्राचीन राजगृहका नामान्तर। चीनपरिव्राजकके वर्णनानुसार यहां सुगन्धित कुशतृण पाया जाता था। इसीसे इसका 'कुशागारपुर नाम हुआ है। जैनग्रन्थमें कुशागारपुर और कोपागारपुर ये दोनों ही नाम देखे जाते हैं।

प्रस्तरखण्ड, इसीके समीप शैलके ऊपर बुद्धका पदचिह्न, गिरिव्रजपुरके उत्तरी फाटकके पश्चिम विपुलगिरि, गिरिके उत्तरपार्श्वके दक्षिणपश्चिम पाददेशमें १० उष्ण और शीतल प्रस्रवण, कोई कोई उष्ण प्रस्रवण सिंहमुख, कोई श्वेत हस्तिमुख आदि आकारके पत्थरसे बंधा हुआ, नीचे सरोवरके जैसा पत्थरका बंधा हुआ जलाधार, गरम सोतोंके दाहिने और बायें किनारे बहुत स्तूप और विहार तथा चार गतबुद्धके स्मृतिचिह्न गरम सोतोंके पश्चिम पिप्पल नामक पत्थरका घर, उस घरका दीवारके पास गुहाकार असुरका प्रासाद (यहां से नाग, सर्प, सिंह आदि बीच बीचमें निकलते थे), विपुलगिरिके शिखर पर स्तूप (यहां बुद्धने धर्मप्रचार किया था) यहां बहुतसे निर्ग्रन्थोंका नियत समागम स्थान, इस पत्थरके घरके पूरब चिपटे पत्थरखण्ड पर रक्तचिह्न, गिरिव्रजपुरके उत्तर फाटकसे प्रायः आध पाव रास्ता ते करने पर करण्डवेणुवन यहां पूर्वकारी विहारका भग्नावशेष, करण्डवेणुवनके पूरब अजातशत्रु राजनिर्मित स्तूप (यहां राजा अजातशत्रुने बुद्धका देहावशेष रखा था, इस स्थलसे अपूर्व आलोक निकलता है), उस स्तूपके पास आनन्दका देहावशेषयुक्त अजातशत्रु निर्मित और भी एक स्तूप, इसके समीप ही शारिपुत्र और मुद्गलपुत्रका अधिष्ठानस्मृतिज्ञापक स्तूप, दक्षिण शैलके उत्तर एक बड़ा वेणुवन, उसमेंसे अजातशत्रुकृत एक पत्थरका घर (बुद्धनिर्वाणके बाद स्थविर काश्यपने ९९९ अर्हतोंके पिटकत्रयका उद्धार करनेके लिये इस घरमें एक सभा की थी); इसके उत्तर आनन्दका समाधिस्थानज्ञापक एक स्तूप यहांसे पश्चिम ३० कोस जाने पर अशोकराज-निर्मित स्तूप (यहां त्रिपिटक गुरुकनिकाय और धारणी पिटकका उद्धार करनेके लिये काश्यप परित्यक्त छात्र भिक्षुओंका महासङ्घ हुआ था); (करण्ड) वेणुवन विहारके उत्तर करण्डह्रदका चिह्न, यहांसे पाव भरका दूरी पर ६० फुट ऊंचा अशोकराज निर्मित स्तूप, उसके पास ही स्तूपनिर्माणका विवरणमूलक पालित लिपि और हस्तिमुखयुक्त ५० ऊंचा पत्थरका स्तम्भ, स्तम्भसे उत्तर पूर्व थोड़ा ही दूर पर विध्वस्त राजगृह नगर*, राजभवनके दक्षिण-पश्चिम कोणमें दो छोटे सङ्घाराम, उसके उत्तर पश्चिममें एक स्तूप और नगरके दक्षिण फाटकके बाहरमें राहुलका दीक्षास्मृतिसूचक एक स्तूप था।

गौड़में बौद्ध पालराजाओंके शासनकालमें भी पूर्वोक्त बौद्धकीर्त्तियोंके दर्शन करनेके लिये देशविदेशसे तीर्थयात्री आते थे। बौद्धपालराजगण तान्त्रिक थे। उनके समय भी राजगृहमें तान्त्रिक बौद्ध-देवदेवी मूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई थी। उनमेंसे विपुलगिरिमें 'ये धर्मा हेतुप्रभवा' इत्यादि प्रसिद्ध धर्मसूत्रनियस्त अष्टभुजा पद्मवाराही मूर्त्ति और धर्मभैरव (अभी बटुक भैरव नामसे प्रसिद्ध) की मूर्त्ति देखनेमें आता है। उस समयकी निर्मित तथा उक्त धर्मसूत्रयुक्त मुगमहम्मर (मुण्डहीन) बुद्धमूर्त्ति प्राची सरस्वतीके उत्तरी किनारे देखी जाती है। जिस प्रसिद्ध सप्तपर्णीगुहामें बुद्धनिर्वाणके कुछ बाद ५४० ई०सन्के पहले प्रथम धर्मसंगीति हुआ था, अभी जो 'सोनभाण्डार' कहलाती है उस गुहामें १००३ सम्वत्की बौद्ध-खोदित लिपि पाई गई है। मणियार मठमें आज भी वह सुप्राचीन अशोकस्तम्भ विद्यमान है, नवराजगृहके दक्षिण उपत्यकामें पालराजाओंके बौद्ध सङ्घारामका निदर्शन मात्र भी देखनेमें आता है। ब्राह्मण्य धर्मके अभ्युदय पर लोगोंकी बुद्धि यद्यपि पलट गई थी, तो भी पूर्ववर्णित बौद्धकीर्त्ति बिलकुल परित्यक्त हुई। परन्तु मुसलमानोंके समयमें नालन्दा विश्वविद्यालय द्वारा

* एएनसुयङ्गने लिखा है, कि राजा बिम्बिसार पहले कुशागार वा प्राचीन गिरिव्रजपुरमें ही अपनी राजधानी बसाई थी। किन्तु घर घर पर रहनेके कारण शहरमें आग अक्सर लगा करती थी जिससे लोगोंका भारी नुकसान होता था। इसलिये महाराजने यह नियम निकाला, कि जिसके घरमें आग लगेगी, उसको श्मशानमें रहना पड़ेगा। दैवात् भवसर्वस्व ही घरमें आग लगी। उन्होंने अपने मर्य्यादा रक्षाके लिये शीतवनमें आश्रय लिया। वैशालीराजको जब मालूम हुआ, कि राजा वनवासी हैं, तब वे आक्रमण करने आये। रक्षाके लिये शीघ्र ही नगरचारों ओर दुर्गप्राकारयुक्त एक नया नगर बसा दिया। राजा बिम्बिसार पहले पहल यहीं रहते थे, इसीलिये इसका राजगृह नाम हुआ।

दिया गया तथा श्रवणोंके सहित बौद्धगण राजगृहतीर्थसे भगा दिये गये।

ब्राह्मण्य-प्रभाव।

गृपनचुवंगके वर्णनसे मालूम होता है, कि मगधपति अशोक पहले ब्राह्मणभक्त थे। इस समय उन्होंने समूचा प्राचीन राजगृह ब्राह्मणको दान किया। सच पूछिये, तो इसी समयसे राजगृहमें ब्राह्मण प्रभावका सूत्रपात हुआ। उस समय राजगृहमें जिस जिस स्थानको मोक्षप्रद समझ कर बौद्ध लोग दर्शन करने आते थे, ब्राह्मण लोग उस उस स्थानमें हिन्दू तीर्थयात्रियोंकी भक्ति आकर्षण करनेके लिये पौराणिक देवदेवीके अधिष्ठानकी कल्पना करने लगे। इधर कुछ दिन बाद ही सम्राट् अशोकके धर्ममतपरिवर्त्तन और उनसे बौद्धधर्मप्रचारके साथ यहाके ब्राह्मण भी अपने अपने उद्देश्य साधनमें समर्थ न हुए। सैकडों वर्ष बाद जब शुङ्गमित्रवंशका अभ्युदय हुआ, तब पाटलिपुत्रमें ब्राह्मण्य-अभ्युदयके साथ यहाके ब्राह्मण भी पौराणिक धर्म स्थापनमें अग्रसर हुए थे। इसी समयसे पुरातन बौद्धकीर्त्तिलोपका आयोजन और उसके साथ हिन्दूतीर्थ स्थापनका सूत्रपात हुआ था। मगधके सिंहासन पर ब्राह्मणभक्त गुप्तसम्राटोंके बैठनेसे यहा हिन्दू-तीर्थ स्थापनकी भी विशेष सुविधा हुई थी। किन्तु ६ठी सदीमें उनके अधःपतन और फिरसे बौद्ध धर्माभ्युदय होनेसे ब्राह्मणधर्ममें धक्का पहुंचा। इस कारण ७वीं सदीके मध्यभागमें जब चीनपरिव्राजक यहा आये थे, तब उन्होंने ब्राह्मणोंकी अधिक संख्या रहने पर भी कोई हिन्दू देवालय नहीं देखा था। ८वीं सदीमें कन्नौजमें यशोवर्मा और गौडमें आदिशूरके अभ्युदयके साथ फिरसे ब्राह्मण-प्रधानता स्थापित हुई। इसके बाद बौद्ध पालराजाओंका अभ्युदय हुआ। वे लोग तान्त्रिक और ब्राह्मण विरोधी न थे, इस समय देवमूर्त्तिप्रतिष्ठाका प्रसार होनेके कारण राजगृहके ब्राह्मण नाना तीर्थ और देवालय स्थापन करनेमें अग्रसर हुए। कालवशतः बौद्धगौरव रवि जब मगधसे सदाके लिये अस्त हो गये, तब यहांके ब्राह्मणोंने हिन्दू तीर्थयात्रीके लिये वायुपुराणीय राजगृहमाहात्म्य प्रकाश किया। जो जो स्थान बौद्ध और जैन लोगोंके निकट पुण्यस्थान समझा जाता था, अभी वहा हिन्दू देवदेवी प्रतिष्ठित तथा हिन्दूतीर्थ कल्पित होने लगा। इस प्रकार कितनी बौद्धकीर्त्तिको ब्राह्मणने हिन्दूकी बता कर अपना लिया। अभी—

"कीकटेपु गया पुण्या नदी पुण्या पुनःपुना।
च्यवनस्याश्रम पुण्यं पुण्य राजगृह वनम्॥" (१।२४)

मगधमें गया, पुनपुन नदी, च्यवनका आश्रम और राजगृहवन यही सब पुण्यप्रद हैं, ऐसा स्थिर हुआ। इस समय समूचा राजगृह जंगलसे ढका था। राजगृहमाहात्म्यमें बहुतसे तीर्थयात्रियोंको पंडा लोग आज भी वे सब तीर्थ दिखाते हैं। नीचे स्थानमाहात्म्य वर्णित तीर्थोंका संक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

१ सरस्वती—यह पहाडी छोटी नदी पुण्यारण्यसे निकल कर वैभार और विपुलगिरि होती हुई बहती है। सरस्वतीमें स्नान करनेसे सभी पाप दूर होते हैं। यह सरस्वती ब्रह्मभूर्त्ति* है तथा इसका उत्तरांश प्राची सरस्वती समझी जाती है।

२ गोमती—ज्वालादेवीके निकट प्रवाहित एक छोटी नदी।

३ मार्कण्डेयक्षेत्र—प्राची-सरस्वतीके पश्चिम वैभार पर्वतके नीचे। यहां गङ्गा यमुना नामक दो गरम सोते हैं।†

४ माधवालय—प्राचीके उत्तरी किनारे माधवका आलय। यहा स्नान करनेसे भी सभी पाप होते हैं। (राज०मा०) अभी यह स्थान वेणीमाधव कहलाता है। यह मूर्त्ति देखनेसे ही पद्मपाणि बुद्धमूर्त्ति सी मालूम होगी।

५ शालग्रामतीर्थ—प्राची सरस्वतीका उत्तरांश,

---

* "आजन्म सञ्चितं पापं ज्ञानाज्ञानकृतञ्च यत्।
तत्सर्वं विलयं याति सकृत् स्नात्वा सरस्वतीम्॥१।१५
गङ्गा विष्णुमयी मूर्त्तिः ब्रह्ममूर्त्तिः सरस्वती॥" १।२१
(राजगृ० मा०)

† "प्राच्यास्तु पश्चिमे भागे मार्कण्डेयक्षेत्रमुत्तमम्॥१।२६
तत्र स्नात्वा महादानात् प्राप्यते नरपालये।
कालिन्दी पश्चिमा यत्र गङ्गा चोत्तरवाहिनी॥" १।३०
(राज०मा०)

रणकूपके निकट। यहां पञ्चशिवलिङ्ग हैं। इनमेंसे ब्रह्मकुण्डके पूर्वमें विभाण्डक, उत्तरमें गृध्रमर्दन, पश्चिममें कपर्दक, दक्षिणमें मतमोचन और मध्यस्थलमें धर्मेश्वर अवस्थित था*। अभी प्राकारके निकट केवल धर्मेश्वर विद्यमान हैं और सभी विलुप्त हो गये हैं।

६ मार्कण्डेयतीर्थ—प्राची-सरस्वतीके दक्षिण वैभारके पाददेशमें श्मशानके निकट। यहां स्नान करनेसे प्रचुर आयुष्य लाभ होता है†। सप्ततारोंकी मूर्ति जैसी यहां एक टूटी फूटी तीर्थङ्करमूर्ति पड़ी है।

७ ब्रह्मकुण्ड—वैभारगिरिके नीचे सप्तर्षिकुण्डकी बगल में प्रसिद्ध उष्ण धारा। यह देखनेमें चहबच्चे जैसा है और पत्थरसे बंधा हुआ है। ऊपरमें जमहीके पत्थर जड़े हुए हैं। राजगृहके सभी कुण्डोंकी अपेक्षा इसका जल गरम है। राजगृहमाहात्म्यमें लिखा है कि ब्रह्माके यज्ञके बाद उनके यज्ञकुण्डसे पातालगङ्गा आविर्भूत हुई। पीछे यही ब्रह्मकुण्ड नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस ब्रह्मकुण्डमें स्नान करनेसे ब्रह्महत्याका पाप भी नष्ट होता है। गयामें श्राद्ध करनेसे जो फल होता है यहां श्राद्ध करनेसे भी वही फल लाभ होता है। इस ब्रह्मकुण्डके मध्य नैऋत कोणमें हंसतीर्थ है। यहां स्नान और दान करनेसे सभी पाप दूर होते हैं¶। ब्रह्मकुण्डके उत्तर यक्षिणी नामक चैत्य है। यहां यक्षिणीकी पूजा करनेसे ब्रह्महत्याका पाप भी जाता रहता है। (राज मा०) यथार्थमें उक्त चैत्य पूर्वतन बौद्धचैत्यके जैसा ही मालूम होता है। ब्रह्मकुण्डके पश्चिम धाराहतीर्थ है। यहां धराहरूपकी पूजा करनेसे निर्वाणकी प्राप्ति होती है। (रा०मा० २ अ०)

८ सप्तर्षिकुण्ड—वैभारगिरिके मध्यसे सात गरम सोते निकल कर एक जलाधारमें पतित होते हैं। इसी विस्तृत जलाधारका नाम सप्तर्षिकुण्ड है। राजगृह *माहात्म्यमें लिखा है, कि महर्षि व्यास यज्ञ करनेके लिये* इसी राजगृहवनमें आये। यज्ञके बाद ब्राह्मणभोजन करानेके लिये उन्होंने मुनियोंको बुलाया। भोजन कर चुकने पर मुनियोंने गङ्गा, यमुना और नर्मदाका जल पीना चाहा। तब व्यासने तपोबलसे गङ्गा, यमुना और नर्मदाको वहां हाजिर कर दिया। पीछे इन तीनों नदियोंका तीर्थजल मार्कण्डेय व्यास, जमदग्नि, भरद्वाज विश्वामित्र, गौतम, दुर्वासा वशिष्ठ और अगस्त्य नामसे विख्यात हुआ। इन सात ऋष्य वैभारगिरिके नीचे सप्तर्षिकुण्डके दक्षिण पश्चिममें मार्कण्डेय और व्यासकुण्ड है। सात कुण्ड एक घेरेमें है। बाबू सीतारामने सप्तर्षिकुण्डके चारों ओर दीवार खड़ी करा दी है। राजगृहमाहात्म्यमें लिखा है, कि मार्कण्डेयकुण्डके दक्षिण कामाक्षादेवी है। किन्तु अभी वह देवी दिखाई नहीं देती।

९ पञ्चनद—ब्रह्मकुण्डके पूरब एक बड़ी शिलाके मध्य यह धारा बहती है। यह पञ्चनद काशीके पञ्चगङ्गाके समान पुण्यप्रद है। उपरोक्त प्रधान तीर्थोंके अलावा राजगृह माहात्म्यमें और भी अनेक तीर्थोंका उल्लेख है। जैसे—

प्राची सरस्वतीके पूरबमें गणेश, सोम, सूर्य और सीतातीर्थ तथा रत्नाकर उनके मध्य हाटकेश्वर आम्र शुक्लतीर्थ यहां चम्पेश्वर शिव, अम्बशृङ्गके पूरब गृध्रसो तीर्थ और निर्झरेश्वर, अम्बशृङ्गके पूर्वदक्षिण पर्वत पर गणेश और ब्रह्मकुण्ड; गिरिव्रजके पर वैकुण्ठपद, उसके उत्तर कण्ठेश्वर; ब्रह्मकुण्डके दक्षिण केदारकुण्ड और देवमाण, केदारकुण्डके दक्षिण कुछ दूर मानस विष्णुपद; केदारकुण्डके समीप वैभारशैल पर संध्यादेवी, संध्यादेवीसे १ कोस पश्चिम सोमेश्वर, मार्कण्डेयके दक्षिण और

---

* "ब्रह्मणसमाप्त्यूर्ध्वं तु पञ्चलिङ्गव्यवस्थितम्।
पूर्वे विभाण्डकं नाम चोत्तरे तु मर्मदनम्॥ १५०
कपर्दं च नकस्वां पश्चिमे मत मोचनम्।
मध्ये धर्मेश्वरं विद्धि दृष्ट्वा धर्मोदयं नृणाम्॥" १५१
(राज०मा०)

† "मार्कण्डेयस्तु दक्षिणे भागे वनपोतरस्य स्थलम्।
तत्र स्नानं नरः कुर्यात् अक्षयमायुष्यमाप्नुयात्॥"

¶ "ब्रह्मकुण्ड समुत्पन्ने यज्ञान्ते प्रथम द्विज।
पातालगङ्गा तीर्थं च ब्रह्महत्या विमोचनम्॥ ५
ब्रह्मकुण्डमिति ख्यातं त्रिषु लोकेषु पार्थिव।
महापातकनाशनम् यत्र स्नात्वा पातालगङ्गाम्॥ १४
ब्रह्महत्यादिपापभ्यो विमुच्य तादपि तत्क्षणात्॥"
(इत्यादि २ अ०)

वाणगङ्गाके पश्चिम मणिनाग, मणिनागके समीप गौतमवन, अहल्याह्रद और गङ्गोद्भेद, मणिनागसे आध कोस पूर्व दक्षिणमें व्यासाश्रम, व्यासाश्रमके दक्षिण धौतपाप और तपोवन, धौतपापवनमें त्रिकोटीश्वर, उसके दक्षिण अग्नितीर्थ, अग्नितीर्थके पश्चिम वाणगङ्गा, मणिनागके पश्चिम कौशिकाश्रम और तपोवन, मणिनागके उत्तर कण्वतीर्थ, शिवनदीसे कौशिकाश्रम तक न्य अग्नितीर्थ; उससे कुछ दूर सीताकुटी, यहां सीताकाननमें शक्रतीर्थ, हरनदी, बहुला और गोमतीतीर्थ, जाम्बवतीनदी और सीताह्रद। विस्तार हो जानेके भयसे सविस्तार माहात्म्य नहीं लिखा गया। राजगृहके पंडा राजगृह माहात्म्य हाथमें ले कर तीर्थयात्रीको आज भी वे सब तीर्थ देखाते हैं।

राजगृह माहात्म्य वर्णित उक्त तीर्थोंको छोड़ कर गणेशकुण्डके उत्तर रामसीताकुण्ड (राजा विजयेजसिंहने यह कुण्ड बंधवा दिया है, यहांकी उत्कीर्ण लिपिसे इसका पता चलता है।), तथा सूर्यकुण्डके नवग्रहकी मूर्त्ति है। सीताकुण्डके उत्तर एक नये शिवमन्दिरके सामने ध्यानीबुद्ध हैं। उसके उत्तर पंडा लोग एक प्राचीन शिवलिङ्ग दिखलाते हैं जो किसी बुद्धमूर्त्तिके उत्तमाङ्गके जैसा प्रतीत होता है। उसीके सामने वटवृक्षके नीचे एक चबूतरे पर अर्द्धाङ्ग बुद्धमूर्त्ति है। केदारखण्डके समीप जो विष्णुपद है, वह ठीक बुद्धपदके जैसा मालूम होता है। गणेशकुण्डके समीप भी विष्णुपद है। किंतु इस विष्णुपदमें 'सं० ८६४। आषाढ वदि १२ सोमवार श्रीबुद्धचरण युगल' इत्यादि खोदित रहनेसे बुद्धपद माननेमें कोई उज्र नहीं।

पहले लिख आये हैं, कि ७वीं सदीमें लिखित चीनपरिव्राजकके वर्णनसे जाना जाता है, कि अशोकराजने हजार ब्राह्मणोंको राजगृह दान किया था। राजगृहमाहात्म्यमें भी देखा जाता है, कि पुराकालमें वसु नामक एक राजाने राजगृहवनमें अश्वमेध यज्ञ किया। उस उपलक्षमें उन्होंने ७५०० दाक्षिणात्य ब्राह्मणोंको निमन्त्रण किया था। उसके बाद उन्होंने उन सब ब्राह्मणोंमेंसे वत्स, उपमन्यु, कौण्डिन्य, गर्ग, हारित, गौतम, शाण्डिल्य, भरद्वाज, कौशिक, काश्यप, वशिष्ठ, वात्स्य, सावर्णि और पराशर इन चौदह गोत्रज ऋग्वेदी आश्वलायन-शाखाध्यायी ब्राह्मणोंको राजगृहपुर तथा अविगोदीयों गिरिव्रजमें वैकुण्ठपदके निकट ब्राह्मण शासन दक्षिणास्वरूप दान किया था। (राजगृहमा० २ अ०) बड़े आश्चर्यका विषय है, कि आज भी राजगृहमें केवल ब्राह्मणोंका वास कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी, अन्य जातिकी संख्या बहुत थोड़ी है।

मुसलमान प्रभाव।

महम्मद ई बख्तियारके विहार विजयके बादसे ही यहां मुसलमान प्रभावका आरम्भ हुआ। सुखस्वास्थ्यमय राजगृहका अवस्थान देख कर बहुतसे मुसलमान साधु यहां आ कर रहने लगे। उनमेंसे पीर मकदुमशाहका नाम विहारप्रान्तमें मशहूर है। मकदुमशाह ऋष्यशृङ्गकुण्डमें आ कर रहते थे। यहां उन्होंने बड़ी बुजुर्गी दिखा कर जनसाधारणको मोहित कर लिया था। विपुलाचलके पाददेशमें अवस्थित ऋष्यशृङ्गतीर्थ तभीसे मकदुमकुण्ड कहलाता है। आज भी दूर दूर देशके भक्त मुसलमान मकदुमकुण्ड देखने आते हैं। यहांका प्रस्तरमय कुण्डावास बहुत मनोरम और चित्ताकर्षक है। यहां एक गुप्तघर और दो प्रकट उष्ण प्रस्रवण हैं।

राजगृहका जलवायु बहुत अच्छा है। स्वास्थ्यान्वेषी और रोगग्रस्त व्यक्ति यहांके उष्ण प्रस्रवणोंमें स्नान करने आते हैं। ऐसा सुना जाता है, कि यहांके प्रस्रवणके गरम जलमें स्नान करके बहुतेरे असाध्य रोगसे मुक्त हो गये हैं।

राजगृह—पटना जिलेकी एक गिरिमाला। यह अक्षा० २४° ५८' ३०" से २५° १' ३०" उ० तथा देशा० ५८° २५' से ८५° ३३' ३०" पू०के मध्य विस्तृत है। इसका पत्थर आग्नेय स्वभावविशिष्ट है।

राजगृहक (सं० त्रि०) राजगृहसम्बन्धी।

राजगेह (सं० क्ली०) राजभवन, राजप्रासाद।

राजग्रीव (सं० पु०) राजते इति राज-अच्-राजा-दीप्तिशालिनी ग्रीवा यस्य। मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली।

राजघ (सं० त्रि०) राजानं हन्तीति हन् (राजघ उपसंख्यान। पा ३।२।५५) इत्यस्य वार्त्तिकोक्त्या क प्रत्ययेन

साधु। १ राजहन्ता, राजाको मारनेवाला। २ तीक्ष्ण, तेज।

राजचन्द्र—वैद्यनिर्घण्टु नामक अभिधानके प्रणेता।

राजचम्पक (सं॰ पु॰) पुन्नाग पुष्प, सुलताना चम्पा।

राजचिह्नक (सं॰ क्लो॰) चिह्नानां मध्ये चिह्नानां राजा राजदन्तादित्वात् परनिपातः। उपस्थ, लिङ्ग।

राजचूडामणि (सं॰ पु॰) ज्योतिषके अनुसार लग्नके सात भेदोंमेंसे एक।

राजचूडामणि दीक्षित—कर्पूरवार्त्तिक नामकी न्याय दीपिकाकी टीका, काव्यदर्पण तथा मीमांसासूत्रकी तन्त्र शिखामणि नामक टीका आदिके रचयिता। इनके पिता का नाम था सत्यमङ्गल रत्नखेट श्रीनिवास दीक्षित।

राजजम्बू (सं॰ पु॰) जम्बूनां राजा, राजदन्तादित्वात् जम्बूशब्द परनिपातः। १ पिण्डखर्जूर, पिण्डखजूर। २ महाजम्बू, बड़ा जामुन, फरेंदा।

राजजक्ष्मन् (सं॰ पु॰) यक्ष्माणं पूर्वतः रोगराजत्वात् यक्ष्मा यस्य क न सहि यस्तः इत्यादि कासुसिसिति मन् सवर्णतृतीयादिरित्येक तथा अश्वभस्वसयोरित्यस्य रूपम्। क्षयरोग। यक्ष्मा, राजयक्ष्मन और क्षयरोग देखो।

राज जामुन (हिं॰ पु॰) जामुनकी जातिका एक प्रकार का मझोले आकारका वृक्ष। यह देहरादून, अवध और गोरखपुरके जङ्गलोंमें पाया जाता है। इसकी छाल पीलापन लिये भूरे रंगकी और खुरखुरी होती है। यह गरमीमें फूलता और बरसातमें फलता है। इसकी पत्तियोंका व्यवहार औषधमें होता है और फल खाये जाते हैं। इसकी लकड़ी इमारतके सामान और खेतीके औजार बनानेके काममें आती है।

राजजीरक (सं॰ क्लो॰) जीरकभेद, एक प्रकारका जीरा।

राजत (सं॰ त्रि॰) रजतस्य विकारः (प्राणिरजतादिभ्यो-ऽञ्। पा ४।३।१५४) इति अण्। १ रजतनिर्मित, चांदीका। (क्लो॰) २ रजत, चांदी।

राजतनय (सं॰ पु॰) राज्ञः तनयः। राजपुत्र।

राजतरङ्गिणी (सं॰ स्त्री॰) कहलनकृत काश्मीरका एक प्रसिद्ध इतिहास ग्रन्थ। यह संस्कृतमें है और इसमें पीछे कई परिवर्तनमें गुलामों बढ़ाए। यह इतिहास ११४८ ई॰का लिखा है। इसकी रचना अब तक होती आती है। कहलन और काश्मीर देखो।

राजतरणी (सं॰ स्त्री॰) पुष्पविशेष, एक प्रकारका फूल। इसको राजतरुणी भी कहते हैं।

राजतरु (सं॰ पु॰) तरूणां राजा राजदन्तादित्वात् परनि पातः। १ कर्णिकारका वृक्ष, कनियारी। २ आरग्वध, अमलतास।

राजतरुणी (सं॰ स्त्री॰) राज्ञः तरुणीव सौन्दर्यातिशय्य यस्मात्। पुष्पविशेष, एक प्रकारका कुब्जक या सफेद गुलाब, इसका फूल मेयतासे बड़ा होता है और इसकी लता टट्टियों पर चढ़ाई जाती है। फूलोंका गंध मद और मीठी होती है। इसका पर्याय—महासहा, मर्ण पुष्प, अम्लान, अम्लातक, सुपुष्पा, सुवर्णपुष्प। वैद्यकमें इसका गुण कषाय, कफकारक, अल्प, हृद्यपद, हृद्य, सुरभि और सुखप्रद माना गया है।

राजता (सं॰ स्त्री॰) राज्ञः भावः तल् टाप्। १ राजा होनेका भाव, राजत्व। २ राजाका पद।

राजताल (सं॰ पु॰) राज स्याकरण। गुवाकवृक्ष सुपारीका पेड़।

राजतिमिश (सं॰ पु॰) सुकाश, तरवृक्ष।

राजतिलक (हिं॰ पु॰) १ राजसिंहासन पर किसी नये राजाके बैठनेकी रीति, राज्याभिषेक। २ नये राजाके गद्दी पर बैठनेका उत्सव।

राजतीर्थ (सं॰ क्लो॰) एक तीर्थका नाम।

राजतुङ्ग (सं॰ पु॰) राष्ट्रकूटराजभेद।

राष्ट्रकूटराजवंश देखो।

राजतेमिष (सं॰ पु॰) राजतिमिश तरवृक्ष।

राजत्व (सं॰ क्लो॰) राज्ञः भावः त्व। १ राजता, राजाका भाव या कर्म। २ राजाका पद।

राजदण्ड (सं॰ पु॰) राज्ञो दण्डः। १ राजशासन। २ वह दंड जिसका विधान राजाके शासनके अनुसार हो, वह दंड जो राजाकी आज्ञाके अनुसार दिया जाय।

राजदन्त (सं॰ पु॰) दन्तानां राजा (राजदन्तादिषु परं। पा २।२।३१) इति परनिपातः। दांतोंकी पंक्तिके बीचका वह दांत जो और दांतोंसे बड़ा और चौड़ा होता है। ऐसे दांत ऊपर और नीचेकी पंक्तियोंके बीचमें होते हैं। कोई कोई ऊपरकी पंक्तिके सामनेके दो बड़े दांतोंको भी राजदन्त मानते हैं पर अन्य लोग दोनों पंक्तियोंके बीचके दो दो दांतोंको राजदन्त कहते हैं, चौका।

राजदन्ति (सं० पु०) राजदन्त ।

राजदर्शन (सं० क्ली०) राज्ञः दर्शनं । राजाका दर्शन, राजाको देखना ।

राजदार (सं० पु०) राज्ञः दाराः । राजपत्नी, राजाकी स्त्री ।

राजदुहिता (सं० स्त्री०) राज्ञः दुहिता । राजाकी कन्या ।

राजदूत (सं० पु०) वह पुरुष जो एक राज्यकी ओरसे किसी अन्य राज्यमें सन्धि या विग्रह सम्बन्धी अथवा अन्य नैतिक कार्य संपादन करनेके लिये या किसी प्रकार का संदेसा दे कर भेजा जाता है। चाणक्यका मत है, कि मेधावी, वाक्पटु, वीर एवं चित्तोपलक्षक तथा यथोक्त-वादी पुरुषको राजदूत नियत करना चाहिए । प्राचीन-कालमें आवश्यकता पड़ने पर ही राजदूत एक राज्यसे दूसरे राज्यमें भेजे जाते थे , पर पश्चिमी देशोंमें यह प्रथा है, कि मित्र राज्योंमें राजाओंके राजदूत परस्पर एक दूसरेके यहां रहा करते हैं और उन्हींके द्वारा सारा कार्य सम्पादित होता है। दो राज्योंके बीच युद्ध छिड़ने पर दोनों एक दूसरेके यहांसे अपने अपने राजदूत बुला लेते हैं ।

राजदूर्वा (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी दूब जिसकी पत्तियां, कांड आदि स्थूल और बड़े होते हैं ।

राजदृषद् (सं० स्त्री०) जांता, चक्की ।

राजदेव—एक आभिधानिक ।

राजदेशीय (सं० पु०) राजासे कुछ कम, राजाके तुल्य, राजकल्प ।

राजद्रुम (सं० पु०) द्रुमाणां राजा राजदन्तादित्वात् पर-निपातः । आरग्वधवृक्ष, अमलतास ।

राजद्रोह (सं० क्ली०) राजा या राज्यके प्रति किया हुआ द्रोह, वह कृत्य जिससे राजा या राज्यके नाश या अनिष्ट की संभावना हो ।

राजद्रोहिन् (सं० त्रि०) राजद्रोह करनेवाला, वागी ।

राजद्वार (सं० क्ली०) १ राजाका द्वार, राजाकी ड्योढी । २ विचारालय, न्यायालय ।

राजधत्तूरक (सं० पु०) धत्तूरकाणां राजा, राजदन्ता-दित्वात् परनिपातः । १ वृहद्धुस्तूरक वृक्ष, एक प्रकारका धतूरा जिसके फूल कई आवरणके होते हैं । २ कनक धतूरा ।

राजधर्म्म (सं० पु०) राज्ञो धर्म्मः । १ राजाका कर्त्तव्य कर्म । राजनीतिके अनुसार प्रजापालन करनेसे राजधर्म बचता है। मनु आदि शास्त्रोंमें राजधर्मका विशेष विवरण वर्णित है। २ महाभारतके शान्तिपर्वके एक अंशका नाम जिसमें राजाके कर्त्तव्योंका वर्णन है ।

राजधर्म्मन् (सं० पु०) महाभारतके अनुसार कश्यपके एक पुत्रका नाम जो सारसोंका राजा था ।

राजधानक (सं० क्ली०) धीयतेऽत्रेति धा ल्युट्, ततः कन्, राज्ञां धानकं नगरं । राजपुर ।

राजधानी (सं० स्त्री०) धीयतेऽस्यामिति धा अधिकरणे, ल्युट् ङीप् राज्ञां धानी नगरी । वह प्रधान नगर जहां किसी देशका राजा या शासक रहता हो, किसी प्रदेश-का वह नगर जहां उस देशके शासनका केन्द्र हो । पर्याय—कोट्ट, राजधानक, स्कन्धावार ।

"तौ दम्पती स्वां प्रतिराजधानीं प्रस्थापयामास वशी वशिष्ठः ।"

(रघु २।७०)

राजधान्य (सं० क्ली०) राजप्रियं धान्यं । राजभोग्य हैमन्तिक धान्यविशेष । २ श्यामा धान्य, श्यामा धान ।

राजधामन् (सं० क्ली०) राजप्रासाद ।

राजधुर (सं० पु०) राज्यभार, शासनका भार ।

राजधुस्तूरक (सं० पु०) धुस्तूरकाणां राजा राजदन्ता-दित्वात् परनिपातः । १ वृहद्धुस्तूरक, एक प्रकारका धतूरा जिसके फूल बड़े और कई आवरणके होते हैं । पर्याय—राजधूर्त्त, महामठ, निस्त्रैणपुष्पक, भ्रान्त, राज-स्वर्ण । २ कनक धतूरा ।

राजन् (सं० पु०) राजते शोभते इति राज-कनिन् (युव, पितृत्विराजीति । उण् १।१५६) इति कनिन् । १ प्रभु, स्वामी, मालिक । २ नृपति, किसी देश, जाति या जत्थेका प्रधान शासक । पर्याय—राज, पार्थिव, क्ष्माभृत्, नृप, भूप, मही क्षित्, नरपति, पार्थ, भूपाल, भूभृत्, महीपति, नाभि, नाराज, भूमीन्द्र, नरेन्द्र, नायकाधिप, प्रजेश्वर, भूमिप, इन, दण्डधर, अवनीपति, स्कन्द, स्कन्ध, भूभुज, अर्थपति ।

(जटाधर)

प्रजाओंको रञ्जन करने, इस कारण नरपतिको राजा कहते हैं । भूपति अनुरक्त हो कर स्वर्गजनक राजसिक

धर्मानुष्ठान करके सभी प्राणियोंकी रक्षा करते हैं, इसी कारण राजा नाम पड़ा है।

सबसे पहले पृथुने 'राजा'-की उपाधि पाई थी।

(पद्मपु० भूखण्ड २९ अ०)

अष्ट लोकपालके अंशमें राजा जन्म लेते हैं। मनुने लिखा है, कि जगत्‌के अराजक होनेसे सभी प्राणी भयसे व्याकुल हो जायगे, इस कारण उनकी रक्षाके लिये इन्द्र, वायु, यम, सूर्य, अग्नि, वरुण, चन्द्र और कुबेर इन अष्ट दिक्पालोंके अंशमें ईश्वरने राजाकी सृष्टि की है।

राजप्रभाव अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, यम, कुबेर, वरुण और महेन्द्रके समान है। राजा यदि बालक हो तो भी उन्हें सामान्य मनुष्य नहीं समझना चाहिये। वे देवता हो कर मनुष्यरूपमें अवस्थान करते हैं, ऐसा समझना चाहिये। प्रयोजनीय कार्य कलाप, अकीय शक्ति एवं देशकालकी सम्यक् पर्यालोचना करके राजा धर्मानुरोधसे सभी प्रकारके रूप धारण करते हैं। (मनु० ७ अ०)

वराहपुराणमें लिखा है, कि विशुद्ध अध्यात्मज्ञानलिप्सु एवं व्यक्तिको राजाका अन्न नहीं खाना चाहिये यदि मद वा लोभप्रयुक्त हो खायें तो वे नरक जाते हैं। इस पापविमुक्तिके लिये उन्हें प्रायश्चित्त करना होता है।

(वराहपुराण राजान्नभक्षण नामक प्रायश्चित्ताध्याय)

प्रायश्चित्ततत्त्वमें लिखा है, कि राजान्न खानेसे तेजकी हानि और शूद्रान्न खानेसे ब्रह्मण्य हानि होती है। यह विधान ब्राह्मणके लिये जानना चाहिये।

महाभारतसे पता चलता है, कि पहले मनुष्योंमें न तो कोई शासक और न कोई दण्डकर्त्ता। सभी मनुष्य हिल मिल कर रहते थे और आपसमें एक दूसरेकी रक्षा करते थे। इस प्रकार उन्हें न तो किसी शासनकी जरूरत होती थी और न शासक की। किन्तु यह सुनियम बहुत दिनों तक न टिक सका। समयने पलटा खाया। लोगोंके चित्तमें विकार उत्पन्न हो गया जिससे वे कर्त्तव्य पालनमें शिथिल हो गये। उनमें सहानुभूति न रही और लोभ, मोह आदि कुवासनाओंने उन्हें घेर लिया। सभी मनुष्य विषय-वासनामें रत हो गये और वैदिक कर्मकाण्डका लोप हो गया। फल यह हुआ कि भगवद्भक्त देव व्याकुल हो कर ब्रह्माजीके पास गये। ब्रह्माजीने उन्हें आश्वासन दिया और मनुष्योंके शासनकी व्यवस्थाके लिये एक लाख अध्यायोंका एक वृहत् ग्रन्थ बनाया। देवगण उस ग्रन्थको ले कर विष्णुके पास पहुंचे और उनसे प्रार्थना की, कि आप किसी ऐसे पुरुषको आज्ञा दीजिये जो मनुष्योंको इस शास्त्रानुसार चलावे। विष्णु भगवान्‌ने उस शास्त्रके अनुसार शासन करनेके लिये राजाकी सृष्टि की। किसी किसी पुराणका मत है, कि वैवस्वत मनु और किसीके मतसे कर्दमऋषिके पुत्र अङ्ग मनुष्योंके पहले राजा हुए। पूर्वकालमें मनुष्योंकी इतनी अधिकता न थी और न उनकी इतनी घनी बस्तियाँ थीं। एक वंशमें उत्पन्न लोगोंकी संख्या ज्यों ज्यों बढ़ती गई त्यों त्यों बहुतसे जत्थे बनते गये। यह शासक प्रजापति कहलाता था और शेष लोग प्रजा अर्थात् पुत्र। वेदोंमें भरत, जमदग्नि, कुशिक आदि जातियोंके नाम आये हैं जिनमें पृथक् पृथक् प्रजापति थे। इनमेंसे अनेक जातियां पंजाब आदि प्रान्तोंमें बस गई और खेतीबारी करने लगी। पहले तो उनमें अलग अलग प्रजापति थे, परन्तु धीरे धीरे जनसंख्या बढ़ती गई और अनेक देश जनपूर्ण हो गये। ऐसे भार्योंको ग्रामीण कहा है। फिर उनमें प्रजापतियोंसे काम न चला और भिन्न भिन्न देशोंमें शान्ति स्थापित करने और दूसरे देशोंके आक्रमणसे अपनी रक्षा करनेके लिये प्रजापतिसे अधिक शक्तिशाली एक शासककी नियुक्तिकी आवश्यकता हुई। पहले पहल यह प्रथा भरतजातिमें चली थी, इसीलिये राजसूय-यज्ञमें "भोः भारताः अयं वः सर्वेषां राजा" कह कर राजाको राजसिंहासन पर बैठाया जाता था। पहले यह राजा प्रजाओंके द्वारा प्रतिष्ठित होता था। यदि यह प्रजाका अप्रिय करता तो लोग उसे तख्त परसे उतार देते थे। वेणु आदि राजे इसी प्रकार पदच्युत हुए थे। जब उन ग्रामीणोंमें वर्णव्यवस्था स्थापित हो गई, तब राजाका पद पैतृक हो गया और उसकी शक्ति जबरदस्त मानी गई। मनुने राजाको अग्नि, वायु, सूर्य चन्द्र, यम, कुबेर, वरुण और महेन्द्र या इन्द्रकी मात्रा या अंशसे उत्पन्न लिखा है और उसे चारों वर्णोंका शासक कहा है। ज्यों ज्यों प्रजाओंकी शक्ति धीमी पड़ने लगी, त्यों त्यों राजाका अधिकार सर्वोपरि होता गया और अन्तमें यह

देश या राज्यका एकाधिपति स्वामी हो गया। दूसरे वर्गके आर्योंमें जो इधर उधर दल बांध कर चलते फिरते थे और जिन्हें व्रात्य कहते थे, प्रजापतिकी प्रथा बनी रही और यही प्रजापति गणनाथ बन गया। ऐसे आर्यों में न तो वर्णकी ही व्यवस्था थी और न उनमें राजाका एकाधिपत्य ही हुआ। उनमें प्रजापति राजा तो कहलाने लगा, पर वह सभी काम गणकी सम्मतिसे करता था। ऐसे व्रात्य आर्य कोशल, मिथिला और विहार आदि प्रान्तोंसे आ कर बसे थे और उपनिषद् या ब्रह्मविद्याके अभ्यासी थे। मिथिलाके राजा जनक इन्हीं व्रात्य आर्यों में थे। इनसे लिच्छवि लोगोंमें गणकी प्रथा महात्मा बुद्धदेवके काल तक प्रचलित रही, इसका पता त्रिपिटकसे चलता है।

राजनय (सं० पु०) राज्ञः नयः। राजनीति।

राजना (हिं० क्रि०) १ विराजना, उपस्थित होना। २ शोभित होना, सोहना।

राजनाथ—अच्युतरामाभ्युदयकाव्यके रचयिता।

राजनापित (सं० पु०) नापितानां राजा राजनापितः राजदन्तादित्वात् परनिपातः। नापितश्रेष्ठ, हज्जामोंमें श्रेष्ठ।

राजनामन् (सं० पु०) राज्ञोनाम नाम यस्य। पटोल, परवल।

राजनारायण मुखोपाध्याय—तुलसी-चन्द्रिकाके रचयिता।

राजनारायण वसु—कायस्थकुलोद्भव बंगालकी सुकृती सन्तान। आपने कलकत्तेके हिन्दू-कालेजमें शिक्षाप्राप्त किया था। आप डेरोजिओकी छात्रमण्डलीमें विशेष सुशिक्षित थे। राजा राममोहनराय द्वारा प्रतिष्ठित आदि ब्राह्मसमाजका पृष्ठपोषक हो कर उसकी उन्नतिमें आप बहुत दिनों तक रहे। अन्तमें बुढ़ापा होने पर आपने वैद्यनाथमें रहनेकी इच्छा की और वहां चले गये। १९वीं सदीके शेषभागमें आपकी जीवनलीला शेष हुई।

राजनि (सं० पु०) रञ्जनका अपत्य। (तैत्ति० आर० ५।४।१२)

राजनिवेशन (सं० क्ली०) राजप्रासाद।

राजनीति (सं० स्त्री०) राज्ञा नीतिः। वह नीति जिसका अवलम्बन कर राजा अपने राज्यकी रक्षा और शासन दृढ़ करता है। इसके प्रधान दो भेद हैं—एक तन्त्र और दूसरा आवाप। वह नीति जिसके द्वारा अपने राज्यमें सुप्रबन्ध और शान्ति स्थापित की जाय, तन्त्रनीति कही जाती है और जिसके द्वारा पर राष्ट्रोंसे सम्बन्ध दृढ़ किया जाय, वह आवाप कहलाती है। स्वराज्यमें प्रजाओंका समाचार और उनकी जातिका पता देनेके लिये राजाको चरसे काम लेना पड़ता है और पर राष्ट्रमें स्वराष्ट्रके स्वत्व, वाणिज्य, व्यापारादिकी रक्षा तथा उनकी गतियों-का पता देनेके लिये दूत रहते हैं। इन दूतों और चरोंसे राजा स्वराष्ट्र और परराष्ट्रकी गति, चेष्टा आदिका पता लगा कर अपनी शक्ति और स्वत्वकी समुचित रक्षा करता है। प्राचीन ग्रन्थोंमें आवापके छः मुख्य भेद किये गये हैं जिनको षड्गुण भी कहते हैं। उनके नाम ये हैं—सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधीकरण और संश्रय। ये षड्नीतिके नामसे भी प्रसिद्ध हैं। राजनीतिके चार और अंग कहे गये हैं—साम, दान, दण्ड और भेद।

राजनीतिक (सं० त्रि०) राजनीति सम्बन्धी।

राजनील (सं० क्ली०) मरकत मणि, पन्ना।

राजन्य (सं० पु०) राज्ञोऽपत्यमिति राजन् (राजश्वशुरात्-यत्। पा ४।१।१३७) इति यत। १ क्षत्रिय। "ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद् बाहू राजन्यः कृतः।" (ऋक् १०।९०।१२) २ राजपुत्र। राजति दीप्यते इति राज (राजेरन्यः। उण् ३।१००) इति अन्य। ३ अग्नि। ४ क्षीरिकावृक्ष, खिरनीका पेड़।

राजन्यक (सं० क्ली०) राजन्यानां क्षत्रियाणां समूह राजन्य (गोत्रोक्षोष्ट्रोरभ्रराजराजन्येति। पा ४।२।३९) इति वुञ्। १ क्षत्रियोंका समूह। २ क्षत्रियोंके वंश और देश।

राजन्यत्व (सं० क्ली) राजन्यस्य क्षत्रियस्य भावः त्व। क्षत्रियका भाव या धर्म, क्षत्रियका कार्य।

राजन्यबन्धु (सं० पु०) राजन्यस्य बन्धुः। १ राजकुटुम्ब। २ राजबन्धु अवज्ञासूचक प्रयोग। ३ क्षत्रिय।

राजन्यवत् (सं० त्रि०) राजपुत्रादिके साथ सम्बन्ध रखनेवाला।

राजन्वत (सं० त्रि०) राजा अस्ति अस्य अस्मिन्निति वा राजन् प्रशंसायां मतुप् (राजन्वान् सौराज्ये। पा ८।२।१४)

इति निपातनात् नलोपः। सुराजयुक्तदेश, प्रजापालन आदि धर्मपरायण राजयुक्त देश।

राजपक्षी (हिं० पु०) राजहंस।

राजपटोल (सं० पु०) पटोलानां राजा पदनिपातः। मधुर पटोल, एक प्रकारका परवल जिसके फल बड़े होते हैं। फागुन चैतके महीनोंमें इसको डालियाँ काट कर खेतों में दो दो हाथको दूरी पर पंक्तियोंमें नाला खोद कर गड़ाई जाती है और उसमें पानी दिया जाता है। यह बैसाख जेठसे फूलने लगता है और इसकी फसल वर्षा ऋतुके मध्य तक रहती है। फल देखनेमें लम्बे, बड़े और खानेमें कुछ कम स्वादिष्ट होते हैं। इसे प्रति वर्ष खेतों में लगानेकी आवश्यकता होती है। बिहारप्रान्तमें इस-की खेती अधिक होती है। इसे पूरबी या पटनेका परवल भी कहते हैं।

राजपटोली (सं० स्त्री०) राजप्रिया पटोली। मधुर पटोली या परवल।

राजपट्ट (सं० पु०) राजप्रियः पट्ट इव। मणिविशेष, चुम्बक पत्थर। पर्याय—विराजा।

राजपट्टिका (सं० स्त्री०) चातक पक्षी।

राजपति (सं० पु०) राज्ञां पतिः। सम्राट्, राजाओंका राजा।

राजपत्नी (सं० स्त्री०) राज्ञः पत्नी। १ राजमहिषी, राजाकी स्त्री, रानी। २ पित्तल पीतल।

राजपथ (सं० पु०) राज्ञां पन्थाः (ऋक्पूरब्धूःपथामानक्षे। पा ५।४।७४) इति अ। राजमार्ग, वह चौड़ा मार्ग जिस पर हाथी, घोड़े, रथ आदि सुगमतासे चल सकते हों।

राजपद्धति (सं० स्त्री०) राज्ञः पद्धतिः। १ प्रधान पथ, राजपथ। २ राजनीति।

राजपर्णी (सं० स्त्री०) प्रसारिणी नामकी लता।

राजपलाण्डु (सं० पु०) पलाण्डूनां राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः। रक्तवर्ण पलाण्डु, लाल प्याज। पर्याय—अर्कनेत्र, नृपाह्न, राजप्रिय, महामूल, दीर्घपत्र रोक, नृपेष्ट, नृपकन्द, महाकन्द, नृपप्रिय, रक्तकन्द, राजेष्ट। गुण—शीतल, पित्तकफनाशक, दीपन तथा अतिशय निद्रा जनक।

राजपाड़ा—बम्बई प्रेसिडेन्सीके काठियावाड़ विभागके गोहेलवाड़ प्रान्तका एक सामन्तराज्य।

राजपाल (सं० पु०) राजानं पालयति रक्षति। १ वह जिससे राजा या राज्यकी रक्षा हो सेना आदि। २ राज विशेष।

राजपितृ (सं० पु०) राजाका पिता।

राजपिप्पला—बम्बई प्रदेशके रेवाकान्था पोलिटिकल एजेन्सीके अन्तर्भुक्त एक देशी सामन्त राज्य। यह अक्षा० २१ ४३´ से २१ ५६´ उ० तथा देशा० ७३ ५´ से ७४ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण १५१७ वर्गमील है। इसके उत्तरमें नर्मदा नदी और रेवाकान्थाका मेहवासी राज्य, पूरबमें खान्देश जिलेका मेहवासी राज्य, दक्षिणमें बरोदा राज्य और सूरत जिला तथा पश्चिममें ब्रोच जिला है। यह राज्य उत्तरसे दक्षिण ४२ मील लम्बा तथा ६० मील चौड़ा है।

सतपुरा पर्वतमालाकी एक शाखा इस राज्यमें तमाम फैला हुई है। उस शाखाका नाम है राजपिप्पला शैल शाखा। पहाड़ी जंगलमें तरह तरहके वृक्ष उगते हैं। रुई तमाकू, ईख आदिकी खेती होती है। रतनपुरके निकट लोहे और मूल्यवान् पत्थरकी खान है। करजन नामक नदी नानघट शैलसे निकल कर राज्यके मध्य होती हुई नर्मदामें गिरी है।

यहांके सरदार उज्जयिनीराज सदावतके पुत्र चोका राणाके वंशधर कहलाते हैं। उनका कहना है, कि चोकाराणा पिताके साथ लड़ाई झगड़ा करके पिप्पलामें आ कर बस गये। चोकाराणा पर्मारवंशीय राजपूत थे। प्रेमगढ़ (वर्त्तमान पश्चिम) निवासी गोहेलवंशीय राज-पूत मखेराजके साथ उनकी एकमात्र कन्याका विवाह हुआ। मखेराजके दो पुत्र थे, डुङ्गरजी गेमारसिंहजी। डुङ्गरजीने भावनगर स्थापन कर राज्यकी परिचालना की तथा गेमारसिंहजी पितृसम्पत्तिके अधिकारी हुए। प्रायः १४७० ई०से यहां गोहेलवंशीय राजाओंका शासन विस्तृत हुआ।

अहमदाबादके मुसलमानराजसे परास्त होनेके बाद यहांके सरदारोंने कबूल किया, कि वे जरूरत पड़ने पर राजसरकारको १००० पदाति और ३ सौ अश्वारोही सेनासे मदद पहुंचायेंगे। १५७३ ई०में अकबर शाह द्वारा गुजरात विजय तक यही व्यवस्था रही। अकबर

शाहने सैन्य-साहाय्यके बदले वार्षिक ३५५५०) रु० कर स्थिर कर दिया। मुगल बादशाह औरङ्गजेबके शासन-काल तक (१७०७ ई०) उन्होंने राजकर दिया था। बाद-मे मुगलशासनकी विशृङ्खला होने पर सरदारोंने राजकर भेजना बंद कर दिया। १८वीं सदीके आखिरमें दामा-जी गायकवाडने इसका बहुत कुछ अंश जीत लिया। उन्होंने पहले वार्षिक ४८०८०) रु० ले कर वह स्थान राजाको छोड दिया। पीछे वह कर ६२०००) रु० तक बढा दिया गया है।

इस छोटे सामन्तराज्य पर गायकवाडका बार बार अत्याचार और गृहविवाद देख कर अंगरेजराजने बीचमें पड कर मेल करा दिया। तदनुसार १८२१ ई०में वेरि-सालजी राजसिंहासन पर बैठे। १८६० ई०में अंगरेज-की सलाहसे वेरिसालजीके पुत्र गम्भीरसिंहजी राजा हुए। १८८७ से १८६७ ई० तक राज्यशासनकी बागडोर अंगरेजोंके हाथ रही। वर्त्तमान सामन्तका नाम है एच० एच० महाराजा श्री विजयसिंहजी छत्रसिंहजी। इन्हें गोद लेनेका अधिकार है तथा ११ सलामी तोपें मिलती हैं।

इस राज्यमें नानदोद नामक एक शहर और ६५१ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या लाखसे ऊपर है। गुजराती यहांकी मुख्य भाषा है। जुआर, बाजरा, धान, रुई और चना ही राज्यकी प्रधान उपज है।

शासनकार्यकी सुविधाके लिये राज्य कई परगनोंमें विभक्त है। एक एक परगना एक एक थानेदारके अधीन है। सामन्तको मृत्युदण्ड भी देनेका अधिकार है। इसमें पोलिटिकल एजेण्टकी भी सलाह नहीं लेनी पडती है। राज्यकी आय ८ लाख रुपयेसे अधिक है। राज्यमें एक हाई स्कूल और ८१ प्राइमरी स्कूल हैं। स्कूलके अलावा एक अस्पताल और पांच चिकित्सालय है। नानदोदमें एक मवेशी-अस्पताल भी है।

२ उक्त राज्यकी प्राचीन राजधानी। यह प्राचीन नगरभाग देवसला नामक पर्वतकी चोटी पर बसा हुआ है। यहां एक दुर्ग भी है। उस गिरिदुर्गमें यहांके सरदार १७३० ई० तक रह गये है। इसके बाद उन्होंने करजन नदीके समीप पर्वतशिखर पर राजपिप्पलाकी एक नई राजधानी बसाई जिसका नाम नानदोद रखा गया।

राजपीलु (सं० पु०) राजप्रियः पीलुः। महापीलु नामका वृक्ष।

राजपुत्र (सं० पु०) राज्ञश्चन्द्रस्य पुत्रः। १ राजनन्दन, राजाका पुत्र। पर्याय—युवराज, कुमार, भर्तृदारक। (अमर) २ वर्णसङ्कर जातिविशेष। अम्बष्ठके औरस तथा वैश्यकन्याके गर्भमें इस जातिकी उत्पत्ति हुई है।

"वैश्यादम्बष्ठकन्यायां राजपुत्रस्य सम्भवः।"

(पराशरपद्धति)

पुराणके मतसे यह जाति क्षत्रिय पिता और करण माताले उत्पन्न हुई है। ३ राजाकी ओरसे मिला हुआ एक पद या उपाधि, सरदार। गुप्तोंके समयमें यह पद घुडसवारोंके नायकको दिया जाता था। ४ बुधग्रह। ५ महाराजचूत, बडे आमका एक भेद। ६ ओरिकावृक्ष, तिरनोका पेड।

राजपुत्र—एक कामशास्त्रके प्रणेता। दामोदरकृत कुट्टनी-मतमें इसका उल्लेख है।

राजपुत्रक (सं० पु०) १ राजकुमार। २ राजपुत्र वंश।

राजपुत्रा (सं० स्त्री०) राजा पुत्रो यस्याः। राजाकी माता, वह स्त्री जिसका पुत्र राजा हो।

राजपुत्रिका (सं० स्त्री०) राजपुत्री संज्ञायां कन्। १ शरारि नामक पक्षी। २ राजकन्या। ३ शुक्ल यूथिका, सफेद जुही। ४ पित्तल, पीतल।

राजपुत्री (सं० स्त्री०) राज्ञः पुत्रीव। १ कटु तुम्बी, कडु-आ कद्दू। २ रेणुका। ३ जाती, जाही फूल। ४ राज-रीति। ५ छुछुन्दरी। ६ मालती। ७ राजकन्या।

राजपुत्रीय (सं० त्रि०) राजपुत्रसम्बन्धीय।

राजपुर (सं० क्ली०) राज्ञः पुरं। राजाका पुर, राजपुरी।

राजपुर—बम्बईप्रदेशके रेवाकान्ताके अन्तर्गत एक सामत-राज्य। यहांके सरदार बडौदाके गायकवाडको कर देते हैं।

राजपुर—बम्बई-प्रदेशके काठियावाड़के झालावार विभागके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। यह बम्बई बडौदा रेलवेसे बड़वान् स्टेशनसे २॥ कोस दूर पड़ता है।

राजपुर—बङ्गालके २४ परगना जिलेके अन्तर्गत एक शहर। यह अक्षा० २०° २४´ उ० तथा देशा० ७८° ६´ पू०

के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ३ हजारके करीब है। यहां तीन मोसमानाय, एक पुलिस स्टेशन, डाकघर और एक अस्पताल है। १८०२ ई०में यहां एक कांचका कार खाना खोला गया है।

राजपुर—पञ्जाबके पतियाला राज्यके अन्तर्गत पिञ्जौर निजामतकी एक तहसील। यह अक्षा० ३० २२´ से ३० ३६´ उ० तथा देशा० ७६ ३३´ से ७६ ४४´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १६१ वर्गमील और जनसंख्या ५५ हजारसे ऊपर है। इस तहसीलमें १४६ ग्राम लगते हैं।

राजपुर—युक्तप्रदेशके देहरादून जिलेका एक नगर। मुसाराक स्वास्थ्यनिवास इसी स्थान हो कर जाना पड़ता है।

राजपुर अली—मध्य भारतके भोपावर एजेन्सीके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य। यह नर्मदा और विन्ध्यशैलके मध्य स्थानमें अवस्थित है। भूपरिमाण ८३७ वर्गमील है। यहांके सरदार उदयपुर-राजवंशधर और शिशोदिया कुल सम्भूत हैं। महाराज मगण मालव-आक्रमणके समय इसी पहाड़ी राज्य हो कर गये थे, पर वे कुछ भी अनिष्ट न कर सके थे। वृटिश सरकारके मालवमें कर्तृत्व स्थापन करनेके कुछ पहले राणा प्रतापसिंह यहांकी मस नद पर बैठे थे। उनके लड़के यशोवन्तसिंहके १८६० ई०में मरने पर बड़े लड़के गङ्गदेव राज्याधिकारी हुए। गङ्गदेवको राज्य चलानेमें असमर्थ देख अङ्गरेजराजने कुछ समयके लिये शासनभार अपने हाथ लिया। १८७१ ई०में गङ्गदेवकी मृत्यु हुई। पीछे उनके छोटे भाई रूप देव राजसिंहासन पर बैठे। १८८१ ई०में रूपदेवके स्वर्ग वास होने पर उनके पुत्र सारी सम्पत्तिके अधिकारी हुए। किन्तु उनका नाबालिगी तक वृटिश-सरकारने उसकी देखरेख की।

राजपुरुष (सं० पु०) राज्ञः पुरुषः। राज्यका कोई अफसर या राज्यकर्त्ता, राजकर्मचारी।

राजपुरुषवाद—नैयायिक मतसे विचार करनेकी एक प्रणाली। गोपालताताचार्य इस सम्बन्धमें एक ग्रन्थ बना गये हैं।

राजपुष्प (सं० पु०) पुष्पाणां राजा, राजदन्तादित्वात् पर निपातः। १ नागकेशरका पेड़। २ कनकचम्पा।

राजपुष्पी (सं० स्त्री०) राजप्रियं पुष्पमस्याः ङीप्। १ करुणी का फूल। यह कोंकणमें होता है। २ वनमल्लिका। ३ जाती पुष्प।

राजपूजित (सं० पु०) वे श्रेष्ठ ब्राह्मण जिनका सत्कार राज्यकी ओरसे होता हो और जो जीविका आदिके लिये प्रजावर्गके आश्रित न हों।

राजपूज्य (सं० क्ली०) १ स्वर्ण, सोना। (त्रि०) राज्ञा पूज्यः। २ राजाका पूजनीय।

राजपूत—राजपूतानावासी क्षत्रिय वर्णात्मक जातिविशेष। इस जातिके राजे अपनी वीरता और उदारता गुणसे भारतमें जो अक्षयकीर्त्ति स्थापन कर गये हैं वह इति हासमें स्वर्णाक्षरमें लिखा है। राणा प्रतापकी असम्य शक्ति, चित्तोर राजकुलमहिषी पद्मिनी आदिकी सतीत्व कहानी राजपूत जीवनका उज्ज्वल दृष्टान्त है।

ये राजपूतगण भारतीयवंशजमें आ कर अपनेको सूर्यवंश चन्द्रवंश और अग्निकुल-समुद्भूत बतलाते हैं सही पर यथार्थमें प्राचीन आर्यक्षत्रियवंशमें उत्पन्न नहीं हुए हैं। ऐतिहासिक अनुसन्धानसे जाना जाता है, कि एक समय शाकद्वीपवासी (Scythia) शक राजोंने भारत सीमान्तको जीत कर शक प्रधानता स्थापित की। ये शक लोग क्षत्रिय थे। मनुसंहिताके १०।४३ ।४४ श्लोकमें लिखा है, कि ब्राह्मणके अभावमें वे वृषलत्वको प्राप्त हुए थे। हरिवंश और पुराणादिके मतानुसार सगरने जब हैहयोंका विनाश कर पितृहत्याका बदला लिया, तब शक लोग वशिष्ठके शरणमें पहुंचे। वशिष्ठके कहनेसे सगरने शकोंके शिर मुंड़वा कर छोड़ दिया। किन्तु सुदूर शाकद्वीपवासी चातुर्वर्ण्य समाजभुक्त शकक्षत्रियगण इस प्रकार सताये न गये। वे बहुत समय बाद भारतमें प्रवेश कर भारतीय क्षत्रियोंके साथ विवाहादि संबंध स्थापन करनेमें समर्थ हुए थे।

लोगोंका विश्वास है, कि मन्वादि-वर्णित चतुर्वर्णके अन्तर्गत दूसरा क्षत्रियवर्ण भारतमें और नहीं है। किन्तु ब्राह्मणोंका सहायक हो कर जो सब शक वा वाह्लिक भारतवर्षमें घुसे थे उनकी युद्धनीति कुशलता देख कर ब्राह्मण लोग बड़े प्रसन्न हुए और उनके प्रति क्षत्रियत्व

आरोप कर क्षत्रियका आसन प्रदान किया। इसी कारण उन्होंने सूर्य और चन्द्रवंशकी तरह शकोंका वैदेशिक उत्पत्तिवृत्तांत लिपिबद्ध न करके अग्निसे ही इस क्षत्रिय कुलकी उत्पत्ति स्वीकार कर ली है।

राजपूत इतिहास-लेखक सुप्रसिद्ध टाड साहबने लिखा है, कि जिट (जाट), तक्षक और असि आदि शाकगण ईसा-जन्मके ६०० वर्ष पहले भारतवर्ष आये थे। भारतीय हिन्दुओंके सस्रवमें पड कर वे लोग धीरे धीरे हिन्दू-भावापन्न हो गये। यहां तक, कि वे अपने पूर्वतन संस्कारको परित्याग कर हिन्दूके पर्वादिका अनुकरण करने लगे। उन्होंने महाक्षत्रप आदि उपाधियोंसे अपनेको हिन्दूक्षत्रिय बतलानेकी बडी कोशिश की थी।

कनिष्क, हुविष्क, वासुदेव आदि शककुषणवंशीय कोई कोई राजा 'देवपुत्र' उपाधिका व्यवहार करते थे। वह 'देवपुत्र' आगे चल कर 'राजपुत्र' हो गया। शायद उसीसे शाकद्वीपीय क्षत्रिय-राजोंके राजपूत नामकी उत्पत्ति हुई है। शकराजाओंके खरोष्ट्री अक्षरमें उत्कीर्ण मुद्रा पर 'ा' परित्यक्त तथा संस्कृत 'राजपुत्र' की जगह 'रजपूत' शब्द प्रयुक्त हुआ है। आज भी राजपूतानेके लोग अपनेको रजपूत कहते हैं।

ऐतिहासिक टाडका कहना है, कि राजपूतानेमें आनेसे पहले राजपूत लोग जाबुलिस्तान और गान्धारमें राज्य करते थे। वे लोग शकवंशसम्भूत होने पर भी हिन्दूक्षत्रिय कहलाते थे। ९५६ ई०में भौगोलिक मसूदी कन्दहार (गान्धार) को राजपूतका राज्य बतला गये हैं। भारतीय इतिहास पढनेसे मालूम होता है, कि किदार-कुषणवंशीय शाहिराजने हूणोंको परास्त कर गान्धार अधिकार किया। १०वीं सदी तक गान्धारराज्य कुषण-वंशके अधिकारमें था। अलबिरुनीने किदारवंशीय राजोंको कनिष्कराजका वंशधर बताया है। फिर उन्होंने राजतरङ्गिणीकार कह्लणके मतसे इस केदारवंशको तुरुष्क-वंशोद्भव तथा काबुलका हिन्दूराजा कहा है। ५वीं सदीकी एक शिलालिपिसे टाड साहबने दिखाया है, कि शकराजपूतगण यादव-कन्याका पाणिग्रहण कर क्षत्रिय कहलाने लगे हैं।

गान्धारके अन्तिम किदारराजके मन्त्री कल्लर ब्राह्मण थे। उन्होंने रुपयेके बलसे किदारराजाके हाथसे गान्धार-राज्य छीन लिया था। पीछे किदारवंशने फिरसे प्रबल हो कर गान्धारराज्यका उद्धार किया। १०२६ ई०में इस राजवंशका अधःपतन होने पर मुसलमानोंका अभ्युदय हुआ। इस राजवंशके साथ साथ काश्मीरके क्षत्रिय-राजोंकी रिश्तेदारी थी। काश्मीरकी अनेक राजमहिषी इसी गान्धार राजवंशकी हैं। यह गान्धार-राजवंश जञ्जुद राजपूत भी कहलाता था। टाडने कहा है—गान्धारको शकवंशीय राजपूत-शाखाके राजपूतानेमें अपना आधिपत्य फैलाया।

ये शकगण पहले सूर्योपासक थे। मगाचार्य जरथुस्त्र द्वारा जब अग्निपूजा प्रचार हुआ और पारस्याधिपति उसके पृष्ठपोषक हुए, तब सौर शकगण अग्निपूजक हो गये। भारतवर्षमें जो सब शकमुद्रा पाई गई हैं उनमें सूर्योपासना और अग्निवेदीका चित्र देखा जाता है। भारतमें भी वे लोग पहले सौर और अग्निपूजक समझे जाते थे। यही कारण है, कि उनके वंशधर राजपूतगण पूर्वपुरुषोंकी क्षीणस्मृतिके परिचायकस्वरूप अपनेको भी सूर्यवंशीय और अग्निकुलोद्भव कहते हैं।

भारतवर्षमें जब शकका आधिपत्य फैला, उस समय बौद्ध और जैनधर्म बहुत बढा चढा था। ब्राह्मणोंके मध्य शिवोपासना तब भी विलुप्त नहीं हुई थी। ब्राह्मणों-के प्रभावसे शकोंमेंसे बहुतेरे हिन्दूधर्म ग्रहण कर शैव हो गये थे। पीछे कनिष्कके समयसे ही इस वंशमें बौद्ध और जैनधर्मके प्रति लोगोंका अनुराग और विश्वास बढ गया।

भारतीय क्षत्रियप्रभावसे बौद्ध और जैन धर्मका अभ्युदय हुआ। उस क्षत्रिय प्रभावको विलुप्त करनेकी इच्छासे नीतिकुशल ब्राह्मणोंने अभ्यागत शकराजाओंका आश्रय लिया। शकराजगण धीरे धीरे नितान्त गोब्राह्मण भक्त हो गये। उधर ब्राह्मण लोग भी उन्हें विशुद्ध क्षत्रिय कहनेसे बाज नहीं आये। इन सब राजाओंकी सहायतासे ब्राह्मणधर्मका पुनः अभ्युदय हुआ।

ब्राह्मणोंके साहाय्यसे जब शकराजवंशीयगण क्षत्रिय कहलाने लगे, तब उनकी भारतीय उत्पत्ति और विशुद्ध क्षत्रियत्व प्रतिपादन करनेके लिये ब्राह्मण और

भट्टकवियोंने वशिष्ठ कर्त्तृक अग्निकुलोत्पत्ति कहानी का प्रचार किया। पीछे यही कहानी राजपूत समाजमें प्रकृत विवरण समझी जाने लगी। भविष्य पुराणमें भी देखा जाता है,— "अग्निजात्या मया प्रोक्ताः सोमजात्याः द्विजातयः" अर्थात् शाकद्वीपीय मगगण अग्निसे उत्पन्न हुए हैं। इसी प्रकार शाकद्वीपीय ब्राह्मणों की तरह क्षत्रिय भी अपनेको अग्निकुलज बतलाते हैं। अब राजपूतगण अपनेको शकजातीय नहीं कहते। महात्मा टाडने अनेक प्रकारके प्रमाणसे दिखाया है, कि आज भी राजपूतों के आचार व्यवहार, रीतिनीति और उत्सवादिमें शकप्रभाव विद्यमान है।

टड देखा।

उक्त पुर्वेवार्यशाली राजपूतजातिने आगे चल कर अपने भुजबलसे उत्तर-भारतका अधिकांश स्थान जीता था और वहांके सरदाररूपमें प्रचुर सम्पत्ति अर्जन की थी। उन सब प्राचीन सरदारगण द्वारा राजपूतजातिकी एक शाखा कल्पित हुई है। ये लोग ही अभी भारतीय प्राचीन क्षत्रियजातिके वर्त्तमान प्रतिनिधि समझे जाते हैं। युक्तप्रदेशमें इनका युद्धविद्याविशारद कह कर विशेष आदर है तथा ये राणा, ठाकुर, क्षत्रि आदि उपाधियोंसे भूषित हैं। इन सब राजे या राजवंशके उत्पत्ति सम्बन्धमें भिन्न भिन्न आख्यायिका भाटके मुंहसे सुनी जाती है। यादवेतर राजपूतोंने यमुना और नर्मदा तीरवर्ती जिस विस्तीर्ण भूभागमें राज्य किया था वह राजवाड़, राजस्थान वा राजपूताना नामसे प्रसिद्ध है।

प्रत्नतत्त्वविद् कनिंहमने प्राचीन राजपूतानेके तीन विभाग किये हैं। इसके पश्चिम विभागमें राठोरगण द्वारा शासित बीकानेर और मारवाड़प्रदेश, मध्य जो भट्टि परिचालित जयसलमीर राज्य, कछवाहोंका जयपुर और शेखावाटी प्रदेश तथा चौहान-सम्प्रदायका अजमीर राज्य, पूर्व विभागमें मकड़-कछवाहोंका अलवार राज्य, जाटराजाओंका भरतपुर और ढोलपुर, यादवोंका करौली राज्य, इनके सिवा मथुरेजाधिकृत गुड़गांव, मथुरा और आगरा जिला तथा ग्वालियरराज्यका उत्तरांश एक समय राजपूतोंके अधिकारमें था। यहांके तोमरगढ़, कछवाहागढ़, भाटीगढ़ सिंधियाड़ आदि नाम आज भी उसकी गवाही देता है। दक्षिणविभागमें चौहानोंका अधिकृत बूंदी, कोटा, मेवाड़ और मालव राज्य है।

राजस्थानके प्राचीन इतिहासकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि अलवारकी आरावली शैलमाला और यमुनाके मध्यवर्त्ती भूभागके पश्चिममें मत्स्य, पूर्वमें शूरसेन और दक्षिणमें दशार्णराज्य था। वर्त्तमान अलवार, जयपुर, भरतपुर, वैराट और माचारी प्रदेशके अन्तर्भुक्त तथा कर्णाट मथुरा और वयानामदन शूरसेनके अन्तर्गत था। इसके पूरबमें अन्तर्वेदी और रोहिलखण्ड ले कर पञ्चालराज्य संगठित था। ये शूरसेनगण यादव वा यदुवंशी कहलाते थे। शूरसेनोंके अधिकृत विस्तीर्ण राज्यका कुछ अंश आज भी करौलीके यादव राजाके शासनाधीन है। यादवगण पहले मगधके मौर्यराजके अधीन पराजित हुए। इसके बाद भारतीय शक क्षत्रप राजुबुल और उनके लड़के शोडाससे यादवोंको परास्त कर अपना आधिपत्य फैलाया। गुप्तराजके शकअभ्युदयसे यादवगण और राजपूतगण बहुत कमजोर हो गये। ६६५ ई०में बाणपरिव्राजक यूएनचुयंगने मथुराधिपतिको शूद्रवंशोद्भव बताया है। कुछ समय बाद यादव राजपूतोंने बयाना और मथुराको पुनः जीत कर धीरे धीरे राजपूतानेके पूर्वविभागमें राज्य फैलाया।

कन्नौजराज हर्षवर्द्धनकी मृत्युके बाद (६०७-६५० ई०में) दिल्लीमें तोमरोंने, अजमेरमें चौहानोंने, चित्तौरमें शिशोदियाने, नरवार और ग्वालियरमें कछवाहोंने सिर उठा कर राजपूतजातिका गौरवपूर्ण प्रभाव चारों ओर फैला दिया। इसके बाद मुसलमानोंके साथ युद्धमें पराजित हो राजपूत लोग भिन्न स्थानमें जानेको बाध्य हुए। राजपूतजातिके इस उपनिवेशसे शायद विभिन्न कुल या जातिकी सृष्टि हुई है।

सूर्यवंशी राजपूतोंके मध्य गहलोत, राठोर और कछवाह नामक तीन श्रेष्ठ हैं। गहलोतवंशकी २४ शाखाएं हैं जिनमें शिशोदियाकुल विख्यात है। राणा वा जयपुरके राणा इसी वंशके हैं। राठोरगण अपनेको कुशके वंशधर बतलाते हैं। इसमें भी २४ शाखा देखी जाती है। योधपुरके राजपूतराज इसी

वंशके हैं। कच्छवाहगण कुशको अपना आदिपुरुष कहते हैं। जयपुरके राजा इसी वंशके हैं। इनके मध्य १२ घर हैं। चन्द्रवंशी यदुको ही अपना आदिपुरुष मानते हैं। इनके मध्य भी ८ शाखा देखी जाती हैं। कच्छप्रदेश और जयशलमीरके भारेजा और भट्टिगण बड़े प्रतापशाली हैं।

अग्निकुलके मध्य परमार, परिहार, चालुक्य और चौहान नामक चार जत्थे हैं। प्रत्येक जत्थेमें यथाक्रम ३५, २,१६ और २४ शाखा हैं। छत्तीस क्षत्रिय कुलोंके मध्य उपरोक्त जत्थोंको छोड़ कर और भी कितने जत्थोंका उल्लेख देखनेमें आता है। नीचे उनके नाम दिये जाते हैं—

चौरा वा चावड़, तक्षक, जाट, हूण, काठी, वह्ल, झालामकहन, गोहिल, सर्वय वा सरि, अप्स, जटवा, कमरी, दवि, गोर, दोद, गढ़वाल, चन्देला, बुन्देला, बड़गूजर, सेनगार, शिकारवाल, वाई, दहिया, जोहिया, मोहिल, निकुम्भ, राजपति, दहिरिया, दहिमा आदि।

ऊपरमें अग्निकुलका उत्पत्ति-विवरण लिखा गया है। चाहमान वा चौहानकुलमें हर, शनि गुरु, खिची और देवरा श्रेणी प्रसिद्ध हैं। दिल्लीश्वर पृथ्वीराजने चौहानकुलका मुख उज्ज्वल किया था। प्रतीहार वा परिहारोंकी मन्दावरमें राजधानी थी। एक समय यही मारवाड़के प्रधान नगररूपमें गिना जाता था। पीछे राठोरोंने मारवाड़में आधिपत्य फैलाया। चौलुक्य वा शोलङ्किगण तथा परमार राजगण एक समय भारतके इतिहासपट पर जो वीरत्वचिह्न अङ्कित कर गये हैं वह राजस्थानके इतिहासपाठकसे छिपा नहीं है।

चालुक्य, चौहान, परिहार और परमार देखो।

विक्रम-सवत्‌के प्रारम्भसे ले कर १२वीं सदी तक राजपूतोंने अप्रतिहत प्रभावसे उत्तर पश्चिम भारतका शासन किया। अजमेर और दिल्लीके अधीश्वर पृथ्वीराज जब शाहबुद्दीन घोरी द्वारा ११९३ ई०में परास्त हुए, तभीसे यथार्थमें राजपूतका प्राधान्य जाता रहा तथा मुसलमानोंका अभ्युदय हुआ।

ग्रीक इतिहासकारके वर्णनसे मालूम होता है, कि माकिदनवीर अलेकसन्दरकी भारत-चढ़ाईके समय पञ्जाबके पहाड़ी प्रदेशके कनोचजातीय राजपूतोंका वास था। फिरिस्तानका कहना है, कि वे लोग कोटकाङ्गड़ामें राज्य करते थे। ७११ ई०में खलीफा वालिदके राज्यकालमें अरबोंने सिन्धुप्रदेश पर चढ़ाई कर वहांके अधिवासी सुम्न और सुमरावंशीय राजपूत राजाओंको परास्त किया था। परवर्त्तिकालमें इस राजपूतवंशके कितने इसलामधर्ममें दीक्षित हुए। आज भी बलुचिस्तानके मध्यवर्त्ती भाल्वन प्रदेशमें राजपूतजातिका वास है।

महम्मद घोरी द्वारा परास्त होनेके पहले राठोरगण कन्नौजमें, शोलङ्की अनहलवाड़में चौहान अजमेरमें, कच्छवाह जयपुरमें, शिशोदिया उदयपुरमें, गहलोतवंश मेवारमें पूर्ण प्रतापसे राजशासन करते थे। कांगड़ाराज तथा जम्बूराजके अधीन दूसरे दो दल राजपूतोंका इरावती और शतद्रुके मध्यवर्त्ती पहाड़ी प्रदेशमें वास था। शेषोक्त राजपूतगण जम्मुवाल नामसे प्रसिद्ध थे।

राजपूतानेमें राणा सङ्ग, प्रतापसिंह आदि शिशोदिय वीरोंने मुगल बादशाह बाबर, अकबरशाह आदिके विरुद्ध अस्त्र धारण कर जैसी वीरता दिखाई है, वह इतिहास पढ़नेवालोंको अच्छी तरह मालूम है। मुगलराजसरकारमें भी मानसिंह, जयसिंह आदि राजपूतगण वीरताकी पराकाष्ठा दिखा गये हैं।

महाराष्ट्रकेशरी शिवाजी अपनेको राजपूतवंशधर बतलाते थे। तञ्जोर और कोल्हापुरमें इस वंशकी शाखा आज भी विद्यमान है। १७५६ ई०में किसी राठोर-सरदार द्वारा आमन्त्रित हो महाराष्ट्रीयदल अजमेरमें घुसा। इस समयसे राजपूतानेको शासनभित्ति शिथिल होने लगी। १८०३ ई०में राजपूतानेका अधिकांश मराठोंके हाथ आया। सेनापति वेल्सिली और लेकके साथ उत्तर भारतमें सिन्देराजका युद्ध हुआ। इस युद्धसे महाराष्ट्रशक्ति जब कमजोर हो गई तब उन्होंने अंगरेजोंके कहनेसे राजपूत राजाओंके प्रति अत्याचार करना छोड़ दिया। इसके बाद १८१४ ई०में पिंडारी डकैत-सरदार अमीर खांके उपद्रवसे राजपूतानेका कुछ अंश तहस नहस हो गया। इस समय उदयपुर राजकन्याके साथ विवाह ले कर जयपुर और योधपुरराजके मध्य

शत्रुता हो गई। मराठों और पठानोंने दोनों दलको सहायता पहुंचा कर राज्यको विध्वस्त कर डाला। आखिर राजकन्याको विष खिला कर मार डाला जिससे दोनों पक्षमें फिर मेल हो गया। १८१७ ई०में मार्किस आव हेष्टिंस द्वारा अमीर खाँ वशीभूत होने पर राजपूत राजगण अंगरेजोंकी अधीनता स्वीकार करनेको बाध्य हुए। राजपूतगण धर्मनीति, राजनीति और समाजनीति की रक्षा करनेमें बड़े यत्नवान् थे। उन्होंने ब्राह्मणों को भूमि दान दी, देवमन्दिरकी प्रतिष्ठा की तथा पर्वोत्सव वे आपसमें मिल कर मनाते थे इस कारण दोनों दलमें गाढ़ी मित्रता हो गई। आज भी प्रधान प्रधान देवालयोंमें राज्यप्रदत्त भूसम्पत्तिको छोड़ कर ब्राह्मण लोग मासिक और रुपयेको ले कर कुछ कुछ दान भी पाते हैं। इस दानका नाम है 'भापा' अर्थात् पण्यद्रव्यका निर्दिष्ट अंश। एकलिङ्गेश्वर और नाथजी वा नाथद्वारमन्दिर में प्रधान हैं। वैष्णवधर्मगुरु वल्लभाचार्य द्वारा सबसे पहले नाथद्वारमें नाथजीकी मूर्त्ति प्रतिष्ठित हुई। उस समय उन्होंने और भी छः विग्रह ला कर नाथद्वारमें स्थापन किये। किन्तु परवर्त्तिकालमें उनके पौत्र गिरिधारीने उन सात विग्रहों को अपने सात लड़कोंको दे दिया। उनके उत्तराधिकारिगण ही अभी उन सब मूर्त्ति पूजाके अधिकारी हैं। नाथद्वारमें नाथजीको छोड़ कर दूसरी दूसरी मूर्त्तियां विभिन्न स्थानोंमें पड़ी हुई हैं। जैसे मथुरानाथ—कोटामें द्वारकानाथ—कांकरौलीमें, गोकुलनाथ या चन्द्र—जयपुरमें, मदुनाथ—सूरतमें विठ्ठलनाथ—कोटामें और मदनमोहन—जयपुरमें। इस सप्तविग्रहकी प्रतिष्ठाके साथ साथ राजपूतोंमें कृष्णपूजाका प्रचार हुआ। वैष्णवधर्मका आश्रय ले कर राजपूतोंने धीरे धीरे वल्लभाचार्य प्रवर्त्तित अन्नकूट महोत्सव प्रचलित किया।

राजपूतजातिका प्रधान पर्व वसन्तपञ्चमी है। इस पञ्चमी तिथिसे ले कर ४० दिन तक राजपूत लोग एक दम उन्माद मूर्त्ति धारण करते हैं। वसन्तपञ्चमीके दो दिन बाद ही भानुसप्तमी होती है। इस दिन वे लोग सूर्यदेवकी उपासना करते हैं। इसके बाद फलिसिरके लरका शिवरात्रि उत्सव है। स्वयं राणाको देवताके बड़े रस निरम्बु उपवास करना होता है। फाल्गुनमासमें अहेरिया नामक और पर्वोत्सव होता है। राणा सामन्तवर्गोंसे परिवृत तथा वासन्ती वस्त्र पहन कर बड़े प्रसन्न से शिकारको निकलते हैं। इसके बाद फल्गूत्सव बड़ी धूमधामसे मनाया जाता है। इस समय वे पिता, माता, भाई, बहन को सभी अज्ञा परिहार कर स्वेच्छानुसार अघोर बोलते हैं तथा सङ्गीत और अश्लील वाक्योंका प्रयोग कर राजपूत चरित्रका विचित्र चित्र उपस्थित करते हैं।

चैत्रमासकी प्रतिपद् तिथिमें पितृलोककी पूजा, शुक्ला तृतीयाको राजनैतिक उत्सव अष्टमीतिथिको शीतला देवीका पर्वोत्सव, राणाका जन्मतिथि उत्सव, नववर्षारम्भ, फुलदोल या पुष्पोत्सव, अन्नपूर्णापूजा या गंगार, अशोकाष्टमी, रामनवमी, मदनमहोत्सव, सावित्रीव्रत, रम्भाका उन्माद, अरण्यषष्ठी, गौरीपूजा, नागपञ्चमी, राखीपूर्णिमा जन्माष्टमी, नवरात्रि, खड्गस्थापन, दशहराका समरोत्सव, अश्वोत्सव, गजदेवतापूजा, खड्गपूजा, गङ्गाजन्म कार्त्तिकजन्म, चन्द्रोत्सव लक्ष्मीपूजा, दीपान्विता, भ्रातृद्वितीया और कार्त्तिकमासकी शुक्लाष्टमी तिथिमें अन्नपूर्णाका अन्नयात्रा पर्व बड़े रमणीय है।

राजपूत लोग स्वजातीय रमणियोंको बड़ी भक्तिकी दृष्टिसे देखते हैं। इस नारीजातिके आत्मगौरवरक्षणाभिलाष, असीम पतिभक्ति, उच्चहृदयता, साहस, मृत्युत्सम्मतित्व आदिकी आलोचना करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। सतीत्वरक्षाके लिये आत्मोत्सर्ग करनेमें हिन्दूरमणियोंमें वे अतुलनीया हैं। चितोरराजमहिषी पद्मिनी देवीका चितारोहण इसका ज्वलन्त दृष्टान्त है।

मुसलमानी अमलमें ही यह राजपूतजाति नाना देशोंमें जा कर बस गई है। भारतमें सभी जगह, अफगानिस्तान और भारत-महासागरस्थ हिन्दूप्रधान बालिद्वीपमें राजपूतजातिका उपनिवेश स्थापित हुआ है। वर्त्तमान समयमें नाना हिन्दू सम्प्रदाय अपनी सामाजिक अवस्था उन्नत दिखानेके लिये अपनेको राजपूत बतलाते हैं। दाक्षिणात्यके उत्तर सरकारका रायबुड़ जाति अपनेको राजपूत जातिकी एक शाखा कहते हैं। छोटानागपुर विभागके अन्तर्गत कुछ सामन्तराज और अरवाल आदि जो अभी सभ्यता सोपान पर चढ़े हुए

हैं। लोगोंके सामने राजपूत कह कर अपना परिचय देते हैं। छोटानागपुरके राजा नागवंशी हैं तथा पचेटराज वंशधर अपनेको गोवंशीराजपूत बतलाते हैं।

जो नागवंशी आज अपनेको राजपूतजातिमें गिनना चाहते हैं, उनकी स्त्रियां उस पालकी पर कदापि नहीं चढ़ती जिसे मुण्डा लोग ढोते हैं। वे लोग मुण्डाको मासुरका वंश कहते हैं। इसके सिवा आजकलके ग्वाला, बाभन, गोड़, बसाई, सूंडी, कुर्मी आदि अपनेको राजपूत बतलाते हैं।

बघेल, वाई, भट्टि, बडगूजर, बुन्देला, चाहिरा, चन्देल, कच्छवाह, डहिया, दहिरिया, दोगरा, भडेजा, जोहिया, मचेरो, गोहिल, निकुम्भ, राजपाली, शिकारवाल और शिवीं आदि राजपूतजातिका विवरण यथास्थान पर लिखा जा चुका है, इसी कारण यहां पर कुछ नहीं लिखा गया।

राजपूताना—भारत-साम्राज्यके अन्तर्गत राजपूत-जातिका वासभूमि। युक्तप्रदेश, पञ्जाब, सिन्धु और बम्बई प्रदेशके मध्यस्थलमें अवस्थित है। अंगरेजाधिकृत अजमीर मेर-वाड़ा और २० विभिन्न सामन्तराज्य ले कर यह संगठित है। भूपरिमाण १३०४६२ वर्गमील है। यह अक्षा० २३° ३' से ३०° १२' ३० तथा देशा० ६९° ३०' से ७८° १७' पू० के मध्य विस्तृत है।

इस विस्तृत भूखण्डमें अवस्थित सामन्तराज्योंका भौगोलिक अवस्थान और भूपरिमाण नीचे दिया जाता है—

पश्चिमोत्तरमें अवस्थित—	वर्गमील।
जयशलमीर राज्य	१६४४७
मारवाड या योधपुर	३७०००
बीकानेर	२२३४०
उत्तरपूर्वमें अवस्थित—	
अलवार	३०२४
शेखावाटी	जयपुरके अधीन
पूर्व और दक्षिण पूर्वमें अवस्थित—	
जयपुर	१४४६५
भरतपुर	१९७४
ढोलपुर	१२००
पश्चिमोत्तरमें अवस्थित—	वर्गमील।
करौली	१२०८
बूंदी	२३००
कोटा	३७९७
झलावार	२६९४
दक्षिणमें—	
प्रतापगढ़	१४६०
बांसवाड़ा	१५००
डूंगरपुर	१०००
मेवार या उदयपुर	१२६७०
दक्षिण-पश्चिममें--	
सिरोही	३०२०
मध्यभागमें—	
अजमीर	२७११
किशनगढ़	७२४
शाहपुरा	४००
टोङ्क	२५०६
लावा	१८

आरावली पर्वतमालाके मनोहर दृश्यके सिवा यहां और कोई भी सुन्दर दृश्य नहीं है। पश्चिम और उत्तरका कुछ अंश मरुमय होनेके कारण इस स्थानको पुराणादिमें मरुस्थली वा मरुदेश कहा है। यह आरावली पर्वतके उत्तर-पश्चिम कोणसे ले कर दक्षिणपश्चिम कोण तक विस्तृत है। इसके दक्षिणमें आबू शिखर है। प्रवाद है, कि यहां वशिष्ठ ऋषिने अग्नियज्ञ किया था।

इस मरुभूमिमें थोड़ी ही वृष्टि खेतीबारीके लिये काफी है। लोनीनदीके सिवा यहां और कोई भी नदी नहीं जिससे जलका प्रबन्ध हो सके। कूपका जल थोड़े ही समयमें खारा हो जाता है। सारे देशकी अवस्था मरुमय और वनमालाविभूषित होने पर भी राजधानी नगरादिकी अवस्था उतनी खराब नहीं है। राजपूत या मालव रेलपथ आरावलीके उत्तरसे चला गया है जिससे स्थानीय वाणिज्यमें बड़ी सुविधा है।

इसके दक्षिण-पूरबसे बहुत-सी शाखानदियां विन्ध्य-पर्वतसे निकल कर बनाश और चम्बल नदीमें मिली हैं। पूर्वकी ओर झालरा-पाटनके उत्तर ऊंचा पथरीला

स्थान है। इसीके ऊपर कोटाराज्य बसा हुआ है।

कोली, पाण्डगङ्गा, बनास, चम्बल, पार्वती, शावरमती, माही, सोम आदि नदियां हो प्रधान हैं। अपणप्रसपूर्ण सम्बलपुरके सिवा (मेवारराज्यमें) और भी कितने कृत्रिम हृद देखे जाते हैं। १६८१ ई०में राजा जयसिंह द्वारा निर्मित देवार और कांकरोली नामक नगरमें दो हृद हैं। प्रथमोक्त जलाशय 'जयसमुद्र' नामसे प्रसिद्ध है। इसका घेरा ३० मीलसे कम नहीं होगी।

मुसलमानोंके आनेके पहले राजपूत जातिका इतिहास अच्छी तरह लिपिबद्ध न था। भट्ट कवि लोग राजपूताना वासी राजवंशधरोंकी जो कीर्त्तिकहानी इतने दिनोंसे गाते आते हैं उसीका अवलम्बन करके कर्नल टाड राजस्थानका धारावाहिक इतिहास लिखनेको अग्रसर हुए हैं। वर्त्तमान समयमें राजपूतजातिके कीर्त्तिमन्दिरसे प्राप्त शिलालिपिसे राजपूत राजोंके काल और वंशधार की जो तालिका पाई गई है उसकी आलोचना करनेसे राजपूत आख्यायिकाका एक नया संस्करण पानेकी आशा की जाती है।

मुसलमानोंके आनेके पहले कन्नौजसिंहासन पर एक मात्र राठोरराजगण ही बैठे थे तथा गुजरातके अनहल वाड़में राजधानी स्थापन कर चालुक्यराजपूत सारे दक्षिण राजपूतानेका शासन करते थे। इस समय और भी कितने राजपूत राजवंशने सिर उठाया। ११वीं सदीमें जब गजनीपति महमूद भारत विजयमें आये, तब अनहलवाड़में सोलङ्की वंशीय, अजमेरमें चौहान और कन्नौजमें राठोरगण भारतवर्षके राजोंमें बड़े चढ़े थे। इस समय गहलोतवंशज मेवार (उदयपुर) सिंहासन पर और कछवाहोंने जयपुर राजधानीमें रह कर राजपूत-गौरव की मर्यादा मजबूत करनेमें कोई कसर न रखी थी।

महमूदने भारतवर्ष आ कर सोलङ्कियोंको परास्त तो कर दिया, पर उनकी शक्ति वह बिलकुल ह्रास न कर सका। इसके बाद ही राजपूतोंके मध्य गृहविवाद शुरू हो गया। सोलङ्की और चौहान राजोंने आपसमें लड़ कर अपने पैरमें कुल्हाड़ा मारा। फिर कन्नौजके राठोर सरदार जयचंदकी कन्याके स्वयम्बरमें जयचंदके साथ चौहानपति पृथ्वीराजका घोर विरोध उपस्थित हुआ। यही विवाद भारतके सर्वनाशका मूल कारण था।

राजा जयचंदने जातिशत्रुके अपमानसे उत्तेजित हो शहाबुद्दीन घोरीको बुलाया। इधर पृथ्वीराजने चन्देल राज परमर्द्दिदेवको परास्त कर महोबा पर दखल किया। महम्मद स्वराज्य सीमान्तवासी विधर्मी शत्रु दिल्लीश्वरकी बढ़ती देख कर दलबलके साथ भारतकी ओर चला। ११९३ ई०में थिनेरोकी लड़ाईमें मुसलमानोंके हाथसे भारतकी भाग्यलिपि बदल गई। दूसरे वर्ष कन्नौज अधिकृत हुआ। मुसलमान प्रतिनिधि कुतुबुद्दीनने भी अजमेर और अनहलवाड़में छावनी डाली। भारतकी राजधानी दिल्ली नगरमें मुसलमानोंका राजपाट प्रतिष्ठित हुआ।

१३वीं सदीमें मालवराज्य दिल्लीके अधिकारभुक्त हुआ। १४वीं सदीके आरम्भमें अलाउद्दीन खिलजीने गुजरातके राजपूतोंके विरुद्ध युद्ध करके उन्हें समूल विध्वस्त कर डाला। तुगलकवंशके अवसान पर मालव में स्वाधीन मुसलमानराज्यकी प्रतिष्ठा हुई। इन मुसलमान राजोंने दिल्लीश्वरसे बढ़ कर कठोर शासन द्वारा राजपूतोंको सताया। १५वीं सदीमें मुसलमान और राजपूतमें घमसान युद्ध चला था।

१६वीं सदीके शुरूमें कुछ समयके लिये राजपूतशक्ति फिर उठ खड़ी हुई थी। दिल्लीके अन्तिम अफगान राजवंशकी शासन शिथिलता तथा गुजरात और मालवके मुसलमान सुलतानोंका परस्पर विरोध देख कर मेवारके शिशोदियावंशधर राणा सङ्ग हिन्दूकी विजय-वैजयन्ती फहरानेकी चेष्टा की थी। इन्होंने चन्देरीराज मेदिनी रायकी सहायतासे मालव और गुजरातके विरुद्ध घोर संग्राम करके उन्हें परास्त किया था। १५१९ ई०में मालवराज इनके हाथ बन्दी हुए तथा १५२६ ई०में गुजरातपतिके साथ मित्रता स्थापन करके इन्होंने मालव राज्य अधिकार किया। इस समय राणा सङ्ग (संग्राम) ही यथार्थमें सारे राजस्थानके अधिपति हो गये थे।

मालवजयके कुछ बाद ही मुगल सम्राट् बाबरशाहने दिल्ली पर कब्जा किया। १५२७ ई०में फतेपुरसिकरीमें राजपूतके साथ मुगलका विपुल संग्राम छिड़ गया। युद्धमें राणाकी विपुल वाहिनीके पराजित होनेसे राजपूतशक्ति निराशास्रोतमें बह गई। दूसरे वर्ष मेदिनी रायने

अपने चन्देरी राज्यकी रक्षाके लिये बहुतसे राजपूत वीरोंको ले कर मुगलपतिका मुकाबला किया। बाबरशाहने उन्हें परास्त कर नगरको लूटा। राठोरपति मालदेव रावने मुगलोंकी अधीनता स्वीकार की थी। गुजरातके मुगलराजोंके साथ तथा दिल्लीश्वर शेरशाहके विरुद्ध बार बार युद्ध करके दुर्द्धर्ष राठोर कमजोर हो गये थे। अकबरशाहने साम, दान, भेद और दंड द्वारा राजपूत जातिको पदानत करनेकी चेष्टा की थी। योधपुरराजने उनके हाथसे पराजित हो मुगलका दासत्व स्वीकार किया, किंतु शिशोदियावंशके प्रतापसिंहने उनकी अधीनता बिलकुल स्वीकार न की। उन्होंने अकबरशाहकी विपुल-वाहिनीके विरुद्ध हल्दीघाटमें जो युद्ध किया था, वह इतिहासमें ज्वलन्त अक्षरोंमें लिखा गया है।

अकबर शाह और उनके लड़के जहांगीरने राजपूत रमणीका पाणिग्रहण किया था। शाहजहान् बचपनसे ही राज्यके बाहर रहते थे। जब तक वे राजतख्त पर नहीं बैठे, तब तक उदयपुरके राणाके आश्रयमें ही रहे थे। अकबरके समय जो राजपूत अपनी स्वाधीनताको अक्षुण्ण रखनेमें बद्धपरिकर हुए वे ही १६वीं सदीके अन्तिम समयमें मुगलबादशाहके साथ मित्रतापाशमें आबद्ध हो मित्रराजरूपमें गिने जाने लगे।

औरङ्गजेबके राज्यारोहणकालमें मुगलोंके बीच गृह विवाद उपस्थित हुआ। उस समय सभी राजपूत-सेनापतियों और राजपूत राजकर्मचारिने दाराका पक्ष लिया, तथापि औरङ्गजेब राजपूत सेनादलका अदम्य साहस और वीरता देख कर उनके पक्षपाती हो गये। उन्होंने काबुल पर शासन करनेके लिये राजपूत प्रतिनिधिको भेजा तथा दाक्षिणात्यमें राजपूत सेनानायक द्वारा युद्ध-विग्रह ठान दिया। दुःखका विषय है, कि जो राजपूत-सेनापति उनके दाहिने हाथ थे उन्हें वे एक एक कर यम पुर भेजने लगे।

औरङ्गजेबकी मृत्युके बाद शिशोदिया, राठोर और कच्छवाह राजपूत स्वाधीनता-प्रयासी हो मुगल साम्राज्य के विरुद्ध उठ खड़े हुए। नादिरशाहके उत्तरभारतमें लूट पाट करनेके बाद उन्होंने फिर एक बार मस्तक उठाया। किन्तु उनमें जो सन्धि हुई थी उस शर्तमें लिखा था, कि कच्छवाह राजाओंको शिशोदिया स्त्रीसे जो पुत्र जन्म लेगा वही सिंहासनका अधिकारी होगा, यह ले कर दोनोंमें मनमुटाव हो गया। इसी मनमुटावसे उनकी एक भी चेष्टा फलीभूत न हुई।

१७५६ ई०में मराठोंने अजमीर जीता। तभीसे राजपूतानेमें घोर विशृङ्खला उपस्थित हुई। इस समय पठान और मराठा दलके उपद्रवसे राजपूतजातिका अधःपतित मुगलसाम्राज्यके साथ ही साथ अवनति हो गई। यहां तक, कि छोटे छोटे सरदार दस्युवृत्ति द्वारा स्वजातीयके प्रति अत्याचार करनेमें भी बाज न आये।

१८०३ ई०में सच पूछिये तो सारा राजपूताना मराठोंके हाथ आया। होलकर और सिन्देराजने राजपूतानाको जीत कर तहस नहस कर दिया था। अंगरेज सेनापति वेलस्लिी और लेकके शुभागमनसे राजपूतजातिने कठोर करभारसे छुटकारा पाया। सिंदेराजने परास्त हो १८०५ ई०में राजपूतानेके अधिकृत प्रदेश छोड़ दिया।

लार्ड वेलस्लिी जब विलायत गये, तब राजपूतानेका शासनभार सामन्तराजाओं पर ही सौंपा गया। डकैत सरदारोंने सुयोग पा कर फिरसे अत्याचार करना शुरू कर दिया। यहां तक, कि अंगरेज-शक्तिकी भी परवाह न कर उन्होंने दश वर्ष तक अविश्रान्त अत्याचार और आक्रमणसे राजपूतराज्यको मथ डाला था। १८१४ ई०में पिण्डारी डकैतदल अमीर खांके अधीन हो गया।

पिण्डारी देखो।

उदयपुरकी राजनन्दिनीके विवाहके उपलक्षमें जयपुर और योधपुरराजका अन्तर्विवाद तथा दोनोंको उत्तेजीत करनेके लिये मराठा और पठानदलका परस्पर साहाय्यदान राजपूतजातिके जातीय गौरवनाशका कारण था।

१८११ ई०में नाबालिग राजपूतराजाने डकैतोंका उत्पीड़न सहन न करके दिल्लीश्वर और अङ्गरेज प्रतिनिधि सर चार्ल्स मेटकाफसे सहायता मांगी। तदनुसार १८१७ ई०में मार्किस आव हेष्टिंसके आदेशसे अंगरेजीसेनादलने पिण्डारियोंको परास्त किया। सरदार अमीर खांको अंगरेजराजने टोङ्कका शासनकर्त्ता बनाया। १८१८ ई०के

अन्तिम समयमें भरतपुरको छोड़ कर और सभी राजपूत राज्योंने अंगरेजोंकी अधीनता स्वीकार की। सिन्धियाजीने अंगरेजोंके हाथ अजमेरका शासनभार सौंपा। तभीसे ले कर १८५७ ई०के गदर तक यहां और किसी प्रकारकी विगड़ खड़ा न हुई। इस समय कोटामें विद्रोहियोंने अंगरेजोंके विरुद्ध हथियार उठाया। १८५८ ई०में कोटा अंगरेजोंके हाथ लगा।

राजपूतानेमें जो सांभर झील है उसमें प्रतिवर्ष ४००००० मन नमक पैदा होता है। इस समय इस झीलको बृटिश-सरकारने अपने अधिकारमें कर लिया है और जोधपुर तथा जयपुर राज्योंको इसके बदले नियत रकम सालाना दी जाती है।

राजपूतानेका जलवायु सामान्य रूपसे आरोग्यप्रद माना जाता है। रेगिस्तानी प्रदेश अर्थात् जोधपुर, जैसलमेर, बीकानेर और शेखावाटी आरोग्यके विचारसे विशेष उत्तम है। राजपूतानेके अन्य विभागोंकी अपेक्षा रेतीले प्रदेशोंमें शीतकालमें अधिक सर्दी और उष्णकाल में अधिक गर्मी रहती तथा लू और आंधियां भी बहुत चलती हैं।

राजपूतानेके पश्चिमी रेगिस्तानी विभागमें पूर्वी विभागकी अपेक्षा वर्षा कम होती है। आबू पर अधिक ऊंचाईके कारण वहांकी औसत ५० और ५८ इंचके बीच है। रेगिस्तानवाले प्रदेशमें रेता अधिक होनेसे विशेष कर एक ही फसल खरीफकी होती है और रबीकी बहुत कम। पहाड़ोंके बीचकी भूमिमें जहां पानी भर जाता है, धानकी खेती भी होती है। राजपूतानेकी मुख्य उपज गेहूं, जौ, जुआरी, बाजरा, मोठ, मूंग, उड़द, चना, धान, तिल, सरसों, अलसी, सुआ, जीरा आदि, तमाकू और अफीम है। उक्त पैदावारकी चीजोंमेंसे रुई, अफीम, तिल सरसों, अलसी और सुआ बाहर जाते हैं तथा शक्कर, गुड़, कपड़ा, तंबाकू, सोना, चांदी लोहा, तांबा, पीतल आदि बहुत सी जरूरी चीजें बाहरसे आती हैं। राजपूतानेमें लोहा, तांबा, जस्ता, चांदी, सीसा, स्फटिक, तामड़ा और कोयलेकी खानें हैं। लोहेकी खान उदयपुर, अलवार और जयपुर राज्यों में, चांदी और जस्तेकी खान उदयपुर राज्यके जावर स्थानमें, सीसेकी खान अजमेरके पास और तांबेका जयपुर राज्यमें खेतड़ीके पास सिंघाने में है। ये सब खानें पहले जारी थी, परन्तु बाहरसे आनेवाली इन इन धातुओंके सस्तेपनके कारण अब ये सब बंद हैं, केवल उदयपुर राज्यके बीगोद गांवमें कुछ लोहा अब तक निकाला जाता है। मेवाड़में चित्तौड़गढ़, कुम्भलगढ़ और मांडलगढ़; मारवाड़में जोधपुर और नागोर; जयपुरमें रणथम्भोर बीकानेरमें भाटनेर और अजमेरमें तारागढ़के प्रसिद्ध किले हैं। इनके सिवा छोटे बड़े गढ़ बहुतसे हैं। राजपूतानेमें रेलकी सड़कें छोटे और बड़े दोनों नाप की हैं, परन्तु अधिक प्रमाण में छोटे नापकी ही है जिनमें मुख्य 'बम्बई बड़ौदा एण्ड सेण्ट्रल इण्डिया रेलवे' है। यह अहमदाबादसे आबूरोड, अजमेर, फुलेरा बांदी कुई होती हुई दिल्ली तक चला गया है। इसमें १२८ शहर और २११०१ ग्राम लगते हैं। जन-संख्या प्रायः १०३११६५५ है।

राजपूतानेके साथ अंगरेजोंका सम्बन्ध होनेके पूर्व यहां पर विद्याका प्रचार बहुत ही कम रह गया था। गांवोंमें पढ़ाईका प्रबंध कुछ भी न था। अब तो अंगरेजी राज्यके प्रभावसे नये ढंगकी एवं अंग्रेजीकी पढ़ाई सारे देशमें होने लगी है। अजमेर, जयपुर और जोधपुरमें कालेज बने कई वर्ष हो चुके। हाई स्कूलें तथा मिडिल और प्रारम्भिक शिक्षाकी पाठशालाएं तो कई चल रही हैं। कई राज्यों तथा अजमेरके इलाकेमें लड़कियोंकी प्रारम्भिक शिक्षा भी होती है। उच्च कोटिकी विद्याके लिये जयपुरराज्य सर्वोपरि है। यहांके स्वर्गवासी महाराज रामसिंहने विद्याप्रेमी होनेके कारण अपने राज्यमें अंगरेजी, हिन्दी उर्दू और संस्कृतकी पढ़ाईका उत्तम प्रबंध किया। संस्कृतकी आचार्य परीक्षा तकका अध्ययन केवल जयपुर हीमें होता है। उक्त महाराजने विद्याके साथ कला कौशलका भी प्रचार अपनी प्रजामें करनेके लिये जयपुरमें एक अच्छा आर्टस्कूल (कला भवन) खोला। प्रारम्भिक और माध्यमिक शिक्षाके लिये राजपूतानेमें झालावाड़राज्य सर्वोपरि है।

राजपौरुष्य (सं० क्लो०) राजपुरुषस्यैव भावः (मनुज्ञादिभ्योऽम्। पा ७।३।२०) इति अपत्ये वृद्धिः। राजपुरुष सम्बन्धी।

राजप्रकृति (सं० स्त्री०) राज्ञः प्रकृतिः । १ राजपुरुष । २ राजाकी प्रकृति या स्वभाव ।

राजप्रिय (सं० पु०) १ राजपलाण्डु । २ करुणोका फूल जो कोंकणमें उत्पन्न होता है । (त्रि०) राज्ञः प्रियः । ३ राजाका प्रियपात्र ।

राजप्रिया (सं० स्त्री०) १ राजप्रिय देखो । २ निलवासिनी शालि, एक प्रकारका धान जो लाल रंगका होता है और जिसका चावल सफेद तथा स्वादिष्ट होता है । ३ राजपत्नी, राजाकी स्त्री, रानी ।

राजप्रेष्य (सं० पु०) राजप्रेषित व्यक्ति । १ राजा या राज्यका नौकर, राजकर्मचारी । (क्ली०) राजा द्वारा नियोग ।

राजफणिज्झक (सं० पु०) राजते इति राज अच् राजः दीप्तिशाली फनिज्झकः । नागरङ्ग वृक्ष, नारंगीका पेड़ ।

राजफल (सं० क्ली०) राजाभिधेयं फलं । १ पटोल, परवल । २ राजाम्र, बड़ा आम । ३ राजादनी, खिरनी ।

राजफला (सं० स्त्री०) राजप्रियं फलमस्याः । जम्बू, जामुन ।

राजफल्गु (सं० पु०) कृष्णोदुम्बरवृक्ष, कठूमरका पेड़ ।

राजबदर (सं० क्ली०) राज्ञो बदरमिव प्रियत्वात् । १ रक्तामलक, लाल आँवला । २ लवण, नमक । (पु०) बदराणां राजा राजदन्तादित्वात् परनिपातः । ३ उत्तमकोलि, पेवंदी या पेउँदी बैर । पर्याय—नृपश्रेष्ठ, नृपबदर, राजवल्लभ, पृथुकोल, तनुबीज, मधुरफल, राजकोल । इसका गुण—मधुर, शीतल, दाह, पिपासा और वातनाशक, वृष्य, वीर्यवृद्धिकर, श्लेष्म और श्रमनाशक । (राजनि०)

राजबला (सं० स्त्री०) प्रसारिणी लता ।

राजबलेन्द्रकेतु (सं० पु०) बौद्धभेद ।

राजबाड़ी (हिं० स्त्री०) १ राजाकी वाटिका । २ राजभवन, राजमहल ।

राजबान्धव (सं० पु०) राज्ञः बान्धवः । राजाका बन्धु ।

राजबाहा (हिं० पु०) प्रधान या बड़ी नहर जिससे अनेक छोटी छोटी नहरें खेतोंको सींचनेके लिये निकाली जाती हैं ।

राजबीजिन् (सं० त्रि०) राजा बीजी कारण यस्य । राजवंश्य, राजवंशोद्भव । (अमर)

राजब्राह्मण (सं० पु०) राजा ब्राह्मण (राजा च । पा ६।२।५६) इति कर्मधारये प्रकृतिवद्भावः । राजा अथच ब्राह्मण ।

राजभक्त (सं० क्ली०) १ नृपभोज्य अन्नपानादि, राजाका अन्न । राजा जो अन्नपानादि भोजन करें, उसे वैद्य अच्छी तरहसे देख लें । चरक और सुश्रुत आदिमें इसका विषय विशेषरूपसे वर्णित है । (त्रि०) २ राजाका भक्त, जिसमें राजा या राजाके प्रति भक्ति हो ।

राजभक्ति (सं० स्त्री०) राज्ञः भक्तिः । राजा या राज्यके प्रति भक्ति या प्रेम ।

राजभट (सं० पु०) राज्ञः भटः योद्धा । राजसैनिक ।

राजभट्टिका (सं० स्त्री०) एक प्रकारका जल पक्षी, गोभंडीर ।

राजभद्रक (सं० पु०) १ पारिभद्रक वृक्ष, फरहदका पेड़ । २ निम्बवृक्ष, नीमका पेड़ । ३ कुष्ठ, कुड़ा । ४ कुन्दुरु, कुँदरू । ५ राजार्क, सफेद आक ।

राजभय (सं० पु०) राज्ञः भयं । राजभीति, राजाका भय या डर ।

राजभवन (सं० क्ली०) राज्ञः भवन । राजप्रासाद, राजाका महल ।

राजभाण्डार (सं० पु०) राजकोश, राज्य या राजाका खजाना ।

राजभूय (सं० क्ली०) राज्ञो भावः राजन्-भू-क्यप् । राजत्व, राज्य ।

राजभृत (सं० पु०) राज्ञा भृतः वेतनादिभिः नियुक्तः । राजाका वेतनभोगी भृत्य ।

राजभृत्य (सं० पु०) राज्ञः भृत्यः । राजाका नौकर ।

राजभोग (सं० पु०) १ शालिधान्यविशेष, एक प्रकारका महीन धान जो अगहनमें होता है । २ राजाका भोग । राजा जिन सब उत्तम वस्तुओंका उपभोग करते हैं वही राजभोग कहलाता है ।

राजभोगीन (सं० त्रि०) १ राजभोगके योग्य, राजाके भोजनके उपयुक्त । २ उत्तम भोजन करनेवाला ।

राजभोग्य (सं० त्रि०) भुज-ण्यत् कुत्व, राज्ञा भोग्यं । १ राजाके भोजनयोग्य । (क्ली०) २ जातीकोष, जावित्री । (पु०) ३ प्रियाल, चिरौंजी । ४ एक प्रकारका धान ।

राजभोजन (सं० क्लो०) राज्ञः भोजनं । राजाका भोजन ।

राजभ्रातृ (सं० पु०) राज्ञः भ्राता । राजाका भाई ।

राजमणि (सं० पु० मणीनां राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः । मणिश्रेष्ठ, मूल्यवान् मणि ।

राजमण्डल (सं० पु०) ऐसे राजाओंका राज्य जो किसी राज्यके आस-पास हो किसी राज्यके आस-पास या चारों ओरके राज्य । नीतिशास्त्रमें बारह प्रकारके राजमण्डल माने गये हैं—अरि, मित्र, उदासीन विजिगीषु, पार्ष्णिग्राह, आक्रन्द, विजिगीषुका पुरःसर और पश्चाद्वर्त्ती, पार्ष्णिग्राहसार, आक्रन्दसार, अरिमित्र, मित्रसम और मध्यम ।

राजमण्डूक (सं० पु०) मण्डूकानां राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः । बड़ा मेंढक, एक प्रकारका मेंढक जो बहुत बड़ा होता है । पर्याय—महामण्डूक पीताङ्ग, पीतमण्डूक, वर्षाघोष, महारव । (राजनि०)

राजमन्दिर (सं० क्लो०) राज्ञः मन्दिर । राजगृह, राजभवन ।

राजमराल (सं० पु०) राजहंस ।

राजमल्ल (सं० पु०) राज्ञां मल्लः । राजाओंका मल्ल या माल । पर्याय—हरिसख, मल्ल ।

राजमल्ल—मेदपाटके एक हिन्दू-राजा तथा कुम्भके पुत्र । ये ज्वरतिमिरभास्करके प्रणेता चामुण्डकायस्थके प्रतिपालक थे ।

राजमहल (हिं० पु०) राजाका महल, राजप्रासाद ।

राजमहल—बिहार और उड़ीसाके सन्थाल परगनेका एक उपविभाग । यह अक्षा० २४ ४३´ से २५ १८´ उ० तथा देशा० ८७ २७´ से ८७ ५७´ पू०के मध्य अवस्थित है । भूपरिमाण ७४१ वर्गमील और जनसंख्या तीन लाखके करीब है । इसमें साहबगञ्ज और राजमहल नामके दो शहर तथा १२१२ ग्राम लगते हैं ।

२ उक्त विभागका एक नगर । यह अक्षा० २५ ३ ३० तथा देशा० ८७ ५० पू०के मध्य अवस्थित है । वर्त्तमान नगरके पश्चिम प्राचीन मुसलमान नगरका ध्वंसावशेष है । यह प्रायः ४ मील तक जङ्गलसे ढका हुआ है । मुगल बादशाह अकबरशाहके सेनापति महाराज मानसिंह १५९२ ई०में उड़ीसा जीत कर जब लौट रहे थे, तब उन्होंने राजमहलको ही बङ्गालकी राजधानी पसन्द किया था । मानसिंहकृत जुमा मसजिद, सुलतान सुजाका प्रासाद, बङ्गेश्वर मीर कासिम अलीका वासभवन, कुआवाड़ी और कीर्त्तिस्तम्भ यहांकी अतीत स्मृतिकी घोषणा करते हैं । गङ्गानदीकी स्रोत गतिका बार बार परिवर्त्तन होते रहनेसे यहांका वाणिज्यकेन्द्र साहबगञ्ज उठ कर चला गया है ।

राजमहल—सन्थाल परगना जिलेके अन्तर्गत एक पहाड़ी भूभाग । मुसलमान इतिहासमें यह दामन इ-कोह नामसे प्रसिद्ध है । यह प्रायः १३६६ वर्गमील स्थान अधिकार किये हुए है । किन्तु कहीं भी इसकी ऊंचाई समतलभूमिसे २ हजार फुटसे न होगी । पहले यह पर्वतमाला मध्य भारतके विन्ध्यगिरिकी एक शाखा समझी जाती थी । भारत गवर्मेण्टके भूतत्त्व परिदर्शक M V Balle ने इसका प्रस्तरस्तर देख कर स्थिर किया है, कि यह विन्ध्यसे बिलकुल स्वतन्त्र उपादानोंसे संगठित है ।

राजमहिला (सं० स्त्री०) एक नगरका नाम ।

राजमहेन्द्रतीर्थ (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम ।

राजमहेन्द्री—राजमहेन्द्री देखो ।

राजमातृ (सं० स्त्री०) राज्ञः माता । राजाकी माता ।

राजमाष (सं० पु०) जो माषमासका राजा हो ।

राजमानत्व (सं० क्ली०) राजन् मानत्व तस्य भावः । दीप्यमानत्व दीप्ति ।

राजमानुष (सं० पु०) राज्ञः मानुषः । राजपुरुष, वह मनुष्य जो राजाके अधीन हो । (याज्ञवल्क्यस्मृ० २।२४२)

राजमार्ग (सं० पु०) राज्ञो मार्गः । राजपथ, चौड़ी सड़क । राजपथ पर सौध निर्माण करनेवाले व्यक्ति हजार वर्ष तक इन्द्रलोकमें वास करते हैं ।

"राजमार्गं सौधयुक्तं यः करोति पठिसते ।
वर्षाणामयुतं सोऽपि शक्रलोके महीयते ॥"

(भविष्य प्रतिष्ठा० १४ अ०)

जो व्यक्ति अनापत्कालमें राजपथ पर मलमूत्रादि त्याग करते हैं, राजाको चाहिये, कि वे उनसे दो कार्षापण दण्ड लें और वह विष्ठा उन्हींसे साफ करा ले । यदि कोई विपदमें पड़ कर तथा वृद्ध, गर्भिणी या

बालक ऐसा करे, तो उन्हें केवल डाट डपट दें और वह विष्ठा साफ करा लें।

राजमाष (सं० पु०) माषाणां राजा श्रेष्ठत्वात् राजदन्तादित्वात् परनिपातः। बर्बटी, बड़ा उरद जो नीले या काले रंगका होता है। पर्याय—नीलमाष, नृपोचित, नृपमाष। वैद्यकमें इसे रुचिकर, वातकारक, बलदायक, सारक, शुक्र और अम्लपित्तनाशक, स्वादु, रुक्ष, कषाय और लघु लिखा है।

वैष्णव शास्त्रके मतसे विष्णुकी शयनावस्थामें राजमाष नहीं खाना चाहिए। खानेसे चंडाल होता है। इनमेंसे कार्त्तिक मास तो और भी निषिद्ध है। यदि कोई कार्त्तिकके महीनेमें राजमाष भक्षण करे, तो प्रलयकाल तक वह नरकमें रहता है।

राजमाष्य (सं० क्लि०) राजमाषस्य योग्यम्। वह खेत जिसमें माष बोया जाता है, मसार।

राजमुकुट—लघुस्तवटीकाके रचयिता।

राजमुद्ग (सं० पु०) मुद्गानां राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः। मुकुष्टक, एक प्रकारका मूंग। यह सुनहले रंगका होता है और खानेमें अधिक स्वादिष्ट होता है।

राजमुनि (सं० पु०) राजा चासौ मुनिश्चेति। राजर्षि।

राजमृगाङ्करस (सं० पु०) यक्ष्मरोगाधिकारका औषधविशेष। प्रस्तुत-प्रणाली— रससिन्दूर ३ भाग, सोना एक भाग, चांदी एक भाग, मैनसिल, गंधक, हरिताल प्रत्येक २ भाग इन्हें एकत्र कर कौडीमें भर दे। पीछे इसमें बकरीके दूधसे सोहागा जला कर मट्टीके बरतनमें भर मुंह बंद कर देना होगा इसके बाद गजपुट देना होगा। ठढा होने पर वह औषध ग्रहण करना होता है। इसका परिमाण ४ रत्ती और अनुपान पीपल तथा मधु वा घृत और मिर्च है। इसका सेवन करनेसे राजयक्ष्मरोग निवृत्त होता है।

(रसेन्द्रसारसं० यक्ष्मरोगाधि०)

भैषज्यरत्नावलीमें इसकी प्रस्तुतप्रणाली और प्रकारसे लिखी है। पारा ४ तोला, सोना १ तोला, तांबा १ तोला, मैनसिल २ तोला, हरिताल २ तोला, इन्हें एक साथ पीस कर बड़ी बड़ी कौड़ीमें भर दे। पीछे बकरीके दूधमें सोहागाका मुंह बंद कर मट्टीके बरतनमें रखे और ऊपरसे लेप चढ़ावे। पश्चात् लेप सूख जाने पर गजपुटमें पाक करे। ठढा होने पर उस औषधको चूर्ण कर ले। मात्रा ४ रत्ती और अनुपान घृत और मधु वा १० पीपल वा १६ मिर्च है। इसके सेवनसे सब प्रकारके क्षयरोग प्रशमित होते हैं।

(भैषज्यरत्ना० यक्ष्मरोगाधि०)

राजयक्ष्मन् (सं० पु०) राज्ञश्चन्द्रस्य क्षयकारको यक्ष्मा, राजा चासौ यक्ष्मा चेति वा। क्षयरोग, यक्ष्मकास। यह रोग सभी रोगोंका प्रधान और राजा है।

चरकमें इस रोगके निदानादिका विषय इस प्रकार लिखा है। क्रोध, ज्वर, रोग और दुःख इसका पर्याय शब्द है। नक्षत्रराज चन्द्रमाको सबसे पहले यह रोग हुआ था, इसीसे इसका नाम राजयक्ष्मा हुआ है।

नक्षत्रराज चन्द्रमाकी यक्ष्मा अश्विनीकुमार द्वारा मनुष्य लोकमें लाई गई और वक्ष्यमाण चार प्रकारका हेतु लाभ कर वह मनुष्यके शरीरमें घुस गई। चार प्रकारके हेतु ये हैं, अयथाबलारम्भ (बलके अतिरिक्त व्यायामादि शारीरकर्म), मलमूत्रादिका वेगधारण, धातुक्षय और विषमाशन। ये चारों ही इस रोगके कारण हैं।

अयथा-बलारम्भहेतु—बलसे ज्यादा युद्ध, अध्ययन, भारवहन, लङ्घन, सन्तरण, उच्चस्थानसे पतन, अभिघात और दूसरा दूसरा साहसका कार्य। अयथा बलारम्भ द्वारा वक्षके विक्षत होनेसे वायु बिगड़ जाती है। वह बिगड़ी हुई वायु शिरमें घुस कर शिरःशूल, गलेमें घुस कर कण्ठोद्ध्वंस, कास, स्वरभेद और अरुचि, पंजरेमें घुस कर पार्श्वशूल, गुदानाडीमें घुस कर मलभेद, सन्धिमें घुस कर जृम्भा और ज्वर तथा उदरमें घुस कर उरःशूल उत्पन्न करती है। कासवेगमें छातीमें बहुत दर्द होता और लोहू मिला हुआ कफ थूकमें निकलता है। ऊपर कहे गये साहसका कार्य करनेसे जब राजयक्ष्मा होता है तब यह शिरःशूलादि ग्यारह प्रकारके लक्षणयुक्त हो जाते हैं। अतएव आत्मवान् व्यक्तिको कभी भी उक्त प्रकारका साहसका कार्य नहीं करना चाहिये।

वेगधारणहेतु—लज्जा वा घृणावशतः अथवा भयके

उत्क्लिष्ट श्लेष्मा थूकके साथ आता है। मांसके विरुद्धत्व के कारण रक्त-मांसादिमें नहीं जा सकता, वह आमाशय-मे ही जमा रहता है। पीछे बहु परिमित और उत्क्लिष्ट हो कर गलेमें आ जाता है, इसीसे थूकके साथ रक्त निकलता है।

जिह्वा और हृदयस्थित वातादि दोष पृथक् पृथक् भावमें वा मिलितभावमे राजयक्ष्मारोगीको अरुचि उत्पन्न करता है। वातज अरुचिमें मुखमें कषाय रस, पित्तज अरुचिमे तिक्तरस और श्लेष्मज अरुचिमें मधुर रस आता है।

अंस और दोनों पार्श्वमें वेदना, हाथ पैरमें जलन, तथा रसरक्तादि सर्वाङ्गगत ज्वर ये तीनों ही राजयक्ष्मा-के प्रधान लक्षण हैं।

अभ्यङ्ग, उत्सादन, स्नान, अवगाहन, वहिर्मार्जन, दुग्ध और घृत द्वारा वस्ति, मांस, मांसरसके साथ अन्न, हितकर मद्य, मनोहर गंधसेवन, ऋतुके अनुरूप स्नान, अनुपहत प्रियवसन, सुहृद्गण तथा सुन्दर स्त्रीके दर्शन, श्रुतिसुखकर गीत और वाद्यध्वनि, सर्वदा हर्ष और सर्वदा आश्वास वचन, गुरु लोगोंकी उपासना, ब्रह्मचर्य (मैथुनत्याग), दान, तपस्या, देवतार्चन, सत्य आचरण, मंगल कर्म, अहिंसा और ब्राह्मणवैद्यकी अर्चना इन सब कर्मों द्वारा राजयक्ष्मारोग आरोग्य होता है। (चरक राजयक्ष्मरोगाधि०) इस रोगको चिकित्सा और अन्यान्य विशेष विवरण यक्ष्मरोग शब्दमें लिखा जा चुका है।

यक्ष्मरोग देखो।

राजयक्ष्मिन् (सं० त्रि०) राजयक्ष्मा अस्ति अस्य इनि। राजयक्ष्मरोगी, जिसे राजयक्ष्मा हुआ हो।

राजयज्ञ (सं० पु०) राजकृत यज्ञ, वह उपहार जो राजा द्वारा देवताके उद्देश्यसे दिया गया हो।

राजयान (सं० क्ली०) १ पालकी। २ वह सवारी जो राजाके लिये हो। ३ राजाकी सवारीका निकलना, राजाका जलूस।

राजयुध्वन् (सं० पु०) सेनादल, वह जो अनुचर या रक्षीके रूपमें राजाके साथ रणक्षेत्रमें गमन करे।

राजयोग (सं० पु०) योगाना राजा श्रेष्ठत्वात् राजदन्ता-दित्वात् पूर्वनिपातः। ज्योतिषोक्त योगभेद। यह योग रहनेसे मनुष्य राजाके समान धनशाली होता है, इसीसे इसको राजयोग कहते हैं। इसका विषय बहुत संक्षेपमें लिखा जाता है।

ग्रहोंके अवस्थान द्वारा राशि देख कर राजयोगादिका शुभाशुभ निश्चय किया जाता है। संयोगसे विष भी अमृत और अमृत भी विष होता है, उसी प्रकार ग्रहोंके परस्पर संयोगसे राजयोग भी दारिद्र्ययोगादि हुआ करता है।

ज्योतिर्विद् यवनेश्वरके मतसे पापग्रह अपने तुङ्ग स्थानमें रहनेसे जातबालक पापिष्ठ राजा होता है। जीवशर्माके मतसे पापग्रह यदि उच्चस्थानमें हो, तो राजा नहीं होता, पर राजाके समान धनशाली अवश्य होता है। मङ्गल, शनि, रवि और वृहस्पति ये चार ग्रहके उच्चाश रहनेसे जिसका जन्म होता, वह राजा होता है।

प्रथमतः राजयोग सोलह प्रकारका है, जैसे—चन्द्र स्वक्षेत्रगत अर्थात् कर्कट राशिमें रहनेसे यदि उस समय पूर्वोक्त चार ग्रहोंमेंसे कोई दो वा एक तुङ्गस्थ हो तथा तुङ्गलग्नमें किसी बालकका जन्म हो, तो वह बालक राजा होगा।

मेषके दशमांशमें रवि, कर्कटके पञ्चमांशमें वृहस्पति, तुलाके विंशांशमे शनि और मकरके २८ अंशमें मङ्गल रहे और उस समय मेष, कर्कट, तुला और मकर इनमेंसे किसी एक लग्नमें जन्म हो, तो जात बालक राजा होता है।

जन्मके समय चन्द्रमा लग्न या वर्गोत्तममें रहें और उस पर यदि चन्द्र भिन्न रवि, मङ्गल, बुध, वृहस्पति, शुक्र और शनि इन छः ग्रहोंकी अथवा किसी चार या पाच ग्रहोंकी दृष्टि पड़ती हो, तो जात बालक राजा होता है। कुम्भराशिमें शनि, मेषमें रवि, वृषमें चन्द्र, मिथुनमें बुध, सिंहमें वृहस्पति और वृश्चिकमें मङ्गल रहनेसे जो बालक जन्म लेगा वह राजा होता है। अथवा तुला राशिमें शनि, वृषमें चन्द्र, कन्यामें रवि और बुध वा तुलामें शुक्र, मेषमें मङ्गल और कर्कटमें वृहस्पतिके रहते समय यदि तुला वा वृष लग्न हो, तो राजयोग होता है।

मकरमें मङ्गल, धनुमें रवि और चन्द्र तथा जन्म-लग्नमें शनि रहे अथवा मकरमें मङ्गल और चन्द्र तथा

धनुराशिमें रवि और मकर यदि लग्न हो, तो राजयोग होता है। वृषमें चन्द्र, सिंहमें रवि, वृश्चिकमें वृहस्पति और कुम्भमें शनि रहनेसे यदि वृष जन्मलग्न हो तो श्रेष्ठ राजयोग होता है। मकरमें शनि, मीनमें चन्द्र, मिथुनमें मङ्गल कन्यामें बुध और धनुमें वृहस्पति रहे तथा मकरादि लग्न हो, तो राजयोग होगा। धनुराशिमें चन्द्र और वृहस्पति, मकरमें मङ्गल, मीनमें शुक्र और कन्यामें बुध रहे तथा कन्या या मीन जन्मलग्न हो, तो राजयोग हुआ करता है।

मीन जन्मलग्न हो तथा इसमें चन्द्र, कुम्भमें शनि, मकरमें मङ्गल, सिंहमें रवि रहे तथा कर्कट जन्मलग्न हो और इस कर्कटमें वृहस्पति और ग्यारहवें स्थानमें चन्द्र, शुक्र और बुध तथा मेषमें रवि रहें, तो राजयोग होगा। यदि मकरमें शनि, मेषमें मङ्गल, कर्कटमें चन्द्र, सिंहमें रवि, मिथुनमें बुध और तुलामें शुक्र रहे तथा मकर जन्म लग्न हो; बुध यदि अपने उच्च स्थानमें अर्थात् कन्या लग्नमें रहे तथा मिथुनमें शुक्र, मीनमें वृहस्पति और चन्द्र, मकरमें शनि मङ्गल रहते हों तथा कन्या जन्मलग्न हो, तो प्रबल राजयोग होता है।

उक्त राजयोग जिसका रहेगा, वह राजकुलोत्पन्न नहीं होने पर भी राजा होगा। राजयोगके मध्य उक्त योग हो श्रेष्ठ राजयोग है। जिसका उक्त प्रकारका ग्रह संस्थान देखनेमें आयगा उसीका प्रकृत राजयोग सम झना चाहिये।

सामान्य राजयोग—जो कोई तीन या चार ग्रह बलवान् हो कर अपने अपने उच्च स्थानमें या मूलत्रिकोणमें रहे, तो राजवंशोत्पन्न पुरुष राजा होता है। दूसरे ५, ६ या ७ ग्रह बलवान् हो कर अपने उच्चभवन या मूल त्रिकोणमें रहनेसे अन्यकुलोत्पन्न व्यक्ति राजा होता है। ग्रहगण बलवान् न हो, तो मानव राजा नहीं होता, पर राजाके समान बलवान् होता है।

सिंहमें रवि, मेषमें चन्द्रमा, मकरमें मङ्गल, कुम्भमें शनि और धनुमें वृहस्पति रहनेसे तथा मेष या सिंह जन्मलग्न होनेसे राजपुत्र, राजा तथा अन्यवंशोत्पन्न व्यक्ति धनवान् होता है।

जन्मलग्न कुम्भ, वृषमें शुक्र, तुलामें चन्द्र तथा अन्य शिष्ट ग्रह यथासम्भव कुम्भ, मेष वा धनुमें रहनेसे अथवा जन्मलग्न कर्कट, तुलामें शुक्र, मीनमें चन्द्र तथा अन्यान्य ग्रहगण यथासम्भव कन्या कर्कट और वृषगत होनेसे राजपुत्र, राजा तथा दूसरे व्यक्ति धनवान् होते हैं।

यदि जन्मकालमें बुधग्रह बलवान् हो कर लग्नमें रहे तथा दूसरा एक शुभग्रह अर्थात् वृहस्पति वा शुक्र बलवान् हो कर नवम स्थानगत हो तथा अपर सभी ग्रह द्वितीय तृतीय, षष्ठ, नवम, दशम और एकादश स्थानमें रहे तो राज्यकुलोत्पन्न राजा और दूसरे व्यक्ति धनी होते हैं। वृषमें चन्द्र, मिथुनमें वृहस्पति, तुलामें शनि, मीनमें रवि, मङ्गल, बुध और शुक्र रहें तथा वृष यदि जन्मलग्न हो वा आजन्मधनाढ्य राजा होता है। लग्नमें शनि, चतुर्थमें वृहस्पति, दशममें सूर्य और चन्द्र, एकादशमें मङ्गल, बुध और शुक्र रहनेसे राजकुलोत्पन्न राजा तथा अन्य धनवान् होंगे।

दशममें चन्द्र, एकादशमें शनि, लग्नमें वृहस्पति, द्वितीय स्थानमें बुध और मङ्गल, चतुर्थ स्थानमें शुक्र और रवि अथवा लग्नमें शनि और मङ्गल, चतुर्थमें चन्द्र, सप्तममें वृहस्पति, नवममें शुक्र, दशममें रवि और एकादशमें बुध रहनेसे राजकुलोत्पन्न राजा तथा दूसरेमें धनवान् होता है।

उच्चस्थ अथवा लग्नस्थ ग्रहके अथवा उक्त ग्रहके मध्य जो ग्रह बलवान् है उसके अन्तर्दशाकालमें राजयोगप्राप्त व्यक्तिके राज्य लाभ होता है। लग्न और दशम स्थानमें कोई ग्रह नहीं रहनेसे जन्मकालमें जो कोई बलवान् रहेगा, उसके अन्तर्दशाकालमें राज्यप्राप्ति होती है। शत्रु और नीच ग्रहगत ग्रहकी अन्तर्दशाके समय राज्यप्राप्त व्यक्ति राज्यच्युत होता है।

जिसके जन्मकालमें लग्नमें बुध, वृहस्पति और शुक्र ये तीन ग्रह हों तथा सप्तममें शनि दशममें रवि रहें, तो वह व्यक्ति भोगवान् होता है अर्थात् धन नहीं रहने पर भी जिस किसी उपायसे सुखपूर्वक कालयापन करेगा ही। जिसके जन्मलग्नमें लग्न, चतुर्थस्थान सप्तमस्थान और दशमस्थान शुभग्रहका क्षेत्र हो तथा पापग्रहके क्षेत्रमें बलवान् पापग्रह रहे, तो वह व्यक्ति व्याध और हस्तियोंका अधिपति होता है। (बृहज्जातक)

बुध और शुक्र, द्वितीयमें रवि और चन्द्र, चतुर्थमें शनि, सप्तममें बृहस्पति, दशममें राहु और एकादशमें मङ्गल हों। १८, यदि मेषमें रवि, धनुमें बृहस्पति, सप्तममें चन्द्र और शनि एकत्र रहे। १९, यदि कुम्भमें शनि मिथुनमें बुध, वृश्चिकमें मंगल, सिंहमें बृहस्पति तथा वृषमें चन्द्र रहे तथा वह वृष राशि लग्न हो। २०, यदि चतुर्थ और दशम अधिपति, पञ्चम वा नवम अधिपतिके साथ किसी शुभग्रहमें वास करे। २१ यदि लग्नाधिपति, चतुर्थाधिपति और नवमाधिपति अस्तमित न हो कर दशममें तथा दशमाधिपति लग्नमें रहे और उनके प्रति शुभग्रहकी दृष्टि पड़ती हो। २२, यदि तुला लग्न, कुम्भमें बृहस्पति, सिंहमें शनि और राहु तथा दशमाधिप नवममें रहे। २३, यदि मकर लग्न तथा उस लग्नमें शनि और चन्द्र, मङ्गल, बुध और बृहस्पतिके तृतीय, षष्ठ, नवम वा द्वादशमें रहते हों। २४, यदि लग्नमें रवि, चन्द्र और मङ्गल, मिथुनमें बुध, तुलामें शुक्र तथा मकरमें शनि रहे। २५, यदि वृश्चिकमें रवि और चन्द्र तुलामें बुध, द्वितीय में मङ्गल और शुक्र एवं दशममें बृहस्पति हों। २६, यदि मङ्गल और बृहस्पति तुङ्गी हो, शनि एकादशमें तथा लग्नाधिपति दशममें रहे। २७, यदि लग्नमें बुध और शुक्र, धनुमें चन्द्र और बृहस्पति तथा मकरमें मङ्गल रहे। २८, यदि कन्यालग्न हो तथा उस लग्नमें बुध, चतुर्थमें चन्द्र, बृहस्पति और शुक्र तथा पञ्चममें मङ्गल और शनि रहे। २९ यदि मीन लग्न हो और उस लग्न में चन्द्र, कर्कटमें बृहस्पति तथा मकरमें शनि हो। ३० यदि लग्नमें चन्द्र और शनि त्रिकोणमें रवि और बृहस्पति तथा दशममें मङ्गल रहे। ३१, यदि सिंह लग्न हो और उस लग्नमें बृहस्पति और शुक्र, वृश्चिकमें मङ्गल तथा मिथुनमें शनि रहे। ३२, यदि कर्कटलग्न हो और उसमें बुध तथा शुक्र रहते हों। ३३, कन्यालग्न हो और उसमें बुध, पञ्चममें मङ्गल और शनि, सप्तममें चन्द्र और बृहस्पति तथा दशममें शुक्र रहे। ३४, यदि सिंहमें रवि, मकरमें मङ्गल, धनुमें बृहस्पति, कुम्भमें शनि और लग्नमें चन्द्र रहे। ३५, यदि वृष वा तुलालग्न हो और उस लग्नमें शुक्र, नवममें चन्द्र तथा लग्न वा तृतीयमें दूसरे दूसरे ग्रह हों। ३६, यदि बलवान् बुध लग्नमें तथा अन्यशुभग्रह बलवान् हो कर द्वितीय, नवम दशम वा एकादश स्थान में रहे। ३७, यदि वृषलग्न हो और द्वितीयमें चन्द्र, षष्ठमें बृहस्पति तथा एकादशमें शनि रहे। ३८, यदि मेषमें मङ्गल और बृहस्पति तथा कर्कटमें चन्द्र रहे। ३९, यदि कर्कटलग्न हो और उस लग्नमें बृहस्पति, सप्तममें शनि दशममें रवि तथा एकादशमें कोई शुभग्रह रहे। ४०, यदि मकरमें शनि तथा राज्याधिप मेष कर्कट वा तुलामें रहे।

उक्त ४० प्रकारकी अवस्थामें राजयोग होता है। इस योगका फल निष्फल नहीं होता। जिसकी कोष्ठीमें ये सब राजयोग देखनेमें आवे, वे राजा, राजतुल्य वा धन शाली होते हैं।

साधारण राजयोगभङ्ग—ग्रहोंके निम्नलिखित स्थान में रहनेसे राजयोगभङ्ग होता है। १, यदि लग्न, चन्द्र और दशम स्थान पर किसी ग्रहकी दृष्टि न पड़ती हो। २, यदि दशमाधिपति नीचस्थ तथा दशममें शुभग्रहकी दृष्टि न पड़ी हो शनि राहु अथवा मङ्गल और केतु रहे। ३, यदि तीन ग्रह विशेषतः रवि, मङ्गल और शनि नीचस्थ हो तथा स्वरूप योग प्राप्त न हो। ४, यदि रवि, मङ्गल, चतुर्थस्थान अथवा चतुर्थाधिप शनि और केतुयुक्त हो। ५, यदि चतुर्थ स्थानमें षष्ठ, अष्टम और द्वादशाधिपति रहे तथा चतुर्थाधिपति शत्रुयुक्त हो कर अशुभ गृहमें रहे। ६, यदि शनि चतुर्थाधिप हो कर नीचस्थ हो एवं उसके द्वितीय और द्वादशमें पापग्रह रहे। ७, यदि चतुर्थाधिपति शनि हो एवं वह शत्रुयुक्त हो कर द्वितीयमें तथा चतुर्थ स्थानमें अन्य पापग्रह रहे। ८, यदि पांच ग्रह अस्तमित और शत्रुगृहगत हो तथा किसी शुभग्रह केन्द्र में न रहे। ये सब योग राजयोगके भङ्गकारक हैं। ये सब योग रहनेसे उसका राजयोग फलप्रद नहीं होता। इसी कारण इन सब भङ्गयोगोंके प्रति विशेष लक्ष्य रख कर राजयोग स्थिर करना उचित है।

(हरगणेश, पराशर०)

भृगु प्रभृति संहितामें तथा अन्यान्य ज्योतिष ग्रन्थोंमें राजयोगका विशेष विवरण लिखा है। जो सब राज योग और भङ्गयोग लिखे गये उनका फल प्रत्यक्ष देखनेमें आता है।

२ प्राणायामादि रूप योगभेद, अष्टाङ्गयोग, हठयोग, नेतियोग, धौतियोग आदि नाना प्रकारके योग हैं। इन सब योगोंमें अष्टाङ्गयोग श्रेष्ठ है, इसीसे इसको राजयोग कहते हैं। विशेष विवरण योग शब्दमें देखो।

राजयोग्य (सं० त्रि०) राज्ञो योग्यः। १ राजार्ह, राजाके योग्य। (क्ली०) २ चन्दन।

राजयोषित् (सं० स्त्री०) राज्ञो योषित्। राजपत्नी, राजाकी पत्नी।

राजरत्न (सं० क्ली०) राजयोग्य रत्नं। रत्न, मोती।

राजरथ (सं० पु०) राजयान, राजाका रथ।

राजराज् (सं० पु०) १ राजाओंका राजा, अधिराज। २ चन्द्रमा।

राजराज (सं० पु०) राज्ञामपि राजा राजाधिराजान्। (राजाहः सखिभ्यष्टच्। पा ५।४।९१) इति टच्। १ कुबेर। २ सार्व्वभौम राजा, सम्राट्। ३ सुधाकर, चन्द्रमा। (मेदिनी)

राजराजेश्वररस (सं० पु०) १ राजाओंका राजा, अधिराज। २ एक रसौषधका नाम। इसके बनानेका तरीका—पारे, गन्धक और हरतालके साथ तांबेका मिला कर अदरखके रसमें एक दिन खरल करके उसमें त्रिफला, गुग्गुल, बकुची समभाग मिला कर दो दो रत्तीकी गोली बनावे और दो तोला मधु या घीके साथ खावे। इसका प्रयोग दाद, कुष्ठ आदि रोगोंमें होता है। (रसेन्द्रसारस० कुष्ठचि०)

राजराजेश्वरी (सं० स्त्री०) १ दश महाविद्याओंमेंसे एकका नाम, भुवनेश्वरी। २ राजराजेश्वरकी पत्नी, महारानी।

राजराजता (सं० स्त्री०) १ साम्राज्य। २ सम्राट्का पद।

राजराज्य (सं० क्ली०) राजराजता देखो।

राजरानी (हिं० स्त्री०) रानी, राजमहिषी।

राजरीति (सं० स्त्री०) पित्तलविशेष, कांसा। पर्याय—पाकतुण्डी, राजपुत्री, महेश्वरी, ब्रह्माणी, ब्रह्मरीति, कपिला, पिङ्गला। इसका गुण—तिक्त, शीतल, लवण, शोधन, पाण्डु, वात, कृमि, प्लीहा और पित्तनाशक।

राजरोग (हिं० पु०) १ रोग जो असाध्य हो। जैसे—यक्ष्मा, श्वास इत्यादि। २ राजयक्ष्मा, क्षयरोग।

राजर्षि (सं० पु०) राजा ऋषिरिव उपमितः। सत्यादि राजा, वह ऋषि जो राजवंश या क्षत्रिय कुलका हो। जैसे—राजर्षि विश्वामित्र। ऋषि सात प्रकारके कहे गये हैं—देवर्षि, ब्रह्मर्षि, महर्षि, परमर्षि, राजर्षि, काण्डर्षि और श्रुतर्षि। इनमें क्रमसे पहलेके श्रेष्ठ हैं।

राजल (हिं० पु०) एक प्रकारका धान जो अगहनमें पक कर काटने योग्य होता है।

राजलक्षण (सं० क्ली०) राज्ञः लक्षणं। सामुद्रिकके अनुसार वे चिह्न या लक्षण जिनके होनेसे मनुष्य राजा होता है।

राजलक्ष्मन् (सं० पु०) राज्ञो लक्ष्म चिह्नं यस्य। १ राजचिह्न, राजाओंके चिह्न। २ युधिष्ठिर। (त्रि०) ३ जिसमें सामुद्रिकके अनुसार राजाओंके लक्षण हों, राजलक्षणसे युक्त।

राजलक्ष्मी (सं० स्त्री०) राज्ञो लक्ष्मीः। १ राजश्री, राजवैभव। २ राजाकी शोभा।

राजलिङ्ग (सं० क्ली०) राज्ञो लिङ्गं। राजचिह्न।

राजवंश (सं० पु०) राज्ञां वंशः। राजाका कुल, राजकुल।

राजवंश्य (सं० त्रि०) राजवंशे भवः यत्। राजवंशोद्भव, राजाके वंशमें उत्पन्न।

राजवत् (सं० अव्य०) राजन् इवार्थे वति। १ राजतुल्य, राजाके समान। (त्रि०) २ राजयुक्त देश। ३ नृपविशिष्ट। (भारत ५।११२)

राजवत्म (सं० त्रि०) राजधर्मसे युक्त।

राजवन्दिन् (सं० पु०) राजभाट।

राजवर्चस् (सं० क्ली०) १ राजशक्ति। २ राजपद।

राजवर्त्मन् (सं० क्ली०) राज्ञो वर्त्म पन्थाः। राजपथ, चौड़ी और चौरस सड़क। पर्याय—घण्टापथ, संसरण, श्रीपथ, उपनिष्क्रमण, उपनिष्कर, महारथ्य।

राजवला (सं० स्त्री०) राजते शोभते इति राज्-अच्, राजा बला इति कर्मधारयः। नक्षत्रा, गन्धप्रसारिणी।

राजवल्लभ (सं० पु०) राज्ञां वल्लभः। १ राजाका प्रिय, पिरनी। २ राजाम्र, बड़ा आम। ३ राजबदर, बड़ा बेर। ४ नारायणदास कविराज कृत द्रव्यगुणग्रन्थविशेष। (त्रि०) ५ राजप्रिय।

राजवल्लभ—१ पालघस्त्रचपेटिकाके प्रणेता। २ भोजप्रबंध या भोजचरितके रचयिता।

राजवल्लभरस (सं० पु०) रसौषधविशेष। प्रस्तुत प्रणाली—जायफल, लौंग, बायबिडंग, इलायची, सोहागा, हींग, जीरा, तेजपत्ता, अजवायन, सोंठ, सेंधा नमक लोहा, अभ्र, पारा, गंधक, मिर्च और रूपा प्रत्येकका १६ तोला, भांगरेके रसमें घोट कर तीन रत्तीकी गोली बनावे। अनुपान दोषके बलाबलके अनुसार स्थिर करना होता है। इस औषधका सेवन करनेसे शूल, गुल्म, आमवात, हृदशूल, पार्श्वशूल मेरुशूल शिरःशूल, कटीशूल, हलीमक, ग्रहणी और अतीसार आदि रोग अति शीघ्र निराकृत होते हैं। (रसेन्द्रसारस० ग्रहणीरोगाधि०)

राजवल्ली (सं० स्त्री०) राजप्रिया वल्ली, करैलेका पेड़।

राजवसति (सं० स्त्री०) राजभवन, राजाका महल।

राजवार (सं० पु०) राजद्वार।

राजवारुणी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका मद्य। भावप्रकाश के अनुसार यह सोंठ, पीपल, पिपलामूल, अजवायन और काली मिर्चको उनकी तौलसे तिगुने अंगूर और चौगुने मधुजातीय और इक्षुजातीय रसोंमें मिला कर बनाया जाता है।

राजवाह (सं० पु०) राजानं वहतीति वह अण्। घोटक, घोड़ा।

राजवाहन (सं० पु०) राजहंस महाराजका एक पुत्र।

राजवाह्य (सं० पु०) राज्ञो वाह्यः। १ राजवाहक हस्ती, राजाका वाहक हाथी। पर्याय—उपवाह्य, पिशाचकुञ्जर। (त्रि०) २ राजवहनीय, राजाके वहनके योग्य।

राजवि (सं० पु०) राजपक्षी नीलकण्ठ।

राजविजय (सं० पु०) सम्पूर्णजातिका एक राग।

राजविद्या (सं० स्त्री०) राज्यशासनोपयोगी विद्या राजनीति।

राजविद्रोह (सं० पु०) राजविप्लव, बगावत। राजद्रोह देखो।

राजविद्रोहिन् (सं० पु०) वह जो राजा या राज्यके प्रति विद्रोह करे, बागी।

राजविनोद (सं० पु०) संगीतशास्त्रके अनुसार एक ताल का नाम।

राजविहार (सं० पु०) राजाके वास करने योग्य बौद्ध मठ।

राजवीजी (सं० त्रि०) राजवंशीय।

राजवीथी (सं० स्त्री०) राजपथ, चौड़ी सड़क।

राजवृक्ष (सं० पु०) वृक्षाणां राजा राजदन्तादित्वात् पर निपातः। १ आरग्वध वृक्ष, अमलतासका पेड़। २ पियालवृक्ष, पयारका पेड़। ३ लकुचास्थिवृक्ष, डंकाका भड़पूड़ नामक पेड़। ४ स्योनाकवृक्ष, सोनापाढ़ी।

राजवृत्त (सं० क्ली०) राज्ञः वृत्तं। १ राजाका चरित्र। २ न्यायपूर्वक अर्थार्जन। ३ उसकी रक्षा करना और सत्पात्रको दान देना।

राजवेश्मन् (सं० क्ली०) राज्ञः वेश्म। राजगृह, राजाका भवन।

राजवेष (सं० पु०) राजपरिच्छद राजाकी पोशाक।

राजशण (सं० पु०) राजा शोभमानः शणः। पट्ट, पटसन।

राजशफर (सं० पु०) इलिशामत्स्य हिलसा मछली।

राजशब्दोपजीवी गण (सं० पु०) प्राचीनकालका एक प्रकारका गण या प्रजातन्त्र। कौटिल्यने लिखा है, कि लिच्छवि, वज्जिक, मल्लक कुकुरादि आदि गण राज शब्दोपजीवी हैं।

राजशय्या (सं० स्त्री०) राज्ञः शय्या। राजाकी शय्या।

राजशाक (सं० पु०) राजप्रियः शाकः, शाकानां राजा इति वा। वास्तूकशाक, बथुआ। (राजनि०)

राजशाकनिका (सं० स्त्री०) शाकभेद बथुआ।

राजशालि (सं० पुं०) राजभोग्य शालिधान्यविशेष, एक प्रकारका अगहन धान जिसे राजभोग्य या राजभोग भी कहते हैं। इसका चावल बहुत महीन और सुगंधित होता है।

राजशाही—राजशाही देखो।

राजशिम्बी (सं० स्त्री०) श्वेतशिम्बी, एक प्रकारका सेम जो चौड़ी और गूदेदार होती है। यह खानेमें स्वादिष्ट होती है। इस भोगाशिम भी कहते हैं। इसकी दो जातियां होती हैं—एक काली और दूसरी सफेद। इसमें और सामान्य सेममें यह भेद है, कि यह उससे अधिक चौड़ी होती है और जल्दीमें बहुत नहीं बढ़ती।

राजशासन (सं० क्ली०) राज्ञः शासनं। राजाका शासन।

राजशास्त्र (सं० क्ली०) राजविद्या, राज्योशासनोपयोगी नीतिशास्त्र।

राजशुक (सं० पु०) शुकाना राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः। पक्षिविशेष, एक प्रकारका तोता जो लाल रंगका होता है। इसे नूरी कहते हैं। पर्याय—प्राज्ञ, शतपत्र, नृपप्रिय।

राजशुण्ड (सं० क्ली०) शालिधान्यभेद, एक प्रकारका धान।

राजशृङ्ग (सं० पु०) १ मद्गुरमत्स्य, मंगुरी मछली। (क्ली०) २ राजाका छत्र।

राजशेखर—कई एक प्रसिद्ध जैन ग्रन्थकार। १ कान्यकुब्जपति महेन्द्रपालके शिक्षक एक प्रसिद्धकवि। इनके पिताका नाम दर्दुक और माताका शीलवती था। ईस्वीसन् ८०८ से ९०७ के बीच उन्होंने बालरामायण, प्रचण्डपाण्डव या बालभारत, विद्धशालभञ्जिका और कर्पूरमञ्जरी नामकी संस्कृत नाटिका लिखी। रामायणके प्रारम्भमें उनके बनाये छः संस्कृत ग्रन्थके नाम मिलते हैं। क्षेमेन्द्र, भट्ट और अभिनन्द अपने अपने ग्रन्थोंमें राजशेखरका उल्लेख कर गये हैं। २ एक विख्यात अलङ्कारशास्त्रके रचयिता।

राजशेखर मलधारिगच्छमण्डन—एक प्रसिद्ध जैन-आचार्य और जैन-ऐतिहासिक। ये १४वीं सदीके प्रारम्भमें विद्यमान थे। उनका 'प्रबन्धकोष ऐतिहासिकके आदरणीय है। सङ्गीतोपनिषद् और सङ्गीतोपनिषद्सारके प्रणेता प्रसिद्ध जैनाचार्य सुधाकलस राजशेखरके शिष्य थे।

राजशेखर सूरि—एक जैन पडित तथा श्रीतिलकके शिष्य। इन्होंने श्रीधरकृत न्यायकन्दलीकी पञ्जिका लिखी।

राजशैल (सं० पु०) राजगिर।

राजश्यामलोपासक (सं० पु०) धर्मसम्प्रदायभेद।

राजश्री (सं० स्त्री०) राज्ञः श्रीः। १ राजलक्ष्मी, राजाका ऐश्वर्य। २ राजाकी शोभा।

राजसंसद (सं० पु०) १ राजसभा। २ वह धर्माधिकरण, जिसमें राजा स्वयं उपस्थित हो, स्वय राजाका दरबार।

राजस (सं० त्रि०) रजसो भवः रजस्-अण्। रजोगुणोद्भव, रजोगुणसे जो कुछ होता है, सभी राजस है।

> "आरम्भरुचिता वैर्यमसत्कार्यपरिग्रहः।
> विषयसेवा चाजस्रं राजसं गुणलक्षणम्॥"
>
> (वामनपु० १२ अ०)

कर्मानुष्ठानशीलता, अधैर्य, असत्कार्य, परिग्रह और सर्वदा विषयसेवा ये सब राजस लक्षण हैं।

जगत्में रजोगुण प्रधान जो कोई कार्य किया जाता है वही राजस है। राजस आहार—

> "कट्वम्ललवणात्युष्णतीक्ष्णरूक्षविदाहिनः।
> आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः॥"
>
> (गीता १३ अ०)

कटु, अम्ल, लवण, अति उष्ण, तीक्ष्ण, रूक्ष और विदाही आहार राजस आहार है।

राजस यज्ञ—फलाभिसन्धानपूर्वक दम्भ दिखानेके लिये जो यज्ञ किया जाता है, वह राजस यज्ञ है।

(गीता १७ अ०)

राजस तपस्या—मनुष्य जिससे साधु कहे, देखनेसे अभिवादन करें अथवा अर्थद्वारा सम्मानरक्षा करें, इस कारण वा दम्भप्रकाशके कारण की जानेवाली अनियत और क्षणिक तपस्याको राजस तपस्या कहते हैं।

(गीता १७ अ०)

राजस दान—प्रत्युपकारकी आशासे अथवा स्वर्गादि फलोद्देशसे कष्टपूर्वक जो दान किया जाता है उसे राजस दान कहते हैं। (गीता १७ अ०)

राजस त्याग—दुःखजनक होनेसे कायक्लेश और भय प्रयुक्त कर्मपरित्यक्त होनेसे उसे राजस त्याग कहते हैं।

राजस ज्ञान—जिस ज्ञान द्वारा सर्वभूतस्थित आत्माको पृथक् पृथक् रूपमें नाना भावापन्न जाना जाता है उसे राजस ज्ञान कहते हैं।

राजस कर्म—अहङ्कार वशतः कामाभिलाषी हो कर बड़ी आसानीसे जो काम किया जाता है उसका नाम राजस कर्म है।

राजस कर्त्ता—अनुरागी, कर्मफलाभिलाषी, लुब्धस्वभाव, हिंसाप्रकृति, अशुचि, हर्ष और शोकयुक्त काम करनेवाला ही राजसकर्त्ता है।

राजस बुद्धि—जिससे धर्म, अधर्म, कार्य, अकार्य यथार्थरूपसे जाना जाता है वही राजस बुद्धि है।

राजस धैर्य—जिसके द्वारा मनुष्य धर्म, अर्थ और कामको धारण करते हैं तथा तत्प्रसङ्गाधीन फलत्यागाकाङ्क्षी होते हैं, उसीको राजस धैर्य कहते हैं।

विस्तृत है। भूपरिमाण २५९३ वर्गमील है। इसके उत्तरमें दिनाजपुर और वगुड़ा जिला, पूरबमें वगुड़ा और पावना जिला, दक्षिणमें गङ्गा और नदिया जिला तथा पश्चिममें मालदह और मुर्शिदाबाद जिला है।

भूतत्त्व।—वर्त्तमान राजशाही जिलेका प्राकृतिक संस्थान देखनेसे ही डेल्टा सरीखा मालूम होता है। भूभागका अधिकांश नदी-गर्भ और जलसे आच्छादित है। साधारणतः जमीन उर्वरा है, किन्तु सभी स्थानोंकी जमीन और आबहवा एक-सी नहीं है। वर्षाकालमें तमाम जलसे डूब जाता है। नदी तीरवर्त्ती स्थान प्रधानतः स्वास्थ्यकर और वृक्षोंसे सुशोभित है। पद्मा नदीमें जब बाढ़ आती तब गांवका गांव बह जाता है। १८३८ और १८६५ ई०की भीषण बाढ़ सर्वत्र विख्यात है।

इस जिलेके दक्षिण और दक्षिण-पश्चिममें पद्मा, पश्चिममें महानन्दा, मध्यमें आत्रयी, बडल, उसकी शाखा मूशा खाँ, मूशाकी शाखा नारद, पूरबमें करतोयाकी शाखा नागर, उत्तरमें बाराही और बागनई बहती हैं। इन सब नदियोंमें नावें बारहों मास आती जाती हैं। यहां छोटे बड़े बहुतसे बिल हैं जिनमें चलन-बिल सबसे बड़ा है। इसका विस्तार २१ मील है। सभी समय इसमें नावें चलती हैं। रकदह, मादा और सतीका बिल भी उतना छोटा नहीं है। जिसमें सर्वत्र नदीके रहनेसे जलपथसे ही वाणिज्यकी सुविधा है।

सुलतानगञ्ज, गोदागाड़ी, गोविन्दपुर, लालोर, हतियानदह, सायेल, आत्रनकोट, गाङ्गोल, बरवाड़ो, बराइल, तेमुल, नौगांव, सिडा, सेरकोल आदि स्थानोंसे नाव द्वारा धान, चावल, तमाकू और पटसनका कारबार चलता है। यहां योरोधान, आमनधान, हल्दी, ईख, नील, शहतूत और गांजेकी खेती होती है। खेतीबारीसे ही लोग अपना गुजारा चलाते हैं। यहांका आम, कटहल बहुत उमदा होता है और बहुतायतसे पाया जाता है। इस जिलेमें मछली बहुत मिलती है। बहुतोंका विश्वास है, कि अधिक मछली मिलनेके कारण ही यहांका "मत्स्य देश" नाम पड़ा है।

वाणिज्य।—एक समय यह जिला वस्त्र-व्यवसायके लिये बहुत मशहूर था। ईष्ट इण्डिया कम्पनीके समयके विवरणसे जाना जाता है, कि उस समय यहांकी आढतसे वर्षमें १४८१०० खंड वस्त्र यूरोप भेजे जाते थे। अलावा इसके लाखों मनुष्यका पहनावा भी यहीं से चलता था। किन्तु अभी वह दिन गया। मैनचेष्टरकी प्रतियोगितासे यहांके जुलाहे बेकाम बैठे हुए हैं। अभी इसी जिलेमें अन्यान्य स्थानोंसे कपड़े, कपास, चीनी, घी, शाल लकडी, लवण और मसाले आते हैं, परन्तु धान, चावल, हल्दी, रेशम, नील, पटसन और गांजा भी यहांसे दूसरे दूसरे देश भेजे जाते हैं।

नाम और जिलेकी पैदाइशका इतिहास।

बहुत लोगोंका यह ख्याल है, बहुत दिनों तक बौद्ध और हिन्दुओंके राजत्व करते रहनेके कारण मुसलमानोंके शासनकालमें इसका राजसाही नाम पडा। उससे बहुत समय पहले यह स्थान मत्स्यदेशके अन्तर्गत था। उत्तर-वङ्गके पांच बीबी रेल-स्टेशनसे कोई १७ मील पूर्व-दक्षिण कोने पर अवस्थित विराट नगर मत्स्यप्रदेशकी राजधानी थी। वहांके लोग इसी विराट नगरकी २ मीलकी दूरी पर विराट्के सेनापति कीचकके मकानका परिचय देते हैं। फिर इसके निकट ही वह स्थान है, जहां शमी वृक्ष पर पांचों पाण्डवोंने अपने अस्त्रशस्त्र रखे थे इत्यादि प्रमाणोंके बल पर इस स्थानको ही महाभारतमें लिखे मत्स्यदेश मानते हैं, किन्तु महाभारतकी आलोचना करने पर इस स्थानको कभी वह मत्स्यदेश स्वीकार नहीं किया जा सकता। वह पुराने मत्स्यदेश राजपूतानेमें है। आज भी विराटराजकी राजधानी वैराट नगर वहां अवस्थित है। मत्स्य और विराट देखो। राजसाहीका मत्स्यदेश बहुत इधरका है। इस समयके भूतत्त्वविदोंने भूतत्त्वकी आलोचना कर स्थिर किया है, कि राजसाही जिलेका बहुत अंश आधुनिक समयके नदीगर्भसे निकला हुआ है। वरीन्द अंशको छोड़ अन्य किसी स्थानको वैसा पुराना नहीं कहा जाता। इस स्थानको आत्रेयी और बाराही नदियां प्रवाहित करती है। इससे यह तीर्थक्षेत्र कहा जाता है। फिर भी, प्राचीन पुराण आदि ग्रन्थोंमें इसका उल्लेख नहीं है। मुसलमानोंके अभ्युदयकालमें जिन सब स्थानोंमें लोगोंका समागम हुआ था, उनमें मांदा,

कुमारहल, नौगांव, कालीतला, भवानीपुर और देवपाड़े का नाम लिया जा सकता है। मान्दमें बौद्धकीर्तियों का निदर्शन और भवानीपुरमें देवीका पीठस्थान है। मुसलमान अभ्युदयमें बाघा और ताहिरपुर तथा चैतन्य-भक्त परम वैष्णव नरोत्तमके अभ्युदयमें प्रेमतलीकी प्रसिद्धि हुई थी। किन्तु इस समयमें भी राजसाहीका नामकरण नहीं हुआ।

नवाब मुर्शिदकुली खाँके समयमें उदितनारायण नामक एक जमींदार अपनी जमींदारीका शासन करते थे। उनकी जमींदारीका नाम 'चकला राजसाही' था। इस समयके मुर्शिदाबाद, वीरभूम, वर्त्तमान नदिया और सन्थाल परगनेके कुछ अंश आदि स्थान उस समयके 'राजसाही चकला' के अन्तर्गत थे। इस समय भी मुर्शिदाबाद, वीरभूम जिलेमें राजसाहीके परगने दिखाई देते हैं। उस समय मथुरा, पावना और मालदह आदि जिलोंके अधिवासी भी उदितनारायणको ही कर देते थे। किन्तु ये स्थान राजसाहीके नामसे प्रसिद्ध थे या नहीं इसका कोई प्रमाण नहीं मिलता। और तो क्या पद्मा नदीके उत्तर किनारे वर्त्तमान राजसाहीमें जो लस्करपुर और ताहिरपुर परगने दिखाई देते हैं, वे अकबरके समयमें सरकार बार्बकाबाद तथा मुर्शिदकुली मीर देव दखिया बन्दोबस्तके पहले समयमें मुर्शिदाबाद जिलेके अन्तर्गत थे। सन् १७९५ ई०में राजसाहीके स्थानोंमें बड़े परिवर्तन हुए। उदितनारायणकी जमींदारी नाटोरके राजाके अधीन हुई थी। रानी भवानीके अधिकृत बहुत बड़ी जमींदारी राजसम्पत्ति के नामसे प्रसिद्ध हुई। उनके समयसे सन् १७९० ई०के दशसाला बन्दोबस्त तक राजसाही जिलेकी पश्चिमी सीमा भागलपुर और पूर्वी सीमा ढाका निर्दिष्ट था। सन् १७९३ ई०में चिरस्थायी बन्दोबस्तके समय राजसाही जिलेसे बहुत स्थान निकल गये। अब भी इसकी पूर्वी सीमा ब्रह्मपुत्र और पश्चिमी सीमा गङ्गा है। इतना बड़ा जिला एक मजिष्ट्रेटके शासनमें रखना उचित नहीं। ऐसा समझ कर १६ वर्षोंमें इसका आयतन बहुत कम कर दिया गया है। अन्तमें निम्नलिखित १४ थानों और तीन महकमोंको ले कर वर्त्तमान राजसाही जिलेका संगठन हुआ—

सदर महकमेमें—१ बामाखिया २ चारघाट ३ पुठिया, ४ गोदागाड़ी, ५ तानोर और ६ बाघमारा ये छः थाने हैं।

नाटोर महकमा—१ नाटोर, २ लालपुर, (विलमारिया), ३ बड़ाइ ग्राम, और ४ सिंड़ा—ये चार थाने हैं।

नौगांव महकमा—१ पांचपुर, २ नौगांव, ३ महादेवपुर और ४ मांदा—ये चार थाने हैं।

इतिहास।

पहले ही कह चुके हैं कि वर्त्तमान राजसाही जिलेमें मुसलमानी जमानेसे पहले कोई बड़ा नगर या राजधानी नहीं थी। आत्रेयी, बाराही और करतोया के पुण्य तीर्थ होनेकी वजह यहां यात्री बहुत आया करते थे। इस तीर्थके कारण ही नदीके किनारेके स्थानोंमें हिन्दू और बौद्ध राजाओंके उद्योगसे देवालय और विहार बने थे। इनमें अधिकांश ही नष्ट हो गये हैं। इनमें गोदागाड़ी थानेके अधीन देवपाड़ा ग्राममें विजयसेनका शिलालेख मिला है। इससे यहांके बहुत पुराने प्रद्युम्नेश्वर शिव तथा उनके मन्दिरका उल्लेख पाया जाता है।

नाटोरसे उत्तर पूर्व कोनेमें ३६ मीलकी दूरी पर भवानीपुर ग्राम मौजूद है। बहुत दिन पहले यहां करतोया, आत्रेयी और यमुनाका संगम था। इससे यह स्थान महातीर्थके नामसे प्रसिद्ध था। भवानीदेवीके पीठस्थानके नामसे यह स्थान प्रसिद्ध था। यहांके पुजारी कहा करते थे कि तन्त्रचूड़ामणि-वर्णित सती-देवीका तल्प तथा बायां कान यहीं गिरा था। (१) मुसलमानोंके राज्यमें इस तीर्थका लोप हो गया। इसके बाद हुसेन शाहके जमानेमें मोहनमिश्र नामक एक साधुने मधुरेश और मनोहर चक्रवर्तीके साहाय्यसे यहांके पीठका उद्धार किया। इस समय रहमत खाँ नामक एक मुसलमान सभापतिने देवीकी कृपासे विपद्से मुक्त होने पर यहां एक इमारत तय्यार कराई थी। गत १२६९ फसलीके भूकम्पमें यह इमारत नष्ट हो गई। कहते हैं, कि मोहन मिश्र नामक ब्रह्मचारीने देवीकी आज्ञासे कुमुदानन्द चक्रवर्तीकी कन्यासे विवाह किया था। महाराजकृष्णसे मोहन मिश्रके साथ कन्याका विवाह

(१) "करतोया तटे तल्पं वामे वामनभैरवः।
अपर्णा देवता तत्र ब्रह्मरूपा करोद्भवा॥" (पीठमाला)
मतान्तरे— "करतोया तटे पड़े वाम कर्ण तोर।
वामेश भैरवो देवी अपर्णा तोहार॥" (भारतचन्द्रकी अन्नदाम०)

करनेसे कुसुदानन्द समाजमे गिर गये। इसके बाद साधु मोहन मिश्रके असाधारण दैवशक्तिका परिचय पा कर वारेन्द्र-समाजपति राजा कंसनारायणने उनको और उनके ससुरको जातिमें उठा लिया। उन्हींसे ही वारेन्द्र ब्राह्मणसमाजमें भवानीपुरी पठीकी सृष्टि हुई। साँतैल की रानी शर्वाणी और रानी भवानीके यत्नसे इस पीठके संस्कार और यहाकी देवसेवाका उचित प्रबंध किया गया था। साँतैल और उसके बाद नाटोरके राजवंश सदा इस पीठको देखने आया करते थे। उसमें थोड़े ही दिनोंमें इस पीठकी ख्याति राजसाहीमें हो गई। दूर दूरके यात्री साधु संन्यासी आया करते थे। यहाके शूर-वंशीय कायस्थ जमीदार आदिशूरवंशीय और भुलुयाके लक्ष्मण माणिक्यकी ज्ञातिके नामसे पुकारे जाने लगे।

ताहिरपुरराज।

इस समयके राजसाही जिलेमें "राजा" उपाधि-वाले बहुतेरे जमींदार दिखाई देते हैं। किसी किसी ऐतिहासिकने लिखा है—ईसाकी १४वीं शताब्दीके प्रारम्भमें मुसलमान बादशाहको दमन कर जिन्होंने गौड़-में कुछ दिनोंके लिये हिन्दू राजत्व स्थापित किया, वे राजा गणेश ही ताहिरपुर राजवंशके पूर्वपुरुष हैं, किन्तु कितने ही मुसलमान ऐतिहासिकोंने गणेशको दिनाज-पुरके राजा लिखा है। दिनाजपुरके राजा गणेशका राजत्व करना बहुतोंने स्वीकार किया है। ऐसी दशामें राजा गणेश द्वारा ताहिरपुरके राजवंशकी उत्पत्ति स्वीकार करनेमें सन्देह उत्पन्न होता है। विजयलङ्करसे ताहिर-पुरके राजवंशका उत्पन्न होना बहुतोंने स्वीकार किया है। पहले जमीन्दारीकी रक्षा करनेके लिये नवाबसे हुक्म ले कर जमीन्दारोंको फौजें रखनी पड़ती थीं। इस तरह फौजोंकी मददसे विशेष वीरता प्रदर्शित करने पर सम्राट्ने विजयलस्करको पश्चिम दरवाजेका और सुसङ्ग के बुद्धिमन्त खाँको पूर्वके दरवाजेका जमादार नियुक्त किया। कुलग्रन्थमें भी सुसङ्गके राजा उदयाचल और ताहिरपुरके राजा अस्ताचल कहे गये हैं। सम्राट्ने विजय लस्करको 'सिंह'-का खिताब और २२ परगने दिये। उन-के अधीनमें बहुतेरे सैनिक रहते थे। रामगामामें चारों ओरसे खाई खुदवा कर और चहारदीवारी उठवा कर राजधानी कायम हुई। विजयके पुत्र उदयनारायण वारेन्द्र कुलीनोंमें निरावलि पठीके प्रथम स्रष्टा हैं। गौड़ेश्वर उनसे सब परगनोंको छीन लिया केवल ताहिरपुर परगना उनके पास रह गया। इन्हीं उदयनारायणके पोता प्रसिद्ध वारेन्द्र-समाजपति राजा कंसनारायण हैं। यही वारेन्द्रकुलीनके मूलाधार थे। (कुलीन और वारेन्द्र देखो) इनके परपोते लक्ष्मीनारायणकी पुत्रीके साथ नाटोरके राजा रामजीवनके औरसपुत्र कालिकाप्रसादका विवाह हुआ। इतिहासमें ये "काल्रु कोड्र" के नामसे विख्यात हैं। इस वंशके अन्तिम राजा अपुत्रक हो मर गये। साथ ही इनकी विपुल सम्पत्ति इनके नाती विनोदराम रायने ले ली। ये विनोदराम ही ताहिरपुरके राजवंश के आदिपुरुष हैं। ये ताहिरपुरकी जमीन्दारीके ॥४) के मालिक हैं। (कुलीन शब्दमें शाखती देखो) विनोद-राम रायके परपोते ताहिरपुरके वर्त्तमान प्रसिद्ध राजा शशिशेखरेश्वर राय हैं।

सातैल राजवंश।

आत्रेयी और करतोया नदीके संगमस्थान पर सातैल या साँतुल राजाकी प्राचीन राजधानीका ध्वंसा विशेष दिखाई देता है। इसके समीप ही साँतुलका बिल मौजूद है। यह बिल चलनबिलके साथ सम्मिलित है। जिस समय राजा गणेशका अभ्युदय हुआ, उस समय सातैलमें एक वारेन्द्र ब्राह्मण प्रबल प्रतापी हुए थे। तप्पे मातुड़िया और इसके अन्तर्गत १३ परगने इनके अधिकारमें आये। मुसलमान नवाब भी उनकी खातिरदारी किया करते थे। किस तरह यह संभ्रातराज्य विलुप्त हुआ, इसके सम्बन्धमें हमने एक कहानी सुनी है, वह इस तरह है—

जिस समय औरङ्गजेबका पोता आजिम उस्सान बङ्गाल, विहार और उड़ीसाका शासक था, उस समय सीतानाथ सातैलके राजा थे। इस समय इनकी उम्र बहुत हो चुकी थी। वे अपने छोटे भाई रामेश्वर पर सब कार्य्य भार छोड़ कर स्वयं पारमार्थिक तत्त्वालोचनामें समय बिताते थे। किन्तु रामेश्वरने कई अविश्वास-जनक काम किये। इससे इनके हृदयमें मार्मिक पीड़ा उत्पन्न हुई थी। इसी शोकसमयमें सीतानाथ परलोकगामी

हुए। रामेश्वरका भयमें ही राज्यवंशका कारण हुआ। इनको बहुतेरे पक्षपातको भी कहा करते थे। इस रामेश्वरका पुत्र राजा रामकृष्ण हुए। प्रातःस्मरणीया रानी भवानी राम कृष्णको पत्नी हैं। राजसाही जिलेमें रानी भवानीकी कीर्तियां कई स्थानोंमें विद्यमान हैं। कहते हैं, कि इन्हीं रानी भवानीने करतोयाके किनारे महापीठका आविष्कार किया था। ये देवीका सुन्दर मन्दिर बनवा कर देवसवामें प्रचुर धन खर्च किया करती थीं। इनकी कीर्तियां देखनेके लिये दूर दूरसे यात्री आया करते थे। कोई १८१० ई०में रानी भवानीकी मृत्यु हुई। इसके बाद इस जमींदारीका वारिस रामकृष्णके भतीजे बलराम थे; किन्तु नाटोरके सुचतुर राजा रघुनन्दनने नवाबको यह समझा दिया, कि "बलराम जन्मान्ध है और जमींदारीके काम संभालनेमें असमर्थ हैं।" आप मुझे दे दीजिये। इस तरह उन्होंने नवाबसे पत्रोपयुक्त करके उनकी सारी जमींदारी अपने नामसे करा ली। इसीके साथ साथ सातैलका राजवंश भी लोप हो गया।

रानी भवानीकी सब कीर्तियां उनकी मृत्युके बाद कुअवस्थ तथा जीर्णशीर्ण हो कर नष्टप्राय हो गई थीं। पीछे नाटोरकी प्रातःस्मरणीया रानी भवानीने उन कीर्तियोंका जीर्ण संस्कार करा अपने महत्त्वका परिचय दिया था।

पुंठियाका राजवंश।

वारेन्द्रकुलीन ब्राह्मण साधु बागचीकी पन्द्रह पीढ़ी नीचे ब्रह्मधर पाठक उत्पन्न हुए। उनके पुत्र वत्साचार्य या वत्सपत्याचार्यसे ही इस राजवंशका अभ्युदय हुआ। १६वीं सदीके मध्यभागमें बङ्गालके सूबेदार दिल्लीके बादशाहका सम्बन्ध विच्छिन्न कर स्वतन्त्र बन गये। इसके बाद इनको दमन करनेके लिये दिल्लीके बादशाहने बहुतेरी फौजोंके साथ अपने सेनापतिको भेजा। यहां आने पर वत्साचार्यकी असाधारण दैवशक्तिकी बात मुगल सेनापतिको* मालूम हुई। मुगलसेनापतिने उनको अपने खेमेमें बुलाया। वत्साचार्यने मुगलसेनापतिको दैवशक्तिबलसे युद्धमें विजय प्राप्त करनेका उपाय

* इस मुगलसेनापतिको कुछ लोगोंने मानसिंह और कुछ लोगोंने राजा टोडरमल होना लिखा है।

और पथ बताया था। विजय प्राप्त हुए। सेनापतिने युद्धके बाद वत्साचार्यको जागीर दिलानेकी बात कही, किन्तु वत्साचार्यने विनीतभावसे इनकार कर दिया। उन्होंने कहा कि मुझे विषयवासनाकी इच्छा नहीं। इस पर मुगलसेनापतिने बादशाहसे इनके पुत्र पीताम्बरको 'लस्कर' महालका खिताब और लस्करपुर परगना जागीरमें दिलवाया। किन्तु पीताम्बर भी इस सम्पत्तिका अधिक दिनों तक भोग न कर सके। उनके छोटे भाई नीलाम्बर इस सम्पत्तिके अधिकारी हुए। नीलाम्बरके दो पुत्र हुए—रतिकान्त और रामचन्द्रराम। पिताके अप्रियपात्र होनेकी वजह रतिकान्त जेठे होने पर भी पैतृक सम्पत्तिके उत्तराधिकारी न हो सके। ठाकुरकी उपाधिसे विभूषित हुए। दूसरे पुत्र आनन्दरामने पिताकी जीवितावस्थामें ही दिल्लीश्वरसे राजाकी उपाधि प्राप्त कर ली।

रतिकान्तके पुत्र रामचन्द्रने पुंठियामें "राधागोविन्द" प्रतिष्ठा और उनकी नित्यसेवाका सुप्रबन्ध किया। इन रामचन्द्रके तीन पुत्र हुए—नरनारायण, दर्पनारायण और जयनारायण। नरनारायण ठाकुरके जमानेमें नाटोर राज्यके स्थापक रघुनन्दनके बाप कामदेव लस्करपुरके अन्तर्गत बारइहाटी ग्राममें तहसीलदार थे। दर्पनारायणके समयमें रघुनन्दन पहले उनको पूजाके लिये फूल तोड़ कर रखते थे। इसी सामान्यकार्यसे आरम्भ कर वे नवाबके दरबारमें पुंठिया राजाकी ओरसे वकीलकी मुख्तारी करने लगे। इसके बाद वे और भी सौभाग्यशाली हुए थे।

लार्ड कर्नवालिसके समयमें आनन्दनारायण ठाकुर हुए पश्चात् राजा हुए तथा उनके साथ जमींदारीका चिरस्थायी बन्दोबस्त हुआ। उनके उत्तराधिकारी राजेन्द्रनारायणको बृटिश सरकारसे 'राजा बहादुर'-की उपाधि मिली थी।

इससे पहले पुंठियाके राजा भुवनेन्द्रनारायणने भी अपनी पैतृक जायदाद छोड़ कर कितनी ही जमींदारियां खरीद कीं। उनके पुत्र जगन्नारायणने भी सन् १२१४ सालमें मैमनसिंह जिलेके पुखरिया परगना, राजसाही जिलेके कालीगांव, कालीसपा और कासीहाटा परगना और नदिया जिलेके मथानमहियार खरीद कर अपनी पूंजी

[illegible] कर [illegible]। उन्होंने [illegible], [illegible] और [illegible] तथा [illegible] एक धर्मशाला [illegible]। [illegible] कारण राजा [illegible] [illegible] इनकी [illegible] [illegible] और [illegible] अर्जित [illegible]।

[illegible] और उनके पुत्र [illegible] [illegible] आ सकते हैं। [illegible] [illegible] [illegible] हुए थे। [illegible] [illegible] राजा [illegible] [illegible] हो गई। [illegible] पुत्र [illegible] [illegible] नहीं हुए। इनके [illegible] और [illegible] राजा [illegible]। [illegible] उन [illegible] कर [illegible] कर दिया। [illegible] में ही उनका [illegible] समाप्ति [illegible] जाने पर उनके [illegible] [illegible] हुआ। [illegible] हुआ। [illegible] उनको मिल गया। फिर [illegible] थे। इससे उनको [illegible] हो कर [illegible] देनी पड़ी।

राजा राजेन्द्रनारायणके वंशमें परेशनारायण राय का जन्म हुआ। वे [illegible] दिनों तक जीवित न रहे, तो भी राज्यप्राप्तिके कुछ ही दिनोंके बाद पुठिया, [illegible], कापासिया, [illegible], [illegible], [illegible] प्रभृति स्थानोंमें स्कूल कायम कर अपनी प्रजामें शिक्षाका विस्तार किया। राजा जगतनारायण रायके भाता राजा योगेन्द्रनारायण रायका जन्म सं० १९४७ सालमें हुआ और वे सं० १९६६ सालके [illegible] मरे। उनकी तरह प्रजावत्सल राजा इस प्रान्तमें दूसरा दिखाई नहीं देता। उन्होंने नीलकरोंके अत्याचारसे प्रजाको मुक्त करने-

[illegible] और [illegible]। [illegible] [illegible] हुए हैं। [illegible] [illegible], [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] मुक्त हो गये थे। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible], किन्तु [illegible] नहीं किया। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] हुए।

[illegible]।

[illegible] और [illegible] बाईदाहके [illegible] था। इनके [illegible] पुत्र हुए: [illegible], [illegible] और [illegible]। इन तीनों भाइयोंमें रघुनन्दन ही बड़े बुद्धिमान तथा [illegible] थे। कहा जाता है, कि रघुनन्दन पुंठियाके राजा [illegible] पूजाके लिये फूल [illegible]। एक दिन वे फूल तोड़ने [illegible] गये थे। [illegible] आ कर [illegible] रहे थे। [illegible]नारायणने इस घटनाको देख लिया। उन्होंने रघुनन्दनको पुकार कर कहा— "रघुनन्दन! तुम भविष्यमें राजा होगे, प्रतिज्ञा करो, कि हमारे वंशको कभी राज्यच्युत न करोगे।" रघुनन्दनने उस समय [illegible] था, कि वे राजा होंगे। [illegible] अनायास ही प्रतिज्ञाबद्ध हुए। रघुनन्दनकी विद्याबुद्धिको देख कर [illegible]नारायणने उनको नवाब दरबारमें मुख्तार या वकील नियुक्त कर दिया। रघुनन्दन की भी उन्नतिका पथ प्रशस्त हुआ। उन्होंने थोड़े ही

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

[illegible]

रामजीवनने रसिकरायके पुत्र रमाकान्तको गोद लिया। इसके बदलेमें रसिक रायको राजसाही जिलेके चौगाँ और रङ्गपुरके इसलामावाद परगना मिले थे। रसिकके वंशधर चौगांके राजा कहे जाते हैं।

पदाङ्कदूतके रचयिता प्रसिद्ध कवि और नैयायिक श्रीकृष्ण शर्म्मा राजा रामजीवनकी सभाके उज्ज्वल रत्न थे। सन् १७३० ई०में रामजीवनकी मृत्यु हुई। बालक रमाकान्त राजा हुए। उनकी नाबालिगी अवस्थामें दीघापतियाके दयाराम राय नाटोरके राजकार्य परिचालन करते थे।

सन् १७३४ ई०में राजा रमाकान्तने १८ वर्षकी उम्रमें स्वयं राज्यभार ग्रहण किया। इसके लिये उनको १८५३२५) रुपया कर देना पड़ता था। उनके समयमें १६४ परगना नाटोरराज्यके अधिकारमें आ गये। देखा गया है, कि रामजीवनके समय अपेक्षा रमाकान्तके समयमें २२ परगना अधिक हो गये थे। इससे राजा रमाकान्तकी विषय-बुद्धिका भी परिचय मिलता है। रामजीवनकी जीवितावस्थामें छतानी ग्रामनिवासी आत्माराम चौधरीकी कन्या भवानीके साथ रामकृष्णका विवाह हुआ। यह कन्या ही इतिहासप्रसिद्धा प्रातःस्मरणीया रानी भवानी हैं। राज्यप्राप्तिके बाद पहले पहल रमाकान्त अच्छी तरह राजकार्य चलाने लगे। इस समय भी दयारामके परामर्शसे राज्यके सब काम होते थे। दयारामको वे दादा या भाई कहते थे। इधर कुछ बुरे आदमियोंका संग साथ हो गया। इस समय दयाराम और रमाकान्तमें परस्पर मनोमालिन्य हुआ। राजाके यहां नवाबका कर बाकी पड़ने लगा। इस समय अलीवर्दी खां बङ्गालके नवाब थे। दयारामने जा कर सब बातें नवाबसे कहीं और उन्हींके परामर्शानुसार नवाबने रमाकान्तको राज्यच्युत कर रामजीवन रायके कनिष्ठ विष्णुरामके पुत्र देवी प्रसादको राजा बनाया। इस समय रमाकान्त रानी भवानीके साथ भाग कर मुर्शिदाबादके जगत्सेठके यहां आ कर रहने लगे। जगत्सेठकी चेष्टासे रमाकान्त फिर राजा हुए और दयाराम फिर उनके प्रधान मंत्री हुए।

सन १७८४ ई०में राजा रमाकान्त रानी भवानी और एकमात्र कन्या ताराको छोड़ परलोकगामी हुए। ऐसे बड़े राज्य नाटोरका समूचा भार रानी भवानी पर आ पड़ा। रघुनाथ लाहिड़ीके साथ ताराका विवाह हुआ। रानी भवानीने दामादको राज्यका कार्यभार सौंप देनेके लिये नवाबके दरबारमें आवेदनपत्र भेजा था। किन्तु १७८८ ई०मे उस प्रिय दामादकी मृत्यु हो गई। इससे फिर राज्यका सारा भार रानी भवानी पर आ पड़ा। इस समय नाटोरराज्यकी उन्नतिको देख कर ग्राण्ट साहबने लिखा था :—

"Rajshahi, the most unwieldy extensive Zamindari in Bengal, perhaps in all India intersected in its whole length by the great Ganges or its lesser branches, with many other navigable rivers and fertilizing waters, producing within the limits of its jurisdiction at least four-fifth of all the silk, raw or manufactured used in or exported from the Empire of Hindustan, with a superabundance of all the other richest productions of nature and art to be found in the warmer climates of Asia, fit for commercial purposes, enclosing in its circuit, and benefited by the industry and population of the over-grown capital of Murshidabad, the principal factories of Kasim Bazar, Beauleah, Kumarkhali etc, and bordering on almost all the other great provincial cities, manufacturing towns, and public markets of the subah or Governorship."

(Grant's Analysis of the Finances of Bengal 1786)

ग्राण्टकी समालोचनासे मालूम होता है, कि रानी भवानीके समयमें राजसाही केवल बंगालके लिये ही नहीं वर समस्त भारतवर्षमें एक बहुत बड़ी जमीन्दारी कही जाती थी। गङ्गा तथा अन्यान्य नदीके प्रवाहित होते रहनेसे यहांकी जमीन बहुत उपजाऊ थी। समग्र भारत साम्राज्यसे उत्तम रेशम जो देशमें बनता था या विदेश भेजा जाता था, उसका (सोलह आनेमें १३ आना) भाग राजसाहीसे ही पैदा होता था। बङ्गके उस समयके समृद्धशाली नगरोंमें जो कुछ खनिज पदार्थ या

व्यवसाय सामग्री उत्पन्न होती थी उसका अधिकांश रानी भवानीकी ज़मीन्दारीसे उत्पन्न होता था।

हालवेल साहबने भी लिखा है :—

"At Nattore about ten days' travels North East of Calcutta resides the family of the most ancient and opulent of the Hindu princes of Bengal, Raja Ramkanto who deceased in the year 1748 was succeeded by his wife named Bhabani Rani, whose dewan or minister was Dayaram they possess a tract of country about 85 day's travels and under a settled Government; their stipulated annual rent to the Crown was seventy Laks of secca Rupees the real revenues about one Krore and a half."

हलवेलकी विवरणीसे भी मालूम होता है, कि रानी भवानीका राज्य इतना भारी था, कि ३५ दिनमें चक्कर पूरा होता है। इसका राजस्व ७० लाख रुपया तथा आय डेढ़ करोड़ रुपया थी।

इस तरह अतुल ऐश्वर्यशालिनी हो कर रानी *भवानी ब्रह्मचारिणी विषयसुखनिर्लिप्ता हुई।* वे जितनी असाधारण बुद्धिमती वैसी ही धर्मनिष्ठा, परदुःखकातरा तथा आडम्बरशून्या थी। सैकड़ों देव-प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा ब्राह्मण सम्मान सैकड़ों पोखरे तालाबका खुद वाना तथा लाखों गरीब दुःखियोंको अन्नवस्त्र दान उन की कीर्त्तियोंके परिचायक हैं। इस तरहका असाधारण अनुष्ठान बहुतकमें क्यों नहीं दिखाई देता। क्रियावान् ब्राह्मणोंकी कमी देख कर उन्होंने काशीधामसे ३६० ब्राह्मणोंको बुलवा कर बसाया था। इनकी वस्तीके लिये प्रत्येक पर ५० या ६० हजार रुपया खर्च किया गया था। काशीधामका दुर्गामन्दिर इन्हीं रानी भवानी की कीर्त्ति है। उनकी समूची सत्कीर्त्तियोंका यहां परिचय देना कठिन है।

रानी भवानीकी तरह उनकी पुत्री तारा भी एक विदुषी, बुद्धिमती और असामान्य रूपलावण्यवती थी। पतिकी मृत्युके बादसे उन्होंने भी ब्रह्मचर्य्यका पालन करना आरम्भ किया। उनके रूपलावण्यकी बात सुन कर उस समयके नवाब सिराजुद्दौलाने उनके पानेकी कोशिश की थी। रानी भवानीने सिराजुद्दौलासे अपनी पुत्रीकी रक्षा करनेके लिये ताराको महम्मदपुरमें रखा था। चारों ओरसे घिरी राजा सीतारामकी राजधानी अतीव दुर्गम थी। महम्मदपुरके रामसीताके महलमें ताराठकुरानी रहती थीं। जिस महलमें वे रहती थीं वह महल इस समय नाटोरके नायबकी कचहरीके नामसे पुकारा जाता है।

रानी भवानीके समयमें ही सन् ७६में दुर्भिक्ष दिखाई दिया था। इस समय रानी भवानीने अपनी प्रजाको अकालसे बचानेके लिये अपना भरा हुआ राजकोष खाली कर दिया। उसी दुर्भिक्षकी प्रचण्ड अग्निसे प्रजाको हाहाकार करते देख दयामयी देवतुल्या भवानी का चित्त विचलित हो उठा था। इधर वारेन हेष्टिङ्गस का दुर्व्यवहार, देशमें शिल्पवाणिज्यकी अवनति, अपने प्रभुत्वकी खर्वता आदिको देख कर उन्होंने अपने दत्तक पुत्र रामकृष्णके हाथ राज्यका भार दे कर गङ्गावास किया। जिस दिन रानी भवानीने अपना राज्य छोड़ दिया उसी दिनसे राजसाहीकी अवनति होने लगी।

महाराज रामकृष्ण अपने पिताकी तरह परम धार्मिक और विद्यावान् थे। बहुत समय देवार्चनामें ही बिताते थे। नित्य जप-तप करते रहनेसे उनके हृदयमें विषय वैराग्यका अङ्कुर उत्पन्न हुआ। उनके सामने भोग विलासकी सम्पत्ति अति तुच्छ थी। अर्थपिपासु राज कर्मचारियोंने राज धनको लूटना आरम्भ किया। इधर कम्पनी सरकारका कर बाकी पड़ने लगा। प्रपञ्चकों-के पड़नेसे राजा साहबको काशीहाटी परगनेको नङ्गालके कालीशङ्कर रायके हाथ बेच देना पड़ा। सन् १७९९ ई०में यशोहर कलेक्टरामुक्त इयेकी, मक्सिमपुर, नसिब शाही, सातोर और बक्सी परगनोंको कम्पनीने नीलाम करा लिया। चिरस्थायी या पक्का बन्दोबस्त होनेके समय नाटोरराज पर अपेक्षाकृत अधिक राजकर लगा गया। इधर राजा तो राज कार्यमें मन नहीं लगाते थे उधर राजकर भी बढ़ गया। फलतः धड़ाधड़ परगने नीलाम पर चढ़ने लगे। इस तरह उनकी बहुत सम्पत्ति नष्ट हो गई। उनके दीवान तथा पीछेके ज़मींदार नड़ालके कालीशङ्कर रायने बहुत

सम्पत्ति खरीद ली। मैमनसिंहके चौधरी, गोबरडांगेके मुखोपाध्याय, कालीशङ्कर और गोपीमोहन ठाकुरने भी इनके कई परगने खरीद लिये थे। इस तरह योगी रामकृष्णके समयमें सारी सम्पत्ति नष्ट हो गई। अब हाथ में कुछ ही सम्पत्ति रह गई थी।

महाराज रामकृष्ण इतनी सम्पत्ति खो देने पर भी दुःखित न हुए। वरं इससे उनका विषयबन्धन और भी ह्रास होने लगा यह देख कर वे आनन्द प्रकट करने लगे। महायोगी रामकृष्ण आधी रातको श्मशानमें जा कर तान्त्रिक साधना करते थे। भवानीपुरमें उनका यज्ञ-कुण्ड, तपोवन और पञ्चमुण्डी आज भी विद्यमान है। नाटोरराज महलमें और बड़नगरमें भी उनका तपस्या-स्थान दिखाई देता है।

ये शिवनाथ और विश्वनाथ नामके दो पुत्रोंको छोड़ कर परलोकगामी हुए। महाराज रामकृष्णके समय-में बहुत-सी सम्पत्ति नष्ट हो चुकी थी, किन्तु देवोत्तर सम्पत्ति ज्योंकी त्यों थी। ज्येष्ठपुत्र विश्वनाथ पिता-का बचा खुचा राज्य और शिवनाथ देवोत्तर सम्पत्ति पा कर सेवाइत राजा हुए। इस तरह जेठ पुत्रकी ओरसे बड़तरफ और छोटे पुत्रकी ओर छोटतरफकी सृष्टि हुई।

नाटोर-राजवंश इतने दिनों तक शाक्त था, राजा विश्वनाथने अपनी दोनों पत्नियोंके साथ वैष्णवधर्मका आश्रय लिया। किंतु उनकी तीसरी रानी जयमणि शाक्त मत त्याग करनेमें असम्मत हो, वह मुर्शिदाबादमें जा करके बस गई। विश्वनाथको पुत्र पैदा न हुआ। इससे उनके आज्ञानुसार बड़ी रानी कृष्णमणिने सन् १८१४-६ ई०में गोविन्दचन्द्रको गोद लिया। इसके बाद छोटी रानी जयमणिने भी एक गोदका पुत्र ग्रहण किया।

सन् १८३६ ई०में कुछ दिनों तक राजभोग कर गोविन्दचन्द्रने इहलीला संवरण कर ली। उनकी मृत्यु-के बाद रानी कृष्णमणिने राजकार्यमें मन लगाया। इनके राज्यमें कई तरहकी सुविधायें थीं।

गोविन्दचंद्रके इच्छानुसार उनकी पत्नीने गोविन्दनाथ को गोद लिया। राजा गोविन्दनाथ बड़े विनयी और नम्रस्वभावके थे। फिर उनकी राज्यप्राप्तिके साथ साथ इन माता पुत्रमें मनमुटाव हो गया। इस पर रानी शिवे-श्वरीने गोदको खारिज करा देनेके लिये सरकारमें एक दरखास्त दी थी। इसमें भी दोनों ओरसे विशेष क्षति हुई थी आखिर प्रिवी कौन्सिलका फैसला अभी सुननेको ही था ऐसे समय गोविन्दनाथकी मृत्यु हो गई। रानी शिवेश्वरीके आज्ञानुसार गोविन्दनाथकी विधवा पत्नीके जगदिन्द्रनाथको गोद लिया। महाराज जगदिन्द्रनाथ एक उच्च शिक्षित व्यक्ति थे। ये बङ्गालके छोटे लाटकी सभाके सदस्य हुए थे। ये ही नाटोरके वर्त्तमान महा-राज हैं।

राजा शिवनाथको भी पुत्र नहीं हुआ। उन्होंने आनन्दनाथको गोद लिया। आनन्दनाथके यत्न करनेसे देवोत्तर सम्पत्तिकी उन्नति हुई। उन्होंने रामपुर बोया-लियाके साधारण पुस्तकालयको दश हजार रुपया एक मूठसे प्रदान किया था। उस पुस्तकालयका नाम भी उन्हींके नाम पर हुआ—"आनन्दनाथ लायब्रे री।" इस तरहके कामोंसे प्रसन्न हो कर ब्रिटिश सरकारने "राय बहादुर" तथा पीछे सी० आई० ई०की उपाधिसे उन्हें विभूषित किया। उन्होंने सन् १८६६ ई०में चार पुत्र और दो कन्यायें छोड़ कर परलोक गमन किया। इनमें ज्येष्ठ चन्द्रनाथ सुपण्डित और बुद्धिमान् थे। उनको भी बृटिश-सरकार द्वारा "राजा बहादुर" तथा फारेन आफिसके "आटची" पद मिले। वे दूसरे और तीसरे सहोदर भ्राता कुमुदनाथ और नगेन्द्रनाथकी अकालमृत्युसे शोक-सन्तप्त हो कर कालकवलित हुए। उनके कनिष्ठ भ्राता योगेन्द्रनाथ कुछ दिनों तक छोटतरफका काम करते थे। थोड़े दिनके बाद वे भी एक मात्र पुत्रकी अकाल-मृत्युके शोकसे जर्जरित हो कर मर गये। उनके एक-मात्र पौत्र अब जीवित हैं।

दीघापतियाराज।

दयाराम रायसे दीघापतिया राजवंशकी उत्पत्ति हुई। वे नाटोरराज्यके राजा रामजीवन और रघु-नन्दनके दाहने हाथ थे। दयाराम उतना पढ़े लिखे न थे, फिर भी उनको लोकचरित्र जाननेकी अपूर्व क्षमता थी। मनुष्यका चेहरा देख कर ही वे कह देते थे, कि यह कैसा आदमी है और इसका स्वभाव

देता है। इसी शक्तिके बल पर एक सामान्य आदमी हो कर भी राजा रामजीवन रायके प्रधान मन्त्री हो गये थे। मुर्शिदाबादमें रहने समय नवाबने जमींदार सैन्यका सेनापति बना कर उनको सीतारामके विरुद्ध युद्ध करनेके लिये भेजा था। उन्हींके कौशलसे राजा सीताराम पराजित और कैद हुए। इस पर सन्तुष्ट हो कर नवाबने उनको "रायरायाँ" उपाधि और राजा रामजीवनके प्रति प्रीतिनिदर्शन स्वरूप कई जमींदारियाँ प्रदान की थीं। कह तो कह सकते हैं, कि उन्हीं दयारामकी सद्युक्ति और सत्परामर्शसे राजा रामजीवन तथा रघुनन्दन प्रभूत सम्पत्तिके अधीश्वर हुए थे।

दयारामने पहले परगना भातुड़ियाके अन्तर्गत तरफ नन्दकुजा, जिले बोगड़ा और मैमनसिंहके अन्तर्गत तरफ जुमराह, जिला यशोहरके अन्तर्गत तरफ मीठापाड़ा, पावना जिलेके अन्तर्गत तरफ सलीमपुर और राजा सीताराम रायके अधिकारभुक्त एक तरफ प्राप्त किया। इससे उनकी काफी रुपयेकी आय हो गई। क्रमसे अन्यान्य जमींदारीको खरीद कर वे भी एक प्रधान जमींदार और विपुल अर्थशाली होने पर भी वे नाटोरराज सरकारका मंत्रित्व नहीं छोड़ सके थे। बीचमें रामकान्तसे मनमुटाव हो जाने तथा उनके राज्यच्युत होने पर उन्होंने मन्त्रीका काम छोड़ दिया था सही, किन्तु रामकान्तके फिर राजा होने पर फिर वे मन्त्री हो गये। इसके बाद रानी भवानीके समयमें भी दयाराम रानीके प्रधान परामर्शदाता थे। रानी भवानी भी दयारामके बिना परामर्श लिये कोई काम करती न थीं। नाटोरराज्य पर दयारामका इतना प्रभुत्व था, कि वहाँसे हजारों ब्राह्मणोंको ब्रह्मोत्तर सम्पत्ति दी गई थी, उनके दानपत्रमें दयारामका ही हस्ताक्षर है और तो क्या, रानी भवानीके विवाहके दानपत्रमें भी दयारामका हस्ताक्षर दिखाई देता है। सुना जाता है, कि दयारामके हस्ताक्षर बिना नाटोरका कोई दान ही प्रामाणिक नहीं माना जाता है।

दयाराम अपनी उन्नतिके साथ साथ बहुतेरी सत्कीर्तियोंका स्थापन कर गये हैं। महम्मदपुरसे राजा सीताराम प्रतिष्ठित कृष्णचन्द्रकी मूर्त्ति ला कर अपनी राजधानीमें उन्होंने प्रतिष्ठित करायी थी। सिवा इसके उन्होंने विनोदगोपाल और कृष्णजीकी मूर्त्ति स्थापित कर उनके नित्य सेवा पूजाके लिये यथेष्ट सम्पत्ति दान किया था। उन्होंने बहुतेरे पाठशालायें स्थापित की थी और उनके लिये वे खर्च दिया करते थे। सिवा इसके लोगोंके जलकष्ट निवारणके लिये कई जगहोंमें पोखरे और तालाब खुदवाये थे और उस स्थानके ब्राह्मणोंको ब्रह्मोत्तर सम्पत्ति भी दी थी।

वृद्ध दयारामकी मृत्यु होनेके बाद उनके पुत्र जगन्नाथ रायने थोड़े दिनोंके लिये राजभोग किया। उनके १६ सन्तानोंमें एकमात्र पुत्र प्राणनाथ ही बच गये थे। पिताकी मृत्युके बाद वे ही राजसिंहासन पर बैठे। उन्होंने बड़ी धूमधामसे पिताका श्राद्ध-कार्य्य सम्पन्न किया था। प्राणनाथको कोई सन्तान न थी। इससे उन्होंने प्रसन्ननाथको नाबालिगी अवस्थामें ही प्राणनाथकी मृत्यु हो गई। इसके बाद उनकी संपत्ति कोर्ट आफ वार्डसके अधीन चली गई। कितने ही मसखरे और एकाध धूर्त अंग्रेज उनके साथी बन गये। इनके कुमन्त्रसे इनके अपरिमित धनके अपव्ययका उपक्रम हो चुका था। किन्तु कुछ ही दिनोंमें ईश्वरकी कृपासे उनको चैतन्य हुआ। उन्होंने बुरी संगतिको छोड़ सन्मार्गका अवलम्ब किया। दीघापतियासे रामपुर, बोयालिया और बगुड़ा जानेवाले एक राजपथका उन्होंने संस्कार कराया था। इसमें उनका हजार रुपया व्यय हुआ था। दीघापतियाके उच्चश्रेणी अंग्रेजी स्कूल तथा रामपुरबोयालिया चिकित्सालयके लिये उन्होंने एक मुश्तसे १ लाख रुपया दान किया था। दीघापतियाकी प्रसन्नकाली उनके द्वारा ही प्रतिष्ठित हुई हैं। वे देवोकी सेवाके लिये नित्य एक मन चावल तथा तदुपयोगी अन्यान्य उपकरण और रातको १०।१५ ब्राह्मणोंके भोजनकी व्यवस्था कर गये हैं। सन् १८५१ ई०की ३०वीं जनवरीको "राजा बहादुर"-की उपाधि उनको मिली। वे बड़े शिकारी थे। उनके साथ बड़े बड़े अंग्रेज तथा जमींदार शिकार खेलने आया करते थे। उनको पुत्र सन्तान न था। उन्होंने दूसरे प्रमथनाथको गोद लिया।

सन् १८६१ ई०में राजा प्रसन्ननाथकी मृत्यु हुई।

पड़ता है कि प्रायः इ-अकबरके बाद तकसीम जमामें सरकार जिलताबादके अन्तर्गत यार्थकपुर आदि ११ महलों के राजस्वका वसूला दिखाई नहीं दी। इसके बाद ११२१ और ११५८ सालमें ६०० और ७८५ रुपया जमा दिखाई देता है। यहां उस समयकी मुसलमानी जमी दाराका बना घर है। सन् १७९३ ई०में पक्का बन्दोबस्तके समय यहांके जमींदार कृष्णनाथ राय-चौधरीके साथ बन्दोबस्त हुआ और उन्होंने कानपाजिसन कृष्णनाथसे सालाना १४४६५३) वसूल करनेका इकरारनामा लिखाया। इसके बाद कृष्णनाथको पुत्र हो न हुआ। मरते समय रानी रूपमञ्जरीको गोद लेनेकी इजाजत दे गये। उन्होंने राजा हरनाथ रायको गोद लिया। १८५३ ई०में राज्य भार हरनाथने ग्रहण किया। राजा हरनाथको चेष्टासे जमीं दारी बहुत बढ़ गई। उन्होंने रामसाहीके सिवा बगुड़ा, दीनाजपुर, भावह आदि जिलेमें जमीं दारी खरीद की। पहले मुसलमानोंका जो क्षेत्रफल था उसका हरनाथके जमानेमें चौगुना बढ़ गया था। उन्हीं के खर्चसे रामसाहीमें दूसरा भणीका एक कालेज स्थापित हुआ। इसके लिए ५००० सालाना आयकी जमीं दारी दे दी थी। सिवा इसके ये धर्मशाला सड़क, पोखरिया धर्म सभा और साधारणके हितकर कार्यमें लाखों रुपया दान कर गये थे। सन् १८०१ ई०में उनकी मृत्यु हुई। उनके दो पुत्र कुमार यतन्द्रनाथ राय चौधरी और कुमार साद्रुरिनाथ राय चौधरी वर्तमान उत्तराधिकारी हैं। दोनों ही विद्योत्साही और शिक्षित हैं।

व ब्राह्मण।

पारस्य धरापरके पुत्र वेदान्ताचार्य हैं। वेदान्तके दो पुत्र हुए—हरिहर और लक्ष्मीधर। इन्हीं लक्ष्मीधरके वंशमें अनन्त और रामनाथका जन्म हुआ। अनन्तसे बनिहाररायवंश और रामनाथसे दिगहाटीके राय चौधरी-वंशकी उत्पत्ति है।

कुलग्रन्थमें बनिहारका नाम कुलमहल लिखा हुआ है। अनन्त कुलमहलके एक आरमा कुलीन कहलाते थे। अनन्तके परपोत मापराम हैं। मापरामके तीन पुत्र हुए— कृष्णरूप प्राणकृष्ण और रामराम। रघुपुरके वाहिरबक और नागरबन्द परगनेका राजा सरयवतीको कन्याके साथ कृष्णरूपका विवाह हुआ। इसी संभ्रमसे राजा सरय वतीके राज्यमें युक्त कर प्राणकृष्ण और रामराम उनके प्रधान राजकर्मचारी बन गये। क्रमशः ये दोनों भाइयोंने इस परगने पर अधिकार जमा लिया। रामरामके वंश ५)॥ आना और प्राणकृष्णके वंश १०)॥ के मालिक हुए। इस प्राणकृष्णका वंश बनिहार-राजवंशके नामसे प्रसिद्ध हुआ। ये सिद्धाविक पर्याके कुलीन हैं। इसी वंशके राजेन्द्रके साथ महाराज रामकृष्णकी कन्याका विवाह हुआ। इस विवाहमें राजेन्द्रको बहुत भूसम्पत्ति प्राप्त हुई। इन्हीं राजेन्द्र रायके पौत्र बनिहारके प्रसिद्ध कृष्णेन्द्र बहादुर हैं। ये कल्पना और सरलतोके पूर्ण कृपापात्र थे। ये जिस कुलमें धनमें और मानमें सम्मानित थे, वैसे ही कवि और सुलेखक भी थे। कुछ ही दिन हुआ इनकी मृत्यु हुई है। उपर्युक्त विभिन्न राजवंशके सिवा और भी कई छोटे छोटे राजाओंका वास राजसाहीमें दिखाई देता है।

राजसिंह (राणा)—मेवाड़के राजपूत राणा तथा शिशोदिया वंशसम्भूत राणा जगत्सिंहके पुत्र। सं० १७१० वि०में पिताकी मृत्युके बाद राजसिंहने चित्तौर सिंहासन पर आरोहण किया। इसी समय बादशाह शाहजहान्के पुत्र औरङ्गजेब भाइयोंसे अपने बूढ़े बापको कैद कर दिल्ली के तख्त पर बैठनेमें यत्नवान् हुए। इस पर दारा आदि औरङ्गजेबके तीनों भाई उनके विरुद्ध खड़े हुए। मेवाड़ पति राणा राजसिंहने इस समय दाराका साथ दिया। ऐसा करते देख औरङ्गजेबने राणाके साथ युद्ध ठान दिया। राजपूत फतेहाबादके युद्धक्षेत्रमें औरङ्गजेबके हाथ से पराजित हुए। इसी हारके साथ-साथ अभागे दारा और राणाके भाग्यचक्रका घुमाव दूसरी ओरको हो गया।

इसके कुछ दिन पहले राणा राज्यारोहणके कुछ दिन बाद राणा राजसिंह अजमेरके अन्तर्गत मालपुर नगर पर आक्रमण कर मुगलोंको हरा तथा उनके नगरको लूट कर अपने राज्यमें लौट आये। इसी पराक्रमसे शिशोदियावीर पुनर्जीवित हो उठे। किन्तु ये दाराके साथ देने पर औरङ्गजेबके कोपके भाजन हुए। इसी संसर्गमें राजपूत और

मुगल-संघर्ष पैदा हुआ। इस संघर्षने इन दोनोंको क्रमशः बलहीन बना दिया।

भारत-सम्राट् औरङ्गजेबने रूपनगरराजकी लावण्यमयी कन्याके रूपसौन्दर्यकी बात सुनी। इस पर उस कन्याके साथ विवाह करनेका प्रस्ताव कर दो हजार सैनिकोंको भेजा। राजपूत-कुलललनाने इस विषमविपद्को सामने देख अपने विपदोद्धारका दूसरा मार्ग न देख राणा राजसिंहका आश्रय लिया। इसके अनुसार रूपनगर-राज्यके पुरोहितने रानीका लिखा एक पत्र ला कर राणाके हाथमें दिया। राणाने पत्र पढ कर बडा क्रोध प्रकट किया। उन्होंने उस अत्याचारी औरङ्गजेबके हाथसे रानीके उद्धार करनेकी प्रतिज्ञा की।

औरङ्गजेबके व्यवहारसे राणा पहलेसे ही उससे नाराज थे। इधर औरङ्गजेब भी अपनी उस पुरानी शत्रुताका बदला चुकानेका अवसर ढूढ रहा था। राणा राजसिंह राजपूतकुलकलङ्क दूर करनेके लिये समरोत्साही राजपूत वीरोंको साथ ले कर आरावली पर्वतके पाददेशमें उपस्थित हुए। उन्होंने वहांसे सेनाओंको रूपनगरकी ओर आगे बढाया और सम्राट्की फौजोंको मार कर भगा दिया। इसके बाद रानीको चित्तोर ले आये। औरङ्गजेबकी क्रोधाग्नि भभक उठी, किन्तु राजपूत सेनापति मारवाडपति यशवन्तसिंह और जयपुरनरेश जयसिंहके डरसे औरङ्गजेब उस अग्निमें लकड़ी डाल न सका। इन लोगोंको स्थानान्तरित करनेके ख्यालसे यशवन्तसिंहको काबुल राज्यमें और जयसिंहको दाक्षिणात्यको भेज दिया।

यशवन्तसिंह और जयसिंह देखो।

मारवाड़पतिका निधनसाधन करके ही वह शान्त न हुआ, किन्तु वह यशवन्तसिंहके छोटे छोटे कुमारोंको कैद कर लेनेकी चेष्टा करने लगा। राजमाता अपने पुत्रोंकी रक्षाका दूसरा उपाय न देख राणा राजसिंहके शरणापन्न हुई। राणाके आज्ञानुसार युवराज अजितसिंहने मेवाडकी ओर यात्रा की। राहमें मुगलफौजोंने उनको घेर लिया। राजपूत बालकोंके शरीररक्षक सैनिकोंने विशेष विस्तारके साथ राजपूतोंकी प्राणरक्षा की।

राणा राजसिंहने औरङ्गजेबके इस कुव्यवहारकी बात सुन उसको एक पत्र लिख भेजा। पहले रूपनगरकी राजकुमारीका आश्रयदान और मुगल-विरुद्ध युद्ध करनेके अपराधसे सम्राट् राजसिंह पर विशेष क्रुद्ध हुआ था। इस बार मुगलोंके शत्रु मारवाड राजकुमारको आश्रयदान और उसी कारणसे इस तरहके पत्र भेजनेसे सम्राट्का धैर्य छूट गया। उसने युद्धके लिये तैयार रहनेके लिये अपनी फौजोंको हुक्म दिया।

इधर राणा राजसिंहने युद्ध अवश्यम्भावी जान कर आरावली पहाड़ी पर अपने राजपूत सैनिकोंको एकत्र कर रखा और वे राज्य और जातीय सम्मान रक्षाके निमित्त राजपूत वीरोंको उत्तेजित करने लगे। स्वयं राणा तथा उनके जयसिंह और भीमसिंह नामक दोनों पुत्र आरावली शिखर पर सेना रख कर विपक्षियोंके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। यहां जान कर, कि मुगलोंके साथ भयङ्कर युद्ध होगा राणा राजसिंहने राजधानीको खाली कर पर्वतोंमें आश्रय लिया था।

सौभाग्यक्रमसे मुगल सैन्यने सकटमय गिरिपथ परित्याग कर दोआबी नामक स्थानमें आ कर उदय सागर तीर पर पडाव डाला। तैवार खाके आज्ञानुसार शाहज़ादा अकबरने उदयपुर राजधानी पर आक्रमण किया। वहां था ही कौन, उन्होंने बेरोक-टोक नगर पर अधिकार स्थापित कर लिया। मुगलोंके हृदयमें आनन्दका स्रोत प्रवाहित होने लगा। मुगलोंने शत्रुओंका आना असम्भव समझ निडर भावसे मौजसे दिन बिताना आरम्भ किया। ऐसे समय अचानक युवराज जयसिंह शत्रुदल पर टूट पडे। इससे मुगलोंमें घबराहट उपस्थित हुई। भागी हुई मुगल सेनाके गोलकुंडा पहुंचते न पहुंचते उसका रास्ता रोक दिया गया। मुगलसेना इस प्रकार भील सैन्य द्वारा अवरुद्ध हो किंकर्त्तव्यविमूढ़ हुई। पीछेसे जयसिंहने भी मुगलोंके सैन्यका द्वार बन्द कर रखा था। इस तरह राजपूतोंसे घिर कर मुगल सैन्य भूखों मरने लगा। ऐसी अवस्थामें युवराज अकबरने आत्मसमर्पण करना निश्चय किया। ऐसे समय मुगलोंकी दुर्दशा

देख कर उदार हृदय जयसिंहने भिम्भयार पहाड़ी राहसे युवराजको भाग जानेका मौका दिया।

सम्राट्ने युवराजका ऐसा शोचनीय समाचार पा कर उसके उद्धारकी कामनासे दिलावर खाँकी सैन्यके साथ दैसुरी नामक पहाड़ी राहसे जानेका हुक्म दिया। पहले कोई भी उसकी गति रोक न सका। किन्तु जब मुगल सेना दुर्गम गिरिपथमें पहुंच गई तब रूपनगरके राजा विक्रम सोलंकि और गोपीनाथ राठौर नामक राजपूतोंने भीमवेगसे आक्रमण कर मुगलोंका नाश कर दिया। इस आक्रमणके फलसे राजपूतोंको बहुतेरे आवश्यकीय सामान हाथ लगे।

सम्राट् औरङ्गजेब आजिमके साथ देवबारी नामक स्थानमें दिलावर खाँकी रणयात्राके समाचारकी प्रतीक्षा कर रहे थे। ऐसे समय विजयी राजपूतोंने सम्राट् पर आक्रमण कर दिया। विक्रमाद और दुर्गादासने अपने राठौर सैन्यके साथ इस तरह भीमवेगसे सम्राट् पर आक्रमण किया, कि सम्राट् स्वयं उस वेगको न सह सकनेके कारण अपनी हार मान कर भाग गये। सन् १६८२ ई०के मार्च महीनेमें यह युद्ध हुआ था।

पराजित मुगल-सम्राट् अपनी बची खुची सेनाको ले चित्तौरकी चहारदीवारीके निकट पहुंचे तथा अपने पुत्र मुअज्जिमको दाक्षिणात्यसे और आनेका हुक्म भेजा। इस समय मुअज्जिम महाराष्ट्र-कुलपति शिवाजीके साथ युद्धमें फंसा था। किंकर्त्तव्यविमूढ़ सम्राट्को उस समय शिवाजीका युद्ध बन्द कर राजपूतोंसे हुई मान हानिका उद्धार करना उत्तम मालूम हुआ। अतएव पिताके हुक्म पाते ही मुअज्जिम राजस्थान जानेको बाध्य हुए।

इधर जयमल्लके वंशधर सुबलदासने सैन्यको ले कर अजमेरके मुगल-सैन्यके साथ सम्राट्का मिलना बन्द कर देनेके उद्देश्यसे राह रोक दी। निरुपाय सम्राट् अपने पुत्र आजिम और अकबर पर युद्धका भार सौंप कर प्राण ले भागे और शरीर रक्षक सैनिकोंके साथ अजमेर गये और सुबलदासके विरुद्ध बारह हजार सैनिकोंको ले कर रुहेला खाँको जानेका हुक्म दिया। मारवाड़ और राठौर फौजोंने पुरमण्डल नामक स्थानमें मुगलोंको पराजित किया। हतिमस्त और हतसाहसमन मुगल सेना लौट गए।

जिस समय राणा राजसिंह सहयोगी राजपूत सरदारोंके साहाय्यसे मुगलोंको हरा कर यशार्जन कर रहे थे, उस समय उनके दूसरे पुत्र भीमसिंह थोड़ा समय नष्ट न कर गुजरात इडर, वीरनगर सिद्धपुर, मयूराम आदि नगरोंको जीत और लूट कर पिताके हुक्मसे लौट आये।

इधर दयाल शाह भी मुगलोंके विरुद्ध बागी हो उठे। ये महाराणाके राजस्व विभागके एक कर्मचारी थे। इन्होंने नर्मदा और बेतवा तकके समूचे भूभाग पर आक्रमण किया। उन्होंने शाहपुर, दीवास, मांडु, उज्जयिनी और चन्देरी आदि प्रदेशोंको जीत और लूट कर किले पर ध्वजा फहराई। विजयोल्लाससे उन्मत्त दयालशाह मेवाड़के युवराजके साथ मिल कर चित्तौरके निकट सम्राट्पुत्र आजिम पर आक्रमण करनेके लिये अग्रसर हुए। शिशोदराज्य और राठौरसैन्यने मेवाड़के सामन्तरूपसे नियुक्त हो कर राजपूतोंके वीरत्वकी पराकाष्ठा दिखा दी। युद्धमें आजिम हारा और भागा। सम्राट्के पराजित सैन्यके भागते ही मेवाड़के जातीय समरका अवसान हुआ।

इसके बाद राणा राजसिंहने मारवाड़के नाबालिग राजा अजितसिंहके स्वार्थकी रक्षाके लिये मारवाड़ राजसेनाके साथ अपनी सेना मिला कर गनोरा पर आक्रमण कर दिया। यह स्थान गड़वार प्रदेशमें है। मेवाड़ कुलकन्या अजितकी माता भी इस युद्धमें सम्मिलित हो कर समराङ्गणमें उतर पड़ी।

राणा राजसिंहने युद्धमें यशलाभ करनेके बाद मुगल सम्राट् औरङ्गजेबको सिंहासनच्युत करनेके लिये कुमार अकबरके साथ गुप्तरूपसे साजिश की। विजयनी राजपूत वाहिनियां गुप्त रूपमें आ कर अकबरके साथ आ मिली। सम्राट्को इसका पता लग गया। उसने इस साजिशको असफल करनेके लिये तुरन्त ही अपने पुत्र अकबरके पास एक पत्र लिखा। गुप्तचरने सम्राट्के आदेशानुसार यह पत्र राजपूत-सैन्यके अधिनायक दुर्गादासके खेमेमें छिप कर फेंक दिया। दुर्गादास पत्रको पढ़ कर उसके मर्मको समझ गये। इस पत्रमें चार युद्ध

के समय अकबरके राजपूत-सैन्यको पीछेसे आक्रमण करनेकी बात लिखी थी। यह समाचार पा कर राजपूतोंने अकबरका पक्ष छोड़ दिया। इधर उसके सहयोगी तैयार खाने सम्राट्को हत्या करने जा कर अपने ही प्राण गवां दिया। इस समय मुआजम और आजमने सैन्यके साथ आ कर औरङ्गजेबको विपदसे उद्धार किया था। राजपूतोंने औरङ्गजेबकी कुटिलताका लक्ष्य कर लिया। इस समय अकबरकी निर्दोषिताको समझ कर उसको मदद देनेके लिये वे तय्यार हुए। किन्तु पिताके भयसे अकबर फारस भाग गया। वीर दुर्गादास उसको पालवगढ तक पहुंचा आये।

इस तरह राजपूतों द्वारा पराजित और महाराष्ट्र शत्रु शम्भाजीके निकट अकबरके जानेकी आशङ्कासे सम्राट् औरङ्गजेब राजसिंहके साथ सन्धि करने पर वाध्य हुए। सम्राट्के हुक्मसे दिलवार खांके अधीनके एक राजपुत कर्मचारीने राजसिंहके यहां जा कर सन्धिका प्रस्ताव किया। उन्हों ने कहा—यदि दूसरा कोई सन्धिका प्रस्ताव करें, तो सम्राट् उस पर राजी होंगे। इसके अनुसार शूरसिंहने उपयुक्त राजकर्मचारी पद्म सिंहके द्वारा सन्धिका पैगाम भेजा। सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर सम्राट्ने चित्तोर और मारवाडके अधिकृत प्रदेशोंको छोड दिया। आहत राणा राजसिंहने यह सवाद सुननेके पहले ही सन् १६६१ ई०में यह लोक परित्याग किया। उनके द्वारा खुदवाया राजसमुन्दर नामक जलाशय आज भी उनकी कीर्त्तिका गुण गान करता है।

राजसिंह—चोरवाड़ीकी छब्बीसवां पीढ़ीका एक सरदार (१४४५ सं०) राजा लक्ष्मणसिंहके पुत्र।

राजसिंह—गडादेशके एक राजा।

राजसिंह—गाङ्गवंशीयके कलिङ्गराज इन्द्रवर्माका दूसरा नाम।

राजसिंह (दूसरा राणा)—मेवाड़के एक राजा। इनके पिताका नाम था राणा प्रताप (दूसरे)। ये सन् १७५२ ई०में मेवाड़की गद्दी पर बैठे। कुमार राजसिंह अम्बर राज जयसिंहके नाती थे। ये पिताकी मृत्युके बाद राजछत्रके नीचे आये। नाममात्र राजा रह कर इन्होंने सात वर्ष तक राजत्व किया। इस समय सं० १८१२ में राजा वहादुर, सं० १८१३ में मल्हारराव होलकर और विट्ठल राव तथा स० १८१४में राणाजी बुर्सिंराने मेवाडको लूटा। सिवा इसके सं० १८१३में सदाशिव राव, गोविन्द राव, कन्होजी यादव नामक महाराष्ट्रनेताओंने तीन बार मेवाडको लूट कर धनापहरण किया और इसी धनसे युद्धका व्यय-निर्वाह किया। इस तरह नाना अत्याचारसे मेवाड़ जर्जर और धनहीन हो गया। राणाने राठोरजातीयकी अधिनायक-कन्याके साथ विवाह कर अपनी हीनावस्थाको बदलना चाहा। वे इस समय ब्राह्मण करसंग्राहकोंसे अर्थसाहाय्य करनेकी प्रार्थना करने पर बाध्य हुए थे। वे अकालकाल कवलित हुए। इसके बाद सं० १७६२ ई०में अरिसिंहने मेवाडकी गद्दी पर आरोहण किया।

राजसिंह—विक्रमपट्टन (उज्जयिनी)के एक राजा। उज्जयिनीके राजा गजसिंहके पुत्र। इनके दरबारी पण्डित कृष्णधूर्जटिने सन् १७१४ ई०में सिद्धान्तचन्द्रोदय नामक एक ग्रन्थकी रचना की थी।

राजसिंह—एक हिन्दू राजा। इनकी आज्ञासे महादेव पण्डितने राजसिंह सुधासिंधु नामक ग्रन्थकी रचना की थी।

राजसिंह—(कच्छवाह) राजा उपाधिधारी एक राजपूत-सरदार, राजा बिहारीमल्लके भतीजे और आरकरणके पुत्र। ये सम्राट् अकबर और जहांगीरके अधीन सेनानायकका काम करते थे। सन् १६१५ ई०में इनकी मृत्यु हुई।

राजसिंहासन (सं० पु०) राजाके बैठनेका सिंहासन, राजगद्दी।

राजसिक (सं० त्रि०) रजोगुणसे उत्पन्न, राजस।

राजसी (स० स्त्री०) रजस इयमिते, रजस्-अण्-ङीप्। १ दुर्गा। (त्रि० स्त्री०) २ रजोगुणसम्बन्धिनी, जिसमें रजोगुणकी प्रधानता हो।

राजसी (हिं० वि०) राजाके योग्य बहुमूल्य या भडकीला, राजाओंकी-सी शानवाला।

राजसुख (सं० क्ली०) राजाका सुख।

राजसुत (सं० पु०) राज्ञः सुतः। राजपुत्र, राजाका लड़का।

राजसुता (सं० स्त्री०) राजकन्या, राजाकी लड़की।

राजसुन्दरगणि (सं० पु०) एक जैन धर्माचार्य।

राजसुन्दरी—नागवंशीय सुप्रसिद्ध नरपति प्रथम राजराज की महिषी। ये राजा राजेन्द्रचन्द्रकी कन्या और अनन्त वर्मा चोड़गङ्गदेवकी माता थीं।

राजसू (सं० त्रि०) राजकर्त्ता, राजकारक।

राजसूनु (सं० पु०) राजपुत्र, राजाका लड़का।

राजसूय (सं० पु०) राजा लतात्मकः सोमः सूयते ऽत्र, सू अधिकरणे क्यप् राज्ञा सोतव्यः राजा वा इह सूयते इति काशिका (राजसूयसूर्येति। पा ३।१।११४) इति निपातनात् दीर्घः। राजकर्त्तव्य यज्ञविशेष। पर्य्याय—नृपाध्वर क्रतुराज, क्रतूत्तम। (जटाधर)

अमरसिंहने इस शब्दको क्लीवलिङ्ग लिखा है। पु और क्लीव इन दोनों लिङ्गों में इस शब्दका बहुत प्रयोग देखा जाता है।

केवल राजा ही इस यज्ञको कर सकते हैं दूसरेका अधिकार नहीं। राजा इस यज्ञको पूरा कर सम्राट् उपाधिधारण करते हैं। शतपथब्राह्मणमें इस यज्ञका विवरण दिया हुआ है। आपस्तम्बश्रौतसूत्रमें लिखा है, कि राजा स्वर्गकी कामनासे इस यज्ञका अनुष्ठान करते हैं।

"राजा स्वर्गकामो राजसूयेन यजेत" (आपस्तम्बश्रौतसू०)

शतपथब्राह्मणके मतसे इस यज्ञका प्रधान अङ्ग इष्टि है, पशु, सोम और दर्वीहोम; आगे पवित्र नामक सोमयाग, पीछे अभिषेचनीय याग, इसके बाद दशपेय याग और केशवपनीय इसके बाद व्युष्टि, फिर द्विरात्र और अन्तमें क्षत्रधृति नामक याग। इस अङ्ग समष्टि का नाम राजसूय यज्ञ है।

राजसूय और वाजपेय इन दो यज्ञोंका एक आदमी नहीं कर सकता। अथर्ववेदके वैतानसूत्रमें सप्तम अध्यायमें इस यज्ञके संक्षिप्तरूपसे ऐसा लिखा है "पौषी पूर्णिमाके पहले पवित्र नामक सोमयाग, मासान्तरमें दश संसृप नामक कार्य, माघीपूर्णिमामें अभिषेचनीय याग, मरुत्वतीय नामक कार्यके बाद बृहस्पति सव नामक याग, हविर्धान नामक मण्डपके सम्मुख व्याघ्र चर्म (बाघाम्बर) स्थापन आदि।"

इस राजसूययज्ञमें यथाविहित होम और बलिदानादि द्वारा देवताओंकी पूजा, यजमानको दिग्विजय और शुनः शेफीय उपाख्यान सुनना चाहिये। यह उपाख्यान ऋग्वेदमें है। इस यागमें पञ्चविध सोमयाग आदि का अनुष्ठान करने पड़ते हैं। अतः इस यज्ञके अनुष्ठानमें समय बहुत लगता है। पवित्र नामक सोमयाग इसका प्रथम अङ्ग है। इस सोमयागके यथाविहित सम्पन्न होने पर चातुर्मास्य याग करना पड़ता है। इसके बाद इष्टिका नामक इष्टिका अनुष्ठान और अरत्नि नामक होम करना विधिसंगत है। ये सब छोटे छोटे एक एक यज्ञ हैं। इसके बाद अभिषेचनीय नामक सोमयागानुष्ठान करना होता है। इस दिन समुद्र, नद नदी पुण्य सरोवर, पुण्य ह्रद (झील) आदि पवित्र जलोंको ला कर उससे चार तरहके काष्ठमय पात्रोंको मन्त्रपाठपूर्वक प्रपूरित करना पड़ता है। पलाश, औडुम्बर, पीपल और वट चार तरह की लकड़ियोंका पात्र होना चाहिये। जलपूर्ण कलसों का चातुर्वर्ण्य सभाके चारों ओर स्थापन करना चाहिये।

सभाके मध्यमें खैर या औडुम्बर लकड़ीका मञ्च होना चाहिये। इस मञ्चको व्याघ्रचर्मसे मढ़ देना चाहिये। इस पर सामिका पीढ़ा या चौकी रख कर उस पर सहस्र छिद्रवाला सोनेका एक घड़ा स्थापन करना चाहिये।

इसके बाद ब्रह्मा पुरोहित (ऋत्विग्विशेष) यजमानको अन्तःपुर मण्डपके बाहर ला कर कई मन्त्रोंका पाठ करना चाहिये। यथाविधान मन्त्रपाठ समाप्त होने पर ब्रह्मा सभास्थ क्षत्रिय आदि व्यक्तिसमूहको सम्बोधन कर कहते हैं—"ओः भारताः अयं वः सर्वेषां राजा सोम अस्माकं ब्राह्मणानां राजा" हे भारतवासियो! ये आप लोगोंके राजा हैं। किन्तु सोम हम सभी ब्राह्मणोंके राजा हैं।

पीछे दिग्विजयकी इच्छा राजा प्रकट करते हैं। उस समय सारे ऋत्विक् एकत्र हो कर यजमानके सर्वांश रक्षा और जयाशीर्वादसूचक वैदिक कार्योंका अनुष्ठान करते हैं। पहले अग्नि आदि देवताओंके उद्देश्यसे होम, इसके बाद उनकी प्रार्थना एवं आशीर्वाद और देवताओंके प्रसन्नताबोधक कई वेदमन्त्र जप करना पड़ता है।

इसके बाद यजमान पत्नीके साथ पूर्वोल्लिखित स्थान करनेवाले पीढ़े पर बैठता है। पाठ अध्वर्यु आदि सभी

एकत्र हो कर पूर्वोक्त जलपूर्ण पात्र ले कर सहस्र छिद्र अभिषेकपात्र द्वारा उनको अभिषेक करते रहते हैं। यथाविधान अभिषेक समाप्त होने पर राजा अपने विभवके अनुसार वस्त्र, माल्य और आभरणसे भूषित हो यदि शत्रु हो, तो उसको पराजय कर अति समारोहके साथ फिर सभागृहमें प्रवेश करते हैं। शत्रु न रहने पर युद्धयात्राकी आवश्यकता नहीं।

इसके बाद सभाके चारों ओर पंक्तिक्रमसे मञ्च बनाये जाते हैं। बीचमें एक ऊँचा पीढ़ा रखा जाता है। राजा इस सुवर्णमञ्च पर बैठते हैं। उस समय सभी राजाकी स्तुति और गुणगान करते हैं। इस समय जुआ खेलनेका काम होता है।

यह राजसूययज्ञ पवित्र नामक सोमयाग द्वारा आरंभ कर सौत्रामणि नामक और एक याग द्वारा समाप्त किया जाता है। साधारण सोमयागकी अपेक्षा इसमें विशेष यह है, कि अश्विनीकुमार, सरस्वती और इन्द्र इसके प्रधान देवता हैं। काष्ठनिर्मित तीन सोमपात्र और मृत्तिका निर्मित तीन सुरापात्र रखे जाते हैं।

प्राचीनकालमें राजा इस यज्ञका अनुष्ठान कर अपने कृतकार्य तथा सम्राट् समझते थे। इस यज्ञमें अर्घ्याहरण, समागत व्यक्तियोंका सत्कार, राजार्हणा आदि छोटे छोटे प्रत्यङ्ग भी हैं। इन सब अनुष्ठानोंकी भी विधि है। महाराज युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञका अनुष्ठान किया था। उसका विशेष विवरण महाभारतके सभापर्वमें लिखा है।

राजसूय यज्ञका मन्त्रादि वाजसनेय-संहिताके ६ अध्यायकी ३५ कण्डिकासे आरम्भ कर १० अध्यायमें संपूर्ण हुआ है।

राजसूयिक (सं० त्रि०) राजसूययज्ञसम्बन्धी।

राजसूयिन् (सं० पु०) राजसूय यज्ञ करनेवाला पुरोहित।

राजसूयेष्टि (सं० स्त्री०) राजसूययज्ञ।

राजसेन—रससारामृतके प्रणेता।

राजसेवक (सं० पु०) राज्ञः सेवकः। राजकासेवक, राजाकी सेवा करनेवाला भृत्य।

राजसेवा (सं० स्त्री०) राज्ञः सेवा। राजाकी सेवा।

राजसेविन् (सं० पु०) राजभृत्य, राजाका अनुचर।

राजस्कन्ध (सं० पु०) राज्ञः शोभाशाली स्कन्धो यस्य। घोटक, घोड़ा।

राजस्तम्ब (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

राजस्तम्बायन (सं० पु०) राजस्तम्बके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

राजस्तम्बि (सं० पु०) राजस्तम्बके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

राजस्त्री (सं० स्त्री०) रानी, राजमहिषी।

राजस्थलक (सं० त्रि०) एक प्राचीन स्थानका नाम। (पा० ४।२।१२७)

राजस्थली (सं० स्त्री०) एक प्राचीन जनपदका नाम।

राजस्थान (सं० पु०) राजपूताना।
विशेष विवरण राजपूताना शब्दमें देखो।

राजस्थानिक (सं० पु०) एक उच्च राजकीय पद, हाकिम। गुप्तोंके समय इस शब्दका विशेष प्रचार था।

राजस्थानीय (सं० पु०) राजस्थानिक देखो।

राजस्व (सं० पु० क्ली०) राज्ञे देयं स्वं धनं। १ राजधन, भूमि आदिका वह कर जो राजाको दिया जाय। २ किसी राजा या राज्यकी वार्षिक आय जो मालगुजारी, आबकारी, इनकम टैक्स, कस्टम्स, ड्यूटी आदि करोंसे होती हो; मालगुजारी।

राजस्वर्ण (सं० पु०) स्वर्णानां धुस्तूराणां राजा राजदन्तादित्वात् परनिपातः। राजधुस्तूरक, राजधतूरा।

राजस्वामिन् (सं० पु०) विष्णु।

राजहंस (सं० पु०) हंसानां राजा श्रेष्ठत्वात् राजदन्तादित्वात् परनिपातः। १ हंसविशेष, एक प्रकारका हंस जिसे सोना पक्षी भी कहते हैं। यह प्रायः झुण्ड बांध कर उड़ता है और झीलोंके किनारे रहता है। इसके अनेक भेद हैं। इसके पैर और चोंच लाल रंगकी होती है। यह अगहन पूसमें उत्तरीय भारतमें उत्तरके ठंढे प्रदेशोंसे आता है। 'हंस' शब्दमें विस्तृत विवरण देखो। २ कलहंस। ३ नृपोत्तम। ४ मगधराजभेद।

राजहंस उपाध्याय—वाग्भटालङ्कारवृत्तिके प्रणेता। ये जिनतिलक सूरिके शिष्य तथा जिनप्रभा सूरिके शिष्य थे।

राजहत्या (सं० स्त्री०) राजाका निधन।

राजहर्म्य (सं० क्ली०) राजप्रासाद।

राजहर्षण (सं० क्ली०) राजानमपि हर्षयतीति हृष णिच् ल्यु । तगरपुष्प ।

राजहस्तिन् (सं० पु०) राज्ञो हस्ती । राजगज, राजाका हाथी । पर्याय—मारोह यात्रक गज, मनोरञ्जन ।

(हलायुध)

राजहार (सं० पु०) सोमरस आहरणकारी, वह पुरुष जो यज्ञोंमें सोमरस लाता है ।

राजहासक (सं० पु०) राजानमपि हासयतीति हस् णिच् ण्वुल् । मत्स्यविशेष, एक प्रकारकी मछली जिसे कतला कहते हैं । पर्याय—कातर, कातल राजीव ।

राजहस्व (सं० पु०) राजसर्षप राई ।

राजा (सं० पु०) राज कनिन् । १ नरपति । विशेष विवरण राजन् शब्दमें देखो । २ क्षिरिकोवृक्ष, सफेदखिरनी नामक घास । ३ प्रेमपात्र प्रिय व्यक्ति ।

राजा कुमरामन्- मन्द्राज-प्रदेशके तिन्नेवल्ली जिलेके अन्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० ८° ३२´ ३०´´ उ० तथा देशा० ७७° ४०´ १०´´ पू०के मध्य विस्तृत है । यहां स्थानीय शस्यका विस्तृत कारोबार है ।

राजाक्रोशक (सं० त्रि०) राजाको गाली देने या कोसनेवाला, राजाको अनुचित शब्दोंमें आक्रोशना करनेवाला । कौटिल्यमें इसके लिये जीभ उखाड़नेका दंड लिखा है ।

राजाग्नि (सं० पु०) राजाका कोप ।

राजाङ्गन (सं० क्ली०) १ राजप्रासादका आंगन । २ राजगृह ।

राजाजंग—पंजाबप्रदेशके लाहोर जिलान्तर्गत एक नगर । जिस वारिदोआब खाल नगरके पास हो कर बहता है, इसीसे स्थानीय वाणिज्यको बड़ी सुविधा होती है ।

राजाज्ञा (सं० स्त्री०) राज्ञः आज्ञा । राजाकी आज्ञा, राजादेश ।

राजातन (सं० पु०) राजानं अततीति अत सातत्यगमने (बाहुलकमन्यत्रापि । उण् ४।७८) इति युच् । पियालवृक्ष, चिरौंजीका पेड़ ।

राजारमकस्तव (सं० पु०) राजा श्रीरामचन्द्रकी बंगगीति ।

राजावर्त्तक (सं० पु०) राजावर्त्त लाजवर्द पत्थर ।

राजादन (सं० क्ली०) राजभिरद्यते इति अद् भक्षणे कर्मणि ल्युट् । १ क्षीरिका, खिरनी । २ पियाल, चिरौंजी । ३ किंशुक, टेसू ।

राजादनफल (सं० पु०) क्षीरिणी वृक्ष, खिरनीका पेड़ ।

राजादनी (सं० स्त्री०) क्षीरिणी खिरनी । महाराष्ट्रमें—रायणी कर्णाटमें—कोणी, तामिलमें—पल्ल । इसका गुण—मधुर, पित्तघ्न, गुरु, तर्पण, वृष्य, स्थौल्यकर, स्निग्ध और मेहनाशक ।

राजाद्रि (सं० पु०) १ राजगिरि । २ अद्रिकुभेद, एक प्रकारका अदरक ।

राजाधिकारिन् (सं० पु०) विचारपति, वह जो न्यायालयमें बैठ कर न्याय करता हो ।

राजाधिकृत (सं० पु०) १ विचारपति । (त्रि०) २ जो राजाके अधिकारमें आया हो ।

राजाधिदेव (सं० पु०) शूर जातिका एक क्षत्रिय वीर ।

राजाधिदेवी (सं० स्त्री०) शूरसेनकी एक कन्याका नाम ।

राजाधिराज (सं० पु०) राजाओंका राजा शाहंशाह ।

राजाधिष्ठान (सं० क्ली०) १ राजधानी । २ वह नगर जहां राजाका प्रासाद हो ।

राजाध्वन् (सं० पु०) राज्ञः अध्वा । राजपथ, चौड़ी सड़क ।

राजानक (सं० पु०) क्षुद्रराज, छोटा राजा ।

राजानुजीविन् (सं० त्रि०) राज्ञः अनुजीवी । राजोपजीवी, जो राजकार्य करके अपनी जीविका चलाते हैं ।

"यथानुवर्त्तितव्यं स्यान्मनो राजानुजीविना ।
तथा ते कथयिष्यामि निबोध गदतो मम ॥"

(मत्स्यपु० २१६ अ०)

राजान्न (सं० क्ली०) राजयोग्यं अन्नम्, अन्नानां राजा इति वा । १ अन्ध्रदेशोद्भव शालिविशेष एक प्रकारका शालि धान जो अन्ध्रदेशमें उत्पन्न होता है । पर्याय—नृपान्न, राजार्ह, दीर्घशूकक, आन्ध्रोद्भव, राजधान्य, राजेष्ट, दीर्घशूकक । इसका गुण—त्रिदोषघ्न, सुस्निग्ध, मधुर, लघु, दीपन, बलकारक, पथ्य, कान्ति और वीर्यवर्द्धक । (राजनि०) राज्ञः अन्नं । २ राजस्वामिक अन्न, राजाका अन्न । राजान्न भोजन नहीं करना चाहिए । मनुमें लिखा है, कि राजान्न भोजन करनेसे तेजकी हानी होती है ।

"राजान्नं तेज आदत्ते शूद्रान्नं ब्रह्मवर्चसम् ।
आयुः सुवर्णकारान्नं यशश्चर्मावकर्त्तिनः ॥"

(मनु ४।२१८)

राजापलैयम्—मन्द्रासप्रदेशके तिन्नेवल्ली जिलेके श्रीविल्लि-पतुर तालुकके अन्तर्गत एक नगर।

राजापुर—१ बम्बईप्रदेशके रत्नागिरि जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० १६°३०´ से १६°५५´ उ० तथा देशा० ७३°१८´ से ७३° ५२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६१६ वर्गमील है। इसमें राजापुर नामक एक शहर और १८ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है। इसके उत्तरमें रत्नागिरि और सङ्गमेश्वर, पूरबमें कोल्हापुर, दक्षिणमें विजय दुर्गकी खाड़ी और पश्चिममें अरब-उपसागर है। सह्याद्रिशैलका अनसकुड़ा और काजिदा नामक गिरिसङ्कट इस उपविभागमें अवस्थित है। जैतापुर बन्दर यहांका प्रधान वाणिज्यस्थान है।

२ उक्त उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० १६° ३४´ उ० तथा देशा० ७३° ३१´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ५ हजारसे ऊपर है। कोङ्कण राज्यके मध्य ऐसा प्राचीन समृद्धिसम्पन्न नगर दूसरा देखनेमें नहीं आता। अंगरेज-वणिक्-सम्प्रदायका प्रस्तरनिर्मित प्राचीन भवन अभी गवर्मेण्टके दीवानखानेमें परिणत हो गया है। नगरसे डेढ़ मील दूर कोदावली नदीके बांधसे एक बड़ा बांध तैयार किया गया है। १३१२ ई०में जब मुसलमानी सेनाने इस नगरको जीता उस समय यह नगर जिलेका प्रधान नगर समझा जाता था। १६६०-६१ और १६७० ई०में महाराष्ट्रपति शिवाजीने इस नगर और अङ्गरेजकी कोठीको लूटा था। १७१३ ई०में अंग्रिया के हाथ यहांका शासनभार सौंपा गया। १७५६ ई०में पेशवाने फिरसे यह अंग्रियासे छीन लिया। १८१८ ई०से यह अंगरेजोंके दखलमें आया है। शहरमें दो सब जजकी अदालत, दो अस्पताल और ८ स्कूल हैं।

राजापुर—युक्तप्रदेशके बांदा जिलान्तर्गत मौ तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २५° २३´ उ० तथा देशा० ८१° ६´ पू० यमुनाके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या छह हजारके करीब है। रामायण प्रणेता धर्मात्मा तुलसीदास-जीने अकबरशाहके समय इस नगरको बसाया। उन्होंने यहां एक मन्दिरकी भी प्रतिष्ठा की थी। उनका साधु चरित्र देख उस समय कितने लोग यहां आ कर बस गये थे। उनका आदेश था, कि देवताका प्रस्तरनिर्मित गर्भ-पीठ वा मन्दिर छोड़ कर यहां पक्काका मकान और कोई भी नहीं बनवा सकता। यहांके अधिवासी आज भी उस आदेशका पालन करते आ रहे हैं। यहां तक, कि धनी व्यक्ति भी पक्काका मकान नहीं बनवा सकते।

यहां रुईका अच्छा कारबार होता है। वह माल नाव द्वारा इलाहाबाद और कभी कभी कानपुर तक भी लाया जाता है। यहांके बहुतसे महाजनोंके करवी चले जानेसे वाणिज्यमें भारी धक्का पहुंचा है।

राजाभियोग (सं० पु०) राजाका अपनी प्रजा पर दबाव डाल कर उसकी इच्छा न रहने पर भी उसे कोई काम करनेके लिये बाध्य करना, राजाका प्रजासे जबरदस्ती कोई कार्य्य कराना।

राजाभिषेक (सं० पु०) राज्ञः अभिषेकः ६ तत्। राजाओंका अभिषेक। राजगण यथाविधान अभिषिक्त हो कर राजदण्ड ग्रहण करते थे। यह अभिषेक बड़ी धूमधामसे होता था। संक्षेपमें इसका विषय नीचे लिखा जाता है। रामायण, महाभारत आदिमें लिखा है, कि राजा राजदण्डग्रहण करनेसे पहले यथाशास्त्र अभिषिक्त होते थे। विष्णुधर्मोत्तर, अग्निपुराण और देवीपुराण आदिमें भी यह अभिषेक-प्रणाली देखी जाती है।

मनुमें लिखा है, कि ब्राह्मण लोग क्षत्रियोंको यथाविधान अभिषिक्त कर देते थे। यह अभिषिक्त क्षत्रिय न्यायानुसार सभी प्रजाकी देखभाल करता था। प्रजापालन करना ही अभिषिक्त क्षत्रियका प्रधान धर्म है।

'ब्राह्मं प्राप्तेन संस्कारं क्षत्रियेण यथाविधि।
सर्वस्यास्य यथान्यायं कर्त्तव्यं परिरक्षणम्॥" (मनु)
'ब्राह्मं संस्कारं ब्राह्मणैः कृतमभिषेकं।" (कुल्लूक)

अभिषेकका समय—यह अभिषेक उत्तम दिन देख कर करना होता था। कुदिन वा कुक्षणमें यह अभिषेक विशेष निषिद्ध है। विष्णुधर्मोत्तरमें लिखा है, कि यदि हठात् राजाकी मृत्यु हो जाय और उसके बाद ही अभिषेकका उपयुक्त समय न रहे, तो जो राजसिंहासन पर बैठेंगे, उन्हें सामान्य तौरसे अभिषेक करना होगा।

'मृते राज्ञि न कालनियमोऽत्र विधीयते।" (विष्णुधर्मोत्तर)

चैत्रमास, पौषमास, भाद्रमास, मलमास तथा वर्षा ऋतुमें अभिषेक निषिद्ध है। शनि, रवि और मङ्गलको

छोड़ कर निम्न वारोंमें चतुर्थी और नवमी भिन्न तिथियोंमें तथा श्रवणा, अश्विनी, पुष्या और ज्येष्ठा नक्षत्रमें राज्याभिषेक उत्तम है।

अभिषेककी सामग्री—मन्त्री, पुरोहित, दैवज्ञ और कुछ प्रजा, यज्ञीय वेदी, सुवर्ण कलस, चतुर्वेदाभिज्ञ पुरोहित ब्राह्मण, पहाड़की मिट्टी, वल्मीक मिट्टी, गजदन्त मिट्टी, सरोवर, झील देवालय, इन्द्रालय, राजप्रासाद, समुद्र संगम, नदीसंगम, नदीका किनारा, वेश्याद्वार, गजबन्धनस्थान, अश्वबन्धनस्थान, गोष्ठ और एकचक इन स्थानोंकी मिट्टी, पञ्चगव्य, भद्रासन, सुवर्ण रजत, ताम्र और मिट्टीका बना घड़ा, इनमें यथाक्रम घी दूध, दही, और जल भरा रहना चाहिए; मधु, कुशा एक हजार छिद्रवाला घट सब प्रकारके सुगन्ध द्रव्य, सब तरहके बीज, पुष्प, माल्य फल, नदजल, नदीजल, सरोवरजल, कूपजल, चारों ओरके चार समुद्रका जल, इसी तरहका गङ्गाजल निर्झरजल, छत्रधारी, चामरधारी, वेत्रधारी, नाना प्रकारके बाजे, सर्वौषधि महौषधि, क्षीरीवृक्षकी शाखा, दर्पण, घृतकुम्भ, उष्णीष, शुभ्रवस्त्र, तथा तरहके अलङ्कार और अस्त्र, विष्णु और ब्रह्मपूजाका द्रव्य, अज पद, वृषादि सात तरहके पशु, अश्व, हस्ती, रथ, राजार्घ, माष, तिल, सर्प, दीप्य, दुग्ध, दधि, घृत मोदक, मत्स्य दानका द्रव्य माङ्गलिक द्रव्य, वाद्य, मधु, चन्दन और होमकी सामग्री आदि अभिषेकके पहले ये सब चीजें मंगा लेनी चाहिये।

अथर्ववेदके "गोपथब्राह्मण" में राज्याभिषेक-पद्धति लिखी गई है—"अथ राज्ञोऽभिषेकविधिंव्याख्यास्यामो दिवत मस्तूतीच सम्भारसम्भारान् सम्भृत्य पात्रा कलशान् षोडश विस्वानि वल्मीकस्य च मृत्तिकामित्यादि।" (गोपथब्रा०) पौराणिक पद्धति ही वर्णित है।

पूर्वोक्त सब चीजोंका आयोजन कर राजा शुभ दिन और शुभक्षणमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों प्रकारकी प्रजा द्वारा अभिषिक्त हों। अभिषेकका दिन निश्चित हो जाने पर उससे पहले किसी एक शुभ दिनको राजा पुरोहितसे ऐन्द्री नामक शान्तिका अनुष्ठान करें। निम्नोक्त प्रणालीके अनुसार ऐन्द्री शान्ति करनी चाहिये।

पुरोहित अभिषेकसे पहले किसी एक शुभ दिनको यथाविधानसे मास, पक्ष और तिथ्यादिका निश्चय करे। राजाको पहले पहल 'राज्याभिषेकाङ्गभूतामैन्द्रीं शान्तिं अहं करिष्यामि' ऐसा संकल्प करना चाहिये। पीछे गणपतिकी पूजा कर, होता, आचार्य्य ब्रह्मा और सदस्य इन चार प्रकारके ऋत्विक्‌को वरण करना चाहिये। इसके बाद कई कुशाओंको ले 'औषधात् त्रातु एनं' मन्त्रसे इस कुशाका मूलदेश त्याग कर किञ्चित ऊपरी भागको काटना चाहिये। इसके बाद 'ओषामस्ते भूमे वर्षोषि' इत्यादि मन्त्र पढ़ यथाविधान पृथ्वीको प्रणाम कर वेदीका निर्म्माण करना चाहिये। वेदीमें कुण्ड या स्थण्डिल तय्यार कर इस वेदीके ऊपर और एक महावेदी तय्यार करनी चाहिये। इस महा वेदीमें 'ओषामस्ते भूमे वर्षोषि इत्यादि मन्त्र पढ़ कर गड्ढा करना चाहिये। यह गड्ढा फिर यथाविधान मन्त्र पाठ कर दूसरी मिट्टीसे भर देना चाहिये।

इस महावेदी पर बालू फैला कर स्थण्डिल तय्यार करना होता है। यथाविधान रेखादि खींच कर उसका संस्कार करना चाहिये। यह सब कार्य वैदिक मन्त्र पाठ कर ही करना चाहिये। विषयाधिकतासे सब मन्त्रोंका उल्लेख नहीं किया गया। किसी किसी मन्त्रका प्रथमांश उद्धृत कर दिया जाता है। पीछे इस स्थण्डिल पर अग्नि संस्कार करे। इसके बाद प्रज्वलित अग्निके ईशान कोनमें एक सोनेका या चांदीका तथा तांबेका बना जलपूर्ण कलस रखना चाहिये। इस कलसेमें गन्ध पुष्प, सर्वौषधि, दूर्वा, पञ्चपल्लव, पञ्चत्वक (पञ्चकषाय), पञ्च गव्य, पञ्चामृत, सात तरहकी मृत्तिका, फल, पञ्चरत्न, सुवर्ण और युग्मवस्त्र—इन सब वस्तुओंको डालना चाहिये। यह कलसा यव (जौ) या अरवा चावल पर रखना चाहिये। इसके सामने अग्निके पूर्व और गोचर्म परिमित स्थान गोबरसे लिप कर उस पर एक श्वेत वस्त्र बिछा देना चाहिये। इस पर पञ्चवर्ण गुण्डीसे अष्टदल पद्म अङ्कित करना होता है। इस पद्ममें सुवर्णनिर्मित इन्द्रप्रतिमा प्रतिष्ठा कर यथोपयुक्त उपचार द्वारा यथा विधान पूजा करनी पड़ती है।

पूजा समाप्त होने पर यजमानको समिध ग्रहण कर

पञ्चाहुति दे कर ब्रह्मस्थापन करना चाहिये। ब्रह्मस्थापनके बाद 'होताओं' को यथाविधान होम करना चाहिये। इस तरह शान्ति कार्य्य समाप्त होने पर राजा अपनी पत्नीके साथ और कुटुम्ब लोग उनको घेर कर बैठें। उस समय बैठे हुए राजाको पुरोहित शान्तिकलसस्थित जलसे अभिषेक और पीछे आशीर्वाद करेंगे। राजाभिषेकपद्धतिमें इस अभिषेक और आशीर्वादके बहुतेरे मन्त्र हैं, विस्तार हो जानेके भयसे यहा नहीं लिखा जाता। संक्षिप्तरूपसे लिखा गया।

राजाको अभिषेकके बाद सर्वाङ्गमें सर्वौषधि लेप कर पवित्र जलसे स्नान करना चाहिये। पीछे शुभ्रवस्त्र और शुभ्रमाल्य आदि पहन कर सपत्नीक हो कर आचार्य और पुरोहितो को नमस्कार और उनको विविध दानादि द्वारा पूजा करना होती है। इस समय नाना महादानका विधान लिखा है।

इस तरह ऐन्द्री शान्तिका अनुष्ठान कर यथार्थ दिनमें राजाभिषेकका अनुष्ठान करना चाहिये। राजाको अभिषेकके दिनके पहले दिनको उपवास करना होगा। पीछे अभिषेकके दिन राजाको प्रातःस्नान और सन्ध्या वन्दनादि कर अभिषेकमण्डपमें उपस्थित होना आवश्यक है।

राजा शुभ्रवस्त्र और माल्यादि द्वारा सुसज्जित हो पूर्वकी ओर मुंह कर बैठें। इसके बाद देवता और ब्राह्मणको प्रणाम कर मास, पक्ष और तिथ्यादिका उल्लेख कर "सकलराष्ट्रवश्यताकामः अहं साम्वत्सरपुरोहिताभ्यामात्मानमभिषेचयिष्ये" इसी तरह सङ्कल्प करना चाहिये। सङ्कल्पके बाद गणेशादि देवताओंकी पूजा कर साम्वत्सर (दैवज्ञ) और पुरोहित प्रभृतिको वरण करेंगे। इसी समय चतुर्वेदी ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र आदि प्रधान प्रधान व्यक्तियोंको मान और दानादि द्वारा सत्कार कर समीप बैठाना चाहिये।

पुरोहित वेदी पर बैठ कर जौ पर कलसे रख कर उसे तीर्थ जलसे भर देना चाहिये। इसके बाद उन कलसोंमें सर्वौषधि, सर्वगन्ध, सर्वरत्न, सर्व प्रकारके बीज, फल, क्षीरिवृक्षकी शाखा और क्षीरवर्णा लताका पल्लव देना चाहिये।

इन नव कलसोंके समीप एक पञ्चगव्य तथा जलसे परिपूर्ण मिट्टीका कलसा रखना होता है। एक दुग्धपूर्ण चांदीका कलसा दूसरा दहीसे भरा तांबेका कलसा और मधुपूर्ण मिट्टीका कलसा, नदीजल, सरोवरका जल, कूपजल और चतुःसमुद्र जल ये सब कलसे भी रखने पड़ेंगे। इन कलसोंकी ऊंचाई १८ उंगल होना चाहिये।

इन सब वस्तुओंके संग्रह करनेका आयोजन हो चुकने पर पुरोहित आथर्वण गृह्योक्त प्रणाली अवलम्बन कर विधिपूर्वक होम करें। होमका शेष भाग इन कलसोंमें छोड दें। राजा पुरोहितके दाहनी ओर दैवज्ञ, सदस्य और मन्त्रीके साथ बैठे। होमके समय यदि कोई दुर्लक्षण दिखाई दे, तो उसकी शान्ति कर देनी चाहिये।

इसी तरह प्रधान होम समाप्त होने पर ऐन्द्री शान्तिमें जो सब होमकी विधियां हैं, उन्हीं सब होमोंका अनुष्ठान विधेय है। होम समाप्त होने पर राजा स्नानादि कर शुद्ध हो कर पूर्वकल्पित स्नानशालामें जाय। पुरोहित और दैवज्ञ उस समय उनको निम्नाङ्कित प्रकारसे अभिषेक करें। पुरोहितोंको पहले राजाके मस्तकमें सहस्रशीर्षा इत्यादि मन्त्रसे पर्वतमृत्तिका प्रदान करना चाहिये। पीछे कर्णमें वल्मीकमृत्तिका, क्रमसे गरदन, हृदय, दोनों हाथ, बाहु, पीठ, उदर, पार्श्व, कटि, उरुद्वय, जानुद्वय, जङ्घाद्वय, पदद्वय और अन्तमें सबसे पहले पूर्वाहृत मृत्तिका मन्त्रपूत कर लेपन करायेंगे।

इस तरह मृत्तिकास्नान समाप्त होन पर पूर्वस्थापित कलसके पञ्चगव्यमिश्रित जल द्वारा स्नान कराना चाहिये। इसके बाद राजा उस आसनको छोड कर पूर्वनिर्मित भद्रासन पर बैठें।

यह भद्रासन सोने, चांदी, तांबे या क्षीरिकाकाष्ठ द्वारा बना होना चाहिये। माण्डलिक होने पर भद्रासनकी ऊंचाई और चौड़ाई १ हाथ, राजा होने पर सपादहस्त और महाराज होने पर सार्द्धहस्त परिमाण करना होगा।

अभिषेच्य राजा भद्रासन पर बैठने पर पुरोहित पूर्व ओर खड़ा हो कर पूर्व ओर रखे घीके कलससे अभिषेक करेंगे। पीछे क्षत्रिय जातीय अमात्य पूर्व ओर रखे दूध-

के कलसेसे वैश्यजातीय मन्त्री पश्चिम ओर खड़े हो कर दधिपूर्ण चांदीके कलसेसे सामवेदी अमात्य उत्तर ओर खड़े हो कर मधुपूर्ण मृत्तिका कलसेसे अभिषेक करें और उन्हें कुशोदकपूर्ण मृत्तिकाकलससे स्नान कराना चाहिये। सबोंको यथायथ मंत्रपाठ कर इस अभिषेक क्रियाका सम्पादन करना चाहिये। इस तरह अभिषेकके बाद पुरोहित सदस्योंके अभिरक्षार्थ 'पूषमग्नि परिरक्षतम्' इस तरह अभिरक्षाका भार अर्पण कर होम करनेके समय जिसमें आहुतिका बचा स्रुवा अवशिष्ट फेंका गया है, उस सीसेका कलसा ले कर राजसूयप्रोक्त अभिषेक मन्त्र उच्चारण कर अभिषेक करना चाहिये।

इसके बाद पुरोहित अग्निकुण्डके समीप जाय। इस समय दैवज्ञ ब्राह्मण भद्रासन पर बैठे राजाको शतछिद्र कुम्भसे जलसे स्नान कराना चाहिये। पीछे मन्त्रपूत सर्वौषधि, गन्धोदक, बीज, पुष्प, फल रत्न और कुश से युक्त जलसे अभिषेक करना होता है। कुछ लोगोंका कहना है, कि इस समय कुश, दूर्वा और पल्लवोंसे अभिषिक्त राजदेह मार्जित करना होता है।

इसके बाद ऋग्वेदी ब्राह्मण गोरोचनयुक्त गन्धसे राजाके मस्तक और कण्ठको लिप दे। इस समय निमन्त्रित ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य, शूद्र और सङ्करजातीय प्रजा गङ्गा, यमुना आदि नदियोंके जलसे राजाका अभिषेक करें। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य मन्त्रोंका उच्चारण करें, शूद्रादि वर्णके लोग मन्त्र पाठ न करें।

इस समय प्रधान प्रधान मन्त्री हाथमें छत्र चामर तथा बेंत ले कर खड़े होंगे। बाजेवाले बाजाये वैदिक ब्राह्मण वेदध्वनि करें और वैतालिक स्तव पाठ करें।

इसके बाद दैवज्ञ सब कुम्भोंके अवशिष्ट जलको एक घड़ेमें रख हाथमें कुश ले इस प्रकार—"सुरास्त्वाम भिषिञ्चन्तु ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।" इत्यादि शान्तिमन्त्र द्वारा शान्ति दान करनेके बाद राजाको गन्धादि सेवन द्वारा शुद्ध जलसे स्नान करना चाहिये। पीछे मस्तकमें श्वेत उष्णीष, शरीरमें शुद्ध परिच्छद और हाथमें धनु या खड्ग अस्त्रमात्र ले कर राजा दर्पण और घृतकुण्डमें अपना प्रतिबिम्बको देखे। इस समय राजा घृतकुण्ड तथा सुवर्ण दक्षिणाके साथ ब्राह्मणको दान कर माङ्गलिक वस्तुओंका स्पर्श करें। इसी तरह माङ्गलिक चीजोंको छू कर ब्राह्मणोंको पूजा करे।

इस समय दैवज्ञ राजाके ललाटमें पट्ट और मस्तकमें मुकुट पहनायें। इसके बाद राजा मञ्च या राजासन पर बैठे। यह मञ्च या आसन ऊपरसे चर्म या वस्त्र द्वारा आवृत रहना चाहिये। चर्ममें भी पहले वृषचर्म (बैलका चमड़ा), उस पर बिल्लीका चमड़ा, उसके बाद तरक्षु, उस पर सिंहचर्म उस पर व्याघ्रचर्म, उस पर बहुमूल्य वस्त्र बिछा देना चाहिये। राजा इस सिंहासन पर बैठ कर सभी राजाओंके दर्शनके योग्य होंगे। प्रजा इस समय राजाको नजर न्यामत पेश करे। कोई भी खाली हाथ राजाका दर्शन न करे।

पीछे राजा अभिमन्त्रित व्यक्तियोंको यथायोग्य सम्मानित कर माङ्गलिक द्रव्यादिका स्पर्श कर सामाजिक काम करना चाहिये। पीछे राजाको धनुर्बाण हाथमें ले कर ग्रहादिको प्रदक्षिणा तथा समस्त व्यक्तियों को नमस्कार करना चाहिये। इसके बाद राजा एक महा वृष और सवत्सा गौको बुला कर उसको पीठ पर हाथ फेरें।

इस समय पुरोहितको एक सुलक्षणयुक्त उत्तम अश्व और एक महाहस्ती ला कर उनको मन्त्रोच्चारणपूर्वक सर्वौषधियाले कलससे अभिषेक करना चाहिये। इसके बाद राजा उनका पीठका स्पर्श करें। बाद उन पर राजा चढ़ें। प्रधान मन्त्री, पुरोहित और दैवज्ञ आदि भी दूसरे हाथी पर चढ़ें। पीछे सभी एकत्र हो कर नाना प्रकारके बाजे और समारोहके साथ नगर परिभ्रमण कर फिर नगरमें प्रवेश करें। इसी समय नाना प्रकारके आनन्दोत्सव करना चाहिये।

नवाभिषिक्त राजा ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और अन्यान्य आमन्त्रित अभ्यागतोंको भोजन करा कर दान आदिसे समुचित सत्कार करें। दान दरिद्र, अनाथ और अन्धे लंगड़े पङ्गु आदिका यथाशक्ति दान देना चाहिये।

राजा इसी प्रकार अभिषिक्त हो कर यथाशास्त्र छः उपायोंसे प्रजापालन करें। (राजधर्मप्रकाशादि)

राजामहेन्द्री—१ मान्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १६° ५१´ से १७ २१´ उ०

तथा देशा० ८१° ३६´ से ८२° ५´ पू०के मध्य गोदावरीके वाएं किनारे अवस्थित है। भूपरिमाण ३५० वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है। इसमें २ शहर और ८५ ग्राम लगते हैं। यहांकी प्रधान उपज धान, रब्बी, तमाकू और तेलहन है।

२ उक्त तालुकके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध नगर। हिन्दू-राजाओंके समय यह राजमहेन्द्र नामसे प्रसिद्ध था। यह अक्षा० १७° १´ ३० तथा देशा० ८१° ४६´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या ३५ हजारके करीव है। हिन्दूकी संख्या ज्यादा है।

यह नगर बहुत प्राचीन है। किसने इस नगरको बसाया और कब, यह ले कर बहुत मतभेद है। कोई तो उत्कलराजको और कोई चालुक्यराजको इसके स्थापयिता बतलाते हैं। ७वीं सदीमें यहां कलिङ्गदेशकी राजधानी थी। १४७१ ई०में मुसलमानोंने इसे दखल किया। १५१२ ई०में कृष्णरायने इस नगरको पुनरुद्धार कर उत्कलपतिको लौटा दिया। इसके बाद ६० वर्ष तक यह हिन्दूके अधिकारमें रहा। १५७१ और ७२ ई०में यह नगर लगातार दो बार आक्रान्त हुआ। आखिर मुसलमान सेनापति रफत् खाने इस पर दखल जमाया। डेढ़ सौ वर्ष तक यहां युद्ध चलता रहा था। अन्तिम युद्धमें यह गोलकुण्डाके हाथ आया। १७५३ ई०में यह स्थान फरासियोंको दे देना पड़ा। १७५४से १७५७ ई० तक इसी शहरमें फरासी सेनानायक बूसींकी सदर कचहरी रही। १७५८ ई०में अङ्गरेज द्वारा जीते जाने पर भी यह फिरसे फरासीके अधिकारमें चला आया। किन्तु यहां रहना सुविधाजनक न देख कर फरासी लोग यहांसे उठ कर चले गये। शहरमें जज और कलक्टरकी कचहरी, डाकघर, तारघर, जादूघर, बहुतसे गिरजे और सुन्दर उद्यान हैं। इनके अलावा उच्चश्रेणीका कालेज, जिला स्कूल शिक्षकका ट्रेनिङ्ग कालेज और एक म्युनिसपल अस्पताल है।

राजाम्र (सं० पु०) आम्राणां राजा श्रेष्ठत्वात्, राजदन्तादित्वात् परनिपातः। आम्रविशेष, एक प्रकारका आम। यह सामान्य आमोंसे बड़ा होता है और इसमें गुठली छोटी होती है। इसके पेड़ोंसे कलम उतारी जाती है जो छोटी होने पर भी अच्छे और बड़े फल देती है। इसके फल पकने पर मीठे होते हैं और सामान्य आमोंकी अपेक्षा उनमें रेशा कम होता है। बंबई, लंगड़ा, मालदह, सफेदा आदि इसी जातिके आम हैं। पर्याय—राजफल, स्मराम्र, कोकिलोत्सव, मधुर, कोकिलानन्द, कालेष्ट, नृपवल्लभ। वैद्यकमें इसे पित्तवर्द्धक और पकने पर बल वीर्यप्रद माना है।

राजाम्ल (सं० पु०) अम्लानां राजा श्रेष्ठत्वात्। अम्लवेतस, अमलवेत।

राजा रणधीरसिंह—ये शिरमौर जातिके क्षत्रिय थे तथा सिंगरामऊके रहनेवाले थे। इनके यहां कवियोंका बड़ा सम्मान था। 'भूषणकौमुदी' और 'काव्यरत्नाकर' दो ग्रन्थ भी इन्होंने बनाये हैं। ये सिंगरामऊवालेके नामसे काव्यसमाजमें बड़े आदरकी दृष्टिसे देखे जाते हैं।

राजा राजवल्लभसेन—ढाकाके विख्यात वैद्यराजा। वैद्यवंशमें राजा श्रीहर्ष बड़े प्रसिद्ध व्यक्ति थे। वीरभूममें सेनभूम जो परगना है, उसीके वे अधिपति थे। उनके दो पुत्र थे—कमल और विमल। विमलसेनके पुत्र विनायकसेन हुए। विनायकके पुत्र धन्वन्तरिसेन, धन्वन्तरिके पुत्र गाण्डेयो सेन और गाण्डेयोके पुत्रका नाम हिंगुसेन था। विनायकसेनके और भी अनेक पुत्रसन्तान थे। यह राढ़ीय शाखाके अन्तर्गत थे।

हिंगुसेन राढ़ परित्याग कर यशोरके अन्तर्गत सेनहाटी नामक ग्राममें आ कर रहने लगे। पहले इसका नाम था—छूंचहाटी। सेन महाशयने आ कर इस गांवका नाम सेनहाटी रख दिया। हिंगुसेन आदिके छः भ्राताओंमें केवल उन्होंने ही पैतृक कौलीन्य-मर्यादा प्राप्त की थी।

"षण्णां मध्ये हिंगुसेनः कौलीन्ये ख्यातिमीयिवान् ।
राढं त्यक्त्वा सेनहट्टनगरी मध्यवासकः ॥"

(कविकण्ठहारकृत कुलपञ्जिका)

हिंगुसेनका पुत्र उचली, डमन, विकर्त्तन, वलभद्र, हल और कमलसेन। इन सब वंशोंमें कोई कुलीन और कोई मौलिक निर्णीत हुआ। वलभद्रवंशके लोग पीछे मौलिक ही कहलाये।

वलभद्रसे षष्ठस्थानीय यशश्चन्द्रसेन हुए। राजाने

इनको खाँकी उपाधि दी थी। पीछे यह इनका भाभक ग्राममें आ बसे। यशश्चन्द्रके पुत्र गोविन्द सेन और गोविन्दसेनके पुत्र रामचन्द्र और वेदगर्भ हुए।

विद्याभ्यास करनेके लिये वेदगर्भ विक्रमपुर गये। पीछे ये वहीं हो विवाह कर रायनोया ग्राममें रहने लगे। पीछे धनोपार्जन कर उन्होंने रायनोया, जपसा, मोहेश्वर आदि कई ग्राम खरीदे। वेदगर्भके पहले पुत्रका नाम नीलकण्ठसेन था। ये जपसामें आ कर रहने लगे। इन्हींके वंशमें जपसाके लाला बाबू और 'खाँजी' उपाधिधारी व्यक्ति आविर्भूत हुए। वेदगर्भके दूसरे पुत्र श्रीकृष्ण सेन रायनोया ग्राममें रहने लगे।

श्रीकृष्णके चतुर्थ स्थानीय कृष्णजीवन मजुमदार, देवीदास बसुके अधीन ढाकाके कानून-गो सिरिस्तेमें मुहरिर हुए। उनके चार पुत्र हुए—१ राजाराम २ कलीराम, ३ राजवल्लभ ४ रामराम। सन् १६९८ ई०में राजवल्लभ सेनका जन्म हुआ।

राजवल्लभ शैशवावस्थामें ही पितृहीन हुए। उनके कर अप्पावासी ज्ञाति भाइयोंने दीवान कृष्णराम रायके घर रह कर विद्याभ्यास किया। पीछे राजाराम विक्रमपुर परगनाके तहसीलदार हुए और राजवल्लभ कानून गोके सिरिस्ताके मुहर्रिर हुए। यह सन् १७१७ ई०की बात है। सन् १७२४ ई०में मुर्शिदकुली खाँ ढाकेके नायब नाज़िम हुए और यशवन्त राय उनके दीवान हुए। इन्हीं यशवन्तके अनुग्रहसे राजवल्लभसेन नौवाड़ेके मुहर्रिर मुकर्रर हुए। इसके बाद सैयद रज़ी खाँके पुत्र मुराद ढाकेके नायब सूबेदार हुए। उनके व्यवहारसे असन्तुष्ट हो कर यशवन्त रायने काम छोड़ दिया।

सरफराज़ खाँके शासनान्तमें जब अलीवर्दी खाँ नवाब हुए, तब निवाइस मुहम्मद ढाकेके नायब नवाब हुए। किन्तु ये मुर्शिदाबादमें रह कर ही अपने प्रतिनिधि हुसैन कुलीसे शासनकार्य सम्पन्न कराते थे। इस मुराद अलीके अनुग्रहसे ही राजवल्लभ पेशकारके पद पर पहुंच गये।

इस समय ढाकेमें हुसेनकुली खाँका प्रभाव फैल गया। उनके प्रिय पात्र गोकुलचाँद पेशकार (Collector general and Commissary of the province of Dacca) हुए। किन्तु गोकुलचाँद अपने प्रभु हुसेन कुली खाँसे नाराज हो कर अलीवर्दी खाँसे शिकायत करने पर हुसेनकुली पदच्युत कर दिये गये। अन्तमें अलीवर्दीके ज्येष्ठपुत्री निवाइस मुहम्मदकी स्त्री घसेटी बेगमकी सहायतासे और प्रेमसे हुसेनकुली फिर अपने पद पर पहुंच गये। इसके बाद उसने हिसाबमें गड़बड़ी कर गोकुलचाँदका सर्वनाश कर दिया। गोकुलचाँदके पद पर राजवल्लभ नियुक्त किये गये।

हुसेन कुलीने राजवल्लभकी प्रतिभाका परिचय पा कर उनको अपने सहकारी पद पर नियुक्त कर मुर्शिदाबादसे राजोपाधि प्राप्त करा दी।

इसके कुछ दिन बाद नवाब अलीवर्दी खाँ अपनी मृत्यु निकट समझ अपने प्रिय नाती और पोष्यपुत्र सिराजुद्दौलाको राज्यका उत्तराधिकारी स्थिर किया। इधर घसेटी बेगमने अपने पोष्यपुत्र इकराम उद्दौलाको राज्यका उत्तराधिकारी स्थिर किया। सिराजुद्दौलाकी चेष्टासे घसेटी बेगमके प्रिय हुसेनकुलीकी हत्या की गई। इसके बाद हुसेनकुलीकी जगह निवाइस मुहम्मद दीवान हुए। निवाइस अपने जीवनके अधिकांश समय मुर्शिदाबादमें ही बिताते थे। अतएव इस समय उनके सहकारी राजवल्लभ ही ढाकेमें एक तरहसे सर्वे सर्वा थे।

प्रयोजन समझ कर हम यहां पर एक बातका उल्लेख करते हैं—[illegible] कभी नहीं सत्य है, कि राजवल्लभ घसेटी बेगमके साथ अवैध प्रणयमें फंस गये थे। शायद मुताक्षरीनकारने हुसेनकुलीके संबंध ऐसा दोषारोप किया था।

अंग्रेज इतिहास लेखकोंने लिखा है, कि राजवल्लभ निवाइसके प्रतिनिधि या नायबरूपसे ढाकेमें यथेष्ट प्रजा पीड़न तथा विदेशी सौदागरों पर घोर अत्याचार करते थे। यह सन् १७५४की घटना है। उन्होंने अंगरेज और फ्रांसीसी वणिकोंसे जुल्म कर ८३००) रुपया वसूल किया।* थोड़े ही दिनोंमें उनका इतना प्रभुत्व बढ़ गया,

* Selection from the Records of Govt. of India.

कि उनके पुत्र कृष्णदासको लोग 'नवाब' कहने लगे थे। इस समय मीर अबुलनवने कृष्णदासका नायब रह कर विदेशीय वणिकों पर यथेष्ट अत्याचार किया था। उनकी आज्ञासे एक हालेण्डवासी कैद कर लिया गया था।

निवाइसकी मृत्युके बाद राजवल्लभ घसेटी बेगम के सब विषयोंके परामर्शदाता हो गये। इसलिये उनको मुर्शिदाबादमें रहना पडा। बेगमकी ओरसे युद्धका आयोजन चल रहा था। जब बेगमने देखा, कि अलीवर्दीके जीवनकी कुछ भी आशा नहीं, तो वह मुर्शिदाबादको छोड़ कर मोतीझीलके निकट एक कोस दक्षिण हट छावनी डाल कर दश हजार सैनिकोंके साथ रहने लगी।

यह उद्योग देख कर नगरके लोग कहने लगे, कि बेगम साहिब की ही विजय होगी। राजवल्लभ युद्धविद्या जानते थे। वह वे अच्छी तरह जानते थे, कि जय-पराजय अनिश्चित है। उन्होंने लोगोंकी बात पर ध्यान नहीं दिया। उन्होंने यह सोचा, कि यदि हार हुई तो दुर्गकी सारी सम्पत्ति सिराजुद्दौला जब्त कर लेगा। इस तरह उन्होंने यह सोच कर अपने मध्यम पुत्र कृष्ण दासको हुक्म दिया, कि तुम सारी सम्पत्तिके साथ कलकत्तेमें ड्रेक साहबके अधीन रहो। कृष्णदास जगन्नाथजीके दर्शनका बहाना कर कलकत्ते चले आये। उस समय अंगरेज सामान्य व्यवसायी थे। किला बनवाने तथा सैन्य रखनेका अधिकार उनको न था। दाक्षिणात्यमें फ्रान्सीसी गवर्नर डुप्ले प्रादेशिक राजा और सूबेदारोंके परस्पर गृह-विवादका अवलम्बन कर उनके राज्याधिकारका जो प्रयास कर रहे थे, उस समय अंगरेज-वणिक् भी इसी ताकमें थे। बङ्गालके सूबेदारका गृह-विच्छेद देख कर अंगरेज किसी एक पक्षका साथ देना चाहते थे। ऐसे समय राजवल्लभने काशिमबाजारकी कोठीके अध्यक्ष वाटस् साहबसे प्रार्थना की, कि आप मेरे पुत्रको आश्रय देनेके लिये कलकत्तेके ड्रेक साहबको लिख दें। वाट्स साहब जानते थे, कि घसेटी बेगमका पक्ष ही प्रबल है। इससे उन्होंने ड्रेक साहबको राजवल्लभके अनुरोधकी रक्षा करनेके लिये एक पत्र लिखा। इस समय ड्रेक साहब वायुसेवनके लिये बालेश्वर गये थे। किन्तु कौन्सिलके अन्यान्य सदस्योंने कृष्णदासको आश्रय देना निर्द्धारित किया था। इसके कई दिनके बाद ही कृष्ण दास कलकत्ते पहुंचे। अमीचांदने बड़े आदरके साथ उन्हें अपने घरमें स्थान दिया। कलकत्तेमें कृष्णदासको अङ्गरेजोंके आश्रय देनेकी बात सिराजुद्दौलाको मालूम हुई। इस समय भी अलीवर्दी खांकी मृत्यु हुई न थी। काशिमबाजारकी कोठीके डाक्टर फर्थ साहब उनकी चिकित्सा कर रहे थे। फर्थ साहबके सामने ही अलीवर्दी खांसे सिराजने कहा, "पितः! अङ्गरेजोंने बेगमका पक्ष लिया है। फर्थ साहबने इस बातको बिलकुल नामञ्जूर किया। सिराजने फिर कहा, कि जो मैंने कहा है, उसका मैं प्रमाण दे सकता हूं। जो हो, अलीवर्दी खांने अंगरेजोंके उस समयकी सैन्यसंख्या, कोठी, या दुर्ग, युद्ध जहाज, फ्रान्सीसियोंके साथ युद्धकी सम्भावना आदि कई विषयोंमें कई प्रश्न फर्थ साहबसे पूछ कर तथा उनके जवाबको सुन कर सिराजुद्दौलासे कहा, कि तुम्हारी बात पर मैं विश्वास नहीं करता। फर्थ साहब वहांसे चले गये। अलीवर्दी खांने सिराजसे कहा, कि तुम विदेशी वणिकोंका दमन न कर सको तो तुम्हारा यह राज्य स्थायी नहीं हो सकता। सबसे पहले अंगरेज वणिकोंका दमन करना तुम्हारा प्रथम कर्त्तव्य है। इस घटनाके कुछ दिनोंके बाद अलीवर्दीकी मृत्यु हो गई। इसके बाद सिराजुद्दौलाने बङ्गाल की राजगद्दी इख्तियार की। सिराजुद्दौलाने गद्दी पर बैठते ही मेदिनीपुरके राजा और दौत्यविभागके अध्यक्ष रामरामसिंहके भाईको पत्र दे कर कलकत्तेके ड्रेक साहबके पास भेजा। पत्रमें लिखा था, कि कृष्णदासको पत्रवाहकोंके हाथ सौंप दो।

सन् १७५६ ई०की १६वीं अप्रेलको वे कलकत्ते पहुंचे। कृष्णदासको इन सबोंके हाथ सौंपा जायगा या नहीं—इसके लिये कौन्सिलकी एक बैठक हुई। अमीचांद भी इसमें उपस्थित थे। अमीचांदने कौन्सिलमें यह बात युक्तिप्रमाणके साथ कही, कि नवाबकी बातोंकी अवहेला करने पर बहुत बड़ी विपद्में फंसना

हाथा। सिराजुद्दौलाके साथ बेगमके झगड़ेका उस समय तक भी निबटारा नहीं हुआ था। इसलिये अंगरेजोंने बेगमका पक्ष लिया था। अंगरेजोंने देखा, कि इससे हो उनका हितसाधन हो रहा है बेगमके बल बल तथा युद्धमें जय-पराजयकी बात न समझ कर कृष्णदासको सहसा सौंप देना उन्होंने उचित नहीं समझा। नवाबके भेजे आदमियोंको साहबोंने विश्वास नहीं किया, कि ये नवाबके भेजे हुए हैं। यद्यपि ये बड़े सम्भ्रान्त पुरुष थे। उन्होंने इनका अपमान कर वहांसे भगा दिया। साहब जानते थे, कि इस कार्य्यसे सिराज क्रोधित होगा। यह जान कर उन्होंने वाट्स साहबको पत्र लिखा, कि नवाब रंज हो कर हम लोगोंका कुछ नुकसान न पहुंचा सके,—इसके लिये आप यत्नवान् रहें। सिराजको सब बातें मालूम हो गई। इस समय भी उनका बेगमके साथ कुछ समझौता नहीं हुआ था। सुतरां सामान्य वणिकसम्प्रदाय द्वारा अपदस्थ और अपमानित होने पर भी उन्होंने चूं तक न किया।

कुछ दिनों के बाद मंझौलकी खांकी विधवा बेगमके मसस पसेद्य बेगमके साथ सिराजुद्दौलाका समझौता हो गया। इधर फ्रांसीसियोंके साथ अंगरेजोंका युद्ध होना अनिवार्य्य हो गया। अंगरेजोंको कोठी के साथ किलेकी मरम्मत करनेकी आवश्यकता पड़ी। सिराजुद्दौलाने सकतजङ्गको दमन करनेके लिये पूर्णिया की यात्रा की। रास्तेमें ही अङ्गरेजोंके किलेकी मरम्मत की बात उनको मालूम हुई। इस पर सिराजुद्दौलाने ड्रेक साहबको लिख भेजा, कि किलेकी मरम्मत नहीं की जा सकती। किलेमें जो अंग अधिक बनाया गया है। वह गिरा दिया जाय और साथ ही कृष्णदासको मेरे हाथ सौंप दिया जाये। ड्रेक साहबने शीघ्र ही किलेकी मरम्मतकी आवश्यकता बतला कर नवाबके पत्र का उत्तर भेजा। १७वीं मईको नवाबको ड्रेक साहबका पत्र मिला। उन्होंने अङ्गरेजोंको दमन करनेके लिये कलकत्तेकी यात्रा की। अङ्गरेज परास्त हुए। कृष्णदास और अमाचाद नवाबके सामने लाये गये। किन्तु अन्तमें नवाब उनसे प्रसन्न हो गए।

सिराजके दुर्भाग्यसे तथा उनके प्रधान राजकर्म चारीको बदनियतीसे नवाब थोड़े ही दिनोंमें अपने राज्यसे हाथ धो बैठे।

मफोमको मीरजाफर बङ्गालके सिंहासन पर बैठे। ये राजवल्लभको चतुर और कार्य्यदक्ष जानते थे। इसी लिये उनको उन्होंने मन्त्री तथा उनके पुत्र कृष्णदासको ढाकेका शासक नियुक्त किया।

इसी समय सम्राट् (शाहआलम)-ने राजवल्लभको मुंगेरका सूबेदार बनाया और उनको "महाराज राजवल्लभ रायरायां सखावतजङ्ग बहादुर" उपाधिसे सम्मानित किया। साथ ही एक तलवार पुरस्कारमें भेजी।

इस तरह कृष्णदास ढाकेके शासनकार्यमें और राजवल्लभ मुंगेरके सूबेदारी पद पर नियुक्त हो कर सुचारुरूपसे काम करने लगे। पीछे मीरजाफरने कृष्णदासको "राजा बहादुर" उपाधि प्रदान कर मन्त्री पद पर नियुक्त किया। कुछ दिनोंके बाद राजा रामनारायण कर्मच्युत हुए। मीरजाफरने इस पदको राजवल्लभके तीसरे पुत्र गङ्गादासको दिया।

मीरजाफरके शासनकालमें देवराज राजवल्लभको बहुत कुछ प्रतिपत्ति हुई थी। राजवल्लभ गुप्त मन्त्रणाके एक भागीदार थे। उस समयके एक कागजमें यह बात दिखाई देती है, कि राजा राजवल्लभ और मीरनने अङ्गरेजोंको भारतसे भगा देनेके लिये साजिश की थी। जो हो, नवाब मीरकासिमकी अन्तिम अवस्थामें राजवल्लभ एक तरहसे मुंगेरमें नजरबन्द थे।

मीरकासिमने अंगरेज़ सैन्यके साथ मिल जानेका विचार किया और सम्मिलित होनेसे पहले ही वे राजा राजवल्लभ और उनके पुत्र कृष्णदास और अन्यान्य कैदियों को बांध कर किसी पात्रमें गले तक बालू भर कर उन्हें गङ्गाजीमें छोड़वा दिया। इस तरह इनकी प्राणदण्डकी क्रिया समाप्त हुई।

इस तरह राजा राजवल्लभने ६५ वर्षकी अवस्थामें पुत्रके साथ सन् ११७० सालमें श्रावण महीना सोमवार को गङ्गाका मुंगेरके निकट भागीरथीमें प्राणत्याग किया।

राजवल्लभकी मृत्युके बाद उनके पांच पुत्रोंमें जमींदारी बंट गई। जमींदारीकी आय १४ लाख रुपये सालानेकी थी।

राजवल्लभके प्रथम पुत्र रामदास और चतुर्थ पुत्र रतन कृष्ण उनकी जीवितावस्थामें ही मर गये। इस लिये उनके गोदके पुत्रोंको हिस्सा नहीं मिला। केवल उनके भरणपोषणके लिये प्रत्येकको ५००) महीनेकी वृत्ति मिलने लगी।

राजा कृष्णदास बहादुरके तीन पुत्र (राजकृष्ण, हृदयकृष्ण और रमणकृष्ण) को जमीन्दारीका एक अंश मिला। प्राणकृष्ण निःसन्तान अवस्थामें परलोकगामी हुए। उनकी विधवा पत्नीने जिन काशीचन्द्रको गोद लिया था, उनको भी हिस्सा नहीं मिला। रानियों और पोष्यपुत्रोंके पेन्सन देने तथा मामला मुकदमेमें जो खर्च हुआ, उसमें जमीन्दारीका अधिकांश भाग नीलाम हो गया।

दीवान रामदासके चरित्रके सम्बन्धमें आज भी ढाकेमें कई बातें सुनी जाती हैं, किन्तु राजकार्य तथा लोक-हितकर कार्यों में उनकी बड़ी प्रशंसा होती है। उन्होंने तालतलाके निकटवर्ती मेघनासे विक्रमपुरके बीच हो कर प्राचीन कालीगङ्गा तक एक नहर खुदवा कर सर्वसाधारणका यथेष्ट उपकार किया। तालतलेकी काली भी उन्हींके द्वारा प्रतिष्ठित हुई जान पड़ती है।

राजवल्लभकी मृत्युके बाद उनके तीसरे पुत्र गङ्गादास कुछ दिनों तक राजत्व कर मृत्युमुखमें पतित हुए। राजाके पांचवें पुत्र गोपालकृष्णने राजकार्यका भार लिया। इसी समय कार्त्तिकपुरकी जमींदारीको दखल करते समय वहांके मुंशी-खान्दानके मुसलमानोंसे एक युद्ध हो गया। एक हजारसे अधिक आदमी युद्धमें मारे गये थे। राजपक्षने जयी हो कर जमींदारीको दखल कर लिया। कहते हैं, कि इसी अपराधमें अंगरेजोंके राजत्वमें राय गोपालकृष्णको ढाई घण्टे कैदकी सजा हुई थी।

जवल्लभके वंशका अधःपतन होने पर नौवारके दीवान राय मृत्युञ्जवंश राजनगरमें प्रबल हो उठे। प्रकृत इसी वंशने राजनगरके मानसम्भ्रमकी रक्षा की थी। राय मृत्युञ्जय कुराशी ग्राममें बहुतेरे शिवलिङ्ग, मठ प्रतिष्ठा और तालाब खुदवाये थे। कीर्त्तिनाशानदीके किनारे पड़ जानेके कारण राजनगर छिन्न विच्छिन्न हो गया। राजवल्लभके वंशज पाल ग्राममें और राय मृत्युञ्जयके सन्तान कुराशी ग्राममें आ कर रहने लगे।

इसी समय दायनीया ग्राममें कई मठ अट्टालिकायें निर्मित कर और सरोवर खुदवा कर इस ग्रामका नाम राजनगर रखा गया। नवरत्न राजवल्लभके पिताके समय शतरत्न राजवल्लभके समय और एकुशरत्न राय गोपालकृष्णके समयमें निर्मित हुआ।

सिवा इसके राजसागर, महासागर, रानीसागर आदि झील राजवल्लभ द्वारा, कृष्णसागर तत्पुत्र कृष्णदास और शुकसागर उनके भतीजे राय मृत्युञ्जय द्वारा खुदवाया गया था। राजा राजवल्लभने अग्निष्टोम, वाजपेय आदि यज्ञानुष्ठान किये थे। यह निर्णय करना कठिन है, कि इन कार्योंमें कई लाख रुपये खर्च हो गये।

राजवल्लभ वैद्यवंशमें एक श्रेष्ठ भाग्यवान् व्यक्ति थे। अठारवीं शताब्दी या इसके बाद इस वंशमें वैसे मनुष्य जन्म नहीं हुए। राजवल्लभ समग्र बङ्गालके वैद्य-समाजपति थे। श्रीखण्डके भूतनाथदेवका मन्दिर उनके द्वारा निर्मित हुआ था। बनारसके बङ्गाली टोलेमें उनकी कोठी आज भी विद्यमान है। उनके द्वारा ब्रह्मोत्तर, देवोत्तर तथा वृत्तिया दी गई थी। राजवल्लभकी प्रायः अधिकांश जमींदारी लक्ष्मीनारायणके नामसे थी। वासुदेवके नामसे भी कितने तालुक थे।

वाखरगञ्ज जिले बोजेरगो परगने उमेदपुर और सलेमाबादके ॥⅟) हिस्सा आगाबाखरके जमींदारी थी। विद्रोहके अपराधमें उनकी और उनके भाईकी जमीन्दारी जब्त हो गई। इसके बाद बाजेरगो, उमेदपुर और सलेमाबाद राजवल्लभके हाथ आया। सिवा इसके कार्त्तिकपुर, सुजाबाद, विक्रमपुर और ढाके जलालपुरमें भी कई स्थान उनके अधिकारमें आये। इसी तरह सदर राजस-

को छोड़ कर जो लाख रुपयेकी सम्पत्ति उनके हाथ आई। राजवल्लभ पण्डितपोषक भी थे। कृष्णदेव विद्यावागीश, कृष्णदास मिश्राख्य और कवि रामचन्द्र मजुमदार आदि उनके सभासद हुए। उनके द्वारा बहुदेवता की प्रतिमायें प्रतिष्ठित हुई थीं। राजनगरकी देवसेवाके लिये कुछ देवत्र सम्पत्ति रख गये थे। उनके द्वारा आज भी सेवापूजा हो रही है।

राजा राजवल्लभ एक चतुर, बुद्धिमान् और विचक्षण व्यक्ति थे। सहज ही दूसरेके मनको आकर्षित करनेकी उनमें क्षमता थी। इसी गुणसे वे एक सामान्य मुहर्रिर हो कर भी एक तरहसे बङ्गालके अधीश्वर हो गये थे। उनकी राजधानी राजनगरमें थी। इसमें सन्देह नहीं कि उनके द्वारा निर्मित प्रासाद और देवालय आदि कीर्तियां एक दर्शनीय वस्तु होतीं, यदि गङ्गा उन्हें अपने गर्भमें न ले जाती। बहुतोंका कहना है कि राजा राजवल्लभकी कीर्त्तियोंका नाश कर पद्माने अपना कीर्त्तिनाशा नाम ग्रहण किया है।*

राजा राजवल्लभकी असाधारण उन्नतिके साथ उनकी समाजसंस्कारमें भी रुचि अधिक थी। उस समयके ऐतिहासिक वार्ड साहबने लिखा है, कि राजा राजवल्लभने कई स्थानोंके ब्राह्मणोंकी व्यवस्थासे अपने समाजमें यज्ञोपवीत संस्कारका प्रचलन किया था।† इसके लिये मुर्शिदाबादके मकानमें एक बृहत् पण्डित सभा एकत्र हुई थी। समाजकी उन्नतिका विधान कर वे पूर्ववङ्गके समाजके समाजपति हुए थे। सुना जाता है, अपनी एक बालविधवा कन्याकी दुरवस्था देख कर उन्होंने समाजमें अक्षतयोनि बालविधवाके पुनर्विवाहकी रीति प्रवर्त्तित की थी। इस प्रवर्त्तनमें उन्होंने पण्डितों की सम्मति और व्यवस्था ली। नवद्वीपके राजा कृष्णचन्द्र उनके विरोधी हो गये, इसीसे वे इस काममें सफल नहीं हो सके।‡

राजा राजवल्लभ सोम—दक्षिणराढ़ीय कायस्थवंशीय एक महामान्य और प्रसिद्ध व्यक्ति। ये बङ्गालके नायब सूबेदार महाराज जानकीरामके पौत्र और उड़ीसाके अन्यतम सूबेदार दुर्लभरामके पुत्र थे। सिराजके राजसिंहासन पानेके पूर्व उन्होंने प्रथम सूबेदारका बख्शी (Paymaster-General of the forces) पद प्राप्त किया। इसके बाद सिराजुद्दौलाके समय वे "रायरायाँ" (Financial minister) और खालसाके मुद्राधिकारी (Comptroller general) पद पर नियुक्त हुए। इसके लिए सिराजुद्दौला द्वारा मुर्शिदाबाद जिलेमें उनको जागीर मिली थी। ईष्ट इण्डिया कम्पनीके सर्वप्रथम लगानके बन्दोबस्त करनेमें राजवल्लभने लार्ड क्लाइवको यथेष्ट साहाय्य किया। पलासीयुद्धके बाद राजवल्लभ कलकत्तेके बागबाजारमें आ कर रहने लगे। बागबाजारमें जहां वे रहते थे, वहां उनका बहुत बड़ा मकान था। उस जगहको इस समय राजवल्लभ पाड़ा कहा करते हैं। उनके नामसे राजा राजवल्लभ घाट और राजवल्लभ ष्ट्रीट आज भी विद्यमान हैं।

ईष्ट इण्डिया कम्पनीके नाना कार्योंमें सहायता देनेके लिये लार्ड क्लाइवने उनको उपयुक्त पारितोषिक देनेकी इच्छा प्रकट की थी। किन्तु उन्होंने अपनी पदमर्यादाका ध्यान कर अस्वीकार कर दिया। उनके समयमें राढ़ीय कायस्थ समाजमें वे ही गण्यमान्य थे। राजा नवकृष्ण बहादुरके मातृश्राद्धमें बङ्गालके सब प्रधान प्रधान राजाओं और जमींदारोंके उपस्थित रहने पर भी श्राद्ध-सभामें महाराज राजवल्लभको ही श्रेष्ठ आसन मिला था।

सन् १८०५ सालमें राजवल्लभकी मृत्यु हुई। उसके तीन वर्ष पहले उनके एकमात्र पुत्र राजा मुकुन्दवल्लभकी विधवा पत्नी रानी जयमणिने राजा गौरवल्लभको गोद लिया। इन्हीं गौरवल्लभके पुत्र रुक्मिणीवल्लभ थे। राजा राजवल्लभ प्रायः २० लाखकी सम्पत्ति छोड़ गये थे। उनकी मृत्युके बाद अंगरेजोंने उनकी जागीर जब्त कर ली और उनके उत्तराधिकारी राजा गौरवल्लभ को केवल एक लाख रुपया सालानाकी वृत्ति दी। इसके बाद मामला मुकद्दमाके कारण इनका सब धन स्वाहा हो

* चांदराय, केदारराय और नौशाहेके चौधरियोंकी कीर्त्तियों-का नाश कर पद्माका कीर्त्तिनाशा नाम हुआ है।

† Ward's on Hindoos.

‡ नदियाके पण्डितोंकी व्यवस्था न देनेसे सफल न हुए।

गया। अब इस समय उनके सन्तानकी अवस्था सोच-नीय है।

राजाराम—महाराष्ट्रपति शिवाजीके पुत्र और शम्भाजीके वैमात्र भाई। महाराष्ट्र और सातारा शब्द देखो।

राजाराम—१ श्रौतसिद्धान्तके प्रणेता। २ आचारकौमुदीके रचयिता। ३ सप्तशतीटीकोद्धारके प्रणेता। इनकी उपाधि भट्ट थी।

राजा रामपुर—दिनाजपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यहां बहुतसे देवालय हैं।

राजार्क (सं० पु०) अर्काणां राजा श्रेष्ठत्वात्। श्वेतार्क, वृक्ष, सफेद फूलका आक। पर्याय—वसुक, अर्क, मन्दार, गणरूपक, काष्ठील, सदापुष्प, अलर्क, प्रतापस।

राजार्ह (सं० क्ली०) राजानमर्हतीति अर्ह अण। १ अगुरु, अगर। २ कर्पूर, कपूर। ३ जम्बूवृक्ष, जामुनका पेड़। ४ शालिधान्यविशेष, शालिधान। (त्रि०) ५ राजाके योग्य।

राजार्हण (सं० क्ली०) १ सम्भ्रमसूचक उपहार, भारी उपहार। २ राजाका दान।

राजालाबु (सं० स्त्री०) अलाबूनां राजा, राजदन्तादित्वात् परनिपातः। स्वादुतुम्बी, एक प्रकारका लौआ या कद्दू जो आकारमें बड़ा और खानेमें मीठा होता है। पर्याय—महातुम्बी, मधुरालाबुनी, शाकालाबू, तुम्बक, भक्ष्यालाबु, अलाबुनी, मिष्टतुम्बी। इसका गुण—हृद्य, कफपित्तहर और गुरु। (मदनविनोद)

राजाली खाँ फर्रुखी—खान्देशके एक मुसलमान शासनकर्त्ता। सन् १५७६ ई०में अपने भ्राता दूसरे मीरन महम्मद खाँकी मृत्युके बाद वे सिंहासन पर बैठे। इसी समय मुगलसम्राट् अकबर शाहने समग्र आर्यावर्त्त देश पर शासनदण्ड परिचालित किया था। राजा अली खाँने सम्राट् अकबर शाहके दोर्दण्ड प्रतापको लक्ष्य कर वंशको सम्मान वर्द्धक राजोपाधि परित्याग कर दी और सम्राट्का आनुगत्य स्वीकार कर उनके अधीन हुए। इस समय उन्होंने मुगल-सम्राट्को बहुत धनरत्न उपढौकनस्वरूप दिया। अहमदनगरराज २रे बुर्हान निजाम शाहकी मृत्युके बाद सन् १५९६ ई०में युवराज मीर्जा मुराद और बैरम खाँके पुत्र मीर्जा खानखाना दाक्षिणात्य विजयमें यात्रा करने पर राजाली खाँने उनके अधीन रह कर युद्ध किया था। अहमदनगर-सेनापति सुहिल खाँके साथ खान खाँके युद्धके समय बारूदके बरतनमें आग लग जानेके कारण सन १५९७ ई०में २८वीं जनवरीको उनकी मृत्यु हुई।

राजालुक (सं० पु०) आलूनां राजा ततः स्वार्थे कन्। महाकन्द, मूली।

राजावर्त्त (सं० पु०) राजानं आवर्त्तयति आनन्दयतीति आ वृत णिच्-अण्, यद्वा राज्ञः शोभमानः आवर्त्तो यत्र। १ उपरत्नभेद, लाजवर्द नामक रत्न। पर्याय—नृपावर्त्त, राजात्यावर्त्तक, आवर्त्तमणि, आवर्त्त। इसका गुण—मृदु, स्निग्ध, शिशिर, पित्तनाशक। यह मणि धारण करनेसे बहुत कल्याण होता है। २ विराट देशजात हीरक या हीरा। पर्याय—विराटज, राजपट्ट। गुण—कटु, तिक्त, शिशिर, पित्तनाशक, प्रमेह, छर्दि और हिक्कानिवारक। (भावप्र०)

राजावलि (सं० स्त्री०) १ राजवंशावली। २ राजेतिहास, राजाकी कहानी।

राजावासा—सिंहभूम जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव।

राजाबोराड़ी—मध्यप्रदेशके होसङ्गाबाद जिलेके दक्षिण एक वनप्रदेश। यह पूरबमें सोलीगढ़से पश्चिममें कालीभीत और मकराई तक विस्तृत है।

राजाशासी—पञ्जाब प्रदेशके अमृतसर जिलान्तर्गत अजनाल तहसीलका एक नगर। १५५७ ई०में राजा संशोआदने इस नगरको बसाया। तभीसे यह उन्हींके नाम पर चला आता है। उनके भाई कीर्त्ति और रणजित्‌सिंह सिंधियानवालिया मिशलके पूर्वपुरुष थे। आज भी यहां उस सिंधियानवालिया वंशका वास है तथा उन्हींके यत्नसे नगरकी श्रीवृद्धि हुई है। सिखशासन कालमें इस वंशका प्रताप बहुत बढ़ा चढ़ा था। तभीसे यहांके सरदारवंश ३६ ग्रामोंकी जागीर भोग करते आ रहे हैं। सरदारको अपनी जागीरमें डिपटी कमिश्नरके जैसा अधिकार है।

राजाश्व (सं० पु०) वैदिकयुगका प्रसिद्ध तेजस्वी अश्वविशेष।

राजासन (सं० क्ली०) सिंहासन, राजाओंके बैठनेका आसन।

राजासन्दी (सं० स्त्री०) काठकी चौकी या पीढ़ा जिस पर यज्ञोंमें सोम रखा जाता था।

राजाहि (सं० पु०) अहीनां राजा राजदन्तादित्वात् पर निपातः। द्विमुखसर्प, दो मुंहा सांप। पर्याय—द्विमुखाहि विलवासी, विरायुध, महोरग।

राजाह्व (सं० क्ली०) १ उत्सिकार फल। स्त्रियां टाप्। २ राजादनी वृक्ष, खिरनीका पेड़। ३ श्वेतार्कवृक्ष सफेद आकका पेड़।

राजि (सं० स्त्री०) राजते इति राज (वसिवपियजिराजीति। उण् ४।१२४) इति इञ्। १ श्रेणी, पंक्ति। २ रेखा, लकीर। ३ सर्षप राई। (पु०) ४ पैलके पौत्र और आयु के एक पुत्रका नाम। (भारत १।९५।२५)

राजिका (सं० स्त्री०) राजते या राज ण्वुल्, टाप् अत इत्वं। १ क्यार, कयारी। २ राजसर्षप राई। ३ रेखा, लकीर। ४ पंक्ति, राजि। ५ रक्तसर्षप, लाल सरसों। इसका पर्याय—क्षव क्षुधाभिजनन, आसुरी क्षुताभिजनन असुरी। इसका गुण—कटु तिक्त, उष्ण वात, रक्ताह शूल, कफ, गुल्म, कृमि और व्रणनाशक। इसके शाकका गुण—तीक्ष्ण वातादिदोषनाशक, शातल, रुक्ष और कण्डुघ्न, कफपर्द्धक और रक्तदोषनाशक। इसके पत्तका गुण—कटु, उष्ण, कृमि, वात, कफ और कण्ठ मयनाशक, स्वादु और अग्निवर्द्धक। (राजनि) ६ परि माणविशेष एक परिमाण। ७ कृष्णोदुम्बर, कठगूलर। ८ मडुआ। ९ एक प्रकारका क्षुद्ररोग। इसमें सरसोंके बराबर छोटी छोटी फुंसियां निकलती हैं। यह रोग अधिक धूप लगने और गर्मीके कारण हो जाता है।

राजिकाफल (सं० पु०) राजिकायाः फलमिव फलमस्य। गौरसर्षप लाल सरसों।

राजिकाह्वा (सं० स्त्री०) राजिका नामक क्षुद्ररोगभेद। पीठ और स्कंध आदिके आगमें जो छोटी छोटी फुंसियां निकलती हैं। यह बहुत पका और दाहयुक्त होती है। इन फुंसियोंका रंग और आकृति राजिका अर्थात् सरसों की तरह होती है, इससे इसका नाम राजिकाह्वा है।

राजिचित्र (सं० पु०) राजिमत्सर्पविशेष, एक प्रकारका सांप जिसके ऊपर सरसोंकी तरह छोटी छोटी बुंदकियां होती हैं।

राजित (सं० त्रि०) १ जो शोभा दे रहा हो, फबता हुआ। २ विराजा हुआ मौजूद।

राजिफला (सं० स्त्री०) राजयो भूतानि भेषिजाणि फलानि यस्याः। चीना ककड़ी, चीना ककड़ी।

राजिमत् (सं० पु०) १ भीमसर्पभेद, एक प्रकारका सांप। (भावप्र उत्तर १६ अ०) (त्रि०) २ राजिविशिष्ट।

राजिल (सं० पु०) राजी रेखाऽस्त्यस्येति राजिसिध्मा दित्वात् लच्, यद्वा राजि आति ला क। डुण्डुभ सर्प, एक प्रकारका सांप जिसके ऊपर साधा रेखाएं होती हैं।

राजिलफला (सं० स्त्री०) पटोलिकाभेद एक प्रकारका परवल या ककड़ी।

राजी (सं० स्त्री०) राजि कृदिकारादिति ङीष्। १ निश्छिद्र पंक्ति। २ राजिका, राई। ३ रक्तवर्णसर्षप लाल सरसों।

राजी (अ० वि०) १ जो कहा हुए बात माननेको तैयार, अनुकूल। २ नीरोग, चंगा। ३ खुश प्रसन्न। ४ सुखी। (स्त्री०) ५ रजामंदी, अनुकूलता।

राजीक (सं० पु०) जातिविशेष।

राजीनामा (फा० पु०) १ वह लेख जिसके द्वारा अभियोगी और अभियुक्त या वादी और प्रतिवादी परस्पर एकमत या अनुकूल हो कर अभियोग या वादको न्यायालयसे उठा लें अथवा एकमत हो जाय और तदनुसार हो न्यायालयको व्यवस्था देनेके लिये उससे प्रार्थना करें। २ स्वीकारपत्र।

राजीफल (सं० पु०) राजीभूतानि भेषिजाणि फलानि यस्य। १ पटोल, परवल। २ तिक्त पटोल, तीता परवल।

राजीमती (सं० स्त्री०) जिह्वाग्रगतक उपद्रवविशेष।

राजील (सं० पु०) रक्तसर्षप राई।

राजीव (सं० क्ली०) राजीयुक्त भेषिजवत्स्यास्ति राजी (अन्येभ्योऽपि दृश्यते। पा ५।२।१०९) इत्यस्य पार्श्वे चापत्वा व। १ पद्म कमल।

"उपानयपिदवलजि यज्ञ मुकरायमिराप्नुमत्य।"

(कुमार ३।७५)

२ नील पद्म, नील कमल। (पु०) ३ हरिणभेद। जिस हरिणकी पीठ पर धारियाँ होती हैं उसे राजीव कहते हैं। ४ वृहत् मीनभेद, एक प्रकारकी बड़ी मछली। मनुने लिखा है, कि यह मछली हव्यकव्यमें खाने-का विधान है।

"पाठीनरोहिताताद्या नियुक्तौ हव्यकव्ययोः।
राजीवान् सिंहतुण्डाश्च सशल्काश्चैव सर्वशः॥"
(मनु ५।१६)

५ हस्ती, हाथी। ६ सारसपक्षीकी एक जाति। (त्रि०) ७ राजीपञ्जाबी। ८ जिस पर धारियाँ हों, धारीदार।

राजीवगण (स० पु०) एक प्रकारका मात्रिक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें अठारह मात्राएं होती हैं और नौ मात्राओं पर विराम पड़ता है। इसमें तुकान्तमें गुरु लघुका कोई विशेष नियम नहीं है। इसे माली भी कहते हैं।

राजीवलोचन (सं० त्रि०) राजीवे इव लोचने यस्य। पद्मचक्षु, कमलकी तरह आंखोंवाला।

राजीवलोचन मुखोपाध्याय—महाराज कृष्णचन्द्रचरितके लेखक। १८११ ई०में यह ग्रन्थ लडनमें छपा था। इसमें बिलकुल बंगला है अंगरेजी लेशमात्र भी नहीं है।

राजीविनी (सं० स्त्री०) कमलिनी, एक प्रकारका कमल।

राजुक (स० पु०) मौर्य्यकालका एक राजकर्मचारी जो एक प्रान्तका प्रबंध करता था, कायस्थ।

राजुदल (सं० पु०) एक प्रकारका वृक्ष।

राजू (हिं० स्त्री०) रज्जु देखो।

राजेन्द्र (सं० पु०) राजसु इन्द्र इव श्रेष्ठत्वात्। १ राज-श्रेष्ठ, राजाओंका राजा। २ मण्डलेश्वरसे दश गुना अधिक राजा।

"चतुर्योजनपर्यन्तमधिकारो नृपस्य च।
यो राजा तच्छतगुणः स एव मण्डलेश्वरः।
तस्माद्दशगुणो राजा राजेन्द्रः परिकीर्त्तितः॥"
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० ८ अ०)

३ राजगिरा नामक साग। ४ राजगिरि नामक पर्वत। भोजप्रबन्धमें इनका उल्लेख पाया जाता है।

राजेन्द्र—एक कवि।

राजेन्द्र गोसाईं—ब्रह्मचर्य्यावलम्बी संन्यासि-सम्प्रदायके एक प्रधान आचार्य। वे सदा दिगम्बर वेशमें सब जगह भ्रमा करते थे। उनके शिष्य भी उनका अनुकरण कर त्यागी हुए थे और सभी अपने आचार्य्यको देवता जानते थे। ये नागा सन्यासिदल सुविधा पाने पर देश लूटने तथा लड़ाई करनेमें कुण्ठित नहीं होते थे। मुगल सम्राट् अहमद शाहने नवाब सफदरजङ्गको वजीर पदसे च्युत कर दिया। मन्त्रिवरने इस काममें संन्यासिदलका साहाय्य ग्रहण किया था। सन् १७५२ ई०में २०वीं जूनको सम्राट् सैन्यके साथ युद्ध करते समय राजेन्द्रकी मृत्यु हुई।

राजेन्द्रचोल—(उपाधि मधुरान्तक परकेशरीवर्मन्) सूर्य्य-वंशीय एक विख्यात दिग्विजयी राजा तथा सूर्यवंशीय प्रथम राजराजका पुत्र। सन् १००२ ई०में इन्होंने सिंहासन पर आरोहण किया था। तिरुमल आदि नाना स्थानोंसे आविष्कृत प्राचीन द्राविड़ भाषामें खुदी शिला-लिपिसे मालूम होता है, कि इन्होंने १२वें राज्याङ्कके पहले इडैतुर, वनवासी, कोल्लिपाक, मन्नैकडक्कम, इड-मण्डल (चेड़ वा पाण्ड्यराज्य), चालुक्यपति जयसिंहको पराजित कर इडट्टपाडि, नवनेडिकुलके शैल, विक्रमवीर-के अधिकारभुक्त शक्करकोट्टम्, मदुरामण्डल वेङ्गिनैवोरेमें पञ्चपल्ली, चन्द्रवंशीय धीरतरको पराजय कर माशुनिदेश, ओडुविषय, ब्राह्मणसमवेत कोशलदेश, धर्मपालको पराजय कर दण्डभुक्ति रणशूरको पराजय कर सर्वदिक्प्रसिद्ध दक्षिणराढ़, गोविन्दचन्द्रको पराजय कर वङ्गाल, सङ्कोट्ट (कोटिवर्ष या देवकोटके) मही-पालको पराजय कर रणदुर्मद हस्तियों (हाथियों) और उत्तरराढ़ तथा नाना तीर्थ परिशोभित गङ्गा तक जय किया था। पूर्वचालुक्यराज प्रथम राजराजे इसको दामाद थे। इनकी कन्याके गर्भसे महावीर राजेन्द्र-कुलोत्तुङ्ग चोलदेवने जन्मग्रहण किया। इनके पितृष्वसाके साथ चालुक्यराज विमलादित्यका और इनकी बहनके साथ पल्लवराज वन्यदेवका विवाह हुआ। कई शिलालिपियों-से इनके जैन होनेका अनुमान किया जाता है।

राजेन्द्र तर्कवागीश भट्टाचार्य—ललितारहस्य नामक तन्त्र-ग्रन्थके प्रणेता।

राजेन्द्रदशावधान भट्टाचार्य—पिङ्गलतत्त्वप्रकाशिकाके रच-यिता।

राजेन्द्रदास—महाभारतके आदिपर्व्वके पद्यानुवादक। इन्होंने प्रायः तीन सौ वर्ष पहले यह ग्रन्थ बनाया था। अनुवाद भावपूर्ण और प्राञ्जल है।

राजेन्द्र पाण्ड्य—दाक्षिणात्यके पाण्ड्यवंशीय दो राजे। पाण्ड्यवंश देखो।

राजेन्द्रलाल मित्र (राजा)—बङ्गालके एक प्रसिद्ध पण्डित। २४ परगनेके अन्तर्गत सुँड़ा ग्रामके विख्यात मित्रवंशमें इनका जन्म हुआ था।

गौड़राजकी सभामें आये हुए कालिदास मित्रसे १४ पीढ़ी नीचे सत्यनाथ मित्र उड़ीसामें आ कर बस गये। इसके बाद इस वंशकी एक शाखा हुगली जिलेके अन्तर्गत कोन्नगर ग्राममें चली गई। राजेन्द्रलालके पूर्वपुरुष वहांसे पहले कलकत्तेके गोविन्दपुरमें और पीछे मछुआबाजारसे सुँड़ामें चले गये।

उपरोक्त सत्यनाथके पौत्र रामचन्द्र मित्र मुर्शिदाबादके नवाबके यहां दीवान थे। उनके मरने पर उनके लड़के अयोध्यारामने उस पद पर रह कर रायबहादुरकी उपाधि पाई। अयोध्यारामके पौत्र पीताम्बर मित्र दिल्ली दरबारमें अयोध्याके नवाब वजीरकी ओरसे वकील थे। पीछे बादशाहके अधीन काम करके इन्होंने रायबहादुरकी उपाधि तथा तीनहजारी मनसबदारका पद पाया। केवल यही नहीं—दोआबके अन्तर्गत कड़ा प्रदेश भी इन्हें जागीरमें मिला। १७८१ ई०में काशीके राजा चैत सिंह जब बागी हुए तब उनका दमन करनेके लिये पीताम्बर मित्र अंगरेज सेनापति पामर के सहायतामें वहां भेजे गए। रामनगर दुर्गके अधिकारकालमें वे रणक्षेत्रमें उपस्थित थे। १७८७-८८ ई०के मध्य कलकत्ता लौट कर उन्होंने वैष्णवधर्म ग्रहण किया। १८०६ ई०में उनके परलोक सिधारने पर उनके पुत्र वृन्दावनचन्द्रने पिताके धनरत्न और उपाधिको पाया।

दिल्लीदरबारसे नौकरी छोड़ते समय इनका पावना ८ लाख रुपया था, [illegible] कुछ चुका दिया। महाराष्ट्र-युद्धके समय उनकी दो लाख बीस हजार रुपये की कड़ा जागीर हाथसे जाती रही। वृन्दावनचन्द्र धीरे धीरे पितृसम्पत्ति खा कर [illegible] कलक्टरीके दीवान हो गये।

रामनगर लूटनेके समय राजा पीताम्बर कुछ संस्कृत और फारसी ग्रन्थ ले कर कलकत्ते आये। ये वैष्णवधर्म ग्रहणके बाद कलकत्ता मछुआबाजारका वासभवन परित्याग कर सुँड़ाकी उद्यानवाटिकामें रहने लगे। वृन्दावनचन्द्रके अधिक व्ययसे पैतृकसम्पत्ति यहां तक कि मछुआबाजारका मकान भी नष्ट हो गया। उनके बड़े लड़के जनमेजय मित्रने पैतृकसम्पत्तिमेंसे कुछ हस्तलिखित संस्कृत और उर्दूके ग्रन्थ पाये जिन्हें पढ़ कर उन्हें बहुत कुछ ज्ञान हो गया था। उन्होंने अपने अध्यवसायसे कई ग्रन्थ लिखे और प्रकाशित किये। Dr Shoulbred नामक एक पण्डितसे इन्होंने सबसे पहले किमिय-विद्या पढ़ी। इसके पहले और किसी भी बंगालीने किमिय विद्या नहीं पढ़ी थी।

जनमेजयके तृतीय पुत्र राजेन्द्रलालका १८२४ ई०की १५वीं फरवरीको जन्म हुआ। पांच वर्षकी उमरमें इन्हें पहले पहल उर्दू वर्णमाला सिखाई गई। इसके बाद इन्होंने राजा वैद्यनाथ रायके पारिवारिक गुरुसे बङ्गला भाषा सीखी। तीन वर्ष बङ्गला और उर्दू भाषा सीख कर ये पथुरियाघाटके खेलातबाबुके स्कूलमें अंगरेजी पढ़ने लगे। इस समय इनका अधिकांश समय पितृष्वसाके ही घरमें व्यतीत हुआ था। जब इनकी उमर ग्यारह वर्ष की हुई, तब ये मीरजापुर मित्रके पुराने मकानके समीप गोविन्द बसाकके विद्यालयमें भर्ती हुए। १८३८ ई०के अक्तूबरसे लगातार १८३९ ई०के अक्तूबर तक प्लीहा और कासयुक्तज्वरसे अपीड़ित हो इन्होंने पढ़ना लिखना बंद रखा। उसी सालके नवम्बर महीनेमें जब इनकी उमर पन्द्रह थी तभी चिकित्साशास्त्र पढ़नेके लिये कलकत्ता मेडिकल कालेजमें प्रवेश किया। इस समय भी इन्हें घर पर मि० कामरेनसे पढ़नेमें सहायता मिलती थी। कालेजमें इन्हें प्रति वर्ष पारितोषिक मिलता था। प्रखर बुद्धि देख कर १८४१ ई०में द्वारकानाथ ठाकुरने इन्हें चिकित्साशास्त्रमें सुपण्डित करनेके लिये इङ्गलैण्ड भेजना चाहा। किन्तु राजेन्द्रलालके पिताने यह खबर पाते ही विलायत जाना रोक दिया। केवल रोक ही नहीं दी, वरन इसके बदलस्वरूप विद्यालयसे नाम भी कटवा दिया।

अनन्तर राजेन्द्रलाल बड़े दुःखित हो कर एकाग्र

पढ़ने लगे। वकालत पास करने पर इन्हें कलकत्तेकी सदर अदालतमें वकालती अथवा मुनसफका काम करनेका हुकुम मिला। किन्तु किसी पदकी चाह न करते हुए इन्होंने जजोंकी परीक्षा दी। दुर्भाग्यवशतः इनकी लिखी परीक्षा कापी खो गई तथा दूसरे नर्मसे वह परीक्षा भी बंद हो गई जिससे इनका उद्देश सिद्ध न हो सका। पीछे इसके लिये इन्होंने फिर कभी कोशिश भी नहीं की। अब इन्होंने साहित्यचर्चाकी ओर ध्यान दिया।

इसके बाद घरमें रह कर इन्होंने संस्कृत, पारसी, हिन्दी और उर्दू भाषामें अच्छी व्युत्पत्ति प्राप्त की। पीछे १८४६ ई०के नवम्बर मासमें ये कलकत्तेकी एशियाटिक सोसाइटीके सहायक सम्पादक तथा ग्रन्थरक्षकके पद पर नियुक्त हुए। इस समय इनकी उमर सिर्फ २३ वर्षकी थी। इस पद पर ये १० वर्ष तक रहे। १८५६ ई०के मार्च मासमें आप गवर्मेण्ट वार्डके डिरेकृर हुए।

मेडिकल कालेजमें पढ़ते समय सत्तरह वर्षकी उमरमें इनका विवाह हुआ। किन्तु पाच वर्ष बीतने न बीतते स्त्रीका देहान्त हो गया। पीछे ३६ वर्षकी उमरमें इन्होंने फिरसे दूसरा विवाह किया।

डा० राजेन्द्रलालने किसी भी सरकारी स्कूलमें नहीं पढ़ा था। घरमें रह कर इन्होंने अङ्गरेजी, बङ्गला, संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और पारसी भाषा पढ़ी थी। मेडिकल कालेजमें रहते समय इन्हें फारसी, लाटिन, ग्रीक और एशियाटिक सोसाइटीमें जर्मनभाषाका भी अच्छा ज्ञान हो गया था। Journal of the Asiatic society of Bengal नामक पत्रिकामें १८४७ ई०को इन्होंने सबसे पहले अंगरेजी प्रबंध लिखना आरम्भ कर दिया। १८४६ ई०में इन्होंने संस्कृत 'कामन्दकीय नीतिसार' और १८५१ ई०मे 'विविधार्थसंग्रह' नामक एक सचित्र मासिकपत्र तथा 'रहस्यसन्दर्भ' नामक एक दूसरा मासिकपत्र निकाला था। १८७५ ई०में इनका उड़ीसाका पुरातत्त्व (Antiquities of Orissa) प्रकाशित हुआ। उस ग्रन्थके सम्बन्धमें स्वयं ग्रन्थकर्त्ताने ही लिखा है, "Some relics of the past weeping over a lost civilization and extinguished grandeur" इसमें स्थापत्यविद्या, धर्म और भारतके प्राचीन इतिहासका यथेष्ट प्रमाण लिपिबद्ध है। इसके तीन वर्ष बाद इन्होंने 'बुद्धगया' नामक ग्रन्थका प्रचार किया। इसमें भी इन्होंने गवेषणापूर्ण युक्तिबलसे धारावाहिक इतिहासका काल निर्णय करनेमें विशेष चेष्टा की थी। भग्नमन्दिरादिका निदर्शन, शिला लिपि और प्रस्तरनिर्मित प्रतिमूर्त्ति आदिके भी ये अनेक परिचय दे गये हैं। उनके अध्यवसाय और अनुसन्धित्साके प्रबल अनुरागके सम्बन्धमें ब्रिटानिकाके जीवनी लेखकने जो लिखा है उसका आशय इस प्रकार है,—"भारतीय प्रततत्त्वके सम्बन्धमें उनका गवेषणापूर्ण प्रबन्ध पढ़ कर यूरोप और अमेरिकाके पण्डित उनका यथेष्ट सम्मान करते थे। डा० माक्समूलर, गार्सिन डि टासी, अध्यापक फुसे, अध्यापक कुहन, मेयरडेरे, वेवर, बोथलिङ्क, होम्बो, राफ्, गुवानेथो, गोल्डस्मिथ, एगलिं, जन मुइर, आमरो, हर्मनब्रूक्स, कौपल, एड वर्ड टामस, हिल्ने, उोशन, ऑफ्रेक्, डा० स्पेंग्नर, डा० रोथ, ब्रायन. हजसन, डा० बूलर, डा० किलहार्ण और डा० बुर्णल आदि प्राच्यप्रत्नतत्त्वानुसन्धित्सुओंके साथ इनके भारतीय पुरातत्त्वके सम्बन्धमें बहुत लिखा पढ़ी हुई थी।"

पहले लिखा जा चुका है, कि इन्होंने सरकारी विश्वविद्यालयमें शिक्षा नहीं पाई थी और न इन्हें कलकत्ता युनिवर्सीटीसे विद्याविशेषकी पारदर्शिताके लिये कोई पारितोषिक ही मिला था। उनकी यह असामान्य ज्ञानज्योति देख कर कलकत्ता युनिवर्सीटीने स्वतः प्रवृत्त हो कर इन्हें L. L. D की उपाधि दी थी। १८७८ ई०के दिल्ली दरबारमें लार्ड लीटनने राजकीय उपाधि घोषणाके समय डा० राजेन्द्रलालको 'राय बहादुर'की उपाधिसे विभूषित किया था। १८६१ ई०से वे कलकत्तेकी एशियाटिक सोसाइटीके सहकारी-सभापति पद पर नियुक्त थे। १८६५ ई०के दिसम्बर मासमें वे हंगेरीकी वैज्ञानिक सभा (Academy of Sciences) के वैदेशिक सभ्य बनाये गये। बुडा-पेष्ठ नगरीकी सण्डे न्युज' नामक पत्रिकामें इन्हें Honorary member of the Royal Asiatic Society of Great Britain, Corresponding member of the German and American Oriental Society, Honorary member of the

Imperial Academy of Vienna Fellow of the Society of Northern Antiquities of Copenhagen और Corresponding member of the Berlin Anthropological Society आदि समाओंके सदस्य भी थे। और भी गौरवका विषय यह कि इन्होंने फरासी प्रजातन्त्रकी सम्राट्से फ्रान्सराज्यके राजकीय शिक्षा विभागसे Palmleat और Diploma पाया था।

इसके बाद १८८५ ई०में इन्होंने एशियाटिक सोसाइटीके सभापतिका पद पाया। डा० राजेन्द्रलाल सभी उपाधियों और सम्मानकी अपेक्षा विद्वत्समाज इस सम्मानको गुरुतर और अधिक मूल्यवान् समझते थे। उनका इस ज्ञानचर्चासे प्रसन्न हो तथा उनका आभिजात्य देख कर गवर्मेण्टने इन्हें C I E और पीछे राजा की उपाधि दी थी। यूरोपोयगण मुक्तकण्ठसे इन्हें प्राचीन भारतीय इतिवृत्त उद्धारका मुख्याङ्ग स्वीकार कर गये हैं।

इनका स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं था। इस कम शरीरको ले कर वे जिस असाध्य अध्यवसायसे महाकार्यमें लगे हुए थे उसका ध्यान करनेसे अपूर्व जीवनका ज्ञान और बुद्धिशक्तिकी तीक्ष्णताका पूरा पूरा पता लगता है। इस प्रकार साहित्यसेवामें अपना क्षुद्र जीवन बिता कर राजेन्द्रलाल १८९१ ई०की २६वीं जुलाईको इस लोकसे चल बसे।

इनके सम्पादित ग्रन्थादि।

अङ्गरेजी—

१ उड़ीसाका पुरातत्त्व—दो भाग।
२ सामवेदके अन्तर्गत छान्दोग्य उपनिषद्‌का अनुवाद।
३ १८७१ १८७४ ई०में प्राप्त संस्कृत ग्रन्थोंकी विवरणी।
४ एशियाटिक सोसाइटीके जादूघरमें संगृहीत भारतीय विस्मयद्योतक पदार्थोंको विवरण सहित तालिका (Catalogue)
५ एशियाटिक सोसाइटीके पुस्तकालयकी तालिका।
६ संस्कृत व्याकरणोंकी समालोचनापूर्ण तालिका।
७ एशियाटिक सोसाइटीकी पत्रिकाके १से २४ भागोंका सूचीपत्र।
८ बुद्धगया।
९ यूरोपीय वैज्ञानिक शब्दकी परिभाषा।
१० आर्यहिन्दू (Indo Aryan) दो भाग।

संस्कृत—

१ यजुर्वेदान्तर्गत तैत्तिरीय ब्राह्मण १८५४—१८७०,
२ " " आरण्यक १८७२।
३ " " प्रातिशाख्य १८७२।
४ अथर्ववेदान्तर्गत गोपथब्राह्मण १८७२।
५ कामन्दकीय नीति १८६१।
६ चैतन्यचन्द्रोदयनाटक १८८४।
७ ललितविस्तर १८५४ १८७७।
८ अग्निपुराण १८७३-७८।
९ ऐतरेय आरण्यक १८७६।

बङ्गला—

१ विविधार्थसंग्रह (१८५०—५६ ई०), २ रहस्य सन्दर्भ (१८५८ ई०), ३ प्राकृतिक भूगोल (१८५४), ४ पत्रकौमुदी (१८६३), ५ व्याकरणप्रवेश (१८७१), ६ शिवाजीकी जीवनी (१८६२) मेवाड़का राज इतिहास (१८६१) इसके सिवा इन के पहले भारतवर्षका बङ्गला, नागरी तथा पारसी मानचित्र, एशियाका पारसी मानचित्र, स्कूलमें काम आने लायक बहुतसे छोटे बड़े मानचित्र, भौतिक मानचित्र (Physical chart) आदि सम्पादित हुए थे।

नौकरीसे अलग होने पर इन्हें ५ सौ रुपयेकी मासिक वृत्ति मिलती थी।

राजेय (सं० पु०) पटोल, परवल।

राजेश्वर (सं० पु०) राजश्रेष्ठ, राजाओंका राजा, महाराज।

राजेश्वर—पाण्डववंशीय एक राजा। पाण्डव श देखो।

राजेष्ट (सं० क्ली०) १ नृपाप्य नामक धान। २ राजभोग्य। (पु०) ३ राजपलाण्डु, लाल प्याज।

राजेष्टा (स० स्त्री०) १ कालीपूस, कदलीका पेड़। २पिण्ड खर्जूर पिंडखजूर। (वैद्यनि०)

राजोद्दीपनसंज्ञक (सं० पु०) राजोद्दीपन इति संज्ञा यस्य इति कप्। भूताङ्कुशवृक्ष, आपढ़यामका पेड़।

पर बैठनेके समय या राजसूय यज्ञमें राजाका अभिषेक जो वेदके जल और ओषधियोंसे कराया जाता है। २ किसी नये राजाका राजसिंहासन पर बैठना या बैठाया जाना, राजगद्दी पर बैठनेकी रीति।

राज्याश्रममुनि (सं० पु०) राजा, नरपति।

राज्येश्वर (सं० पु०) राज्यस्य ईश्वरः। राज्यका ईश्वर, राज्याधिपति।

राज्यैकदेशेण (सं० अव्य०) राज्यके एक देशके सिवा।

राज्यैश्वर्य (सं० क्ली०) राज्यमेव ऐश्वर्य्यं। राज्यरूप ऐश्वर्य।

राज्योपकरण (सं० क्ली०) राज्यशासनोपादानसमूह, राजचिह्न।

राट (सं० पु०) १ राज, बादशाह। २ श्रेष्ठ व्यक्ति, सरदार। ३ किसी बातमें सबसे बड़ा पुरुष। इस शब्दका प्रयोग प्रायः यौगिक शब्दोंके अन्तमें होता है।

राटि (सं० पु०) राटयति परम्परमाहूयत्यत्रेति रट णिच्-इन्। १ युद्ध, लड़ाई। राटयतीति रट भक्षणे स्वार्थे णिच्-इन्। २ शरारिपक्षी, टिटिहरी नामकी छोटी चिड़िया।

राटिका (सं० स्त्री०) हरिणका चीत्कार या शब्द।

राडु (सं० पु०) एक आचार्यका नाम।

राटुल (हिं० पु०) वह बड़ा तराजू जो लट्ठा गाड़ कर लटकाया जाता है और जिसमें लोहा, लकड़ी आदि चीजें मनोंकी तौलसे तौली जाती हैं।

राठ (सं० पु०) मदनवृक्ष, मयनाका पेड़।

राठ (हिं० पु) १ राज्य। २ राजा।

राठ—१ युक्तप्रदेशके हमीरपुर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २५° २८' से २५°५६' उ० तथा देशा० ७९°२१' से ७९° ५५' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५७४ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखके करीब है। इसमें राठ नामक एक शहर और १७९ ग्राम लगते हैं। इसके पश्चिममें धसान, उत्तरमें बेतवा और पूरबमें बिरमा है।

२ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २५°३६' उ० तथा देशा० ७९° ३४' पू०के मध्य हमीरपुरशहरसे ५० मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या दस हजारसे ऊपर है। राठौरराजपूतोंके रहनेके कारण इस स्थानका राठ नाम हुआ है। १२१० ई०में सरफउद्दीनने इस नगरको बसा कर अपने नाम पर इसका सरफाबाद नाम रखा। अभी वाणिज्यपथके बदल जानेसे वाणिज्यमें बहुत धक्का पहुँचा है। यहां बहुतसी मसजिद, मन्दिर और प्राचीन कीर्त्तिका निदर्शनस्वरूप पुष्करिणी देखी जाती है। नगरके दक्षिणभागमें प्राचीन चन्देलराजवंशके महलोंका खंडहर पड़ा है। जैतपुर और चरखारी राजों द्वारा प्रतिष्ठित दो दुर्ग अभी भग्नावस्थामें पड़े हैं। मसजिदोंके शिलाफलकमें औरङ्गजेबके शासनकालकी तारीख लिखी है। बोगदादके अबदुल कादर जिलानीके विख्यात मकबरेसे एक ईंट ला कर उसीके ऊपर यहांके 'बड़े पीर का मकबरा' खड़ा किया गया है। १८५७ ई०के गदरमें यहांके तहसीलदार और कानूनगो विद्रोहियोंके हाथ मारे गये थे। स्थानीय प्रजा विद्रोहीदलमें शामिल न थी। १८६७ ई०में यहां म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। शहरमें अनाज, रुई और चीनीका कारबार होता है। यहां अमेरिकन मिशनकी एक शाखा, अस्पताल और एक स्कूल है।

राठवर (हिं० पु०) राठौर देखो।

राठौर—मारवाड़वासी राजपूत जातिकी एक शाखा। शाहबुद्दीन घोरीके भारतविजयकालमें ११९३ ई०को कन्नौजराज जयचांदके समय इन लोगोंने जातीय गौरवसे ऊँचा स्थान दखल किया था।

मारवाड़, राजपूत और राष्ट्रकूट शब्द देखो।

राडि (सं० स्त्री०) शरारिपक्षी, टिटिहरी।

राढ—वर्त्तमान बङ्गदेशका पश्चिमांश। किसीके मतसे यह शब्द संस्कृत 'राष्ट्र' शब्दका अपभ्रंश है। फिर कोई 'लाट' से 'राढ़' देशकी उत्पत्तिकी कल्पना करते हैं। हम लोगोंके विचारसे 'राढ' शब्द संस्कृतमूलक नहीं है, यह शुद्ध देशी शब्द है। संथाली भाषामें 'राढो' शब्द देखा जाता है जिसका अर्थ है नदीगर्भस्थ शैलमाला या पथरीली जमीन। इसी संथाली शब्दसे शायद इस 'राढ' शब्दकी उत्पत्ति हुई हो।

ईसाजन्मसे पहले ३री सदीमें मागधी भाषामें रचित जैन अङ्गमें 'राढ़' देशका उल्लेख है। ५वीं सदीमें रचित सिंहलके पालिमहावंशमें इस स्थानका 'लार' नामसे,

१०वों सदीमें उत्कीर्ण धर्मपालक संस्कृत ताम्रशासनमें 'लाट' नामसे, ११वीं सदीमें तामिलभाषामें उत्कीर्ण राजेन्द्रचोलकी शिलालिपिमें 'लाड़' नामसे तथा उस समयके संस्कृत प्रबोधचन्द्रोदय नाटकमें 'राढ़ा' नाम से उल्लेख देखा जाता है।

मुर्शिदाबाद जिलेके उत्तर जहां भागीरथी दक्षिणमुखी हुई है, वहांसे ले कर हावड़ा जिले तक भागीरथीका समी पश्चिमांश एक समय 'राढ़' कहलाता था।

१३वीं सदीमें प्रसिद्ध मुसलमान ऐतिहासिक मिनहाजउद्दीन सिराजने लक्ष्मणावती राज्यका परिचय देते समय जो वर्णन किया है वह इस प्रकार है,—"गङ्गाके दोनों किनारे लक्ष्मणावती राज्यके दो अंश हैं। (गङ्गाके) पश्चिम ओर 'राल' (राढ़) है इसी ओर लखनौर नगर है। पश्चिम (या उत्तर ओर) वरिन्द (वरेन्द्र) कहा जाता है। यहां देवकोट नगर स्थापित है।" * मिनहाजके वर्णनसे मालूम होता है, कि उस समय लक्ष्मणावती और उसके चारों ओर अवस्थित खाजनगर (याजपुर या उत्कलका उत्तरांश) वङ्ग कामरूप और मिरहुत (मिथिला) ये सब देश मिला कर 'गौड़' कहलाते थे। †

मिनहाजके वर्णनसे यह भी जाना जाता है, कि राजा लक्ष्मणसेनके समय वर्त्तमान वीरभूम वर्द्धमान बांकुड़ा, संथाल परगना और हुगली जिला 'राढ़' नामसे ही प्रसिद्ध था तथा 'लखनौर' वा लक्ष्मणनगरमें राढ़देश की राजधानी थी। यह लक्ष्मणनगर अभी वीरभूमके मध्य केवल 'नगर' नामसे प्रसिद्ध है।

राढ़देशकी विशेषता यह है कि यहांकी मिट्टी बहुत कड़ी और देखनेमें पिङ्गल वा रक्ताभ होती है। उसमें चूना और लौह मसलाइक मिला है, बाद बीचमें कंकर है, भागीरथी गर्भ तक कोपड़का ढोका आड़ा है, बहुत-सी पहाड़ी नदियोंके बहते हुए भी जमीन उतनी उपजाऊ नहीं है और अधिकांश जमीन ऊंचा नीची है। बाढ़का जल यहां बहुत देर नहीं ठहरता। राढ़भूमिकी यह विशेषता वीरभूमसे फोर्टनागपुरकी सीमा तक विस्तृत है। इस कारण भूतत्त्वविदोंके निकट भी यह विस्तीर्ण भूभाग 'राढ़' कहलाता है। आश्चर्यका विषय है, कि भागीरथीके पश्चिमपार अर्थात् राढ़ भूभागको जैसी विशेषता है भागीरथीके पूर्वपार अर्थात् बागड़ी भूभाग की वैसी नहीं है। यहांकी जमीन उपजाऊ है और बाढ़के जलसे सहजमें डूब जाती है। पूर्वबङ्गके उपजाऊ भूभागके साथ बागड़ीभूभागका सम्पूर्ण सादृश्य देखा जाता है।

जमीनकी ऐसी विशेषता देख कर ही पूर्वकालमें बरेन्द्र, राढ़ और वङ्ग विभाग कल्पित हुआ था। इस प्रकार जमीनकी विशेषताके अनुसार भागीरथीके पश्चिम तीरसे राढ़ और पूर्वतीरसे मसल वङ्ग आरम्भ हुआ।

अक्लिष्टगमतन्त्रमें यह राढ़ भूभाग ही 'अङ्ग' नामसे वर्णित है। जैसे—

"व यनाथं समारभ्य भुवनेशान्तगं शिव।
वारवखाभिधा देशो यात्रायां नहि दुष्यते ॥

इस कठिन मृत्तिकामय गिरिनदीसमाकुल स्वास्थ्यकर स्थानमें ही शायद अति प्राचीन कालसे आर्य उपनिवेश रहा होगा। सिंहलके महाव शमें लिखा है, कि बुद्धजन्मके पहले इस राढ़में सिंहबाहु राजा करते थे। सिंहपुरमें उनकी राजधानी थी। उनके पुत्र विजयसिंह से सिंहलमें राढ़ीय सभ्यता विस्तृत हुई। महावंशके मतसे विजयसिंहसे 'सिंहल' द्वीपका नामकरण हुआ। जैन आचाराङ्गसूत्रमें लिखा है, कि अन्तिम तीर्थङ्कर महावीर स्वामी यहां बारह वर्ष रह कर अङ्गको आदिमें भी धर्मतत्त्वका प्रचार किया था। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके प्रकृतिखण्डमें (१६ अ०) लिखा है, कि "राढ़ी और वारेन्द्र वीरोंने शत्रुघ्नको मारके युद्ध किया था।"

राढ़ाक (स० पु०) अत्यामलमान देश।

"मारवा मालवश्चैव च वारेन्द्रोगौड़राढ़काः।"

(ज्योतिस्तत्त्व)

राका (स० स्त्री०) १ आभा, छवि। २ कान्ति, दीप्ति। ३ एक पुरीका नाम।

'गौड़ राज्यमनुत्तमं निरुपमा तत्रापि राढ़ापुरी।
भूरिश्रेष्ठिकनामधामपरमं तत्रास्ति नः सितः।"

(प्रबोधचन्द्रोदय)

* मिनहाज तबकात् इ-नासिरी द्रष्टव्य।

† तबकात इ नासिरी २०८।

तुङ्गी, नक्त, दोषा, वासतेयी, तमा, क्षमा, शताक्षी, क्षणिनी, निशिथ्या, चक्रभेदिनी, शर्वरी, शय्या, वासुरा, नियद्वरी, वसति, यामुरोषा, निशीथ, निट्, यामवती, तारा, भूषा, ज्योतिष्मती, तारकिणी, काला, कलापिनी।

वैदिक पर्याय—श्यावी, क्षपा, शर्वरी, अक्तु, ऊर्म्या, याम्या, यम्या, नम्या, दोषा, नक्ता, तमस, रजस, असिक्नी, पयस्वती, तमस्वती, घृताची, शिरिणा, मोकी, शोकी, उधस, पयस, हिमा, वस्वी। (वेदनि० १।७)

"यदा दिक्षु च धत्रासु मेरोर्भूगोलकोद्भवा।
छाया भवेत्तदा रात्रिः स्याच्च तद्विरहाद्दिनम्॥"

(अग्निपु० गणभेदनामाध्याय)

जब अष्टदिक् भागमें सुमेरुकी भूगोलकोद्भव छाया पड़ती है, तब उसे रात्रि कहते हैं। ज्योतिषशास्त्रके मतसे पृथ्वी सूर्यके चारों ओर घूमती है। घूमते समय उसका जो भाग सूर्यकी ओर रहता है वहां दिन और जो भाग अंधकारसे ढका रहता है वहां रात होती है। भूकक्षा (Ecl pic) विषुवरेखा (Equator)-के ऊपर चक्रभावमें रहनेके कारण पृथ्वीके स्थानविशेषमें रात्रिकी वृद्धि और क्षय होते देखा जाता है। सूर्यके उत्तरायण रहनेसे दक्षिण गोलार्द्धमें कहीं कहीं केवल रात्रि ही रहती है, दिनकी अपेक्षा रात्रिका भाग ही अधिक होता है। पृथिवी देखो।

पितृ और देवताओंकी रात्रि—मनुष्योंका एक महीना पितरोंका एक दिन तथा कृष्णपक्ष उनका दिन और शुक्लपक्ष रात्रि होती है। देवताओंका एक दिन बराबर है मनुष्योंके एक वर्षके। उत्तरायण दिन और दक्षिणायन रात्रि होती है।

(ब्रह्मवैवर्त्तपु० प्रकृतिख० ५१ अ०)

स्मृतिमें लिखा है, कि पूर्वोक्त दिवाभागमें जो सब नित्य और नैमित्तिकादि कर्म करने कहे गये हैं, वे यदि प्रमादवशतः न किये जांय, तो रात्रिके प्रथम प्रहर तक उन्हें कर सकते हैं, इसमें कोई दोष नहीं होता।

"पूर्वाह्णविहितं कर्म न कृतं तत् प्रमादतः।
रात्रेस्तु प्रहरं यावत् तत्कर्त्तव्य यथोक्तवत्॥
दिवोदितानि कर्माणि प्रमादात् पतितानि च।
शर्व्याः प्रथमे यामे तानि कुर्यादतन्द्रितः॥" (रत्नाकर)

तीन प्रहर रात्रि, रात्रिका प्रथम और शेष चार दण्ड दिनमें गिना जाता है, इसीसे रात्रिका एक नाम त्रियामा भी है।

"त्रियामा रजनी प्राहुस्त्यक्त्वाद्यन्त्यचतुष्टयम्॥"

रात्रिकालमें कुलपूजा करनी होती है।

"रात्रावेव महापूजा कर्त्तव्या वीरवन्दिते।
न दिने सर्वथा कार्या शासनान्मम सुव्रते॥" (तन्त्रसार)

रोहिणीव्रत अर्थात् जन्माष्टमी व्रतको छोड़ कर और चाहे जो व्रत हो उसमें पारण नहीं करना चाहिये। किन्तु रोहिणी व्रतमें रातको पारणका विधान रहने पर भी महानिशामें कदापि पारण न करे।

"न रात्रौ पारणं कुर्यात् ऋते वै रोहिणीव्रतात्।
तत्र निश्यपि वै कुर्याद्वर्जयित्वा महानिशाम्॥"

(तिथितत्त्व)

रात्रिकालमें श्राद्धकर्म कभी भी न करे। रात्रिमें गङ्गास्नान किया जा सकता है।

रात्रिकालमें एक पहरके भीतर निर्दिष्ट परिमाणसे कुछ कम भोजन करना उचित है। उस समय दुष्प्राप्य वस्तु भी खाना उचित नहीं।

"रात्रौ च भोजनं कुर्यात् प्रथमप्रहरान्तरे।
किञ्चिदूनं समश्नीयात् दुर्जरन्तत्र वर्जयेत्॥" (भावप्र०)

फलितज्योतिषके मतसे,—चन्द्रमा, मङ्गल और शनिग्रह रात्रिकालमें ही बलवान् होते हैं। रात्रिके तृतीय याममें रवि, बुध, शनि और चन्द्रमा बलवान् हुआ करते हैं। ज्योतिर्विदाभरणमें रात्रिलग्न निरूपणका विषय लिखा है। आकाशस्थ नक्षत्रोंके अवस्थानसे मेषादि लग्नका भुक्त और भोग्यदण्ड स्थिर किया जा सकता है।

विस्तृत विवरण लग्न शब्दमें देखो।

२ क्रौञ्च द्वीपकी एक नदीका नाम।

(मत्स्यपु० १२२।८७)

रात्रिक (सं० पु०) वृश्चिकभेद, एक प्रकारका विच्छू।

रात्रिकर (सं० पु०) रात्रिं करोतीति कृ-ट। १ चन्द्रमा। २ कर्पूर, कपूर।

रात्रिकाल (सं० पु०) रजनी, रात।

रात्रिकृत्य (सं० क्लि०) रात्रिमें आचरणीय विषय, वह काम जो रातमें किया जाय।

रात्रिचर (सं॰ पु॰) रात्रौ चरतीति (चरेष्टः। पा ३।२।१६) इति ट, (रात्रः इति विभाष। पा ६।३।७२) इति पक्षे मुमभावः। १ राक्षस। (त्रि॰) २ रातको भ्रमण विचरनेवाला। स्त्रियां ङीप्।

"तं भिन्नदंष्ट्रं कुपदानपत्नी यान्त वने रात्रिचरो डुढौके।" (भट्टि २।२३)

रात्रिचर्या (सं॰ स्त्री॰) रात्रौ चर्या। रातके समय कर्त्तव्य कर्म। आह्निकतत्त्वमें और वैद्यकमें रात्रिचर्याका विधान निर्दिष्ट हुआ है।

रात्रिचारी (सं॰ पु॰) रात्रिचर देखा।

रात्रिज (सं॰ क्ली॰) नक्षत्र तारे आदि।

रात्रिजल (सं॰ क्ली॰) रात्रौ जल। कुज्झटिका, कुहरा।

रात्रिजागर (सं॰ पु॰) रात्रौ जागर्त्तीति जागृ अच्। १ कुक्कुर, कुत्ता। (त्रि॰) २ रातमें जागने वाला।

रात्रिजागरण (सं॰ क्ली॰) रात्रौ जागरणं। रातमें जागना। रातमें नींद नहीं आने तथा जागे रहनेसे वायु कुपित हो जाती है इसलिये रात्रिजागरण वैद्यकमें निषिद्ध कहा है। निद्रा देखा।

रात्रिजागरद (सं॰ पु॰) रात्रौ जागरं जागरणं ददाति दा क। मशक, मच्छड़।

रात्रिञ्चर (सं॰ पु॰) रात्रौ चरतीति चर-ट (रात्रेः कृति विभाषा। पा ६।३।७२) इति मुम्। राक्षस।

रात्रिञ्चरी (सं॰ स्त्री॰) राक्षसी।

रात्रितरा (सं॰ स्त्री॰) गभीरा रजनी, गहरी रात।

रात्रितिथि (सं॰ स्त्री॰) शुक्लपक्षकी रात।

रात्रिदिवम् (सं॰ अव्य॰) दिन और रातके बीचमें।

रात्रिदोष (सं॰ पु॰) रातमें होनेवाले अपराध। जैसे—चोरी।

रात्रिनाशन (सं॰ पु॰) सूर्य।

रात्रिन्दिव (सं॰ क्ली॰) रात्रिश्च दिवा च। दिन और रात।

रात्रिपरिशिष्ट (सं॰ क्ली॰) रात्रिसूक्त। रात्रिसूक्त देखो।

रात्रिपर्याय (सं॰ पु॰) वह वाक्य जो अतिरात्रके योगसे कहा गया हो। यह यथाक्रमसे तीन बार उच्चारण करना होता है।

रात्रिपुष्प (सं॰ क्ली॰) रात्रौ पुष्पति विकाशते इति पुष्प अच्। उत्पल कमल।

रात्रिपूजा (सं॰ स्त्री॰) रातकी पूजा। जैसे—श्यामा पूजा।

रात्रिबल (सं॰ त्रि॰) रात्रौ बलं यस्य। १ राक्षस। (त्रि॰) २ रातमें बलवान्।

रात्रिभुक्ति (सं॰ स्त्री॰) जैनोंके अनुसार छठी प्रतिमा जो रात्रिके समय किसी प्रकारका भोजन आदि ग्रहण नहीं करती।

रात्रिभोजन (सं॰ पु॰) रातमें खाना।

रात्रिमट (सं॰ पु॰) रात्रौ मटतीति मट अच् (रात्रेः कृति विभाषा। पा ६।३।७२) इति मुम्। १ राक्षस। (त्रि॰) २ रातमें गमन करनेवाला।

रात्रिमणि (सं॰ पु॰) रात्रेर्मणिरिव। चन्द्रमा।

रात्रिमरण (सं॰ क्ली॰) रात्रिके योगमें मरना।

रात्रिम्मन्य (सं॰ त्रि॰) रात्रिकालविवेचना, रात्रिज्ञान।

रात्रियोग (सं॰ पु॰) रात्रिका आगमन।

रात्रिरक्षक (सं॰ पु॰) रात्रिकालका प्रहरी, रातका पहरा।

रात्रिराग (सं॰ पु॰) अन्धकार, अंधेरा।

रात्रिवासस् (सं॰ क्ली॰) रात्रेर्वासः वस्त्रमिव। १ अन्धकार, अंधेरा। २ रातके समय पहननेका वस्त्र। सवेरे उठ कर रात्रिवास छोड़ देना होता है। दिनमें रात्रिवास पहननेसे अलक्ष्मीकी कृपा होती है।

"उष्णत्रमन्धकार च रात्रिवासो दिने तथा।
चालाम्बरं कुचक्षं वर्जयेत् शुभकामकम्॥"
(ब्रह्मवैवर्त)

रात्रिविगम (सं॰ पु॰) रात्रेर्विगमो यत्र। प्रभात, सवेरा।

रात्रिविश्लेषगामिन् (सं॰ पु॰) रात्रौ विश्लेषं विच्छेदं गच्छतीति गम णिनि। १ चक्रवाक, चकवा। (त्रि॰) २ रात्रिकालमें विच्छेदप्राप्त।

रात्रिवेद (सं॰ पु॰) रात्रिं रात्रिशेषं वेदयति ज्ञापयतीति विद णिच् अण्। कुक्कुट, मुर्गा।

रात्रिवेदिन् (सं॰ पु॰) रात्रिं रात्रिशेषं वेदयति स्वरेण विदु णिच् णिनि। कुक्कुट, मुर्गा।

रात्रिसामन् (सं॰ क्ली॰) सामभेद। (उत॰ब्रा॰ ११।४।१६)

रात्रिसूक्त (सं॰ क्ली॰) ऋग्वेदके एक सूक्तका नाम।

ऋग्वेदका १०।१२७।१-८ तक रात्रिसूक्त है। प्रथम सूक्त यथा—

"रात्री व्यख्यदायती पुरुत्रा देव्यक्षभिः।
विश्वा अधिश्रियो अधित॥" (ऋक् १०।१२७।१)

रात्रिह्रास (सं० पु०) रात्रेर्हास इव शुभ्रत्वात्, रात्रौ हासो विकासो यस्य इति वा। कुमुद, कुईं।

रात्रिहिण्डक (सं० पु०) रात्रौ हिण्डति अन्तःपुरमध्ये भ्रमतीति हिण्ड-गतौ ण्वुल्। राजाओंके अन्तःपुरका पहरेदार।

रात्री (सं० स्त्री०) रात्रि कृदिकारादिति ङीप्। १ निशा, रात। २ हरिद्रा, हलदी। रात्रि देखो।

रात्र्याट (सं० पु०) रात्रौ अटतीति अट्-अच्। १ राक्षस। (त्रि०) रातमें घूमनेवाला।

रात्र्यन्ध (सं० त्रि०) रात्रौ अन्धः। १ जिसे रातको न दिखाई देता हो, जिसे रतौंधीका रोग हो।

देवदारुके चूर्णको बकरीके दूधमें इक्कीस बार भावना दे। पीछे उसे नेत्रमें लगानेसे रात्र्यन्धरोग दूर होता है।

"देवदारोश्च वै चूर्णमजामूत्रेण भावयेत्।
एकविंशति वै वारमक्षिणी तेन चाञ्जयेत्।
रात्र्यन्धता पटलता नश्येदिति विनिश्चयः॥"
(गरुड़पु० १९६ अ०)

भावप्रकाशमें लिखा है, कि दूषित कफ जब नेत्रके तृतीय पटलमें आश्रय लेता है, तब रात्र्यन्धता होती है। दिनके समय कफ प्रायः नहीं रहता, इसी कारण रोगीको दिनमें दिखाई देता है। (भावप्र० नेत्ररो०)

चक्षुरोग और नेत्ररोग देखो।

२ वे पक्षी और पशु जिन्हें रातको न दिखाई देता हो। जैसे,—कौआ, बन्दर।

"दिवान्धाः प्राणिनः केचित् रात्रावन्धास्तथापरे।
केचिद्दिवा तथा रात्रौ प्राणिनस्तुल्यदृष्टयः॥"
(चण्डी १ अ०)

रात्र्यन्धता (सं० स्त्री०) रात्र्यन्धरोग, रतौंधी।

रात्र्याकूपार (सं० क्ली०) सामभेद।

राथकारिक (सं० त्रि०) रथकार-ठक् कुमुदादिभ्यष्ठक्। पा ४।२।८०) १ रथकारयुक्त देश। २ रथकारका अदूर-भव। ३ रथकार द्वारा निर्वृत्त।

राथकार्य (सं० पु०) रथकारस्य अपत्यं पुमान् रथकार (कुर्व्वादिभ्यो ण्यः। पा ४।१।१५१) इति ण्य। वह जो रथकार ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न हो।

राथगणक (सं० क्ली०) रथगणकस्य भावः कर्म वा, (प्राणभृज्जातिवयोवचनोद्गात्रादिभ्योऽञ्। पा ५।१।१२९) इति रथ-गणक अञ्। रथगणकका भाव या कार्य।

राथजितेय (सं० त्रि०) रथजित् नामक अप्सरागणभेद, विश्वजयीबुद्धिके विरागविशेषका उत्पादन करनेवाला।

"रथजितां राथजितेयीनामप्सरसामयं स्मरः।"
(अथर्व० ६।१३०।१)

राथन्तर (सं० त्रि०) १ राथन्तर साम सम्बन्धीय। २ रथन्तरका गोत्रापत्य। स्त्रियां ङीप्। ३ स्त्री आचार्य भेद। (वृहद्धर्म्मपुराण ५।२८)

राथन्तरायण (सं० पु०) रथन्तरका गोत्रसम्भव।

राथप्रोष्ठ (सं० पु०) असमातिका गोत्रापत्य।

राथीतर (सं० पु०) रथीतरस्य गोत्रापत्यं रथीतर (अनृष्यानन्तर्य्ये विदादिभ्योऽञ्। पा ४।१।१०४) इति अण्। रथीतरके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

राथीतरायण (सं० पु०) रथीतर (हरितादिभ्योऽञः। पा ४।१।१००) इति फक्। रथीतरके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

राथ्य (सं० त्रि०) रथ्य या रथ सम्पर्कीय।
(ऋक् १।१५७।६)

राद्ध (सं० त्रि०) राध सिद्धौ क्त। १ पक्व, राधा हुआ। २ सिद्ध, ठीक किया हुआ।

राद्धान्त (सं० पु०) राद्धः सिद्धः अन्तः निर्णयो यस्मात्। सिद्धान्त, उसूल।

राद्धान्तित (सं० त्रि०) सिद्धान्तीकृत, न्यायसूत्र परम्परा द्वारा प्रतिष्ठित।

राद्धि (सं० स्त्री०) सिद्ध होनेका भाव, सफलता।

राध (सं० पु०) राधा विशाखा तद्युती पौर्णमासी राधी सास्मिन्नस्तीति राध (सास्मिन् पौर्णमासीति। पा ४।२।२१) इति अण्। १ वैशाख मास। २ धन, सम्पत्ति।

राध (हिं० स्त्री०) पीब, मवाद।

राधगुप्त (सं० पु०) बौद्धसम्राट् अशोकके मन्त्री।

राधन (सं० क्ली०) राध-ल्युट्। १ साधना, साधनेकी क्रिया। २ प्राप्ति, मिलना। ३ तोष, तुष्टि। ४ वह वस्तु जिससे कोई कार्य किया जाय, साधना।

राधनपुर—बम्बई प्रदेशकी पालनपुर एजेन्सीका एक राज्य। यह अक्षा० २३ २६´ से २३ ५८´ उ० तथा देशा० ७१ २८´ से ७२ ३´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ११५० वर्गमील है। इसके उत्तरमें मोरवाद और तरवाद राज्य, पूरबमें बड़ोदा, दक्षिणमें अहमदाबाद जिला और झिंझुवाद तथा पश्चिममें पालनपुरके अधीन वाराही राज्य है।

राधनपुरराज्य अभी बाबीवंशकी एक शाखाके अधिकारभुक्त है। बाबीवंशके आदिपुरुष हुमायूंके साथ भारतवर्ष आये थे। शाहजहान्‌के समय बहादुर खाँ बाबी चराड़के फौजदार बनाये गये। उस समय शाहजादा मुराद गुजरातमें शासन करते थे। उनकी सहायतामें बहादुर खाँका लड़का शेर खाँ बाबी भेजा गया। १६६३ ई०में शेर खाँका लड़का जाफर खाँ अपनी बुद्धिमत्तासे राधनपुर, समी, मुञ्जपुर और तरवाड़का फौजदार हुआ। उस समय उसने अपना नाम सफदर खाँ रखा। १७०४ ई०में वह बीजापुरका और १७०६ ई०में पाटनका गवर्नर बनाया गया। उसके मरने पर उसका लड़का खाँ जहान् या खाँजी कानि जमान मुराद खाँकी उपाधि पाई। वह राधनपुर, पाटन, बड़नगर, विशाल नगर, बीजापुर और खेरालूका गवर्नर था। पीछे उसका लड़का कमालउद्दीन खाँ औरङ्गजेबके मरने पर अहमदाबादका गवर्नर हुआ। इसके समय बाबीवंशकी एक शाखाने जूनागढ़ और बालासिनर पर दखल जमाया। १७५३ ई०में रघुनाथ राव पेशवा और दामाजी गायकवाड़ने अहमदाबाद पर चढ़ाई कर दी। कमालउद्दीन खाँ शहर छोड़ देनेको बाध्य हुए। १८१३ ई०में सिन्धकी खोसास जातिने राधनपुर पर आक्रमण किया। नवाबने वृटिश सरकारसे सहायता पा कर उन्हें गुजरातसे मार भगाया। १८२० ई०में मेजर माइल्सके साथ राधनपुरके नवाबकी एक सन्धि हुई। शर्त्त यह ठहरी, कि नवाब अपने राज्यमें वृटिश-सरकारके शत्रुको आश्रय नहीं दे सकते और जरूरत पड़ने पर उन्हें वृटिश-सरकारसे मदद मिल सकती है। वर्त्तमान नवाबका नाम है एच, एच, श्री जलालुद्दीन खाँजी बाबी नवाब साहब। इन्हें ११ तोपोंकी सलामी मिलती है और गोद लेनेका भी अधिकार है।

इस राज्यमें राधनपुर नामक एक शहर और १५९ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ६० हजारसे ऊपर है। रुई और गेहूं यहांका प्रधान उपज है। राज्यकी आय चार लाख रुपयेसे ज्यादा है।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २३ ४९´ उ० तथा देशा० ७१ ३६´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ग्यारह हजारसे ऊपर है। शहरके चारों ओर १५ फुट ऊंची और ८ फुट चौड़ी दीवार खड़ी है। चारों कोनमें चार बुर्ज और आठ फाटक हैं। नगरके मध्यस्थलमें नवाबका दुर्ग और प्रासाद अवस्थित है। गुजरात, कच्छ और भावनगरके साथ यहांका वाणिज्य व्यवसाय चलता है। फते खाँ बलोचके वंशधर राधन खाँसे नगरका नामकरण हुआ है।

राधना (सं० स्त्री०) १ वाक्य। २ कथन।

राधना (हिं० क्रि०) १ आराधना करना, पूजा करना। २ काम निकालना, साधना। ३ सिद्ध करना, पूरा करना।

राधरङ्कु (सं० पु०) १ बादल, हल। २ थोड़ी वृष्टि या पाला गिरना।

राधरङ्कु (सं० पु०) शीकर, ओस।

राधस् (सं० स्त्री०) अनुग्रह, कृपा, सहानुभूति।

राधस्पति (सं० पु०) धनाधिपति, धनाढ्य व्यक्ति।

राधा (सं० स्त्री०) राध्नोति साधयति कार्याणीति राध अच्-टाप्। १ धनियोंका विक्रम। (शब्दमाला १ मह) २ विशाखा नक्षत्र। ३ आमलकी, आंवला। ४ विष्णुक्रान्ता। ५ विद्युत्, बिजली। (मेदिनी) ६ सूत अधिरथकी पत्नी। अधिरथकी पत्नी राधाने कुन्तीके गर्भसे उत्पन्न कर्णको पाला पोसा था, इसी कारण कर्ण राधासुत भी कहलाते थे। (भारत १।६७।११८ १६)

७ गोपीविशेष, श्रीराधिका, श्रीकृष्णकी वामभागांशा शक्ति।

श्रीमद्भागवतमें राधिकाका कोई उल्लेख नहीं है। उन्हें केवल कृष्ण भक्त एक प्रधान सखी बताया है। ब्रह्मवैवर्त्त, देवीभागवत और पद्मपुराण आदिमें राधिकाका

विवरण पाया जाता है । उसे यहां पर संक्षेपमें लिखते हैं।

ब्रह्मवैवर्त्त (ब्रह्मखण्डमें ५ अ०)-में लिखा है—गोलोकके रासमण्डलमें भगवान् श्रीकृष्ण देवताओंके साथ रहते थे। इसी समय उनके वाम पार्श्वसे एक कन्या उत्पन्न हो उनकी पूजा करने लगी। रासमण्डलमें यह कन्या उत्पन्न होते ही श्रीकृष्णके पास दौड़ी थी, इसीसे देवताओंने उनका नाम राधा रखा। यह श्रीमती राधा श्रीकृष्णके प्राणकी अधिष्ठात्री देवी तथा प्राणसे उत्पन्न होनेके कारण उनके प्राणसे भी बढ़ कर प्रियतमा थीं।

देवी राधा उत्पन्न होते ही सोलह वर्षकी, रूप यौवनसे सम्पन्न, अत्यन्त उज्ज्वल वस्त्रधारिणी, हंसमुखी और मनोहारिणी हुईं। यह देवी अत्यन्त कोमलाङ्गी तथा जगत्की सभी सुन्दरीसे सौन्दर्य्यवती थी।

श्रीराधा इस प्रकार आविर्भूत हो श्रीकृष्णसे प्रेमालाप करने लगी और उनका कोमल शरीर देखते देखते प्रफुल्ल चित्तसे रत्नसिंहासन पर बैठ गई। इस समय श्रीराधिकाके सभी लोमकूपोंसे रूप और वेशरचनामें ठीक उसी तरहकी गोपाङ्गनाएं आविर्भूत हुईं। इन सब गोपियोंकी संख्या लाख करोड़ थी। उधर श्रीकृष्णके लोमकूपोंसे भी उसी तरहके गोपगण तथा रंगविरंगकी गायें उत्पन्न हुईं।

गोलोकमें इसी प्रकार श्रीमती राधिकाकी उत्पत्ति हुई थी।

यही गोलोकोद्भवा राधा वृन्दावनधाममें अवतीर्ण हुई थीं। वृन्दावनधाममें अवतीर्ण होनेका कारण ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें इस प्रकार लिखा है,—

एक दिन भगवतीने महादेवसे श्रीराधिकाकी उत्पत्ति, नामनिरुक्ति और ध्यानादिका विषय पूछा था। देवदेव महादेवने अति गोपनीय श्रीमतीके जन्मादिका वृत्तान्त इस प्रकार कहा था,—

एक दिन इच्छामय श्रीकृष्णने गोलोकमें वृन्दावनके रम्यवनमें टहलनेकी इच्छा प्रकट की। इच्छामयकी इच्छा होते ही देवदेवी राधा उत्पन्न हुईं। इस समय श्रीकृष्ण दो रूप हो गये। दक्षिणाङ्गमें उन्होंने श्रीकृष्णमूर्त्ति और वामाङ्गमें राधाका रूप धारण किया था। परम रमणीया राधिका देवीको रासमण्डलमें रासविहारीके साथ रमण करनेकी इच्छा हुई। श्रीकृष्णको भी रमणोत्सुक जान कर वे उनके पास दौड़ी थी, इसीसे वे राधा कहलाईं। भक्तगण 'रा' शब्दके कहनेसे मुक्तिपद और 'धा' कहनेसे हरिपद पाते हैं, इसलिये भी उनका राधा नाम हुआ। श्रीमती राधा सुदामाके शापसे वृन्दावनमें अवतीर्ण हुई थी।

किसी एक समय राधानाथ गोलोकमें वृन्दावन-स्थित शतशृङ्गपर्वत पर विरजा नाम्नी एक गोपिकाके साथ विहार करते थे। राधिकाको चार दूतोंको यह हाल मालूम हो गया सो उन्होंने राधाके पास जा कर कुल वृत्तान्त कह सुनाया। यह सुनते ही राधाके क्रोधका पारावार न रहा और जहां श्रीकृष्ण विहार करते थे वहींके लिये वे रवाना हो गईं। श्रीकृष्णके साथी सुदामाने श्रीराधाका आगमन-कोलाहल सुन कर श्रीकृष्णको सावधान कर दिया और आप गोपगणोंके साथ भाग चले। भगवान् कृष्ण भी प्रेममयी राधाके प्रेमभङ्गभयसे विरजाको छोड़ भागे। विरजादेवी श्रीराधाके भयसे प्राण विसर्जन कर वहीं नदीरूपमें रहने लगी। राधिका जब वहां पहुंची, तब किसीको न पा कर वापस आईं।

पीछे श्रीकृष्ण अष्ट सखाके साथ राधाके पास गये। राधाने उन्हें खूब फटकारा। किन्तु सुदामाको कृष्ण-निन्दा सुन कर रहा न गया सो उन्होंने भी दो चार बातें सुनाई। इस पर राधाने अत्यन्त क्रुद्ध हो सुदामाको शाप दिया, कि 'तुम क्रूर असुरयोनि लाभ करो।' सुदामा भी कब चुप रहनेवाले थे, उन्होंने भी शाप दिया कि, 'तुम भी गोलोकसे भूलोक जा कर गोप गृहमें गोपकन्यारूपमें जन्म लोगी; सौ वर्ष तक असह्य कृष्णविरहदुःख भोग करोगी और भगवान् भूभारहरणके लिये अवतीर्ण हो तुम्हारे साथ मिलेंगे।' सुदामाके शापसे राधाने गोकुलमें जन्म लिया और राधाके शापसे सुदामा शङ्खचूड़ नामसे असुरयोनिको प्राप्त हुए।

राधा वराहकल्पमें राधिका गोकुल नगरमें वैश्यवर वृषभानुकी कन्यारूपमें अवतीर्ण हुईं। वृषभानुकान्ता कलावतीने वायुगर्भ धारण किया था और यथा समय

उसके वायुप्रसव करने पर अयोनिसम्भूत श्रीराधा उत्पन्न हुई। बारह वर्षकी उमरमें वृषभानुने रायाण वैश्यके साथ श्रीराधाका ब्याह करा दिया। श्रीराधा वृषभानुभवनमें अपनी छाया रख कर अन्तर्हित हो गई थीं। उसी छायाके साथ रायाणका विवाह हुआ था। चौदह वर्ष बाद आने पर भगवान् कृष्ण कंसभयके बहाने बालकरूपमें गोकुल आये। रायाण कृष्णजननी यशोदाके भाई और गोलोकमें श्रीकृष्णके अंशरूप थे। अतएव रायाण सम्बन्धमें श्रीकृष्णके मामा हुए। जगत्श्रेष्ठ पुण्यतम श्रीवृन्दावनके वनमें श्रीकृष्णराधाका लीला विहार होता था।

गोपोंका स्वप्नमें भी श्रीराधाका रूप दर्शन नहीं हुआ था। श्रीराधा स्वयं श्रीकृष्णके वक्षमें तथा रायाणके घर छायारूपमें रहती थीं। ब्रह्माने श्रीराधाके चरणदर्शनकी कामनासे ६० हजार वर्ष पुष्करतीर्थमें कठोर तपस्या की थी। पीछे भगवान्‌ने जब पृथ्वीका भार दूर करनेके लिये भारतवर्षमें नन्दगोपके घर जन्म लिया, तब ब्रह्माको श्रीराधाके चरणकमलका दर्शन हुआ था। श्रीकृष्णने पुण्य वृन्दावनधाममें श्रीराधाके साथ बहुत काल विलास किया था। पीछे सुदामाके शापसे राधाकृष्णका विच्छेद हुआ। इसके बाद वृषभानु, नन्द और गोपगोपी सबके सब श्रीराधाकृष्णके साथ गोलोकधाममें गये। श्रीराधाका यह उपाख्यान पापनाशक और पुत्रपौत्रादिकमसे अभय मङ्गलदायक है।

श्रीकृष्ण द्विभुज और चतुर्भुज दोनों रूपमें विलसते हैं। द्विभुज श्रीकृष्णकी सर्वोत्तमा श्रीराधा ही पत्नी हैं तथा चतुर्भुज कृष्णके चार प्रियतमा हैं,—महालक्ष्मी सरस्वती, गङ्गा और तुलसी।

पण्डितोंको चाहिये, कि वे पहले श्रीराधाका नाम ले कर पीछे कृष्णका नाम लें। कृष्णनामके बाद राधाका नाम लेनेसे ब्रह्महत्याका पाप होता है। हरि कार्त्तिकी पूर्णिमाके रासोत्सव उपलक्षमें गोलोक-रासमण्डलमें रासेश्वरीकी पूजा करके राधाकवच गले और बाहुमें पहनते हैं। इस समय श्रीराधा जगत्पति कृष्णको और कृष्ण भी श्रीराधिकाको पूजा करते हैं।

(ब्रह्मवैवर्त्तपु॰ प्रकृतिख॰ ४८।५० अ॰)

राधिकाके सोलह नाम ये हैं,—राधा, रासेश्वरी, रासवासिनी, रसिकेश्वरी, कृष्णप्राणाधिका, कृष्णप्रिया, कृष्णस्वरूपिणी, कृष्णवामांशसम्भूता, परमानन्दरूपिणी, कृष्णा, वृन्दावनी वृन्दा, वृन्दावनविनोदिनी, चन्द्रावली, चन्द्रकान्ता और शतचन्द्रनिभानना। श्रीमती राधिकाके ये सोलह नाम सबसे श्रेष्ठ तथा पापनाशक हैं।

इन सब नाम निरुक्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—'रा' का अर्थ दान और 'धा' का अर्थ निर्वाणमुक्ति है। जो भक्तोंको निर्वाणमुक्ति प्रदान करती हैं वही राधा हैं। ये रासेश्वर श्रीकृष्णकी पत्नी हैं इसलिये रासेश्वरी तथा रासमण्डलमें वास करती हैं, इस कारण रासवासिनी कहलाईं। समस्त रसिकादेवियोंकी ईश्वरी होनेके कारण पण्डितोंने इनका रसिकेश्वरी नाम रखा। ये परमात्मा श्रीकृष्णके प्राणसे भी बढ़ कर प्यारी हैं, इससे कृष्णप्राणाधिका और श्रीकृष्णकी अतिशय प्रिया होनेसे कृष्णप्रिया हुईं। ये अवलीलाक्रमसे कृष्णरूप विधान करनेमें समर्थ तथा सर्वांशमें श्रीकृष्णसदृशी हैं इस कारण कृष्णस्वरूपिणी कहलाईं। कृष्णके वाम अंशसे उत्पन्न होनेके कारण कृष्णवामांशसम्भूता और स्वयं मूर्तिमती परमानन्दराशि होनेके कारण ये परमानन्दरूपिणी नामसे प्रसिद्ध हुईं। 'कृष' का अर्थ मोक्ष, णकारका अर्थ उत्कृष्ट और आकारका अर्थ दान बोधक है। ये उत्कृष्ट मोक्षदायिनी हैं, इससे कृष्णा हुईं। वृन्दका अर्थ सखी और आकारका अर्थ अस्तिबोधक है, इनकी सखियां विद्यमान हैं, इस कारण वृन्दा कहलाईं। विनोदका अर्थ आनन्द है जो इनके वृन्दावनमें सम्पूर्णरूपसे विराजित है इससे इन्हें वृन्दावनविनोदिनी कहते हैं। राधिकाका मुखचन्द्र और नखचन्द्रावली निरन्तर विद्यमान रहनेके कारण चन्द्रावली नाम पड़ा। इनकी मुखकान्ति चन्द्रमाके समान है इससे चन्द्रकान्ता और मुखमण्डल सौ चन्द्रमाके समान शोभता है इससे ये शतचन्द्रनिभानना कहलाती हैं।

जो नित्यप्रति राधिकाके ये सोलह नाम जपते हैं वे इस लोकमें राधामाधवके चरणकमलमें भक्ति प्राप्त कर परलोकमें अणिमादि सिद्धि पाते हैं तथा उनके दास्य कार्यमें नियुक्त हो सर्वदा उनके साथ कालयापन करते हैं। (ब्रह्मवै॰ श्रीकृष्णजन्मख॰ १७ अ॰)

चैत्रमास शुक्लपक्ष पुष्यानक्षत्रयुक्त नवमी तिथिको माघी रातमें पद्मिनी देवी विविध अलङ्कारोंसे परिशोभित कालिन्दीजलमें मायामय डिम्बरूपमें आविर्भूत हुई। महामाया कात्यायनी वह असीम तेजोमय डिम्ब ले कर कालिन्दीके किनारे अपपरायण वृषभानुके समीप उपस्थित हो बोलीं, 'वत्स ! तुम्हारी पत्नीको भक्तिसे मैं बहुत प्रसन्न हूं, उसे कन्यारत्न प्राप्त होगा।' यह कह कर वे अन्तर्हित हो गई। वृषभानुने यह डिम्ब अपनी स्त्री को दिया। वे बड़े आनन्दसे देखती थीं कि उसी समय डिम्ब दो भागोंमें बट गया। उसके बीचमें भुवनमोहिनी विद्युत्सदृशाकार सौभाग्यवर्द्धिनी कन्या देख कर वह बहुत विस्मित हो गई। अनन्तर वृषभानुने अपनी पत्नी कीर्त्तिदाके साथ मिल कर कन्याका राधिका नाम रखा।

'एकविद्युत्समा देवी यत्र यस्मात् द्विधाभवत्।
तस्मात् राधिका नाम सर्वशास्त्रेषु गीयते॥'

(राधातन्त्र ७ पटल)

वह देवी एकविद्युत्समा धारण करती थी इस कारण सभी लोकोंमें वह राधिका नामसे प्रसिद्ध हुई। वह पद्मिनी दूसरे वर्ष कृष्णको पानेके लिये षोडशोप चारसे महाएश्वर्यरूपिणी महाकालीकी पूजा करने लगी।' राधातन्त्रमें कुछ और तरहसे लिखा है—

विष्णुवल्लभा मृगनयना राधा ही महामाया जगद्धात्री, त्रिपुरा और परमेश्वरी हैं, पद्मगन्धिनी ही उनकी दूती हैं, वे भी कृष्णभक्ता और कृष्णवल्लभा हैं। वृषभानुकी दृढ़भक्तिसे आकृष्ट हो उन्होंने उनकी कन्या रूपमें जन्म लिया। वे ही निर्जन यमुनोपवित यमुनाके अकर्म पद्मवनएकका आश्रय कर महाकालीका महामन्त्र जप रही हैं। उन्होंने ही फिर दूसरी राधाकी सृष्टि की थी। यही दूसरी राधा वृषभानुगृहस्थिता चन्द्रावली है। पूर्वोक्त राधिकामें जो जो गुण हैं पद्मिनीभूत राधा में भी वही सब गुण देखे जाते हैं। इस प्रकार तीन राधिका निर्दिष्ट हुई है।

"राधिका त्रिविधा प्रोक्ता कन्या तु पद्मिनी तथा।
न पश्येत् परमेशानि चन्द्रावली त्रिविधा स्मृता॥
मानवानां महेशानि वराकाणां हि का कथा।
आरम्भपात्र इत्या पद्मिनी पद्ममालिनी।
त्रिपुराया महेशानि पद्मिनी अनुचारिणी॥"

(८म पटल)

इन तीन राधाओंमें वृषभानुगृहस्थिता राधा ही कृत्रिमा और अयोनिसम्भवा पद्मिनी ही परात्परा हैं।

(७म पटल)

८ वैष्णवको पूर्णिमा। ९ प्रीति, अनुराग। १० एक वृत्तका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें रगण, तगण, मगण, यगण और एक गुरु मिल कर १३ अक्षर होते हैं।

राधाकथन—पारसीय मत्सीविध भेद।

राधाकान्त (सं० पु०) राधायाः कान्तः। श्रीकृष्ण।

राधाकान्त तर्कवागीश—पुराणार्थप्रकाशके प्रणेता।

राधाकान्तदेव—प्रायश्चित्तचन्द्रिकाके रचयिता।

राधाकान्त देव—जगद्विख्यात शब्दकल्पद्रुम नामक संस्कृत अभिधानके प्रणेता। इन्होंने प्राचीन संस्कृतके श्लोकाकारमें लिखित शब्दोंको वर्णानुक्रमसे सजा कर अङ्गरेजी ग्रन्थकोषके आधार पर सबसे पहले यह कोष सङ्कलन किया। इसमें प्राचीन हिन्दू जगत्के अनुष्ठेय धर्मकर्म सम्बन्धीय पद्धति, पौराणिक उपाख्यान व्रतकर्म तथा गणित, विज्ञान, सङ्गीतशास्त्र, दर्शन, वेदान्त आदि सभी विषय सङ्कलित हैं। इस संस्कृत अभिधानसे केवल उनकी का नहीं, पण्डितप्रधान समस्त बङ्गभूमिका ही मुख उज्ज्वल हुआ है।

कलकत्तेके विख्यात शोभाबाजार-राजवंशमें १७०५ शकके १ला पौषको (१२वीं मार्च १७८४ ई०) रा। कलकत्ता मिमलामें मामाके घर जन्म हुआ। ये महाराज नवकृष्णके पौत्र तथा उनके पोष्यपुत्र गोपीमोहन देवके पुत्र थे। १७९७ ई०में महाराज नवकृष्णके मरने पर उनके पुत्र राजा राजकृष्णके साथ गोपीमोहनका विषयविभाग ले कर तकरार खड़ा हुआ। कलकत्ता सुप्रीमकोर्टके विचारसे दोनों को समान सम्पत्ति मिली इस समयसे गोपीमोहन पुराने महलमें रहने लगे।

बचपनसे ही राधाकान्तको विद्याशिक्षामें विशेष अनुराग था। उन्होंने थोड़े ही समयमें संस्कृत अरबी फारसी और अङ्गरेजीभाषा सीख ली थी। उनका गम्भीर ज्ञान और शिक्षाकी प्रबलता देख कर बिशप हेबरने लिखा है —"He (Radhakanta Dava) is an young

man of pleasing countenance and manners, speaks English well and has read many of our popular authors, particularly historical and geographical'. रिकार्डसकी भारतीय विवरणोंमें उनकी मानसिक उन्नतिका यथेष्ट परिचय पाया जाता है।

महाराज नवकृष्णने बड़ी धूमधामसे प्रसिद्ध गोष्ठीपतिवंशीय गोपीकान्त सिंह चौधरीकी कन्याके साथ राधाकान्तका विवाह दिया। इस विवाहके प्रभावसे राधाकान्तने दक्षिणराढ़ीय कायस्थ कुलीन समाजका १३वाँ गोष्ठीपतित्व लाभ किया।

अपने पितामह और पिताके जैसे वे राजभक्त थे। वृटिश सरकार जब कोई काम करनेकी इच्छा प्रकट करती थी तब राधाकान्त उसे कर डालनेके लिये कोई कसर उठा न रखते थे। विद्योन्नतिके विषयमें सभी समय उनका आग्रह दिखाई देता था। १८१६ ई०में वे सर एडवर्ड हाइड इष्टके साथ मिल कर हिन्दू-कालेजकी प्रतिष्ठाके लिये तैयार हो गये। ह, ह, विलसनकी सहायतासे उक्त विद्यालयकी उन्नतिके लिये इन्होंने बहुत चेष्टा की। ३४ वर्ष गवर्मेण्टनिर्वाचित कलकत्ता संस्कृत कालेजके परिदर्शक रह कर इन्हों ने संस्कृत भाषामें अच्छी उन्नति कर ली थी।

कलकत्तेकी स्कूलबुक सोसाइटी स्थापित होने पर देशी हिन्दुओंने यहां अनुमोदित और मुद्रित ग्रन्थावली का पाठ्यरूपमें व्यवहार करना चाहा। उन्होंने अकारण संदेह किया था, कि इस सभाके सम्पादित ग्रन्थोंमें हिन्दूधर्मविरुद्ध कोई न कोई विषय लिपिबद्ध रहेगा ही। जनसाधारणका यह अमूलक सदेह दूर करनेके लिये राजा राधाकान्त उस सभाके सहकारी सम्पादक हुए। इस सभामें पड़ कर वे देशीय विद्यालय और सभाओंकी शिक्षाविषयिणी उन्नतिमें उत्साह दिखाने लगे। पीछे उस सभाके पण्डित गौरमोहन विद्यालङ्कारको उत्साह दिला कर इन्होंने 'स्त्रीशिक्षाविषयक' नामक स्त्रीशिक्षाकी परिपोषक एक पुस्तकका प्रचार कराया। १८२० ई०में बङ्गला भाषामें सर्वप्रथम नीतिकथा और अङ्गरेजी ढंग पर Spelling Book निकाली गई। इस प्रकार पुस्तक प्रचार करनेके कारण ग्रेट ब्रिटेन और आयर्लैण्डकी रायल एशियाटिक सोसाइटीने इनकी बड़ी तारीफ की। स्त्रीशिक्षाके पृष्ठपोषक हो इन्होंने स्वयं प्रबन्ध लिख कर जनसाधारणका चित्त आकर्षण किया था। इस विषयमें इनका विशेष अध्यवसाय देख कर बेथुन साहबने इन्हें स्त्रीशिक्षाका प्रधान बताया है।

Agricultural and Horticultural Society-के सहयोगी सम्पादक हो इन्होंने उक्त सभाकी उन्नतिके लिये बड़ा प्रयत्न किया। इस समय वे Roy, As-Soc of Great Britain and Ireland सभाके सदस्य, लिपजिककी German Oriental Society और बार्लिनके Roy, Academy of Sciences, कोपेनहेगनकी Roy. Soc of Northern Antiquaries, सेण्टपिटर्सवर्गके Imp. Academy of Sciences, बोष्टनके American Oriental Society और भियेनाके Kaiserlichen Academy-के सभ्य हुए। वे समय समय पर उन सब सभाओंकी पत्रिकादिमें भी प्रबंध लिखा करते थे।

जिस कार्यके लिये राधाकान्त समस्त जगद्वासीके निकट परिचित हुए हैं, वह जगद्विख्यात 'शब्दकल्पद्रुम' नामक बृहत् संस्कृत अभिधान है। उन्होंने १८२२ ई०में उसका प्रथम भाग मुद्रण कर प्रचार किया। प्रायः ४० वर्ष परिश्रमके बाद १८५८ ई०में उसका अष्टम वा अन्तिम भाग प्रकाशित हुआ। यह महाग्रन्थ उन्होंने भारतीय पण्डितमण्डली तथा यूरोप और अमेरिकाके संस्कृतभाषाभिज्ञ सभी सुधियोंको उपहार दिया था। संस्कृत साहित्यानुरागी किसी भी व्यक्तिके प्रार्थना करने पर वह उन्हें खाली हाथ लौटने नहीं देते थे। इसके सिवा प्रत्येक साहित्यसभाको भी उन्होंने निज संकलित एक एक शब्द कल्पद्रुम प्रदान किया था। उनका दिया हुआ ग्रन्थ पा कर यूरोप और अमेरिकाके प्रत्येक शिक्षित सभाने ही उसे Honorary और Corresponding member रूपमें ग्रहण किया। यहां तक कि, रूसपति जार और डेन्मार्कके राजा ७म फ्रेडरिकने उन्हें सम्मानार्थ एक पदकसम्वलित स्वर्णहार भेजा। उस चेनके प्रत्येक दानेमें FVII अङ्कित था। विलायतके कोर्ट आव डिरेक्टरके हाथसे वह हार उनके पास आया था।

संस्कृत और बंगला साहित्यकी आलोचना और उन्नतिमें रातदिन लग रहने पर भी उन्होंने समाजनीति और राजनीतिका परित्याग नहीं किया था। ये देशी लोगोंकी भलाईके लिये बहुतसे काम कर गये हैं। १८३५ ई०में ये गवर्मेंट द्वारा जस्टिस आफ दि पीस और आनरेरी मजिस्ट्रेट नियुक्त हुए। कई वर्ष तक इन्होंने इस कार्य्यमें भी विशेष कुशलता दिखलाई थी।

१८५१ ई०में वृटिश-इण्डियन सभाकी प्रतिष्ठा हुई। सर्व्वोने आदरपूर्व्वक इन्हें सभापति निर्वाचित किया। इस पद पर ये जीवनके अन्तिम दिन तक रहे।

१८३७ ई०में इनके पिताकी मृत्यु हुई। इस समय भारत-गवर्मेंटने इन्हें राजा बहादुरकी उपाधि और खिलअत दी। १८५८ ई०में शब्दकल्पद्रुम अभिधान समाप्त होने पर इन्होंने भारतेश्वरी विक्टोरियाको यह ग्रन्थ उपहारमें भेजा। महारानीने उस उपहारसे प्रसन्न हो कर इन्हें विशेष राजानुग्रहके निदर्शनस्वरूप एक पदक भेजा। उस पदककी एक पीठ पर महारानीका प्रतिमूर्त्ति और दूसरी पर From Her Majesty Queen Victoria to Raja Radha Kanta Bahadur खुदा हुआ था। उस पदकके साथ भारतसचिव सर चार्ल्स उडने इन्हें महारानीके आदेशानुसार एक पत्र इस प्रकार लिखा था—"I have laid before the Queen your letter with copy of the Sabdakalpadrum forwarded by you for presentation to Her majesty and I am commanded to acquaint you that Her Majesty has received the work very graciously and fully appreciating the spirit of loyalty in which you have transmitted it has directed me to forward me to you the accompanying medal.

शब्दकल्पद्रुम द्वारा इन्हें विद्वत्समाजमें ऊंचा आसन मिलने पर भी उसमें उनके आश्रित पण्डितोंका भी परिश्रम देखा जाता है। ये एक सुकवि भी थे। उनका रचित पद 'राधाकान्त-पदावली' में मुद्रित हुआ है। अभी यह ग्रन्थ नहीं मिलता। उन पदोंमें इनके हृदयनिहित ,भगवद्भक्तिका प्रतिच्छाया दिखाई जाती है। ये जीवनके शेष समयमें संसाराश्रमका त्याग कर वृन्दा-

वन गये और वहीं उन सब पदोंकी रचना करते थे।

उन्होंने जिस हरफमें अपनी पुस्तक छपवाई थी, वह कुछ समय तक 'राजाका हरफ' नामसे प्रचलित था। क्योंकि उस समय और कोई पुस्तक इस अक्षरमें नहीं छपी थी।

१८५८ ई०में विख्यात सिपाहीविद्रोहमें विजयी अंगरेजी सेनाने जब दिल्लीका पुनरुद्धार और लखनऊका उद्धार किया, तब इन्होंने राजभक्तिके निदर्शनस्वरूप अपने शोभाबाजार प्रासादमें अंगरेज गवर्मेंटके प्रधान व्यक्तियोंको एक Ball और भोज दिया था। इस समयके समारोहकी बातका उल्लेख करते हुए Over land Englishman नामक पत्रिकाने लिखा है, कि एक सप्ताह पहले बङ्गाली-समप्रदायने क्लाइव और उनके साथियोंको ले कर महाराज नवकृष्णने शोभाबाजार प्रासादमें जो विजयोत्सव मनाया था, उन्हीं के राजभक्त पौत्रने प्राचीन इङ्गलैण्ड के प्रति वैसी ही श्रद्धा रखते हुए अपने वंशकी भक्तिपराकाष्ठा दिखलाई है।

१८६० ई०को भारतवर्षमें जब शान्ति स्थापित हुई, तब पायरोटेकनिक प्रदर्शनीके अध्यक्षोंको इन्होंने एक भोज दिया। उस समय शोभाबाजारका राजप्रासाद जिस भावमें सजाया गया था उस सम्बन्धमें इङ्गलिश मैनपत्र में लिखा है,—"The tout ensemble of the Raja's mansions was almost like a dream of the Arabian Nights and the large sheet of water with its stone terraces and the lights gleaming on its surface was as like the feast of Beltshazzar as anything that Martin has ever drawn उसी साल माननीय Ashley E(दें) (पीछे बङ्गालके छोटे लाट) आदि महोदयोंके विलायत जानेसे राजाका एक बड़ा तैलचित्र प्रस्तुत हुआ एशियाटिक सोसाइटीमें रखा हुआ है।

१८६४ ई०को ८४ वर्षकी ... ये संसारका मायामोह ... वृन्दावनधाममें आ कर रहने ... वाद हिन्दूकुल पवित्र ... १९वीं नवम्बर १८६६ ई०को भारत ... लगे। यहां रहने ... आगत नगरमें वकीलका दरवार बैठाया ... प्रतिनिधि ... राधाकान्त निस्पृह हो निर्जन स्थानमें ईश्वरकी ... गया ... आमें मग्न थे। राजाके आदेशसे इन्हें उस सभामें

आमन्त्रण कर भारत-प्रतिनिधिने K. C. S. I. की उपाधि, २१ पार्चासकी खिलअत तथा सम्मानार्थ हाथी घोड़े दिये थे। कहते हैं, कि जब राजाने दरबार-मण्डपमें प्रवेश किया, तब भारत प्रतिनिधिने उनका स्वागत करने के लिये अपना आसन छोड़ दिया था। उसके साथ साथ अन्यान्य राजोंने खड़े हो कर उनका गौरव बढ़ाया था। स्वयं भारत प्रतिनिधिने राजाके कण्ठस्थित महाराणी विक्टोरिया और ७म फ्रेडरिकका दिया हुआ मूल्यवान् कण्ठहार बड़े चावसे देखा था।



राधाकान्त देव।

१८६७ ई०की १६वीं अप्रिलको ... वृन्दावनधाममें पञ्चत्वको प्राप्त हुए। सुना ... ण हवाश रहते अपने आत्मीय और भृत्योंको कर्त्तव्य विषयमें उ... दे, कि वे ... दे कर मृत्युके दो घंटे पहले दो तले मकान परसे नीचे उतरे और अपनी कुञ्जवाटिकाके मध्यस्थित तुलसी कुञ्ज की धूली पर लेट माला जपते जपते स्वर्गधामको सिधारे।

उनका मृत्युसंवाद तार द्वारा कलकत्ता पहुँचाया गया। यहाँ उनके देशीय बन्धु बान्धवोंने १८६७ ई०को १४वीं मार्चको ब्रिटिश इण्डियन एसोसियेशन हालमें एक सभा की। उस समय चंदेमें जितना रुपया उठा था उससे उनकी एक मार्बल प्रतिमूर्त्ति और तैलचित्र प्रस्तुत हुआ। प्रतिमूर्त्ति इण्डियन हालमें और तैलचित्र ब्रिटिश इण्डियन सभागृहमें रखा हुआ है। इसके सिवा और कुछ रुपयेसे गवर्मेण्ट संस्कृतकालेजकी बी, ए, परीक्षाके पहले संस्कृत परीक्षामें उत्तीर्ण प्रथम छात्रको एक स्वर्ण पदक देनेकी व्यवस्था की गई।

आपके सुपुत्र कुमार राजेन्द्रनारायण देवने १८६६ ई०का ३०वीं अप्रिलको 'राजाबहादुर' की उपाधि पाई। राजेन्द्रनारायणके पुत्र कुमार गिरिन्द्रनारायण देव ज्वाइण्ट मजिष्ट्रेटके पद पर सुशोभित थे।

राधाकान्त शर्म्मन्—वस्तुतत्त्वके रचयिता।

राधाकृष्ण (सं० पु०) १ राधा और कृष्ण। २ धातुरत्नावलीके प्रणेता।

राधाकृष्ण—एक ग्रन्थकार। १ अध्यात्मरामायणरहस्यके प्रणेता। २ ओषधिनामावली, कोषमंजूषा और निघण्टुके रचयिता। ३ चारुचर्याशिक्षाकी टीकाके प्रणेता। ४ जगन्नाथचरित्र और जगन्नाथस्तोत्रके रचयिता। ५ प्रतिष्ठापद्धति और शिवालयप्रतिष्ठा नामक दो ग्रन्थके प्रणयनकर्त्ता। ६ रामायणसारसंग्रहके रचयिता। ७ सर्वतन्त्रके प्रणेता। ८ राधाकृष्णदीपक रचयिता।

राधाकृष्ण गोस्वामी—शब्दार्थ नामक व्याकरण और वैयाकरणसर्वस्वसूचिके रचयिता।

राधाकृष्णदास—भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके फुफेरे भाई। बाबू राधाकृष्णदास भारतेन्दुकी फुआ गंगाबीबीके दूसरे पुत्र थे। इनके पिताका नाम कल्याणदास था और बड़े भाईका नाम जीवनदास।

इनका जन्म श्रावण सुदि पूर्णिमा सं० १९२२ में हुआ था। इनकी जब केवल दस महीनेकी अवस्था थी, तब ही इनके पिताका स्वर्गवास हो गया। तदनन्तर थोड़े दिनोंके बाद इनके बड़े भाई भी चल बसे। अतः बाबू हरिश्चन्द्रने इन्हें अपने घर बुला लिया, और वे ही इनका लालन पालन करने लगे। इनकी शिक्षाका भी प्रबन्ध स्वयं भारतेन्दुने ही किया था। हिन्दी और उर्दूकी साधारण शिक्षा हो जाने पर ये स्कूलमें पढ़नेके लिये बैठाये गये। सर्वदा रोगाक्रान्त रहनेके कारण इनकी अच्छी शिक्षा तो नहीं हो सकी, तथापि सत्रह वर्षकी अवस्थामें इन्होंने एन्ट्रेंश क्लास तकका अभ्यास कर लिया। बंगला और गुजराती भाषाओंका भी ज्ञान इन्होंने सम्पादन कर लिया था। दुःखिनी बाला, निःसहाय हिन्दू, महारानी पद्मावती, प्रताप नाटक आदि कोई पचीस पुस्तकें इन्होंने हिन्दीमें लिखी हैं। बाबू राधाकृष्णदास काशी नागरीप्रचारिणी सभाके मुख्य संस्थापकोंमेंसे थे। ये अपने एक मित्रके साथ ठेकेदारीका काम करते थे। चौखम्भा बनारसमें इनकी एक दूकान भी है। ४२ वर्षकी अवस्थामें इनका देहान्त हुआ।

राधाकृष्ण वेदान्तवागीश—एक प्रसिद्ध पण्डित। ये सिद्धान्तचन्द्रिकाके प्रणेता शिवचन्द्रके गुरु थे।

राधाकृष्णशर्मा—संक्षिप्तसार व्याकरणकी धातुरत्नावलीके रचयिता। १७६४ ई०में यह ग्रन्थ समाप्त हुआ।

राधाचरण कवीन्द्रचक्रवर्त्ती—भक्तहारकौस्तुभ टीकाके प्रणेता तथा वृन्दावनचन्द्रके पिता। ये भी एक प्रसिद्ध पण्डित थे।

राधाजन्माष्टमी (सं० स्त्री०) १ राधाकी जन्माष्टमी। राधाने जिस अष्टमीमें जन्मग्रहण किया था उसे राधाजन्माष्टमी कहते हैं। २ व्रतविशेष, राधाष्टमीव्रत। राधाष्टमी देखो।

राधातन्त्र (सं० क्ली०) एक तन्त्रका नाम जिसमें मन्त्रोंके अतिरिक्त राधाकी उत्पत्तिका भी रहस्यपूर्ण वर्णन है।

राधातनय (सं० पु०) राधायाः सूतपत्न्यास्तनयः, तया पालितत्वात् तथात्वं। कर्ण।

राधादामोदर—मथुराके प्रसिद्ध पण्डित। १ छन्दलक्षण पर्यन्तके प्रणेता। २ छन्दःकौस्तुभके रचयिता। ३ वेदान्तस्यमन्तक नामक वेदान्तग्रन्थके प्रणेता। ये उड़ीसामें रहते थे और चैतन्यसम्प्रदायभुक्त थे।

राधानगर—१ त्रिपुरा राजधानी आगरतलाके उपकण्ठ स्थित एक प्राचीन नगर। २ ब्राह्मणभूमिके अन्तर्गत

होती तब तक मैं भी किसी हालतसे प्रसन्न नहीं हो सकता मेरा लाख वार नाम जपनेसे जो फल होता है, सिर्फ एक वार राधाकृष्णका नाम लेनेसे उससे कहीं अधिक फल होगा। जो स्त्री यह व्रत करती हैं वह इस लोकमें अनेक प्रकारका सुख भोग कर परलोकमें राधा कृष्णके चरणोंमें स्थान पाती हैं।"

राधासुत (स० पु०) राधायाः सुतपत्न्याः सुतः। कर्ण।

राधि (सं० स्त्री०) धनी।

राधिक (सं० पु०) राजा जयसेनका पुत्र।

राधिका (सं० स्त्री०) राधा, व्रजामण्डलेश्वरी और श्रीकृष्णकी प्रेमभिखारिणी। पौराणिक राधाका तथा रूपसनातन गोस्वामी और जयदेव आदि कविवर्णित राधाका रूप इच्छामयकी इच्छासे उत्पन्न है। व्रजकी राधा वृषभानुदुहिता और रायानवनिता हैं। राधिकाने कृष्णकी प्रेमाकाङ्क्षिणी हो कर वृन्दावनके प्रति कुञ्जको नयनजलसे प्लावित कर दिया था।

ब्रह्मवैवर्त्त-प्रकृतिखण्डके २४वें अध्यायमें राधिकाका रूप इस प्रकार लिखा है,—ये श्रीकृष्णकी वामार्द्ध अमूल्यरत्नाभरणा, कोटिपूर्णशशिप्रभा, तप्तकाञ्चनवर्णा, तेजोमयी, सस्मिताननां, शरत्पद्मनिभानना, मालतीमाल्यमण्डिता, गङ्गाधारानिभशुभ्र-मुक्ताहारशोभिनी, सुमेरु गिरिसन्निभा, कस्तूरीपत्रचित्रिता, मङ्गलार्ह स्तनयुगशालिनी, नितम्बश्रोणिभारार्त्ता और नवयौवनसंयुक्ता है। उधर जयदेवकी राधा सव्रीड-इङ्गितसखीवदना, दन्तरुचिकौमुदीयुक्ता, स्फुरदधरसीधुशालिनी, कमलमुखी, खरनयनशरवातवर्षिणी, तन्वी, नीलनलिनाभलोचना, कुचकुम्भोपरिहित मणिमयहारा, अलक्तरस रञ्जित स्थलकमलगञ्जिपदयुगला हैं। इन दोनों वर्णनमें श्रीकृष्णका रमणोत्सुकत्व रहते हुए भी स्वर्गीय और मर्त्यभावकी पृथकता स्पष्ट देखी जाती है।

श्रीराधा-प्रकरण ६ष्ठ और ७म श्लोक।

उक्त पुराणके श्रीकृष्ण जन्मखण्डके १३वें अध्यायमें राधा शब्दकी व्युत्पत्ति इस प्रकार लिखी है:—

"रेफो हि कोटि जन्माघ कर्मभोग शुभाशुभम्।
आकारो गर्भवासञ्च मृत्युञ्च रोगमुत्सृजेत॥
धकारमायुषो हानि माकारो भवबन्धनम्।
* * *
रेफो हि निश्चलां भक्ति दास्य कृष्णपदाम्बुजे।
सर्व्वेप्सित सदानन्द सर्वसिद्धौघमीश्वरम्॥
धकारः सहवासञ्च तत्तुल्यकालमेव च।
ददाति सार्ष्टिं सारूप्य तत्त्वज्ञान हरेः स्वयम्॥
आकारस्तेजसां राशि दानशक्ति हरौ यथा।
योगशक्ति योगमति सर्वकालहरिस्मृतिम्॥"

गोपाङ्गना राधा वृन्दावनके निधुनिकुञ्जादि वनमें आ कर श्रीकृष्णके साथ लुकछिप कर लीला करती थीं। पुलिनटापूमें रास विहार होता था। रायान घोषको जब यह मालूम हुआ, तब वह बहुत बिगड़े। जटिला कुटिलाकी गञ्जना, राधाकी मानरक्षार्थ कृष्णका कालीमूर्त्तिका धारण और राधा द्वारा उनकी पूजा, राधाके सतीत्वकी परीक्षार्थ जटिला द्वारा सहस्र छिद्रपूर्ण कलसीमें जल लानेके लिये आदेश, राधाका जल लाना और उस जलसे कृष्णकी रोगमुक्ति, चन्द्रावलीके कुञ्जमें श्रीकृष्णके जानेसे कृष्ण प्रेमोन्मादिनी राधाका दुर्जय अभिमान, नयनजलसे मानसरोवरकी उत्पत्ति, कंस निधनार्थ कृष्णके मथुरा जानेसे राधाका विरह, राधाका मथुरागमन और कृष्णसम्मेलन आदि वृन्दावनात्मक रसाश्रित घटना वैष्णवकवियोंकी भक्तिप्रेमोद्दीपक अपूर्व रचना है। वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिकाका कृष्णप्रेमसम्वलित व्यापारविशेष वैष्णवोंके सख्यभावका चूडान्त दृष्टान्त है।

भक्तमालग्रन्थमें भी राधाकी माताका नाम कीर्त्तिदा लिखा है। पितामह महाभानु और मातामह विन्दू थे। पितामहीका नाम सुखदा और मातामहीका मुखरा था। रत्नभानु और सुभानु उनके ताऊ थे। रुद्रकीर्त्ति, महाकीर्त्ति और कीर्त्तिचन्द्र मामा, मेनका मामी, भानुमुद्रा पीसी और कीर्त्तिमती मौसी थीं। उनके मौसेका नाम काश और पीसेका कुश था। लवङ्गमञ्जरी, रूपमञ्जरी, गुणमञ्जरी, रतिमञ्जरी, रसमञ्जरी, विलासमञ्जरी, रागमञ्जरी आदि दासियाँ और ललितादि आठ श्रेष्ठ सखियां थीं।

उज्ज्वलनीलमणिके श्रीराधाप्रकरणमें राधाके वारह आभरणोंका उल्लेख है। उस नवीन युवतीने किस प्रकार

हरिका मन मुग्ध किया था उसका परिचय वैष्णवग्रन्थमें विस्तृतरूपसे लिखा है।

पद्मपुराण उत्तरखण्डके राधाष्टमीव्रतमाहात्म्यमें लिखा है, कि महर्षि नारदने जब देवाधिदेव महादेवसे राधाजन्ममाहात्म्य सुननेकी इच्छा प्रकट की, तब सदाशिव इस प्रकार कहने लगे —"राधा वृषभानुकी महिषी महालक्ष्मीस्वरूपा कीर्त्ति देवीके गर्भसे उत्पन्न हो वृन्दावनेश्वरी श्रीराधिका भाद्रमासकी शुक्लाष्टमी तिथिको शुभदायक मध्याह्न समयमें उत्पन्न हुई। राधा जन्मोत्सवका पूजन, भजन, ध्यान और कर्त्तव्यानुष्ठानादि कहता हूँ, सुनो।

"अत्र दा पश्चिमद्वारे श्रीराधा कृष्णमन्दिरे।
ध्वजपताकातोरणाद्यैर्नानावर्णादिभिः॥
नानासुमङ्गलद्रव्यैश्च वासिभिः प्रमर्दिते।
सुवासितगन्धपुष्पैर्धूपैश्च भूषितेऽथ वान॥
मध्ये पञ्चवर्णं चूर्णेन पदं तदोत्तमम्।
सुगोडशदलाकारं तत्र निमाय भवनः॥
दिव्यासने पद्ममध्ये पश्चिमाभिमुखीं स्थिताम्।
श्रीयुगलमूर्त्तिं ध्यात्वा ध्यानगाद्यैश्चाभिः क्रमात्॥
भक्तैः सह स्वजातीयैः शास्त्रानुसारतस्तुभिः।
भक्तः पूजयेत्तस्या तां सदा संयतेन्द्रियः॥"

इस प्रकार भक्तको चाहिये, कि वे सामर्थ्यानुसार पूजाका आयोजन कर संयतेन्द्रिय हो पूजा करें। पूजा कालका ध्यान इस प्रकार है—

"हेमेन्दीवरकान्तिमञ्जुलतरौ श्रीमज्जगन्मोहनौ।
नित्याभिर्ललितादिभिः परिवृतौ सन्नीलपीताम्बरौ॥
नानाभूषणभूषणाङ्गमधुरौ कैशोररूपौ युगौ।
गान्धर्वाजनमव्ययौ सुललितौ नित्यं शरण्यं भज॥"

शालग्राममें अथवा साक्षात् शिलादिमूर्त्तिमें युगलमूर्त्तिका ध्यान कर उनकी अर्चना करे। पीछे उस युगल मूर्त्तिको सम्मुखक्रमसे पाद्यादि द्वारा अष्टदलपूजा करना कर्त्तव्य है। क्रम इस प्रकार है,—पश्चिमके पीतवर्णदल पर ललिता, बाईं ओर शुक्लदल पर चन्द्रावती, वायु-कोणके कृष्णदल पर श्यामलादेवी, उसके वाम भागमें, शुक्लवर्णदल पर चित्ररेखा, उत्तरमें रक्तवर्णदल पर श्रीमती, उसके वामपार्श्वमें नीलवर्णदल पर चन्द्रा, ईशानमें रक्तवर्णदल पर श्रीहरिप्रिया, उसके वामस्थ शुक्लदल पर मदनसुन्दरी, पूरबमें पीतवर्णदल पर विशाखा, उसके वामभागमें शुक्लवर्णदल पर प्रिया अग्निकोणमें श्याम वर्णदल पर सन्ध्या, उसके वाम पार्श्वमें शुक्लवर्णदल पर मधुमती, दक्षिणमें रक्तवर्णदल पर पद्मा, उसके भी वाममें नीलवर्णदल पर शशिरेखा, नैऋतमें रक्तवर्णदल पर भद्रा, उसके वामपार्श्वमें शुक्लवर्णदल पर रसप्रिया की पूजा करना होगी।

इन कृष्णप्रिया श्रीराधाकी प्रिय सखियोंमेंसे प्रत्येकका ध्यान पृथक् पृथक् है पर विस्तार हो जानेके भयसे यहां नहीं लिखा गया। (पद्म उ०राधाष्टमीव्रतमाहात्म्यमें ११-२१ अ०)

स्वयं महादेवने कहा है, कि जो पुरुष अथवा स्त्री राधाकृष्णपरायण हो वृन्दावनवासी होंगे वे ही व्रजवासी हैं तथा उन्होंको राधाकृष्णका दर्शन होगा। ऐसे व्यक्तिके साथ आलाप करनेसे सभी पाप नष्ट होते हैं। जो व्यक्ति मुखसे राधा राधा कहते राधानाम स्मरण करते राधा राधा का जिनकी पूजा निष्ठा और जपना है वे बड़े भाग्यवान् हैं तथा भक्त श्रीवृन्दारण्यमें राधाकी सहचरी होती हैं।

पृथिवी धन्य है, जहां पर वृन्दावनपुरी विद्यमान है और जिस मनोरम पुरीमें मुनियोंकी आराध्य सती राधा विहार करती हैं। जो ब्रह्मादिकी भी महाराध्या हैं सुरगण जिनकी दूरसे सेवा करते हैं, हे देवर्षे! मैं भी उनको भजन करता हूं। जो मनुष्य कृष्ण सहित राधा नाम कीर्त्तन करते हैं, उनके माहात्म्यका शेष यहाँ मैं भी कह नहीं बतला सकता।

"न गङ्गा न गया न निम्ब न हिता न सरस्वती।
कदाचिदपि च विमुक्ता सर्वतीर्थफलप्रदा॥
सर्वतीर्थमयी राधा सर्वं भवमयी पुनः।
कदाचिदपि मुक्ता न भवेत् वदामि ते॥
तस्मात् भवत् कृष्णा राधया सह नारद।
राधाकृष्णेति यस्येदं तदेतत् व्रतमुत्तमम्।
हृद्गेहे रमन्तयोः कदाचिन्न चलेदरिम्॥"

यह सुन कर नारद मुनिने राधाका मन ही मन प्रणाम किया और गोलोकधाममें उनकी पूजा आरम्भ कर

दी जो व्यक्ति राधाजन्माष्टमीकी व्रतकथा सुनते हैं, वे धनी, मानी, सुखी और सर्वगुणान्वित होते हैं। धर्मार्थी, अर्थार्थी, कामार्थी और मोक्षार्थी यदि भक्तिपूर्वक राधाका जप, पाठ वा स्मरण करे, तो उन्हें अभीष्ट वस्तु प्राप्त होती है। राधा और राधाष्टमी देखो।

राधिकाविनोद (स० पु०) राधाविनोद।

राधेय (स० स्त्री०) राधाया अपत्यमिति राधा (स्त्रीभ्यो-ढक्। पा ४।१।१२०) इति ढक्। कर्ण।

राधेश (सं० पु०) श्रीकृष्ण।

राधेश्वर (स० पु०) श्रीकृष्ण।

राधोगूर्त्त (सं० त्रि०) धनद, धन देनेवाला।

राधोदेय (सं० क्ली०) धनके साथ दान योग्य उपहार। (ऋक् ४।५।१।३)

राध्य (सं० त्रि०) राध यत् आराधनीय, स्तुति करनेके योग्य।

राध्रेवकि (स० पु०) इस नामके ऋषिका गोत्रापत्य। (संस्कारकौमुदी)

रान (फा० स्त्री०) जंघा, जाँघ।

रानडे—इनका पूरा नाम था महादेव गोविन्द रानडे एम० ए०, एल, एल, बी, सी, आई, ई,। ये वम्वई हाईकोर्टमें जज थे। इनका जन्म सन् १८४२ ई०की २०वीं जनवरीको महाराष्ट्र ब्राह्मणकुलमें हुआ था। इनके पिताका मृत्यु सन् १८७७ ई०में वम्वईमें हुई थी। महादेव गोविन्दने वम्वईके एलफिनस्टन कालेजमें शिक्षा पाई थी। इसी कालेजसे इन्होंने सन् १८६२ ई०में बी, ए, परीक्षामें विश्वविद्यालय भरमें सर्व्वोच्च स्थान पाया था और सन् १८६५ ई०में एम, ए, परीक्षा पास की तथा उसी उपलक्षमें इन्हें स्वर्णपदक भी मिला। सन् १८६६ ई०में ये एल, एल, बी, परीक्षामें प्रथम वर्गमें उत्तीर्ण हुए। विश्वविद्यालयकी परीक्षाओंमें सर्वोच्च स्थान प्राप्त करनेके कारण ये उपाधिधारियोंके राजा (Prince of Graduates) कहे जाते थे। सन् १८६६ ई०में ये शिक्षाविभागमें मराठी भाषाके अनुवादक बनाये गये। तदनन्तर ये सोलापुरके अस्थायी जज नियत हुए। पुनः सन् १८६८ ई०में ये एलफिनस्टन कालेजमें अंग्रेजी साहित्यके अध्यापक नियुक्त हुए। इस पद पर रानडेने सन् १८७१ ई० तक काम किया। इसी वर्षमें ये हाईकोर्टकी "एडवोकेट" परीक्षाके प्रथम वर्गमें उत्तीर्ण हुए। यह परीक्षा विलायतकी वारिस्टरी परीक्षाके समान समझी जाती है। इस परीक्षाके पास करनेके अनन्तर रानडे १० वर्ष तक अनेक स्थानोंमें सब जजका काम करते रहे। सन् १८८४ ई०में इनका एक हजार रु० मासिक वेतन हो गया, और ये छोटो अदालतमें जजका काम करने लगे। सन् १८८६ ई०में ये 'भारतीय आय व्यय-समिति' के मेम्बर हुए। कई वार ये वम्वई व्यवस्थापक सभाके सभ्य हुए थे। सन् १८९३ ई०में ये हाईकोर्टमें जज नियत हुए थे। ये मरने तक इसी पद पर काम करते रहे। सन् १९०१ ई०में इनकी देहांत हुआ। इन्होंने अंगरेजीमें कई एक ग्रंथ लिखे हैं जो ये है,(१) विधवाविवाहकी शास्त्रीयता ? (२) महाराष्ट्रीय जातिका इतिहास। (३) खजाना कानून सम्बन्धी पुस्तिका। (४) राजा राममोहन रायकी वक्तृता।

ये ब्राह्मधर्मके उत्साही मेम्बर थे और वम्बई विश्वविद्यालयकी 'सिण्डिकेट' सभाके भी सदस्य थे।

रानतुरई (हिं० स्त्री०) कडुई तरोई।

राना (हिं० पु०) राणा देखो।

रानापति (हिं० पु०) सूर्य।

रानी (हिं० स्त्री०) १ राजाकी स्त्री, राजाकी पत्नी। २ स्वामिनी, मालकिन। ३ स्त्रियोंके लिये आदरसूचक शब्द।

रानीकाजर (हिं० पु०) एक प्रकारका धान।

रानीखेत (रानीक्षेत्र) युक्तप्रदेशके कुमायून् जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २०° ३४´ उ० तथा देशा० ७९° २६´ पू० के मध्य अवस्थित है। यहां वृटिशसरकारको यूरोपीय सेनादलका एक स्वास्थ्यनिवास है, इस कारण इसकी दिनों-दिन उन्नति होती जा रही है। हिमालय पहाड़ पर जितने स्वास्थ्यनिवास हैं उनमेंसे यही सबसे उत्तम है। समतलक्षेत्रसे ऊपर चढ़नेमें लोगोंको जरा-सी दिक्कत नहीं होती। अङ्गरेज लोग ग्रीष्मकालमें यहां आते हैं। एक समय सिमला शैलसे सामरिकसदर (Military head-quarter) यहा पर उठा लानेका प्रस्ताव हुआ था, पर कई कारणोंसे मंजूर नहीं हुआ।

रानीगङ्गा—अरुपारगुइरोके अन्तर्गत एक पर्वतशिखर।

रानीगञ्ज—बिहार और उड़ीसाके पूर्णिया जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५ ५३´ उ० तथा देशा० ८७ ५३´ पू०के मध्य कमला नदीके किनारे अवस्थित है। यहां चावल, तिल, पाट और तंबाकूका जोरों कार बार चलता है। म्युनिसपलिटी होनेके कारण नगर खूब साफ सुथरा है।

रानीगञ्ज—१ बङ्गालके वर्द्धमान जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० २३ २३´से २३ ४२ उ० तथा देशा० ८६ ५०´से ८७ २० पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६३१ वर्गमील है। रानीगञ्ज, आसनसोल और ककसा थाना इस उपविभागके अन्तर्गत हैं।

२ उक्त जिलेके वर्द्धमान वर्द्धमान जिलान्तर्गत आसनसोल उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० २३ ३६ उ०तथा देशा० ८७ ६´पू० दामोदर नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या १५ हजारसे ऊपर है। कोयलेकी खान आविष्कार होनेके बादसे ही यह समृद्धिशाली हुआ है। इष्ट-इण्डिया रेलवे कम्पनीने कोयलेके वाणिज्यके लिये यहां एक स्टेशन खोला। रेल कम्पनीके कर्मचारियोंके रहनेसे यह नगर क्रमशः मजूरोंका एक प्रधान अड्डा हो गया है। कलकत्तेकी माकिनटस् वार्न कम्पनीने यहां मिट्टीके बरतन (Pottery works) का कारखाना खोला है। यहांकी थाली बहुत मशहूर है। शहरमें एक कुष्ठाश्रम, सभागृह और एक स्कूल है।

रानीगञ्ज—वर्द्धमान जिलेके अन्तर्गत एक बहुत लंबा चौड़ा मैदान, भूपरिमाण ५ सौ वर्गमील है। यहांकी जमीनमें कोयला पाया गया है। बहुतोंने तो वाणिज्य का भासास इस स्थानको खोद कर कोयला निकालने की व्यवस्था की है। अभी ७०।८० कम्पनी अर्जान इजारा ले कर बासम कोयला निकाल रहा है। बाउरी और संथाल लोग अकसर आनम काम करते हैं।

रानीगञ्ज नगरसे शुरू कर कर बराकर नदीके पश्चिम तक इस कोयलेका क्षेत्र विस्तृत है। पूरब पश्चिममें इसकी लम्बाई ३१ मील और उत्तरदक्षिणमें चौड़ाई प्रायः १८ मील है। दामोदर और अजय नदीके मध्य भागका कोयलेका स्तर ही सबसे चौड़ा है।

रानीग्राम—ब्रह्मप्रदेशके गोदेनवाड़ प्रान्तस्थ एक छोटा राज्य।

रानीघाट—पञ्जाबप्रदेशके पेशावर जिलेका एक प्राचीन गिरिदुर्ग। यह स्वाधीन सुदुखोल शैलमाला पर अवस्थित है। पहले यहां एक नगर था। अभी उसका निदर्शन तक भी न रह गया है। १८४८ ई०में डा० कनिंहमने नौग्रामसे ८ कोस उत्तर-पश्चिममें अवस्थित सैयदपल्ली के निम्नस्थ रानीघाटका विस्तृत दुर्ग देख कर उसे ग्रीक भौगोलिक आरियन ग्रावो, दियाडोरस आदि वर्णित Aornos कहा है। किन्तु रानीघाट दुर्गकी ऊंचाई १००० फुट और आरियनकी ऊंचाई ६६७४ फुट होनेके कारण उनका ख्याल गलत निकला। १८५६ ई०में ऐतिहासिकों द्वारा वर्णित Aornos कह कर स्वीकार किया है। किन्तु यह सब देख कर आखिर कनिंहमने प्रमाण द्वारा फिर रानीघाटको ही एकमात्र निदर्शन कह कर साबित किया है। इस दुर्गके उत्तरकोणमें जो एक पर्वतचूड़ा देखी जाती है उस पर राजा वरकी महिषी प्रति दिन बैठा करती थी। आज भी यह स्थान देखनेमें आता है। पवार देखा।

रानीतला—उड़ीसाके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर।

रानीधर—तीरभुक्तके अन्तर्गत एक स्थान।

(मनि० महत्तपड़)

रानीनूर—उड़ीसा प्रदेशके पुरी जिलान्तर्गत खण्डगिरि शैलस्थित एक गुहामन्दिर। खण्डगिरि और उसके पार्श्ववर्ती उदयगिरिमें जितनी गुहाएं देखी जाती हैं उनमेंसे रानीनूरका गुहा सबसे पीछेकी बनी है। जो सब गुहामन्दिर विराजित हैं, प्रत्नतत्त्वविदोंका अनुमान है, कि वे सब बौद्धधर्मके सर्वप्राचीन निदर्शन हैं। अथवा उन्हें भारतवासी मानवजातिका प्रथम वासभवन भी मान सकते हैं। रानीनूरका गठन और शिल्पचातुर्य देख कर उन्होंने कहा है, कि २०० खृष्टाब्दसे १०० खृष्टाब्द तकके भीतर ये सब गुहाएं खोदी गई हैं।

यह दो तल्ले गुहागृहश्रेणासे सुशोभित है। गुहा श्रेणीके सामने बरामदा और उसके सम्मुख भागमें प्राङ्गण है। दोनों बगल दीवार पर बृहदाकार पर्वपाले

प्रस्तर प्रतिमूर्त्ति पहरू रूपमें खड़ी हैं। उस प्राङ्गणभूमिके दक्षिण खुला मैदान है तथा वामपार्श्वमें रन्धनगृह और जनसाधारणका भोजनालय है। इन सब गृहोंके सम्मुखस्थ विस्तृत वरामदोंकी छत स्तम्भसे पत्थरके ब्राकेट द्वारा सुरक्षित हैं। उन सब ब्राकेटका शिल्पनैपुण्य देखने लायक है। ऊपर तलेमें सिर्फ ४ कोठरी है। प्रत्येककी लम्बाई १४ फुट ६ इञ्च है। वाहरवाला वरामदा ६० फुट लम्बा, ७ फुट ऊंचा और १० फुट चौड़ा है। हर एक कोठरीमें दो दो दरवाजे हैं। दोनों दरवाजों पर पत्थरकी सिंहमूर्त्ति है।

ऊपरवाले वरामदेके चारों ओर जो शिल्पचित्र है वह स्थापयिताकी जीवनी ले कर ही वनाया गया था। पहले चित्रमें भारतीय किसी प्राचीन राजवंशके विवाहसंबंध स्थापनके पहले उपढौकन भेजा रहा है। दूसरे चित्रमें प्रणयीका शुभागमन, तीसरेमें राजपुत्र और राजकन्याका प्रेमालाप, चौथेमें युद्ध, पांचवेंमें राजकन्याको ले कर राजपुत्रका भागना, छठेमें मृगया, सातवेंमें सिंहासनोपविष्ट राजा और रानी तथा नर्त्तकीदलका नाच होता है। ऊपरमें राज्यसुख भोगसम्बन्धमें और भी कितने चित्र विराजित हैं। उनमें राजा, रानी और राजपरिवारवर्गके सभी लोग संसाराश्रमका त्याग कर वानप्रस्थका अवलम्बन करते हुए मठाश्रममें आ जीवन विताते हैं। क्षयकारी काल और जलवायुका उत्पीड़न सह्य न कर सकनेके कारण इस खोदित रानीप्रासादकी रानीका उपाख्यान धीरे धीरे मिट गया है।

रानीपुर—युक्तप्रदेशके झांसी जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २५° १४′ उ० तथा देशा० ७९° १०′ पू०के मध्य अवस्थित है। यहां खेरुआ और कसवी नामक मोटे कपड़ेका विस्तृत कारवार होता है। स्थानीय व्यवसायी महाजन जैनधर्मावलम्बी हैं। यहांका जैनमन्दिर देखने लायक है। उर्च्छाराज पहाड़ीसिंहजीकी रानी हीरादेवीने १६७८ ई०में यह नगर वसाया था।

रानीपुर—वम्बई-प्रदेशके खैरपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २७° १७′ उ० तथा देशा० ६८° ३१′ पू०के मध्य हैदराबादसे रोहरी जानेके रास्ते पर अवस्थित है। निम्नसिन्धुके अन्तर्गत ठट्टाराज्यके जामदरिया खाँ नामक एक राजा जब युद्धमें मारे गये तब उनकी स्त्री शत्रुके भयसे राज्यत्याग कर यहां भाग आई थी। तभीसे यह नगर रानीपुर कहलाता है। यहां सूती कपड़ेका कारवार होता है।

रानीपेट—१ मन्द्राजके उत्तर आर्कट जिलेका उपविभाग।

२ उक्त उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० १२° ५६′ उ० तथा देशा० ७९° २०′ पू० पालर नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ७ हजारसे ऊपर है। १७७१ ई०में नवाव सैयद-उद्दौला खांने गिञ्जिराज देसिंहकी विधवा पत्नीके सम्मानार्थ आर्कटनगरके दूसरे किनारे यह ग्राम वसाया। सरकारी सेनानिवास होनेके कारण दिन पर दिन इसकी उन्नति देखी जाती है। यहांका 'नयलाज' नामक आम्रकानन वहुत प्रसिद्ध है।

रानीवेन्नूर—वम्बईके धारवाड़ जिलेका एक तालुक। यह अक्षा० १४° २४′ से १४° ४८′ उ० तथा देशा० ७५° २७′ से ७५° ४६′ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४०५ वर्गमील और जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें ३ शहर और ११६ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त तालुकका एक शहर। यह अक्षा० १४° ३७′ उ० तथा देशा० ७५° ३८′ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १४ हजारसे ऊपर है। १८५८ ई०में म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है। रुई, सूती और रेशमी कपड़ेके लिये यह स्थान वहुत मशहूर है। १८०० ई०में कर्नल वेलस्लि (पीछे ड्यूक आव वेलिंटन) ने मराठा लुटेरे धुंटिया वाघका पीछा करके इस नगरको अधिकार किया। १८१८ ई०में जनरल मनरोके अधीनस्थ सेनादलने फिरसे इस नगर पर चढ़ाई की थी। शहरमें १ अस्पताल और ७ स्कूल हैं।

रानीसराय—मेदिनीपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन ग्राम। यह नारायणगढ़के दक्षिणमें अवस्थित है।

रान्धम (सं० पु०) इसी नामके ऋषिके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रान्धिया—वम्बई प्रेसिडेन्सीके गोहेलनाड़ प्रांतका एक छोटा सामन्तराज्य।

रापरङ्गाल (सं० पु०) एक प्रकारका नृत्य।

रापी (हिं० स्त्री०) चमारोंका रांपी नामका औजार जिससे वे चमड़ा साफ करते और काटते हैं।

रापुर—१ मन्द्राज प्रदेशके नेल्लूर जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० १४ ४´ से १४ ३१´ उ० तथा देशा० ७९° २१´ से ११ ५१´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ५६६ वर्गमील और जनसंख्या ७० हजारसे ऊपर है। यहां कन्दलेरु और केल्लव नामक दो छोटी नदियां बहती हैं। इस तालुकके पश्चिमभाग अर्थात् पूर्वघाट पर्वतमालाके ढालू देशसे ले कर पूर्वकी ओर समतल क्षेत्र तक प्रायः ६ मील स्थान घने जंगलसे ढका है।

२ उक्त जिलेका एक नगर और रापुर तालुकका विचार सदर। यह अक्षा० १४ ११´ उ० तथा देशा० ७९ ३६ पू०के मध्य विस्तृत है। यहांकी जमीन काली और पथरीली है, इस कारण उपज अच्छी नहीं लगती। चोलम, रागी कम्बु, धान, तमाकू और लालमिर्च यहांकी प्रधान उपज है।

राप्ति—युक्तप्रदेशमें प्रवाहित एक नदी। यह अक्षा० २७ ४६ उ० तथा देशा० ८२ ४४´ पू०के मध्य विस्तृत है। एक पर्वतशिखरको भेदन कर पहले दक्षिणकी ओर ४० मील और पीछे दक्षिण-पश्चिमकी ओर ८५ मील तक चली गई है। बादमें यह अयोध्या प्रदेशके बहराइच जिलेमें आ गिरी है। यहांसे गोण्डा जिला, बस्ती जिला और गोरखपुर जिला होती हुई घघरामें मिली है। गोरखपुर नगरसे ले कर घघरा-संगम तक इसमें बड़ी बड़ी नावें आती जाती हैं। बस्ती जिलेमें आ कर इस के दो सोते हो गये हैं। दोनों सोते वर्षाऋतुको छोड़ और सभी ऋतुओंमें सूख जाते हैं। इस नदीकी लम्बाई ४ सौ मील है।

रापी—युक्तप्रदेशके मैनपुरी जिलान्तर्गत सिकोहाबाद तहसीलका एक बड़ा ग्राम। यह अक्षा० २६ ५४´ उ० तथा देशा० ७८ ३६´ पू०के मध्य विस्तृत है। मैनपुरी शहरसे इसकी दूरी ४४ मील है। जनसंख्या हजारके करीब होगी। यहां हिन्दू और मुसलमानके अनेक चिह्न इस भग्नावस्थामें पड़े हैं। स्थानीय प्रवाद है, कि राव जोरावर सेन उर्फ रापर सेनने इस नगरको बसाया। उनके वंशधर ११९४ ई०में महम्मद गोरीके विरुद्ध युद्ध करके मारे गये। मुसलमानी अधिकारके बाद यहां अनेक मसजिद और मकबरे बनाये गये थे तथा कितने जलाशय और कूप भी खोदे गये थे। यहांकी किसी मसजिदमें सुलतान अलाउद्दीन खिलजीके जमानेमें उत्कीर्ण शिलालिपि पाई गई है। शेरशाह और जहांगीरके बनाये हुए बहुतसे महलों और प्राचीन महलोंके कारकार्योंका भग्नावशेष आज भी देखने में आता है। यहां से रेलवेस्टेशन सिकोहाबाद और सरिसागञ्जमें वाणिज्य द्रव्य ले जानेके लिये पक्की सड़क दौड़ गई है। यमुनाके दूसरे किनारे बटेश्वर जानेके लिये नावका एक पुल बना है।

राप्य (सं० त्रि०) राप्यते इति रप् (मातृपुत्रपित्पीवि। पा ३।१।१२६) इति ण्यत्। कथनीय, कहने योग्य।

राब (हिं० स्त्री०) १ आंच पर औटा कर खूब गाढ़ा किया हुआ गन्नेका रस जो गुड़से पतला और शीरेसे गाढ़ा होता है। इसीको साफ करके खांड बनाई जाती है। २ नावमें वह बड़ा लकड़ा जो उसकी पेंदीमें लम्बाईके बल एक सिरेसे दूसरे सिरे तक होती है। पहले यही लकड़ा लगा कर तब उस परसे आकार बढ़ाते हैं।

राबड़ी (हिं० स्त्री०) औटा कर गाढ़ा किया हुआ दूध, बसौंधी।

राबना (सं० क्रि०) खेतमें खाद देनेकी एक विशेष प्रणाली। इसमें पहले खेतमें झाड़ सूखी पत्तियां और टहनियां आदि रख कर जला देते हैं। फिर उसको राख समेत जमीनको एक बार जोत देते हैं। यही राब खेतमें खाद का काम देती है।

राभस्य (सं० क्ली०) १ द्रुत गति, तेज चाल। आग्रह, हठ। २ आनन्द, मजा।

राम (सं० त्रि०) रमते इति रम्-घञ्, रम्यते उनेनेति रम्-घञ् वा। १ मनोज्ञ, सुन्दर। २ सित, सफेद। ३ असित काला। (पु०) रम क्रीड़ायां (ज्वलितिकसन्तेभ्यो णः। पा ३।१।१४०) इति ण। ४ परशुराम। ये भगवान् विष्णुके अंशावतार माने जाते हैं। इन्होंने त्रेतायुगके आरम्भमें जमदग्नि मुनिके पुत्ररूपमें जन्मग्रहण किया था। परशुराम देखो। ५ सूर्यवंशीय महा

राज दशरथके पुत्र जो दश अवतारोंमें एक माने जाते हैं। रामचन्द्र देखो। ६ कृष्णके बड़े भाई बलराम या बलदेव। इन्होंने अनन्तदेव, विष्णुके अंश, यदुवंशी, द्वापरयुगके शेष भागमें यदुवंशी वसुदेवके पुत्ररूपमें जन्मग्रहण किया था। बलराम देखो।

राम शब्दसे श्रीराम, बलराम और परशुराम इन तीनोंका बोध होने पर भी साधारणतः दशरथपुत्र राम समझे जाते हैं।

"अघोरश्चाथ वाग्यश्च महाकालौ प्रकीर्त्तितौ।
भार्गवो राघवो गोपस्त्रयो रामाः प्रकीर्त्तिताः॥"
(अग्निपुराण)

रामशब्दकी व्युत्पत्ति—

"राशब्दो विश्ववचनो मश्चापीश्वरवाचकः।
विश्वानामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्त्तितः॥
रमते रमया सार्द्धं तेन रामं विदुर्बुधाः।
रमायां रमणस्थानं रामं रामविदो विदुः॥
रा चेति लक्ष्मीवचनो मश्चापीश्वरवाचकः।
लक्ष्मीपतिं गतिं रामं प्रवदन्ति मनीषिणः॥"
(ब्रह्मवैवर्त्तपु० श्रीकृष्णजन्मख० ११ अ०)

रा शब्दका अर्थ है विश्व ब्रह्माण्ड और म-शब्दका अर्थ ईश्वर है। जो इस विश्वके ईश्वर हैं वही राम हैं अथवा वे रमा लक्ष्मीके साथ रमण करते हैं इसीलिये उन्हें राम कहा जाता है। फिर रा-शब्दका अर्थ लक्ष्मी और म-शब्दका अर्थ ईश्वर है अतएव जो लक्ष्मीपति हैं वही राम हैं। ७ वरुण। ८ घोटक। घोड़ा। ९ पशु-भेद। १० अशोकका पेड़। रम-भावे घञ्। ११ रति।

(क्ली०) १२ वास्तूक, बथुआ। १३ कुष्ठ। १४ तमालपत्र, तेजपत्र। १५ नैश अन्धकार। (ऋक् १०।३।३)

राम—१ शृङ्गवेरके एक राजा। ये नागेशके प्रतिपालक थे। २ देवगिरिके एक राजा। ३ कोड़ग्रामके एक सामन्तराज।

राम—इस नामके कई प्रसिद्ध अध्यापकों और ग्रन्थकारोंके नाम मिलते हैं। १ शाङ्खायनमहाव्रत-टीकाके प्रणेता गोविन्दके एक आचार्य। २ कुसुमाञ्जलिव्याख्याके रचयिता त्रिलोचनदेवके गुरु। ये नवद्वीपके रहनेवाले थे। ३ मधुसूदन सरस्वतीके गुरु। ४ कंसनिधन-काव्यके प्रणेता। ५ कुण्डमण्डप-सिद्धि व्याख्याके रचयिता। ६ प्रायश्चित्तदीपिकाके प्रणेता। ७ भामिनी-विलासके टीकाकार। ८ मञ्जीर नामक ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। ९ वैद्यकसार और शङ्कराख्य नामक वैद्यक ग्रन्थके रचयिता। १० श्यामाकल्पलताके प्रणेता। सोमकर्मप्रदीपिका (सोमकर्मपद्धति) नामक ग्रन्थकार। ये विद्याधरके शिष्य थे। १२ एक विख्यात ज्योतिर्विद्। इन्होंने १६०१ ई०में काशीधाममें रह कर मुहूर्त्तचिन्तामणि और उसकी प्रमिताक्षरा नामकी टीका तथा १६१४ ई०में रामविनोदकरण या पञ्चाङ्गसाधनोदाहरण नामक ग्रन्थोंकी रचना की। इनके पिताका नाम अनन्त और पितामहका नाम चिन्तामणि था। बहुतोंकी धारणा है, कि करणकण्ठीरव, यवनीय रमलशास्त्र, रमलपद्धति, रमलशास्त्र लघुपद्धति, समरसारस्वरोदय आदि ग्रन्थ इन्होंके बनाये हैं। १३ चन्द्रचिन्तामणिटीकाके प्रणेता मधुसूदनके पुत्र। १४ पुत्रस्वीकारनिर्णयके रचयिता। ये वत्सगोत्रीय और विश्वनाथके पुत्र थे। १५ गीतिगिरिश-के प्रणेता श्रीनाथके पुत्र। १६ एक राजकवि, मलभद्रके पुत्र। इन्होंने १००२ ई०में चन्देलराज धङ्गदेवकी प्रशस्ति लिखी। १७ एक दूसरे राजकवि भृङ्गके पुत्र। इन्होंने त्रिगर्त्ताधिप जयचन्द्रके राज्यकालमें कीरग्रामके राजानक लक्ष्मणचन्द्रके समय दो प्रशस्तियोंकी रचना की। १८ रामदेवस्त्रहितादीकाके रचयिता। ये श्रीराम नामसे प्रसिद्ध थे। १९ अनुवेदान्तके रचयिता। इनकी उपाधि शास्त्री थी। २० एक छन्दःशास्त्रकार। २१ एक नैयायिक। न्यायसारविचारमें राघवने इनका उल्लेख किया है। ये रामभट्ट नामसे परिचित थे। २२ अमरकोष टीका, उणादिकोष और उसकी टीका, मुग्धबोध टीका और मुग्धबोधपरिशिष्टके प्रणेता। इनकी उपाधि तर्कवागीश थी। २३ अशौचादि निर्णयके रचयिता। दैवज्ञ इनकी उपाधि थी। २४ कविदर्पणनिघण्टुके प्रणेता। इनकी उपाधि शोकरोपाध्याय थी। २५ उज्जीवित-मदालस नामक नाटकके प्रणेता। ये भट्टराम नामसे प्रसिद्ध थे। २६ चौरपञ्चाशिका-टीकाके रचयिता। इनकी उपाधि तर्कवागीश थी। २७ ज्योतिषप्रदीपके प्रणेता। २८ तर्कवादावली, वाररत्नावली और

न्यायमीटोका प्रणेता। ये शास्त्रीकी उपाधिसे विभूषित थे। २९ कौतुकलीलावती, त्रिगच्छीकार्थ, दक्षिण कालिकानित्यपूजापुपद्धति और मातङ्गिनापद्धति, प्रक्रियाकौमुदीटीका प्रक्रामृत, रामकल्पद्रुम, रामधी कल्पचन्द्रिका, संक्षिप्तहोमप्रकार, मानिक्तनिर्णय धर्म भावविवेक (श्रीनाथके पुत्र), रामरत्नाकर (विश्वनाथके पुत्र और मुकुन्द भट्ट होसिङ्गके पौत्र। राजा नृप सिंहको प्रार्थना करने पर इन्होंने ये सब ग्रन्थ सङ्कलन किये), विद्वत्प्रबोधिनी नामक सारस्वत प्रक्रियाटीकाके प्रणेता (अन्तर्वेदीय नरसिंहके पुत्र और मल्लारिके पिता, इन्होंने तीरभुक्तिपति राजा रूपनारायणका उल्लेख किया है) आदि चारह पण्डित। इन लोगोंकी उपाधि भट्ट थी। ३० पुरुषार्थसुधानिधिके प्रणेता, उपाधि ज्योतिर्विद्। ३१ वीरसिंहमित्रोदयके रचयिता। ये ज्योतिर्विद् उपाधिधारी थे। ३२ निर्णय सारके रचयिता। ये महाचार्य उपाधिसे जनसाधारणमें परिचित थे। ३३ वृत्तचन्द्रिकाके रचयिता। ये राम पण्डित कह कर ख्यात थे। ३४ रहस्यत्रयरीक्षा और हनुमद्दण्डके प्रणेता। ३५ वृन्दावन यमक टीकाके प्रणेता। ३६ वेदान्तसिद्धान्त तथा शास्त्रतिलककी टीकाके प्रणेता, दीक्षित उपाधिधारी दो ग्रन्थकार। ३७ मध्यमनोरमा नामक मध्यसिद्धान्तकौमुदी-टीकाके रचयिता। इन्होंने नित्यानन्द भट्टके कहनेसे इस ग्रन्थकी रचना की। ३८ वायपुराणदीपिकाके रचयिता। ३९ वेदान्तार्थ संग्रहके सङ्कलयिता। ये राजा रामचन्द्रके आश्रित थे। ४० सिद्धान्तचन्द्रिका नामक वेदान्त ग्रन्थके प्रणेता। इन की उपाधि संयमी थी। ये रामभद्र सूरिके शिष्य थे। ४१ सिद्धान्तभूषण नामक व्याकरणके प्रणेता, विष्णु सूरिके पुत्र। इनकी भी उपाधि सूरि था। ४२ रामदेव संहिताकी टीकाके प्रणेता। ४३ मङ्गलमालारत्नके रच यिता। ये महोपाधिक थे।

रामम ओर (फा० स्त्री०) पाकरवृक्ष, पकड़िया।

राम आचार्य—१ व्यासतात्पर्य न्यायामृत ग्रन्थकी व्याख्या भूतरङ्गिणी नामकी टीकाके रचयिता। २ सप्तपाठ निर्णयके रचयिता और माम दशार्थदर्श सदाचार स्मृतिकी टीकाके प्रणेता। ३ सत्यभामा परिणय नाटकके रचयिता। ४ राममहिमास्तोत्र नामक ग्रन्थकर्ता। ५ सर्वेतरङ्गिणीके रचयिता। ६ सत्यविधिपद्धतिके प्रणेता। ७ सत्यबोधतीर्थका (१७८४ ई०में मृत) तथा सत्यसंध तीर्थका (१७९५ ई०में मृत) पारिवारिक नाम। ये दोनों ही प्रसिद्ध पण्डित थे।

राम उपाध्याय—मेघदूतटीकाके प्रणेता।

रामऋषि—नमोबपदाटीकाके रचयिता।

रामक (सं० पु०) १ अपामार्ग। २ राम देखो।

रामकआरा (हिं० पु०) एक प्रकारका धान जो अगहनमें तैयार होता है।

रामकण्ठभट्ट (राजानक)—आत्माध्यपूजापद्धति, नाद कारिका नरेश्वरपरीक्षाप्रकाश, भगवद्गीताभाष्य, मतङ्ग वृत्ति सर्ववृत्ति, सर्वकारिकाविवरण, स्पन्दसर्वस्वविव रण परमोक्षनिरासकारिकावृत्ति और मोक्षकारिकावृत्ति नामक कई ग्रन्थोंके प्रणेता। सर्वदर्शनसंग्रहके शैवदर्शन में इनका उल्लेख है। ये नारायणकण्ठके पुत्र और उत्पल देवके शिष्य थे।

रामकपास (हिं० स्त्री०) देवकपास नरमा। नरमा देखो।

रामकर्पूर (सं० पु०) रामः रमणीय कर्पूरः। सुगन्धयुक्त तृण।

रामकली (सं० स्त्री०) एक रागिनी। यह भैरव रागकी स्त्री मानी जाती है। इसके गानेका समय सबेरे एक दण्डसे पांच दण्ड तक है। यह सम्पूर्ण जातिकी रागिनी है और इसमें ऋषभ तथा निषाद कोमल लगते हैं।

रामकवच (सं० क्ली०) तन्त्रोक्त कवचविशेष। यह कवच पहननेसे अनेक प्रकारका मंगल होता है। यह कवच भोज पत्र पर कुङ्कुम और गोरोचन आदि द्वारा लिख कर शिखा, दाहिनी भुजा और गलेमें पहनना होता है।

रामकवि—१ मन्मथोन्माद विलसन नामक भाणके रच यिता। २ वृत्तरत्नावलीके प्रणेता।

रामकवि—इनका नाम रामचरन था। ये राजा निरमोरके दरबारमें थे। इनका बनाया "रसमागर" नामक एक ग्रन्थ भाषा साहित्यमें उत्तम है। इन्होंने नखसिखकी टीका भी लिखी है।

रामकांटा (हिं० पु०) एक प्रकारका बबूल।

रामकाल (रामकलि)—मान्यवर त्रिगर्ताधिप राजा गौड़

राजधानीके आसपासका एक बड़ा गांव। यह सागरदिग्गी नामक बड़ी दिग्गीके किनारे अवस्थित है। यहां हर साल ज्येष्ठ सक्रान्तिमें एक मेला लगता है। इस समय महासमारोहसे श्रीकृष्णकी पूजा होती और भोग लगता है। पांच दिन तक यह मेला रहता है। मेलेके लिये यहां बहुतसे घर बनाये गये हैं। गौड़ेश्वर हुसेन शाह (१५१५ ई०) के मंत्री रूप और सनातन गोस्वामी संसाराश्रम छोड़ कर वैरागी हो गये थे और इसी निर्ज्जनमें रहते थे। इसी उपलक्षमें मेला लगता है। बहुतेरे वैष्णव यहां आ कर विवाह करते हैं।

रामकाण्ड (सं० पु०) रामशर तृण, एक प्रकारका नरसल या सरकंडा। रामशर देखो।

रामकान्त—१ धातुरहस्य और धातुसाधन नामक व्याकरणके प्रणेता। रामलीलोदयके रचयिता। ये वाणेश्वरके पुत्र थे।

रामकान्ततनय—आगमसंग्रहमें एक जटाकल्पके रचयिता।

रामकान्त मुंशी—यशोहर समाजभुक्त गुहवंशीय एक प्रसिद्ध बङ्गज कुलीन कायस्थ। १८०१ ई०में इनका देहांत हुआ।

रामकान्त वाचस्पति—शान्तिशतकव्याख्यातरङ्गिणीके प्रणेता। ये चट्टवंशीय और न्यायवागीशके पुत्र थे।

रामकान्त विद्यावागीश—शब्दरहस्यके रचयिता तथा श्यामसुन्दर चक्रवर्त्तीके पुत्र।

रामकान्तराय (राजा)—नाटोरके एक प्रसिद्ध राजा रामजीवनके पुत्र। इनकी पत्नी जगत्-विख्याता रानी भवानी थीं। राजशाही शब्दमें नाटोर राजवंश देखो।

रामकिङ्कर—ग्रहचारटीकाके रचयिता।

रामकिङ्कर सरस्वती—आशुबोध नामक व्याकरणके प्रणेता।

रामकिरि (सं० स्त्री०) रागिणीविशेष, रामकली।

रामकिशोर शर्म्मन् न्यायालङ्कार—दीक्षातत्त्वप्रकाश और मुद्राप्रकाश नामक दो ग्रन्थके प्रणेता रुद्रनारायणके पुत्र।

रामकीर्त्ति—एक राजकवि तथा जयकीर्त्तिके शिष्य। इन्होंने चालुक्यराज कुमारपाल देवकी १२०७ संवत्‌में शिलाप्रशस्ति लिखी।

रामकुण्ड—एक तीर्थका नाम। (सह्याद्रि० २।१।२६)

रामकुमार (सं० पु०) लव और कुश।

रामकुमार मिश्र—शङ्करविजयडिण्डिम (१७६६ ई०) के प्रणेता धनपतिके पिता तथा वेदान्तपरिभाषार्थदीपिकाके रचयिता शिवदत्त मिश्रके पितामह। एक अद्वितीय वैदांतिक थे।

रामकृष्ण (सं० पु०) बलराम और श्रीकृष्ण।

रामकृष्ण—एक प्रसिद्ध संस्कृत ग्रन्थकार। १ अद्वैतविवेकके रचयिता। २ अधिकरणकौमुदी और पञ्चदशीटीकाके प्रणेता। ये विद्यारण्यके शिष्य थे। ३ आख्यातवादटिप्पणीके रचयिता। ४ आगमकौमुदी और आगमचन्द्रिका नामक तन्त्रकार। इन्होंने १७२६ ई०में शैवोक्त ग्रंथ बनाया। ५ काव्यप्रकाश-भावार्थके प्रणेता। ६ कुण्डमण्डपसंग्रहके सङ्कलयिता। ७ तर्कचन्द्रिकाके रचयिता। ८ देवीमाहात्म्यटीकासंग्रहके प्रणेता। ९ नामलिङ्गाख्या कौमुदीके रचयिता। १० न्यायदर्पणकार। ११ पीठचिन्तामणि नामक तन्त्रग्रंथके प्रणेता। १२ पुष्पाञ्जलिस्तोत्रके रचयिता। १३ मीमांसासूत्रकी प्रकाशिका नामकी वृत्तिके प्रणेता। ये अहोबल शास्त्री (बोधानन्द घन)के शिष्य थे। १४ प्रायश्चित्तप्रकरण और श्राद्धप्रभाके रचयिता। १५ भगवद्गीताटीकाके प्रणेता। १६ भागवतकौमुदी और मन्त्रकौमुदी नामक दो ग्रन्थके रचयिता। १७ भार्गवचम्पूके प्रणेता। १८ मुद्रार्णव नामक तन्त्रके रचयिता। १९ लीलावती तत्त्वचिन्तामणिदीधिति टीकाकर्त्ता। यह ग्रंथ अधिदीधितिभावार्थ नामसे भी प्रसिद्ध है। २० विजयविलासके प्रणेता। २१ विवेककौमुदी और व्रतोद्यापनकौमुदी नामक दो ग्रंथके रचयिता। २२ वैद्यरत्नाकर भाष्यके प्रणेता। २३ शङ्कराभ्युदय काव्यके रचयिता। २४ शरभार्च्चनपद्धतिके प्रणेता। २५ सपिण्डनिर्णयके रचयिता। २६ सिद्धान्तशिरोमणिके त्रिप्रश्नाधिकारके टीकाकार। २६ संस्कारगणपति नामक पारस्करगृह्यसूत्र-विवरणके प्रणेता, कोणके पुत्र। २७ श्राद्धगणपति नामक श्राद्धसंग्रहके सङ्कलयिता। ये कोण्डभट्टके पुत्र और प्रयागभट्टके पौत्र थे। २६ दुर्गाविलास महाकाव्यके प्रणेता। ये गोपाल आचार्यके पुत्र और शिवनाथके पौत्र थे। ३० एक टीकाकार।

इन्होंने १८४८ ई०में ज्ञानकोषरत्नाकर नामक काव्यकी टीका लिखी। इनका दूसरा नाम था कोकाराम। ये शिवारामके पुत्र थे। ३१ गङ्गेशकृत तत्त्वचिन्तामणि प्रकाशकी न्यायशिखामणि नामक टीका, अपने पिता धर्मराज अध्वरीन्द्रकी बनाई वेदान्तपरिभाषाकी वेदान्तशिखामणि नामक टीका और वेदान्तसार टीका नामक तीन टीकाके प्रणेता। ३२ रसराजशङ्कर नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता, मुकुन्दके पुत्र। ३३ बोधयन्त्रित प्रबोधक रचयिता। ये लक्ष्मणके पुत्र और नृसिंहके पौत्र थे। ३४ भगवतीपद्यपुष्पाञ्जलिके प्रणेता तथा श्रीपतिके पुत्र।

रामकृष्ण आचार्य—१ कर्मविपाकके रचयिता। २ न्याय सिद्धांतके प्रणेता।

रामकृष्ण गोसाईं—जगन्मोहिनी नामक वैष्णवसम्प्रदायके प्रवर्त्तक। प्रवाद है, कि सत्रहवें किसी रामानन्दी वैष्णवसे उपदेश ग्रहण कर जगन्मोहनने मेकधारण किया। साम्प्रदायिकों का कहना है, कि जगन्मोहन गोसाईंने इस धर्मका सूत्रपात किया, किन्तु रामकृष्णके समय यह मत बहुत कुछ प्रचलित हुआ। जगन्मोहनके शिष्य गोविन्द गोसाईं, गोविन्दके शिष्य शान्तगोसाई तथा शान्तके शिष्य रामकृष्ण गोसाई थे। रामकृष्ण नवाबमें सुलतान मानाधिकारके समय विद्यमान थे।

ये सम्प्रदायिक निर्गुणके उपासक हैं। गुरुको ही साक्षात् परमेश्वर मानते हैं। गुरु ही मूर्त्तिमान् ईश्वर और शिष्यों के त्राणकर्त्ता हैं। वाह्यकालमें 'गुरु सत्य' कह कर गुरुको परमदेवता समझ उनसे ब्रह्मनाम लेते और उनकी उपासना करते हैं। धर्मसंगीत ही इनका एकमात्र अवलम्बन है जो निर्वाणसंगीत नामसे परिचित है।

रामकृष्ण दीक्षित माहामाह—अग्निष्टोमपद्धति अग्नि होम-प्रयोग, पैत्राहिक सत्रप्रत्यपपद्धति गृह्यसंग्रहभाष्य, चयनपद्धति, छन्दोगाहिकपद्धति, ज्योतिष्टोमोद्गुयागपद्धति पुष्पसूत्रदीप, ब्रह्मसत्रपद्धति, लाट्यायन सूत्रभाष्य, वाजपेय पद्धति, पौण्डरीकपद्धति और सामतन्त्रभाष्य नामक कई ग्रन्थोंके प्रणेता। इनके पिताका नाम था दामोदर। इन्होंने १६११ ई०में वाराणसीधाममें अपने व्यवहारार्थ विश्व कोशसु म यकी नकल की थी।

रामकृष्णदेव—भास्कराचार्यकृत लीलावती ग्रन्थके मनो रञ्जन नामक टीकाकार।

रामकृष्णदेव (परमहंस)—कलकत्तेके उत्तर उपकण्ठवासी एक प्रसिद्ध हिन्दू साधु। वेदान्त मतानुयायी अद्वैत वा अध्यात्मधर्मकी उपासना ही उनकी अनुमोदित और अभिप्रेत थी। गङ्गातीरवासी इन महात्माने ग्रामी लोगों का मन आकर्षण कर अपने ज्ञानगर्भ उपदेश द्वारा किस प्रकार इस धर्मविप्लवके समय नवधर्मतत्त्वका परिवर्त्तन किया था उसकी आलोचना करनेसे आश्चर्यान्वित होना पड़ता है। उनके सुप्रसिद्ध शिष्य स्वामी विवेकानन्दने अदम्य उत्साहसे अमेरिकामें भी रामकृष्णका मत चलाया तथा वहांके अधिवासियोंको मन्त्रमुग्ध कर हिन्दू धर्ममें अनुरक्त किया। आज भी 'रामकृष्णमिशन' अमेरिकामें दृढ़ कर पदपरिकर हो कार्य चलाते हैं।

पूज्यपाद रामकृष्णदेवने १७५१ शककी १०वीं फाल्गुन शुक्लपक्षकी द्वितीया तिथिमें जन्मग्रहण किया। उनके पिताका नाम क्षुदिराम चट्टोपाध्याय था। हुगली जिलेके कामारपुकुर ग्राममें उनका घर था। रामकृष्णदेव क्षुदी रामके तृतीय पुत्र थे।

रामकृष्णके जन्मसम्बन्धमें एक अलौकिक किंवदन्ती प्रचलित है;—रामकृष्णदेवने जब मातृगर्भमें प्रवेश किया, उस समय क्षुदिराम गयाधाममें थे। ये सर्वदा ईश्वरसे यही प्रार्थना किया करते थे, कि उनके एक परम धार्मिक देव तुल्य साधुपुत्र उत्पन्न हो।

इधर देशमें रामकृष्णकी माता एक पड़ोसिनके साथ पासवाले एक शिवालयमें पूजा करने गई। इसी समय एक बवंडर शिव मन्दिरकी ओरसे आया और उनके उदर में घुस गया। बवंडर घुसनेकी बात गमाम फैल गई। कोई उसे भूत, कोइ प्रेत और वायुरूप रोग बताने लगा। किन्तु यथार्थमें उसी दिन उनके गर्भसञ्चार हुआ। इस समय रामकृष्णकी माताकी उमर चालीससे ऊपर थी। अभी तक उनके रामेश्वर और रामकुमार नामक दो उप युक्त पुत्र और कन्यादि हो चुकी थीं। प्रौढ़ावस्थामें पूर्णगर्भ देख कर पड़ोस स्त्रियां तरह तरहकी बातें उड़ाने लगी। आखिर सबोंने यही स्थिर किया कि ब्रह्मदैत्य ही इस बार गर्भमें घुसा है।

खुदिराम जब घर लौटे, तब सभी बात उन्हें मालूम हुई। स्त्रीकी अवस्था देख कर उनके रोंगटे खड़े हो गये। आखिर उन्हें पूरा विश्वास हो गया, कि इस गर्भसे कोई महापुरुष उत्पन्न होंगे। उचित समय पर एक पुत्र भूमिष्ठ हुआ। पुत्रको देख सबोंने उनके अवतारत्वकी कल्पना की।

जिसका जैसा संस्कार होता है, वह बचपनसे ही दिखाई देता है। लिखना पढ़ना देवपूजामें अनुरक्ति अथवा खेलना, दूसरेकी चीज चुराना आदि किसी किसी बालकमें मानो जन्मार्जित फलके जैसा अनुमान होता है। रामकृष्णदेव कोई भी खेल नहीं जानते थे। वे अपने ठाकुरको सजाना पसन्द करते तथा पड़ोसके बालकोंको साथ ले कर मैदानमें, निर्जन उद्यानमें बैठ कृष्णलीला, रामलीला वा गौराङ्गलीला किया करते थे। इस प्रकार लीलामें कभी कभी वे बेहोश हो जाते थे। ईश्वरविषयक मधुरसङ्गीतसे ये सभीका मन चुरा सकते थे। तत्त्वदर्शी मनुष्य उन्हें ठाकुर समझते थे।

कुमारपूकुरमें लाहा उपाधिधारी एक सम्भ्रान्तवंशका वास था। उनकी अतिथिशालामें प्रतिदिन अनेक साधु संन्यासी आया करते थे। वे लोग रामकृष्णको तिलकचन्दनादि लगा कर अपने अपने भोजनमेंसे पहले उन्हीं को थोड़ा थोड़ा करके खिलाते, बादमें आप खाते थे। साधु महात्मा जिस बालकको भोजन करा कर तृप्त होते थे, क्या उसे सामन्य बालक कह सकते ?

रामकृष्णदेवको जब खुदिरामने पाठशाला भेजा। तब इन्होंने हंस कर कहा था, 'अर्थकरी विद्याकी मुझे जरूरत नहीं। इससे तो चावल केला मिलता है, मैं यह विद्या नहीं पढ़ूंगा।' फिर वे लोगोंको मूर्ख होनेका भी उपदेश नहीं देते थे उनका कहना था, कि बुद्धि ही शुद्धिहेतुकी शिक्षा है। जिस विद्यासे बुद्धिका उत्कर्ष साधित होता है, जिस विद्यासे बुद्धि भगवान्के पास दौड़ती है उस विद्याका—उस ब्रह्मविद्याका आजीवन अभ्यास करना ही सभी नरनारियोंका कर्त्तव्य है।

गैरिकवस्त्र धारण कर संन्यासी वा भिक्षु आश्रमावलम्बी होना उनकी इच्छा न थी। वे कहते थे, कि कमण्डलु ले कर, गैरिकवस्त्र पहन कर, लोगोंको ठग कर आत्मसुखभोग करना संन्यासिधर्म नहीं है। भगवान्के प्रति जिनका मन दौड़ता है उनकी सभी विषयोंमें उदासी देखी जाती है। यह भाव उनके हृदय पर अच्छी तरह पड़ गया था। रासमणिके देवालयमें पुजारी रह कर इन्होंने कुछ दिन तक रुपया कमाया। जब इनकी अवस्था कुछ अच्छी हुई, तब इन्होंने पूजादि करना छोड़ दिया। इस अवस्थामें उनका सभी खर्च मन्दिरसे चलता था। शम्भुचन्द्र मल्लिक और रासमणिके जमाई मथुर बाबूने उनको नित्यसेवाके लिये एक नया प्रबन्ध करना चाहा। लेकिन इन्होंने कहा था कि, 'चला जाता है, नये प्रबंधकी जरूरत क्या ?' मथुर बाबू इन्हें जो वाराणसीकी चेली पहनने देते थे उसे ये मन्दिरके कीर्त्तनियों वा यात्रावालोंको दे दिया करते थे। इन्होंने जो स्त्रीकाञ्चनकी माया छोड़ दी थी उसके कितने दृष्टान्त मिलते हैं।

बचपनमें ही इनके पिता परलोकको सिधारे। माता के प्रति इनकी यथेष्ट भक्ति थी। रामकृष्णदेव जब रासमणिके कालीभवनमें काम करते थे उस समय तथा उसके बाद भी माता उनके पास ही रहती थी। भाई भतीजे, बहन बहनोई सबोंके साथ इन्होंने सम्बन्ध रखा था। हुगली जिलेके रहनेवाले रामचन्द्र मुखोपाध्याय की कन्या शारदा सुन्दरीसे इनका विवाह हुआ।

विवाहके बाद फिर इन्हें कभी स्त्रीसे भेंट नहीं हुई। यद्यपि बीच बीचमें ससुराल जानेकी इच्छा होती थी, पर कार्य्यवशतः नहीं जा सकते थे। जब इन्होंने जवानीमें कदम बढ़ाया, उस समय बाह्यजगत्की ओर इनकी बिलकुल दृष्टि न थी। वे हमेशा ईश्वर-चिन्तामें निमग्न रहते थे, किसीके साथ बातचीत भी नहीं कर सकते थे। यहां तक कि अपने शरीरकी ओर भी इनकी दृष्टि न थी। वे स्वयं खा पी नहीं सकते थे तथा मलमूत्रादि त्याग करनेका समयज्ञान भी उन्हें नहीं रहता था। फलतः सबोंसे इनका दैहिक सम्बन्ध टूट गया। इस समय इन्होंने अपनी स्त्रीकी तन्त्रमतसे पूजा की थी। साधारण भावमें हम लोग स्त्रीको जैसा समझते हैं, वे वैसा न समझते थे। वे केवल अपनी स्त्रीको ही नहीं, वरन् स्त्री-जातिको माता कहा करते थे। वे कहते थे, कि एक दिन गणेशने भगवतीके ललाट पर क्षत चिह्न देख कर पूछा, 'मा। तुम्हारा

कृपाण क्यों है ?' भगवतीने उत्तर दिया, 'वत्स ! एक दुष्ट लड़केने ईंट फेंक कर बिड़ालका शिर फोड़ दिया था। मैं सभी जगह प्रकृतिरूपमें विराज करती हूं, इस कारण बिड़ालको आघात करना मानो मुझे ही आघात पहुंचाया।' यह सुन कर गणेशने समझा, कि जब ऐसा है तब सभी मेरी माता हैं इसलिये मैं विवाह नहीं कर सकता।' माता पिताके कहने पर भी गणेशने विवाह नहीं किया था। रामकृष्णदेव भी गणेशकी तरह सभीको माता समझते थे।

रामकृष्णदेव इसी कारण विवाह करके स्त्रीको साथ रख कर भी उनके साथ स्त्रीका-सा व्यवहार नहीं करते थे। सर्वसाधारणको ये उपदेश दे गये हैं, कि स्त्रीके निकट रहनेसे पशुभावका उद्रेक होता है, उसीको फिर दूसरे भावमें रख कर दिन यापन करना कोई कठिन बात नहीं है।

अभी यह प्रश्न हो सकता है, कि रामकृष्णदेव क्या सचमुच जितेन्द्रिय पुरुष थे। उनका कहना था,—

"काजल क घरमें केता सयान हाथ
दुइ दुइ लागे पर लागे।
युवतीकी साथ केता सयान हाल,
थोड़ा काम लागे पर लागे।"

यहां पर वे जो स्वयं जितेन्द्रिय हुए थे, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण क्या ?

रामकृष्णदेवने कभी भी यौवनावस्थामें स्त्रियोंका संसर्ग नहीं किया। और तो क्या, स्त्रीका मुंह तक भी उन्होंने नहीं देखा था। जिस समय वे पहली बार स्त्री के पास गये थे, उस समय षोड़शीरूपसे उनकी पूजा की थी। उनके महत मनका भाव जाननेके लिये अनेक बार बहुतोंने उनकी परीक्षा भी की थी। एक बार ठाकुरबाड़ी में कोई वेश्या उनके पास भेजी गई थी। उसने लगातार कई दिनों तक अपनी मायिका जाल फैलाया, पर जितेन्द्रिय रामकृष्णने आसानीसे उस जालको तोड़ दिया था। कृताञ्जलिपुट हो उन्होंने वेश्यासे कहा था, 'देवि ! तुम मेरी आनन्दमयी माता हो, मैं तुम्हारा सन्तान हूं।' परंतु यह कामातुरा कब माननेवाली थी। लाख मना करने पर भी जब उसने अपना जाल नहीं समेटा, तब रामकृष्णने सिंहनाद करते हुए उसकी ओर कटाक्ष फेरा और तब वह प्राण ले कर भागा।

उस समय मछुआ-बाजारमें लक्ष्मीबाई नामक एक वेश्या रहती थी। उसके साथ सलाह करके एक भद्र पुरुष रामकृष्णको वहां ले गये थे। रामकृष्णदेवकी उस समय चढ़ती जवानी थी। वेश्याके घर उन्हें छोड़ कर वह भद्रपुरुष चम्पत हो गये। लक्ष्मीबाईने प्रायः १५।१६ युवतियोंको कुछ नंगी हालतमें बैठा कर तथा घरको भी सुगन्धित द्रव्योंसे सुवासित कर रखा था। उसने सोचा था, कि जिस मोहिनीके फंदेमें महायोगी, महाऋषि तक भी फंस गये हैं, जिस मोहिनीका रूप देख कर बुद्ध पद्य तक भी ठहर न सके थे, आज उसी मोहिनीमूर्त्तिका बाजार मैंने लगाया है। यह समझ कर लक्ष्मी रामकृष्ण का चित्त लुभानेके लिये बहुत कोशिश करने लगी। घर में घुसते ही रामकृष्णने कृताञ्जलिपुट हो 'मा आनन्दमयि' कह कर सबोंको प्रणाम किया और उनके बीच अपना आसन जमाया। बीचमें उन्हें बैठा देख कर वेश्याओंने सोचा, 'अब देखें, तो ये किस प्रकार भागते ? हम लोगों ने बहुतों साधुको देखा है, बहुतों भद्रको देखा है, बहुतों सभ्य महात्माको देखा है, पर ये तो उन लोगोंसे कहीं हीन हैं। बाबू बड़े मूर्ख हैं। इनके साथ संग्राम करनेमें विशेष आयोजनकी दरकार न था। सचमुच यह काम हम लोगोंका वैसा ही हुआ है जैसा मच्छड़ पर तोप चलाना।' रामकृष्ण देवने आंखें फाड़ कर एक एक बार सबोंकी ओर देखा। प्रत्येकको 'मा आनन्दमयि' कहते उनका जीभ तालुमें सटने लगी। लक्ष्मीने तिरछी नजर फेर कहा, 'वाह साधु महाराज, आप शराब भी पीते।' रामकृष्णदेव कौन शराब सेवन करते थे, वह क्षुद्र वेश्या को क्या मालूम। लक्ष्मीने नंगी हो कर ज्यों ही बांह बढ़ाई, रामकृष्ण देव त्यों ही हाथ जोड़ कर उसके प्रति एक दृष्टिसे 'काली काली' कहते हुए समाधिस्थ हो गये। उनके शरीरसे ज्योति निकलने लगी। वह ज्योति देख कर वेश्यायें डर गई और अपना अपना कपड़ा पहन कर उन्हें हवा करने लगीं। कोई जल लाने दौड़ी, कोई हाथ जोड़ गलेमें अञ्चल डाल चरणोंमें गिर पड़ने

लगी और कोई अज्ञानकृत अपराधके लिये वार वार क्षमा मांगने लगी।

शक्तिके उपासक हो रामकृष्णने कालीकी साधना की थी। पीछे तन्त्रादिमत साधनके अलावा उन्होंने स्वयं सभी साधनाओंको सम्पन्न किया था। ऊर्द्ध्वमुखसे तन्त्रकी साधना बहुत भयानक है, साधारण मनुष्य उसे कर सकते, संदेह है। किन्तु वे ब्राह्मणोकी सहायतासे उसमें भी कृतकार्य्य हुए थे।

वैदान्तिक मतसे वे गुप्तसंन्यासी हो शङ्करका शाखा-विशेष पुरी श्रेणीके अंतर्गत तोतापुरी नामक एक नंगे साधुसे दीक्षित हुए और पीछे निर्विकल्प समाधिलाभके लिये प्रवृत्त हो गये। उस साधनाके बल वे तीन दिनमें कृतकार्य हुए थे। इस साधनाके पहले हो वे कुम्भकादि योग प्रक्रियामें नियुक्त थे। तोतापुरी रामकृष्णकी समाधि देख कर अवाक् हो गये। उन्होंने रामकृष्णके विशेष अनुरोध करने पर तीन दिन वहां ठहरना स्वीकार किया था। किंतु उसके बाद लगातार ग्यारह मास तक दूसरी जगह जानेकी उनकी विलकुल इच्छा न हुई। इतने दिन रहनेका कारण यह था, कि जिसे कभी कोई नहीं कर सकते, जिसके लिये उन्होंने चौआलिस वर्ष विताया था उस दुःसाध्य निर्विकल्प समाधिको रामकृष्णने तीन दिनके अंदर किस प्रकार कर डाला। इसका कारण जाननेको उनकी उत्कट इच्छा थी। रामकृष्णको न समझ कर वे आखिर गंगामें डूब मरने गये थे, किंतु दुर्भाग्यवश वहां उतना जल नहीं था जिससे वे पुनः लौट कर रामकृष्णके पास आये और अपनी आत्मदुर्बलता स्वीकार कर चल दिये।

रामकृष्णने वैदिक मतसे पञ्चवटी तय्यार करके ध्यानादि किये थे। आज भी कलकत्तेके उत्तर दक्षिणेश्वरके कालीमन्दिरमें उस पञ्चवटी और तान्त्रिक साधनके पञ्चमुण्डी और वेलतलाका निदर्शन पाया जाता है।

उन्होंने राममन्त्र साधन करनेके लिये हनुमानका अवलम्बन किया था क्योंकि हनुमान जैसे विशुद्ध भक्त बहुत थोड़े थे।

कृष्णोपासनाके समय वे कभी गोपिका और कभी श्रीमती राधिकाके भावमें रहते थे। इस प्रकार सभी धर्मभावसाधनके प्रक्रियानुसार वे जा कर रामात्, निमात्, बौद्ध, नानकपन्थी आदि सम्प्रदायविशेषके साथ मिले और पहलेकी तरह तीन तीन दिन करके हर एककी साधना की। आश्चर्यका विषय यह कि तीसरा दिन बीतते ही एक दूसरे सम्प्रदायके सिद्धपुरुष आ कर खड़े हो जाते थे। जब प्रकाश्य मतके कार्यादि शेष होने पर आये, तब वे गुप्त मतकी साधनामें प्रवृत्त हुए। इस समय भी पहलेकी तरह सिद्धपुरुष आने लगे। रामकृष्णने उन लोगोंसे उपदेश पा कर तीन दिनके हिसाबसे सभी पन्थाओंका चरमभाव आयत्त कर लिया।

हिन्दूमतके प्रकाश्य और अप्रकाश्य मतोंका निदान निरूपण करनेके बाद इन्होंने महम्मदीयधर्ममें दीक्षित होना चाहा। भावमयका यह अभिनव मानससंकेतमें अङ्कित होते ही गोविन्ददास नामक एक व्यक्ति वहां सहसा पहुंच गये और मुसलमानीधर्ममें उन्हें दीक्षा दी। इस साधनामें भी उन्हें तीन दिनसे अधिक समय न लगा था।

मुसलमानीधर्मसाधनाके समय वे ठीक मुसलमानों की तरह लुंगी पहनते और शिर पर टोपी रखते थे। इस समय भूल कर भी वे काली अथवा राधाकृष्ण अथवा और किसी देवदेवीका नाम नहीं लेते थे।

पीछे ईसाधर्मग्रहण करनेकी इनकी इच्छा हुई। इस समय कोई सिद्ध ईसाई न थे। इसलिये एक दिन वे यदुलाल मल्लिकके उद्यानमें टहलनेके लिये गये और वहां मेरीकी गोदमें एक सोते हुए ईसाईके चित्रको देख कर भावमें विभोर हो गये। पीछे यीशुकी विमल ज्योति पा कर पुलकित हृदयसे वही भावप्रकाश करने लगे। इस समय इन्हें ऐसा मालूम होता था, कि वे मानो गिरजामें खड़े हैं। इसी भावमें इन्होंने तीन दिन विताया सब प्रकारके वैधधर्मसाधनके बाद वे ब्राह्मोंके साथ मिले। इन्होंने पहले आदि ब्राह्मसमाजके आचार्यप्रवर देवेंद्रनाथ ठाकुर महाशय, पीछे भारतवर्षीय ब्राह्मसमाजके प्रवर्त्तक केशव चंद्रसेन और अन्तमें साधारण ब्राह्मसमाजके गोस्वामी और शास्त्री महाशयके साथ आनन्द लूटा था।

रामकृष्णदेवकी विशेष शिक्षा यह थी, कि अपनेमें सीमाविशिष्ट ज्ञान रख कर अनन्त एकाकार मालूम कर लेनेसे विवाद मिट जाता है। अर्थात् अपना भाव कायम रहना और यह भाव एक अद्वितीय भावमयका अनन्त देना होगा। जिस प्रकार सभाको एक प्रमुख मुख्यवान, एक राजाका प्रजाजान रहनेसे सुमोष या राजाका भ्रम नहीं होता, सुमोष या राजा ले कर परस्पर विवाद नहीं चलता, उसी प्रकार एक अद्वितीय परमेश्वर सबोंके उपास्य हैं, यह ज्ञान हो जानेसे कोई विवाद रहने नहीं पाता। रामकृष्णदेव इस आध्यात्मिक तत्त्वको प्रकट करनेके लिये अवतीर्ण हुए थे, ऐसा ही उनके शिष्यों और भक्तोंका विश्वास था।

सबसे पहले एक ब्राह्मणीने रामकृष्णको अवतार बतलाया था। रामकृष्णदेवकी साधनावस्थामें यह स्त्री वहां पहुंची थी। उसे देख कर रामकृष्ण बहुत प्रसन्न हुए थे। ब्राह्मणी बंगालकी रहनेवाली थी। वह किसकी स्त्री थी, किसकी कन्या थी, कहां रहती थी किसीको भी मालूम न था। पुराणतन्त्र और सभी साधनादि उसके आयत्त थे। वह रामकृष्णके साधनकार्यमें सहायता पहुंचाती थी। ब्राह्मणीके साथ रामकृष्णका गोपाल भाव था। वह कभी कभी यशोदा की तरह वेशभूषा पहन कर अन्यान्य स्त्रियोंके साथ चांदीकी थालीमें खीर मक्खन ले कर गोपाल विषयक गीत गाती हुई रामकृष्णके घर जाती थी। उनके पास पहुंचते ही उसे मूर्च्छा आ जाती थी। उस समय उसके कानोंमें जब तक गोपालका नाम नहीं उच्चारण किया जाता तब तक उसे होश नहीं होता था। कालीके सामने जब कभी बलिदान पड़ता तब वह उस रुधिरसे रक्तादिको बराबोर कर आ सकती थी। बहुतेरे उस ब्राह्मणीको कालीका स्वरूप मानते थे। रामकृष्णके साथ यह व्यवहार बहुत थी। इस ब्राह्मणीने जब रामकृष्णदेवको अवतार कह कर घोषित किया तब मथुर बाबू यह जाननेके लिये कलकत्तेसे एक पण्डित वैष्णवचरण को साथ ले दक्षिणेश्वर गये। इस समय बंगालके एक अद्वितीय दिग्विजयी गौरी नामक पण्डित भी वहां मौजूद थे। वैष्णवचरणको देखते ही रामकृष्णदेव भावके आवेशमें दौड़े और उनके कंधे पर चढ़ गये। वैष्णवचरण रामकृष्णदेवके अपूर्व महाभावके लक्षण देख कर उनका स्तव करने लगे। अब ब्राह्मणीकी बात पर उन्हें पूरा विश्वास हो गया तथा उन्हें और गौरीको रामकृष्णको अवतार माननेमें जरा भी सन्देह न रहा।

रामकृष्णदेव इस समय पण्डित और साधुभक्तोंके साथ रहा करते थे। वे एक आदर्शपुरुष थे यह बात अब भी जनसाधारणको मालूम न थी। परन्तु भारत वर्षके साधु और भक्त उन्हें अच्छी तरह जानते थे। बहुतोंने गुप्तभावमें उन्हें अवतार मान लिया था। जन साधारणके सामने अपना प्रच्छन्न भाव दिखलानेके लिये ब्राह्मणीने उन्हें तंग किया। इस पर रामकृष्णने विरक्त हो उसे वहांसे चले जानेको कहा।

केशवचन्द्रसेनने रामकृष्णदेवके आदेशसे प्रचार कार्य आरम्भ कर दिया, उनका भावपूर्ण उपदेश केशव बाबू कभी कभी समाचारपत्रमें भी निकाला करते थे। इससे लोगोंका ध्यान इनकी ओर थोड़े ही समयमें आकृष्ट हो गया। नवविधान देखो।

केशव बाबू और उनके मतावलम्बी जब रामकृष्ण के पास आया करते थे, उस समय वे अपना भाव अच्छी तरह प्रकट नहीं करते। इसी कारण कोई उनके निर्दिष्ट उपासक भी नहीं हुए। उन्होंने उस समय भी अपना भाव छिपा रखा था, मालूम नहीं। पीछे १८७९ ई०में उनके निर्दिष्ट उपासक धीरे धीरे दलपुष्ट हो अभी भारतवर्षमें तमाम फैल गये हैं और उनका कार्य करते हैं।

इसके बाद इन्होंने दक्षिणेश्वरमें कुछ दिन बिताया। यहां उनके गलेमें एक रोग हो गया। उसकी चिकित्सा के लिये उपासकवृन्द उन्हें कलकत्ता ले आये। सुविख्यात होमियोपैथिक डा० महेन्द्रलाल सरकारने बड़े यत्नसे चिकित्सा की, पर रोग नहीं छूटा। इसी समय कालीपूजाका दिन आ पहुंचा। उस दिन सवेरे उन्होंने एक भक्तको बुला कर कहा आज महामायाकी पूजाका दिन है, तुम लोग पूजाका आयोजन करो। भक्तोंने वैसा ही किया। संध्याकालके बाद पूजा देखनेके बहुतसे आदमी आये। पूजा समाप्त करके आगन्तुक महामायाका प्रसाद पाया। जिस कष्टसे चुप तक भी

नहीं पी सकते थे आज बडी आसानीसे वे कठिन वस्तु भी खा गये।

इस घटनाके कुछ दिन बाद ही उन्हें कलकत्तेसे काशीपुरके उद्यानमें लाया गया। यहां वे आठ मास थे। काशीपुरमें रहते समय इन्होंने बहुत सी तत्त्व कथाओं-का उपदेश दिया था।

इतने दिन बीत गये पर रोग जरा भी न हटा। यह देख एक दिन कुछ भक्तोंने हाथ जोड कर उनसे निवेदन किया, 'प्रभु ! आपने क्यों ऐसे रोगका बहाना किया है ? हम लोगोंने यह रोग दूर करनेके लिये कोई कसर उठा न रखी, पर जरा भी फायदा नहीं देखते हैं। इससे अब हम लोगोंको अच्छी तरह मालूम हो गया, कि जब तक आप स्वयं इसकी व्यवस्था न करेंगे, तब तक यह रोग दूर भी नहीं हो सकता है।' उत्तरमें रामकृष्ण ने कहा, व्याधिका पता तुम लोगोंको अब तक भी न लगा, प्रत्येक कार्यका फल है। सत्कार्यका सुफल और असत्कार्यका कुफल है कार्यानुसार ऐसे फलाफलका भोग करना होता है। तुम लोगोंने जो असत् कार्य किया है, जैसा पाप किया है, यदि तुम्हें उसका फल भोगना पड़े, तो तुम्हारा भविष्य बहुत भयानक हो जायगा। किन्तु कार्यका फल भोग करना भगवान्‌का नियम है अतएव तुम्हारे उन पापोंको मैंने हाथ पसार कर ले लिया है। जिस दिन तुम लोगोंने बकलमा दिया है उसी दिनसे तुम्हारा पूर्वसञ्चित पाप नष्ट हो गया है। पापके दूर हुए बिना शरीर शुद्ध नहीं होता और न भगवान्‌के साथ सम्बन्ध ही हो सकता है। मानवदेहमें पापका भोग भुगतना होता है, इसीलिये मेरे शरीरमें रोग हुआ है। मेरे इस रोग द्वारा तुम लोगोंके पाप दूर हुए हैं तथा जो कोई मुझमें आत्म-समर्पण करेगा, वह भी मुक्त होगा और उसका भी पाप मुझे भुगतना होगा। इस समय नाना प्रकारके चिकित्सक, साधु और जनसाधारण राम-कृष्ण देवको देखने आते थे। कभी तो वे नारोग हो उद्यानमें टहलने जाते थे और कभी गलेमें जो घाव हो गया था, उससे कलसी कलसी शोणित वमन करते थे। आश्चर्यका विषय तो यह था, कि चिकित्सक जिस दिन जिस उपसर्गके प्रतिकारके लिये जो औषध देते थे, उस दिन वही उपसर्ग बढ जाता था उनके शरीरमें होमियो पैथी औषध तक सह्य नहीं होता था। एक दाना सेवन करनेसे समूचा शरीर विकल हो जाता था। इस कारण कोई भी चिकित्सक औषध प्रयोग करनेका साहस नहीं करते थे।

भक्तोंके निकट इस प्रकार नाना भावोंकी लीला कर १८०८ शकका ३१वीं श्रावण कृष्णपक्षका प्रतिपद तिथि का सञ्चार होते ही इन्होंने लीला रङ्गभूमिकी यवनिका गिरा दी।

प्रभुकी लीला शेष होने पर उनकी हड्डियां एक सप्ताह तक काशीपुरके बगीचेमें रखी गईं। पीछे जन्माष्टमीके दिन काकुडगाछीके उद्यानमें गाडी गई थीं। यहां आज भी नित्य पूजादि होता है तथा प्रतिवर्ष हर प्रतिपद तिथिसे ले कर जन्माष्टमी तक यहां विशेष पूजन तथा अन्तिम दिन प्रभुके नित्याविर्भाव निमित्तक रामकृष्णोत्सव होता है। रामकृष्णदेवने यद्यपि मानवलीला सम्वरण की है, पर वे जो कुछ कह गये हैं वह कार्यमें परिणत होता है। उन्होंने कहा था, कि 'मुझसे मेरा नाम बड़ा है—नामसे ही सभी काम पूरे होंगे। उस समय 'रामकृष्ण' नामकी जो महिमा है उसे उनके शिष्य-सम्प्रदायने अच्छी तरह समझ लिया था तथा जो यथार्थमें धर्म-पिपासु थे वे भी नामका माहात्म्य समझ कर आत्महारा हो गये हैं।

वर्त्तमान समयमें उनके शिष्य सम्प्रदायके यत्नसे कलकत्तेसे उत्तर काशीपुरके दूसरे किनारे गङ्गातीरवर्ती बेलुडग्राममें श्री श्री रामकृष्णदेवका मठ प्रतिष्ठित हुआ है। यहां और दक्षिणेश्वरके मन्दिरमें प्रतिवर्ष उनके उद्देशसे एक बड़ा मेला लगता है।

रामकृष्ण दैवज्ञ—१ तत्त्वप्रकाशिकाकी भास्वती नामकी टीका और भास्वतीचक्ररश्म्युदाहरण नामक ग्रन्थके प्रणेता। २ नृसिंह दैवज्ञके पुत्र। इन्होंने १३३६ ई०में गणितामृतलहरी नामक एक लीलावृत्ति लिखी। अलावा इसके बनाये ताजिककौस्तुभ और नाडिकाबन्धपद्धति नामक दो और ज्योतिर्ग्रन्थ मिलते हैं।

रामकृष्ण पण्डित—धर्मनिबन्धके रचयिता। २ एक दूसरे पण्डित। ये शिवतत्त्वबोधके प्रणेता यादव पण्डित-

के गुरु थे। ३ भक्तिदीधितिभावार्थ नामक न्यायग्रन्थके रचयिता।

रामकृष्णपुर—कलकत्तेका गंगातट पर अवस्थित एक नगर। यह ईष्ट इण्डिया रेलवेके प्रसिद्ध हावड़ा स्टेशनके दक्षिण अवस्थित है। यहां चावलका विस्तृत कार बार है।

रामकृष्ण भट्ट—इस नामके बहुतेरे पण्डित मिलते। १ अव्ययार्थ नामक व्याकरणके प्रणेता। २ कोटिहोम हवनुकारिमयोगपद्धतिके रचयिता। ३ गणपाठ और शुल्वबोधमक्रियाके प्रणेता। ४ प्रयोगदीपिकाके रचयिता। ५ मध्यसत्त्वचन्द्रिकाप्रदीप नामक ग्रन्थके प्रणेता। ६ रामकौतूहल नामक सङ्गीतसारोद्धारके रचयिता। ७ शाङ्खायन गृह्योक्त वास्तुशान्तिके रचयिता। ८ विभागतत्त्वविचार नामक कोषितिकार। ९ व्यवहार दर्पणके प्रणेता। १० वैयाकरणसिद्धान्तरत्नाकर नामक सिद्धान्तकौमुदीटीकाके प्रणेता। ये विठ्ठल भट्टके पुत्र और शेषकृष्णके पौत्र थे। ११ अनन्तव्रतोद्यापन प्रयोग, त्रौपसर्गिक कर्मतत्वनिर्णय, मासिक श्राद्धनिर्णय और शिवलिङ्गप्रतिष्ठाविधि आदि ग्रन्थके रचयिता। ये नारायण सूरिके पुत्र तथा कमलाकरके पिता थे। १२ रसेन्द्रकल्पद्रुम नामक वैद्यकग्रन्थके रचयिता। ये नीलकण्ठ भट्ट (मार्त्तण्ड) के पुत्र थे। १३ तीर्थरत्नाकर या रामप्रसाद प्रतापमण्डित तथा सिद्धान्तचन्द्रिका या युक्तिस्नेहप्रपूरणी नामक न्यायप्रदीपकी एक टीकाके प्रणेता। इन्होंने १५४३ ई०में वाराणसी धाममें शेषोक्त ग्रन्थ समाप्त किया था।

रामकृष्ण महाचार्य—१ शूलपाणिकृत प्रायश्चित्ततत्त्व विवेककी प्रायश्चित्तकौमुदी नामकी टीकाके प्रणेता। २ संकल्पकौमुदी (मीमांसा), सांख्यकौमुदी सांख्यसार और स्मृतिकौमुदी नामक कई ग्रन्थोंके रचयिता।

रामकृष्ण महाचार्य चक्रवर्त्ती—सुविख्यात नैयायिक शिरोमणि महाचार्य (रघुनाथ) के पुत्र। इन्होंने रघुनाथ कृत किरणावलीगुणप्रकाशदीधितिकी टीका, न्यायदीपिका और न्यायलीलावतीप्रकाश नामक ग्रन्थ लिखे।

रामकृष्ण मिश्र—एक प्रसिद्ध पण्डित। ये सिद्धान्त चन्द्रिकाकार शिवचन्द्र सिद्धान्तके गुरु थे।

रामकृष्ण राय—नाटोर राजवंशके एक राजा। विख्यात रानी भवानीने इन्हें गोद लिया था। सम्राट् शाह आलमने इन्हें 'महाराजाधिराज पृथ्वीपति बहादुर' की उपाधि दी थी। लार्ड कार्नवालिसके दशसाला बन्दो बस्तके समय ईष्ट इण्डिया कम्पनीके व्यवस्थानुसार जब नाटोरके अधीनस्थ तालुकदारोंको नजराना देने कहा गया तब इन्होंने अपनी क्षमता ह्रास होते देख बहुत छेड़छाड़ की। इस गोलमालमें तथा धर्मकर्म में अधिक लिप्ताके कारण राजा रामकृष्ण अच्छी तरह राजकार्य न चला सके। उनके अधिकृत कितने परगने बिक गये। इस समय रानी भवानीने नाटोर सम्पत्ति की रक्षाके लिये फिर एक बार शासनकी बागडोर अपने हाथ ली। रामकृष्णको श्यामापूजाम वेदान्तिकी भक्ति रहनेके कारण इन्होंने विषयकामनासे अलग होना चाहा। इसका फल यह हुआ, कि अनेक सम्पत्ति दीघापतियाके दयाराम तथा नशीपुरके काशीश्वर रायके हाथ लगी। कुछ सम्पत्ति गोबरडांगके खेलाराम मुखोपाध्याय और कलकत्तेके गोपीमोहन ठाकुरने खरीदी। रामकृष्ण साधक और सिद्धपुरुष थे। इस सम्बन्धमें अनेक किंवदन्ती भी सुनी जाती हैं। १७९५ ई०में ये परलोकको सिधारे।

रामकृष्ण वर्मा—एक ग्रन्थकार। इनके पिता हीरालाल क्षत्री सन् १८४० ई०में पञ्जाबसे पैदल काशी आये। यहां आ इन्होंने परचूनकी दूकान खोली और ५० वर्षको अवस्थामें आजमगढ़में इन्होंने अपना ब्याह किया जिससे राधाकृष्ण, जयकृष्ण और रामकृष्ण नामके तीन पुत्र उत्पन्न हुए।

बाबू रामकृष्ण वर्माका जन्म सन् १८५९ में हुआ था। १० वर्षको अवस्थामें इनके पिताका देहान्त हुआ। उस समय इनके बड़े भाईकी अवस्था केवल १६ वर्षकी थी और इनकी अवस्था केवल एक वर्ष एक महीनेकी। अतएव इनकी माता पर इन तीनों पुत्रोंके पालनपोषणका भार पड़ा।

कुछ बड़े होने पर ये गुरुके यहां हिन्दी पढ़ने लगे। जब इन्होंने हिन्दी लिखना पढ़ना सीख लिया, तब ये जयनारायण कालेजमें अंग्रेजी पढ़नेके लिये बैठाये गये। पढ़नेमें

इनका मन खूब लगता था। बाइबिलकी परीक्षामें ये सदा प्रथम रहा करते थे। उक्त कालेजमें एण्ट्रेंस पास कर लेने पर इन्होंने क्विंस कालेजमें नाम लिखवाया और वहां इन्होंने बी० ए० क्लास तक पढ़ा। ये घर पर एक पंडित से संस्कृत पढ़ा करते थे। बाइबिल पर इनकी अधिक श्रद्धा देख कर इनके अध्यापकने अपने धर्म पर इनका अनुराग दृढ़ किया।

छात्रावस्थामें ट्यूशन करके अपना निर्वाह करते थे। पढ़ना छोड़नेके बाद हरिश्चन्द्र स्कूलमें अध्यापक हुए, परंतु वहां थोड़े दिनों काम करनेके पश्चात् उन्होंने उक्त पदको त्याग दिया। तदनंतर आपने पुस्तकोंकी एक छोटी-सी दूकान कर ली। बाबू हरिश्चन्द्र तथा गोपालमंदिरके महाराजकी इन पर विशेष कृपा थी, क्योंकि ये कुशाग्रबुद्धि और हिंदी भाषाके स्वाभाविक कवि थे। इनकी किताबोंकी दूकान अच्छी चली, उसमें इन्हें लाभ भी हुआ। सन् १८८४ ई०में इन्होंने एक प्रेस खरीदा। इस प्रेसमें पहले पहल "ईसाई मत-खण्डन" नामकी एक पुस्तक छपी। उस पुस्तककी बड़ी बिक्री हुई, शीघ्र ही इनका छापाखाना प्रसिद्ध हो गया। इसी सालके मार्च महीनेसे "भारतजीवन" नामक पत्र निकालना इन्होंने प्रारम्भ कर दिया।

ये शतरञ्ज खेलनेमें बड़े प्रवीण थे। अतएव इन्होंने पण्डित अम्बिकादत्त व्यासकी सहायतासे कचौरी गलीमें "चेसक्लब" स्थापित किया था। ताश खेलनेका इन्हें अभ्यास था। सन् १८८१ ई०में इन्होंने ताशकौतुक पचीसी नामकी एक पुस्तक लिखी और छपवायी थी। लोगोंने उसे बहुत पसंद किया और उसकी बिक्री भी खूब हुई।

यों तो इन्होंने हिन्दी गद्यमें अनेक पुस्तकें लिखी परंतु इनका सबसे बड़ा काम "कथासरित्सागर" का अनुवाद है। इसके इस भाग आपने अनुवाद किये थे, परंतु पुनः अधिक अस्वस्थ होनेके कारण ये उस कार्यको आगे नहीं कर सके। सन् १९०५ ई०में जलोदररोगसे इनका शरीरान्त हुआ।

मनुष्यमें कितनी शक्ति होती है, उसके उपयोग करनेसे क्या क्या कर सकता है बाबू रामकृष्ण इसके आदर्श थे।

रामकृष्ण वैद्यराज—कनकसिंहप्रकाश नामक वैद्यक ग्रन्थके रचयिता। इन्होंने बिहार प्रदेशके अन्तर्गत बागेश्वरके अधिपति कनकसिंहके आश्रयमें रह कर यह ग्रन्थ बनाया था।

रामकृष्णशेष—रसिकरसजीवनी नामक अमरुशतकके टीकाकार।

रामकृष्णानन्त—प्रत्यक्तत्त्वप्रकाशिकाके प्रणेता।

रामकृष्णानन्द—महाभाष्यटीकाके रचयिता।

रामकृष्णानन्द तीर्थ—रामार्चनचन्द्रिकाके प्रणेता सदस्-ज्ञानानन्दतीर्थ यतिके गुरु।

रामकेला (हिं० पु०) १ एक प्रकारका बढ़िया केला। इसके पेड़का तना, फूल आदि गहरे लाल रंगके होते हैं। इनका फल कुछ पतला और प्रायः एक बालिश्त लम्बा होता है। यह बम्बई प्रान्तकी ओर अधिकतासे होता है और बंगालके केलोंसे आकारमें बिलकुल भिन्न होता है। २ एक प्रकारका बढ़िया आम जो बंगाल और मिथिलामें होता है।

रामकेशवतीर्थ (सं० क्ली०) पुराणानुसार एक तीर्थका नाम।

रामकोट—अयोध्याप्रदेशके सीतापुर जिलान्तर्गत एक परगना और उसके अन्तर्गत एक बड़ा गांव। प्रवाद है कि रामचन्द्र वन जाते समय यह नगर बसा गये थे। यहां तालुकदारगण जानवरवंशीय राजपूत हैं। १७०७ ई०में इस वंशके आदिपुरुष किसी सरदारने कच्छोंको हरा कर यह स्थान दखल किया था।

रामक्षेत्र (सं० क्ली०) पुराणानुसार दक्षिण देशका एक प्राचीन तीर्थ। (तापील० ७३ अ०)

रामखण्ड—सह्याद्रि शैलके अन्तर्गत एक प्राचीन तीर्थ और देवक्षेत्र। यह स्थान अति पवित्र है।

(सह्यादि० २।४।३७)

रामक्का—बम्बई प्रेसिडेन्सीके गोहेलवाड़ प्रदेशस्थ एक छोटा सामन्त राज्य। यह भाऊ नगर-गोण्डाल रेलपथके ढोला जंकसनसे साढ़े तीन कोस उत्तरमें अवस्थित है। यहांके ठाकुर लोग बड़ोदाके गायकवाड और जूनागढ़के नवाबको कर देते हैं।

रामगङ्गा (पूर्व)—युक्तप्रदेशके कुमायूं जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह हिमालय-पृष्ठसे १००० फुट ऊंचे स्थानसे निकल कर दक्षिणकी ओर ५५ मील बहती हुई रामेश्वर सङ्गममें सरयू नदीके साथ मिली है। पीछे दोनों नदियां रामगङ्गा नामसे बहती हुई काली नदीमें गिरती है।

रामगङ्गा (पश्चिम)—कुमायूं और रोहिलखण्डविभागमें तथा युक्तप्रदेशमें प्रवाहित एक नदी। यह हिमालय पर्वतके अक्षा० ३० ६´ उ० तथा देशा० ७९ २० पू०से निकल कर गढ़वाल और कुमायूंको शैलमाला होती हुई १०० मील रास्ता तै कर बिजनौर जिलेके कालागढ़ समतल क्षेत्रमें गिरा है। यहांसे १५ मील दक्षिण आ कर खोह नामक स्रोतस्विनीके साथ मिलती और अविराम गतिसे मुरादाबाद जिलेके मध्य होती हुई मुरादाबाद नगरसे दक्षिण बरेली जिलेमें आई है। पीछे बदाऊन, शाहजहानपुर, फर्रुखाबाद, कानपुर आदि स्थानोंको अतिक्रम कर अयोध्या प्रदेशके हरदोई जिलेमें आई है और कन्नौजके दूसरे किनारे गङ्गानदीमें मिली है। कोसी, गांगन, देवहा वा गार्हा नामक तीन शाखा नदियां इसके कलेवरको बढ़ाती हैं। पहाड़ी अधित्यकाभूमिमें प्रवाहित होनेके कारण इसका स्रोतगति कहीं कहीं बहुत भयावह हो गई है। इसका गतिपरिवर्तन जो कभी कभी देखा जाता है उसका यही कारण है।

रामगढ़—१ मध्यप्रदेशके मण्डला जिलान्तर्गत एक [illegible] विभाग। भूपरिमाण २६०७ वर्गमील है।

२ उक्त जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २२ ४७´ उ० तथा देशा० ८१ पू०के मध्य एक पर्वतके शिखर पर अवस्थित है। इस पर्वतके नीचे बुढ़नेर नदी बहती है। रामगढ़के दूसरे किनारे अमरपुर ग्राम है जहां अंगरेजोंका थाना है।

१६८० ई०में राजा नरेन्द्र शाह मुसलमानोंकी सहायतासे अपने भाई द्वारा राज्यच्युत हुए। पीछे एक सामन्तसे सहायता पा कर इन्होंने मुसलमानोंको हराया और नष्टराज्यका उद्धार किया। उस सामन्तको इन्होंने राजाकी उपाधि दे कर रामगढ़राज्य दान किया था। राजा नरेन्द्र शाहने उक्त सरदार पर जो वार्षिक राजस्व कर लिया था, १८१८ ई०में अङ्गरेजी अधिकारमें आनेके बाद अंगरेजराज भी वही कर लेते आ रहे थे। १८५७ ई०में गढ़ा मण्डलाके गोंडराजवंशधर राजा शङ्कर शाह विद्रोही हुए। अंगरेजके विचारसे उन्हें फांसीकी सजा हुई। पीछे उनकी रानी अपने उम्मेदवार अमान सिंहके लिये रामगढ़ पर अधिकार कर बैठी। यह ले कर अंगरेजोंके साथ उनकी कई छोटी छोटी लड़ाइयां हुईं। रानी अपना दलबल ले कर स्वयं रणक्षेत्रमें कूद पड़ी थी।

युद्धमें हार खा कर रानी भाग चली। अंगरेजी सेना उनको पीछा करती आ रही है, जान कर उन्होंने अपनी छातीमें तलवार घुसेड़ ली। उसी अवस्थामें ये अङ्गरेज शिविरमें लाई गई थीं। वहां कुछ समय बाद ही उनके प्राण पखेरू उड़ गये। अमानसिंह और उनके दो पुत्रोंने अङ्गरेजोंके हाथ आत्मसमर्पण किया। पीछे अङ्गरेजराजने उनका राज्य और राजोपाधि छीन कर मासिक वेतन स्थिर कर दिया।

रामगढ़—मध्यभारतके भोपाल एजेन्सीके अधीनस्थ एक ठाकुरात सम्पत्ति। यहांके ठाकुर जिन सब ग्रामोंकी रक्षा करते हैं उसके लिये उन्हें विभिन्न सामन्तसे रुपये मिलते हैं। वह तनखाह वे पोलिटिकल एजेण्टकी मारफत पाते हैं।

रामगढ़—राजपूतानाके जयपुर राज्यान्तर्गत शेखावाटी जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २८ १०´ उ० तथा देशा० ७४ ५१ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ११ हजारसे ऊपर है। नगर बहुत समृद्धिशाली है। यहां डाकघर, टेलिग्राफ आफिस और १० स्कूल हैं।

रामगढ़—बिहार और उड़ीसाके छोटानागपुरके सरगुजा राज्यान्तर्गत एक गण्डशैल। यह अक्षा० २२ ५३ उ० तथा देशा० ८२ ५५´ पू०के मध्य विस्तृत है। पर्वतके उत्तर नीचे उतरनेका रास्ता है। नीचे उतर कर एक दूसरे पर्वतशिखर पर आरोहण किया जाता है। यहां प्रायः २६०० फुट ऊंचा एक पत्थरका दरवाजा है। उस दरवाजेके ऊपर एक गणेशमूर्त्ति देखनेमें आती है। उस पर एक दूसरा दरवाजा भी है जो हिन्दूजातिके भास्करशिल्पकी पराकाष्ठा सूचित करता है। पर्वत पर

बहुत सी गुहायें, भग्नमन्दिर और उनमें अस्पष्ट शिला-फलक देखे जाते हैं। मन्दिरमें दशभुजा दुर्गा और हनुमान् आदिकी मूर्त्ति टूटी फूटी अवस्थामें पड़ी है। इसके उत्तर हातपोड नामक सुरङ्ग (Tunnel) देखने लायक है।

रामगढ—हजारीवाग जिलेके अन्तर्गत एक प्राचीन गण्ड-ग्राम और वहांकी कोयलेकी खान। दामोदरकी उपत्यका भूमि पर प्रायः ४० वर्गमील स्थान तक यह खान फैली हुई है। इस स्थानको भूगर्भ पर्वतमाला समाकीर्ण होनेके कारण कोयलेकी तहका पता लगाना कठिन है। कहीं कहीं Iron-stone प्रस्तरकी तहमें कार्वन मिला हुआ लोहा पाया जाता है। यहांके कोयलेमें कार्बन अधिक होनेके कारण वह लोगोंके कामलायक नहीं है।

रामगढ—राजपूतानेके अलवार राज्यके अन्तर्गत रामगढ तहसीलका एक शहर। यह अक्षा० २८° ३५´ उ० तथा देशा० ७६° ४६´ पू०के मध्य अवस्थित है और अलवार शहरसे १३ मील पूरबमें पडता है। जनसंख्या ५ हजार से ऊपर है। शहरमें एक डाकघर, वर्नाक्युलर स्कूल और एक अस्पताल है। १७४६ ई०में नराकू राजपूत पद्मसिंहने जयपुरसे यह जागीरमें पाया था। उन्होंने यहां एक किला भी बनवाया। पीछे उनके लडके सरूपसिंह अलवारके प्रधान सरदार प्रतापसिंहके विरुद्ध खड़े हुए और बडी बेरहमीसे मारे गये। १७७१ ई०में शहर अलवारके अधीन हुआ।

रामगति न्यायरत्न—'वङ्गलाभाषा और बंगलासाहित्य विषयक प्रस्ताव' नामक बंगलाभाषाके एक इतिहास-लेखक। ये हुगली जिलान्तर्गत त्रिवेणीवासी हलधर चूड़ामणिके लडके थे। बहरमपुर कालेजमें पढ़ाते समय उन्होंने अपने प्रिय छात्र रामदाससेनके पुस्तकागारमें बैठ असीम अध्यवसायसे उक्त ग्रन्थ सङ्कलन किया था। इसके बाद वे हुगलीके नार्मलविद्यालयमें अध्यापक नियुक्त हुए थे। १२३८ सालमें इनका जन्म और १३०१ सालको २४वीं आश्विनमें देहान्त हुआ था।

रामगतिसेन—एक बंगाली कवि। इन्होंने 'वङ्गलाभाषामे मायातिमिरचन्द्रिका और संस्कृतमें योगकल्पलतिका ..थे। विक्रमपुरनिवासी सुप्रसिद्ध लाला रामप्रसाद इनके पिता थे। माताका नाम सुमतीदेवी था। लाला रामगति पिताके ज्येष्ठ पुत्र थे। लाला रामप्रसाद देखो।

५० वर्षकी उमरमें रामगति धर्मभावमें विभोर हो गये। योगानुशीलनके लिये वे पहले कलकत्ते काली-घाटमें और पीछे काशीधाममें गये थे। ६० वर्षकी उमरमें काशीधाममें इनका देहान्त हुआ। सहधर्मिणी भी उन्हींके साथ सती हो गई। उनकी विदुषी कन्या आनन्दमयीने अपने चचा जयनारायणसे कुछ सहायता ले कर हरिलीला-काव्य लिखा था।

रामगायत्री (सं० स्त्री०) रामस्य गायत्री। रामचन्द्रकी गायत्री। जो रामोपासक अर्थात् रामचन्द्रका मन्त्रग्रहण करते हैं वे रामगायत्री जप करते हैं। तन्त्रमें इसका मन्त्र और गायत्री आदि विशदरूपसे वर्णित है।

रामगिरि (सं० पु०) रामाश्रितो गिरिः रामो रमणीयो गिरिर्वा। पर्वतविशेष, नागपुर जिलेका एक पहाड। इसका वर्णन कालिदास जीने अपने मेघदूतमें किया है। आज कल इसे रामटेक कहते हैं। कुछ लोग चित्रकूटको रामगिरि मानते हैं, पर मेघदूतमें जो स्थिति दी हुई है, उससे वह नागपुर होके पास होना चाहिये।

रामगिरि—दाक्षिणात्यके महिसुर राज्यके बङ्गलूर जिलान्तर्गत एक बडा शैल। यह अक्षा० १२° ४५´ उ० तथा देशा० ७७° २२´ पू०के मध्य अर्कावती नदीके बाएं किनारे अवस्थित है। इसके ऊपर दुर्ग आदिका भग्नावशिष्ट निदर्शन है। १७९१ ई०में अंगरेजराजने यह दुर्ग दखल किया था। १८०० ई०में क्लोजपेट नगर स्थापित होनेसे स्थानीय मनुष्य वहां जा कर रहते हैं। रामगिरि इस समय जनशून्य है।

रामगिरि (सं० स्त्री०) रामकली देखो।

रामगीता (सं० पु०) एक मात्रिक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें ३६ मात्राएं होती हैं।

रामगीतोपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्का नाम।

रामगोपाल—रसकल्पवल्लीके प्रणेता एक वैष्णव कवि। ये रघुनन्दनके शिष्य चक्रपाणि चौधरीके प्रपौत्र और गङ्गा-रामके पुत्र थे। १६४३ ई०में इन्होंने उक्त पुस्तक लिखी। इसी रामगोपालके पुत्र पीताम्बर दासने रसमञ्जरी प्रणयन की थी।

रामगोपाल घोष—एक बंगाली वणिक् और सुविज्ञ राजनैतिक। हुगली जिलेके बागाट ग्राममें इनका पैतृक-वासस्थान था। इनके पिता गोविन्दचन्द्र घोष व्यवसाय-वाणिज्यमें लिप्त रह कर कलकत्तेमें आ कर बस गये। वे कोचविहार महाराजके कलकत्तेके एजेण्ट थे। इसी कलकत्ता-राजधानीमें १८१५ ई०के अक्टूबर मासमें रामगोपालका जन्म हुआ।

बाल्यकालमें मापमिक अंगरेजी शिक्षाके लिये रामगोपाल मि० सेरबोर्नके स्कूलमें भर्त्ती हुए। १३ वर्षकी उमरमें ये कलकत्ता हिन्दूकालेजमें पढ़ने आये। यहां अध्यापकप्रवर ह, ल, व, डिरोजियोके शिक्षाधीन रह कर ये असाधारण प्रतिभावलसे थोड़े ही समयके अन्दर अङ्गरेजीशिक्षामें सम्यक् पारदर्शी हो गये। किन्तु पिताकी अवस्था अच्छी न था, इस कारण कालेजमें और अधिक न पढ़ सके। अनन्तर डेभिड हेयरके आग्रह करने पर मि० जोसेफ नामक एक यहूदी वणिक्ने इन्हें अपनी वाणिज्य-कार्यमें सहकारीरूपमें नियुक्त कर लिया।

रामगोपालने थोड़े ही समयमें परिश्रम और अध्यवसायसे अपने मालिकको सन्तुष्ट कर दिया। कर्त्तव्य कर्मके प्रति इनका अनुराग और स्थिर लक्ष्य देख कर जोसेफको इन पर दृढ़ विश्वास हो गया। इस समय रामगोपालने बङ्गालके कृषिजात और शिल्पजात द्रव्योंकी तालिकाके साथ एक विवरणी तय्यार कर मालिकको दी। अंगरेजीभाषामें रामगोपालका शिल्पनैपुण्य देख कर जोसेफ साहब बड़े प्रसन्न हुए। इनके भद्र व्यवहार और कार्यकुशलतासे परितुष्ट हो जोसेफ साहब इङ्गलैण्ड जाते समय अपने आफिसका कुल भार इन्हीं पर छोड़ गये थे। रामगोपालने बड़ी सावधानी और विलक्षणताके साथ अपने मालिकका काम करके वाणिज्य व्यापारमें दूसरा दिखलाई थी।

इसके कुछ समय बाद मि० केलसल जोसेफके हिस्सेदार हुए और रामगोपाल उनके Assistant हो कर रहे। जोसफके कामकाज छोड़ कर विलायत जाने पर मि० केलसलने रामगोपालको हिस्सादार बना लिया। उसी समयसे उस आफिसका नाम पड़ा 'Messrs Kelsall and Ghose'। १८४६ ई०में दोनोंके बीच मनमुटाव हो गया जिससे रामगोपाल २ लाख रुपया ले कर अपना हिस्सा छोड़ते हुए चले आये।

इस समय कलकत्तेमें छोटी अदालतके २य जजका पद खाली था। गवर्मेण्टने रामगोपालको यह कार्य ग्रहण करनेका अनुरोध किया, लेकिन रामगोपालने 'कम्पनीका नमक नहीं खाऊंगा' कह कर उसे अस्वीकार कर दिया।

उसके बाद इन्होंने आराकान देशका चावल खरीद कर एक आढ़त खोली। आकायब और रङ्गूनमें उसकी शाखा कायम हुई। इस व्यवसायमें इन्होंने बहुत धन कमाया था। इस समय यूरोपीय वणिक्समाजमें इनकी ऐसी प्रतिष्ठा थी, कि १८५० ई०की २६वीं नवम्बरको उन्होंने रामगोपालको बङ्गाल चेम्बर आव कामर्सके सभ्य पद पर नियुक्त किया। १८५४ ई०में मि० फिल्ड उनके हिस्सेदार हुए।

१८४८ ई०में किसी अभावनीय क्षतिसे कलकत्तेका वणिक् सम्प्रदाय नष्ट हो गया। यहां तक, कि इस समय बहुतोंने मानसम्भ्रमकी रक्षा न कर सकते हुए काम बंद कर दिया। रामगोपालके किसी किसी मित्रने इन्हें बेनामी करके वाणिज्यव्यवसाय करनेकी सलाह दी। उत्तरमें इन्होंने कहा, पूर्वपनीसे लोगोंको ठगनेकी बदले अपना कपड़ा बेच कर खाना अच्छा है। इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि रामगोपाल न्यायवान्, दृढ़प्रतिज्ञ, सरलहृदय और धर्मी व्यक्ति थे। उनके जैसे ऊंचे बखालवाले व्यक्तिके लिये प्रतारणा वा प्रवञ्चना नितान्त घृणाका विषय था।

रामगोपालकी यह दृढ़चित्तता इन्हें उन्नतिके पथसे न भटी। इङ्गलैण्डके बैंकरोंने कभी इनसे ठगे जानेकी आशा न की थी। इनका भेजा हुआ Bill वे लोग बड़े सम्मानके साथ ग्रहण करते थे। इस कारण इन्हें उस विषयमें विशेष कष्ट उठाना नहीं पड़ता था। इनकी न्यायपरता नैतिक बल और सरलताने इन्हें धनसम्मानसे पूर्ण कर दिया था। इस समय ये कामारहाटीका उद्यानवाटिकामें वास करते थे तथा बंधुबांधव ले कर नित्य आमोद-प्रमोदमें समय बिताते थे।

इस प्रकार वाणिज्यव्यवसायमें लिप्त रहते हुए भी इन्होंने ज्ञानचर्चाका परित्याग नहीं किया। इन्होंने

'Civis' उपनाम ग्रहण कर 'भारतीय पण्यके शुल्क'के सम्बन्धमें ज्ञानान्वेषण पत्रिकामें कई प्रबन्ध लिखे। 'दर्शक' (Spectator) नामसे इन्होंने एक अङ्गरेजी समाचारपत्र भी निकाला तथा जार्ज टम्पसनके साथ मिल कर British Indian Society स्थापन की। विद्योन्नतिके विषयमें इनका विशेष ध्यान था। डेभिड हेयरके साथ मिल कर यह कभी कभी हिन्दू कालेजके छात्रोंको उत्साहित करनेके लिये अर्थदान वा पारितोषिक दिया करते थे। मेडिकल कालेज स्थापनके समय इन्होंने बड़ा उत्साह दिखाया था। चार बालकोंको चार विभिन्न विज्ञान विषयमें सुशिक्षित करनेके अभिप्रायसे द्वारकानाथ ठाकुरने इङ्गलैण्ड भेजनेकी व्यवस्था की। रामगोपालने भी उनका समर्थन करके यथासाध्य साहाय्य प्रदान किया था।

१८४५ ई०के सितम्बर मासमें महात्मा बेथुनकी प्रार्थनासे इन्हों शिक्षासभा (Council of Education) का आसन ग्रहण किया। इन्हींकी वक्तृताके फलसे बङ्गालकी 'ग्राण्ट इन एड' प्रथा प्रवर्त्तित हुई। इसके सिवा वे उस समयके सभी आन्दोलनोंमें शामिल थे। बेथुनको बलिका-विद्यालय खोलने, डा० मोयटको युनिभरसीटियाकी प्रतिष्ठा करने, रेलपथ खोलने, विधवाविवाह तथा राजनैतिक अपरापर विषयोंमें वे अपना मत व्यक्त कर बहुत आनन्द लाभ करते थे। जिससे ये सब विषय-कार्यमें परिणत हो इसके लिये इन्होंने कोई कसर उठा न रखी थी।

लार्ड हार्डिञ्जकी प्रतिमूर्त्ति प्रतिष्ठाके लिये कलकत्ता-वासीकी जो सभा हुई उसमें रामगोपालने कलकत्तके तात्कालिक वाग्मी बैरिष्टर टार्टन, डिकेन्स और ह्यूमकी वक्तृताका प्रतिवाद करते हुए अपनी ओजस्विनी भाषासे जनसाधारणको मुग्ध किया और प्रतिष्ठाप्रस्ताव को सम्मतिसे पास करा लिया था।

इसके बाद १८५३ ई०के जुलाई मासमें टाउनहालमें Charter meeting में वक्तृताके समय इन्होंने जिस ओजस्विनी भाषाका व्यवहार किया था उसका लक्ष्य कर टाइम्स पत्रिकाने Masterpiece of oratory कह कर इनकी तारीफ की है। विक्टोरियाके भारतेश्वरीत्व-घोषणाकालमें (Queen's Proclamation) इनकी वाग्मिता देख कर इण्डियन फिल्डके सम्पादक M. Humeने लिखा है, कि रामगोपाल बाबू अङ्गरेज होते तो, उन्हें महाराणीसे सम्मानसूचक 'नाइट' की उपाधि अवश्य मिलती। आपकी Black act की वक्तृताने इन्हें अङ्गरेज-समाजमें चिरस्मरणीय बना रखा है।

केवल राजनैतिक ही नहीं, हिन्दूके सामाजिक आचारादिकी ओर भी लक्ष्य रख कर रामगोपाल नाना विषयोंमें उन्नति कर गये हैं। इस समय वर्त्तमान प्रथाके बदले भारत गवर्मेण्टने कलकत्तेमें कलसे शवदाह करनेका प्रस्ताव किया। इसके लिये कलकत्तेके शान्ति-विधायक विचारकोंकी (Calcutta Justices' meeting) एक सभा हुई। हिन्दूसमाजमें इस आन्दोलन पर बड़ी बड़ी सनसनी फैली और सबोंने मिल कर सभा समिति द्वारा रामगोपालको उक्त सभाका प्रतिनिधि निर्वाचन किया। सुनते हैं, कि इस संवादसे विचलित हो राम गोपालकी वृद्धा माताने पुत्रको बुला कर कहा, "राम! क्या तुम्हारे रहते मैं मुर्दोंकी ढेरमें जलाई जाऊ गी" रामगोपालने माताका दुःख दूर करनेके लिये हिन्दू-समाजको नींव मजबूत करनेके लिये उस सभामें वक्तृता दी। उनकी वक्तृताके बलसे वृटिश सरकारको वह प्रस्ताव वापस करना पड़ा। सभामें राम-गोपालने चादेके लिये प्रस्ताव किया। लोग खुशी-से चन्दा देने लगे। बहुत रुपया जमा हुआ। कलकत्ता म्युनिस्पलिटीकी देखरेखमें निमतल्लेका वर्त्तमान श्मशान-घाट बनाया गया था। कहते हैं, उसका आधा खर्च रामगोपालने दिया था। इस महान् कार्यके लिये हिन्दू-मात्र ही इनको प्रेतात्माकी मङ्गलकामनाके लिये आशीर्वाद देते हैं। निमतल्लेमें ही सबसे पहले श्मशानघाट बनाया गया है।

रामगोपाल बङ्गाल लेजिस्लेटिभ कौन्सिलके सभ्य, कलकत्तेके आनररि मजिष्ट्रेट और जष्टिस आव दि पीस, कलकत्ता युनिवर्सिटीके फेलो, वृटिश इण्डियन एसोसियनके सभ्य और डिष्ट्रीक्ट् चेरिटेबल सोसाइटीके सभ्य थे। एतद्भिन्न वे १८४५ ई०में पुलिस कमिटी, १८५० ई०में स्मालपोक्स कमिटी, १८५१ ई०में लण्डन-

प्रदर्शनीमें मेट्रोपार्क शिल्पद्रव्यसंग्रहकमिटा, १८५५ और १८७० ई०में पेरे प्रदर्शनी तथा १८६४ ई०में बङ्गाल पवि कमलराज प्रदर्शनीके उद्योक्ता हो कर अपनी कार्यतत्परताका यथेष्ट परिचय दे गये हैं। अङ्गरेजोंको इनके गुण का गुरुत्व अच्छी तरह मालूम था। माननीय प्रसन्नकुमार ठाकुरने जब,महामति चियोडर डिकेन्सको विदाय भोज दे रहे थे, तब रामगोपालको निमन्त्रण देनेके लिये प्रसन्नकुमार ठाकुरने डिकेन्स साहबसे अनुमति मांगी थी। रामगोपालके साथ राजनैतिक विषयमें डिकेन्सकी घोर शत्रुता रहते हुए भी उन्होंने भोजके समय बड़े आग्रहसे सबसे पहले रामगोपालका स्वास्थ्यपान करके एक व्याख्यानमें वक्तृता दी। उन्होंने रामगोपालके संबंधमें कहा था कि, He was the only man fit to take the position of the leader of the Hindu Community

रामगोपाल स्वभावतः ही दयालु थे। मृत्युकालमें इन्होंने दरिद्र मनुष्योंके लिये राजतुल्य दान किया था। देशी लोगोंको विद्याशिक्षाकी सुविधाके लिये आप अपने वित्तमें कलकत्ता युनिवर्सीटीमें ४० हजार, डि० बेरिटेबल सोसाइटीमें २० हजार, ऋणग्रस्त बंधुओंको ऋणसे मुक्त करनेके लिये ४० हजार तथा अन्यान्य विषयोंमें भी अनेक रुपया लिख गये हैं। १८६८ ई०की २५वीं जनवरीको इनका स्वर्गवास हुआ।

रामगोपाल शर्म्मन्—धर्मभेदतत्त्वके प्रणेता। ये राम नायक पुत्र और लक्ष्मीनारायणके पौत्र थे।

रामगोविन्द—छन्दोम्बितरङ्गके रचयिता। इनके पिताका नाम रूपनारायण चक्रवर्त्ती था।

रामगोविन्द चक्रवर्त्ती—स्मरदशासारसंग्रहके रचयिता।

रामगोविन्द तीर्थ—एक प्रसिद्ध पण्डित। ये सांख्यचन्द्रिका आदि पुस्तकके प्रणेता नारायण तीर्थके गुरु तथा गोविन्द तीर्थके शिष्य थे।

रामगोविन्दतीर्थ (सं० पु०) एक मायावीका नाम।

रामग्राम (सं०पु०) जनपदभेद।

रामचक्र (सं० क्ली०) १ मन्त्रात्मक चक्रविशेष। (उन्मत्तत्ना०) २ वरा नामक पकवान जो उड़दकी पीठीका बनता है। ३ बड़ी और मोटा रोटी जो किसान लोग खाते हैं, लिट्टा।

रामचन्द्र—१ एक हिन्दू-राजा। रामपुरमें इनकी राजधानी था। इनकी सभामें रह कर १४५० ई०में रामचन्द्रने नैमिपच्य कुण्डाकृति लिखी।

२ अलकपत्तनप्रसूत सनामख्यात एक कवि। इस कविने अयोध्यानगरमें रसिकरञ्जन नामक एक काव्य बनाया जिसका प्रत्येक श्लोक दो अर्थ है। इसके एक अर्थमें शृङ्गार और दूसरेमें वैराग्य वर्णित है। इन्होंने इस काव्यकी टीका भी लिखी। इस काव्यका आदि श्लोक—

'शुभारम्भेऽरम्भे मदितमदिरैर्म्भोर्जितदर्श
मधिस्तम्भे रम्भे चपलकुचकुम्भे परिचयम्।
भवारम्भ दम्भे पचितदयितस्नम्भौमितुर्श
हमाकम्बं लम्बे वरममानुदित्तमुत्तम्॥'

(रसिकरञ्जन १।१)

कवि रामचन्द्रने रोमावलीशतक आदि भी प्रणयन किया है।

रामचन्द्र (सं० पु०) रामचन्द्र इव आह्लादकत्वात्। अयोध्याके राजा इक्ष्वाकुवंशीय महाराज दशरथके बड़े पुत्र जो ईश्वर या विष्णुभगवान्के मुख्य अवतारोंमें माने जाते हैं। इन्हीं का साधुचरित ले कर आदिकवि वाल्मीकिने भारतके आदि महाकाव्य रामायणकी रचना की है। यों तो परवर्त्तीकालमें नाना अलङ्कार द्वारा बहुतोंने इन असाधारण महापुरुषकी जीवनी ले कर रामायण रचे हैं, पर वाल्मीकिने जिस भावसे इन पुरुषसिंहको अङ्कित किया है पहले हम लोगोंको वही देखना चाहिये। महर्षि वाल्मीकिने रामचरित इस प्रकार वर्णन किया है—

सूर्य्यवंशमें धर्मज्ञ राजा दशरथने जन्मग्रहण किया। उस समय इनके जैसे वीर और प्रभावशाली कोई भी नहीं थे। पुत्र न रहनेके कारण वे हमेशा चिन्तित रहा करते थे। पुत्रेष्टि यज्ञ करनेके लिये मन्त्रीने उन्हें सलाह दी। ऋष्यशृङ्ग यज्ञ करानेके लिये अङ्गदेशसे बुलाये गये। सरयूके उत्तरी किनारे यज्ञभूमि बनाई गई। तेजस्वी ऋष्यशृङ्गने पुत्रेष्टि यज्ञ आरम्भ कर दिया। उनका यज्ञ प्रसाद खा कर दशरथकी तीन प्रधान महिषी गर्भवती हुईं। यज्ञसमाप्तिके बाद छः ऋतु बीतने पर बड़ी रानी कौशल्याके गर्भसे चैत्रमासकी शुक्लानवमी पुनर्वसु नक्षत्र कर्कटलग्नमें दिव्यलक्षणसम्पन्न रामचन्द्र उत्पन्न हुए। उनके जन्मकालमें रवि मेष राशिमें, मङ्गल मकर राशिमें,

शनि तुलाराशिमें, बृहस्पति और चन्द्रमा कर्कटराशिमें, तथा शुक्र मीनराशिमें थे। इसके बाद कैकेयीके गर्भसे मीन लग्न पुष्यानक्षत्रमें भरतने तथा सुमित्राके गर्भसे कर्कट लग्न और अश्लेषा नक्षत्रमें लक्ष्मण और शत्रुघ्नने जन्मग्रहण किया।

दशरथके चारों पुत्र वेदज्ञ, शौर्यसम्पन्न, सभी लोगोंके हिताकाङ्क्षी, विज्ञ और क्षत्रियोचित सभी गुणोंसे विभूषित थे। इनमेंसे राम अधिक तेजस्वी, सत्यनिष्ठ पराक्रमी, सर्वजनप्रिय, धनुर्वेदरत, पितृसेवापरायण तथा हाथी, घोड़े और रथ पर चढ़नेमें दक्ष थे। राम लक्ष्मणको और भरत शत्रुघ्नको बहुत प्यार करते थे।

रामचन्द्रका वक्ष विशाल और दोनों स्कन्धका संधिस्थल मांसल था, इस कारण कविने उन्हें 'गूढजत्रु'की उपाधि दी है। वे बड़ी बड़ी भुजावाले, सुन्दर, महागुणशाली, आश्रितके प्रतिपालक, सज्जन और स्वधर्मके रक्षक नित्य-संयमी थे। पृथ्वीके समान क्षमाशील, फिर क्रुद्ध होने पर देवताओंके भी भीतिदायक, वाग्मी और मिष्टभाषी थे। शीलवृद्ध, ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्धके प्रति वे विशेष भक्तिश्रद्धा दिखलाते थे। जब कभी वे नगरसे बाहर जाते और फिर वहांसे लौटते थे, तब प्रायः सभी पुरवासी उनके पास दौड़ते और कुशल समाचार पूछते थे। सभी पुरवासी उनके भक्त और अनुरक्त थे।

धीरे धीरे चारों भाईने युवावस्थामें कदम बढ़ाया। इस समय एक दिन महर्षि विश्वामित्र दशरथकी सभामें पधारे। उन्होंने दशरथसे प्रार्थना की, कि यज्ञमें राक्षसगण बहुत बाधा डालते हैं, इसलिये दश दिनके लिये रामचन्द्रजीको दें। राजा दशरथ रामको अपने प्राणसे भी अधिक चाहते थे, इस कारण पहले राजी नहीं हुए। इसके बदले उन्होंने दश अक्षौहिणी सैन्य देना चाहा; किन्तु महर्षिकी सक्रोध मूर्त्ति और अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग होनेके डरसे आखिर रामचन्द्रको विश्वामित्रके साथ जानेकी अनुमति दे दी। विश्वामित्र रामको ले कर चले, लक्ष्मण भी साथ हो लिये। चलते चलते वे सरयूके किनारे आये। यहां अयोध्यासे छः कोस दूरी पड़ती है। यहां विश्वामित्रने रामसे कहा, 'बच्चा! बहुत थक गये होंगे, अब यहां थोड़ा विश्राम करो। पीछे आचमन कर मुझसे बला और अतिबला नामकी दो दीक्षा तथा अन्यान्य मन्त्र लो। इस विद्याबलसे तुम कभी थकावट नहीं मालूम करोगे, बाहुबलमें पृथिवीके मध्य कोई भी तुम्हारे समान नहीं होगा तथा राक्षस तुम्हें पराजय नहीं कर सकेगा।" उस समय रामने विश्वामित्रको आचार्यरूप वरण कर उनसे बला और अतिबला विद्या सीख ली। वह रात तीनोंने सरयूके किनारे तृणशय्या पर बिताई। राजकुमार रामकी यह प्रथम तृणशय्या थी। सवेरे तीनों गङ्गा और सरयूसङ्गम पर गये। यहां मुनियोंने उनका बहुत आदर सत्कार किया। उस रातको वे लोग अनङ्ग-आश्रममें रहे।

दूसरे दिन गङ्गाके दक्षिण हो कर ताड़कावन आये। विश्वामित्रने घोररूपिणी ताड़काको मारनेका हुकुम दिया। राम स्त्रीहत्याके विरोधी थे, किन्तु उनके पिताने कह दिया था, 'विश्वामित्रका आदेश अवश्य पालन करना चाहे वह कैसा ही क्यों न हो।' विश्वामित्रका आदेश पालन करनेके लिये उन्होंने घोररूपा ताड़काका वध किया। ताड़कावधसे सन्तुष्ट हो महर्षिने रामचंद्रको नाना प्रकारके अमोघ और अव्यर्थ अस्त्र प्रदान किये। अनन्तर सिद्धाश्रममें आ कर विश्वामित्रने यज्ञानुष्ठान किया। यहां रामचंद्रने मारीचको पराजय और सुबाहु राक्षसको मार कर विश्वामित्रके यज्ञस्थलकी रक्षा की। यहां महर्षि विश्वामित्रसे राजा जनकके यज्ञ और सुनाभ नामक अपूर्व शिवधनुका हाल मालूम हुआ। विश्वामित्र दूसरे दूसरे मुनियोंके साथ राम लक्ष्मणको ले कर राजर्षि जनकका यज्ञ देखने चले। राहमें विशालाधिपतिने आ कर उनका सत्कार किया। विशालामें एक दिन रह कर वे मिथिला आये।

मिथिलाके उपवनमें सभी गौतमके परित्यक्त आश्रममें उपस्थित हुए। यहीं पर वर्षोंसे भूखी तपःप्रभवसम्पन्ना महाभागा पाषाणमयी गौतमपत्नी अहल्या पड़ी हुई थी। रामचंद्रके चरणकमलस्पर्शसे उनका अभिशाप जाता रहा और वे स्वशरीर धारण कर खड़ी हो गईं। इसके बाद रामलक्ष्मणने विश्वामित्रके साथ मिथिलापुरीमें प्रवेश किया। राजर्षि जनकने विश्वामित्र आदिका यथोचित सत्कार किया। विश्वामित्रने रामचंद्रका

परिचय देते हुए राजर्षि जनकसे कहा, "आपके घरमें जो श्रेष्ठ धनुष है उसे देखनेके लिए ये दोनों भाई आये हैं।" जनकने भी उनसे कहा, 'मैंने प्रतिज्ञा की है, कि जो व्यक्ति इस शैवधनुमें ज्या चढ़ायेंगे और उसे तोड़ डालेंगे, उसीको अपनी अयोनिजा कन्या सीता समर्पण करूंगा।' पीछे रामचन्द्रको जनकसे यह भी मालूम हुआ, कि कुछ दिन पहले राजे महाराजे उस धनुषमें ज्या चढ़ाने आये थे, किन्तु कोई भी चढ़ा न सके। इसके बाद विश्वामित्र और जनककी अनुमति ले कर रामने उस धनुषमें ज्या चढ़ाई। मड़ मड़ शब्द करता हुआ धनुष दोनों भागोंमें टूट गया। उस शब्दसे विश्वामित्र, जनक और राम लक्ष्मणको छोड़ कर और सभी मोहाभिभूत हो गये थे।

यह शुभ संवाद उसी समय अयोध्या पहुंचाया गया। राजा दशरथ पुत्र अमात्य और ऋत्विकोंके साथ मिथिला आये। रामका विवाह स्थिर हुआ। विवाह सभामें महर्षि वशिष्ठ द्वारा रघुवंशका और राजर्षि जनक द्वारा अपना पूर्वपुरुषोंका कीर्तन होनेके बाद राम के साथ सीताका, लक्ष्मणके साथ ऊर्मिलाका और कुशध्वजकी दो कन्या माण्डवी और श्रुतकीर्तिके साथ भरत और शत्रुघ्नका विवाह हुआ। विवाहके बाद राजा दशरथने पुत्र और पुत्रवधुओंके साथ बड़ी धूमधामसे राजधानीको यात्रा की। इस यात्राकालमें रामचन्द्रने परशुरामका दर्प चूर्ण किया था।

इसके बाद महाराज दशरथने रामचन्द्रको युवराज बनाना चाहा। अभिषेकसंवाद सुन कर रामचन्द्र बड़े प्रसन्न हुए थे। इस समयसे रामका अद्वितीय चरित्र विकास आरम्भ हुआ। महाकवि वाल्मीकिने उत्तमम वर्णोंमें जो महाचरित्र चित्रित किया है वह इस प्रकार है।

प्रातःकालमें सुमन्त्रने रामचन्द्रसे आ कहा, कि राजा दशरथ आपको कैकेयीके घरमें बुलाते हैं। रामचन्द्र और सीता दोनों अभिषेक संकल्पमें रातको उपवासी थे। रामचन्द्रने सीतासे कहा, 'आज मेरा अभिषेक होगा पिता कैकयी माताके साथ मिल कर मेरे मङ्गलार्थ अनुष्ठान करेंगे, इसलिए उन्होंने मुझे बुलाया है। तब तक तुम सखियोंके साथ यहीं पर रहो', इतना कह कर वे कैकयीके घर गये।

रामचन्द्र जब चार तेज घोड़ेके व्याघ्रचर्मसे आच्छादित सुन्दर रथ पर आ रहे थे, तब रास्तेमें उन्होंने देखा, अभिषेकका विपुल आयोजन हो रहा है। देशमी वस्त्र पहने अभिषेकप्रतोत्सुक राजकुमार बड़े आनंदसे कैकेयी के घर घुसे और पिताको प्रणाम कर पुतलीकी तरह खड़े हो रहे। राजा म्लानमुखसे कैकयीकी बगलमें बैठे थे। वे 'राम' उच्चारण कर मस्तकको नीचा किये रोने लगे। रुद्धकण्ठमें बोली नहीं निकलने लगी। उनकी आंखोंसे उन्हें रामको देखनेका साहस नहीं हुआ।

इस प्रकार राजा गहरी सांस लेते थे, नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहती थी। रामचन्द्रने कृताञ्जलि हो कैकयीसे कहा "मां! पिताजी क्यों रोते हैं, क्या उन्हें किसी बातका दुःख है? भरत और शत्रुघ्न दूर हैं, क्या उन्हें तथा मेरी माताओंमेंसे किसीको कुछ हुआ तो नहीं है? क्या आपने तो कुछ नहीं कहा है, जिससे वे ऐसे दुःखित हुए हैं?"

कैकेयीने निष्ठुर हो कर उत्तर दिया—"राजाको कोई रोग नहीं हुआ है और न उन्हें किसी बातका दुःख ही है। उन्होंने एक बातकी प्रतिज्ञा की है, पर तुम्हारे डरसे वे प्रकाश नहीं करते। तुम उनके अधिकतर प्रिय हो, तुम्हें अप्रिय वचन कहनेसे उनके मुखसे बोली नहीं निकलती। शुभ हो, चाहे अशुभ हो, तुम यदि राजाकी आज्ञा पालन करो, तो वह कहा तो कहनेकी क्या जरूरत।"

राम दुःखित हो बोले, देवि! आपको ऐसा वचन मुझे कहना उचित नहीं। मैं राजाकी आज्ञा अभी पालन करनेको तैयार हूं। यदि वे अग्निमें कूदने कहें तो कूदूंगा विष पान करने कहें तो खाऊंगा और समुद्रमें डूबने कहें, तो भी डूबूंगा। आप दिल खोल कर कह दें, कि वह कौन सा आदेश है।"

उस अभिषेकमहोत्सवमें उपवासी पवित्र पट्टवस्त्र पहने तरुण युवकको कैकयीने अकुण्ठितचित्तसे वनवास की आज्ञा सुनाई 'भरत इस धनधान्यशालिनी अयोध्या का राजा होगा। तुम्हारे लिये लाये गये अभिषेकके

उपहारणोंसे उनका अभिषेक होगा और तुम्हें आज ही चीरवास और जटा पहन कर चौदह वर्षके लिये वन जाना होगा। राजाने यही दो वर अभी मुझे दिये हैं, इसी कारण वे इतने दुःखित हैं।"

यह मर्मच्छेदी मृत्युतुल्य वचन सुन कर रामचन्द्र कुछ समय निश्चल हो रहे और पीछे अविकृतचित्तसे बोले "देवि! वैसा ही होगा। मैं जटाचीर धारण कर अभी वन जाता हूं। इस समय मेरा पूछना केवल इतना ही है, कि महाराज पूर्ववत् मेरा आदर करते हैं वा नहीं? देवि! मैं आपके प्रति भी अप्रसन्न नहीं। इस छोटी सी बातके लिये पिताजी इतने दुःखित क्यों हैं। उन्होंने भरतको युवराज बनानेकी बात मुझे पहले क्यों नहीं कही? भरतके लिये मैं राज्य, धन, प्राण सभी दे सकता हूं। देवि! आप पिताको आश्वासन दीजिये, पिता व्यर्थ मस्तक नीचा किये अश्रुत्याग कर रहे हैं। तेज घुड़सवार दूतोंको अभी भरतको लानेके लिये ननिहाल भेजिये।" इस वचनसे कैकेयी सन्तुष्ट तो हुई, पर पीछे राम अपना मन न पलट लें अथवा दशरथके मुंहसे बोला सुने बिना वन जाय इस आशङ्कासे उसने फिर रामको कहा,—

"राम! लज्जाके मारे राजा कुछ बोलते नहीं, इसके लिये दुःख मत करो। अब वन जानेके लिये तैयार हो जाओ, जब तक तुम इनसे विदा ले कर वन न जाओगे, तब तक मैं स्नान भोजन कुछ भी नहीं करूंगी।" कैकेयीका यह निदारुण वचन सुन कर महाराज दशरथ वज्राहतकी तरह अज्ञान हो पृथिवी पर गिर पड़े। सौम्य मूर्त्ति और धनस्पृहाहीन रामचन्द्रने उन्हें पकड़ कर उठाया और कैकेयीको लक्ष्य कर दुःखित और दृढ़ स्वरसे कहा,—

"देवि! स्वार्थी हो कर पृथिवी पर रहनेकी मेरी इच्छा नहीं। मुझे ऋषियोंके समान विमल धर्माश्रित जानो। पिता चाहे न भी कहें पर आपकी तो आज्ञा है, मैं उसे शिरोधार्य कर चौदह वर्षके लिये अवश्य वन जाऊंगा। माता कौशल्या और सीताको बुला कर कहने में जितना समय लगेगा उतनी देर और आप ठहरिये।" इतना कह कर संज्ञाहीन पिता और कैकेयीकी वंदना कर रामचंद्र धीरे धीरे जाने लगे। चार घोड़ोंका रथ उसे वन पहुंचा आनेके लिये तैयार था, लेकिन राम उस राहसे नहीं गये। उत्कण्ठित नगरवासी जिस पथसे उनकी बाट जो रहे थे, उस पथको भी उन्होंने छोड़ दिया। अभिषेकशालाके पास जब गये, तब उन्होंने आंखें मूंद लीं। सिद्धपुरुषकी तरह उनके चेहरे पर जरा भी उदासी न थी। वे मनका भाव मन हीमें रख कर धीरे धीरे मातृ-मंदिरकी ओर बढ़े।

जननीके पास जानेसे उन्हें दम भर आया। वे कम्पितकण्ठसे कहने लगे, 'देवि! क्या आपको मालूम नहीं, रङ्गमें भङ्ग हो गया। मुझे मुनियोंकी तरह कषाय कन्दफलमूल खा कर जीवन धारण करना होगा। आपके दिये हुए भोजनकी अब मुझे जरूरत नहीं। मैं कुशासनके योग्य हूं, इस बहुमूल्य आसन पर अब बैठनेका मुझे अधिकार नहीं।" कैकेयीकी आज्ञा सुनाते हुए रामचंद्रने वन जानेके लिये मातासे विदा मांगा। शोकाकुला माता फूट फूट कर रोने लगी और बोली, 'राम! स्त्रियोंका प्रधान सुख पतिकी स्नेहसम्पद् है, वह मेरे भाग्यमें बदा नहीं। कैकेयीने मुझ पर वज्राघात किया है। मेरी सेवामें नियुक्त परिचारिकागण कैकेयीके परिजनको देखनेसे डरती हैं। बच्चा! मैं केवल तुम्हें देख कर सब सहती आई हूं। तुम्हारे वन जाने पर मुझे कहां ठौर मिलेगा। देखो, गायें वनमें अपने बच्चोंका पीछा करती हैं, इसलिये मुझे भी अपने साथ लेते चलो।" यह सब मर्मच्छेदी कातरोक्ति सुन कर राम माताको सान्त्वना देने लगे और अश्रुमुखी शोकोन्मादिनी माताके निकट अपने अश्रुको रोक कर बार बार वन जानेकी अनुमति मांगने लगे। जब लक्ष्मणको यह घटना मालूम हुई, तब वे क्रोधसे अधीर हो गये और लाल आंखें कर धनुष हाथमें लिये पागलकी तरह गरज उठे, 'अभी मैं कैकेयीके प्रेममें आसक्त पिताकी हत्या करता हूं।' रामचन्द्र लक्ष्मणका हाथ पकड़ कर उनका क्रोध शान्त करने लगे। उन्होंने बड़े मीठे स्वरमें लक्ष्मणसे कहा, 'सौमित्रे! मेरे अभिषेकके लिये जो आयोजन हुआ है वह मेरे अभिषेककी निवृत्तिके लिये होवे। पितृभक्त विषय निस्पृह कुमारके स्निग्ध किन्तु अटल संकल्पसे इस महाशोक और क्रोधके

अभिमपङ्क्तिमें एक असामान्य और वीरत्वकी भी भग भगा उठी। कौशल्याने कहा, 'राजा तुम्हारे जैसे गुरु हैं मैं भी वैसे ही गुरु हूं। मैं तुम्हें वन नहीं जाने दूंगी। मातृ आज्ञाका उल्लङ्घन कर तुम किस प्रकार वन जाओगे। लक्ष्मण बोले 'कामासक्त पिताका आदेश पालन करना अधर्म है।' रामचंद्रने अविचलित भावमें विनीत स्नेह पूरितकण्ठसे माताको कहा, "कण्डु ऋषिने पिताके आदेशसे गोहत्या की थी। मेरे कुलमें सगरके पुत्रगण पिताके आदेश पालन करनेमें मारे गये थे। परशुरामने पिताके आदेशसे अपनी माता रेणुकाका शिर काट डाला था। पिता प्रत्यक्ष देवता हैं,—वे क्रोध, काम या किसी भी प्रवृत्तिमें आ कर चाहे जो वाम कर चुके हों, उसका विचार मुझे नहीं करना चाहिये उसका विचार करने योग्य मैं नहीं हूं। पिताका यह आदेश मैं अवश्य पालन करूंगा।' इतना कह कर वे रोती हुई मातासे वन जानेके लिये बार बार अनुमति मांगने लगे। रामका आश्चर्य साधुसङ्कल्प देख कर कौशल्याने धीरज बांधा और सैकड़ों आशीर्वाद दे कर अश्रुसिक्तकण्ठसे प्राणप्रिय पुत्रको वन जानेकी अनुमति दे दी।

अब रामको सीतासे मिलना जरूरी था पर वे किस मुंहसे यह निदारुण संवाद उन्हें सुनाने जाते। उनके हृदयमें आशाकी लता लहलहा रही थी। रामकी अभ्यस्त दृढ़ता शिथिल हो गई। अब वह अविकृत सौम्यभाव नहीं! उनकी मुखश्री विवर्ण हो गयी। उनके सुन्दर श्याम-ललाट पर दुश्चिन्ताकी रेखा दिखाई देने लगी। सीता रामचन्द्रको देखते ही समझ गईं कि कोई घोर अनर्थ हुआ है। व्याकुल हो उन्होंने पूछा, 'आज अभि षेकके मुहूर्तमें चेहरे पर ऐसी उदासी क्यों?' बार बार पूछने पर रामचन्द्रने सीताको महापरीक्षाकी उपयोगिनी बनानेके लिये अपनी महत् वंशकीर्तिका स्मरण करा दिया।

वनवासकी बात सुनते ही सीताने भी उनके साथ जानेकी इच्छा प्रकट की। रामचन्द्रने बहुत कुछ समझाया पर पतिव्रता सीता कब माननेवाली था। रामचन्द्रका निषेध करना या भय दिखाना कुछ व्यर्थ गया। सीताने साथ जानेके लिये यहां तक दृढ़ संकल्प कर लिया कि उन्हें साथ न ले जानेसे वह आत्महत्या कर लेगी। सीताके कोमल कपोल हो कर अश्रुबिन्दु धीरे धीरे बहने लगा।

अनन्तर रामचन्द्रने अश्रुपूर्णनयना सुन्दरी साध्वी सीताके गलेमें हाथ डाल स्निग्ध और करुणकण्ठसे कहा, 'देवि! तुम्हारा दुःख देख कर मैं स्वर्गको भी इच्छा नहीं करता, मैं तुम्हारी रक्षामें किसीसे भी नहीं डरता, साक्षात् रुद्रका भी मुझे डर नहीं। तुम कहती हो, कि विवाहके पहले ब्राह्मणोंने कहा था, 'तुम स्वामीके साथ वन जाओगी'—अगर वन जानेके लिये ही तुम्हारी बुद्धि दृढ़ हो तो तुम्हें छोड़ जानेकी मेरी सामर्थ्य नहीं।" जिस लक्ष्मणने 'बध्यतां बध्यतामपि' कह कर राजाको बांधनेके लिये यहां तक कि विनाश करनेकी व्यवस्था दी थी, जो धनुर्बाण हाथमें लिये अकेले श्रीरामचन्द्रके शत्रुकुल का निर्मूल करनेके लिये उद्यत हो गये थे वे अभी रामकी अटल प्रतिज्ञा और वन जानेका उद्योग देख कर बालककी तरह रोते रोते भाईके चरणोंमें गिर पड़े और बोले, 'तुम्हारे नहीं रहते यदि मुझे त्रैलोक्यका भी ऐश्वर्य क्यों न मिले, तो भी मैं उस पर लात मारूं।" अश्रुपूर्णनयन, चरणपतित परमस्नेहास्पद लक्ष्मणको रामने आदरपूर्वक उठा कर गले लगाया और अपने साथ वन चलनेको कहा। लक्ष्मण बड़े प्रसन्न हुए और आंसू पोंछ कर वनवासोपयोगी अस्त्रशस्त्र ले वन जानेको तैयार हो गये। रामचन्द्रने भरत अथवा कैकेयीके प्रति किसी विद्वेषसूचक वाक्यका प्रयोग नहीं किया। उन्होंने सीतासे कहा—

'भरत और शत्रुघ्न मेरे प्राणसे भी बढ़ कर प्यारे हैं। स्नेह और शुश्रूषामें मेरे प्रति सभी माता समदर्शिनी हैं।' जाते समय रामचन्द्र दशरथके पास गये। महिषियोंसे घिरे हुए दशरथ रामका मुख देख कर चित्तका वेग रोक न सके। शोकरुद्ध कण्ठसे उन्होंने रामचन्द्रको एक दिन और ठहरनेका अनुरोध किया तथा बहुत अनुनय विनय कर कहा, 'आज मैं तुम्हें आंखों पर रख कर एक साथ भोजन करूंगा।' रामचन्द्र बोले, 'आज ही वन जाऊंगा ऐसा वचन दे चुका हूं। अतएव इसे टाल नहीं सकता।' सम्भ्रम और विनयके साथ उन्होंने फिरसे कहा, 'ब्रह्माने जिस प्रकार अपने पुत्रों की तपस्या

करनेकी अनुमति दी थी, आप भी उसी प्रकार शोकका परित्याग कर हम लोगोंको वन जानेका आदेश दीजिये।" यह सुनते ही दशरथका शोक बढने लगा, वे विह्वल हो उठे। सुमन्त्र, महामात्र सिद्धार्थ तथा गुरुदेव वशिष्ठ कैकेयीके साथ विवाद करने लगे। आत्मीय सुहृद् और स्वजनोंकी उत्तेजित कण्ठध्वनिसे राजभवन गूंज उठा। उस कोलाहलको पराजित कर त्यागशील राजकुमारकी अपूर्व वैराग्य और धर्मभावपूर्ण कण्ठध्वनि स्वर्गीय शुभवाणीकी तरह सुनाई देने लगी। कृताञ्जलिबद्ध हो रामचन्द्र पितासे बार बार कहने लगे—

"आप विना किसी बातका दुःख किये यह राज्य भरतको दे दें। मैं अपने जीवनमें सुख, सम्पद्, राज्यैश्वर्य्य यहां तक कि स्वर्गकी भी कामना नहीं करता। मैं सत्यबद्ध हूं और आपका सत्य पालन करूंगा। पिता देवताओंसे भी बढ कर पूज्य हैं। उस पितृदेवताकी आज्ञा पालन करनेमें मैं जरा भी कष्टका अनुभव नहीं करता। चौदह वर्ष बाद लौट कर मैं फिर आपके श्रीचरणकी वन्दना करूंगा।' माताओंकी ओर देख कर राजकुमारने कृताञ्जलिपुट हो कहा—"मुझसे भ्रमवशतः अथवा अज्ञानवशतः यदि कोई अपराध हुआ हो, तो आज मुझे क्षमा करें।' दशरथका जो अन्तःपुर वीणाकी मधुर झनकारसे परिपूर्ण रहता था, आज वह शोकार्त्ता रमणियोंके आर्त्तनादसे गूंज उठा।

राम, लक्ष्मण और सीता ये तीनों भिखारीके वेशमें कौपीन और चीर पहन कर घरसे निकले। उस समय अन्तःपुरमें बहुत जोरसे आर्त्तनाद उठा, तमाम सन्नाटा छा गया। राजमहिषियां बेसुध हालतमें जहां तहां पड रहीं। प्रजामण्डलीमें गंभीर परितापसूचक हाहाकार ध्वनि होने लगी। उस मर्मविदारक शब्दसे उन्मत्त हो वृद्ध राजा दशरथ और कौशल्यादेवी दोनों नंगे पांवसे धूलमें लेटाते हुए अपने अपने कपडेको विना संभाले हाथको बढ़ाये हुए रामचन्द्रको आलिङ्गन करनेके लिये दौड पडे। राजाधिराज दशरथकी प्रधान महिषीकी यह अवस्था देख कर प्रजा व्याकुल हो उठी। रामचन्द्रने कहा, "सुमन्त्र! जोरसे रथ चलाओ, मैं अब वह शोकावह दृश्य देखना नहीं चाहता।" प्रजा सुमन्त्रसे विनय पूर्वक कहने लगी,—

"हे सारथि! घोडोंकी लगाम मजबूतीसे पकड कर धीरे धीरे रथ हांको, जिससे हम लोगोंको रामचन्द्रका मुख अच्छी तरह दिखाई दे। फिर अब इनके दर्शन करनेका हमें सौभाग्य प्राप्त न होगा।" रामने स्नेहार्द्रकंठसे प्रजाओंसे कहा—

"अयोध्यावासियो! तुम लोगोंका मेरे प्रति जो सम्मान और प्रीति है उसे मेरी प्रीतिके लिये भरतमें अर्पण करना।" अयोध्याके बाहर सर्वशास्त्रज्ञ ब्राह्मणोंने रथके समीप जा कर कहा, "हम लोग यह हंसशुभ्र केशयुक्त मस्तक भूलुण्ठित कर प्रार्थना करते हैं, कि हम लोगोंको भी साथ ले चलो।" रामचन्द्रने रथ परसे उतर कर उन्हें प्रणाम किया।

गोमती पार कर रामचन्द्र सरयूका नदी उत्तीर्ण हुए। अयोध्याके वृक्ष आदि श्यामाभ आकाशप्रान्तमें नीलमेघकी तरह अस्पष्ट दिखाई देते थे। रामचन्द्रने एक बार पिपासित नेत्रोंसे उस चिरस्नेहजडित जन्मभूमिके प्रति दृष्टि डाल कर गद्गद कण्ठसे सुमन्त्रको कहा, "सुमन्त्र! न मालूम फिर कब इस सरयूमें लौटूंगा?"

रामचन्द्र गङ्गाके किनारे आ कर विशेष प्रफुल्लित हुए। सहसा यह विशाल तरङ्गिणी देख कर दोनों राजकुमार और सीताके मनमें प्रीतिका सञ्चार हुआ। वे इंगुदीवृक्षकी छायामें विश्राम करनेका उद्योग करने लगे। निषादराज गुहक विविध प्रकारकी खाद्य सामग्री ले कर रामका स्वागत करने आये। उन्होंने कहा, "इस संसारमें रामसे बढ कर मेरा प्रियतम और कुछ भी नहीं है।" रामचन्द्रने गुहकका आतिथ्य यह कह कर ग्रहण नहीं किया, कि क्षत्रियको धर्मशास्त्रानुसार दान लेना उचित नहीं है। वह रात तीनोंने इंगुदीवृक्षके नीचे तृणशय्या पर ही बिताई।

दूसरे दिन सुमन्त्र वहांसे विदा हुए। वृद्ध सचिवने रोते हुए कहा, 'खाली रथ ले कर मैं किस मुंहसे अयोध्या लौटूंगा? जब उन्मत्त जनता सैकडों कण्ठसे मुझे पूछेगी, तो मैं क्या उत्तर दूंगा? हे सेवकवत्सल! मुझे भी साथ ले चलिये। बारह वर्षके बाद मैं इसी रथ पर आप लोगोंको चढा कर बडे गौरवसे अयोध्या लौटूंगा।" रामचन्द्रने वृद्ध मन्त्रीको नाना प्रकारके प्रबोधवाक्य

द्वारा और आनेको वाध्य किया और बड़े दुःखित हो कर कहा, 'जब तक तुम लौट नहीं जाओगे, तब तक माता कैकयीको विश्वास नहीं होगा, कि मैं वन गया हूं।'

सुमन्त्रके आते समय रामने कहा था, 'तुम्हारे समान और कोई सुहृद मुझे नजर नहीं आता। तुम हम लोगोंके हितचिन्तक हो, इसलिये देखना, राजा दशरथ मेरे लिये कोई चिन्ता न करें।' लक्ष्मण क्रुद्धस्वरसे दशरथके कार्यकी निन्दा करने लगे। रामने सुमन्त्रको समझा कर कह दिया, "राजा वृद्ध और कोमल स्वभावके हैं तथा हम लोगोंके वनवासके कारण बड़े ही दुःखित हैं, इसलिये ये सब लक्ष्मणकी कड़ी बातें उन्हें न सुनाना, नहीं तो वे शोकसे प्राणत्याग कर सकते हैं।"

सुमन्त्रने रोते रोते पदाति भाकी रथ हाँका। इधर घन जंगलमें दोनों राजकुमार और आदरकी राजवधू धीरे धीरे आगे बढ़ी। अब तक जा पतिव्रता सीताके सुकोमल चरणोंमें जो महावर लगा था, वह मलिन नहीं हुआ था। हिंस्र जन्तुओंकी डरावनी ध्वनि सुन कर वे रामचन्द्रकी बांह पकड़ कर चलती थीं। महेन्द्रध्वज सदृश रामचन्द्रकी बाहु ही आज हृद्गुनिभामनाका एकमात्र अवलम्बन था। रात बितानेके लिये वे एक वृक्षके नीचे पड़ रहे। इस घोर अरण्यमें प्रथम रात्रियापनका कष्ट सचमुच उनके लिये दुःसह था। रामचन्द्र लक्ष्मणके निकट बहुत अनुताप करने लगे। उनका प्रशान्तचित्त असह्य कष्टसे अशान्त हो उठा। उन्होंने कहा "भरत राज्य पा कर अवश्य सुखी होगा, इसमें सन्देह नहीं। राजाको अवश्य मनोकष्ट होता होगा। किन्तु जो धर्म त्याग कर कामसेवा करते हैं उन्हें राजा दशरथकी तरह दुःख होता है। मेरी अल्पभाग्य माता आज शोकसागरमें डूबी होंगी। लक्ष्मण! क्या कभी सुना है, कि बिना अपराधके स्त्रीकी बातमें पड़ कर मेरे जैसे छन्दानुवर्तीको भी किसीने परित्याग किया है, जो कुछ हो, इस कठोर वन्यजीवनमें तुम्हारा प्रयोजन नहीं। मैं सीताके साथ वनवासका दण्ड भोग करूंगा। तुम लौट जाओ। निष्ठुर स्वभाव प्रकृतिकी कैकयी शायद मेरी माताको विष पिला कर मार न दें। तुम घर जा कर माताकी रक्षा करना। ऐसा न समझना, कि मैं अयोध्या अथवा सारी पृथिवीको अधिकार नहीं कर सकता। केवल अधर्म और परलोकके भयसे मैंने अपना अभिषेक नहीं किया।" इस प्रकार बहुतविलाप करके उस दुर्भेद्य घोर अरण्यप्रदेशमें सीताकी दुरवस्था और अपने शोषणकी भावी दुर्गतिकी कल्पना कर सुकुमार राजकुमार रामचन्द्रने अपूर्व नैराश्य तथा क्षुब्ध चित्तसे मौनभावमें सारी रात बैठ कर बिताई।

इस प्रथम रात्रिके महाकष्टके बाद वनवास धीरे धीरे अभ्यस्त होने लगा। चित्रकूट पर्वतके नीचे पुष्पके बोझसे लदे हुए पेड़ देख कर वे चमत्कृत हो गये। सीता लहलहाती वनतरुराजि देख कर वनोन्मादिनी हो गई। वह घुंघराले और घने लम्बे केशोंको पीठ पर लटका कर रामचन्द्रका हाथ पकड़ लाल अशोकका पुष्प चुनने लगी। सामने चित्रकूट पर्वत है। उसका शिखर आकाश चुम्बन कर रहा है। कहीं गुहापूर्ण निबिड़ वनराज्यकी मनोहर शोभा है। कहीं बहुरूपधर पार्श्ववर्ती शैलमाला दिखाई देती है। इस चित्रकूटके कण्ठ पर निर्मल मुक्ताकी कण्ठीकी तरह मन्दाकिनी बह रही है। सहसा इस प्रकार अद्भुतपूर्व प्राकृतिक समृद्धिके निकट आ कर रामचन्द्रने गहरी सांस भर कर कहा –

"राज्यनाश और सुहृद्विरह आज मेरी दृष्टिमें बाधा नहीं डालता। यह महासौन्दर्य मैं अच्छी तरह उपभोग करनेमें समर्थ हूं। वनवास आज मेरे लिये शुभकर प्रतीत होता है। इससे मेरे दोनों फल सिद्ध होते हैं। एक तो मैंने पिताकी असत्यसे रक्षा की और दूसरा भरतका भारी उपकार हुआ।" सीताके साथ मन्दाकिनी जलमें स्नान कर रामचन्द्र कमल तोड़ते और सीतासे कहते हैं, 'इस नदीका स्निग्ध सम्भाषण तुम्हारी सखियोंके समान है। मन्दाकिनीको सरयू कह कर समझना।'

यहां दम्पतीका हृदय मधुरसे क्रमशः मधुरतर हो उठा है। कुसुमित लताने आश्रय वृक्षको मजबूतीसे पकड़ा है,—रामचन्द्रने कहा, 'क्या हो सुन्दर! तुम परिश्रान्त हो कर जिस प्रकार मेरा आश्रय लेती हो उसी प्रकार यह दिखाई देता है।' हाथीके दांतसे उखाड़े हुए पलाश गुच्छ वृक्षको देख कर "अच्छी बहुत दुःखित हुए। शैल

माला पर जंगली कोयल कुहकती थी और भौंरे गुनगुन शब्द करते थे। उसे सुन कर राम आदिकी थकावट दूर होती थी और वे धीरे धीरे आगे बढ़ते जाते थे। नील, पीत, लोहित वा किसी वर्णका जो फूल अच्छा लगता था, उसे रामचन्द्र पल्लव सहित तोड़ कर सीताके हाथमें देते थे। मनःशिलाके ऊपर जलसिक्त उंगली घिस कर सीताकी मांगमें सिन्दूरका तिलक लगाते थे। केशरपुष्पको सीताके बालोंमें खोंस कर रामचन्द्रने बड़े आदरसे कहा, 'तुम्हारे साथ रहनेसे मुझे अयोध्याके राजपदकी स्पृहा नहीं होती।'

चित्रकूटके मनोहर शैलमाला-परिवृतप्रदेशमें शाल, ताल और अश्वकर्ण वृक्षके पत्तों और काण्डोंसे लक्ष्मणने मनोरम पर्णशाला बनाई। रामचन्द्र उस झोपड़ामें भाई और स्त्रीके साथ आनन्दसे रहने लगे।

इसी समय बड़ी भारी सेना और आत्मीय सुहृदोंसे परिवृत्त हो भरत रामचन्द्रको अयोध्या लौटा लानेके लिये आ रहे थे। शालवृक्ष परसे भरतका चिरपरिचित-कोविदार ध्वजाङ्कित पताका-परिवेष्टित अयोध्याकी विशाल सेना देख कर लक्ष्मणने समझा, कि भरत हम लोगोंका वध करनेके लिये आ रहे हैं। इस धारणासे उत्तेजित हो उन्होंने भरतका निधन करनेका सङ्कल्प किया और रामचन्द्रको युद्धके लिये उभाड़ा। किन्तु रामचन्द्रने स्नेहार्द्र कण्ठसे कहा, 'भरत यदि सचमुच सेना ले कर आ रहा है, तो आने दो, हम लोगोंको युद्ध करनेका प्रयोजन ही क्या? पितृसत्यका पालन करने हम लोग वन आये हैं। ऐसी हालतमें यदि हम लोग भरतको युद्धमें मार डालें, तो क्या अक्षय कीर्त्ति प्राप्त हो सकती? भ्रातृरक्तकलङ्कित ऐश्वर्यसे हम लोगोंको प्रयोजन नहीं। भाई और आत्मीयवर्गके सुखके सामनेमें अपना सुख बहुत थोड़ा समझता हूं।' इसके बाद भरत जिस उद्देश्यसे आ रहे हैं वह अनुमान कर उन्होंने कहा, भरत मेरे प्राणसे भी बढ़ कर प्यारा है। मेरे वनवाससे वह शोकसतप्त हो मुझे अयोध्या ले जानेके लिये आ रहा है न कि हम लोगोंसे युद्ध करने।'

इधर नंगे पांवसे जटाचीर पहने अनुगत भृत्यकी तरह वाष्परुद्धकण्ठसे चिरवत्सल भरत आ कर रामचन्द्रके चरणों पर गिर पड़े। भरतका मुख सूखा, लज्जा और मनस्तापसे शरीर दुबला और कुरूप हो गया था। रामचन्द्रने अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे स्नेहकी पुतली भरतको गोदमें ले लिया और स्नेह सम्भाषणमें उनका मस्तक सूंघा। भरतने देखा कि सत्यव्रत रामचन्द्रके शरीरसे दिव्यज्योति निकल रही है, फिर भी उनका शरीर मानो पवित्र यज्ञाग्निकी तरह देदीप्यमान है।

इन देव सदृश बड़े भाईके चरणोंमें पड़ कर आर्त्ता रमणीकी तरह भरत फूट फूट कर रोने लगे। रामचन्द्र भरतके मुखसे पितृवियोगका सवाद सुन कर कुछ समय अधीर हो रहे। पीछे मन्दाकिनीके किनारे इंगुदीफलसे पितृ-पिण्ड बना ज्यों ही वे पिण्ड देने तैयार हुए त्यों ही लंबी सांस भरी और पृथिवी पर लोट कर रोने लगे। किन्तु थोड़े ही समय बाद वे चित्तसयम कर संसारकी अनित्यता और धर्मकी सारवत्ताके सम्बन्धमें भरतको उपदेश देने लगे, "मनुष्यका सुन्दर शरीर जरावशीभूत हो शक्तिहीन और विरूप हो जाता है। जिस प्रकार पके अनाजके गिरनेका भय नहीं, उसी प्रकार मनुष्यको भी मृत्युके लिये निर्भय हो प्रतीक्षा करना उचित है। क्योंकि मृत्यु ध्रुव है। जो प्रमोदमयी रजनी बीत गई है, वह फिर लौट कर नहीं आती। यमुनाका जो प्रवाह समुद्रमें मिल गया है, वह फिर लौटेगा नहीं। उसी प्रकार आयुका जो अंश बीत गया है वह फिर लौट नहीं सकता। जब जीवित व्यक्तिका मृत्युकाल ही आसन्न और अनिश्चित है, तब मृतके लिये पश्चात्ताप न करके अपने लिये पश्चात्ताप करना ही उचित है। जब देह ढीली पड़ जायगी और बाल सफेद हो जायेंगे, तब जराग्रस्त जीवमें क्या कोई प्रभाव रह जायगा? जिस प्रकार समुद्रमें गिरे हुए दो काठ जब दैववशसे एक साथ मिलने और फिर स्रोतवेगसे अलग अलग हो जाते हैं, उसी प्रकार स्त्रीपुत्र और ज्ञातिवर्गके साथ मिलना दैवाधीन है, उनका वियोग कब होगा, निश्चय नहीं है। हम लोगोंके पिता नश्वर मनुष्यदेहका त्याग कर ब्रह्मलोक गये हैं उनके लिये शोक करना वृथा है। धर्मपालन करते हुए पितृ-आज्ञाको शिरोधार्य कर उसका पालन करना ही अभी हम लोगोंका कर्त्तव्य है।" मुहूर्त्त भरमें गभीर शोक-

को त्रोत कर श्रीरामचन्द्र प्रकृतिस्थ हो गये। भरतने विस्मित हो कर कहा, "आप जैसे इस संसारमें कोई व्यक्ति देखनेमें नहीं आते जो सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी न हों।"

भरत रामको साथ ले जानेके लिये प्राणपणसे चेष्टा करने लगे। वशिष्ठ, जावालि आदि कुलपुरोहितोंने रामको अयोध्या लौटनेके लिये बहुत अनुरोध किया पर रामने एक भी न सुना। आखिर जावालिने एक अद्भुत तर्ककी अवतारणा की,—'जीव पृथिवी पर अकेला आता और अकेला ही जाता है। अतएव कौन किसका पिता और कौन माता है? यह माता है यह पिता है, ऐसी बुद्धि उन्मत्त और मूर्ख मनुष्यको ही होती है। यथार्थमें शुक्र शोणित और बीज ही हम लोगोंके पिता हैं। दशरथ तुम्हारे कोई नहीं थे, तुम भी उनके कोई नहीं हो। पिताके लिये श्राद्ध आदि किया जाता है, यह केवल अन्नादि नष्ट करना है। क्योंकि मृत व्यक्ति आहार नहीं कर सकता। यदि एक आदमी भोजन करे और दूसरेके शरीरमें उसका संचार होता हो, तो किसी परदेशी व्यक्तिके उद्देशसे किसीको भोजन करा कर देखो, क्या वह परदेशी तृप्त होता है? शास्त्रादि केवल लोगोंको वशीभूत करनेके लिये बनाये गये हैं। अतएव हे राम! परलोक साधनधर्म नामक कोई पदार्थ नहीं है, ऐसा तुम जानो। तुम प्रत्यक्षके अनुष्ठान और परोक्षके अनुसन्धानमें लग जाओ तथा अयोध्याके सिंहासन पर अधिष्ठित होओ। अयोध्या नगरी एकवेणीधरा हो कर तुम्हारे आगमनकी प्रतीक्षा करती है।"

रामचन्द्र पिताको प्रत्यक्ष देवता और देवताके देवता समझते थे। जावालिकी इस उक्ति पर वे आगबबूले हो गये और बोले,—"आपकी बुद्धि वेद विरोधिनी है, आपसे अच्छे अच्छे ब्राह्मणोंने निष्काम हो शुभकार्य किये हैं तथा आज भी बहुतेरे अहिंसा, तप और यज्ञ आदिका अनुष्ठान किया करते हैं। वे ही सचमुच पूजनीय हैं। आप जैसे धर्मभ्रष्ट और नास्तिक व्यक्तिके साथ वे बात चीत तक भी नहीं करते। मेरे पिताने जो आपको याजकरूपमें ग्रहण किया था मैं उनके इस कार्यकी घोर निन्दा करता हूं।" इस वादानुवादमें वशिष्ठने बीचमें पड़ कर रामचन्द्रके क्रोधको शान्त किया।

रामचन्द्रने जब जाना, कि भरत किसी भी हालतसे उनकी पदच्छाया परित्याग कर न जायेंगे, वे भी वनवासी होंगे, तब उन्होंने भरतको लौट जानेके लिये बहुत अनुरोध किया। इस पर शोकार्त्त भरतने हठ पकड़ा, कि यदि राम न लौटेंगे, तो मैं निराहार रह कर प्राणत्याग करूंगा। इतना कह कर उन्होंने कुटीके द्वार पर धरना दिया। भरतका क्लेश रामचन्द्रजी सह न सके। उन्होंने अपने खड़ाऊं दे कर भरतको लौट जानेके लिये बाध्य किया। भरत भी वह पवित्र खड़ाऊं ले कर अयोध्याको चल दिये।

इधर रामचन्द्रजीने सोचा, कि चित्रकूट अयोध्याके बहुत करीब है। अयोध्यासे हमेशा लोग आते जाते रहेंगे, इसलिये वे लक्ष्मण और सीताके साथ चित्रकूटका परित्याग कर धीरे धीरे दक्षिणकी ओर बढ़ने लगे। ऋषियोंके अनुरोधसे रामचन्द्रने राक्षसोंका उपद्रव रोकनेका भार अपने हाथ लिया। इस उपलक्षमें रामचंद्रजीसे सीताने कहा, "तीन कार्य पुरुषके वर्जनीय हैं, झूठ बोलना, पराई स्त्रीके साथ गमन करना और अकारण किसीसे शत्रुता ठानना। आपमें पहले दो दोष तो नहीं हैं, पर बिना कारणके राक्षसोंके साथ जो शत्रुता करते हैं, उससे मुझे डर होता है।" रामचन्द्रने कहा, 'सबसे जो आप करता है वही क्षत्रिय है। ऋषि लोगोंने राक्षसोंके अत्याचारसे तंग आ कर मेरी शरण ली है। इनमेंसे बहुतेरे निरीह और धार्मिक ऋषियोंको राक्षसोंने मार डाला है। उन्होंने विपद्में पड़ कर मुझसे आश्रय मांगा है। मैं भी इनकी रक्षा करनेका वचन दे चुका हूं। अभी राक्षसोंके साथ मेरा युद्ध अवश्यम्भावी है। मुझ पर चाहे कैसी ही विपद् क्यों न आ पड़े, यहां तक, कि तुमसे भी मेरा वियोग क्यों न हो जाय, पर मैं सत्यभ्रष्ट नहीं हो सकता।'।

शीतऋतुके आरम्भमें ही रामचन्द्र उग्र विपत्तियोंसे परित्राण पा दण्डकारण्य अतिक्रम कर पञ्चवटी पहुंचे। यहां वे कुटी बना कर रहने लगे।

पञ्चवटीमें शूर्पणखाके नाक कान काटे जानेके बाद

रामचन्द्रसे राक्षसोंका घोर युद्ध हुआ। खरदूषणादि चौदह हजार राक्षस रामचन्द्रसे मारे गये। रावणको जब यह मालूम हुआ, तब वह परिव्राजकके वेशमें सीताको हर ले गया।

मारीच राक्षसने मृत्युकालमें जो 'हा लक्ष्मण हा लक्ष्मण' कह कर पुकारा था उसीसे रामचन्द्रको राक्षसों की एक दुरभिसन्धिकी आशा हो गई थी। लक्ष्मणको अकेला आते देख राम भयसे विह्वल हो पड़े। उनका प्रशान्तचित्त क्षुब्ध समुद्रकी तरह चञ्चल हो उठा। उनके शोकके और भी दूसरे दूसरे कारण थे। रामचन्द्रने जब वन जानेका सङ्कल्प किया और यह बात सीताको मालूम हुई, तब उन्होंने 'कुशकण्टकमें कदम बढ़ा कर आपके आगे आगे जाऊंगी' यह कह कर प्रफुल्लचित्तसे राजमहलका त्याग किया और भिखारिणीवेश सजाया था। अयोध्या की सुरम्य अट्टालिकाओंका उल्लेख करते हुए उन्होंने कहा था कि, 'इन सब अट्टालिकाओंकी छायासे आपकी पद-च्छाया मेरे लिये कहीं अच्छी है। मृगीवत् प्रफुल्लनयना भीरु सीताको वनमें जब किसी बातका डर होता, तब वह अपनी भुजलतासे रामचन्द्रकी बाहु पकड़ती थी। तेरह वर्ष चित्रकूट और पञ्चवटी तरुकी छायामें गद्गद-नादी गोदावरीके किनारे मन्दाकिनीकी सैकतभूमिमें,—जंगली कंदमूल और कषायफल खा कर बड़े आदरसे लालिता सोहागिनी राजवधू स्वामीकी पार्श्ववर्त्तिनी हो कर रहना ही जीवनका श्रेष्ठ सुख समझती थी। रामचंद्र भी जब उन्हें लिये आते थे, तब उन्होंने कहा था, "तुम्हें साथ ले जानेमें मुझे किसी बातका डर नहीं। साक्षात् रुद्रसे भी मैं नहीं डरता।" यह अभय दे कर वे पद्मपलाशाक्षी सीताको साथ लाये थे। अभी वह उनकी रक्षा न कर सके। यह सब सोच कर राम बहुत व्याकुल हो उठे। लक्ष्मणको अकेला आते देख वे कातर-करुण स्वरसे बोल उठे, 'दण्डकारण्यमें जो मेरे साथ साथ आई थी मेरी उस वन-संगिनी दुःखसहाया-को कहां कहां रख आया, जिसके बिना मैं क्षण भर भी नहीं रह सकता उसे तुम कहां छोड़ आया?'

अनन्तर वे बड़ी तेजीसे लक्ष्मणके साथ कुटीकी ओर चले। राहमें उन्हें तमाम अंधकार सा दिखाई देता था। चारों ओर अशुभ लक्षण देख कर उनका मुख सूख गया। कुटीके समीप आ कर उन्होंने देखा, कि हेमन्तमें शुष्क पद्मदलकी तरह सीताविहीन श्रीहीन मलीन कुटी खड़ी है। उसका सौंदर्य बिलकुल चला गया। वन-देवता मानों पञ्चवटीसे विदा हो गये, समूचा वन सीताके बिना मानो सूना दिखाई देता है, पञ्चवटीके वृक्ष डालियोंको झुका कर रो रहे हैं, पञ्चवटीके पक्षी अपनी मधुर बोली भूल गये हैं; डालियों पर फूल मुरझा गये हैं। मृगचर्म और वल्कलादि कुटीकी रस्सीमें बंधे हैं। यह अवस्था देख कर रामचन्द्र पागल हो गये। आंखोंसे अजस्र आंसू बहने लगे और आंखें लाल लाल हो गईं।

इस समय उन्हें तरह तरहकी भावना होने लगीं,—क्या सीता कहीं पद्म तोड़ने तो नहीं चली गई है? क्या मेरी परीक्षा करनेके लिये कहीं छिप तो नहीं रही है? इसके बाद वे गिरि, नदी और दुर्गम स्थानमें उन्हें खोजने लगे। जब कहीं न मिली, तब वे व्याकुल हो कदम्बवृक्षसे पूछने लगे। बिल्ववृक्षके निकट हाथ जोड़ कर; लतापल्लवपुष्पसे लदी हुई वनस्पतिके पास जा कर कातरकण्ठसे सीताका हाल पूछा। पत्र-पुष्प-समाच्छन्न अशोकके पास जा कर उन्होंने कहा, 'हे अशोक! मेरा शोक दूर करो, सीता कहां चली गई, मुझे बता दो।' पीछे कनियार पुष्प देख पागल हो उन्होंने सीताके श्रीमुखकी कर्णशोभाका स्मरण किया। वन वनमें उन्मत्तकी तरह भ्रमण कर रामचन्द्र-ने मृगयूथके निकट मृगशावाक्षीका हाल पूछा। सहसा क्षिप्तवत् छायासीताको देख वे व्याकुल कण्ठसे कहने लगे,—

"हे प्रिये! वृक्षके कोटरमें क्यों छिपी हो? मैंने तुम्हें देख लिया। मुझसे बोलती क्यों नहीं? ऐसी हंसी तो तुम कभी भी मेरे साथ नहीं करती थी,—ठहरो, कहीं भाग न जाना, क्या मेरे प्रति तुम्हें जरा भी दया नहीं?"

इतना कह कर राम सीताके ध्यानमें निमग्न हो कठपुतलीकी तरह खड़े रह गये।

कुछ समय बाद जब ये होश हवासमें आये, तब फिर सीताकी खोजमें निकले। सीताको कोई हर कर ले गया है, यह रामचन्द्र जी स्वप्नमें भी नहीं सोचते थे। उनका ख्याल था, कि सीताको राक्षसगण खिन्न कर खा गये हैं। उनके घुंघराले बाल, सुन्दर पूर्णचन्द्रमाकी तरह मुखमण्डल सुचारु नासिका और शुभ्र चारु राक्षसके भयसे मलिन और सूख गये थे। उनको चलयके समान चारु, सुन्दर अलङ्कार सभी राक्षसोंके पेटमें चले गये होंगे, यह सोच कर रामचन्द्र पक्षहीन उन्माद-ग्रस्तसे आकाशकी ओर ताकते जाते थे। कभी तो बड़ा तेजा से कभी धीरे धीरे पागलकी तरह नद नदी और निर्झरिणीसे परिपूर्ण गिरिगह्वरमें भ्रमण करते थे। उन्होंने लक्ष्मणसे कहा, 'लक्ष्मण! पद्मवनाकीर्ण, गोदावरीकी सैकत भूमि, कन्दर और निर्झरपूर्ण गिरिगह्वर आदि सभी स्थानोंमें भाग्यविहीना सीताको खोजा, पर वे कहीं न मिलीं।" इतना कह शोकसे अधीर हो रामचन्द्र पृथ्वी पर धड़ामसे गिर पड़े और गहरी सांस भरने लगे।

कुछ समय बाद रामने लक्ष्मणको अयोध्या लौट जानेके लिये अनुरोध किया और कहा, 'मैं कौन-सा मुंह ले कर अयोध्या लौटूंगा। चिरदुःखदुखिता सीता कहां गई, लोग जब पूछेंगे तब मैं क्या जवाब दूंगा। भरतको आलिङ्गन कर मेरी ओरसे कहना, 'कि चिर दिन यहीं अच्छी तरह राज्य करें। माता कैकेयी, सुमित्रा और कौशल्या आदि माताओंको मेरी हालत कह कर बड़े यत्नसे उनका पालन करना।'

लक्ष्मणने अनेक उपदेश-वाक्य द्वारा रामको सान्त्वना दी। किन्तु वे फिरसे कहने लगे, 'मुझे छोड़ तुम्हें विमल धर्माश्रित जानकी।" ऐसा जिसने कहा था, जिसे राज्यनाश और पिता विरह अभिभूत न कर सका, जिसके बिना 'राम राम' कहते इस लोकसे चल बसे और यह पितृशोकसे जरा भी विह्वल न हुआ आज वह शोकसे उन्मत्त हो रहा है। रामचन्द्रने फिर लक्ष्मणसे कहा, लक्ष्मण! थोड़ी देर ठहरो, तब अयोध्या जाना, एक बार गोदावरीके किनारे सीताकी खोज लाओ, वह वहां कमल लानेके लिये न गई हो। लक्ष्मण गोदावरीके किनारे सीताकी तलाशमें निकले, चारों ओर चिल्ला चिल्ला कर पुकारने लगे। चैतवनकी प्रतिध्वनिके सिवा और किसीने कुछ उत्तर न दिया। वे दुःखित हो लौटे और रामचन्द्रसे बोले 'कृशनाङ्गिनी वैदेही मालूम नहीं कहां चली गई, तमाम ढूंढ़ा, पर पता न लगा।'

लक्ष्मणकी बात सुन कर शोकाकुल रामचन्द्र स्वयं गोदावरीके किनारे गये।

राम और लक्ष्मणने दक्षिण दिशामें पर्यटन करते करते एक जगह सीताका आभूषण कुसुमदाम पड़ा देखा। तब अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे रामचन्द्रने कहा, 'पृथिवी, सूर्य और वायुने इन पुष्पोंकी रक्षा कर आज मेरा कुछ दुःख दूर किया।

कुछ दूर और आगे बढ़ कर उन्होंने देखा, कि जमीनके ऊपर राक्षसका बड़ा पद चिह्न अङ्कित है, पासकी जमीन बहुत तराबोर है। वहां सीताका उत्तरीयस्खलित कनकबिन्दु गिरा है, पास हीमें एक पुरुषका लाश और विशीर्ण कवच तथा युद्धरथ चकनाचूर हो पड़ा है और इसमें जो पताका लगी है, वह भग्न और कीचड़से भीग गई है। यह दृश्य देख कर रामचन्द्रकी पूर्व आशङ्का यथार्थ हो गई अर्थात् उन्होंने कहा था कि सीताको राक्षस खा गया है, यह बात ठीक निकली। राक्षस लोगोंमें दो यह सीताके लिये आपसमें युद्ध किया है—यह उसी का निदर्शन है। रामकी आंखें क्रोधसे लाल हो गईं। उनके ओठ फड़फड़ाने लगे। पीठ पर लटकती हुई जटाको उन्होंने संभाला और वल्कल मृगचर्म आदि अच्छी तरह बांध लिये। अनन्तर लक्ष्मणके हाथसे तीर धनुष ले कर बोले, "जिस प्रकार जरा मृत्यु और विधाताका कोप अनिवार्य है, उसी प्रकार आज मुझे भी कोई रोक नहीं सकता। सामने जो कुछ मिलेगा उसे यमपुर भेज कर सीता विनाशका बदला चुकाऊंगा।" बड़े भाईको इस प्रकार उन्मत्त भाव देख कर लक्ष्मणने उन्हें बहुत उपदेश दिया। उनके उपदेशका राम पर अच्छा असर पड़ा। कुछ दूर जब ये लोग और आगे बढ़े, तब उन्होंने पर्वताकार मुमूर्षु जटायुको देखा। उसे देख कर रामने "यही राक्षस सीताको खा कर निश्चिन्तभावसे पड़ा है।" कह कर उसे मारनेके लिये तीर धनुष उठाया।

शोकाभिमय होता होगा ? सीताके विरहसे आज यह बर्फके समान ठंडा वायु आगकी लपट-सा मालूम होती है। यह विशाल पुष्पसम्भार आज मेरे निकट तृण है। अयोध्या लौट कर मैं विदुराजसे क्या कहूंगा ? लक्ष्मण, तुम लौट जाओ, मैं सीताके विरहसे प्राणधारण नहीं कर सकता।"

लक्ष्मण रामचन्द्रकी यह उन्मत्तता देख कर डर गये और उन्हें अनेक प्रकारसे समझाने बुझाने लगे। किन्तु रामचन्द्रकी व्याकुलताका जरा भी ह्रास न हुआ। कभी तो वह अवसन्न हो जाते और कभी अजस्र आंसू बहाते हुए उन्मत्तकी तरह प्रलाप करते थे। इसी समय सुग्रीव ने हनुमानको वहां भेजा। हनुमानके विनय अभिनन्दन से लक्ष्मण हृदयका आवेग न रोक सके। सुग्रीवने हनुमानके हाथ दोनों भाइयोंको कहला भेजा था, "आपके आयत तथा सुदृढ़ महाभुज परिघके समान हैं। आप जगत्का शासन कर सकते हैं तो फिर आप दोनों भाई वनचारी क्यों हुए ? आप लोगोंकी अपूर्व देहकान्ति सब प्रकारके आभूषणका योग्य है, पर एक भी भूषण नहीं दिखाई देता सो क्यों ?" लक्ष्मणने रामचन्द्र तथा अपनी हालत संक्षेपमें कह सुनाई और सुग्रीवका आश्रय देने कहा,—"जो पृथ्वी-पति हैं सभी लोगोंको शरण देने-वाले मेरे गुरु और अग्रज—वे रामचन्द्र आज सुग्रीव की शरण चाहते हैं। इसलिये दुःखसागरमें पतित रामचन्द्रको आज वानराधिपति आश्रय दे कर उनकी रक्षा करें।" इतना कहने न कहते लक्ष्मणकी आंखें डब डबा आई। जिन्होंने सर्वदा निर्लोभका दमन किया है। रामचन्द्रका कष्ट देख कर जिनका चित्त कातर हो गया है, वह लक्ष्मण आज रोते रोते भीगे हो गये।

रामचन्द्र शोकातुर हो आज तक कपटका अर्थ कह पाते थे, किन्तु अभी वे जिस काममें लगे हुए हैं, वह कहां तक युक्तियुक्त और नीतिमूलक है कह नहीं सकते। वास्तवमें यह बड़ा ही जटिल समस्या थी। कबन्धने मृत्यु कालमें सुग्रीवके साथ मित्रता करने कहा था। अभी रामचन्द्रने सुग्रीवके पास जा कर और उनसे विपदकालमें सहायता मांगनेकी इच्छा प्रकट की। अग्निको साक्षी कर उन्होंने आपसमें सौहार्द्य स्थापन किया। सुग्रीवने कहा,—

'यदि मेरे जैसे वानरके साथ आप मित्रता करना चाहते हैं, तो हाथ बढ़ाता हूं, अपने हाथसे मेरा हाथ पकड़ें।' रामचन्द्रने वैसा ही किया। किन्तु सुग्रीव केवल मित्र ही नहीं थे, वे भी उन्हीं के जैसे दुःखित थे। उन का भी स्त्री बड़े भाई द्वारा हरण की गई था। वे वालीके भयसे ऋष्यमूक पर्वत पर रहते थे, स्त्रीविरहसे बड़े कष्टसे जीवन बिताते थे। जब रामचन्द्रको यह हाल मालूम हुआ, तब रामचन्द्रने उन पर बड़ा कृपा बरसाई। जिसकी स्त्री दूसरेसे चुरा ली गई उसके समान हतभागा संसारमें और कौन है। हतभागेके साथ हतभागेकी मित्रता केवल हाथ पकड़नेसे ही नहीं हुई, हृदयकी गंभीर सहानुभूति द्वारा यह बद्धमूल हो गई। सुग्रीव जब अपनी स्त्रीका हरण वृत्तान्त रामचन्द्रसे कह रहे थे, उस समय उनके नेत्रोंसे अविरल अश्रुधारा बहती थी। किंतु रामचंद्रके सामने सुग्रीवने धैर्य धारण कर अश्रुवेगको रोक लिया। ऐसे समदुःखी बन्धुको पा कर रामचंद्र अपना अश्रुमलिन मुख कपड़ेके अंचलसे पोछेंगे, इसमें आश्चर्य ही क्या ? सीताने ऋष्यमूक पर्वत पर अपने भूषणादि गिरा दिये थे। सुग्रीव उन्हें बड़े यत्नसे रखा था। रामने उसे देखना चाहा, सुग्रीवने उसी समय उनके सामने ला कर रख दिया। वे उस उत्तरीय और भूषणको छाती पर रख कर रोने लगे और रावणका कार्य स्मरण कर बिलमेंके सांपकी तरह क्रुद्ध हो निश्वास छोड़ने लगे।

सुग्रीव और रामचंद्रके साथ मित्रता हो गई। वालीका वध करनेके लिये उन्होंने संकल्प किया। किन्तु एक प्रतापशाली देशाधिपतिको पीछेसे आड़से तीर फेंक कर मारना क्षत्रियोचित कार्य है या नहीं यह सोचने के लिये मालूम होता है उस समय उनकी बुद्धि ठिकाने न था। वालीको रामचंद्रने कहा था 'छोटे भाईकी स्त्री कन्याके समान है, जो व्यक्ति उसे हरण करेगा मनु के विधानानुसार वह मृत्युदण्डसे दण्डित होगा।" वालीने कहा, 'मनुके मृत्युदण्ड देनेके लिये क्या तुम हो आये हो ? वालीके इस प्रकार बार बार धिक्कारने

पर रामचन्द्रने कहा, 'यह सशैलवनशालिनी धरित्री इक्ष्वाकुवंशीयके अधिकारमें है। भरत उस वंशके राजा हैं। हम लोग उनकी आज्ञाके अनुसार पापीको पापका दण्ड देनेमें नियुक्त हैं। जिसको दण्ड देना होगा, उसके साथ क्षत्रियोचित सम्मुखयुद्धका प्रयोजन नहीं।' मालूम होता है, उन्हें आर्यजातिका युद्धनियम पालन करनेका यथेष्ट कारण न मिला।

रामचन्द्रने अपने पराक्रमका परिचय देनेके लिये सुग्रीवके सामने एक शर फेंका जो सात ताड़के पेड़को छेदता हुआ निकल गया। किन्तु जब देखते हैं, कि वृक्षकी आड़से भाईके साथ मल्लयुद्धमें नियुक्त वालीके प्रति गुप्तभावसे शर फेंक कर रामचन्द्रने उसका वध किया, तब वे सब पराक्रम दिखानेकी कोई आवश्यकता ही न थी।

ऋष्यमुख पर्वतको गुहाको काट कर दुर्गम शैलसंकुल प्रदेशमें वालीका राज्य था। अब वालीके मारे जाने पर सुग्रीव विजयमाला पहन कर सिंहासन पर बैठे। माल्यवान् पर्वतके पास ही चित्रकानना किष्किन्धाका गीतिवादित्रनिर्घोष सुनाई देता था। रामचन्द्र माल्यवान् पर्वत पर भाईके साथ रह कर उसे सुन सकते थे। किष्किन्धा नगरी बड़े आदरसे आमन्त्रित होने पर भी उन्होंने नगरमें प्रवेश नहीं किया। वनवासकी प्रतिज्ञा पालन कर वे पर्वत पर रहते थे। रामचन्द्रको रातदिन नींद नहीं आती थी। उदित शशिलेखाको देख कर विधुमुखीका स्मरण हो आता था। चन्द्रोदय देख कर भी वे निद्रा-सुखका अनुभव नहीं करते थे। वर्षाका समय था। अविरल जलधारा देख कर राम समझते थे, कि उनके विरहसे सीता अश्रुत्याग कर रही है। नील मेघमें प्रस्फुरित विद्युत् देख कर रावण द्वारा सीताहरणका चित्र उनके सामने आता था। वर्षाकालमें रामचन्द्रका सीताशोक दूना बढ़ गया। वर्षाका चार मास उनके लिये सौ वर्षके समान था। सीताके शोकमें इस समय वे बड़े कष्टसे दिन विताते थे। धीरे धीरे शरदृऋतुने पदार्पण किया। मेघका नामनिशान न रहा। सप्तच्छद तरुकी शाखा शाखामें पुष्प खिल गये। पुष्करिणीके किनारे जंगल और नदीतटमें रामचन्द्र घूम घूम कर मृगशावाक्षीका स्मरण करने लगे। सीताके विना उन्हें कहीं चैन नहीं पड़ता था।

रामचन्द्रने कहा, 'सुग्रीवने प्रतिज्ञा की थी, कि वर्षाऋतु बीतने पर वे सीताकी खोज करेंगे। अब शरदृऋतु भी आ गई पर उनका कहीं पता नहीं। मैं प्रियाविहीन दुःखार्त्त और हृतराज्य हूं, सुग्रीव राज्य स्त्री पा कर बिलकुल भूल गये। मुझे अनाथ, राज्यभ्रष्ट, प्रवासी और दीनप्रार्थी समझ कर शायद सुग्रीव हम लोगोंकी उपेक्षा करते हों। लक्ष्मण! तुम उनके पास जाओ और कहो, कि क्या वह मेरी वाणाग्निकी प्रभा फिर देखना चाहता है? जिस पथसे वाली गया है वह पथ संकुचित नहीं हुआ है। उसे समझा कर कहना, कि अपनी प्रतिज्ञाका पालन करे जिससे उसे वालीके पथसे न जाना पड़े। फिर उन्होंने लक्ष्मणसे यह भी कहा, कि सुग्रीवको मीठी मीठी बातें कहना, रूखी बातका कदापि व्यवहार न करना।

सुग्रीव सचमुच तारा, रुमा और दूसरी दूसरी ललनाओंसे परिवृत्त हो आनन्दसागरमें मग्न था, मदविह्वलिताङ्ग और पानारुणनेत्रसे दिनके समान रात और रातके समान दिन विता रहा था। यहां तक, कि लक्ष्मण और वानरोंने जब दरवाजे पर जा कर शोरगुल मचाया, तब भी उसकी नींद नहीं टूटी, आखिर अङ्गदके समझाने पर सुग्रीवने कहा, 'मैंने तो कोई कुव्यवहार नहीं किया, तब फिर लक्ष्मण क्यों क्रोध करते हैं? मैं लक्ष्मण अथवा रामसे जरा भी नहीं डरता, पर हां बन्धुविच्छेदसे अवश्य डरता हूं। मित्रता सर्वत्र ही सुलभ है, मित्रताकी रक्षा करना कठिन है।' किंतु हनुमान्ने जब उसको भूल सुझा दी, तब उसने अपना अपराध स्वीकार किया और कृताञ्जलि हो लक्ष्मणसे क्षमा मांगी।

सुग्रीवने उसी समय वानरोंको भिन्न भिन्न दिशामें सीताकी खोजमें भेजा। कुछ समय बाद वे सभी लौट आये, पर सीताका कहीं पता न चला। आखिर हनुमान् विशाल समुद्र पार कर लङ्कामें सीताको खोजने आये।

हनुमान्ने अशोक वाटिकामें सीताको देख पाया। कुल समाचार कह कर वह वहांसे लौटा। आते समय

सीताने उसे चिह्न स्वरूप अपनी अंगूठी दे दी। हनुमान् उस अंगूठीको ले कर समुद्रके किनारे जहां बंदर उसकी बाट जोहते थे वहां पहुंच गया। अब बंदरोंके आनन्द का पारावार न रहा। वे सबके सब आनन्दसे उछलते कूदते पहले रामचन्द्रके पास न जा कर सुग्रीवके विशाल मधुवनमें घुसे। उस वनमें दधिमुख नामक एक पहरू नियुक्त था। उसने बन्दरोंको वनमें घुसनेसे मना किया, पर आनन्दसे उन्मत्त बन्दर कब उसे सुननेवाले थे। आखिर दधिमुखने बलपूर्वक उन्हें मार भगानेकी कोशिश की, पर वह अकेला कब तक ठहर सकता था। बंदरोंने मिल कर उसे खूब पीटा और अधमरा कर छोड़ दिया। दधिमुख रोता हुआ सुग्रीवके पास गया। इधर मधुवन से आमोदित और यौवनके मदसे उन्मत्त बन्दर आपसमें मधुर गान गाते, एक दूसरेको प्रणाम करते, इस प्रकार आनन्दोत्सव मनाते थे।

सुग्रीव राम लक्ष्मणके पास बैठे हुए थे। दधिमुख वहां गया और वानराधिपतिका पांव पकड़ कर रोने लगा। सुग्रीवने अभय दे कर रोनेका कारण पूछा। दधिमुखसे सारी घटना सुन कर सुग्रीव बोले "वानर समुदाय तो सीताका पता न लगा सकनेके कारण बड़ा ही दुःखित है, तब फिर अकस्मात् यह क्या हो गया? मालूम होता है उन्होंने कोई शुभसंवाद अवश्य पाया है शायद सीताका पता लगा लिया है।" इसी समय वानर गण वहां पहुंच गये। 'सीताका संवाद पा कर रामचंद्र के आनंदका पारावार न रहा।

अनन्तर हनुमान्ने सीताकी दी हुई अंगूठी रामचंद्र को दे कर कहा 'जमीन पर सोते सोते सीताका रूप कुरूप हो गया है, वे शोक क्लिष्ट मलिनोंकी तरह मलिन हो गई हैं।' राम उस अंगूठीको छातीमें लगा कर बालककी तरह रोने लगे। पीछे वे बोले, 'बछड़ा देखनेसे जिस प्रकार गायके स्तनसे दूध आपे आप गिरने लगता है उसी प्रकार इस मणिके दर्शनसे मेरा हृदय स्नेहातुर हो गया है। छातीमें जब इसे लगाता हूं, तब ऐसा ही मालूम होता, कि सीता मेरे अंगमें लिपट गई है।' वे बड़े ही आतुर हो हनुमान्से बार बार पूछने लगे। "मेरी मानिनीने मधुर स्वरसे क्या कहा है, मुझे कहो। औषध मिलनेसे रोगी जिस प्रकार जीवन लाभ करता है, सीताका वचन भी अभी मेरे लिये वैसा ही है। कठिन से कठिन दुःखमें पड़ कर सीता किस प्रकार जीवन धारण करती है।"

हनुमान्से कुल समाचार मालूम कर रामचंद्र बोले, 'यह शुभ संवाद तुमने जो सुनाया, इसके लिये मैं तुम्हें क्या पुरस्कार दूं? पुरस्कार योग्य तो मेरे पास कुछ है नहीं। मेरा एकमात्र आयत्त पुरस्कार है—तुम्हें आलिङ्गन देना। यह कह कर अश्रुपूर्णनेत्रोंसे रामचंद्रने हनुमान्का आलिङ्गन किया।

किन्तु हनुमान्ने लङ्कापुरीका जो वर्णन किया, वह बड़ा ही भीतजनक है। 'विशाल लङ्कापुरी चारों ओर ऊंची दीवारसे घिरी है। उसमें चार फाटक हैं। हर एक फाटक पर कल रखे हुए हैं। प्राचीर पार करनेसे भयङ्कर खाई मिलती है। उस खाईमें कुम्भीर आदि रहते हैं। उस पर चार यन्त्रनिर्मित सेतु हैं। शत्रुसेना जब उस सेतु पर चढ़ती तब यन्त्रबलसे वे खाईमें फेंक दी जाती है। यंत्रकौशलसे वे सब सेतु इच्छानुसार उठाये जा सकते हैं। उनमेंसे एक सेतु सबसे बड़ा है। उसके कुछ अंश सोनेसे मढ़े हुए हैं। त्रिकूट पर्वतके ऊपर वह लङ्कापुरी अवस्थित है। वहां देवता लोग भी नहीं आ सकते। सैकड़ों त्रिशूल, शैल और शूलधारी राक्षस सेना उस विराट प्राकार और परिखाके दरवाजे पर पहरा देती है। इसके बाद लङ्कापुरी पड़ती है। वहां जो वीर राक्षस पहरा देते हैं उनके पराक्रमके विषयमें तो कुछ कहना ही नहीं। उनमेंसे किसीने तो ऐरावतके दांत उखाड़े हैं, किसीने यमपुरीमें घेरा डाल कर यम राजका दमन किया है। इस दुरधिगम्य लङ्कापुरीसे सीता का उद्धार करना होगा। शत्रुगण हम लोगोंसे लड़ने के लिये पहलेहीसे तय्यारी कर रहे हैं।" हनुमान्से लङ्कापुरीकी भयकथा सुन कर रामचन्द्र जरा भी विचलित न हुए। वे सुग्रीवकी सेनाके साथ पहाड़ी रास्तेसे समुद्रके किनारे जाने लगे। राहमें बड़े बड़े वृक्ष फलके बोझसे सिर झुकाये हैं। रामचन्द्रने सबोंको सावधान कर दिया था, कि बिना अच्छी तरह जांचे कोई फल न

जाना। कहीं रावणके गुप्तचरोंने उनमें विष न मिला दिया हो। इसी समय बड़े भाईसे अपमानित विभीषणने आ कर रामचंद्रकी शरण ली। इस पर सबोंने प्रतिवाद किया, कि शत्रुपक्षीय किसीको भी अपने शिविरमें आश्रय न देना चाहिये। किंतु रामचंद्रने शरणागतको लौटा देना अच्छा न समझा।

समुद्रके किनारे पहुंच कर विशाल सेना असीम जलराशिकी अनन्त प्रसारित क्रीडा देखने लगी। समुद्र आकाशमें और आकाश समुद्रमें मिला हुआ था। अब सभी सोचने लगे, कि किस प्रकार यह भीषण महासमुद्र पार किया जाय?

समुद्रके किनारे रामचन्द्र कुश पर शयन कर महाबाहुको तकिया बना कर तीन रात और तीन दिन अनसनव्रत अवलम्बन कर मौनभावमें पड़े रहे। चौथे दिन 'आज मैं समुद्र पार करूंगा, नहीं तो प्राण दे दूंगा' इस प्रकार संकल्प कर सेतु बाधनेके उद्देशसे वे समुद्रकी उपासना करने लगे। रक्तमाल्याम्बरधर, किरीटच्छटादीप्त शुभकुण्डल समुद्र कृताञ्जलि हो रामचन्द्रके निकट उपस्थित हुए और उन्होंने सेतुबंधका उपाय बतला दिया।

तदनुसार अपार समुद्रव्यापी विशाल सेतु बनाया गया। सेतु जिससे टेढा न होने पावे, इसलिये कोई सूता और कोई मानदण्ड पकड कर खड़ा रहता था। शिला और वृक्ष आदि उपादानोंसे नीलने थोड़े ही समय में पुल बना लिया। रामचन्द्र सभी सेनाओंके साथ उसी पुलसे समुद्र पार कर गये। अब लङ्कापुरी पहुंच कर वे सीताके लिये बहुत व्याकुल हुए और विलाप करने लगे, "जो वायु सीताको स्पर्श करती है, वह मुझे भी स्पर्श कर पवित्र करे। जो चन्द्रमा मुझे देखता है, उस चंद्रमाको सीता भी देख कर उन्मादिनी होती होगी। दिन रात मैं सीताकी विरह-अग्निसे दग्ध होता हूं। ऐसा कब सौभाग्य प्राप्त होगा, कि उनके सुचारु दन्त और अधरयुग्म, पद्मतुल्य सुन्दर मुख उठा कर देखूं।"

इसके बाद युद्ध आरम्भ हुआ। रावणके मंत्रियोंने उन्हें नाना प्रकारकी सलाह दी। किसीने कहा, "एक दल राक्षस सेना मनुष्यसैन्यका वेश धारण कर रामचंद्रके पास जा कर कहे, 'भरतने आपकी सहायतामें हम लोगोंको भेजा है' इस प्रकार रामकी सेनामें घुसनेसे शीघ्र ही उनका विनाश किया जा सकता है।" रावणने सुग्रीवको ससैन्य अपने दलमें लानेके लिये उन्हें तरह तरहका प्रलोभन दिया था। लेकिन उसका यह भी उद्देश्य सिद्ध नहीं हुआ। रावणके गुप्तचर नाना प्रकारका छद्मवेश धारण कर रामचन्द्रकी सैन्यसंख्या और व्यूहप्रणाली देखने आते थे। जब कभी वे पकड़े जाते, तब बंदर उन्हें अच्छी तरह पीटने और पकड रखते थे। पीछे रामचन्द्र उन्हें छोड देते थे। सुग्रीव और विभीषण उन्हें जानसे मार डालनेकी सलाह देते थे। उनका कहना था, कि ये सब दूत नहीं, गुप्तचर हैं इसलिये इनका वध करनेमें कोई दोष नहीं। किंतु रामचन्द्रको दया आती और उन्हें मुक्त कर देते थे। एक दिन एक गुप्तचरको दण्ड देनेके लिये रामचन्द्रजीके पास लाया गया। उसने रामचन्द्रकी शरण ली। रामने उसे कहा था, 'तुम हमारी सैन्यसंख्याको अच्छी तरह देख जाओ। तुम्हारे मालिकने जिस उद्देशसे तुम्हे भेजा है उस उद्देशको पूरा करनेमें मैं स्वयं उसकी मदद करता हूं। तुम मेरा व्यूहसंस्थान, छिद्रादि जो कुछ है, देख जाओ। यदि स्वयं न समझ सकते या देख सकते हो, तो मेरे कहनेसे विभीषण तुम्हें सब कुछ समझा बुझा देगा।' इस प्रकार रामचंद्रने नीतिका अवलम्बन कर धर्मयुद्धमें राक्षसोंको मारा था। एक दिनके भीषण युद्धमें रावण बिलकुल हतश्री हो गया था। लक्ष्मणको विध्वस्त और रामकी सेनाको नष्ट कर आखिर रामचन्द्रसे परास्त हुआ उसका किरीट कट कर जमीन पर गिर पड़ा। हेमच्छत्र जो मस्तक पर पहनता था छिन्न-विच्छिन्न हो गया। रामके शरोंसे घायल हो वह भागनेकी कोशिश करने लगा, पर भागनेका कोई रास्ता न मिला। इस समय रामचंद्रने कहा था, 'राक्षस! तुम मेरी सेनाको नष्ट कर युद्ध करते करते थक गये हो। मैं थके शत्रुको कष्ट देना नहीं चाहता, इसलिये आजकी रात घर लौट जाओ और विश्राम करो। कल सबल हो कर फिर युद्ध करने आना।'

लक्ष्मण रावणके शेलसे मूर्छित हो पड़े। रामकी किसी भी सेनाको यह हृदयभेदी शेल उठानेका साहस न हुआ। आखिर रामचन्द्रने उसे उठा कर चूर चूर कर दिया और लक्ष्मणको बचाया। इसी समय रावणके हजारों बाण उनकी पीठमें घुसने लगे, पर भ्रातृवत्सल रामने उसकी जरा भी परवाह न की।

इन्द्रजित्से सीताका वधसंवाद सुन कर रामचन्द्र बेहोश हो गये। सेना उन्हें चारों ओरसे घेर कर पद्मगन्धयुक्त स्निग्ध जलधारा द्वारा उन्हें होशमें लानेका प्रयत्न करने लगी। इसी समय विभीषणने आ कर उनके कानोंमें कहा, "वह सीता मायासीता था,—असल सीता नहीं। सीता अशोकवनमें अच्छी तरहसे हैं।" यह सुन कर राम बोले, 'मैंने कुछ भी नहीं समझा, क्या कहते हो, जोरसे कहो' ऐसा कह कर राम नीलके साथ साथ करुण दृष्टिसे विभीषणकी ओर ताकने लगे।

भीषणयुद्धमें राक्षस एक एक कर यमपुर सिधारे। अतिकाय त्रिशिरा, नरान्तक, देवान्तक, महापार्श्व, महोदर, अकम्पन, कुम्भकर्ण, इन्द्रजित् आदि महारथिगण समराङ्गणमें खेत रहे। दो बार रामचन्द्रने इन्द्रजित्को युद्धमें परास्त किया था। किंतु दैववशसे दोनों बार बच गया था। इस युद्धमें राक्षसोंने रामचंद्रकी कभी भी खुशामद नहीं की। खुशामदकी बात कृत्तिवास, तुलसीदास आदि कवियोंने अपने अपने रामायणमें लिखा है, पर वाल्मीकिके मूलकाव्यमें वह नहीं है।

रावणके साथ जो अन्तिम युद्ध हुआ, वह बड़ा ही भयङ्कर था। दोनोंकी कमानसे जो तीर निकलते थे उनसे दिग्मण्डल आलोकित होता था तथा अद्भुत रूप युद्धसे पृथिवी काँप उठती थी। रामचंद्र जब रावणका वध न कर सके, तब कुछ समय तक वे चित्रपटकी तरह निष्पन्द हो रहे। इस समय अगस्त्य ऋषिके उपदेशानुसार रामचंद्रने सूर्यदेवके स्तवमूलक मन्त्रका ध्यान करने लगे, "हे तमोघ्न, हे हिमघ्न, हे शत्रुघ्न, हे ज्योतिःपति, हे लोकसाक्षिन्, हे व्योमनाथ," इस प्रकार मंत्र जप करते करते उनके शरीरमें नई शक्तिका सञ्चार हो आया।

रावण मारा गया। जो रामचन्द्र सीताके लिये इतने दिनों तक उन्मत्तप्राय थे आज रावणविनाशके बाद उनकी वह व्याकुलता हठात् दूर हो गई। उन्होंने रावणका सत्कार करनेके लिये विभीषणसे कहा। चंदन और अगरकी लकड़ीसे राक्षसाधिपतिकी देह जला दी गई। इसके बाद रामने विभीषणको लङ्काके राजसिंहासन पर अभिषिक्त किया।

इसके बाद रामचंद्रने अपने प्रिय अनुचर हनुमान्को अशोकवनमें भेजा। वह सीताको लाने नहीं गया, केवल उन्हें यह संवाद देनेके लिये कि वे रावणको मार कर ससैन्य कुशलसे हैं। जाते समय उन्होंने हनुमान्से कह दिया था, 'अशोकवनमें प्रवेश करनेसे पहले विभीषणकी अनुमति ले लेना।'

हनुमान्से शुभसंवाद सुन कर सीता इतनी गद्गद हो गई कि कुछ समय उनके मुंहसे एक बात भी न निकल सकी। उनके दोनों नेत्रोंमें आंसू भर आये। उस समय हनुमान्ने कहा, कि क्या आपको कुछ कहना भी है? तब जनकसुता बोली, 'तुमने जो यह शुभ संवाद सुनाया, संसारमें ऐसा कोई धनरत्न ही नहीं जिसे तुम्हें पुरस्कारमें दे कर आनंद लाभ करूंगी।' जिन सब राक्षसियोंने सीताको तरह तरहकी यन्त्रणा दी थी, हनुमान् उन्हें मार डालनेके लिये तैयार हुए, लेकिन सीताने रोक दिया और कहा, "इन लोगोंने मालिकके आज्ञा करनेसे हमें जो कष्ट दिया है, इसके लिये ये कसूरवार नहीं हैं।" जाते समय सीताने हनुमान्से कहला भेजा, कि वे स्वामीके पूर्णचन्द्रानन देखनेकी अभिलाषिणी हैं। रामके पास पहुंच कर हनुमान्ने कहा 'सीतादेवी विजयवार्त्ता सुन कर बहुत प्रसन्न हुई और आपको देखना चाहती हैं।" यह सुन कर रामचंद्रके नेत्रसे एक बूंद आंसू टपक पड़ा। वे नीचे दृष्टि किये पड़े रहे। अनन्तर उन्होंने एक गहरी सांस भर कर विभीषणसे कहा, 'सीताको अच्छे अच्छे वस्त्र आदि पहना कर मेरे पास लानेकी अनुमति दीजिये। मैं उन्हें देखनेकी इच्छा करता हूं।'

विभीषण स्वयं सीताके पास गये और रामका अभिप्राय उन्हें कह सुनाया। अश्रुपूर्ण नेत्रोंसे सीता बोली, "मैं अभी जिस अवस्थामें हूं उसी अवस्थामें स्वामीसे

मिलूंगी।" लेकिन विभीषणने कहा, 'रामचन्द्रजीने जैसी अनुमति दी है, उसीके अनुसार कार्य करना आपको उचित है।'

अनन्तर बहुत दिनोंके बाद बालोंको सम्हाल कर, दिव्य अम्बर पहन कर सुन्दर भूषणादिसे भूषित हो अलोक सामान्या श्रीशालिनी सीतादेवी पालकी पर चढ़ कर स्वामीसे मिलने आई। सीताको देखनेके लिये सैकड़ों वानर और राक्षसोंकी भीड़ लग गई। विभीषण उन्हें बेंतसे मार कर अलग करने लगे। परन्तु रामचन्द्रने क्रुद्ध हो कर विभीषणसे कहा, "विपत्‌ कालमें, युद्धमें तथा स्वयम्वरके स्थानमें पुराङ्गनाका दर्शन दूषणीय नहीं है। सीता जैसी विपदापन्ना संसारमें और कौन ? उन्हें देखनेमें कोई रोक टोक नहीं। सीताको पालकी परसे उतर पैदल मेरे पास आने कहिये।" उस विशाल सैन्यमण्डलीके मध्य होती हुई सीता देवी कम्पित कलेवरसे रामचन्द्रके सामने उपस्थित हुईं।

सीताको देख कर रामचन्द्रने कहा, "आज मेरा श्रम सफल हुआ। जो व्यक्ति अपमानित हो कर प्रतिशोध नहीं लेता उसे धिक्कार है वह पौरुषशून्य है। आज हनुमान्‌का समुद्रलङ्घन, सुग्रीव, विभीषण और सैन्यवृन्दका परिश्रम सार्थक हुआ।" यह सुन कर सीतादेवीके नेत्रोंमें आंसू भर आये। कपोल लाल हो गया, हृदय कांपने लगा। किंतु लोकनिंदाका भय रामचंद्रके हृदयमें आघात पहुंचाने लगा। वे बड़े कष्टसे हृदयका आवेग रोक कर बोले, "मैं मानसम्भ्रमका आकांक्षी हूं। रावणने मेरा अपमान किया। इसीसे मैंने उसका बदला चुकाया। पवित्र इक्ष्वाकुवंशके गौरवकी रक्षाके लिये मैंने युद्धमें राक्षसको मारा है। किंतु तुम राक्षसके घर थी, इसलिये तुम्हारे चरित्र पर मुझे सन्देह होता है। तुम मेरी आंखोंकी प्रीतिकर सामग्री हो। किंतु नेत्र रोगी जिस प्रकार दीपकी ज्योति सह नहीं सकता, तुम्हें देख कर मैं भी उसी प्रकार कष्ट पाता हूं। ऐसा कौन पौरुषहीन व्यक्ति है जो शत्रुके घर लाई गई स्त्रीको फिर पा कर सुखी होवे। रावणने तुम्हें अपने अंगमें लिपटा लिया था, अपनी दोनों आंखोंसे देखा था। तुम्हें यदि घर ले जाऊं तो मेरे पवित्र घरमें कलङ्कका धब्बा लगेगा। मैंने जो मित्रोंके बाहुबलसे इस युद्धमें विजय प्राप्त की, वह तुम्हारे लिये नहीं, अपने वंशकी गौरव रक्षाके लिये। तुम अब जहां चाहो जा सकती हो। अथवा लक्ष्मन, भरत, सुग्रीव या विभीषण इनमेंसे जो पसन्द हो उसीको आत्मसमर्पण कर सकती हो।"

रामके ऐसे वचन सुन कर सीताको बहुत दुःख हुआ। लज्जामें उन्होंने शिर झुका लिया। इतनी लज्जा हुई कि वे मानो अपने ही शरीरमें घुसनेकी कोशिश करने लगीं। किंतु वे क्षत्रिय रमणी थीं, अप्रितम तेजस्विनी थीं। आंसुओंको एक हाथसे पोंछती हुई वह गद्‌गद्‌ कण्ठसे बोली, "आप मुझे ऐसी अतिकठोर बातें क्यों कहते हैं ? ऐसी कठोरोक्ति तो नीच घरकी स्त्रियोंके प्रति कही जा सकती है। दैववशतः मुझे गात्रसंस्पर्श दोष हुआ है, पर इसके लिये मैं अपराधिनी नहीं हूं। मेरे हृदयमें सर्वदा आप विराजित हैं। यदि आपने यह निश्चय कर लिया था कि मुझे ग्रहण न करेंगे, तब पहले जो आपने हनुमान्‌को लंका भेजा उस समय यह बात क्यों नहीं कहला भेजी थी ? उस समय यदि भेज दी होती तो उसी समय आपसे परित्यक्त इस जीवनका मैं परित्याग कर देती। तब फिर आपको और आपके मित्रोंको इतना कष्ट उठाना न पड़ता।"

इतना कह कर सजलनयना शोकविह्वला सीतादेवी लक्ष्मणकी ओर दृष्टि उठा कर बोली, "लक्ष्मण! चिता अभी सजा दो, देर न करो। मैं अब क्षण भर भी इस अपवाद-कलङ्कित जीवनको वहन न कर सकती।" लक्ष्मणने रामकी ओर देखा, पर असम्मतिके कोई लक्षण न पाया। चिता बनाई गई। सीता रामचन्द्रकी प्रदक्षिण कर जलती हुई आगमें कूद पड़ी। अग्निप्रवेशके समय सीताने कहा था, "मैंने रामके सिवा और किसी हृदयको अपने हृदयमें स्थान नहीं दिया। हे पवित्र सर्वसाक्षी हुताशन! मुझे आश्रय दो। मैं शुद्ध चरित्रकी हूं, लेकिन रामचन्द्र मुझे भ्रष्टा बतलाते हैं। अतएव हे वह्नि! मुझे स्थान दो।"

अग्निमें स्वर्णप्रतिमा विलीन हो गई। रामचन्द्रकी
स समय भारी दुःख हुआ। उसी समय अग्निने सीता
फिर रामके पास पहुंचा दिया। देवगण स्वर्गसे बोले
रे। उन्होंने सीताका निष्कलङ्क बतलाते हुए रामसे
प ग्रहण करने कहा। पीछे वे रामचन्द्रको 'चक्रधारी नारा
ण' रूपमें स्तुति कर स्वर्ग चले गये। रामचन्द्र भी
ताको पुनः प्राप्त कर बड़े प्रसन्न हुए और बोले,
सीता शुद्धचरित्रा हैं। उन्होंने सतीत्वको प्रभावसे
पनी रक्षा की है। अग्नि-परीक्षा ही इसका साक्षात्
माण है।"

इसके बाद लक्ष्मण और सीताके साथ पुष्पकविमान
र चढ़ कर रामचन्द्रने अयोध्याकी यात्रा कर दी। उन
साथ विभीषणप्रमुख राक्षसवृन्द और सुग्रीवप्रमुख
वानरवृन्द भी जाते थे। राहमें सीताके अनुरोधसे
किष्किन्धाकी पुरस्त्रियोंको भी रथ पर बिठा लिया गया।
भी रामचन्द्रको ले कर पुष्पकरथ भारद्वाजाश्रम
या। रामचन्द्र सीताको रथ परसे चिरपरिचित
ण्डकारण्यका भिन्न भिन्न स्थान दिखाते और पहलेकी
बातें दिखाते जाते थे।

वन-गमनके ठीक चौदह वर्ष बाद रामचन्द्र भरद्वाजके
श्रममें पहुंचे। यहां उन्होंने सुना कि भरत उनक
पादुका के ऊपर राजछत्र लगा कर प्रतिनिधि स्वरूप
न्दीग्राममें राज्यशासन करते हैं। भरद्वाजके आश्रमसे
रामचन्द्रने हनुमान्‌को छद्मवेशमें भरतके निकट भेजा।
राहमें शृङ्गवेरपुरके अधिपति गुहसे मिले। रामचन्द्रने अपने
आगमन संवाद ले कर भरतके पास जाने कहा। हनु
मान्‌से रामने कहा था, "जब भरतके पास पहुंचोगे, तब
उन्हें हम दोनोंका कुशलवृत्तान्त, सीता उद्धार तथा विभी
षण और सुग्रीवके विराट सैन्यके साथ अयोध्या
आना आदि वृत्तान्त कह सुनाना। सुनानेके बाद उनका
मुखमण्डल गौर कर देखना, कि वे हम लोगोंके आग
मनसे दुःखित तो नहीं हुए हैं। यदि उनमें किसी भी
तरह अप्रीतिव्यञ्जक भाव दिखाई दे, तो तुरत मुझसे आ
कर कहना। मैं तब अयोध्या न आ कर भरतको ही
राज्यप्रदान करूंगा।

हनुमान् यहांसे चल कर नन्दीग्राम आये जो अयोध्या
से कोस भर दूर पड़ता था। यहां आ कर देखा, कि
भरत दीन, कृश और आश्रमवासी हैं। उनका शरीर
असंस्कृत और मलिन है। भ्रातृदुःखसे वे बड़े विषण्ण
हैं। उनके शिर पर बड़ी बड़ी जटा है और पहननेमें वल्कल
और मृगचर्म है। वे सर्वदा आत्मविषयक ध्यानमग्न
तथा ब्रह्मर्षिकी तरह तेजयुक्त हैं। पादुकाको प्रणाम कर
वसुन्धराका शासन करते हैं। हनुमान्‌ने उनके पास आ
कर कहा, "दण्डकारण्यवासी चीरजटाधर! आप जिस
भाईके लिये चिन्ता कर रहे हैं वे कुशलसे आ रहे हैं और
आपका कुशल चाहते हैं।" रामका आगमन-संवाद
सुनते ही भरतके नेत्रोंसे अश्रुधारा बह चली। भोग
विलासका परित्याग कर उन्होंने जिनके लिये इतने दिन
कठोर परिव्राज्यका पालन किया है जिन रामके वियोग
विरहसे उनका हृदय विदीर्ण हो गया है, इस चतुर्दश
वर्षव्यापी कठोर व्रतपालनके फलस्वरूप वे रामचन्द्र
आज लौट रहे हैं, यह संवाद सुन कर उन्होंने हनुमान्‌को
गले लगाया और अश्रुजलसे अभिषिक्त किया। पीछे
बहुमूल्य वस्तु पुरस्कारमें पा कर हनुमान् यहांसे विदा
हुए।

समस्त सचिववृन्दसे परिवृत हो भरत रामचन्द्रसे
मिलने चले। उनकी जटा पर रामचन्द्रकी पादुका और
पादुकाके ऊपर छत्रवर विशाल,पीतवर्ण शोभा देता था।
भरत बड़ी धूमधामसे रामको अयोध्या लौटा लाये।
यहां अपने हाथसे उन्हें पादुका पहना कर कुल राज्यभार
सौंप कर कृतार्थ हुए।

रामचन्द्रका शुभ दिनमें राज्याभिषेक हुआ। सुग्रीव
को वैदूर्य्य और चन्द्रकान्त मणिखचित महार्घ कवची
उपढौकनमें दी। अङ्गदको मुक्ताहार मिला। सीताने
नाना प्रकारके भूषण और वस्त्रादि पाये। उन्होंने अपने
गलेसे महामूल्य कण्ठहार निकाल कर रामचन्द्रकी ओर
एक बार दृष्टिपात किया। रामचन्द्रने कहा, "तुम
जिसको चाहो यह उपहार दे सकती हो।" सीताने वह
हार हनुमानको दिया।

रामचरित्रका उपसंहार भाग या उत्तरकाण्डका
अन्तिम दृश्य हृदयविदारक है। रामचन्द्रको जब मालूम
हुआ कि पुरवासी सीताकी बड़ी निन्दा करते हैं, तब

उन्होंने सीतापरित्यागका सकल्प किया। वे अपने भाइयोंके पास गये और सीताके चरित्रके वारेमें वात चीत करने लगे। आखिर उन्होंने सीताको वाल्मीकिके आश्रममें छोड आनेका हुकुम दिया। लक्ष्मण सीताको वनवास देनेके लिये चले। वे वृक्षमालासे शोभित सुन्दर गङ्गाके टापूमें आ कर लक्ष्मण वच्चोंकी तरह रोने लगे। लक्ष्मणका रोना सुन कर सीता विस्मित हो गईं। इस सुन्दर गङ्गाके किनारे आ कर लक्ष्मणको किस वातका दुःख हुआ। सीता समझ न सकी। उन्होंने दुःखित हृदयसे लक्ष्मणसे कहा, "तुम्हें दो रातसे रामचन्द्रके मुखारविन्दका दर्शन नहीं हुआ, क्या इसी लिये तो नहीं रोते हो?" यह सुन कर लक्ष्मण उनके चरणों पर गिर पडे और वोले 'आज यदि मेरी मृत्यु हो जाती, तो अच्छा होता।' सीताके इसका कारण वार वार पूछने पर लक्ष्मणने रामचन्द्रका कठोर आदेश कह सुनाया। सीतादेवी ठक सी रह गईं।

गङ्गाके किनारे खडी रह कर पाषाणप्रतिमाकी तरह सीताने दुःसह संवाद सह लिया। कुछ समय वाद उन्होंने लक्ष्मणसे कहा, 'लक्ष्मण! रामचन्द्रके साथ जो वनवास आनन्दपूर्वक सहन किया था, आज विना रामके उसे किस प्रकार सहन कर सकूंगी?' उनके कपोल हो कर अजस्र अश्रुधारा वहने लगी। वे आंसूको विना पोछे वोलीं, 'ऋषिगण जव मुझे पूछेंगे, कि क्यों वनवास हुआ तव मैं क्या उत्तर दूंगी।' मुझे निर्दोष जानते हुए भी इस विपद्-समुद्रमें धकेल दिया। आज यह गङ्गागर्भ ही मेरी शान्तिका एकमात्र स्थान रहेगा। किन्तु आज मैं गर्भवती हूं। मेरी इस हालतमें आत्महत्या करना उचित नहीं।

गङ्गाके किनारे खडी रह कर वह मौन हो आंसू पोंछने लगीं और अंतमें वोलीं, 'पति ही नारियोंके देवता, वन्धु और गुरु हैं। उनका कार्य मेरे प्राणसे भी वढ़ कर प्रिय है।' इसके वाद उन्होंने लक्ष्मणको वुला कर अश्रुरुद्ध गद्गद स्वरसे कहा, "लक्ष्मण! इस दुःखिनीको छोड जाओ, राजाका आदेश पालन करो।"

सीताको तपोवनमें छोड कर लक्ष्मणके चले आने पर महर्षि वाल्मीकि उन्हें अपने आश्रममें ले गये। यहां वे ब्रह्मचारिणी हो कर पर्णशालामें रहने लगीं। जिस रातको शत्रुघ्नने वाल्मीकिके आश्रममें आ कर सीतादेवीके चरण दर्शन किये, उसी रातको सीताने यमज पुत्र प्रसव किया था, मुनिवालकोंने आधी रातको शुभ प्रसव संवाद वाल्मीकिसे जा कहा। मुनिवरने वहां जा कर दोनों कुमारको देखा। उन्होंने 'कुशच्छेदन द्वारा' उनका भूतनाशिनी रक्षाविधान किया था, इस कारण वडेका नाम कुश और छोटेका नाम लव रखा। शत्रुघ्न यह शुभ समाचार सुन कर फूले न समाये थे।

इसी समय अयोध्या नगरमें एक ब्राह्मण कुमारकी अकाल मृत्यु हुई। वेचारा ब्राह्मण पुत्रशोकसे अधीर हो उस मृतपुत्रको छातीसे लगाये श्रीरामचन्द्रके पास आये और कहने लगे कि रामराज्यमें पाप घुस गया, नहीं तो कभी भी ऐसी घटना न होती। रघुनन्दन राम ब्राह्मणकी शोकगाथा सुन कर वडे दुःखित हुए और वशिष्ठादि ऋषि, भ्रातृगण, नैगमगण तथा मन्त्रिगणको ले कर इस विषयका विचार करने वैठे। नारदने कहा, कि इस त्रेतायुगमें कोई मूर्ख शूद्र आपके राज्यमें तपस्या करता है, इसी कारण इस वालककी अकाल मृत्यु हुई है। अतएव आप इसका पता लगावें और उसे उपयुक्त दण्ड दें।

रामने अपने भाई लक्ष्मण और भरतके हाथ राज्यशासनका भार सौंप दिया और आप पुष्पकविमान पर चढ इसका पता लगाने चले। विन्ध्यपर्वतके दक्षिण एक सरोवरके किनारे पहुंच कर देखा कि शम्बूक नामक एक शूद्र उग्र तपस्या कर रहा है। रामने उसके मुंहसे आत्मपरिचय पा कर अपना खड्ग निकाला और शूद्र तपस्वीका शिर धडसे अलग कर दिया। अनन्तर राजधानी लौट कर उन्होंने राजसूय यज्ञ करनेके लक्ष्मण और भरतके साथ परामर्श किया। अश्वमेध यज्ञ आरम्भ हुआ। रामने लक्ष्मणके ऊपर यज्ञीय अश्वका रक्षा-भार अर्पण किया। भगवान् वाल्मीकि शिष्योंके साथ यज्ञ देखने आये। लवकुश भी उनके साथ थे। उन्होंने यज्ञस्थलमें रामायणका गान किया। रामचन्द्रजी गान सुन कर वडे प्रसन्न हुए और उन्हें सुवर्णादि पारितोषिक देना चाहा। वालकोंने अपनेको ब्रह्मचारी वतला कर

यह उपहार ग्रहण नहीं किया। इसके बाद जब रामचन्द्रको मालूम हुआ, कि ये दोनों कुमार सीताके गर्भजात सन्तान हैं तब उन्होंने सभाके मध्य दूतोंको बुला कर कहा, 'महर्षि वाल्मीकिके पास जाओ और उनसे कहो, कि यदि सीता शुद्धचरित्रा हो, किसी प्रकारके पापने उनके हृदयमें आश्रय न लिया हो, तो उनका स्वागत है। इस विषयमें महर्षिसे भी पूछना कि उनकी क्या सम्मति है। साथ साथ सीताका भी मनोगत अभिप्राय जान लेना।" राजाका आदेश पाते ही दूत वहांसे चला और महामुनिके पास पहुंच कर उन्हें राजाका आदेश कह सुनाया। महर्षि वाल्मीकिने उत्तर दिया, 'महाराजसे कहना कि सीता भरी सभामें शपथ करेगी', रामचन्द्रने भी सभामें जितने महर्षि और राजे महाराजे थे सबोंको यह बात सुन कर कल दिनके लिये विदा किया।

दूसरे दिन सवेरे रामचन्द्र मुनियों, अन्यान्य राजे और सभासदोंके साथ यज्ञस्थलमें उपस्थित हुए। इसी समय सीतादेवी वाल्मीकिकी अनुवर्तिनी हो कर सभास्थलमें आई। महर्षिके सीताचरित्रका साधुवाद कीर्तन करने पर महाराज रामचन्द्रने परीक्षाके लिये सीताको बुलाया। क्लिष्ट कंपितवसना करुणामयी दुःखिनी सीताने हाथ जोड़ कर कहा, "मां वसुन्धरे! यदि मैं कायमनोवाक्यसे पतिकी भावना करती रही हूं, तो मुझे अपने गर्भमें स्थान दो।" सीताके पातालप्रवेशके बाद एक दिन महाकालके साथ रामका कथोपकथन हुआ। इसी समय दुर्वासा ऋषि वहां आये और रामचन्द्रसे मिलनेके लिये मन्त्रणागृहमें प्रवेश करने लगे। द्वार पर लक्ष्मण पहरा दे रहे थे। उन्होंने मुनिवरको भीतर प्रवेश करनेसे मना किया। इस पर मुनिवर बड़े बिगड़े और उन्हें शाप देनेके लिये तैयार हो गये। अनन्तर मन्त्रणागृहमें प्रवेश कर लक्ष्मणने ऋषिवरके आनेकी खबर रामचन्द्रसे सुनाई। रामने इसलिये पूर्वप्रतिश्रुतिके अनुसार लक्ष्मणका परित्याग किया। तदनुसार लक्ष्मणके सरयूजलमें आत्मविसर्जन करने पर राम बड़े दुःखित हुए। अनंतर प्रजाके वचनसे उन्होंने भी सरयूजलमें कूद कर महाप्रस्थान किया।

महामुनि वाल्मीकिने [illegible] नामक रामायण महाकाव्यमें रामचरित जैसा वर्णन किया, वही ऊपरमें लिखा गया। उत्तरकाण्डोक्त रामचन्द्रकी जीवनीका उपसंहार-भाग पौराणिक अतिरञ्जनसे विजड़ित है। रामजीवनकी ऐतिहासिकता युद्धकाण्डमें ही समाप्त हुई है। वे उदार, स्वार्थत्यागी, पितृभक्त, साहसी और अद्वितीय वीर थे। भारतवासी इन्हें पूर्ण ब्रह्मनारायणका अवतार समझते हैं। रामायणके उत्तरकाण्डमें और उसके संवाजित ग्रन्थमें, पद्मपुराणके पातालखण्डमें, ब्रह्मपुराणमें, देवीभागवत श्रीमद्भागवत और महाभागवतमें तथा दूसरे दूसरे पुराणोंमें भी रामचन्द्रकी अवतारकथा लिखी है। विस्तार हो जानेके भयसे यहां कुछ नहीं लिखा गया। सीता, रामायण, दुर्गा, वाल्मीकि आदि शब्द देखो।

जैनोंके निकट रामचन्द्र पद्म नामसे परिचित हैं। ये जैन तीर्थङ्कर पद्मप्रभसे अवश्य भिन्न हैं। ६७८ ई०में रविषेण-रचित पद्मपुराणमें दूसरे प्रकारसे रामचरितका वर्णन किया है। जैन लोग रामचन्द्रको किस दृष्टिसे देखते हैं यह उक्त पद्मपुराणसे अच्छी तरह जाना जाता है। जैनोंके पद्म दशरथके पुत्र, लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्नके भाई, सीताके स्वामी और रावणके निहन्ता कहे जाने पर भी जैन रामका कीर्तिकलाप वाल्मीकि अथवा हिन्दू पौराणिक-वर्णित रामचन्द्रके साथ नहीं मिलता। पुराण और जैन पद्मपुराण देखो।

बौद्धपुराणमें तो रामचरित कुछ और प्रकारसे लिखा है। उसमें सीताको रामकी बहन और स्त्री दोनों ही बतलाया है। दशरथ और सीता देखो।

रामचन्द्र—देवगिरिके एक राजा तथा महादेवके भतीजा। हेमाद्रि इनके प्रधान मन्त्री थे। इन्होंने १२७१ से ले कर १३०१ ई० तक राज्य किया था। यादवराजवंश देखो।

रामचन्द्र—१ गड़ाराज्याधिपति। २ रायपुरके कलचुरी वंशीय एक राजा। ये सिंहदेवके पुत्र और महाराजाधिराज हरिब्रह्मदेवके पिता थे। खल्वाटिका (खटोरी) नगरमें इनकी राजधानी थी।

रामचन्द्र—कई एक ग्रन्थकारोंके नाम। १ पद्यामृततरङ्गिणीधृत एक कवि। ये अयोध्याके रामचन्द्र नामसे परिचित थे। २ एक आलङ्कारिक। वामनकृत काव्यालङ्कारकी टीकामें महेश्वरने इनका नामोल्लेख किया है।

अथविरेचनके रचयिता। ४ अज्जुनार्चनकल्पलता, र्जुनार्चापारिजात, तन्त्रचूडामणि, तन्त्रामृत, पुरश्च दीपिका और सुभगार्चारत्न आदि पुस्तकोंके प्रणेता। मितभाषिणी नामकी अविरोधप्रकाशटीकाके रचयिता। आनन्दलहरीकी टीकाके प्रणेता। ७ आर्याविज्ञप्ति मक काव्यके रचयिता। ८ ईशावास्योपनिषद्रहस्य-वृत्तिके रचयिता। ९ कार्त्तवीर्यदीपदानविधिके ता। १० काव्यप्रकाशसारके रचयिता। ११ कुण्डो-के प्रणेता। १२ कृष्णविजय नामक अलङ्कारग्रन्थके ता। १३ ग्रहणप्रकाशिका नामक ज्योतिग्रंन्थके रच-ता। १४ चक्रदत्त नामक ग्रन्थ रसप्रदीप, रसेन्द्रचिता-णि आदि ग्रंथके प्रणेता। ये गुहवंशीय थे। १५ न्दोनामविचारणाके प्रणेता तथा लक्ष्मीपतिके शिष्य। तिथिचूडामणिकामधेनु नामक ज्योतिग्रंन्थके रच ता। १७ धर्माध्वबोधके प्रणेता। १८ निर्भयभीम मक व्यायोगके प्रणेता तथा हेमचन्द्रके शिष्य। १९ पुरुषप्रार्थनामञ्जरीके रचयिता। ये आनंदतीर्थके ष्य थे। २० प्रणयामृतपञ्चाशकके प्रणेता। २१ प्रति-सारके रचयिता। २२ ध्यानानन्द नामक भट्टि-व्यके टीकाकर्त्ता। २३ भर्तृहरिशतकटीकाके रचयिता। भोजचम्पूव्याख्याके प्रणेता। २५ मन्त्रमुक्तावलीके यिता। २६ मार्त्तण्डशतकके प्रणेता। २७ रघुवि प नामक नाटककार। ये जैनधर्मावलम्बी थे। २८ मचंद्र चतुःसूत्रीके रचयिता। २९ रामार्याके प्रणेता। रुक्मिणीपरिणय नाटक और सरसकविकुलानंद मक भाणके रचयिता। ३१ वसन्तिका नामकी टिकाके प्रणेता। ३२ पाणिनिके अष्टाध्यायीके वृत्तिसंग्रह मक टीकाके प्रणेता तथा नागोजीके शिष्य। ३३ वेङ्कटे-रचतुर्भद्रिकाके रचयिता। ३४ वैद्यचिन्तामणिके णेता। ३५ शब्दार्णव नामक व्याकरणके रचयिता। शारीरकभाष्यकी टीकाके प्रणेता। ३७ शृङ्गारतिलक मक भाणके टीकाकार। ३८ सांख्यसूत्रवृत्तिके चयिता। ३९ सिंहासनद्वात्रिंशत्के प्रणेता। ४० वाग्-पण काव्य और उसकी टीका तथा हनुमदष्टकके रचा-ता। ४१ तिथिनिर्णयसंग्रह या अनन्तभट्टदीपिका मक अनंतोपाध्यायकृत तिथिनिर्णयका एक संक्षिप्त विवरण, प्रक्रियाकौमुदी और वैष्णवसिद्धांतदीपिका आदि ग्रंथोंके प्रणयनकर्त्ता। ये गोपाल आचार्यके छात्र थे। इनके पिताका नाम था कृष्ण और पितामहका नृहरि। ४२ राधाविनोदकाव्य और उसकी टीकाके रचयिता एक कवि। ये जनार्दनके पुत्र और पुरुषोत्तमके पौत्र थे। ४३ स्मृतिसारसंग्रहरत्नव्याख्याके प्रणेता तथा नारायणके पौत्र। ४४ प्रत्याहारमण्डन नामक व्याकरणके प्रणेता तथा मुरारी पाठकके पुत्र। ४५ संख्यामुख्याधिकरणा-क्षेपके प्रणेता। ग्रंथकारने अपनी अधिकरणमालाके अंशस्वरूपमें यह पुस्तक लिखी। बम्बई प्रेसिडेन्सीके कोल्हापुरमें ये रहते थे। इनके पिताका नाम था वेङ्कट। ४६ एक प्रसिद्ध टीकाकार तथा सिद्धेश्वर योगिवरके पुत्र। इन्होंने १८६७ ई०में प्रतिज्ञासूत्र टीका तथा १८६८ ई०में वाजसनेयिप्रातिशाख्यकी ज्योत्स्ना नामकी टीका लिखी। इनकी उपाधि पण्डित थी। ४७ खेट-भूषण, पाटीलीलावतीभूषण, यंत्राध्यायविवृति और स्त्री-जातक नामक चार ज्योतिर्ग्रंथके प्रणेता। ये हंसराजके पुत्र थे।

रामचन्द्र—श्रीधर्ममंगलके प्रणेता एक बंगाली कवि।

रामचन्द्र आचार्य—१ एक संन्यासी। संसाराश्रम त्याग करनेके बाद ये सत्यप्रियतीर्थ नामसे प्रसिद्ध हुए। १७४५ ई०में इनकी मृत्यु हुई। २ शारीरकभाष्यटीका-के प्रणेता।

रामचन्द्र अलूडीवार - राजनीतिप्रकाश और सावधान साहित्य नामक वेदान्तग्रन्थके प्रणेता।

रामचन्द्र कवि—१ पेन्द्रानन्द नाटक और कलानन्द-नाटकके प्रणेता। १७६५—१७८८ ई०में तंजोरराज तुलाजोके आदेशसे इन्होंने उक्त दो नाटक लिखा।

रामचन्द्र कविभारती—बुद्धशतकके रचयिता सिंहलवासी एक प्रसिद्ध कवि। पराक्रमबाहुके राज्यकालमें ये राढ़-देशसे सिंहल चले गये।

रामचन्द्र कविराज—एक विख्यात वैष्णव पदकर्त्ता। ये परम भागवत श्री चैतन्यसहचर चिरञ्जीव सेनके पुत्र, पदकर्त्ता गोविन्ददास कविराजके जेठे भाई और चिरञ्जीव श्रीखण्डवासी नरहरि सरकारके शिष्य थे। उनका घर कुमारनगरमें था। ये कवि दामोदरकी कन्या

सुलतानसे व्याह कर आत्मसमर्पणकामी हुए थे। पहले उनके दो पुत्र पैतृक वासभूमि कुमारनगर चले गये; किन्तु शाक्तोंके सताने पर वह देश छोड़ कर उन्होंने तेलिया-बुधरिमें आ कर घर बसाया।

रामचन्द्र कविराज नरोत्तम ठाकुरके सुहृद् और स्वयं सुप्रसिद्ध संस्कृतक कवि थे। पदकल्पलतिकामें इनका बनाया बंगला पद मिलता है। इसके अलावा स्मरण दर्पण और चमत्कार नामक इनके दो पद्यग्रन्थ हैं। उन्होंने सुललित संस्कृत कविताओंकी रचना तो की सही, पर भाइके समान प्रतिष्ठित न हो सके। १५३७ ई०में भी बुधरीमें गोविन्दका जन्म हुआ। अतएव इस समय उनकी विद्यमानताकी कल्पना की जा सकती है।

रामचन्द्र क्षितिपति—दुर्गोत्सवचन्द्रिकाके रचयिता।

रामचन्द्र गणेश—गणेशप्रश्नविषयकके रचयिता।

रामचन्द्र चक्रवर्त्ती—१ कलापपरिशिष्टप्रबोधके प्रणेता। २ छन्दश्चन्द्रिकाके प्रणेता। ३ वृन्दावनयमककी टीकाके रचयिता।

रामचन्द्र चट्टोपाध्याय—एक प्रसिद्ध पदकर्त्ता। ये दीपाञ्जितकाव्यके प्रणेता यशोवन्तके पौत्र और चैतन्यदासके पुत्र थे। १६३४ ई०में इन्होंने जन्मग्रहण किया तथा १६८१ ई०के माघ मासकी कृष्णातृतीया तिथिमें मरकर हुए। रामचन्द्र जाह्नवादेवीके शिष्य थे और बुधुरीके निकटस्थ राधानगरमें तथा बाघनापाड़ामें ये रहते थे।

रामचन्द्रतीर्थ—१ ऋग्वेदभाष्यटिप्पणीके रचयिता। २ वासुदेवेन्द्रके शिष्य। इन्होंने कृष्णद्वैपायनदर्पणटीका, महावाक्यरत्नावली और वाक्यसुधाकी टीका लिखी। ३ मध्वसम्प्रदायके एक आचार्य। इनका पूर्वनाम माधव शास्त्री था। वागीशतीर्थके बाद इन्होंने आचार्यका पद ग्रहण किया था। १३१३ ई०में इनको जीवन लीला शेष हुई। सागरप्रथमें इनके शिष्यपरम्पराका विवरण लिखा है।

रामचन्द्रदीक्षित—जैमिनिसूत्रभाष्य नामक ज्योतिःशास्त्रके रचयिता।

रामचन्द्रदास—पद्यप्रमाणपूत कविविशेष।

रामचन्द्र (द्विज)—१ दुर्गामङ्गल, धर्ममङ्गल और गीताविलासके प्रणेता। २ जैमिनिभारतके बंगानुवादक, तीन सौ वर्षके प्राचीन कवि।

रामचन्द्रदीक्षित—१ उणादिमणिदीपिका और शब्दभेदनिरूपण नामक अलङ्कारशास्त्रके रचयिता। २ केरला भरण नामक भाणके प्रणेता।

रामचन्द्रदेव—उड़ीसाके एक हिन्दू नरपति। उत्कल देखो।

रामचन्द्र न्यायवागीश—अभिधावादविचार, आसत्तिरहस्य, योग्यताविचार, विरोधिविचार और शब्दनित्यताविचारके प्रणेता।

रामचन्द्रपन्त—एक महाराष्ट्र सेना-नायक तथा शिवजीके प्रधान मंत्रीके पुत्र। इन्होंने पहले मुख्तियार और पीछे मंत्रीका पद पाया था। दुर्ग पर चढ़ाई करनेमें, सन्धिविग्रहमें और युद्धविग्रहमें इन्होंने अद्भुत कौशल दिखाया था। १६७६ ई०में शिवाजी द्वारा ये मंत्रीपद से च्युत कर दिये गये। तदनन्तर जनार्दन पन्तकी मृत्युके बाद १६१८ ई०में पुनः उक्त पद पर प्रतिष्ठित हुए थे तथा उन्होंने विशालगढ़ आदि दुर्ग दखल कर लिया था।

रामचन्द्र परमहंस—तत्त्वबिन्दु और राजयोगग्रन्थके प्रणेता।

रामचन्द्र पाठक—प्रत्याहारखण्डन नामक व्याकरणके प्रणेता।

रामचन्द्रपुरम्—१ मान्द्राजप्रदेशके गोदावरी जिलान्तर्गत एक उपविभाग। भूपरिमाण ४०० वर्गमील है। यह गोदावरी डेल्टा भूभाग ले कर गठित है। २ उक्त तालुकका प्रधान नगर और विचारसदर। इसके दक्षिण मत्स्यपेटा खाल बहती है।

रामचन्द्र वाचस्पति—१ भट्टिकाव्यकी सुबोधिनी नामकी टीकाके प्रणेता। २ देवीमाहात्म्यकी विद्वन्मनोरमा नामकी टीकाके शेषार्द्ध रचयिता। गौरीश्वर शर्माने उक्त टीकाका पूर्वार्द्ध सम्पादन किया।

रामचन्द्र वाजपेयी—रत्नपुरराज रामचन्द्रकी सभामें स्थित एक पण्डित, सूर्यदासके पुत्र और शिवदासके पौत्र। इन्होंने कर्मदीपिका नामकी पद्धति, शाङ्खायनगृह्यवृत्ति, कात्यायनकृत शुल्वपरिशिष्टकी टीका, शुल्वपाशिक, समरसार तथा उसकी टीका, समरसारसंग्रह,

कुण्डाकृति और उसकी टीकाकी रचना की। १४८६ ई०-में शेषोक्त पुस्तक लिखी गई थी। आधानपद्धति, चयनपद्धति, ज्योतिष्टोमपद्धति, राजपेयपद्धति और सुपर्णचितिपद्धति नामक खण्डग्रंथ कर्मदीपिकाके अन्तर्गत हैं।

रामचन्द्र भट्ट—बहुतेरे संस्कृत-ग्रंथकार। १ आचारार्क, कालनिर्णयदीपिका, कृत्यरत्नावली, प्रायश्चित्तमुक्तावली, और श्राद्धचन्द्रिकाके प्रणेता। ये तत्सत्वंशीय विट्ठलके पुत्र और बालकृष्णके पौत्र थे। २ बम्बई-वासी एक प्रसिद्ध कवि। इन्होंने तैलङ्गराजके काङ्कडवाड गांवमें १४८७ ई०में जन्म लिया था। ये लक्ष्मण भट्टके पुत्र और वल्लभाचार्यके छोटे भाई थे। इन्होंने गोपाललीलाकाव्य, रामलीलाशतक, कृष्णकुतूहलकाव्य (१५२० ई०-में) तथा रसिकरञ्जनकाव्य और उसकी टीका (१५२४ ई०में) अयोध्या नगरमें लिखी। ३ रामविनोदवारण या पञ्चाङ्गसाधनोदाहरणके प्रणेता। ये नीलकण्ठके छोटे भाई और अनन्त भट्टके पुत्र थे। १६१४ ई०में इन्होंने सुलतान अकबरके मन्त्री रामदासके आदेशसे उक्त ग्रन्थ लिखा। ४ स्मृतिसंस्काररहस्यके प्रणेता। ५ विधिवाद नामक मीमांसाशास्त्रके रचयिता। ६ वात्स्यायनकृत न्यायसूत्रभाष्यकी टीकाके रचयिता। ७ तत्त्वाभरण नामक वेदान्त ग्रंथके प्रणेता। ८ निम्बार्क सम्प्रदायके एक आचार्य। उपेन्द्रभट्टके बाद तथा वामन भट्टके पहले ये आचार्य पद पर अधिष्ठित हुए।

रामचन्द्र भट्टाचार्य—१ दशश्लोकीटीकाके रचयिता। २ समासवादके प्रणेता।

रामचन्द्रभट्टाचार्य सार्व्वभौम—प्रमाणतत्त्व, मोक्षवाद और विधिवादके रचयिता।

रामचन्द्रभार्गव—वाग्भारणकाव्य और उसकी टीका, सभ्याभरणकाव्य तथा म-खमाला नामकी सभ्याभरणपञ्जिकाकी टीकाके प्रणेता।

रामचन्द्र मिश्र—विदग्धबोधव्याकरणके प्रणेता।

रामचन्द्र मुन्सी—हुगली शहरके निकटस्थ देवानन्दपुर-निवासी विख्यात मुंसीवंशके एक धनाढ्य कायस्थ। अनुमान होता है, कि १७२६ ई०में कवि भारतचन्द्र राय छोड़ कर उनके शरणापन्न हुए थे। उन्होंने विशेष यत्नके साथ भारतचन्द्रको पारसी भाषाकी शिक्षा दी थी। उन्हींके घरमें सत्यनारायण पूजा-उपलक्षमें पंद्रह वर्षके बालक कवि भारतचन्द्रने 'सत्यपीरकी कथा' रचना कर पाठ किया था।

रामचन्द्रयज्वन—शास्त्रसिद्धांतलेशगूढार्थ-प्रकाश और समयप्रकाशिका नामक ग्रंथके प्रणेता।

रामचन्द्रयतीश्वर—बौद्धमतदूषण-ग्रंथके प्रणेता।

रामचन्द्र राय—चन्द्रद्वीपके एक राजा। ये बङ्गेश्वर प्रतापादित्यके जामाता थे। प्रतापादित्य और बारभूंया देखो।

रामचन्द्रशर्मन्—तत्त्वचितामणिदीधितिके टीकाकार।

रामचन्द्रशेष—भावद्योतनिका नामकी नैषधीय टीकाके रचयिता शेषनारायणके शिष्य।

रामचन्द्र सरस्वती—१ अष्टोत्तरशतमहाकर्णि और गीतातात्पर्यपरिशुद्धिके प्रणेता। २ कुरुक्षेत्रतीर्थनिर्णयके रचयिता। ३ पदयोजन नामक वेदान्तशास्त्रके प्रणेता। ४ शङ्कराचार्यकृत बालबोधिनीकी भावप्रकाशिका नामकी टीकाके प्रणेता। ये नारायण पण्डितके छात्र तथा रघुनाथके शिष्य थे। ५ गंगाधरकृत स्वाराज्यसिद्धिकी टीकाके प्रणेता और कैवल्यकल्पद्रुम (१८२३ ई०में) के प्रणेता गंगाधर सरस्वतीके गुरु।

रामचन्द्र सरस्वती—आसामदेशीय एक कवि। इन्होंने आसामी भाषामें महाभारत बनाया था।

रामचन्द्र सरस्वती यतीन्द्र—एक संन्यासी। इनका आदि नाम सत्यानंद था। ये महाभाष्य-विवरणके प्रणेता ईश्वरानंदके गुरु थे।

रामचन्द्र सिद्ध—सिद्धखण्ड नामक योगशास्त्रके प्रणेता।

रामचन्द्र सूरि—वीरविक्रमादित्यचरितके प्रणेता।

रामचन्द्र सोमयाजी—समरसार और स्वरशास्त्रसारके रचयिता।

रामचन्द्राश्रम (सं० पु०) १ सिद्धान्तचन्द्रिका नामक सरस्वतीसूत्रकी टीकाके रचयिता। (क्ली०) २ एक तीर्थका नाम।

रामचन्द्रेन्द्र सरस्वती—एक प्रसिद्ध पण्डित। ये गंगाधरेन्द्र सरस्वती और आनन्दबोधेन्द्र सरस्वतीके गुरु थे।

रामचर (सं० पु०) बलराम।

रामचरण—कर एक ग्रन्थकार। १ लघुसिद्धान्तमञ्जरी नामक व्याकरणके प्रणेता। २ कुवलयानन्दकारिकाटीकाके रचयिता। ३ तर्कपञ्चत्रिका और पदमञ्जुषाके प्रणेता। ४ वृत्तकौमुदीके रचयिता। ५ सारस मन्त्रके प्रणेता।

रामचरण—एक कवि। ये गणेशपुर जिला बाराबङ्कीके रहनेवाले ब्राह्मण थे। संस्कृत और भाषाके ये निपुण कवि थे। संस्कृतमें इनका बनाया "कायस्थकुलभास्कर" नामक ग्रन्थ है, भाषामें भी 'कायस्थधर्मदर्पण' नामक ग्रन्थ इन्होंने लिखा है। इनकी रचना शैली और विषय प्रतिपादनके ढंग मनोरम होते थे। आपकी कवितामें अनुप्रास खूब पाये जाते हैं।

रामचरण तर्कवागीश—रामविलासकाव्य तथा साहित्यदर्पणवृत्तिके रचयिता। १७०१ ई०में इन्होंने शेषोक्त ग्रन्थ बनाया।

रामचरण महन्त—रामसनेही धर्मसम्प्रदायके प्रतिष्ठाता एक वैष्णव। ये वैरागी-सम्प्रदायभुक्त थे। १७१८ ई०में जयपुरराज्यके अन्तर्गत एक बड़े गाँवमें इनका जन्म हुआ। कब और क्यों इन्होंने पिताका आचरित धर्मकर्म छोड़ा, इसका कोई विवरण नहीं मिलता।

एक समय इन्होंने पौराणिक उपासनाको निन्दनीय कह कर घोषित किया। इस पर देवमूर्तिपूजक ब्राह्मण-सम्प्रदाय बड़े बिगड़े और इन पर तरह तरहका अत्याचार करने लगे। इस प्रकार मूर्तिपूजकोंसे तंग आ कर ये आखिर १७५० ई०में अपनी जन्मभूमिका परित्याग कर उदयपुर-राज्यके भीलवाड़ा नगरमें चले आये और दो वर्ष वहां ठहरे। इसके बाद देवपूजक पुरोहित सम्प्रदायने इन्हें तंग करनेके लिये राणा भीमसिंहको उभाड़ा।

राणाके राज्यमें रहना असम्भव देख कर ये बहुत जल्द यहांसे भागे। नाना स्थानोंमें भटक कर आखिर १७५७ ई०में इन्होंने शाहपुराके सरदारके राजप्रासादमें आश्रय लिया। किन्तु यहां भी ये कई कारणोंसे दो वर्षसे ज्यादा न ठहर सके। यथार्थमें उसी समयसे इनके धर्ममतप्रचारकार्यका आरम्भ हुआ। १७९८ ई०को ७९ वर्षकी अवस्थामें ये इस लोकसे चल बसे। इनकी लाश जलाई गई और राख शाहपुराके प्रसिद्ध मन्दिरमें रखी गई है।

रामचरण एक भक्त गायक थे। इनके बनाये हुए प्रायः ३६२५० भजन आज भी मिलते हैं। प्रत्येक भजन ५से ११ पंक्तिका है। इनके तिरोधानके बाद इनके बारह शिष्योंमेंसे प्रधान शिष्य रामजान सम्प्रदायके आचार्य हुए। १२ वर्ष गद्दी पर बैठ कर ये इस लोकसे चल बसे। उनके भी बनाये हुए प्रायः १८००० श्लोक वा पद पाये जाते हैं। दुल्हराम १८२४ ई०में मृत्युकाल पर्यन्त शाहपुरा मठके महन्त थे। उनके बनाये ० हजार पद वा ब्रह्मगीति हैं तथा ४ हजार कविताओंमें विभिन्न सम्प्रदायभुक्त साधुओंकी जीवनी लिखी है। उनके बाद छत्रदास गद्दी पर बैठे। १८३१ ई०में उनकी मृत्यु हुई। उन्होंने १००० पद लिखे थे। दुःखका विषय है, कि वे सब पुस्तकाकारमें लिपिबद्ध नहीं हुए। अनन्तर नारायणदास १८५३ ई०में गद्दी पर बैठ कर आचार्यका कार्य करते थे।

रामचरित (सं० क्ली०) दशरथात्मज रामचन्द्रकी जीवनी।

रामचिड़िया (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका जल-पक्षी। यह मछलियां पकड़ कर खाता है। इसे मछरंगा भी कहते हैं।

रामच्छर्दनक (सं० पु०) राम मनोज्ञत्वं छर्दयति छर्दि ण्वु, स्वार्थे कन्। मदनवृक्ष, मैनफलका पेड़।

रामज (सं० पु०) रामपुत्र।

रामजननी (सं० स्त्री०) रामस्य जननी। १ बलदेवकी माता। २ रामचन्द्रकी माता, कौशल्या। ३ रेणुका।

रामजना (हिं० पु०) १ एक संकर जाति। इसकी कन्याएं वेश्या-वृत्ति करती हैं। कई बातोंमें यह जाति गन्धर्व जातिसे मिलती जुलती है। किन्तु साधारणतः उससे नीची समझी जाती। इस जातिके लोग प्रायः राजपूताने, संयुक्तप्रान्त तथा बिहारमें पाये जाते हैं। २ वह जिसके माता पिता न हो, वर्णसंकर।

रामजनी (हिं० स्त्री०) १ रामजना जातिकी स्त्री। २ जिसके पिताका पता न हो। ३ वेश्या, रंडी।

रामजमानी (सं० पु०) एक प्रकारका बहुत बारीक चावल।

रामजयन्ती—देवीकी एक मूर्त्तिका नाम। इनकी पूजाका विवरण रामजयन्तीपूजाग्रंथमें लिखा है।

रामजामुन (हिं० पु०) मझोले आकारका एक प्रकारका जामुनका पेड़। यह प्रायः सारे उत्तरी और पूर्वी भारत तथा बरमा और सिंहलमें होता है। इसके फल बहुत बड़े बड़े और स्वादिष्ट होते हैं। इसकी लकड़ी यद्यपि साधारण जामुनकी लकड़ीके समान उत्तम नहीं होती, तो भी इमारत तथा खेतके काममें आती है यह छोटी नदियोंके किनारे अधिकतर होता है।

रामजित्—नवनीतनिबन्धके प्रणेता।

रामजीवन (सं० पु०) राजा रुद्ररायके पुत्र।

रामजीवन—सूर्य्यव्रतपाँचालीके रचयिता।

रामजीवन तर्कवागीश—महिम्नःस्तवटीकाके रचयिता।

रामजीवनपुर—बङ्गालके मेदिनीपुर जिलान्तर्गत घाटाल उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० २२° ५० उ० तथा देशा० ८७° ३७' पू० के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारसे ऊपर होगी। १८७६ ई०में म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है।

रामजीवनराय—नाटोर राजवंशके प्रतिष्ठाता और रघुनन्दनके बड़े भाई। १७०४ ई०में इन्होंने राजाकी उपाधि पाई थी। १७०६ ई०में दिल्लीश्वर बहादुरशाहने इन्हें राजा बहादुरकी उपाधि दे कर खिलअत दी। दोनों भाई अपने अपने उपार्जित राज्यका शासन करते थे। दोनोंके कोई सन्तान न रहनेके कारण रामजीवन की स्त्रीने गोद लिया था। राजशाही देखो।

पदाङ्कदूतके प्रणेता कृष्ण सार्व्वभौम १७२४ ई० में इनकी सभामें मौजूद थे।

रामजोसेन—ज्योतिःश्लोकसञ्चयके प्रणेता।

रामजौ (हिं० पु०) एक प्रकारकी जई। इसके दाने साधारण जौसे कुछ बड़े होते हैं।

रामझोल (हिं० स्त्री०) पाजेब, पायल।

रामटेक—१ मध्यप्रदेशके नागपुर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २१° ५'से २१° ४४' उ० तथा देशा० ७८° ५५' से ७९° ३५' पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ११२६ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है। इसमें रामटेक और खाप नामक २ शहर और ४५१ ग्राम लगते हैं। सतपुरा पहाड़के उत्तर इस तहसीलका कुछ अंश पर्वत और जंगलसे ढका है। दक्षिणभागकी जमीन उपजाऊ है। गेहूं और रूई बहुतायतसे उपजती है।

२ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २१° २४' उ० तथा देशा० ७९° २०' पू०के मध्य विस्तृत है। नागपुरसे इसकी दूरी १२ कोस है। जनसंख्या प्रायः ८७३२ है। म्युनिसपलिटीके अधीन रहनेके कारण नगर बहुत साफ सुथरा है तथा दिनों दिन उन्नति कर रहा है। यह पर्वतके दक्षिणपादमूलमें अवस्थित है इससे यहांका दृश्य देखने लायक है।

यह स्थान दाक्षिणात्यका एक पवित्र तीर्थस्थान समझा जाता है। यहां पर्वतके दोनों बगलमें हेमाडपन्थके प्राचीन मन्दिर हैं। पर्वतके पश्चिम विख्यात रामचन्द्र जीका मन्दिर है। नगरके फाटकसे इस मन्दिरका शिखर बहुत ऊंचा है। मनसरसे जो रास्ता रामटेक होता हुआ अम्बाला गया है, उसके किनारे सूर्यवंशीय किसी राजाका दुर्गप्रासाद दिखाई देता है। यह रास्ता पर्वतके दक्षिण ओर घूम कर एक विस्तृत बांध तक चला गया है। रघुजी १मने उस बांधको बुर्ज आदिसे मजबूत कर दिया था। उस बांधके मध्य अम्बाला नगर और ह्रद है। ह्रदके किनारे प्रत्येक सम्भ्रान्त महाराष्ट्र-वंशका निर्मित एक एक मन्दिर और घाट है। ह्रदके पश्चिमी किनारेसे आध मील तक सीढ़ी चली गई है। इसी सीढ़ीसे आ कर यात्री लोग मन्दिरमें पूजा करते हैं। सीढ़ीके ऊपर दक्षिण पार्श्वमें एक विस्तृत बावली और धर्मशाला है उसके बाईं ओर नारायणकी नरसिंह मूर्त्तिसे प्रतिष्ठित दो प्राचीन मन्दिर हैं। इसके विपरीत दिशामें मुगल सम्राट् औरङ्गजेबके सभासद द्वारा निर्मित एक मसजिद है। यहांसे कुछ सीढ़ी नीचे आने पर नगरके बहिर्द्वार पर पहुंचते हैं। इसके भीतरी भागमें नारायणमूर्त्ति प्रतिष्ठित कुछ मन्दिर हैं। वामभागमें परवारोंके कई देवमन्दिर देखनेमें आते हैं। कार्त्तिक मासमें ह्रदके किनारे एक बड़ा मेला लगता है जिसमें लाखसे ऊपर आदमी इकट्ठे होते हैं।

द्वितीय प्राचीरकी सीमामें जहां सिंहद्वार अवस्थित है, वहां पहले मराठोंका शस्त्रागार था। वह अभी भग्नावस्थामें पड़ा है और किसी सूर्यवंशीय राजाका कीर्त्ति समझा जाता है। भैरवद्वारके बीच हो कर तृतीय प्राङ्गणमें आते हैं। इस स्थानका बुर्ज और प्राकारादि मराठोंके समयसे रक्षित है। अन्तिम प्राङ्गणमें मन्दिर के सेवक रहते हैं। इसी प्राङ्गणमें गोकुल द्वार है। इस द्वारसे गणपति और हनुमानके बड़े मन्दिरमें जाना होता है। उसके पीछेमें एक शैलस्तूपके ऊपर रामचन्द्र मन्दिर है। इस अन्तिम प्राङ्गणसे एक सीढ़ी हो कर रामटेक नगरमें आते हैं। महाराष्ट्रजातिकी पहली बस्तीमें यहां जो बावली थी। शहरमें एक मिडिल स्कूल, बालिका स्कूल और एक अस्पताल है।

रामटोड़ी (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी रागिणी। इसमें गांधार कोमल और शेष सब स्वर शुद्ध लगते हैं।

रामठ (सं० क्ली०) रम्यतेऽनेनेति रम (रमेर्वृद्धिश्च। उण् १।१०१) इति अठ वृद्धिश्च धातोः। १ हिङ्गु, हींग। (पु०) २ अङ्कोठ वृक्ष, अकरोटका पेड़। ३ बृहत्संहिताके अनुसार एक देश जो पश्चिममें है। (बृहत्सं० १०।५) ४ उस देशका निवासी। ४ मदनफल मैनफल। ५ अपामार्ग चिचड़ा।

रामठी (सं० स्त्री०) हिङ्गु, हींग।

रामण (सं० पु०) १ गिरिनिम्ब, बकायन। २ तिन्दुक, तेंदूका पेड़।

रामणि (सं० पु०) रामणके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

रामणीयक (सं० क्ली०) रमणीय यस्य भावः कर्म्म वा रमणीय (योपधाद्गुरूपोत्तमाद्वुञ्। पा ५।१।१३२) इति वुञ्। १ रमणीयत्व, मनोहरता। (त्रि०) २ रमणीय सुन्दर।

रामतरुणी (सं० स्त्री०) रामा मनोहरा तरुणीव। १ तरुणी पुष्प, सेवती। २ साता स्त्री।

रामतरोई (हिं० स्त्री०) भिंडी नामक फली जिसकी तरकारी बनती है।

रामतर्कवागीश—एक प्रसिद्ध वैयाकरण तथा मुग्धबोधके टीकाकार।

रामता (सं० स्त्री०) रामका गुण, राम पन।

रामतापनीय (सं० क्ली०) एक उपनिषद्का नाम। यह प्राचीन उपनिषदोंमें नहीं है बल्कि एक साम्प्रदायिक पुस्तक है।

रामतारक (सं० पु०) रामजीका मन्त्र जो रामोपासक लोग जपते हैं। प्रवाद है, कि जो लोग काशीमें मरते हैं उन्हें शिवजी इसी मन्त्रका उपदेश करते हैं जिसके प्रभावसे उनको मुक्ति हो जाती है। यह मन्त्र इस प्रकार है,—रां रामाय नमः।

रामतारण चूड़ामणि—माधुरी नामक गीतगोविन्द टीकाके प्रणेता।

रामतिल (सं० पु०) एक प्रकारका तिल।

रामतीर्थ—मैत्र्युपनिषद्दीपिकाके रचयिता।

रामतीर्थ—हिन्दूका एक तीर्थ। रामतीर्थमाहात्म्यमें इसका विशेष विवरण लिखा है। रामटेक देखो।

रामतीर्थ यति—पद्योजनिका नामकी उपदेशसाहस्रीकी टीका, सुरेश्वरकृत मानसोल्लासकी मानसोल्लासवृत्तान्तविलास नामक टीका, वस्तुतत्त्वप्रकाशिका, वाक्यार्थदर्पण और विद्वन्मनोरञ्जिनी नामकी वेदान्तसारटीका, संक्षेपशारीरकव्याख्या और स्तुतितरङ्ग टीका आदि ग्रन्थोंके रचयिता। ये कृष्णतीर्थके पुत्र और शिष्य तथा पुरुषोत्तम मिश्रके गुरु थे।

रामतुलसी (सं० स्त्री०) रामतुलसी देखो।

रामतेजपात (हिं० पु०) तेजपात जातिका एक प्रकारका वृक्ष। यह पूर्वी बंगाल, बरमा और अण्डमन टापूमें अधिकतासे होता है। इसके पत्तोंका व्यवहार तेजपत्तेके समान होता है और लकड़ी सन्दूक तथा तख्ते आदि बनानेके काममें आती है

रामतोषण शर्मा—प्राणतोषिणीतन्त्रके संकलयिता। इन्होंने १८२१ ई० में कलकत्तावासी विख्यात धनी प्राणकृष्ण विश्वासके उद्योगसे यह पुस्तक संकलन की।

रामत्व (सं० क्ली०) रामका भाव या धर्म, रामता

रामदत्त—मिथिलाराज नृसिंहके मन्त्री। ये षोडश महादानपद्धतिके प्रणेता आपस्तम्बोक्त प्रतिपादक थे।

रामदत्त—भवनपाल गणकभूषणटीका मकरन्दसारिणी, मुहूर्त्तभूषणटीका सम्भवार, लघुजातकटीका, मासाभ त टिप्पण, श्रीपतिपद्धतिटीका, षोडशयोगटीका, समरसार

टीका और सहस्रचन्द्रिका आदि ज्योतिर्ग्रन्थोंके प्रणेता। २ गीतगोविन्दटीकाके रचयिता। ३ पाषण्डमुखमर्द्दनके प्रणेता। ४ विवाहपद्धतिके प्रणेता। ये मिथिला राजमन्त्रीके पौत्र थे।

रामदत्त (मन्त्री) —मिथिलाराजमन्त्री। यजुर्वेदीय उपनयनपद्धतिके प्रणेता। ये विश्वेश्वरके भतीजा और गणेश्वरके पुत्र थे।

रामदयालु—१ लौकिकन्यायसंग्रहके प्रणेता, रघुनाथ वर्म्माके गुरु। २ ज्योतिषोक्त 'करणग्रंथ'के प्रणेता। ३ वृत्तिचन्द्रिकाके रचयिता।

रामदल (सं० पु०) १ रामचन्द्रजीकी बंदरोंवाली सेना, जिसके नीचे लिखे १८ मुख्य यूथप थे,—१ लक्ष्मण, सुग्रीव, नील, नल, सुषेन, जाम्बवन्त, हनुमान, अंगद, केशरी, गवय, गवाक्ष, गज, विभीषण, द्विविद, तार, कुमुद, शरभ और दधिमुख। २ कोई बड़ी और प्रबल सेना जिसका मुकाबला करना कठिन हो।

रामदाना (हिं० पु०) १ मरसे या चौलाईकी जातिका एक पौधा। इसमें सफेद रंगके एक प्रकारके बहुत छोटे छोटे दाने लगते हैं। ये दाने कई प्रकारसे खाये जाते हैं और इनकी गिनती फलहारमें होती है। पहाड़ोंमें यह वैशाख जेठमें बोया और कुआरमें तैयार हो जाता है लेकिन उत्तरी, पश्चमी तथा मध्यभारतमें यह जाड़ेके दिनोंमें भी होता है। कहीं कही बागोंमें भी शोभाके लिये इसके पौधे लगाये जाते हैं। २ एक प्रकारका धान।

रामदीन तिपाठी—एक भाषा कवि। ये टिकमा पुर जिला कानपुरके रहनेवाले थे। ये अच्छे कवि थे। महाकवि मतिरामके वंशज थे। चरखारीके राजा रतनसिंहके यहां ये प्रायः रहते थे। एक बार राजा रतनसिंहकी सभा मे ये बैठे थे, उस समय और भी जागीरदार सरदार, कवि आदि दरबारमें उपस्थित थे। राजा रतनसिंहकी स्वयं उपस्थितिमें इन्होंने अपनी ओर राजाकी विरक्ति देख कर कहा,—

"जा बांधी छत्रशाल जू हृदयसाहि जगतेश।
परिपाटी छूटे नहीं महराजा रतनेश॥"

रामदास (सं० पु०) १ हनुमान। २ एक प्रकारका धान।

रामदास—१ सुलतान अकबरके मंत्री। इनके आश्रयमें रह कर पण्डितवर रामचन्द्रने १६२४ ई०में 'रामविनोद करण' लिखा था। २ एक कवि। ३ अर्घ्यदीपकके प्रणेता। ४ कार्त्तवीर्य्याभ्यासारके रचयिता। उज्ज्वलवृत्त और रायमुकुटने इनका उल्लेख किया है। ५ भीमरूपिस्तोत्रके प्रणेता। ६ रासमञ्जरीके रचयिता। ७ रामसेतुप्रदीपके रचयिता। ये उदयराजके पुत्र और चण्डीरायके पौत्र थे और अकबरकी सभामें रहते थे। ७ मुहूर्त्त गणपतिके प्रणेता।

रामदास—पञ्जाबप्रदेशके अमृतसर जिलान्तर्गत अजनला तहसीलका एक नगर। यह अक्षा ३१° ५८´ उ० तथा देशा० ७४° ५८´ पू०के मध्य अवस्थित है। सिखगुरु बाबा नानकके प्रिय शिष्य बाधाने इस नगरको बसाया। पीछे गुरु रामदासके नामानुसार यह प्रसिद्ध हुआ। यहां एक सुन्दर सिखमन्दिर है।

रामदास—सिख सम्प्रदायके चतुर्थ गुरु। १५७४ ई०में तृतीय गुरु अमरदासके मरने पर उनके जमाई रामदास गुरुपद पर बैठे। लाहोरमें इनका जन्म हुआ था। दारिद्र्यवशतः उनके मातापिता स्वदेशका परित्याग कर गोविन्दवालमें आ कर बस गये थे। वे लोग सोधिशाखाभुक्त छत्रि थे।

यहां रामदास अनाजकी खरीद बिक्री करके पितामाताका पालनपोषण करते थे। उनकी कार्यतत्परता और बुद्धि देख कर उनके मालिक चमत्कृत हो गये थे। वे शान्त, निर्विरोध, दयावान्, धार्मिक, उचितवक्ता, वाग्मी और उद्यमशील थे।

जब अमरदासने अपने नाम पर बड़ी बावलीकी प्रतिष्ठा की उस समय बहुतसे लोग वह स्थान देखने आये थे। बालक रामदास भी उनमेंसे एक थे। अमरदासकी कन्या मोहिनी युवकके रूप पर मोहित हो गई और आखिर दोनोंमें विवाह हो गया।

खरीदबिक्रीमें लगे रहने पर भी इन्होंने पढ़ना लिखना छोड़ा नहीं था। कविता बनानेकी इनमें अद्भुत शक्ति थी। सिखोंके ग्रन्थमें यह अपना धर्ममत कवितामें प्रकट कर गये हैं।

इनके समय सिख-सम्प्रदायने अच्छी उन्नति की थी। शिष्योंके दिये हुए उपहारसे वे राजाकी ठाटबाटमें

रहते थे। लाहोर नगरमें एक समय इनके साथ मुगल सम्राट् अकबरशाहकी मुलाकात हुई। सम्राट्ने इनकी उपशिक्षा और विचारशक्तिसे प्रसन्न हो इन्हें कुछ जमीन प्रदान की थी। यह जमीन गोलाकार थी, इस कारण आगे चल कर 'चक रामदास' नामसे प्रसिद्ध हुई। उस भूमिके मध्यमें एक प्राचीन पुष्करिणी था जिसका सम्यक्रूपसे संस्कार कर इन्होंने 'अमृतसर' नाम रखा। उसके ठीक बीचमें इन्होंने हरमन्दर (हरिमन्दिर) भी बनवा दिया था।

पुष्करिणीके तट पर फकीरोंके रहने लिये छोटी छोटी कुटी और मन्दिर भी थे। उनके शिष्य और अनुचर वहां आ कर रहते थे। उस समय इस नगरका नाम था 'गुरुका चक' पीछे उन्होंने इसका नाम बदल कर 'अमृतसर' रखा।

एक बार लाहोर नगरमें सम्राट् अकबर दलबलके साथ बहुत दिनों तक ठहरे थे। उससे आवश्यकीयका मोल दूना बढ़ गया। रामदासने सम्राट्से मिल कर कहा था कि यदि आप यहांसे डेरा उठा लें ताँ तो अनाजका मोल कम हो सकता है, नहीं तो बेचारी प्रजाको काल पर बीतेगी। आपको यह भी उचित है, कि गरीब प्रजाका खजाना एक वर्षका माफ कर दें। सम्राट्ने सिख-गुरुकी दया और सहानुभूतिकी बात सुन कर उसी समय एक वर्षका खजाना माफ कर दिया।

जब उनकी इस उदारता और दयालुताकी बात चारों ओर फैली, तब सभी सिख-गुरुके प्रति आकृष्ट हो गये थे। यहां तक, कि जाट और अन्यान्य सरदारोंने उनके दलमें शामिल हो कर उनका यश और शक्ति बढ़ानेका यथासाध्य चेष्टा की। अमृतसर नगर स्थापन करके ये मानो सिख-जातिका उन्नति-केन्द्र स्थिर कर गये हैं। यहां सिखसम्प्रदायने धर्मार्थ इकट्ठे हो कर जातीय एकता को दृढ़ करनेका प्रयत्न किया था।

अमरदासकी कन्याके गर्भसे इनके तीन पुत्र हुए।' बड़े महादेव फकीर हुए थे, मंझले पृथ्वीदासने संसाराश्रमका अवलम्बन किया और छोटे अर्जुनमल गद्दी पर बैठे। इस समयसे सिखोंका गुरुपद वंशगत हो गया। ये लोग इन गुरुको एकमात्र पार्थिव मनुष्य के उपदेष्टा समझ कर उनकी पूजा करते थे सो नहीं। उन्हें मर्त्यजगत्‌के प्रभु और दुष्टोंके शासनकारी राजा भी समझते थे। आगे चल कर गुरुको अधिनायकतामें परिचालित सिखशक्तिकी जो इतनी उन्नति हुई थी उसका कारण यही था।

१५८६ ई०के मार्च मासमें रामदास परलोक सिधारे। विपाशा नदीके किनारे उनकी स्मृतिरक्षाके लिये समाधि मन्दिर बनाया गया उनके छोटेभी १५८१ ई०में अर्जुन गद्दी पर बैठे थे। बालक अर्जुन पिताकी तरह फकीरी पोशाक नहीं पहनते, पितामाताके सामने राजपुत्रके जैसा परिच्छद पहनते थे। घोड़े, हाथी आदि राजकीय वस्तुकी रक्षा करके इन्होंने यथार्थमें सिखसम्प्रदायकी प्रतिष्ठाका आयोजन किया था।

रामदास कैवर्त—"अनादिमङ्गल"नामक धर्मकाव्यके रचयिता एक बंगाली कवि। ये १६६२ ई०में विद्यमान थे। इनके पिताका नाम रघुनन्दन आदक था। ये दक्षिणराढ़ीय कैवर्तवंशोद्भव थे। इनका पूर्वनिवास हुगली जिलेके आरामबाग थानेके अधीन हायत्पुर ग्राममें था। पीछे उसी थानेके अन्तर्गत पाड़ाग्राममें आ कर बस गये।

रामदास दीक्षित—प्रबोधचन्द्रोदयप्रकाशके प्रणेता थे। विनायक भट्टके पुत्र थे।

रामदास मिश्र—रासविलासके रचयिता।

रामदाससाधु—गुजरातके द्वारकावासी एक साधु। यह एक निष्ठावान् वैष्णव थे। एकादशीव्रतपरायण हो ये यहांके रणछोड़जीके मन्दिरमें प्रति एकादशीकी रातको जग कर हरिगुणकीर्तन करते थे। वृद्धावस्थामें विविध रोगोंने इन पर आक्रमण किया जिससे हरिगुणगान करनेकी बिलकुल शक्ति न रही। इस कारण बड़े मानसिक कष्टसे समय बिताने लगे। यह देख भगवान्‌को दया आई। उन्होंने रामदाससे कहा, कि तुम्हारे यहां आनेकी कोई जरूरत नहीं। मुझे अपने घर ले चलो, वहीं मैं तुमसे रहूंगा।

प्रभुका आदेश पा कर रामदास मन्दिरके पिछले दरवाजे पर गाड़ी लाये और उसी पर देवमूर्तिको बिठा बड़ी तजोरसे ले चले। पुजारी मन्दिरमें आ कर देवमूर्ति को न देख विस्मित हो गया। यह बात विजलीकी समान तमाम फैल गई। उसी समय एक आदमीने आ कर

कहा, कि कोई वैरागी गाड़ी पर चढ़ा कर मूर्त्तिको ले जा रहा है। सबोंने गाड़ीका पीछा किया और रामदासको दूरमें देख पाया। किन्तु रामदासने प्रभुके कथनानुसार उस प्रस्तरकी मूर्त्तिको तुरन्त निकटस्थ पुष्करिणीमें गाड़ दिया। पुजारी लोगोंने दूरसे देख लिया और रामदासके पास आ कर उन्हें खूब पीटा जिससे शरीरमें रक्त बहने लगा। अनन्तर जलमेंसे मूर्त्ति निकालने पर उन्होंने देखा, कि देवशरीरसे भी रुधिरधारा बह रही है। यह देख वे सबके सब अवाक् हो रहे और रामदासके चरणोंमें गिर कर क्षमा मागने लगे। देवमूर्त्ति भी उन्होंने रामदासको लौटा दी थी। (भक्तमाल)

रामदास सेन—बहरमपुरवासी एक कायस्थ जमींदार। इनके पितामह दीवान कृष्णकान्त सेन मुर्शिदाबाद जिलेके एक गण्यमान्य व्यक्ति थे। पिता लालमोहन सेन विशेष विद्योत्साही और दयालु व्यक्ति थे। बङ्गालाभाषा और बङ्गला-साहित्यविषयक प्रबन्ध लेखक पण्डित रामगति न्यायरत्न इनके पारिवारिक पुस्तकालयसे बहुत सहायता पाते थे। रामदास बाबूने पिताके यत्नसे उक्त पण्डितप्रवरके निकट उपयुक्त शिक्षा पाई थी। पढ़ना समाप्त कर वे पैतृक पुस्तकालयसे पौराणिक ग्रन्थ और पाश्चात्य जगत्में आविष्कृत भारतीय प्रत्नतत्त्वविषयक ग्रन्थ पढ़ने लगे। इस प्रकार थोड़े ही समयमें वे बहुदर्शी हो गये। इस समय पण्डित रामगति न्यायरत्नको अपने पुस्तक संकलन-कार्यमें रामदास बाबूसे बहुत सहायता मिली थी।

रामदास बहुत विनयी, निरहङ्कार, प्रियभाषी और धार्मिक थे। विद्यानुशीलन ही उनका एकमात्र लक्ष्य था। उन्होंने विलापतरङ्ग, कवितालहरी और कविता कलाप नामक तीन पद्यपुस्तकोंकी रचना की। वे सर्वदा प्रधान सामयिक पत्रोंमें स्वरचित प्रबन्ध लिखा करते थे। वे अपने पुस्तकालयकी बहुत उन्नति कर गये हैं। उस समयके संस्कृत और बङ्गलाके जितने ग्रंथ मिलते थे वही उस पुस्तकालयमें रखे जाते थे।

रामदास बाबू अपनी गवेषणाका फल प्रबंधकी तौर पर दर्शनपत्रिकामें निकाला करते थे। कुल प्रबंध लिखे जाने पर वह 'ऐतिहासिक रहस्य' नामसे प्रकाशित हुआ। इसके सिवा उन्होंने 'रत्नरहस्य' और 'भारतीय रहस्य' नामक प्राचीन भारतके कुछ ज्ञातव्य विषय विभिन्न प्रबंधमें रच कर उन्हें पुस्तकाकारमें प्रचार किया।

रामदास बाबूको अंगरेजीका भी अच्छा ज्ञान था। लण्डन नगरकी Oriental Congress सभामें डा० मोक्षमूलरने रामदास बाबूके ऐतिहासिक रहस्य तथा Antiquary पत्रिकामें उनके लिखे प्रबंधादिकी बड़ी प्रशंसा की है।

इनका बौद्धधर्मप्रत्नतत्त्वान्वेषण नामक प्रबन्ध पढ़ कर नेशनल मेगजिन पत्रिकाके सम्पादकने उनकी गभीर अनुसन्धित्साका उल्लेख किया है। वे एशियाटिक सोसाइटी, एग्रि हर्टिकलचरल सोसाइटी आव इण्डिया, संस्कृत टेक्स्ट सोसाइटी आव लण्डन, ओरियेण्टल कांग्रेस और फ्लोरेन्सके एकाडेमिया ओरियेण्टल आदिके सभासभ्य हुए थे।

इनका जन्म १२५२ सालको २८वीं अगहन और देहान्त १२९५ सालको ३री माघको हुआ था। उनके अन्तिम ग्रन्थ 'बुद्धदेव' का छपना आरम्भ ही हुआ था, कि वे इस लोकसे चल बसे।

रामदास स्वामी (समर्थ रामदास)—दाक्षिणात्यके एक विख्यात स्वदेशहितैषी, धर्मप्रचारक और ग्रंथकार।

१५३० शक (१६०८ ई०) में रामनवमीके दिन गोदावरी तीरस्थ जम्बूक्षेत्रमें जमदग्निगोत्रीय ब्राह्मणवंशमें रामदास स्वामीने जन्मग्रहण किया। इनके पिताका नाम सूर्यजि पन्त और माताका राणुबाई था। नारायण इनका आदि नाम था। जब इनकी उमर बहुत ही थोड़ी थी, तभी इनके पिताका देहांत हुआ। अतएव संसारका भार राणुबाईको लेना पड़ा। नारायण परम रामभक्त हुए। लोग कहते हैं, कि जब ये आठ वर्षके थे, उस समय भगवान् श्रीरामचंद्रने मनोहर वेशमें उन्हें दर्शन दे कर कहा था, 'धर्मकी दुर्दशा हो गई है तथा शास्त्र लोप होता जा रहा है, अतएव तुम कृष्णानदीके किनारे जा कर धर्मका पुनः स्थापन करो और म्लेच्छको दमन करनेके लिये शिवाजीको मदद दो।' उसी समयसे वे 'रामदास' नामसे प्रसिद्ध हुए। धीरे धीरे उनके वैराग्योदय हुआ। राणुबाई यह देख कर उनके विवाह-

का उद्योग करने लगीं। किन्तु रामदास विवाह करनेको राजी न हुए। आखिर बहुत समझाने बुझाने पर उनका मन पलट गया। विवाहका दिन स्थिर हुआ। विवाह में मङ्गलाष्टक पढ़ते समय पुरोहितने रामदासको यह बड़ा सावधानीसे उच्चारण करने कहा। रामदासने पूछा, 'इसका अर्थ क्या'। 'शिव तुम्हारा मङ्गल करें,' पुरोहित बोले। 'तुम सावधान हो जाओ। आज तक लड़का था, अभी तक बड़ा भारी बोझ तुम पर रखा जाता है।' यह यह सुनते ही रामदास सभामण्डपसे भागे। कहां गये उस दिन कोई भी पता न लगा सका।

रामदास भाग कर नासिक जिलेके अन्तर्गत टाकली नामक स्थानमें गये। वहां एक पर्वतकी गुहामें उपासना करने लगे। वे दो पहर तक पुरश्चरण करते और बाद पञ्चवटी जा भीख मांग कर चावल आदि लाते थे। रसोई तय्यार होने पर पहले श्रीरामचन्द्रजीको निवेदन करते पीछे आप खाते थे। उनका अवशिष्ट समय व्याख्या, भजन और कीर्तन करनेमें व्यतीत होता था। यहां उद्धव नामक एक बालक उनका शिष्य हो गया। यहां उन्होंने द्वादशवर्षव्यापी पुरश्चरण ठान दिया। समाप्तिके कुछ पहले श्रीरामचन्द्रने उन्हें दर्शन दिए और ये बोले, पहलेकी बात याद करो, कृष्णा नदीके किनारे शिवाजीकी सहायतामें तुम्हें जाना होगा, जब पुरश्चरण समाप्त हुआ, तब रामदास तीर्थपर्यटनको निकले। सारे भारतवर्ष और सिंहलद्वीप होते हुए पञ्चवटी आए। जहां जहां वे गए वहां उन्होंने धर्मव्याख्या की और कहीं श्रीरामचन्द्र तथा हनुमान्‌की मूर्त्ति स्थापित कर हिन्दूधर्म का प्रचार किया इसके बाद वे जमुडेला गए और अपनी माता तथा बड़े भाईसे मिले। उनका भ्रमणवृत्तान्त सुन कर वे सब बड़े प्रसन्न हुए। पीछे रामदास उद्धवको ले कर कृष्णानदीकी ओर बढ़े। १५७६ शक (१६५४ ई०)-में रामदास स्वामी पण्ढरपुर चले। राहमें कुछ प्रसिद्ध तीर्थस्थानोंका दर्शन करते हुए वे माहुली पहुंचे और वहां कुछ समय तक ठहरे। यहां दिनमें वे स्नान और पूजा करते तथा रातको शेरगढ़ा नामक पर्वत पर जा कर भगवान्‌के ध्यानमें निमग्न रहते थे।

इस प्रकार नाना वनोंमें, गिरिगुहाओंमें और नदीके किनारे ध्यानधारणामें वे जीवन बिताने लगे। इस समय शिवाजी रायगढ़में रहते थे। रामदास स्वामीकी सुख्याति उनके कानोंमें पड़ गया। इन साधु पुरुषको देखनेको इनकी बड़ी इच्छा हुई। अतः उनके दर्शनके लिये वे चाफल नामक स्थानमें आये। इस समय चाफलके देवमन्दिरमें ध्रुवचरित्रकी कथा होती थी। शिवाजीने समझा था, कि स्वामीजी यहां पर होंगे, पर उन्हें दर्शन नहीं हुए, वे वहां थे नहीं। जो कुछ हो, राजा ध्रुव चरित्रकी कथा सुनने लगे। शिवाजीको विश्वास हुआ, कि सद्गुरुसे जब तक मंत्र न लिया जाय, तब तक धर्मसाधन हो ही नहीं सकता। तभीसे वे बहुत व्याकुल हो गये, मनमें जरा भी शान्ति नहीं। कथा समाप्त होने पर वे चाफलसे प्रतापगढ़ आये। यहां महिषमर्दिनी देवीका एक मन्दिर है। मन्दिरमें देवीके सामने वे लोट रहे और किसी साधुपुरुषके शरणागत होनेके लिये प्रार्थना करने लगे। इसी अवस्थामें उन्हें नींद आ गई। स्वप्नमें उन्होंने देखा, कि देवी उनसे कह रही हैं, कि रामदास स्वामीके निकट जानेसे उनका मनोरथ सिद्ध होगा। देवीने यह कहा कि इन्होंका उपकार करनेके लिये ये महापुरुष धराधाममें अवतीर्ण हुए हैं। शिवाजी सबेरे उठ कर फिरसे चाफल गये। इसबार भी स्वामीजीका पता न लगा। वे पुनः प्रतापगढ़ लौटे, पर उनके मनमें जरा भी चैन नहीं। भिन्न भिन्न स्थानमें उन्होंने आदमी भेजा, पर कोई भी स्वामीजीका पता न लगा सका। शिवाजीने फिरसे देवीके सामने धरना दिया। कुछ समय बाद उन्हें निद्रा आई। पीछे स्वप्नमें देखा, कि एक महापुरुष उनके मस्तक पर हाथ रख कर आशीर्वाद देते हुए कह रहे हैं, "वत्स! मेरा निवास गोदावरीके किनारे है, किन्तु तुम्हारे कल्याणके लिये मैं देवताके आदेशसे कृष्णा नदीके किनारे ठहरा हूं। मुझे आये यहां बहुत दिन हुए, पर तुमने कोई खबर न ली। जो कुछ हो, मैंने सुना है, कि देवताके प्रति तुम्हें अचला भक्ति है। अभी तुम्हारा कर्त्तव्य यह कि जिस प्रकार राजकार्य करते हो उसी प्रकार करो, किन्तु धर्मके प्रति दृष्टि रखो। अभी आर्यधर्मका अति शोचनीय दशा है। जिससे उसकी उन्नति हो उस ओर विशेष ध्यान रखना होगा।' इतना कह कर

महापुरुष अन्तर्हित हो गये। निद्रा टूटने पर शिवाजी स्वप्नका हाल मन ही मन सोचने लगे। उन्होंने समझा कि यही महापुरुष रामदास स्वामी हैं। इसके बाद वे स्वामीकी खोजमें निकले। आखिर चापडके देवमंदिरमें ही उनके दर्शन हुए। बहुत सोच विचारके बाद शिवाजीने स्वामीजीसे मंत्रग्रहण किया। इस उपलक्षमें स्वामीजीने आध्यात्मिक धर्मके सम्बन्धमें राजाको अनेक उपदेश दिये। इसके बाद शिवाजी रामदास स्वामीसे आशीर्वाद ले कर प्रतापगढ़ लौटे।

रामदासस्वामीके साथ शिवाजीके प्रथम साक्षात्के सम्बन्धमें एक और प्रवाद इस प्रकार है—एक दिन राजा शिवाजी आखेटको बाहर निकले। आखेट करते करते जहां स्वामीजी रहते थे वहीं आ पहुंचे। जरका शब्द सुन कर सभी पशुपक्षीने स्वामीजीका आश्रय लिया था। उन्हीं पशु पक्षीका पीछा करते हुए शिवाजी स्वामीके पास आये थे। वहां वे क्या देखते हैं, कि महापुरुष ध्यान में मग्न हैं और पशुपक्षी पास ही खड़े हैं। यह दृश्य देख कर उनके मनमें वैराग्यका उदय हो आया। वे अपनेको धिक्कारते हुए कहने लगे, 'हाय मैं कैसा अधम हूं! मैं इन निर्दोष पशुपक्षियोंका वध करनेके लिये उतारू हूं। मेरे जैसा पाखंडको देख कर इन सबोंने इनके मारे स्वामीजीकी शरण ली है। राजा स्वामीजीके सामने कुछ समय खड़े रहे। किन्तु जब उनका ध्यान नहीं टूटा, तब वे यहांसे चल दिये। नदीके किनारे आ कर उन्होंने देखा, कि किताबके कुछ पन्ने जलमें बह रहे हैं। वे कुछ पन्नोंको ले कर पढ़ने लगे। जितना ही वे पढ़ते गये उतना ही उनका आनन्द बढ़ता गया। वे सब पन्ने श्लोक, अभङ्ग और सङ्गीतसे परिपूर्ण थे। वह श्लोक और सङ्गीत पढ़ कर उच्चभावने उनके मनको ऐसा मोहित कर डाला कि उनकी दोनों आंखोंसे प्रेमधारा बहने लगी। राजा इन सब पन्नोंको ले कर अपनी राजधानी सातारा चले गये। वहां उन्होंने एक लेखकसे उन सब पन्नोंमें लिखित श्लोक और सङ्गीत अच्छी तरह लिखवा लिये। तबसे वे रोज कृष्णा नदीके किनारे जाते और जो कुछ पत्र मिलते उन्हें ले कर घर लौटते थे। यहां उनके श्लोक और सङ्गीत वे स्वयं दूसरे कागज पर लिख लेते थे। सन्ध्याकालमें उसे पढ़ कर वे बड़ा ही आनन्द अनुभव करते थे। इसके रचयिता रामदास हैं, यह शिवाजीको अच्छी तरह मालूम हो गया। अब महापुरुषके दर्शन करनेके लिये राजाका मन विचलित हो उठा। अनंतर प्रधान अमात्य पर राज्यभार सौंप आप साधुदर्शनको चल दिये। बहुत दिन भटकनेके बाद वे स्वामीजीके आश्रममें पहुंचे। स्वामीजीने राजाको देख कर अपने पास बुलाया। राजाने उन्हें साष्टाङ्ग-प्रणाम किया और मनकी बात कह सुनाई। इसके बाद राजाने स्वामीजीसे मंत्रग्रहण किया। इस उपलक्षमें स्वामीजीने राजाको उपदेश दिये थे, वे इस प्रकार हैं:—"जीव-हिंसा मत करो। सभी भूतों पर दया करो। साधु-सेवा करो। प्रतिदिन विष्णुपूजा करो। सर्वदा हरिनाम लो। एकादशीव्रत पालन और नित्य मारुती देवदर्शन करो।" राजाने सभी उपदेश शिरोधार्य कर लिये और स्वामीजीके आदेशानुसार राजधानी लौटे। १५७१ शक (१६४९ ई०) के ज्येष्ठमासमें राजा शिवाजीने मंत्रग्रहण किया था।

राजप्रासादमें रहना शिवाजीको अच्छा नहीं लगता। वे बीच बीचमें राजधानीका परित्याग कर स्वामीजीके पास जाया करते थे। रामदास स्वामीको यह अच्छा नहीं लगा। उन्होंने एक दिन राजाको बुला कर कहा, "राजकार्यकी अपेक्षा करना आपको उचित नहीं। मैंने सुना है, कि पत्रोंमें लिखे, अभङ्ग आपके हाथ लगे हैं। अतएव मैं सलाह देता हूं कि आप उसीको रोज पढ़िये। इसीसे आपको मेरे दर्शन होंगे। बीच बीचमें मैं भी आपकी राजधानी जा कर आपको धर्मकथा सुनाता रहूंगा।" राजा स्वामीजीके आदेशानुसार कार्य करने लगे।

माहुलीमें रहते समय रामदास स्वामी बालकोंके साथ खेलते थे। कभी पेड़ पर चढ़ते और कभी उनके साथ दौड़ते थे। बालक भी उनके निकट आना पसन्द करते थे। एक दिन एक ब्राह्मणने उनसे पूछा, कि आपका बड़ा ही विचित्र स्वभाव देखता हूं। बालकोंके साथ क्या बूढ़ोंका खेलना अच्छा लगता? उत्तरमें रामदास स्वामीने कहा था, "जो बड़े हैं वे भारी

युक्त होते हैं, सद्गुणसे उनका हृदय भरा रहता है। बालक हो कर रहनेसे स्वभाव नम्र होता है, छल कपट नहीं रहता, इसी कारण मैं बालकोंको बहुत चाहता हूं।"

पालीके विष्णुमन्दिरमें रामदास स्वामी प्रति रातको कथा और कीर्तन करते थे। दूसरे समय कितने लोग उनके पास तत्त्वकथा सुनने आते थे।

कुछ दिन बाद रामदास स्वामी राजासे मिलनेके लिये सातारा गये। स्वामीजीकी आगमनवार्त्ता सुन कर राजा नगरके बाहर गये और बड़े सम्मानके साथ उन्हें राजप्रासाद लाये। वहां तीन दिन रह कर स्वामीजीने कीर्तन किया। उनका कीर्तन सुन कर सभी मोहित हो गये थे। श्रोताओंका अन्तःकरण भगवान्‌के भक्ति रसमें गोता खाने लगा। इन तीन दिनोंमें स्वामीजीको बहुत ही अच्छी अच्छी चीजें मिली थीं, पर उन्होंने एक भी न ली और चुपके रातको भिक्षाकी झोली ले कर वहांसे चम्पत हुए। राजा स्वामीजीको न देख व्याकुल हो गये। वे अपने आनन्द-महलमें जरा भी न ठहर सके, तुरत उनकी खोजमें निकले। एक कोस जाने पर स्वामीजीसे साथ भेंट हुई। स्वामीजीके साथ राजा का कथोपकथन होने लगा। पीछे स्वामीजीने त्र्यम्बकेश्वर तीर्थ जानेकी इच्छा प्रकट की। राजा तीर्थका खर्च देने लगे, पर स्वामीजीने कहा, कि जो संन्यासी हैं उन्हें रुपयेकी जरूरत ही क्या? शिवाजीने समझा कर कहा, कि जो राजगुरु बन कर तमाम प्रसिद्ध हैं, तीर्थमें खर्च नहीं करनेसे उन्हें अपयश होगा। बहुत अनुरोध करने पर स्वामीजीने कुछ रुपए ले लिए, वह भी अपने हाथ नहीं। राजाने एक कारकूनको स्वामीजीके साथ लगा दिया और तीर्थमें खर्चके लिये उसीके हाथ लाख रुपया दे दिया। इसके सिवा कुछ आदमियोंके साथ नाना प्रकारके मूल्यवान् द्रव्य भी भेजे। राजा स्वामीजीके साथ बहुत दूर तक गये थे। पीछे रामदास स्वामीके अनुरोध करने पर वे राजधानी लौटे।

स्वामीजीने जहां जहां विश्राम किया था वहां वहां राजाके दिये धनका बिलाया तथा दीन व्यक्तियोंको धन और अन्न बांटा था। आप उसमेंसे कणमात्र भी अपने काममें नहीं लाते। आप भिक्षा मांगते और उसीसे अपना खर्च चलाते थे। रात्रिको रामगुण गान करके लोगोंको मंत्रमुग्ध कर देते थे। जाते जाते वे त्र्यम्बक पहुंचे। नासिकसे त्र्यम्बक प्रायः दश कोस दूर है। इस स्थान के एक पर्वतसे गोदावरी नदी निकली है। त्र्यम्बकेश्वर महादेव यहीं पर स्थापित हैं। रामदास स्वामीने देव दर्शनादि किये तथा राजप्रदत्त सभी धन दीन-दुःखियों को बांट दिये। त्र्यम्बकसे स्वामीजीने पञ्चवटीवनकी यात्रा की। वहां कीर्तनादि करके वे लोगोंको परितृप्त करने लगे। पञ्चवटीके दर्शनसे उनके मनमें श्रीराम चन्द्रका भाव उदय हो आया। प्रेममें विह्वल हो वे नाच करने लगे। पञ्चवटीके पवित्र भावने उन्हें ऐसा मोहित कर दिया कि वहांसे जानेकी उनकी जरा भी इच्छा नहीं होती थी। इसलिये कुछ दिन वहां ठहरना पड़ा। जब तक वहां रहे तब तक रामगुण गा कर और अच्छा अच्छा उपदेश दे कर लोगोंको परितृप्त करते रहे थे। यहां पर इन्होंने जो उपदेश दिया है उसका मर्म इस प्रकार है:—

"जप आदि करनेकी जरूरत नहीं। भक्तिभावसे राम नाम जपनेसे ही मुक्ति होती है। रामनामका कैसा प्रभाव है, उसे वाक्य द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। देखो! महादेवने विषपान करके स्निग्ध होनेके लिये क्या नहीं किया। मस्तक पर गङ्गादेवीको धारण किया पर गङ्गाका जल भी उन्हें शीतल न कर सका। कपाल पर चन्द्रमाको रखा, शशीका शीतल कर भी उन्हें स्निग्ध न कर सका। पीछे जब उन्होंने हरिनाम लिया, तब वे एकदम स्निग्ध हो गये—ज्वाला यन्त्रणा सभी दूर हो गई।"

पञ्चवटीसे स्वामीजी चाफल नामक स्थानमें गये। वहां तीन दिन रह कर जम्बू आये। जम्बूमें अपनी माता और भाईको देख कर बड़े प्रसन्न हुए। यहां कुछ दिन रहनेके बाद सातारा लौटे। माता और भाई भी उनके साथ सातारा आये थे। यह संवाद जब राजाके कानोंमें पहुंचा, तब उनके आनन्दका पारावार न रहा। वे सबोंको बड़े आदरसे अपने महलमें ले आये। रामदास स्वामी एक मास यहां रहे थे। प्रतिदिन धर्म व्याख्या और कीर्तनादि करके लोगोंको तृप्त करते थे।

एक मासके बाद स्वामीजीकी माता और भाई अपने घरको लौटे। राजाने यथोचित सम्भाषण कर और उप हार दे कर उन्हें विदा किया था। रामदास स्वामी माहुली जा कर रहने लगे।

इसके बाद रामदास स्वामीने पण्ढरपुरकी यात्रा की। यहां इन्होंने कुछ अभङ्गकी रचना की थी। उनमेंसे एक विठोवा देवमूर्त्तिके सम्बन्धमें रचा गया था। कुछ दिन यहां रह कर स्वामीजी इनके निकटवर्त्ती गरुडपार नामक स्थानमें चल दिये। यहां कई दिनों तक कीर्त्तनादि होता रहा। अधिवासी हरिगुण गान सुन कर मोहित हो गये। तुकाराम बावा, जयराम गोस्वामी आदि साधुगण भी कीर्त्तन सुनने लगे। गरुडपार स्वर्गरूपमें गिना जाने लगा। कीर्त्तन आरम्भ करनेसे पहले रामदासने दो अभङ्ग गाये थे।

इसके बाद स्वामीजीने वाल्मीकि मुनि तथा अजामीलका वृत्तान्त वर्णन कर श्रोताओंको हरिनामका माहात्म्य समझाया। इस प्रकार कीर्त्तन कर और उपदेश दे कर रामदास स्वामी पण्ढरपुर होते हुए माहुली गये। यहां कुछ दिन ठहर कर नाना स्थानोंमें जा कर वे लोगोंको धर्मोपदेश देने लगे। बहुतेरे उनके शिष्य हो गये। स्वामीजी विना परीक्षा किये किसीको भी शिष्य नहीं बनाते थे। शेयापुरमें आकावाई नामक एक विधवाने स्वामीजीके साथ धर्मकी आलोचनामें दिन वितानेकी इच्छा प्रकट की। उसके धर्मभावकी परीक्षा करनेके लिये स्वामी जी उसके घर घुसे और द्रव्यादि नष्ट करने लगे। यह देख कर आकावाई सिर्फ हंसने लगी। अनंतर स्वामीजीने आकावाईसे कहा, 'यदि तुम धर्मपथका अवलम्बन करना चाहती हो, तो तुम्हारे पास जो कुछ है उन्हें उपयुक्त पात्रको दान कर दो।' आकावाईने वैसा ही किया। पीछे स्वामीजीने उसे भीख मांगनेको कहा। आकावाई वड़े आनन्दसे स्वामीजीकी आज्ञाका पालन करने लगी। इसके बाद कावाड नामक स्थानमें वेनूवाईने स्वामीजीसे प्रार्थना की, कि आप मुझे भी अपने साथ रहनेकी अनुमति दीजिये। उस समय उसकी उमर थोड़ी थी। इस कारण स्वामीजीने उसे घरमें रह कर धर्मसाधना करने कहा, किन्तु घरके लोगोंके अत्याचारसे उसे स्वामीजीके निकट जाना ही पड़ा। स्वामीजीके साथ धर्मालाप करके वेनूवाईका अन्तःकरण धीरे धीरे उन्नत होने लगा। वह भजन और कीर्त्तन करने लगी। उसका कीर्त्तन सुन कर लोग मोहित हो जाते थे।

इस समय रामदास स्वामीने 'दासबोध' नामक एक ग्रन्थ लिखना आरम्भ कर दिया। कहते हैं, कि स्वामीजी जो मुखसे कहते थे, उनके शिष्य कल्याणस्वामी उसे लिखते जाते थे। शिवाजीका ध्यान जब राजकार्यकी ओरसे हट गया, तब उन्हें उलझानेके लिये ही यह ग्रंथ रचा गया था। इसके सिवा उन्होंने 'मनाचे श्लोक' अर्थात् मनके प्रति उपदेश, 'श्लोकबद्ध रामायण' अर्थात् श्लोकवर्णित रामायण, गुरुगीता, आत्माराम और पञ्चीकरण भी लिखे थे। राजा शिवाजी प्रतिदिन बड़े गौरवसे 'दासबोध' पढ़ा करते थे। मराठीभाषामें ग्रंथ प्रकाशित करना उस समयके पण्डितोंकी इच्छाके विरुद्ध था। गङ्गा पण्डित राजवाड़ामें पुराण पढ़ते थे। उन्होंने राजाको 'दासबोध' पढ़नेसे मना किया। किंतु राजाके नहीं सुनने पर उन्होंने पुराण पढ़ना बंद कर दिया। वामन नामक एक दूसरे विख्यात पण्डित भी मराठीभाषाके प्रति वीतराग थे। किंतु रामदास स्वामीने उन्हें समझाया, कि संस्कृत जाननेवाले व्यक्ति बहुत ही थोड़े हैं, इस कारण भाषामें लिखित पुस्तक प्रकाशित करके जनसाधारणका उपकार करना उचित है। इस पर वामन पण्डितका मत पलटा। उन्होंने निगमसार आदि ग्रंथ भाषामें प्रकाशित किया।

अनन्तर रामदास स्वामी आलन्दी आदि स्थानोंमें भ्रमण करते हुए चापड पहुंचे। कहते हैं, कि यहांका श्रीरामचन्द्रका मन्दिर उन्होंने अपने हाथसे बनाया था। इनके शिष्य पत्थर लाते और आप जोड़ते जाते थे। क्रमशः रामनवमी पहुंची। इस उपलक्षमें यहां भारी उत्सव हुआ था। उत्सवके बाद स्वामीजी नाना स्थानोंमें पर्यटन करते हुए माहुली पहुंचे। अनंतर वे फिर चापड चले गये।

इस समय भारतवर्षके नाना स्थानोंमें धर्म प्रचार करनेकी इनको इच्छा हुई। इस कारण उन्होंने अपने

शिष्योंसे कहा, कि तुम लोग भिन्न भिन्न स्थानमें जा कर भजन और कीर्त्तन द्वारा लोगोंके मनमें धर्मभाव उद्दीपन करो। उन्होंने शिष्योंसे यह भी कहा था "तुम लोग दिनको भीख मांगना और उसीसे अन्नसंस्थान करना। कभी भी कुछ सञ्चय न करना। जिस दिन जो मिले उस दिन उसीसे काम चलाना। रात्रिमें रामगुण गान और भजन करना। इस प्रकार सारा वर्ष बिता कर रामनवमीसे पहले लौट आना।" रामदासस्वामीके आज्ञानुसार उनके शिष्य धर्मप्रचार करने चल दिये।

इधर रामदास स्वामी पण्ढरपुर आये। रास्तेमें जहां ठहरे थे वहां इन्होंने भजन और कीर्त्तन द्वारा लोगोंके मनमें धर्मभावका उद्दीपन कर दिया था। आखिर पण्ढरपुर आ कर वे पवित्र स्थानोंका दर्शन करने लगे। राजा भी उनका अनुसन्धान करते करते यहां तक पहुंचे। जहां जहां उनके शिष्य गये थे वहां वहां स्वामीजी उनसे मिलने लगे। एक जगह उन्होंने देखा कि तुकाराम बाबाने कीर्त्तन आरम्भ कर दिया है। स्वामीजी बड़े आनन्दसे सुनने लगे। कीर्त्तन समाप्त होने पर उन्होंने श्रोताओंको सम्बोधन कर कहा, 'भाइयो! अत्यन्त भोजनका फल अत्यन्त खराब है। अतिरिक्त जो कुछ भोजन किया जायगा उसे पेटमें रहनेका स्थान नहीं मिलेगा। उल्टी हो कर वह बाहर निकल आयेगा। किन्तु हरिनामामृत पान करनेसे किसी भी रोगकी आशङ्का नहीं। जितना ही पान करोगे, उतना ही और पान करनेकी इच्छा होगी। मन उतना ही आनन्दसागरमें गोता खाता जायेगा। इस अमृतमें किसीको भी अरुचि नहीं होती। यह अमृत अधिक परिमाणमें पान करनेसे अनिष्ट होनेकी बात तो दूर रहे और भी कितने मङ्गल होते हैं। अतएव भाइयो! मनको साफ कर हरिनामामृत पान करो। दूसरे दिन रामदास स्वामीने कीर्त्तन किया।

इसके बाद स्वामीजी पण्ढरपुरका परित्याग कर चाफल लौटे। यहां पर उनके शिष्य जो धर्मप्रचार करनेके लिये भिन्न भिन्न स्थानमें गये थे उनसे आ मिले। उन सबोंको ले कर स्वामीजीने बड़े आनन्दसे राम नवमीका उत्सव मनाया। अनन्तर वे नाना स्थानोंमें भ्रमण कर संकीर्त्तनादि द्वारा धर्मप्रचार करने लगे।

रामदास स्वामीके जो हमेशा दर्शन नहीं होते थे इस कारण शिवाजी बड़े दुःखित रहते थे। उनकी इच्छा हुई कि राजधानीके पास हो किसी स्थानमें स्वामी जी रहें। परेली पर्वतस्थित देवमन्दिरमें उनका वास स्थान स्थिर हुआ। १५७२ शक (१६५० ई०)-से स्वामी जी यहां रहने लगे। तभीसे यह स्थान सज्जनगढ़ नाम से मशहूर हुआ।

कुछ समय बाद रामदासकी माताका अन्तिम समय पहुंचा। यह सुन कर स्वामीजी जम्बूग्राम आ कर उनसे मिले। माताकी मृत्युके बाद वे परेलीमें लौट कर ध्यान धारण और रामगुणकीर्त्तनमें दिन व्यतीत करने लगे। एक दिन वे भीखकी झोली कंधे पर रख भीख मांगते मांगते राजभवन पहुंचे। राजाको एक सिपाहीने खबर दी कि स्वामीजी भिक्षाके लिये आये हैं। यह सुनते ही राजाने एक कागजके टुकड़े पर "समूचा राज्य रामदास स्वामीको अर्पण किया", लिख कर सिपाहीसे कहा, कि इसे स्वामीजीकी झोलीमें डाल देना। सिपाहीने वैसा ही किया। स्वामीजीने वह कागज पढ़ कर राजाको बुलाया और कहा कि, 'तपस्या करना ब्राह्मणका तथा राज्यभारग्रहण और प्रजापालन करना क्षत्रियका कार्य है। अतएव भिक्षावृत्ति अवलम्बन करना उन्हें उचित नहीं। फिर जब आपने मुझे राज्य दान कर दिया तब मेरे प्रतिनिधिस्वरूप हो कर आप राज्यशासन करें।' राजा स्वामीकी आज्ञा टाल न सके और उनकी पादुका ले कर उन्हींके नाम पर राज्य शासन करने लगे। संन्यासीके राज्य देनेके कारण राजपताकादि गैरिकवर्णमें रंगाई गई। उसी समयसे मराठोंके मध्य गैरिक पताका प्रचलित हुई।

कुछ समय बाद राजाने मन ही मन विचारा कि रामदास स्वामी तो राजधानीमें रहे नहीं, इसलिये तुकाराम बाबाको लाना चाहिये। यह स्थिर करके उन्होंने एक कार्यदक्षके हाथ उनके पास निमन्त्रणपत्र भेजा। उन्हें लानेके लिये अश्वादि भी भेजी गयी। तुकारामने निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया और राजाको पत्रका उत्तर दिया। पत्रमें निमन्त्रण ग्रहण नहीं करनेका कारण दिखलाया था और राजाको कुछ सदुप-

देश भी दिये थे। राजाने उपदेश वाक्य पढ कर अत्यंत आनन्दलाभ किया था। उनका मन तुकारामके प्रति ऐसा आकृष्ट हुआ, कि वे लोहागाता नामक ग्राममें उनसे जा कर मिले।

१६०२ शक (१६८० ई०) मे शिवाजी ज्वराक्रांत हुए। रोग धीरे धीरे बढ़ने लगा। उनके जीवनकी कुछ भी आशा न रही। इसी समय रामदास स्वामी वहां गये और धर्मकथा सुनाने लगे। इसी शकाब्दक चैत्र-मासमें शिवाजीने भवलीला संवरण की। पीछे उनके लड़के शम्भाजी पितृसिंहासन पर बैठे। रामदास स्वामीने सुना, कि शम्भाजीका स्वभाव उद्धत और उनका चरित्र अच्छा नहीं है। इसलिये अविवेकी राजाको कुछ उपदेश देना उचित समझ कर स्वामीजीने एक सदुपदेश-पूर्ण पत्र उनके पास लिख भेजा। पत्रके उत्तरमें उन्होंने कहा था, कि यह अमूल्य उपदेश पा कर वे कृतार्थ हुए हैं तथा उन्हींके अनुसार वे कार्य करनेकी चेष्टा करेंगे।

कुछ समय बाद रामदास पीड़ित हुए। धीरे धीरे अन्न जलका त्याग कर देवताके सामने पड रहे। शिष्य-गण उनकी अवस्था देख कर रोने लगे। स्वामीजीने उन्हें सान्त्वना देते हुए कहा, 'व्यर्थ रोते हो, किसने कहा, मेरी मृत्यु होगी, मैं जीवित रहूंगा, केवल स्थूल शरीर बदल जायगा।' यह सुन शिष्यगण बोले, 'अभी जिस प्रकार आपके दर्शन और उपदेशग्रहण कर हम लोग तृप्त होते हैं, उस प्रकार शरीर परिवर्त्तन पर तो नहीं हो सकते।' इस पर रामदासने कहा 'मेरे लिखे दासबोध और आत्माराम ग्रन्थ पढनेसे तुम लोग मानो मेरे ही दर्शन लाभ करोगे।' इस समय रामदास स्वामीके पादुका स्थापन करनेकी बात उठी। स्वामीजीको आशङ्का हुई, कि कहीं वे लोग श्रीरामचन्द्रको भूल कर मेरी ही पूजा करने न लग जाँय। इस डरसे उन्होंने शिष्योंसे कहा, कि एक गह्वरमें उनकी खडाऊं रख कर उसके ऊपर श्री-रामचन्द्रका मन्दिर बनवा देना। शिष्योंने इसे स्वीकार कर लिया। पीछे भजन और कीर्त्तन होने लगा। स्वामीजी बड़े आनन्दसे सुनने लगे और आपने भी कुछ अभङ्ग गाये।

कहते हैं, कि कुछ अभङ्ग गाये जानेके बाद श्रीरामचन्द्रने घनश्याम मूर्त्तिमें रामदास स्वामीके सामने आ कर उन्हें आशीर्वाद किया तथा स्वामीजी उनका सारूप्य लाभ कर 'जय जय रघुवीर समर्थ' कहते हुए स्वर्गधाम-को सिधारे। १६०३ (१६८२ ई०) के माघमासमें स्वामी-जीका देहान्त हुआ था।

राजा शम्भाजी यह सवाद पा कर बड़े दुःखित हुए थे। उन्होंने स्वामीके आदेशानुसार परेलीमें एक श्री-रामचन्द्रका मन्दिर बनवाया और उसके नीचे रामदासकी खडाऊं रखीं। प्रतिवर्ष यहां रामदास स्वामीके स्मर-णार्थ मेला लगता है।

सन्यासियोंके मध्य रामदास स्वामीमें एक विशेष भाव देखा जाता है। यों तो कितने महापुरुष ऐसे हैं जो ईश्वरके ध्यानमें जीवन बिताते हैं और लोगोंको ओर नजर नहीं उठाते। वैसे महापुरुषका पवित्र भाव हृद-यङ्गम कर मनुष्य उन्नत तो हो सकते हैं पर वे (संन्यासी) जो मनुष्यका संसर्ग नहीं करते उनके घर पर क्षणकाल भी नहीं ठहरते, इससे सभी उन्हें देख नहीं पाते। अतएव उनसे जनसाधारणका उपकार नहीं हो सकता। रामदास वैसे नहीं थे। वे अपनी आध्यात्मिक उन्नतिके लिये जैसे मन ही मन निर्जन वनमें अथवा पर्वत के ऊपर रह कर ईश्वरके ध्यानमें जीवन बिताते थे, जन-साधारणके लिये उनका वैसा ही यत्न भी था। वे एक-देशदर्शी नहीं थे। वे जिस प्रकार सामान्य व्यक्तिको उपदेश देते थे उसी प्रकार राजा शिवाजीको भी उद्बोधित किया करते थे। प्राचीन कालके ऋषियों की तरह उनका आचरण था। वे लोग जिस प्रकार कभी कभी नगरमें आ कर राजाओंको नाना प्रकारका उपदेश दे जाते थे, रामदास स्वामी भी उसी प्रकार सातारा आ कर शिवाजीको, क्या राजनैतिक क्या धर्मसम्बंधीय सभी प्रकारका उपदेश प्रदान करते थे। क्योंकि वे जानते थे, कि राजाके कर्त्तव्यपरायण होनेसे प्रजाका मङ्गल होता है। राजाकी उन्नतिके लिये वे यहां तक यत्नवान् थे, कि उनके लिये उन्होंने 'दास-बोध' नामक एक सदुपदेश पूर्ण ग्रंथ भी लिख डाला था।

हम लोग देखते हैं, कि पार्थिव पदार्थोंको तुच्छ जान

कर बहुतेरे महापुरुष स्वमहान हो जाते। परन्तु राम दास स्वामीका भाव वैसा नहीं था। परोपकारसाधन उनके जीवनका व्रत था। इसके लिये व स्वयं शारीरिक परिश्रम किया करते थे। उनके यत्नसे विभिन्न स्थानों में श्रीरामचन्द्रके मन्दिर प्रतिष्ठित हुए थे।

रामदीन त्रिपाठी—एक भाषा-कवि। ये विक्रमापुर जिला कानपुरके रहनेवाले थे और कवि भक्तिरामके संश्रय थे। चरखारीके राजा रतनसिंहके यहां ये प्रायः रहते थे। एक बार राजा रतनसिंहकी सभामें ये बैठे थे, उस समय और भी आमीरदार सरदार कवि आदि दरबारमें उपस्थित थे। स्वयं राजा रतनसिंह भी दरबारमें इन्होंने अपनी ओर राजाको विरक्ति देख कर कहा,—

"जा वाको कुमयाल व हृदयमाहि न्याहह।
परिपावी छूटे नहीं महराजा रतनेश॥"

रामदुर्ग—१ बम्बइप्रदेशके दक्षिण महाराष्ट्र भूभागकी पोलिटिकल एजेन्सी द्वारा परिचालित एक देशी सामन्त राज्य। इसके उत्तरमें कोल्हापुर राज्यका थोरगल उपविभाग, दक्षिणमें धारवाड़ जिलेका नरगुएड, पूरबमें बीजापुर जिलेका बदामी तालुक और पश्चिममें धारवाड़ जिलेका नवलगुएड तालुक है। इसमें दो शहर और ३७ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ४० हजारके करीब है। यहांकी मिट्टी काली और उर्वरा है। धान, गेहूं, जौ, चना, जुआर यहांकी प्रधान उपज है। मालप्रभा नदी इस राज्यके मध्य हो कर बहती है जिससे खेतीबारीमें बड़ी सुविधा हो गई है। यहां एक प्रकारका मोटा सूती कपड़ा तैयार होता है।

कर्णाटकके दुर्गोंकी तरह यह भी एक दुर्भेद्य दुर्ग समझा जाता है। महाराष्ट्र-अभ्युत्थानके आरम्भमें ही यह दुर्ग मराठोंके हाथ लगा। पीछे पेशवाओंने इसे वर्तमान दुर्गाधिकारीके किसी पूर्वपुरुषके हाथ सौंप दिया। १७५३ ई०में राजस्वके परिमाणानुसार यहांके सरदार महाराष्ट्र-सरकारको ३१० घुड़सवार सहायतार्थ मदद करने के लिये बाध्य थे। १७७८ ई० तक ये इसी प्रकार मदद देते आये। पीछे हैदर अलीने दुर्गको अधिकार किया। १७८४ ई०में टीपू सुलतानने पूर्व नियमको भङ्ग कर साहाय्यकारी सैन्यसंख्या बढ़ा देने कहा। किन्तु दुर्गाधिकारीने नहीं माना। इस पर गोलावर्षण द्वारा उसने दुर्गको फतह किया और ७ मास अवरोधके बाद नवगएड दुर्गके अधिपति वेङ्कटरावको कैद कर लाया। १७९० ई०में श्रीरङ्गपत्तनके अधःपतनके बाद वेङ्कटरावने मुक्ति लाभ किया और पेशवा द्वारा दुर्गका अधिकार पाया। अनन्तर रामराव ९६००० रु० आयकी जमीदारी दे कर रामदुर्गके अधिकारी हुए।

१८१० ई०में पेशवाने वेङ्कटराव और नारायण राव नामक रामरावके दो पुत्रोंके बीच इस सम्पत्तिका नया बंदोबस्त कर दिया। १८१८ ई० में पेशवा शक्तिका जब बिलकुल ह्रास हुआ तब एक दूसरे उपायसे उनका अधिकार अक्षुण्ण रखा गया था। १८८१-८२ ई०में यहांके ब्राह्मण जातीय सरदार-पुत्र नाबालिग थे, इस कारण शासनकार्य अङ्गरेजोंके हाथ रहा। वर्त्तमान सरदारका नाम है मेहरवान रामराव वेङ्कटराव या रावसाहब भावे। ये दाक्षिणात्यविभागमें एक प्रथम श्रेणीके सरदार समझे जाते हैं। इनका राजस्व दो लाख रुपया है। सैन्य-संख्या ५० है। सरदारको गोद लेनेका अधिकार है। राज्यमें २ म्युनिस्पलिटी, १७ स्कूल और दो अस्पताल हैं।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० १५ ५´ उ० तथा द्राघि० ७५ २ पू०के मध्य अवस्थित है। जन संख्या दस हजारके करीब है। कहते हैं, कि यहांका रामदुर्ग और नरगुएड दुर्ग शिवाजी द्वारा बनाया गया है। शहरमें एक प्रकारका मोटा कपड़ा तय्यार होता है। यहां एक अस्पताल भी है।

रामदुलाल राय (दीवान) एक साधकभक्त। त्रिपुराके अन्तर्गत कालीकच्छ ग्राममें १७८५ ई०को इनका जन्म हुआ था। इनकी कुलोपाधि नन्दी थी। कुछ दिन तक ये नोआखालीके कलक्टर हेलिडे साहबके सिरेस्तेदार थे। पीछे त्रिपुरा महाराजके दीवान हुए। इनके रचे साधना सङ्गीतोंमें विषाद, विराग और भक्तिका पूर्ण आभास है।

रामदुलाल सरकार—कलकत्तावासी एक धनी व्यक्ति। कलकत्तेके उत्तर पूर्व दमदमाके निकटवर्ती रेकजानी ग्राम

में इनका जन्म हुआ था। ये दे वंशीय कायस्थ थे। इनके पिता वलराम सरकार वहांकी ग्राम्य पाठशालाके शिक्षक थे।

१७५१-५२ ई०में वर्गी उपद्रवसे उन्यक्त हो कर वल राम वासभूमिका परित्याग कर स्त्री समेत भागे। उस समय स्त्री गर्भवती थी। राहकी थकावटसे उसे प्रसव वेदना उपस्थित हुई। कालवशतः निर्जन मैदानमें वृक्षके नीचे रामदुलालका जन्म हुआ।

रामदुलाल वचपनमें ही पितृमातृहीन हुए। उनकी मातामही वालकका लालन पालन करने लगी। एक समय उनकी मातामहीको कभी भीख मांग कर, कभी उपवास कर और कभी दासीका काम कर जीवन धारण करना पड़ा था। अन्तमें वह कलकत्ता निमतल्ला वासी विख्यात वणिक् मदनमोहन दत्तके घर पाचिका-का काम करने लगी। धनीके अतुल ऐश्वर्यके मध्य पाचिकाके साथ उसके दौहित्र रामदुलालको भी आश्रय मिला। इतने दिनोंके वाद भगवान्‌की कृपासे उनका अन्नकष्ट दूर हुआ।

मदनवावूने अपने पुत्रोंके साथ वालक रामदुलालको-भी शिक्षाका वन्दोवस्त कर दिया। पढ़ने लिखनेमें रामदुलालका अध्यवसाय देख पिताके निकट लाञ्छित होनेके भयसे मदनवावूके लड़के उनके साथ वुरा व्यव-हार करने लगे। मदनवावूको यह वात मालूम हो गई। वे तभीसे अनाथ वालकको अपने साथ आफिस ले जाते और वहीं शाम तक रखते थे। इस समय इन्हें अङ्गरेजीका थोड़ा थोड़ा ज्ञान हो गया था। आफिस जानेसे इनका भाग्य खुल गया।

आफिस जानेसे इनका सवोंसे परिचय हो गया। लोग इनके व्यवहार पर मुग्ध हो गये। मदनवावूने वेकाम वैठे रहनेके वदले मासिक ५ रु० वेतनके विल-सरकारके पद पर उन्हें नियुक्त किया। पीछे उनके कामसे प्रसन्न हो कर १०) रु० कर दिया गया। इस समय इन्हें एक वार किसी विशेषकार्यके लिये अपने मुनीवकी ओरसे Messrs Tulloh & Co के नीलाम घरमें उपस्थित रहना पड़ा था। इस समय एक जल-मग्न जहाज नीलाम होता था। रामदुलालने विना समझे वूझे उसे १४ हजार रुपयेमें खरीद लिया। उन्हें कुछ भी मालूम नहीं, कि इस कार्यमें लाभ होगा या हानि। लड़कपनीके जोशसे इन्होंने जो यह काम कर डाला उसीसे इनकी भाग्यलक्ष्मी चमक उठी।

जिस समय रामदुलाल नीलाम घरसे निकल रहे थे उसी समय एक अंगरेज आया और उसने जहाज खरी-दनेवालेका नाम जानना चाहा। उसे जहाजका मूल्य तथा उसके भीतरके माल असवावका हाल अच्छी तरह मालूम था। रामदुलालको खरीदार जान कर वह अंगरेज उसके पास गया और उन्हें सामान्य व्यक्ति देख कर सामान्य लाभका लोभ दिखाया। आखिर लाख रुपयेमें साहवने जहाजको खरीद लिया। रामदुलाल कुल रुपया ले कर मदनवावूको देने चले। क्योंकि वे जानते थे, कि पूंजी मुनीवने दी थी इस कारण इसमें जो कुछ लाभ हुआ वह उन्हींका होगा, मेरा नहीं। मालिकके सामने पहुंच कर रामदुलालने थैली आगे रख दी और अपने किये हुए कामके लिये क्षमा मांगने लगे।

मदनवावू रामदुलालकी सरलता, सत्यवत्ता और ज्ञानवत्ता देख कर वड़े आनन्दित हुए और वह लाख रुपयेकी थैली उन्हें ही पुरस्कारमें दे दी। वह रुपया ले कर अमेरिकावासी वणिकोंके एजेण्ट स्वरूप काम चलाने लगे। इसी रुपयेसे इनकी भावी-समृद्धिका सूत्र-पात हुआ। धीरे धीरे इन्होंने एक कर्मगृह (Firm) स्थापन किया वह कर्म पीछे "Messrs Ashutosh Dey Nephew" नामसे प्रसिद्ध हुआ।

अनंतर रामदुलाल News fairlie Fergusson & Co के वेनियन हुए। इस समय इनका भाग्य खूव चमक उठा था। लोग इनका यथेष्ट सम्मान करने लगे। इनकी उदारता और दया अतुलनीय थी। अतुल सम्पत्तिके अधिकारी होते हुए भी इन्होंने कभी अपने प्रभुवंशका अपमान नहीं किया। दुर्गोत्सवके समय जव प्रतिमा विसर्जन करने जाते थे तव निमतल्लेकी दत्तवाडी हो कर ही जाते थे। उतनी दूर तक वे नंगे पांव चलते थे। केवल एक वार नहीं, जीवन भर इन्होंने कृतज्ञता और प्रभुभक्ति दिखलाई थी।

मंद्राजके दुर्भिक्ष पीड़ित लोगोंकी सहायताके लिये

कलकत्तेके टाउनहालमें जो सभा हुई उसमें इन्होंने नगद एक लाख रुपये और हिन्दू-कालेजकी प्रतिष्ठाके समय ३० हजार रुपये दिये थे। ये स्वयं दरिद्र थे दरिद्र मनुष्यके लिये कैसा कष्ट पाते हैं उन्हें अच्छी तरह मालूम था। इस कारण खुले हाथसे ये दरिद्रोंको अन्नदान कर गये हैं। इन्होंने अपने वासभवनमें और बेलगछियाके उद्यानमें अतिथिशालाकी प्रतिष्ठा की थी। इसके सिवाय उनके घर पर दरिद्र, असहाययुक्त कन्याविवाहव्ययक्लिष्ट वा कन्याभार-ग्रस्त व्यक्तिमात्र ही आर्थिक सहायता पाते थे। आफिस में दरिद्रोंको देनेके लिये इन्होंने प्रतिदिन ७० रुपये दान करनेकी व्यवस्था कर दी थी। २ लाख २२ हजार रुपया खर्च कर इन्होंने काशीधाममें तेरह शिवमंदिर बनवाये हैं। ये सब मंदिर आज भी दुलालेश्वर-मंदिर नामसे प्रसिद्ध हैं। इतना बड़ा दानवीर काशीधाममें और कहीं भी नहीं है।

६६ वर्षकी उमरमें ये पक्षाघात रोगसे आक्रान्त हुए। कुछ दिन बाद ही आरोग्य हो गये पर शारीरिक शक्ति का ह्रास हो जानेसे स्वास्थ्य बिलकुल खराब हो गया। आखिर १८२५ ई०की १ली अप्रिलको ये ६७ वर्षकी उमरमें इस लोकसे चल बसे। उनके दो लड़के आशु बाबू और प्रमथनाथने पांच लाख रुपया खर्च कर पितृ श्राद्ध किया। पिताके जैसे दोनों भाई दानशील थे, इस कारण उन्हें 'बाबू'-की उपाधि मिली थी। रामदुलालके दो पत्नी थीं बड़ीके कोई सन्तान न थी, छोटीके गर्भसे उपरोक्त दो पुत्र और पांच कन्याने जन्मग्रहण किया था। आशुतोष सङ्गीतज्ञ और सितार बजानेमें बड़े निपुण थे। मृत्युकालमें रामदुलाल १ करोड़ २३ लाख रुपये छोड़ गये थे।

रामदूत (सं० पु०) रामस्य दूतः। हनुमानजी।

रामदूती (सं० स्त्री०) रामस्य दूतीव विष्णुप्रियत्वात्। १ तुलसीविशेष, एक प्रकारकी तुलसी। पर्याय— पर्णेपुष्पी, त्रिदन्त्या, नागदन्तिका, काकजंघी, सूक्ष्मपर्णी, मयास्याहा, फणिमञ्जरी। २ नागदन्ती, नागदौना। ३ नागपुष्पी।

रामदेव (सं० पु०) १ रामचन्द्र। २ एक सम्प्रदाय जो राजपूतानेमें प्रचलित है और जिसके अधिकांश अनुयायी चमार आदि अस्पृश्य जातियोंके लोग हैं।

रामदेव—१ धाराधिपति भोजदेवके सभापण्डित। भोज प्रबन्धमें इनका परिचय है। २ गुजरातके शङ्कर-सम्प्रदायके १८वें आचार्य। ३ तत्त्वदीपिकाके प्रणेता। ये शम्भूके पुत्र और दामोदर दीक्षितके शिष्य थे। ४ योग वाशिष्ठके टीकाकार।

रामदेव चिरञ्जीव—काव्यविलास माधवचम्पू, विद्वन्मोद तरङ्गिणी, वृत्तरत्नावली और शृङ्गारतटिनी आदि ग्रन्थोंके प्रणेता। ये राघवेन्द्रके पुत्र और काशीनाथके पौत्र थे।

रामदेव न्यायालङ्कार—रामगुणाकरके रचयिता।

रामदेव मिश्र—१ तत्त्वकौमुदी नामकी वासवदत्ताकी टीकाके रचयिता। २ एक वैयाकरण। माधवीयधातु वृत्तिमें इनका उल्लेख है।

रामदेव राय—विजयनगरके एक राजा। इन्होंने अपने भाई वेंकटपति तथा वेंकटाद्रि और तिरुमल नामक दो सामन्तोंके साहाय्यसे नाना स्थानोंको जीता और गोल कुण्डापतिको पराजित किया था।

रामदेव वीर—विजयनगरके एक राजा। इन्होंने १३०२ से १३०६ ई० तक राज्य किया था।

रामद्वादशी (सं० स्त्री०) ज्येष्ठ मासकी शुक्ला द्वादशी तिथि।

रामधनुष् (सं० पु०) इन्द्रधनुष।

रामधर (सं० पु०) वासवदत्ता वर्णित एक नायक।

रामधाम (सं० पु०) साकेत लोक जहां भगवान् नित्य रामरूपमें विराजमान माने जाते हैं।

रामनगर—१ अयोध्याप्रदेशके बाराबांकी जिलेका एक परगना। भूपरिमाण ११२ वर्गमील है। यहांके प्रधान जमींदार रैकवारवंशीय राजपूत हैं। उक्त वंशमें राजा सर्वजित् सिंह (१८८४-८६) एक गुणग्राही व्यक्ति हो गए हैं। यहांसे बहरमघाट तक जो पक्की सड़क चली गई है उससे वाणिज्य व्यवसायमें बहुत सुभीता है।

२ उक्त जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २७ ५´ उ० तथा देशा० ८१ २६ पू०के मध्य अवस्थित है। पहले यहां तहसीली कचहरी था, पीछे फतपुर उठ कर चली गई है।

रामनगर—१ मध्यप्रदेशके रेवाराज्यकी एक तहसील। यह अक्षा० २३° १२' से २४° २३' उ० तथा देशा० ८०° ३६' से ८२° १६' पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण २७७५ वर्गमील और जनसंख्या २ लाखसे ऊपर है।

२ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २४° १२' उ० तथा देशा० ८१° १२' पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ढाई हजारसे ऊपर है।

रामनगर—मध्यप्रदेशके मण्डला जिलेका एक नगर। यह अक्षा० २२° ३६' उ० तथा देशा० ८०° ३२' पू०के मध्य मण्डला नगरसे ५ कोस पूरब नर्मदा नदीके किनारे अवस्थित है। चौरागढ़ बुन्देलाओंके अधिकृत तथा देवगढ़की गोंड राजशक्ति तथा मुगल-साम्राज्यका प्रभाव देख कर गढ़ा-मण्डलाके राजोंने गढ़ा वा चौरागढ़की अपेक्षा अधिकतर दुर्गम स्थानमें जा कर राजधानी बसानेकी इच्छा की। तदनुसार १६६० ई०में राजा हृदय शा रामनगरमें राजपाट उठा ले गये। यहां ८ पीढ़ी तक राज्य करनेके बाद राजा नरेन्द्र शाने फिरसे मण्डलामें राजधानी स्थापन की।

गोंडराजाओंके समय यह स्थान खूब बढ़ा चढ़ा था। राजा हृदय शाके मन्त्री भगवत् रावके वासभवन और राजप्रासाद तथा अन्यान्य अट्टालिकाओंका ध्वंसावशेष बहुत दूर तक फैला हुआ है। यहांके एक छोटे मन्दिर में संस्कृत भाषामें लिखी हुई शिलालिपि है। उसमें ४१५ सम्वत्से लगायत राजा हृदय शा-के राज्यकाल तक प्रायः १३वीं सदीके गोंडराजवंशके राजाओंके नाम अङ्कित हैं।

रामनगर—युक्तप्रदेशके वाराणसी जिलान्तर्गत चन्दौली तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० २५° १६' उ० तथा देशा० ८३° २' पू० गङ्गाके दाहिने किनारे अवस्थित है। जनसंख्या दश हजारसे ऊपर है। यहां वाराणसी राजाका प्रासाद और प्राचीन दुर्ग है। राजा चैत्‌सिंह द्वारा प्रतिष्ठित एक सुन्दर मन्दिर, पुष्करिणी और तत्संलग्न उद्यान असंस्कृत अवस्थामें पड़ा था। १८८४-८५ ई०में उसका अच्छी तरह संस्कार किया गया। यहां अनाजका अच्छा कारबार चलता है।

रामनगर—पञ्जाबके गुजरांनवाला जिलान्तर्गत वजीराबाद तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० ३२° २०' उ० तथा देशा० ७३° ४८' पू०, चनावके वाएं किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ७ हजारसे ऊपर है। १८वीं सदी के आरम्भमें नूरमहम्मद नामक एक छट्टावंशीय सरदारने इस नगरको बसाया। उस समय इसका नाम रसुलनगर था। मुसलमानी अमलमें इसकी धीरे धीरे उन्नति होती गई। आखिर महाराज रणजित् सिंहने यहांके छट्टा सरदार गुलाम महम्मदको युद्धमें परास्त कर नगर जीत लिया। सिखोंने मुसलमानी नाम उठा कर इसका रामनगर नाम रखा। छट्टावंशके चलतोंके समय यहां बहुतसे सुन्दर सुन्दर महल बनाये गये थे। उनका खंडहर आज भी देखनेमें आता है। द्वितीय सिख-युद्धके समय अंगरेज-सेनापति लार्ड गफने यहां (१८४८ ई०) शेरसिंहके अधीनस्थ सिख-सेनाओं पर आक्रमण किया। प्रतिवर्ष अप्रिल मासमें यहां एक मेला लगता है। १८६७ ई०में म्युनिसपलिटी स्थापित हुई है। शहरमें एक वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और एक सरकारी असपताल है।

रामनगर—बङ्गालके २४ परगना जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव।

रामनगर—चम्पारन जिलेके अन्तर्गत एक बड़ा गांव। यह अक्षा० २७° ९' उ० तथा देशा० ८४° २२' पू०के मध्य अवस्थित है। रामनगरके राजाका प्रासाद होनेके कारण नगरको दिनों दिन उन्नति देखी जाती है। इस राजवंशके प्रति प्रसन्न हो कर १६७६ ई०में मुगल बादशाह औरङ्गजेबने राजाको उपाधि दी थी। १८६० ई०में वृटिश-सरकारने भी उसे मंजूर किया था। जङ्गल-भाग ही राजाकी सम्पत्ति है।

रामनगर—युक्तप्रदेशके बरेली जिलान्तर्गत औनला तहसीलका एक ग्राम। यह अक्षा० २८° २२' उ० तथा देशा० ७९° ८' पू० औनलासे ८ मील उत्तरमें अवस्थित है। इसके आस पासमें बहुतसे प्राचीन निदर्शन पड़े हुए हैं।

रामदुर्ग—मान्द्राजप्रदेशके बेलरी जिलान्तर्गत सन्दूरराज्य का एक शैलावास। यह अक्षा० १५° ६' उ० तथा ७६° ३०' पू०के मध्य विस्तृत है। १८४६ ई०में मान्द्राज

गवर्मेण्टमें समुद्रके सरदारसे यह स्थान पा कर यहां रोगग्रस्त सेनादलके रहनेका आवासस्थान बनाया। रामदुर्ग पर्वतको अधित्यकाभूमि पर यह अवस्थित है। समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊंचाई प्रायः ३१५० फुट है।

रामनतुआ (हिं० पु०) १ घोंघा । २ कछुआ, ओंडो।

रामनवमी (सं० स्त्री०) रामस्य जन्मतिथिरूपा नवमी, मध्यपदलोपी कर्मधारयः। चैत्रमासकी शुक्ला नवमी तिथि। चैत्र पदसे चान्द्र चैत्र समझना होगा। चान्द्रचैत्र की शुक्ला नवमी तिथिमें रामचन्द्रका जन्म हुआ था, इसी कारण इस तिथिको रामनवमी कहते हैं। इस नवमी तिथिमें यदि पुनर्वसु नक्षत्रका योग हो तो वह तिथि अत्यन्त पुण्यजनक होती है। यह तिथि कामीफलदायिनी है। अतएव इस तिथिमें भक्तिपूर्वक रामकी पूजा करनी चाहिये। नवमी अष्टमीविद्धा होनेसे वर्जनीया है। नवमी तिथिमें उपवास करके दशमीमें पारण करना होता है। (तिथितत्त्व)

यह नवमी अष्टमीविद्धा होनेसे निन्दनीया है। इस अष्टमीविद्धा नवमीमें यदि पुनर्वसु नक्षत्रका योग हो, तो भी यह दिन वर्जनीय है, नक्षत्रका अति आदर होने पर वह निन्दनीय है। यह विधान वैष्णवोंके लिये जानना होगा।

अवैष्णवोंके लिये अष्टमीविद्धा होनेसे उसमें उपवास आदि होगा। नक्षत्रयोग या अयोगमें कोई हानि नहीं होगी।

"सर्वैरव सप्तम्यरः शुद्धाया न विद्धायां, अतएव अष्टमीविद्धा नवमी सनक्षत्रापि नोपोष्या। यदा तु परदिने मुहूर्त्तदर्श दशमी पारणयोग्या तदा दशमीयुक्ता नवम्यु पोष्या। अवैष्णवैस्तु अष्टमीविद्धैव ग्राह्या, यदा तु पूर्व दिने अष्टमीविद्धा नवमी परतो दशमीयुता नवमी परा दशोदिने च न पारणयोग्या दशमी तदा नक्षत्रयोगायोगे उभयस्मीविद्धैव ग्राह्या, परदिने दशम्यामेव पारणम्।" (तिथितत्त्व)

यदि पूर्वदिन अष्टमीविद्धा नवमी तथा दूसरे दिन दशमीयुक्ता नवमी और एकादशीके दिन पारणयोग्य दशमी न रहे, तो अष्टमीयुक्त नवमीमें व्रत उपवास आदि होंगे। पुराणके मतसे जो व्यक्ति श्रीरामनवमीके दिन उपवास और व्रतादि नहीं करते हैं उन्हें कुम्भीपाक नरकमें जाना होता है। इस कारण बाल, वृद्ध और आतुरको छोड़ कर इस व्रत सबोंको करना चाहिये।

"प्राप्ते श्रीरामनवमीदिने मर्त्यो विमूढधीः।
उपोषणं न कुरुते कुम्भीपाकेषु पच्यते ॥
यस्तु रामनवम्यान्तु भुङ्क्ते मोहविमूढधीः।
कुम्भीपाकेषु घोरेषु पच्यते नात्र संशयः॥" (तिथितत्त्व)

श्रीरामनवमीके दिन शालग्राम शिलापर तुलसी पत्र द्वारा रामचन्द्रकी पूजा करनेसे कोटिगुण फल प्राप्त होता है।

"शालग्रामशिलायाञ्च तुलसी दलपूजिता।
पूजा श्रीरामचन्द्रस्य कोटिकोटिगुणाधिका ॥" (तिथितत्त्व)

रामनवमीव्रत (सं० क्लो०) व्रत विशेष। चान्द्रचैत्रकी शुक्लानवमीमें यह व्रत करना होता है। रामनवमीके दिन सवेरे प्रातःकृत्यादि करके पहले स्वस्तिवाचनपूर्वक सङ्कल्प करना होगा। इसके बाद घट या शालग्राम शिलादि पर श्रीरामचन्द्रकी पूजा की जाती है। पूजा विधानानुसार सामान्य अर्घ्य, आसनशुद्धि और गणेशादि देवपूजा करके रामचन्द्रकी पूजा करनी होती है।

इस व्रतके प्रभावसे इस लोकमें सभी प्रकारका सुखसौभाग्य और परलोकमें परमपद प्राप्त होता है।

रामनाथ (सं० पु०) रामचन्द्र।

रामनाथ—कई एक सुपण्डितोंके नाम। १ अद्वैतप्रकाश-सर्वांश आदि ग्रन्थके प्रणेता मुकुन्द मुनिके गुरु। २ कारिकावलीटिप्पण, तर्कस्र महाटिप्पण, न्यायसिद्धान्त मुक्तावलीटिप्पण और मञ्जूषादिटिप्पण नामक ग्रन्थोंके रचयिता। ३ भरतनिबन्धपर्याकी टीकाके प्रणेता। ४ मुक्तावली नामक मेघदूतके टीकाकर्त्ता। ५ चैत्रमहोत्सवकौमुदी और चैत्रविनोदटीकाके रचयिता। ६ रामचन्द्रके प्रणेता। ये रघुनाथ देवके पुत्र थे।

रामनाथ चक्रवर्त्ती—कातन्त्रवृत्तिप्रबोध नामक व्याकरण की टीकाके प्रणेता।

रामनाथ चौबे—बृहच्छब्देन्दुशेखरकी टीका, बृहद्वैयाकरण सिद्धान्तभूषणकी टीका और बृहद्वैयाकरणसिद्धान्त मञ्जूषाकी टीका आदिके रचयिता। इन्होंने मिर्जापुर के प्रसिद्ध चौबेवंशमें जन्म लिया था।

रामनाथ तर्कसिद्धान्त—बंगालके नवद्वीपवासी एक प्रसिद्ध नैयायिक । 'बुनो रामनाथ' नामसे इनकी प्रसिद्धि थी। रामनाथके असाधारण पाण्डित्यका परिचय पा कर दूर दूर देशके छात्र उनके निकट पढ़ने आते थे।

रामनाथ नितान्त दरिद्र और निरावलम्ब थे। उनमें ऐसी शक्ति नहीं, कि वे छात्रोंको खर्च दे कर पढ़ावे। यह बात उन्होंने छात्रोंसे खोल कर कह भी दी थी। परन्तु छात्रगण उनके शिक्षाकौशलसे इस प्रकार मुग्ध हो गये थे, कि वे अपने खर्चसे उनके टोलमें पढ़ने लगे। उस समय नवद्वीपके प्रधान प्रधान अध्यापकमात्र ही राजा कृष्णचन्द्रसे वार्षिक वृत्ति पाते थे। उन्होंने रामनाथसे भी राजाके निकट जाने और वार्षिक वृत्ति लेनेके लिये प्रार्थना करने कहा। भिक्षालब्ध अर्थसे जीविका निर्वाह करना अत्यन्त अपमानजनक समझ इन्होंने कभी किसीसे कोई वस्तु जाँचना न की। नगरके भोगविलासमें कहीं उनका खर्च न बढ़ जाय, इस आशङ्कासे वे नवद्वीपमें बाहर एक झोंपड़ी बना कर रहने लगे थे। उनकी सरला पतिप्राणा सहधर्मिणीको जब तरकारी दाल आदि नहीं मिलती, तब इमलीके पत्तोंको ही सिझा कर भातके साथ स्वामीको खाने देती और आप भी खाती थी। महाराज कृष्णचन्द्र रामनाथका असाधारण पाण्डित्य और सांसारिक असच्छलता मालूम कर एक दिन स्वयं उनकी कुटी पर पधारे। राजाने नैयायिक जीसे प्रार्थना की, कि मैं आपकी वार्षिक वृत्ति स्थिर कर देता हू आप उसे स्वीकार करेंगे। किन्तु रामनाथ वृत्ति लेनेसे इनकार चले गये। आखिर नवद्वीपपतिने रामनाथकी पत्नीसे प्रार्थना की। ब्राह्मणीने उस समय राजासे कहा था, 'बचा! मुझे तो किसी वस्तुका अभाव नहीं। मेरे पहननेका कपड़ा है, घरमें इमलीका पेड़ है। जब मेरे स्वामी हैं तब अभाव किस चीजका?' जब ब्राह्मणीको भी प्रलुब्ध न कर सके तब वे राजाके पास आये और उन्हें बहुत अनुनय विनय करके दान लेनेके लिये बाध्य किया। राजा कृष्णचन्द्रको छोड़ कर रामनाथने और भी कितने राजाओं और महाराजाओंका दान अग्राह्य किया था। वे सरल, विनयी और विद्यानुरागी थे। अहङ्कार तो उन्हें छू तक भी न गया था।

रामनाथ विद्यावाचस्पति—एक विख्यात टीकाकार। इन्होंने अभिज्ञान शाकुन्तलटीका, काव्यप्रकाशरहस्यप्रकाश, स्मृतिरत्नावली, दायभागविवेक या दायरहस्य तथा १६२३ ई०में संस्कारपद्धतिरहस्य नामक भवदेवकृतसंस्कारपद्धतिकी टीका और १६३३ ई०में त्रिकाण्डविवेक नामक अमरकोषकी टीका लिखी। इस शेषोक्त ग्रन्थमें उन्होंने कातन्त्ररहस्य, काव्यरहस्य, लीलावतीरहस्य, शब्दार्थरहस्य, समयरहस्य आदि ग्रन्थ उद्धृत किया था।

रामनाथ सिद्धान्त—षट्चक्रक्रमदीपिका नामक पूर्णानन्दकृत षट्चक्रक्रमकी टीकाके रचयिता।

रामनाथ होयसलाधीश्वर—देवगिरिके एक राजा। १२१३ से १३१० ई० तक इन्होंने राज्य किया था। ये सामवेदभाष्यके प्रणेता भरतस्वामीके प्रतिपालक थे। इनका दूसरा नाम रामचन्द्र था। यादवराजवंश देखो।

रामनाद—मान्द्राजके मदुरा जिलेका एक उपविभाग। इसमें रामनाद और शिवगङ्गा राज्य पड़ते हैं।

रामनाद—१ मान्द्राजप्रदेशके मदुरा जिलान्तर्गत एक भूसम्पत्ति। यह अक्षा० ९°९' से १०° ९' उ० तथा देशा० ७७° ५६' से ७९° १९' पू०के मध्य अवस्थित है। भू-परिमाण २१०४ वर्गमील और जनसंख्या ७ लाखसे ऊपर है। इसके उत्तरमें शिवगङ्गा और तिरुमङ्गलम्, पूर्वमें तञ्जोर और पाकप्रणाली, दक्षिणमें मन्नार उपसागर और पश्चिममें तिन्नेवल्ली जिला है।

यहांके सरदार मरावर जातिके पूज्य और प्रधान हैं। वर्त्तमान पोकलूर ग्राममें उनकी राजधानी थी। १८वीं सदीमें रामनादमें राजधानीके चले आनेसे पोकलूर नगर श्रीहीन हो गया। १८वीं सदीमें सरदारोंने रामनादमें आ कर परिखा, प्राचीर और दुर्गादि द्वारा नगरको सुरक्षित किया। वह प्राचीर मिट्टीका बना है तथा २७ फुट ऊंचा और ५ फुट चौड़ा है। अभी वह प्राचीर टूट फूट गया है तथा खाई भी भर दी गई है। दुर्गके भीतर राजप्रासाद था।

१६५९ ई०में राजा तिरुमलके मरने पर दाक्षिणात्यमें विशृङ्खलता उपस्थित हुई। रामनादके सेतुपति राजगण इस समय बे रोकटोक राज्य करते थे। १८वीं सदीके आरम्भमें यहां कई बार दुर्भिक्ष पड़ा जिससे

राज्य चौपट हो गया। इसके बाद करियारमें राम नाद राज्य छार खार होने पर आ गया। पीछे १७२९ ई०में यह राज्य दो भागोंमें बट गया। प्रकृत उत्तराधिकारिको $\frac{3}{5}$ अंश और एक विद्रोही सन्तानको $\frac{2}{5}$ अंश मिला। सामन्तराजका नाम शिवगङ्गराज था। १७९२ ई०की सन्धिके अनुसार मार्किसके अधीनस्थ पलिगारोंको अङ्गरेजोंके अधिकारमें लानेके लिये अङ्गरेज-सेनापति कर्णेल मार्टिन रामनाद लौटने और राजस्व निर्धारण करने गये। १७९५ ई०में विद्रोही राजाको तख्त परसे उतार उन्हें नजरबन्दीभावमें मान्द्राज भेज दिया गया। १८०३ ई०में अंगरेजोंने उक्त राजाकी बड़ी बहनके हाथ राज्यभार सौंपा। कारागारमें ही सेतुपतिकी मृत्यु हुई थी। १८७३ ई०में रामनादके अन्तिम राजा सिंहासन पर बैठे। उनकी नाबालगी तक राज्य कोर्ट आव वार्ड्सकी देखरेखमें रहा। इस समय कृषिकी उन्नति करनेमें तथा आठ लाख और ऋण चुकानेमें १४ लाख रुपया खर्च हुआ। १८८९ ई०में उन्होंने बालीग हो कर शासनकार्य अपने हाथ लिया। उस समय राज्यकी आय ५ लाखसे ६ लाख रुपये तक हो गई थी। करीब चार लाख रुपया जमा भी था। पांच वर्ष बाद नगद रुपया तो बिलकुल खर्च हो गया, साथ साथ राज्य पर ऋण भी हो गया। वर्त्तमान राजा नाबालिग हैं। दूसरे द्वारा शासनकार्य परिचालित होता है।

२ उक्त जमींदारीकी एक तहसील। जनसंख्या लाखसे ऊपर है। इसमें रामनाद, कीलकराय और रामेश्वरम नामक तीन शहर लगते हैं। यहांकी जमीन उपजाऊ न होनेके कारण कम फसल लगती है।

३ उक्त राज्यका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० ९ २२´ उ० तथा देशा० ७८ ५१ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १०१ हजारके करीब है। रामेश्वर जानेके यात्रियोंके लिये यहां पड़ाव है। यहांके राजाओंकी उपाधि सेतुपति है अर्थात् वे लोग ही रामेश्वर-सेतुबन्धके एकमात्र अधिकारी हैं। १७७२ ई०में अंगरेज निवाबने इस नगरका अधिकार किया था। यहांका दुर्गप्राचीर अभी भग्नदशामें पड़ा है। दुर्गके भीतर राजभवन था।

रामनामव्रत (सं० क्ली०) रामनाम एव व्रतं। रामनामरूप व्रत, सिर्फ रामनाम जप करना।

रामनामी (हिं० पु०) १ वह चादर, दुपट्टा या धोती आदि जिस पर 'राम राम' छपा रहता है और जिसका व्यवहार रामके भक्त लोग इसलिये करते हैं जिसमें रामका नाम हरदम आंखोंके सामने रहे। इसी प्रकार कुछ कपड़ों पर कृष्ण या शिवका नाम भी छपा रहता है। २ गलेमें पहननेका एक प्रकारका हार। यह प्रायः सोने का होता है। इसमें छोटे छोटे कई सिक्के या पान आदि होते हैं जो आपसमें एक दूसरेके साथ जोड़के कर छोटे छोटे टुकड़ों या कड़ियोंसे जड़े होते हैं। इसके बीचमें प्रायः एक पान होता है जिसमें राम शब्द, किसी देवताकी मूर्त्ति अथवा चरणचिह्न अंकित होता है और जो पहनने पर छाती पर लटकता रहता है। इसीसे इसे रामनामी कहते हैं।

रामनारायण (सं० पु०) वैयाकरणभेद।

रामनारायण—१ अनुमितिनिरूपण तत्त्वबोध, तत्त्वानुसन्धानटीका, पञ्चदशीटीका, भगवद्गीताप्रकाशिनी, धर्माधिकौस्तुभलोमाला विधानमीमांसाटीका, सफलवृत्ति, सर्ववेदार्थनिर्णयटीका आदि ग्रन्थके प्रणेता। २ गुढ़चन्द्रोदयकौमुदीके रचयिता। ३ प्रमिताक्षरा नामक मुहूर्त्तचिन्तामणिके टीकाकार।

रामनारायण (राजा)—पटनाके एक हिन्दू शासनकर्त्ता। नवाब अलीवर्दी खाँके जमानेमें १७५३ ई०को राजा जानकीरामकी मृत्यु होने पर नवाबने उनके चार पुत्रोंको खिलअत दे कर समवेदना प्रकट की। उन्होंने इस समय राजा दुर्लभरामको सभापरिषदोंकी श्रेणीमें स्थायी भावसे नियुक्त किया तथा राजा रामनारायणको आजिम बनाया।

बिहारके नायब नाजिम राजा रामनारायण सिराजुद्दौलाके विरुद्ध कभी खड़े नहीं हुए। प्रतिपालक अलीवर्दी खाँका नाम स्मरण कर वे हमेशा नवाबके नामीको अमाद चाहते थे। पलासी युद्धके कुछ पहले सिराज द्वारा भेजे गये फरासी सेनापति ला जब उनसे मिले, तब पटनामें राजपितृव्यकी आज्ञासे मारमारकर लाफाके

साथ सलाह कर मेजर कूटको वहां भेजना चाहा। रामनारायणने विवाद मिटानेके लिये अंगरेजी सेनाके पहुंचनेसे पहले ही फरासी सेनादलको अयोध्या नवावके राज्यमें भेज दिया। रामनारायणके साथ बखेड़ा खड़ा कर उन्हें छल बलसे राज्यच्युत करना ही स्थिर हुआ था। कूटको भी वैसा ही करने कहा गया था। किन्तु रामनारायणने अधीनता स्वीकार कर ली जिससे सब गोलमाल मिट गया।

सिराजके शासनसे तंग आ कर मीरजाफर और राजा दुर्लभरामने आपसमें मेल कर लिया था, परन्तु दोनों ही अपने अपने स्वार्थसाधनमें लगे हुए थे। इस कारण मीरजाफरको जो सिंहासन मिला उससे कोई लाभ न देख कर दुर्लभराम मन्त्रणाजाल फैलाने लगे। एक तो रुपयेका अभाव, दूसरे दुर्लभरामका षड्यन्त्र, इससे कोई आशाप्रद फल न देख मीरजाफर बचावका रास्ता ढूंढ़ने लगे। इसी समय अंगरेजी गुप्तचरके हाथ अलीवर्दी बेगमने जो पत्र रामनारायणके पास भेजा गया था वह संयोगवश मीरजाफरके हाथ लगा। उस पत्रमें अयोध्याके नवावके साथ रामनारायणका एक योग हो कर मीरजाफरको निकाल भगानेका प्रस्ताव था।

वाट्सके कहनेसे मीरजाफर राजा दुर्लभरामके साथ फिरसे मेल कर विहार जानेकी तैयारी करने लगे। राजमहलमें आनेसे आपसका मनमुटाव दूर हो गया और मीरजाफरने पटना जानेका प्रस्ताव किया। क्लाइव भी मौका देख कर पूर्वप्रतिश्रुत रुपयेका दावा कर बैठे। क्लाइवके विशेष आग्रह करने पर मीरजाफर दुर्लभरामको बुलानेके लिये बाध्य हुए। क्लाइवका अनुरोध पत्र पा कर दुर्लभराम दलबलके साथ पहुंचे। अंगरेजोंके प्राप्य २३ लाख और परवर्ती किस्तके १६ लाख रुपयेके लिये उन्हें कहा गया। इस समय कलकत्तेके दक्षिण कम्पनीकी जमींदारीके लिये भी फरमान निकाला गया।

रामनारायणको पदच्युत कर अपने भाई मीरकाजम खांको विहारका नायब-नाजिम बनाना ही मीरजाफरका उद्देश था। किन्तु दुर्लभरामके परामर्शानुसार क्लाइवने नवावको समझाया, कि रामनारायणके पास भी थोड़ी सेना नहीं है, फिर वे अयोध्याके नवावसे भी सहायता पानेके लिये प्राणपणसे चेष्टा कर रहे हैं और यदि मराठोंसे भी सहायता मिल गई, तो आप भारी मुश्किलमें पड़ जायगे और यदि फरासीदल आ पहुंचा, तो अंगरेजी सेनाको आत्मरक्षाके लिये कलकत्ता लौटना पड़ेगा। अतएव इस समय मेरे ख्यालसे आपसमें मेल कर लेना ही अच्छा है। मीरजाफर भी उनकी वात मान ली।

इसके बाद मीरजाफर ससैन्य पटनाको चल दिये। आगेमें दलबलके साथ क्लाइव, बीचमें दश हजार सेनाके साथ राजा दुर्लभराम और सबसे पीछे ४० हजार सेना, इस प्रकार सजधज कर मीरजाफर पटना पहुंचे। रामनारायण पहले ही से आत्मरक्षाके लिये तय्यार था। क्लाइवका मिलनात्मक पत्र पाते ही वे पहले क्लाइव और पीछे वाट्सके साथ आ कर नवावसे मिले। इस समय मराठा द्वारा भेजे गये लोगोंने पटनेमें आ कर २० लाख रुपये बंगालके चौथके लिये दावा किया। नवावका हाथ खाली था, इस कारण वे रामनारायणसे मेल करनेको वाध्य हुए। रामनारायणने नवावके खेमेमें पहुंच कर उचित सम्मान दिखाया था। पटनेमें मीरजाफर खांका दरवार बैठा। मीरन नाम मात्रका नवाव हुए। रामनारायणने डिपटी नवाव पद पर स्थायी रह कर नवावसे बहुमूल्य खिलअत पाई। इस उपलक्षमें बाकी रुपये आदिके लिये उन्हें ७ लाख रुपये देने पड़े थे।

१७५९ ई०में शाहजादा बङ्गाल पर चढ़ाई करनेकी इच्छासे विहारकी सीमा पर आ धमके। उन्होंने फरासी सेनापति ला-को छातपुरसे सहायतार्थ बुलाया। विहारके डिपटी नवाव रामनारायण अभी भारी ऊहापोहमें पड़ गये। नवावी सेना वा अंगरेजी सेना उस समय भी मुर्शिदाबादसे आई नहीं थी। नवावकी जीत होनेसे उनके हकमें अच्छा न होगा, इस आशङ्कासे रामनारायणको शाहजादाके साथ मिलनेका साहस न हुआ। किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो वे पटना-कोठीके अध्यक्ष आमियटसे सलाह लेने गये। वहां यही स्थिर हुआ, कि अङ्गरेजी सेना जब तक लौट न आवे, तब तक शाहजादासे मेल कर रहें, पीछे सेना आने पर जैसा अच्छा समझें वैसा करें। तदनुसार वे शाहजादाके खेमेमें

आ कर उनको यथोचित स्वीकार करना ही चाहते थे, कि शाहजादाकी सेनाने पटनाको घेर लिया। रामनारायण कोई उपाय न देख दरवाजा बंद कर नगरकी रक्षा करने लगे।

इधर सन्धिका प्रस्ताव चलने लगा। बंगालसे सहायतार्थ सेना पहुंच गई। बस अब क्या था, रामनारायणने बड़े उत्साहित हो शाहजादा शाह आलमके साथ युद्ध ठान दिया। शाही सेना युद्धमें वीरता न दिखा सकी। शाहजादा अभी अर्थाभावसे विपन्न थे। सेना भी उन्हें छोड़ भागा जा रही थी। उन्होंने क्लाइवको एक पत्र लिखा कि यदि रामनारायण अभी कुछ रुपये दें, तो मैं यह प्रदेश छोड़ कर चला जा सकता हूं। तदनुसार मीरनको बुला कर पटना भेजा गया और क्लाइव तथा रामनारायणने अमीरोंके साथ एक इकरारनामा ठीक कर लिया। शाहजादाके पास १० हजार रुपये भेजे गये। अनन्तर सब सलाहमत करके १७५९ ई०के जून मासमें क्लाइव कलकत्ता लौटे।

१७६० ई०में शाहआलम् दूसरी बार बङ्गाल पर आक्रमण करनेकी तैयारी करने लगे। जिसकी नवाब रामनारायणको मालूम हुआ कि अङ्गरेजी सेनाके साथ यूरोपीय सेना आ रही है, तब उन्हें कुछ साहस हुआ और आत्मरक्षाके लिये अपनी सेनाकी भी पुष्टि करने लगे। ११वीं जनवरीको यूरोपीयसेनाके शक्तीगढ़में पहुंचने पर नवीन बादशाह पटनाके करीब करीब आ गये। राजा रामनारायण भी बड़ी दक्षतासे कार्य कर रहे थे। वे सभी दलोंको ससैन्य बुला कर और नया सेनादल संग्रह कर पटनाके बाहर युद्धके लिये डट गये। केवल नवाबके आदेशानुसार यूरोपीय सेनाके आगमन तक ठहरे हुए थे। किन्तु छोटी छोटी लड़ाई प्रति दिन चल रही थी। इसीम खाँ रोहिल्लाके अधीन मध्य अग्रगामी यूरोपीय घुड़सवार दल राजाके साथ मिल गया। राजा रामनारायणने ९वीं फरवरीको मसिमपुरके विस्तीर्ण मैदानमें अपनी सेनाको आगे बढ़ानेका हुकुम दिया। घमसान युद्धके बाद रामनारायण परास्त हुए।

शाह आलमके पक्षमें रोशन खाँ और आसालत खाँ मारे गये। जमादार पहलवान सिंह तथा दो एक और पहलेहीसे बादशाहके दलमें मिल गये थे। इसीम खाँ और राजा मुरलीधर कामगार खाँके विरुद्ध युद्ध करके बन्दी हुए। कामगारने बर्छेसे रामनारायणको घायल कर दिया था। युद्धकी शेषावस्थामें कप्तान कनेम आदि कई अङ्गरेज सेनापति जो राजाकी सहायतामें आगे बढ़े थे, युद्धक्षेत्रमें खेत रहे।

युद्ध जयके बाद बादशाहने जितने आदमी मरे थे उन्हें दफन देनेका हुकुम दिया। रामनारायण यद्यपि बुरी तरह घायल हुए थे, तो भी वे नगरकी अच्छी तरह रक्षा करते थे। उन्होंने सन्धिका प्रस्ताव करके राजाके पास दूत भेजा। उन्होंने यह भी कहा कि घायल होनेके कारण वे बादशाहके निकट जानेमें बिलकुल असमर्थ हैं। बादशाही सेना पहले नगरके चारों ओर लूट पाट कर पीछे नगरको लूटने लगा। इस बार पहलेसे नगररक्षाका पूरा प्रबन्ध था जिससे शाही-सेना कुछ न कर सकी। पीछे यूरोपीय सेनादलके साथ युद्धमें शाही सेना परास्त हुई।

नवाब मीरकासिमने बङ्गालकी मसनद पर बैठ कर राजकर्मचारियोंसे अर्थ संग्रह करना शुरू कर दिया था। रामनारायणके अतुल ऐश्वर्यकी बात सुन कर नवाबकी अर्थपिपासा बढ़ गई। वे उनका खजाना अपनानेका उपाय सोचने लगे। बादशाहके चले जाने पर मीरकासिमने रामनारायणसे बिहारप्रदेशका कुल हिसाब मांग भेजा। राजवल्लभने सोचा, कि यदि रामनारायण तख्त परसे उतारे जायें, तो नवाबी-पद उन्हींको मिल सकता है। इस आशासे उन्होंने नवाबकी खुशामद कर के कागजपत्र जांचनेका भार अपने हाथ लिया। फलतः राजा रामनारायण हिसाब देनेमें टालमटोल करने लगे। उधर दो अंगरेज-सभापतिको अपने दलमें लाने की भी उनकी कोशिश थी। क्लाइवके साथ बन्धुत्व स्मरण करके भान्सिटार्टने कर्नल कूटको पटना जाते समय हिसाब किताबके प्रति लक्ष्य रखनेका कह दिया था। दोनों सभापतिने रामनारायणको नवाबके क्रूर जुल्मसे बचानेकी सहायता की थी।

इधर मीरकासिमने अंगरेज-गवर्नरके पास राम-

नारायणकी चुगली खाई कि "रामनारायण सरकारी रुपया बहुत हड़प कर गया है और सरकारी खजाना मनमाना खर्च करता है। अतएव मेरा विचार होता है, कि उससे कुल रुपया चुकाया जाय।" भान्सिटार्टने रुपयेके लोभमें पड़ कर नवाबकी बात पर विश्वास कर लिया। भान्सिटार्ट और उनके मतावलम्बी तीन सदस्य नये नवाबका पक्षसमर्थन करनेमें जैसे अभिलाषी थे उनके प्रतिपक्षदल भी वैसे ही नये नवाबके दोष निकालनेमें लगे थे। दोनों पक्षमें मतभेद हो जानेसे रामनारायण हिसाब न दे सके। अंगरेज सेनापति और नवाबके बीच ईर्षाग्नि दिन पर दिन धधकती ही गई।

शाहआलमके लौटने पर नवाब पटनादुर्गमें बादशाहके नाम खुतबापाठ और मुद्राका प्रचार करेंगे, इस प्रकार सलाह कर उन्होंने अंगरेजसेनापतिसे कहा, कि दुर्गद्वार परसे सिपाही और अंगरेज पहरुओंको अलग कर रहे हैं। कूटने तदनुसार कार्य न कर कहला भेजा, 'ये लोग नवाबकी सेना हैं नवाबकी आज्ञा पालन करनेको हमेशा तय्यार है।' नवाबने इस अपमानजनक अवस्थामें दुर्गमें प्रवेश कर खुतबा पढ़ना वा मुद्राप्रचार करना अच्छा न समझा। रामनारायणकी ओरसे सेनापतिको समझाया गया है, कि नवाबने पटना पर बलपूर्वक अधिकार करनेका सङ्कल्प किया है। नवाबके गहरी रातको कुछ सिपाही ले कर दूसरी जगह चले जानेसे सेनापतिका संदेह और भी मजबूत हो गया। वे बड़ी सावधानीसे नवाबकी गति विधिका पर्यवेक्षण करने लगे। कूटके व्यवहारसे मीर कासिमने अपनेको अपमानित समझा। उन्होंने सेनापतिके दुर्व्यवहार और रामनारायणकी बातको रञ्जित कर भासिटार्टको विचलित कर दिया और यह लिख भेजा, कि रामनारायण विना नवाबकी अनुमतिके सिक्का ढालता और उसका प्रचार करता है। अतएव सूबेदारी पद यदि मुझे मिले, तो मैं रामनारायणको पदच्युत कर उससे हिसाब किताब जल्द ले सकता हूं।

गवर्नर भासिटार्टके आदेशसे पटनाकोठीके अध्यक्ष मगेयरकी देखरेखमें तथा कप्तान कार्येयरकी अधिनायकतामें एक दल अंगरेजी-सेना और रख कर कूट और कर्नाक कलकत्ते आये। अंगरेजी-सेनाके पटनासे जाते ही मीरकासिम कागजपत्रका हिसाब देनेके लिये रामनारायणको तंग करने लगे। हिसाब साफ साफ न दे सकनेके कारण रामनारायण कैद किये गये। पीछे तरह तरहका कष्ट दे उनके घरसे ७ लाख रुपयेकी सम्पत्ति ले ली। आखिर राजाके बंधुबान्धवोंको भी उन्होंने परेशान किया और फिर भी उनसे ७ लाख रुपये वसूल किये। जिन्होंने कुछ भी रामनारायणको मदद पहुंचाई थी उन पर जुल्म किया गया। रामनारायणके मित्र जागीरदार राजा सुन्दरसिंह और दीवान गङ्गाविष्णु, रामनारायणके भाई धीराजनारायण तथा चराध्यक्ष राजा मुरलीधर अशेष यंत्रणा पा कर वन्दिवेशमें मुर्शिदाबाद भेजे गये। पटनेके कोतवाल ईशा खाँ और प्रधान कोठीवाल मनसाराम शाहु तथा सभी धनी नागरिकोंका धनरत्न नवाबके हाथ लगा। हतभाग्य रामनारायण पटनेमें बन्दी हुए और उनका सर्वस्व नवाबने छीन लिया।

उधुआनालाके किनारे जब अंगरेजोंके हाथ मीरकासिम परास्त हुए उसके कुछ दिन पहले १७६३ ई०के अगस्त मासमें नवाबने रामनारायणके गलेमें बालूसे भरा घड़ा बाध कर गङ्गामें डुबा देनेका हुकुम दिया। उसके साथ साथ और भी कितने व्यक्ति नवाबकी कठोर दण्डाज्ञासे यमपुर सिधारे थे।

राजा रामनारायण एक विशेष शिक्षित मनुष्य थे। पारसी भाषामें उनका अच्छा दखल था। उनकी बनाई पारसी और उर्दू कविता आज भी पाई जाती है। कवित्वशक्तिके परिचयस्वरूप उन्होंने 'मौजून' की उपाधि पाई थी।

रामनारायणजीव—एक राजाका नाम।

रामनारायण तर्कपञ्चानन—नवद्वीपके रहनेवाले एक प्रसिद्ध नैयायिक।

रामनारायण तर्करत्न—एक वैदिक ब्राह्मण। कलकत्ताके दक्षिण २४ परगनेके हरिनाभि ग्राममें १७४५ शकको इनका जन्म हुआ था। रामधन शिरोमणि इनके पिता थे। कुछ समय इन्होंने ग्रामस्थ चतुष्पाठीमें संस्कृत पढ़ा। पीछे वे कलकत्तेके संस्कृत कालेजमें भर्त्ती हुए। यहा

पढ़ना समाप्त कर वो वर्द्धमान हो वहां विद्यालयमें शिक्षकका काम करने लगे। १८८५ ई०में इनका देहान्त हुआ।

तर्करत्न महाशयने कालेजमें पढ़ते समय १८५२ ई०में पतिव्रतोपाख्यान तथा विद्यालय छोड़नेके एक वर्ष बाद अर्थात् १८५४ ई०में कुलीनकुलसर्वस्वका रचना की। इसके बाद इन्होंने क्रमशः रत्नावली, वेणीसंहार, शकुन्तला नवनाटक, मालतीमाधव और रुक्मणीहरण नामक छह नाटक बनाए हैं जो आज तक प्रकाशित नहीं हुए हैं।

पतिव्रतोपाख्यान, कुलीनकुलसर्वस्वनाटक और नवनाटक किसी प्राचीन पुस्तकके आधार नहीं लिखे गये हैं, ये सब उनके स्वकपोलकल्पित हैं। प्रथमोक्त प्रबंध और द्वितीय नाटकको रचना कर इन्होंने रङ्गपुरके जमींदारसे पारितोषिक पाया था।

रामनारायण महाचार्य—कारिकावली नामक व्याकरणके प्रणेता तथा कृष्णरामके पुत्र।

रामनारायण शर्मा—सारस्वतप्रक्रियाटीकाके रचयिता।

रामनिधि राय—एक विख्यात कवि। १७४१ ई०में पाण्डुआ के पास चंपाता गांवमें इनका जन्म हुआ। पीछे ये कलकत्तेमें रहने लगे। १८३४ ई०में उनकी मृत्यु हुई। इनके बनाये संगीत निधुबाबु टप्पा नामसे प्रसिद्ध हैं।

निधिराम गुप्त देखो।

रामनिधि शर्मा—प्रार्थनाशतकके प्रणेता तथा बलराम शर्माके पुत्र।

रामनृपति (सं० पु०) राजभेद।

रामनौमी (हिं० स्त्री०) रामनवमी देखो।

रामपति—सद्वाचारक्रमके रचयिता।

रामपर्दा—बम्बई प्रदेशके सिडेम्सोक च्याकोपार प्रांतके अन्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य।

रामपा—मन्द्राज प्रदेशके गोदावरी जिलेके अन्तर्गत एक पहाड़ी भूभाग। यह अक्षा० १७ १४´ से १७ ४४´ उ० तथा देशा० ८१ ३२ से ८१ ५८´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ८०० वर्गमील है।

यह पहाड़ी प्रदेश गोदावरी नदीके उत्तरी किनारे राजमहेन्द्रीसे १० कोस हटसे ले कर शिलेश नदी तक फैला हुआ है। इस धन्य प्रदेशसे वृटिशसरकारको अभी (१२३८) रु० राजस्व मिलता है। पहले यह स्थान किसी मनसबदारको जागीरमें दिया गया था। उसे शासन कार्य चलानेमें असमर्थ देख प्रजा बागी हो गई। १८५८ ई०से लगायत १८६२ ई० तक विद्रोहीदलने घोर अत्या चार करना आरम्भ कर दिया। अंगरेज-राजने मनसब दारकी सहायताम एक दल सेना भेजी। १८७९ ई०में यहां विद्रोहको पुनः सूचना हुई। १८८० ई०के दिसम्बर मास तक विद्रोहिदल नाना स्थानोंमें अत्याचार करता रहा। आखिर दलपति चेन्द्रियाके मारे जाने पर विद्रोहि-दल तितर बितर हो गया। मनसबदार बन्दी हो कर गोपालपुर भेजा गया। उसकी जागीर अंगरेजोंने जब्त करली।

स्थानीय शैलमालाकी ऊंचाई प्रायः ४ हजार फुट है। सबसे ऊंची चोटी दमकोंडा समुद्रके तटसे ४४७८ फुट ऊंची है। यहां कोया और रेड्डी जातिका वास है। तेलगू और कोइ उनकी भाषा है।

रामपाहली—मध्यप्रदेशके भाण्डारा जिलान्तर्गत एक नगर।

रामपात (हिं० पु०) नीलकी जातिकी एक प्रकारकी झाड़ी। यह आसाम देशमें होती है और इसकी पत्तियों तथा डालसे वहांके लोग रंग बनाते हैं।

रामपाल—पूर्ववङ्गको प्राचीन राजधानी। बल्लालसेन वंशीय राजा बल्लालसेन यहां राज्य करते थे। प्राचीन विक्रमपुर सरकार या वर्त्तमान ढाका जिलेके अन्तर्गत मुन्सीगञ्ज महकमेसे २ कोस पश्चिम अवस्थित है और अक्षा० २३ ३८´ उ० तथा देशा० ९० ३२´ १०´´ पू०के मध्य पड़ता है। अभी यह नगर एक छोटे गांवमें परिणत हो गया है, प्राचीन समृद्धि अब न रही। केवल रामपाल दिग्घी और कुछ विध्वस्त ईंटो की मीनार वस प्राचीन कीर्त्तिको घोषणा कर रहे हैं। उन सब प्राचीन मीनारों से लोग ईंटे ला कर घर बनाते हैं।

वङ्गाधिप बल्लालसेनने रामपालमें राज्य किया था। किन्तु गौड़पति बल्लालसेन और उनके पुत्र लक्ष्मणसेन गौड़नगरमें तथा परवर्त्ती राजगण नदिया राजधानीमें आ कर राज्य करते थे। विस्तृत विवरण बल्लालसेन और सेनराजवंश शब्दमें देखो।

अभी रामपाल और उसके चतुष्पार्श्वस्थित भग्नस्तूप

पुरमें जो सब ध्वंसावशेष पड़े हुए हैं उनमें स्थानीय हिन्दू-राजाओंके कीर्त्तिविषयक कितने प्रमाण मिलते हैं। स्थानीय एक बड़ी मीनार वल्लालसेनका प्रासाद कहलाती है। रामपालनगर और उसके सीमांतवर्त्ती अपरापर ध्वंसराशि खोद कर यदि वहांकी ईंट और दीवार आदि देखी जाय, तो मालूम पड़ेगा कि, एक समय यहां बहुत बड़े बड़े महल थे।

अभी जो सब ध्वस्तप्राय कीर्त्तिराशि स्थानके पूर्व गौरवकी घोषणा करती है उनमें मुसलमान फकीर बाबा आदमकी मसजिद उल्लेखनीय है। यह बादशाह फतेशाह बिन् सुलतान महमूदके जमाने (१४७५ ई०)-में बनाई गई थी। मसजिदमें दो बड़े बड़े पत्थरके खंभे हैं जिन्हें लोग वल्लालसेनकी गदा कहते हैं। उसकी गठन प्रणाली देखनेसे अनुमान होता है, कि वह हिन्दूमन्दिरको तोड़ फोड़ कर बनाई गई है। मसजिद अभी टूटी फूटी अवस्थामें पड़ी है।

बाबा आदमके सम्बन्धमें एक प्रवाद इस प्रकार प्रचलित है। अबदुल्लापुरके निकट कमाई-चन्द्रग्राममें एक मुसलमान रहता था। उसे कोई संतान न होनेके कारण वह हमेशा दुःखित रहा करता था। एक दिन एक फकीर उसके यहां भीख मांगने आया। उसने यह कह कर लौटा दिया, कि अल्लाहने मुझे एक भी सन्तान नहीं दिया है, इसलिये मैं किसीको भिक्षा नहीं देता। अल्लाहकी निन्दा सुन कर फकीरने उसे आशीर्वाद दिया, कि तुम्हें एक पुत्र होगा। जाते समय वह यह भी कह गया था, कि पुत्र होने पर अल्लाहके उद्देशसे एक बैलकी बलि देनी होगी।

कुछ समय बाद उसके एक पुत्र हुआ। जब वह बैलकी बलि देनेको तैयार हुआ, तब गांवके लोगोंने उसे रोका। आखिर गांवके बाहर एक जंगलमें जा कर उसने बलिदान दिया। खानेयोग्य मांस ले कर वह घर लौटा। राहमें आते समय एक चीलने झपट्टा मारा और वह मांस ले कर वल्लालसेनके महलके सामने गिरा दिया। राजा वल्लालको जब कुल हाल मालूम हुआ, तब उन्होंने गोहत्याकारीके पुत्रका वध करनेका हुकुम दिया। मुसलमान पुत्रको ले कर रातोरात भागा और मक्कामें हजरत आदमके सामने आ कर अपना दुखड़ा रोआ।

विधर्मीके अत्याचारसे प्रपीड़ित इसलामधर्मावलम्बियोंकी रक्षाके लिये हजरत आदम ६।७ हजार शिष्य ले कर रामपाल आये। वल्लालसेनके साथ फकीरका घोर युद्ध हुआ। युद्धमें फकीरकी हार हुई। युद्ध आरम्भ होनेके पहले वल्लालने अपने घरके सामने एक अग्निकुण्ड खुदवा कर राजकुलाङ्गनाओंसे कहा था, "मेरे निकटसे यह कबूतर यदि तुम लोगोंके पास आवे, तो जानना कि मैं युद्धमें मारा गया। उस समय तुम सभी अग्निकुण्डमें कूद कर अपने सतीत्वकी रक्षा करना।" वल्लाल फकीरको मार कर ज्यों ही स्नान करनेको पुष्करिणीमें पैठे, त्यों ही उनके कपड़ेमें लपेटा हुआ कबूतर उड़ गया। कबूतरके राजमहलके सामने पहुंचते ही राजपुरकी कुलाङ्गनाओंने अग्निकुण्डमें कूद कर प्राणत्याग किया। घर लौट कर जब वल्लालसेनने देखा, सभी गृहस्थकुलनारियोंने प्राण विसर्जन कर दिये हैं, तब आप भी उसी अग्निकुण्डमें कूद कर भवसागरसे पार उतरे। वही हजरत आदम पीछे बाबा आदम नामसे प्रसिद्ध हुए। उनके मकबरेके ऊपर वर्त्तमान मसजिद खड़ी है। लोग आज भी उस गड्ढेको वल्लालका अग्निकुण्ड बतलाते हैं। इस उपाख्यानके वल्लाल सेनवंशीय गौड़ाधिप वल्लालसे भिन्न हैं।

रामपालदिग्गीको लम्बाई १ मील और चौड़ाई करीब ५०० गज है। सुना जाता है, कि वल्लानसेनके माताके निकट प्रतिश्रुत हो कर यह पुष्करिणी खुदवाई थी। फिर किसीका कहना है, कि उनके मामाके नाम पर इस पुष्करिणीका नामकरण हुआ था। बहुतेरे पालवंशीय किसी राजाके नामानुसार ही इस पुष्करिणीका नामकरण स्वीकार करते हैं। कोदालधोयादिग्गीकी लंबाई सात सौ हाथ और चौड़ाई पांच सौ हाथ है। राजा हरिश्चन्द्रकी दिग्गी प्रायः सूखी रहती है। माघीपूर्णिमाके दिन उस पुष्करिणीमें जल रहता है। रामपालदिग्गीके किनारे अक्षय गजरियावृक्ष है। बहुत दिनोंसे वह वृक्ष एक ही भावमें खड़ा है। हिन्दूलोग उस वृक्षको पुण्यमय अक्षय वटके समान समझते हैं। प्रवाद है, कि एक

फकीरने यूसुफ गुलरजकी अवज्ञा कर उसको एक अङ्ग-कार मारी थी इससे रक्तवमन हो कर उसकी मृत्यु हुई। प्रतिवर्ष चैत्र शुक्लाष्टमीको यहां एक मेला लगता है और लोग पुष्पक मस्थे पूजा करते हैं।

बाबा आदमकी मसजिदके पास ही काजीकी मसजिद है। उस मसजिदके बरामदे पर बहुत सी हिन्दूदेव देवियोंकी मूर्त्ति खड़ी हैं।

रामपुर (सं० पु०) १ स्वर्ग, वैकुण्ठ। २ अयोध्या।

रामपुर—युक्तप्रदेशके रोहिलखण्ड विभागके अन्तर्गत एक देशी सामन्तराज्य। यह अक्षा० २८ २५´ से २९ १०´ उ० तथा देशा० ७८ ५२´ से ७९ २६´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ८९३ वर्गमील है। इसके उत्तरमें नैनीताल जिला, पूरबमें बरेली, दक्षिणमें बदाउन और पश्चिममें मुरादाबाद है।

यह स्थान समतल और उर्वरा है। कोशिला और नाहल नदीसे जलका काम चलता है। दक्षिण रामगङ्गा नदी बहती है।

शाह आलम और हुसैन खाँ नामक दो भाई पहले इस प्रदेशमें आ कर बस गये। १७वीं सदीके आखिरमें मुगलबादशाहसरकारमें नौकरी करके इनका भाग्य चमक उठा। शाह आलमके पुत्र दाऊद खाँने महाराष्ट्रयुद्धमें बड़ी वीरता दिखाई थी। पुरस्कारमें उसे बदाउनके निकट एक जागीर मिली। उसके दत्तकपुत्र अली महम्मदने १७१९ ई०में नवाबकी उपाधिके साथ साथ रोहिलखण्डका अधिकांश स्थान जागीरस्वरूप पाया था।

अलीमहम्मदकी बढ़ती पर अयोध्याका सूबादार नवाब सफदरजङ्ग जलने लगा। किसी कारणवश नवाब भी उससे अप्रसन्न रहते थे। इस कारण १७४६ ई०में उसकी कुल जागीर छीन ली गई और उसे छह मास दिल्लीमें कैद रखा गया। इसके बाद वह सरहिन्दका शासनकर्त्ता हो कर वहां गया। अहमद अबदालीने इसी समय रोहिलखण्ड पर चढ़ाई कर दी। राज्यशासन विशृङ्खल हो गया। अच्छा मौका देख कर वह रोहिलखण्ड आया और अपनी धाक जमा कर वहांका शासन करने लगा। सम्राट् महम्मद शाहके पुत्रने उस प्रतिज्ञासा जान मेल कर लिया और उसे उस प्रदेशका राजा स्वीकार किया।

अली महम्मदकी मृत्युके बाद उसके लड़कोंने रोहिलखण्डराज्य आपसमें बांट लिया। छोटे लड़के फैजउल्लाको रामपुर कटेराकी जागीर मिली। महाराष्ट्र-सेनादलके आक्रमणसे तंग आ कर रोहिला सरदारोंने अयोध्याके नवाब वजीरसे सहायता मांगी। पीछे ४० लाख रुपये ले कर नवाबवजीरने सहायता की। रोहिला सरदार एक बारमें कुल रुपये न दे सके, इस कारण दोनोंमें अनबन हो गया। आखिर वजीरने रोहिलोंके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी। शाहजहानपुर जिलेके अन्तर्गत मीरन कटरा नामक स्थानमें दोनोंके बीच मुठभेड़ हुई। रणक्षेत्रमें रोहिला सरदार हाफिज रहमत खाँके मारे जाने पर अफगान हार कबूल कर भी दो ग्यारह हुए। अन्तमें १७७४ ई०में अङ्गरेजोंने बीचमें पड़ कर मेल करा दिया। शर्त यह ठहरी, कि नवाब फैजउल्ला खाँको रामपुर राज्य वापस मिले और वह वजीरको जरूरत पड़ने पर सेनासे सहायता करे। अयोध्याधिपतिने पीछे सैन्य साहाय्य देनेके बदलेमें नगद १५ लाख रुपये ले लिये। फैजउल्लाके मरने पर १७९३ ई०में उसके दोनों पुत्र राज्याधिकार ले कर झगड़ने लगे। पीछे छोटा भाई बड़े का खूनके काम तमाम कर आपही मसनद पर बैठा। इसके बाद अङ्गरेजराजने अयोध्याके नवाबका सैन्यसाहाय्यमें राज्य हड़पनेवालेको उपयुक्त दण्ड दे कर मृतके पुत्र अहमद अली खाँको रामपुर राज्यमें प्रतिष्ठित किया।

१८०१ ई०में रोहिलखण्ड अङ्गरेजोंको सुपुर्द किया गया। १८५७के गदरमें यहांके नवाब महम्मद यूसुफ अली खाँने अङ्गरेजोंके प्रति विशेष राजभक्ति दिखलाई थी। इस पुरस्कारमें उन्हें १२८७२०) रु० आयकी एक जागीर सम्मानसूचक उपाधि और सलामी तोपें मिलीं। १८६५ ई०में यूसुफ अलीके पुत्र नवाब महम्मद कलब अली खाँ जी, सी, एस आइ, सी, आइ, ई उपाधिके साथ राजा हुए। दिल्ली-दरबारमें उन्हें ध्वज छत्र और सलामी तोपें मिली थीं। उनकी मृत्युके बाद मुस्ताक अली १८८७ ई०में तख्त पर बैठे। उन्होंने केवल दो वर्ष राज्य किया था। वर्त्तमान नवाब हमाद अली खाँ बहादुर हैं। १९०८ ई०में इन्हें जी, सी, आई, ई, की उपाधि मिली थी।

इस राज्यमें ६ शहर और ११२० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या पांच लाखसे ऊपर है। मका, गेहूं, धान और ईख यहांकी प्रधान उपज है।

विद्याशिक्षामें यह राज्य बहुत पिछड़ा हुआ है। पर आज कल लोगोंका ध्यान इस ओर आकृष्ट हुआ है। यहां एक अरबी कालेज (Arabic college) भी है जो राज्यके खर्चसे परिचालित होता है। इस कालेजमें भारतवर्षके दूर दूर देशोंसे यहां तक, कि मध्य एशियासे भी छात्र पढ़ने आते हैं। रामपुर शहरमें अङ्गरेजी स्कूल और शिल्प स्कूल हैं। स्कूलके अलावा १५ अस्पताल भी हैं।

२ उक्त राज्यकी राजधानी। यह अक्षा० २८° ४८´ उ० तथा देशा० ७९° २´ पू० कोशी या कोशिलाके बाएं किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ८० हजारके करीब है। मुसलमानकी संख्या सबसे ज्यादा है। यहांके महलोंमें नवाबका महल, जुमा मसजिद, सफदरगञ्ज उद्यान, दीवान ई-आम, खुर्शिद मंजिल, मच्छी-भवन और जनाना उल्लेख-नीय है। जुमा मसजिद नवाब कलब अली खांने बनवाई थी। कहते हैं उसके बनानेमें तीन लाख रुपये खर्च हुए थे। शहरमें जेल, पुलिस स्टेशन, हाई स्कूल, तहसीली मर्द और जनाना अस्पताल है।

यह नगर विशेष समृद्धिशाली और वाणिज्यप्रधान है। यहांका खेश नामक रेशमी वस्त्र भारतवर्षके भिन्न भिन्न स्थानोंमें जाता और अधिक मोलमें बिकता है।

रामपुर—युक्तप्रदेशके शहारानपुर जिलेके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° ४८´ उ० तथा देशा० ७७° २८´ पू० शहारनपुरसे दिल्ली जानेके रास्ते पर अवस्थित है। जनसंख्या ८ हजार है। हिन्दू और मुसलमानकी संख्या करीब करीब समान है। राजा रामने इस नगरको बसाया। उन्हींके नामानुसार नगरका रामपुर नाम हुआ है। पीछे सैयद सलार मसाउद्दने इस नगरको जीता। यहां नाना शिल्पपरिपूर्ण एक जैनमन्दिर है। मुसलमान साधु शेख इब्राहिमके मकबरेके नजदीक हर एक साल जेठके महीनेमें एक मेला लगता है। यहांके जैन-महाजन सरोगी कहलाते हैं।

रामपुर—युक्तप्रदेशके एटा जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। अलीगञ्जसे ४।।० मील उत्तरमें होनेके कारण यह स्थान एक वाणिज्यकेन्द्ररूपमें गिना गया है। राठोरवंशीय कन्नौज-राजवंशधर राजा रामचन्द्रने १४५६ ई०में यह नगर बसाया। ये राजा रामसहायसे १० पीढ़ी नीचे थे।

रामपुर—पञ्जाबप्रदेशके बुसहर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० ३१° २७´ उ० तथा देशा० ७७° ४०´ पू० के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या हजारसे ऊपर है। नगरके चारों ओर पर्वत है, इस कारण यहां बहुत गर्मी पड़ती है। रामपुरके राजा शीतकालमें यहां आ कर रहते हैं। प्रसिद्ध 'रामपुरी चादर' नामक एक प्रकारका रेशमी कपड़ा इसी शहरमें बनता है। गुरखाओंके आधिपत्य-कालमें इस नगरकी बड़ी क्षति हुई थी। अंगरेजोंके दखलमें आनेके बाद इसकी उन्नति हुई है। नगरके उत्तर-पूर्व कोणमें राजप्रासाद अवस्थित है। समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊंचाई ३३०० फुट है।

रामपुर—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलान्तर्गत एक भू-सम्पत्ति। भूपरिमाण १६० वर्गमील है। सम्बलपुरके राजा छत्र शाने १६३० ई०में प्राणनाथ नामक एक राजपूतको यह जमींदारी प्रदान की। १८३५ ई०में सुरेन्द्र शा और उदवन्त शा नामक दो भाइयोंने राजा नारायण सिंहके कुछ आदमियोंको मरवा डाला था। इस कारण वे याव-ज्जीवन कारादण्डसे दण्डित हो हजारीबागमें भेजे गये। १८५७ ई०में विद्रोहीदलने उत्तेजित हो कर इन्हें मुक्त कर दिया। इस समय समस्त सम्बलपुरमें विद्रोहकी सूचना हुई थी। दरियास सिंह अपनी सेना ले कर सुरेन्द्र शाके साथ विद्रोहमें मिल गये। इस कारण अङ्गरेजोंने उनकी अधिकृत सम्पत्ति जब्त कर ली। पीछे अङ्गरेजोंकी अधीनता स्वीकार करने पर उन्हें सम्पत्ति लौटा दी गई। १८७० ई०में उनका देहान्त हुआ। पीछे उनके पौत्र मकावर सिंह तख्त पर बैठे। रामपुरग्राममें सरदारका वासभवन और विद्यालय आदि प्रतिष्ठित हैं।

रामपुर—अयोध्याप्रदेशके प्रतापगढ़ जिलान्तर्गत एक परगना और बड़ा गांव। बिसेन क्षत्रियवंशीय रामपुरके राजा और दान्हपुरिया क्षत्रियवंशीय काइथलराज यहां के अधिकारी हैं।

रामपुर—१ बम्बईके महीकांठाएके अन्तर्गत एक छोटा राज्य। २ बम्बईके रेवाकांठाएके अन्तर्गत एक छोटा सामन्त राज्य।

रामपुर-कारनपुर—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत दो ग्राम।

रामपुर बोआलिया—१ राजसाही जिलेका एक उपविभाग। यह अक्षा० २४ ७´ से २४ ४३ उ० तथा देशा० ८८ १८´ से ८८ ५८ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६६० वर्गमील और जनसंख्या ६ लाखके करीब है। इसमें रामपुर बोआलिया नामका एक शहर और २२७१ ग्राम लगते हैं। प्रति वर्ष खेतरोमें एक बड़ा मेला लगता है।

२ उक्त उपविभागका एक शहर। यह अक्षा० २४ २२´ उ० तथा देशा० ८८ ३६´ पू० पद्माके उत्तरी किनारे अवस्थित है। जनसंख्या बीस हजारसे ऊपर है। हिन्दूकी संख्या सैकड़े पीछे ५१ मुसलमानकी ४८ और ईसाकी १ है। १८वीं सदीके आरम्भमें ओलन्दाजोंने यहां आ कर कोठी खोली। पीछे अंगरेजोंने यहां अपनी कोठी जमाई। राजसाही देखो।

रामपुर भानपुर—१मध्यभारतके इन्दोर राज्यका एक जिला। प्राचीन जिला रामपुर और भानपुर ले कर यह जिला बना है। यह अक्षा० २३ ५४´ से २५ ० उ० तथा देशा० ७४ ५५´ से ७६ २६´ पू०के मध्य विस्तृत है। १७वींसे ११ वीं सदी तक यहां बौद्ध प्रभाव खूब फैला था। धमनार, पोलाडोंगर और कोलबीमें बौद्धगुहा आज भी देखनेमें आती है। ६वीं से १४वीं शताब्दी तक यह स्थान पर मार राजपूतोंके अधिकारमें रहा। उस समय यहां बहुतसे जैनमन्दिर बनवाये गए थे। १५वीं सदीमें यह मालवाके मुसलमानोंके हाथ लगा। अकबरके समय इस जिलेका कुछ अंश मालवाके सूबा और कुछ अजमेरके अधीन था। पीछे चन्द्रावत ठाकुरोंने इस पर कब्जा किया। ये उदयपुरके राणा राहुपके दूसरे लड़के चन्द्रके वंशधर थे। १७२६ ई०में जयपुरके सवाइ जयसिंहके द्वितीय पुत्र माधो सिंहको सुपुर्द किया गया। १७५२ ई०में यह होलकरके हाथ लगा। यशोवन्तराव होलकरने महेश्वरसे अपनी राजधानी उठा कर कर यहीं पर लाये।

इस जिलेमें ४ शहर और ८६८ ग्राम हैं। इनमेंसे रामपुर शहर सबसे बड़ा है। जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है।

२ उक्त जिलेका एक प्रधान शहर। यह अक्षा० २४ २८´ उ० तथा देशा० ७५ २७´ पू०के मध्य अवस्थित है। समुद्रपृष्ठसे इसकी ऊंचाई १३०० फुट है। जनसंख्या ८ हजारसे ऊपर है। भील सरदार रामसे रामपुर नाम पड़ा है। १५वीं सदीमें राम चन्द्रावतवंशके ठाकुर शिव सिंह द्वारा मारा गया था। रामके वंशधर आज भी अपने पूर्व आधिपत्यके चिह्नस्वरूप चन्द्रावत वंशके सर दारके कपालमें टीका लगाते हैं। कुछ दिनों तक यह शहर उदयपुरके राणाके अधिकारमें रहा। पीछे १५६७ ई०में अकबरके सेनापति आसफ खांने इस पर दखल जमाया। महाराष्ट्र अभ्युदयके समय यह यशोवन्तराव होलकरके हाथ आया। यहां चाकूकी अच्छी अच्छी चोजें तथा तलवार बनाई जाती हैं। शहरमें स्टेट डाकघर, जेल पुलिस-स्टेशन, स्कूल और एक अस्पताल है।

रामपुर मथुरा—अयोध्या-प्रदेशके सीतापुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह चौका और गोग्रा नदीके सङ्गमस्थल पर अवस्थित है। नगर बहुत समृद्धिशाली है।

रामपुरहाट—१ वीरभूम जिलान्तर्गत एक उपविभाग। यह अक्षा० २३ ५२ से २४ ३५´ उ० तथा देशा० ८७ ३५ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ६४५ वर्गमील और जनसंख्या साढ़े तीन लाखसे ऊपर है। इसमें रामपुरहाट नामक एक शहर और १३३६ ग्राम लगते हैं।

२ उक्त जिलेका एक नगर और उपविभागका विचार सदर। यह अक्षा० १८ ४३´ से १६ ३८ उ० तथा देशा० ६३ २०´ से ६३ ५६ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या ४ हजारके करीब है। हावड़ा-स्टेशनसे यह १३६ मील दूर है। यहां सरकारी अदालत और छोटा कारागार है जिसमें सिर्फ १८ कैदी रखे जाते हैं। इष्ट इण्डिया रेलवेका स्टेशन हो जानेसे वाणिज्यकी बड़ी सुविधा हो गई है।

रामपुरा—राजपूतानेके टोंक राज्यान्तर्गत एक प्राचारवेष्टित नगर। यह अक्षा० २५ ५७ उ० तथा देशा० ७६ ७´ पू०के मध्य अवस्थित है। अभी यह अलीगढ़-रामपुरा

कहलाता है। १८०४ ई०में अंगरेजराजने इस नगरको अधिकार किया। १८०५ ई०में यह होलकरराजको दे दिया गया। पीछे १८१८ ई०मे टोङ्कराजवंशके प्रतिष्ठाता अमीर खाँको दान किया गया।

रामपुरा—बम्बईप्रदेशके रेवाकान्थके अन्तर्गत एक छोटा सामन्तराज्य।

रामपुरा—राजपूतानेके उदयपुरराज्यके पश्चिम सीमान्तवर्त्ती एक प्राचीन नगर। यह रुद्रगिरिसङ्कटके ऊपर अवस्थित है। यहां दो प्राचीन और प्रसिद्ध जैनमंदिर विद्यमान हैं। लगभग १४४० ई०में राणा कुम्भके समय धर्मशेठ नामक एक वणिक्‌ने पारशनाथ मूर्त्तिकी प्रतिष्ठाके लिये ७५ लाख रुपया खर्च करके ये दोनों मन्दिर बनवाये थे। उनमेंसे एक मन्दिर बड़ा और एक छोटा है। बड़े मन्दिरकी लम्बाई २६० फुट और चौड़ाई २४४ फुट है। उसके चारों ओर जो दीवार खड़ी है उस पर ४६ देवमूर्त्ति सन्निवेशित हैं। पारशनाथ मूर्त्तिके सामने अच्छी तरह चित्रित एक बड़ा गुम्बज है। उसमें इन्द्रादि बारह देवमूर्त्ति इस प्रकार संलग्न हैं, कि देखनेसे मालूम होता है, कि वे छत परसे झूल रही हो। नीचे एक गणेशकी मूर्त्ति है। बीचमें भास्करशिल्पनैपुण्य ४२० स्तम्भके गोल चबूतरे हैं। उसके एक एक कोणमें एक एक पार्श्वनाथ-प्रतिमूर्त्ति खोदित है। इसके सिवा यहां जगह जगह अनेक पार्श्वनाथमूर्त्ति पड़ी देखी जाती हैं।

प्रतिवर्ष चैत्र और आश्विनमासमें मंदिरके सामने मेला लगता है। उसमें १० हजारसे ऊपर मनुष्य इकट्ठे होते हैं।

रामपूग (सं० पु०) रामः रमणीयः पूगः। गुवाकविशेष, चिकनी सुपारी। पर्याय—कामीन, मुनिपूग, सुरेष्ट। (त्रिका०)

रामपूर्व्वतापनीय (सं० क्ली०) रामतापनीय उपनिषद्‌का पूर्वांश।

रामप्रसाद—तिथिनिर्णय, यज्ञसिद्धान्तसंग्रह और रत्नाकर-दीधितिके रचयिता।

रामप्रसाद तर्कालङ्कार—वैषम्यकौमुदी नामक अमरकोषकी टीकाके प्रणेता।

रामप्रसाद तर्कवागीश (सं० पु०) एक विख्यात पण्डित।

रामप्रसादराय (लाला)—बङ्गालके एक प्रतिष्ठापन्न वैद्य-सन्तान। इनके पिताका नाम कृष्णराय था। रामप्रसाद मुर्शिदाबादके नवाबके यहां पेशकार थे। इस समय इन्होंने 'लाला' की उपाधि पाई थी। पीछे ढाकाके नवाबके दीवान और मन्त्रिसभाके सदस्य राजवल्लभने इन्हें अपना पारिषद बनानेकी इच्छासे नवाब-सरकारके यहांसे अलग कर अपना मन्त्री बनाया था।

वाखरगञ्जके अन्तर्गत मेहेन्दिगञ्ज और मधिपुर-बन्दर लाला रामप्रसादके अधिकारमें था। रेनलके प्रधान मानचित्रमें ये दो स्थान बड़े बन्दररूपमें दिखाये गये हैं। इसके सिवाय मादारीपुरके निकट परगनेमें सेलापट्टी और झालकाटीके समीप मधिपुरका बड़ा बंदर और विक्रमपुर आदि तालुक इन्हींके अधिकारमें था। बङ्गालके बोजेरगो उमेदपुरके अन्तर्गत होसनाबाद वा जौलसा ग्राममें तथा मेहन्दिगञ्जके अन्तर्गत बहादुर ग्राममें ये दो देवमूर्त्ति स्थापन कर गये हैं। ये बड़े दानी और प्रतिष्ठित थे।

रामप्रसाद विद्यालङ्कार—एक पण्डित। इन्होंने अपने पिता रामनारायणकी बनाई कारिकावलीटीका लिखी। इनके पितामहका नाम था कृष्णराम।

रामप्रसादसेन—वैद्यवंशोद्भव एक बंगाली कवि। ये पहले एक शक्तिमंत्रका साधक कह कर विख्यात थे। १७१८ ई०में हाली-शहरके अन्तर्गत कुमारहट्ट गांवमें इन्होंने जन्म लिया था। इनके पिताका नाम था रामराम सेन। इन्होंने कालीकीर्त्तन, विद्यासुन्दर आदि बंगला कविता बनाई। १७७५ ई०में उनकी मृत्यु हुई। कविरञ्जन रामप्रसाद देखो।

रामफल (हिं० पु०) सीताफल, शरीफा।

रामबंटाई (हिं० स्त्री०) वह विभाग जिसमें आधा एक व्यक्ति और आधा दूसरे व्यक्तिको मिले, आधे आधकी बंटाई। यह न्याययुक्त होती है इसीसे इसे रामबंटाई कहते हैं।

रामबबूल (हिं० पु०) गुजरात, झंग और झेलममें अधिकतासे होनेवाला एक प्रकारका बबूल या कीकर। इसकी डालियां सरोकी डालियोंकी तरह तनेसे सटी रहती हैं।

इसकी लकड़ी कम मजबूत होती है। इसे काबुली कीकर भी कहते हैं।

रामबांस (हिं० पु०) १ एक प्रकारका मोटा बाँस जो प्रायः पालकीके डंडे बनानेके काममें आता है। २ केवड़ी या केवड़े की जातिका एक पौधा। इसके पत्ते मोटे और खांड़े की तरह दो चार हाथ लम्बे होते हैं। यह सारे भारतमें या तो आपसे आप होता है या कहीं कहीं बोया भी जाता है। इसकी पत्तियां कूट कर एक प्रकारका रेशा निकाला जाता है जो रस्से और रस्सियां आदि बनानेके काममें आता है। इन पत्तियोंमें एक प्रकारका तेजाबी रस होता है जिसके हाथमें लगनेसे छाले पड़ जाते हैं। इसलिये पत्तियां कूटनेके समय कहीं कहीं हाथोंमें एक प्रकारके दस्ताने पहन लेते हैं। इसकी जड़ और पत्तियां ओषधिके रूपमें भी व्यवहार होती हैं। यह अकसर रेलकी सड़कोंके किनारे लगाया जाता है।

रामबाण (हिं० पु०) १ एक प्रकारका नरसल, रामशर। रामशर देखो। २ रामबाण देखो।

रामविलास (स० पु०) एक प्रकारका धान।

रामब्रह्मानन्द स्वामी—तत्त्वसंग्रहरामायणके प्रणेता।

रामभक्त (स० त्रि०) १ रामचंद्रका उपासक। (पु०) २ हनुमान्।

रामभद्र (सं० पु०) राम एव भद्रः मङ्गलजनकत्वात्। श्रीरामचन्द्र।

रामभद्र—१ मिथिलाके एक राजा तथा राजा रूपनारायणके पुत्र और हरिनारायणके पौत्र। ये भामतीकल्पके प्रणेता वाचस्पति मिश्रके प्रतिपालक थे।

२ दूसरे एक हिन्दू-राजा। ये शूद्राचारप्रकाशके प्रणेता महादेवके प्रतिपालक थे।

रामभद्र—बहुतरे प्रसिद्ध पण्डित और ग्रन्थकार। १ न्याय भागसिद्धान्तकुसुमचन्द्रिकाके प्रणेता। २ पुत्रजन्मदीपिकाके रचयिता। ३ ब्रह्मसूत्रवृत्तिकार। ४ शृङ्गारतरङ्गिणी नामक भाणके रचयिता। ५ शृङ्गारतिलक नामक भाणके प्रणेता। ये कौण्डिन्यवंशीय थे। ६ षड्दर्शन सिद्धान्तसंग्रहके प्रणेता। इन्होंने तञ्जोरपति शाहराज (शाहजी)-के आदेशसे उक्त ग्रन्थ संकलन किया। ७ सिद्धान्तसार नामक न्यायशास्त्रके रचयिता।

रामभद्र गोस्वामी—सत्यनारायण पांचालीके लेखक एक प्राचीन कवि। लगभग तीन सौ वर्ष पहले ये जीवित थे। रामचन्द्रके पिताका नाम था विरूपाक्ष गोस्वामी। ये तन्त्रमतसे महासाधक थे। उन्होंने तपस्यासे नायिकाका दर्शन किया था। "नायापञ्च" नामसे प्रसिद्ध उनका जो आसन है उसकी पूजा आज भी उनके वंशधर करते हैं। उनका पूर्वनिवास बांकोड़ाके समीप बामनकन्दा गांवमें था। बादमें वे सिउड़ीसे दो कोस दक्षिण सिंगुर गांवमें आ कर रहने लगे। यहीं कवि रामदासका जन्म हुआ। रामचन्द्रके वंशज आज भी सिंगुर गांवमें रहते हैं। भट्टाचार्य उनकी उपाधि है।

रामभद्र दीक्षित—१ दाक्षिणात्यवासी एक प्रसिद्ध पण्डित। ये १७वीं सदीके शेषभागमें और १८वीं सदीके पहले तंजोर नगरमें विद्यमान थे। इन्होंने सोपदेवकृत परिभाषावृत्तिकी टीका लिखी। २ रामकर्णामृतके रचयिता। ३ जानकीपरिणयनाटक और पतञ्जलिचरित नामक काव्यके प्रणेता। इनका दूसरा नाम चोक्कनाथ और पिताका नाम यज्ञराम था। नीलकण्ठ अध्वरिन्, वीरेश्वर दीक्षित, बालकृष्ण आदि इनके समसामयिक थे।

रामभद्र न्यायालङ्कार—१ शब्दावली नामक व्याकरणके प्रणेता। २ दायाद्यव्यवस्था, मुग्धबोधटीका और विद्योन्मादिनी नामक रघुवंशकी टीकाके रचयिता तथा रघुनाथके पुत्र। ३ श्रीनाथाचार्यके पुत्र। ये जीमूतवाहनकृत दायभागके टीकाकार थे।

रामभद्र वाजपेयी—कवीन्द्रचन्द्रोदयधृत एक कवि।

रामभद्र भट्ट—न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीप्रकाशकी टीका और नीलकण्ठकृत तर्कसंग्रहदीपिकाप्रकाशकी टीकाके रचयिता।

रामभद्र भट्टाचार्य—एक प्रसिद्ध नैयायिक और पण्डित। ये तत्त्वचिन्तामणिदीधितिव्याख्याके प्रणेता जयरामके गुरु थे।

रामभद्र मिश्र—१ आनन्दलहरीटीका और तत्त्वसारके रचयिता। २ पद्यावलीटीकाके प्रणेता।

रामभद्र महामहोपाध्याय—अभिज्ञानकुन्तलविवृतिके प्रणेता।

रामभद्र यति—संन्यासाश्रमावलम्बी एक प्रसिद्ध पण्डित। ये सिद्धान्तचंद्रिकाके प्रणेता रामसंयमीके गुरु थे।

रामभद्र यज्वन्—एक प्रसिद्ध पंडित। ये सिद्धांतचन्द्रिकाके प्रणेता श्रीनिवास दीक्षितके गुरु थे।

रामभद्र सरस्वती—राघवानन्द सरस्वतीके शिष्य और रामानन्द सरस्वतीके गुरु।

रामभद्र सिद्धान्तवागीश—नवद्वीपवासी एक प्रसिद्ध नैयायिक। इन्होंने जगदीशकृत शब्दशक्तिप्रकाशिकाकी शब्दशक्तिप्रकाशिकाबोधिनी नामकी टीका लिखी।

रामभद्र सार्व्वभौम—नवद्वीपवासी एक नैयायिक। इन्होंने कुसुमाञ्जलीकारिकाव्याख्या, गुणरहस्य नामक किरणावलीके द्वितीय परिच्छेदकी टीका, न्यायरहस्य नामक न्यायसूत्रकी टीका, पदार्थखण्डनटिप्पणी आदि ग्रंथ लिखे।

रामभद्र सार्व्वभौम भट्टाचार्य—नानात्ववादतत्त्व और समासवादतत्त्वके रचयिता।

रामभद्राम्बा—रघुनाथभ्युदयकाव्यके प्रणेता।

रामभद्राश्रम—१ भानुजी दीक्षित। याग मार्गावलम्बनके बाद ये इस नामसे परिचित हुए। २ अद्वैतचंद्रिकाके प्रणेता नरसिंह भट्टके गुरु।

रामभोग (सं० पु०) १ एक प्रकारका चावल। २ एक प्रकारका आम।

राममणि (रामी)—एक बंगालिन कवि। यह जातिकी धोबिन थी। किन्तु कवित्वकी असाधारण शक्तिसे भारतीय स्त्री-कविसम्प्रदायभुक्त हो अक्षयकीर्त्ति अर्जन कर गई है। यह बंगालके नान्नूर ग्राममें कविवर चण्डीदासकी विशालाक्षी देवीके मन्दिरमें सेविका नियुक्त थी। किसीका कहना है, कि तारा धोबिन इनका असल नाम था। इन्होंने कवि चण्डीदासके हृदयमें अभिनव प्रेमका सञ्चार किया था। इनके कवित्वगुण और प्रेमसे वशीभूत हो कर चण्डीदासने अनेक पदावलीकी रचना की थी। रामी चण्डीदासको दिलसे चाहती थी।

राममन्त्र (सं० पु०) रामस्य मन्त्रः। रामचंद्रका मंत्र। रामतारक देखो।

राममोहन राय (राजा)—बंगालके एक अद्वितीय महापुरुष। जिस अध्यवसायसे इस महात्माने अपनी उन्नतिका मार्ग साफ करके संसारमें सर्वत्र अपनी महत्त्व फैलाई थी, यह बात उनके जीवनकी पहली प्रतिभासे ही ज्ञात हो जाती है। आप एक ब्रह्मकी उपासनाका प्रवर्त्तन करके जो अद्वैत धर्ममतका प्रचार कर गये हैं, वह अब भी भारतमें "ब्राह्मसमाज" के नामसे और इङ्गलैंडमें उसीके अनुकरण पर 'Unitarian Church" नामसे स्थापित है। धर्मनीतिके सिवा राजनीति और समाजनीतिके संस्कारके विषयमें भी आपने साधारणके अग्रणी बन कर अशेष यश प्राप्त किया है।

हुगली जिलेके अन्तर्गत खानाकुल कृष्णनगरके निकटवर्त्ती राधानगरमें १७७८ ई०में राममोहन रायका जन्म हुआ था। इनके अतिवृद्ध पितामह औरङ्गजेब बादशाहके राज्यकालमें धर्मकर्म त्याग कर जमींदारीके काममें लिप्त हुए थे। प्रपितामह कृष्णचन्द्र बन्दोपाध्याय नवाबसरकारमें नौकरी करते थे और उन्हें "राय" उपाधि मिली थी। मुर्शिदाबाद जिलेके अन्तर्गत शाँकासा ग्राममें उनका आदिवास था, बादमें वहांसे राधानगर चले आये। कृष्णचन्द्र परम वैष्णव थे। नवाबके आदेशसे जब ये खानाकुल कृष्णनगरके चौधरियोंकी जमींदारीका बन्दोबस्त करने आये थे, तब इन्होंने अभिराम गोस्वामी द्वारा प्रतिष्ठित गोपीनाथका विग्रहके निकटस्थ राधानगर ग्राममें अपने रहनेका निश्चय किया था।

उनके तीन पुत्र थे,—अमरचन्द्र, हरिप्रसाद और व्रजविनोद। ये व्रजविनोद राय मृत्युके समय जब गङ्गातीरस्थ हुए, तो श्रीरामपुरके चातरा ग्रामनिवासी श्यामाचरण भट्टाचार्य भिक्षार्थी हो कर इनके सामने आये। व्रजविनोद रायने उनकी प्रार्थना पूरी करनेके लिये वचन दिया, इस पर भट्टाचार्यने इनके एक पुत्रको कन्यादान करनेके लिए कहा। श्याम भट्टाचार्य शाक्त और भङ्ग कुलीन थे, इसलिए परम वैष्णव और कुलीन रायवंश इस प्रस्ताव पर सहजमें राजी न हो सकता था, किन्तु व्रजविनोदने गङ्गाके किनारे वचन दिया था, इसलिए उनके पञ्चम पुत्र रामकान्त रायने श्याम भट्टाचार्यकी कन्या तारिणी देवीका पाणिग्रहण किया। तारिणी

देवी अपने गुणोंसे परिवारमें सबके साथ 'फूल-ठाकुरानी' नामसे परिचित हुई। उनके गर्भसे जगमोहन और राममोहन दो पुत्र उत्पन्न हुए। जिस वर्ष राममोहन रायने जन्मग्रहण किया, उसी वर्ष भारतमें पहले पहल सकौन्सिल गवर्नर जनरलकी नियुक्ति और सुप्रीम कोर्टकी व्यवस्था हुई थी। मुसलमान शासनका अवसान और अंग्रेजी शासनके आरम्भका यह प्रथम वर्ष था।

रामकान्त राय पहले तो पिताके समान मुर्शिदाबादकी नवाब सरकारमें काम करते थे। पीछे गड़बड़ उपस्थित होने पर वे काम छोड़ कर अपने देशको लौट आये। यहां आ कर उन्होंने वर्द्धमानके राजासे खाना कुल-कृष्णनगर आदि कुछ ग्रामोंका इजारा ले लिया। इसी मामलेमें वर्द्धमानके राजाके साथ इनका विवाद हो गया। राजाके असहनीय अत्याचारसे विरक्त हो कर वे जमींदारीके कामसे उदासीन हो गये और सपरिवार लांगुलपाड़ा ग्राममें आ कर रहने लगे।

खूब बचपनसे ही राममोहनका धर्ममें दृढ़ अनुराग था। गृहदेवता राधागोविन्दकी भक्तिके साथ पूजा करके तथा भागवतका एक अध्याय पढ़ कर तब कहीं आप जलग्रहण करते थे। सुनते हैं, आपने बहुत अर्थव्यय करके बाइस बार पुरश्चरण कराया था।

बाल्यावस्थामें पण्डितजीकी पाठशालासे ही इनकी मेधा और बुद्धिशक्तिका यथेष्ट परिचय पाया जाता है। बचपन हीमें आपने फारसी पढ़ ली। इनकी स्मृतिशक्ति इतनी तीक्ष्ण थी कि फारसी भाषामें उन्नति और अरबी भाषाकी शिक्षाके लिए पिताने इन्हें नौ ही वर्षकी उमरमें पटना भेज दिया। यहां दो तीन वर्षके अन्दर ही इन्होंने अरबी भाषामें यूक्लिड् और आरिष्टटलके ग्रन्थ पढ़ लिये। इन दो ग्रन्थोंके पढ़ लेनेसे उनकी सुतीक्ष्ण बुद्धिशक्ति सम्मार्जित और तर्कशक्ति विकसित हो गई थी। कुरान पढ़ते समय मुसलमान मौलवियोंके संसर्गमें आ कर उनके हृदय पर एकेश्वरवादकी छाया पड़ी। उसके बाद हाफिज, मौलाना रूमी, सामिज ताब्रीज आदि सूफी कवियोंके ग्रन्थ पढ़ कर उनके मन पर एकमात्रका प्रभाव दृढ़ होता गया। सूफियोंके मतन, प्लेटो और वेदान्तके मतने उनके मत परिवर्त्तनमें सहायता दी थी।

पटनामें फारसी और अरबीकी शिक्षा समाप्त होने पर, हिन्दूधर्मका मर्म-ज्ञान करानेके उद्देशसे बारह वर्षके राममोहनको उनके पिताने संस्कृतशास्त्र अध्ययन करानेके लिए काशी भेजा। यहां थोड़े ही दिनोंमें उन्होंने वेदादि शास्त्रोंका आश्चर्यरूपसे ज्ञान लाभ किया था। घर लौट कर उन्होंने निरन्तर धर्मसम्बन्धी आलोचना करना आरम्भ कर दिया। शास्त्रोंमें लिखे हुए धर्मके साथ प्रचलित धर्मका पार्थक्य देख कर उनके मनमें स्वतः घोरतर सन्देह उपस्थित हुआ करता था। मुसलमानधर्मका एकेश्वरवाद और प्राचीन हिन्दूशास्त्रोंका अध्ययन उनके मत-परिवर्त्तनका एकमात्र कारण है। इस विषयमें पिताके साथ उनका तर्क हुआ करता था। पिता पुत्रके इस परिवर्त्तित विचारसे बड़े दुःखित थे।

इसी समय सोलह वर्षकी अवस्थामें राममोहनने हिन्दुओंकी "मूर्त्तिपूजा प्रणाली" के नामसे मूर्त्तिपूजाके विरुद्ध एक पुस्तक लिखी। उनके पिता इस पर बहुत नाराज हुए और अन्तमें उन्हें घरसे निकाल दिया। सोलह वर्षकी अवस्थामें घरसे निकाले जा कर राममोहनने भारतके नाना स्थानोंमें भ्रमण किया। इस समय उन्हें अंगरेजीका बिलकुल भी ज्ञान न था।

विभिन्न प्रदेशोंमें भ्रमण करते समय उन्होंने वहांके धर्मग्रन्थोंका अध्ययन करनेके लिये वहांकी विभिन्न भाषाएं सीखीं। भारतवर्षके नाना स्थानोंमें भ्रमण करते हुए अन्तमें आप तिब्बत पहुंचे। यहां कुछ दिन रह कर उन्होंने बौद्धधर्मका मर्मानुसन्धान किया। तिब्बतवासियों के साथ मूर्त्तिवाद पर इनका शास्त्रार्थ हो गया। यहांके लोगोंने इस कुतर्कके लिये उन्हें दण्ड देना चाहा, किन्तु यहांकी सरलप्रकृति रमणियोंने इन्हें बचा लिया।

उन्होंने हिमालयके उत्तरवर्त्ती और भी एक देशमें भ्रमण किया था, परन्तु उसका कोई विशेष विवरण नहीं पाया जाता। ब्राह्मसमाजकी प्रतिष्ठाके बाद उन्होंने "संवाद-कौमुदी" नामकी एक पत्रिका निकाली थी, जिसमें उन्होंने अपने बाल्य भ्रमणके विषयमें कई एक लेख लिखे थे।

बीस वर्षकी उमरमें पिताके भेजे हुए आत्मीयके साथ आप घर वापस आये। इसके बाद विवाह हुआ।

पहली स्त्रीकी मृत्युके बाद उन्होंने एक स्त्रीके रहते हुए दूसरा विवाह किया था। इनकी दूसरी सुसराल वर्द्ध-मान जिलेके कुडमन-पलासी ग्राममें थी। छोटी स्त्री उमादेवीका मायका भवानीपुरमें था।

विदेशसे आनेके बाद आप फिरसे संस्कृत शास्त्रके अध्ययनमें प्रवृत्त हुए। हिन्दूशास्त्र सिन्धु मन्थन करके आपने अमूल्य ब्रह्मज्ञान प्राप्त किया था। अबकी बार फिर पितासे उनका शास्त्रार्थ हो गया। पिता रामकान्त पुत्रकी दशा देख कर हताश हो गये। उन्होंने प्रचलित धर्मके विरुद्ध खड़े होनेवाले पुत्रको फिर घरसे निकाल दिया, किन्तु कुछ कुछ आर्थिक सहायता देते रहे।

पहले लिखा जा चुका है कि रामकान्त रायने अपने पुत्र राममोहनको नवाब सरकारमें काम करने योग्य हो जाय, इस ढंगकी शिक्षा दी थी। कारण अंगरेजी-शिक्षाका प्रभाव उस समय अधिक विस्तृत न हुआ था। सुप्रीमकोर्ट स्थापनके साथ ही अंगरेजीकी चर्चा शुरू हुई। राममोहनने २२ वर्ष तक अंगरेजी जरा भी न जानते थे। उस समय शिक्षा आरम्भ होने पर भी उस तरफ उनका ध्यान न गया था। संस्कृत, फारसी और अरबीके अध्ययनमें ही वे विशेष मग्न थे। सत्ताईस-अट्ठाईस वर्षकी उमरमें वे सिर्फ बातचीत करना मात्र सीख गये थे। परन्तु अंगरेजीमें लेख न लिख सकते थे।

इस समय आपने रंगपुरके कलक्टर जन डिग्बी साहबके नीचे क्लर्कीके लिए दरख्वास्त पेश की। साहब जब उन्हें अपने नीचे नियुक्त करना स्वीकार कर लिया, तो आपने उनके सामने यह प्रस्ताव किया कि निम्नोक्त आशयके एक पत्र पर हस्ताक्षर कर देने पर वे कार्यग्रहण करेंगे--"जब वे काम करने उनके सामने आये, तब उन्हें आसन दिया जाय और साधारण अमलोंके समान उन पर हुक्म जारी न किया जाय।" डिग्बी साहबने उनकी बात स्वीकार कर ली और उक्त आशयके पत्र पर हस्ताक्षर कर देने पर राममोहन रायने भी काम करना शुरू कर दिया। धर्मानुगत आत्म-सम्मानका उन्हें ज्ञान था और उन्हें स्वाधीनता-प्रियता काफी थी। उनके जीवनमें ऐसी अनेकों घटनाएं हुई हैं, जिनसे यह भाव साफ साफ टपकता है।

राममोहन राय ऐसे उत्साह और तत्परताके साथ कार्य सम्पादन करने लगे कि साहब उन पर दिनों-दिन अत्यन्त सन्तुष्ट होने लगे। कुछ दिन बाद ही राममोहन रायको दीवानका पद मिल गया। डिग्बी साहबको ज्यों ज्यों राममोहन रायको विद्याबुद्धि, कार्यदक्षता और कर्मठताका परिचय मिलने लगा, त्यों त्यों वे इनके प्रति आकृष्ट होने लगे। राममोहन राय भी डिग्बी साहबकी भद्रता और अन्यान्य सद्‌गुणोंके कारण उन्हें यथेष्ट श्रद्धाकी दृष्टिसे देखने लगे। क्रमशः परस्परमें गाढ़ी मित्रता हो गई। मृत्यु पर्यन्त यह मित्रता कायम रही। ये दोनों अंगरेजी और देशी साहित्यके अनुशीलनमें परस्पर एक दूसरेको सहायता पहुंचाया करते थे।

रंगपुरमें जमींदारीके कामसे रहते हुए भी वे अपने जीवनके प्रधान कार्यको भूले न थे। शामके बाद अपने मकान पर धर्मालोचनाके लिए सभा किया करते थे, जिसमें मूर्त्तिपूजाकी असारता और ब्रह्मज्ञानकी आवश्य-कता पर लोगोंको समझाया करते थे। वहांके मारवाड़ी वणिकोंमेंसे बहुतसे इस सभाके सभासद् थे। इन मार-वाडियोंने उन्हें कल्पसूत्र आदि जैनधर्म-सम्बन्धी ग्रन्थों-का अध्ययन कराया था। शीघ्र ही उनके प्रतिद्वन्द्वी आ जुटे। उनका नाम था गौरीकान्त भट्टाचार्य। ये स्थानीय जज अदालतके दीवान थे और फारसी तथा संस्कृत-भाषाके अच्छे विद्वान् थे। इन्होंने राममोहन रायके विरुद्ध "ज्ञानाञ्जन" नामकी एक पुस्तक लिखी, जो सशोधित हो कर १८३८ ई०में कलकत्तेसे प्रकाशित हुई। इस पुस्तकसे मालूम होता है, कि राममोहन रायने रंग-पुरमें फारसी भाषामें छोटी छोटी पुस्तकें लिखी थीं और वेदान्तके कुछ अंशका भी अनुवाद किया था। बहुतसे लोग गौरीकान्त भट्टाचार्यके अनुयायी थे। वे उन सब-को राममोहन रायके विरुद्धाचरण करनेके लिये परामर्श देते थे। परन्तु इसमें उन्हें सफलता नहीं मिली।

राममोहन रायने अपने रचे हुए, वेदान्तसूत्रके भाष्य और केनोपनिषद्‌के चूर्णकका अंगरेजीमें अनुवाद प्रका-शित किया था। डिग्बी साहबने उसका सम्पादन

लिया था। साहबने उक्त पुस्तककी भूमिकामें राममोहन रायके विषयमें लिखा था—बारह वर्षकी उमरमें आपने पहले पहल अंग्रेजी सीखी है। परन्तु मनोयोग-पूर्वक शिक्षा न करनेके कारण, पांच वर्ष बाद जब मेरे साथ उनका परिचय हुआ तब साधारण विषयोंमें अंगरेजी भाषामें बात कहने पर वे समझ लिया करते थे। परन्तु अङ्गरेजी भाषा वे शुद्ध न लिख सकते थे। जिस जिलेमें मैं इष्ट इण्डिया कम्पनीकी सिविल सर्विसमें पांच वर्ष तक कलेक्टर था, वहां वे अन्तमें दीवान अर्थात् कर-संग्रह सम्बन्धी कार्यमें प्रधान देशी कर्मचारी नियुक्त हुए थे। मेरे पत्रादि पढ़ कर तथा यूरोपीय सज्जनोंके साथ पत्र व्यवहार और वार्तालाप करके उन्होंने अंगरेजी भाषामें अच्छा ज्ञान बढ़ा लिया था और वे अच्छी तरह शुद्ध अंगरेजी लिख बोल सकते थे। उक्त भूमिकामें डिगबी साहबने यह भी लिखा है, कि यूरोपीय समाचारपत्र पढ़नेका उन्हें अभ्यास था। वे फ्रान्स आदि देशोंको राजनैतिक घटनाएं खूब दिलचस्पीके साथ पढ़ते थे। नेपोलियन बोनापार्ट की शक्ति और योग्यताकी अत्यन्त प्रशंसा करते थे और उनका पतन होने पर वे अत्यन्त दुःखित हुए थे। परन्तु खेद है, कि पहले वेगन्स निकल जाने पर उनके मनका भाव परिवर्तित हो गया। अन्तमें उन्होंने कहा था कि नेपोलियनकी पहले जितना प्रशंसा करता था, अब उनमें वैसी श्रद्धा नहीं रही।

राममोहन रायने १८०० ई०से १८१३ ई०तक गवर्मेण्टकी नौकरी की थी। जिसमें १० वर्ष रंगपुर, भागलपुर, रामगढ़ इन तीन जिलोंमें कलेक्टरके अधीन दीवान रहे। रामगढ़ जिलेमें वे शहरकी घाटीमें रहते थे। छोटा नागपुर जिलेके अन्तर्गत काठरासे गया आनेके रास्तेमें यह घाटी थी। अन्तमें इस कार्यसे उन्होंने अवसर ग्रहण किया।

कार्य छोड़नेके बाद वे मुर्शिदाबाद आ कर रहने लगे। यहां आपने फारसी भाषामें तोहफतुल मोहद्दीन (अर्थात् समस्त जातीय मूर्त्तिपूजाका प्रतिवाद) नामक एक ग्रन्थ लिखा। इसकी भूमिका अरबी भाषामें लिखी थी। इस पुस्तकका अनुवाद किसीने प्रकाशित नहीं कराया परन्तु बहुतसे लोग उनके शत्रु हो गये थे।

राममोहन राय १८१४ ई०में चालीस वर्षकी उमरमें कलकत्ते आ कर रहने लगे। तबसे ही यथार्थ रूपसे उनके जीवनका कार्य प्रारम्भ हुआ समझना चाहिए। यहां उन्होंने अपना सारा समय और अर्थ, शरीर और मन, जन्मभूमिके हितके लिए समर्पित कर दिया। जितने दिन जीवित रहे, उन्हें दूसरा कार्य और दूसरी चिन्ता न थी।

धर्मसंस्कार, समाजसंस्कार, राजनैतिक संस्कार और बंगला-साहित्यकी उन्नति आदि सब प्रकारके शुभ कार्योंमें उनका पूरा पूरा हाथ था। इसके लिए वे दिन रात परिश्रम किया करते थे।

राममोहन रायने कलकत्ते आ कर मानिकतल्लामें लोअर सरकूलर रोड पर एक मकान खरीदा और उसे अंगरेजी ढंगसे सजा कर उसीमें रहने लगे*। उन्हें आशा थी, कि जमींदारीके कामसे छुट्टी पा कर जातिके उद्धारके लिए जीवन अर्पण करेंगे। यहां उनकी यह चिरपोषित आशा पूर्ण हुई। मूर्त्तिपूजा और सब प्रकारके अपधर्मोंके विरुद्ध राममोहन रायका अभिव्यक्ति तर्क और विचारका आन्दोलन चलने लगा। कलकत्तेमें धूम मच गई। सिर्फ कलकत्ते होमें क्यों, समस्त बंगालमें आन्दोलनकी तरङ्ग बहने लगी। बाबुओंके बैठकखानेमें, महाचार्योंकी चतुष्पाठीमें, गांवोंके चण्डीमण्डपोंमें, जहां देखो वहां राममोहन राय अन्तःपुरोंमें भी आन्दोलनका स्रोत बहने लगा।

उनमें आश्चर्यजनक शक्ति थी, उनकी गंभीर विद्या और मधुर व्यवहारसे कुछ सम्भ्रान्त व्यक्ति उनके प्रति आकृष्ट हो गये। जैसे—गोपीमोहन ठाकुर, वैद्यनाथ मुखोपाध्याय (ये प्रसिद्ध अनुकूल मुखोपाध्यायके पिता हिन्दूकालेजके एक संस्थापक और उक्त कालेजके प्रथम मंत्री थे), जयकृष्ण सिंह, काशीनाथ मल्लिक, वृन्दावन मित्र (ये राजा पीताम्बर मित्रके पुत्र और डाक्टर राजेन्द्र लाल मित्रके पितामह थे), गोपीनाथ मुन्शी, राजा बदन चन्द्र राय (ये राजा नरसिंहके रिश्तेदार थे), रघुनाथ

* मकानका नं० ११३ है। जिसकी उस मकानमें पुलिस स्टेशनका स्थान है।

शिरोमणि, हरनाथ तर्कभूषण, द्वारकानाथ मुन्शी आदि। ये अकसर इनके पास आया करते थे।

चन्द्रशेखर देव (वर्द्धमानके राजाकी राजकार्य-निर्वाहक सभाके सदस्य), ताराचाद चक्रवर्त्ती (वर्द्धमान राजकार्य निर्वाहक सभाके सभासद) आदि अनेक लोगोंका एक राजनैतिक दल था। वह दल ताराचाद बाबूके संस्रवके कारण तत्कालीन शिक्षित समाजमें 'Chakrawarti Faction' के नामसे परिचित था। नन्दकिशोर वसु (राजनारायणवसुके पिता), भैरव चन्द्र दत्त, निमाई चरण मित्र, व्रजमोहन मजूमदार, राज नारायण सेन, रामनृसिंह मुखोपाध्याय, हलधरचन्द्रवसु, मदनमोहन मजूमदार, अन्नदाप्रसाद वन्दोपाध्याय, टाकी-के जमींदार राय कालीनाथ चौधरी आदि कितने ही सज्जनोंने उनका उपदेश ग्रहण किया था।

इसके सिवा साल्ट वोर्डके दीवान और ज्ञानरत्नाकर ग्रन्थके सग्रहकर्त्ता नोलरतन हालदार, खिदिरपुर भूकैलासके राजवंशीय राजा कालीशङ्कर घोषाल, द्वारकानाथ ठाकुर, प्रसन्नकुमार ठाकुर आदि सुप्रसिद्ध व्यक्तियों-का भी इस तरफ यथेष्ट अनुराग हो गया था।

वे दो तीन पण्डितोंके साथ सर्वदा समय व्यतीत करते थे। उनके एक अनुगत शिष्यका कहना है कि—"राममोहन राय जब शक सं० १७३४ में रंगपुरकी जमीं-दारीका काम छोड कर एक ईश्वरकी उपासनाप्रचारके लिये कलकत्ते आये, तब हरिहरानन्द तीर्थस्वामीको अपने साथ लाये थे। तीर्थस्वामीने देश भ्रमण करते हुए रंग-पुरमें आ कर राममोहन रायके साथ भेंट की थी। राममोहन रायने उनकी शास्त्रचर्चा और उदारभावसे सन्तुष्ट हो कर उन्हें सम्मानपूर्वक अपने यहां रखा और तीर्थस्वामी भी उनके प्रेमपाशमें बद्ध हो कर छायावत् उनके साथ रहे। वे तन्त्रोक्त साधक, वामाचारमें रत और महानिर्वाणतन्त्रके अनुसार ब्रह्मोपासक थे। अव-धूताश्रम ग्रहण करनेके पूर्व उनका नाम नन्दकुमार था। ब्राह्म-समाजके सुपरिचित प्रथम आचार्य रामचन्द्र विद्या-वागीश इन्हींके कनिष्ठ भ्राता थे। हरिहरानन्द तीर्थ-स्वामीने विद्यावागीश महाशयको राममोहन रायके हाथ सौंप दिया था। धीरे धीरे विद्यावागीश उनके एक प्रधान सहयोगी हो उठे।* राममोहन रायके पास शिवप्रसाद मिश्र एक उत्तर-भारतीय ब्राह्म रहते थे। उन के साथ वे उपनिषद्की आलोचना करते थे।"

जिन व्यक्तियोंका नामोल्लेख किया गया है, वे सब धर्मानुसन्धानके लिए ही उनके पास आया करते थे, सो बात नहीं। जमींदारीके विषयमें परामर्श लेनेके लिये भी कोई कोई आते थे। मूर्त्तिपूजाके विरुद्ध राममोहन राय प्रबल प्रतिवाद करते थे, इसलिए उनमेंसे किसी किसीने आना बंद भी कर दिया था। द्वारका-नाथ ठाकुर, राजा कालीशंकर घोषाल और गोपीनाथ मुन्शीने उनका साथ कभी नहीं छोड़ा।

बंगाल भरके लोग उनके विरोधी हो गये। बहुतसे लोग तो नाना प्रकारसे उनका अनिष्ट करनेको उतारू हो गये थे और इस बातकी कोशिश भी करने लगे। बहुतसे ऐसे थे, जो राममोहन रायके सामने तो मित्रता प्रकट करते थे और पीछे छिपे तौरसे उनके अनिष्ट करने पर तुले हुए थे।

धर्मप्रचारके लिए राममोहन राय चार उपाय अव-लम्बन किये थे। प्रथम—कथोपकथन और तर्कवितर्क; द्वितीय—विद्यालय स्थापित करके तथा अन्य प्रकारसे शिक्षादान, तृतीय—पुस्तक-प्रचार और चतुर्थ—सभाएं स्थापित करना।

राममोहन रायने जब देखा कि पुस्तकप्रकाश सत्य-धर्म प्रचारका एक प्रकृष्ट उपाय है, तब उन्होंने धीरे धीरे ब्रह्मज्ञानप्रतिपादक ग्रंथ अपने व्ययसे मुद्रित कराके विनामूल्य वितरण कराना शुरू कर दिया। शक सं० १७३७में उन्होंने पहले पहल बंगला भाषामें वेदान्त-सूत्रका भाष्य प्रकट किया था।

राममोहनरायका सुप्रशस्त हृदय केवल वङ्गभूमिमें आबद्ध न था। वह सारे भारतके लिये क्रन्दन कर रहा था। इसलिए वेदान्तसूत्रका बंगला अनुवाद समस्त भारतवासियोंके समझमें न आयेगा, ऐसा समझ कर उसका हिन्दीअनुवाद भी प्रकाशित कराया। पीछे

* ये मालपाड़ा गांवमें रहते थे। पीछे संस्कृत कालेजमें स्मृतिशास्त्रके अध्यापक हुए।

१८१६ ई०में आपने अङ्गरेजी अनुवाद प्रकाशित किया।

आपने पहले जो वेदान्तसूत्र और उसका अनुवाद प्रकाशित किया था, वह ग्रन्थ विस्तृत और कठिन होनेके कारण साधारणको समझमें न आता था, इसलिए अब उसे अत्यन्त सरल भाषामें लिखा। पीछे, सब कोई इतने बड़े ग्रन्थको पढ़ना चाहते या नहीं, इस कारण आपने उसका सार संग्रह करके "वेदान्तसार" नामका एक ग्रन्थ प्रकाशित किया। यह किस संवत्में पहले प्रकाशित हुआ था, ठीक पता नहीं। १८१६ ई०में इसका अंगरेजी अनुवाद प्रकाशित हुआ था। ईसाई धर्मके प्रचारक साहब लोग इसे पढ़ कर आश्चर्यमें आ गये थे और रचयिताका परिचय यूरोपमें प्रचार किया था।

'वेदान्तसूत्र' और 'वेदान्तसार' प्रकाशित करनेके बाद आपने पाँच उपनिषद्, बङ्गला अनुवाद सहित मुद्रित और प्रचारित किये। जिनमें सामवेदके अन्तर्गत तलवकार उपनिषद् प्रथम प्रकाशित हुआ था। तलवकारका दूसरा नाम केनोपनिषद् है। यह पुस्तक शक सं० १७३८ के आषाढ़ मासमें पहले पहल प्रकाशित हुई थी। इसी समय इन्होंने यजुर्वेदीय ईशोपनिषद् वा वाजसनेय संहितोपनिषद् प्रकाशित की थी। आपने वेदान्तसूत्रकी तरह इसकी एक भूमिका और अनुष्ठान लिखा था। भूमिकामें आपने शास्त्रीय प्रमाण और युक्ति द्वारा प्रमाणित किया था, कि ब्रह्मोपासना ही श्रेष्ठ साधन और मुक्तिका एकमात्र कारण है।

बंगला सन् १२२४ के भाद्र मासमें यजुर्वेदीय कठोपनिषद् बंगला अनुवाद सहित प्रकाशित हुई थी। इसमें भी एक छोटी सी भूमिका है। इसके बाद मुण्डकोपनिषद् प्रकाशित हुई। इसका मूल अलग और बंगला अनुवाद अलग प्रकाशित हुआ था। 'गायत्री अर्थ' नामक और एक पुस्तक १८१८ ई०में प्रकाशित हुई। इसकी भूमिका और ग्रन्थ पृथक् पृथक् दो भागोंमें विभक्त हैं।

गृहस्थ व्यक्ति यदि ब्रह्मोपासक हो, तो शास्त्रानुसार उनका किस प्रकार आचरण होना उचित है, 'ब्रह्मनिष्ठ गृहस्थका लक्षण' नामक पुस्तकमें यही बात लिखी गई है। १८२६ ई०में यह पहले पहल छपी थी।

'गायत्र्याः परमोपासनाविधानम्' नामक पुस्तक १८२७ ई०में प्रकाशित हुई। इस पुस्तकका मर्म यह है, कि वेद पाठके सिवा केवल गायत्री जप द्वारा भी ब्रह्मोपासना होती है। इसमें अनेक शास्त्रीय प्रमाण दिये गये हैं। यह संस्कृत और बंगला दोनों भाषामें लिखी गई है। इसी साल इसका एक अंगरेजी-अनुवाद भी प्रकाशित हुआ था।

इनको 'अनुष्ठान' नामक पुस्तकमें अवतरणिकाके नामसे एक भूमिका है, जिसमें १२ प्रश्न और उनके उत्तर दिये गये हैं। इसमें ब्रह्मोपासनाविधान और शास्त्रानुसार आहारव्यवहार प्रणाली आदि लिखी है। यह पुस्तक १८२६ ई०में छपी था।

'ब्रह्मोपासना' नामकी पुस्तक शक सं० १७५० (१८२८ ई०)में प्रकाशित हुई थी। इसमें ब्रह्मोपासनाकी एक पद्धति बताई गई है, जिसे देख कर कोई कोई समझ सकते हैं, कि राममोहन रायके समयमें यह ब्राह्मसमाजमें व्यवहृत होती थी, किन्तु वास्तवमें यह बात न थी। उस समय समाजमें केवल उपनिषद्का पाठ, व्याख्या और सङ्गीत होता था।

उनकी 'प्रार्थनापत्र' नामक पुस्तक शक सं० १७५५, (ई०-सन् १८३३) में पहले पहल प्रकाशित हुई। इसमें स्वजातीय और विजातीय समस्त धर्म-सम्प्रदायोंके प्रति उदार आत्मभाव प्रकट किया गया है।

राममोहन रायने श्रीमत् शङ्कराचार्य-प्रणीत 'आत्मा नात्मविवेक'-को बंगानुवाद सहित प्रकाशित किया था। वे आधुनिक ईसाई-सम्प्रदायका तरह प्रश्न विषय प्रतिपादनार्थ एक एक दीर्घायत कागज पर मुद्रित करके बंटवाया करते थे, जो बादमें 'ट्रयक्ट' के नामसे मुद्रित हुआ था।

ब्रह्मसङ्गीत राजा राममोहन रायकी एक अतुलनीय कीर्ति है। अन्यान्य अनेक विषयोंके समान बंगलाभाषामें ब्रह्मसङ्गीतके सृष्टिकर्त्ता हैं। उन्होंने अपने तथा मित्रोंके रचे संगीत पुस्तकाकारमें प्रकाशित किये थे। उनके समयमें ही इसके दो तीन संस्करण हो चुके थे।

शास्त्रीय विचार और अन्यान्य विषयमें बहुत-सी पुस्तकें उन्होंने बंगलामें लिखी थीं। 'कायस्थोंके साथ मद्यपान विषयक विचार' नामक पुस्तकमें उन्होंने शूद्रके

लिए सुरापानकी शास्त्रविरुद्धता और ब्राह्मण आदि जातिके लिए मद्यपानका अधिकार सिद्ध किया है। इसके सिवा 'पथ्यप्रदान' नामक पुस्तकके सातवें परिच्छेदमें आपने इस मतका समर्थन किया है।

उनके एक शिष्य व्रजमोहन मजूमदारने १८३२ ई०में धर्मतल्लाके यूनिटेरियन प्रेससे 'मूर्त्तिपूजा मुखचपेटिका' नामक एक पुस्तक निकाली थी। लोगोंका विश्वास है, कि यह पुस्तक राजा राममोहन रायकी ही लिखी हुई है।

श्रीरामपुरके एक ईसाई पादरीने वेदान्त, न्याय, मीमांसा, पातञ्जल, सांख्य, पुराण, तन्त्र आदि शास्त्र तथा योनिभ्रमण, जन्मान्तरीण फलभोग आदि मतके विरुद्ध ईसाईयोंकी 'समाचारचन्द्रिका' नामक पत्रिकामें १८२१ ई०की १४वीं जुलाईको एक पत्र प्रकाशित किया था। राममोहन रायने इसका उत्तर लिख कर उक्त पत्रके सम्पादकके पास भेजा, किन्तु उसने उसे छापा नहीं। इसलिए राममोहन रायने 'ब्राह्मणावधि' नामक पत्रिका प्रकाशित करके उसका उत्तर दिया। उसमें उनके जातीय भाव और जातीय शास्त्रोंके प्रति अनुरागको विशेष झलक थी। इस उत्तरमें ईसाई धर्मके विरुद्ध कुछ अखण्डनीय युक्तियां थीं।

पिता परमेश्वर पुत्र ईसा और होली गोष्टको ले कर प्रसिद्ध विशप वटलरके साथ तर्क करनेके बाद उन्होंने विशेष भावसे ईसाई धर्मकी आलोचना प्रारम्भ की और विशेष यत्नके साथ बाइबिल ग्रन्थका आद्योपान्त पाठ किया। परंतु अंगरेजी अनुवाद पढ़ कर उन्हें तृप्ति न हुई। ग्रीक-भाषा सीख कर नवीन बाइबिलका मूलग्रन्थ और हिब्रू भाषा सीख कर बाइबिलका मूलग्रन्थ पढ़ा। उन्होंने एक यहूदी शिक्षक रख कर छह मासके अन्दर हिब्रू भाषा सीखी थी। इससे भाषा-शिक्षाके विषयमें उनकी असाधारण शक्तिका परिचय मिलता है। अरबी भाषामें भी वे काफी व्युत्पन्न थे। इसलिए मुसलमान लोग उन्हें 'मौलवी राममोहन राय' और 'जबरदस्त मौलवी' कहा करते थे। अरबीके साथ हिब्रूका अति निकट सम्बन्ध है। इसलिये हिब्रू सीखना उनके लिए सहज था। राममोहन रायने इस समय पादरी ऐडम और येट साहबके साथ मिल कर 'ईसाई सुसमाचार' नामकी चार पुस्तकोंका अनुवाद किया। येट साहबने नाराज हो कर यह कार्य छोड दिया। शायद, ईसाई धर्मके विषयमें राममोहन रायसे उनका मतभेद हो गया होगा।

इस समय राममोहन रायने बाइबिलसे ईसाका उपदेश सकलन करके Precepts of Jesus, Guide to peace and happiness अर्थात् ईसाका उपदेशसुख और शान्तिपथका परिचालक है, नाम दे कर एक पुस्तक निकाली (१८२० ई०)।

ईसाके उपदेशोंका सग्रह प्रकाशित करने पर भी किसीने उनके उदारभावको न समझा। स्वदेशवासियोंकी बात जाने दीजिए। बहुतसे ईसाई भी उनसे नाराज हो गये थे। श्रीरामपुरके सुप्रसिद्ध मार्समैन साहबने 'फ्रेण्ड-आव-इण्डिया' नामक समाचार पत्रमें उक्त ग्रन्थकी निन्दा की थी। उनके प्रतिवाद करनेका कारण यह था, कि ईसाका ईश्वरत्व उनकी अलौकिक क्रिया और उनके रक्तसे पापोंकी मुक्ति इत्यादि मत-पोषक बाइबिलके वाक्य उसमें नहीं दिये गये थे।

उपदेश संग्रह पुस्तकमें सग्रहकर्त्ताका नाम न था। परन्तु सर्वसाधारणसे लेखकका नाम छिपा न रहा। मार्समैन साहबकी समालोचनाके उत्तरमें राममोहन रायने सत्यका मित्र (A Friend to truth) के नामसे 'An appeal to the Christian Public' शीर्षक एक पुस्तक लिखी (१८२० ई०)। उसमें आपने सिद्ध किया कि ईश्वरका त्रित्व, ईसाके रक्तसे पापका प्रायश्चित्त इत्यादि बातें बाइबिलमें नहीं मिलतीं मिशनारियोंने बाइबिलका यथार्थ नहीं समझा इसलिए उनका ऐसा विश्वास है।

मार्समैन साहबने पुनः आक्रमण किया। राममोहन रायने दूसरी बार अपने नामसे 'Second Appeal to the Christian Public' प्रकाशित की। मार्समैन साहबने इस बार भी उसका उत्तर दिया। राममोहन राय भी तीसरी बार उत्तर देनेको तैयार हुए, किन्तु अबकी एक बाधा पड गई। अब तक उनकी पुस्तकें बैपटिष्ट मिशन प्रेसमें छपा करती थीं। अब प्रेसवालोंने इस पुस्तक-

को ईसाई धर्मकी विरोधक समझ कर छापनेसे इनकार कर दिया। परन्तु राममोहन राय सहजमें छोड़नेवाले न थे। उन्होंने टाइप आदि मंगवा कर स्वयं धरमतल्ला में एक प्रेस खोला, जिसका नाम रखा 'यूनिटेरियन प्रेस'। इसका काम अकसर देशी आदमियों द्वारा होता था। १८२१ ई०में इस प्रेससे उनके नामसे Final Appeal नामक तीसरी पुस्तक निकली। इस पुस्तकमें उनके पाण्डित्य और तर्कशक्तिका यहां तक परिचय मिला कि लोग दंग रह गये। मार्समैन साहबने अपने मतके समर्थनके लिए अङ्गरेजी बाइबिलसे अनेक प्रमाण उद्धृत किये। राममोहन राय अङ्गरेजी अनुवादसे सन्तुष्ट न थे, अतएव उन्होंने ग्रीक और हिब्रू भाषामें लिखित मूल बाइबिलसे प्रमाण उद्धृत करके उसका अर्थ अङ्गरेजी अनुवाद करके सिद्ध किया, कि मार्समैन साहबकी बात उनके धर्मशास्त्रके अनुकूल नहीं है। आखिर मार्समैन साहबको पराजित होना पड़ा।

१८२१ ई०में एक और आमोद जनक तर्कयुद्ध हुआ। एक ओर डा० टाइटलर साहबके भाई। (हिन्दूकालेजके अन्यतम अध्यापक) और श्रीरामपुरके मिशनरी लोग थे और दूसरी ओर राममोहनराय। सुप्रसिद्ध 'हरकरा' और 'इण्डिया गजट' नामक दो पत्र दोनोंके अवलम्बन थे।

'हरकरा' पत्रमें टाइटलर साहबने पहले राममोहन राय पर आक्रमण किया। इस पर कल्पित नाम 'रामदास' रख कर हिंदूभाव धारण करके राममोहन रायने उन्हें ऐसा उत्तर दिया कि "राममोहन राय मूर्त्तिपूजक हिंदू और त्रित्ववादी ईसाइ दोनोंके परम शत्रु हैं; वे ईश्वर बहुत्व और अवतारवाद दोनों ही प्रतिवादी हैं और वे दोनों ही मत हिंदू तथा त्रित्ववादी ईसाइ दोनोंके मूल मत हैं। इसलिए आओ, हम लोग (हिन्दू और ईसाई) मिल कर अपने साधारण शत्रु राममोहन राय पर आक्रमण करें।" यह उत्तरपत्र कहांसे आया किसीको मालूम न हुआ। एक घृणित मूर्त्तिपूजक ईसाइयोंके साथ साधारणभूमि पर खड़ा होना चाहता है, यह बात टाइटलर या अन्य ईसाइयोंको सह्य न हुई। उन्होंने बड़ी नाराजगीके साथ 'रामदास' के पत्रका उत्तर दिया, "ईसाइ धर्म और हिन्दूधर्ममें तुलना करना बहुत ही अन्यायकार्य है, दोनोंकी साधारण भूमि एक नहीं हो सकती।"

'रामदास' ने लिखा कि त्रित्ववादी ईसाईधर्म और मूर्त्तिपूजक हिन्दूधर्मकी मूलभित्ति एक ही है—अवतारवाद और ईश्वरका बहुत्व। ईसाइधर्मको श्रेष्ठता सिद्ध करनेके लिए टाइटलर साहब और उनके पक्ष-समर्थक ईसाइ लोगोंने ईसाकी अलौकिक क्रिया, ईसाई धर्मकी भविष्यवाणीका पूर्ण होना इत्यादि बातोंको सिद्ध करना चाहा। 'रामदास' ने भी हिन्दूशास्त्रोंसे ऐसे अनेक प्रमाण उद्धृत किये। अनेक प्रत्युत्तरके बाद 'रामदास'की ही जीत रही। दोनों पक्षके पत्र बादमें पुस्तकाकारमें मुद्रित हुए थे।

इसी समय विलियम आडम नामक एक त्रित्ववादी बैपटिष्ट ईसाइ मिशनरी भारतमें आया। राममोहन रायके साथ उनका परिचय हुआ। वे राममोहन रायको ईसाई धर्ममें दीक्षित करनेकी कोशिश करने लगे। परन्तु फल उलटा हुआ। राममोहन राय तो ईसाई हुए नहीं, उलटे वे आडम साहबको अपने धर्ममें खींच लाये। उन्होंने उन्हें समझा दिया कि परमेश्वरका त्रित्व, ईसा-का ईश्वरत्व और उनके रक्तसे पापीका उद्धार इत्यादि मत बाइबिलके विरुद्ध हैं। १८२१ ई०में आडम साहब राममोहन रायके उपदेशसे 'यूनिटेरियन' हो गये। चारों तरफ शोर मच गया। कट्टर ईसाइ लोग आडम साहब-की "Second fallen adam" कह कर हंसी उड़ाने लगे अर्थात् शैतानके चक्करमें आ कर प्रथम मनुष्य आडम का जैसा पतन हुआ था उसी तरह राममोहन रायके पंजेमें पड़ कर आडम साहबका दूसरी बार पतन हुआ।

१८१५ ई०में वे कलकत्ता-निवासी हुए और एक वर्ष बाद ही अपने माणिकतल्ला-वाले मकान पर उन्होंने आत्मीय सभा कायम की। दूसरे वर्ष यह उनके सिमला वाले मकानमें स्थानान्तरित हो गई थी, किन्तु उसके बाद फिर जहांकी तहां वापस आ गई। सप्ताहमें एक बार सभा होती थी। शिवप्रसाद मिश्र उस सभामें वेदपाठ करते थे और गोविन्द माला ब्रह्मसङ्गीत गाते थे। द्वारकानाथ ठाकुर, ब्रजमोहन मजूमदार आदि

नियमित रूपसे उक्त सभामें शामिल होते थे, किन्तु जय-कृष्ण सिंह आदि बहुतसे लोगोंने निन्दाके डरसे उनका साथ छोड़ दिया।

इसी समय उनके भतीजोंने उन्हें पैत्रिक सम्पत्तिसे-वञ्चित करनेकी आशासे उनके विरुद्ध मुकदमा दायर कर दिया। नाना साम्पत्तिक झगड़ोंमें पड़ जानेके कारण वे नियमितरूपसे सभाका कार्य न चला सकते थे, इसलिए कभी वृन्दावन मिश्रके मकान पर, कभी भू कैलासके राजा कालीशङ्कर घोषालके मकान पर, कभी रूईके बाजारमें विहारीलाल चौबेके मकान पर सभा होने लगी। कुछ दिन इस तरह आत्मीय सभाके चलनेके बाद १८१६ ई०में विहारीलालके मकान पर एक महा-सभा हुई। उस सभामें राममोहन रायके साथ विचार करनेके लिये तत्कालीन प्रधान प्रधान पण्डितोंके साथ राजा राधाकान्त देव उपस्थित हुए। अनेक तर्क-युक्तियोंके बाद सुब्रह्मण्य शास्त्रीको राममोहन रायके मतप्राधान्यको माननेके लिए बाध्य होना पड़ा था।

नाना सम्पत्तिक झगड़ोंमें उलझे रहनेके कारण अब तक राममोहन रामब्रह्मोपासनाके प्रचारके लिए एक समाज स्थापित न कर सके थे। धर्मविचारमें मूर्त्ति-पूजा मतका खण्डन करनेके बाद तथा उक्त मुकदमेमें जय प्राप्त करनेके बाद वे आनन्दित हृदयसे अभीष्ट सिद्धिका उद्योग करने लगे। वे सरलहृदय आडम साहबके सहयोगसे विशेष उत्साहके साथ एकेश्वरवाद-के प्रचारमें प्रवृत्त हुए। ब्राह्मसमाज देखो।

इस समय राज-पुरुषों अन्दर सतीप्रथाको रोकनेके लिए घोर आन्दोलन चल रहा था। लार्ड वेलिसली, लार्ड कर्नवालिस, सर जार्ज वार्लो, मर्कुइस आव हेष्टिंग्स् आदि गवर्नर जनरलोंने सतीदाह निवारणके लिए अनेक उपाय किये थे, किंतु धार्मिक भावों पर आघात पहुंचेगा इस भयसे वे ज्यादा कुछ न कर सके थे। यहा तक कि ईसाई पादरी भी इसके विरुद्ध कुछ बोलनेमें असमर्थ थे।

१८१० ई०में राममोहनरायके रंगपुरमें रहते हुए उनकी बड़ी भौजाई (जगन्मोहनकी द्वितीय स्त्री) पतिके साथ सहमृता हुई। इस घटनासे राममोहन रायके हृदय-में सती दाहको बंद करनेकी आकांक्षा बलवती हो उठी।

सतीदाहके आनुषङ्गिक अत्याचारोंको दूर करनेके लिये निजामत अदालतने जो कठोर नियम बनाये थे, उसको तोड़ देनेके लिए कट्टर हिन्दुओंने गवर्नर-जनरल हेस्टिंग्सके पास आवेदनपत्र भेजा। १८१८ ई०में राममोहन रायने उसके विरुद्ध एक आवेदन भेजा। यह पत्र Asia-tic Journal नामक पत्रिकामें प्रकाशित हुआ था। उसी साल ३० नवम्बरको आपने सतीदाहके सम्बन्धमें पहली पुस्तकका अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित किया। सतीदाहप्रथाके विरुद्ध आपने 'प्रवर्त्तक और निवर्त्तकका प्रथम सवाद', 'प्रवर्त्तक और निवर्त्तकका द्वितीय सवाद' तथा 'विप्रनाम' और 'मुग्धबोध छात्र' नामक दो व्यक्ति-योंके उत्तरमें तीसरा ग्रन्थ प्रकाशित किया। दूसरी पुस्तकका १८२० ई०में अंग्रेजी अनुवाद हुआ। यह अनु वाद हेस्टिंग्सकी सहधर्मिणीको समर्पण किया गया था। उसके सिवा सतीदाहके सम्बन्धमें आपने संवादकौमुदी-में एक लेख लिखा था। १८३० ई०में उनका 'सहमरण विषयक तृतीय प्रस्ताव' और उसका अंग्रेजी अनुवाद प्रकासित हुआ।

इसी समय लार्ड विलियम बेन्टिक भारतके बड़े लाट हुए। राममोहन रायको सतीप्रथाके विरोधी जान कर तथा वह न्याय और शास्त्रके विरुद्ध है, यह बात पुस्तकमें पढ़ कर बेन्टिकको राममोहन रायसे मिलनेकी अभिलाषा हुई। दोनोंको मुलाकात हुई और सतीदाहनिवारण-सम्बन्धी बहुत परामर्श हुआ। १८२६ ई०में ४थी दिसम्बर को बेन्टिकने यह कुप्रथा भारतसे दूर कर दी। १८३० ई०में १६वीं जनवरीको बड़े लाटके प्रति कृतज्ञता जाहिर करनेके लिये राममोहन रायने टाउन-हालमें एक सभा की। टाकीके सुप्रसिद्ध जमींदार कालीनाथ रायचौधरी-ने उस सभामें बंगला भाषामें लिखित अभिनन्दनपत्र और हरिहर दत्तने उसका अंग्रेजी अनुवाद पढ़ कर सुनाया था। उक्त अभिनन्दनपत्रमें द्वारकानाथ ठाकुर, कालीनाथ राय और तेलिनीपाड़ाके प्रसिद्ध जमींदार अन्नदाप्रसाद वन्द्योपाध्यायके सिवा और किसी सम्भ्रान्त व्यक्तिने हस्ताक्षर न किये थे। इस कारण राममोहन

रायने उक्त अभिनन्दनपत्रके अन्तमें साधारण जनताके क्षमा प्रार्थना करते हुए लिखा था :—

'That your Lordship will condescendingly accept our most grateful acknowledgement for this act of benevolence towards us and will pardon the silence of those who, though equally partaking the blessing bestowed by your Lordship have through ignorance or prejudice omitted to join us in this common cause.'

देशवासी जिससे संस्कृत और फारसीके सिवा अङ्गरेजी भी पढ़ सकें, इसके लिए आपने विशेष आग्रह प्रकट किया था। १८२३ ई०में आपने सकौन्सिल बड़े लाट आमहर्स्टको कालेज स्थापन करनेके लिये एक प्रार्थनापत्र लिखा। इसमें आपने लिखा था कि अंग्रेजी बिना सिखाये इस देशके लोगोंके कुसंस्कार दूर न होंगे। फारसी या संस्कृत शिक्षासे विशेष काम न होगा। इसलिये संस्कृत-कालेजके बदले एक अंग्रेजी विश्वविद्यालयकी प्रतिष्ठा करनी चाहिये। आपने वैदिक शिक्षाके लिये एक वेद विद्यालय खोला था। ७४ नं० माणिकतल्ला स्ट्रीटमें यह विद्यालय था।

१८५० ई०में ईसाइ धर्मके प्रचारक महात्मा डफ कलकत्ते आये। राममोहन रायके साथ मुलाकात करके उन्होंने इस देशके बालकोंको शिक्षाके लिये एक अंग्रेजी विद्यालय स्थापित करनेकी वासना प्रकट की। अंग्रेजी शिक्षाके पक्षपाती राममोहन इस पर बड़े ही प्रसन्न हुए और डफ साहबको विद्यालय स्थापनार्थ ब्राह्म-समाजका मकान छोड़ दिया। पीछे अपने बनाये हुए नये मकानमें समाज स्थापित होने पर आपने कमल वसुका मकान ४०) किराये पर स्कूलके लिए ले लिया। स्कूलमें छात्रसंख्या बढ़ानेके लिये आपने काफी परिश्रम किया था। इसके सिवा स्वयं उन्होंने भी एक अंग्रेजी स्कूल खोला था। देवेन्द्रनाथ ठाकुर ने इस स्कूलमें पहले पहल अंग्रेजी अध्ययन किया था। और भी अनेक भद्र और सम्भ्रान्तवंशीय बालक उस स्कूलमें भर्ती हुए थे।

सर्वसाधारणके लिये पाठ्योपयोगी बंगला पुस्तकों का सबसे पहले आपने ही प्रचार किया था। १८१० ई०में ही आपका प्रथम गद्य रचनाका समय है, किन्तु उसके मुद्रित और प्रकाशित न होनेसे जनता उससे अपरिचित रही। १८१५ ई०में उन्होंने साधारण पाठ्य पुस्तक (गद्यकी) प्रकाशित की।

आपने पहले पहल अपने ग्रन्थमें कामा, सेमिकोलन आदिका व्यवहार किया था। उस जमानेमें गद्य पढ़नेमें लोग अनभ्यस्त थे। कैसे पुस्तक पढ़नी चाहिए, इसकी प्रथाको आप स्वयं लिख गये हैं।

१८२६ ई०में अंग्रेजोंको बंगला भाषा सीखनेमें सहायता पहुंचानेके उद्देशसे आपने अंग्रेजी भाषामें एक बंगला व्याकरण लिखा। बादमें आपने उस व्याकरण के आधार पर अथवा उसका अनुवाद करके एक 'गौड़ीय व्याकरण' रचा। इसे अच्छा समझ कर सर्वसाधारण ने खूब अपनाया। इसके सिवा आपने बंगलामें ज्याग्राफी (अंगरेजी Geography शब्दका अपभ्रंश) नामसे भूगोल, खगोल (Astronomy) और ज्यामिति (Geometry) भी लिखी थी। परंतु खेद है, कि अब वे ग्रन्थ मिलते नहीं।

पहले लिख आये हैं, कि एक समय राममोहनको माताने उन्हें सपुत्र घरसे निकाल दिया था। उन्होंने पहले राधानगरके समीप रघुनाथपुर जा कर एक घर बनवाया। पीछे वे कलकत्ता आ कर रहने लगे थे। रघुनाथपुरमें रहते समय उनके छोटे पुत्र रमाप्रसादका जन्म हुआ। उस समय बड़े लड़के राधाप्रसादकी उमर २० वर्षकी थी। माताके साथ इनका बहुत दिन तक मन साफ न रहा। कुछ समय बाद उनकी माताने सारी जमीं दारी राममोहन, जगन्मोहन और रामलोचनके पुत्र पौत्रादिमें बांट दी और आप जगन्नाथ जा कर रहने लगी। वहां एक वर्ष रहनेके बाद उनकी मृत्यु हुई। इसके कुछ समय बाद ही राममोहनकी मध्यमा स्त्री श्रीमती देवीका स्वर्गवास हुआ। स्त्रीकी बीमारीका हाल सुन कर उन्होंने बड़े लड़के राधाप्रसादको कृष्णनगर भेजा और कह दिया था, कि यदि मृत्यु हो जाय, तो मुझे खबर देना, अनिष्ट स्वीकार कभी न करना। मृत्यु संवाद पा कर व कृष्णनगर गये और वहां परलोकगता

पत्नीकी चिता पर दाम्पत्यप्रणयके निदर्शनस्वरूप एक स्तम्भ बनवा दिया।

बहुत दिनोंसे राममोहन रायकी विलायत जानेकी इच्छा थी। इस समय सांसारिक विपर्ययसे इनका चित्त बहुत अशान्त हो उठा। वे विलायत जानेके लिये तैयार हो गये। राममोहनका विलायत जाना सुन कर देशमें बड़ा भारी आन्दोलन उठा। इसके पहले कोई भी हिन्दू जहाज पर चढ़ कर विलायत नहीं गये थे।

केवल यूरोपका प्राकृतिक सौन्दर्य वा वहांका आचार व्यवहार, धर्म और राजनैतिक अवस्था आदिको देखनेके लिये ही यूरोप जाना चाहते थे, सो नहीं। उनका इस समुद्रयात्राके और भी कई कारण थे। इष्ट इण्डिया कम्पनीकी नई सनदसे भारतवर्षके भावी राज्य-शासन और भारतवासियोंके ऊपर गवर्मेण्टका व्यवहार बहुत दिनों तक कायम रहेगा, सोच कर वे इस विषयमें आन्दोलन करने तथा सतीदाह निवारणके विरुद्ध प्रिभिकौन्सिलमें अपील सुनानेके लिये विलायत जाना चाहते थे। इसी समय उक्त इष्ट-इण्डिया कम्पनीने दिल्ली सम्राट्के कुछ अधिकार छीन लिये थे। इस कारण सम्राट्ने अङ्गरेज कम्पनीके अन्यान्य अत्याचारकी बात इङ्गलैण्डके राजकर्मचारियोंके निकट सुनानेके लिये राममोहन राय-को ही दूतरूपमें विलायत भेजना चाहा। दिल्लीके सम्राट्से सहायता पा कर वे प्रफुल्ल चित्तसे १८३० ई०के नवम्बर मासमें विलायतके लिये रवाना हुए। बादशाहने उन्हें सनद द्वारा राजाकी उपाधि दी और अपनी ओर-से आवेदन करनेकी उपयुक्त क्षमता दे कर आने जानेका कुछ खर्च दिया था। बादशाहसे यदि सहायता न मिलती तो सम्भव नहीं, वे विलायत जा सकते थे।

उसी साल १५ नवम्बर सोमवारको वे अपने पालित पुत्र राजाराम, रामरत्न मुखोपाध्याय और रामहरिदासको साथ ले आलबियन नामक जहाज पर चढ़े। अपने हाथसे रसोई आदि करनेकी कुल सामग्री तथा एक दुधारित गाय भी साथ ले गये थे। जब जहाज नेटाल बन्दरमें लंगर डाले हुए था, उस समय एक फरासी जहाज स्वाधीनताकी पताका फहराये जा रहा था। राम-मोहन राय उसे देखनेके लिये बड़ी तेजीसे ज्यों ही आगे बढ़ रहे थे, कि जमीन पर गिर पड़े जिससे एक पाव टूट गया। पीछे बहुत उपाय करने पर भी बिलकुल अच्छा न हुआ। विलायतमें ये लंगड़ा कर चलते थे।

१८३१ ई० ८वीं अप्रिलको जहाज लीवरपुलके बन्दर-में पहुंचा। राममोहनकी ख्याति पहले हीसे इङ्गलैण्डमें फैली हुई थी। लण्डननगरमें मुद्रित इनके लिखे अङ्गरेजी भाषाके ग्रन्थ कर पढ़ बहुतोंको इन्हें देखनेकी उत्कट इच्छा थी। जब ये विलायत पहुंचे, तब विलियम राथबोनने अपने ग्रीनबैंक नामक भवनमें ठहरनेके लिये इनसे बहुत अनुरोध किया। किन्तु किसीके यहां रहनेकी अपेक्षा ये स्वाधीन भावसे रहना पसन्द करते थे। इसलिये ये राउलिस होटलमें आ कर रहने लगे। यहां सुप्र-सिद्ध पण्डित विलियम रस्को और प्रत्नतत्त्वविद् पण्डित स्परजिमके साथ इनकी मित्रता हुई।

पार्लियामेण्ट महासभामें रिफर्म बिल और भारतीय सनदके सम्बन्धमें तर्कवितर्क सुननेके लिये इन्होंने शीघ्र ही लण्डनकी यात्रा कर दी। यहां आते समय रस्कोने लार्ड ब्राउहमको राममोहन रायका पूर्ववृत्तान्त और इङ्गलैण्ड आनेका उद्देश्य संक्षेपमें सुना कर उन्हें पार्लिया-मेण्ट महासभामें गैलरीके नीचे एक स्थान देनेका अनु-रोधपत्र दिया।

लीवरपुलसे चल कर ये मैञ्चेष्टर शहरमें कल आदि देखने आये। वहांके स्त्री और पुरुष कुली भारतवर्षके राजा आये हैं, सुन कर राममोहनरायको देखने दौड़े। रेलपथ-से लण्डन नगर आ कर आडेलफी होटलमें पहुंचे। यहां जेरमी वेन्थमके साथ इनका परिचय हुआ।

दिल्लीके बादशाहने जो इन्हें राजाकी उपाधि दी थी उसे इङ्गलैण्डकी गवर्मेण्टने स्वीकार कर लिया। इङ्गलैण्ड-पतिके राज्याभिषेककालमें विदेशीय दूतोंके साथ इन्हें भी एक आसन मिला था। लण्डन नगरके सेतुनिर्माणके उपलक्षमें जो जलसा हुआ था उसमें इङ्गलैण्डके राजाने इन्हें भी निमन्त्रण किया था। बोर्ड आव कन्ट्रोलके सभापति सर जे, सी, हबहाउस उन्हें इङ्गलैण्डेश्वरके

पास ले गये। उन्होंने राममोहनके सम्मानार्थ London Tavern नामक मकानमें एक भोज दिया था।

लन्दन नगरके यूनिटेरियन ईसाइयोंने उनके प्रति सम्मान दिखानेके लिये एक प्रकाश्य सभा की। उस सभामें वेस्टमिनिस्टर रिव्यु नामक पत्रिकाके सुप्रसिद्ध सम्पादक सर जान बाउरिंगने अपनी वक्तृतामें कहा था—"प्लेटो या सक्रेटिस, मिल्टन या न्युटन यदि हठात् आ जायें तो मनमें जैसा भाव उत्पन्न हो सकता है, उसी भावसे अभिभूत हो कर आज मैंने राजा राममोहन राय की अभ्यर्थना करनेके लिये हाथ बढ़ाया है।" उसके बाद अमेरिकाके युक्तराज्यके हार्वार्ड विश्वविद्यालयके सभापति डा० कार्कलण्डने कहा था, "अमेरिकावासी राजा राममोहन रायके विषयकी चिन्ता करते हैं। वे लोग अमेरिका आनेके लिये उनका स्वागत करते हैं।" वैदेशिकके ऐसे आग्रह और महानुभवतासे राममोहन रायको उच्च आसन मिला।

१८३१ और ३२ ई०में ईष्ट इण्डिया कम्पनीके नए सनद पानेके उपलक्षमें भारतवर्षकी शासनप्रणाली निरूपण करनेके लिये पार्लियामेण्ट महासभासे एक कमिटी नियुक्त हुई। इस कमिटीके यूरोपीय पण्डितों और राजकर्मचारियोंने कमिटीके सामने गवाही दी थी। राजा राममोहन रायने भी अनुरुद्ध हो कर उस कमिटीके निकट गवर्मेण्टके राजस्व विभाग, विचारविभाग और प्रजासाधारणकी अवस्थाके सम्बन्धमें साक्ष्य प्रदान किया था। कमिटीके सामने इन्होंने भारतवासियोंकी पदोन्नतिके सम्बन्धमें बहुत-सी बातें कही थीं।

राजा राममोहन रायने स्वदेशके कल्याणके लिये इङ्गलैण्डमें रहते समय राजनीति और धर्मके सम्बन्धमें बहुतसे ग्रन्थ लिखे थे। पार्लियामेण्ट कमिटीके सामने उनका साक्ष्य १८३२ ई०के फरवरी मासमें निम्नलिखित नामसे प्रकाशित हुआ।

"An essay on the Rights of Hindoos over Ancestral Properties according to the Law of Bengala with an appendix containg Letters on the Hindoo Law of Inheritance and Remarks on East India affair comprising the Evidence to the Committee of the House of Commons on the Judicial and Revenue systems of India, with a dissertation on its ancient Boundaries, also Suggestion for the Future Governments of the Country illustrated by a Map and further enriched with Note

इसी सालके सितम्बर मासमें Monthly Repository नामक पत्रिकामें उनके लिखे और भी दो ग्रन्थों का उल्लेख देखा जाता है जो इस प्रकार है,—

1 Exposition of the Practical operation of the Judicial and Revenue Systems of India

2 Translations of several principal books, passages and texts of Veds and of some Controversial works on Brahminical Theology.

उक्त वर्षके शरत्कालमें राममोहन राय प्रातःस्मरणीय हेयर साहबके भाईको साथ ले कर फ्रान्स देश देखने गये। फ्रान्स राज्यमें भी उनका यथेष्ट आदर हुआ था। स्वयं सम्राट् लुइ फिलिपने इनका सम्मानके साथ स्वागत किया था। यहां तक कि, उन्होंने राममोहन रायको निमन्त्रण कर एक साथ भोजन किया था। वहांकी सोसाइटी एसियाटिक नामक सभाने इन्हें सभासद बनाया। एक दिन उन्होंने पेरिस नगरके किसी होटलमें सुप्रसिद्ध कवि सर टामस मूरके साथ आहार किया था। टामस मूर उनके मधुर व्यवहार पर मुग्ध हो गये थे। यहां फरासी भाषा सीखनेके लिये इन्होंने कठिन परिश्रम किया था।

१८३३ ई०के आरम्भमें ये इङ्गलैण्ड लौट कर हेयर साहबके भाईके घर ठहरे। इङ्गलैण्डका सम्भ्रान्त भद्र समाज इन्हें श्रद्धाकी दृष्टिसे देखता था। कुमारी लूसी एकिनने सुप्रसिद्ध डा० चैनिंगको जो सब पत्र लिखे उन्हें पढ़नेसे स्पष्ट मालूम होता है कि राममोहन रायके प्रति उनकी कैसी श्रद्धा और भक्ति थी। जैसे—

Just now my feelings are more cosmopolite than usual I take no personal concern in

Memoirs Miscellanies and Letters of late Lucy Aikin.

a *third* quarter of the Globe, since I have seen the excellent Ram mohon Roy."

फिर दूसरी जगह उन्होंने राममोहन रायके सम्बंधमें कहा है—

"He is indeed a glorious being—a true sage, as it appears, with the genuine humility of the character, and with a more fervour, more sensibility, a more engaging tenderness of heart than any class of character can justly claim."

उन्होंने जो रेभेरेण्ड डि डेभिसन एम ए साहब पर अपने पालित पुत्र राजारामका शिक्षा-भार सौंपा था उनकी सहधर्मिणीने राममोहनके सम्बन्धमें लिखा है, "ऐसे विनयी मनुष्य शायद ही कहीं मिलेंगे। जैसे सम्मानके साथ वे मेरे प्रति व्यवहार करते थे, उससे मैं लजा जाती थी। यदि मैं अपने देशकी महारानी होती, तो भी मेरे पास आने और विदा होनेके समय कोई भी इससे बढ कर सम्मान न दिखलाता।"

इसके बाद राममोहनने वृष्टल जानेकी इच्छा प्रकट की। सुपरिचित मिस कार्पेण्टरके पिता डाक्टर कार्पेण्टरने कुमारी कासेल तथा उनकी मामी और अभिभाविका कुमारी किडेलके साथ लण्डन नगरमें राममोहनका परिचय करा दिया। वृष्टलमें इन्होंने ष्टेपल्टन ग्रोभ नामक उद्यानवाटिकामें किडेल और कुमारी कासेलके यहां अतिथिरूपमें रहना चाहा।

१८३३ ई०के सितम्बर मासमें वे वृष्टल आये और उक्त कुमारीके यहां ठहरे। उनके साथ उनके नौकर और कर्मचारी रामहरिदास और रामरतन मुखोपाध्याय तथा पालित पुत्र राजाराम भी आये थे। लण्डनसे उन्हें वहां कहीं आनन्द मिलता था। अधिकांश समय वे डा० कार्पेण्टर और सुप्रसिद्ध प्रबन्धलेखक रेभेरेण्ड जान फष्टरके साथ बिताते थे। कुमारी कार्पेण्टरके साथ इनकी बातचीत हुई। उसी बातचीतसे कुमारीके हृदयमें भारतकी हितसाधनेच्छा जग उठी थी।

११वीं सितम्बरको ष्टेपल्टन ग्रोभ भवनमें राजा राममोहन रायसे कथोपकथन करनेके लिये बहुसंख्यक सुशिक्षित व्यक्ति इकट्ठे हुए। उनका स्वागत करनेके लिये जो सभा हुई उसमें भारतवर्षकी धर्मनैतिक और राजनैतिक अवस्था तथा भविष्य उन्नतिके विषयमें विचार किया गया था। सुप्रसिद्ध डा० फष्टर और अन्यान्य प्रधान पण्डितवर्ग राममोहनकी असाधारण तर्कशक्ति देख कर चमत्कृत हो गये थे। राममोहन रायने करीब ३ घंटे खड़े रह कर उपस्थित पण्डित मण्डलीके कठिन प्रश्नों का यथायथ उत्तर दिया था। जिस असाधारण प्रतिभा का उन्मेष देख कर एक दिन इनके पिता माता तथा गांवके लोग विस्मित हो गये। जिस प्रतिभासे हिन्दू, मुसलमान, ईसाई आदि धर्म सम्प्रदायके प्रधान प्रधान पण्डित उनसे परास्त हुए थे, जिस प्रतिभाबलसे उन्होंने विभिन्न भाषा और विविध शास्त्रमें व्युत्पत्ति लाभ कर असामान्य ज्ञानज्योति प्राप्त की थी, उस असाधारण प्रतिभाका परिचय पा कर वृष्टलनगरमें आये हुए पण्डितवर्ग स्तम्भित हो गये। किन्तु दुःख है, कि यह कार्य उनके जीवनका शेष कार्य था। इसके बाद वे मनुष्यके एक भी हितकर कार्यमें शामिल न हो सके। उस दिनकी सभाके कार्यमें अत्यन्त परिश्रमके बाद उन्हें फिर कभी विश्रामका अवसर न मिला। डा० कार्पेण्टरके उन्हें विश्रामके लिये अनुरोध करने पर भी वे बन्धुवर्गका आतिथ्य उपेक्षा नहीं कर सकते थे। जो सब मनुष्य उनसे मिलने आते थे, उन्हें वे विमुख नहीं लौटाते, उपयुक्त उत्तर दे कर संतुष्ट कर ही देते थे। इसके सिवाय वे उपासनो घर जाने और अन्यान्य स्थान देखनेसे भी बाज नहीं आये थे।

१९वीं सितम्बरको इन्हें थोड़ा-सा ज्वर आ गया। चिकित्सक प्रवर एसलिन, पिचार्ड और कैरिकने इनकी चिकित्सा की। दो दिन तक चिकित्सा होती रही, पर कोई फल नहीं दिखाई दिया। आखिर १८३३ ई०की २७वीं सितम्बरकी रातको ढाई बजे चांदनी रातमें राजा राममोहन राय इस लोकसे चल बसे। उनकी मृत्यु पर इङ्गलैण्डवासियों और भारतवासियोंने आंसू बहाया था। उनकी शुश्रूषा करनेवाले इङ्गलैण्डवासी पुरुष और कुमारियोंके आग्रहसे उसी समय राजाके मस्तक और मुखकी एक प्रतिमूर्त्ति बनाई गई थी।

पीछे उनके लड़कोंको कहीं सम्पत्तिका हिस्सा न मिले, इसके लिये उन्होंने पहले हीसे अपने यूरोपीय बंधुओंको कह रखा था, कि ईसाइयोंके मकबरेमें, अथवा ईसाइयोंकी अन्त्येष्टिक्रियाकी पद्धतिके अनुसार उन्हें न रख कर किसी स्वतंत्र स्थानमें गाड़ दिया जाय। क्योंकि, हिन्दूशास्त्र और आईनके अनुसार इससे उनको हानि नहीं होगी। उनके मृत शरीर पर भी यज्ञोपवीत देखा गया था। उनके कथनानुसार उनका मृतदेह स्टेपलटन ग्रोभके एक निर्जन उद्यानमें चुपचाप १८वीं अक्टूबर को गाड़ दी गई थी। उनके मित्र द्वारकानाथ ठाकुरने इङ्गलैण्ड जा कर Arno's Vale नामक स्थानमें उनकी लाश ला कर उसके ऊपर एक सुन्दर मकबरा बनवा दिया था।

राममोहन बन्द्योपाध्याय—नदिया जिलान्तर्गत भागीरथी पूर्ववर्त्ती मेरेटी ग्रामनिवासी एक बंगाली कवि। इनके पिताका नाम बलराम बंद्योपाध्याय था। अपने पिताके कहनेसे इन्होंने अपने घरमें बड़ी धूमधामसे भक्तिपूर्वक सीतारामकी मूर्त्ति स्थापित की थी। यह अपने कवित्वके निदर्शनस्वरूप रामायण बंगला पद्यमें अनुवाद कर गये हैं। इनका पद्य कृत्तिवासकी तरह प्राञ्जल नहीं होने पर भी कविकी प्रतिभाका परिचायक था।

रामयष्टि (सं० स्त्री०) तस्ताक पत्रविशेष।

रामयशस्—क्षेमेन्द्रके समसामयिक एक कवि। भारत मञ्जरीमें इनका उल्लेख है।

रामरक्षा (सं० पु०) रामचन्द्रका एक स्तोत्र। इसके कर्त्ता विश्वामित्र माने जाते हैं। कहते हैं कि इस स्तोत्रके मन्त्रोंसे अभिमन्त्रित किया हुआ व्यक्ति विशेष रूपसे सुरक्षित रहता है।

रामरङ्गपत्तन—मारी राज्यके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर। (भविष्य ब्रह्मखण्ड १६।२८)

रामरज (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी पीली मिट्टी जिसका वैष्णव लोग तिलक लगाते हैं। यह मध्यप्रदेशमें नदियोंके किनारे बहुत मिलता है।

रामरतन (हिं० पु०) चन्द्रमा।

रामरस (हिं० पु०) १ नमक। २ पानी या बना हुई भंग।

रामरम्भा (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका धान जो कमारोंमें पैदा होती है।

रामरहस्योपनिषद्—एक उपनिषद्का नाम।

रामराज—दाक्षिणात्यके विजयनगरके एक राजा। ये दाक्षिणात्यके चार मुसलमानराज राजाओंके विरुद्ध युद्ध कर निहत हुए थे। १५६५ ई०के जनवरी महीनेमें कृष्णा नदीके किनारे घोर युद्ध हुआ था। इस युद्धमें रामराजके साथ लाख हिन्दू-सेना खेत रही थी। लड़ाई खतम होनेके बाद रामराज निजाम हुसेनके सामने लाये गये। उसी समय उन्होंने उनका शिर काट डालनेका हुक्म दिया। हुक्म पाते ही जल्लादसे उनका शिर काट कर जयस्तम्भस्वरूप बीजापुर भेजा गया।

विजयनगर देखो।

रामराज—सातारके एक महाराष्ट्र-नरपति। २य शाहुजीके बाद १७४८ ई०में ये राजसिंहासन पर बैठे। ये तारा बाईके पौत्र और शाहुजीके दत्तक थे। महाराष्ट्र देखो।

रामराज—स्थापत्यविद्याविषयक ग्रन्थके प्रणेता।

रामराज्य (सं० पु०) १ रामचन्द्रजीका शासन जो प्रजाके लिये अत्यन्त सुखदायक था। २ वह शासन जिसमें रामचन्द्रके शासनकालके जैसा सुख हो, अत्यन्त सुखदायक शासन। ३ महिसुर देश।

रामराम (हिं० पु०) १ प्रणाम, नमस्कार। इस पदका प्रयोग हिन्दुओंमें परस्पर अभिवादनके लिये होता है। (स्त्री०) २ भेंट, मुलाकात।

रामराम—नाटकप्रकाश, रसदीपिका और रसरत्नप्रदीपके रचयिता।

रामराम—एक आचार्यका नाम।

रामराम न्यायालङ्कार—वोपदेवकृत कविकल्पद्रुमकी टीका बनानेवाले।

राम राय (गुरु)—एक सिक्ख गुरु। गुरुहररायके देहरादून जिलेका डेहरानगर इन्होंने ही बसाया था। ये १७वीं सदीके शेषभागमें दून नामक स्थानमें आ कर बस गये। इन्होंने जो एक मन्दिर बनवाया था उसकी बनावट बहुत कुछ जहांगीरके मकबरे सी था। ऐसा मंदिर नगर भरमें और कहीं नहीं है।

रामराय जब सिक्ख धर्मसम्प्रदायसे अलग और पंजाबसे निकाल दिये गये, तब सम्राट् औरङ्गजेब गढ़वालके राजासे इनका परिचय करा

दिया। राजाने इन्हें रहनेके लिये जो स्थान दिया था, वह आज भी गुरुद्वार वा देहरा कहलाता है। यहां राम रायकी अलौकिक शक्ति देख कर सैकड़ों आदमी इनके शिष्य हो गये। राजा फते शा इनके प्रतिष्ठित पूर्वोक्त मंदिरके खर्चावर्चाके लिये जागीर दे गये हैं।

रामराय योगाभ्यास द्वारा असामान्य कार्य कर सकते थे। यहां तक, कि अपनी आत्माको दूसरे शरीरमें चालित करना जानते थे। एक दिन इसी प्रकार अपनी आत्माको दूसरेके शरीरमें परिचालित करनेके बाद वे निरूपित समयमें लौट कर न आ सके और इनकी मृत्यु हुई। जहां पर इनकी देह मृतावस्थामें पड़ी थी वहां इनके शिष्योंने एक समाधिमंदिर बनवा दिया है।

रामराय—एक हिन्दी कवि। इनकी कविता बड़ी मधुर होती थी। उदाहरणार्थ एक नीचे देते हैं।

"सांवरेसे कहियो मोरी।
सीस नवाय चरण गहे छोंजा कर विनती कर जोरी॥
कहा ऐसी चूक परी हरि मोस प्रीत पाछली तोरी,
सुरत न लीनी मोरी॥
भूषण वसन सभी हम त्यागे खान पान बिसरोरी।
भभूत रमाय योगन होय बैठी तेरा ही ध्यान धरोरी वेग,
क्यों न आवो किशोरी॥
रोम रोम मद छाय रहो मत मेरी नैर परोरी।
वारे करेज राम राय दयो है थन मैं जैसी करारी,
धीर नहिं जात धरारी।

रामरायका—चम्पारण जिलेमें प्रवाहित एक नदी। यह रामनगरसे तीन कोस उत्तर हो कर दक्षिण पूर्व बहती है। मशान और बलौरा नामकी दो शाखा इसमें आ मिली हैं।

रामराव चिंचोलकर—छतीसगढ़-निवासी एक महाराष्ट्र-ब्राह्मण। इनका जन्म संवत् १९२० और देहांत १९६० में हुआ था। इन्होंने ३६ ग्रंथ लिखे हैं। कुछके नाम नीचे दिये गये हैं,—शतक, शिक्षावल्ली, नीतिशतक, नीतिचंद्रिका, आर्यधर्मचंद्रिका, वसंतचंद्रिका, भारत-विलाप, ऋतुविनोद, पुरानी लकीरके फकीर, शिव-सम्पतिविजय इत्यादि।

रामरी—१ दक्षिणब्रह्मके समुद्रोपकूलस्थित एक छोटा द्वीप यह अक्षा० १८° ४३´ से १९° ३८´ उ० तथा देशा० ९३° ३०´ से ९३° ५६´ पू०के मध्य अवस्थित है और आराकानविभागके क्योकप्यु जिलेमें पड़ता है। रामरी और क्योकप्यु नामक शहर (Township) ले कर यह बना है। यह द्वीप ५०० मील लम्बा और २० मील चौड़ा है। इस द्वीपके चारों ओर पर्वतमाला नजर आती है जिसकी ऊंचाई समुद्रकी तहसे ५०० से १५०० फुट है। सबसे बड़ी चोटी ३००० फुट ऊंची है। यहां धान, नील, लवण, चीनी और बहादुरी लकड़ी बहुतायतसे पाई जाती है। कहीं कहीं लोहे और चून-पत्थरकी खान भी है। पहले रामरी और चेदुबा ले कर रामरी नामक एक स्वतंत्र जिला संगठित था। अभी वह पूर्वोक्त क्योकप्यु जिलेमें मिला दिया गया है।

२ उक्त जिलेका एक उपविभाग। भूपरिमाण ४२६ वर्गमील है। रामरी नगर इसका विचारसदर है।

३ उक्त जिलेका एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १८° ४३´ से १९° २२´ उ० तथा देशा० ९३° ४०´ से ९४° २´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण ४४६ वर्गमील और जनसंख्या १६०० है। इसमें २४७ ग्राम लगते हैं।

१८०५ ई०में यह नगर वाणिज्यसमृद्धिसे परिपूर्ण था। उस समय यहांके लोग बंगाल, बम्बई और ताभय आदि स्थानोंमें वाणिज्यव्यवसाय करते थे। क्याइन-ब्राणके विद्रोह और ब्रह्मवासीके अत्याचारसे आगे चल कर यह नगर श्रीहीन हो गया। क्याइनब्राण और उसके साथीके परास्त होने पर राजाने बहुतोंको मरवा डाला और जो बच गये उन्हें राज्यसे निकाल दिया गया।

प्रथम अंगरेज ब्रह्मके युद्धकालमें यह स्थान बड़ी आसानीसे अंगरेज सेनापति माकबीनके हाथ लगा। अंगरेज सेनापतिसे आराकान अधिकृत होनेके बादसे ले कर १८५२ ई० तक रामरी नगर उसी नामके जिलेका विचारसदर था। पीछे आन् और रामरी नगर जब मिला दिया गया, तबसे यह क्योकप्यु जिलेका प्रधान नगर गिना जाता है।

रामरुद्र न्यायवागीश—अमरुशतकटिप्पणीके रचयिता।

रामचन्द्र भट्ट (सं॰ पु॰) एक ग्रन्थकार। इनका बनाया हुआ रामचन्द्रभट्टि नामकी टीका मिलती है।

रामचन्द्र भट्ट—तर्कदीपिका नामक व्याकरण, तत्त्वप्रकाशिकाकी व्याख्या, प्रभा, दिनकरकृत मदनपालकी टीका स्मृत्यर्थविचारटीका और रामकोष नामक व्याकरणात्मक प्रणेता।

रामचन्द्र ठाकुर—एक भाट। इनका जन्म पूर्व बंगालमें हुआ था। नाटकके एक अच्छे जानकार होनेके कारण ये प्रतिष्ठाभाजन हो उठे थे। इनका बनाया हुआ गान सुमधुर होता था, इसलिये बहुतेरे आदमी अपने घरमें इनसे गानेके लिये लाते थे।

रामचि—अनुंहरिनन्दरामा, वृन्दावनकाव्यटीका और १६०८ ई॰में रचित वृत्तरत्नाकरटीकाके रचयिता। ये पृथ्वीराजके पुत्र तथा त्रिमल्लदेव और हरिवंशके भाई थे। कोई कोई इन्हें रामसूरि भी कहा करते हैं।

रामठ (सं॰ पु॰) १ रामठद्वीपोपवर्णित एक जाति। (भारत॰ ८।२१७) (त्रि॰) २ रामठसंबंधी रामठका।

[illegible]

रामठम (सं॰ क्ली॰) रामं रमयतीति रमणम्। नामकि सबब, तोमर नामक। पर्याय—रामक, वाहनास्यात्मक मादव। (रत्नमाला)

रामतनु—विद्यावदक रहनेवाले एक हिन्दू कवि। इनके बनाए हुए [illegible] ये सब हैं—भगवद्गुणकीर्तन अथवा भाषा भक्ति सहकार, शुभ नाम रामरसायन और अध्यात्म भाष्य। इन्होंने इनकी कविता सरहवाब होता था। उदाहरणार्थ एक भाव दो यों है—

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

रामतिल (सं॰ पु॰) रामबाट।

रामतीर्थ—१ [illegible]
२ [illegible]

रामतुलसी (सं॰ पु॰) [illegible]

रामदत्त (सं॰ क्ली॰) [illegible]

द्रव्यका नाश्य, रामक चरितोंका अभिनय। २ एक मात्रिक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें २४ मात्राएँ होती हैं और अन्तमें 'जगण' का होना आवश्यक होता है।

रामलठा (सं॰ स्त्री॰) राजकण्टाभेद। (भाग॰ ७।२५६)

रामनाम (पार हुगान)—कम्बोडियाका एक कायस्थ सम्राट। ये नाम हरिभूमका तथा सभी हरिभक्त मुख्यों थे। भाव भाषा और लालित्यके विचारसे राम मोहन थोड़े ही दिनोंमें ख्यात कहे गए परिचित हुए। इन्होंने कन्याकन्याके समय उद्यान अथवा समर्पित दिया कर उस समयका [illegible] मारको बड़ा सन्तुष्ट किया तथा बहुत से गाँव और सम्पत्ति हाथमें कर ली थी।

रामनगर—१ मन्द्राज प्रदेशके मदुरा जिलेका एक तालुक। भूपरिमाण ७१४ वर्गमील है। २ उक्त तालुक का एक नगर और विचार सदर।

रामनवमी व्रतकथा—कथात्मक धार्मिक कथाविशेष। हिरण्यगर्भसंहितामें इसका विषय वर्णित है।

रामपाल (सं॰ पु॰) काश्मीरके एक राजा। (राजत॰ १।१२१)

रामवर्धन—अध्यात्मरामायणकी रामगीताटीका और रामायणतिलकके रचयिता। ये हिम्मतिवर्माके पुत्र और मनोहरके शिष्य थे।

रामप्रिय (सं॰ क्ली॰) रामं रमयतीति प्रियं। १ दमन, बाबूना। (त्रि॰) रामस्य प्रियं। २ रामप्रिय।

रामवल्लभ शर्मा—पूर्वबङ्गालके एक पण्डित। राजवर्धिका नामकी टीका और पूर्वाभ्युदय धर्मनिबन्धकारके प्रणेता। ये धाटकोपरके अन्तर्गत बाणपुरमें रहते थे।

रामवल्लभा—वैष्णवशास्त्रवर्णित कलाभक्तोंका एक गोत्र। रामानन्दस्वामीके शिष्य गुरु या कर्ता न मान कर पा रहा (इनके मतमें कोई प्रिया भाव) के कुछ भक्तोंने रामवल्लभा नामक एक शाखा स्थापन की। रूपकिशोर गुरुनाम और प्रकाश गुणायतानाथ इसके प्रधान थे। इस सम्प्रदायके लोग रामचन्द्र न मानकर एक स्त्रीका उपासक भर लिंगलाकर माथा। तदनुसार वे रामचन्द्र पर त्रिभुवनके लिए पाव पाठ कराते हैं उसका एक अलग मुद्रित है।

वे लोग सभी शास्त्रोंको तथा सभी शास्त्रोक्त देवताको एक समान मानते हैं। इस कारण उत्सवके समय भगवद्गीता, कुरान और बाइबिल ग्रन्थ पढ़े जाते हैं। वहां 'परमसत्य' नामक एक वेदी है। सभी जातिके लोग वहां एकत्र भोजन करते हैं। वे ईसा, महम्मद और नानकके उद्देशसे भोग चढ़ाते हैं। सुनते हैं, कि गोमांसादि भी भोगमें दिया जाता है।

सभीको समान जानना और विनयी होना उचित है, परद्रव्य और परस्त्रीहरणकी बात तो दूर रहे, उसके स्पर्शन वा दर्शनसे भी पाप है, यही उनका साम्प्रदायिक मत है। किन्तु उन्हें अपरापर नियम, खास कर व्यभिचारवर्जनविषयक प्रतिज्ञाका पालन करते नहीं देखा जाता।

रामवसु—एक वंगाली कवि। वचपनसे ही इन्हें कविता बनानेका शौक था। उस समय टूटी फूटी जो कुछ कविता बनाते थे, उसे वे केलेके पत्तेमें लिख लिया करते थे। धीरे धीरे ये एक अच्छी कवि हो गये। इनकी कविता बड़ी ओजस्विनी होती थी। ४२ वर्षकी अवस्थामें इनका देहान्त हुआ।

रामवाजपेयी (सं० पु०) एक पद्धतिकार। कुण्डमण्डपसिद्धिके रचयिता विट्ठल दीक्षित और शूद्रधर्मतत्त्वके प्रणेता कमलाकर भट्टने इनका नामोल्लेख किया है।

रामवाण (सं० पु०) रामस्य वाण इव सफलत्वात्। १ औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—पारा, विष, लौंग, गंधक प्रत्येक १ तोला, मिर्च २ तोला, जायफल आधा तोला एक साथ इमलीके रसमें मिला कर उड़द भरकी गोली बनावे। रोगीके दोषका बलाबलके अनुसार अनुपान स्थिर करना होता है। इसका सेवन करनेसे शीघ्र ही जठराग्नि प्रदीप्त होती है तथा संग्रहणी आदि नाना रोग प्रशमित होता है।

(भैषज्यरत्ना० अग्निमान्द्याधि०)

२ एक प्रकारकी ऊख। (त्रि०) ३ जो तुरंत उपयोगी सिद्ध हो, तुरंत प्रभाव दिखानेवाला।

रामवीणा (सं० स्त्री०) रामा रमणीया वीणा। वीणाविशेष, एक तरहकी वीणा।

"कूर्म्मी च कच्छपी वीणा वीणा तुम्बुरु नारदी।
सारस्वती कैलिकला रामवीणा कलान्विता॥"

(शब्दरत्ना०)

रामव्रतिन् (सं० पु०) १ रामव्रतधारी, वह जो रामव्रत करता हो। २ धर्मसम्प्रदायभेद।

रामशङ्कर—१ शूद्रविवेकके प्रणेता। २ यन्त्रचिन्तामणिटीका और समरसारविवरणके रचयिता।

रामशङ्कर राय—दीक्षासेतु और सारात्संग्रहक नामक दो तन्त्रके प्रणेता।

रामशङ्कर व्यास—हिन्दी गद्यके एक अच्छे लेखक। आपका जन्म संवत् १९१७में हुआ था। आपने कई वर्ष कविवचनसुधा और आर्यमित्रका सम्पादन किया। आप भारतेन्दु बाबू हरिश्चन्द्रके अंतरंग मित्रोंमेंसे थे और उन्हें वह उपाधि पहले इन्होंने ही दी थी। आपने खगोलदर्पण, वाक्यपंचाशिका, नैपोलियनकी जीवनी, वानकी करामात, मधुमती, देनिसका बाँका, चंद्रास्तनूतन पाठ और राय दुर्गाप्रसादका जीवन चरित नामक ग्रंथ रचे हैं।

रामशर (सं० पु०) रामस्य शर इव। १ शरवृक्षभेद, एक प्रकारका नरसल या सरकंडा। यह ऊखके खेतोंमें आप ही आप उगता है और ऊख हीके आकार-प्रकार और रूप-रंगका होता है। अंतर सिर्फ इतना ही होता है, कि इसमें कुछ भी रस नहीं होता। पर्याय—रामकान्त, रामवाण, रामेषु, अपर्ण्णदन्त, दीर्घ, नृपप्रिय। वैद्यकमें इसके मूलका गुण कुछ उष्ण, रुचिप्रद, अम्लरस, कषाय, पित्तकारक और कफनाशक माना गया है। २ रामचन्द्रका वाण।

रामशर्म्मन् (सं० पु०) उणादिकोषके रचयिता।

रामशरणपाल—कर्त्ताभजामतप्रवर्त्तक। आउलेचादके बाद ये तख्त पर बैठे। कर्त्ताभजा देखो।

रामशास्त्रिन्—नरहरितीर्थके संन्यासाश्रम ग्रहण करनेके पहलेका नाम। १२१४ ई०में इस पण्डितवरकी मृत्यु हुई।

रामशास्त्री—एक महाराष्ट्रीय पण्डित। इनकी उपाधि पूर्वणी थी। सातारांके निकटवर्त्ती महौली ग्राममें इनका जन्म हुआ था। संस्कृत शास्त्रमें पारदर्शी होनेके लिये

वे काशी आये। यहां शास्त्रालोचनामें ही इनके जीवनका अधिकांश समय बीत गया। अन्तमें १८५१ ई०को पूना नगरमें पण्डित बालकृष्ण शास्त्रीके मरने पर वे काशीसे पूना आये। यहां पेशवा माधवरावके कहनेसे राजकार्य देखने लगे। राजदरबारमें जितने शास्त्री थे सबोंमें ये श्रेष्ठ थे। पेशवा राजकार्यमें अनेक समय इनसे सलाह लिया करते थे।

माधवराव किसी सुशिक्षित ब्राह्मणसे योग सीखते थे। एक दिन वे योगमग्न हो कर बैठे हुए थे, इसी समय राम शास्त्री वहां पहुंचे। उन्हें विस्तृतासिनिरोधपूर्वक योगासन पर बैठे देख रामशास्त्री वहांसे चले आये। दूसरे दिन सवेरे वे पेशवाके पास गये और बोले, 'मैं काशी जाना चाहता हूं, इसलिये कुछ दिनके लिये अवकाश दीजिये।' माधवरावने अपना अपराध स्वीकार करते हुए उनसे प्रार्थना की और कहा, 'मैंने ऐसा कौन अनुचित कार्य किया है जिससे आप अप्रसन्न हुए हैं।' शास्त्रीजीने जवाब दिया, 'जो ब्राह्मण शास्त्रानुमोदित क्रियाकाण्डसे अपसृत हो कौशलसे राजसिंहासन पर बैठे हैं, उन्हें उचित है, कि वे पुत्रके समान प्रजापालन करें। यही उनका उपयुक्त प्रायश्चित्त है। यदि आप वैसा करना नहीं चाहते हैं, तो अभी मसनद परसे उतर आइये और धर्मकर्ममें जीवन उत्सर्ग कीजिये। शास्त्री जो कुछ शिक्षा देते हैं मैं भी उसका अनुमोदन करता हूं।' उसके बाद माधव रावने परामर्शदाता अमात्यवर रामशास्त्रीके कहनेका तात्पर्य समझ कर योगाभ्यास छोड़ देनेका सङ्कल्प किया।

रामशास्त्री अपने देशवासीकी उन्नतिके लिये जो सब काम कर गये हैं उसका एक बार स्मरण करनेसे मनमें आपसे आप भय और भक्तिका उदय होता है। सम्भ्रान्त और धनी व्यक्ति भी खराब काम करने पर उनसे डरते थे। उनके वाक्यकी गुरुता और सारवत्ता सबोंने अच्छी तरह समझ ली थी। बहुतोंने उन्हें धनके लोभमें लुभाने की कोशिश भी की थी, पर वे ऐसे उदार प्रकृतिके आदमी थे, कि कभी भी किसीसे उन्होंने एक कौड़ी तक भी नहीं ली था। उनके खाने पीने और पहननेका कोई भी प्रबन्ध नहीं था। उसके लिये उन्होंने कभी कुछ नहीं सोचा। जो कुछ मिल जाता था, वही वे खुशीसे खाते थे। खाने के लिये एक दिन पहले भी कुछ सञ्चय कर नहीं रखते थे। शास्त्रमें प्रकृत ब्राह्मणके जो सब नियम बतलाये गये हैं उन्हीं के पालनमें वे अपना अधिकांश समय बिताते थे। महाराष्ट्र देखो।

रामशिला (सं० स्त्री०) गयाकी एक पहाड़ी जिसे लोग तीर्थ मानते हैं। स्कन्दपुराणके मानसखण्डके राम शिलामाहात्म्यमें इसका विस्तृत विवरण है।

रामशिष्य—तैत्तिरीयोपनिषत्लघुदीपिकाके रचयिता।

रामशेष—सत्यामरणदीपिकाके प्रणेता।

रामशीतला (सं० स्त्री०) आरामशीतला, पत्रशाकविशेष।

रामश्री (सं० पु०) एक प्रकारका राग। इसे कुछ लोग हिन्दोल रागका पुत्र मानते हैं।

रामश्रोपाद (सं० पु०) एक आचार्यका नाम।

रामषड्क्षरमन्त्रराज (सं० पु०) मन्त्रभेद।

रामसंथा (हिं० पु०) एक प्रकारकी घास जिससे रस्सी या बाध बनाते हैं, काँस।

रामसंयमिन् (सं० पु०) एक वेदान्तग्रन्थके रचयिता।

रामसखा (सं० पु०) रामस्य सखा (राजाहःसखिभ्यष्टच्। पा ५।४।९१) इति टच्। सुग्रीव।

रामसखि—एक हिन्दी कवि। इन्हें कविता करनेकी शक्ति थी। इनके छन्द भी मनोहर होते थे। जैसे—

"नभ चाप चढ़के दोउ दृगमहल जागे।
पुमत रतनार नैन भैनके रस पागे॥
बनके जात बगमगात गुलमयंक मानों।
चिरियनके चुवाव मार भयो जानों॥
आलपाल उमगत गहबरी बहुँ भोर।
उमग भागी आनन्द उर कुमाव नैन ओर॥
अति उदार छवि अपार कौन दे करि आर।
शम्भु शेष शारदा नहीं लिखत पार पाव॥
बोलता अति मधुर बैन अति सुहावन लागे।
रामसखि रामसीता भावत सब त्यागे॥"

रामसरन—हिन्दीके एक कवि। इन्होंने दानलीला, मानी, दोहावली, मंगलशतक, पदावली, रामनामा और पद नामक ग्रन्थ लिखे हैं। ये साधारण श्रेणीके कवि थे। इनकी एक कविता नीचे दी जाती है,—

"संझा आवनि पियकी छावनि देखो
भावनि अवध गली वलि ।
मृगया भेप हरित चरना तन
वद वन कुसुम सजें गुजें अलि ।
लिये कर छुड़ी तुरग कुदावत
छुटकें छूटी पेंच छिए वलि ।
रामछबे यह छवि पीजे अब
नेह गेह कुल छान आज दलि ।"

रामसनेही—अयोध्याप्रदेशके बाराबंकी जिलान्तर्गत एक तहसील। भूपरिमाण ५८८ वर्गमील है।

रामसनेही—एक वैष्णव धर्मसम्प्रदाय। इस सम्प्रदायकी उत्पत्तिके सम्बन्धमें इस प्रकार एक विवरण मिला है।

१७७६ सम्वत्‌में जयपुरके अन्तर्गत सुरसेनग्राममें रामचरण नामक एक रामानुज वैष्णवने जन्मग्रहण किया। वे प्रतिमापूजाके विरुद्ध मत प्रचार करते थे, इस कारण ब्राह्मणोंने उन्हें बहुत सताया। आखिर वह देशत्याग कर उदयपुरके अन्तर्गत भीलवाड़ा ग्राम चले गये और वहां दो वर्ष ठहरे। यहां भी ब्राह्मणोंके परामर्शसे राजा भीमसेन उसका अनिष्ट करने तुल गये। अब वह यहांसे भी भागे। इस समय शाहपुरमें भीमसिंह नामक एक दूसरे राजा राज्य करते थे। उन्हें रामचरणके दुःख पर दया आई, सो उन्होंने अपनी राजधानीमें उन्हें आश्रय दिया। राजाकी छायामें रह कर रामचरण अपना धर्म प्रचार करने लगे। प्रायः १८२६ सम्वत्‌में यह धर्मसम्प्रदाय प्रवर्त्तन कर १८५५ सम्वत्‌में रामचरण परलोक सिधारे। उनका मतानुवर्त्ती शिष्यसम्प्रदाय रामसनेही कहलाने लगा। वह जो पद वा शब्द (३२ अक्षरात्मक श्लोक) रच गये हैं उसे रामसनेही वेदमन्त्रवत् समझा है।

रामचरण महन्त देखो।

रामचरण अपने सम्प्रदायके मध्य कुछ नियम बना गये हैं। उसी नियमके अनुसार रामसनेही चलते हैं।

इस सम्प्रदायके महन्त ही सर्वप्रधान हैं। महन्तको गद्दी मिलती है। प्रथम महन्त रामचरण थे। रामचरणके शिष्य रामजन २य महन्त हुए। शोपान ग्राममें उनका जन्म, १८२५ सम्वत्‌में दीक्षा, १८५५ सम्वत्‌में महन्त पद पर अभिषेक और १८६६ सम्वत्‌में शाहपुरमें देहान्त हुआ। उनके भी रचित पद प्रचलित हैं। ३य महन्तका नाम दुलहराम था। वे हिन्दू और मुसलमान साधुओंकी माहात्म्यसूचक प्रायः ४००० शाखो लिख गये हैं। १८८१ ई०में उनकी मृत्यु हुई। ४र्थ महन्त छत्रदास थे। १८८८ सम्वत्‌में वे इस लोकसे चल बसे। उनके भी १००० पद प्रचलित हैं। ५वें महन्तका नाम नारायण दास था।

महन्तका पद खाली होने पर इस सम्प्रदायके उदासीन और विषयियोंकी एक बैठक होती है। वे गुणवान् और ज्ञानवान् किसी व्यक्तिको महन्त पद पर अभिषिक्त करते हैं। इस उपलक्षमें वैरागी नगरके राममेरो नामक मन्दिरमें नगरवासियोंको एक भोज देते हैं। पदशून्य होनेके १३ दिन बाद अभिषेकक्रिया सम्पन्न होती है। महन्त प्रायः शाहपुरमें ही रहते हैं। कभी कभी शारीरिक कष्टका अभ्यास करनेके लिये देशभ्रमणमें निकलते हैं।

इस सम्प्रदायके धर्मयाजक वैरागी वा साधु कहलाते हैं। उन्हें बहुतसे कठोर नियमोंका पालन करना होता है। वे लोग कभी विवाह नहीं करते। परदारगमनमें पराङ्मुख रहना, जो कुछ खानेको मिले उसीसे संतुष्ट रहना, अल्पनिद्रा, वाक्यसंयम और शारीरिक सहिष्णुता तथा सर्वकामना परित्याग कर दया, आर्जव और क्षमा-धर्मका अनुष्ठान करना और निरन्तर शास्त्रानुशीलनमें लगा रहना, काम, क्रोध, लोभ और कलह करना, स्वार्थपरता होना, कपटव्यवहार करना, झूठ बोलना, चोरी करना, कठोर वनना, शराब पीना, जूआ खेलना, खड़ाऊं पहनना, दर्पणमें मुंह देखना, नस लेना, अलङ्कार पहनना तथा भोगविलासकी सामग्रीका व्यवहार करना दान लेना, जीवहिंसा करना और निर्जन स्थानमें रहना ये सब कार्य इन लोगोंके लिये निषिद्ध हैं। किन्तु विषयी शिष्य गुरुके लिये दूसरेके दिये हुए रुपये लेते हैं। नृत्यगीतादि नाना आमोद, धूमपान, अफीम सेवन वा दूसरे दूसरे मादक द्रव्यका व्यवहार निषिद्ध है। ज्वरकी हालतमें अथवा चिकित्सकके कहने पर यदि मादकवस्तुका व्यवहार किया जाय, तो कोई दोष नहीं होता।

रामसनेही गलेमें माला पहनते और ललाटमें एक सफेद लम्बा पुण्ड्र धारण करते हैं। साधु लोग गेरू वस्त्र पह-

जते और कमरमें भी बाँधते हैं। ये काठके बरतनमें जल पीते और मिट्टी या पत्थरके बरतनमें खाते हैं। जीवहिंसा महापाप समझ कर ये दीपशिखाओंमें कपड़ा लपेट देते हैं। इससे पतङ्गादि नीचे नहीं गिरते। राहमें पैरसे कहीं कीड़े न मर जाँय इसलिये ये बड़ी सावधानीसे चलते हैं। आषाढ़मासके शेषार्द्धसे ले कर कार्त्तिकके प्रथमार्द्ध तक (चातुर्मास्यके समय) बिना विशेष प्रयोजनके बाहर नहीं निकलते।

सम्प्रदायप्रवर्त्तक रामचरणके १२ शिष्य थे। उनके मध्य किसीका भी पद खाली होने पर वे साधुविशेषको उस पद पर अभिषिक्त करते थे। आज भी वही नियम चला आता है। इन्हीं बारह शिष्यों पर मठका कुछ भार सुपुर्द है। जो कोतवाल है, वे मठस्थित शस्य और औषधादिकी रक्षा करते हैं और महन्तकी अनुमति ले कर मठवासियोंको दैनिक भोजन देते हैं। इस सम्प्रदायके विषयी तथा अन्यान्य मनुष्योंसे साधुओंको जो कपड़ा मिलता है, कपड़ाचार' उसकी देखरेख करते हैं। तृतीय शिष्यका काम है, साधुओंके आचार-व्यवहार और रीतिनीतिकी ओर लक्ष्य रखना। चौथे शिष्य साधुओंको पाठशिक्षा और पाँचवें शिष्य लिपिशिक्षा देते हैं। छठे शिष्य समतावलम्बी विद्यार्थियोंको लिखना पढ़ना सिखाते हैं। इन बारह शिष्योंमें जो प्रवीण और जिते न्द्रिय हैं वे ही स्त्रियोंको उपयुक्त उपदेश दे सकते हैं।

साधुओंमेंसे जो निषिद्ध कर्म करते, उल्लिखित मठ कर्मचारी सात शिष्योंमें कोई तीन और बाकी पाँच महन्त मिल कर उसका विचार करते हैं।

जो इस संप्रदायमें आना चाहता है वह अपना पहला नाम बदल लेता और शिखा छोड़ कर समूचा मस्तक मुड़वाता है। इस उपलक्षमें मठसंक्रान्त मालको बहुत आमदनी होती है।

जो सब साधु नंगे रहते वे विदेही कहलाते हैं। जिनकी वागिन्द्रिय वशीभूत नहीं होती वे कद वर्ष तक 'मोहिना' श्रेणीभुक्त हो मौनव्रताचारी रहते हैं। पीछे अन्तःकरणके वशीभूत होने पर वे फिरसे वाक्यालाप करनेमें प्रवृत्त होते हैं।

गृहस्थ साधुओंको भी महन्त पद पानेका अधिकार है, किन्तु उपरोक्त विदेही वा मौनी श्रेणीभुक्त होनेका नियम नहीं है। स्त्रियाँ भी धर्मयाजिका उसी हालतमें हो सकती हैं, जब कन्यापुत्र और स्वामीका साथ छोड़ दें।

सभी हिन्दू इस सम्प्रदायमें प्रविष्ट होनेके अधिकारी हैं। शाहपुरस्थ मन्दिरके प्रधान अध्यक्ष ही सबोंको सम्प्रदाय मुक्त करते हैं। वैरागी भिन्न भिन्न स्थानसे छात्रोंको लाते हैं। मठके प्रधान अध्यक्ष उन लोगों की श्रद्धा और भक्ति जाँचने तथा रामसनेही मतका सम्यक् उपदेश देनेके लिये उन्हें पूर्वोक्त बारह साधोंके पास भेजते हैं। परीक्षामें उत्तीर्ण होने पर वे संप्रदायमें लिये जाते हैं।

रामसनेही अपने उपास्य-देवताको राम कहते हैं। उनके मतानुसार राम सर्वशक्तिमान् तथा सृष्टि स्थिति और लयके एकमात्र कारण हैं। जीवात्मा राम रूपी परमेश्वरका एक अंश है।

प्रतिमानिर्माण और प्रतिमापूजा इन लोगोंमें निषिद्ध है। ये लोग प्रातः, मध्याह्न और सायंकालमें परमेश्वर की उपासना करते हैं। जो विषयी हैं, वे विषयकर्ममें लगे रहनेके कारण समयानुसार मन्दिरमें नहीं आ सकते। किन्तु भजनाके समय पहुँच जानेसे वे जब तक उपासना शेष नहीं होती तब तक रहनेके लिये बाध्य हैं। ये लोग दो पहर रातको बिछावनसे उठ कर देवालय जाते हैं और प्रातःकालमें पामरह' पर्यन्त उपासनामें नियुक्त रहते हैं। इसके बाद विषयी लोग वहां आ कर ४।५ दण्ड तक ठहरते हैं। अन्तमें स्त्रियोंके दो स्तोत्र गाने पर प्रातःकालकी उपासना समाप्त होती है। चार पहर के समय माध्याह्निक उपासना आरम्भ होती है। सायंकालीन उपासना केवल पुरुष ही करते हैं। यह उपासना १ घंटा तक होती है। स्त्रीपुरुषके एक साथ बैठने वा एक साथ गानेका नियम नहीं है। जब मन्दिरमें कोई नहीं रहता है, तब ही साधुगण उपास्य देवताका ध्यान करते हैं। कभी मालाजप और कभी मुखसे रामनाम उच्चारण करते हैं। रातको ये केवल जल पी कर रहते हैं।

उनकी उपासनास्थानका नाम रामद्वार है। रामद्वाराके मध्य शाहपुरका मन्दिर ही सर्वश्रेष्ठ और जिस

नैपुण्यसे युक्त है। इसके सिवा जयपुर, जोधपुर, मथा, उदयपुर, चित्तोर, जागोर, भीलवाडा, टोंक, बूंदी, कोटा आदि स्थानोंमें भी बहुतसे रामद्वार विद्यमान हैं।

हिन्दूके दशहरा, दीवाली, होली आदि किसी भी उत्सवमें रामसेनही शामिल नहीं होते। फाल्गुनमासके अन्तिम ५।६ दिन इन लोगोंका फूलदोलपर्व होता है। इस समय भारतके विभिन्न स्थानोंसे लोग आते हैं। वैरागी यदि किसी कारणवशतः एक वर्ष मेलेमें न आ सकें, तो दूसरे वर्ष उन्हें अवश्य आना पड़ेगा। वैरागी स्वसम्प्रदायभुक्त गुरुतर अपराधियोंको अपने साथ ला कर महन्तके सामने हाजिर करते हैं। महन्त दुल्हाराम यह नियम कर दिये गये हैं, कि जो वैरागी विषयी लोगोंके चरित्र विषय पर दृष्टि रखनेके लिये ग्राम या नगरमें रहते हैं उनमेंसे कोई भी एक जगह लगातार दो वर्षसे अधिक नहीं रह सकता। क्योंकि ग्रामवासीके साथ बहुत दिन रहनेसे उसका भी चरित्र दूषित हो सकता है। फूलदोलके समय वे स्थान परिवर्त्तन करते हैं।

इस फूलदोल उपलक्षमें उदयपुर, जोधपुर, जयपुर, बूंदी, कोटा आदि स्थानोंके राजे भिन्नधर्मावलम्बी होते हुए भी इस उत्सवमें १०।१२ हजार रुपया भेज देते हैं। इन लोगोंको वहां मिष्टान्न भोजन कराया जाता है।

सम्प्रदायभुक्त कोई व्यक्ति जब भारी अपराध करता है, तब वहांका शुभाशुभकर्मका तत्त्वावधारक वैरागी फूलदोलके समय उसे शाहपुर लाता है। वह अपराधी मन्दिरमें घुसने या एक पंक्तिमें बैठ कर भोजन करने नहीं पाता। आठ साधोंके विचारसे उसका दोष प्रमाणित होने पर उसकी माला छीन ली जाती और उसे सम्प्रदायसे बाहर निकाल दिया जाता है। छोटा छोटा विचार स्थानीय वैरागी और दण्डविधान महन्त करते हैं।

गुजरात और राजवाडाको छोड़ कर बम्बई, सुरत, हैदराबाद, पूना, अह्मदाबाद आदि पश्चिमभारतके नाना नगरों और उसके आसपासके स्थानों में रामसनेहियोंका वास है। काशीधाममें भी इस सम्प्रदायके लोग देखनेमें आते हैं।

रामसरस् (सं० क्ली०) एक प्राचीन तीर्थका नाम। इसके पवित्र जलमें स्नान करनेसे पाप क्षय होता है।

(तापीख० ३६।२।१२)

रामसहाय दास—एक हिन्दी कवि। इनके पिताका नाम भवानी दास था। इनका नाम सूदन कविकी नामावलीमें नहीं है। इससे अनुमान होता है, कि ये सूदनके पीछेके हैं। इन्होंने वृत्ततरंगिणी, सतसई, ककहरा, रामसप्तशतिका और वाणीभूषण नामक चार ग्रंथ लिखे हैं।

इन्होंने अपनी कविताकी प्रणाली बिलकुल बिहारीलालसे मिला दी है, इनकी बनाई 'रामसतसई' से 'शृङ्गारसतसई' इतनी मिल गई है, कि यदि बिहारीके दोहे सब लोगोंको इतना याद न होते और ये चौदहों सौ दोहे मिला कर रख दिये होते तो बिहारीके सात सौ दोहे छांटनेमें दो सौ दोहे तक इस कविके भी छंट आते, बिहारीकी समता करनेमें और कोई भी कवि इतना कृतकार्य्य नहीं हुए हैं। बिहारीके केवल उत्तमोत्तम दोहे इस कविके आगे निकल जाते हैं, परन्तु उनके शेष दोहे इसके दोहोंसे बढ़ कर नहीं हैं। रामसहायके दोहोंकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। आपने अपनी सूक्ष्मदर्शिताका अच्छा परिचय दिया है। सुकुमारताका भी आपने अच्छा वर्णन किया है।

सब प्रकार से बिहारीके पैरों पर पैर रख कर आपने बिहारी की चोरी नहीं की है, केवल बिहारीकी छाया कुछ छन्दोंमें आ गई है।

रामसिंह—कोटेके एक राजा। इनके पिताका नाम था किशोरसिंह। रामसिंहने अपने पिताके साथ दक्षिणके युद्धमें बड़ी ख्याति पाई थी। पिताके मरने पर रामसिंह सिंहासन पर बैठे। इनके बड़े भाईका नाम किशनसिंह था। न्यायसे कोटे राज्यका अधिकार उन्हींको मिलना चाहिये था। परन्तु पिताकी आज्ञा पालन न करनेके कारण पिता उनसे असंतुष्ट रहा करते थे। इसी कारण उन्होंने बड़े लड़केको राज्यसे वञ्चित कर दिया था। सम्राट् औरङ्गजेबके मरनेके बाद उत्तराधिकारियोंमें गद्दीके लिये झगड़ा हुआ। उस समय रामसिंहने दाक्षिणात्यके प्रतिनिधि कुमार आजिमका पक्ष ले कर बड़े शाहजादे मोआजिमके विरुद्ध यात्रा की। संवत् १७६४ में जाजव नामक स्थानके युद्धमें ये मारे गये।

रामसिंह—बूंदीके राजा। इनके पिताका नाम विशन सिंह था। १८२१ ई०में ये ११ वर्षकी उमरमें बूंदीके सिंहासन पर बैठे। बचपनसे ही इन्हें शिकार खेलनेका बड़ा शौक था। इन्होंने छोटी अवस्थामें पहले ही पहल सूअरका शिकार खेला था। इनकी माता कृष्णगढ़की राजकुमारी थी। महाराव राजा विशनसिंह अपने पुत्रका अभिभावक कर्नल टाड साहबको बना गये थे।

महाराव विशनसिंहके मरने पर कृष्णराम नामक एक बुद्धिमान् मनुष्य बूंदी राज्यके मंत्री बनाये गये। जब तक कर्नल टाड राजपूतानेके वृटिश एजेण्ट रहे, तब तक कृष्णराम राजकीय मामलों में उनसे सलाह लिया करते थे। टाड साहबके अपने देशमें चले जाने पर भी कृष्णरामने अपनी स्वामिभक्ति ही का परिचय दिया। इनके सुप्रबन्धसे बूंदी राज्यकी प्रजा अत्यन्त सुखी हुई। कर्नल ट्यासिलसनने लिखा है, कि कृष्णरामके शासनसे बूंदी राज्यका समस्त ऋण चुक गया। हिसाब किताब नियमपूर्वक रखा गया। उन्होंने राजकार्यके प्रत्येक विभागकी अवस्था सुधार दी थी। सबोंको समय पर वेतन मिल जाया करता था। लेकिन एक घटनासे उन्हें अपने प्राणसे हाथ धोना पड़ा था। यह घटना इस प्रकार हुई थी,—महाराव रामसिंहका विवाह जोधपुरकी राजकन्याके साथ हुआ। महारावने जोधपुरकी राजकुमारीके साथ बड़ी बुरी तरह पेश आते थे। दोनोंके मनमुटावको दूर करनेके लिये जोधपुरसे कुछ सामन्त बूंदी आये। आनेके तीसरे ही दिन उनमेंसे एकने न तो कृष्णरामको मार डाला। इससे यहांके महाराव बड़े क्रुद्ध हुए। उन्हों ने बदला चुकानेका संकल्प किया। जिन लोगोंने यह कुकर्म किया था वे भागते समय पकड़े गये और उन्हें प्राणदण्डकी आज्ञा मिली। इसके सिवा और भी कितने सामन्त यमपुर भेजे गये थे।

इन सब कार्योंसे दोनों राज्यमें परस्पर युद्ध होनेकी सम्भावना थी। परंतु गवर्मेण्टने अपने एजेंटको यहां भेज कर दोनोंमें मेल करा दिया।

रामसिंह योग्य और न्यायवान शासक थे। इनके समयमें बूंदी राज्यकी सुख सम्पत्तिमें कोई हेरफेर नहीं हुआ।

रामसिंह—जयपुरके एक महाराज। इन्होंने १८३३ ई०में जन्मग्रहण किया था। महाराज जयसिंह इनके पिता थे। पिताके मरने पर रामसिंहकी उमर सिर्फ दो वर्ष की थी उस समय ये राजसिंहासन पर बैठाये गये। उस समय जयपुर राज्यकी अवस्था अत्यन्त शोचनीय हो गई थी।

महाराज रामसिंहकी नाबालगीमें जयपुर राज्यका शासनकार्य पांच प्रधान सामन्त द्वारा परिचालित होता था और वे वृटिश पोलिटिकल एजेण्टके अधीन रखे गये। इस समय राज्यकी अराजकता दूर हो गई थी। महाराजकी शिक्षाके लिये भी उचित प्रबन्ध था। पण्डित शिवनारायण महाराजके शिक्षक नियुक्त हुए।

१८५१ ई०में महाराज बालिग हुए और उन्हें राज्य शासनका कुछ भार मिल गया। परन्तु महाराजको अनुभव न होनेके कारण उन्हें पोलिटिकल एजेण्टकी सम्मति लेकर काम करना पड़ता था। महाराजने बादमें अपने पूर्व मन्त्रीको हटा कर उस पद पर अपने भाई लक्ष्मणसिंहको रखा। राजस्वविभागके मन्त्री पण्डित शिवधन नियुक्त हुए। परन्तु महाराजने उसी मन्त्रिमण्डलकी सहायतासे राज्यका शासन किया।

इसी समय गवर्मेण्टको एक बड़ा भारी विपद्का मुकाबला करना पड़ा था। जिस समय महाराज रामसिंहको शासनका भार मिला उसी वर्ष भारतमें सिपाही गदर हुआ था। गदरमें महाराज रामसिंहने गवर्मेण्टको काफी सहायता पहुंचाई थी। पुरस्कारमें इन्हें गवर्मेण्टसे कोट कासिम परगना मिला था।

महाराज रामसिंहके समय राजधानीकी बड़ी उन्नति हुई थी। ये गवर्मेण्टके बड़े खैरख्वाह थे। इनकी योग्यतासे जयपुर राज्य एक बार पुनः सुखी हो गया। १८८० ई०में आपका स्वर्गवास हुआ।

रामसिंह—जयपुरके महाराज। इनके पिताका नाम महाराज जयसिंह था। जयसिंह मिर्जाराजाके नामसे प्रसिद्ध थे। अकबरके समय जिस प्रकार मानसिंहने प्रतिष्ठा पाई थी, उसी प्रकार औरङ्गजेबके समय महाराज जयसिंहकी प्रतिष्ठा थी। जयसिंह पंचहजारी मनसबदार थे। परन्तु रामसिंहको यह न मिला। ये बादशाहकी आज्ञासे आसाम निवासियोंके साथ युद्ध करने

गये थे और वहीं मारे गये। यह घटना १७४६ ई०में हुई थी। महाराज मानसिंहके विशनसिंह नामक एक पुत्र था।

रामसिंह—जोधपुरके एक राजा। इनके पिताका नाम था अभयसिंह। रामसिंह बडे क्रोधी और उग्रस्वभावके मनुष्य थे। पिताके मरने पर रामसिंह जोधपुरके सिंहासन पर बैठे। इनके अभिषेकोत्सवमें इनके चचा वख्तसिंहको छोड कर और सभी सामन्त उपस्थित हुए थे। वख्तसिंहने अपनी धायको भेज दिया था। धायको देख कर रामसिंह आगबबूले हो गये। उन्होंने कहा, 'क्या चचा साहबने हमें बन्दर समझा है जो उन्होंने हमारे अभिषेकमें इस डाकिनको भेजा है।' क्रोधके आवेशमें उन्होंने एक बडी कडी चिट्ठी वख्तसिंहको लिख भेजी तथा सेनाको भी तैयार हो जानेकी आज्ञा दी।

प्रधान प्रधान सामन्त तथा मंत्रीके समझाने पर भी इन्होंने नहीं माना, युद्ध ठान ही दिया। वख्तसिंहने उनके प्रधान सामन्तको अपने पक्षमें मिला लिया। युद्धमें रामसिंहकी हार हुई। इस समय सभीने रामसिंहका पक्ष छोड़ दिया था। परंतु राजपुरोहितने रामसिंहको उग्रस्वभावके जानते हुए भी न छोडा। राजपुरोहितने मराठीसेनासे मिल कर उसे अपने पक्षमें कर लिया। पर उस समय राजनीतिज्ञ वख्तसिंहने ऐसा प्रबंध कर लिया था जिससे मराठी सेनाका उत्साह जाता रहा। लेकिन आमेरकी महारानीकी चतुरतासे वख्तसिंहका काम तमाम किया गया। रामसिंहका पक्ष अपेक्षाकृत कुछ निष्कण्टक हो गया सही, पर उनके सभी कण्टक दूर नहीं हुए। वख्तसिंहके पुत्र विजयसिंह और रामसिंहके युद्धसे मारवाड राज्य तहस नहस हो गया।

वख्तसिंहके मारे जाने पर रामसिंहने राज्यप्राप्तिका पुनः उद्योग किया। मराठी सेनाकी सहायतासे रामसिंहको जोधपुरका सिंहासन कुछ दिनोंके लिये मिल गया। परंतु उनके सहायक महाराष्ट्र सेनापति जय अप्पा वहीं खेत रहे, इससे मराठोंका संदेह राजपूतों पर बढ़ गया। उन लोगोंने रामसिंहका पक्ष छोड़ दिया।

इसके बाद विजयसिंहने रामसिंहको मारवाड राज्यके अधीन साँभर प्रदेशका राज्य दे दिया और वे भी उसीसे संतुष्ट हुए।

रामसिंहदेव—मिथिलाके एक राजा। मृच्छकटिकाके प्रणेता पृथ्वीधर इनकी सभामें मौजूद थे।

रामसिंहदेव—एक हिंदू राजा। इन्होंने सरस्वतीकण्ठाभरणकी रत्नदर्पण नामकी टीका लिखी। रत्नेश्वर इन्हींके आश्रयमें प्रतिपालित हुए थे।

रामसिंह मुन्सी—गुलसनआजायब नामक ग्रंथके प्रणेता। इन्होंने १७१६ ई०में उक्त ग्रंथ लिखा।

रामसिंह वर्मन्—जयपुरके एक राजा। धातुरत्नमञ्जरी नामक ग्रन्थ इन्हींका लिखा हुआ है।

रामसिंह सवाई (२य)—जयपुरके राजा। राजा ३य जयसिंहकी मृत्युके बाद १८३४ ई०में ये राजगद्दी पर बैठे। जयपुर देखो।

रामसीता (हिं० पु०) सीताफल, शरीफा।

रामसुंदर (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी नाव।

रामसुन्दर विद्यावागीश—वस्तुतत्त्वके रचयिता।

रामसुब्रह्मण्य शास्त्री—मतचतुष्टयपरीक्षा तथा विष्णुतत्त्वरहस्य और उसकी टीकाके प्रणेता।

रामसूक्त (सं० क्ली०) रामस्तोत्र।

रामसेतु (सं० पु०) दक्षिण भारतकी अन्तिम सीमा पर रामेश्वरतीर्थके पास समुद्रमें पडी हुई चट्टानोंका समूह। इसके विषयमें विख्यात है, कि यह वही पुल है जिसे रामने लङ्काकी चढ़ाईके समय बंधवाया था। अङ्गरेजीमें इसे Adam's bridge कहते हैं।

रामसेन—रससारामृतके रचयिता। इन्होंने अपने ग्रंथमें शालिनाथ, नित्यनाथ और गहनानन्दनाथका मत उद्धृत किया है।

रामसेनक (सं० पु०) १ भूनिम्ब, चिरायता। २ कट्फल, कटहल।

रामसेवक (सं० पु०) रामचन्द्रका उपासक।

रामसेवक—तिथिप्रदीपिकामञ्जरीटीका, यज्ञसिद्धान्तविग्रह और युद्धचिन्तामणिके रचयिता।

रामस्तुति (सं० स्त्री०) रामस्य स्तुतिः। रामस्तोत्र श्रीरामचन्द्रका स्तव।

रामस्वामिन् (स० पु०) काश्मीरमें प्रतिष्ठित श्रीरामचन्द्र की मूर्त्तिभेद। (राजतर० ५।२७५)

रामस्वामी—१ अमरकोषटीकाके प्रणेता। २ एक वैद्य करण। माधवीयधातुवृत्तिमें इनका उल्लेख देखा जाता है।

रामहरि—१ पारिजात व्याकरणके प्रणेता। इन्होंने १८१८ ई०में उक्त ग्रन्थ बनाया। २ वृहज्जातकके रच यिता।

रामहृदय (स० पु०) रामस्य हृदयं। अध्यात्मरामायणका एक परिच्छेद। यहां रामका आध्यात्मिक तत्त्व विवृत हुआ है।

रामह्रद (सं० पु०) पुराणानुसार एक पुण्यप्रद तीर्थका नाम। (भागवत १०।८२।१०)

रामा (स० स्त्री०) रमते रमयतीति वा रम ज्वलादि त्वात् ण, टाप्, रमतेऽस्मयेति करणे घञ् वा। १ उत्कृष्ट स्त्रीविशेष, सुन्दर स्त्री। २ गानकलामें प्रवीण स्त्री। ३ हिंगु, हींग। ४ नदी। ५ हिंगुल, ईंगुर। ६ श्वेतकण्ट कारी, सफेद भटकटैया। ७ शीतला। ८ मञ्जिष्ठ। ९ घीकुआर। १० गोरोचन। ११ सुगन्धवाला। १२ गैरिक, गेरू। १३ तमालपत्र, तमाखू। १४ नायमाणा लता। १५ लक्ष्मी। १६ सीता। १७ रुक्मिणी। १८ राधा। १९ आठ अक्षरोंका एक वृत्त। इसके प्रत्येक चरणमें तगण, यगण और दो लघु वर्ण होते हैं। २० इन्द्रवज्रा और उपेन्द्रवज्रा के मेलसे बना हुआ एक उपजाति वृत्त। इसके प्रथम दो चरण इन्द्रवज्राके और अन्तिम दो चरण उपेन्द्रवज्राके होते हैं। २१ आर्या छन्दका १७वां भेद जिसमें ११ गुरु और ३५ लघु वर्ण होते हैं। २२ कार्त्तिककी कृष्णा ११ की तिथि।

रामाग्निचित्—आपस्तम्ब श्रौतसूत्रव्याख्याके प्रणेता।

रामाचक (सं० पु०) धर्मोपदेशका आचार्यभेद।

रामाचार्य (सं० पु०) एक आचार्यका नाम।

रामाण्डार—आपस्तम्ब श्रौतसूत्रकी एक टीकाके रच यिता। ये रामाग्निचित् नामसे परिचित थे। निर्णय सिन्धुमें कमलाकर और भास्कर मिश्रने इनका मत उद्धृत किया है।

रामात्—उत्तरभारतप्रसिद्ध वैष्णवधर्मसम्प्रदायभेद। रामा नंद इसके प्रवर्त्तक थे, इस कारण लोग इसे रामा नंदी भी कहते हैं। इस सम्प्रदायके लोग रामचंद्र, सीता, लक्ष्मण और हनुमान्‌की उपासना करते हैं। सम्प्रदाय प्रवर्त्तक रामानन्द रामानुजके शिष्य थे, ऐसा बहुतोंका कहना है, परंतु यह युक्तिसंगत प्रतीत नहीं होता। क्योंकि उनकी शिष्यपरम्पराके मध्य रामानंदका स्थान पाँचवां पड़ता है, जैसे—रामानुजके शिष्य देवा नंद, देवानन्दके शिष्य हरिनंद, हरिनंदके शिष्य राघवा नन्द और राघवानन्दके शिष्य रामानन्द*।

११वीं सदीके प्रथम भागमें रामानुज स्वामी विद्य मान थे। इस हिसाबसे १३वां शताब्द प्रारम्भमें रामा नंदका अस्तित्व प्रमाणित होता है। किन्तु उनके शिष्य महात्मा कबीर जब सिकन्दरशाह लोदीके समसामयिक थे, तब किस प्रकार १३वीं सदीमें इनका होना स्वीकार कर सकते हैं? कबीर-पन्थियोंके मतसे कबीर १२०५ से १५०५ सम्वत् तक जीवित थे। फिर मुसलमान ऐति हासिक इन्हें १५४४ ई०का आदमी बतलाते हैं। अतः रामानन्द कब विद्यमान थे, इसका ठीक ठीक पता लगाना कठिन है और इसमें भी संदेह है, कि ये रामा नुजके शिष्यपरम्परायुक्त थे। पर हां, इतना कहा जा सकता है, कि रामानन्द रामानुज स्वामीके मतावलम्बी थे और महात्मा कबीर भी पूज्यपाद रामानंदके मता नुसारी हुए। कबीर देखो।

प्रवाद है, कि रामानन्द देशभ्रमणके बाद जब मठ लौटे, तब उनके सतीर्थोंने कहा था, 'भोज्य और भोजन क्रिया गुप्तभावसे करना रामानुज-मतावलम्बीका एकान्त कर्त्तव्य है। किन्तु भ्रमणकालमें शायद तुमने इस नियम का पालन नहीं किया होगा, इसलिये तुम्हें अलग भोजन करना उचित है। गुरु राघवानन्दने भी इसका समर्थन किया। इस पर रामानन्दने अपनेको अपमानित समझ कर उनका साथ छोड़ दिया और अपने नाम पर वैष्णवसम्प्रदाय प्रवर्त्तित करनेका संकल्प किया।

इसके बाद रामानन्द वाराणसीके पञ्चगङ्गाघाट आये। यहां इनके शिष्यसम्प्रदायका एक मठ प्रतिष्ठित

* भाष्यकारके मत—१ रामानुज, २ देवाचार्य, ३ राघ वानन्द, ४ रामानन्द।

हुआ। आगे चल कर मुसलमानोंने उसे नष्ट कर दिया। उसके पास ही पत्थरकी जो वेदी है उस पर रामानन्द-का पदचिह्न अङ्कित है। इसके सिवा काशीमें इस सम्प्रदायके और भी कितने प्रसिद्ध मठ स्थापित हैं। इस सम्प्रदायको शृङ्खलित रखनेके लिये रामानन्दियोंकी एक पञ्चायत है। उसी पञ्चायतके ठहरावके अनुसार रामानन्दीसम्प्रदायके काम होते हैं।

अन्यान्य सम्प्रदायकी तरह रामानन्दी सम्प्रदायमें भी विषयी और धर्मव्रतीके भेदसे दो विभाग देखे जाते हैं। धर्मव्रती उपासकके भी फिर दो भेद हैं—उदासी और गृही। इनमें उदासी ही प्रधान हैं।

उदासी तीर्थपर्यटन कर भिक्षा अथवा वाणिज्य द्वारा गुजारा चलाते हैं। स्थान स्थानमें प्रत्येक सम्प्रदायका मठ, अस्थल वा अखाड़ा है। भ्रमणकालमें जब कोई मठ पड़ता है, तब वे वहां कुछ दिनके लिये ठहर जाते हैं। वृद्ध उदासी मृत्यु पर्यन्त मठमें आश्रय लेते हैं तथा स्वयं एक मठ स्थापन कर वहां आयुःशेष करते हैं।

मठ वा अखाड़ा वैष्णवसम्प्रदायी गुरुओंका आवास-स्थान है। यहां एक विग्रहमन्दिर, मठ, प्रतिष्ठाता वा प्रधान गुरुकी समाधि तथा महन्त और उनके साथ रहनेवाले शिष्योंके कुछ मकान रहते हैं। इसके अलावा तीर्थयात्री वा उदासीनोंके रहनेके वास्ते उसमें एक धर्मशाला भी है। वहाँ किसीका भी जाना निषेध नहीं है।

एक प्रदेशमें एक सम्प्रदायसक्रान्त भिन्न भिन्न अनेक मठ हैं। वहाके अध्यक्ष मठमें किसी उदासीको प्रधान मानते हैं। फिर जो मठ सम्प्रदायस्वामीके नामसे प्रतिष्ठित है, सभी प्रादेशिक मठके अध्यक्ष उसको सर्व-श्रेष्ठ समझते हैं। शेषोक्त मठके महन्त, उनके अभावसे किसी प्रसिद्ध मठके महन्त उस समाजके सरदार समझे जाते हैं। परलोकवासी महन्त शिष्योंमें जो परीक्षोत्तीर्ण हो सकते हैं उन्हींको आचार्यके पद पर अभिषिक्त किया जाता है। इन सब मठोंके खर्चावर्चाके लिये कुछ कुछ देवोत्तर है।

श्रीरामचन्द्र रामानन्दोंके अभीष्ट देवता हैं। रामो-पासनाकी प्रधानता स्वीकार करनेके कारण ये लोग रामात कहलाते हैं। ये लोग विष्णुकी अन्यान्य मूर्त्ति-की कल्पना करते हैं। रामानुजोंकी तरह ये लोग रामसीताकी मूर्त्तिकी आराधना करते हैं। इसके सिवाय ये लोग दूसरे दूसरे वैष्णवसम्प्रदायकी तरह तुलसी और शालग्राम-शिलाकी भी भक्ति करते हैं। काशीमें इस सम्प्रदायके दो मन्दिरोंमें राधाकृष्ण मूर्त्ति-की उपासना होती है।

इस सम्प्रदायमें किसी कठोर नियमका पालन नहीं करना पड़ता। रामानुजसम्प्रदायके अनेक बंधनोंको इन्होंने शिथिल कर दिया था। खाने पीनेके सम्बन्धमें इन्होंने कोई कठिन नियम न रखा। सभी अपनी रुचि के अनुसार या लौकिक व्यवहारके अनुसार खा पी सकते हैं। खाने पीनेके विषयमें इस सम्प्रदायभुक्त वैरागियोंके वर्ण और जातिविचार नहीं है। इसी कारण ये लोग कुलातीत और वर्णातीत कहलाते हैं।

श्रीराम उनके बीजमन्त्र हैं। 'जयराम जय श्रीराम वा सीताराम' उनके अभिवादनवाक्य हैं। तिलकसेवा श्रीसम्प्रदायोंकी जैसी है। किन्तु कोई कोई अपनी रुचिके अनुसार ऊर्द्ध्वपुण्ड्रकी मध्यवर्त्ती रेखा कुछ छोटी कर अङ्कित करते हैं।

रामानन्दस्वामी बहुतसे शिष्य बना गये हैं। उनमें आशानन्द, कबीर, रुइदास, पीपा, सुरसुरानन्द, सुखा-नन्द, भवानन्द, धन्ना, सेन, महानन्द, परमानन्द और श्रियानन्द प्रधान हैं*। कबीर जुलाहा (तांती), रुइदास चमार, पीपा राजपूत, धन्ना जाट और सेन नाई थे। ये सभी उपासकसम्प्रदायविशेषके प्रवर्त्तयिता हैं।

इस सम्प्रदायके तथा रामानन्द स्वामीके प्रसिद्ध शिष्य गाङ्गरोणके राजा राजपूत जातिके पीपा, सुरसुरा-नन्द, धन्ना, नरहरि वा हर्य्यानन्द, भक्तमालके प्रणेता नाभाजी, सुरदास, तुलसीदास, सुललित गीतगोविन्दपद-के रचयिता जयदेव आदि रामात् श्रेणीके वैष्णव थे। भक्तमाल ग्रंथमें इनके सम्बन्धमें अनेक अलौकिक उपाख्यान लिखे हैं।

रामानन्द स्वामीके धर्ममतका संस्कार कर परवर्त्ति-कालमें और भी कितनी रामात् सम्प्रदायकी शाखा

* भक्तमालमें अन्य प्रकारसे है।

निकाली गई। कबीरसे कबीरपन्थी दादूसे दादूपन्थी, कोलसे खाकी (शरीरमें मिट्टी या भस्म लेपनेवाले), मुलुकदाससे मुलुकदासी, रैदाससे रैदासी या रय-दासी, सेनसे सेनपन्थी, रामचरणसे रामसनेही आदि विभिन्न रामाद्मत प्रचारित हुए थे।

रामानन्दके बाद रघुनाथ गद्दी पर बैठे। ये भाशा नन्द नामसे परिचित हुए थे। यद्यपि रामानन्द स्वामी का बनाया हुआ कोई भी ग्रन्थ अभी नहीं मिलता, तो भी उनके महानुवर्त्ती वैष्णवोंने आगे चल कर बहुतसे ग्रन्थ सङ्कलन किये। वे सब ग्रन्थ देशी भाषामें लिखे हैं, इस कारण सभी उन्हें आसानीसे समझ सकते हैं। उन सब ग्रन्थोंमें रामानंद स्वामीके मतोंका संग्रह है।

रामातुलसी (सं० स्त्री०) वह तुलसी जिसके डंठलका रंग सफेदी लिये हरा होता है काला नहीं होता।

रामादेवी (सं० स्त्री०) जयदेवकी माता।

(गीतगोविन्द १२।१०)

रामाद्वय—वेदान्तकौमुदीके प्रणेता तथा अद्वयाश्रमके पुत्र।

रामाधार—एक व्याख्याकार। रामायणका अयोध्याकाण्ड इन्होंने अन्वय द्वारा गद्यमें व्याख्या की।

रामानन्द—एक वैष्णव धर्मप्रचारक साधु। इसाके १३०० सन्‌के प्रारम्भमें प्रयागमें कान्यकुब्ज ब्राह्मणके घर इनका जन्म हुआ। भक्तमालके मतसे रामानुजके शिष्य देवा चार्य, देवाचार्यके शिष्य राघवानन्द और राघवानन्दके शिष्य रामानंद हैं। रामानन्दके भी असंख्य शिष्य थे। जिन में अनन्तानंद और कबीर प्रधान थे। (भक्तमाल १०।६५) रामानुज स्वामी ११वीं सदीमें तथा कबीर १४वीं सदीके मध्यभागमें जीवित थे। रामानुज और कबीर देखो। इस हिसाबसे भक्तमालके मतानुवर्त्ती हो कर रामानुजकी शिष्य परम्परामें रामानंदका स्थान चौथा माना स्वीकार नहीं किया जा सकता। शायद भक्तमालके रचयिताने रामा नुज और रामानंदके मध्यवर्त्ती कुछ गुरुओंके नाम छोड़ दिये हों।

रामानंद बचपनसे ही स्वाधीन प्रकृतिके आदमी थे। एक समय वे तीर्थयात्रा करने बाहर गये हुए थे। भारत के नाना स्थानोंमें घूम कर जब वे अपने मठमें आये, तब उनके सतीर्थोंने कहा कि, "दूसरेके सामने भोजन करना रामानुजसम्प्रदायकी रीतिके विरुद्ध है। तुमने देशविदेश-में इस नियमका पालन न किया होगा, इसलिये तुम्हारे साथ हम लोग एक पंक्तिमें बैठ कर भोजन नहीं कर सकते।" गुरु राघवानंदने भी इस बातको पुष्ट किया। रामानंद अपनेको अपमानित समझ कर काशीधाम चले आये। यहां पञ्चगङ्गाघाट पर रह कर इन्होंने अपने मता नुसार वैष्णव-संप्रदाय प्रवर्त्तित किया। वे रामचंद्रको अपना इष्टदेवता समझते थे। उनके मतानुवर्त्ती रामात् या रामानंदी-संप्रदाय इसी कारण रामचंद्रको इष्टदेवता समझ कर उनकी पूजा करते हैं।

रामानंद वाराणसीके पञ्चगङ्गाघाटमें जहां रहते थे उनके शिष्योंने वहां एक मठ बनवा दिया था। पीछे किसी मुसलमान राजाने उसे तहस नहस कर डाला। अभी वहां एक पत्थरकी वेदी मौजूद है। उस वेदी पर रामानंदका पदचिह्न अङ्कित देखा जाता है।

रामानंदके अनेक शिष्य थे, जिनमेंसे भक्तमालमें कुछ प्रधान शिष्योंके नाम ये सब लिखे हैं,—अनंतानंद, कबीर, सुखा, सुर, पद्मावती, नहिमर, विजय, नरहरि, पीपा, भवानंद, रयदास, धना, योगानंद, गयेस, करमचांद, अल्ह पयहारी, सारी, रामदास, श्रीरङ्ग और गुणाकर। रामानंद जातिभेद नहीं मानते थे। युक्तप्रदेशमें आज भी हजारों मनुष्य रामानंदके मतानुवर्त्ती हैं।

इन शिष्योंमेंसे कई ब्राह्मणेतर जातिके भी थे। वे सभी वर्णके मनुष्योंको भगवद्भक्तिका अधिकारी समझते थे। परंतु वर्णव्यवस्था वैसा ही मानते थे जैसा कि वैदिक लोग मानते हैं। उन्होंने ब्राह्मणोंके अधिकारको अत्यंत सुरक्षित रखा है। ब्राह्मणों को ही विरक्त-संन्यास देते थे, दूसरेको नहीं। इतना होने पर भी वे बड़े उदार थे। हिंदू और मुसलमान सबके लिये उन्होंने धर्मद्वार खोल रखा था। वह बड़े पराक्रमी और शास्त्रमर्मज्ञ थे। उन्होंने जैनियों और मुसलमानोंसे कई शास्त्रार्थ किये हैं। अद्वैतवादियोंके साथ भी उनके शास्त्रार्थ हुए हैं। उनका सम्प्रदाय श्रीसम्प्रदाय अथवा रामानंद-सम्प्रदाय कहा जाता है। रामात् देखो।

रामानन्द—कई एक प्रसिद्ध पण्डित। १ वाक्यसुधाकी टीकाके प्रणेता ब्रह्मानन्दभारतीके गुरु। २ वृत्तदर्पणके प्रणेता जानकीमण्डलके पिता और गोपालके पुत्र। ३ न्यायामृतव्याख्या वा न्यायामृततरङ्गिणीके रचयिता। ये रामाचार्य नामसे भी परिचित थे। ४ वृहत्रुद्रोपपुराणकी टीका और वृहत् रुद्रयामलकी टीकाके प्रणेता। ५ रामार्चनपद्धतिके प्रणेता। ६ वैष्णवमताब्जभास्करके रचयिता। ७ शिवरामस्तोत्रके प्रणेता। ८ शूद्रकुलदीपिकाके रचयिता। ९ हरिवंशटीकाकार। १० काशीखण्डटीकाके प्रणेता। इन्होंने वासुदेवके अनुरोधसे यह ग्रन्थ संकलन किया। पीछे इस ग्रन्थकी पुनः "गङ्गासहस्रनामटीका" लिखी। इनकी वनाई वालवोधिनी नामकी एक और पुस्तक मिलती है। ये मुकुन्दप्रियके पुत्र और रामेन्द्रचन्द्रके पौत्र थे। पहले अपने पितामह और पीछे चतुर्भुज नामक एक पण्डितसे ये पढ़ते थे।

रामानन्द आचार्य—मुग्धवोधटीकाके रचयिता। दुर्गादास और भट्टिकाव्यमें भरतसेनने इनका मत उल्लेख किया है।

रामानन्द तीर्थ—एक अद्वितीय पण्डित और साधु। ये तीर्थस्वामी या रामानन्दयति नामसे भी परिचित थे। ये प्रसिद्ध पण्डित अद्वैतानन्दके गुरु थे। इनके वनाये निम्नोक्त ग्रन्थ मिलते हैं,—

अङ्कसंज्ञा, अद्वैतनिर्णयसंग्रह, अद्वैतप्रकाश, अद्वैतरहस्य, अध्यात्मविन्दु, अध्यात्मरामायणटिप्पणी, अध्यात्मसारटिप्पणी, अन्तर्यजनाङ्कटिप्पणी, आत्मतत्त्वटिप्पणी, आत्मवोधटिप्पण, आनन्दकुसुम, कातन्त्रसंग्रह, कादिसहस्रनामकला, कुण्डतत्त्वप्रकाशिका, कोमलकोषसंग्रह, गीताटीका, गीतादिसारटीका, गीताशय, चक्रटीका, चण्डीविवरण, ज्ञानवैभवतन्त्र, ज्ञानार्णवतन्त्र, तत्त्वसूत्र और तत्त्वसूत्ररत्न नामकी टीका, तत्त्वार्णवटीका, तत्त्वाववोधटीका, तंत्रसार, दर्शनकलिका, देवीसूक्तटीका, नाममालासंग्रह, नृपभूषणी, परमामृत, प्रवोधचन्द्रोदयसंग्रह, प्रागुद्धारसंग्रह, प्रेमभक्तिस्तोत्र और उसकी टीका, भगवद्गीताभाष्यव्याख्या, भागवततत्त्वसंग्रह, भागवतवृहत्संग्रह, भागवतमञ्जरी, भागवताशय, भावार्थदीपिकाक्रमसंग्रह (भागवतपुराण), भावार्थदीपिकासंग्रह (श्रीधर), मन्वर्थसार, महिम्नःस्तवटीका, मोहमुद्गरटीका, यतिभागवत, यतिभूषणी, यथार्थमञ्जरी, योगचंद्रटीका, योगविवेकटिप्पण, योगसूत्रटीका, योगावली, राजभूषणी, रामकाव्य, रामतत्त्वप्रकाश, रामायणकूटटीका, रुद्राध्यायटीका, लोकाभिधान, वासिष्ठसार और वासिष्ठसारगूढार्थ, विचारार्कसंग्रह, विष्णुसहस्रनामव्याख्या, विष्णुसूक्तटीका, वेदमातृटीका, वेदस्तुतिलघूपाय, वेदान्तसारटीका, वेदान्तसूत्रटीका, शक्तिवादकलिका, शाक्तसर्वस्व, शान्तिशतककी टीका, शास्त्रसार, संक्षेपाध्यात्मसार, संगीतसिद्धांत, सत्तत्त्वविन्दु, संध्याविधिमंत्रसमूहटीका, सहस्रनाममालाकला, साध्यपदार्थगाथा, सातत्यचतुष्कटीका, स्वपार्द्वैतप्रकाश, हठप्रदीपिकाटीका और हठयोगाधिराजटीका।

रामानन्द राय—एक वैष्णव और परम भक्त। ये उड़ीसाके विख्यात राजा प्रतापरुद्रके प्रधान कर्मचारी थे। भक्तिपरायणतामें ये वैष्णव समाजमें परम वैष्णव कह कर मशहूर थे। स्वयं चैतन्यदेव इनके असामान्य गुण पर आकृष्ट हो कर इनको देखनेकी इच्छासे विद्यानगर पधारे थे। ये अपने प्रभुकी आज्ञासे प्रतिभापूर्ण 'जगन्नाथवल्लभ' नाटक लिख कर अपनी असाधारण कविताका परिचय दे गये हैं। इनकी वनाई एक और शान्तिशतककी टीका मिलती है। १५३४ ई०में इनका जीवनाभिनय शेष हुआ। पद्यावलीमें इनकी वनाई कविता उद्धृत हुई है।

रामानन्द वसु—कुलीनग्रामवासी मालाधर वसुके पौत्र। इन्होंने श्रीचैतन्यदेवके साथ द्वारका नगरीसे नीलाचल तक परिभ्रमण किया था। रामानन्द चैतन्यदेवके परम प्रियपात्र थे। चैतन्यदेव इन्हें मित्र कहा करते थे।

रामानन्द वाचस्पति—नवद्वीपके रहनेवाले एक विख्यात पण्डित। इन्होंने नवद्वीपाधिपति राजा कृष्णचन्द्रके अनुरोधसे आह्निकाचारराजकी रचना की थी।

रामानन्द सरस्वती—वहुत-से प्रसिद्ध पण्डित। १ शुकाष्टकटीकाके रचयिता गंगाधरेंद्र सरस्वतीके गुरु। २ ब्रह्मसूत्रभाष्यरत्नप्रभा नामक ब्रह्मसूत्रभाष्यकी तथा योगमणिप्रभा नामक सूत्रकी टीकाके प्रणेता। ये गोविन्दानन्द, गोपाल और शिवराम सरस्वतीके शिष्य थे। ३ ब्रह्मामृतवर्षिणी नामकी ब्रह्मसूत्रकी टीकाके रच-

पिता। ये मुकुन्द गोविन्दके शिष्य थे और रामकिंकर नामसे परिचित थे।

रामानन्द सरस्वती यति—एक संन्यासी और प्रसिद्ध पण्डित तथा रामभद्र सरस्वतीके शिष्य। इन्होंने पञ्ची करणतात्पर्यचन्द्रिका, ब्रह्मसूत्रवृत्तिप्रकाशिका, वाक्यसुधाटीका, विवरणोपन्यास (शङ्कराचार्यकृत शारीरक सूत्रभाष्यकी टीका) और वेदान्तसिद्धान्तचन्द्रिका आदि ग्रन्थ प्रणयन किये।

रामानन्द स्वामी—१ तत्त्वसंग्रह रामायण और मुक्तितत्त्वके रचयिता। २ विद्याभूषणके प्रणेता।

रामानन्दी—रामोपासक सम्प्रदाय। इस सम्प्रदायमें राम ही विष्णुस्वरूप माने जाते हैं। इस संप्रदायके प्रवर्त्तक रामानंद हैं, इस कारण यह रामानंदी सम्प्रदाय नामसे परिचित होता है। इस सम्प्रदायमें किसी कठोर नियम का पालन नहीं करना पड़ता। भक्तमाल नामक ग्रन्थमें रामानंदी सम्प्रदायके विषयमें यह बात लिखी हुई है, "रामानन्द सभी जातिके मनुष्योंको शिष्य करते थे। जातिभेद नष्ट करनेके लिये उनका विशेष प्रयत्न था। उन के मतसे भक्त और भगवान्‌में कोई भेद नहीं है। जब भगवान् होने मत्स्य, कूर्म, वराह आदि नीच योनियोंमें जन्म लिया, तब भक्त भी नीच योनियोंमें जन्म लें इस में संदेह ही क्या है। इसी कारण वे सभी जातिके मनुष्योंको शिष्य करते तथा मन्त्रोपदेश दिया करते थे। विशेष विवरण रामानन्द शब्दमें देखो।

रामानन्दबोध—रामानंद प्रणीत वेदांत विषयक एक प्रसिद्ध ग्रन्थ।

रामानुज (सं० पु०) १ रामचन्द्रके छोटे भाई लक्ष्मण। २ वैष्णव मतके एक प्रसिद्ध आचार्य और श्रीवैष्णव सम्प्रदायके प्रवर्त्तक। रामानुजस्वामी देखो।

रामानुज आचार्य—वेदपाद-रामायणके रचयिता।

रामानुजदर्शन—रामानुजमत प्रतिपाद्य दर्शनशास्त्र। माधवाचार्यने सर्वदर्शनसंग्रहमें इस दर्शनका संक्षिप्त विवरण दिया है। रामानुजने इस दर्शनमें पहले आर्हतमतका खण्डन किया है। वे कहते हैं, कि आर्हतमत अति अप्रामाणिक और अश्रद्धेय है, इसी कारण बुद्धिमान् मनुष्य यह मत ग्रहण नहीं करते। क्योंकि उसमें पञ्चतत्त्व, सप्ततत्त्व और नवतत्त्वादि नाना विषय उल्लिखित हुए हैं, कोई एक स्थिर सिद्धान्त नहीं है। इसलिये लोगोंको यह संदेह होता है, कि सप्ततत्त्व, पञ्चतत्त्व या नवतत्त्व इनमेंसे किस मतके ऊपर वे निर्भर करेंगे। तथा ऐसा अव्यवस्थित मत अवलम्बन करनेकी आवश्यकता ही क्या? विचार कर लोग इस मतको ग्रहण नहीं करते। क्योंकि संदिग्ध विषयमें किसी भी बुद्धिमान्‌की प्रवृत्ति नहीं होती। फलतः आर्हतमतसे प्रवर्त्तकने इसे अव्यवस्थित विषय बतलाते हुए अपने भी अव्यवस्थित चित्तत्वका परिचय दिया है। आर्हतके मतसे देहके परिमाणानुरूप जीवका परिमाण है, किन्तु यह शास्त्र या युक्ति किसी भी प्रमाणके अनुसार नहीं हो सकता। कारण देहके परिमाणानुरूप जीवका परिमाण होनेसे घटादि जड़ वस्तुकी तरह जीव भी परिमित हो सकता था। परिमित वस्तु कभी भी एक समय नाना स्थानोंमें नहीं रहती। अतएव जीवका भी एक समय नाना देशोंमें रहना असम्भव है, किंतु योगी लोग योगके बलसे कायव्यूहकी रचना कर एक समय नाना शरीरमें अवस्थित करते हैं। किन्तु जैन लोग इसे स्वीकार नहीं करते। उनका कहना है, कि योगी भी तो जीव है, तब फिर किस प्रकार वे एक समयमें नाना शरीरमें अवस्थान कर सकते। शास्त्रमें कहा है, कि अपने कर्मवशतः मनुष्यजीवको भी जन्मांतरमें गजपिपीलिकादि शरीर धारण करना पड़ता है। यह भी किस प्रकार सङ्गत हो सकता? क्योंकि मनुष्य देहपरिमित मनुष्यजीव कभी भी बड़े शरीरमें अर्थात् हाथीमें नहीं रह सकता। जिस प्रकार छोटे बरतनमें ब्रह्माण्डका सभी जल तथा छोटी झोपड़ीमें हाथी नहीं समा सकता उसी प्रकार छोटी पिपीलिकाके शरीरमें किसी हालतसे मनुष्यजीवका समावेश नहीं हो सकता।

यहां पर ऐसी भी सम्भावना नहीं, कि जिस प्रकार दीपके आलोकसे छोटा और बड़ा घर समान तौर प्रकाशित होता है, उसी प्रकार जीवके सङ्कोच और विकाशभावमें छोटे और बड़े सभी शरीरमें उसका समावेश हो सके। किन्तु इससे जीव अनित्य हो जाता है। क्योंकि जिसका सङ्कोच और विकाशभाव है उसके विकार भी है।

विकारी होने होसे अनित्य होता है। दीपालोक ही इसका दृष्टान्त है। जीवकी अनित्यता भी स्वीकार नहीं की जा सकती। क्योंकि जीवके अनित्य होनेसे 'कृतप्रणाश' और 'अकृताभ्यागमन' ये दोनों दोष होते हैं। जैसे, जिस व्यक्तिने जैसा कर्म किया है उसे उस कर्मका भोग अवश्य करना होता है। अभुक्त कर्मका कभी भी विनाश नहीं होता। जीवात्मा यदि अनित्य हो, तो उसका विनाश भी स्वीकार करना होगा। ऐसा होनेसे जीवात्माका स्वकृत कर्मका भोग हुए बिना ही विनाश हुआ। अतएव भोक्ताके अभावमें उसका यह कर्म अभुक्त हो कर भी विनष्ट हुआ। ऐसा होनेसे ही कृतप्रणाशका दोष हो उठा। क्योंकि अभुक्त कर्मके प्रणाशको कृतप्रणाश कहते हैं।

जो व्यक्ति पुण्य वा पापकर्म कुछ भी नहीं करता है, उसे उस कर्मके फलस्वरूप सुख वा दुःखका कभी भी भोग नहीं करना होता। किन्तु जीवात्माकी अनित्यता स्वीकार करनेमें अकृतकर्मके फलभोगस्वरूप 'अकृताभ्यागमन' स्वीकार करना होता है, नहीं तो इस मतसे अभिनवजात कुमारके सुख वा दुःख कुछ भी नहीं हो सकता। क्योंकि उस समय उसके पुण्य वा पाप कर्म कुछ भी नहीं हैं। किन्तु जीवात्माकी नित्यता स्वीकार करनेमें ऐसा दोष नहीं होता। कारण, बाल्यावस्थामें पूर्वजन्मकृत् पुण्य वा पापके फलस्वरूप सुख वा दुःखका भोग होता है। यह जीवात्माकी नित्यताके मतसे अनायास ही स्वीकार किया जा सकता है। अतएव जीव कभी भी देहपरिमित नहीं है। इस प्रकार जब आर्हतमतके प्रधानभूत जीवपदार्थका निर्णय दोषपूर्ण और भ्रान्तिसंकुल प्रतिपन्न होता है, तब उस दर्शनमें अन्यत्र भ्रम वा दोष नहीं है, यह किस प्रकार संभव हो सकता है।

अद्वैतमतप्रवर्त्तक शङ्कराचार्यके मतावलम्बियोंका कहना है, कि एकमात्र ब्रह्म ही सत्य और श्रुतिप्रतिपाद्य है। जगत्प्रपञ्च कुछ भी सत्य नहीं है, सभी मिथ्या है। जिस प्रकार भ्रमवशतः रस्सीसे सांपका भ्रम होता है और जब यह मालूम हो जाता है, कि यह रस्सी है सांप नहीं, तब उस सांपका भ्रम भी जाता रहता है उसी प्रकार अविद्या द्वारा यह जगत्प्रपञ्च ब्रह्ममें कल्पित होता है। ब्रह्मज्ञान होनेसे ही उस अविद्याकी निवृत्ति हो कर जगत्प्रपञ्चकी भी निवृत्ति होती है।

अविद्या भाव पदार्थ है, किन्तु वह सत् या असत् पदार्थ नहीं है। इसलिये विद्याको सदसदनिर्वचनीय कहते हैं। विद्या अर्थात् ब्रह्मज्ञान होनेसे उस अविद्याकी निवृत्ति होती है। किन्तु इस विषयमें जो उपनिषद्-वाक्य और अनुभव प्रमाणरूपमें अद्वैत मतावलम्बियोंने उद्धृत किया है उससे उल्लिखित भावस्वरूप अविद्या सिद्ध हो नहीं सकती। कारण श्रुतिमें जो अनृत शब्द है उसका अर्थ सांसारिक अल्पफलजनक कर्म है और जो माया शब्द देखा जाता उसका अर्थ विचित्र सृष्टिजनक त्रिगुणात्मिका प्रकृति है। अतएव जिन सब श्रुतियों द्वारा वे अविद्याको सिद्ध करके ऐसे सिद्धान्त पर पहुंचे हैं, निरपेक्षभावमें विचार कर देखनेसे वह अविद्या बिलकुल सिद्ध नहीं होती। कारण 'मैं नहीं जानता' ऐसे अनुभव द्वारा भी ज्ञानाभावका ही बोध होता है, भावरूप अविद्याका बोध नहीं होता। फिर उसे युक्तिसिद्ध कह कर भी अङ्गीकार नहीं कर सकते। क्योंकि ब्रह्मज्ञानस्वरूप है, अतएव किस प्रकार उनका आश्रय कर अविद्यारूप अज्ञान रहेगी? आलोकके आश्रयमें क्या कभी अन्धकार रह सकता? इसलिये यह मत नितान्त युक्तिविरुद्ध है, ऐसा प्रतीत होता है। अतएव भावरूप अविद्या पदार्थ जो अलीक और युक्तिविरुद्ध है इसमें और सन्देह ही क्या रह गया? इस प्रकार शङ्कराचार्यने जब युक्तिविरुद्ध विषयकी अवतारणा की है, तब विद्वानोंकी उस ओर किसी हालतसे प्रवृत्ति हो नहीं सकती।

सभी दर्शनशास्त्रोंमें जिस प्रकार एकमात्र दुःखनिवृत्तिका उपाय निर्द्धारित हुआ है, रामानुजदर्शनमें वह विशेष रूपसे आलोचित हुआ है। रामानुजविशिष्टाद्वैतवादी थे। उन्होंने इस दर्शनमें तीन पदार्थ स्वीकार किये हैं—चित्, अचित् और ईश्वर। इनमेंसे चित् जीवपदवाच्य, भोक्ता, असंकुचित, अपरिच्छिन्न, निर्मल-ज्ञानस्वरूप और नित्य तथा अनादि कर्मरूप अविद्या-वेष्टित है। भगवदाराधना और तत्पदप्राप्ति आदि

ज्ञायक स्वभाव है। केशाग्रको सौ भागों में विभक्त कर पीछे उस एक भागको फिर सौ भागों में विभक्त करनेसे जितना सूक्ष्म होता है जीव भी उतना ही सूक्ष्म है।

अचित् पदार्थ भोग्य और दृश्यपदवाच्य है, अचेतन स्वरूप जड़ात्मक जगत् है तथा भोगत्वविकारास्पदत्वादि स्वभावशाली है। यह अचित् पदार्थ फिर तीन प्रकार का है,—भोग्य, भोगोपकरण और भोगायतन। जिसे भोग किया जाता है उसे भोग्य, जैसे, अन्नपानीयादि; जिससे भोग किया जाता है उसे भोगोपकरण; जैसे भोजनपात्रादि और जिसमें भोग किया जाता है उसे भोगायतन कहते हैं, जैसे शरीरादि।

ईश्वर परमात्मा हरि हैं। ये सभीके नियामक हैं। सबोंके कर्त्ता उपादान, और अन्तर्यामी तथा अपरिच्छिन्न ज्ञान, ऐश्वर्य, वीर्य शक्ति, तेज आदि गुणास्पदतारूप स्वभावशाली हैं। चित् अचित् सभी वस्तु उनके शरीरस्वरूप हैं तथा पुरुषोत्तम और वासुदेवादि उनकी संज्ञा है। ये परम कारुणिक हैं तथा भक्तवत्सल उपासकोंको यथोचित फल देनेके लिये पांच प्रकारकी मूर्त्ति धारण करते हैं।

उनकी पांच प्रकारकी मूर्त्ति ये सब हैं,—प्रथम अर्चा अर्थात् प्रतिमादि द्वितीय रामादि अवतार स्वरूपविभव, तृतीय वासुदेव सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध इन चारोंका व्यूह, चतुर्थ सूक्ष्म और सम्पूर्ण षड्गुण वासुदेव नामक परब्रह्म और पञ्चम अन्तर्यामी सभी जीवोंके नियन्ता। भगवान्‌का इन पांच प्रकारकी मूर्त्तियोंमेंसे पूर्वकी उपासना द्वारा पापक्षय होनेसे उत्तरोत्तरकी उपासनामें अधिकार होता है। पहले प्रतिमादिकी पूजा करके चित्तशुद्धि और भगवद्भक्ति होनेसे पीछे रामादि अवतारका विभवकी उपासना करना होता है। इस प्रकार करते करते मुक्तिप्राप्तिरूप मोक्ष होता है।

इस मतमें उपासना भी पांच प्रकारकी है,—अभिगमन, उपादान, इज्या स्वाध्याय और योग। देवमन्दिरका मार्जन और अनुलेपन आदिका अभिगमन, गंधपुष्पादि पूजोपकरणका आयोजनका उपादान, पूजाका इज्या, अर्थानुसन्धानपूर्वक मन्त्र और स्तोत्रपाठ नामसंकीर्त्तन और तत्त्वप्रतिपादक शास्त्राभ्यासका स्वाध्याय तथा देवतानुसंधानको योग कहते हैं।

इस प्रकार उपासना द्वारा विज्ञान लाभ होनेसे करुणासिन्धु भगवान् अपने भक्तोंको नित्यपद प्रदान करते हैं। यह पद मिलनेसे भगवान्‌को यथार्थरूपमें जाना जा सकता है तथा पुनर्जन्मादि कुछ भी नहीं होता। इसका तात्पर्य यह कि पांच प्रकारकी उपासना से धीरे धीरे भक्ति नामक ज्ञान आविर्भूत होता है। चरमोत्कर्ष अवस्थामें जब भक्त्यादि विलुप्त होते हैं, तब भक्तवत्सल भगवान् उसे आवृत्तिरहित अपना परमधाम प्रदान करते हैं। यही रामानुज मतसे मोक्ष है। ध्यानादिक साथ की गई भक्ति द्वारा ही भगवत्स्वरूपका दर्शन होता है, दूसरे उपायसे नहीं। भगवत्स्वरूपका साक्षात्कार तत्त्वमसि आदि वाक्य सुननेसे नहीं होता।

रामानुजने और भी कहा है, कि एकमात्र भक्ति ही भगवत्प्राप्तिका उपाय है। भक्तिज्ञान विशेषज्ञानका सार या फल है। यह इतरवैतृष्ण्यरूपिणी है। भगवान्‌को छोड़ कर और सभी जब हेय मालूम होते हैं, तब जो अनन्यपरा या अव्यभिचारिणी भक्ति विकाशमाना होती है, वही भक्ति भक्ति है। बिना वैराग्यके वैसी भक्ति ही नहीं होती तथा वैराग्य भी सत्त्वशुद्धिके बिना नहीं होता, सत्त्वशुद्धि आहारादिकी शुद्धिसे धीरे धीरे प्राप्त होती है।

पहले लिखा जा चुका है, कि रामानुज विशिष्टाद्वैतवादी थे। वे इस मतको युक्ति और प्रमाणादि दिखा कर समर्थन कर गये हैं, कि चित् और अचित्‌के साथ ईश्वरका भेद यहां नाम है। जिस प्रकार विभिन्न स्वभावशाली पशु और मनुष्यादिमें अभेद है, उसी प्रकार पूर्वोक्त स्वभाव और स्वरूपके वैलक्षण्यवशतः चित् और अचित्‌के साथ ईश्वरका भी भेद स्वीकार करना होगा। फिर जिस प्रकार 'मैं सुन्दर हूं मैं स्थूल हूं' इत्यादि व्यवहारसिद्ध भौतिक शरीरके साथ आत्माका अभेद देखा जाता है, उसी प्रकार चित् और अचित् सभी वस्तुओंके साथ अभेद भी है, कहना होगा। फिर जिस प्रकार एकमात्र मिट्टी ही विभिन्न घड़े ढक्कन आदि नाना रूपोंमें मौजूद है जिससे घड़ेके साथ मिट्टीका भेदाभेद प्रतीत होता है

उसी प्रकार एकमात्र परमेश्वर चित् और अचित् नाना रूपोंमें विराजमान हैं, इसी कारण चिदचितके साथ उनका भेदाभेद भी है, संदेह नहीं। क्योंकि ईश्वरके आकार स्वरूप चिदचित्का परस्पर भेद ले कर तथा दोनोंके साथ ईश्वरके शरीरात्मभावमें अभेदवशतः भेदाभेद हुआ है। जिसका जो अन्तर्यामी होता है, वही उसका शरीर समझा जाता है। जिस प्रकार भौतिकदेहका अन्तर्यामी जीव होनेके कारण भौतिकदेह जीवका शरीर है, उसी प्रकार जीवका अन्तर्यामी ईश्वर हैं, इसलिये जीव भी ईश्वरका शरीर है। अतएव जिस प्रकार 'मैं सुन्दर हूं', मैं स्थूल हूं' इत्यादि व्यवहार द्वारा भौतिक शरीरमें जीवात्माके शरीरात्मभावमें अभेद प्रतीत होता, उसी प्रकार 'तत्त्वमसि श्वेतकेतो' अर्थात् हे श्वेतकेतो! तुम ईश्वर हो, इत्यादि श्रुतियोंमें भी जीवात्मा और ईश्वरके शरीरात्मभावमें अभेद निर्दिष्ट हुआ है। फलतः उससे वास्तविक अभेदप्रकृति नहीं होती। अतएव इस श्रुति द्वारा जीवात्मा और परमात्मामें एकता स्वीकार करना तथा जगत्प्रपञ्चको मिथ्या कहना केवल मूर्खों का काम है, इसमें जरा भी संदेह नहीं।

श्रुतिने जहां निर्गुण कहा है, वहां उसका तात्पर्य है—प्रकृतजनकी तरह रागद्वेषादि गुण ईश्वरमें नहीं होना। फिर जहां पदार्थका नानात्वविषय निषेध किया है, वहां उसका तात्पर्य यह, कि ईश्वर चिदचित् सभी वस्तु ईश्वरात्मक हैं। ईश्वरसे पृथक् कोई भी वस्तु नहीं है। (रामानुजद०)

रामानुज स्वामीने ये सब मत संस्थापन कर वेदान्तदर्शनके ब्रह्मसूत्रका एक भाष्य प्रणयन किया है। उस भाष्यमें इन सब मतोंका विशेष विवरण लिखा है।

रामानुज स्वामी देखो।

रामानुजदास—चण्डमारुत, तत्त्वत्रयरत्न और वेदान्तविजयके प्रणेता।

रामनुज दीक्षित—तत्त्वचिन्तामणिदर्पण और तत्त्वचिन्तामणिसारके प्रणेता।

रामानुज सम्प्रदाय—रामानुज मतावलम्बी वैष्णवधर्मसम्प्रदाय। श्रीसम्प्रदाय देखो।

रामानुज स्वामिन्—वरदराजस्तवटीका और सारास्वादिनी नामक टीकाके रचयिता।

रामानुजस्वामी—एक अद्वितीय दार्शनिक और साधुपुरुष, विशिष्टाद्वैतवादमतके प्रवर्त्तक। यतिराज इनकी उपाधि थी। इनके पिताका नाम केशव त्रिपाठी था। भगवान् रामानुजाचार्य १०१७ ई०में जिस क्षेत्रमें भूमिष्ठ हुए, वह ग्राम बड़ा प्राचीन है और उस पवित्र स्थान पर अश्वमेधादि विविध यज्ञानुष्ठान हो चुके हैं। इस समय वही स्थान श्रीपेरेम्बधूरम नामसे प्रसिद्ध है। यह स्थान मान्द्राजहातेके चेङ्गलपत जिलेके अन्तर्गत है और वर्त्तमान मान्द्राज नगरीसे छब्बीस मीलके फासले पर अवस्थित है। मान्द्राज रेलवेके त्रिमेलौर स्टेशनसे दश मील दूर श्रीपेरेम्बधूरम ग्राम पूर्व दक्षिणके कोनेमें अवस्थित है। अब इस स्थान पर इसके नगर होनेका कोई भी चिह्न विद्यमान नहीं है। चारों ओर नयनप्रसन्नकारी शस्यश्यामला भूमि है। नारियल, ताल, खजूर, सुपारी, वट, पीपल, पुन्नाग, नागकेसर आदि अनेक प्रकारके वृक्षोंसे सुशोभित यह एक छोटा सा ग्राम है। दूरसे इस ग्रामको देखनेसे मन आनन्दसे परिपूर्ण हो जाता है। रेलवे स्टेशनसे उतर कर इस ग्राममें प्रवेश करनेके लिये एक चक्करदार सड़क पर चल कर वहां पहुंचना होता है। इसी सड़कसे कुछ दूर आगे बढ़ कर आचार्यका जन्मक्षेत्र है। पहले स्वामीजी महाराजका जन्मस्थान मिलता है, उसके बाद उनके उपास्य देव श्रीकेशवजी के मंदिरमें जाना होता है। उसके पास ही उनके भतीजे कूरेशस्वामीका मकान है। उसके सामने एक बड़ा लम्बा चौड़ा तालाब है। अनतसरोवर उस तालाबका नाम है।

भगवान् रामानुजाचार्यका जन्म हारीत गोत्रीय ब्राह्मण वंशमें हुआ। किन्तु वैदिक श्रौतसूत्रमें ब्राह्मणोंके जो अष्टाविंशति गोत्र बतलाये गये हैं और जिनका उल्लेख धनञ्जयकृत धर्मप्रदीपमें पाया जाता है उनमें हारीत गोत्रका नाम नहीं मिलता। किन्तु स्वामीजी ब्राह्मणवंश हीमें उत्पन्न हुए थे, इसमें संदेह करनेका कारण नहीं।

रामानुजस्वामीके पिता केशव त्रिपाठी एक अद्वितीय पण्डित थे। पिताके निकट ही उन्होंने १५ वर्ष तक वेदाध्ययन किया था। पिताके मरने पर वे सपरिवार द्राविड़ देशकी राजधानी काञ्चीनगरी चले गये उस समय काञ्चीनगरी विद्या और धर्मचर्चाके लिये दक्षिण प्रांतमें बहुत प्रसिद्ध थी। यादवप्रकाश नामक एक वेदांती संन्यासी उन दिनों वहांकी पण्डित मण्डलीमें बड़े श्रेष्ठ थे। श्रीरामानुज स्वामी उन्हीं के निकट अध्ययन करने लगे। अध्यापक इनके सौंदर्य प्रतिभा और वाक्‌चातुरी देख सुन कर मुग्ध हो जाते थे।

जिन दिनों श्रीरामानुज स्वामी यादवप्रकाशके पास पढ़ने जाते थे, उन्हीं दिनों वहांके राजाकी कन्या पर एक ब्रह्मराक्षसने अधिकार जमाया था। राजाने राक्षसको हटानेके लिये यादवको बुलाया। यादव श्रीरामानुज प्रमुख अपने शिष्यों को ले कर वहां गये। उनके अनेक यत्न करने पर भी जब राक्षस नहीं हटा, तब श्रीरामानुज स्वामीने कन्याके मस्तक पर अपना चरण छुलाया और उसको ब्रह्मराक्षसबाधा दूर कर दी। राजाने प्रसन्न हो कर स्वामीजीको बहुत धन दिया। इस पर यादवप्रकाश जलनेसे लगे। इतनेमें स्वामीजीके मौसेरे भाई गोविन्दाचार्य भी यादवप्रकाशकी पाठशालामें स्वामीजीके साथ पढ़नेके लिये आये।

एक दिन यादवप्रकाश वेदान्त पढ़ा रहे थे। उन्होंने "सर्वं खल्विदं ब्रह्म, नेह नानास्ति किञ्चन" की व्याख्या इस प्रकार की। यह जगत् ब्रह्म है, ब्रह्म भिन्न कुछ भी नहीं है। हम लोग जो भिन्न भिन्न पदार्थ देखते हैं वे मायामात्र हैं, यह विलक्षण अर्थ सुन कर रामानुज स्वामी का मन विरक्त-सा हो गया और उनसे न रहा गया। उन्होंने कहा, 'महानुभाव! आप श्रुतिकी व्याख्या न कर अपव्याख्या करते हैं। उसकी व्याख्या इस प्रकार होनी चाहिये,—यह सारा जगत् ईश्वर द्वारा अधिष्ठित है। प्रत्येक पदार्थमें ईश्वर विराजमान है। ईश्वर जगत्‌की आत्मा हैं, उससे पृथक् हो कर कोई भी वस्तु ठहर नहीं सकती।" यह अर्थ सुन कर यादवप्रकाश क्रोधसे कांपने लगे और उन्होंने दो चार बातें स्वामीजीको सुनाई। स्वामीजीने इस अपमानको चुपचाप सह लिया, किन्तु उनके मनमें बड़ा खेद उत्पन्न हुआ और यादवप्रकाशसे पढ़ना बंद करके अपने घर ही पर वेदांत तत्त्वकी गम्भीर आलोचना स्वयं करने लगे।

यादवप्रकाश चुप बैठे न थे, वैरका बदला लेनेका उपाय सोचा करते थे। एक दिन उन्होंने अपने शिष्यों को बुला कर कहा, 'तुम लोगोंको अच्छी तरह मालूम है, कि काञ्चीके पण्डितोंमें मेरी कैसी प्रतिष्ठा है। रामानुज शिष्य होने पर भी मेरा शत्रु हो रहा है। उस दिन राजा के सामने उसने मेरा भारी अपमान किया है। उसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण है, यदि यह कुछ दिनों और जीता रहा, तो अद्वैत मतका मूलोच्छेद कर द्वैत मतको पुष्ट कर देगा। अतएव इस शत्रुको किसी उपायसे मार डालना चाहिये।' शिष्योंने कहा, "गुरुदेव! आप दुःखित न हों। अवसर मिलते ही हम लोग रामानुजका प्राणनाश करके आपको निष्कण्टक बना देंगे।" यह सुन यादवप्रकाश कहने लगे, 'मैंने उसके प्राणनाशका एक उपाय सोच रखा है। वह यह कि हम लोग उसे साथ ले कर स्नानार्थं प्रयागको चलें। वहां सब मिल कर भागीरथीके प्रबल प्रवाहमें उसे डुबो दें। ऐसा करनेसे उसकी सद्गति होगी और हम लोगोंको भी ब्रह्महत्याजनित पापमें लिप्त न होना पड़ेगा।' इस प्रकार यह मन्त्र रच कर श्रीरामानुज स्वामीको बातोंमें भुला यादव उनको साथ ले शिष्यमंडली सहित प्रयागकी ओर चल दिये। शिष्यमंडलीमें श्रीरामानुज स्वामीके मौसेरे भाई गोविन्दाचार्य भी थे।

विन्ध्याचलकी तराईमें जब ये सब पहुंचे, तब अवसर देख कर गोविन्दाचार्यने सारा हाल श्रीरामानुजसे कह दिया। श्रीरामानुजने उसी समयसे उन दुष्टोंका साथ छोड़ा और रास्ता छोड़ उस विकट वनमें प्रवेश किया। इधर यादवप्रकाशने जब देखा, कि रामानुज साथमें नहीं है, तब उन्होंने बहुत ढुंढवाया पर कहीं पता न लगा। अब यादवप्रकाशने समझ लिया, कि किसी वनैले जन्तुने उन्हें खा डाला। यह विचार कर वह मन ही मन बड़े प्रसन्न हुए।

इधर श्रीरामानुज स्वामीको भगवान् वरदराज और

जगज्जननी लक्ष्मीजीने बहेलिया और बहेलिनका रूप धारण कर काञ्ची पहुंचाया। काञ्चीमें पहुंच कर स्वामी जीने अपना सारा हाल अपनी मातासे कहा। माता कान्तिमतीके आदेशानुसार स्वामीजीने शालकूपसे जल ला कर भगवान् वरदराजकी सेवा करने लगे।

श्रीरङ्गनाथके कृपाभाजन श्रीयामुनाचार्य बडे पंडित थे। उनके पास अनेक शिष्य वेद-वेदाङ्गकी शिक्षा प्राप्त किया करते थे। एक दिन उन्होंने अपने शिष्योंसे कहा, 'शिष्यगण! तुम लोग घूम फिर कर एक ऐसे व्यक्तिका पता लगाओ जो सुलक्षण कान्तियुक्त नवयुवक हो, सर्वशास्त्र पारदर्शी, मधुरभाषी, सदाचारी और भगवद्भक्त हो। शिष्यगण वैसे व्यक्तिका अनुसन्धान करते करते काञ्चीमें पहुंचे। वहा श्रीरामानुज स्वामीको देख और उनके सम्बन्धकी सारी घटनावलीको सुन वे श्रीयामुनाचार्यके पास लौटे और उनसे सारा हाल कहा। वे श्रीयामुनाचार्यजीको देखनेके लिये उत्सुक हुए। परन्तु अचानक बीमार हो जानेके कारण वे स्वयं काञ्ची न जा सके।

उधर यादवप्रकाशने लौट कर जब स्वामीजीके सकुशल काञ्ची लौट आनेका समाचार सुना। तब वह दुष्ट मन ही मन लज्जित हुआ और लोगोंको धोखा देनेके लिये उसने फिर श्रीरामानुज स्वामीसे मेल कर लिया। स्वामीजी भगवान् वरदराजकी सेवा करते हुए फिर उसके पास विद्याध्ययन करने लगे। कुछ समय बाद गुरु शिष्यमें फिर झगडा हुआ। इस बार गुरुने कलिके प्रभावसे विवेकभ्रष्ट हो श्रीरामानुजस्वामीको वहांसे निकलवा दिया।

रामानुजस्वामी उसी समय श्रीयमुनाचार्यके दर्शन करनेके लिये श्रीरङ्गजीकी ओर पूर्णाचार्यके साथ चल दिये। जब ये पुण्यतोया कावेरीके तट पर पहुंचे, तब श्रीयमुनाचार्यके परम पद प्राप्त होनेका समाचार सुन बड़े दुःखित हुए।

कुछ-दिनों बाद काञ्चीपूर्ण स्वामीके कथनानुसार दीक्षा ग्रहणार्थ श्रीरामानुज स्वामी पूर्णाचार्यके पास श्रीरङ्गक्षेत्रके महाक्षेत्रका शून्य आसन देख आग्रहपूर्वक पूर्णाचार्यके श्रीरामानुज स्वामीको साथ ले आनेके लिये काञ्ची भेजा। रास्तेमें मदुराके पास उन दोनोंकी भेंट हुई। दोनोंने एक दूसरेसे अपनी अपनी यात्राका कारण कहा। अन्तमें श्रीरामानुजचार्यने पूर्णाचार्य स्वामीसे संस्कार करनेके लिये प्रार्थना की। पूर्णाचार्यकी इच्छा नहीं रहते हुए भी श्रीरामानुजस्वामीके बार बार आग्रह करने पर पूर्णाचार्यने उनके संस्कार वहीं किये। महापूर्णस्वामीने महापण्डित श्रीरामानुजस्वामीको श्रीहरिके दास्यसाम्राज्यका नायक बनाया और कहा, "इस लोकमें श्रीयमुनाचार्य श्रीवैष्णव जगत्के गुरु थे। उनके तिरोभाव होने पर अब तुम उनके स्थानको सुशोभित करो तथा प्रच्छन्न बौद्धोंके सम्प्रदायको समूल उन्मूलित करके श्रीवैष्णवोंको बचाओ।" इसके बाद गुरु समेत वे काञ्ची लौटे।

एक दिन कौशलपूर्वक श्रीरामानुज स्वामीने अपनी स्त्रीको मायके भेजा और आप अपनी जन्मभूमि भूतपुरीको चल दिये। वहा घर द्वार वित्त आदि सब पार्थिव सम्पद्को छोड कर श्रीरामानुजस्वामीने कमण्डलु और कषाय वस्त्र धारण कर अनन्त सरोवरमें स्नान किये और आदि केशवकी सन्निधिमें संन्यास ग्रहण किया। फिर वे काञ्ची लौटे। वहा उन्हें उस आश्रममें देख काञ्चीपूर्णको बड़ा आनन्द हुआ। उसी समयसे उनका नाम "यतिराज" पड़ा।

कुछ दिनोंके बाद श्रीरामानुज स्वामी देशाटनको निकले और वेङ्कटगिरि होते हुए उत्तरको चले। दिल्ली, बदरिकाश्रम आदि स्थानोंमें श्रीसम्प्रदायका प्रचार करते हुए वे अष्टसहस्र नामक ग्राममें पहुंचे। वहा उन्होंने वरदाचार्य और यज्ञेश नामक अपने ही शिष्योंको मठाधिपति नियुक्त किया। फिर हस्तिगिरिमें पूर्णाचार्यादिके मिलनेके अनन्तर वे कपिलतीर्थको गये। वहांके राजा विट्ठलदेवको उन्होंने अपना शिष्य बनाया। राजाने तोंडीरमण्डल आदि अनेक ग्राम उनको भेंट किये।

फिर बोधायनवृत्ति संग्रह करनेके लिये वे कूरेश सहित शारदापीठको गये और वहाके पण्डितोंको शास्त्रार्थमें परास्त किया। यतिराजने भगवतीवीणापाणिकी स्तुति कर उन्हें प्रसन्न किया। फिर बोधायन

पुस्तिका ले ये रङ्गजीकी ओर चल दिये। किन्तु काश्मीरी पण्डितोंको उस पुस्तकका इस प्रदेशमें जाना अच्छा न मालूम पड़ा। इसलिये रास्ते होमें वे यतिराजसे उस पुस्तकको छीन कर ले गये। इस घटनासे स्वामीजीको बड़ा दुःख हुआ। उन्हें दुःखी देख कूरेशने कहा, 'प्रभो! आप दुःखित न हों। मैंने उसे अच्छी तरह आद्योपान्त देख लिया है। आपकी कृपासे वह सम्पूर्ण ग्रन्थ मेरे मुखस्थ है।' यह सुन स्वामीजी बहुत प्रसन्न हुए।

इसके बाद यतिराजने बहुतसे शिष्योंको साथ ले चोलमण्डल, पाण्ड्यमण्डल, कुरङ्ग आदि देशोंमें जैनियों एवं मायावादियोंको परास्त कर उन्हें अपना शिष्य बनाया। कुरङ्ग देशके राजाको दीक्षित कर उन्होंने केरलदेशके कट्टर वैष्णवद्वेषी पण्डितोंको परास्त किया। वहांसे वे क्रमसे द्वारका, मथुरा, काशी, अयोध्या, बदरिकाश्रम, नैमिषारण्य आदि तीर्थोंमें हो कर काश्मीर पहुंचे। यहांके पण्डितोंको भी परास्त किया। काश्मीरके नरेश उनका नाम सुन उनके पास गये और उनके शिष्य हो गये। यहांके पण्डितोंको यह बात अच्छी न लगी। उन्होंने स्वामीजी पर अभिचार प्रयोग किया। शिष्योंने इसका समाचार श्रीस्वामीजीको दिया। स्वामीजी उससे भी विचलित न हुए। पण्डितोंका सारा परिश्रम व्यर्थ हो गया और वे पागल हो गये तथा सड़कों पर गालियां बकते हुए घूमने लगे। राजाको दया आई और उन्होंने स्वामीसे निवेदन कर उनका पागलपन दूर कराया। फिर वे सब पण्डित यतिराजके शिष्य हो गये। स्वयं विद्यादेवी सरस्वतीने उनके भाष्यकी प्रशंसा कर उन्हें 'भाष्यकार' की उपाधि प्रदान की।

वहांसे स्वामीजी द्वारका गये। फिर काशी हो कर वे पुरुषोत्तमक्षेत्र पहुंचे। वहां बौद्ध पण्डितोंको परास्त कर वे श्रीरामानुज मठमें रहने लगे। भाष्यकारने चाहा, कि यहां जगन्नाथके अर्चनविधानमें कुछ वैदिक रीत्या हेरफेर किया जाय, पर जगदीशकी इच्छा न देख वे वेङ्कटगिरि पर पहुंचे। फिर चोलराजके कृमिकण्ठ राजाने उन्हें शास्त्रार्थके लिये बुलाया। यतिराज उसके पास जाते थे, कि मार्गमें चेला बलाम्बा और उसके पतिको दीक्षित किया। फिर अनेक बौद्धोंको उन्होंने परास्त किया। इस प्रकार कुछ दिन वे भक्तोंके भवनोंमें रहे। यहां स्वप्न देखनेसे इन्होंने यादवाचल पर जा कर वहांकी छिपी हुई भगवान्‌की मूर्तिको निकाला और शाके १०१२ में उस मूर्तिको वहां प्रतिष्ठा की।

एक बार यतिराजने दिल्लीमें जा कर तत्कालीन मुसलमान बादशाहके महलमें एक विष्णुमूर्त्तिको निकाला था।

श्रीरामानुजस्वामीके ७४ शिष्य बड़े प्रसिद्ध हो गये हैं। इनमें महापूर्णकी बड़ी महिमा है।

इस प्रकार यतिराज भाष्यकार श्रीरामानुज स्वामीने जीवधारियोंके प्रति कृपा दिखानेके लिये इस धराधाम पर एक सौ बीस वर्ष तक वास किया। इस अवस्था का आधा समय अर्थात् साठ वर्ष तक तो उन्होंने काञ्ची वेङ्कटगिरि, यादवाचल आदि अनेक देशोंमें दिग्विजय करनेके लिये पर्यटन किया। अनन्तर उन्होंने अपनी आयुका शेष आधा भाग श्रीरङ्गनाथजीकी सेवामें व्यतीत किया। सेतुबन्धसे हिमालय तक और पश्चिम समुद्रसे पूर्व-समुद्र तक ऐसा कोई स्थान न था जहां पर यतिराजके शिष्य न हों।

रामानुजका मत।

रामानुजने जो विशिष्टाद्वैतवाद प्रचार किया, उसका मूलतत्त्व बहुप्राचीन मतसे ही लिया गया है। उन्होंने जिस मतका प्रचार किया, वह उनके बहुत पहले बोधायन और द्रमिडाचार्य लिपिबद्ध कर गये थे। रामानुजको श्रीभाष्य और श्रुतप्रकाशिका नाम्नी उसकी टीका होसे इसका पता चलता है। श्रीसम्प्रदायके प्रसिद्ध आचार्य श्रीनिवासने अपनी यतीन्द्रमतदीपिकामें लिखा है, कि १म व्यास, २य बोधायन, ३य गुहदेव, ४र्थ भारुचि, ५म ब्रह्मनन्दी, ६ष्ठ द्रमिडाचार्य ७म श्रीपराङ्कुशनाथ, ८म यामुनाचार्य और ९म यतीश्वर वा रामानुजने यथाक्रम इस मतका प्रचार किया। पूर्ववर्त्ती आचार्योंका संक्षिप्त मत एक प्रकार विलुप्त सा हो गया, रामानुजका सुविस्तृत आलोचनायुक्त मत अभी तमाम प्रचलित है।

बहुत पहले भारतवर्षमें जो पञ्चरात्र या भागवत मत प्रचलित था, रामानुजने एक प्रकारसे उसी मतकी घोषणा की। पञ्चरात्र ग्रन्थमें विस्तृत विवरण देखा।

अध्यापक रामकृष्णगोपाल भाण्डारकरके मतसे पञ्चरात्र वा सात्वतधर्म क्षत्रियमूलक है। रामानुजने उसी सात्वतमतके अवलम्बन पर वेदान्तिक विशिष्टाद्वैतवाद स्थापन किया है।

प्रधानतः १ जीव, २ ईश्वर, ३ उपाय (ईश्वरको पानेका पथ), ४ फल वा पुरुषार्थ, ५ विरोधी अर्थात् (ईश्वर प्राप्तिका प्रतिबंधक) यह अर्थपञ्चक ले कर रामानुजमत प्रतिष्ठित है। उनके मतसे जीव पाच प्रकारका है,—नित्य, मुक्त, केवल, मुमुक्षु और बद्ध। ईश्वरका स्वरूप भी पांच प्रकारका है,—पर, व्यूह, विभव, अन्तर्यामी और अर्चा। उपाय भी पाच प्रकारका है,—कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, प्रपत्तियोग और आचार्याभिमानयोग। पुरुषार्थके भी पाच भेद हैं,—धर्म, अर्थ, काम, कैवल्य और मोक्ष। मोक्षविरोधीके भी पाच भेद हैं, स्वरूपविरोधी, परस्वरूपविरोधी, उपायविरोधी, पुरुषार्थविरोधी। रामानुजदर्शन शब्द देखो।

द्राविड़, तैलङ्ग, मारवाड़ और गुजरातमें रामानुजमतावलम्बी बहुतसे लोग देखे जाते हैं। श्रीसम्प्रदाय देखो।

निम्नलिखित ग्रंथ पण्डितप्रवर रामानुज स्वामीके लिखे मिलते हैं,—

अष्टादशरहस्य, ईशावास्योपनिषद्भाष्य, कण्टकोद्धार, कूटसदोह, गद्य और गद्यत्रय गुणरत्नकोष, चक्रोल्लास, दिव्यसूरिप्रभावदीपिका, देवतापारम्य, नायकरत्न नामक न्यायरत्नमालाटीका, नारायणमन्त्रार्थ, नित्यपद्धति, नित्याराधनविधि, न्यायपरिशुद्धि, न्यायसिद्धाञ्जन, पञ्चपटल, पञ्चरात्ररक्षा, प्रश्नोपनिषद्व्याख्या, भगवद्गीता भाष्य, मणिदर्पण, मतिमानुष, मुण्डकोपनिषद्व्याख्या, योगसूत्रभाष्य, रत्नप्रदीप, रामपटल, रामपद्धति, रामपूजापद्धति, राममंत्रपद्धति, रामरहस्य, रामायणव्याख्या, रामार्चापद्धति, वार्त्तामाला, विशिष्टाद्वैतभाष्य, विष्णुविग्रहशंसन स्तोत्र, विष्णुसहस्रनामभाष्य, वेदान्ततत्त्वसार, वेदान्त दीप, वेदान्तसार, वेदार्थसंग्रह, वैकुण्ठगद्य, शतदूषणी, शरणागतिगद्य, श्रीभाष्य, श्रीरङ्गराजस्तोत्रव्याख्या, श्वेताश्वतरोपनिषद्व्याख्या, सकलपसूर्योदयटीका, सच्चरित्ररक्षा और सच्चरित्ररक्षासारदीपिका नामक उसकी टीका और सर्वार्थसिद्धि।

रामानुष्टुभ् (सं० स्त्री०) रामस्तोत्रविशेष।

रामप्रिय (सं० पु०) दारचीनी।

रामाभ्युदय (सं० पु०) रामचन्द्रका अवताररूपमें प्रकटन।

रामायण (सं० क्ली०) रामस्य चरित्रान्वितं अयनं शास्त्रं। वाल्मीकि रचित भारतवर्षका आदि काव्य। इसका दूसरा नाम रघुवरचरित, दशशिरःवध वा पौलस्त्यवधकाव्य है।

रामायण आदिकाव्य समझा जाता है, पर पाश्चात्य पण्डितोंके निकट यह नाना भावोंमें गृहीत हुआ है। जर्मन-पण्डित वेवर (Weber)ने लिखा है। 'रामायणकाव्य दक्षिणापथमें आर्यसभ्यता विशेषतः कृषिज्ञान-विस्तारविषयक एक रूपकमात्र है। सीता किसीका नाम नहीं है, सीता ही हलपद्धति और रामायण हलधर बलराम है। महाभारत-वर्णित युद्धपर्वके बहुत पीछे रामायण सङ्कलित हुआ है।'* यहां तक, कि बौद्धोंके दशरथ जातकके कितने श्लोकोंके साथ रामायणके श्लोकोंका मेल देख कर उन जर्मन-पण्डितने प्रमाणित किया है, कि दशरथजातकके मूल उपाख्यानका अवलम्बन कर वाल्मीकीय रामायण रचा गया है।

इसके सिवा कोई कोई पाश्चात्य पण्डित यह भी कहते हैं, कि हिन्दू और सिंहलस्थ बौद्धोंके परस्पर विवाद विसम्वादविज्ञापक रूपक ले कर रामोपाख्यानकी सृष्टि हुई है। फिर किसीने लिखा है, कि रामायण होमरकृत ग्रीक-काव्यका ही अनुकरण है। इस प्रकार रामायणके सम्बन्धमें कितनी ही अश्रुत अभूतपूर्व कथाएं सुनी जाती हैं। परन्तु उन सब कथाओंके मूलमें कुछ भी सार है, हम लोग स्वीकार नहीं करते।

रामायण और महाभारतके वर्णनसे भारतवर्षका विभिन्न समाजचित्र पाया जाता है। उस समाजचित्रसे रामायण और महाभारतमेंसे कौन प्राचीन काव्य है उसका सहजमें पता लगा सकते हैं। रामायणके समय दाक्षिणात्यमें आर्यसभ्यता प्रतिष्ठित नहीं हुई। इस समय दाक्षिणात्यका अधिकांश जंगली जानवरोंसे

---

* Weber's Sanskrit literature, p, 192.

भरा पड़ा था, केवल किष्किन्ध्यामें वानरोंका एक सुरम्य राज्य था। किन्तु महाभारतके समय दाक्षिणात्यमें नाना स्थानोंमें आर्य उपनिवेश स्थापित हुआ है। उस समय करमण्डल उपकूलमें अर्जुनके श्वसुर मणिपुरपतिका अप्रतिहत शासन था। गुजरातसे ले कर समस्त मलबार उपकूलमें राज्य करते थे। दाक्षिणात्यकी दक्षिणी सीमामें भी उस समय पाण्डवोंका अधिकार था। यहां तक कि महाभारतके समय दाक्षिणात्यमें किष्किन्ध्याका वानरराज्य—वानरप्रभावकी स्मृतिका लोप हो गया। इस प्रकार दोनों ग्रन्थोंकी आलोचना करनेसे हम लोग समझते हैं, कि दाक्षिणात्यका यह राजनैतिक और सामाजिक परिवर्त्तन थोड़े दिनोंका काम नहीं है। समस्त दाक्षिणात्यमें आर्याधिकार प्रतिष्ठित होनेमें सैकड़ों वर्ष लगे थे। इस हिसाबसे मूल रामायण मूल महाभारतसे सैकड़ों वर्ष पहलेका है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं। महाभारतके आदिपर्वमें "नाना देशभाषाचार प्रयत्नते" इत्यादि प्रमाण सूत्रानुसार उस समय भी आर्यसमाजमें नाना देश भाषा प्रचलित और म्लेच्छ भाषा परिज्ञात थी इसका प्रमाण मिलता है।* किन्तु रामायणके समय आर्यसमाजमें संस्कृत भाषाका ही कथित भाषारूपमें प्रचार था। रामायणके अरण्यकाण्डमें लिखा है,—

"धारयन् ब्राह्मणं रूपमिल्वलः संस्कृतं वदन्।
आमन्त्रयति विप्रान् स श्राद्धमुद्दिश्य निर्घृणः॥" (११।५६)

अर्थात् निष्ठुर स्वभावके इल्वलने ब्राह्मणका रूप धारण कर जब श्राद्ध करना चाहा, तब उसने संस्कृतमें बात कह कर ब्राह्मणोंको निमन्त्रण किया था।

दूसरी जगह यह भी देखा जाता है, कि हनुमान् जब लङ्कापुरीमें घुसे, तब वे सीताके साथ मिलनेके अभिप्राय से इस प्रकार सोच रहे हैं,—

"अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषतः।
वाचञ्चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्॥
यदि वाचं वदिष्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥
अवश्यमेव वक्तव्यं मानुषं वाक्यमर्थवत्।
मया सान्त्वयितुं शक्या नान्यथेयमनिन्दिता॥"

(सुन्दरकाण्ड ३०।१७-१९)

अर्थात् मैं तो छोटा हूँ, उस पर भी वानर हूँ। जो कुछ हो मनुष्यके जैसा ही संस्कृतमें बोलूंगा। द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य (विशुद्ध) की तरह संस्कृत बोलनेसे सती मुझे रावण समझ कर डर जायेंगी। इसलिये साधारण आदमीकी तरह अभी मुझे बोलना उचित है नहीं तो उन्हें किसी प्रकार सान्त्वना नहीं दे सकता।

हनुमानकी उक्तिसे स्पष्ट जाना जाता है, कि रामायणके रचनाकालमें जनसाधारण संस्कृत भाषाका ही व्यवहार करते थे। इसके सिवा महाभारतके वनपर्वमें रामके जन्मसे ले कर उनके राज्याभिषेक तक सभी रामचरित वर्णित हुए हैं।

रामचरित वर्णनके समय भारतकारने कहा है—

"शृणु राजन्! यथावृत्तमितिहासं पुरातनम्।" (७।२७१।६)

इस उक्तिसे भी महाभारतके रामचरित अंशकी रचनाके समय उनका प्राचीन इतिहास प्रचलित था, साबित होता है। और तो क्या, उस वनपर्वमें "रामायण" और द्रोणपर्वमें वाल्मीकि रचित गीतोंका भी उल्लेख आया है,—

"अपि चायं पुरा गीतः श्लोको वाल्मीकिना भुवि।"

अतएव वाल्मीकिका रामायण जो महाभारतके सैकड़ों वर्ष पहले रचा गया है, इसमें जरा भी सन्देह नहीं।

अब यह प्रश्न उठता है, कि रामायण कितने वर्ष पहलेका है?

रामायणकी भाषातत्त्वकी आलोचना करनेसे देखा जाता है, कि इसके बीच बीचमें आर्षप्रयोगकी जैसी भरमार है, क्योंकि किसी भी ग्रन्थमें वैसी नहीं पायी जाती। उदाहरणस्वरूप आदि और अयोध्याकाण्डसे उद्धृत कर दिखाया जाता है,—

* आदिपर्व १४६ अध्यायसे मालूम होता है, कि विदुरने म्लेच्छभाषाका व्यवहार किया था जिसे पाण्डव समझ गये थे।

आर्षप्रयोग		स्थान	लौकिकमें सिद्धरूप
प्रमुमोद	आदि	१।८५	प्रमुमुदे
अनपायिनम्	,,	१।२६	अनपायि
करुणवेदित्वात्	,,	२।१४	करुणा वेदित्वात्
हन्यात्	,,	२।२६	हनवान्
प्रशस्तवर्णी	,,	४।१७	प्रशंस्तवर्णौ
सोच्यतां	,,	६।२१	स उच्यतां
आश्रमपदः	,,	१०।१५	आश्रमपदं
पुत्रिया	,,	१६।६	पुत्रीयां
अर्द्दयन्	,,	१७।३४	आर्द्दयन्
ततोत्थाय	,,	१६।२१	तत उत्थाय
व्यर्पोदत	,,	,,	व्यर्पोदत
करिष्येति	,,	२१।८	करिष्य इति
प्रशासति	,,	२१।१३	प्रशास्ति
दुराक्रामान्	,,	२१।६८	दुराक्रमान्
तप्यतां	,,	१३।६	तपतां
वसते	,,	२३।८	वसति
अभिरञ्जयन्	,,	२३।२०	अभ्यरञ्जयन्
अभिपूजयन्	,,	२६।२७	अभ्यपूजयन्
अभिजायत	,,	२७।१८	अभ्यजायत
समभिजायत	,,	३८।२३	समभ्यजायत
अनुगच्छव	,,	३६।१४	अनुगच्छत
करिष्यामि	,,	४०।६	करिष्याम
निवर्त्तत	,,	४०।११	निवर्त्तध्व
समुपासत	,,	४४।१	समुपास्ते
अनुव्रजत्	,,	४३।१५	अनुव्रजत्
उष्य	,,	४८।६	उषित्वा
दृश्य	,,	४८।११	दृष्ट्वा
स्मरतां	अयोध्या	१।३	अस्मरतां
सपत्नि	,,	८।२६	सपत्नी
अभिदध्युषी	,,	१६।२१	अभिध्यायंती
गच्छती	,,	३२।८	गच्छन्ती
मेखलीनां	,,	३२।२१	मेखलिना
जिज्ञासितुं	,,	३२।४२	ज्ञातुं
नपाययन्	,,	४१।६	नापाययन्
ततोवाच	,,	५१।८	तत उवाच
वत्स्यामहेति	,,	५२।२८	वत्स्यामह इति
प्रणमत्	,,	५२।७६	प्राणमत
आनयामास	,,	५५।२६	आनिन्ये
अभिवादयन्	,,	५६।१६	अभ्यवादयन्
उत्तर	,,	६३।५२	उदतर
संवदन्तोपतिष्ठन्ते	,,	६७।२६	संवदन्त-उपतिष्ठन्ते

केवल दो काण्डोंसे कुछ आर्षप्रयोग उद्धृत हुए। इस प्रकार दूसरे दूसरे काण्डोंसे भी कितने आर्षप्रयोग उद्धृत किये जा सकते हैं। जो आर्षप्रयोग हुए हैं, उसका कारण क्या?

मनुकी टीकामें कुल्लूकभट्टने लिखा है, 'ऋषिर्वेदस्तत्र भव आर्षो धर्मोपदेशो या वैदिकः।' (१२।१०६) ऋषिका अर्थ वेद है अर्थात् वेदसे जो उत्पन्न है वही आर्ष है अर्थात् जो वैदिक है वही आर्ष है। अतएव वाल्मीकि रामायणमें आर्षप्रयोग नामसे जो भूरि भूरि प्रयोग देखा जाता है, वहां वैदिक प्रयोग अर्थात् लौकिक व्याकरणके अनुसार वे सब प्रयोग सङ्गत नहीं होने पर भी वैदिक व्याकरणके अनुसार वे सिद्ध हैं। रामायणके रामानन्द आदि टीकाकारगण 'प्रमुमोदेति छान्दस परस्मैपदं' इत्यादि व्याख्या द्वारा आर्षप्रयोगोंको वैदिक व्याकरणके अनुसार साध्य स्वीकार कर गये हैं। रामायण लौकिक काव्य है, एक महाकविका रचा हुआ है, तब फिर ऐसे आर्ष वा वैदिकप्रयोगका कारण क्या? कालिदास, भवभूति आदि महाकविगण कितने काव्य लिख गये हैं, पर उन्होंने तो अपने ग्रन्थमें कहीं आर्षप्रयोग नहीं किया। पाश्चात्य पण्डितोंका विश्वास है, कि वे सब आर्षप्रयोग व्याकरणदुष्ट अशिष्ट प्रयोग हैं। तब क्या वाल्मीकि मुनिने जान बूझ व्याकरणमें ऐसी भूल की है? जो भारतवर्षमें आदि कवि कह कर पूजित हैं, जिनका बनाया हुआ काव्यग्रन्थ आज तक जगत्में प्रकाशित हुआ है, जिनके अपूर्व सौन्दर्यसे सुललित वाक्य-विन्याससे और अद्वितीय चरित्र चित्रणसे देशी और विदेशी कोविदमात्र ही विमुग्ध हैं उन्होंने क्या जान बूझ कर ऐसा अशिष्ट प्रयोग किया है?

पहले कह आये हैं, कि वाल्मीकि आदि कवि कह कर प्रसिद्ध हैं। लौकिक भाषामें उन्होंने सबसे पहले रामायण काव्यकी रचना की। जिस समय वैदिक रीतिका परित्याग कर लौकिक रीतिसे साहित्यरचनाका सूत्रपात होता था, वाल्मीकिका मूल रामायण उसी समयका ग्रन्थ है। एक ओर सुप्राचीन वैदिक रचनाका प्रभाव और दूसरी ओर नवोदित लौकिक रचनाकौशलने रामायणको प्राचीन सम्भ्रमके साथ अभिनव सौन्दर्यसे अलंकृत किया था। सामने प्राचीन रीतिके रहते कोई भी सहजमें उसके प्रभावमें बाधा नहीं डाल सकता। वाल्मीकि अभिनव लौकिक रीतिसे काव्यरचना करनेके लिये तैयार था तथा उनके असाधारण धाराशिप्रभावसे उनका उद्देश बहुत कुछ सुप्रसिद्ध भी हो गया था, फिर भी वे पुराने प्रभावको रोक न सके। उनके आदि लौकिक काव्यमें आर्ष या वैदिक प्रयोगका जो बाहुल्य देखा जाता है उसका यही कारण है। इस आर्षप्रयोग बहुल सरल और सुश्लिष्ट रचनासे ही उनके ग्रन्थकी प्राचीनता प्रतिपन्न हो सकती है। यद्यपि परवर्ती किसी किसी काव्य और नाटकमें प्राचीन रीतिके आधार पर दो एक आर्षप्रयोग देखे जाते हैं किन्तु तेल जिस प्रकार जलमें मिलना नहीं चाहता, उसी प्रकार परवर्ती काव्यनाटकका आर्षप्रयोग अपने गाम्भीर्यकी रक्षा करके उसी प्रकार सरल भाषामें नहीं मिल सकता। दोनों रचनाका पृथक्त्व आसानीसे पहचानमें आ जाता है। किन्तु रामायणके आर्षप्रयोगसे स्वभावसुलभ गाम्भीर्यकी रक्षा हुई है। उन सब आर्षप्रयोगके साथ मूल श्लोकका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध है, कि वे सब प्रयोग उठा देनेसे मूल रचनाकी अङ्गहानि होगी। लालित्य और सौन्दर्य नष्ट होगा, इसमें संदेह नहीं। हजारों वर्ष बीतने पर चले, पर कोई भी मात्र तक आर्षप्रयोगका परिवर्त्तन न कर सके हैं।

पहले लिखा जा चुका है, कि रामायण-रचनाकालमें संस्कृतका ही कथित भाषारूपमें प्रचार था। इसी समय लौकिक काव्यरचनाका सूत्रपात हुआ। अतएव रामायण अति प्राचीन कालका ग्रन्थ है यह सबको स्वीकार करना पड़ेगा। किन्तु यह किस समय रचा गया है इसका ठीक ठीक आज तक पता नहीं चला है। जैन तीर्थङ्कर और बुद्धदेवके आविर्भावकालमें 'मागधी' भाषाका प्रचार हुआ था। इसी कारण प्राचीन जैन और बौद्धधर्मग्रन्थ मागधी या अर्द्ध मागधी भाषामें रचे गये हैं। ई०सन्‌से ७७७ वर्ष पहले जैन तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ स्वामीने निर्वाणलाभ किया। उन्होंने जो चातुर्याम धर्म प्रचार किया वह भी मागधी भाषामें ग्रथित देखा जाता है। इस हिसाबसे उनके पहलेसे मागधी भाषा जनसाधारणकी बोलचालकी भाषामें गिनी जाती थी, इसमें और संदेह ही क्या रह गया? अतः उससे भी सैकड़ों वर्ष पहले अर्थात् मागधी भाषाका जब बिलकुल प्रचार न था, उस समय संस्कृत भाषा ही भारतीय आर्यसमाजमें प्रचलित थी तथा उसी समय मूल रामायण रचा गया।

रामायण प्रायः अनुष्टुप् नामक प्राचीन सरल छन्दमें रचा गया है। इसके सिवा इन्द्रवज्रा, उपेन्द्रवज्रा, वंशस्थविल और तीन छन्दोंका मिश्रण देखा जाता है। उसकी भाषा सरल, रीति और भावयुक्त तथा समुचित विभक्तिविशिष्ट है। नैषधादि आधुनिक काव्य की तरह दीर्घ छन्द, कृत्रिम भाव, उत्कट वर्णना तथा शब्द और अनुप्रासका आडम्बर नहीं है,—ये सब आभ्यन्तरीण प्रमाण भी रामायणकी प्राचीनता साबित करते हैं।

अभी जो सप्तकाण्डात्मक रामायण मिलता है, वह क्या उन्हीं आदि कविका रचा हुआ है? प्रचलित सप्तकाण्डात्मक रामायणकी आलोचना करनेसे क्या ऐसा मालूम नहीं होता? जिन सब प्राचीन छन्दोंकी बात लिखी गई, उन सब छन्दोंको छोड़ कर प्रचलित रामायणमें दो एक जगह अपरवक्त्र, प्रहर्षिणी पुष्पिताग्रा, मालिनी, मृगेन्द्रमुख, रुचिरा, वसन्ततिलका वैश्वदेवी इत्यादि अभिनव छन्द भी दिये गये हैं। इसके सिवा प्रचलित रामायणके आदिकाण्डके कुछ अंश तथा समस्त उत्तरकाण्डकी आलोचना करनेसे उसे मूल रामायणके अन्तर्भुक्त नहीं कर सकते। यहां तक, कि जिन्होंने अयोध्यासे लङ्काकाण्डका प्रथमांश और समस्त उत्तरकाण्ड उनका रचा हुआ है, ऐसा कभी भी स्वीकार

नहीं कर सकते। रामायणकी उपक्रमणिका जिस भाषामें रची गई है, उसे पढ़नेसे मालूम होगा, कि एक दूसरे कवि आदिकवि वाल्मीकि और उनके काव्यका परिचय देते हैं। इसी जगह उत्तरकाण्डप्रसङ्गमें लिखा है—

"तचकारोत्तरे काव्यं भगवान् वाल्मीकिर्मुनिः।"

वाल्मीकि अपनेको 'भगवान्' कहेंगे, ऐसा कभी विश्वास नहीं कर सकते। यह प्रयोग वाल्मीकिभक्त किसी दूसरे कविसे किया गया होगा। इस प्रकार एक विषयका वर्णन एक काण्डमें जैसा है, उत्तरकाण्डमें वह भिन्न रूपसे दिखाया गया है। इससे सहजमें अनुमान होगा, कि अति प्राचीन रामायणके मध्य परवर्त्ती नाना कवियोंके हाथसे अनेक नये विषय और नई रचना सन्निविष्ट हुई हैं। बीच बीचमें जो अनेक प्रक्षिप्त श्लोक घुस गये हैं उन्हें भी रामायणके टीकाकार स्वीकार कर गये हैं*।

रामचन्द्रका आदर्शचरित-वर्णन ही मूल रामायणका उद्देश्य है। उनके देवत्व वा अवतार-वादकी घोषणा करना मूल रामायणका मूल उद्देश्य नहीं है। इसी कारण रामायणके जिस जिस स्थानमें रामचन्द्रको विष्णुका अवतार बताया है उस उस अंशको बहुतेरे प्रक्षिप्त कह कर विश्वास करते है।

महाभारतके वनपर्वमें रामचन्द्रके जन्मसे ले कर उनके राज्याभिषेक तक का हाल लिखा है। उत्तरकाण्डके राम सम्बन्धीय विवरण महाभारतमें नहीं दिये गये हैं। आश्चर्यका विषय है, कि यवद्वीपसे कविभाषामें रचित जो रामायण आविष्कृत हुआ है उसमें भी उसी प्रकार रामचन्द्रके राज्याभिषेक तकका हाल लिखा है। यवद्वीपका रामायण बहुत बड़ा ग्रंथ होने पर भी उसमें काण्ड-विभाग नहीं है, आद्योपन्त अध्याय विभाग है। कविभाषामें उत्तरकाण्ड पाया गया है सही, पर वह मूल रामायणमें नहीं गिना जाता, स्वतन्त्र ग्रंथ समझा जाता है। उक्त प्रमाणसे भी जाना जाता है, कि वाल्मीकिने जिस आदि रामायणकी रचना की, उसमें काण्डविभाग नहीं था तथा उत्तरकाण्ड मूल रामायणसे बहुत पीछे दूसरे कविसे रचा गया था और वह स्वतन्त्र ग्रंथ समझा जाता था। प्रायः ५वीं सदीमें मूल रामायण यवद्वीपमें लाया गया। अतएव उस समयके बाद भारतवर्षमें ब्राह्मण्य-धर्मका प्रभाव फैला तथा संस्कृत साहित्यके बहुत प्रचारके साथ साथ मूल रामायण उत्तरकाण्ड सहित सात काण्डोंमें विभक्त हो प्रचारित हुआ। रामचन्द्रका अवतार वाद उस समयसे प्राचीन होने पर भी उस समय मूल रामायणमें प्रविष्ट और आधुनिक छन्दात्मक श्लोक प्रक्षिप्त हुए।

वर्त्तमानकालमें भारतवर्षमें तीन प्रकारके वाल्मीकीय रामायण पाये गये हैं। वे उदीच्य, दाक्षिणात्य और गौड़ीय रामायणमें गिने जाने योग्य है। जैसे—

उदीच्य या उत्तरपश्चिम-अञ्चलमें प्रचलित मूल रामायणमें,—

बालकाण्डमें	७७ सर्ग
अयोध्याकाण्डमें	११६ „
आरण्यकाण्डमें	७६ „
किष्किन्ध्याकाण्डमें	६७ „
सुन्दरकाण्डमें	६८ „
युद्धकाण्डमें	१३० „
उत्तरकाण्डमें	१२४ „

दाक्षिणात्य रामायणमें

बालकाण्डमें	७७ सर्ग
अयोध्याकाण्डमें	११३ „
आरण्यकाण्डमें	८० „
किष्किन्ध्याकाण्डमें	६४ „
सुन्दरकाण्डमें	६८ „
युद्धकाण्डमें	१३० „
उत्तरकाण्डमें	१११ „

गौड़ीय रामायणमें—

आदिकाण्डमें	८० सर्ग
अयोध्याकाण्डमें	१२७ „
अरण्यकाण्डमें	७६ „
किष्किन्ध्याकाण्डमें	६७ „
सुन्दरकाण्डमें	६५ „
युद्धकाण्डमें	११३ „
उत्तरकाण्डमें	११५ „

* अयोध्याकाण्डके १०८ और १०९ सर्ग (रामजावालिसंवाद)को बहुतोंने प्रक्षिप्त और आधुनिक बताया है। १०९वें सर्गमें 'बुद्धतथागत' शब्द तक लिपिबद्ध हुआ है।

थोड़ा गौर कर देखनेसे मालूम होगा, कि उदीच्य और दाक्षिणात्य रामायणमें विषय वा सर्ग संख्यामें उतना प्रभेद नहीं है। किन्तु गौड़ीय रामायणके साथ दोनों श्रेणीका बहुत प्रभेद देखा जाता है।

गौड़ीय रामायणकी केवल लोकनाथकी 'मनोरमा' नामकी टीका मिलती है, किन्तु शेष दो श्रेणीकी अनेक टीकायें प्रचलित हैं। जैसे—

१ रामवर्मदीक्षित कृतटीका २ उमामहेश्वरकृतटीका, ३ कतकटीका, ४ गोविन्दराजकृत शृङ्गारतिलकाख्यटीका, ५ चतुरर्थदीपिका, ६ त्र्यम्बकमखवाकृत धर्माकूत, ७ देव रामभट्टकृतटीका, ८ नगेशार्यरचितटीका ९ नृसिंहरचित टीका, १० महेश्वरतीर्थकृत रामायणतत्त्वदीप, ११ रामायणतिलक वा रामायणकूटटीका, १२ रामानुजकृत रामायणव्याख्या, १३ रामाश्रमाचार्यकृतटीका १४ रामायण विरोधपरिहार, १५ रामायणतात्पर्यविरोधप्रशमिनी, १६ रामायणसेतु, १७ वरदराजकृत विवेकतिलक, १८ वाल्मीकिहृदयटीका, १९ विद्यानाथकृतटीका, २० विद्वन्मनोरमा, २१ विमलबोधकृतटीका, २२ विश्वनाथकृत वाल्मीकि तात्पर्यतरणि, २३ शिवरामसंन्यासिकृत टीका, २४ शृङ्गारसुधाकर, २५ सर्वज्ञकी टीका, २६ सुबोधिनी, २७ हयग्रीवशास्त्रिरचित रामायणसप्तबिम्ब, २८ हरि पण्डितकृत रामायणटीका।

पद्मपुराणके पातालखण्डमें अयोध्यामाहात्म्यवर्णित तीर्थाश्रम वर्णन प्रस्तावसे रामायणकी श्लोक-संख्या जाननेके लिये रामायणके सुविख्यात टीकाकार नागेश भट्टने निम्नोक्त श्लोक उद्धृत किये हैं,—

"शतानन्दा इति ख्यातं प्रायश्चित्तकरमनम्।
प्रभाव वचनं स्त्रध तत्रत्यस्य मुमुक्षवः॥
न निवृत्त न वै यस्मा मृगयालुञ्चमायवः।
तस्य दर्शनेनैव मुक्तोपायतत्त्व भविष्यति॥
इत्युक्त्वा स यमाभ्यसु भगवान् सनातनः।
ततः संवध वामाख्य रामा भन्यकोटिभिः॥"

उसकी टीकामें ये कहते हैं,—'कोटिभिः शतकोटिभिः। चरितं रघुनाथस्य शतकोटिप्रविस्तर मित्याद्यवलोकः। तत्र सम्पूर्ण मनुष्लोक इत्यैतिह्यम्। इह तु कृतशलोप दिष्टा चतुर्वि शतिसाहस्रोत्पन्नम्।"

इसका प्रमाण रामायणके बालकाण्डसे ही मिलता है। बालकाण्डके द्वितीय सर्गमें लिखा है—

"रघुवरचरितं मुनिप्रणीतं दशशिरसश्च वधं निशामयध्वम्॥"

चतुर्थ सर्गमें—

"प्राप्त राज्यस्य रामस्य वाल्मीकिर्भगवान् ऋषिः।
चकार चरितं कृत्स्नं विचित्रपदमर्थवत्॥ १
चतुर्विंशत्सहस्राणि श्लोकानामुक्तवान् ऋषिः।
तथा सर्गशतान् पञ्च षट्काण्डानि तथोत्तरम्॥" २

इनमें वचनकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि महर्षि वाल्मीकि प्रणीत वर्तमानवधात्मक रामचरित महाकाव्यमें २४ हजार श्लोक और ५०० सौ सर्गसंख्या है।

रामायणकी २८।२९ टीका मिलती हैं तथा भारतके सभी प्रसिद्ध स्थानोंसे मूल रामायणके दो एक ग्रन्थ पाये भी गये हैं, पर आश्चर्यका विषय है, कि किसी स्थानके दो प्राचीन ग्रन्थोंमें बिलकुल समानता नहीं देखी जाती। यहां तक कि कोई कोई सर्ग मिला कर देखनेसे भावार्थ एक होने पर भी भाषामें एक नहीं है। भाषा भिन्न भिन्न कविके हाथकी मालूम होती है। प्रायः सभी श्लोक एक हवेंख हैं। शब्दका पाठान्तर इतना ज्यादा है, कि दो ग्रन्थोंके पांच श्लोक कभी एक से नहीं मिलेंगे। शब्दमें इस प्रकार पाठान्तरबाहुल्य रहने पर भी मूल विषयमें उतना प्रभेद नहीं है। रामायणकी इतनी टीका रची जाने पर भी दो एक प्राचीन टीकाको छोड़ कर अधिकांश टीकाकारोंने ही बहुतसे ग्रन्थ संग्रह कर प्रकृत पाठोद्धारकी चेष्टा की थी, ऐसा मालूम नहीं होता। उन लोगोंकी टीकाओं पर अच्छी तरह आलोचना करनेसे मालूम होगा, कि कितने स्थान सामञ्जस्यरहित और असंलग्न हैं तथा कितने स्थानोंमें पूर्वापर सङ्गतिका अभाव है।

इस देशमें मुद्रित सटीक रामायणकी अपेक्षा हालमें मुद्रित गौड़ीय रामायणमें सामञ्जस्य और विषय सङ्गति है तथा पुनरुक्तिदोष निराकृत है यह दोनोंकी आलोचना करनेसे ही मालूम होगा।

अनेक पुराण और रामायणके टीकाकारोंकी उक्तिसे जाना जाता है, कि वाल्मीकि रचित रामायणके पहले

भी रामचरित प्रचलित था। रामानन्दने 'अग्निवेश्य-रामायण' और विमलबोधने बौधायनका रामायण' उल्लेख किया है। अग्निवेश्य और बौधायनका रामायण वाल्मीकिके पहलेका है या नहीं, कह नहीं सकते। पर हां, वाल्मीकि रामायणके पीछे महाभारतीय राम चरित, पद्मपुराणीय पातालखण्डवर्णित रामोपाख्यान, अध्यात्मरामायण, योगवाशिष्ठरामायण, अद्भुतरामायण, आनन्दरामायण आदि रामायण रचे गये हैं, इसमें सन्देह नहीं।

सैकड़ों वर्ष बीत चले वाल्मीकिरामायणका अवलम्बन कर भारतकी सभी देशी भाषाओंमें रामायण रचे गये हैं। भारतवर्षमें अंगरेजोंके आनेके पहले जो सब देशी रामायण मिलते थे, उनकी संख्या थोड़ी नहीं है। मराठीभाषामें ८, तैलङ्गभाषामें, ५ तामिलभाषामें १२, उत्कलभाषामें ६, हिन्दीभाषामें ११ और वङ्गभाषामें २५ व्यक्तियोंके रचित रामायण पाये गये हैं। इनमेंसे कम्बनका रचित तामिल-रामायण ६वीं शताब्दीमें, कृत्तिवासका बंगला रामायण १५वीं सदीमें और तुलसीदासका भारतप्रसिद्ध हिन्दीरामायण १७वीं सदीमें रचा गया है।

रामायणके आलोचित विषय सहजमें हृदयङ्गम होंगे, समझ कर वाल्मीकि रामायणकी विषयसूची यहां उद्धृत की गई है :—

आदिकाण्ड—१म सर्गमें नारद कर्त्तृक रामचरित-वर्णन, २ तमसानदीके किनारे व्याधकर्त्तृक क्रौञ्चका विनाश देख व्याधके प्रति वाल्मीकिका अभिशाप, ३ महामुनि वाल्मीकिकी रामायण-रचना, ४ कुशीलवका रामायणगान, ५ अयोध्यापुरी वर्णन, ६।७ राजा दशरथ की राज्यशासनप्रणाली, ८ पुत्रके लिये राजा दशरथके अश्वमेधयज्ञकी कल्पना, ९ ऋष्यशृङ्ग विवरणकीर्त्तन, १० ऋष्यशृङ्गको लानेके लिये दशरथके प्रति सुमन्त्रका उपदेश, ११ दशरथका ऋष्यशृङ्ग मुनिको लाना, १२ सरयू नदीके किनारे अश्वमेध यज्ञभूमि बनानेके लिये दशरथका आयोजन, १३ निमन्त्रित राजाओंका अयोध्यामें आगमन और यज्ञारम्भ, १४ अश्वमेध यज्ञ और दशरथके दानादिकी कथा, १५ रावणका वध करनेके लिये देवताओंका परामर्श और दशरथकी यज्ञभूमिमें विष्णुका परामर्श, १६ नारायणका दशरथके पुत्रत्वग्रहणमें स्वीकार और दशरथका यज्ञ और महिलाओंका गर्भाधान, १७ वाली, सुग्रीव और हनुमान् आदि वानरोंकी उत्पत्ति, १८ राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्नका जन्म और यज्ञविध्वंसकारी राक्षसोंका दमन करनेके विश्वामित्रका अयोध्या आना, १९ दशरथका विमर्ष, २० विश्वामित्रको राम देनेमें दशरथकी असम्मति, २१ विश्वामित्रके साथ रामको भेजनेमें दशरथका स्वीकार, २२ विश्वामित्रके साथ राम और लक्ष्मणका जाना तथा उनका बला और अतिबला नामक मन्त्रलाभ, २३ राम और लक्ष्मणके साथ विश्वामित्रका रात बिताना, २४ ताड़काका वध करनेके लिये रामके प्रति विश्वामित्रका आदेश, २५ ताड़का और मारीचका जन्मविवरण, २६ रामकर्त्तृक ताड़कावध, २७ रामको विश्वामित्र द्वारा संहार अस्त्रदान, २८ गृहीत अस्त्रादिका आमन्त्रण प्रकारादि, २९ सिद्धाश्रम और वामनावतारका वर्णन, ३० सुबाहुवधके बाद विश्वामित्रका यज्ञशेष, ३१ विश्वामित्रसे रामलक्ष्मणका कर्त्तव्य पूछना, ३२ कुशवंशविवरण, ३३ कुशनाभकर्त्तृक ब्रह्मदत्तको कन्यासम्प्रदान, ३४ कुशनाभका पुत्रलाभविवरण, ३५ विश्वामित्रकर्त्तृक गङ्गाका उत्पत्तिविवरण, ३६ गङ्गाके त्रिपथगामिनी होनेका कारण, ३७ कार्त्तिकेय जन्मादि विवरण, ३८ राजा सगरके ६१ हजार पुत्रलाभ, ३९ सगरके पुत्रोंका पृथिवी खोदना, ४० कपिलमुनिके हुङ्कारसे सगरवंश ध्वंस, ४१ यज्ञसमाप्तिके बाद सगरका स्वर्ग जाना, ४२ भगीरथके ब्रह्मवरलाभ, ४३ गङ्गाका पाताल जाना और सगरके पुत्रोंका उद्धार, ४४ भगीरथकर्त्तृक पितामहोंका तर्पण, ४५ समुद्रमन्थनका हाल कहना, ४६ इन्द्रकर्त्तृक दितिका गर्भच्छेद, ४७ विश्वामित्रका सुमतिपुर-प्रवेश, ४८ अहल्या और इन्द्रका शापविवरण, ४९ अहल्याका शापविमोचन, ५० रामलक्ष्मणका राजर्षि जनककी यज्ञभूमिमें जाना, ५१ विश्वामित्रका पृथिवी परिभ्रमण और वशिष्ठाश्रममें आगमनविवरण, ५२ वशिष्ठके आश्रममें विश्वामित्रका निमन्त्रण स्वीकार, ५३ विश्वामित्र और वशिष्ठका कथोपकथन, ५४ विश्वामित्रकर्त्तृक शबलाहरण, ५५ विश्वामित्रके सौ पुत्रोंका दाह, ५६ वशिष्ठके

साथ युद्धमें विश्वामित्रको पराजय, ५७ विश्वामित्रकी तपस्या, ५८ त्रिशंकुको चण्डालत्वप्राप्ति, ५९ विश्वामित्रके पास त्रिशंकुका आना, ६० विश्वामित्रका दूसरी सृष्टि करनेमें सङ्कल्प, ६१ अम्बरीष राजाका यज्ञीय पशुहरण, ६२ अम्बरीषके यज्ञकी फलप्राप्ति, ६३ विश्वामित्रके ऋषित्वलाभ, ६४ रम्भाको शैलत्वप्राप्ति, ६५ विश्वामित्रके ब्राह्मणत्वलाभ, ६६ जनकका हरधनुप्राप्तिविवरण, ६७ रामकर्तृक हरधनुर्भङ्ग, ६८ दशरथके पास दूतका आना, ६९ दशरथकी मिथिलायात्रा, ७० जनकके पास कुशध्वजका आगमन, ७१ जनकका आत्मवंशावली कथन, ७२ भरत और शत्रुघ्नको कुशध्वजका कन्यादान स्वीकार, ७३ रामचन्द्रादिका विवाह, ७४ दशरथको अयोध्यायात्रा और राहमें परशुरामका दर्शन, ७५ राम और परशुराम संवाद, ७६ परशुरामका दर्प चूर्ण, ७७ पुत्रवधूके साथ दशरथका अयोध्याप्रवेश और भरतका ननिहाल जाना।

अयोध्याकाण्ड—१ रामको युवराज बनानेके लिये दशरथका सङ्कल्प, २ दशरथ और निमन्त्रित राजाओंका कथोपकथन, ३ दशरथके निकट रामचन्द्रका आना, ४ रामका अन्तःपुर जाना, ५ राम और दशरथके निकट वशिष्ठका आना, ६ रामकी विष्णु उपासना, ७ धात्रीके मुखसे मन्थराका अयोध्यामें धूमधाम करनेका कारण सुनना, ८ कैकयी और मन्थराका कथोपकथन, ९ कैकेयीका कोपभवनमें प्रवेश, १० कोपभवनमें दशरथका प्रवेश, ११ कैकेयीका रामके वनवास और भरतके राज्याभिषेकके लिये वर मांगना १२ दशरथका विलाप, १३ दशरथ और कैकेयीका कथोपकथन, १४ रामको बुलानेके लिये कैकेयीका आदेश, १५ सुमन्त्रका रामके समीप आना, १६ सुमन्त्रके प्रति दशरथका आदेश, १७ रामका पिताके समीप आना, १८ रामसे कैकेयीके वरका हाल कहना, १९ लक्ष्मणके साथ रामका माताके समीप आना, २० रामके वन जानेका हाल सुन कर कौशल्याका विलाप, लक्ष्मणका क्रोध और रामके प्रति कौशल्याका वनगमननिषेध, २२ कौशल्या और लक्ष्मणको रामका धर्मोपदेश, २३ भरतके प्रति लक्ष्मणका क्रोध, २४ राम और कौशल्याको उक्ति प्रत्युक्ति, २५ कौशल्याका मङ्गलाचरण और रामका पितृपुरीमें जाना, २६ ३० रामचन्द्रके साथ वन जानेके लिये सीताके आदेशलाभ, ३१ लक्ष्मणका भी वन जानेके लिये आदेशलाभ, ३२ ब्राह्मणोंको धनवितरण, ३३ पितृदर्शनके लिये रामका जाना, ३४ रामको देख दशरथका विलाप, ३५ कैकेयीके प्रति सुमन्त्रकी भर्त्सना, ३६ कैकेयी और दशरथकी उक्ति प्रत्युक्ति, ३७ रामचन्द्र, लक्ष्मण और सीताका वल्कल परिधान, ३८ दशरथका विलापवाक्य, ३९ रामको मुनिके वेशमें देख कर दशरथका विलाप, ४० वनयात्राके समय पुरवासियोंका विलाप, ४१ अन्तःपुरनिवासिनी स्त्रियोंका विलाप, ४२ कैकेयीको निन्दा करते हुए दशरथका विलाप, ४३ कौशल्याविलाप, ४४ कौशल्याके प्रति सुमित्राका आश्वासवाक्य, ४५ पुरवासियों से अपने अपने घर लौट जानेके लिये रामचन्द्रका अनुरोध, ४६ तमसाके किनारे रामका रात बिताना, ४७ पुरवासियों का लौटना, ४८ पुरवासियों का विलाप, ४९ रामका कोशलप्रदेशप्रान्तमें जाना, ५० रामका गुहकके साथ साक्षात्, ५१ गुहक और लक्ष्मणका कथोपकथन, ५२ रामके दूसरे किनारे जाना, ५३ रामका खेद और लक्ष्मणका आश्वास दान, ५४ रामका भरद्वाजके समीप जाना, ५५-५६ रामका चित्रकूट और वाल्मीकिके समीप जाना, ५७ सुमन्त्रके मुखसे रामका वृत्तान्त सुन कर दशरथका विलाप, ५८-५९ दशरथका पुनर्विलाप, ६० कौशल्याविलाप, ६१ दशरथके प्रति कौशल्याको कठोरोक्ति, ६२ दशरथ कर्तृक कौशल्याका प्रासादसाधन, ६३ ६४ दशरथका ऋषिकुमारवधवृत्तान्त वर्णन, ६५ दशरथकी मृत्यु और उसके लिये रानियों का विलाप, ६६ तैलद्रोणीमें दशरथको मृतदेह रखना, ६७ ब्राह्मणोंकी राज्याभिषेककी चिन्ता ६८ भरतको लानेके लिये दूतो का जाना, ६९ भरतका स्वप्नदर्शन और उसका वृत्तान्त कथन, ७० भरतकी अयोध्या-यात्रा, ७१ भरतका निज पुरीमें प्रवेश, ७२ पिताकी मृत्यु सुन कर भरतका विलाप, ७३ ७४ कैकेयीको भरतका फटकारना, ७५ कौशल्याके साथ भरत शत्रुघ्नका कथोपकथन, ७६ ७७ भरतका पितृप्रेतकार्य, ७८ कुब्जाका मारना और कैकेयीको निन्दा करना, ७९ राज्यग्रहणमें भरतका अस्वीकार, ८०-८१ रामको लौटा लानेके लिये भरतका आदेश, ८२

८३ रामके दर्शनके लिये भरतकी सेनाके साथ वनयात्रा, ८४-८८ भरत और गुहक चण्डालका कथोपकथन, ८६ भरतका ससैन्य नदी पार करना, ९०-९१ भरद्वाजके समीप भरतका जाना, ९४-९५ चित्रकूट पर सीता और रामका कथोपकथन, ९६ ९७ भरतकी सेनाका शब्द सुन कर राम लक्ष्मणमें तर्क वितर्क, रामके दर्शनके लिये भरतका प्रवेश, ९९ रामको देख कर भरतका खेद, १०० भरतसे रामका कुशल पूछना, १०१-१०२ रामचन्द्र और भरतका कथोपकथन, १०३ पिताके मृत्युसंवाद पर रामचन्द्रका विलाप, १०४ रामके साथ कौशल्यादिका साक्षात्, १०५-१०७ राम और भरतका राज्यविषयक कथोपकथन, १०८ रामके प्रति जाबालिकी धर्मकथा, १०९ जाबालिके प्रति रामकी उक्ति, ११० १११ वशिष्ठ कर्त्तृक लोकोत्पत्ति कथा, ११२ भरतको रामका पादुका देना, ११३ भरतका लौटना, ११४ गुरुको राज्यभार प्रदान, ११५ भरतका नन्दीग्राममें जाना, ११६ चित्रकूट पर राम और कुलपति की कथा, ११७ ११९ अत्रिमुनिके आश्रममें जाना।

आरण्यकाण्ड—१म सर्गमें रामका दण्डकारण्यमें प्रवेश, २ विराध राक्षसकी गोद पर सीताको देख कर लक्ष्मणका क्रोध करना, ३ राम लक्ष्मणके साथ विराधका घोर युद्ध, ४ विराधवध, ५ शरभङ्ग का अग्निमें प्रवेश, ६ ऋषियोंकी राक्षसवधके लिये प्रार्थना, ७ राम लक्ष्मणका सुतीक्ष्णाश्रममें जाना, ८ सुतीक्ष्णसे रामचन्द्रका दण्डकवन जानेका आदेश लेना, ९ राम लक्ष्मण और सीताका दण्डकवनमें प्रवेश, १० रामका राक्षसवध करनेके लिये कहना, ११ रामके समीप सुतीक्ष्णमुनिका सरोवर विवरण कहना, इल्वलवातापिकथा और अगस्त्यका माहात्म्यकीर्त्तन, १२ अगस्त्यके साथ रामचन्द्रका साक्षात् और उनसे अस्त्रलाभ, १३ रामचन्द्रके साथ अगस्त्यकी कथा, १४ रामचन्द्रके साथ जटायुका साक्षात्, १५ पञ्चवटी वनमें रामका वास, १६ लक्ष्मणका हेमान्तवर्णन, १७ रामके साथ राक्षसी शूर्पनखाकी बातचीत, १८ लक्ष्मण कर्त्तृक शूर्पनखाका नाक कान काटना, १९ रामलक्ष्मणका वध करनेके लिये खरका चौदह राक्षसोंको भेजना, २० चौदहों राक्षसका मारा जाना, २१ खरके प्रति शूर्पनखाका तिरस्कार, २२ खरका युद्धयात्राका उद्योग, २३ रामके निकट खरका संहार, ३१ खर दूषणके मारे जाने पर रावणका जाना, २४ युद्धके लिये रामका जाना, २५ २६ दूषण और राक्षससेनाका वध, २७ त्रिशिरावध, २८-३० खरका महाक्रोध, ३२ रावणका मारीचाश्रममें जाना, सीताहरणकी कल्पना और मारीच द्वारा मना किये जाने पर भी रावणका फिरसे जाना, ३३ रावणको शूर्पनखाका ललकारना, ३४ रावणका क्रोध, ३५ मारीचके आश्रममें रावणका फिरसे जाना, ३६-३९ मारीच कर्त्तृक रामचंद्रका विक्रमप्रकाश, ४० सीताहरणके सम्बन्धमें रावणका उभाड़ना, ४१ रावणके प्रति राक्षस मारीचकी निन्दा, ४२ रावणके कहनेसे मृगका रूप धारण कर मारीचका दण्डक वनमें घूमना, ४३ ४४ मृगरूपी मारीचका वध करनेके लिये रामचन्द्रकी यात्रा, ४५ सीताकी कटूक्ति पर रामके उद्देशसे लक्ष्मणकी यात्रा, ४६ सीताके समीप छद्मवेशी रावणका अतिथिरूपमें आना, ४७ ४८ सीतादेवीको रामका प्रलोभन दिखाना, ४९ रावणकर्त्तृक सीताहरण, ५० ५१ रावण और जटायुका युद्ध, ५२ रावणके रथ परसे सीताका अलङ्कार गिराना, ५३ रावणके प्रति सीताकी क्रोधोक्ति, ५४ अशोकवनमें सीताको रख रावणका अन्तःपुर जाना, ५५-५६ रावणके प्रति सीताकी फटकार, ५७ मारीचका वध कर रामका कुटीर लौटना, ५८-५९ कुटीरमें सीतादेवीको न देखना, ६० ६४ राहमें सीताका फेंका हुआ चिह्न देख कर रामका विलाप, ६५-६६ रामके प्रति लक्ष्मणको सान्त्वना, ६७ ६८ मरणासन्न जटायुके मुखसे रामका सीतावृत्तान्त सुनना, ६९ ७३ रामलक्ष्मण कर्त्तृक कबन्धका बाहुद्वय कर्त्तन, ७४ राम लक्ष्मणका पम्पा सरोवरमें जाना और शबरीसे मुलाकात, ७५ ऋष्यमूक पर्वत पर जानेके लिये लक्ष्मणके साथ रामकी मन्त्रणा।

किष्किन्ध्याकाण्ड—१म सर्गमें रामका वसन्तवर्णन और प्रियाविच्छेद पर विलाप, २ राम लक्ष्मणसे मिलनेके लिये मन्त्रियोंके साथ सुग्रीवका परामर्श, ३ भिक्षुके वेशमें रामके साथ हनुमान्का मिलना, ४ रामलक्ष्मणको पीठ पर बैठा कर हनुमान्का सुग्रीवके पास आना, ५ सुग्रीवके निकट हनुमान कर्त्तृक रामका परिचय-दान, ६-१० सीता

का उद्धार करनेके लिये सुग्रीवकी और बालिवध करने के लिये रामकी प्रतिज्ञा, ११ रामका दुन्दुभि राक्षसका हड्डी फेंकना और सप्ततालको भेदना, १२ बालीके साथ सुग्रीवका युद्धयात्रा, युद्धमें हार खा कर भागना, १३-१४ सुग्रीवकी फिरसे युद्धयात्रा, १५ ताराका बालीको युद्ध करनेसे रोकना, १६ बाली और सुग्रीवका तुमुल युद्ध, १७ रामके बाणसे विद्ध हो बालीका पतन १८ बालीके प्रति रामका उपदेश, १९-२२ बालीका प्राणत्याग, २३ ताराका खेद, २४ राम लक्ष्मण और सुग्रीवका खेद, २५ बालीका ऊर्ध्वदैहिक क्रिया समापन, २६ सुग्रीवका राज्याभिषेक, २७ रामका विलाप सुन कर लक्ष्मणकी उनके प्रति सान्त्वना, २८ सीताके विरह पर रामका विलाप, २९ सुग्रीव कर्तृक नीलके प्रति सैन्यसंग्रहका आदेश, ३० शरद्‌शोभा राशि देख कर सीताविच्छेद पर रामका विलाप और शरद्वर्णन, ३१ सुग्रीवके निकट लक्ष्मणके आनेका संवाद भेजना, ३२ लक्ष्मणको क्रुद्ध देख कर सुग्रीवका चिन्ता, ३३ लक्ष्मणके पास ताराको भेजना, ३४ सुग्रीवको लक्ष्मणकी भर्त्सना, ३५ लक्ष्मणके प्रति ताराकी सान्त्वना, लक्ष्मणके शान्त होने पर उनके साथ सुग्रीवका कथोपकथन, ३७ सेनासंग्रहके लिये सुग्रीवका दूत भेजना, ३८ लक्ष्मणके साथ सुग्रीव का रामदर्शनके लिये आना, ३९ रामके निकट वानर सेनाका समागम, ४०-४३ चारों ओर सीताकी खोजमें दूतको भेजना, ४४ हनुमान्‌को रामका अभिज्ञानांगुरीयक दान, ४५ सभी वानरोंके प्रति सुग्रीवका आदेश, ४६ राम के पास सुग्रीवका पृथिवीवृत्तान्त वर्णन, ४७-४८ सीता का सन्धान न पा कर वानरोंका लौटना, ४९-५१ हनु मत् आदिका मयदानवकी मायामें विमोहित हो बिलके मध्य तपस्विनीके साथ साक्षात्, ५२ हनुमानादिका बिल से निकलना, ५३-५५ सीताका संधान न पा कर अङ्गदादिका प्रायोपवेशन, ५६ वानरोंके साथ सम्पाति पक्षी का साक्षात्, ५७-६३ सम्पातिके निकट सीताका संधान पाना, ६४ समुद्रके किनारे वानरोंका आना, ६५ वानरों का अपना विक्रमवर्णन, ६६ जाम्बवान् कर्तृक हनुमान् का जन्मवृत्तान्तकथन, ६७ हनुमान्‌की लंघनप्रवृत्ति।

सुन्दरकाण्ड—१म सर्गमें महेन्द्रगिरि परसे हनुमान्‌का कूदना सिंहिकाका उदर फाड़ना और त्रिकूट तट पर गिरना २-५ हनुमान्‌का राक्षसी रूपधारिणी लङ्कापुरीके साथ युद्ध, ३-११ रावणके अन्तःपुरमें हनुमान्‌का प्रवेश आदि १२-१३ अशोकवनमें हनुमान्‌का सीतादेवीका अन्वेषण, १४-१५ रामकथित चिह्नानुसार हनुमान्‌का सीतादेवीके निकट आना, १६-१७ सीताकी दुरवस्था देख कर हनुमान्‌का पीछे रातका रावणदर्शन, २० सीताके प्रति रावणकी उक्ति, २१ रावणकी बात पर सीताका प्रत्युत्तर, २२ रावण और सीताकी उक्ति और प्रत्युक्ति, २३-२४ सीताको राक्षसियोंका उपदेश देना और कटुवचन कहना, २५-२६ राक्षसियोंकी भर्त्सनासे सीता-का परिदेवन, २७ त्रिजटा राक्षसीका स्वप्नवृत्तान्तकथन, २८-२९ सीताका वेणीकी सहायतासे उद्बन्धनका उद्योग, ३० सीताकी ऐसी अवस्था देख कर हनुमानकी चिन्ता, ३१-३२ सीताके साथ हनुमान्‌का साक्षात्, ३३-३८ सीता से अभिज्ञान मणि ले कर हनुमान्‌के जानेकी तैयारी, ३९-४० उस समय हनुमान्‌से सीताका फिर कहना, ४१ हनुमान्‌का अशोकवनभञ्जन ४२ हनुमान्‌के साथ राक्षसों का घोरतर युद्ध, हनुमान्‌कर्तृक चैत्यप्रासादध्वंस, ४४ जाम्बुमालीका युद्ध और मृत्यु ४५ मन्त्रिसुतोंके साथ युद्ध और उनकी मृत्यु, ४६ विरूपाक्षादि पांच सेनापति का युद्ध और मृत्यु, ४७ अक्षयकुमारका युद्ध और मृत्यु, ४८ इन्द्रजित्‌के साथ युद्ध और उससे बांधे जाने पर हनु मान्‌का रावणकी सभामें आना, ४९-५१ हनुमान्‌का वध करनेके लिये रावणकी आज्ञा, ५२ रावणके प्रति विभीषणका उक्ति ५३ हनुमान्‌की पूंछ जलानेके लिये रावण का आदेश, ५४ हनुमत्‌कर्तृक लङ्कादाह, ५५-५६ लङ्का दाह कर सीताके साथ हनुमान्‌का फिरसे मिलना, ५७ हनुमान्‌का महेन्द्रपर्वत पर आना, ५८-६० वानरोंके निकट हनुमान्‌का समस्त वृत्तान्त कहना, ६१-६३ वानरोंसे मधुवन ध्वंस, ६४-६८ रामचन्द्रके निकट हनुमत्‌कर्तृक जानकीप्रदत्त अभिज्ञानादि दान।

लङ्काकाण्ड—१म सर्गमें हनुमान्‌से सीताका वृत्तान्त सुन कर रामचन्द्रका विलाप, २ समुद्रलंघनके लिये रामके प्रति सुग्रीवका उपदेश, ३ हनुमत्कर्तृक लङ्काका दुर्गादि वर्णन, ४ राम, लक्ष्मण और वानरोंका समुद्र

दर्शन, ५ रामका विलाप, ६ रावणकी उक्ति, ७-१० दुर्मन्त्रियोंकी नाना रूप दुर्मन्त्रणा, विभीषणकी मन्त्रणा, रावणकी गर्वोक्ति, ११ १२ रावण और प्रहस्तादिकी उक्ति-प्रत्युक्ति, १३ विभीषणकी उक्ति, १५ इन्द्रजित् और विभीषणकी कथा, १६ विभीषणका रावण त्याग, १७ विभीषणका रामके पास जाना, १८ विभीषणके सम्बन्धमें सुग्रीव और रामका कथोपकथन, १९ राम और विभीषणका मिलन, २० रावण कर्तृक वानरसैन्यके मध्य शुक नामक दूतको भेजना, २१-२२ रामका सेतुबंधनादि, २३ रामका मुनिमित्त दर्शन, २४ शुककी मुक्ति और रावणकी सभामें यात्रा, २५ शुक और सारणका लुक छिप कर वानरकी सैन्य संख्याका पता लगाना, २९-३० रामकी सैन्यसंख्या जानने के लिये रावणका फिरसे दूसरा दूत भेजना, ३१ रावण-कर्तृक सीताको माया द्वारा रामका मुण्ड और धनुरादि दिखाना, ३२ रामके मायामुंडादि देख कर सीताका विलाप, ३३-३४ सरमा और सीताकी बातचीत, ३५ रावण माल्यवान्‌का हितोपदेश, ३६ लङ्कापुरीके रक्षाके लिये प्रहस्तादिके प्रति रावणकी उक्ति, ३७ रामचंद्र कर्तृक सेनासमावेश, ३८ रामका सुवेल पर्वत पर चढ़ना, ३९ रामचंद्रका सुवेल पर्वत परसे लङ्का देखना, ४० सुग्रीवका रावणके साथ युद्ध, ४१ ससैन्य राम कर्तृक लङ्कावेष्टन, ४२ युद्धारम्भ, ४३ वानर और राक्षससेनाके साथ युद्ध, ४४ अङ्गद कर्तृक इन्द्रजित्‌विजय, ४५ इन्द्रजित् कर्तृक रामलक्ष्मणका बंधन, ४६ वानर-सैन्यका विषा॰, ४७-४८ त्रिजटाके साथ विमान पर चढ़ कर सीताका रामकी अवस्था देखना, ४९ लक्ष्मणकी अवस्था देख कर रामका विलाप, ५० गरुडके स्पर्शसे रामलक्ष्मणका नागपाशबन्धनसे मुक्तिलाभ, ५१ धूम्राक्षकी युद्धयात्रा, ५२ धूम्राक्षवध, ५३-५४ वज्रदंष्ट्रकी युद्धयात्रा और उसका वध, ५५-५६ अकम्पनकी युद्धयात्रा और उसका वध, ५७ प्रहस्तकी युद्धयात्रा, ५८ प्रहस्तवध, ५९ रावणकी युद्धयात्रा और पराजय, पीछे अन्तःपुरमें प्रवेश, ६० कुम्भकर्णको निद्राभङ्ग, ६१ रामके निकट विभीषण-कर्तृक कुम्भकर्णका परिचय देना, ६२ रावण और कुंभकर्णका कथोपकथन, ६३ रावणके प्रति कुम्भकर्णकी निन्दा, ६४ सहदेवकी संरम्भोक्ति, ६५ कुम्भकर्णका युद्धमें जाना, ६६ कुम्भकर्णका सुग्रीवको ले कर लङ्काप्रवेश-कालमें सुग्रीवकर्तृक उसका नासिका छेदन, ६७ कुम्भ-कर्णका फिरसे युद्धमें प्रवेश और रामकर्तृक कुम्भकर्णका वध, ६८ कुम्भकर्णके मारे जानेसे रामका विलाप, ६९ नरान्तक वध, ७० देवान्तक, महोदर और त्रिशिरादिका वध, ७१ अतिकाय वध, ७२ लङ्कापुरीकी रक्षाके लिये रावणकी विशेष सज्जा, ७३ इन्द्रजित्‌का युद्धमें जाना और जयलाभ, ७४ हनुमान्‌का औषधका पहाड़ लाना, ७५ वानरोंसे लङ्कादाह, ७६ अकम्पनादिका विनाश, ७७ निकुम्भका विनाश, ७८ मकराक्षकी युद्धयात्रा ७९ मकराक्षका वध, ८० इन्द्रजित्‌कर्तृक मायासीता-वध, ८१-८२ निकुम्भिला यज्ञके लिये इन्द्रजित्‌का लङ्का-पुरी प्रवेश, ८३ हनुमान्‌के मुखसे सीतावधका हाल सुन कर रामका विलाप, ८४-९१ लक्ष्मणकर्तृक इन्द्रजित् वध, ९२ रामके निकट लक्ष्मणादिका जाना, ९३ इन्द्रजित् वध सुन कर रावणका विलाप, ९४-९५ लङ्कापुरमें स्त्रियोंका विलाप, ९६-१०१ लक्ष्मणका शक्तिशेल, १०२ हनुमान्‌का औषधि पर्वत लाना तथा लक्ष्मणका शेल-मोचन और मोहनाश, १०३-१०६ रावणका फिरसे युद्धमें जाना तथा राम और रावणका महायुद्ध, १०७ राम-जयसूचक निमित्तका प्रादुर्भाव, १०८ राम और रावणमें रथ-युद्ध, १०९-१११ ब्रह्मास्त्र द्वारा रामकर्तृक रावण-वध, ११२ विभीषणका विलाप, ११३ मन्दोदरीका विलाप, ११४ विभीषणका राज्याभिषेक, ११५ हनुमानके मुखसे सीताका युद्धजयका संवाद सुनना, ११६ रामचंद्रके निकट शुभसंवाद लाभ, ११७ सीताके प्रति रामकी कठोर उक्ति, ११८ सीताको अग्निपरीक्षा, ११९ ब्रह्मादि कर्तृक सीताकी विशुद्धिताका कथन, १२० रामका सीतादेवीको फिर ग्रहण, १२१ महादेवकर्तृक दर्शित दशरथके साथ रामका कथोपकथन, १२२ इन्द्रकर्तृक अमृतसिञ्चनसे वानरसैन्यका पुनर्जीवन, १२३-१३० पुष्पकविमान पर चढ़ कर रामकी अयोध्यायात्रा, भरद्वाज और गुह आदिके साथ फिरसे भेंट।

उत्तरकाण्ड—१म सर्गमें रामका राज्याभिषेक और पीछे ऋषियोंके साथ कथोपकथन, २-३ कुबेरका जन्म,

तपस्या, ब्रह्मगोरवज्ञास और अङ्गमें वास, ४ ५ अगस्त्य कर्त्तृक राक्षसोंका उत्पत्ति-विषय कथन, ६ ८ देवताओंका महादेवके निकट आना, महादेवके आदेशसे देवताओंका विष्णुके समीप आना, राक्षसोंकी सुरलोकमें युद्धयात्रा, सुमालीसे हार खा कर माल्यवान्‌का पाताल आगमन, ९ सुमालीको कन्याका विश्रवाके पास जाना और उस-के गर्भसे रावणादिका जन्म, १० रावणादिकी तपस्या ११ वर पा कर रावणका लङ्काग्रहण, १२ रावणका राज्याभिषेक और इन्द्रजित्‌का जन्म, १३ कुबेरके साथ युद्ध करनेके लिये रावणका जाना, १४-१६ कुबेरको पराजय, १७ रावणके प्रति वेदवतीका अभिशाप, १८ रावण का संवर्त्तके पास जाना, १९ रावणको अनरण्यका अभिशाप प्रदान, २०-२२ नारदके उपदेशसे यमके साथ रावणका युद्ध, २३ रसातलमें प्रवेश कर रावणका युद्ध, २४ रावणका बलिके निकट जाना २५ रावण-का सूर्यलोकमें अपमान, २६ रावणका मान्धाता के साथ युद्धमें मित्रतास्थापन, २७ रावणको पितामहकी उक्ति और वरदान, २८ रावणका पातालमें कपिलदर्शन, २९ रावणका लङ्काप्रवेश और पतिके शोकसे संतप्त शूर्प णखाके प्रति दण्डकारण्यमें जानेका आदेश, ३० इन्द्र जित्‌को रावणका दर्शन, रावणका मधुवन जाना और मधुके साथ मित्रता करना, ३१ रावण कर्त्तृक रम्भाधर्षण, ३२-३४ इन्द्रको ले कर इन्द्रजित्‌का लङ्काप्रवेश, ३५ इन्द्र को मुक्ति और अहल्याका वृत्तान्तकथन, ३६ ३८ रावण और अर्जुनका युद्धादि कथन ३९ बालीके साथ रावण का मैत्रीकरण, ४० ४१ हनुमान्‌का जन्मवृत्तान्त कथन, ४२ बाली और सुग्रीवका जन्मवृत्तान्त कथन, ४३ ४५ रामके प्रति रावण सनत्कुमारका संवाद कथन, ४६ रावणका श्वेतद्वीप-गमनकथा, ४७ रामका राजचर्या कथन, ४८ ४९ राजाओंका अपने अपने राज्यमें जाना, ५० वानर और राक्षसोंका अपने स्थान जाना, ५१ पुष्पकरथका आना, ५२ सीता और रामका अशोकवनविहारवर्णन, ५३ ५५ सीताका अपवाद सुन कर लक्ष्मणके प्रति सीता को वनमें छोड़ आनेके लिये रामका आदेश, ५६ ५८ वाल्मीकिके तपोवनमें लक्ष्मणका सीताको छोड़ आना, ५९ वाल्मीकिके आश्रममें सीताका आना, ६० ६१ सुमंत्र और लक्ष्मणका कथोपकथन, ६२ रामके समीप लक्ष्मण का आना, ६३ ६४ कार्यार्थी प्रकृति आदिको बुलानेके लिये लक्ष्मणके प्रति रामका आदेश ६५ ६७ लक्ष्मणसे रामका निमि वशिष्ठ वृत्तान्त कहना, ६८ ६९ ययाति उपाख्यान कहना, ७० ७१ रामके समीप सारमेयका आना, ७२ गृध्र उलूकका व्यवहार, ७३ ७५ शत्रुघ्नके प्रति रामका लवण वधार्थ आदेश, ७६-७७ शत्रुघ्नका अभिषेक, ७८-७९ वाल्मीकिके आश्रममें सीताका प्रसव, वाल्मीकि कर्त्तृक कुश और लवका नामकरण, ८० मान्धाताका उपाख्यान, ८१ ८२ शत्रुघ्न कर्त्तृक लवणवध, ८३ मथुराराज्य स्थापन और शासन, ८४ ८५ वाल्मीकिके आश्रममें शत्रुघ्नका रामचरित श्रवण, ८६-८७ मृतपुत्रके साथ किसी ब्राह्मण का रामके समीप आना, ८८ ९१ रामकर्त्तृक तपोरत शूद्रशम्बूकका शिरश्छेदन, ९२ ९५ दण्डोपाख्यान कथन, ९६ ९७ अश्वमेध यज्ञका प्रस्ताव ९८ ९९ वृत्रवध, इन्द्रा श्वमेधवर्णन, १००-१०३ इलोपाख्यान, १०४ १०५ रामका नैमिषारण्यमें जाना, १०६ रामयज्ञमें सशिष्य वाल्मीकिका आना तथा कुशीलवका रामायण गान, १०७ १०८ कुशी लवको सीताका पुत्र जान कर सीताको लानेके लिये दूत भेजना, १०९ ११० रामको सभामें सीताका आना और सीताका पातालप्रवेश, १११ मुनिके प्रति रामकी शोकोपाधि, ११२ कौशल्यादिका देहत्याग, ११३ ११४ रामके समीप युधाजित्‌पुरोहित गार्ग्यका आना, ११५ अङ्गद और चन्द्रकेतुका राज्याभिषेक, ११६ ११७ रामके निकट तापसरूप कालका आना, ११८ दुर्वासाका आना, ११९ रामका लक्ष्मणवर्जन, १२० कुशीलवका अभिषेक, १२१ १२३ वानर, राक्षस और पौरादिके साथ रामका सरयूप्रवेश, १२४ रामायण-माहात्म्य।

रामायणीय (सं० त्रि०) १ रामायण सम्बन्धी, रामायण का। २ जो रामायणका विशेषरूपसे जानकार और पण्डित हो। ३ रामायणकी कथा कहनेवाला।

रामायन (सं० पु०) रामायण देखो।

रामायुध (सं० पु०) धनुष।

रामार्य्य (सं० पु०) धर्मोपदेशक एक आचार्यका नाम।

रामालिङ्गनकाम (सं० पु०) रामाणामालिङ्गनस्य कामो-

ऽभिलापो यस्मात्। रक्तामलान, एक प्रकारका फूलका पौधा।

रामावक्षोजोपम (सं० पु०) रामावक्षोजयोः स्त्रीस्तनयोरुपमा यत्र। चक्रवाक, चकवा।

रामावत (सं० पु०) वैष्णव-आचार्य रामानन्दका चलाया हुआ एक प्रसिद्ध सम्प्रदाय। इसके अनुसार मनुष्य ईश्वरकी भक्ति करके सांसारिक संकटों तथा आवागमनसे वच सकता है। यह भक्ति रामकी उपासनासे प्राप्त हो सकती हैं और इस उपासनाके अधिकारी मनुष्य मात्र हैं। जाति-पांतिका भेद इसमें किसी प्रकारका अवरोध उपस्थित नहीं कर सकता।

रामावामाङ्घ्रिघातक (सं० पु०) अशोकका पेड़।

रामाश्रम—१ अमरकोषटीकाके प्रणेता। २ तत्त्वचन्द्रिका और ब्रह्मसूत्रवृत्तिके रचयिता। ये नृसिंहाश्रमके शिष्य थे। ३ दुर्गामाहात्म्यटीकाके प्रणेता। ४ दुर्जनमुखचपेटिकाके रचयिता। ५ प्रभाकरपरिच्छेद नामक व्याकरणके प्रणेता।

रामाश्रम आचार्य—रामायणटीकाके रचयिता।

रामास—बम्बई प्रदेशके महीकांथा विभागके अन्तर्गत एक सामान्तराज्य। यहांके सरदारगण मुसलमान हैं जो बड़ोदाराजको कर दिया करते हैं।

रामाश्वमेध (सं० पु०) १ रामकृत अश्वमेध। २ पद्मपुराणका एक अंश।

रामि (सं० पु०) रामका गोत्रापत्य।

रामिन् (सं० पु०) वह जिसे रमणकरनेमें प्रमोद हो।

रामिया-विहार—अयोध्याप्रदेशके खेरी जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह कौरीयाला नदीके एक प्राचीन गड्ढेके किनारे अवस्थित है। अभी यह गड्ढा तालावके रूपमें परिणत हो गया है। गांवके पूर्व और पश्चिम सुन्दर दृश्य उपवनराजि रहनेके कारण स्थानीय दृश्य बड़ा ही मनोरम हो गया है।

रामिल (सं० पु०) १ रमण। २ कामदेव। ३ स्वामी, पति। ४ प्रणयपात्र, वह जिससे प्रेम किया जाय।

रामिल सौमिल—दो प्राचीन कवि। इन दोनोंने एक साथ 'शूद्रककथा' नामक काव्य रचा। कालिदासने मालविकाग्निमित्रमें इनका उल्लेख किया है।

रामी (सं० स्त्री०) रात्रि, अंधकार।

रामी (हिं० स्त्री०) कांस नामक घास।

रामुव (सं० क्ली०) एक देशका नाम।

रामुसी—भारतके पश्चिम उपकूलमें रहनेवाली एक जाति। इस जातिके लोग अरब सागरको पार कर पश्चिम देशसे भारतउपकूलमें आ कर बस गये हैं। ये तुराणीय वंशोद्भव हैं और इनका आचार व्यवहार नीच जातिके हिन्दू और मुसलमानोंसे मिलता जुलता है। प्रधानतः ये लोग चोरी डकैती कर अपनी जीविका चलाते हैं। आज कल बहुतेरे चौकीदारमें भर्ती हो गये हैं। ये हट्टे कट्टे, मजबूत और युद्धकुशल होते हैं। इनकी भाषा तेलगु और मराठी है।

रामेन्द्र यति—विवेकसारके रचयिता।

रामेन्द्र योगिन्—जगन्मिथ्यात्वदीपिकाके प्रणेता।

रामेन्द्रवन—एक विख्यात पण्डित और संन्यासी। ये काशीखण्डकी टीकाके प्रणेता रामानन्दके गुरु थे।

रामेन्द्र सरस्वती—बालबोधिनी भावप्रकाशके रचयिता। ये रघुनाथ और गोविन्द सरस्वतीके शिष्य थे।

रामेश भारती—ब्रह्मसूत्रोपन्यासवृत्तिके प्रणेता।

रामेश्वर—कई एक प्रसिद्ध संस्कृत-ग्रन्थकार। १ अद्वैततरङ्गिणीके प्रणेता। २ अशौचशतक और उसकी टीकाके रचयिता। ३ गृह्यपद्धति और षोड़शसंस्कारसेतुके प्रणेता ४ जातकसारके रचयिता। ५ पञ्चपक्षीकी टीका, सिद्धान्तमुद्रा, स्त्रीजातकटीका और हिल्लाजव्याख्या नामक बहुत-से ज्योतिर्ग्रन्थके प्रणेता। ६ पिष्टपशुतिरस्कारिणीके रचयिता। ७ वेदान्तशास्त्राम्बुधिरत्नके प्रणेता। ८ शुद्धाशुवोध नामक व्याकरणके रचयिता। ९ सूत्रार्थ नामक व्याकरणके प्रणेता। १० सौभाग्योदय नामक परशुरामसूत्रवृत्तिके रचयिता। ११ रामकुतूहलकाव्यके प्रणेता। ये गोविन्दके पुत्र और अनन्तदेवके पौत्र थे। इनके पुत्र नारायणने वृत्तरत्नाकर लिखा। १२ आयुर्वेदसिद्धान्तसम्बोधिनीके प्रणेता तथा नरेन्द्रके पुत्र।

रामेश्वर—मन्द्राज प्रसिडेन्सीके मदुरा जिलेके रामनाद तहसीलके अन्तर्गत एक द्वीप और नगर। यह अक्षा० ९° १७' उ० और देशा० ७९° १९' पू०में अवस्थित है। यह द्वीप वालुकामय और मन्नारके उपसागरके पास है।

इसकी लम्बाई ११ मील और चौड़ाई ६ मील है। यह किसी समय भारतके दक्षिणप्रान्तकी सीमा थी पीछे समुद्रके स्रोतके कारण विच्छिन्न हो गया है।

यह स्थान हिन्दुओंका एक प्रधान और पवित्र तीर्थ समझा जाता है। सेतुबन्ध-रामेश्वर तीर्थमें स्नान करके भारतवासी हिन्दूमात्र अपनेको धन्य समझते हैं। प्रवाद है, कि रघुवीर रामचन्द्र आवागमन कोशमें सेतु बन कर लंका गये थे। पीछे रावणको जीत कर सीताके साथ लौटते समय वे उस सेतुको तोड़ते गये। अब उस टूटे हुए सेतुका एक एक अंश एक एक द्वीप बन गया है। यहां जो रामेश्वरकी मूर्त्ति स्थापित है, लोगोंका विश्वास है कि उस मूर्त्तिको स्वयं रामचन्द्रने प्रतिष्ठा की थी।

रामचन्द्रके त्रेतायुगका कोर्त्ति स्मरण कर शताब्दियों से सैकड़ों हिन्दू नर-नारी आज तक इस देवतीर्थमें समागत होते हैं। प्रत्येक तीर्थयात्रीको रामनाथमें आ कर पहले समुद्र उत्तरण करना पड़ता है। यह सेतुबन्ध तीर्थ बहुत दिनोंसे रामनाथके सरदारोंके हाथमें है, इस लिये वे ही तीर्थयात्रियोंको गमन करानेसे अपनेके लिये समुद्रपथके परिदर्शक बनते हैं और इस कारण वे 'सेतुपति' कहलाते हैं।

इस द्वीपमें बबूल और नारियलके पेड़ बेशुमार पैदा होते हैं। किसी उद्यानमें बड़ी कोशिशसे दूसरे पेड़ भी पैदा होते देखे गये हैं। यहांके अधिवासीगण प्रधानतः ब्राह्मण हैं। वे मन्दिरके पण्डे अथवा पुरोहित हैं। उनके अधीन और भी अनेक चेले हैं। मन्दिरके दक्षिणमें ३ मील विस्तृत एक हद है। इसका मीठा पानी सब कोई पाते हैं।

दाक्षिणात्यका यह सर्वश्रेष्ठ पुण्यतीर्थ बहुत प्राचीन कालसे प्रसिद्ध है। उस समयसे ही उत्तर भारतके तीर्थयात्री पैदल इस तीर्थकी यात्रा किया करते थे। अब भी साधु संन्यासी लोग पैदल नाना तीर्थोंमें भ्रमण करते हुए यहां आते हैं। फिलहाल रेल हो जानेसे यात्राकी कठिनाइयां दूर हो गई हैं। बहुतसे तो प्रत्येक पर्व काशीमें विश्वेश्वरकी पूजा करके यहांसे गंगाजल ले कर रामेश्वर पहुंचते हैं और यहां रामेश्वरनाथका एकादशरुद्री गङ्गोदकाभिषेकादि करते हैं।

रामेश्वर जानेमें पहले मदुरा जाना पड़ता है। यहां वैगैनदीके किनारे अनेक छत्र हैं। यहां पण्डोंके आदमी हैं, जो बड़े यत्नसे यात्रियोंकी सेवा शुश्रूषा करते हैं और मदुराके सुन्दरस्वामीके दर्शन करा कर वे उनके पथप्रदर्शक बन कर रामेश्वर ले जाते हैं।

मदुरासे रामनाद जानेके लिए घोड़ागाड़ी या बैलगाड़ी मिलती है। घोड़ागाड़ीसे जानेमें १७।१८ घंटे लगते हैं और बैलगाड़ीसे जानेमें ३।४ दिन लग जाते हैं, क्योंकि बैलगाड़ी रातके सिवा चलती नहीं। मार्गमें मात्र मदुरा परमगुड़ी और पमुकर ये तीन धर्मशालाएं हैं। पमुकर तक पक्की सड़क है, उसके बाद कच्ची और कठिन रास्ता है।

रामनाद सेतुपति-राजाओंकी राजधानी है। ये किसी समय मदुराप्रदेशके शासनकर्त्ता थे। अब अवस्था के फेरसे जमींदारमात्र रह गये हैं। अतू विजय रघुनाथ सेतुपतिके समयमें दर्भशयन और रामेश्वरके मन्दिरका बहुत कुछ श्रीवृद्धि हुई थी और राजपथोंके किनारे किनारे कई एक छत्र निर्मित हुए थे। रामनादमें इस राजवंश द्वारा प्रतिष्ठित कोदण्ड रामस्वामी, विश्वनाथस्वामी, बालसुब्रह्मण्य गोकर्णेश्वर और राजराजेश्वरी देवीका मन्दिर तथा लक्ष्मीपुरमें बालसुब्रह्मण्य मुत्तुरामलिङ्गस्वामी और मरि अम्मा देवीका मन्दिर ही प्रधान है। रामनादके पास ही लक्ष्मीपुर है। यहां लक्ष्मी-सरोवरके किनारे एक छत्र है। इस स्थानसे १० मील पूर्वमें दक्षिण समुद्रके किनारे देवीपुरका नवपाषाणतीर्थ है और ७ मीलके अन्तरमें कुछ पश्चिममें समुद्रके किनारे दर्भशयन तथा दक्षिणमें २२ मीलकी दूरी पर विष्णु मण्डप है।

देवीपुरका नाम देवीपत्तन है। सेतुमाहात्म्यमें इसकी उत्पत्तिके विषयमें लिखा है, कि देवीको आक्रमणसे महिषासुर अनन्योपाय हो कर दक्षिणसागरके तट पर अवस्थित चक्रतीर्थनामक धर्मपुष्करिणीमें घुस गया था। मृगेन्द्र-ने उक्त पुष्करिणीका जल बिलकुल पी लेने पर देवीने महिषको मार डाला और उक्त पुष्करिणीके उत्तर भागमें दक्षिणसागरके किनारे "देवीपत्तन" स्थापित किया।

(स्कन्दपुराणोक्त सेतुमाहात्म्य ७ अ०)

सेतुमाहात्म्यके मतानुसार धर्मपुष्करिणीका दूसरा नाम चक्रतीर्थ है। प्राचीनकालमें धर्म यहां महादेवकी तपस्यामें निरत हुए थे। उन्होंने स्नानके लिए उक्त सरोवरको खोदा था। पीछे महामुनि गालव इस पुष्करिणीके किनारे विष्णुकी आराधना करते रहे। एक दिन वशिष्ठके शापसे भ्रष्ट राक्षसरूपी 'दुर्दम' ने आहारके लिए स्नान-निरत गालवको ग्रहण किया। विष्णुके वरके प्रभावसे विष्णुके चक्रने आ कर राक्षसको मार डाला और गालवका उद्धार किया, तबसे इस स्थानका नाम चक्रतीर्थ पड़ा है। इन्द्र द्वारा छिन्नपक्ष कोई कोई पर्वत इस चक्रतीर्थमें गिर पड़ा था, जिससे इसका गर्भ भर गया है। इसलिए दर्भशयन और देवीपत्तन इन दोनों स्थानोंमें दो चक्रतीर्थ बन गये हैं। यह चतुर्विंशति सेतुतीर्थोंमें प्रधान है।

रामचन्द्रने सेतु निर्माण करते समय देवीपुरमें जो नवपाषाणकी प्रतिष्ठा की थी, वह भी पुण्यतीर्थ है। रामेश्वरके यात्रिगण रामनादसे देवीपत्तन जा कर नवपाषाणकी पूजा, चक्रतीर्थमें स्नान और सेतुनाथकी पूजा किया करते हैं। सेतुमाहात्म्यके ७वें अध्यायमें लिखा है:—

नवपाषाणतीर्थ सेतुके मूलमें स्थापित हैं। इसलिए तीर्थयात्रियोंको चाहिये कि यहां सप्तखण्ड पाषाण दान करके सागरके जलसे स्नान करें। उसके बाद विशुद्धात्मा हो कर देव, ऋषि, मनुष्य और पितृपुरुषोंके लिए तर्पण करनेसे वे तृप्त होते हैं। सेतु-मूल, धनुष्कोटि और गन्धमादनपर्वत ये तीन स्थान राम द्वारा निर्मित और पितरोंको तृप्तिप्रद हैं। श्रीरामचन्द्रने लङ्का जानेके लिए दर्भशयनसे नवपाषाण तक परिसरयुक्त जो सेतु निर्माण किया था, उसकी विस्तृति २६ मीलसे अधिक नहीं है। रामायणोक्त वर्णनसे इसमें बहुत भेद पाया है।

नवपाषाणके दर्शन, पूजा और सागरस्नान रामेश्वर तीर्थयात्रियोंके लिए प्रधान कर्तव्य हैं। वैशाखसे कार्तिक मास तक, जब कि दक्षिणपूर्व मौसुम वायु चलती है, अनेक तीर्थयात्री जहाज पर बैठ कर नवपत्तनसे नवपाषाण हो कर पम्बाम जाते हैं।

भगवान् रामचन्द्रने वानरकटकके साथ समुद्रके किनारे पहुंचते ही सामने नक्रव्यालशंकुल उत्ताल तरङ्गपूर्ण योजनव्यापी सागर देखा। उन्होंने सागर पार होनेकी इच्छासे वरुणकी सहायता पानेकी आशासे जिस स्थानमें दर्भके ऊपर शयनपूर्वक प्रायोपवेशन किया था, प्रवाद है, कि वह स्थान दर्भशयनतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

विट्ठलमण्डप एक प्राचीन स्थान है। यहां कुछ प्राचीन मन्दिर और मण्डपका भग्नावशेष मौजूद है। मण्डपोंके कारण यह स्थान विट्ठलमण्डपके नामसे प्रसिद्ध है। दक्षिण भारतका यह एक छोटा सा बन्दर है। यहांसे पम्बामके लिए जहाज जाते हैं। भारतोपकूलसे पम्बाम बन्दर ४ मील दूर है।

पम्बाम एक छोटा-सा द्वीप है, इसकी लम्बाई ११ मील और चौड़ाई ६ मील है। रामेश्वर इस द्वीपके उत्तर दिशामें तथा पम्बाम बन्दरसे ८ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। बन्दरसे मन्दिर तक रास्ता है। रामेश्वरके प्रधान मन्दिरके सिवा यहां सेतुमाहात्म्यमें वर्णित और भी २४ तीर्थ हैं, जिनके दर्शन किये जाते हैं उन तीर्थोंके नाम इस प्रकार हैं—१ चक्रतीर्थ। २ वेतालवरदतीर्थ। ३ पापविनाशनतीर्थ। ४ सीतासरतीर्थ। ५ मङ्गलतीर्थ। ६ अमृतवापिका। ७ ब्रह्मकुण्ड। ८ हनुमत्कुण्ड। ९ अगस्त्यतीर्थ। १० श्रीरामतीर्थ। ११ श्रीलक्ष्मणतीर्थ। १२ जटातीर्थ। १३ श्रीलक्ष्मीतीर्थ। १४ अग्नितीर्थ। १५ चक्रतीर्थ (२य)। १६ श्रीशिवतीर्थ। १७ शङ्खतीर्थ। १८ यमूनातीर्थ। १९ गङ्गातीर्थ। २० गयातीर्थ। २१ कोटितीर्थ। २२ साध्यामृततीर्थ। २३ मानसाख्य सर्वतीर्थ। २४ धनुष्कोटितीर्थ।

इन तीर्थोंकी उत्पत्तिके विषयमें उक्त ग्रन्थमें बहुत-सी बातें लिखी हैं, जो नीचे लिखी जाती हैं।

वेतालवरदतीर्थ—समुद्रके तट पर चक्रतीर्थके दक्षिणमें और गन्धमादनके उत्तरमें अवस्थित है। इस तीर्थमें संकल्पपूर्वक स्नान करके वेदविद् ब्राह्मणको वित्तदान देनेसे लोग जीवन्मुक्त होते हैं।

गन्धमादन पर्वत—वर्तमान पम्बाम और रामेश्वरके बीच सेतुमाहात्म्यका गन्धमादन है। पापविनाशनसे लगा कर मानसाख्य सर्वतीर्थ तक २४ तीर्थ इस पर्वत

पर अवस्थित है। रामेश्वरमें आ कर सागरमें संकल्प पूर्वक स्नान करके गन्धमादनमें पिण्डदान करनेसे पितृगण तुष्ट होते हैं। यहांकी वायु अङ्गमें लगनेसे कोटिब्रह्महत्या और अगम्यागमनादि अनित पातक नष्ट हो जाते हैं। (सेतुमा० १०।६६)

पापविनाशनतीर्थ—गन्धमादन पर्वत पर अवस्थित है। इसके स्मरणमात्रसे गर्भवास नष्ट हो जाता है और इसमें स्नान करनेसे वैकुण्ठ प्राप्त होता है। (१०।२०-२२)

सीतासरतीर्थ—गन्धमादन पर्वत पर अवस्थित है। यह पञ्चपापविनाशक है। यहां स्नान करनेसे ब्रह्महत्याके पातकसे मुक्त हो कर मनुष्य देवलोक जानेमें समर्थ होता है। (११ अ० ६४-७६)

मङ्गलतीर्थ—गन्धमादनके एक तरफ अवस्थित। इस तीर्थमें स्नान करनेसे मनुष्य लक्ष्मीवान् होता है। (१२ अ०।७६ ६)

अमृतवापिका—गन्धमादन पर्वतस्थ रामनाथक्षेत्रमें अवस्थित है। यहां स्नान करनेसे मनुष्य शङ्करके प्रसादसे मुक्तिलाभ करता है। पुराकालमें रामचन्द्रने लक्ष्मण, विभीषण और हनुमान्‌के साथ समुद्रके किनारे अमृतवापिकाके समीप बैठ कर रावणवधकी मन्त्रणा की थी।

ब्रह्मकुण्ड—प्राचीनकालमें ब्रह्माने इस स्थानमें यज्ञ किया था। वर्षाकालमें जलपूर्ण हो कर यह एक वृहत् हृदका आकार धारण करता है। ग्रीष्मऋतुमें यह सूख जाता है। सूख जाने पर इसके जो मट्टी निकलती है, वह ब्रह्मकुण्डभस्म कहलाती है। यहां स्नान करनेसे वैकुण्ठ प्राप्त होता और भस्मलेपन या त्रिपुण्ड्रक धारण करनेसे कैवल्य प्राप्त होता है। (१५।१६-२२)

हनुमत्कुण्ड—ब्रह्मवंशसे उत्पन्न रावणको मार कर रामचन्द्र व्यथितचित्त हुए और उन्होंने पाप विमोचनार्थ मुनियोंके उपदेशसे मारुतिको लिङ्गमूर्ति लानेके लिए कैलास भेजा। मारुतिके पूंछमें लपेट कर लिङ्ग लाने पर वह इस कुण्डके किनारे प्रतिष्ठित किया गया। अब भी एक शिला पर इस बातका उल्लेख पाया जाता है और मारुतिमूर्ति तथा पूंछमें लिपटे हुए लिङ्गको चित्र अङ्कित है। इस कुण्डमें स्नान करनेसे महापातक नष्ट होता है। स्नानके बाद उसके तीर पर पुत्रेष्टि-याग करनेसे सत्पुत्रकी प्राप्ति होती है। पितरोंके लिए श्राद्ध तर्पण करनेसे भवबन्धनसे मुक्त हो कर शिवलोकमें गमन हो सकता है। (४१।६५ ७८)

अगस्त्यतीर्थ—अगस्त्य ऋषिने विन्ध्याद्रिको निग्रह करके दक्षिण समुद्रके किनारे आ कर गन्धमादन पर यह पुण्यतीर्थ खोदा था। यह भुक्तमोक्षफलदायक और सर्वाभीष्टफलप्रद है।

रामतीर्थ—रामकुण्ड, रामसर वा रघुनाथसरके नामसे कहा गया है। इस मृत्युविनाशक, महासिद्धिकर, पातकनाशक, भुक्तिमुक्तिफलप्रद, नरकबन्धनाशक और संसार उच्छेदकारक तीर्थ और महालिङ्गकी राम चन्द्रने स्वयं प्रतिष्ठा की थी। यहां स्नान करके लिङ्ग-मूर्तिके दर्शन करनेसे मनुष्यको मुक्ति प्राप्त होती है।

लक्ष्मणतीर्थ—यहां लक्ष्मणेश्वर नामक शिवलिङ्ग विद्यमान हैं। सेतुमाहात्म्यके मतसे इस तीर्थमें स्नान करनेके बाद उक्त महालिङ्गकी अर्चना करनेसे मनुष्य दारिद्र दुःख, रोग और ब्रह्महत्याके पापसे विमुक्त होता है। अपुत्रक व्यक्तिको आयुष्मान्, गुणवान् और विद्वान् पुत्रकी प्राप्ति होती है।

जटातीर्थ—प्रवाद है, कि रावणको मारनेके बाद रामचन्द्रने यहां जटाशोधन किया था। (१०।२४)

यह तीर्थ जन्ममृत्युजरात्मक और अज्ञाननाशक है। छः सहस्र वर्ष गङ्गास्नानका जो फल है, वृहस्पति सिंहस्थ होने पर, सहस्र बार गोमतीमें स्नान करनेसे जो फल होता है, एकमात्र जटातीर्थके दर्शनसे उतना फल प्राप्त होता है। स्नानसे अन्तःकरणकी शुद्धि और ज्ञानलाभके कारण मुक्ति प्राप्त होती है। इसके किनारे प्रेतपिण्ड-दान करनेसे गयाश्राद्धके समान फल प्राप्त होता है।

लक्ष्मीतीर्थ—सेतुमाहात्म्यके २१वें अध्यायमें इसका विवरण लिखा है। सङ्कल्पपूर्वक इसमें स्नान करनेसे मनस्कामना सिद्ध होती है। इस समय यह समुद्रके अन्दर है।

अग्नितीर्थ—सेतुमाहात्म्यके अनुसार रावणके

मारनेके बाद अशोकवनसे सीताको ला कर अग्निपरीक्षाके समय जिस स्थान पर अग्नि आविर्भूत हुई थी, वही अग्नितीर्थके नामसे प्रसिद्ध है। वह पूर्वोक्त लक्ष्मीतीर्थसे लगभग ५ सौ फुटकी दूरी पर है। अब यह समुद्रके अन्दर है। (२ अ०)

चक्रतीर्थ—इसका दूसरा नाम मुनितीर्थ है। महर्षि अहिर्बुध्न गन्धमादनके मुनिकुण्डमें सुदर्शनकी उपासना करते थे। राक्षसों द्वारा मुनिके तपमें विघ्न डाले जाने पर भक्तकी रक्षार्थ सुदर्शनने आ कर राक्षसोंको मार डाला। अहिर्बुध्नकी प्रार्थना पर विष्णुचक्रके मुनितीर्थमें अवस्थितिके बादसे यह स्थान चक्रतीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस तीर्थमें एक वार स्नान करनेसे राक्षस पिशाचादिकी पीडाका नाश होता है। अन्ध, मूर्ख, बधिर, कुब्ज, खञ्ज, पंगु, अङ्गहीन, छिन्नहस्त, छिन्नपद आदि विकृताङ्ग मनुष्य सङ्कल्पपूर्वक इसमें स्नान करे तो अङ्गपूर्णता प्राप्त होती है। (२३ अ०)

शिवतीर्थ—महादेव द्वारा यह तीर्थ निर्मित हुआ था। इसमें एक वार स्नान करनेसे ब्रह्महत्यादि जनित पातक नष्ट होते हैं। (सेतुमा० २४ अ०)

शङ्खतीर्थ—शङ्ख मुनिने नित्य स्नानार्थ कल्पना द्वारा इस तीर्थका निर्माण किया था। इसमें स्नान करनेसे कृतघ्न भी मुक्तिको प्राप्त करता है और माता पिता और गुरुके अपमानादि-जनित पाप भी दूर हो जाते हैं।

गङ्गा, यमुना और गया तीर्थके प्रसङ्गमें सेतुमाहात्म्यमें २८वें अध्यायमें लिखा है, कि रैक्व नामक महर्षि गन्धमादन पर्वत पर तपस्या करके दीर्घायुको प्राप्त हुए थे। वार्द्धक्यके कारण गाड़ी पर चढ़ कर तीर्थोंमें स्नान करनेमें असमर्थ होनेसे उन्होंने गङ्गादि तीर्थमें स्नान करनेकी इच्छासे योगबलसे उन्हें आह्वान किया था। वे भूमि भेद कर जहां जहां मुनिके समीप उपस्थित हुई थीं, वे स्थान एक एक तीर्थरूपमें परिगणित हुए।

कोटितीर्थ—रामचन्द्रने रावणका वध करनेके कारण ब्रह्महत्याके पापसे मुक्त होनेकी आशासे रामेश्वरलिङ्गकी प्रतिष्ठा की। उस लिङ्गके अभिषेकके लिए विशुद्ध जल न मिलनेसे उन्होंने अपने धनुष्कोटिके अग्रभागसे धरणीको छेद कर गङ्गाका स्तव किया, जिससे पृथ्वीमेंसे पुण्यतोया जाह्नवी निकल आई और उसके जलसे स्वप्रतिष्ठित लिङ्गका अभिषेकादि किया। अनन्तर रामने अयोध्या लौटने समय अन्तिम वार इसमें स्नान किया था। तभीसे सब तीर्थयात्री कोटितीर्थमें स्नान करके अवशिष्ट पापसे मुक्त हो कर गन्धमादनको छोडते हैं। (१७ अ०)

श्रीसाध्यामृततीर्थ—भक्तिमुक्तिप्रद और सर्व पापोंसे मुक्त करनेवाला है।

सर्वतीर्थ—इसका दूसरा नाम मानस है। भृगुवंशोद्भव सुचरित ऋषिने सर्वतीर्थ-स्नानके लिए अभिलाषी हो कर देवाधिदेव महादेवकी स्तुति की थी। महादेवने उनके स्तवसे सन्तुष्ट हो कर कहा—

"अस्य तीर्थस्य तीरे त्वं वसन् सुचरित द्विज।
स्नानं कुरुष्व सततं स्मरन् मां मुक्तिदायकम्॥
देशान्तरीयतीर्थेषु मा व्रज ब्राह्मणोत्तम।
अस्य तीर्थस्य माहात्म्यं मामन्ते प्राप्स्यसि ध्रुवम्।
अन्येपि येऽत्र स्नास्यन्ति तेऽपि मां प्राप्नुयुर्द्विज॥"

धनुष्कोटितीर्थ—रामेश्वरसे २४ मीलकी दूरी पर अवस्थित है। लङ्का-विजयके बाद अयोध्या लौटते समय रामचन्द्रने विभीषणकी प्रार्थना पर अपने धनुष्कोटि द्वारा सेतु तोड़ा था, इस कारण इस स्थानका नाम धनुष्कोटि पड़ा। जो व्यक्ति रामकृत धनुष्कोटिकी रेखा देखता है,-उसे फिर कभी गर्भवासकी यन्त्रणा नहीं सहनी पड़ती। यहां सङ्कल्प पूर्वक स्नान करनेसे दक्षिणाबहुल अग्निष्टोमादि यज्ञकी अपेक्षा भी अधिक फल होता है। (३०।७४-९३)

सूर्य पूर्ण मकरस्थ होने पर अर्थात् माघ मासकी सङ्क्रान्तिमें शिवरात्रिको रात्रिको उपवास करके रामनाथकी पूजा करके उसके बाद महोदय और अर्द्धोदय योगमें तथा चन्द्रसूर्योपरागमें इस तीर्थमें स्नान करना सर्वतोभावसे प्रशस्त है।

उपरोक्त तीर्थके सिवा रामेश्वरमें और भी कई उपतीर्थ हैं, जिनके विषयमें सेतुमाहात्म्यमेंसे संक्षेपमें कुछ लिखा जाता है।

क्षीरसर वा क्षीरकुण्ड—देवीपुरके पश्चिममें जिस

स्थानसे रामचन्द्रने सेतुबन्धन प्रारम्भ किया था, वह पुण्यप्रद फुल्लग्रामके निकटस्थ महापातकनाशन क्षीरसर तीर्थ है।

कपितीर्थ—लङ्का जय करनेके बाद लौटते समय श्रीरामके कपिसेनाने इस तीर्थको खोदा था। पीछे कपियोंकी प्रार्थना पर और श्रीरामके वरसे यह तीर्थ महापातक, दरिद्रता और यमपीड़ानाशक हो गया।

(१० अ०)

गायत्री और सरस्वतीतीर्थ—अर्धांगिन सरस्वती और गायत्रीने गन्धमादनमें आ कर रामनाथकी तपस्या की थी। उनके स्नानके लिये जो कूप खोदा गया था, वही महादेवके वरसे तीर्थरूपसे घोषित हुआ।

(सेतुमा० ४०।४१ अ०)

इसके सिवा ४२वें अध्यायमें ऋणमोचनतीर्थ, पाण्डवतीर्थ, देवतीर्थ, सुग्रीवतीर्थ, नलतीर्थ, नीलतीर्थ, गवाक्षतीर्थ, अङ्गदतीर्थ, गज-गवय शरभ-कुमुदतीर्थ विभीषणतीर्थ, ब्रह्महत्या विमोचनतीर्थ, नागकन्यातीर्थ आदि की उत्पत्ति और उनकी पापनाशकताका वर्णन किया हुआ है। उपाख्यानके प्रसङ्गमें उन उन स्थानोंमें एक एक देवमूर्त्ति भी स्थापित है।

उक्त ग्रन्थके ५०वें अध्यायमें सेतुमाधवतीर्थका उपाख्यान लिखा है। मथुरापुरीके राजा सोमवंशोद्भव पुण्यनिधिने रामसेतु आ कर संवत्सरमें रामनाथकी पूजा और महानन्द सम्पादन किया था। उनके इस कार्यसे सन्तुष्ट हो कर भगवान्‌ने भक्तिपाशमें बद्ध हो कर उन्हें दर्शन दिये और लक्ष्मीके साथ उनके निकट निगड़ाबद्ध हुए थे। राजा ने निशीथ स्वप्नमें नारायणको इस प्रकार बंधते देख कर दूसरे दिन प्रातःकाल क्षमा प्रार्थना की थी। भगवान्‌ने उनसे कहा कि तुमने मेरे बनाये हुए सेतु पर मुझे निगड़ाबद्ध किया था इसलिए मैं तुम्हारे भक्तिके वश माधव हो कर यहां अवस्थान करूंगा। तदनन्तर राजाने निगड़बद्ध सेतु माधव मूर्त्तिको शास्त्रोक्त विधाना नुसार प्रतिष्ठा करके पूजाका प्रबन्ध कर दिया। सेतु पर नारायणकी मूर्त्ति स्थापित होनेके कारण वह सेतुमाधव कहलाता है। ४४वें अध्यायमें रावण वधके बाद सीताकी अग्निशुद्धि और ब्रह्महत्याजनित पाप क्षालनार्थ लिङ्गार्चनके लिए रामचन्द्र द्वारा हनुमानको कैलास भेजनेका वर्णन किया हुआ है।

उपरोक्त तीर्थ और उपतीर्थोंमें लगभग सर्वत्र लिङ्ग-मूर्त्ति विद्यमान हैं, जिनमें रामेश्वर मारुतेश्वर जानकी श्वर, लक्ष्मणेश्वर, सुग्रीवेश्वर, नलेश्वर, अङ्गदेश्वर, ब्रह्म-लिङ्ग, विभीषणेश्वर और इत्यादि देवों-कृत लिङ्ग ही प्रधान हैं। कुछ नाम नीचे दिये जाते हैं। १ सुग्रीवतीर्थमें—सुग्रीवेश्वर। २ अङ्गदतीर्थमें—अङ्गदेश्वर। ३ इसके पास ही एक छोटेसे मन्दिरमें मारुतेश्वर हैं। यह हनुमत्कृत मारुतीश्वरसे भिन्न है। ४ जाम्बवतीर्थमें—जाम्बवलिङ्ग (सेतुमाहात्म्य अ० ४५) ५ नलतीर्थमें—नलेश्वर। ६ नील तीर्थमें—नीलेश्वर। ७ रत्नदेवीमार्ग श्रीवैष्णव अमरदास कृत सुमिष्ट जलपूर्ण सुवृहत् कूप पर्वतगङ्गा है और रामनाथके रामस्थलके पास पर्वतगङ्गाकी मूर्त्ति है। ८ उच्च भूमि पर पार्वती-परमेश्वरकी मूर्त्ति है। यही वर्त्तमानमें गन्धमादन है। सेतुमाहात्म्योक्त गन्धमादन नहीं। ९ अमरदास कृत हनुमानजीका मन्दिर और उसके सामने बाल अङ्गदेश्वरका मन्दिर है। १० सौ फुटकी ऊंचाई पर पर्वतशैलके ऊपर रामझरोखा है, उसके ऊपर गुम्बजदार मन्दिर है और नीचेके मञ्च पर राम पादुका है। ११ पाण्डवतीर्थमें—पञ्चपाण्डवोंके नामसे ५ छोटे छोटे जलाशय हैं। धर्मतीर्थके किनारे धर्म-राज द्वारा प्रतिष्ठित पाण्डवेश्वरलिङ्ग है। १२ ब्रह्मकुण्डके पश्चिमतीरके पुराने मण्डपमें नवरात्रिमें रामेश्वरदेव आ कर रहते हैं। इसके बीचमें भी एक क्षुद्र मण्डप है। इस के पास विभूति-मृत्तिका पाई जाती है, जो ब्रह्मकुण्डकी विभूतिके नामसे प्रसिद्ध है। १३ ब्रह्मकुण्डके दक्षिणमें द्रौपदी नामका जलाशय है। १४ भद्रकालीका मन्दिर प्राचीन है और चूना पत्थरसे बना हुआ है। इसमें ७ प्रकोष्ठ हैं। मन्दिरके सामने दो द्वारपालकी बार १०८ ब्राह्मणोंकी मूर्त्तियां हैं। गर्भगृहकी देवीमूर्त्ति अष्टभुजा और महिषमर्दिनी है। पुजारी गरवजातीय हैं। पांचाचार मतसे पूजा करते हैं। नित्यपूजामें बलि नहीं होता। मङ्गल और शुक्रवारको छागबलि और उत्सवादिमें महिष बलि होता है। पाण्मासिक

ध्वजारोहण उत्सवमें पार्वती-परमेश्वरकी मूर्त्ति यहां लाई जाती है। तब ब्राह्मण आ कर अभिषेकादि करते हैं। १५ प्रस्तरसे वेष्टित चतुष्कोणाकृति हनुमत् कुण्ड है। इसके किनारे एक छोटी-सी हनुमानजीकी मूर्त्ति है और उनको पूंछमें लिङ्गमूर्त्ति वेष्टित हैं। यह मूर्त्ति एकादश श्रेष्ठ लिङ्गोंमें एकतम है। १६ अगस्त्यतीर्थ प्रस्तर वेष्टित पुष्करिणी है। यहां अगस्त्येश्वर लिङ्ग विद्यमान है। १७ लक्ष्मीतीर्थ समुद्रका एक घाटमात्र है। १८ अग्नितीर्थ वैदेहीकी अग्निपरीक्षा और अग्नि देवके आविर्भावका स्थान है। यह भी समुद्रतीरवर्त्ती एक स्नानका घाट है, घाटके ऊपर महाकाली और हनुमानजीका मन्दिर है। इन दोनों मूर्त्तियोंका विवरण सेतुमाहात्म्यमें नहीं है। मन्दिरके प्राङ्गणमें बहुतसे कूप हैं और वे सभी महातीर्थ समझे जाते हैं। १९ महालक्ष्मीतीर्थ है और उसके पूर्वमें लक्ष्मी मन्दिर है। इसके बगलसे पार्वती परमेश्वरका मन्दिर है। २० गायत्री, सावित्री और सेतुमाधवतीर्थमें स्नान किया जाता है। सेतुमाधवतीर्थके किनारे पूर्वकथित सेतुमाधव की मूर्त्ति है। २१ एक प्राङ्गणमें नल, नील, गय, गवाक्ष और गवय इस प्रकार पांच तीर्थकूप हैं। प्रत्येक कूपके पास एक छोटेसे मन्दिरमें लिङ्गमूर्त्ति हैं। ये नल-नील-तीर्थ पूर्वोक्त नल-नीलसे पृथक् हैं। २२ गङ्गा, यमुना और गयातीर्थ तथा ब्रह्महत्याविमोचतीर्थ, एक एक पक्का कूप मात्र है। २३ दूसरे एक भागमें शङ्खतीर्थ, चन्द्रतीर्थ और सूर्यतीर्थ है। शेषोक्त दो तीर्थोंका उल्लेख सेतुमाहात्म्यमें नहीं है। २४ शङ्करभूपकृत शङ्करतीर्थ, २५ चक्रतीर्थ, शिवतीर्थ और साध्यामृततीर्थ एक एक कूपमात्र हैं। इन सब तीर्थोंकी पूजा और तर्पण-दानादि करके अन्तमें रामेश्वरका अभिषेक और पूजा की जाती है।

द्वीपके उत्तरांशमें १००० फुट लम्बे और ३५७ फुट चौड़े सुविस्तृत स्थानमें रामेश्वरका मन्दिर बना है। इसकी ऊँचाई १२० फुट है और प्रवेशद्वार वा गोपुरकी ऊंचाई १०० फुट। इसकी सुवृहत् गुम्बज, स्तम्भश्रेणी, दालानोंके शिल्प और प्रतिमूर्त्तियोंको देख कर आश्चर्य होता है। यह द्राविडी शिल्पका चरम निदर्शन है। स्थानीय प्रवाद है, कि काञ्चीपतिने सिंहलसे प्रस्तर मंगाकर उस पर पालिस कराके यह मन्दिर बनवाया था। परन्तु मन्दिरके देखनेसे मालूम होता है, कि उसका श्रेष्ठतम शिल्पनैपुण्ययुक्त चूनापत्थर (Limestone) का बना हुआ अंश उससे भी प्राचीन है। मदुराके एक नायकने धर्मप्रवृत्तिके लिए इसका अभ्यन्तर-प्राकार निर्माण कराया था। उसके बाद दो सेतुपति राजाओंने बहुत अर्थ व्यय करके बाहरका विचित्र चित्रपूर्ण शिल्पमय मण्डप बनवाया था। उन्होंने जिस धूसरवर्ण पत्थरसे यह मण्डप बनवाया था, समुद्रका नमक लग कर घसक जानेके भयसे उन्होंने उस पर मोटा पलस्तर लगवा दिया था। इसका खर्च समुद्र तीरके बन्दरोंसे लिये हुए शुल्कमें-से हुआ था। इस मन्दिरके गठन-कार्यमें और भी एक आश्चर्यकी बात यह है, कि इसका द्वारपथ और चंदोआ ४० फुट लम्बे एक पत्थरसे बना हुआ है और गर्भगृहके चारों ओरकी स्तम्भ श्रेणीयुक्त विस्तीर्ण आगन उससे भी बढ़ कर आश्चर्यजनक है।

इस देवालयकी गठन-प्रणाली सम्पूर्ण द्राविड़ी ढंग-की है। अन्यान्य देवालयकी भांति क्रमशः अङ्गपुष्टि न हो कर समस्त नक्शोंको मानो एकत्र स्थिर करके किसी समय इसका निर्माण हुआ था। इसका वहिःप्राकार २० फुट ऊँचा और ४ गोपुरयुक्त है। पश्चिमका गोपुर सम्पूर्ण बना हुआ है और अन्य तीन असम्पूर्ण अवस्थामें पड़े हुए हैं। प्राकार और बरामदे इस देवालयके प्रधान गौरवके विषय हैं। इसकी लम्बाई लगभग ७०० फुट और चौड़ाई ४०० फुट है। लम्बाईका सारा अंश खुला हुआ है, चौड़ाई वा परिसरकी ओर स्तम्भों पर छत है। छत जमीनसे ३० फुट ऊंची है। यहांके स्तम्भोंका कारुकार्य चिदम्बरके पार्वती परमेश्वरकी कनकसभाकी स्तम्भावलीके शिल्पसे किसी भी तरह कम नहीं है। प्रत्येक स्तम्भ पर नाना प्रकारकी देव-देवी और प्राचीन राजाओंकी मूर्त्तियां खुदी हुई हैं। ऐसा उत्कृष्ट कार्य दक्षिणदेशमें और कहीं भी नहीं है। गर्भगृहके सामने जो बरामदा है, उसके एक तरफ रामनादके राजाओंकी मूर्त्तियां खुदी हुई हैं। पुरातत्त्वविदोंका अनुमान है, कि ईसाकी १६वीं शताब्दीके अन्तिम भागमें वा १७वीं शताब्दीके प्रारम्भमें मदुराके पेरुमल नायकने जब

सुन्दरेश्वरके मन्दिरका पुनः संस्कार और उसके आय तन की वृद्धि की थी, सम्भवतः सेतुपतियोंने उसे देख कर ही रामेश्वरके मन्दिरका यह बड़ा बरामदा, मण्डप और प्राकार बनाया था। इसके बनानेमें कमसे कम पचास वर्ष लग होंगे।

देवालयकी आमदनीसे रामेश्वरके बहुतसे वार्षिक उत्सव हुआ करते हैं, जिनमें १० प्रधान ये हैं:—

१ वैशाखमासकी शुक्ला षष्ठीसे लगा कर दश दिन वसन्तोत्सव।

२ ज्यैष्ठमासकी शुक्ला दशमीको प्रतिष्ठोत्सव।

३ आषाढ़मासके भरणी नक्षत्रमें देवोंका प्रथम ध्वजोत्सव।

४ श्रावणमासमें उत्तर फाल्गुनी नक्षत्रमें पांच दिन तक कल्याण (विवाह) उत्सव।

५ आश्विनमासकी प्रतिपदासे ले कर दशमी तक नवरात्रोत्सव।

६ कार्त्तिकमासकी कार्त्तिकी पौर्णमासीको स्कन्दोत्सव।

७ अग्रहायण मासके भरणी नक्षत्रमें देवोंका द्वितीय ध्वजोत्सव और शुक्ला त्रयोदशीको उत्सवोत्सव।

८ पौष-पूर्णिमाका उत्सव।

९ माघमासमें पञ्चदिवस व्यापी माघोत्सव और शिवरात्रोत्सव।

१० फाल्गुनमासमें महाभिषेकोत्सव।

रामेश्वर अध्वरसुधापणि—हरिहरतारतम्यकाव्यके प्रणेता।

रामेश्वरदत्त—वैशाभचन्द्रिका नामकी पंचान्तसूत्रवृत्तिके प्रणेता।

रामेश्वरलम्ब्री—एक कवि। ये काशीदासकी तरह महाभारतका पद्यानुवाद करके कवि जगत्‌में कीर्त्तिलाभ कर गये हैं। कवि भारतचन्द्रकी तरह इनकी पल्लवित रचना देख ये काशीदासके परवर्त्ती कवि-सा बोध होते हैं।

रामेश्वर न्यायवागीश—प्रदीपमञ्जरी नामक अमरकोषकी टीकाके रचयिता।

रामेश्वर भट्ट—१ रसराजलक्ष्मी नामक वैद्यक ग्रन्थके प्रणेता तथा विष्णुके पुत्र। २ विवेकमार्त्तण्ड नामक योगशास्त्रके रचयिता। इन्होंने सुलतान गयासुद्दीनके आमहसे उक्त ग्रन्थ लिखा। ३ पदार्थादर्शके प्रणेता। ४ धर्मरत्नाकरके रचयिता। ५ भोजप्रबन्ध वर्णित एक कवि।

रामेश्वर भट्टाचार्य—एक साधक बङ्गाली ब्राह्मण। इन्होंने शिवायन, कपिलामङ्गल सत्यनारायण आदि बनाये। ये वाक्‌सिद्ध पुरुष कह कर जनसाधारणमें परिचित थे। इनके प्रपितामहका नाम नारायण, पितामहका गोवर्द्धन तथा पिताका लक्ष्मण और माताका नाम रूपवती था। घांटालके निकटवर्ती बरदा परगनेके अन्तर्गत यदुपुरमें इनका जन्म हुआ।

यदुपुरमें रहते समय इन्होंने 'सत्यपीरकी कथा' लिखी। इसके बाद मेदिनीपुरके अन्तर्गत कर्णगढ़के राजा रामसिंह और उनके लड़के यशोवन्तसिंहके सभासद हो वहां आ कर रहने लगे।

फिर किसी किसीका कहना है कि यह यशोवन्त सरफराज खांके प्रतिनिधि गालिब अलीके साथ १७३४ ई०में ढाकाके दीवान हो कर आये। दीवान होनेके पहले इन्होंने मुर्शिदकुलीके अधीनमें भी बड़ी प्रतिपत्ति पाई थी।

राजाके आदेशसे ये कांसाई तीरवर्त्ती अपने ननिहालके पासवाले गांवमें रहने लगे। इसी कंसावती तटकी इन्होंने कौशिकी तट नामसे वर्णन किया है। यहां और कर्णगढ़के अन्तर्गत महामाया दुर्गामन्दिरमें इनका पञ्च मुण्डी योगासन था। देहत्यागके बाद मन्दिरके पास इनकी समाधि हुई और उसकी बगलमें यशोवन्त सिंह की भी समाधि हुई थी।

रामेश्वरभारती—किरणकुतूहली नामकी दीपिकाके रचयिता।

रामेश्वर मैथिल—मिथिलावासी एक प्राचीन कवि।

रामेश्वर योगीन्द्र—मयार्णवपद्धति नामक तन्त्रग्रन्थके प्रणेता।

रामेश्वर शर्मन्—१ तन्त्रप्रमोदके रचयिता राममन्त्रके पुत्र। २ शब्दमाला नामक अभिधानके प्रणेता।

रामेश्वर शास्त्री—१ सुवर्णालङ्कारप्रभाके प्रणेता। २ विहार यापी नामक मीमांसा ग्रन्थके रचयिता। ये सुब्रह्मण्यके

पुत्र थे। उक्त ग्रन्थमें माधव सर्वज्ञका उल्लेख है। ३ अद्वैततरङ्गिणीके प्रणेता।

रामेश्वरशिवयोगिभिक्षु—मीमांसार्थसग्रहकौमुदी और शिवाष्टमूर्त्ति तत्त्वप्रकाशके प्रणेता। ये सदाशिव सरस्वती के शिष्य थे।

रामेश्वर शुक्ल—दत्तकचन्द्रिका टीका, दीक्षाविनोद और दीक्षाविवेकके रचयिता।

रामेषु (सं० पु०) १ रामशर, सरकंडा। २ रामचन्द्रका वाण। ३ इक्षु भेद, एक प्रकारकी ईख।

रामोत्तरतापनीय—रामतापनीयोपनिषद्का द्वितीय खण्ड।

रामोद (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम। (पा० ४।१।११०)

रामोदायन (सं० पु०) रामोदके गोत्रमें उत्पन्न एक पुरुष।

रामोपनिषद् (सं० स्त्री०) अथर्ववेदके अन्तर्गत एक उपनिषद्का नाम।

रामोपाध्याय (सं० पु०) एक आचार्यका नाम।

रामोपासक—राममन्त्रोपासक सम्प्रदायभेद। रामात् देखो।

राम्भ (सं० पु०) रम्भस्य विकारः रम्भ (पलाशादिभ्यो वा। पा ४।३।१४१) इति अण्। व्रतमें बाँसका बनाया हुआ दण्ड।

राम्या (सं० स्त्री०) १ रमणके लिये लाई गई। "स इयान उपसो राम्या" (ऋक् २।२।८) 'राम्या रमणहेतुभूता।' (सायण) रात्रि, रात।

राय (सं० पु०) १ राजा। २ छोटा राजा या सरदार, सामन्त। ३ सम्मानसूचक उपाधि। ४ रायवेंत देखो। ५ भाट, वंदीजन। गन्धर्वोंकी उपाधि।

राय (फा० स्त्री०) सम्मति, सलाह।

राय—वम्बई प्रेसिडेन्सीके ठाना जिलेके शालसेट उपविभागान्तर्गत एक वन्दर। यह घोर वन्दर परमिटके अन्तर्भुक्त है।

राय—१ पञ्जाव प्रदेशके शियालकोट जिलेकी एक तहसील। यह इरावती नदीके दोनों किनारों तक विस्तृत है। भूपरिमाण ४७६ वर्गमील है।

२ उक्त तहसीलके अन्तर्गत एक गण्डग्राम और विचारसदर।

रायक—आसामप्रदेशके गारो पहाड जिलान्तर्गत एक बड़ा गाव। यह सोमेश्वरी नदीके तट पर अवस्थित है। यहां पुलिसकी फाडी है। इस गांवमें मछुओंकी ही संख्या अधिक है।

रायका—वम्बई प्रदेशके रेवाकान्था विभागान्तर्गत एक छोटा सामन्त राज्य। यह वर्त्तमान दो सरदारोंके अधिकारमें है। ये वड़ोदाके गायकवाड़को वारह हजार रुपये कर देते हैं।

रायकोट—पञ्जावप्रदेशके लुधियाना जिलेकी जगरायन तहसीलके अंदर एक नगर। यह अक्षा० ३०° ३९´ उ० तथा देशा० ७५° ३६´ पू०के मध्य अवस्थित है। जनसंख्या १०१३१ है। पहले यहां एक सामन्तराज्यकी राजधानी थी। इस नगरमें इतिहास प्रसिद्ध रायकोटके रायवंश राज्य करते थे। ये जातिके राजपूत थे। पीछे इन्होंने इसलामधर्म ग्रहण किया। १४वीं सदीमें इनकी शौर्यवीर्यकी ख्याति चारों ओर फैल गई।

१२२३ ई०में इस वंशके प्रतिष्ठाता तुलसीदास नामक एक राजपूत जयशालमीरसे फरिदकोट आ कर रहने लगे। पीछे इसलामधर्ममें दीक्षित हो कर इन्होंने अपना नाम शेख चाच्छू रखा। इन्होंके वंशधर शाहजहानपुर और तालवन्दी नगर वसा कर अपना प्रभुत्व विस्तार कर गये। सम्राट् अलाउद्दीनने (सैयदराज १४४५से १४९४ ई०) उन्हें रायकी उपाधि दी। १६२० ई०में उन्होंने लुधियाना अपने कब्जेमें कर राज्यशासन फैलाया। १८वीं सदीमें उनकी राज्यसीमा शतद्रुके दोनों पार तक फैल गई।

सिख शक्ति ह्रास हो जाने पर भी यहांके रायराजे १९वीं सदीके प्रारम्भकाल तक अपना राज्याधिकार अक्षुण्ण रखनेमें समर्थ हुए थे। इसी समय इन्होंने हरियानाके विख्यात वीर और सौभाग्यन्वेषी अंगरेज-युवक जार्ज टामसकी सहायता ली थी। १८०२ ई०में यहांके शेष स्वाधीन राजा राय इलायस इस लोकसे चल वसे। इसके वाद इनकी माता नूर-उल्-निसार के हाथ राज्यशासनका भार पड़ा।

१८०६ ई०में महाराज रणजित् सिंह नाभा और झिन्द-पतिको पतियालाराज्यके विरुद्ध सहायता करनेके लिये

राव पार कर रायकोट आ पहुंचे। उन्होंने रानी नूर-उन्निसाको हरा कर उनका राज्य अपने और सहचरोंके बीच बांट दिया। नूरउन्निसाको रायकोट तथा अपरा पर राजवंशधरोंको बहुत थोड़ी जागीर मिली। १८३१ ई०में नूरउन्निसाके मरने पर राव इमामबख्शकी विधवा पत्नी बची गुजा सम्पत्तिकी उत्तराधिकारिणी हुई। १८५४ ई०में जब उनकी मृत्यु हुई, तब अंगरेज राजकी आज्ञानुसार दत्तक पुत्र इमामबख्श खांको रायकी उपाधि और उक्त सम्पत्ति मिली। रायकोट और मात्ता राजवंशके अतिरिक्त ये अंगरेज-गवर्मेण्टसे सालाना दो हजार रुपये पाते थे।

यहां एक वर्नाक्युलर हाइ मिडिल स्कूल है जिसका व्यय म्युनिसपलिटीसे चलता है। अलावा इसके यहां एक गवर्मेण्ट अस्पताल भी है।

रायकोट्टा—मान्द्राजमें सिलेम्सके सालेम जिलेके कृष्णगिरि तालुकके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० १२ ३१´ उ० तथा देशा० ७८ ५´ पू०के बीच पड़ता है। १८४१ ४८ ई०के दुर्भिक्ष तक पेनसन पानेवाले सेनाविभागके बड़े बड़े कर्मचारी यहां सुखमय स्वास्थ्यवास बना कर रहते थे। पीछे महामारीके प्रबल आवेशसे अधिक अधिवासी घर बार छोड़ कर भाग गये।

इस नगरके उत्तर रायकोट्टा गिरिदुर्ग है जो चार महल दुर्गोंमें एक है। आज कल उसमें अंगरेज सैन्य रखे गये हैं। इसी दुर्गके समीप जलमग्नाराम गिरिसङ्कट है। १७९१ ई०में लार्ड कर्णवालिसकी विख्यात दाक्षिणात्ययात्राके समय मेजर गाउडाल इस पर दखल जमाया। १७९२ ई०की सन्धिके अनुसार यह अंगरेजोंके अधिकारमें आया। १७९९ ई०में श्रीरङ्गपत्तन अभियान कालमें जेनरल हारिसके अधीनस्थ अंगरेज सेनादलने दुर्गके पास छावनी डाला थी। समुद्रकी तहसे २४९६ फुट ऊंचा इस दुर्गका एक सायबेयर भाग भी मौजूद है।

रायकरौंदा (हिं० पु०) बड़ा करौंदा, इसके फल छोटे बेरके बराबर, सफेद और गुलाबी रंग लिये बहुत सुन्दर होते हैं।

रायकवाल (हिं० पु०) वैश्योंकी एक जाति।

रायगञ्ज—दिनाजपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५ ३७ उ० तथा देशा० ८८ ८ पू०के बीच कुलिक नदीके तट पर अवस्थित है। जनसंख्या ५०१ है। यहां चावल, पाट और भिन्न भिन्न अन्न आदिका विस्तृत कारबार है। अधिकतर यहांकी उपजकी रफ्तनी नदी द्वारा ही होती है।

रायगढ़—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलान्तर्गत देशी सामन्तराज्य। यह अक्षा० २१ ४३ से २२ ३३´ उ० तथा देशा० ८२ ५७´ से ८३ ४८´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १४८६ वर्गमील है। इसके उत्तरमें छोटा-नागपुरके अन्तर्गत जशपुर और गाङ्गपुर राज्य, दक्षिणमें महानदी, सम्बलपुर जिला कोशागाण जमींदारी और गाङ्गपुरका कुछ भाग और पश्चिममें चन्द्रपुर और शक्ती पड़ता है।

दक्षिणमें महानदी तक विस्तृत स्थानमें उत्तमरूपसे खेतीबारी होती है। उत्तर और पूर्व पहाड़ों और जंगलोंसे घिरा हुआ है। इन जंगलोंमें अधिक शालके पेड़ पाये जाते हैं। कहीं कहीं दैवनके झाड़, लाख और धूना उगता है। महानदी तथा उसकी शाखा, मांड और केलु नामकी तीन शाखा इस राज्यकी जलसरबराहका एकमात्र उपाय है। चावल, ईख, कपास, सरसों, गेहूं और चना यहांका प्रधान उपज है। कपास और तसरसे यहां एक तरहका कपड़ा तैयार होता है। यहां लोह और कांसके बरतनोंका सामान्य कारबार भी है। बंगाल नागपुर रेलवेका सड़क इस सामन्तराज्यके बीचो बीच हो कर चौड़ गई है।

यहांका सरदार-वंश गोंड़ जातीय है। कहते हैं, कि इस वंशके ठाकुर दरियावसिंह नामक एक व्यक्तिने मराठोंको खासा मदद पहुंचाई थी जिससे उन्हें राजाकी उपाधि मिली। यहांके वर्तमान सरदार भूपदेव सिंह हैं। इनका जन्म १८६६ ई०में हुआ था तथा १८९४ ई०को गद्दी पर बैठे।

रायगढ़के सामन्तराजके अधीन और भी चार सरदार हैं उनमेंसे अनजार सिंह १२, अमर सिंह ५, ठाकुर रघुनाथ सिंह ३० तथा ठाकुर परमेश्वरसिंह ३० गांवका शासन करते हैं। ये सबके सब राजाके आत्मीय हैं। जनसंख्या १७४९२९ है। इस सामन्तराज्यमें राम

गढ नामका एक शहर और ७२१ गांव लगते हैं । यहां कुल मिला कर २४ स्कूल हैं जिनमें इंगलिश और वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल और दो कन्या पाठशाला है। यहां एक अस्पताल है जिसका खर्चा वर्चा रायगढ़ शहरसे चलता है ।प्रतिवर्ष यहां २७०००से अधिक रोगियोंकी चिकित्सा हुई थी ।

२ उक्त राज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २१° ५४´ उ० तथा देशा० ८३° २४´ पू० केलो नदीके किनारे अवस्थित है। जनसंख्या ६७६४ है। यह कलकत्तेसे ३६३ मील दूर बंगाल नागपुर रेलवे लाइन पर पड़ता है। इस नगरमें तसरका कारबार जोरों चलता है। यहा एक अंगरेजी स्कूल, एक प्रायमरी स्कूल, एक कन्या पाठशाला और एक अस्पताल है ।

रायगढ़—वम्बई-प्रेसिडेन्सीके कोलाबा जिलान्तर्गत एक एक नगर और गिरिदुर्ग। यह अक्षा० १८° १४´ उ० तथा देशा० ७३° २७´ पू०के मध्य पूनासे तीस मील दक्षिण-पश्चिम पड़ता है। इसकी चोटी समुद्रपीठसे २४५१ फुट ऊंची है। लोग इसे रायरी कहते थे। अंगरेजोंने इसका नाम Gibralter of the East रखा। महाराष्ट्रकेशरी शिवाजीने अपने राज्यकालका शेष सोलह वर्ष (१६६४-८०) इसी दुर्गमें रह कर विताया था। उस समय रायगढ़ राजधानी नाना श्रीसमृद्धिमें भूषित थी।

सह्याद्रिके उत्तरघाटशैलके एक टूटे फूटे खड पर दुर्ग स्थापित है। इसकी अधित्यकाभूमि और मूल पर्वतकी चोटी दो मीलके फासले पर है। जहां यह दुर्ग अधिष्ठित है उसकी अधित्यकाभूमि पूर्व पश्चिम डेढ़ मील लम्बी और उत्तर-दक्षिण एक मील चौडी है। भीतर जानेके लिये पश्चिम और दक्षिणमें सिर्फ दो दरवाजे हैं। इसके सिवा दुर्गमें घुसनेका और कोई रास्ता नहीं है। दुर्गका दक्षिण और पूर्व पर्वतगात्र इतना सीधा और ऊंचा है, कि उसे पार कर ऊपर उठना मुश्किल है। इन तीन दिशाओंके रक्षणार्थ किसी प्राचीर और परिखेकी आवश्यकता नहीं पड़ती। दाक्षिणात्य और समुद्र उपकूलमें जाने आनेकी सुविधा रहनेसे यह दुर्ग पहले होसे प्रसिद्ध था।

१२वीं सदीमें रायरीमें एक महाराष्ट्र सामन्तवंशका राज्य प्रतिष्ठित था। १४वीं सदीमें यहांके सरदारोंने विजय-नगराधिपकी वशता स्वीकार कर ली। १५वीं सदीके मध्यभागमें द्वितीय वाह्मणीराज अल्लाउद्दीन शाहने रायरी सरदारोंसे कर वसूल किया था। १४७९ ई०में यह नगर अहमदनगरके निजामशाही राजाओंके दखलमें आया। १६३६ ई०में मुगल-सेनापतिने अहमदनगरसे राजाको पराजित कर रायरी राज्य बीजापुरके आदिल शाही राजाओंके हाथ सौंप दिया। जब बीजापुरराजवंशके अधिकारमें यह स्थान आया, तब इसका नाम इसलामगढ़ हो गया। उन्होंने इस सामतराज्यका शासनभार जंजिरावासी सिद्दियोंके ऊपर दिया। उस समय यहां एक दल मराठी सेना रखी गई।

१६४८ ई०में रायरी शिवाजीके हाथ आया। उन्हें जब कोई उपयुक्त स्थान न मिला तब उन्होंने यहीं राजधानी कायम की और इसका नाम बदल कर रायगढ़ रखा। उन्हींके यत्नसे यहां राजप्रासाद, खजाना, राजकीय कार्यालय, टकसाल, शस्यभाण्डार, अस्त्रागार, वारूदखाना, सेनावास आदि तीन सौ पत्थरकी अट्टालिका बनी थी। इन्होंने अपनी पहाड़ी प्रजाओं और कर्मचारियोंके खान-पानकी सुविधाके लिये एक बड़ा बाजार और जलकी सुविधाके लिये बहुतसे तालाव बनाये थे। जब यह स्थान धन और जनसे पूर्ण हो गया, तब उन्होंने इसकी सुरक्षाका बन्दोवस्त कर दिया।

१६६४ ई०में शिवाजीने सूरत लूटा और उसी लूटके धनसे अपना खजाना भरा तथा बहुतसे कामोंमें रुपये खर्च कर रायगढ़ नगर राजधानीको उपयुक्त समृद्धिशाली बना दिया था। उक्त वर्षमें जब इनके पिताकी मृत्यु हुई तब ये रायगढ आये और राजाकी उपाधि ले कर इन्होंने अपने नामका सिक्का बनवा कर प्रचार किया। १६७४ ई०में इस रायगढ़में इन्होंने बड़े समारोहके साथ स्वाधीन भावसे राज्याभिषेक सम्पन्न किया था।

१६९० ई०में औरंगजेबने रायगढ़ जीता, पर मुसलमानोंकी शक्ति ह्रास हो जाने पर वह फिर मराठोंके हाथ आया। अप्रिल महीनेमें अंगरेजसैन्यन रायगढ़ पर

हमला किया। फलाफल गिरिदुर्गने १८ दिन तक अनवरत गोला बरसानेके बाद यह दुर्ग अंगरेजोंके हाथ आया था। इस दुर्गके ध्वंसावशेषमें पांच लाख रुपये मिले थे।

रायगढ़—अयोध्याप्रदेशके प्रतापगढ़ जिलान्तर्गत एक नगर। यह विहारसे छः मील दूर पड़ता है। यहां तीन हिन्दूमन्दिर और एक मसजिद है।

रायगुड़—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके विजागापत्तन जिलेके जयपुर जमींदारीके अन्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यह अक्षा० ११ १´ ४० उ० तथा देशा० ८३ २७´ १०´´ पू० तक विस्तृत है। जयपुरके राजाका एक प्रासाद यहां था। अभी राजा यहां नहीं रहते। यहां आज कल उत्कल ब्राह्मणों की ही वास अधिक है।

रायचटी—१ मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके कड़ापा जिलान्तर्गत एक तालुक। यह अक्षा० १३ ५०´ से १४ २०´ उ० तथा देशा० ७८ २५´ से ७९ १०´ पू०के बीच पड़ता है। भूपरिमाण ६६८ वर्गमील है। इस उपविभागका अधिकांश स्थान ही पर्वतमय है। तालुकमें रायचटी नाम का एक शहर और ८७ गांव लगते हैं।

२ उक्त उपविभागका सदर और जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १४ ४ उ० तथा देशा० ७८ ४५´ पू०में माण्डवी नदीके उत्तर किनारे अवस्थित है। यहां हर साल रथयात्रा उत्सवमें मेला लगता है जिसमें लगभग छः हजार मनुष्य जुटते हैं।

रायचूड़—हैदराबादके अन्तर्गत एक जिला। यह अक्षा० १५ ५०´ से १६ ५४´ उ० तथा देशा० ७६ ५०´ से ७८ १५´ पू० तक विस्तृत है। भूपरिमाण ३३०४ वर्गमील है। इस जिलेमें ये सब मुख्य शहर हैं,—रायचूड़, गद्वाल, कोपाल, मुद्गल, देवदुर्ग, कप्पूर और मानभी। जनसंख्या ५०१२७१ है, जिसमें हिन्दूकी संख्या सैकड़े पीछे ९० है। यहांकी भाषा तेलगू कनाड़ी और उर्दू है। रायचूड़ तिजारतका केन्द्र है। यहां सूता कपड़े और आलमपुर तालुकमें सतर जी और तरह तरहके रंगीन कपड़े तैयार होते हैं। यह जिला सात सब डिवीजनोंमें विभक्त है।

रायचूड़—दाक्षिणात्यके निजामअधिकृत हैदराबादका एक नगर और दुर्ग। यह अक्षा० १६ १२´ उ० तथा देशा० ७७ २१´ पू०में कृष्णा और तुंगभद्रा नदीके ठीक बीचमें अवस्थित है। जनसंख्या २२१६५ है, जिनमें हिन्दूकी ही संख्या सबसे अधिक है, नगरके बीच दुर्गकी शोभा बड़ी ही सुन्दर है और बड़ी उल्लेखके योग्य है। दुर्गके पश्चिम द्वार थोड़ी दूर पर प्राचीन राजप्रासादका टूटा फूटा अंश हर पड़ा है जो अभी कारागारमें परिणत हो गया है। दुर्ग के पूरब नगर और बाजार हैं। नगरका पथ घाट और अट्टालिका आदिको गठन बड़ी ही सुन्दर है। कातके तकी और मसण वस्त्रादिके लिये यह स्थान बड़ा मशहूर है। ग्रेट इंडियन पेनिनसुलार और मन्द्राज रेलवे-स्टेशन नगरसे आध कोस पड़ता है।

रायज (अ० वि०) जिसका रवाज हो, जो व्यवहारमें आ रहा हो, चलनसार।

रायडाक—उत्तर बंगमें प्रवाहित एक नदी। यह भूटान पर्वतसे निकलती है और पश्चिम द्वारके बीच होती हुई जलपाईगोड़ी और कुचबिहारके समीप हो कर कुचविहार में घुसती है।

रायण (सं० क्ली०) १ पीड़ा। २ क्रन्दन, रोना। ३ चीत्कार।

रायपेन्द्र सरस्वती—प्रश्नोपनिषद्भाष्यकी भाष्यविवरण नामक टीकाके प्रणेता। ये कैवल्यानन्दके शिष्य थे।

रायता (हिं० पु०) दही या मट्ठे में डूबा हुआ साग, कुम्हड़ा, लौआ या बुंदिया आदि जिसमें नमक, मिर्च, जीरा आदि मसाले पड़े रहते हैं।

रायदुर्ग—१ मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके बेलारी जिलान्तर्गत एक तालुक और उपविभाग। यह अक्षा० १४ २४´ से १५ ४ उ० तथा ७६ ४४´ से ७७ २१ पू० तक विस्तृत है। जनसंख्या ८२७८६ है। इस तालुकमें सिर्फ एक शहर रायदुर्ग और ७१ गांव लगते हैं। यहांकी जनसंख्या और सब तालुकोंसे जो इस जिलेमें है, कम है। आधे से अधिक मनुष्य तेलगू और बाकी कनाड़ी भाषा बोलते हैं। यहांके लोग बिलकुल अनपढ़ हैं। इस तालुकमें बहुत कुए और झरने हैं जो साल सालमें खोद कर निकाले जाते हैं। बहुत जमीन रहनेसे सींची जाती है इससे धान बहुतायतसे उपजता है। कुछ जमीन ऊसर भी है।

२ बेलरी जिलेका एक नगर। यह अक्षा० १४ ४२ उ० तथा देशा० ७६ ५१ पू०में अवस्थित है। जनसंख्या १०४८८ है। यह नगर साफ सुथरा सुन्दर तौरसे सजा हुआ और दुर्ग द्वारा सुरक्षित है। पास ही एक गिरि-दुर्ग है जिसकी ऊंचाई १२०० फुट है। इस पर्वतकी दक्षिण दिशा सरल और दुरारोह है। नीचे केल्ला परिखा प्राचीर और वप्रादिसे सुरक्षित है। यहांसे पहाड़ काट कर एक संकीर्ण पथ निकाला गया है जो केल्ला तक चला गया है। पथके बीच बीचमें एक एक भीतर घुसनेका द्वार है और प्रत्येक द्वारके बाद ही दुर्गकी सुरक्षाका स्वतन्त्र बन्दोबस्त है। इस पथका आधा आने पर पलेगार-सरदारोंका प्राचीन प्रासाद दिखाई पड़ता है। साधारणका विश्वास है, कि १६वीं सदीके प्रारम्भमें यह प्रासाद बनाया गया था। राजप्रासादके समीप ही राम और कृष्णके दो सुन्दर मन्दिर हैं। इसके अलावा पर्वतके ऊपर अनेक अट्टालिका और उद्यान आदिका ध्वंसावशेष पड़ा हुआ है। अभी वहां कोई नहीं रहता।

रायदुर्गके प्राचीन पलेगारगण 'दोया' कहलाते हैं। इस वंशके जग नामक एक सरदारने उपरोक्त दुर्ग और राज प्रासाद बनवाया था। १६वीं सदीके अन्तमें विजयनगरराजके पदच्युत किसी प्रधान सेनापतिके वंशधरने यहांके पलेगार सरदारको गद्दीसे उतार दिया और निकटवर्ती कोण्डेरपि दुर्ग जीत कर दोनों जगह अपना आधिपत्य फैलाया। १७३६ ई०में शीरा अवरोधके समय पलेगारोंको हैदरअलीने सहायता पहुंचाई और आप राजा हो कर पलेगार सरदारको यह स्थान उपहारमें दिया था, तथा उक्त सम्पत्तिका राजस्व पचास हजार रुपये धार दिये। इसके बाद पलेगार-वेङ्कटपति नायडोने टीपू सुलतानको अदोनीकी चढ़ाईमें सहायता देना नामंजूर कर दिया, जिससे टीपूकी क्रोधाग्नि धधक उठी और राय दुर्ग पर हमला कर पलेगार सरदारोंको श्रीरङ्गपत्तनमें बन्दी कर ले आये। यहां वेङ्कटपति उनको आज्ञासे ग्रमपुर भेज दिये गये। इसके कुछ काल बाद ही लार्ड कर्णवालिसने राय-दुर्ग पर चढ़ाई कर दी और दुर्ग अपने कब्जेमें कर लिया।

१७९९ ई०में वेङ्कटपतिके भांजे गोपाल नायक श्रीरङ्गपत्तनसे कारामुक्त हो कर राय दुर्ग भाग आये और शीघ्र ही एक दल सेना इकट्ठी कर रायदुर्ग अधिकार करनेमें लगे। इसी समय निजामने रायदुर्गका सुशासन और बन्दोबस्त करनेके लिये महम्मद अमीन खांको भेजा। निजामकी सेना और गोपालमें मुठभेड़ हुई। गोपाल हार खा कर बन्दीरूपमें हैदराबाद भेजे गये। अंगरेजोंके हाथमें आनेके बाद गोपाल गूटीमें नजरबन्द रहे। उनके जीते तथा मरने तक भी अंगरेज राजने उनके परिवारको मासिक दरमाहा दिया था।

रायदुर्लभ—बंगालके इतिहासमें प्रसिद्ध एक कायस्थ राजपुरुष। इनका असली नाम महाराज दुर्लभराम सोम था। ये दक्षिण-राढ़ीय कायस्थ थे।

मिरजा महम्मदके दो पुत्र थे—हाजी अहमद और मिरजा महम्मद अली। मिरजा अहमद अली छोटे थे। इन्होंने पीछे सूबा बंगालकी गद्दी पर अधिकार कर लिया था और 'अलीवर्दी मुहब्बत जंग' उपाधि धारण की थी।

सुजा उद्दीन् खांके अनुग्रहसे अलीवर्दी असुरेश्वर नामक उड़िष्याके एक परगनेके तहसीलदारोंके काम पर नियुक्त हो कर जानकीराम सोम नामक एक उच्चवंशके कायस्थको अपने नीचे पेशकार नियुक्त किया। जानकीराम थोड़े ही दिनोंमें अपनी कार्य-कुशलता, बुद्धिमत्ता और विश्वस्तताके कारण अलीवर्दीके विशेष प्रियपात्र हो गये। अलीवर्दीकी पदोन्नतिके साथ-साथ जानकीरामकी भी पदोन्नति होने लगी, क्योंकि अलीवर्दी जानकीरामको सर्वदा अपने पास रखना पसन्द करते थे।

मुर्शिदाबादके निकटवर्ती गड़िया नामक स्थानमें सरफराज खांके पराजित और मारे जाने पर अलीवर्दी बंगाल, बिहार और उड़िष्याके सूबेदार हुए। अलीवर्दी जानकीरामको कभी अपनेसे दूर न रखते थे। जानकीराम मुर्शिदाबादकी निजामतके सब कामोंके मुख्तार नियुक्त हुए। थोड़े ही दिनोंमें अलीवर्दीने उन्हें कर विभागका दीवान बना दिया।

१७२० ई०में दिल्लीके बादशाह महम्मदशाह दाक्षिणात्यको 'चौथ' देनेका वचन दे कर प्रबल पराक्रान्त मराठों

के साथ सन्धि करनेको बाध्य हुए थे। चौथ देना स्वीकार करने पर भी बादशाह मराठोंको पूरे रुपये न दे सके। इधर अलीवर्दीने भी बादशाहकी अनुमतिके बिना सूबा बंगाल पर अधिकार कर लिया था इस लिये बादशाहने बंगालसे चौथ वसूल करने और अलीवर्दीको दमन करनेके लिए मराठोंको अनुमति दे दी। इस चौथ वसूलीके बहाने इन्होंने बंगालकी प्रजा पर अत्याचार करना और लूटना शुरू कर दिया। अलीवर्दी खाँ उचित उपायसे इसका प्रतीकार न कर सके और इसलिए उन्होंने असत् उपाय अवलम्बन करनेकी ठान ली। उन्होंने सन्धिका प्रस्ताव करके जानकीरामको महाराष्ट्र सेनापति भास्कर पण्डितके शिविरमें भेजा। जानकीरामके वाक्य कौशलसे मुग्ध हो कर भास्कर पण्डित अलीवर्दी खाँसे संधिकी बातचीत तय करनेके लिए उनसे साक्षात् करनेको तैयार हो गये। दोनों पक्षोंकी सम्मतिसे वर्द्धमान जिलेके मानकर नामक स्थान साक्षात्के लिए तय हुआ। मराठोंको अपने कब्जेमें पा कर किस तरह उन्हें मार डालना होगा इस बातका इन्तजाम अलीवर्दीने पहलेसे ही ठीक कर रखा था। उन्होंने जानकीराम, मुस्तफा खाँ और मिरजा हकीम-बेग खाँके सिवा यह बात किसीको जाहिर नहीं की थी। तम्बूमें प्रवेश करते ही मुस्तफा खाँ और नवाबके अन्यान्य सेनापतियों ने चारों तरफसे मराठों पर आक्रमण किया। भास्कर पण्डितका मस्तक अलीवर्दी खाँके सामने पेश किया गया। सेनापतिकी मृत्युसे मराठा सेना कटोआ छोड़ कर भाग गई। जानकीरामकी मन्त्रणापटुतासे कुछ समयके लिये अलीवर्दी खाँने मराठोंके उपद्रवसे निस्तार पाया। इस कारण जानकीरामको "दीवान ए तन" की उपाधि प्रदान की गई और कुछ ही समय बाद उन्हें समरविभागका प्रधान दीवान बना दिया गया।

उस समय सिराज उद्दौलाकी उमर ज्यादा न थी। अलीवर्दी खाँ उस तरुणवयस्क युवकको इतना बड़ा राज्य सौंप कर निश्चिन्त न थे। उन्होंने अपने प्रधान विश्वस्त कर्मचारी और प्रिय मन्त्री जानकीरामको विहारका नायब सूबेदार नियुक्त किया। जानकीरामको इस उपलक्षमें सम्मानसूचक ख्यालखार पालकी और नौबत प्राप्त हुई। यद्यपि जानकीराम सिराज उद्दौलाके अधीन थे, तथापि राज्यशासनका भार असलमें उन्हीं पर था।

जानकीरामने इस उच्च पद पर नियुक्त हो कर विशेष प्रशंसाके साथ कार्य चलाया था। उन्होंने अवाध्य जमींदारोंका दमन किया था और तहसीलका अच्छा इन्तजाम करके कर अच्छी तरह वसूल करने लगे। विहारमें बादशाहके दरबारके उमरावोंकी जो जायदाद थी, उसका लगान उन्हें न मिलता था। जानकीराम सब तहसील वसूल करके नियमितरूपसे दिल्ली भेजने लगे। इससे उमराव उन पर बहुत खुश थे और मौका पाते ही बादशाहसे उनकी कार्यदक्षताकी प्रशंसा करते रहते थे। बादशाहने जानकीराम पर प्रसन्न हो कर उन्हें महाराज बहादुरका खिताब और "छःहजारी" मनसबदारी तथा ख्यालखार पालकी, नौबत, कलम, शमशेर, ढाल और चामर इत्यादि व्यवहार करनेका आदेश दिया। दुर्लभराम इन्हीं महाराज जानकीरामके ही ज्येष्ठपुत्र थे।

दुर्लभरामने योग्य पिताकी देखरेखमें थोड़ी ही उमरमें तत्कालीन राजनैतिक विषयोंमें अभिज्ञता प्राप्त कर ली थी। नवाब अलीवर्दी महाराज जानकीरामके पुत्रोंको हमेशा स्नेहकी दृष्टिसे देखते थे। इस बात पर भी नवाबका लक्ष्य था, कि उन सबको पदोचित कार्य मिले। जानकीरामके कौशलसे मराठोंके उपद्रवसे देशकी रक्षा होने पर नवाबने दुर्लभरामको उड़िष्याका सूबेदार बनानेका अभिप्राय प्रकट किया, किन्तु उस समय दुर्लभराम उक्त पद ग्रहण करना अङ्गीकार नहीं किया। ये अलीवर्दीके प्रिय उड़िष्याके सूबेदार मसुदस खुमानके दीवान हो गये। थोड़े दिन बाद मसुदस खुमानकी मृत्यु होने पर दुर्लभरामको "राजा"की उपाधि दे कर उड़िष्याका सूबेदार बना दिया गया (१७४४ ई०)। इसके कई मास बाद ही नागपुरसे मराठा सेनाने आ कर अकस्मात् उड़िष्या पर आक्रमण कर दिया। दुर्लभराम तैयार न थे। तथापि वे जल्दी जल्दीमें कुछ सेना संग्रह करके आत्मरक्षाके लिए प्रस्तुत हो गये। परन्तु अतर्कित आक्रमणको रोकनेमें वे सफल न हुए। मराठा सर

दार उन्हें कैद करके नागपुर ले गये। वहां ये कुछ समय तक कारागारमें बंद रहे। दुर्लभराम एक अच्छे गायक भी थे—कारागारमें कैदी हालतमें भी वे जी खोल कर गाया करते थे। एक दिन सरदारकी स्त्री उनका गाना सुन कर मुग्ध हो गईं और सरदारसे बोलीं—'जो आदमी जेलखानेमें रह कर भी मौजसे गाना गाता है, उसे कैद रखनेसे क्या लाभ?' सरदारने उसी दिन दुर्लभरामको छोड़ दिया और साथ ही इस बातका भी इन्तजाम कर दिया, कि जिससे उन्हें कोई तकलीफ न हो। इसके बाद बीच बीचमें दुर्लभराम सरदारको गाना सुनाया करते थे। खैर जो हो, नवाब अलीवर्दीने मराठा-सरदारको तीन लाख रुपया भेज कर तथा बंगालकी चौथके बदले उड़िष्याकी आमदनी छोड़ देनेकी स्वीकारता दे कर दुर्लभ रामको अपने यहां बुला लिया। दुर्लभरामके मुर्शिदाबाद आने पर उन्हें दीवानकी निजामत पर मुकर्रर किया गया।

१७५३ ई०में अलीवर्दीके विश्वस्त मित्र महाराज जानकीरामकी मृत्यु हुई। नवाबने चारों पुत्रोंको शोककी खिलअत दे कर समवेदना प्रकट की। जानकीराम कई लाख रुपया खर्च करके दक्षिणराढ़ीय कायस्थसमाजके गोष्ठीपति हुए थे। पिताकी मृत्यु होने पर राजा दुर्लभरायने पदोचित सम्मानकी रक्षार्थ समस्त दक्षिणराढ़ीय समाजको निमन्त्रण दे कर बड़े समारोहके साथ पिताका आद्यश्राद्ध किया। कहते हैं, कि ऐसे समारोहके साथ श्राद्ध कायस्थसमाजमें पहले कभी नहीं हुआ था। स्वयं नवाब और समस्त बंगालके राजा लोग श्राद्धसभामें उपस्थित हुए थे।

राजा दुर्लभराम पिताके नाम पर खालसा और दीवान ए-तनका कार्य चलाते थे, अब वे ही स्थायिरूपसे उक्त श्रेष्ठ पद पर नियुक्त किये गये। रामनारायण महाराज जानकीरामके अधीन दीवान थे, अब दुर्लभरामकी कृपासे वे भी विहारके नायब सूबेदार हो गये।

नवाब अलीवर्दी खाँने मृत्युसे कुछ समय पहले अपने प्रिय दौहित्र सिराजउद्दौलाको बंगाल, विहार और उड़िष्याका नायब सूबेदार बनाया था, परन्तु उस समय उक्त तीनों प्रदेशोंका राजकीय कार्यभार सब राजा दुर्लभरामके ही हाथमें था। सिराज नाममात्रके लिए सूबेदार होने पर भी कुचक्रियोंके परामर्शमें आ कर उन्होंने खर्च करनेकी चेष्टा की थी। यहां तक कि दुर्लभरामको मारनेके लिये अलीवर्दीके विरुद्ध विद्रोहाचरण करनेमें भी कोई कसर न छोड़ी थी। परन्तु इस समयकी नवाबी सेना दुर्लभरामके अधीन थी और स्वयं नवाब उनके अनुकूल थे, इसलिये सिराज उनका कुछ कर न सके।

१७५६ ई०की ९वीं अप्रेलको अलीवर्दीका देहान्त हुआ और सिराज बंगाल, विहार और उड़ीष्याके नवाब हुए। सिराजने एकाधिपत्य प्राप्त करके सबसे पहले दुर्लभरामकी क्षमता घटानेकी तरफ ध्यान दिया। परंतु सहसा उद्देश्य सिद्ध न हो सका। इसी समय अङ्गरेज कंपनीने भी अपना सिर ऊंचा करना शुरू किया। दाक्षिणात्यमें अङ्गरेज और फरासीसियोंमें युद्ध होनेकी सम्भावना थी। अङ्गरेजोंने फोर्ट विलियमके किलेको मजबूत करनेकी तैयारियां कर दीं। यह समाचार शीघ्र ही सिराजके कर्णगोचर हुआ। उन्होंने इस समय दुर्लभरामको नाराज करना उचित न समझा और उन्हें अङ्गरेजोंको कलकत्तेका दुर्ग बनानेसे रोकनेका आदेश दिया। अंग्रेजोंके इतस्ततः करने पर उन्होंने दुर्लभरामको ३००० सेनाके साथ कासिमबाजारकी कोठी पर अधिकार करनेके लिए भेजा और खुद भी १ली जूनको सेना सहित कासिमबाजारकी तरफ रवाना हुए। वाट् साहब आ कर दुर्लभरामके शरणापन्न हो गये। ४थी जूनको दुर्लभरामके हाथ कासिमबाजारका दुर्ग सौंप दिया गया। इस बात पर दुर्लभरामने लक्ष्य रखा कि अङ्गरेजों पर किसी तरहका अत्याचार न होने पावे।

सिराज जिस समय नायब सूबेदार थे, उस समय मोहनलाल नामका एक साधारण कायस्थ उनका मुन्शी था। पीछे वह दुर्लभरामके नीचे नायब नियुक्त हुआ था। सिराजने सूबेदार होनेके थोड़े दिन बाद ही अपने प्रियपात्र मोहनलालको नायब सूबेदार बना कर उन्हें महाराजा बहादुरका-खिताब दिया और सातहजारी मनसबदार बना दिया। मोहनलाल दीवान-ए-मुदार

बख्‌-मोहन अर्थात् सर्वप्रधान मन्त्री नियुक्त हुए। मीर जाफरको पदच्युत करके उनके स्थान पर मीरमदन नामक एक मामूली आदमीको प्रधान सेनापतिका पद दिया गया। इस प्रकारके उलटपलट कार्य देख कर मुसलमानोंके अमानेक राजपुरुषगण बड़े नाराज हुए। खास कर दुर्लभराम और मीरजाफरको बहुत बुरा मालूम हुआ। जो व्यक्ति उनके अधीन थे, वे अब उनसे ऊपर बैठेंगे और उन पर हुकूमत करेंगे इस बातका अभिमानी दुर्लभराम और मीरजाफर उपेक्षा न कर सके।

सौकतजंगके मनोगत अभिप्राय समझनेके लिए राजा दुर्लभरामके कनिष्ठ भ्राता रासविहारीको पहले होसे घोराघाट और गोम्बोमाका फौजदार बना कर भेज दिया गया था। अब (१७५६ ई० नवम्बर) सिराज स्वयं मोहनलाल मीरजाफर दुर्लभराम आदिके साथ सेना सहित सौकतजंगके विरुद्ध अग्रसर हुए। दोनों पक्षमें घमसान युद्ध हुआ। इस समय श्यामसुन्दर नामक एक बंगाली कायस्थने गोलन्दाज सेनाके सेनापतिके रूपमें सौकतजंगकी तरफसे ऐसी वीरता की कि प्रधान प्रधान मुसलमान सेनापतियोंके सिर झुक गये थे। कुछ भी हो, इस युद्धमें विजय सिराजका ही तरफ रहा, और मोहनलालके पुत्रको सौकतजंगके पद पर पूर्णियाका नायब सूबेदार नियुक्त हुआ। पहले रायदुर्लभके छोटे भाई रासविहारीको यह पद देनेकी बात थी, अब उनकी कुछ परवाह न की गई। जिससे दोनों भाई मनही मन बड़े नाराज हुए। इस समय भी दुर्लभराम मुसलमान दरबारमें बंगालके हिन्दुओंके नेता समझे जाते थे। अब इस अक्षुण्ण सम्मान पर आघात पहुंचनेकी आशङ्का से दुर्लभराम कुछ सावधान हुए और ऐसे उपाय करने लगे कि जिससे युवक नवाब उनका कुछ बिगाड़ न सकें। इस समय बंगालके समस्त राजस्वविभाग और सम्पूर्ण राजकोष उन्हींके अधीन था, सेनाका तनखा तय करनेका भार भी उन्हीं पर था।

सौकतजंगका मामला पूरी तरहसे मिट भी न पाया था, कि सिराजको खबर लगी कि अंग्रेजोंने (जनवरी, १७५७ ई०) माणिकचंदको भगा कर कलकत्तेके दुर्ग पर अधिकार कर लिया है और उसकी दृढ़तासे रक्षा करनेकी तैयारी भी कर रहे हैं। शीघ्र ही उन्होंने दुर्लभराम और सेना-सामग्रीके साथ कलकत्तेकी तरफ कूच कर दिया। २री फरवरीको वे कलकत्ता आ पहुंचे। सिराजकी विपुल सेना देख कर क्लाइव सन्धि करनेको व्यग्र हो उठा और इसके लिए दुर्लभरामकी शरण आया। वाट्स और स्क्राफटन प्रतिनिधिके तौर पर नवाबके शिविरमें आये। मंत्री दुर्लभराम उनकी तलाशी ले कर कि उनके पास पिस्तौल या और कोई अस्त्र है या नहीं, उन्हें नवाबके सामने ले गये। उन लोगोंने दुर्लभरामके हाथ सन्धिकी अर्जी दाखिल की। नवाबने उन लोगोंको राजा दुर्लभरामके शिविरमें जा कर सन्धिपत्रके विषयमें कर्त्तव्य स्थिर करनेके लिये आदेश दिया। बादमें दोनों अंग्रेजदूत जब बाहर आए, तो अमीचन्दके मुंह सुना, कि अभी तक नवाबकी तोपें न आ पाई हैं। शीघ्र ही क्लाइवको इस बातका पता लग गया। तुरंत ही अंग्रेजोंने उस अंधेरी रातमें अकस्मात् नवाबके शिविर पर हमला कर दिया। अकस्मात् रात्रिके आक्रमणसे सिराज कुछ विचलित हो गये। कुछ भी हो, दोनों पक्षोंमें तुमुल युद्ध हुआ। अंग्रेज लोग ही आखिर हारे, लेकिन डरपोक नवाबने सन्धि करना ही ठीक समझा। ९वीं फरवरीको दोनों पक्षोंमें सन्धि हो गई। इस सन्धिपत्रमें अंग्रेजोंकी तरफसे कर्नल क्लाइवने और नवाबकी तरफसे प्रधान सेनापति मीरजाफर और मंत्री दुर्लभरामने हस्ताक्षर किये।

इसके बाद अंग्रेज और फरासीसियोंमें युद्ध शुरू होने पर अंग्रेजोंके चन्दननगर पर आक्रमणके लिए अग्रसर होनेका समाचार पा कर सिराजने फरासीसियोंकी मदद के लिए राजा दुर्लभरामको सेना-सहित भेजा। हुगलीसे १० कोस उत्तरमें दुर्लभरामके साथ हुगलीके फौजदार नन्दकुमारकी भेंट हुई। नन्दकुमारने उनसे यह कह कर कि—"सहायता पहुंचनेसे पहले ही फरासीसी लोग आत्म-समर्पण कर देंगे, अब जानेकी जरूरत नहीं"—उन्हें जाने न दिया। बहुतोंका ऐसा कहना है, कि अंग्रेजोंसे रिश्वत ले कर नन्दकुमारने ऐसा अनुचित काम किया था और इसके लिए वे शीघ्र ही पदच्युत भी कर दिए गए थे।

फरासडांगा पर अंग्रेजोंका कब्जा होनेके बाद सिराज दलबल-सहित मुर्शिदाबाद लौटे। राजा दुर्लभरामने मुर्शिदाबाद आ कर देखा, कि मोहनलाल सिराजकी अत्यधिक कृपासे उनकी क्षमताका परिचालन कर रहे हैं और उनके कार्य पर भी हुक्म चलाते हैं। मोहन लालकी इस ज्यादतीको वे किसी भी तरह सह न सके और इसलिए वे नगरमें न रह कर सेना सहित कुछ दूरमें रहने लगे। अब जगत्सेठके मकान पर इस बातकी मंत्रणा होने लगी, कि किस तरह सिराज और मोहनलालका अधःपतन किया जाय। इस षडयंत्रमें राजा कृष्णचंद्र, मीरजाफर और सिराजकी मातृस्वसा घसिटी बेगम भी शामिल थीं। नवाबके अश्व सेनानायक यार लतिफ खाँको जगत्सेठकी तरफसे उनके स्वार्थकी रक्षाके लिए कुछ कुछ वृत्ति मिलती थीं। इन्होंने अमीचंदके द्वारा वाट् साहबको कहला भेजा कि "सिराज शीघ्र ही पटना जाने वाले हैं। वहासे लौट कर वे इस देशसे अंग्रेजोंको दूर कर देंगे, ऐसी उन्होंने प्रतिज्ञा कर ली है। नवाबकी अनुपस्थितिमें मुर्शिदाबाद पर अधिकार करनेका अच्छा मौका है। मुझे नवाब बनानेसे राजा दुर्लभराम, जगत्सेठ आदि हमारे साथ रहेंगे।" इस शुभ प्रस्तावको अंग्रेजोंने बड़े आदरके साथ ग्रहण किया। कलकत्तेमें अंग्रेजोंकी एक गुप्त सभा बैठी। इधर नवाबने अंग्रेजोंके व्यवहारसे सदिग्ध हो कर राजा दुर्लभरामको उनके अधीनस्थ समस्त सेनासहित पलासीमें तैयार रहनेकी आज्ञा दी। इससे भी नवाबको सन्तोष न हुआ। उन्होंने पचास हजार सेनाके साथ मीरजाफरको भी वहां जा कर सहायता करनेकी सलाह दी।

इसी समय पेशवा बाजीरावका एक दूत गोविंदराम ड्रेक साहबके नाम पत्र ले कर हाजिर हुआ। पत्रमें लिखा था, कि अंग्रेजोंकी सम्मति हो तो पेशवा एक लाख बीस हजार अश्वारोही भेज कर बंगालको लुटवा सकते हैं। सुचतुर क्लाइवने इस पत्रको नवाबके पास भेज दिया। इस पत्रको पा कर अंग्रेजों पर नवाबका जो सन्देह था, वह दूर हो गया। वास्तवमें नवाब यह न समझ सके कि उन्होंने कितना बड़ा धोखा खाया। कुछ भी हो, नवाबने मराठोंकी गति रोकनेके लिए दुर्लभरामको सेना-सहित पलासी रख कर मीरजाफरको सेना सहित पलासीसे वापस चले आनेका आदेश दिया।

इधर पलासीसे मीरजाफरका आदमी कलकत्तेमें अंगरेजोंकी गुप्त सभामें पहुंचा। प्रभूत वित्त प्राप्तकी आशासे अंगरेजोंने १८ मईको गुप्त सभामें मीरजाफरको ही नवाब बनानेका निश्चय किया। ३०वीं मईको मीरजाफर और उसके बाद ३री जूनको राजा दुर्लभराम सेना सहित मुर्शिदाबाद लौट आये। जगत्सेठके मकान पर गहरी रातको (३री ही तारीखको) षडयन्त्रकारियोंकी एक गुप्त बैठक हुई। दुर्लभरामने अंगरेजोंकी असंगत मांगों पर कहा कि जितने रुपये वे मांगते हैं, उतने तो नवाबके कोषागारमें भी नहीं हैं, इसलिए मैं ऐसी असंगत बात पर सम्मति नहीं दे सकता। हां, यह हो सकता है कि राजकोषमें जितना हो, उसे मीरजाफर और अंगरेज मिल कर आधा आधा बाँट ले सकते हैं। वाट् साहब इस पर राजी न हुए। अन्तमें निर्णय हुआ कि दोनों तरफसे दुर्लभरामको निर्दिष्ट रुपयोंमेंसे ५) पाच रुपया सैकड़ा दिया जायगा, उनकी देखरेखमें राजकोष रहेगा और वे ही रुपयोंका भाग कर देंगे। ४थी जूनको मीरजाफरने उस गुप्त सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर कर दिये। आश्चर्य है कि सिराजको इस बातका ज़रा भी पता न लग पाया, फिर भी उन्होंने मीरजाफरको पदच्युत कर दिया और उनके स्थान पर खोजा हादीको प्रधान सेनापति नियुक्त किया।

इधर १३वीं जूनको अंग्रेजोंकी सेना दो सौ नावों पर सवार हो कर चन्दननगरकी ओर चल दी। यह संवाद सिराजके पास भी भेजा गया। नवाब सेना सहित पलासीके मैदानमें दिखाई दिये। दुर्लभराम अपनी १० हजार शिक्षित सेनाके साथ रणक्षेत्रमें उपस्थित हुए। नवाबने दुर्लभरामके द्वारा पहलेसे निर्दिष्ट किये हुए प्रान्तमें ही शिविर कायम किया। शिविरके सामने आमका बाग था और परिखाके भीतर मीरमदन और मोहनलालकी सेना, उसके दक्षिणकी ओर फरासीसी सेनानायक सिनफ्रेके गोलन्दाजोंका दल, बाईं तरफ परिखाके उस पारसे ले कर करीब करीब पलासी ग्राम तक दुर्लभराम, यार लतीफ और मीरजाफरकी सेना—इस प्रकार

नवाबकी तरफ लगभग ३५ हजार सिपाही, १६ हजार घुड़सवार और ५० तोपें थीं; और अंग्रेजोंकी तरफ कुल ३१ सौ मात्र सेना थी। २३ जूनको युद्ध आरम्भ हुआ। दुर्लभराम और यार लतीफ मीरजाफरकी तरह सेना सहित 'रणपयोधिकी लहरें' गिन रहे थे। अमुमन मीरमदन अचानक घायल हो गये और मर गये। सभापतिकी इस तरह अकस्मात् मृत्युसे नवाब विचलित हो गये, मीरजाफरको बुला कर बड़ी करुण विनतीके साथ यहां तक कि पैरों पर अपना मुकुट रख कर कहा था—"आपके सामने मैं आत्मसमर्पण करता हूं, आप किसी तरह मेरे सम्मान और जीवनकी रक्षा कीजिये।" उस समय मोहनलाल और सिनफ्रेके साथ अंग्रेजों पर आक्रमण कर रहे थे, और कुछ देर तक युद्ध जारी रहता तो अवश्य ही नवाबकी विजय हो जाती। परन्तु मीरजाफरके परामर्शसे सिराजने मोहनलालको युद्ध बन्द करनेका आदेश भेज दिया। पहले मोहनलालने उनकी बात पर ध्यान नहीं दिया था, अन्तमें बारबार आदेश पाने पर वे क्रमशः पीछे हट आये।

मीरजाफर नवाबको सर्वनाशकारी परामर्श दे कर अपने शिविरकी ओर आये। नवाबने राजा दुर्लभराम को बुला कर परामर्श लिया। उन्होंने घोड़ा ले और आप राजधानी चले जायें। अब यहां रहना उचित नहीं। सिराजने दुर्लभरामका परामर्श मान लिया। इधर मोहनलालका लौटना देख सेनाका साहस टूट गया और वह भागनेकी युक्ति सोचने लगी। अंग्रेजोंने भी इसी समय मीरजाफरकी तरफसे गुप्त समाचार पा कर क्लाइवने नवाबकी सेना पर धावा बोल दिया। इस प्रकार कौशलसे मुट्ठी भर सेना ले कर क्लाइव पलासी विजेता बन बैठा। दुर्लभराम और मीरजाफरके प्रयत्नोंसे बंगालका भाग्यलिपि परिवर्तित हो गई। २५ जूनको राजा दुर्लभराम और मीरजाफर राजधानीको लौटे। साथ साथ वाट्सन् और क्लाइवका सेक्रेटरी वाल्स् भी आया और इन लोगोंने अंग्रेजोंकी तरफसे रुपयोंकी मांग पेश की। दुर्लभरामने कहा कि खजानेमें २००००००) रुपये खजानेमें नहीं हैं। अंग्रेजोंने प्रस्ताव किया कि तो जगत्सेठसे कर्ज लिया जाय। राजाने कहा कि इतना रुपया देनेकी उनमें सामर्थ्य नहीं। इस बात पर दुर्लभराम पर उनका सन्देह हुआ। इसके बाद ही अफवाह फैली कि दुर्लभराम, मीरन और खादिम हुसैन क्लाइवको मारनेका षड्यन्त्र कर रहे हैं। इसलिए क्लाइवने दो दिन तक कासिमबाजारमें रह कर अपने व्यर्थ सन्देहको दूर कर मुर्शिदाबादमें प्रवेश किया।

२९ जूनको दरबार हुआ। क्लाइवने मीरजाफरका हाथ पकड़ कर उन्हें सिंहासन पर बिठाया। राजा दुर्लभराम 'महाराज बहादुर' की उपाधि-सहित नवाब मीरजाफरके 'दीवान व खालसा' (प्रधान मन्त्री) हुए।

दूसरे दिन क्लाइव, मीरजाफर दुर्लभराम और वाट्सन् जगत्सेठके मकान पर गये। यहां दोनों तरफसे अंगरेजी और फारसी सन्धिपत्र पठित और स्वीकृत हुए। यह भी तय हुआ कि स्वीकृत १ करोड़ ११ लाख रुपयेका आधा इसी समय देना होगा, और आधा तीन वर्षमें अदा कर देना होगा। परन्तु महाराज दुर्लभराम उक्त कुल रकममेंसे ५) सैकड़ा कमीशन काट लेंगे, यह भी तय हुआ। सब तय हो गया, पर उस दिन रुपये नहीं दिये गये। क्लाइव मुर्शिदाबादमें ही बैठा रहा। चतुर दुर्लभरामने एक साथ आधा रुपया भी हाथसे निकाल देना ठीक न समझा। नवाब दरबारमें उनका प्रभुत्वका जितना अभाव था, उसे पूरा करके तथा अंगरेज और मुसलमान दोनोंकी ओरसे बंगालके हिन्दू-समाजके सब प्रधान नेता बननेके बाद उन्होंने ६ जुलाई को ७४७१६६६) रुपया अंगरेजोंको दिया। पीछे अनेक आपत्ति करनेके बाद ८ तारीखको फिर १६५५४८) रुपया दिया। फिर भी स्वीकृत आधा अदा न चुकने पर अंग्रेज लोग कुछ क्रुद्ध हो उठे। इस समय (१५ जुलाई) अंग्रेजोंके वाणिज्याधिकार सम्बन्धमें साधारण परवानेकी घोषणा करके दुर्लभरामने उन्हें सन्तुष्ट कर दिया। अन्तमें ३० जुलाईको राजा, जगत्सेठ और मिर्जा सब मिल कर १५११३७१) रुपये दे कर अंग्रेजोंको विदा किया। इस तरह अंग्रेज कम्पनीको दुर्लभरामसे ११२२०००) रुपये (अर्थात् निर्दिष्ट आधे रुपयामेंसे १०३९१३३ रुपये) मिले; फिर भी ५८११०५) रुपये बाकी रहे।

मीरजाफर अपने प्रियपुत्र मीरनके परामर्श पर चलने लगे। राजा दुर्लभरामके अपरिसीम प्रभुत्वके मीरण विद्वेषी हो गये। साथ ही मीरजाफरका भी मन फिर गया। अब वे स्वयं सर्वेश्वर हो गये। एक एक करके सभी शत्रुओंको उन्होंने हटा दिया। यद्यपि दुर्लभराम उनके मित्र समझे जाते थे, किन्तु वे भिन्न धर्मावलम्बी थे और विशेषतः समस्त बंगालकी हिन्दू प्रजा उनके प्रभावसे प्रभावान्वित थी। जिस कौशलसे उन्होंने सिराजको पदच्युत करके मीरजाफरको गद्दी पर बिठाया है, इसी तरह किसी दिन वे अपनी कूट-नीतिसे मीरजाफरको उतार सकते हैं। इस अमूलक विश्वास पर पिता-पुत्र मिल कर दुर्लभरामका प्रभाव घटानेकी कोशिश करने लगे। कुछ दिन बीत गये, लगभग सभीने मीरजाफरकी अधीनता स्वीकार कर ली, किन्तु उस समय भी विहारके नायब नवाब राजा राम-नारायण और मेदिनीपुरके राजा रामसिंहने मीरजाफर-की अधीनता स्वीकार न की। वे दोनों ही दुर्लभरामके परम मित्र समझे जाते थे। दुर्लभरामने नये नवाबके साथ प्रकाश्यरूपमें सद्भाव रखनेके लिए राजा रामसिंह-को आनेके लिए अनुरोध किया। परन्तु स्वयं न आ कर उन्होंने दो आत्मीयोंको भेज दिया। नवाबने दोनोंको कैद कर लिया। इधर पूर्णियाके पूर्वतन कर्मचारी अचलसिंहने मोहनलालके पुत्रको कैद कर स्वाधीन भावसे सारे देश पर अधिकार जमा रखा था। राजा रामनारायण भी एक प्रकारसे स्वाधीन हो गये थे और अपना बल बढ़ा रहे थे। चारों तरफसे हिन्दू अभ्युत्थान-को लक्ष्य करके मीरजाफरने दुर्लभरामको ही इसका मूल कारण मान लिया। दुर्लभराम उस समय भी अलीवर्दी-बेगमके प्रति सम्मान प्रदर्शन करनेके लिए कभी कभी प्रासादमें जाया करते थे।

राजा रामनारायण अयोध्याके नवावकी सहायतासे मीरजाफरको भगा देनेकी कोशिश कर रहे थे, अलीवर्दी-बेगमकी ऐसी एक षड़यन्त्र लिपि भी पकड़ी गई। इस-लिए मीरजाफरकी धारणा भी पक्की हो गई, कि दुर्लभ-रामकी ही ये कार्रवाइयां हैं। कुछ भी हो, वाट्सकी कोशिशसे दोनोंका मौखिक मिलन तो हुआ, परन्तु उस-के बाद ही मीरजाफरके विहार जाते समय दुर्लभरामने अस्वस्थताका बहाना करके सेना सहित उनके साथ शामिल न हुए। मीरजाफरके चले जाते ही मीरनने यह अफवाह फैलाई, कि राजा दुर्लभराम अंगरेजोंकी सहायतासे सिराजके भतीजे मिर्जा मेहदीको नवाब बनानेकी कोशिशमें हैं। राजा रामनारायण अयोध्याके नवाब और फरासीसी नायक 'ला' को साथ ले कर दुर्लभरामकी सहायताके लिए आ रहे हैं। शीघ्र ही मीरनके घातकोंके हाथ मेहदी मार डाला गया। मीरनके अन्यान्य आचरणोंसे दुर्लभराम भी उनसे बहुत नाराज हो गये। उन्होंने कासिमबाजारका कोठीके अध्यक्षको सब बातें कहीं। स्क्राफ्टनकी मध्यस्थतामें मीरन और दुर्लभराममें फिर सुलह हो गई। अब मन्त्री दुर्लभरामने कुछ सेनाको नवाबके शिविरमें जानेकी आज्ञा दी। इधर मीरजाफरसे मिलनेके लिए क्लाइव भी दलबल-सहित मुर्शिदाबाद आ पहुंचा। यहां आते ही सुना कि राजा दुर्लभराम मराठा-सरदार जानोजीके साथ षड़यन्त्र कर रहे हैं। परन्तु दुर्लभरामके भेंट होने पर उनका सन्देह दूर हो गया। पीछे दुर्लभरामको तसल्ली दे कर क्लाइव राजमहल जा कर मीरजाफरसे मिला। यहां आते ही उन्होंने मीरजाफरसे कहा—"राजा दुर्लभरामके विना राजकोषसे रुपये या आज्ञापत्र मिलना असम्भव है, इसी लिए राजाको बुलवाना निहायत जरूरी है।" क्लाइवने भी दुर्लभरामको हिम्मत दे कर आनेके लिए लिखा। कारण दुर्लभराम केवल प्रधान मन्त्री ही न थे, अर्थसचिव भी थे। वे क्लाइवके पत्रानुसार आ गये। उस समय अंग-रेजोंके २३ लाख रुपये बाकी थे। दुर्लभरामने आधा रुपया राजकोषसे तथा बाकी आधा रुपया वसूल कर लेनेके लिए वर्द्धमान और कृष्णनगरके राजा तथा हुगलीके फौजदारके नाम आज्ञापत्र दिया। इस समय कम्पनीको जमींदारीके लिए फरमान मिला। इस फरमानमें नवाब मीरजाफर तथा प्रधान मन्त्रीकी हैसियतसे महाराज दुर्लभराम और हुजूरनवीस (Chief Secretary) की हैसियतसे उनके पुत्र राजा राजवल्लभके हस्ताक्षर थे।

पहले ही कहा जा चुका है, कि राजा रामनारायण

दुर्लभरामकी अनुकूलतासे बिहारके सूबेदार हुए थे। वे हमेशासे दुर्लभरामका सम्मान करते थे। मीरजाफरके सेना-सहित उनके विरुद्ध अस्त्र धारण करने पर दुर्लभरामके परामर्शसे उन्होंने नवाबके शिविरमें आ कर अपनी भता स्वीकार कर ली।

मीरजाफर और दुर्लभरामके मनोमालिन्यके समय नन्दकुमार आ कर दुर्लभरामके सहकारी या काकसाके पेशकार नियुक्त हुए थे। मीरजाफरके बिहार जाते समय वे भी दुर्लभरामके विरुद्ध नवाबके कान भर कर अपन स्वभावका परिचय दे रहे। बिहारसे लौट आनेके बाद नवाबके राजकोषमें अर्थाभाव हो गया। नंदकुमार नवाबको समझाया कि उन्हें पूरी क्षमता मिलने पर वे सब रुपये वसूल कर सकते हैं, दुर्लभरामके द्वारा यह काम कभी न होगा। मीरनने कहा, कि अंगरेज लोग रुपयोंके वश हैं, काफी रुपये न मिलने पर वे हमारे शत्रु बन जायेंगे। इसी तरह नन्दकुमारने सेठोंको भी समझाया, कि आप लोग दुर्लभरामके साथ जैसा मेल जोल रख रहे हैं, यह आप लोगोंके लिए अच्छा नहीं है। आप लोग रुपयोंके लिए जमानतदार हैं। दुर्लभराम यदि राजस्वमेंसे रुपया न दे सके, तो अंगरेज लोग आपको ही पकड़ेंगे। इसलिए आप लोगोंको सावधान हो जाना चाहिए। इस समय मीरनने वैद्यराज राज वल्लभको दीवान नियुक्त किया और ढाका विभागके कागजात उन्हें सौंप देनेके लिए दुर्लभराम पर आज्ञा जारी की। क्लाइव इस समय तक दुर्लभरामके मित्र थे। उन्होंने दुर्लभरामको बुला कर उन्हें समझाया कि आपके विरुद्ध षड़यंत्र चल रहा है और आप यहां रहेंगे तो जिन्दगी भी खो बैठेंगे, ऐसी आशंका है। जो नन्दकुमार उनकी कृपासे काकसाके पेशकार नियुक्त हुए थे, जिन्हें उन्होंने विश्वास करके राजस्वविभागका सारा रहस्य समझा दिया था, अब वही ब्राह्मण उनके विरुद्ध षड़यंत्र कर रहे हैं, सुन कर वे क्षोभ से कलकत्ता जानेको प्रस्तुत हो गये। परन्तु मीरनने उनका कलकत्ता जाना रोक दिया। राजाने पहले ही ये सब बातें क्लाइव को लिख दी थीं। उनका पत्र पा कर क्लाइवने नवाबको कलकत्ते आनेके लिए निमन्त्रण दिया। इसलिए इच्छा न होते हुए भी नवाबको कलकत्ता जाना पड़ा। इस समय मीरनने अनेक रक्षकसेना भेज कर दुर्लभरामका प्रासाद घेर लिया था, परन्तु क्लाइवके अनुरोधसे (सितम्बर १७५८ ई०) दुर्लभराम भी परिवार सहित कलकत्ते चले गये। मीरनके क्षोभकी सीमा न रही।

इस समयके कम्पनीके कागजातमें पाया जाता है कि मीरजाफरके स्वागतके लिये इष्टइण्डिया कम्पनीका काफी खर्च हुआ था, अवश्य उसे और दुर्लभरामके स्वागत में भी काफी खर्च हुआ था।

कलकत्ते आ कर महाराज दुर्लभराम कुछ दिन निरा पद हुए। वहां वे ब्राह्मण पण्डितोंसे शास्त्रालाप सुन कर और ध्यान ध्यान करके समय बिताते थे। सिर्फ कभी कभी राजकीय कागजातमें हस्ताक्षरकी जरूरत पड़ने पर हस्ताक्षर कर दिया करते थे। क्लाइव और कौन्सिल के सदस्य अकसर उनके प्रासादमें आ कर आमोद-प्रमोद किया करते थे।

दुर्लभराम सरीखे शक्तिशाली राजनीतिज्ञके राज धानीसे दूर रहनेसे सम्भवतः राज्यका कार्य सुचारु रूपसे न चलता था। कुछ दिन बाद सम्राट् शाहआलम बंगालविजयके लिए आये। राजा रामनारायणने पहले दुर्लभरामके परामर्शसे नवाबकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। अब मुर्शिदाबादकी राजनैतिक अवस्थाको समझ कर वे मीरजाफरके विरुद्ध बादशाहसे मिल गये। मीरजाफरने भारी संकट आया जान कर क्लाइवकी शरण ली। आखिर अङ्गरेजोंकी सहायतासे इस बारका मीरजाफर बच गये। (रामनारायण देखो।)

३ जुलाई १७६० ई०को वज्राघातसे नवाबके पुत्र मीरनकी मृत्यु हो गई। इस मौके पर मीरजाफरके दामाद मीरकासिम ससुरके सर्वनाशके लिए आगे आये। इधर दुर्लभराम मीरजाफरकी अकर्मण्यताका परिचय दे कर अङ्गरेजोंको हस्तगत कर रहे थे। पूर्णतम नायब सूबेदार और प्रधानमन्त्री दुर्लभरामकी विरक्तिसे और मीरकासिमसे अधिक धन पानेके लोभसे अङ्गरेजोंने मीरजाफरको गद्दीसे उतार देनेका निश्चय किया।

दुर्लभरामके परामर्शसे ही वालसेटन साह आलमसे बंगालकी दीवानी प्राप्त करनेकी कल्पना की

थी। इस समय दुर्लभरामने अङ्गरेजोंको जो पत्र दिया था, उसमें लिखा था—"कम्पनीको सूवेदारी, दीवानी वक्सीगीरी अपने नाम पर ले कर मीरजाफरको नायव-नाजिम और मीरकासिमको नायव दीवान वनाना चाहिए। मैं अब राजस्व-सचिवका पद नहीं चाहता, कम्पनीके अधीन नायव-वक्सी (Commander of the Bengal forces)का पद पा कर ही मैं सन्तुष्ट होऊंगा। शाहजादेके मन्त्रियोंको लिख कर मैं इन सव वातोंकी व्यवस्था कर देनेको तैयार हूं।" अंग्रेजोंने इस समय मीरकासिमसे वहुत धन पानेके लोभसे इस कल्पनाको त्याग दिया। १४ अक्टोवर १७६० ई०को गवर्नर वन्सीटार्टने मुर्शिदावाद जा कर मीरजाफरको राज्यच्युत किया और मीरकासिमको नवावीका पद ऊंचे मूल्य पर वेच दिया। इस समय नन्दकुमार और वैद्यराज राजवल्लभ ही मुर्शिदावादमें सर्वेसर्वा हो गये। तव भी महाराज दुर्लभरामको अङ्गरेजों द्वारा वंगाल, विहार और उड़िष्याके नायव-सूवेदारका सम्मान प्राप्त था। नन्दकुमार इस प्रयत्नमें थे, कि किसी तरह उनका यह सम्मान नष्ट हो जाय, उनका सर्वनाश हो जाय। थोड़े ही दिनों वाद मीरकासिम और अङ्गरेजोंके साथ वादशाह शाहआलमका युद्ध छिड़ गया। दुर्लभरामको किसी तरह कौशलजालमें फंसा लेनेसे मीरकासिमको भी धन मिल सकता है और उनका भी उद्देश्य सिद्ध हो सकता है, इस विचारसे नन्दकुमारने हरकराके हाथ एक जाल चिट्ठी निकवाई। उस पत्रसे यह भाव प्रकट होता था, कि महाराज दुर्लभराम और जगत्‌सेठके वरानेके रामचरण शाहआलमके शिविरस्थ एक सेनापतिके साथ मीरकासिम और अङ्गरेजोंका सर्वनाश करनेके लिए षडयन्त्र कर रहे हैं। दुर्लभराम पर अंग्रेजोंका अटल विश्वास था, इसलिए उन लोगोंने सहसा उस पत्र पर विश्वास न किया। शाहआलमके साथ झगड़ा तै हो जानेके वाद मालूम हुआ कि यह नन्दकुमारका असीम प्रभुत्व था, इसलिए ऐसे भीषण अपराध पर भी अङ्गरेजोंको नन्दकुमारके विरुद्ध आचरण करनेका साहस न हुआ।

मीरकासिम भी मीरजाफरकी तरह हिंदू-विद्वेषी थे। नये नवावका इधर काफी ध्यान था कि पूर्वतन हिन्दू कर्मचारी अव फिरसे सिर न उठा पावें और सव तरहसे उनकी क्षमता घट जाय। खास कर हिन्दुओंको समस्त उच्चाधिकारोंसे वञ्चित करनेसे किसी समय राजस्व वसूली तथा अन्यान्य कार्योंमें गड़वड़ होनेकी सम्भावनासे ही वे अपनी अभिरुचिके अनुसार हिंदू-जमींदारोंके अर्थ-शोषणपटु नये नये आदमियोंको उच्च पद देने लगे थे।

वैद्यराज राजवल्लभको विहारका नायव सूवेदार वना कर भी उन पर वे विश्वास न कर सके। कुछ दिन वाद जव उन्होंने देखा कि राजा राजवल्लभसे जितनी उन्हें आवश्यकता थी उतनी पूर्ति हो गई। अंगरेजोंको ध्वंस करनेके लिए उन्होंने जो जाल फैलाया है, उसमें वैद्यराज राजवल्लभ उनके अन्तराय हो सकते हैं,—तव राजवल्लभसे उन्होंने नायव-सूवेदारी छीन कर उन्हें मुंगेरके किलेमें कैद कर रखा। अन्यान्य हिन्दू-जमींदारोंको भी वादमें उन्होंने उसी जगह कैदमें रखा था। नन्दकुमार भी जाली पत्र वनानेके अपराधमें मुर्शिदावादके कैदमें डाल दिये गये।

इसके वाद ६ जुलाई १७६७ ई०को अंग्रेजोंकी सभामें मीरजाफरको फिरसे नवाव वनानेका निश्चय हुआ। नन्दकुमार कैदसे छूट कर मीरजाफरके दीवान हुए। अंगरेजोंके अनुरोधसे महाराज दुर्लभरामको पान और खिलअत दे कर निजामतमें फिरसे वहाल किया गया; परन्तु निजामतके अधीन हुजूरनवीसी (सनद आदि देने और उसकी नकल रखनेका कार्यालय), जागीरों और नवावके निज कोषागारका दरोगा, मुस्तफीपद (पदच्युत कर्मचारियोंके हिसावनिकासका कार्य), तथा पटना, भागलपुर और जागीरोंसे तहसील वसूलीका काम, मुन्शीखाना (Secretariat) और दीवानखानेकी मुसरफी, ये सव उच्च कार्यालय जो पहले दुर्लभरामके अधीन थे, निजामतसे अलग करके नन्दकुमारको सौंप दिये गये। निजामत भी एक प्रकारसे खालसाके अधीन हो गई। (१७६४ ई०)

१७६५ ई०के जनवरी महीनेमें मीरजाफरका देहान्त हुआ। फिर ऊंचे मूल्य पर नवावीका पद वेचनेके अभि-

आपसे अंगरेजों की कौन्सिलके चार सदस्य मुर्शिदाबाद पहुंचे। शून्य राजकोषसे २० लाख रुपया ले कर मीरजाफरके बालिग पुत्र नजमउद्दौलाको नवाब बना दिया गया। नायब नवाबके पदकी आशासे इस समय राजा नन्दकुमार और महम्मद रेजा खाँ अंगरेजोंको उपयुक्त पूजा करनेके लिए तैयार हुए। अन्तमें अधिक धन पा कर महम्मद रेजा खाँको ही नायब नवाबीका पद दिया गया। तमाम राजकार्य चलानेके लिये महम्मद रेजा खाँके साथ महाराज दुर्लभराम और जगत्सेठ खुशालचन्द की एक मन्त्रिसभा गठित हुई। जून महीनेमें क्लाइव बादशाह और सुजाउद्दौलाके साथ सन्धि स्थिर करनेके लिए उत्तर-पश्चिममें गया। वहां भी वह अपने पूर्व मित्र दुर्लभरामको न भूला था। उसने दिल्ली-दरबारसे दुर्लभरामको उनकी कार्यदक्षताकी प्रशंसा करके 'महाराज महीन्द्रका खिताब' दिलाया और बिहारके अन्तर्गत मोतपुर परगना (वार्षिक १८७१०० आमदनीको) जागीर दिलाई। उसके बाद कम्पनीके लिए 'दीवानी' प्राप्त होनेके बाद क्लाइवके यत्नसे महाराज दुर्लभरामने ६ लाख रुपयेकी आमदनीकी रंगपुरकी पैतावन्द दीगर जागीर पाई थी।

१७६५ ई०में २८ जुलाईको नवाब नजमउद्दौलाने ५३६८१३१ सिक्कों (रुपयों) की वार्षिक वृत्ति पर कम्पनीके प्रस्तावानुसार महम्मद रेजा खाँ महाराज दुर्लभराम और जगत्सेठ पर सम्पूर्ण राज्य भार छोड़ दिया। इनके शासनसे अंगरेज लोग विशेष सन्तुष्ट हुए। १७६८ ई०में कोर्ट आव डिरेक्टरने उनके कार्यका प्रशंसा करके रेजा खाँको ६ लाख, राजा दुर्लभरामको २ लाख और सिताब रायको १ लाख वार्षिक वेतन देना निश्चित किया था। १७७० ई० तक महाराज दुर्लभरामको उक्त पद पर अधिष्ठित पाते हैं। इस वर्ष २१ मार्चके संधिपत्र पर नवाब मुबारकउद्दौलाने नाजिम, इष्ट इण्डिया कम्पनीने दीवान और नवाब मानाउद्दौलाके साथ महाराज दुर्लभराम और जगत्सेठने नायब-नाजिमको हैसियतसे दस्तखत किये थे। इसी वर्ष महाराज दुर्लभराम महीन्द्रका देहान्त हुआ। उनकी मृत्युके बाद स्वयं बड़े लाट साहब हेष्टिंग्सने मुर्शिदाबाद आ कर उनके पुत्र महाराज राजवल्लभ बहादुरको ३ सूबेका कल्लेक्टर दीवान बनाया। बादमें सूबा बंगाल जब ४ जिलोंमें विभक्त हुआ, तो प्रत्येक जिलेमें एक एक कलक्टर और महाराज राजवल्लभकी तरफसे एक एक दीवान नियुक्त हुए। बंगला सन् १२०४ में राजवल्लभकी मृत्यु हुई।

महाराज दुर्लभराम बंगवासियोंमें अतुल ऐश्वर्यशाली हो गये थे। उस समय उनके विषयमें "स्वर्गमें इन्द्र, मर्त्यमें महीन्द्र" ऐसा प्रवाद प्रचलित हो गया था। पिताके समान उनके पुत्र राजवल्लभ भी बंगालियों में श्रेष्ठ व्यक्ति समझे जाते थे और उनका अत्यंत सम्मान था। राजा राजवल्लभ सेन देखो।

रायन—राजपूतानेके जोधपुर राज्यके अन्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६ ५२ उ० तथा देशा० ७४ १४´ पू०के बीच अवस्थित है। जनसंख्या ४५७४ है। यहां एक गण्ड शैलके ऊपर समतलक्षेत्रसे प्रायः २०० फुट ऊंचा रायन का गिरिदुर्ग विराजित है।

रायनगढ़—पञ्जाबप्रदेशके केवन्थल राज्यके अन्तर्गत एक दुर्गशोभित नगर। अक्षा० ३१ ७´ उ० तथा देशा० ७७ ४८´ पू०के बीच पावर नदीके बायें किनारे एक निर्जन शैलप्रान्तमें बसा हुआ है। नदीको पार कर दुर्गमें आनेके लिये एक काठका पुल है। गोरखा-आक्रमणके पहले यह बसहर सामन्तराज्यके अधीन था। पीछे १८१५ ई०में अंगरेजोंके हाथ आया। अन्तमें वर्तमान 'सिमलाजीले' जिलेको कुछ भूमि ले कर उसके बदलेमें अंगरेज सरकारने यह स्थान केवन्थलराजको दे दिया। यहां दो मन्दिर हैं जिसकी गठनप्रणाली बहुत ही सुन्दर है। उस मन्दिरके अधिकारी कई एक ब्राह्मण हैं। समुद्रपृष्ठसे यह दुर्ग ५४०८ फुट ऊंचा है।

रायनरसिंह पण्डित—तर्कसमयदीपिकाप्रकाशके प्रणेता।

रायना—वर्द्धमान जिलान्तर्गत एक बड़ा ग्राम। यह अक्षा० २३ ४´ २०´´ उ० तथा देशा० ८७ ५३ ४०´´ पू०के बीच अवस्थित है। जनसंख्या पांच हजारसे अधिक है।

रायपाटो—विन्ध्यके अन्तर्गत एक स्थान।

(भविष्यब्र० ख० ४०।४१)

रायपुर—मध्यप्रदेशके अंगरेजाधिकृत एक जिला। चीफ कमिश्नरके शासनके अधीन है। यह अक्षा० १९ ५०´ से

२०° ५३' उ० तथा देशा० ८१° २५' से ८२° ३८' पू० तक विस्तृत है। इसके उत्तरमें विलासपुर, दक्षिणमें बस्तार, पूर्व में सम्बलपुर जिलेका सामन्तराज्य और पश्चिममें चांदा और बालाघाट हैं। छुईखादन, कनकेर, खैरागढ़ और नन्दगाव सामन्तराज्य इसीके अंदर हैं। कुल मिला कर भूपरिमाण ११७२४ वर्गमील है।

पूर्व तन छत्तीसगढ़ राज्यका दक्षिण भाग ले कर यह जिला गठित है। इसका अधिकांश स्थान महानदीके उत्तर स्रोत और उसकी शाखामें परिप्लावित है। स्थान-स्थान पर पर्वत गात्रवाहिनी शाखा नदीसमूहके उत्पत्ति-स्थानसे गण्डशैलमाला दिखाई पड़ती है। समूचा जिला विन्ध्यपर्वतसे निकली हुई शैलशाखाकी फैली हुई अधित्यका है। उत्तर, पूर्व और दक्षिण भूभाग वनोंसे समाकीर्ण है। उत्तरकी अधित्यकाभूमि क्रमशः विलासपुरकी ओर समतलक्षेत्रमें मिल गई है। जंगल काट कर रहनेके लिये और खेती बारीके लिये बहुतसे स्थान निकाले गये हैं।

रायपुर जिला दो खरस्रोता नदीविधौत है। यह दो पार्वत्यस्रोत पीछे मिल कर महानदीरूपमें बह चला है। पूर्वोक्त दो पार्वत्य स्रोताओंमें शिवनाथ प्रधान है। वह चांदापर्वतसे निकला है। प्रायः १२० मील उत्तर पूर्व बह कर हाम्प नामक शाखा नदीने उसका कलेवर पुष्ट कर दिया है। इस प्रकार करकरा, तेन्दूला, कारुण और खोसी नदी इसके दाहिने किनारे तथा गुमारिया, आम, सूरी, गाराघाट, धोगवा और हाम्पशाखा इसके बायें किनारे आ मिली हैं, जिससे इसकी जलधारा बड़ी ही तीव्र हो गई है। महानदी इस जिलेके दक्षिण-पूरबसे निकल कर पश्चिमकी ओर और पीछे उत्तर पूरब बहती हुई शिवनाथमें आ मिली है। पाइरी, सुन्दर, केशो, कोगर और नाइनी आदि शाखाने महानदीका अङ्ग पुष्ट किया है। किन्तु बरसा बीतने पर नदीका जल एकदम सूख जाता है। नदीके अलावा इस जिलेमें स्थान स्थान पर बड़े बड़े तालाब हैं, जो किसीसे बनाये नहीं गये हैं। पहाड़से जो पानी निकलता है उसको रोकनेके लिये बांध बाधा गया है। बंजारोंने गाय चरानेके लिये जंगलके बीचमें तालाब या गड्ढा खोदा था।

यहाकी शैलमाला साधारणतः पन्द्रह सौ फुट ऊंची है सिर्फ गौरगढ़ अधित्यका तथा दक्षिणमें शेहरासे बस्तार और कनक पर्यन्त विस्तृत शैलश्रेणी उससे ऊंची है।

गण्डाई गांवके पश्चिमदिकस्थ शैलगह्वरमें और लोहारा राज्यके दिल्ली नगरके समीप लोहेकी खान है। गण्डाई और ठाकुरतोला नामक स्थानमें प्रचुर गेरू मिट्टी मिलती है। जंगलमें शाल, तेन्दु और महुआ पेड़ ही मुख्य हैं।

यहाका प्रकृत प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। गोंड़ जातिकी कहावतसे पता चलता है, कि पहले यहां मन्त्री किरु बलशाली और प्रभावान्वित राक्षसजातिका वास था। गोंड़-वीरोंके साथ युद्धमें हार खा कर वे यहांसे भाग गये। काव्यकल्पित इस पौराणिक प्रत्नतत्त्वविद्गण गोंड़ जातिके साथ भूंजिया और कोलेरिय जातिका युद्ध-विग्रह मानते हैं। महानदीके पूर्वांशमें भूंजिया और विजवारोंने बहुत दिनों तक शासन किया था। कोलेरियगण सोनाखान पर्वतसे दल बांध कर समतलक्षेत्रमें उतरते और उपद्रव किया करते थे। महानदीतीरवर्त्ती भग्नदुर्ग आज भी इसकी गवाही देता है।

इतिहास पढ़नेसे मालूम होता है, कि यह जिला रत्नपुरके हैहयवंशीय राजाओंके अधिकारमें था। इस वंशके २०वें राजा सुरदेव जब सम्भवत. ७१० ई०में गद्दी पर बैठे उस समय छत्तीसगढ़-प्रदेश दो भागोंमें बंट गया। शूरदेव पैतृकराज्यका उत्तरांश शासन करते थे तथा उनके छोटे भाई ब्रह्मदेवने रायपुरमें राजपाट स्थापन कर दक्षिण-विभागका शासनदण्ड परिचालित किया। इस समयसे छत्तीसगढ़में दो राजवंश राजत्व करते थे। अन्तमें नवीं पीढ़ीमें ब्रह्मदेवका वंश निर्वंश होने पर रत्नपुर-राजवंशकी दूसरी शाखा राजा जगन्नाथसिंह देवके पुत्र देवनाथ सिंहने शायद १३६० ई०में रायपुरमें आ कर राजछत्र धारण किया। इस समयसे महाराष्ट्र-अभ्युदय पर्यन्त उनके वंशधर बिना किसी विघ्न बाधाके रायपुर राज्यशासन करते रहे।

रायपुरके राजवंश स्वतन्त्ररूपसे राज्यशासन करने पर भी रत्नपुरके हैहयवंशीय राजे छोटी शाखाको सामंत-राज्यमें गिनते थे। राजिमके देवमंदिरस्थ ७६६ संवत्

(७५० ई०)-के शिलालेखमें सामन्तराज जगत्पालकी विजयवार्त्ताके प्रसंगमें लिखा है, कि रत्नपुरके राजा सुरदेवके पुत्र पृथ्वीदेवने उक्त सामन्तराजको वैवाहिक सम्बन्धसे आबद्ध किया था। सम्भवतः इसके कुछ समय बाद ही रायपुरके राजवंशकी दृढ़रूपसे प्रतिष्ठा हुई थी।

ये हैहयवंशी लोग किसी भी प्रकार सामाजिक उन्नति न कर सके, इसलिए पीछे उनकी राजशक्तिकी अवनति हो गई थी। गोंड़ जातिमें ज्ञानोपताका चिह्न मात्र भी न था। ऐसी अवस्थामें महाराष्ट्रीय दलने बिना किसी झगड़े के उनका राज्य अधिकार कर लिया।

१७४१ ई०में महाराष्ट्रीय दलने सबसे पहले छत्तीसगढ़ पर आक्रमण किया था। उस समय नागपुरराज्यके सेनापति भास्कर पण्डितने बंगाल विजयके लिए अग्रसर हो कर रास्तेमें रत्नपुरके राजा रघुनाथसिंहको पराजित कर उनका राज्य ले लिया। नागपुरके राजा रघुजी (१म) ने इस नये जीते हुए छत्तीसगढ़ राज्यका शासनभार भास्कर पण्डित और मोहनसिंह पर सौंप दिया था। उन दोनोंने पहले रायपुरके राजा अमरसिंहके शासनाधिकारके विषयमें कोई विवाद नहीं किया, परंतु पाँच वर्ष बाद उन्हें पदच्युत करके उनके खर्चके लिए ७ हजारका कर लगा कर राजिम, पाटन और रायपुरप्रदेश उन्हें जागीरके तौर पर दे दिया। महाराष्ट्र विप्लवके कारण नाना प्रकारके परिवर्त्तन होनेके बाद १८२२ ई०के नये बन्दोबस्तके अनुसार अमरसिंहके पौत्र रघुनाथसिंहके लिए बड़गांव, गोविन्द, मुरवेदा मन्दगांव और बाराजर ग्राम मिलकर छोड़ दिये गये। महाराष्ट्रीय अधिकारमें आनेसे पहलेसे ही रायपुर नगर अवनतिकी चरम सीमा तक पहुँच चुका था। बिम्बाजी और उनकी मृत्युके बाद उनकी विधवा स्त्री आनन्दीबाईने १७८७ ई०में इस नगरकी किसी किसी अंशकी उन्नति की थी।

आनन्दीबाईके बादके शासनकर्त्ताओंके समयमें यहांका राज्यभार सुपाहाक विट्ठल दिनकरके हाथमें था, इसलिए रायपुरमें ऐसा अराजकता पैदा हो गई। तब अत्याचार और बलपूर्वक अनुचित कर वसूल करनेके सिवा राज्यशासनका और कोई नाति ही प्रचलित न थी। इस मामूल अधःपतनके समय भी सोनाखानके विझवारोंने आ कर इस जिलेका पूर्वांश नष्ट कर देनेमें कोई कसर न रखी।

१८१८ ई०में अप्पा साहबके राज्यच्युत होने पर राजा रघुजी (३य)के नाबालिग अवस्थामें अंगरेजोंने नागपुरराज्यका शासनकार्य अपने जिम्मे ले लिया। १८३० ई०में ३य रघुजीके सिंहासन पर बैठने तक नागपुर राज्य कर्नल एग्न्यूके शासनाधीन रहा। उस समय रायपुरकी समृद्धि उत्तरोत्तर बढ़ती गई। १८५४ ई०में नागपुर राज्य अंगरेजोंके अधिकारमें चले आनेके बाद भी छत्तीसगढ़ राज्य कर्नल एग्न्यू द्वारा चलाए हुए पुराने प्रथाके अनुसार शासित हुआ था। उक्त प्रथाके अनुसार ऐसा सुन्दर राजकार्य चला था कि १८१८ ई०में सारे छत्तीसगढ़का जो कर था, १८५५ ई०में केवल रायपुर विभागका कर उससे ज्यादा वसूल होता था। इस समय कप्तान इलियट छत्तीसगढ़ और बस्तारके शासन कार्यमें नियुक्त थे। १८५६ ई०में यह धमतारी और रायपुर तथा १८५७ ई०में दुर्ग इन तीन तहसीलोंमें विभक्त हो गया। १८६१ ई०में बिलासपुर विभाग इससे अलग करके इसे एक स्वतंत्र जिला बना दिया गया और सिमगा तहसील रायपुरके अन्तर्गत कर दी गई। १८५७ ई०के गदरमें यहां विशेष कोई गड़बड़ी नहीं हुई, केवल सोनाखानके विझवार सरदार नारायणसिंहकी उत्तेजनासे कुछ आदमियोंने उपद्रवकी सूचना दे कर कुछ अंगरेज कर्मचारियों पर अत्याचार शुरू किया था। १८५८ ई०में अंगरेजोंके विचारानुसार नारायणसिंहको फांसी हुई थी और उनकी जायदाद जब्त कर ली गई थी। उस समयसे पूर्वविभागके पार्वत्य जातियोंका तरफसे लूट पाट इत्यादि दूर हो गए और यह जनशून्यभूभाग क्रमशः जनसंकुल हो गया।

गोंड़ लोग ही यहांके आदिम अधिवासी हैं। बहुत से तो हिन्दू राजाओंके आधिपत्यमें हिन्दुओंके सम्बन्धसे हिन्दूभावापन्न हो गये हैं। बाकीके जङ्गलमें रहनेवाले लोग अब भी जंगली अवस्थामें पाये जाते हैं। परन्तु ये क्रमशः पुराने धर्मको छोड़ते हुए सभ्यश्रेणीका अनुकरण कर रहे हैं। ये लोग बूढ़ादेव और दूल्हादेवका

प्राचीन सियार (नाथद्वार) नामक स्थानमें शिविर बना कर राणाको युद्धके लिये तैयार होनेको समाचार भेजा। राणाको मुसलमानके आनेकी बात पहलेसे ही मालूम हो गई थी। वे भी युद्धके लिए आगे बढ़े। उनके अधीन मेवारके अधीनस्थ सरदार और सेनापतिगण तथा गिरनारके दो सामन्त आ कर शामिल हो गये। रायमल्ल अपने परम मित्रोंकी सहायतासे बलवान् हो कर ५८ हजार घुड़सवार और ११ हजार पियादे ले कर रणक्षेत्रमें अवतीर्ण हुए। शेषमल्ल और सूरजमल्ल विषम विक्रमके साथ युद्ध करके भी पिताके सिंहासनका उद्धार न कर सके। दिल्लीके वादशाह इस भीषण युद्धमें पराजित होनेके बाद ऐसे शक्तिहीन हो गये थे, कि वे मेवाड़ पर फिरसे आक्रमण करनेका उद्यम न कर सके।

युद्धमें दोनों भतीजोंकी विशेष वीरताका परिचय पा कर राणा रायमल्ल उन पर अत्यन्त सन्तुष्ट हुए थे। कई बार उद्यम करने पर भी जब दोनों बालक नष्ट सम्पत्तिका उद्धार न कर सके, तब उन्होंने उपायान्तर न देख चचासे क्षमा प्रार्थना की। वीरचेता रायमल्लने भी उनका सब दोष क्षमा कर दिया और उन्हें अपने परिवारमें मिला लिया। शेषमल्ल और सूरजमल्लने राणा जयमल्लकी तरफसे मालवराज गयासुद्दीनके विरुद्ध युद्ध करके विजयलक्ष्मी प्राप्त की थी। पराजित मालवपतिने भी सन्धिसूत्रमें आबद्ध हो कर विरुद्धाचरण न किया था।

रायमल्लके तीन पुत्र थे। जिनमें वावरशाहके प्रतिद्वन्द्वी सग (संग्राम) और पृथ्वीराज ही प्रसिद्ध हैं। छोटे जयमल्ल अमिताचारके दोषसे अकालमें कालके ग्रास बन गये और बड़े तथा मध्यम पितृ-सिंहासनके उत्तराधिकारके विषयमें परस्पर विरोधी हो गये जिससे पिताके स्नेहसे वंचित हुए। सगने अपने जीवन नाशकी आशंकासे छिप कर रहनेके लिए विवासन व्रत धारण किया और मध्यम पृथ्वीराजके अन्याय आचरणसे उत्तेजित हो कर उन्हें उत्तराधिकार-च्युत करके निर्वासित कर दिया।

पितृ-परित्यक्त पुत्र पृथ्वीराजके सिर्फ पांच घुड़सवारके साथ पितृ भवन छोड़ कर चले जाने पर पिता रायमल्लने उन्हें सम्बोधन कर कहा, "बेटा! तुम वीर हो, अपने भुजबलसे और साहससे अपने जीवनका पोषण और रक्षण कर सकोगे।" पृथ्वीराज देश।

सङ्ग छिपे हैं, पृथ्वीराज निर्वासित हैं और जयमल्ल मर गये, यह देख कर सूरजमल्ल अपनेको चचाके सिंहासनका प्रकृत उत्तराधिकारी समझ कर तथा नाहरा मुगराकी चारणीदेवीके मन्दिरकी सेवाधिकारिणीको सत्य समझ कर आश्वस्तचित्त हो कर राणाके विरुद्ध षड्यन्त्रमें शामिल हुए। इस समय लाक्षाराणाके अन्यतम वंशधर शारङ्गदेव भी उनके साथ शामिल हो गये। ये दोनों ही सहायता पानेकी आशासे मालवाके सुलतान मुजफ्फर खांके शरणापन्न हुए और मुसलमान सेनाकी सहायतासे इन्होंने दक्षिण-सीमान्तस्थित साद्री, वतूर और नाईसे लगा कर नीमच तक अपने कब्जेमें कर लिये। इस तरह क्रमशः विजय प्राप्त करते हुए वे चितोरके पास पहुंचे। विद्रोहियोंके दमनार्थ राणा रायमल्लने गाम्भीरी नदीके किनारे शत्रुकी सेना पर आक्रमण किया। एक सामान्य सेनापतिकी तरह राणा रणक्षेत्रमें उपस्थित रह कर बाईस अस्त्राघातोंके बाद पृथ्वीराज अश्वारोहियोंको ले कर वहां आ पहुंचे। फिर घोरतर युद्ध शुरू हो गया। सूरजमल्ल पृथ्वीराजके अस्त्राघातसे विशेषरूपसे आहत हुए। किसी पक्षको भी विजय न प्राप्त हुई। अन्तमें दोनों सेना सहित शिविरको लौट गये। इसके बाद दोनोंमें और भी कई बार खण्डयुद्ध हुए। अन्तमें पृथ्वीराजने शठतापूर्वक सूरजमल्लको मारनेका निश्चय किया, परन्तु वे अपनी कल्पनाको कार्यरूपमें परिणत न कर सके। सूरजमल्ल मेवाड़से कान्थालके जंगलमें भाग गये और वहांके अरण्यवासी आदिम जातियोंको वशमें कर देवला नगर स्थापन करके वहांका शासन करने लगे।

जयमल्लकी हत्या और संग्रामसिंहके भाग जानेके कारण चित्तोर राजसिंहासनके उत्तराधिकारीका अभाव हो गया, इससे राणा रायमल्लने वीरहृदय और प्रजावत्सल पुत्र पृथ्वीराजके पहलेके अपराध क्षमा कर उन्हें फिरसे वापस आनेकी आज्ञा दी। पृथ्वीराजने उस

आदेश पर ही चित्तोरमें प्रवेश किया था। मार्गमें पितृशत्रु सूरजमल्लको राजसिंहासनके लिए प्रयासी देख कर वे पुनः युद्धमें लिप्त हुए। परन्तु बहुत कोशिश करने पर भी वे सिंहासन प्राप्त न कर सके। विधाताने उनके भाग्यमें राज्यलाभ न लिखा था। उन्होंने किसी समय भगिनीको निर्यातन करनेके अपराधमें अपने साले भ्रातृपतिको दण्ड दिया था। पिताकी कृपा प्राप्त करनेके बाद, चित्तोरमें रहते हुए वे साले उनके विश्वासभाजन हो गए थे और अन्तमें विष-प्रयोगसे उन्होंने अपने भगिनीपतिको मार डाला था।

पृथ्वीराजकी अकाल मृत्यु पर भग्नहृदय हो कर रायमल्ल भी शीघ्र ही मर गये। इन्होंने पूर्वपुरुषोंकी भाँति जिस वीरताके साथ शिशोदीय वंशकी गौरवरक्षा की थी, उनके योग्य वंशधर संगने भी उसी वीरताके साथ बादशाहकी विपुल मुगल-सेनाको आक्रमण किया था।
संग्रामसिंह देखो।

रायमातला—२४ परगनेके अन्तर्गत एक नदी।
मातला देखो।

रायमुकुट—एक प्रसिद्ध टीकाकार। इन्होंने पदचन्द्रिकाके नामसे अमरकोषकी प्रसिद्ध टीका लिखी थी। १४३१ ई०में ये विद्यमान थे। इनकी बुद्धिकी तीक्ष्णता देख कर पिताने इनका नाम 'बृहस्पति' रखा था। रायमुकुट पद्धति नामक इनका एक अर्वाचीन स्मृतिग्रन्थ भी मिलता है। रघुनन्दनने आह्निकतत्त्वमें इसका उल्लेख किया है। गौड़कुलीन होने पर भी अमरकोषटीकामें इन्होंने अपनेको 'कुलीनाग्रणी' लिखा है।

रायमुनी (हिं० स्त्री०) लाल नामक पक्षीकी मादा, सदिया।

रायराकोल (रैढ़ाकोल)—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलेके अन्तर्गत एक छोटासा सामन्तराज्य। यह अक्षा० २० ५९´ से २१ २४´ उ० तथा देशा० ८३ ५६´ से ८४ ५३´ पू०में अवस्थित है। इसके उत्तरमें बामड़ा, पूर्वमें आठमल्लिक और अनुगूल, दक्षिणमें सोनपुर और पश्चिममें सम्बलपुर जिला है। इसका भूपरिमाण ८३३ वर्गमील है। जनसंख्या २६४७४ है। बाम पाली और टिकिरा नामकी दो नदियाँ यहाँ प्रवाहित होती हैं। जंगलोंमें लाख, धूना, मोम और कत्था पैदा होती है। जगह जगह उत्कृष्ट लोहेकी खान हैं। सम्बलपुरसे जो रास्ता अनुगूल हो कर कटकको गया है, वह इस राज्यके भीतरसे जानेके कारण यहाँका देशी व्यापार उसी मार्गसे कटकमें ही चलता है।

पहले रायराकोल बामड़ाके राजाके अधीन था। करीब सौ वर्षसे भी अधिक पहले परलाक राजाओं द्वारा यह स्वाधीन हो कर गड़जात महलके अन्तर्गत हो गया है। इस राज्यमें ३१८ ग्राम लगते हैं।

रायराघव—रसतरङ्गावलीके प्रणेता।

रायरायान (फा० पु०) १ राजाओंके राजा, राजाधिराज। २ मुगलोंके समयकी एक उपाधि जो प्रायः दीवानों, जमींदारों और राजकर्मचारियों आदिको दी जाती थी।

रायरी (बेड़ी)—बम्बई प्रेसिडेन्सीके रत्नगिरि जिलेके अन्तर्गत एक दुर्ग। यह वाणिज्य-द्रव्य ले आनेवाली नावोंके आने जाने योग्य एक छोटी नदीके मुहानेके पास पहाड़के ऊपर अक्षा० १५ ४५´ उ० तथा देशा० ७३ ४५´ पू०में अवस्थित है। इस दुर्गका यथार्थ नाम यशवन्तगढ़ है। महाराष्ट्रकेशरी शिवाजी महाराजने १६६२ ई०में इसे बनवाया था। बादमें इस पर सावन्तवाड़ीके राजाओंका कब्जा हो गया। क्रमशः उन दस्यु-प्रकृतिके सरदारोंके अत्याचारोंसे यह स्थान दस्युताका दुर्भेद्य केन्द्र हो गया था। १७६५ ई०में अंगरेजी सेनाने आ कर इस पर दखल जमाया, परन्तु दूसरे ही वर्ष अंगरेजोंको उसे वापस दे देना पड़ा। १८१२ ई०की सन्धिके अनुसार १८१८ ई०में रायरी दुर्ग अंगरेजोंके हाथमें फिर चला गया और १८२० ई०में अंगरेजोंका प्रभुत्व विस्तृत हुआ।

इस दुर्गका कुछ अंश पर्वतके ऊपर और कुछ अंश चारों तरफकी समतल भूमिपर अवस्थित है। इसकी चतुःसीमामें असमान प्राचीर है। प्राचीर पर जगह जगह २० फुट ऊँचे बुर्ज हैं जिन पर तोपें लगी हुई हैं। एक बुर्जसे दूसरे बुर्ज तक छेदोंवाली दीवाल है। उन छेदोंमेंसे बन्दूकें छोड़ कर आक्रमणकारी शत्रुओंके ऊपर गोली चलाई जा सकती है। पहले प्राचीरके प्रवेशद्वारसे एक सीधी सड़क पर्वत परके दूसरे प्रवेशद्वार होती हुई मूलदुर्गके चारों तरफके आंगनमें जा कर मिल गई है।

यहांसे कुछ सीढ़ी से कर के ऊपर चढ़ कर तीसरे द्वारसे प्रवेश कर मूलदुर्गमें जाया जाता है। इस दुर्गकी दीवाल बाहरकी चहारदीवारीसे १५ फुट ऊंची है। इसीके नीचे पर्वतको विदीर्ण करती हुई २४ फुट चौड़ी और १३ फुट गहरी एक खाई है। दक्षिण-पश्चिम और दक्षिण-पूर्व कोणमें खाई न होनेसे दुर्गके भीतरकी सेनाकी रक्षार्थ यह स्थान शत्रुसेनाके गोलोंसे बचनेके लिए अत्यन्त दुर्भेद्य बनाया गया था। दुर्गके सबसे ऊंचेकी मंजिल-की दीवालका परिसर १२ फुट है। ऊपरके प्राचीर पर दूर ६० फुटके अन्तरमें तोपें लगी हुई हैं और एक एक अर्द्ध गोलाकार बुर्ज हैं।

इस दुर्गके पास ही हस्तदोलगढ़ पहाड़ है। उसके सामने पत्थर काट कर गुफाएं बनाई गई हैं। ये गुफाएं हजार वर्ष पहलेकी काटी हुई हैं। स्थानीय लोग इन्हें पवित्र मानते हैं।

रायल (अं० वि०) १ राजकीय, शाही। २ छापनेका कलों तथा कागजकी एक नाप जो २० इञ्च चौड़ी और २६ इञ्च लम्बी होती है।

रायलचेरुवू—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके उत्तर आर्कट जिलेके अन्तर्गत एक गण्डग्राम। यह अक्षा० १३° ३०´ ५´´ उ० और देशा० ७६° २७´ ३०´´ पू०में अवस्थित है। विजय-नगरके राजा कृष्णदेव रायलू द्वारा निर्मित प्रसिद्ध बांध-के कारण ही इस स्थानकी प्रसिद्धि है। आधी मीलके फासलेमें दो पहाड़ोंमें बांध दे कर यह दिग्घी बनाई गई है। इसकी विस्तृति १२० फुट और ऊंचाई ७० फुट है। तिरुपतिसे काञ्चीपुर जानेवाले यात्रिगण यहां ठहरा करते हैं।

रायवलसा—मन्द्राजप्रेसिडेन्सीके विशाखपत्तन जिलेके अन्तर्गत एक पर्वत और घाटी। यह अक्षा० १८° १५´ ३० और देशा० ८३° ७´ पू०में अवस्थित है। इस रास्ते-से कासिमकोटसे गल्लिकोण्डका परित्यक्त स्वास्थ्य निवास पार कर जयपुर पहुंचा जा सकता है। विजय-नगरमके महाराजकी यहां काफीकी खेतीका स्टेट है। यह स्थान समुद्रसे २८५० फुट ऊंचा है।

रायबरेली—१ युक्तप्रदेशके अयोध्या-विभागके अन्तर्गत एक विभाग। इसका शासन गवर्नरके अधीन कमिश्नर द्वारा होता है। यह अक्षा० २५° ३४´ से २६° ३६´ ५´´ उ० तथा देशा० ८०° ४४´ से ८२° ४४´ पू०में अवस्थित है। रायबरेली, सुलतानपुर और प्रतापगढ़ जिले इसके अन्त-र्भुक्त हैं। इसके उत्तरमें बाराबंकी और फैजाबाद, पूर्वमें आजमगढ़ और जौनपुर, दक्षिणमें इलाहाबाद और फतेपुर तथा पश्चिममें उन्नाव और लखनऊ जिले हैं। इसका भूपरिमाण ४८८१०७ वर्गमील है।

२ उक्त विभागका एक जिला। यह युक्तप्रदेशके गवर्नर-के अधीन है। यह अक्षा० २५° ४९´ से २६° ३५´ उ० तथा देशा० ८०° ४४´ से ८१° ४०´ पू०में अवस्थित है। इसके उत्तरमें लखनऊ और बाराबंकी, पूर्वमें सुलतानपुर और दक्षिणमें प्रतापगढ़ है। दक्षिण पश्चिममें गङ्गा नदी और पश्चिममें उनाव जिला है। इसका भूपरिमाण १७३८ वर्गमील है। बरेली शहर इसका विचार सदर है।

इस जिलेका पृथक् कोई इतिहास नहीं है। अङ्गरेजों-के अधिकारमें आनेके बाद १८६९ और १८८१ ई०में इसके आयतनमें परिवर्त्तन हुआ था। सारा जिला क्रमोच्च-निम्न समतलक्षेत्र है। जगह जगह महुआ और आमके बाग हैं। गङ्गाके किनारे बबूल, पीपर आदिके पेड़ हैं। गङ्गा और साई यहांकी मुख्य नदियां हैं। इनके सिवा लूना, बसाहा और नाइया नामकी तीन शाखानदियां हैं। १८६४ ई०में इस नगरमें साई नदीके ऊपर पुल बना था।

३ उक्त जिलेकी तहसील। भूपरिमाण ३७११० वर्ग-मील है। प्रसिद्ध बाईं क्षत्रियवंशके महानुभव तिलकचंद यहां राज्य करते थे।

४ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचार-सदर। यह अक्षा० २६° १०´ ५०´´ उ० और देशा० ८१° २६´ २४´´ पू०में साई नदीके किनारे पर अवस्थित है। दुर्द्धर्ष भर-जाति द्वारा इस नगरकी प्रतिष्ठा हुई थी और प्रतिष्ठाताकी जातिके नामानुसार इसका नाम भरौली और पीछे अप-भ्रंश हो कर बरेली पड़ा। किम्वदन्ती है कि, इसके पास राहि (राई) नामका एक ग्राम है, इसलिये इसका नाम रायबरेली पड़ गया है। एक दूसरा प्रवाद प्रचलित है जिससे मालूम होता है, कि यहां पहले राय उपाधिधारी किसी कायस्थका आधिपत्य था। रायोंकी वासभूमि भरौली (भर-कृत) नगरमें परिणत होने पर दोनोंके योगसे रायबरेली पड़ गया।

इसाकी १५वीं शताब्दीके प्रारम्भमें जौनपुरके राजा इब्राहिम शर्कीने नरशाहिको भगा कर इस स्थान पर अधिकार किया था। तभीसे यहां मुसलमानोंका प्रभाव फैला है। मुसलमान राजा इब्राहिम शर्कीने यहां एक छोटा सा दुर्ग बनवाया था। इस दुर्गको इंटोंकी लम्बाई २´× चौड़ाई ११ × और ऊंचाई १ फुट है। अतएव विद्वानोंका अनुमान है, कि मुसलमानोंने सम्भवतः किसी प्राचीन दुर्गकी ईंटोंसे यह दुर्ग बनवाया होगा। दुर्गके बीचमें एक २१६ हाथ परिधिकी बावली है। अब तो इसका अधिकांश टूट फूट गया है।

प्रवाद है, कि मुसलमान राजा दुर्ग बनवाते समय दिन भर जितना चुनवाते थे, रातको किसी अभावनीय कारणसे उतना सब ढह जाता था। अन्तमें ऐसी दुर्घटना होने पर राजाने जौनपुर निवासी मखदूम सैयद जाफरी नामक मुसलमान साधुसे प्रतिकारके लिये प्रार्थना की। तदनुसार राजाकी अभिलाषा पूरी करनेके लिये उक्त साधु उसके चारों तरफ घूम फिर गये। फिर कोई उपद्रव नहीं हुआ। दुर्गद्वारके पास उक्त साधुकी समाधि विद्यमान है। अन्यान्य अट्टालिकाओंमें राज प्रासाद, मुगल-सम्राट् औरङ्गजेबके अधीनस्थ शासनकर्त्ता नवाब बहाल खांका समाधिमन्दिर और ४ मसजिदें हैं, जिनमें एक गुम्बज-रहित और मक्केकी काबा मसजिदके अनुकरण पर बनाई गई है, ऐसी प्रसिद्धि है। सई नदीका पुल स्थानीय जुमा शाहके व्ययसे बना है।

रायपायिनी (सं॰ स्त्री॰) १ धन प्रकृति, चञ्चल स्वभाव। २ चञ्चला और धनइच्छिका रमणी।

रायबांदली—सम्बलपुर जिलेके आठगढ़ मध्यस्थ एक क्षुद्र सामन्तराज्य। यहांके अधिपति अंगरेज राजको और मुनागढ़के नवाबको कर दिया करते हैं।

रायशेखर—एक वैष्णव पदावलीकार। इनका प्रकृत नाम था शशिशेखर। वर्द्धमान जिलेके पड़ानगांवमें इनका जन्म हुआ था। ये श्रीखण्डवासी रघुनन्दन गोस्वामीके शिष्य और नित्यानन्दके वंशज थे। गोविन्दरायके पास ये रहते थे, इन्होंने बंगला पद बनाये। कहा जाता है कि ये ब्राह्मण पदावलीकार थे।

रायसा (हिं॰ पु॰) वह काव्य जिसमें किसी राजाका आत्मचरित वर्णित हो, रासो।

राय साहब (फा॰ पु॰) एक प्रकारकी पदवी जो भारत को अंगरेजी सरकारकी ओरसे रईसों और राजकर्म-चारियों आदिको दी जाती है।

रायसिंह—वैद्यकसारसंग्रह या राजसिंहोत्सव नामक वैष्णवग्रन्थके प्रणेता।

रायसेन (रायसिंह)—मध्यभारतके भोपाल राज्यके अन्तर्गत एक गिरि दुर्ग। यह अक्षा॰ २३ २०´ ३० और देशा॰ ७७ ४०´ पू॰में समुद्रसे १९५० फुटकी ऊंचाई पर एक छोटी पहाड़ी पर अवस्थित है। यहांसे भारतप्रसिद्ध सांचीका बौद्धकीर्त्ति १० मीलकी दूरी पर है। होशङ्गाबादसे सागर जानेका रास्ता इस स्थानके पाससे गया है। यह दुर्ग दुर्भेद्य तथा और रणनैपुण्यमें इतिहासप्रसिद्ध था। १५४३ ई॰में शेरशाहने इस दुर्गको घेरा और जीता था। इसाकी १८वीं शताब्दीके मध्यभागमें मराठा सेनाने इस पर कब्जा किया था किन्तु इसके कुछ ही समय बाद १७४८ ई॰में भोपालके नवाबने इसे मराठोंसे छीन लिया था। १८१८ ई॰में उक्त दोनों राजा अंगरेजोंके साथ सन्धिसूत्रमें आबद्ध हुए थे।

रायस्काम (सं॰ त्रि॰) धनकाम, धनकी इच्छा करनेवाला।

रायस्पोष (सं॰ पु॰) १ धनपुष्टि, काफी धन। (त्रि॰) २ धनपुष्ट, धनवान्।

रायस्पोषद (सं॰ त्रि॰) धनपुष्टियुक्त काफी धनवाला।

रायस्पोषदा (सं॰ स्त्री॰) धनपुष्टिदायिनी, काफी धन देनेवाली।

रायस्पोषवन् (सं॰ त्रि॰) धन या सौभाग्यशाली।

रायस्पोषवनि (सं॰ त्रि॰) सोने चांदी देनेवाला, काफी धन देनेवाला।

राधा—वृन्दावन-वासी एक गोप। कृष्ण-माता यशोदाके भाई। कृष्णप्रिया श्रीराधिकाके साथ इनका विवाह हुआ था। ब्रह्मवैवर्त्तपुराणमें लिखा है, कि गोलोकमें विरजा-विहारमें प्रवृत्त कृष्णको देख कर राधाने उन्हें फटकारा था। इस समय उन्होंने कृष्णके पास बैठे हुए सुदामाका भी तिरस्कार किया था। सुदामाके शापसे राधा गोलोक छोड़ कर वृषभानु वैश्यकी पत्नी कलावतीके गर्भमें आविर्भूता हुई थीं।

नवयौवना राधाकी बारहवीं साल बीत जाने पर वृषभानुने रायान वैश्यके साथ अपनी कन्याका विवाह करना स्थिर किया। तब राधा उस देहमें छायामात्र रख कर अन्तर्धान हो गईं और छायाके साथ रायानका विवाह हो गया। रायान कृष्णांश-सम्भूत और गोलकके गोप थे। मर्त्यधाममें आ कर वे नातेमें कृष्णके मामा हुए। राधाकी अवस्था जब चौदह वर्षकी हुई, तब कृष्ण कंसके भयके बहाने गोकुलमें लाये गये।

(ब्रह्मवैवर्त्तपुराण प्रकृतिख० ४९ अ०)

मतान्तरसे ऐसा है, कि रायानने पूर्वजन्ममें लक्ष्मीको प्राप्त करनेकी आशासे तपस्या की थी। नारायणके वरसे उन्हें लक्ष्मी प्राप्त होने पर भी लक्ष्मीके आदेशसे वे नपुंसत्वको प्राप्त हुए थे। लक्ष्मीके अनुरोधसे भगवान्‌ने कृष्णावतारमें उन्हें पुनः ग्रहण किया था।

रायाणनीय (सं० पु०) एक आचार्यका नाम।

रायेकवाड़ (रायकवाड)—राजपूत जातिकी एक शाखा। ये सूर्यवंशी कहलाते हैं। १४१४ ई०में तुगलकवंशके अधःपतनसे हिन्दुस्तानमें घोर अराजकता उपस्थित होने पर प्रताप शा और दण्डो शा नामक दो सूर्यवंशी राजपूत भाइयोंने काश्मीर राज्यमें रायका ग्रामसे भड़ौंचमें, फिर वारावंकी जिलेके रामनगरमें आ कर बसे थे। इनके वंशधरोंने १४५० ई०में किसी भरराजको पराजित कर उनकी विस्तृत सम्पत्ति प्राप्त की थी। प्रताप शाके अधःस्तन पञ्चम पुरुष राजा हरिहरदेव मुगल-सम्राट् अकबरके समसामयिक थे। उनके राज्यमेंसे कोई मुगल-राजकन्या सैयद सालरकी समाधि देखने गई थी। राजाने इसके लिये कर लिया था, जिससे अकबर शाह द्वारा वे तिरस्कृत हुए थे। पीछे राजा हरिहरदेवने सम्राट्की तरफसे काश्मीरके राजद्रोही शासनकर्त्ताको दमन किया और इसके लिये उन्हें पुरस्कार-स्वरूप नौ परगने प्राप्त हुए। इस राजवंशके साथ उनाव-राजवंशकी कुटुम्बिता है।

रामनगर और बौन्दी-राजवंशके प्रतिष्ठाताके भैरवानन्द नामक एक भाई थे। उनके भतीजेने भविष्यवाणी कह कर अपने चचासे निवेदन किया कि आपके आत्मोत्सर्गसे हमारे वंशका माहात्म्य चिर-दिन अक्षुण्ण रहेगा। तदनुसार भैरवानन्दने चन्दाशिहली ग्राममें एक कूपके पास चबूतरा बनवा कर उसके ऊपरसे कूपमें गिर कर प्राण विसर्जन कर दिये। तबसे वह स्थान पवित्र तीर्थ समझा जाता है। रायकवाड़ लोग प्रतिवर्ष यहां आया करते हैं।

स्थानभेदसे ये विभिन्न श्रेणियोंके राजपूतोंके साथ आदान प्रदान करते हैं। रायबरेली जिलेमें ये विषेण और घर्घरावासी वाईयोंकी लड़की लेते और अमेठिया, पनवार तथा वाईयोंको लड़की देते हैं। बरेलीमें वाचाल और गौतमके घर लड़केका विवाह करते हैं। फरुखाबादी लोग याशिष्ठगोत्री और सोमवंशी, राठोर और चौहानके घर कन्या देते हैं। ये लोग पुत्रका विवाह और सबोंके घर कर सकते हैं।

रायेन (रायन)—उत्तर-पश्चिम भारतमें रहनेवाली एक जाति। किसानी और मालीका काम करना इनका जातीय रोजगार है। रोहिलखण्ड और मेरठ विभागमें हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रकारके रायेन रहते हैं। पञ्जाव प्रदेशमें ये 'अरायेन' कहलाते हैं। सिरसा, रानिया और दिल्लीवाल रायेन हिन्दू और राजपूत तथा लाहोर-प्रतिष्ठाता राजा लवके पौत्र राय जाजके वंशधर हैं, ऐसी प्रसिद्धि है। ईसाकी १२वीं शताब्दीमें साहबउद्दीन गोरीके राज्यकालमें ये इस्लामधर्ममें दीक्षित हुए थे। जालन्धरवासी रायनोंका कहना है, कि वे राजा करणके ५म पुरुष अधस्तन राजा भूतके वंशधर हैं। उच्छप्रदेशमें इनका वास था। गजनी-पति महमूदने उन्हें मुसलमान बनाया था। उच्छ-पतिने वसन्ती नाम के किसी रायनकी कन्यासे पाणिग्रहणके लिये कहा, तो उन्होंने स्वीकार नहीं किया, जिससे नाराज हो कर राजाने उन्हें राज्यसे निकाल दिया। तब वे सिरसा और पञ्जाबके नाना स्थानोंमें जा कर रहने लगे। इस विषयमें उनमें एक किम्वदन्ती है—

"उच्छ मा दिवे भूतिथां, चाता वसन्ती नार।
दाना-पानी चूक गया, चावन मोती हार॥"

हिसारके रायनोंका कहना है, कि पहले वे राजपूत थे, मुसलमान होनेके बाद उनका जातीय सम्मान जाता रहा और समाज-भ्रष्ट हो कर खेतोंका काम करना पड़ा।

इनमें अब भी बिरोहा, चौहान और भारी आदि राज पूतों के गोत्र प्रचलित पाये जाते हैं। जिनमें कटया गोत्र हो रायन जातिका आदि गोत्र है।

सिरसाके रायन कहते हैं, कि शत्रुओं द्वारा उच्छसे भगाये जा कर वे मुलतान आ कर रहे और सैनिक-वृत्ति छोड़ कर कृषिवृत्ति करनेको बाध्य हुए। १७२५ ई०के दुर्भिक्षमें वे घाघर नदीके किनारे आ कर भाटनेसे फतेहाबादके तोहाना तक घाघर उपत्यका पर अधिकार करके वहाँ खेती-बारी करने रहे। इस समय लुटेरे भट्टियों के उपद्रवसे शक्तिहीन हो कर ये बरेली, पाली भात और रामपुर आदि स्थानोंमें जा कर रहने लगे।

रायोबाज (सं० पु०) एक ऋषिका नाम।

रायोबाजीय (सं० क्लि०) सामभेद।

रार (हिं० पु०) १ झगड़ा टंटा, हुज्जत। (स्त्री०) २ राल देखो।

राल (सं० पु०) १ सौन्दर्य। २ आलोक, रोशनी। ३ ज्योति।

राल (सं० पु०) १ सर्जक। (Mimosa Rutcicaulis) धूनाका पेड़। २ सर्जरस, सालवृक्षका निर्यास, धूना। पर्याय—साल, कलकलोद्भव सकन, सालनिर्यास, सुर धूप यक्षधूप, अग्निवल्लभ, कल, कलकल। गुण—शीतल, स्निग्ध, कषाय तिक्त, स ग्राहक तथा वातपित्त, स्फोटक, कण्डु और व्रणनाशक। (राजनि०)

राल (सं० पु०) वृक्षका एक प्रकारका सख्त निर्यास या गोंद। जो तरल गोंद जलमें घुल जाता है उसे Gum Resin कहते हैं। इसमें राल और तेल बहुतायतसे होता है। एकमात्र तैल और राल मिले हुए गोंदका नाम Oleo Resin है। जो सब कठिन और कोमल गोंद लाख आदिके साथ व्यवहृत होता है वही True Resin या राल कहलाता है।

राल वृक्षका आठा देखनेमें गोंदको तरह होता है। आगमें पकानेसे यह गल जाता और चोट देने पर चूर्ण होता है। यह जलमें नहीं गलता। स्पर यानी पत्र कोहलमें मिलानेसे द्रव होता है। इसमें अधिक मात्रामें कार्बन और कम मात्रामें आक्सिजन रहता है। नाइट्रो जन नाममात्रका भी नहीं रहता। सिनामिक् और बेन् जोयिक् एसिड, मलंग्राइक आयेडके अतिरिक्त इसमें Cellulose tannin आदि एक रहते हैं।

लाखमें राल मिलानेसे पात और बटन (Shellac और Button Lac) तैयार होता है। जो सब लाखके बिलौम बाजारमें बिकते हैं उनमें अधिक भाग राल ही है। वट आदि पेड़के कच्चे आठेमें राल गला कर चिड़िया मारनेवाला चिड़िया पकड़नेके लिये एक प्रकार का आठा बनाता है। पर्याय—साल, कलकलोद्भव, सलन सालनिर्यास, देवेष्ट, शीतल बहुरूप, सालरस, सर्ज्ज निर्यासक, सुरभि सुरधूप, यक्षधूप, अग्निवल्लभ, कल, कलकल। इसका गुण—शीतल स्निग्ध, कषाय, तिक्त, संग्राहक, वातपित्त, स्फोटक, कण्डु और व्रणनाशक माना गया है। (राजनि०)

राल (हिं० पु०) १ एक प्रकारका कंबल। (स्त्री०) २ वह पतला लसदार थूक जो प्रायः बच्चों और कभी कभी बुड्ढों के मुंहसे आपसे आप बहा करता है। दाँतों की पीड़ा आदिमें कोई कोई दवा लगाने पर भी यह मुंहसे निकल कर गिरने लगता है, लार। ३ चौपायोंका एक रोग जिसमें उन्हें खाँसी आती है और उनके मुंहसे पतला लसदार पानी गिरता है।

रालकार्य (सं० पु०) रालस्य सालरसस्य कार्यं यत्र सालका पेड़।

राली (हिं० स्त्री०) एक प्रकारका बाजरा। इसके दाने बहुत छोटे होते हैं। यह प्रायः संयुक्तप्रान्त और बुन्देलखण्डमें होता है। यह फागुन चैतमें बोया जाता है और बैशाखमें तैयार होता है।

राव (सं० पु०) रवणमिति रु-भावे घञ्। शब्द, ध्वनि।

राव (हिं० पु०) १ राजा। २ सरदार, दरबारी। ३ श्रीमन्त, धनाढ्य। ४ भाट, बन्दीजन। ५ कच्छ और राजपूतानेके कुछ राजाओंकी एक पदवी। ६ छोटे आकार का एक पेड़। इसकी लकड़ी कुछ ललाई लिये चिकनी और मजबूत होती है। यह हिमालयकी तराईमें हजारे और सिमलेसे भूटान तथा सिक्किम तक होता है। इसकी लकड़ीकी प्रायः छड़ियाँ बनाई जाती हैं।

रावचाव (हिं० पु०) १ नृत्य गीत आदिका उत्सव, राग रंग। २ प्यार, लाड, दुलार।

रावजी मोडक—नीतिमुकुलके प्रणेता।

रावट (हिं० पु०) राजभवन, महल।

रावटी (हिं० स्त्री०) १ कपडेका बना हुआ एक प्रकारका छोटा घर या डेरा। इसके बीचमें एक बडेर होती है और इसके दोनों ओर दो ढालुए परदे होते हैं। यह बड़े खेमोंके साथ प्रायः नौकरों आदिके ठहरनेके लिये रखी जाती है, छोलदारी। २ बारहदरी। ३ किसी चीजका बना हुआ छोटा घर।

रावण (सं० पु०) रवणस्यापत्यमिति रवण (शिवादिभ्या-ऽण्। ४।१।११२) इति अण्, यद्वा रावयति भीषयति सर्वानिति रु-णिच्-ल्यु। १ मुहूर्त्त। २ लङ्काधिपति। पर्याय—पौलस्त्य, रक्षस्, लंकेश, दशकन्धर, दशकण्ठ, निकषात्मज, राक्षसेन्द्र, पङ्क्तिग्रीव, दशानन, लङ्कापति, दशास्य। (जटाधर)

इसकी नामनिरुक्ति—

"यस्माल्लोकत्रयं चैतद्रावितं भयमागतम्।
तस्मात्त्वं रावणो नाम नाम्ना वीरो भविष्यसि॥"

(रामायण)

इससे तीनों लोक द्रावित और भयभीत होता था। इस कारण इसका रावण नाम पडा। राक्षसाधिपति रावणकी उत्पत्ति और निधनादिका विषय रामायणमें इस प्रकार लिखा है—

ब्रह्माके पौत्र पुलस्त्य, पुलस्त्यके पुत्र विश्रवा और विश्रवा हीका पुत्र रावण था।

लङ्कामें राक्षसगण रहते थे। इन राक्षसोंके साथ भगवान् विष्णुका घोर संग्राम हुआ। युद्धमें हार खा कर राक्षसगण पाताल भागे। इनमेंसे सुमाली नामक एक राक्षस था। सुमालीके कैकसी नामक एक सुन्दर कन्या थी। सुमाली रसातलमें कुछ दिन रह कर कन्याके विवाहके लिये उसे साथ ले रसातलसे निकला। रास्तेमें वह मन ही मन सोचता जाता था, कि इस कन्याके गर्भसे जो सन्तान उत्पन्न होगी वह यदि विष्णुको दमन कर सके तो हम लोगोंका दुःख दूर होवे।

सुमालीने कन्याका वर मन ही मन स्थिर कर कन्यासे कहा, 'बेटी! तुम प्रजापतिकुलसे उत्पन्न पुलस्त्यके पुत्र विश्रवाके पास जाओ और उसे अपना पति बना कर अत्यन्त तेजस्वी शत्रुका दमन करनेमें समर्थ ऐसे एक पुत्रके लिये प्रार्थना करो। कैकसी पिताके आदेश पा कर जहां विश्रवा तपस्या करते थे, वहीं गई और उन्हें प्रणाम कर रहने लगी।

एक दिन विश्रवाने इस अनवद्या कुमारीको देख कर कहा, 'भद्रे! तुम किसकी कन्या हो? कहांसे और क्यों यहां पर आई हो? कैकसी लज्जासे शिर झुकाये बोली, 'मुनिवर! मैं पिताके कहनेसे यहां आई हूं, कैकसी मेरा नाम है। किस लिये मैं यहां आई हूं सो आप स्वयं तपके प्रभावसे जान सकते हैं।'

विश्रवाने तपके प्रभावसे कुल विषय मालूम कर कैकसीसे कहा, 'भद्रे! तुम एक पुत्रकी कामनासे यहां आई हो। मुझसे तुम्हारे जो एक पुत्र होगा वह क्रूर ब्राह्मणोंका अप्रिय, क्रूरस्वभाव, भयङ्कर और क्रूरकर्मा होगा।' कैकसी मुनिका वचन सुन प्रणाम कर बोली 'भगवान्! आप ब्रह्मवादी हैं, मुझे दुराचारी पुत्रकी जरूरत नहीं, मैं एक उत्तम पुत्रके लिये प्रार्थना करती हूं।'

विश्रवाने कैकसीका वचन सुन कर कहा, 'तुम्हारा छोटा लडका मेरे वंशानुरूप धर्मशील होगा।' कुछ समय बाद कैकसीने विश्रवासे एक सुदारुण वीभत्स राक्षस प्रसव किया। उस राक्षसके दश मस्तक, केशकलाप-प्रदीप्त, ओष्ठ लोहित, दन्त विशाल, बाहु बीस और वर्ण घोर काला था। पुत्रके उत्पन्न होते ही नाना प्रकारका भयावह उत्पात होने लगा। दशग्रीव होनेके कारण पिताने उसका दशग्रीव नाम रखा।

पीछे कैकसीके गर्भसे कुम्भकर्ण और विभीषण नामक दो पुत्र और सूर्पनखा नामक एक कन्या उत्पन्न हुई। धनेश्वर कुबेर भी विश्रवा-नन्दन थे। उस समय ये लङ्कामें रहते थे। एक दिन वैश्रवण धनेश्वर पितासे मिलने आये। कैकसीने दशाननसे कहा, 'बेटा! अपने भाईको देखो, यह विपुल धनका सम्पत्ति और तेज सम्पन्न है। तुम्हें भी अपने भाईके समान ऐश्वर्य और तेजस्वी होनेकी कोशिश करनी चाहिये।'

दशाननने माताकी बात सुन कर कहा, 'मैं आपके निकट प्रतिज्ञा करता हूं, कि अपने तपके प्रभावसे भाइ के समान अथवा उससे बढ़ कर तेजस्वी होऊंगा। आप इस छोटी सी बातके लिये चिन्ता न करें।' इसके बाद दशानन अपने भाइयोंके साथ घोर तपस्या करने लगा। इस प्रकार हजार वर्ष बीत गया। रावणने अपना एक मस्तक काट कर अग्निमें आहुति दी। इस प्रकार वह ९ हजार वर्ष तक कठोर तपस्या करता रहा, पर कोइ फल नहीं निकला। पीछे एक एक कर उसने ९ मस्तकों की आहुति दे डाली तो भी कोइ फल नहीं। दश हजार वर्ष बीतने पर दशग्रीवन दशवां मस्तक काटना चाहा। लोकपितामह उसकी तपस्यासे प्रसन्न हो वहां आए और बोले, 'दशानन! अब तुम्हें दशवां मस्तक काटना नहीं पड़ेगा, तुम्हारी तपस्यासे मैं संतुष्ट हुआ, जो इच्छा हो वर मांगो।'

दशाननने ब्रह्माको प्रणाम कर कहा 'भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं, तो यही वर दीजिये, जिससे मैं अमर होऊं'। क्यों कि प्राणीको मृत्युका भय ही हमेशा हुआ करता है, दूसरा भय नहीं। विशेषतः मृत्युके समान और कोइ शत्रु नहीं है।'

ब्रह्माने कहा, 'पृथिवी पर कोइ भी अमर नहीं हो सकता। इसलिये तुम अमरको छोड़ कर दूसरे वरके लिये प्रार्थना करो।' रावण बोला, 'भगवन्! यदि आप मुझे अमर वर देना न चाहते हों, तो यही वर दीजिये जिससे मैं देव, दानव, दैत्य, यक्ष रक्ष, नाग और सुपर्ण से मारा न जाऊं। मनुष्य आदि प्राणियोंको तो मैं तृण के समान जानता हूं उनका डर मुझे जरा भी नहीं है। ब्रह्मा 'तथास्तु' कह कर चल दिये। जाते समय उन्होंने कहा था, 'तुमने जिन सब मस्तकों को अग्निमें आहुति दी है, वे सब मस्तक फिर उसी प्रकार हो जायंगे और तुम जो चाहोगे, वही तुमको मिल जायगा।' पिता महके इस प्रकार कहते ही अग्निमेंसे सभी मस्तक फिर निकल आये।

सुमाली राक्षसको जब रावणादिके वरप्राप्तिका हाल मालूम हुआ, तब उसका कुछ भय जाता रहा। उसने अनुचरोंके साथ रसातलसे बाहर निकल कर रावणसे कहा, 'वत्स! तुमने ब्रह्मासे उत्तम वर पाया है। हम लोगोंके हृदयमें यह आशा बहुत दिनोंसे लगी हुइ थी अभी भाग्यवश वह पूर्ण हुइ। हम लोग जिस लिये लङ्काका परित्याग कर पातालमें आ कर रहते थे, वह भय आज हम लोगोंका दूर हुआ। विष्णुके भयसे हम लोगोंने इस स्थानको छोड़ा था। पहले लङ्का नगरी राक्षसोंके अधिकारमें थी। अभी तुम्हारा भाइ कुबेर वहां रहता है। तुम चाहे जिस किसी उपायसे हो, लङ्का नगरी पर अधिकार करो इससे राक्षसोंका बड़ा भारी उपकार होगा। पीछे हम लोग तुम हीको लङ्काका राजा बनावेंगे।'

रावण मातामह सुमालीका वचन सुन कर राक्षसोंके साथ लङ्का गया और कुबेरको लङ्कापुरी छोड़ देनेके लिये कहला भेजा। कुबेरने रावणके दूतसे कहा, 'यह राक्षसशून्या लङ्कापुरी पिताजीने मुझे दी थी। मैंने उसी लिये यहां पुर बसाई है। मेरा यह राज्य और पुरी तुम्हारी ही है। अतएव तुम अकण्टक राज्य भोग करो। मुझे इस राज्य और धनकी कुछ भी जरूरत नहीं है।'

कुबेर इस प्रकार दूतको विदा कर पिताके पास गये और उनसे कुल वृत्तान्त कह सुनाया। विश्रवाने कुबेर से कहा, 'पुत्र! दशाननने भी मुझसे यही कहा, लेकिन मैंने उसको बहुत फटकारा। पीछे मैंने क्रुद्ध हो कर 'तुम ध्वंस होगे' इस प्रकार। अभिशाप भी दिया। दुर्मति रावण वरके प्रभावसे हिताहितज्ञानशून्य हो गया है। इसलिये तुम अभी लङ्काका परित्याग कर अनुचरों के साथ कैलास-पर्वत पर चले जाओ और वहीं रहनेके लिये पुरी निर्माण करो।'

कुबेरने लङ्कापुरीका त्याग कर दिया है, सुन कर रावण अनुचरोंके साथ लङ्का गया और वहीं रहने लगा।

लङ्काराज्यमें अभिषिक्त हो रावणने मयदानवकी कन्या मन्दोदरीसे ब्याह किया। कुछ दिन बाद मन्दोदरीके गर्भसे मेघनाद उत्पन्न हुआ। रावणने ब्रह्माके वरसे बलवान् हो स्वर्ग, मर्त्य और पाताल तीनों लोकको जीता। इन्द्र, यम आदि दिक्पाल भी हार मान कर रावणके

आज्ञानुसार कार्य करनेको वाध्य हुए। उस दुर्वृत्तने पहले कुबेरको पराजय कर उनका पुष्पक विमान छीन लिया। अब पुष्पक विमानकी सहायतासे वह क्षण भरमें स्वर्ग, मर्त्य और पाताल आने जाने लगा।

दुष्ट रावण राहमें देवकन्या, दानवकन्या, राजकन्या और ऋषिकन्याको हरण करने लगा। वह जिसको रूपवती देखता उसके आत्मीयको विनाश कर उसे हरण कर लेता था। कोई भी उसे लड़ाईमें जीत नहीं सकता था। इस प्रकार रावण वर पा कर गर्वित और दुर्वृत्त हो गया।

एक दिन रम्भा नामक एक अप्सरा नलकुबेरको अपना पति वर कर उनके पास जा रही थी। राहमें संयोगवश रावणके साथ उसकी भेंट हो गई। रावण उसे देख बलपूर्वक हर ले गया। रम्भा निरुपाय हो बड़ी विनतीसे उसे कहने लगी, "आप मेरे गुरुजन हैं, आप मेरे स्नूषा हैं। अतएव मैं आपकी कन्या सदृश हूं। मुझ पर इस प्रकार बलात्कार न करें।" रावण कामके मदसे उन्मत्त था, उसकी बात पर कुछ भी कान न दिया, बलपूर्वक शिला पर पटक कर सम्भोग किया।

रम्भा नितान्त अपमानित और धर्मभ्रष्टा हो रोती हुई नलकुबेरके पास गई। नलकुबेर उसकी अवस्था देख कर और कुल वृत्तान्त सुन कर आगबबूला हो गये। उन्होंने रावणको शाप दिया, 'यदि रावण फिर कभी अकामा स्त्रीके साथ संभोग करेगा, तो उसका मस्तक उसी समय सात टुकड़ोंमें बट जायगा।'

रावण नलकुबेरके शापसे फिर कभी भी अकामा स्त्रीके साथ संभोग नहीं कर सकता था। स्त्रीको हरण कर छल, बल, कौशल वा प्रलोभन आदिसे उसे सकामा बना कर तब संभोग करता था। इस पर भी जो नहीं लुभाती थी उसे वह तरह तरहका कष्ट देता था।

रावण सहस्रबाहु अर्जुनके पराक्रमकी बात सुन कर उसके साथ लड़ने गया और परास्त हुआ। अर्जुनने उसे कारागारमें बंद रखा। पुलस्त्यको जब यह मालूम हुआ, तब वह अर्जुनके पास आया और उसे छोड़ देनेके लिये प्रार्थना की। अर्जुनने रावणको छोड़ दिया और उससे मित्रता कर ली।

इसके बाद जब रावणको वानरराज वालीके पराक्रमका हाल मालूम हुआ, तब उससे युद्ध करने गया। उस समय वाली समुद्रके किनारे संध्यावन्दनादि कर रहा था युद्धके लिये रावणको आया देख उसे अपनी पूंछसे बांधा और चार समुद्रमें घुमाया। पीछे संध्यावन्दनादि कर अपने घर लौटा। रावणने नितान्त क्लिष्ट और व्यथित हो हार स्वीकार की और पीछे वालीसे मित्रता कर ली। इस प्रकार बहुत दिन बीत गया। रावणके भयसे देवगण भी नितान्त भयभीत हो रहने लगे।

स्वर्ग, मर्त्य और पाताल यह त्रिभुवन अत्यन्त उत्पीड़ित हो उठा। रावण देवदानव आदिका अवध्य था, इसलिये कोई भी उसके विरुद्ध खड़ा नहीं हो सकता था।

भगवान् विष्णुने त्रिभुवनको नितान्त उत्पीड़ित देख भूभारहरणके लिये दशरथके घर नररूपमें अवतार लिया। नर भक्ष्य है, अतएव उससे मृत्युकी सम्भावना नहीं है, इस कारण नरका अवध्यत्व वर रावणने ग्रहण नहीं किया। भगवान्‌का नररूप धारण करनेका यही एक कारण था।

भगवान्‌के अवतार रामचन्द्र पितृसत्यका पालन करनेके लिये निर्वासित हुए और सीता और लक्ष्मणके साथ दण्डकारण्यमें रहने लगे। इस दण्डकारण्यमें शूर्पनखा रहती थी। उसके साथ खरदूषण भी था। शूर्पनखा राम और लक्ष्मणको देख कर कामपीड़ित हुई। उसने अति कमनीय रमणीवेशमें रामलक्ष्मणको मोहित करनेकी चेष्टा की। राम लक्ष्मणने उसकी ओर दृष्टि तक भी नहीं उठाई। शूर्पनखाने भी उनका पीछा नहीं छोड़ा। इस प्रकार तंग आ कर लक्ष्मणने उसके नाक-कान काट डाले और उसे मार भगाया।

शूर्पनखा नितान्त अपमानित हो रावणके पास गई और उसने सीताके अलोक-सामान्य सौन्दर्यका विषय उससे कहा। रावण सीताके रूपलावण्यकी बात सुन कर उन्हें हर लानेके लिये मारीचके पास गया। मारीचने रावणका अभिप्राय जान कर रामके बलवीर्यका परिचय दिया और ताड़कावधका वृत्तान्त कहा। रावणने उसकी बात पर कान नहीं दिया और मारीचको साथ ले दण्डकारण्य गया। मारीच सुवर्णमय मृगका रूप धारण

कर सीताके समीप घूमने लगा। सीताके अनुरोध करने पर रामचन्द्र उसे पकड़ने गये। मायामृग कौशलसे रामचन्द्रको बहुत दूर ले गया। पीछे रामके शरसे विद्ध हो ज़मीन पर गिर पड़ा और 'लक्ष्मण लक्ष्मण' कह कर प्राण त्याग किया।

यह वाक्य सुन कर सीताने समझा कि रामचन्द्र विपद्में पड़े हैं, सो उन्होंने लक्ष्मणको उनकी मददमें जाने कहा। सीताको अरक्षित अवस्थामें छोड़ जाना लक्ष्मणने अच्छा नहीं समझा। परन्तु सीताके कटु वाक्य कहने पर लक्ष्मण जानेके लिये बाध्य हुए।

रावण सीताको पर्णकुटीरमें अकेली देख अतिथिके वेशमें वहां आया और सीताको हर ले गया। रावण सीताको हर कर ले जा रहा है, जान कर जटायु रावण पर टूट पड़ा। दोनोंमें घनघोर युद्ध हुआ। युद्धमें रावणने जटायुका पंख काट डाला जिससे वह ज़मीन पर गिर पड़ा। रावण सीताको ले कर निरापदसे लङ्का ले गया।
राम और सीता देखो।

रामचन्द्रको जब मालूम हुआ कि रावण सीताको हर ले गया है, तब उन्होंने सुग्रीवसे मेल कर लिया और बालीका वध किया। सुग्रीवकी सहायतासे रामचन्द्र समुद्रको बांध कर पार गये और लङ्कापुरी पहुंचे। विभीषणने रावणसे सीता लौटा देने कहा, किन्तु रावणने उसकी बात पर कान नहीं दिया और उल्टे उसका अपमान किया। विभीषणने रामचन्द्रका पक्ष लिया। राम विभीषणसे सहायता पा कर प्रबल विक्रमसे रावणके साथ युद्ध करने लगे। रावण रामचन्द्रका मुकाबला न कर सका और उसने असमयमें कुम्भकर्णकी नींद तोड़ी। कुम्भकर्ण भी रामचन्द्रके साथ युद्ध कर मारा गया। पीछे मेघनाद आदि रावणके पुत्र और पौत्रादि सबके सब यमपुर सिधारे। पुत्र पौत्रादि और सेनाके मारे जाने पर रावण बलहीन हो गया।

रावण इस युद्धमें मृत्यु निश्चय कर प्रबल विक्रमसे रामचन्द्रके साथ युद्ध करने लगा। दोनों ओरसे तुमुल संग्राम चलने लगा। यह युद्ध देख देवता, दानव, यक्ष, पिशाच आदि वहां उपस्थित हुए। सात रात युद्ध चलता रहा पर कोई भी किसीको पराजय न कर सका।

इसके बाद देवराजने रामचन्द्रकी मददमें मातलीको भेजा। मातलीने रामचन्द्रसे आ कर कहा, 'देव! आज इसका विनाशकाल आ पहुंचा, किसी प्रकारसे इसका निपात नहीं होगा। आप इसके वधके लिये ब्रह्मास्त्र ले लिये।' रामचन्द्रने महर्षि अगस्त्यका दिया हुआ अमोघ ब्रह्मदत्त अस्त्र उठाया। उस अस्त्रके वेगमें पवन, फलकमें हुताशन और तपन, सर्वाङ्गमें ब्रह्मा, गुरुत्वमें मेरु और मन्दरके अधिष्ठात्री देवता रहते थे। रामचन्द्रके यह अस्त्र फेंकने पर रावण वज्राहत वृक्षकी तरह रथ परसे ज़मीन पर गिर पड़ा और पञ्चत्वको प्राप्त हुआ।

रावणके मारे जाने पर अन्तरीक्षमें शुभसूचक देव दुन्दुभि बजने लगी। नभोमण्डलसे देवगण पुष्पवृष्टि करने लगे। इस प्रकार पृथिवीका भार दूर हुआ और सभी प्राणी सुखसे रहने लगे। (रामायण)

रावण—१ अर्कप्रकाश नामक वैद्यकग्रन्थके प्रणेता। २ ऋग्वेदभाष्य और ओसूक्तभाष्यके रचयिता। ३ सामवेदभाष्यकार।

रावणगङ्गा (सं० स्त्री०) रावणेन कृता गङ्गा। पुराणानुसार सिंहलद्वीपकी एक नदीका नाम।

(गरुड़पु० ७० अ०)

रावणवंशी—पश्चिम बंगालमें रहनेवाली एक जाति।

रावणशर्म्म—सर्पकल्पके रचयिता।

रावणहस्त—एक प्रकारका बाजा जिसमें तार लगा रहता है।

रावणह्रद (सं० पु०) हिमालयके उत्तरका एक ह्रद। यह पुण्यतीर्थ मानसरोवरके पास ही है। इसीसे शतद्रु नद निकला है।

रावणारि (सं० पु०) रावणस्य अरिः शत्रुः। रावणको मारनेवाले, रामचन्द्र।

रावणि (सं० पु०) रावणस्यापत्यमिति रावण (अत इञ्। पा ४।१।९५) इति इञ्। १ रावणका पुत्र। २ मेघनाद।

रावत (हिं० पु०) १ छोटा राजा। २ सामन्त, सरदार। ३ शूर, वीर। ४ सेनापति, बड़ा योद्धा।

रावन् (सं० त्रि०) राति रा दाने वनिप्। आहुति और दक्षिणा देनेवाला। "आवद रावसि" (शुक्लयजु० ६।३०) 'रावासि रा दाने रातीति रा या वनिप्, आहुतीनां

दक्षिणानाञ्च वाता भवसि।' (वेददीप)

रावन (सं० पु०) रावण देखो।

रावनगढ़ (हिं० पु०) लंका।

राव बहादुर (फा० पु०) एक प्रकारकी उपाधि जो भारतका अङ्गरेजी सरकार प्रायः दक्षिण भारतके रईसों आदिको देती है।

रावर (हिं० वि०) १ भवदीय, आपका। (पु०) २ रनिवास, अन्तःपुर।

रावरखा (हिं० पु०) एक प्रकारका बहुत बड़ा और ऊंचा पेड़। यह हिमालयमें तेरह हजार फुटकी ऊंचाई तक होता है। इसकी छाल बहुत सफेद और चमकीली होती है और इसकी लकड़ियोंसे पहाड़ी मकानोंकी छतें तथा छालसे झोपड़ियां छाई जाती हैं। इसकी पत्तियां प्रायः चारेके काममें आती हैं। इसे बुरूल भी कहते हैं।

रावरा (हिं० सर्व०) रावर देखो।

रावराना कवि—चरखारीके रहनेवाले एक वन्दीजन। संवत् १८६१ ई०में इन्होंने जन्मग्रहण किया था। राजा रतनसिंहके दरबारमें इनका खूब मान था। इनका वंश बुन्देलोंका प्राचीन कवि है।

रावल (हिं० पु०) १ अन्तःपुर, राजमहल। २ राजा। ३ प्रधान, सरदार। ४ एक प्रकारका आदरसूचक संबोधन। ५ मथुराके पासके एक गांवका नाम। प्रवाद है, कि यहीं राधिकाका जन्म हुआ था। ६ श्रीबदरीनारायणके प्रधान पंडेको उपाधि। ये सभी मलबारवासी नम्बूरी ब्राह्मण हैं। ७ राजपूत सामन्तोंकी एक उपाधि। राजपूत-प्रसिद्ध मेवाड़के राजे भी पहले यह सम्मानसूचक उपाधि ग्रहण करते थे। पीछे वे राणा शब्द व्यवहार करने लगे। मारवाड़के राजे आज भी महारावल उपाधिसे सम्मानित होते हैं। डङ्गुरके अहेरियावंश, भावनगरके राजवंश तथा जयशालमीरके यदुवंश सभी गौरवज्ञापक रावल उपाधिसे भूषित हैं। यह उपाधि सम्भवतः शक जातिकी थी। पहले शक-सरदार लोग ही यह उपाधि धारण करते थे। (Tod I p 213)

रावल गणपति—मुहूर्त्तगणपति और सम्बन्धगणपतिके प्रणेता। ये रावल हरिशङ्कर सूरिके पुत्र थे।

रावलपिण्डी—पंजाबप्रदेशके अन्तर्गत एक विभाग। यहांका कार्य छोटा लाटके शासनाधीन और विभागीय कमिश्नर द्वारा परिचालित होता है। यह अक्षा० ३२° ३५' से ३४° १' उ० तथा देशा० ७१° ३७' से ७४° २६' पू० तक विस्तृत है। भूपरिमाण १५७३६ वर्गमील और जनसंख्या २७६६३६० है। जिनमें मुसलमान सैकड़े पीछे ८७ हैं। यह विभाग पांच जिलों—रावलपिण्डी, झेलम, गुजरात, शाहपुर और अटक ले कर गठित है। इसके उत्तरमें हजारा और पेशावर जिला, पूर्वमें काश्मीर-राज्य; दक्षिणमें झंग, गुजरानवाला और सियालकोट जिला तथा पश्चिममें कोहट, बन्नु और देरा इस्माइल खां जिले पड़ते हैं।

इस विभागके रावलपिण्डी, झेलम, गुजरात, पिण्ड-दादन खां, भेरा और जलालपुर नगर ही प्रधान हैं। इसके अलावा यहां और भी १८ नगर लगते हैं।

२ उक्त विभागका एक जिला। यह अक्षा० ३३° ४' से ३४° १' उ० तथा देशा० ७२° ३४' से ७३° ३६' पू०के बीच पड़ता है। भूपरिमाण २०१० वर्गमील है। हिमालय पर्वतका बहिःप्रदेश, लवणशैल और सिन्धुनदीका मध्यभाग स्थान ले कर यह जिला गठित हुआ है। इसके उत्तरमें हजारा जिला, पूर्वमें झेलम नदी, दक्षिणमें झेलम जिला तथा पश्चिममें सिन्धुनद अवस्थित है। सिन्धुनदने पेशावर और कोहटसे रावलपिण्डीको अलग कर रखा है। यह जिला सात उपविभागोंमें विभक्त है,—पिण्डिदेव, अटक फतेजंग, गुजरखां, रावलपिण्डी, मड़ि और कतूहा। रावलपिण्डी जिलेका विचारसदर है।

यह जिला हिमालयके उच्च और निम्न सानुदेशकी शिखरमालासे पूर्ण है। वह क्रमशः सिन्धु-सागर अन्तर्वेदीके सामने है। चारों ओर इस तरहकी पर्वतश्रेणी घिरी रहनेके कारण जिलेका सर्वत्र ही तराईरूपमें परिणत है। इस पर्वतका मध्यवर्त्ती समतलक्षेत्र नाना प्रकारके सौन्दर्यसे पूर्ण है। कहीं श्यामल शस्यक्षेत्र, कहीं निविड़ वनमाला और कहीं तराईसे झरने निकल कर कलकल नाद करते हुए बह चले हैं जिसका दृश्य ऐसा मनोहर है, कि देखनेसे चित्त भड़क उठता है। कहीं

पर्वतके गुम्बजमें सुन्दर मसजिद उस गिरि पर बुद्धाग्र नाम है जो निर्जन प्रान्तवासी लोगोंको धर्मका प्रभाव ज्ञापन रही। स्वभाव सौन्दर्यका ये सब प्रान्तोंमें भेद कर सिख और मकरद्वातीय सरदारोंका आधिपत्याकार गिरिदुर्ग समुन्नत शैलशिखरमें अवस्थित है। उसे देखने से बोध होता है मानो यहांके राजाओंका प्रतापरूद्ध राज दण्ड उस सुदूर पार्वत्यप्रदेशमें भी अक्षुण्णभावसे प्रतिष्ठित था। सीमान्त शत्रुओंका उपद्रव दमन करनेके लिये ही उन्होंने पर्वतप्रान्तमें दुर्ग बनवाया था। केवल दक्षिणी सीमा समतल क्षेत्रमें परिणत है।

स्थानविशेषसे प्राकृतिक सौन्दर्य जैसा पृथक् है। उसके पूर्व और पश्चिम अंशमें भी वैसा ही ऋतुपार्थक्य भी लक्षित होता है, मानो स्वभावसुन्दरी वनदेवीने अपने हाथसे रेखा खींच कर प्राकृतिक सौन्दर्यके साथ साथ ऋतुका विपर्याय भी विरूपण कर दिया है। विपाशा नदीके समतट पर विस्तृत मरिगिरिश्रेणीमें आठ हजार फुट ऊंचा स्वास्थ्यावास है। यहां अनेक किस्मके पेड़ हैं। यह शृंग क्रमशः हजारा जिलेमें प्रधावित होता है और काश्मीरके तुषारमण्डित पर्वत पर आ कर मिल गया है। अतएव स्वास्थ्यावासको ओर नजर दौड़ानेसे विचित्र पार्वत्य-चित्र सामने पड़ता है।

सिन्धुनदके उस पारमें पश्चिम-पार्वत्य भूभाग है जो सिन्धुनदकी शाखा प्रशाखा द्वारा परस्पर विच्छिन्न हो कर मानो विस्तीर्ण प्रान्तरके स्थान स्थानमें एक एक छोटी पहाड़ी इधर उधर फैली हुई है। यह स्थान सूखा और ऊसर है। यहां बहुत ही कम वृक्षादि आदि लगते हैं।

इस जिलेकी जनसंख्या ५५८६९९ है। पहाड़ी अधिवासी एक जगह दलबद्ध हो कर वास करते हैं। अधिक संख्यामें वास करनेसे गांव भी सुवृहत् उपनिवेशके समान मालूम पड़ता है। कारण इस प्रकार ऊपर पहाड़ी भूमिमें विभिन्न गांवमें बिखर हो कर वास करना एकदम अनुपयोगी है। पश्चिम विभागकी पर्वतराशिके बीच पहाड़का नाम उल्लेख करनेके योग्य है। यहां भूतत्त्वके बहुत से प्राचीन निदर्शन मिलते हैं। पर्वतके शिखर पर दुर्ग आदिसे परिशोभित अटक नगर सिन्धु-के किनारे है।

यहांके सब नद और नदियोंसे सिन्धुनद प्रधान है। सामान्य पहाड़ी सोतोंके रूपमें हजारा जिलेके बीच बहता हुआ यह आब और यूसुफजईके मध्यप्रान्तमें करीब डेढ़ मील तक फैल गया है। अटकसे तीन मील दक्षिण इस नदीको पार करनेके लिये रेलका पुल है, झेलम या वितस्ता नदी इस जिलेकी पूर्वी सीमामें बहती है। सोहन नामक नदी मरिशैलसे निकल कर गभीर उपत्यकाके बीचोबीच बह चली है। अन्तमें फतेहजंगके समीप ख्वस्तमाव नकरदुर्गके आस-पास देशके समतलक्षेत्रमें गिर कर नदीकी धारा दक्षिण पश्चिम हो गई है। रावलपिण्डी नगरसे तीन मील दक्षिण इस नदी पर एक दूसरा पुल है। बन्याके अलावा सभी समय यह नदी नाव पर पार हो सकते हैं। हजारा जिलेका जलप्रवाह ही हारो नदी कहलाता है। यह पश्चिमकी ओर आ कर अटकसे छः कोस दक्षिण सिन्धुनदमें मिल गया है। इसका स्रोतोवेग स्वाभाव कर मैदानके रूपमें संचालन शक्ति बढ़ाता है। पहाड़ी वनभागमें नाना प्रकारके पेड़ और अनेक जातिके जीवजन्तु देखे जाते हैं।

विस्तृत विवरण हिमालय शब्दमें देखो।

यहां खनिजपदार्थका अभाव नहीं है। कालाचिट्टा शैलमें आवरी नामका मरमर पत्थर मिलता है जो छोटे कटोरे आदिके बनानेमें काम आता है। रावलपिण्डी नगरके उत्तर पूर्व जोहरा गांवमें गंधक तथा रत्नोत्तर और सावन्ध गांवमें मिट्टी तेल मिलता है। कई एक कोयलेकी भी खान हैं। सिन्धुस्रोतमें बालुके कणके साथ बहुत थोड़े सोनेके भी कण मिलते हैं। क्षिपसम, लिंगमाल और पञ्जासाहब नामक चिमनी पत्थर पार्वत्य-भूभागमें कुछ कुछ दिखाई पड़ता है।

भारतके अन्यान्य जिलेकी अपेक्षा इस जिलेका प्रकृत प्राचीन इतिहास कुछ अधिक मिलता है। महाभारतीय युगमें यद्यपि पाण्डवराज्यके उल्लेखमें इस स्थानका कोई विशेष विवरण लिखा नहीं है तो भी मानिकयालीर अलेकसन्दरके अभियानकालमें बहुत सी ऐतिहासिक घटना यहांके भिन्न भिन्न नगरमें विशेष भावसे मिली हुई है। प्लिनि और आरियनके विवरणोंमें यह सब स्थान ऐतिहासिक तत्त्वका पीठस्वरूप है।

अलेकसन्दरके परवर्त्ती इतिहास लेखकोंके विवरणसे पता चलता है, कि सिन्धुसागर दोआवमें बहुत प्राचीन कालसे तक्ष नामक जातिका वास था। कहते हैं, कि उन्होंने ही तक्षशिला नगरी वसाई थी। अलेकसन्दरको सिन्धु और वितस्ताके मध्यवर्त्ती स्थानमें ऐसा विस्तृत बहुजनपूर्ण और विशेष समृद्धशाली नगर उस समय पञ्जाव प्रदेशमें और न मिला था। उस समय यह तक्षशिलाराज्य * मगधराज्यके अधीन था। यहांके अधिवासियोंके राजद्रोही होने पर युवराज अशोक उन्हें दमन करनेके लिये पञ्चनद जा पहुंचे। पीछे सम्राट् अशोकने बौद्धधर्म ग्रहण कर यहां बौद्धसंघाराम निर्माण किया। विख्यात चीनपरिव्राजक फाहियान और यूएनचुवंगने ईस्वी सन् ४थी और ७वीं शताब्दीमें यह स्थान परिदर्शन कर जिन सब बौद्धविहार और मठ आदिका उल्लेख किया है, उससे अनुमान होता है, कि मुसलमान द्वारा भारतविजयके पूर्वाब्द पर्यन्त यही स्थान बौद्ध और हिन्दूधर्मका पवित्र केन्द्र समझा जाता था। आज भी इस जिलेके बहुत स्थानोंमें प्राचीन हिन्दूमन्दिरका टूटा फूटा खंडहर और गौमयुद्धका जीवन-इतिहास मिलता है।

अलेकसन्दरके समयसे ले कर ११वीं शताब्दी तक पश्चिम-भारतसीमान्तका इतिहास जो अंधकारसे ढका था, मुसलमान आक्रमणसे ही सबसे पहले उनका उन्मोचन हुआ। मुसलमानी-इतिहास पढ़नेसे हम जान सकते हैं, कि उक्त सदीमें तक्षशिलाके चतुष्पार्श्ववर्त्ती भूभागमें गक्कर जातिके लोग रहते थे। फिरिस्ताने लिखा है, कि ये वर्वर और असभ्य हैं तथा भ्रूणहत्या और बहुस्वामिक वृत्ति आदि नाना प्रकारके जघन्य कार्य करते हैं।

१००८ ई०में गजनीपति महमूद जब ससैन्य भारतमें घुसे और चाच् तराईकी समतलभूमि पर पहुंचे, तब राजपूत-नेता पृथ्वीराजके अधीन कई एक राजपूतसामन्त महमूदके विरुद्ध खड़े हुए। उस समय प्रायः तीस हजार गक्करसैन्यने भीमवेगसे हमला कर मुसलमान सेनादलको तहस नहस कर डाला था। किन्तु आखिरकार राजपूतगण मुसलमानोंके हाथसे पराजित हुए और क्रमशः सभी उत्तरवासी विजेताने मुसलमानोंकी वश्यता स्वीकार की। इसके बाद महमूद गक्करोंको पार्वत्य निभृत निकुञ्जमें स्वाधीनभावसे वास करनेकी अनुमति देते हुए आप अपेक्षाकृत उर्वर और शस्यसमृद्धिपूर्ण जनपद पर कब्जा करनेके लिये आगे बढ़े।

१२०५ ई०में मशहूर ख्वारिजम-युद्धमें साहव-उद्दीन् घोरीकी पराजयवार्त्ता सुन कर जयोन्मत्त गक्करजाति मुसलमानोंके विरुद्ध खड़ी हुई तथा लाहोर राजधानीके प्रवेशद्वार तक समूचे पंजावप्रदेशमें उपद्रव मचा दिया। यह खबर जब मुसलमान सुलतान साहव-उद्दीन् घोरीको लगी, तो अचानक वे भारत पहुंचे और बागी गक्करोंको दल दलमें निहत कर वैरनिर्यातनकी पराकाष्ठा दिखा दी। इससे भी तृप्त न हो कर उन्होंने जीवननाशका भय दिखाते हुए गक्करजातिको इस्लामधर्ममें दीक्षित किया।

साहव-उद्दीन् गक्करजातिको इस्लामधर्ममें दीक्षित कर कुछ विशेष लाभ उठा न सके। कारण सिन्धुनद पार कर अपने पाश्चात्यराज्यमें लौटते न लौटते रात्रिके घोर अन्धकारमें छिपके एक दल गक्करने उनका पीछा किया और उसी घोर रात्रिमें सिन्धुनद तैर कर सोये हुए साहव-उद्दीन्को जानसे मार डाला। परवर्त्ती मुसलमान राजाओंकी अमलदारीमें जब गक्करोंने शासन-विशृङ्खला या शैथिल्य देखा था तब सुयोग जान कर राजद्रोहिताचरणसे वे वाज नहीं आये।

मुगल-सम्राट् वावर शाहने गक्करकी राजधानी कर्वाला पर चढ़ाई कर दी। वे अपने हाथकी लिखी आत्मजीवनीमें इस युद्धका विवरण इस प्रकार लिख गये हैं,—यह नगर पर्वत पर वसा हुआ है। गक्कर-सरदार हाती खाँने विशेष वीरत्वके साथ नगरकी रक्षा कर जब जाना, कि मुगल-युद्धमें और कोई उपाय नहीं है तथा मुगलवाहिनी एक तरफका द्वार तोड़ कर नगरमें घुस रही है, तब उन्होंने दूसरा कोई उपाय न देख

---

* इस जिलेके मर्गाला गिरिशङ्कटके उत्तर शाहदरि या डेरिशाहान नामक स्थानमें जो विस्तृत टूटा फूटा खंडहर पड़ा है, वह प्राचीन तक्षशिला राज्य प्रतीत होता है।

दूसरे दरवाजे हो कर शहरसे बाहर निकल गये। १५२५ ई०में हाती खांको उनके सम्पर्कीय भाई सुलतान सारंगने जहर दे कर मार डाला। उक्त सुलतान सारंग बावरशाहकी अधीनता स्वीकार करने पर सम्राट्से इन्हें पुरस्कार राज्य उपहारमें मिला। इसी दिनसे गक्कर सरदारगण मुगलराजवंशके साथ चिरवन्धुत्वसूत्रमें बंध गये। शेरशाह और हुमायूंमें जब घमसान युद्ध चल रहा था उस समय गक्करपतिने हुमायूंको काफी सहायता पहुंचाई थी।

दिल्ली-साम्राज्यमें मुगलराजकेतन जब सगर्व वायुसे आन्दोलित हुए थे, उस समय सारङ्गके वंशधर पंजाबप्रदेशमें अपने पूर्वपुरुषोंका आहत राज्य सम्मानके सहित भोग करते थे। किन्तु उस मुगलसाम्राज्यकी चेतन्द्रलिका अवसान होने पर वे वंशधर पार्श्ववर्त्ती सामन्तराजाओंके हाथके खिलौने बन गये। सर्वग्रासी सिखोंने अन्तमें पञ्चनदवासी अन्यान्य राजाओंकी तरह इस सु-प्राचीन गक्करराजको भी अपने कब्जेमें कर लिया था।

१७६५ ई०में मुगल साम्राज्यरश्मि शिथिल हो गई और सिख सरदार गुज्जरसिंह भङ्गीने लाहोरसे दलबलके साथ बाहर हो कर शेष प्राचीन गक्करपति मकराय खां पर आक्रमण कर दिया। मकराय सिखसम्प्रके हाथ गुज्जरात-नगर प्राचीरके बहिर्भागमें परास्त हुए और वितस्ता नदीके दूसरे किनारे जान ले कर भागे। वहां इसके सजातीय गक्करोंने बड़ी निष्ठुरतासे मार डाला और उसकी सम्पत्ति लूट कर आपसमें बांट ली। किन्तु उस समय आपसमें मनमुटाव हो जानेसे वे तितर बितर हो गये। सरदार गुज्जरसिंहने अवसर पा कर एक एकको परास्त किया।

सिखोंने अपनी चिरप्रसिद्ध अर्थगृध्नुताके साथ रावलपिण्डीका शासन किया था। वे मालगुजारी बड़ी सख्तीसे उगाहते थे। प्रजा तंग तंग आ गई थी। सरदार गुज्जरसिंहके बाद उनके लड़के साहबसिंहने १८१० ई० तक इस प्रदेशका शासन किया। पीछे यह पञ्जाब केसरी महाराज रणजित्सिंहके हाथ लगा।

माळवासिंह नामक एक दूसरे सिख-सरदारने रावलपिण्डी नगरके चारों ओरका स्थान जीत कर वहां अपना वासभवन बनाया। उस समय यह स्थान एक सामान्य ग्रामरूपमें गिना जाता था। अफगान जातिके बार बार आक्रमण और गक्कर जातिके विघ्नबाधा रहते हुए भी उसने थोड़े ही समयके अन्दर प्रायः ३ लाख रुपये आयका एक छोटा राज्य अधिकार किया। १८०४ ई०में माळवासिंहकी मृत्यु हुई। उनके लड़के जीवनसिंह पितृसम्पत्तिके अधिकारी हुए। १८१४ ई०में महाराज रणजित्सिंहने सरदार जीवनसिंहका अधिकार कायम कर एक सनद दी। किन्तु जीवनसिंहकी मृत्युके बाद यह सम्पत्ति लाहोर राजसरकारने जब्त कर ली। मरि और अन्यान्य पहाड़ी प्रदेशमें गक्करजाति बहुत दिनों से अपनी स्वाधीनताकी रक्षा करती आ रही थी। किन्तु १८३३ ई०के भीषण युद्धमें सिखोंने गक्कर जातिको परास्त कर यह पहाड़ी प्रदेश अधिकार किया। इस युद्धमें सिखके हाथसे गक्कर जाति प्रायः निर्मूल हो गई तथा सारा पहाड़ी प्रदेश जनशून्य मरुभूमिकी तरह दिखाई देने लगा।

१८४९ ई०में अन्यान्य सिखराज्यके साथ रावलपिण्डी भी अङ्गरेजी शासनके अधिकारभुक्त हुई। १८५३ ई०में यहां विद्रोह दिखाई दिया, फिर भी गदरके समय यह स्थान बिलकुल शान्त था, किन्तु सिख और गक्कर जाति का आभ्यन्तरिक कलह तब भी दूर नहीं हुआ था। जनशून्य पहाड़ी कन्दरामें वृटिश शासन विस्तृत होने पर भी अंगरेजराज वहां राजकीय प्रभाव अप्रतिहत रखनेमें समर्थ नहीं हुए। १८५७ ई०के गदरमें अंगरेजराजकी शक्तिका परिचय पा कर मरिशैलवासी पहाड़ी गक्कर जाति पहलेके कलहसूत्रसे छिन्न भिन्न हो कर राजविद्रोही हो उठी तथा इसने वहांके अङ्गरेजोंके महलों पर आक्रमण करनेका संकल्प किया। अङ्गरेजोंको किसी देशीय विश्वस्त अनुचरके मुखसे पहले ही यह हाल मालूम हो गया था। इसलिये वे यूरोपीय स्त्रियोंको दूसरी जगह रख कर शत्रुदलके आगमनकी प्रतीक्षा कर रहे थे। विद्रोही दलने समझा था, कि अङ्गरेजोंको उन लोगोंके आगमनका संवाद मालूम न होनेके कारण शत्रुपक्षके आक्रमणसे वे तितर बितर हो जायंगे, लेकिन फल उल्टा ही निकला। विद्रोहिदलके सामने आते न आते सशस्त्र

अंगरेजी-सेना गोला वरसाने लगी। अकस्मात् गोला-पातसे आततायी छत्रभङ्ग हो गये। कुछ समय युद्ध कर-के वे सबके सब चम्पत हुए। तभीसे वे फिर कभी दलवद्ध न हो सके। किन्तु जब कभी छोटा दल बांधने-का मौका मिलता, तभी वे अंगरेजों पर टूट पड़ते थे।

रावलपिण्डी, पिण्डिघेब, हाजरो, फतेजङ्ग, आटक, मोखाड्, मरि और काम्बेलपुर आदि नगर अपेक्षाकृत समृद्धशाली है। उनमेंसे रावलपिण्डी, अटक, मरि और काम्बेलपुरमें अंगरेजोंका सेनानिवास है। लाहोर, पिण्ड-दादन खां, मूलतान, पेशावर, स्वात, लक्ष्मणझूला और मरि आदि स्थानोंके उत्पन्न द्रव्योंकी आमदनी ले कर ही यहांका कारवार चलता है। रावलपिण्डी और हाजरो नगरको छोड़ कर और कहीं भी वैसा वाणिज्य नहीं चलता। १८६० ई०में मरि शहरमें यूरोपीय वणिक् पुङ्गवोंके यत्नसे एक शरावका भट्टा खोला गया है। इसके अलावा प्रायः प्रत्येक नगर और ग्राममें देशी सूती कपड़े तथा फतेजङ्ग और पिण्डिघेब नगरमें पशमीने कम्बल बनानेका कारवार है। यहांकी प्रधान उपज गेहूं, यव, जुआर और बाजरा है। यहांके सैकड़े पीछे ६८ अधि-वासी खेतीवारी कर अपनी जीविका चलाते हैं।

३ उक्त जिलेकी उत्तर-पूर्व तहसील। यह अक्षा० ३३° १६' से ३३° ५०' उ० तथा देशा० ७२° ३४' से ७३° २३' पू०के बीच पड़ती है। भूपरिमाण ७६४ वर्गमील और जनसंख्या २६११०४ है। इस तहसीलमें रावलपिण्डी नामका एक शहर और ४४८ गांव लगते हैं।

४ उक्त जिलेका प्रधान नगर और विचारसदर। यह अक्षा० ३३° ३६' उ० तथा देशा० ७३° ७' पू०के मध्य लेह नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। दक्षिणी किनारे गोरावाजार (Cantonment) है।

नगरके चारों ओर जो ध्वस्त निदर्शन पड़े हैं, उसे देखनेसे मालूम होता है, कि यहां नया नया नगर बसता गया और कालचक्रसे विलय होता गया था। प्रत्नतत्त्व-विद् डा० कनिंहमने वर्त्तमान गोरा बाजारके निकटवर्त्ती प्राचीन निदर्शन और अट्टालिकादिका भग्नावशेष देख कर स्थिर किया है, कि वह भट्टिजातिकी प्राचीनतम राजधानी गजिपुर वा गजनीपुर है। ईसा जन्मके पहले यह नगर विशेष समृद्धिसम्पन्न था। यवन और शक आदि दूसरी दूसरी प्राचीन जातियां यहां पूर्ण प्रतापसे राज्य कर गई हैं। आज भी उसके निदर्शनस्वरूप यहांके एक निर्दिष्ट स्थानमें उक्त राजाओंकी प्रचलित मुद्रा इधर उधर मिट्टीमें गाड़ी देखी जाती हैं।

ऐतिहासिक युगमें यह स्थान फतेपुर वावरी नामसे प्रसिद्ध था। १४वीं सदीमें मुगल आक्रमणके समयसे यह स्थान तहस नहस हो गया। गक्कर सरदार झन्डा-खांने जीर्ण संस्कार द्वारा इस नगरकी श्रीवृद्धि की। उन्होंने इसका नाम बदल कर रावलपिण्डी रखा। सिख-बीर सरदार मालकासिंहने १७६५ ई०में यह नगर अधि-कार किया। उन्होंने शाहपुर और झेलमसे वणिकोंको ला कर अपने राज्यमें बसाया था। उसीसे धीरे धीरे इस नगरकी उन्नति होती गई।

१९वीं सदीके प्रारम्भमें काबुलके पदच्युत अमीर शाहसुजा और उनके भाई जमान शाहने इस नगरमें आ कर आश्रय लिया। १८वीं सदीके मध्यभागमें जहां गक्करसरदार सुलतान मकराव खांने युद्ध किया था, वहां देशी सेनादलका वासभवन बनाया गया है। यहां १८४६ ई०की १४वीं मार्चको गुजरात युद्धमें पराजित हो सिख-सरदार छत्रसिंह और शेरसिंहने अस्त्रत्याग किया था। अंगरेजोंके अधिकारमें आनेके बाद नगरकी अच्छी उन्नति हुई। पहाड़ी शत्रुदलसे देशकी रक्षा करनेके लिये गोरा बाजार और पीछे विभागीय विचारसदर प्रतिष्ठित हुआ था। इसके बाद पञ्जाब-नदर्न ष्टेट रेलवे खुल जाने-से स्थानीय वाणिज्यमें बड़ी सहायता मिली है।

लेह नामक छोटी नदीके दूसरे किनारे एक प्राचीन हिन्दूराजधानीके ऊपर वर्त्तमान गोराबाजार प्रतिष्ठित है। १८६८ ई०में यहां ६३५८ देशी और अङ्गरेजीसेना रखी गई थी, अन्तिम अफगान चढ़ाईके समयसे अंगरेजराजने यहांके सेनानिवासकी प्रयोजनीयता समझ कर उसकी उन्नतिके लिये विशेष ध्यान दिया। १८८१ ई०में यहां प्रायः २७ हजार सेना रखनेका बन्दोवस्त हुआ। १८८३ ई०में अस्त्रागार स्थापित हुआ था। यह सेनानिवास लम्बाईमें तीन मील और चौड़ाईमें प्रायः दो मील है। यहां एक दल देशी घुड़सवार और पदातिक तथा दो

कमानवाही सेनादल रहता है। शीतऋतुमें यहां और भी तीन कमानवाही पहाड़ी सेनादल ला कर रखा जाता है। ग्रीष्मके समय ये मरिहीवके उत्तरी पहाड़ पर चले जाते हैं।

राय साहब (फा० पु०) एक प्रकारकी उपाधि जो भारत तथा अंगरेजी सरकारकी ओरसे दक्षिण-भारतके धनी आदिको दी जाती था।

राविन् (सं० त्रि०) १ मेघनिर्घोष, मेघगुल्गुलि। २ गभीर निनादकारी घोर शब्द करनेवाला।

रावी—पंजाबप्रदेशमें प्रवाहित पञ्चनदके अन्तर्गत एक नदी। पुराणादि संस्कृत शास्त्रमें इसे इरावती कहा है। आरियनने इसका Hydraotes नाम रखा है। यह कांगड़ा जिलेके कुलू उपविभागसे निकल कर चम्बा राज्यके बीच हो कर बह गई है। पीछे दक्षिण पश्चिमकी ओर गुरुदासपुर जिलेके सीमा तक बहती हुई शाहपुरके निकट मूलपर्वतको छोड़ दिया है। वहांसे जम्मू पयन्त इसका तट क्रमशः नाचा हो कर आया है। मधुपुरके पास 'बड़ो दोआब कैनल' इसकी जलराशि द्वारा परिपूर्ण होता है। इसके बाद इस नदीके दोनो किनारे पश्चिम समतल उपत्यकाभूमि दिखाई पड़ती है। इससे समय समय पर बन्याका जल उठ कर वेलाभूमि निमग्न करता है। १८१० ई०में इस नदीकी प्रखर धारामें दरा-नानक के निकटवर्ती वाबिसाहिब नामक सिखोंका पवित्र तीर्थ जलगर्भमें निमज्जित हो गया था। अनन्तर इरावती सियालकोट और अमृतसर जिलेके बीचो बीच हो कर दक्षिण पश्चिम बहती है। पीछे क्रमशः तीव्र वेगसे लाहोर नगर अतिक्रम कर नाना शाखाओंमें बट गई है। मुलतान और मण्टगोमरी जिला अतिक्रम कर अन्तमें यह नदी (शाखाओंके साथ अक्षा० ३० ३१´ उ० तथा देशा० ७१ ५१´२०´´ पू०) चन्द्रभागा नदीमें आ मिली है।

बड़ी दोआब और हासली नहरमें जल जमा रहनेके कारण इसकी जलधारा धीमी होने पर भी इस नदीवक्ष में नाव द्वारा वाणिज्यमें उतनी सुविधा नहीं है। कारण मुलतान जिलेके कुछलम्बान सरायसिन्धु तकके स्थानोंको छोड़ इसकी गति और कहीं भी सीधी नहीं है।

रावेर्—बम्बई प्रेसिडेन्सीके खानदेश जिलेके सावदा उपविभागान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २१ १५´ उ० तथा देशा० ७६ ४´ ३०´´ पू० तक विस्तृत है। जी, आइ, पी, रेलपथ नगरसे एक कोस दूर हो कर गया है। यहांसे नगर पर्यन्त पक्की सड़क है। सोनेका बारीक तार तथा अञ्चोके फूलदार या बुटेदार कपड़ेके लिये यह स्थान बहुत कुछ मशहूर है। बाजारसे दुर्ग तक जो चौड़ा रास्ता है उसके दोनों तरफ महाजिनोंके निवास और समुन्नमान कालकी शिल्पगठन आदि द्वारा सुशोभित है। १७६३ ई०में निजामने यह नगर पेशवाको अर्पण कर दिया। पीछे पेशवाने भी उसे होलकरके हाथ सौंप दिया था।

रावेर्—मध्यप्रदेशके निमार जिलान्तर्गत एक नगरग्राम। यह नर्मदा नदीके किनारे अवस्थित है। दूसरी दफे उत्तर-भारत पर चढ़ाई करनेके लिये जब पेशवा बाजीराव आये, उसी समय यहीं उन्होंने जीवलीला संवरण की। यहां नाना विचित्र वर्णके पत्थरोंसे उनका समाधिस्तम्भ निर्मित हुआ जो एक सुन्दर धर्मशालाके बीच स्थापित है। नदीवक्षके जिस स्थानमें उनकी अन्त्येष्टि क्रिया हुई, वहां पत्थरका एक चौरस्ता बनाया गया था। दुर्भाग्यका विषय है कि, अन्तमें यह अभावस्थामें पड़ा है।

रावौट (सं० क्ली०) भारतीय प्राचीन राजवंश भेद।
(रत्नकोष)

राशि (सं० पु०) राशते इति राश-शब्दे इन्, यद्वा अश्नुते व्याप्नोतीति अशू व्याप्तौ। (अशिपस्याम्भां रुडागमश्च। उण् ४।१३२) इति इन रुडागमश्च। १ धान्यादिका समूह। पर्याय—पुञ्ज, उत्कर, कूट, समुच्चय, समाहार। (अमर)

अश्नुते व्याप्नोति इति राशि अशूम् व्याप्तिसंहत्यो रिदयस्मात् नाप्नोति इञ्, निपातनात्रेफागमः। (भरत)

"न खलु न खलु बाण सन्निपात्योऽयमस्मिन्।
मृदुनि मृगशरीरे तूलराशाविवाग्निः॥" (शकुन्तला)

२ ज्योतिश्चक्रका द्वादशांश। राशिचक्र बारह भागों में विभक्त है, इन बारह भागोंका एक एक भाग राशि कहलाता है। ग्रहगण इस राशिचक्रमें परिभ्रमण करते रहते हैं। राशि बारह हैं, यथा—मेष, वृष, मिथुन, कर्कट,

सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धन, मकर, कुम्भ और मीन।

राशि स्वरूप।

मेष—पुरुष, चर, अग्निराशि, दृढाङ्ग, चतुष्पद, रक्तवर्ण, उष्णस्वभाव, पित्तप्रकृति, अत्यन्त शब्दकारी, पर्वतचारी, उग्र, पीतवर्ण, दिवाभागमें बलवान्, पूर्व दिशाका अधिपति, विषमलग्न, अल्प-स्त्री प्रिय, अल्प सन्तान, रुक्षवपु, क्षत्रियवर्ण और समान अङ्ग।

वृषराशि—स्थिर, स्त्रीप्रकृति, पृथ्वीराशि, शीतलस्वभाव, रुक्षवपु, दक्षिणदिगाधिपति, शोभन, भूमिचारी, वायुप्रकृति, रात्रिकालमें बलवान्, चतुष्पद, श्वेतवर्ण, अत्यन्त शब्दकारी, विषमराशि, मध्यम-स्त्रीसङ्गप्रिय, मध्यमरूपसन्तान, शुभराशि, वैश्यवर्ण और शिथिलाङ्ग।

मिथुन—पश्चिमदिगधिपति, वायुप्रकृति, हरित्‌वर्ण, द्विपद, पुरुष, द्व्यात्मक, द्विमूर्त्ति, उष्णस्वभाव, मध्यरूप-स्त्रीसङ्गप्रिय, मध्यरूप सन्तान, वनचारी, शूद्रवर्ण, रात्रिकालमें बलवान्, उत्तर दिगधिपति और शिथिलाङ्ग।

कर्कट—बहु-स्त्री प्रसङ्ग-प्रिय, बहु सन्तानयुक्त, बहुपद, चर, स्त्री-स्वभाव, श्वेतरक्तमिश्रवर्ण, शब्दहीन, शुभराशि, कफप्रकृति, चिक्कण, जलराशि, जलचर, विप्रवर्ण, रात्रिकालमें बलवान्, उत्तरदिगधिपति और शिथिलाङ्ग।

सिंह—पुरुष, स्थिर, अग्निराशि, दिनमें बलवान्, रुक्षशरीर, पित्तप्रकृति, उष्णस्वभाव, पूर्वदिशाका स्वामी, दृढाङ्ग, चतुष्पद, समराशि, अत्यन्त शब्दकारी, अल्प-स्त्रीसङ्गप्रिय, अल्पसन्तति, पर्वतचारी, क्षत्रियवर्ण, उग्रस्वभाव और धूम्रवर्ण।

कन्या—पिङ्गलवर्ण, द्विपद, स्त्रीराशि, द्व्यात्मक, दक्षिणदिगधिपति, रात्रिबली, वायुप्रकृति, शीतलस्वभाव, समराशि, भूचर, असम्पूर्ण भाषी, पृथ्वीराशि, वैश्यवर्ण, रुक्ष, अल्प-स्त्री-सङ्गप्रिय और अल्पसन्तान और सौम्यराशि।

तुला—पुरुष, चर, नानावर्ण, सम, उष्णस्वभाव, पश्चिम दिगधिपति, वायुप्रकृति, चिक्कण, वनचारी, अल्पस्त्रीसङ्गप्रिय, अल्पसन्तान, शूद्रवर्ण, उग्रस्वभाव, दिवाबली, द्विपद, समान और शिथिलाङ्ग।

वृश्चिक—स्थिर, श्वेतवर्ण, स्त्रीस्वभाव, जलराशि, उत्तरदिगधिपति, निशाबली, रवशून्य, कफप्रकृति, सम, जलचर, बहुस्त्रीप्रसंगप्रिय, और बहुसन्तानयुक्त, सौम्य, मनोहर शरीर और विप्रवर्ण।

धनुः—पुरुषराशि, सुवर्ण-सदृशवर्ण, पर्वतचारी, समराशि, अत्यन्त शब्दकारी, दिनबली, पूर्व-दिक् स्वामी, दृढ़ाङ्ग, रुक्षशरीर, पीतवर्ण, क्षत्रिय, पित्तप्रकृति, अल्पसन्तान और अल्प स्त्रीप्रसंगप्रिय, द्व्यात्मक, द्विपद, अग्निराशि और उग्रस्वभाव।

मकर—चरराशि, भूचर, अर्द्धरवयुक्त, दक्षिण-दिक्-स्वामी, स्त्रीराशि, पिङ्गलवर्ण, रुक्षशरीर, सौम्य, पृथिवीराशि, जलचारी, शीतलस्वभाव, अल्पअपत्य, अल्पस्त्रीसंगप्रिय, वायुप्रकृति, रात्रिबली, विषमराशि और वैश्यवर्ण।

कुम्भ—पदहीन, पुंराशि, दिनबली, मध्यमरूप-स्त्रीसंगप्रिय, मध्यमरूप सन्तति, स्थिरराशि, मिश्रवर्ण, वनचारी, वायुराशि, चिक्कण, उग्रस्वभाव, खण्डस्वर, वातपित्त कफप्रकृति, शूद्रवर्ण, पश्चिमदिक् स्वामी, विषमराशि, उग्रस्वभाव और शिथिलाङ्ग।

मीन—पदशून्य, स्त्रीराशि, कफप्रकृति, जलराशि, रात्रिबली, अल्पशब्दयुक्त, पिङ्गलवर्ण, द्व्यात्मक, जलचर, चिक्कण, बहु स्त्री-प्रसंगप्रिय, बहुसन्ततियुक्त, विप्रवर्ण, शुभ, उत्तरदिगधिपति, विषमराशि और शिथिलांग।

राशियोंका स्वरूपज्ञान और संज्ञा।

मेष—द्वादश राशिचक्रोंमें मेष प्रथम राशि और समान शरीर है। कालपुरुषका मस्तक, छाग और मेषकी सञ्चारभूमि है। इससे गुहा, पर्वत और चोरोंकी वासभूमि, अग्नि, धातु, आकर और रत्नभूमिका बोध होता है।

वृष—वृषके समान आकार, वक्ष, कण्ठ, ग्रीवादेश, वन, पर्वत, गोशाला और कृषकोंकी आवासभूमिका ज्ञान होता है।

मिथुनसे—वीणा और गदाधरी, स्कन्ध, भुज, स्त्री, नृत्य और गीतस्थान, शिल्पकार्य, क्रीड़ा, रति, गुह्यदेश, पाशकादि क्रीड़ास्थान और विहारस्थान समझा जाता है।

कर्कटसे—कर्कटके समान आकृति, चलचर, वक्षः-

स्थान, सरोवर, पुलिन, क्षेत्र, देवता, ओज्ञादि और रम णीय विहारस्थान समझा जाता है।

सिंहसे—पर्वतचारी, हृदय, वन, दुर्ग, गुहा पर्वत और दुर्गम प्रदेश समझा जाता है।

कन्यासे—प्रदीपहस्ता, नौकागतस्थिता जल धान्य-परिपक्वा, नारी, स्त्री, बहुतर तृणयुक्त भूमि, रति और शिल्पमय भूमिका बोध होता है।

तुलासे—पण्यकर पुरुष, मध्याङ्ग, नाभि, कटि, वस्ति देश, वीथी, देवमाता, विक्रयस्थान, नगर, पथ, शुक्लवर्ण, धनागार, पर्वतपार्श्व वा पर्वतगुहा, मृगयास्थान और उत्तमवायुका ज्ञान होता है।

वृश्चिकसे—वृश्चिककी भांति आकृतिविशिष्ट छिद्र और गुह्यप्रदेश, गुह्य, अपरिष्कृतस्थान, गर्त्त, प्रस्तर, विष, कारागार, वल्मीक, कीट, अजगर और सर्पोंकी वासभूमिका बोध होता है।

धनुसे—धनुर्विशिष्ट, पुरुषाकार, पश्चाद्भागमें घोटकाकार, ऊरुदेश, उच्चनीचभूमि, घोटक, वसवान अस्त्रधारी पुरुष, यज्ञ, रथादि और अश्वस्थान समझा जाता है।

मकरसे—मकरके समान आकारयुक्त, जानुदेश, नदी, विविधवन, सरोवर, जलप्लावित देश और गर्त्त समझा जाता है।

कुम्भसे—स्कन्धासक्तकलस, पुरुषाकार, जङ्घा, उष्ण वस्तु, जलाधार, पक्षी, स्त्री शौण्डिक, पक्षाविक और चोरका निवासस्थान समझा जाता है।

मीनसे—मत्स्यद्वयपुक्त आकार, पुण्य, देवता, द्विज, तीर्थ और आयासस्थान, नदी, समुद्र और जलाधारका बोध होता है।

मेष—ओज, विषम, चर, क्रूर, पुरुष, पुण्य, निशा बली, अरुणवर्ण, कुजक्षेत्र, मङ्गलका मूलत्रिकोण, रविका उच्चतुङ्गस्थान, शनिका नीचस्थान, पूर्वदिक्स्वामी, मेष प्रचारभूमि, गुहा पर्वत, चोरका स्थान, धातु, रत्न, भूमि, आकर।

वृष—युग्म, सम, स्थिर, सौम्य, स्त्री, पृष्ठोदय, पुष्कर, निशावली, शुक्लवर्ण, शुक्रक्षेत्र, चन्द्रका मूलत्रिकोण और उच्चस्थान, दक्षिणदिक्स्वामी भूमिचर, वन, पर्वत, गाद्यादि तथा कर्षणोपयुक्त भूमि।

मिथुन—ओज, विषम, द्व्यात्मक, क्रूर, पुरुष, वायु, शीर्षोदय पुण्य, दिनबली, हरित्वर्ण, बुधक्षेत्र, राहुका उच्चस्थान, केतुका नीचस्थान, पश्चिमदिक् स्वामी, वन चर, नृत्य गीत, शिल्प, क्रीड़ादि भूमि।

कर्कट—युग्म, सम, चर, सौम्य, स्त्री, जल, पृष्ठोदय, निशावली, पाण्डुवर्ण, चन्द्रका क्षेत्र बृहस्पतिका उच्च स्थान, मङ्गलका नीचस्थान, उत्तरदिक् स्वामी, जलचर, क्षेत्र, सरोवर, पुलिन देवताका स्थान और विहारभूमि।

सिंह—ओज, विषम स्थिर, क्रूर, पुरुष, अग्नि, शीर्षोदय, दिनबली, धूम्रवर्ण, रविका क्षेत्र, केतुका मूल त्रिकोण, पूर्वदिशाका स्वामी, पर्वतचर, वन, दुर्ग, गुहा, व्याघ्र, अटवी और दुर्गमस्थान।

कन्या—युग्म, सम, द्व्यात्मक, सौम्य, स्त्री, पृथ्वी, शीर्षोदय, पुष्कर दिनबली, पाण्डुवर्ण, बुधका क्षेत्र, मूलत्रिकोण और उच्चतुङ्गस्थान, शुक्रका नीचस्थान, दक्षिणदिक्स्वामी, पूर्वदिक्स्वामी, भूमिचर, रति और शिल्प।

तुला—ओज विषम, चर, क्रूर, पु, वायु शीर्षोदय, पुण्य, दिनबली, विचित्रवर्ण, शुक्रका क्षेत्र और मूल-त्रिकोण, शनिका उच्चतुङ्गस्थान, रविका नीचस्थान, पश्चिमदिक् स्वामी, वनचर, तीर्थस्थानाधिप, वाणी, मित्रगृह और उन्नत भूमि।

वृश्चिक—युग्म, सम, स्थिर, सौम्य, स्त्री, जल, शीर्षोदय, पुष्कर, दिनबली, सुवर्ण बृहस्पतिका क्षेत्र और मूलत्रिकोण, केतुका उच्चतुङ्ग, राहुका नीच, पर्वतचर, घोटक, शूर, अश्वमुख, यज्ञ और अश्व।

मकर—युग्म, सम, चर, सौम्य, स्त्री, पृथ्वी, पृष्ठोदय, निशाबली, कर्बुरवर्ण, शनिका क्षेत्र मंगलका उच्चतुङ्ग-स्थान, बृहस्पतिका नीचस्थान, दक्षिणदिक्स्वामी, भूमि चर, नदी, वन, सरोवर, जलप्लावित देश और गर्त्त।

कुम्भ—ओज, विषम, स्थिर, क्रूर, पु वायु, शीर्षो दय, पुण्य, दिनबली, शनिका क्षेत्र और मूलत्रिकोण, राहुका मूलत्रिकोण, पश्चिम दिशाका स्वामी, वनचर, उष्ण, जलाधार, पक्षी, शौण्डिकालय और द्यूत।

मीन— युग्म, सम, द्व्यात्मक, सौम्य, स्त्री, जल, शीर्षोदय, पुण्य, दिनबली, स्वच्छवर्ण, बृहस्पतिका पुण्य

श्वेत, शुक्रका तुङ्गस्थान, बुधका नीचस्थान, उत्तर दिशाका पति, जल, पुण्यभूमि, ब्राह्मण, तीर्थ, नदी और समुद्र।

राशियोंकी इन संज्ञाओंसे नाना प्रकार गणना हो सकती है। नष्टवस्तुकी प्रश्नगणनासे उक्त वस्तुएं किस स्थानमें हैं, इस बातका ज्ञान तथा उक्त राशियोंका जैसा स्वरूप-विभाग है, उन उन स्थानोंमें ग्रहोंकी अवस्थितिके कारण व्रणादिके चिह्न तथा ग्रहोंके बलाबलमें उन उन अंग प्रत्यङ्गोंकी हानि या दुर्बलता आदिका बोध होता है।

राशिओंके अधिपतिदेवता।

मेषके देवता मेषाकार, वृषके देवता वृषाकार, मिथुनके देवता स्त्रीपुरुषाकार, मत्स्य, घटी, वीणा और गदाधारी, सिंहके देवता सिंहाकृति, कन्या कन्याकृति और जलकलसधारिणी; तुला तुलादण्डधारी पुरुष, वृश्चिक वृश्चिकाकृति, धनु जङ्घा तक अश्वके समान और अवशिष्ट धनुर्धारी नरके समान, मकरके देवताका आकार मृगमुखके समान, कुम्भके देवता कुम्भधारी पुरुष और मीनके देवता मीनके सदृश हैं। द्वादश राशियोंके द्वादश अधिपति उक्त रूप आकृतिविशिष्ट हैं इसीलिए राशिचक्रमें उक्त राशियोंके आकार उक्त प्रकार लिखे गये हैं।

राशि ओज, युग्म, विषम और समके भेदसे चार प्रकारकी है। इनमें मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ ओजोराशि हैं। वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन युग्मराशि हैं। मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ विषम राशि हैं। इसके सिवा राशिके चर, स्थिर, द्व्यात्मक, क्रूर और सौम्य आदि विभाग देखनेमें आते हैं। मेष, कर्कट, तुला और मकर चर राशि हैं। वृष, सिंह, वृश्चिक और कुम्भ स्थिर राशि हैं। मिथुन, कन्या, धनु और मीन द्व्यात्मक राशि हैं।

मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भ ये क्रूरराशि हैं तथा वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन सौम्य राशि हैं।

राशियोंकी द्विपदादि संज्ञा।

कन्या, तुला, मिथुन, कुम्भ और धनुके प्रथम अर्द्धभागकी द्विपद संज्ञा है। धनुके शेष अर्द्धभागकी तथा मकरके पूर्वार्द्ध और वृष, मेष और सिंहकी चतुष्पाद संज्ञा है।

मकरके शेष अर्द्धांश तथा कर्कट, मीन और वृश्चिक इनको कीटसंज्ञा है। किसी किसीके मतसे वृश्चिकको सरीसृप संज्ञा है।

मिथुन, तुला, कुम्भ, कन्या और धनुके पूर्वभागकी वश्यसंज्ञा है। मकर और धनुके शेषार्द्ध तथा वृष और मेषकी अवश्य संज्ञा है।

मिथुन, तुला, कन्या, धनु, वृश्चिक तथा रात्रिमें वृष और मेषकी ग्राम्यसंज्ञा है। मकरके पूर्वार्द्ध भाग और सिंहकी तथा दिवसमें मेष और वृषकी अरण्यसंज्ञा है। कर्कट, मीन और मकरके शेषार्द्ध भागकी जलज-संज्ञा है। किसी किसीके मतसे कुम्भराशिकी भी जलज-संज्ञा है।

मेष, वृष, कुम्भ और मीन, ये ह्रस्व हैं। मिथुन, कर्कट, धनु और मकर, ये सम हैं तथा सिंह, कन्या, तुला और वृश्चिक दीर्घ हैं।

मेष, सिंह और धनु, पूर्वदिशाके अधिपति हैं। तुला और कुम्भ पश्चिम दिशाके अधिपति हैं। कर्कट, वृश्चिक और मीन उत्तर दिशाके अधिपति हैं।

जिस ग्रहकी जो राशि उच्चस्थान होती है, उससे सातवीं राशिको उसका नीचस्थान समझना चाहिये।

राशिचक्र द्वारा मानव-शरीरका विभाग।

मेषराशि मानवका मस्तक है, इसी प्रकार वृष गलदेश और पश्चाद्भाग है, मिथुन हस्त है, कर्कट हृदय, स्तन और पेडू है, सिंह पृष्ठभाग और अन्तःकरण है, कन्या पेट और नाड़ी है, तुला कटि है, वृश्चिक गुह्य स्थान है, धनु ऊरुदेश और जङ्घा है, मकर जानु है, कुम्भ गुल्म और मीन पद है।

राशिचक्र द्वारा मानवशरीरकी इस प्रकार कल्पना की गई है। ये सब स्थान ग्रहोंके शुभाशुभके कारण शुभाशुभ होते हैं।

मानवके किस किस अंशमें किस किस राशिका अधिकार है।

कर्कट कपालका उपरिभाग है, धनु दक्षिण चक्षुका भ्रू है। धनु दक्षिण चक्षु है। तुला दक्षिण कर्ण है। कुम्भ वामचक्षुका भ्रू है, मिथुन और मेष वामकर्ण है।

वृष कपालका मध्यस्थल है, मकर श्रोणी है, वृश्चिक नासिका है, कन्या दाहना गाल है और मीन बायाँ गाल इन सब स्थानोंसे राशिज्ञान होता है। राशिज्ञान होनेसे आकृति और स्वभावज्ञान होता है।

जातकको जन्मसे द्वादश राशिगृहोंमें यथाक्रमसे मस्तकादि द्वादश अंग कल्पित होते हैं। जन्म लग्नमें मस्तक, लग्नसे दूसरी राशिमें मुख, तृतीय राशिमें बाहुयुग्म, चतुर्थ राशिमें वक्षःस्थल, पञ्चमराशिमें उदर, छठी राशिमें कटि, सातवीं राशिमें वस्ति, आठवीं राशिमें लिङ्गगुह्य, नौवीं राशिमें ऊरुद्वय, दसवींमें जानुद्वय, ग्यारहवींमें जङ्घाद्वय और बारहवींमें पादद्वयकी कल्पना की जाती है।

जन्मकालमें जिस जिस राशिमें रहनेवाले जिस जिस अंगमें पापग्रह रहेगा, उन पापग्रहोंके दशाभोगके समय उस उस अंगमें उपघातादि होगा तथा शुभग्रह होने पर पुष्टि और शुभकल्पना करनी चाहिए। राशियोंकी दीर्घता और ह्रस्वताके अनुसार तथा ह्रस्व और दीर्घसंज्ञक ग्रहोंकी योग वा दृष्टिके वश अंगोंकी दीर्घता और ह्रस्वता हुआ करती है।

राशियोंका बलाबल।

मेषादि द्वादश राशियाँ अपने पति, उनके मित्र, शुभ ग्रह अथवा उच्चस्थ शुभाशुभग्रह, इनके अन्यतम द्वारा युक्त वा दृष्ट होने पर बलवान् हुआ करती हैं। उक्त पति आदि ग्रहोंके सिवा अन्य ग्रहों द्वारा युक्त वा दृष्ट होने पर अल्पबली होती हैं। पति आदि ग्रह और शुभग्रह द्वारा युक्त वा दृष्ट होने पर मध्यबली होती हैं और किसी भी ग्रह द्वारा युक्त वा दृष्ट होने पर हीनबल होती हैं।

जातकपारिजातमें कहा गया है कि द्विपद-राशियाँ चन्द्रयुक्त हो कर दिनमें बलवान्, चतुष्पद राशियाँ चन्द्रयुक्त हो कर रात्रिको तथा कीटराशियाँ चन्द्रयुक्त हो कर सन्ध्याकालमें बलवान् हुआ करती हैं।

गर्गका मत है, कि केन्द्राश्रित राशियाँ पूर्णबल, पणफराश्रित राशियाँ मध्यबल और आपोक्लिमस्थित राशियाँ हीनबल होती हैं।

राशियोंका अन्ध-समय।

मेष, वृष और सिंह महानिशामें, कर्कट, मिथुन और कन्या मध्य दिनमें, तुला और वृश्चिक पूर्वाह्णमें, धनु और मकर अपराह्णमें तथा कुम्भ और मीन दोनों सन्ध्यामें अन्धेरे हो जाया करती हैं।

राशियोंकी विशेष संज्ञा।

मेष, अज, बस्त, प्रथम और आद्य—इनसे मेषराशि का बोध होता है। इसी प्रकार वृष, उक्ष, गो, ताबुरि और शुक्रसे वृषका; वीण, नृयुग्म और जितुमसे मिथुनका; चान्द्र और कुलीरसे कर्कटका; कण्ठीरव और मृगसे सिंहका; पाथोन, षष्ठी, अबला और स्त्रीसे कन्याका; जूक, वणिक्, सप्तम और तौलिसे तुलाका; कौर्प्य, अष्टम, कीट और अलिसे वृश्चिकका; चैप धनु, तौक्षिक और चापसे धनुका; आकोकेर, हरिण और मन्द्रसे मकरका; हृद्रोग, कुम्भ और घटसे कुम्भका तथा मीन, झष, अन्तिम, रिफ और अन्त्यभसे मीनराशिका ज्ञान होता है।

राशियोंका वश्यावश्य।

सिंहराशिके अतिरिक्त अन्य समस्त चतुष्पद राशियाँ द्विपदराशियोंके वशीभूत होती हैं, जलचरराशियाँ द्विपद राशियोंकी भक्ष्य हैं। और सरीसृप राशि और जलज राशिके सिवा सब द्विपद और चतुष्पद राशियाँ सिंह राशिके वशीभूत हुआ करती हैं।

विवाहके समय इस राशि-वश्यताकी आवश्यकता होती है। विवाहमें वरकी राशिके साथ कन्याकी वश्यता देखी जाती है। वरकी राशि कन्याकी राशिके वश्य होने पर, वह पुरुष स्त्रैण होता है और कन्याकी राशि वरकी राशिके वश्य होने पर वह कन्या पतिपरायणा होती है।

ज्योतिषमें इन बारह राशियोंको ६ भागोंमें बाँटा गया है, इन ६ भागोंको षड्वर्ग कहते हैं। यथा—क्षेत्र, होरा, द्रेक्काण, नवांश, द्वादशांश और त्रिंशांश।

यद्यपि ग्रहगण द्वादश राशियोंमें परिभ्रमण करते हैं, फिर भी किसी किसी राशिमें स्थितिकालमें उनकी उच्च राशियाँ तथा तत्स्थानगत नक्षत्रयोग और अन्यान्य कारणोंसे विशेष विशेष रूपसे बलवान् होते हैं। उनको

आकर्षादि शक्तिकी वृद्धि होनेसे उन उन राशियोंमें उन उन ग्रहोंके क्षेत्रनाममे उल्लेख किया गया है।

मेष और वृश्चिकराशि मंगलका क्षेत्र है, वृष और तुला शुक्रका क्षेत्र है, मिथुन और कन्या बुधका क्षेत्र है, सिंह रविका क्षेत्र है, धनु और मीन वृहस्पतिका क्षेत्र है, मकर और कुम्भ शनिका क्षेत्र है।

राशिके अर्द्धांशका नाम होरा है, जिसमें विषमराशिका प्रथम अंश सूर्यका होरा, द्वितीय अंश चन्द्रका और समराशिका प्रथमांश चन्द्रका और द्वितीयांश सूर्यका होरा है।

राशियोंके तीन भागोंमेंसे एक भागका नाम द्रेक्काण है। जो ग्रह जिस राशिका अधिपति है, वह उस राशिके प्रथम द्रेक्काणका अधिपति है, तथा उस राशिसे पञ्चमराशिका अधिपतिग्रह द्वितीय द्रेक्काणका अधिपति और उसकी नवम राशिका अधिपति तृतीय द्रेक्काणका अधिपति होता है।

नवांश—राशिको ६ भागोंमें विभक्त करनेसे उसके एक एक भागको नवांश कहते हैं। मेष, सिंह और धनु इन तीन राशियोंकी मेषावधि करके नवांश निरूपण किया जाता है। इन तीन राशियोंके प्रथममें मेषका अधिपति मङ्गल है, अतएव प्रथम नवांशका पति मंगल है। द्वितीय वृष है, उसका अधिपति शुक्र है इसलिए द्वितीय नवांशका पति शुक्र हुआ। तृतीयांश मिथुन है, उसका अधिपति बुध है, इस कारण तृतीय नवांशका पति बुध है। इस प्रकार मेषादि ६-राशियोंके अंश क्रमसे जिन जिन राशियोंके जो जो ग्रह अधिपति हैं, वे उन उन अंशोंके अधिपति हैं। इसी प्रकार मकर, वृष और कन्या इन तीन राशियोंका मकरादि करके तथा तुला, कुम्भ और मिथुन इन तीन राशियोंका तुलावधि करके, कर्कट, वृश्चिक और मीन इन तीन राशियोंका कर्कटावधि करके नवांशका निरूपण किया जाता है।

द्वादशांश—राशिका द्वादश भाग करनेसे एक एक भागको द्वादशांश कहते हैं। जिस राशिका द्वादशांश कारन है, उसका अधिपतिग्रह प्रथम द्वादशांशका अधिपति है। पीछे क्रम. राशिका अधिपतिग्रह अंशका अधिपति होता है।

त्रिंशांश—राशिको ३० भाग करनेसे उसके एक एक भागका नाम त्रिंशांश है। विषमराशि अर्थात् मेष, मिथुन, सिंह, तुला, धनु और कुम्भका प्रथम पञ्चभाग मंगलका त्रिंशांश है। उसके बादका पञ्चभाग शनिका, उसके बादका अष्टभाग वृहस्पतिका, उसके बादका सप्तभाग बुधका और उसके बादका पञ्चभाग शुक्रका त्रिंशांश है। समराशि अर्थात् वृष, कर्कट, कन्या, वृश्चिक, मकर और मीन इन राशियोंका प्रथम पञ्चभाग शुक्रका त्रिंशांश है, उसके बादका पञ्चभाग बुधका, तब अष्टभाग वृहस्पतिका, उसके बादका सप्तभाग शनिका और उसके बादका पञ्चभाग मंगलका त्रिंशांश है।

इस प्रकार राशिका षड्वर्ग किया जाता है।

विशेष विवरण उन्हीं शब्दोंमें देखो।

द्वादशराशि और सत्ताइस नक्षत्र।

पृथिवी सूर्यके चारों ओर परिभ्रमण करती है, परन्तु हम उस गतिके स्वाभाविक नियमानुसार अर्थात् जैसे किसी चालित वस्तुमें आरोहण करके हम अचल वस्तुको चालित देखते हैं, उसी प्रकार हम सचल पृथ्वी पर आरूढ़ हो कर सूर्यको भ्रमण करते हुए देखते हैं। इस नियमसे प्रातःकाल हम सूर्यको पूर्व दिशामें उदित होते और सायंकालमें पश्चिमदिशामें अस्त होते देखते हैं। जिस मार्गसे हम सूर्यको आकाशमण्डलसे जाते-आते देखते हैं, वह वास्तवमें भूकक्ष अथवा अयनमण्डल है। वह चक्राकार है, किन्तु सम्पूर्ण गोल नहीं है। बीच बीचमें कुछ टेढ़ा मेढ़ा है। उसके उत्तर-दक्षिणमें कुछ दूर तक एक और कल्पित चाक्र जो उसे घेरे रहता है, उसे राशिचक्र कहते हैं।

राशिचक्र और अयनमण्डल दोनों द्वादश भागों और ३६० अंशोंमें विभक्त हैं। उक्त द्वादशराशियोंका नामकरण द्वादश नक्षत्रोंके अनुसार हुआ है।

६६ ताराओंसे युक्त जो एक मेषाकार नक्षत्रपुञ्ज नभोमण्डलमें देखा जाता है उसका नाम मेषनक्षत्रपुञ्ज है। यह नक्षत्रपुञ्ज जिस भागमें अवस्थित है, खगोलवेत्तागण उसे मेषराशि कहते हैं।

इसी प्रकार आकाशमें १४१ ताराओंयुक्त वृषाकार नक्षत्रपुञ्जका नाम वृषनक्षत्रपुञ्ज है, यह जिस भागमें अवस्थित है, उसे वृषराशि कहते हैं।

नभोमण्डल-स्थित ८५ तारकायुक्त स्त्रीपुरुषाकार नक्षत्रपुञ्जका नाम मिथुननक्षत्रपुञ्ज है, यह नक्षत्रपुञ्ज राशिचक्रके दोनों ओर अवस्थित है, इसे मिथुनराशि कहते हैं।

८३ तारायुक्त कर्कटके आकारका जो नक्षत्रपुञ्ज है उसका नाम है कर्कट नक्षत्रपुञ्ज, यह राशिचक्रके जिस भागमें अवस्थित है, उसका नाम कर्कटराशि है।

९५ तारकायुक्त सिंहाकार नक्षत्रपुञ्जका नाम सिंह पुञ्ज है इसलिए सिंहराशि; ११० तारकायुक्त शस्य और अनलधारिणी कन्याकार नक्षत्रपुञ्जका नाम कन्यानक्षत्र पुञ्ज, इसलिए कन्याराशि; ५१ तारकायुक्त तुलादण्डाकार नक्षत्रपुञ्जका नाम तुलानक्षत्रपुञ्ज इसलिए तुलाराशि; ४४ तारकायुक्त वृश्चिकाकार नक्षत्रपुञ्जका नाम वृश्चिकनक्षत्र पुञ्ज, इसलिए वृश्चिकराशि; ६९ तारकायुक्त ऊर्द्ध्वार्द्ध नराकार, निम्नार्द्ध घोटकाकार, धनुर्धारीके समान नक्षत्र पुञ्जका नाम धनुर्नक्षत्रपुञ्ज। ५१ तारकायुक्त मकराकार, छागवदनके समान नक्षत्रका मकरनक्षत्रपुञ्ज इसलिये मकरराशि; १०८ तारकायुक्त घटधारी मानवाकार नक्षत्र पुञ्जका नाम कुम्भनक्षत्रपुञ्ज, इसलिए कुम्भराशि ११३ तारकायुक्त परस्पर पुच्छाभिमुख मीनाकार विशिष्ट नक्षत्र पुञ्जका नाम मीननक्षत्रपुञ्ज, इसलिए उसके स्थानको मीनराशि कहते हैं।

राशिचक्रमें ये सब राशियां मेषसे वामावर्तमें अवस्थित हैं। उक्त द्वादश नक्षत्रपुञ्ज अचल कहलाते हैं। किन्तु उनकी लगभग तीन विकलाके हिसाबसे एक वार्षिक गति है।

आकाशमण्डलके मध्यभागमें राशिचक्र अवस्थित है। इस चक्रके उत्तरदक्षिणमें और भी असंख्य तारे हैं। किन्तु ज्योतिष ग्रन्थमें सप्तर्षि और ध्रुव आदि कई नक्षत्रोंके सिवा अन्य किसी नक्षत्रका उल्लेख नहीं मिलता। इसका कारण शायद यह होगा कि उन सब नक्षत्रों की अननुमेयनीय दूरीके कारण मानवशरीरमें उनकी क्रिया स्पष्ट बोधगम्य नहीं होती।

इसके अतिरिक्त आर्य ज्योतिर्विदोंने असामान्य बुद्धिकौशलके साथ २७ नक्षत्रपुञ्जों द्वारा राशिचक्रका और भी सूक्ष्मरूपसे विभाग किया है। नक्षत्रोंका परिमाण १३ अंश और कला २० अंश है। इसलिए सपाद (सवा) नक्षत्रद्वयसे एक एक राशि होती है।

उक्त राशिचक्रके २७ नक्षत्रपुञ्जोंमें विशाखा, ज्येष्ठा, पूर्वाषाढ़ा, श्रवणा, पूर्वभाद्रपद, अश्विनी, कृत्तिका, मृगशिरा, पुष्या, उत्तरफाल्गुनी और चित्रा—इनसे द्वादश मास वैशाखादि द्वादश मासोंके नाम निर्दिष्ट हुए हैं। राशिचक्र बारह भागोंमें विभक्त हैं, इसलिये बारह मास हुए हैं। ३० अंशोंमें एक एक राशि है, इसलिए ३० दिनका एक एक मास हुआ है।

राशिचक्रका आरम्भ और विभिन्न मत।

चक्रका आदि और अन्त नहीं है, हां, किसी किसी विशेष निर्दिष्ट स्थानसे उसका आद्यन्त निरूपित होता है। राशिचक्र अथवा अयनमण्डलका भी इसी प्रकार आदि अन्त नहीं है तथा उसका भी किसी निर्दिष्ट स्थानसे आदि अन्तका निरूपण किया जाता है। यूरोप और अमेरिकामें वास्तविक क्रान्तिपातसे तथा इस देशमें अश्विनी नक्षत्रके प्रथमांशसे राशिचक्रका आरम्भ निरूपित होता है। पृथ्वीके विषुवद्वृत्तकी भांति राशिचक्रके मध्यभागमें पूर्व-पश्चिममें व्याप्त एक सीधी रेखा कल्पित होती है, उसका नाम है विषुवरेखा। प्रति वर्ष अयनमण्डलके जिन दो स्थलोंमें विषुवरेखा मिलित होती है, उसे क्रान्तिपात कहते हैं। वहां सूर्यके आने पर समस्त दिन और रात्रि समान होती है। आजकल चैत मासमें एक बार और आश्विन मासमें दो बार क्रान्तिपात होता है, इसलिए उन दोनों दिन दिन रात समान होती है।

१३८१ वर्ष पहले चैत और आश्विन मासमें १० या ११ दिनमें अश्विनी नक्षत्र प्रथमांशमें और चित्रा नक्षत्रके पर्यान्त ३० कलामें उक्त दो क्रान्तिपात होता था, अर्थात् उक्त दो नक्षत्रों के उल्लिखित अंशोंमें विषुवरेखा अवस्थिति करता था तथा उक्त दोनों स्थलों में उनके साथ अयनमण्डलका संयोग होता था।

आर्य-ज्योतिर्विद्गण अश्विनीनक्षत्रके प्रथमांशमें जो क्रान्तिपात होता था, सूर्य वहां आने पर उसे महाविषुव संक्रान्ति और चित्रा नक्षत्रके अर्द्धांशादिमें जो क्रान्तिपात होता था, सूर्य वहां उपस्थित होने पर उसे अज

विषुवर्द्धक्रान्तिके नामसे निर्देश करते थे। अब भी वही नियम चला आ रहा है। परन्तु इस समय राशिचक्रके उक्त दो स्थलोंमें विषुवरेखाके साथ अयनमण्डलका सम्मिलन नहीं होता।

यूरोपीयोंके मतसे प्रतिवर्ष ५० विकला, १५ अनुकला, और आर्य ज्योतिर्विदोंके मतसे ५४ विकला अयनमण्डलके पश्चिमभागमें हट जाती है, अर्थात् इस परिमाणमें प्रतिवर्ष विषुवरेखाका सञ्चालन कल्पित हुआ है।

अब बंगला तारीख ६ या १० चैत्रको राशिचक्रके अश्विनीनक्षत्रके प्रथमांशसे लगभग २१ अंशके अन्तरमें जो स्थान इस देशमें मीनराशिका ६ अंशयुक्त माना जाता है उस स्थानमें वासन्तिक क्रान्तिपात होता है, तथा सूर्य उस दिन उक्त क्रान्तिपातमें उपस्थित होने पर दिन और रात्रि समान हुआ करती है।

इस देशमें चैत्रमासके ३० वा ३१ दिनमें सूर्य अश्विनी नक्षत्रके प्रथमांशमें उपस्थित होने पर उक्त अंशसे मेषराशिका प्रारम्भ समझा जाता है।

आर्योंमें शेषोक्त मत प्रचलित रहनेका कारण यह है, कि सायणके मतसे किसी एक अपरिवर्त्तनीय स्थानसे मेषराशिका प्रारम्भ नहीं होता, प्रतिवर्ष उसका प्रारम्भ स्थानान्तरसे होता है। इस विषयमें निरयणका मत उत्तम है, कारण अचल अश्विनीनक्षत्र मेष सक्रान्तिकी गणना होनेसे एक ही स्थानसे मेषका प्रारम्भ गिना जाता है। फलतः उक्त दोनों गणनाओंमें प्रभेद यह है, कि जिस सायण मतसे अभी जिस दिन मेष संक्रान्ति होती है, उसके लगभग २१ दिन बाद निरयणमतसे उक्त संक्रान्ति होती है। सायण मतसे अब जिस स्थानमें मेषराशिका प्रारम्भ होता है, निरयण-मतसे वहांसे लगभग २१ अंश बाद होता है। सायण मतसे वासन्तिक क्रान्तिपात अयनमण्डलसे कितनी ही दूर पश्चिममें हट कर क्यों न हो, वहांसे मेषराशिका प्रारम्भ निर्दिष्ट होगा। अतएव उक्त मतसे मेषादि द्वादश राशियोंकी सीमा कालक्रमसे परिवर्त्तित होती रहती है। यहां तक, कि अब जिस स्थानको सायण मतावलम्बी मेषराशि कहते हैं, १३००० वर्ष बाद उन्हींकी गणनासे वह स्थान तुलाराशिके अन्तर्गत हो जायगा।

निरयण मतसे द्वादश राशिओंमें कोई परिवर्त्तन नहीं होता। पुराकालमें मेषादि द्वादश नक्षत्रपुञ्जोंके अधीनस्थ जो मेष आदि द्वादश राशियां निर्द्धारित हुई थीं, अब भी वे राशियां उन्हीं स्थानोंमें मौजूद हैं।

अतएव पक्षपातशून्य हो कर विशेष विवेचनापूर्वक देखने पर यह अवश्य ही स्वीकार करना पड़ेगा, कि सायण और निरयण इन दोनों मतोंमें राशिकी स्थिरता के विषयमें निरयणका मत ही उत्कृष्ट है, किन्तु राशियोंसे जो फल उत्पन्न होता है, उसका यथार्थरूपमें निर्णय करना हो, तो सायणका मत ग्रहण करना ही श्रेय है। निरयणके मतसे नक्षत्र घटित फलका व्यत्यय नहीं होता, किन्तु राशिघटित फलोंमें विभिन्नता पाई जाती है।

वस्तुतः आर्योंके राशिचक्रको वास्तवमें नक्षत्रचक्र कहा जा सकता है और यूरोपीय ज्योतिर्विद् भी उसे इसी नामसे कहा करते हैं। अतएव, यद्यपि सायणचक्र परिवर्त्तनशील है, तथापि वही वास्तवमें राशिचक्र है, इसमें सन्देह नहीं। प्राचीन ज्योतिर्विदोंने ऋतुके अनुसार राशिचक्रका विभाग किया था, वे वसन्तऋतुके आविर्भावसे मेषराशिका प्रारम्भ निर्द्धारण करते थे, तथा उस नियमके अनुसार ही सायणमतसे वासन्तिक क्रान्तिपातसे राशिचक्रका आरम्भ होता है। इस देशमें भी किसी समय उक्त मत प्रचलित था। प्राचीन कालमें जब कृत्तिका नक्षत्रमें वासन्तिक क्रान्तिपात होता था, तब उस नक्षत्रसे ज्योतिर्विद्गण राशिचक्र वा मेषराशिका प्रारम्भ मानते थे। पीछे जब उक्त क्रान्तिपात अश्विनी नक्षत्रमें हटने लगा, उसी समयसे मेषारम्भ अश्विनीनक्षत्रसे गिना जाने लगा। परन्तु अब उक्त क्रान्तिपात उत्तर भाद्रपदनक्षत्रके ६ अंशमें हट जानेके कारण राशिचक्रके पुनः संस्कारकी आवश्यकता आ पड़ी है।

वर्त्तमानमें इस देशमें केवल दिनमान और रात्रिमान तथा मेषादि द्वादश राशिओंका लग्नमान निरूपण करनेके लिए सायण-मतसे गणनाकी आवश्यकता होती है।

निरयण गणनामें एक और सुविधा है, वैशाखादि द्वादश मासोंमें रविका मेषादि द्वादश राशिओंमें पर्याय-क्रमसे अवस्थितिमें कोई परिवर्त्तन नहीं होता। यथा—

वैशाख मासमें रवि मेषराशिमें रहेगा, ज्येष्ठ मासमें वृष राशिमें, इसी प्रकार पर्यायक्रमसे चैत्रमासमें मीन राशिमें अवस्थान करेगा। इस प्रकार बारह मासोंमें मेषसे ले कर मीन तक बारह राशियोंका भोग करता है।

इस प्रकार सौरमास स्थिरीकृत होनेसे वैशाखादि द्वादश मासमेंसे कोई एक मास उल्लिखित होने पर उस मासमें रवि जिस राशिका भोग कर रहा हो उसीका बोध होगा, तथा किसी राशिका उल्लेख करने पर उससे स्वभावतः मासका भी संकेतन उल्लेख हो जाता है। जैसे वैशाखमास कहने पर इस मासके अधिपति मेष राशिका बोध होगा, इसी प्रकार मेषराशि कहनेसे उसके अधीनस्थ वैशाखमासका ज्ञान होगा।

पहले ही कहा जा चुका है कि पृथ्वीके निरक्षवृत्तके समान राशिचक्रका भी एक निरक्षवृत्त माना गया है और उसका नाम है विषुवरेखा। इस रेखाके उत्तर दक्षिणमें २३ अंश २८ कलाके अन्तरमें दो बिन्दुओंकी कल्पना की गई है। इनमेंसे एक उत्तरायणान्त बिन्दु अर्थात् सूर्यके उत्तरमें जानेकी शेष सीमा है और दूसरा दक्षिणायणान्त बिन्दु अर्थात् सूर्यके दक्षिण दिशामें जानेका शेष सीमा है। राशिचक्रके इन दोनों बिन्दुओंके मध्य जो एक रेखा कल्पित हुई है, उसका नाम अयनान्तवृत्त है। सूर्य जिस मार्गसे उत्तर दिशाको जाता है, उसे उत्तरायण और जिस मार्गसे दक्षिण दिशाको जाता है, उसे दक्षिणायन कहते हैं।

१३८१ वर्ष पहले माघ और श्रावणमासके प्रथम दिनमें अयन परिवर्त्तित होता था अर्थात् माघके पहले दिनसे सूर्यका मकरराशिमें प्रवेशसे ले कर आषाढ़के अन्तमें सूर्य मिथुनराशिके शेषांश गत होने तक उत्तरायण कहलाता था। श्रावणके पहले दिनमें सूर्यका कर्कटराशिमें प्रवेशसे ले कर पौषके अन्तमें सूर्यके धनुराशिमें चले जाने तक दक्षिणायन कहलाता था। परन्तु आजकल उक्त निर्दिष्ट समयसे लगभग २१ दिन पहले अयन परिवर्त्तित हो जाता है। अतएव धनुराशिके लगभग ६ अंशमें आरम्भ हो कर मिथुनराशिके लगभग ६ अंशमें उत्तरायण समाप्त होता है और दक्षिणायन मिथुनराशिके उक्त अंशमें आरम्भ हो कर धनुराशिके ६ अंशमें शेष होता है। अतएव इस देशकी पञ्जिकामें उत्तर और दक्षिणायनका आरम्भ और शेष जिस समय बतलाया जाता है, वह ठीक नहीं है। इस समय राशिचक्रमें बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया है।

पहले ही कहा जा चुका है, कि ग्रहगण राशिचक्रमें परिभ्रमण कर रहे हैं। जिनमें रवि और चन्द्रग्रहकी शीघ्रगति है, राहु और केतुकी वक्रगति है, और अन्य पाँच ग्रहोंकी सीधी, शीघ्र, मन्द, वक्र, अतिवक्र, अतिचार और महातिचार सात प्रकारकी गति निर्दिष्ट हुई है।

समस्त ग्रह राशिचक्रमें वामावर्त्त अर्थात् मेषसे वृष और वृषसे मिथुन इस प्रकार पर्यायक्रमसे भ्रमण करते हैं, किन्तु राहु और केतु इसके विपर्यायक्रमसे अर्थात् मेषसे मीन, मीनसे कुम्भ इस प्रकार गतिक्रिया सम्पादन करते हैं।

राशिचक्र ३६० अंशोंमें विभक्त है। रविचक्रको ३६५ दिन १५ दण्ड ३१ पल ३१ विपलमें यह राशिचक्र अतिक्रम करता है। यही रविकी वार्षिक गति है, और ५९ कला, ८ विकला, १० अनुकला इसकी दैनिक गति है। परन्तु राशिचक्रकी वक्रिमाके कारण सूर्यकी गति कभी अधिक शीघ्र और कभी मन्द हुआ करती है, इसलिए उक्त गतिको मध्यगति कहते हैं। रविकी दैनिक शीघ्रगति १ अंश १ कला ५ विकला है और यह एक मास तक प्रत्येक राशिका भोग करता रहता है।

चन्द्र—चन्द्र २७ दिन ११ दण्ड १० पल ४२ विपलमें रविचक्र परिभ्रमण करता है और १३ अंश १० कला १४ विकला इसकी दैनिक गति है। राशिचक्रकी वक्रताके कारण सूर्यकी भाँति इसकी गतिमें भी कभी कभी न्यूनाधिकता होती रहती है। चन्द्रके प्रत्येक राशिका भोगकाल सवाद (सवा) दो दिन मात्र है। इसलिये सवा दो नक्षत्रमें एक राशि होती है।

मंगल—जो उपग्रहसमन्वित मंगल ६८६ दिन ५८ दण्ड ८ पल २० विपलमें राशिचक्र परिभ्रमण करता है। इसकी दैनिक शीघ्रगति ४६ कला १८ विकला, मन्दगति ४ कला और मध्यगति ३१ कला २७ विकला है। मंगल ८० दिन वक्र और ४ दिन स्थिर भावसे रहता है। मंगल यदि मार्गको प्राप्त न हो, तो १ मास १५ दिनके हिसाबसे प्रत्येक राशिका भोग करता है।

पुरुष और स्त्री इस प्रकार पर्यायक्रमसे विभक्त हैं, अर्थात् मेषराशि विषम दिवा और पुरुष है। वृषराशि सम, रात्रि और स्त्री है, शेष राशियां भी क्रमवार इसी प्रकार की समझ लेनी चाहिये।

अतएव मेषराशिमें उत्पादन शक्ति और वृषराशिमें धारण या ग्रहणशक्ति रहती हैं। उसके बादकी राशियों के गुण भी क्रमशः इसी प्रकार समझ लेने चाहिये। छः पुरुषराशि कही गई हैं, इनमें सन्तान उत्पन्न होने पर वह वीर्यवान् होती है और छः स्त्री राशियोंमें कन्या उत्पन्न होने पर कोमलस्वभाव होती है, इसके विपरीत होने पर विपरीत फल होता है अर्थात् स्त्रीराशिमें पुत्र होने पर वह भीरु और पुरुषराशिमें कन्या होने पर वह अत्यन्त प्रबला होती है।

बारह राशियोंके चर, स्थिर, द्व्यात्मक, अग्नि, पृथ्वी, वायु, जल, पूर्वादि दिक्, द्विपद और चतुष्पद आदि विभाग हैं, जो कि राशियोंकी विशेष संज्ञाके प्रकरणमें लिखे गये हैं। स्वभाव और गुण राशियोंके नामानुसार उन्हीं सब शब्दोंमें देखो।

सत्ताईस नक्षत्रोंमें जो सवा दो पाद नक्षत्रमें एक राशि होती है, नीचे उसकी तालिका दी जाती है,—

मेषराशि—१ अश्विनी, २ भरणी और ३ कृत्तिका-नक्षत्र का प्रथम एक पाद।

वृषराशि—३ कृत्तिकाके शेष तीन पाद, ४ रोहिणी, ५ मृगशिराके प्रथम दो पाद।

मिथुनराशि—५ मृगशिराके शेष दो पाद, ६ आर्द्रा, ७ पुनर्वसुके शेष तीन पाद।

कर्कटराशि—७ पुनर्वसुका शेष पाद, ८ पुष्या, ९ अश्लेषा।

सिंहराशि—१० मघा, ११ पूर्वफल्गुनी, १२ उत्तर फल्गुनी।

कन्याराशि—१२ उत्तर फल्गुनीके शेष तीन पाद, १३ हस्ता, १४ चित्राका प्रथम पाद।

तुलाराशि—१४ चित्राके शेष दो पाद १५ स्वाती, १६ विशाखाके प्रथम तीन पाद।

वृश्चिकराशि—१६ विशाखाका शेष पाद, १७ अनुराधा, १८ ज्येष्ठा।

धनुराशि—१९ मूला, २० पूर्वाषाढ़ा, २१ उत्तराषाढ़ाका प्रथम पाद।

मकरराशि—२१ उत्तराषाढ़ाके शेष तीन पाद, २२ श्रवणा, २३ धनिष्ठाके प्रथम दो पाद।

कुम्भराशि—२३ धनिष्ठाके शेष दो पाद, २४ शतभिषा, २५ पूर्वभाद्रपदका प्रथम पाद।

मीनराशि—२५ पूर्वभाद्रपदका शेष पाद, २६ उत्तर भाद्रपद, २७ रेवती।

इन सत्ताइस नक्षत्रोंमें पूर्वोक्त विभागक्रमसे राशि चक्र बनता है। राशिचक्र देखो।

राशिक (सं० त्रि०) राशिविशिष्ट। जैसे,—त्रैराशिक।

राशिचक्र (सं० क्ली०) राशीनां चक्र। मेष, वृष, मिथुन आदि राशियोंका चक्र या मंडल, ग्रहोंके चलनेका मार्ग या वृत्त। इसे भचक्र या ज्योतिषचक्र भी कहते हैं।

"असर्वितनिभैर्ज्योतिश्चक्र स्तिमितवायुगम्।
तदर्धं वा भचक्रार्धैर्नवर्क्षचरणाङ्कितः॥" (दीपिका)

विशेष विवरण राशि शब्दमें देखो।

तन्त्रसारमें लिखा है, कि गुरु शिष्यको मन्त्र देते समय राशिचक्र बना कर मन्त्र स्थिर करे अर्थात् राशि चक्र अकारादि अक्षरविन्यास कर स्थिर करे। उसका विधान इस प्रकार लिखा है,—अ, आ इ, ई, मेष। उ, ऊ, ऋ वृष। ॠ, ऌ, ॡ मिथुन। ए, ऐ कर्कट। ओ, औ सिंह। अं, अः, श ष, स, ह क्ष कन्या। कवर्ग तुला। चवर्ग वृश्चिक। टवर्ग धनु। तवर्ग मकर। पवर्ग कुम्भ। यवर्ग मीन।

इस प्रकार अक्षरविन्याससे बारह राशि कल्पित होती है। मन्त्रवर्ण और राशिवर्ण अनुकूल होनेसे वही मंत्र ग्रहणीय है। राशि और मन्त्रवर्ण प्रतिकूल होनेसे पद पद पर विघ्न हुआ करता है।

शिष्यका यदि जन्मसमय स्थिर न हो, इससे अगर उसकी राशि जानी न जाय, तो उसका निद्राभङ्गकालीय नामग्रहण करते हुए उस नामका आदि अक्षर ले कर राशि स्थिर करनी होगी।

षष्ठ, अष्टम और द्वादश दुःस्थान है। अतः इस राशिमें मन्त्रग्रहण करना युक्तिसङ्गत नहीं। इसी द्वादश राशिका लग्न, धन, भ्राता, बन्धु, पुत्र, कलत्र, मरण, धर्म, आय और व्यय नाम पड़ा है।

इसी द्वादश राशिके बीच लग्नराशिस्थ मन्त्र लेनेसे सिद्धि, धनराशिमें नाना प्रकार सुखभोग, भ्रातृराशिमें भ्रातृवृद्धि, पुत्रमें पुत्रवृद्धि, बन्धुमें बन्धुवृद्धि तथा शत्रु-राशिमें शत्रु वृद्धि, कलत्रमें मध्यम, अष्टममें मृत्यु, नवममें धर्मवृद्धि, कर्ममें सब तरहकी सिद्धि, आयमें धनादि वृद्धि तथा व्ययराशिमें सञ्चित धनका क्षय हुआ करता है। अतएव इस प्रकार द्वादश राशिकी विशेषरूपसे विवेचना कर गुरु शिष्यको मन्त्र देवें। राशियोंके शत्रु मित्र भी देखने होंगे। शत्रु राशिमें मन्त्रग्रहण करनेसे शत्रुकी वृद्धि और मित्र होनेसे मित्रता होती है।

Aries, Taurus, Gemini, Cancer, Leo, Virgo, Libra, Scorpio, Sagittarius, Capricornus, Aquarius, Pisces

लेट्रोन, आइडेलर, लासेन आदि पाश्चात्य प्रत्नतत्त्व-विद्गण एकमतसे स्वीकार करते हैं, कि भचक्रके निर्दिष्ट मृगशिरा आदि २७ नक्षत्र ले कर सबसे पहले काल्दीय या वाविलोनीय ज्योतिर्विदोंने आकाशमण्डलके बारह बराबर भाग कर १२ राशि और राशिचक्रकी कल्पना की थी। उनके मतसे ग्रीक ज्योतिर्विदोंने सम्भवतः ईसीसन् ७००के पहले वाविलोनियोंसे वारह राशिविभाग सीखा था। किन्तु दुःखका विषय है, कि इन द्वादश राशिके नाम और आकृतिचित्र वाविलोनीयगण संग्रह करनेमें समर्थ हुए थे तथा ग्रीकगण ही या वे सबके सब उनसे प्राप्त हुए थे या नहीं, उसका कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलता। ग्रीक-इतिहास पढ़नेसे पता चलता है, कि ई०सन् ४६६के पहले तेनेदोसवासी क्लिओष्ट्राटस् द्वारा नक्षत्रमण्डलका वारह विभाग प्रवर्त्तित होने पर भी यथार्थरूपसे ३८० ई०सन् पहले यूदोक्ससके समय तक ग्यारह राशि निरूपित हुई थी। कारण उस समय तुला-राशिके कुछ अंशोंमें वृश्चिकका डंक आ पड़ने पर उसकी गणना एक राशिमें होती थी। यहां तक, कि Aratus, Hipparchusके समय तक (१५० ई०सन्) वे भूलोकमें पृथक् राशि कह कर स्वीकार नहीं करते। ईस्वीसन् पहली शताब्दीके प्रारम्भमें Geminus और Varro सबसे पहले इन दोनोंको पृथक् पृथक् राशिमें निर्देश कर गये हैं।

इस घोर समस्यामें पड़ कर पण्डितवर लेट्रोनने मिस-रीय राशिचक्रचित्रका (Zodiacal representations)-किंवदन्ती मूलक प्राचीनत्व विलोप करना चाहा। इनके मतसे जिस किसी स्तम्भमें या प्राचीन पुस्तकमें पृथक् तुलाचिह्न (Balance) देखे जाते हैं, वे सब किसी हालतसे भी ईस्वीसन् १ली शताब्दीके पूर्ववर्त्ती नहीं हो सकते। अध्यापक मोक्षमूलरका कहना है, कि मिस्र हो या भारत उस देशका ज्योतिःशास्त्र प्रत्यक्षरूपसे या परोक्षरूपसे ग्रीक ज्योतिःशास्त्रके ऋणी हैं।

यदि प्राचीन वाविलोनियोंके लिखे ग्रंथ अथवा अट्टालिका आदिका ध्वंस न होता, तो निःसन्देह हो वह समुन्नत प्राच्य जातिका ज्योतिर्विज्ञान-विषयक कीर्त्तिस्तम्भ वर्त्तमान जगत्‌में अभिनव आलोक दे सकता था। स्ट्रावोकी लेखनीसे जाना जाता है, कि उस देशके धर्मयाजकगण ज्योतिःशास्त्रानुशीलनमें जीवन अतिवाहित कर गये हैं। द्यूदोरस् सिकुलस्‌ने अपने इतिहासमें (Biblioth Histor, 11, 3,) लिखा है, "वावलोनियोंने वारह देवताओंके नाम पर वारह मासोंके नाम तथा वारह पशुओंके नाम पर एक और क्या संकलन किया था।" यह शेषोक्त सम्भवतः राशिका वारहवां विभाग या राशिचक्रके वारह चिह्नोंकी अङ्कित जीवाकृति समझी जाती है।

वाविलोनियोंके अट्टालिका-गात्रस्थ शिलाफलकमें जो सब ज्योतिषिक चिह्न (Astronomical monuments) खोदे गये थे, उसके कितने टुकड़ोंमें नक्षत्रपुंजके विशेष विशेष अंश प्रतिफलित देखे जाते हैं। वागदादके आस-पास किसी स्थानके भीतरकी मिट्टीसे उपरोक्त चित्र सम्वलित जो सब पत्थरके टुकड़े मिले हैं उनमेंसे एकमें ससर्प-सूर्यमण्डल खोदित है। यह चित्र शायद उत्तर-गोलार्द्धके Ophiuchus नक्षत्रपुञ्जका तथा काल्दीय राशिचक्रके चित्रफलक (Planisphere)का एक अंश-मात्र है।

एक एक मासमें सूर्यदेव जितना पथ तै करते हैं, पहले वही अंश निरूपणार्थ राशिचक्रका वारह भाग कल्पित होता है। पीछे Geminus इस एक एक विभागको २८ अंशमें विभक्त कर चन्द्रमाकी स्वाभाविक

दैनिक गति धारण करता है। प्रथमोक्त विभाग मिस्र-वासी, ग्रीक और एशियाके अपरापर सभ्य जातिमात्रने ही ग्रहण किया है तथा शेषोक्त विभाग पारस्य, अरब, हिन्दू और चीनवासी अनुसरण करते हैं। ये २८ भाग चन्द्रमाके गेह (Station या abode) कहलाते हैं। चन्द्रमा एक एक गेहमें सिर्फ एक दिन रहते हैं।

१८१८ ई०में फरासीसियोंने जब मिस्र पर चढ़ाई कर दी, उस समय सेनापति दे से (General Desaix) ने डेण्डेरा (प्राचीन Tentyra)के बड़े मन्दिरके कक्षकी छत पर बहुतसे भास्कर-शिल्पचित्र खोदे हुए देखे। M Jollois और M Devilliersने यह चित्र पुङ्खानुपुङ्ख रूपसे पर्यालोचना करते करते बीच कुछ व्यासयुक्त एक वृत्तके बीच समूचे 'नक्षत्र जगत्' (Celestial globe) का एक पूर्ण चित्र देखा। वर्त्तमान समय हम लोग राशिचक्रमें तथा नक्षत्रमालाकी जैसी आकृति देखते हैं, वैसी ही उस शिलाफलकमें जीवजन्तुकी आकृति प्रतिफलित है। कुतूहलका विषय है, कि इस नक्षत्रचक्रका चित्र देख कर खगोलमें उस उस नक्षत्र मालिका समावेश निर्णय करना कठिन है। फरासी वैज्ञानिक M Biot इसी फलकगोलकस्थ चार नक्षत्र यथास्थानमें सन्निवेशित हैं अनुमान कर इसी फलकका मौलिकत्व अवधारण करनेको अग्रसर होते हैं। ये इसी चौंसठ नक्षत्रके समीप कितनी मनुष्यमूर्त्ति और मिसरीय प्रथाके लिपिका समावेश देख कर बड़े चमत्कृत हो गये और इसका विशेषत्व उद्धारनके लिये बहुत अनुशीलन कर सिद्धान्त किया, कि राशिचक्रकी जिस राशिके पास ये नक्षत्र हैं उनके नाम Fomalhaut Antares, Arcturus और Pegasi हैं। इन्होंने गणितके सहारे फलकस्थ उक्त चौंसठ तारोंमें अवस्थान और खगोलस्थ उस उस तारे को स्थिति सामञ्जस्य कर दिखाया है, कि इस्वीसन् ६२७ या ७०० में यह फलक खोदा गया था।

उपरोक्त डेण्डेरा रामन्दिरकी छतमें, एसने-नगरके बड़े मन्दिरके बिछानमें, पटोरस सिकुसके प्रन्थमें प्रकाशित मोसिमारिउसके सर्णवक्रमें तथा Scaliger कृत Notes on Manilius नामक ग्रन्थ वर्णित मिसरीय फलकमें और M Bianchini कर्त्तृक Memoires de 1 Academic des Science (1708), नामक पत्रिकामें प्रकाशित स्वतन्त्र स्वतन्त्र फलकविवरणामें नक्षत्रमण्डलके तथा राशिचक्रके निर्दिष्ट प्रकारोंका जो प्रतिकृति खोदित है वह सब समान नहीं है। इसका कारण यही है, कि मिस्रवासी प्राचीन ज्योतिर्विदोंने इस परिदृश्यमान आकाशपथके नक्षत्रपुञ्जमें जब जैसी आकृति देखी थी, सम्भवतः उस समयमें वैसी प्रतिकृति ही अङ्कित कर रखा था, वो एक जगह ग्रीक-राशिचक्रकी किसी किसी राशिका अविकल चित्र दिया गया था। मुर्सी विषयविनो कथित फलकमें राशिचक्रके बाहर ३६ भागोंमें विभक्त और एक पंक्ती है। इस सम्पनीके बीच ३६ घरोंमें ३६ देवता ओंकी मूर्त्ति अङ्कित देखी जाती है और प्रत्येक घर खगोलकी १०° डिग्रीका माना जा सकता है।

इन सब भिन्न भिन्न फलकोंका पर्यवेक्षण कर पाश्चात्य पण्डितोंने सिद्धान्त किया है, कि प्राचीन मिस्र वासी और काल्डीयगण खगोलमें दृश्यमान प्रसिद्ध नक्षत्रपुञ्ज की प्रतिकृति अपने अपने उपास्यदेवताकी प्रतिमूर्त्ति अथवा शिल्पमूर्त्ति या उनम से जो महापुरुष अपने कर्मों द्वारा समाजमें प्रतिष्ठित हो उठे थे, सम्भवतः उनके समान आकृति होन होस संगठित करते रहेंगे। किन्तु उनके राशिचक्रमें नक्षत्रपुञ्जकी जो प्रतिकृति अङ्कित या नाम दिये गये हैं वे सूर्यकी प्रत्यक्ष गति, कृषिविषयक श्रम, अथवा विभिन्न ऋतुमें उत्पन्न द्रव्यके प्रति लक्ष्य करके ही बारह राशियों के नाम संकलित हुए थे, ऐसा अनुमान किया जाता है। माक्रोबियसने लिखा है, कि जिस समय सूर्यदेव दक्षिणायनसे विषुवरेखाकी ओर बढ़ते हैं उस समय जिस नक्षत्रपुञ्जके पास वे रहते हैं उसको मकराकृतिसे मकर नाम पड़ा है।

अजगण भूमिके या पर्वतके ऊंचे स्थान पर चढ़ सकते हैं। सूर्यदेव वैशाखसे आषाढ़ तक प्रखर किरणजाल विस्तार करते करते क्रमशः उत्तरमुख उठते हैं। इस ऊर्द्ध्वमें उठने की शक्ति और प्रखरता उसको लक्ष्य कर मेष और वृष नाम तथा वर्षाकी कोमल स्निग्ध जलधारा मिथुनके साथ तुलनामें लिखी रहेगी। इस प्रकार कर्कटगण पश्चात् गमनकुशल, सूर्यदेव जब और उत्तरपथमें उठ नहीं सकते तो पुनः दक्षिणायनमें लौट गिरते हैं उसी प्रकार उनको

अवस्था कर्कटकी तरह होती है इसलिये उक्त नक्षत्रोंके स्थानका नाम कर्कटराशि तथा आयनगतिका वह अंश कर्कटक्रान्ति नामसे विख्यात है। भाद्रके निदारुण ग्रीष्मके साथ सिंहके प्रभावकी तुलना की जा सकती है। कन्याके यौवनोद्गमकी तरह शस्यपूर्णा वसुन्धरा साधारणका लक्ष्य होती है इसलिये आश्विनकी सूर्यगतिको कन्या, कार्त्तिकको क्षेत्रजात शस्यादि माप करनेकी सूचना होनेसे उसे तुला, अग्रहायणमें सूचीविद्धवत् शीतका प्रादुर्भाव उद्बोधन करनेसे उसे वृश्चिक, पौषमें शीतका प्राखर्य तीरका अग्र-सूचीविद्धकी तरह यन्त्रणादायक होनेसे उसे धनु, माघमें शीत उद्गमनशील है इसलिये प्रवाहवाही मकर, फाल्गुनमें वसन्तागम-जल सुस्पर्शीतल होता है इससे कुम्भ ही उसका निदर्शन, चैत्र ग्रीष्मकी सूचना-वासन्तिक वायु सेवनके लिये विहारशील प्रणयीयुगलका चिह्नस्वरूप एक सूत्रबद्ध मत्स्ययुग्म होता है। प्रकृतिका मास और ऋतुका ज्ञापक इन सब पार्थिव निदर्शनके अनुकरण पर ही द्वादश राशिचित्र प्रतिपादित हो सकता है, ऐसा विश्वास है।

फरासीपण्डित M. Dupuis मिस्रवासीको राशिचक्रस्थ नक्षत्रपुञ्जका सर्वप्रथम उद्भावक अनुमान कर गणना द्वारा स्थिर करते हैं, कि ईसाजन्मसे पन्द्रह हजार वर्ष पहले राशिचक्र आविष्कृत हुआ था। पीछे वे अपना वह भ्रम निराकरण कर कहते हैं, कि ईस्वीसन् चार हजार पहले वह अन्ततः पक्षमें निष्पादित हुआ था।

पाश्चात्य मनीषिमण्डलीके अपनी अपनी गवेषणा द्वारा राशिचक्रका उद्भावन काल विभिन्न समयमें निरूपित करने पर भी वह समीचीन और सर्ववादि सम्मत नहीं समझा जाता। ऐतिहासिक तत्त्वसमुद्धृत ग्रीक-जातिका राशिचक्र साधारणतः ईसाजन्मसे ६७०से ७०० तकके बीच संकलित हुआ है। किन्तु प्रत्येक राशिगत नक्षत्रोंका नामकरण तथा उसका चित्रसम्पादन यथार्थरूपसे कब और किस जातिके द्वारा निष्पादित हुआ था उसका कोई ठीक विवरण नहीं मिलता।

देखा जाय, भारतीय आर्य ऋषि सूर्यकी गति, वर्ष आदि निर्णय करनेके लिये राशि और उसके नक्षत्र आदिके सम्बन्धमें आलोचना कर किस प्रकार सिद्धान्तमें उपनीत हुए थे। वे नक्षत्रतत्त्व पहलेसे जानते थे क्या नहीं? अथवा उन्होंने वैदेशिकसे ग्रहण किया है, इस विषयमें मीमांसा करनेके लिये हमने ऋग्वेद-संहितासे कुछ मन्त्र उद्धृत किया।

ऋक्‌संहिताके (१०।८५।१३) मन्त्रमें अर्जुनी (दो फल्गुनीनक्षत्र) और अघा (मघा) नक्षत्रका तथा उसके प्रसंगमें चन्द्र और सूर्यको ऋत्वात्मकगतिका उल्लेख है। अन्यत्र बारह परिधि, एक चक्र और तीन नाभि तथा यह चक्र तीन सौ साठ संख्यक चलाचल अरविशिष्ट (ऋक् १।१६४।४८) देख कर वह मास, वर्ष, ग्रीष्म, वर्षा और हेमन्त नामक प्रधान तीन ऋतु तथा ३६० दिन समझा जाता है। यास्कने उसे अयन कह कर प्रतिपन्न किया है। (निरुक्त ७।२४) ऋग्वेदमें देवयान (ऋक् १।७२।७) और पितृयाण (ऋक् १०।२।७) शब्दका प्रयोग देखा जाता है। इस देवयान और पितृयाणसे देवलोक या पितृलोकगमनके पथकमें ही समझा जाता है। बृहदारण्यकमें (६।२।१५) और छान्दोग्यउपनिषद्‌में (४।१५।५) देवलोक शब्दका अर्थ इस प्रकार लिखा है,—जो छः मास सूर्य उत्तरमें प्रकाश देते हैं वही दिन, मर्त्यलोकके देवलोकमें जानेका वही प्रशस्त समय है, सूर्य जो छः मास दक्षिणमें रहते हैं वह धूममय रात्रि है। सुतरां वह देवताके विपरीत है। वाजसनेय संहितामें (१९।४७) अग्निने मर्त्यलोकके दो पथ निर्देश किए हैं। ऋक् १०।१८।१ मंत्रमें पितृयाण अर्थात् यमराजका पथ देवयानके विपरीत तथा ऋक् १०।८८।११ मंत्रमें अग्निने ऋतु द्वारा देवयान समझा था। ऋक् (१।१२३।७) और (१।१६४।४७ ४८) कृष्णवर्ण या गाढ़ अन्धकारमय और शुक्ल या ज्योतिर्मय दिनका तथा ऋक् ६।६।१ मन्त्रमें सूर्यका दक्षिणापथावर्त्तनमें कृष्णवर्ण दिन या रात्रिका विशेषत्व उल्लिखित होनेसे वह स्पष्टतः साधारण दिवा और रात्रिसे पृथक् समझा जाता है। यह छः महीने देवताओंकी रात्रि है। जिस प्रकार रातमें कोई यज्ञ अनुष्ठित नहीं होता, उसी प्रकार देवताओंका रातमें भी उनके उद्देश्यसे कोई यज्ञ उत्सृष्ट करना उचित नहीं। (ऋक् ६।५८।१) अतएव यह छः मासव्यापी देवयान या पितृयाण जो उत्तरायण और दक्षिणायनके

समान वर्षका षण्मास-विभाग मात्र है, इसमें कोई सन्देह नहीं। उत्तरायण ही देवलोकमें गमनका प्रशस्त समय है यह महाभारतमें महात्मा भीष्मदेवके मृत्यु प्रसङ्गमें व्यक्त हुआ है। ऋग्वेदके १।९५।८ मन्त्रमें बारह मासविभाग और १।२४।८ मन्त्रमें वरुण द्वारा सूर्यका भविपथ निर्माणका उल्लेख तथा १।८२।४, ११ १२ मन्त्रमें सत्यात्मक आदित्यका द्वादश अरविशिष्ट चक्र सूर्यके चारों ओर बार बार भ्रमण करता है और कदाचित् जराग्रस्त नहीं होता। हे अग्नि! इस चक्रमें पुत्ररूप सात सौ बीस मिथुन वास करते हैं। पञ्चपाद और द्वादश आकृतिविशिष्ट आदित्य जब द्युलोकके उत्तर अर्द्धमें रहते हैं, तब कोई कोई उन्हें पुरीषी कहते हैं और जब वे दूसरे अर्द्धमें अवस्थित रहते हैं, तब कोई कोई उन अरविशिष्ट सप्तचक्रयुक्त (रथमें) योजमान् या आदित्यको अर्पित बतलाते हैं।

उपरोक्त विषय तथा ऋग्वेदके १।४१।४ १।११०।२, ५।४५।७ ८ १०।८५।१ राशिचक्र, अयनवृत्त, विषुववृत्त, क्रान्तिपात तथा विषुवरेखा या विषुव दो संक्रान्तिकी आलोचना करनेसे कौन नहीं कहेगा, कि ऋग्वेदीययुगके आर्यऋषि द्वादश राशिसे जानकार थे, किन्तु वे मेषादि नाम कल्पना न कर शायद नक्षत्रादिका सूक्ष्मतम विभाग ले कर सूर्यके राशिस क्रमणकी गणना करते थे।

ब्राह्मण और उपनिषद्युगमें इस प्रकार नक्षत्र देख कर राशिसंक्रमणकी व्यवस्था चली थी। इसलिये मुक्त कण्ठसे कहा जा सकता है, कि ऋग्वेदके पहलेसे ही ऋषि लोग राशिसंक्रमण तथा उत्तरायण और दक्षिणायनके बारेमें सम्यक् रूपसे जानकार थे।

वर्त्तमान समयमें गणना द्वारा स्थिर हुआ है, कि ऋग्वेदीय युगके मृगशिरा नक्षत्रका आविष्कारकाल ४००० २५०० ख्०पू० तथा १००० ३००० ख्०पू० है। अतः बोध होता है, कि आर्यऋषि लोग इसी समय कभी राशिचक्रतत्त्व जनसाधारणमें प्रगट कर गये हैं।

ऋग्वेद देखो।

संहिता और ब्राह्मण-युग अतिक्रमण कर हम लोग काव्य और सूत्रयुगमें आ कर उपस्थित हों। महर्षि वाल्मीकिके रचे रामायणके बालकाण्डके अठारह अध्यायमें श्रीरामचन्द्रके जन्मतिथि प्रसङ्गमें लिखा है, 'उनके जन्म कालमें रवि मेषराशिमें, मङ्गल मकरराशिमें, शनि तुला राशिमें तथा शुक्र मीनराशिमें थे।' इससे जाना जाता है, कि रामायण प्रणयनकालमें ज्योतिषिक या और मेषादि राशि उनके ऋषि लोग अच्छी तरह जानते थे।

रामायण देखो।

बौधायनकल्पसूत्रमें मीन, मेष, वृष आदि राशिका उल्लेख है। सायणाचार्यने अपने माधवीयमें लिखा है,— "अथातः ऋतूनामेव मीमांसा। वसन्ते ब्राह्मणोऽग्नीनादधीत ग्रीष्मे राजन्यः शरदि वैश्यो वर्षासु रथकार इति। आपस्तम्बस्तु हेमन्ते वा शरदि वैश्यस्य शिशिरः सार्व वर्णिक इत्याह।" (५।१।१९ २०) अथो खलु यदैवैनं श्रद्धोपनमेदथादधीत सैवास्यर्द्धिरिति। अत्र वसन्तादय सौरचान्द्रनाक्षत्रभेदेन त्रिधा भवन्ति। मेषवृषभौ सौरौ वसन्तः। मीनमेषौ वा। मेषादि राशिद्वयभानुभोगात् षड् ऋतवः स्युः शिशिरो वसन्त इति वचनात्। अत्र यावत् आदित्यो मीनमेषयोस्तिष्ठति तावत्कालो वसन्तः। एवं वृषभादिद्वन्द्वेषु क्रमाद्ग्रीष्मवर्षाशरद्धेमन्तशिशिराः।"

भारतीय ज्योतिषियोंमेंसे हम पहले आर्यभटको ही द्वादश राशिका उल्लेख करते देखते हैं। वराहमिहिरने बौद्धज्योतिषी सत्य भद्रन्त और बादरायणका उल्लेख किया है। इसलिये ये दोनों ही उनके पूर्ववर्त्ती थे। ज्योतिर्विदाभरणमें इस सत्य और बादरायणको राजा विक्रमादित्यका समसामयिक बताया है। वराहमिहिर रचित बृहज्जातकटीकामें उत्पलने सत्यका वचन उद्धृत किया है। उसमें राशिका चिह्न इस प्रकार दिया है—

"मेषोऽजवृषभौ वृषाख्यरावर मिथुनमन्यनशि कुलीरः।
सिंहः गोधे कन्या नौस्तस्था दीनमन्तःवरः ॥ १
पुरुषस्तुलाधरा वृश्चिकोऽथ धन्वी नरो हयान्त्यार्द्धः।
मकरार्द्ध मृग पूर्व कुम्भी पुरुषश्च मीनमत्स्यौ॥" २

बादरायणने ब्रह्माके शरीरके साथ द्वादश राशिका इस प्रकार विभाग किया है—

"मेषः शिरोऽथ वदनं वृषभो विषाणः
वक्षो भवेन्मिथुनं हृदयं कुलीरः।
सिंहस्तथोदरमथो युवतिः कटिश्च
वस्तिस्तुलाधरश्च मेहनमप्यथ स्यात् ॥

धन्वी चास्योरुयुग मकरो जानुद्वयं भवति ।

जङ्घाद्वितयं कुम्भः पादौ मत्स्यद्वयं चेति ॥" २

वादरायणके श्लोकमें मेष ब्रह्मका मुखस्वरूप वर्णित देख तथा मेषराशिमें वर्षारम्भ जान कर अध्यापक मोक्षमूलरने लेसनका पदानुसरण करते हुए वाविलन या ग्रीक्-सकाशमें भारतीय राशिचक्रशिक्षाके सम्बन्धमें जो सिद्धान्त किया, स्वर्गीय पं० वालगङ्गाधर तिलक उसे उल्लेख कर लिख गये हैं, कि तव चित्राको वरन् प्रजापतिका शिर मान सकते हैं। कारण तैत्तिरीयसंहितामें चित्रा-पूर्णिमामें वर्ष आरम्भ होनेका प्रमाण है। * उनका कहना है, कि प्राचीनकालमें इस तरह विभिन्न उपायसे पञ्जिकाकी गणना चलती थी। अध्यापक मोक्षमूलर जो मेष दिखा कर ग्रीकज्योतिर्विदोंका अनुकरण साव्यस्त करेंगे, वह किसी प्रकार समीचीन सा प्रतीत नहीं होता।

उसके वाद यवनेश्वर और गर्गको राशि तथा सपाद दो नक्षत्रमें उसका विभाग करते देखा जाता है।

(रघुनन्दन ज्योतिस्तत्त्व)

वराहमिहिरने स्वयं इस प्रकार राशिविभागका निर्देश किया।

"मत्स्यौ घटी नृमिथुनं सगद सवीणं

चापी नरोऽश्वजघनो मकरो मृगास्यः।

तौली ससस्यदहना प्लवगा च कन्या

शेषाः स्वनामसदृशाः स्वचराश्च सर्वे॥" ५

किन्तु उन्होंने वृहज्जातकका अन्य एक जगह राशिचक्रके सम्बन्धमें निम्नोक्त श्लोक लिखा है,—

"क्रियताबुरिजितुमकुलीरलेयपार्थेजुककौर्पाख्याः।

तौक्षिक आकोकेरो हृद्रोगश्चान्त्यभं चेत्थम्॥" ८

इस वचनमें द्वादश राशिका उल्लेख करने तथा इन सब शब्दोंके साथ ग्रीकराशियोंका शाब्दसम्बन्ध रहनेसे पाश्चात्य पण्डित लोग कहा करते हैं, कि भारतीय ज्योतिर्विदोंने राशिचक्रका विषय यवन अथवा वाविलोनियोंसे लिया है। किन्तु जब हम लोग जगत्का आदि ग्रन्थ ऋग्वेदसंहितामें द्वादश राशिका विभाग तथा रामायणमें और बौधायनकल्पसूत्रमें उनके मेषादि नाम पाते हैं, तब हमलोग किस तरह मान सकते हैं, कि वह हमारी मौलिक वस्तु नहीं है? तब एकमात्र स्वीकार किया जा सकता है, कि जब भारतके उत्तर पश्चिम प्रान्तमें यवन-प्रभाव विस्तृत था, नए यवनपददलित आर्यगण यावनिकभाषामें अभ्यस्त हुए थे, उस समय ज्योतिर्विद्याके नृपतिपरायण राजाओंके उत्साहसे तथा जनसाधारणके बोधगम्य करनेके उद्देशसे ज्योतिर्विद् पण्डितगण उस समयके प्रचलित प्राञ्जल यावनिक शब्द ज्योतिषिक परिभाषारूपमें संस्कृतशास्त्रमें ग्रन्थन कर राजभक्तिका परिचय दिया करेंगे।

१७७२ ई०को Philosophical Transactions नामक पत्रिकामें चतुष्कोणाकृति राशिचक्राङ्कित एक शिला लेखका उल्लेख है। वह दाक्षिणात्यके मदुरा राज्यान्तर्गत येर्द्रापट्टा नगरकी एक पगोडा छतके नीचे गड़ा हुआ था। उसके मिथुनके घरमें दोनों हाथमें ढालधारी पुंमूर्त्ति, कन्याके घर बैठी हुई नंगी रमणीमूर्त्ति, मकरस्थानमें एक मेष और मत्स्यमूर्त्ति, ये दोनों एक साथ अवस्थित हैं, सही पर वर्त्तमान राशिचक्रकी निर्दिष्टमूर्त्ति की तरह एकदेही नहीं है। वृश्चिक स्थानमें जो मूर्त्ति दी गई है उसे निर्णय करना कठिन और दुर्लभ है। कुम्भमें सिर्फ एक कलसी तथा मीनमें केवल एक मत्स्य चित्रित है। प्रत्नतत्त्वविदोंने इस प्रसिद्ध फलकको मकर राशिकी मेष और मत्स्यमूर्त्ति परस्पर स्वतन्त्र देख कर उसकी प्राचीनताका सिद्धान्त किया है।

सर विलियम जोन्सने Asiatic Researches नामक पत्रिकाके दूसरे भागमें ज्योतिर्विद् श्रीपतिवर्णित प्राचीन राशिचक्रका विवरण लिपिवद्ध किया है। उनके चित्रफलकमें मेष, वृष, कर्कट, सिंह और वृश्चिक राशि उसी जीवमूर्त्तिमें अंकित हैं। मिथुन गदाधारी पुंमूर्त्ति और वाणावादिनी स्त्रीमूर्त्ति, कन्या नौकारोही रमणीमूर्त्ति, उसके एक हाथमें प्रदीप और दूसरे हाथमें धान्यशीर्ष है। तुलामें तुलादण्डधारी एक मनुष्य है। वह उसके एक पात्रमें भार दे कर तौल ठीक करता है। धनु एक तीरन्दाजकी मूर्त्ति है। उसके दोनों पैर घोड़ेके खुरके समान हैं। मकरमें मृगमूर्त्ति है। कुम्भमें एक

---

* The Orion, p 204—5

व्यक्ति कंधे पर जलका घड़ा रख कर उसका जल गिराता हुआ जाता है। मीनराशिमें एक मत्स्यको पूछमें एक दूसरा मत्स्य है। धीपतिने राशिचक्रको बारह भागोंमें और प्रत्येक भागको ३० अंशोंमें बांटा है। पीछे उस चक्रका फिर २७ भाग कर चन्द्रका भेद स्थिर कर लिया है।

मिस्र, ग्रीक,-चाविलोनीय अथवा भारतीय आर्य ऋषियोंके ये विभिन्न प्रकारके राशिचक्रविभागकी चर्चा कोजना करनेसे स्पष्ट प्रतीयमान होता है, कि प्राचीन ज्योतिर्विद्गण अपने अपने अध्यवसायसे तथा परस्परमें स्वतन्त्रभावसे जिस जिस राशिगत नक्षत्रको जैसी आकृति भाविष्कृत करनेमें समर्थ हुए थे, वही वे अपने अपने ग्रन्थोंमें पृथक् पृथक् रूपसे लिपिबद्ध कर गये हैं। ग्रीक राशिचक्रके पहलेसे मेषराशि तथा भारतीय वत्सर गणना पहले मेषराशिसे आरम्भ देख उन्हें कभी भी ग्रीकका अनुकरण मान नहीं सकते। कारण प्राचीन वैदिक युगमें देशभेद और ऋतुभेदसे वत्सरगणनाका स्वतन्त्र नियम था, उसी पर लक्ष हुआ।

और जगत् शब्दमें विस्तृत विवरण देखो।

राशित्रय (सं० क्ली०) तीन राशिकी गुणात्मक अंकसंज्ञा विशेष। त्रैराशिक देखो।

राशिनामन् (सं० क्ली०) नामकरणके समय राशिके अनुसार जो नाम होता है उसे राशिनाम कहते हैं। यह राशिनाम शतपदचक्रानुसार होता है। राशिनाम द्वारा नक्षत्र तथा उसके किसी पादमें जन्म और किसी ग्रहको दशा जानी जाती है। कहते हैं, कि राशिनाम सबोंके आगे कहना उचित नहीं सबोंके राशिनाम और उपनाम रहते हैं। धर्म कर्मादि कार्यमें सिर्फ राशिनाम व्यवहृत होता है, साधारणतः उपनाम होसे दूसरा कार्य आदि होता है। शायद राशिनाम समझनेसे यदि मारणादि करे, इसलिये उसे छिपानेका नियम प्रचलित है। ज्योतिःशास्त्रके मतसे इस नामकरणकी प्रणाली इस प्रकार निर्दिष्ट हुई है।

सवा दो पाद नक्षत्रसे एक एक राशि होती है, एक एक नक्षत्र चार पदोंमें विभक्त है, नक्षत्रमान न्यूनाधिक ६० दण्डमें होता है। इसका चार भाग करनेसे १५ दण्ड में एक एक पाद होता है। नक्षत्रके इस पादके अनुसार राशिनामका आदि अक्षर होता है।

अ इ उ ए कृत्तिका, अर्थात् कृत्तिकानक्षत्रयुक्त मेष राशिमें तथा कृत्तिकानक्षत्रके किस पादमें जन्म हुआ है यह पहले ही स्थिर करना होता है। प्रथम पादमें जन्म होने पर अकारादि, द्वितीयपादमें इकारादि, तृतीयपादमें उकारादि तथा चतुर्थपादमें एकारादि नाम होगा। इस तरह अन्यान्य नक्षत्रके सम्बन्धमें जानना होगा।

ओ व वी रोहिणी। वे वो क की मृगशिरा। कु घ ङ छ आर्द्रा। के को ह हि पुनर्वसु। हु हे हो ड पुष्या। डि डु डे डो अश्लेषा। म मि मु मे मघा। मो ट टि टु पूर्वफल्गुनी। टे टो प पि उत्तरफल्गुनी। पु ष ण ठ हस्ता। पे पो र रि चित्रा। रु रे रो त स्वाती। ति तु ते तो विशाखा। न नि नु ने अनुराधा। नो य यि यु ज्येष्ठा। ये यो भ भि मूला। भू ध फ ढ पूर्वाषाढ़ा। भे भो ज जि उत्तराषाढ़ा। जु जे जो ख अभिजित्। खि खु खे खो श्रवणा। ग गि गु गे धनिष्ठा। गो स सि सु शत भिषा। से सो द दि पूर्वभाद्रपद। दु थ झ ञ उत्तर भाद्रपद। दे दो च चि रेवती। चु चे चो ल अश्विनी। लि लु ले लो भरणी।

इस प्रकार नक्षत्रके पदानुसार नाम होता है।

इसके अलावा निम्नोक्त प्रकारसे भी राशिनाम स्थिर किया जाता है। यथा—

अ ल ई मेष। उ व वृष। क छ मिथुन। ड ह कर्कट। म ट सिंह। प ठ कन्या। र त तुला। न य विछा। भ ध धनु। ख ज मकर। ग श कुम्भ। द च मीन।

यह स्थूल होता इस नामसे सिर्फ राशि जानी जाती है, नक्षत्रका बोध नहीं होता। किन्तु शतपद चक्रानुसार राशिनाम रखनेसे राशि, नक्षत्र तथा नक्षत्र का किस पादमें जन्म हुआ यह जाना जाता है।

राशिप (सं० पु०) किसी राशिका स्वामी या अधिपति देवता।

राशिव्यवहार (सं० पु०) राशीन्व्यवहारः। शस्यराशिपरिमाण-ज्ञापक अंक। जिस अंकसे शस्यराशिका परिमाण जाना जाता है उसीको राशिव्यवहार कहते हैं।

राशिभाग (सं० पु०) किसी राशिका भाग या अंश, अंशांश।

राशिभागानुवन्ध (सं० पु०) भग्नांशका संकलन या जोड़।

राशिभागापवाह (सं० पु०) भग्नांशका व्यकलन या बाकी निकालना।

राशिभोग (सं० पु०) १ किसी ग्रहका किसी राशिमें कुछ समय तक रहना। २ उतना समय जितना किसी ग्रहको किसी राशिमें रहनेमें लगता है।

विशेष विवरण राशि शब्दमें देखो।

राशिस्थ (सं० त्रि०) राशौ तिष्ठतीति स्था-क। राशिमें अवस्थित।

राशी (सं० स्त्री०) राशि देखो।

राशी (अ० वि०) रिशवत खानेवाला, घूसखोर।

राशीकरण (सं० क्लो०) स्तूपीकरण, जमा करना।

राशीकृत (सं० त्रि०) पुञ्जीकृत, इकट्ठा किया हुआ।

राष्ट (फा० पु०) फारसी संगीतमें १२ मुकामोंमेंसे एक।

राष्ट्र (सं० पु० क्लो०) राजते इति राज् (सर्व्वधातुभ्यः ष्ट्रन्। उण् ४।१५८) इति ष्ट्रन् व्रश्चेति षः। १ राजत्व। २ देश, मुल्क। ३ प्रजा। ४ वह बाधा जो सम्पूर्ण देशमें उपस्थित हो, ईति। ५ पुराणानुसार पुरुरवाके वंशज काशीके पुत्रका नाम। (भागवत ९।१७।४) ६ वह लोक समुदाय जो एक ही देशमें बसता हो या जो एक ही राज्य या शासनमें रहता हुआ एकताबद्ध हो, एक या सम भाषा-भाषी जनसमूह।

राष्ट्रक (सं० त्रि०) १ राष्ट्र-सम्बन्धी, राष्ट्रका। (पु०) २ राज्य। ३ देश।

राष्ट्रकर्षण (सं० क्लो०) राजा या शासकका प्रजा पर अत्याचार करना।

राष्ट्रकाम (सं० त्रि०) राजत्व पानेकी इच्छा करनेवाला, राज्याभिलाषी।

राष्ट्रकूट—स्वनामप्रसिद्ध दाक्षिणात्यका क्षत्रियराजवंश। वर्त्तमान समयमें इस वंशके राजपूत-राजगण राठोर [illegible] हैं। प्राचीन गुफाके लेख और शिला[illegible] होता है, कि भोज और रट्ठो या राष्ट्रक[illegible]में राज्य करता था। इन रट्ठो[illegible] समय विशेष प्राधान्य प्राप्त कर दाक्षिणात्यके उत्तर विभागमें महाप्रभावशाली सुविस्तृत महाराष्ट्र राज्य स्थापित किया था। वे अपनेको बड़े गौरवके साथ महारट्ठी कहते थे। उन्हींके वंशधर पीछे मराठा नामसे प्रसिद्ध हुए।

बादमें दक्षिण मराठ राज्यमें रट्ठो या रट्ट नामके और भी दो एक सामन्तराजका उल्लेख मिलता है। इस रट्ठो जातिके कुछ वंश एकश्रेणीबद्ध हो कर सम्भवतः तदर्थपरिचायक 'कूट' शब्दके अपभ्रंशमें रट्टकूड नामसे प्रसिद्ध हुए। बादमें यह देशी भाषामें 'राठोर' और संस्कृतमें राष्ट्रकूट नामसे अभिहित हुआ। अथवा प्राचीन रट्टजातिकी किसी एक शाखाने दाक्षिणात्य भूभागमें फैल कर कालान्तरमें राष्ट्रकूट नामसे प्रसिद्धि पाई होगी, कारण अन्ध्रभृत्य और शक-क्षत्रपोंका प्रभाव ह्रास होने पर ये रट्टवंशीय सरदारगण आभीरजातिके स्वाधीनता स्थापनमें समर्थ हुए थे। जेवुर और मिरजके शिलालेखसे मालूम होता है, कि चालुक्यवंशके प्रतिष्ठाता जयसिंहने राष्ट्रकूटवंशी राजा नरसिंहके पुत्र इन्द्रको पराजित करके दाक्षिणात्यमें आधिपत्य विस्तार किया था। इस चालुक्यवंशने ईसाकी छठी शताब्दीके प्रारम्भमें प्राधान्य प्राप्त किया था, इसलिए ईसाकी तीसरी शताब्दीके अन्तसे ले कर छठी शताब्दीके प्रारम्भ तक राष्ट्रकूटवंशका प्रभावकाल ऐसा अनुमान किया जाता है।

वर्त्तमानमें आविष्कृत शिलालेखों और ताम्रलेखोंकी आलोचना द्वारा इस राष्ट्रकूटवंशका जो इतिहास संकलित हुआ है, उसे देखनेसे साफ मालूम होता है, कि बहुत प्राचीन समयसे इस राजवंशने दक्षिण-भारतमें प्रतिष्ठा पाई थी। खरे-पाटन, आंगली, नवसारी और वर्धाके शिलालेखसे मालूम होता है, कि राष्ट्रकूटगण यदुवंशी और यदुकुलोत्तम सात्यकीके मूलवंशज हैं। इस वंशमें रट्ट नामके एक राजा हुए थे। उनके पुत्र राष्ट्रकूटसे ही इस वंशका नाम राष्ट्रकूट पड़ा है। शिलालेखके कहे हुए पौराणिक नाम बिलकुल काल्पनिक मालूम होते हैं। इससे तो इतिहासप्रसिद्ध महाराष्ट्र-राज्यकी प्रतिष्ठा करनेवाली रट्ट नामक विशाल क्षत्रिय जातिके लिए राष्ट्रकूट नाम ग्रहण ही अधिक सम्भवपर मालूम

होता है। कारण मौर्यराज अशोकके समयमें भी महा राष्ट्रराज्यमें इस वंशकी प्रतिपत्ति थी। राष्ट्रकूटगण यथार्थमें इस देशके राजा थे। वे कभी कभी सात वाहन और चालुक्यवंशीय नरपतियों द्वारा विपर्यस्त हो कर उनकी वश्यता स्वीकार करनेको वाध्य हुए थे, किन्तु बिलकुल शक्तिहीन नहीं हुए थे।

शिलालेखमें ऐतिहासिक घटनासे सम्बन्ध रखने- वाले जो राष्ट्रकूट राजाओंके नाम मिलते हैं, उनमें १म गोविन्द ही सर्वश्रेष्ठ थे। इलोराके दशावतार गुहा मन्दिरके शिलालेखसे मालूम होता है, कि उनके पिताका नाम इन्द्रराज और पितामहका नाम दन्तिवर्मा था। रविकीर्त्ति ऐहोलके शिलालेखमें लिखा है, कि राजा १म गोविन्दने चालुक्यराज २य पुलकेशीके राज्य पर चढ़ाई की थी और पीछे उनके साथ मित्रता हो गई थी। उनके पुत्र कर्कने ब्राह्मणोंके द्वारा अनेक वैदिक यज्ञोंका अनु- ष्ठान किया था। उनकी मृत्युके बाद उनके पुत्र २य इन्द्र राज सिंहासन पर बैठे।

इन्द्रराजने चालुक्यराजकी कन्यासे विवाह किया था और इस तरह दोनोंमें सद्भाव स्थापन हुआ था। उनके पुत्र विजयी दन्तिदुर्गने मुट्ठी भर सेना ले कर काञ्ची, केरल, चोल, पाण्ड्य तथा श्रीहर्ष और आर्यावर्त्तके अधिपति श्रीहर्ष आदिको पराजित करनेवाले कर्णाटक सेना- दलको पराजित किया था। कर्णाटक सेनाके पराभवसे चालुक्यवंशके शेष स्वाधीन राजा २य कीर्त्ति वर्मा (वल्लभ)-का गर्व चूर करके राजा दन्तिदुर्गने समग्र दक्षिण-भारतमें एकाधिपत्य स्थापन किया था। उन्होंने उज्जयिनी नगरमें बहुत-सा सुवर्ण और अयाहरात दान किया था। कोल्हापुर जिलेके सामनगढ़ नगरमें प्राप्त उनके एक शिलालेखमें उनका राज्यकाल ६७५ शकाब्द लिखा हुआ है।

राजा दन्तिदुर्गके अपुत्रक अवस्थामें मृत्यु होने पर उनके चचा कृष्णराज राजा हुए। बड़ोदामें प्राप्त एक ताम्रलेखमें उल्लेख है, कि कृष्णराजने अपने वंशके किसी राजाका उच्छेद किया था इससे बहुतोंका अनुमान है कि सम्भवतः अपने भतीजे दन्तिदुर्गको मार कर ही वे सिंहासन पर बैठे थे। परन्तु कावी और नवसारीके लेखमें दन्तिदुर्गको मृत्युके बाद सिर्फ कृष्णराजके सिंहा सन प्राप्तिकी बात लिखी है। वंशधीरपदाद क महाप्रभाव शाली महाराज दन्तिदुर्गका राज्यच्युत किया जाना या मारा जाना ठीक नहीं मालूम होता। जहाँ तक सम्भव है, यह हो सकता है कि दन्तिदुर्गके पुत्र अथवा उस वंशके दूसरे किसी उत्तराधिकारीको हटा कर कृष्णराजने सिंहासन अधिकार किया होगा। बड़ोदाके लेखमें दन्तिदुर्गको जो अपुत्रक लिखा गया है वह विश्वास- योग्य नहीं। कारण वह लेख दो सौ वर्ष पीछेका खुदा हुआ है।

कृष्णराजने शुभतुङ्ग और अकालवर्ष उपाधिसे विभू षित हो कर दन्तिदुर्गके पदानुसरण पर राज्य शासन किया था। उन्होंने चालुक्योंको सम्पूर्णरूपसे पदच्यु त करके तथा राहप्प नामक एक प्रबल पराक्रान्त नर पतिको पराजित कर राष्ट्रकूटोंके गौरवको बढ़ाया था। ये राहप्प किस देशके राजा थे कुछ मालूम नहीं हो सकता। राजा कृष्णराजने अनेक अर्थव्यय करके एलापुर (इलोरा)-में पर्वत कटा कर कैलास पर्वत और उस पर शिव-मन्दिर निर्माण कराया था। इन्होंने ६७५से ६९५ शकाब्द तक राज्य किया था।

तदनन्तर उनके पुत्र २य गोविन्दराज सिंहासन पर बैठे थे। राजा गोविन्द ऐश्वर्यमदमें मत्त हो कर विशेष रूपसे इन्द्रिय सुखमें मग्न हो गये और उस समय उनके छोटे भाई ध्रुव निरुपम राजकार्यकी देखभाल करते रहे। इन्होंने बादमें कौशलसे भाईसे राज्य छीन लिया। राजा गोविन्दने बादमें पार्श्ववर्ती सामन्त राजाओंकी सहायतासे ध्रुवके विरुद्ध अस्त्रधारण किया परन्तु युद्धमें वे परा जित हो गये। इसके बाद ध्रुव निरुपमने ही राष्ट्रकूट सिंहासन पर बैठ कर राज्य किया था।

जिनसेन-द्वारा ७०५ शकमें विरचित 'जैन-हरिवंश' के अन्तमें लिखा है, दाक्षिणात्य भूभागमें कृष्णपुत्र श्री वल्लभ नामक एक राजा राज्य करते थे। कावीर और पैठनमें प्राप्त प्रशस्तिसे मालूम होता है कि राजा कृष्णके पुत्र २य गोविन्दका अपर नाम वल्लभ और ध्रुवका अपर नाम कलिवल्लभ था। इसलिए उक्त ग्रन्थ-रचयिता}

२य गोविन्दको सिंहासन पर बैठा मान लेनेमें कोई आपत्ति नहीं।

राजा ध्रुव एक विख्यात योद्धा थे। निरुपम, कलि-वल्लभ और धारावर्ष ये उनके विरुद थे। इन्होंने काञ्ची-के पल्लवराजको पराजित करके करस्वरूप उनसे अनेक हाथ लिये थे। उसके बाद उन्होंने चेरराज्यके गंग-वंशीय राजाको युद्धमें पराजित करके शृंखलावद्ध किया था। फिर वे अपनी सेनाके साथ उत्तरकी ओर जा कर गौड़विजयी वत्सराजोंकी राजधानी कौशाम्बी पुरी पर अधिकार करके कोशलराज्यके अधीश्वर हुए। राजा ध्रुव निरुपमने अमितविक्रमसे राज्य शासन और वर्द्धन किया था, किन्तु वे अधिक समय तक राज्य न कर सके थे; कारण शिलालेखोंसे पता लगता है कि शक सं० ७०५ में उनके भाई वल्लभ सिंहासन पर अधिष्ठित थे और उनके पुत्र ३य गोविन्द ७१६ शकमें पितृसिंहासन पर अधिष्ठित हो कर पैठान-प्रशस्ति दे रहे हैं।

युवराज ३य गोविन्दके बलवीर्य और साहसका परिचय पा कर राजा ध्रुव निरुपम पुत्रको शासन-भार अर्पण कर स्वयं वानप्रस्थ अवलम्बन करना चाहते थे, किन्तु पिताके रहते हुए राजसिंहासन पर बैठना धृष्टता समझ कर उन्होंने पितासे निवेदन किया कि 'युवराजके पदसे ही मैं यथेष्ट सम्मानित हूं।'

पिताकी मृत्युके बाद गोविन्द जगत्तुंग (१म) नाम ग्रहण करके वे सिंहासन पर बैठे। उनकी अधीनतामें राष्ट्रकूटकी सेना अद्वितीय रणशिक्षा पा कर रणदुर्मद हो गई थी। सिंहासनाधिकारके बाद बारह सामन्त-राज विद्रोही हो कर एक साथ उनके विरुद्ध उठ खड़े हुए। उन्होंने अकेले ही उन विरुद्धाचारियोंको युद्धमें परास्त करके अशेष वीरताका परिचय दिया था। उन्होंने वन्दीभूत गंगवंशीय चेरराजको मुक्त किया था, परन्तु उक्त राजाने अपने देशमें पहुंचते ही उनके विरुद्ध अस्त्र धारण किया था। राजा ३य गोविन्दने पुनः उन्हें युद्ध-में परास्त और वन्दी करके अपने राज्यमें ला कर उन्हें कैद रखा।

इसके बाद गुर्जर और मालवके राजाको पदानत करके वे विन्ध्यपर्वतकी तरफ सेना सहित बढ़े। वहांके राजा माराशर्वको परास्त करके उनसे यथेष्ट उपढौकन लिया। इस समय वर्षाऋतु आ जानेसे कुछ समय तक वे श्रीभवन नामक स्थानमें ठहरे रहे। उसके बाद तुङ्गभद्रा नदीके किनारे पहुंच कर पल्लववंशीय काञ्ची-पति दन्तिदुर्ग तथा पूर्व चालुक्यवंशी वेङ्गीराजको युद्धमें परास्त करके उन्हें अधीनता शृंखलमें आबद्ध किया था। तुङ्गभद्राके तट पर शिविर लगाते समय उन्होंने पवित्र रामेश्वरतीर्थवासी शिवधारी नामक एक व्यक्तिको कुछ भूमि दान की थी।

राजा गोविन्द ३यने अपने भुजबलसे उत्तरमें मालवमें ले कर दक्षिणमें काञ्चीपुर तक विस्तृत भूखण्ड एकच्छत्रा-धीन कर लिया था। उन्होंने मही और तापीका मध्यवर्ती लाट प्रदेश अपने भाई इन्द्रको दे दिया था। तबसे उस प्रदेशमें राष्ट्रकूटवंशकी दूसरी एक शाखा राज्य कर रही है। राजा गोविन्द प्रभूतवर्ष, पृथ्वीवल्लभ, श्रीवल्लभ और जगत्तुङ्ग उपाधिसे विभूषित थे। उन्होंने मयूरखण्डी (वर्त्तमान मोरखण्ड) नगरमें राजधानी स्थापन की थी या नहीं, नहीं कह सकते। परन्तु शक सं० ७३० के वनिदिण्डोरी और राधनपुरके शिलालेखमें लिखा है कि वे उस समय मयूरखण्डीमें विद्यमान थे।

राजा गोविन्दकी मृत्युके बाद उनके पुत्र अमोघवर्ष राजा हुए। उनका यथार्थ नाम शर्व था। वीरनारायण, राजराज, नृपतुङ्ग और वल्लभ आदि उनकी कई उपाधियां थीं। मान्यखेट नगरमें उनकी राजधानी थी। उन्होंने वेङ्गीके चालुक्यराजोंको युद्धमें परास्त करके उन्हें यमपुरी भेज दिया। कोङ्कणके शिलाहारवंशी सामन्तराज पुल्लशक्ति और उनके पुत्र कपर्दिके ७७५ और ७९९ शक संवत्‌के शिलालेखसे मालूम होता है कि वे राष्ट्रकूटपति अमोघवर्षके अधीन सामन्तरूपसे उक्त प्रदेशका शासन करते थे।

धारवाड़ जिलेसे मिले हुए शिलालेखमें ७८८ शक उनके राजत्वका ५२वां वर्ष लिखा गया है, अतएव हम शिलाहार-लेखके ७९९ शकको उनके राजत्वका ६३वां वर्ष समझ सकते हैं, इस हिसाबसे उनका राज्यारम्भ-काल ७३७ शक होगा।

राजा अमोघवर्ष दिगम्बर जैनधर्मके पृष्ठपोषक थे।

वे प्रसिद्ध जैनाचार्य जिनसेनके भक्त थे। महात्मा जिनसेनने अपने 'पार्श्वाभ्युदय' नामक काव्य ग्रन्थमें राजाके लिए सुदीर्घ राजत्वशासनका आशीर्वाद दिया है। जिनसेनके शिष्य गुणभद्राचार्यकृत उत्तरपुराणमें तथा महावीराचार्यकृत सारसंग्रह नामक जैनगणित-ग्रन्थमें अमोघवर्षकी शक्ति और धर्मप्राणताका उल्लेख है। 'जयधवल' नामक जैन-ग्रन्थमें लिखा है,—७५९ शक-संवत् बीत जाने पर राजा अमोघवर्षके राज्यमें उक्त ग्रन्थ समाप्त हुआ। इन सब आनुषङ्गिक प्रमाणों द्वारा सिद्ध होता है, कि अमोघवर्ष नृपतुङ्ग जैन-धर्मावलम्बी थे। वे स्याद्वाद सिद्धान्तका पोषण कर गये हैं।

उन्होंने प्रश्नोत्तर रत्नमाला नामक एक संस्कृत काव्य रचा था। दिगम्बर सम्प्रदायके रत्नमालिका ग्रन्थमें उसका कर्त्ता अमोघवर्ष बतलाया गया है। राजाके मनमें वैराग्योदय होनेसे वे राजसिंहासन अपने पुत्रको अर्पण कर स्वयं स सांसारिकसे निवृत्त हो गये थे।

अमोघवर्षके बाद उनके पुत्र अकालवर्ष पितृसिंहासन पर अधिष्ठित हुए। उनका यथार्थ नाम कृष्ण (२य) और उपाधि वल्लभ थी। उन्होंने हैहयवंशी चेदिराज कोक्कलकी राजकन्यासे विवाह किया था। उक्त कन्याके गर्भसे जगत्तु ग नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। पृथ्वीराज नामक एक सामन्तराज द्वारा ७९७ शकमें जैन मन्दिरकी प्रतिष्ठाके उपलक्षमें उत्कीर्ण शिलालेखके पढ़नेसे ज्ञात होता है, कि उस समय कृष्णराज सिंहासन पर अधिष्ठित थे, इसलिए ७९९ शकमें अमोघवर्षके जीवित रहने पर भी उनके द्वारा वैराग्य वश राज-सिंहासनका त्याग देना असम्भव नहीं मालूम होता, क्योंकि जैनधर्मावलम्बी राजाओंमें प्रायः यह बात पाई जाती है कि वे वृद्धावस्थामें राज-पाट त्याग कर धार्मिक जीवन बिताते थे। उनकी अनुपस्थितिमें सम्भवतः कृष्णराजने उक्त दो वर्ष तक पिताके प्रतिनिधि रूपमें राज्य चलाया था। ८२४ शकमें बिकार्य वैश्यने जैनमन्दिर प्रतिष्ठा की थी, उस मन्दिरके मूलगुण्डके शिलालेखसे मालूम होता है, कि राजा कृष्णवल्लभ अमितविक्रमशाली थे, उनके भयसे गुर्जरगण सशङ्क थे, लाट प्रदेशके रहनेवाले पदानत थे, गौड़गण यशोभूत थे, समुद्रोपकूलवासी शान्तिप्रद थे, और अङ्ग, कलिङ्ग, गङ्ग एवं मगधदेशाधिपतिगण उनकी अधीनता स्वीकार करनेको बाध्य हुए थे। उनके राज्य कालमें (पिङ्गल संवत्सरके ८२० शकमें) गुणभद्राचार्यके शिष्य लोकसेन द्वारा जैनआदिपुराण या महापुराणकी शेषार्द्ध रचना समाप्त हुई थी।

अकालवर्षके पुत्र जगत्तुङ्गने अपने मामाकी कन्या लक्ष्मीदेवीके साथ विवाह किया था। उनकी राज्याधिकारसे पहले ही मृत्यु होनेके कारण उनके पुत्र इन्द्र (३य) पितामहके सिंहासन पर बैठे। राज्याधिकारके बाद इन्होंने नित्यवर्ष उपाधि धारण की थी। मान्यखेट नगरमें इनकी राजधानी थी। अपने राज्याभिषेकके उपलक्षमें इन्होंने तासोके किनारे कुरुन्दक नगरमें (वर्त्तमान कुरुन्दमें) जा कर 'पट्टबन्धोत्सव' सम्पन्न किया था। इस समय इन्होंने तुलापुरुषदान, २० लाख द्रम्म मुद्रा वितरण और बहुत ग्राम दान किये थे। अभिषेकके समय ग्रामदानके प्रसङ्गमें इन्होंने जो शासन-लिपियाँ प्रचारित की थीं, वे ८३६ शकमें खुदवाई गई थी। इसलिए यही उनके अभिषेकका समय है, ऐसा अनुमान किया जाता है। नवसारी शिलालेख देखने और गुजरात प्रान्तादिके शासनसे अनुमान होता है, कि राजा अकालवर्षके समयमें संभवतः लाटराज अर्थात् राष्ट्रकूटवंशकी अन्यतम शाखा मान्यखेट राजवंशके अधीन हो गई थी।

इन्द्रराज (३य)ने हैहय श्री चेदिराज अर्जुनके पुत्र अनङ्गदेवकी कन्या अम्मा (विजाम्बा)के साथ विवाह किया था। अम्माके गर्भसे गोविन्द (४र्थ) नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। करहाड़की प्रशस्तिसे मालूम होता है कि राजकुमार गोविन्द अमोघवर्षके कनिष्ठ सहोदर थे। अधिकन्तु यही सम्भव है, कि युवराज २य अमोघवर्ष ही पहले पितृसिंहासन पर बैठे थे। गोविन्दने किसी उपायसे ज्येष्ठभ्राता अमोघवर्षको मार कर स्वयं पितृसिंहासन हस्तगत किया था। २य अमोघवर्षने केवल एक मासमात्र राज्य किया था।

राजा ४र्थ गोविन्द प्रभूतवर्ष नाम ग्रहण करके ८४१ शकमें सिंहासन पर बैठे। उनकी सुवर्णवर्ष और साहसाङ्क उपाधि थी। उन्होंने वेङ्गीके चालुक्य राजाओं-

को वार वार युद्धमें पराजित किया था। ८५५ शकमें उन्होंने मान्यखेटके राजसिंहासन पर बैठ कर राजकाय चलाया था।

राजा ४र्थ गोविन्दके बाद उनके चाचा वद्दिग (राजा जगत्तुङ्गके द्वितीय पुत्र) अमोघवर्ष ३य नाम धारण करके राजसिंहासन पर अधिष्ठित हुए थे। ये वयोवृद्ध, ज्ञानी और साधुतुल्य थे। सामन्तोंकी प्रार्थनासे उन्होंने राजभार ग्रहण किया था, किन्तु वे स्वयं परमार्थसेवा छोड़ कर विषयवृत्ति और भोगसुख-में लिप्त नहीं हुए थे। उनके पुत्र युवराज कृष्णने अपनी महती शक्ति द्वारा दन्तिग, वप्पुग और विद्रोही गङ्ग-राजोंको पदानत किया था। उत्तरमें हिमाचलसे ले कर दक्षिणमें सिंहल तक तथा पूर्व और पश्चिम समुद्र-बीचका समस्त भारतवर्ष उनके प्रभावसे कांप उठा था। गुर्जरराज उनके भयसे कालञ्जर और चित्रकूट दुर्गकी विजयवासनाको विसर्जित कर भाग गये थे। युवराज कृष्णने अपने राज्यमें एक आर्य उपनिवेश स्थापन किया था।

वृद्ध अमोघवर्ष (३य)ने अत्यल्पकाल मात्र राज्य-शासन किया था। उनके मरनेके बाद अमितविक्रम वीराग्रगण्य ३य कृष्णराजने अकालवर्ष नाम धारण करके राष्ट्रकूट-सिंहासन अलङ्कृत किया था। ८६२ शकमें उत्कीर्ण शिलालेखमें उनके लिए श्रीवल्लभ उपाधिका प्रयोग पाया जाता है। उनके राज्यकालमें उत्कीर्ण ८६७ शकाब्दके एक शिलालेखके देखनेसे अनुमान होता है, कि राजा ४ र्थ गोविन्दके राज्यकालमें ८५५ शकके शिलालेखसे बारह वर्ष बाद सम्भवतः कृष्णराजदेव मान्य-खेटके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए थे। अतएव उक्त दो वर्षके भीतर ३य अमोघवर्षका राज्यकाल और कृष्णराजका सिंहासनाधिकार संघटित हुआ था। शिलालेखके प्रमाणसे ८७८ शक तक उनका राज्य-काल पाया जाता है, परन्तु जैनाचार्य सोमदेवकृत 'यश-स्तिलकचम्पू' नामक जैन-काव्यग्रन्थके समाप्ति-वाक्यमें ८८१ शकमें ग्रन्थ समाप्तिके प्रसंगमें राजा कृष्णराज-देवके शासनकालका उल्लेख है। इस ग्रन्थमें लिखा है कि राजा कृष्णने अप्रतिहत प्रभावसे राज्यशासन करके पाण्ड्य, सिंहल, चोल, चेर और अन्यान्य नरपतियोंको अधीनतापाशमें बांध लिया था।

कृष्णराजदेवकी मृत्युके बाद उनके कनिष्ठ भ्राता खोट्टिगदेव (खटिक) सिंहासन पर बैठे। ये युवराज देवकी कन्या कन्दकदेवीके गर्भसे उत्पन्न हुए थे।

खोटिकके बाद उनके भ्राता निरुपमके पुत्र कक्कल राजा हुए। वे कर्क २य वा ४र्थ अमोघवर्षके नामसे परिचित थे। राजा कर्क अद्वितीय योद्धा होने पर भी चालुक्य-राज तैलपसे युद्धमें पराजित हुए थे और इन्हींके समयसे दाक्षिणात्यका राष्ट्रकूट साम्राज्य चालुक्यराजके हाथ चला गया। ८९६ शकके शिलालेखसे मालूम होता है कि उक्त शकसंवत्‌में महाराज कक्कल राष्ट्रकूट-सिंहासन पर अधिष्ठित थे। उस वर्ष अथवा उसके एक वर्ष पहले चालुक्यराज तैलपने राजदण्ड धारण किया था। इसलिये इसके कुछ समय बाद सम्भवतः चालुक्य राष्ट्र-कूट-युद्धमें राष्ट्रकूट-राजलक्ष्मी चालुक्यराजवंशकी गोदमें चली गई थी।

उत्तर-चालुक्यवंशी राजा तैलप वा आहवमल्लने अपने भुजबलसे हूण, गुर्जर और पाण्ड्य राजविजेता २य कर्कको युद्धमें पराजित करके गुजरातके अतिरिक्त समग्र राष्ट्रकूट साम्राज्य पर अधिकार कर लिया था। उन्होंने मान्यखेट राजकुमारी जाकलदेवीका पाणिग्रहण करके धीरे धीरे अधिवासियोंके अन्तःकरणमें चालुक्य प्रभाव फैलानेकी कोशिश की थी। उस समय युवराज इन्द्र रट्टकन्दर्प वा ४र्थ इन्द्रराज (३य कृष्णके पौत्र)ने पश्चिमगङ्गवंशीय सामन्तराज पेर्मानडि मारसिंहकी सहा-यतासे अपने पैतृक राष्ट्रकूट सिंहासनको पुनः प्राप्त करने की कोशिश की थी, किन्तु लगातार कई बार युद्धमें परास्त हो कर अन्तमें वे व्यर्थमनोरथ हो गये। इस राष्ट्रकूट-राजवंशने ७४८ ई०में राजा दन्तिदुर्गके राज्यकालसे ले कर राजा २य कर्कके राज्यकाल ९७३ ई० तक दोर्दण्ड प्रतापसे दाक्षिणात्य भूमि पर राज्यशासन किया था। शेषोक्त राजाको राज्यलक्ष्मी भ्रष्ट हो जाने पर राष्ट्रकूटों-की स्वाधीनता सदाके लिए लुप्त हो गई। गुजरातकी अन्यतम शाखा इससे पहले ही विच्छिन्न हो चुकी थी।

इस राजवंशके राजत्वकालमें जैन और बौद्धधर्मने

जैसी स्वाधीनता पाई थी, वैसे हिन्दूधर्म भी परिपुष्ट हुआ था। इलोराके पर्वतमें गुफा काट कर मठविहारादि निर्माण करा कर जैसे वे बौद्धधर्मका माहात्म्य कीर्त्तन कर गये हैं, उसी प्रकार पौराणिक देवदेवीकी मूर्त्ति और मन्दिर प्रतिष्ठा करा कर हिन्दुधर्मका गौरव बढ़ा गये हैं। वास्तवमें यदि देखा जाय, तो दिगम्बर जैन धर्मावलम्बी थे।

राष्ट्रकूटगण विद्योत्साही थे। वे प्रसिद्ध कवियों को आश्रय दे कर ग्रन्थादि रचनाके लिए उन्हें उत्साहित करते थे। उनके शिलालेख तत्कालीन कवित्वो त्कर्षके परिचायक हैं। *राजा अमोघवर्षकृत प्रश्नोत्तर* रत्नमालिका और गुणभद्र आदि जैनाचार्योंकी जैनपुराण और दर्शनादिकी रचना राष्ट्रकूट राजाओंकी पृष्ठपोषकता का चरम निदर्शन है। इन ग्रन्थोंमें सामयिक राष्ट्रकूट राजाओंकी महिमा गाई गई है। इसके सिवा कविश्रेष्ठ हलायुधने अपने कविरहस्यमें सोमवंश-भूषण राष्ट्रकूट कुलोद्भव दक्षिणापथाधिपति कृष्णराजका उल्लेख किया है। विद्योत्साही न होनेसे कवि कभी भी उनकी गुणा वलीकी प्रशंसा न करते। इसाकी १०वीं शताब्दीके अरब भ्रमणकारियोंने "बलहर" उपाधिधारी इन मान्यखेट राष्ट्रकूटवंशीय राजाओंका 'बल्हरा' शब्दसे उल्लेख किया है।

राष्ट्रकूट-राजवंश।

- दन्तिवर्मा
  - इन्द्र १म
    - गोविन्द १म
      - कर्क १म
        - इन्द्र २य
          - दन्तिदुर्ग
        - कृष्ण १म, अकालवर्ष वा शुभतुङ्ग
          - गोविन्द २य
          - ध्रुव निरुपम
            - गोविन्द ३य, प्रभूतवर्ष
              - शर्व नृपतुङ्ग, अमोघवर्ष १म
                - कृष्ण २य अकालवर्ष
            - इन्द्र
              - कर्क
              - गोविन्द
              - (गुजरात राजा)

- अकालवर्ष
  - जगत्तुङ्ग
    - इन्द्र ३य नित्यवर्ष
      - अमोघवर्ष २य
      - गोविन्द ४र्थ
    - वड्डिग वा अमोघवर्ष ३य
      - कृष्ण ३य (अकालवर्ष)
        - ●
          - इन्द्र ४थ रट्टकन्दर्प
      - खोट्टिग
      - निरुपम
        - कक्कल कर्क २य
        - (*शेष स्वाधीन राजा*)

शिलालेखोंका अनुसरण करनेसे हम गुजरात प्रदेशमें राष्ट्रकूटवंशकी दो विभिन्न शाखायें पाते हैं। प्रथम शाखाके प्रतिष्ठाता कर्कराज १म, उनके पुत्र ध्रुवराज और पौत्र गोविन्दराज हैं। गोविन्दने नागवर्माकी कन्याके साथ विवाह किया था। उनके औरसजात पुत्र २य कर्कराज ६५७ शकमें विद्यमान थे।

द्वितीय शाखाकी बात हम पहले ही कह चुके हैं। महाराज ध्रुव निरुपमके पुत्र गोविन्द ३यने ८०० ई०के लगभग लाट वा राज्य जीत कर मध्यगुजरात वा लाट प्रदेश अपने भाई इन्द्रको अर्पित किया था। इन्द्रके वंशने लगभग एक सौ वर्ष तक यहां राज्य किया था।

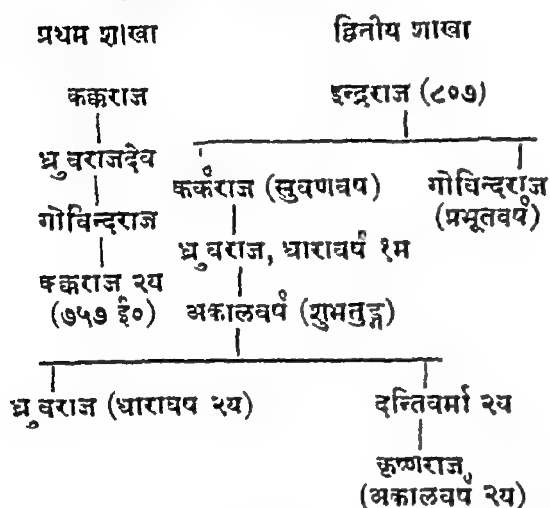
इन्द्रराजके पुत्र कर्कराज (सुवर्णवर्ष) बादमें राजा हुए। परन्तु उनके कनिष्ठ भ्राता गोविन्दराज प्रभूतवर्षने उन्हें राज्यच्युत करके सिंहासन अधिकार कर लिया। इसके बाद कर्कराजने मान्यखेटके राजा अपने ज्ञाति भ्राता अमोघवर्षकी सहायतासे अपने राज्यका पुनरुद्धार किया था। शालुक्किवंशी सामन्तराज बुद्धवर्ष गोविन्दराजके अधीन थे।

गोविन्दराजका राज्यकाल समाप्त होने पर कर्कराज के पुत्र ध्रुव निरुपम धारावर्ष (प्रथम) राजा हुए। इन्होंने वल्लभ नामक एक राजाको रणमें परास्त किया था, किन्तु रणक्षेत्रमें आघात-प्राप्त हो कर यहीं उनकी मृत्यु हो गई। उनकी मृत्युके बाद उनके पुत्र अकाल वर्ष शुभतुङ्ग ८५० ई०में सिंहासन पर बैठे।

अकालवर्षके पुत्र ध्रुवराज निरुपम धारावर्ष (२य)ने

पिताके सिंहासन पर बैठ कर अणहिलवाड़के चावड़ जातिके अधिपति वल्लभ और मिहिर नामक राजाको परास्त किया। उसी वर्ष संभवतः उनकी मृत्यु हो गई। कारण उक्त वर्षमें ही उनके नामसे उत्कीर्ण शिलालेख मिलता है। दन्तिवर्माके बाद उनके पुत्र कृष्णराज अकालवर्ष राजा हुए।

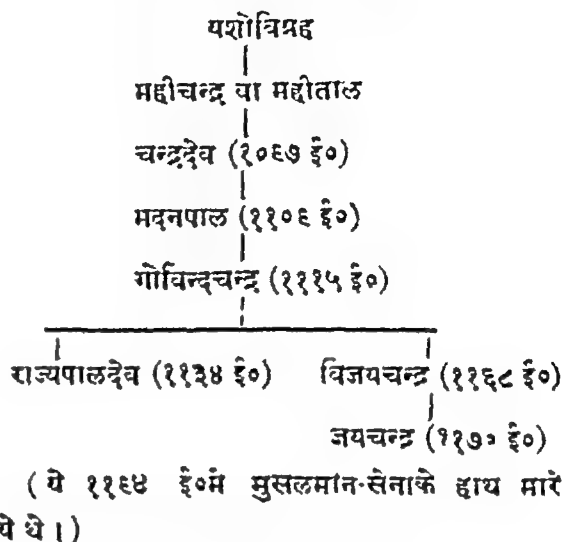
गुजरातका राष्ट्रकूट-राजवंश।



कालान्तरमें यह राष्ट्रकूटवंश सहाय-सम्पत्ति और बलवीर्य-हीन हो कर भारतके नाना स्थानोंमें विच्छिन्न हो गया। ये कहीं कहीं सामन्तराजके रूपमें रह रहे थे। दाक्षिणात्यके चालुक्यराजके हाथसे राष्ट्रकूट-राजाओंका प्रभाव नष्ट होने और साम्राज्य चले जानेके बाद यह राजवंश पुनरुत्थान करनेमें समर्थ नहीं हुआ।

कई शताब्दी बाद हम कन्नोज-राजसिंहासन पर गहरवाड़वंशी राठोर राजाओंको उपविष्ट देखते हैं। ११५४ संवत्‌में मदनपालदेवकी ताम्रलिपिमें लिखा है, कि कन्नोजके राठोरवंशके प्रतिष्ठाता गहरवाड़-कुलतिलक राजा चन्द्रदेव उनके पिता थे। पितामह महीचन्द्र और प्रपितामह यशोविग्रह थे। राजा चन्द्रदेवने (प्राचीन कुलपञ्जीमें चन्द्रकेतु कहे गये हैं) मालवराज भोज और चेदिपति कर्णकी मृत्यु-जनित राज्यविशृङ्खला दूर करनेके लिए सुशासनकी व्यवस्था की थी। इस वंशके शेष राजा जयचन्द्र मुसलमान आक्रमणकारी मुहम्मद गोरीके साथ समरमें परास्त और निहत हुए थे। आश्चर्यका विषय है, कि १२५३ संवत्‌में खुदे हुए कन्नोज-पति राजा लक्ष्मणदेवके शिलालेखका प्रचार मुसलमान-विजयके तीन वर्ष बाद होने पर भी उसमें राठोरवंशके पराभवका उल्लेख तक नहीं है।

कन्नोजका गहरवाड़ वा राठोरवंश।



(ये ११९४ ई०में मुसलमान-सेनाके हाथ मारे गये थे।)

राजपूतानेमें अब भी यह राठोरराजवंश राज्य कर रहा है। मारवाड़के प्रसिद्ध योद्धा और अधिवासिवृन्द तथा जोधपुर-राजवंश इसी राठोरवंशके हैं। किस समय, किस घटनास्रोतमें इन राठोरोंने राजपूतानेमें प्रतिष्ठा प्राप्त की, इस बातको जाननेका कोई उपाय नहीं है।

राठोरजातिका इतिहास घोर कुज्झटिकाजालमें आच्छन्न है। 'राठोरकुलतिलक'-के मतसे रामचन्द्रके पुत्र कुशके वंशधरगण ही इस वंशके आदिपुरुष हैं। गाथाकारोंके मतसे सूर्यवंशी काश्यपके किसी वंशधरके औरस और दैत्यकुमारीके गर्भसे राठोर जातिकी उत्पत्ति हुई है।

गाधीपुर (कन्नोज) इनकी आदि वासभूमि है। भट्टग्रन्थमें है कि ईसाकी ५वीं शताब्दीके प्रारम्भमें कन्नोजके सिंहासन पर बैठ कर राठोर राजगण राज्य करते थे। खेद है कि भाटकी यह बात इतिहास-संगत नहीं है।

जब सवक्तगीन प्रमुख तातारजातिने भारतके सीमान्तमें आ कर पेशावर प्रदेश हड़प लिया था, तब दिल्ली, अजमेर, कालंजर और कन्नोजके राठोर-वीर तातार सेनाके विरुद्ध लमघन रणक्षेत्रमें घोरतर युद्धमें लगे हुए थे हिन्दूनेता लाहोरपति जयपाल इस युद्धके प्रधान उद्योक्ता थे।

इस समय भारतीय विभिन्न राजाओंमें जैसा सद्भाव और प्रेम था, दो शताब्दी बाद उस कुशल अवस्थामें बहुत कुछ परिवर्त्तन हो गया था। तब समग्र पश्चिम भारत सर्वनाशकारी गृह-कलहसे अधोमूल हो गया था। भारतमें एकाधिपत्य और स्वाधीनता प्राप्त करनेके इच्छुक कन्नौजराज सहायतासे दिल्लीके तोमर और चौहान तथा अनहलवाड़के राजाओंके साथ घोर युद्धविग्रहमें लगे हुए थे। दिल्लीश्वर पृथ्वीराजके सर्वनाशके लिए समुद्यत हो कर उन्होंने महम्मद गोरी को आदरके साथ भारतमें बुलाया था, ११९१ ई०में तिरौरीके रणक्षेत्रमें पृथ्वीराजके अधःपतनके दूसरे ही वर्ष महम्मद गोरी द्वारा उनका अधःपतन हुआ। चन्दावरके युद्धमें मुसलमानों द्वारा पराजित हो कर जयचन्द्र गंगामें डूब कर मर गये। उससे गंगा-यमुनाके बीचमें स्थित राठोरराज्य विलुप्त हो गया।

राठोरराज जयचन्द्रके अधःपतनके बाद उनके पुत्र राज्यच्युत शिवाजीने (मतान्तरसे पौत्र वा भ्रातृष्पुत्र) द्वारकामें तीर्थस्नानकी अभिलाषासे मारवाड़के अन्तर्गत पाली नगरमें आ कर विश्राम किया उस समय एक दल डाकू आ कर वहां उपद्रव कर रहे थे। राजकुमार शिवाजीने वहांके अधिवासियों और साथियोंकी प्राण रक्षाके लिए अपनी राठोर सेनाकी सहायतासे उन्हें वहांसे भगा दिया। इससे वहांके ब्राह्मणोंने इनसे उनके प्रतिपालकरूपमें रहनेके लिए अनुरोध किया। ब्राह्मणोंकी प्रार्थनानुसार वे वहां रहने लगे। तभीसे मारवाड़में राठोर राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई।

राठोरोंने कन्नौजसे मारवाड़ आनेके बाद १ शताब्दीके भीतर ही लगभग ८० हजार वर्गमील स्थान अधिकार कर लिया था। अनेक युद्धविग्रह, दुर्भिक्ष और महामारी आदिसे राठोरवंश क्षयप्राप्त होने पर भी अकबरके समयमें राठोरजातिकी आनुमानिक संख्या लगभग ५ लाख थी। १८९१ ई०के आरम्भकी मर्दुमशुमारीमें समग्र राजपूतानेमें राठोरकी संख्या १७३१०६ लिपिबद्ध हुई है। मुगल बादशाहोंने प्रभूत शक्तिसम्पन्न राठोर वीरोंकी लाखों तलवारोंकी सहायतासे उनका आधा साम्राज्य जय किया था। इस विषयमें एक किम्बदन्ती है—"लाख तलवार राठोरान।" इसलिए, इसमें सन्देह नहीं रहता कि उस समय राठोरोंकी संख्या बहुत अधिक थी। यह राठोरकुल सब समेत २४ शाखाओंमें विभक्त है, जिनमें धान्धल, भादल, चाम्पावत आदि कई प्रसिद्ध हैं।

राजस्थानसे प्राप्त प्राचीन राज विवरणसे कान्यकुब्जके राठोर राजाओंकी जो वंश-तालिका मिलती है, वह संक्षेपमें यहां दी जाती है—

राजा नयनपालने सं० ५२६में कन्नौज जय करके कामध्वज उपाधि धारण कर राजपाट स्थापन किया था। उनके दो पुत्र हुए—पद्मरत्न और पुञ्ज, पुञ्जके धर्मबिम्ब, भानुद धीरभद्र, अमरविजय, सुजनविनोद, पद्महिहर, परस्य, वामशु, पुष्काराम, भारत, मदोकुल और चांद नामक तेरह पुत्रोंसे कामध्वज उपाधिधारी १३ महाशाखाओंकी उत्पत्ति हुई। क्रमशः यह वंश शाखा प्रशाखाओंमें विभक्त हो कर चारों तरफ फैल गया। कन्नौज पति धर्मबिम्बके वंशमें जयचन्द्रकी और उनके वंशधर शिवाजी द्वारा मारवाड़राजवंशकी प्रतिष्ठा हुई।

मारवाड़ और कान्यकुब्ज देखो।

मारवाड़वासी राठोरोंमें कि वदन्ती है—कि सत्ययुगमें मनसादेवी ही इस वंशकी कुलदेवी थी। त्रेतामें वे राष्ट्रसेना नामसे पूजी जाती थी। द्वापरमें पङ्खाणी और कलियुगमें नागनेची नामसे उनकी प्रसिद्धि है। इस प्रवादके आरम्भमें वे ब्रह्मा और मायाके प्रसंगमें जगत्की सृष्टि कल्पना करके मनसादेवीको सृष्टिशक्तिकी आधारभूता बतलाते हैं। राठोरजातिका पत्तन किया था, इसलिए उनका राष्ट्रसेना नाम पड़ा। राठोरगण बड़े उत्साहके साथ इनकी पूजा किया करते हैं।

राठोरपति शिवाजीके पौत्र दुहरने मारवाड़के सिंहासन पर बैठते ही अपने पूर्वपुरुषों द्वारा शासित कर्णाटक राज्यमें आ कर वहांसे राष्ट्रकूट राजकुलकी कुलदेवी राष्ट्र सेनाकी प्रतिमूर्त्ति ला कर अपने राज्यमें प्रतिष्ठित करनेका विचार किया। प्रतिमूर्त्तिके साथ गाड़ीमें बैठ कर जब वे मारवाड़के नागाणामें पहुंचे तब गाड़ीका पहिया जमीनमें ऐसा धुस गया कि उसका निकलना मुश्किल हो गया। राजाने तब देवीकी 'भार' समझ कर उसी गांवमें

यह उपाय जिसके द्वारा किसी शत्रु राजाके राज्यमें उपद्रव या विद्रोह खड़ा किया जाता है।

राष्ट्रवर्द्धन (सं॰ पु॰) १ राज्यकी वृद्धि। २ राजा दशरथ और रामचन्द्रके एक मन्त्रीका नाम।

राष्ट्रवासी (सं॰ पु॰) राष्ट्रे वसतीति वस-णिनि। १ राष्ट्रनिवासी, राष्ट्रमें रहनेवाला। २ परदेशी, विदेशी।

राष्ट्रविप्लव (सं॰ पु॰) राष्ट्रस्य विप्लवः। राज्यमें होने वाला विप्लव, विद्रोह, बलवा।

राष्ट्रान्तपाल (सं॰ पु॰) १ सीमान्तराज्य। २ करपाल।

राष्ट्रान्तपालक (सं॰ त्रि॰) राज्यकी सीमाकी रक्षाकी करनेवाला।

राष्ट्रि (सं॰ स्त्री॰) रानी, राज्ञी भार्या।

राष्ट्रिक (सं॰ त्रि॰) १ राष्ट्रसम्बन्धी, राष्ट्रका। (पु॰) २ राजा। ३ प्रजा। राष्ट्रकूट देखो।

राष्ट्रिका (सं॰ स्त्री॰) राष्ट्र अस्त्यस्यामस्येनास्त्य स्या, इति राष्ट्र-ठन्-टाप्। १ कण्टकारी, भटकटैया। राष्ट्रवासी। ३ राष्ट्रपति। (हरिव॰ १८८।२७)

राष्ट्रिन् (सं॰ त्रि॰) राज्याधिकारी, राज्यका शासन करने वाला।

राष्ट्रिय (सं॰ पु॰) राष्ट्रऽधिकृतः राष्ट्र (राष्ट्रावारपाराद् घखौ। पा ४।४।९१) इति घ, यद्वा राष्ट्रे जातः (तत्र जातः। ४।३।२५) इति घ। १ नाटकोक्तिमें राजश्याल, प्राचीन संस्कृत नाटकोंकी भाषामें राजाका साला। २ राष्ट्राध्यक्ष, राज्यका अधिकारी।

राष्ट्री (सं॰ स्त्री॰) १ रानी, राज्ञी। २ राजनीतिका। (वत्वप) (पु॰) ३ राज्यवत्। (ऋक् १।७।५ भाष्य)

राष्ट्रीय (सं॰ पु॰) राष्ट्रे भव इति राष्ट्र-छ। १ प्राचीन नाटकोंकी भाषामें राजाका साला। (त्रि॰) २ राष्ट्रसम्बन्धी, राष्ट्रका।

रास (सं॰ पु॰) रासनमिति रासतेऽनेति वा रास शब्दे भावे अधिकरणे वा घञ्। १ कोलाहल, शोरगुल, हल्ला। २ ध्वनि, गूंज। ३ भाषाशृङ्खलक। ४ गोपियों की एक क्रीड़ा। (मेदनी) ५ विलास।

'मन्मथविवश मन उन्मन्तोविमर्दि।

प्रहसन्ति रसकमनुपाठितम॥" (भाग॰ ८।५।१२)

'रासे मधुरभाषः रासविलासः।' (स्वामी)

६ क्रिया। (भाग॰ ५।१३।१७)

भगवान् कृष्णने जो गोपियोंके साथ क्रीड़ा की थी, उसे ही रास कहते हैं।

कोई कोई इस रासको कल्पतरु-यात्रा कहा करते हैं। कार्त्तिककी पूर्णिमाके दिन विधानानुसार रासयात्रा विधान होता है। इस दिन नृत्य, गीत और वाद्यादि नानारूप उत्सव होता है। जो इसका अनुष्ठान करते हैं, वे इहलोकमें विविध सुखभोग कर अन्तकालमें विष्णु लोकमें गमन करते हैं। कार्त्तिककी पौर्णमासीके दिन भगवान्ने रासक्रीड़ा की थी, इसलिए उसी दिन रासक्रीड़ा करना उचित है। उस दिन रासयात्राका पद्धतिके अनुसार आधी रातको पूजादि करके उत्सव किया जाता है।

(उत्सवचन्द्रिका॰)

भागवतमें लिखा है कि कार्त्तिकमासमें पूर्णिमाके दिन निर्मल गगनमें पूर्ण शशधरके उदय होने पर भगवान् विष्णुने योगमाया अवलम्बन कर विहार करने की इच्छा की। शरत्काल, आकाश अति निर्मल और उस पर पूर्णचन्द्रका उदय ऐसे समयमें भगवान् कृष्णने वामलोचनादिगोंके लिए विमोहनकारी मधुर गीत गाना आरम्भ कर दिया। व्रजकी कामिनियां इस कामवर्द्धक संगीतको सुन कर अत्यन्त आकृष्ट हुई। तब वे कि कर्त्तव्यविमूढ़ा हो कर, जो जहां जिस अवस्थामें थीं, सब उसी हालतमें काम छोड़ छोड़ कर श्रीकृष्णके निकट पहुंचीं। कोई दूध दुहते दुहते उठ भागी हुई तो कोई सन्तानको दूध पिलाते पिलाते चल दीं, तो कोई पतिकी सेवा छोड़ कर दौड़ीं। उनके पतियोंने अपनी अपनी अङ्गनाओंको वहां जानेकी मनाई की, किन्तु वे लौटीं नहीं। वे ऐसी विमुग्धा हो कर जाने लगीं कि उनके वसनादि तक इधर उधर खिसक गये और उन्हें इस बातका ज्ञान न हुआ।

कोई कोई गोपी पति और पुत्रों द्वारा रोक दी गई जिससे वे कृष्णके पास न जा सकीं। इस कारण उन्होंने निमीलित लोचनसे श्रीकृष्णका ध्यान करते हुए शरीर त्याग दिया। परन्तु बाहरसे श्रीकृष्णको न पाया तो क्या, मनमें उन्होंने भगवान् श्रीकृष्णको पाया और उन्हें

के चरणोंमें अपनेको समर्पित कर दिया—उनकी मुक्ति हो गई।

दर्शनादि शास्त्रोंमें मीमांसा की गई है, कि पाप पुण्य-का ध्वंस विना हुए मुक्ति नहीं हो सकती, फिर इन सब गोपियोंकी मुक्ति किस प्रकार हो सकती है ? जिन-को ऐसा संशय है, वे जरा ध्यानसे विचार कर देखें, तो उन्हें मालूम हो जायगा कि गोपाङ्गनाओंकी मुक्ति उनके पाप-पुण्य ध्वंस होने पर ही हुई है।

इन गोपियोंका चित्त पहले हीसे एकमात्र श्रीकृष्णके प्रति अनुरक्त था। अब वे वहां न जा सकनेके कारण यहींसे केवल उनका ध्यान करने लगीं। उस समय उन्हें अपने प्रियतमके विरहानलसे जो सन्ताप हुआ, उसीसे उनका अशुभ क्षय हो गया, अतएव पापका भोग हो गया, और वादमें उन्होंने चिन्तायोगसे भगवान् अच्युतको प्राप्त कर आलिङ्गन किया, जिससे उन्हें शुभ सम्भोग हुआ, इस शुभ सम्भोगसे उनके पुण्यका नाश हुआ। यद्यपि श्रीकृष्णको वे उपपति समझती थीं, तथापि उस परमात्माको प्राप्त करनेसे तत्कालीन सुखदुःख द्वारा अशेष कर्मक्षय हो कर देहत्याग करते ही उनकी मुक्ति हो गई।

गोपीगण कृष्णको परमकान्त समझती थीं। उन्हें ब्रह्म समझती हों, सो वात नहीं। फिर किस प्रकार उनको संसारविरति हुई इस प्रकारके संशयका भी निराकरण किया गया है। भगवान् कृष्णमें, शत्रु मित्र जो जिस रूपमें तन्मय हो सके, उनकी उसीमें कार्य सिद्धि होती है। जब कि शिशुपाल आदि भगवान्‌से शत्रुता करके भी मुक्त हुए थे, तो जब उनके प्रिय हैं, उनका क्या कहना ?

व्रजाङ्गनाओंके झुण्डके झुण्ड श्रीकृष्णके पास उप स्थित होने पर भगवान् कृष्णने उन्हें वाक्चातुरीसे विमोहित करके कहा,—'हे महाभागागण ! तुम लोग सुखसे आई हो तो ? मैं तुम्हारा क्या दृष्ट साधन करूं ? व्रजमें सब कुशल है न ? यह रजनी अत्यन्त घोर है, भयङ्कर हिंस्र पशुगण इतस्ततः विचरण कर रहे हैं, इसलिये तुम लोग शीघ्र ही व्रजको लौट जाओ, यहां रहना उचित नहीं। तुम्हारी माताएं, पिता, पुत्र और पतिगण तुम्हें न पा कर खोजते होंगे, शीघ्र ही तुम लोग घरको लौट जाओ।' तब गोपिकाएं कुछ प्रणयकोपसे दूसरी तरफ दृष्टि फेरने लगीं।

भगवान् कृष्ण उनके इस प्रकारके भावको देख कर उनसे कहने लगे,—कुसुमित कानन पूर्ण शशधरकी रजत किरणोंसे रञ्जित हो गया है। यमुनानिलकी लीला गति द्वारा कम्पमान तरुपल्लव इसकी शोभा है, तुम लोग यदि इन सबको देखने आई हो, तो अब सब देख चुकी, अब तुम घरको लौट जाओ, देर मत करो। तुम लोग सती हो, घर जा कर अपने अपने पतियोंकी सेवा करो। वालकगण रो रहे हैं, उन्हें दूध पिलाओ। और यदि लोग मेरे प्रति स्नेहसे चित्त वशीभूत होनेके कारण ही यहां आई हो, तो उसमें भी कोई दोष नहीं क्योंकि मेरे प्रति समस्त प्राणी प्रीति करते हैं। अब घर जाओ। हे कल्याणीगण ! तुम लोगोंको चाहिए, कि अकपट भावसे स्वामी और उनके, वन्धुओंकी सेवा तथा सन्तानोंका पोषण करो। यही रमणियोंका परमधर्म है। पति दुःशील हों, दुर्भाग हों, वृद्ध हों, जड़ वा निर्धन हों, सद्गतिकामनाकारिणी नारियोंके लिए उनका त्याग करना विधेय नहीं है। कुलकामिनियोंके लिए जारका सेवन उनकी स्वर्गच्युतिका प्रधान कारण है। यह कार्य निन्दनीय, भयावह और सर्वत्र यशका नाशक है।

मेरा नाम सुननेसे, मेरा ध्यान करनेसे और गुण गानेसे जैसी प्रीति होती है, मेरे पास आनेसे वैसी प्रीति नहीं होती। इसलिए तुम सब घरको लौट जाओ।

गोपाङ्गनाएं श्रीकृष्णकी इस अप्रिय वातको सुन कर भग्नमनोरथ और विषण्ण मनसे दुर्वार चिन्तामें मगन हो गईं। शोकके कारण उनकी घनी घनी साँसें चलने लगीं, तो किसीके विम्वाधर सूख गये। जो रमणियां स्वामी पुत्रादि सर्वस्व परित्याग कर श्रीकृष्णके सङ्ग लाभके लिए यहां आई थीं, उन्होंने जब कृष्णके ऐसे-निष्ठुर वाक्य सुने, तो वे कुछ कुपित हो उठीं,—कोपके कारण उनका कण्ठरोध हो गया। तब वे अश्रुसिक्त-लोचनोंको पोंछती गद्गदवाक्यसे कहने लगीं—विभो ! ऐसे निष्ठुर वाक्य कहना तुम्हें उचित नहीं। हम सब अपना समस्त विषय विभव छोड़ कर तुम्हारे चरणोंमें

आए हैं। जैसे आदिपुरुष मुमुक्षुओंको ग्रहण करते हैं, वैसे ही तुम भी हम दासोंको ग्रहण करो।

पति, पुत्र और बन्धुओंकी सेवा करना ही स्त्रियोंका स्वधर्म है, तुमने जो यह उपदेश दिया है, हम उसीका पालन करेंगी; कारण हम यदि तुम्हारी सेवा करें, तो वह हमारे पतिपुत्रादिकी ही सेवा होगी। कारण तुम्हीं शरीरियोंके प्रियतम बन्धु, आत्मा और नित्यप्रिय हो। शास्त्रकुशल व्यक्तिगण तुम्हींमें प्रेम किया करते हैं।

पतिपुत्रादि दुःखदायक हैं। हम लोग उन्हें ले कर क्या करेंगी? हे परमेश्वर! हम पर प्रसन्न होओ। बहुत दिनों से आशा लगी है, इसे नष्ट न करो। हम लोगोंके जो चित्त, और हाथ अब तक स्वच्छन्द हो कर गृहकार्यमें रत थे, अब तुमने उन्हें हरण कर लिया है। तुम्हारे पादमूलसे हमारे चरणयुगल एक डेग भी नहीं हटते। अतएव व्रजको लौट कर क्या करेंगी? यदि तुम हमारे प्रति प्रसन्न न हुए, तो ध्यानयोगसे हम तुम्हारे पादमूलको प्राप्त करेंगी। हे अम्बुजाक्ष! तुम्हारा पदतल कमला को आनन्द उत्पन्न करता है, तुम्हारे उस पदतलको अब तक हम स्पर्श किए हुए हैं, और अरण्यमें तुम जब तक हम लोगों को आनन्दित करते रहोगे, तब तक हम दूसरेके पास नहीं रह सकतीं। हम लोग तुम्हारी उपासनाके लिए आई हैं। तुम्हारे सुन्दर रहस्यका निरीक्षण करके हमारा कामाग्नि उद्दीपित हो गई है, हम लोग उससे संतप्त हुई हैं। हे पुरुषश्रेष्ठ! हम लोगोंको दासी होने दो। त्रिलोकमें ऐसी कामिनी है जो तुम्हारे मधुर पदरूप अमृतमय वेणुगीतसे मोहित हो कर विचलित न हो जाय? तुम्हारे इस त्रिलोकव्य मोहनरूपको देख कर गौ, पक्षी, वृक्ष और मृगगण भी रोमाञ्चित हो जाया करते हैं। जिस प्रकार आदिपुरुष देवलोकका रक्षक हो कर अवतीर्ण हुए थे, उसी प्रकार तुमने व्रजकी पीड़ा हरनेके लिए जन्म लिया है हम तुम्हारे विरहमें क्षण भर भी नहीं जी सकतीं।

भगवान् कृष्ण व्रजकी कामिनियोंके मुँह यह बात सुन कर उन्हें ले कर क्रीड़ा करने लगे। उस समय भगवान् कृष्ण इन व्रजाङ्गनाओंके बीच तारकामण्डलोंसे घिरे हुए चन्द्रमाके समान शोभा पाने लगे। श्रीकृष्ण शत वनिताओंमें यूथपति हो कर कभी स्वयं गाने लगे, कभी गान सुनने लगे और कभी वैजयन्तीमाला धारण करके वनको शोभित करते हुए विचरण करने लगे। कालिन्दी का वह ज्योत्स्नान्वित पुलिन, शीतल बालुका से परिपूर्ण था, कुमुदकी सुगन्ध सुशीतल पवनके साथ बह रही थी। श्रीकृष्ण उस मनोहर पुलिनमें प्रवेश कर गोपाङ्गनाओंके साथ बाहुप्रसारण पूर्वक आलिङ्गन करने लगे। उनके कर, अलक, ऊरु, नीवि और स्तन स्पर्श करने लगे। उनके साथ परिहास, अङ्गों पर नखाग्रपात, क्रीड़ा, कटाक्षपात और हास्य करके मदनको उद्दीपित कर उन्हें विहार कराने लगे।

इस समय महात्मकथित भगवान्के द्वारा ऐसा मान प्राप्त करके गोपिकाएं अत्यन्त मानिनी हो उठीं और अपनेको संसारकी समस्त स्त्रियोंसे श्रेष्ठ समझने लगीं। दर्पहारी भगवान् उनका सौभाग्यमद और अभिमानको देख कर उसको लय और शान्त करनेके लिये उस स्थान से तिरोहित हो गये।

गोपिकाओंने सहसा श्रीकृष्णको अन्तर्हित होते देख कर, यूथपतिके अदर्शनसे करिणीगण जैसे व्याकुल हो जाती है, वे भी वैसी ही व्याकुल हो कर उन्हें ढूंढने लगीं। गति, अनुराग, हास्य, विभ्रमदृष्टि, मनोरम आलाप, विलास और विभ्रमद्वारा प्रमदाओंके चित्त आकृष्ट हो गये थे इसलिए वे तादात्म्य प्राप्त हो गई थीं। अब वे श्रीकृष्णको न पा कर भगवान् कृष्णकी विविध चेष्टाओंका अनुकरण करने लगीं।

प्रियकी गति, हास्य, विलोकन और आलापादि से प्रियोंकी मूर्ति आविष्ट हो गई थी, अतएव उनका विहार और विभ्रम आदि कृष्णकी भाँति ही हुआ। इसलिए सभी कोई कृष्णात्मिका हो कर परस्परमें मैं ही 'कृष्ण' हूं, ऐसा कहने लगीं। इसके बाद वे मिल कर ऊंचे स्वरसे गान गाती हुई उन्मत्तकी भाँति वनोंमें भ्रमण करने लगीं। और जो आकाशके समान प्राणियोंके बाहर और अभ्यन्तरमें अवस्थित हैं, उन परम पुरुषको वहां वनस्पतियोंसे पूछने लगीं—"हे अश्वत्थ! हे प्लक्ष! हे न्यग्रोध! श्रीनन्दके नन्दन, प्रेम और हास्य विकसित करके द्वारा हम लोगोंके चित्तको हरण करके

भाग गये हैं, तुमने उन्हें देखा है? हे कुरुवक! हे नाग! जिनका हास्य मानिनियोंके मनको हरण करता है, वे रामानुज क्या इधरसे गये?" इत्यादि प्रकारसे वे प्रत्येक वृक्ष और लतासे अति करुणभावसे कृष्णकी टोह लगाने लगीं। परन्तु कहीं भी श्रीकृष्णका सन्धान न मिला।

तब वे श्रीकृष्णकी खोजमें अत्यन्त विह्वल हो कर उनकी विविधक्रीड़ाओंका अनुकरण करने लगीं। एक गोपी कृष्ण बनी और दूसरी गोपी पूतना बन कर उसे स्तन्य पान कराने लगी। एक शकट बनी, दूसरी कृष्ण बन कर उसे पदप्रहार करने लगी। इस प्रकार गोपिकागण वृन्दावनमें भगवान्‌की समस्त प्रकारकी लीलाओंका अनुकरण करने लगीं।

गोपिकाएं कृष्णके विरहसे उन्मत्तप्राय हो कर कभी हंसने, कभी रोने और कभी स्तव करने लगीं। इसी समय हास्यमुख पीताम्बर वनमाली कृष्ण उनके सामने आविर्भूत हुए।

गोपिकाएं प्रियतमको सामने देख कर आनन्दित हुईं। उनके नयनकमल प्रफुल्ल हो उठे। तब उन्हें मानो पुन जीवन मिल गया। वे सब श्रीकृष्णसे नाना प्रकारकी मनोव्यथाएं प्रकट करने लगीं। जैसे मुमुक्षुओंको ईश्वरकी प्राप्ति होनेसे उनके संसारका ताप दूर हो जाता है, उसी प्रकार केशवके दर्शनसे गोपियोंका विरह-सन्ताप दूर हो गया।

भगवान् कृष्ण विधूतपापा उन गोपिओंसे परिवृत हो कर सत्वादि गुणोंसेवेष्टित परमात्माकी भांति अत्यन्त शोभाको प्राप्त हुए। तब मदनमोहन उन गोपिकाओंके साथ कालिन्दीके सुखकर पुलिनमें जा कर क्रीड़ा करने लगे। श्रीकृष्णके दर्शन पा कर गोपियोंकी मनोव्यथा दूर हो गई। श्रुति-समूह जैसे कर्मकाण्डमें परमेश्वरको न देख सकने पर कर्मके अनुगमनपूर्वक मानो अपूर्णकामकी भांति हो जाता है, पीछे ज्ञानकाण्डमें परमेश्वरको देख कर आह्लादसे पूर्णकाम हो कर कामानुबन्ध त्याग देता है, उसी प्रकार श्रीकृष्णके दर्शनसे गोपियोंका काम पूर्ण हो गया। उन लोगोंने कुच-कुंकुम-रंजित अपने अपने उत्तरीय वसन द्वारा अन्तर्यामी भगवान्‌के आसनकी रचना कर दी। योगीश्वरके हृदयमें जिसका आसन बिछा हुआ है, आज वे ही भगवान् श्रीकृष्ण गोपियोंकी सभामें आ कर उनके साथ उस आसन पर बैठ गये। त्रैलोक्यमें जितनी शोभा है, वे उतनी शोभाके एकमात्र आधार बन कर गोपिकाओंमें सम्मानित हो कर शोभा पाने लगा। तब गोपिकाओंने कृष्णको वेष्टन करके कहा—सखे कृष्ण! कौन व्यक्ति दोनोंमेंसे किसीकी भी भजना नहीं करते? कृपा कर एकके भजना करने पर उसकी भजना करते हैं? कौन व्यक्ति इसके विपरीत करते हैं और कौन व्यक्ति इस विषयको समझाइये।

गोपिओं द्वारा ऐसा प्रश्न किये जाने पर श्रीकृष्णने कहा, सखीगण! जो स्वार्थसाधन करनेमें लगे हुए हैं, वे ही परस्पर एक दूसरेको भजना किया करते हैं। उसमें धर्म वा सौहार्द नहीं है। स्वार्थ उसका उद्देश्य है, इसके सिवा और कुछ नहीं। परन्तु जो भजना नहीं करते, उनको जो भजना करते हैं, माता-पिताके समान वे दो प्रकारके हैं,—एक दयालु और दूसरे स्नेहमय। उक्त भजना द्वारा दयालु व्यक्तियोंको निष्कृतिधर्म और स्नेहमय व्यक्तियोंको सौहार्द प्राप्त होता है। यहां अनिन्दित धर्म और सौहार्द, ये दो ही हैं। सखीगण! जो मेरी भजना करते हैं, मैं उनको भजना नहीं करता, क्योंकि, ऐसा होनेसे वे निरन्तर मेरी ही चिन्ता करते रहेंगे। जैसे निधन व्यक्ति धन प्राप्त करके फिर यदि धन खो दे, तो वह उसी धनकी चिन्तामें लगा रहेगा—दूसरी चिन्ता भूल जायगा, उसी प्रकार तुम लोग भी मेरे निमित्त धर्माधर्मका विचार न करके लोक और ज्ञातिकुटुम्बको परित्याग कर निरन्तर मेरी ही चिन्ता कर रही थीं, इसीलिए मैं अन्तर्हित हुआ था। और तुम लोग देख न सके, इस तरहसे तुमलोगोंकी भजना की थी। अतएव हे प्रियागण! प्रियके प्रति दोषारोप करना तुम्हें उचित नहीं। तुम दृढ़तर गृहश्रृंखलको तोड़ कर हमसे आ मिली हो, मैं तुम्हारे इस ऋणको नहीं चुका सकता।

गोपियोंने भगवान् श्रीकृष्णके इस प्रकार सान्त्वना-वाक्य सुन कर पूर्णकामा हो कर विरहके सन्तापको दूर किया। परमानन्दसे परस्परको परस्परने बाहु द्वारा बाहुबन्धन किया। श्रीगोविन्दने इन सब स्त्रियोंसे वेष्टित हो कर रासलीला प्रारम्भ की।

भगवान्‌का इस प्रकार रासोत्सव प्रारम्भ होने पर गोपीमण्डलसे मण्डित हो कर योगेश्वर श्रीकृष्ण दो दो गोपिकाओंमें प्रवेश कर उनका कण्ठ धारण किया। इससे प्रत्येक गोपिकाको मालूम होने लगा, कि श्रीकृष्ण मेरे ही पास हैं। रास आरम्भ होते ही नभोमण्डल देवताओंके विमानोंसे व्याप्त हो गया। आकाशमें दुन्दुभि बजने और पुष्पवृष्टि होने लगी। तब सस्त्रीक गन्धर्वगण श्रीकृष्णका निर्मल यशोगानमें प्रवृत्त हुए। रासमण्डलमें प्रियसङ्गता कामिनियोंके वलय, नूपुर और किङ्किणीकी झनकारसे गम्भीर शब्द होने लगा।

भगवान् श्रीकृष्ण उन गोपिकाओंके साथ स्वर्णवर्ण मणियोंसे मण्डित मरकतमणिके समान अत्यन्त शोभा को प्राप्त हुए। पदन्यास, भुजकम्पन, सहास्य भ्रूविलास, भग्नमध्य कटितट, चलित कुचमण्डल, विस्रस्त वसन और गण्डस्थलोंमें दोदुल्यमान कुण्डलों द्वारा कृष्णकामिनियोंके वदनकमल पसीनेसे तरबतर हो गये। उनकी कबरी और काञ्ची शिथिल हो गई। वे कृष्णका गुणगान करते करते मेघचक्रमें तड़ित् माला की भाँति शोभित मालूम देने लगी। नाना रागोंसे रञ्जितकण्ठ गोपिकाएं नृत्य करते करते श्रीकृष्णके अङ्गस्पर्शसे आनन्दित हो कर उच्चैःस्वरसे गान गाने लगी, और उस गानसे ब्रह्माण्ड परिपूर्ण हो गया। कृष्णने जिस प्रकार राग और स्वरसे गान गाया था, गोपिकाएं भी वैसा ही गाने लगी। श्रीकृष्ण उनका इस प्रकार गान सुन कर स्वयं विमोहित हो गये।

इस प्रकार गोपिकाएं रासक्रीड़ा करते करते जब परिश्रान्त हो गई, तब उनकी मल्लिकाएं शिथिल हो गई। किसीने बाहु द्वारा माधवका स्कन्ध धारण किया किसीने गलेसे लिपट कर उत्पलकी भाँति सुगन्धियुक्त चर्चित श्रीकृष्णका करकमल सूंघ कर रोमाञ्चित हो कर चुम्बन किया। नृत्य करते करते कामिनियोंके कुण्डल झूलने लगे। उन कुण्डलोंकी आभासे भगवान्‌का गण्डस्थल शोभित होने लगा। इस प्रकार अनेक भावसे विशुद्ध ताल-लय युक्त रुद्र-सहचरीस देव, गन्धर्व और मानवोंका विस्मयोत्पादक नृत्य और गान होने लगा।

बालक जिस प्रकार अपने प्रतिबिम्बसे आप क्रीड़ा करने लगता है, उसी प्रकार भगवान् रमापति नाना प्रकारसे आलिङ्गन, करमर्दन, स्निग्धकटाक्षपात तथा उद्दामविलास और हास्य द्वारा व्रजसुन्दरियोंके साथ क्रीड़ा करने लगे। उनके अङ्गसङ्गसे जो अत्यन्त आनन्द प्राप्त हुआ, उससे व्रजसुन्दरियोंकी इन्द्रियां आकुलित हो उठी।

व्रजाङ्गनागण आनन्दमें उन्मत्त हो गई, उनके गलेसे मालाएं खिसक गई। आभरण उतर पड़ने लगे, केश बिखर गये दुकूल और कुचपट्टिकाको पूर्ववत् धारण न कर सकी। श्रीकृष्णके विहारको देख कर खेचर कामिनियां कामबाणसे पीड़ित हो उठी। चन्द्रमा भी तारकाओंके साथ विस्मित हो कर अपनी अपनी गति भूल गये। इसलिए रजनी अत्यन्त दीर्घ हो उठी और विहार भी बहुत देर तक चला।

भगवान् आत्माराम हो कर भी जितनी गोपियां थी, लीलाक्रमसे उतने ही स्वयं बन कर उनके साथ क्रीड़ा करने लगे। बहुत देर तक क्रीड़ा करते करते जब वे श्रान्त हो गई तब भगवान्‌ने उनके मुखकमल पोंछ दिये। उसके बाद वे उन कामिनियोंके साथ यमुनाके जलमें नाना प्रकार जलकेलि करने लगे। इस प्रकार भगवान् कृष्णने सुरतक्रीड़ाको रोक कर रासलीला की थी।

शुकदेवने परीक्षितको रासलीलाकी बात सुनाई, तो उन्हें महान् संशय उपस्थित हुआ, इसलिए उन्होंने शुकदेवसे इस प्रकार प्रश्न किया—ब्रह्मन्! धर्मकी संस्थापन और अधर्मका दूरविधान करनेके लिए जगदीश्वर भगवान् पृथ्वीमें अवतीर्ण हुए हैं। उन्होंने धर्मसेतुके वक्ता, कर्ता और रक्षक हो कर किस प्रकार परस्त्रीके साथ सम्भोगरूप अधर्मका अनुष्ठान किया था? भगवान् कृष्ण आत्माराम हैं, उनका इस प्रकार करनेका अभिप्राय क्या है? मेरे इस संशयको दूर कीजिये।

तब शुकदेवने कहा—ईश्वरोंमें धर्मातिक्रम और साहस नहीं देखा जाता तेजस्वियोंको इससे दोष नहीं होता। अग्नि जिस प्रकार सब कुछ भोजन करती है उसी प्रकार ईश्वरको किसी विषयमें दोष नहीं लगता।

जो ईश्वर नहीं हैं, वे कभी भी ऐसा आचरण नहीं करते। रुद्रके सिवा अन्य कोई व्यक्ति यदि मूढ़ता वश विष पान करे, तो मृत्युका ग्रास बन जायगा। ईश्वरका वाक्य सत्य है और उनका आचरण भी कभी कभी सत्य होता है। अतएव वे जो कहते हैं जिनके बुद्धि है, वे वही करेंगे। वे जो करते हैं, उसका अनुकरण करना विधेय नहीं।

जो गोपियोंके, उनके स्वामियोंके तथा समस्त शरीरधारियोंके अंतरमें विराजमान रहते हैं और जो विद्यादिकी साक्षी हैं, वे क्रीडाके छलसे इस प्रकार देह धारण करके विविध क्रीडाएं करते हैं। जीव इन सब बातोंको सुन कर उनके प्रति भक्तिमान् हो सकते हैं।

भगवान्‌की यह रासलीला परम अद्‌भुत और सकल पापोंकी नाशक है। जो भक्तिपूर्वक इस रासलीलाके विषयको सुनते हैं, वे इहलोकमें सुख सम्पत् प्राप्त करके अन्तमें विष्णुलोकमें जा कर भगवान्‌में परमाभक्ति प्राप्त कर शीघ्र ही कामरूप मानसिक पीडासे मुक्त होते हैं।
(भागवत १०म स्कन्ध, रासपञ्चाध्याय)

ब्रह्मवैवर्त्त पुराणमें भगवान् कृष्णने श्रीमती राधिका-से जिस प्रकार रासलीला की थी, उसका वर्णन लिखा है, जो संक्षेपमें यहां दिया जाता है:—

ब्रह्मकल्पमें भगवान्‌ने समस्त सृष्टिकार्यको समाप्त करके गोलोकमें रासमण्डप निर्माण किया। यह रास-मण्डप अति कमनीय कल्पवृक्षोंके बीच मण्डलाकृति, सुस्निग्ध, समतल और सुविस्तीर्ण तथा चन्दन, अगुरु, कस्तूरी, कुंकुम आदि नाना सुगन्धित द्रव्योंसे सुसंस्कृत है। इसके किसी स्थानमें दधि, किसी स्थानमें लाज, शुक्लधान्य आदि माङ्गलिक द्रव्य विन्यस्त हैं। वह पट्टसूत्र की ग्रंथि-विशिष्ट तथा उपरिभागमें दोदुल्यमान नूतन नूतन चन्दन पल्लवोंसे परिशोभित, चारों तरफ रम्भा तरुओंसे परिवेष्टित है।

रासमण्डप उत्कृष्ट रत्नोंसे निर्मित तीन कोटि मण्डप द्वारा अत्यन्त शोभित था, इसमें सर्वत्र रत्नदीप प्रज्वलित रहते थे। उन रत्नदीपोंकी स्निग्धोज्वल किरणोंसे अंधकार नष्ट हो गया था। पुष्प और धूपादिकी सुगंध इतस्ततः विकीर्ण होनेसे सबकी घ्राणेन्द्रिय अत्यंत परितृप्त हो गई थी। इस स्थानमें नाना प्रकारकी भोग-सामग्रियां और मनोहर शय्याएं निरन्तर प्रस्तुत रहनेसे अलौकिक शोभा हुई थी। भगवान् इस प्रकार रास मण्डपका निर्माण कर देवोंके साथ वहां गये। तब भगवान्‌के पार्श्वदेशमें एक कन्या आविर्भूता हुईं, जिनका नाम राधिका था। राधिका देखो।

राधिकाके आविर्भूत होने पर भगवान् विष्णुने उनके साथ रासक्रीडा की। पीछे भगवान्‌के विरजाके साथ क्रीडामें रत होने पर राधिकाको यह बात मालूम पडी और वे वहां उपस्थित हुईं, भगवान्‌ने पहलेसे ही जान कर विरजाको वहांसे स्थानान्तरित कर दिया। राधिकाने इस पर क्रुद्ध हो कर विरजाको शाप दिया, विरजाने भी उन्हें मानवी हो कर जन्मग्रहण करनेका अभिशाप दिया। राधिकाने उनके शापसे वृन्दावनमें जन्मग्रहण किया। पीछे श्रीकृष्णने अवतीर्ण हो कर राधिकाके साथ रास-क्रीड़ा की थी। (ब्रह्मवै० ब्रह्मख० ७।१०)

वृन्दावनमें भगवान्‌ने जो रासलीला की, उसका वर्णन उक्त पुराणमें इस प्रकार किया गया है। एक दिन मधुमासमें शुक्ला त्रयोदशीकी रात्रिको पूर्ण शशधरका उदय होने पर श्रीकृष्णने वृन्दावनमें आ कर देखा, कि वृन्दावन यूथिका, माधवी, मालती और कुन्दादि पुष्पोंकी परिमलवाही सुगन्धितवायु द्वारा सुवासित और भ्रमरोंके मधुर गुन गुन शब्दसे अति मनोहर शोभा-सम्पन्न हो रहा है। वनप्रदेशमें नवपल्लवयुक्त पुंस्कोकिलगण मनोहर कुहूध्वनि कर रहे हैं। यह स्थान रासक्रीड़ाके लिए उपयोगी नूतन क्षौम वसनसे परिव्याप्त हो कर मनोहर शोभा सम्पादन कर रहा है, और नाना प्रकार भोज्य सामग्री, मनोरम शय्या, नाना प्रकार सुगन्धि द्रव्यादिसे परिशोभित हो रहा है।

भगवान् कृष्णने इस रासमण्डपको देख कर कौतुक-वश गोपियोंके कामवर्द्धनके कारण भूतविनोद मुरली-ध्वनि की। राधिका उस मोहन मुरली ध्वनि सुन कर कामाधीन-चित्त हो कर उसी क्षण मोहित हो गईं। उनका मन उस तानलयमें लीन हो गया। वे तब निश्चलभावसे वृक्षके समान खड़े रहीं, क्षण भर बाद

चैतन्य होने पर पुनः मुरलीकी ध्वनि उनके कानोंमें पहुंची। तब वे कोपलज्जा और भयको त्याग कर वंशी ध्वनिके अनुसार गमन करने लगी। परंतु उस समय उनके मनमें श्रीकृष्णपादपद्म ही सर्वदा जागरित थे, तथा उनके शरीरकी आभा और समुद्रके सारभूत भूषणों की दीप्तिसे चारों ओर आलोकित हो गया।

इसके बाद राधिकाकी ३२ सखियां भी बांसुरीकी ध्वनिसे आकृष्ट हो कर कामवश मोहित हो कर निर्भीक चित्तसे कुलधर्म त्याग कर शीघ्र ही घरसे निकल कर चल दी। राधिकाकी सभी सखियां रूप वेश, उमर और गुणमें राधिकाके समान थी।

इन सखियोंमें सुशीलाके साथ १६ हजार, शशिकलाके साथ १४ हजार, चन्द्रमुखीके साथ १३ हजार, माधवीके साथ ११ हजार, कदम्बमालाके साथ १३ हजार, कुन्ताके साथ १० हजार, यमनाके साथ १४ हजार, जाह्नवीके साथ १४ हजार, शुभाके साथ १४ हजार, पद्माके साथ १३ हजार, दुर्गाके साथ १४ हजार, मधुकाके साथ १३ हजार और सरस्वतीके साथ १३ हजार गोपियां भी चल दी।

इन गोपियोंने एकत्र हो कर श्रीमती राधिकाका मनोहर वेश बना दिया। श्रीमती राधिकाने समस्त सखियोंके साथ शुभक्षणमें श्रीकृष्णके पादपद्मों का ध्यान करते करते इस रासमण्डलमें प्रवेश किया। तब श्रीकृष्णने देखा, कि सखियों से परिवेष्टित हो कर राधिका उनके पास आ रही हैं। देवी रत्नालङ्कारसे विभूषित और मनोहर वस्त्र पहने हुए हैं, नयनयुगल ईषत् वङ्किम हैं, गजेन्द्रगामिनी हैं तथा मुनियों के भी मन हरण करनेमें समर्थ हैं। श्रीमती नवीन अवस्था और नवीन रूपसे अत्यन्त मनोहारिणी हैं, उनके नितम्ब और श्रोणियुगल अत्यन्त स्थूल होनेसे दुर्वह हो रहे हैं, वे चम्पकवर्ण हैं, उनका वदनमण्डल शारदीय पूर्णचन्द्रके समान है। उन्होंने मालतीमालायुक्त कबरीभार धारण किया है।

तब श्रीमती राधिकाने भी देखा कि रत्नाभरणसे विभूषित, कोटि कन्दर्पकी लावण्यलीलाके आधारस्वरूप नवयौवन सम्पन्न, किशोर श्यामसुन्दर उन्हें प्राणाधिका समझ कर उनके प्रति कटाक्ष दृष्टिसे देख रहे हैं। श्रीमती ने उन परमाद्भुत अनुपम रूपवान् विचित्र वेशधारी श्री कृष्णको वङ्किम नयनोंसे पुनः पुनः देख कर लज्जासे अञ्चल द्वारा मुख आच्छादन किया और उसी क्षण काम बाणसे पीड़ित हो कर पुलकित शरीरसे मूर्च्छितकी भांति चैतन्यशून्य हो गई। इस प्रकार क्रीड़ा-रसोन्मुख हरि भी कटाक्षरूप कामबाणसे पीड़ित हो कर मूर्च्छितभाव से स्थाणुके समान निस्पन्दभावसे पड़े रहे। उनके हाथ से मुरली और उज्ज्वल क्रीड़ाकमल स्खलित हो गया, शरीरसे पीतवस्त्र और शिखिपुच्छ विच्छिन्न हो कर जमीन पर गिर पड़ा। क्षण भर बाद चैतन्य प्राप्त होने पर श्रीकृष्ण राधिकाके पास पहुंचे और उन्हें छातीसे लगा कर उनका मुख चुम्बन तथा आलिङ्गन किया। श्रीमती भी श्रीकृष्णके संस्पर्शसे चैतन्य प्राप्त हो उन्हें गाढ़रूप से आलिङ्गन और पुनः पुनः चुम्बन करने लगी।

भगवान् श्रीकृष्णने इस प्रकार राधाके साथ नाना प्रकार क्रीड़ादि करके बाद शयन किया। उस सुरत के समय कामातुर कृष्णने अपने अङ्ग-प्रत्यङ्गों द्वारा कामु किनीके अङ्ग प्रत्यङ्गोंसे सुखावह आलिङ्गन किया। दोनों ही कामशास्त्रमें पारदर्शी थे, सुरतक्रीड़ामें दक्ष थे।

इस प्रकार राधिका-रमण नाना मूर्त्ति धारण कर प्रत्येक घरमें गोपाङ्गनाओंके साथ सुरम्य रासमण्डलमें रमण करने लगे। कृष्ण गृहके भीतर सुरत-क्रीड़ा करके बाहर गोपिकाओंके साथ अन्यान्य क्रीड़ा करने लगे। राधिकाकी जो लाख गोपिका सखियां थीं, तब कृष्ण ने भी लाख रूप धारण किये। सब मिल कर अठारह लाख गोप और गोपिकाओं का समावेश हुआ। वे सभी मुक्तकेश, विच्छिन्नभूषण, छिन्न भिन्न वेश और कामवश मत्त और मूर्च्छित थे। इस स्थानमें केवल कङ्कण, किङ्किणी, वलय और विशुद्ध रत्ननूपुर आदिकी मनोहर शब्द होने लगे। भगवान् कृष्णने उनके साथ इस प्रकार विविध क्रीड़ाएं करके यमुनामें जा कर वहां जलक्रीड़ा की।

रासमण्डलमें इस प्रकार पूर्ण रासक्रीड़ा आरम्भ होने पर सुरगण अपने कलत्र और मनुष्यवर्गके साथ सुवर्ण रथमें आरोहण कर गगनमार्गमें समागत हुए। इस क्रीड़ाको देख कर उनके सर्वाङ्ग पुलकित हो गये।

वे भी कामवाणसे पीड़ित हुए। इस प्रकार वहां ऋषि, मुनि, सिद्ध और पितृगण तथा विद्याधर, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और किन्नरगण सभी कोई आनन्दमें आ कर अपनी अपनी पत्नियोंके साथ उपस्थित हुए और उस क्रीडाको देखने लगे। ब्रह्मा, महादेव और इन्द्रादि देवता भी आ पहुंचे और वे रासलीलाको देख कर विमोहित हो चन्दन और पुष्पोंकी वर्षा करने लगे।

पूर्णब्रह्म सनातन कृष्ण इस प्रकार गोपिनियोंके साथ जल और स्थलमें नाना रूप रासक्रीडा करने लगे। गोपिकाएं लीलामें हरिके साथ रासमण्डलमें क्रीडा कर समस्त मनोहर निर्जन प्रदेशोंमें तथा किसी समय पुष्पोद्यानोंमें, कभी रमणीय नदीतट पर, कन्दरोंमें, नदीके पास, कुञ्जवनमें तथा चम्पकादि तेंतीस काननोंमें नाना प्रकारसे उनके साथ क्रीडा करने लगीं।

इस प्रकार तीस दिन तक दिन-रात रास होता रहा, फिर भी कामिनियोंको तृप्ति न हुई। देवगण तब इस आश्चर्यजनक क्रीडाको देख कर अपने अपने स्थानको चले गये। भगवान्‌की इस लीलाको जो श्रवण करते हैं, वे इहलोकमें सुखसम्पद और अन्तकालमें श्रीकृष्णके पादपद्मोंमें शरण पाते हैं। (ब्रह्मवै० श्रीकृष्णज० १८ अ०)

हरिवंशमें विस्तृतभावसे कृष्णचरित्र वर्णित हुआ है, किन्तु उसमें रासक्रीडाका कोई उल्लेख नहीं है। भागवतके मतसे कार्तिककी पूर्णिमाके दिन रास होती है और ब्रह्मवैवर्त्तपुराणके मतसे मधुमासकी शुक्ला त्रयोदशीको।

पूर्ववर्णित रासलीलाके रहस्यके सम्बन्धमें—गौड़ीय वैष्णव पण्डितगण जो अभिमत प्रकट किया करते हैं, वह नीचे लिखा जाता हैः—

लीलारसमय श्रीकृष्ण भक्तोंके प्रति अनुग्रह दिखलानेके लिए-भक्तोंके चित्त-विनोदके लिए आत्माराम और आत्मकाम हो कर भी विविध लीला करते हैं। उनके मुखकी उक्ति यह है।

"मद्भक्तानां विनोदार्थं करोमि विविधाः क्रियाः।"

(पद्मपुराण)

श्रीरूप गोस्वामीने श्रीकृष्णामृतमें लिखा है—

"प्रकटाप्रकटा चेति लीला सेयं द्विधोच्यते॥"

अर्थात् प्रकट और अप्रकट, इस प्रकार लीलाके दो भेद हैं। श्रीकृष्ण लीलामय रूपसे सर्वत्र क्रीडा कर रहे हैं। वे भक्तोंके प्रति अनुग्रहपूर्वक प्रपञ्चों द्वारा प्रकटित हो कर जो लीला विस्तार करते हैं, उसीका नाम प्रकटलीला है। अप्रकट लीला प्रपञ्चके प्रत्यक्ष-बहिर्भूत है। श्रीकृष्णकी लीला नित्य और अनन्त है। इन अनन्त लीलाओंमें ऋषिगण और प्रेमिक भक्तगण सर्वरसमाधुर्यमयी रासलीलाको ही सार समझते हैं। यहां तक, कि रसिकेन्द्रमौलि स्वयं श्रीकृष्णने भी रासका माहात्म्य कीर्त्तन किया है—

"सन्ति यद्यपि मे प्राज्या लीलास्तास्ता मनोहराः।
नहि जाने स्मृते रासे मनो मे कीदृशं भवेत्॥"

यद्यपि मेरी सैकड़ों मनोहर लीलाएं हैं, किन्तु रासकी बात याद आते ही मुझे नाच आ घेरता है, कि मैं उसे स्वयं नहीं समझा सकता। तोषिणीके टीकाकार श्रीपाद सनातन गोस्वामीने भी श्रीमद्भागवतका रासपञ्चाध्यायके एक श्लोककी व्याख्यामें इस उक्तिका अनुसरण किया है। वह श्लोक यह हैः—

"अनुग्रहाय भक्तानां मानुषं देहमाश्रितः।
भजते तादृशीः क्रीडा याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥"

इस श्लोकके "तत्परो भवेत्" वाक्यकी टीका इस प्रकार की गई हैः—

"तस्मात्तादृशीः क्रीडा भवौ भजते या श्रुत्वापि स्वयमपि तत्परो भवेत् यदा यदा शृणोति तदा तदासक्तो भवति।"

अर्थात् वे ऐसी लीलाएं प्रकट करते हैं, कि जिनकी बात सुनते ही और की तो बात ही क्या, वे स्वयं भी तत्पर हो जाते हैं। इसलिए रासलीला सर्वलीलाओंकी चूडामणि है, यह बात इन वाक्योंसे स्पष्ट हो जाती है।

विष्णुपुराण, ब्रह्मवैवर्त्त पुराण और श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंमें रासलीलाका वर्णन है। श्रीमद्भागवतकी रासलीला ही सर्वत्र सुप्रसिद्ध है। इस महापुराणमें रासलीलाका वर्णन पांच अध्यायोंमें किया गया है। समग्र भारतमें इस रासपञ्चाध्यायका समादर देखनेमें आता है। महाभारतसे जैसे उसका सार श्रीमद्भगवत्‌गीतामें विभिन्न ग्रन्थकारों द्वारा खींचा गया है और वहां

ब्रज-समाजमें प्रचलित और पठित हो रहा है, उसी प्रकार रासपञ्चाध्याय भी प्रचलित है। श्रीपाद सनातन गोस्वामीका कहना है कि मनुष्यके शरीरमें जैसे इन्द्रियां अधिकतर आदरकी वस्तु हैं, उसी प्रकार श्रीमद्भागवत ग्रन्थ-देहमें यह रास-पञ्चाध्याय ही पांच इन्द्रियोंके समान है। हम पञ्चेन्द्रियों द्वारा जैसे जागतिक पदार्थों का प्रत्यक्ष अनुभव करते हैं, उसी प्रकार रास-पञ्चाध्याय रूप अद्भुत पञ्चेन्द्रियों द्वारा श्रीभगवान्‌की परम माधुर्यमयी सर्व चमत्कारिणी रासलीलाका प्रत्यक्ष होता है। श्रीमद्भागवतोक्त रासलीलामें क्या क्या वर्णित हुआ है, इस विषयको श्रीपाद सनातनने एक श्लोक द्वारा कहा है:—

"वंशीध्वनिस्तदनुसरणं राधयान्तर्हितिर्विधा ।
प्रादुर्भावः सान्त्वनमथ प्रश्नोत्तरञ्च ।
नृत्योत्सवः पुनरपि रहःक्रीड़नं वारिलीला
कृष्णारण्ये विहरणमिति श्रीमती रासलीला ॥"

(तोषिणी)

अर्थात्—वंशीध्वनि, श्रीकृष्ण और गोपाङ्गनाओंका कथोपकथन, रमण, श्रीराधाके साथ अन्तर्धानकेलि, श्रीकृष्णका प्रादुर्भाव, गोपियों द्वारा दिए हुए वसन पर उपवेशन, गोपियोंके पूछे हुए प्रश्नका उत्तर दान, नृत्योल्लास, रहःक्रीड़ा, जलकेलि, यमुनाके तपोवनमें वनविहार इन सब विषयोंका वर्णन रासलीलामें किया गया है।

रास किसे कहते हैं? साधारणतः बहु नर्त्तकियोंका नृत्य विशेष ही रास कहलाता है। श्रीधरस्वामीने भी भागवतकी टीकामें यही बात कही है—"रासो नाम बहुनर्त्तकीयुक्ते नृत्यविशेषः।" रासका शास्त्रीय लक्षण यह है—

"नटैर्गृहीतकण्ठीनामन्योन्यात्तकरश्रियाम् ।
नर्त्तकीनां भवेद्रासो मण्डलीभूय नर्त्तनम् ।"

अर्थात्—नटोंने जिनका कण्ठ ग्रहण किया है और जो एक दूसरेका हाथ पकड़ कर कर शोभा विस्तारपूर्वक नृत्य करती हैं, ऐसी नर्त्तकियोंका मण्डलाकार नृत्यका नाम ही रास है।

श्रीपाद बिल्वमङ्गलने रासका जो वर्णन किया है, श्रीपाद गोस्वामीने अपनी तोषिणी टीकामें उस अद्भुत करके उसकी परिस्फुट व्याख्या की है, वह पद्य यह है:—

"अङ्गनामङ्गनामन्तरा माधवो
माधवं माधवं चान्तरेणाङ्गना ।
इत्थमाकल्पिते मण्डले मध्यगः
संजगौ वेणुना देवकीनन्दनः ॥"

अर्थात्—एक एक ब्रजाङ्गनाके अन्तरमें एक एक माधव और एक एक माधवके अन्तरमें एक एक ब्रजाङ्गना, इस प्रकार मण्डलबद्ध हो कर देवकीनन्दन वेणु बजाने लगे।

कृष्णकी प्रियतमायें कवरी और काञ्चीकी ग्रन्थी दृढ़तासे बांध कर पद विन्यास, करचालन, सस्मित भ्रू विलास, देहके मध्यभागको चञ्चल करती हुई नृत्य करने लगीं। इससे कुचपट चञ्चल और गण्डस्थलके कुण्डल दोदुल्यमान होने लगे। छोटे छोटे मोतियोंकी भांति पसीनेकी बूंदें मुखकमलको शोभित करने लगीं। मेघके शरीर पर बिजलीकी रेखाकी भांति गोपीगण शोभाको प्राप्त हुई। यही रासनृत्य है।

श्रीमद्भागवतके अन्यतम टीकाकार श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्तीने लिखा है:—

"नृत्यगीतचुम्बनालिङ्गनादीनां रसानां समूहो रासः तन्मयी या क्रीड़ा सा रासक्रीड़ा।"

इससे मालूम होता है, कि नृत्यगीत, चुम्बन, आलिङ्गन आदि रससमूह ही रास है। केन्दुबिल्वके अमरकवि श्रीजयदेवने रासका जो चित्र दिया है, वह भी इसी प्रकारका है। यथा—

"करतलतालतरलवलयावलित कलित कलस्वनवंशे ।
रासरसे सहनृत्यपरा हरिणा युवती प्रशशंसे ॥
श्लिष्यति कामपि चुम्बति कामपि कामपि रमयति रामाम् ।
पश्यति सस्मित चारुतरामपरामनुगच्छति रामाम् ॥"

यद्यपि इन समस्त वाक्य और पद्यों द्वारा रास शब्द की व्याख्या की गई है, किन्तु जो रासका उत्कर्ष और माहात्म्य सात्त्विक पुराणोंमें मुक्तकण्ठसे उद्घोषित हुआ है, जो रासलीला आत्माराम मुनियों एवं सहस्र सहस्र अमलात्मा परमहंसों की नित्य पाठ्य और नित्य ध्येय है, उसका अर्थ केवल नृत्य विशेषमें ही पर्यवसित होनेसे साधारणका विश्वास जाता है एक प्रकार सन्देहका उद्रेक

होता है। इस प्रकार नृत्यकी इतनी महिमा क्यों गाई गई? और उस महिमामें आकृष्ट हो कर गृहत्यागी उदासी संन्यासी तक रासलीला सुननेके लिए इतने व्यग्र क्यों होते हैं तथा उसे परम साध्य क्यों समझते हैं? इससे तो यही मालूम होता है कि यह नृत्य ऐसा वैसा नृत्य नहीं है। जिस नृत्यके मधुर स्पन्दनसे यह विशाल विश्वब्रह्माण्ड माधुर्य तरंगोंसे संकीर्तित हो रहा है, नील आकाशमें चन्द्रमा हंस रहा है, वसन्तके कुसुमकाननमें सुषमाकी केलिनिकेतन कुसुमकलिकाएं प्रस्फुटित हो रही हैं, वायु मधुर वहन कर रही है, सिन्धुसमूह मधु क्षरण कर रहा है, औषधिवर्ग मधु प्रदान कर रहा है, दिवस और रजनी मधुमय अनुमित हो रही हैं, आकाश मधुमय मालूम हो रहा है,—रास-नृत्य ऐसा नृत्य है—उस प्रेमरसमयका नृत्य है—आनन्द-चिन्मय रससे प्रतिभावित अपनी आनन्द-शक्ति-स्वरूपिणियोंके साथ प्रेमरसानन्दघन श्रीकृष्णका नृत्य है। इसीसे श्रीपाद सनातन गोस्वामीने 'रासोत्सव" शब्द-की व्याख्यामें रास शब्दकी जो व्याख्या की है, इस प्रकार है—

'रासः—परमरसकदम्बमयो व्यापारविशेषः।'

दूसरे स्थान पर लिखा हैः—

"रासः—प्रेमरसपरिपाकविलासविशेषात्मकः क्रीडाविशेषः।'

शास्त्रोंमें अनेक स्थलों पर अनेक प्रकारसे रस शब्दकी व्याख्या देखनेमें आती है। पदार्थविज्ञान, वैद्यकशास्त्र, साहित्य और धर्मशास्त्रमें सर्वत्र ही इस शब्दका बहुल प्रयोग पाया जाता है। धर्मशास्त्रमें निहित रस शब्दके वाच्यपदार्थकी व्याख्या होनेसे अन्यान्य सभी शास्त्रोंके रस शब्दकी व्याख्या व्यञ्जित हो जाती है। व्याकरण कहता है—"रस्यते आस्वाद्यते इति रसः।" इस प्रकार व्युत्पादन आस्वादन अर्थका द्योतक है। कटु, अम्ल, मधुर आदि षट्रस इसके वाच्य हैं। व्याकरण और भी एक प्रकारसे रस शब्दकी व्युत्पादन करता है—"रसतीति रसः।" अर्थात् ये रसयुक्त करते हैं, इस अर्थमें रस।

भक्तिरसामृतसिंधुमें रतिरसादिका विचार किया गया है। उसमें शृङ्गार वा उज्ज्वल रसका श्रेष्ठतमता कीर्त्तित हुई है। इस उज्ज्वल रसको ही श्रीपाद सनातनने परमरस कहा है। यह उज्ज्वल रसमय व्यापार-विशेष ही रास है। शृंगाररस वा उज्ज्वलरस अप्राकृत है, यह जडजगत्‌में, ज्ञानमय जगत्‌में वा विज्ञानमय जगत्‌में असम्भव है। साक्षात् चिन्मयतत्त्वमें भी उज्ज्वलरसका लेशाभास देखनेमें नहीं आता। मधुर भजनमें जो भक्त सिद्ध हो गये हैं, उन्हींके चित्तमें इस परमरसकी स्फूर्त्ति होती है। इसलिए भगवान्‌को रासलीलामें उन्हें ही माधुर्यका स्वाद मिलता है। अत-एव प्रेमरस परिपाकमें प्रेमरसमय श्रीभगवान् अपनी ह्लादिनी शक्ति स्वरूपिणी आनन्द चिन्मयरस-प्रतिभविता अपनी प्रतिविम्ब स्थानीया गोपियोंके साथ विलास-विशेषात्मक जो क्रीडाविशेष प्रकट करते हैं, उसीका नाम रास है। श्रीभागवतीय रासपञ्चाध्यायके एक पद्यकी टीकामें श्रीपाद सनातनने उक्त प्रकारकी व्याख्या की है। वह पद्य यहां दिया जाता है—

"रेमे रमेशो व्रजसुन्दरीभि-
र्यथार्भकः स्व प्रतिविम्बविभ्रमः॥"

शिशुगण जिस प्रकार अपने प्रतिविम्बके साथ खेला करते हैं, रमेश और व्रजसुन्दरियोंने भी उसी प्रकार रमण किया था। उक्त पद्यकी टीकामें सनातन गोस्वामी-ने लिखा हैः—

"असौ प्रेमवशतास्वभावेनतन्मयक्रीडासक्तः सन् स्वरूपशक्तित्वेन स्वप्रतिमूर्त्तित्वात् प्रतिविम्बस्थानीयाभि-स्ताभिः सह रेमे।"

अर्थात्—लीलारसमय श्रीकृष्ण स्वभावतः ही प्रेमवश हैं, इसलिए वे सर्वदा ही प्रेमक्रीडामें अनुरक्त रहते हैं। वे प्रेमभावसे अपना स्वरूपशक्ति द्वारा अपनी प्रतिमूर्त्ति-से उद्गत प्रतिविम्बस्थानीया व्रजसुन्दरियोंके साथ रमण करते हैं।

इसीसे समझा जाता है, कि रास शब्दका गूढ़मर्म प्राकृत जगत्-में व्याख्यात होनेका नहीं—यह इस जगत्-की क्रीड़ा नहीं—इस जगत्‌का भाव्य भी नहीं, वह तो आनन्दमय जगत्‌की ही प्रेमानन्दमय अतिचमत्कार क्रीडा-विशेष है। यदि ऐसा न होता, तो क्या आत्मा-

गण मुनिगण रासलीला श्रवण करनेके लिए उत्कण्ठित होते।

रास शब्दका और भी एक निगूढ़ मर्म है। शास्त्रज्ञों-से छिपा नहीं है, कि रसश्रुति नामक कई एक श्रुतियां हैं। रस ही परब्रह्म है, यही उन श्रुतियों का अभिप्राय है।*

पूर्णब्रह्म सनातन रसस्वरूप हैं, वे पूर्णब्रह्म सनातन स्वयं श्रीकृष्ण हैं। श्रीकृष्ण ही अखिल रसामृतमूर्त्ति हैं। इस रसराज रसिकशेखर रसपरब्रह्मकी प्राप्ति के लिए चिदानन्दरसमयी जो क्रीड़ाविशेष है, वही रास है। इसलिए रास नारायणके नाभिसे उत्पन्न ब्रह्माके लिए भी दुर्लभ है, यहां तक, कि रास-रस-रसिकेन्द्र मौलिकके हृदयमें नित्य विहार करनेवाली साक्षात् लक्ष्मी भी रासकी अधिकारिणी नहीं हैं। इसीसे इस बातका आभास पाया जाता है, कि रासलीला किस उच्चतम तत्त्वमें प्रतिष्ठित है। इसीलिए सूक्ष्मदर्शी भक्तप्रवर श्रीमागवत व्याख्याता श्रीविश्वनाथ चक्रवर्त्तीने लिखा है—

"शास्त्रयुक्तिविचारैरपिदुर्ग्गमनीक्षते।
गोपीनां रासलीलेऽस्य वेद्यमनुगतार्थिना।"

अर्थात्—रास आत्मवृत्तिमयरस प्रतिमाविता गोपियोंके लिए रसावर्त्त है, उनको समस्त प्रकार अनुभवियों के सिवा शास्त्रयुक्ति और विवेकादि द्वारा रासका मर्म अन्य कुछ भी नहीं समझा जा सकता।

रासयात्राविधान।

कार्त्तिकी पूर्णिमाके दिन इसका अनुष्ठान किया जाता है। पूर्णिमाके एक दिन पहले हविष्यान्न भोजन करना चाहिए, बादमें पूर्णिमाके दिन रात्रिको कल्पवृक्षका

* योगी याज्ञवल्क्य कहते हैं:—
"पूर्णोऽभिवृध्याश्च रसरूपस्य विष्णुवि।"
श्रीभगवान् गीतामें कहते हैं:—
"रसोऽहमप्सु कौन्तेय।"
एक नित्य श्रुति और भी कहती है—
"रसो वै सः रस ह्येवायं लब्ध्वानन्दी भवति।"

निर्म्माण कर उत्तर मुख हो बैठ कर दो बार आचमन करना चाहिए। पश्चात् स्वस्तिवाचन करके "सूर्य्यं सोमो" इत्यादि मन्त्र पढ़नेके बाद संकल्प करना चाहिए। यथा—"विष्णुरोम् तत्सदद्य अमुके मासि शुक्ले पक्षे पौर्णमास्यां तिथौ विष्णुलोकाधिकरणकफल सहितामोदमानत्वकामः श्रीराधाकृष्णपूजारासोत्सवकर्माहं करिष्ये।" पश्चात् संकल्पसूक्त पढ़ कर सामान्यार्घ, आसन-शुद्धि और भूत शुद्धि तथा न्यासादिन्यास करना चाहिए।

अनन्तर गणेशादि देवताओंकी पूजा करके मूल पूजा आरम्भ करनी चाहिए। कूर्म्ममुद्रा द्वारा पुष्प ग्रहण करके श्रीकृष्णका ध्यान करना चाहिए। ध्यान करनेके बाद मानसोपचारसे पूजा, उसके बाद शङ्खसे विशेषार्घ संस्थापन करके पीठपूजा करनी चाहिए।

पीठ-देवता इस प्रकार हैं:—आधारशक्ति, प्रकृति, कूर्म्म, अनन्त, पृथिवी, क्षीरसमुद्र, श्वेतद्वीप, मणिमण्डप, कल्पवृक्ष, मणिवेदिका, रत्नसिंहासन, धर्म्म, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य्य, अधर्म्म, अज्ञान, अवैराग्य, अनैश्वर्य्य, अनन्त, पद्म, अं सूर्य्यमण्डल द्वादशकलात्मने, उं सोममण्डल षोडशकलात्मने, मं वह्निमण्डल दशकलात्मने, सं सत्त्व, रं रजस्, तं तमस, आं आत्मने, पं परमात्मने, ह्रीं ज्ञानात्मने, विमला, उत्कर्षिणी, ज्ञाना, क्रिया, योगा, सत्या ईशाना, अनुग्रहा। इन शब्दोंके आदिमें 'ऊ' और अन्तमें 'नमः' शब्द तथा शब्दोंमें चतुर्थी विभक्ति जोड़ कर पूजा करना चाहिए; जैसे—"ॐ आधारशक्तये नमः" इत्यादि। पश्चात् "ॐ भगवते विष्णवे सर्व भूतात्मने वासुदेवाय सर्वात्मने संयोगयोगपद्मपीठात्मने नमः" पढ़ कर पूजा की जाती है। पुनः ध्यान करके आवाहन मन्त्र पढ़ कर आवाहनी इत्यादि ६ मुद्राएं दिखानी चाहिए।

अनन्तर कृताञ्जलि हो कर कहना चाहिए कि "आवरण ते पूजयामि" इस प्रकार अनुज्ञा ग्रहण करके आवरण देवताओंकी पूजा करनी चाहिए। यथा—वेणु, कौस्तुभ, वनमाला, मकरकुण्डल, श्रीकृष्ण, वासुदेव, नारायण, देवकीनन्दन, यदुश्रेष्ठ, वामन, राघव, मधुसूदन, नारदादि और धर्मसंस्थापक। इन सब आवरण देवताओंको "प्रणवादि नमोऽन्त" मन्त्र द्वारा पूजा को

जाती है। उसके बाद श्रीमती राधिकाका ध्यान करके उनकी पूजा करनी चाहिए।

पश्चात् मानसोपचारसे पूजा और शङ्खसे अर्घ्या स्थापनादि करके पुनः ध्यान करो। फिर यथाविधान आवाहनादि करके षोडशोपचारसे पूजा करो। पूजाका मन्त्रः—"ॐ ह्रीं राधिकायै नमः।" राधिका-पूजाके षोडशोपचारके अलग अलग सोलह मंत्र हैं।

इसके बाद प्रणव द्वारा पुष्पाञ्जलि दे कर अष्टसखियों-की पूजा करनी चाहिए। आठ सखियां ये हैं— १ माला-वती, २ रूपमाधवी, ३ रत्नमाला, ४ सुशीला, ५ शशि-कला, ६ पारिजाता, ७ पद्मावती और ८ सुन्दरी। इन अष्ट सखियोंकी पूजा करनेके बाद स्तवपाठ और होम करना चाहिए।

अनन्तर उस कल्पवृक्षके स्थान पर कृष्णकी प्रतिमा और राधाकी प्रतिमा स्थापन करके श्रीमद्भागवतोक्त रासपञ्चाध्यायका पाठ करना चाहिए।

पश्चात् दक्षिणाके बाद अच्छिद्रावधारण करके नाना प्रकारका उत्सवोंमें रात्रि व्यतीत करनी चाहिए। इन सब उत्सवोंमें भगवान श्रीकृष्णने जो लीलाएं की थीं, उन्हींका अनुष्ठान होना चाहिये।

रास (अ० स्त्री०) घोड़ेको लगाम, बागडोर।

रास (हिं० स्त्री०) १ ढेर, समूह। २ ज्योतिषकी राशि। राशि देखो। ३ जोड़। ४ गोद, दत्तक। ५ चौपायोंका झुंड। ६ एक छन्दका नाम जिसके प्रत्येक चरणमें ८+८+६ के विरामसे २२ मात्राएं और अन्तमें सगण होता है। ७ एक प्रकारका धान जो अगहनमें तैयार होता है। इसका चावल सैकड़ों वर्षों तक रखा जा सकता है। ८ सूद, ब्याज। ९ अनुकूल, मुआफिक।

रासक (सं० पु०) हास्यरसोद्दीपक एक प्रकारका नाटक। यह नाटक एक अंकमें सम्पूर्ण होगा। इसके अभिनेता पांच व्यक्ति होंगे। यह नाना प्रकारकी भाषा तथा भारती और कैशिकी रीतिसे वर्णित होगा। इसमें सूत्रधारकी आवश्यकता नहीं पड़ेगी। यह नाटक वीथि, अङ्ग और कलायुक्त होगा। नान्दी शिष्टार्थ युक्त, नायिका विख्यात तथा नायक मूर्ख होंगे। किसी किसीका कहना है, कि इसके प्रति मुखमें सन्धि रहेगी। 'मेनकाहित' नामसे एक संस्कृत रासकका नाम साहित्यदर्पणमें आया है। (साहित्यद० ६।५४८) नाटक शब्द देखो।

रासचक्र (सं० पु०) राशिचक्र देखो।

रासताल (सं० पु०) १३ मात्राओंका एक ताल जिसमें ८ आघात और ५ खाली होती हैं।

रासधारी (सं० पु०) वह व्यक्ति या समाज जो श्री-कृष्णकी रासक्रीड़ा अथवा अन्य लीलाओंका अभिनय करता है। ये लोग एक प्रकारके व्यवसायी होते हैं जो घूम घूम कर इस प्रकारके अभिनय करते हैं। इनके नाटकमें गीत, वाद्य, नृत्य और अभिनय आदि सभी होते हैं।

रासन—युक्त प्रदेशके बान्दा जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यह एक गण्डशैलके पादमूलमें अवस्थित है। पर्वतकी तराईमें एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष दिखाई पड़ता है। इस दुर्गके बीच एक पुराना मन्दिर पड़ा हुआ है। अभी इसमें लिङ्गमूर्त्ति नहीं है इसलिये कोई यहां पूजा करने नहीं आते। इसकी गठन और प्राचीन शिल्पादि प्रशंसाके योग्य है। गांवके चारों तरफ बड़े बड़े स्तूप इधर उधर पड़े हैं। स्थानीय लोग कहते हैं, कि यहां प्राचीन राजवंशी नगर विद्यमान था।

१५वीं सदीमें बल्लभदेव जीव नामक एक राजवंशी-राजने दिल्लीश्वरके सेनादलके साथ लड़ाई की थी। युद्धमें जब राजा हार गये, तब पठानोंने नगर लूटा और घरों में आग फूंक दी जिससे समूचा गांव छार-खार हो गया। इसके बाद रामकृष्ण नामक एक व्यक्तिने प्राचीन राजवंशी दुर्ग और नगरके पास रासन गांव बसाया। सम्राट् अकबर शाहके समय यह स्थान एक परगनेका सदर गिना जाता था।

रासन (सं० त्रि०) १ स्वादिष्ट, जायकेदार। (पु०) २ आस्वा-दन, स्वाद लेना।

रासनशीन (फा० वि०) गोद बैठाया हुआ, दत्तक।

रासना (सं० पु०) रास्ना नामको लता जिसका व्यवहार ओषधिके रूपमें होता है। रास्ना देखो।

रासनृत्य (सं० पु०) गतिके अनुसार नृत्यका एक भेद।

रासपूर्णिमा (सं० स्त्री०) मार्गशीर्षकी पूर्णिमा। इस दिन श्रीकृष्णने रासक्रीड़ा आरम्भ की थी।

रासभ (सं॰ पु॰) रासते शब्दायते इति रास-(रासिवासिभ्यां अभच्। उण् ३।१२५) इति अभच्। १ गर्दभ, गधा। मार्कण्डेयपुराणमें लिखा है, कि ब्रह्माके दोनों पार्श्वसे इसकी उत्पत्ति हुई है।

"पद्भ्यामश्वान् समातङ्गान् रासभान् शशकान् मृगान्।
उष्ट्रानश्वतरांश्चैव नानारूपाश्च जातयः॥"

(मार्क पु॰ ४८।३९)

२ अश्वतर, खच्चर। (भारत ११४५।१७) ३ एक दैत्य जिसे बलदेवने तालवनमें बलपूर्वक मारा था। यह गर्दभके रूपमें हो रहा करता था।

रासभधूसर (सं॰ त्रि॰) गधेके समान रंगवाला।

रासभवल्लिनी (सं॰ स्त्री॰) श्वेतकण्टकारी जूही फूल।

रासभसेन (सं॰ पु॰) एक राजाका नाम।

रासभावर्ण (सं॰ त्रि॰) गधेके समान भस्मवर्ण या लाल।

रासभी (सं॰ स्त्री॰) रासभ स्त्रियां ङीप्। गर्दभी, गधी।

रासभूमि (सं॰ स्त्री॰) वह स्थान जहां रासक्रीड़ा होती है, रास करनेका स्थान।

रासमण्डल (सं॰ क्ली॰) रासस्य मण्डलं। १ श्रीकृष्णके रासक्रीड़ा करनेका स्थान। २ रासक्रीड़ा करनेवालोंका समूह या मंडली रास करनेवालोंका वृत्ताकार समूह। ३ रासधारियोंका समाज। ४ रासधारियों का अभिनय।

रासमण्डली (सं॰ स्त्री॰) रासधारियोंका समाज या टोली।

रासयात्रा (सं॰ स्त्री॰) रासस्य यात्रा उत्सवः। १ पुराणानुसार एक प्रकारका उत्सव जो कार्त्तिकी पूर्णिमाको होता है। कार्त्तिकी पूर्णिमामें श्रीकृष्णने रासक्रीड़ा की थी इसलिए इस तिथिमें उसके उपलक्ष्यमें उत्सव करना होता है। रास देखो।

शक्ति-विषयमें रासयात्राका विधान देखनेमें आता है। चैत्र-पौर्णमासीमें परमात्मस्वरूपिणि-देवीका रासयात्रोत्सव करनेका विधि है।

रासमण्डल तैयार कर भैरवी भैरवको एक साथ पूजा तथा अर्घ्य प्रदान कर कुम्हारके चाकका तरह घुमाना होगा। इस समय नाना प्रकारके बाजे बजा कर उत्सव करना होता है। (रुद्रयामलतन्त्र ४४ पटल)

२ शाक्तोंका एक उत्सव जो शक्तिके उद्देश्यसे चैत्रकी पूर्णिमाको होता है।

रासलीला (सं॰ स्त्री॰) १ वह क्रीड़ा या नृत्य जो कृष्णने गोपियोंके साथ ले कर शरत् पूर्णिमाकी आधी रातके समय किया था। २ रासधारियों का कृष्णलीला सम्बन्धी अभिनय।

रासविलास (सं॰ पु॰) रासक्रीड़ा।

रासविहारी (सं॰ पु॰) श्रीकृष्णचन्द्र।

रासायन (सं॰ त्रि॰) रसायनसम्बन्धी, रसायनका।

रसायन देखो।

रासायनिक (सं॰ त्रि॰) १ रसायन शास्त्रसम्बन्धी। २ रसायनशास्त्रका ज्ञाता।

रासायनिकशाला (सं॰ स्त्री॰) वह स्थान जहां रसायन शास्त्र सम्बन्धी परीक्षाएं या प्रयोग होते हो।

रासि (सं॰ स्त्री॰) राशि देखो।

रासी (हिं॰ स्त्री॰) १ तासरी बार खींची हुई शराब जो सबसे निकृष्ट समझी जाती है। २ सखी। (वि॰) ३ नकली या खराब।

रासु नृसिंह—दो बंगाली कवीश्वर। ये दोनों भाई एक साथ मिल कर कविता गान या कर एक नामसे प्रसिद्ध हुए थे। फरासडांगाके अन्तर्गत गोन्दलपाड़ामें ये रहते थे।

रासरस (सं॰ पु॰) रासे क्रीड़ाविशेषे यो रसः अलुक् समासः। १गोष्ठी। २ रासक्रीड़ा। ३ शृङ्गार। ४ रस सिद्धि। ५ पद्योच्चारणका। ६ रसाभास। ७ उत्सव। ८ परिहास, हंसी मजाक।

रासेश्वरी (सं॰ स्त्री॰) रासस्य ईश्वरी। राधा।

(ब्रह्मवैवर्तपु॰ श्रीकृष्णजन्मख॰ १७ अ॰)

रासो (हिं॰ पु॰) किसी राजाका पद्यमय जीवन-चरित्र, विशेषतः वह जीवन-चरित्र जिसमें उसके युद्धों और वीरता आदिका वर्णन हो।

रास्त (फा॰ वि॰) १ सीधा सरल। २ अनुकूल, मुआफिक। ३ सच्चा, दुरुस्त। ४ उचित वाजिब।

रास्तगो (फा॰ वि॰) सच बोलनेवाला सत्यवक्ता।

रास्तबाज (फा॰ वि॰) सच्चा, निष्कपट।

रास्तबाजी (फा॰ स्त्री॰) सचाई, सत्यता।

रास्ता (फा० पु०) १ मार्ग, राह। २ उपाय, तरकीब। ३ प्रथा, रीति।

रास्ना (सं० स्त्री०) रस्यते इति रस आस्वादने (रास्ना-सास्ना स्थूणा-वीणा। उण् ३।१५) इति नप्रत्ययेन साधुः। १ स्वनामाख्यात लताविशेष। पर्याय—नाकुली, सुरसा, सुगन्धा, गन्धनाकुली, नकुलेष्टा, भुजङ्गाक्षी, छत्राको, सुवहा, रस्या, श्रेयसी, रसना, रसा, सुगन्धा, मूला, रसाढ्या, अतिरसा, द्रोणगन्धिका, सर्पगन्धा, सर्पाक्षी, पलङ्कषा। (जटाधर)

इसके देशी नाम हिन्दी—सरहाती, बंगला—गन्धनाकुली, रास्ना, तामिल—किरि-पुरन्दर, तेलगू—चेट्ट, यवद्वीप—याजो उलार, सिंगापुर—दाल रादिया, वेरिया, मेएिड। यह लता आसामप्रदेशके दो हजार फुट ऊंचे स्थानमें, खसियाशैल, सिंहल, यवद्वीप, सुमात्रा तथा अण्डामान और निकोबर द्वीपमें बहुतायतसे उगती है।

इसका गुण गुरु, तिक्त, उष्ण, विष, वात, अस्रदोष, कास, शोथ, कम्प, श्लेष्मनाशक तथा पाचन माना गया है। राजनिर्घण्टके अनुसार रास्ना तीन प्रकारकी है, मूल, पत्र और तृण। उनमेंसे मूल और पत्र श्रेष्ठ और तृण रास्ना मध्यम समझी गई है। (राजनि०)

राजवल्लभके मतसे रास्ना शोथ, आम और वातनाशक तथा भावप्रकाशके मतसे सर्प, लूता, वृश्चिक और विष, ज्वर, कृमि और व्रणनाशक समझी गई है।

औषधविशेष, पलापर्णी नामकी औषधि। पर्याय—पलापर्णी, सुवहा, युक्तरसा। इसका गुण तिक्त, गुरु, उष्ण, कफ और वातनाशक, शोथ, श्वास, वायु, अस्रदोष, वात, शूल, उदर, कास और ज्वरादिनाशक माना गया है। (भावप्र०) ३ रसना, जीभ। ४ रुद्रपत्नियोंमेंसे एक। (अथर्ववेद १।१६।१३)

रास्नाका (सं० स्त्री०) छोटी वन्धनी।

रास्नागुग्गुलु (सं० स्त्री०) वातव्याधि रोगकी एक औषध। इसके बनानेका तरीका—रास्ना ८ तोला तथा गुगुल १० तोला, इनको एक साथ पीस कर घीसे गोली बनानी होती है। इसका सेवन करनेसे वातव्याधि रोगाधिकारमें गृध्रसी नामक रोग बहुत जल्द प्रशमित होता है। (भावप्र० वातव्याधिरोगाधिकार)

रास्नातैल (सं० क्ली०) तैलौषधभेद। (चरकचि० २८ अ०)

रास्नादशमूल (सं० क्ली०) वातव्याधि रोगाधिकारमें कषाय औषधविशेष। इसके बनानेका तरीका—रास्ना, सोंठ, वायविडंग, रेंडीकी जड़, त्रिफला, दशमूल तथा काला अनंतमूल, इस सबोंको एकत्र कर काढ़ा बनावे। इसका सेवन करनेसे वातरोग, शिरोरोग तथा ऊरुस्तम्भ आदि वातव्याधि दूर होती है। (भावप्र० वातव्याधिरोगाधि०)

रास्नादिक्काथ (सं० पु०) क्वाथौषधविशेष। यह दो प्रकारका होता है—मध्यम रास्नादिक्काथ तथा महारास्नादिक्काथ।

मध्यमरास्नादिक्काथ।

इसकी प्रस्तुत प्रणाली—रास्ना, रेंडीकी जड़, शतमूली, भिंटी, दुरालभा, अडूस, गुलंच, देवदारु, अतिविषा, हरीतकी, शठी, नागरमोथा, सोंठ, इन सबोंको मिला कर २ तोला, आध सेर पानीमें सिद्ध कर जब आध पाव पानी बच जाय, तो उतार ले और रेंड़ीके तेलके साथ पीवे। इससे आमवात, वातवेदना, कमर तथा पीठ और जांघकी वेदना जाती रहती है।

महारास्नादिक्काथ।

इसके बनानेका तरीका—रास्ना, रेंडीकी जड़, अडूस, दुरालभा, शठी, देवदारु, नागरमोथा, सोंठ, अतिविषा, हरीतकी, गोखरू, मौरी, धनिया, पुनर्णवा, अश्वगन्धा, गुलंच, पिप्पली, वृद्धदारक, शतमूली, वच, भिंएटी, चव्य, वृहती, कंटकारी, इन सबोंका प्रत्येक सम भाग, रास्ना दो गुना, यह काढ़ा आठ भाग कर दोष और रोगके अनुसार सोंठचूर्ण, वावलादिचूर्ण मिला कर पान करे। इससे सब तरहका वातरोग, आनाह, शरीरका कांपना, पक्षाघात आदि समस्त वातरोग अतिशीघ्र छूटते हैं। इसके अतिरिक्त योनिव्यापत, शुक्रदोष, पुरुषोंका मेढ़गतदोष और स्त्रियोंका वन्ध्यादोष दूर होता है। इसके सेवनसे स्त्रियोंका रजोदोष शान्त होता और वे गर्भ धारण करती हैं। राजर्षि प्रजापति इस औषधके आविष्कर्त्ता हैं। (भावप्र० वातव्याधिरोगाधि०)

रास्नादिलौह (सं० क्ली०) राजयक्ष्मरोगाधिकारमें औषधविशेष। इसकी प्रस्तुत प्रणाली—रास्ना, अश्वगन्धा, कपूर, मेकपर्णी, शिलाजतु, सोंठ, पीपल, मिर्च, हरीतकी, आमलकी, बहेड़ा, चिता, मुता, विड़ंग, इन सबोंका बराबर

बराबर भाग ले कर थोड़ा लोहा मिला कर यह औषध बनाना पड़ता है। इसका सेवन करनेसे उपद्रवी यक्ष्मा, कास, स्वरभङ्ग, श्रम, क्षय आदि बहुत जल्द विदूरित होते हैं। (रसेन्द्रसार० राजयक्ष्मारोगाधि०)

रास्नापञ्चक (सं० पु०) क्वाथौषधभेद। बनानेका तरीका—रास्ना, गुरुच, रेड़ीका मूल देवदारु और सोंठ, सबों को मिला कर २ तोला आध सेर पानीमें सिद्ध करके जब आध पाव पानी बच रहे तो उतार लेना होता है। इस काढ़ेका सेवन करनेसे समूचे शरीरका आमवात दूर होता है। (भावप्र० वातव्याधिरोगाधि०)

रास्नाव (सं० त्रि०) १ वेष्टित घेरा हुआ। २ बन्धनयुक्त। (क्ली०) ३ बन्धन।

रास्नासप्तक (सं० पु०) क्वाथौषधभेद। प्रस्तुत प्रणाली—रास्ना गुरुच देवदारु, गोखरू, रेड़ीकी जड़ और पुनर्णवा, इसके काढ़ेमें सोंठकी बुकनी डाल कर पीनेसे जङ्घा, ऊरु, पार्श्व, त्रिक और पृष्ठशूल नष्ट होते हैं। (भावप्र० वातव्याधिरोगाधि०)

रास्निका (सं० स्त्री०) रास्ना।

रास्य (सं० क्ली०) १ प्राचीनकालका एक पात्र जिसमें यज्ञके समय घी रख कर दान किया जाता था। २ खाद. पलाशकी लकड़ीका बना हुआ एक अर्द्ध चन्द्राकार यज्ञ पात्र।

रास्मिन (सं० त्रि०) तारस्वरमें मन्त्र साधारण प्रयोग करनेवाला।

रास्पिर (सं० त्रि०) होमाग्निमें हविर्दानार्थ जुहूधारी।

रास्य (सं० त्रि०) १ रासके योग्य। (पु०) २ श्रीकृष्ण।

राह (सं० पु०) राहु देखो।

राह (फा० स्त्री) १ मार्ग, पथ। २ नियम, कायदा। ३ प्रथा, रीति। ४ कोल्हूकी नाली। ५ रोहू मछली।

राहखर्च (फा० पु०) कहीं जानेके समय रास्तेमें होनेवाला खर्च, मार्गव्यय।

राहगीर (फा० पु०) मार्ग चलनेवाला, मुसाफिर।

राहचलता (हिं० पु०) १ रास्ता चलनेवाला, पथिक। २ कोई साधारण या तीसरा मनुष्य जिसका प्रस्तुत विषयसे कोई सम्बन्ध न हो, अजनबी।

राहचौरंगी (हिं० पु०) चौमुहाना।

राहजन (फा० पु०) डाकू, लुटेरा।

राहजनी (फा० स्त्री०) डकैती, लूट।

राहड़ी (हिं० पु०) एक प्रकारका घटिया कंबल।

राहत (अ० स्त्री०) आराम, सुख।

राहदारी (फा० स्त्री०) १ राह पर चलनेका महसूल, सड़कका कर। २ चुंगी, महसूल।

राहरीति (सं० स्त्री०) १ राह-रस्म, चाल-ढंग। २ जान पहचान, परिचय।

राहा (हिं० पु०) मिट्टीका वह चपूतरा जिस पर कड़ीके नीचेका पाट जमाया रहता है।

राहित्य (सं० क्ली०) मुक्त, विमुक्त।

राहिल (अ० पु०) रोहन रखनेवाला व धरू रखनेवाला।

राही (फा० पु०) राहगीर, मुसाफिर।

राहु (सं० पु०) रह-त्यागे बहुलवचनात् उण्। १ त्याग। रहति परित्यज्य स्वस्थति चन्द्रमिति रह उण् (उण् १।१) २ ग्रहविशेष, राहुग्रह। पर्याय—तम, स्वर्भानु, सैंहिकेय, विधुन्तुद, अभ्रपिशाच, ग्रहकल्लोल, सैंहिक, उपप्लव, शीर्षक, उपराग, सिंहिकासुनु, कृष्णवर्ण, कबन्ध, अगु, असुर।

विप्रचित्तिके औरस और सिंहिकाके गर्भसे राहुका जन्म हुआ है। सिंहिकाके चौदह पुत्रोंमेंसे राहु सबसे बड़ा, बलिष्ठ और चन्द्र सूर्यको प्रमर्दन करनेवाला है।

"सिंहिकायामथोत्पन्ना विप्रचित्तेः सुतास्तु ये।
कन्या कम्पनकाधम्य व्यभ्रराजस्तथैव च ॥
राहुर्ज्येष्ठस्तु तेषां वै चन्द्रसूर्यप्रमर्दनः ।
इत्येते सिंहिकापुत्रा देवैरपि दुरासदाः ॥"

(भविष्यपु० प्रजासृष्टिनामक पञ्चमोध्याय)

श्रीमद्भागवतमें लिखा है,—

राहु देवसमाजमें छिप कर अमृत पान करता था। चन्द्र और सूर्यने यह देख लिया और विष्णुको खबर दी। भगवान् विष्णुने सुदर्शनचक्र द्वारा उसका मस्तक काट डाला। पीछे अमृत शरीरसे रक्षित हो कर गिरनेसे यह मस्तक अमर हुआ था। चन्द्र और सूर्यने विष्णुसे कह दिया था, इस कारण राहु उन्हें ग्रास करता है।

(भागवत ८।९ अ०)

पुराणमें लिखा है,—राहु आ कर चन्द्रमाको ग्रास करता इससे ग्रहण लगता है। यह राहु स्कन्धच्युत दैत्यके शिररूपमें कल्पित है। इस पौराणिक उपाख्यान के साथ वर्त्तमान वैज्ञानिकतत्त्वका समावेश करनेसे स्पष्ट ही जाना जाता है, कि पुराणज्ञ ऋषियों और आर्य ज्योतिर्विदोंने राहुके सम्बन्धमें जो अभिव्यक्ति प्रकाश की है, उसे किसी मतसे ही विज्ञानभित्तिने उलङ्घन नहीं किया है। हम लोग जिसको राहु और केतु कहते हैं, पत्रिका-में वह राक्षसमुख और फणधर सर्परूपमें चित्रित है। पाश्चात्य वैज्ञानिकोंने उसीको Nodes कह कर उल्लेख किया है। Nodes शब्दका अर्थ ग्रन्थि है।

जिस विन्दुमें ग्रहों या धूमकेतुओंकी कक्षा (Orbit) सूर्यकक्षा (Ecliptic)-को अतिक्रम करती हुई जाती है, अर्थात् और भी गूढ अर्थ लगानेसे जहां किसी प्रधान ग्रहकक्षाके ऊपर उसकी उपग्रह कक्षा काटती है, उसे Node कहते हैं।

जब कोई ग्रह उत्तराभिमुख गति हो कर इस प्रकार ग्रन्थिपात करता है, उसे Ascending node या Dragon's head कहते हैं तथा पाश्चात्य ज्योतिर्विद्गण ☊ इस प्रकारके सांकेतिक चिह्नसे वह प्रकाश किया करते हैं। सुतरां हम लोगोंके राहु और पाश्चात्य वैज्ञानिकके Ascending node जो एक है, वह चित्र और विवृतिसे प्रमाणित होता है। फिर जब कोई ग्रह दक्षिणकी ओर मुंह करके चलता है, तो वह Descending node Dragon's tail कहलाता है। वह ☋ इस प्रकार सांकेतिक चिह्न द्वारा प्रकाश किया जाता है। इसलिये वह सर्पाकृति केतुचिह्नके साथ उतना असामञ्जस्य बोधक नहीं है।

प्रत्येक ग्रह ही एक समय सूर्यकक्षाको द्वादश राशिके बीच आवर्त्तनकालमें राहु और केतुका पातसम्बन्धीय संयोग बतलाता है तथा समूचे खवृत्तके चारों तरफ एक बार आवर्त्तन करता है। सौरजगत्‌का ग्रह उपग्रह आदि विभिन्न स्थानोंमें रहता है इसलिये राहु और केतुके विशेष वैपरीत्यका एकमात्र कारण है।

सूर्यकक्षा या दूसरी ग्रहकक्षाके साथ दूसरे किसी ग्रह या उपग्रह कक्षाका पतन होनेसे निर्दिष्ट ग्रन्थिस्थान में जब उद्दिष्ट ग्रह उसी संयोगविन्दु पर आ कर उपस्थित होता है, तब उसके समसूत्रसे दूर देशमें अवस्थित दूसरे ग्रहमें छाया पड़नेसे ग्रहण लगता है।

ग्रहण शब्दमें सूर्य, चन्द्र तथा उपग्रहविशिष्ट वृहस्पति आदि ग्रहों और ग्रहणका विवरण लिखा है। यह सूर्य और चन्द्रमाका ग्रहण यन्त्रवेध द्वारा जान लिया जाता है। ग्रहण देखो।

ग्रहयोगतत्त्वमें लिखा है, कि—राहु मलयपर्वतजात, शूद्रवर्ण, बारह अंगुल परिमाण, काला वस्त्र पहना हुआ, सिंहवाहन, चतुर्भुज, खड्ग,शूल और चर्मधारी, सूर्यास्य है। इसके अधिदेवता काल, प्रत्यधिदेवता सर्प है। राहु चण्डालजाति, सर्पाकृति, अस्थिस्वामी और नैर्ऋत-दिगधिपति है।

नवग्रहस्तोत्रमें इसका रूप इस प्रकार देखनेमें आता है—

"अर्द्धकायं महाघोरं चन्द्रादित्यविमर्द्दकं।
सिंहिकायाः सुतं रौद्रं तं राहुं प्रणमाम्यहम्॥"
(नवग्रहस्तोत्र)

अर्द्धकाय, भयंकर आकृति, चन्द्र और सूर्यको पीड़ा देनेवाला तथा सिंहिकानन्दन है।

राहु पापग्रह है। कोई कोई राहुको ग्रहोंमें नहीं गिनते। राहु जिस ग्रहसे मिलता, उसीके अधीन हो कर उसी फलको अधिकता करता रहता है। फिर साधारणतः राहुका फल अशुभ है।

किसी किसीका कहना है, कि राहु और केतु कोई ग्रह नहीं हैं। पृथ्वी और चन्द्रकक्षाके उत्तर और दक्षिण संलग्न स्थानको राहु और केतु कहते हैं। चंद्रके यथासमयमें उक्त दो स्थानोंमें उपस्थित होनेसे पृथ्वी पर बड़ी शक्ति प्रकाश करते हैं, इसलिये वे ग्रहोंमें गिने गये हैं। राहु पापग्रह और अमङ्गलकारक है, लेकिन सिंहराशिमें तथा दशवें या ग्यारहवें घरमें शनि-युक्त होनेसे ऐश्वर्य और राज्यकारक समझा जाता है। दूध और चन्दन राहुके प्रिय है। राहुग्रह विरुद्ध होने पर उसकी शांतिके लिये गोमेदमणि धारण या दान प्रशस्त है। इसके अलावा गोमेदरत्न, अश्व, नीलवस्त्र, कम्बल, काले तिलका तेल, लोहेके वरतनमें काला तिल, यह सब वस्तु वस्त्र और दक्षिणाके साथ दान करनेसे राहुका दोष जाता रहता है।

राहुग्रहकी दृष्टिके संबंधमें भिन्न भिन्न मत देखा जाता है। किंतु राहुका सिर्फ इतनी विशेषता है कि मेषसे ले कर कन्या तक जिस किसी राशिमें वह रहता है वह शुभफल होता है। राहु जिस राशिके जिस अंशमें रहता है उससे अधिक अंशमें उसकी पश्चाद्दृष्टि पड़नेसे वह शुभ तथा पीछे अंशमें सम्मुख दृष्टि पड़नेसे वह अशुभ होता है।

लग्नादि द्वादशभावमें राहु रहनेसे निम्नलिखित फल होता है। मेषसे ले कर कन्या पर्यन्त इन छः राशियोंके बीच किसी राशिका लग्न होने तथा वहां राहुके रहनेसे जातक अन्य ग्रहदृष्टिसे सुखिलाभ करता है। इसके विपरीत होनेसे राहु अशुभफलप्रद होता है।

धनस्थानमें जब राहु रहता है तथा उसके प्रति उसके अधिपतिकी दृष्टि पड़ती है, तो जन्म लेनेवाला प्रचुर धन उपार्जन करता है। या नहीं तो फजूल खर्चसे उसका धन नष्ट हो जाता है।

तृतीय स्थानमें राहु रहनेसे जातकका भाई मरता है। किन्तु वही राहु यदि तुंगी हो, तो मनुष्य पराक्रमशाली, पूज्य, जातिविरोधी और धनवान् होता है।

जन्मकालमें राहु तुङ्गस्थान गत हो कर चतुर्थस्थान रहनेसे मनुष्य उत्तम घरमें वास करता और अच्छी सवारी पाता है। यदि वही राहु उक्त घरका मालिक देखे, तो वह व्यक्ति मित्रकी सहायतासे स्थावर सम्पत्ति हासिल करता है। पञ्चम स्थानमें जब राहु रहे, तो जातकका सन्तान विनष्ट होता है। परन्तु वही राहु शुभदृष्ट और अधिपतिग्रह द्वारा देखे जाने पर सन्तान जीवित रहता तथा जातक बुद्धिमान् और सौभाग्यशाली होता है। षष्ठ स्थानमें राहु रहनेसे जातक शत्रु जयी और सुखभोगी होता है। किन्तु प्रायः उसकी पहिली स्त्री मर जाती है। सप्तम स्थानमें अगर राहु रहे तो प्रायः उसकी स्त्री मरती या वह हमेशा रोगसे पीड़ित रहती है। अष्टम स्थानमें राहुके रहनेसे मनुष्य रोगार्त्त, क्रूर कर्मरत तथा विपदापन्न होता है।

मेषसे ले कर कन्या तक इन छः राशियोंमेंसे कोई राशि नवमस्थान होने तथा उसमें राहु रहनेसे मानव परम सौभाग्यशाली, भोगी और अनियत कर्मानुरक्त होता है। नवमस्थ राहु शुभक्षेत्रमें रहनेसे उसके अधिपति द्वारा देखने पर भी अच्छा फल होता है।

दशम स्थानमें राहु रहनेसे जातक कामुक, कर्तृत्वाभिमानी तथा उस राशिके अधिपति द्वारा दृष्ट होने पर मान्य और यशप्रख्यात होता है, या नहीं तो पद पद पर कर्महानि और कलङ्क होनेकी सम्भावना रहती है।

एकादश स्थानमें अगर राहु रहे तथा उस राशिका अधिपति उस स्थानको देखे, तो जातक बहुमित्रयुक्त और नाना उपाय द्वारा धनसञ्चयी होता है। द्वादश स्थानमें राहु रहनेसे जातक दाम्पत्यसुखविहीन, अपव्ययी, शत्रुयुक्त और चिन्तित होता है।

राहुका गोचरफल—राहु प्रायः डेढ़ वर्ष तक एक एक राशिका भोग कर दूसरी राशिमें आता है। रवि आदि ग्रह वामावर्त्तमें भ्रमण करता रहता है, किन्तु राहु इसके विपरीत अर्थात् दक्षिणावर्त्तमें भ्रमण करता। केतु इसके ठीक सातवें में रहता है। राहु और केतु वक्रगति द्वारा दक्षिणावर्त्तमें १८ वर्ष ७ मास, १८ दिन, १५ दण्डमें राशिचक्र परिभ्रमण करते हैं। इनकी दैनिक गति ३ कला ११ विकला है। ये प्रतिवर्ष १९ अंश, १६ कला, ४४ विकला राशिचक्रमें हट जाता और १ वर्ष ६ महीने, २० दिनमें एक एक राशि ते करते हैं।

राहु जन्मराशिमें उपस्थित होनेसे रोग और दुर्भावना, द्वितीयमें अर्थनाश, तृतीयमें सम्मान, चतुर्थमें धनहानि और दुर्भावनायुक्त, पञ्चममें मनःक्लेश और कार्यहानि, षष्ठमें शत्रुनाश और सुखवृद्धि, सप्तममें अशुभ, शत्रुभय, क्रोध, पीड़ा, अष्टममें रोगाक्रान्त और विपद्ग्रस्त, नवममें प्रवास, दशममें सम्मान और धनवृद्धि तथा एकादशमें मित्र और अर्थलाभ और द्वादशमें रोग, शोक, धनक्षय और भय होता है।

राहुका लग्नादि द्वादशभावफल।

जन्मकालमें राहुके प्रथमभावमें रहनेसे नाना प्रकारका अशुभ तथा जन्म समयमें मिथुन, सिंह, कन्या अथवा वृष राशिमें रहनेसे उक्त फल न हो कर शुभ होता है।

राहुके धनविषय भावमें रहनेसे कुष्ठादि रोग और धनक्षय, नैसर्गिकभावमें रहनेसे चक्षुरोग, अधार्मिक, खोंच, बहुभाषी तथा शैशवकालमें रोगाक्रान्त होता लेकिन

नेत्रपाणिभावस्थ राहु लग्नमें या सप्तममें रहनेसे सब प्रकारका दुःख होता रहता है।

राहु जब प्रकाशनभावमें रहे, तो धनवान्, धार्मिक, नियत विदेशवासी, उत्साहान्वित, सात्त्विक तथा राजकर्मचारी होता, किन्तु प्रकाशनभावस्थ राहु कर्कट किंवा सिंह राशिमें रहनेसे शिरश्छेदकर योग होता है।

राहुके गमनेच्छाभावमें जिसका जन्म होता है, वह आदमी बहु पुत्रविशिष्ट, अतिशय धनवान्, पण्डित, गुणवान्, दाता तथा पुरुषोंमें श्रेष्ठ गिना जाता है।

राहुके गमनभावमें जन्म होनेसे जातक किसी जीवका दण्डाघात चिह्नविशिष्ट, अतिशय क्रोधी, खलस्वभाव, परनिन्दुक, सर्पभीत तथा दुर्द्धर्ष होता तथा नाना प्रकारके रोगोंके लिये उसका धन नष्ट होता है और उसकी स्त्री, बन्धु और धनक्षय होता है।

राहुके सभावसतिभावके समय अगर किसीका जन्म हो, तो वह कृपण, धनवान्, गुणी, धार्मिक, पण्डित तथा विशुद्धाचार होते हैं और उक्त भावापन्न राहु लग्नमें अर्थात् पञ्चम या दशमें रहनेसे उसकी भार्या, पुत्र और धननाश तथा उसकी प्रकृति बड़ी ही चंचल होती है।

राहुके अगमनभावके समय जन्म लेने पर जातक सबोंका दुःखदाता होता तथा उसका मित्रनाश, ज्ञातिनाश और तरह तरहका क्लेश हुआ करता है।

राहुके भोजनभाव समय जन्म होनेसे जातक अतिशय लोभी, मन्दाग्नियुक्त, दुःखित, कृपण, क्रूर तथा कलहप्रिय होता है। यदि लग्नमें या दशमें राहु उक्तभावमें रहे, तो उत्तम कुलमें जन्म होने पर भी पतित हो कर मशहूर होना पड़ता है। लग्नसे ले कर सप्तम या दशम गृहमें यदि राहु इस अवस्थामें रहे तो उसका अवश्य ही पत्नीनाश तथा धर्मकर्ममें पद पद पर बाधा पड़ती है।

जन्मके समय राहु नृत्यलिप्साभावमें रहनेसे जातक पङ्ग तथा कुष्ठव्याधि आदि रोगाक्रान्त, चक्षुहीन और दुर्द्धर्ष हो कर रहता है। जन्म समय नृत्यलिप्साभावान्वित राहु लग्नमें न रह कर अगर अन्यगृहमें रहे, तो मानव धनवान्, बहुसम्पद्युक्त, नानाविध गुणान्वित, दो स्त्री तथा बहु सन्तानविशिष्ट होता है।

राहुके कौतुकभावमें रहनेसे जातक समस्त गुणोंका आधार, धनवान् तथा पित्तशूलरोगमें आक्रान्त होता है। लग्नसे पञ्चम, सप्तम अथवा दशम स्थानके अलावा दूसरे स्थानमें राहु कौतुकभावमें रहनेसे मानव स्त्रीपुत्रादिसे रहित हो कर नाना प्रकारका दुःखभोग करता है। किन्तु यही राहु तुङ्गी या अपने गृहमें होनेसे अनेक प्रकारका शुभफल होता है।

राहु जब निद्राभावमें रहे और उस समय यदि किसीका जन्म हो, तो जातक शोकदुःखसे अभिभूत, नाना स्थानवासी, धनहीन और पुत्रसे वंचित होता है। पञ्चम या सप्तममें यदि राहु निद्राभावमें रहे, तो सर्वगुणान्वित पुत्र और स्त्रीविशिष्ट होता है। नवम या दशम स्थानमें ऐसी अवस्थामें रहनेसे तीर्थमृत्यु तथा द्वितीय, एकादश या द्वादश स्थानमें रहनेसे मानव दारिद्र दोषमें अभिभूत हो कर समस्त भूमण्डल परिभ्रमण करता है।

राहुरिष्ट।

जातबालकका लग्न, चतुर्थ, सप्तम और दशम स्थानस्थ राहु पापग्रह द्वारा दृष्ट होनेसे जातबालकका रिष्ट या मंगल होता और १० या १६ वर्षके अन्दर प्राणत्याग करता है। १६ वर्ष तक इसका रिष्टकाल जानना होगा।

राहुका शुभफल।

जन्म समय सिंह, वृष, कन्या या कर्कट राशिमें राहु रहनेसे मानव अतिशय लक्ष्मीवान्, राजराजाधिपति, घोटक, हस्ती, मनुष्य, नौका तथा मेदिनीमाण्डलका अधिपति होता है। राहु स्वीय उच्चगृहमें रहने पर भी उक्त समस्त फलभोग तथा दीर्घायु होता है।

राहुका दशानिर्णय।

अष्टोत्तरी मतसे राहुकी दशा १२ वर्ष और स्थूलदशा भोगका समय १२ वर्ष है, जिनमेंसे निजान्तर्दशा २।४ मास है। राहुकी दशा अशुभ दशा है, इस समय नाना प्रकारकी विपद् होती रहती है। फिर जन्मके समयका राहु उत्तमभावस्थ होनेसे कुछ शुभ होता है। इस दशाके बीच फिर ग्रहकी अन्तर्दशा है जिसका विभाग इस प्रकार निर्दिष्ट हुआ है।

रा, रा ११४ मास। रा, शु २।४ मास। रा, च ०।८ मास। रा, च १।८ मास। रा, म ०।१० मास। रा, बु ११।२० दिन। रा, श १।१।१० दिन। रा, बृ २।१ ११।० दिन।

ये सब कुल १२ वर्ष हैं। २३ धनिष्ठा, २४ शतभिषा तथा २५ पूर्वभाद्रपदनक्षत्रमें जन्म होनेसे राहुकी दशा होती है। इसके प्रति नक्षत्रमें ४ वर्ष प्रति नक्षत्रके पादमें १ वर्षमें प्रति दण्डमें २४ दिन तथा प्रति पलमें २४ दण्ड भोग होता है। यह जो भोगकाल लिखा गया, वह ६० दण्ड नक्षत्रका परिमाण होनेसे होगा, नक्षत्रको कमी बेसी होनेसे इस कालको भाग कर नियत समय ठीक करना होता है।

विंशोत्तरीके मतानुसार राहुकी दशा १८ वर्ष है। आर्द्रा, स्वाति या शतभिषा नक्षत्रमें जन्म होनेसे राहुकी दशा होती है। इस मतसे प्रत्येक नक्षत्रमें ही राहुकी दशा हो कर १८ वर्ष भोग होता है। फिर नक्षत्रके भोगानुसार इसका भी भोग जानना होगा।

अन्तर्दशाविभाग।

रा, रा २।८।१२ दिन। रा, वृ २।४।२४ दिन। रा श २।१०।६ दिन। रा बु २।६।१८ दिन। रा, के १।०।१८ दिन। रा, शु ३।०।० दिन। रा, र ०।१०।२४ दिन। रा, च १।६।० दिन। रा, म, १।०।१८ दिन।

विंशोत्तरीके मतसे इस प्रकार प्रत्यन्तर्दशा होगी। विंशोत्तरीद्वारा शुभाशुभका फलाफल विचार कर स्थिर करना होता है।

राहु (हिं० पु०) रोहू मछली।

राहुग्रसन (सं० क्ली०) सूर्य वा चन्द्रमाको राहुका ग्रसना, ग्रहण।

राहुग्रस्त (सं० त्रि०) राहु द्वारा गृहीत वा ग्रसित।

राहुग्रहण (सं० क्ली०) राहु द्वारा ग्रास।

राहुग्रास (सं० पु०) ग्रहण, उपराग।

राहुग्राह (सं० पु०) राहो ग्राहो ग्रहण यत्र। ग्रहण।

राहुचक्र (सं० क्ली०) राहोश्चक्र। रवि आदि सात वारोंमें अभ्यन्तर द्वारा यामार्द्धमें यामार्द्ध प्राप्त हो कर सातों दिशाओं राहुका गमन या जाना। दिनमानके अष्टमागका नाम यामार्द्ध है। यामार्द्धमें अभ्यन्तर क्रमसे राहु प्रतिवारमें भ्रमण करता है। रविवारके आद्य यामार्द्धमें पश्चिममें, सोमवारके आद्ययाममें अग्निकोणमें, मंगलवारको वायुकोणमें, बुधवारको उत्तरमें, बृहस्पतिवारमें दक्षिणमें, शुक्रवारको नैऋतमें और शनिवारको ईशानकोणमें रहता है। द्यूतक्रीड़ामें, युद्धमें, विवादमें या यात्रामें शुभफलकी इच्छा करनेसे पर सम्मुखस्थित राहुका परित्याग करना चाहिए। इसको राहुका भ्रमणचक्र कहते हैं। (नरपतिजयचर्या)

नरपतिजयचर्यामें राहुकालानलचक्रका उल्लेख है। यात्राकालमें इस चक्र द्वारा यात्राका शुभाशुभ निर्णीत होता है।

राहुका शरीर कल्पना कर मुख, हृदय, उदर, गुह्य, पूंछ और मस्तक, इन सब स्थानोंमें नक्षत्र विन्यास करना होगा। यह नक्षत्र अश्विनी आदि क्रमसे स्थापित करना होता है। मुखमें एक, हृदयमें सात, उदरमें छः, गुह्यमें एक, पुच्छमें छः, मस्तकमें सात यह सब नक्षत्र इन सब स्थानोंमें कल्पना करनी होती है। राहुका अङ्गस्थित नक्षत्र तथा ग्रहण किस नक्षत्रमें है, यह स्थिर करके फलनिर्देश करना होता है। (नरपतिजयचर्या)

राहुच्छत्र (सं० क्ली०) अदरक, आदा।

राहुरी—१ बम्बई प्रेसिडेन्सीके अहमदनगर जिलान्तर्गत एक उपविभाग। भूपरिमाण ४६७ वर्गमील है। इस उपविभागका अधिकांश ही समतल है। मूला और प्रवरा नामकी गोदावरीकी दो शाखा इसी हो कर बह चली हैं। यहां पहलेकी कोई बनमाला नहीं है। सिर्फ नदीके किनारे गाँवोंके आस पास आमका बगीचा इधर उधर देखा जाता है। स्थानीय गोरक्षनाथशैल समुद्रकी तहसे २९८२ फुट तथा राहुरीके समतलक्षेत्रसे १२०० फुट ऊंचा है। यहांका खेती बारीमें कोई विशेष सुविधा नहीं होती। ओम्बरवाससे ४ मील तथा काल कालसे १७ मील इस महकुमाके बीच रहनेसे स्थानीय अधिवासियोंको जलको सुविधा हुई है।

२ उक्त उपविभागका विचार सदर और एक नगर। यह अक्षा० १९° २३´ उ० तथा देशा० ७४° ४२´ पू०के बीच मूला नदीके उत्तरी किनारे अवस्थित है। इस नगरसे डेढ़ कोस पूरब धोन्द मनमाड़-प्रेट रेलपथका एक स्टेशन है।

राहुदर्शन (सं० क्लो०) राहोर्दर्शनं यत्र। राहुका चाक्षुषज्ञान, ग्रहण। ग्रहणके समय राहुको सम्यक् ज्ञान होता है इसीसे उसे राहुदर्शन कहते हैं। (तिथितत्त्व)

राहुप—मेवाड़के एक राणा। ये राजपूतकुलतिलक भरतके पुत्र थे। राणा समरसिंहके पुत्र कर्ण पिताकी गद्दी पर जब बैठे, तो उनके चचेरे भाई भरतने शत्रुके कुहकमें पड़ कर चित्तोर छोड़ दिया और सिन्धुप्रदेशमें आ कर वहांके मुसलमान शासनकर्त्तासे अरोर नगरका शासनभार पाया। उन्हों ने युगलके भट्टिवंशीय राजकुमारीसे विवाह किया था। उसी कन्याके गर्भसे राहुपका जन्म हुआ।

भरतपुत्र राहुपके राज्यकालमें मेवाड़ राज्यमें घोर विशृङ्खला उपस्थित हुई। कर्णके जमाई शनिगुरु सरदारने नीच विश्वासघातकसे चित्तोरके प्रधान प्रधान गहलोतों-को निधन कर अपने पुत्र रणधवलको सिंहासन पर बिठाया। चित्तोर सिंहासन चौहानकुलके हस्तगत तथा निकम्मे राहुपको राज्योद्धारमें एकदम अक्षम देख एक कुलपाठकाचार्यने यह खबर भरतको दी। तदनुसार भरत पैतृकराज्यका उद्धार करनेकी इच्छासे अपने सिंधु-देशीय सेनादलको ले कर मेवाड़ पहुंचे। चित्तोरके अनुगत सरदारोंने भी उनका साथ दिया। उन्होंने पली नामक स्थानमें बागी शनिगुरु वंशियोंको परास्त किया और आप चित्तोरके सिंहासन पर अधिष्ठित हुए।

इसके कुछ दिन बाद राहुप पिताकी गद्दी पर बैठे। पीछे थोड़े ही समयके बाद इन्होंने नागोर नामक स्थानमें मुसलमान सेनापति सामसउद्दीनको हराया। उनके शासनकालमें मेवाड़के गहलोतवंशीय राजपुरुष-गण शिशोदीय कहलाने लगे तथा बाप्पा-प्रवर्त्तित वंशो-पाधि रावलके बदले वक्ष्यमाण 'राणा' शब्द प्रचलित हुआ।

राहुपने परिहारराज मोकलराणाको परास्त कर अपने नगरमें कैद कर लाया। राणा मोकलने मुक्ति-लाभकी प्रत्याशासे राहुपको अपने अधिकृत गदवार प्रदेश और जयके पुरस्कार-स्वरूप राणाकी उपाधि दी। राहुपने बड़ी दक्षताके साथ ३८ वर्ष तक राज्य किया था।

राहुभेदिन् (सं० पु०) राहुं भिनत्तीति भिद्-णिनि। विष्णु।

राहुमाता (सं० स्त्री०) राहुकी माता, सिंहिका।

राहुमूर्द्धभित् (सं० पु०) राहोर्मूर्द्धाणं भिनत्तीति भिद्-क्विप्। विष्णु।

राहुमूर्द्धहर (सं० पु०) विष्णु।

राहुरत्न (सं० क्लो०) राहुप्रियं रत्नं राहो रत्नमिति वा। गोमेद-मणि जो राहुके दोषका शमन करनेवाली मानी जाती है।

राहुल—बुद्धदेवका पुत्र। गोपाके गर्भसे इसका जन्म हुआ था। इसके जन्मके सातवें दिन बुद्धदेवने संसार-त्याग किया। सात वर्षकी अवस्थामें राहुल बुद्धदेवके समीप जा कर बुद्धसङ्घमें सम्मिलित हुआ और बीस वर्षकी अवस्थामें बौद्धभिक्षु बन गया।

राहुलक (सं० पु०) एक प्राचीन कवि।

राहुलसू (सं० पु०) सूते सू-क्विप्। बुद्धदेव।

राहुवृहस्पतियोग (सं० पु०) राहुणा वृहस्पतेर्योगः मेलनं एक राशिमें स्थित गुरुराहु। जब राहु वृहस्पतिके साथ एक राशिमें अवस्थान करता है, तब उसे राहुवृहस्पति-योग या गुरुचाण्डालियोग कहते हैं। वृहस्पति जब राहुके साथ एकराशिस्थित होते हैं, तब अकाल पड़ता है। इसलिये गुरुराहुके कारण अकालमें विवाह और व्रतयज्ञादि शुभकर्म करना निषिद्ध है। कोई कोई इसका प्रतिप्रसव इस प्रकार मानते हैं। कर्णाट, लाट, अन्ध्र तथा कलिङ्गदेशमें यह गुरुराहुयोग विरुद्ध है, इसके अलावा और किसी देशमें यह निषिद्ध नहीं है। वृहस्पति राहुके साथ रहनेसे बड़ा लज्जित होते हैं; कारण वृहस्पति ब्राह्मण हैं और राहु चण्डाल। ब्राह्मणके साथ चण्डाल-का रहना जैसा है, राहुके साथ वृहस्पतिका योग भी वैसा ही है।

जातकके जन्मके समय राहु और वृहस्पति जब साथ रहते हैं, तो जिस अवस्थामें वे रहते हैं, उसी अवस्थाका अनिष्ट होता है। वृहस्पतिके साथ राहुका योग अनिष्ट-कारक है।

राहुसंस्पर्श (सं० पु०) राहुसंग्राम, चन्द्र या सूर्यग्रहण।

राहुसूतक (सं० क्लो०) उपराग, ग्रहण।

राहुस्पर्श (सं० पु०) राहोः स्पर्शो यत्र। उपराग, ग्रहण।

राहुहन् (सं० पु०) राहुं हन्ति हन्-क्विप्। विष्णु।

राहूगण (सं० पु०) १ रहुगणोंका अपत्य। २ गोतमका गोत्रापत्य।

राहूगण्य (सं० पु०) रहुगणोंका गोत्रापत्य।

राहूच्छिष्ट (सं० पु०) राहोरुच्छिष्टं। लशुन, लहसुन।

राहेल (यहू० पु०) यहूदियोंकी एक उपमातिका नाम।

रिंग (अं० स्त्री०) १ अंगूठी, छल्ला। २ किसी प्रकारकी गोल बड़ी घुण्डी। ३ घेरा, मंडल।

रिंगनी (हि० स्त्री०) एक प्रकारकी ज्वर जो मध्यप्रदेशमें होती है।

रिंगना (हि० क्रि०) १ रेंगनेकी क्रिया करना, रेंगाना। २ घुमाना फिराना, दौड़ाना। ३ धीरे धीरे चलाना।

रिंगल (हि० पु०) एक प्रकारका पहाड़ी बाँस जो दार्जिलिङ्गमें होता है।

रिंगिंग (अं० स्त्री०) वह रस्सी जिससे जहाजके मस्तूल आदि बाँधे जाते हैं।

रिंद (फा० पु०) १ वह व्यक्ति जो धर्मविषयमें बहुत ही स्वच्छन्द और उदार विचार रखता हो, धार्मिक बंधनों को न माननेवाला पुरुष। २ मनमौजी आदमी, स्वच्छन्द पुरुष। (वि०) ३ मतवाला, मस्त।

रिंदा (फा० वि०) निरंकुश, उद्दंड।

रिःफ (सं० क्ली०) ज्योतिषके अनुसार एक संज्ञाका नाम। ज्योतिषमें जातकके लग्नसे ले कर बारह स्थान तकको रिःफ कहते हैं।

रिअवा (हि० पु०) एक प्रकारका कोकर, रीआँ।

रिआयत (अ० स्त्री०) १ वह अनुग्रहपूर्ण व्यवहार जो साधारण नियमों का ध्यान छोड़ कर किया जाय, कोमल और दयापूर्ण व्यवहार। २ न्यूनता, कमी। ३ ख्याल, ध्यान।

रिआया (अ० स्त्री०) प्रजा।

रिकवछ (हि० स्त्री०) एक भोज्यपदार्थ जो उर्दकी पीठी और अरवीके पत्तोंसे बनता है। अरवीके पत्तोंको बारीक काट कर उड़दकी पीठीके साथ मिला देते हैं और फिर उसीके गुलगुलेसे या या तलमें छान लेते हैं।

रिक्शा (अं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी गाड़ी जिसे आदमी खींचते हैं और जिसमें एक या दो आदमी बैठते हैं।

रिकाब (फा० स्त्री०) रकाब देखो।

रिकाबी (फा० स्त्री०) रकाबी देखो।

रिक्त (सं० क्ली०) रिच-क्त। १ वन, जंगल। (त्रि०) २ शून्य, खाली। ३ निर्धन, गरीब।

रिक्तक (सं० त्रि०) रिक्त कन्। शून्य, खाली।

रिक्तकुम्भ (सं० क्ली०) ऐसी भाषा जो समझमें न आवे, गड़बड़ बोली।

रिक्तकृत (सं० त्रि०) खाली किया हुआ।

रिक्तता (सं० स्त्री०) रिक्तस्य भावः रिक्त-तल्-टाप्। शून्यता, रिक्त या खाली होनेका भाव।

रिक्तपाणि (सं० त्रि०) रिक्तः पाणिर्यस्य। रिक्तहस्त, जिसके हाथ खाली हो। ब्राह्मण, राजा और स्त्री इन लोगोंको खाली हाथसे देखना नहीं चाहिये।

(भारत १।७०।४९ श्लोक)

रिक्तभाण्ड (सं० क्ली०) १ शून्यपात्र, खाली बरतन। (त्रि०) २ भाण्डविहीन। ३ बुद्धिशून्य, जिसे अक्ल न हो।

रिक्तमति (सं० त्रि०) शून्यमन, चिन्तान्वित।

रिक्तहस्त (सं० त्रि०) खाली हाथ, जिसके हाथमें एक भी पैसा न हो।

रिक्ता (सं० स्त्री०) रिच्-क्त टाप्। १ तिथिभेद, चतुर्थी, नवमी और चतुर्दशी तिथिको रिक्ता तिथि कहते हैं।

"चतुर्थी नवमी चैव रिक्ता प्रोक्ता चतुर्दशी"

(ज्योतिःसारत०)

रिक्तातिथि सभी कार्योंमें निन्दनीय है, विवाहादि संस्कार और विद्यारम्भादि शुभकार्यमात्र ही रिक्ता तिथिमें नहीं करना चाहिये।

"न रिक्ता सर्वकर्मसु" (ज्योतिःसारत०)

शास्त्रमें लिखा है, कि रिक्ता तिथिमें विवाह होनेसे कन्या विधवा होती है। किन्तु इसमें एक विशेषता है, वह यह कि शनिवार दिन यदि रिक्ता तिथि पड़े, तो उस दिन विवाह होनेसे शुभ होता है। (दीपिका)

इसके सिवा गुरुवारको यदि रिक्ता तिथि हो तो अमृतयोग और यदि शनिवारको हो, तो सिद्धियोग होता है। यह अमृत और सिद्धियोग यात्रामें बहुत उत्तम है। (शुद्धिदी०)

रिक्तार्क (सं० पु०) वह रिक्ता तिथि जो रविवारको पड़े,

रविवारको होनेवाली चतुर्थी, नवमी या चतुर्दशी।

रिक्थ (सं० क्लो०) रिङ्क्ते बहिर्गच्छति नश्यतीति रिच् (पातृ तु दिव वचि रिचिसिचिभ्यस्थक्। उण् २।७) इति थक्। उत्तराधिकार या वरासतमें मिला हुआ धन या सम्पत्ति। (मनु ८।२७)

रिक्थग्राह (सं० त्रि०) धनग्रहणकारी, धन लेनेवाला।

रिक्थजात (सं० क्लो०) मृत व्यक्तिकी सभी सम्पत्ति।

रिक्थभागिन् (सं० त्रि०) रिक्थं भजते भज-णिनि। धनभागी।

रिक्थभाज् (सं० त्रि०) रिक्थं भजते भज-ण्वि। धनभागी।

रिकथहर (सं० पु०) हरतीति हृ-अच्। रिक्थस्य हरः। धनहारक, धनभागी। (मनु ८।१८५)

रिक्थहार (सं० पु०) धनाधिकारी, वह जो धनका अधिकारी हो।

रिक्थहारिन् (सं० त्रि०) रिक्थं हरतीति हृ-णिनि। १ धनहारी, जिसे उत्तराधिकारमें धन या सम्पत्ति मिले। (पु०) २ मातुल, मामा। डुम्बरका वोज।

रिक्थाद (स० पु०) पुत्र, उत्तराधिकारी।

रिक्थिन् (सं० त्रि०) रिक्थमस्यास्तीति रिक्थ इनि। धनहारी, जिसे उत्तराधिकारमें धन या सम्पत्ति मिले।

रिक्थीय (स० त्रि०) उत्तराधिकारी-सम्बन्धीय।

रिक्न् (सं० पु०) स्तेन, चोर। (नैघण्टु ३२४)

रिक्ष (हिं० पु०) ऋक्ष देखो।

रिक्षपति (हिं० पु०) ऋक्षपति देखो।

रिक्षा (स० स्त्री०) १ लिक्षा, लीख। २ त्रिसरेणु।

रिङ्खण (स० क्ली०) रिख-ल्युट्। १ फिसलना, लडखड़ना। २ विचलित होना, डिगना।

रिङ्गण (सं० क्ली०) रिङ्ग-ल्युट्, १ रेंगना। २ फिसलना, सरकना। ३ विचलित होना, डिगना।

रिङ्गि (स० स्त्री०) गति, चाल।

रिचा (हिं० स्त्री०) ऋचक देखो।

रिचीक (हिं० पु०) ऋचीक देखो।

रिच्छ (हिं० पु०) भालू।

रिज़क (अ० पु०) रोजी, जीविका।

रिजर्व (अं० वि०) किसी विशेष कार्यके लिये निश्चित या रक्षित किया हुआ।

रिजर्विस्ट (अं० पु०) वे सैनिक जो आपत्कालके लिये रक्षित रखे जाते हैं, रक्षित सैनिक। रिजर्विस्ट सैनिक कमसे कम तीन वर्ष तक लड़ाई पर रह चुकने पर छुट्टी पा जाते हैं। जिस पल्टनमें ये भर्ती होते हैं, रिजर्विस्टों। या रक्षित सैनिकमें नाम रहने पर भी ये उस पल्टनके ही बने रहते हैं। केवल दो दो वर्ष पर इन्हें दो दो महीनेके लिये सैनिक-शिक्षा प्राप्त करनेके वास्ते अपनी पल्टनमें जाना पड़ता है। २५ वर्षकी सैनिक सेवाके बाद इन्हें पेंशन मिल जाती है।

रिजल्ट (अं० पु०) परीक्षा फल, इम्तहानका नतीजा।

रिज़ाली (फा० स्त्री० रज़ीलपन, निर्लज्जता।

रिजिया (सुलतान रजिया)—दासवंशी दिल्लीश्वर सुलतान अलतमासकी कन्या। ये अपने भाई सुलतान रुकनउद्दीन् फिरोज शाहकी मृत्युके बाद दिल्लीके सिंहासन पर बैठी थी। ये ज्ञान, बुद्धि, विनय, न्यायपरायणता, महोदयता आदि सद्गुणोंसे भूषित थी। प्रजाकी रक्षाके लिए इन्होंने स्वयं युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हो कर जैसी वीरताका परिचय दिया था, वैसे ही अदम्य उत्साहके साथ भारतमें राजदण्ड धारण कर आपने पक्षपातशून्य विचार और दया-दाक्षिण्य द्वारा आर्यावर्त्तवासी प्रजाका हृदय आकर्षित किया था। उनकी वीरता और राज्य-परिचालनशक्तिने उन्हें भारत इतिहासमें सम्राज्ञी ही कहा गया है। आप रमणीकुलभूषण होने पर भी "सुलतान रजिया" के नामसे प्रसिद्ध हुई थीं। पिताकी गुणावली इन्हींमें अधिक विकसित हुई थीं।

सुलतान सामसउद्दीन् अलतमास रजियाकी माताको ही अधिकतर प्रेम करते थे। खुश्कफिरोजी नामके प्रधान प्रासादमें उनका वासभवन था। सुलतान प्रधान महिषीके पास इसी प्रासादमें आ कर ही निरन्तर उनसे साक्षात् किया करते थे। इस कारण पिताके प्रति कन्याका स्नेहातिशयतावश रजियाके लाड़की मात्रा अधिक बढ़ गई थी। वे पिताके जीवितकालमें ही अत्यन्त दाम्भिकताके साथ अपनी प्रभुत्व-शक्ति संचालन करनेमें काफी आगे बढ़ी हुई थीं।

अन्तःपुरमें रहनेवाली इस बाल विहङ्गिनीमें अत्यन्त शैशवावस्थासे ही राजोचित उच्चाकांक्षा परिस्फुट होने

लगा थी। उसके ललाट-पट पर वीरता और राजशक्ति का पूर्ण रेखा उद्भासित देख कर सुल्तानने मन-ही-मन इस राजकुमारीको सिंहासनकी उत्तराधिकारिणी बनाने का निश्चय किया।

उमरके साथ साथ रज़ियाके रूपका लावण्य जैसे जैसे बढ़ता गया, वैसे वैसे उसका राज्यशासनयोग और बुद्धिवृत्ति भी परिस्फुटित होने लगी। सुल्तान ग्वालियरके युद्धमें विजय प्राप्त कर प्रफुल्लचित्तसे दिल्ली लौटे, तो उन्होंने अपनी स्नेहमयी कन्यामें एक अपूर्व राजभावका समावेश देख कर राजसचिव ताज उल मालिक महमूदको बुलवा कर आदेश दिया कि राज दफ्तरमें लिख रखो कि यह लड़की ही मेरी एकमात्र उत्तराधिकारिणी है और मेरी मृत्युके बाद यही सिंहासन पर बैठेगी। इस विषयमें राजाका फरमान प्रचारित होनेसे पहले सुल्तानके प्रिय अमात्यगणने उनसे बहुत अनुनय-विनयके साथ पूछा, कि दो दो उपयुक्त राजपुत्रों के होते हुए राजकन्याको गद्दी पर बैठानेका विचार उनका कैसे हुआ? इस पर सुल्तानने कहा कि मेरे दोनों पुत्र अकर्मण्य हैं, सुखसेवी और इन्द्रियासक्त हैं, इसलिए वे राज्य नहीं चला सकते। मेरी इस लड़कीके सिवा दिल्ली-साम्राज्यकी कोई भी रक्षा न कर सकेगा। सब साधारणके परामर्शसे रज़िया ही राज्यकी उत्तराधिकारिणी हुई। परन्तु अन्यान्य मुसलमान ऐतिहासिकोंका कहना है कि रज़ियाने अपने भाई रुकन् उद्दीनकी मृत्युके बाद सिंहासन अधिकार किया था। रुकनपुत्री का कहना है, कि रुकनउद्दीनके मारे जाने पर सबने रज़ियाको ही राज्येश्वरी घोषित किया था।

सुल्तान रज़ियाके सिंहासन पर बैठनेके बाद दिल्ली राज्यमें पुनः शान्ति और पूर्ववत् सुशासनकी व्यवस्था हो गई। परन्तु प्रधान वजीर निज़ाम उल मुल्क जुनाइदीने राजकन्याका पक्ष ग्रहण नहीं किया। उन्होंने मालिक जानी मालिक कोची और मालिक इज्जुद्दीन महम्मद सालार के सहयोगसे सुल्तान रज़ियाके विरुद्ध अभ्युत्थित हो कर दिल्ली नगरके प्राचीरद्वार पर आक्रमण कर दिया। इस स्थानमें बहुत दिनों तक दोनों ओरसे घोर युद्ध हुआ। इस समय अयोध्याके शासनकर्ता मालिक नसीरउद्दीन तायासी मुइज़ी अपनी सेनाके साथ दिल्लीश्वरीकी सहायताके लिए दिल्लीकी तरफ अग्रसर हुए। लाहोरमें सुशासन स्थापन कर सुल्ताना रज़िया शीघ्रगतिसे अयोध्यापतिके साथ मिलनेके लिए आये बढ़ीं, पर वे यमुना पार भी न कर पाए कि वज़ीरके पक्षके विरोधी सेनापतियोंने नसीरउद्दीनको युद्धमें परास्त और बन्दी कर लिया।

सहायकको पराजित और शत्रुके हाथमें पहुंच जानेसे उपायान्तर न देख सुल्ताना रज़िया तकदीर पर भरोसा करके नगर छोड़ कर बाहर निकल पड़ीं। यमुनाके किनारे शिविर लगाया गया। इस समय दोनों पक्षों में घोरतर युद्ध चल रहा था। अन्तमें विद्रोही दलपति मालिक महम्मद सालार और मालिक कबीर खां फिर सुल्तानाकी तरफ आ मिले और अन्यान्य विपक्षी लोग भाग गये। उस समय सुल्तानाकी अश्वारोही सेनाने उनका पीछा किया। सेनानायक मालिक कोची और उनके भाई फखरउद्दीन तथा मालिक जानी मारे गये और वज़ीर निज़ाम उल मुल्क जुनाइदी सिरमूर पहाड़की भाग गये।

राज्यके शत्रुओंके इस प्रकार भाग जाने पर रज़िया ने उक्त वज़ीरपदके सहकारीको निज़ाम उल मुल्क उपाधि दे कर मन्त्री पद दिया। मालिक सैफउद्दीनको आइबक बहतूखान खांकी उपाधि और सेनापतिका पद मिला। कबीर खां लाहोर प्रदेशके शासनकर्ता नियुक्त हुए। समग्र पठान साम्राज्यमें शान्ति विराजने लगी। लखनावती से ले कर देवल तक सुदूर राज्य वासी राजन्यवर्ग और सामन्त तथा अमात्यगण रज़िया के वशमें हो गये। *

---

* 'तारीख़ उल अबरार' नामक इतिहासमें लिखा है, कि शम्सउद्दीन अलतामशकी मृत्युके बाद उलूग़ खां, कसलूग खां, तमिज खां, मालिक तिशाबी, नूरबख और मुराद बेग आदि नामक कई एक ओमराहोंने अपने मालिकोंके प्रति कृतघ्नता प्रकट कर विद्रोह किया था। १२८१ ई०में उन लोगोंने सुल्तान के ज्येष्ठपुत्र नसीरुउद्दीनको दूर कर सुल्ताना रज़ियाको सिंहासन प्रदान किया था। उलूग खां राज्यके प्रधान सचिव और राजस्व-व्यवस्थापक थे। इन्हीं उलूगकी कन्याके साथ रज़ियाके दूसरे भाई नसीरउद्दीनका विवाह हुआ था।

सेनापति अइवक बहतूकी मृत्युके बाद मालिक कुतबउद्दीन हसनगोरी प्रधान सेनापति हुए। इस समय हिन्दुओंने मुसलमानोंके अधिकृत रणतम्भर दुर्ग घेर लिया। रिजियाके आदेशसे हसनगोरीने उक्त दुर्गमें घिरे हुए मुसलमानोंकी रक्षा करके दुर्गको नष्ट कर डाला।

इसी समय रिजियाके अनुग्रहसे मालिक इफ-तियारउद्दीन् इतिगीन राजप्रासादके परिदर्शन और अमीर जमालउद्दीन् याकुत अश्व और हस्तिशालाके परि-रक्षक तथा उनके पार्श्वचर नियुक्त हुए। तुर्क सेनापति और अमात्यगण राजेश्वरीके इस अनुग्रहको देख कर उनसे विशेष ईर्षा करने लगे। उनके द्वारा राज्यमें विशृङ्खला होते देख सुलताना रिजियाने रमणीको वेश-भूषा और अवगुण्ठन दूर किया और पुरुषके वेशमें राज-दरबारमें बैठने लगीं। उन्होंने सिर पर राजमुकुट धारण किया और अंगरखा कावा पहनना शुरू किया। साधा-रणको अपनी गाम्भीर्यमयी मोहन मूर्त्तिसे मुग्ध और भयविह्वल करनेके लिए वे प्रतिदिन एक बार हाथी पर सवार हो कर राजधानीमें घूम आया करती थीं।

राज-दरबारमें बैठ कर उन्होंने ग्वालियर आक्रमण लिए सेना भेजी। ग्वालियरके राजा दिल्लीश्वरके विरुद्ध बाधा पहुंचानेमें समर्थ न हुए, बल्कि वे सन्धि करनेको बाध्य हुए और मिनहाज मिराज और मजहुल उमरा जियाउद्दीन जुनाइदीको १२३८ ई०में दिल्ली भेजा। सुल-तानाने उनके इस आचरणसे खुश हो कर मिनहाजको मासिरीय विद्यालयका अध्यक्ष और ग्वालियरका काजी बना दिया।

१२३६ ई०में लाहोरके शासनकर्त्ता मालिक इज्जु दीन कबीर खां विद्रोही हो कर दिल्लीकी अधीनता हटानेके लिए आगे बढ़े। रिजिया इस संवादके पाते ही सेना सहित लाहोरके लिए रवाना हो गईं। स्वयं विद्रोही शासनकर्त्ता मुलतानी सेनाके समान पराजय स्वीकार कर भाग गये। रिजियाने सेना-सहित उनका पीछा करके उन्हें कैद कर लिया। कबीर खांने रिजियाके चरणोंमें प्राण-भिक्षा मांगी और उनकी वश्यता स्वीकार की। उन्होंने भी उन्हें मुलतानका शासन-भार सौंप दिया।

इस प्रकार विद्रोह दमन और शासनकी व्यवस्था करके राज्ञी रिजिया १२४० ई०के अप्रेल महीनेमें दिल्ली राजधानीको लौटीं। यहां आते ही उन्हें संवाद मिला कि तबरहिन्दके* शासनकर्त्ता मालिक अलतुनिया कुछ सीमान्तवासी राजपुरुषोंकी उत्तेजनामें आ कर राज-द्रोहिताका सूत्रपात कर रहे हैं। तदनुसार रिजियाने एक विस्तृत सेनाके साथ तबरहिन्दकी तरफ प्रस्थान किया। वहां पहुंचते ही प्रसिद्ध हवसी-योद्धा अमीर जमालउद्दीन याकूतको मारनेवाले राजद्वेषी तुर्क-सेना-पतियोंने उन पर आक्रमण किया। कई दिन घोरतर युद्ध होनेके बाद सुलताना बन्दिनी हो कर तबरहिन्द-दुर्गमें कैद कर ली गईं।

तबरहिन्द-दुर्गमें कैद सुलतानाकी दुर्दशाका अनुभव कर मालिक अलतुनियाके हृदयमें उनके प्रति दयाका उद्रेक हुआ। दिल्लीश्वरीके इस प्रकार अपमानको वे सह न सके। उनकी दुर्दशाके अंशभागी हो कर वे पुनः दिल्लीको छत्रभंग सेनाको इकट्ठा करके दिल्ली राजधानीके उद्धारके लिए अग्रसर हुए, कारण रिजियाके कैद होनेके बाद ही सबने मुइजउद्दीनको सिंहासन पर अभिषिक्त कर दिया था।

रिजियाके राज्योद्धारको बात सुन कर सुलतानने अपनी सेना-सहित विपक्षियोंका सामना किया। युद्धमें सुलताना रिजिया और मालिक अलतुनिया पराजित हो कर कैथलकी तरफ भाग गये। अनुगामी सेनाने आधी दूर तक उनका पीछा किया, फिर उनका साथ छोड़ दिया। वे इस प्रकार गुप्तरूपसे चलते चलते हिन्दूके हाथमें पड़ गये। १२४० ई०के अक्टूबर मासमें सुलताना रिजियाने तीन वर्ष छः दिन राज्य करनेके बाद हिन्दूके हाथसे भवयन्त्रणा समाप्त की।

तब्जियत उल-अमसके मतसे उलूघ खांने सुलताना रिजियाको मार कर अपने जमाई नसीरउद्दीनको सिंहा सन पर बिठाया था। पीछे उलूघ खाने अपने जमाईको

* इबीन उल वियारके मतसे सरहिन्द और फिरिश्ताके मतसे भाटियडा।

मार स्वयं गयासउद्दीन् तुग़लक नाम रख कर सिंहासन पर बैठे थे।

इब्न बतूताके भारतभ्रमण-वृत्तान्तमें लिखा है, कि सुलतान शम्सउद्दीन अलतामासकी मृत्युके बाद रुकन उद्दीन् सिंहासन पर बैठे। उन्होंने अपने सौतेले भाई मुइज्ज़उद्दीनको मरवा डाला, जिससे उनकी सहोदरा भगिनी रिज़ियाने उन्हें तिरस्कृत और लाञ्छित किया। इस पर उन्होंने रिज़िया पर अत्याचार करना शुरू कर दिया। इस अत्याचारकी मात्रा क्रमशः यहां तक बढ़ती गई कि रिज़ियाका जीवन तक खतरेमें पड़ गया। रिज़िया ज्येष्ठ भ्राताका षड़यन्त्र समझ गई। एक दिन शुक्रवारको जब सुलतान रुकनउद्दीन प्रार्थना करने मसजिद आ रहे थे, तब उन्होंने प्रासादके शिखर पर खड़ कर करुणस्वरमेदी कण्ठसे उपस्थित राजपुरुषोंसे आत्मवेदना कही। तब इकट्ठे हुए श्रोतामण्डलीने राज कन्याकी विषाद मायनाले उत्तेजित हो कर रुकनउद्दीन को मसजिदमेंसे निकाल कर साधारणके सामने उन्हें निष्ठुरभावसे मार डाला। नसीरउद्दीन तब नाबालिग थे, इसलिए सर्वसाधारणकी प्रार्थनानुसार रिज़िया ही साम्राज्यकी अधीश्वरी बनाई गई।

राजसिंहासन पर बैठ कर उन्होंने पूर्ण प्रभावसे लगभग ४ वर्ष तक राज्यशासन किया। रमणी होने पर भी पुरुषके समान धनुष-वाण, तूणीर, तलवार, बरछा आदि धारण करती थीं और घोड़े पर सवार हो कर तथा अनेक पारिषदोंसे वेष्टित हो कर राजधानी का रणक्षेत्रमें परिभ्रमण किया करती थीं। उन्होंने कभी भी अपना मुंह परदेसे ढका नहीं रखा। इनको भ्रातिके अपने एक क्रीतदासके साथ अवैध प्रणयमें आसक्त होनेके कारण अमात्योंने सन्देहपूर्वक इन्हें सिंहासनसे उतार दिया और एक आत्मीयके साथ इनका विवाह कर दिया। इनके बाद इनके छोटे भाई नसीरउद्दीन सिंहासनके अधिकारी हुए।

रिझु (हि० वि०) मृदु देखो।

रिझाना (हि० क्रि०) १ किसीको अपने ऊपर प्रसन्न कर लेना। किसीको अपने ऊपर मुग्ध करना। २ अपना बनाना, लुभाना।

रिझाव (हि० पु०) किसीके ऊपर प्रसन्न होने या रीझनेका भाव।

रिटर्निंग आफसर (अं० पु०) वह अफसर जो निर्वाचनके समय वोटों या मतों गिनता है और कौन अधिक वोट मिलनेसे नियमानुसार निर्वाचित हुआ इसकी घोषणा करता है।

रिटायर (अं० वि०) जिसने कामसे अवसर ग्रहण कर लिया हो, जिसने पेन्शन ले ली हो।

रिटि (सं० स्त्री०) १ जलती हुई अग्निका एक शब्द। २ वाद्यभेद, एक प्रकारका बाजा। ३ कृष्णलवण, काला नीमक।

रिठीनगर (सं० क्ली०) एक प्राचीन नगरका नाम।

रिण् (सं० त्रि०) लम्बी, गलेवाला।

रितु (हि० स्त्री०) ऋतु देखो।

रितुवंती (हि० स्त्री०) रजस्वला स्त्री।

रिद्ध (सं० त्रि०) पक्व, रो धा हुआ।

रिद्धि (हि० स्त्री०) ऋद्धि देखो।

रिधिसिधि (हि० स्त्री०) ऋद्धिसिद्धि देखो।

रिपम (सं० पु०) १ कामदेव। २ वसन्त।

रिन (हि० पु०) ऋण देखो।

रिनवंधी (हि० पु०) कर्जदार, ऋणी।

रिनियां (हि० वि०) जिसने ऋण लिया हो, कर्जदार।

रिनियाँ (हि० वि०) रिनिया देखो।

रिनी (हि० वि०) जिसने ऋण लिया हो, कर्जदार।

रिप (सं० पु०) १ पृथ्वी। २ रिपु, शत्रु। ३ हिंसा।

रिपन (George Frederick Samuel Robinson)—रिपन का १म मार्कुइस, वर्किंगमसायरके ४थ अर्लकी कन्या श्रीमती साराके गर्भ और रिपन १म अर्लके औरससे लन्दन नगरमें २४ अक्टोबरको जन्म हुआ था। १८५२ ई०में आपका राजनीतिक संसारका सूत्रपात है। उस वर्ष आप ब्रसेलसमें विशिष्ट दौत्यकार्यमें (Attache) नियुक्त हुए। १८५३ ई०में ये हडर्सफिल्डके और उसके बाद यर्कसायरके वेष्ट राइडिंगसे पार्लामेण्टके सदस्य चुने गये। १८५६ ई०के जनवरी मासमें इन्हें पिताकी उपाधि मिली और उसी वर्ष नवम्बरमें पितृव्यकी उपाधि का उत्तराधिकार प्राप्त हुआ।

पार्लामेन्टमें प्रवेश होनेके कुछ ही दिन बाद आप युद्ध-विभागमें अण्डर सेक्रेटरी हुए। उसके बाद १८६१ ई०के फरवरी महीनेमें भारतवर्षके लिए अण्डर-सेक्रेटरी (Under secretary for India) हुए। उसके बाद १८६३ ई०में युद्ध-विभागके प्रधान सेक्रेटरी और १८६६ ई०में सेक्रेटरी आव दी स्टेट (Secretary of the State for India) नियुक्त हुए। १८६८ ई०के दिसम्बर मासमें महामति ग्लेस्टोनके शासनारम्भमें लार्ड रिपन मन्त्रिसभाके सभापति (Lord President of the Council) नियुक्त हुए थे। उसके बाद १८७३ ई०में उदारनैतिक दलका शासनाधिकार दूर होने पर आपने भी स्वेच्छासे उक्त पद छोड़ दिया।

१८६९ ई०में इङ्गलैण्डकी महाराणीने आपको Knight of the garterकी उपाधिसे सम्मानित किया। इसीके दो वर्ष बाद अलाबामासत्त्वके सम्बन्धमें वासिंगटनमें जो सन्धि हुई, उसके गुरुतर कार्य-निर्वाहके लिए लार्ड रिपन दोनों राज्योंकी तरफसे सन्धि समितिके प्रधान सभापति (Chairman of the High Commission) चुने गये थे। दक्षताके साथ उक्त कार्यको समाप्त करनेके बाद आप मार्कुइस जैसे उच्च पदसे सम्मानित किये गये थे। १८७८ ई०में आपने रोमन काथलिक मत ग्रहण किया। इस कारण आपको फ्रीम-सनके श्रेष्ठ उपदेष्टा (Grand-master of the English Free-mason)-का पद त्याग देना पड़ा। १८८० ई०में महामति ग्लैडस्टोनको पुनः प्रधान मन्त्रीका पद मिला।

उस साल पार्लामेण्टमें उदारनैतिक मन्त्रियोंका प्राधान्य हो गया, जिससे बड़े लाट लिटनको इस्तीफा दे देना पड़ा और मार्कुइस आफ रिपन बड़े लाट हो कर भारत आये। उनके शुभागमनसे भारतवासियोंके हृदयमें शान्तिरूपी जलका सिंचन हुआ। सीमान्तके झगड़ा मिटानेका सुयोग आया। लार्ड लिटनकी राज्य-विस्तार नीतिका कारण भारतके उत्तर-पश्चिम प्रान्तमें दारुण समरानलकी सूचना हो चुकी थी। शान्तिप्रिय और प्रजारञ्जक लार्ड रिपन भारतमें आते ही भारत-सीमाके बाहर स्थायिरूपसे सेना रखनेके घोर विरोधी हो गये। उन्होंने प्रथम ही दोस्त मुहम्मदके पौत्र अमीर अबदुर रहमनको काबुलके सिंहासन पर बिठाया। अमीर शेर अलीके पुत्र निर्वासित आयुब खाँको हीरातमें लानेकी अनुमति दी गई। परन्तु आयुब खाँके यहां आते ही बहुतसे गाजी उनके अनुयायी हो गये। युद्धकी सम्भावना देख कर अङ्गरेज-सेनापति जनरल बारो शत्रुसेनाके विरुद्ध मैवन्द रणक्षेत्रमें उपस्थित हुए। परन्तु संख्यामें कम होनेके कारण अङ्गरेजोंसेना बहुसंख्यक गाजी और पठान-सेनाके आक्रमणको न सह सकी। अधिकांश अङ्गरेज सेनापति और सेनानीने असाधारण वीरता दिखा कर भीषण युद्धमें प्राण विसर्जन किये। कुछ थोड़ीसी सेनाने कन्दहारमें भाग कर प्राण बचाये। अन्त में प्रधान सेनापति लार्ड राबर्टने बहुसंख्यक सेना सहित जा कर आयुब खांको परास्त करके ब्रिटिश गवर्नमेण्टके सम्मानकी रक्षा की। इसके कुछ ही समय बाद रूस-सेनापति स्कोबेलेफ जिओक-टेपेने आक्रमण किया और इसके साथ ही रूसकी लोलुप दृष्टि कन्दाहार पर पड़ी। भारतीय अङ्गरेजगण भी इससे विचलित हुए। परंतु दूरदर्शी लार्ड रिपनको इसमें किसी तरहकी आशंका नहीं दिखाई दी। उनका विश्वास था कि भारतीय प्रजाको सुखी रखनेसे अभावके समय उनके उपयुक्त सहायता देनेसे, भारतमें अकाल न पड़नेसे तथा प्रजाके गवर्नमेण्टके पक्षमें रहनेसे वैदेशिक आक्रमणकी कोई भी आशङ्का नहीं। पहले लार्ड मेओ निश्चय करने पर भी जिसे कार्यरूपमें परिणत न कर सके थे तथा रक्षणशील बड़े लाटोंकी लापरवाहीसे जो अब तक साध्य न हो सका था, अब लार्ड रिपनने प्रजाकी सुविधाके लिए १८८२ ई०की अप्रीलको राजस्व और कृषि विभाग पुनः प्रतिष्ठित किया। दुर्भिक्ष-समिति (Famine com mission)-के प्रस्तावके अनुसार दुर्भिक्ष-पीड़ित प्रजाके अभाव दूर किये और जमीन सम्बन्धी कर निर्धारणके लिए ही उक्त विभागकी सृष्टि की। उन्होंने निश्चय किया था कि गवर्मेण्टकी इच्छानुसार किसी जमीनका कर बढ़ाया नहीं जा सकता। जमीनकी कीमत बढ़ने, खेती बढ़ने और गवर्मेण्टके व्ययसे जमीनकी उन्नति होनेसे ही

मालगुजारी बढ़ाई जा सकती है। खेतीकी नाना विषयोंकी उन्नति और प्रजाके हितकी तरफ भारतीय कृषि विभाग (The Agricultural Department of India) दृष्टि रखेगा। इसके लिए कराप प्रजा-पालन, जलवायुकी गति निर्धारण, पशुआदिकी चिकित्सा-विद्याका प्रसार और जन्मसंख्यानिर्णयकी दस्तूर सूची तैयार करेगी। दुर्भिक्ष या दुर्मूल्यके समय जिससे गरीब प्रजाको विशेष कष्ट न पहुंचे, इसके लिए दुर्भिक्ष-भण्डार Famine Fund स्थापित हुआ और प्रति वर्ष १५ लाख रुपये उस भण्डारमें जमा रखने की व्यवस्था की गई। तीन आदमियों पर उक्त भण्डारका भार दिया जायगा, जिनमें एक सरकारी और दो गैर-सरकारी आदमी होंगे, गैर-सरकारीमें एक भारतीय होना चाहिए। इसके बाद लार्ड रिपनकी दृष्टि महिसुर राज्य पर पड़ी। उन्होंने देखा कि उक्त राज्य ५० वर्षसे ब्रिटिश गवर्मेण्टके हाथमें है। परन्तु धर्मतः और न्यायतः विचार किया जाय तो उस देशका शासन वहांके राजाके अधीन होना चाहिए। इस कारण आपने महिसुरके राजाको उनके पूर्वपुरुषका राज्याधिकार सौंप दिया। १८८१ ई०से ही अफगानिस्तानसे ब्रिटिशसेना हटा लेनेकी व्यवस्था हुई थी। कोयटा और कुरम उपत्यकासे अंगरेजी सेना हटा कर थोड़ी-सी देशी सेना वहां रखी गई। खुर्रमकी कोटलसे धारवार गिरिसंकट तककी रक्षाका भार वहांके पहाड़ी सरदारों पर सौंपा गया। इस तरह थोड़े ही दिनोंमें सीमान्त प्रदेशमें शान्ति हो गई थी।

इसके बाद, भारत साम्राज्यके राजस्व और शासन विभागको क्रमशः एक केन्द्रीभूत करने और उसके लिए स्थानीय गवर्मेण्टके सुशासनकी वृद्धि करनेके लिए स्थायत्त शासनका विस्तार करना लार्ड रिपनका प्रधान उद्देश्य था। भारतवासियोंमें यथायथरूपसे शिक्षा विस्तारके लिए बोर्ड आफ् डिरेक्टरोंने १८५४ ई०में जो सुदीर्घ मन्तव्य प्रकट किया था, अब तक उसके अनुसार उपयुक्त कार्य चलानेकी कोई सन्तोषजनक व्यवस्था न हुई थी। शिक्षा विभागकी असम्पूर्ण वार्षिक कार्य विवरणीसे ही उसका कुछ कुछ परिचय मिलता था। अब लार्ड रिपनने स्वायत्त शासनके ही प्रसारकी सुविधाके लिए शिक्षाविभागका संस्कार और भारतीय शिक्षा पद्धति का उपयुक्त व्यवस्था करनेके लिए सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक डाक्टर हण्टर (Dr W W Hunter) साहबकी अध्यक्षतामें एक Educational Commission बिठाया। शिक्षकोंका शिक्षाविधान, विद्यालयोंका परिदर्शन, पारदर्शितानुसार वेतननिर्धारण और स्त्री शिक्षाका विस्तार करना, कमीशनका प्रधान लक्ष्य था। इस शिक्षा कमीशनका फल १८८४ ई०में प्रकाशित हुआ था।

लार्ड रिपनका एक और प्रधान कार्य देशी मुद्रायन्त्रको स्वाधीनता देना था। लार्ड लिटन देशी समाचारपत्रोंका राजद्रोही जान उनकी स्वाधीनता बंद कर गए, जिससे देशी प्रायः सभी संवादपत्र उठ गये। १८८२ ई०में लार्ड रिपनने देशी प्रेस सम्बन्धीय सब कानून उठा दिया कि देशी तथा यूरोपीय सभी समाचारपत्र धन्यवादभाजन हों। इसके ही बाद २५वीं जुलाईको कलकत्ता गवर्मेण्ट हाउसका सुप्रशस्त मर्मर-हालमें जहां के पहले जो दरबार लगा था वह भी उल्लेख योग्य है। इसी दिन दरबारमें काबुलका राजदूत और भारतके सम्भ्रान्त करीब डेढ़ हजार मनुष्य जुटे थे। इसी दरबारमें बहावलपुरके नवाब 'नाइट ग्राण्ड कमाण्डर' के रूपमें महोच्च राजसम्मानसे सम्मानित हुए थे और उपयुक्त खिलअत मिली थी। इस दिनके वेशभूषा, असबाब और समृद्धि देख कर बेदेशी खूब चमत्कृत हो गया था।

लार्ड रिपन भारतवासी और अंग्रेज प्रजाओंको एक नजरसे देखते थे। उनके पास गोरे कालेका कोई भेद न था। इन्होंने शासनविभागमें और सभी विषयमें सुविचारकी आशासे फौजदारी व्यवहारविधिका संस्कार कराया। यही १८८३ ई०का इलबर्ट बिल नामसे प्रसिद्ध हुआ। इस आइनके उपलक्षमें लार्ड रिपनने प्रकाश किया था, कि ये देशी लोग यूरोपियोंकी तरह विचार विभागका सब उच्च कार्य करते हैं। अब ये यूरोपियोंकी भांति सिविलियन होते जाते हैं, तब यूरोपीय विचारपतिकी तरह देशी विचारपति समान अधिकारके योग्य हैं। अंग्रेज विचारपति जिस प्रकार देशी और अंग्रेज दोनोंका

विचार करनेके अधिकारी हैं, देशी विचारपति भी उसी प्रकार अङ्गरेजोंका विचार कर सकेंगे।

न्यायपर समदर्शी रिपनका अभिप्राय व्यक्त और अलवर्ट-बिल पास होनेसे अङ्गरेजोंके बीच दारुण मर्म-भेदी विद्वेषभाव जाग उठा। काला आदमी गोरोंका विचार करेगा, समान क्षमता पायगा, यह ले कर आधे से अधिक गोरे राजपुरुषोंको कष्टकर हुआ। दूसरी तरफ सभी भारतवासी और देशी संवादपत्र प्राण खोल कर लार्ड रिपनका सुख्याति-गान गाने लगे। जो हो, लार्ड रिपनके उच्च राजनीति और महदुद्देश्य स्वीकार करने पर भी स्थानीय गवर्मेण्ट और अङ्गरेज राजपुरुष गण यूरोपियोंकी सम्भ्रमरक्षाके लिये उक्त दण्डविधि परि-वर्त्तन और परिवर्द्धनके लिये सबके सब एकमत हुए। दोनों पक्षोंमें बहुत वाद-विवाद चलनेके बाद इस प्रकार मेटमाट हो गया कि सिर्फ उपयुक्त और विशिष्ट देशी मजिष्ट्रेटके हाथ सम्पूर्ण अधिकार रहेगा, यूरोपीय अप राधी यूरोपीय मजिष्ट्रेटके यहां अपील या पुनर्विचारके लिये उपस्थित हो सकेगा। इस प्रकार १८८४ ई०में संशोधित दण्डविधि कायम रही।

देशी प्रजा और जमींदारोंके बीच स्वत्व सम्बन्धमें बहुत दिनोंसे मनमुटाव चल रहा था। प्रजारञ्जक लार्ड रिपनने प्रजाओंकी स्वार्थरक्षाके लिए प्रजास्वत्वविषयक आईनका खसड़ा बनवाया था। वही खसड़ा परिवर्त्तित और परिवर्द्धित हो कर लार्ड डफरिनके समय Bengal Tenancy Act of 1885 नामसे विधिबद्ध हुआ।

लार्ड रिपनके सुशासनकालमें ही १८८३ ई०में कलकत्तेमें आन्तर्जातिक प्रदर्शनी हुई और राजकुमार ड्यूक आव कनाट स्त्री-सहित भारतवर्ष पधारे। उसके पहले भारतवर्षमें वैसी प्रदर्शनी और नहीं हुई थी। लार्ड रिपनकी कोशिशसे भारतके प्रत्येक जिलेसे भार-तीय शिल्प और देशसे उत्पन्न सब तरहको उत्तम वस्तु प्रदर्शनार्थ भेजनेका बन्दोवस्त हुआ था। उन्होंने खुद राजकुमार कनाट और प्रधान प्रधान राजपुरुषोंको ले कर प्रदर्शनी खोली थी।

भारतीय रमणियोंके पक्षमें परपुरुष द्वारा चिकित्सा या अस्पतालमें रहना रीतिके विरुद्ध है। इस कारण उन्होंने देशी रमणियोंमें चिकित्सा विधि-प्रचलनकी व्यवस्था कर दी तथा देशी रमणीके चिकित्साधीन अस्पताल करनेका आयोजन किया। इसलिये कितनी देशी रमणियां चिकित्साशास्त्र सीखनेके लिये इङ्गलैण्ड और अमेरिका भेजी गईं।

१८८४ ई०में रूस मार्भने आक्रमण किया। उसी समय अफगानसीमा निर्द्धारणके लिये रूस और अङ्ग रेज गवर्मेण्टकी तरफसे पुरातत्त्ववित्, सामरिक और वैज्ञानिक बहुतेरे मनुष्य नियुक्त हुए। इसी वर्ष ३री दिसम्बरको मार्किस आव रिपनने नये बड़े लाट डफरिन के हाथ शासनभार सौंप विलायतकी यात्रा की। उनके विलायत जानेके पहले सिमला-शैलसे जब वे कलकत्तेको लौट आ रहे थे, उसी समय इस देशकी जनताने उनको जैसी आन्तरिक भक्ति और कृतज्ञताके अभ्यर्थना की थी वैसी और किसी बड़े लाटको देशी-जनतासे सम्मान और आदर पानेका सौभाग्य न हुआ। जब वे विलायतके लिये रवाने हुए, उस समय बहुतोंने सड़कके किनारे खड़े हो कर उनके लिये आनन्दका आंसू बहाया था। भारतवासीके हृदयमें जमा हुआ है, कि रिपन भारतवासीके अतिप्रिय थे। रिपनके समान भारत-हितैषी कोई नहीं आये और कोई आयंगे या नहीं सन्देह है।

लार्ड रिपनके विलायत जाने पर बहुतेरे अंङ्गरेज राजपुरुष उनकी शासननीतिकी कठोर समालोचनामें प्रवृत्त हुए। कर्मवीर रिपनने भी अपनी शासननीतिका बड़ा समर्थन कर इङ्गलैण्डके नाना स्थानोंमें हृदयोन्माद-कर वक्तृता दी थी। १८८६ ई०में ग्लाडष्टोनके तीसरी वार प्रधान मन्त्रित्वकालमें लार्ड रिपन नौसेनाविभाग-के सर्वप्रधान कर्त्ता हुए थे। १८९२ ई०में उदारनैतिक-दलके प्राधान्यकालमें वे औपनिवेशिक मन्त्री (Colonial Secretary) हुए। रक्षणशील दलके अभ्युदयसे उन्होंने १८९५ ई०में उक्त पद परित्याग किया। ये लिडसकी "यार्कसायर कालेज आव साइन्स" नामक सभाके सभापति तथा ओयेष्टराइडि प्रादेशिक मन्त्रि सभाके बहुत दिन तक सभापति रहे।

रिपु (सं० पु०) अपिनष्ट इत्यादि लप धाथि, (रप रिप्वा व्यक्तायां वाचि। उण् १।२७) इति कुः रकारस्योपधायाः रिपः करणगुणनिम्नादि मारयतु (इत: रिप । उण् १।१४) इति बाहुलकात् पुरस्त्यः। १ शत्रु, दुश्मन। ज्योतिष मत रिपु ६ हैं—काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य। २ चोरक नाम गन्धद्रव्य। (राजनि०) ३ जन्मकुण्डलीमें लग्नसे छठा स्थान। पर्याय—शत्रुकोष, रिपुमन्दिर। ४ ध्रुवके पौत्र और श्लिष्टिके पुत्रका नाम। (हरिवंश २।१४।१८) ५ मद्रक पुत्रका नाम। (भाग० ९।२३।१०)

रिपुघातिन् (सं० त्रि०) रिपु हन्ति इति हन्-णिनि। शत्रुघाता, शत्रुओंका नाश करनेवाला।

रिपुघातिनी (सं० स्त्री०) लताविशेष।

रिपुघ्न (सं० त्रि०) शत्रुहन्ता, जो शत्रुओंका नाश करता हो।

रिपुञ्जय (सं० पु०) १ राजपुत्रभेद, दिवोदास। (स्कन्दपुराण) २ सुवीरका पुत्र। (भाग० ९।२१।२६) ३ विश्वजित् पुत्रका नाम। (हरिवंश (८) बृहद्रथवंशीय राजा विश्वजित्के पुत्रका नाम। (भाग० ९।२२।४७)

रिपुता (सं० स्त्री०) रिपोर्भावः तल्-टाप्। शत्रुता, दुश्मनी।

रिपुनाश (सं० पु०) राजभेद। (बृ० सं० ११।२२)

रिपुराक्षस (सं० पु०) १ रिपुरूप राक्षस। २ हस्तिभेद, एक हाथीका नाम। (कथासरित्सागर १२।१।२२)

रिपोर्ट (अं० स्त्री०) १ किसी घटना या बातका सविस्तर वर्णन जो किसीको सूचना देनेके लिये किया जाय। २ किसी वस्तु या व्यक्तिके सम्बन्धमें जाँचके बाद बतलाई हुई बात। ३ किसी संस्थाके वार्षिक कार्योंका विस्तृत विवरण।

रिपोर्टर (अं० पु०) १ किसी समाचारपत्रके सम्पादकीय विभागका वह कार्यकर्ता जिसका काम सब प्रकारके स्थानीय समाचारों और घटनाओंका पता लगा कर उन्हें लिख कर सम्पादकको देना और उनके साथ लिये सार्वजनिक सभाओं, कौंसिलों, अदालत आदिका विवरण लिख कर भेजना, प्रधानतः वक्ताओंके भाषण लिखना, अथवा एक बड़े समाचार पत्रका काम लेकर वहाँके सार्वजनिक प्रश्नों पर उनका मत जानना होता है। २ वह जो किसी सभा या समितिका विवरण और व्याख्यान लिखता है। ३ वह जो सरकारकी ओरसे व्यवस्थापक या किसी सभा, समिति या कौंसिलकी कार्रवाई और व्याख्यान लिखता हो।

रिप्र (सं० क्ली०) ज्ञानके नाशसे हो कर ऊपर स्थान।

रिप्र (सं० त्रि०) पाप, अधम (लीङ्र दरणे घुटुर (लीबा। उण् ४।२८) इति र, घातोः रस। प्रदपयस्था पुरुष। अधम पाप। "गृह्णाति रिप्रमविरस्य ताराः" (ऋ० ६।७१।१) 'रिप्रमनुपादस्यन पापरूप' (सायण)

रिप्रवाह (सं० त्रि०) पापवाहक, जिससे पाप या पापकी बात होती हो।

रिप्सु (सं० त्रि०) रब्धुमिच्छुः रभ सन्, सनन्ताद्-उः। आरम्भ करनेमें इच्छुक, जिसे शुरू करनेकी अभिलाषा हो।

रिफाम (अं० पु०) दोषों या त्रुटियोंका दूर किया जाना, किसी संस्था या विभागमें परिवर्तन किया जाना।

रिफार्मर (अं० पु०) वह जो धार्मिक, सामाजिक या राजनैतिक सुधार या उन्नतिके लिए प्रयत्न या आन्दोलन करता हो; सुधारक।

रिफार्मेटरी (अं० स्त्री०) वह संस्था या स्थान जहाँ बालक कैदी रखे जाते हैं और उन्हें औद्योगिक शिक्षा दी जाती है जिससे वे वहाँसे बाहर निकल कर जीविका निर्वाह कर सकें और भले मानस बन कर रहें, चरित्र संशोधनालय।

रिफार्मेटरी स्कूल (अं० पु०) रिफार्मेटरी देखो।

रियासी—पंजाबके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध स्थान। यहाँ कारबके व्यवसायका विस्तृत कारबार है।

रिभु (हिं० पु०) ऋभु देखो।

रिम (हिं० पु०) १ ऋभु। (स्त्री०) २ रीम देखो।

रिमझिम (हिं० स्त्री०) १ धीरे धीरे बूंदोंका लगातार गिरना, हलका फुहार पड़ना। (क्रि० वि०) २ पानीकी धीरे धीरे बूंदें।

रिरहा (हिं० पु०) ऋभु।

रिरिहा (हिं० स्त्री०) बहुत गिड़गिड़ाना।

रिपेंद (सं० पु०) अरिमेद, विट्खदिर।

रियासत (अ० स्त्री०) १ राज्य, अमलदारी। २ रईस होनेका भाव, अमीरी।

रियासी—काश्मीरराज्यके जम्बू विभागान्तर्गत एक दुर्गाधिष्ठित नगर। यह अक्षा० ३३ ५´३० तथा देशा० ७४´ ५२´ पू०के मध्य चन्द्रभागा नदीके बायें तट पर हिमालय पहाड़के दक्षिण ढालूदेशमें अवस्थित है। एक शैलकी चोटी पर दुर्ग स्थापित है।

रिरंसा (सं० स्त्री०) रन्तुमिच्छा रम सन् रिरंस अ, टाप्। रमण करनेकी इच्छा।

रिरंसु (सं० त्रि०) रन्तुमिच्छुः रम् सन्-सन्नन्तादुः। रमण करनेमें इच्छुक, रमणाभिलाषी।

रिरक्षा (सं० स्त्री०) रक्षा करनेकी इच्छा।

रिरक्षिषा (सं० स्त्री०) रक्षितुमिच्छा, रक्ष-सन् रिरक्षिष अ-टाप्। रक्षा करनेकी इच्छा।

रिरक्षिषु (सं० त्रि०) रक्षितुमिच्छुः रक्ष-सन् उ। रक्षा करनेका अभिलाषी, रक्षा करनेकी इच्छा रखनेवाला।

रिरक्षु (सं० त्रि०) रक्षा करनेकी इच्छा रखनेवाला।

रिरमयिषु (सं० त्रि०) रम-णिच् सन्-उ। रमण करनेमें इच्छुक।

रिरिक्षु (सं० त्रि०) रेष्टुमिच्छु रिश्-सन्-उ। हनन करनेमें इच्छुक, जिसे मारनेकी इच्छा हो।

रिरी (सं० स्त्री०) पित्तल, पीतल।

रिल्हण (सं० पु०) काश्मीरका एक राजपुरुष।

रिह्लण द खो।

रिलीफ (अं० पु०) वह सहायता जो आर्त्त, पीड़ित या दीन दुःखी जनोंको दी जाय, सहायता।

रिवाज (अ० पु०) प्रथा, रस्म।

रिवाल्वर (अं० पु०) एक प्रकारका तमंचा जिसमें एक साथ कई गोलियाँ भरनेकी जगह होती है और गोलियां लगातार एकके बाद दूसरी छोड़ी जा सकती है।

रिव्यू (अं० स्त्री०) १ किसी नवीन प्रकाशित पुस्तककी परीक्षा कर उसके गुण-दोषोंको प्रकट करना, आलोचना। २ वह लेख या निबंध जिसमें इस प्रकार किसी पुस्तककी आलोचनकी गई हो, समालोचना। ३ किसी निर्णय या फैसलेका पुनर्विचार, नजरसानी। ४ वे सामयिक पत्र पत्रिकाएं जिनमें राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, वैज्ञानिक आदि विषयों पर आलोचनात्मक लेखोंका संग्रह रहनेके साथ ही नवीन प्रकाशित पुस्तकोंकी भी आलोचना रहती हो। जैसे—"माडर्न रिव्यू" "सैटर्डे रिव्यू"।

रिश (सं० पु०) हिंसाकारी, मारनेवाला।

रिशादस् (सं० त्रि०) हिंसाकारी, मारनेवाला।

रिश्ता (फा० पु०) नाता, सम्बन्ध।

रिश्तेदार (फा० पु०) सम्बन्धी, नातेदार।

रिश्तेदारी (फा० स्त्री०) रिश्ता होनेका भाव, सम्बन्ध।

रिश्तेमन्द (फा० पु०) सम्बन्धी, नातेदार।

रिश्य (सं० पु०) रिश्यते हिंस्यते इति रिश्- क्यप्। मृग।

रिश्वत (अ० स्त्री०) वह धन जो किसीको उसके कर्त्तव्यसे विमुख करके अपना लाभ करनेके लिये अनुचित रूपसे दिया जाय, घूस।

रिश्वतखोर (फा० पु०) वह जो रिश्वत लेता हो, घूस खानेवाले।

रिश्वतखोरी (फा० स्त्री०) रिश्वत खानेका काम, घूस लेनेका काम।

रिष (सं० त्रि०) क्षतिकरण, हानि पहुंचाना।

रिषण्यु (सं० त्रि०) हिंसक, मारनेवाला।

(ऋक् १।१४८।५ सायण)

रिषभ (हिं० पु०) ऋषभ देखो।

रिषि (सं० पु०) ऋषन्ति ज्ञानसंसारयोः पारं गच्छन्तीति ऋषयः, ऋषो गतौ नाम्नीति कि रिषिहसादिश्च, विद्याविदग्धमतयो रिषयः प्रसिद्धाः। (अमरटीका-भरत) ऋषि।

रिषीक (सं० त्रि०) १ हानि पहुंचानेवाला। (पु०) २ शिव।

रिषीकार (सं० क्ली०) रिष-क। १ क्षेम, कल्याण। २ अशुभ, अमङ्गल। ३ अभाव, न होना। ४ नाश। ५ पाप। (पु०) ६ खड्‌ग, तलवार। ७ फेनिल, लाल सहिंजनका पेड़। ८ पापयुक्त। ९ नष्ट, बरबाद।

रिष्ट (हिं० त्रि०) १ प्रसन्न। २ मोटा ताजा।

रिष्टक (सं० पु०) रिष्ट एव स्वार्थे कन्। रक्तशिग्रु, लाल सहिंजन।

रिष्टताति (सं० त्रि०) क्षेमङ्कर, सौभाग्यशाली।

रिष्टभङ्ग (सं॰ क्लि॰) अमङ्गलभञ्जन। रिष्टि देखो।

रिष्टि (सं॰ पु॰) रेषति हिनस्तीति रिष क्तिच्। १ खड्ग, तलवार। (मेदिनी)

(स्त्री॰) रिष-क्तिन्। २ अशुभ, अमङ्गल। रिष्ट या रिष्टि, जातकको पहले रिष्टि ठीक करके फिर आयुर्दाय गणना की जाती है। जब तक २४ वर्ष न बीत जाय, तब तक रिष्टिकाल होता है। इस समयके भीतर रिष्टका विचार कर उसके शुभाशुभका निर्णय करना चाहिए।

ज्योतिषमें, जातकके नक्षत्रविशेषके किसी किसी निर्दिष्ट समयमें जन्म होनेसे अथवा पाप या शुभग्रहके दृष्टमें जन्म हो कर उनमें उसी ग्रहका वेध रहने से उनके अशुभदायक होने पर जातकका रिष्ट होता है। रिष्ट तीन प्रकारका है—योगज, नियत और अनियत और वैसे यह बहुत प्रकारका है— गण्डयोगरिष्ट, पताकिरिष्ट, द्वादशजन्मरिष्ट, ग्रहोंका योगजरिष्ट इत्यादि। ज्योतिषमें जिन रिष्टोंका विशेष रूपसे लिखा हुआ है, उसे हम यहां संक्षेपमें देते हैं।

रिष्ट निर्णय करनेसे पहले गण्डरिष्टका निश्चय करना चाहिए। बालकका जन्ममात्र होते पहले देखना चाहिए कि उसमें किसी प्रकारकी रिष्टि है या नहीं। जब देखे कि किसी प्रकारकी रिष्टि नहीं है, तो उसके अन्यान्य विषयोंकी गणना करना चाहिए, अन्यथा अन्य फल-गणना व्यर्थ है।

गण्डरिष्ट—अश्विनी, मघा और मूल नक्षत्रके प्रथम तीन दण्ड और ज्येष्ठा, रेवती और अश्लेषा नक्षत्रके शेष ५ दण्ड गण्डरिष्ट कहलाता है। परन्तु यवनाचार्य प्रथमोक्त दो नक्षत्रोंके तीन दण्डकी जगह ५ दण्ड लेते हैं। इस समयके मध्य किसीका भी जन्म हो, तो उसका गण्ड रिष्टमें जन्म समझना चाहिए।

दिवस, सन्ध्या और रात्रिगण्ड—ज्येष्ठाके शेष पांच दण्ड और मूलाके आदि तीन दण्ड, दिवसमें होनेसे दिवागण्ड समझना चाहिए और इसी प्रकार अश्लेषाके शेष पांच दण्ड और मघाके प्रथम तीन दण्ड रात्रिभागमें होनेसे रात्रिगण्ड, तथा रेवतीके शेष पांच दण्ड और अश्विनीके प्रथम तीन दण्ड सन्ध्याकालमें होनेसे सन्ध्या गण्ड होता है।

गण्डरिष्टका फल—सन्ध्यागण्डमें जन्म होनेसे बालकको मृत्यु, रात्रिगण्डमें होनेसे माताकी मृत्यु और दिवागण्डमें होनेसे पिताकी मृत्यु होती है। परन्तु इसमें इतना विशेष है कि दिवागण्ड नक्षत्र रात्रिमें तथा रात्रिगण्ड नक्षत्र दिवसमें और सन्ध्यागण्ड नक्षत्र दिवस या रात्रिमें होनसे उक्त गण्डरिष्ट नहीं होता।

गण्डरिष्टका भोग काल रेवती नक्षत्रमें जन्म हो कर गण्डदोष होनेसे उसका रिष्टकाल अढ़ाई वर्ष अश्विनी नक्षत्रमें दश मास, ज्येष्ठामें डेढ़ वर्ष, मूलामें छः वर्ष, मघामें चार वर्ष और अश्लेषामें एक वर्ष रिष्टिकाल होता है। इस समयके अन्दर ही अशुभ हुआ करता है।

गण्डयोगमें जात शिशुका विधान—उक्त गण्डरिष्टिमें जिसका जन्म होता है, उसे परित्याग करना ही उचित है, अथवा ६ मास उत्तीर्ण बिना हुए पिताको उसे देखना न चाहिए।

गण्डरिष्टिभङ्ग—यदि दिवागण्डमें किसी कन्या और रात्रिगण्डमें पुत्रका जन्म हो, तो उन दोनोंमेंसे किसीको भी गण्डदोष नहीं होता। अर्थात् ज्येष्ठाके शेष पांच दण्ड और मूलाके आदि तीन दण्ड, ये आठ दण्ड दिवागण्ड हैं, इनमें किसी कन्याका तथा अश्लेषाके शेष पांच दण्ड और मघाके आदि तीन दण्ड रात्रिगण्ड हैं, इनमें पुत्रका जन्म होनेसे उनके गण्डरिष्टि नहीं होती। दिवागण्ड नक्षत्र रात्रिमें और दिवसमें होनेसे भी गण्डदोष नहीं होता।

गण्डतिथि-रिष्टि—प्रतिपद, अमावस्या, षष्ठी, नवमी और द्वादशी ये गण्ड तिथियां हैं, इस लिए इन्हें तिथिरिष्टि कहा गया है। इन तिथियोंमेंसे जिस किसी तिथिमें जन्म होने पर जातक इन्द्रके समान होने पर भी जीवित नहीं रह सकता।

गण्डरिष्टिमें जन्म होनेसे विधानके अनुसार उसकी शान्ति कराना आवश्यक है। शान्तिका विधान इस प्रकार है—कुङ्कुम, चन्दन, कुष्ठ अथवा गोरोचनाको घीके साथ मिला कर चार कलसोंमें रखे तथा सहस्राक्ष मन्त्र पढ़ कर उन द्रव्योंसे बालकको स्नान करावे। दिनमें जन्म होने पर पिताके साथ तथा रातको माताके साथ और सन्ध्याको जन्म होने पर पिता और माता

दोनोंके साथ स्नान करना चाहिए। उसके बाद घृतपूर्ण कांस्य पात्र, धेनु और हिरण्यदान तथा नवग्रहकी पूजा करना उचित है।

गण्डरिष्टि ठीक करके उसके बाद पताकिरिष्टिका निर्णय करना चाहिए। पताकिरिष्टि बालककी विशेष रिष्टि है। पताकिरिष्ट होनेसे बालक किसी भी तरह नहीं बच सकता। पताकी देखो।

गण्ड जात बालक यदि कहीं दैवात् बच जाय, तो वह अशेष ऐश्वर्यशाली होता है।

पताकिरिष्टिके बाद नवग्रह-रिष्टि स्थिर करनी चाहिए।

रविरिष्टि—यदि पापग्रहणकेन्द्र वा त्रिकोणमें हों और शुभग्रह लग्नसे षष्ठ, अष्टम और द्वादश राशिमें हों तथा सूर्योदयके समय जन्म हो, तो जातक उसी समय मर जाता है। इसको रविरिष्टि कहते हैं।

चन्द्ररिष्टि—पापग्रह दृष्ट चन्द्र लग्नको छठो, आठवों वा बारहवीं राशिमें बालकका जन्म होनेसे वह उसी समय मर जाता है और उसमें शुभग्रहकी दृष्टि होनेसे ८वर्षमें तथा शुभाशुभकी दृष्टिमें चार वर्षमें मृत्यु होती है।

पापयुक्त चन्द्ररिष्टि—लग्न, पंचम, सप्तम, अष्टम और द्वादश स्थानके किसी एक स्थानमें चन्द्रके पाप-युक्त हो कर अवस्थान करनेसे तथा बुध, वृहस्पति और शुक्र इनमेंसे किसी एक ग्रहकी दृष्टि वा संयोग न होनेसे बालककी अकाल मृत्यु होती है। परन्तु इनकी दृष्टि नहीं हो, तो नहीं होती।

दो पापोंके मध्यगत चन्द्ररिष्टि—यदि चन्द्र दो पाप ग्रहोंके मध्यमें रह कर लग्नके चतुर्थ, सप्तम वा अष्टम स्थानमेंसे किसी एक स्थानमें रहें, तो देवता द्वारा रक्षित होने पर भी बालकका जीवन नाश होता है।

लग्नक्षीण चन्द्ररिष्टि—यवनाचार्यके मतसे क्षीण चन्द्र लग्नमें वा परमग्रहके साथ किसी केन्द्रमें अथवा अष्टम स्थानमें पापग्रहके साथ मिलित होने पर अवश्य ही जातककी अकाल मृत्यु होती है।

मङ्गलरिष्टि—यदि लग्नमें मङ्गल रह कर शुभग्रह द्वारा दृष्ट न हो, अथवा छठे या आठवें स्थानमें शनिके साथ शुक्र हो, अथवा सप्तम स्थानमें शनि मङ्गल एकत्र हों, तथा शुभग्रह द्वारा दृष्ट न हो, तो जातककी उसी वक्त मृत्यु हो जाती है।

बुधरिष्टि—यदि कर्कटराशिमें बुध हों, तथा वह यदि लग्नके छठे या आठवें स्थानमें हों, तथा चन्द्र द्वारा वह बुध यदि दृष्ट हो, तो जातककी चार वर्षमें मृत्यु हो जाती है।

वृहस्पतिरिष्टि—वृहस्पति यदि मेष वा वृश्चिक राशिमें रह कर किसी लग्नके आठवें स्थानमें हों तथा वह वृहस्पति यदि रवि, चन्द्र, मंगल और शनि द्वारा दृष्ट हो और शुक्रको दृष्टि न रहे, तो जातककी तीन वर्ष बाद मृत्यु होती है।

शुक्ररिष्टि—शुक्र यदि सूर्यके वा चन्द्रके ग्रहमें हो और वह स्थान लग्नसे षष्ठ, अष्टम वा द्वादश हो, तथा शुक्र यदि पापग्रह द्वारा दृष्ट हो, तो जातककी ६ वर्षके भीतर मृत्यु हो जाती है।

शनिरिष्टि—शनि लग्नमें रह कर पापग्रह द्वारा दृष्ट होनेसे १६ दिनके भीतर, लग्नमें केवल शनि रहनेसे एक वर्षके भीतर और पापग्रहयुक्त हो कर लग्नमें रहनेसे एक मासके भीतर जातककी मृत्यु हो जाती है।

राहुरिष्टि—राहु यदि केन्द्रस्थानमें रहे और पापग्रह द्वारा दृष्ट हो, तो किसीके मतसे दश और किसीके मतसे सोलह वर्षमें जातककी मृत्यु होती है।

केतुरिष्टि—जिस नक्षत्रमें केतुका उदय होगा, उस नक्षत्रमें किसी बालकका जन्म होनेसे यदि जन्ममुहूर्त्त रौद्र या सर्पमुहूर्त्त हो, तो जातककी अकाल मृत्यु होती है।

इस प्रकार नवग्रह रिष्टि स्थिर करनी होती है। उसके बाद वह देखना आवश्यक है, कि द्वादश लग्न रिष्टि है वा नहीं। द्वादश लग्न रिष्टि निम्नोक्त प्रकारसे जानी जाती है।

मेषलग्नरिष्टि—मेष लग्नमें जन्म हो कर लग्नमें चन्द्र और मङ्गल तथा मकरको छोड़ दूसरी किसी राशिमें शनि और रवि रहे, तो जातक तीन दिनके अंदर मर जाता है।

वृषलग्नरिष्टि—यदि वृष लग्नमें जन्म हो तथा यह

लग्न वृहस्पति या शनिसे षष्ठ स्थानमें स्थित हो अर्थात् शनि वृहस्पति धनु राशिमें और मङ्गल अष्टम स्थानमें रहे, तो चौदहवें दिनमें जन्म लेनेवाला परलोकवासी होता है।

मिथुनलग्नरिष्टि—मिथुन लग्न हो कर कर्कटमें शनि तथा धनुमें रवि रहे, तो चौदह दिनके अन्दर जातक की मृत्यु होती है।

कर्कटलग्नरिष्टि—जन्म लग्न कर्कट होने तथा तुला में या कुम्भ राशिमें वृहस्पति रह कर मङ्गल और राहु कर्तृक दृष्ट होनेसे जातक चौदह दिनमें मृत्युमुखमें पतित होता है।

सिंहलग्नरिष्टि—यदि सिंह लग्नमें जन्म हो और चन्द्र लग्नमें अवस्थिति करे तथा मकर भिन्न अन्य राशिमें शनि और रवि रहे, तो पिताके साथ जातककी मृत्यु होती है।

कन्यालग्नरिष्टि—कन्यालग्नमें जन्म होने तथा इस लग्नमें चन्द्र वृहस्पतिके केन्द्रमें शनिके रहनेसे माताके साथ जातककी मृत्यु होती है।

तुलालग्नरिष्टि—यदि तुला लग्नमें जन्म हो और षष्ठमें शुक्र तथा लग्नमें चन्द्र रहे, तो बीस दिनके भीतर जातक करालकालके मुखमें पतित होता है।

वृश्चिकलग्नरिष्टि—वृश्चिक लग्नमें यदि जन्म हो तथा कर्कटमें यदि चन्द्र रहे, तो दिनमें जन्म लेनेवाला रातमें और रातमें जन्म लेनेवाला दिनमें मरता है।

धनुलग्नरिष्टि—यदि धनु लग्नमें जन्म हो तथा वृहस्पति इस लग्नमें रहे, मङ्गलके गृहमें अर्थात् मेष या वृश्चिक राशिमें शनि रहे, तो बीस दिनके भीतर जातक की मृत्यु होती है।

मकरलग्नरिष्टि—मकर लग्नमें जन्म होते समय यदि मेषमें चन्द्र और सिंहमें रवि स्थित हो तो जातक सोलह दिनमें मर जाता है।

कुम्भलग्नरिष्टि—कुम्भ लग्नमें जन्म हो कर चतुर्थमें चन्द्र तथा कन्या तुलामें शुक्रके रहनेसे जातककी मातुल के साथ मृत्यु होती है।

मीनलग्नरिष्टि—यदि मीन लग्नमें जन्म हो और इस स्थानमें चन्द्र तथा वृश्चिकमें शनि रहे, तो बारह दिनके अन्दर जातक इहलोकको छोड़ परलोक सिधारता है।

पञ्चस्वरमें रिष्टिका विषय इस प्रकार वर्णित हुआ है,—

यदि राहु चन्द्रके घरमें रह कर चन्द्रके साथ किंवा सूर्यके साथ रहे और शनि तथा मङ्गल लग्नको देखे, तो रिष्ट होता है और इस रिष्टके होनेसे जातक एक पक्षमें प्राणत्याग करता है। षष्ठमें चन्द्र, सप्तममें मङ्गल और नवममें शनि रहनेसे जातकका माताके साथ मृत्यु होती है। लग्नमें शनि, तृतीयमें वृहस्पति और अष्टममें चन्द्र रहे, तो जातकका अमङ्गल होता है। सप्तममें शनि, नवममें बुध, एकादशमें गुरु और शुक्र रहनेसे रिष्ट होता है और इस रिष्टिके फलसे जातक एक मासमें मर जाता है। लग्नमें शनि और मङ्गल, पञ्चममें चन्द्र तथा द्वादशस्थानमें बुध रहनेसे रिष्ट होता है। लग्नमें शनि और मङ्गल, अष्टममें चन्द्र या वृहस्पति रहे, तो जातकका जीवन व्यर्थ होता है। रवि और चन्द्र षष्ठमें रहनेसे रिष्टि होती है। नवम स्थानमें पाप ग्रह तथा द्वादश स्थानमें बुध, षष्ठमें या अष्टममें चन्द्र तथा सप्तममें शनि रहनेसे जातक पिता और माताका मृत्युकारी तथा आप भी एक मासमें मृत्युमुखमें पतित होता है।

यदि शुभ अर्थात् सौम्यराशि लग्न हो तथा इस लग्नसे अष्टमस्थानमें चन्द्र तथा चतुर्थमें शनि रहे, यदि जातकके लग्नमें रवि, शुक्र और शनि तथा द्वादशमें वृहस्पति, लग्नमें रवि सप्तममें मङ्गल तथा चन्द्रमें शनि, लग्नमें चन्द्र और शनि तथा द्वादशमें रवि और मङ्गल तथा कोई शुभग्रह लग्नको न देखे लग्नमें मङ्गल, चतुर्थ में राहु और द्वादशमें शनि तथा लग्नमें शनि, अष्टममें चन्द्र और द्वादशमें शुक्र, लग्नमें समस्त पापग्रह, द्वादशमें समस्त शुभग्रह, सप्तमम या अष्टम राहु रहे, यह दो स्थान चन्द्र या सूर्यका गृह हो तथा शनि और मङ्गल लग्नको देखे, तो इन सब योगोंके कारण रिष्टि दोषसे जातकका अचिरात् मृत्यु होती है।

मातृरिष्टि—दिनमें जन्म होनेसे शुक्र तथा रातमें जन्म होनेसे चन्द्र जातकका माता होते हैं अर्थात् इन

दो ग्रहोंको अवस्थानुसार माताके शुभाशुभका विचार करना होता है। यदि दिनमें जन्म हो और शुक्रग्रह पापग्रहके साथ रहे अथवा उससे दृष्ट हो, तो जातकको मातृरिष्टि होती है। यदि शुक्र पापग्रहके घरमें रहे तथा शुभग्रह द्वारा दृष्ट न हो, तो जातकका मातृरिष्टि होती है। यदि रातमें जन्म हो तथा पापग्रहके घरमें चन्द्र रह कर बहुत पापग्रहोंके साथ मिले, हो तो उसका मातृरिष्ट होता है। यदि क्षीणचंद्रको समस्त पापग्रह देखे तथा यदि किसी शुभग्रह द्वारा दृष्ट न हो, यदि अष्टम या षष्ठस्थानमें चन्द्र और सप्तममें मङ्गल पापग्रहयुक्त हो, यदि मङ्गल चन्द्रके अष्टममें तथा यह स्थान यदि लग्नका षष्ठ हो, तो मातृरिष्ट होता है। और भी यदि शुक्रग्रहको मंगल देखे, लग्न या लग्नसे चतुर्थ स्थानमें बलवान् पापग्रह रहे, लग्न और चतुर्थ स्थानस्थितग्रह द्वारा तथा चतुर्थाधिपति ग्रहके अवस्थान द्वारा मातृरिष्ट स्थिर करना होता है।

यदि चन्द्र शनि और मङ्गलका मध्यवर्त्ती हो अथवा रवि और मङ्गलके साथ मिला रहे, तो मातृरिष्ट होता है। यदि केन्द्रस्थानमें पापग्रहके साथ चन्द्र पापग्रह केन्द्र और त्रिकोणमें रहे तथा पापग्रहयुक्त शुक्रके चतुर्थ पापग्रह रहे, यदि चन्द्र पापग्रह द्वारा अवलोकित हो तथा षष्ठमें पापग्रह रहे, यदि लग्नके सप्तम स्थानमें सूर्य उच्च या नीच राशिमें अवस्थान करे, तो जातकका मातृरिष्ट होता है। इन सब मातृरिष्टोंसे जातकका मातृविनाश होता है।

पितृरिष्ट—दिनमें सूर्य और रातमें शनि जातकका पिता होता तथा रातमें रवि पिताका भाई और दिनमें शनि पिताका भाई होता है। लग्नसे षष्ठ और अष्टम स्थानमें रवि अवस्थान कर शनि और मङ्गल द्वारा अवलोकित हो तथा वृहस्पति और शुक्र यदि न देखे, तो जातकका पितृरिष्ट होता है। द्वितीय स्थानमें राहु और शुक्र, अष्टम स्थानमें चन्द्र और शनि, मङ्गल मित्र-गृहमें लग्नसे चतुर्थ स्थानमें अवस्थान करे, यदि लग्नसे अष्टम स्थानमें मङ्गल द्वादशस्थानमें दो या तीन पाप-ग्रह रहे तथा उस पर शुभग्रहकी दृष्टि न पड़े, यदि रवि अष्टम स्थानमें किंवा राहुके साथ मिल कर जन्मलग्नमें रहे, तो पितृरिष्ट होता है।

लग्नसे षष्ठमें चन्द्र, सप्तममें मङ्गल तथा दशममें शनि रहे, यदि चंद्र शुभग्रह द्वारा दृष्ट या युक्त न हो कर तीन पापग्रहोंसे दृष्ट हो जानेसे चतुर्थस्थानमें मङ्गल रहे, चन्द्र या मङ्गल पापग्रहयुक्त हो कर अष्टम स्थानमें रहे, सप्तममें मङ्गल तथा अष्टममें शनि और रवि रह कर यदि शुभग्रहसे दृष्टि न हो, सूर्य जिस राशिमें रहे, उसी राशिसे सप्तम राशिमें शनि और मङ्गल रहे अथवा अन्य किसी राशिमें शनि और मङ्गलके बीच रवि रहे, तो यह सब योग जातकका पितृरिष्टकारक होता है तथा इसके होनेसे शीघ्र जातकका पितृवियोग होता है।

भ्रातृरिष्ट—धनस्थानमें शनि और मङ्गल तथा तृतीयस्थानमें राहुके रहनेसे जातकका भ्रातृरिष्ट होता है।

लग्न और राश्याधिपरिष्ट—लग्नाधिपति और राश्यधिपतिग्रह अस्तमित हो कर लग्नके षष्ठ, अष्टम और द्वादश राशिमें रहनेसे यथाक्रम षष्ठ, अष्टम और द्वादश वर्षके मध्य जातककी मृत्यु होती है।

शुभग्रहरिष्ट—शुभग्रहगण अशुभ और वक्रग्रह द्वारा दृष्ट हो कर लग्नके षष्ठ या अष्टम अथवा दोनों स्थानोंमें रह कर कोई शुभग्रह द्वारा दृष्ट न होनेसे एक मासमें जातकका मरण होता है।

पापग्रहरिष्ट—कोई एक बलवान् पापग्रह शत्रुदृष्ट और शत्रुग्रहस्थित हो कर लग्नके अष्टम स्थानमें रहनेसे जातक मृत्युमुखमें पतित होता है।

पहले इन सब रिष्टोंका विचार कर उसका शुभाशुभ निर्णय करना होता है। रिष्ट होनेसे ही जो उसकी मृत्यु ठीक करनी होगी, वह नहीं। रिष्टभङ्ग है क्या नहीं, वह भी देखना होगा।

रिष्टभङ्गयोग—यदि केन्द्र स्थानमें तथा त्रिकोणमें अर्थात् नवपञ्चममें एक भी शुभग्रह रहे और वह ग्रह अस्तमित न हो कर उदितावस्थामें रहे, तो जातकका सब दोष नष्ट होता और उसे दीर्घायु और पीड़ारहित करता है। शुभग्रहगण सम्पूर्ण बलवान्, पापग्रहगण दुर्बल तथा शुभग्रहके क्षेत्रमें लग्न हो कर शुभग्रह द्वारा दृष्ट होनेसे जातक समस्त आपदोंसे छुटकारा पाता है।

पूर्णचन्द्र शुभग्रहके क्षेत्रमें रह कर शुभग्रहके नवांशमें रहनेसे रिष्ट भङ्ग होता है। विशेषतः चन्द्र यदि शुक्र द्वारा दृष्ट हो तो सब प्रकारका दोष एकबारगी नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार गरुड़ समस्त सर्पकुलको नाश करता है, उसी प्रकार शुभग्रहका मध्यवर्ती चन्द्र बालक का समस्त रिष्टदोष नष्ट करता है।

यदि पूर्णचन्द्र लग्नमेंसे उच्च या अपने घरमें अथवा मित्र शुभग्रह या अपने षड्वर्गमें रह कर शुभग्रह द्वारा दृष्ट हो तथा पापग्रहयुक्त किंवा पापग्रह अथवा तात्का लिक शत्रुग्रह द्वारा दृष्ट न हो, तो दिनपति यानी सूर्य जिस तरह हिमराशि नष्ट करता है, उक्त चन्द्र भी उसी तरह सभी रिष्टदोष विनष्ट करता है। चन्द्रसे षष्ठ, सप्तम और अष्टम राशिमें पापग्रह न रह कर शुभग्रहमें रहनेसे सकल रिष्ट भङ्ग होता है।

यदि शुक्लपक्षका रातमें तथा कृष्णपक्षको दिनमें जन्म हो तथा शुभाशुभ ग्रह द्वारा अवलोकित चन्द्र षष्ठ या अष्टम स्थानमें रहे, तो उक्त चन्द्र शिशुको विनाश न कर उसकी सब दोषोंसे रक्षा करता है।

तुला, धनु और मीन राशिमें से कोई एक राशि जन्म लग्न होनेसे यदि उसमें शनि रहे, तो समस्त रिष्टदोष नष्ट होता है, किन्तु अन्य राशि लग्न हो कर उसमें शनि रहे, तो मृत्यु होती है। लग्नके तृतीय, षष्ठ या एकादश स्थानमें यदि राहु रहे तथा वह राहु यदि शुभग्रह द्वारा दृष्ट हो, तो रिष्टभङ्ग होता है।

मेष, वृष अथवा कर्कट राशिमें राहु अवस्थान करनेसे रिष्टभङ्ग होता है। शनि और राहु एक साथ मिल कर यदि सिंह राशिमें अवस्थान करे, तो जातकका समस्त रिष्टभङ्ग होता और वह भूपति या राजा होता है। यदि लग्नमें बुध, सप्तममें शुक्र तथा कर्कट राशिमें वृहस्पति रहे, शुक्र अपने घरमें तथा पापग्रहगण पापक्षेत्रमें रह कर शुभग्रह द्वारा दृष्ट हो, चन्द्र, बुध, शुक्र या वृहस्पतिके द्रेक्काणमें द्वादशांशमें रहनेसे किंवा लग्नाधिपतिको तृतीय, चतुर्थ, षष्ठ, दशम या एकादशमें हो कर शुभदृष्ट होनेसे सकल रिष्टदोष विनष्ट होता है।

(जातकच० ज्योतिस्तत्त्व०)

जातकका इस प्रकार रिष्ट और रिष्टभङ्ग स्थिर करना होता है। जिस जातकका रिष्ट रहता है उसका शुभाशुभ निर्णय करना होता है।

रिष्फ (सं० क्ली०) लग्नसे बारह स्थान।

रिष्य (सं० पु०) रिष्यति इति रिष-क्यप्। मृगविशेष।

रिष्यमूक (सं० पु०) दक्षिणका एक पर्वत जहां रामजीसे सुग्रीवकी मित्रता हुई थी। ऋष्यमूक देखो।

रिष्व (सं० त्रि०) रिष वधे (सर्वनिघृष्वरिष्वादि। उण् १।१५३) इति वन् प्रत्ययेन साधुः। बधक, घातक।

रिस (हिं० स्त्री०) क्रोध, गुस्सा।

रिसान (हिं० पु०) तागेके सूतोंको फैला कर उनको साफ करनेका काम।

रिसाना (हिं० क्रि०) किसी पर क्रुद्ध होना, बिगड़ना।

रिसाल (फा० पु०) राजकर जो मुफस्सलसे राजधानी भेजा जाता है।

रिसालदार (फा० पु०) १ घुड़सवार, सेनाका अफसर। २ रिसाल या राजकर ले जाने वालोंका प्रधान संचालक, जमादार।

रिसाला (फा० पु०) घुड़सवारोंकी सेना, अश्वारोही सेना।

रिसियाना (हिं० क्रि०) क्रुद्ध होना, कुपित होना।

रिसिक (हिं० स्त्री०) रिसियाना देखो।

रिसोद—वेरारराज्यके बासीम जिलान्तर्गत एक प्रधान नगर। यह अक्षा० १९ ५८´ ३०˝ उ० तथा देशा० ७६ ५१´ पू० तक विस्तृत है। इसका प्राचीन नाम 'ऋषि वत्सीन' था। १८५८ ५९ ई०में हैदराबाद सेनादलके एक विभागने इस नगरके उपकण्ठस्थित चिमन्या गांवमें एक दल रोहिला दस्युको परास्त युद्धके बाद अपने कब्जेमें किया।

रिस्क (अ० स्त्री०) जोखिम, जवाबदेही।

रिस्टवाच (अं० स्त्री०) कलाई पर बाँधनेकी घड़ी।

रिहत् (सं० अव्य०) छेदनकरण, काटना।

रिहननामा (फा० पु०) वह लेख जिसमें किसी पदार्थके रेहन रखे जाने और उसके सम्बन्धकी शर्तोंका उल्लेख हो।

रिहर्सल (अं० पु०) १ नाटकका अभिनयका अभ्यास। जो किसी कार्यको ठीक समय पर करनेसे पहले किया जाय।

रिहल (अ० स्त्री०) कानकी बनी हुई कैंचीनुमा चौकी जिस पर रख कर लोग पुस्तक पढ़ते हैं और जिसका आकार इस प्रकारका × होता है।

रिहा (फा० वि०) १ बंधन आदिसे मुक्त, छूटा हुआ। २ किसी बाधा या सङ्कटसे छूटा हुआ।

रिहाई (फा० स्त्री०) छुटकारा, मुक्ति।

रिहाण (सं० पु०) १ सेवा करना। २ पदलेहन, पैर चाटना। ३ आनुगत्यस्वीकार करना।

रिहायस् (सं० पु०) १ दस्यु। २ स्तेन, चोर। (नैघण्टु० ३।२४)

रिह् लन—काश्मीरका एक राजपुरुष। (राजतर० ७।९३८)

रिहन् (सं० पु०) चोर।

रींधना (हिं० क्रि०) तैयार करनेके लिये खाद्य पदार्थको तलना, उबालना या पकाना, राँधना।

री (सं० स्त्री०) री-क्विप्। १ गति। २ रव, शब्द। ३ वध, हत्या।

री (हिं० अव्य०) सखियोंके लिये सम्बोधन, अरी।

रीगन (हिं० पु०) एक प्रकारका धान जो भादों या कुआँरमें तैयार होता है।

रीछ (हिं० पु०) भालू।

रीछराज (हिं० पु०) जामवंत।

रीजेंट (अं० पु०) वह जो किसी राजाकी नाबालगी, अनुपस्थिति या अयोग्यताकी अवस्थामें राज्यका प्रबन्ध या शासन करता हो, राज-प्रतिनिधि।

रीजेंसी (अं० स्त्री०) रीजेंटका शासन या अधिकार।

रीज्या (सं० स्त्री०) १ घृणा, नफरत। २ भला बुरा कहना, लानत, मलामत, निन्दा।

रीझ (हिं० स्त्री०) १ किसीके ऊपर रीझनेकी क्रिया या भाव, किसीकी किसी बात पर प्रसन्नता। २ किसीके रूप, गुण आदि पर मोहित होनेका भाव।

रीझना (हिं० क्रि०) १ किसी बात पर प्रसन्न होना। २ मोहित होना, मुग्ध होना।

रीठ (हिं० स्त्री०) १ तलवार। २ युद्ध। (वि०) ३ अशुभ, खराब।

रीठा (हिं० पु०) १ एक बड़ा जंगली वृक्ष। यह प्रायः बंगाल, मध्यप्रदेश, राजपूताने तथा दक्षिण भारतमें पाया जाता है और देखनेमें बहुत सुन्दर होता है। २ इस वृक्षका फल जो बेरके बराबर होता है। इसको लोग सुखा कर रखते हैं। इसे पानीमें भिगो कर मलनेसे फेन निकलता है जिससे कपड़े धोये जाते हैं। काश्मीरमें शाल आदि प्रायः इसीसे साफ किये जाते हैं। यह रेशम तथा जवाहिरात धोनेके काममें भी आता है। इसे फेनिल भी कहते हैं। ३ वह भट्ठा जिसमें चूना बनानेके लिये कंकर फूंके जाते हैं।

रीठाकरञ्ज (सं० पु०) स्वनामख्यात वृक्ष, रीठा। बम्बईमें—रिथा, तामिलमें—पिन्नान कोट्टई, तैलङ्गमें—रीठाकरञ्ज, मनेचट्टु। संस्कृत पर्याय—गुच्छक, गुच्छपुष्पक, गुच्छफल, अरिष्ट, मङ्गल्य, कुम्भबीजक, प्रकीर्य, सोमवल्क, फेनिल। इसके फलका गुण—तिक्त, उष्ण, कटु, स्निग्ध, वात, कफ, कुष्ठ, कण्डूति, विष और विस्फोटनाशक। (राजनि०)

रीठी (हिं० स्त्री०) रीठा देखो।

रीडर (अं० पु०) १ वह जो पढ़े, पढ़नेवाला। २ वह जो लेख या पुस्तकोंके प्रूफ पढ़ता या संशोधन करता है, संशोधक। ३ कालेज या विश्वविद्यालयका अध्यापक या व्याख्याता। (स्त्री०) ४ पाठ्य, पुस्तक।

रीडिंगरूम (अं० पु०) वाचनालय देखो।

रीढ़ (हिं० स्त्री०) पीठके बीचोबीचकी वह खड़ी हड्डी जो गर्दनसे कमर तक जाती है और जिससे पसलियाँ मिली हुई रहती हैं, मेरुदण्ड। यह वास्तवमें एक ही हड्डी नहीं होती, बल्कि बहुत-सी हड्डियोंकी गुरियोंकी एक शृंखला होती। इसे शरीरका आधार समझना चाहिये। इसका सीधा लगाव मस्तिष्कसे होता है और बहुतसे संवेदन-सूत्र इसमेंसे दोनों ओर निकल कर फैले रहते हैं।

रीढ़क (सं० पु०) पृष्ठवंश, मेरुदण्ड। रीढ़ा देखो।

रीढ़ा (सं० स्त्री०) रिह-वन्धे औणादिकः क्तः। अवज्ञा, अपमान।

रीण (सं० त्रि०) री-क्त, ओदितश्चेति न। १ स्रुत-जलादि। २ क्षरित।

रीत (हिं० स्त्री०) रीति देखो।

रीतना (हि० क्रि०) १ खाली होना रिक्त होना। २ खाली करना, रिक्त करना।

रीता हि० वि०) जिसके अन्दर कुछ न हो, खाली।

रीति (सं० स्त्री०) री-क्तिच् क्तिन् वा। १ कोई कार्य करनेका ढंग प्रकार। २ परिपाटी, रिवाज। ३ नियम, कायदा। ४ पीतकिट्ट लोहेकी मैल, मण्डूर। ५ दग्ध स्वर्णादि मल, जले हुए सोनेकी मैल। ६ मात्कूट पीतल। ७ सीसा। ८ गति। ९ स्वभाव। इसका पर्याय—रूप, लक्षण भाव आत्मा, प्रकृति, सहज रूप तत्त्व धर्म, सर्ग निसर्ग शील, सतत्त्व, संसिद्धि। १० स्तुति, प्रशंसा। "महीव रीतिः शवसासरत् पृथक्" (ऋक् ३।२४।१४) 'महीव रीतिः महती स्तुतिरिव' (सायण) ११ काव्यकी आत्मा। एक एक रीतिके अनुसार काव्य रचित होता है, इसलिये वामन रीतिको काव्यकी आत्मा कहा है। यह रीति ओज, प्रसाद और माधुर्यगुणके भेदसे गौड़ी, वैदर्भी और पाञ्चाल तीन तरहकी है। (काव्यचन्द्रिका)

साहित्यदर्पणमें लिखा है, कि पदसंघटनाका नाम रीति है। यह रसकी उपकारिणी है। यह रीति चार प्रकारकी है,—वैदर्भी, गौड़ी, पाञ्चाली और लाटी। जहां माधुर्यव्यञ्जक वर्ण द्वारा सुललित पदरचना करने पर भी यह अवृत्ति या अल्पवृत्तियुक्त रहती है, उसे वैदर्भी, जहां ओजःप्रकाशक वर्ण द्वारा पद रचना होता है तथा यह पद समासबहुल होता है, उसे गौड़ी और जहां वैदर्भी तथा गौड़ी इन दो रीतिके अलावा अन्य वर्णद्वारा समास युक्त पांच या छः पद द्वारा सुललित रचना होता है, उसे पाञ्चाली रीति कहते हैं।

वैदर्भी और पाञ्चाली रीतिके मध्यस्था जो रीति है, उसे लाटी कहते हैं अर्थात् जहां वैदर्भी भी नहीं तथा पाञ्चाली भी नहीं है और वही दोनोंकी मध्यवर्तिनी है, वहां लाटी रीति होती है। (साहित्यदर्पण ९ परि०)

रीतिक (सं० क्ली०) पुष्पाञ्जन, एक प्रकारका अञ्जन।

रीतिका (सं० स्त्री०) १ कुसुमाञ्जन, जस्तेका भस्म। २ पित्तल, पीतल।

रीतिपुष्प (सं० क्ली०) रीतेः पित्तलस्य पुष्पमिव तत्र प्रतिस्थात्। कुसुमाञ्जन, जस्तेका भस्म।

रीम (अं० स्त्री०) १ कागजका वह गड्डा जिसमें बीस दस्ते होते हैं। २ मवाद, पीब।

रीर (सं० पु०) शिव, महादेव।

रीर (हि० स्त्री०) रीढ़ देखो।

रीरी (सं० स्त्री०) पित्तल, पीतल।

रीस (हि० स्त्री०) १ रिस देखो। २ डाह। ३ स्पर्धा, बराबरी।

रीसना (हि० क्रि०) क्रुद्ध करना, खफा होना।

रीसा (हि० स्त्री०) एक प्रकारकी झाड़ी जिसकी छालके रेशोंसे रस्सियां बनती हैं। यह झाड़ी हिमालय और खासिया पहाड़ पर होती है। इसे बन कठकोरा या बनरीहा भी कहते हैं।

रीहा (हि० स्त्री०) रीसा देखो।

रुंज (हि० पु०) एक प्रकारका बाजा।

रुंधाना (हि० क्रि०) पैरोंसे कुचलना, रौंदवाना।

रुंधना (हि० क्रि०) १ मार्ग न मिलनेके कारण अटकना, रुकना। २ उलझना, फंस जाना। ३ रोक या रक्षाके लिये कांटेदार झाड़ोंसे घिरना या छाना, घेरा जाना। ४ किसी काममें लगना।

रु (सं० पु०) शब्द।

रुआंठी (हि० स्त्री०) रुईकी बनी हुई एक प्रकारकी पोली बत्ती या पूनी जो स्त्रियां चरखे पर सूत कातनेके लिये एक सिरकी पर लपेट कर बनाती हैं, पूना पौनी।

रुसाघास (हि० स्त्री०) १ एक प्रकारकी बहुत सुगन्धित घास जो तेल आदि बासनेके काममें आती है। २ इस घाससे बासा हुआ तेल।

रुआब (अ० पु०) १ धाक, रोब। २ भय डर, खौफ।

रुई (हि० स्त्री०) एक प्रकारका छोटा पेड़। यह हिमालय की तराईमें काश्मीरसे पूर्व दिशामें होता है। इसकी छाल और पत्तियां रंगाईके काममें आती हैं।

रुई (हि० स्त्री०) रूई देखो।

रुकरुस (फा० पु०) कुश्तीमें छाती या बगलके पाससे हाथ भिड़ा कर निकालना।

रुखसार (हि० वि०) रुखसार देखो।

रुद्रदास—रुद्रदासी या दादाराम नामक वैष्णव धर्मशास्त्र प्रापक प्रवर्त्तक। ये प्रसिद्ध वैष्णव साधक रामानन्द

स्वामीके शिष्य थे। कहते हैं, कि चमारोंके बीच इन्होंने अपना धर्ममत प्रचार किया। दूसरे दूसरे सम्प्रदायके इनके मतानुवर्त्ती नहीं हुए। किन्तु सिक्खोंके आदि ग्रन्थमें इनका रविदास नाम था। इनके बनाये किसी किसी ग्रन्थसे अनुमान होता है, कि एक समय ये बड़े प्रसिद्ध हो उठे थे। आज भी काशीके रहनेवाले सिख जो स्वर-सन्तान गाते हैं, वह अधिकांश ही रुईदासका बनाया हुआ है।

भक्तमालग्रन्थको छोड़ उक्त महापुरुषकी जीवनीके सम्बन्धमें और कोई ऐतिहासिक प्रमाण नहीं मिलता। उक्त ग्रन्थमें लिखा है,—रामानन्दस्वामीके शिष्य-समूहों में एक ब्रह्मचारी था जो भगवानकी भोगसामग्री इकट्ठा करनेके लिये प्रति दिन भिक्षा मांगा करता था। एक दिन महल्लेमें जा कर वह एक बनियेके यहां पहुंचा और उससे जो कुछ मिला, वह लाके गुरुके हाथ दे दिया। दुर्भाग्यवश वह बनिया चमारोंका खाद्य सामग्री बेचता था।

रामानन्दस्वामी भोग लगाते समय भगवान्‌को मौजूद न देख मनही मन सोचने लगे,—शायद भोगकी सामग्रीमें कुछ गड़बड़ पहुंचा है। तदनुसार उन्होंने ब्रह्मचारीको बुलाया और पूछा, कि तुमने आज भोगकी सामग्री कहांसे लाई है। ब्रह्मचारीने साफ साफ बतला दिया। इस पर वे कुपित हुए और कहा, 'तू चमार'! गुरुवाक्य लंघन होनेको नहीं। ब्रह्मचारीने देह त्याग कर चमारके घर आश्रय लिया। जातकर्मके बाद उनका रुईदास नाम पड़ा।

शिशु रुईदास पूर्वजन्मके सद्‌गुरुके आश्रय और साधुसंगमके फलसे पूर्वजन्मकी बात न भूलने हुए जातिस्मर हुए। गुरुदेवसे अपना बिछुड़ना जान वे व्याकुलतासे रोने लगे। एक बूंद भी दूध नहीं पीते। शिशुका ऐसा भाव देख जनकजननी उत्कण्ठित हुईं और अपने पुत्रके जीवनकी आशंका जान शुभ कामनासे रामानन्दस्वामीके निकट पहुंचीं और सारी कहानी कह सुनाई। स्वामीजी उनके साथ हो लिये और रुईदासको देखने आये। गुरुका दर्शन पाते ही शिष्य फूला न समाया।

रामानन्दस्वामीने इनके कानमें महामन्त्र दिया। मंत्र पाते ही शिशुने स्तन्यपान किया तथा क्रमशः बड़ा हुआ विष्णुपदमें भी लीन रहा। जब उमर अधिक हो गई, तब रुईदास अपना जातिव्यवसाय चलाने लगे और जितना उनसे उपार्जन होता था, उससे साधुसेवा किया करते थे। एक दिन भगवान् वैष्णवरूप धारण कर इनके घर पधारे और स्पर्शमणि दी। किन्तु निःस्पृह रुईदासने उसे ग्रहण नहीं किया।

इसके तेरह महीने बाद किन्तु भगवान् फिर उनके घर देखने आये। स्पर्शमणि ग्रहण न किया इस लिए इन्होंने अपनी परीक्षा लेनेके लिये किसी एक स्थानमें पांच स्वर्णमुद्रा दी थी। रुईदास इतने पर भी अपनी अटल भक्ति और विश्वाससे विचलित न हुए और दानके प्रलोभनमें पड़े विरक्त हो उसी समय वह स्थान छोड़ अन्यत्र चले गये। तब भगवान् विष्णुने उनके मनोभावसे प्रसन्न साकार हो स्वप्नमें रुईदासको दर्शन दिया और कहा, 'यह धन तुम अपने काममें लगाना, देवसेवामें खर्च करो।' रुईदास अपने इष्टदेवके द्वारा इस प्रकार अनुज्ञात हो वह धन या कांचन ले आये और उससे एक मन्दिर बनवा कर उसमें एक शालग्रामशिला स्थापित की और स्वयं उस मन्दिरके अध्यक्ष हुए।

ब्राह्मणोंने विद्वेषपरवश हो कर राजासे कहा, 'महाराज आपके राज्यमें एक चमार शालग्रामको पूजा करता है तथा सभी नरनारियोंको प्रसाद बांटता है। इससे जातिच्युतिका उपक्रम हो गया है।' राजाने ब्राह्मणोंकी बात सुन कर उसी क्षण उस चमारको बुलवाया और उससे शालग्राम छोड़ देनेको कहा। राजाका हुक्म प्रतिपालित करते हुए रुईदासने एक निर्दिष्ट आसन पर शालग्रामको स्थापित कर उनकी स्तुति की। ब्राह्मणोंने वहांसे भी शिलारूपी नारायणको उठानेकी कोशिश की, पर न उठा सके।

इसी समय चित्तोर-राजमहिषी झालीने रुईदाससे दीक्षा ग्रहण किया। राज्यके रहनेवाले ब्राह्मण लोग राजपत्नीके इस आचरण पर क्रुद्ध हो विद्रोही हो उठे और वे सबके सब गुरुके शरणमें पहुंचे। भगवा

शिष्याकी मनोवाञ्छा पूरी करनेके लिये रयदास थोड़े ही समयमें चित्तौर आ कर उपस्थित हुए। बाद उसके उनके परामर्शसे एक दिन राजपत्नीने ब्राह्मणोंको निमन्त्रण भेजा। ब्राह्मण लोग राजप्रासाद आये और भोजनकी पंक्तिमें बैठ गये। भोजनके समय वे सब क्या देखते हैं, कि दो दो ब्राह्मणोंके बीच एक एक रयदास बैठा है। तब वे बड़े सोचमें पड़ गये और सबोंने भक्तिविह्वलचित्तसे उनका शरणागत हो शिष्यत्व ग्रहण किया।

रुक (सं० त्रि०) बहुप्रद, बहुत देनेवाला।

रुक्नउद्दीन दबीर—सामायल आतकिया नामक ग्रन्थके रचयिता। इस ग्रन्थमें भगवान्‌का और मुसलमान फकीरोंका माहात्म्य तथा अलौकिक कार्यका विवरण किया है।

रुक्न् उद्दीन (शेख)—एक मुसलमान फकीर जो अबुलफतह नामसे परिचित थे। ये मुलतानवासी मशहूर मुसलमान फकीर शेख बहाउद्दीन जकारियाके पौत्र और शेख सदरउद्दीन आरिफके पुत्र थे। १३१० ई०में सुलतान अलाउद्दीन सिकन्दर सानीके राज्यकाल तक ये जीवित थे।

रुक्नउद्दीन फिरोज (सुलतान)—दिल्लीके दासवंशी राजा सुलतान शामसउद्दीन अलतमासके पुत्र। पिताकी मृत्युके बाद १२३६ ई०की १ली मईको ये राजगद्दी पर बैठे; किन्तु अपनी नालायकीसे छः ही महीनेके अन्दर मन्त्रियों द्वारा गद्दीसे उतार दिये गये और कैद किए गये। इसी वर्षकी १९वीं नवम्बरको जनताकी रायसे सुलताना रजिया राजतख्त पर बैठी थीं। रुक्नउद्दीनने कैदखानेमें ही अपना शेष जीवन बिताया।

रुक्नउद्दीन मसाउद मसाहि—आयितान् अल् इलाज नामक अरबी भाषामें एक दवाका ग्रन्थका प्रणेता। ये एक अच्छे कवि थे और १५८५ ई० तक मौजूद थे।

रुक्नउद्दौला यारवफाद खां—काश्मीरके रहनेवाले एक मुसलमान। इनका असल नाम था महम्मद मुराद। मुगलसम्राट् फर्रुखसियरकी माता साहिबा निजवामें जहां जन्म लिया था, वहीं रुक्नउद्दौलाका जन्मभूमि थी। इसलिये लड़कपन होसे दोनोंमें जान पहचान था।

जब दो सैयद भाइयोंके जुल्मसे फर्रुखसियर बड़े विरक्त हो गये थे, तभी उनकी माताने अपने लड़कपनके दोस्त मुरादके साथ पुत्रकी बातचीत करा दी थी। मैं इन दो सैयद भाइयोंके हाथसे सम्राट्को मुक्त कर दूंगा तथा बिना युद्ध किये ही दोनों भाइयोंको यमपुर भेज सकूंगा, इस प्रकार आश्वासवाक्यसे और तोषामोदसे सम्राट् फर्रुखसियरको वशीभूत कर ये राज्यके एक उच्च कर्मचारीके पद पर नियुक्त हुए। धीरे धीरे इन्हें सम्राट्की कृपासे रुक्नउद्दौला उपाधिके साथ साथ सात हजार मनसबदारका पद और उसके अनुसार जागीर मिला। सम्राट्के प्रेमालापमें मुग्ध हो कर ये पहले अपनी सत्ता बढ़ाने लगे। सम्राट्ने निजाम उलमुल्कसे मुरादाबाद छीन कर अन्यान्य भूसम्पत्तिके साथ एक बड़ी सूबेदारी इन्हींको और इसका रक्षणभार रुक्नके हाथ सुपुर्द किया। इसी पर बहुतेरे फर्रुखसियर पर चिढ़ गए। दोनों सैयद भाइयोंने १७१९ ई०में सम्राट् फर्रुखसियरको गद्दीसे उतार दिया और रुक्न उद्दौलाको ओहदासे अलग कर कैद कर रखा। अन्तमें तरह तरहका दुःख दे कर उनका जीवन नाश किया था। सम्राट् महम्मद शाहके राज्यकालमें रुक्न उद्दौलाकी मृत्यु हुई।

रुक्नकाशी (हकीम)—एक विख्यात मुसलमान कवि और राजहकीम। ये प्रसिद्ध पारस्यपति महात्मा शाह अब्बासके विश्वस्त अनुचर थे। किसी कारणसे पारस्यपति इन पर बिगड़ गये। पीछे इन्होंने अपनी जन्मभूमि परित्याग कर भारतमें आगमन किया। यहां आ कर ये मुगल सम्राट अकबरशाहके अधीन रहे और यथाक्रमसे जहांगीर और शाहजहान बादशाहके राज्यकाल तक बड़ी प्रसिद्धिके साथ राजकार्यकी देखभाल करते रहे। शाहजहानके समय बुढ़ापेमें ये मक्का गये। वहांसे लौटने पर कुछ दिनके बाद सन् १६४६ ई०में ये मृत्युमुखमें पतित हुए। इनका बनाया प्रायः लाख पद्य मिलता है।

रुकना (हिं० क्रि०) १ गति आदि न मिलनेके कारण ठहर जाना, आगे न बढ़ सकना। २ अपनी इच्छासे ठहर जाना, आगे न बढ़ना। ३ किसी कार्यका बाधामें हो बंद होना, काम जारी न होना। ४ पार्श्वगत न होना, स्खलित न होना। ५ किसी कार्यमें आगे न चलना, किसी काममें सोच विचार या आगा पीछा करना। ६ किसी चलते क्रमका बंद होना, सिलसिला आगे न चलना।

वृहत्पुरी निर्माण कर उसीमें रहने लगे। उक्त पुरी भोजकट नामसे प्रसिद्ध हुई।

इधर प्रभु कृष्णने वलदेव और वृष्णिगणोंके साथ द्वारकामें पहुंच कर रुक्मिणीका पाणिग्रहण किया। रुक्मिणी श्रीकृष्णकी प्रधाना महिषी थीं। रुक्मिणीके गर्भसे श्रीकृष्णके चारुदेष्ण, सुदेष्ण, महावीर, प्रद्युम्न, सुषेण, चारुगुप्त, चारुवाहु, चारुविन्द, सुचारु, भद्रचारु और चारु ये दश पुत्र और चारुमती नामकी एक कन्या उत्पन्न हुई। वहुत समय व्यतीत होनेके वाद रुक्मिणी ने अपनी दुहिताके विवाहके लिए स्वयंवर-सभा आह्वान की थी। इस स्वयंवर-सभामें श्रीकृष्णके पुत्र प्रद्युम्न को रुक्मीकी दुहिता सुभाङ्गीने वरमाला पहनाई थी।
(हरिवंश)

रुक्मिणी स्वयं लक्ष्मीकी अवतार थीं। पहले हेमकूट पर्वत पर जव देवोंने एकत्र हो कर अंशावतारकी कल्पना की थी उस समय उन्होंने पहले ही लक्ष्मीसे कहा था—"लक्ष्मी! तुम पहले मर्त्यलोकमें पतिके साथ अवतीर्ण होओ। वहां कुण्डिन नगरमें भीष्मक पत्नीके उदरमें जन्मग्रहण कर केशवके लिए प्रतीक्षा करो।"
(हरिवंश १०८)

रुक्मिणी स्वर्ग विहारिणी स्वयं लक्ष्मी और श्रीकृष्ण पूर्ण ब्रह्म हैं।

श्रीमद्भागवतमें भी रुक्मिणीका विवरण लिखा है, वाहुल्यके भयसे यहां नहीं दिया जाता। २ स्वर्णक्षीरी।
(राजनि०)

रुक्मिणीव्रत (सं० क्ली०) एक प्रकारका योषिद्व्रत। वैशाख मासकी शुक्ला द्वादशीको इसका अनुष्ठान किया जाता है। चार वर्ष तक इस व्रतका अनुष्ठान करके प्रतिष्ठा करनी चाहिए। हेमाद्रिके व्रतखण्डमें इस व्रतका विधान इस प्रकार लिखा है—व्रतके पूर्व दिन हविष्याशी करके रहना चाहिए। व्रतके दिन प्रातःकृत्यादि करके स्वस्तिवाचन-पूर्वक संकल्प करना चाहिए। सङ्कल्प इस प्रकार है—"विष्णुरोम् तत्सदद्य वैशाखे मासि शुक्ले पक्षे द्वादश्यान्तिथौ अमुकगोत्रा श्री अमुकी देवी श्री विष्णु प्रीतिकामा पुत्रपौत्राद्यवच्छिन्नसन्ततिधनधान्य सौभाग्याद्यवाप्त्युत्तरविष्णुलोकप्राप्तिकामा अद्यारभ्य वर्षचतुष्टयं यावत् रुक्मिणीव्रतमहं करिष्ये" इस प्रकार संकल्प करके सूक्त पाठ करना चाहिए। पश्चात् पञ्चगव्य और पञ्चामृत द्वारा विष्णुको स्नान करा कर पुरुष सूक्त द्वारा स्नान करना चाहिए। उसके वाद सामान्यार्घ्य, आसनशुद्धि, भूतशुद्धि और मातृकान्यासादि, पश्चात् गणेशादि पञ्चदेवता, नवग्रह और दश दिक्पालोंकी पूजा करके श्रीकृष्णका ध्यान करनेके वाद यथाशक्ति पाद्यादि उपचार द्वारा उनकी पूजा करनी चाहिए।

इस प्रकार विष्णुकी पूजा करनेके वाद यथाशक्ति जप और जप समापन, स्तवपाठ और प्रणाम आदि करना चाहिए। पश्चात् लक्ष्मीके आवरणादि देवताओंकी पूजा करके षोडशोपचार करना और कथा सुनना चाहिए।

व्रतप्रतिष्ठाके विधानानुसार चार वर्ष तक इस व्रतकी प्रतिष्ठा की जाती है। इस व्रतका विधान पूछने पर सूतने शौनकको इस व्रतका उपाख्यान सुनाया था। व्रतकथाका सारांश इस प्रकार है—आमूल देवयानी शर्मिष्ठा संवाद, शर्मिष्ठा द्वारा देवयानीका कूपमें निक्षेप, शुक्रका अभिशाप और वृषपर्वानन्दिनी शर्मिष्ठा देवयानीका दासीके रूपमें ययाति राजाके निकट रहना तथा रुक्मिणीव्रतके प्रभावसे राजाकी प्रणयपात्री हो कर अंतमें उनकी प्रधाना महिषी होना। अशोकवनमें सीताने सरमाके साथ इस व्रतका अनुष्ठान करके रावणको सवंश नाश करके पुनः रामचन्द्रको प्राप्त किया था। द्रौपदीने इस व्रतको करके पाण्डवोंको प्राप्त किया था। रमादेवीने जामदग्न्यसे पहले पहल इस व्रतको ग्रहण किया था। पश्चात् उन्होंने इस व्रतके प्रतापसे पति और पुत्रके साथ ससागरा पृथ्वीकी अधीश्वरी हो कर अन्तकालमें परम पद प्राप्त किया था। इस व्रतके प्रभावसे इहकालमें सौभाग्य और परलोकमें स्वर्ग प्राप्त होता है। (कल्किपु० ३१ अ०)

रुक्मिदर्प (सं० पु०) रुक्मिणि भीष्मकपुत्रे दर्पो यस्य, सः तस्य रुक्मिनाशकत्वात्। वलदेव।

रुक्मिदारिन् (सं० पु०) रुक्मिणं दारयतीति दृ-णिच्-णिनि। वलदेव।

रुक्मिन् (सं० पु०) रुक्मो स्वर्णविशेषोऽस्त्यस्य इति। विदर्भ देशके राजा भीष्मकका बड़ा पुत्र और रुक्मिणीका भाई। जिस समय श्रीकृष्ण इसकी बहन रुक्मिणीको हर ले चले थे, उस समय इसके साथ उनका घोर युद्ध हुआ था। इन्होंने प्रतिज्ञा की थी, कि जब तक मैं श्रीकृष्णको मार न डालूंगा तब तक घर न लौटूंगा। किन्तु युद्धमें ये श्रीकृष्णसे परास्त हो गये थे। अतः लौट कर कुण्डिनपुर नहीं गये और विदर्भमें ही भोजकट नामक एक दूसरा नगर बसा कर रहने लगे थे।

रुक्मिभिद् (सं० पु०) रुक्मिणं भिनत्ति भिद्-क्विप्। बलदेव।

रुक्मेषु (सं० पु०) राजभेद। (भागवत ९।२३।३३ और हरिवंश)

रुक्सद्मन् (सं० क्ली०) मल।

रुक्ष (सं० त्रि०) रुह औणादिक स। १ अप्रेम, बिना प्रेमका। २ अचिक्कण, जिसमें चिकनाहट न हो, रूखा। ३ जिसका अङ्ग चिकना न हो, उबड़ खाबड़। ४ नीरस, बिना रसका। ५ शुष्क, सूखा। (पु०) ६ वृक्ष, पेड़। ७ वरक नामकी घास।

रुक्षता (सं० स्त्री०) रुखाई, रूखापन।

रुख (फा० पु०) १ कपोल, गाल। २ मुख, मुंह। ३ चेहरे का भाव, आकृति। ४ कृपा दृष्टि, मेहरबानीकी नजर। ५ सामने या आगेका भाग। ६ मनकी इच्छा जो मुखकी आकृतिसे प्रकट हो, चेष्टासे प्रकट इच्छा या मर्जी। ७ शतरंजका एक मोहरा जो ठीक सामने, पीछे, दाहिने या बायें चलता है तिरछा नहीं चलता। इसे रथ, किश्ती और हाथी भी कहते हैं। (क्रि०) ८ तरफ, ओर। ९ सामने।

रुख (हिं० पु०) १ रूख देखो। २ एक प्रकारकी घास जिसे चरके नृप कहते हैं। रूखा देखो।

रुखड़—दशनामी संन्यासि-सम्प्रदायभेद। औघड़मतके प्रतिष्ठाता ब्रह्मगिरिने अपने योगिगुरु गोरक्षनाथसे मतके मताना कर्णकुण्डलादि का एक चिह्न पाया और यह इन्होंने गुदड़, रुखड़, सुखड़ आदिके बाद बांट दिया था।

किसी शिष्यके मरने पर रुखड़ लोग अन्त्येष्टिक्रिया संक्रान्त यावतीय कर्म हो करते हैं। ये शवदेहको स्नान करा कर, विभूति लगा कर और वस्त्र पहना कर समाधि देते हैं और पीछे उसकी सम्पत्ति अपने कब्जेमें कर लेते हैं।

ये लोग गेरुआ वस्त्र और दोनों कानोंमें तांबे और पीतलका कुण्डल पहनते हैं। इस कुण्डलको ये खेचरी मुद्रा कहते हैं। ये खप्परमें धूप जला कर भीख मांगते फिरते हैं और जो मिलता उसे इसी खप्परमें रखते हैं। इस सम्प्रदायके जो संन्यासी शराब पीते और मांस खाते हैं, वे उखड़ कहलाते हैं।

रुखसार (फा० पु०) जो घट रहा हो।

रुखसत (अ० स्त्री०) १ आज्ञा, परवानगी। २ रवानगी, कूच, विदाई। ३ कामसे छुट्टी, अवकाश। (वि०) ४ जो कहीं से चल पड़ा हो, जिसने प्रस्थान किया हो।

रुखसताना (फा० पु०) वह इनाम जो किसीको रुखसत होनेके समय राजा या रईस आदिके यहांसे सत्कारार्थ दिया जाता है, विदा होनेके समय दिया जानेवाला धन, विदाई।

रुखसती (अ० वि०) १ जिसे छुट्टी मिली हो। (स्त्री०) २ विदाई विशेषतः दुलहिनकी विदाई। ३ विदाईके समय दिया जानेवाला धन, विदाई।

रुखसार (फा० पु०) कपोल गाल।

रुखाई (हिं० स्त्री०) १ रूखे होनेकी क्रिया या भाव, रूखापन। २ शुष्कता खुश्की। ३ व्यवहारकी कठोरता, शीलका त्याग।

रुखानी (हिं० स्त्री०) १ बढ़इयोंका लोहेका एक औजार जो प्रायः एक बालिश्त लंबा होता है। इसका अगला सिरा धारदार होता है और पीछेकी ओर लकड़ीका दस्ता लगा होता है जिस पर हथौड़ा या बसूले आदिसे चोट लगा कर लकड़ी छीलते या काटते जाते हैं अथवा उसमें बड़ा छेद किया जाता है। २ लोहेका प्रायः एक बालिश्त लम्बा एक औजार जिसमें काठका दस्ता लगा होता है और जिससे संगतराश लोग अपना काम चलाते हैं। ३ छगन रानोंका वह रोकी जिसका व्यवहार प्रायः मार कामोंमें होता है।

रुखावट (हिं० स्त्री०) रुखाई देखो।

रुखाहट (हिं० स्त्री०) रूखापन, रुखाई।

रुखिता (हिं० स्त्री०) वह नायिका जो रोष या क्रोध कर रही हो, मानवती नायिका।

रुगुरी (हिं० स्त्री०) बहुत छोटा पौधा।

रुगन्वित (सं० त्रि०) रुजा अन्वित ३ तत्। पीड़ायुक्त।

रुग्दाह सन्निपातज्वर (सं० पु०) एक प्रकारका ज्वर जो बीस दिनों तक रहता है। इसमें रोगी व्याकुल होता और बकता है। उसके शरीरमें जलन होती है, पेटमें दर्द होता है और उसे बड़ी प्यास लगती है। यह बहुत कष्टसाध्य माना जाता है।

रुग्भेषज (सं० क्ली०) रुजः भेषजं। रोगकी औषधि।

रुग्न (सं० त्रि०) रुज क्त, ओदितश्चेति नः। १ रोगग्रस्त, जिसे कोई रोग हुआ हो। २ टूटा हुआ। ३ झुका हुआ, नमित। ४ बिगड़ा हुआ।

रुग्नता (सं०स्त्री०) रोगी होनेका भाव, बीमारी।

रुग्मी (सं० पु०) जैन हरिवंशके अनुसार जम्बूद्वीपके एक पर्वतका नाम। (जैनहरि० ५।१५)

रुग्विनिश्चय (सं० पु०) रुजः विनिश्चयः। रोगका निर्णय।

रुच् (सं० स्त्री०) आलोक, ज्योतिः।

रुच (सं० त्रि०) उज्ज्वल, दीप्तिमान्। (शुक्लयजुः ३१।२०

रुचक (सं० क्ली०) रोचतेऽनेनेति रुच (बहुलमन्यत्रापि। उण् २।३७) इति क्वुन्। १ सर्जिकाक्षार, सज्जीखार। २ अश्वाभरण, घोड़ोंका गहना या साज। ३ माल्य, माला। ४ सौवर्च्चल, सोंचर नामक। ५ माङ्गल्यद्रव्य। ६ उत्कट। ७ रोचना। ८ वायविडंग। ९ लवण, नमक। १० दक्षिणदिक्, दक्षिण दिशा। ११ वास्तुविद्याके अनुसार ऐसा घर जिसके चारों ओरके अलिंद (चबूतरा या परिक्रमा)में से पूर्व और पश्चिमका सर्वथा नष्ट हो गया हो और उत्तर-दक्षिणका समूचा ज्योंका त्यों हो। इसका उत्तर द्वारा अशुभ और शेष द्वारा शुभ माने गये हैं। (पु०) १२ बीजपूरक, बिजौरा नीबू। १३ प्राचीन कालका सोनेका निष्क नामक सिक्का। १४ दन्त, दाँत। १५ कपोत, कबूतर। १६ पुराणानुसार सुमेरु पर्वतके पासके एक पर्वतका नाम। (विष्णुपु० २।२।२६) १७ समचतुरस्र स्तम्भ, वह खंभा जो गोल न हो बल्कि चौकोर हो। (वृहत्स० ५३।२८) १८ यदुवंशीय एक राजाका नाम। रामाच देखो। १९ हरिवर्षके एक पर्वतका नाम। (जैनहरि० ५।१८) २० मङ्गलग्रहमें उत्पन्न होनेसे रुचक होता है। (त्रि०) २१ स्वादिष्ट, जायकेदार।

रुचना (हिं० क्रि०) रुचिके अनुकूल होना, अच्छा जान पड़ना।

रुचा (सं० स्त्री०) रुच् क्विप् पक्षे टाप्। १ दीप्ति, प्रकाश। २ शोभा। ३ इच्छा, ख्वाहिश। ४ शारिका शुकादिका, मैना, बुलबुल, तोते आदि पक्षियोंका बोलना।

रुचि (सं० स्त्री०) रुच्यते इति रुच (इगुपधात् किन्। उण् ४।११९) इति इन् स च कित्। १ प्रवृत्ति, तबीयत। २ अनुराग, प्रेम। ३ आसक्ति। ४ स्पृहा। ५ गभस्ति, किरण। ६ शोभा, छवि। ७ बुभुक्षा, खानेकी इच्छा। ८ स्वाद, जायका। ९ गोरोचन। (राजनि०) १० कामशास्त्रके अनुसार एक प्रकारका आलिङ्गन जिसमें नायिका नायकके सामने उसके घुटने पर बैठ कर उसे गलेसे लगाती है। ११ एक अप्सराका नाम। (त्रि०) १२ शोभाके अनुकूल, फबता हुआ।

रुचि (सं० पु०) रोचते शोभते इति रुच इन् स च कित्। प्रजापतिविशेष। ये युवश या यज्ञ रौच्यमनुके पिता थे। इनकी पत्नीका नाम आकूति था। (मार्कण्डेयपु० ९५ अ०) रौच्य देखो।

रुचिकर (सं० त्रि०) करोतीति कृ-अप्, रुचेः करः। १ प्रीतिकर, अच्छा लगनेवाला। (पु०) २ केशवके एक पुत्रका नाम। २ नारंगी नीबू।

रुचिकारक (सं० त्रि०) १ रुचि उत्पन्न करनेवाला, रुचिकर। २ स्वादिष्ट, बढ़िया स्वादवाला।

रुचिकारिन् (सं० त्रि०) १ रुचिकारक, रुचि उत्पन्न करनेवाला। २ स्वादिष्ट, अच्छे स्वादवाला। ३ मनोहर, अच्छा लगनेवाला।

रुचित (सं० त्रि०) रोचते इति रुच (रुचिवचि-कुचि-कुटिभ्यः कितच्। उण् ४।१८५) इति कितच्। १ मिष्ट वस्तु, मीठी वस्तु। रुच क्त। २ अभिलषित, जिसे जी

चाहता हो। (स्त्री०) ३ रुच माधी-क। ४ इच्छा, चाह।

रुचिमत् (स ० त्रि०) इच्छाके अनुरूप।

रुचिता (स ० स्त्री०) रुचेर्भावः तल टाप्। १ रुचिका भाव या धर्म, रोचकता। २ अनुराग, प्रेम। ३ सुन्दरता, खूब सूरती। ४ अतिजगतो वृत्तका एक भेद।

रुचिदत्त—१ अपविवेचनके प्रणेता। इनकी उपाधि महा महोपाध्याय थी। २ मनुस्मृतिटीकाके रचयिता। ३ देवदत्तके पुत्र तथा शक्तिदत्त और सोमिदत्तके भाई। ये जयदेव पण्डितके शिष्य थे। कुसुमाञ्जलिप्रकाशमकरन्द तत्त्वचिन्तामणिप्रकाश तत्त्वपार तर्कसार और रघुदेव कृत पदार्थखण्डन व्याख्याकी मकरन्द नामकी टीका आदि इन्होंने लिखी। अलावा इसके इन्होंने और भी अनमय प्रत्युत, उपाधिपूर्वपक्षग्रन्थकी टीका तर्कग्रन्थकी टीका तृतीय चक्रवर्तिलक्षणकी टीका, द्वितीय चक्रवर्तिलक्षणकी टीका द्वितीय स्वलक्षणटीका पक्षतापूर्वपक्ष ग्रन्थकी टीका, पक्षता सिद्धान्तग्रन्थकी टीका प्रत्यक्षवाद, प्रत्यक्षा दिद्युतवाद, प्रथमप्रगल्भलक्षणकी टीका, बाधग्रन्थ, विरुद्ध पूर्वपक्षग्रन्थकी टीका, विरुद्धसिद्धान्तकी टीका व्याप्ता नुगमकी टीका, सव्यभिचार पूर्वपक्ष ग्रन्थकी टीका, सामान्यनिरुक्तिकी टीका तथा रुचिदत्ताय नामक ग्रन्थों की रचना की थी।

रुचिदेव (स ० पु०) कथासरित्सागर-वर्णित एक नायक। (११०।१२१)

रुचिधामन् (स ० क्ली०) सूर्य। (त्रिपुराकल्प ३।११)

रुचिनाथ मिश्र—एक विख्यात आलङ्कारिक। इनका बनाया अलङ्कारशास्त्रका बचन रमणीयतम प्रभाकर तथा आर्यासप्तशतीमें ममस्त अद्भुत कर गये हैं।

रुचिपति—पैत्रग्रिय ग्रामनिवासी एक विख्यात पण्डित। इन्होंने अपने प्रतिपालक नरसिंहके पुत्र राजा भैरवसिंह के आदेशसे अनर्घराघवकी टीका लिखी।

रुचिपर्व्वन् (स ० पु०) महाभारतके अनुसार एक योद्धा। (भारत द्रोणपर्व)

रुचिप्रदा (स ० स्त्री०) मधुरविम्बा, कुंदरुकी।

रुचिप्रभ (स ० पु०) महाभारतके अनुसार एक दैत्यका नाम।

रुचिफल (सं० क्ली०) रुचिप्रदफल फलं। अमृताह, नास पाती। (राजनि०)

रुचिमत् (सं० पु०) १ सूर्य। २ स्वामी, मालिक। (त्रि०) आनन्दप्रद मकर्त्ता, जिसके द्वारा आनन्दकी वृद्धि होती हो।

रुचिमती (सं० स्त्री०) उग्रसेनकी रानी और देवकीकी माता जो श्रीकृष्णकी नानी थीं।

रुचिर (सं० क्ली०) रोचते इति रुच (इष मदिमुदादि। उण् १।५२) इति किरच्। १ मूलक, मूली। २ कुंकुम, केसर। ३ लवङ्ग, लौंग। (राजनि) ४ रौप्य चांदी। (पु०) ५ सत्यजित्के एक पुत्रका नाम। (हरिवंश २०।२१) ६ महाद्रिवर्णित एक राजाका नाम। (ब्रह्म० २७।४०) ७ शिग्रु वृक्ष, सहिजनका पेड़। (स्त्री०) ८ गोरोचना। (त्रि०) ९ सुन्दर, अच्छा। १० मिष्ट, मीठा।

रुचिकेतु (सं० पु०) एक बोधिसत्त्वका नाम।

रुचिरदन्त (स० त्रि०) सुन्दर दांतोंवाला।

रुचिरदेव (सं० पु०) एक राजाका नाम। (कथासरित्सागर ९७।६)

रुचिरधी (सं० पु०) पुराणानुसार एक राजाका नाम। (विष्णुपुराण)

रुचिरप्रभावसम्भव (सं० पु०) एक नगरका नाम।

रुचिरफला (सं० स्त्री०) कुंदरू।

रुचिरमुख (सं० त्रि०) मुखशोभमय, सुन्दर मुंहवाला।

रुचिरवाक् (सं० त्रि०) वाग्मी अच्छा बोलनेवाला।

रुचिरवृत्ति (स० पु०) मल्लका एक प्रकारका संहार।

रुचिर श्रीगर्भ (सं० पु०) एक बोधिसत्त्वका नाम।

रुचिरा (सं० स्त्री०) रोचत इति रुच् किरच् ततष्टाप्। १ एक प्रकारका छन्द। इसके पहले और तीसरे पदोंमें १६ तथा दूसरे और चौथे पदोंमें १४ मात्राएं तथा अन्तमें दो गुरु होते हैं। २ एक वृत्तका नाम जिसके प्रत्येक चरणमें ज, भ, स, ज, ग होते हैं। ३ रामायणके अनु-सार एक नदीका नाम। (रामा० ४।४०।२०) ४ गोरोचन। ५ कुंकुम, केसर। ६ मूलक, मूली। ७ लवङ्ग, लौंग।

रुचिराञ्जन (सं० पु०) रुचिरा सुन्दरोऽञ्जना। शोभाञ्जन, सहिजन। (राजनि०)

रुचिरापाङ्गी (सं० स्त्री०) सुन्दरनयनविशिष्ट स्त्री, वह स्त्री जिसकी आंखें सुन्दर हों।

रुचिराश्व (सं० पु०) रुचिरः सुन्दरोऽश्वो यस्य। १ एक राजाका नाम। ये देवापिके ससुर थे। (कल्किपु० १८ अ०) २ सेनाजित्‌के एक पुत्रका नाम। ३ सुन्दर घोटक, बढ़िया घोड़ा।

रुचिरासुत (सं० पु०) पालकाप्यका गर्भजात तनय।

रुचिरुचि (सं० क्ली०) एक प्रकारका साम।

रुचिवर्द्धक (सं० त्रि०) १ रुचि उत्पन्न करनेवाला। २ भूख बढ़ानेवाला।

रुचिवह (सं० त्रि०) आलोक आनयनकारी, प्रकाश लानेवाला। (पा० ६।२।१२१ वार्त्तिक)

रुचिष्य (सं० त्रि०) रुच्यते इति (रुचिभुजिभ्यां किष्यन्। उण् ४।१७८) इति किष्यन्। १ मिष्ट वस्तु, खानेका मीठा पदार्थ। २ अभिप्रेत, चाहा हुआ।

रुची (सं० स्त्री०) रुचि कृदिकारादिति ङीष्। रुचि, चाह।

रुच्य (सं० क्ली०) रोचते इति रुच् (राजसूयसूर्यमृषोद्येति। पा ३।१।११४) इति क्यप् प्रत्ययेन निपातितः। १ सौवर्चल, सेंधा नमक। (पु०) २ कतकवृक्ष, रीठाका पेड़। ३ शालि धान्य, जड़हन। ४ पति, स्वामी, (त्रि०) ५ सुन्दर, खूबसूरत। ६ रुचिकर।

रुच्यकन्द (सं० पु०) रुच्यः कन्दो यस्य। शूरण, ओल। (राजनि०)

रुच्यवाहन (सं० पु०) हव्यवाहन, अग्नि।

रुज (सं० क्ली०) १ भङ्ग, भांग। २ क्षत, घाव। ३ वेदना, कष्ट। (अथर्व १६।३।२) ४ प्राचीनकालका एक प्रकारका बाजा जिस पर चमड़ा मढ़ा होता था।

रुजग्रस्त (सं० त्रि०) जिसे कोई रोग हो, रोगग्रस्त।

रुजस्कर (सं० त्रि०) १ पीड़ादायक, दुःख देनेवाला। २ रोगकारक, बीमारी पैदा करनेवाला।

रुजा (सं० स्त्री०) रुज-क्विप् पक्षे टाप्। १ रोग, बीमारी। २ भङ्ग, भांग। ३ पीड़ा। ४ कुष्ठ, कोढ़। ५ मेषी, भेड़ी।

रुजाकर (सं० क्ली०) रुजां रोगं करोतीति कृ ट। १ कर्म्मरङ्गफल, कमरख नामक फल। (पु०) व्याधि, बीमारी। (त्रि०) २ व्याधिकारक, बीमारी पैदा करनेवाला।

रुजापह (सं० त्रि०) रुजा अपहन्ति अप-हन-क। पीड़ानाशक, दुःख दूर करनेवाला।

रुजाली (सं० स्त्री०) रोगों या कष्टोंका समूह।

रुजावत् (सं० त्रि०) रुजा विद्यतेऽस्य मतुप् मस्य व। पीड़ायुक्त, पीड़ित।

रुजाविन (सं० त्रि०) रुजा विद्यतेऽस्य (बहुलं छन्दसि। पा ५।२।१२२) इति विनि। पीड़ित, पीड़ायुक्त।

रुजासह (सं० पु०) रुजां सहते इति सह-अच्। धन्वन वृक्ष, धामिनका पेड़।

रुजिन् (सं० त्रि०) जिसे कोई रोग हुआ हो, अस्वस्थ।

रुजू (अ० वि०) १ जिसकी तबीयत किसी ओर झुकी या लगी हो, प्रवृत्त। २ जो ध्यान दिये हो।

रुझनी (हिं० स्त्री०) एक प्रकारकी छोटी चिड़िया जिसकी पीठ काली, छाती सफेद और चोंच लम्बी होती है।

रुठ (हिं० पु०) क्रोध, अमर्ष, गुस्सा।

रुठना (हिं० क्रि०) रुठना देखो।

रुठाना (हिं० क्रि०) किसीको रुठनेमें प्रवृत्त करना, नाराज करना।

रुणा (सं० स्त्री०) सरस्वती नदीकी एक शाखा जिसका उल्लेख महाभारतमें है।

रुणित (सं० त्रि०) शब्द करता हुआ, झनकारता हुआ।

रुण्ड (सं० पु०) कबन्ध, जिसका हाथ पैर छिन्न हो।

रुण्डक (सं० क्ली०) अगुरुकाष्ठ, अगर नामक लकड़ी।

रुण्डिका (सं० स्त्री०) रुण्डः कबन्धोऽस्त्यत्रेति रुण्ड-ठन्। १ युद्धभूमि, लड़ाईका मैदान। २ द्वारपिण्डिका, ड्योढ़ी। ३ विभूति, बहुतायत।

रुण्डी (सं० स्त्री०) कुन्दुरु।

रुत (सं० क्ली०) १ पक्षियोंका शब्द, कलरव। पर्याय—वाशित, वासित। २ शब्द, ध्वनि।

रुत (हिं० स्त्री०) ऋतु देखो।

रुतबा (अ० पु०) १ दरजा, मर्तबा। २ इज्जत, प्रतिष्ठा।

रुद्द (सं० क्ली०) क्रन्दन, रोना।

रुदथ (सं० पु०) रोदिति रुद रोदने (रुदिविदिभ्यां ङित्। उण्। ३।११६) इति अथ सच ङित्। १ कुक्कुर, कुत्ता। २ शिशु, छोटा बच्चा।

रुदन (सं॰ क्ली॰) रोनेकी क्रिया, क्रन्दन।

रुदन्तिका (सं॰ स्त्री॰) रुदन्ती लता।

रुदन्ती (सं॰ स्त्री॰) रोदनं रुत् अति बध्नाति अच् ङीप्। १ क्षुद्र क्षुपविशेष, एक प्रकारका छोटा क्षुप। पर्याय—स्रवत्तोया, सञ्जीवनी अमृतस्रवा, रोमाञ्चिका, महामांसी, चणपत्री, सुधास्रवी। इसका गुण—कटु तिक्त, उष्ण, कषाय, कृमि, रक्त, पित्त, कफ, श्वास और मोहनाशक। (राजनि॰) (त्रि॰) रोदनशील, जो रोता हो।

रुदाकी—एक पारसी-कवि और प्रसिद्ध गवैया। ये जन्मसे ही अन्धा थे, तो भी इन्होंने संगीतविद्या और कवित्वकलामें सम्यक् पारदर्शिता पाई थी। राजा अमर समानीके पुत्र अमीर नसरके राज्यकालमें इनकी प्रतिभा राष्ट्र हो उठी। इनकी इस अद्भुत पेशेवरशक्तिके लिये राजा और राजदरबारके प्रत्येक अमीर उमराव इनका बड़ा सम्मान करते थे। राजा नसर इनको ऐसा प्यार करते थे, कि बिना रुदाकीके वे कहीं अकेला नहीं जाते थे। राजाकी कृपासे ये अतुल सम्पत्तिके अधिकारी हुए और इनकी गिनती श्रेष्ठ अमराओंमें होने लगी थी। इनकी सेवाके लिये दो सौ नौकर नियुक्त थे तथा जब ये अपने प्रभुके साथ रणक्षेत्रमें जाते तब इनका जरूरी असबाब करीब चार सौ ऊंटों पर लाद कर जाता था। इन्होंने ९२५ ई॰में अरबी भाषामें अनूदित पिल्पकी उपकथामाला फारसी कवितामें लिखी थी। राजा नसरने इस कविताके उपहारमें ४० हजार स्वर्णमुद्रा दी थी। इसके अलावा इनका बनाया एक दीवान भी मिलता है।

इनका असल नाम था फरिद आबू अबदुल्ला। इनका जन्म समरकन्द या बोखारा प्रदेशके रुदक नामक स्थानमें हुआ था, इसलिये वे रुदाकी नामसे विख्यात हुए। ९५४ ई॰में इनकी मृत्यु हुई।

रुदित (सं॰ क्ली॰) रुद क्त। १ क्रन्दन, रोना। (त्रि॰) २ रोदनविशिष्ट, रोता हुआ।

रुदौली—अयोध्याप्रदेशके बाराबंकी जिलान्तर्गत एक नगर और इसकी तहसीलका विचार-सदर। यह अक्षा॰ २६° ४४´ ५५´´ उ॰ तथा देशा॰ ८१° ४७´ २०´´ पू॰ तक विस्तृत है। कहते हैं, कि रुद्रमल नामक एक भर जातीय सरदारने यह नगर बसाया। यहां स्थानीय द्रव्यका विस्तृत कारबार है।

रुद्ध (सं॰ त्रि॰) रुध-क्त। १ जो किसी चीजसे घेर कर रोका गया हो, घेरा हुआ। पर्याय—वेष्टित, वलयित, संवीत, आवृत। २ जिसमें कोई चीज अड़ या फंस गई हो मुंदा हुआ। ३ जिसकी गति रोक दी गई हो।

रुद्धक (सं॰ क्ली॰) अश्मक नगर। अश्मक देखो।

रुद्धगुद (सं॰ पु॰) निरुद्धगुद नामक एक प्रकारका रोग।

रुद्धमूत्र (सं॰ पु॰) मूत्रकृच्छ्र नामक रोग।

रुद्र (सं॰ पु॰) रोदयतीति रुद णिच्। (राहेर्णि लुक्च। उण् २।२२) इति रक् णेश्च लुक्। १ गणदेवताविशेष। ये गणदेवता अग्निमूर्ति हैं। (त्रिपि॰स)

जगत्‌की सृष्टि करते समय ब्रह्माके भ्रू युगलके मध्य भागसे क्रोधरूपमें रुद्रदेवकी उत्पत्ति हुई थी। भूत, प्रेत और पिशाच आदि रुद्रकी सृष्टि है। संहारके समय ये ही सब कुछ संहार करते हैं। रुद्रोंकी संख्या ११ है, यथा—१ अज २ एकपात्, ३ अहिर्बुध्न, ४ पिनाकी, ५ अपराजित ६ त्र्यम्बक, ७ महेश्वर, ८ वृषाकपि, ९ शम्भु, १० हरण, और ११ ईश्वर। (भागवत)

गरुड़पुराणके ६ठे अध्यायमें लिखा है—

अजैकपाद अहिर्बुध्न, त्वष्टा, विरूपाक्ष हर, बहुरूप, त्र्यम्बक अपराजित, वृषाकपि, शम्भु, कपर्दी और रैवत ये ११ रुद्र हैं। अग्निपुराणमें त्वष्टाके स्थानमें कृत्तिवासका नाम पाया जाता है।

कूर्मपुराणके मतसे ब्रह्माने सृष्टिके लिये दुष्कर तपोनुष्ठान किया था, परन्तु किसी भी प्रकार वे सृष्टि करनेमें समर्थ न हुए। इसलिये बहुत दिन बाद उन्हें अत्यन्त क्रोध हुआ। उनके क्रुद्ध होने पर उनके नेत्रसे अश्रु बिन्दु गिरे और उस अश्रुबिन्दुसे भूतप्रेतादिकी उत्पत्ति हुई। उसके बाद ब्रह्माके मुखसे प्राणमय रुद्र आविर्भूत हुए, जो सहस्र सूर्य और युगान्तकालीन अग्निके समान तेजोमय थे। ये रुद्र आविर्भूत होते ही अत्यन्त रोदन करने लगे। इनको रोते देख ब्रह्माने "मारोद" अर्थात् 'रोओ मत' कहा, और यह भी कहा कि, तुम उत्पन्न होते

ही रोने लगे, इसलिए तुम जगत्‌में रुद्रके नामसे प्रसिद्ध होओगे।

'रुरोद सत्वरं घोर देवदेवः स्वयं शिवः।
रोदमानं तदा ब्रह्मा मारदीत्यिभाषत ॥
रोदनात् रुद्र इत्येव लोके ख्याति भविष्यति ॥"

(कूर्मपु० १०)

ब्रह्माने यह कह कर इसके अन्य सप्तनाम, अष्ट स्थान और स्त्री-पुत्रादिका विषय इस प्रकार निर्देश किया था —भव, शर्व, ईशान, पशुपति, भीम, उग्र और महादेव ये सात नाम, सूर्य, जल, मही, अग्नि, वायु, आकाश, ब्राह्मण और चन्द्र ये आठ मूर्त्तियां तथा सुवर्चला, उमा, विकेशा, शिवा, स्वाहा, दिशा, दीक्षा और रोहिणी नामकी स्त्रियां तथा शनैश्चर, शुक्र, लोहिताक्ष, मनोजा, सुन्द और बुध ये सब इनके पुत्र हैं। जो रुद्रदेवकी पूर्वोक्त अष्टमूर्त्तियोंमें रुद्रदेव आराधना करते है, सन्तुष्ट हो कर उन्हें परमपदप्रदान करते हैं। (कूर्मपु० १० अ०)

पद्मपुराणमें रुद्रदेवकी उत्पत्तिके विषयमें इस प्रकार लिखा है—

ब्रह्माके अत्यन्त क्रुद्ध होने पर उनके भ्रू-मध्यभागसे रुद्र आविर्भूत हुए। ये आविर्भूत होते ही रोने लगे। तब ब्रह्माने उनसे कहा—'हे पुत्र! तुम किस लिये रोते हो, बताओ, मैं अभी उसकी पूर्त्ति करूंगा।' तब रुद्रने कहा—'मेरा नाम, स्थान और भार्या पुत्रादि निर्देश कर दीजिए तो मैं नहीं रोऊंगा।' ब्रह्माने उनकी बात सुन कर कहा—'तुम उत्पन्न होते ही रोने लगे, इसलिए तुम्हारा नाम रुद्र, इसके सिवा ऋतध्वज, मनु, मन्यु, उग्ररेता, शिव, भव, काल, महिनस, वामदेव और धृतव्रत ये सब तुम्हारे नाम होंगे। तुम्हारे वासस्थान ये हैं—इन्द्रियसमूह, असुहृद, व्योम, वायु, अग्नि, जल, मही, तपस्या, चन्द्र और सूर्य तथा धृति, धी, असिलोमा, नियुत्, सर्पि, विलम्बिका, इरावली, स्वधा और दीक्षा ये सब तुम्हारी पत्नी होंगी। पुत्र! तुम इन सब पत्नियोंके साथ प्रजाकी सृष्टि करके जगत्‌को पूर्ण करो। ब्रह्माके ऐसा कहने पर रुद्र भूत-प्रेतादि और विकृताकार भैरवादिकी सृष्टि करने लगे। ब्रह्माने जगत्‌विद्रावकारी इस प्रकार सृष्टि देख कर रुद्रसे कहा—'जगत्‌ध्वंसकारक ऐसी सृष्टिसे विरत होओ और अब तुम विष्णुकी आराधना करके यथेच्छा विचरण करो।' यह कह कर ब्रह्मा तिरोहित हो गये। जो रुद्रदेवको उक्त नामों वा उक्त स्थानोंमें पूजा करते हैं, वे भूतादिके भयसे रहित हो जाते हैं।

(पद्मपु० स्वर्गख० ८ अ०)

विष्णुपुराणके प्रथम अंशमें ८वें अध्यायमें रुद्रसर्गका विषय वर्णित हुआ है, जो बाहुल्यभयसे यहां नहीं दिया जाता।

विष्णु और रुद्रको यदि कोई भेदबुद्धिसे देखे, तो उसे नरक प्राप्त होता है। अभेदबुद्धिसे देखनेसे मुक्ति प्राप्त होती है। (कूर्मपु० १३ अ०)

पुराणादिमें रुद्रकी उत्पत्ति और मूर्त्तिके सम्बन्धमें जो वर्णन मिलता है, उसकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि ये जगत्‌के आदिदेव महादेवकी प्रकृतिभेद मात्र हैं। कभी वे शान्तिमूर्त्तिधर सदाशिव, तो कभी विश्वनाशकारी रुद्रमूर्त्ति धारण कर मनुष्योंके समक्ष प्रकट होते हैं। जगत्‌के आदिमतम वे ही महापुरुष पीछे स्रष्टा, पाता और लयकर्त्तारूप ब्रह्मा, विष्णु और शिव मूर्त्तिधृत त्रितयमें रूपान्तरित होते हैं। पुराणान्तरमें भी महेश्वरके आदित्व और सर्वकर्तृत्व स्वीकृत हुआ है।

पौराणिक रूपक पट उन्मोचन करनेसे मालूम होता है, कि जगत्-सृष्टिके आदिभूत रूपतन्मात्र तेजोरूपी महाभूतमें रूपान्तरित हो कर सृष्टिकर्त्ता रुद्रतेजके परिचायक हुआ है तथा उसी पेशी ओजधातुकी अग्निमय मूर्त्तिकी कल्पना करके मनुष्य उनकी पूजा करते हैं।

शिवपूजापद्धतिमें कहे हुए "रुद्राय अग्निमूर्त्तये नमः" वाक्यमेंसे मूर्त्तितत्त्वकी प्रकृत अवस्था हृदयङ्गम हो सकती है। जगत्‌के आदिदिनाकी रुद्रमूर्त्ति अग्निमय थी, सुतरां इसके द्वारा सिद्धान्त हो सकता है, कि सृष्टिप्रकरणोक्त रूपतन्मात्रका तेजोभाव ही विश्वस्रष्टाकी रुद्रमूर्त्तिकी अवान्तर कल्पनामात्र है।

अब देखना चाहिए, कि प्राचीन संहिता युगमें आर्यगण प्रकृतिमेंसे किसी वस्तुकी रुद्रके नामसे उपासना करते थे। ऋक्‌संहिताके १म मण्डलके २७वें सूक्तमें १०वें मन्त्रके "जराबोध तत् विविड्ढि विशेविशे यज्ञियाय। स्तोमं रुद्राय दृशीकं।" वचनसे स्पष्ट मालूम

होता है कि रुद्र ही अग्नि और यज्ञानुष्ठानार्थ यज्ञमें प्रवेशकारी हैं। *

यास्कने उक्त ऋक्‌के सम्बन्धमें 'अग्निरपि रुद्र उच्यते' और सायणने 'रुद्राय क्रूराय अग्नये' लिखा है। १।६४।४ मन्त्रमें मरुद्गणको "रुद्रासः" कहा गया है। सायणाचार्यने 'रुद्रासः अपि रुद्रपुत्राः मरुतः' लिखा है। ऐसी दशामें ये मरुद्गणके पिता हुए। १।४३।१-५ मन्त्रमें रुद्रको मनोऽभिप्रायपूरणकारी, मरुत् प्रजापालक, सुखकर औषधियुक्त, सूर्यके समान दीप्तिमान्, हिरण्यके समान उज्ज्वल, देवोंमें श्रेष्ठ कहा गया है। इसके सिवा रुद्र धातुका प्रकृत अर्थ शब्द या गर्जन करना है, उससे रुद्रको अग्निरूपी, तूफानके उत्पन्नकर्त्ता गर्जनशील देव तथा ज्योतिमय और वज्रधारी देवता (ऋक् २।३३ और ७।४६ सूक्त तथा ६।४९।१०) माना जाय, तो भी स्पष्ट ज्ञात होता है कि आदिम अर्थसे रुद्रशब्दका अग्नि या वज्रके लिए प्रयोग हुआ था। ऋक् १।२८।७ और १०।१२५।६ मन्त्रमें भी उनकी सर्वध्वंसकारित्व शक्तिका परिचय है।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेदके १।८५।१, १।६४।२, १।८५।१, १।११४।१, १।११४।१, १२४।३-५।१६, २।३३।१, ५।३४।२, ३।२।५, ४।३।१ ५।३।३, ५।४२।१, ५।५१।१३, ५।५२।१६, ५।५४।८, ५।६०।५, ६।६८।७, ६।४९।१०, ६।५०।४, ६।६६।४ आदि मन्त्रोंके पढ़नेसे यही मालूम होता है, कि रुद्र मरुद्गणके पिता और अग्नि ही थे। ऋक् ७।१०।४, ७।३६।६, ७।३६।५ ७।४०।५, ७।४१।१, १०।६३।५ आदि मन्त्रोंमें रुद्रको अग्नि, इन्द्र मित्र वरुण अश्विन्, भग, पूषन्, बृहस्पति और सोम नामक विभिन्न देवताओंके रूपमें ग्रहण किया है। ऋक् १०।१२६।५ और अथर्व ४।३०।५ मन्त्रमें रुद्रकी संहारक मूर्तिकी उपासना पाई जाती है। ऋक्‌संहिताके १।११४ सूक्तके १म और ७म मन्त्रमें है—

केशिन् शब्दमें जैसे रश्मियुक्त सूर्य वायु या अग्निका बोध होता है, उसी प्रकार दूसरे पक्षमें सुदीर्घ केश या जटाविशिष्ट पुरुषका भी ज्ञान होता है। ये अग्नि, जल तथा द्युलोक और भूलोक धारण किये हुए हैं। और वे ज्योति द्वारा सर्वजगत्‌को प्रकाशमान् किये हुए हैं। इसलिए सायणके मतसे ये महानुभाव केशी दृश्यमान समस्त जगत् ज्योतिके सिवा और कोई नहीं है। तैत्तिरीय संहितामें ५।४।३।१ मन्त्रमें रुद्र शब्दका प्रयोग वैद्युताग्निके अर्थमें किया गया है।

केशी वायु मथित जल (विष)को रुद्रके साथ पान करते हैं। इस प्रसंगसे समुद्रमन्थन और रुद्रका विषपान तथा नीलकण्ठनाम रूप पौराणिक उपाख्यान संगठन किसी प्रकारसे असामंजस्य नहीं मालूम होता।

वाजसनेयसंहिताके ३।५७-५९ सूक्तमें रुद्रका विवरण है, वहां वे अम्बिकाके भ्राता और एक अंशभागी हैं। स्त्रियोंके साथ अंशभागी होनेसे वे भी त्र्यम्बक नामसे (शतपथ २।६।२।९) कहे जाते हैं, परन्तु वेददीपकारने लिखा है कि 'स्त्रीभि अम्बकानि नेत्राणि यस्य तादृश देव मेव त्रिनेत्रोऽयं देव इति।' इसलिए रुद्रको त्रिनेत्र और अम्बिकाके अंशभागी या पति बनानेमें पुराणकारों को विशेष कष्ट नहीं उठाना पड़ा। ऋक्‌संहिताके ७।५९।१२ मन्त्रके भाष्यमें सायणने त्र्यम्बक शब्दके मूल शब्दार्थके साथ ऐसी पौराणिक व्याख्या भी लिखी है— 'अत्र शौनकः। त्रियम्ब त्रिरसोऽग्नीन्य भपयेत् पायसं चरुं। तेनाहुतिर्ज्ञत पूर्णं जुहुयाच्च शिवमतः समुद्दिश्य महादेवं त्र्यम्बकं त्र्यम्बके तुष्या। एतत्यपजर्ड हुत्वा यावद् वर्ष जुत सुखी।" (ऋग्वे० ७।२०) "मैत्रायणी ब्रह्मविष्णु रुद्राणामत्र्यम्बक पितरं यथामह इति शिष्यसमाहितो यजिष्ठो यजीति।' इत्यादि।

ऋग्वेदमें जो त्र्यम्बक शब्दार्थ परमापुत्राता पशुभ्य और मृत्युबन्धन-मोचनकारी हैं, शुक्लयजुर्वेदमें ये ही रुद्र, सर्वलोकके नियन्ता, यातुधानी और सर्वध्वंसकारी (१६।१।६५) तथा अथर्ववेदमें क्षेत्राधिप नीलशिखण्ड, कर्महन् और भव, शर्व, अग्नि, पशुपति, अर्यमा, महा

* महादेव यज्ञके अधिकारी हैं। दक्षयज्ञमें सतीके देह त्यागके बाद महादेवने अग्र उग्रमूर्ति धारण की थी। वीरभद्र उसका विकास है। ऐसी पौराणिक कल्पना होती है।

देव, वरुण आदि नामसे पूजित हुए हैं।* पुराण और महाभारतमें पाशुपत अस्त्रका उल्लेख है, वह अथर्ववेदके १४।५।६ मन्त्रमें पूर्णरूपसे परिस्फुटित है।

इसके अलावा शतपथब्राह्मण १।७।३।८, ६।१।३।७ १६, ६।१।१।१, ६।१।१।६ और शाङ्खायनब्राह्मण ६।१ ६ तथा श्वेताश्वतर उपनिषद् ३।१-३ आदिकी आलोचना करनेसे ज्ञात होता है, कि रुद्र अग्नि और कार्त्तिकेयके पिता समझे जाते थे। वे शतशीर्णयुक्त, शतचक्षु विशिष्ट और शतवाणधारी थे। वे इस प्रकार वीभत्स-मूर्त्ति धारण करके जीवोंके भयके कारण बन गये थे। श्वेताश्वतर उपनिषदुमें वे ईशान, महेश्वर, महादेव, अनन्त, प्रणव, सर्वव्यापी आदि उपाधियोंसे भूषित हुए हैं।

अथर्वशिरसोपनिषदुमें रुद्रको ईशान, महेश्वर, इन्द्र, वरुण, यम, मृत्यु, विष्णु और ब्रह्माके नामसे कहा गया है। उक्त ग्रन्थमें 'देवा ह वै स्वर्गं लोकं आगमन्। ते देवा रुद्रं अपृच्छन् को भवान् इति। सोऽब्रवीद् अहं एकः प्रथमं आसन् वर्त्तामि च भविष्यामि च नान्यः कश्चिद् मत्तो व्यतिरिक्त इति। सोऽन्तराद् अन्तरं प्राविशद् दिशश्चान्तरं सम्प्राविशत्। सोऽहं नित्यानित्ये व्यक्ताव्यक्तोऽहं ब्रह्माब्रह्माहं प्राञ्चः प्रत्यञ्चोऽहं दक्षिणाञ्च उदञ्चोऽहं अधश्चोर्द्धञ्च दिशश्च प्रतिदिशश्चाहं पुमान् अपुमान् स्त्री चाहं सावित्र अहं गायत्र अहम् त्रिष्टुव् जगत्य अनुष्टुप् चाहं छन्दोऽहं गार्हपत्यो दक्षिणाग्निराहवानीयोऽहं सत्योऽहं गौर अहं गौर्य अहं ज्येष्ठोऽहं वरिष्ठोऽहं आपोऽहं, तेजोऽहं ऋगयुजःसामाथर्वाङ्गिरसोऽहं" इत्यादि वाक्योंसे रुद्र निखिलपति जगन्नियन्ता ही प्रतीत होते हैं। देवगण उनके अक्षय वीरत्वको देख कर उनके ध्यानमें निमग्न हुए थे। इस ग्रन्थमें उनका ईशान, महेश्वर और महादेवके नामसे वर्णन किया गया है।

कैवल्योपनिषदुमें आश्वलायनने ब्रह्मासे ब्रह्मविद्या पूछी, इस पर उन्होंने शिवका ही माहात्म्य कीर्त्तन करते हुए कहा था—"जगत्पाता परमेश्वर उमासहाय (उमापति), आदिमध्य अन्तविहीन, सर्वजीवप्रभु, त्रिलोचन, नीलकण्ठ, प्रशान्त, समस्त साक्षी इत्यादि—" अपिच—"स ब्रह्मा स शिवः सेन्द्रः सोऽक्षरः परमः स्वराट्, स एव विष्णुः स प्राणः स आत्मा परमेश्वरः। स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम्। ज्ञात्वा तं मृत्यु अत्येति नान्यं पन्थाः विमुक्तये। + + यः शतरुद्रीयं अधीतेसोऽग्निपूतो भवति स वायुपूतो भवति" इत्यादि।

नीलरुद्रोपनिषद् ग्रन्थके प्रारम्भमें लिखा है—"अप श्यन् चावरोहन्तं दिवितः पृथ्वीमयः। अपश्यं अपश्यन् तं रुद्रं नीलग्रीवं शिखण्डिनम्।"

रामायण और महाभारतमें तथा अन्यान्य पुराणादिमें रुद्रके यथेष्ट उपाख्यान पाये जाते हैं।* कामदेवभस्म, दक्षयज्ञनाश, उमाका विवाह, गङ्गाका विवाह आदि यथास्थानमें वर्णित हुए हैं। शिव देखो।

२ विश्वकर्माके एक पुत्र। (विष्णुपु० १ १५'१२)
३ स्वनामख्यात एक कवि। ये विद्याविलासके पुत्र तथा भावविलासके प्रणेता थे। ये कवि मानसिंहके पुत्र भावसिंह राजाके समयमें विद्यमान थे। ४ ग्यारहकी संख्या। ५ मदारका पेड, आक। ६ रौद्र रस। ७ प्राचीनकालका एक प्रकारका बाजा। (लि०) भयंकर, डरावना।

रुद्र—कई एक प्राचीन ग्रन्थकार और सुपण्डित। १ कवि। ये धर्माधिकरणिक रुद्रके नामसे परिचित थे। २ ज्योतिश्चन्द्रार्क, प्रश्नरत्न-टीका, मेघमाला और स्फुटविवरणके प्रणेता। ३ त्रैलोक्यसुन्दरीके रचयिता। ४ युद्धकौशलके प्रणेता। ५ रुद्रकोष नामक कोशके रचयिता। मेदिनीकर और मल्लिनाथने इनके वचन उद्धृत किये हैं। ६ समरदीपिकाके रचयिता।

---

* अथर्ववेद २।२७।६, ५।२२।१२, ६।६३।१, ७।८७।१, ८।२।७, ८।५।१०, १०।१।२३, ११।२।१ ३१, १२।४।१७, १३।४।४ और १५।५।१७ देखो।

* रामायण—१।६४।१, १।२५।१०, १।३६।२०, १।७५।१४, ५।४४।७, ५।४४।४६ और ६।११६।१ तथा महाभारत शान्तिपर्व देखो। इसके सिवा हयशीर्षपञ्चरात्र १२८ अ०, लिङ्गपुराण ५।२१, ६।१३, २६।२३, वराहपु० १३।८, शिव वायवीय १२।१ आदि ग्रन्थोंमें रुद्रका विस्तृत वर्णन है।

रुद्र—१ नेपालके एक राजा। ये नेपालके अन्य विभागके राजा भीमदेव और लक्ष्मीकामके समसामयिक थे। २ मोरङ्गलके काकतीयवंशी एक राजा प्रोल-राजके पुत्र। ये प्रतापरुद्र १म नामसे भी परिचित थे। ३ एक हिन्दू राजा ये तैलङ्गाधिपति थे तथा देवगिरिके राजा भिल्लम से परास्त हुए थे।

रुद्र आचार्य—शक्तिरत्नाकरके अनुसार एक तान्त्रिक आचार्यका नाम।

रुद्रक (सं० पु०) १ एक बौद्धका नाम। (ललितविस्तर) २ महापत्रकप्रस, बड़ा अगस्तका पेड़।

रुद्रकमल (सं० पु०) रुद्राक्ष।

रुद्रक रामपुत्र (सं० पु०) एक बौद्धका नाम।

रुद्रकलस (सं० पु०) एक प्रकारका कलस जिसका उपयोग ग्रहों आदिकी शान्तिके समय होता है।

रुद्रकवच (सं० क्ली०) रुद्रस्य कवचम्। रुद्रका कवच। केसर गोरोचन आदि द्वारा भोजपत्र पर यह कवच लिख कर पञ्चगव्य पञ्चामृत आदिसे स्नान तथा कवचशोधन की प्रणालीके अनुसार शोधन और पूजा करनी होती। पीछे हाथ हृदय या गलेमें यह कवच पहनना होता है। इस कवचके पहननेसे पुत्रार्थीको पुत्र, धनार्थीको धन, विद्यार्थीको विद्या तथा मोक्षकामीको मोक्षलाभ होता है। (तन्त्रसार)

रुद्रकवि—धाथवानचरितके रचयिता।

रुद्रकवीन्द्र (सं० पु०) एक कवि। अमरु देखा।

रुद्रकाली (सं० स्त्री०) शक्ति या दुर्गाकी एक मूर्तिका नाम।

रुद्रकाली—श्यामा का नामान्तर। वीरभद्रके साथ मिल कर जब उन्होंने दक्षका यज्ञ नष्ट किया उसी समय इनका नाम रुद्रकाली पड़ा।

रुद्रकुण्ड (सं० पु०) मगधके एक तीर्थका नाम।

रुद्रकोटि (सं० स्त्री०) एक प्राचीन तीर्थका नाम। यह महाबलिपुरके निकट एक गह्वरोंके ऊपर स्थापित है। (स्कन्दमें नागरख० १०२।१)

रुद्रगण (सं० पु०) रुद्रस्य गणः। पुराणानुसार शिवके पारिषद्। इनकी संख्या एक करोड़ और किसी किसीके मतसे ३६ करोड़ है। कहते हैं, कि ये सब जटा धारण किये रहते हैं। इनके मस्तक पर अर्द्धचन्द्र रहता है। ये बहुत बलवान् होते हैं और योगियोंके योग साधनमें पड़नेवाले विघ्न दूर करते हैं।

रुद्रगर्भ (सं० पु०) अग्नि।

रुद्रगीत (सं० क्ली०) भगवत्य रुद्रोक्त रुद्रस्तव।

रुद्रगीता (सं० स्त्री०) भगवत्यरुद्रस पाद।

रुद्रचण्डी (सं० स्त्री०) रुद्राचण्डी। रुद्रयामलोक्त देवी-माहात्म्य। जिस प्रकार मार्कण्डेयपुराणमें देवीमाहात्म्य चण्डी नामसे ख्यात है, उसी प्रकार रुद्रयामलमें देवी चण्डिकाका जो माहात्म्य वर्णित है उसे रुद्रचण्डी कहते हैं। यह रुद्रचण्डी पढ़ने या सुननेसे सभी विघ्न विदूरित होते हैं। रविवारमें इस रुद्रचण्डीका पाठ करनेसे यथारुचि फल लाभ होता है। इसी प्रकार सोमवारको पाठ करनेसे सहस्रावृत्तिफल मङ्गलवारमें शतावृत्तिफल, बुध, बृहस्पति और शुक्रवारमें लक्ष आवृत्तिफल तथा शनिवारमें करोड़ आवृत्तिफल लाभ होता है। इस चण्डी पाठके फलसे धन, धान्य और आरोग्यादि लाभ होता है।

रुद्रचन्द्र (सं० पु०) एक प्राचीन हिन्दू राजा।

रुद्रचन्द्रदेव—उड़ीसा राज प्रतापरुद्रका नामान्तर। प्रतापरुद्र देखो।

रुद्रचन्द्रदेव—रूपावलीरत्नमालिका और ययातिचरित्र नाटकके प्रणेता।

रुद्रचाँद—कुमायूँके चाँदवंशीय एक राजा। १५६५ ई०में ये विद्यमान थे।

रुद्रच्छत्र (सं० पु०) काश्मीरका एक राजपुत्र।

रुद्रज (सं० पु०) रुद्रात् जातः इति जन ड। पारद, पारा।

रुद्रजटा (सं० स्त्री०) रुद्रस्य जटा। १ तीन चार हाथ ऊँचा एक प्रकारका क्षुप। इसके पत्ते मयूरशिखाके पत्तोंके समान होते हैं। इसके पत्ते पहले तो बड़े होते हैं पर ज्यों ज्यों क्षुप बढ़ता जाता है त्यों त्यों वे छोटे होते जाते हैं। इसमें लाल रंगके बहुत सुन्दर फूल लगते हैं जिनका आकार प्रायः जटाके समान हुआ करता है। इसके बीज भरसाएंके बीजोंके समान काले और चमकीले होते हैं। वैद्यकमें रुद्रजटा कटु और श्वास, कास, हृदय रोग तथा भूत प्रेतकी बाधा दूर करने

वाली मानी गई है। पर्याय—रौद्री, जटा, रुद्रा, सौम्या, सुगंधा, सुवहा, घना, ईश्वरी, रुद्रलता, सुपत्रा, सुगंधपत्रा, सुरभि, शिवाह्वा, पत्रवल्ली, जटावल्ली, रुद्राणी, नेत्रपुष्करा, महाजटा, जटरुद्रा। २ मधुरिका, सौंफ। ३ ईसरमूल, इसरौल।

रुद्रजप (सं० पु०) रुद्रका उद्देशक स्तवविशेष।

रुद्रजपन (सं० क्ली०) धीमे स्वरमें रुद्रस्तव पाठ करना।

रुद्रजापक (सं० त्रि०) रुद्रस्तवपाठकारी, रुद्रस्तव पढ़नेवाला।

रुद्रजापिन् (सं० त्रि०) जो रुद्रस्तव पाठ करे, रुद्रस्तवपढ़नेवाला।

रुद्रजाप्य (सं० क्ली०) वह स्तव जो रुद्रके उद्देशसे वाजसनेयसंहितामें कहा गया है।

रुद्रट—साहित्यके एक प्रसिद्ध आचार्य। इनका बनाया हुआ काव्यालङ्कार ग्रन्थ बहुत प्रसिद्ध है। ये रुद्रभट्ट और शतानन्द भी कहलाते थे। इनके पिताका नाम भट्ट वामुक था।

रुद्रतनय (सं० पु०) जैन-हरिवंशके अनुसार तीसरे श्रीकृष्णका एक नाम।

रुद्रताल (सं० पु०) मृदङ्गका एक ताल। यह सोलह मात्राओंका होता है। इसमें ११ आघात और ५ खाली होते हैं।

रुद्रतेज (सं० पु०) स्वामि कार्त्तिक, कार्त्तिकेय।

रुद्रतैल—वात और श्लेष्मानाशक तैलौषध।

रुद्रत्व (सं० क्ली०) रुद्रस्य भावः त्व। रुद्रका भाव या धर्म।

रुद्रदत्त (सं० पु०) एक वैद्यग्रन्थके प्रणेता।

रुद्रदत्त—१ आपस्तम्बश्रौतसूत्रभाष्य और आपस्तम्बीयश्रौत प्रायश्चित्तभाष्यके रचयिता। २ रुद्रदत्तीय नामक न्यायग्रन्थके प्रणेता।

रुद्रदत्त पन्त—अलमोरा-वासी एक पण्डित। इन्होंने कुमायूंके चाँदवंशीय राजाओंकी आख्यायिका लिखी।

रुद्रदामन्—शकजातीय एक प्रसिद्ध राजा। ये विख्यात क्षहरात (क्षगारात) कुलतिलक महाराज चष्टनके पौत्र थे। चष्टनमालवके अधीश्वर होने पर भी केवल क्षत्रप उपाधिसे परिचित थे। उन्होंने सातवाहनोंके अधिकृत नगरोंको जीत कर महाक्षत्रप उपाधि पाई थी। उनके पुत्र जयदामके राज्यशेषमें सातवाहनकुलतिलक गोमतीपुत्र शातकर्णिने (सम्भवतः १२३ पृ० पू०) क्षहरातवंश ध्वंस कर दाक्षिणात्यमें फिर सातवाहनवंशगौरवकी प्रतिष्ठा की।* उनके प्रभावसे राजपूतानेसे समस्त दाक्षिणात्य भूमि तथा पश्चिम भारत आन्ध्रवंशका शकक्षत्रप राज्य एकच्छत्रतलमें समानीत हुआ था। अधिक सम्भव है, कि उसी समय दक्षिणापथसे शातकर्णिके हाथसे परास्त क्षहरातवंशी शकसैन्यदलने मालवपतिकी शरण ली। उसी सेनादलके साहाय्यसे बलवान् हो कर जयदामके पुत्र रुद्रदाम पुनः पश्चिम भारतमें शकोंका अधिकार विस्तार करनेमें समर्थ हुए थे।

गिर्नरसे आविष्कृत रुद्रदामके बड़े शिलाफलकमें लिखा है, कि उन्होंने पूर्व और पश्चिम आकरावन्ती (मालव प्रदेश), अनूप, नीवृद्, आनर्त्त, सुराष्ट्र, स्वभ्र, भरुकच्छ, सिन्धु, सौवीर, कुकुर, अपरान्त, निषाद आदि जनपद अपने बाहुबलसे जीता था। उन्होंने दक्षिणापथाधिपति शातकर्णिको बार बार जीतने पर भी उनके नजदीकके नातेदारोंको राज्यच्युत नहीं किया। यौधेयगण उनसे अच्छी तरह विपर्यस्त हुए थे। उन्होंने एक एक कर पराजित राजाओंको पुनः अपने अपने राज्यमें अधिष्ठित कर बड़ा यश लूटा था। धर्म और कीर्त्ति फैलाने तथा बहु वर्ष गो ब्राह्मणके लिये उन्होंने अत्यन्त सुन्दर एक सेतु निर्माण कराया।

उक्त प्रमाणसे स्पष्ट जाना जाता है, कि उन्होंने पञ्चनदसे कोङ्कण तकके भूभागोंको अपने अधिकारमें कर लिया था। दक्षिणापथपति शातकर्णिके साथ उनकी नजदीकी रिश्तेदारी थी।

गोतमीपुत्र शातकर्णिने जो सब जनपद अधिकार किया, सम्भवतः उनके वंशधर उस विस्तीर्ण राज्यकी रक्षा नहीं कर सके। महाक्षत्रप रुद्रदामने दक्षिणापथस्थित जनपदके सिवाय सुराष्ट्र आदि जनपदोंको अपने

* गोतमीपुत्र शातकर्णिने असिक, अश्मक, मुरक कुकुर, अपरान्त, अनूप, विदर्भ, आकर अवन्ती, विन्ध्यावत्, पारियात्र, सह्य, कृष्णागिरि, मच श्रीस्तन, मलय, महेन्द्र, श्रेष्ठगिरि और चकोर पर्वत जीता था।

कब्जेमें किया था। कारण यह सब जनपद उनके पूर्व्व शातकर्णिराजके अधिकारमें था। महाराष्ट्र वाशिष्ठीपुत्र पुलोमायीने १३० से १५४ ई० तक और गौतमीपुत्र यज्ञश्री शातकर्णिने १५४से १७२ ई० तक राज्य किया था तथा शिलालिपि और मुद्राओंकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि १३० से १८० ई० तक ये अन्ध्र पर बैठे थे। इस प्रकार उक्त दो शातकर्णिके साथ उनका सम्बन्ध था ऐसा बोध होता है। किन्तु शिलालिपिके पढ़नेसे पता चलता है, कि महाक्षत्रप रुद्रदामाकी कन्याके साथ शातकर्णि राजाके प्रियपुत्र वाशिष्ठीपुत्र शातकर्णि (चतुरपण) का विवाह हुआ था।* इससे जाना जाता है, कि रुद्रदामके निकट पराजित शातकर्णि यज्ञश्री शातकर्णि होंगे। अधिक सम्भव है, कि उन्होंने महाक्षत्रप रुद्रदामके साथ युद्धमें हार खा कर रुद्रदामको दुहिता अहृपीके साथ अपने पुत्र वाशिष्ठीपुत्र चतुरपणका विवाह किया था तथा इसी सम्बन्धसूत्रसे सम्भवतः रुद्रदामने दक्षिणापथ पर हस्तक्षेप नहीं किया। उक्त शकराज कन्याका पुत्र (अहृपीपुत्र) नागसेन नामसे विख्यात हुआ।

रुद्रदेव (सं० पु०) श्यालिपरिकाके रचयिता।

रुद्रदेव—१ आर्यावर्त्तके एक राजा। राजा समुद्रगुप्तने इस्वीसन् ३५० में इन्हें विजित किया। २ नेपालके एक राजा।

रुद्रदेव—१ कौतुकचिन्तामणिके प्रणेता। २ ज्योतिषचन्द्रार्क्क-षड्विंशिकाशिष्य और ज्योतिषचन्द्रिकाके रचयिता। ३ वैयाकरणसिद्धान्तभूषणटीकाके प्रणेता। ४ प्रताप मार्त्तण्ड नामक दीपिकाके रचयिता। ये प्रतिष्ठान पुरनिवासी नारायणपण्डितके पुत्र और अनन्तके शिष्य थे। उक्त प्रथममें इन्होंने अग्निहोत्रहोम अन्त्येष्टिप्रयोग, आपस्तम्बाह्निक, पाकयज्ञप्रकाश, गृह्यप्रकाश, पतितसंस्कार, सम्प्रदायपद्धति और बौधायनीय आधानयोग आदिकी आलोचना की। ५ गुणरत्न नामका प्रबोधचन्द्रोदयकी टीकाके रचयिता।

रुद्रधर—१ स्वरचन्द्रिका, विवादचन्द्रिका और श्राद्धचन्द्रिकाके रचयिता चण्डेश्वरके शिष्य। २ पुराणार्कके रचयिता। ३ अशुद्धिदर्पणके प्रणेता। ४ श्राद्धविवेक, शुद्धिविवेक और अशुद्धघर नामक दीपिकाके रचयिता। रघुनन्दन, कमलाकर और गौड़कृष्णने इनका मत ग्रहण किया है। ये लक्ष्मीधरके पुत्र तथा हलधरके छोटे भाई थे।

रुद्रधरभट्ट—शार्ङ्गधरसंहिताकी टीकाके प्रणेता।

रुद्रनन्दिन्—एक प्राचीन ऋषि।

रुद्रनाथ—वैयाकरणसिद्धान्तभूषणटीकाके रचयिता। रुद्रदेव देखो।

रुद्रनाथ—हिमालयके एक तीर्थक्षेत्रका नाम। आज कल यह स्थान रुद्रगढ़ नामसे प्रसिद्ध है।

रुद्रनिधि हिमालयके एक देवस्थानका नाम। (हिमवत्ख० ६।५८७)

रुद्रन्यायवाचस्पति—वृन्दावनविनोदकाव्य और भाव-विलासकाव्यके प्रणेता। ये अपने प्रतिपालक मानसिंह-पुत्र और मगधाधिपति राजा भावसिंहको गुणावलीका कीर्त्तन कर भावविलास प्रणयन किया।

रुद्र न्यायवाचस्पति भट्टाचार्य—बंगालवासी एक विख्यात पण्डित। ये विद्यानिवास भट्टाचार्यके पुत्र और भवानन्द पण्डितके पौत्र थे। ये जनसाधारणमें न्यायवाचस्पति नामसे परिचित थे। अधिकरणचन्द्रिका, कारकपरिच्छेद, कारकवाद, कारकव्यूह, तत्त्वचिन्तामणिदीधितिटीका, कुसुमाञ्जलिकारिकाव्याख्या, न्यायसिद्धान्तमुक्तावलीटीका, वादपरिच्छेद, विधिस्वरूपनिरूपण, शब्दपरिच्छेद तथा अनुमितिटीका, आख्यातवादव्याख्या, उदाहरणलक्षणटीका, उपनयलक्षणटीका, उपाधिपूर्व्वपक्ष ग्रन्थटीका, केवलान्वयी ग्रन्थटीका, चित्ररूपवादार्थ, तर्कग्रन्थटीका, तृतीय चक्रवर्त्तिलक्षणटीका, तृतीय प्रगल्भलक्षणटीका, द्वितीय चक्रवर्त्तिलक्षणटीका, द्वितीय स्वलक्षणटीका, पक्षतापूर्व्वपक्षग्रन्थटीका, पक्षतासिद्धान्तग्रन्थटीका, प्रतिज्ञालक्षणटीका, प्रथम चक्रवर्त्तिलक्षणटीका, विरुद्ध पूर्व्वपक्षग्रन्थटीका, विरुद्धसिद्धान्तग्रन्थटीका, विशेषव्याप्तिटीका, व्याप्त्यनुगमटीका, सत्प्रतिपक्षपूर्व्वपक्षग्रन्थटीका, सव्यभिचार पूर्व्वपक्षग्रन्थटीका, सव्यभिचारसिद्धान्तग्रन्थटीका और सामान्यनिरुक्तिटीका आदि कई एक न्यायग्रन्थ और भाष्य इन्होंने बनाये हैं। इनके अलावा इन्होंने

* Bhandarkar's Dekkan, p. 29-30

पितामह सदानन्द-विरचित कारकार्थनिर्णय नामक एक टोका तथा द्रव्यकिरणावलीपरीक्षा और गुणप्रकाश विवृतिभावप्रकाशिका नामकी रघुनाथकृत किरणावलीकी टिप्पणी लिखी थी।

रुद्रपण्डित (सं० पु०) रुद्रहरि देखो।

रुद्रपति (सं० पु०) शिव, महादेव।

रुद्रपत्नी (सं० स्त्री०) रुद्रस्य पत्नी। १ दुर्गा। (भारत ३।८३।१५८) २ अलसी, आलसी स्त्री।

रुद्रपल्लीय खरतरशाखा—एक जैन-सम्प्रदायका नाम। पद्मचंद्रके गुरु जिनशेखर सूरिने रुद्रपल्लीमें इस शाखाकी प्रतिष्ठा की। किसी किसीके मतसे पद्मचंद्र ही इस शाखाके प्रवर्त्तक थे।

रुद्रपाल (सं० पु०) राजभेद।

रुद्रपीठ (सं० पु०) तान्त्रिकोंके अनुसार एक पीठ या तीर्थका नाम। (योगिनीतन्त्र १७)

रुद्रपुत्र (सं० पु०) बारहवें मनु रुद्रसावर्णिका एक नाम।

रुद्रपुर (सं० क्ली०) एक जनपदका नाम।
(दिग्विजयप्रकाश)

रुद्रपुर—युक्तप्रदेशके गोरखपुर जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २६° २६′ ४०″ उ० तथा देशा० ८३° ३६′ २५″ पू०के बीच वधुआनालाके किनारे अवस्थित है। यहां भारजातिके एक विस्तृत दुर्गका ध्वंसावशेष पड़ा है। गुड़ और स्थानीय शस्यका यहां कारवार चलता है इसलिये यह स्थान प्रसिद्ध है।

रुद्रपुर—युक्तप्रदेशके तराई जिलेके अंदर एक गण्डग्राम। यह अक्षा० २८° ५८′ उ० तथा देशा० ७९° २६′ ६६″ पू० तक विस्तृत है। यहां बहुत-सा ध्वस्त मन्दिर और प्राचीन मसजिद हैं जो यहांके प्राचीन हिन्दू और मुसलमान राजाओंकी शासनसमृद्धिका परिचय देती है। इस ग्रामके पासही एक बड़ा आम्रकानन है।

रुद्रपूजन (सं० क्ली०) रुद्रस्य पूजनं। रुद्रदेवकी पूजा।

रुद्रप्रताप (सं० पु०) राजा प्रतापरुद्र देखो।

रुद्रप्रमोक्ष (सं० पु०) पुराणानुसार वह स्थान जहांसे शिवजीने त्रिपुरासुर पर बाण चलाया था।

रुद्रप्रयाग—हिमालयके एक तीर्थका नाम। यहां मन्दाकिनीके साथ गंगा आ मिली है। (हिमवत्० ८।१०४)

उत्तर-पश्चिम प्रदेशके गढ़वाल जिलेमें आज भी रुद्रप्रयाग तीर्थमें देवमन्दिर आदि विद्यमान हैं। इस समय भी केदारनाथ और बदरीनाथ शैलशिखरविधौतकारिणी मन्दाकिनी नदी कलकल नादसे पहाड़ी अधित्यका भूमिमें उतर कर यहां अलकानन्दाके साथ मिल रही है। यह पञ्चप्रयागमेंसे एक है। हिमालयतीर्थयात्रिगण यहां आ कर कुछ दिन विश्राम करते हैं। मन्दाकिनी अलकानन्दा संगमसे छः मील दूर पर्वतवक्षमें एक गुफा है जो भीमका चूल्हा कहता है।

रुद्रप्रिया (सं० स्त्री०) रुद्रस्य प्रिया। १ हरीतकी, हर्रे। २ पार्वती।

रुद्रभद्र (सं० पु०) पुराणानुसार एक नदका नाम।
(हिमवत् १८।२७)

रुद्रभट्ट—१ जगन्नाथविजयकाव्यके रचयिता। २ रुद्रभाष्यके प्रणेता। ३ शृंगारतिलक अलंकार शास्त्रके रचयिता। पद्यावलीमें इनका उल्लेख है।

रुद्रभट्ट अयाचित—एक संस्कृतशास्त्रज्ञ पण्डित। ये अच्छावाकप्रयोगके प्रणेता याज्ञिक रघुनाथके पिता थे।

रुद्रभट्ट कवीन्द्र—एक प्राचीन कवि। ये पदार्थमाला आदि ग्रन्थके रचयिता लौगाक्षि भास्करके पितामह थे और लौगाक्षि रुद्रभट्ट नामसे भी परिचित थे।

रुद्रभट्ट वैद्य—सन्निपातकलिका और वैद्यजीवनटीकाके रचयिता। इनकी बनाई और भी चार ग्रन्थोंकी टीका मिलती है। ये कोणेर भट्टके पुत्र और विष्णुभट्टके पौत्र थे।

रुद्रभाष्य (सं० क्ली०) अहोबल-रचित एक प्रसिद्ध भाष्य।

रुद्रभू (सं० स्त्री०) रुद्रस्य भूः स्थान। श्मशान, मरघट।

रुद्रभूति (सं० स्त्री०) १ रुद्राह्मायणीका गोत्रापत्य। २ उनके वंशके एक आचार्य।

रुद्रभूमि (सं० स्त्री०) १ ज्योतिषमें एक प्रकारकी भूमि। २ श्मशान, मरघट।

रुद्रभैरवी (सं० स्त्री०) दुर्गाकी एक मूर्त्तिका नाम।

रुद्रमणि—चण्डीपर्यायक्रम और लक्ष्मीपूजाविवेकके प्रणेता।

रुद्रमणि त्रिपाठी—प्रश्नशिरोमणि नामक ज्योतिर्ग्रन्थके

रचयिता । ये कमलेनुप्रकाशके प्रणेता वाल्मीकि कविके पिता थे ।

रुद्र देवकुमार—अमरुशतकटीकाके प्रणेता ।

रुद्रमय (सं० त्रि०) रुद्रस्वरूपे मयट । रुद्रस्वरूप, रुद्रके समान ।

रुद्रमहादेवी (सं० स्त्री०) राजा गोविन्दचन्द्रकी महिषी ।

रुद्रमादेवी—ओरङ्गलके काकतीय वंशीय एक रानी । वह अपने स्वामी (किसीके मतसे पिता) गणपतिकी मृत्यु होनेके पीछे सिंहासन पर बैठीं । मार्को पोलो जब यह प्रदेश परिभ्रमणमें आये, तब १२५७ ई०में वही राजगद्दी पर बैठ कर राज्यकी देखभाल करती थीं । ये प्रायः ३८ वर्ष राज्य कर २य प्रतापरुद्रको सिंहासन छोड़ गये ।

रुद्रमाल्य (सं० पु०) विल्ववृक्ष बेलका पेड़ ।

रुद्रमूर्त्ति (सं० पु०) १ रुद्रका रूप या आकृति । (हयशीर्ष ४४५५।१) २ क्रोध की पूर्ण प्रतिकृति । ३ प्रचण्ड मुखाकृति ।

रुद्रयज्ञ (सं० पु०) एक प्रकारका यज्ञ जो रुद्रके उद्देश्यसे किया जाता है ।

रुद्रयामल (सं० क्ली०) तान्त्रिकोंका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ जिसमें भैरव और भैरवीका संवाद है ।

रुद्रराय (सं० पु०) नवद्वीपके एक हिन्दू-राजा । नवद्वीप देखो ।

रुद्ररति (सं० पु०) शिलालिपिवर्णित एक वैदिक ब्राह्मण ।

रुद्ररेता (सं० पु०) पारद, पारा ।

रुद्ररोदन (सं० क्ली०) स्वर्ण, सोना ।

रुद्ररोमा (सं० स्त्री०) कार्त्तिकेयकी एक मातृकाका नाम ।

रुद्रलता (सं० स्त्री०) रुद्रजटाविशेष । रुद्रजटा नामका क्षुप ।

रुद्रलोक (सं० पु०) १ रुद्रोंकी वासभूमि । २ शिवलोक । (शिवपुरा० १।१)

रुद्रवट (सं० क्ली०) एक तीर्थका नाम । इसका उल्लेख महाभारतमें है । (भारत ३।४०६२ श्लोक)

रुद्रवत्रप (सं० त्रि०) रुद्रोंसे परिवेष्टित (तैत्तिरीयसं०)

रुद्रवत् (सं० त्रि०) १ रुद्रगणोंसे युक्त । (पु०) २ इन्द्र । (ऐतरेयब्रा० २।२०) ३ अग्नि । (शतपथब्रा० २१।१४।१३) ४ साम ।

रुद्रवदन (सं० पु०) १ महादेवके पांच मुख । (त्रि०) २ पांचकी संख्या ।

रुद्रवन्ती (सं० स्त्री०) एक प्रसिद्ध वनौषधि । इसकी गणना दिव्यौषधि वर्गमें होती है । यह प्रायः सारे भारतमें और विशेषतः उष्ण प्रदेशोंकी बलुई जमीनमें अथवा ग्रामोंके पास और समुद्र तट पर अधिकतासे होती है । इसके क्षुप प्रायः हाथ भर ऊंचे होते हैं और देखनेमें चनेके पौधोंके से जान पड़ते हैं । इसके पत्ते भी चनेके पत्तोंके समान ही होते हैं, परन्तु ऋतुमें जिनमेंसे पानीकी बूंदें टपका करती हैं । काले, पीले, लाल और सफेद फूलोंके भेदसे यह चार प्रकारकी होती है । वैद्यकके अनुसार यह चरपरी कड़वी, गरम, रसायन अग्निवर्धक, वीर्यवर्धक और श्वास, कृमि, रक्तपित्त, कफ तथा प्रमेहको दूर करनेवाली होती है । इसका पर्याय—स्रवत्तोया, सञ्जीवनी, अमृतस्रवा, रोमाञ्चिका, महामांसी, चणकपत्री, सुधास्रवा, मधुस्रवा ।

रुद्रपुरम्—मद्रास प्रेसिडेन्सीके अन्तर्गत एक प्राचीन नगर । यहां बहुत से देवमन्दिर विद्यमान हैं ।

रुद्रवर्त्तनि (सं० पु०) १ कठिन पथ । २ स्तुतिमार्ग ।

रुद्रवान् (हि० वि०) रुद्रवत् देखो ।

रुद्रविंशति (सं० स्त्री०) रुद्रदैवताका विंशति । प्रभव आदि साठ संवत्सरों या वर्षोंमेंसे अन्तिम बीस वर्षोंका समूह । इसे रुद्रबीसी भी कहते हैं ।

रुद्रवीणा (सं० स्त्री०) रुद्रस्य वीणा । प्राचीनकालकी एक प्रकारकी वीणा ।

रुद्रव्रत (सं० क्ली०) एक व्रतका नाम ।

रुद्रशर्मन् (सं० पु०) चन्द्रविलास-नाटक और उसकी टीकाके प्रणेता । इनकी उपाधि त्रिपाठी थी ।

रुद्रसम्प्रदायिन्—वैष्णव धर्मसम्प्रदायभेद । वल्लभाचार्य देखो ।

रुद्रसरस् (सं० क्ली०) एक प्राचीन तीर्थका नाम ।

रुद्रसर्ग (सं० पु०) रुद्रकृतः सर्गः । रुद्र द्वारा सृष्टि । रुद्रसे जिनकी उत्पत्ति हुई है वे रुद्रसृष्टि कहलाते हैं । रुद्र देखो ।

रुद्रसामन् (सं० क्ली०) सामभेद ।

रुद्रसावर्णि (सं० पु०) पुराणानुसार बारहवें मनुका

नाम। भागवतमें लिखा है, कि इस मन्वन्तरमें सुधामाख्य अवतार, ऋतधामा इन्द्र तथा हविरादि देवता, तपोमूर्त्ति आदि सप्तर्षि, देववत् और उपदेवादि मनुके पुत्र हुए थे। (भागवत ८।१३ अ०)

रुद्रसावर्णिक (सं० त्रि०) रुद्रसावर्णिके कालसम्भूत या सम्बन्धीय।

रुद्रसिंह—मिथिलाके खण्डवाल वंशीय एक राजा तथा छत्रसिंहके पुत्र और महेश्वरसिंहके पौत्र। ये सुबोधिनी और व्रताचारके प्रणेता रत्नपाणिके प्रतिपालक थे।

रुद्रसिंह—आसामके अहोमवंशी एक राजा। ये रङ्गपुर और जोरहाट नगर स्थापन कर गये हैं। इनकी प्रचलित मुद्रा सबसे पहले बंगला अक्षरमें खोदी गई थी। कामरूप देखो।

रुद्रसिंह—एक हिन्दू नरपति। ये राघवपाण्डवीयटीकाके प्रणेता कुमार वंशधरके पितामह थे।

रुद्रसुन्दरी (सं० स्त्री०) देवीकी एक मूर्त्तिका नाम।

रुद्रसू (सं० स्त्री०) रुद्रो तत्परमिति पुत्रं सूते सु-क्विप्। वह स्त्री जिसने ग्यारह पुत्र उत्पन्न किये हों, ग्यारह पुत्रकी जननी।

रुद्रसूरि—शब्दचिन्तामणि नामक व्याकरणके प्रणेता तथा पुण्यनायके पुत्र।

रुद्रसृष्टि (सं० स्त्री०) रुद्रकृता सृष्टिः। रुद्रसर्ग, रुद्रकी सृष्टि।

रुद्रसेन (सं० पु०) महाभारत युद्धका एक घोड़ा। (भारत ७ पर्व)

रुद्रसेन १म—पश्चिमक्षत्रपराजवंशके एक शकराज, रुद्रसिंहके पिता। २०० ई०सन्में ये विद्यमान थे।

रुद्रसेन २य—एक शकक्षत्रप। २य दामजद्श्रीके बाद ये मालवकी राजगद्दी पर बैठे। ये राजा वीरदामाके पुत्र थे और २५० ई०सन्में विद्यमान थे।

रुद्रसेन १म, २य और ३य—दाक्षिणात्यके वकाटकवंशीय महाराज। वाकाटक शब्द देखो।

रुद्रसोम (सं० पु०) ब्राह्मणभेद। (कथासरित्सा० ६४।११०)

रुद्रस्कन्दस्वामिन्—श्रौतसारसंग्रह नामक द्राह्यायण श्रौतसूत्रभाष्य और द्राह्यायणगृह्यसूत्रवृत्तिके रचयिता। वीरराघवने इनका वचन उद्धृत किया है।

रुद्रस्वर्ग (सं० पु०) रुद्रलोक।

रुद्रस्वामिन् (सं० पु०) शिलालिपि वर्णित एक राजा।

रुद्रहिमालय—हिमालयपर्वतकी एक चोटी। यह अक्षा० ३०° ५८' उ० तथा देशा० ७६° ५' पू०के मध्य चीनकी ओर पूर्वी सीमा पर है और सदा बरफसे ढकी रहती है। यह समुद्रपीठसे २२३६० फुट ऊंची है।

रुद्रहूति (सं० त्रि०) १ स्तोतृगण द्वारा स्तुत या स्तुति किया हुआ। २ रुद्र।

रुद्रहृदय (सं० पु०) एक उपनिषद्का नाम जो प्राचीन दश उपनिषदोंमें नहीं है।

रुद्रा (सं० स्त्री०) १ रुद्रजटा नामक क्षुप। २ नलिका नामका गन्धद्रव्य कवितलता। ३ अदितिमंजरी, मुकवर्चा। ४ हिमालयकी एक नदीका नाम। (हिमवत् ५।१६)

रुद्राक्रीडा (सं० पु०) रुद्रस्य आक्रीडा देवनं यत्र। श्मशान, मरघट।

रुद्राक्ष (सं० क्ली०) रुद्रस्य अक्षि कारणत्वेनास्त्यस्येति, अर्श आदित्वादच्। १ स्वनामख्यात वृक्ष वीज। (पु०) २ स्वनामख्यात वृक्ष (Elaeocarpus Ganitrus) पर्याय—तृणमेरु, अमर, पुष्पचामर। इसके फलके पर्याय—शिवाक्ष, सर्पाक्ष, भूतनाशन, पावन, नीलकण्ठाक्ष, हराक्ष, शिवप्रिय। गुण—अम्ल, उष्ण, वात, कृमि, शिरोरोग तथा रुचिकर। (राजनि०)

रुद्राक्ष स्थूल प्रशस्त स्थूल रुद्राक्ष और नार्मद शिवलिङ्ग क्षुद्र प्रशस्त है। (मेरुतन्त्र ६ अ०)

रुद्राक्षमाला धारण करके शिवपूजा करनी चाहिए। यदि कोई रुद्राक्षमाला धारण विना किये ही शिवपूजा करे, तो वह पूजा निष्फल होती है। (लिङ्गपु०)

रुद्राक्षमाला, भस्म और त्रिपुण्ड्रादि धारण विना किये शिवपूजा न करना चाहिए, ऐसा विधान है। परंतु यदि कोई विना धारण किये पूजादि करे, तो पूजाका किञ्चिन्मात्र भी फल न होगा, यह बात नहीं, वैलक्षण्य फलका अभाव होगा, इतना समझ लेना चाहिए।

तन्त्रसारमें रुद्राक्षके माहात्म्यादिके विषयमें लिखा है—मस्तक पर, चोटीमें, कण्ठमें और कर्णोंमें जो रुद्राक्ष धारण करता है, वह व्यक्ति शिवलोक प्राप्ति कर सकता है। साधकको चाहिए कि नवयुक्त रुद्राक्ष

वाम बाहुमें और चतुर्दशमुख रुद्राक्ष शिखामें धारण करे। एक वक्त्र रुद्राक्ष साक्षात् शिवस्वरूप है, इसके धारण करनेसे ब्रह्महत्या जनित पाप नष्ट होते हैं। द्विवक्त्र रुद्राक्ष हरगौरीस्वरूप है, इसके धारण करनेसे गोहत्या-जनित पाप नष्ट होते हैं। त्रिवक्त्र रुद्राक्ष अग्निस्वरूप है, इसके धारण करनेसे जिन्मार्जित पापराशि विनष्ट हो जाती है। चतुर्वक्त्र रुद्राक्ष ब्रह्म स्वरूप, इसके धारण करनेसे नरहत्याजनित पाप दूर हो जाते हैं। पञ्चवक्त्र रुद्राक्ष कालाग्निस्वरूप है और उसके धारण करनेसे अगम्यागमन तथा अभक्ष्यभक्षणजनित पाप क्षय होते हैं। षड्वक्त्र रुद्राक्ष कार्त्तिकेय-स्वरूप है और उसके धारण करनेसे गर्भहत्याजनित पाप विनष्ट होते हैं। सप्तमुख रुद्राक्ष स्वयं अनन्त है, उसके धारण करनेसे सुवर्णस्तेयजनित पाप नष्ट होते हैं। अष्टमुख रुद्राक्ष साक्षात् गणपति है, उसके धारण करनेसे मिथ्यावाक्यकथन जन्य पाप विदूरित होते हैं। नवमुख रुद्राक्ष साक्षात् भैरवस्वरूप है उसके धारण करनेसे शिव-सायुज्य, दशवक्त्र रुद्राक्ष विष्णु स्वरूप है, उसके धारण करनेसे भूत प्रेत-पिशाचादिका भय विनाश, एकादशमुख रुद्राक्षके धारण करनेसे नाना प्रकार यज्ञफलकी प्राप्ति, द्वादशमुख रुद्राक्ष धारण करनेसे समस्त प्रकारकी कामना पूर्ण चतुर्दश मुख रुद्राक्ष धारण करनेसे पुरुखोंका उद्धार होता है।

एक वक्त्रसे ले कर चतुर्दशवक्त्र पर्यन्त रुद्राक्ष अशेष प्रकार पाप-नाशक है। ऊपर जिन रुद्राक्षोंका उल्लेख किया जाता है वे निश्छिद्र और सुपक्व होना चाहिए। अन्यथा मङ्गलजनक नहीं होंगे। रुद्राक्षको पञ्चगव्य और पञ्चामृत द्वारा अभिषिक्त कर लेना चाहिए। रुद्राक्षको प्रतिष्ठा करते समय पञ्चाक्षरमन्त्र और त्र्यम्बकादि मन्त्र उच्चारण करने चाहिए। (तन्त्रसार)

तृप्यन्त्वादि मन्त्र, यथा—ॐ ह्रीं अघोरे ह्रीं घोरे, हुं घोर घोरतरे ॐ हुं ह्रीं श्रीं ऐं सर्वतः सर्वसर्वेभ्यो नमोऽस्तु रुद्ररूपिणे हुं हुं ॥"

इस मन्त्र द्वारा प्रतिष्ठा करके धारण किया जाता है। एक मुख रुद्राक्षसे ले कर चतुर्दशमुख पर्यन्त रुद्राक्ष धारण करनेके लिए सबके अलग अलग मन्त्र हैं। उन मन्त्रोंको पढ़ कर धारण करना उचित है।

मन्त्र इस प्रकार है—१ ॐ ॐ भूर्भ नमः। २ ॐ ॐ नमः। ३ ॐ ॐ नमः। ४ ॐ ह्रीं नमः। ५ ॐ हुं नमः। ६ ॐ ॐ हु हुं नमः। ७ ॐ हु ॐ ॐ नमः। ८ ॐ नमः। ९ हुं नमः। १० ॐ ह्रीं नमः। ११ ॐ ह्रीं नमः। १२ ॐ ह्रों नमः १३ ॐ क्षां क्षौं नमः। १४ ॐ नमो नमः।

इन चौदह मन्त्रोंसे क्रमशः चतुर्दशमुख रुद्राक्ष धारण किये जाते हैं।

यदि कुक्कुरके शरीरमें मृत्युकालमें भी रुद्राक्ष मौजूद रहे, तो वह कुक्कुर भी रुद्रलोकको प्राप्त होता है। श्रेष्ठ मनुष्योंके लिए तो कहना ही क्या। मृत्युके समय मनुष्यकी देहमें यदि रुद्राक्ष हो, तो उसे रुद्रलोककी प्राप्ति तो अवश्य ही होगी, इसमें कोई सन्देह नहीं।

२७ रुद्राक्षोंकी माला बना कर उसे जो कोई कण्ठमें धारण करते हैं, वे कोटिगुण फल पाते हैं। जो मनुष्य ब्राह्मणको षण्मुखरुद्राक्ष दान करता है, उस पर रुद्रदेव सन्तुष्ट होते हैं और उसे अपना पद प्रदान करते हैं। यदि कोई व्यक्ति विना मन्त्रके रुद्राक्ष धारण करे, तो वह व्यक्ति चतुर्दश इन्द्र पर्यन्त नरकको गमन करता है।

तन्त्रसारमें और भी १४ प्रकारके मन्त्र कहे गये हैं। प्रथमसे ले कर चौदह पर्यन्त रुद्राक्ष उक्त मन्त्रसे धारण करना चाहिए।

मन्त्र, यथा—१ ॐ ऐं। २ ॐ श्रीं। ३ ॐ ग्लूं ग्लूं। ४ ॐ ह्रीं हुं। ५ ॐ ह्रीं। ६ ॐ ऐं ह्रीं। ७ ॐ ह्रीं। ८ ॐ ह रं। ९ ॐ ह्रीं। १० ॐ ह्रीं। ११ ॐ श्रीं। १२ ॐ ह्रां ह्रीं। १३ ॐ क्षौं नमः। १४ ॐ नमः। इन १४ मन्त्रोंको पढ़ कर रुद्राक्ष धारण करना चाहिए।

जो व्यक्ति गलेमें बत्तीस, चोटीमें बाईस, दोनों कानोंमें छह छह बारह, दाहिने हाथमें बारह, बायें हाथमें सोलह और वक्षस्थलमें एक सौ आठ रुद्राक्ष धारण करता है, वह समस्त पापोंको ध्वंस करके नीलकण्ठ हो जाता है। (तन्त्रसार)

शिवपुराणमें इसकी उत्पत्ति और धारण आदिका विषय भिन्न प्रकार निर्दिष्ट हुआ है।

रुद्राक्षकी नाम निरुक्ति ।

"त्रिपुरस्य वधे काले रुद्रस्याक्ष्णोऽपतस्तु ये ।
अश्रुणो विन्दवस्ते तु रुद्राक्षा अभवन् भुवि ॥"

(सम्वत्सरप्रदीपधृत तिथितत्त्व)

महादेवने जब त्रिपुरासुरको वध किया था, तब उनके नेत्रसे अश्रुविन्दु गिरा था, उसीसे रुद्राक्षकी उत्पत्ति हुई थी। रुद्रकी अक्षि अर्थात् नेत्रसे उत्पत्ति होनेके कारण इसका नाम रुद्राक्ष पडा ।

तन्त्रादि शास्त्रोंमें एकसे चतुर्दश मुख रुद्राक्षका माहात्म्य कीर्त्तित हुआ है। इन सब रुद्राक्षोंमें पञ्चवक्त्र रुद्राक्ष सुलभ है, इसलिए प्रत्येकके लिए यथाविधानसे इस पञ्चमुख रुद्राक्षको धारण करना विधेय है। पञ्चमुख रुद्राक्ष स्वयं रुद्र-स्वरूप है, इसका कालाग्नि है। इसके धारण करनेसे अगम्यागमन और अभक्ष्य भक्षण-जनित पाप दूर होते हैं। इसे धारण करते समय "हुं नमः" इस मन्त्रका एक सौ आठ बार जप करके शिव निर्माल्योदकसे उसका प्रक्षालन करनेके बाद धारण करना चाहिए। (तिथितत्त्व)

एकादशीतत्त्वमें लिखा है कि वैदिक जप होमादि कोई भी कार्य्य क्यों न किया जाय, रुद्राक्ष धारण करके करना चाहिए, अन्यथा वह निष्फल होगा। ध्यानधारणा हीन हो कर भी यदि रुद्राक्ष धारण किया जाय, तो केवल इसके माहात्म्यसे परमगति प्राप्त होती है। (एकादशीतत्त्व)

देवीभागवतमें रुद्राक्षकी उत्पत्ति और गुणादिके विषयमें इस प्रकार लिखा है—एक दिन षडाननने कैलास पर्वत पर भगवान् रुद्रदेवसे रुद्राक्षके माहात्म्य आदिके विषयमें प्रश्न किया। इस पर उन्होंने इस प्रकार कहा था—"प्राचीन कालमें जब ब्रह्मादि देवगण त्रिपुरासुरसे पराजित और निपीड़ित हुए थे, तब मैंने देवोंके अनुरोधसे त्रिपुरका वध करनेके लिए अघोर नामक दिव्यास्त्रका स्मरण करके सहस्र वर्ष उन्मीलित नयनोंसे अवस्थान किया था, क्षण भरके लिए भी चक्षुके निमेष बंद नहीं किये थे। इससे मेरे नेत्रोंमें आघात पहुंचा और अश्रु टपके थे, उसी अश्रुसे रुद्राक्षकी उत्पत्ति हुई थी।" यह रुद्राक्ष ३८ प्रकारका है। जिनमें सूर्यरूप नेत्रसे बारह प्रकार, पिङ्गलवर्ण चन्द्ररूप नेत्रसे सोलह प्रकार और श्वेतवर्ण अग्निरूप नेत्रसे दश प्रकारके कृष्णवर्ण रुद्राक्ष उत्पन्न हुए थे। रुद्राक्षके ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रके भेदसे चार प्रकारका भी है। जिनमें श्वेतवर्ण रुद्राक्षकी जाति ब्राह्मण, रक्तवर्णकी रुद्राक्ष क्षत्रिय, मिश्र-वर्णकी रुद्राक्ष वैश्य और कृष्णवर्णकी जाति रुद्राक्ष शूद्र है।

ब्राह्मणादि चार वर्णोंके मनुष्योंके अपने अपने वर्णवाले रुद्राक्ष धारण करना चाहिए। इसके विपरीत कभी न धारण करना चाहिए।

रुद्राक्ष अत्यन्त पूजनीय है। देवगण सर्वदा अत्यन्त यत्नसे इसकी पूजा करते हैं। रुद्राक्ष धारण करनेसे जीव को परमागति प्राप्त होती है। मस्तक पर २४, हृदयमें ५०, बाहुद्वयमें १६ और दो मणिबन्धमें १२ रुद्राक्षोंकी माला धारण करनी चाहिए। १०८, ५० और २७ रुद्राक्षोंकी माला बना कर जप करना चाहिए। इससे अश्वमेध यज्ञका फल और इक्कीस पुरुषका उद्धार होता है। अन्तकालमें शिवलोककी प्राप्ति होती है।

रुद्राक्षकी माला बना कर जप करना चाहिए, ब्रह्मा रुद्राक्षके मुख हैं, रुद्र विन्दु हैं और विष्णु पुच्छ हैं। यह रुद्राक्ष भोग और मोक्षफलका दाता है। रक्त, शुक्ल और मिश्रवर्ण पञ्चमुख पचीस रुद्राक्षों द्वारा गोपुच्छकी भांति क्रमशः सूक्ष्माकारसे मुखसे मुख और पुच्छसे पुच्छ मिला कर माला बनाई जाती है। माला गूंथते समय ऊर्द्धमुख मेरु रख कर उसके ऊपर गांठ देनी चाहिए। इस प्रकार माला गूंथनेके बाद उसका शोधन करना चाहिए। मालाके पहले गन्धोदक और पंचगव्यमें स्थापन कर निर्मल जलसे धो कर मन्त्रपूत करना चाहिए। अनन्तर शिवके षडङ्ग मन्त्रके अन्तर्गत अस्त्रमन्त्र द्वारा स्पर्श करके "हुं" इस मन्त्रसे मालाओंको एकत्र करना होगा। पश्चात् उसके ऊपर मूलमन्त्रको जप कर 'सद्योजात' इत्यादि मन्त्र द्वारा सौ बार प्रोक्षण करना होगा। अनन्तर मूल मन्त्र उच्चारण तथा विशुद्ध भूमि पर रख कर उसके ऊपर शिवभगवतीका न्यास करना होगा। इस प्रकार मालाकी प्रतिष्ठा वा संस्कार करनेसे अभीष्ट सिद्धि होती है। जिस देवताका जो मन्त्र है, उसीसे उसकी पूजा करनी चाहिए।

रुद्राक्षमाला मस्तक पर, गलेमें, कानोंमें अथवा बाहुयुगलमें धारण करना उचित है। स्नान दान, जप, होम, वैश्वदेव, बलि देवपूजा, प्रायश्चित्त, श्राद्ध और दीक्षा समय रुद्राक्ष धारण करना अत्यन्त आवश्यक है। बिना रुद्राक्ष धारण किये इन सब अनुष्ठानोंको करनेसे वे निष्फल जाते हैं।

रुद्राक्ष धारणका फल त्रिलोक प्रसिद्ध है। रुद्राक्षके दर्शनसे पुण्य, स्पर्शसे कोटिगुण पुण्य, धारण करनेसे शतकोटिगुण पुण्य और प्रतिदिन जप करनेसे लक्षकोटि सहस्र गुण फल प्राप्त होता है। जो आदमी हाथोंमें, वक्षःस्थल पर, गलेमें, कानों या चोटीमें रुद्राक्ष धारण करता है, वह साक्षात् रुद्र स्वरूप है। रुद्राक्ष धारण करनेसे मनुष्य समस्त प्राणियोंका अवध्य, महादेवके समान देवासुरके वन्दनीय और समस्त प्रकार पातकसे रहित हो जाता है। यत्नमात्र रुद्राक्ष धारण करनेसे आपको जप और ध्यानादि विहीन होने पर भी इसके प्रभावसे परमागति प्राप्त होती है।

रुद्राक्षकी महिमाके विषयमें निम्न प्रकार एक पौराणिक उपाख्यान पाया जाता है—

कोशल देशमें गिरिनाथ नामक एक वेदवेदाङ्गपारग ब्राह्मण थे। उनके गुणनिधि नामक एक पुत्र हुआ। यह पुत्र कन्दर्पके समान रूपवान् था। गुणनिधि अत्यन्त दुर्वृत्त हो उठा। गुरुके गृहमें अध्ययन करते समय यह गुरुपत्नी चन्द्रावली पर आसक्त हो गया। पीछे उसने गुरुको विष देकर मार डाला और गुरुपत्नीको ले कर स्वच्छन्द विहार करने लगा। अन्तमें घोर दुर्वृत्त हो कर उसने माता पिताको भी मार डाला।

उसका आचरण यहाँ तक बिगड़ गया, कि वह पाप को पाप नहीं समझता था। उससे सब डरते थे। उसने सब पाप किये थे—स्त्रीहत्या, ब्रह्महत्या गोहत्या और सुरापान आदि कोई भी पाप उससे बचा न था।

इस प्रकार पाप करता हुआ अन्तमें मृत्युका ग्रास बना। तब उस दुर्जनके लिए यमालयसे सहस्र यमदूत और शिवालयसे दो एक दूत आया। तब दोनोंमें विवाद हुआ। यमदूतोंने कहा गुणनिधि महापापी है, तुम क्यों इस पर आये।" तब शिवदूतने कहा "अत्यन्त पापी है माना, परन्तु गुणनिधिकी जहाँ मृत्यु हुई है, उस भूमिके दस हाथ नीचे रुद्राक्ष है। इसलिये रुद्राक्षके प्रभावसे इसके पाप क्षय हो गये हैं। अतएव इस पर तुम लोगोंका अधिकार नहीं है। मैं इसे शिवलोक ले जाऊंगा।" तब गुणनिधिको शिवदूत विमानमें बिठा कर शिवलोक ले गया। (देवीभागवत ११।६।४०) स्कन्दपुराण, पद्मपुराण आदिमें भी रुद्राक्षका माहात्म्य विशेषरूपसे वर्णित है।

४ एक उपनिषद्।

रुद्राक्षमाला (सं० स्त्री०) वह माला जो रुद्राक्षके बीजसे बनाई गई हो।

रुद्राचार्य (सं० पु०) एक प्रसिद्ध पण्डित।

रुद्राणी (सं० स्त्री०) रुद्रस्य पत्नी। (इन्द्रवरुणभव शर्वरुद्रेति। पा ४।१।४९) इति ङीष्। १ रुद्रकी पत्नी, पार्वती। २ रुद्रजटा नामकी लता। इसकी पत्तियोंका व्यवहार औषधके रूपमें होता है। ३ एक प्रकार की रागिणी। कुछ लोग इसे मेघ रागकी पुत्रवधू मानते हैं। पर कुछ लोग इसे भगवती, ललित, पंचम और गौरा रागोंके मेलसे बनी हुई संकर रागिणी भी स्वीकार करते हैं।

रुद्राध्याय (सं० पु०) १ रुद्रके उद्देशसे किया हुआ यजुर्वेदीय सूक्त। २ श्राद्ध कालमें पठनीय ग्रन्थांशभेद। यह यजुर्वेदियोंके गृहोत्सवमें पढ़ा जाता है।

रुद्राध्यायिन् (सं० त्रि०) रुद्रस्तवपाठकारी, रुद्रस्तव पढ़नेवाला।

रुद्रायण (सं० पु०) रोरुकदेशाधिपति एक राजा।

रुद्रारि (सं० पु०) रुद्र अरिर्यस्य। कामदेव।

रुद्रावर्त्त (सं० पु०) महाभारतके अनुसार एक प्राचीन तीर्थका नाम।

रुद्रावसृष्ट (सं० त्रि०) रुद्रकर्तृक विसृष्ट, जिसे रुद्रने नष्ट कर दिया हो। (अथर्व० ११।८।१२)

रुद्रावास (सं० पु०) रुद्रस्य आवासः। काशी क्षेत्र। महादेव यहाँ सर्वदा अवस्थान करते हैं इसीसे इसे रुद्रावास कहते हैं।

रुद्रिय (सं० त्रि०) १ रुद्रसम्बन्धी, रुद्रका। २ मर्यादा पालक, बड़ाई करनेवाला। ३ आनन्ददायक, प्रसन्नता

उत्पन्न करनेवाला। (क्ली०) ४ रुद्रशक्ति। ५ सुख। (सायण २।११।३२)

रुद्री (सं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी वीणा, रुद्रवीणा। २ वेदके रुद्रानुवाक या अघमर्षण सूक्तकी ग्यारह आवृत्तियाँ।

रुद्रैकादशिनी (सं० स्त्री०) रुद्रानुवाकोंकी या अघमर्षण सूक्तकी ग्यारह आवृत्तियाँ, रुद्री।

रुद्रोपनिषद् (सं० स्त्री०) एक उपनिषद्का नाम।

रुद्रोपस्थ (सं० पु०) पुराणानुसार एक पर्वतका नाम।

रुधिक्रा (सं० स्त्री०) इन्द्र द्वारा पराजित एक असुरका नाम। (ऋक् २।१४।५)

रुधिर (सं० क्ली०) रुणाद्धि रुध्यते इति वा रुध (इषिमदिमुदीति। उण् १।५२) रति किरच्। १ शरीरमेंका रक्त, लहू। पर्याय—रक्त, अस्र, त्वगुज, कीलाल, क्षतज, शोणित, लोहित, असृक, शोण, लोह, चर्मज। (राजनि०) रक्त देखो। २ कुङ्कुम, केसर। ३ गैरिक, गेरू। (पु०) ४ मङ्गल ग्रह। ५ मणिभेद, एक प्रकारका रत्न। ६ एक नगरका नाम। शोणितपुर देखो।

रुधिरगुल्म (सं० पु०) स्त्रियोंका एक प्रकारका रोग। इससे पेटमें शूल और दाह होता है और एक गोला सा घूमता है। इसमें पित्तगुल्मके सब चिह्न मिलते हैं और कभी कभी इससे गर्भ रहनेका भी धोखा होता है। कहते हैं, कि गर्भपात होने पर अनुचित आहार विहार करनेके कारण ऋतुकालमें वायु कुपित होती है जिससे रक्त इकट्ठा हो कर गोला सा बन जाता है।

रुधिरताम्राक्ष (सं० त्रि०) रक्तवर्ण चक्रविशिष्ट, लाल रंगका चक्रवाला।

रुधिरपायिन् (सं० पु०) १ रक्तपानकारी, लहू पीनेवाला। २ राक्षस।

रुधिरपित्त (सं० क्ली०) रक्तपित्त, नकसीर।

रुधिरप्रदिग्ध (सं० त्रि०) रक्ताक्त, लहू लगा हुआ।

रुधिरप्लावित (सं० त्रि०) रक्ताप्लुत, लहू लगा हुआ।

रुधिरप्लीहा (सं० स्त्री०) प्लीहा रोगका एक भेद। वैद्यकके अनुसार इसमें इन्द्रियां शिथिल हो जाती हैं, शरीरका रंग बदल जाता है, अंग भारी और पेट लाल हो जाता है और भ्रम, दाह तथा मोह होता है।

रुधिररूषित (सं० त्रि०) रक्ताच्छादित, लहूसे भरा हुआ।

रुधिरलेश (सं० पु०) रक्तचिह्न, लहूका दाग।

रुधिरविन्दु (सं० पु०) लहूकी बूंद।

रुधिरवृद्धिदाह (सं० पु०) वैद्यकके अनुसार एक प्रकारका रोग। इसमें रक्तकी अधिकतासे सारे शरीरमें धूआं सा निकलता है और शरीर तथा आंखोंका रंग तांबेका सा हो जाता है और मुंहसे लहूकी गंध आती है।

रुधिराक्त (सं० त्रि०) १ लहूसे तर या भीगा हुआ, खूनसे भरा हुआ। २ लहूका सा लाल।

रुधिराख्य (रुधिराक्ष)—मूल्यवान् पत्थर वा एक प्रकारकी मणि। इस मणिको कोई उपरत्न और कोई स्वल्पमणि कहते हैं। वृहत्संहिता, अग्निपुराण और गरुड़पुराण आदि ग्रन्थोंमें इस मणिका उल्लेख देखनेमें आता है। वृहत्संहिता और अग्निपुराणमें इसके गुणागुणका विषय नहीं लिखा है, गरुड़पुराणमें सामान्य मात्र है।

इस मणिकी उत्पत्तिका विषय इस प्रकार लिखा है—अग्निदेवने यथाभिलषित दानवका रूप धारण कर नर्मदा नदीमें कुछ फेंका। फेंकते ही इन्द्रगोपकीटके चिह्नविशिष्ट शुकचञ्चुतुल्य एक प्रकारकी मणि उत्पन्न हुई। इसका आकार पीलु फलके समान था। पण्डितोंने इसका नाम रुधिराख्य रखा। शिल्पिगण इस मणिमें तरह तरहकी कारीगरी दिखलाते हैं। इस मणिका मध्यस्थल विशुद्ध शुभ्रवर्णका और पार्श्वदेश इन्द्रके समान है। यह रत्न पक्व होने पर वज्रवर्ण (हीरक) हो जाता है। जो इस मणिको धारण करते, उनके सुख, ऐश्वर्यादि नाना प्रकारके शुभ होते हैं। *

रुधिरानन (सं० क्ली०) मंगल ग्रहकी एक वक्र गति। जब मङ्गल किसी नक्षत्र पर अस्त हो कर उससे पन्द्रहवें या सोलहवें नक्षत्र पर वक्री होता है तब वह रुधिरानन कहलाता है। (वृहत्संहिता ६।४)

रुधिरान्ध (सं० पु०) पुराणानुसार एक नरकका नाम।

---

* "हुतभुग्रूपमादाय दानवस्य यथेप्सितम्।
नर्मदायां निचिक्षेप किंचिद्दीनादि भूतले॥

रुधिरामय (सं० पु०) रुधिरनिर्गमरूप व्याधि, रक्तपित्त नामक रोग।

रुधिराविल (सं० त्रि०) रक्तमय, लहूसे तर या भरा हुआ।

रुधिराशन (सं० त्रि०) रुधिरं अशनं यस्य। १ रक्त ही जिसका आधार हो, रक्तपान करके जीनेवाला। (पु०) २ खर राक्षसका सेनापति जिसे श्रीरामचन्द्रने मारा था। ३ राक्षस।

रुधिराशिन् (सं० त्रि०) रक्तपान करनेवाला, लहू पीने वाला।

रुधिरोद्गारिन् (सं० त्रि०) १ रक्तवमनकारी, जिसे लहू कै होती हो। (पु०) २ वृहस्पतिके साठ संवत्सरोंमें से सत्तावनवां संवत्सर।

रुनझुन (हि० स्त्री०) नूपुर। मंजीर।

रुनो हि० पु०) घोड़ेकी एक जाति।

रुनुकझुनुक (हि० स्त्री०) नूपुर आदिका रुनकुनक शब्द।

रुनुकझुनुक (हि० पु०) नूपुर या किंकिणी आदिका शब्द।

रुनुक (हि० पु०) शिकम और हिमालयमें होनेवाला एक प्रकारका बेत जो भाड़के रूपमें होता है।

रुपना (हि० क्रि०) १ रोपा जाना, जमानमें गाड़ा या लगाया जाना। २ डटना, अड़ना।

रुपया (हि० पु०) १ भारतमें प्रचलित चांदीका सबसे बड़ा सिक्का जो सोलह आनेका होता है। यह तौलमें एक मासेका होता है। २ धन, सम्पत्ति।

रुपहला (हि० वि०) चांदीके रंगका, चांदीका सा।

रुपहला रंग (हि० पु०) भड़भाड़के कांटोंसे बननेका रंग।

रुपिका (सं० स्त्री०) अर्क, मदार।

रुबाई (अ० स्त्री०) १ उर्दू या फारसीकी एक प्रकार की कविता जिसमें चार मिसरे होते हैं। २ एक प्रकार रंगीन या चलता गाना।

रुबाई पसन्द (अ० पु०) एक तालका राग जिसके साथ कौवालीका ठेका बजाया जाता है।

रुमेरि (सं० स्त्री०) १ कृष्णखदिर, कुरेसा। २ धूम, धूआं।

रुम (सं० पु०) ऋग्वेदके अनुसार एक व्यक्ति। (ऋक् ८।४।२)

रुमण्व (सं० पु०) रामायणके अनुसार वानर जो सौ करोड़ वानरोंका यूथपति था।

रुमा (सं० स्त्री०) १ वाल्मीकिके अनुसार सुग्रीवकी पत्नीका नाम। २ विशिष्ट लवणाकर, नमककी खान।

रुमामय (सं० त्रि०) रुमा नामक नमककी खानसे उत्पन्न।

रुमाल (फा० पु०) रूमाल देखो।

रुमाली (फा० स्त्री०) १ एक प्रकारका लंगोट। इसमें कपड़ेके एक छोटे तिकोने टुकड़ेके दोनों ओर दो लम्बे बंद और तीसरे कोने पर जो नीचेकी ओर होता है एक लम्बी पतली पट्टी टंकी होती है। दोनों बंद कमरसे लपेट कर बांध लिये जाते हैं और नीचेकी पट्टीसे आगेकी ओर इन्द्रिय ढक कर उसे फिर पीछेकी ओर उलट कर खोंस लेते हैं। प्रायः कुश्तीबाज लोग कसरत करने या कुश्ती लड़नेके समय इसे पहनते हैं। २ मुगदर हिलानेका एक हाथ या प्रकार। इसमें हाथ सिरके ऊपरसे मुगदरका साथ हुए और फेर पीठके ऊपरके आधे ही भाग तक होता है। इसमें अधिक बलकी आवश्यकता होती है।

रुमण्वत् (सं० पु०) १ महाभारतके अनुसार एक ऋषिका नाम। २ सुमतीकके पुत्रका नाम। (कथासरित्सा० ११।४) ३ पुराणानुसार एक पर्वतका नाम। (पद्म ८।२।१२)

रुमण्वान् (सं० पु०) रुमण्वत देखो।

रुरु (सं० पु०) रुम् (धाञ्जिभ्यो रुमन्तधात्वाः। उण् २।१४) इति रुक् उपधायाश्च उत्वं। मदन।

रुय्यक—श्रीकण्ठचरितके प्रणेता मङ्खके गुरु और राजानक तिलकके पुत्र। ये ११४५ ई०के पहले जीवित थे। इनके बनाये अलङ्कारसर्वस्व आदि ग्रन्थ सोमपालविलासकी अलङ्कारानुसारिणी नामकी टीका, काव्यप्रकाशसङ्केत, श्रीकण्ठस्तव, सहृदयलीला साहित्यमीमांसा और हर्ष चरितवार्त्तिक मिलते हैं। इनका दूसरा नाम था राजा नक रुचक।

रुरु (सं० पु०) रौतीति रु (रुशातिभ्यां क्रुन्। उण् ४।१०३) इति क्रुन्। १ काला हिरन, कस्तूरी मृग। इसके मांसका गुण स्निग्ध, गुरु, मन्दाग्निकारक और बलप्रद माना गया है।

(राजनि०) २ दैत्यभेद। भगवती दुर्गाने इस दैत्यको मारा था।(कथासरित्सा० ५३।१७१) ३ पुराणानुसार एक प्रकारका बहुत ही क्रूर जन्तु। यह सांपसे भी अत्यन्त क्रूर होता है। इसे भारश्रृङ्ग भी कहते हैं। ऐसा प्रसिद्ध है, कि इस लोकमें जो लोग हिंसा करते हैं उन्हें हिंसित प्राणी रुरु हो कर रौरव नरकमें काटते हैं। (देवीभाग० ८।२२।१०-११ और भागवत ५।२६।११)

४ स्वनामख्यात मुनिविशेष। यह च्यवनके पौत्र और प्रमतिके पुत्र थे। कहते हैं, कि जब इनकी स्त्री प्रमद्वराका देहान्त हुआ, तब इन्होंने उसे अपनी आधी आयु दे कर जिलाया था। विस्तृत विवरण देवीभागवतके २।८ तथा महाभारतके १।५ अध्यायमें लिखा है।

५ ऋषि प्रमतिके औरससे घृताची नाम्नी अप्सराके गर्भजात पुत्रभेद। (भारत आदिपर्व) ६ विश्वदेवाके अन्तर्गत देवताओंका एक गण। ७ सावर्णि मनुके सप्तर्षियोंमेंसे एकका नाम। ८ एक भैरवका नाम। ९ एक फलदार वृक्षका नाम।

रुरुआ (हिं० पु०) बड़ी जातिका उल्लू। इसकी बोली बड़ी भयावनी होती है। कहते हैं, कि यह कभी कभी किसीका नाम सुन कर रटने लगता है और वह आदमी मर जाता है। इसका बोलना लोग बहुत अशुभ मानते हैं।

रुरुक (सं० पु०) सूर्यवंशीय एक राजाका नाम।

रुरुक—एक राजकुमारका नाम। इनके पिताका नाम विजय था। ये राजा सगरके वंशज थे।

रुरुक्षणि (सं० त्रि०) जिसकी ध्वंस करनेकी इच्छा हो।

रुरुक्षु (सं० त्रि०) चिकनाका उलटा, रूखा।

रुरुत्सु (सं० त्रि०) १ बन्धनेच्छु, जिसकी इच्छा केश आदि बांधनेकी हो। २ बाधादानेच्छु, जो विघ्न बाधा डालनेकी इच्छा करता हो।

रुरुदिषु (सं० त्रि०) रोदितुमिच्छुः, रुद सन्, नअन्तात् उ। रोनेमें इच्छुक।

रुरुभैरव (सं० पु०) तान्त्रिकोंके अनुसार एक प्रकारके भैरव। इनका पूजन दुर्गाके पूजनके समय किया जाता है।

रुरुमुण्ड (सं० पु०) एक पर्वतका नाम इसे उरुमुण्ड भी कहते हैं।

रुरुशीर्षन् (सं० त्रि०) मृगशीर्णयुक्त, मृगके जैसा शिरवाला।

रुलाई (हिं० स्त्री) रोनेकी क्रिया या भाव। २ रोनेकी प्रवृत्ति।

रुलाना (हिं० क्रि०) १ दूसरेको रोनेमें प्रवृत्त करना। २ इधर उधर फिराना, नष्ट करना, मिट्टी खराब करना।

रुल्ला (हिं० स्त्री०) वह भूमि जिसकी उपजाऊ शक्ति कम हो गई हो और जिसे परती छोड़नेकी आवश्यकता हो।

रुल्ली (हिं० स्त्री०) रोहिणीकी तरहकी एक प्रकारकी वनस्पति जो उससे कुछ छोटी होती है।

रुवण्यु (सं० त्रि०) रवणीय, शब्द करनेके योग्य।

रुवथ (सं० पु०) रौति रु (रुविदिभ्यां ङित्। उण् ३।११६) इति अथ, सच ङित्। कुक्कुर, कुत्ता।

रुवाई (हिं० स्त्री०) रुलाई देखो।

रुवु (सं० पु०) रु कु। १ एरण्डवृक्षभेद, एक प्रकारकी रेंडीका पेड़। २ रक्तएरण्ड, लाल रेंडी।

रुवुक (सं० पु०) रुवुदेव स्वार्थे कन्। १ एरण्डवृक्ष, रेंडीका पेड़। २ रक्तएरण्ड, लाल रेंड़ी।

रुशङ्गु (सं० पु०) एक प्राचीन ऋषिका नाम जो नृषङ्गु और रुषङ्गु भी कहे जाते हैं।

रुशद्पशु (सं० त्रि०) १ दीप्त पशुयुक्त। २ प्रकाशित हवि। ३ प्रकाशित किरण।

रुशदूर्मि (सं० त्रि०) दीप्त ज्वाल, जलती हुई अग्निशिखा।

रुशद्गु (सं० त्रि०) १ रोचमान रश्मि, सुन्दर किरण। (पु०) २ रुशङ्गु देखो।

रुशद्रथ—पुराणानुसार एक राजा तथा तितिक्षुके पुत्र। इनका दूसरा नाम रुषद्रथ भी था। (भागवत ९।२३।३)

रुशद्वत्सा (सं० स्त्री०) दीप्तसूर्य जिसके वत्स या पुत्र हुये हैं।

रुशत् (सं० त्रि०) रुश-शतृ। दीप्यमान, चमकीला।

रुशना (सं० स्त्री०) भागवतके अनुसार रुद्रकी एक पत्नीका नाम। (भागवत ३।१२।१३)

रुशम (सं० पु०) १ ऋग्वेदोक्त एक जनपदका नाम। २ उस देशका आदमी।

रुशमा (सं० स्त्री०) वेदके अनुसार एक व्यक्तिका नाम। इन्होंने 'हम दोनोंमेंसे कौन शीघ्र पृथ्वीका परिभ्रमण

कर सकता है" यह कह कर इन्होंने विरोध किया था तथा कौशलपूर्वक पुण्यक्षेत्र कुरुक्षेत्रके चारों ओर भ्रमण करके इस जयलाभ किया था। (अश्वमेध० १४।१३।१३)

रुष्योड़ (स० पु०) भागवतके अनुसार राजपुत्रभेद। (भाग० ९।२३।१०)

रुष (स० पु०) रुष्यति रुष क्विप्। क्रोध, गुस्सा।

रुषङ्गु (स० पु०) महाभारत वर्णित एक ब्राह्मण। (भारत १ पर्व)

रुषद्गु (स० पु०) पदुका शाप राजभेद। (विष्णुपुराण)

रुषद्रथ—तितिक्षुके पुत्र और हेमचन्द्रका पितामह।

रुषा (स० स्त्री०) रुष् क्विप् भागुरिमते टाप्। अमर्ष, गुस्सा। पर्याय—क्रोध, मन्यु, क्रुधा, कोप, प्रतिघ, रुट्, क्रुध्।

रुषित (स० त्रि०) रुष्यति स्मेति रुष क्त (रुष्यमत्वर संघुषास्वनाम्। पा ७।२।२८) इति पक्षे इट्। १ क्रुद्ध, नाराज। २ गुण्डी, रंजीदा।

रुष्कर (स० स्त्री०) १ भिलावाँ। २ कस्तूरी पुरी, मेवरी।

रुष्ट (स० त्रि०) रुष क्त। रोषयुक्त, कुपित।

रुष्टता (स० स्त्री०) रुष्ट होनेका भाव, नाराजगी।

रुष्टपुष्ट (स० त्रि०) हृष्टपुष्ट देखो।

रुष्टि (स० स्त्री०) रुष क्तिन्। क्रोध गुस्सा।

रुष्य (स० त्रि०) रोषयुक्त, कुपित।

रुसवा (फा० वि०) जिसकी बहुत बदनामी हो, निन्दित, बदनाम।

रुसवाई (फा० स्त्री०) रुसवा होनेका भाव, अपमान और दुर्गति।

रुसा (हिं० स्त्री०) १ रूसा घास। (पु०) २ अडूसा देखो।

रुसूम (अ० पु०) रस्म देखो।

रुस्तम (अ० पु०) १ फारसका एक प्रसिद्ध योद्धा। इतिहासमें यह रुस्तम दास्तान तथा जाबुलोके अधिवासी हो कर वहाँके शासनकर्त्ता हुए थे। इसलिये ये रुस्तम जाबुल कहलाते थे। ये महामानके जालके पौत्र और जालके पुत्र थे। ऐसा अद्वितीय वीर और प्रसिद्ध रण कुशल पुरुष फारसमें और न हुआ। इन्होंने अनेक राजा बादशाहके विरुद्ध लड़ाई कर इन्होंने प्राय विक्रम किये। इनका समय ईसासे लगभग नौ सौ वर्ष पहले माना जाता है। २ वह जो बहुत बड़ा वीर हो।

रुस्तम अली (मौलाना) अफ्‌गोर-सघोर नामक कुरान की टीकाके प्रणेता। ये लखनऊके रहनेवाले अली असगरके पुत्र थे। १८६४ ई०में ये परलोकवासी हुए।

रुस्तमशाह बोखिरानी (ख्वाजा)—एक विख्यात फारसी कवि। ये खुरासानपति सुलतान मीरज़ाकी राजसभामें १४०८ ई०में मौजूद थे।

रुस्तम जमान खाँ—गुजरातके एक सभापति। इनका असल नाम था दलीपर खाँ। ये शेख अबदुल गुमानके पुत्र थे। पहले यह गुजरातके शासनकर्त्ता नवाब मुबारिज़-उल्मुल्क सरबलन्द खाँके अधीन काम करते थे। सम्राट् फर्रुखसियरने इन्हें छःहजारी मनसबदार बना कर रुस्तम जमानकी उपाधि दी थी। सम्राट् महम्मद शाहने नवाब सरबलन्द खाँको राज्यच्युत करके राजा अजित सिंह मारवाड़ीको गुजरातका शासनकर्त्ता नियुक्त किया इसलिये दोनों दलमें घोर युद्ध हुआ। १७३० ई०में विजयादशमीके दिन रणभूमिमें दलीपर खाँने अपनी जीवनलीला संवरण की।

रुह (स० त्रि०) रोहतीति रुह (इगुपधेति। पा ३।१।१३५) इति क। १ जात, उत्पन्न। २ आरूढ़, चढ़ा हुआ।

रुहक (स० क्लो०) छिद्र, सूराख।

रुहा (स० स्त्री०) रोहति छिन्नानि पुनरुत्पद्यते इति रुह क टाप्। १ दूर्वा तृण। २ अतिबला, ककही। ३ मांसरोहिणी नामकी लता। ४ लज्जारम्भा, लजालू।

रुहिरुहिका (स० स्त्री०) रुह क्विप्, रुहिस्ततः रुहि रुहिका पुनः पुनरुद्गमेन आपतति कै क टाप्। उत्कण्ठा।

रुह्मपत्तन—रोहितपत्तन देखो।

रुहेला (हिं० पु०) पठानोंकी एक जाति जो प्रायः रुहेलखण्डमें बसी हुई है।

रुहन (स० पु०) रोहतीति रुह (आर्त्तिसृधृ उण् ४।११३) क्सिप्। वृक्ष, पेड़।

रूँख (हिं० पु०) रूख देखो।

रूँखड़ (हिं० पु०) १ एक प्रकारके भिक्षुक। ये हथियार धारण कर 'अलख' कह कर भीख माँगते

हैं और कमरमें एक बड़ा-सा घुंघरू बांधे रहते हैं। इनका एक और भेद होता है जो गूदड़ कहलाता है। ये कहीं अड़ कर भिक्षा नहीं मांगते, केवल तीन बार 'अलख' कह कर ही आगे बढ़ जाते हैं २ रुख देखो।

रूंगटा (हिं० पु०) रोंगटा देखो।

रूंदना (हिं० क्रि०) रौंदना देखो।

रूंध (हिं० वि०) रुका हुआ, अवरुद्ध।

रूंधना (हिं० पु०) १ किसी स्थान या वस्तुको बाहर-वालोंके आक्रमणसे बचानेके लिये उसके चारों ओर कंटीले झाड़ आदि लगाना, कंटीले झाड़ आदिसे घेरना। २ किसी पदार्थको चारों ओरसे इस प्रकार घेरना कि वह बाहर न जा सके, रोकना। ३ गमनागमनका मार्ग बंद करना।

रू (फा० पु०) १ मूंह, चेहरा। २ द्वार, कारण। ३ ऊपरी भाग, सिरा। ४ आगा, सामना। ५ आशा, उम्मेद।

रूई (हिं० स्त्री०) १ कपासके डोंडे या कोशके अन्दरका घूआ। जब यह डोंडा पक कर चिटक जाता है तब यह ऊनके लच्छेकी तरह बाहर निकलता है। इसके रेशे कोमल और घुंघराले होते हैं जो बीजके ऊपर चारों ओर लगे होते हैं और जिनके अंदर बीज लिपटे रहते हैं। रूई बहुत प्रकारकी होती है, कोई मोटी और कोई बारीक। बहुत-सी ऐसी रूइयां हैं जो जो रेशमकी तरह कोमल और चिकनी होती हैं। जब रूई ढेंढ़ या डोंडेसे फूट कर बाहर निकलती है तब इकट्ठी की जाती है। पीछे सूख जाने पर लोग इसे ओटनीमें ओट कर बीजोंसे अलग करते हैं। ओटी हुई रूई धुनी जाती है जिससे उसमें जो बचे खुचे बीज रहते हैं वे अलग हो जाते हैं और उसके रेशे फूट कर खुल जाते हैं। इस रूईसे पेंडरी या पूनी बनाई जाती है जिससे सूत काता जाता है। धुनी हुई रूई गद्दे आदिमें भरी जाती है और उससे सूत कात कर कपड़े बुनते हैं। यह रासायनिक रीतिसे बारूद बनानेके काममें भी आती है। रूईको शोरेके तेजाब में गलाते हैं जिससे यह अत्यन्त विस्फोरक हो जाता है। इसे 'गनकाटन' कहते हैं और उत्तम बारूदमें इसका प्रयोग होता है। इस 'गनकाटन' को ईथर या ईथर मिले हुए अलकोहलमें मिलानेसे एक प्रकारका लेस बनता है। इस लेसको 'कलोडीन' कहते हैं। अगर यह घाव पर तुरंत लगाया जाय तो झिल्लीकी तरह सूख कर जोड़ देता है। कलोडीनमें थोड़ी-सी मात्रा ब्रोमाइड और आयोडाइडको मिला कर शीशे पर लगा कर फोटोके लिये गीला 'प्लेट' बनाया जाता है। हिन्दुस्तानमें रूई-के कपड़ेका प्रचार वैदिक कालसे चला आता है। ब्राह्मण और गृह्यसूत्रोंमें तो इसके यज्ञोपवीत और वस्त्र-का विधान वर्णभेदसे स्पष्ट देखा जाता है, किन्तु यूरोपमें इसके कपड़ेका प्रचार कुछ ही शताब्दियोंसे हुआ है। सूतेके लिये उत्तम रूई वही समझी जाती है जिसके रेशे लंबे और दृढ़ होने पर पतले और चमकीले होते हैं। २ इसी प्रकारका कोई रोआं विशेषतः बीजोंके ऊपरका रोआं।

रूईदार (हिं० वि०) जिसमें रूई भरी गई हो।

रूक (हिं० स्त्री०) १ तलवार। (पु०) २ झूंगा, घलुआ। ३ एक प्रकारका पेड़ जिसकी पत्तियां औषधिके रूपमें काम आती हैं और पचपानड़ीके साथ मिल कर बिकती हैं।

रूक्ष (सं० त्रि०) रूक्षयतीति रूक्ष पारुष्ये पचाद्यच्। १ अप्रेम, जिसमें प्रेम न हो। २ अचिक्कण, जो चिकना या कोमल न हो। (पु०) ३ वृक्ष, पेड़। ४ वरक-तृण, एक प्रकारकी घास।

रूक्षगन्धक (सं० पु०) रूक्षो गन्धो यस्य कन्। गुग्गुलु, गुग्गुल।

रूक्षण (सं० त्रि०) शुष्ककरण, सुखा करना।

रूक्षणात्मिका (सं० स्त्री०) १ कृष्णचणक वृक्ष, काले चनेका पौधा। २ लड्डा नामक शिम्बीधान्य।

रूक्षता (सं० स्त्री०) रूक्षस्य भावः तल्-टाप्। रूक्षत्व, रूखापन।

रूक्षदर्भ (सं० पु०) रूक्षः कर्कशो दर्भः। हरिदर्भ, सब्जा घोड़ा।

रूक्षपत्र (सं० पु०) रूक्षाणि पत्राणि यस्य। शाखोटवृक्ष, सिहोरका पेड़।

रूक्षपेषम (सं० अव्य०) रूक्षं पिनष्टि पिष्-णमुल्। निर्द-यतासे पीसना।

रूक्षप्रिय (सं० पु०) रूक्षस्य प्रियः। ऋषभौषध।

रूक्षस्वादुफल (सं० पु०) रूक्ष स्वादु च फलं यस्य। धम्वन वृक्ष, धामिनका पेड़।

रूक्षा (सं० स्त्री०) रूक्षयतीति रूक्ष अच् टाप्। दन्तिवृक्ष, मजीठी नामका एक पेड़।

रूक्षिका (सं० स्त्री०) रूक्ष, कर्कश, रूखा।

रूख (हि० पु०) १ वृक्ष, पेड़। २ रूखा देखो।

रूखड़ा (हि० पु०) १ रूखड़ा देखो। २ रूखड़ देखो।

रूखा (हि० पु०) १ जो चिकना न हो, अस्निग्ध। २ जिसमें घी तेल आदि चिकने पदार्थ न पड़े हों। ३ जिसमें रस न हो, सूखा। ४ जो स्वादिष्ट न हो, जो खानेमें रुचिकर और स्वादिष्ट न हो। ५ जिसका तल सम न हो, खुरखुरा। ६ स्नेहरहित, जिसमें प्रेम न हो। ७ उदासीन, विरक्त। ८ परुष, कठोर। (पु०) ९ एक प्रकारकी छेनी।

रूखापन (हि० पु०) १ रूखे होनेका भाव, रुखाई। २ कठोरता। ३ उदासीनता। ४ शुष्कता, नीरसता। ५ स्वाद हीनता।

रूज (अं० पु०) एक प्रकारकी बुकनी जिसे मल कर सोना चांदी आदि धातुओंकी चीजों पर जिला किया जाता है। यह तूतिये या हीराकसीससे बनाया जाता है। पहले तूतिये या कसीसको आग पर तपाते हैं और जब वह जल जाता है तब उसे बारीक पीस डालते हैं। कभी कभी तूतियेको पानीमें पका कर और निथार तथा धो कर फूंकनेसे भी रूज बनता है। यह औषधियोंके काम आता है। इसमें खड़िया भी मिलाई जाती है। खड़िया और पारा मिलाकर रूजसे बरतन पर जिला या कलई की जाती है।

रूठन (हि० स्त्री०) रूठनेकी क्रिया या भाव, नाराजगी।

रूठना (हि० क्रि०) किसीसे अप्रसन्न हो कर कुछ समय के लिये सम्बन्ध छोड़ना, नाराज होना।

रूठनि (हि० स्त्री०) रूठन देखो।

रूड (अं० पु०) लम्बाई या विस्तार नापनेका एक मान जो ५ गजका होता है।

रूड़ (हि० वि०) श्रेष्ठ, उत्तम।

रूड़ो (हि० वि०) रूड़ देखो।

रूढ़ (सं० त्रि०) रुह क्त। १ जात, उत्पन्न। २ प्रसिद्ध, प्रचलित। ३ आरूढ़, चढ़ा हुआ। ४ गंवार, उजड्ड। ५ कठोर, कठिन। ६ अविभाज्य, अकेला।

(पु०) ७ प्रसिद्ध शब्द, प्रकृति और प्रत्ययकी अपेक्षा न करके शक्तिबोधजनक शब्द। जो शब्द प्रकृति और प्रत्ययकी किसी प्रकार अपेक्षा न करके अर्थका बोध कराते हैं उसे रूढ़ शब्द कहते हैं। शब्द तीन प्रकारका है, यौगिक, योगरूढ़ और रूढ़। इनमेंसे सङ्केतयुक्त जो नाम है उसे रूढ़ कहते हैं। इसका दूसरा नाम संज्ञा भी है। इस रूढ़ शब्दके फिर तीन भेद हैं—नैमित्तिक, पारिभाषिक और औपाधिक। (शब्दशक्तिप्र०)

किसी किसी पण्डितके मतसे जाति, द्रव्य, गुण और क्रिया इन चार प्रकारके धर्म द्वारा यह रूढ़ शब्द फिर चार प्रकारका है। गो गवयादि शब्द गोत्व गवयत्व जाति द्वारा सङ्केतित होता है इसी कारण यह रूढ़ हुआ है। अतएव यह 'जात्या रूढ़ः' जाति द्वारा रूढ़ है। पशु और आकाशादि शब्द, लांगूल और घनादि द्रव्य द्वारा सङ्केतित होनेके कारण 'द्रव्येण रूढ़ः' यह शब्द द्रव्य द्वारा रूढ़ हुआ है। धन्य और पिशुनादि शब्द पुण्य और द्वेषादि गुण द्वारा सङ्केतित होनेसे 'गुणेन रूढ़' गुण द्वारा रूढ़ हुआ है। चल और चपलादि शब्द क्रिया द्वारा सङ्केतित होनेके कारण यह रूढ़ हुआ है। यही चार प्रकारका रूढ़ शब्द है।

पारिभाषिक, नैमित्तिक और औपाधिकका लक्षण इस प्रकार है—

"जात्यवच्छिन्नसङ्केतवती नैमित्तिकी यथा।
जातिमात्रे हि सङ्केतः फलभाव्ये गुरुत्वतः॥
अन्यान्यजात्यवच्छिन्नसङ्केतवत् वा।
नैमित्तिकी च सा यथा गोत्वादिः॥" (शब्दशक्तिप्र०)

जो नाम जात्यवच्छिन्न संकेतयुक्त है अर्थात् 'गो' यह शब्द उच्चारण करनेसे गोत्व जातित्व इसी शब्दमें पूर्वापर संकलित हुआ है, अतएव गोत्व जात्यवच्छिन्न गो शब्दको ही प्रतिपन्न करता है तथा शब्दबोधमें भी कोई हानि नहीं होती, इसीलिये इसको नैमित्तिक संज्ञा हुई है।

जो संज्ञा उभयावृत्ति धर्मावच्छिन्न संकेतयुक्त है

उसे नैमित्तिक कहते हैं। जैसे—आकाश और डित्यादि फिर जो शब्द अनुगत उपध्यवच्छिन्न संकेतयुक्त है उसका नाम औपाधिकरूढ़ है। जैसे—भूत दूत आदि शब्द। योगरूढ़ शब्द देखो।

रुड़की (रूरकी)—युक्तप्रदेशके शाहरानपुर जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २९° ३८´ से ३०° ८´ उ० तथा देशा० ७७°४३´ से ७८° १२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ७६६ वर्गमील है। इसके उत्तरमें शिवालिक, पूरबमें गङ्गा और दक्षिणमें मुजफ्फरनगर जिला है। यह तहसील रूरकी, ज्वालापुर, मङ्गलौर और भगवानपुर परगने ले कर बनी है। जनसंख्या तीन लाखके करीब है। इसमें ४२९ ग्राम और ६ शहर लगते हैं।

२ उक्त तहसीलका एक समृद्धिशाली नगर। यह अक्षा० २९° ५१´ उ० तथा देशा० ७७° ५३´ पू०के मध्य विस्तृत है। जनसंख्या बीस हजारके करीब है। म्युनिसपलिटी होनेके कारण नगर परिष्कार परिच्छन्न और वाणिज्य समृद्धिसे परिपूर्ण है।

गङ्गाकी नहर काटी जानेसे पहले यह नगर एक छोटा सा गांव था। १८४५ ४६ ई०में पर्वतको काट कर जब गङ्गाकी नहर लाई गई तब यहां नहर काटनेका कारखाना और लोहेका कारखाना तथा पीछे १८४७ ई०में देशी छात्रोंको स्थापत्यविद्या और इञ्जिनियरिङ्ग शिक्षा देनेके लिये The Thomson Civil Engineering College स्थापित हुआ था। इस श्रेणीका ऐसा बड़ा विद्यालय भारतवर्षमें और कहीं भी नहीं है। १८५३ ई०में यहां पहले पहल सेनादलकी एक छावनी डाली गई। पीछे १८६० ई०में एक गोराबाजार स्थापित हुआ था। इसके सिवा जलवायुका परिमाण-निर्देशक यहां एक सुन्दर Meteorological observatory है।

रूढ़प्रणय (सं० त्रि०) रूढ़ः प्रणयः। प्रगाढ़ प्रणय, अतिशय प्रेम।

रूढ़यौवन (सं० स्त्री०) आरूढ़यौवना देखो।

रूढ़वंश (सं० त्रि०) रूढ़ः वंशः। प्रसिद्ध वंश, मशहूर कुल।

रूढ़ा (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी लक्षणा, वह लक्षणा जो प्रचलित चली आती हो और जिसका व्यवहार प्रसिद्धसे भिन्न अभिप्राय व्यंजनाके लिये न हो।

रूढ़ि (सं० स्त्री०) रुह क्तिन्। १ जन्म, उत्पत्ति। २ प्रादुर्भाव। ३ प्रसिद्धि, ख्याति। ४ चढ़ाई, चढ़ाव। ५ वृद्धि, बढ़ती। ६ उभार, उठान। ७ प्रथा, चाल। ८ विचार, निश्चय। ९ रूढ़ शब्दकी शक्ति जिससे वह यौगिक न होने पर भी अपने अर्थका बोध कराता है।

रूदाद (फा० स्त्री०) १ समाचार, वृत्तान्त। २ विवरण, कैफियत। ३ दशा, अवस्था। ४ व्यवस्था। ५ मुकदमेका रंग ढंग। ६ अदालतकी काररवाई।

रूप (सं० क्ली०) रूप्यते कीर्त्यते रीतोति वा रु (खष्प शिल्पशष्पेति। उण् ३।२८) इति दीर्घश्च, रूपयतीति रूप-अच् वा। १ स्वभाव, प्रकृति। २ सौन्दर्य, सुन्दरता। ३ दशा, अवस्था। ४ वेष, भेस। ५ शरीर, देह। ६ तुल्य, समान, सदृश। ७ शब्द या वर्णका स्वरूप या उसका वह रूपान्तर जो उसमें विभक्ति, प्रत्यय इत्यादि विकारोंके लगनेसे बन जाता है। ८ भेद, विकार। ९ चिह्न, लक्षण। १० नाटक। १२ चांदी, रूपा। १३ किसी पदार्थका वह गुण जिसका बोध द्रष्टाको चक्षुरिन्द्रिय द्वारा होता है, पदार्थके वर्णों और आकृतिका योग जिसका ज्ञान आंखोंको होता है।

पदार्थोंमें एक शक्ति रहती है, जिससे उनका तेज इस प्रकार विकृत होता है कि जब वह आंखों पर लगता है, तब देखनेवालोंको उस पदार्थकी आकृति, वर्णादिका ज्ञान होता है। इस शक्तिको भी रूप ही कहते हैं। दर्शनशास्त्रोंमें रूपको चक्षुरिन्द्रियका विषय माना है। सांख्यने इसे पंचतन्मात्राओंमें एक माना है। बौद्ध दर्शनमें इसे पांच स्कन्धोंमें पहला स्कन्ध कहा है। महाभारतमें सोलह प्रकारके रूप माने गये हैं जैसे—ह्रस्व, दीर्घ, स्थूल, चतुरस्र, वृत्त, शुक्ल, कृष्ण, नीलारुण, रक्त, पीत, कठिन, चिक्कण, श्लक्ष्ण, पिच्छिल, मृदु और दारुण। (महाभारत मोक्षधर्म प०)

रूपका लक्षण—

"अङ्गान्यभूषितान्येव केनचिद्भूषणादिना।
येन भूषितवद्भाति तद्रूपमिति कथ्यते॥"

(उज्ज्वलनीलमणि)

अभूषित अङ्ग किसी भूषणादि द्वारा भूषित हो जब

शोभायमान होता है उस उसे रूप कहते हैं।

रूप शुक्लादि भेदसे अनेक प्रकारका है। नित्य और अनित्यके भेदसे इसके दो भेद हैं। जलादि परमाणुरूप नित्य है और सभी अनित्य हैं।

शास्त्रमें अत्यन्त रूपकी निन्दा की गई है। जो अत्यन्त रूपवान् हैं वे प्रायः दुःखी होते हैं। देवीपुराणमें लिखा है, कि एक दिन उमाने महेश्वरसे पूछा 'अत्यन्त रूप सम्पन्न नारी नाना गुणोंसे विभूषित हो कर भी क्यों वे दुःखित और वात्सल्यप्रियविवर्जित होती हैं?' इस पर महादेवने उत्तर दिया था, 'अत्यन्त रूप ही दुःखका कारण है। इसीलिये समझदार व्यक्ति रूपकी इच्छा नहीं करते। पुरुष या स्त्री चाहे जो हो, अति रूप द्वारा अल्पायु वा दुःखित होता है। दमयन्ती और सीता बहुत रूपवती थी, इस कारण उन्हें बहुत कष्ट उठाना पड़ा था। इसी रूपके लिये अहल्या अम्बा और तिलोत्तमा दुःखी हुई थी। अतएव अतिरूप ही दुःखका कारण है।

(देवीपु० कन्याकुब्जमहात्म्य)

रूप शब्दका वैदिक पर्याय—निर्णिक, वव्रि वर्ण, वपुः, अमति, अप्सस्, प्सु, अर्जुन, पिश, पेश, कृशन, स्मर, अर्जुन, ताम्र, अरुष, शिल्प। (वेदनि० ३ अ०)

(त्रि०) १४ रूपवत्, खूबसूरत।

रूप—निमर्दे वा कोलपर्युकाके एक राजा।

रूप—एक नदीका नाम। यह शक्तिमत पर्वतसे निकली है।

रूपक (सं० क्ली०) रूपयतीति रूपि ण्वुल्। १ वह काव्य जो पात्रों द्वारा देखा जाता है या जिसका अभिनय किया जाता है, दृश्य काव्य। रूपक नाटकादि भेदसे दश प्रकारका है। इसके सिवा उपरूपकके १८ भेद हैं। कुल मिला कर रूपक २८ प्रकारका है।

नाटक, प्रकरण, भाण, व्यायोग, समवकार, डिम, ईहामृग, अङ्क, वीथी और प्रहसन यही दश प्रकारके रूपक हैं तथा नाटिका, त्रोटक, गोष्ठी, सट्टक, नाट्यरासक, प्रस्थान, उल्लाप्यक, काव्य, प्रेङ्खण, रासक, संलापक, श्रीगदित, शिल्पक, विलासिका, दुर्मल्लिका, प्रकरणी, हल्लीश और भाणी ये अठारह प्रकारके उपरूपक हैं। विशेष विवरण नाटक शब्दमें देखो। २ मूर्त्ति, प्रतिकृति।

३ काव्यालङ्कारभेद, रूपक अलङ्कार। निरपह्नव विषयमें जहां रूपितका आरोप होता है वहां यह अलङ्कार हुआ करता है। प्रकृत विषय छिपानेका नाम निरपह्नव है। जहां प्रकृत विषयको न छिपा कर उपमेयमें उपमानका आरोप होता है वहीं पर यह अलंकार होता है। अर्थात् प्रतिषेधका अभाव हो कर जहां उपमानमें उपमेयका आरोप होता है वहीं यह अलङ्कार होगा।

यह रूपक अलङ्कार तीन प्रकारका है, परम्परित, साङ्ग और निरङ्ग।

जहां किसी वस्तुका आरोप दूसरी वस्तुके आरोपका कारण होता है वहां परम्परित रूपक होता है। यह परम्परित रूपक श्लिष्ट और अश्लिष्ट निबन्धन चार प्रकारका है। (साहित्यद० १०।६०२)

परम्परित रूपक केवल अश्लिष्ट तथा श्लेष द्वारा माला रूप और अश्लेष द्वारा मालारूप यह चार प्रकारका है।

जहां केवल श्लिष्ट पद द्वारा यह रूपक होता है वहां केवल श्लिष्ट, अश्लिष्ट पद द्वारा होनेसे केवल अश्लिष्ट तथा श्लेष द्वारा मालारूपमें वर्णित होनेसे श्लिष्ट माला रूपक तथा श्लिष्ट नहीं होनेसे अश्लिष्ट मालारूपक होगा।

उदाहरण—हे श्रीनृसिंह महीपाल! तुम्हारे समस्त जगत्में व्याप्त राजमण्डलमें (चन्द्रमण्डलमें) राहुरूप बाहुका अर्थात् तुम्हारा मङ्गल होवे।

यहां श्लेषमें राजाओंके बीच चन्द्रबिम्बका आरोप है तथा राजबाहु राहुरूपमें आरोपका कारण होनेसे यह अलङ्कार हुआ। श्लेष द्वारा आरोप होनेसे श्लिष्ट परम्परित रूपक हुआ। यह रूप जहां श्लेष द्वारा न होगा वहां अश्लिष्ट परम्परित रूपक होगा।

मालारूपकका उदाहरण—

"मनोजराजस्य सितातपत्रं श्रीखण्डचित्रं हरिदङ्गनायाः।
विराजति व्योमसरःसरोजं कर्पूरपूरप्रभमिन्दुबिम्बम्॥"

(साहित्यद० १० परि०)

कर्पूरपुञ्जसदृश चन्द्रमण्डल विराजित है। यह चन्द्रमण्डल कामनरपतिका सितातपत्र है, दिगङ्गनाका चन्दन तिलक है या आकाशगङ्गाका पद्म है।

यहां मालारूपमें मनोजादिके राजत्वादिमें आरोप तथा चन्द्रबिम्बके सितातपत्रत्वादिमें आरोपका निमित्त होनेसे यह अलङ्कार हुआ।

साङ्ग रूपक—अङ्गके साथ अङ्गीका यदि रूपण अर्थात् आरोप हो, तो साङ्गरूपक होता है। इसके फिर दो भेद हैं, समस्तवस्तुविषय और एकदेशविवर्त्ति। अशेष आरोप अर्थात् उपमानका यदि शाब्दत्वमें आरोप हो, तो समस्तवस्तुविषयक रूपक और जहां किसी आरोप्यमाण का अर्थरूपमें आरोप हो वहां एकदेशवर्त्ति रूपक होता है।

निरङ्ग रूपक फिर दो प्रकारका है—केवल और माला-रूपक। जहां केवल एकमात्र अङ्गका रूपण अर्थात् आरोप हो वहां निरङ्ग रूपक होगा। (साहित्यद० १०।६७६)

कहीं कहीं साङ्गरूपकमें भी आरोप्य विषय श्लिष्ट देखा जाता है।

जिस रूपकालङ्कारमें वर्णन माधुर्यमें अत्यन्त विचित्रता देखी जाती है वहां अधिकारूढ वैशिष्ट्यरूपक होता है।

उदाहरण—तुम्हारा यह मुख कलङ्करहित चन्द्र है। चन्द्रमामें कलङ्क है, किन्तु इस मुखमें कुछ भी कलङ्क नहीं है। अधर सुधाधाराका आधार तथा चिरपरिणत विम्ब है। दोनों नेत्र शोभायुक्त नीलोत्पल हैं। शरीर लावण्यका समुद्र अर्थात् अत्यन्त सुखकर है।

यहां मुखमें चन्द्रमाका, अधरमें विम्बका, नेत्रमें कुवलयका और शरीरमें लावण्यसमुद्रका आरोप हुआ है। ये सब आरोप होनेसे रूपक तथा इस रूपकमें वर्णनाकी अत्यन्त विचित्रता रहनेसे अधिकारूढ़ वैशिष्ट्यरूपक हुआ।

रूपक और परिणामालङ्कारमें जो भेद है, वह इस प्रकार है—प्रकृत विषयमें किसी एक वस्तुका आरोप होनेसे रूपक और आरोप्यमाण वस्तु आरोप विषयके अभिन्नरूपमें अर्थ प्रस्तुत कार्यका उपयोगी होनेसे परिणाम अलङ्कार होता है। किन्तु परिणाम अलङ्कारमें जो आरोप होगा, वह वर्णनीय विषयका बिलकुल उपयोगी होना चाहिये। किन्तु रूपकमें वह नहीं होगा। आरोपमात्र ही रूपकालङ्कारका विषय है तथा जहां आरोप अभिन्नरूपमें प्रकृत अर्थका उपयोगी होगा, वहां परिणाम अलङ्कार होता है। (साहित्य० १० परि०)

४ सख्याविशेष, एक परिमाणका नाम। ५ उपमान, वह वस्तु जिससे उपमा दी जाय। ६ रौप्य, चांदी। ७ मुद्रा, रुपया। ८ सङ्गीतमें सात मात्राओंका एक दोताला ताल। इसमें दो आघात और एक खाली होता है। खाली ताल पर ही सम होता है। जब यह द्रुतमें बजाया जाता है, तब इसे तेवरा कहते हैं।

रूपकताल (सं० पु०) एक प्रकारका ताल।

रूपकरण (सं० पु०) एक प्रकारका घोड़ा।

रूपकर्त्तृ (सं० पु०) रूपस्य कर्त्ता। विश्वकर्मा। (तमा० ५।२२।१३)

रूपकातिशयोक्ति (सं० स्त्री०) एक प्रकारकी अतिशयोक्ति जिसमें केवल उपमानका उल्लेख करके उपमेयोंका अर्थ समझाया जाता है।

रूपकार (सं० पु०) भास्कर, वह जो मूर्त्ति बनाता हो। (कथासरित्सा० ३७।६)

रूपकृत् (सं० त्रि०) रूपं करोति कृ क्विप् तुक् च। १ त्वष्टा, विश्वकर्मा। (पु०) २ मूर्त्तिकर, वह जो मूर्त्ति बनाता हो।

रूपकान्ता (सं० स्त्री०) सत्रह अक्षरोंकी एक वर्णवृत्तिका नाम। इसके प्रत्येक चरणमें जगण, रगण, जगण, रगण, जगण और अन्तमें एक गुरु और एक लघु मात्रा होती है।

रूपगढ़—बम्बई प्रेसिडेन्सीके बड़ोदाराज्यके नवसरी विभागान्तर्गत एक दुर्ग। यह शोणगढ़नगरसे साढ़े सात कोस दक्षिणमें अवस्थित है। यहां झरनेके जलसे परिपूर्ण एक बड़ी पुष्करिणी है। यह दुर्ग भीलोंका विद्रोहदमन करनेके लिये बड़े काममें आया था।

रूपगर्विता (सं० स्त्री०) गर्विता नायिकाका एक भेद, वह नायिका जिसे अपने रूप या सुन्दरताका अभिमान हो।

रूपगोस्वामी—सुप्रसिद्ध वैष्णव आचार्य और एक कवि। श्रीचैतन्य महाप्रभुका शिष्यत्व ग्रहण कर ये वैष्णवधर्मके माहात्म्यकीर्त्तनमें बद्धपरिकर हुए। संस्कृत भाषामें इनकी अच्छी व्युत्पत्ति थी। इनके बनाये ग्रन्थ प्रेम और माधुर्यभावसे भरे हैं। ये महाप्रभुके परमभक्त और पार्श्वचर थे।

आप कर्णाटराज सर्वज्ञके वंशधर थे। सनातन रचित लघुतोषिणीसे इनकी एक वंशतालिका सङ्कलित हुई है

जो इस प्रकार है। सर्वज्ञके पुत्र अनिरुद्धदेव, अनिरुद्धके पुत्र रूपेश्वर और हरिहर थे। रूपेश्वर राज्यच्युत हो कर पौरस्त्यराज्यके अन्तर्गत शेखरराज्यमें बस गये। उनके पुत्र पद्मनाभ नैहाटी आये। यहां पुरुषोत्तम जगन्नाथ, नारायण, मुरारि और मुकुन्द नामक उनके पांच पुत्र हुए। मुकुन्दके लड़के कुमार, बाङ्गला चन्द्रद्वीपके अन्तर्गत फतेयाबाद चले गये। उनके तीन लड़के थे, सनातन, रूप और वल्लभ।

भक्तमालिकाके मतसे,—सनातन सबसे बड़े, रूप मंझले और श्रीजीवगोस्वामीके पिता वल्लभ सबसे छोटे थे। कोई कोई रूपको सबसे बड़े तथा सनातन और अनुपमको उनके बाद बतलाते हैं।

रामकेलिग्राममें इनका निवास था। श्रीरूपगोस्वामी बचपनसे ही कृष्णभक्त थे। विविध विद्यामें पारदर्शी हो कर ये गौड़ेश्वर सुलतान अलाउद्दीन हुसेनशाह (१४९४-१५२१ ई०) के वजीर हुए। हुसेनशाह हिन्दूकर्मचारियोंकी बड़ी भक्ति और श्रद्धा करते थे। वजीर श्रीरूपने राजाका विश्वासभाजन हो कर प्रधान अमात्य और साकर-मल्लिककी उपाधि पाई। मुसलमानके यहां नौकरी करते हुए भी ये कृष्णसेवासे पराङ्मुख नहीं हुए थे। इन्होंने अपने मकानके समीप श्यामकुण्ड और राधाकुण्ड नामक दो जलाशय खुदवा कर उसके चारों ओर कदम्बकानन लगाया था। ये अपने बड़े भाईके साथ किसी निर्दिष्ट समयमें वहां जा कर श्री श्रीराधाकृष्णकी युगल मूर्त्तिकी उपासना करते थे।

प्रवाद है, कि एक दिन रातमें मूसलधारसे वर्षा होती थी। इस दुर्दिनमें दोनों भाई राजाका आदेश पालन कर राजदरबारमें आ रहे थे। इसी समय उन्हें रास्तेके बगलमें एक कुटीरसे कुछ अद्भुत वाक्य सुनाई दिये। एक भिक्षुककी स्त्री अपने स्वामीसे कह रही थी, "नाथ! सवेरा हुआ, उठिये, भिक्षाको निकलिये, आज घरमें कुछ चावल नहीं है।" पत्नीका वचन सुन कर वृद्ध भिक्षुकने कहा, अभी सवेरा नहीं हुआ है। ऐसी घोर अन्धकारमें मनुष्यका बाहर निकलना असम्भव है। शृगालादि लोलुप पशु भी इस समय अपने बिलसे बाहर नहीं निकलते। एकमात्र क्रीतदास या नौकर ही अपने मालिकके आदेशसे ऐसे समयमें आहारनिद्राका परित्याग कर घरसे बाहर निकलते हैं।'

दरिद्र भिक्षुकका वचन सुन कर श्रीरूपके वैराग्योदय हो आया। राजाका दासत्व शृगालादिसे भी नीच है, समझ कर उन्होंने नौकरी पर लात मारी। साथ साथ फिर वे वनमें जा कर उनमें आश्रय लिया। संसार और ऐश्वर्य उन्हें विषके समान मालूम होने लगा। उसी दिन सुलतानके समीप जा कर उन्होंने तीर्थयात्रा करनेके लिये अवकाश मांगी। बहुत आपत्तिके बाद राजाने उन्हें तीर्थयात्राकी अनुमति दे दी। वे भी प्रेमोल्लाससे विभोर हो बड़े आनन्दसे नृत्य करने लगे।

राजकार्यमें व्यापृत रहते समय एक दिन श्री रूपको मालूम हुआ कि श्रीगौराङ्ग महाप्रभुने नवद्वीपधाममें अवतार लिया है। अब इनके दर्शनके लिये रूप छटपटाने लगे। महाप्रभुजी इनकी वासना पूरी करनेके लिये श्रीवृन्दावन धाम जाते समय रामकेलि ग्राम देखने आये। यहां विषयविरागी रूपसनातनने प्रभुके चरणकमलका दर्शन किया। उसी समय रूप राजकार्यका परित्याग कर दीनवेशमें नीलाचल गये और प्रभुकी सेवा करने लगे। पीछे उन्हींके आदेशसे वृन्दावन जा कर उनने लुप्त तीर्थोंका उद्धार, वैष्णवधर्मका प्रचार और अमूल्य वैष्णव ग्रन्थोंका प्रणयन किया। उनके बनाये ग्रन्थ ये सब हैं,—

उज्ज्वलनीलमणि, उत्कलिकावल्लरी, उद्धवदूत, उपदेशामृत, कार्पण्यपञ्जिका, कृष्णजन्मतिथिविधि, गङ्गाष्टक, गोविन्दविरुदावली, गौराङ्गसुरकल्पतरु, चैतन्याष्टक, छन्दोऽष्टादशक, दानकेलिकौमुदी, नाटकचन्द्रिका, पद्यावली, परमार्थसन्दर्भ प्रीतिसन्दर्भ, प्रेमेन्दु-सागर, भक्तिरसामृतसिन्धु, मथुरामहिमा, मुकुन्दमुक्तावलीस्तोत्रटीका, यमुनारसामृत, ललितमाधवनाटक, विदग्धमाधव नाटक, विलापकुसुमाञ्जलि, व्रजविलास स्तव, शिक्षादशक, संक्षेपामृत या संक्षेपभागवतामृत, साधनपद्धति, स्तवमाला व स्तुतकाव्य, हरिनामामृत व्याकरण, हरेकृष्णमहामन्त्रार्थनिरूपण, लघुगणोद्देशदीपिका, वृहद्गणोद्देशदीपिका, श्रीरूपचिन्तामणि, हरिभक्तिरसामृतसिन्धुका बिन्दु, प्रयुक्ताख्यातचन्द्रिका,

रागमयीकणा, तुलसी-अष्टक, वृन्दादेवी-अष्टक, श्रीनन्द-नन्दनाष्टक, वृन्दावनध्यान, चाटुपुष्पाञ्जलि और प्रेमेन्दु-कारिका। १५४१ ई०में इन्होंने विदग्धमाधव और १५५० ई०में उत्कलिकावल्लरीकी रचना समाप्त की थी। वैष्णवतोषिणीमें इनके बनाये दो रसामृतका उल्लेख पाया जाता है।

१४११ शकमें इनका जन्म और १४८० शकमें अन्तर्धान हुआ। इन्होंने अपने जीवनका २७ वर्ष गृहस्थाश्रममें और शेष ४३ वर्ष वृन्दावनधाममें वैराग्यावस्थामें विताया। वृन्दावनमें आप १८४ वनतीर्थोंका उद्धार कर वैष्णवजगत्‌में भगवान् श्रीकृष्णका एक विस्तृत लीलाक्षेत्र स्थापन कर गये हैं। सनातन गोस्वामी देखो।

रूपग्रह (सं० त्रि०) रूपं ग्राहयति ग्रह-अच्। रूपग्रहण वासी चक्षुः, जिसका रंग-रूप सुन्दर हो।

रूपघनाक्षरी (सं० स्त्री०) एक प्रकारका दण्डक छन्द। इसके प्रत्येक चरणमें बत्तीस वर्ण होते हैं। इसके अन्तमें लघु तथा आठ आठ वर्णों पर विश्राम होना आवश्यक है।

रूपघात (सं० पु०) सूरत बिगाड़ना, कुरूप करनेका अपराध।

रूपचतुर्दशी (सं० स्त्री०) कार्त्तिक कृष्णचतुर्दशी। यह दीपमालिकाके एक दिन पहले होती है। इसे नरक चतुर्दशी भी कहते हैं। इस दिन लोग शरीरमें उबटन आदि लगाते हैं।

रूपचन्द्र—रुद्रमञ्जरीनाममालाके रचयिता। ये गोपालके पुत्र थे। १५८८ ई०में इन्होंने उक्त ग्रन्थ लिखा।

रूपचन्द्रमणि—एक प्रसिद्ध जैन-पण्डित।

रूपज (सं० त्रि०) रूपेण जायते जन-ड। रूपजात, रूपसे उत्पन्न।

रूपजीवनी (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

रूपण (सं० क्ली०) रूप ल्युट्। १ आरोपण, आरोप करना। २ प्रमाण। ३ परीक्षा।

रूपतत्त्व (सं० क्ली०) रूपस्य तत्त्वं। शील, स्वभाव।

रूपतम (सं० त्रि०) अतिशय रूपशाली, बड़ा खूबसूरत। (शत०ब्रा० ३।३।४।२२)

रूपता (सं० स्त्री०) रूपस्य भावः तल् टाप्। रूपका भाव या धर्म। २ सौन्दर्य, खूबसूरती।

रूपदर्शक (सं० पु०) १ प्राचीनकालका सिक्कोंका निरीक्षण करनेवाला राज-कर्मचारी। २ सराफ।

रूपदीया—यशोहर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव। यहां मध्यवंग रेलपथका एक स्टेशन है।

रूपदेव—पद्यावली-धृत एक कवि।

रूपदेव कवि (पण्डित)—सानन्दगोविन्द नामक गीत गोविन्दविवरणके प्रणेता।

रूपधर (सं० त्रि०) रूपस्य धरः। रूपविशिष्ट, खूबसूरत।

रूपधारिन (सं० त्रि०) रूपं धरतीति धृ णिनि। सौन्दर्यविशिष्ट, खूबसूरत।

रूपधृत् (सं० त्रि०) रूपं धरति धृ-क्विप् तुक् च। रूपवान्, खूबसूरत।

रूपधेय (सं० क्ली०) वाह्यरूप, वाहरी सौन्दर्य।

रूपनगर—राजपूतानेके उदयपुर राज्यान्तर्गत एक नगर। यह आरावली शिखर पर देसुरी और सोमेश्वर गिरिसंकटके बीच अवस्थित है। पूरब और उत्तर ओरका पहाड़ बड़ा ऊंचा है इससे इस पथसे शत्रु नहीं आ सकता।

देसुरीके सोलङ्की राजपूत द्वारा १७७२ ई०में यह नगर स्थापित हुआ। योधपुरराजने रूपनगरकी राजकन्यासे व्याह करनेकी इच्छासे यह नगर अपने अधिकारमें कर लिया।

रूपनगर—राजपूतानेके किशनगढ़ राज्यान्तर्गत एक नगर।

रूपनन्द—एक बौद्धका नाम।

रूपनयन (सं० पु०) योगशतककी टीकाके प्रणेता।

रूपनाथ—मध्यप्रदेशमें जब्बलपुर जिलान्तर्गत एक प्राचीन नगर। यहां अशोककी अनुशासनलिपि खोदी हुई थी। इस अनुशासनसे बोध होता है, कि एक समय यहां बहुतसे मनुष्य वास करते थे।

रूपनाथ—आसाम प्रदेशके जयन्तीपहाड़ी विभागमें अवस्थित एक बड़ा गाँव। यहां हिन्दूका एक तीर्थ है। प्रतिवर्ष सैकड़ों आदमी श्रीहट्टसे इस देवमन्दिरका दर्शन करने आते हैं। इसके पास ही बहुत-सी बड़ी बड़ी गुहाएं

है। एक गुफा प्रमाणसे अन्दर बहुत दूर तक चली गई है। उस गुफामें किसीको जानेका साहस नहीं होता। वहांके लोगोंका कहना है, कि उस सुरंगसे एक समय फौजसेना मालयपर्वत पर आक्रमण करनेके लिये आई थी। दूसरी गुफामें हिन्दू-देवमण्डलका चित्र अङ्कित देखा जाता है।

रूपनारायण (सं० पु०) १ महाज्ञानप्रयोगपद्धतिके रचयिता। वाचस्पतिमिश्रने इसका उल्लेख किया है। २ व्यवहारचमत्कारदीपिकाके प्रणेता। ये वाचस्पतिके पौत्र और महामोदासके पुत्र थे। १५८० ई०में इन्होंने उक्त ग्रन्थ समाप्त किया।

रूपनारायण—बङ्गालके हुगली जिलेमें प्रवाहित एक नदी। मेदिनीपुर जिलेमें जो शिलाइ नदी बहती है, वही द्वारिकेश्वर नदमें मिलनेके बाद हुगली जिलेमें इसी नामसे बहती हुई भागीरथीमें गिरी है। यह नदी अक्षा० २२ ११´ उ० तथा देशा० ८८ ३´ पू०के मध्य विस्तृत है। कोलाघाट नामक घाटसे २ मील दक्षिण मेदिनीपुर हाई लेवेल केनाल इसके ऊपर हो कर गई है। इस नदीका स्रोत बहुत तेज है। कभी कभी बाढ़के समय किनारा डूब जाता है। इसके किनारे २६ मील २३,४३ फुट लंबा एक बांध तैयार किया जाता है अभी समय इस नदीमें ज्वार भांटा आता है।

रूपनारायण—मिथिलाके एक राजा। १४६५ ई०में ये विद्यमान थे।

रूपनारायण-रसूलपुर खाल—रूपनारायणसे रसूलपुर नदी तक विस्तृत एक खाल। मेदिनीपुर जिलेके हिजली विभागमें यह बहती है। रूपनारायण नदीके समीप काट कर इसी तक चली गई है। यहां इसे 'बांका खाल' कहते हैं। फिर इसी नदीसे तिरोलखिया खाल हो कर रसूलपुर नदीमें मिली है। उक्त खालमें ज्वार भांटा आया करता है।

रूपनारायणघोष—एक प्रतिभाशाली बंगाली कवि। इन्होंने मन्यकवि भपालोमसाहबके समयमें दो नाटकों व चवटीका बंगला अनुवाद किया। इनके पूर्वपुरुष मकरन्दघोषक सम्भ्रान्त थे। मछोदर नगरमें इस वंशका वास था। मछोदरमें जब राष्ट्रविप्लव उपस्थित हुआ, तब इस वंशके जगन्नाथ और वाणीनाथ नामक दो भाई अपना देश छोड़ कर मानिकपुर नामक ग्राममें रहने लगे। यहांके कर्त्ताशोप मौलिक कायस्थ जमादारने इनको यथो दोनों भाइयोंका अच्छा सत्कार किया और अपनी कन्यासे विवाह करने कहा। आभिजात्य नाशके भयसे वे राजी न हुए और वहांसे भाग चले। किन्तु वे पीछे पकड़े गये और पद्मा नदीमें डुबो दिये गये। मरनेके पहले भी उन्हें विवाह करनेके लिये कहा गया था।

छोटे भाई जगन्नाथने काफी दहेज पानेके लोभसे मैमनसिंह बाफला ग्रामके जमींदार यादवेन्द्र रायकी कन्यासे विवाह किया। इन्हीं जगन्नाथके वंशधर रूपनारायण थे। १६वीं सदीके शेषमें इनका जन्म हुआ था।

रूपनारायण सेन—सुपद्यरत्नाकर और सुपद्य समासुसंग्रहके रचयिता। पयोग्राममें ये रहते थे। इन्होंने १४८० ई० में उक्त दोनों ग्रन्थोंकी रचना की।

रूपनाश (सं० पु०) रूपस्य नाशनम् अदर्शनं यत्र। पेचक, उल्लू।

रूपप (सं० पु०) १ पुराणानुसार एक जाति। (मार्कण्डेय पु० ५७।४०) २ सभापर्वमें वर्णित एक राजाका नाम।

(सभाप० ११।४६)

रूपपति (सं० पु०) त्वष्टा विश्वकर्मा।

(ऋक् भा० ११।४।११९)

रूपपुर (सं० क्ली०) एक नगरका नाम।

रूपभागानुबन्ध (सं० पु०) मूल राशिके साथ भग्नांशका जोड़ना।

रूपभागापवाह (सं० पु०) किसी मूल राशिसे भग्नांशका घटाना।

रूपभेद (सं० पु०) रूपस्य भेदः। १ विभिन्न रूप। (क्ली०) २ रूपभेद।

रूपमञ्जरी—श्रीराधिकाकी एक सखी। यह राधिकाके सखा चित्रभानुकी कन्या थी। यावटमें इसका घर था। यह प्रियनर्मसखी श्रीरूपमञ्जरी परमासुन्दरी और गोरोचनाकी तरह वर्णविशिष्ट थी। यह सर्वदा श्रीराधिकाके निकट रहती थी। ललिताके कुञ्जके उत्तर इसका रूपोल्लासा नामक कुञ्ज था। इसके और भी दो नाम थे—

रुक्मणमालिका और लवङ्गमालिका । इनकी उमर साढ़े तेरह वर्षसे तेरह दिन-कम थी अर्थात् ये आध्यात्मिक जगत्की चिरयौवना थीं । इनके नित्यरूपका कभी भी विपर्यय नहीं हुआ । वैष्णवोंका कहना है, कि यही रूपमञ्जरी गौराङ्गलीलामें श्रीरूप गोस्वामी रूपमें अवतीर्ण हुई थीं ।

२ वैद्यक ग्रंथभेद ।

रूपमती—एक गणिकानर्त्तकी । ये पीछे महाराज बाज बहादुरकी महिषी हुईं । बाजबहादुर देखो ।

रूपमय (हिं० वि०) अति सुन्दर, बहुत खूबसूरत ।

रूपमाला (हिं० स्त्री०) एक मात्रिक छन्दका नाम । इसके प्रत्येक चरणमें १४ और १० के विश्रामसे २४ मात्राएं होती हैं । इसको मदन भी कहते हैं ।

रूपमालिन् (सं० पु०) सह्याद्रिवर्णित एक राजा । (सह्या० ३४।३३)

रूपमाली (सं० स्त्री०) एक छन्दका नाम । इसके प्रत्येक चरणमें तीन मगण या नौ दीर्घ वर्ण होते हैं ।

रूपया (हिं० पु०) रुपया देखो ।

रूपयौवन (सं० क्ली०) १ रूप और यौवन । (त्रि०) २ रूप और यौवनविशिष्ट ।

रूपराम—एक बंगाली कवि । इन्होंने श्रीधर्ममङ्गल प्रणयन किया । ये दूसरे श्रीधर्ममङ्गलके प्रणेता घनराम चक्रवर्त्तीके सहपाठी थे ।

रूपरूपक (सं० पु०) केशवके अनुसार रूपकालंकारके 'सावयवरूपक' भेदका एक नाम ।

रूपवत् (सं० त्रि०) रूपमस्यास्तीति (रूपरसादिभ्यश्च । पा ५।२।९५) इति मतुप्, मस्य वः । १ आकारविशिष्ट, उत्तम रूप । २ सौन्दर्ययुक्त, खूबसूरत ।

रूपवती (सं० स्त्री०) १ केशवके अनुसार एक छन्दका नाम । इसे छन्दोप्रभाकरमें गौरी लिखा है । २ चंपक माला वृत्तिका एक नाम, रुक्मवती । ४ एक नदीका नाम । (वि०) ५ सुन्दरी, खूबसूरत स्त्री ।

रूपवती—मालवराज बाजबहादुरकी महिषी । ये नर्त्तकीकी लड़की थीं । इनके सौन्दर्य पर मुग्ध हो कर बाजबहादुरने इनसे विवाह कर लिया । ये रूपमणि और रूपमती नामसे भी मुसलमान इतिहासमें प्रसिद्ध हैं । इनके बनाये बहुत से गान हैं । बाजबहादुर देखो ।

रूपवन्त (सं० त्रि०) रूपवत् देखो ।

रूपवान् (सं० त्रि०) सुन्दर, खूबसूरत ।

रूपवास—राजपूतानेके भरतपुर राज्यान्तर्गत एक नगर । यह अक्षा० २६° ५६´ उ० तथा देशा० ७७ ३६´ पू०के मध्य भरतपुर शहरसे १६ मील दक्षिण पूरबमें अवस्थित है । जनसंख्या २६८१ है । चित्तोरगढ़ राजवंशधर रूपसिंहने इस नगरको बसाया । इसी नगरमें वे रहते थे, इस कारण शहरका रूपवास नाम हुआ है । उन्होंने मुगलोंके ढंग पर जो प्रासाद बनवाया और दिग्गी खुदवाई थी, वह आज भी मौजूद है । नगरकी बगलमें बहुत-सी बड़ी बड़ी पत्थरकी मूर्त्ति स्थापित है । उनमेंसे एक मूर्त्ति बलदेवजीकी, दूसरी उनकी स्त्रीकी, तीसरी हस्तिनापुराधिपति महाराज युधिष्ठिरकी और चौथी किसी बुद्ध वा जैनतीर्थङ्करकी है । इसके सिवा यहां दो स्तम्भ हैं । दोनोंमें खोदित लिपि है । शहरमें एक डाकघर, वर्नाक्युलर स्कूल और एक अस्पताल है ।

रूपवासिक (सं० पु०) एक जातिका नाम । इसका दूसरा नाम रूपवाहिक भी है ।

रूपवाहिक (सं० पु०) जातिभेद ।

रूपविपर्यय (सं० पु०) रूपस्य विपर्य्ययः । रूपके विपरीत ।

रूपशास् (सं० त्रि०) रूपेण शालते शोभते शाल णिनि । सौन्दर्यविशिष्ट, खूबसूरत ।

रूपशाही—बुन्देलखण्डवासी एक कायस्थ कवि । पर्णा या पन्ना नगरके निकटवर्त्ती बाघमहल स्थानमें ये रहते थे । इन्होंने पर्णाके बुन्देलाजातीय महाराज हिन्दू-पतिकी सभामें रह कर वहांकी शोभा बढ़ाई थी । १७५६ ई०में इन्होंने रूपविलास काव्य रचा ।

रूपशिखा (सं० स्त्री०) अग्निशिख नामक राक्षसकी एक कन्याका नाम ।

रूपश्री (सं० स्त्री०) सम्पूर्ण जातिकी एक संकर रागिणी । इसमें ऋषभ कोमल और शेष सब स्वर शुद्ध लगते हैं ।

रूपर्षि—लुम्पाक जैनोंकी नागपुरिया शाखाके प्रवर्त्तक । ये मालसावड़ गोत्रमें उत्पन्न हुए थे । इस शाखाके मतविरोधी दूसरे एक सम्प्रदायके प्रवर्त्तक भी इसी नामसे परिचित थे किन्तु वे इन्द्रगोत्रीय थे ।

रूपसंपद् (स० स्त्री०) रूपमेव सम्पत्। उत्तमरूप, सुन्दरता।

रूपसमृद्ध (स० त्रि०) रूपशाली, रूपवान्।

रूपसमृद्धि (स० स्त्री०) सुन्दर रूपसम्पन्न, वह जो देख नेमें खूब सुन्दर हो।

रूपसम्पत्ति (स० स्त्री०) रूपसंपद देखो।

रूपसा—मुल्तान जिलेमें प्रवाहित एक नदी।

रूपसिंह—एक हिन्दू राजा। इन्होंने १६६१ ई०में सम्राट् आलमगीरके पुत्र महम्मद मुअज्जिमके साथ अपनी कन्याका ब्याह कर दिया।

रूपसिद्धि (स० पु०) एक आदमीका नाम।

(कथासरित्सा० ८७।१७)

रूपसी (स० त्रि०) सुन्दरी, खूबसूरत।

रूपसेन (स० पु०) १ एक विद्याधरका नाम। २ राज गृहके एक राजा।

रूपस्थ (स० त्रि०) रूपयुक्त, रूपवान्।

रूपस्वित (स० त्रि०) रूपवान्, खूबसूरत।

रूपहानि (स० स्त्री०) १ रूपका नाश। २ न्यायमतसे विरोधवाक्यविन्यासका एक प्रकार।

रूपा (हिं० पु०) १ चांदी। २ घटिया चांदी जिसमें कुछ मिलावट हो। ३ सफेद रंगका घोड़ा, नुकरा। ४ वह बैल जो बिलकुल सफेद रंगका हो। इस रंगके बैल मजबूत और सहिष्णु माने जाते हैं।

रूपा—सह्याद्रिपादसे निःसृत एक नदीका नाम।

(देशा० १६६।१२)

रूपाजीवा (सं० स्त्री०) रूपेण सौन्दर्येण आजीवतीति आ जीव-अच् टाप्। वेश्या, रंडी।

रूपाधिबोध (सं० पु०) दृश्य वस्तुका वह ज्ञान जो इन्द्रियों द्वारा होता है।

रूपार—१ पञ्जाबके अम्बाला जिलेका एक उपविभाग। यह रूपार और खरार तहसील ले कर बना है।

२ उक्त विभागको एक तहसील। यह अक्षा० ३० ४५´ से ३१ १३´ उ० तथा देशा० ७६ १३´से ७६ ४४´ पू०के मध्य विस्तृत है। भूपरिमाण २२० वर्गमील है। इसके उत्तरमें सतलज नदी बहती है। जनसंख्या डेढ लाखके करीब है। इसमें १ शहर और १५८ ग्राम लगते हैं।

३ उक्त तहसीलका एक नगर। यह अक्षा० ३० ५८´ उ० तथा देशा० ७६ ३२´ पू०के मध्य शतद्रु नदीके दाहिने किनारे अवस्थित है। यह नगर बहुत पुराना है। रूपनगर इसका पुराना नाम है। जनसंख्या ६ हजारके करीब है।

१७६३ ई०में हरिसिंह नामक एक सिक्ख-सरदारने इस नगरको जीत कर हिमालयपादमूल तकके विस्तृत स्थानोंमें अपनी शासनशक्ति फैलाई। १७९२ ई०में मृत्युके पहले उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति भरतसिंह और देवसिंह नामक दो पुत्रोंमें बांट दी। भरतसिंह-रूपार नगर मिला। १८४५ ई०में सिक्ख युद्धके समय इस राजवंशने सिक्खजातिका पक्ष लिया। इस कारण अङ्गरेजराजने १८४६ ई०में उक्त सम्पत्ति जब्त कर ली।

यहां प्रति वर्ष दो मेले लगते हैं। प्रति ज्येष्ठ मास में शाहकमीदके मकबरेके सामने बड़ी धूमधामसे साधु बरको स्मृतिरक्षार्थ उत्सव होता है। इस उपलक्षमें यहां प्रायः ५० हजार हिन्दू मुसलमान इकट्ठे होते हैं। दूसरा मेला चैत्रमासमें शतद्रु नदीमें स्नान करनेके उप लक्षमें लगता है। इस समय लाखों आदमी स्नान करने आते हैं। हिमालय पर्वतवासी विभिन्न जातिके साथ वाणिज्य करनेके लिये यहां एक बड़ी हाट है। यहांका वाणिज्य द्रव्य शस्यादि, गोड़, चीनी, सूती वस्त्र और लोहेका बरतन है।

रूपाल—बम्बई प्रदेशके महीकान्त विभागके अन्तर्गत एक सामन्तराज्य और उसका प्रधान नगर। यहांके सरदार बड़ौदाके गायकवाड़ और इदरके राजाको कर देते हैं।

रूपावचर (सं० पु०) १ बौद्धमतके अनुसार एक प्रकार-के देवता। २ ध्यानकी एक भूमिका नाम। इसके प्रथमा आदि चार भेद हैं। ३ चित्तका एक भेद जिससे रूपलोकका ज्ञान प्राप्त होता है। चित्तको इस वृत्तिके कुशल, विपाक, क्रियादि भेदसे अनेक प्रकार माने जाते हैं।

रूपावली (स० स्त्री०) शब्दकी विभक्तिकी वर्णना।

रूपाश्रय (स० पु०) सुन्दर पुरुष, खूबसूरत आदमी।

रूपाद्य (स० त्रि०) आठ प्रकारके स्वभाववाला।

रूपास्त्र (स० पु०) रूपमेव अस्त्र यस्य। कामदेव।

रूपिका (सं० स्त्री०) रूपमस्य अस्तीति रूप-ठन्। श्वेतार्क वृक्ष, सफेद फूलका आकका पेड़।

रूपित (सं० पु०) एक प्रकारका उपन्यास जिसमें ज्ञान, वैराग्यादि पात्र वनाये जाते हैं।

रूपिन् (सं० त्रि०) रूपमस्यास्तीति रूप-इन्। १ रूपयुक्त, रूपवाला। २ तुल्य, सदृश। ३ सुन्दर, खूबसूरत।

रूपी (सं० त्रि०) रूपिन् देखो।

रूपेन्द्रिय (सं० पु०) रूपग्रहणोपयुक्तं इन्द्रियं। रूपग्रहणोपयोगी इन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, आँख। इस इन्द्रिय द्वारा रूप ग्रहण होता है इसलिये इसे रूपेन्द्रिय कहते हैं। (सुश्रुत)

रूपेश्वर (सं० पु०) एक शिवलिङ्गका नाम।

रूपेश्वरी (सं० स्त्री०) रूपाणामीश्वरी। एक देवीका नाम। प्रभवादि साठ वर्षोंमेंसे इक्कीस वर्षमें इस देवीकी पूजा करनी होती है। इस देवीकी पूजा करनेसे सब अभीष्टलाभ होता है।

"रूपेश्वरी प्रकर्त्तव्या वृषयुग्मव्यवस्थिता।
जटामुकुटभारेन्दु त्रिशूलोरगभूषया॥
मणिमौक्तिकशोभाढ्या सितचन्दनचर्चिता।
पूजिता कुसुमैर्हृद्यैः सर्वकामफलप्रदा॥"
(देवीपु० सम्वत्सरदेवतापू०)

रूपोपजीवन (सं० क्ली०) वह जो सुंदर मूर्त्ति दिखा कर अपनी जीविका चलाता हो, बहुरूपिया।

रूपोपजीविन् (सं० त्रि०) रूपेण उपजीवयति जीव-णिनि। रूप द्वारा जीविका निर्वाह करनेवाला, बहुरूपिया।

रूपोपजीविनी (सं० स्त्री०) वेश्या, रंडी।

रूपोश (फा० वि०) १ छिपा हुआ, गुप्त। २ जो दंड आदिसे बचनेके लिये भाग गया हो, फरार।

रूपोशी (फा० स्त्री०) मुंह छिपानेकी क्रिया, गुप्ति, छिपना।

रूप्य (सं० क्ली०) आहतं रूपं अस्यास्तीति रूप (रूपादाहत प्रशंसयोर्यप्। पा ५।२।१२०) इति यप्। १ आहत स्वर्ण, रजत। २ धातुविशेष, चाँदी।

रूप्य सुवर्णका मल है। पर्याय—शुभ्र, वसुश्रेष्ठ, रुधिर, चन्द्रलोहक, श्वेतक, महाशुभ्र, रजत, तप्तरूपक, चन्द्रभूति, सित, तार, कलधूत, इन्द्रलोहक, खर्ज्जूर, दुर्वर्ण, श्वेत, रङ्गबीज, राजरङ्ग, लोहराजक, कलधौत। गुण—स्निग्ध, कषाय, अम्ल, विपाकमें मधुर, वातपित्तहर, रुचिकर, वलिपलितनाशक। (राजनि०)

इसके नामकी उत्पत्ति और मारणादिका विषय वैद्यकमें इस प्रकार लिखा है,—

महादेवने त्रिपुरासुरका वध करनेके समय क्रोधभरी आंखोंसे उसे देखा था। उस समय उनकी दाहिनी आंखसे आगकी जो चिनगारियां निकलीं, उससे तेजोमय रुद्रकी और बाईं आंखसे जो अश्रुपात हुआ उससे रूप्यकी उत्पत्ति हुई। औषधके काममें यह जारण कर प्रयोगमें लाया जाता है। जो रौप्य भारी, चिकना, कोमल तपाने या काटनेसे सफेद दिखाई देता है, जो आघातसह है अर्थात् पत्तर बनानेसे जो फटता नहीं, चन्द्रमाके समान जो विपुल प्रभासम्पन्न और स्वच्छ है वही उत्तम रूप्य है। जो रौप्य कठिन, कृत्रिम, रुक्ष, रक्तवर्ण, पीतदलयुक्त, लघु है तथा तपाने, काटने और चोट करनेसे जिसका रंग बदल जाता है वही खराब समझा जाता है।

गुण—शीतवीर्य, कषाय, अम्लमधुररस, मधुर, सारक, वयःस्थापक स्निग्ध, लेखनगुणयुक्त तथा वायु, पित्त और प्रमेह आदि रोगनाशक है।

अशोधित रौप्य—सेवन करनेसे शारीरिकताप, विबन्ध, बलवीर्यक्षय और देहपुष्टिका व्याघात तथा विविध रोग उत्पन्न होता है। अतएव रौप्यको शोधन कर काममें लाना चाहिये।

शोधनविधि—रौप्यको पीट कर अच्छी तरह पत्तर बनाना होगा। पीछे आगमें गरम कर उष्ण अवस्थामें यथाक्रम तेल, मट्ठा, कांजी, गोमूत्र और कुलथी कलायका काढ़ा, प्रत्येक द्रव्यमें तीन तीन वार डालना होगा। ऐसा करनेसे रौप्य शोधित होता है।

मारणविधि—पहले चांदीको पीट कर जितना पत्तर होगा उसके तिहाई भाग हरतालको अम्ल द्वारा एक पहर तक मर्दन करे। पीछे उस मर्दित हरतालको रौप्यके पत्तरमें लेप कर उन पत्तरोंको एक मूषामें रखे और मुंह बंद कर दे। अनन्तर ३० वनगोइंठेसे पुटमें पाक करना होगा। इस प्रकार क्रमशः चौदह बार हरताल लेप और पुटपाक करनेसे रौप्य भस्म होता है।

मतान्तर—धूहरके दूधमें सोनामक्खी पीस कर उससे पहलेकी तरह पत्रमें लेप करे, पीछे पूर्वोक्त विधानानुसार चौदह बार पुटमें पाक करनेसे रौप्य भस्म होता है। (भावप्र०)

(त्रि०) प्रशस्त रूप अस्त्यास्मीति रूप-यत्। २ सुन्दर, खूबसूरत। ३ उपमेय।

रूप्यक (सं० पु०) रुपया।

रूप्यकला (सं० स्त्री०) जैनोंके अनुसार हैरण्यवत वर्षकी एक नदीका नाम।

रूप्याध्यक्ष (सं० पु०) रूप्यस्य रूप्ये वा अध्यक्षः। नैष्किक, टकसालका प्रधान अधिकारी।

रूबकार (फा० पु०) १ सामने उपस्थित करनेका भाव, पेशी। २ आज्ञापत्र, हुक्मनामा। ३ वह तजवीज या फैसला जो किसी कारखानेमें हाकिम अदालतके सामने किया जाय, अदालतका हुक्म। ४ कुछ विशिष्ट अवस्थाओंमें किसीको अदालत आदिमें उपस्थित होनेके लिये लिखा हुआ आज्ञापत्र।

रूबकारी (फा० स्त्री०) १ मुकदमेकी पेशी। २ मुकदमे की कारवाई।

रूबरू (फा० हिं० वि०) सम्मुख, सामने।

रूबल (रूसी० पु०) रूसका चांदीका सिक्का यह प्रायः दो शिलिंग डेढ़ पेनीके बराबर मूल्यका होता है।

रूबुक (सं० पु०) एरण्डवृक्ष, रेंडका पेड़।

रूम (फा० पु०) रूमों या रूमी देशका एक नाम।

धामतामान्य देखो।

रूमाल (फा० पु०) १ कपड़ेका वह चौकोर टुकड़ा जो हाथ, मुंह पोंछनेके काममें आता है। २ चौकोना शाल या दिखलका टुकड़ा। इसके चारों ओर बेल और बीचमें काम बना रहता है और यह तिकोना मोड़ कर ओढ़नेके काममें आया जाता है। मुसलमानी समयमें इसे कमरमें भी बांधते थे। ३ ठगोंका रूमाल जिसके एक कोनेमें चांदीका एक टुकड़ा बंधा रहता था। ठग आदि इसे आदमियोंके गलेमें लपेट कर चांदीके टुकड़े को उसके गले पर अंटीके पास अंगूठेसे इस प्रकार दबाते थे, कि वह मर जाता था। ४ पायजामेकी कलीमें वह चौकोर कपड़ा जो दोनों मोहरियोंकी संधिमें लगाया जाता है, मियानी।

रूमाली (फा० स्त्री०) रूमाली देखो।

रूमी (फा० वि०) १ रूम देशसम्बन्धी, रूमका। २ रूमदेशमें उत्पन्न होनेवाला। ३ रूमदेशमें रहनेवाला, रूमदेशका निवासी।

रूर (सं० त्रि०) १ उत्तप्त, जो गरम हो गया हो। २ अग्नि दग्ध, जला हुआ।

रूरा (हिं० वि) १ प्रशस्त, श्रेष्ठ। २ बहुत बड़ा। ३ सुन्दर, मनोहर।

रूल (अ० पु०) १ नियम, कायदा। २ लकीर की सनेका डंडा, रूलर। ३ लकीर जो लिखावट सीधी रखनेके लिये कागज पर खो की जाती है।

रूलर (अ० पु०) १ लकीर या बनेका डंडा, शलाका। २ लकीर खींचनेकी पटरी पैमाना। ३ शासक।

रूषक (सं० पु०) रूषतीति रूष-ण्वुल्। वासक, अडूसा।

रूषण (सं० क्ली०) १ भूषित करना, सजाना। २ अनुलेपन। ३ आच्छादन

रूषित (सं० त्रि०) रूष-क्त। खण्डित, टूटा हुआ।

रूस—यूरोपके पूरब और एशियाके उत्तरका एक विस्तीर्ण राज्य। भूपरिमाण ८६६०००० वर्गमील अर्थात् सारे भूमण्डलका छठा भाग है। इतना बड़ा रकबा होने पर भी जनसंख्याकी तुलना करनेसे यह बहुत कम होता है। १९०१ ई०की मनुष्यगणनामें यहां की जनसंख्या १३।।० करोड़ थी अर्थात् पृथ्वीकी जनसंख्याका चौदहवां भाग। १८१८ ई०में इस साम्राज्यका भूपरिमाण और भी बढ़ गया था। उसी साल रूस-सम्राट्‌ने जीनसम्राट्‌से ऐकिनी उपसागरस्थ लायडांग उपद्वीप, आर्थर बन्दर, तलिएनवन, निकटस्थ समुद्र और उसके उत्तर भागका भूभाग इजारा लिया था। १८९९ ई०में कुछ भूभाग ले कर कोयाङ्ग [illegible] नामक एक स्वतन्त्र प्रदेश संगठित हुआ। उसका परिमाण १२२४ वर्गमील और जनसंख्या दो लाखके करीब थी। १९०१ ई०को चीनमें बक्सर-युद्धके बाद सारा मञ्चुरिया एक तरहसे रूस-सम्राट्‌के अधीन हो गया। इसके साथ साथ मंगोलियामें भी रूसप्रभाव विस्तृत हुआ। रूस जापानके युद्धमें मंचुरिया रूस सम्राट्‌के हाथसे जाता रहा।

थोड़े ही दिनोंके मध्य जनसंख्या तथा नाना विषयोंमें रूस साम्राज्यने उन्नति की है। १८५६-१८५६ ई०में जिस साम्राज्यकी जनसंख्या ७ करोड़ ४० लाख थी। युद्धके पहले उसकी संख्या १८ करोड़ हो गई थी। परन्तु १९२१की मर्दुमशुमारीमें कुल मिला कर १३ करोड़ हुई।

इतिहास।

रूस देशका प्राचीन इतिहास नहीं मिलता। जो कुछ मिलता भी है वह ९वीं सदीसे आरम्भ हुआ है। उसके पहले रूस साम्राज्यकी कैसी अवस्था थी, मालूम नहीं। हिन्दूके प्राचीन पुराणकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि यूरोपीय रूसिया और एशियाटिक रूसियाके मध्य स्थान तथा वर्त्तमान कास्पीयनसागरके दोनों पार्श्वसे ले कर उत्तर समुद्र तक शाकद्वीप विस्तृत था। हिमप्रलयमें शाकद्वीपके उत्तरांशका मूलस्थान बिलकुल बदल गया। हिमप्रलयके बाद पहले पहल आर्यजातिने शाकद्वीपमें आश्रय लिया था। पीछे वे लोग नाना स्थानोंमें फैल गये। इस कारण कास्पीयनसागरके किनारे बहुत दिनों तक आर्यप्रभाव अक्षुण्ण रहा। ईसाजन्मके पहले ५वीं सदी तक यहांकी आर्यशाखासे उत्पन्न शाकोंके प्रभावसे एक समय सारा एशिया और यूरोप कांप उठा था। आखिर चीन और पारसिकोंके आक्रमणसे शाकगण तितर बितर हो गये। बहुत पहलेसे ही इन शाकोंके साथ भारतका संस्रव था। शाकद्वीप और भोजक ब्राह्मण देखो। जरथुस्त्र मतावलम्बी पारसिकोंके अत्याचारसे सौर शाकद्वीपोंकी बड़ी दुरवस्था हुई थी। इस समय वे लोग राजहीन, समाजहीन और धर्महीन जाति समझे जाने लगे।

पारसिक और चीन जातिके अभ्युदयमें भी रूसदेशका गठन या 'रूस' नामकरण नहीं हुआ। उस समय भी यह देश छोटे छोटे गांवोंमें विभक्त था तथा एक एक आदमी छोटे छोटे सामन्तके अधीन रहता था। पारसिक प्रधानताके समय जिस प्रकार अग्निपूजाका प्रचार हुआ था, चीनी प्रधानताके समय भी उसी प्रकार पहले कनफुची और पीछे बौद्धमतका प्रचार हुआ। किन्तु यहांके लोग पहले हीसे उचित उपदेश और योग्य आचार्य न मिलनेके कारण कुसंस्कारसे आच्छन्न थे। यहां तक कि ये लोग जो पूर्वतन शाकजातिके वंशधर थे उसे भी बिलकुल भूल गये थे। यूरोपीय रूसके पश्चिम शलभ (Lav) नामक एक विस्तृत आर्यशाखाका वास था। वर्त्तमान रूसगण अपनेको उन्हींके वंशधर बतलाते हैं।

रूस नाम कब और क्यों हुआ, इसका ठीक विवरण नहीं मिलता। कोई कोई कहते हैं, कि रौस, रोसिया और रोसियन (Rous, Rossia, Rossianc) शब्दसे 'रूस' शब्दकी उत्पत्ति है। फिर कोई रूक्सलनी (Rhoxolani) नामक मेद (Medish) जातिकी एक शाखासे रूस नामकी उत्पत्ति बतलाते हैं। आज कलके इतिहासकारोंका कहना है, कि फिनिस भाषामें 'रौच' (Ruotsi) कहनेसे सुइदिसोंका बोध होता है। फिर कोई कोई पाश्चात्य पण्डित अनुमान करते हैं, कि वह शब्द 'सुइदिस रोथमेन' शब्दका (Rothmenn) शब्दका ही अपभ्रंश है। 'रोथमेन' शब्दका अर्थ नाविक या सामुद्रिक है। वे लोग स्कन्दनाभदेशीय सामन्त थे। उन्होंने ही साम्राज्यकी प्रतिष्ठा की, किन्तु उनका पूर्व इतिहास विलुप्त हो गया है। अरब और यहूदियोंके प्राचीन ग्रंथोंसे उसका अस्पष्ट परिचय पाया जाता है।

९वीं सदीमें रूसवासियोंने यूरिक, सिनेउस और त्रुवर नामक तीन भाइयोंको उत्तरसे बुला मंगाया था। ८६२ ई०में वे तीनों भाई नवगोरोदमें आ कर रहने लगे। वे 'वरङ्गी' (Varangians) नामसे प्रसिद्ध थे। गोष्टमिसल नामक एक समाजपतिने ही तीनों भाईको देश शासन करानेके लिये बुलाया था। प्रवाद है, कि रुरिक लुबरात नामक एक सुइदिसराजके पुत्र था। गोष्टमिसलकी कन्या उर्मिलाके साथ उसका विवाह हुआ। पहले रूस और स्कन्दनाभगण पृथक् जातिके समझे जाते थे। राजकुमार रुरिकके यत्नसे दोनों जाति एक हो गई। तीन भाइयोंमेंसे रुरिक लादोगा, सिनेयुस बिलो ओजेरोते तथा त्रुवर इजबरस्क नगरमें प्रतिष्ठित हुए थे। दो भाईके कोई सन्तान न रहनेके कारण उनकी मृत्युके बाद रुरिक उनके विशाल राज्यके भी अधिकारी हुए। उन्होंने 'वेलिकि नियाज' अर्थात् महाराजकी उपाधि पाई थी।

रुरिक जब रूसदेश आया, उस समय आस्कोल्ड और डिर नामक दो वीर भी उनके साथी हुए थे। रुरिकके साथ दोनोंका विरोध हो गया जिससे वे अपनी भाग्य परीक्षा करनेके लिये कुस्तुनतुनिया आये। राहमें उन्हें श्लावजातिका निवास शस्यपूर्ण किफ् जनपद मिला। किफ नामक स्थानमें ही सेण्ट आन्द्रुने रूसोंके मध्य ईसाधर्मका प्रचार किया। आस्कल्ड और डिर दो सौ युद्धजहाज ले कर दो वर्ण बाद वासफोरस उपसागर पहुंचे और उन्होंने वैजन्ता (Byzantine) साम्राज्यकी राजधानी को लूटा। उस समय वैजन्ती राज्यमें ३य माइकल अधिष्ठित थे।

पार्श्ववर्ती जातियोंको परास्त कर थोड़े ही दिनोंके अन्दर रुरिकने विस्तीर्ण साम्राज्य स्थापन किया। ८७९ ई०में मरते समय रुरिक ओलेग नामक एक प्रसिद्ध व्यक्तिकी देखरेखमें अपना शिशुपुत्र इगोरको राज्य सौंप गये। ८८२ ई०में ओलेगने कृविचिराज्यकी राजधानी स्मोलेन्सकको जीता। अपने उत्साहसे उद्दीप्त हो उन्होंने आस्कल्ड और डिरके अधिकारभुक्त किफ राज्य जीतने का संकल्प किया। वे बालक इगोर और दलबलके साथ ले वणिक्-वणिकके वेशमें किफ नगर आये। असन्दिग्ध आस्कल्ड और डिर उनके शिविरमें आमन्त्रित हुए और वहां मार डाले गये। यही आसानीसे किफराज्य इगोरके हाथ लगा। ९०३ ई०में इगोरने पस्कोवासिनी ओलेगा नामक एक सम्भ्रान्त महिलासे व्याह किया। प्रवाद है, कि ओलेगाके पितृवंश रुरिक के अभ्युदयके पहले पस्कोफका शासन करते थे।

किफमें शासनशृङ्खला स्थापन करके ओलेगने वैजन्ती जीतनेके लिये विपुल आयोजन किया। जल और स्थल दोनों ओरसे कुस्तुनतुनियाके प्राचीर पर आ धमके। उस समय दार्शनिक लिओ वैजन्तीके सम्राट् थे। वे ओलेगका मुकाबला न कर सके। वैजन्ती वासी ग्रीकोंने कर दे कर सन्धि करना चाहा। ओलेग का दूत सम्राट्के समीप पहुंचा। वैजन्ती सम्राट्ने बाइबिल छू कर और रूसवासियोंने पेरुण (Perun) और वल (Volos) देवके नाम पर शपथ खा कर आपसमें मेल कर लिया। जब तक ओलेग जीवित रहे, तब तक वे ही सर्वमय कर्त्ता थे। जनसाधारण उन्हें जादू शाकिनीसिद्ध समझते थे। सांपके काटनेसे ओलेग-की मृत्यु हुई। अब इगोरने पूर्ण आधिपत्य प्राप्त किया। इस समय रूसके इतिहासमें पेचेनेग (Petcheneg) जातिका हाल मिलता है।

९४१ ई०में इगोरने वैजन्ती जीतनेकी तैयारी की। थ्रेस, पफ्लागोनिया और बिथानिया प्रदेश होते वसफोरस आये। इस समय रूसोंके अत्याचारसे वे सब प्रदेश जनशून्य हो गये थे तथा घर घरमें हाहा कार मच रहा था। जो कुछ हो वैजन्ती अंगीजहाज असीम साहससे देशरक्षा करनेके लिये अग्रसर हुआ था। इस युद्धमें इगोर विशेष क्षतिग्रस्त हो स्वराज्य लौटे। दूसरे ही वर्ष उन्होंने क्षतिपूरण और नष्टगौरव का उद्धार करनेके लिए बहुतसे सैन्यसामन्त ले कर वैजन्ती पर फिरसे आक्रमण कर दिया। इस बार ग्रीकोंने युद्ध नहीं किया। वे सहजमें कर देनेके लिये राजी हुए। इसी समयसे दोनों जातिमें मेल हो गया।

श्लावजातिकी द्रेवलीय (Drevlian) नामक एक शाखा बहुत दिनों से इगोरके शासनसे तंग आ गई थी। उन्होंने मले नामक एक राजकुमारको नायक बना कर इगोरके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। दलबलके साथ इगोर उनसे पराजित और निहत हुए।

इगोरके बालकपुत्र स्विआटोस्लाफने पितृराज्य पाया। उनकी माता वीरमहिला ओल्गा पुत्रकी अभि भाविकाके रूपमें राजकार्य चलाने लगी। पतिहत्याका बदला लेना ही उनका पहला काम था। जहां जितने द्रेवलीय थे, उनका काम तमाम करनेका हुकुम दिया गया। रानीका ऐसी जिघांसा कभी भी किसीने नहीं देखा थी। बड़े बड़े गड्ढेमें सैकड़ों द्रेवलीय जीते जी गाड़ दिये गये। उन लोगोंका राजधानी इसकोरोस्त शहर जला दिया गया। ओल्गाने अन्तिम अवस्थामें ईसाधर्म ग्रहण किया। वे ९५५ ई०में दीक्षित हुए थे। सम्राट् कनष्टान पर्फिरोजेनिटस उनके धर्मपिता हुए थे। किन्तु उनके पुत्र स्विआटोस्लाफने पितृधर्मका परित्याग नहीं किया था और न उनको प्रजा ही ईसाधर्मके अनुरागी हुई थी। वे महातेजस्वी और वीरपुरुष

थे। उस समय पेचेनेग नामक मुगलजातिकी ही एक शाखा उन नदीके किनारे रहती थी। स्वियाटोस्लाफने उन्हें परास्त किया। उन्हींके समय रूसराज्य कई टुकड़ोंमें विभक्त हो गया। उन्होंने यरोपोल्क नामक एक पुत्रको किफ, ओलेग नामक पुत्रको नवजिन ड्रेवलियोंका राज्य और ब्लादिमीरको नवगोरोद राज्य बांट दिया, पेचेनेगोंके साथ कई युद्धोंमें जयलाभ कर उन्होंने वल्गा-नदीतीरवासी बुलगेरिया पर आक्रमण किया। उस युद्धमें जयलाभ करने पर भी जब वे लौट रहे थे, तब निपारनदीके जलप्रपातमें दलबलके साथ निहत हुए। बुलगेरिया-राजकुमारने उस रूसराजके कपाल पर पानपात्र किया था।

रूसराजकुमारोंमें भी अनबनी थी जिससे राज्य चौपट लग गया था। इस समय उन्हें नाना धर्मविषयोंमें संदेह हुआ इस कारण उन्होंने यहूदी, मुसलमान और उस समयके विभिन्न सम्प्रदायके ईसाइयोंके पास दूत भेजा। दूतोंके मतसे विभिन्न सम्प्रदायका धर्ममत सुन कर उन्होंने ग्रीक ईसामतको ही श्रेष्ठ समझ ग्रहण किया। इसके बाद उन्होंने वैजन्ती सम्राट्के अधिकारभुक्त क्रिमियादेशस्थ चारसोनेसस नगरोको जीत कर वहांकी राज्यकन्यासे ब्याह करना चाहा। उन्हें कहा गया कि ईसाई होने पर वे राजकन्या पा सकते हैं। इसलिये वे कुस्तुनतुनिया जा कर ईसाधर्ममें दीक्षित हुए और पीछे उन्होंने वैजन्ती राजकुमारीका पाणिग्रहण किया। इसके बाद वे किफ लौटे और अपने पितृपुरुषोंके उपास्य वज्रधर पेरुणदेवकी प्रतिमाको नदीके जलमें फेंक दिया। पीछे उन्होंने प्रजाको नदीके किनारे उपस्थित हो ईसाधर्ममें दीक्षित होनेका हुकुम दिया। राजाके आदेशसे सभी रूस ईसाधर्ममें दीक्षित हुए। मृत्युके समय रूसराजने अपने पांच पुत्रोंके बीच विस्तृत राज्य बांट दिया। उसमें से यरोस्लाफको नवगोरोद, इजियास्लाफको पोलोत्स्क, बोरिसको रोस्तोफ, ग्लेबको मुरोम, और स्वियाटोस्लाफ को ड्रेवलीय तथा शेष पुत्रोंको दूसरा दूसरा प्रदेश मिला। थोड़े ही दिनोंके बाद उनके भतीजे स्वियाटोपोलकने बोरिस और ग्लेबको मार कर उनकी राजधानी किफ पर अधिकार किया। यरोस्लाफ पोलोंकी सहायतासे स्वियाटोपोलको भगा कर फिर कुछ दिनके लिये पितृसिंहासन पर बैठे। किन्तु कुछ समय बाद ही राज्यसे विताड़ित हो उन्होंने निर्वासनमें जीवन बिताया। यरोस्लाफ पेचेनेगोंके युद्धमें भी जयी हुए थे। उन्हींके यत्नसे सबसे पहले "रूपकीय प्रवदा" अर्थात् रूसग्रन्थ नामक रूसजातिका आदि धर्मशास्त्रनिबंध प्रकाशित हुआ। यरोस्लाफके बाद रूसराज्यमें नाना प्रकारके अत्याचार और अराजकताका सूत्रपात हुआ। रूसराज्य विभिन्न राजाके शासनमें रह कर नाना खण्डोंमें विभक्त हो गया। यरोस्लाफके पुत्र इजियास्लाफने बड़े कष्टसे अंतर्विद्रोहके मध्य २४ वर्ष तक राज्यशासन किया। १०७८ ई०को मृत्युकालमें दो पुत्र रहते हुए भी उन्होंने अपने भाई सेवोलोद्को किफराज्य प्रदान किया। किन्तु १०९३ ई०में सेवोलोद्की मृत्यु होने पर इजियास्लाफके पुत्र स्वियाटोपोल्क राजा हुए थे। फिर जब उनका भी देहान्त हुआ, तब सेवोलोद्के पुत्र (वैजन्तीसम्राट् कनस्तान्तिन् मनमेकसका दौहित्र) ब्लादिमीर मनमघने १११३ से ११२५ ई० तक राज्य किया। वे 'पुकेनो' नामक एक उपदेश ग्रंथ लिख गये हैं। उस ग्रंथमें प्राचीन रूससमाजका सरल आलेख्य देखनेमें आता है। उनकी मृत्युके बाद उनके पुत्रोंमें राज्य ले कर बहुत दिनों तक विवाद चलता रहा। आखिर ११६७ ई०में जार्जदोलगोरुकी किफराज्य पर अधिकार कर बैठे। थोड़े ही दिनोंमें उन्हें राज्यच्युत करनेके लिये एक षड्यंत्र रचा गया। उन्हें भगा कर उनके दलपतिको राज्यसिंहासन पर बिठाया। ११६९ ई०में उक्त दोलगोरुकीके पुत्र बोगोलियो-उबस्किने उस दलपतिको भगा कर नगर पर अधिकार किया। इस समय किफराजधानीसे सभी पवित्र देवचित्र, अलङ्कार और गिर्जासे चंदे सब ले लिये गये थे। दोल-गोरुकीकी किफ शहरमें राजपाटस्थापन करनेकी बड़ी इच्छा थी, पर पूरी न हुई। सुजदलमें उन्होंने राजधानी बसाई थी। किंतु उनके पुत्र आण्ड्र दूसरी ओर राज्य फैलाना चाहते थे। उन्होंने बड़ नवगोरोद्में अपने भतीजेको प्रतिनिधि नियुक्त किया। ११७० ई०में नवगोरोद शहर अधिकार करते समय इन्हें बड़ी मुशीबत उठानी पड़ी थी। उनके बहुतों सैन्य सामन्त नवगोरोदियोंके हाथ

बन्दी हुए और क्रीतदासरूपमें बेच दिये गये। ११७४ ई०में अपने सभासदोंके हाथसे उनकी मृत्यु हुई। आप एक युद्धनेता और महावीर थे। उनके मारे जानेके बाद शासकोंको उपयुक्त व्यक्ति न मिलनेसे राज्यके चारों ओर समरानल धधक उठा। नवगोरोद, पस्कोफ और स्मोलेनस्कवासी एकत्र हो भ्लादिमिरके भाइ आन्द्रेको ११६९ ई०में आक्रमण और युद्धमें परास्त किया। १२२० ई०में फिरसे नवगोरोद् नगरी प्रतिष्ठित हुई और उसका शासनभार बोल्डिमिरके एक लोमड़ीके हाथ सौंपा गया। किन्तु भ्लादिमिर नामक एक दूसरा व्यक्ति इससे संतुष्ट न हो सिंहासन पर अधिकार कर बैठा। कई एक भीषण युद्धके बाद वस रोमनोफने सिंहासन प्राप्त किया था। उनके अत्याचार और कठोरतासे सभी प्रजा असन्तुष्ट थी। १२०५ ई०में ये मारे गये।

१२२४ ई०में मुगलोंने रूसराज्य पर आक्रमण किया। इस समय पोलोवतेसोंने उनकी सहायता की थी। किन्तु इस बार मुगलोंको निराश हो लौटना पड़ा। १२३८ ई०में ये फिरसे रूसराज्यमें आ धमके। नवगामतोके किनारे फिनिस-बुलगेरियोंकी राजधानी बुलगरीको ध्वंस कर वे रयजान आये। यह नगर भी लूटा गया और विध्वस्त हुआ। सुजदलराजकी विपुल वाहिनीने आ कर उन्हें रोकना चाहा। नदीके किनारे कोलम्ना नामक स्थानमें वे लोग भी पराजित हुए। पीछे मुगल लोग मोस्को, सुजदल, यरोस्लव तथा और भी कितने शहरोंमें आग लगा कर पैशाचिक कारड करने लगे।

सुजदलके महासामन्त यूरीने नवगोरोद राज्यकी सीमा-रक्षा करनेके लिये सीतनदीके किनारे छावनी डाली थी। वे भी मुगलोंके साथ सम्मुख युद्धमें मारे गये। इस समय गालिसियाके रूसराजकुमार दानियलने आ कर मुगलपति बटुका आनुगत्य स्वीकार किया। दूसरे वर्ष मुगल लोग स्वेदको जीत कर रूसके दक्षिणांशमें लूट पाट मचाने लगे। इसके बाद वे कुरोस आँका पीछा करके किफ जीतनेके लिये अग्रसर हुआ। किफकी आपाततमपराभिता प्राणके भयसे शहर छोड़ भाग चली। समृद्धिशाली प्राचीन नगर मुगलोंसे लूटा गया और हताश हुआ। नव गोरोद्को छोड़ कर एक एक कर सभी रूसराज्य मुगलोंके हाथ लगा। कुछ दिन बाद मुगल नायक बटु दलबलके साथ पूर्वकी ओर लौटा। वलगानदीके किनारे 'सराई' नामसे उसकी राजधानी बसाई गई। पेचेनेग, पोलोवेस आदि बर्बरगण भी यहाँ आ कर मिले। इसके बाद बहुत दिनों तक वह सब वर्वरोंका केन्द्र था। १२७२ ई०में मुगलोंने इस्लाम धर्म ग्रहण किया।

यूरीकी मृत्युके बाद उसके भाई यरोस्लफने सुजदल राज्यमें प्रवेश कर देखा, कि राज्य छार खार हो गया, पूर्व समृद्धि जाती रही। उन्होंने पुनःसंस्कार कराया। इस समय मुगल अधिनायकने उसे अपना राजधानीमें हाजिर होनेके लिये कहला भेजा। यरोस्लफ भ्रातृसभाके लिये बाध्य हो मुगलसभामें उपस्थित हुए। मुगलनायकने उन्हें उपयुक्त खिलअत और पूर्व उपाधिप्रदान कर सम्मानित किया। किन्तु लंबे सफरसे यरोस्लफका स्वास्थ्य खराब हो गया। राहमें उनकी मृत्यु हुई। पीछे उनके लड़के आन्द्रेने १२४९से १२५२ई० तक सुजदलका शासन किया। उनके दूसरे लड़के अलेकसन्दर बड़े नवगोरोदमें राज्य करते थे। उन्होंने १२४० ई०में सुइडिसों को परास्त कर रूससमाजका मुख उज्ज्वल किया था। यहां तक कि रूसीके उस दुर्दिनमें अलेकसन्दर नेवस्किको इतिहास देवमूर्तिवत् कर्मवीर अन्य महापुरुष समझे गये थे। आज भी रूसियामें अलेकसन्दर नेवस्कि ऋषि (Saint) के समान पूजित होते हैं। नवगोरोदके लिये उनके जीवन उत्सर्ग करने पर भी सामन्तिकोंके साथ विरोध होनेसे वे पेरियास्लावल जनिसत्तिमें चले आये।

१२०१ ई०में जर्मनीके असिधारी वीरगण (German Sword-bearing knight) लिवोनियामें आधिपत्य फैला कर रूस पर दाँत गड़ाये थे। इस समय नगरवासी के बुलानेसे उनके शासककर्त्ताके रूपमें अलेकसन्दर उपस्थित हुए। उन्होंने १२४२ ई०में पिपासहरके किनारे शत्रुओंको परास्त कर चिरस्थायी कीर्ति स्थापन की। यह युद्ध तुषारयुद्ध (Battle cf the ce) नामसे इतिहास में प्रसिद्ध है। अलेकसन्दरके इस प्रकार जयदृप्त हो राजधानी लौटने पर भी वे मुगलोंका प्रभाव खर्व न कर सके, पर उन्हें मुगलराजधानी सराइनगरमें जा कर मुगलनायककी वश्यता स्वीकार करनी पड़ी थी। अब

गोरोदवासी बहुत दिन तक स्वाधीनताकी रक्षा करते हुए भी १२६० ई०में मुगलाधिप खानकी अधीनता स्वीकार कर देनेको सहमत हुए थे। सराईसे लौटते समय अलेकसन्दरकी राहमें मृत्यु हुई। पश्चिम रूस कई टुकड़ोंमें विभक्त था। अभी लिथुयानीय राजकुमारोंके छत्राधीन हुआ। विलनामें उनकी राजधानी बसाई गई तथा श्वेतरूसभाषा सभी जगह फैल गई। कुछ दिन बाद पलिप-राजकुमारीके साथ लिथुयानीय राजकुमार जगीलत्योका विवाह हुआ। इससे विस्तीर्ण भूभाग पोलण्डके अन्तर्गत हो गया।

पूर्वरूसियामें अलेकसन्दरके पुत्र दानियलने १३०३ ई० तक राज्य किया था। देवदूत सेण्ट माइकलके गिरजामें उन्हें दफनाया गया था। पीटर दी ग्रेटके समय तक उसी स्थानमें रूसराजगण दफनाये गये थे।

दानियलके बाद उनके दो लड़के यूरी और इवान क्रमशः पितृसिंहासन पर बैठे। यूरीने दलिलोविच मोस्को राज्य जीता। १३२६ ई०में उनकी मृत्युके बाद इवान कालिताके राजा हुए। उनके यत्नसे मोस्को राजधानी बहुत समृद्धशाली हो गई थी। उनके मरने पर उनके लड़के अहङ्कारी सिमियस समस्त रूसोंके अधीश्वर हुए थे। मोस्कोकी प्रधानतारक्षामें उनका हाथ रहने पर भी उनकी मृत्युके बाद सुजदल ही फिर प्रधान हो उठा। उनके छोटे लड़के २य इवानने १३५३ से १३५९ ई० तक राज्यशासन किया। उनके लड़के दोनस्कोई दमित्रीने १३८० ई०में मुगलाधिपति ममईके साथ युद्ध कर कुलिकवोरणक्षेत्रमें विजय पताका फहराई। मुगलोंने उनके हाथसे पराजित हो तोक्तमिसरके सेनापतित्वमें कुछ दिन बाद रूसराज्य पर आक्रमण कर दिया। उन लोगोंने मोस्को नगरीको जला कर छारखार कर डाला। बहुसंख्यक अधिवासी मारे गये। दमित्रीके बाद उनके लड़के वासिलने १३८९से १४२५ ई० तक मोस्को और ब्लादिमी राज्यका शासन किया था। पीछे १४६२ ई० तक अन्धवासिलने राज्य किया। उनके पुत्र ३य इवानने प्रबल-प्रतापसे ४३ वर्ष रूससाम्राज्यका शासन किया था। उन्हींके यत्न और वीरत्वसे रूसके सामन्त राज्य विलुप्त हुए तथा वे समस्त रूसके एकछत्र अधिपति समझे जाने लगे। सिंहासन पर बैठते ही उन्होंने देखा कि उनके विस्तृत राज्यके पूरब पराक्रान्त लिथुआनिया राज्य, एक ओर रयजान और त्वेर नामक स्वाधीन राज्य, दक्षिणमें मुगलाधिकार तथा नवगोरद और पस्कोफमें उस समय भी साधारणतन्त्रका शासन चल रहा है। सबसे पहले रूसपति समृद्धिशाली नवगोरद नगर जीतनेके लिये आगे बढ़े थे। साधारण तन्त्रके मध्य दलबंदी हो जानेसे १४७० ई०में वे नगरको अधिकार कर बैठे। १४७८ ई०में वहां साधारण तन्त्रका चिह्नमात्र भी न रह गया। रूसराज्यके विद्वेषी मोस्कोभूभागमें निर्वासित हुए तथा उनकी धनसम्पत्ति जब्त कर ली गई। १४९५ ई०में रूसपतिने नवगोरोदमें आये हुए जर्मन वणिकोंका पण्यद्रव्य छीन कर निर्बुद्धिताका परिचय दिया। इस कारण प्रायः सभी विदेशी नगर छोड़ कर चले गये। इससे नगरकी शोभासमृद्धि जाती रही। १४८९ ई०में पस्कोफका प्रधान शहर व्यटका रूसराजके अधिकारभुक्त हुआ। उसके साथ साथ साधारण तन्त्र भी विलुप्त हो गया। १४९४ ई०में रयजानके सामन्तको अपनी बहन सौंप कर उन्होंने बड़े कौशलसे उनका सामन्तराज्य अपने अधीन कर लिया। इसी प्रकार त्वेर नामक सामन्तराज्यको अपने शासनाधीन कर उन्होंने रूसदेशसे सामन्तशासनप्रथाको एक तरहसे विलुप्त कर दिया। किंतु रूसपति इवान वैजन्तीसम्राट्की कन्याका पाणिग्रहण कर छिन्नशीर्ण जयपताका फहराते थे, इस कारण रूसके चिरशत्रु मुगलोंके साथ उनका संघर्ष उपस्थित हुआ। मुगलपतिकी महाशक्ति चूर चूर कर डाली गई। उसीके ध्वंसावशेषके ऊपर काजान तथा सराई या अस्त्राखान साम्राज्यकी प्रतिष्ठा हुई। १४७८ ई०में मुगलपति अहमद खाने दूतके हाथ अपनी प्रतिकृति भेज दी। रूसपतिने पूर्व प्रथानुसार उस चित्रके निकट अपना मस्तक न झुका कर मुगलदूतके सामने उसे पददलित किया। यह संवाद बहुत जल्द मुगलपतिके कानमें पहुंचा। उसी समय युद्धकी घोषणा कर दी गई। दोनों पक्षकी सेना युद्धक्षेत्रमें उतरी। इवान अपने सामने बड़ी भारी मुगलसेनाको देख घबड़ा गये। सम्मुख युद्धमें प्रवृत्त हो उन्होंने भाग जाना ही

अच्छा समझा। इधर मुगलसेना भी किसी दैवदुर्घटनासे डर कर पीछे हटी। इस प्रकार दोनों पक्ष बिना युद्ध किये अपने अपने घर लौटे।

राजधानी लौट कर इवान पुनः परराष्ट्र जीतनेकी तैयारी करने लगे। १४७२ ई०में उन्होंने प्रेर्मियाको फतह किया। १४८९ ई०में व्याटका और उसके कुछ वर्ष बाद उत्तरमें पेचोरा तक अपना अधिकार फैलाया। इसके बाद पोलण्डराज अलेक्सन्दरके साथ उनका युद्ध हुआ। इस युद्धमें जयलाभ कर इवानने देसना नदी तक विभिन्न भूभाग दखल कर लिया। पीछे दोनों राज्यमें सन्धि हुई। इवानने पोलण्डपतिके साथ अपनी कन्या हेलेनका ब्याह। शर्त यह रही कि रूसराज कन्याके धर्मकर्ममें पोलण्डपति किसी तरह हस्तक्षेप न कर सकेंगे। आखिर इसी सूत्रसे रूसपतिके साथ पोलण्डराजका युद्ध हुआ। कामके समय पोलण्डके सामन्तोंने पोलण्डपतिकी सहायता न की। वेद्रोसा युद्धमें पोलण्डराज अच्छी तरह परास्त हुए। जो हो, १५०१ ई०में इसल्कके समीप मित्सा रणक्षेत्रमें ट्युटनिक महासामन्त हर्मनसे परास्त हो रूसगण भाग गये थे।

पहले कहा जा चुका है, कि (१४७२ ई०में) पैलियो राजकन्या सोफियाके साथ इवानका विवाह हुआ। सोफियाके पिता थमस कनस्तान्तिन पालिओलोगसके भाई थे। कुस्तुन्तुनियाके पतनके बाद १४५३ ई०में थमस रोम भाग आये। रूसराजके साथ सम्बन्ध स्थापित हो जानेसे बहुसंख्यक ग्रीक बैजन्तीय आचार व्यवहार ले रूसराज्यमें उपस्थित हुए थे। वे अपने साथ बहुतसे ग्रीक धर्मग्रन्थ रूस राजधानी लाये थे। साथ साथ इटलीके कितने स्थपति भी आये थे। उनमेंसे बोलनके आरिस्टटल फियोराबेन्ती नाम तमाम प्रसिद्ध है। मास्को नगरके अनेक प्राचीर और महल उन्हींके बनाए हुए हैं।

इवानने केवल वैदेशिकोंको आदर कर बसाया था सो नहीं, उन्होंने जर्मन, डिनेमार्क, पोप आदि यूरोपीय राजन्यके साथ भी सम्बन्ध स्थापित किया था। १४९७ ई०में उन्होंने सुदेबनिक अर्थात् आइन-पुस्तकका प्रचार कर रूसराज्यमें शासन शृङ्खला स्थापन की थी। उनके जीते जी उनके बड़े लड़केका देहान्त हुआ। वे मृत्युकालमें अपने ज्येष्ठ पौत्रको राज्यभार न दे कर द्वितीय पुत्र वासिलको उत्तराधिकारी बना गये। वासिल इवानोविचने १५०५ से १५३३ ई०तक पितृप्रदर्शित पथानुसरण कर प्रबल प्रतापसे राज्य किया था। १५१० ई०में उन्होंने पस्कोफकी स्वाधीनता विलुप्त कर दी थी। साथ साथ उसके आसिकी साधारणतन्त्र सभाके लिये विलुप्त हुआ। इसके बाद रयाजान और नवगोरोदसेवर्स्क उनके शासनाधीन हुआ। इसके कुछ दिन बाद ही उन्होंने सिगिसमन्दको परास्त कर स्मोलेन्सक पर फिरसे अधिकार किया। किन्तु उनके दुर्भाग्यवशतः मुगलोंने रूसराज्य पर चढ़ाई कर दी। वे अपनी राजधानीकी रक्षा करनेके लिये मुगलका आनुगत्य स्वीकार करने और कर देनेको सम्मत हुए। जो कुछ हो मुगलोंके जानेके बाद वे बड़ी निपुणतासे राज्यशासन करने लगे। वैदेशिक राजाओंके साथ उन्होंने सन्धि कर ली। जर्मन-राजदूत हरबर्स्टाइन इस समयकी रूस राजसभाकी समृद्धि उज्ज्वल भाषामें वर्णन कर गये हैं।

इसके बाद रूस सिंहासन पर प्रबल प्रतापी इवान अभिषिक्त हुए। उस समयका रूस इतिहास नव्गोरोदमें लिखा है। ३य इवान वासिल और ४र्थ इवानने यथाक्रमसे १५३३ से १५८४ ई० तक शासन किया था। वासिल मृत्युकालमें अपनी दूसरी स्त्री हेलेन ग्लिनस्कीके हवालेमें इवान और युरी नामक अपने दो पुत्रको छोड़ गये। यह स्त्री राज्यशासनमें अपनी बुद्धिमत्ताका अच्छा परिचय दे गई है। कोई कोई कहते हैं, कि षड्यन्त्रकारीके विषप्रयोगसे १५३८ ई०में उस बुद्धिमती महिलाकी मृत्यु हुई। दोनों बालक राजकुमार शुइस्की और बेल्स्कि आदिके प्रधान राजपुरुषोंके पंजे पड़े। १५४३ ई०में तेरह वर्षकी उमरमें ही इवानने इन षड्यन्त्रियोंका प्रभाव क्षय करनेके लिये कुबेर शुइस्कीकी देहको टुकड़े टुकड़े करवा दिया। इस प्रकार स्वाधीनताका परिचय दे कर उन्होंने प्रजामात्रको विचलित किया था। १५४७ ई०में जारकी उपाधि पा कर उन्होंने राजमुकुट शिर पर धारण किया। इसके पहले और किसीने भी जारकी उपाधि नहीं पाई थी। लाटिन सीजर (Caesar) अर्थात् के जरी शब्द

अपभ्रंशसे जलन-भाषामें आर था नसार हुआ है। इसके बाद उन्होंने वीरमहिला अनास्तासिया रोमनोवस्का पाणिग्रहण किया। उसी साल मोस्को शहरमें भीषण अग्निकाण्ड हुआ था। जनसाधारणका विश्वास है, कि इवानके मातुलवंश गिलनास्त्रियों द्वारा ऐसा अनर्थ हुआ था। इसी विश्वास पर उन्होंने गिलनाख्कि-परिवारके एक प्रधान व्यक्तिको मार डाला था। इसके बाद रूसपति इवानने सिलभेष्टर और आलेस्किस आदासेफ नामक दो पुरोहितोंके परामर्श तथा अपनी मनोरमा पत्नीके मन्त्रणा गुणसे राज्यकी सुखसमृद्धिकी ओर ध्यान दिया। इस समय उनके यत्नसे अपने पितामह द्वारा प्रचारित सुदेवणिक नामक आईन पुस्तकका नूतन संस्करण और स्तोगलाफ अर्थात् शतअध्याय सम्वलित आईन पुस्तक प्रकाशित हुई। १५५२में वे काजान तथा दो वर्ष बाद अस्त्राखानके अधिपति हुए। मुगलराजशक्ति उस समय प्रायः चूर चूर हो गई थी। दक्षिण और पूर्वमें इस प्रकार विजयलाभसे उद्दीप्त हो उन्होंने पश्चिममें अपना अधिकार फैलाना चाहा। सुइडिस और ट्युटनिक सामन्तोंके साथ उनका युद्ध छिड़ गया। वैदेशिक सूत्रधरको लानेके लिये जर्मनीमें आदमी भेजे गये। किन्तु जर्मनोंके रोकने पर उन्होंने युद्धकी घोषणा कर दी। १५५८ ई०में रूसवाहिनीने लिवोनिया पर आक्रमण किया। बहुतसे नगर जीते गये। जर्मनशासनकर्त्ता पोलण्डराज सिजिसमन्द अगष्टसके साथ मिल गये। जब रूससेनादल विदेशमें इस प्रकार युद्धमें लिप्त थे, उसी समय रूसपति इवान सिलवेष्टर और आदासेफके कामोंसे विरक्त हो उन्हें निर्वासित किया। इस समय कुमार आनद्रु कुरवस्किने पोलोंके साथ युद्धमें परास्त हो राजाके भयसे पोलण्डमें जा कर आश्रय लिया। पोलण्डपतिने इस कारण रूसपतिको फटकार कर एक पत्र लिखा।

१५६४ ई०के दिसम्बर मासमें इवान मोस्को नगरके निकटवर्ती अलेकसन्द्रोवस्क ग्राममें कुछ अन्तरङ्ग मित्रके साथ जा रहने लगे। उनके खुशामदी टट्टुओंने सोचा, कि शायद राजा हम लोगोंको छोड़ कहीं चले गये। वे लोग जा कर बहुत अनुनय विनयसे राजाको राजधानी लौटा लाये। रूसपति लौटे सही, पर उन्होंने अपरिचनिक नामक कुछ शरीररक्षक नियुक्त किये। उनके द्वारा रूसपति प्रजाके ऊपर अत्यन्त अन्याय व्यवहार और अत्याचार करने लगे। इस समय मोस्कोके आर्चविशप फिलिपकी हत्या, उसकी भ्रातृवधू अलेकसन्द्राके प्राणदण्ड और नबोगोरदेनागरिकोंके ऊपर नृशंस आचरणसे रूस विचलित हो गया था। इसी समय उन्होंने मोस्को नगरमें मुद्रायन्त्र खोला।

इवानके शासनकालमें अंगरेजोंके साथ रूसका संस्रव हुआ। १३५३ ई०में इङ्गलैण्डपति चतुर्थ एडवर्डके शासनकालमें चीन और भारतवर्ष जानेका रास्ता निकालनेके लिये वीलोवीके तत्त्वावधानमें तीन जहाज भेजे गये। वीलोवी और उसके नाविकदलने तुषारके मध्य मानवलीला सम्बरण की। एकमात्र चानसेलर श्वेतसागर हो कर निरापदसे रूसराजसभामें उपस्थित हुए। इवानने उसका बड़ा सत्कार किया और रूसराज्यमें कोठी खोलने तथा वाणिज्य करनेका अधिकार दिया।

इसके बाद इवान ट्युटनिक सामन्तोंके साथ वाल्टिक प्रदेशमें अनवरत युद्ध करने लगे। उनके अत्याचारसे प्रदेश मनुष्यशून्य और नरपिशाचकी रङ्गभूमि हो गया था।

१५७१ ई०में क्रिमियासे मुगलोंने आ कर फिरसे रूसराज्य पर आक्रमण किया तथा मोस्को नगरमें आग लगा कर उसे छारखार कर डाला। १५७२ ई०में पोलण्डपति सिजिसमन्द अगष्टसकी मृत्यु हुई। उसके कोई वंशधर न रहनेके कारण उत्तराधिकार ले कर भारी गोलमाल खड़ा हुआ। इस समय इवान पोलण्डका अधिकारी होनेकी कोशिश करने लगे। आखिर ष्टेफेन वटोरी पोलण्डके राजपद पर निर्वाचित हुए। इवान उनके विरुद्ध खड़ा न हो सके। वे लिवोनियाकी आशा छोड़ चले आये। इसके बाद येरमाक नामक एक कसाकदस्युने साइबिरिया पर आक्रमण किया। रूसपति जब उसे दण्ड देने आगे बढ़े तब दस्युपतिने उसके पैरों पर गिर कर अपनी जयलब्ध सम्पत्ति छोड़ दी।

इवानने बहुतसे विवाह किये थे। सातवीं स्त्रीके मरने पर उनके मित्रने इङ्गलैण्डकी रानी इलिजाबेथकी समासे

पुनः किसी सुन्दरी महिलाके पाणिग्रहणकी इच्छा प्रकट की। तदनुसार रूसराजदूतके साथ बारन आफ हाष्टिङ्ग इनकी कन्या रूसराजधानीमें आ गई। रूसराज उस कन्याके सौन्दर्यसे विमुग्ध हो गये थे। उसके साथ रूस राजका विवाहका भी कुल ठीक ठाक हो गया था। किन्तु अंगरेज कन्याको जब रूसराजके पारिवारिक अत्याचारका संवाद मिला, तब वह विवाह करनेसे इनकार कर गई। १५६७ ई०में रूसपतिने मास्को से किन्सनके हाथ रानी एलिजाबेथके निकट एक गोपनीय लिपि भेजी। उस लिपिमें लिखा था, कि इङ्गलैण्ड और रूस आपसमें मिल कर शत्रुदमनमें नियुक्त रहेंगे। उक्त प्रतिलिपिसे अंगरेजोंके पहलेसे ही बहुत कुछ सुविधा हो गई थी। उन्हें रूसराज्यमें वाणिज्य करनेका अच्छा अवसर मिला था। किन्तु रूसके पक्षमें कोई विशेष सुविधा न हुई। प्रस्ताव स्थानमें इवानने एक दिन हठात् क्रुद्ध हो लाठीसे उनके बड़े लड़के पर आघात किया। उसी आघातसे उसकी मृत्यु हुई। क्रोध जब शान्त हुआ तब वे पुत्रशोकसे विह्वल हो गये। कुसंस्कार और षड्यन्त्रकारियोंके भयसे भय-भीत हो १५८४ ई०में वे इस लोकसे चल बसे।

इवानकी मृत्युके बाद उनके लड़के थियोडर २७ वर्षकी अवस्थामें सिंहासन पर बैठे। ये बड़े दुर्बल और कुछ [illegible] थे। उनका चित्त भी इतना कमजोर था कि वे गिरजा घरकी घंटाध्वनिकी गणनाको छोड़ और कोई आमोद प्रमोद नहीं कर सकते थे। अतएव राज्यकी शासनक्षमता बोरिस गडुनफ नामक उनके एक उच्चाभिलाषी सालेको हो गई। वे धर्मका बहाना कर बलवती राज्यशासनस्पृहाको प्रच्छन्न रखते थे। किन्तु शासनदक्षताके गुणसे वे सभाको वशीभूत कर सकते थे। बोरिसके सिंहासन लाभके पथमें दुर्बलचित्त थियोडर और उनका छोटा भाई दमित्रीको छोड़ और कोई कण्टक न था। दमित्री पहले कौशलक्रमसे माताके साथ मास्कोसे उगलिच नगरमें भेजे गये थे। बोरिसने यह घोषणा कर दी थी, कि दमित्री सिंहासनका बिलकुल अनधिकारी है। क्योंकि वह इवानकी सातवीं स्त्रीका लड़का है। कुछ दिन बाद १५९१ ई०की १५वीं मईको दमित्री उगलिच नगरमें गुप्त घातकके हाथ मारा गया। इसके आने पर उगलिचमें बड़ी सनसनी फैली। किन्तु बोरिसने निष्ठुर व्यवहारसे सबोंका शासन तथा बहुतोंको निर्वासित किया। १५९१ ई०में क्रिमियर खाँने मास्को नगर पर आक्रमण किया तथा लूट और नरहत्यासे देशवासियोंको तंग तंग कर डाला। अकर्मण्य सम्राट् थियोडर केवल घंटाध्वनिकी गणना कर समय बिताते थे। उन्होंने रूसको रक्षाके लिये युद्ध करेंगे।' बोरिस अपना पराक्रम दिखाने लगे। नगरके चारों ओर खाई खुदवा कर शत्रुओंके आक्रमणसे नगर रक्षाकी व्यवस्था की गई। मुगल लोग पराजित हुए और बहुतो की खूनखराबी हुई। बोरिसने नगर की रक्षाकी सही, पर सर्वसाधारणके अनुरागभाजन न हो सके। लोग कहने लगे, कि उन्होंने दमित्रीकी गुप्तहत्यारूप दुष्कर्मके कलङ्ककालिमाको ढकनेके लिये मुगलों को बुलाया था तथा उन्हें भगा कर फिरसे वे यशोलाभकी चेष्टा करते थे। बोरिसकी बहन थियोडरकी पत्नी रानी आइरिनने इस समय एक कन्या प्रसव की। कुछ दिन बाद ही उस कन्याकी मृत्यु हुई। कहते हैं, कि बोरिसने अपनी भाँजीको विष खिला कर मार डाला था। रानी एलिजावेथने उक्त कुमारीकी चिकित्साके लिये इङ्गलैण्डसे एक विज्ञ चिकित्सकको भेज दिया था।

बोरिस धीरे धीरे राज्यशासनको खूब मजबूत करने लगे। स्मोलेनस्क नगर सुरक्षित हुआ, आर्केञ्जल बनाया गया तथा मुगलोंका आक्रमण रोकनेके लिये राज्यसीमा सुदृढ़रूपसे रक्षित हुई। साइबेरियाके ग्रामोंको अपनाये गये तथा यूरोपीय शक्तिपुञ्जके साथ राजनीतिकी बातचीत चलने लगी।

इस समय अकर्मण्य सम्राट् थियोडरकी मृत्यु हुई। उनकी मृत्युसे स्कन्दनाभीय रूरिकवंशका विलोप हुआ।

१५९८ ई०में सर्वसाधारणके निर्वाचनसे गडुनफ बोरिस सिंहासन पर बैठे। वे अच्छी तरह जानते थे, कि उनके सिवा और कोई भी राज्य पानेके लायक नहीं है। इस कारण पहले उन्होंने सिंहासनग्रहणमें अनिच्छा दिखला कर एक मठमें वैराग्यका अवलम्बन किया। इस प्रकार ६ मास बीत गये। पीछे सर्वसाधारणकी प्रार्थनासे बोरिसने शासनभार ग्रहण किया।

भेजा। दोनोंमें घमसान लड़ाई छिड़ी। आर सेनाकी हो पराजयकी सम्भावना थी। केवल पाससमानोंकी चालता और रणकुशलतासे इस बार रूसपतिकी जीत हुई। इस कारण रूसराजने उन्हें राजधानी ला कर उच्च सम्मानसे भूषित किया।

१६०५ ई०की २१वीं जनवरीको डाबरा नामी रणक्षेत्रमें फिरसे युद्धमें दमित्री पराजित हुए। उनकी कुछ सेना तो बन्दी हुई और कुछ राजसेनाके हाथसे मारी गई। केवल कसाक पदातिकोंके कौशलसे दमित्रीने पोलण्ड भाग कर आत्मरक्षा की थी। वहां जा कर भी वे निश्चिन्त न थे। नाना कौशल और नाना प्रलोभन दिखा कर उन्होंने बोरिसके कुछ प्रधान सेनानायकोंको अपनी मुट्ठीमें कर लिया। विषप्रयोग द्वारा रूसपतिकी हत्या की गई किन्तु षड्यन्त्रकारियोंका कौशल व्यर्थ गया। इसके बाद दमित्रीने बोरिसको कहला भेजा, तुम मेरे राज्य पर जबरदस्ती अधिकार कर बैठे हो यदि अपनी भलाई चाहते हो तो सिंहासन छोड़ दो। इस समय बोरिसका समय भी पूरा हो चला था। १६०५ ई०की १३वीं अप्रिलको मन्त्रिसभाके रूसपति अन्तिम बार सिंहासन पर बैठे। इस दिन उन्होंने बहुतसे सम्भ्रान्त विदेशियोंका सादर स्वागत किया तथा उन्हें यथेष्ट भोजन कराया था। किन्तु अकस्मात उनके नाकसे खून गिरने लगा। थोड़े ही समयमें वे इस लोकसे चल बसे। बहुतोंका विश्वास है, कि शत्रुके कौशलसे रूसपति कालकवलमें पतित हुए थे।

बोरिस असाधारण कार्यकारिताके लिये विख्यात थे। पिटर (Peter) ने रूसमें जो संस्कार चलाया था, बोरिस ही उसकी नींव डाल गए थे। उन्होंने अठारह युवकोंको इङ्गलैण्डमें विज्ञानविभाग सिखानेके लिए भेजा था। ये रूसकी भूमि पर प्रजातन्त्र संस्थापन कर धर्म, विद्या और इतिहासका सामान्य बहुत कुछ उन्नतिके पथ पर लाये थे।

बोरिसकी मृत्युके बाद मास्कोनगरके उनके अमात्य व्यक्तिगण उनके १६ वर्षके लड़के थियोडरको सम्राट् कह कर स्वीकार किया। सुशिक्षित और अति बुद्धिमान् तरुण बालकको मदद पहुँचानेके लिए मास्को गए। बासमानफ सैन्याध्यक्षता ग्रहण करनेके लिये मोस्को भेजा गया, किन्तु थियोडरके पक्षमें सिंहासन सामन्तोंकी आशा धोखा जान कर उन्होंने अपना मत बदल दमित्रीको सम्राट् कह कर घोषित कर दिया। दमित्रीने कदमैस उससे राजधानीकी ओर कदम बढ़ाया। इधर थियोडरके लोग सैन्य ले कर क्रेमलिन दुर्गकी रक्षा करने लगे तथा उन्होंने उसी समय मोस्कोके निकट बसी धनशाली वणिकोंसे पूर्ण क्रेमनोसाको नामक एक नगर पर आक्रमण करनेका सङ्कल्प किया। यह कार्य सहजमें किया गया। नगरवासी वणिकोंने मोस्को नगर जा कर सबोंको सुनाया और कहा, कि हम लोग दमित्रीको ही सम्राट् मानें।

थियोडर और उनकी माता मार डाली गई। उनकी मृत देहको नगर प्राचीरके बाहर ला कर दफनाया गया। बोरिसकी लाश भी वहीं पर लाई गई। पेत्रियस नामक एक सुइडिश दूतने इन सब घटनाओंका सुन्दर विवरण लिपिबद्ध किया है। वे कहते हैं, इस प्रकार अफवाह फैली, कि थियोडर और उनकी माताने आत्महत्या की थी। किन्तु फांसीका चिह्न साफ साफ दिखाई देता था। किसी किसी लेखक तथा रूसके प्राचीन ऐतिहासिक कुछ सकता कहता है कि बोरिसकी लावण्यवती कन्या जेनिया इस्लाममें संन्यासिनी होनेके लिये बाध्य हुई थी। स्वेडिश दूत पेत्रियसने कहा है, कि वह बलपूर्वक विजेताकी अङ्कलक्ष्मी हुई थी। आखिर दमित्रीने जब देखा, कि सभी विघ्न बाधा दूर हो गए, तब १६०५ ई०की २०वीं जूनको राजधानीकी यात्रा कर दी। उनकी यात्रा जैसी आडम्बरपूर्ण समारोहसे हुई थी वह वर्णनातीत है। दमित्रीने पहले विदेशोंके साथ प्रजाओंके प्रति सद्व्यवहार किया था तथा उनके पिता इवानके नृशंस स्वभाव भी परित्याग करनेकी प्रतिज्ञा की थी। उन्होंने आग्रहपूर्वक अपनी माताको ग्रहण किया। माताने भी उन्हें यथार्थ दमित्री कह कर स्वीकार किया। किन्तु पीछे वे इस वचन इनकार कर गये थे। मालूम होता है, कि उन्होंने मठनिर्वासकी संन्यासिनीसे उद्धार पानेके आनन्दसे पुत्र स्वीकार किया था।

दमित्री अपने प्रच्छन्न रोमकधर्ममतके प्रति अनुराग दिखलाते थे, इस कारण प्रजा उनसे असंतुष्ट रहा करती थी। दूसरे वर्ष मनिसजेककी कन्या मेरिना (दमित्री-की पूर्वपरिणीता) मोस्को नगर पहुंची। १८वीं मईको उनकी उद्वाहक्रिया सम्पन्न हुई। प्रचुर फलाहार-का आयोजन हुआ।

किन्तु २६वीं मईको एक विद्रोह खड़ा हुआ। वासि लाई सुइस्कि—दमित्रीने जिसे प्राणदण्डसे बचाया था—इस विद्रोहके अधिनायक थे।

एक दिन रातको सैन्यका कोलाहल सुन कर जार-की नींद टूटी और उन्होंने उठ कर देखा, कि राजप्रासाद को विद्रोहीसेनाने घेर लिया है। यह देख कर वे ३० फुट ऊंचे स्थानसे जमीन पर कूद पड़े जिससे उनके दोनों पांव टूट गये। वासमानफ उनकी रक्षा करने आया और वह भी मारा गया। जाली दमित्रीकी लाश जलाई गई। बहुतेरे पोलण्डवासी निहत हुए। किन्तु मेरिना और उसकी सपत्नी वन्दिनी हुई। इस प्रकार रूसके इतिहासमें इस अद्भुत शासनविभ्राटकी यवनिका पतित हुई। जातीय ऐतिहासिक इस शासन-कालको विपज्जनक काल वर्णन कर गये हैं।

दमित्रीके मारे जानेके बाद बोइआरों (Boiars)-ने वासिलाई इवानोविच सुइस्किको सम्राट् बनाया। किन्तु अर्थ और बलके अभावसे बड़े कष्ट पाने लगा। आखिर एक घोषणापत्र इस प्रकार प्रचा-रित हुआ, कि दमित्री जीवित हैं। इन सब जनरवका मूलोच्छेद करनेके लिये उनका मत परिवर्त्तन कर उग-लिच नगरमें हतभाग्य राजपुत्रकी लाशके लिये आदमी भेजा गया। इसके बाद दूसरे दो व्यक्ति जो अपनेको दमित्री बतलाते थे, प्राणदण्डसे दण्डित हुए थे। रूस के इस दुर्दिनमें १६०६ ई०को पोलण्डवासियोंने रूस पर आक्रमण कर स्मोलेनेस्क नगरको घेर लिया।

सुइस्कि क्लुशिनो नामक स्थानमें परास्त और बन्दी हुए। विद्रोही सेनाने उन्हें मठमें संन्यासी होने-से बाध्य किया। आखिर वे सिजिसमन्दके हाथ सौंप दिये गये तथा वहीं आजीवन कारारुद्ध रह कर पञ्चत्व को प्राप्त हुए। रूसका राजमुकुट सिजिसमन्दके पुत्र लेडिस्लसको पहनाया गया। इन्होंने दो वर्ष रूसका शासन कर मोस्को नगरमें अपने नाम पर सिक्का चलाया। साम्राज्यकी दुरवस्थासे सभीको भविष्य अन्धकार दिखाई देने लगा। आखिर जितनी नवगोरोद-वासी मिनिम नामक एक कसाईने रूसका उद्धार किया। यह व्यक्ति स्वदेशवात्सल्यके साधुमन्त्रसे देशवासियोंको उत्तेजित कर राजकुमार पाञ्जरस्किके साथ मिल गया। राजकुमारने सैन्याध्यक्ष पद ग्रहण की। मिनिमके हाथ राज्यशासनका भार सौंपा गया। पराक्रमशाली राज-कुमारकी वीरता देख पोलण्डवासी रूसका परित्याग कर स्वदेश लौट जानेको बाध्य हुए।

१६१२ ई०में बैआरोंने एक दूसरा नया सम्राट् चुननेकी चेष्टा की। देशकी दुर्दशा दिनों दिन बढ़ती जाती थी। अग्निदाहसे मोस्को नगर खाक हो गया। केवल क्रेमलिन और दो एक पत्थरके मकान बच गये। पोलोंने खजानेको लूटा।

इस समय अलिरियस नामक १७वीं सदीके एक पर्यटकने रूसका हाल लिखा था। उन्होंने कहा है, कि अन्यान्य बहुमूल्य द्रव्योंके साथ साथ युनिकर्ण नामक एक बहुमूल्य हरिणका सींग जो मणिमुक्तासे जड़ा था, पोलगण चुरा ले गये थे। इसके लिये मोस्को-वासी सदा विलाप करते रहे थे। मष्टिस्लाविस्कि और पञ्जारस्कि दोनोंने रूसका शासन करना छोड़ दिया। आखिर माइकल रोमानफ नामक एक १६ वर्षका युवक सिंहासनप्रार्थी हुआ। उसके पिता फिलारेट अत्यन्त सद्गुणशाली धार्मिक व्यक्ति थे। रोमानफ मातृपक्षमें यूरकवंशके साथ सम्बद्ध था। आनष्टिसिया रोमा-नवा भीमकर्मा इवान (The Terrible)की पहली स्त्री थी।

युवक रोमानफने सिंहासन पर बैठनेसे पहले जन साधारणकी तुच्छ माग पूरी करनेकी प्रतिज्ञा की थी। देशकी अवस्था इस समय बड़ी ही सङ्कटापन्न हो रही थी। सुइडिस और पोलोंने राज्यका अधिकांश अधि-कार कर लिया था। कसाकगण ग्रामादिको लूट कर अधिवासियोंको तंग कर रहे थे। उधर सिजिसमन्द-के पुत्र लेडिस्लसने जारकी उपाधि भी नहीं छोड़ी थी।

१६१० ई०में वे एक दल सेना ले कर मोस्को नगरके द्वार पर आ कर डट गये। किन्तु पराजित हो १६१८ ई०की १ली दिसम्बरको सिंहासनका दावा छोड़ दिया और १४ वर्षके लिये संधि कर ली।

१६१७ ई०को ष्टकहोमके निकटवर्त्ती ष्टल्बोवो नामक स्थानमें एक दूसरी संधि हुई थी। इससे रूस गण राज्यका कुछ अंश सुइडिसोंको देनेके लिये बाध्य हुए। रोमानफके पिता फिलारेट पहलेसे ही पोलैं नगरमें कैद थे। अभी वे मुक्ति पा कर घर लौटे। वे १६१९ ई०में मोस्को आ कर 'पेट्रियार्क' या प्रधान धर्माध्यक्ष नियुक्त हुए। पितापुत्र आपसमें बलपुष्टि करने लगे। समस्त कामकाज पुत्रनामसे प्रचारित होने लगा। धर्माध्यक्ष या पेट्रियार्कके स्वतन्त्र धर्माधिकरण थे और वे सर्वदा सम्राट्के दाहिनी ओर बैठा करते थे। 'पीटर दी ग्रेट' या महानुभव पीटरके समय १७२१ ई०में यह पेट्रियार्क पद तोड़ दिया गया। वे रुडोल्फकी तरह अपनेको धर्मक्रिया और राज्यशासनका प्रधान नायक कहने लगे। माइकलका शासनकाल उतना घटनासंकुल नहीं था। फिर भी देशकी उन्नति और सैन्यके संस्कारमें उनका पूरा ध्यान था। विदेशवासी रूसमें आने जाने लगे। इस प्रकार रूसमें पाश्चात्य सभ्यताका द्वार खुल गया। सुइडेनके गष्टावस आडलफसने आपसमें मदद पहुंचानेके लिये रूसके साथ एक नई सन्धि कर ली। तदनुसार रूस राजसभामें एक सुशिक्षित गुल्मका आविर्भाव हुआ। कमान आदि बनानेके लिये लोहेके कारखानोंमें ओलन्दाज और अंगरेजशिल्पी नियुक्त हुए। ह्यूजेनटके वणिक् दल बांध कर रूस आये और वाणिज्य करने लगे। इधर सेना सैन्यदलकी पुष्टि करने लगी।

१६४५ ई०में आलेक्सस सिंहासन पर बैठे। उन्होंने सबसे पहले रूसके व्यवहारशास्त्रका सङ्कलन और संस्कार किया। उक्त आइन ३य और ४र्थ इवानके सगृहीत आईनके आधार पर निर्धारित हुआ। अनन्तर सम्राट्के आदेशानुसार शिक्षित धर्माध्यक्षों और विद्वानोंने आइनके परिवर्त्तन और परिवर्द्धनकी ओर ध्यान दिया। राजकुमार ओडोयेविस्की और ग्लेबोनिस्को इस कार्यके सम्पादक नियुक्त हुए। कई मासके कठिन परिश्रमसे उक्त पुस्तक समाप्त हुई। यह पुस्तक आज भी मोस्को नगरमें 'अरुमेनिया पालतो' के मध्य रखी हुई है। उपुः आलिफने बड़े अभिमानसे कहा है, कि इस आइनसे यूरोपमें सबसे पहले प्रत्येक व्यक्तिके स्वत्व और स्वाधीनताका साम्यवाद प्रचारित हुआ। इस उदार नीतिका अवलम्बन करके ही १८वीं सदीमें यूरोपके व्यवहारशास्त्र संस्कृत हुए थे। कहते हैं, कि आलेक्सिसने समस्त आवेदनकारियोंको स्वयं राजाके समीप आनेकी अनुमति दी थी।

आलेक्सिसके प्रिय वासस्थान कोलोमेनस्को नामक ग्राममें जहां वे सोते थे उसके बाहरके झरोखेमें लोहेका एक बकस लटका रहता था। नींद टूटने पर सम्राट् जब झरोखेके पास पहुंचे, उसी समय सभाप्रार्थी अपने आवेदनके साथ उपस्थित होते और उनका सम्मानपूर्वक अभिवादन कर बकसमें आवेदनपत्र डाल देते थे। पीछे सम्राट् उसका विचार करते थे। आक्रेन और कसाकोंका देश जीतना उनके शासनकालके मध्य एक सर्व प्रधान घटना है। एण्ड्रसोवो नामक स्थानकी सन्धिसे रूसको नीपरनदीके सीमान्तवर्त्ती देश अर्थात् स्मोलेन्स्क, चार्निगफ, किफ आदि स्थान मिले थे। १५६१ ई०में पोलण्डके साथ लुबलिनकी जो सन्धि हुई उसमें रूसके उक्त स्थान पोलोंको मिले। अभी रूसका उस पर कब्जा है। सिक्केका मान घटानेके लिये १६४८ ई०को मोस्को नगरमें एक विद्रोह खड़ा हुआ। फिर ष्टेङ्का रेजीन नामक एक कसाकने दूसरा विद्रोह खड़ा कर दिया। आपरकोर्ड प्रन्थकारने आसमोलियनसंग्रहमें इसका सुन्दर विवरण लिखा है। रेजिनने ३ वर्ष तक वल्गानदीके चारों ओरके प्रदेशोंका छारखार कर डाला। आलेक्सिसने इसे पकड़ कर भी छोड़ दिया किन्तु उन्होंने कारामुक्त होते ही फिरसे विद्रोह खड़ा कर दिया। "जनसाधारणके साम्य और स्वाधीनताकी संस्थापना करेंगे" इस प्रकार प्रलोभन दे कर उन्होंने दो लाख व्यक्तियोंको अपने दलमें मिला लिया। अष्ट्राखन सहरमें उनके हाथ लगा तथा वे निजनिनवागोरोद्स ले कर काजान तक अप्रतिहत भावमें शासन करने लगे। उनके अत्याचारसे रूसगण पीड़ित हो उठे। आखिर वे १६७१ ई०में

पकड़े और मारे गये। सम्राट् आलेक्सिस १६७६ ई०को ४८ वर्षकी अवस्थामें इसलोकसे चल बसे। आर्डिन नासचोकिन उनके राज्यके सर्व-प्रधान मन्त्री थे। उनके यत्नसे एण्ड्रसोवकी सन्धि मीमांसित हुई। आलेक्सिस उदार प्रकृतिके और सदाशय सम्राट् थे। उनके शासनकालमें रूस उन्नतिकी चरम सीमा तक पहुंच गया था। इसी समय से रूसका कई शताब्दियोंका सञ्चित अन्धकार दूर हुआ और यूरोपीय शक्तियोंमेंसे एक समझा जाने लगा। बोरिस गडुनफकी तरह आलेक्सिस रूसमें सब प्रकार की उन्नतिका सूत्रपात कर गये हैं।

आलेक्सिसकी मृत्युके बाद उनकी प्रथमा स्त्री मेरिया मिलोस्लाविस्कियाके गर्भजात ज्येष्ठ पुत्र श्य थिओडर सिंहासन पर बैठे। उन्होंने १६७६से ८२ ई० तक राज्य किया। उनका स्वास्थ्य उतना अच्छा नहीं था और उनके शासनकालमें कोई विशेष घटना नहीं घटी। इन्हीं के शासनकालमें न 'रोजरियाडनिगि' वा कौलीन्य संक्रान्त सभी ग्रंथ जला दिये गये। इस पुस्तकसे कुल मर्यादा और वंशगौरव ले कर राजसरकारमें अनेक गोलमाल खड़ा हुआ। कोई स्वभावकुलीन, कोई गौण वा भङ्गकुलीनके अधीन काम नहीं कर सकते थे। इस कारण राजकार्यमें बहुत अनिष्ट होता था। इसे दूर करनेके लिये थियोडरने घोषणा कर दी, कि राजसभामें सबोंके कुलग्रंथका विचार होगा। यह सुन कर सभी कुलज्ञ असली और नकली कुलग्रथ राजसरकारमें समर्पण किये। थिओडरने मंत्रिश्रेष्ठ वासिली गलिटजिन और धर्माध्यक्षोंकी सहायतासे कुलीनमण्डलीके सामने उस पर्वतके समान ऊंची ग्रंथराशिमें आग लगा दी। इस प्रकार कुल ग्रंथ जल कर खाक हो गये।

थिओडरकी मृत्युके बाद राज्यमें अराजकताका सूत्रपात हुआ। आलेक्सिसकी दो पत्नियोंमें बड़ी पत्नी मेरियाके थिओडर और इवान नामक दो पुत्र तथा कई एक कन्याएं तथा छोटी पत्नी नेटालियाके नारिस्किना, पीटर और नेटालिया नामक तीन संतान थे। सपत्नियों-के पृष्ठपोषकोंके हाथसे सारा राज्य तंग तंग आ गया। थियोडरका छोटा भाई इवान बड़ा दुर्बल था, इस कारण सबोंने पीटरको सिंहासन पर बैठाना चाहा। किंतु मेरियाकी कन्या सोफिया बहुत बुद्धिमती, कार्यकुशला और प्रगल्भा थी। उस समय रूसकी राजकुलललनाओं-की दुर्गतिकी सीमा न थी। क्योंकि राजपुत्रको छोड़ प्रजाके पुत्रके साथ उनका विवाह होना निषिद्ध था। इस कारण कितनी राजकुमारी आजीवन कुमारी रह जाती थी। सोफिया आलेक्सिसकी प्रियतमा कन्या थी। राज्यशासन करनेका उसे बड़ा शौक था। इस कारण दो एक सरदारोंकी सहायतासे उसने विद्रोह खड़ा कर दिया तथा विमाताके पक्षके कुछ लोगोंका काम तमाम किया। आखिर उसने विमाताके दो भाइयों-को पकड़ कर काट डाला। पीछे जनसाधारणकी चेष्टासे इवान और पीटर दो वैमात्रेय भाई एकत्र सम्राट् हुए तथा राजकुमारी सोफिया उनकी नाबालिगी तक राज-प्रतिनिधि और अभिभाविका हुई। सोफियाने वासिली गलिटजिनको प्रधान सेनाध्यक्ष बनाया। उसने फौरन क्रिमिया मुगलोंके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी। १६८६ ई०में पीटरने यूदुकिया लोपुखिना नामक कन्याका पाणिग्रहण किया। किंतु विवाहमें दाम्पत्यसुख जैसा होना चाहिये था वैसा न हुआ। इस स्त्रीसे पीटरके अलेक्सिस नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। पहला पुत्र सिर्फ छः मास जीता रहा। दूसरा भी दुर्भाग्यके लिये आगे चल कर रूसके इतिहासमें प्रसिद्ध हुआ था। सोफिया और गलिटजिनके उभाड़नेसे पुनः विद्रोह खड़ा हुआ। कोई कहते हैं, कि पीटरका प्राण लेना ही इस विद्रोहका उद्देश्य था। अन्तमें पीटरके पक्षके लोग प्रबल हो उठे। विद्रोहिगण निष्ठुरभावसे मारे गये और सोफिया सुसना नामक मठके भीतर सदाके लिये संन्यासिनी हो कर रही। वहां १५ वर्ष जीवित रह कर वह ४६ वर्षकी अवस्थामें परलोकको सिधारी। इस प्रकार १६८९ ई०से पीटर (The great) का शासनकाल आरम्भ हुआ। उनका छोटा भाई इवान दुर्बलचित्त और रोगी था, इस कारण शासनकार्यमें शामिल न हो सका। इवानने पीछे विवाह किया। आगे चल कर उनके तीन कन्या हुई। उनमेंसे एक कन्याका विषय परवर्त्ती कालके इतिहासमें स्मर-

चोव है। इधान निमृतमें जीवन यापन करके १६६६ ई०को ३० वर्षकी अवस्थामें इस लोकसे चल बसे।

स्थानाभावसे महानुभव पीटरका इतिहास संक्षेपमें लिखा जाता है। उन्होंने १६८७ १७२५ ई० तक अर्थात् ४६ वर्ष राज्य किया। पीटरने पहले ही देखा, कि रूसमें वाणिज्य व्यवसाय करने लायक सुन्दर बन्दर और जहाज नहीं है। श्वेतसागरका बन्दर बरफसे हमेशा ढका रहता है। इस अभावको दूर करनेके लिये वे दूसरी जगह बन्दर बनानेका आयोजन करने लगे। उन्होंने वेतन दे कर एक वैदेशिक फौज रखी और तुरुष्क पर आक्रमण कर डान नदीके मुहाना आजफसागरमें बन्दर खोलनेका संकल्प किया किन्तु आलब्राज इञ्जिनियर जाकमेनकी विश्वासघातकतामें पीटरका प्रथम आक्रमण व्यर्थ गया। अन्तमें १६६६ ई०को उनकी जीत हुई तथा उन्होंने विजयोल्लाससे मोस्को नगरमें प्रवेश किया। दूसरे वर्ष पीटर लेफर तथा सेनापति गर्डोविन और बसनिमजिनके साथ विदेशको निकले। उन्होंने कुछ समय हालण्डके एक वा पोताश्रय स्थानमें काम सीखा। पीछे वे इङ्गलैण्ड आ कर ३ मास रहे। इङ्गलैण्डसे लौटते समय वे प्रसिद्ध शिल्पी और इञ्जिनियरोंको अपने साथ लाये थे। उन्हीं शिल्पीके द्वारा वे रूसियोंको शिक्षित करने लगे। भिनिस जानेकी उनकी तैयारी हो रही थी, इसी समय उन्हें मालूम हुआ, कि राजधानीमें विद्रोह खड़ा हो गया है। किन्तु उनके आनेसे पहले ही गर्डन तथा अन्यान्य सेनापतियों द्वारा विद्रोह शान्त हो चुका था। पीटरके मोस्को पहुंचने पर वे बड़ी निष्ठुरतासे विद्रोहियोंको यमपुर भेजने लगे। १७०१ ई०में डान नदीके निकटवर्त्ती कसाकोंने तथा १७०८ ई०में मेजप्पा नामक स्थानके कसाकोंने १२वें चार्ल्सकी शरण ली तथा उनकी सहायतासे वे सबके सब बागी हो गये। पीटर १७०० ई०को नरभाकी लड़ाईमें १२वें चार्ल्ससे अच्छी तरह पराप्त हुए। इस कारण पीछे पीटरने युद्धकी बड़ी तय्यारी की। रूससेनापति सियरमेटे फ सुइडिससेनापति स्लिपेनबाखको हिरोनिया तथा एक और युद्धमें हराया। नेवा जीतना ही पीटरका उद्देश्य था। उनका यह उद्देश्य सिद्ध हुआ था। इस युद्धमें सेनाको बड़ी मुसीबत उठानी पड़ी थी।

१२वें चार्ल्सने अभी पोलण्ड जीतनेका संकल्प छोड़ कर रूस पर हमला बोल दिया। चार्ल्सने बड़े अभिमानसे कहा था "रूसके सम्राट् मस्कोतमें मेरे साथ संधि करेंगे अर्थात् पराजित होंगे।"

पीटरने उत्तरमें कहा "प्रिय भ्राता दिग्विजयी सिकन्दरकी तरह आचरण कर रहे हैं, किन्तु वे देखेंगे, कि मैं दरायुस नहीं हूं।"

लेसना नामक स्थानमें सुइडिस सेनाध्यक्ष लोवेनहाउसने रूससेनाके साथ भयङ्कर युद्ध किया। उस दिन उनकी विजय तो हुई, पर बहुतसी सेना युद्धक्षेत्रमें खेत रही। अनन्तर १५वीं जूनको पलटेवाकी लड़ाईमें भीषण युद्धका अभिनय हुआ। युद्धके बाद सुइडिसगण बुरी तरह पराप्त हुए। चार्ल्स अपनी रणनिपुणताके अभावसे ही पराप्त हुए थे।

इस युद्धजयके साथ साथ कसाकविद्रोहियोंकी स्वाधीनता सदाके लिये विलुप्त हो गई। उनकी साधारण शासनप्रथाको अन्तर्हित हुई। वे लोग अभी मेस्को सम्राट्के अधीन हुए।

१७१२ ई०में पीटरने मार्था स्काभरनस्का नामक एक कृषक कन्याका कथराइन नाम रख कर उससे विवाह किया। यह कृषक-कन्या १७०२ ई०में मेरियनबर्गके अवरोधकालमें बन्दिनी हुई थी। इसका पूर्ण वृत्तान्त बिलकुल अज्ञात था। कथराइन ग्रीक धर्ममतमें दीक्षित हुई। पीटरने पहले ही अपनी स्त्री युदोक्सियाको येमक धर्ममत और रक्षणशीलकी पृष्ठपोषकताके लिये छोड़ दिया था।

अभी पीटरका रूसकी श्रीवृद्धिकी ओर ध्यान दौड़ा। वे अन्यान्य यूरोपीय राज्योंके आदर्श पर रूसमें सभ्यता शीघ्र फैलाने लगे। उन्होंने पैट्रियार्कशिप वा धर्माध्यक्षताका पद उठा दिया तथा वे सम्भ्रान्त और कुलीन वंशीय भद्रपुरुषोंको शासन और सैन्यसम्बन्धकार्यमें नियुक्त करने लगे। पीछे उन्होंने व्यवसायजीवी वणिकोंको नाना विभागोंमें विभक्त किया। किन्तु कृषकोंका दासत्वभाव उस समय भी मौजूद था।

पीटरके समयमें ही रूसका कुलक्रमागत प्राच्यभाव दूर हो कर पाश्चात्य सभ्यताका प्रचार हुआ। इतने दिनों

तक रूसकी स्त्रियोंमें परदा प्रथा जारी था। पीटरके संस्कारसे स्त्रियां जो इतने दिनोंसे अंधकारमें पड़ी रही थीं, आज स्वाधीनताके आलोकमें पक्षीकी तरह आनन्दसे विचरण करने लगीं। पुरुष दाढ़ी मूंछ कटवा कर पाश्चात्य भावमें चलने लगे। यूरोपीय प्रथानुसार सैन्य-दलका संस्कार होने लगा। १२वें चार्लस जब तक वेन्दरमें निर्वासित रहे तब तक पीटरने ष्टासिस्लस लेसजिनस्किको पोलण्डसे निर्वासित किया तथा २य अगष्टस फिरसे वार्स में चले आये। पीछे पीटरने लिवोनिया और एस्थोनियाको अधिकार किया। पोलण्डके अन्तर्गत कोरलैण्ड नामक स्थानको राज्यभुक्त करनेके लिये उन्होंने बड़े कौशलसे वहांके ड्यूकके साथ अपनी भतीजी अर्थात् इवानकी कन्या अन्नाका विवाह कर दिया था। यही पीछे रूसकी सम्राज्ञी हुई थी।

इसके बाद पीटरने तुरुष्कके विरुद्ध अभियान किया, किन्तु इस अभियानमें अकृतकार्य हो वे आजफ तुरुष्कोंको लौटा देनेसे बाध्य हुए। यह संधि १७११ ई०को प्रुथ नामक स्थानमें हुई थी। कहते हैं, कि कथराइनकी बुद्धिमत्ता और कौशलसे पीटरकी इस यात्रामें जान बची थी। इसके बाद उन्होंने कथराइनको धर्मपत्नी तथा सम्राज्ञीरूपमें ग्रहण किया। १७१३ ई०में पीटरने सुइडिसोंको युद्धमें परास्त कर कुछ स्थान जीत लिये। १७१७ ई०में वे फिरसे देशभ्रमणको निकले और आखिर पेरिसनगर पहुंचे। इस बार कथराइन उनके साथ थी। राजा रानीका यह भ्रमणवृत्तान्त आश्चर्यजनक घटनासे पूर्ण था। १७२१ ई०में फिरसे सुइडेनके साथ पीटरकी संधि हुई। इस सन्धिमें उन्हें लिवोनिया, एस्थोनिया, फिनल और इंग्रिया आदि स्थान मिले। पीटरने १७०३ ई०से सेण्टपिटर्सवर्ग नामक राजधानी बनाना शुरू किया।

१७२२ ई०में वे नाव पर चढ़ वलगा नदीसे दक्षिणकी ओर गये और कई प्रदेश अधिकार कर बैठे। इसके पहले उनके प्रिय पुत्र अलेकसिसकी मृत्यु हो गई थी। १७२५ ई०की २८वीं जनवरीको महानुभव पीटरका देहांत हुआ। आप जैसे अद्भुतकर्मा सर्वगुणसम्पन्न संस्कारक सम्राट् रूसके सिंहासन पर और कोई नहीं बैठे थे।

पीटरकी मृत्युके बाद रूसमें दो दलका आविर्भाव हुआ। एक दल विधवाने रानी कथराइनको सिंहासन देना चाहा। दूसरे दलने अलेक्सिसके पुत्रको सम्राट् बनानेका सङ्कल्प किया। पीटरके प्रियपुत्र मेनसिकफ इस समय अत्यन्त क्षमताशाली हो उठे। वे पहले मोस्को नगरकी गली गलीमें रोटी बेचते थे। जो हो, उनके मन्त्रणाजालसे रूसमें पूर्ववर्त्ती संस्कृत प्रथापद्धति अक्षुण्ण रही। कथराइन राज्यशासनमें क्षमताशालिनी न थीं। अतएव उन्हें दूसरेकी सलाहसे चलना पड़ता था। १७२७ ई०में उनकी मृत्यु हुई। वे अलेक्सिसके पुत्र द्वितीय पीटर तथा उसके अभावमें हलष्टिनके ड्यूककी पहली स्त्री अन्नाको और एलिजावेथ तथा उनकी कन्याओंको सिंहासनकी उत्तराधिकारिणी बना गईं। राजप्रतिनिधित्व एक मंत्रणा सभा द्वारा परिचालित होने लगा। इस सभामें रूसराज श्रेणीका दो कन्या, हलष्टिनके ड्यूक मेनसिकफ तथा अन्य ८ सम्भ्रान्त व्यक्ति थे। यथार्थमें मेनसिकफ ही सर्वेसर्वा थे। उन्होंने अपनी कन्याको द्वितीय पीटरके साथ व्याहनेमें कथराइनसे सम्मति ली थी। किन्तु डलगरुकिसकी प्रधानतासे उनकी पूर्व क्षमता विलुप्त होने लगी। वे पहले अपनी जन्मभूमि भेजे गये, पीछे साइबिरियाके अन्तर्गत बेरेजफ नामक स्थानमें निर्वासित हुए। वहां १७२९ ई०में उनका देहान्त हुआ।

इस समय डलगरुकिसदलकी प्रधानता हुई। सम्राट् इस वंशकी नेटालियाके प्रेममें फंस गये तथा उसे यह पार आश्वासन दिया कि वे उससे अवश्य विवाह करेंगे। नये सम्राट् २य पीटरके कार्योंसे स्पष्ट मालूम होने लगा, कि वे शीघ्र ही पीटर दी ग्रेटकी संस्कारावलीका मूलोच्छेद करेंगे। तदनुसार सेण्टपिटर्सवर्गसे मोस्को नगरमें राजधानी उठा कर लाई गई। किन्तु १७३० ई०के जनवरी मासमें तरुण सम्राट्ने अकस्मात् वसन्तरोगसे प्राणत्याग किया। मृत्युके कुछ पहले वे अचिरमृता अपनी बहन नेटोलियाका नाम ले कर कहने लगे, "गाड़ी तैयार करो, मैं बहनके पास जाऊंगा।" इनके शासनकालमें कोई उल्लेखयोग्य घटना न घटी। केवल सकसेनी प्रदेशके मारिसने कोरलैण्ड

प्रदेश हस्तगत करनेकी इच्छासे कुरलैण्डकी जिसकी डचेस अन्नासे विवाह करनेका संकल्प किया था।

२य पीटरकी मृत्युके बाद सिंहासनके लिये कई प्रार्थी खड़े हो गये। किन्तु मन्त्री समाज अन्नाको ही सम्राज्ञी चुना। उन्होंने समझा, कि अन्ना सभी विषयोंमें उनकी सलाह ले कर चलेगी। इस कारण गुप्त मंत्री सभाके सदस्योंने अन्नाको निम्नलिखित शर्तों पर हस्ताक्षर करा लिया—

१ यह मन्त्रणा सभा तथा पदस्थ सम्भ्रांत व्यक्ति द्वारा संचालित होगी। (२) बिना इस सभाकी अनुमति लिये रानी युद्धघोषणा वा सन्धि नहीं कर सकेगी अथवा न कोई कर ही निर्धारण कर सकेगी। (३) कुलीन वा सम्भ्रांत सम्प्रदायके किसी व्यक्तिको वे बिना उपयुक्त विचारके हठात् प्राणदण्डसे दण्डित अथवा उनकी सम्पत्ति जब्त नहीं कर सकती। (४) वे सभाकी सम्मतिको छोड़ पतिनिर्वाचन अथवा उत्तराधिकारीका निर्णय नहीं कर सकेंगी। इन सब नियमोंका उल्लंघन करनेसे वे सिंहासन परसे उतार दी जायेंगी। इन सब शर्तोंको मंजूर कर अन्ना मोस्को आई। उन्हें यह जाननेमें देर न लगी कि उक्त मंत्रणा सभाके हाथमें कठपुतली बन कर वे जनसाधारणकी अप्रियभाजन हो गई हैं। यथार्थमें वे सब सम्भ्रांत लोगोंके अधीन हो गई थीं। इसके बाद उन्होंने अपने पृष्ठपोषकोंको बुलाया और सबके सामने पूर्वोक्त प्रतिज्ञापत्रको फाड़ डाला। इस प्रकार मन्त्रणासभाकी नींव उखाड़ी गई। अन्नाने अभी जर्मन-देशीय एक मन्त्रणाकी सलाहसे परिचालित हो पूर्व शत्रुओंके प्रति बदला लेनेका संकल्प किया। इसमें फिर गुप्तचरका समय उपस्थित हुआ। जर्मनों द्वारा दया लूटा जाने लगा। बहुतेरे रूस भद्रपुरुष मारे गये और साइबेरियामें निर्वासित हुए। प्रधान मंत्री भलनस्कीको १७४० ई०में प्राणदण्डकी सजा दी गई। बाइरेनके कोपसे ही उनका अधःपतन हुआ।

इस समय पोलैण्डका सिंहासन खाली होनेसे स्तानिस्लासको वहाँ प्रतिष्ठित करनेकी चेष्टा हो रही थी। किन्तु रूसगण उनके विरुद्ध खड़े हो गये जिससे उनकी चेष्टा फलवती होने न पाई। वे बड़े कष्टसे डानजिगसे भाग सके। यह ले कर तुरुष्कके साथ रूसका एक युद्ध हुआ। यह युद्ध (१७३५-३९ ई०) चार वर्ष तक चलता रहा था। इस युद्धमें अष्ट्रियावासी रूसके विरुद्ध खड़े थे। रूससेनापतिने इस युद्धमें कई नगरोंको जीता। अन्तमें अष्ट्रियोंके साथ तुरुष्कोंकी बेलग्रेड नगरमें सन्धि स्थापित हुई। उसी सन्धिके अनुसार १७३९ ई०में इस युद्धका अवसान हुआ। १७४० ई०में रानी अन्नाकी मृत्यु हुई। उन्होंने अपनी बहनके पौत्र अर्थात् मेक्लेनबर्गके डचेस कथराइनके पुत्र इवानको उत्तराधिकारी बनाया। नाबालिगी तक बाइरेनने शासनकार्य चलाया। थोड़े ही दिनोंके मध्य बाइरेनका अधिकार छीन लिया गया और वे साइबेरियामें निर्वासित हुए। किन्तु इस पर शांति स्थापित न हुई। जर्मनोंका कर्तृत्व अप्रिय कर समझ एक दलने पीटर दी ग्रेटकी कन्या एलिजाबेथको सिंहासन पर बिठाना चाहा। एलिजाबेथने सेनाको खुश करनेके लिये उन्हें तरह तरहकी सुविधा दी। उन सेनाओंकी सहायतासे एलिजाबेथने एक ही रात भरमें दूसरे दलके सभी व्यक्तियोंको कैद कर लिया। अन्ना, उनका स्वामी तथा भावी बालक सम्राट् सबके सब कारारुद्ध हुए। एलिजाबेथ सिंहासन पर बैठी। ६ठे इवान श्लुसेलबर्गके कारागारमें बन्दी हुए। अन्ना पतिपुत्रके साथ निर्वासित हुईं। यहीं पर १७४६ ई०को उनका देहान्त हुआ।

बाइरेनका निर्वासनसे पुनः रूस आनेका हुक्म हुआ। एलिजाबेथने पेट्रोभना (१७४१-१७६२ ई०) जर्मन प्रभुत्वका परित्याग कर सभी रूस मन्त्रियोंको नियोग किया। सिंहासन पर बैठते ही एलिजाबेथने अपने भांजे हलस्टिनके ड्यूकको बुलाया। उन्होंने पीटर थियोडोरोविच नामसे ग्रीकधर्मका आश्रय लिया था। वे प्रधान धर्ममतमें दीक्षित हुए थे। १७४४ ई०में उन्होंने राजकुमारी सोफियासे ब्याह किया। सोफियाने दीक्षाकालमें अपना नाम कथराइन रखा। १७४३ ई०में रूसीने स्वीडेनको युद्धमें परास्त किया। इसमें उन्हें फिनलैण्ड देशका किमेन नदीके तटवर्ती सभी भूभाग हाथ लगे थे। इसके बाद रूसके साथ प्रशियाके फ्रेडरिक दी ग्रेटका युद्ध छिड़ा। (१७५६-६२ ई०)। १७५७

ई०में आप्राकसिनने ८५००० रूससेना ले कर रूसके सीमान्तको पार कर प्रूसियाके पूर्वभाग पर अधिकार जमाया तथा ग्रासजागेसडर्फ नामक स्थानमें लेवाल्डको परास्त किया। रूस-सेनापति जयलाभ सुलभ हुए अत्याचारादि न कर वहांसे लौटे। किन्तु १७५८ ई०में रूस सेनापति फामर जर्नडर्फ नामक स्थानमें फ्रेडरिक द्वारा अच्छी तरह परास्त हुए थे। किन्तु दूसरे वर्ष १७५९ ई०को रूस सेनापति सालिटकफने पाल्टजिन नामक स्थानमें प्रूसियोंको हराया। इस युद्धमें उनका ८०६० सेना और १७२ कमान नष्ट हुई थी। फ्रेडरिकने युद्धमें परास्त हो आत्महत्या करनेका संकल्प किया। १७६० ई०में रूस गण वार्लिन नगरमें घुसे तथा बहुसंख्यक नरहत्या और लूटमारका अभिनय करने लगे। फ्रेडरिकने यह देख दुःखके साथ कहा था, "वर्वर रूस हम लोगों पर कैसा भीषण अत्याचार कर रहे हैं। दया तो उन्हें छू तक भी न गई है।" दूसरे वर्ष रूसोंने पमारेनिया पर अधिकार किया। फ्रडरिक विनष्टप्राय हो गये, किन्तु १७६१ ई०में एलिजा-वेथकी मृत्यु होनेसे फ्रेडरिकका बोझ कुछ हलका हुआ। एलिजावेथ कुसंस्काराच्छन्न और आलसी थी। उसका नैतिक चरित्र अच्छा न था। वे प्रिय पात्रों द्वारा हमेशा चालित होती थी। पीटरकी मृत्युके बादसे एक भी उप युक्त सम्राट् रूसके सिंहासन पर न बैठा। किन्तु एलि जावेथके शासनकालमें रूस धीरे धीरे उन्नति कर रहा था। १७५५ ई०में इवान सुवालफके यत्नसे रूसका प्राचीन-तम विश्वविद्यालय मोस्कोमें प्रतिष्ठित हुआ। इस समय भाषा और साहित्यकी अच्छी उन्नति हुई थी।

एलिजावेथकी मृत्युके बाद उनके भतीजे हलष्टिन गटार्प ३य पीटर उत्तराधिकारी ठहराये गये। जनताको पहले संदेह हुआ था, कि वे कहीं जर्मनोंके प्रति सहानु-भूति न दिखलायें। किन्तु उनकी कार्यावलीने जनसाधा रणको खुश कर दिया था। पीछे जर्मनोंके प्रति वे अनुराग दिखाने लगे। आखिर १७६२ ई०में उन्होंने एक घोषणा-पत्र निकाला कि कुलीनोंको राजकार्यमें प्रवेश करनेसे बाध्य न किये जायगे तथा अभीसे गुप्त मन्त्रणा-सभा होने न पायेगी। ये प्रचलित धर्ममतका परित्याग कर लूथरके सस्कारमें पक्षपातिता दिखाने लगे। ३य पीटरका आचार व्यवहार बड़ा ही खराब था। वे सर्वदा शराबके नशेमें चूर रहते थे। और क्या, उन्होंने अनेक प्रतिभाशाली फरासीसियोंको देशसे मार भगाया था। इन्हीं फरासीसियोंसे रूसकी उन्नति होती जा रही थी। २य फ्रेडरिक जो रूससे हार खा कर म्रियमाण हो रहे थे, अभी रूसकी राजनीतिके प्रवर्त्तनसे बड़े आनन्द हुए। पीटर प्रूसीय सम्राट्‌के एक स्तावक थे। फ्रेडरिक पूर्व-प्रूसिया दे कर भी रूसके साथ सन्धि करनेको प्रस्तुत थे। किन्तु पीटरने उस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। प्रूसियाने हतराज्यको लौटा कर फ्रेडरिकके साथ सन्धि कर ली। वे अपनी स्त्री कथराइनके साथ आनन्दपूर्वक नहीं रहते थे। अन्तमें उन्होंने कथराइनको छोड़ दिया और संकल्प किया, कि जीवन भर उसे संन्यासिनी कर गिरजामें रखेंगे। किन्तु रानी कथराइनने स्थिर चित्तसे भविष्यकी अपेक्षा की थी। आखिर वह एक षडयन्त्रमें शामिल हुई और पेटरहफ नामक स्थानका आवास-भवन परित्याग कर २०००० आदमियोंकी अधिनायिका हुई। हतभाग्य राजाने रानीका युद्धोद्योग देख कर बिना सोचे विचारे राज्य और सिंहासन छोड़ दिया। किन्तु वे शीघ्र ही सेण्टपिटर्सवर्गके निकटवर्त्ती स्थानमें गुप्तभावसे मारे गये। राजकुमारी योमकाफने इस घटनाका हृदयग्राही विवरण लिखा था। उनके मुखसे सुन कर मिसेस डब्ल्यु ब्राडफोर्ड नामक एक अंगरेज महिलाने १८४० ई०में वह कहानी प्रकाशित की है।

पूर्वोक्त प्रकारसे एक जर्मन-महिला बड़े कौशलसे रूसोंके कुसंस्कारके प्रति पक्षपातिता दिखा कर विस्तीर्ण रूस-साम्राज्यकी अद्वितीय अधीश्वरी हुई। दो वर्ष बाद कारारुद्ध ६ठे इवान रक्षिवर्गके द्वारा मारे गये।

इस समय सप्तवर्षव्यापी युद्धका अवसान हुआ तथा यूरोपीय शक्तियां पोलण्डविभागमें बड़ा गोलमाल करने लगीं। १७६७ ई० फरासीसियोंके उकसानेसे तुरुष्कोंने रूसके विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी। पोलण्डके साथ रूस-का सम्बन्ध अलग करना ही इस युद्धका उद्देश था।

रूस सेनाध्यक्ष गलिटजिनने प्रधान वजीर पर धावा बोल दिया तथा १७६९ ई०में खोटिन नगर पर कब्जा किया। दूसरे वर्ष रुमाण्टजफने क्रिमिया खाँ और तुरु-

भरके सहयोगियोंको परास्त किया। १७७० ई०को काग्युल नामक स्थानमें जो युद्ध हुआ उसमें भी उनकी जीत हुई। १७७१ ई०में डालगरूकीने क्रिमिया दखल किया तथा आलेक्सिस अर्लफने जलयुद्धमें एशियामाइनर के निकट तुरुष्कोंको हराया। इस जलयुद्धमें रूसी सेना को अंगरेज कर्मचारियोंसे काफी मदद मिली थी।

१७७४ ई०में कुचुक-केनार्जी नामक स्थानमें सन्धिपत्र मंजूर किया गया। तुर्कोंके सुलतानने क्रिमियाके मुगलोंकी स्वाधीनता स्वीकार की। सुलतानने रूसको क्रिमिया प्रदेश प्रदान किया। क्रिमिया कुछ दिन बाद रूस साम्राज्यमें मिला लिया गया। इसके सिवा सुलतानने डाननदीके मुहाने पर आजफ और नीपर नदीके मुहाने पर किनबर्न नामक बन्दर और पोडोलिया तथा क्रिमियाके अन्तर्गत समस्त सुरक्षित दुर्ग रूसको प्रदान किया। १७७१ ई०में मोस्को नगरमें प्लेगका प्रादुर्भाव हुआ जिससे हजारों मनुष्य करालकालके गालमें पतित हुए।

आर्कविशप अम्ब्रोस जनसाधारणके स्वास्थ्यकी उन्नतिके लिए मरी समाने की बात कहनेके लिये खड़े हुए। इसी समय उत्तेजित जनताने उनका काम तमाम किया। पुगाचेफ नामक एक कसाकने फौरन एक विद्रोह खड़ा कर दिया तथा अपनेको तृतीय पीटर घोषित किया। बहुतसे लोग उसके दलमें मिल गये। क्रिमियाके मुगल भी इस विद्रोहमें शामिल थे।

पर कथरायनने विद्रोहदमनके लिये जो सब सेनापति भेजे थे, वे सबके सब परास्त हुए। विद्रोहियोंने रक्तपात और लूटमारसे महाविभीषिका आरम्भ कर दी। पुगाचेफने कजान आदि नगर भी अधिकार किये। यद्यपि वह बड़ी बुद्धिमत्तासे कार्य किये होते, तो कथरायनको सिंहासन मिलना दुश्वार होता। किन्तु उसके निष्ठुर आचरणने दलके सहयोगियोंको विरक्त कर दिया। आखिर यह विविकफ द्वारा पराजित हुआ और हुवारफ नामक स्थानमें पकड़ा गया। यह लोहेके पिंजड़ेमें बन्द हो कर मोस्को लाया और मार डाला गया। इसके सिपाही भी प्राणदण्डसे दण्डित हुए। इस प्रकार कथरायनके अधस्त कसाकोंका साधारणतन्त्र लोप हो गया। उसके समय व्यवहारशास्त्र संकुचित और विधिबद्ध हुआ। इसे सभी लोग रूसके आईन संग्रहका छठा समय कहते हैं। किन्तु इस आईन संग्रहसे भी कृषकदास और दरिद्रोंका कोई विशेष उपकार नहीं हुआ। १७६७ ई०में एक घोषणापत्रमें प्रचारित हुआ कि वे अपने मालिकके विरुद्ध किसी अन्याय और अविचारकी नालिश नहीं कर सकते थे। मालिक अपने इच्छानुसार उन्हें साइबेरियामें निर्वासित अथवा यथेच्छा व्यवहार कर सकते थे। बाजारमें गुलामोंका खरीदना बेचना जोरोंसे जारी था।

विचार-कार्यकी सुविधाके लिये प्रत्येक प्रदेशमें नाना उपविभाग या जिलेकी सृष्टि हुई। कथरायनने पादरियोंको निष्कर भूमि दी तथा दासदासियोंका वेतन उनके कार्यानुसार स्थिर कर दिया। १७८३ ई०में क्रिमिया रूसके दखलमें आया। १७८७ ई०में तुरुष्क के युद्धका फिरसे सूत्रपात हुआ। ओटोमन सुलतानके युद्धोद्योगका यथेष्ट कारण था। रानी कथराइन जब दक्षिण रूसमें भ्रमणको निकलीं तथा सम्राट् २य जोसेफसे मिलीं, उस समय सुलतानको बहुत सन्देह हो गया था। स्वीडेनने भी सुयोग पा कर अपना हृतराज्य पुनः पानेकी आशासे रूसके विरुद्ध युद्धकी घोषणा की। किन्तु २य गस्टावस युद्ध चलानेमें असमर्थ हो कर भेरेला नामक स्थानमें पहलेकी तरह सन्धि कर ली। तुर्कोंके साथ युद्धमें भी कथराइनने जयलाभ किया। सेनापतिने पोटेमकिन और आजफ तथा सुवारफने ओचकिन अधिकार किया। १७८९ ई०में सेनापतिने फक्सानी और रिमनिक नामक स्थानके युद्धमें जयलाभ किया तथा १७९० ई०के एक भीषण युद्धमें इसमाइलको कब्जे किया। १७९२ ई०की जसीकी सन्धिसे कथराइन और आजफको ग्राम और निपर नदीके मध्यवर्ती उपकूल भाग मिला।

कुछ समय बाद कथराइनने फिरसे पोलैण्डके व्यापार में अपना हाथ बढ़ाया। टारगोविका नामक सहयोगियोंके पक्षपातको रक्षा करनेके लिये कथराइनने ८०००० रूसी सेना और २०००० कसाक सेना पोलैण्ड भेजा। १७९४ ई०में सुवारफने प्राग दुर्गका अधिकार

कर अधिवासियोंको मार डाला। दूसरे वर्ष ष्टानिस्लस-ने अपना राजमुकुट उतार दिया तथा पोलण्डमें तृतीय विभाग उपस्थित हुआ। पोलण्डका स्वाधीनता बिलकुल टूट गया। पोलगण सटेयर, डाइडारो आदि फरासी विप्लवकारियोंकी सहानुभूति पा कर भी स्वाधीनताकी रक्षा न कर सके। कथराइन फरासी विप्लवकी घोर विरोधिनी थीं। १७९६ ई०की १७वीं नवम्बरको हठात् उनकी मृत्यु हुई। वैदेशिक लेखकोंने उनके चरित्रकी यथेच्छ समालोचना की है। उनका नैतिक चरित्र चाहे जो महानुभव पीटरके बाद उनके समान प्रतिमा-शालिनी उपयुक्त सम्राज्ञी रूसके सिंहासन पर और कोई नहीं बैठा। आज भी कथराइनकी स्मृति रूसमें गाई जाती है।

पाल माताके जीते जी प्रायः निर्जनमें वास करते थे, इस कारण माता उन्हें घृणाकी दृष्टिसे देखती थी। कहते हैं, कि कथराइनने एक विल द्वारा पालको उत्तराधिकारी होनेसे वञ्चित किया था। उक्त विल पर हस्ताक्षर भी हो चुका था। किन्तु पालके मित्र कुरफिनने कथराइनकी मृत्यु होते ही विलको ले कर फाड़ डाला था। पालकी शासन कहानी बहुत संक्षेपमें लिखी जाती है। पालने तुरुष्कके साथ मित्रतास्थापन करके फरासी-विप्लवके विरुद्ध चलनेका सङ्कल्प किया।

भेरोनाके युद्धक्षेत्रमें सुवारफ रूस और अष्ट्रीय-सैन्यके सेनाध्यक्ष हुए। १७९९ ई०में उन्होंने फरासी सेनानायक मोरोको अड्डा नदीके किनारे हराया और जयोल्लाससे मिलानमें प्रवेश किया। इसके बाद उन्होंने मैकडोनाल्डके साथ ट्रेबियाके युद्धमें तथा उसी साल नोभि नामक स्थानमें जुवार्टके साथ जो युद्ध हुआ उसमें विजयपताका फहराई। पीछे वे फरासियोंको स्वीजरलैण्डसे मार भगानेके अभिप्रायसे आल्पस पर्वत पार कर गये। किन्तु अस्ट्रिया सेनाने उन्हें रोका जिससे उनकी महती क्षति हुई। आखिर वे विफल मनोरथ हो स्वदेश लौटे।

अभी पालकी राजनीति बिलकुल बदल गई इङ्गलैण्ड और अस्ट्रियाकी प्रतारणा समझ कर उन्होंने बोनापार्टकी शरण ली तदनुसार बोनापार्टने भी पालको अपने दलमें मिला लिया तथा समस्त रूस-बन्दियोंको कारामुक्त कर उन्हें नई पोशाक तथा अस्त्रशस्त्रमें सज्जित कर पालके निकट भेजा। इसके बाद भारतवर्ष पर आक्रमण करनेके लिये कोशिश करने लगे। किन्तु १८०१ ई०की २३वीं मार्चको पाल गुप्तघातकोंसे मार डाले गये। ष्टीटाजुरफ, वेनिंसेन और पहुलेन ये तीनों ही इस शोचनीय घटनाके मूल थे। पालने धीरे धीरे राजकोषको खाली कर दिया था।

पालकी मृत्युके बाद उनके बड़े लड़के १म अलेकसन्दर १८०१ ई०में सिंहासन पर बैठे। ये १८२५ ई० तक रूसके सम्राट् थे। सिंहासन पर बैठते ही उन्होंने इङ्गलैण्ड और फ्रान्ससे सन्धि कर ली। किन्तु राजनीतिका शीघ्र ही परिवर्त्तन कर लिया। १८०५ ई०में वे फ्रान्सके विरुद्ध अष्ट्रिया और इङ्गलैण्डसे जा मिले। पहले २री दिसम्बरको अष्टरलिटज नामक स्थानमें भीषण युद्ध हुआ। इस युद्धमें रूसकी २१००० सेना, १३३ कमान और ३० पताका नष्ट हुईं। रूसोंका कहना है, कि अष्ट्रियसहयोगियोंको विश्वासघातकतासे उनका ऐसा अनिष्ट हुआ था। जो कुछ हो, प्रेसबर्गकी सन्धिसे दोनों युद्धका अवसान हुआ। पीछे १८०७ ई०में फ्रान्सके साथ चौथी बार मुठभेड़ हुई। १८०७ ई०में नेपोलियनने रूससेनापति वेनिंसेनको आइलो नामक स्थानमें युद्धमें नियुक्त किया। घमसान लड़ाई छिड़ी, किन्तु किसी पक्षकी जीत हार नहीं हुई। आखिर टिलसिटकी सन्धिसे फिनलैण्ड युद्धका अवसान हुआ। इस सन्धिमें प्रूसियाके सम्राट् फ्रेडरिक ३य विलियम अपना आधा राज्य खो बैठे। पोलैण्डमें उनके अधिकृत जो सब स्थान थे, वे सकसेनी राजाके हाथ लगे। यूरोपीय शक्तियां सोचने लगीं, कि नेपोलियन और अलेकसन्दरने यूरोपको आपसमें बांट लेनेका विचार किया है। अलेकसन्दरके शासनकालमें फिनलैण्ड-विजय एक प्रसिद्ध घटना हुई। १८०९ ई०की १७वीं सितम्बरको फ्रेडरिकने स्याम नामक स्थानकी सन्धिमें स्वीडेन पूर्व बोथनियाके साथ फिनलैण्ड रूसको प्रदान किया। किन्तु फिनोंने एक तरहसे स्वायत्तशासन पा लिया। जर्जिया पहले ही

रुस साम्राज्यभुक्त हो चुका था। यह ले कर पारस्यके साथ रुसका युद्ध खड़ा हो गया। किन्तु इस युद्धमें रुसको विरपाप प्रदेश हाथ लगा।

१८०६ ई०में नेपोलियनके विरुद्ध ५म सङ्घर्ष हुआ। सन्धिपत्रके अनुसार अलेकसन्दर नेपोलियनको सहायता करनेके लिये बाध्य थे। अलेकसन्दरने पहले युद्ध रोकनेकी बड़ी कोशिश की थी, किन्तु तुरुष्कके साथ विवाद हो जानेसे मिओलो नामक सेनापतिके अधीन एक दल रुससेनाने तुरुष्क पर आक्रमण कर दिया। १८१२ ई०में बुखारेष्ट नगरकी कांग्रेस द्वारा इस युद्धका अवसान हुआ। रुसने पूर्वाधिकृत मलडेभिया और वालाखियाको छोड़ दिया। केवल बेसरेबिया उसके अधिकारमें रहा। आखिर रुस और फ्रान्समें मनमुटाव हो गया। रुसको फ्रान्ससे मेल करनेमें बड़ी नुकसान उठानी पड़ी थी इस कारण उसने फ्रान्सका पक्ष छोड़ दिया। नेपोलियन भी रुस पर चढ़ाई करनेका आयोजन करने लगे। (१८१२ ई०)

१८१२ ई०की ६ठी मईको नेपोलियनने परिस नगरीसे ड्रेसडेनकी यात्रा की। वहां उन्होंने ६७८००० सेना का संग्रह किया। उनमेंसे ३५५००० फरासीसी सेना थी। इनका मुकाबला करनेके लिये रुसगण २३२००० सेना ले कर तैयार हो गये। नेपोलियन बड़ी तेजीसे नीमर नदी पार कर स्मोलेनस्क पहुंचे। युद्धमें रुससेना पराजित हुई। इसके बाद बोरोदिनो नामक स्थानके भयङ्कर युद्धमें रुससेना फिरसे परास्त हुई। नेपोलियन मोस्कोकी ओर चल दिये। नगरवासियोंने पहले ही मोस्को छोड़ दिया था। मोस्कोके नगरमें घुसते ही नगराध्यक्ष रोष्टपशिनने नगरमें आग लगा दी। पांच दिन तक आग जलती रही। मोस्कोका अधिकांश जल कर खाक हो गया। नेपोलियन कि कर्तव्यविमूढ़ हो सन्धिकी अपेक्षा करने लगे। उन्होंने समझा था, कि अलेकसन्दर सहज ही सन्धि प्रस्ताव पर सहमत होंगे तथा वे भी अपने मानसम्भ्रमकी रक्षा करते हुए स्वदेश लौटेंगे। किन्तु फरासीसी नेपोलियन रुसीकी कूटबुद्धि पर चकनाचूर हो गये। आखिर १८वीं अक्तूबरको नेपोलियन भग्नहृदय हुए मास्को छोड़ चले। इस समय जाड़ा जोरों पड़ता था। फरासीसेनाने पहले ही राहमेंके ग्राम और बाजार आदिको विध्वस्त कर डाला था। अतएव नेपोलियनको क्रमागत तुषाराच्छन्न और जनशून्य ग्राम नगर हो कर लौटना पड़ा। कहीं भी खाने पीनेकी चीज न मिली। अरण्यप्रदेशमें छिपी हुई रुसी सेना फरासी सेना पर टूट पड़ी। इस प्रकार भूख और शीतके प्रकोप से नेपोलियनकी हजारों सेना रोज मरने लगी। आखिर फरासीगण २६वीं नवम्बरको बेरेसिना नदीके किनारे पहुंचे। नदी पार करनेमें भी बहुतसी सेना यमपुरको सिधारी। इस नदीके किनारेका युद्धके समान भयङ्कर चित्र इतिहासमें प्रायः देखा नहीं जाता। स्मर्गोनी नामक स्थानमें नेपोलियन अपनी सेनाका परित्याग कर पेरिस जानेको बाध्य हुए। आखिर उस ६ लाख विशालसेनामेंसे केवल ८०००० सेना नीमन नदी पार हुई थी। नेपोलियनका भीषण सैनादल वृथा आडम्बरसे विनष्ट हुई।

इस समय प्रूसियाके सम्राट् फ्रेडरिक ३य विलियमने प्रूसियाकी उन्नतिके लिये रुससे मेल कर लिया। १८१३ ई०में ड्रेसडेनका युद्ध तथा उसी सालकी १६वीं अक्तूबरको लिपजिगमें जातीय युद्ध हुआ। १८१४ ई०में रुसने सहयोगियोंके साथ फ्रान्स पर चढ़ाई कर दी। किन्तु पेरिस अवरोध-कालमें बहुतसी रुसीसेना मारी गई। वाटरलूके युद्ध तथा सेण्टहेलेनामें नेपोलियनके निर्वासनके बाद रुसियोंने स्याम्प्रेन और लोरेन पर अधिकार जमाया। उसी वर्ष पोलैण्डकी शासनप्रणालीमें बहुत हेरफेर हुआ तथा वहां रुसशासनकी जड़ मजबूत हुई। १८२५ ई०में रुस-सम्राट् अलेकसन्दरका आजनशोक मुहानेके समीप टागनगर नामक स्थानमें अकस्मात् देहान्त हुआ।

उनके समय रुससाम्राज्य चारों ओर फैल गया था। फिनलैण्ड, पोलैण्ड, बेसारबिया काकेशसके अन्तर्गत देघस्तान, शिरवान, मिंग्रेलिया और इमारेतिया आदि स्थान रुससाम्राज्यभुक्त हुए थे। इनके शासनकालमें दास और कृषकोंकी अवस्था बहुत कुछ सुधर गई थी। राजकर्मचारियोंके साथ सद्व्यवहार किया गया था विद्याशिक्षाकी उन्नतिके लिये नाना प्रकारके उपाय

अवलम्बित हुए थे। इस समय काजान, खारकफ और सेण्टपिटर्सवर्गमें विश्वविद्यालय खोले गये। इन सब कार्यों में राजमन्त्री स्पेरान्स्किने बादशाहकी बड़ी मदद की थी। पीछे वे कई कारणोंसे बादशाहके विरागभाजन हुए थे। इसके बाद नेज निनवगोरोद और साइबेरियाके शासनकर्त्ता हुए। स्पेरान्स्किके बाद मिस्कफ, नवोसिलत्सेफ और अरफ चीफ् इन तीन मन्त्रियोंने रूसका शासन किया था। किन्तु शेषोक्त दो लोकरञ्जक न हो सके। इस समय मुद्रायन्त्रकी स्वाधीनता बहुत कुछ जाती रही। अनेक उदारनैतिक अध्यापक विश्वविद्यालयसे निकाल दिये गये। इस समय सम्राट्को सभी विषयोंमें संदेह होने लगा और उन्होंने गुप्त समितिकी सृष्टि की। ऐसे सङ्कटजनक समयमें सम्राट् इस लोकसे चल बसे। अनेक समालोचकोंने उनकी अच्छी समालोचना नहीं की है। नेपोलियनने उन्हें बैजन्ती ग्रीकोंकी तरह कपटाचारी कहा था। किन्तु सच पूछिये, तो वे वैसे नहीं थे। पर हां, उनके हृदयमें उतनी ताकत न थी।

रूससाम्राज्यके नियमानुसार सम्राट् पालके २य पुत्र कनस्तान्ताइन प्रकृत उत्तराधिकारी थे। क्योंकि अलेकसन्दरके कोई सन्तान न थी। फिर उन्होंने अपने इच्छानुसार जूलिया नामक रोमन कैथलिक मतावलम्बिनी एक पोलीस राजकुमारीसे ब्याह कर सिंहासनका स्वत्व छोड़ दिया था।

इस समय रूसकी प्रजा अपने देशमें साधारण तन्त्र परिचालित राजतन्त्र प्रथाको प्रचलित करनेकी विशेष चेष्टा कर रही थी। यह ले कर एक विद्रोह तुरत खड़ा हो गया, किन्तु विद्रोही दलकी हार हुई। बहुत खून खराबीके बाद विद्रोहका अवसान हुआ। पांच विद्रोही दूत तथा अधिकांश सेना साइबेरियामें निर्वासित हुई।

इसके बाद कानस्तान्ताइनके भाई निकोलस सिंहासन पर बैठे। उनके शासनकालमें उदारनैतिक शासन संकुचित हुआ। १८३० ई०में रूससाम्राज्यका सम्पूर्ण व्यवहार शास्त्र सङ्कलित हो विधिबद्ध और प्रकाशित हुआ। इस समय बड़े लड़केके राज्यप्राप्तिसम्बन्धीय नियम प्रचलित हुए। मुद्रायन्त्रका कठोर विधान रहते हुए भी इस समय उसकी उन्नति हो रही थी। निकोलस १८२६-२८ ई० तक पारस्यके साथ युद्धमें व्यापृत थे। इस युद्धमें उनकी सम्पूर्णरूपसे जीत हुई।

एलिजावेथपोल तथा जाभानबुलक नामक एक स्थानमें पारसिकगण रसियन अच्छी तरह परास्त हुए। तुर्कमानचाई नामक स्थानकी सन्धिमें १८२८ ई०को २२वीं फरवरीको उक्त युद्धका अवसान हुआ। इस युद्धमें रूस सम्राट्ने युद्धके व्ययस्वरूप २ करोड़ रुबल तथा एरिवन और नाखिचेवान नामक स्थान पाये थे।

निकोलसने ग्रीकोंकी स्वाधीनताके लिये यथेष्ट सहानुभूति दिखलाई थी। वे चाहते थे, कि प्राचीन मतावलम्बी ईसाइयोंके ऊपर उनकी धाक जमे। इस कारण तुरुष्क ग्रीकके साथ युद्धमें लिप्त हुए। इसमें इङ्गलैण्ड, फ्रान्स और रूसने बीचमें पड़ कर १८२७ ई०को लण्डनमें एक सन्धि कर ली। इसी सन्धिसे १८२७ ई०की २०वीं अक्तूबरको नावारिनोका युद्ध छिड़ा। इसमें उक्त सहयोगियोंके गोलावर्षणसे तुरुष्क जंगी जहाज सबके सब डूब गये। पीछे निकोलस अकेले तुरुष्कके साथ युद्ध चलाने लगे। एशियामें पास्केविचने तुर्कसेनाको परास्त कर आर्जरम अधिकार किया तथा यूरोपमें दिएविश्च ग्राण्डवजीरको हराया। रूससेना बल्कानको पार कर आद्रियानोपलमें घुसी। यहां १८२९ ई०को एक संधि स्थापित हुई। इससे तुरुष्कको बड़ी असुविधा हुई थी।

१८३१ ई०में पोलगण फिरसे विद्रोही हुए। तदनुसार पास्केविचने वारस पर अधिकार जमाया। इस समय यहां महामारीका भारी प्रकोप था, इसीसे ग्राण्ड ड्यूक कनस्तान्ताइनकी मृत्यु हुई। अभी पोलोंका भाग्य एकमात्र निकोलसके अनुग्रह पर निर्भर करता था। तदनुसार प्राचीनकालके पालाटिनेटके आदर्श पर यहां शासनप्रणाली प्रचलित हुई। वारस, लुबलिन, प्लक, रेडम, सडलिन इन सब स्थानोंमें पूर्वोक्त शासनका प्रचार हुआ। विलनाका विश्वविद्यालय जो मिकिविक्ज और लीलीवेल द्वारा सुप्रसिद्ध हो गया था, उठा दिया गया। १८३३ ई०को आङ्कियर स्केलेसी नामक स्थानमें तुरुष्ककी एक दूसरी संधि स्थापित हुई। इससे रूसको तुरुष्कमें शासनका कुछ अधिकार मिला। १८४८ ई०के

विद्रोहके बाद निकोलस हङ्गारियनमें विद्रोह दमनके लिये सम्राट् फ्रान्सिस जोसेफको पास्केविच सेनापतिके अधीन एक दल सेनाको साथ भेजा। १८५३ ई०की क्रिमियाका युद्ध आरम्भ हुआ। रूससम्राट ने तुरुष्कको आपसमें बांट लेनेका सङ्कल्प किया। किन्तु इससे फ्रान्स और इङ्गलैण्डने उनका पक्ष छोड़ दिया। इस स्मरणीय युद्धकी घटनाके मध्य अल्मा बालाक्लावा, इङ्कार मन आदि स्थानोंका युद्ध तथा सिवास्तोपोलका अवरोध सबसे प्रसिद्ध है। टाडलिबेनने सिवास्तोपोलको अच्छी तरह सुरक्षित कर दिया था। उनके जैसे प्रतिभाशाली और सेनापति क्रिमियाके युद्धमें कोई भी न थे। १८५५ ई०में रूसगण उक्त नगरके दक्षिण कुछ हिस्सों को तोड़ फोड़ कर फिरसे उत्तरकी ओर हटते हुए। इसी साल सम्राट निकोलसका अकस्मात् देहान्त हुआ।

निकोलसकी मृत्युके बाद उनके पुत्र २य अलेक्सन्दर १७ वर्षकी अवस्थामें सिंहासन पर बैठे। (१८५५-८१ ई०) सिंहासन पर बैठते ही ये युद्ध रोकने की कोशिश करने लगे। तदनुसार १८५६ ई०को पेरिस नगरमें सन्धि हुई। शर्त यह ठहरी, कि रूस कृष्णसागर में कोई जङ्गीजहाज नहीं रख सकता और मान्य ईसाईके ऊपर उनका आधिपत्य रह सकता। रूसी बेसरबिया का कुछ अंश तथा डेनिविच सन्निहित प्रदेश दे कर रोमानियाकी सृष्टि हुई। पीछे बार्लिनकी सन्धि द्वारा रोमानिया रूसको दे दिया गया था। सिवास्तोपोल फिर से बनाया गया।

अलेक्सन्दरने बाद ही १८६१ ई०में सभी दासोंको छोड़ दिया। उनका यह काम सराहनीय था। निकोलस इसका सूत्रपात कर गये थे। अभी उनके पुत्र द्वारा यह कार्यमें परिणत हुआ। १८६३ ई०में फिरसे पोलिस विद्रोह खड़ा होनेसे पोलण्डकी स्वाधीनता बिलकुल जाती रही।

इनके समय तुर्किस्तान धीरे धीरे रूसके शासनाधीन हुआ। १८६५ ई०में ताशकन्द जीता गया तथा १८६७ ई०में २य अलेक्सन्दरने तुर्किस्तानकी शासन व्यवस्था सम्पन्न की। १८५८ ई०में सेनापति मुराविफने चीनोंके साथ एक संधि की। इससे आमुर नदीके बाएं किनारे जितने भूभाग थे सभी रूस साम्राज्यभुक्त हुए। पूर्व एशियामें व्लाडिभष्टक नामक एक नया बन्दर और पोताश्रय इस समय खोला गया। १८७७ ई०में रूस स्लाभोनिक ईसाइका पक्ष ले कर तुरुष्कके विरुद्ध लड़ा हुआ। प्लेभना नामक स्थानके भयङ्कर अवरोधके बाद रूसने कुस्तुनतुनिया तक अपना अधिकार फैलाया। अनन्तर १८७८ ई०को सानष्टिफानोमें सन्धि हुई। इस संधिसे रोमानिया स्वाधीन हो गया, सर्भियाका आयतन बढ़ा तथा तुरुष्कके अधीनस्थ प्रदेशोंमें स्वाधीन बुलगेरिया राज्यकी सृष्टि हुई। पीछे बार्लिनकी संधि द्वारा उक्त शर्तमें बहुत हेरफेर हुआ। तदनुसार रूस बेसराबिया स्थानमें जो सब प्रदेश खो बैठे थे, अभी उन्हें मिल गये। बल्कोन पर्वत की ओर राज्यसीमा बढ़ाई गई। बुलगेरिया दो भागोंमें विभक्त हुआ। दक्षिण भागका नाम रूमेलिया पड़ा। वहां एक ईसाईशासनकर्त्ता नियुक्त हुए। इस समय रूसमें निहिलिष्ट दल फैला हुआ था जिससे यहां अशान्ति फैल गई तथा अन्तर्विद्रोहके लक्षण दिखाई देने लगे। निहिलिष्ट या शून्यवादियोंने सम्राट्का काम तमाम करनेका षड़यन्त्र रचा। सम्राट्का जीवन संकटापन्न हो गया। १८६६ ई०की १६वीं अप्रिलको काराकोजफने सेण्टपीटर्सवर्गमें सम्राट्को देख कर उन पर गोली चलाई। पीछे अलेक्सन्दर जब पेरिसमें ३य नेपोलियनसे मिलने गये, उस समय भी बेरेजोस्कि नामक एक पोलने सम्राट् पर गोली चलाई थी। अनन्तर १८७९ ई०की १४वीं अप्रिलको सलोभिअफने फिरसे सम्राट् पर वार किया। इस समय भी वे बड़े कौशलसे बच गये। बादमें उनका मकान उड़ा देने तथा उनकी गाड़ी नष्ट करनेकी कोशिश की गई थी। अन्तमें १८८१ ई०को १३वीं मार्चको जो षड़यन्त्र रचा गया उससे सम्राट्ने निस्तार नहीं पाया। पांच षड़यन्त्रकारी प्राणदण्डसे दण्डित हुए। उनमें सोफिया नामक एक स्त्री थी। इस प्रकार २६ वर्ष राज्य कर २य अलेक्सन्दर शत्रुके शिकार बने। उनकी स्त्री और बड़े लड़के पहले ही चल बसे थे। इस कारण द्वितीय पुत्र ३य अलेक्सन्दर नामसे सिंहासन पर बैठे। इनका जन्म १८४५ ई०में हुआ था।

१८५५-१८८१ ई० तक २य अलेकसन्दरके समय रूस-साम्राज्यमें ऐतिहासिक घटनापूर्ण जो सब परिवर्त्तन हुआ था, उसके बाद १८८२-१९०२ ई० अर्थात् दश वर्ष-के भीतर भी उसका सौ भागमें से एक भाग भी संस्कार नहीं हुआ। २य अलेकसन्दर शासनविधि, शिल्प और कृषि, समाजनीति और शिक्षाविषयक संस्कार कर रूस के जातीय जीवनमें एक आमूल परिवर्त्तन कर गये थे।

प्रजावर्गका दासत्वमोचन, उन्हें भूमिका मध्य स्वत्वाधिकार दान, म्युनिसिपल और प्रादेशिक (प्रजा-सम्बन्धीय) स्वायत्तशासनविधि, उच्च और निम्न धर्माधि करण, मुद्रायंत्रकी स्वाधीनता और साधारण शिक्षाका संस्कार कर वे इस बातको कोशिश करते थे जिससे यूरोपवासी पाश्चात्य जातियोंके साथ रूसनैतिक उन्नतिमें मुकाबला कर सके। किंतु मानसिक और नैतिक तथा शिल्प और वाणिज्य विषयमें कोई विशेष उन्नति न हुई। अधिकांश प्रजा मूर्ख, अत्याचारी और दरिद्र थी। स्थानीय स्वायत्तशासन-सभा इन दुर्वृत्तोंका दमन करते थक गई थी। धर्माधिकरण न्याय और पक्षपातशून्य विचार दिखा कर तथा दुर्वृत्तों को राजदण्डसे दण्डित कर जनताको प्रसन्न नहीं कर सकते थे। शिक्षाविभाग और शिल्पविभागमें किसी प्रकारकी उन्नति होने न पाई।

इनके समय कुछ ही दिन सुशासन चला था। धीरे धीरे वह सुखस्वप्न टूट गया। पूर्वतन अराजकता अच्छी तरह जग उठी। उदारनैतिकदल पहले राजतन्त्रके आमूल संस्कारके पक्षपाती थे, किन्तु वे भी बातको बातमें राजविरोधी हो उठे। जातीय और सामाजिक स्वप्नोल्लास-से तथा राष्ट्रविप्लवकारी षड़यन्त्रसे वे लोग आकाश-को प्रतिध्वनित करने लगे। इस कारण रूसजातिकी उन्नतिकी आशा निराशामें पलट गई। उनकी लहलहाती लता पर पाला पड़ गया।

शिक्षाविभागकी निम्न प्राइमरी शिक्षामें कोई विशेष फल न हुआ। विद्यालयके छात्र और छात्रोंने शिक्षा विभागकी राजविधिका परिवर्त्तन करनेके लिये दल संग ठन किया। किन्तु वे राजशक्तिके सामने कब तक ठहर सकते थे। उन्होंने जनताका आश्रय लिया। इस मिलित दलका उद्देश्य राजाके अनुग्रहसे बहुत कुछ सिद्ध हुआ था। किन्तु राजाने जब देखा, कि दुर्बोध प्रजा उनकी आज्ञाका उचित रीतिसे पालन नहीं कर रही है, तब वे सार्वजनिक राजद्रोहकी आशङ्का कर सबोंको दण्ड देने अग्रसर हुए। पुलिसने सबोंको पकड़ा और कैद किया, कुछ तो राज्य और जन्मभूमिसे निर्वासित हुए। जिन्होंने भाग कर जान बचाई थी, वे राजाके अन्याय विचार और पुलिसके अत्याचारकी बात स्मरण कर कट्टर राजशत्रु हो उठे। दिनदहाड़े सेण्टपिटर्सबर्गके प्रकाश्य राजपथ पर शस्त्रधारी पुलिसदलपति जेनरल मेजेण्टसोफ उन लोगोंसे मारे गये। इसके बाद ही उन्होंने सम्राट्-के प्राण लेनेका संकल्प किया। १८७९ ई०के अप्रिल मासमें सोलोभिफ नामक एक व्यक्तिने सम्राट्को देख कर उन पर छः गोली चलाई। सौभाग्यवश सम्राट् बच गये। अनन्तर उसी सालके दिसम्बर मासमें मास्को नगरके समीप राजकीय रेलगाड़ी (Imperial train) को ध्वंस करनेकी चेष्टा की गई। १८८० ई०में षड़-यन्त्रकारियोंने उनके शीतप्रासाद (Winter *Palace*) के भोजनागारके नीचे डिनामाइट रख कर सम्राट्के परिवारका संहार करनेकी कोशिश की। किन्तु इस बार भी सम्राट् सपरिवार बाले बाल बच गये। केवल १० अनुचर निहत और ३४ पुरी तरह घायल हुए थे। आखिर १८८१ ई०की १३वीं मार्चको विद्रोहियोंने दूसरा षड़यन्त्र रचा। सम्राट् अपने शीतप्रासादके समीप साम-रिक क्रीड़ाकौशल देख कर घर लौट रहे थे, इसी समय षड़यन्त्रकारियोंने उन पर बम फेंका। राजाके प्राण तो नहीं निकले, पर घोड़े सहित घायल हुए। इसी घायलसे वे कुछ दिन बाद ही परलोकको सिधारे।

२य सम्राट् अलेकसन्दरको मरनेसे पहले राजद्रोही प्रजाकी मनोवेदना अच्छी तरह मालूम हो गई थी। जब उन्होंने देखा कि पुलिसके कठोर शासनसे भी मर्म-पीड़ित प्रजा प्राणपणसे अपने पक्षका समर्थन कर रही है, तब वे दयाके वशवर्त्ती हो अपनी राजशक्तिका प्रभाव भूल गये। प्रजाकी कुछ माग पूरी करनेके लिये उन्होंने जेनरल लोरी मेलिकफको मध्यविभागका सचिव

(Minister of the interior) बनाया। जिस दिन उनकी मृत्यु हुई उसी दिन सवेरे उन्होंने प्रधान प्रधान राजकर्मचारी और राज्यके गण्यमान्य व्यक्तियोंको ले कर एक कमीशन संगठित करनेका आज्ञापत्र (Ukase) लिखा। उनके कथनानुसार उस कमीशन या सभाको राज्यके तमाम विभागोंके शासनविधि संस्कारका अधिकार मिला था।

पिताकी मृत्युके बाद उनके लड़के ३य अलेकसन्दर रूससिंहासन पर अधिरूढ़ हुए (१८८१-१८९४ ई०)। ये उदारनैतिक-मत (Liberalism)के विशेष पक्षपाती न थे। ये प्रकृत प्रजाको दण्ड देनेके लिये स्वयं इस उन्नतप्रथाके विरुद्ध कार्य करने खड़े हो गये। उन्होंने अपने पितृदेव प्रवर्त्तित संस्कृत शासनप्रणालीको बिलकुल न बदला, कहीं कहीं उसका प्रभाव घटा दिया था।

पूर्वोक्त राजाके शासनकालमें ग्राम नगरादिका स्वायत्तशासन जैसा विधिनिर्दिष्ट हुआ था अभी उसका कर्तृत्वभार स्थानीय राजकर्मचारियोंके ऊपर सौंपा गया। इसी प्रकार अधीनतापाशसे मुक्त कर प्रजाको जो स्वाधीनताधिकार दिया गया था उसे पहलेके जमींदार श्रेणीने मंजूर नहीं किया। उन लोगोंका ख्याल था, कि शायद मूर्ख प्रजा अपनी स्वाधीनताकी रक्षा न कर सकेगी। इस प्रकार लोग उन्हीं मेंसे एक एकको प्रधान चुनने लगे और वे ही प्रजाके ऊपर हुकूमत करने लगे। यूरोपके अन्यान्य राज्योंमें पार्लियामेण्ट-सभाके आदर्श पर सम्राट् २य अलेकसन्दर द्वारा यहाँ जनपदीय समिति स्थापित हुई थी। जिससे वह सभा पूर्वशासनानुसार कोई कार्य न कर सके, उसकी भी व्यवस्था की गई। यहाँ तक कि म्युनिसिपल समितिकी क्षमता भी घटा दी गई थी। रूस साम्राज्यमें पुनः पूर्वतन राजतन्त्रका उदय हुआ तथा उसके साथ साथ फिरसे विद्रोहिदलका प्रादुर्भाव होने लगा।

प्रजासाधारणकी शिक्षा और शासन विषयक उन्नति करनेमें राजविरोधी दल प्रजाकी जातीयताकी प्रतिष्ठा देने लगा तथा वहाँ निहिलिष्ट और प्रजाविद्रोह सम्प्रदायका उदय हो गया। सर्वदासम्प्रदाय शिक्षित सम्प्रदायको जब यह मालूम हुआ, तब ये राजद्रोहियोंको दमन करनेमें अग्रसर हुए। पीछे जब उन्होंने देखा, कि जातीयता, धर्मविश्वास और राजतन्त्र एक साथ प्रवाहित न रहनेसे रूस साम्राज्यका कल्याण नहीं तब वे सूक्ष्मदर्शी स्लावोफिल प्रतिपादित इस राजतन्त्रका अनुसरण करने बाध्य हुए। सम्राट् ३य अलेकसन्दरके शिक्षागुरु और परामर्शदाता मि० पोबिडोनस्टसेफने राजाके भीतर यह जातीयता-भाव प्रवेश करा दिया। सम्राट् राजतन्त्रके पक्षपाती होने पर भी जातीयता और धर्मप्रथा नहीं भूले थे। उन्होंने तमाम रूसकी विभिन्न जाति और धर्मसम्प्रदायभुक्त व्यक्तियोंका रूस बनानेकी चेष्टा की थी। क्योंकि, रूसके विभिन्न स्थानमें भाषा और धर्मकी पृथक्ता है,—फिनलैण्डवासी या फिनिश भी स्वाधीन भाषा बोलते हैं। यह स्वीडेन और फिनगण प्रोटेस्टाण्ट मतावलम्बी हैं। बाल्टिक्प्रदेशवासियोंमें जर्मन, लेट् और एस्थ भाषा प्रचलित है। ये लोग लूथर मतानुसारी हैं। दक्षिण पश्चिम रूस प्रदेशवासी पोलोंकी भाषा पोलिश है। ये लोग रोमन कैथलिक हैं। यहूदियोंकी भाषा हिब्रू है। मध्य वल्गा और क्रिमिया विभागवासी इस्लाम धर्मावलम्बी मुसलमान तातार भाषाका व्यवहार करते हैं। काकेशस प्रदेशके विभिन्न स्थानमें विभिन्न जातिका वास है तथा उनकी भाषा भी भिन्न भिन्न है। जिससे इन सब जातियोंकी भाषा, धर्म और पुरुषपरम्परागत जातीय और स्थानीय शासनपद्धति अक्षुण्ण रहे उस ओर शासकोंका विशेष लक्ष्य था। किन्तु जब जिस जनसमाजमें इस नई प्रथाका प्रचार फैला, तब वहाँके अधिवासियोंमें प्रधान जाति रूसीकी भाषा, धर्म और शासनपद्धति-विस्तारकी चेष्टा देखी गई थी। सम्राट् १म निकोलस और २य अलेकसन्दरके शासनकालमें ऐसा कार्य नहीं हुआ था। किन्तु सम्राट् ३य अलेकसन्दरने प्रजाका अभिप्राय, इच्छा और मनोभाव बिना जाने ही बलपूर्वक रूपमें यह कार्य सम्पादन किया था।

उनके आगमन उन सब स्थानोंका शासनपद्धति रूसके अनुरूप पर था। भिन्नभाषाभाषी गए था। राजकीय शासनविधिमें, धर्माधिकरणमें, यहां

तक कि विद्यालयोंमें भी रूसभाषाका प्रचार हुआ। रूसभाषाके विस्तारके लिये भी उन्होंने शिक्षाविभागमें नई विधि चलाई थी। राजशासनके अनुसार ग्रीक धर्मस्रोत अर्थात् इस्लावधर्म रूसमें फैला। किन्तु इसके सिवा अन्य धर्मग्रहण करना राजनियमसे बिलकुल निषिद्ध था। वैदेशिक अधिवासियोंको भूस्वधिकार होनेका अधिकार नहीं दिया गया। कहीं कहीं वैदेशिकसे बलपूर्वक जमीन छीन कर कट्टर रूसको देनेका नियम जारी था। यह कार्य सम्पादन करनेमें स्थानीय राजकर्मचारियोंने राजाका आदेश नहीं रहते हुए भी बहुत अत्याचार किया था। यहां तक, कि जब कभी विरोधिदल राजकर्मचारीके विरुद्ध खड़ा होता, तब वह राजद्वारसे दण्डनीय होता था। सभी जातिके मध्य यहूदियोंका कष्ट गुरुतर हो गया था। रूसके पश्चिम और दक्षिण नगरखण्डोंकी तरह वे लोग रहते थे। यहूदी धनी थे और गरीबोंको सताना उनका व्यवसाय था। वे लोग अनायप्रस्त राजकर्मचारियोंको धनसे वशीभूत कर लेते थे। इस कारण शासनकर्त्ता उन पर नियमपूर्वक शासनविधिका प्रयोग नहीं कर सकते थे। इस राज्यशासनकी शिथिलताके कारण सुदेशके यहूदी प्रजाके प्रति मनमाना अत्याचार करते थे। सम्राट् ३य अलेकसन्दरने यह संवाद पा कर राजविधिको काममें लानेका कठोर आदेश निकाला। यहां तक कि उस आदेशसे यहूदियोंकी शिक्षा और वाणिज्यका पथ रुक गया था।

उनके शासनकालमें वैदेशिकके साथ राजनैतिक संस्रवका बहुत परिवर्त्तन हुआ था। उनके पिताके राज्यकालमें रूससाम्राज्यका मुख्य उद्देश्य था जर्मनोंके साथ मित्रतासूत्रमें आबद्ध रह कर आत्म सम्मान रक्षाका उपाय निर्द्धारण, गत क्रिमियाके युद्धमें दक्षिण-पूर्व रूसके जो सब प्रदेश शत्रुके हाथ लगे थे, उनका पुनरुद्धार, सुलतानकी शक्तिको चूर करना और नीच स्लाव जातिके मध्य रूस प्रभाव फैलाना तथा मध्यएशियामें धीरे-धीरे रूस साम्राज्यका विस्तार।

बर्लिन कांग्रेसमें बिसमार्क कर्त्तृक बेकन्सफिल्ड-वर्गको सन्धिसभाको यत्किञ्चित् राजनैतिक साहाय्य-दानका प्रस्ताव तथा १८७९ ई०के अक्तूबर मासमें रूसकी राज्यजयी शक्तिको खर्व करनेका उद्देश्य अष्ट्रो जर्मन एलायन्स निष्पादित होते देख सम्राट् ३य अलेकसन्दर सिंहासन पर बैठे। वे जर्मनोंका बंधुत्व और संस्रव छोड़ देनेके लिये वाध्य हुए। किन्तु फिरसे १८८१ ई०की गोपनीय सन्धिसे संतुष्ट हो दोनों सम्राट्ने मेल कर लिया। दूसरे वर्ष डानजिक नगरमें नवीन जार और वृद्ध जर्मन सम्राट् आपसमें मिले जिससे उनका सौहार्द और भी बढ़ गया। १८८४ ई०को स्कियार्नेविल नगरमें तीन सम्राट्ने मिल कर तीन वर्षके लिये Three Emperors League संगठन किया। इस प्रकार दोनोंमें एक बड़ी सन्धि तो हो गई, पर रूस-सम्राट्के मनमें जर्मन सम्राट्के मैत्रतासम्बन्धमें घोर असद्भाव रह गया। मन्त्रिवर बिसमार्ककी चालसे उन्हें अच्छी तरह मालूम हो गया था कि रूस साम्राज्यकी शत्रुता करना ही उनका मुख्य उद्देश्य था। इससे उनका संदेह और भी बढ़ गया। उन्होंने रूस-साम्राज्यकी राजनैतिक स्वार्थरक्षाके लिये फरासियोंका पराक्रम खर्व करना न चाहा। आपसमें मेल रखना ही उन्होंने अच्छा समझा। तभीसे वे जर्मन-सापेक्ष साम्यस्थापक शक्तिपुञ्जको (The Balance Power) प्रतिद्वन्द्वियोंके विरुद्ध चलने लगे। १८८७ ई०में स्कियार्नेविलका सन्धिकाल बीत जाने पर सम्राट् उसे भी फिर 'रिन्यु' करनेको राजी न हुए।

इसी समयसे वे धीरे धीरे फरासी-राजाके साथ मित्रता करने लगे। उन्होंने जर्मनी, अस्ट्रिया और इटलीकी मिलित शक्तिके (The Triple Alliance) विरुद्ध तुल्य-शक्ति संगठन करनेकी चेष्टा की। किन्तु वे फ्रान्सके साथ कार्यतः किसी सन्धिसूत्रमें आबद्ध न हुए। क्योंकि फ्रांस-गवर्मेण्टने अपने बन्धुत्वकी दृढ़ता रखना तथा जिससे यह बन्धुत्व स्थायी रहे, इसके लिये कोई उपयुक्त दायित्व स्वीकार (Requisite guarantee) न किया। पीछे जब रूस सम्राट्को मालूम हुआ, कि तीनों शक्ति मिल कर युद्धकी तैयारी कर रही हैं, तब उन्हें अपनी अवस्था अच्छी तरह सूझ पड़ी। उनका ख्याल था, कि इस सन्धिबद्ध शत्रुदलके साथ यूरोपमें यदि एक महासमर खड़ा हो जाय तो फ्रान्सके साथ मिल कर

युद्ध करनेके सिवा एस प्रयत्न शत्रुके हाथसे बचनेका कोई उपाय नहीं । तदनुसार वे इस अभावको दूर करने के लिये अग्रसर हुए। १८९४ ई०में एक सामरिक सभा (military convention) संगठित हुई । रूस और फरासीपक्षके सामरिक उच्चतम कर्माधारियोंने परस्पर मिल कर दोनों पक्षकी भलाईके लिये युद्ध सम्बन्धीय नाना विषयोंकी मीमांसा कर ली। इस समय रूस और फरासी राज्यमें विशेष सद्भाव स्थापित हुआ था।

१८९१ ई०में पहले फरासी नौसेनापति आर्भिसके अधीन एक नौवाहिनी क्रनष्टाड नगरमें आ पहुंची। राजाके आदेशसे उनका अच्छा स्वागत किया गया था। दो वर्ष बाद १८९३ ई०के अक्तूबर मासमें रूस सेनापति आवेलन पेरिस और टूलों नगर देखने गये। वहां उनकी अच्छी खातिर हुई थी। किन्तु फिर भी दोनों जाति के मध्य प्रकृत "Alliance" वा मिलन शब्द साधारणके साथ प्रयुक्त न हुआ। १८९५ ई०में रूस सम्राट् ३य अलेक्सन्दरकी मृत्युके बाद फरासी मन्त्रिसभाके प्रेसिडेण्ट म० रिबो (M. Ribot) ने दोनों राज्यकी मित्रताके सम्बन्धमें जो अभिप्राय प्रकट किया, उससे पूर्वतन सन्धिका मुख्य सन्देह बिलकुल दूर न हुआ इसके बाद १८९७ ई०के अगस्त मासमें राजकीय कार्यके उद्देशसे M. Felix Faure सर्व्वपितर्सबर्ग नगर आये और दोनों जातिमें मेल करा गये। इस समय फरासी प्रजातन्त्रके सभापति और रूससम्राट्ने आपसमें हृदयानन्दप्रद अभिनन्दन वक्तृता पढ़ी थी। तभीसे दोनों राज्य 'nations alliees' नामसे परिचित हुआ।

सम्राट् ३य अलेक्सन्दरने एशिया पूर्व यूरोपमें अपना प्रभुत्व अक्षुण्ण रखनेके लिये कृष्णसागरके किनारे अवस्थित रूस नौवाहिनीकी वृद्धि की। १८८६ ई०में बार्लिनकी सन्धिका भंग घोषित होनेके बाद सम्राट्ने भविष्य युद्धकी आशङ्कासे बाटूमनगरको दुर्गादि द्वारा सुरक्षित कर लिया। वहां एक बंदर बनाया गया और वाणिज्य बढ़ने लगा। बलकान प्रायद्वीपके अधिवासियोंके कुस्तुन्तुनियाके पतनसे ही आशान्वित थे। किन्तु राजनीतिके अनुकूल होनेकी इच्छा रखते हुए भी उन्होंने उस कार्यसे अपना हाथ खींच लिया। क्योंकि ऐसा करनेसे सारे यूरोपमें एक भयङ्कर युद्ध होनेकी सम्भावना थी। राजकुमार अलेक्सन्दर और पीछे म० ष्टाम्बोलफ साहबके अधीन बुलगेरिया गवर्मेण्ट रूस राजनीतिके विरुद्ध कई बार खड़ी हो गई थी। फिर भी सर्व्वपितर्सबर्गकी मन्त्रिसभाने नाना उपाय दिखलाते हुए उनका यह असद्भाव दूर करनेकी कोशिश की। आखिर बुलगेरिया गवर्मेण्ट विद्रोहभाव छोड़ देनेके लिये बाध्य हुई थी।

उनके शासनकालमें रूससाम्राज्यकी सीमा एशियामें बहुत दूर तक फैल गई थी। उनके सिंहासन पर बैठते ही जेनरल स्कोबेलेफ टेके ने तुर्कोमानियोंकी वासभूमि पर अधिकार किया। इसके बाद सम्राट्ने यह प्रदेश अपने साम्राज्यमें मिला लेनेका हुक्म दिया। १८८४ ई०में मर्व (पेशिया)-को हस्तगत कर रूससेना अफगानिस्तानकी ओर बढ़ी। रूससाम्राज्य और अफगानिस्तानकी सीमाका निर्देश करना ही इस अभियानका उद्देश्य था। १८८५ ई०के मार्च मासमें पाञ्जदे नामक स्थानमें इसी सूत्रसे रूस और अफगान-सैन्यमें घमसान लड़ाई छिड़ी। रूससेनाके अफगान-सीमान्तमें भविष्य भारतअभियानकी सूचना समझ कर अंगरेजराज चौकन्ने हो गये और रूससाम्राज्य निर्देश करनेके लिये सेण्टपिटर्सबर्ग-मन्त्रिसभाके साथ सन्धि करने राजी हुए। किन्तु उपरोक्त पाञ्जदे युद्धमें रूससेनाकी दक्षता देख कर अंगरेजराज निश्चिन्त न रह सके। वे मित्रराज अमीरके सम्मान और आत्मरक्षाके लिये युद्धार्थ तैयार हुए। किन्तु दो वर्ष बाद १८८७ ई०में रूससाम्राज्यकी सीमानिर्देशक सन्धि हो गई।

इसके बाद अग्रगामी रूससेना हीरटका परित्याग कर असाम साहससे पूर्व-एशियाकी पामीर अधित्यकाकी ओर बढ़ी। १८९८ ई०को अंगरेज रूसके बीच जो सन्धि हुई थी उसके अनुसार रूसने पामीरको छोड़ दिया। सम्राट् ३य अलेक्सन्दरके शासनकालमें मध्य-एशियावस्थित रूसराज्यसीमा ४२९८९५ वर्ग किलोमिटर बढ़ गई थी।

१८९४ ई०की १ली नवम्बरको सम्राट् ३य अलेक्सन्दर परलोकको सिधारे, पीछे उनके लड़के २य निकोलस

सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। ये आभ्यन्तरीण और वैदेशिक-कार्यकी राजनीतिको अक्षुण्ण करनेकी कोशिश करते थे। उनके शासनकालमें उदारनैतिक दलके प्रभावसे राजकीय शासनविधिमें बहुत हेर फेर होगा, जान कर उदारनैतिक दलपतियोंको जो आशा दी गई थी, त्वेर-प्रदेशीय लिबरलदलके आवेदन पर राजाके असम्मति-ज्ञापक प्रत्युत्तरसे उनकी वह आशा निर्मूल हो गई।

२य निकोलस अपने जीवनके मुख्य विषयमें पिता जैसे चरित्रवान् होने पर भी वैसे कूटनीतिविशारद नहीं थे। पिताकी तरह सारे रूससाम्राज्यको एकमात्र रूसजातिकी वासभूमि (Policy of Russiani ation) बनानेकी इच्छा रहने पर भी इन्होंने यहूदी, धर्मान्तरविश्वासी और भिन्न धर्मों पर अत्याचार नहीं करनेका हुकुम निकाला। शिक्षित राजकर्मचारियोंने बड़े सम्मानके साथ अत्याचार निवारक राजाज्ञाका पालन किया था। अतः विधर्मियों पर जो अत्याचार होता था वह बातकी बातमें रुक गया। पिताकी कूटनीतिको निकोलसने बिलकुल छोड़ दिया था सो नहीं। उन्होंने फिनलैण्डवासी मात्रको ही पितृ-प्रवर्त्तित प्रथासे रूस बना लिया था। इसके विरुद्ध फिन-लैण्डवासीय फिन और अन्यान्य जातिका आवेदन अग्राह्य कर दिया गया था।

वैदेशिक सम्बन्धसे भी उन्होंने अपने पिताका पदानुसरण किया था। पीछे उन्होंने फ्रान्सके साथ बन्धुत्ववृद्धि, जर्मनीके साथ सद्भाव स्थापन और बालकन प्रायद्वीप-की राजनीतिक अवस्थाका परिवर्त्तन करना तथा श्लभ-जातिके ऊपर आधिपत्य फैलाना चाहा। दक्षिण पूर्व यूरोपके सर्विया, मोण्टिनिग्रो और बुलगेरिया प्रदेशके अधिपतिके साथ इन्होंने फिरसे मेल कर लिया। क्योंकि बुलगेरियापति राजा फार्दिनन्द ष्टाम्बोलोफको पदच्युत कर स्वयं रूससम्राट्के पास गये और बन्धुत्वसूत्रमें आबद्ध हुए। रूसके पश्चिम देशवासी शत्रुसे दक्षिण-पूर्व यूरोपकी रक्षा करनेके लिये रूस-सचिव-प्रिन्स लोवानफ (Minister of foreign affairs)-ने तुर्क सम्राट् (Ottoman emperor)-के साथ मेल करना और उनका बल बढ़ाना चाहा।

इस समय अंगरेज गवर्मेण्टने अर्मिनियोंकी स्वार्थरक्षा करनेके लिये बलप्रयोगकी व्यवस्था की, इससे रूसके साथ उनका विवाद खड़ा हो गया।

प्रिन्स लोवनफकी मृत्युके बाद १८९७ ई०के जनवरी मासमें काउण्ट मुराभिफ उक्त वैदेशिक सचिव पद पर नियुक्त हुए। परन्तु ये लोवनोफ प्रवर्त्तित पूर्व रूसनीतिके अनुसार कार्य नहीं कर सकते थे। उसी सालके अप्रिल मासमें ग्रीकोंके साथ तुरुष्कका युद्ध हुआ। सेण्टपिटर्सबर्गकी राजसरकारने दो दलमेंसे किसीको सहायता नहीं की। युद्ध शेष हो जानेने पर जार दोनों दलका स्वागत किया और बन्धुभाव दिखलाया। इसके बाद क्रीटके उपयुक्त शासनकर्त्ता ले कर जब फिरसे विवाद खड़ा हुआ, तब जारने अपने भ्रातृसम्पर्कीय ग्रीक राज-कुमार जार्जको ही उस पद पर नियुक्त करना चाहा। इस कार्यमें राजनैतिक सम्बन्धरक्षाके सिवा राजपुत्र जार्जकी योग्यताका विचार नहीं किया गया।

सम्राट् २य निकोलसके राज्याधिकारके बाद साइबिरिया हो कर रूसजातिके उद्योगसे एक बड़ी रेल लाइन खोली गई। इसमें जो कुछ खर्च हुआ उसका अधिकांश चीनराजको देना पड़ा था। १८९५ ई०के चीन जापानी युद्धमें चीनराज पराजित हो सन्धि करनेके लिये बाध्य हुए। सिमोनोसकी सन्धिपत्रमें चीनराजने जापानके राजा मिकाडोको जो सब प्रदेश छोड़ देनेका वचन दिया था, रूसराजने मञ्चुरियामें अपना अधिकार बता कर उस पर आपत्ति की जिससे उस सन्धिकी शर्तें फिरसे संशो-धित हुईं। रेलपथ विस्तार, दुर्गनिर्माण आदि आर्थिक व्ययसाधन कर रूस सम्राट्ने चीनसाम्राज्यके अन्तर्भुक्त अर्थरबन्दर और लियाओतङ्ग प्रायद्वीपमें अपनी राजशक्ति की जड़ मजबूत कर ली। साइबिरिया देखो।

रूससाम्राज्यकी सीमा बढ़ानेके लिये रूससम्राट्को दिनों दिन सेनादलकी वृद्धि करनी पड़ी थी। इस सामरिक प्रणालीके संस्कारमें जारके बहुत रुपये खर्च हुए थे। जातीय बल और अस्त्रशस्त्रकी वृद्धिके विषयमें शक्तिशाली राजाओं (The Great Powers)के साथ मेल करनेके सिवा बलरक्षाका कोई दूसरा उपाय नहीं है तथा राजाओंमेंसे एककी बलवृद्धि होनेसे बाकी सभी राजे मिल कर विरुद्ध खड़े हो सकते हैं, यह सोच कर

रूस सम्राट्ने अपनी पेटर्सबर्गस्थित कासक्ट मुरावियेफ के द्वारा अपनी सेनासंख्यावृद्धि और वैदेशिक राज्यरक्षा विषयक प्रस्ताव यूरोपीय 'शक्तिपुञ्ज' के पास भेजा। इस विषय पर विचार करनेके लिये हेगनगरमें एक आन्तर्जातिक बैठक हुई। किन्तु इस बैठकमें कोई फैसला नहीं हुआ। इतिहासमें यह बैठक The Hague conference या Peace conference नामसे प्रसिद्ध है।

वर्त्तमान रूसकी शिल्पोन्नति और वाणिज्य तथा राजनैतिक और सामरिक विप्लवका हाल लिखनेमें एक बड़ा पोथा बन सकता है। जनसाधारणके मालूमके लिये यहां पर केवल थोड़ी सी बातोंका उल्लेख किया गया।

पूरब व्लाडिभष्टक बन्दरमें तथा चीनसाम्राज्यके अन्तर्गत पोर्टआर्थर आदि स्थानोंमें रूसियनों का ट्रान्स साइबेरीय रेलपथ खुल जानेसे वाणिज्यकी वृद्धिके साथ साथ सामरिक आयोजनकी भी यथेष्ट उन्नति हुई थी। इस प्रकार वाणिज्यके उद्देशसे हो वा युद्धके उद्देशसे रूसप्रान्त उज्बागासमेरव रेलपथ खोल कर अफगान सीमान्तवर्त्ती हीरट नगरके सामने कुस्क तक बढ़ा लाए। भारतवर्षके साथ वाणिज्य करना ही रेलपथ खोलनेका गूढ़ उद्देश्य था।

चीन जापानयुद्धके बाद जापानने देखा, कि रूसराजने बड़ी चालाकीसे तथा चीनसम्राट्को मित्रतासूत्रमें बांध कर मंचुरिया अधिकार कर लिया है। आर्थरबन्दर में दृढ़ रूसदुर्ग स्थापित हुआ था। रसियन अपनी शक्ति को मजबूत कर धीरे धीरे वाणिज्यविस्तारके बहानेसे जापानके अधिकृत कोरियाराज्यमें रेलपथ खोलने लगे। रूसराज्यके इस अनधिकार प्रवेशसे (Aggressive measure) अपना नुकसान देख जापानपतिने रूस सम्राट्के पास प्रतिनिधि भेजा। रूसकी मन्त्रिसभाने जापानको नगण्य तुच्छ ज्ञान कर उनकी बात न सुनी। युद्ध अवश्यम्भावी हो गया। मंचुरियाके रूसराज प्रतिनिधि एड मिरल आलेक्सिफ उन्नत जापानको युद्धकी तैयारी देख डर गये। रूससम्राट्के आदेशसे सेनापति कुरोपाटकिन रूसवाहिनीके नायक हो एशियाके पूर्व सीमान्त (Far East) पर बढ़ आये।

१९०४ ई०में शीतकालके आरम्भमें जापानका जङ्गी जहाज पोर्टआर्थरमें अकस्मात् आ पहुंचा। आमोद प्रमोदमें मस्त रसियन अतर्कित आक्रमणसे भयभीत हो गये। जापानी गोलावर्षणसे उनके कितने जहाज जलमें डूब गये। अपमानित रूससेनापति राजाके आदेशसे दुर्द्धर्ष जापानियों को उचित दण्ड देनेके लिये अग्रसर हुए। क्रमशः युद्धके ऊपर युद्ध हुआ। लियाअङ्ग, शो-हो और मुकडनके युद्धमें रसियन सेना हार खा गई। आखिर पोर्टआर्थर जापानके हाथ लगा। पोर्टआर्थर दुर्गाध्यक्ष रूससेनापति ष्टोयेसल रूससम्राट्की बाट जोह रहे थे, अभी वे निराश हो गये। दुर्गको रसद भी घट चला। शत्रुकी गोलावर्षणसे अपना बलक्षय देख उन्होंने जापान सेनापति नोगीके हाथ आत्मसमर्पण किया। इधर जापानी नौसेनापति टोगो प्रशान्त महासागरकी तरफ रूसजहाजकी राह रोकनेमें डट गये। जब रूस राजकी बाल्टिकवाहिनीने बड़ी तेजीसे भारत महासागरको पार कर भारतीय द्वीपपुञ्जमें प्रवेश किया, तब आडमिरल टोगो पत्थरके समीपवर्त्ती समुद्रसे उनको गति देख आगे बढ़े। देखते देखते रोजडेसभान्स्की परिचालित रूसनौवाहिनी जापान समुद्रके किनारे आ पहुंची। नौसेनापति टोगोने उपयुक्त समय देख कर सुसिमा उपसागरमें रूस-वाहिनी पर आक्रमण कर दिया। गोलावर्षणसे रसियन सेना तितर बितर हो गई। वे लोग आकस्मिक विपद देख भयभीत हो गये। भाग जाना चाहा पर उस भयंकर अंधेरी रातको आक्रमण करनेका उन्हें साहस न हुआ। रूससेनापतिने अपने अधीनस्थ सेनावृन्दको बहुत ललकारा, पर वे निश्चल और अवाक् पड़े रहे। इसी समय टोगोकी सेनाने उन्हें घेर लिया। रूस आडमिरल रोजडेस भाग्यरिक आहत और बन्दी हुए। उनके साथ साथ रसियनके कुछ जङ्गी जहाज भी टोगोके हाथ लगे।

इस प्रकार किंकर्त्तव्यविमूढ़ हो जारने कुरोपाटकिनको लौट आनेका हुक्म दिया। उनकी जगह सेनापति लिनेभिच नियुक्त किये गये। लिनेभिच भी जापानके साथ युद्धमें कोई विशेष फल न दिखा सके। प्रत्येक आक्रमणमें उन्हें पीछे हटना पड़ा था।

पोर्टआर्थर दखलके बाद युद्ध कुछ दिन स्थगित रहा।

अनन्तर जापानियोंने फिरसे अपहृत साघेलियन द्वीप पर चढ़ाई कर दी। इस समय अमेरिकाके युक्तराज्यके प्रेसिडेण्ट महामति रूजमेल्टके आग्रह और उद्योगसे तथा जापानपति मिकाडोकी वदान्यतासे सन्धिका प्रस्ताव हुआ। रूस और जापानके पक्षमें अनर्थक राक्षसोचित जनक्षय और अर्थनाश नहीं करना ही इस सन्धिस्थापनका उद्देश्य था। सभ्यजगत् स्वजातिके वृथा रक्तपातसे बडा ही दुःखित था, इस कारण दया और धर्मके आधारभूत महात्मा रूजमेल्टने दोनों पक्षको बहुत समझाया और १६०५ ई०के अगस्तके महीनेमें युक्तराज्य एक सभा की। जारकी ओरसे रूसराजसचिव म० विट (M Witte) और मिकाडोकी ओरसे वैरन कमुरा आदि आये थे। संधिकी शर्त्त ले कर दोनोंमें खूब वादानुवाद चला। आखिर विजेता जापान-पति अपना स्वार्थ त्याग करके भी सम्मानकी रक्षा की थी। ऐसा महानुभवताका परिचय बौद्धजीवनका उच्चतम निर्दशन है। उसी सालकी ६ठी सितम्बरको दोनों पक्षने मेल कर संधिपत्र पर हस्ताक्षर किया।

सन् १६१४ से १६१८ ई० तक जो जगद्व्यापी युद्ध हुआ था। उस समय और उसके पहले कई वर्षोंसे शासनतन्त्रकी परिवर्त्तनकी सूचना हुई थी। शिक्षित सम्प्रदाय और साधारण प्रजाके बीच असन्तोषका वीज अ कुरित होने लगा। वाहरसे नई नई राजनीतिकी सलाह आने लगी। अब पुराने ढंगसे जारके इच्छानुसार शासन चलेगा या प्रजाके इच्छानुसार, सब कोई यही सोचने लगे। रूसकी अधिकांश प्रजा अशिक्षित थी, जो शिक्षित थी वह शासनका परिवर्त्तन चाहती थी। जारने वलपूर्वक पुरानी नीतिके अनुसार ही शासन चलानेका हुकुम दिया। इस विषयमें शिक्षित सम्प्रदायको बुला कर उनसे सलाह लेना जारने कोई प्रयोजन न समझा। यदि सलाह ले कर शासनतन्त्रका कुछ परिवर्त्तन किया जाता, तो रूस-साम्राज्य अर्थात् जार पर इस प्रकार विपदका पहाड़ टूट न पड़ता। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। गवर्मेण्टने प्रजाकी मांगकी ओर विलकुल ध्यान न दिया। फलतः विद्रोह खडा होनेमें जरा भी देर न लगी।

इङ्गलैण्डमें जिस प्रकार निर्वाचनसे पार्लियामेण्टमन्त्रि सभा संगठित है, उसी प्रकार रूसमें 'डूमा' नामक एक मन्त्रिसभा स्थापित की गई। उस सभाके प्रधान मन्त्री, जेनरल ट्रेपो (Trepot)-ने शिक्षित सम्प्रदायसे मेल करना चाहा। किन्तु जेनरल रेपो एक सैनिक पुरुष थे। वे चाहते थे, कि सभी सैनिक पुरुषोंकी बात मानें। इसलिये पहली डूमा बहुत दिन चली। पीछे (१६०६ १६१०) दूसरी डूमा संगठित हुई। पी, ए, ष्टोलिपिन (P A Stolypin) नामक एक व्यक्ति उसके मन्त्री हुए। वे कभी राजपुरुषोंके मतानुसार चलते थे और कभी डूमाके मोडरेट (Moderate) सम्प्रदायसे भी सलाह लेते थे। इस कारण सभी लोग असंतुष्ट हो गये। कहीं कहीं कृषकोंने विद्रोह खड़ा कर दिया। दमननीतिकी जारी हुई। प्रजाके बीच असन्तोष दिनों दिन बढ़ने लगा। आखिर वह डूमा भी टूट गई और १६०७ ई०की ३री जूनको एक परवाना निकाला गया जिससे निर्वाचनप्रथा विलकुल उठ गई।

इसके बाद ३री और ४थी डूमा गवर्मेण्टके चुने हुए मेम्बरोंसे संगठित हुई। इसलिये गवर्मेण्टके विरुद्ध एक भी प्रस्ताव उस सभामें नहीं उठता था। इस प्रकार जब सभामें कोई विरोध खडा नहीं होता था, तब बाहरवाले जानते थे, कि रूसमें शान्ति स्थापित हो गई। लेकिन देशमें असन्तोषका वीज जोरों पकडे हुए था। कारागारमें जो राजबंदी थे उनपर भीषण अत्याचार होने लगा। यह देख स्कूल छात्र जगह जगह प्रतिवाद-सभा करने लगे। शिक्षाविभागके कर्मचारियोंने विद्यार्थियोंका दमन करनेके लिये नये नये कानून निकाले। स्कूल और कालेजमें लेकचरके समय मिलिटरी पुलिस मौजूद रहती थी। फलतः कितने प्रोफेसरों और लेकचरोंने नौकरी छोड़ दी। इस प्रकार मोस्कोर युनिवर्सीटीकी महती क्षति हुई। बुद्धिमान् विद्रोहि-नायकोंके कानमें जब समाचार पहुंचा, तब विद्रोहाग्नि और भी धधक उठी।

असन्तोषका प्रधान कारण था कृषकोंकी दरिद्रता। रूस कृषिप्रधान देश था, पर कृषकोंका अपनी जमीनके ऊपर कोई हक न था। ज्यादा हिस्सा जमीन गवर्मेण्टकी

खास थी। अभी हालमें इनकी बहुत थोड़ी थी। इससे अलावा १८६१ और १८६३ ई०में जो नये नये कानून निकाले गये थे, उससे कृषकोंकी अवस्था बड़ी डांवाडोल हो गई थी, साल भर मेहनत करके भी वे पूरे रूपोंसे अपना पेट नहीं पाल सकते थे। यह देख १९०६ ई०को प्रजा आइनमें थोड़ा बहुत परिवर्त्तन किया गया। १९११ ई०के कानूनसे रैयतोंको जमीनमें कुछ कुछ हक मिला। किन्तु इससे इनका कष्ट दूर नहीं हुआ। पहले पहल प्रजा मूर्ख थी, अब शिक्षित सम्प्रदाय इस विषयमें उन्हें ज्ञान देने लगे। कानूनके मुताबिक काम होनेसे उन लोगोंकी अवस्था कुछ सुधर सकती थी, परन्तु कृषि विद्या सिखानेके लिये विद्यालय या रुपयेके लिये व्यवस्था नहीं की गई। इसलिये कुछ भी तरक्की न हो सकी।

इसी समय स्टोलिपिन साहबका देहान्त हुआ। पुराने सचिव एम कोकोत्सो (Kokovtsov) प्रधान मन्त्री हुए। उन्होंने राजस्व बढ़ा कर और व्यय घटा कर तीन वर्षके अन्दर राजकोषको भर दिया। खास (Monopoly) आबकारी महकमेसे बहुत आमदनी होती थी। रसियन बड़े शराबी होते हैं। डूमाके चेलीशेव नामक एक मेम्बर इस मोनोपोलीको उठा देनेके लिये कोशिश करने लगे। बहुतसे लोगोंने उनका साथ दिया। परन्तु आबकारी महकमेसे सरकारको बहुत आमदनी थी, अतः अर्थसचिव उनके विरुद्ध खड़े हुए और मोनोपोली को नहीं छोड़ा। अनन्तर १९११ ई०को रूसमें घोर दुर्भिक्ष उपस्थित हुआ। गरीबोंको मदद देनेके लिये कोई भी चन्दा न था। रूस सरकारसे मदद मिलना राज पुरुषोंके ऊपर निर्भर करता था। इसलिये केवल धनी लोगोंको कुछ सहायता मिली, गरीबको कौन पूछे। भूखसे बहुत आदमी मर गये। असन्तोष भयङ्कर रूप धारण करने लगा। सैनिकविभागके प्रधान ग्राण्ड ड्यूक सर्ज मिखाइलोविच (Serge Mikhailovich) और ज़ारपत्नीके प्यारे रासपुटिन (Rasputin)के ऊपर सभी आदमी असन्तुष्ट थे। इन सब कारणोंसे ३री डूमाका भी अन्त हुआ।

अनन्तर ४थी डूमा संगठित हुए। इस समय सभी प्रकारके दल गवर्मेण्टके विरुद्ध खड़े हो गये। इस प्रकार डूमाके मेम्बर बेलगाम हो गये।

१९११ से १९१४ ई० तक बाहरी देशोंसे नई नई बातें उठने लगी। पश्चिम यूरोपका सारा देश जर्मनोंके विरुद्ध खड़ा हुआ। अष्ट्रियाके सम्राट्‌ने जर्मनोंकी सहायतासे बोसनिया और हर्जेगोविना पर अधिकार जमाया। १९१२ ई०में बुलगेरिया, सरभिया और ग्रीसने मिल कर तुर्कों के विरुद्ध युद्धघोषणा कर दी और रसियनसे सहायता मांगी। ज़ार निकोलस उन्हें सहायता देनेको राजी थे, क्योंकि बलकानके छोटे छोटे राज्यों पर रूस-का प्रभुत्व बहुत दिनोंसे चला आ रहा था और पश्चिम यूरोपसे उन्हें मदद मिलती थी। लेकिन प्रधान मन्त्री साज़ोनव (M. Sazonov)ने कहा था, कि हम लोगों को इस युद्धमें भाग लेना उचित नहीं। ज़ारने भी इसे समर्थन किया। रूससे मदद नहीं मिलने पर भी बलकानराज्योंने मिल कर तुर्कोंको परास्त किया। मध्य यूरोपकी राजशक्ति अर्थात् जर्मनी और अष्ट्रियाने सोचा कि बलकानकी एकत्रित शक्तिके प्रबल होनेसे वे लोग पूरबमें अपनी गोटी न जमा सकेंगे। अष्ट्रियाने सरबिया को आड्रियाटिक समुद्रकी तरफ बढ़ने न दिया। सरबिया और मोण्टिनिग्रोने जो अलबेनियामें अधिकार पाया था वह छीन लिया गया। जब पश्चिम दिशासे पीछे हटना पड़ा, तब सर्वलोगों (Serbs)ने पूरब मसिडोनियाका पश्चिम भाग दखल करना चाहा। यह भाग पहले सरबियाके दखलमें था, पीछे एक सन्धिके अनुसार बुलगेरियाके दखलमें आ गया। रूसके मन्त्री एम सज़ोनवने सोचा कि बलकान शक्तियोंमें फूट होना अच्छा नहीं। स्वयं ज़ार निकोलसने इसका निपटेरा करनेकी कोशिश की। लेकिन बुलगेरियाके राजा फर्डिनन्द बड़े चतुर थे। वे मेल करनेको राजी न हुए। जब सरबियाके साथ रूमानिया और ग्रीसने मिल कर बुलगेरिया पर हमला किया, तब बुलगेरियाने संधि करने बाध्य हुए। बुखारेष्ट सन्धिके अनुसार रूमानिया को दबरुजा (Dobrudja), सरबियाको पश्चिम मेसिडोनिया और ग्रीसको थेसलि तथा बाकी मेसिडोनियाको मिला। बुलगेरिया अब इस प्रकार कई भागोंमें बंट गया

और रसियनसे उन्हें कुछ भी सहायता न मिली, तब राजा फर्दिनन्दने जर्मनी और अष्ट्रियासे मेल करना चाहा।

अष्ट्रियाने सरविया पर घोर अत्याचार किया था। सर्वलोगोंने गुस्सेमें आ कर अस्ट्रियाके राजकुमार आर्च ड्यूक फ्राञ्ज फारदिनन्द (Archduke Franz Ferdinand)को मार डाला। अस्ट्रिया और जर्मनी मिल कर सरविया पर चढ़ाई करनेकी बड़ी तैयारी करने लगे। पूर्व दक्षिण यूरोपकी शलभजाति पर मध्य यूरोपकी ह्यून और ट्युटोनिक जातिका जो आधिपत्य था अर्थात् उनके प्रति जो अत्याचार किया जाता था, वह शलभ जातिकी प्रधान शक्ति रसियनके लिये बड़ी ही लज्जाकी बात थी। डूमामें यह बात पेश की गई। काउण्ट वीटोने (Count Witte) जो एक बुद्धिमान् आदमी थे, कहा, "रसियनको किसीका भी पक्ष नहीं लेना चाहिये। कुछ नुकसानी भी क्यों न हो उसे बर्दास्त कर लेना उचित है।" परन्तु डूमाके कुल मेम्बर, लेटजाति (Letts), एस्थोनियन जाति (Esthonians) यहूदी (Jews) सबोंने एक स्वरसे कहा, कि स्वदेशके लिये हम लोगोंको मर मिटना चाहिये। पोलण्ड और लिथुआनियाने कहला भेजा कि वे लोग भी उन्हें युद्धमें मदद पहुंचायंगे। सभी जाति गवर्मेण्टकी ओरसे युद्धके लिये तैयार हो गई। ऐसी सहायता प्रजा लोगोंसे रूस-गवर्मेण्टको कभी नहीं मिली थी। उस समय जर्मनी पर रूस जनता ऐसी चिढ़ गई थी, कि उन्होंने St. Peter's burgh नामक ट्युटनिक भाषाका परित्तन कर स्लाभोनिक भाषामें राजधानीका पेट्रोग्राड नाम रखा। परन्तु कुछ सोसियालिष्ट इस युद्धके विरुद्ध थे। देशके अधिकाश मनुष्य लड़ाईके लिये खड़े थे। इसलिये उन लोगोंकी बात पर कान नहीं दिया गया। इस प्रकार रसियन लोग जगत्व्यापी युद्ध-क्षेत्रमें अवतीर्ण हुए।

इस समय रूस योद्धाओंकी संख्या सब मुल्कोंसे बढ़ी चढ़ी थी। यदि रसियन गवर्मेण्ट यथेच्छाका परित्याग कर विचारके साथ सैन्यपरिपालन करती तो युद्धमें शान्ति स्थापित हो सकती थी। परन्तु राजपुरुषोंमें बुद्धिके अभावसे शांतिके बदले अशान्ति आरम्भ हो गई।

युद्धके समय आवकारीका खास बंदोवस्त उठा देना उचित था। क्योंकि ऐसा रहनेसे लोग मनमाना शराब पीते और नशेमें आ कर असीम साहससे युद्ध कर सकते थे। लेकिन ऐसा हुआ नहीं, जिससे वे हमेशा असंतुष्ट रहा करते थे।

प्रधान सेनापति ग्रैण्ड ड्यूक निकोलसने पोलण्डवासियोंसे सहायता मांगते हुए कहा, कि यदि वे लोग जर्मनके विरुद्ध युद्धमें रूसको मदद देंगे, तो उन्हें स्वायत्त शासन मिलेगा। लेकिन जारकी तरफसे ऐसा हुकुम जारी न हुआ। गवर्मेण्टकी कमिटीमें इसकी बात उठी, पर पोलोंको कुछ नहीं मिला। राजपुरुष पहलेकी तरह पोलैण्डमें राज्यकार्य चलाने लगे। इसलिये पोलैण्डवासियोंकी आशा पर पानी फेर गया और वे लोग रसियन पर अविश्वास करने लगे। कोई कोई यहूदी शत्रुके गुप्तचरका काम करने लगा। युद्धमें भी बदनीति शुरू हुई। सैन्यदलमें एक भी उपयुक्त परिचालक न था। दक्षिण रूसके प्रधान सेनापति एलेक्सिव (Alexeiv) तथा रुजकी (Ruzsky), ब्रूसीलव (Brusilov) और रडकोमित्रीभ (Radko Dmitriev) ये सब प्रथम श्रेणीके सेनापति थे। छोटे छोटे कर्मचारियों और योद्धाओंमें बदनीति घुस गई। वे लोग मनसे लड़ाई नहीं करते थे। एक दल सेनाको नष्ट होते देख दूसरा दल उसको मदद नहीं पहुंचाता था। क्योंकि सेनापतिसे उसे आज्ञा नहीं मिलती थी। एक सेनापतिने रिशवत ले कर अपनी तरफका नकशा शत्रुके पास भेज दिया। इसका परिणाम यह हुआ, कि सेनापति सीवर (Siver)-की फौज शत्रुके जालमें फंस कर नष्ट हो गई। १९१५ ई०में मालूम हुआ, कि युद्धका सामान सभी जगह यथेष्ट परिमाणमें नहीं पहुंचता है। नाना प्रकारकी असुविधाओंसे लड़ कर एलेक्सिव पीछे हटते गये। आखिर भीना और निएर नदीके किनारे उन्होंने शत्रुको रोका। एलेक्सिवके बुद्धिकौशलसे जो सब सेना बच गई उन्हें इस बातका दुःख हुआ, कि जिनके लिये हम लोग जान दे रहे हैं; वे हमारी बात पर कुछ भी ध्यान नहीं देते। गार्लिस (Gorlice) और करास्नोष्टभ (Krasnostav) के युद्धमें जो परिणाम हुआ था, वह १९१७ ई०का विद्रोह है। जब गवर्मेण्टको उदास देखा, तब लोगोंने एक कमिटी बनाई। उस कमिटीसे अस्पताल आदि खोले गये जिसमें घायल सिपाहियोंका इलाज होने

लगा। इसलिये छोटे छोटे आफिसर कमिटीके मालिकोंसे मिलने लगे। अब तमाम रूसमें ऐसा अन्धेर हुआ तब युद्ध मन्त्री सुखोमिलोव (Sukhomlinov) बर्खास्त किये गये और उनका विचार होने लगा। प्रधानमन्त्री गोरेमिकिन (Goremykin) को इस्तीफा देना पड़ा। उनकी जगह स्टूर्मर (Sturmer) मन्त्री हुए। ये सब दिनसे जार परिवारकी खुशामद किया करते थे। जार पत्नी अलेक्जण्डर। फोमोफोरोबनाको उन पर बड़ी कृपा रहती थी। जार-पत्नी साम्राज्यके सभी कामोंमें अपना मत चलाने लगी। उनके इच्छानुसार बहुतसे मनुष्य दरबारमें नियुक्त हुए। प्रेगरी रासपुटिन नामक एक कृषक उनका बहुत प्यारा था। इसलिये तमाम दुनियामें पेट्रोग्राडका दुर्नाम फैल गया। अब दरबारमें हुआ था प्रजासाधारणकी बात न सुनी गई, तब एक मेम्बरने मन्त्रियोंसे कहा कि आप लोगोंका बुरा दिन आ पहुंचा, अब आतोप मन्त्रि सभा भङ्ग हो जाय। स्टूर्मरने प्रधान मन्त्री पद पानेसे पहले एक बार पोलैण्डको स्वायत्त शासन देनेकेलिये सुफारिश की थी। इसलिये जार-पत्नीने गुस्सेमें आ कर उन्हें बर्खास्त कर दिया था। इसके बाद जार पत्नी अपने इच्छानुसार एक एक कर सभा मन्त्रियों को नियुक्त और कुछ दिन बाद अलग करती गई। देश के प्रधान प्रधान व्यक्तियोंने अपमोत हो कर एक ऐसा केबिनेट (Cabinet) या कर्मकारिणी लिये मन्त्रिसभा कायम करनेका प्रस्ताव किया कि जिस पर सब कोई विश्वास कर सकें।

इस समय बहुतसे देशभक्त खड़े हुए। देश और शासनतन्त्रकी उन्नति किस प्रकार हो सकती है यही इन लोगोंका उद्देश्य था। पहले पहल देशमें ओक्टोब्रिस्ट (Octobrist) और केडेट (Cadets) नामक दो सम्प्रदाय अग्रनायक थे। लड़ाईके समय देशकी उन्नतिका उपाय नये नये ढंगसे चलने लगा। विद्वान और बुद्धिमान् लोगोंमें पुरानी गवर्नमेंटको बिलकुल बदल कर प्रजासाधारणके मतसे नई गवर्नमेंट खड़ी करनेके लिये विद्रोह उपस्थित करनेकी आवश्यकता देखी। तीन प्रकार के अग्रनायक खड़े हुए। पहला दल चाहता था, कि यूरोप के पश्चिम देशोंमें लड़ाईके सामान और योद्धाओंके लिये जैसा प्रबन्ध था, रूसमें भी वैसा ही होना चाहिये। दूसरा एक प्रजासाधारणका शिक्षा और उन्नति चाहता था। पार्लमेंन्ट तथा और दूसरे दूसरे सुधारकोंने देशकी आर्थिक उन्नतिके लिये जो उपाय सोचा था तीसरा दल उसी राह पर चलना चाहता था। समाचार-पत्रमें इन सब बातोंका आन्दोलन शुरू हुआ। १९०५ ई०के विद्रोहके बादसे The messenger of revolutionary Russia नामक एक समाचार पत्र विद्वानों तथा बुद्धिमानोंको लड़ाईमें साथ देनेके लिये हमेशा उभाड़ता आ रहा था। अब कृषकोंको भी उन्हें मदद पहुंचानेके लिये कहा गया। जर्मनी, आपानके साथ युद्धमें रूसकी दुर्दशा और गवर्नमेंटकी निर्बुद्धिता इत्यादि बातोंका प्रचार करना सोसियल डिमोक्रेटिक (Social Democratic) दलका प्रधान कार्य था। १९०० ई०से लेनिन और मार्टन "इस्क्रा" (Iskra) नामक समाचार-पत्र और जोरिया (Zoria) नामक मासिकपत्रमें बहुत लम्बा चौड़ा प्रबन्ध लिखते आ रहे थे। व्लाडिमिर लेनिन (V Lenin) साहबका मत था, कि विद्वान् और बुद्धिमान् लोग इकट्ठे हो कर सलाह करेंगे और प्रत्येक जनसाधारण बिना किसी आपत्तिके उस सलाहको काममें लावेंगे। डिमोक्रेटिक या प्रजासाधारण मूर्ख और विद्वान् सब किसीकी सलाहसे काम नहीं चलेगा। इसी कारण उन लोगोंमें फूट हो गई जिससे दो दल हो गये। पहला दल बालसेविक (Bolsheviks) था। इसकी संख्या अधिक (Majority) थी। दूसरे दलमें कम लोग (minority) थे। मेनसेविक (Mensheviks) उसका नाम रखा गया। प्लेखनो (Plekhanov) बोलसेविक दलके और लेनिन मेनसेविक दलके प्रधान हुए। इन दोनों दलमें केवल नामका ही प्रभेद था, मूल उद्देश्य दोनोंका एक था। मार्टन सबेन चाहते थे, कि हर एक शहरके महाजनोंको पकड़ा करनेसे रुपयेका अभाव नहीं रहेगा। लेनिन समाचारपत्रमें लिखते थे कि रूसदेशमें शहरोंकी संख्या थोड़ी है, अधिकांश कृषक हैं, वे भी देहातमें रहते हैं। रूसमें विद्रोह खड़ा करनेके लिये कृषकोंको उभाड़ना उचित है। १९१७ ई०में सोसियल डिमोक्रेटिक दल लेनिन और बोलसेविक दोनों दलमें

मिल गया। इस अवस्थामें रूसके जारने राजधानी, दरबार और डूमासे अलग हो कर पेट्रोग्राड छोड़ दिया और अपनी रक्षाके लिये वे सेनाओंके बीचमें रहने लगे। जारपत्नी शहरमें रह कर सब काम देखती थी। वह पादरियोंसे सभी लोगोंको वशीभूत करनेकी सलाह किया करती थी। इस प्रकार जारने शासनकार्यका कुल भार अपनी स्त्री पर छोड़ दिया। स्त्रीवुद्धिप्रलयंकरी। उसके शासनसे सबके सब अप्रसन्न हो गये। जर्मनोंसे लडाई बहुत जोरों चल रही थी। सेनाका विशेष प्रयोजन था। युवकोंको बलपूर्वक ला कर कूच कवायद सिखलाई जाती थी। पहले जो सब आदमी लड़ाईमें गये थे उन पर गवर्मेण्टकी कुछ भी निगाह न थी, इस कारण लोग नई फौजमें भर्ती होना नहीं चाहते थे। बलपूर्वक नियुक्त किये गये योद्धाओंसे क्या काम हो सकता था? बड़े बड़े कारखानों या कोठियोंमें जो लोग काम करते थे उन्हें नेशनलिष्ट और सोसियालिष्ट दोनों दल तरह तरहकी सलाह देते थे। वह सलाह गवर्मेण्टके विरुद्ध थी। कृषकों पर लड़ाईके खर्चके लिये जो नया कर लगाया गया था, उससे वह तंग तंग आ गये थे। विद्वान और बुद्धिमान् लोग गवर्मेण्टका परिवर्त्तन चाहते थे। राजदरवारमें उच्च कर्मचारीसे ले कर निम्न तक यही चाहते थे कि जिस प्रकार जार, उनकी पत्नी तथा उनके यारोंको यमपुर भेज कर देशमें शान्ति स्थापन की जाय। परन्तु बाहरमें शत्रुओंसे युद्ध चल रहा था, इस हालतमें अन्तर्विप्लव खडा करना उचित न समझा गया। जब देशके आदमी भूख और बीमारीसे मरने लगे, तब विद्रोह दावानल उठ पड़ा हुआ। १९१७ ई०को १५वीं मार्चको जार २य निकोलसने अपने भाई माइकेलके लिये सिंहासन छोड दिया। माइकेल बुद्धिमान् थे। उन्होंने देखा, कि जब तक देशके सभी आदमी मिल कर उन्हें गद्दी पर न बैठा दें, तब उनका बैठना उचित नहीं। बैठनेसे जान पर बीतेगी, इसीलिये उन्होंने सिंहासन पर बैठना नहीं चाहा। इस प्रकार एक सप्ताहके अन्दर रोमानववंशकी राजशक्ति लोप हो गई जिससे लोगोंके आनन्दका पारावार न रहा। प्रोभिजनल (Provisional) गवर्मेण्ट या जब तक कोई पक्की गवर्मेण्ट न बने तब तकके लिये एक नई गवर्मेण्ट बनाई गई। उस गवर्मेण्टकी जो कौंसिल या मन्त्रिसभा बनी थी, उसमें स्थिर हुआ, कि जर्मनोंसे लड़ाई करनेका प्रयोजन नहीं क्योंकि उनकी धारणा थी, कि जर्मनीमें जो सब सोसियलिष्ट हैं, वे सब विद्रोही हो कर राजशक्तिसे लड़ेंगे। डूमा भी उठा दी गई। लेकिन अधिवासी किसीको नहीं मानते थे। एकके बाद एक मन्त्री बदलता गया। पीछे सोभियेट आव वोर्कमेन तथा सोलजर्स (Soviet of workmen & soldiers) नामक एक दल खड़ा हुआ। उन्होंने भी कोई तरक्की न की। कुछ दिन बाद वोलसेविक दलपति लोग जो बाहरमें थे, पहुंच गये। लेनिन जर्मन कैशरकी मददसे स्वीजर्लैण्डसे जर्मनी होते हुए और ट्रोस्की (Trotsky) अमेरिकासे रूसमें आ धमके। युद्ध-मन्त्री ए, एफ, केरेन्स्की (A. F Kerensky) विद्रोहिदलमें मिल गये। विद्रोहियोंने उन्हींको प्रधान बनाया। १९१७ ई०को १४वीं जुलाईको पेट्रोग्राडकी एक फौज बागी हो गई। गवर्मेण्टने उसका दमन किया। लेकिन गवर्मेण्टको भयका कारण था, इस कारण ट्रोस्की आदि वोलसेविक दलपतिगण जो सब पकड़े गये थे बिना दण्डके छोड़ दिये गये। लेनिन बाहर ही बाहर भाग गये थे। केरेन्स्की पहले युद्धमन्त्री थे, अब प्रधान मन्त्रीके पद पर प्रतिष्ठित हुए। वे रिभोल्युशनरी गवर्मेण्ट बनाने लगे। मोस्कोमें एक कांग्रेस बैठी। उसमें रूसके प्रत्येक राज्यसे प्रधान प्रधान व्यक्ति बुलाये गये थे। लेकिन वोलसेविक लोग उसमें शामिल न हुए। केरेन्स्कीने उस सभामें केवल विद्रोहीके विषयमें जोर दिया, देशमें शान्ति लानेके प्रथम उपाय नीतिवश्यता (Discipline) के विषयमें कुछ भी न कहा। इस कारण वे कृतकार्य न हो सके। प्रधान सेनापति कर्निलव (Kernilov) उनके विरुद्ध खड़े हुए और प्रधान होनेके लिये कोशिश करने लगे। लेकिन केरेन्स्कीने उन्हें हराया और स्वयं सेनापतिका पद भी ग्रहण किया। १९१७ ई०के नवम्बर मासमें ट्रोस्की (Trotsky,-ने एक सोभियेट मिलिटरी रिभोल्युशनरी कमिटी स्थापित की। वालटिककी नौसेना भी उसमें मिल गई। केरेन्स्कीने मन्त्रि-सभामें कहा, कि उन लोगोंको दबानेका बंदोबस्त किया जा रहा

है, किन्तु यथार्थमें उनके पास बहुत थोड़ा सेना थी; दो फौज पुरुषकी और एक स्त्रीकी थी। ७वीं नवम्बरको बोलशेविकोंने शीतवास (Winter palace) पर चढ़ाई कर दी। कुछ देर स्त्रीसैन्यसे लड़ कर उन्होंने मन्त्रियोंको पकड़ा। करेन्स्की जो प्रधान मन्त्री और प्रधान सभापति थे, पहले ही जान ले कर भाग गये थे। मोस्कोकी गवर्मेण्टकी भी ऐसी ही दुर्दशा हुई। वहांकी पल्टनने अपने कितने अफसरों और सेनापतियोंको मार डाला था। सोवियट रसियाने जर्मनी और अष्ट्रियाके साथ सन्धि करना चाहा। इसके लिये सबको खबर दी गई। साम्यवादी लोगोंने एक संगठित सभा (Constituent Assembly)के लिये निर्वाचनका प्रबन्ध किया। बीस वर्ष वालोंको चाहे वे पुरुष हों या स्त्री भोट देनेका अधिकार दिया गया। प्रत्येक जिलेमें इस प्रकार निर्वाचन हुआ। संगठित सभाके लिये कुल ६०० मेम्बर निर्वाचित हुए। लेकिन बोलशेविक लोग इस सभाको नहीं चाहते थे। उक्त सभाके सदस्योंने जब पेट्रोग्राडके टौरिडा भवनमें सभा करनेके लिये जाना चाहा, तब बोलशेविकोंने हथियारबंद हो उन्हें मार भगाया। पीछे १९१८ ई०की १८वीं जनवरीको उक्त सभाकी फिरसे बैठक हुई। इस बार भी सिर्फ एक दिन सभा कर वे पुनः भगा दिये गये। इसके बाद दोनों पक्षवालोंने मिल कर जर्मनीके पास संधिका प्रस्ताव इस आशय पर भेजा कि कोई भी पक्ष एक दूसरेका राज्य नहीं ले सकता और न किसीको युद्धका खर्च ही मिल सकता है। ब्रेष्टलिटोस्कक (Brest Litovsk) नामक शहरमें सन्धिकी बैठक हुई। जेनरल होफमान (Hoffmann) और बेरन कुलमान (Kuhlmann)ने अष्ट्रिया और जर्मनीकी तरफसे दावा किया, कि पोलैण्ड और कुरलैण्ड (Courland) उन्हें छोड़ देना होगा तथा फिनलैण्ड, स्थोनिया और लिवोनियाको स्वाधीन राज्य मानना होगा। साथ साथ नीपर नदीके दोनों किनारेका युक्रेन (Ukraine) पर रूसका अधिकार न रहेगा तथा ३०० करोड़ रूबल उन्हें क्षतिपूरण देने होंगे। इन सब सन्धिपत्र पर ट्राट्स्कीने हस्ताक्षर नहीं किया और वे उठ कर चले गये। अनन्तर जेनरल होफमान फौज ले कर आगे बढ़े। लाचारवश मजबूर हो कर सन्धिपत्र पर हस्ताक्षर करना पड़ा। लेनिनने कहा जब जर्मन रूसकी छाती पर चढ़ बैठा है, तब हम लोगोंका उपाय प्रकट करना चाहिये। यदि उक्त सन्धिकी शर्तें काममें लाई जातीं, तो रूस जर्मनके बिलकुल अधीन हो जाता। लेकिन फ्रान्स, ग्रेट ब्रिटेन और युनाइटेड स्टेट्सने मेल कर जब जर्मनी, अष्ट्रिया और बुलगेरियाको पराजय किया, तब रूसको दम लेनेका अवसर मिला। बाहरके शत्रुओंसे रूसका पिण्ड तो छूटा, पर अन्तर्विप्लव जोरों चलने लगा। तमाम खून खराबी होने लगी। अराजकता फैल गई। जार, जार पत्नी और राजपरिवार साइबेरियामें निर्वासित हुए और वहीं सबों की हत्या की गई। (१९१८ ई० जुलाई)। १९१८ ई०के ग्रीष्मकालमें चेकोस्लोवाक युद्धबन्दी एक एक कर चले गये। बोलशेविक विरुद्ध एक एक फौज खड़ी हुई। सम्मिलित राजशक्ति उन फौजको मदद देती थी। फ्रान्स रूसके विरुद्ध पोलैण्ड और रूमानियाको तथा ग्रेटब्रिटेन लैटभिया, स्थोनिया और लिथुनिया, इन तीन बाल्टिक राज्यको तथा जार्जिया आर्मेनिया और अजरबैजान इन तीन ककेसियन राज्यको स्वाधीन होनेके लिये मदद देते थे। साइबेरिया, मंचुरिया आदि नाना स्थानोंमें सेनापतियोंने प्रधान हो कर पृथक् पृथक् गवर्मेण्ट स्थापन करना आरम्भ कर दिया। यदि सभी एक साथ मिल कर शासन कार्य चलाते तो रूस पूर्वोक्त मध्य अद्वितीय शक्तिमें परिणत हो सकता था। किन्तु बार बार अन्तर्विप्लवसे ऐसा होने नहीं पाया। बोलशेविक गवर्मेण्टके अत्याचार तथा रूसकी अपमानजनक सन्धिके कारण बुद्धिमान् लोगोंने उनके विरुद्ध आक्रमण किया। १९१८ ई०के जुलाई मासमें जर्मनीके राजदूतकी हत्या की गई। लेनिन भी सोसियलिष्टों द्वारा बुरी तरह घायल हुए थे। उन्होंने मोस्को नगरकी बोलशेविक गवर्मेण्टका ध्वंस करनेका संकल्प किया था किन्तु कृतकार्य न हो सके। दक्षिण ओरसे कालचक, डेनिकिन आदि सेनानायकगण दलबलके साथ मध्यएशियाकी तरफ अग्रसर होने लगे। ब्रिटिशसेनापति जेनरल आयरनसाइड (Ironside) आर्कएञ्जेलमें मिले। पुराने रेड (Red) अर्थात् रक्तवर्ण दलवाले समाजको फिरसे संगठित किया गया। आदेश पालनका कठोर नियम जारी हुआ। आदेशका पालन न करनेसे मृत्युदण्डकी व्यवस्था हुई। इस सैन्यदलकी

संख्या क्रमशः बढ़ने लगी। अपने विरोधी ह्वाइट (Whites) वा श्वेतवस्त्रधारी सैन्यदलकी अपेक्षा इन लोगोंकी सैन्यवृद्धिका प्रधान कारण यह था, कि बोलसेविकोंने जमींदारोंसे जमीन छीन कर कृषकोंको दे दी थी। इस कारण कृषकोंको पूरी धारणा हो गई, कि हम लोग अपनी जमीनकी रक्षाके लिये युद्ध करने जा रहे हैं और श्वेतवस्त्रधारी जमींदारोंको जमीन वापस दिलानेके लिये लड़ रहे हैं। गवर्मेण्टके असन्तुष्ट कर्मचारियों तथा जमींदारोंने जो श्वेतदलका साथ दिया उससे कृषकोंकी धारणा और भी पक्की हो गई। कोलचक और डेनिकिन एकाएक बहुतसे देशों पर अधिकार कर बैठे। किन्तु वहांके अधिवासियोंको वे अपना मूल उद्देश्य समझा न सके, आखिर कोलचक पकड़े गये और बोलसेविकके छर्त्तृपक्षसे उन्हें प्राणदण्ड मिला। तभीसे रेडगण प्रबल हो उठे। पश्चिम यूरोपकी मिलित शक्ति अर्थ और युद्धोपकरणसे श्वेतदलको मदद दे रही थी।

कुछ समय बाद श्वेतदल परास्त हुआ और रेडदलका मूलमन्त्र साम्यवाद—धनी और निर्धनको समान करना चारों ओर फैलने लगा। साम्यवादका प्रधान उद्देश्य इस प्रकार है—सभी प्रजाका समान अधिकार रहेगा, कोई भी किसीसे बड़ा छोटा नहीं। जिसके पास जो भूमिसम्पत्ति, धनरत्न वा अन्य द्रव्य है, वह सभी राजाका है। उस पर सबोंका समान अधिकार रहेगा। कोई अधिक धनी हो कर विलासितामें समय वितायेगा. कार्य कुछ भी न रहेगा और कोई अपने पेटके लिये रात दिन परिश्रम कर शरीरको सुखा देगा। बोलसेविकदल यह बिलकुल नहीं चाहता है। इस कारण उन्होंने स्थिर किया, कि सभीको परिश्रम कर जीविकानिर्वाह करना होगा। जमींदार और महाजन इसके विरुद्ध खड़े हुए सही, पर कुछ कर न सके। कारण, जनसाधारणके हकमें यह बहुत अच्छा था, इससे बोलसेविक दलकी संख्या दिनों दिन बढ़ने लगी। मिलित शक्तिके सैन्यदलमें भी रेडदलका प्रचारकार्य चलने लगा। सिवाष्टोपोल और ओडेसा बन्दरके फरासी जहाजों पर रेड लोगोंकी पताका उड़ने लगी। इस कारण फ्रांसीसी लोग क्रिमिया और दक्षिण-पश्चिम रूससे अपनी सेना उठा ले गये। फ्रान्सके श्रमिकदल और रडिकेल (Radicals) गण रूसके बोलसेविक सम्प्रदायके साथ सहानुभूति दिखाने लगे। १९१९ ई०के जनवरी मासमें ब्रिटेन, फ्रान्स, इटली और युनाइटेड ष्टेट प्रिकीपो नामक स्थानमें मिले और अभी उन लोगोंको क्या करना चाहिये, इस पर विचार करने लगे। किन्तु बहुमत हो जानेसे वह बैठक कार्यकरी न हुई। रूसके उत्तर-पश्चिम एस्थोनिया प्रदेशमें एक स्वाधीन राज्य स्थापन करनेके लिये इङ्गलैण्ड तब तक सहायता दे रहा था। किन्तु प्रधान मंत्री लायेड जार्जने रूसको मदद न पहुंचा कर अपनी सेना उठा ले जाना स्थिर किया। वाणिज्य द्रव्यके लोभसे तथा भारतवर्षकी ओर अग्रसर न होगा, इस प्रलोभनसे इङ्गलैण्ड और इटलीने रूससे सम्बन्ध छोड़ना न चाहा। किन्तु फ्रान्स और युनाइटेड ष्टेटने इस नूतन गवर्मेण्टके साथ सम्बन्ध रखना अपना कर्त्तव्य न समझा।

इस समय १९१८ ई०के जुलाई मासमें मोस्को नगरमें सभी सम्प्रदायने मिल कर सोभियट कांग्रेसका प्रथम अधिवेशन किया। इस अधिवेशनका नाम कोम्युनिष्ट (Communist) रखा गया। इसके ११३२ मेम्बरोंमेंसे ७४५ बोलसेविक, ३५२ सोसियलिष्ट और बाकी अन्यान्य सम्प्रदायके लोग थे। इस कांग्रेसकी बैठक कमसे कम छः मासमें होना उचित था, किन्तु ऐसा नहीं हुआ। इस कारण २०० सदस्योंको ले कर एक कार्यनिर्वाहक समिति संगठित हुई। वही समिति अभी बृहत् रूस साम्राज्यका शासन करती है।

अभी रूसका नाम यूनियन आव सोसियलिष्ट रिपबलिक हुआ है। मोस्को शहरमें राजधानी उठा कर लाई गई और पूर्व राजधानी पेट्रोग्राडका नाम बदल कर 'लेनिनग्राड' रखा गया है। युद्धके पहले रूसका आयतन २२०००००० वर्गमील था। इसमेंसे तीन हिस्सा एशियामें और एक हिस्सा यूरोपमें था। युद्धके बाद यूरोपमें रूसका आयतन घट गया। पहलेके रूस साम्राज्यसे कई एक छोटे छोटे राज्य निकल गये। फिनलैण्ड, एस्थोनिया, लेटेभिया, लिथुआनिया और पोलैण्ड स्वतन्त्र राज्य बन गया। कार्सप्रदेश तुरुष्कके और वेसरेबिया रुमानियाके अधिकारभुक्त हुआ। इस प्रकार रूससे ८ लाख ४ हजार वर्ग किलो-

मिटर आयतन बिकल गया। फिलहाल यूनियन आफ सोभियट सोसियलिष्ट रिपबलिकके अधीन ८ करोड़ १२ लाख वर्ग कि. मीटर अर्थात् ८१०८३८३ वर्गमील आयतन है। यहांकी जनसंख्या १३ करोड़ ६० लाख है। वर्तमान कालमें छः स्वाधीन रिपबलिक मिल कर यूनियन आफ सोभियट सोसियलिष्ट रिपबलिक बना है। उनके नाम और आयतन इस प्रकार हैं,—

नाम	आयतन
रसियनसोभियेट फिडरल सोसियलिष्ट रिपबलिक	१६७०७००० वर्ग कि.मी.
युक्रेनियन सो. सो रिपबलिक	४०००००० ,,
ह्वाइट रसियन सो सो रिपबलिक	१००००० ,,
ट्रान्स ककेसियन सो कि. सो. रिपबलिक	२००००० ,,
तर्कोमेन सो सो रिपबलिक	२००००० ,,
उसवेग सो. सो. रिपबलिक	१३११०० ,,

पश्चिमांचल एशिया शब्दमें देखो।

धर्म।

इस विस्तीर्ण रूसराज्यमें जातियों अधिक होनेके कारण साम्प्रदायिकता भी विशेषरूपसे प्रबल थी। मर्दुमशुमारीकी तालिकाके अनुसार यह विभिन्न सम्प्रदायभुक्त जनसंख्या इस प्रकार लिखा है।

प्रकृत ग्रीकसमाज और उस मतका विरुद्ध सम्प्रदायभुक्त व्यक्तियोंकी संख्या प्रायः ८ करोड़ ७० लाख; युनाइटेड चर्च और आर्मेनीय १३ लाख ५० हजार; रोमन कैथलिक १ करोड़ २२ लाख; प्रोटेष्टट ३७ लाख ५० हजार; यहूदी ४० लाख ५० हजार; मुसलमान १ करोड़ २१ लाख ५० हजार तथा विभिन्न धर्मावलम्बी कुल मिला कर २७ लाख हैं।

समग्र रूससाम्राज्य ६४ धर्माचार्योंके धर्मशासन (Bishopric)की सीमाभुक्त है। धर्माचार्योंके अधिकारभुक्त ऐसे विभागोंमें ३ प्रधान धर्माध्यक्ष (Metropolitans) और ६२ धर्मयाजक (*Arch-bishops* and bishops) नियुक्त हैं। फिलहाल रूसके विस्तीर्ण धर्मसमाजमें मठकी संख्यामें बहुत हेर फेर हुआ है।

रूसका 'पवित्र महाधर्मसङ्घ' (The Holy synod) उल्लेखनीय है। इस धर्मसभाका धनभण्डार और आय विवरण सुननेसे चमत्कृत होना पड़ेगा।

अधिवासी।

रूसमें विभिन्न जातिका वास है। उनकी भाषा, वर्णमाला, सभ्यता और रीतिनीति स्वतन्त्र है। यहांके अधिवासी अधिकांश ककेसीय मूल हैं तथा सब मिल अर्थात् सौ भागोंमेंसे एक भाग अपनेको मुगल जातिका बतलाते हैं।

रूसके ककेशीय जातिके जो सब शाखा विद्यमान हैं वे स्लाभोनीय, वस्तुरे वा फिन, तुर्क वा तातार, जर्मन यहूदी और ग्रीक आदि विभिन्न नामोंसे पुकारे जाते हैं। अधिवासियोंके सौ भागमेंसे एक भाग स्लाभोनीय शाखासे उत्पन्न है। वे लोग फिर रूस, पोल, लिथुयानीय, लिट्, बालारीय और सर्विय आदि नामोंमें विभक्त हैं। इनमेंसे रूसकी संख्या प्रायः ५ करोड़ है। ये लोग साम्राज्यके ठीक मध्यस्थलमें निपर और वलगा नदीके बीच वास करते हैं। इसके सिवा उत्तरमें यूराल पर्वत और कृष्णसागरके मध्यस्थलमें तथा दक्षिण डान और निपर नदीके मध्यवर्ती भूभागमें रसियन लोग रहते हैं। यह सुदूर विस्तृत रूसजाति बड़े और छोटे नामक दो विभागमें विभक्त है। उक्त प्रदेशमें ही छोटे वा खिट्-रूसका वास है। इन्हीं के अन्तर्गत इतिहास प्रसिद्ध "कसाक" जाति है। इन लोगोंके बलवीर्य, साहस और औदार्यका परिचय किसीसे भी छिपा नहीं है। धीरे धीरे पोल, तातार और काल्मक जाति आ कर इन लोगोंसे मिल गई है। कसाक बिलकुल स्वाधीन है। किसीके निकट उन्होंने नतशिरता नहीं देखी है। अपर किसी सम्भ्रान्त व्यक्तिके निकट अथवा आदर उपाधिधारी सम्भ्रान्त धनीके निकट बड़े वा ग्रेट-रूससम्प्रदायमेंसे बहुतेरे

अपनेको बेच लिया है। ये लोग अपने इच्छानुसार कार्य नहीं कर सकते। सभी अपने अपने मालिकके आदेशानुसार कार्य करनेको बाध्य हैं। ये लोग Bonds-men कहलाते हैं।

पोल और रूसजाति एकत्र पोलएडप्रदेशके शासनाधीन वास करती है। पोलोंका आचार-व्यवहार रूसोंसे कहीं अच्छा है। वे लोग बहुत साफ सुथरे रहते हैं, किन्तु सभ्यजातिकी गौरवस्वरूप शिल्पविद्योत्पन्न द्रव्यका वाणिज्य है। यहां तक कि श्रमफललब्ध सभी श्रेणियोंके पण्यद्रव्यके वाणिज्यमें वे अपेक्षाकृत पराङ्मुख हैं।

विलना और मिन्सक प्रदेशमें लिथुयानीय जाति रहती है। इनकी प्रचलित भाषा साधारण श्लभनिक भाषासे बहुत फर्क पड़ती है। इसमें रूस भाषागत अनेक शब्दोंका मेल देखा जाता है। ये लोग सभी कृषि जीवी हैं।

लिथुयानियोंकी वासभूमिके उत्तर कुर्लाण्ड और लिवोनिया नामक स्थानमें लिट्ट जातिका वास है। इन लोगोंको भाषा रूस अथवा लिथुयानियोंकी भाषासे एकदम विपरीत है। खेतीबारी करके ही ये लोग जीविका निर्वाह करते हैं। कुर्लाण्डवासी लिट्टगण कूर नामसे प्रसिद्ध हैं।

ब्लाच वा वालचीयगण प्रुथ और निष्टर नदीके मध्यवर्त्ती वेसाराबियो नामक प्रदेशमें रहती हैं। लाटिन, ग्रीक, इटाली और तुर्की भाषाके मेलसे इनकी भाषा बनी है। ये लोग बड़े परिश्रमसे कृषिकार्य करते हैं। इनके मध्य कुछ सर्विय वा रेजवंश आ कर मिल गया है। एकाटारिनो-श्लक विभागमें भी इस जातिका उपनिवेश देखा जाता है।

फिनलैण्ड उपसागरके दोनों किनारे फिन वा तसुदे जातिका वास है। इनकी चिपटी नाक और मुखकी आकृति देख कर जातितत्त्वविद्गण इन्हें मुगलवंश-सम्भूत बतला गये हैं। किन्तु छोटे छोटे बाल और नीली आंखें देख कर कोई कोई जातितत्त्वविद् उन्हें ककेशीय जातिके मध्य स्थान देते हैं। फिनलैण्ड उपकूलवासी फिनजाति कृषिजीवी और गो मेषादिके पालक है। इन्हीं लोगोंकी एक शाखा लापलण्डर कहलाती है। ये लोग केवल हरिणका पालन करके ही अपना गुजारा चलाते हैं।

फिनलैण्ड उपसागरके दक्षिण भूभागमें एस्थिस वा एस्थोनीय जातिका वास है। एकमात्र कृषि ही इनका प्रधान अवलम्बन है। इनकी प्रचलित भाषा बहुत कुछ फिनोंसे मिलती है। १८१८ ई० तक ये लोग स्थानीय सामन्त वा जमींदारोंके निकट दासत्वशृङ्खलमें आबद्ध थे। पीछे सम्राट् अलेकसन्दरने इन्हें मुक्ति दी।

एस्थोनियोंकी वासभूमिके दक्षिण एशिस नदीके दोनों किनारे लिवि वा लिवोनीय नामक एक छोटी जातिका वास है। ये लोग कृषिजीवी हैं और फिन-भाषा बोलते हैं।

उपरोक्त तसुदे जातिकी पूर्वविभागीय शाखा पश्चिम विभागसे बिलकुल स्वतन्त्र है। कब और किस प्रकार ये लोग फिन जातिकी वासभूमि फिनलैण्डका परित्याग कर ५सौ मील दूर रूस जातिकी इस सुविस्तृत वासभूमि पार कर यूरल पर्वतमालाके पश्चिम ढाले और मध्य वलगा नदीके किनारे आ बस गये हैं, उसे जाननेका कोई उपाय नहीं। इन लोगोंके मध्य सिरियाने शोमर, भोगुले, वोतियाके, चुवास, चेरिमिज, मोदभाइन और टेपासियारे आदि कई देखे जाते हैं।

डुइना नदीकी शाखा वाचेगदा नदी और काशनदीके मध्यस्थलमें विशेषतः वैचेगदाके दोनो किनारे और साइसोला नदीके मुहाने तकके विस्तृत स्थानमें सिरियाने शाखाका वास है। ये लोग रूसके पूर्वोत्तर सीमांतमें वनमालाच्छादित पहाड़ी भूभागमे विचरण कर इच्छानुसार जंगली पशुका शिकार करते हैं तथा उसीसे जीविका चलाते हैं। इन दोनोंकी भाषा बहुत कुछ पारमियोंसे मिलती जुलती है।

वोतियाक जाति पारमियोंकी वासभूमिके पश्चिम विचटका और कामा नदीके उत्पत्ति-स्थान-सन्निहित प्रदेशमें रहती है। भाषा और शारीरिक गठनमें ये लोग फिनगाति समान हैं। ये लोग खेतीबारी तथा गोमेषादि और मधुमक्षिकाका पालन कर अपना गुजारा चलाते हैं। स्वजातिके मध्य द्वेष और अत्याचारका

विचार करनेके लिये ये लोग अपनेमेंसे ही एक मण्डल चुन लेते हैं। ये लोग ईसाधर्मावलम्बी हैं।

कुमास और चेरिमिअगण वल्गा नदीके दोनों किनारे कासान नामक प्रदेशमें मिल कर रहते हैं। ये सभी ग्रीक समाजभुक्त ईसाई हैं। कुमासोंकी वासभूमिके पश्चिम मोर्दि या मोर्दवाइन जातिका वास है। मिअमी नदी, ओका और कासान-प्रदेशके मध्य प्रवाहित सुरनदीके किनारे ये खेतीबारी कर जीविका निर्वाह करते हैं। ये लोग ईसाई हैं, इस कारण इनका शारीरिक गठन रूसियोंके जैसा है।

कृषि और वाणिज्य।

यहांके अधिवासी कृषिकार्य या वाणिज्य व्यवसाय करके अपनी अपनी जीविका चलाते हैं। आठ भाग मेंसे ७ भाग अधिवासी हल चलाते हैं। स्थानविशेषमें जमीनकी अवस्था अच्छी न होने अथवा अल्पवृष्टि ज्यादा पड़नेके कारण खेतीबारीमें उतनी सुविधा नहीं है। जिटोमीरसे किव तुला, रयज़ान, सिमबिर्स्क और उफा तक दक्षिण-पश्चिमसे पूर्वोत्तरमें एक रेखा खींचनेसे दक्षिण और उत्तर रूसकी जमीनकी अवस्था अच्छी तरह जानी जा सकती है। इस रेखाके दक्षिण अष्ट्रियाके मोल्दव और उत्तर ककेशियाके प्रेरि-प्रान्तर तक प्रायः २७ करोड़ एकड़ जमीन काली और मिट्टीसे भरी है। यहां कुरस्कक्षेत्र तृणाच्छादित प्रान्तर और वनमाला विराजित है। बीच बीचमें अनावृष्टिके कारण फसल नहीं होती।

उत्तरविभागमें तुषारयुक्त कुत्सित या तुषारसिक्त मिट्टीकी उत्पादनशक्तिके अभावके कारण वहां अनाज बहुत कम उपजता है। यहांकी मिट्टी अनुर्वर है, इस कारण शस्योत्पादनोपयोगी जमीनमें अधिक खाद देनी पड़ती है। पोडलिया, मध्य रूस, रयज़ान और उत्तर वल्गा प्रदेशकी मिट्टीमें फोस्फेटस पाया जाता है।

रूसके दक्षिण प्रेरि विभागमें धान्यक्षेत्र और गोचारणभूमि है। इनके उत्तरपूर्वोक्त मध्यरेखाके दोनों किनारे 'Ante-Steppe zone' है। यहां कवल वन है, कहीं कहीं शस्यक्षेत्र नजर आता है। इसके भी उत्तर तृणपूर्ण मैदान और वन तथा उससे भी उत्तर निविड़ वन

माला है। यह वनमाला Forest zone कहलाता है।

शस्यादिके अलावा यहां चीनीके लिये बिट पालङ्ग नामक सागकी खेती बहुतायतसे होती है। यह चीनी और सेवजात पदार्थसे राई, तीसी आदि तैल कर बीजसे तेल तथा आलसे शराब बना कर रूसवासी बेचते हैं। प्रतिवर्ष रूसमें १२११००० गैलन, ककेशिया में १०००००० गैलन और मध्यएसियामें ११६००० गैलन शराब चुआई जाती है। यहांके लोग मधुचक्रसे मोम और मधु तथा रेशमकी गोटीसे कपड़े बुनने लायक रेशम तैयार करते हैं। रूसमें मछली पकड़नेका व्यवसाय है।

नाना विषयोंके कल कारखानेकी उन्नतिके साथ साथ वाणिज्य व्यवसायके प्रधान उपाय स्वरूप रूसके नाना स्थानोंमें रेलवे लाइन खुल गई है। १८९५ ई०में यहांका विख्यात ट्रान्सकास्पियन-साइबिरियाका रेलपथ खोला गया। उस समय बैकाल हृदके ऊपर रेलपथ नहीं था। पीछे इसकी बगल लाइन दौड़ानेका संकल्प किया गया। रूस-जापान युद्धके समय बैकाल हृदकी बरफके ऊपर लाइन बैठाई गई थी। पीछे उस पर पक्की सड़क बनाई गई है। १९०० ई०में चीन-विद्रोहमें वक्षर युद्ध हुआ, रूसने अब मञ्चूरिया पर अधिकार किया तब राज्यरक्षा और वाणिज्यके उपाय-स्वरूप मंचूरियाके हार्बिन और व्लाडिवोस्टकमें रेलपथ खोला गया था।

भूतत्त्व।

रूसके भूगर्भके मध्य प्राचीन युगके निदर्शन गड़े रहने पर भी इस दूसरे देशनिहित पदार्थकी तरह इसमें कोई स्वाभाविक परिवर्त्तन नहीं हुआ। भूतत्त्वविदोंने यहांके प्राचीन स्तरोंका कीचड़, मार्ल (चूनेकी मिली हुई एक प्रकारकी मिट्टी) और बालुकास्तर सञ्चित भूगर्भनिहित पदार्थोंकी आलोचना कर स्थिर किया है, कि जब वेल्सके प्रस्तरमय दृढ़ पर्वत भूयुगके जिस समय उत्पन्न हुए थे, रूसका उपरोक्त प्राचीन युगीय बालुकास्तर भी उसी समय संगठित हुआ। रूसमें और किसी भी स्थानके प्राचीन स्तरमें आग्नेयगिरि स्थापित धातवस्तरका समावेश नहीं देखा जाता।

केवल यूरल पर्वतमाला पर उस श्रेणीका प्रस्तर नजर आता है।

रूससाम्राज्यमें सिलिउरीय स्तरकी प्रधानता रहने से कोयला कहीं भी होने नहीं पाता। ओनेगा उपसागर तथा यूरल पर्वतके पश्चिम ढालवें देशमें सेना पाया जाता है। किन्तु उक्त पर्वतकी साइबिरिया सीमामें सोनेकी बहुत-सी खाने हैं। रूसमें चांदीकी खान कहीं भी नहीं है, किन्तु पार्म वोरेननर्ग और वियता विभागमें तांबे और लोहेकी अनेक खान पाई जाती हैं, कहीं कहीं पारा, सेफोंचिप, निकेल, कोबाल्ट, सीवीराअन और विषमय भी देखनेमें आता है।

ओनेगा और लादोगा उपसागरकी उत्तरी सीमा पर उत्कृष्ट मर्मर और दानेदार पत्थरकी खान है। सेण्टपिटर्सबर्गकी अट्टालिका सेदेविलके विख्यात मर्मर पत्थरकी बनी है। उसका वर्ण ललाई लिये सफेद है।

ऊपरमें जो सैन्धव लवणका उल्लेख किया गया है, वह यहांका एक प्रधान वाणिज्य उपकरण है। यूरल-पर्वतकी उवल्ली नामक स्थानमें प्रचुर लवण निकाला जाता है।

रूस साहित्य।

रूस-साहित्य प्रधानतः दो भागोंमें विभक्त हैं—कथित और लिखित। प्रथम भागमें 'विलिनि' अर्थात् प्राचीन रूसकी ग्रन्थावली है। भ्रमणकारी भट्टकविगण वह प्राचीन गाथा तमाम गाते फिरते हैं। गत ६० वर्षके अन्दर रूस-साहित्यकोंने उक्त प्राचीन गाथाको काला-नुयायी भागमें विभक्त किया है।

(१) प्राचीन वीरोंकी कार्त्ति, (२) किफके राज-कुमार ब्लादिमिरका युग, (३) नवगोरोद युग, (४) मोस्को युग, (५) कसाक गाथा, (६) पीटरका युग और (७) आधुनिक काल। वर्त्तमान १९वीं सदीके प्रथम भागसे वे सब साहित्य सङ्कलित और मुद्रित होते हैं। १८०० ई०में माइरिल वा क्रुपदानिलफ नामक एक कसाकने सबसे पहले उस प्राचीन गाथाका संग्रह कर प्रकाश किया। १८१८ ई०को लिफ्जिक नगरमें उन सब गाथाओंका जर्मन भाषामें अनुवाद हुआ। प्रथम युगमें जिन सब वीरोंकी गाथा गाई है, वे सब प्रकृति-पूजाके नामान्तरमात्र हैं। जैसे, भल्गा (हिन्दूकी गङ्गाकी तरह), भसेस्लावित, मिकुल और स्विराटोगर अर्थात् देशी नदी और पर्वत आदिके अधिष्ठात्री देवता इस युगमें पूजित हुए थे। गोरिनिक सर्प, वासुकि वा अनन्तकी तरह इनके शिर पर मणि है और ये निधि-रक्षक हैं। फिर नृसिंह अवतारकी तरह यहां आधा सांप और आधा मनुष्य पूजित होते थे। एक भीम-काय औदरिक देवताका वर्णन अत्यन्त भयङ्कर है।

द्वितीय युगका साहित्य किफके राजकुमार ब्लादि-मिरकी अत्याश्चर्य कहानीसे पूर्ण है। इनके समय रूसमें ईसा-धर्मका प्रचार हुआ। उपरोक्त साहित्यको छोड़ कर रूसमें तमाम धर्मसंक्रान्त नाना प्रकारकी प्राचीन गाथा प्रचलित है। उससे रूसके पौराणिक युग और देवतत्त्वका सुन्दर आभास पाया जाता है। रूसके देवतत्त्वकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, मानो वह किसी वैदेशिक देवतत्त्वके ढंग पर ही कल्पित हुआ हो। विशेष गवेषणाके साथ इसके प्रकृततत्त्वका निर्णय तथा प्राचीन भारतीय देवतत्त्वके साथ उसका मिलान करनेसे मालूम होगा, कि भारतीय पौराणिक युगका सार्वजनीन देवसमाज सुदूर यूरोप प्रान्तमें विस्तृत हुआ था, रूसका यह सधर्मी (Comparative) देवसमाज इस अभिनव द्वारके उद्घाटनमें अच्छे उप-योगी हैं।

द्वितीय विभाग—लिखित साहित्य है। नवगोरोद्-के शासनकर्त्ता अल्ट्रोमिरके आदेशसे ग्रिगोरोने सबसे पहले इन सबको लिपिबद्ध किया। १०७६ ई०में ग्रीक साहित्यसे सङ्कलन कर प्रथम रूसी भाषाका एनसाइक्लो-पिडिया वा विश्वकोष सङ्कलित हुआ। आखिर नये और प्राचीन टेष्टामेण्ट ले कर रसियन साहित्यका २य युग आरम्भ होता है। थिओडिसियसके लेखसे रसियन मध्य युगमें भी प्राचीन पौत्तलिक भावका परिचय पाया जाता है।

क्रिडियाग नामक ग्रन्थकारने वैजन्ती लेखकोंके वागाडम्बरपूर्ण समासयुक्त वाक्यका व्यवहार किया। नेष्टरके इतिहासके साथ साथ रूसमें ऐतिहासिक

साहित्यका सूत्रपात हुआ। पीछे किफ, नवगोरोद, गलिसिया आदि स्थानोंमें ऐतिहासिक साहित्य फैला। इन सब प्राचीन इतिहासोंमें अनेक कौतुकोद्दीपक उपन्यासका मूलसूत्र विद्यमान है।

११वीं और १२वीं सदीमें भ्रमणवृत्तान्तविषयक साहित्यकी पुष्टि होती है। दानियाल नामक एक व्यक्ति सबसे पहले तीर्थपर्यटन कर स्वदेश लौटे। उनका लिखा हुआ वृत्तान्त ही इस साहित्यकी नींव है। पीछे आथानेसियस निकितिन नामक त्वेर नगरका एक वणिक् १४७० ई०में भारतवर्ष आया। उसके भ्रमणवृत्तान्तसे अनेक भारतीयतत्त्व जाना जाता है। उस सब वृत्तान्तोंका अंगरेजीमें अनुवाद हुआ है तथा हाक्लुइट सोसाइटीने उसे प्रकाशित किया। ब्लादिमिर मोनोमाच नामक एक राजाने अपने पुत्रोंको जो उपदेश दिया था उससे अनेक ज्ञातव्य तत्त्व जाना जाता है। उसमें तत्कालीन सम्राटोंकी दैनन्दिन जीवनी स्पष्टरूपसे लिखी है।

१२वीं सदीमें तुरफके बिशप साइरिलके धर्मोपदेशसे धर्मसाहित्यकी उन्नति हुई। किन्तु यह साहित्य बैजन्तीकी तरह अलङ्कारयुक्त वाक्योंसे भरा है। अपि च उत्प्रेक्षा और रूपकसे पूर्ण है। इस साहित्यमें अनेक साधु-संन्यासियोंका जीवनचरित भी वर्णित है।

गद्य साहित्यमें इसने ही पहला स्थान पाया है। नवगोरोदके मित्रवर्ती इगरके राजकुमार पोलोभत्सीज नामक स्थानमें युद्ध करने गये थे। यह सब अलौकिक कहानी उपन्यासके ढंग पर उस पुस्तकमें लिखी है। यह पुस्तक कमजानकी पुस्तकावलीके मध्य पाई गई थी। इगरकी पुस्तकसे अनेक प्रत्नतत्त्व और ग्रन्थरहस्य जाने जा सकते हैं। प्राचीन बुल्गेरियाकी बहुत सी गल्पोंको रसियन साहित्यमें स्थान दिया गया है। उक्त किफकी युद्ध कहानी उपन्यास साहित्यका एक स्मृतिस्तम्भ स्वरूप है। इसके सिवा ज्ञाडुनका उपन्यास अतीव विस्तृत और हृदयग्राही वर्णनसे भरा हुआ है।

आईन-साहित्यके मध्य (१०१८-१०५४ ई०) नवगोरोदके इतिहासमें रक्षित प्राचीन आईन संग्रह ही सर्वप्रथम ग्रन्थ है। यह संग्रह स्कन्दनाभीय आईनके जैसा है। इससे मालूम होता है, कि रूसकी सभ्यता अन्यान्य यूरोपीय प्रदेशके साथ मुकाबला करती थी। अनन्तर १४९७ और १५५० ई०में आईनका संस्कार और परिवर्तन हुआ। आलेक्सिसका आईन संग्रह भी एक अपूर्व वस्तु है। इनके दण्डविधि आईनमें लिखा है, कि स्त्रीको हत्या करनेवालोंको जीते जी जमीनमें गाड़ देना होगा। साक्षियोंसे सच्ची बात जाननेके लिये उन्हें तरह तरहकी यन्त्रणा दी जाती थी। महाजनके साक्षी बिना घायल हुए कोई नहीं पाते थे। असामीकी अपेक्षा साक्षीकी लाञ्छना सौ गुना अधिक थी। जो तमाकू पीते थे उनकी नाक काट दी जाती थी। अन्तमें पीटर दी ग्रेटके समय यह कठोर आईन उठा दिया गया।

१५५३ ई०को सबसे पहले मोस्कोमें मुद्रायन्त्र स्थापित हुआ तथा १५५४ ई०में अपस्ल नामक पुस्तक सबसे पहले छापी गई। इवान फिदोरोफ तथा पीटर मस्टिस्लावेत्ज नामक दो सर्वप्रथम मुद्राकरकी स्मृतिके लिये कुछ दिन पहले दो बड़े स्मृतिस्तम्भ बनाये गये हैं। १५८१ ई०में सबसे पहले शास्त्रोमिक बाइबिल मुद्रित हुई।

इवान दि टेरिबलके समय "डोमेस्त्रय आम्नार" नामक एक बड़ा पोथा छापा गया। पहले सिल्वेस्टर नामक एक पादरीने अपने पुत्रवधू पेलागियाको जो उपदेश दिया था वही धीरे धीरे जनसाधारणमें प्रचलित हो कर छप गया। इस पुस्तकमें रसियन जीवनका उज्ज्वल चित्र विद्यमान है। यह पुस्तक पढ़नेसे स्पष्ट देखा जाता है कि पत्नी पर पतिका पूरा दबाव था। इच्छा करने पर वह पत्नीको सब तरहकी सजा दे सकता था। स्वामीका आज्ञा पालन करना ही स्त्रीका एकमात्र कर्त्तव्य था। मुगलोंके समयसे रूसमें स्त्रियोंमें परदाप्रथा जारी हुआ। १६वीं सदीमें कौलीन्यमर्यादाके सम्बन्धमें एक बड़ा ग्रन्थ मुद्रित हुआ। १७वीं सदीमें बहुतसे ग्रन्थ मुद्रित हुए। उनमेंसे नोवगरद नगरवासी साक्षिपसका 'क्रोनोग्राफ' अपूर्व ग्रन्थ है। इसमें पृथिवीकी सृष्टिसे ले कर १७वीं सदी तक सभी घटनाओंका उल्लेख है।

'आजफका अवरोध' एक गद्यकाव्य है। यह

कादम्बरीकी तरह समासबहुल अलङ्कार वाक्योंमें लिखा है। पीछे ग्रिगोरी कोटो सिखिनका रूस इतिहास नामक बड़ा ग्रन्थ लिखा गया। इसके पहले ऐसा एक भी बड़ा ग्रन्थ नहीं लिखा गया था। १८४० ई०में वह मुद्रित हुआ। उस ग्रंथमें रसियन जीवनका समस्त सामाजिक चित्र अङ्कित देखा जाता है। पीछे क्रिझानिक नामक एक पण्डितने रूस भाषाओंका भाषा तत्त्व और व्याकरणका संकलन तथा १८६० ई०में रूस साम्राज्यका इतिहास प्रणयन किया। उस ग्रन्थमें ग्रन्थकारने अपना असाधारण पाण्डित्य दिखलाया है। इस समय धर्माधिकरण ले-कर सम्राट्के साथ पादरियोंका जो विरोध हुआ था वह डियानजेनसीको ओजस्विनी वक्तृतासे स्पष्ट जाना जाता है। मोस्को नगरमें उनका मकबरा और स्मृतिस्तम्भ विद्यमान था। ये विशालकाय व्यक्ति थे। इसकी ऊंचाई साढे चार हाथ थी।

१६२८ से १६४० ई०के मध्य सुप्रसिद्ध ग्रन्थकार पोलोटिजश्रीका आविर्भाव हुआ। उनके समयमें प्राचीन युग समाप्त हो कर रूस साहित्यमें नवयुगका आरम्भ हुआ। वे सम्राट् थिओडरके शिक्षक थे। उन्हींके समय रूसमें पाश्चात्य शिक्षासभ्यताका उज्ज्वल आलोक साहित्यक्षेत्रमें विकीर्ण हुआ था। Garland of Faith वा भक्तिमालिका नामक एक बड़ा धर्मग्रन्थ लिख गये हैं। उनकी ऐन्द्रजालिक लेखनीसे रूसमें युगान्तर उपस्थित हुआ। ग्रीक और इटली साहित्यका रूसभाषामें अनुवाद होने लगा। अनन्तर माइकल रोमानोसफ नामक लेखककी अविश्रान्त लेखनीसे अनेक उपादेय ग्रन्थ लिखे जाने लगे। वे महाकाव्य, नाटक, उपन्यास, इतिहास आदि नाना विषयोंमें पुस्तक लिखने लगे। विज्ञान और दर्शनशास्त्रमें भी उनकी लेखनी समान चलने लगी। टाटिसटीफ नामक राजमन्त्रीने रूसका इतिहास लिखा। इसके बाद ट्रेडिया कोविस्कीने नाना काव्योंकी रचना की। पीछे एलिजाबेथके शासनकालमें रूस साहित्यमें फरासी-प्रभाव संक्रामित हुआ तथा अलेकसन्दर सुमारोकफने काव्य, नाटक, आख्यान, इतिहास आदि फरासी आदर्श पर लिखे। उनके उद्योगसे १७५६ ई०को सेण्टपिटर्सवर्गमें सबसे पहले रङ्गालय प्रतिष्ठित हुआ तथा साइमन पोलोटिजकीके धर्मविषयक नाटक खेले जाने लगे। अनन्तर माइकेल खेरासकफ नामक कविने दो प्रकार महाकाव्योंकी रचना की, बारह सर्गमें विभक्त 'रोसियाडा' और १८ सर्गमें विभक्त व्लादिमिर। इसके बाद बोग्दोनोभिचने क्युपिड और साइकीका वृत्तान्त ले कर एक महाकाव्य रचा। इनकी रचना बहुत मधुर और सुललित होती थी।

इवान खेमनिजरसे वर्त्तमान औपन्यासिक लेखकका आविर्भाव होने लगा। इन सब उपन्यासोंमें प्राच्यभावकी सम्पूर्ण छाया विद्यमान है। इन्हें प्राच्यग्रन्थका अनुवाद करनेमें भी अत्युक्ति न होगी।

खेमनिजर पहले जेलार्टीका अनुवाद कर पीछे मौलिक ग्रन्थ लिखने लगे। उन्होंने पहले भिमिन नामक नाटक ग्रन्थ लिखना शुरू किया था। रूससाम्राज्यका अनेक कुसंस्कार और कुप्रथाको दूर करनेमें समर्थ हुए थे। उनका बनाया सुन्दर भ्रमणवृत्तान्त रूस साहित्यका एक अलङ्कारस्वरूप है। इसके बाद सुकवि डारजाविनका आविर्भाव हुआ। ये कथराइनकी राजसभामें सभाकवि थे। इन्हें रूसका मिल्टन कहा जा सकता है। इनका बनाया 'ईश्वरस्तोत्र' समस्त यूरोपमें विख्यात है। इस समय रात्रिसचेफ और नोडिकफ उद्दीपनापूर्ण काव्य लिख कर निर्वासित हुए थे।

अनन्तर अलेकसन्दरके शासनकालमें निकोलस कारामजिन नामक सुप्रसिद्ध ग्रन्थकारका अभ्युदय हुआ। उनका रूससाम्राज्यका इतिहास रूस साहित्यका विराट् स्मृतिस्तम्भ है। इसके सिवा ये कितने उपन्यास और काव्य भी लिख गये हैं।

इसके बाद प्लेटन दमित्रियफके समयसे रूस-साहित्यमें अंगरेज कवियोंका प्रभाव संक्रामित होने लगा। इस समय इवान क्रिलफ नामक सुप्रसिद्ध औपन्यासिकने देशी साहित्यको तरह तरहके अलङ्कारसे सुशोभित किया। इनके उपन्यासमें रूसका जातीय जीवन अत्यन्त सुन्दर भावमें लिखा है। पीछे सुकवि भुकोभिसकी काव्यक्षेत्रमें विशेष निपुणता दिखाने लगे। इनके समयसे 'रोमाण्टिक स्कूल, वा अलौकिक कहानीका सूत्रपात हुआ। ये अनुवादमें बड़े सिद्धहस्त थे। १८०२ ई०में

इन्होंने अंगरेज-कवि बायरनकी कविताओंका रूस भाषामें अनुवाद किया। पीछे उन्होंने जर्मन कवि गेटे, शिलर, उहलैण्ड तथा अंगरेज कवि बायरन, मूर और साउदिके पद्यानुवाद प्रकाशित किया। उन्होंने बहुतसे वैदेशिक काव्यों की सुमधुर कविताका रूस भाषामें पद्यानुवाद किया था। इसके सिवा नाटक, काव्य उपन्यास, गल्पादि सभी विषयोंमें उनकी असाधारण प्रतिभा थी। इसके बाद हास्यप्रिय कवि ग्रिबयेदफने प्रहसन रचनामें अपूर्व प्रतिभाका परिचय दिया था। उनका "वोर अव उमा" नामक प्रहसन यूरोपीय साहित्यकी अपूर्व रचना है। इस समय कजलफ नामक कविने स्काच कवि बार्नसका 'सटर्डे नाइट' रूस-भाषामें अनुवाद किया। ये रूसके अन्धकवि कहलाते थे।

पुश्किनकी मृत्युके बाद सर्वप्रधान कवि (१८१४-१८४१ ई०) लरमनटफका आविर्भाव हुआ। इनकी लेखनी वियोगान्त काव्यरचनामें शक्तिशालिनी थी। ये पहले स्काटलैण्डवासी थे। उनका बनाया 'डेमन' या दानवकाव्य अति उपादेय है। प्राकृतिक दृश्यका वर्णन करनेमें ये अद्वितीय थे।

अनन्तर कलत्सफ और निकितिन नामक दो कवियोंने गीति भाषामें विशेष प्रतिभाका परिचय दिया। इसके बाद *ग्रिगोरोविच नामक औपन्यासिकने जन्म ग्रहण* किया। अनन्तर निकोलस गोगल नामक सुप्रसिद्ध औपन्यासिकने जन्म धारण की। ये व्यङ्ग्य काव्यमें विशेष क्षमताशाली थे। इनके बनाये 'उन्मादकी स्मृति' नामक ग्रन्थमें इन्होंने अपूर्व कल्पना और रचनाशक्तिका जो परिचय दिया है वह अतुलनीय है। उनका बनाया 'मृतात्मा' अपूर्व काव्य है। गोगलने आखिर पागलकी तरह नाना रचनाकार्यमें अपना प्राण दिया। ये १८५२ ई०को परलोक सिधारे। उन्हींके समयसे आधुनिक रूस उपन्यास पैदा हो गया है।

आयिवान तुर्गेनिव नामक आधुनिक औपन्यासिकने यथार्थ और *हृदयग्राही* आदर्श पर बहुतसे उपन्यास लिखे हैं। पाउल अलेकसन्दर हार्जेन नामक एक सामान्य लेखकने "कः दोषी" नामक मधुर उपन्यासकी रचना की थी। सामाजिक विप्लवके लिये ये निर्वासित हुए।

इसके बाद दस्तोयिवस्की (१८८१ ई०)-ने 'दरिद्र लोग' और 'प्रेतपुरीका पत्र' नामक दो अपूर्व उपन्यास लिखे। अनन्तर काउण्ट टल्स्टय नामक विख्यात नाटककार हुए। उनके लिखे 'युद्ध और शान्ति' ग्रन्थ बड़े ही अपूर्व हैं।

१८८३ ई०में इवान तुर्गेनियेफकी मृत्यु हुई। ये ही सर्वश्रेष्ठ औपन्यासिक थे। उनका 'भद्रलोकका आवास भवन' नामक ग्रन्थ गुणग्राही समस्त भाषाओंके अनुवाद स्वरूप होने योग्य है। उनका बनाया 'मार्जिन लैण्ड' या 'अहल्याभूमि' अपूर्व ग्रन्थ है। इस समय बेलिन्स्की नामक एक प्रसिद्ध समालोचकने जन्मग्रहण किया। कादमजिनके समयसे रूस साहित्यने बड़ी उन्नति की है। पहले ही रूस साम्राज्यका विस्तीर्ण इतिहास ग्रन्थ लिखे गये हैं। ये टेलिग्राफ नामक प्रधान रूस समाचारपत्रके सम्पादक और मामसीदके अनुवादक थे। इसके बाद सलोवियफने २६ भागोंमें विभक्त रूसका एक बड़ा इतिहास लिखा है। इस समय कष्टमरफ नामक विख्यात लेखकने 'यूरोपवृत्त' ग्रन्थ और अनेक समालोचनापूर्ण प्रबन्धकी रचना की। उष्ट्रियालोफने पीटर दि ग्रेटके समयका एक बड़ा इतिहास लिखा है। पीछे अनेक लेखकोंने वैदेशिक इतिहास भी रचे हैं। अध्यापक वेग्युनफ द्युमिकन रूस इतिहासकी उपादान नामक पुस्तकका १म भाग तक प्रकाश किया।

मसर्स पिपिनका शब्दमौलिक साहित्यका इतिहास *उत्कृष्ट ग्रन्थ है। रूसके कवियोंमें मैकफ आफ्रिकन और* पाश्केनिकी आदि प्रधान हैं।

रूसके पण्डितोंने *शब्दविज्ञानमें* बड़ी *निपुणता* दिखाई है। मष्टोकफ नामक अध्यापकने ग्रामभौतिक भाषारहस्य नामक विराट ग्रन्थकी रचना की। इसके सिवा अनेक अभिधान और शब्दकोष भी लिखे गये। हिलफरडिंगने जातितत्त्वके सम्बन्धमें एक बड़ा ग्रन्थ प्रस्तुत किया है। मिनायेफ नामक अध्यापकने 'भारततत्त्व'के सम्बन्धमें बहुत सा कार्य किया है। वर्त्तमान रूससाहित्यका कुल इतिहास यहाँ पर लिखना असम्भव है। इसी लिये संक्षिप्त परिचय दिया गया।

पुश्किन और लामेन्सफके परवर्ती युगके सर्वप्रधान कवि नकरासफका १८२१ ई०में जन्म हुआ।

१६वीं सदीके शेष भागमें उनके जैसे प्रतिभावाली और किसी भी कविने जन्म नहीं लिया। १८३५ ई०में आपुखटिन नामक गीतकविकी मृत्यु हुई। पीछे १८६७ ई०के मध्य आलोचक मैकक तथा पोलोनिस्की नामक दो प्रसिद्ध कवियोंका देहान्त हुआ। ये दोनों रूसके सर्वजनविदित कवि थे। वर्त्तमानकालके कवियोंमें एकरिमुफिस्कि, इवान बुनिम और कनस्तान्ताइन वेमोएटरके नाम उल्लेखनीय हैं। शेषोक्त कवि अनुवादमें वड़े सिद्धहस्त थे। उन्होंने अङ्गरेज-कवि सेलीके काव्य रूस-कविताका अनुवाद किया।

ऐतिहासिक साहित्यमें रूस अभी वडी उन्नति कर रहा है। यहां पर उसका कुल हाल एक तरहसे असम्भव है। 'रसियन एनटिकोआरी', वा रूस प्रत्नतत्त्व-समितिका प्रकाशित ऐतिहासिकतत्त्व अनेक ज्ञातव्य तत्त्वोंसे परिपूर्ण है। एतद्भिन्न केवल इतिहासक्षेत्रकी आलोचनामें बहुतसे समाचार पत्रोंका आविर्भाव हुआ है। १८६१ ई०में सेण्टपिटर्सवर्ग विश्वविद्यालयके इतिहास अध्यापक बेष्टुफेफ रुमिन परलोकको सिधारे। वे ३२ वर्ष इस कार्यमें नियुक्त थे। उनके रूस-इतिहासका केवल प्रथम भाग और द्वितीय भागका प्रथमार्द्ध प्रचारित हुआ है। सलोभिएफ और कष्टोमारफ नामक दो ऐतिहासिकके मरने पर भी रूसकी इतिहासचर्चामें धक्का नहीं पहुंचा है।

इस समयके इतिहासकारोंके मध्य अध्यापक मिलिउकफ रूस शिक्षा और सभ्यताका इतिहास लिख कर यशस्वी हो गये हैं।

विख्यात रूस-पण्डित मैकसिस कोभालेभस्की 'यूरोपमें अर्थनीति शास्त्रका इतिहास' नामक प्रसिद्ध ग्रंथ लिख कर जगद्विख्यात हो गये हैं। पीछे मोस्को विश्वविद्यालयके क्लिचिभेस्किने रूस इतिहासके सम्बन्धमें वक्तृताविषयक अनेक प्रवन्ध प्रकाशित किये हैं। इसके अतिरिक्त अध्यापक मिनोग्राभक "मध्ययुगमें इङ्गलैण्डका सामाजिक इतिहास" नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ लिख कर यशस्वी हो गये हैं। किन्तु गोगल और टलष्टय आदिके जैसे विख्यात औपन्यासिकने आज तक रूसमें जन्मग्रहण नहीं किया है। टलष्टयने वृद्धावस्थामें Resurrection या पुनरुत्थान नामक प्रसिद्ध उपन्यास लिख कर अद्भुत प्रतिभाका परिचय दिया है। नये लेखकोंमें एचेखफका नाम उल्लेखनीय है। तरुणावस्थामें ही उन्होंने लिपिकुशलताका अच्छा परिचय दिया है। इसके सिवा गोर्की, आर्टेल, यासिनस्कि आदि लेखकगण गद्यरचनामें प्रसिद्धि लाभ कर गये हैं।

रूम (फा० स्त्री०) चाल।

रूसना (हिं० स्त्री०) रोष करना, नाराज होना।

रूसा (हिं० पु०) अडूसा, अरूसा। अडूसा देखो। २ एक सुगन्धित घासका नाम। यह नेपाल, शिमला, अलमोड़ा, काश्मीर, पंजाब, राजमहल, मध्यप्रदेशके पहाड़ी प्रदेशों, बम्बई और मन्द्राजके पर्वतोंमें होती है। इस घाससे गुलावकी-सी सुगन्ध आती है और इसका तेल निकाला जाता है। इसकी प्रधान दो जातियां होती हैं। इसका फूल सफेद और दूसरीका फूल नीले रंगका होता है। जब यह घास नरम रहती है तब इसकी पत्तियोंका रंग नीलापन लिये होता है, पकने पर उनका रंग लाल हो जाता है। जब इसकी पत्तियां नरम होती हैं। तव इसे मोतिया कहते हैं और जब पक कर लाल हो जाती हैं तब वे सोंफिया कहलाती हैं। सावन भादोंमें यह फूलने लगती है और कातिक अगहन तक फूलती है। इसी समय इसकी पत्तियां तेल निकालनेयोग्य हो जाती हैं। जब घास फूलने लगती है तब काट ली जाती है और इसकी छोटी छोटी पूलियां बांध ली जाती हैं। तेल निकालते समय देगमें पानी भर कर ढाई तीन सौ पूलिया उसमें छोड़ दी जाती हैं। फिर देग आग पर रख दिया जाता है और नालियोंका सिरा तावेके दो छडोंके मुहसे लगा दिया जाता है जो पानीमें डूबे रहते हैं। इस प्रकार घासका आसव खींचा जाता है। जब आसव निकल आता है तब उसे एक चौड़े मुंहके वरतनमें उंडेल लेते हैं। इस बरतनमें रूसेका अर्क थोड़ी देर तक रहता और तेल छोटे चमचसे धीरे धीरे ऊपरसे काछ लिया जाता है। यह तेल गुलावके अतरमें मिलाया जाता है और इसमें ताड़पीन या मिट्टीका तेल मिला कर सुगंधित द्रव्य तैयार किया जाता है। मध्यप्रदेशके जंगलोंसे रूसका तेल

बहुत अधिक मात्रामें बाहर आता है। यूरोप और अमेरिकामें इस तेलका बहुत व्यवहार तथा व्यापार होता है। इसका पर्याय—रोहिष, धन्यमेथा, भूतृण, कतृण, गृहपतृण।

रूसी (हि॰ वि॰) १ रूस देशका रहनेवाला, रूस देशका निवासी। २ रूस देशमें उत्पन्न। ३ रूस देशका। (स्त्री॰) ४ रूसकी भाषा। ५ सिरके चमड़े पर जमा हुआ भूसीके समान छिलका जो सिर न मलनेसे जम आता है।

रूह (अ॰ स्त्री॰) १ आत्मा, जीवात्मा। २ सत्व, सार।

रूहड़ (हि॰ स्त्री॰) पुरानी रूई जो गद्दे किसी ओढ़ने या बिछाने आदिके कपड़ोंमें भरी रही हो।

रूहना (हि॰ क्रि॰) आवेष्टित करना, घेरना।

रूहो (हि॰ स्त्री॰) एक प्रकारका वृक्ष जो हिमालय पर्वतके नीचे दामोनकोहके पूर्वमें तथा मध्य भारत और मन्द्राज प्रान्तमें पाया जाता है। इसे रोरी और कामरी कहते हैं। इसकी छाल देशी ओषधियोंके काममें आती है और जड़ सांपके काटनेकी औषधि मानी जाती है। इसकी लकड़ी तौलमें प्रति घन फुट २ सेर होती है। यह बहुत मजबूत और चिकनी होती है। रंग देने और पालिश करनेसे इस पर बहुत अच्छी चमक आती है। इससे मेज, कुरसी, आलमारी और तस्वीरके चौखट बनाये जाते हैं। यह वृक्ष बीजसे बरसातमें उगता है। इसका संस्कृतमें महिषाख्या कहते हैं। इसकी पत्तियां उत्तेजक और कटु होती हैं। इसकी छाल पेटकी पीड़ा और अंतरिया रूपमें दी जाती है। इसकी मात्रा ३ मासेसे ६ मासे तक है। यह मधुके साथ कुछ रोगोंमें काली मिर्चके साथ पीस कर विसूचिका तथा अतीसारमें भी दी जाती है। इसे वैद्य लोग ईश्वरमूल, अर्कमूल और रूहोमूल कहते हैं।

रूहोमूल (हि॰ पु॰) रूही नामक वृक्षकी छाल और जड़, ईश्वरमूल। विशेष विवरण रूही शब्दमें देखो।

रेंकना (हि॰ क्रि॰) १ गदहेका बोलना। २ बुरे ढंगसे गाना।

रेंकवा (हि॰ पु॰) गदहेका बच्चा।

रेंगना (हि॰ क्रि॰) १ कीड़ों और सरीसृपोंका गमन, च्यूंटी आदि कीड़ोंका चलना। २ धीरे धीरे चलना।

रेंगनी (हि॰ स्त्री॰) भटकटैया।

रेंट (हि॰ पु॰) श्लेष्मा मिश्रित मल जो नाकसे विशेषतः जुकाम होने पर निकलता है, नाकका मल।

रेंटा (हि॰ पु॰) चिचोंड़े का फल।

रेंड़ (हि॰ पु॰) १ एक पौधा जो ६-७ हाथ ऊंचा होता है और जिसकी पेड़ी और डालें पोली तथा मुलायम होती हैं। इसमें चारों ओर बड़ी बड़ी शाखाएं नहीं निकलतीं। सिरे पर थोड़ी थोड़ी टहनियां होती हैं जिनमें पत्तोंकी पोली डंडियां लगी रहती हैं। इन डांड़ियोंके छोर पर खाखिन्दा पेड़ खाखिन्दाके बड़े गोल कटावदार पत्ते लगे रहते हैं। कटाव बहुत लम्बे हैं और पत्तों तथा डंठलियोंके रंगमें कुछ नीलो भाई सी रहती है। फूल सफेद होते हैं और फल गोल गोल तथा कांटेदार होते हैं। फलोंके अन्दर कई बड़े बड़े बीज होते हैं जिनमेंसे बहुत तेल निकलता है। यह तेल जलाने और औषधके काम में आता है। यह दस्तावर होता है। यद्यपि इसके बीज बहुत काममें होते हैं पर जाने योग्य फल या छाया न होनेके कारण लोग इसे निकृष्ट पेड़ोंमें गिनते हैं। २ इस प्रकारकी ईख जिसे रेंड़ा भी कहते हैं।

रेंड़खरबूजा (हि॰ पु॰) पपीता।

रेंड़मेवा (हि॰ पु॰) अण्डखरबूजा, रेंड़ खरबूजा, पपीता।

रेंड़ा (हि॰ पु॰) १ एक प्रकारका धान जिसकी फसल कुआर कार्तिकमें तैयार हो जाती है। (स्त्री॰) २ एक प्रकारकी ईख।

रेंड़ी (हि॰ स्त्री॰) अरंडी या रेंड़के बीज जिनसे तेल निकलता है और जो रेचक होनेके कारण दवाके काममें आते हैं।

रेंती (हि॰ स्त्री॰) खरबूजेका छोटा फल, ककड़ी या खरबूजेकी बतिया।

रेरें (अ॰ पु॰) अनमने लड़कोंके रोनेका शब्द।

रे (सं॰ अव्य॰) १ सम्बोधन शब्द। इस सम्बोधनसे आदरका अभाव सूचित होता है और इसका प्रयोग अपनेसे छोटेके प्रति होता है जिसके प्रति 'तू' सर्वनामका

व्यवहार होता है। (पु०) २ ऋषभ स्वर। जैसे,—स, रे, ग, म, प, ध, नी।

रेउँछा (हिं० पु०) रेवँछा देखो।

रेउड़ा (हिं० पु०) रेवड़ा देखो।

रेउता—व्यञ्जनभेद, हवा करनेका एक पंखा।

रेउती (रेवती)—युक्तप्रदेशके वलिया जिलान्तर्गत एक नगर। यह अक्षा० २५°५१' उ० तथा देशा० ८४° २५'१३" पू०के बीच पड़ता है। यह नगर बड़ा गंदा है। यहां निकुम्भ राजपूत लोग रहते हैं।

रेउतीपुर (रेवतीपुर)—युक्तप्रदेशके गाजीपुर जिलेके अंदर एक नगर। यह अक्षा० २५° ३२' १६" उ० तथा देशा० ८३° ४५' १६" पू० तक विस्तृत है। सकड़वाड भूमिहार यहांके प्रधान अधिकारी हैं।

रेक (सं० पु०) रेक शङ्कायां वा रिच-घञ्। १ शंका। २ नीच। ३ विरेचन, दस्त लाना। ४ भेक, मेंढ़क।

रेकपल्ली—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके गोदावरी जिलेके अंदर एक तालुक और उस नामका उपविभागका एक नगर। १८५८ ई०में यह तालुक और भद्राचलम् विभाग मध्यप्रदेशकी सीमाके अंदर कर लिया गया है। वह वर्त्तमान गोदावरी जिलेके एजेंसी भूभागमें परिगणित है।

रेकनस (सं० क्ली०) रिणक्तीति रिच् (रिचेर्धनेधित् किच्च। उण् ४।१९८) असुन्, चात् प्रत्ययस्य नुट् घित्वात् कुत्वं। स्वर्ण, सोना।

रेका (सं० स्त्री०) रेक शङ्कायां अच्, स्त्रियां टाप्। सन्देह।

रेकान (हिं० पु०) वह जमीन जो नदीके पानीकी पहुंचके बराबर हो।

रेकार्ड (अं० पु०) १ किसी सरकारी या सार्वजनिक संस्थाके कागजपत्र। २ कुछ विशिष्ट मसालोंसे बना तवेके आकारका गोल टुकड़ा, चूड़ी। इसमें वैज्ञानिक क्रियासे किसीका गाना बजाना या कही हुई बातें भरी रहती हैं। फोनोग्राफके संदूकके बीचमें निकली हुई कील पर इसे लगा कर कुंजी देने पर यह घूमने लगता है और इसमेंसे शब्द निकलने लगते हैं। विशेष विवरण फोनोग्राफ शब्दमें देखो। ३ अदालतकी मिसिल।

रेकु (सं० त्रि०) १ शून्य। २ स्वजनपरित्यक्त, कुटुम्ब परिवारसे छोड़ा हुआ। ३ निर्जन। ४ गुप्त, छिपा हुआ।

रेक्टर (अं० पु०) किसी संस्थाका विशेष कर शिक्षा संस्था का प्रधान।

रेख (हिं० स्त्री०) रेखा, लकीर। २ गिनती, हिसाब। ३ चिह्न, निशान। ४ हीरेके पांच दोषोंमेंसे एक जिसमें हीरेमें महीन महीन लकीरें सी पड़ी दिखाई पड़ती हैं। ५ नई नई निकलती हुई मूछें, मूछोंका आभास।

रेखता (फा० पु०) एक प्रकारका गाना या गज़ल। इसका प्रचार पहले पहल मुसलमानों द्वारा अरबी फारसी मिली हिन्दीमें हुआ था। इसीसे उर्दू को बहुत दिनों तक लोग रेखता ही कहते थे।

रेखना (हिं० क्रि०) १ रेखा खींचना, चिह्न करना। खरोंचना, छेदना।

रेखांश (स० पु०) द्राघिमांश, याम्योत्तर वृत्तकी एक एक डिग्री या अंश।

रेखा (सं० स्त्री०) लिख्यते इति लिख विलेखने (भिदा-भिदादिभ्योऽङ्। पा ३।३।१०४) इति भिदादित्वात् अङ्, टाप्, रलयोरैक्यात् लस्य रत्वं। १ अल्पक, थोड़ा कम। २ छद्म, कपट। ३ आभोग, सुख आदिका पूरा अनुभव। ४ उल्लेख। यहां पर उल्लेख शब्दका अर्थ दण्डाकारलिपि अर्थात् लकीर है।

मनुष्यके शरीरमें हाथ, पैर और कपाल आदिकी रेखा देख कर उनके शुभाशुभका निर्णय किया जाता है। गरुड़पुराण और सामुद्रिकमें इसका विशेष विवरण लिखा है। यहां संक्षेपमें लिखा जाता।

"रेखाभिर्बहुभिर्दुःख स्वल्पाभिर्धनहीनता।
रक्ताभिः श्रियमाप्नोति कृष्णाभिः प्रेष्यतां व्रजेत्॥"
(सामुद्रिक)

करतल पर अनेक रेखा रहनेसे दुःखी और कम रेखा रहनेसे धनहीन होता है। वह रेखा यदि लाल होवे, तो लक्ष्मीलाभ तथा काली होनेसे भृत्य होता है।

यदि हाथकी वृद्धाङ्गुलिको मध्यरेखाके अन्तर्गत जौका चिह्न दिखाई दे, तो शुभ होता है। जिसके हाथमें अंकुश, वज्र और छत्रका चिह्न रहे तो उसे नाना प्रकारका ऐश्वर्य लाभ होता है तथा सौ वर्षकी परमायु होती है। यदि किसी स्त्री वा पुरुषके करतल पर धनुष, पद्म या तोरणके

जैसा चिह्न रहे, तो वह राज्य, अनेक प्रकारका ऐश्वर्य तथा दीर्घायुलाभ करता है। जो रेखा कनिष्ठाङ्गुलिके मूलसे ले कर तर्जनीके मूल तक चली गई है तथा वह रेखा यदि *छिन्न भिन्न न हो, तो उसकी परमायु सौ वर्षकी होती* है। यदि आयुरेखा कनिष्ठाङ्गुलिके मूलके नीचेसे आ कर मध्यमाङ्गुलिके मूलमें मिलती हो, तो उस मनुष्यकी भी आयु सौ वर्षकी होती है।

यदि किसीकी आयुरेखा कनिष्ठाङ्गुलिके मूलसे आ कर अनामिकाके मूलसे मध्यमें मिलती हो, तो ५० वा ६० वर्षकी परमायु और यदि छोटी रेखा उस आयुरेखाको काटती हो, तो उसकी अल्पायु होती है।

जिस पुरुषकी कनिष्ठांगुलिके नीचे *जितनी रेखाएं* होंगी उसे उतनी ही स्त्री होगी। हाथके मणिबन्धसे जो रेखा निकल कर मध्यमांगुलिके मूल तक चली गई है उसका नाम ऊर्द्ध्वरेखा है। यह रेखा रहनेसे अनेक प्रकारका सुख ऐश्वर्यलाभ होता है।

जिसके ललाटमें चार समाकार रेखा रहें, उसकी अस्सी वर्षकी परमायु तथा उसी तरहकी पांच रेखा रहनेसे सौ वर्षकी परमायु होती है। *स्त्रियोंके करतल* में अनेक रेखा रहनेसे विधवा और निविड़ रेखा नहीं रहनेसे दरिद्रा होती है।

करतलमें दो पितृ और मातृरेखा पृथक् पृथक् हैं। मातृरेखा तर्जनीके मूलसे ले कर अङ्गुष्ठके मूल तक आयुरेखाके निम्न तल हो कर सीधी चली गई है तथा पितृरेखा तर्जनी और अङ्गुष्ठके मूलके मध्यभागसे निकल कर निम्न भाग तक विस्तृत रहती है। करतलमें जिसकी पितृरेखा पूर्णरूपसे अंकित रहती है उसने पिताके औरससे जन्मग्रहण किया है और यह रेखा यदि अर्द्धरूपमें अंकित रहे, तो दूसरेके औरससे जन्म ग्रहण किया है, ऐसा जानना होगा।

करतलमें कनिष्ठांगुलिके मूलसे रेखा निकल कर अनामिका और मध्यमाके मध्य भागमें संयुक्त होनेसे सौ वर्षकी परमायु होती है। अङ्गुष्ठके मूलभाग तक जो सब रेखाएं चली गई हैं वे रेखा यदि छोटी हों, तो परमायु अल्प तथा बड़ी होनेसे अनेक पुत्र प्राप्त होते हैं। (सामुद्रिक)

गरुड़पुराणमें लिखा है, कि जिसके ललाटमें तीन समान रेखा रहे उसकी परमायु ६० वर्षकी होती और वह पुत्रपौत्रादि *नाना प्रकारका सौभाग्य लाभ करता* है। दो रेखा रहनेसे ४० वर्षकी और एक रेखा रहने-से २० वर्षकी परमायु होती है।

"ललाटे यस्य दृश्यन्ते तिस्रो रेखाः समाहिताः।
सुखी पुत्रवायुक्तः स षष्टिं जीवते नरः॥
चत्वारिंशच्च वर्षाणि द्विरेखालसनमरः।
विंशत्यब्दमेकरेखा आकर्णान्ताः शतायुषः॥"

(गरुड़पु० ६५ अ०)

ज्योतिषशास्त्रमें लङ्कासे मेरु पर्यन्त अर्थात् याम्योत्तरमें *अथवा मध्यरेखाका स्थान निर्णय करनेके लिये गणित*-सापेक्ष जो सब वृत्ताकार लिपि कल्पनामें भू या स पृष्ठ पर कही गई है उसीका नाम रेखा है।

५ गणना गिनती। ६ आकृति, आकार। ७ हीरेके बीचमें दिखाई पड़नेवाली लकीर जो एक दोष मानी जाती है। रत्नपरीक्षामें रेखाएं चार प्रकारकी कही गई हैं, सव्य रेखा अपसव्य रेखा, ऊर्द्ध्वरेखा और दीर्घापिधि रेखा। इनमेंसे सव्यरेखाको छोड़ कर और *सबका फल अशुभ माना गया है।*

रेखाकार (सं० त्रि०) लकीरकी तरह आकारवाला।

रेखागणित (सं० पु०) रेखाएं गणितं प्रमाणरूपादि यत्र। गणितका वह विभाग जिसमें रेखाओं द्वारा कुछ *सिद्धान्त निर्धारित किये जाते हैं*, देशसंबंधी सिद्धान्त स्थिर करनेवाला गणित।

इस शब्दका प्रयोग पहले पहल *पण्डितराज जग*न्नाथने किया। वे महाराज श्रीजयसिंहके सभा-पण्डित थे। उन्होंने महाराज आज्ञानुसार 'इउक्लिड'के अरबी अनुवादका संस्कृतमें अनुवाद किया। इसी कारण प्राचीन अभिधानादिमें उक्त शब्दका व्यवहार नहीं है। गुणमूल ही ज्यामिति या ज्योमेटरी शब्दका यथार्थ प्रति शब्द है। क्योंकि Geo का अर्थ पृथ्वी और Metry का अर्थ मिति है अतएव ज्यामितिके बदले भूमिति शब्द को ही रेखागणितका यथार्थवाचक कह सकते हैं। किन्तु गुणमूल और ज्योमेटरी इन दोनोंके अर्थमें कोई

फर्क नहीं है। शुल्वयति (येषाः) पृथिवीं परिमाति इति शुल्वः (दुर्गादास)।

पाश्चात्य पण्डितोंका विश्वास है, कि आर्य्यऋषिगण रेखागणितके रहस्यसे अवगत नहीं थे। किन्तु उनका यह विश्वास एकदम भ्रमात्मक है। क्योंकि यूरोपीय विख्यात पण्डित बुर्नलने साफ अक्षरोंमें लिखा है, कि ब्राह्मणोंने इस जगत्‌में रेखागणितका रहस्य उद्भावन किया था।

यज्ञीय वेदी बनानेके लिये ऋषियोंने शुल्वसूत्र निकाला था तथा उसी रेखागणितमें पीछे परिमिति और क्षेत्रतत्त्वकी उत्पत्ति हुई थी।

जगत्‌के प्राचीनतम साहित्य वेदके मध्य भारतीय रेखागणितका मूलसूत्र दिया गया है। शुल्वसूत्रमें सम्बन्धीय अनेक पुस्तक हैं। उनमेंसे बौधायन, आपस्तम्ब, मानव, मैत्रायणीय और कात्यायन शुल्वसूत्र ही प्रधान है। यजुर्वेदान्तर्गत तैत्तिरीयसंहिता (५।४।११।१)में शुल्वसूत्रका मूलतत्त्व लिखा है। वे सब वेदके कल्पसूत्रके अन्तर्गत हैं। इस शुल्वसूत्रका मूलतत्त्व मालूम होनेसे भूमि, क्षेत्र, कोटी, भुज, व्यास, व्यासार्द्ध निकाले जाते हैं।

भारतवर्षमें यदि रेखागणितका मूलतत्त्व अविदित रहता तो ब्रह्मगुप्त, ब्रह्मसिद्धान्त और भास्कराचार्य लीलावतीमें क्षेत्रतत्त्वका रहस्य प्रकट न कर सकते थे।

हम लोगोंका विश्वास है, कि जब आर्यसभ्यताका आलोक मिस्रदेशमें फैला था। उस समय आर्य औपनिवेशिकोंने रेखागणिततत्त्वकी मिस्रदेशमें पहले पहल शिक्षा दी थी। उसी कारण मिस्रके राजा सिसस्त्रिसके शासनकालमें जमीन नापके लिये रेखागणितका प्रचार हुआ था। पीछे वह ग्रीकदेशमें भी फैल गया।

ज्यामिति शब्द देखो।

जो कहते हैं, कि भारतवर्षमें परिमिति (Mensuration) थी, रेखागणित नहीं था, वे भूल करते हैं, शायद अङ्कशास्त्र वे नहीं जानते हैं। लीलावतीके टीकाकार मुनीश्वरका ग्रन्थ पढ़नेसे उनका संदेह दूर हो जायगा।

जगन्नाथ सम्राट्‌का रेखागणित किस ढंगका है, अभी यही देखना चाहिये। वाराणसी-संस्कृत कालेजके गणित और ज्योतिषाध्यापक महामहोपाध्याय सुधाकर द्विवेदीने गणकतरङ्गिणी ग्रन्थमें लिखा है—"अरबीभाषातः संस्कृते जगन्नाथकृतो युक्लिदाख्य ग्रन्थस्याप्यनुवादो रेखागणित नाम्ना प्रसिद्धोऽस्ति यत्र पञ्चदशाध्यायाः सन्ति। अस्य गणितस्य रेखागणितमिति नामकरणं प्रथमं जगन्नाथ-सम्राजैवाकारि * * *।" अर्थात् अरबीभाषामें युकलिड का जो अनुवाद था उसी ग्रन्थसे जगन्नाथ पण्डितने उक्त ग्रन्थ संस्कृतमें अनुवाद किया। जगन्नाथ सम्राट्‌ने ही सबसे पहले इस गणितका रेखागणित नाम रखा।

जगन्नाथ तैलङ्गदेशीय ब्राह्मण थे। सम्राट् औरङ्गजेब उनकी बुद्धिमत्ता और पाण्डित्य देख कर बड़े मुग्ध हुए थे और उन्होंने पण्डितवरको दिल्लीमें बुला कर अपना सभा-पण्डित बनाया तथा अरबी और पारसी भाषाकी शिक्षा दी। पीछे जयपुरके राजा गणितज्ञ जयसिंह औरङ्गजेबके निकटसे जगन्नाथको प्रार्थना कर अपनी सभामें लाये। जयसिंहकी सभामें जगन्नाथने ज्योतिष और गणितके सम्बन्धमें अनेक ग्रन्थ लिखे। उन सब ग्रन्थोंमें रेखागणित और सिद्धान्त-सम्राट् ही प्रधान है। रेखागणित और सिद्धान्तसम्राट्‌के आरम्भमें जगन्नाथने लिखा है—

"अरबीभाषया ग्रन्थो मिजास्तीनामकः स्थितः।
गणकानां सुबोधाय गीर्वाणया प्रकटीकृतः॥"

जो हो, जगन्नाथने 'युकलिड'के अनुवादका महाराज जयसिंहकी आज्ञासे संस्कृतमें अनुवाद किया, इसमें सन्देह नहीं। फिर भी उन्होंने अपने रेखागणितमें उसकी भारतीय उत्पत्तिकी बात लिखी है। दुर्भाग्यक्रमसे वे वैदिक पण्डित नहीं थे, यदि होते, तो समस्त तत्त्वोंको प्रकट कर सकते थे।

जगन्नाथने रेखागणितके प्रारम्भमें जो लिखा है, उसका अर्थ यों है,—जिन्होंने वाजपेययज्ञ और षोड़श महायज्ञ किये हैं, ब्राह्मणोंको गो, ग्राम, हस्ती और अश्वादि दान दिये हैं, उन जयसिंहको प्रसन्न करनेके लिये पण्डित सम्राट् जगन्नाथ रेखागणितकी रचना करते हैं। यह अपूर्व शास्त्र पढ़नेसे कोणज्ञानसे क्षेत्रतत्त्वमें गणितशास्त्रमें अच्छी व्युत्पत्ति हो सकती है। यह अपूर्व शिल्पशास्त्र ब्रह्माने विश्वकर्माको सिखलाया था। पीछे परम्परावशतः

यह शास्त्र मृत्युलोकमें आया। किन्तु अनेक कारणों से यह शास्त्र भारतवर्षसे उच्छिन्न या विलुप्त हो गया। इसके बाद महाराज जयसिंहकी आज्ञासे गणकोंके आनन्द के लिये मैं उस लुप्त शास्त्रको पुनः प्रकाशित करता हूं।

यह रेखागणित ग्रन्थ १५ अध्यायमें विभक्त है तथा इसमें ४७८ सकल (Propontion) अर्थात् प्रतिज्ञा हैं।

उनमेंसे पहले अध्यायमें ४८, दूसरेमें ४, तीसरेमें १७ चौथेमें १६ पांचवेंमें २५, छठेमें ३३, सातवें में ३६, आठवेंमें २५, नवेंमें ३८, दशवें १०६, ग्यारहवें ४१, बारहवें १५, तेरहवें में २१, चौदहवें में १० और पन्द्रहवें अध्यायमें ६ प्रतिज्ञा हैं।

किन्तु जयपुर प्रदेशमें जगन्नाथका जो रेखागणित ग्रन्थ छपा है उसमें १३ वें अध्यायमें १३१ नूतन अतिरिक्त प्रतिज्ञा तथा १६६ नूतन अनुशीलनी हैं। यदि ऐसा हो, तो प्रतिज्ञाकी संख्या और भी बढ़ जाती है।

मूल इउक्लिद, मिज्रास्ती और जगन्नाथके रेखागणित की आलोचना करनेसे उत्तरोत्तर उत्कर्ष मालूम होता है। युक्लिदके ग्रन्थसे मिज्रास्ती उकुगलेगके ग्रन्थमें बहुतसी नयी प्रतिज्ञा देखी जाती हैं। फिर जगन्नाथके ग्रन्थमें उससे भी अधिक उत्कर्ष देखनेमें आता है। इससे स्पष्ट मालूम होता है, कि जगन्नाथने केवल आक्षरिक अनुवाद ही नहीं बल्कि उक्त शास्त्रका बहुत कुछ उत्कर्ष साधन भी किया था। उन्होंने प्रथम अध्यायकी ४७वीं प्रतिज्ञा १६ प्रकारसे उपपन्न की है।

उक्त रेखागणित लोकमणि नामक लेखकने १७८४ संवत् (१६४९ शकमें) रविवार शुक्ला चतुर्थीको रात को अनुलिपि की।

"युगवसुनगभूवर्षे शुचिशुक्ला तुर्यिकी रवेर्वारे।
व्यलिखल्लोकमणिः किल जगन्नाथस्य पुस्तम्।"

जगन्नाथ पण्डितका रेखागणित गद्यमें लिखा है, किन्तु श्लोकके आकारमें रचित 'सिद्धान्तचूड़ामणि' नामक दूसरा रेखागणित भी देखा जाता है। जगन्नाथ के रेखागणितकी भूमिकामें यह सिद्धान्तचूड़ामणि कहा गया है।

सुललित छन्दोंमें ग्रथित सिद्धान्तचूड़ामणिकापाठ देखनेसे कभी भी यह अनुवादक जैसा प्रतीत नहीं होता है। जगन्नाथने सच कहा है, कि रेखागणित भारतवर्षसे विलुप्त हो गया था—बार बार वैदेशिक आक्रमणसे भारतवर्षकी लक्ष्मी और सरस्वती दोनोंका भण्डार लूटा गया था।

ग्रीसदेशका रेखागणित पढ़नेसे मालूम होता है, कि पिथागोरसके समयमें ही ग्रीसमें रेखागणित शास्त्र की यथेष्ट उन्नति हुई थी। उन्होंने प्रथम अध्यायकी ३२वीं और ४७वीं प्रतिज्ञाका उद्भावन किया। पिथागोरसके जीवनचरितमें स्पष्ट लिखा है, कि वे भारतवर्षमें घूमने आये थे। मालूम होता है, उस समय अर्थात् ईसाजन्मके पहले छठी सदीमें यहां रेखागणित शास्त्र का विशेष प्रचार था। क्योंकि उस समय बौद्धयुगके उत्कर्षसे ब्राह्मण्य शिक्षासभ्यतामें धक्का नहीं पहुंचा था। उस समय भी ब्राह्मण्यके लीलानिकेतन भारतवर्षमें सभी शास्त्रोंका सम्यक् अनुशीलन होता था। पीछे बौद्धविप्लवसे भारतीय ब्राह्मण्य-सभ्यताकी बड़ी अवनति हुई थी।

जो हो, पिथागोरस जब भारतवर्ष आये थे उस समय भारतीय शास्त्रप्रचार उच्छिन्न या विच्छेद नहीं हुआ था। पिथागोरसने भारतवर्षसे लौट कर प्रचार किया कि "त्रिभुजके तीनों कोण मिल कर दो समकोणके तथा समकोणी त्रिभुजमें भुजकोटीके वर्गक्षेत्र, कर्णाङ्कित वर्गक्षेत्रके समान होता है।"[१] यह नया तत्त्व ग्रीसमें अज्ञात था। इससे ग्रीसमें क्षेत्रतत्त्व और परिमितिकी उन्नति होने लगी।

इधर भारतवर्षमें बौद्धविप्लवसे वैदिक क्रियाकाण्ड लुप्त सा हो रहा था। बौद्धयुगके बाद भारतवर्षमें मुसलमान आक्रमणसे भी सैकड़ों वर्ष तक वैदिकशास्त्र का कोई अनुशीलन नहीं हुआ। इसीलिये सभी समझ सकते हैं, कि भारतमें रेखागणित उन्नतिके सोपान पर क्यों न चढ़ सका।

रेखागणिततत्त्वकी सूक्ष्मभावमें पर्यालोचना करने से मालूम होगा, कि इसका जन्म भारतीय ऋषियोंके मस्तिष्कसे हुआ है। कारण, त्रिभुजाभुज, कोटी और कर्णतत्त्व पहले ऋषियोंने ही उद्भावन किया था। फिर ग्रीसका इतिहास पढ़नेसे स्पष्ट मालूम होता

है, कि पिथागोरसके पहले ग्रीसमें रेखागणितकी उतनी उन्नति न थी। पिथागोरसने उपरोक्त तत्त्वके अलावा सरलपृष्ठ घनक्षेत्रविषयक अभिनव-तत्त्व ग्रीसमें सिखलाया था। उन्होंने ५४७ ई० सन्के पहले इटलीके टरेण्टम नगरमें अपने नाम पर एक विद्यालय खोला। वहां उन्होंने गणित और ज्योतिषके अनेक तत्त्वों की शिक्षा दी थी। आखिर 'पृथ्वी अपनी धुरी पर घूमती है और तारे निश्चल हैं" यह उपदेश जब इन्होंने दिया, तब साधारण विद्वत्वर्गने इन्हें भूखों रख कर मार डाला था। इससे यह अनुमान किया जा सकता है, कि वैदेशिकतत्त्वकी शिक्षा देनेके कारण ही उनकी यह दशा हुई थी।

पीथागोरसके बाद ग्रीकदेशमें रेखातत्त्वकी यथेष्ट समालोचना होने लगी। पीछे प्लेटोके शिष्यने ज्यामिति-का सूत्रपात किया। उन्होंने तथा मिनेकमस नामक रैखिकने शङ्कुच्छिन्नक्षेत्र (Geometry वा Conics)के अनेक तत्त्व आविष्कार किये। इस समय सूचीक्षेत्र पृष्ठफलनिर्णयका उपाय उद्भावित हुआ। शङ्कुच्छेद और सूचीक्षेत्र देखो।

किन्तु उस समय भी युक्लिडका जन्म नहीं हुआ था। मिनेकमसके बाद आर्कमिदिसने ज्यामिति वा रेखागणितकी बड़ी उन्नति की। २८७ ई०सन्के पहले उन्होंने रेखागणित सम्बन्धीय पुस्तक रची। इसके पहले गोलघनफलका नियम ग्रीसमें अज्ञात था। आर्कमिदिसने उसका आविष्कार किया। आर्कमिदिसने अपने शिष्योंसे कहा था, "जो क्षेत्र अङ्कित कर मैंने गोलघनका आविष्कार किया है, मेरी मृत्युके बाद समाधिस्तम्भमें वह क्षेत्र अङ्कित कर देना।" आज भी उनकी समाधिमें वह अङ्कित क्षेत्र उस अतीत कीर्त्तिकी घोषणा करता है।

आर्कमिदिसके बाद युक्लिडका आविर्भाव हुआ। ये आथेन्स नगरमें और अलेकजन्द्रियाके विश्वविद्यालयमें रेखागणित शास्त्रके अध्यापक थे। उन्होंने उक्त शास्त्रका परिवर्द्धन कर एक संशोधित पुस्तकका प्रचार किया।

इस समय सारे संसारमें जिस रेखागणितकी आलोचना होती है, युक्लिडको उसका मूल कहनेमें कोई अत्युक्ति न होगी। रेखागणित शब्द युक्लिडके साथ एकार्थवाचक हुआ है। युक्लिड रेखागणित शास्त्रके जन्मदाता नहीं होने पर भी इसके पिता अवश्य हैं। क्योंकि, रक्षण, पोषण, पालन आदि कार्यों द्वारा वे ही रेखागणितके यथार्थ पितृपदवाच्य हैं।

युक्लिडके बाद रेखागणितकी और किसीने उन्नति नहीं की। उसी समय ग्रीसमें रोमकशासन प्रवर्त्तित हुआ था। रोमकशासनमें उक्त शास्त्र बिलकुल निश्चल था। केवल बियियस नामक रोमक गणितज्ञने ग्रीक ज्यामिति-का अनुवाद किया था।

इसके बाद सैकड़ों वर्ष पृथ्वी पर रेखागणितकी आलोचना नहीं हुई। क्योंकि रोम-साम्राज्य ध्वंस होनेके बाद यूरोपखण्ड अज्ञान अन्धकारसे समाच्छन्न हो गया था। पीछे जब ९वीं सदीमें मुसलमानी शिक्षा-सभ्यताका उन्नत युग प्रवर्त्तित हुआ, तब बोगदादके समरकन्द नगरमें मिर्जा उलुगबेगने रेखागणितकी पुनः आलोचना की। इसके बाद १६वीं सदीको जब यूरोप-में शिक्षासभ्यताका नवयुग आरम्भ हुआ, तब यह शास्त्र फिरसे आलोचित होने लगा।

१५७० ई०को इङ्गलैण्डमें सबसे पहले युक्लिडका रेखा-गणित मुद्रित हुआ था। युक्लिडके बाद जिन्होंने रेखा-गणितका प्रसार किया। उनमेंसे रोमेर, भल, पास्कल, केपलर और देकार्तके नाम उल्लेखनीय हैं। देकार्तकी ध्वच्छेदक वा बैजिक ज्यामिति द्वारा संख्यागणित और रेखागणितके मध्य घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित हुआ है।

युक्लिडके समय रेखागणितकी सीमा जितनी दूर थी, अभी उससे कहीं बढ़ गई है।

भारतवर्षमें जगन्नाथका रेखागणित मुद्रित और हिन्दी भाषामें अनुवादित हुआ है। शुल्वसूत्र देखो।

रेखान्तर (सं० क्लो०) द्राघिमान्तर, किसी वेधशालाकी निर्दिष्ट याम्योत्तर रेखाके पूर्व या पश्चिमका व्यवधान-स्थान।

रेखाभूमि (सं० स्त्री०) रेखास्थिता भूमि। लंका और सुमेरुके बीचका देश। लङ्का और सुमेरुके बीच रेखा-की कल्पना कर अक्षांश स्थिर करना होता है। इस रेखाकी सीधमें जो सब देश पड़ते हैं वे रैखाभूमि (Equator) कहलाते हैं।

"बरुद्धा-ग्रथिनोपुरोपरि कुरु क्षेमादिदेशान् स्पृशन्
सन् मेरुपर्वं पुरे निविश्य वा मध्वरेशायुधा।
भावी ममुदपोऽपि प्रकटिमयो पश्चादि रेखोदयान्
स्थानसमान् विवदं तदन्तरयुत वोऽत्यर्थं तत्फलम्॥"
(सिद्धान्तशिरोमणि)

रोहितक देश, मवन्ती देश तथा उसके पासका सरोवर और कुरुक्षेत्र इन सब स्थानोंको रेखाभूमि कहते हैं।

[illegible]ायनि (स॰ पु॰) रेखायनके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष।

[illegible]ित (स॰ वि॰) १ कि या हुआ, अ कित। मसका हुआ, फटा हुआ। २ जिस पर रेखा या लकीर पड़ी हो।

[illegible]िन् (स॰ त्रि॰) रेखास्यास्तीति रेखा-इनि। रेखा युक्त। जिस पर रेखा या लकीर पड़ा हो।

[illegible] (फा॰ स्त्री॰) बालू।

[illegible]गिस्तान (फा॰ पु॰) बालूका मैदान, मरुदेश।

[illegible]गुलेशन (अ॰ पु॰) १ वे नियम या कायदे जो राज पुरुष अपने अधीन देशके सुशासनके लिये बनाते हैं, विधान, कानून। २ वे नियम या कायदे जो किसी विभाग या संस्थाके सुसंचालन और प्रबन्धके लिये बनाये जाते हैं, नियम।

[illegible]ग्युलेटर (अ॰ पु॰) किसी मशीन या कलका वह हिस्सा या पुर्जा जो उसकी गतिका नियन्त्रण करता है, नियामक।

[illegible]ङ्गुपोपहाड़—आसामप्रदेशके कछाड़विभागके अन्तर्गत एक गिरिश्रेणी। यह लुसाई शैलमालासे उत्तरकी ओर फैल गई है। सोनाई और धलेश्वरी नदी इसके दोनों ओर बहती है।

[illegible]ङ्गुमा—आसाम प्रदेशके नागा शैलमालाके अन्तर्गत एक गिरिमाला। यह अक्षा॰ २६ १५ से २६ ३० उ॰ तथा देशा॰ ९३ २४´ से ९३ ४०´ पू॰के मध्य विस्तृत है। इस पर्वत पर रेङ्गमा जातिके लोग रहते हैं। ये लोग नागा या मिकिर जातिकी तरह असभ्य नहीं हैं, किन्तु माकृतिगत सादृश्यमें कोई पृथकता दिखाई नहीं देती। नागा जातिकी यह शाखा धनश्री (धानश्री) नदीके पूर्वदेशसे यहां आई है।

रेङ्गून—(रङ्गून) निम्नब्रह्मके पेगू विभागके अन्तर्गत अंगरेजाधिकृत एक जिला, बरमी लोग इसे र्यङ्कुन या हान्थावाडी कहते हैं। यह अक्षा॰ १६ से १७ उ॰ तथा देशा॰ ९५ से ९५ पू॰के मध्य विस्तृत है। इसके पश्चिममें सुसिस् तोंगू और पूरबमें इरावती नदीके दो या चीतकिरमुहाना तक विस्तृत समुद्रतट ले कर यह जिला संगठित है। भूपरिमाण ४२३६ वर्गमील है। इसका प्राचीन नाम बोलार देश है।

इसके उत्तर थारावती, इयगिन जिला, पूरबमें श्वेगिन तथा पश्चिममें थाङ्गवा और दक्षिणमें समुद्र है। रंगून जब जिला बनाया गया उस समय मातवोन नदीसे ले कर तौङ्गू पर्यन्त विस्तीर्ण पेगूयोमा शैलप्रान्तवर्ती आयक नामक भूभाग इसमें अन्तर्भुक्त था। १८५४ ई॰में यह श्रीगूक विभागमें तथा १८५६ ई॰में श्वेगिनके शासनाधीन लाया गया था। इसके बाद कवडिया थाना श्वेगिनमें, मोङ्गूमें थाना हेञ्जादर तथा पश्चिमका कुछ अंश थारीभ सहरमें मिला दिया गया है। पीछे १८८३ ई॰में पेगूहान्थावाडी सिरियमनगर विभागको रंगूनसे अलग कर नए पेगू जिलेमें शामिल किया गया था।

इस जिलेका प्राकृतिक सौन्दर्य बिलकुल नहीं है। समुद्रोपकूलमें विस्तृत समतलक्षेत्र क्रमशः उन्नत होता हुआ उत्तरकी ओर चला गया है। पेगूयोमा शैलका ऊंचा नीचा शाखाप्रदेश उसकी समताको भेद कर मध्य स्थलमें खड़ा है। पेगू नदीके दक्षिण हेङ्गू उपत्यका तथा रङ्गूनके उत्तर किसी किसी स्थानमें समुद्रकी खाड़ी भूगर्भको भेद कर देशकी ओर चला गई है। उसमें ज्वार भाटा समान भावमें रहता है। नावें तथा स्टीमरें इस खाड़ीमें हमेशा आती जाती रहती हैं। देश सब जातियोंमें बबूल, पपुन, पाज्ञहेङ्गू और थ-प्ययिन (वेसिनकी खाड़ी) उल्लेखनीय हैं।

पेगूयोमा पर्वत इस जिलेके उत्तरसे क्रमशः दक्षिणकी ओर चला आया है। यह दक्षिण शाखाकी शाखा दो भागों में विभक्त हो गई है। पश्चिम शाखा दक्षिण पश्चिमकी ओर विस्तृत हो कर हेङ्गू और पनमून नदी प्रवाहित उपत्यकाओंको विभक्त करती है तथा क्रमशः दक्षिण पूर्व आ कर पेगू नदीके किनारे समतलक्षेत्रमें मिल गई

है। उपरोक्त पश्चिमी शाखाके दक्षिण सुविख्यात शिउ दागोन पगोडा विद्यमान है।

यहाकी नदियोंमें छैङ्ग वा ञय प्रधान है। यही नदी रङ्गून नामसे समुद्रमें गिरती है। ओकन, मगोयी, क्षब्बी, लिम्नगुन इसकी शाखानदी है। ववले, पानछैङ्ग आदि खाडियां इसके साथ इरावतीमें मिलती है। पेगुनदुन नदी पेगुयोमा शैलसे निकल कर पेगू नदीमें मिली है। इस पेगू नदीसे स्टीमर पेगूनगर तक जाता है।

यहाका प्राचीन इतिहास कुछ भी मालूम नहीं। तामिल और तेलगू उपाख्यानमालासे जाना जाता है, कि ईसाजन्मके कई सदी पहले तैलङ्गके अधिवासियोंने वाणिज्यके उद्देशसे समुद्रकी राह जा कर ब्रह्मोपकूलमें उपनिवेश बसाया। उन्होंने यहा आ कर मून जातिको अधिवासिरूपमें देखा था। आज भी पेगुवानगण अपने को मून जातिके बतलाते हैं। तैलङ्गके अधिवासी यहा कुछ समय रहनेके बाद तलैङ्ग कहलाये।

तालपत्रमें लिखित स्थानीय राजविवरणमें इस प्रकार लिखा है,—भारतमें गोतम बुद्धके साथ साक्षात् और कथोपकथनके बाद दोनों भाइने यहां आ कर शिउ डागोन पगोडा स्थापन किया। वे दोनों भाई कौन थे, उसका कोई ऐतिहासिक विवरण आज तक नहीं मिला है। ऐतिहासिकतत्त्वकी आलोचना करनेसे मालूम होता है, कि तृतीय महाबोधिसङ्घके आदेशानुसार स्वर्ण और उत्तर बौद्धधर्मका प्रचार करनेके लिये सुवर्णभूमिमें गये। इससे स्पष्ट जाना जाता है, कि उस समयके डेल्टामें बौद्ध और ब्रह्मण्यधर्मावलम्बी मतविरोधियोंके मतका जोरों प्रचार था। प्रायः कई सदी तक ब्रह्मण्य-धर्मसेवी प्रचारकोंके साथ बौद्धप्रचारकोंका भारत-बहिर्भूत प्रदेशमें विवाद चलता रहा था। आखिर ८वीं सदीके शेष भागमें जब ब्रह्मण्यधर्मकी भारतवर्षमें गोटी जमी, तब बौद्धोंने वे रोकटोक हो कर ब्रह्मराज्यमें अपना धर्ममत फैलाया था।

इस ब्रह्मण्य और बौद्धविरोधसे आगे चल कर राजाओंके मध्य धर्ममतस्वातन्त्र्यके कारण घर फूट हो गई। पीछे उसीसे पेगूनगरमें धर्मस्रोतप्रवाहके साथ साथ नई राजधानीकी भी प्रतिष्ठा हुई थी। था तुन-राजके नाग (नागा) वंशीय महिषीके गर्भसे थ म ल और म ल नामक दो पुत्र थे। पिताने दोनोंसे किसीको सिंहासन नहीं दिया। इस कारण उन्होंने दूसरा धर्म ग्रहण किया और पेगूनगर बसा कर दोनों भाई वहीं रहने लगे। थ म ल ने वहाके राजपद पर अभिषिक्त हो पूर्वकी ओर अपना राज्यसीमा फैलाई। किंवदन्ती है, कि उन्होंने ही पीछे मर्त्तवान नगर बसाया था।

उनकी मृत्युके बाद वि-म-ल राजसिंहासन पर बैठे। वे सिगोङ्ग नगर बसा कर वहीं रहने लगे। इन्हींके शासनकालमें ५६० ई०को विज्ञ न-ग रन (विद्यानगर) राज्यके अधीश्वरने पेगू पर आक्रमण किया। इस युद्धमें वे पराजित हो कर स्वदेश लौटे। इस समयसे ले कर ७४६ ई०के मध्य इस वंशमें तेरह राजे हुए। शेषोक्त वर्षमें जिन राजाने राज्य किया था, उन्होंने पश्चिममें आराकान पर्वतमालासे लगायत पूर्वमें सालविन नदी तक विस्तृत समस्त रामण्ण देश तथा श्रीक्षेत्र था-तुन राज्यको अपने अधिकारमें कर लिया था। इस समय भी निम्न ब्रह्ममें बौद्धधर्म सर्ववादिसम्मतरूपमें ग्रहण नहीं किया था। १०वें पेगूके राजा पुन न-वीक (ब्राह्मण हृदय) तथा उनके पुत्र टेक था पौराणिक हिन्दूधर्मके प्रति ही विशेष आस्थावान् थे। टेक-थाकी मृत्युके बाद पेगूके ३य राजवंशका अवसान हुआ। प्रथम तीन राज-वंशने कब तक राज्य किया था तथा टेक-थाई किस समय परलोक सिधारे थे, वह मालूम नहीं। इसी कारण परवर्ती अराजकताका इतिहास अन्धकारसे ढका है।

९वीं और १०वीं सदीमें यहा जो धर्मविप्लव हुआ, तैलङ्ग इतिहासिकोंने उस विवरणको छिपा रखा। इसी-से इस प्रदेशकी किसी ऐतिहासिक घटनाका उल्लेख नहीं पाते हैं। १०५० ई०में पगानराज अ नव-र हतने इस स्थानको जीता। पीछे प्रायः दो सदी तक यह बरमी लोगोंके अधिकारमें रहा। इसके बाद ब्रह्मराज्यमें गृहविवादके कारण बलक्षय होने पर भी मुगल सम्राट् कुबलाई खां (१२८३-८४ ई०)ने जब चीनसैन्यकी सहायतासे ब्रह्म-राजधानी पर अधिकार किया, तब ब्रह्मराज्य

आत्मरक्षाके लिये बेसिन प्रदेश भाग गये। तैलङ्गोंने इसी अवसरमें स्वाधीनता होनेकी चेष्टा की तथा वे सबके सब खुल्लमखुल्ला बागी हो गये। व रि यू नामक एक व्यक्ति मर्तबानके ब्रह्मप्रान्तीय शासनकर्त्ताको मार कर यहां अपना अधिकार जमाया। इस समय पेगूके विद्रोह दलपतिने आ थाम-बोम दलबलके साथ आ कर व रि यू का साथ दिया। मिलित विद्रोही सेनादलने ब्रह्मराज सैन्यको पराजित कर प्रोमनगरके दक्षिण प-दौङ्ग नगर तक खदेड़ा। इसके बाद तैलङ्ग सेनादल पेगूनगर लौटा। किन्तु कुछ समय बाद ही दोनों दलपतियोंके बीच विवाद खड़ा हो गया। युद्धमें आ थाम बोम (त ब ब्य) मारे गये। पीछे जनसाधारणकी सलाहसे व रि यू समस्त जीते हुए प्रदेशके राजा हुए। कुछ समय बाद ही आ थाम बोमके दो पुत्रोंने व रि यूको गुप्तभावसे मार डाला। १३०६ ई०में उनके भाई राजपद पर बैठे। इन्होंने केवल चार वर्ष तक राज्य किया था।

१३८५से १४२१ ई० तक रज दो-रित सिंहासन पर अधिष्ठित थे। उनके अधिकारकालमें ब्रह्मियोंने निम्न ब्रह्म पर चढ़ाई कर दी थी। उन्होंने बाहुबलसे ब्रह्मी सेनाको परास्त कर १३८८ ई०में मर्तबान और उस पूर्व पश्चिम प्रदेशों पर दखल जमाया। इस समय ब्रह्मराजके साथ युद्धके सिवा तलङ्गके इतिहासमें और कोई उल्लेखयोग्य घटना न घटी।

राजा रज-दो रितके शासनकालमें पुर्त्तगीज-पथिक पहले पहल यहां आये। निकोलस कोण्टि १४३० ई०में पेगूनगरमें रह कर यहांकी समृद्धिका उल्लेख कर गये हैं। रज दो रितसे नीचे १०वीं पीढ़ीमें राजा थे गुप्त इनके समय आण्टोनियो कोररियाने १५१९ ई०में मर्तबानको सन्धि की। तभीसे सौभाग्यान्वेषी पुर्त्तगीज सेनादलके साथ पेगूराजका विशेष सद्भाव स्थापित हुआ था।

करीब १५४० ई०में तौङ्गूराज तबिनश्वेतिने पेगूको दखल किया। पीछे मर्तबान जीत कर वे पेगू लौटे और राजसिंहासन पर अभिषिक्त हुए। राज्यलाभके उपलक्ष्यमें इन्होंने श्वे-मदव और श्वे दागोन पगोडाके ऊपर नया छत्र दान किया था। कुछ समय बाद उन्होंने अपना अधिकार फैलाया। १५४८ ई०में श्याम आदिको पददलित कर उन्होंने राजकर देनेके लिये बाध्य किया था। १५५० ई०में तस्तित् तौङ्गूके शासनकर्त्ताने बड़े कौशलसे राजा तबिनश्वेतिका काम तमाम कर राजमुकुट धारण किया।

इस घटनासे राज्यमें घोर विप्लव उठ खड़ा हुआ। आखिर जनसाधारणकी रायसे सिंहासनके प्रकृत उत्तराधिकारी बुरिन-नौङ्ग राजपद पर अभिषिक्त हुए। राजपद पर बैठते ही उन्होंने पहले तौङ्गूको अधिकार किया और १५५७ ई०में आवा राजधानीमें राज पताका फहराई। थोड़े ही समयके अन्दर उन्होंने तेनासेरिमसे आराकान तथा समुद्रतटसे उत्तर शानराज्य तक अपना आधिपत्य फैला लिया था। १५८१ ई०में उनकी मृत्यु हुई। राजा बुरिन-नौङ्ग विख्यात योद्धा थे। उन्होंने राजधानीको प्राचीर और दुर्गसे सुरक्षित कर दिया। उनके बसाये हुए एक दूसरे नगरका ध्वस्त निदर्शन आज भी दृष्टिगोचर होता है। वे बहुत धार्मिक थे। इन्होंने सिंहलराजसे गौतमबुद्धका स्मृतिचिह्न मंगा कर उस पर पगोडा खड़ा करवाया था। नट वा अपदेवताकी प्रीतिके लिये जो वार्षिक उत्सव होता था, इन्होंने उठा दिया।

राजा बुरिन् नौङ्गकी मृत्युके बाद उनके लड़के नन्दबुरिन् राजा हुए। ब्रह्म-राजके सिवा और सभी राजाओंने उनकी अधीनता स्वीकार की थी।

राजा नन्दबुरिन् प्रजापतिके ऐसे उद्धत आचरणसे क्रुद्ध हो दलबलके साथ १५८४-८५ ई०में उनके राज्यकी ओर अग्रसर हुए। प्रजापति भयभीत हो तथा उन्हें रोकनेमें अपनेको असमर्थ देख चीनराज्यमें भाग गये। राजा नन्दबुरिन्को उधर ब्रह्ममें युद्धकार्यमें व्यापृत देख श्यामपति बागी हो गये। राजाने यह संवाद पाते ही उनके विरुद्ध बार बार सेना भेजी। पांचों बार उनकी हार हुई। आखिर वे अपमानसे उत्तेजित, क्रुद्ध और विरक्त हो गये। क्रोधसे वे इतने अधीर हो गये थे, कि जो कोई उन्हें अच्छी सलाह देता उसी पर वे टूट पड़ते थे, धीरे धीरे वे घोर अत्याचारी हो गये। इस समय तैलङ्ग बौद्ध यतियोंके साथ उनका मनमुटाव हुआ।

फलतः वे सबके सब निर्वासित हुए। राजकोपमें पड़ कर कुछ यति प्राण तक भी विसर्जन करनेके लिये बाध्य हुए थे। इस भीषण हत्याकाण्डके बाद डेल्टाविभाग बिलकुल जनशून्य हो गया तथा वहां अराजकता विराज करने लगी। इसी सुअवसरमें आराकन वासियोंने सिरियानको दखल किया। १५९९ ई०में पेगू दूसरेके हाथ चला गया तथा राजा नन्दभूरिन् बन्दीकी तौर पर तैङ्गू भेजे गये। इस समय कुछ दिन तक अराजकता फैली रही थी।

आराकनपतिने अपने पुर्त्तगीज सेनापति फिलिप डि ब्रिटो पर १६०० ई०में सिरियसका शासन भार सौंपा। राजाका अनुग्रह रहने पर भी सेनापतिने दस्युजातिका स्वधर्म परित्याग किया। विश्वासघातकता करके उनसे गोआके पुर्त्तगीज राजप्रतिनिधिके साथ षड़यन्त्र रचा। पीछे स्थानीय तैलङ्ग अधिवासियोंको अपनी मुट्ठीमें करके शासनकर्त्ता ब्रिटोने पुर्त्तगालपतिके नामसे पेगू राज्यको जीता और स्वयं वहांका राजा हुआ।

सिंहासन पर बैठ कर ब्रिटोने सिरियन नगरकी श्रीवृद्धि की। उन्होंने गिरजा और दुर्ग बनवाया। तौङ्गू और अराकानपति उसके विरुद्ध खड़े हुए थे, पर कुछ कर न सके। दोनों राजाके सेनापति रणक्षेत्रमें पीठ दिखा कर भाग चले। कुछ बन्दी भी हुए थे। इसके बाद फिलिप डि ब्रिटोने अपने परम शत्रु तौङ्गुराज और मार्त्तवानपतिके साथ मेल कर लिया। किन्तु कुछ समय बाद ही इसने सन्धि तोड़ कर तौङ्गु गुपतिके विरुद्ध फिरसे अस्त्रधारण किया। इस समय १६१२ ई०में ब्रह्मराजने उसे पकड़ा और कैद कर लिया। राजविचारसे शूलीकी सजा हुई थी। इसके बाद पुर्त्तगीज लोग फिर पेगू राज्यमें अपनी गोटी न जमा सके।

इस समयसे ले कर १७४० ई० तक पेगू ब्रह्मराजके अधीन रहा। इन्हींके समय अङ्गरेज वणिक् वाणिज्य करनेके लिये रङ्गून आया था। १६९५ ई०में सिरियामें कोठी खोलनेके लिये उन लोगोंने राजाके पास आवेदन पत्र भेजा। १७०९ से १७४३ ई० तक अंगरेज वणिक् वहां जा कर रहे थे। इधर उत्तर प्रदेशसे बार बार आक्रमण तथा गृहविच्छेदसे जर्जरित हो ब्रह्मराज्य धीरे धीरे कमजोर होता गया। १७४० ई०में पेगूवासी विद्रोही हो गये और उन्होंने दो बार सिरियम पर हमला कर दिया। १७४३ ई०में विद्रोहियोंको जब अंगरेज वणिकोंसे सहायता न मिली तब उन्होंने गुस्सेमें आ कर अंग्रेजी कोठीको जला कर खाक कर दिया। पीछे उन लोगोंने आवा दखल किया। किन्तु १७५३ ई०में मुत-सो-बोवासी मौङ्ग-अङ्ग-जय राजधानीको फिरसे हस्तगत कर स्वयं आलौङ्ग-पय (आलोम्प्रा) नामसे सिंहासन पर बैठे। इस वंशने १८८५ ई० तक राज्य किया था। आलौङ्ग-पय राज्याधिकार वर्षके अन्दर ही वे पेगू, तावय और मार्गुईको जीत कर श्यामराज्यकी ओर बढ़े।

१८२४ ई०में प्रथम अंगरेज ब्रह्मयुद्ध खड़ा हुआ। अंगरेजीसेनाने नदीमुखमें प्रवेश कर रङ्गून पर अधिकार किया। युद्धके बाद ब्रह्मराजसे संधि करके अङ्गरेजोंने ब्रह्मराजको पेगूराज्य छोड़ दिया। फिरसे वाणिज्यसंक्रान्त वाद विवाद ले कर अंगरेज ब्रह्मका युद्ध छिड़ गया (१८५२ ई०)। इस युद्धमें अङ्गरेजोंकी जीत हुई। यन्दबूसन्धिके अनुसार समस्त रङ्गून जिला, पेगू, इरावती और तेनासेरिम विभाग अङ्गरेजोंको मिले।

इस जिलेमें प्रत्नतत्त्वके कितने अच्छे अच्छे निदर्शन देखनेमें आते हैं जिनमेंसे निम्नोक्त निदर्शन उल्लेखनीय हैं। इन सब निदर्शनोंके मनोहारी शिल्पचातुर्य और गठनप्रणालीको आलोचना करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। न्यान ते नगरका श्वे दागोन पगोडा बहुत प्रसिद्ध और आदरकी वस्तु है। इसके मध्यस्थलमें गौतम बुद्धका केशगुच्छ बड़े यत्नसे रखा हुआ है। श्वे मन्द पगोडा तलैङ्ग जातिकी गौरवकीर्त्ति है। उपरोक्त न्यान ते नगरके पास ही और भी कितने पगोडा विद्यमान हैं। उन्हें यहांके लोग प्राचीन साप्पाङ्गनगर और मिनश्लादोन क्षव वि नगरकी अतीत कीर्त्ति बतलाते हैं। हैङ्ग और तानबू नगर अपेक्षाकृत आधुनिककालमें नूतन स्थान गठित होने पर भी प्राचीन ग्रंथादिमें उसे पुराना नगर कहा है।

यहां रेशमी और सूती कपड़े, मट्टीके बरतन, लवण,

बैंगर, मात्रिका और्रों कारबार चलता है। मालकी राह से स्थानीय वाणिज्य विशेषरूपसे परिचालित होता है। इरावती-मेकी पे ड रेलवे खुल जानेसे बेसेम्मिन, प्रोम तब, डा न गा, सय वि, थमेरवड्डु सेक-गो, पाक्कोन और मोलमन नगरके वाणिज्यमें विशेष सुविधा हुई है। सित्तङ्ग रेलवे लाइन पेगूसे तौङ्गू तक चली गई है।

२ *निम्नब्रह्मकी* राजधानी। यह अक्षा० १६ ४६´ ३० तथा देशा० ९६ ११´ पू०के मध्य हैङ्ग नदीके वाम किनारे अवस्थित है। जनसंख्या लग लाखके करीब है।

तलैङ्ग जातिकी किंवदन्ती और उपाख्यानमालासे मालूम होता है, कि पू और म-तव नामक दो भाइयोंने ५८५ ई० सन्‌के पहले रंगून नगरमें पहले एक ग्राम बसाया। भगवत्‌की कृपासे उन्हें गौतम बुद्धके दर्शन हुए जिससे उनके सब पाप जाते रहे। पीछे बुद्धदेव प्रदत्त केशराजिका ले कर दोनों भाइयोंने उन्हींके आदेशानुसार श्वे-डागोन पगोडा बनाया और उसके नीचे केशगुच्छको रखा। ७४६ से ७६१ ई० तक राजा पुन म-थो-क ने पेगू सिंहासनको अलंकृत किया था। उन्होंने इस नगरका जीर्ण संस्कार करके अपना नाम रखा और पीछे यह फिरसे ड़गोन कहलाने लगा।

तलैङ्ग विवरणोंमें १४१३ ई०को ब्रह्मगण द्वारा नगराधिकार, एक दो रिदुके अङ्क व्या व्या चिन्ह द्वारा शासन कर्तृत्व लाभ तथा १४६० ई०में उनका राज शिन्सबु द्वारा प्रासाद निर्माण आदि विषयोंका गुणगान किया है। राजमहिषी शिनसबुके अंगरेज यहां एक प्रासादीय उत्सव मनाया जाता है। इस समयके बाद ड़गोन नगरकी समृद्धिका उल्लेख नहीं मिलता। हैं सीरियाकी डा-ला नगर और पेगू बीरमशा सिरियम नगर उस समय खूब तरक्की कर रहा था।

शासनार समयी १५८० ई०में जब पेगू नगर देखने आये। तब उन्होंने ड़गोनके सम्बन्धमें लिखा है, कि यहांके घर काठके बने हैं और उनमें सुनहली ही गई है। चारों ओर अच्छे अच्छे उद्यान शोभित हैं। इन सब घरोंमें तलैङ्गगण रहते हैं। ये लोग ड़गोनके पगोडाके परिदर्शकरूपमें नियुक्त हैं। ड़गोनके शासन कर्त्ता हो कारमान अङ्गरेज, पुर्तगीज और फरासियोंके ऊपर कर्तृत्व करते थे। पेगूराज उस समय यहांके सर्वेसर्वा थे।

ब्रह्म और पेगूराजके बार बार युद्धसे ड़गोनका शासनभार विभिन्न व्यक्तियोंके हाथ सौंपा गया। १७६२ ई०में अलौङ्गपयाने ब्रह्मकी राजधानी आवा नगरसे तलैङ्ग सेनादलको भगा कर तलैङ्गराज्य अधिकार किया। उन्होंने ड़गोनमें आ कर स्थानीय वृहत् पगोडाका फिरसे संस्कार किया। इसके बाद नगरकी शोभाको सब तरहसे बढ़ा कर उन्होंने इसका रणकुन (रंगून) नाम रखा। तभीसे रङ्गून नगरमें उनके प्रतिनिधि रहने लगे।

१७९० ई०में यहां फिरसे ब्रह्म और पेगूवासियोंमें युद्ध छिड़ा हुआ। रङ्गून पेगूराजके दखलमें रहने पर भी ब्रह्मराज बो-द-पयाने उन्हें परास्त कर अपने राज्यका उद्धार किया।

इसी समय अङ्गरेज-वणिकों को रङ्गूनमें वाणिज्य व्यवसाय चलानेके लिये कोठी खोलनेकी आज्ञा मिली। १७९४ ई०में अराकान और चट्टग्राममें इष्टइण्डिया कम्पनीके साथ ब्रह्मराज सरकारका विवाद खड़ा हुआ। तदनुसार दोनोंमें मेल करानेके लिये कनल साइमस कम्पनीके दूतरूपमें फिरसे राजदरबार पहुंचे। इस समय अंगरेज-राजको १७९८ ई०को रङ्गून नगरमें एक अङ्गरेज रेसिडेण्ट रखनेका अधिकार मिला था।

१८२४ ई०में प्रथम अङ्गरेज-ब्रह्मका युद्ध शेष हुआ। पीछे १८२६ ई० तक अङ्गरेजगण यहांका शासन करते रहे। उसी साल यन्दबूकी सन्धिके अनुसार अंगरेजराजने इस स्थानका स्वत्व छोड़ दिया। १८४१ ई०में राजा थूनसेङ्ग-मिन (थारावदी राजकुमार नामसे प्रसिद्ध) ओक-क-ला प नामक स्थानमें नगर उठा लाये। १८५२ ई०में द्वितीय ब्रह्मयुद्धके बाद रंगून अङ्गरेजोंके दखलमें आया। तभीसे यह अङ्गरेजोंके ही दखलमें चला आता है।

रंगून शहरमें निम्नलिखित विद्यालय प्रधान हैं— १८७४ ई०में स्थापित रङ्गून कालेज और हाइस्कूल, डायसेसन बालक स्कूल। यह १८६४ ई०में स्थापित हुआ और इसमें केवल अङ्गरेजके बालक पढ़ते हैं,

१८७२ ई०में स्थापित वैपटिष्ट कालेज, १८६४ ई०में स्थापित सेण्ट जोन कालेज ; वालिकाके लिये सेण्ट जोन्स कोनभेण्ट स्कूल। यह १८६१ ई०में खोला गया है; तामिल लड़कोंके लिये १८७८ ई०में स्थापित लुथेरन मिशन स्कूल तथा १८६१ ई०में स्थापित सेण्टपाल्स स्कूल। इसके सिवा ३० सेकेण्ड्री स्कूल, १२० प्राइमरी स्कूल २१० एलिमेण्ट्री स्कूल तथा १६ ट्रेनिङ्ग और स्पेशल स्कूल हैं। अस्पतालोंमें रङ्गून जेनरल अस्पताल और डफरिन अस्पताल प्रधान हैं। सेण्ट्रल जेलके पास ही पागलखाना (Lunatie asylum) है।

रेच (सं० पु०) फुस्फुस वायुनिर्मुक्त करणरूप योग प्रक्रियाभेद, सांस छोड़ना।

रेचक (सं० पु०) रेचयतीति रिच्-णिच् ण्वुल्। १ यवक्षार, जवाखार। २ जयमालवृक्ष, जमालगोटा। ३ तिलकवृक्ष, तिलकका गाछ। ४ पिचकारी। ५ प्राणायामभेद। पूरक, कुम्भक और रेचकभेदसे प्राणायाम तीन प्रकारका है। खींचे हुए सांसको पुनः विधिपूर्वक वहार निकालनेका नाम रेचक है।

"प्राणस्य शोधयेन्मार्गं पूरकुम्भकरेचकैः।" (भागवत ३।२८।६)

विशेष विवरण प्राणायाम शब्दमें देखो।

(क्ली०) ६ कङ्कुष्ठमृत्तिका। (त्रि०) ७ भेदक, जिसके खानेसे दस्त आवे, कोष्ठशुद्धि करनेवाला।

रेचन (सं० क्ली०) रिच-ल्युट्। मलभेदन। पर्याय—प्रस्कन्दन, विरेक, विरेचन, रेक, रेचना। (शब्दरत्ना०)

सुश्रुतमें रेचन द्रव्यका विषय इस प्रकार लिखा है—मूला, छाल, तेल, स्वरस और क्षीर इन छः प्रकारका रेचनका व्यवहार होता है। इनमेंसे मूल-विरेचनके मध्य लाल निसोथका मूल, त्वक् विरेचनके मध्य लोध्रकी छाल, फलविरेचनके मध्य हरीतकी, तेलके मध्य रेंडीका तेल, स्वरसके मध्य करेलेका रस और क्षीरके मध्य थूहरका क्षीर श्रेष्ठ है।

त्रिवृता, श्यामा, दन्ती, मूसाकानी, सप्तला, यवतिक्ता मेढ़ाश्रृङ्गी, ग्वाल ककड़ी, विद्धड़क, थूहरका वीज, स्वर्णक्षीरिलता, चिता, अपाङ्ग, कुश, काश, लोध, काम्पिल्लक, रम्यक, पढार, सुपारी, नीलिनी, रेंड़ी, पूतिका, महावृक्ष, सतच्छदा, अकवन और ज्योतिष्मती ये सब रेचकवर्ग हैं। अर्थात् इन सब द्रव्योंका सेवन करनेसे विरेचन हो कर शरीरका मल दूर होता है। इन सब द्रव्योंमेंसे प्रथम पन्द्रह अर्थात् त्रिवृतासे ले कर काश तकका मूल लेना होता है। लोधसे पढ़ार तकके द्रव्योंकी छाल तथा सुपारीसे रेंडो तकका फल किन्तु अमलतास और करञ्जका पत्र ग्रहण किया जाता है। इसके सिवा अवशिष्ट द्रव्योंका क्षीर ग्रहणीय है।

(सुश्रुत सूत्रस्थान ४४ अ०) विरेचन शब्द देखो।

रेचनक (सं० पु०) रेचयतीति रिच् णिच्-ल्यु ततः स्वार्थे कन्। कम्पिल्लक, कमीला। (राजनि०)

रेचना (सं० स्त्री०) काम्पिल्ल, कमीला।

रेचनी (सं० स्त्री०) रिच्यतेऽनेनेति रिच्-ल्युट् ङीप्। १ काम्पिल्ल, कमीला। २ कालाञ्जनी। ३ दंती। ४ श्वेतत्रिवृता, सफेद निसोथ। ५ वरपत्ती।

रेचनीय (सं० त्रि०) विरेचक, दस्त लानेवाला।

रेचित (सं० क्ली०) १ भेदित, परित्यक्त। २ घोड़ोंकी एक चाल। ३ नापनेमें हाथ दिलानेका एक ढंग।

रेची (सं० स्त्री०) रेचयतीति रिच-णिच्-अच्, गौरादित्वात् ङीप्। १ कम्पिल्लक, कमीला। २ अङ्कोट, अंकोल (राजनि०)

रेच्य (सं० पु०) १ प्राणायाममें वाहर छोड़ी हुई वायु। २ भेदक, जुलाव।

रेजस (फा० पु०) घोड़ोंका जुकाम।

रेजसछोमा (फा० पु०) रेजस देखो।

रेजा (फा० पु०) १ किसी वस्तुका बहुत छोटा टुकड़ा, सूक्ष्मखंड। २ सुनारोंका एक औजार जिसमें गला हुआ सोना या चांदी डाल कर पासेके आकारका बना लेते हैं। यह लोहेकी वनी नालीके आकारका होता है। इसे 'परघनी' भी कहते हैं। ३ नग, थान। ४ अंगिया, सीनाबंद। ५ मजदुर लड़का जो बड़े राजगीरोंके साथ काम करता है।

रेजा खां—बंगालके नवाव जाफर अली खाकी मृत्यु होने पर जब नावालिग नवाव नजम उद्दौला वंगालकी राजगद्दी पर वैठा तव ये अंगरेज कम्पनीके आदेशसे १७६४ ई०में वंगालके प्रधान मंत्री हुए। महम्मद रेजा खां देखो।

रेजिश (फा० स्त्री०) जुकाम।

रेजीडेंट (अ० पु०) वह अंगरेजी राजकर्मचारी जो किसी देशी राज्यमें अंगरेजी राज्यके प्रतिनिधिके रूपमें रहता है।

रेजीमेंट (अ० स्त्री०) सेनाका एक भाग, रिसाला।

रेजू (फा० पु०) एक प्रकारका रेशा। यह ब्रश (कपड़ा आदि साफ करनेकी कूंची) बनानेके लिये कलकत्तेमें विलायतसे आता है।

रेजोल्यूशन (अ० पु०) १ वह नियमित वाक्यवद्ध प्रस्ताव जो किसी व्यवस्थापिका सभा या अन्य किसी सभा संस्थाके अधिवेशनमें विचार और स्वीकृतिके लिये उपस्थित किया जाय, प्रस्ताव। २ किसी व्यवस्थापिका सभा या अन्य किसी विषय पर निश्चय जो एकमत या बहुमतसे हुआ हो निर्णय।

रेट (अ० पु०) १ भाव, निर्ख। २ चाल, गति।

रेट-पेयर्स (अ० पु०) वह जो किसी म्यूनिसिपैलिटीको टैक्स या कर देता हो, करदाता।

रेडियम (अ० पु०) एक मूल्य द्रव्य धातु। इसका पता वैज्ञानिकों को हालमें ही लगा है। उनका कहना है, कि यह धातु अत्यन्त विलक्षण है। इसे प्रकाशका रूप ही समझना चाहिये यह अजस्र प्रकाशमय होता है। इसके मिलनेसे परमाणु-संबंधी सिद्धान्तोंमें बहुत परिवर्तन हुआ है। पहले वैज्ञानिक परमाणुको अयौगिक सूक्ष्म द्रव्य मानते थे पर अब यह पता लगा है, कि परमाणु भी अत्यन्त सूक्ष्म विद्युत्कणोंकी समष्टि है।

रेड्डीवंश—दाक्षिणात्यका कोण्डवीडु प्रदेशका एक सामन्त राजवंश। इन्हीं मल्ला रेड्डीके पोलिय वेमरेड्डी नामक एक पुरुष १३२८ ई०में अपने भुजबलसे इस राजवंशकी प्रतिष्ठा की। वे जनसाधारणमें प्रोल वा प्रोलय नामसे परिचित थे। उनके पीछे क्रमसे १३३६ ई०में अनवेम रेड्डी, १३६१ ई०में अलियवेमरेड्डी, १३८१ ई०में कामार गिरि वमरेड्डी, १३९५ ई०में पोमति वेड्डारेड्डी और १४२३ ई०में राय वेड्डारेड्डी सिंहासनके अधिकारी हुए। इस शेषोक्त राजा राय वेड्डारेड्डीके राज्यकालमें (१४२७ ई०में) मुसलमानोंने कोण्डवीडु पर चढ़ाई कर दी जिससे इस राजवंशका पूर्ण अधःपतन हुआ।

रेड्डीवरु—मान्द्राज तैलङ्गवासी कृषिजीवी एक जाति। ये उच्च श्रेणीके शूद्र और क्षत्रियाचारी हैं। एक समय इन्होंने अपनी सत्तासे राजत्व किया थो।

रेड्डीव व रेलो।

आजकल इनमेंसे बहुतेरे सैनिक विभागमें भर्ती हो गये हैं। निजाम राज्यके अन्दर धनपत्ति और मङ्गवाल नामक स्थानके भूम्यधिकारी इसी वंशके हैं।

रेणी—बीकानेर राज्यके अन्तर्गत एक प्रसिद्ध बड़ा गांव। यहां कसकसके पक्षेका विस्तृत कारबार है। यहां तक कि एक पक्षेका दाम २०) रु० तक है।

रेणु (सं० पु० स्त्री०) रिणातीति री गति रेषणयोः (भजिहरीभ्यो णिच्च। उण् ३।३८) १ धूल। २ पर्पट। ३ रेणुका, बालू। ४ विडङ्ग। ५ पृथ्वी। ६ संभालूका बीज। ७ कणिका, अत्यन्त लघु परिमाण। ८ ऋक् मन्त्रद्रष्टा एक ऋषिका नाम। (ऋक् ६।७० और १०।८६ सूक्त) ९ विकुक्षीके एक पुत्रका नाम। (स्त्री०) १० विश्वामित्रकी एक पत्नीका नाम।

रेणुक (स० क्ली०) १ तन्मात्रक फलविषभेद। (सुश्रुत कल्पस्था० २ अ०) २ रेणुकबीज।

रेणुक आचार्य—पारस्करगृह्यकारिका और स्नानसूत्रके रचयिता। ये महेशके पुत्र और सोमेश्वर दीक्षितके पौत्र थे। इन्होंने १२६६ ई०में उक्त ग्रन्थ लिखा था।

रेणुककार (स० त्रि०) धूलि उड़ानेवाला या जमानेवाले, धूल मचाने या छोड़नेवाला।

रेणुकदम्ब (स० पु०) धूलिकदम्ब, एक प्रकारका कदम्ब।

रेणुका (सं० स्त्री०) रेणुना कायतीति कै क टाप्। १ मरिचकी आकृतिका गन्धद्रव्यविशेष। पर्याय—द्विजा, हरेणु, कौन्ती, कपिला, भस्मगन्धिनी, कामा, नन्दिनी, महिला, राजपुत्री, हिमा रेणु, हरेणुका, सुपर्णी, शिशिरा शान्ता, गुप्ता, धर्मिणी, पाण्डुपुत्री, कपिलोमा, हैमवती, पाण्डुपत्नी। गुण—कटु, शीतल, कटुतिक्त, तृष्णा, दाह और विषनाशक तथा मुखवैरस्यकारक। (राजनि०) २ बालू, रज। ३ रज, धूल। ४ पृथ्वी। ५ परशुरामकी माताका नाम। इनका विषय कालिकापुराणमें इस प्रकार लिखा है—रेणुका विदर्भराजकी कन्या और जमदग्निकी स्त्री थी। इनके गर्भसे रुमण्वान, सुषेण, वसु, विश्वावसु और परशुराम ये पांच पुत्र उत्पन्न हुए।

एक दिन रेणुका स्नान करने गङ्गाजी गई। वहां उन्होंने देखा, कि उत्तम माला पहने, परम सुन्दर, तरुण राजा चित्ररथ सुन्दर स्त्रियोंके साथ जलक्रीडा कर रहे हैं। रेणुका वैसे राजाको देख कर कामातुरा हो गई। इसी समय उसके शरीरसे पसीना छूटने लगा। अब वह क्षण भर भी वहां न ठहर सकी अपनी मानसिक गति समझ कर घर लौटी। जमदग्निने रेणुकाका मनोविकार जान लिया और उसे बहुत फटकारा। पीछे उन्होंने रुमण्वत् आदि अपने पुत्रोंको रेणुका विनाश करनेके लिये हुकुम दिया। किन्तु कोई भी पुत्र मातृहत्या करनेमें राजी न हुए। आखिर परशुरामने पिताके आज्ञानुसार रेणुकाका मस्तक काट डाला। जमदग्निने परशुरामके प्रति सन्तुष्ट हो कर उन्हें वर मागने कहा। परशुरामने माताके पुनर्जीवनके लिये प्रार्थना की। जमदग्निके वरसे रेणुकाने पुनर्जीवन पाया। (कालिकापु० ८२ अ०) परशुराम देखो।

६ सह्याद्रिका एक तीर्थ। स्कन्दपुराणीय सह्याद्रिखण्डके रेणुकामाहात्म्यमें इसका सविस्तर विवरण लिखा है।

रेणुका—सह्याद्रिके अन्तर्गत एक तीर्थका नाम। स्कन्दपुराणीय सह्याद्रिखण्डके रेणुकामाहात्म्यमें इसका विवरण विशद रूपसे लिखा है।

रेणुकाकवच (सं० पु०) रुद्रयामलके अनुसार एक प्रकारका औषध।

रेणुकासुत (सं० पु०) रेणुकायाः सुतः। परशुराम।

"आर्चीकनन्दनो रामा भार्गवो रेणुकासुतः।"

(भारत ३।६६।४३)

रेणुगर्भ (सं० पु०) १ ज्योतिषोक्त होरानिर्णायक यन्त्रविशेष। (Hour-glass) २ वालुकापूर्ण पात्रादि। ३ पुष्पादि।

रेणुत्व (सं० क्ली०) रेणोर्भावः त्व। रेणुका भाव या धर्म

रेणुदीक्षित—एक पण्डित और ग्रन्थकार।

रेणुप (सं० पु०) जातिविशेष।

रेणुपदवी (सं० स्त्री०) धूलिमय पथ, वह राह जो धूलसे भरी हो।

रेणुपालक (सं० पु०) प्रवराध्यायोक्त एक ऋषिका नाम।

रेणुमत् (सं० पु०) रेणुके गर्भसे उत्पन्न विश्वामित्रका पुत्र।

रेणुरूषित (सं० पु०) रेणुना रूषितः। १ गर्द्दभ, गदहा। (त्रि०) २ धूलि प्रक्षित, धूलमें मसला हुआ।

रेणुवास (सं० पु०) रेणौ परागे वासो यस्य। भ्रमर, भौंरा।

रेणुशस् (सं० अव्य०) धूलियुक्त।

रेणुसार (सं० पु०) रेणुरेवसारो यस्य। कर्पूर, कपूर।

रेणुसारक (सं० पु०) रेणुसार एव स्वार्थे कन्। कर्पूर, कपूर।

रेतःकुल्या (सं० स्त्री०) एक नरकका नाम।

रेतःसिच् (सं० पु०) इष्टकाभेद, एक प्रकारकी ईंट। (शतब्रा० १०।४।३।१४)

रेतःसिच्य (सं० क्ली०) शुक्रनिर्गमन, वीर्यका निकलना।

रेत (हिं० पु०) शुक्र, वीर्य। २ पारा। ३ जल। ४ लोहारका वह औजार जिससे वह लोहेको रेतता है, रेती। (स्त्री०) ५ बालू। ६ बलुआ मैदान, मरुभूमि।

रेतकुण्ड (सं० पु०) १ रेतःकुल्या नामका नरक। २ कुमाऊंमें हिमालय परका एक तीर्थस्थान।

रेतज (सं० त्रि०) रेतोजात, पुत्र।

रेतजा (सं० स्त्री०) रेतमित्र जायते इति जन ड, टाप्, सर्वेसान्तो अदन्ताश्च इति न्यायात् सत्ताकारान्तरेतशब्दः। बालुक, बलुआ।

रेतन (सं० क्ली०) शुक्र, वीर्य।

रेतना (हिं० क्रि०) १ रेतीके द्वारा किसी वस्तुको रगड़ कर उसमेंसे छोटे छोटे कण गिराना जिससे वह चिकनी या आकारमें कम हो जाय। २ औजारसे रगड़ कर काटना, धीरे धीरे काटना। ३ किसी वस्तुको काटनेके लिये औजारकी धार रगड़ना।

रेतल (हिं० पु०) एक पक्षी। जिसका रंग भूरा और लम्बाई छः इञ्च होती है। यह युक्तप्रान्त और नेपालमें नदियोंके किनारे रहता है। किसी झाड़ी या पत्थरके नीचे घाससे प्यालेके आकारका घोंसला बनाता है और भूरे रंगके २ ३ अंडे देता है।

रेतला (हिं० वि०) रेतीला देखो।

रेतस् (सं० क्ली०) रीयते क्षरतीति री क्षरणे (सुरीभ्यां

स्रु-प् । (उण् ४।२०१) इति असुन् तस्य तुड् च । १ शुक्र, वीर्य ।

"स्त्रीणां रजोमयं रेतो बीजाद्यभिमिश्रितं भवेत् ।
तस्मात् संयोगतः पुंसां जायते गर्भसम्भवः ।
प्रथमेऽहनि रेतस्य संयोगात् स्रवणं भवेत् ॥"
(हारीत शारीरस्था० १ अ०)

स्त्रियोंके रजको भी रेत कहते हैं। शुक्र देखो।

२ पारद, पारा। ३ जल। 'उपक्षयानां मध्ये देवानां रेतस्त्वादुदकं रेत उच्यते । तथा कौषीतकिश्रुतिः, देवानां रेतो वर्षमिति' (निघण्टु १।१२)

रेतस (स ० पु०) शुक्र, वीर्य ।

रेतस्य (सं० त्रि०) १ बीज-वहनकारी, रज ढोनेवाला । (पु०) २ बहिष्पवमान स्तोत्रका पहला श्लोक ।

रेतस्वत् (स ० त्रि०) बीजयुक्त, गर्भित ।

रेतस्विन (स ० त्रि०) उत्पादक शक्तिपूर्ण जिसमें सन्तान उत्पन्न करनेकी शक्ति हो, बीजयुक्त ।

रेतिन (स ० त्रि०) १ गर्भित, गर्भवती । २ रेतो धारिणी, वीर्य धारण करनेवाली ।

रेतिया (हि० पु०) रेतनेवाला ।

रेती (हि ० स्त्री०) १ रेतनेका औजार लोहेका मोटा फल जिस पर खुरदरे दानेसे उभरे रहते हैं और जिसे किसी वस्तु पर रगड़नेसे उसके महीन कण छूट कर गिरते हैं। इससे सतह चिकनी और बराबर करती हैं। नदीकी धाराके बीचोबीच टापूकी तरहकी बलुई जमीन जो पानी घटने पर निकल आती है, नदीका द्वीप । २ नदी या समुद्रके किनारे पड़ी हुई बलुई जमीन, बालू का मैदान जो नदी समुद्रके किनारे हो ।

रेतीला (हि ० वि०) बालुकामय, बलुआ ।

रेतोक—एक प्राचीन कवि ।

रेतोधा (स ० त्रि०) गर्भिणी, गर्भवती ।

रेतोधेय (स ० स्त्री०) गर्भधारण ।

रेतोभक्षण (स ० क्ली०) शुक्रभक्षण अपेय ग्रहणभक्षण । प्रायश्चित्ततत्त्वमें इस प्रकार अखेद्य अपेय भक्षणकी प्रायश्चित्तविधि लिखी हुई है।

रेतोमार्ग (स ० पु०) शुक्रनिर्गमन पथ, वह छेद या रास्ता जिससे वीर्य निकलता है।

रेत्य (स ० क्ली०) पित्तल, पीतल ।

रेप (सं० क्ली०) रीयते स्रवतीति री-बाहुलकात् क । १ रेतः, शुक्र । २ पीयूष, अमृत । ३ पयस् । ४ सूतक, पारा ।

रेनी (हि० स्त्री०) १ वह वस्तु जिससे रंग निकलता हो । २ वह बरतन जिस पर रंगरेज लोग कपड़ा रंग कर सूखनेको डालते हैं ।

रेनेल (मेजर जेम्स)—भारतवर्षका सर्वप्रथम अङ्गरेजी इतिहास लेखक । इन्होंने अङ्गरेजाधिकृत भारतका समस्त विवरण संग्रह कर एक भारतका इतिहास लिखा । भारतका भूवृत्तान्त विवरण यूरोप समाजमें इन्होंने ही पहले पहल प्रचार किया, इस कारण वे वहांके लोगोंसे भारतीय भौगोलिकतत्त्वके पितास्वरूप पूजित हुए हैं। १७८० ई०में इन्होंने कलकत्ता नगरमें 'बङ्गालका मानचित्र' प्रकाश किया। उसमें पूर्व-हिन्दुस्तानके वाणिज्य व्यवहार और रणक्षेत्रका संक्षिप्त विवरण दिया गया है। पीछे १७८० ८१ ई०में बङ्गाल और विहारमें मानचित्र, १७७८ ८१ ई०में बङ्गाल और विहारका गमनागमन पथविवरण, १७८८ ई०में गङ्गा और ब्रह्मपुत्र नदके चित्र एवं के साथ हिन्दुस्तानका मानचित्र तथा उसका संक्षिप्त इतिहास मुद्रित और प्रचारित किया । उनकी बनाई पुस्तक पश्चिम एशिया और भारतीय प्राचीन इतिहास के सम्बन्धमें बहुत उपकारी है।

रेप (सं० त्रि०) रेपते निन्द्यते इति रेप अच् । १ निन्दित । २ क्रूर । ३ कृपण ।

रेपल्ली—१ मन्द्राजप्रदेशके कृष्णाजिलान्तर्गत एक तालुक । यह कृष्णा नदीके दक्षिण किनारे समुद्र तटसे मंगल गिरि शैलमाला तक विस्तृत है। भू-परिमाण ६४४ वर्गमील है।

२ उक्त जिलेका एक नगर तथा रेपल्ली तहसीलका विचार-सदर । यहां एक प्राचीन दुर्गका ध्वंसावशेष पड़ा है जिसे स्थानीय भूम्यधिकारियोंके किसी पूर्वपुरुष ने १७०५ ई०में बनवाया था ।

रेपस् (स ० क्ली०) रप् (रपेरत एच । उण् ४।१८९) इति असुन्, अत एत । १ अवद्य, अनिन्दनीय । (त्रि०) २ अधम, नीच । ३ क्रूर । ४ कृपण, कंजूस ।

रेफ (स ० पु०) रिफ्यते इति रिफ्-घञ्, यद्वा 'रादि

फन्' इत्यनेन वर्णस्वरूपार्थे रशब्दादि फन् प्रत्ययः। १ रकार, रवर्ग। २ रकारका वह रूप जो अन्य अक्षरके पहले आने पर उसके मस्तक पर रहता है। ३ राग। ४ शब्द। (त्रि०) रिफ (अवद्यावमाधमार्व रेफाः कुत्सिते। उण् ५।५४) इति अप्रत्ययेन निपातितः। ५ कुत्सित, अधम।

रेफरी (अं० पु०) वह जिससे कोई झगडा निपटानेको कहा जाय, पंच।

रेफवत् (सं० त्रि०) रेफयुक्त, जिसमें रेफ हो।

रेफविपुला (सं० स्त्री०) छन्दोभेद। रविपुला देखो।

रेफस् (सं० त्रि०) रिफतीति रिफ्-असुन्। १ क्रूर। २ अधम। ३ दुष्ट।

रेफिन् (सं० त्रि०) रेफ-अस्त्यर्थे इनि। रेफयुक्त।

रेफ्यूज (अं० पु०) वह संस्था जिसमें अनाथों और निराश्रयोंको अस्थायी रूपसे आश्रय मिलता है।

रेभ (सं० त्रि०) १ कर्कश शब्दकारी, कठोर वचन बोलनेवाला। २ स्तुतिवादक, स्तुति करनेवाला। ३ वृथा बाकबक्या, फजूल बात बोलनेवाला।

रेभ—१ वैदिक ऋषि। असुरोंने इन्हें एक कूपमें डाल दिया था। दश रातें और नौ दिन बीतने पर अश्विनीकुमारोंने इन्हें निकाला था। (ऋक् १।११२।५, १।११६।२४) २ कश्यपवंशीय एक दूसरे ऋषि। ये ऋक् ५।६७ सूक्तके मन्त्रद्रष्टा थे।

रेभण (सं० क्ली०) रेभ शब्दे भावे ल्युट्। गोध्वनि, गायका बोलना।

रेभसूनु (सं० पु०) रेभ ऋषिके दो पुत्र। ये दोनों ऋक् ६।९९-१०० सूक्तके मन्त्रद्रष्टा थे।

रेमिल (सं० पु०) एक नायकका नाम।

(मृच्छकटिक ४४।६)

रेमदा—मध्यप्रदेशके सम्बलपुर जिलान्तर्गत एक बड़ा गांव।

रेमि (सं० त्रि०) रमणकारी, गमन करनेवाला।

(पा० ३।२।१७१ वार्त्तिक २)

रेमुना—बङ्गालके बालेश्वर जिलान्तर्गत एक प्राचीन बड़ा गांव। यह अक्षा० २१° ३२´ उ० तथा देशा० ८६° ५८´ पू० बालेश्वर नगरसे ५ मील पश्चिममें अवस्थित है। माघ मासमें यहां क्षीरचोरा गोपीनाथ मूर्त्तिके उद्देशसे एक बड़ा मेला लगता है। वह मेला १३ दिन रहता है।

वैशाख और कार्त्तिक मासमें यहां बहुतसे यात्री इकट्ठे होते हैं। देवमन्दिर पत्थरका बना है और उसमें बहुतसे कामशास्त्रीय चित्र खुदे हैं।

एक समय यह नगर बहुत समृद्धिशाली था। गङ्गवंशीय राजाओंने यहां राजधानी बसा कर शासन विस्तार किया था।

रेरिवन् (सं० त्रि०) प्रेरयिता, भेजनेवाला।

रेरिह (सं० त्रि०) जीभसे बार बार चाटना।

रेरिहाण (सं० पु०) १ शिव। २ असुर। ३ चौर, चोर। (शब्दरत्ना०)

रेरुआ (हिं० पु०) बड़ा उल्लू पक्षी, ररुआ।

रेरुवा (हिं० पु०) रेरुआ देखो।

रेल (अं० स्त्री०) १ सड़ककी वह लोहेकी पटरी जिस पर रेलगाड़ीके पहिये चलते हैं। २ भापके जोरसे चलनेवाली गाड़ी, रेलगाड़ी।

विशेष विवरण रेलवे शब्दमें देखो।

रेल (हिं० स्त्री०) १ बहाव, धारा। २ आधिक्य, भरमार।

रेलङ्गी—मन्द्राज प्रेसिडेन्सीके गोदावरी जिलान्तर्गत एक गण्ड ग्राम। यह अक्षा० १६° ४१´ १०´´ उ० तथा देशा० ८१° ४१ ४०´´ पू०के बीच पड़ता है। यहां लगभग ५ हजार मनुष्य रहते हैं। यह स्थान समृद्धिशाली और वाणिज्यसम्भारपूर्ण है।

रेलठेल (हिं० स्त्री०) रेलपेल देखो।

रेलना (हिं० क्रि०) १ आगेकी ओर झोंकना, ढकेलना। २ ठसाठस भरा होना, अधिक होना। ३ अधिक भोजन करना, ठूस ठूस कर खाना।

रेलपेल (हिं० स्त्री०) १ भीड़ जिसमें लोग एक दूसरेको धक्का देते हों। २ भरमार, ज्यादती।

रेलवे (Railway=रेलपथ)—लौहवर्त्म। परस्पर बराबर दूरी पर रखी लोहेकी कड़ियां या रेलपथ। यह एञ्जिनके आनेके लिये बहुत उपयोगी है। रोज रोज गाड़ियोंके चक्केके घिसनेसे बचानेके लिये ही यह उपाय रचा गया था। ट्रामपथसे ही रेलपथका आविष्कार

हुआ है। भाज कल पश्चिम जिस रेलपथसे भाता जाता है, उसको पैदाइश और मजबूती इङ्गलैण्डमें हुई थी।

उधर इटलीके उत्तरप्रान्तमें पुराने जमानेकी इमारतोंके खंडहरोंको खुदवानेसे वहांके प्रत्नतत्त्वके जानकारोंको एक दूसरी तरहके रेलपथोंका नमूना मिला है। यह रेलपथ पत्थरोंसे जुड़ा कुछ चौड़ा और बराबर दूरी पर इना पत्थरोंसे हो बना है। इस पथका नमूना आज भी मौजूद है। किन्तु इसका प्रमाण नहीं मिलता, कि इस पथ पर पहिलेमें इनो गाड़ियां दौड़ाई गई थीं या नहीं। किन्तु इस पथ पर गाड़ियोंके आने जानेकी रगड़ आज भी दिखाई देती है। इससे स्पष्ट मालूम होता है, कि अब से सैकड़ों वर्ष पहले यहांके पुराने बाशिन्दे पत्थरके बने रेलपथसे गाड़ियां दौड़ाते थे।

जो हो रेलपथके सम्बन्धमें और कोई पुराना हाल नहीं मालूम होता। इस समय जिस रेलपथसे पृथ्वी भरी जा रही है, जिसके द्वारा लोग दो हफ्तेमें या महीनेकी राह तय करते हैं, जिसके कारण दूरी नजदीकीमें बदल गई है, उस रेलपथकी उत्पत्ति ट्रामसे ही हुई है। सन १६१६ ई०से पहले इसका कुछ भी नामोनिशान कहीं न था। किन्तु कुछ लोगोंका कहना है, कि सन् १६०२ ई०से १६४६ ई०के बीच किसी समयमें ट्रामका आविष्कार हुआ था। उस समय अधिक बोझसे लदी गाड़ियोंको एक जगहसे दूसरी जगह ले जानेमें बड़ी असुविधा होती थी। बोझा ढोनेवाले पशु नियमित बोझ ढोनेके सिवा अधिक बोझ ढो नहीं सकते थे, इससे कारोबारमें बड़ी कठिनाई झेलनी पड़ती थी। इसी कठिनाईको दूर करनेके लिये उस समयके विख्यात कारीगरोंने न्यूकैसल नगरकी कोयलेकी खानसे टाइन नदीके किनारे तक एक ट्रामपथ तैयार किया। उसी समय नर्दाम्बरलैण्ड और डरहमकी खानोंसे नदीके किनारे तक दूसरा पथ भी तैयार हुआ था। यह पथ लकड़ीका बना था। अर्थात् समानान्तर पर रखी आज कल जैसी लोहेकी कड़ीकी जगह लकड़ीकी पटड़ियां रखी गई थीं। ट्रामके चक्कोंके गिरनेसे बचावके लिये लकड़ीकी पटरियों पर कुछ गहरा खोदा गया था जिसमें चक्कोंका निकला हुआ अंश उसमें घुस सके। पहले पहल इस पथके बनानेमें ओकवृक्षकी लकड़ीका इस्तेमाल हुआ था। इसके बाद लकड़ीकी कड़ियां बिछाई गई जो लकड़ीकी पटरियोंमें स्क्रू या कांटेसे जोड़ दी जाने लगी।

चक्केकी रगड़से रेल जब घिस जाती थी, तब उसे बदल दिया जाता था। धीरे धीरे गाड़ी चलानेवालोंने घोड़ोंके जोत जोत चलनेके लिये समानान्तर कड़ियों पर कुछ ऊंची रेल तैयार कर ली और रेलपथ पर मट्टी डाल कर बड़ी बड़ी कड़ियां ढांप दी जाती थीं। साधारण गाड़ियोंसे अधिक भारी बोझ इसके द्वारा ढोये जाने लगा। दूसरे पथमें एक घोड़ा १० हंडरवेटसे भारी बोझ ढो नहीं सकता था। किन्तु नये पथसे एक घोड़ा ४२ हंडरवेटका बोझ अनायास ढोने लगा। बहुत दिन तक ट्रामपथमें किसी तरहकी उन्नति नहीं हो सकी। पीछे सन् १७६७ ई०में कोलब्रुकडेल लौह कम्पनीके इञ्जिनियर मिस्टर रेनाल्डकी सलाहसे लकड़ीकी रेलकी जगह इस्पात लोहेकी रेल परीक्षारूप व्यवहृत होने लगी। किन्तु उस समय भी किसीने स्वप्नमें भी सोचा न था, कि इस गाड़ी पर मनुष्य भी आवेंगे जावेंगे। कोयलेकी खानसे कोयला लानेके लिये सब नदियों और समुद्रके किनारे तक ट्रामें चलने लगीं।

पहले लोहेकी बनी रेल ५ फुट लम्बी ४ इञ्च चौड़ी और ११ इञ्च मोटी होती थी। प्रत्येक रेलमें ३ छेद होते थे। इन छेदोंमें स्क्रू या कांटे डाल कर लोहेके लकड़ीकी पटरीमें रेल जड़ दी जाती थी। ट्रामका पथ अङ्गरेजीके H ऐसेके आकारका होता था। अर्थात् दोनों ओरसे बिचला भाग कुछ गहरा होता था। इसलिये गाड़ीके चक्के उससे गिरते न थे। किन्तु बीचकी रेलपथमें कुछ विशेष असुविधा थी। सदा धूलि या कीचड़से भर जाती थी। इससे गाड़ियोंके आने जानेमें बड़ी अड़चन होती थी।

इस अड़चनको दूर करनेके लिये सन् १७८९ ई०में जेसफ नामक एक इञ्जीनियरने सबसे पहले ऊपरको नामक स्थानमें ऊंची रेलकी प्रतिष्ठा की। गाड़ीके चक्के एक ओर बिचले भागसे कुछ ऊंचे किये गये।

इससे चक्के ऊंची रेलसे गिर नहीं सकते थे। ऊंची रेलें पहले ६ फीटकी होती थीं।

धीरे धीरे चिन्ताशील मनुष्योंने रेलोंकी उन्नतिमें चित्त लगाया। लिवरपुल और मानचेष्टरके बीच कारोबारके लिये जलका पथ मौजूद रहने पर भी जल्दी माल असबाब भेजनेमें बड़ी असुविधा थी। इस असुविधासे इन दोनों नगरोंसे केवल १२०० टन मन ही द्रव्य रोज आता जाता था। प्रत्येक टनमें १८ शिलिंग खर्च पड़ता था। जो हो, सन् १८१० ई० तक सभी ट्रामें और रेलें घोड़ेसे चलाई जाती थीं और केवल एक गाड़ी ही चलती थी। अर्थात् बहुतेरी गाड़िया एकमें जोड़ कर चलानेकी प्रथा उस समय तक जारी नही हुई थी।

लोकोमोटिवकी सृष्टि।

सन् १८१० ई०में जेम्स वाटने भाप या वाष्पकी शक्तिसे परिचालित एञ्जिनका आविष्कार किया। उससे गाड़िया खिंची जायंगी, यत बात उस समय तक किसी ने सोचा न था। ऊंचे दिमागके इञ्जीनियरोंने ४० वर्षों तक क्रमसे दिमागसे काम ले कर "लोकोमोटिव" या गतिशील एञ्जिनका आविष्कार किया। वाट, सिमिंटन, ट्रेविथिक्, ब्लेस्किनसप, चापमेन, ब्राण्टन आदि मनुष्योंने धीरे धीरे रेलपथसे एञ्जिन द्वारा गाड़िया खिंची जानेके लिये एञ्जिनका आविष्कार किया। ये सभी जार्ज ष्टीफनके पहलेके या उनके समयके हैं। स्वयं चलनेवाली एञ्जिन सन् १८०२ ई०में ट्रेविथिक द्वारा पहले पहल उद्‌भावित हुए। उन्होंने लण्डन नगरके निकट अपने उद्भावित एंजिनको एक विराट् जनसमूहके सामने दिखलाया। वह विराट् जनसमूह उनके इस अद्भुत आविष्कारको देख विस्मित हो उठा। यही लोकोमोटिवकी भित्ति है। अन्तमें सन् १८०४ ई०में उन्होंने टिउविल रेलपथ पर एञ्जिन द्वारा रेलगाड़ी चलाई। पृथ्वीके इस सर्वप्रथम एञ्जिनमें १० टनका बोझ घण्टेमें ५ मीलके हिसाबसे खींचा जाने लगा। किन्तु उस समयके इञ्जीनियरोंने एञ्जिनकी कमीको पूरा करनेमें मन नहीं लगाया और सभी इसकी अधिक उन्नतिमें सन्देह करने लगे। सन् १८११ ई०में वाईलम रेलपथसे ट्रेविथिकका एञ्जिन व्यवहृत हुआ था।

सन् १८२१ ई०में एकटन और डार्लिंटन रेलपथ तय्यार करनेके लिये वहाकी सरकारने हुक्म जारी किया। उससे पहले रेलपथसे केवल लदे हुये माल के सिवा कोई मनुष्य उससे आता जाता न था। हेटन रेलपथ पर ६० टनकी बोझाई गाड़ी घण्टेमें ४॥ मीलके हिसाबसे आती जाती थी। किलिंगवार्थ रेलपथ पर केवल ४० टन बोझाई गाड़ी घण्टेमें ६ मीलके हिसाबसे जाने लगी थी।

जार्ज ष्टीफेनसन पहले एकटन और डार्लिंटन रेलवेपथके इञ्जीनियर नियुक्त हुए। इस समय सरकारने वाष्पीय शक्तिसे परिचालित गतिशील एञ्जिन द्वारा रेलपथसे गाड़ी चलानेका हुक्म दिया। इसके मुताबिक २८ मील लम्बा एक रेलपथ तय्यार हुआ। Fish belly या मत्स्योदर अर्थात् मछलीके पेटके आकार नया रेलपथ तय्यार हुआ।

इसी समय नटिंहमके रहनेवाले 'टामस ग्रे' नामक एक प्रतिभावान् मनुष्यने यात्रियोंकी सुविधाके लिये देशके सभी जगह रेलपथका प्रचार करना चाहिये—इस विषयमें अपने उद्भावित संकल्पको सरकारसे कहा। उन्होंने सन् १८२० ई०में "Observations on a general Iron Railway" अर्थात् 'साधारण लोहेके रेलपथके सम्बन्धमें मन्तव्य' नामकी एक पुस्तक प्रकाशित की। किन्तु उस समय भी वहांकी जनता ग्रेकी दूरदर्शिताको हृदयङ्गम कर न सकी।

इसके बाद सन् १८१२ ई०में लण्डनके रहनेवाले विलियम जेम्स नामक एक मनुष्य लिवरपुल और मान्चेष्टरके बीच रेलपथ फैलानेके लिये चेष्टा करने लगे, किन्तु वे उसमें सफल न हो सके। अन्तमें सन् १८२४ ई०की २६वीं अक्तूबरको लिवरपुलके रहनेवाले जोसेफ सण्डार्स नामके एक मनुष्यने लिवरपुल और मञ्चेष्टरके बीच रेलपथके सम्बन्धमें एक आदर्श प्रकाशित किया। जार्ज ष्टीफेन्सन इस पथकी पैमाईशके काममें नियुक्त हुए। अनेक वाद-विवाद कर सरकारने अन्तमें इस प्रस्तावका अनुमोदन किया। किन्तु सन् १८३० ई०की १५वीं सितम्बरके पहले इस पथसे गाड़ी आती जाती न थी।

सबसे पहले एकृम और डालिंग्टन रेलपथसे मनुष्य आने जाने लगे। सन् १८२५ ई०के सितम्बर महीनेमें यह पथ खोला गया। इस दिन ३४ डब्बोंके साथ एक एञ्जिन ६० टन माल ले कर इस पथसे चला था। पहले पहल इसकी गति घण्टेमें १० मीलसे १२ मीलकी थी। लोगोंको सावधान करनेके लिये एक आदमी एञ्जिनके आगे आगे दौड़ता था। किसी किसी स्थानमें इसकी गति १५ मीलकी थी। किन्तु मालसे लदी गाड़ी इतनी तेजीसे चलती न थी। गाड़ीके भीतर ६ और बाहर १५ यात्री ले कर दो घण्टेमें एकृमसे डालिंग्टन तक गाड़ी आने जाने लगी। इतनी दूरीका किराया पहले १ शिलिङ्ग निश्चित हुआ। प्रत्येक यात्री १४ पाउण्डसे अधिक अपने पासमें ले कर चलने नहीं पाता था। पहले मालका किराया प्रति टन प्रति मीलका ७ पेन्स लगता था, किन्तु पीछे यह किराया आधा पेनी कर दिया गया। इस नये रेलपथके खुलनेके कुछ बाद ही कोयले-की दर घट गई। पहले एक टन कोयलेका दाम था १८ शिलिङ्ग। अब कर एक टन कोयलेका केवल ८ शिलिङ्ग हुई।

एकटन रेलपथके आदर्श पर सन् १८२६ ई०में अन्य अन्य रेलपथ खुला और कण्टरबरी और होइटस्टेबल आदि स्थानोंमें भी रेल लाइन खुलने लगी। किन्तु जब सन् १८३० ई०को १५वीं सितम्बरको लिवरपुल और मञ्चेष्टरके रेलपथसे यात्री आने जाने लगे तब सभीने यह सोचा, कि जगत्‌में मनुष्योंके लिये वाष्प या भविष्य युगान्तर उपस्थित हुआ है। सन् १८३८ ई०में लण्डन और बर्मिङ्घाम बीच रेल खुल गई। इस पथकी लम्बाई ११२।० मील था। यातायातकी घण्टेमें २० मीलकी गतिसे चलने लगी। ४५ वर्षके भीतर ग्रेटब्रिटेनमें चारों ओर बड़े बड़े रेलपथोंका आदर्श प्रस्तुत हुआ। शीघ्र ही १८०० मील लम्बी एक रेल लाइनकी पैमाइश खतम हुई और १० करोड़ पाउण्ड धन इस कार्यमें लगाया गया। किन्तु यह रेलपथ शीघ्र न बन सका। मरस्योग्राह्र्जिनक रेलपथ बनानेमें अब बहुत विलम्ब होने लगा। इसलिये "फायरप्रूफ" रेलका सृष्टि हुई। यह रेल पीछे 'मिगमिलेस' नामसे प्रसिद्ध हुई। इसके बाद 'ब्रिजरेल' नामक दूसरी तरहकी रेल व्यवहृत हुई थी। ग्रेटवेष्टर्न नामक रेलपथ पर इसका व्यवहार आरम्भ हुआ। यह सारी रेलें चौड़ाईमें रखी लकड़ीकी कड़ियों पर स्क्रूसे जोड़ दी जाती थी। इस तरह आठ तरहोंकी रेल तैयार कर चुकनेके बाद रेल कम्पनी ने "डबल हेडेड" या "दो सिरे एक समान"-की रेलों का प्रचलन किया। पीछे इसी तरहकी रेल ही सब जगह व्यवहृत होने लगी। इस तरहकी एक गज रेलका वजन ६२ पाउण्ड है। यह पीछे "बुलहेड" रेलके नाम से पुकारी जाने लगी। सन् १८४४ ई०में मिष्टर डबलिउ बिजेस आडामसने दो रेलों की प्रथा प्रचलित की।

इस तरह चारों ओर रेल फैलने लगी, तब अधिकारी रेलगाड़ीकी रफ्तारको बढ़ानेकी चेष्टा करने लगे। एञ्जिन बनानेकी प्रतियोगितामें जार्ज ष्टीफेन्सका 'रकेट' नामका एञ्जिन प्रस्तुत हुआ। इससे उक्त जार्ज ष्टीफेनसको कम्पनीके डिरेक्टरोंने पुरस्कार दिया था। रकेटके दो वाष्पनलोंका व्यास ८ इञ्च तथा चक्केका व्यास ४ फुट ८। इञ्च था। कुल एञ्जिनका वजन ४ टन ५ क्वार्टर था। साधारणतः यह एञ्जिन बराबर प्रति घण्टेमें ११४ गेलन जलको १८।४ घनफुट वाष्पमें परिणत करता था।

बहुत दिन तक इन दो तरहके एञ्जिनोंसे रेलगाड़ी चलती रही। एक चार चक्केका दूसरा छः चक्केका एञ्जिन। इसके बाद कई प्रकारके एञ्जिन तैयार किये जा चुके हैं। इनमें १२ चक्केका एञ्जिन विख्यात है। सन् १८८५ ई० तक एञ्जिनकी चाल प्रति घण्टे ५० मीलकी थी।

सन् १८३० ई०के लिवरपुल और मञ्चेष्टरके रेलवे पथ खुलनेके ४५ वर्षके भीतर सन् १८७४ ई० तक ८०५३ मीलोंमें रेलपथ फैल चुका था। इसका पाँचवाँ भाग डबल लाइन और बाकी सिङ्गल लाइन थी। इन सारे रेलपथोंके निर्माण करनेमें प्रति मील ३५००० पाउण्ड व्यय हुआ था। सन् १८७४ ई०में रेलपथकी लम्बाई १६४४२ मील तक पहुंच चुकी थी। इसके प्रत्येक मीलमें ३६००० पाउण्ड खर्च हुआ था। सन् १८८६ ई०के अन्त तक १९९८१ मील तक रेल फैल

गई । किसी किसी जगह तीन तीन, चार-चार रेल लाइनें बैठाई गई हैं। लण्डनसे रागवी तक ५० मीलके पथमें चार लाइनें हैं । दो लाइनोंमें अनवरत मालकी ढोआई जारी रहती है। लण्डन और उत्तर-पश्चिम रेल कम्पनीके अधीनमें २८ मीलोंमें तीन लाइनें और ११४ मीलोंमें चार लाइनें हैं।

सर्वसाधारणके यत्नसे जो सब रेलें तय्यार हुई हैं, उनमें इङ्गलैण्डके "ग्रेट वेष्टर्न रेलवे" सबसे बड़ी है। सन् १८८३ ई० तक यह २२६८ मीलोंमें फैल चुकी थी। इसके बाद लण्डन और नार्थवेष्टर्न, न्यूलैण्ड, नार्थब्रिटिश और कालिडोनिया रेलवेपथ क्रमसे १७६३, १५३४, १३८१, १००६ और ८७७ मील लम्बे हैं।

सन् १८८३ ई० तक इङ्गलैण्डमें रेलपथ फैलानेके लिये ७८५००००००० रुपया एकत्र हुआ था । इससे प्रति मील ४२०००० रुपया खर्च हुआ था। स्टेशन बनानेमें प्रति मील पहलेकी अपेक्षा बहुत ज्यादा रुपया खर्च हुआ था। जिस समय जोसेफ लक्ब्राण्डने रेलवे निर्माण किया था, उसी समय यथार्थमें रेलपथकी सम्पूर्णता प्राप्त हुई थी । इसी पथके निर्माण समयमें बहुतेरे चौड़ी नदियों पर पुल और ऊंचे पर्वतोंमें सुरङ्ग खोदनी पड़ी थी। इसलिये प्रति मील ५३०००० रुपया खर्च हुआ था। यह पथ सब जगह समतल नहीं बना था। इस पथमें कई जगह गाड़ियोंको ऊंचे चढ़ना तथा नीचे उतरना पड़ता था। स्काटलैण्डके पहाड़ी प्रदेशोंको पार करते हुए इस पथके तय्यार करनेमें प्रति मील किसी किसी जगह ५०००००० रुपया खर्च करना पड़ा था। क्योंकि इन स्थानोंमें बड़े बड़े पहाड़ोंको काटना पड़ा था।

पथ तय्यार करनेके सिवा दूसरे कामोंमें धन खर्च करनेकी जरूरत पड़ती थी प्रत्येक मील रेलपथमें—

व्यवस्था करनेवाली पार्लिया-मेण्टका खर्च :—	२०० पाउण्ड
भूमि खरीदना और क्षतिपूरण करनेमें . .	७००० पाउण्ड
पथ स्टेशन आदिमें	१८००० ,,
लोकोमोटिव परिचालनमें	३०००० ,,
एकत्र रुपयाके ब्याजमें	६००० ,,
	कुल ३६००० पाउण्ड

सिवा इनके ट्रेनके डब्बोंके बनाने तथा कारखाने खोलनेमें भी बहुत ज्यादा रुपया खर्च करना पड़ता है। एक एञ्जिनमें कमसे कम १५४०० रुपया और एक डब्बेमें २७८० रुपया खर्च पड़ता है।

रेलकम्पनीके कार्योपयोगी सारी चीजोंको "रोलिङ्ग्स्टक" या कार्य्यभण्डार कहते हैं । इन सब कारखानोंमें नई गाड़ियां तय्यार होती और पुरानी गाड़ियोंकी मरम्मत होती हैं। यात्री गाड़ी, मालगाड़ी, गाय आदि पशु चढ़ानेवाली गाड़ी भी तय्यार होती हैं। सन् १८८३ ई०में इङ्गलैण्डके रेलकम्पनीके कारखानेमें १२१४४ एञ्जिन, ३७४७४ यात्री-डब्बे और ३२६६२२ मालके डब्बे मौजूद थे ।

रेलपथ न होनेसे पहले मञ्चेष्टर और लिवरपुलके बीच नित्य २० से ३० तक घोड़ेकी सवारी आती जाती थी। १८३६ ई० पोर्टारने अपनी जातीय उन्नति नामक पुस्तकमें लिखा है—ग्रेटब्रिटेनमें घोड़ेकी सवारी नित्य ४२००० यात्री और वर्षमें ३०००००० यात्री आते जाते थे। इसमें प्रत्येक मनुष्यको ५ शिलिङ्ग खर्च होता था। किन्तु रेलसे ६०००००० यात्री प्रत्येक १॥ पेनीके खर्चसे आते जाते हैं।

रेलपथ बनानेकी प्रणाली।

पहले मानचित्र या नकशा देख कर ठीक किया जाता है। पीछे पैमाइश कर नकशा और पथका विवरण तैयार होता है। पथके भीतर जो सब नदियां और पर्वत या जलाशय पड़ते हैं उन सबों पर पुल बांधने तथा सुरङ्ग खोदनेके लिये पहले आदर्श तय्यार होता है। साधारणतः सभी जगह समतल भूमि तय्यार करनेमें किसी जगह नीची जमीनको भरना पड़ता है तथा किसी ऊंची जमीनको तराशना पड़ता है। किसी स्थानमें पहाड़ोंमें सुरङ्ग खोदना तथा नदियों पर पुल तय्यार करना पड़ता है। भूमि समतल हो जाने पर ईंट तथा पत्थरके टुकड़े फेंका जाता है। इसके बाद स्लीपर या लकड़ीकी पटरियां रखी जाती हैं। इस पर लोहे या लकड़ीकी कड़ियां मजबूतीसे जोड़ी जाती हैं।

रेलपथ बनानेमें जो सब बांध या Embankment बांधे गये हैं, उनमें लिवरपुल और मञ्चेष्टर रेलपथ का मास लम्बा बांध हो सर्वश्रेष्ठ है। इसका नाम 'चाटमस' है। यह जल कहीं कहीं १०से ३० फीट तक गहरा और पङ्कमय है। इस पथमें ६७००००० मन गज्ज बांध बांधे गये हैं। ग्रेटवेष्टर्न रेलपथमें जो सारी सुरङ्गें तैयार हुई हैं, उनमें एडिमवर्ग और ग्लासगोरेलके कार्डिएहर भिन्नकी सुरङ्ग सबसे बड़ी है। सारी सुरङ्ग अर्द्धवृत्ताकार है और इसका व्यासार्द्ध एक मील है।

सिवा इसके लण्डन और वर्मिंघमके बीचकी फिलसबी नामक सुरङ्ग २३६८ गज लम्बी ३० फीट चौड़ी और ३० फीट ऊंची है। इसमें दो वायुकी नलें लगाई गई हैं। इसका व्यास ६० फुट है। इसी सुरङ्गमें ३०००००) रुपया खर्च हुआ था। अर्थात् प्रत्येक गजमें १२७०) रुपया खर्च हुआ था। याथ और चिपेनहामके बीच सुरङ्ग समतलसे ७० फीट नीचे है। इसकी लम्बाई ३१२० गज या प्रायः एक कोस है। इसका फैलाव ३१ वायुनले हैं। डोवरके निकट संक्सपियर सुरङ्ग १४३० गज लम्बी है—यह सुरङ्ग स्तम्भों द्वारा सुरक्षित है। इङ्गलैण्ड देशके रेलपथोंमें सुरङ्गोंका आधिक्य है। सन् १८५४ ई०में सारे रेलपथोंमें प्रायः ७० मील सुरङ्गका पथ था। सन् १८८५ ई० तक वह १०० मीलोंमें परिणत हुआ। उक्त सुरङ्गके सिवा मञ्चेष्टर और लिवरपुलपर रेलपथमें एक सबसे बड़ी सुरङ्ग है। इसकी लम्बाई तीन मील है।

रेलपथ निर्माण करनेसे कई बड़ी बड़ी नदियों पर पुल बांधना और दो पर्वतोंके बीच खाद पर मयदान या बड़ी खाड़ियां बनानी पड़ती हैं। कई बार जलसे परिपूरित गहरोंसे पथ तैयार करते समय साधारणके आने जानेका पथ बीच इन जोड़ों पर रेलपथ बनाना पड़ता है। ईंट या पत्थरका जोड़ाइसे पुल तैयार होता है। मञ्चेष्टर और वर्मिंघम रेलपथमें कलिडन नामक एक बड़ा मयदान है। यह प्रायः मील लम्बा और पत्थरोंसे बना है। इसकी ऊंचाई १०६ फुट है। इसके प्रति गज पथमें ११३०) रुपया खर्च हुआ है। इस पथका ईंटों से बना डेन नामक मयदान ५२७ गज लम्बा और ८८ फुट ऊंचा है। इसमें ६३ फुट ऊंचा है। इसमें ६३ फुट व्यासके २३ जोड़ हैं। मिनाइ प्रणाली पर जो पुल बना है, वह ६१६ फुट लम्बा है और पानीकी सतह से १०४ फुट ऊंचा है। इसके प्रति गजमें ६७४०) रुपया खर्च हुआ था। किन्तु इङ्गलैण्डकी फोर्थ नामक सीढ़ियां सबसे बड़ी और अद्भुत कारुकार्यसम्पन्न है। क्वीन्सफेरी के निकट एक बड़ी प्रणाली पर यह पुल बना है। मि० जान फावलर और मि० वेञ्जामिन वेकरके अद्भुत इञ्जिनियरिङ्ग कौशलसे यह सीढ़ी बनी है। पुलकी लम्बाई १॥ मील है। इसके दो प्रधान जोड़का व्यास १७०० फुट अर्थात् १७०० फुट पर स्तम्भ बने हैं। क्यों कि मध्यवर्ती जलकी गहराई १०० फुट है। इसीलिये दूर दूर पर स्तम्भ तैयार करना पड़ा है।

सिवा इसके ६७५ फुट व्यासयुक्त दो जोड़ और १६८ फुटके १५ जोड़ इसमें विद्यमान हैं। पुल बनानेके समय जल परसे १५० फुट ऊंचा और किसी किसी जगह ३६१ फुट ऊंचा है। इसके चार प्रधान स्तम्भों का व्यास ५० फुट है। जलके नीचे ७० फुट तक मिट्टी खोद कर स्तम्भकी भित्ति कायम की गई थी। इस पर पथ बनाने पर ४४५०० टन फौलाद खर्च करना पड़ा था। सीढ़ियोंका फैलाव १२० फुट है। इन सीढ़ियोंके बनानेमें १६००००००) रुपया खर्च हुआ था।

रेलपथ पर स्टेशन या विश्राम स्थान बनानेकी जरूरत पड़ती है। यह कुछ ही दूरी पर बनाया जाता है। इन सब स्थानोंमें यहांके यात्री और माल आदि रेलसे आते जाते हैं। पथके बीच बीचमें इस तरहके स्टेशन बनाये जाते हैं। इङ्गलैण्डमें जो सब टर्मिनस स्टेशन हैं, उनमें ग्रेटनर्दर्न, ग्रेटवेष्टर्न और साउथ वेष्टर्न स्टेशन विशेष प्रसिद्ध हैं और प्रथम श्रेणीकी गिनतीमें हैं। प्रत्येक स्टेशनमें यात्रियोंके उतरनेके स्थानमें प्लाटफार्म बनाया जाता है। प्लाटफार्म रेलपथसे कुछ ऊंचा होता है। इससे यात्री आसानीसे रेल पर चढ़ उतर सकते हैं। सीमान्तके स्टेशनोंमें रेलपथों पर बड़ा बड़ी छत तैयार होती है। सन् १८४६

ई०से इङ्गलैण्डके स्टेशनोंमें छत बनानेकी व्यवस्था हो रही है। इस समय लाइम ष्ट्रीट और लिवरपुल स्टेशनमें पहले पहल छत तैयार हुई। उक्त छत ३७४ फुट लम्बी और स्तम्भों पर जोडके रूपमें अवस्थित है। वर्मिंघमके न्यू ष्ट्रीट स्टेशनकी छत ८४० फुट लम्बी है। इङ्गलैण्ड-में इतना बड़ा स्टेशन और नहीं है। चेयारिङ्गक्रस् रेल-के केनेल ष्ट्रीट स्टेशनकी ऊंचाई ५० फुट है। उक्त स्टेशनमें १८६७ ई०में ८०००००० मनुष्य गाड़ीमें चढ़े उतरे थे। इस स्टेशनका प्लाटफार्म ७.१ फुट लम्बा है। इस स्टेशनसे ६ रेलपथ चारों ओरको गये हैं। उक्त स्टेशनका क्षेत्रफल १५२६३२ घनफुट है। सिवा इसके इङ्गलैण्डमें इस समयके बने स्टेशनोंमें सेण्टपक्रस स्टेशन विशेष उल्लेखनीय है। मालके स्टेशनोंमें किस-क्रस स्टेशन बहुत प्रसिद्ध है। इसी स्टेशनसे १२ रेलें चारों ओर माल ढो रही हैं। ६० एकड़ भूमिमें यह स्टेशन बना है। आलू और कोयला उतरनेके स्थानका क्षेत्र-फल ८॥ एकड है। समूचा माल ढोनेके लिये सदा ८४ एञ्जिन तैयार और ११॥ मीलमें केवल कोयलेकी गाडिया तैयार रहती है।

उपर्युक्त स्टेशनके सिवा दो तीन लाइनोंके जङ्कशन पर एक एक जङ्कशन स्टेशन बनाया जाता है। सिवा इनके गाड़ी और एञ्जिन बनानेके लिये बड़े बड़े कार खाने तैयार किये जाते हैं।

नागरिक रेलपथ।

बड़े बड़े जनाकीर्ण नगरोंमें रेलोंके फैलानेमें सबसे पहले सन् १८३७ ई०में मिष्टर चार्लस पार्मनने विशेष चेष्टा की थी। इस तरहके रेलपथ बड़े बड़े स्तम्भों पर तथा भूमिमें सुरङ्ग खोद कर तैयार किये जाते हैं। पहले वहांकी पारलामेण्टने इस तरहके रेलपथ बनानेका हुक्म नहीं दिया, किन्तु खूब सोच समझ कर पीछे सन् १८५४ ई०में पारलामेण्टने हुक्म दे दिया। इस तरह सन् १८६० ई०में इसका कार्य आरम्भ हुआ। जान फाउलर नामक एक विशेषज्ञ इञ्जिनियरके तत्त्वावधानमें सन् १८६३ ई०में पाडिंडन रास्तेसे फारिंडन रास्ते तक रेलपथ तैयार हुआ। अन्तमें सन् १८८४ ई०में 'इनर-सकल" नामक लण्डनके बीच रेलपथ बना। इस रेल-पथकी लम्बाई केवल १३ मील है। पीछे यह बढ़ कर ४० मील हो गई थी। प्रत्येक आधे मील पर स्टेशन बना है। यह रेलपथ बनानेमें प्रत्येक मील पर ५०००००० रुपया खर्च हुआ है। भूमिमें सुरङ्ग खोद कर रेलपथ बनानेमें ही अधिक धन खर्च करना पड़ा था। कई जगहोंमें नदीके नीचेसे रेलपथ ले जाना पड़ा है। किसी किसी जगह ६ फुट व्यासके ढले हुए लोहेके नल-में यह रेलपथ तैयार हुआ है। इसी पथको बनानेमें टेम्स नदीके नीचे विख्यात पुल बना था। यह पुल नदी तहसे १३ फुट नीचे, ७० फुट लम्बा और लोहेके खम्भों पर अवस्थित है। फिर कई जगह यह रेलपथ भूमिसे ६० फुट ऊंचे स्तम्भों पर बना है। किसी जगह ४२ गज नीचे ४२१ फुट लम्बी सुरङ्ग खोद कर यह पथ बनाया गया है। क्लार्कनवेल नामक स्थानमें ७२८ गज लम्बी एक सुरङ्ग है। ३० फुट गहरा पत्थर काट कर यह पथ तैयार हुआ है। किसी किसी जगह साधारण रास्ते पर ६० फुट ईंटकी ऊंचाईके जोड पर यह पथ तैयार किया गया है। मिष्टर फाउलरकी अपूर्व प्रतिभाके बल पर ऐसा विकट पथ बना है। उस्मार्टन स्टेशनके समीप रेलपथ २॥ मील तक जमीनके अन्दरसे गया है। उक्त सुरङ्ग २७ फुटमें फैली हुई है।

नागरिक रेलोंमें अमेरिकाके न्यूयार्क शहरका ऊंचा रेलपथ बड़ा ही विस्मयजनक है। सन् १८७२ ई०में यह कम्पनी कायम हुई। जनाकीर्ण नगरके आदमियों और मोटर आदि सवारियोंका रास्ता सुरक्षित रख इस कम्पनीने १६ हाथ ऊंचा यह रेलपथ बनाया है अर्थात् बड़े बड़े छिमञ्जिले इमारतोंकी छतोंके किनारों-से यह रेलपथ निकला है। सन् १८८० ई०के प्रारम्भमें ३४३ रेलपथ तैयार हो चुके थे। इन पथोंसे नित्य २६५००० यात्री आते जाते थे। वहां दो मिनटके बाद यात्री-गाड़ी आती जाती है। जिनको चाहे जितनी ही दूर क्यों न जाना हो, उनको ढाई पेनी ही महसूल देना होता है। यह ऊंचा रेलपथ ४४ फुट पर गड़े लोहेके स्तम्भों पर विद्यमान है। इस रेलपथके नीचे ट्रामवे-का भी रास्ता है। इस रास्तेसे रोज रोज लाखों आदमी आते जाते हैं। इसके ऊपर प्रति दो मिनटमें

रेलगाड़ी चली जाती है। नियमानुसार प्रबन्ध होनेके कारण कोई गड़बड़ी नहीं होती। ऐसे ऊंचे पथ बनानेमें प्रति मीलमें ८१३३६०) रुपया खर्च पड़ता है।

इङ्गलैण्डमें जो रेलोंका फैलाव ४ फुट ८॥ इञ्च है। इसको नरमल गज या आलोप परिमाण कहते हैं। सिवा इसके अन्यान्य गजको (Gauge) भी रेलें हैं। ग्रेटवेष्टर्न रेलवेमें पहले ७ फुटका गज व्यवहृत हुआ था। इसका नाम था "ब्रडगज" या विस्तृत परिमाण और ४ फुट ८॥ इञ्चके गजका नाम "न्यारो गज" या सङ्कीर्ण परिमाण।

जमीनके भीतर अन्यान्य देशोंमें निम्नलिखित फिट हिसाबके अनुसार रेलोंका परिमाण है:—

रेल और आदर्श गज।

	फुट इञ्च
इङ्गलैण्डका आदर्शगज	४ ८॥´
आयरलैण्डमें ,,	५ ३´´
मध्ययुरोपमें ,,	४ ८॥´
रूसका आदर्शगज	५´ ०´
नारवेरियामें (२ तरह)	४ ३´, ३ ६´
स्पेन और पुर्त्तगाल	५ ६´´
भारतवर्षका साधारण गज	५´ ६´´
मिटर गज	३´ ३६
कालीपुरम् रेलवेमें	३ ६´
जापानमें	३´ ६´´
इजिप्त या मिस्रमें	४ ८॥´
कनाडामें (३ प्रकार)	५ ६; ५ ८॥´´; ३६´´
मेक्सिकोमें (२ प्रकार)	४ ८॥´´ ३ २
युनाइटेडस्टेटसमें (६ प्रकार)	४ ६´; ४ ४´; ६ ०´´; ५ ०´´; ३ ०´´; २ ०
अष्ट्रेलियामें (४ प्रकार)	५ ३, ३ ६´´, ४´८॥, ५´, ३
न्यूजीलैण्ड (२ प्रकार)	८´ ३´´, ३´ ६´´

सन् १८७२ ई०में मिष्टर डब्ल्यू टोमसनने "भारतमें रेलपथका गज" नामक एक विस्तारित प्रबन्धमें कौन गज सबसे उत्तम है, यह दिखलाया है। उसमें यह स्थिर हुआ है, कि ५ फुटका गज दूरगामी पश्चिमके पक्षमें अत्यन्त सुविधाजनक है।

गत ४० वर्षकी रेलवेरिपोर्ट पढ़नेसे मालूम होता है, कि "डबल हेडेड" या दो सिरोंकी अर्थात् इस आकारकी रेल सब जगह काममें आ रही है। पहले एक रेल २५ वर्ष तक काम देती थी। किन्तु इस समय १० ही वर्षमें खराब हो जाती है। इङ्गलैण्डमें यात्री गाड़ी तथा डाकगाड़ी की एञ्जिन हर घण्टेमें ४०से ६० मील तक जाती है। इङ्गलैण्डमें नदर्न रेलपथमें तेज चलनेवाली गाड़ी किस क्रससे ग्राहम तक १०५॥ मील पथ अविश्रान्त वेगसे जाती है। यह एञ्जिन घण्टेमें ५३॥ मील चल कर १ घण्टामें और ५८ मिनटमें यह रेलपथ गमन करता है। ग्रेटवेष्टर्न रेलपथमें चलनेवाली गाड़ी ५३। मीलकी चालसे जाती है। साधारण यात्री गाड़ी ३० मीलकी चालसे जाती हैं। ये गाड़ियां हरेक स्टेशनमें ठहरती हैं, यह ११से २८ मील घण्टेमें तथा मालगाड़ी घण्टेमें २५ मील जाती है।

इस समय विज्ञानकी उन्नतिके साथ साथ गाड़ियोंकी रफ्तारमें भी उन्नति हुई। इस अमेरिका आदि देशोंमें एक्सप्रेस या तेज चलनेवाली डाकगाड़ी घण्टेमें ५०से ८० मील तक जाती है इस विषयमें अमेरिकाने यूरोपको पीछे डाल दिया है यूरोप प्रायः डाकगाड़ियां कई हजार मीलकी दूरी तय करती हुई घण्टेमें (विश्रामका समय ले कर) ३० मील जाती है। किन्तु युनाइटेडस्टेटस (अमेरिका) में मील प्रति घण्टे चलनेवाली गाड़ियां विश्राम स्थान कर ६ ६०० मील पथ अविरत जा सकती हैं। फिर डेलफिया और अटलान्टिक नगरके बीच रेलगाड़ी मिनटमें ५५॥ मील पथ तय करता है। डाकरेल गाड़ीकी सिपी चाल ६६॥ मील है। किसी किसी स्थानमें घण्टेमें ८२ मीलकी चाल है। इस समय फ्रांसमें प्रिटेनकी कोई कोई डाकगाड़ी ५१ मीलसे ६१ मील चालसे चलती है। फ्रान्समें डाकगाड़ी पेरिससे मा तक १२० मील १ घण्टे ५३ मिनटमें तय करती अमेरिका और जर्मनीके किसी किसी रेलपथमें यह

८० मीलकी चालसे कोई कोई डाकगाडी चलती है।

रेलवे संक्रान्त कानून।

इङ्गलैण्डमें पारलिमेण्टकी आज्ञाके विना कोई कम्पनी रेलपथ नहीं वना सकती है। सन् १८३२ ई०में पारलिमेण्टने एक कानून पास किया था। इसके अनुसार प्रति मीलमें प्रत्येक चार यात्रीसे आध पेनी महसूल लिया जाता था। सन् १८४२ ई०में इस कार्यका निरीक्षण करनेके लिये एक परिदर्शक नियुक्त हुआ। इसी समय रेलवे आइनका संस्कार हुआ और लिपिवद्ध हो गया। इसका नाम "वोर्ड आफ ट्रेड" है। यह वोर्ड इच्छानुसार रेलकम्पनीके सभी कार्मोंका निरीक्षण करता है और महसूल वसूल किया करता है। सन् १८७३ ई०में रेलवेका नया कानून हुआ। उसमें कमिशनरोंने नियुक्त हो कर रेलके विषयकी पर्यालोचना की। सन् १८८० ई०में "रेल-कर्मचारीका दायित्व" विषयक कानून विधिवद्ध हुआ। इसके अनुसार रेलवे मुसाफिर गार्ड या गाडी चलानेवालोंके दोषसे हत या क्षति होने पर क्षतिपूर्त्ति करानेके अधिकारी हुए।

रेलगाडीकी उन्नति।

इङ्गलैण्डमें साधारणतः निम्नलिखित गाडिया रेलपथसे आती जाती हैं:—

(१) पैसेञ्जर ट्रेन या यात्री गाडीमें पहले, दूसरे और तीसरे दर्जेकी गाडी रहती है। सिवा इनके लगेज, ब्रेकभान, हर्सवक्स और केरेजट्रक आदि गाडिया भी हैं। (२) मालगाडी—इसमें सव तरहकी चीजोंके ढोनेकी गाडिया रहती है। छाई हुई या विना छाई हुई—इन दो तरहकी गाडिया इसमें व्यवहृत की जाती हैं। हाथी, घोडे, गो, भेडा, वकरा और भैंसे आदि जानवरोंको ढोनेवाली गाड़िया, कोयलेकी गाडी विविध प्रकार और आकारकी गाड़िया इसमें जोडी रहती हैं।

पहले जो सव पहले दर्जेकी गाडी तैयार हुई थी, उसका वजन ३॥ टन प्रत्येकका था। इसकी लम्बाई १५ फुट और चौडाई ६॥ फुट तथा ऊंचाई ४ फुट ६ इञ्च थी। यह गाड़ी तीन भागोंमें विभक्त थी। प्रत्येक कमरेमें ६ आदमियोंके वैठनेका स्थान रहता था। इस तरह पूरी गाड़ीमें १८ आदमियोंके वैठनेका स्थान था। पहले प्रत्येक गाडीके चार चक्र होते थे। इस समय इसका वहुत परिवर्त्तन हो गया है। इस समय यह गाडी ३० फुट लम्वा और चार कमरोंमें विभक्त हैं। दूसरे और तीसरे दर्जेकी गाड़ियां भी सभी एक समान लम्वी होती हैं। किन्तु यह पांच कमरोंमें विभक्त होती हैं। पहले दूसरे दर्जेकी गाड़ीमें गद्दी या विछौना न था। कभी कभी तीसरे दर्जेकी दो तीन गाड़ियां एकत्र जुड़ी रहती हैं। सन् १८५८ ई०में इङ्गलैण्डमें दूसरे दर्जेकी गाड़ियोंमें गद्दियोंका प्रचलन हुआ। इस समय इङ्गलैण्डके अधिकांश तीसरे दर्जोंकी गाड़ियां भारतवर्षके दूसरे दर्जोंकी गाडियोंके समान हैं।

अमेरिकाके वाल्टिमोर और ओहियो रेलपथमें जो तीसरे दर्जोंकी गाडिया हैं, उनके वनानेमें वड़े आश्चर्यजनक कौशलसे काम लिया गया है। ये सभी गाड़ियां एक प्रान्तसे दूसरे प्रान्त तक आती जाती हैं। यह पथ ठीक "करिडोर"के अनुसार दो फीट चौड़ा है। अमेरिकाकी गाडियोंमें जो विलास और स्वच्छन्दताकी व्यवस्था है, वह अन्य किसी देशकी गाड़ियोंमें नहीं है। प्रत्येक चलनेवाली गाड़ीमें पीनेका जल, वर्फ और खाद्यादि सर्वदा मिलता है। पाखाना प्रत्येक डब्बेमें रहता है। जाड़ेके दिनोंमें गाडियां आग सुलगा कर गरम रखी जाती हैं। शीतातपमें मुसाफिरोंको जरा भी कष्ट नहीं होता। सिवा इसके प्रत्येक गाड़ीमें अधिक संख्यामें पुस्तक और समाचारपत्र रहते हैं। मुसाफिर चाहें तो शौकसे पढ़ सकते हैं। ये सव गाड़ियां कई तरहके प्रकाशसे प्रकाशित रहती हैं। दूरके मुसाफिरोंके सोनेके लिये एक स्वतन्त्र गाड़ी रहती हैं। इस समय सभी जगह विद्युत् प्रकाशका ही व्यवहार होता है। इन गाड़ियोंके मुसाफिर स्वेच्छापूर्वक करिडोरमें घूम फिर सकता है और गश्ती दुकानदार चलती हुई गाड़ियोंमें नाना प्रकारकी चीजें वेचा करते हैं। फलतः कई सहस्र मील तक यात्रा करने पर भी मुसाफिरोंको गाड़ीसे उतरनेकी जरूरत नहीं होती और न यात्रा करते मन ही ऊवता है।

अन्यान्य देशोंका रेलपथ।

यूरोप महादेश—सन् १८२६ ई०में फ्रान्समें पहले

पहल ट्रामका रास्ता बना। सन् १८३३ ई०में वहांकी सरकार रेलपथ बनानेमें बड़ी परेशान हुई थी। सन् १८४२ ई०में फरासिसी सरकार रेलपथका आधा खर्च देने पर राजी हुई थी। इसके अनुसार आधा खर्च लगा ४२ रेल कम्पनियां कई वर्षों तक पड़े पर अपने अपने काम करने लगी। सन् १८५३ ई०में बड़ी बड़ी ६ कम्पनियाने चारों ओर रेलपथ तैयार कर दिया। सन् १८८४ ई०मे २४००० मीलमे रेलपथ तैयार हो गया।

सन् १८३० ई०से १८३२ ई० तक बेलजियम सरकार ने रेल निकालनेकी चेष्टा की। सरकारने ३०० मीलोंमे पथ तैयार कर कई कम्पनियोंको रेलपथ तैयार करनेका हुक्म दिया। इसके फलस्वरूप सन् १८४० ई० तक १४८० मीलोंमे रेलपथ तैयार हुआ।

सन् १८४० ई०मे हालेण्डमे पहले पहल रेलपथ तैयार हुआ और जर्मनीमे पहले पहल सन् १८३५ ई०में रेल खुली। प्रूसियाकी सरकार द्वारा उद्योग करने पर जर्मनीमे भी सन् १८४८ ई०मे ५०८० मीलोंमे और अन्यान्य कम्पनियों द्वारा ३००० मीलो मे रेलपथ तैयार हुआ। इसके बाद सरकारने कितने ही रेलपथोंको खरीद लिया। सन् १८५८ ई०मे वहां १३००० मील सरकारी और १००० मील अन्यान्य कम्पनियो का रेल पथ तैयार हुआ।

अष्ट्रिया और हंगरी प्रदेशमे सन् १८२४-२८ ई०मे पहले पहल ट्रामपथ प्रचलित हुआ। वहां १८३८ ई० तक सरकारने रेलपथ बनानेके विषयमे ध्यान दिया। सन् १८८३ ई० तक वहां २००० मीलोंमे प्रेटस रेलवे और ३००० मीलो मे अन्यान्य कम्पनियो द्वारा रेल पथ बना। हंगरीमे २००० मीलोंमें प्रेट रेलवे और अन्यान्य कम्पनियां द्वारा ३००० मीलोंमें रेलपथ तैयार हुआ। इस प्रदेशमें सन् १८८०से १८८३ ई० तक ५० रेल-कम्पनियां पहाड़ी रेलपथोंके बनानेके लिये संगठित हुई।

सन् १८८५ ई० तक स्विटजरलैण्डमे २००० मीलोंमे रेलपथ बन चुका था। इसमें एक रेलपथ सुरंग खोद कर आल्पस पहाड़को छेद कर इटलीके साथ मिला है। पृथ्वीमें ऐसा बड़ा सुरंग और कोई नहीं है। इसकी लम्बाई ९। मील है।

सन् १८६० ई०से इटलीमे रेल फैलने लगी और प्रायः १८८० ई० तक प्रायः ८००० मील रेलपथ तैयार हो गया। सन् १८४८ ई०मे स्पेनमे पहले पहल रेल आरम्भ हुई और सन् १८८० ई०मे ५००० मीलोंमे रेल-पथ तैयार हो गया।

सन् १८५३ ई०मे पहले पहल पुर्तगालमे रेल खुली। वहांकी अधिकांश रेलें सरकारकी हैं।

स्कन्दनाभ या स्वीडेन और नारवेमे रेल बड़ी सुस्ती से फैली थी। स्वीडेनमे ५००० मीलोंमे रेलपथ तैयार हुआ।

सन् १८०३ ई०मे रूसका रेलपथ तैयार हुआ। सन् १८८० ई० तक वहां १५००० मीलोंमे रेलपथ तैयार हुआ।

सन् १८६० ई०में यूरोपीय तुर्कीमें रेल बननी शुरू हुई और १८८० ई० तक वहां १२०० मीलोंमें रेलपथ तय्यार हो गया। इसके सिवा रूमानियामें १००० मीलोंसे अधिक स्थानोंमें रेलें हैं।

अमेरिकाके कनाडा प्रदेशमें सन् १८८३ तक ९११३ मीलोंमें रेलपथ और ६००५ ट्रामपथ तय्यार हुआ।

सन् १८८२ ई०में वहां ग्रेण्डट्रङ्क रोड नामका रेल पथ तय्यार हुआ। इसकी लम्बाई २६०५ मील है। सन् १८८४ ई० तक मेक्सिकोके देशमें १२२० मीलोंमें रेल पथ तैयार हुआ था। ब्रेजिलमें प्रायः १४०० मीलोंमें रेलपथ हुआ। चीलीमें ११५८ मीलोंमें और पेरूमें २०१० मीलोंमें रेलपथ तैयार हुआ है। मिसरदेशमें प्रायः १००० मीलो में रेलगाड़ी चल रही है।

सन् १८६८ ई० तक कई प्रदेशोंमें निम्नलिखित रूप से रेलपथ फैला हुआ है—

देश	रेलपथकी लम्बाई
युनाइटेड किङ्गडम	२१६५६
„ प्रेटस (आयरलैण्डको छोड़ कर)	१८१३११
जर्मनी	३०३३१
बेलजियम	३८८१
फ्रान्स	२५८६८
यूरोपीय रूसिया	२६४१४
अष्ट्रिया-हंगरी	२१८०५

देश	रेलपथकी लम्बाई
ब्रिटिश नार्थ अमेरिका	१६८७०
अंग्रेजाधिकृत भारतवर्ष	२१४७६
न्यू साउथवेल्स	२६६१

सन् १८८५ ई०के अन्तमें पृथ्वी कुल ३०२८८७ मीलोंमें रेलपथ था। सन् १८९८ ई०में यह बढ़ कर ४६६५२४ मीलोंमें परिणत हो गया। अर्थात् १३ वर्षमें सैकड़े ५४ मीलकी वृद्धि हुई है। इसमें अष्ट्रे-लियामें सैकड़े ८० मील और भारतवर्षमें ८३॥ मील बढ़ी है। केवल जापानमें आश्चर्यजनक रूपसे बढ़ी है। अर्थात् सैकड़े ६५ मील हैं।

प्रति वर्ष रूसके पबलिक वर्कस या पूर्त्त विभागसे मई-जून महीनेमें सारी पृथ्वीके रेलपथकी एक बहुत बड़ी फिहरिश्त तैयार हुई थी। जो सूक्ष्मतत्त्व जानना चाहते हैं, उनको पाठ करना चाहिये। सन् १८७६ ९३ ई० तक चार वर्षोंमें युनाइटेड रेलपथोंमें १०००००००००) रुपया खर्च हुआ। सन् १८९८ ई०-में निम्नलिखित रेलपथोंमें जो मूल धन था उसकी फिहरिश्त इस तरह है—

जर्म्मनी	५८०२२५०००	पौण्ड
अष्ट्रिया	२३००५३०००	"
हङ्गरी	८४६७००००	"
युनाइटेड किङ्गडम	११३३४६८४६२	"
" ष्टेटस	२२२१४७००००	"
ब्रिटिश अमेरिका	१६३३४३०००	"
न्यू साउथवेल्स	३४४२४०००	"

सन् १८६६ ई०में उत्तर अमेरिकाके बीच एक सुदीर्घ रेलवर्त्म निर्मित हुआ है। पहले इस पथकी लम्बाई १४०० मील थी।

सन् १८९८ ई० के अन्तमें निम्नलिखित कई रेल कम्पनीके कारखानेमें जिस तरह गाड़ियां मौजूद थीं, उनके जाननेसे रेलवेके फैले हुए कारोबारका विषय मालूम होता है।

देश	एंजिन	यात्रीगाड़ी	मालगाड़ी
युनाइटेड रेल-			
पथमें	३६२३४	३५५३१	१२६२५७६
ग्रेटब्रिटेनमें	१९४७६	४४०५३	६६४८३३
फ्रान्समें	१०६११	२७१७६	२७९५३४
जर्म्मनीमें	१६८८४	३३६६४	३६१५०६
भारतवर्षमें	४५३८	१३२६३	८६१०८

निम्नलिखित फिहरिश्तमें १८९८ ई० तकके कई देशोंकी रेल कम्पनियोंका मूलधन लिखा गया—

देश	मूलधन—पौण्ड (१५ रुपया)
जर्म्मनी	५८०२२५०००
अष्ट्रिया	२३००५३०००
हङ्गरी एंटरेल	८४६७००००
फ्रान्स	६४०१८६०००
ग्रेटब्रिटेन	११३३४४६८४६२
युनाइटेड ष्टेटस	२२२१४७००००
ब्रिटिश अमेरिका	१६३३४३८००
अष्ट्रेलिया	३८४२४०००

संसारके जिन लम्बे लम्बे पथोंने बड़े, बड़े, महादेशों को पार कर भूमण्डलको सिराओंकी तरह अच्छादित कर रखा है, उनका संक्षिप्त विवरण यहां दिया गया है। सन् १८६६ ई०में एक लम्बा रेलपथ पहले अटलाण्टिक महासमुद्रके किनारे तक फैला हुआ है। यह पथ १८४८ मील लम्बा है। किन्तु इस पथमें हजारों मील तक मैदान पड़ता है, जहां वस्तीका नाम तक नहीं। इसी पथके बनानेके बाद सन् १८८१ ई० सान फ्रान्सिसकोसे न्यू अलिन्स तक दूसरा एक लम्बा रेलपथ तैयार हुआ है। इसकी लम्बाई २४८९ मील है।

इसके बाद कानाडियान पैसिफिक रेलपथने अटला-ण्टिक और प्रशान्त-महासागरके मध्यवर्त्ती लम्बे व्यव-धानको पतला बना दिया है। यह रेलपथ अटलाण्टिकके किनारेके मण्ट्रिल नगरसे प्रशान्त महासागरके किनारे-के बङ्कुवर तक फैला है। इसकी लम्बाई २९०६ मील है। यही सब रेलपथ संसारमें बड़े कहे जाते हैं। किन्तु सन् १८९१ ई०में साइबिरिया रेलपथ बन जानेसे इन सबोंकी लम्बाईमें कमी आ गई है। अर्थात् साइ-

बिरियाका रेलपथ सबसे बड़ा बना है। रूस सरकारने एक लम्बा रेलपथ बना कर एशियाके एक प्रान्तको दूसरे प्रान्तमें जोड़ दिया है। इस पथकी लम्बाई ४००३ मील है। यह रूसकी पुरानी राजधानी सेण्टपिटर्सबर्ग नगर से १४५१ मील पूरब अवस्थित है और चेलियाबिनस्क नगरसे प्रशान्त महासागर तीरवर्ती ब्लाडिवोष्टक तक फैला है। इसकी एक शाखा ५०० मील तक चीन सरकारके अन्तर्गत डालनी और आर्थार बन्दर तक फैली है। गत रूस जापान युद्धके समय इस रेलपथकी उपयोगिता सभीने अनुभव की। सन् १९०३ ई०में इस पथसे माल और यात्री गाड़ियां चलने लगीं। किन्तु बैकालझीलके दक्षिणी किनारे पर १०० मीलका रास्ता अतीव दुर्गम होनेकी वजहसे आज भी वहांका निर्माण कार्य खतम नहीं हुआ। इस समय यात्री और मालसे लदी गाड़ियां स्टीमरोंसे बैकालझीलको पार करती हैं। बैकालझीलकी चौड़ाई ४० मील है और शीत कालमें यह झील बर्फसे आच्छादित रहती है। इसलिये मा ट्रेन स्टीमरोंसे पार होती हैं। इस साइबिरिया रेलपथ बनाने मे रूस सरकारने सैकड़ों नदियों पर बड़े बड़े पुल तैयार किये हैं। इनमें अब, इस, इर्टिस, इयेनसी और छुङ्गारी नदीके पुल अत्यन्त आश्चर्यजनक हैं और दो रेलपथ बनानेका सङ्कल्प हुआ है। अफ्रिकाकी उत्तरी सीमा सुयेज नहरसे दक्षिणी सीमा उत्तमाशा अन्तरीप तक और दक्षिण अमरिकाकी दक्षिणी सीमा बिउनस एरिसस चिलीद्वीपके किनारे तक निम्नोक्त पथका निर्माण कार्य खतम हो चला है केवल सुरङ्ग द्वारा अण्डिज पर्वत को पार करना बाकी है।

इस समय बड़े बड़े जनाकीर्ण नगरके बीच दूरस्थ मार्गवासी यात्रियोंकी सुविधाके लिये उच्च रेलपथ निर्माण की प्रथा अनेक जगहोंमें जारी की गई है। सन् १८३१ ई०में न्यूयार्कके प्रसिद्ध इञ्जिनियरने वहां सबसे पहले इस रेलपथका आदर्श तैयार किया। किन्तु यथार्थमें सन् १८७० ई०से इस पथमें रेल चलने लगी है। सन् १८७८ ई०में न्यूयार्कमें इसी तरहके समानान्तर पर चार रेलपथ तैयार हुए हैं। जर्मनीके बर्लिन नगरमें भी यह प्रथा अवलम्बित हुई है। सन् १९०० ई०में बोस्टन नगर में यह प्रथा जारी हुई है।

यह सभी बड़े बड़े रेलपथ लोहेके खम्भों या पत्थरोंकी नेवाइ पर अवस्थित हैं। एक खम्भेसे दूसरे खम्भे तक एक बड़ा गार्डर आती है। पीछे उस पर साधारण पथकी तरह सारा पथ ही लोहेकी कड़ियोंसे तैयार होता है।

साउथ लण्डन रेलवे कम्पनीने टेम्स नदीके नीचे जो सुरङ्गमें तैयार किया है, वह अत्यन्त विस्मयजनक है। न्यूयार्कके इञ्जिनियर बीच् और ग्रेटहेड द्वारा यह भी निर्मित हुआ है। इसका विवरण सुरङ्ग शब्दमें दिया गया है। ग्रेटहेडने १० फुट [illegible] व्यासयुक्त एक ढले हुए लोहेका नल उसके ऊपरी भागमें ४० फुट नीचे स्थापित किया है। इस तरहकी दो सुरङ्गें तैयार हुए हैं। सन् १९०२ ई०में पारलीमेण्टने इसी तरहके चार नम्बर रेलपथ तैयार करनेका हुक्म दिया। इसके अनुसार (१०००००००) रुपया मूलधन संगृहीत हुआ। इस धनसे क्लार्कसन्स लण्डनकी चौकी हुए उत्तरी सीमा तक एक लम्बी सुरङ्गदार रेल बनी है। इस पथकी चौड़ाई ११ फुट है। ग्रेट [illegible] के आदर्शके अनुसार सन् १८९६ ई०में अष्ट्रियाके बुडापेस्ट नगरमें इस तरहका सुरङ्गदार रेलपथ तैयार हुआ है। सन् १९०२ ई०में ८ मीलका सुरङ्ग पथ तैयार हुआ था। इस पथसे घण्टेमें १५ मीलकी तेजीसे गाड़ियां आती जाती हैं।

साधारणतः इन सब पथोंमें बिजलीकी रेल चलती है। फिर एक ट्रेन ही तलघरमेंसे उपरिस्थित रेल पथसे आ जा सकती है। ५०० गज अन्तर पर एक एक स्टेशन बना है। ये सुरङ्गदार रेलपथ साधारणतः तीन प्रकारके हैं।

(१) गहरी जमीनके भीतर अवस्थित लोहेके नल से बना रेलपथ। ये पथ इतने गहरे हैं कि नीचेसे ऊपर उठानेके लिए यात्रियोंको लिफ्ट या कलसे उठानेवाले यन्त्रोंका व्यवहार किया जाता है।

(२) भूतलमें कुछ ही गहराईमें बना रेलपथ। ये सब पथ १२ से १५ फुटसे अधिक गहरे नहीं हैं। इस लिए यात्रियोंको चढ़ने और उतारनेकी जरूरत नहीं होती। ऐसे पथोंमें यात्रा स्वयं सीढ़ियों द्वारा चढ़

उतर सकते हैं। किन्तु इस पथमें असुविधा इतनी ही है, कि नगरके भूगर्भस्थ जल, गेस, विष्ठा और बिजली के नल जालकी तरह जमीनमें फैले हुए हैं। इससे ऐसे पथोंमें बड़ी असुविधा होती है।

(३) पहले साधारणके चलनेके लिये जमीनसे कुछ ऊंचा पुल बना कर नीचे रेलपथ तैयार करते हैं। ऊपर आदमी, घोड़ागाड़ी, मोटर आती जाती तथा नीचे रेलगाड़ी चलती है। कलकत्ता चितपुरका पुल और रेलपथ तथा बम्बई, फेलड़ी और फ्रेञ्च पुल इसके उदाहरण हैं।

ऐसे सुरङ्गदार रेलपथ बनानेमें जो असुविधा भोग करनी पड़ती है, वह अकथनीय है। क्योंकि, जमीनमें कार्बनिक एसिड 'गेस' या अङ्गाराम्ल वाष्प, गन्धक वाष्प, जलीय वाष्प और विशुद्ध वायुके अभावके कारण सभीको बड़ा कष्ट होता है। इन सब रेलपथों में बिजलीका रेलगाड़ी चलती हैं। इन सब बिजलीके एञ्जिनोंकी शक्ति ६५० घोड़ेकी शक्तिके बराबर है।

ऐसे ऊंचे और नीचे रेलपथ बनानेमें बड़ा धन खर्च होता है। अमेरिकाके प्रत्येक ऊंचे रेलपथ बनानेमें प्रति मील ३०००००० से ४०२०००, लाउन नगरके १५ फुट व्यासयुक्त तलपथमें प्रति मील २००००० पाउण्ड खर्चा हुआ है। सिवा इसके जमीनका मूल्य, स्टेशन बनानेका खर्च और अन्य खर्चा अलग हैं। लण्डनके केनन ष्ट्रीटके रेलपथो बनानेमें प्रति मीलमें १०००००० पाउण्ड खर्चा हुआ था। न्यूआर्कमें २१ मील नीचे रेलपथ बनानेमें ३५००००००) रुपया खर्चा करना पड़ा है। न्यूआर्कमें ४० मील ऊंचा रेलपथ है। इस पथसे प्रतिवर्ष २२१०००००० मनुष्य आते जाते हैं। लण्डनके १०० मील ऊंचे और नीचे रेलपथोंसे प्रतिवर्ष १५०००००० यात्री आते जाते हैं। सेण्ट्रल लण्डन रेलपथसे १९०० ई०की २९वीं अक्तोबरको एक दिनमें २२४६६१ यात्री आये गये थे। इसी रेलसे दक्षिण अफ्रिका युद्धक्षेत्रसे वालण्टियर या स्वयंसेवक लौटे थे।

वर्त्तमान समयमें यूरोपमें साधारण रेलपथोंमें बिजलीकी रेलगाड़ी चलती है। सन् १९०५ ई०में भारतवर्षके उत्तरी पश्चिमी प्रदेशमें ष्टेट रेलके लिये सरकारने एक आदर्श बिजलीकी गाड़ी मंगवाई है। इस समय इसके चलानेकी परीक्षा हो रही है। इस बिजलीकी रेलके प्रचलनसे घा ेसे चलनेवाली ट्रामें बन्द हो रही हैं। २०वीं शताब्दीके आरम्भसे ही अमेरिका और यूरोपमें बिजलीकी रेलें चलने लगीं। सन् १८९९ ई०में न्यूआर्कमें ५०६५८ बिजलीके एञ्जिन व्यवहृत हुए थे और १७९९९ मील पथ भी बना था। सिवा इसके वहां १६२१३ मील ट्रामपथमें ५८७३६ गाड़ी चल रही है। इसका मूलधन १०२३४१९९८६ पौंण्ड फिर यह मूलधन कम्पनीका कागज या जातीय ऋण ग्रहण कर एक वर्ष २०००००००० बढ़ गया। सन् १९१० ई०की ३०वीं जून तक न्यूयार्कमें रेल, ट्राम इत्यादि नाना तरहकी गाड़ियोंकी कुल ४५३९०३१८ मील पथ तय करना पड़ा। इस वर्ष यूरोपमें ५०६२ मील पथमें बिजलीकी गाड़ी चली। सन् १८९९ ई० तक निम्नलिखित देशमें बिजलीके रेलपथ और मोटर गाड़ियोंकी फिहरिस्त इस तरह है :—

ग्रेटब्रिटेन	६००	२०००
जर्मनी	२३००	५४८०
अष्ट्रिया हङ्गरी	१८०	२६१
बेलजियम	१२०	२००
स्पेन	१६६	१४४
फ्रान्स	८००	१०००
इटली	२३५	३१८
स्वीजरलैण्ड	२५०	३२०

लाइट रेलवे।

सन् १८९६ ई०में पारलिमेण्टकी आज्ञासे ग्रेटब्रिटेनमें बिजलीकी छोटी रेलें चलने लगी हैं, तबसे नाना स्थानोंमें रेलपथ बन गया है। इस रेलका गेज ढाई फुट है। किन्तु फिर अनेक लाइट रेलपथ तैयार हुए हैं। यूरोपसे प्रायः सभी देशोंमें लाइट रेल फैल गई है। भारतवर्षके नाना स्थानोंमें भी ऐसी रेलें दिखाई देती है।

पहाड़ी रेलवे।

जो रेलपथ समतल भूमिसे पहाड़के उच्च प्रदेश तक बनता है, उसे पहाड़ी रेलपथ कहते हैं। एक हजार फुट

पथ तय कर यदि वह रेलपथ ३० फुट ऊपर चढ़ता है, तो उसे पहाड़ी रेल कहते हैं अर्थात् ऐसी रेल प्रति हजार फुट पर ३० फुट ऊंचा चढ़ता है। यह रेलपथ भी तीन भागोंमें विभक्त है:—(१) कमसे कम या कम से निम्नस्तरसे ऊपरकी ओर या उच्च स्थानके मापका भार वहन साधारण रेलपथ। इसको 'एडहिजन' रेल कहते हैं। (२) Rack रेलवे अर्थात् जिसका पथ बराबर दांतदार बना रहता है। गाड़ीके चक्केमें भी दांत होते हैं। ऊपर चढ़नेके समय गाड़ीके चक्केका दांत पथके दांतमें मिल कर घूम जाता और झुक जाता है। इस तरह पहलेके बाद एक दांत लगता जाता और घूमता जाता है। इस तरह रेलके ऊपर चढ़नेमें नीचे गिरनेका डर नहीं रहता है। रैकरेलपथ समतल स्थानोंमें सादी बहुत रेलकी तरह भी बनता है। (३) Cable रेलपथ:—यह पथ कुछ सीढ़ीकी तरह बना रहता है। एक छोर टेढ़े ढालके ऊपरमें खींच बना रहता है पीछे उसीकी तरह दांतयुक्त चक्का दांतोंमें मिल कर ऊपर चढ़ता है।

जहां प्रति ४० फुटमें १ फुट उच्च पथ है, वहां रैक रेल व्यवहृत होता है। रैकरेल १००० फुट पर २५० फुट ऊंचा चढ़ सकता है। इससे अधिक उठना इस रेलकी क्षमतासे बाहर है।

माउण्ट वाशिङ्गटन और रिगी [illegible] नामक रैक रेलपथ बन जानेके बाद नाना स्थानोंमें इसी आदर्श पर रैक रेल तैयार हो रहे हैं। कुछ रैकके दांत पश्चात्वर्ती बना है। किन्तु [illegible] प्रकार पिलेटस नामक रैक रेलमें सीधे दांतका व्यवहार किया है। यह पथ पृथ्वीमें अद्भुत रचना है। इस पथ पर गाड़ी समकोण त्रिभुजके बगलकी तरह चढ़ आपसे चढ़ता है अर्थात् यह पथ प्रत्येक १००० फुट पर ४८० फुट ऊंचा चढ़ता है। किसी किसी रेलपथमें रैक और साधारण रेल दोनों रहते हैं। फिर भी, मध्यस्थलमें यह बना रैक रहता है। इसके द्वारा गाड़ी अनुकूल ऊपर चढ़ती है।

अबट (Abt) नामक रैकपथमें गाड़ियां [illegible] हो एकके ऊपर चढ़ता है। इस रेलपथ पर ३ रैक बिछाए रहता है। इनमें दो बिछती और एक रैक या [illegible] रेल। रैक रेलपथमें सुरङ्ग आदि रहनेसे बड़ी असुविधा रहती है।

इस समय पहाड़ी रेलपथ पर बिजलीका मोटर चल रहा है। सबसे पहले पार्मेनक पार्वत्य रेलपथ पर बिजलीकी मोटर गाड़ी चलने लगी। इस पथकी ऊंचाई प्रति सहस्र १८१ है। इसके बाद माउण्ट नामक स्थानमें यह मोटर चलने लगी। इस समयकी ऊंचाई प्रति सहस्र २१७ है। जांफ्रा नामका पहाड़ी रेलकी ऊंचाई प्रति सहस्र २५० है। इस पथसे रेलगाड़ी उपरिस्थित बिजलीके तारके संयोगसे सहजसे दौड़ती है। कलकत्तेकी बिजलीकी ट्राम जैसे ट्रॉलीपोल द्वारा बिजलीसे स्पर्श करा कर चलाई जाती है, उसी तरह यह रेल भी चलाई जाती है। पृथ्वीमें जितनी पहाड़ी रेलें हैं उनमें जांफ्रा रेलपथ अति अद्भुत तथा विस्मयजनक है। इसके अधिकांश पथ सुरङ्गदार हैं। प्रति हजार फुट पर २५० फुटकी ऊंचाईसे आरम्भ कर यह ५००० मिटर या ६ मील ऊंचाई तक गया है। यह पथ बीचमें [illegible] मील पिरनुगापको पार कर ऊपर गया है। इस पथके चारों ओर हिमाच्छादित तुषारकी स्रोतमें प्रवाहित हो रहे हैं। इस अपार नैसर्गिक विस्मयका वीर मनुष्यजातिने मानो प्राकृतिक तुषारमय महत्त्वका परिहास करते हुए बिना [illegible] अनवरत [illegible] के साथ [illegible] किये [illegible] है।

इन सब पहाड़ी रेलों पर १० आदमीसे अधिक यात्री नहीं चढ़ सकते और इस पर भार १ टनसे अधिक व्यवहार नहीं किया जाता। गाड़ी घण्टेमें ६ से ८ मील तक चलाई जाती है। जहां रेलपथ बिल्कुल ऊंचा है, वहां एक [illegible] लगाया जाता है।

रेल और [illegible] रेलपथ बनानेमें बहुत व्यय पड़ता है। एक हजार गज पथ बनानेमें २००० पाउण्डसे १२००० पाउण्ड तक खर्च हो जाता है। सन् १८८७ ई०के अन्तमें सारी पृथ्वीमें [illegible] मील तक ही रेल बना था।

भवन या इमारतके सहारे चलनेवाला रेल इस तरह का है—

(१) लम्बी रस्सी द्वारा बराबर ऊंचे स्थानमें गाड़िया चढ़ती हैं। अर्थात् रस्सीके दूसरे छोरमें मोटर एञ्जिनकी शक्तिसे गाड़िया नीचे ऊपर चढती हैं।

(२) रस्सीके दोनों छोर पर गाडी सलग्न रहती है। एक उतरती रहती है और दूसरी ओर चढती रहती है। इसी निम्नोक्त प्रणालीसे अधिकाश पहाडों पर केवल रेलगाडी चढती रहती है।

पहले इन सब उर्द्ध्वगामी गाड़ियोंके यात्री गाडी पर चढ़ने और उतरनेमें हिलते डोलते थे। अर्थात् कभी कभी गिर भी पड़ते थे। किन्तु इस समय गाड़ियां इस तरहके कौशलसे बनाई जाती हैं कि गाड़ीमें चढने और उतरनेमें यात्री जरा भी विचलित नहीं होते। ठीक तौर पर बैठ सकते हैं।

केवल रेलपथकी ऊंचाई रैक रेलपथसे बहुत अधिक हुआ करती है। अर्थात् प्रति हजार फुट पर ६५० फुट ऊंचा होता है। इन गाड़ियोंमें ३२से ४८ यात्री बैठ सकते हैं। ऐसे एक हजार गज पथ बनानेमें १०००० पाउण्डसे ३०००० पाउण्ड खर्च हुआ करता है। किन्तु ये सब पथ बडे ही विपज्जनक हैं। बीच बीचमें वेगवती तुषार नदीके चलाये बड़े बड़े पत्थरके ढोके गिर कर रेलपथ या रेलवे मुसाफिरको नष्ट भ्रष्ट कर देते हैं। चिरनीहारह-सीमान्तवर्त्ती रेलपथोंमें विपद्की आशङ्का सबसे अधिक है। कई बार इस तुषारस्रोतसे रक्षा पानेके लिए बड़े बड़े इञ्जीनियरोंने बड़ी बडी चहारदिवारियां उठाई थीं और जहां तुषारकी अधिक सम्भावना है, वहां पहाड़ोंमें सुरङ्ग खोद कर उसमें रेलपथ बनाया है। कोई कोई सुरङ्ग ३।४ कोस लंबी होती है। इस प्रवन शिखरका सुरङ्गद्वार पथ विद्युत् प्रकाशसे प्रकाशित किया जाता है। इस समय शिक्षा और सभ्यताके विस्तारके साथ साथ पहाड़ी रेलपथका फैलाव भी बढ रहा है। इस समय पृथ्वीके जिस जिस स्थानमें पहाड़ी रेल है उसका संक्षिप्त विवरण इस तरह है:—

आडहिसन लाइन या ऊपर चढनेवाली क्रमोच रेलपथ।

स्थानीय रेलका नाम	रेलपथकी लम्बाई	क्रमोच्चके अनुपात से		फुट हिसाब	प्रतिमील खर्च पाउण्ड
सिहलकी कादुगानव रेल	१२	१	:	४५	अज्ञात
सेण्टगथार्ड पार्वत्य रेल	३६	१	:	३७	६८८७२
दार्जिलिङ्ग हिमालय रेल	४०	१	:	२८	४५७५
वेनेजुएलर काराकस	२३	१	:	२७	२५०००
मेक्सिको रेल	१४	१	:	२५	अज्ञात
पेरूकी रेल	१००	१	:	२५	३१६६०
स्वीजरलैण्डकी मूरहस्त रेल	७	१	:	२५	१०४५३
लण्डनकोयार्ट	१३॥	१	:	२०	११५२०
भाउन कट्रकस	५	१	:	२२	अज्ञात
पेन्सिलवेनिया	१४	१	:	१६	अज्ञात
ब्रेजिलकी काण्टागेलो	६।	१	:	१२	२००००

रैक्रेलपथकी फिहरिस्त।

स्थानीय रेलका नाम	रेलपथकी लम्बाई मील	क्रमोच्चके अनुपातका		फुट हिसाब	प्रतिमील पर खर्च पाउण्ड
ब्रानसुईकी हर्ज रेल	४॥	१	:	१६	१०४५८
बोसनियामोष्टर	१७	१	:	१६	अज्ञात
ष्टाइरियर इसेनार्ज	६	१	:	१४	४५२६०
सुमात्राकी पाडा रेल	१६	१	:	१२	११४००
स्वीजरलैण्डके जर्मट	४	१	:	८	७१५०
इङ्गलैण्डके स्नोडेन	४॥	१	:	५॥	११५५०
कलोरडोपाइकसपीक	८॥	१	:	४	११४०६
स्वीजरलैण्ड रथन	४॥	१	:	४	१७६८४
भिजूहानरिशिन	४	१	:	४	२६२०८
अष्ट्रियाका सालजवर्ग	३॥	१	:	४	१६८४०
वेङ्गेरनाल्प	१०	१	:	४	१००४०
अष्ट्रियाका स्काफवर्ग	३॥	१	:	२	अज्ञात

स्वीजरलैण्डदेशके आल्पस पर्वतमें सबसे अधिक र्याक (Rack) और तार (Cable) रेलपथ निर्मित हुआ है।

केवल्रेलका नाम	लम्बाई गज	प्रतिहजार फीटकी ऊंचाई	समुद्रसे ऊंचाई फीट	प्रतिमीलमें खर्च पाउण्ड
बीटनवर्ग	१७५०	४००	३६३८	१६४००
विपल्मागलिङ्गेन	१७७७	३२०	२८८४	१५३००
वदर्जेनष्टक्	६०४	५७५	२८८०	८६००
न्यूसाटेल	४०२	३७०	१८०८	६७००
जिसब्यच	३५०	३२०	२१७५	५०००

लुसार्न	१५५	५५०	१७००	२८००
लुसानी	११२०	११९	१०५१	१११३००
मराख्नेल	१३२०	६००	४८८२	२८५००
लुगानो	२६०	२१८	११०६	६४००
माछ्रिको	११०	७०२	१७३२	२०००
स्पालमरोर	११४८	६००	२८६४	२५२००
पिलीक	१३४०	२६०	२२०५	११४००
टेरिटेरिटॉम	६०५	५३०	२२६१	१६४००
जुरिचवर्ग	१३८	२६०	१४८०	१४००
रेगज	८३३	६०४	२११६	८८००
ग्रैं आहम	३६६६	६२०	६०८३	४७१००
कसोलेनाइड	१३३४	१३०	२२२२	१५२००
सम्पटाङ्केमपुइकेल	३४०	२९८	२५३०	१००००
इकडारलुरिच	८८२	१००	१७३४	११३०

उपयुक्त रेलपथ मनुष्योंके शिल्पविज्ञानके अद्भुत कीर्त्तिस्तम्भ हैं। पहाड़ी रेलपथोंमें मुरेन नामक पथका ढालेदार या उपत्यकाके उपरिस्थित प्रस्तरग्रथित प्रकाण्ड गर्भाई अद्भुत शिल्पकीर्त्तिका परिचय है। यह रेलगाड़ी मानो बड़े पहाड़ पर सीधी चढ़ जाती है। आल्बोमरकी बात पहले कहा जा चुकी है। सिवा इसके पिलाटस, ब्रुनिग और स्पालमेरके पर्वतगात्रमें ऊर्ध्वगामी पथ बड़े ही विस्मयजनक हैं। पृथ्वीमें ये अतुलनीय पथ हैं।

भारतीय रेलपथ।

सन् १८४५ ई०से पहले भारतीय रेलपथकी कल्पना किसी इञ्जिनियरके मस्तिष्कमें नहीं उत्पन्न हुई थी। अभी शताब्दिमें ही रेलके प्रचारसे युगान्तर उपस्थित हुआ है।

आ हो, वाल्मीकि और कालिदासका पुण्यकथ्य कल्पना कहमें निवास करे। अब भारतवासी रेलगाड़ी पर चढ़ कर तीर्थप्रसूत पुण्योपचय स्वर्गमें जाते हैं। अयोध्या, मथुरा, माया, काशी, काञ्ची, अवन्तिका, पुरी, द्वारवती आदि मोक्षदायक महातीर्थोंमें भारतवासी अनायास ही आ जा रहे हैं। रेलगाड़ी ७४ घण्टेमें कलकत्तेसे कैलाश पर्वत पर जा कर काञ्चनजङ्घा शिखर पर काञ्चनआलोका अपूर्व दृश्य देख रहे हैं। वङ्गोपसागरके निकटस्थ कलकत्तेसे चल कर ४१ घंटेमें अरबसागरके समीपमें बम्बई नगरमें लोग पहुंच जाते हैं। ६० घंटेमें कालकाससे कन्याकुमारी, ५० घण्टेमें नव द्वीप या नदियासे नैमिषारण्य तक जाया जाता है।

सात घोड़े रथ पर चढ़ सूर्यके उदयाचलसे अस्ता चल जाते न जाते सात सौ घोड़ोंकी शक्ति रखनेवाली गाड़ी पर चढ़ कर पाटलीपुत्र (पटने) से पुरोधाम लोग पहुंच जाते हैं। रेलपथके लोहेका जाल नद, नदी, झील, पर्वत और मरुभूमि वन, जङ्गल आदि सभीको पार कर भारत भरमें फैल रहा है। कृष्णा गोदावरी, सिन्धु, कावेरी, सरयू, सरस्वती यमुना, गंगा—लौहमयी मेखला पहन कर मानो मर्मवेदनाकी यातनाको कम करनेके लिये कल-कल ध्वनि तथा छल-छल नेत्रोंसे वारिनिधि पान करने चली हैं। पुण्यहृदय भारतवासी अगरेजोंके विश्वकर्मविडम्बित शिल्पविज्ञानके कलाकौशलका देख मर्मातिविसद्वतीर्थ सबको तरह बैठे हैं। मालूम होता है, कि सपक्षगमनके पङ्खपरोंका बिलकुल निर्मूल हो गया है। पुरोक्तका भी सन्धान नष्ट हो गया है। भारतीय कवियोंने भूगर्भ विश्वकर्माको शिल्पशालाकी सृष्टि की है। किन्तु भारतमें कोई ऋत्वीयवर्ण पैदा ही न हुआ, कि भारतियो को पातालमें जानेका पथ बतला देता। इसीलिये भारतीय कर्त्तव्यपथसे विच्युत हुए हैं। इसीसे वे वैदेशिक विश्वकर्माकी शिल्पकलामें आ रहे हैं। इङ्गलैण्डमें जब स्वायम, म्यूकामेन, ट्रेभिथिक, जेम्स वाट् और जार्ज ष्टीफेनसन आदि भुवन विख्यात इञ्जिनियर पृथ्वीमें युगान्तर उपस्थितकारी यन्त्रिकालके कौशलके अनुष्ठानमें रत थे तब वणिग्वृत्तिके कुशलसे दक्ष इष्टिया कम्पनी काम दुग्धवतिपणी भारतभूमिकी सहस्रधारी मैं दूहनेके लिये वर्षोंसे अनुसन्धान कर रही थी। सबसे पहले १८४१ ई०में सर मैकडोनाल्ड ष्टीफेन सन नामक एक व्यक्तिके मस्तिष्कमें भारतमें रेलपथ प्रचलनका सङ्कल्प उदय हुआ था। किन्तु १८४४ ई०की ९वीं दिसम्बरके पहले उन्होंने अपने लिखे विवरणमें प्रकाशित नहीं किया है। सन् १८४४ ई०की ८वीं मवम्बर को 'मिसर्स ब्राइट एण्ड बरेट' नामक एक वणिक् सम्प्रदाय ने "ग्रेट इण्डियन रेलवे कम्पनी" नाम रख कर दक्षिण

भारतमें बम्बईसे गोदावरीके किनारे करिङ्गा नामक स्थान तक रेलपथ विस्तारके लिये अंगरेज सरकारसे आवेदन किया। उनके संकल्पित रेलपथ बम्बईसे भारतके चारों ओर दौड़ेगी, ऐसी भी उसकी प्रार्थना थी। किन्तु इस कम्पनीकी प्रार्थना सरकार द्वारा स्वीकृत न हुई। इसके बाद ही मिष्टर मेकडोनाल्ड ष्टीफेनशन और सर जी लपेण्टने अंगरेज-सरकारको समझाया बुझाया कि भारतमें रेलपथ न खोलनेसे भारतीय कामधेनुको दुहनेकी सुविधा नहीं हो सकती। वाणिज्यकी सुविधाके लिये बृटिश-सरकारकी कुछ सम्मत हुई।

सन् १८४४ ई०की २री दिसम्बरको मेकडोनाल्ड ष्टाफेनशन इष्ट-इण्डिया रेलवे कम्पनी नामक नये प्रतिष्ठित सम्प्रदायके कार्याध्यक्ष नियुक्त हुए और डिरेक्टरोंको इस मर्मका पत्र लिखा, कि यदि आप लोग अन्ततः सैकडे ४) रुपया सूदकी गराण्टी या प्रतिभू हों तो रेल कम्पनी मूलधन संग्रह कर सकेगी। सन् १८४४ ई०की १३वीं दिसम्बरको उन्होंने पत्र लिखा, कि डिरेक्टरोंकी गराण्टी पाने पर सौदागर रुपया देनेमें कुण्ठित न होंगे। अतः शीघ्र ही रेलवे कार्य आरम्भ होगा।

अन्तमें १८४५ ई०में २०वीं जनवरीको इष्ट इण्डिया रेल कम्पनीकी नई प्रतिष्ठित कमिटीमें डिरेक्टरोंने इस मर्मका पत्र भेजा, कि हम लोग दश लाख रुपयेका ३) रुपया सैकडाके हिसाबसे गारण्टी देंगे। किन्तु रेलपथ पहले मिर्जापुरसे इलाहाबाद तक १४० मील तैयार होगा, इसके खर्चके रूपमें ३०००० पाउण्ड निश्चित रहेगा। डिरेक्टरोंके पत्रकी दो चार पंक्तियां नीचे उद्धृत की जाती हैं*।

अन्तमें १८४५ ई०की ७वीं मईको इङ्गलैण्डके डिरेक्टरोंने भारतवर्षके गवर्नर जनरलको रेल कम्पनीके सम्बन्धमें एक पत्र लिखा—"Which is the first official recognition of the desirability of railways for India" यही भारतमें रेलसंक्रान्त सरकारी पहला पत्र है। रेल कम्पनीके उस समयके विवरणमें देखा जाता है, कि भारतमें चढ़नेवाले न मिलेंगे। मालसे ही जो कुछ लाभ हो सकता है, होगा। जो हो, पहले डिरेक्टरोंने इसका अनुसन्धान मिष्टर सिम्स सी, आई, ई० नामके एक सुदक्ष इञ्जिनियरसे कराया, कि भारतमें रेल चल सकती है या नहीं। वे सन् १८४५ ई०की सितम्बर महीनेमें भारत पधारे। उन्होंने अच्छी तरह जांच पड़ताल कर डिरेक्टरोंके पास एक पत्र भेजा। पत्रमें लिखा गया—

"अङ्गरेज गवर्मेण्ट रेल कम्पनीको जमीन खरीद देगी। सरकार रेलवे आमदनी और रफ्तनी पर कर न लगायेगी। कलकत्तेसे दिल्ली तक रेलपथ तैयार करनेमें सात वर्ष लगेंगे। रेलकम्पनी कम किरायेमें सरकारी डाक और अन्यान्य चीजें पहुंचाया करेगी। रेलकम्पनी एक आदर्श रेलपथ तैयार करेगी।" इसी तरह विस्तृत मन्तव्योंके साथ यह पत्र भेजा गया। सन् १८४६ ई०की ६ठीं फरवरीको यह पत्र इङ्गलैण्डमें पहुंचा। १३वीं माचको इञ्जीनियरोंका विवरण सरकारके पास दिया गया।

इसके बाद मिष्टर सिम्स कप्तान बइली एवं वेष्टन नामक इञ्जीनियरोंने एकवाक्यसे गवाही दी, कि इङ्गलैण्डमें जिस तरहसे रेलपथ तैयार हुआ है, भारतमें भी उसी तरहका रेलपथ तैयार हो सकता है। इन इञ्जीनियरोंने डिरेक्टरोंको युक्ति द्वारा उनकी आपत्तिका खण्डन किया और कलकत्तेसे मिर्जापुर तक रेलपथका एक आदर्श प्रस्तुत हुआ। इसी आदर्श पर रेलपथकी पूर्वी सीमाका स्टेशन कलकत्ता निर्दिष्ट हुआ था। इसके बाद यह निश्चय हुआ, कि रेलपथ गङ्गाके बायें किनारे होते हुये कुछ दूर जा कर वर्द्धमानके निकट गङ्गा पार कर दक्षिण किनारे हो कर सीधा काशी जायगा। वहांसे मिर्जापुर जायगा। इसकी एक शाखा वर्द्धमानसे राजमहल, दूसरी शाखा गया, पटना और दानापुर जायगी। इसके अलावे दिल्ली और मिर्जापुरसे अन्य चार शाखाओंके खुलनेकी भी बात ठहरी।

१ कानपुरसे फरुखाबाद, २ आगरेसे अलीगढ़, ३ दिल्लीसे मेरठ और ४ करनौलसे सिमला तक।

पीछे यह प्रस्ताव स्वीकृत हुआ कि पहले पहल कानपुरसे इलाहाबाद या बारिकपुरसे कलकत्ता तक एक आदर्शपथ तैयार किया जाय। उस समय लार्ड हार्डिञ्ज भारतके गव-

* 'To encourage the introduction of railways into India and on the condition that the bonus should be withdrawn when the railway net profit exceed 3 per cent upon the outlay of one million"

मेर जनरल और सर हर्बर्ट मेडक, अमरेबल एफ, मिलेट और सी, एच कामारन राजस्वसचिव थे। उस समय भारतकी राजधानी कलकत्ता थी। इससे लार्ड हार्डिञ्ज कलकत्तेमें ही रहते थे, किन्तु ग्रीष्मका समय होनेसे वे उस समय कलकत्ते न थे, अतः सर मेडक रेलकम्पनी के प्रस्तावकी आलोचना करने लगे। पहले मिष्टर सिम्सने अपने सब प्रस्तावों को उक्त मन्त्रियोंके मतमें बैठनेके लिये डिरेक्टरों के पास युक्ति प्रमाणके साथ पत्र भेजा। उन्होंने ओजस्वी भाषामें दूर दृष्टि द्वारा दिखा दिया था, कि पहले परीक्षाके लिये रेल-कम्पनी शीघ्र ही बड़े पथका सूत्रपात करे। कम्पनी कभी भी क्षतिग्रस्त न होगी। सन् १८४६ ई०की ६वीं मईको मेडकका यह प्रस्ताव डिरेक्टरों के पास पहुंचा और इसकी एक अनुलिपि सिमला प्रवासी गवर्नर जनरलके निकट भेजी गई। लार्ड हार्डिञ्जने मेडकके प्रस्तावको हृदयसे समर्थन किया। उनके पत्रसे कई पंक्तियां उद्धृत की जाती हैं। उन्होंने डिरेक्टरों को लिखा—भारतमें रेल होनेसे कम्पनीके लिये सब तरहकी सुविधा और अङ्गरेज राज की नींव मजबूत होगी।

सन् १८४६ ई०में इस विषयको ले कर पार्लियामेण्ट में घोर आन्दोलन उठ खड़ा हुआ और अक्टूबर महीनेमें डिरेक्टर-सभासे निम्नलिखित मन्तव्य प्रकट हुआ।

डिरेक्टरोंका मन्तव्य।

पथका नाम और कम्पनी।	पथका विशेष विवरण।	शाखा।
(१) इष्ट इण्डिया रेल-कम्पनी	कलकत्तेसे मिर्जापुर तक पीछे दिल्ली तक विस्तार।	राजमहल, पटना, हाजीपुर, काशी, कोयलेकी खान, मेरठ।
(२) ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला	बम्बईसे कलिङ्गा।	मीरजाबाद, नागपुर, हैदराबाद।
(३) ग्रेट वेष्टर्न आफ बङ्गाल	कलकत्तेसे राजमहल।	
(४) कलकत्ता डायमण्ड हारबर	कलकत्तेसे अजपैण्ड तक विस्तार।	
(५) कलकत्ता और ग्रेट वेष्टर्न बङ्गाल	कलकत्तेसे मुर्शिदाबाद और भगवानगोला।	मालदह, रङ्गपुर और दिनाजपुर तक विस्तार।
(६) कलकत्ता वारिकपुर	दमदमसे वारिकपुर।	
(७) डाइरेक्ट-नार्दन	कलकत्तेसे भगवानगोला।	राणाघाटसे कचारोपा, कृष्ण नगरसे कृष्णगञ्ज, काशीपुरसे बारासात।
(८) ग्रेट नार्थ इण्डिया	इलाहाबादसे दिल्ली।	मिरजापुर काशी, मेरठ आदि।
(९) दिल्ली लुधियाना	दिल्ली, मेरठ, लुधियाना।	
(१०) मन्द्राज रेल-कम्पनी	मन्द्राजसे काञ्जीआबाद।	आर्काट, बेलूर, बङ्गलोर, महिसुर, कड़ापा, विल्लारी, हैदराबाद, त्रिचिनापल्ली आदि।
(११) मन्द्राज, बलूर और आर्काट	मन्द्राजसे बेलूर, कड़ापा।	हैदराबाद।
(१२) मन्द्राज, पण्डिचेरी		आर्काट।
(१३) बम्बई, आगरा, दिल्ली	बम्बईसे सूरत हो कर दिल्ली, बड़ोदा ग्वालियर, इन्दौर।	मिर्जापुर, इलाहाबाद, नर्मदासे भूपाल, उज्जयिनीसे कानपुर, झांसी, फर्रुखाबाद।
(१४) बम्बई सूरत बड़ौदा		
(१५) दक्षिण मन्द्राज	नागपट्टनसे पालघाट और कालीकट	

सन् १८४६ ई०के अक्तोवर महीनेमें डिरेक्टर-सभासे गवर्नर जेनरलके दफ्तरमें जो मन्तव्य आया था, उसीमें उपर्युक्त फिहरिश्त दी गई है।

इन सब पथोंमें उधर ५० वर्षोंमें इष्ट इण्डिया कम्पनीने केवल १, ३, ८, ६—ये चार पथ तैयार किये हैं। ७वां पथ सन् १६०५ ई०में खोला गया। इष्टर्न बंगाल ष्टेट रेलवे इतने दिनोंके बाद उस पुराने प्रस्तावको कार्यरूपमें परिणत कर सकी है।

उस समय बङ्गालके इञ्जीनियरोंमेंसे लेफ्टेनेण्ट कर्नल फर्नेस नामक एक प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। उन्हींके प्रस्तावानुसार पहले कलकत्तेसे मिर्जापुरके बीच हो कर दिल्ली तक रेलपथ निर्माणकी व्यवस्था हुई। पहले डिरेक्टरोंने रेलकम्पनीको ८६ वर्षकी मीआद पर रेलपथ बनानेका हुक्म दिया। किन्तु उस हुक्मनामामें यह भी लिखा था, कि सरकार यदि सुविधा देखेगी, तो उसका अधिकार होगा, कि मीआदके भीतर भी क्षति पूर्तिकर किसी भी रेलपथको खरीद सकेगी और सैकड़े ४ रुपया सूद पर ५०००००० पाउण्ड ले सकेगी। यह भी स्थिर हुआ, कि प्रतिमील १५००० पाउण्डके हिसावसे ३३२ मील पथ पहले बनेगा खर्च छोड़ कर जो लाभ होगा, उसे डिरेक्टर और रेलकम्पनी आपसमें बांट लेंगे।

पीछे १८४६ ई०की १६वीं दिसम्बरको डिरेक्टरोंने यह मन्तव्य प्रकाशित किया और इस बातकी रचना इष्ट इण्डिया कम्पनी और ग्रेटवेष्टर्न रेलवे आफ बङ्गाल कम्पनीको दे दी। सन् १८४७ ई०में दोनों कम्पनियोंने एकमें मिल कर ईष्ट इण्डिया कम्पनी नाम रख लिया। सन् १८४७ ई०की १८वीं अगस्तको इस कम्पनीने कलकत्तेसे दिल्ली तक रेलपथ बनानेका दृढ़ सङ्कल्प किया।

इसी समय डिरेक्टरोंने मन्द्राजसे अर्काट और वम्बईसे कल्याण तक रेलपथ खोलनेका हुक्म दिया। ग्रेट-इण्डिया पेनिनसुलार रेलकम्पनीके सभापतिने डिरेक्टरोंके आज्ञानुसार कार्य्य करना निश्चित किया और उन्होंने सन् १८४८ ई०की ६ठीं जूनको डिरेक्टरोंके प्रस्ताव पर अपनी सम्मति प्रकट की। कुछ दिनोंके बाद इष्ट इण्डिया कम्पनीने ६०००० और ग्रेट इण्डिया पेनिनसुलार रेलकम्पनीने ३०००० पाउण्ड डिरेक्टरोंके पास भेजा।

डिरेक्टरोंने इस तरह अनेक वादानुवादके बाद सन् १८४६ ई०की २६वीं जनवरीको रेल कम्पनियोंको विशेष सुविधा प्रदान की। अन्तमें १८४६ ई०की १७वीं अगस्तको ईष्ट इण्डिया कम्पनीने और ग्रेट इण्डिया पेनिनसुलार रेल कम्पनीने डिरेक्टरोंके प्रस्ताव पर हस्ताक्षर कर दिया। पूरे साढ़े चार वर्ष बाद विवाद चलनेके बाद भारतमें रेल प्रतिष्ठाका पक्का बन्दोवस्त हुआ। दोनों कम्पनियां रेलपथ बनानेमें बद्धपरिकर हुईं।

उस समय सरकारी इञ्जीनियर कर्नल केनेडीने अपने पहलेके इञ्जीनियरोंकी भूलोंका संशोधन कर एक बड़ी पुस्तक लिखी। भारतकी रेलोंके इतिहासमें कर्नल केनेडीका नाम अमर रहेगा। उन्होंने जो प्रस्ताव किया, वही कार्यमें परिणत हुआ।

कर्नल केनेडीने पहलेके इञ्जीनियरोंकी भूल दिखाते हुए कहा, कलकत्तेसे राजमहलके पहाड़ोंके बीचसे बनारस तक रेल ले जाना कठिन है। इसके लिये गङ्गा नदीके साथ समान्तराल रूपसे रेलपथ निर्माण करना होगा और गङ्गाके बायें किनारे रेलपथ बना कर चितपुर सीमान्त स्टेशन बनानेकी अपेक्षा गंगाके दक्षिण किनारे सीमान्त स्टेशन बनाना युक्तिसङ्गत होगा। इस तरह पश्चिमकी तरफ रेलपथका विस्तार करना अच्छा होगा। उन्होंने ग्रेटइण्डिया पेनिनसुलार रेलकम्पनियोंकी भूलें दिखलाईं।

इष्ट-इण्डिया रेलपथ।

इस कम्पनीने पहले कलकत्तेसे रानीगञ्जकी कोयलेकी खानि तक रेलपथ बनानेका दृढ़ सङ्कल्प किया। यह स्थान कलकत्तेसे १२१ मील है। इस समयके गवर्नर जनरल लार्ड डलहौसी रेलकम्पनियोंको विशेषरूपसे उत्साह देने लगे। सन् १८४६ ई०के अगस्त महीनेमें कलकत्तेसे रानीगञ्ज तक रेलपथका ठीका होने लगा। इस कम्पनीके प्रधान इञ्जीनियर मिष्टर टार्नवुल १८५० ई०के मई महीनेमें कलकत्तेमें आ पहुंचे। सन् १८५१ ई०में कलकत्तेसे श्रीरामपुर तक जमीनका दाम और पथका स्थान निर्द्धारित हुआ।

मिष्टर सिम्‌सने डिरेक्टरोंसे प्रस्ताव किया था कि चितपुर में सीमान्त स्टेशन होगा और यहांसे गङ्गाके किनारे किनारे फोर्ट विलियम तक एक रेलपथ बनेगा। किन्तु १८५० ई०के अप्रिल महीनेमें उन्होंने यह संकल्प त्याग कर हवड़ेमें सीमान्त स्टेशन बनानेका परामर्श दिया और कहा कि शालिमपुरके निकट पलतागाटके समीप हुगली नदी पर एक बहुत बड़ा पुल बनेगा। पीछे उन्होंने काशीपुरके निकट पुल बनानेकी राय जाहिर की थी। मिष्टर सिम्सने इङ्गलैण्डके 'ब्रड गेज' और 'न्यारो गेज'के मध्यवर्ती ५ फुट ६ इञ्चके एक नये गेजका व्यवहार किया था।

लार्ड डलहौसीने सन् १८५० ई०में वर्नस कलैडोको इञ्जिनियर नियुक्त किया। पीछे इस जगह पर जाजयू आर्लिनस बेकर नियुक्त हुए। सन् १८५१ ई०के जनवरी महीनेमें कलकत्तेसे पाण्डुआ तक ४० मीलकी पैमाइश खतम हुई। इस स्थानमें उस समय एक बहुत बड़ा जङ्गल था। जो हो, कलकत्तेसे हुगली तक इस पथके लिये ठीका होने लगा।

मेसर्स हण्ट, ग्रे एण्ड पजमस्के नामकी कम्पनीने हवड़ेसे हुगली तक २३३ मील पथ बनानेके लिये ठीका लिया। मेसर्स बम एण्ड कम्पनीने हुगलीसे पाण्डुआ—इन १० मीलों और नेमारीसे वर्द्धमान तक १२ मीलोंके रेलपथ बनानेका भार या ठीका लिया। इस तरह हवड़ेसे रानीगञ्ज तक १२० मीलोंका ठीका हो गया। हवड़ेसे पहले ७० मीलका पथ ८००० पाउण्ड प्रति मीलके हिसाबसे चुका दिया गया। यह भी स्थिर हुआ, कि ठीकदार तीन वर्षोंमें अपना अपना काम खतम कर देंगे।

सन् १८५२ ई०के अगस्त महीनेमें ई० आइ० आर० कम्पनीके प्रधान इञ्जिनियरने किये गये कार्य्योंका विवरण प्रकाशित किया। उसमें देखा गया, कि उस समय २६००००० ईंटोंसे कम रास्ता बनानेमें काम न चलेगा। पहले रास्तेमें जमीनसे मिट्टी खोद कर फेंकी गई थी। इसमें ४४ एकड़ जमीनकी मिट्टी लगी थी। इस तरह ८५३०००००० घनफुट जमीन व्यवहृत हुई थी। वर्द्धमान जिलेमें बाढ़का भी बड़ा प्रकोप रहता है। इससे यहां सैकड़ों पुल और नालियोंके काम हुए थे। कानोकी नहर, बैगवती सरस्वती, ममरा और बांका नदी पर पुल बनवाने पड़े थे। इन कामोंमें बहुत अधिक धन खर्च हुआ था। १०२६ नालोंमें पुल बनवाने पड़े थे। पहले सभी स्टेशन मामूली तौर पर बने थे। श्रीरामपुर, चन्दननगर, वर्द्धमान—इन प्रत्येक स्टेशनोंके बनवानेमें (८९८०) रुपया खर्च हुआ था।

रेलपथ बनवानेका काम तेजीसे चलने लगा। सन् १८५१ ई०के जनवरी महीनेमें कार्य्यारम्भ हुआ और सन् १८५४ ई०के सितम्बर महीनेमें पाण्डुआ तक ३७ मीलों का पथ तैयार हो गया। सन् १८५५ ई०के फरवरी महीनेमें लार्ड डलहौसीने हवड़ेसे रानीगञ्ज तक १२१ मीलों का रेलपथ खोला। इसके उपलक्षमें बड़ी धूमधामसे मजूरोंको गार्डनपार्टी अथवा उद्यान भोज दिया गया। जब पहली हवड़ेसे गाड़ी खुलनेके समय वहां उपस्थित थे। किन्तु वह वर्द्धमान नहीं जा सके। इससे यह कहना अत्युक्ति नहीं कि यह दिन बङ्गालके लिये चिरस्मरणीय दिन था। इस दिन हवड़ा, श्रीरामपुर, चन्दन नगर, हुगली और वर्द्धमानमें हजारों की तादादमें स्त्री-पुरुष खड़े तमाशा देखने लगे थे। चारों ओर पटके और शङ्खकी ध्वनि तथा महा जनसमागमके कोलाहलसे धरती गूंज उठी थी। उस समय बङ्गालियोंने विस्मयके साथ इस कौतुकमें निमग्न हो अंग्रेजोंकी इस कीर्त्तिको मुग्ध नेत्रोंसे देखा था। पहले बहुतेरे लोग गाड़ीमें चढ़नेका साहस नहीं करते थे। पीछे अधिकसे अधिक यात्री इस गाड़ी पर चढ़ने लगे। इष्ट इण्डिया कंपनी उत्साहसे कार्य्य करने लगी। शीघ्र ही दिल्ली तक रेलपथका रास्ता तैयार हुआ।

किन्तु बङ्गालके इस पथके तैयार होनेसे पहले ही मान्द्राज तथा बम्बईका रेलपथ तैयार हुआ था।

भारतमें सबसे पहले सन् १८५३ ई०के अप्रिल महीनेमें ग्रेट इण्डियन पेनिनसुलार रेलपथ पर बम्बईसे थाना तक रेलगाड़ी चली थी। भारतके रेलपथोंमें ग्रेट इण्डियन पेनिनसुलार रेलपथने अत्यन्त आश्चर्य निर्माणकौशल प्रदर्शित किया गया है। इस पथके बनानेमें उक्त रेलकम्पनीने जिस तरह अध्यवसाय और

कष्टसहिष्णुताका परिचय दिया था, वह अकथनीय है। इस कम्पनीने सन् १८४५ ई०में कायम हो कर पश्चिम घाट पर्वतके ऊपर और भीतर रेलपथ बनानेका संकल्प किया था और उसके लिये सन् १८४५ ई०के मई महीने में उसने बम्बई सरकारके पास आवेदन किया। इस वर्ष उक्त कंपनीके कार्याध्यक्ष मि० जान चपमान और इञ्जीनियर मि० क्लार्क बाम्बई आ गये और बम्बईसे नागपुर तक रेलपथका खाका तैयार कर सरकारके पास भेजा। बम्बईके अर्थात् बन्दरके समीप चार्चपिट नामक स्थानमें उसका स्टेशन कायम हुआ। शीघ्र ही क्लार्क पश्चिमघाट पर्वतकी पैमाइश करने लगे। यह पर्वत २००० फुट ऊंचा और बीच बीचमें गहरे गड्ढों और खादसे परिपूर्ण था। पर्वत पर पथ बनानेमें प्रति १८ फुट में १ फुट ऊंचा करनेके सिवा और कोई उपाय न था। सन् १८५० ई०में जेम्स बर्कले भी इस पथके इञ्जीनियर नियुक्त हुए और सन् १८५२ ई०में उन्होंने इस पथका आदर्श तैयार कर लार्ड डलहौसी और कर्नल केनेडीको दिखा दिया। सन् १८५३ ई०की १०वीं अगस्तको यह आदर्श गवर्नर जनरल द्वारा अनुमोदित हुआ।

इसके बाद कप्तान क्रूफोर्ड असामान्य कौशलताके साथ पथ बनानेमें लग गये। बम्बईके उस समयके गवर्नर लार्ड एलफिन्सटन कम्पनीको खूब उत्साहित करने लगे।

बम्बईके बूडी बन्दरमें सीमान्त स्टेशन बना। बम्बईके चारों ओर समुद्रकी शाखाएं हैं। इसलिये बम्बईसे कल्याण तक रेलपथमें १११ और १६३ गज लंबे दो बड़े भयडक्ट बनाये गये थे। ये भयडक्ट ज्वारके जलसे ३० फुट ऊंचे थे। सन् १८५४ ई०की अठारहवीं अप्रेलको बंबईसे टाना और महीम तक रेल चली और सन् १८५४ ई०की पहली मईको कल्याण तक चलने लगी। कल्याणसे कसारा एवं कसारासे इगातपुरी स्टेशन तक पहाड़ी रेलपथमें अपूर्व निर्माणकौशल दिखाया गया है। इस पथकी दो उपत्यकाके पुल १२४ और १४३ गज लंबे हैं। नीचेकी खाद १२७ और १३० फुट गहरी है। इसके ऊपरमें अपूर्व पत्थरोंकी गँथाई बनी हुई है। इसके सिवा ११७ का टमर्ट तथा ३० फुट ऊंचाई ४४ पत्थरके पुल है। इसके बाद रेलपथ पर्वतोंको काट कर सुरङ्ग बना कर आगे बढ़ा है। पहली सुरङ्ग १२० गज लम्बी है। इसके बाद ही एक भयडक्ट १४३ लम्बा और ८४ फुट ऊंचा तथा दूसरा ६६ गज लम्बा और ८७ फुट ऊंचा है। यहां ४६० गज लम्बी एक प्रकाण्ड सुरङ्ग है—इसके बाद ३ सुरङ्ग २३५, ११३ और १२३ गज लम्बी और ६० फुट ऊंचा एक भयडक्ट है। इसके बाद पहिग्राम नामक अपूर्व भयडक्ट है। यह २२० गज लंबा और उपत्यकासे २०० फुट ऊंचा है। इस बड़े पुलके बाद ४६० और ४१२ गज लम्बी दो लंबी सुरङ्ग और ७० और ५० गज लंबी दो सुरङ्ग बनी हैं। इसके बाद और भी ३ सुरङ्ग यथाक्रम २६१,१४० और ५८ गज लंबी हैं। इसके सिवा इस पहाड़ीपथमें और भी १५ पुल बने हैं। इसी तरह इस दुरूह विपद्संकुल दुर्गम सह्याद्रि-शिखर पर रेलपथ बना है। इन सारे सुरङ्गोंके बनानेमें १२४१०००० घनफुट पत्थरकी कटाई हुई है। इस पहाड़ी पथकी लम्बाई केवल ६ मील है। सन् १८६१ ई०की २२वीं जनवरीको इस सह्याद्रिशिखरके सुरङ्गदार रास्तेसे पहले पहले बैलगाडी चली थी।

इसके बाद यह पथ भोशावाल जङ्क्शन तक जा कर एक शाखा नागपुर और अन्य शाखा ताप्ती नदीको पार कर प्रकाण्ड खानदेशके बीचसे विन्ध्याचलके नीचे नीचे विशीर्णा नर्मदा नदीके किनारेके जबलपुर तक गई है। यहां यह लाइन इष्ट इण्डिया कम्पनीकी रेल-लाइनमें मिल गई है। सन् १८५५ ई०में इष्ट इण्डिया कंपनीने वर्द्धमानसे राजमहल तक रेलपथ बनाना आरम्भ किया। पहले वर्द्धमानसे मयूराक्षी नदीके किनारे तक ४५ मील की पैमाइश हुई। मिष्टर टार्नबुल इस पथके पहले इञ्जीनियर थे। उन्होंने शीघ्र ही राजमहलसे इलाहाबाद और इलाहाबादसे दिल्ली तक रेलपथकी पैमाइश की। यह पथ ६७॥ मील है। मयूराक्षी पर पुल बना। इसमें ५० फुट लंबे २४ स्तम्भ हैं। अजय नदके पुलमें २० फुट लंबे ३२ स्तम्भ हैं। सन् १८५६ ई०को २०वीं जुलाईको मिष्टर टार्नबुल एञ्जिन पर चढ़ कर अजय और मयूराक्षीको पार कर सैंथिया उपस्थित हुए और ३री सितम्बरसे पसिञ्जर (यात्री) लेनें चलने लगीं। इसके बाद

द्वारका नदी पर ६० फुट लम्बे ७ खम्भोंका एक पुल बना। इसके बाद मायूराक्षी नदी पर भी एक प्रकारका पुल बना। अन्तमें सन् १८६० ई०के अक्टूबर महीनेमें लार्ड कनिङ्गके समयमें वर्द्धमानसे राजमहल तक गाड़ी चली। कर्नल येकर और मिष्टर टर्नबुलको सोनेका एक एक पदक पुरस्कार मिला और दूसरे कर्मचारियों ने रौप्य पदक पाया।

राजमहलसे यह पथ भागलपुरकी ओर अग्रसर हुआ। लार्ड केनिङ्गके समयमें सन् १८६१ ई०के नवम्बर महीनेमें इस पथ पर रेलगाड़ी चली। इसके बाद यह पथ मुङ्गेर होते हुए पटना तक गया। इस स्थानमें मुङ्गेरके निकट ९०० फुट लम्बी एक सुरङ्ग खोदनी पड़ी है। इस सुरङ्गके खोदनेमें बहुत समय लगा था। हर महीनेमें केवल चार फुटकी खुदाई होती थी। यहांसे बक्सर तक रेलपथमें गङ्गाके जलवेगके निवारणार्थ कुल २१७०० खम्भ बने हैं। इस तरह पथ पटनेकी ओर अग्रसर हुआ। इस समय १८५७ ई०की १५वीं जूनको दानापुरका सिपाही विद्रोह हुआ। इस काण्डको "सन् १८५७ का गदर कहते हैं।" भारतमें इस बलवेकी आग चारों ओर फैल चुकी थी। कुंवर सिंह नामक एक आदमीने रेल कम्पनीको विशेष क्षति पहुंचाई थी। उन्होंने कर्मनाशा नदी पर बने पुलका अधिक भाग तोड़ डाला था। इस कारणसे रेलकम्पनीका ४२०००० रुपयेका नुकसान हुआ था। इसके बाद [illegible] प्रसिद्ध सोन नदका विशाल पुल बना। यह उस समय पृथ्वीमें अद्वितीय पुल गिना गया था। यह १५७७ गज अर्थात् प्रायः १ मील लम्बा है। १५० फुट लम्बे इसमें २८ स्पान हैं। पहले इस कम्पनीको सोन नद पर पुल बांधनेका साहस नहीं होता था। पीछे मिष्टर टर्नबुल और बरूलेने इस दुःसाहसिक काममें हाथ लगाया। सन् १८५६ ई०का इस पुलका कार्य आरम्भ हुआ। इस पुलकी नायंस रेलपथ ४२ फुट ऊंचा है। यह पुल ४७३१ फुट लम्बा है।

अन्तमें सन् १८६२ ई०के फरवरी महीनेमें लार्ड एल्गिनने कलकत्तेसे काशी तक ६१० मीलके रेलपथमें रेल दौड़ानेकी आज्ञा दी। सैकड़ों बङ्गाली हिन्दू काशी, गया आदि तीर्थस्थानोंका दर्शन करने लगे। उधरके लोगोंके लिये कलकत्ता आना सहज हो गया। सन् १८६६ ई०में १५ गाड़ियां अनवरत चलने लगीं। प्रति सप्ताहमें प्रति मील पर ६००) रुपयेका लाभ होने लगा।

इस तरह रेलपथ क्रमशः चारों ओर फैलने लगा। इसके बाद इलाहाबादका यमुना पुल बना। यह ९५७ गज लम्बे और २०५ फुट चौड़े १४ स्तम्भों पर अवस्थित है। यहां गङ्गा-यमुनाका पवित्र सङ्गम है। इस पुलके एक एक जोड़ेकी कड़ियां २१६ फुट लम्बी हैं। सन् १८६१ ई०की १ली अगस्तको कलकत्तेसे रेलगाड़ी इस पुलसे आगरा तक दौड़ाई गई।

इसके बाद दिल्लीमें पवित्र-सलिला यमुना पर ८२० गज लम्बा अर्थात् आधा मील चौड़ा एक पुल बना। इसमें २०६ गज चौड़े १५ स्तम्भ हैं।

सन् १८६५ ई०में वर्द्धमानसे लूपलाइन तक कार्ड लाइन या सीधा रेलपथ बनानेका प्रस्ताव हुआ। पहलेका बना रेलपथ ३२७ मील लम्बा है, किन्तु यह नया कार्ड लाइनका पथ २६० मील लम्बा हुआ। यह लाइन ७१ कोयलेकी खानोंके बीचसे गई है।

इसके बाद इष्ट इण्डिया कम्पनी चारों ओर शाखा प्रशाखाके रूपमें रेलपथका फैलाव करने लगी है। इस तरह भारतमें रेलका जाल बिछ गया है।

ईस्टर्न बंगाल रेलवे।

लार्ड डलहौसीके ब्रह्मदेश पर अधिकार करनेके बाद यहां कलकत्तेसे रेल चलाई जानेकी चर्चा होने लगी। सन् १८५२-५३ ई०में इस लाइनका सूत्रपात हुआ। सन् १८५४ ई०में लेफ्टेनेण्ट मेजर आर. ई. कलकत्तेसे ढाके तथा यहांसे चट्टग्राम और यहांसे अक्याब तक पैमाइश करने लगे। किन्तु बड़ी बड़ी नदियोंके रहनेसे रेलपथ बनानेमें बड़े विघ्न उपस्थित हुए। अन्तमें कलकत्तेसे ढाके तक सीधी सड़क खोलनेका प्रस्ताव भी हो गया। किन्तु मिष्टर पामर नामक एक इञ्जीनियरने कलकत्तेसे कुष्टिया तक रेलपथ तथा पद्मा पर पुलका नक्शा सरकारके पास भेजा। उस समय सन् १८५८ ई०की ३०वीं जुलाईको लण्डनमें ईस्टर्न बङ्गाल रेल कम्पनी सङ्गठित हुई। सन् १८५८ ई०की ३१वीं दिसम्बरसे कलकत्तेसे

कुष्टिया तक रेलपथके लिये ठीके दिये जाने लगे।

बौबाजार स्ट्रीट जहां सरकुलर रोडसे मिल गया है, वहां ही सीमान्त स्टेशन बनने लगा। इस स्टेशनका क्षेत्रफल १४१ एकड़ था। इस स्टेशनके प्लाटफार्मकी लंबाई १००० फीट तथा चौडाई २७ फीट थी। इस समयका रेल स्टेशन २०० लंबा और ४० फुट चौडा और ऊंचा है। इस अट्टालिकाका आदर्श प्राचीन निनेभ नगरीके आदर्श पर तैयार हुआ। इस रेलपथमें कुमार और इच्छामती नदियों पर दो सुन्दर पुल बने हैं। इनमें ८० फुट चौड़े १२ स्तम्भ हैं।

यह रेलपथ पहले कुष्टिया तक फैलाया गया और पद्माका पुल अधिक व्यय पड़नेकी सम्भावनासे रोक दिया गया। सन् १८६१ ई०में कुष्टियासे ग्वालन्दो तक रेलपथ बनना स्वीकृत हुआ। सन् १८६२ ई०में पहले पहल स्यालदहसे कुष्टिया तक गाड़ी चली थी। इसके बाद उत्तर-दार्जिलिङ्ग तक और दक्षिण मातला तथा डायमण्ड हारबर तक फैल गई। सन् १९०५ ई०में इसकी एक शाखा राणाघाटसे मुर्शिदाबाद तक खुली। इसके बाद अन्यान्य कई शाखायें और भी खुली हैं।

सन् १८५५ ई०के अप्रिल महीनेमें सरकारने बम्बई बड़ौदा और सेण्ट्रल इण्डिया कम्पनीको रेलपथ निर्माण करनेका हुक्म दिया। पहले बंबईसे सूरत तक १८३ मील पथमें गाडी चली। इसके बाद सूरतसे अहमदाबाद तक १४२ मील पथ प्रस्तुत हुआ। इस पथमें नर्मदा-ताप्ती परके बने दोनों पुल आश्चर्यजनक हैं।

इस वर्षमें सिन्धु और पञ्जाब रेलपथका कार्यारम्भ हो कर कराची बन्दरसे सिन्धुदेश तक १०८ मील पथ तैयार हुआ। इसके बाद मुलतानसे लाहोर तक और लाहोरसे अमृतसर तथा वहांसे दिल्ली तक पथ तैयार हुआ।

सन् १८४५ ई०में मन्द्राज रेल-कंपनी संगठित हुई थी। सन् १८४६ ई०के फरवरी महीनेमें पैमाइश होने लगी। मिष्टर सिम्स पहले इञ्जीनियर नियुक्त हुए। सन् १८४६ ई०की १७वीं अगस्तको यथार्थ प्रस्तावके अनुसार कार्य आरम्भ हुआ। मन्द्राजमें सीमान्त स्टेशन रायपुरम् नामक समुद्र तीरवर्ती स्थानमें बना। पहले मन्द्राजसे वेपुर तक ४०६ मीलका पथ प्रस्तुत हुआ। पीछे चारों ओर फैला।

ग्रेट सदर्न रेलवे कम्पनी पहले नागपट्टमसे त्रिचिना-पल्ली तक ७८॥ मीलका पथ तय्यार हुआ।

इस समय भारतवर्षमें जितनी रेलें बन चुकी हैं उनमें बङ्गाल नागपुर कम्पनी और आसाम बङ्गाल कम्पनी विशेष विख्यात हैं। नागपुर कम्पनीने रेलपथ तय्यार कर बङ्गालको उडीसाके साथ जोड़ दिया है। इसलिये जगन्नाथधामका पवित्र क्षेत्र पुरीधाममें बङ्गालियों तथा अन्यान्य देशवासियोंके आने जानेमें विशेष सुविधा हो गई है। इस पथमें रूपनारायण, महानदी और दामोदर इन तीन नदियों पर विख्यात पुल बने हैं। इसका विस्तृत विवरण यहां देना असम्भव है। खड्गपुरसे नागपुर तक पथ अत्यन्त पहाड़ जङ्गलमय है। इसलिये बहुतेरे जङ्गलों और पत्थरोंको काट कर फेंक देना पड़ा है। यह रेलपथ मन्द्राज रेल और ग्रेट इण्डियन पेनिनसुलार तथा इष्ट इण्डिया रेलपथसे मिला हुआ है। इसका सीमान्त स्टेशन हबड़ेमें ही है। इस समय इष्ट इण्डिया और बङ्गाल नागपुर रेलकम्पनीने हबड़ेमे एक सीमान्त स्टेशन बनाया है।

आसाम-बङ्गाल रेलकम्पनीने चटगांवसे गौहाटी तक बडी कठिनतासे पथ तय्यार कर सन् १८६५ ई०में पहले पहल रेल खोली। पहाड़ी रेलपथोंमें यह रेलपथ विशेष उल्लेखनीय है। इस पथमें ८१६ सुरङ्ग तय्यार हुई हैं। इनमें माहुर नामक सुरङ्ग बहुत प्रसिद्ध है। यह ४०० गजसे अधिक लम्बी है। यह पथ कितने ही सुकठिन दुर्गम पहाड़ोंसे हो कर निकला है। वर्षामें यह पथ विपज्जनक हो उठता है। जलस्रोतोंसे रेलपथ बह जाता है।

सन् १९०४ ई०में कालका नामक सीमान्त स्टेशनसे गवर्नर जनरलके ग्रीष्म आवास भवन तथा राजधानी सिमला तक एक पहाडी रेलपथ तय्यार हुआ है। इस पथमें भी अति अद्भुत निर्माणकौशल दिखाया गया है। किन्तु यह पथ आज भी विपद्से मुक्त नहीं हुआ है। इस पथसे गाडी दार्जिलिङ्ग हिमालय रेलकी तरह सर्पकी चालसे पहाड़ पर चढ़ती है। पहाड़ पर चढ़नेके

समय दार्जिलिङ्ग पथकी तरह आगे पीछे दो इञ्जिन जोड़े जाते हैं। दार्जिलिङ्ग रेलपथ की अनुसुन्धान करना दर्शनीय है। इस पथके बनानेमें बहुत धन खर्च हुआ था। इस पथका निर्माण मनुष्यके भी बना हो विस्मयजनक है।

इस समयके बने पुलोंमें शाणोदयीके किनारेके पुलको इष्ट इण्डिया रेलवे कम्पनीका बनाया जुबलीपुल सबसे अद्भुत है। यहां गङ्गाका पाट एक हजार गजसे कम नहीं है। किन्तु गङ्गाके बीचमें केवल दो स्तम्भों पर सारे पुलका भार है। इस पुलमें जोड़ेको कड़ी जितनी बड़ी व्यवहृत हुई है, उतनी बड़ी भारतके किसी पुलमें व्यवहृत नहीं हुई है। इसमें स्पेन ४८० गज लम्बा है। इसी पुलसे इष्ट इण्डियन और इष्टर्न बङ्गाल रेलपथ नैहाटीमें आपसमें मिल गये हैं। इञ्जीनियर मिष्टर लैसली इस पुलके रचयिता हैं।

भारतीय रेलपथोंमें सरकारी रेल वालोंसे सन् १८११ ई० तक ५८८(११४) रु० राजस्वको क्षति हुई थी। सन् १९०१ ई०से रेलपथसे सरकारको लाभ होने लगा। सन् १९०० ई०में सरकारने ८१२३१) रु० लाभ किया। सन् १९०१ ई०में ११५११६) रुपया लाभ हुआ। सन् १९०२ ई०में ३१वीं दिसम्बर तक भारतमें २५४२२१ मील रेल पथ था। इसके बाद दो वर्षोंमें प्रायः ४ हजार मील पथ बढ़ गया।

निम्नलिखित फिहरिस्तसे यह स्पष्ट मालूम हो जावेगा कि रेलपथके खुलनेकी तारीख, पथकी लम्बाई और कम्पनीका मूलधन कितना था। (१९०४ ई०)

रेलपथका नाम	तारीख	पथकी लम्बाई	मूलधन-पाउण्ड
१ बम्बई बड़ौदा और सेण्ट्रल इण्डिया	१८६०	११०५	१४५३८५४२
२ मद्रासरेलवे	१८५६	१३११	११८०११३२
३ आसाम बङ्गाल	१९०५	६१५	१०४११११५
४ बङ्गाल-नार्थ वेष्टर्न	१८८५	१२८०	६६०३१३०
५ बङ्गालसेण्ट्रल	१८८२	१९५	१२९५४००
६ बङ्गाल नागपुर	१८८६	१८०१	२११२२३२६
७ ब्रह्म	१८७७	११६३	११११२२४०
८ दिल्ली अम्बाला कालका	१८११	१६२	२१४५१५६
९ इष्ट इण्डिया	१८५४	२०३४	४११४१४१२
१० ग्रेट इण्डियनपनिन०	१८५३	१६११	४२६८०२०४
११ इण्डियन मिडलैण्ड	१८८६	१३११	११४२२८१०८
१२ राजपूताना मालवा	१८७२	१६४२	१५४३५४६२
१३ रोहेलखण्ड कुमायूं	१८८४	३२४	१३२३३६१
१४ साउथ इण्डियन	१८६१	११११०	८३६२११०
१५ सदर्न मरहठा	१८८४	१५१२	१२८२५८८७
देशीय और नेटिव ष्टेट रेलकम्पनी द्वारा चालित।			
१६ निजाम ष्टेट	१८७५	७४२	६०००४८७
१७ वेष्ट इण्डियापुर्तगीज	१८८७	७४	११६४२०२
पञ्जाब रेलवे।			
१८ इष्टर्न बङ्गाल	१८६२	११८१	१४७५११७२
१९ नार्थवेष्टर्न	१८६१	२७४३	५६५३२१७०
२० अवध रोहेलखण्ड	१८६२	११३४	१४२५२६७३
देशीय ष्टेट रेलवे।			
२१ भावनगर गोण्डल	१८८०	४५५	२२५६४००
२२ योधपुर बीकानेर	१८८२	७३६	२०५००७८

सन् १९०२ ई० तक भारतवर्षमें २६००० मीलसे अधिक रेलपथ फैला हुआ था। इसमें ५५० करोड़ रुपये से अधिक मूलधन खर्च हुआ था। नार्थ वेष्टर्न ष्टेट रेलवे लाइन भारतवर्षमें सबसे बड़ी है। इसकी लम्बाई ५००० मीलसे अधिक होगी। उसके बाद बम्बई, बड़ौदा और सेण्ट्रल इण्डिया रेलवे प्रायः ४००० मील, ग्रेट इण्डियन पेनिनसुलार रेलवे ३००० मीलसे अधिक, मन्द्राज और सदर्न मरहठा रेलवे ३००० मीलसे अधिक इष्ट इण्डियन रेलवे २००० मील और बंगाल नागपुर रेलवे २५०० मील विस्तृत है। इसके अलावा रेलपथ दिन पर दिन बढ़ता ही जाता है। भारतवर्षके रेलपथको सम्पत्ति फिहरिस्त नीचे दी जाती है—

इष्ट इण्डियन रेलवे।

फिलहाल यह गवर्मेण्टकी खास हो गई है। इसके अलावा अवध रोहिलखण्ड रेलवे भी ब्रिटिश गवर्मेण्टके अधीन है।

मेन लाइन—हवड़ा दिल्ली—हवड़ासे बेण्डेल, बर्द्धमान,

लामडींगसे गौहाटी, छापारमुखसे सिलघाट शहर, मारियानीसे नागिनीमारा, बदरपुरसे लालगढ, कलौरासे सिलेट, टागीसे भैरवबाजार होती हुई मैमनसिंह, नेत्रकोनासे मैमनसिंह, जारिया झंझलसे श्यामगञ्ज जङ्कशन, अखौरासे आसूगञ्ज, नहरकटियासे तिनसुकिया, सिमालूगुड़ी जङ्कशनसे सोपन।

दिब्रूसदिया रेलवे।

अमोलापतिसे लेडो। माकुम जङ्कशनसे साइखुआ घाट।

जोरहाट-प्रोविन्सियल रेलवे—मरियानीसे कोकिल मुख; तितावरसे जोरहाट।

तेजपुर-बालीपाड़ा रेलवे—तेजपुरसे बालीपाड़ा।

बङ्गाल-नागपुर रेलवे।

हवड़ासे नागपुर होती हुई बम्बई। हवड़ासे वालटेयर होती हुई मन्द्राज। हवड़ासे पुरी। हवड़ासे बाराखाना होती हुई राची। हवड़ासे आदरा और महुदा होती हुई गोमो। चक्रधरपुरसे आसनसोल।

हवड़ासे खड़गपुर होती हुई मेदिनीपुर। शालीमारसे सातरागाछी। नागपुरसे कमटी होती हुई रामटे आमदासे गुआ। भिजियानाग्रामसे पार्वतीपुरम्, झारसुगुदासे सम्बलपुर, बिलासपुरसे कटनी, महुदासे चन्द्रपुरा होती हुई दानिया, गण्डियासे जब्बलपुर, गण्डियासे बालाघाट होती हुई कटनी, गण्डियासे चन्दाफोर, नागपुरसे नागभीर, नैनपुरसे मण्डुलाफोर्ट, नैनपुरसे छिन्दवाड़ा, इटवारीसे छिन्दवाड़ा, इटवारीसे खप्पा, तातानगरसे बादामपहाड़, पुरुलियासे राची होती हुई लोहरडंगा, रायपुरसे धमतारी और राजिम, वालटियरसे विजागापट्टम, बब्बोलीसे सालूर, कटकसे तालचेर, अनुपुरसे बिजुरी।

परलाकीमेदी लाइट रेलवे—नौपादासे परलाकीमेदी।

मोरभञ्ज-स्टेट-लाइट रेलवे—रूपसासे बारीपादा होती हुई तालबन।

बांकुड़ा-दामोदर-रीभर रेलवे—बांकुड़ासे रायनगर।

नार्थ वेष्टर्न रेलवे।

दिल्लीसे पेशावर; लाहोरसे करांची, दिल्लीसे भटिण्डा होती हुई लाहोर; दिल्लीसे अम्बाला होती हुई कालका, अम्बालासे सरहिन्दरूपर, कालकासे सिमला सेकशन; गाजियाबादसे दिल्ली, झिन्दसे पानीपत; पानीपतसे रोहतक, नरवानासे कुरुक्षेत्र; राजपूतानेसे भटिण्डा होती हुई समस्ता, बहवलनगरसे फकीरवाली, लुधियानासे धूरी; झाकाल होती हुई हिस्सार; मैकलियर्डगंज रोडसे फिरोजपुर हो कर लुधियाना; लुधियानासे लोहियानखास; फिरोजपुर कैनटोन्मेण्टसे जलन्धर सीटी; जलन्धर सीटीसे होशियारपुर, जलन्धर सीटीसे नाकोदर, जलन्धर सीटीसे राहोन जयजन दोआब, जलन्धर सीटीसे मुकेरियन; अमृतसरसे कसूर, पाकपत्तन होती हुई समस्ता, लाहोरसे अमृतसर होती हुई पठानकोट, पठानकोटसे जोगिन्द्र नगर; बतालासे कुआदिन; अमृतसरसे डेरा बाबानानक, नरोवाल होती हुई श्यालकोट, लाहोरसे चिचोकी, मालियन होती हुई सोरकोट रोड; लाहोरसे नरोवाल, चक अमरूसे नरोवाल; लायलपुरसे जारनवाला, चिनिओटसे लायलपुर, लाहोरसे सहादरा होती हुई संगला हिल, मालकवालसे सोरकोट रोड; सरगोधासे छिनोखोची, शाहपुर सीटीसे सरगोधा, वाजिराबादसे लायलपुर होती हुई थानेवाल; जम्मूसे श्यालकोट होती हुई वाजिराबाद; भाउनसे माण्ड्रा, लालामूसासे कुन्दियान होती हुई मूलतान, तक्षशिला जङ्कशनसे हवेलियन; कैम्बेलपुरसे कुंदियन; बन्नूसे दाऊदखेल; डेरा इस्माइल खाँसे टोङ्क सीटी, रावलपिण्डीसे कोहट होती हुई थल, नौसेरासे मरदान होती हुई दरगाई, खैबरसे लंडिकोटल, खानपुरसे चाचरान, कोतरीसे हैदराबाद होती हुई बादीन, रोहरीसे रूक होती हुई कोतरी, जाकोबाबादसे कास्मोर, होदापुरसे सिरलाशहदादकोट होती हुई लरकाना; रूकसे कोयेटा होती हुई चमन, कोयेटासे हरनाय होती हुई सीबी, कोयेटासे दलबन्दिन होती हुई उजदप, खनाईसे हिन्दूबाग होती हुई किला सैफुला।

बम्बई-बड़ौदा और सेण्ट्रल इण्डिया रेलवे।

बम्बईसे दिल्ली, बम्बईसे बड़ौदा होती हुई विरामगम, सूरतसे अमलनेट, अनन्दसे काम्बे, अनन्दसे गोदरा; नगदासे उजयिनी, वोरियावीसे भादतल, विरामगमसे

बरागोधा ; पिपलोदसे देवगढ़बारिया ; राजपिपलासे मङ्गलेश्वर (राजपिपला ष्टेट रेलवे) ; प्रोचसे अमृतसर ; धम्मानीरसे सिधियाराजपुर होती हुई पानीपात ; नदी पादसे कशामंज ; येलदासे सूनापाल ; अहमदाबादसे दिल्ली, पालनपुरसे देसा ; फुलेरासे कुचामनरोड ; गाड़ी हसाऊसे फतहनगर ; दिल्लीसे गुड़गांव ; अहमदाबादसे खेड़ब्रह्मा ; अहमदाबादसे धोलका होती हुई धन्धुका, धौलीसे पोबापुर ; मेसानासे पाधधन ; पाधधनसे घाङ्करा होती हुई हम्पार ; मेसानासे व गाहिक ; मेसानासे पाटन होती हुई ककोसीमेसाना ; मनुष्य रोडसे घनसमा होती हुई हरिज ; धौलीसे मनुष्य ; अजमेरसे काश्या ; फतेहाबादसे चन्द्रावतीगञ्ज होती हुई उज्जैन ; इन्दौरसे मऊ ; अजमेरसे नसीराबाद ; रेवाड़ीसे फुलेरा ; रेवाड़ीसे फाजिलका ; सिवाईसे माधोपुर जयपुर होती हुई झुनझुनू (जयपुर ष्टेट रेलवे) आगराफोर्टसे बामपुर ; आगराफोर्टसे बांदीकुइ मथुरासे वृन्दावन ; मथुरासे मध्याना ; कल्याणपुरसे गधाकरोली ।

पोरबन्दर-ष्टेट रेलवे—जमजोधपुरसे पोरबन्दर ।

उदयपुर चित्तौरगढ़ रेलवे—चित्तौरगढ़से नाथद्वार होता हुए उदयपुर ।

जामनगर और द्वारिका रेलवे—राजकोटसे जामनगर और द्वारिका होता हुई ओखा बन्दर ।

गोण्डल रेलवे—धसासे जमजोधपुर ; जितालियासे धारी ; जटलसरसे राजकोट ।

कच्छ ष्टेट रेलवे—कुम्बलासे अञ्जार अञ्जारसे तूना ; अञ्जारसे भूज ।

धागपुर बारी-ब्राञ्च रेलवे—धोलपुरसे बारी होती हुए सांतपुर ।

जूनागढ़ ष्टेट रेलवे—जेतलसरसे वेरावल होता हुए प्राचीरोड ; जूनागढ़से विस्सावदर ; जूनागढ़से सरादिया ।

मोरवी रेलवे—वाधवानसे राजकोट ; वढ़वानसे मोरवी ।

खम्भात ब्राञ्च-रेलवे—खम्भात जङ्क्शनसे खम्भात नगर ।

बर्षी ब्राञ्च रेलवे—कुर्दुवाड़ीसे पण्ढरपुर ; कुर्दुवाड़ीसे लाटूर, मिरजासे पण्ढरपुर ।

भावनगर-ष्टेट रेलवे ।

भावनगरसे धासाल ; सिहोरसे पलिताना ; धोलासे धाशा ; धासासे महुआ, धेतारसे धन्धुका, धेतारसे उसराम ; भावनगरसे तलेजा सोरी (ट्रामवे ट्रेन), सिफ्लासे गधादा (ट्रामवे ट्रेन) ; एलुमासे पोर्ट अल बर्ट विक्टर, सेमासे आरावर नगर (ट्रामवे ट्रेन) ।

गायकवाड़-बड़ौदा ष्टेट रेलवे ।

जम्बूसरसे दभोई, दभोईसे चांदोद, दभोईसे तिम्बा रोड मियांगांवसे छोटा उदयपुर, संखाबासे छुछपुरा, मियांगांवसे मालसर, मियांगांवसे कोरल, बिलिमोरा से काला‍अम्बा कोसम्बासे झंखवव, पेटलादसे भादो पेटलादसे भादरान ।

बीकानेर ष्टेट-रेलवे ।

भाटीण्डासे विसीन अड्डान, बीकानेरसे कोलायतजी, बीकानेरसे रतनगढ़ रतनगढ़से सरदारशहर, हिस्सारसे सुजानगढ़, सूरतगढ़से हनुमानगढ़, अनूपगढ़से सूरतगढ़, हनुमानगढ़से बहसीलमाबाद ।

जोधपुर-रेलवे ।

हैदराबादसे लूनी अड्डान, मीरपुरखाससे पाहरो मीरपुरखाससे खूँर, मारवाड़ अड्डानसे मेरता रोड, चिसा अड्डान होती हुए कुचामनरोड, पेथमसरसे पांच पदरा, जोधपुरसे फलोदी मेरता रोडसे मेरता सीटी पापरैड़से बिलारा डेगानासे सुजानगढ़ होती हुए लाडनूं, मकरानासे परबतसर सीटी ।

ग्वालियर-ब्राञ्च रेलवे ।

ग्वालियरसे शिवपुरी, ग्वालियरसे भिण्ड ग्वालियर से सेवपुर कलान, ग्वालियरसे बीजापुरगंज, मरार कण्टोनमेण्टसे कम्पू कोठी ।

ग्रेट इण्डियन पेनिनसुला रेलवे ।

बम्बईसे आगरा होता हुए दिल्ली, बम्बईसे पूना होती हुई रायचूर, कल्याणसे करजत, दहनासे ठाकुरली मध्य रेलसे मराल (मथेरान ग्राम ट्रामवे) धौंदसे बारामती, दर जतसे खपोली, मोहमद मनमाड़, चालीसगांवसे धूलिया, भीजरहसे अमलनेर, भोजलससे नागपुर, अलमरसे ग्राम

गांव, वदनेरासे अमरौती, इटारसीसे इलाहाबाद, गदरवाड़ेसे गोतितोरिया, इटारसीसे नागपुर, आमलासे परसिया, वर्द्धासे वलहरशाह, मजरीसे राजपुर, मुरतजापुरसे येतमल, मुरताजपुरसे इलिचपुर, पुलगावसे आरवी सेकशन, पचोरासे जमनेर, भूपालसे उज्जैन, विनासे कोटा, मानिकपुरसे झांसी, झांसीसे चिरगांव, झांसीसे लखनऊ, ऐतसे कूंच, कानपुरसे वादा, आगरा कैनटोन्मेण्टसे आगरा सीटी, आगरासे वाह।

मान्द्राज एण्ड सदर्न-मराठा-रेलवे।

मान्द्राजसे वालतेर, समलकोटसे कोकोनद, गुन्तूरसे तेनाली होती हुई रिपटले, मान्द्राजसे रायचूर, मन्द्राजसे वङ्गलोर सीटी, वौरिङ्गपेटसे मरिकुप्पम, मन्द्राजसे वीच विल्लीवक्कमसे वीच, मन्द्राजसे अवादी, तिमेलोर होती हुई आरकोनम, पूनासे वङ्गलोरसीटी, मीराजसे कोल्हापुर, मीराजसे संगली, वङ्गलोरसीटीसे गुनटाकल, लोण्डासे मोरमूगाँव, वेल्लरीसे रयद्रक, होसपेटसे कत्तूर, होसपेटसे समेहल्ली, गुण्टकलसे हवली, गुण्टाकलसे वेजवारा होती हुई मछलीपत्तन, गुडिवाडासे भोमावरम, नोदादाभलूसे नर्सपुरम, काठपदीसे गुडर, गादाकसे होतगी, पकालासे धर्मवरम, हवलीसे धारवार।

साउथ इण्डियन रेलवे।

मन्द्राजसे पोदानूर होती हुई मेत्तुपलाईयम्, मेत्तुपलाईयमसे उत्कामण्ड (नीलगिरि रेलवे), मङ्गलोरसे पोदानूर, उलावाकोट्टसे पालघाट, सलेमसे सलेमटाउन, पोदानूरसे दिन्दीगूल, पोदानूरसे उलावाकोट्ट, पोदानूरसे कोयम्बतूर, सलेमसे मेतुरदम, तिरुपत्तुरसे आलारपेट, तिरुपत्तूरसे कृष्णगिरि, मुरापुरसे होसुर, सोरानूरसे परनाकुलम्, मन्द्राजसे रामेश्वर होती हुई धनुष्कोठि, वीचसे चिङ्गलपेट, चिङ्गलपेटसे अरकोनम्, मदुरासे वदिन्याकनुर, भिलुपुरम्से काठपड़ी, भिलुपुरम्से पोण्डिचेरी, भिलुपुरम्से त्रिचिनापल्ली, पदुकोट्टासे त्रिचिनापल्ली, मायावरमसे आरनटंगी, मायावरमसे तेङ्कोइश्वर, पेडालमसे कारिकल, तञ्जोरसे नागोर, निदामङ्गलम्से मन्नारगुदी, त्रिचिनापल्लीसे इरोद, मादुरासे टयुतीकोरिन, तिरुतिरियापुण्डीसे अगस्तीअम्पल्ली, मनियाचीसे कोयलन होती हुई त्रिवन्दुम्, तिनीमेलीसे तिरुचेण्डूर, कुद्दालूरसे वृद्धाचलम्, विरुधूनगरसे सेनकोटा, सोरानूरसे निलाम्बर।

महिसुर रेलवे।

महिसुरसे वङ्गलोर सीटी, विरूड़से सिमोगा, चिकजाजुरसे चित्तलद्रुग, महिसुरसे चमराजनगर, महिसुरसे आरसीकेरी, वङ्गलोरसे वोरिङ्गपेट, नरसिंहराजापुरासे तरिकेरि। (ट्रामवे ट्रेन)।

निजाम गवर्मेण्ट-ष्टेट रेलवे।

वादीसे वेजवाडा, हैदरावादसे मनमद, दोरनाकलसे कोठागुदाम, दोरनाकलसे सिंगारेनी (मिनरल ब्राञ्च) काजीपेट जंकशनसे वलहरसा, पूर्णासे हिङ्गोली, सिकन्दरावादसे द्रोनाचेलम्।

कुलशेखरपतनम् लाइट रेलवे।

तिरिसिनविल्लायसे तिरुचेन्दूर।

सिंहल गवर्मेण्ट रेलवे।

कलम्बोसे मतारा कलम्बोफोर्टसे वदुल्ला, कलम्बोफोर्टसे पुत्तालम्, कलम्बोसे तलैमन्नर होती हुई मेदावाचिसे कङ्केसनतुराई, माहोसे केकिरावा, माहो जंकशनसे गलवा होती हुई वेट्टीकलवा, काण्डीसे मतेल, कलम्बोफोर्टसे ओपानेऊ, अविस्सावेल्लासे यतियनटोला, नानुवासे रगला।

ब्रह्म रेलवे।

रङ्गूनसे मण्डालय होती हुई मैतकैना, पेगूसे मौलमेन, मोलमेनसे यी, पैनमनासे तोङ्गद्विङ्गी, तोङ्गद्विङ्गीसे नाथमौक, रंगूनसे प्रोम, वेसिनसे हेन्जादा होती हुई लेतपदन, हेन्जादासे कियाङ्गोन, थाजीसे मिङ्गआन, मण्डालयसे लासियो, ताजीसे अङ्गवान् होती हुई हेहो, पेगूसे कायान मण्डालयसे मदाया, सगइङ्गसे यू, नावा जंकशनसे काथा, इनसिनसे वानेत् चाऊङ्ग, रंगूनसे थिनगंगयुन होती हुई कैण्टोन्मेण्ट, रंगूनसे इनसिन।

नेपाल गवर्मेण्ट रेलवे।

अमलेकगञ्जसे रकसौल।

रेलपथकी उन्नतिके लिये आज कल विशेष प्रयत्न किया जा रहा है। नया नया आविष्कार हो रहा है। फिलहाल विद्युच्चालित रेलगाडीकी बड़ी ही उन्नति हुई

है। पूर्वोक्त नाना स्थानोंमें अभी वैद्युतिक मास्टर एञ्जिनसे रेलगाड़ी चलने लगी है। आज तक वैद्युतिक एञ्जिन चलानेमें जितने नियम निकाले गये हैं उनमें डिजेल साहबकी पद्धति ही। (Desel s system of electric Locomotives) सर्वोत्कृष्ट है।

इसके सिवा लोकोमोटिव इञ्जिनकी अभ्यशक्ति, द्रुत गमनशक्ति, वजन वृद्धि आदिकी यथेष्ट उन्नति हुई है। यूनन पैसिफिक रेलवेके लिये अमेरिकन लोकोमोटिव कम्पनीने एक भयानक रथ निकाला है। उस रथमें ३४ चक्के हैं। १२ चक्कोंके ऊपर कोयला रखनेका बड़ा डब्बा है। गाड़ीका वजन उस और कोयला लगा कर १३०० मनसे ज्यादा है। इसकी ऊंचाई १६, ४´ और लम्बाई १२५ है। अग्निकुण्ड २८, ६´´ लम्बा और ६, ६ है। कोयलेके डब्बेमें ३२००० गैलन जल और २३ टन कोयला रखनेकी जगह है। इससे समझ सकते होंगे, कि यह मात्र आजकल इञ्जिनकी कैसी उन्नति हो रही है।

केवल यही नहीं, रेलवे लाइन बनाने (Railway track) और रेलवे सवारी गाड़ी (Carriage), माल गाड़ी (Wagon) और ब्रेक (Brake) बनानेके लिये नई नई तरकीब निकाली गई है। सिगनलकी उन्नतिकी ओर ध्यान देनेसे तो चमत्कृत होना पड़ता है।

सन् १९१० से २६ ई०का हिसाब देखनेसे मालूम होता है कि इस समय रेलवे लाइनकी विस्तृति अमेरिका छोड़ कर दूसरी जगह बहुत कम हुई है। इस अमेरिकामें रेलवे लाइनका विस्तार बहुत दूर तक हुआ है। अफ्रिका और एशियामें भी कहां कहां इसका विस्तार है। किन्तु आश्चर्यका विषय है, कि युक्तराष्ट्रमें यद्यपि १९२२ ई०से रेलपथकी उन्नति और विस्तृतिके लिये बहुत रुपये खर्च हो रहे हैं, पर उससे कोई फल नहीं दिखाई देता। मोटर और बस गाड़ियोंकी अधिकताके कारण एक तरफा महसूल (Single Fare) बढ़ा और लौटती महसूल (Return Fare) घटा दिया गया है। उससे तथा आनुषङ्गिक नाना कारणोंसे ऐसा हुआ है।

ग्रेट ब्रिटेन और युक्तराष्ट्रमें युद्धके पहले रेलपथ व्यक्तिगत था, पर युद्धके समय गवर्मेण्टके अधीन हो गया। फिर युद्ध समाप्त होने पर दोनों देशोंमें पहलेकी ही व्यवस्था कायम रही। इससे ग्रेटब्रिटेनने कुछ लाभ भी दिखाई दिया पर युक्तराष्ट्रमें कुछ भी नहीं। कनाडाने कुछ समय नुकसान उठा कर आखिर जातीय-पद्धतिको ही अपना लिया है। युद्धके पहले जर्मन-रेलपथ गवर्मेण्टके हाथ था, किन्तु १९२० ई०में यह पार्लियामेण्टके हाथ लगा। पहले पहले उसमें लाभ ही दिखाई देता था, किन्तु १९२३ ई०में लाभकी अपेक्षा प्रायः ७ गुणा नुकसान हुआ। इस कारण १९२४ ई०में यह 'रीचसीसेनबान गसेलसचैफ्ट' नामक कम्पनीके हाथ ४० वर्षके लिये लगा दिया गया है।

रेला (हि० पु०) १ सबके पर महीन और सुन्दर बोली को बजानेकी गति। २ धक्कमधक्का। ३ पंक्ति, समूह। ४ अधिकता, बहुतायत। ५ जलका प्रवाह, बहाव। ६ समुद्रमें चढ़ाव, धावा।

रेला—सिंहभूम जिलेके अन्दर एक गांव। यहां एक प्रसिद्ध पोस्टके रहनेका स्थान है।

रेवंछा (हि० पु०) एक जिस्क भाग। इसकी फलियां गोल, पतली और लगभग एक बालिश्त लम्बी होती हैं। इसके दाने लोबियेके, तोल उससे कुछ बड़े और रंगमें बादामी होते हैं। इसकी दाल खाते हैं।

रेवंद (फा० पु०) एक पहाड़ी पेड़। यह हिमालय पर ग्यारह बारह हजार फुटकी ऊंचाई पर होता है और काश्मीर, नेपाल, भूटान और सिक्किमके पहाड़ोंमें पाया जाता है। इसकी उत्तम जाति तिब्बतके दक्षिण पूर्व भागों और चीनके उत्तर-पश्चिम भागोंमें होती है और रेवंद चीनी कहलाता है। हिन्दुस्तानी रेवंद वैसी अच्छी नहीं होती। उसमें महक भी वैसी नहीं होती जैसी चीनीकी होती है। बाजारोंमें इसकी सूखी जड़ और लकड़ी रेवंद चीनीके नामसे बिकती है और औषधके काममें आती है। इसमें क्रायसोफानिक एसिड होता है जिससे इसका रंग पीला होता है। क्रायसोफानिक एसिड शब्दकी बहुत अच्छी दवा है। रेवंद चीनी रेचक होता है और पेटके दर्दको दूर करता है। यह पौष्टिक भी माना जाता है।

रेवर (स० पु०) रेवन इति रेव बाहुलकात् अरच्।

१ शूकर, सूअर। २ वेणु, बांस। ३ वातुल, बावला। ४ विपर्यय। (क्ली०) ५ दक्षिणावर्त्त शङ्ख।

रेवड़ (हिं० पु०) भेड़-बकरीका झुण्ड, लेंहड़ा।

रेवड़ा (हिं० पु०) पगी हुई चीनी या गुड़के लंबे लंबे टुकड़े जिन पर सफेद तिल चिपकाया रहता है।

रेवड़ी (हिं० स्त्री०) पगी हुई चीनी या गुड़की छोटी टिकिया जिस पर सफेद तिल चिपकाया रहता है।

रेवण (सं० पु०) एक प्रसिद्ध मीमांसक। चरित्रसिंह इनका उल्लेख कर गये हैं।

रेवणसिद्ध—रसरत्नाकरके प्रणेता।

रेवत (सं० पु०) १ जम्बीर, जंबीरी नीबू। २ आरग्वध-वृक्ष, अमलतास। ३ अन्धक या अनन्तराजके एक पुत्रका नाम। ४ वर्षभेद। ५ रोहिणीपुत्र बलरामके श्वशुरका नाम तथा एक राजा। देवीभागवतके अनुसार ये आनर्त्तके पुत्र और शर्यातीके पौत्र थे। कुशस्थली नाम-की नगरी इनकी राजधानी थी। इनकी कन्या रेवती बड़ी ही सुन्दरी थी। कन्याके युवती होने पर रेवत उसके योग्य वर ढूंढ़ने लगे। बहुत दिनों तक कोई उप-युक्त वर न मिलनेके कारण ये स्वर्गमें लोकपितामह ब्रह्माके निकट गये। ब्रह्माके आदेशसे पृथ्वीमें आ कर उन्होंने अपनी कन्या रेवती बलरामको ब्याही।

रेवत—सह्याद्रि-वर्णित एक राजाका नाम। (सह्या० २७।३०)

रेवत आयुष्मत्—एक बौद्धाचार्यका नाम।

रेवतक (सं० क्ली०) रेवत इव कायतीति कै-क। पारा-वत, परेवा। (राजनि०)

रेवति (सं० स्त्री०) कामदेवकी पत्नी। (त्रिका०)

रेवतिपुत्र (सं० पु०) रेवतीका तनय या लड़का।

रेवती (सं० स्त्री०) रेवतस्यापत्यं स्त्री, रेवत-अण् न वृद्धिः ङीप्। १ नक्षत्रभेद। यह नक्षत्र अश्विनी आदि सत्ताईस नक्षत्रोंमें अन्तिम नक्षत्र है। इन नक्षत्रोंको संख्या २७ हैं। यह नक्षत्र मछलीके आकारका है और ३२ ताराओंके साथ है। इसकी अधिष्ठात्री देवता पुषाख्य सूर्य है। इस नक्षत्रमें मीनराशि वास करती है। शतपद चक्रानुसार इस नक्षत्रमें नामकरण करनेसे दे, दो, च, ची आदि अक्षरका नाम होता है। इसके चार पदोंके चार अक्षर हैं।

इस नक्षत्रमें पैदा होनेवाला पुरुष अत्यन्त तीक्ष्ण बुद्धिसम्पन्न होता है। उसकी सुन्दर आकृति, वह शत्रु-नाशक, विद्वान्, नृपसेवक, विदेशवासी और शूरवीर होता है। (कोष्ठीप्र० अष्टोत्तरी मतसे इस नक्षत्रमें पैदा होनेसे शुक्रकी महादशा होती है। नक्षत्रका परिमाण ६० दण्ड धरनेसे एक एक नक्षत्रमें ५, ३ पांच वर्ष तीन मास काल भोग होता है। प्रति नक्षत्रके पादमें १ वर्ष ३ मास २२ दिन ३० दण्ड और एक दण्डमें १ मास १ दिन ३० दण्ड भोग होता है। नक्षत्रके परिमाणमें न्यूनाधिक हुआ करता है। ऐसी अवस्थामें दशाका भोग्य और भुक्त समयका निर्णय करने समय ५ वर्ष ३ मासका भाग कर स्थिर करना होता है। मीनराशि शब्द देखो।

२ मातृकाभेद। ३ स्त्री गवी। (अजयपाल) ४ दुर्गा। ५ बालग्रहविशेष। बालक इस ग्रहसे पीड़ित होने पर इसकी पूजा करनी होती है। इसकी चिकित्साकी बातें सुश्रुत और भावप्रकाशमें इस तरह हैं—

अश्वगन्धा, अजशृङ्गी, श्यामलता, पुनर्नवा, मुगानि, मापाणि और भूमि कुष्माण्ड इनका क्वाथ, वच, अश्वकर्ण, अर्जुन, धातकी, तिन्दुक और कुष्ठ या सर्ज्जरसमें पाक किया तेल अभ्यङ्गमें, काकोल्यादिके संयोगसे पाक किया घृत पान, कुलत्थ, शङ्खचूर्ण और सब तरहके सुगन्ध प्रदेह तथा गृध्र और उल्लूका विष्ठा, यव, यवफल और घृत इनकी आहुति सायं प्रातः देनेसे इस ग्रहकी शान्ति होती है।

सादा फूल, धानका लावा, दूध, चावल और दहीसे गोसाईं घरमें बलि निवेदन कर और नदीसङ्गममें धात्री और कुमारको स्नान करा कर निम्नोक्त मन्त्रसे स्तव करना होता है—

"नानाशस्त्रधरा देवी चित्रमाल्यानुलेपना।
चलत्कुण्डलिनी श्यामा रेवती ते प्रसीद तु॥
उपासते यां सततं देव्यो विविधभूषणाः।
लम्बा कराला विनता तथैव बहुपुत्रिका॥
रेवती शुष्कनासा च तुभ्यं देवी प्रसीद तु॥"

(सुश्रुत उत्तर० ३१ अ० और भावप्र० मध्य० ४र्थ भाग)

६ बलदेवकी पत्नी, रेवतकी कन्या। राजा रेवतने

ब्रह्माकी आज्ञासे बलरामके साथ रेवतीका विवाह कर दिया। रैवत देखो।

७ रैवत मनुकी माता। रैवतमनु देखो।

रेवती—युक्तप्रदेशके बलिया जिलेमें एक नगर।
रेवती देखो।

रेवता—मैसूर राज्यके अन्दर एक बड़ा गांव।

रेवतीद्वीप—दाक्षिणात्यका एक प्रसिद्ध जनपद। पूर्व चालुक्यराज मंगलीशने ५११ ई०में यह स्थान जीता था।

रेवतीपुर—युक्तप्रदेशके गाजीपुर जिलान्तर्गत एक नगर।
रेवतीपुर देखो।

रैवतीभव (सं० पु०) १ रेवतीजात, रेवतीसे उत्पन्न। २ शनि।

रैवतीरमण (सं० पु०) रेवत्याः रमणः। १ बलराम। २ विष्णु।

रेवतीश (सं० पु०) रेवत्याः ईशः। बलराम।

रैवतीसुत (सं० पु०) स्कन्दग्रह।

रैवत्य (सं० त्रि०) १ प्रसिद्ध, मशहूर। २ सुन्दर, खूबसूरत।

रेवन्त (सं० पु०) सूर्यके पुत्र। ये गुह्यकोंके अधिपति हैं। इनकी उत्पत्ति सूर्यकी बड़वा रूपधारिणी संज्ञा नामकी पत्नीसे हुई थी। कालिकापुराणमें लिखा है, कि राज लोग नीराजनामक्षमें प्रतिमा या घटमें सूर्यपूजाके विधानानुसार रेवन्तकी पूजा करेंगे। इसका ध्यान—

"सूर्यपुत्र महाबाहु द्विभुजं कामरूपिणम्।
श्यामवर्णं गुह्यकस्य च केशान् विकल्प वाससा॥
कृत्वा वामकरे विमदक्षिणे तु कर पुनः।
तद्गत न्यस्य महावीरं चिन्तयेत्तद्विचक्षणम्॥"
(कालिकापु० ८५ अ०)

कोजागरी पूर्णिमाकी रातको जब लक्ष्मीपूजा होती है उससे पहले द्वारके समीप घोड़ेके साथ रेवन्तकी भी यथाविधान पूजा करनी होती है। (तिथितत्त्व)

रैवन्तमनुस् (सं० क्ली०) रेवन्त मनुसे युक्त सुविद्। संज्ञा।

रेवरा (हिं० पु०) एक प्रकारकी ईख।

रेवरेंड (अं० पु०) पादरियोंकी सम्मानसूचक उपाधि।

रेवा (सं० स्त्री०) रेवते उत्प्लुत्य गच्छतीति रेव-अच् टाप्। १ नर्मदा नदी। वराहपुराणमें लिखा है, कि रेवा नदीमें शिवलिङ्गकी उत्पत्ति होती है। (वराहपु०) नर्मदा देखो। २ कामकी पत्नी रति। ३ नीलीवृक्ष, नीलका पौधा। ४ दुर्गा। (देवीपु० ४५ अ०) ५ एक प्रकारका साम। ६ दीपक रागकी एक रागिनी। ७ एक प्रकारकी मछली जो नदियोंमें पाई जाती है।

रेवा—मध्यभारतके बघेलखण्ड एजेन्सीके अन्तर्गत एक देशी राज्य। यह अक्षा० २२° ३८´ से २५° १२´ उ० और देशा० ८०° ३२´ से ८२° ५१´ पू०के बीच पड़ता है। भूपरिमाण १३००० वर्गमील है। इसकी उत्तरी सीमा पर बाँदा इलाहाबाद और मिर्जापुर जिला, पूर्व मिर्जापुर जिलेका कुछ अंश और छोटानागपुरके अन्तर्गत देशी सामन्त राज्य, दक्षिण बिलासपुर, मण्डला और जब्बलपुर जिला और पश्चिम बघेलखण्डके अन्तर्गत मैहर, नागोद, सोहावल और कोठी नामक देशी सामन्त राज्य अवस्थित है। इस राज्यके पश्चिम और पश्चिमोत्तर भागमें गङ्गाकी उपत्यकासे ले कर लगातार तीन अधित्यकाओंमें शोभित गिरिमाला, इसके उत्तर पूर्वांशमें विन्ध्याचल और पश्चात् अधित्यका छोड़ दक्षिणकी समरेखा पर कैमूर गिरिमाला ऊपर उठी है। इस राज्यका एक-तृतीयांश कैमूर गिरिमालाके दक्षिण पूर्वांशमें शोण नदकी अववाहिका पर अवस्थित है। शोण नद इस राज्यकी दक्षिणी सीमासे प्रवेश कर राज्यके बीचो बीच उत्तर पूर्व सीमा पार कर मिर्जापुर तक चला गया है। इसकी प्रधान शाखा महानदी है। राज्यके दूसरे अंशमें तमसा नदी बहैर, बिछिया आदि शाखा प्रशाखाके रूपमें निकल कर इलाहाबाद जिले तक चली गई है।

यह राज्य खनिज और वनजात द्रव्यसमृद्धिसे परिपूर्ण है। यहां उमरिया नगर ग्राममें उमरिया नामक उत्कृष्ट कोयलेकी खानि मिली है। यहांसे कोयला इधर उधर ले जानेके लिये बिलासपुर इटावा रेलवे कटनी-उमरिया शाखा खोली गई है। महानदी जोहिला नदीकी उपत्यकामें और सोहागपुरमें भी उत्कृष्ट कोयला मिला है।

यहां कई तरहकी मिट्टी देखी जाती है,—मेट या काली मिट्टी, 'सेकुमन' या दुमटा, 'दोमाट' अर्थात् मेट

और सेङ्कुवन मिली हुई, 'भाटा' या लाल सूपा हुई खराब मिट्टी है। रेवाके वनमें शाल, खैर, सर्ज्ज, तिण्डु आदि वड़े वड़े वृक्ष, लाख, महुआ, वुडा, रजन और गोंद अधिक पाये जाते हैं।

इस राज्यके अधिवासी अधिकांश हिन्दू हैं, इनमें ब्राह्मण, क्षत्रिय और कुर्मी ही अधिक हैं। इसके बाद गोंड, कोल आदि आदिम जातियां भी बसती हैं। मुसलमानोंकी संख्या यहां उतनी अधिक नहीं है। यहाकी उत्पन्न वस्तुओंसे अधिकांश राजस्व वसूल होता है। मोट आय प्रायः २२ लाख रुपये हैं। यहां ई० आई० रैलवेका सतना और दभौरा स्टेशन प्रसिद्ध है और राज्य के बीच दक्षिण जानेका एक बड़ा रास्ता है।

इतिहास—रेवाका वर्त्तमान राजवंश व्याघ्रदेवके वंशज हैं। व्याघ्रदेवने गुजरातसे आ कर शोन नद और तमसाके किनारेके जनपद पर अधिकार कर लिया। इसके पहले यह प्रदेश चन्देल, चेदी या कलचुरी, चौहान, सेङ्गर और गोंड राजाओंके अधिकारमें था। रेवाके राजभाटोंके मतानुसार सं० ६८०में व्याघ्रदेव दलबलको ले कर कालञ्जरके १२ मील उत्तर-पूर्व मर्फा नामक दुर्गमें आ कर रहने लगे। मर्फाके १५ मील उत्तर वाघेलभवन और १२ मील दक्षिण-बाघोलन ग्राम व्याघ्रदेवकी पूर्व स्मृतिकी घोषणा आज भी कर रही है। किन्तु भाटोंने जो संवत् निश्चित किया है, वह प्राचीन मालूम नहीं होता।

पियावन और अल्हाघाटसे जो शिलालेख प्राप्त हुए हैं, उससे मालूम होता है, कि ईसाकी ११वीं शताब्दीमें यह समूचा प्रदेश वहांके चेदिपति गाङ्गेयदेवके अधिकारमें था। उनके वंशज डाहलीय राजा नरसिंहदेवने सं० १२१६में और उनके भाई विजयसिंहदेवने सं० १२३८ में राज्यका शासन किया था। और तो क्या त्रैलोक्यवर्मदेवके ताम्रशासनसे मालूम होता है, कि सं० १२६७ (१२४० ई०)में वे तमसा-तीरका उपत्यकाका शासन करते थे। ऐसी अवस्थामें इन स्थानोंमें व्याघ्रदेवका प्रभाव विस्तृत हुआ था, ऐसी बात मनमें नहीं आती। व्याघ्रदेव और उनके वंशधरोंके आधिपत्य विस्तारके साथ इस प्रदेशने बघेलखण्ड नामसे प्रसिद्धि लाभ की।

भाटोंकी पुस्तकोंमें व्याघ्रदेवका नाम सिद्धराज जयसिंह लिखा है। उनकी पुस्तकोंमें उनके वंशजोंके भी कितने ही नाम मिलते हैं। जैसे—कर्णदेव, सोहागदेव, शार्ङ्गदेव, विशालदेव, भानुदेव और विहनदेव आदि। अन्तिम राजा विहनदेवके पुत्र दलकेश्वरदेव सन् १२४० ई०में सिंहासन पर बैठे। वे और उनके कनिष्ठ भाई मलकेश्वर मिनहाजका "तबकाते नसीरी" नामक इतिहासमें "दलकि व मलकि" नामसे विख्यात हैं। ऐसी दशामें उनकी आठवीं पुश्तके व्याघ्रदेवको हम ईसाकी ११वीं शताब्दीके पुरुष कह सकते हैं। चेदिराजोंके प्रतापसूर्य अस्त होने पर उनके वंशके किसी राजाने इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया था।

सन् १२०३ ई०में कुतुबुद्दीन वेगने कालञ्जरके किले पर आक्रमण किया था। उस समय यहां चन्देलपति अधिष्ठित थे। कुतुबुद्दीनकी मृत्युके बाद चन्देलराजको कालञ्जरके किले तथा अपनी पूर्व अधिकृत बस्तियों पर दखल जमा लिया।

मुसलमानी इतिहाससे हम यह भी जानते हैं, कि इसके बाद सन् १२३४ ई०में दिल्लीके राजा वयाना, कन्नौज, ग्वालियर आदि स्थानोंसे बहुसंख्यक सैन्यसंग्रह कर कालञ्जर और जंबू पर आक्रमण करनेके लिये अग्रसर हुए। 'जबू' कहां है, इसका कुछ भी उल्लेख मुसलमानी इतिहासोंमें नहीं मिलता। केवल यही मालूम होता है, कि यह स्थान 'जंबू' ग्वालियरसे ५० दिनका रास्ता है। इससे यह मालूम होता है, कि यह स्थान रेवा-राज्यका वन्धोगढ़ है। ऐसा होने पर देखा जाता है, कि उस समय चन्द्रात्रेयगण जैसे कालञ्जरमें, वैसे बघेलगण वन्धोगढ़में अधिष्ठित थे। इसके बाद सन् १२४७ ई०में दिल्लीपतिने उलूघ खां (पीछे जो सम्राट् वलवन नामसे विख्यात हुआ)के अधीनमें कालञ्जरपतिको जीतनेके लिये बहुत ही फौजें भेजीं। इस बार मुसलमानी फौजोंने कालञ्जर पर अधिकार कर राणाके हाथ सौंप दिया। मुसलमान-इतिहासमें वे दलकि मलकि नामसे प्रसिद्ध हैं। कालञ्जर या मालवपतिका उन पर कोई दबाव न था। उनकी सैन्यसंख्या भी जैसे असंख्य थी, वैसे धनरत्न भी अतुलनीय था। उनके सभी दुर्ग सुरक्षित

और सुदृढ़ थे। उनका राज्य नाना जङ्गलों तथा टेढ़ी मेढ़ी गिरिमालाओंसे घिरा है। इससे पहले कोई मुसलमान सैन्य इस राज्यमें घुस न सकी थी। जब मुसलमानी फौज राजधानीमें पहुंची, तब राजा बड़ी सावधानीसे किलेको छोड़ रजनीके प्रगाढ़ अन्धकारमें अपने परिवारके साथ दुर्गम गिरिशृङ्गमें चले गये। पहले इस दुर्गम गिरिशृङ्ग पर कोई मुसलमान सैन्य चढ़नेको राजी न हुआ। अन्तमें कोई उत्साहवाक्यसे रस्सा और मचानोंकी सहायतासे ऊपर चढ़ गये। राणा सपरिवार कैद कर लिए गये। इस समय मुसलमानोंने जो लूट पाट की थी उससे असंख्य धनरत्न मिले थे।* मुसलमान इतिहासकारोंने जिस राजाको एक दलकि व मलकि नामक राजाका उल्लेख किया है, वह एक मनुष्य नहीं। बघेल महद्गणोक्त दलकेश्वर और मलकेश्वर नामके दो राजकुमार हैं।

दलकेश्वर और मलकेश्वरके बाद वरियारदेव, इसके बाद बल्लाल राजा हुए। वहींके ग्रन्थके अनुसार यह बल्लालदेव दिल्लीश्वर तैमूर शाहको साहाय्य करनेके लिये बड़े सम्मानित हुए थे। इसी समय उन्होंने सम्राट्से पद खिलअत तथा कामधुरन्धिका पाया था। वहांकी पुस्तकमें जो समय निर्धारित हुआ है, वह बिलकुल ही मानने योग्य नहीं। अबुलफजलकी आईन इ अकबरीसे मालूम होता है, कि सन् १२५७ ई०में नासीरुद्दीन इब्न महमूदके कुमक उलुग खाँ मारे जानेके ५० वर्ष बाद अलाउद्दीन मुहम्मद खिलजीने बान्धोगढ़ पर आक्रमण किया था। इसका आक्रमण व्यर्थ हो गया था। इस समय बघेलराजके प्रभावसे दिल्लीके राजा भी विचलित हो उठे थे। मुसलमान इतिहासकार निजामुद्दीनके विवरणसे मालूम होता है, कि सिकन्दर लोदीके समय भारक राजा (यहांकी पुस्तकके अनुसार) भीरन मिर्जापुरके समीप कान्ति तक राज्य विस्तार किया था। प्रायः सन् १४८२ ई०में उन्होंने जौनपुरके शासक मुबारक खां पर आक्रमण किया और उसको कैद कर लिया। थोड़े दिनके बाद उन्होंने मुबारकको छोड़ दिया। इसी समय सुलतान सैन्यके साथ कान्ति तक पहुंच गया। राय भीरने आ कर उससे मुलाकात की। सुलतानने भी अधीनता स्वीकार कर उनको खिलअत बख्शी। किन्तु बघेलराज अपने प्राणके भयसे सन् १४८५ ई०में भाग आये। सिकन्दरने उनको दण्ड देनेके अभिप्रायसे उनके राज्य पर आक्रमण किया। बामघाटी या नगीनो (कथीमो) नामक स्थानमें राजकुमार वीरसिंहदेवने ससैन्य उपस्थित हो सुलतानकी गतिको रोका। किन्तु मुसलमानोंमें घोरतर युद्ध आरम्भ हुआ। सुलतान जीत हो बान्धोगढ़ पहुंचा। राजा और सरगुजाकी ओर भागे। राहमें ही उनकी मौत हो गई। सुलतान बान्धोगढ़से दश कोस इधर काफुन्द नामक स्थान तक आगे बढ़ गया था किन्तु रसदकी कमीके कारण उसको लौट आना पड़ा।

थोड़े ही समयके बाद जौनपुरके हुसेनशाहने सिकन्दरके विरुद्ध अस्त्रधारण किया। इस समय बघेल राजकुमारने सुलतानकी सहायता की थी। शायद इसी कारण दिल्लीश्वरने और कोई उत्पात न कर बघेलराज्य छोड़ दिया हो। इसके कुछ समय बाद सुलतान सिकन्दर लोदीने बघेल राजकुमारीसे ब्याह करना चाहा। बघेलपति शालिवाहन राजी न हुए। मुसलमान ऐतिहासिक फरिश्ताने लिखा है, कि ९०४ हिजरी (१४९८ ई०) में शालिवाहनने जब अपनी बहनको देना न चाहा, तब सिकन्दरने फिरसे मार पर चढ़ाई कर दी। उसकी दूध व समाने दुर्भेद्य बान्धोगढ़को जीत लिया। सिकन्दर समस्त राज्यको तहस नहस और जनशून्य कर जौनपुर लौटा।

शालिवाहनके बाद वीरसिंहदेव राजा हुए। वीरसिंहके बाद उनके पुत्र वीरभानुदेवने राजसिंहासनको सुशोभित किया। राजकवि अर्जुनदान वीरभानुके समयमें इस प्रकार लिखा है,—

"दिल्लीके जिनके दरबार मनसबदार,
राजा राय उमराव सभाके निराल भयो।
बघन बेपारी कहीं दिल्ली न धार धार,
कल्याणक भाजा गङ्गू तासों पठान भयो।

* Elliot's Muhammadan Historians vol II 360

शेरशाह सज्जित प्रलैयको बढो अज्जेश,
बूड़त् हुमायुनके महा ही उत्पात भयो।
बल-हिन बालक अकबर बचाइबे को,
वीरभानु भूपति वघेलदको पात भयो।"

अर्थात् दिल्लीके सरदार, मनसबदार, राजा, राव, उमराव सभीका निपात हुआ। अभागिनी बेगम (हुमायूं-की स्त्री) को कहीं भी आश्रय न मिला। आखिर सुदृढ़ बन्धोगढमें उसने आश्रय लिया। अज्जेश कहते हैं, कि पीछे शेरशाहकी तूती बोलने लगी। यद्यपि हुमायूंने जलमें डूबनेसे रक्षा पाई थी, तो भी उन्हें कितनी मुसीबतें उठानी पड़ीं। वीरभानुरूप अक्षयवटका आश्रय कर बालक अकबरने रक्षा पाई थी।

सचमुच शेरशाहके अत्याचारसे हुमायूं जब राज्य च्युत हुए तब अकबरकी माता बच्चेको ले कर बन्धो गढ़ भाग गईं। यहां भी प्रवाद है, कि वीरभानुदेवने अपनी सेना दे कर बालक अकबरकी सहायता की थी। अकबरके सिंहासन पर बैठनेसे पहले ही वीरभानुके पुत्र रामचन्द्रदेवने पितृराज्य पाया था। अकबर जब दिल्लीकी मसनद पर बैठे, तब वे बघेलराजका उपकार कभी भी न भूले। अकबरके शासन कालके इतिहासमें राजा रामचन्द्रका नाम भी मशहूर है।

१५५५ ई०में रामचन्द्र राजा हुए। उसी साल सिकन्दर शूरके पुत्र इब्राहिमने आ कर रामचन्द्रका आश्रय किया। गङ्गातीरस्थ कराग्राममें रामचन्द्रका ताम्र-शासन निकाला गया है। वह शासनपत्र 'अकबरशाह गाजी'के ३रे वर्ष अर्थात् १५५७ ५८ ई०का लिखा हुआ है। भारत-प्रसिद्ध गायक तानसेन पहले इन्हीं रामचन्द्र-की सभामें गान करते थे। अकबरने अपने सातवें वर्ष (१५६२ ई०)-में रामचन्द्रके पास आदमी भेज कर तानसेनको मगा लिया था। तानसेनके चले जाने पर रामचन्द्र बड़े दुःखित हुए थे। जब आसफखाँ गड़ा जीतने गया, तब रामचन्द्रने उसे रोकनेके लिये अवधारण किया। आखिर पराजयकी संभावना देख कर वे अकबर की अधीनता स्वीकार करनेको बाध्य हुए। अकबरके १४वें वर्षमें रामचन्द्रके हाथसे कालञ्जर दुर्ग जाता रहा। इस कारण अपमानके भयसे स्वयं न जा कर रामचन्द्रने अपने पुत्र वीरभद्रको दिल्ली-दरबारमें भेजा। इससे अकबर रामचन्द्र पर बड़े असंतुष्ट हुए थे। उनके २८ वर्ष शासन करनेके बाद जब वे शाहाबाद जा धमके, उस समय उन्होंने भाटकी ओर अपनी सेना बढ़ाई थी। इस समय वीरभद्रने अकबरको बहुत समझा बुझा कर ठंडा किया था। पीछे रामचन्द्र स्वयं अकबरके निकट हाजिर हुए। किन्तु अकबरने बड़े सम्मानके साथ उनका स्वागत किया था।

रामचन्द्रके बाद उनके पुत्र वीरभद्र राजा हुए। दिल्लीसे अपनी राजधानी लौटते समय वे पालकी परसे गिर पड़े थे जिससे उन्हें सख्त चोट लगी थी। इसी चोटसे उनकी मृत्यु हुई। बीकानेरके राठोर-राज कल्याण मलकी कन्यासे वीरभद्रका विवाह हुआ था। वह राजकन्या सती होना चाहती थी, किन्तु दिल्लीश्वर अकबरने उनके छोटे छोटे बच्चोंकी ओर देख कर रानीको सती होनेसे रोक दिया।

वीरसिंहकी अकस्मात् मृत्युसे बन्धोगढ़में विशृङ्खला उपस्थित हुई। इस समय विक्रमादित्य या विक्रमजित् नामक राजसम्पर्कित एक युवक बघेल सिंहासन पर बैठे। ये ही वर्त्तमान रेवानगरीके प्रतिष्ठाता हैं। इधर अकबरने विक्रमजित्को पकड़ लानेके लिये इसमाइल कुली खां को दलबलके साथ बन्धोगढ़ भेजा। विक्रम-जित्ने मुगलसेनापतिके पास आदमी भेज कर राजधानी-में घेरा डालनेसे मना किया। अकबरने उनकी बात पर कान नहीं दिया। आठ महीना घेरा डालनेके बाद अकबरके ४२वें वर्षमें बन्धोगढ मुगलोंके अधिकारभुक्त हुआ।

अकबरने अपने ४७वें वर्षमें रामचन्द्रके पौत्र दुर्योधनको भाटराज्य पर अभिषिक्त किया। उन्होंने उपयुक्त खिलअत भेज कर भी दुर्योधनका सम्मान किया था। पीछे जहांगीरके शासनकालमें रामचन्द्रके दूसरे पौत्र अमरसिंह दिल्ली दरबारमें सामन्त गिने गये थे। किन्तु शाहजहानने अपने राज्यके ८वें वर्षमें रतनपुरपतिका दमन करनेके लिये अबदुल्ला खां बहादुरको ससैन्य भेजा। अमरसिंहने विना युद्धके उनकी अधीनता स्वीकार कर ली। अमरसिंहके बाद उनके पुत्र अनुपसिंह राजा हुए।

शाहजहान्‌के २४वें वर्षमें अनुपसिंहने चौरागढ़के जमींदार इन्द्रमणको आश्रय दिया था, इस कारण चौरागढ़के जागीरदार पहाड़सिंह बुन्देलाने अनुपसिंह पर चढ़ाई कर दी। अनुपसिंह युद्धमें हार खा कर सपरिवार रेवा राजधानीको छोड़ मैकलपहाड़ पर चले गये। इसके ५ वर्ष बाद इलाहाबादके शासनकर्त्ता सैयद सलाबत् खाँ अनुपसिंहको दिल्ली-दरबार ले गये। वहां उन्होंने मुसलमान धर्म ग्रहण किया। दिल्लीश्वरने उन्हें पांचहजारी मनसबदारका पद दे कर बन्धु तथा आस पासके देशोंका शासनकर्त्ता बनाया। मुसलमान इतिहासकार वलभेश्वरसे अनुप तक बघेलराजोंका जैसा परिचय दे गये हैं, वही संक्षेपमें लिखा जाता है। अनुपके परवर्त्ती बघेल राजाओंके सम्बन्धमें मुसलमान इतिहासकारोंने कुछ भी नहीं लिखा है। अनन्तर भट्ट ग्रन्थमें भानुसिंहका नाम मिलता है। ये अनुपसिंहके पुत्र थे वा नहीं, इसका आज तक कोई स्पष्ट प्रमाण नहीं मिला है। पर हां भट्ट कवियोंने भानुसिंहको हिन्दू बतलाया है। भानुसिंहके बाद अनिरुद्ध राजा हुए। अनिरुद्धकी जब मृत्यु हुई, उस समय उनका लड़का अवधूतसिंह छः महीनेका था। यह सुयोग पा कर पन्नाराज छत्रसालके पुत्र हृदयशाहने १७२८ ई०में रेवा पर हमला कर दिया। अवधूतसिंहको ले कर उसकी माता प्रतापगढ़ भाग गई। हृदयशाहकी मृत्युके बाद अवधूतसिंह पितृसिंहासन पर बैठे। उन्होंने १७५१ ई० तक राज्य किया था। पीछे उनके लड़के अजितसिंह राजा हुए। १८०९ ई०में उनकी मृत्यु होने पर उनके लड़के जयसिंहदेवने राज्याधिकार प्राप्त किया। इन्हीं जयसिंहके शासनकालमें रेवाराज्यमें वृटिश प्रभाव फैला था। १८१२ ई०में जयसिंहने वृटिश गवर्मेण्टके साथ मेल कर लिया। १८४७ ई०में यहांसे सतीदाह प्रथा उठ गई। पीछे जयसिंहके पुत्र विश्वनाथ पितृसिंहासन पर बैठे। कुछ महीने राज्य करके उन्होंने १८५४ ई०में पुत्र रघुराजसिंहके लिये सिंहासन छोड़ दिया। १८८० ई०में रघुराजसिंहकी मृत्यु हुई। १८५७-के गदरमें वृटिश गवर्मेण्टको मदद देनेके कारण उन्हें जागीर, गोड़ वनका अधिकार तथा १९ सलामी तोप मिली। उनके मरने पर पुत्र वेंकटेशरमण सिंहासन पर अभिषिक्त हुए। इनका जन्म १८७६ ई०में हुआ था। १८९७ ई०में इन्हें जी, सी एस, आईकी उपाधि मिली। इनके स्वर्गवासी होने पर पुत्र गुलाबसिंहजी बहादुर राजसिंहासन पर बैठे। ये ही वर्त्तमान राजा हैं। १७ तोपोंकी इन्हें सलामी मिलती है।

नीचे रेवा राजाओंकी तालिका दी गई है—

नाम	अभिषेककाल	मन्तव्य
१। व्याघ्रदेव	११०० ई०	
२। कर्णदेव		
३। सोहागदेव		सोहागपुरके स्थापयिता
४। सारङ्गदेव		
५। विलासदेव		
६। भासुदेव		
७। मलोकदेव		
८। विहणदेव		
९। वलभेश्वर	१२४० ई०	मुसलमान इतिहासमें ये दोनों बलकी और मलकी नामसे मशहूर हैं।
१०। मलकेश्वर		
११। वरियारदेव	१३०० ई०	
१२। बल्लालदेव	१३३० ,,	
१३। सिंहदेव	१३६० ,,	
१४। भैरवदेव	१३९० ,,	
१५। नरहरिदेव	१४२० ,,	
१६। भीमदेव	१४७० ,,	
१७। शालिवाहनदेव	१४९४ ,,	
१८। वीरसिंहदेव	१५२० ,,	वीरसिंहपुरके प्रतिष्ठाता
१९। वीरभानुदेव	१५४० ,,	
२०। रामचन्द्रदेव	१५५५ ,,	
२१। वीरभद्र	१५९२ ,,	
२२। विक्रमादित्य	१५९३ ,,	रेवा नगरीके प्रतिष्ठाता
२३। दुर्योधन	१६०१ ,,	
२४। अमरसिंह	१६२० ,,	
२५। अनुपसिंह	१६४० ,,	
२६। भानुसिंह	१६६० ,,	
२७। अनिरुद्धसिंह	१६९५ ,,	
२८। अवधूतसिंह	१७२५ ,,	

२९। अजितसिंह १७७१ ई०
३०। जयसिंहदेव १८०९ „
३१। विश्वनाथसिंह १८२५ „
३२। रघुराजसिंह १८५४ „
३३। वेङ्कटेशरमण १८८० „
३४। गुलावसिंहजी १९१० „ (वर्त्तमान राजा)

राज्यकी आमदनी कुल मिला कर करीव १४ लाख-की है। राजाके पास ११४० पदाति, ५७४ अश्वारोही और १३ कमान हैं। रेवाके राजा वहुत दिनोंसे हिन्दी और संस्कृत भाषाके प्रेमी हैं। १८६६ ई०में ग्वालियर-के प्रधान मन्त्री दिनकररावने यहां अङ्गरेजी स्कूल खोलनेकी चेष्टा की थी, पर उन्हें सफलता प्राप्त न हुई। भूतपूर्व राजा वेङ्कटेशरमणके समय यहां वहुत-से स्कूल खोले गये। आज राज्य भरमें दो हाई स्कूल जो इलाहा वाद विश्वविद्यालयसे संयुक्त हैं, ५१ ग्राम्य स्कूल और २ वालिका स्कूल हैं। स्कूलके अलावा १७ अस्प-ताल हैं।

रेवा—वघेलखण्डके अन्तर्गत रेवाराज्यका प्रधान नगर। यह अक्षा० २४° ३२′ ३० तथा देशा० ८१° १८′ पू०के मध्य इलाहावादसे १३१ मील दक्षिण पश्चिममें अवस्थित है। जनसंख्या २५ हजारके करीव है। यह नगर तीन दुर्गप्राकारसे सुरक्षित है। अन्तिम प्राकारके मध्य रेवा राजका प्रासाद अवस्थित है।

रेवाउतन (हिं० पु०) हाथी। पुराने समयमें नर्मदाके किनारे हाथी वहुत पाये जाते थे।

रेवाकान्था (रेवा अर्थात् नर्मदाका कण्ठ वा किनारा)—वम्वई गवर्मेण्टके अधीन एक पोलिटिकल एजेन्सी। ६१ छोटे वड़े मित्र वा करद राज्य ले कर यह एजेन्सी वनी है। इन ६१ राज्योंमेंसे ३को कर नहीं देना पड़ता है, ५ वृटिश गवर्मेण्टके करद (इनमेंसे तीन वड़ौदा गायक-वाड़को कर देते हैं), १ उदयपुरके अधीन और वाकी वड़ौदाके गायकवाड़के अधीन करद हैं। ये सव राज्य अक्षा० २१° २३′ से २३° ३३′ ३० तथा देशा० ७३° ३′ से ७४° २०′ पू०के मध्य विस्तृत हैं। भूपरिमाण ४९७२ वर्गमील है। इसके उत्तरमें डूंगरपुर और वांसवाड़ाका मेवाड़ राज्य, पूर्वमें झालोद उपविभाग; पांचमहलका दोहद, खान्देश जिला और भूपावर एजेन्सीका अली राजपुर और वहुतसे छोटे छोटे सामन्त राज्य, दक्षिणमें वड़ौदाराज्य और सूरत जिला तथा पश्चिममें भरोंच, वड़ौदाराज्य, पांचमहल, खेड़ा और अहमदावाद जिला है। उत्तर दक्षिणमें इसकी लम्बाई १४० मील और पूर्व-पश्चिममें चौड़ाई १०से ५० मील है। इस भूभागके दक्षिण राजपिपला गिरिमाला और मध्यभागमें विन्ध्याद्रि प्रसारित है। यहां कई जगह खनिज पदार्थकी खान पाई जाती है। जंगलमें महुआ, महुगनी, शीशम, इमली, तरह तरहके आम, अर्जुन, वेत्र, खैर आदिके पेड़ पाये जाते हैं। जीव जन्तुओंमें वाघ, चीता, भालू, जंगली सूअर, शाम्भर हरिण, चित्रमृग, नील गाय और जंगली भैंस तथा पक्षिजातिमें नाना प्रकारका हंस, कारण्डव, तीतर और जलचर पक्षी देखा जाता है।

८वींसे १०वीं सदी तक रेवाकान्था कोल और भील-सरदारोंके शासनाधीन था। ११वीं, १२वीं और १३वीं सदीमें मुसलमान लोग जव राजपूत सरदारोंको वहुत तकलीफ देने लगे, तव वे यहां आये और कोल तथा भीलको परास्त कर उनके राज्य पर अधिकार कर वैठे। उनमेंसे राजपिपलाके राजा ही सर्वप्रधान थे। १६वीं सदीमें अहमदावादके सुलतानोंने रेवाकान्था पर अधिकार जमाया। १९वीं सदीमें इस भूभागमें मरहठोंका प्रभाव फैला था।

यहांके सरदारोंके कनिष्ठवंश कभी कभी नया राज्य अधिकार कर लेते थे। उन्हींके वंशधर अभी छोटे छोटे जमींदार कहलाते हैं। मराठोंके लूटपाटसे यह प्रदेश तंग तंग आ गया था। वड़ौदाके गायकवाड़ने जव इस ओर कुछ ध्यान न दिया, तव गवर्मेण्टने शान्तिस्थापनके लिये इस प्रदेशमें अपना हाथ वढ़ाया। १८२१ ई०में वृटिश गवर्मेण्टके साथ गायकवाड़की सन्धि हुई। इससे गायकवाड़के अधीनस्थ सभी करदराज्य वृटिश शासना-धीन हो गये। १८२५ ई०में पाण्डुमेवसके सरदार वृटिश गवर्मेण्टके अधीन हुए। इसी समय सिन्धियाके अधिकार भुक्त पांचमहलका राजनैतिक कर्तृत्व वृटिश गवर्मेण्ट के हाथ सौंपा गया। १८२६ ई०में रेवाकान्थाकी पोलि-टिकल एजेन्सी संगठित हुई। १८२९ ई०में वह एजेन्सी

उठा दी गई और सरदारोंके हाथ इसका शासनभार सौंपा गया। पीछे १८४२ ई०में फिरसे एजन्सी स्थापित हुई तथा सरदारोंका अधिकार निर्दिष्ट कर दिया गया। ६१ राज्योंमें राजपिपला ही सर्वप्रधान है और प्रथम श्रेणीका सरदार समझा जाता है। छोटा उदयपुर, बारिया, सुठ, लूनावाड़ा और बालासिनोर ये सब द्वितीय श्रेणीके हैं। इन्हें अपनी अपनी प्रजाको मृत्युदण्ड तक भी देनेका अधिकार है। बाकी ५५ राज्योंमें से एक अधीन २६, चतुर्थश्रेणीके अधीन २९, छोटेका अधीन ३ हैं तथा मिरकर कड़ाना और संजेली राज्य १५ श्रेणीके समझे जाते हैं।

रेवा एजेन्सीकी आय कुल मिला कर १२२४७०८ रु० है जिनमेंसे १४७८०१ रु० वार्षिक गायकवाड़को कर देना पड़ता है। इसमें २५१२ ग्राम लगते हैं। जनसंख्या ५ लाखके करीब है। सारी एजेन्सीमें ४ म्युनिसपलिटी, १७१ स्कूल १५ बालिका स्कूल, छः पुस्तकालय और १ छापाखाना है।

रेवापल—सौराष्ट्र सागर एक पहाड़का नाम।

रेवाड़ण्ड—बम्बईप्रेसिडेन्सीके कोलाबा जिलान्तर्गत एक नगर और वाणिज्य-बन्दर। यह अक्षा० १८ ३३´ उ० तथा देशा० ७२ ५७´ पू०के मध्य अलीबाग सदरसे ३ कोस दक्षिण-पूर्वमें अवस्थित है।

यहां पुर्तगीज जातिकी अनेक कीर्त्ति है। क्योंकि एक समय यह पुर्तगीजाधिकृत कोकणराज्यके मध्य अन्तिम उपनिवेश था। यहांका कोसिदुर्ग और नगर प्राचीर देखने लायक है। कोलाबाका नदी मुहानेके बन्दरमें नाव जहाज आदि रखे जा सकते हैं। यहांका जल प्रायः ३१ फुट गहरा है। शहरमें देशी कपड़ेका अच्छा कारबार चलता है।

रेवारी—पञ्जाबप्रदेशके गुड़गांव जिलान्तर्गत रेवारी नामक स्थानवासी वणिक जातिकी एक शाखा। ये लोग प्रधानतः सूती कपड़े बेचा करते हैं। गया नगरमें इन लोगोंका कुछ वास देखा जाता है। राजपूताना और हिन्दुस्तानके दूसरे दूसरे स्थानोंमें भी इन लोगोंका वास है। यहां ये लोग ऊंट, बकरे, भेड़े आदि पाल कर जीविकानिर्वाह करते हैं। अधिकांश मनुष्य हिन्दूधर्मावलम्बी हैं, कहीं कहीं इस्लाम धर्मावलम्बी रेवारी भी देखे जाते हैं। राजपूतानाके हिन्दू रेवारी बड़े चतुर तथा भट्टि अथवा डाकूलुओंकी तरह दुर्दान्त दस्यु हैं। ये लोग दूसरेके दल बांध कर विचरण करनेवाले ऊंट आदि पशुको इस प्रकार चुरा लेते हैं, कि उस ओर ध्यान करनेसे चमत्कृत होना पड़ता है। पहले उनमेंसे एक आदमी बड़ी तेजीसे पशुदलमें घुस कर उस पशुको बर्छी मारता है जिसकी नजर पहले उस पर पड़ जाती है। जब क्षतस्थानसे लहू निकलने लगता है तब वह बर्छेके मुंहमें कपड़ा बांध कर लहू पोंछ लेता है। पीछे वह लहूसे तराबोर कपड़ा ले कर घुमाता घुमा जाता है। लहूको गंधसे मोहित दूसरा पशु ज्यों ही उसका पीछा करता है त्यों ही सभी पशु उसके पीछे चलने लगते हैं। इस प्रकार ये उन सब पशुओंको किसी निभृत स्थानमें ले जा कर आपसमें बांट लेते हैं।

गुजरातके रेवारी अपने अपने ऊंट बकरे आदिको ले कर इधर उधर विचरण करते हैं तथा उनका दूध और पशम बेच कर गुजारा चलाते हैं।

रेवारी—पञ्जाबप्रदेशके गुड़गांव जिलेकी एक तहसील। यह अक्षा० २८ ५ से २८ २६´ उ० तथा देशा० ७६ १८ से ७६ ५२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण ४२६ वर्गमील है। इस जिलेके उत्तर पश्चिम पहाड़ी प्रदेश ले कर यह उपविभाग बना है। यहांकी मिट्टी बलुई होने पर भी स्थानीय अहीर अधिवासियोंके यत्नसे जमीन बहुत उर्वरा हो गई है। जयपुर नामक पहाड़से बहुत-सी छोटी छोटी नदियां इस उपविभागमें बहती हैं। उन नदियोंमेंसे सबसे और साहबी नदी ही प्रधान है। इसमें रेवारी नामक एक शहर और २६० ग्राम लगते हैं। जनसंख्या डेढ़ लाखसे ऊपर है। यह तहसील १८२४ ई०में वृटिश शासनाधीन हुई।

२ उक्त जिलेका एक नगर और तहसीलका विचार सदर। यह अक्षा० २८ १२ उ० तथा देशा० ७६ ३८ पू०के मध्य दिल्लीसे जयपुर जानेके रास्ते पर अवस्थित है। यहां दिल्ली फिरोजपुर और राजपूताना मालवा रेलवेका एक जंक्शन है।

यह नगर बहुत पुराना है। आज भी पावन बरतन

का कारवार यहांकी प्राचीन समृद्धिका परिचय देता है। अंगरेजोंके दखलमें आनेके बाद यह स्थान पहलेसे और भी उन्नत हो गया है। म्युनिस्पलिटीके अधीन रहनेके कारण यह स्थान बहुत साफ सुथरा दिखाई देता है। वर्त्तमान नगरके पूर्वप्राचीर पार्श्वमें बुधिरेवारी नामक स्थान ही प्राचीन रेवारी नगरके ध्वंसावशेषका निदर्शन है। यहांके लोगोंका कहना है, कि किसी समय राजा कर्मपालने इस नगरको बसाया था। राजा रेवने अपनी रेवती नामक कन्याके नाम पर इस नगरका नाम रखा। यहाके देशीय सामन्त राजोंने मुगलोंके जमानेमें प्रायः अर्द्ध स्वाधीन भावसे राज्य किया था। उन्होंने इस नगरप्रान्तवर्त्ती गोकानगढ़ नामक स्थानमें एक दुर्ग बनवाया। वह दुर्ग अभी भग्नावस्थामें होने पर भी उनकी राजशक्तिका परिचय देता है। वे लोग जो स्वाधीनभावसे राज्य कर गये हैं वह उनके चलाये सिक्केसे अच्छी तरह जाना जाता है। उन सब राजाओंका चलाया हुआ सिक्का आज भी गोलकसिक्का कहलाता है।

मुगल साम्राज्यके अधःपतनके बाद यह नगर पहले मराठोंके हाथ और पीछे भरतपुरके जाट राजाओंके हाथ लगा। १८०२ ई०में दिल्लीप्रदेश अंगरेजोंके हाथ आने तक यह भरतपुरराज्यके अधीन था। पीछे १८०५ ई०में रेवारी परगना जब अंगरेजोंके दखलमें आया उस समय इस नगरमें विचारसदर स्थापित हुआ था। १८१६ ई० तक सदरके निकटवर्त्ती भरावास नामक स्थानमें एक सेनानिवास और गोराबाजार खोला गया। उसके नसीराबाद उठ कर चले जानेसे स्थानीय विचारसदर भी गुरुगांव नगरमें चला गया था। अंगरेजोंके कठोर शासनसे डकैतोंका जो लोगोंको भय था वह जाता रहा। आसपासके सामन्त राज्योंसे दलके दल वणिक्गण यहां आ कर बस गये। धीरे धीरे नगरकी श्रीवृद्धि भी हो गई।

अङ्गरेजराजने १८०६ ई०में यह नगर भरतपुरराजके हाथसे छीन कर तेजसिंह नामक एक सरदारको इजारा दे दिया। उनके वंशधर सिपाहीविद्रोह तक पूर्ण प्रतापसे यहांका शासन करते रहे। किन्तु गृहविवाद, यथेच्छचारिता और अमितव्ययिता दोषसे इस सामन्त वंशकी महती क्षति हुई थी।

१८५७ ई०में विद्रोहवह्नि धधकते ही तेजसिंहके पौत्र राव तुलारामने स्वयं स्वाधीनतासे रेवारीका शासनभार ग्रहण किया। वे राजस्व संग्रह कर कमान ढालने लगे। थोड़े ही समयके मध्य उन्होंने सेनादल संग्रह कर दुर्द्धर्ष मेव जातिको वशीभूत कर लिया। सच पूछिये तो वे अङ्गरेजोंकी उपेक्षा करके ही ये सब काम किया करते थे। धीरे धीरे विद्रोहीदलमें शामिल हो कर उन्होंने अङ्गरेजोंका सर्वनाश करनेके लिये अपना आन्तरिक अभिलाष प्रकट किया। किन्तु वे अङ्गरेजोंसे डरते थे, इसमें संदेह नहीं। दिल्लीसे अङ्गरेजी सेना उनका दमन करनेके लिये जब आगे बढ़ी, तब वे और उनके भाई गोपालदेव अङ्गरेज-शिविरमें आ कर उनकी वश्यता स्वीकार न करके पलातक वेशमें इधर उधर आश्रय खोजने लगे। इसी अवस्थामें दोनों भाईकी मृत्यु हुई।

नगरभाग पार्श्ववर्त्ती समतल क्षेत्रकी अपेक्षा निम्न स्तरमें स्थापित है। इस कारण कभी कभी पहाड़ी नदियोंसे बाढ़का जल आ कर नगरको प्लावित कर देता है। १८७३ ई० साहबी नदीमें इतनी बाढ़ आई थी कि ७ मील दूर तकका स्थान डूब गया था। यहांका पथघाट परिष्कार परिच्छन्न है। नगरके दक्षिण पश्चिममें राव तेजसिंह द्वारा प्रतिष्ठित बड़ी दिग्गी है। उसमें पत्थरकी सीढ़ियां लगी हुई हैं। उसके चारों ओर देवमन्दिर हैं। नगरवासी उस दिग्गीमें स्नान कर प्रतिदिन देवमन्दिरादिके दर्शन करते हैं। दिग्गीके दो बगल बड़े बड़े उद्यान हैं। जनसाधारण प्रतिदिन वहां वायुसेवन करने आते हैं। रेल स्टेशनके पास ऐसी एक भी सुन्दर दिग्गी नहीं है। चारों ओर मसजिद भी शोभा देती है।

पीतल और रांगा धातुके पात्रादिके लिये यह स्थान मशहूर है। इसके सिवा यहां अच्छी अच्छी पगड़ी भी बनती है। राजपूतानेमें बहुत दूर तक रेलवे लाइन खुल जानेसे वाणिज्य व्यवसायमें बड़ी सुविधा हुई है। १८६७ ई०में यहां म्युनिस्पलिटी स्थापित हुई है। शहरमें विचार अदालत और राजकार्यालयके सिवा टाउनहाल, सराय, गवर्मेण्ट हाई स्कूल और अस्पताल है।

रेवास—बम्बईप्रदेशके कुलाबा जिलेके अलीबाग उप विभागके अन्तर्गत एक बन्दर। यह अक्षा० १८ ४० उ० तथा देशा० ७२ ५८´ पू०के मध्य अलीबागसे ५ कोस उत्तर-पूर्वमें अवस्थित है। यहाँ अधिकांश मत्स्य व्यवसायियोंका वास है। बम्बईसे यहाँ प्रति दिन स्टीमर आता जाता है। स्थानीय शस्यादिके वाणिज्यके लिये यह स्थान प्रसिद्ध है।

रेविन्यू (अं० पु०) किसी राजा या राज्यकी वार्षिक आय जो मालगुजारी, आबकारी, इनकम टैक्स, कस्टम ड्यूटी आदि करोंसे होती है।

रेविन्यू बोर्ड (अं० पु०) कर वसूल करने अफसरोंका वह बोर्ड या समिति जिसके अधीन किसी प्रदेशके राजस्व का प्रबन्ध और नियन्त्रण हो।

रेविलगञ्ज—सारन जिलेके अन्तर्गत एक नगर।

गोदना देखो।

रेवोत्तरम् (सं० पु०) एक वैदिक ऋषिका नाम।

(शत०ब्रा० १२।८।१।१७)

रेवोल्यूशन (अं० पु०) १ देश या राज्यकी शासन प्रणाली या सरकारमें आकस्मिक और भीषण परिवर्त्तन, राज्य विप्लव। २ समाजमें ऐसा उलट फेर या परिवर्त्तन जिससे पुराने संस्कार, आचार विचार राजनीति रूढ़ियों आदिका अस्तित्व न रहे, फेरफार।

रेवोल्यूशनरी (अं० वि०) १ राज्यक्रान्तिकारी, विप्लव पन्थी, रेवोल्यूशन सम्बन्धी।

रेशम—शहतूतके पेड़में जो नाना प्रकारके पीले रंग के रेंगनेवाले कीड़े पैदा होते हैं, उनके कोए या कोयों मेंसे जो महीन सूत से निकलते हैं, वही रेशम है। नाना प्रकारके रेशमके कीड़ोंसे रेशम पैदा किया जाता है। रेशमके कीड़े दो प्रकारके होते हैं—एक पालतू और दूसरे जंगली।

पालतू रेशमके कीड़े भी अनेक प्रकारके होते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—(१) विलायती कीड़े (Bombyx mori), (२) बड़े कीड़े (Bombyx textor), (३) निस्तारी, मद्राजी या कोमली कीड़े (Bombyx crocsi), (४) देशी या छोटे कीड़े (Bombyx fortunatus), (५) चीनाकीड़े (Bombyx sinensis) आदि। इनके अलावा आराकानी कीड़े (Bombyx arracanensis), आसामी कीड़े और मेदिनीपुरके कीड़े भी उल्लेखयोग्य हैं। आराकानी और आसामी कीड़े बड़े कीड़ोंमें शामिल हैं। मेदिनीपुरके कीड़े कुछ पीलेपनको लिये हुए होते हैं और उनके कोये सफेद होते हैं तथा आसामके कीड़े चीनी कीड़े की मेलमेल होते हैं। इन सब कीड़ोंकी गिनती पालतू कीड़ोंमें की जा सकती है।

जङ्गली रेशमके कीड़े भी नाना प्रकारके हैं, जिनमें थियोफिला (Theophyla) जातिके कीड़े ही काम लायक अच्छे कोये पैदा करते हैं। ओसिनारा (Ocunara), त्रिलोका (Triloch a) और इस्कीलिया ये तीन जातिके कीड़े पैदा करते हैं।

उपर्युक्त नाना प्रकारके रेशमी कीड़ोंके सिवा और भी कई जातिके कीड़े कोये पैदा करते हैं। उनमेंसे जिन कोयोंमेंसे अच्छा सूत निकलता है, उन्हींकी ज्यादा कदर की जाती है। जिन कोयों से अच्छा सूत निकलता उनके नाम ये हैं—

(१) विलायती कोया (Bombyx Lacyocampa otus), (२) संहार कोया, (३) आसामी मूगा (Antheraea assama) और तसरकोया (Antheraea mylytta) ये मुख्य हैं। इस प्रकार कताई करने लायक और भी अनेक प्रकारके कोये आविष्कृत हुए हैं। परन्तु ये इतने दुर्लभ हैं, कि जंगलोंमें खोज कर इससे रोजगार चलाना एक तरहसे असम्भव बात है।

जिन सब कोयों की कताई नहीं की जा सकती अर्थात् जिन कोयोंसे अच्छा सूत नहीं निकाला जा सकता, उनमेंसे अधिकांश चकाचक होते हैं। इस जातिके कोयोंमें रेड़ी के कोये (Attacus Ricini और Attacus atlas) ही सर्वोत्कृष्ट हैं। ये कीड़े अंडीके पत्ते खा कर कोए तैयार करते हैं। इनमेंसे अधिकांश अरण्डके प्रकारके और अधिकांश रिसिनोस अर्थात् अरण्ड न होके कोयेसे लगभग दश गुना रेशम पैदा करते हैं, परन्तु यह रेशम मूगाके रेशम अथवा गरद या अन्य रेशमके समान कोमल नहीं होते। Attacus cynthia नामक जो जंगली कीड़े पाये जाते हैं, वे गृहपालित रेड़ीके कीड़ोंकी ही एक जाति है।

कुकिउला (Cricula) जातीय निकृष्ट रेशमी कीड़े भारत के नाना स्थानोंमें पाये जाते हैं। राचीकी तरफ इसका सूत व्यवहृत होता है। इसके अलावा और भी सैकड़ों प्रकारके कीड़े हैं, जिनका रेशम काममें नहीं आता। फ्रान्समें नासपाती फलके पेड़ोंमें एक प्रकारकी मकड़ी होती है, जो रेशम पैदा करती है। उसके कोयेनेसे रेशम निकाल कर उससे छोटे छोटे कपड़े बनाये जा सकते हैं। परन्तु वह व्यवसाय उपयुक्त कदापि नहीं हो सकते।

पालतू रेशमी कीड़ोंमें पेटके बल रेंगनेवाले बड़े कीड़े ही अच्छे समझे जाते हैं। बहुतोंका ऐसा विश्वास है, कि पहले पहल ये कीड़े मणिपुरसे इस देशमें आये थे। जंगली कोयोंमें विलायती कोये सबसे श्रेष्ठ होते हैं। जो कीड़े इन कोयोंको बनाते हैं, वे कोयारकस आइलेक्स नामक पेड़की पत्तियां खाते हैं। जितने प्रकारके भी विलायती कोये हैं, वे सब कभी न कभी चीन देशसे ही विलायतमें गये हैं।

यह बात पहले ही कही जा चुकी है, कि बंगालमें जितने भी प्रकारके कीड़े होते हैं, उनमें बड़े कीड़े ही सबसे श्रेष्ठ हैं। मुर्शिदाबाद, वीरभूम, मालदह आदि जिलोंमें कीड़े पैदा करनेके लिये विस्तृत तूंतकी खेती होती है। बंगालमें किस प्रकार तूंतकी खेती होती है, यहां संक्षेपमें उसका विवरण लिखा जाता है।

तूँतकी खेती।

शीतकालमें फावड़ेसे एक एक हाथ गहरी जमीन खोद कर छोड़ देनी चाहिए। वैशाख तक यों ही छोड़ देनेके बाद वर्षा होते ही उसमें दो बार खेती करनी चाहिए। ज्येष्ठ, आषाढ़ और श्रावण मासमें भी एक बार खेती करनी चाहिए। वर्षाका अन्त होने पर जमीनमें हल जोतना चाहिए और फिर पटेला चला कर जमीन बराबर कर देनी चाहिए। इस प्रकार जोतनेसे जमीन उमदा हो जाती है। इसके बाद रस्सी डाल कर लाइन ठीक करके एक हाथके फासलेसे ज़मीन खोदनी चाहिए। फिर उन खुदे हुए स्थानोंमें छोटी छोटी एक एक डाली गाड़ देनी चाहिए।

माघ फाल्गुनमें डाली लगाना हो, तो अगहनमें ज़मीन खोदना और पौष मासमें जोतना समाप्त कर देना चाहिए। पीछे डाली लगानी चाहिए। मुर्शिदाबादकी तरफ आश्विन कार्त्तिक मासमें और मेदिनीपुरकी तरफ माघ फाल्गुन मासमें डाली लगाई जाती है। ये डालियां पकी अथवा अंगुलिके समान पतली पतली होनी चाहिए। काटनेके बाद एक मास तक छायामें रख कर तीसरे चौथे दिन उनमें पानी देते रहना चाहिए। हर एक जमीनमें तूंतकी पैदावारी हो सकती है। परन्तु जमीन अच्छी तरह जोती जाय, तभी पौधे जल्दी और खूब बढ़ते हैं। डाली लगानेके बाद जब पौधे ठीक पंक्तिवार हो ५।६ अंगुल ऊंचे हो जायं, तब एक दफे खुरपेसे उन्हें हिला देना चाहिए। अढ़ाई महीने बाद ही ये पौधे १—१॥ हाथ उंचे हो जायंगे। इस समय उनकी पत्तियां बहुत ही नरम और पतली होती हैं। ये पत्तियाँ अगर रेशमी कीड़ेको शैशवावस्थामें दी जायें, तो कीड़ेको रसा नामक एक प्रकारका रोग उत्पन्न हो जाता है। इस कारण उस समय पौधोंको एक बार जड़से छांट कर बीचके स्थानमें हल चलाना चाहिए। उसके बाद नये पौधे निकलेंगे, जो कि प्रथम कीड़ोंके पालनेमें काम आते हैं।

तूंतके खेतके लिए ताल या नालोंकी मिट्टीका अच्छा सार समझा जाता है। नीलकी सिटी प्रत्येक बीघामें पांच गाड़ी, सड़े गोबरका सार प्रत्येक बीघामें १० गाड़ी, कीड़ोंकी सड़ी मेंगनी प्रत्येक बीघामें दो गाड़ी, सोरा प्रत्येक बीघामें आध मन—इस प्रकारका सार ही तूंतकी खेतीके लिये अच्छा होता है। सारके बिना तूंतकी आबादीमें तेज नहीं रहता। इसके सिवा और भी कई तरहकी व्यवस्थाएं हैं। तूंतकी जमीनमें अकसर पानी नहीं दिया जाता। जहां पानी देनेकी सुविधा प्राप्त है, वहां पानी सींचनेसे वर्षमें दो बारसे ज्यादे पत्ते नहीं काटे जा सकते। अर्थात् अगहन, चैत, भाद्र और आषाढ़—इन चार महीनोंमें चार बार पत्ते छांट कर कीड़े पाले जाते हैं। पश्चात् माघी और वैशाखी कीड़े पालनेकी प्रथा भी कहीं कहीं पाई जाती है। काफी तौरसे आबाद करनेसे दो वर्ष बाद प्रत्येक बीघामें १ सौ मन पत्ते हो सकते हैं। कीड़ोंको १०० मन पत्ते

खिलानेसे पाँच मनके लगभग कोये पैदा हो सकते हैं। बीजके उपयुक्त कोये होने पर दो रुपये सेर बिक जाते हैं। अर्थात् २५) रु० खर्च करके एक बीघा जमीनमें १ वर्षमें १००) से ४००) रुपये तकके कोये प्राप्त हो सकते हैं। इस देशमें साधारण किसान जिस ढंगसे खेती करते हैं, उसमें खर्च कुछ ज्यादा पड़ता है। परन्तु यदि तूतके पेड़ोंको बड़ा होने दिया जाय, तो फिर आबादीमें खर्च नहीं होता। अन्यान्य देशोंमें बड़े पौधोंकी पत्तियां खिला कर रेशमके कीड़े पाले जाते हैं। इस कारण इस देशकी अपेक्षा अन्य देशोंके रेशमके कोये सस्ते पड़ते हैं। यहां पर भी अन्य देशोंकी तरह बड़े तूतके पौधे पैदा करने चाहिए। पेड़को बड़ा करनेके लिए चार पाँच वर्ष तक उसके पत्ते खर्च न करने चाहिए। फिर पाँच वर्ष बाद पेड़ व्यवहारोपयोगी हो जाता है। परन्तु किसानोंके लिये ऐसा करना कठिन ही है। जमींदारोंको इस विषयमें ध्यान देना चाहिए। इनसे जमींदारोंको यथेष्ट लाभकी सम्भावना है।

सब तरहके तूतके पेड़ कीड़ोंके लिये उपयोगी नहीं होते। बड़े बड़े काले फल देनेवाले जो पेड़ होते हैं, उससे कीड़ोंको सुविधा नहीं होती। पेड़के फल देने वाले छोटे कीड़े इस पेड़की पत्तियां खा कर अकसर फ्लासिया रोगसे मर जाया करते हैं। हां दूसरी जातिके कीड़े इसकी पत्तियां खा कर बहुत थोड़ा रेशम बनाते हैं। छोटे कीड़े बङ्गालके देशी शहतूतके सिवा अन्य किसी तूतकी पत्तियां खा कर काफी और पर कोये नहीं बना सकते। बिलायती तूत, चीनी तूत फिलिपाइन तूत आदि कुछ अंग्रेजी तूतके पेड़ बड़े होते हैं। इनकी पत्तियां खा कर कीड़े उत्तम कोये बनाते हैं। बोनेका समय उपस्थित होने पर एक बोतलमें कपूरके पानीमें दो घंटे तक तूतका बीज भिगो देना चाहिये। दो घंटे बाद बोतलमेंसे बीज निकाल कर फिर उसे बोना चाहिए। इस प्रकार बीज बोनेसे शीघ्र ही अंकुर निकलता है। साधारणतः पौधेकी छोटी छोटी डाली काट कर यही लगाई जाती है।

रेशम-कीड़ेका विवरण।

ऊपरमें छोटा पिल्लू या देशी पिल्लू, चन्ना कनारी या मद्राजी पिल्लू, चीना और बुलु बड़ा पिल्लू इन पाँच प्रकारके रेशमके कीड़ोंका उल्लेख किया जा चुका है। इनमेंसे चीना बुलु और बड़ा पिल्लू मेदिनीपुर जिलेमें ही बहुतायतसे देखा जाता है। मुर्शिदाबाद और बीरभूम जिलेमें भी चीना बहुत पाया जाता है। यह कीड़ा साल भरमें सिर्फ एक बार पैदा होता है। इसका कोया सुन्दर, सफेद और बड़ा होता है। बड़े पिल्लू का रेशम सबसे अच्छा होता है। दुःखका विषय है, कि बड़े पिल्लूका कोया बनाना प्रायः उठ सा गया है। और इसके रेशमकी रफ्तनी भी बन्द हो गई है। बड़े पिल्लूसे जो कुछ रेशम पाया जाता है उसे देशी तांती अधिक मोलका कपड़ा बनानेके लिये खरीद रखते हैं। मेदिनीपुर अञ्चलमें सफेद, लाल, सब्ज और पीले रंगके बड़े पिल्लू देखे जाते हैं। बड़े पिल्लूकी प्रजापति चौदहसौ अंडा देती है। एक महीनेमें उस अंडेमेंसे कीड़े बाहर निकलते हैं।

बङ्गाल देशमें लोग पिल्लूको पालनेके लिये उपयुक्त घर बना रखते हैं। यह घर मिट्टीके बने होते हैं, कोई कोई उत्तम पैसा दे कर भी घर तैयार करता है। वह घर इस प्रकार बनाना चाहिये कि उसमें जाड़ा या गर्मी घुस न सके। घरमें एक बड़ा दरवाजा और ऊपरकी ओर एक या दो झरोखे रहना आवश्यक है। घरमें किसी ओरसे मक्खी न आ सके इस पर विशेष ध्यान रहे। इसके लिए झरोखे और दरवाजेके ऊपर दो चीक लटका देना उचित है। जिस समय मक्खियोंका अधिक उपद्रव रहे उस समय विशेष सावधानी की जरूरत है। जिस ऋतुमें अकसर जिस मुखसे हवा बहती है उसके विपरीत मुखवाले घरमें पिल्लू पालना उचित है। पिल्लू जब कोयेको काट कर प्रजापतिरूपमें बाहर निकलता है, तब बच्चोत्पादनके लायक होता है। प्रजापति कोयेसे बाहर निकल कर ही स्त्री-पुरुषमें संगत होता है। दो एक दिनके भीतर ही अंडा पारता है। एक एक प्रजापति ४५ सौ छोटे छोटे अंडे देती है। अंडे देनेके बाद ही कापजीविगण प्रजापतिको मार कर घरसे निकाल देते हैं। सभी अंडे काममें आते हैं सो नहीं। कुछ अंडे तो फूटते ही नहीं, कुछ अंडोंके मरते वा

जाते हैं, कुछ टिकटिकिया और चूहेका भाजन हो जाता है। इस प्रकार जो बच जाता है उनमें भी सभी प्रजापतिके अंडेमें समान कोया नहीं होता। बड़े पिल्लूके सिर्फ चार प्रजापतिके अंडोंसे, निस्तारी पिल्लूके छःसे तथा छोटे पिल्लूके दश प्रजापतिके अंडोंसे एक सेर कोया हो सकता है।

शहतूतका पत्ता ही पिल्लूका जीवन है। अंडेसे जब पिल्लू निकलेंगे, तब डेढ़ मन कोयेका पिल्लू बड़े टोकरेके आधेमें रहेगा। डेढ़ मन कोया बनानेमें ४० बड़े बड़े टोकरेकी जरूरत होती है। प्रत्येक टोकरा अन्दाज ४ हाथ लम्बा और ३ हाथ चौड़ा रहेगा। यदि वह टोकरा गोल हो, तो उसका घेरा ३॥ हाथ होना उचित है। टोकरा छोटा होने पर परिश्रम भी अधिक लगता है। टोकरेमें पिल्लूको अलग अलग रखना चाहिये। इस समय शहतूतके जितने पत्ते टोकरेमें डाले जायेंगे, उतने ही पिल्लू बढ़ेंगे। ३० दिन पत्तोंको खा कर वे प्रायः १०० गुने स्थान छेंक लेते हैं। उन ३० दिनोंके मध्य पिल्लू ४ बार खोल छोड़ता है। एक एक खोल छोड़नेके बाद पिल्लू प्रायः ३ गुना बढ़ जाता है। अर्थात् जो पिल्लू पहले आधे टोकरेमें रहते हैं, काया-कल्प छोड़नेके बाद उन्हें डेढ़ टोकरेमें रखना होगा। दो कल्पके बाद ४॥ टोकरेमें, तीन कल्पके बाद १३ टोकरेमें और अन्तिम काया कल्प छोड़नेके बाद ४० टोकरोंमें उन्हें रखना होगा।

जाड़ेके समय ३० टोकरोंमें भी १॥ मन कोया तैयार होने लायक पिल्लू रखे जा सकते हैं। डेढ़ मन कोया तैयार करनेके लिये ३० मन शहतूतके पत्तोंकी जरूरत होती है। यदि पत्ता अधिक हो जाय, तो कोई क्षति नहीं किन्तु उसमें खिंचाव पड़नेसे भारी नुकसान होता है। डेढ़ मन कोयेके लिये बड़े पिल्लूकी १५० चोकड़ीके अंडे, निस्तारीकी २५० चोकड़ीके अंडे और छोटे पिल्लूकी ४०० चोकड़ीके अंडे रखने होते हैं। जिस देशमें पत्ते अधिक मिलते हैं वहां इससे दूने अंडे रखनेमें भी कोई नुकसान नहीं। मुर्शिदाबादके लोग समझते हैं, कि ५०० निस्तारीकी चोकड़ीके या छोटे पिल्लूकी ८०० चोकड़ीके अंडोंसे १॥ मन कोया निकाल सकें, तो काफी है। अंडोंके बदले कोया ला कर यदि अंडे दिलवाने हो, तो जितनी चोकड़ी कही गई है, उससे दूने कोयेकी जरूरत होगी। जिस देशमें शहतूतके पत्तोंका अभाव है वहां डेढ़ मन कोया बनानेके लिये ५०० निस्तारी कोयेके अंडोंकी आवश्यकता होती है।

पहले जो ४० टोकरोंकी बात लिखी गई है उन्हें ढकनेके लिये ८० पोठिया मछली पकड़नेके जालके समान मापसई जालकी जरूरत होती है। पिल्लूके ऊपर जाल बिछा कर उस जाल पर ताजी पत्तियां बिछा देनेसे पिल्लू नीचेकी मैली पत्तियोंसे निकल ऊपरकी ताजी पत्तियां खाने आता है। तीन बार पत्तियां देनेके बाद पिल्लू समेत जालको एक दूसरे टोकरेमें रखना होता है तथा जिस टोकरेमें पहले पिल्लू था, उसकी मैल घरके बाहर ला कर साफ करनी होती है। दूसरे टोकरेके ऊपर जो पिल्लू रखा गया, उस पर भी एक जाल बिछा कर ताजी पत्तियां देनी होंगी। तीन बार पत्ते देनेके बाद अर्थात् एक दिनके बाद फिर ऊपरके जालके साथ पिल्लूको दूसरे टोकरेमें रखे और नीचेके जाल तथा टोकरेको बाहर ला कर मैल साफ करे। इस प्रकार प्रत्येक टोकरेके लिये कमसे कम दो जालकी आवश्यकता होती है।

दूसरे टोकरेके ऊपर पिल्लूकी संख्या यदि अधिक रहे, तो उन्हें दूसरे टोकरेमें रखना होता है। यदि देखा जाय, कि बहुतसे पिल्लू मैली पत्तियों पर निश्चलभावसे पड़े हैं, ऊपर उठने नहीं पाते, तब जानना चाहिये, कि वे कायाकल्प छोड़ते हैं। यदि कीड़े ऊपर चढ़ आवें, तो जाल न दे कर केवल पत्तियां देनी होंगी। पिल्लूका घर अधिक ठंढा होने पर और भी दो एक बार पत्ता खा कर वे रह सकते हैं। जाल उठा लेनेके बाद यदि नीचे थोड़े पिल्लू पड़े देखे जायं, तो उन्हें खूंटी द्वारा ऊपर चढ़ा कर ऊपरवाले पिल्लूमें मिला दे। बाद उस पर जाल बिछा कर पत्तियां दे दें।

पिल्लू जब बहुत छोटे रहते हैं, तब पत्तियोंको बहुत बारीक करके उन पर बिछा देना चाहिये। कीड़ेका आकार ज्यों ज्यों बढ़ता जायगा, त्यों त्यों पत्तीका टुकड़ा बढ़ाते जाना चाहिये। दो काया कल्पके बाद बहुत बारीक डालियां तथा कोमल पत्तियां दी जा सकती

हैं। पिल्लूको पहले मुलायम पीछे कड़ी पत्तियां देनी चाहिये।

पहले जो कीड़ा निकलता है, उसे रूखी और उसके बाद निकले हुए कीड़ेको यदि मुलायम पत्ती खानेको दी जाय, तो रसा नामक एक प्रकारका रोग होता है।

विलायती कीड़ोंके अंडे अलग ही पाये जाते हैं। बड़े कीड़ेके अंडे कपड़ेके ऊपर लगे रहते हैं। देशी कीड़ेके अंडे टोकरे पर कागजके ऊपर पारे जाते हैं। तूतियाक जातमें अंडे पी लेने होते हैं। अंडा जिस घरमें रहता है वह घर न अधिक ठंढा रहे और न गरम। छोटा पिल्लू निस्तारी, मीना और बूल इन सब पिल्लुओंका शीतग्रीष्ममें उतना नुकसान नहीं होता। छोटे पिल्लू निस्तारी अधिक अंडे फूटने पर उसके ऊपर छोटी छोटी पत्तियां काट कर बिछा देनी चाहिये। क्योंकि सबेरेसे शाम तक पिल्लू अंडेसे निकल आते हैं, इसलिये उस पर पत्तोंका बिछा रहना जरूरी है। अच्छे अंडेको अच्छी तरह रखनेसे दो ही दिनमें वे निकल आते हैं। पहले दिनके कीड़ेको नीचे और दूसरे दिनके कीड़ेको ऊपर रखना होता है। प्रतिदिन सबेरे, दोपहर और रातको ४ बजे पत्ता देना होता है। एक दिनके अन्तर पर दो पहरके समय पत्ता देना चाहिये। पीछे जाल दे कर टोकरेके परिवर्तन और पिल्लूके बड़े होनेसे पत्तोंका परिमाण घटा देना चाहिये। पिल्लू जब अंडेसे निकलता है, तब २३ या २४ दिनमें पत्ता खाने लगता है और कोया तैयार करता है। उस समय मूल पिल्लूको प्रतिदिन चार पांच बार पत्ता देनेसे १८।१६ दिनके मध्य पत्ता खा कर कोया तैयार कर सकता है। जाड़ेके समय अकसर ३०।४० दिनमें, किन्तु घर गरम रखनेसे २४।२५ दिनमें भी कोया तय्यार हो सकता है। पिल्लूके घरमें बहुत सावधानीसे और धीरे धीरे झाड़ देना होता है। धूल उड़नेसे पिल्लूके कालशिरा नामक रोग होता है।

पिल्लूका रोग।

पिल्लूके तरह तरहके रोग होते हैं। उनमेंसे कटारोग ही बहुत कुछ संक्रामक है। परीक्षा कर देखा गया है, कि एक घरमें एक जगह १२ जातिका पिल्लू पाला जाता है। उनमें ११ जातिका पिल्लू विशुद्ध बीजसे और केवल एक जातिका पिल्लू कटारोगयुक्त बीजसे उत्पन्न होता है। इन बारह जातिके पिल्लुओंमें थोड़े ही समयके अन्दर रेंड़ीके पिल्लू और शहतूत पेड़के पिल्लूको छोड़ कर दूसरे सभी पिल्लू एकदम संसर्गसे कटारोगाक्रान्त हुए थे। अतएव रोगी पिल्लूको अच्छे पिल्लूके साथ नहीं रखना चाहिये। कालशिरा और रसारोगकी बात पहले ही लिखी जा चुकी है। नाना जातिके पिल्लू एक ही छोटे घरमें रखे देखे गये हैं। जो छोटा पिल्लू जितना जल्द रोगाक्रान्त होता है, निस्तारी पिल्लू उतना जल्द नहीं होता। फिर निस्तारी पिल्लू जितनी आसानीसे बीमार पड़ता है, बड़ा पिल्लू उतनी आसानीसे नहीं पड़ता। ग्रामपालित पिल्लू विशुद्ध वायु सेवन द्वारा सहजमें वैसे रोगग्रस्त नहीं होते। पालतू पिल्लूकी अपेक्षा जङ्गली पिल्लू स्वभावतः बड़ा और बलिष्ठ होते हैं। फिर कोई कोई पालतू पिल्लू जङ्गली पिल्लूकी तरह देखनेमें लगते हैं। फ्रान्स देशमें मरिको वा कम्फो नामक एक प्रकारका पिल्लू देखा जाता है। यह घोर काला और बहुत बलवान होता है। एशिया-माइनरके स्मर्ना नगरके समीप बुर्नाबत् ग्राममें पिल्लूके बीजका एक बड़ा कारखाना है। उस कारखानेमें पिल्लूके शरीरमें जिब्राकी तरह काला काला दाग देखा जाता है। इस जातिका पिल्लू बड़ा बलवान और सहजमें रोगाक्रान्त नहीं होता। घरके भीतर पिल्लूका पालन ही पिल्लूके रोगका कारण है। प्रत्येक घरमें १६।१७ टोकरे न रख कर केवल ८।१० टोकरे रखनेसे तथा प्रत्येक टोकरेमें २।३ कार्षापण न रख कर डेढ़ या दो कार्षापण रखनेसे पिल्लू नीरोग और सबल रह सकता है। उपरोक्त कटा (*Pebrine*) सरा (Grasserie) और कालशिरा (Flacherie) रोगको छोड़ कर चूना या छींट (Muscardine), लाली या लाड़ी, माछी, कोयाकाटा कीड़ा या काल कुकुर और सारे कीड़ा, पाजला कोया, अबल कोया वा गेंडे कोया आदि रोग होता है तथा पिपीलिका मकड़े, टिकटिकी आदिका उत्पात पिल्लूका अनिष्टकर है।

१८४९ ई०में गेजमिल साहबने सबसे पहले कटारोगका बीज आविष्कार किया। किन्तु उस समय उन्होंने

इसको चूनारोगका बीज समझा था। पीछे १८६५ ६६ ई०में पास्तुर साहबने विशेष परीक्षा द्वारा उसे चूनारोग-का बीज न बता कर कटारोगको बीज साबित कर दिखाया। किन्तु बंगालके रेशमजीविगण बहुत पहलेसे कटा और चूनरोगको भिन्न भिन्न समझते थे। कटारोगका वाह्यलक्षण यूरोपमें और बङ्गालमें एक सा नहीं है। बंगालमें साधारणतः निम्न प्रकारका लक्षण देखा जाता है—

१। अंडे फूटनेके समय ३० दिनके बाद हठात् बहुसंख्यक पिल्लूका प्राणनाश।

२। मृत्युसे पहले कीडेका वर्ण कटा और स्वच्छ।

३। आकारमें छोटा होता है अथवा नियमित पालन करने पर भी छोटा बड़ा दिखाई देता है। बङ्गालमें कीड़े-का रंग वाह्यलक्षणमें जैसा कटा होता है, विलायतमें वैसा ही कीड़के वाह्यशरीरमें गोलमिर्चके चूरकी तरह छोटा छोटा काला दाग दिखाई देता है। किन्तु अणुवीक्षण द्वारा देखनेसे दोनों स्थानके रोगोंके वीजमें पृथकता नहीं मालूम होती।

विलायत और अन्यान्य देशोंमें जहां सालमें सिर्फ एक बार कीडे होते हैं, वहा आसानीसे कटारोग दमन किया जा सकता है। क्योंकि, वहां अंडे १० महीनेके भीतर नही फूटते, जिससे परीक्षा करनेका काफी समय मिल जाता है। किन्तु बङ्गालमें ८ से १५ दिनके मध्य ही फूट जाता है इस कारण परीक्षाका समय नहीं रहता। कटारोगमें भी फिर तारतम्य है। यदि चोकड़ी या प्रजापतिके परीक्षाकालमें सैकडे पीछे ८०।६० मेंसे हर एकमें यदि कटारोगके अनेक वीज देखे जायं, तो उस प्रजापतिके अंडेसे कभी भी कीडे नहीं हो सकता। फिर यदि उनमें २।४ कटाके वीज दिखाई दें, तो चोकड़ीके अंडेसे कोया हो भी सकता है और नहीं भी हो सकता है। यही कटारोग चूना, रसा, कालशिरा और लाली आदि रोगोंको सहायता पहुचाता है। इस कारण अणुवीक्षणयन्त्रके द्वारा परीक्षा कर सबसे पहले कटाका प्रतीकार करना उचित है। किस प्रकार कहासे निर्दोष कीड़ामें, कटा-रोग आता है, उसे कोई भी नहीं कह सकता। इसलिये जहा जहा वीजका कारखाना है वह वहां अणुवीक्षण-यन्त्र रखना आवश्यक है। विना परीक्षा किये एक भी चोकड़ी कारखानेमें पालना उचित नहीं। प्रत्येक बार परीक्षा करके अंडे रखना आवश्यक है। कटाका वीज क्या है उसका भी आज तक पता नहीं चला है। फिर कटाके वीचमें जो बहुत वारीक विन्दु दिखाई देता है वही कटाका वीजाणु है। यह वीजाणु दीर्घजीवी है। सात आठ महीने तक नष्ट नहीं होता। चोकडी और कोयामें ही वोजाणु बहुतायतसे रहता है। इस कारण कीडके पक जाने पर उन्हें चन्द्रकीमें रख कुछ दूर दूसरे घरमें रखना उचित है। चोकड़ीकी कटाई, अणुवी-क्षणिक परीक्षा और कोया मजबूत रखना, यह सब क्रिया घरसे कुछ दूर दूसरे घरमें करनी चाहिये। रेशम कटाई करनेमें कोयाको सिद्ध करना होता है, क्या कटा, क्या चूना, क्या कालशिरा इन सब रोगोंके वीजाणु ५।७ मिनटमें जलमें सिद्ध हो कर मर जाते हैं।

सावधान रहनेके लिये निर्वाचनके बाद कीड़ेका घर वीजसे भिन्न होना उचित है। वीज जिस घरमें रखा जाता है वहा चूहे तथा दूसरे जंतुका उपद्रव हो सकता है। टोकरेके कोयेको चूहे वा चिउंटी न खा सके इसके लिये कीडके घरमें जैसा बन्दोबस्त रहता है वीजके घरमें भी वैसा ही वन्दोवस्त रखना उचित है। कटारोगकी परीक्षा करनेमें जिस दिन चोकड़ी ढक कर रखी जाती है उसके पाच दिन बाद परीक्षा शुरू करनी होती है। परीक्षाके समय जो वीजाणु पूर्ण अवयवको प्राप्त हुए हैं उन्हें चुन लेना होगा। काल-शिराके वीज, रसाके दाने और चूनेके वीजकी ओर कुछ ध्यान नहीं देना होगा। कटा-वीजकी परीक्षा बहुत सहज है। अभ्यास हो जानेसे प्रतिदिन ३०० चोकड़ीकी परीक्षा हो सकती है। कटारोगका वीज पकने पर अनु-वीक्षणयन्त्र द्वारा ६०० गुना बढ़ कर ठीक तिलके जैसा दिखाई देता है। उस वीजको पकनेमें १०से २० दिन लगता है। किंतु उसके साथ यदि कालशिरा रहे, तो १० दिनके भीतर ही कटा वीज पक जाता है। अंडेके दोषसे कटा रोग होता है सो नही, टोकरेमें, घरमें, चंद्रकी-

में, खास कर गर्मीके दिनोंमें, यहां तक विशुद्ध अंडेमें भी कटा रोग हो सकता है। इस कारण परीक्षित अंडे और घर तथा टोकरे आदिको तूतियाके जलमें धो कर कीड़ा पालना उचित है। कीड़ेके अंडेसे निकलनेके पहले चन्द्रकीको इकट्ठा कर उसमें भी तूतियेका जल देना चाहिये। कटारोग खास कर शीतकालमें ही दिखाई देता है। दूसरे समय कटारोगका बीज कीड़ेके मध्य प्रच्छन्नभावमें रह कर अन्यान्य रोग उत्पन्न करता है। जिस अंडेमें कटारोग नहीं है उस अंडेका कीड़ा पोसनेसे अन्यान्य रोग नहीं होता। कटायुक्त बीजसे कीड़ा यदि २५ दिनके अन्दर पक जाय, तो कुछ कोया पाया जा सकता है।

चूनारोग होने पर अनेक समय अत्यन्त जला कर उसे दूर करना होता है। पलु अवस्थामें ही चूनारोगका बीज कीड़ेके शरीरमें उत्पन्न होता है। यह रोग सबसे अधिक संक्रामक है। कटारोग जिस प्रकार कोया उत्पन्न होनेके बाद ही दिखाई पड़ता है, चूनारोग उस प्रकार दिखाई नहीं देता। पहले पहल जिस दिन कतारके मध्य २।१ कीड़ा दिखाई देगा उसी दिन सभी टोकरेका मैल अच्छी तरह साफ कर देना उचित है। किसी टोकरेमें मरा हुआ कीड़ा रहने न पावे, इस पर विशेष ध्यान रहे। प्रथम दिन मैल साफ करनेके बाद ही कीड़ेके घरमें पत्ता न दे कर तूतियेका जल छिड़क देना उचित है। आध सेर गंधक जला कर दरवाजा झरोखा ४।५ घंटे तक बंद रखना चाहिये। पीछे शहतूतका पत्ता देनेसे चूनारोग नष्ट होता है।

चूनारोगके बाद ही रसारोग कीड़ेके पक्षमें अनिष्टकर है। यूरोपमें रसारोगसे कीड़ेका उतना नुकसान नहीं होता। इस कारण यूरोपीय रेशमतत्त्वविदोंने इस सम्बन्धमें कोई आलोचना न की। रसारोग क्यों होता है यह भी यूरोपमें किसीको मालूम नहीं। किन्तु इस देशमें कभी कभी रसारोगसे सभी कीड़े मर जाते हैं। इस कारण इस देशके रेशमव्यापारियोंने रसारोगके सम्बन्ध अच्छी तरह ज्ञान रखे हैं। यहां अगहनसे बैशाख तक प्रायः अनावृष्टिके कारण वायु खूब सूखी रहती है। ४।५ मास वृष्टि न हो कर यदि हठात् एक दिन अत्यन्त वृष्टि हो जाय, तो सभी कीड़े रसासे मर जाते हैं। फिर चार कोया-बन्ध होनेके समय यदि एक भी कीड़े न मरे, तो पकनेके समय २।४ कीड़ेमें रसारोग होता है। पकनेके समय इस प्रकार यूरोपमें भी दो चारको रसारोग होते देखा जाता है। अधिक दिन वृष्टि न हो कर यदि एक दिन हठात् वृष्टि हो जाय, तो कीड़ेको बड़े शहतूतके पेड़की पत्तियां देनेसे रसारोग नहीं होता। रेशमके पिलूको पत्ता देनेके समय कोमल पत्तोंको न दे कर कड़ा पत्ता देनेसे भी उस कीड़ेमें रसा होनेकी सम्भावना नहीं रहती। इस कारण रेशमकी खेती करनेवालोंको बड़ा शहतूतका पेड़ रखना आवश्यक है। रेशमके कीड़ेको छायास्थानका पत्ता खिलानेसे रसा, छाकी और कालशिरा, ये तीनों ही प्रकारके रोग होते हैं। जिन सब कारणोंसे रसा होता है, उनसे कालशिरा रोग भी हो सकता है। इस कारण यूरोपके पण्डित जो दोनों रोगको एक बतलाते हैं सो उनकी भूल है। रसा संक्रामक नहीं है, कालशिरा ही संक्रामक है।

बङ्गालमें आठसे पन्द्रह दिनके मध्य अंडे फूटते हैं, इस कारण वन कीड़ेके सिवा दूसरे कीड़ेका अंडा सिझाया नहीं जा सकता। किन्तु विलायतमें १० मास तक अंडेका संग्रह कर रखना होता है। इस समय अंडेका रस नहीं घटनेसे यह सिझाया जा सकता है। यहाँ धूप और वायुमें भी सुखाया जा सकता है। ऐसे दूषित अंडोंसे जो कीड़ा होता है उसमें अकसर कालशिरा रोगकी उत्पत्ति हुआ करती है। किन्तु उन्हें सावधानीसे रखने अर्थात् तूतियाके जलमें धो देनेसे कालशिरा रोग नहीं हो सकता। परिपाकयन्त्रकी ह्रास, आंतमें रसाधिक्य या दुष्पाच्य पत्तेका खाना तथा चमड़ेसे वाष्प निकलनेमें बाधा होनेसे कीड़ेके अन्तमें कालशिराका बीजाणु उत्पन्न होता है। फिर शहतूतके पत्तोंको उसमें भिगो रखनेसे भी कालशिराका अणु उत्पन्न होता है। कीड़ेको कालशिरा हुआ है या नहीं, इसका पता लगानेके लिये उसकी आंतके रसको अणुवीक्षणयन्त्र द्वारा परीक्षा करना उचित है। यदि आंतके रसमें कालशिराका अणु रहे, तो कालशिरा नहीं हुआ है और यदि अणु

रहे, तो कालशिरा निश्चय हुआ है ऐसा जानना होगा। किसीका कहना है, कि कालशिरा रोगके बीजाणु एक ही प्रकारके हैं। फिर कोई इस जातिके रोगके बीजाणु दो प्रकारके बतलाते हैं। एक प्रकारके अणुसे गेटीन रोग होता है। बङ्गालमें उसको सल्फा, तातके या हाँसा कहते हैं। कालशिरा रोगको भिन्न भिन्न अवस्था आलोचना कर वैज्ञानिकोंने स्थिर किया है, कि हाँसा कीडा और कालशिरा कीडा एक ही अणुसे उत्पन्न होता है। अर्थात् इन दो रोगोंके संस्रवसे जो अणु देखे जाते हैं वह एक ही अणुकी विभिन्न अवस्था है। कालशिराके कीडाके मध्य जैसा विन्दुवत् अणु रहता है, हाँसा कीडाके मध्य भी वैसा ही सूत्र खण्डकी तरह अणु देखा जाता है। हाँसा कीडाके मर जानेसे वह कालशिरा कीडाकी तरह काला और पूति गन्ध युक्त होता है। दोनों प्रकारके कीडोंके मरनेसे कुछ पहले दोनों ही रसमें छोटे छोटे सूत्रखण्डवत् अणु चलाचल करते हैं, अणुवीक्षणयन्त्र द्वारा वह दिखाई देता है। कभी कभी कालशिरा और फटारोग एकत्र हो कर पकनेके पहले ही दिन कीडा हठात् मर जाते हैं।

कीडाका पालन।

सभी कीडेकी पालनप्रथा एक सी नहीं है। विभिन्न जातिके कुछ कीडाओंकी पालन प्रथा नीचे लिखी जाती है।

बडा कीडा—इस देशमें जितने प्रकारके रेशमका कोया होता है उनमें बडा कीडा ही सर्वश्रेष्ठ है। वीरभूम और मुर्शिदावाद जिलेके बडे कीडेका कोया सफेद और देखनेमें बहुत सुन्दर होता है। मेदिनीपुर-प्रान्तमें श्वेत पीत, हरित, पाटल इन चार वर्णोंके कोये देखे जाते हैं। बडे कीड़के अंडे दश महीनेमें फूटते हैं। उस अंडेको कपडेके ऊपर रखना उचित है। १५ दिनके बाद उसे जलमें धो कर कपड़े परसे अच्छे अंडोंको उतार लेना होता है। पीछे छायामें सुखा कर हंडीमें रख उसका मुंह अच्छी तरह बंद कर देना होता है। हंडीमें रखनेके पहले पेंदोमें रुई विछा देना उचित है। मशहरीके कपडेकी दो थैलीकी आवश्यकता होती है। एक एक थैलीमें २ छटांकका अंडा रखे। थैलीमें अंडा एक दूसरेसे सटने न पावे। हंडीके मुंहसे थैलीका फासला आठ अंगुल रहना चाहिये। उस घरमें अधिक वायुका संचालन करना और आग जलाना मना है। धूप भी उस घरमें न घुस सके। जो घर खूब ठंढा हो उसीमें थैली समेत हंडी लटका देनी चाहिये। १५ दिनसे लगायत दो मास तक ठंढ लगानेके बाद रातमें दश बार ७५° डिग्री उत्ताप रखनेसे अंडा अच्छी तरह फूट जाता है। इच्छा करने पर बहुत थोडे समय कीडामें भी बडे कीडेका अंडा फोडा जा सकता है। अत्यन्त ठंढा लगानेके बाद उत्तापमें रखनेसे असमयमें अंडा फूट सकता है। सद्यप्रस्तुत बडे कीडे वा विलायती कीडेके अंडेको शुद्ध हाइड्रोक्लोरिक एसिडमें पांच मिनिट डुबो रखे। पीछे जलमें धो कर सुखा ले और गरम स्थानमें रखे। इससे छोटे कीडेके अंडेकी तरह वह दश बारह दिनके भीतर ही फूट जाता है। वैशाख और जेठके महीनेमें अधिक गरमी पडती है, इस कारण बडा कीडा पोसना उचित नहीं।

विलायती कीडा—विलायती कीडेका पालन बहुत कुछ बडे कीडाके ही जैसा होता है। प्रभेद इतना ही है, कि बडे कीडाके अंडेको ६०° से ५०° डिग्री तक फारेनहीट देना होता है। किन्तु विलायती कीडोंके अंडेको ४०° से ३०° डिग्री तक ठंढमें रखना होता है। इस कारण ग्रीष्मप्रधान देशमें विलायती कीडाका पालना सुविधाजनक नहीं है। अधिक ठंढ पड़नेसे विलायती कीडा डिमको दार्जिलिङ्ग वा अन्य किसी उच्च शैल पर भेज देते और २।१ मासके बाद निम्नप्रदेशमें ला गरम जगह पर रख देते हैं। इससे १०।१२ दिनके भीतर ही अंडा फूटने लगता है। दूसरे समय वर्फका कलके साथ वन्दोवस्त कर सभी समय ३०° या ४०° डिग्री ठंढ देनी होती है। मन्द्राज शहरके वर्फके कारखानेमें विलायती कीडा पाला जाता है। निम्नवङ्गमें वैशाख, जेठ और भादोंके महीनेमें विलायती कीडा पालनेसे वे प्रायः कालशिरारोगसे मर जाते हैं। फिर इस देशके शहतूतका पत्ता खिला कर यदि विलायती कीडा पालना हो, तो बड़े बड़े शहतूतका पेड़ लगाना उचित है। ऐसा कर सकनेसे छोटे कीड़ा या निस्तारी कीड़ाकी अपेक्षा विला-

पती कोड़ा पालनेमें अधिक लाभ है। फिर छोटे कीड़े के पक्षमें बड़े शहतूतका पत्ता नितान्त अनिष्टकर है। इस कारण जो बड़े बड़े शहतूतका पेड़ लगा सकें उनके लिये विलायती कोड़ा पालना उचित है। सूतमता के सम्बन्धमें बहुतकदेशका रेशम श्रेष्ठ है सही पर विलायती कोड़ामें लाभ अधिक है। इस देशके पांच छः रेशमके कोयोंसे व्यवहारोपयोगी जितना रेशमका सूता बनता है विलायती कीड़ेके तीन चार कोयोंको एक साथ काटनेसे उतना ही रेशम बन सकता है। विलायती कोड़ा हो या बड़ा कीड़ा, दोनोंके अण्डे होनेके बाद कमसे कम डेढ़ मास तक गरम स्थानमें रख शीत लगानेके लिये बरफके बकसमें या शीतप्रधान पहाड़ पर रखना उचित है। विलायती कीड़ेके पालनेके विषयमें कोई विशेष नियम नहीं है। केवल बड़े पेड़का पत्ता अथवा कड़ा पत्ता खिला सकनेसे विलायती कीड़ासे अच्छा कोया मिलता है। डक खिलानेके पहले बड़े कीड़े या विलायती कीड़े अण्डेको तूतिया के जलमें धुरो रखनेके बाद परिष्कार जलमें धो लेना उचित है।

छोटा कीड़ा और निस्तारी कोड़ा—विलायती और बड़े कीड़ेको जिस प्रकार शीत खिलाया जाता है। निस्तारी, छोटे कोड़ा और चीनाके कीड़ेको इस प्रकार नहीं खिलाया जाता। ये सब कीड़े क्या शीत, क्या ग्रीष्म सभी समय फूटते हैं। इन सब कीड़ोंका पालन करना बहुत सहज है, इस कारण विलायती और बड़े कीड़ेमें उत्कृष्ट रेशम होने पर भी इस देशके कृषक साधारणतः छोटे कीड़ेको ही पालते हैं। सभी प्रकारके कीड़ेको अण्डेसे निकलनेके पहले तूतियाके जलमें धो लेना उचित है।

छोटा कीड़ा निस्तारी कोड़ा और बड़ा कोड़ा पकने पर सहजमें पहचान आता है। पके कीड़ेको चुन कर कोया प्रस्तुत करनेके लिये चन्द्रकी ऊपर रखना होता है। फिर चन्द्रकीके ऊपर रखनेसे भी उतना उत्तम कोया तैयार नहीं होता। पके विलायती कीड़े प्रायः चन्द्रकीके ऊपर चलते हैं और सुविधा पानेसे दीवार पर चढ़ कर कोया बनाते हैं। इस कारण इस कीड़ेका कोया बनानेके समय बड़ी सावधानी रखनी होती है। पत्ता देनेके समय जो पिलू पत्तेके ऊपर न रह कर टोकरीके चारों तरफ आ जाते हैं उन्हें पका समझना चाहिये। उन्हें चन्द्रकीके नीचे रख देनेसे वह कोया तैयार करता है। अधिकांश बलवान् कीड़ा घरसे भागने की कोशिश करता है। किन्तु कालशिरा रोगग्रस्त होने पर वह नहीं भाग सकता।

टसर।

शाल, आसन अर्जुन हर्रे, बहेड़ा, बेर, देशी बादाम, लूस महुआ कस्मि, हाल्द, कोच शीमर, जामुन, पीपल, फालसा, रेंड़ी, संगुल और बादाम, इन सब वृक्षों पर स्वभावतः ही टसरके कीड़े उत्पन्न होते हैं। जहां स्वभावतः ही टसरके कीड़े होते हैं वहां नया पेड़ गाड़ देनेसे उस पेड़को पत्ती खा कर भी कभी कभी टसर कीड़े कोष प्रस्तुत करते हैं। जिस पेड़की पत्ती कड़ी या विकृत गंधवाली हो या दूधसे कड़ होता है वे सब पत्तियां टसरके कीड़े नहीं खाते। अगर उन्हें एकदम छोटे पौधे पर छोड़ दिया जाय तो भी वे उसकी पत्ती नहीं खाते। ये स्वभावतः बड़े पेड़की रूखी पत्ती खा कर कोष बनाते हैं। टसर कीड़े भी जङ्गली और पालतू दोनों अवस्थामें पाये जाते हैं। संथाल लोग प्रधानतः ३ ऋतु या बन्दमें टसरकीड़े पालन करते हैं। प्रथम या चुरिया बन्दमें वैशाख मासके आरम्भमें टसर-कीड़े पालन करना होता है। क्योंकि, उस समय पहले सालके सञ्चित अधिकांश कोषके कोयेसे पतङ्ग काट कर बाहर निकलता है। जिस दिनको पतङ्ग निकलता है उसके दूसरे ही दिन वह अण्डा पारता है। अण्डा फूटनेमें केवल आठ दिन लगता है। पीछे ये सब कीट फूट कर प्रायः दो मास पत्ता खाते और बादमें कोया तैयार करते हैं। इस कोयेमें जो कीट रहता है वह बहुत दुर्बल होता है। जिस कोयेके मध्य सबल कीट रहते हैं, ये प्रायः काले होते हैं। बर्षाती बन्दका जो छोटा छोटा और सफेद कोया बीजके लिये चुन लिया जाता है 'जारिया' कोया कहते हैं। जारिया कोयासे ४थी या ५वीं जठको कोया काट कर प्रजापति बाहर निकलता है। दूसरे ही दिन वे अंडे देते हैं। आठ दिनके बाद ही अंडे फूटने लगते

हैं। अनन्तर ये सब कीट डेढ़ मास पेड़ पर रह कर पत्ते खाते और आषाढ़के शेष वा श्रावणके आरम्भमें कोया तैयार करते हैं। बरसाती बन्दका लारिया कोया पीछे तृतीय बन्द अर्थात् 'जाडुई' बन्दके वीजके लिये रखा जाता है। जाडुई बन्दके उपयुक्त अंडेसे २०वीं या २१वीं श्रावणको प्रजापति बाहर निकलता है। उसके दूसरे दिन वे सब प्रजापति भी अंडे देते हैं। पहलेकी तरह ये अंडे भी आठ ही दिनमें फूट निकलते हैं। दो मास भोजन कर वे आश्विन मासके अन्तिम सप्ताहमें कोया तय्यार करते हैं। कीटावस्थामें टसर-कीटको दिनरात बाहरके पेड़ पर रखना होता है। दूसरे समय उन्हें घरके भीतर रख सकते हैं। अधिक वीज-का कोया यदि रखना हो, तो उसे घरके बीचमें न रख कर बाहर एक बासके ऊपर रखना चाहिये। धूप और वर्षासे बचानेके लिये अंडोंके ऊपर एक खड़की छौनी कर देनी चाहिये। जिस दिन दो प्रजापति बाहर होते देखे जाय उसी दिन बास झुका कर कोयेको धनुषके आकारमें बांध कर लटका देना होता है। रातके ६ या १० बजे अंडे फोड़ कर प्रजापति बाहर निकलते हैं। बाहर होते ही नर-प्रजापति उड़ जाते हैं और मादा धनुषके ऊपर बैठ जाती है। रातके १२ से ३ बजे तक नर प्रजापति भी उक्त धनुष पर बैठते हैं। जो सब उड़ गये थे, वही लौट कर बैठते हैं या नहीं, कह नहीं सकते। प्रातः काल होने पर धनुषको घरके भीतर रख देना चाहिये। दो पहरको मादा प्रजापतिको बड़े बड़े पत्तेके दोनेमें रख कर उसका मुंह बंद कर देना चाहिये। दोनेमें वह जितनी बार उड़नेकी चेष्टा करेगी, उतनी ही बार वे अंडे देंगी। जंगली अथवा स्वाभाविक अवस्थामें प्रजापति एक पेडसे दूसरे पेड पर जा कर २१४ अंडे पारती हैं। दोनेमें अंडे पारनेके पांच दिन बाद दोनाको खोल कर प्रजापतिको फेंक दे और अंडोंको सावधानीसे उठा रखे। पीछे उसके ऊपर जो धूल आदि बैठ गई है, उसे धीरे धीरे फूंक कर उड़ा देना चाहिये। बादमें उसे दोनेमें रख किसी पेड़ पर लटका दे। चिउंटी आदिसे बचनेके लिये पेड़के तनेमें मिलावेका तेल लेप देवे। आठवें दिनमें अंडे फोड़ कर कीड़े निकलने लगेंगे। इस समय कीटपालक-को सारा दिन पेड़के नीचे बैठ चौकसी देनी होती है। सन्थाल लोग तीर धनुष ले कर पेड़के नीचे बैठते हैं। दोनेको वृक्षकी डालमें सटा कर बांध देना चाहिये जिससे कीड़े डालको पत्ती आसानीसे खा सकें। उस डालकी कुल पत्ती खा लेनेके बाद कीड़े समेत डालको काट कर दूसरे पेड़की पत्तीमें लगा देना उचित है। पेड़की पत्ती नितान्त सरस होने अथवा सूर्यका उत्ताप अत्यन्त प्रखर होनेसे टसर-कीटमें रसारोग होता है। इस रोगसे अधिकांश कीड़े मर जाते हैं। बीच बीचमें वृष्टि होनेसे ही वे बच सकते हैं।

रेंडीकी पत्तियां खा कर जो सब कीड़े निकृष्ट जातिके कीड़े तैयार करते हैं उन्हें एण्डि कहते हैं। एण्डीके कोयेकी कताई नहीं होती। एक एक कोयेसे एक एक भी सूता नहीं निकलता। धुनिया और पिंजिया कपास-की तरह इसमेंसे सूता निकालना होता है। एण्डीका सूता पशम कपास यहां तक कि गरदके सूतसे भी चिमड़ा होता है। एण्डीके अंडेमें घोर पाटकिला रंग-का कोया देखा जाता है। इस पाटकिला रंगके कोये-का परिमाण जितना कम हो उतना ही अच्छा। यूरोपमें एण्डीके कपड़ेकी अपेक्षा एण्डीके कोयेकी ही अधिक रफ्तनी होती है। पाटकिला कोयेमें मिलावट देनेसे उतना मोल नहीं होता। पाटकिला कोयेसे जो सूता बनता है उसे परिष्कार कर सफेद करना कठिन और व्ययसाध्य है।

पिल्लू कीटके जिस प्रकार कालशिरा और कटारोग होता है आसामके एण्डी कीड़ेके भी उसी प्रकार काल शिरा और कटारोग होते देखा जाता है। उन दोनों रोगोंसे अधिकांश एण्डी कीड़े मर जाते हैं। वगुड़ा और कोचविहारका एण्डी-कीट आसामके एण्डीकीटसे सबल होता है। वहां आज भी कटारोग घुसने नहीं पाया है। एण्डिकीटका पालन आसाम देशकी एक प्रधान उपजीविका है। पिल्लूका पालन करनेके समय जिस उपायसे मक्खीका उत्पात रोकना होता है, एण्डि कीटके पालन-कालमें भी उसी उपायका अवलम्बन करना चाहिये। पिल्लू और एण्डी-कीटका एक ही नियमसे पालन

करना होता है। शहतूतका कीड़ा जब कोया बनाने लायक होता है तब जिस प्रकार उसे सहजमें पहचान कर टोकरीसे अलग किया जाता है, एरण्डी कीटके कोया बनाने लायक होने पर वह इस प्रकार पहचाना नहीं जा सकता। इस समय पिल्लू कीटको पत्तोंके मध्य रख दिया जाता है, किन्तु परिष्कार कोया बनानेके लिये वह उपयुक्त नहीं। विलायती पिल्लूका कोया बनानेके लिये जैसा प्रबन्ध करना होता है, एरण्डीकोया बनानेमें भी वैसे ही प्रबन्धकी जरूरत है। जो कीड़ा टोकरीसे बाहर आ कर कोया बनाता है वह स्वभावतः ही अधिक सबल है। बीजके लिये उनमेंसे बिलकुल सफेद कोया निकाल लेना उचित है। शहतूत पिल्लूके कोयेसे प्रजापतिको बाहर होनेमें ८ से २० दिन लगता है। किन्तु इस देशमें एरण्डीके कोयेसे प्रजापतिके निकलनेमें ग्रीष्मकालमें १५ दिन और शीतकालमें ३० दिन लगता है। एरण्डीकोयेकी कताई नहीं होती इस कारण सभी अण्डोंसे प्रजापतिको बाहर निकाल देना उचित है। बहुतेरे एरण्डीके कोयेको धूपमें सुखा कर भीतरमेंके जीवन्त कीट मार डालते हैं। इस प्रकार मरे हुए कीट समेत २००० से २५०० कोयों से एक सेर होता है, किन्तु जीवित कीट उनमेंसे ७०० ८०० कोयेसे ही सेर हो जाता है। साफ परिष्कृत कोयेकी दर १०० रु० मन होनेसे सूखे कीड़े समेत कोयेका दाम सिर्फ २० रु० होता है। परिष्कृत कोयेसे प्रजापतिको बाहर निकाल देनेसे वह बहुमूल्य कामोंमें आता है। इस मुर्गे आदि इन्हें बड़े चावसे खाते हैं। आदमी इसमें गाड़ देनेसे खादकी तेजी बढ़ता है। कुकी आदि कोई कोई असभ्य जाति कोयेसे कीटका निकाल उसे पका कर खाते हैं। एरण्डीका क्षारकोया रेशमके क्षारकोयेके जैसा सहजमें काता नहीं जाता। लेकिन क्षार मिश्रित जलमें २।३ घण्टा सिद्ध कर पीछे उसे धो कर सुखा लेनेसे रेशमके क्षारकी तरह सहजमें कताई हो सकती है। केले का पत्ता अथवा किसी भी अन्य पेड़का क्षार व्यवहार करना उचित है। रेशमके क्षार कोयेकी कताई कर जितना लाभ होता है, एरण्डीकी कताई करके भी उतना ही लाभ हो सकता है। एरण्डी-सूता अलग सूतसे कहीं सस्ता होता है। यह ७।८ रु० सेर बिकता है। टसर कोयेका क्षार एरण्डी कोयेसे सहजमें काता जाता है। किन्तु उसे भी कुछ काल क्षार जलमें सिद्ध किये बिना सहजमें सूता नहीं निकलता। इस देशमें जितने प्रकारका रेशमी सूता बनता है उनमें एरी सबसे सस्ता है। केवल सस्ता ही नहीं उसका कपड़ा भी टिकाऊ होता है। एक एक कपड़ा ६।७ वर्ष रहता है। १० गज लम्बा और एक गज चौड़ा कपड़ा थान ५।६ रु०में मिलता है।

रेशम कताई करनेका उपाय।

कोयेको धूपमें सुखा कर अथवा कार्बन बाइसल्फाइड दे कर मार देना होगा। वर्षा छोड़ कर अन्य समयमें आंच देनी होती है। जहां कोयेकी कताई अधिक होती है वहां भाप देनेके लिये तुन्तुलकी आवश्यकता होती है। तुन्तुलमें ५ मिनट १६ ० डिग्री उत्तापमें रख देनेसे कोयेमेंका कीड़ा निश्चय ही मर जाता है। तुन्तुल करनेके बाद एक दिन धूपमें अच्छी तरह सुखा लेना होता है।

इस देशमें कोयेको कताई कर सूता निकालनेके लिये तीन आयोजनकी आवश्यकता होती है। १ला, एक धातु या मट्टीका बरतन जहां कोया घूमता है और सूता निकलता है। २रा एक चरखा अर्थात् दो लोहशलाके प्रान्तभागमें लगा दो छेद और सच्छिद्र मिट्टीका बरतन। जिस बाद फलकके सामने यह दोनों शलाका लगा रहती है उसीके दूसरे भागमें और भी दो पीतल की शलाका सीधी खड़ी रहती है। ३रा तकिया या चरखी। इस चरखीमें रेशमकी डोरी लटका कर हाथसे घुमाने पर धातुके कोयेसे सूता आप ही खुलने लगता है। एक कोया खतम होने पर दूसरा कोया फौरन उसी जगह रखना होता है तथा उसको भी धातु पहलेकी तरह लगा देनी होगी। चरखीके ऊपर दो सूतकी डोरी एक ही जगह पीछे सट जाती है, इस कारण उसके ऊपरी भाग पर एक दूसरा जोलक साथ घूमता रहता है। जो दण्ड इस प्रकार घूमता रहता है उसके ऊपर दो कांपकी छोटी शलाका खड़ी रहती है। इस कारण दण्ड बायें और दाहिने घूमता है। इस प्रकार घूमनेसे दोनों सूतकी चरखीके ऊपर एक ही जगह न पड़ कर दो तीन इंचके फासले पर पड़ती है।

विलायतमें रेशम कातनेकी तीन प्रणाली प्रचलित देखी जाती है,—१ इटाली प्रणाली, २ फरासी प्रणाली, ३ रोटेलिनो प्रणाली। इटली प्रणाली द्वारा कताई करनेसे एक सूतके साथ निकटस्थ सूतका सम्बन्ध नहीं रखना होता है। यहां तक, कि कताई करते करते सूत टूट जाने पर उसे फिर जोड़नेकी जरूरत नहीं होती। इस प्रणालीसे सूत निकालनेमें दो छोटे छोटे कांचके चक्केका प्रयोजन होता है। बीच बीचमें चक्केके फूट जानेका डर होता है। चक्केके फूट जानेसे सब गुड़ मिट्टी। फरासी प्रणाली प्रायः बङ्गदेशकी प्रणाली-सी है। इसमें आस पासके दो सूतेको बदल कर कताई करनी होती है। यह प्रणाली बहुत सहज है, इस कारण सभी इसे काममें लाते हैं। रोटेलिनो गावियाटी प्रणाली इटलीसे भी जटिल है। इस प्रणालीमें एकही सूत दो भिन्न भिन्न स्थानमें बदल कर कताई करनी होती है। इसमें चार बहुत बारीक कांचके चक्केकी जरूरत होती है। अधिक संघर्षण द्वारा शेष सूतोंको दृढ़ और सुगोलभावमें सम्मिलित कर सूता प्रस्तुत किया जा सकता है, इस कारण यह जटिल प्रणाली काममें लाई जाती है। इससे उत्तम सूत तैयार होते हैं सही, पर इसके व्यवहारमें बहुत झंझट है। बङ्गदेशकी प्रणाली बहुत सहज और अल्प व्ययसाध्य है। रेशमकी कताईके लिये अभी यूरोपमें अनेक प्रकारकी कलें बन रही हैं। मालदह अञ्चलमें सालमें प्रायः २००० मन खमरू रेशम तैयार होता है। वीरभूम जिलेमें भी जहां जहां कीड़ा पाला जाता है, वहां थोड़ा बहुत खमरू तैयार होता है। मालदहके रेशमसे वीरभूमका खमरू खराब होता है। मुर्शिदावाद जिलेमें कान्दीके निकट वसोया, विष्णुपुर आदि ग्रामोंमें जो पट्टवस्त्र बनते हैं, वे वीरभूमके खमरू रेशमसे; किन्तु उस जिलेके मिर्जापुर आदि ग्रामोंमें जो सर्वोत्कृष्ट कपड़ा बुना जाता है उसमें मालदहके रेशमका ही व्यवहार होता है।

रेशमका इतिहास।

जनसाधारणका विश्वास है, कि चीनदेश ही रेशमका प्रथम जन्मस्थान है। इसी देशसे भारतवर्ष और यूरोपमें रेशमकी रफ्तनी हुई है। किन्तु जब इस देशके आदमी चीनका नाम तक भी नहीं जानते थे, उसके भी बहुत पहले भारतमें रेशमका व्यवहार प्रचलित था। हम लोगोंके देशमें धर्म कर्ममें देशजात द्रव्यके सिवा विदेशी द्रव्यको काममें नहीं लाते थे। यागयज्ञादि कर्मके समय सभी जगह इस वस्त्रका व्यवहार देख कर कोई कोई कहा करते हैं, कि रेशम यदि विदेशी होता तो इस देशके लोग कभी भी धर्म कर्ममें उसका व्यवहार नहीं करते। कोई कोई "क्षौमे वसने वसाना" इत्यादि वैदिक प्रमाण उद्धृत कर विवाहमें व्यवहृत उक्त क्षौम वस्त्रको ही रेशमी वस्त्र समझते हैं। किन्तु प्राचीन वैदिकसंहितादिमें क्षौम शब्दका उल्लेख नहीं देखा जाता। परवर्त्ती वैदिक और स्मृतिसाहित्यमें जहां क्षौमवस्त्रका उल्लेख है वहां प्राचीन टीकाकारोंने क्षौम शब्दका शण निर्मित वस्त्र अर्थ लगाया है। इस हिसाबसे धर्मशास्त्रमें पट्टवस्त्रके व्यवहारका प्रसङ्ग रहने पर भी वैदिककालमें रेशमका प्रकृत व्यवहार था वा नहीं, संदेह है।

अथर्ववेदीय कौशिकसूत्रमें "क्षौमिकीं वैश्याय" (५७।३) अर्थात् वैश्याको क्षुमानिर्मित मेखला दे। यह क्षौम शब्द देख कर भी कोई कोई "रेशम" की कल्पना करते हैं। किन्तु मनुसंहिताकारने स्वयं उस क्षौम शब्दकी इस प्रकार व्याख्या की है,—"क्षत्रियस्य तु मौर्वीज्या वैश्यस्य शणतान्तवी।" (२।४२) अर्थात् वैश्यका शणतन्तु ही मेखला होगा। क्षौम शब्दसे पट्टवस्त्र भी समझा जाता है, किन्तु उस पट्टवस्त्रका अर्थ पटसन है जो रेशमसे बिलकुल भिन्न है। मनुसंहितामें रेशम और टसरका स्पष्ट उल्लेख मिलता है, जैसे—

"कौषेयाविकयो रूपैः कुतपानामरिष्टकैः।
श्रीफलैरंशुपट्टानां क्षौमाणां गौरसर्षपैः॥"

(मनु० ५।१२०)

अर्थात् कौषेय और पशम लोना, मिट्टीसे, अंशुपट्ट वा रेशम श्रीफलसे तथा क्षौमवस्त्र गौरसर्षपसे परिशुद्ध करे। उक्त प्रमाणसे दो प्रकारके रेशमका पता चलता है। इन दोनोंमें एक टसर और दूसरा रेशम है, टसरके कोयेसे जो निकृष्ट रेशम पाया जाता था, वही कौषेय है तथा पट्ट वा बड़े पाट नामक कीड़ाके कोयेसे

जो अंशु मिलता था, वही अंशुपट्ट कहलाता है। मनुसंहितामें चीन आदि जनपदवासीको भारतके अन्तर्गत जाति बताया है। फिर भी मनुसंहितामें चीनांशुक अर्थात् चीनोंके निर्मित सूक्ष्म वस्त्रका कोई उल्लेख नहीं है। इससे मालूम होता है, कि मनुसंहिताकी रचनाके समय भारतवर्षमें कौषेय और अंशुपट्ट नामक जो दो प्रकारके वस्त्र प्रचलित थे, वह चीनांशुकसे स्वतन्त्र हैं। महाभारतके राजसूय पर्वाध्यायमें लिखा है कि, चीनोंने राजा युधिष्ठिरको चीनांशुक उपहार दिया था। जैसे—

"प्रमाणरागस्पर्शाढ्यं वाह्लीचीनसमुद्भवम्।
और्णञ्च राङ्कवञ्चैव पट्टजं कीटजन्तथा॥"

(सभा ५१।२६)

शायद इसी समय भारतवर्षमें पहले पहल चीनांशुकका प्रचार हुआ होगा। धर्मकर्ममें व्यवहृत न होने पर भी चीनांशुक भारतवासीकी विलास सामग्री समझा जाता था। जैसे—

"चीनांशुकमिव केतोः प्रतिवातं नीयमानस्य।"

(अभिज्ञान शकुन्तला १म अङ्क)

शायद चीनांशुक जब भारतीय राजाओंकी विलास सामग्री था, तब चीन देशीय कोड़े इस देशमें लाया और उसका प्रतिपालन किया गया होगा। संस्कृतसाहित्यमें रेशमकीड़का नाम पुण्डरीक है। आज भी मालदह अञ्चलमें जो रेशमके कीड़े पालते हैं, वे पुण्डरीकाक्ष या पुण्ड् कहलाते हैं। पुण्डरीक शब्द ही अपभ्रंशसे पोड़, पोल्, पून् या पिल्लू हुआ है। ईसाजन्मसे कई सदी पहले पौण्ड्रवर्द्धनके निकट पुण्डरीक नामक एक वणिक् शाखाका हाल जैनोंके कल्पसूत्रमें मिलता है। मालदहसे पद्मा पर्यन्त एक समय रेशम बहुतायतसे उत्पन्न होता था तथा सिल्कका व्यवसाय भी जोरों चलता था। यहां जो सिल्कका व्यवसाय करते थे उनमेंसे एक उच्च श्रेणी जैनशास्त्रमें पुण्डरीक नामसे प्रसिद्ध है। संस्कृत शास्त्रमें कौषेय, पट्ट, क्रिमिजसूत्र, कीटजन्तु, कौशसूत्र, कोशज कुकुल और दुकूल ये सब रेशमके पर्याय कहे गये हैं। उक्त नामोंसे भी वैदेशिक संस्रवका कोई आभास नहीं मिलता। चीन भाषामें शी (Tsz0)से कोया और ली (Tsl) कीट समझा जाता है। इसी शीसे मुगल सिरे, कोरिया सिर, ग्रीक सेरिकोस, लाटिन सेरिकम (Sericum) जर्मन सिडेन (Seiden), फरासी सोयी (Sole), रूस सियलक (Sheolk), आंग्ले-सक्सन सियलक (Seole), आइसलाण्डीय सिल्के (Silke) और आर्मेनीय सा (Tan) हुआ है। उक्त नाम देखनेसे स्पष्ट मालूम होता है, कि चीन और मोङ्गोलियासे रेशम यूरोपमें पहुंचा है। आसामी भाषामें पाटको कोया, कश्मीरी भाषामें रेशम कहते हैं। यहां तक, कि तामिल भाषामें भी पट्टु शब्दसे रेशम समझा जाता है। विभिन्न भाषाके ये सब शब्द संस्कृत पट्ट शब्दके अपभ्रंश हैं, इसमें संदेह नहीं। उक्त विभिन्न भाषाके शब्दोंसे क्या यह नहीं समझा जाता, कि भारतके पूर्वप्रान्तवासी अक्षयासियन चीनोंसे रेशमका नाम ग्रहण करने पर भी क्या दक्षिण भारतमें क्या सुदूर उत्तर भारतमें कहीं भी वैदेशिक नाम नहीं लिया जाता था। इससे यही साबित होता है कि अंशुपट्ट या भारतीय रेशम भारतवासीका निजस्व है। महाभारतमें सिल्ककीटको 'कृमि' कहा है।* आज भी काश्मीर अञ्चलमें कीड़ाका पालन करनेवाले क्रिमिक' कहलाते हैं। और तो क्या, रामायणमें भी आसामके उत्तरांशको कोषकार कहा है।

"मागधांश्च महाग्रामान् पुण्ड्रांश्चाङ्गांस्तथैव च।
भूमिञ्च कोषकाराणां भूमिञ्च रजताकराम्॥"

(किष्किन्धा ४०।२३)

रामायणके वर्णनसे ही मालूम होता है, कि हिमालयके कोशस्य कोषकार नामक जनपदसे बहुत पहले चीन और भारतवासीने रेशम या उसका सन्धान पाया होगा। बाइबेलके प्राचीन अंशमें सेरिकोष (Sherkoth of Isaiah 19 ix) नामक रेशमका उल्लेख है।

भाषाविद्गण इस शब्दसे चीनके साथ संस्रव स्वीकार करते हैं। इधर हिब्रु मेशी और शोमसक्, अरबी दिमस्क और कुस् तथा पारसिक अब्रेशम या रेशम एक पर्याय वाचक शब्द हैं। इन सब शब्दोंके साथ चीन या भारतीय रेशम शब्दका कोई संस्रव नहीं है।

चीन इतिहासमें लिखा है, कि फोहि नामक चीन

* "कृमिर्हि कोषकारस्तु बध्यते स्वपरिग्रहात्॥"

(भारत १२।३२६।२६)

सम्राट्की स्त्री सिलिङ्गोने २७०० ई०सन् पहले रेशमका सूत आविष्कार किया, किन्तु वर्त्तमान ऐतिहासिकोंका कहना है, कि चीनके इतिहासमें जो सब प्राचीन गल्प लिखी हैं उन्हें ईसा जन्मकी ३री सदीके पहलेकी नहीं मान सकते। उस समय चीनके अत्याश्चर्य प्राचीर-निर्माता चीन सम्राट् चिहोयङ्ग तिने समस्त प्राचीन चीनग्रन्थोंको जला दिया। उनके मरनेके बाद चीनका प्राचीन इतिहास स्मृतिसे पुनः लिखा गया। इस हिसाब-से चीन-इतिहासकी अति प्राचीन घटनावली बिलकुल सच है, हमें विश्वास नहीं होता। ३री सदीको चीनमें जो रेशम और टसरका वाणिज्य चलता था, उस समय-के ग्रन्थमें इसका प्रमाण पाया गया है। जनसाधारण का विश्वास है, कि रोमसम्राट् जष्टिनियनने छठी सदी में कुछ संन्यासी यतियोंसे चीनके रेशमी वस्त्रका संधान पा कर उन लोगोंको पुनः चीनदेश जानेके लिये अनु-रोध किया। वे लोग ही चीनदेशसे चीना-कीड़ेका उत्कृष्ट अंडे ला कर रोम लौटे। उसी वीजकोषसे यूरोपमें रेशम बनानेका सूत्रपात हुआ तथा उसी समय-से रेशमका व्यवसाय भी धीरे धीरे सारे यूरोपमें फैल गया। इस प्रकार चीनका रेशम यूरोपमें प्रचारित होने पर भी उसके पहले रोमक-साम्राज्यमें रेशम अपरिज्ञात नहीं था। प्लिनिके वर्णनसे जाना जाता है, कि आसि रिया देशमें पिल्लू कीड़ा पैदा होता था। दक्षिण यूरोपमें भी जङ्गली कीड़ा मिलता था और वहांके लोग रेशम निकालनेका हाल जानते थे। प्लिनिके मतसे प्लोतेशकी कन्या पाम्फिली (*Pamphile*)-ने कोष नामक द्वीपसे रेशमकी कताई और रेशम बुननेकी पद्धतिका आविष्कार किया। इन सब प्रमाणोंसे देखा जाता है, कि चीनके रेशमका अभी तमाम यूरोपमें आदर और प्रचार होने पर भी बहुत पहलेसे दक्षिण यूरोपके लोग जङ्गली रेशम कीटका हाल जानते थे। छठी सदीके बाद समस्त यूरोपमें चीनी रेशमका आदर होनेसे एकमात्र चीनको ही लोग रेशमका आदि जन्मस्थान मानने लगे हैं।

फरासी पण्डित बैताड़ (M. Boitard) का कहना है, कि रेशम भारतकी चीज है। उनके मतसे सम्राट जष्टिनियन (Justinian) ने संन्यासियों द्वारा जो रेशम-कीटका अण्डा मंगवाया था, वह चीनदेशसे नहीं, बल्कि पञ्जाब-प्रान्तके सरहिन्द नामक उत्तर-भारतसे। चीन लोग दुर्भेद्य प्राचीरसे निकल कर सुगन्धि द्रव्य और गरम मसालेके बदलेमें हिन्दूको रेशम दे जाते थे। अति उर्वर अनुगाङ्गप्रदेशमें पीछे उस रेशमकी खेती होने लगी थी।

प्रोकोपियस (*Procopius de Bello Gallico*)-के वर्णनसे भी मालूम होता है, कि ५००से ५६५ ई०के भीतर कुछ संन्यासी भारतसे रोमक-सम्राट् जष्टिनियनकी सभामें गये थे। उन लोगोंको सुननेमें आया कि सम्राट्की अब इच्छा नहीं, कि वे पारस्यसे रेशम खरीदें। उन्होंने सम्राट्से कहा, कि यदि आज्ञा हो, तो वे लोग रोमराज्य-में ही रेशम पैदा कर सकें; दूसरेके मुंह ताकनेकी जरू-रत नहीं। उन्होंने यह भी कहा, कि नाना जातिसमा कुल भारतके सेरिन्दा (सरहिन्द) नामक स्थानमें उन लोगोंका आदिवास है। वे लोग आसानीसे रेशमकीट यहां ला सकते हैं।

फिर वैजन्तीवासी थियोफनेश (Theophanes of Byzantium) ने छठी सदीके शेष भागमें लिखा है, कि सम्राट् जष्टिनियनके शासनकालमें एक पारसिक लाठीमें कुछ रेशमकीटके अण्डे छिपा कर वैजन्ती राजधानी लाया था। उसीसे रोमकोंने रेशमकीटकी पालनप्रथा और रेशमोत्पादनका तरीका सीखा था। इससे पहले रोमराज्यमें और कोई भी रेशमकीट पालनेका हाल नहीं जानता था।

उद्धृत प्रमाणोंसे मालूम होता है, कि यूरोपीय जन-साधारणका विश्वास रहने पर भी चीनसे रोम राज-धानीमें रेशमकीट नहीं लाया गया। भारत सामान्त सरहिन्द अथवा उसीके निकटवर्त्ती पारस्य-सीमासे शायद रेशमका बीज रोमराज्यमें लाया गया होगा। जो कुछ हो, भारतमें बहुत पहलेसे रेशमकी खेती होती आई है तथा भारतसे भी प्राचीन सुसभ्य देशोंमें रेशमका बीज गया होगा यह भी असम्भव नहीं।

भारतमें अभी जितने प्रकारके रेशमकीट देखे जाते हैं सबोंको हम लोग भारतीय कीट नहीं कह सकते। रेशमतत्त्वविदोंकी गवेषणाके फलसे इसी भारतमें

प्रधानतः १५ प्रकारके पिल्लुकोट और ५१ प्रकारके टसर कोड़का संधान पाया गया है। उन सब जातियोंमें भी फिर बहुत सी उपजाति देखी जाती है। उनमेंसे चिना पलो (Bombyx mori) और चीना पिल्लु (Bombyx sinensis) तथा इन दो श्रेणियोंको कुछ उपजातिको हम लोग भारतीय माननेके लिये तय्यार नहीं हैं। वे सब विभिन्न समयमें भारतवर्ष लाये और पाले गये हैं। इनमेंसे चीनापिल्लु कब इस देशमें लाया गया है उसे कोई नहीं कह सकता। विलायती रोशा चीनके सभी प्रदेशोंमें, काश्मीर, अफगानिस्तान, पारस्य, बोखारा, सिरिया, फ्रान्स, इटली, स्पेन, सुदरेन रूस, तुरुष्क, इजिप्ट, अलजिरिया, अष्ट्रेलिया, अमेरिका आदि देशोंमें ही ज्यादा पाया जाता है, किन्तु इसका आदि जन्मस्थान चीनदेश है। इष्ट इण्डिया कम्पनीके समय बङ्गालमें विलायती कीड़ा पालनेका इन्तजाम हुआ किन्तु यह ग्रीष्मप्रधान बङ्गदेशको अपेक्षा शीतप्रधान स्थानमें ही अधिकतासे होता है।

१८३६ ई०में डाक्टर स्पिज साहबने लिखा है, कि लगभग १५०० वर्ष हुआ, बड़ा कीड़ा इटलीसे इस देशमें लाया गया है। हाटन साहबके मतसे यह रेशमकीट चीनसे बङ्गालमें आया है। लेकिन कब लाया गया ठीक ठीक मालूम नहीं, किन्तु इस कीड़ेको हम चीन विदेशी पिल्लु नहीं मान सकते। यह 'देशी' पिल्लु नामसे तमाम मशहूर है। इसी नामसे इस कीड़ेको गौड़ीय या भारतीय कहनेमें कोई आपत्ति नहीं। १५० वर्ष पहले प्रकाशित फरासी वाणिज्य कोषसे जाना जाता है, कि उसके पहले कासिमबाजार, हरियाल, कुमारपुर, राधानगर, खानाकुल, नदिया, बगुड़ा, रङ्गपुर और निम्न आसाम में यह कीट अधिकतासे पाला जाता था।

काश्मीरमें भी रेशमकी खेती होती है। यहां चीन और बोखारासे अच्छे अच्छे रेशमके कीट लाये जाते हैं। वृटिश गवर्मेण्टके कर्मचारियोंके यत्न और पूरोपीय रेशम वणिकोंके यत्नसे केवल बंगालमें ही नहीं, भारतके नाना स्थानोंमें देशी और विदेशी नाना प्रकारके रेशमकी खेती होने लगी है। दुःखका विषय है, कि रेशम-व्यवसायमें यहांके लोग एक समय जो इतने ज्ञान विख्यात हो गये थे अभी उनके रेशम व्यवसायका उतना आदर न रह गया है।

रेशमका वाणिज्य।

सभी सभ्य देशोंमें प्राचीन कालसे आरम्भ कर रेशमका आदर और वाणिज्य होता है। हजारों वर्षसे चीनदेशमें रेशमका वाणिज्य एक-सा चला आ रहा है। दूसरे देशोंमें थोड़ी-बहुत रेशमकी आमदनी रफ्तनी होने पर भी चीन देशमें आमदनी नहीं होती, सिर्फ रफ्तनी होती है। इसीसे मालूम होता है, कि चीन किसीका भी रेशमके लिये मुखापेक्षी नहीं है। चीनके सब जिलोंमें जिस तरह काफी रेशम उत्पन्न होता है, उसी तरह नाना देशोंमें चीनके यहां सब उत्पन्न रेशम भेजा जाता है। इसी रेशमसे कमाल, चादर, पगड़ी, साटिन, फीता आदि बनता है।

चीनकी तरह जापानमें भी यथेष्ट रेशम उत्पन्न होता है। जापानमें एक प्रकारका कीड़ा पैदा होता है जो बहुत रेशमके कोयको नष्ट करता है। फिर भी यहां रेशमीवस्त्र बहुतायतसे प्रस्तुत होता तथा विलायत और भारतके बाजारोंमें उसकी खूब आमदनी होती है।

पूर्व उपद्वीप, श्यामदेश, पारस्य आदि स्थानोंमें जो रेशम उत्पन्न होता है, उसका अधिकांश वस्त्रवाणिज्यमें ही खपत होता है। पारस्यके गैलन प्रदेशमें कुसन कुलो पर्दे नामक एक प्रकारका बढ़िया रेशमी वस्त्र तैयार होता है। मध्यएशियामें बुखारा रेशम व्यवसायका एक प्रधान स्थान है। चीनके रेशमकी अपेक्षा यहांका रेशम निकृष्ट समझा जाता है। यहांसे खास कर तीन प्रकारका ऋषि अधि (नदीके किनारे उत्पन्न), बद नगर और खिला जायदार नामक रेशम भारतमें भेजा जाता है। इनमेंसे खिलाजायदार रेशम ही श्रेष्ठ है। यह इसरव इमाम और कुपाव प्रदेशमें पैदा होता है।

भारतवर्षमें काफी रेशम उत्पन्न होता है, तो भी यूरोपके बाजारोंमें भारतीय रेशमसे चीन, जापान, श्याम और पारस्यके रेशमका बड़ा आदर है। इष्ट इण्डिया कम्पनीने बंगालमें उत्कृष्ट रेशम प्रस्तुत करानेकी चेष्टा की। इसके लिये उन्होंने १८६६ ई०में बंगालके जमींदारोंसे अनुरोध किया। इसी समय इटलीसे कुछ रेशम व्यवसायी यहां आये। इनकी प्रथानुसार रेशम

उत्पन्न होने लगा। पीछे यहांके लोगोंने इस प्रथाको उतनी सुविधाजनक न समझ ग्रहण नहीं किया। भारत के सब स्थानोंसे बंगालमें ही अधिक रेशम उत्पन्न होता है। यहांसे उत्तर पश्चिम प्रदेश, पञ्जाब, यहां तक कि, काश्मीर तक बंगीय रेशम भेजा जाता है। बनारसमें जो उत्कृष्ट रेशमी कपड़े बनते हैं उसमें अधिकांश बंगीय रेशम है। मुर्शिदाबाद और मालदह-प्रान्तमें उमदा रेशमी कपड़ा तैयार होता है। वे देखनेमें विलायती रेशमी कपड़े से साफ होते हैं। विलायती रेशम धोनेसे कुछ कामका नहीं रह जाता, किन्तु देशी रेशम उस तरह नष्ट नहीं होता, वरं धोनेसे और उजला हो जाता है। यहांके रेशममें रंग दिया जाता है। बाजारमें चौदह प्रकारके रंगमें रंगे रेशमी कपड़े देखे जाते हैं जैसे,—गाढ़ा नीला या काला, कुछ नीला, लाल और गुलाबी, बसन्ती या हल्दी रंग, जरद या कमला नीबूकी तरह रंग, हरा, बैंगनी, पीताम्बरी, सुनहरी, हीरामन-कण्ठी, मयूरकण्ठी, धूपछाया और आसमानी। बालुचरमें रेशमके ऊपर जड़ीका काम किया जाता है।

इस समय यूरोप और अमेरिकाके सभी देशोंमें रेशम उत्पन्न करनेका विशेष प्रयत्न होने पर भी फ्रान्सने सब देशोंको मात किया है। और सब देशोंकी अपेक्षा फ्रांससे अधिक रेशम दूसरे देशोंमें भेजा जाता है। इंगलैण्डमें सब देशोंकी अपेक्षा फ्रान्ससे ही अधिक रेशम जाता है।

रेशमके प्रसिद्ध कारखानोंके नाम।

बङ्गाल—बङ्गाल सिल्क मिल्स, कालीशङ्करपुर सिल्क फैक्टरी, मुर्शिदाबाद सिल्क स्टोर, निमतल्ला सिल्क फैक्टरी, पलासी सिल्क फैक्टरी, रोज फिल्टर्स कनसर्न।

बम्बई प्रेसिडेन्सी—अहमदाबाद सिल्क और काटन मैनुफैक्चरिंग, बल्लुभाई मगनलाल, दयाराम हरकिशुन दास चेवली, न्यु कोरोनेशन मिल्स, पालनपुर वीभिंग-कम्पनी।

मध्यभारत—पिनसुम सिल्क मैनुफैकचरिंग।

काश्मीर—काश्मीर सिल्क फैक्टरी।

महिसुर—बङ्गलोर उलन, काटन एण्ड सिल्क मिल्स, सालभेरान आर्मी ताता सिल्क फार्म।

पोण्डिचेरी—फिलचर्स दट टिसाजेज गेबेले, साबन सोसाइटी अनोनियम दे फिलचर्स दट तिसाज।

युक्तप्रदेश आगरा और अवध—बालमुकुन्द मुल सिल्क मिल्स, बनारस सिल्क वीभिंग, टाचलर वीभिंग स्कूल।

रेशमी (फा० वि०) रेशमका बना हुआ।

रेशयदारिन् (सं० त्रि०) हिंसितकी प्रतिहिंसा करनेवाला।

रेशा (फा० पु०) १ तन्तु या महीन सूत। यह पौधोंकी छालों आदिसे निकलता है या कुछ फलोंके भीतर पाया जाता है।

रेष (सं० पु०) १ क्षति, हानि। २ हिंसा।

रेषण (सं० क्ली०) रेष-ल्युट्। १ अश्वशब्द, घोड़ेका हिनहिनाना। २ व्याघ्रका चीत्कार, बाघका गरजना या गुर्राना। ३ क्षति, हानि। ४ हिंसा।

रेषा (सं० स्त्री०) १ बाघका गुर्राना। २ घोड़ेकी हिनहिनाहट।

रेषिन् (सं० त्रि०) हिंसाशील, हिंसा करनेवाला।

रेष्ट (सं० त्रि०) क्षतिकारक, हानि पहुंचानेवाला।

रेष्मच्छिन्न (सं० त्रि०) प्रलयके झंझावातसे उद्भिन्न या विदीर्ण, जो प्रचंड वायुसे टूट फूट गया हो।

रेष्मन् (सं० पु०) प्रलयकाल।

रेष्ममथित (सं० त्रि०) जो प्रबल आंधीसे नष्ट-भ्रष्ट हो गया हो।

रेष्मय (सं० त्रि०) प्रलयकालमें भी जो मौजूद रहे।

रेस (अं० स्त्री०) १ बाजी बद कर दौड़ना, दौड़में प्रतियोगिता करना। २ घुड़दौड़।

रेसकोर्स (अं० पु०) दौड़ या घुड़दौड़का रास्ता या मैदान।

रेस ग्राउंड (अं० पु०) दौड़ या घुड़दौड़का मैदान।

रेसमान (फा० पु०) सुतरी, डोरी।

रेसलपुर—मध्यप्रदेशके हुसंगाबाद जिलान्तर्गत एक गण्ड-ग्राम।

रेह (हिं० स्त्री०) खार मिली हुई वह मिट्टी जो ऊसर मैदानोंमें पाई जाती है।

रेहन (फा० पु०) रुपया देनेवालेके पास कुछ माल या

आमदनी इस शर्त पर रखना कि जब वह रुपया या आय तक माल या जायदाद वापस कर दे, बंधक, गिरवी।

रेहनदार (फ़ा० पु०) वह जिसके पास कोई जायदाद रेहन रखी हो।

रेहननामा (फ़ा० पु०) वह कागज जिस पर रेहनकी शर्तें लिखी हों।

रेहल (अ० स्त्री०) पुस्तक रखनेकी दो पहल तख्ती। रिहल देखो।

रैहली—१ मध्यप्रदेशके सागर जिलान्तर्गत एक तहसील। यह अक्षा० २३ १ से २३ ५४ उ० तथा देशा० ७८ ११´ से ७९ २२´ पू०के मध्य अवस्थित है। भूपरिमाण १२११ वर्गमील और जनसंख्या डेढ़ लाखके करीब है। इसमें २ शहर और ३६० ग्राम लगते हैं। यहांकी जमीन बड़ी उपजाऊ है।

२ सागर जिलेके अन्तर्गत एक नगर और रैहली उप विभागका सदर। यह अक्षा० २३ ३८ उ० तथा देशा० ७९ ५´ पू०के मध्य अवस्थित है। समुद्रकी तहसे यह १३५० फुट ऊँचा है। यह स्थान स्वास्थ्यप्रद है। गुड़ चीनी और गेहूंके व्यवसायके लिए यह नगर प्रसिद्ध है।

पहले गोंड़राजगण यहां राज्य करते थे। पीछे एक दैवबंशीय राजपूतजातिकी एक शाखा निकटवर्ती बमारिया ग्राममें आ कर बस गई। उन लोगोंने बमारियासे राजपाट उठा कर रैहली नगरमें राजधानी बसाई तथा सुदृढ़ दुर्गादि द्वारा उसे सुरक्षित कर दिया। पश्चात् बुन्देल सरदार राजा छत्रशालने अहीर जातिसे यह स्थान जीत लिया। अनन्तर उन्होंने फर्रुखाबादके शासनकर्ता महम्मद खाँ बङ्गेशके विरुद्ध युद्ध किया। इस युद्धमें पेशवा बाजीरावने उन्हें सहायता पहुंचाई थी। इस प्रत्युपकारमें उन्होंने अन्यान्य सम्पत्तिके साथ पेशवाको यह स्थान दे दिया। वर्त्तमान दुर्ग उन्हीं पेशवाके यत्नसे ही बनाया गया था। उस समय यहां अनेक सम्भ्रान्तवंशीय महाराष्ट्रपुरुष आ कर बस गये थे। आज भी उनका टूटा फूटा महल मौजूद है। १८१७ ई०में सागर जिलेके साथ रैहली वृटिश सरकारके अधिकार भुक्त हुआ।

रैहुआ (हि० वि०) जिसमें रेह बहुत हो।

रेहू (हि० पु०) रेह देखो।

रैंगलर (अ० पु०) इङ्गलैंडमें प्रचलित सर्वोच्च गणित परीक्षामें उत्तीर्ण व्यक्ति।

रैक (अ० पु०) लकड़ीका खुला हुआ ढांचा जिसमें पुस्तकें आदि रखनेके लिये घर या खाने बने रहते हैं। यह अलमारीके ढंगका होता है पर भेद इतना ही होता है, कि अलमारीके चारों ओर तख्ते जड़े होते हैं और यह कम से कम आगेसे खुला रहता है।

रैकेट (अ० पु०) टेनिसके खेलमें गेंद मारनेका बल्ला। इसका अग्रभाग प्रायः वृत्ताकार और तांतसे बुना हुआ होता है।

रैक्व (सं० पु०) व्यक्तिविशेष। (छान्दोग्य उप० ४।१।३)

रैक्वपर्ण (सं० पु०) एक जनपदका नाम। (छान्दोग्य उप० ४।२।५)

रैभ (सं० पु०) रेभके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष। (पा ४।१।११२)

रैयाम—स्कन्दपुराण वर्णित एक पुण्यक्षेत्र। यह कोराम्बी के पश्चिम किनारे अवस्थित है। यहां ब्राह्मणादि चारों वर्णोंके लोग रहते थे। सह्याद्रिखण्डके अन्तर्गत कामाक्षी-माहात्म्यमें रैयामका विशेष विवरण दिया गया है।

रैणव (सं० पु०) १ रेणुके गोत्रमें उत्पन्न पुरुष। (आश्व० श्रौ० १२।१४)

२ एक प्रकारका साम।

रैणुकेय (सं० पु०) १ परशुराम। २ रेणुकाके गर्भसे उत्पन्न।

रैवत (सं० त्रि०) रेवा सम्बन्धीय। (शत०ब्रा० १४।३।५।२)

रैतिक (सं० त्रि०) पित्तल सम्बन्धीय, पीतलका।

रैतिक—ऋषिप्रवर्तित गोत्रभेद (स्कन्दपु० नागरख० १०८।१३)

रैतु (सं० पु०) राजा रेवा।

रैत्य (सं० पु०) पित्तलनिर्मित पात्र, पीतलका बना बरतन।

रैदास (हि० पु०) १ प्रसिद्ध भक्त जो जातिका चमार था। यह रामानन्दका शिष्य और कबीर, पापा आदिका सम कालीन था। रविदास देखो। २ चमार।

रैदासी (हिं० पु०) १ रैदास भक्तके सम्प्रदायका। २ एक प्रकारका मोटा जड़हन धान।

रैन (हिं० स्त्री०) रात्रि, रात।

रैनी (हि० स्त्री०) चांदी या सोनेकी वह गुल्ली जो तार खींचनेके लिये बनाई जाती है।

रैमुनिया (हिं० स्त्री०) १ एक प्रकारकी अरहर। २ लाल पक्षीकी मादा।

रैभ (सं० पु०) रेभका गोत्रापत्य।

रैभी (सं० स्त्री०) १ ऋक् मन्त्रभेद। (ऋक् १०।८५।६) २ अथर्व्ववेदीय दो मन्त्र। (अथर्व्व २०।१२७।४६)

रैभ्य (सं० पु०) १ सुमतिका पुत्र और दुष्मन्तका पिता। (भाग० ९।२०।७) २ एक मुनिका नाम। (विष्णुपु० ६।३।५१) ३ एक ज्योतिर्विद्। केशवार्कने मुहूर्त्तचिन्तामणिमें इसका उल्लेख किया है।

रैयत (अ० स्त्री०) प्रजा, रिआया।

रैयाराव (हिं० पु०) १ छोटा राज्य। २ एक पदवी जो प्राचीन समयमें राजा लोग अपने सरदारोंको देते थे।

रैवता (हिं० पु०) घोड़ा।

रैवत (सं० पु०) १ स्वर्णालु वृक्ष, सोनुली नामक क्षुप। २ गुजरातका एक पर्वत। इसी पर्वत परसे अर्जुनने सुभद्राका हरण किया था। (भारत १।२२१।६) उज्जयन्त और गिर्णार देखो। ३ शङ्कर, महादेव। ४ दैत्यविशेष। महाभारतमें लिखा है, कि यह बालग्रहोंमेंसे एक है।

(भारत ३।२२८-२९)

रेवत्या भवः रेवती-अण्। ५ वर्त्तमान कल्पके पांचवें मनु। ये रेवतीके गर्भसे उत्पन्न हुए हैं। दुर्द्दम इनके पिता हैं। इस मन्वन्तरमें विकुण्ठ अवतार, विभुइन्द्र, भूतरयादि देवता, हिरण्यरोमादि सप्तर्षि हैं। बलि और विन्ध्यादि उस मनुके पुत्र हैं। (भागवत) मत्स्यपुराणके मतसे भी रैवत पञ्चम मनु हैं। इन मनुके समय देवबाहु, सुबाहु, पर्जन्य, सोमप, मुनि, हिरण्यरोमा, सप्ताश्व, ये सात सप्तर्षि, अभूतरजस् आदि देवता, तत्त्वदर्शी अरुण, वित्तवान्, हव्यप, कापमुक्त, निरुत्सुक, सत्त्व, निर्म्मोह, प्रकाशक, धर्म्मवीर्य और बलोपेत ये दश रैवत मनुके पुत्र हैं। (मत्स्यपु० ९ अ०) ६ रुद्रभेद। ७ सामभेद। ८ ब्रह्मर्षिभेद। ९ बालरोगविशेषके अधिष्ठातृ-अपदेवताविशेष। १० मेघ, बादल। ११ सोमलताविशेष। (सुश्रुत ४ २९) १२ ऋषिविशेष। १३ राजभेद। (भारत उद्योग पर्व) १४ आनर्त्त (कुशस्थली)-के राजा ककुद्मिनके पितृपुरुष। १५ राजा अमृतोदनके औरससे रेवतीके गर्भजात पुत्रभेद। १६ आनर्त्त राजधानी कुशस्थलीके निकटस्थ पर्वतभेद। १८ शाकद्वीपके अन्तर्गत पर्वतभेद। (विष्णुपु० ५६।१७) (त्रि०) १९ धनवान्, धनी।

रैवतक (सं० पु०) स्वार्थे कन्। १ गुजरातका एक पर्वत जो आधुनिक जूनागढ़के पास है और गिरनार कहलाता है इसी पर्वत पर अर्जुनने सुभद्रा हरण किया था। २ शकुन्तला-वर्णित द्वारपालभेद। ३ रैवतक पहाड़ पर रहनेवाली एक जाति।

रैवतिक (सं० त्रि०) रैवती (रेवत्यादिभ्यष्ठक् । पा ४।१।१४६) इति ठक्। रेवतीका अपत्य।

रैवतिकीय (सं० त्रि०) १ रैवतीसम्बन्धीय। २ रेवतीसम्भव।

रैवत्य (सं० क्ली०) १ धन, सम्पत्ति। २ एक प्रकारका साम।

उनविंश भाग सम्पूर्ण